२००/२

११69

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

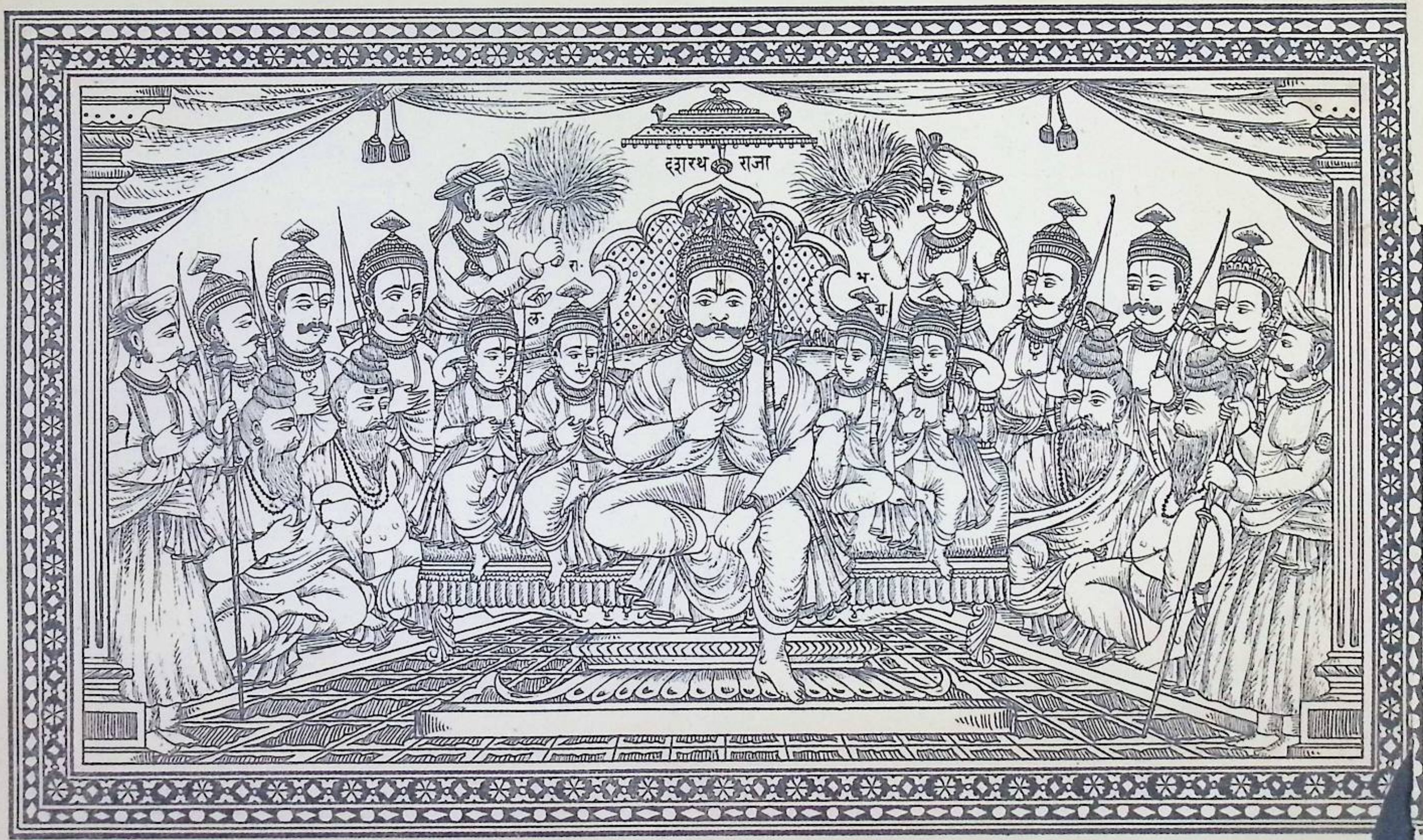
दशरथ राजा
रा.
ल.
भ.
श.

प्रस्तावना.

यह योगवासिष्ठ नामक ग्रंथ, आदि महाकवि श्रीवाल्मीकि ऋषीनें देवगिरा जो संस्कृत भाषा ताके पद्यमें अत्युत्कृष्ट रीतिसें रच्या है, तामें पद्यरचनादिक सब काव्यके प्रकार अच्छी तरहसें प्रदर्शित होवें हैं, प्रसंगानुसार नवहू रस दर्शाये हैं, तिनमें शांतिरस तौ ऐसा दर्शाया है, की मानो सो साक्षात् मूर्तिमंत होयके खडा हुआ होवै क्यूं ! उपमा औ उत्प्रेक्षादिक अलंकारनकी तौ मानो यह ग्रंथ खानीही है, अधिक क्या कहौं, इस ऋषीश्वरनें काव्यादिक कलाके बुभुत्सुक जनोंके लिये मानौ एक शडक बांधि दीन्ही है, तिसके अनुसार आज दिनतक सब कवि चल रहे हैं, यद्यपि इस ऋषीके पीछे आधुनिक बाणकवि प्रमुख जो ग्रंथकर्त्ता हुवे हैं, तिनोंनें कादंबर्‍यादिक जो ग्रंथ रचे हैं, तिनोंकेविषे ऐसी तौ उत्तमयुक्तियुक्त उक्ति करी है, की ऐसी और कहूं भी देखनेमें आवै नहीं है, तथापि सो वाल्मीकिका उच्छिष्टही संभवै है, काहेतें आदि कवि वाल्मीकिहि है, तिसनें सब रीति प्रगट करी, तब तिस रीतिकूं ग्रहण करिके सब कविओंनें अपणी अपणी बुद्धि अनुसार ग्रंथ रचे हैं, तिन ग्रंथके काहु अंशमें अधिक युक्ति देखिके तिनके कर्ताकेविषे श्रेष्ठताका संभव होवै नहीं, किंतु तिनका रीतिदर्शक इस ग्रंथरूप पूर्व कारण है, ताकूं श्रेष्ठताका संभव है, तातें यह ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट है.

औ यह ग्रंथ आदितें अंतपर्यंत वेदांतसिद्धांतपर होनेतें तौ अनुपमेयही है, काहेतें अद्वैत ज्ञानोत्पादक होनेतें मोक्षका एक साधन है, तातें वाके अधिकारी सर्व मोक्षेच्छु जीव हैं, याका विषय जीवब्रह्मकी एकता है, याका संबंध प्रतिपाद्य प्रतिपादकादि है, औ याका प्रयोजन अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप है. यद्यपि इस ग्रंथमें वेदांतकी प्रक्रियाका नियम नहीं देखियें हैं, तौ भी सब प्रक्रियाका यामें समावेश भया है, औ यह ग्रंथ केवल वेदांतसिद्धांतरूप होनेतें यामें केवल दृष्टिसृष्टिवाद अथवा अजातवादही दर्शाया है, यद्यपि प्रथम वैराग्य प्रकरण औ दूसरा मुमुक्षुप्रकरण इनोंमें वैराग्य औ मुमुक्षुताका कथन औ दृढीकरण है; तथापि ताके अंतरगत भी पूर्वोक्त दोनों वादोंकी प्रौढी है, औ पीछेके जो उत्पत्ति आदिक चार प्रकरण हैं, तिनोंमें तौ और प्रकारही नहीं है, केवल ब्रह्मकेविषे मायिक पदा

र्थका अत्यंत अभावही दर्शाया है, तिनमें भी निर्वाणप्रकरणमें तौ अनेक इतिहासनकरि जगत्कूं स्वप्नकी नाईही वर्णन किया है, सो वांचिके सुनिके वा अध्ययन कियेतें स्पष्ट जान्या जावै है, यद्यपि स्वप्नके पदार्थ अल्पकालस्थायी हैं, औ जाग्रतके पदार्थ दीर्घकालस्थायी हैं, तातें स्वप्नकी नांई जाग्रत संभवै नहीं, तथापि दोनोंके पदार्थ मायिक होनेतें तिनकी सादृश्यता संभवै है, इत्यादिक अनेक युक्तिनकरि दोनोंकी तुलना करी है, औ ब्रह्मकेविषे तीनों काल सृष्टि भईही नहीं है, ऐसे अनेक दृष्टांतनकरि दिखाया है, सो मानौं वेदके ज्ञानकांडका सिद्धांतही दोहन करि लिया है.

परंतु यह ग्रंथ संस्कृत भाषामें होनेतें साधारण मनुष्यकूं उपयोगी होवै नहीं, तातें प्राकृत हिंदुस्थानी भाषामें ताका व्याख्यान किया गया है, सो व्याख्यान ऐसे भया है:—श्रीपंजाब देशमें पटियाला नामक शहर है, तामें सुमार एकसौ वर्षसें पहिले साहिबसिंह नामक राजा होत भया, ताकी दो बहीन विधवा थी, तिनोंकी अद्वैतमतकेविषे अतिशय निष्ठा थी, औ वेदांतशास्त्रकीही कथा श्रवण करती थी, तिनोंनें निरंजनी साधु रामप्रसादके मुखसें इस ग्रंथकी कथा इत्थंभूत श्रवण करी थी, तिसकरि तिनोंकों अद्वैतज्ञानकी अच्छी निष्ठा भई थी, एक दिन दोनों भगिनियानें विचार किया की यह ग्रंथ संस्कृत भाषामें होनेतें सर्वोपयोगी नहीं है, जो याका व्याख्यान लिखा जावै तौ सर्वसाधारण मनुष्योंकूं भी उपयोगी होवै, तातें फिरी याकी कथा इसी साधुसें करवायके सो लिखवाय लेना, ऐसा दृढ निश्चय करिके उस साधुकी विनंती करिके कथाका आरंभ किया, औ दो लिखनेवाले बैठाये, जैसे वह साधु व्याख्यान करै तैसे वे लिख लेवैं, ऐसे संपूर्ण ग्रंथ व्याख्यानरूप पंजाबीमिश्र हिंदुस्थानी भाषामें लिखा गया, तिसतें फिर कालांतरकरि और बहुत प्रतें लिखी गई, ऐसे होत होत समय पायके सारे हिंदुस्थानमें यह प्राकृत ग्रंथ प्रसिद्ध हो गया, सो या ग्रंथकी व्याख्यानरूप रचना होनेतें अति सरलताके लिये अति साधारण मनुष्यकूं भी उपयोगी हुवा है, तातें इस ग्रंथके अभिलिप्सु बहुत देखियें हैं, औ यह ग्रंथ यथार्थ भाषांतररूप नहीं सो तौ याकी रचनातेंही सिद्ध होवै है, तातें वही वृत्तांत सत्य है, ऐसे निश्चय अनुमान होवै है, सो कैसेही हौ परंतु जिन भगिनियोंके उद्योगसें इस अमूल्य ग्रंथका भाषांतर हुवा है, तिनोंनें साधारण मनुष्यनपर अत्यंत उपकार किया है, तातें वे सबनकरि वंदना करणेयोग्य

हैं, परंतु इस ग्रंथकी श्लोकसंख्या बडी होनेंतें याकी लिखवाईका दाम बहुत होवै है, यद्यपि याकी मूल संस्कृत श्लोकसंख्या तौ ३२००० की है, तथापि इस व्याख्यानकी संख्या ४५००० की हुई है, सो द्रव्यहीन मनुष्यतें लिखाया जावै नहीं, तातें संवत् १९२२ के वर्षमें कवि हीराचंद कानजीके पुत्र हरिदासनें प्रथमावृत्ति छपायके प्रसिद्ध किन्ही थी, सो आवृत्ति खपी गई, तब फिर मैंनें द्वितीयावृत्ति मेरे स्वतःके छापखानेमें छापनेकी इच्छा करी औ यह मत मैंनें परम विवेकी सद्गृहस्थ जो मेरा मित्र खोजा शरीफभाई सालेमहंमद है तिनसें पूछा, तिनोंने रुकार दिया, औ कहा की यह द्वितीयावृत्ति अच्छी तरहसें शुद्ध होणी चाहिये, तातें सो विसनजी चतुर्भुजके हाथसें शुद्ध करवायके छापनेका आरंभ करना चाहिये. यानें हिंदुस्थानी भाषाके गद्य औ पद्यमें अच्छा अभ्यास किया है, यातें ताके हाथसें यह ग्रंथ अच्छा शुद्ध होवैगा, ऐसा ता मम मित्रका कहनां मैंनें मान्य करि लिया औ विसनजी चतुर्भुजकूं ग्रंथ शुद्ध करनेकूं दिया, तानें सो अच्छी तरहसें शुद्ध किया, (यह प्रस्तावना भी इनोंके हाथसें लिखवाई है,) सो यह द्वितीयावृत्ति वांचेसें जान्या जावैगा, औ प्रथमावृत्तिमें अक्षर भी छोटे रखे थे, सो या आवृत्तिमें तिन अक्षरोंसें दूनें बडे रखे गये हैं, औ प्रथमावृत्तिमें पत्रनकी तखती लंबी रखी थी सो बहुत जननकूं नीकी लगती नहीं थी, तातें या द्वितीयावृत्तिमें और बहुत शास्त्रनके माफक छोटी औ सुशोभित तखती रखी है, सो यह ग्रंथ देखेसें मालुम होवैगा, औ याका दाम भी अति स्वल्प रखा है, सो प्रसिद्धीपत्रसें जान्या जावैगा. अस्तु, इत्यादिक बहुत प्रयास लेके यह द्वितीयावृत्ति मेरे निर्णयसागर नामक छापखानेमें छपी गई है, सो अत्यंत प्रसृत होवौ, औ तातें बहुत जन ज्ञानवान् होवौ, ऐसी हमारी ईश्वरके पास विज्ञापना है, सो पूर्ण होवौ.

॥ कवित इकतीसा ॥

॥ वेदको सिद्धांत जो वेदांतरूप कहियत, सो या योगवासिष्ठकेमांहि भरि दीनो है ॥
॥ आदि कवि श्रीवाल्मीकिरचित अमरगिरा, सोई फिरि प्राकृत गिरामें करि लीनो है ॥
॥ कथारूप नीको अति सुखकर जीको, अरि अज्ञान अहीको छापिके प्रसिद्ध कीनो है ॥
॥ याहीको प्रसार सुखकार सब जनमांही, होवै दुःख खोवै ऐसे ग्रंथकरि चीनो है ॥ १ ॥

जावजी दादाजी.

अनुक्रमणिका–(वैराग्य प्रकरण).

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.	सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.	सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	कथारंभ	१	११	चित्तदौरात्म्य	१८	२१	कालविलास	३४
२	तीर्थयात्रा	४	१२	तृष्णागारुडी	२०	२२	सर्वपदार्थाभाव	३५
३	विश्वामित्रागमन	६	१३	देहनैराश्य	२१	२३	जगद्विपर्यय	३७
४	दशरथविषाद	८	१४	बालावस्थावर्णन	२५	२४	सर्वांतप्रतिपादन	३८
५	दशरथोक्तिवर्णन	९	१५	युवागारुडी	२६	२५	वैराग्यप्रयोजन	३९
६	रामसमाज	१०	१६	स्त्रीदुराशा	२८	२६	अनन्यत्यागदर्शन	४०
७	रामवैराग्यवर्णन	१३	१७	जरावस्थानिरूपण	२९	२७	सिद्धसमाज	४१
८	लक्ष्मीनैराश्य	१५	१८	कालवृत्तांत	३१	२८	मुनिसमाज	४१
९	संसारसुखनिषेध	१६	१९	कालविलास	३२			
१०	अहंकारदुराशा	१७	२०	कालजुगुप्सा	३३			

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे प्रथम वैराग्य प्रकरण प्रारंभः ॥ ॥ सत् चित् आनंदरूप जो आत्मा है तिसकों नमस्कार है ॥ कैसा है सत् चित् आनंदरूप सो कहते हैं ॥ जिसतें यह सर्व भासत है, अरु जिसविषे यह सर्व लीन होत है, अरु जिसविषे सब स्थित होत है, तिस सत्यआत्माकों नमस्कार है ॥ ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया, जिसकरके सिद्ध होते हैं, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है तिसकों नमस्कार है ॥ जिस आनंदके समुद्रके कणकरि संपूर्ण विश्व आनंदवान् है, अरु जिस आनंदकरि सब जीव जीते हैं; तिस आनंदरूप आत्माकों नमस्कार है ॥ कोऊ एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यका शिष्य होता भया, तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न भया, तिसकों निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्य मुनिके आश्रमकों गमन किया ॥ जाय कर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया; औ नम्रता भावसों प्रश्न करता भया ॥ ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व तत्त्वज्ञ सर्वशास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझकों है, सो तुम कृपा करके निवृत्त करौ, जो मोक्षका कारण कर्म है अथवा ज्ञान है, अथवा दोनों हैं ? जो मोक्षका कारण होय सो कहौ ॥ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं, औ केवल ज्ञानतें भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता, दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ कर्म करके अंतःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता ॥ अरु अंतःकरणशुद्धिविना, केवल ज्ञानतें भी मुक्ति नहीं होती ॥ अर्थ यह जो शास्त्रहूका अर्थ तात्पर्य ज्ञानका निश्चय, अंतःकरणशुद्धि हुएविना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती ॥ तातें दोनोंकरि मोक्षकी सिद्धि होती है ॥ कर्मकरके प्रथम अंतःकरणशुद्धि होती है ॥ बहुरि ज्ञान उपजता है ॥ तब मोक्षसिद्धि होती है ॥ जैसे दोनों पक्ष करके पक्षी आकाशमार्गकों सुखसों उडता है, तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनों करके मोक्षकी सिद्धता होती है ॥ हे ब्रह्मण्य ! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है सो तूं श्रवण कर ॥ एक कारण नाम ब्राह्मण अग्निवेषका पुत्र था ॥ सो गुरुके निकट जाय कर चार वेद षडंगसहित अध्ययन करत भया ॥ अध्ययन करके बहुरि गृहमें आवत भया ॥ औ कर्मतें रहित

होयकर तूष्णीं स्थित रहा ॥ अर्थ यह जो संशय संयुक्त कर्मतें रहित भया ॥ तब पितानें देख्या जो यह कर्मतें रहित होकर स्थित भया है ॥ ऐसा देखिके इस प्रकार कहत भया ॥ ॥ अग्निवेष उवाच ॥ हे पुत्र! कर्मकी पालना क्यौं नहीं करता ॥ औ तूं कर्मके अकरनेतें सिद्धताकों कैसे प्राप्त होवैगा ॥ जिसकर तूं कर्मतें रहित हुआ है, सो कारण कहिदे ॥ ॥ कारण उवाच ॥ हे पिता! एक संशय मुझकों उत्पन्न हुआ है ॥ तिस करके मैं कर्मतें तूष्णीं रहा हौं, सो श्रवण करौ ॥ वेदमें एक ठौर कहा है, जो जबलग जीता रहै तबलग कर्मकों करना ॥ जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं सो करताही रहै ॥ अरु और ठौर कहा है, जो न धन करिके मोक्ष होता है, न कर्म करिके मोक्ष होता है, न पुत्रादिक करिके मोक्ष होता है, न केवल त्यागतें मोक्ष होता है ॥ इन दोनोंविषे मुझकों क्या कर्त्तव्य है? यह संशय है सो तुम कृपा करके कहौ, जो क्या कर्त्तव्य है ॥ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जब कारणनें पिताकों कहा; तब तिसका वचन सुनकर अग्निवेष कहत भया ॥ ॥ अग्निवेष उवाच ॥ हे पुत्र! एक कथा मुझतें श्रवण कर ॥ जो पहिले हुइ है, तिसकों सुनकर हृदयकेविषे धरिके, आगे जो तेरी इच्छा होय सोइ करना ॥ एक सुरुचि नाम अप्सरा थी, सो कैसी थी जो जेती कछु अप्सरा हैं, तिनविषे उत्तम थी ॥ सो एक कालमें हिमालयके शिखर ऊपर बैठी थी ॥ सो हिमालयपर्वत कैसा है, जो कामनाकरके संतप्त जिनके हृदय हैं ऐसे देवता अरु किंनरके गण तहां अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं, बहुरि कैसा है ॥ जहां गंगाजीका प्रवाह लहरी देत चला आता है ॥ सो गंगा कैसी है जो महापवित्र जल है जिसका ऐसे शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी ॥ तिसनें इंद्रका दूत अंतरिक्षतें चला आवता देखा ॥ जब निकट आया तब तिसकों कहा ॥ अहो सौभाग्य देवदूत! तूं देवगणमें श्रेष्ठ है तूं कहांतें आया, औ अब कहां जायगा? सो कृपा करके कहि दे ॥ ॥ देवदूत उवाच ॥ हे सुभद्रे! तैंनें पूछ्या है सो श्रवण कर ॥ अरिष्टनेमि एक राजर्षि था, तिसनें अपने पुत्रकों राज्य देकर वैराग्य लिया, संपूर्ण विषयोंका अभिलाष त्याग करके गंधमादन पर्वतमें जायकर तप करने लगा ॥ अरु धर्मात्मा

था, तिसके साथ मेरा एक कार्य था, सो कार्य करके मैं अब इंद्र पास चला जाता हौं॥ तिसका मैं दूत हौं॥ संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेकों चला हौं॥ ॥अप्सरोवाच॥ हे भगवन्! यह वृत्तांत कौनसा है ॥ सो मोकों कहौ॥ मेरेकों तूं अति प्रिय है, यह जानकर पूछती हौं॥ औ जो महापुरुष हैं तिनकों कोइ प्रश्न करता है, तब उद्वेगतें रहित होकर उत्तर कहते हैं, तातें तूं कहिदे॥ ॥देवदूत उवाच॥ हे भद्रे! जो वृत्तांत है सो सुन॥ विस्तार करके मैं तुझकों कहता हौं॥ उह राजा गंधमादनपर्वतमें तप करने लगा, अरु बडा तप किया॥ तब देवताका राजा जो इंद्र है, तिसनें मुझकों बुलायकर आज्ञा करी जो, हे दूत! तूं गंधमादन पर्वतविषे विमान औ अप्सरा औ नाना प्रकारकी सामग्री अरु गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किंनर, ताल, मृदंग, आदि वादित्र संग ले जा॥ सो गंधमादनपर्वत कैसा है, जो नाना प्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है, तहां जायके राजाकों विमानपर बैठायके, इहां ल्याव॥ हे सुंदरी! जब इंद्रनें ऐसा कहा, तब मैं विमान अरु सामग्रीसहित जहां राजा था तहां आया॥ अरु मैंनें राजाकों कहा, हे राजन्! तेरे कारण विमान ले आया हौं, तापर आरूढ होकर तूं स्वर्गकों चल, औ देवतानके भोग भोगु॥ जब मैंनें ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया॥ ॥राजोवाच॥ हे देवदूत! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तूं मुझकों कहिदे॥ जो तेरे स्वर्गमें दोष कहा अरु गुण कहा है, तिनकों सुनिके मैं हृदयमें विचारौं, पीछे जो मेरी इच्छा होवैगी तौ आऊंगा॥ ॥देवदूत उवाच॥ हे राजन्! स्वर्गमें बडे दिव्य भोग हैं सो स्वर्ग बडे पुण्यसें जीव पाता है॥ जो बडे पुण्यवाले होते हैं सो स्वर्गके उत्तम सुख पाते हैं॥ जो मध्यम पुण्यवाले हैं सो स्वर्गके मध्यम सुख पाते हैं॥ अरु कनिष्ठ पुण्यवाले हैं सो स्वर्गके कनिष्ठ सुख पाते हैं॥ यह जो गुण स्वर्गमें हैं सो तोकों कहे॥ औ स्वर्गके जो दोष हैं सो सुन॥ हे राजन्! जो आपतें ऊंचे बैठे दृष्ट आते हैं, अरु उत्तम सुख भोगते हैं तिनकों देखिके तापकी उत्पत्ति होती है; क्यों जो उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती है॥ अरु जो कोइ अपने समानसुख भोगते हैं तिनकों देखिके क्रोध उपजता है॥ जो मेरे समान क्यों बैठे हैं॥ अरु

जो आपतें नीचे बैठे हैं कनिष्ठ पुण्यवाले, तिनकों देखिके आपकों अभिमान उपजता है ॥ जो मैं इनतें श्रेष्ठ हौं ॥ औ एक और भी दोष है, जो जब इसके पुण्य क्षीण होते हैं, तब तिसी कालमें इसकों मृत्युलोकमें गिराय देते हैं ॥ एक क्षण भी रहने देते नहीं ॥ हे राजन्! यह जो दोष कहे सो स्वर्गमें हैं ॥ जो तैंनें पूछा सो मैंनें गुण अरु दोष कहा ॥ हे भद्रे, जब इस प्रकार राजाकों मैंनें कहा तब मोकों राजानें कहा, हे देवदूत! इस स्वर्गके जोग हम नहीं ॥ अरु हमकों इच्छा भी नहीं है ॥ हम उग्र तप करैंगे ॥ तप करके इस देहकों बी त्याग देंगे ॥ जैसे सर्प अपनी त्वचाकों पुरातन जानिके, त्याग करता है, तैसे हम भी त्याग कर दैंगे ॥ हे देवदूत! तुम तुमारे विमानकों जहां तें लाया है, तहां लेजाओ ॥ हमारे तो नमस्कार है ॥ हे देवी ! जब इस प्रकार राजानें मुझकों कहा, तब विमान औ अप्सरा आदि सबकों लेके स्वर्गमें गया, अरु संपूर्ण वर्त्तमान इंद्रकों कहा ॥ तब इंद्र प्रसन्न हुआ अरु सुंदर बानी करके मुझकों कहत भया ॥ हे दूत ! तूं बहुरि जहां राजा है तहां जा ॥ वह संसारसें विरक्त हुआ है ॥ इसकों अब आत्मपदकी इच्छा हुइ है ॥ इसकों साथ लेके वाल्मीकके पास जा ॥ सो वाल्मीक कैसा है, जिसनें आत्मतत्त्वकों आत्मा करी जान्या है, तिसके पास ले जाय मेरा संदेश देनां ॥ जो हे महाऋषी ! इस राजाकों तत्त्वबोधका उपदेश करनां; जो यह बोधका अधिकारी है; काहेतें जो इसकों स्वर्गकी भी इच्छा नहीं, अरु अवरकी भी वांछा नहीं, तातें तुम इसकों तत्त्वबोधका उपदेश करौ; जो तत्त्वबोधकों पाय करके संसारदुःखतें मुक्त होवै ॥ हे सुभद्रे ! जब इस प्रकार देवराजानें मुझकों कहा, तब मैं चला, जहां राजा था वहां जाय करिके मैंनें कहा, जो हे राजन्! तूं संसारसमुद्रतें मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकके पास चल, वाल्मीक तुझकों उपदेश करैगा, तव तिसकों साथ ले कर, मैं वाल्मीकके स्थान पर आय प्राप्त भया, तिस स्थानमें राजाकों बैठाया अरु इंद्रका संदेश दिया, जो उहां वृत्तांत भया सो सुन ॥ जब उहां गये अरु प्रणाम कर बैठे, तब वाल्मीकनें कहा ॥ हे राजन्! कुशल है ? ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्, परमतत्त्वज्ञ औ वेदांत जाननेवालेमें श्रेष्ठ, मैं अब कृतार्थ हु

आ; तुमारे दर्शन करके अब मुझकों कुशल हुआ है; अरु कछु पूछता हौं; कृपा करके उत्तर कहेना, जो संसार बंधनतें मुक्ति होय॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! महारामायणकी कथा तुझकों कहता हौं, सो श्रवण करके तिसका तात्पर्य हृदयविषे धारणका यत्न कर, जब तात्पर्य हृदयविषे धरैगा, तब जीवन्मुक्त होय कर विचरैगा॥ हे राजन्! वसिष्ठजी अरु रामचंद्रजीका संवाद है जिसमें, तिसमें सब कथा करि मोक्षकाही उपाय कहा है॥ तिसकों सुनिके जैसे रामचंद्रजी अपने स्वभावविषे स्थित हुए, अरु जीवन्मुक्त होयके बिचरे हैं, तैसे तूं भी बिचरैगा॥ ॥राजोवाच॥ हे भगवन्! रामचंद्रजी कवन था, अरु कैसा था, अरु कैसे होकर बिचर्या है, सो कृपा करके कहौ॥ ॥वाल्मीक उवाच॥ हे राजन्! शापके वशतें हरि जो विष्णु तिननें छल धरके मनुष्यका देह धर्या, सो अद्वैतज्ञानकरि संपन्न है, तौ भी कछुक अज्ञानकों अंगीकार करके, मनुष्यका शरीर धर्‍या था॥ ॥राजोवाच॥ हे भगवन्! चिदानंदरूप जो हरि है, तिसकों शाप किस कारण हुआ, अरु किसनें दिया? सो कहौ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! एक कालमें सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमें बैठे थे; अरु त्रिलोकका पति जो विष्णु भगवान्, सो वैकुंठतें उतरिके ब्रह्मपुरीमें आये; तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडी हुइ, अरु पूजन किया, परंतु सनत्कुमारनें पूजन किया नहीं, तिसकों देखकर विष्णु भगवान् बोलत भया॥ हे सनत्कुमार! तुझकों निष्कामताका अभिमान है, तातें तूं कामकरके आतुर होवैगा, अरु स्वामी कार्तिक तेरा नाम होवैगा; जब विष्णु भगवाननें ऐसा कहा, तब सनत्कुमार बोला, हे विष्णु! सर्वज्ञताका अभिमान तुझकों है, सो तेरी सर्वज्ञता कोई कालमें निवृत्त होवैगी, अरु अज्ञानी होवैगा॥ हे राजन्! एक तौ यह शाप हुआ; औरभी सुन, एक कालमें भृगुकी स्त्री जात रहीथी; तिसके वियोगकर वह ऋषि तपायमान हुआ था, तिसकों देखके विष्णुजी हंसे, तब भृगु ब्राह्मणनें शाप दिया; हे विष्णु! मेरेकों देखी तैंनें हांसी करी है, सो मेरी नांई तूं भी स्त्रीके वियोग करके आतुर होवैगा॥ अरु एक दिवस देवशर्मा ब्राह्मणनें नरसिंह भगवानकों

शाप दियाथा; सो सुन ॥ एक दिन नरसिंहभगवान् गंगाके तीरपर गयेथे, तहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री थी; तिसकों देखके नरसिंहजी भयानक रूप दिखायके हंसे, तिनकों देखके ऋषिकी लुगाइनें भय पाय प्राण छोड दीन्हे, तब देवशर्मानें शाप दिया, जो तुमनें मेरी स्त्रीका वियोग किया तातें तुम भी स्त्रीका वियोग पाओगे॥ हे राजन् ! सनत्कुमार, अरु भृगु, अरु देवशर्माके शाप करके विष्णु भगवाननें मनुष्यका शरीर धर्या, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे ॥ हे राजन् ! यह जो शरीर धर्या है, अरु आगे जो वृत्तांत हुआ है, सो सावधान होय श्रवण कर ॥ दिव्य जो है देवलोक अरु भू जो है पृथ्वीलोक, अरु पाताललोक, ऐसी त्रिलोकीकों प्रकाशता है, अरु अंतर बाहिर आत्मतत्त्वकरी पूर्ण है, ऐसा अनुभवात्मक जो मेरा आत्मा है, तिस सर्वात्माकों नमस्कार है ॥ हे राजन् ! यह शास्त्र जो आरंभ किया है, तिसका विषय क्या है; अरु प्रयोजन क्या है; अरु संबंध क्या है, अरु अधिकारी कौन है? सो श्रवण कर ॥ सच्चिदानंदरूप अचिंत्य चिन्मात्र आत्माकों ब्रह्म भिन्न जनावता है, सो विषय है ॥ अरु परमानंदकी प्राप्ति अरु अनात्मअभिमानजन्य दुःखकी निवृत्ति यह प्रयोजन इसमें है ॥ अरु ब्रह्मविद्या मोक्ष उपाय कर आत्मपदप्रतिपादक है, सो संबंध है ॥ अरु जिसकों यह निश्चय है, जो मैं अद्वैत ब्रह्म अनात्म देह साथ बांध्या हुआ हौं, सो किसी प्रकार छूटौं, सो न अति ज्ञानवान है, न मूर्ख है, ऐसा जो विकृति आत्मा है, सो यहां अधिकारी है ॥ यह शास्त्र मोक्षका उपाय है, सो कैसा है मोक्ष उपाय, परमानंदकी प्राप्ति करनहारा है ॥ जो पुरुष इसकों बिचारै सो ज्ञानवान होवै, बहुरि जन्ममरणरूप संसारमें न आवै ॥ हे राजन् ! यह महारामायण जो है सो पावन है ॥ श्रवणमात्रतें सब पापका नाश करता है, जिसविषे रामकथा है; सो प्रथम मैं अपने भारद्वाज शिष्यकों श्रवण कराई है ॥ एक समय भारद्वाज चित्तकों एकाग्र करके मेरे पास आया था, तिसकों मैं उपदेश किया था, तिसकों श्रवण करके वचनरूपी समुद्रतें साररूपी रत्न निकास करके हृदयविषे धरके एक समय सुमेरु पर्वतपर गया ॥ तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठा था, अरु भा

रद्वाजनें जायकर प्रणाम किया, अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजीकों यहकथा सुनाई; तब ब्रह्मानें प्रसन्न होयकर भारद्वाजकों कह्या ॥ हेपुत्र! कछु वर माग! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हौं ॥ हेराजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीनें कह्या, तब परम उदार जिसका आशय है, ऐसा जो भारद्वाज सो कहत भया॥ हे भूतभविष्यके ईश्वर! जब तुम प्रसन्न हुवे हो, तब यह वर देहु, जो संपूर्ण जीव संसारदुःखतें मुक्त होहीं ॥ अरु परम पदकों पावहीं ॥ सो उपाय कहौ ॥ ॥ब्रह्मोवाच ॥ हे पुत्र! तूं अपने गुरु वाल्मीक पास गमन कर; बहुरि जो तिसनें आत्मबोध महारामायण अनिंदित शास्त्रका आरंभ किया है, तिसकों सुनकर जीव महामोहजन्य संसारसमुद्रतें तरेंगे ॥ कैसा शास्त्र है महारामायण, जो संसारसमुद्र तरनेका पूल है, अरु परमपावन है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा सो भारद्वाजकों साथ लेकर मेरे आश्रममें आये ॥ तब मैंनें भले प्रकारसों उनका पूजन किया ॥ सो ब्रह्माजी कैसे हैं, सर्व भूतनके हितमें प्रीति है जिनकी, वे मुझकों कहत भये ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीओंमें श्रेष्ठ वाल्मीक! यह जो रामके स्वभावके कथनका आरंभ तुम किया है, तिस उद्यमका त्याग नहीं करना ॥ इसकों आदितें अंतपर्यंत समाप्त करना ॥ कैसा है यह मोक्ष उपाय, जो संसाररूपी समुद्रके पार करनेकों जहाज है॥ इस करके सब जीव कृतार्थ होवैंगे ॥ ॥वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्माजी मुझकों कहिके अंतर्धान हो गये ॥ जैसे समुद्रतें आवर्त्तचक्र एक मुहूर्त्तपर्यंत उठके बहुरि लीन हो जावे तैसे ब्रह्माजी अंतर्धान हो गये ॥ तब मैंनें भारद्वाजकों कहा ॥ हे पुत्र! ब्रह्माजीनें क्या कहा ॥ ॥ भारद्वाज उवाच ॥ हे भगवन्! तुमकों ब्रह्माजीनें ऐसा कहा, जो हे मुनिश्रेष्ठ! यह जो तुमनें रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है, तिसका त्याग नहीं करना ॥ अंतपर्यंत प्रयास करना ॥ काहेतें, जो इस संसारसमुद्रके पार करनेकों यह कथा जहाज है, इस करके अनेक जीव कृतार्थ होवैंगे; अरु संसारसंकटतें मुक्त होवैंगे ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीनें मुझकों कहा, तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मैंनें ग्रंथ किया, अरु भारद्वाजकों कहा ॥ हे

पुत्र! वसिष्ठजीके उपदेशकों पायकर जिस प्रकार रामजी निःशंक होइ विचरे हैं, तैसे तूं भी विचर॥तब उननें प्रश्न किया॥ ॥भारद्वाज उवाच॥ हे भगवन्! जिस प्रकार रामचंद्रजी जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं, सो आदिसों क्रम करके मुझकों कहौ॥ ॥वाल्मीक उवाच ॥हे भारद्वाज! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरथ, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ, अष्ट तौ यह जीवन्मुक्त हुए हैं; अरु अष्ट मंत्री, अष्ट गुण, अरु वसिष्ठ वामदेवतें आदि अष्टाविंशति जीवन्मुक्त होय विचरे हैं, तिनके नाम सुन; रामजीतें लेकर दशरथपर्यंत आठ तौ ये कृतार्थ हुए हैं; अविरोध परमबोधवान भये हैं; औ कुंतभासी १ शतवर्धन २ सुखधाम ३ बिभीषण ४ इंद्रजित् ५ हनुमान् ६ वसिष्ठ ७ वामदेव ८ ए अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भये हैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुए हैं इनकों कदाचित् स्वरूपतें द्वैतभाव नहीं स्फुर्या है; अनामय पदविषे स्थितिमें तृप्त रहे हैं; जो केवल चिन्मात्र, शुद्ध पद, परमपावन, ताकों प्राप्त हुए हैं॥ ॥इति श्रीयो०वै० कथारंभवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः॥ १ ॥ भारद्वाज उवाच॥ हे भगवन्! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है? अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुए हैं? सो आदितें लेकर अंतपर्यंत सब कहौ॥ ॥वाल्मीक उवाच॥ हे पुत्र! यह जगत् जो भासता है, सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न भया; अविचार करके भासता है; विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है; जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो भ्रम करके है, जब विचार करके देखियें तब नीलता प्रतीति दूर हो जाती है; तैसे अविचार करके जगत् भासता है; अरु विचारतें लीन हो जाता है॥ हे शिष्य! जबलग सृष्टिका अत्यंत अभाव नहीं होता; तबलग परम पदकी प्राप्ति नहीं होती; जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावै, तब पीछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासैगी॥ कोइ इस दृश्यकों महाप्रलयमें कदाचित् अभाव कहते हैं; परंतु मैं तुझकों तीनोंही कालका अभाव कहता हौं; सो सशास्त्र होनेतें इस शास्त्रमें श्रद्धासंयुक्त आदितें लेकर अंततक श्रवण करै, अरु तिनकों धारण करै, तब भ्रांति निवृत्त होय जावै; अरु अव्याकृत पदकी प्राप्ति होवै॥ हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इस

कों भ्रम मात्र जानकर विस्मरण करना,यही मुक्ति है; अरु इसकों बंधनका कारण वासना है; वासना करके भटकत फिरता है; जब वासनाका क्षय होय जाय, तब परमपदकी प्राप्ती होवै; एक वासनाका पुतला है, तिसका नाम मन है; जैसे जलसरदीकी दृढ जडता पायके बरफ होता है, पाछेसूर्यकेतापतें बहुरि पिगलकर जलहोता है तब केवल शुद्ध जल होय रहता है; तैसे आत्मरूपी जल है, तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जडता शीतलता है; तिस करके मनरूपी बरफका पुतला हुआ है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा, तब संसारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता, निवृत्त होय जावैगी; जब संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई, तब मन नष्ट होय जावैगा; जब मन नष्ट हुआ, तब परम कल्याण हुआ; तातें इसकों बंधका कारण वासना है; अरु वासनाके क्षय हुएतें मुक्ति है; सो वासना दो प्रकारकी है एक शुद्ध अरु दुसरी अशुद्ध; यह जो अपने वास्तविक स्वरूपके अज्ञानतें अनात्मा जो देहादिक, तिनमें अहंकार करना, जब इसकों अनात्ममें आत्मा अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी वासना उपजती हैं; तिस करके घटीयंत्रकी नांई पड्या भमता है॥ हे साधु! यह जो पंचभूतका शरीर तूं देखता है; सो सब वासनारूप है; वासना करके खडा है; जैसे मणके धागेके आश्रयतें खडे होते हैं, जब धागा टुट पर्या, तब मणके न्यारे न्यारे होय पडते हैं, अरु ठहरते नहीं हैं; तैसे वासनाके क्षय हुए पंचभूतका शरीर नहीं रहता; तातें सव अनर्थका कारण वासना है; अरु जो शुद्ध वासना हैं, तिनमें जगत्का अत्यंत अभाव निश्चय होता है॥ हे शिष्य! अज्ञानीका जो निश्चय है, सो वासनाकर बहुरि जन्मका कारण हो जाता है; अरु ज्ञानीकी वासना सो बहुरि जन्मका कारण नहीं होती; जैसे एक कच्चा बीज होता है, दूसरा दग्ध बीज होता है, तिसमें जो कच्चा है सो बहुरि उगता है, अरु जो दग्ध हुआ है सो बहुरि नहीं उगता; तैसे अज्ञानीकी वासना रससहित है, सो जन्मका कारण है; अरु ज्ञानीकी वासना रसरहित है, सो जन्मका कारण नहीं; ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविकगुण करके पडी होती है; उह किसी गुण साथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता; खाता है, पीता है, लेता

है, देता है, बोलता है, चलता है, व्यवहार करता है, अरु अंतर सदा अद्वैतनिश्चयकों धरता है, कदाचित् द्वैत भावना तिसकों स्फुरती नहीं है; अपने स्वभावविषे स्थित है, तातें निर्गुण अरु अरूप है, ताकी चेष्टा भी जन्म का कारण नहीं है, जैसे कुंभारका चक्र है, सो जबलग उसकों फेर चढावे, तबलग वह फिरता है; औ जब फेर चढावना छोड दिया, तब स्थीयमान गतिसें उतरत उतरत फिरके स्थिर रहि जाता है; तैसे जबलग अहंकारसहित वासना होती है, तबलग जन्म पावता है, जब अहंकारतें रहित हुआ तब बहुरि जन्म नहीं पावता ॥ हे साधु! यह जो अज्ञानरूपी वासना है तिसकों नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है; जो ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायक शास्त्र है, जब इसतें और शास्त्ररूपी गर्तमें गिरैगा, तब कल्पपर्यंत अकृत्रिम पदकों न पावैगा; अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करैगा सो सुखसों आत्मपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय रामजी अरु वसिष्ठजीका संवाद है, सो विचारने योग्य है; बोधका परम कारण है; तातें आदितें लेकर अंतपर्यंत मोक्ष उपाय श्रवण कर; जैसे रामजी जीवन्मुक्त विचरे हैं सो सुन; एक दिन रामजी विद्या पढिके अध्ययनशालातें अपने गृहमें आये; अरु संपूर्ण दिन विचारसहित व्यतीत करत भये; बहुरि मनमें तीर्थ ठाकुरद्वारका संकल्प धरकर पिता दशरथके पास आये; पिताके साथ जो संपूर्ण प्रजाकों सुखमें रखता था; अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाई; तिस दशरथका चरण श्रीरघुनाथजीनें ग्रहण किया; जैसे सुंदर कमलकों हंस ग्रहण करै; जैसे कमलफूलके तले कोमल तरैयां होती हैं, तिन तरैयांसहित कमलकों हंस पकडता है, तैसे दशरथजीकी अंगुरीनकों रामजीनें ग्रहण किया; अरु बोले जो हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्वारके दर्शनकों उठा है; तातें तुम आज्ञा करौ तौ मैं तीर्थका अरु ठाकुरद्वारका दर्शन कर आऊं; मैं तुमारा पुत्र हों; तुमारे पालना करनी योग्य है; औ आगे मैं कबी कहा नहीं, यह प्रार्थना अब करी है, तातें तुम आज्ञा देहु, जो मैं जाउं; यह वचन मेरा फेरना नहीं; काहेतें जो ऐसा त्रिलोकीमें कोउ नहीं है; जिसका मनोरथ इस घरतें सिद्ध हुआ नहीं है, सबका

मनोरथ सिद्ध हुआ है, तातें मुझकों कृपा करके आज्ञा देहु ॥ वाल्मीक उवाच ॥ ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी पास बैठेथे, तिननें भी दशरथकों कहा ॥ हे राजन्! रामजीकों आज्ञा देहु; सो तीर्थ कर आवैं; जो इनका चित्त उठ्या है; ये राजकुमार हैं इसकों साथ सेना दीजैं; धन दीजैं; मंत्री दीजैं; ब्राह्मण दीजैं जो यह दर्शन कर आवै ॥ हे भारद्वाज! जब ऐसे विचार किया, तब शुभ मुहूर्त्त देखकर रामजीकों आज्ञा दीनी; जब चलने लगे, तब पिता अरु माताके चरण लगे; अरु सबकों कंठ लगाई रुदन करन लगे; तिनकों मिलकर आगे चले; कैसे चले जो लक्ष्मण आदि जो भाई हैं, औ मंत्री थे, तिनकों साथ लेकर, अरु वसिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिकों जाननेवाले थे, अरु बहुत धन सेना तिनकों साथ ले चले; औ दानपुण्य करत जब गृहके बाहिर निकसे, तब उहांके जो लोक थे अरु स्त्रियां थी तिन सबनें रामजीके उपर फूल अरु कलीकी मालकी वर्षा करी; सो कैसी वर्षा है, जैसे बरफ वर्षती है अरु रामजीकी जो मूर्ति है सो हृदयमें धरलीनी; इसी प्रकार रामजी उहांसों चले, तहां ब्राह्मण अरु निर्धनकों दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती, आदि देखे हैं तिनमें स्नान विधिसंयुक्त करके पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमकों दान किया; अरु चारौं ओर समुद्रमें स्नान किये; अरु सुमेरु पर्वतपर गये; हिमालय पर्वतपर गये; संपूर्ण गंगा आदिके स्नान किये; अरु शालिग्राम, वद्रिकेदार, आदिमें स्नान किये; अरु दर्शन किये; ऐसे सब तीर्थ स्नान, दान, तप, ध्यान, विधिसंयुक्त यात्रा करत भये; जैसी जैसी जहां विधी थी तैसी तैसी तहां करी एक वर्षमें संपूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि अपने नगरमें आये ॥ ॥ इति श्रीयो० वै० तीर्थयात्रावर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये, तब नगरके वासी लोक पुरुष और स्त्री फूलकी औ कलीकी वर्षा करत भये, अरु जय जय शब्द मुखतें उच्चारन लगे, अरु बडे उत्साहकों प्राप्त भये, औ जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आवत है, तैसे रामचंद्रजी अपने घरमें आये; पहिले राजा दशरथकों प्रणाम करके

फिर वसिष्ठजीकों प्रणाम कर सब सभाके लोकनसें योग्य मिलके, फिर अंतःपुरमें आवत भये ॥ तहां कौसल्या आदि जो माता थी तिनकों यथायोग्य नमस्कार किये; औ जो भाई बांधव कुटुंब था तिन सबनकों मिले ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार रामजीके आवनेका उत्साह सप्त दिनपर्यंत होत रहा; ता समयमें कोउ मिलने आवै कोउ कछु लेने आवै तिनकों दानपुण्य करत, बाजे बजत बहुत उत्साह हुआ; भाट आदि स्तुति करन लगे; तदनंतर रामजीका आचरण हुआ सो सुन; प्रातःकालमें उठके स्नानसंध्यादिक सत्कर्म करते; बहुरि भोजन करहीं, बहुरि भाई बंधुकों मिल अपने तीर्थकी कथा करते, देवद्वारके दर्शनकी वार्त्ता करते, इस प्रकारसों उत्साह कर दिनरातकों बीतावते थे ॥ एक दिन प्रातःकालमें उठके पिताजी दशरथकों देखे, सो जैसे चंद्रका तेज है तैसा तेजवान देख्या; अरु वसिष्ठादिककी सभा बैठीथी तहां वसिष्ठजीके साथ कथा वार्त्ता रामजी करहीं, तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भया, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जैया करौ; ता समयमें रामजीकी अवस्था वर्ष १६में थोरेक महिना कमती थी ऐसा राजकुमार था; अरु लक्ष्मण, शत्रुघ्न भाई तब साथ थे; भरत नहानकों गया था; तिनहु साथ चरचा हुलास करहीं, फिर तिनके साथ स्नानसंध्यादिक नित्यकर्म करके भोजन करके शिकार खेलने जाते; तहां जो लोककों दुःख देनहारे जानवर देखैं तिनकों मारते; अरु अवर लोककों प्रसन्न करते, इस प्रकार दिनकों शिकार खेलत जाते; रात्रिकों बाजते निसान अपने घरमें आवते; ऐसे करत केतेक दिन वीते तब रामजी वाहिरतें अपने अंतःपुरमें आय शोकसहित स्थित भये ॥ हे भारद्वाज! जेती कछु राजकुमारकी चेष्टा थी सो सबकों त्याग करके एकांतविषे चिंतासहित बैठि रहते ॥ जेतेकछु रससंयुक्त इंद्रियोंके विषय हैं तिनकों त्यागके शरीरतें दुर्बल जैसे होत मुखकी कांति घट गई; पीतवर्ण होय गये; जैसे कमल सूकके पीतवर्ण होय जाता है, तैसे रामजीका मुख पीरा होय गया; अरु सूके कमलपर भंवरे बैठते हैं तैसे सूके मुखकमलपर नेत्ररूपी भंवरे भासन लगे; सोहु शोभा होन लगी अरु इच्छा निवृत्त होय गई, जैसे शरत्कालमें ताल निर्मल होता

है, तैसे इच्छारूपी मलतें रहित चित्तरूपी तालहु निर्मल होता है; अरु दिन दिनपैं शरीर निर्मल होत जावै अरु जहां बैठे तहां चिंतासंयुक्त बैठे रहि जावै; उठै नहीं; अरु बैठे तब हाथपैं चिबुक धरके बैठे, जब टहलुए मंत्री बहुत कहहीं, जो हे प्रभो, यह स्नानसंध्याका समय हुवा है सो अब उठौ, तब उठकर स्नानादिक करहीं, अरु हृदयमें न बिचारहीं, जेती कछु खाने पीने, बोलने, चलने पहिरनेकी क्रिया हैं सो सब विरस होय गई हैं, ऐसे रामचंद्रजी भये, तब लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न रामजीकों संशययुक्त देखके तिस प्रकार हो बैठे, तब दशरथ यह वार्ता सुनके रामजी पास आय बैठे, अरु देखे तब महाकृश जैसा होय गया है, इस चिंता करके आतुर हुआ, जो हाय हाय इसकी क्या अवस्था हुई है, इस शोकके लिये रामजीकों गोदमें बैठाय अरु पूछन लगा, कोमल सुंदर शब्द करके बोले ॥ जो हे पुत्र! तुमकों क्या दुःख प्राप्त भया है? जिस कर तुम शोकवान हुए हौ? तब रामजीनें कहा, जो हे पिता! हमकों तौ दुःख कोउ नहीं है, ऐसे कहिके चुप हो रहा, जब केतेक दिवस इस प्रकार व्यतीत भये, तब राजा भी शोकवान हुवा, अरु सब स्त्रियां भी शोकवान भई, अरु राजा मंत्री मिलके विचार करन लगे, जो पुत्रका किसी ठौर विवाह करना, अरु यह भी विचार किया, जो क्या हुआ है, जो मेरा पुत्र शोकवान होय रहता है; तब वसिष्ठजीकों पूछा जो हे मुनीश्वर! मेरा पुत्र शोकमें क्यों रहता है? तब वसिष्ठजीनें कहा॥ हे राजन्, महापुरुषकों जो क्रोध होता है, सो किसी अल्प कारण कर नहीं होता, अरु मोह भी अल्प कारण कर नहीं होता, अरु शोक भी अल्प कारण कर नहीं होता, जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, जो महाभूत हैं सो अल्प कार्यमें विकारवान नहीं होते, जब जगत्की उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान होते हैं, तैसे महापुरुष अल्प कार्यमें विकारवान नहीं होते, तातें हे राजन्, तुम शोक करने योग्य नहीं; अरु रामजी शोकवान हुआ है, सो भी किसी अर्थके निमित्त होया होवैगा; पीछे इसकों सुख मिलैगा; तुम शोक मत करौ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! ऐसे वसिष्ठजी अरु राजा दशरथ विचार करते थे, तिस कालमें विश्वामित्र अपने यज्ञके

अर्थ आवत भये, राजा दशरथके गृहमें आयकर ज्येष्टीकों कहत भये, जो राजा दशरथकों कहौ, गाधीका पुत्र विश्वामित्र बाहिर खडे हैं, तब इसनें औरहुंकों जाय कह्या॥ हे स्वामी, एक बडा तपस्वी द्वारपैं आय खडा है, तिन हमकों कहा जो राजादशरथके पास जाय कहौ, जो विश्वामित्र आये हैं, सो सुनकर राजा दशरथके पास गये, अरु कहा जो विश्वामित्र गाधीका पुत्र बाहिर खडा है; सो संपूर्ण मंडलेश्वर कर पूज्य जो राजा दशरथ सबनसहित अपने सिंहासनपर बैठा है; अरु बडे तेजकर संपन्न है; बडे बडे ऋषि, मुनि, साधु, प्रधान औ मित्रादिकनकरि वेष्टित है; ऐसे राजा अपनी सभामें बिराजै है॥ हे भारद्वाज ! तिस राजाकूं जब इस प्रकार ज्येष्टीनें कहा तब राजा जो मंडलेश्वरकर आच्छादित व्हैके बैठा था, अरु बडा तेजवान था, सो सुनकर सुवर्णके सिंहासनतें उठ खडा हुआ, अरु चरणोंकरके चल्या, राजाकी एक और वसिष्ठजी, औ दूसरी और वामदेवजी, अरु सुभटकी नांई मंडलेश्वर स्तुति करत चले; तब जहांतें विश्वामित्र दृष्टि आये तहांतें प्रणाम करने लगे ॥ जहां पृथ्वीपर शीश राजाका लागे तहां पृथ्वी भी मोतीकी सुंदर होय जावै; इस प्रकार शीश नमावत नमावत राजा विश्वामित्रके आगे चल्या, सो विश्वामित्र कैसा है; जो बडी जटा शिरपरतें कांधतकपरी हुई अग्नि की नांई प्रकाशित है; अरु शरीर सुवर्णकी नांई प्रकाशता है; अरु हृदयमें शांति, कोमल स्वभाव, जानवेमें आवै ऐसे अरु महातेजवान, सुंदर कांति, अरु शांतिरूप, अरु हाथमें वांसकी तंद्री, अरु महाधैर्यवान ऐसे विश्वामित्रकों प्रणाम करता राजा दशरथ चरण उपर जाय गिऱ्या, जैसे सूर्य सदाशिवके चरण पर जाय गिरै तैसे मस्तक नंवायकर कहा, मेरे बडे भाग्य हुए जो तुमारा दर्शन हुआ है; हमारे उपर तुमनें बडा अनुग्रह किया है; हमकों बडा आनंद प्राप्त हुआ है; जो अनादि, अनंत है; आदि, मध्य, अंततें रहित अविनाशी है; ऐसा जो अकृत्रिम आनंद है; सो तुमारे दर्शन कर मुझकों प्राप्त हुआ दृष्टिमें आवता है ॥ हे भगवन् ! आज मेरे वडे भाग्य हुए हैं ! जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आऊंगा, काहेतें जो तुम मेरे कुशल निमित्त आये हौ ॥ हे भग

वन्! तुमारा आवना हमारे लक्षमें नहीं था; अरु तुमनें बडा अनुग्रह किया हैं; जैसे सूर्य कोई कार्य करनेकों पृथ्वी उपर आवै तैसे तुम मुझकों दृष्टीमें आते हौ; अरुसबतें उत्कृष्ट दृष्टीमें आते हौ; काहेतें जो तुमारेमें दो गुण हैं; एक तौ क्षत्रियका स्वभाव तुमारेमें हैं, अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुमारेमें भासता हैं; अरु शुभ गुण कर संपूर्ण हौ ॥ हे मुनीश्वर! तुम क्षत्रियमेंतें ब्राह्मण भये हौ, ऐसा कोईका सामर्थ्य नहीं देखा, अरु तुमारा शरीर प्रकाशकर दीखता है, अरु जिस मार्ग तुम आये हौ; अरु जिस मार्ग तुम दृष्टी करत आये हौ, तहांतें अमृतवृष्टि करत आये हौ, ऐसा दृष्टी आता है ॥ हे मुनीश्वर! तुम आए सो तुमारे दर्शनकर मुझकों बडा लाभ हुआ है ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रकों बोल्या; अरु वसिष्ठजी आय कर विश्वामित्रकों कंठ लगायके मिले, और जो मंडलेश्वर राजा थे, तिनोंनें बहुत प्रणाम करे; इस प्रकार सब मिले तब विश्वामित्रकों राजा दशरथ घरमें ले आया, जहां राजसिंहासन था, तहां आन कर बैठाया; अरु वसिष्ठ वामदेवकों बैठाये, औ राजा दशरथनें विश्वामित्रका पूजन किया; अरु अर्घ पादार्चन करके प्रदक्षिणा करी, बहुरि वसिष्ठजीनें विश्वामित्रका पूजन किया अरु विश्वामित्रनें वसिष्ठजीका पूजन किया, ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ, इस प्रकार पूजन करके सब अपने अपने आसनपर यथायोग्य बैठे; तब राजा दशरथ बोले ॥ हे भगवन्! हमारे बडे भाग्य हैं जो तुमारा दर्शन हुआ; जैसे कोउ तप्तकों अमृतप्राप्ति होवै; अरु जन्मांधकों नेत्रप्राप्ति होवै, सो आनंद पावै; जैसे निर्धनकों चिंतामणि प्राप्त होवै, अरु आनंदकों पावै; अरु जैसे किसीका वांधव मुवा होवै, सो विमानपर चढ्या हुआ आकाशतें आवै, उसकों जैसा आनंद प्राप्त होवै, तैसे तुमारे दर्शनकर मैं आनंदकों प्राप्त हुआ हौं ॥ हे मुनीश्वर! तुमारा आवना जिस अर्थ हुआ है; सो कृपा करके कहौ, अरु जो तुमारा अर्थ है सो पूर्ण हुआ जानौ; काहेतें जो ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो तुमकों देना कठिन है, सव कछु मेरे विद्यमान हैं; जो तुमारा अर्थ है, सो निश्चय कर जानने योग्य होय रहा है; जो कछु तुम आज्ञा क

रौंगे सो मैं देऊंगा ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनंनाम तृतीयः सर्गः ॥३॥

वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा तब मुनिमें शार्दूल जो विश्वामित्र, सो बहुत प्रसन्न भये; अरु रोम खडे हो आये, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकों देखके क्षीरसागर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न होकर कहत भया॥ हे राजशार्दूल! तुम धन्य हौ! ऐसा क्यों न होवै, जो तुमारेमें दो गुण श्रेष्ठ हैं; एक तौ रघुवंशी हौ, दूसरा वसिष्ठजी तुमारा गुरु है; ताकी आज्ञामें चलते हौ; तातें हे राजन्! जो कछु मेरा प्रयोजन है, सो तुमारे विद्यमान प्रगट करता हौं, श्रवण करौ; दशरात्र यज्ञका मैंनें आरंभ किया है, सो जब यज्ञकों करने लगता हौं, तब राक्षस खर अरु दूषण सो आयके विध्वंस करते हैं; जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हौं, तहां तहां आय कर विध्वंस कर जाते हैं, अर्थ यह जो अपवित्र कर जाते हैं, जो रुधिर अरु मांस अरु अस्थि सो डार जाते हैं, सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता, औ बहुरि मैं और ठौर करने लगता हौं, तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं, तिनके नाश करनेके निमित्त मैं तुमारे पास आया हौं, कदाचित् ऐसे कहौंगे जो तुम भी समर्थ हौ, तौ हे राजन्! मैं यज्ञका आरंभ किया है, तिसका अंग क्षमा है, जो उसकों मैं शाप देऊं, तौ वह भस्म हो जावैं, परंतु शाप क्रोध बिना होत नहीं, अरु क्रोध कियेतें यज्ञ निष्फल हो जाता है, अरु जो मैं चुप कर रहौं हौं तौ वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते हैं, तातें मैं तुमारी शरण आया हौं, मेरा कार्य करौ॥ हे राजन्! तेरा जो रामजी पुत्र है, सो कमलनयन काकपक्षसंयुक्त है, अर्थ यह जो बालक दूसरी शिखासहित रहै है, तिसकों मेरे साथ देहु जो राक्षसकों मारै, तब मेरा यज्ञ सफल होवै, औ तुमारे ऐसा शोक करना नहीं जो मेरा पुत्र बालक है; यह तौ बडे इंद्रके समान शूरवीर है; इसके समीप वह राक्षस ठहर न सकैंगे; जैसे सिंहके सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहर शकता, तैसे तेरे पुत्रके सन्मुख राक्षस न ठहरी शकैंगे, तातें मेरे साथ इनकों तुम देहु, जो तुमारा भी धर्म रहैगा अरु यश भी रहै, मेरा कार्य भी होवै, इसमें संदेह नहीं करना, हे राजन्!

ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोउ नहीं जो रामजीका किया कछु न होवै; इसीतें मैं तेरे पुत्रकों लेजात हौं, यह मेरे करसों ढांप्या रहैगा; अरु इसकों कोई विघ्न मैं होने न देऊंगा; अरु जो तेरा पुत्र वस्तु है; सो मैं जानता हौं; और वसिष्ठजीहु जानते हैं, औ जो ज्ञानवान त्रिकालदर्शी होवैगा, सो भी इसकों जानत होयगा, और कोइ की समर्थता नहीं है, जो इसकों जान शकै; तातें तुम इसकों मेरे साथ देहु, जो मेरे कार्यकी सिद्धि होई ॥ हे राजन्! जो समय कर कार्य होता है; सो थोरे कर भी बहुत सिद्धि पावता है; जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकों देखके एक तंतुका दान किया होय, सो भी बहुत है; पीछे वस्त्रका दान कियेतें भी तैसा कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे समय कर थोडा कार्य भी बहुत सिद्धिकों देता है; अरु समयबिना बहुत कार्य भी थोरे फलकों देता है; तातें तुम मेरे साथ अब रामजीकों दीजें; खर, दूषण, ए बडे दैत्य हैं; सो आयकर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं; जब रामजी आवैंगे तब वह भाग जावैंगे, रामजीके आगे खडे होय न शकेंगे; इसके तेजकर उह सब अल्प हो जावैंगे, जैसे सूर्यके तेज करके तारागणका प्रकाश छिप जाता है; तैसे रामजीके दर्शन कर वह स्थित न रहैंगे; जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर शकै, तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर शकेंगे; देखकर भाग जावैंगे; तातें तुम मेरे साथ देहु जो मेरा कार्य होवै; अरु तुमारा धर्म भी रहै, रामजीके निमित्त संदेह मत करना; वह राक्षसकी समर्थता नहीं जो रामजीके निकट आवै; अरु मैं भी रामजीकी रक्षा करौंगा ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रनें ऐसे कहा तब राजा दशरथ सुनकर तूष्णीं रहा, अरु गिर पडा; एक मुहूर्त पर्यंत पडा रहा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथविषादो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! एक मुहूर्त पाछे राजा उठे अरु महा दीन जैसे हो गये; अरु महामोहकों प्राप्त होय गये; धैर्यतें रहित होकर बोले ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमनें क्या कहा! रामजी अब तौ कुमार है; शस्त्रविद्या अस्त्रविद्या भी शीख्या नहीं है, अब तौ फूलकी शय्यापर शयन करनेवाला है; यह युद्धकों क्या

जानै, अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठनेवाला है; राजकुमार बालकके साथ खेलनेवाला है; औ कदाचित् रणभूमि देखीहु नहीं है; भ्रूकुटीकों चढायके कदाचित् युद्ध भी नहीं किया; अरु कमलकी नांई जिसके हाथ हैं, अरु कोमल जिसका शरीर है; वह राक्षसके साथ युद्ध कैसे करैगा! कहूं पथ्थरका अरु कमलका भी युद्ध हुआ है! रामजीका वपु कमलसमान कोमल है; अरु वह महाक्रूर पथ्थरकी नांई है; उनके साथ युद्ध कैसे होवैगा॥ हे मुनीश्वर! मैं नव सहस्र वर्षका हुआ हौं; अब दशमा सहस्र लग्या है; वृद्ध हुआ हौं; यह वृद्धावस्थामें मेरे घर पुत्र हुवे हैं सो चारोंके मध्य रामजी कमलनयन, अब षोडश वर्षका हुआ है; अरु मुझकों बहुत प्रियतम है; अरु मेरा प्राण है; रामजी बिन मैं एक क्षण भी रही नहीं शकता; जो तुम इसकों ले जाओगे, तौ मेरा प्राण निकस जायगा, मैं मृतक हो जाऊंगा॥ हे मुनीश्वर! केवल मेराही ऐसा स्नेह नहीं है; किंतु इसके भाई जो लक्ष्मण, भरत,शत्रुघ्न, अरु उसकी माता जो हैं; तिन सबहींके प्राण रामजी हैं; जो तुम रामजीकों ले जाओगे, तौ हम सबहीं मर जावैंगे; वियोग करके जो हमकों मारने आये हौ तौ लेजाओ॥ हे मुनीश्वर! मेरे चित्तमें रामही पूर रहा है; तिसकों मैं तुमारे साथ कैसे देऊं? मैं इसकों देखत देखत प्रसन्न होता हौं, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकों देखकर क्षीरसमुद्र प्रसन्न होता है; अरु चंद्रमाकों देखकर चकोर प्रसन्न होता है, अरु मेघबुंदकों देखकर पपैया प्रसन्न होता है, तैसे रामजीकों देखकर मैं प्रसन्न होता हौं, तब रामजीके वियोगकर मेरा जीवना कैसा होयगा? हे मुनीश्वर! मेरेकों रामजी जैसी प्रिय स्त्री भी नहीं, अरु धन भी ऐसा प्रिय नहीं; अरु राज्य भी ऐसा प्रिय नहीं, अवर पदार्थ भी मुझकों कोई रामके समान नहीं है, ऐसा रामजी प्यारा है॥ हे मुनीश्वर! तुमारे वचन सुनिके बडे शोककों प्राप्त हुआ हौं, मेरे बडे अभाग्य आये हैं, तुमारा आवना इस निमित्त हुआ है, तुमारे वचन सुनकर जैसे कमलके उपर बरफकी वर्षा होय, ऐसी व्यथा मेरेकों होती है, अरु बरफकी वर्षातें जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं, तैसे तुमारे वचनतें मेरी नष्टता हो जायगी; जैसे

बडा मेघ चढ आवै, तामें बडा पवन चलै, तब मेघकी गंभीरताका अभाव होय जाय; तैसे तुमारे वचनतें मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है; जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढमें सूक जाती है, तैसे तुमारे वचन सुनि मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है; हे मुनीश्वर! रामजीकों देनें मैं समर्थ नहीं हौं, जो तुम कहौ तौ एक अक्षौहिणी सेना मेरी है, सो बडे शूर वीरकी है, जिसकों शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, मंत्रविद्या सब आती है, और सबै युद्धमें चतुर हैं, तिनके साथ मैं तुमारे संग चलता हौं; जायकर मैं उनकों मारौंगा, अरु हस्ति, घोडा, रथ, प्यादे, ऐसी चतुरंगिणी सेनाकों साथ ले जाओ, अरु जो तिहारे यज्ञके खंडनहारे हैं तिनका नाश करौ; अरु एक साथ मैं युद्ध नहीं कर शकौंगा, जो कदाचित् यज्ञ खंडनहारा कुबेरका भाई, अरु विश्रवसका पुत्र रावण होवै; तौ उस साथ युद्ध करनेकूं मैं समर्थ नहीं ॥ हे मुनीश्वर! आगे मेरेमें बडा पराक्रम था; वैसा त्रिलोकीमें कोउमें नहीं था, जो मेरे निकट मारनेकों आवै, तौ मैं वाकों मार देता, अब मेरी वृद्धावस्था हुई है; अरु देह जर्जरीभावकों प्राप्त हुआ है, इस कारण रावण साथ युद्ध करनेकों मैं समर्थ नहीं ॥ हे मुनीश्वर! मेरे बडे अभाग्य हैं, जो तुमारा आवना इस निमित्त हुआ है, अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं, मैं रावणसों कंपता हौं, केवल मैं नहीं कंपता, इंद्रादिक देवता सब रावणतें कंपते हैं, अरु राक्षस सब उसके वश वर्त्तते हैं, अब किसकी शक्ति है जो रावणके साथ युद्ध करै ? इस कालमें वह बडा शूरवीर है ॥ हे मुनीश्वर! जब मेरी समर्थता भी नहीं रही तौ राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवैंगे, अरु जिस रामजीकों लैनकर तुम आये हौ सो रोगी होय रहा है, उसकों चिंता ऐसी आय लगी है, जिसकर वह महादुर्बल हो गया है, अरु अंतःपुरमें एकांतमें बैठ रहता है, खाना पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा हैं सो सब उसकों विरस हो गई हैं; अरु मैं नहीं जानता जो उसकों क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीतवर्ण होय जाता है, तैसा उसका मुख होय गया है, उसकों युद्ध करनेकी समर्थता नहीं, अरु अपने स्थानतें बाहिरकी पृथ्वीहु नहीं देखी

हैं, सो युद्ध कैसे करैंगे! हे मुनीश्वर! वह युद्ध करनेकों समर्थ नहीं है, अरु हमारे प्राण वही हैं, जो उसका वियोग होवैगा तौ हमारा जीवना नहीं होवैगा, जैसे जलविना मच्छी जीवती नहीं है, तैसे रामजीविना कैसे जीवैंगे, अरु जो राक्षसके युद्धनिमित्त कहौ तौ हम तुमारे साथ चलैं, अरु रामजी युद्ध करनेकों योग्य नहीं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथोक्तिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा, तब महादीन जैसे मोहसहित अधैर्यवान वचन सुनकर, क्रोधसों विश्वामित्र कहत भया ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे राजन्! तूं अपने धर्मका स्मरण कर, यह प्रतिज्ञा तैंनें करी है, जो तेरा अर्थ होवैगा, सो पूर्ण करौंगा, औ पूर्ण हुवा जानना, ऐसा तुमनें कहा है, अब तूं अपने धर्मकों त्यागता है, और जो तूं सिंह हुआ मृगोंकी नांई भाजता है तौ भाज, परंतु आगे रघुवंशमें ऐसा कोई नहीं हुवा, जैसे चंद्रमाके मंडलमें शीतलता होती है, अग्नि निकसता नहीं है, तैसे तुमारे कुलविषे ऐसा कदाचित् नहीं हुआ; अरु जो तूं करता है तौ कर, हम उठ जावैंगे, काहेतें जो सूने गृहतें सूनेई जाता है; परंतु यह तुमकों योग्य न था, अरु तुम बसते रहौ, राज करते रहौ, अरु जो कछु होवैगा सो हम समझ लेवैंगे, अरु जो अपने धर्मकों तूं त्यागता है, तौ त्याग दे ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब संपूर्ण क्रोधमान होकर विश्वामित्र बोल्या, तव इसके क्रोधकर पचास कोटि पृथ्वी कंपने लगी, अरु इंद्रादिक देवता भी भयकों प्राप्त हुए, जो ये क्या हुवा, तव वसिष्ठ बोले ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजा! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए हैं; औ तूं दशरथ अपने धर्मकों क्यों त्यागता है? मेरे विद्यमान तैंनें कहा है जो तुमारा अर्थ होवैगा, सो मैं पूर्ण करौंगा, अव तूं क्यों भाजता है? रामजीकों इसके साथ दे, अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करैंगे, जैसे सर्पतें अमृतकी रक्षा गरुड करता है; तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा यह करैगा, अरु यह कैसा पुरुष है, सो श्रवण करौ, इसके समान बल किसीका नहीं, साक्षात् वलकी मूर्ति है, अरु धर्मात्मा है, साक्षात् धर्मकी मूर्ति है, अरु ऐसे और तापसी को

उ नहीं है, अरु तपकी खानी है, अरु इसके समान कोउ बुद्धिमान नहीं है, अरु इसके समान कोई शूर नहीं है, अरु अस्त्र शस्त्र विद्यामें इसी जैसा कोउ नहीं है, काहेतें जो दक्षप्रजापतिकी दोइ पुत्री थी, एक जया, अरु एक सुभगा; सो, ये ऋषीकों दीनी है, अरु जयासों तिसनें दैत्यके मारने निमित्त पांचसों पुत्रकों प्रगट किये थे, अरु सुभगाकों भी पांचसों पुत्र भये थे, सो सब दैत्यके नाश निमित्त उत्पन्न किये थे, सो स्त्रियां इसके विद्यमान मूर्ति धरिके स्थित हुई हैं, तातें इसकों जीतने कोई समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवै, सो त्रिलोकीमें काहुसों डरै नहीं, तातें इसके साथ तूं अपना पुत्र दे, अरु संशय मति कर, किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रकों कछु कोउ कही शकै, इसकी दृष्टिके देखनेतें दुःखका अभाव हो जाता है; जैसे सूर्यके उदयतें अंधकारका अभाव हो जाता है॥ हे राजन्! इसके साथ तेरे पुत्रकों खेद कहा होवै; तूं इक्ष्वाकुके कुलका है; अरु दशरथ तेरा नाम है; सो तूं जैसे जब अपने धर्ममें स्थित न रहै तौ और जीवतें धर्मकी पालना कैसे होवैगी? जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते हैं; तिनके अनुसार और जीव करते हैं; जो तुमसरखे अपने वचनकों पालना न करैंगे तब और किसीसों कहां बनैगी! अरु तुमारे कुलमें ऐसा वचनसों फिरना कबहु नहीं हुआ, तातें अपने धर्मकों त्यागना योग्य नहीं; तूं अपने पुत्रकों दे, अरु जो तूं उनके भय कर शोकवान होवै, तौ भी ना मत कहै; औ मूर्त्ति धारी काल आय कर स्थित होवै तौ भी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रकों कछु होवै नहीं, तूं शोक मत कर, अपने पुत्रकों इसके साथ दे, अरु जो न देगा, तौ दो प्रकारका तेरा धन नष्ट होवैगा, एक धन यह है जो कूप, बावरी, ताल, कराये होवैंगे तिनका जो पुण्य है, सो नष्ट हो जावैगा, अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक जो पुण्य है, अरु क्रिया हैं, तिन सबका फल नष्ट हो जावैगा, जो तेरा गृह निरर्थक होय जावैगा, तातें मोह अरु शोककों त्याग; अरु अपने धर्मकों स्मरण कर, रामजीकों इसके साथ दे दे, तेरे सब कार्य सफल होवैंगे॥ हे राजन्! इस प्रकार

जब तेरे करना था, तब प्रथमही विचार करके कहना था, काहेतें विचारविना काम करनेका परिणाम दुःख होता है; तातें इसीके साथ तेरे पुत्रकों देहु ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार वसिष्ठजी नें कहा, तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर, भृत्यमें जो श्रेष्ठ भृत्य था, वाकों बुलायकर कहत भया ॥ हे महाबाहो! रामजीकों ले आओ, तब इसके साथ जो चाकर अंतर बाहिर आने जानेवाला था, अरु छल तें रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया, एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया, अरु कहत भया हे देव! रामजी तौ बडी चिंतामें बैठे हैं; मैं रामजीकों वारंवार कहा जो अब चलियें, तब वह कहत हैं जो चलैं हैं, ऐसे कही कही चुप हो रहैं हैं ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब राजानें श्रवण किया तब कहा, रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलाओ तब सबकों बुलाय निकट ल्याये, तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसों कहत भया ॥ हे रामजीके प्यारे, रामजीकी कहा दशा है? औ ऐसी दशा क्यों कर हुई है? सो सब क्रम करके कहौ ॥ ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे देव! हम कहा कहैं; जे ते हम कछु दृष्टिमें आते हैं, सो सब आकार अरु प्राण देखने मात्र हैं; परंतु सब हम मृतक हैं; काहेतें जो हमारा स्वामी रामजी बडी चिंताकों प्राप्त हुआ है; हे राजन्! जिस दिनके रघुनाथजी तीर्थ करके आये हैं, तिस दिनके चिंताकों प्राप्त भये हैं, जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं, औ पान करनेका पदार्थ औ पहरनेका पदार्थ, अरु देखनेका पदार्थ, कछु ले जाते है, सो सुखदायी पदार्थ रससहित देखिके किसी प्रकार प्रसन्न होई तौ भला, परंतु हमनें नहीं देख्या है ऐसी चिंताके विषे वह लीन हैं, जो देखता भी नहीं; अरु जो देखता है, तौ क्रोध करता है, अरु सुखदायी पदार्थका निरादर करता है, अरु अंतःपुरमें इनकी माता, नाना प्रकारके हीरे अरु मणीके भूषण देती हैं, तौ उनकों भी डार देता है, नहीं तौ किसी निर्धनकों देता है, प्रसन्न किसी पदार्थपें होते नहीं है, सुंदर स्त्रियां खडी विद्यमान होतियां हैं, नाना प्रकारके भूषणसहित महामोह करनेहारियां निकट होई करि लीला

करतियां हैं, कटाक्षहु सहित प्रसन्न करने निमित्त; तौ भी विषवत् जानता है; उनकी और देखता भी नहीं; जैसे पपैया अवर जलकों देखता भी नहीं; जब अंतःपुरविषे निकसता है, तब उनकों देखि करि क्रोधवान होता है ॥ हे राजन्! अवर कछु उसकों भला नहीं लगता, कीसी बडी चिंताविषे मग्न हैं; औ तृप्त होकर भोजन नहीं करता, क्षुधावंत रहता है, न कछु पहरने, खाने, पीनेकी इच्छा रखता है, न राज्यकी इच्छा है, न किसी इंद्रियहूंके सूखकी इच्छा है; महा उन्मत्तकी नांई बैठा रहता हैं; अरु जब कोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक ले जाते हैं; तब क्रोध करता है, हम नहीं जानते जो क्या चिंता उसकों भई है; एक कोटरीमें पद्मासन करके अरु हाथमें मुख धरी बैठ रहते हैं, अरु जो कोउ बडा मंत्री आयके पूछता है, तब ताकों कहता है, जो तुम जिसकों संपदा मानते हो सोई आपदा है, जिसकों आपदा जानते हो सो आपदा नहीं है अरु नाना प्रकारके संसारके पदार्थ, जो रमणीय कर जानते हो, सो सब झूठे हैं, याहीमें सब डूबे हैं, ये सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं; तिनकों सत्य जानी मूर्ख जो हरिण सो दौरते हैं, अरु दुःख पावते हैं ॥ हे राजन्! कदाचित् बोलते हैं तौ ऐसे बोलते हैं, और कछु उनके और सुखदायी नहीं भासता है, अरु जो हम हांसीकी वार्ता करते हैं, तौ वह हसत नहीं है, जिस पदार्थकों प्रीतिसंयुक्त लेते थे, तिस पदार्थकों अब डारि देते हैं, अरु दिनदिनपैं दुर्बल जैसे होत जाते हैं, अरु अंतःपुरमें स्त्रियोंके पास बैठते हैं; तब वह नाना प्रकारकी चेष्टा रामजीकों प्रसन्न करने निमित्त दिखावती हैं; इनकों भी देखके प्रसन्न नहीं होते, अरु जैसे मेघकी बुंदतें पर्वत चलायमान नहीं होते हैं, तैसे आप चलायमान नहीं होते हैं, अरु जो बोलते हैं तौ ऐसे कहते हैं, न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है, न इह जगत् सत्य है, न भ्रात सत्य है; न मित्र सत्य है, मिथ्या पदार्थके निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं, जिनकों सत्य जानते हैं अरु सुखदायक जानते हैं, सो बंधनका कारण है, और कहा कहियें! जो कोइ इनके पास राजा अथवा पंडित जावै, तिनकों देखकर क

हते हैं, यह पशु हैं; आशारूपी फांशीकर बांधे हुए हैं ॥ हे राजन्! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनकों देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, अरु देखके क्रोधवान होता है, जैसे पपैया मारवाडमें आवै, तब मेघकी बुंदहु देखता नहीं है, तातें खेदवान होता है, तैसे रामजी विषयहूंतें खेदवान होते हैं ॥ हे राजन्! इनकरके हर्षवान नहीं होता, तातें हम जानते हैं, जो इनकों परमपद पावनेकी इच्छा है, परंतु कदाचित् सुखतें सुन्या नहीं है, अरु त्यागका अभिमान भी कदाचित् सुन्या नहीं है, कबहू गाते हैं, अरु बोलते हैं, तब ऐसे कहते हैं, हाय हाय! मैं अनाथ मार्या गया हौं, अरे मूर्ख तुम संसारसमुद्रमें क्यों डुबते हो? यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचितहू नहीं है, इसतें छुटनेका उपाय करौ ॥ हे राजन्! ऐसे भी कदाचित् हम सुनते हैं, अरु किसी साथ बोलते नहीं हैं, न हसते हैं, न मंत्रीके साथ, न अपने अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ, की न माताके साथ बोलते हैं, कोउ परम चिंतामें मग्न हैं, अरु किसी पदार्थकर आश्चर्यवान् नहीं होते, जो कोउ कहै की आकाशमें बाग लगा है, तिसमें फूल फूले हैं, तिनकों मैं ले आया हौं; ऐसे सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते, सब भ्रम मात्र देखते हैं, न किसी पदार्थतें उनकों हर्ष होता है, न किसी पदार्थतें उनकों शोक होता है, किसी बडी चिंतामें मग्न हैं, सो कोउ चिंता निवारनेमें हम समर्थ नहीं देखते हैं; वह तौ चिंताके समुद्रमें मग्न हैं ॥ हे राजन्, यह चिंता हमकों लग रही है; जो रामजीकों न खानेकी इच्छा है, न पहिरनेकी इच्छा है, न बोलनेकी, न देखनेकी इच्छा रही है, न कोउ कर्मकी इच्छा रही है; तातें मृतक न हो जावै! ऐसी चिंता है; अरु जो कोउ कहता है; की तूं चक्रवर्त्ती राजा है; तेरे बडा आयबल होहु, अरु बडे सुखकों पाओ, तब तिसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं ॥ हे राजन्! केवल रामजीकोंही ऐसी चिंता नहीं, लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नकों भी ऐसी चिंता लग रही है, रामकों देखकर जो कोउ उनकी चिंता दूर करनहार होवै तौ करौ; नहीं तौ बडी चिंतामेंहीं डूबी रहैंगे; किसी पदार्थकी इच्छा उनकों

नहीं रहत है ॥ हे राजन्! और कहा कहौं! तुमारा पुत्र अब अतीत होय रहा है, एक वस्त्र उपरना ओढी बैठा है, तातें सोइ उपाय करौ, जिसकर उनकी चिंता निवृत्त होवै ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे साधु! जो रामजी ऐसे हैं, तौ हमारे पास लाओ, हम उनका दुःख निवृत्त करैंगे ॥ हे राजा दशरथ! तुम धन्य हौ! जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यकों प्राप्त भया ॥ हे राजन्! हम जो बैठे हैं; सो तुमारे पुत्रकों परम पदकी प्राप्ति करैंगे, अबी सब दुःख उनके मिट जावैंगे; हम वसिष्ठादि जो बैठे हैं, सो एक युक्ति करि उपदेश करैंगे; तिस कर उनकों आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवैगी, जो लोष्ट अरु पथ्थर अरु सुवर्णकों समान जानैंगे, अरु जो कछु तुमारे क्षत्रियकी प्रकृतिका आचरण है सो करैंगे; अरु हृदयमें प्रेमतें उदासी होवैंगे; तातें हे राजन्! उसकर तुमारा कुल कृतकृत्य होवैगा, तातें रामजीकों शीघ्र बोलावहु ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! ऐसे मुनींद्रके वचन सुनकर राजा दशरथ मंत्री अरु नौकरकों कहत भया; जो रामजी अरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नकों साथ ले आओ; जैसे हरिणीकों हरिण ले आते हैं, तैसे ले आओ; जब राजा दशरथनें ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कहा; तब रामजी आये; सो आवत आवत राजा दशरथ, अरु वसिष्ठजी, अरु विश्वामित्रकों देखे, तिनोंके पर चमर होय रहे हैं; अरु बडे मंडलेश्वर बैठे हैं, तिननेंहु रामजीकों देखे, जो शरीरतें कृश होय रहे हैं; जैसे महादेवजी स्वामी कार्त्तिककों आवत देखे, तैसे रामजीकों आते राजा दशरथ देखत हैं, तहां रामजी आयकर राजा दशरथजीके चरणपैं मस्तक लगाय नमस्कार किया, फेर तैसेई वसिष्ठजीकों अरु विश्वामित्रकों नमस्कार किया; बहुरि सभामें जो ब्राह्मण बडे बडे बैठे थे, तिनकोंहु नमस्कार किये; अरु जो बडे बडे मंडलेश्वर बैठे थे, तिननें उठकर रामजीकों प्रणाम किया, फिर राजा दशरथनें रामजीकों गोदमें बैठाया; अरु देखकर मस्तक चुंब्या; अरु बहुत प्रेमपुलकित होय रामजीकों कहत भया; हे पुत्र! केवल विरक्तता कर प

रमपदकी प्राप्ति नहीं होती है; अरु वसिष्ठजी गुरु हैं, तिनकों उपदेशकी युक्ति कर परमपदकी प्राप्ति होयगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुम धन्य हौ ! अरु बडे सूरमा हौ, जो विषयरूपी शत्रु तुमनें जीते हैं; विषय अजित हैं, अरु दुष्ट हैं, ताकों तुमनें जीते, तातें तुम धन्य हौ ! धन्य हौ ! ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे कमलनयन राम ! अपने अंतरकी चपलता है, तिसकों त्याग करके जो कछु तुमारा आशय होय सो प्रगट करै कहौ, हे रामजी ? यह जो तुमकों मोह प्राप्त हुआ है; सो कैसे हुआ है ? अरु किस कारण हुआ है ? अरु केताक है ? सो कहौ, अरु जो अब कछु तुमकों वांछित होय सो कहौ, हम तुमकों तिसी पदमें प्राप्त करेंगे, जिसमें दुःख कदाचित् होवै नहीं, औ आकाशकों चुहा काटी नहीं सकत है; तैसे तुमकों पीडा कदाचित् न होवैगी; हे रामजी ! तुमारे संपूर्ण दुःख नाश कर देवैंगे, तुम संशय मत करौ; जो कछु तुमारा वृत्तांत होय सो हमकों कहौ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब ऐसे विश्वामित्रनें कहा; सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भये; अरु शोककों त्याग दिया, जैसे मेघकों देखके मोर प्रसन्न होता है; तैसे विश्वामित्रके वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुए, अरु अपने हृदयमें निश्चय किया, जो अब मुझकों उस पदकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाजवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज ! ऐसे मुनीश्वरके वचनकों रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो वृत्तांत है; सो तुमारे विद्यमान क्रम करके कहता हौं; इस राजा दशरथके घरमें जो जन्म पाया हौं; बहुरि क्रम करके बडा हुआ हौं; औ उपवीत पाया हौं, अरु चारों वेद पढकर ब्रह्मचर्यादि व्रत पाया हौं, तापाछे एक दिन पडिके मैं घरमें आया, तब मेरे हृदयमें बात आय रही जो तीर्थाटन करौं, अरु देवद्वारमें जायके देवनके दर्शन करौं; तब मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थकों गया, अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थमें स्नान किया; अरु शालिग्राम अरु केदार आदि ठाकुरके विधिसंयुक्त दर्श

न किये; अरु यात्रा करके इहां आया, फिर उत्साह हुआ, तब मेरेमें विचार आया, जो प्रातःकाल उठके स्नान संध्यादिक कर्म करना, बहुरि भोजन करना, ऐसे इस प्रकारसों केतेक दिन व्यतीत भये, तब मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ, सो विचार मेरे हृदयकों खैंच ले गया, जैसे नदीके तट पर तृण वल्ली होत हैं; तिसकों नदीका प्रवाह खैंच ले जाता है; तैसे मेरे हृदयमें जो कछु जगतकी आस्थारूप वल्ली थी सो विचाररूपी प्रवाह ले गया, तब मैं जानत भया जो राज्य करके क्या है, अरु भोगतें क्या है, अरु जगत क्या है? सब भ्रम मात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं; यह स्थावरजंगमरूपी जेता कछु जगत है, सो सब मिथ्या है॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो मनसों करके हैं, सो मन भी भ्रममात्र है, अनहोता मन दुखदाई हुआ है, मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है, अरु सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् है, जैसे मृगतृष्णाकों देखकर मृग दौरते हैं, अरु है नहीं; सो मृग दौरत दौरत थकके पड जाते हैं; तौहू जल तिसकों प्राप्त नहीं होता, तैसे मूर्ख जीव पदार्थकों सुखदाई जानकर भोगनेका यत्न करता है; अरु शांतिकों नहीं पावता है, तैसे हे मुनीश्वर! इंद्रियके भोग सर्पवत् हैं; जिनका मार्या हुआ जन्ममरणकों पावता है; जन्मतें जन्मांतरकों पावता है; भोग अरु जगत सब भ्रम मात्र हैं, तिनविषे जो आस्था करते हैं, सो महामूर्ख हैं, ऐसा मैं विचार करके जानता हों जो सब आगमापायी हैं; अर्थ यह जो आवतेहू हैं, तातें जिस पदार्थका नाश न होय, सो पदार्थ पावने योग्य है; इसी कारणतें मैंनें भोगका त्याग किया है॥ हे मुनीश्वर! जेते जो कछु संपदारूप पदार्थ भासते हैं, सो सब आपदा हैं, इनमें रंचक हू सुख नहीं है, जब इनका वियोग होता है, तब कंटककी नांई मनमें चुभता है, जब इंद्रियकों भोग प्राप्त होता है, तब राग दोषकर जलते हैं; अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णाकर जलते हैं, तातें भोग दुःखरूप हैं; जैसे पथ्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचक भी सुखरूपी छि

द्र नहीं होता है ॥ हे मुनीश्वर! विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जलता रहा हौं ॥ जैसे हर्या वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्नि धऱ्या होय, तब धुंवा होय थोरा थोरा जलता रहता है; तैसे भोगरूपी अग्नि करके मन जलता रहता है; इन विषयमें सुख कछुहू नहीं; अरु दुःख बहुत है, इनकी इच्छा करनी सोई मूर्खता है, जैसे खाइके उपर तृण अरु पान होता है, तिसकर खाई आच्छादित होय जाती है, तिसकों देखके हरिण कूद परता है अरु दुःख पावता है, तैसे मूर्ख भोगकों सुखरूप जानिके भोगनेकी इच्छा करता है; जब भोगता है तब जन्मतें जन्मांतररूपी खाईमें जाय परता है, अरु दुःख पावता है ॥ हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर है; सो अज्ञानरूपी रात्रमें लूटने लगता है; सो आत्मरूपी धन है, तिसकों ले जाता है, तिसके वियोगतें महादीन रहता है, अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करता है, सो दुःखरूप है; शांतिकों प्राप्त नहीं होता; अरु जिस शरीरका अभिमान करके यह यत्न करता है, सो शरीर क्षणभंग होता है; अरु असार है, जिसकों सदा भोगकी इच्छा रहती है, सो मूर्ख अरु जड है; इसका बोलना चलना भी ऐसा है, जैसे सूके वांशके छिद्रमें पवन जाता है; अरु पवनके वेगकर शब्द होता है; तैसे उस मनुष्यकों वासना है; जैसे थक्या हुआ मनुष्य मारवारके मार्गकी इच्छा नहीं करता, तैसे दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करता हौं; अरु यह जो लक्ष्मी है, सो परम अनर्थकारी है, जबलग इसकी प्राप्ति नहीं होती, तबलग इसकों पावनेका यत्न होता है; अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है; अरु जब प्राप्ति हुई, तब सब गुणनका नाश कर देती है; शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणनका नाश करती है; जब ऐसा गुणनका नाश हुआ, तब सुख कहांतें होवै! परम आपदा प्राप्त होती है, परम दुःखका कारण जानकर मैंनें इसका त्याग किया है ॥ हे मुनीश्वर ? इसमें गुण तबलग है, जबलग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब सब गुण नाश हो जाते हैं; जैसे वसंत ऋतुकी मंजरी हरियावल तबलग रहती

है, जबलग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया; जब ज्येष्ठ आषाढ आया, तब मंजरी जर जाती है; तैसे जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब शुभ गुण जर जाते हैं; अरु मधुर वचन तबलग बोलता है, जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है! जबही लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब कोमलताका अभाव होय कठोर हो जाता है, जैसे जल पतरा तबलग रहता है; जबलग शीतलताका संयोग नहीं होय, जब शीतलताका संयोग होता है, तब बरफ होकर कठोर दुःखदायक होय जाता है; तैसे यह जीव लक्ष्मीसों कर जड होय जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जो कछु संपदा है सो आपदाका मूल है; काहेतें जो जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तब बडे सुखकों भोगता है; अरु जब तिसका अभाव होता है, तब तृष्णा करके जलता है, जन्मतें जन्मांतरकों पावता है; लक्ष्मीकी इच्छा है, सोई मूर्खता है; यह तो क्षणभंग है; यातें भोग उपजता है, अरु नाश भी होता है; जैसे जलतें तरंग उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं; बिजुरी स्थिर नहीं होती है, तैसे भोगहू स्थिर नहीं रहते; अरु पुरुषमें शुभ गुण तबलग हैं, जबलग तृष्णाका स्पर्श नहीं किया; जब तृष्णा भई तब शुभ गुणनका अभाव होय जाता है; जैसे दूधमें मधुरता तबलग है, जबलग सर्पनें स्पर्श नहीं किया, जब सर्पनें स्पर्श किया तब दूध है सो विषरूप हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामेण वैराग्यवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी देखनेमात्रहीं सुंदर है, अरु जब इसकी प्राप्ति हुई तब सद्गुणका नाश कर देती है ॥ जैसे विषकी वल्ली देखनेमात्र सुंदर है; अरु स्पर्श कियेतें मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए, आत्मपदतें मृतक होता है; अरु महादीन होय जाता है; जैसे किसीके घरमें चिंतामणी दबी रही; ताकों खोदकर लेवै नहीं, तबलग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञानकर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है; आत्मानंदकों पाई नहीं सकता; आत्मानंदकों पावनेका जो मार्ग है, तिसके नाश करनहारी लक्ष्मी है; इसकी प्राप्तितें जो महाअंध होय जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलित होता है, तब उसका बडा प्रकाश दृष्ट आवता

है; जब दीपक बुज जाता है; तब प्रकाशका अभाव होय जाता है, अरु काजरकी श्यामता रही जाती है; जो वारंवार वासना उपजती थी, सो रहती है तैसे जब इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तब बडे भोग उनकों भुगवाती है; अरु तृष्णारूप काजर उसतें उपजता रहता है; जब लक्ष्मीका अभाव होता है; तब वासना तृष्णाकी श्यामता छांड जाती है; तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मकों अरु मरणकों पावता है; शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता ॥ हे मुनीश्वर ! जब जिसकों लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है; तब शांतिके उपजावनहारे गुणनका नाश करती है; जैसे जबलग पवन नहीं चलता, तबलग मेघ रहता है, जब पवन चल्या के मेघका अभाव हो जाता है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए गुणनका अभाव होता है, अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है ॥ हे मुनीश्वर ! जो सूरमा होइके अपने मुखतें अपनी बढाई न कहै, सो दुर्लभ है; अरु समर्थ होय कोईकी अवज्ञा न करै, सवमें समबुद्धि राखै सो दुर्लभ है, तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुणसंयुक्त होय सो भी दुर्लभ है ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है, तिसकों बढावनेका स्थान लक्ष्मीरूपी दूध है, सो पीवत पवनरूपी भोगका आहार करत कदाचित् आघात नहीं; अरु महामोहरूप उन्मत्त हस्ती है, तिसकों फिरनेका स्थान पर्वतकी अटवीरूपी लक्ष्मी है, अरु गुणरूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्री है, अरु भोगरूपी चंद्रमुखी कमल है, तिनका लक्ष्मी चंद्रमा है; अरु वैराग्यरूप जो कमलनी है, तिसका नाश करनेहारी लक्ष्मी बरफ है; अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमा है, तिसका आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है; अरु मोहरूपी जो उलूक है; तिसकी यह रात्री है; अरु दुःखरूपी जो बिजुरी है, तिसकों लक्ष्मी आकाश है; अरु तृष्णारूपी जो वल्ली है, तिसकों बढावनहारी लक्ष्मी मेघ है; अरु तृष्णारूप जो तरंग है, तिसकी लक्ष्मी समुद्र है; अरु भोगरूपी पिशाच हैं तिनका लक्ष्मी रान है; अरु तृष्णारूपी भंवरकों लक्ष्मी कमलनी है; जन्मके दुःखरूप जलका यह लक्ष्मी खड्डा है ॥ हे मुनीश्वर ! देखने मात्र यह सुंदर लगती है, अरु दुःखका कारण है; जैसे खड्गकी धारा दे

खने मात्र सुंदर होती है, अरु स्पर्श कियेतें नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है, सो विचाररूपी मेघका नाश करनेमें वायु जैसी है ॥ हे मुनीश्वर! यह मैं बिचारि देख्या है; इसमें सुख कछुहू नहीं ॥ अरु संतोषरूपी मेघका नाश करनहारा यह शरत्काल है; अरु इस मनुष्यमें गुण तबलग दृष्ट आवें, जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं भई; जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब शुभ गुण नाश पावते हैं ॥ हे मुनीश्वर! लक्ष्मी ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंनें त्याग दीनी है; यह भोग मिथ्यारूपी हैं; जैसे बिजुरी प्रगट होय छिप जाती है; तैसे यह लक्ष्मीहु प्रगट होय छिप जाती है; जैसे जल है सो हिम है, तैसे लक्ष्मीकी ज्योति है, सो मूर्ख जडके आश्रयतें है; इसकों छलरूप जानकर मैंनें त्याग किया है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे लक्ष्मीनैराश्यवर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो वाकों देखकर प्रसन्न होता है, सो मूर्ख है; काहेतें, जैसे पत्रके उपर जलकी बूंद न रहती है, तैसे लक्ष्मी क्षणभंग है; जैसे जलके तरंग होयके नाश पावता है, तैसे लक्ष्मी होयके नाश पावती है ॥ हे मुनीश्वर! पवनकों रोकना कठिन है, सो भी कोउ रोकता है; अरु आकाशका चूर्ण करना अति कठिण है, सोभी कोउ कर डारै; अरु बिजुरी कों रोकना अति कठिण है, सोभी कोउ रोकै है, परंतु लक्ष्मी पायके कोउ स्थिर होवै सो नहीं; जैसे शशाके सिंगसों कोउ मार नहीं शकता; अरु आरशीके उपर जैसे मोती नहीं ठहरता है, जैसे तरंगकी गांठ नही परत है; तैसे लक्ष्मीहू स्थिर नहीं रहती है; लक्ष्मी बिजुरीका चमका जैसी है, सो होतीहू है, अरु मिट भी जाती है, अरु लक्ष्मी पायके आपकों अमर हुआ चाहै, सो महामूर्ख जानना अरु लक्ष्मीकों पायकर जो भोगकी वांच्छा करत हैं सो महा आपदाका पात्र हैं, तिनकों जीवनेतें मरना श्रेष्ठ है; जीवनेकी आशा मूर्ख करते हैं सो अपने नाशके निमित्त करते हैं; जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है सो अपने नाशके निमित्त करती है; अरु ज्ञानवान पुरुष हैं, जिनकी परम पदमें स्थिति है, अरु तिसकर तृप्ति पाये हैं, तिनका जीव

ना सुखके निमित्त है; तिनके जीवनेतें ओरका कार्य भी सिद्ध हो जाता है; तिनका जीवना चिंतामणिकी नांई श्रेष्ठ है; अरु जिनकों सदा भोगकी इच्छा रहती है औ आत्मपदतें विमुख है तिनका जीवना किसी सुखके निमित्त नहीं है, वह मनुष्य नहीं, गर्दभ है, अरु जैसे वृक्ष पक्षी पशुका जीवना है, तैसे तिसका भी जीवना है ॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढ्या है अरु पावने जोग पद नहीं पाया, तब शास्त्र उसकों भाररूप है, जैसे ओरका भार होता है; तैसे पढनेका भी भार है, अरु पढके विचारचर्चा करता है, औ तिसके सारकों नहीं ग्रहण करता; तौ यह विचारचर्चाहु भार है ॥ हे मुनीश्वर! मन जो है सो आकाशरूप है सो मनमें जो शांति न आई, तौ मनहु उसकों भार है; अरु जो मनुष्य शरीरकों पाया है, उसका अभिमान नहीं त्यागता है; तौ यह शरीरभी उसकों भार है इस शरीरका जीवना तबही श्रेष्ठ है! जब आत्मपदकों पावै, अन्यथा उसका जीवना व्यर्थ है, औ आत्मपदकी प्राप्ति अभ्यासकर होती है ॥ जैसे जल पृथ्वीतें खोदेतें निकसता है, तैसे अभ्यासकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है अरु जो आत्मपदतें विमुख होय आशाकी फांसीमें फसे हैं, सो संसारमें भटकत रहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! संसारके तरंग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जाते हैं तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभंग है इसकों पायके जो अभिमान करता है सो मूर्ख है; जैसे बिल्ली चूवाकों पकडनेके लिये परी रहती है तैसे लक्ष्मी उसकों नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है; जैसे अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जाती है; ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी अरु शरीरकों पायकर जो भोगकी तृष्णा करते हैं सो महामूर्ख हैं, सो मृत्युके मुखमें परे हुए जीवनेकी आशा करते हैं; जैसे सर्पके मुखमें मेंडुक पडता है सो मच्छरकों खावनेकी इच्छा करता है, यातें सो मूर्ख है; तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें पड्या हुआ भोगकी वांछा करता है सो महामूर्ख है; अरु जुवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नांई चली जाती है, वहुरि वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामें महादुःख प्रगट होते हैं, अरु शरीर जर्जर होय जात है;

फिर मरता है; इक क्षणहु मृत्यु इसकों विसारत नहीं है; सदाई देखत रहता है, जैसे महाकामी पुरुषकों सुंदर स्त्री मिलती है, तब उसकों देखनेका त्याग नहीं करता, तैसे मृत्यु मनुष्यकों देखे विना नहीं रहता है ॥ हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुषका जीवना दुःखके निमित्त है; जैसे वृद्ध मनुष्यका जीवना दुःखका कारण है तैसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है; उसकों बहुत जीवनेतें मरना श्रेष्ठ है; जो पुरुषनें मनुष्य शरीर पायकर आत्मपद पावनेका यत्न नहीं किया तिसनें आपही आपका नाश किया है, सो आत्महत्यारा है ॥ हे मुनीश्वर ! यह माया बहुत सुंदर भासती है; परंतु आखर नाशकों पावती है ॥ जैसे वृक्षकों अंतरतें घुना खाय जाता है, अरु बाहिरतें बहुत सुंदर दिखता है; तैसे यह पुरुष बाहिरतें सुंदर दृष्ट आवता है, अरु अंतरतें इनकों तृष्णा खाय जाती है; जो पदार्थकों सत्य अरु सुखरूप जान कर सुखके निमित्त आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता है; जैसे नदीमें सर्पकों पकडके पार उतर्या चाहै, सो पार नहीं उतरता है, वह मूर्खता करके डुबेइगा, तैसे जो संसारके पदार्थकों सुखरूप जानकर आश्रय करता है, सो सुख नहीं पावता; संसारसमुद्रमेंही डुब जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह संसार इंद्रधनुष्यकी नांईं है; जैसे इंद्रधनुष्य बहुत रंगका दृष्टिमें आवता है; अरु तिसतें अर्थसिद्धि कछु नहीं होती है; तैसे यह संसार भ्रममात्र है; इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है; इस प्रकार जगतकों मैं असद्रूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेधवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥

हे मुनीश्वर ! यह जो अहंकार उदय हुवा है, सो अज्ञानतें महादुष्ट है, अरु यही परम शत्रु है; इसनें मेरे कों भार प्राप्त किया है, अरु मिथ्या है; जेते कछु दुःख हैं, तिनका खानी अहंकार है; जबलग अहंकार है, तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु मैं अहंकारसों भजन किया, अरु पुण्य किया है, अरु जो लिया दिया है; औ कछु किया है, सो सब व्यर्थ है; इसकर परमार्थकी सिद्धि

कछु नहीं है ॥ जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ हो जाती है, तैसे जानत हौं; अरु जेते कछु दुःख हैं; जिनका बीज अहंकार है; इसका नाश होवै तब कल्याण होवै; तातें तुम इसका उपाय मुझकों कहौ; जिसकर अहंकार निवृत्त होवै ॥ हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है, तिसका त्याग करनेमें दुःख होता है; अरु जो वस्तु नाशवान अरु भ्रम करके दिखती है, तिसके त्याग करनेतें आनंद है; अरु शांतिरूप जो चंद्रमा है, तिसकों आच्छादन करनेका अहंकाररूपी राहु है, जब राहु चंद्रमाका ग्रहण करता है, तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढप जाती है तैसे जब अहंकार उपजता है, तब समता ढप जाती है; जब अहंकाररूपी मेघ गरजके बरखता है, तब तृष्णारूपी कंटकमंजरी बढ जाती है, सो कदाचित् घटत नहीं, जब अहंकारका नाश होवै तब तृष्णाका अभाव होवै, जैसे जबलग मेघ है तबलग बिजुरी है, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके बिजुरी नाश पावती है, जैसे जबलग तेल अरु वाती है, तबलग दीपकका प्रकाश है, जब तेलबातीका नाश होता है, तब दीपकका प्रकाश भी नाश पावता है, तैसे जब अहंकारका नाश होवै तब तृष्णाका भी नाश होता है ॥ हे मुनीश्वर ! परम दुःखका कारण अहंकार है, जब अहंकारका नाश होवै, तब दुःखका भी नाश होय जाय ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो मैं राम हौं, सो नहीं, अरु इच्छा भी कछु नहीं; काहेतें जो मैं नहीं तौ इच्छा किसकूं होवै; अरु इच्छा होई तो यही होई जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवै; जैसे जनींद्रकों अहंकारका उत्थान नहीं हुआ, तैसा मे होउं, ऐसी मुझकों इच्छा है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे कमलकों बरफ नाश करता है, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करता है; जैसे पारधी जालसों पक्षीकों बंधन करता है, तिसकर पक्षी दीन हो जाते हैं, तैसे अहंकाररूपी पारधीनें तृष्णारूपी जाल डारके जीवकों बंधन किया है, तिसकर महादीन हो गया है; जैसे पक्षी अन्नके कणकों सुखरूप जानकर चुगनेकों आता है, फिर चुगते फिरते जालमें बंध जाता है; तिस बंधनकर दीन हो जाता है, तैसे यह पुरुष वि

षयभोगकी इच्छा कियेतें तृष्णारूपी जालमें बंधन होय महादीन हो जाता है; तातें हे मुनीश्वर ! मुझकों सोइ उपाय कहौ, जिसकर अहंकारका नाश होवै; जब अहंकारका नाश होवैगा तब मैं परम सुखी होऊंगा; जैसे विंध्याचळ पर्वतके आश्रयतें उन्मत्त हस्ती पडे गरजते हैं, तैसे अहंकाररूपी जो विंध्याचल पर्वत है, तिसके आश्रयतें मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्पविकल्परूपी शब्द करता है, तातें सोई उपाय कहौ जिसकर अहंकारका नाश होवै, सो अहंकार अकल्याणका मूल है ॥ जैसे मेघका नाश करनहारा शरत्काल है, तैसे वैराग्यका नाश करनहारा अहंकार है; मोहादिक विकाररूप जो सर्प हैं, तिनकों रहनेका अहंकाररूपी बिल है; अरु अहंकार कामी पुरुषकी नांई है; जैसे कामी पुरुष कामकों भुगता है, अरु फूलकी माला गलेमें डारके प्रसन्न होता है; तैसे तृष्णारूपी तागा है; अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके हैं; सो तृष्णारूपी तागेके साथ परोये हैं सो अहंकाररूपी कामी पुरुष गलेमें डारता है, अरु प्रसन्न होता है ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मारूपी सूर्य है, तिसका आवरण करनहारा मेघरूपी अहंकार है, जब ज्ञानरूपी शरत्काल आवै, तब अहंकाररूपी मेघका नाश हो जाता है; अरु तृष्णारूपी तुषरका भी नाश होवै ॥ हे मुनीश्वर ! यह निश्चय करि मैंनें देख्या है, जो जहां अहंकार है, तहां सब आपदा आय प्राप्त होती हैं, जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती हैं, तैसे अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्ति है तातें सोई उपाय कहौ जिसकर अहंकारका नाश होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो मेरा चित्त है, सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःखकर जर्जरीभाव हो गया है, अरु महापुरुषके जो गुण, वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, तिनकी और नहीं जाता ॥ सर्वदा विषयकी गिरदमें उडता है; जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकत फिरता है, अरु इसकों लाभ कछु प्राप्त नहीं होता, जैसे श्वान द्वारद्वारपें भटकत फि

रता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकत फिरता है, औ प्राप्त कछु नहीं होता; अरु जो कछु प्राप्त होता है, तिसकरि तृप्त नहीं होता; अंतर तृष्णा रही जाती है; जैसे पिटारेमें जल भरियें, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्यौं जो छिद्रतें जल निकस जाता है; अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है; तैसे चित्तकों भोग पदार्थ प्राप्त होता है, तासों संतुष्ट नहीं होता है; सदा तृष्णाई रहत है ॥ हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है, तिसमें तृष्णारूपी तरंग उठतेही रहते हैं; सो कदाचित् स्थिर नहीं होता; जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है, सो तटके वृक्षनकों लागता है, वे तरु जलमें बहे जाते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रमें विषय बह्या जाता है, वासनारूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था, सो चलायमान हो गया है; सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआ हौं; जैसे जालमें पर्या पक्षी दीन हो जाता है, तैसे चित्त धीवर की वासनारूपी जालमें बध्या हुवा मैं दीन हो गया हौं; जैसे मृगके समूहतें भूली मृगी अकेली खेदवान होती है, तैसे मैं आत्मपदतें भूल्या हुआ चित्तमें खेदवान हुआ हौं ॥ हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता; जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल करके क्षोभवान हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्पविकल्पकर खेद पावत है; जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेमें फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! इस चित्तनें मेरेकों दूरतें दूर डार्या है, जैसे भारी पवनसों सूका तृण दूरतें दूर जाय परता है; तैसे चित्तरूपी पवननें मुझकों आत्मानंदतें दूर डार्या है; जैसे सूके तृणकों अग्नि जरावती है, तैसे मोकों चित्त जारता है; जैसे अग्नितें धूम नीकसते हैं, तैसे चित्तरूपी अग्नितें तृष्णारूपी धूम निकसता है, तिसकर मैं परमदुःख पावता हौं, यह चित्त हंस नहीं बनता है, जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेकों भिन्न भिन्न करता है, तिसकी नांई मैं अनात्मा साथ अज्ञान करके एकसा होगया हौं, तिसकों भिन्न नहीं करी शकता हौं; जब आत्मपद पावनेका यत्न करता हौं, तब अज्ञान प्राप्त करने नहीं देता; जैसे नदीका प्र

वाह समुद्रमें जाता है, तिसकों पहार सूधे चलने नहीं देता है अरु समुद्रकी और जाने नहीं देता है; तैसे मुझकों चित्त आत्माकी औरतें रोकता है; सो परम शत्रु है ॥ हे मुनीश्वर! तातें सोई उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवै ॥ यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है; जैसे मृतक शरीरकों श्वान अरु श्वाननी भोजन करते हैं, तैसे आत्माके ज्ञानविना मैं मृतक समान हौं, जैसे बालक आपनी परछाहीकों बैताल मानकर भयकों पावता है, सो जब विचार करके समर्थ होता है, तव बैतालका भय पावता नहीं; तैसे चित्तरूपी बैतालनें मेरा स्पर्श किया है; तिसकर मैं भयकों पावता हौं; तातें तुम सोई उपाय कहो; जिसतें चित्तरूपी बैताल नष्ट होय जावै ॥ हे मुनीश्वर! अज्ञान करके मिथ्या बैताल चित्तमें दृढ हो रह्या है, तिसके नाश करनेकों मैं समर्थ नहीं हो शकता हौं, अग्निमें बैठना सो भी मैं सुगम जानता हौं, औ चलके बडे पर्वतके उपर जाना सो भी मैं सुगम मानता हौं; अरु बडे वज्रका चूर्ण करना यह भी मैं सुगम मानता हौं, परंतु चित्तका जीतना महाकठिन है, ऐसा मैं जानता हौं; चित्त सदाई चलायमान स्वभाववाला है; जैसे स्तंभके साथ बांध्या हुवा वानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होता है ॥ हे मुनीश्वर! बडा समुद्रका पान कर जाना सुगम है; अरु अग्निका भक्षण करना भी सुगम है, औ सुमेरुका उल्लंघन करना सो भी सुगम है; परंतु चित्तकों जीतना महाकठिन है; जो सदा चलरूप है, जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावका कदाचित् नहीं त्याग करता, अरु महाद्रवीभूत रहता है तिसकर नाना प्रकारके तरंग होते हैं, तैसे चित्त भी चंचल स्वभावकों कबी न त्यागता है; नाना प्रकारकी वासना उपजती रहती हैं, अरु बालककी नांई चंचल है; सदा विषयकी ओर धावता है; कहुं पदार्थकी प्राप्ति होती है, परंतु अंतरतें सदा चंचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए दिन होता है, अरु अस्त हुएतें नाश पावता है; तैसे चित्तके उदय हुए त्रिलोकीकि उत्पत्ति है, अरु चित्तके लीन हुएतें लीन हो जाती है ॥ हे

मुनीश्वर! कोउ समुद्रमें जल गंभीर है, तिसमें बडे सर्प रहते हैं, सो जब कोउ समुद्रमें प्रवेश करै, तब वह सर्प उनकों काटते हैं, तिनकों विष चढ जाता हैं, तिसकर बडा दुःख पावते हैं, सो दृष्टांत शुनीयें ॥ चित्तरूपी समुद्र है, अरु वासनारूपी जल है, तिसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उनके निकट जाता है, तब भोगरूपी सर्प उसकों काटते हैं; औ तृष्णारूपी बिख पसरते हैं, तिसकर मरते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जो भोगकों सुखरूप जानकर चित्त दौरता है, सो भोग दुःखरूप हैं, जैसे तृणसों खाई आच्छादित होय जाती है, तिसकों देखकर मूर्ख मृग खानेकों दौरता है, तब खाईमें गिर परता है, दुःख पावता है; तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेकों लगता है, तब तृष्णारूपी खाईमें गिर परता है, अरु जन्मांतर दुःखकों भुगता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह चित्त कबहु बडा गंभीर हो बैठता; औ जब भोगकों देखता है, तब तिनकी ओर चीलकी नांई लग परता है ॥ जैसे चील पक्षी आकाशमें चढ फिरता है, सो जब पृथ्वीपर मांसकों देखता है, तब तहांतें आय पृथ्वीपर बैठता है, अरु मांसकों लेता है, तैसे यह चित्त तबलग उदार है, जबलग भोगकों न देखता है, जब विषय देखै तब आसक्ति पाय विषयमें गिर जाता है, अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोया रहता है; अरु आत्मपदकी ओर जागता नहीं इस चित्तकी जालमें मैं पकराया हौं, सो कैसी जाल है, तामें वासनारूपी सूत्र है, अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रंथी है, अरु भोगरूपी तिसमें चून है; इसकों देखके मैं फस्या हौं; कबहु पातालमें, कबहु आकाशमें वासनारूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नांई बंध्या हौं ॥ तातें हे मुनीश्वर! तुम सोई उपाय कहौ जिसकर चित्तरूपी शत्रुकों जीतौं अब मुझकों किसी भोगकी इच्छा नहीं अरु जगतकी लक्ष्मी मुझकों विरस भासती है, जैसे चंद्रमा बादरकी इच्छा नहीं करता, अरु चतुर्मासेमें आच्छादित होय जाता है तैसे मैं भी भोगकी इच्छा नहीं करता, तौ भी भोग मेरे सन्मुख आते हैं, तातें जगतकी लक्ष्मीकों मैं नहीं चाहता, अरु मेरा चित्त है सो परम श

त्रु है ॥ हे मुनीश्वर! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करते हैं, सो जब चित्तकों जीतैं, तब परम पदकों पावैं; तातैं मुझकों सोइ उपाय कहौ, जिसकर मनकों जीतौं, सब दुःख इसके आश्रयतें रहते हैं, जैसे पर्वतपर बन है सो पर्वतके आश्रयतें रहता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥११॥ श्रीराम उवाच ॥ हे ब्रह्मन्! चेतनरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है, तामें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक घुबड बिचरते हैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होवै, तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होय जावै; जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हो जाते हैं, जब सूर्यका उदय होता है, तब बरफ उष्ण होय पिगल जाता है, तैसे संतोषरूपी रसकों तृष्णारूपी उष्णता सुकावती है; बहुरि तृष्णा कैसी है; जैसे शून्य बनमें पिशाचनी अपने परिवारसहित फिरत रहती है, अरु प्रसन्न होती है; सो वन अरु पिशाच कैसा है; आत्मपदतें शून्य जो चित्त सो भयानक शून्य बन है; तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी है; अरु मोहादिक उसका परिवार है, उसकों साथ लेकर फिरति है ॥ हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वत है; तिसके आश्रयतें तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलता है; अरु नानाप्रकारके संकल्परूपी तरंगकों पसारते हैं; जैसे मेघकों देखकर मोर प्रसन्न होता है; तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघकों देखके प्रसन्न होता है, तातें परम दुःखका मूल तृष्णा है; जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय करता हौं, तब तृष्णा तिसकों नाश कर देती है ॥ जैसे सुंदर सारंकीकों चूहा तोरि डारता है; तैसे संतोषादि गुणकों तृष्णा नाश करती है ॥ हे मुनीश्वर! सबतें उत्कृष्ट पदमें बिराजनेका मैं यत्न करता हौं ॥ तब तृष्णा बिराजने नहीं देती ॥ जैसे जालमें फस्या हुआ पक्षी आकाशमें उडवेका यत्न करता है; परंतु उड नहीं सकता है; तैसे मैं अनात्मपदमेंतें आत्मपदकों प्राप्त नहीं हो सकता; स्त्री, पुत्र, अरु कुटुंब, तिसनें जाल बिछाई है, तामें फस्या हौं सो निकस नहीं शकता ॥ सो आशारूपी फांशीमें बंध्या हुआ कबहु ऊर्ध्वकों जाता हौं, कबहु अधःपात होता हौं; सो घटीयंत्रकी नांई मेरी गति है;

जैसे इंद्रका धनुष्य मलिन मेघमें होता है, सो बडा अरु बहोत रंगसों भऱ्या होता है, परंतु मध्यतें शून्य है, तैसे तृष्णा मलिन अंतःकरणमें होती है, सो बडी है, अरु गुणरूपी धागेतें रहित है; उपरतें देखने मात्र सुंदर है; परंतु इससें कार्य सिद्ध कछु नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है; तिसतें दुःखरूपी बूंद निकसते हैं अरु तृष्णारूपी काली नागनी है; उसका स्पर्श तौ कोमल है, परंतु विषकर पूर्ण है; तिसके डसेतें मृतक हो जाता है, अरु तृष्णारूपी बादर है, सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है, जब ज्ञानरूपी पवन निकसै तब तृष्णारूपी बादरका नाश होवै; अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवै, अरु ज्ञानरूपी कमलकों संकोच करनहारी तृष्णारूपी निशा है; अरु तृष्णारूपी महाभयानक काली रात्रि है ॥ जिसकर बडे धैर्यवान् भी भयभीत होते हैं, अरु नयनवालेकों भी अंध कर डारती है; जब यह आवती है तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रकों अंध कर डारती है; अर्थ यह जो सत्य असत्यकों विचारने नहीं देती ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकिनी है, सो संतोषादिक पुत्रकों मार डारती है, अरु तृष्णारूपी कंदरा है, तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गरजते हैं अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है, तातें सोई उपाय मुझकों कहौ, जिसकर तृष्णारूपी दुःखतें छूटों ॥ हे मुनीश्वर! अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु खड्गके प्रहार कर भी ऐसा दुःख नहीं होता; अरु इंद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख तृष्णाकर होता है; सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बडे दुःखकों पावता है; अरु तृष्णारूपी दीपक पर्या जलता है, तिसमें संतोषादि पंतागिये जर जाते हैं; जैसे जलमें मच्छी रहती है, सो जलमें कंकरी रेती आदि वेसेकों देख मांस जानकर वह मुखमें लेती है; तातें उसका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है, तिसके पास उडती है, अरु तृप्त किसी करी नहीं होती ॥ अरु तृष्णारूपी एक पक्षिणी है, सो कबहु कहुं उड जाती है; अरु स्थिर कबहु नहीं होती, तैसे तृष्णा भी कबहु किसी

पदार्थकों, कबहु किसीकों ग्रहण करती है; परंतु स्थिर कबहु नहीं होती; अरु तृष्णारूपी वानर है सो कबहु किसी वृक्षपर, कबहु किसीके उपर जाता है, स्थिर कबहु नहीं होता है; जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता, तिसके निमित्त यत्न करता है, तैसे तृष्णाहु नाना प्रकारके पदार्थका ग्रहण करती है; अरु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती; जैसे घृतकी आहुतिकर अग्नि तृप्ति नहीं पावै तैसे जो पदार्थ प्राप्तियोग्य नहीं है, तिसके और भी तृष्णा दोरती है, शांतिकों नहीं पावती है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है, तिसमें जो बहाया पुरुष, ताकों कहांका कहां ले जाती है ॥ कबहु तो पहारकी बाजुमें ले जाय; कबहु दिशामें ले जाय; परंतु इनकों ले फिरती है तैसे तृष्णारूपी नदी है, सो मुझकों ले फिरती है; अरु तृष्णारूपी जो नदी है, इसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं, कदाचित् मिटते नहीं हैं; अरु तृष्णारूपी नटनी है अरु जगतरूपी अखाडा तिसनें लगाया है; तिसकों शिर ऊंचा कर देखती है, अरु मूर्ख बडे प्रसन्न होते हैं; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आता है, तैसे मूर्ख तृष्णाकों देखकर प्रसन्न होते हैं; तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है; जो पुरुष इसका त्याग करता है, तब वाके पाछे लगी फिरती है, कबहु इसका त्याग नहीं करती; अरु तृष्णारूपी डोरी है, तिस साथ जीवरूपी पशु बांधे हुए हैं तिसकर भमते फिरते हैं; अरु तृष्णा दुष्टनी है; जब शुभ गुणकों देखै, तब तिनकों मार डारती है; तिसके संयोगतें मैं दीन हो जाता हों; जैसे पपैया मेघकों देखकर प्रसन्न होता है; अरु बूंद ग्रहण करने लगता है, औ मेघकों जब पवन ले जाता है तब पपैया दीन हो जाता है; तैसे तृष्णा शुभ गुणका नाश करती है; तब मैं दीन हो जाता हों ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णानें मुझकों दूरतें दूर डाऱ्या है; जैसे सूके तृणकों पवन दूरतें दूर डारता है, तैसे तृष्णारूपी पवननें मुझकों दूरतें दूर डाऱ्या है; आत्मपदतें दूर पर्या हों ॥ हे मुनीश्वर! जैसे भौंरा कमलके उपर जाता है; कबहु नीचे बैठता है; कबहु आसपास फिरता है; अरु स्थिर नहीं होता; तैसे तृष्णारूपी भंवरा संसाररूपी कम

लके नीचे उपर फिरता है; कदाचित् ठहरता नहीं है; जैसे मोतीका बास होता है, तिसतें अनेक मोती निकसते हैं, तैसे तृष्णारूपी बांसतें जगतरूपी अनेक मोती निकसते हैं, तिसकर लोभीका मन पूर्ण नहीं होता; दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपी डब्बा है; तैसे अनेक दुःख रहते हैं ॥ तातें सोइ उपाय कहौ, जिसकर तृष्णा निवृत्त होवै ॥ हे मुनीश्वर ! यह वैराग्यसें निवृत्ति पाती है और किसी उपायकर निवृत्त नहीं होती है ॥ जैसे अंधकारका प्रकाशकर नाश होता है, और किसी उपायकर नहीं होता; तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं होता है; अरु तृष्णारूपी हल है सो गुणरूपी पृथ्वीकों खोद डारता है; अरु तृष्णारूपी वल्ली है; सो गुणरूपी रसकों पीती है; अरु तृष्णारूपी धूर है, सो अंतःकरणरूपी जलमें उछलके मलिन करती है ॥ हे मुनीश्वर ! नदी है सो वर्षा कालमें बढती है, फिर घट जाती है, तैसे जब इष्टभोगरूपी जल प्राप्त होता है तब हर्षकर बढती है, जब भोगरूपी जल घट जाता है, तब सूकके छीन हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर ! इस तृष्णानें मुझकों दीन किया है; जैसे सूके तृणकों पवन उडाता है तैसे मुझकों उडाती है, तातें सोई तुम उपाय कहौ, जिसकर तृष्णाका नाश होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु दुःख नष्ट होवै, अरु आनंद होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगलरूप शरीर जगतमें उत्पत्ति पाया है, सो बडा अभाग्यरूप है; सदा विकारवान्, मांस मज्जाकर पूर्ण है, सदा अपवित्र है; इस करके मैं कछु अर्थ सिद्ध होता नहीं देखता; तातें तिस विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता; यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है; अर्थ यह जो न जड है न चैतन्य है; जैसे अग्निके संजोगकर लोहा अग्निवत् होता है; सो जालताभी है; परंतु आप नहीं जलता; तैसे यह देह न जड है, न चैतन्य है; जड इस कारणतें नहीं, जो इसतें कार्य भी होता है; अरु चैतन्य इस कारणतें नहीं, जो इसकों आपतें ज्ञान कछु नहीं होता; तातें मध्य

म भावमें हैं; काहेतें जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप रहा है, सो लोहअग्निकी नांईं जानत हौं, अरु आपतें तौ अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करी पूर्ण, अरु विकारवान्, ऐसा जो देह है सो दुःखका स्थान है; अरु इष्टके पायेतें हर्षवान् होता है अरु अनिष्टके पायेतें शोकवान् होता है; तातें ऐसे शरीरकी मुझकों इच्छा नहीं ॥ यह अज्ञानकर उपजता है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपना स्फुरता है; सो दुःखका कारण है; यह संसारमें स्थित होकर नाना प्रकारके शब्द करता है; जैसे कोटडीमें बिल्ला बैठा हुआ नाना प्रकारका शब्द करता है, तैसे अहंकाररूपी बिलाडा देहमें रहा हुआ, अहं अहं, करता है; चुप कदाचित् नहीं रहता है ॥ हे मुनीश्वर! जो किसीके निमित्त शब्द होवै सो सुंदर है; अन्यथा शब्द व्यर्थ है; जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुंदर होता है; तैसे अहंकारके रहित जो पद है, सो शोभनीक है; और सब व्यर्थ है, अरु शरीररूपी नौका; भोगरूपी रेतीमें परी है, इसकों पार होना कठिन है; जब वैराग्यरूप जल बढै अरु प्रवाह होवै; अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवै; तब संसारके पाररूपी किनारेपें पहुंचै; अरु शरीररूपी बेडा है; अरु संसाररूपी समुद्र, औ तृष्णारूपी जलमें पऱ्या है; अरु बडा प्रवाह है; अरु भोगरूपी तिसमें मगर हैं; सो शरीररूपी बेडाकों पार लगने नहीं देते; जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगै, अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल लगै, तब शरीररूपी बेडा पारकों पावै ॥ हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषनें ऐसे बेडेकों उपायकर आपकों संसारसमुद्रतें पार किया है; सो सुखी भये हैं; अरु जिननें नहीं किया, सो परम आपदाकों प्राप्त होते हैं; सो इस बेडेकर उलटे डुबेइगे जैसे बेडेमें छिद्र होवै; औ वामेंतें जल प्रवेश कर आवै, तब वह डूब जाता है; अरु तिसमें जो मत्स्य हैं; सो खाइ जाते हैं; सो इहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्र है; तिसकरके इहां संसारसमुद्रमें डुब जाता है; अरु भोगरूपी मगर इसकों खाते हैं, अरु यह आश्चर्य है जो बेडा अपने निकट नहीं भासता है; अरु मनुष्य सो मूर्खता कर

देहनैराश्य.

के आपकों बेडा मानता है; अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पावत है; अरु शरीररूपी वृक्ष है; तामें भुजारूपी शाखा हैं; अरु अंगुरी इसके पत्र हैं; अरु जंघा इसका स्तंभ हैं; अरु मांसरूपी अंतरका भोग है; अरु वासना इसकी जड है; अरु सुख दुःख इसके फूल हैं; अरु तृष्णारूपी घुना है; सो शरीररूपी वृक्षकों खात रहता है; जब इसकों श्वेत फूल लगै हैं तब नाशका समय पाता है; कारण जो मृत्युके निकटवर्ती होता है; बहुरि शरीररूपी वृक्ष कैसा है? जो भुजारूपी इसके टास हैं अरु हस्तपाद इसके पत्र हैं; अरु गिटे इसके गुंछा हैं; अरु दांत फूल हैं; जंघा स्तंभ हैं; अरु कर्म जलकर बढ जाता है; जैसे वृक्षतें जल निकसता है; सो चिकटा है; तैसे जल शरीरके द्वारा निकसता रहता है अरु तृष्णारूपी विषतें पूर्ण सर्पिणी रहती है, अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेता है; तब तृष्णारूपी सर्पिणी तिसकों डसती है; तिस विषसों वह मरी जाता है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा जो अमंगलरूपी शरीर वृक्ष है, तिसकी इच्छा मुझकों नहीं है ॥ यह परम दुःखका कारण है; जबलग यह पुरुष अपने परिवारमें बंध्या हुआ है, तबलग मुक्ति नहीं होती; जब परिवारका त्याग करै तब मुक्ति होवै; देह, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इसका परिवार है; इनमें जो अहंभाव है, वाका त्याग करै तब मुक्ति होवै अन्यथा मुक्ति नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं; सो पवित्रही स्थानमें रहते हैं; अपवित्रमें नहीं रहते; सो अपवित्र स्थान यह देह है; इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है, अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकडे हैं; वामें रुधिर, मूत्र, विष्ठाका कीच लगाया है; अरु मांसकी कहगील करी है; अरु अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है; अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्री है, अरु काम, क्रोध, मोह, लोभ इसके बेटे हैं; आंत्र अरु विष्ठादिक करी पूर्ण भऱ्या हुआ है; ऐसा जो अपवित्र स्थान, अमंगलरूप जो शरीर, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता; यह शरीर रहौ चाय मत रहौ; इसके साथ मेरे अब कछु प्रयोजन नहीं ॥ हे मुनीश्वर! एक बडा घर है, तिसमें बडे पशु रहते हैं; सो धूरकों उडाव

ते हैं; उस गृहमें कोउ जाता है, तब सिंह मारने लगता है, अरु धूड भी उसके उपर गिरती है; सो शरीररूपी बडा गृह है, तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं; जब इस गृहमें पैठता है, तब बडी आपदाकों प्राप्त होता है; तात्पर्य यह जो इसमें अहंभाव करता है, तब इंद्रियरूपी पशु सो विषयरूप सिंहसों मारते हैं; अरु तृष्णारूपी धूड इसकों मलीन करती है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरका मैं अंगीकार नहीं करता; जिसमें सदा कलह पडेई रहते हैं; तिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती; ऐसा जो शरीररूपी गृह है, तिसमें तृष्णारूपी चंडी स्त्री रहती है; सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है; सो सदा कल्पना करत रहती है; तिसकर शमदमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता; तिस घरमें एक शय्या है, जब उसके उपर विश्राम करता है, तब कछुक सुख पाता है; परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता; सोसुषुप्तिरूपी शय्या है; जब उसमें विश्राम करता है, तब कामक्रोधादिक रुदन करते हैं, अरु ए चंडी स्त्रीका जो परिवार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा है सो उठाई देते हैं; विश्राम करने नहीं देते ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा दुःखका मूल जो शरीररूपी गृह है, तिसकी इच्छा मैंनें त्याग दीनी है; यह परम दुःख देनहारा है, इसकी इच्छा मुझकों नहीं ॥ हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भई है, सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है; तैसे तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थके पास उडती है; बहुरि तृष्णा बंदरीकी नांई शरीररूपी वृक्षकों हिलाती है; वृक्षकों स्थिर होने देती नहीं ॥ अरु जैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फस जाता है, अरु निकस नहीं शकता, अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानरूपी मदकर उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फस्या है, सो निकस नहीं शकता है, पच्याई दुःख पावता है ॥ ऐसे दुःख पावनेवाला शरीर है, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता ॥ हे मुनीश्वर! यह शरीर, अस्थि, मांस, रुधिर करी पूर्ण है, सो अपवित्र है; जैसे हस्तिके कर्ण सदाई हलते हैं, तैसे इसकों मृत्यु परा हिलाता है, कछु कालका

विलंब है, परंतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवैगा, तातें मैं इस शरीरका अंगीकार नहीं करता हौं, यह शरीर कृतघ्न है; भोग भुगतता है; बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त करता है; परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करता है, जब जीव उसकों छांडकर परलोक जाता है; तब अकेला जाता है; और शरीरकों छोड देता है, जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करता है; परंतु संगमें सदा नहीं रहता; ऐसा जो कृतघ्न शरीर है, तिसका मैंनें मनसों त्याग किया है, सो यहदुःख देनहारा है ॥ हे मुनीश्वर ! औ आश्चर्य देखौ, जो याहिका भोग करता है, तिसके साथ चलता नहीं, जैसे धूरी कर मार्ग भासनेतें रही जाता है; तैसे यह जीव जब चलने लगता है; तब शरीर साथ क्षोभवान् होता अरु वासनारूप धूरसंयुक्त चलता है; परंतु दिखता नहीं जो कहां गया; जब परलोक जाता है, तब बडा कष्ट होता है; काहेतें जो शरीरके साथ स्पर्श किया है ॥ हे मुनीश्वर ! यह शरीर क्षण भंग है, जैसे जलकी बूंद पत्रके उपर गिरती है; सो क्षणमात्र रहती है; तैसे शरीर भी क्षणभंग है; ऐसे शरीरमें आस्था करनी, सो मूर्खता है अरु ऐसे शरीरके उपर उपकार करना भी दुःखके निमित्त है, सुख कछु नहीं है; औ जो धनाढ्य हैं; सो शरीरसों बडे भोग भुगतते हैं; औ निर्धन थोडे भोग भुगतते हैं; परंतु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोंकों होते हैं; इसमें विशेषता कछु नहीं; शरीरका उपकार करना, औ भोग भुगतना, सो तृष्णा कर के उलटा दुःखका कारण है, जैसे कोउ नागिनी घरमें रखके इसकों दूध प्यावै; तोउ आखर उसकों काटके मारैंगी; तैसे जीवनें तृष्णारूप नागनी साथ सखाई करी है, सो मरैगा; क्यों जो नाशवंत है; इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो मूर्खता है, जैसे पवनका वेग आता है, अरु जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है; इससों प्रीति करनी, सो दुःखका कारण है;सब जीव इसकी आस्थामें बांधे हुए हैं; इसीका त्याग कोउ विरलानेंही किया है; जैसे कोउ विरला मृग होता है, सो मरुस्थलके जलकी आस्था त्यागता है, और सब परे भमते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! बिजलीका अरु दीपकका प्रकाश भी आता जाता दिखता है; परंतु इस शरीरका आ

दि अंत नहीं दिखता है; जो कहांतें आता है; अरु कहां जाता है ॥ जैसे समुद्रमें बुदबुद उपजते हैं, अरु मिट जाते हैं, तिनकी आस्था करनेतें कछु लाभ नहीं; तैसे इस शरीरकी आस्था करनी योग्य नहीं; यह अत्यंत नाशरूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता है, जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती, तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता; इसकी मैं आस्था नहीं करता; इसका अभिमान मैंनें त्याग्या है; जैसे कोउ सूके तृणकों त्याग देता है; तैसे मैंनें अहंममता त्यागी है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरकों पुष्ट करना, सो दुःखके निमित्त हैं; यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं; जलावने योग्य है; जैसे लकडी जलाए बिन और काममें नहीं आती है; तैसे यह शरीर भी जड अरु गुंगा जलावनेके अर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! जिन पुरुषनें काष्ठरूपी शरीरकों ज्ञानाग्निकर जलाया है; तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है, अरु जिननें नहीं जलाया सो परम दुःख पाया है ॥ हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हौं, न मेरा शरीर है, न इसका मैं हौं, न यह मेरा है, अब मुझकों कामना कोउ नहीं है, मै निराशी पुरुष हौं, अरु शरीर साथ मुझकों प्रयोजन कछु नहीं है; तातें तुम सोई उपाय कहो; जिसकर मैं परम पदकी प्राप्ति पाउं ॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषनें शरीरका अभिमान त्याग्या है, सो परमानंदरूप है; औ जिसकों देहका अभिमान है, सो परमदुःखी है; जेते कछु दुःख हैं; सो शरीरके संयोग करी होते हैं ॥ मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दंभ, भ्रांति, मोह, शोक, आदि सर्व विकार देहके संयोग कर होते हैं; जिसकों देहमें अभिमान है, तिसकों धिक्कार है; औ सब आपदा भी तिसकों प्राप्त होती है; जैसे समुद्रमें नदी आय प्रवेश करती हैं; तैसे देहाभिसानमें सर्व आपदा आय प्रवेश करती हैं; जिसकों देहका अभिमान नहीं, सो पुरुषनमें उत्तम है, अरु वंदना करने योग्य है; ऐसेकों मेरा नमस्कार है, अरु सर्व संपदा भी तिसकों प्राप्त होती हैं; जैसे मानस सरोवरमें सब हंस आय रहते हैं, तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा, तहां सर्व संपदा आय रहती हैं ॥ हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छायामें बालक बैताल कल्पता

है; अरु तिसकर भय पाता है; जब इसकों विचारकी प्राप्ति होती है, तब बैतालका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकर मुझकों अहंकाररूपी पिशाचनें शरीरमें दृढ आस्था बताई है, तातें सोई उपाय कहो! जिसकर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवै; अरु आस्थारूपी फांसी टूटै॥ हे मुनीश्वर ! प्रथम जो मुझकों अज्ञानकर संयोग था सो अहंकाररूपी पिशाचका था, तिसतें अनंतर शरीरमें आस्था उपजी है; जैसे बीजतें प्रथम अंकुर होता है; फिर अंकुरतें वृक्ष होता है; तैसे अहंकारतें शरीरकी आस्था होती है॥ हे मुनीश्वर! इस अहंकाररूपी पिशाचनें सब जीवनकों दीन किये हैं; जैसे बालककों छायामें बैताल भासता है; अरु दीनताकों प्राप्त होता है; तैसे अहंकाररूपी पिशाचनें मुझकों दीन किया है; सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारतें सिद्ध है; अरु विचार कियेतें अभावकों प्राप्त होता है; जैसे प्रकाशकर अंधकार नाश हो जाता है; तैसे विचार कियेतें अहंकार नाश हो जाता है॥ हे मुनीश्वर ! जो शरीरमें आस्था रखी है, सो शरीर जलके प्रवाहकी नांई स्थिर नहीं होता; ऐसा चल है; जैसे बिजुरीका चमका स्थिर नहीं होता अरु गंधर्वनगरीकी आस्था व्यर्थ है तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है॥ हे मुनीश्वर! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं; अरु जगतके पदार्थ निमित्त यत्न करते हैं, सो महामूर्ख हैं॥ जैसे स्वप्न मिथ्या है, तैसे यह जगत मिथ्या है; तिसकों सत्य जानकर जो इसका यत्न करता है, सो अपने बंधनके निमित्त करता है, जैसे घुरान गुफा बनाती है, सो अपने बंधनके निमित्त है, अरु पतंग दीपककी इच्छा करता है; सो अपने नाशके निमित्त है; तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है; सो अपने नाशके निमित्त है॥ हे मुनीश्वर! मैं तौ इस शरीरका अंगीकार नहीं करता; काहेतें इस शरीरका अभिमान परम दुःख देनहारा है; जिसकों देह अभिमान नहीं रहा, तिसकों भोगकी इच्छा भी न रहैगी, तातें मैं निराश हौं, अरु परम पदकी इच्छा है; जिसके पायेतें बहुरि संसारसमुद्रकी

प्राप्ति न होवै॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्यवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! यह संसारसमुद्रमें जो जन्म पाया है; तामें बालक अवस्था इसकों प्राप्त भई है; सो भी परम दुःखका मूल है; तिसमें परम दीन हो जाता है; अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करते हैं, सो कहत हों; अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप, एते विकार इसकों आय प्राप्त होते हैं; यह बाल्यावस्था महाविकारवान है; अरु बालक पदार्थकी और धावता है; एक वस्तुका ग्रहण कर दूसरीकों चाहता है; स्थिर नहीं रहता है; फिर औरमें लग जाता है; जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता, अरु जो काउकी उपर क्रोध करता है, तब अंतरतें पऱ्या जलता है; अरु बडी बडी इच्छा करता है, तिसकी प्राप्ति नहीं होती; सदा तृष्णामें रहता है; अरु क्षणमें भयभीत हो जाता है; शांतिकों प्राप्त नहीं होता; फिर महादीन हो जाता है; जैसे कदलीबनका हस्ती सांकलसों बांध्या हुआ दीन हो जाता है; तैसे यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्थाकर दीन हो जाता है; जो कछु इच्छा करता है, सो विचारविना है, तिसकर दुःख पाता है; अरु मूढ गुंग अवस्था है तिसकर कछु सिद्धि नहीं होती; कोउ पदार्थकी प्राप्ति होती है, तिसमें क्षणमात्र सुखी रहता है; बहुरि तपने लगता है, जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारियें तब एक क्षण शीतल होती है; फिर उसी प्रकारसों तपती है; तैसे उह भी तपता रहता है॥ जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य उदय होता है, तिसकर उलूकादि कष्टवान होते हैं तैसे इस जीवकों स्वरूपके अज्ञानकर बाल्यावस्थामें कष्ट होता है॥ हे मुनीश्वर! जो बालक अवस्थाकी संगती करता है, सो भी मूर्ख है, काहेतें जो यह विवेकरहित अवस्था है; अरु सदा अपवित्र है; औ सदा पदार्थकी और धावता है; ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं; जिस पदार्थकों देखता है तिसकी और धावता है; अरु क्षणक्षण अपमानकों पावता है, जैसे कूकर क्षणक्षणमें द्वारकी और धावता है, अरु अपमान पावता है, तैसे बालक अपमानकों प्राप्त होता है; अरु बालककों सदा माता अरु पिताका भय रहता है; बांधवका

सदा भय रहता है, अरु आपतें बडे बालकका भी भय रहता है; अरु पशुपक्षीहुका भय रहता है॥ हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं; जैसे स्त्रीके नयन चंचल हैं, अरु नदीका प्रवाह चंचल है, इसतें भी मन अरु बालक चंचल हैं, ऐसे जानता हौं; अरु सब चंचलता बालकतें कनिष्ठ हैं; बालक सबतें चंचल है; जैसा मन चंचल है, तैसा बालक भी चंचल है; मनका रूप बालक है॥ हे मुनीश्वर! जैसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता, तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता; जो इस पदार्थकर मेरा नाश होवैगा, ऐसा विचार भी तिसकों नहीं, अरु इसकर मेरा कल्याण होवैगा सो विचार भी नहीं; ऐसेही पऱ्या चेष्टा करता है; अरु सदा दीन रहता है, अरु सुख दुःख इच्छा हौंस करके तपायमान रहता है; जैसे ज्येष्ठ आषाढमें पृथ्वी तपायमान होती है, तैसे बालक तपताही रहता है, शांतिकों कदाचित् नहीं पावता, अरु जब विद्या पढने लगता है, तब गुरुसों बडा भयभीत होता है, जैसे कोउ यमकों देखके भय पावै, औ गरुडकों देखके जैसे सर्प भय पावै, तैसे भयभीत हो जाता है॥ जब शरीरकों कोउ कष्ट आय प्राप्त होती है, तब बडे दुःखकों प्राप्त होता है, परंतु दुःखके निवारणमें समर्थ नहीं होता, अरु सहनकों भी समर्थ नहीं, अंतरतें पऱ्या जलता है अरु मुखतें कछु बोल शकता नहीं, जैसे वृक्ष कछु नहीं बोल शकता, अरु जैसे अवर तिर्यक योनी दुःख पावता है; अरु कही न शकत है, अरु दुःखका निवारण नहीं करी शकता, न संहार कर शकता अंतरतें पऱ्या जलता है, तैसे बालक गुंग मूढ हुआ दुःख पावता है॥ हे मुनीश्वर! ऐसी जो बालककी अवस्था, तिसकी जो स्तुति करता है, सो मूर्ख है; यह तो परम दुःखरूप अवस्था है; इसमें विवेक विचार कछु नहीं; एक खानेकों पाता है, अरु रुदन करता है, ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझकों नहीं सुहाती है; जैसे बिजुरी अरु जलके बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते, तैसे बालकहु स्थिर कदाचित् नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है; कबहु कहता है, हे पिता! मुझकों बरफका टुकडा

मुनी देहु, कबहु कहता है, मुझकों चंद्रमा उतार देहु, ए सब मूर्खताके वचन हैं; तातें ऐसी मूर्खावस्थाकों मैं अंगीकार नहीं करता; जैसे दुःखका अनुभव बालककों होता है, सो हमारे स्वप्नेमें भी नहीं आया; तात्पर्य यह जो बाल्यावस्थामें बडा दुःख है; यह बाल्यावस्था अवगुणका भूषण है; सो अवगुणकर शोभती है; ऐसी नीच अवस्थाकों मैं अंगीकार नहीं करता; इसमें गुण कोउ भी नहीं है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बाल्यावस्थावर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! दुःखरूप बाल्यावस्थाके अनंतर जो युवा अवस्था आती है, सो नीचेतें ऊंची चढती है; सो भी उत्तम गिनवेके निमित्त नहीं है, अधिक दुःखदायक है; जब युवा अवस्था आती है, तब कामरूपी पिशाच आय लगता है, सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गडेलेमें आय स्थित होता है; चित्त फिराता है; अरु इच्छामें पसारता है; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिली आता है, अरु पंखुरीनकों पसारता है, तैसे युवा अवस्थारूपी सूर्य उदय होता है, तब चित्तरूपी कमल इच्छारूपी पंखुरीनकों पसारता है, तब फुरती है; अरु कामरूपी पिशाच इसकों स्त्रीमें डार देता है; तहां पऱ्या दुःख पाता है, जैसे काउकों अग्निके कुंडमें डारी दिया होय अरु वह दुःख पावै तैसे कामके वश हुआ दुःखकों पाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु विकार हैं, सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए हैं, जैसे धनवानकों देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं तैसे युवा अवस्थाकों देखकर सब दोष आय इकठ्ठे होते हैं, अरु जो भोगकों सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है, सो परम दुःखका कारण है, जैसे मद्यका घट भऱ्या हुआ देखने मात्र सुंदर लगता है, परंतु जब उसका पान करै, तब उन्मत्त होय जाय; तिस उन्मत्तताकर दीन हो जाता है, अरु निरादरकों पावता है, तैसे यह भोग देखने मात्र सुंदर भासते हैं; परंतु जब इनकों भुगतता है, तब तृष्णाकर उन्मत्त हो जाता है; अरु पराधीन हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये स

व जो चोर है, सो युवारूपी रात्रकों देखकर लुंटने लगते हैं; अरु आत्मज्ञानरूपी धनकों चोर ले जाते हैं; तिसकर यह दीन होता है; यह पुरुष आत्मानंदके वियोगकर दीन हुआ है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देनहारी युवा अवस्था, तिसका मैं अंगीकार नहीं करता, अरु शांति जो है, सो चित्त स्थिर करनेके लिये है; सो चित्त युवा अवस्थामें विषयकी ओर धावता है, जैसे बाण लक्षकी ओर जाता है, तब उसकों विषयका संयोग होता है; सो विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती; अरु तृष्णाके मारे जन्मतें जन्मांतररूप दुःखकों पावता है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवा अवस्थाकी मुझकों इच्छा नहीं है ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु दुःख हैं सो सब युवा अवस्थामें आयकर प्राप्त होते हैं ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता, इत्यादिक जे दुःख हैं, वे सब युवा अवस्थामें स्थिर होते हैं, जैसे प्रलयकालमें सब रोग आय स्थिर होते हैं, तैसे युवावस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं, और क्षणभंग हैं. जैसे बिजुरीका चमका होयके मिट जाता है; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, अरु मिट जाते हैं; तैसे युवा अवस्था होयके मिट जाती है; जैसे स्वप्नमें कोइ स्त्री विकार कर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है ॥ हे मुनीश्वर! युवा अवस्था जीवकी परम शत्रु है, जो पुरुष इस शत्रुके शस्त्रतें बचै है, सो धन्य है! इसके शस्त्र कामक्रोध हैं, जो इसतें छुट्या है, सो वज्रके प्रहारकर भी छेद्या न जावैगा जो इसकर बांध्या हुआ है, सो पशु है ॥ हे मुनीश्वर! युवा अवस्था देखनेमें तौ सुंदर है; परंतु अंतरतें तृष्णाकरके जरजरीत है; जैसे वृक्ष देखनेमें तौ सुंदर होय, अरु अंतरतें घुना लग्या हुआ है; तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है; सो भोग आपातरमणीय हैं; कारण यह जो जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है; तबलग अविचारित भला लगता है; अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होता है; तातें भोगकरके मूर्ख प्रसन्न होते हैं, अरु उन्मत्त होते हैं, तिसकों शांति नहीं होती, अरु अंतरतें सदा तृष्णा रहती है; स्त्रीमें चित्तकी आसक्ति रहती है; जब

इष्ट वनिताका वियोग होता है, तब तिसके स्मरण करके जलता है, जैसे वनका वृक्ष अग्निकरके जलता है, तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलता है; जैसे उन्मत्त हस्ती सांकल करके बंधन पाता है; तब स्थिर होता है; कहुं जाय नहीं शकता; तैसे कामरूपी हस्ती है, तिसकों सांकलरूप युवा अवस्था बंधन करती है, अरु युवावस्थारूपी नदी है, तिसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं; सो कदाचित् शांतीकों नहीं पाता है॥ अरु हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था बडी दुष्ट है; कोउ बडा बुद्धिवान होवै; अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवै; एते गुण करके संपन्न होवै; तिसकी बुद्धिकों भी युवावस्था मलीन कर डारती है; जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवै, अरु जब वर्षाकाल आवै, तब मलीन होय जावै; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलीन होय जाती है ॥ हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है, तिसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होती है,तब चित्तरूपी भंवरा आय बैठता है; सो तृष्णारूपी तिसकी सुगंध करके उन्मत्त होता है; अरु सब विचार भूल जाता है ॥ जैसे जब प्रबल पवन चलता है, तब सूके पत्रकों उडाय ले जाता है; अरु रहने नहीं देता; तैसे युवावस्था आवती है तब वैराग्य, संतोषादिक गुणका अभाव करती है; अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है; युवावस्थाके उदयतें सब दुःख प्रफुल्लित होय आते हैं; तातें सब दुःखका मूल युवावस्था है; जैसे सूर्यके उदयतें सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे चित्तरूपी कमल, संसाररूपी पंखुरी, अरु सत्यतारूपी सुगंध कर खिली आता है; अरु तृष्णारूपी भोंरा तिसपर आय बैठता है, अरु विषयकी सुगंध लेता है ॥ हे मुनीश्वर ! संसाररूपी रात्रि है, तिसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं; कारण यह जो शरीर युवावस्था करी सुशोभित होता है; अरु युवावस्था शरीरकों जर्जरीभाव करके हो आती है; जैसे धानका छोटा वृक्ष हरा तबलग रहै, जबलग उसकों फूल नहीं आया; जब फूल आता है, तब सूकनेकों लगता है; अरु अन्नके कण परिपक्क होते हैं; तब अन्नके छोटे वृक्ष जर्जरीभावकों पावते हैं; उसकी हरियावल नहीं रह शकती, तैसे जबलग युवानी नहीं आई, तबलग

शरीर सुंदर कोमल रहता है; जब युवानी आई तब शरीर क्रूर हो जाता है, फेर परिपक्क होकर क्षीण हो जाता है; अरु वृद्ध होता है; तातें हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवा अवस्था है; तिसकी मुझकों इच्छा नहीं; जैसे समुद्र बडे जलकर पूर्ण है; तरंगकों पसारता है; अरु उछलता है; तोउ भी मर्यादाका त्याग नहीं करता; ईश्वरकी आज्ञा मर्यादामें रहनेकी है; अरु युवावस्था तौ ऐसी है, जो शास्त्रकी मर्यादा, अरु लोककी मर्यादा मेटके चलती है अरु तिनकों अपना विचार नहीं रहता; जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता; तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभका ज्ञान नहीं होता; जिसकों विचार नहीं रह्या, तिसकों शांति कहांतें होवै ? सदा व्याधि तापमें जऱ्या रहता है॥ जैसे जलबिना मत्स्यकों शाति नहीं होती, तैसे विचारबिना पुरुष सदा जलता रहता है; जब युवावस्थारूप रात्रि आती है, तब काम पिशाच आयके गरजता है; तिसकर इसकों यही संकल्प उठते हैं; जो कोउ कामी पुरुष आवै, तिसकेसाथ मैं यही चर्चा करौं॥ हे मित्र ! यह कैसी सुंदर है ? अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं ? सो किस प्रकार मोकों प्राप्त होय ?॥ हे मुनीश्वर! ऐसी इच्छा साथ वह सदा जलताई रहता है; जैसे मरुस्थलकी नदीकों देख मृग दौरता है; अरु जलकी अप्राप्ति कर जलता है; तैसे कामी पुरुष विषयकी वासना करके जलता है; अरु शांति नहीं पावता है; हे मुनीश्वर ! मनुष्यजन्म उत्तम है; परंतु जिनके अभाग्य हैं, तिनकों विषयतें आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; जैसे चिंतामणि कोईकों प्राप्त होवै, सो तिसका निरादर करै औ उसकों जानै नहीं, औ डारी देवै; तैसे जो पुरुष मनुष्यशरीर पायकर आत्मपद नहीं पाया, सो बडा अभागी है; अरु मूर्खता करके अपने जीवनेकों व्यर्थ खोय डारता है; अरु युवा अवस्थामें परम दुःखका क्षेत्र अपने निमित्त बोता है; अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं, सो सब आयके इनकों प्राप्त होते हैं; मान, मोह, मद इत्यादि विकार करके पुरुषार्थका नाश करता है॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे युवावस्था बडे विकारकों प्राप्त करती है, जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है, तैसे युवावस्था चित्तके अनेक कामकों उठाव

ती है; जैसे पक्षी पक्षकर बहुत उडता है; जैसे सिंह भुजाके बलसों पशुकों मारनेकों दौरता है, तैसे चित्त युवावस्थाकर विक्षेपकी और धावता है ॥ हे मुनीश्वर ! समुद्रका तरना कठिन है, काहेतें जो तामें जल अथाग है, अरु विस्तार भी बडा है; अरु तिसमें मत्स्य, कच्छ, मगर बडे देहधारी रहते हैं; ऐसा दुस्तर समुद्रका तरना सो मैं सुगम मानता हौं, परंतु युवावस्थाका तरना महाकठिन है; कारण यह जो युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है; ऐसी संकटवाली जो युवावस्था है, तिसमें चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं ! अरु वंदना करने योग्य हैं ॥ हे मुनीश्वर ! यह युवावस्था चित्तकों मलीन कर डारती है; जैसे जलकी बावरी है, तिसके निकट राख कांटे रहे होय, सो पवन चलनेतें सब आय बावरीमें गिरैं; तैसे पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूर कांटेनकों चित्तरूपी बावरीमें डारके मलीन कर देता है ॥ ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था, तिसकी इच्छा मुझकों नहीं है ॥ युवावस्था ! मेरेपर यही कृपा करनी, जो तेरा दर्शन नहीं होवै; तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता हौं ॥ जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोष नहीं शकता, अरु सुखका निमित्त नहीं देखता; तैसा तेरा आवना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता, तातें मुझपर दया करनी जो अपना दर्शन न होवै ॥ हे मुनीश्वर ! युवावस्थाका तरना महाकठिन है, ॥ जो कोउ यौवन होवै, सो नम्रतासंयुक्त होवै; औ शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार, संतोष, शांति, इनकर संपन्न होवै सो दुर्लभ है; जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है; तैसे युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना ए बडा आश्चर्य है; तातें मुझकों सोइ उपाय कहौ जिसकर युवावस्थाके दुःखकी मुक्ति होय जाय; अरु आत्मपदकी प्राप्ति होय ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुडीवर्णनंनाम पंचदशः सर्गः ॥ ॥ १५ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जिस कामविलासके निमित्त स्त्रीकी वांछा करता है, सो स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठाकरी पूर्ण है इसकी पूतरी बनी हुई है; जैसे यंत्रकी बनी पूतरी होती है; सो तागेसों

कर अनेक चेष्टा करती है; तैसे यह अस्थिमासादिककी पूतरीमें कछु और नहीं है; जो विचार कर नहीं देखता तिसकों रमणीक दिखती है; जैसे पर्वतके शिखर दूरतें सुंदर, अरु गंगमालासहित भासते हैं, अरु निकटतें असार है, बडे पथ्थरई दिखते हैं तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूषणनसों करी सुंदर भासती है; अरु जो अंगकों भिन्न भिन्न विचारकर देखो तो सार कछु नहीं है; जैसे नागनीके अंग बहुत कोमल होते हैं, परंतु उसका स्पर्श करें तो काटके मार डारती है; तैसे जो कोई स्त्रीकों स्पर्श करते हैं, तिनकों नाशकर डारती है, जैसे विषकी वेली देखने मात्र सुंदर लगती है, परंतु स्पर्श कियेतें मार डारती है ॥ जैसे हस्तिकों जंजीरकर बांधो तब जिस द्वारपें रहता है, तहांई स्थिर रहता है; तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है, सो कामरूपी जंजीरकर बंध्या हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है; उहांतें कहुं जाय नहीं शकता, औ जब हस्तिकों महावत अंकुशका प्रहार करता है, तब बंधनकों तोरके निकस जाता है, तैसे यह चित्तरूपी मूर्ख हस्ती है, सो महावातरूपी गुरुके उपदेशरूपी अंकुशका वारंवार प्रहार करता है, तब सोभी निर्बंध होय जाता है ॥ हे मुनीश्वर! कामी पुरुष जो स्त्रीकी वांछा करता है सो अपने नाशके निमित्त करता है; जैसे कदलीबनका हस्ती, कागदकी हस्तिनी देखकर छल पायके बंधनमें आता है, तातें परम दुःख पाता है; तैसे परम दुःखका मूल स्त्रीका संग है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे बनके दाहकी अग्नि सबनकों जलावती है, तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसतें अधिक है; काहेतें जो उस अग्निके स्पर्श कियेतें तप्त होते हैं; औ स्त्रीरूपी अग्नि तौ स्मरणमात्रतें जलाती है; औ जो सुख रमणीय दिखता है, सो आपातरमणीय है; जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है, तब मुरदेकी नांई हो जाता है; तिस कालमें भी शव जैसा हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है, सो अग्निमें भस्म हो जायगा; अथवा पशुपक्षीकों खानेका आकार होयगा; जिनकों देखकर पुरुष प्रसन्न होता है, अरु प्राण आकाशमें लीन हो जाते हैं; तातें इस

स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खता है; जैसे अग्निकी ज्वालाके उपर श्यामता है; तैसे स्त्रीके शीश उपर श्याम केश हैं जैसे अग्निके स्पर्श कियेतें जलता है; तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेतें पुरुष जलता है; तातें जलना दोनोंमें तुल्य है ॥ हे मुनीश्वर! इसकों नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है; जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं; सो महामूर्ख अज्ञानी हैं; सो अपने नाशके निमित्तई इच्छा करते हैं; जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं; तैसे कामी पुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करता है ॥ हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विषकी वल्ली है; अरु हस्त पावके अग्र तिसके पत्र हैं; अरु भुजा डारी हैं; औ अस्थिरूप गुंछे हैं; नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं, अरु कामी पुरुषरूपी भोरे आय बेठते हैं; अरु कामरूपी धीवरनें स्त्रीरूपी जाल पसारी है; तिसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आय फसते हैं ॥ कामरूपी धीवर तिनकों फसायकर परम कष्ट प्राप्त करता है ॥ ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करते हैं, सो महामूर्ख हैं ॥ हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है; जब तिसका फूत्कारा निकसता है, तब तिसके निकट कमलफूल सब जल जाते हैं; ऐसी स्त्रीरूपी सर्पिणी है, तिसका इच्छारूप जो जो फूत्कारा निकसता है, तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं; अरु जब सर्पिणी दसती है, तब विष चढता है, औ स्त्रीरूपी सर्पिणीकी चितौनी करी तब अंतरतें आपई विष चढ जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे व्याध छलकर मच्छीकों फसावता है; तैसे कामी पुरुष मच्छीवत सुंदर स्त्रीरूपी जाल देखके फसता है; औ स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुष बंधन पाय खेंचाया चला जाता है; फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी मुझकों इच्छा नहीं; अरु कामरूपी पारधी है, तिसनें रागरूपी इंद्रियकी जाल बिछायी है, कामी पुरुषरूपी मृगकों आसक्त कर डारता है; अरु स्त्रीके स्नेहरूपी डोरी है, तिसकर कामी पुरुषरूप बैल बंध्या है, अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चंद्रमा है, तिसकों देखकर कामी पुरुषरूपी कमलनी खीली आती है; जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमाकों देखकर प्रसन्न होते हैं, औ

सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे यह कामी पुरुष भोगहुकर प्रसन्न होते हैं, अरु ज्ञानवान प्रसन्न नहीं होते हैं, जैसे नकुल सर्पकों बिलमेंतें निकासके मारता है; तैसे कामी पुरुषकों स्त्री, आत्मानंदमेंतें निकालके मार डारती है, जब स्त्रीके निकट जाता है, तब उसकों भस्म कर डारती है, जैसे सूके तृण अरु घृतकों अग्नि भस्म कर डारती है, तैसे कामी पुरुषकों स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है ॥ हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेहरूपी अंधकार है, तिसमें कामक्रोधादिक उलूक अरु पिशाच हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जो स्त्रीरूपी खड्गके प्रहारतें युवारूपी संग्राममेंतें बच्या है; सो पुरुष धन्य है ! तिसकों मेरा नमस्कार है; स्त्रीका संयोग परम दुःखका कारण है, तातें मुझकों इसकी इच्छा नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है, तिसके अनुसार औषध करता है, तब रोग निवृत्त होता है; अरु कोउ कुपथ्य दिये, तब वाका प्रलय होता है, रोग बढ जाता है; तातें मेरे रोगके अनुसार औषध करौ; सो मेरा रोग सुनिये, अरु जरा मृत्यु मुझकों बडा रोग है; तिनके नाशका औषध मुझकों दीजियें; औ स्त्री आदिक जो भोग हैं, सो सब इस रोगकी वृद्धि करते हैं; जैसे अग्निमें घृत डारियें, तब बढ जाती है; तैसे भोगसों जरा मृत्यु आदि रोग सो बढते हैं; तातें इस रोगकी निवृत्तिका औषध करौ, नहीं तौ सबका त्याग कर बनमें जाय रहुंगा ॥ हे मुनीश्वर ! जिसकों स्त्री है तिसकों भोगकी इच्छा भी होती है, औ जिसकों स्त्री नहीं तिसकों स्त्रीकी इच्छा भी नहीं ॥ जिसनें स्त्रीका त्याग किया है, तिसनें संसारका भी त्याग किया है, सोई सुखी है; संसारका बीज स्त्री है, तातें मुझकों स्त्रीकी इच्छा नहीं, मुझकों सोई औषध दीजें, जिसतें जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होई ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशावर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ ॥ १६ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था तो महाजड है, अरु अशक्त है औ जब युवावस्था आती है, तब बाल्यावस्थाकों ग्रहण कर लेती है; तिसके अनंतर वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है;

अरु बुद्धि क्षीण हो जाती है; बहुरि मृत्युकों पावता है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है, कछु अर्थकी सिद्धि नहीं है ॥ जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं, सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत हो जाते हैं; तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत हो जाता है ॥ जैसे पवनसों पत्र उड जाता है, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पावता है, जेते कछु रोग हैं सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होते हैं; अरु शरीर कृश होय जाता है; अरु स्त्रीपुत्रादिक सब वृद्धका त्याग कर देते हैं; जैसे पक्के फलकों वृक्ष त्याग देता है, तैसे वृद्धकों कुटुंब त्याग देता है, अरु देख हसते हैं; जैसे बावरेकों देखके हसके बोलते हैं, जो इसकी बुद्धि सब जात रही; जैसे कमल फूलनके उपर बरफ पडता है, अरु कमल जर्जरीभूत हो जाता है, तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, अरु शरीर कुबरा हो जाता है; केश श्वेत हो जाते हैं; शक्ति क्षीण हो जाती है; जैसे चिरकालका बडा वृक्ष होता है, तिसमें घुना होता है; तैसे शक्ति कछु रहत नहीं ॥ हे मुनीश्वर! औरहु सब कृति क्षीण हो जाती है; परंतु एक आसक्ति मात्र रहती है; जैसे बडे वृक्षपें उलूक आय रहते हैं; तैसे इसमें क्रोधशक्ति आय रहती है औ शक्ति सब क्षीण हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर! जरा अवस्था दुःखका घर है; जब जरा अवस्था आती है, तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं, तिनकर महादीन हो जाते हैं; अरु युवावस्थाका जो कामका बल रहता है, सो जरामें क्षीण हो जाता है अरु इंद्रियकी आसक्ति घट जाती है तिनतें चपलताका अभाव हो जाता है ॥ जैसे पिताके निर्धन हुए पुत्र दीन हो जाता है, तैसे शरीर निर्बल हुए इंद्रियांहु निर्बल हो जाती हैं; औ एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ जाती है ॥ हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है, तब खांसीरूपी श्यार आय शब्द करते हैं; अरु आधिव्याधिरूपी उलूक आय निवास करते हैं ॥ हे मुनीश्वर! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है, तिसकी मुझकों इच्छा नहीं ॥ यह देह जरा आयेतें कूबरा होय जाता है; जैसे पक्के फलसोंकर वृक्ष झुक जाता है, तैसे जराके आयेतें देह कूबरा होजाता है; जो युवावस्थामें स्त्रीपु

त्रादिक चाहते थे, अरु टहल करते थे, सो सब उसकों त्याग देते हैं; जैसे वृद्ध बैलकों बैलवाला त्याग देता है तैसे इसकों बंधु त्याग देते हैं; औ देखके हसते हैं, अरु अपमान करते हैं; तिनकों ऊंटकी नांई भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसी जो नीच अवस्था है, ताकी मुझकों इच्छा नहीं अब जो कछु कर्त्तव्य मुझकों कहौ सो मैं करौं; इस शरीरकी तीनों अवस्थामें कोउ सुखदाई नहीं है; क्यों जो बाल्यावस्था महामूढ है; अरु युवावस्था महाविकारवान है, अरु जरा अवस्था महादुःखका पात्र है; बाल्यावस्थाकों युवा अवस्था ग्रास कर लेती है; अरु युवावस्थाका जरा अवस्था ग्रास कर लेती है, जरा अवस्थाका मृत्यु ग्रास कर लेता है; यह अवस्था सब अल्पकालकी हैं; इनके आश्रय करके मेरेकों कहा सुख होना है; तातें मुझकों सोई उपाय कहौ, जिसकर इस दुःखतें मुक्त हो जाऊं ॥ हे मुनीश्वर ! जब जरा अवस्था आती है, तब मरना भी निकट आता है ॥ जैसे संध्याके आये रात्रि तत्काल आय जाती है; औ जो संध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं, सो सो मूर्ख हैं, तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी सो महामूर्खता है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे विल्ली चितौनी करती है, चुहा आवै तौ पकर लेऊं; तैसे मृत्यु चितवत है, जो जरावस्था आवै तौ मैं इसका ग्रहन कर लेऊं; अरु जरावस्था मानो कालकी सखी है ॥ रोगरूपी मशालेकर शरीररूपी मांसकों सूकाती है, तब काल जो इसका स्वामी है, सो आयकर भोजन कर लेता है; अरु शरीररूपी घर है तिसका स्वामी काल है; काल जब घरमें आवै, तब तिसके आगे तीन पटरानी आती हैं; पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तिसरी खांसी; सो शीघ्र श्वासकों चलावती है, अरु श्वेत केश होते हैं; सो चरमकी नांई झुलते हैं; ऐसी जो कालकी सहेली हैं सो प्रथमही आई प्रवेश करती हैं; अरु जरारूपी कहगीलसों शरीरकों बनावती हैं, तब जो वाका स्वामी काल है, सो आय प्रवेश करता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो परम नीच अवस्था है, सो जराई है; सो जब आती है तब शरीर जर्जरीभूत कर देती है; कंपनेकों लगाती है; अरु शरीरकों निर्बल कर

देती है; अरु क्रूर कर देती है; जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवै, अरु जर्जरभूत होय जाय, तैसे शरीरकों जर्जरीभूत कर डारती है; जैसे बनमें बाघन आयके शब्द करती है, अरु मृगका नाश करती है, तैसे खांसीरूपी बाघन आय मृगरूपी बलका नाश करती है ॥ हे मुनीश्वर ! जब जरा आवत है, तब मृत्यु प्रसन्न होता है; जैसे चंद्रमाके उदयतें कमलनी खिल आती है, तैसे मृत्यु प्रसन्न होता है, अरु यह जरा अवस्था बडी दुष्ट है; बडे बडे योद्धे हुए हैं; तिनकों भी दीन कर दिये हैं; यद्यपि बडे शूरमेनें संग्राममें शत्रुकों जीते हैं; तिनोकों भी जरानें जीत लीये हैं; अरु बडे पर्वतके चूर्ण कर डारे हैं तिनकों भी जरा पिशाचनीनें महादीन कर दिये हैं; यह जरारूपी जो राक्षसी है, तिसनें सबकों दीन कर दिये हैं, सो सबकों जीतनेवारी है ॥ हे मुनीश्वर ! यह जरा शरीरकों अग्निकी नांई लगती है; जैसे अग्नि वृक्षकों लगता है, अरु धूम निकसता है तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धूवे निकसते हैं; जैसे डिब्बेमें बडे रत्न रहते हैं तैसे जरारूपी डिब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहे हैं; अरु जरारूपी वसंतऋतु है, तिस करके शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रसकरके पूर्ण होता है; जैसे हस्ती सांकलसों बंध्या हुआ दीन हो जाता है, तैसे जरारूपी सांकल करके बंध्या पुरुष दीन हो जाता है; अरु अंग सब शिथिल हो जाता है; बल क्षीण हो जाता है, अरु इंद्रियां भी निर्बल हो जाती हैं; अरु शरीर जर्जरीभावकों प्राप्त होता है परंतु तृष्णा नहीं घटती हैं; नित्य बढती चली जाती है जैसे रात्रि आती तब सूर्यवंशी कमल सब मूंद जाते हैं, तब पिशाचनी आय बिचरने लगती हैं, अरु प्रसन्न होती हैं; तैसे जरारूपी रात्रिके आयेतें सब शक्तिरूप कमल मूंद जाते हैं, अरु तृष्णारूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे गंगाके तटपर वृक्ष रहते हैं, सो गंगाजलके वेगसों जर्जरीभूत हो जाते हैं, तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है, तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है, जैसे मांसके टुकडेकों देख आकाशतें उडती चील नीचे आय ले जाती है; तैसे जरा अवस्थामें शरीररूपी मां

सकों काल ले जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह तौ कालका ग्रास बन्या हुआ है, जैसे वृक्षकों हस्ती खाय जाता है, तैसे जरावाले शरीरकों काल देखके खाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थानिरूपणं नाम सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गर्त्त है, तिसमें अज्ञानी गिर्या है, सो संसाररूपी गर्त्त अल्प है; अरु अज्ञानी तौ बडा हो गया है; संकल्पविकल्पकी आधिक्यतातें बढे हैं; अरु जो ज्ञानवान पुरुष है सो संसारकों मिथ्या जानता है; फिर संसाररूपी जालमें फसता नहीं; अरु जो अज्ञानी पुरुष है, सो संसारकों सत्य जानकर संसारकी अवस्थारूपी जालमें फसता है; अरु संसारके भोगकी वांछा करता है; सो ऐसा है, जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब देखकर बालक पकरनेकी इच्छा करता है; तैसे अज्ञानी संसारकों सत्य जानकर जगतके पदार्थकी वांछा करता है यह मेरेकों होवै; यह मेरेकों नहीं होवै; अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है, अभिप्राय यह जो आवता है अरु जाता है; सो स्थिर नहीं रहता है; इसका काल ग्रास करता है; जैसे पक्के अनारकों चुहा खाय जाता है तैसे सब पदार्थकों काल खाता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं, वे कालग्रासित हैं; बडे बडे बली सुमेरु जैसे गंभीर बलवाले पुरुषके ग्रास कालनें किये हैं; जैसे सर्पका नकुल भक्षण कर जाता है, तैसे बडे बलिका ग्रास काल कर जाता है अरु जगतरूपी एक गुल्लरका फल है, तिसमें जो मज्जा हैं, सो ब्रह्मादिक हैं, सो फलका जो वृक्ष है, तिनका जो बन है, सो ब्रह्मरूप है, तिस ब्रह्मरूप बनमें जेते कछु बन हैं, सो सब इसका आहार है, सबकों भक्षण काल कर जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलिष्ठ है; जो कछु देखनेमें आता है, सो सब इसनें ग्रास कर लिया है; तब अवरकी का कहनी है? औ हमारे जो बडे ब्रह्मादिक, तिनका भी काल ग्रास कर जाता है; जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है, औ काल किसी करके जान्या नहीं जाता, क्षण, घरि, प्रहर, दिन, मास, औ वर्षादिक कर जानियें सो काल है; औ कालकी मूर्ति प्रकट नहीं है, ऐसा अप्रकटरूप है;

अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता; अरु एक बेली कालनें पसारी है; तिसकी त्वचा रात्रि है; अरु फूल तिसका दिन है; औ जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बेठते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जगतरूपी गुलरका फूल है, तिसमें जीवरूपी मच्छर बहोत रहते हैं; तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है ॥ जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है; अरु जगतरूपी वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं, तिसका कालरूपी हस्ती भक्षण कर जाता है; अरु शुभअशुभरूपी भैंशानकों कालरूपी सिंह छेदछेदके खाता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूर है, सो किसीपर दया नहीं करता; सबका भोजन कर जाता है; जैसे मृग सब कमलकों खाय जाता है, तिसतें कोउ रहता नहीं है; परंतु एक कमल उसतें बचै है सो कमल कैसा है, शांति अरु मैत्री तिसके अंकूर हैं, अरु चेतनामात्र प्रकाश है, इस कारणतें वह बचा है; सो कालरूपी मृग इसकों पोहोंच नहीं शकता; इसमें प्राप्त हुआ काल भी लीन हो जाता है; औ जेता कछु प्रपंच है; सो सब कालके मुखमें है; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर आदि कर सब मूर्ति कालकी धरी हुई हैं; फिर तिनकों भी अंतर्धान कर देता है ॥ हे मुनीश्वर ! उत्पत्ति, स्थिति, अरु प्रलय सब कालतें होते हैं; अनेक बेर महाकल्पकाहु ग्रास कर लेता है; अरु अनेक बेर करैगा; अरु कालकों भोजन कियेतें तृप्ति कदाचित् नहीं होती अरु कदाचित् होनहारीहु नहीं, जैसे अग्नि घृतकी आहुतीसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत अरु सब ब्रह्मांडका भोजन करतेहु काल तृप्त नहीं होता; अरु इसका ऐसा स्वभाव है जो, इंद्रकों दरिद्री कर देता है, अरु दरिद्रीकों इंद्र कर देता है; औ सुमेरुकों राई बनाता है, अरु राईका सुमेरु करता है; सबतें बडे ऐश्वर्यवालेकों नीच कर डारता है; सबतें नीचकों ऊंच कर डारता है; अरु बूंदका समुद्र कर डारता है, अरु समुद्रका बूंद करता है, ऐसी शक्ति कालमें है; अरु जीवरूपी जो मत्स्य हैं, तिनकों शुभाशुभ कर्मरूपी छुरेसों छेदत रहता है; फिर कैसा है? जो कालकूपका चक्र है; जीवरूपी हंडीकों शुभअशुभकर्मरूपी रसुरीसों बांधकर ले फि

रता है, फिर कैसा है ? जीवरूपी वृक्षकों रात्रि अरु दिनरूपी कुहाराकर छेदता है ॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगतबिलास भासता है, सो सबका ग्रहण काल कर लेवैगा, अरु जीवरूपी रत्नका काल डिब्बा है; सो अपने अपने उदरमें डारता जाता है, औ खेल करता है; अरु चंद्रसूर्यरूपी गेंदकों कबहु ऊर्ध्व उछालता है, कबहु नीचे डारता है; अरु जो महापुरुष है, सो उत्पत्तिप्रलयमें जो पदार्थ हैं, तिनमें स्नेह किसीके साथ नहीं करता तिसका नाश करनेकों काल समर्थ नहीं; जैसे मुंडकी माला महादेवजी गरेमें धरते हैं; तैसे यह भी जीवकी माला गलेमें डारता है ॥ हे मुनीश्वर ! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं, तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है जैसे समुद्र बडा है, तिसका वडवाग्नि पान कर लेता है; औ जैसे पवन भोजपत्रकों उडाता है, तैसा कालका बल है; किसीका सामर्थ्य नहीं, जो इसके आगे स्थित रहै ॥ हे मुनीश्वर ! शांतिगुणप्राधान्य जो देवता हैं, अरु रजोगुणप्राधान्य जो बडे राजा हैं; अरु तमोगुणप्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं, तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवै; जैसे टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेतें फिर उछलते हैं, सो अन्नके दाने कडछी करी कबहु ऊर्ध्व औ कबहु नीचे फिर जाते हैं, तैसे जीवरूपी अन्नके दाने जगतरूपी टोकनीमें परे हुए रागद्वेषरूपी अग्निपैं चढे हैं, अरु कर्मरूपी कडछीकर कबहु ऊर्ध्व जाते हैं, कबहु नीचे जाते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! यह काल किसीकों स्थिर न होने देता, महाकठोर है, दया किसीपर नहीं धरता; इसका भय मुझकों रहता है, तातें सोई उपाय मुझकों कहौ, जिसकर मैं कालतें निर्भय हो जाउं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तांतनिरूपणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलिष्ठ है; जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं, तब बनमें बडे पशुपक्षी खेदकों प्राप्त होते हैं; तैसे यह संसाररूपी बन है, तिसमें प्राणी मात्र पशु पक्षी हैं; जब कालरूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भयकों पावते हैं अरु जर्जरीभूत होते हैं, फिर तिन

कोई मारता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है, सबका ग्रास कर लेता है; प्रलयमें सबका प्रलय कर डारता है; अरु इसकी जो चंडिका शक्ति है, तिसका बडा उदर है; अरु कालिका सबका ग्रास करती है, पाछे नृत्य करती है; जैसे बनके मृगकों सिंह अरु सिंहिनी भोजन करते हैं, औ नृत्य करते हैं, तैसे जगतरूपी बनमें जीवरूपी मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते हैं; बहुरि इनतें जगतका प्रादुर्भाव होता है; नानाप्रकारके पदार्थनकों रचते हैं, पृथ्वी, बगीचे, बावरी, आदि सब पदार्थ इनहीतें उत्पन्न होते हैं; अरु सुंदर जीवनकीहु उत्पत्ति इनतें होती है; औ एक समयमें उनका नाश भी कर देते हैं; सुंदर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगाय देते हैं, अरु सुंदर कमलकों बनायके फिर वाके उपर बरफकी वर्षा करते हैं; इत्यादि नाना पदार्थनकों रचिके तिनका नाश करते हैं ॥ जहां बडे स्थान बसते हैं, तिनकों उजड कर डारते हैं, फिर उजाडमें बस्ती कर धरते हैं; अरु नाश भी करते हैं; स्थिर रहने किसीकों नहीं देती; जैसे बागमें वानर आयके रुक्षकों ठहरने नहीं देता, तैसे कालरूपी वानर किसी पदार्थकों स्थिर रहने नहीं देता ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसों सब पदार्थ कालसोंकर जर्जरीभूत होते हैं, तिसका मैं आश्रय किसी रीतसों करौं; मुझकों तौ नाशरूप भासता है; तातें अब मुझकों किसी जगतके पदार्थकी इच्छा नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इस कालका महापराक्रम है; इसके तेजके सन्मुख रहनेकों कोउ समर्थ नहीं; क्षणमें उंचकों नीच कर डारता है, अरु नीचकों उंच कर डारता है, तिसका निवारण कोउ कर नहीं शकता, सब इसीके भयसें परे कंपते हैं, यह महाभैरव है सब विश्वका ग्रास कर लेता है; अरु इसकी चंडिकारूप शक्ति है, सो बलवान है, सो नदीरूप है, तिसका उल्लंघन कोउ नहीं करी शकता है; अरु महाकालरूप काली है, तिसका बडा भयानक आकार है, अरु कालरूप जो रुद्र है, तिसतें अभिन्नरूपी कालिका है; सो सबका

कालजुगुप्सा

पान कर लेती हैं; पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करते हैं; सो कालकालिका कैसे हैं ? बडा जिनका आकार है अरु आकाश शीश है, अरु जिनका पाताल चरण हैं, दशों दिशा जिनकी भुजा हैं; सप्त समुद्र जिनके हाथमें कंकन है, संपूर्ण पृथ्वीरूप तिनके हाथमें पात्र है, तिनके उपर जीव हैं सो भोजनयोग्य हैं; हिमालय अरु सुमेरु पर्वत दोनों कानमें बडे रत्न हैं; चंद्रमा सूर्य जिनके लोचन हैं; अरु सब तारागण वाके मस्तकमें बिंदु हैं; अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुसल आदि शस्त्र हैं; अरु जिनके हाथमें तंद्रारूपी फांसा है, तिसकर जीव कों मारते हैं, ऐसे काल औ कालिका देवी हैं औ जो कालिका देवी है, सो सब जीवनका ग्रास करके महा भैरव जो रुद्र है, तिसके आगे नृत्य करती है; अरु अट्ट ! अट्ट ! ऐसा शब्द करती है; अरु जीवनका भोजन करके उनकी रुंडमाला गलेमें धारण करती है; सो भैरवके आगे नृत्य करती है; अरु भैरव कैसा है? जो जिसके बल आगे सन्मुख रहनेकी शक्ति काउमें नहीं है; अरु जहां उजार है, तहां क्षणमें बस्ती कर डारता है; अरु जहां बस्ती होवै तहां क्षणमें उजार करता है, इसीतें तिसका नाम देव कहते हैं, अरु तिसकों कृतांत भी कहते हैं, अरु बडे बडे पदार्थ उपजत होते हैं; अरु तिसका नाश भी होता है, अरु स्थिर किसीकों रहने नहीं देता, तिसतें इसका नाम कृतांत है; अरु नित्यरूपीहु यही है जो इस आदि धन्या है, सोई कर्त्ता अरु कर्मरूप है, काहेतें जो परिणाम जिसका अनित्यरूप है; इसीतें इसका कर्म नाम है; सो कैसे नाश करता है; जब अभावरूपी धनुष्य हाथमें धरता है तिसकर रागदोषरूपी बाण चलाता है, तिस बाणतें जर्जरीभूत करके नाश करता है; अरु उत्पत्तिनाशमें उसकों यत्न भी कछु करना नहीं पडता है; इसकों तौ खेल जैसा है; जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, फिर उठायकर नाश भी कर देता है; तैसे कालकों उपजावने अरु नाश करनेमें यत्न करना नहीं पडता है॥ हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है, तिसनें क्रियारूपी जाल पसारी है, तिस विषे जीवरूपी पक्षी पडे फसते हैं, सो फसे हुए शांतिकों नहीं प्राप्त हो

ते ॥ हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं, इनमें आश्रय किसीका करना, जिसकर सुखी होवैं, तौ स्थावरजंगम जगत सब कालके मुखमें हैं; यह सब नाशरूप मुझकों दृष्टिमें आवै हैं, तातें निर्भय पद होय सो मुझकों कहौ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालजुगुप्सावर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब नाशरूप हैं, तातें किसकी इच्छा करौं ? औ कौनका आश्रय करौं ? इनकी इच्छा करनी सो मूर्खता है; अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करता है सो सब दुःखके निमित्त है; अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं है; काहेतें जो बालक अवस्था होती है, तब मूढता रहती है विचार कछु नहीं रहता, अरु जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता करके विषयकों सेवते हैं; अरु मानमोहादि विकारसों मोहेई जाते हैं; तामें भी विचार कछु नहीं होता, अरु स्थिर भी नहीं रहते, फिर दीनका दीन रहिके विषयकी तृष्णा करता है; शांतिकों नहीं पावता है॥ हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचंचल है; अरु मृत्यु तौ निकट है, वाकों अन्यथा भाव नहीं होवै ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोग हैं सो रोग हैं; अरु जिसकों संपदा जानते हैं, सो आपदा हैं; अरु जिसकों सत्य कहते हैं सो असत्यरूप हैं; अरु जिस स्त्रीपुत्रादिककों मित्र जानते हैं सो सब बंधनके कर्ता हैं; अरु इंद्रिय जो हैं सो महाशत्रुरूप हैं, सो सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं; अरु यह देह है सो विकाररूप है; अरु मन महाचंचल है; औ सदा अशांतरूप है; अरु अहंकार जो है सो महानीच है; इसनेंई दीनताकों प्राप्त किया है; इसकर जेते कछु पदार्थ इसकों सुखदायक भासते हैं, सो सब दुःखके देनहारे हैं, तिसकर इसकों कदाचित् शांति नहीं होती, तातें मुझकों इनकी इच्छा नहीं; यद्यपि देखने मात्र सुंदर भासते हैं, तौ भी इनमें सुख कछु नहीं; सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं; जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, सो सब वडवाग्निकर नाश होते हैं, तैसे यह पदार्थ भी नाशकों पावते हैं; मैं अपनी आयुविषे कैसे आस्था करौं ? हे मुनीश्वर !

बडे समुद्र जो दृष्टि आवतेहैं, अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं, सो सब नाशकों पावते हैं; तब हमसारिखेकी कहा वार्ता है? औ बडे बडे दैत्य राक्षसहु होयके नाश पाय गये हैं, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता है ? अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व, हुए हैं सो सब नाशकों पावते हैं, तिनकी नाम संज्ञा भी नहीं रही तब हमसारिखेकी कहा वार्ता! पृथ्वी, जल, अरु अग्नि जो दाहक शक्ति धरनेवाला है, अरु पवन जो है, सो वीर्यसहित सब नाश होय जावैंगे कछु इनकी सत्यता भी न रहैगी, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता! अरु यम, कुबेर, वरुण, इंद्र बडे तेजवाले हैं सो सब नाश पावैंगे तौ हमसारिखेकी कहा कहनी है? औ तारामंडल जो दृष्ट आते हैं, सो सब गिर पडेंगे॥ जैसे सूके पात वृक्षतें वायुसों गिर जाते हैं, तैसे तारे गिरते हैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्ता ॥ हे मुनीश्वर! ध्रुव, जो स्थिर भासता है, सो भी अस्थिर होय जावैगा अरु चंद्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है, औ सूर्य अखंडमंडल है जिसका, ऐसा जो प्रकाश संयुक्त दृष्टि आता है, सो सब नाश हो जावैंगे, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता है? औरनकीहु कहा वार्ता है! यह जो बडे ईश्वर जगतके अधिष्ठाता हैं तिनका भी अभाव होय जाता है, परमेष्ठी जो ब्रह्मा है, तिनका भी अभाव होय जाता है; हरि जो विष्णु सो भी हर जावैंगे; महाभैरवरूप जो रुद्र, सो भी शून्य हो जावैगा, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता करनी? अरु काल जो सबकों भक्षण करनेहारा है, सो भी टूकटूक होयके नाशकों प्राप्त होवैगा; अरु कालकी स्त्री जो नेत है, सोहु अनेतताकों प्राप्त होवैगी; अरु सबका आधार जो आकाश है; सो भी नाश हो जावैगा, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता? अरु जेता कछु जगत अर्थकर सिद्ध होता है, सो सब नाश हो जावैगा; कोउहु स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था करैं? अरु किसका आश्रय करैं? यह जगत सब भ्रममात्र है; अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है, औ हमारी नहीं है; जो जगतभ्रम कैसे उत्पन्न भया है, अरु मैं इतना जानता हौं, जो संसारमें इतना दुःखी होते हैं, सो अहंकारनें किया है॥ हे मुनीश्वर! इसका जो परम शत्रु

अहंकार है, इस करके भटकता फिरता है; जैसे जेवरी साथ बांध्या हुआ पतंग कबहु ऊर्ध्व, कबहु नीचे जाता है, स्थिर कबहु नहीं रहता, तैसे जीवहु अहंकार करके कबहु ऊर्ध्व कबहु अध जाता है, स्थिर कबहु नहीं होता; जैसे अश्वतें आरूढ रथ तिनके उपर बैठके सूर्य आकाशमार्गमें भमता है, तैसे यह जीव भमता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर ! यह जीव परमार्थ सत्यस्वरूपतें भूला हुआ भटकता है; अरु अज्ञानकरके संसारमें आस्था करता है; अरु भोगहुकों सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है, औ जिसकों सुखरूप जानता है, सो रोगसमान है; औ विषकर पूर्ण सर्प जैसे है, सो जीवका नाश करनहारे हैं औ जिनकों सत्य जानता है, सो असत्य हैं, सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं ॥ हे मुनीश्वर ! विचार विना अपना नाश आपही करता है; काहेतें जो इसका कल्याण करनेहारा बोध है; जो सत्य विचार बोधके शरण जावै तो कल्याण होवै, औ जेते पदार्थ हैं, सो स्थिर कोउ नहीं, इनकों सत्य जानना दुःखके निमित्त है ॥ हे मुनीश्वर ! जब तृष्णा आती है तब आनंद अरु धैर्यकों नाश कर देती है, जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है तैसे तृष्णा नाश कर डारती है, तातें मुझकों सोई उपाय कहो, जिसकर जगतका भ्रम मिट जावै, अरु अविनाशी पदकी प्राप्ति होवै इस भ्रमरूप जगतकी आस्था मैं नहीं देखता; तातें इच्छा चाहै तैसी करौ, परंतु सुखदुःख इसीकों होनै हैं सो होवैंगे, मिटवेके नहीं; भावै पहारकी कंदरामें बैठो, भावै कोटमें बैठो, परंतु जो होनेका सो मिथ्या नहीं होवै है; इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥२१॥ ॥राम उवाच॥ हे मुनीश्वर ! यह जो नाना प्रकारके सुंदर पदार्थ भासते हैं, सो सब नाशरूप हैं, इनकी आस्था मूर्ख करते हैं; यह तौ मनकी कल्पना कर रचे हुए हैं, तिनमें किसकी आस्था करौं ? हे मुनीश्वर ! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है; काहेतें जो जीवनेतें उनका अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, जब कुमार अवस्था होती है तब मूढ बुद्धि होती है, तिसमें विचार कछु नहीं

होता, जब युवावस्था आती है, तब कामक्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं, तिनकर सदा ढांपे रहते हैं; जैसे जालमें पक्षी बंध जाता है, अरु आकाशमार्गकों देखी नहीं शकता है, तैसे कामक्रोधादिक करी ढप्या हुआ विचारमार्गकों देखी नहीं शकता; जब वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है, अरु महादीन होता है, बहुरि शरीरकों भी त्याग देता है, जैसे कमलके उपर बरफ पडता है, तब तिसका भौंरा त्याग करता है, तैसे जब शरीररूपी कमलकों जराका स्पर्श होता है, तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है ॥ हे मुनीश्वर ! यह शरीर तबलग सुंदर है, जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती; जैसे चंद्रमाका प्रकाश राहु दैत्यनें आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है, तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुंदरता जाती रहती है ॥ हे मुनीश्वर ! जराके आयेतें शरीर कृश हो जाता है, अरु तृष्णा बढ जाती है; जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है; तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है; अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है, सो पदार्थ भी दुःखरूप है; तृष्णाकरके आपही दुःख पावता है ॥ हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें चित्तरूपी बेडा पऱ्या है; रागदोषरूपी मत्स्य करी कबहु ऊर्ध्व जाता है, कबहु नीचे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं रहता ॥ हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष है, तिस वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती है, तिसमें विषयरूपी फूल हैं; जब जीवरूपी भौंरा तिसके उपर बेठते हैं, तब विषयरूपी वेलीसों मृतक हो जाते हैं ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बडी नदी है, तिसमें रागदोषादिक बडे मत्स्य रहते हैं; तिस नदीमें परे हुए जीव दुःख पाते हैं; अरु जो संसारकी इच्छा करता है, सो नाशरूप है ॥ हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो नररूपी समुद्र तिसकों तर जाते हैं तिसकों भी मैं शूरा नहीं मानता, परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रकों जो तर जाता है, तिसकों शूरा मानता हौं; जिसके परिणाममें दुःख होवै, तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं; औ जिसके परिणाममें सुख है, ति

सका आरंभ नहीं करते औ कामके अर्थकी धारणा करते हैं; ऐसे आरंभ कियेतें शरीरकी शांति पाछेहु सुखकी प्राप्ति नहीं होती; ऐसेई कामना करके सदा जलते रहते हैं; अनात्मपदार्थकी तृष्णा करते हैं, सो शांतिकों कैसे प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर! यह तृष्णारूपी नदी है, तिसमें बडा प्रवाह है, तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनों वृक्ष खडे हैं, सो तृष्णा नदीके प्रवाहतें तिन दोनोंका नाश होता है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णा बडी चंचल है, किसीकों स्थिर होने नहीं देती; अरु मोहरूपी एक वृक्ष है, तिसके चहुं फेर स्त्रीरूपी वल्ली है, सो विष करके पूर्ण है, तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय बैठता है, तब स्पर्शमात्रतें नाश पावता है; जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहेता है, तैसे अज्ञानीका चित्त चंचल रहता है, सो मनुष्य पशुके समान हैं; जैसे पशु दिनकों जंगलमें जाय आहार करते चलते फिरते हैं, अरु रात्रिकों आय घरमें खुंटासों बंधन पावते हैं ॥ तैसे मूर्ख मनुष्यहु दिनकों घर छोडके व्यवहारमें फिरते हैं, अरु रात्रिकों आय अपने घरमें स्थिर होते हैं, तातें परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती; जीवना वृथा गुमावते हैं ॥ बालक अवस्थामें शून्य रहते हैं; अरु युवा अवस्थामें काम करी उन्मत्त होते हैं, सो काम करके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कंदरामें जाय स्थित होते हैं; सो भी क्षणभंगुर हैं; बहुरि वृद्धावस्था होती है, तिसकर शरीर कृश हो जाता है; जैसे बरफतें कमल जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, तैसे जरा करके शरीर जर्जरीभावकों प्राप्त होता है; अरु सब अंग क्षीण हो जाते हैं; अरु एक तृष्णा बढ जाती है ॥ हे मुनीश्वर! यह पुरुष महापशु है, सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करता है; ऐसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करता है, सो फिर बडी कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडता है! तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रह्या है, अरु आकाशके फूलरूपी जगतके पदार्थकी इच्छा करता है, सो नीचेकों गिर पडनेका है, सो रागदोषरूपी कंटकवृक्षमें जाय पडैगा ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु जगतके पदार्थ हैं, सो सब आकाशके फूलकी नाई नाशवान हैं, इ

नमें आस्था करनी सो मूर्खता है; यह तौ शब्द मात्र जैसा है; तिसतें अर्थसिद्धि कछु नहीं होती; अरु जो ज्ञानवान पुरुष हैं, तिनकों विषयभोगकी इच्छा नहीं रहती; काहेतें जो आत्माके प्रकाश कर इनकों मिथ्या जानते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान पुरुषसों दुर्विज्ञेय हैं; हमकों तौ स्वपनेमें भी नहीं भासता है; औ यह विरक्तात्मा दुर्लभ हैं; जिनकों भोगकी इच्छा नहीं है, सर्वदा ब्रह्मकी स्थिति कर भासता है, ऐसे पुरुषकों संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती; काहेतें जो यह पदार्थ नाशरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर! पर्वतकों जिस और देखीयें तहां पथ्थरकर पूर्णदृष्टि आता है; अरु पृथ्वी पूर्ण मृत्तिकाकरि दृष्टि आती है, अरु वृक्ष काष्ठकरि पूर्ण दृष्टि आता है; समुद्र जलकर पूर्ण दृष्टि आता है, तैसे शरीर अस्थि, मांसकर पूर्ण भासता है; ये सब पदार्थ पांच तत्त्वकरि पूर्ण हैं, औ नाशरूप हैं; ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता ॥ हे मुनीश्वर ! यह जगत सब नाशरूप है; देखते देखते नाशकों पावता है; तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊं ! जब युगकी सहस्र चोकरी होती है, तब ब्रह्माका एक दिन होता है; तिस दिनके क्षय हुएतें सब जगतका प्रलय होता है; बहुरि ब्रह्माहु कालकर नाश हो जाता है; अरु ब्रह्माहु जितने हो गये हैं, तिनकी संख्या नहीं होती; असंख्य ब्रह्मा नाश हो गये हैं, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता करनी है ? हम काउ भोगकी वासना नहीं करते, क्यों जो सब चलरूप हैं, कछु स्थिर रहनेका नहीं; सब नाशरूप हैं, इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, तिनके साथ हमकों कछु प्रयोजन नहीं; जैसे मृग मरुस्थलकों देख जलपान करनेकों दौरता है, सो शांतिकों नहीं पावता, तैसे मूर्ख जीव जगतके पदार्थकों सत्य मानकर तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिकों नहीं पावते, काहेतें जो सब असाररूप हैं; अरु जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं, सो जबलग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं; जब शरीर नष्ट हो जावैगा तब जानिवेमें भी न आवैगा जो कहां गये ? अरु कहांतें आये थे ? जैसे तेल अरु बत्ती कर दीपक

प्रकाशता है, तब बडा प्रकाशवान दृष्टि आवता है, पाछे जब बूझ जाता है, तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया, तैसे बत्तीरूप बांधव हैं; औ तिसविषे स्नेहरूपी तेल हैं; तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है; जब शरीररूपी दीपका प्रकाश बूझ जाता है तब जान्या नहीं जाता जो कहां गया ॥ हे मुनीश्वर! यह बंधुका मिलाफ है; सो जैसे तीर्थयात्राका संघ चल्या जाता होवै, सो सब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बेठते हैं; फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा बांधवका मिलाप है; जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है, तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता हैं ॥ हे मुनीश्वर! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटीयंत्रकी नांई सब भमते फिरते हैं, तिनकों शांति कदाचित् नहीं होती; यह देखने मात्र तो चेतन दृष्टि आवते हैं, परंतु पशु अरु बंदर इनतें श्रेष्ठ हैं; जिनकी संमति देह इंद्रियके साथ बांधी हुइ है, अरु आगमापायी है; इसमें आस्था रखनी सो महामूर्खता है; उनकों आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिन है, जैसे पवनकर वृक्षके पात तूटके उड जाते हैं; फिर उनकों वृक्षके साथ लगना कठिण है, तैसे जो देहादिक साथ बांधे हुए हैं तिनकों आत्मपद पावना कठिन है ॥ हे मुनीश्वर! जब आत्मपदतें विमुख होता है, तब जगतके भ्रमकों देखता है; अरु जब आत्मपदकी ओर आता है, तब संसार इसकों बडा बिरस लगता है; औ ऐसा पदार्थ जगतमें कोउ नहीं जो स्थिर रहैगा, जो कछु पदार्थ हैं सो नाशकों प्राप्त होते हैं, तातें मैं किसकी आस्था करौं? औ किसका आश्रय करौं? सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझकों कहो, जिसका नाश न होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२॥

श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु स्थावर जंगम जगत दीखता है, सो सब नाशरूप है, कछु भी स्थिर रहनेका नहीं; जो खाईथी सो जलकर पूर्ण हो गई हैं, अरु जो बडे जलकर समुद्र पूर्ण दिखते थे, सो खाईरूप हो गये; अरु जो सुंदर बडे बगीचे थे, सो आकाशकी नांई शून्य हो गये, अरु जो शुन्य स्थान थे,

जगद्विपर्यय.

सो सुंदर वृक्ष हुए बनकर दृष्टि आते हैं; जहा बस्ती थी, तहा उजार हो गई है; अरु जहां उजार थी तहां बस्ती हो गई है; अरु जहां गडेले थे, तहां पर्वत हो गये हैं; अरु जहां बडे पर्वत थे, तहां समान पृथ्वी हो गई ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार पदार्थ देखत विपर्यय हो जाते हैं, स्थिर नहीं रहते, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं? अरु किसें पावनेका जतन करौं; यह पदार्थ तो सब नाशरूप हैं; अरु जो बडे बडे ऐश्वर्यकर संपन्न थे, अरु जो बडे कर्त्तव्य करते थे, औ बडे वीर्यवान, बडे तेजवान हुए हैं, सो भी मरणपात्र हो गये हैं, तब हमसारिखेकी कहा वार्त्ता है? सब नाश होते हैं, तब हमारे भी घडी पलमें चल जाना है, रहना किसीकों नहीं ॥

हे मुनीश्वर! यह पदार्थ बडे चंचलरूप हैं, सो एकरस कदाचितहु नहीं रहते, एक क्षणमें कछु हो जाता है, दूसरी क्षणमें कछु हो जाता है! एक क्षणमें दरिद्री हो जाते हैं, दूसरी क्षणमें संपदावान हो जाते हैं! एक क्षणमें जीवते दृष्टि आवते हैं, दूसरी क्षणमें मर जाते हैं; एक क्षणमें मुवे भी जीते उठते हैं; यह संसारकी स्थिरता कबहु नहीं होती; ज्ञानवान इसकी आस्था नहीं करते; एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल होय जाते हैं, अरु मरुस्थलमें जलके प्रवाह हो जाते हैं ॥ हे मुनीश्वर! इस जगतका आभास स्थिर नहीं रहता; जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता, तैसे जगतका पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता; जैसे नट स्वांगकों धरता है, सो कबहु कैसा कबहु कैसा; एक स्वांगमें नहीं रहता; तैसे जगतके पदार्थ अरु लक्ष्मी एकरस नहीं रहते; कबहु पुरुष स्त्री हो जाता है; कबहु स्त्री पुरुष हो जाती है; अरु मनुष्य पशु हो जाता है, पशु मनुष्य हो जाता है, औ स्थावरका जंगम, अरु जंगमका स्थावर हो जाता है; मनुष्य देवता हो जाता है, औ देवताका मनुष्य हो जाता है, इस प्रकार घटीयंत्रकी नांई जगतकी लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती, कबहु ऊर्ध्वकों जाती है, कबहु अधकों जाती है, स्थिर कबहु नहीं रहती, सदा भटकत रहती है ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं, वे सब नष्ट हो जानेके हैं; कैसेई स्थिर रहनेके नहीं; ए सब नदियां हैं, सो सब वडवा

ग्निमें लय होय जावैंगी; तैसे जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब अभावरूपी वडवाग्निकों प्राप्त होवैंगे; अरु बडे बलिष्ठहु मेरे देखते लीन हो गये हैं; अरु जो बडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो सुंदर ताल, अरु बगीचे, मनुष्य करी संपूर्ण, ऐसे स्थान सो शून्य हो गये हैं; अरु जो मरुस्थलकी भूमिका, सो सुंदरताकों प्राप्त भई है, अरु घटपट हो गये हैं; वरके शाप हो जाते हैं; शापके वर हो जाते हैं; इस प्रकार हे विप्र ! जो जगत दृष्टिमें आता है, सो कबहु संपदा, कबहु आपदारूप है; अरु महा चपलरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थ हैं, तिनका विचारविना में कैसे आश्रय करौं, अरु किसकी इच्छा करौं? सब नाशरूप हैं; औ जो यह सूर्य प्रकाशकर दृष्टिमें आवता है, सो भी अंधकाररूप हो जावैगा; अरु अमृतकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आवता है, सो भी विषकर पूर्ण हो जावैगा; अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आवते हैं, वे सब नाश होवैंगे; सब लोक नाश हो जावैंगे; अर्थात् मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस, आदिक सब नाश पावैंगे ॥ तातें हे मुनीश्वर ! और किसीकी क्या कहनी है; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जो जगतके ईश्वर हैं, वे भी शून्य हो जावैंगे, तौ हमसारिखेकी कहा वार्ता कहनी है ! जेता कछु जगत दृष्ट आवता है, औ स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, करिके नानाप्रकारकेजीव जो भासते हैं; सो सब नाशरूप हैं, बहुरी मैं किस पदार्थका आश्रय करौं, औ किसकी इच्छा करौं ? हे मुनीश्वर ! जो पुरुष दीर्घदर्शी हैं, तिनकों तौ सब पदार्थ विरस हो गये हैं, किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते, काहेतें जो सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं; औ अपनी आयुष्यकों बिजुरीके चमकावत् देखते हैं; जैसे बिजुरीका चमकार होता है, तैसी शरीरका आयुष्य है; जिसकों अपनी आयुष्यकी प्रतीति होती है, सो किसीकी इच्छा करता नहीं; जैसे किसीकों बलिदान अर्थ पालते हैं, तब उह खाने, पीने, भुगतनेकी इच्छा नहीं करता; तैसे जिसकों अपना मरना सन्मुख भासता है, तिसकों भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती; यह सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं, तौ हम किसीका आश्रय कर सुखी होवैं ? जैसे कोउ पु

रुष समुद्रमें मत्स्यके आश्रय करके कहै जो मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाउंगा, अरु सुखी होउंगा, सो मूर्खता करके डूबही मरैगा; तैसे जिस पुरुषनें इस पदार्थका आश्रय लिया है, अरु अपने सुखके निमित्त जानता है, सो नाशकों प्राप्त होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगतकों विचारता रहता है, तिसकों यह जगत रमणीय भासता है, अरु रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करता है, अरु नानाप्रकारके संकल्प करके जगतमें भटकता है, कबहु उपर, कबहु नीचे आता है; जैसे पवनकर धूर कबहु उंचे, कबहु नीचे आती है, अरु स्थिर नहीं रहती, तैसे यह जीव भटकता फिरता है, स्थिर कबहु नहीं रहता; अरु जिस पदार्थकी इच्छा करता है, सो सब कालका ग्रासरूप हो गये हैं, जैसे बनमें अग्नि लगती है, तब सब इंधनादिककों जारती है, तैसे जेते कछु पदार्थ हैं; सो सब इंधनरूपी हैं; जगत बन है; तिसकों कालरूपी अग्नि लगी है, तिसनें सबकों ग्रास लिया है; बहुरी जो इस पदार्थकी इच्छा करते हैं, सो महामूर्ख हैं; अरु जिनकों आत्मविचारकी प्राप्ति है, तिनकों यह जगत भ्रमरूप भासता है, अरु जिनकों आत्मविचारकी प्राप्ति नहीं है, तिनकों यह जगत रमणीय भासता है, अरु जगतकों देखते नाशई हो जाता है; स्वप्नपुरीकी नांई संसारकी मैं कैसे इच्छा करौं ? यह तौ दुःखके निमित्त है; जैसे मिठाईमें विष मिलाया है तिसका भोजन करनेवाले मृत्युकों प्राप्त होते हैं, तैसे विषय भूगतनेवाले नाशकों प्राप्त होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी अग्नि लगी है, तिसकर सब जलते हैं; भोगसों जीव दीन हो गया है; जैसे तालमें हाथीके पावसोंकर कमलका चूर्ण हो जाता है; तैसे भोगसोंकर मनुष्य दीन हो जाते हैं; जैसे वायुसों मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे काम क्रोध दुराचारसों शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं; जैसे कंटारीके पत्तेमें अरु फलमें कांटे हो जाते हैं, तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! यह ज

गत सब नाशरूप हैं; किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है॥ वासनारूपी जल, अरु इंद्रियांरूपी गांठी हैं, तिनमें पुरुष कालसों आय फस्या है, सो बडे दुःखकों प्राप्त होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती परोये हुए हैं; अरु मनरूपी नट आय परोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है; जब वासनारूपी तागा टूटी पऱ्या तब सब भ्रम भी निवृत्त होय जावैगा ॥ हे मुनीश्वर! इसकूं भोग की इच्छा सो बंधनका कारण है, भोगकी इच्छा कर भटकता है, शांतिकों प्राप्त नहीं होता, तातें मुझकों किसी भोगकी इच्छा नहीं; न राज्यकी इच्छा है, न घरकी न बनकी इच्छा है, न मरनेकर दुःख मानता हौं न जीवनेकर सुख मानता हौं, किसी पदार्थका सुख नहीं; सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होना है, अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं; जैसे सूर्यके उदय हुएबिना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे आत्मज्ञानविना संसारके दुःखका नाश नहीं होता; तातें सोई उपाय मुझकों कहौ, जिसकर मोहका नाश होवै, औ मैं सुखी होउं ॥ हे मुनीश्वर ! भोगकों भुगतनहारा जो अहंकार है, सो मैंनें त्याग दिया, फिर भोगकी इच्छा कैसे होवै? हे मुनीश्वर ! इस विषयरूप सर्पनें जिसका स्पर्श किया है, तिसका नाश हो जाता है ॥ अरु सर्प जिसकों काटता है, सो एक बेर मरता है; अरु विषयरूप सर्प जिसकों काटता है; सो अनेक जन्मपर्यंत मरता ही चला जाता है, तातें परम दुःखका कारन विषयभोग है; यातें विषयरूपी परम विष है॥ हे मुनीश्वर ! आरेके साथ अंगका काटना सहन होता है अरु वज्र करके शरीरका चूर्ण होना सो भी मैं सहुंगा, परंतु विषयका भुगतना मेरेसों कैसेई सह्या नहीं जाता; यह मुझकों दुःखदायक दृष्टिमें आता है; तातें सोई उपाय मुझकों कहौ, जिसकर मेरे हृदयतें अज्ञानरूपी अंधकारका नाश होवै; अरु जो न कहौगे तौ मैं मेरी छातीपर धैर्यरूपी शिला धरके बैठा रहौंगा; परंतु भोगकी इच्छा न करौंगा ॥ हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ हैं सो सब नाशरूप हैं; जैसे बिजुरीका चमकार होय छिप जा

ता है, अरु अंजलिमें जल नहीं ठहरता, तैसे विषयभोग अरु आयुष्य नाश होय जाते हैं, ठहरते नहीं; जैसे कंढीकर मच्छी दुःख पाती है, तैसे भोगकी तृष्णाकर जीव दुःख पाते हैं; तातें मुझकों किसी पदार्थकी इच्छा नहीं; जैसे किसीनें मरीचिकाके जलकों सत्य जान सो जल पानकी इच्छा करी दोऱ्या सो जल पावत नहीं, तातें मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य०सर्वांतप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गडेलामें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है, तिसकर पऱ्या दुःख पावता है, शांतिवान कबहु नहीं होता; जब जरा अवस्था आती है तब सर्व शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगता है; जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवन कर हिलते हैं, तैसे जरा अवस्थाकर अंग हिलते हैं, अरु तृष्णा वृद्धि हो जाती है; जैसे नीमका वृक्ष ज्यौं ज्यौं वृद्ध होता है, त्यौं त्यौं कटुता बढती है तैसे तृष्णा बढती है ॥ हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषनें देह, इंद्रियादिकनका आश्रम अपने सुखनिमित्त लिया है, सो मूर्ख संसाररूपी अंधकूपमें गिरता है, निकस नहीं शकता; अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता है ॥ हे मुनीश्वर ! जगतके पदार्थनमें मेरी बुद्धि मलीन हो गइ है ॥ जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है; जैसे मार्गशिर मासमें मंजरी सूक जाती है; तैसे जगतकी शोभा देखत देखत विरस हो जाती है, जैसे जगतका पदार्थ मूर्खकों रमणीय भासता है; जैसे पानीका गडेला तृणकरी आच्छादित होता है, अरु मृगका बालक तिस तृणकों रमणीय जानकर खाने जाता है, फिर गिर जाता है; तैसे यह मूर्ख भोगकों रमणीय जानी भुगतके गिर परै हैं, फिर महादुःख पाते हैं; जैसे मृग गडेलापर उडता है, सो सुखी नहीं होता, तैसे यह संसारके पदार्थ गडेलेरूप इन उपर मनरूपी मृग दोडनहारा कैसे सुखी होवै ॥ हे मुनीश्वर ! जगतके पदार्थसोंकर मेरी बुद्धि चंचल हो गई है, तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर पर्वतकी नांई मेरी बुद्धि निश्चल होवै; सो पद कैसा है, जो परमानंदके यत्नमें रहता है, अरु निर्भय,

निराकार पद, जिसके पायेतें संसार कछु भी नहीं रहता है, बहुरि पावना कछु नहीं रहता है; तैसे संपूर्ण जगत की नाना प्रकारकी रचना सब दब जाती हैं; तिस पद पावनेका उपाय मुझकों कहौ ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे पदतें मेरी बुद्धि शून्य है, तातें मैं शांतिवान नहीं होता ॥ यह संसार अरु संसारके कर्म मोहरूप हैं इसमें बडे हुए शांति कों प्राप्त नहीं होते अरु जनकादिक संसारमें रहे हुए कमलकी नांई निर्लेप रहते हैं, शांतिवान संसारमें निर्लेप रहते हैं; सो जैसे कोउ कीचसों पूर्ण होय, अरु कहै जो मुझकों कीचका परश नहीं हुआ, तैसे राजके विक्षेप रूपी कीचमें परेहुए शांतिवान कैसे निर्लेप रहै हैं, तिसकी समुझ कहा है, सो कृपा कर कहौ; अरु तुम जैसे जो संतजन हैं; सो विषयकों भुगतते दृष्ट आते हैं, अरु जगतकी चेष्टा सब करते हैं; सो निर्लेप कैसे रहते हैं ? सो युक्ति कहौ; जैसे तुम जल कमलवत् रहते हो सो कहौ; यह बुद्धि तौ मोह करी मोही जाती है; जैसे ताल में हस्ति प्रवेश करता है, औ पानी मलीन हो जाता है, तैसे मोह करी बुद्धि मलीन होय जाती है तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर बुद्धि निर्मल होवै; यह संतोषमें बुद्धि स्थिर कबहु नहीं रहती; जैसे मूलसों कुहारे कर कट्या वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती; हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विषूचिका मुझकों लगी है; तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर दृश्यका नाश होवै, इसनें मुझकों बडा दुःख दिया है; अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय, जिसके उदय हुए मोहरूपी अंधकारका नाश होवै ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे बादरसों चंद्रमा आच्छादित होय जाता है, तैसे बुद्धिकी मलीनताकर मैं आच्छादित हुआ हौं, तातें सोई उपाय कहौ जिसकर आवरण दूर होवै; अरु जो आत्मानंद है सो नित्य है, जिसके पायेतें बहुरी पावना कछु नहीं रहता, इसतें संपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं; अरु अंतर शीतल हो जाता है, ऐसा जो पद है, तिसकी प्राप्ति उपाय मुझकों कहौ; हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञानरूपी चंद्रमाकी मुझकों इच्छा है, जिसके प्रकाश कर बुद्धिरूपी कमलनी खिली आती है, अरु जिसकी अमृतरूपी किरण कर तृप्त वृत्ति हो

अनन्यत्याग.

ती है सो कहौ ॥ हे मुनीश्वर! अब मुझकों गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं, अरु बन विषे जानेकी भी इच्छा नहीं मुझकों तौ इसी पदकी इच्छा है, जिस पायेतें भीतर शांति होय जाय ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो जीवनेकी आस्था करते हैं, सो मूर्ख हैं; जैसे पत्रपर जलकी बूंद ठहरती नहीं, तैसे आयुष्यहु क्षणभंगुर है; जैसे वर्षाकालमें दर्दुर बोलते हैं, तब उनका कंठ चंचल सदा फिरकता रहता है, तैसे आवरदा क्षणक्षणमें चंचल हो जाती है ॥ जैसे शिवजीके कपालमें चंद्रमाकी रेषा कछुसी है, तैसा यह शरीर है; हे मुनीश्वर! जिसकों इसमें आस्था है, सो महा मूर्ख है, यह तो कालका ग्रास है; जैसे बिल्ली चुहेकों पकर लेती है, तैसे सबकों काल पकर लेता है; जैसे बिल्ली चुहेकों संभाल करने नहीं देती, तैसे सबकों काल अचानक ग्रहण कर लेता है, अरु किसीकों भासता नहीं ॥ हे मुनीश्वर! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गरजता है, तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होयके नृत्य करते हैं; जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी बढने लगती है; अरु लोभरूपी विजुरी क्षणक्षणमें होय होय नष्ट हो जाती है, अरु तृष्णारूपी जालमें फसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं; शांतिकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत्‌रूपी बडा रोग लग्या है, तिसका निवारण करनेका कौनसा पदार्थ है? जो पावनेकों योग्य है, जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवै, सोई उपाय कहौ; यह जगत मूर्खकों रमणीय दिखता है, ऐसे पदार्थ पृथ्वीपर, अरु आकाशमें, अरु देवलोकमें अरु पातालमें कोउ नहीं जो ज्ञानवानकों रमणीय दिखे; ज्ञानवानकों सब भ्रमरूप भासता है; अरु अज्ञानी जगतमें आस्था करता है ॥ हे मुनीश्वर! चंद्रमामें जो कलंक है, तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती, जब कलंक दूर होय जाय, तब सुंदर लगै; तैसे मेरे चित्तरूपी चंद्रमामें कामरूपी कलंक लग्या है, तिसकर उज्वल नहीं भासता, तातें सोई उपाय कहौ; जिसकर कलंक दूर हो जाय ॥ हे मुनीश्वर! यह

चित्त बहुत चंचल है, स्थिर कदाचित् नहीं होता; जैसे अग्निमें डार दिया पारा उडजाता है, तैसे चित्त भी स्थिर नहीं होता, विषयकी तरफ सदा धावता है, तातें सोई उपाय कहौ, जिसकर चित्त स्थिर होवै औ संसाररूपी बनमें भोगरूपी सर्प रहते हैं, सो जीवकों दंश करते हैं; तिससों बचनेका उपाय कहौ; अरु जेती कछु क्रिया हैं, सो रागद्वेषके साथ मिली हुई हैं, तातें सोइ उपाय कहौ जिसकर रागदोषका प्रवेश न होवै; जैसे समुद्रमें परे होय, अरु जलका स्पर्श न होय, तैसे यह संसारमें है, तिसकों तृष्णारूपी जलका स्पर्श न होय, ऐसा उपाय कहौ; जिसकर इसकों रागदोषका स्पर्श न होय; अरु मनमें जो मननरूपी सत्ता है, सो युक्तिसों कर दूर होती है, अन्यथा दूर नहीं होती ॥ सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेकों युक्ति कहौ; औ आगे जिसकों जिस प्रकार निवृत्ति हुई है, सो कहौ; अरु जिस प्रकार तुमारे अंतरमें शीतलता हुई है, सो कहौ ॥ हे मुनीश्वर ! जैसे तुम जानते हौ सो कहौ; अरु जो तुमारे विद्यमान वह युक्ति नहीं पाई, तब मैं तौ कछु नहीं जानता, तौ मैं सब त्यागकर निरहंकार होय रहौंगा; जबलग उह युक्ति मुझकों न प्राप्त होवैगी तबलग मैं भोजन नहीं करौंगा, अरु जलपान भी नहीं करौंगा अरु स्नानादिक क्रिया भी नहीं करौंगा, संपदाका कार्य भी नहीं करौंगा, औ आपदाका कार्य भी नहीं करौंगा, निरहंकार होउंगा, औ ये न मेरा देह है, औ न मैं देह हौं, सब त्याग करके बैठी रहौंगा; जैसे कागदके उपर मूर्त्ति चित्रित होती है, तैसे होय रहौंगा; श्वास आवते जाते आपहीं क्षीण होय जावेंगे; जैसे तेलबिना दीपक बूझता है, तैसे अनर्थबिन देह निर्वाण होय जायगा, तब महाशांतिकों प्राप्त होउंगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज ! ऐसे कही करी रामजी चुप होय रहे; जैसे बडे मेघकों देखके मोर शब्द करके चुप हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे पुत्र ! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके

रामचंद्ररूपी चंद्रमा बोले, तब सबही मौन हो गये; अरु सबके नयन खडे हो गये; मानौ रोमहु खडे होकर रामजीके वचन सुनते हैं! अरु जेते कछु सभामें बैठेथे, सो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न हो गये; वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, आदि जो मुनीश्वर थे; और जेते दृष्टि आदिक जो मंत्री थे, और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वर थे, और जैते चाकर नोकर थे, और माता कौसल्या आदिक सब मौन हो गये, अर्थ यह जो अचल हो गये हैं; अरु पिंजरेमें जो तोते थे, सो भी मौन हो गये; अरु बगीचेमें पशु आदि थे, सो भी मौन हो गये; अरु चारा तृण खात रही गये; अरु जो पक्षी आलयमें बैठेथे, सोभी सुनकर मौन हो गये, अरु आकाशके पक्षी जो निकट थे, सो भी स्थिर हो गये; अरु आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, किन्नर थे, सो भी आय सुनने लगे, अरु फूलकी वर्षा करने लगे, सब धन्य धन्य शब्द करने लगे! औ फूलकी वर्षा भई सो मानौ बरफकी वर्षा होती है; अरु क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आते होय, अरु मानौ मोतीकी मालाकी वृष्टि आवत होय; औ जैसे माखनके पिंड उडते होय, इस प्रकार आधी घडीपर्यंत फूलकी वर्षा भई; अरु बडी सुगंध आय पसरी, अरु फूलपर भौंरे फिरने लगे! औ बडा विलास तिस कालमें हो रह्या; अरु नमोनमः शब्द करने लगे॥ ॥देव उवाच॥ हे कमलनयन! रघुवंशरूपी आकाशमें चंद्रमारूप आप रामजी! तुम धन्य हौ! तुमनें बडे श्रेष्ठ स्थान देखे हैं, अरु बहुत प्रकारके बचन सुने हैं; यातें जैसे आप बचन कहे हैं, ऐसे बचन कबहु नहीं सुने; यह बचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था, सो सब निवृत्त भया है; अमृतरूपी बचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण हो गई है, हे रामजी! जैसे बचन तुमने कहे हैं, ऐसे बचन बृहस्पतिहु कहेनेकों समर्थ नहीं; तुमारे बचन परमानंदके करनहारे हैं, तातें तुम धन्य हौ! ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सिद्धसमाजवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः॥ २७॥

॥वाल्मीक उवाच॥ हे भारद्वाज! ऐसे बचन सिद्ध कहीके विचार करत भये; रघुवंशका कुल पूजवे योग्य

हैं; तिसमें रामजीनें बडे उदार बचन मुनीश्वरके विद्यमान कहे हैं, अब जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा, सो भी श्रवण किया चहिये; जैसे फूलके उपर भौंरे स्थिर होते हैं, तैसे व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य, आदि सब साधु सभामें स्थित भये, तब वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठके खडे हुए, अरु तिनकी पूजा करने लगे; प्रथम पूजा राजा दशरथनें करी, फिर, नाना प्रकारसों सबनें वाकी पूजा करी; औ यथायोग्य आसनके उपर बैठे; सो कैसे हैं? जो नारद बहुत सुंदर मूर्तिवारे हाथमें बीना लेके बैठे, अरु श्याम मूर्ति ब्यासजी आय बैठे; औ नाना प्रकारके रंगसों रंजित वस्त्र पहिरे हुए मानौ तारामें महाश्याम घटा आई है ऐसे; अरु दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, अरु बृहस्पतिके पिता अंगिरा, अरु भृगु, औ मैंहु तहां था; औ ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आयके सभामें स्थित हुए; किसीकों बडी जटा है; कोइनें मुगट पेहरे हैं; किसीनें रुद्राक्षकी माला पेहरी है, किसीनें मोतीकी माला पेहरी है; किसीके कंठमें रत्नकी माला है; औ हाथमें कमंडलु, मृगछाला, किसीके महासुंदर वस्त्र; किसीकी कटिपें कोपीन, किसीकी कटिपें सुवर्णकी जंजीर ऐसे बडे तापसी आयके बैठे;तामें केउ राजसी स्वभावके, केउ सात्विक स्वभावके; ऐसे बडे बडे आये; अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए; औ किसीका सूर्यवत्, किसीका चंद्रमावत्, किसीका तारावत्, किसीका रत्नवत्, तेज था ऐसे बडे प्रकाशवारे पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे, सो यथायोग्य आसनपें स्थिर भये, औ मोहनी मूर्त्ति रामजी दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे, तिसकी सब पूजा करत भये; कहत हैं जो हे रामजी ! तुम धन्य हौ ! औ नारद सबके विद्यमान कहत भये, जो हे रामजी ! तुमनें बडे विवेक अरु वैराग्यके बचन कहे, सो सबकों प्यारे लगे; सबके कल्याण करनेहारे हैं; औ परम बोधके कारण हैं ॥ हे रामजी ! तुम बडे बुद्धिवान उदारात्मा दृष्टि आवते हौ; अरु महावाक्यका अर्थ तुमसें प्रगट होता है; ऐसा उज्वल पात्र साधुमें औ अनंत तपसीमें कोउक होते हैं; अरु जेते कछु मनुष्य हैं, सो सब प

शु जैसे दृष्टीमें आवते हैं; क्यों जो जिसकों संसारसमुद्रके पार होनेकी इच्छा है औ जो पुरुषार्थपर यत्न करते हैं, सोई मनुष्य हैं, हे साधो ! वृक्ष तौ बहुत होते हैं, परंतु चंदनका वृक्ष कोउ होता है; तैसे शरीरधारी बहुत हैं, परंतु ऐसा कोउ होता है; औ सब अस्थि मांस रुधिरके पुतले साथ मिले हुए भटकते फिरते हैं; सो जैसी यंत्रकी पूतरी होती है, तैसे अज्ञानी जीव हैं; औ हस्ती तौ बहुत हैं; परंतु जिसके मस्तकमेंतें मोती निकसते हैं सो विरला हैं; तैसे मनुष्य तो बहुत हैं, परंतु पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे कोउ होते हैं॥ जैसे वृक्ष बहुत होते हैं परंतु लवंगका वृक्ष कोउ होता है, तैसे मनुष्य बहुत हैं परंतु ऐसा कोइ विरला होता है, ऐसे पात्रकों थोरा अर्थ कहा भी बहुत हो जाता है, जैसे तेलकी बुंद थोरी जलमें डारी विस्तारकों पावती है; तैसे थोरे बचन जो आपके हियेमें बहुत होते हैं; आपकी बुद्धि बहुत विशेष है; अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है; अरु बोधका परम पात्र है, औ कहनेमात्रतें आपकों शीघ्र ज्ञान होवैगा अरु जो हम सब बैठे हैं, सो हमारे विद्यमान आपकों ज्ञान न होवैगा, तब जानना जो हम सब मूर्ख बैठे हैं ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥

॥ समाप्तमिदं योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणं प्रथमं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणं प्रथमं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयं प्रारभ्यते ॥

अनुक्रमणिका–(मुमुक्षु प्रकरण).

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१	शुकनिर्वाणवर्णन	१	८	परमपुरुषार्थवर्णन	९	१५	संतोषनिरूपण	२२
२	विश्वामित्रोपदेशवर्णन	२	९	परमपुरुषार्थवर्णन	१०	१६	साधुसंगनिरूपण	२३
३	असंख्यसृष्टिप्रतिपादन	३	१०	वसिष्ठोपदेशागमन	११	१७	षट्प्रकरणविवरण	२४
४	पुरुषार्थोपक्रम	४	११	वसिष्ठोपदेशवर्णन	१३	१८	दृष्टांतप्रमाणवर्णन	२६
५	पुरुषार्थवर्णन	५	१२	तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णन	१५	१९	आत्मप्राप्तिवर्णन	२९
६	परमपुरुषार्थवर्णन	७	१३	शमनिरूपण	१६			
७	पुरुषार्थोपमावर्णन	८	१४	विचारनिरूपण	१९			

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे द्वितीयं मुमुक्षुप्रकरणं प्रारभ्यते ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! यह जो वचन हैं, सो परमानंदरूप हैं; अरु कल्याणके कर्त्ता हैं ॥ इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजती है, जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं; जैसे कल्पवृक्षके फलकों बडे पुण्यसों पाते हैं, तैसे जिसके बडे पुण्यकर्म इकट्ठे आय होते हैं, तिसकी प्रीति यह वचनके श्रवणमें होती है; अन्यथा प्रीति नहीं होती, यह वचन परम बोधके कारण हैं; वैराग्य प्रकरणके एक सहस्र पांचशौ श्लोक हैं ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब नारदजीनें कहा, तब विश्वामित्र बोले ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे ज्ञानवानमें श्रेष्ठ रामजी! जेता कछु जानने योग्य था सो तैंनें जान्या है, इसतें जानना और नहीं रह्या, अरु तिसमें विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करना है; जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करि होय, तब मुख स्पष्ट भासता है; तैसे कछु उपदेशकी तुझकों अपेक्षा है ॥ हे रामजी! तेरे जैसा भगवान व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है, सो भी बडा बुद्धिवान् था, तिसनें जो जानने योग्य था सो जान्या है, अरु विश्रामके निमित्त तिसकों भी अपेक्षा थी, सो विश्रामकों पायकर शांतिवान् भया है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शुकजी कैसा बुद्धिवान् अरु ज्ञानवान् था, अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा तिसकों थी, फिर कैसे विश्रामकों पावत भया, सो कृपा करिके कहौ ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे रामजी! अंजनके पर्वतकी नांई जिसका आकार है, ऐसे जो भगवान् व्यासजी, सो स्वर्णके सिंहासनपर राजा दशरथके पास यहां बैठा है, अरु सूर्यकी नांई प्रकाशवान जिसकी कांति है, तिसका पुत्र शुकजी था सो सब शास्त्रका वेत्ता था; सत्यकों सत्य जानता था, असत्यकों असत्य जानता था, सो शांतिरूप, औ परमानंदरूप आत्मामें विश्राम न पावत भया, तब उसकों विकल्प उठ्या जो जिसकों मैं जान्या है, सो न होवैगा; काहेतें जो मुझकों आनंद नहीं भासता, सो संशयकों धरके एक कालमें व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठे थे, तिनके निकट आयकर

कहत भया ॥ हे भगवन् ! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसें भया है; वाकी निवृत्ति कैसे होवैगी; औ आगे कोईकों इसकी निवृत्ति भई है ? सो कहो ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब शुकजीनें कहा, तब विद्वद्वेदशिरोमणि जो वेदव्यासजी हैं सो तत्काल उपदेश करत भये; तब शुकजीनें कहा, हे भगवन् ! जो कछु तुम कहो हो, सो तो मैं आगेसों जानता हों, इसकर मुझकों शांति प्राप्त नहीं होती ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार शुकजीनें कहा, तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं सो विचार करत भये, जो मेरे वचनकर इसकों शांति प्राप्त न होवैगी, क्यों जो इसकों अब पितापुत्रका संबंध भासता है; ऐसे विचार करके व्यासजी कहत भये ॥ हे पुत्र ! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं, तूं राजा जनकके निकट जा, वे सर्वतत्त्वज्ञ हैं, अरु शांतात्मा हैं, उनसों तेरा मोह निवृत्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार व्यासजीनें कहा; तब शुकदेवजी उहांसों चले; तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमें आयकर राजा जनकके द्वारपैं स्थित भये तब ज्येष्टीनें जायकर जनककों कहा, जो व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडे हैं; तब राजानें जान्या, जो इसकों जिज्ञासा है, तब कहा खडे रहो; तब खडे ही रहे; इसी प्रकार ज्येष्टीनें जाय कहा, तब सात दिन खडे रहत बीत गये, तब राजानें फेर पूछ्या जो शुकजी खडे हैं ? के चलते रहे हैं ? तब ज्येष्टीनें कहा खडे हैं; तब राजानें कहा आगे ले आओ, तब आगे ले आये; उस दरवज्जेपैं भी सात दिन खडे रहे; बहुरि राजानें पूछ्या, जो शुकजी हैं ? तब ज्येष्टीनें कहा जो खडे हैं; तब राजानें कह्या, अंतःपुरमें ले आओ; उसकों नानाप्रकारके भोग भुगताओ; तब अंतःपुरमें ले गये, उहा स्त्रीयनके पास सात दिन खडे रहे, तब राजानें ज्येष्टीकों पूछ्या, जो तिसकी दशा कैसी है ? औ आगे कहा दशा थी ? तब ज्येष्टीनें कहा जो आगे निरादरकरके न शोकवान् हुआ था, अरु अब भोगकर न प्रसन्न हुआ है; इष्ट अनिष्टमें समान है; जैसे मंद पवन करके मेरु चलायमान नहीं होवै, तैसे यह बडे भोगके आदरकर चलायमान नहीं भये; जैसे पपैयेकों मेघके जल विना नदी, ताल, आदिके जल

की इच्छा नहीं होती, तैसे उसकों किसी पदार्थकी इच्छा नहीं; तब राजानें कहा, इहां ले आओ, तब सो ले आये; जब शुकजी आये तब राजा जनक उठके खडे होय प्रणाम किया, फिर दोउ बैठ गये; तब राजा नें कहा जो हे मुनीश्वर! तुम किस निमित्त आये हौ; तुमकों कहा वांछा है, सो कहौ; तिसकी प्राप्ति मैं कर देहुं॥ ॥ श्रीशुक उवाच॥ हे गुरु! यह संसारका आडंबर कैसे उत्पन्न हुआ है, फिर कैसे शांत होवैगा, सो तुम कहौ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेवजीनें कहा, तब राजा जनकनें यथाशास्त्र उपदेश जो कछु व्यासजीनें कहा था; सोई कहा॥ बहुरि शुकजीनें कहा, भगवन्! जो कछु तुम कहौ हौ, सोई मेरा पिताजी कहत था; अरु सोई शास्त्र कहत हैं, औ विचारसों मैंहू ऐसा जानता हौं, जो यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है, अरु चित्तका निर्वेद हुवे भ्रमकी निवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझकों नहीं प्राप्त होता है॥ ॥ जनक उवाच॥ हे मुनीश्वर! जो कछु मैंनें कहा है, अरु जो तुम जानते हौ, इसतें अवर उपाय कछु है, ऐसा जानना नहीं, अरु कहना भी नहीं; यह संसार चित्तके संवेदनकर हुआ है, जब चित्त फुरनेतें रहित होता है, तब भ्रम निवृत्त हो जाता है; अरु आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध है, अरु परमानंदस्वरूप है, केवल चैतन्य है; तिसका अभ्यास करैगा, तब तूं विश्रामकों पावैगा; अरु तूं मुक्तिस्वरूप है, काहेतें जो तेरा यत्न आत्माकी और है, दृश्यकी और नहीं, तातें तूं बडा उदारात्मा है॥ हे मुनीश्वर! तूं मोकों व्यासतें अधिक जानके मेरे पास आया है; औ तूं मेरेतें भी अधिक है, काहेतें जो हमारी चेष्टा बाहिरतें दृष्ट आवती है, औ तेरी चेष्टा बाहिरतें कछु भी नहीं; अरु अंतरतें हमारी इच्छा भी नहीं॥ ॥ विश्वामित्र उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजा जनकनें कहा, तब शुकजी निःसंग, निःप्रयत्न, निर्भय होकर चले; सुमेरु पर्वतकी कंदरामें जाय निर्विकल्प समाधि दश सहस्र वर्ष तांई करी; बहुरि निर्वाण हो गये; जैसे तेल विना दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे निर्वाण हो गये, जैसे समुद्रमें

बूंद लीन हो जाती है, जैसे सूर्यका प्रकाश संध्याकालमें सूर्यके पास लीन हो जाता है; तैसे कलनारूप कलंककों त्यागकर ब्रह्मपदकों प्राप्त भये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाणवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥

॥ विश्वामित्र उवाच ॥ हे राजा दशरथ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवाले थे तैसे रामजी भी हैं; जैसे शांतिके निमित्त उसकों कछु मार्जन कर्त्तव्य था, तैसे रामजीकों विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये, काहेतें जो आवरण करनहारे भोग हैं, तिनकी इच्छा निवृत्त भई है, अरु जो कछु जानने योग्य था, सो जान्या है; अब हमारे कछुक युक्ति करनी है, तिस करके उसकों विश्राम होवैगा; जैसे शुकजीकों थोडेसे मार्जन करके शांतिकी प्राप्ति भई थी, तैसे इनकों भी होवैगी ॥ हे राजन्! अब रामजीकों भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती; जैसे ज्ञानवानकों अध्यात्मिक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते, तैसे रामजीकों भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती, भोगकी इच्छा सबकों दीन करती है, इसकाई नाम बंधन है; जब भोगकी वासनाका क्षय करना, इसकाई नाम मोक्ष है; ज्यौं ज्यौं भोगकी इच्छा करता है, त्यौं त्यौं लघु हो जाता है, अरु ज्यौं ज्यौं भोगकी वासना क्षय होती है, त्यौं त्यौं गरिष्ट होता है; जबलग इसकों आत्मानंद प्रकाश नहीं होता, तब लग विषयकी वासना दूर नहीं होती; जब आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषयवासना कोउ नहीं रहती; जैसे मरुस्थलमें बल्ली उत्पन्न नहीं होती, तैसे ज्ञानवानकों विषयवासनाकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ हे साधु! ज्ञानवान् जो विषयभोगका त्याग करता है, सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता, स्वभावतेंई ज्ञानवानकी विषयवासना चलती रहती है; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है; तैसे रामजीकों अब किसी भोगपदार्थकी इच्छा रही नहीं; अब विदित वेद हुआ है; अब आप विश्रामकी इच्छा चाहता है, तातें जो कहौं, सोइ करौ; जिसकर विश्रामवान् होय ॥ हे राजन्! यह जो भगवान् वसिष्ठजी हैं, इनकी युक्ति करके शांत होवैगा; अरु आगे भी सोई रघुवंश कुलके गुरु हैं; इनके उपदेशद्वारा आगे भी र

घुवंशी ज्ञानवान् भये हैं; जो सर्वज्ञ हैं, अरु साक्षिरूप हैं, औ त्रिकालज्ञ हैं, औ ज्ञानके सूर्य हैं, इनके उपदेशकर रामजी आत्मपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे वसिष्ठजी ! वह ब्रह्माका उपदेश तुमारे स्मरणमें है, क्यौं जो जब तुमारा हमारा विरोध हुआ था, तब उपदेश किया; और जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्ष करी पूर्ण है ऐसा जो मंदराचल पर्वतमें आयकर ब्रह्माजीनें संसारवासनाके नाशनिमित्त उपदेश किया था, अरु तुमारा हमारा विरोध था, तिसके निमित्त अरु और जीवके कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था, अब यही उपदेश तुम रामजीकों करौ; यह भी निर्मल ज्ञानपात्र है; अरु ज्ञान भी वही है, अरु विज्ञान भी वही है; अरु निर्मल युक्ति वही है, जो शुद्ध पात्रमें अर्पण होवै; अरु पात्रविना उपदेश नहीं सुहात है, अरु जिसमें शिष्यभाव न होवै, अरु विरक्तता न होवै, ऐसा जो अपात्र मूर्ख होवै, तिनकों उपदेश करना व्यर्थ है; अरु जो विरक्त होवै, अरु शिष्यभावना न होवै, तौ भी उपदेश नहीं करना, अरु दोनों करी संपन्न होवै, तब करना; पात्रविना उपदेश व्यर्थ होता है; अर्थ यह जो अपवित्र हो जाता है; जैसे गौका दूध महापवित्र है, अरु श्वानकी त्वचामें डारियें, तब वह अपवित्र हो जाता है, तैसे अपात्रकों उपदेश करना व्यर्थ है ॥ हे मुनीश्वर ! जो शिष्य वैराग्य करी संपन्न होता है, अरु उदारआत्मा है, सो तुमारे उपदेशके योग्य है; अरु तुम कैसे हौ ? जो वीतराग हौ; भय अरु क्रोधतें रहित हौ; परम शांतिरूप हौ, सो तुमारे उपदेशका पात्र रामजी है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब विश्वामित्रनें कहा; तब नारद अरु व्यासादिकननें साधु ! साधु ! करके कह्या, अर्थ यह जो भला ! भला ! कहा; ऐसेही यथार्थ है; तब राजा दशरथके पास बडे प्रकारके साधु बैठे हुए थे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीनें तिनकों कहा जो, हे मुनीश्वर ! जो कछु तुमनें आज्ञा करी है, सो हमनें मानी है; ऐसा समर्थ कोउ नहीं, जो संतकी आज्ञा निवारण करै ॥ हे साधु ! जेते कछु राजा दशरथके पुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तम है; सो मैं ज्ञानरूपी

सूर्यकर निवारण करौंगा; जैसे सूर्यके प्रकाशकर अंधकार दूर होता है; हे मुनीश्वर ! जो कछु ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सो मुझकों अखंड स्मरण है, सोई उपदेश करौंगा, जिसकर रामजी निःसंशय पदकों प्राप्त होवैगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीनें विश्वामित्रकों कहा, ताके अनंतर, मोक्ष का उपाय सब रामजीकों कहत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी तिसनें मुझकों जीवके कल्याणनिमित्त उपदेश किया है, सो भले प्रकार मेरे स्मरणमें आता है, सो अब तुझकों कहता हौं ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! कछुक प्रश्न करनेका अवसर आया है; अब एक संशयकों दूर करौ; मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हौ, सो सब तुम कहौगे, परंतु यह जो तुमनें कहा, जो शुकदेवजी विदेहमुक्त हो गये, तौ भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ हैं, सो विदेहमुक्त क्यौं न हुवे ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यके किरणसों त्रसरेणु उडत दीख परती हैं, तिनकी संस्था कछु नहीं होती, तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूपी त्रसरेणु हैं, सो असंख्य हैं; औ अनंत होकर मिट जाते हैं; अरु और अनंत होते हैं; अनंत त्रिलोकी ब्रह्मसमुद्रमें होवैगी; तिसकी संख्या कछु नहीं ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो आगे व्यतीत हो गये हैं; और आगे जो होवैंगे, तिनकी संख्या केती है ? अरु वर्त्तमानकों तौ जानता हौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं, अरु मिट गये हैं, अरु केई होवै हैं अरु केई होवैंगे, गिननेकी संख्या कछु नहीं, काहेतें जो जीव असंख्य हैं; अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है; जब यह जीव मृतक हो जाते हैं, तब उसी स्थानमें अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका बंध भास आता है; अरु इसी स्थानमें परलोक भास आता है; पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पंचभूत भासते हैं; अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी

सृष्टि भास आती है; बहुरि जब उहांतें मृतक होता है, तब उही सृष्टि भास आती है; नामरूपसंयुक्त उही जाग्रत सत्य होकर भास आती है, बहुरी जब उहांतें मरता है, तब इस पंचभूतसृष्टिका अभाव हो जाता है; औ अवर भासती है; अरु ताहांके जो जीव होते हैं, तिनकों भी इसी प्रकार अनुभव होता है; इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होती है, अरु मिट जाती है, तिसकी संख्या कछु नहीं; तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवै ! जैसे पुरुष फेरी लेता है, अरु तिसकों सर्व पदार्थ भ्रमते दृष्ट आवते हैं अरु जैसे नौकामें बैठे हुए नदीतटके वृक्ष चलते दृष्ट आते हैं; जैसे नेत्रके दोषकर आकाशमें मोतीकी माला दृष्ट आती है; जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासती है; तैसे जीवकों भ्रम करके यह लोक परलोक भासते हैं; वास्तवतें जगत कछु उपजाई नहीं; एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे द्वैत भ्रम अविद्याकरके भासता है; जैसे बालककों अपने परछैयामें बैताल भासता है, अरु भयकों पावता है तैसे अज्ञानीकों अपनी कल्पना जगतरूप होय भासती है ॥ हे रामजी ! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखनेमें आया है, तिसमें दश तौ एक आकाररूप हैं; अरु एकही जैसे क्रिया, अरु एकही जैसे निश्चय हुवा है; अरु अवर दशसमानही सम हुवे हैं; अरु बारे विलक्षण आकार, विलक्षण क्रिया चेष्टावाले हुवे हैं; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, तामें केई सम अरु केई विलक्षण उपजते हैं, तैसे व्यास हुवे हैं; अरु सम जो दश हुवे हैं, तिनमें दशम व्यास यही है; अरु आगे भी अष्ट बेर यही होवैगा; बहुरि महाभारत कहैगा; बहुरि नौमी बेर ब्रह्मा होकर विदेहमुक्त होवैगा; अरु हम भी होवेंगे, अरु वाल्मीक भी होवैगा, भृगु भी होवैगा, अरु बृहस्पतिका पिता अंगिरा भी होवैगा; इत्यादिक अवर भी होवेंगे ॥ हे रामजी ! एक सम होते हैं, एक विलक्षण होते हैं; अरु मनुष्य, देवता तिर्यगादिक जीव केई बेर समान होते हैं; केई बेर विलक्षण होते हैं, केई जीव समान आकार आगे जैसे कुलक्रिया सहित होते हैं; अरु केई संकल्पकर उडते फिरते हैं; आना, जाना, जीना,

मरना, स्वप्नभ्रमकी नांई दिखता है; अरु वास्तवतें कोउ आता है; न जाता है, न जन्मता है; न मरता है; यह भ्रम अज्ञानसोंकर पडा भासता है विचार कियेतें कछु निकसता नहीं; जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें बडा पुष्ट आता है, फिर खोद देखौ तौ सार कछु नहीं निकसता! तैसे जगत् भ्रम अविचारतें सिद्ध है; विचार कियेतें कछु भासता नहीं ॥ हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्तामें जग्या है, तिसकों द्वैतभ्रम नहीं भासता है; उह आत्मदर्शी, सदा शांतआत्मा, परमानंदस्वरूप है; अरु सब कलनातें रहित है, ऐसे जीवन्मुक्तकों कोई चलाय नहीं सकता; ऐसे जो व्यासदेवजी हैं, तिनकों सदेहमुक्ति, अरु विदेहमुक्तिकी कोउ कलना नहीं; सदा अद्वैतरूप हैं; हे रामजी! जीवन्मुक्तिकों सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासता है; अरु स्वस्वरूप है, स्वरूपसार शांतिरूप अमृत करी पूर्ण है, अरु निर्वाणमें स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्य सृष्टिप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं; जैसे स्थिर जल है, तौ भी जल है; अरु तरंग फिरते हैं, तौ भी जल है; तैसे जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभव तुझकों प्रत्यक्ष नहीं भासता, काहेतें जो स्वसंवेद्य हैं; अरु तिनमें जो भेद भासता है, सो असम्यक्दर्शीकों भासता है; ज्ञानवानकों भेद कछु नहीं भासता है ॥ हे मननहारीविषे श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पंदरूप होता है तौ भी वायु है; अरु निस्पंदरूप होता है तौ भी वायु है; उसके वायेतें निश्चय विषे भेद कछु नहीं; पर अवर जीवकों स्पंद होती है, तौ भासती है; अरु निस्पंद होती है, तौ नहीं भासती है; तैसे ज्ञानवान् पुरुषकों जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं; उह सदा द्वैतकलनातें रहित हैं; जब जीवकों उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्त कहते हैं; जब शरीर अदृश्य होता है, तब विदेहमुक्ति कहते हैं; अरु उसकों दोई तुल्य हैं ॥ हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंगकों सुन, जो श्रवणका भूषणा है, जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होता है; पुरुषार्थ विना सिद्धि कछु नहीं होती; और कहते हैं जो

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दैव करैगा सो होवैगा, सो मूर्खता है; यह चंद्रमा हृदयकों शीतल अरु उल्लासकर्त्ता भासता है; सो इसमें शीतलता पुरुषार्थ करी हुई है ॥ हे रामजी ! जिस अर्थकी प्रार्थना करै, अरु यत्न करै, अरु तिसमें फिरै नहीं तौ अविस्मय कर जरूर पाता है; औ पुरुषप्रयत्न किसका नाम है, सो श्रवण कर ॥ संतजन अरु सत्य शास्त्रके उपदेशरूप उपायकर तिसके अनुसार चित्तका बिचरना होय सो पुरुषार्थ प्रयत्न है, तिसतें इतर जो चेष्टा करता है, तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है; अरु जिस निमित्त यत्न करता है सोई पावता है; एक जीव था, सो पुरुषार्थ प्रयत्न करत अपुन इंद्रकी पदवी पाई त्रिलोकीका पति होय सिंहासनपर आरूढ हुवा ॥ हे रामचंद्र ! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य अस्पंद, इस स्पंदरूप होकर स्फुरता है, सो अपने पुरुषार्थकर ब्रह्माके पदकों प्राप्त भया है; तातें देख, जिसकों कछु सिद्धता प्राप्त हुई सो अपने पुरुषार्थतें हुई है; केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्तसंवेदन स्पंदरूप है; यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होता है; अरु पुरुषोत्तम कहाता है; अरु यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके रुद्ररूप भया है, अरु अर्द्धांगमें पार्वतीकों धरी रहा है, अरु मस्तकमें चंद्रमाकों धऱ्या है, अरु नीलकंठ परम शांतिरूप हैं, तातें जो कछु सिद्ध होता है सो पुरुषार्थकर होता है ॥ हे रामजी ! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूर्ण किया चाहै, तौ भी कर शकता है; जैसे पूर्वदिनमें दुष्कृत किया होय, अरु अगले दीनमें सुकृत करै तब दुष्कृत दूर हो जाता है; जो अपने हाथद्वारा चरणामृत भी ले नहीं शकता, सो पुरुषार्थ करै तौ वही पृथ्वी खंड खंड करनेकों समर्थ होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो चित्तमें कछु वांछा करता है, अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता, सो सुखकों न पावैगा; उसकी उन्मत्त चेष्टा है; अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है; एक शास्त्र अनुसार है, एक शास्त्रविरुद्ध है; जो शास्त्रकों त्याग करी अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है, सो सिद्धताकों न पावैगा; अरु जो

शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है, तिसकर सो सिद्धताकों प्राप्त होवैगा; अरु दुःख भी न होवैगा; जो अनुभवतें स्मरण होता है; अरु स्मरणतें अनुभव होता है; सो दोनों इसहीतें होते हैं, दैव तौ कछु न हुवा है ॥ हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं, इसका किया इसकों प्राप्त होता है, परंतु जो बलिष्ठ होता है सो तिसके अनुसार विचरता है; जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं, तौ उसका जय होता है अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होते हैं, तब उसकों जीती लैते हैं; जैसे एक पुरुषके दो घेटे हैं, अरु जो तिनकों लडावता है, तौ दोनोंविषे जो बली है, तिसका जय होता है; परंतु दोनों उसके हैं, तैसे दोनों कर्म इसके हैं, जो पूर्वका संस्कार बली होता है, तोई इसका जय होता है ॥ हे रामजी! यह जो सत्संग करता है, अरु सतशास्त्रहुकों बिचारता है, बहुरि पक्षीकी नांई संसारवृक्षकी ओर उडता है, तौ पूर्वका संस्कार बली है, तिसकरी स्थिर हो नहीं सकता; ऐसे जानी करी तैंनें पुरुषप्रयत्नका त्याग नहीं करना; जो पूर्वके संस्कारतें अन्यथा नहीं होता, परंतु पूर्वका संस्कार बली भी होवै, परंतु जब सत्संग करै, अरु सतशास्त्रहुका दृढ अभ्यास होवै, तौ पूर्वके संस्कारकों पुरुष प्रयत्न करी जीत लेता है; जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है, आगे सुकृत किया है; तौ अगलेका अभाव हो जाता है; सो पुरुषप्रयत्न होता है; सो पुरुषार्थ क्या है? अरु तिसकर सिद्ध क्या होता है? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो संत हैं अरु सतशास्त्र जो ब्रह्मविद्या है; तिसके अनुसार प्रयत्न करना तिसका नाम पुरुषार्थ है, अरु पुरुषार्थ करके पावने योग्य आत्मा है, जिसकरी संसारसमुद्रका पार होवै ॥ हे रामजी! जो कछु सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थ करी होता है; अवर दैव कोउ नहीं; अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थकों त्याग करी कहता है जो जो कछु करना है, सो दैव करैगा, सो मनुष्य में गर्दभ है, तिसका संग न करना, उसकी संगति करनी सो दुःखका कारण है; इस पुरुषकों प्रथम तो यह कर्त्तव्य है जो, अपने वर्णाश्रमविषे शुभ आचारकों ग्रहण करना, अरु अशुभका त्याग करना; बहुरि संत

का संग, अरु सत्शास्त्रका विचारना, औ तिसके विचारकर अपने गुणदोषहुका विचार करना; जो दिन अरु रात्रमें मैं शुभ क्या करता हौं, अरु अशुभ क्या करता हौं, आगे गुण अरु दोषहुका साक्षीभूत होकर जो संतोष, धैर्य, वैराग्य, विचार, अभ्यास गुण हैं तिसकों बढावना; अरु दोष विपरीत हैं, तिनका त्याग करना; जब ऐसे पुरुषार्थकों अंगीकार करैगा, तब परमानंदरूप आत्मतत्त्वकों पावैगा; तातें हे रामजी! वनके घाएल हुए मृगकी नांई नहीं होना, जो घास, तृण, पातकों रसीला जानके पऱ्या चुगता है; तैसे स्त्री, पुत्र, बांधव, धनादिकविषे मग्न हो रहना, सो नहीं होना; इनतें विरक्त होना, दंतहु साथ दंतहुकों चवाय करी संसारसमुद्रकों पार होनेका यत्न करना; अरु बलतें बंधनकों तोडीकरी निकसी जाना; जैसे केसरी सिंह बल करके पिंजरामेंतें निकस जाता है, तैसे निकस जाना; सोई पुरुषार्थ है॥ हे रामजी! जिसकों कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है, सो अपने पुरुषार्थकर हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती; जैसे प्रकाश बिन पदार्थका ज्ञान नहीं होता; जिस पुरुषनें अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है; अरु देवके आश्रय हुआ है, जो हमारा देव कल्याण करैगा, सो न होवैगा; जैसे पथरसों तेल निकस्या चाहै, सो नहीं निकसता; तैसे उसका कल्याण देवतें न होवैगा॥ हे रामजी! तुम तो देवका आश्रय त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करौ, जिसनें अपना पुरुषार्थ त्याग्या है, तिसकों सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जाती है; जैसे वसंतऋतुकी मंजरी वसंतऋतुके गयेतें विरस हो जाती है, तैसे उनकी कांति लघु हो जाती है; जिस पुरुषनें ऐसा निश्चय किया है; जो हमारे पालनेहारा देव है, सो पुरुष ऐसा है, जैसे कोउ अपनी भुजाकों सर्प जानके भय पायके दौरताहै, औ जानता नहीं जो अपनी भुजा हैं, तैसे अपने पुरुषार्थकों त्यागके देवका आश्रय लेता है, अरु भयकों पावता है; पुरुषार्थ नाम इसका है, जो संतहुका संग अरु सत्शास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचरना; अरु जो तिनकों त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरते हैं, सो सुखकों नहीं पावैंगे; न सि

द्धताकों पावैंगे; अरु जो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं सो इहां भी सुख पावैंगे, अरु आगे भी सुख पावैंगे तैसेई सिद्धताकों पावैंगे; तातें संसाररूपी जालविषे नहीं गिरना, सो पुरुषार्थ है; संतजनहुके संग अरु सतशास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपैं लिखना; बोधरूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी; जब ऐसे पुरुषार्थ करी लिखैगा, तब संसाररूपी जालमें न गिरैगा ॥ हे रामजी ! जैसे यह आदि नेत हुई है, जो पट है, सो पटही है; जो घट है, सो घटही है; घट है सो पट नहीं; औ पट है सो घट नहीं; तैसे यह भी नेत हुई है; अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! जो संतहूकी संगति करता है, अरु सतशास्त्र भी विचारता है; अरु उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहीं करता, तिसकरि सिद्धता प्राप्त नहीं होती; जैसे अमृतके निकटई बैठा होवै, अरु पान किये विना अमर नहीं होता, तैसे अभ्यास किये विना अमर नहीं होता; औ सिद्धता प्राप्त नहीं होती ॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ होते हैं; जब बालक होते हैं, तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं; अरु युवा अवस्थामें विकारहुकों सेवते हैं; अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं; इसी प्रकार जीवना व्यर्थ होते हैं; अरु जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके देवका आश्रय लेता है सो अपना हंता होते हैं, सो सुखकों नहीं पावैंगे ॥ हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहारविषे अरु परमार्थविषे आलसी हुए हैं, अरु परमार्थकों त्यागिके मूढ हो रहे हैं, सो दीन हुए हैं, मानौ पशु हैं; अरु दुःखकों प्राप्त हुए हैं; यह मैं विचार करके देख्या है; तातें पुरुषार्थकी आश्रय करौ; सत्संग अरु सतशास्त्ररूपी आदर्श करके अपने गुण करके दोषकों देखके दोषका त्याग करौ; अरु शास्त्रका सिद्धांत जो है तिसका अभ्यास करौ; जब दृढ अभ्यास करौगे, तब शीघ्रही आनंदवान् होहुगे ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा तब सायंकाल समय हुआ तब सब सभा स्नानके निमित्त उठके खडी भई ॥ परस्पर नमस्कार करके अपने घरकों गये, बहुरि सूर्यकी किरणहु साथ आय स्थिर भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे

मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसका जो पूर्वका किया पुरुषार्थ है, तिसका नाम दैव है, अवर दैव कोउ नहीं; जब यह सत्संग अरु सत्शास्त्रकों विचार पुरुषार्थ करै, तब पूर्वके संस्कारकों जीत लेता है, जो पुरुष इष्ट पावनेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करैगा, सो अवश्यमेव अपने पुरुषार्थतें फलकों पावैगा; अन्यथा कछु नहीं होता, न हुआ है, न होवैगा; पूर्व जो कोउ पाप किया होता है, तिसका फल जब दुःख पावता है, तब मूर्ख कहता है जो हाए दैव ! हाए दैव ! हाए कष्ट ! हाए कष्ट ! हे रामजी ! इसका जो पुरुषार्थ पूर्वका है, तिसका नाम दैव है, अवर दैव कोउ नहीं ॥ अवर जो कोउ दैव कल्पते हैं, सो मूर्ख हैं, अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत करके आया होता है; उही सुकृत सुख होयके देखाइ देता है; जो पूर्वका सुकृत बली होता है तौ उसहीकी जय होती है; जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है; अरु शुभका पुरुषार्थ करता है; सत्संग अरु सत्शास्त्रहुका विचार श्रवण करता है, तौ पूर्वके संस्कारकों जीत लेता है; जैसे प्रथम दिन पाप किया होवै, दूसरे दिन बडा पुण्य करै, तौ पूर्वका पाप निवृत्त हो जाता है, तैसे जब इहां दृढ पुरुषार्थ करै, तौ पूर्वके संस्कारकों जीत लेता है; तातें जो कछु सिद्ध होता है, सो इसकों पुरुषार्थ करके सिद्ध होता है; जो एकत्र भाव करी प्रयत्न करना इसीका नाम पुरुषार्थ है; जो जिसका यत्न एकत्र भाव होयके करैगा, सो तिसकों अवश्यमेव प्राप्त होवैगा; जो पुरुष अवर दैवकों जानके अपना पुरुषार्थ त्यागी बैठा है, सो दुखकों पावैगा, शांतिवान कबहु न होवैगा ॥ हे रामजी ! मिथ्या दैवके अर्थकों त्यागके तुम अपने पुरुषार्थका अंगीकार करौ; जो संतजन अरु सत्शास्त्रहुके वचन अरु युक्ति साथ यत्न करके आत्मपदकों अभ्यास करके प्राप्त होना, इसीका नाम पुरुषार्थ है; प्रकाश करके जैसे पदार्थहुका ज्ञान होता है; तैसे पुरुषार्थकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है; जो पूर्वके किये दुष्कृततें बडा पापी होता है, सो इहां दृढ पुरुषार्थ कियेतें उसकों जीत लेता है; जैसे बडा मेघ होता है, अरु तिसका पवन ना

श करता है; अरु जैसे वर्ष दिनहुका क्षेत्र पक्का होता है, अरु बरफ तिसका नाश कर देता है; तैसे पूर्वका संस्कार पुरुषप्रयत्न करके नाश होता है ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जानें सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धिकों तीक्ष्ण करके संसारसमुद्र तरनेका पुरुषार्थ किया है; अरु जिनहु सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, अरु पुरुषार्थकों त्यागी बैठे हैं, सो पुरुष नीचतें नीच गतिकों पावैंगे; अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थ करके परमानंदपदकों पावैंगे, जिसके पायेतें बहुरि दुःखी नहीं होता; अरु जो देखने करी दीन होते हैं; अरु सत् संगति अरु सत्शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीकों प्राप्त होते दृष्ट आवते हैं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषनें पुरुषप्रयत्न किया है, तिसकों सब संपदा आय प्राप्त होती हैं, अरु परमानंद करी पूर्ण हो रहे हैं; जैसे रत्नहूकरी समुद्र पूर्ण है, तैसे उह परमानंद करके पूर्ण हुए हैं, तातें जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थद्वारा संसारके बंधनतें निकस जाते हैं; जैसे केसरी सिंह अपने बलसो पिंजरेतें निकस जाता है, तैसे उह अपने पुरुषार्थ करी संसारबंधनतें निकस जाता है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष और कछु न करै तौ यह करै जो अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरै, अरु सार पुरुषार्थ करै; जो संतहु अरु सार शास्त्रहुका आश्रय होवै तिसके अनुसार पुरुषार्थ करै, तब सब बंधनतें मुक्त होवैगा; अरु जिसनें पुरुष अपने पुरुषार्थका त्याग किया है; किसी अवर देवकों मानके कहता है, जो उह मेरा कल्याण करैगा; सो जन्ममरणकों प्राप्त होवैगा, अरु शांतिवान कबहु न होवैगा ॥ हे रामजी ! इस जीवकों संसाररूपी विषूचिका रोग है, तिसकों दूर करनेका उपाय मैं कहता हौं ॥ संतजन अरु सत्शास्त्रहुके अर्थविषे दृढ भावना करनी; जो कछु तिनहुमेंतें सुन्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करना; अवर सब कल्पना त्यागिके एकांत होयके तिसका चितवन करना, तब इसकों परमपदकी प्राप्ति होवैगी; अरु द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा; अद्वैतरूपडा भासैगा; इसीकाइ नाम पुरुषार्थ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रक

रणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पुरुषार्थ करके इसकों अध्यात्मिक आदि ताप आय प्राप्त होते हैं ॥ तिसकरी शांतिकों नहीं पावता; तुमहूनें रोगी नहीं होवना, अपने पुरुषार्थद्वारा जन्ममरणके बंधनतें मुक्त होहु ॥ अवर कोउ देव मुक्ति नहीं करनेका, अपने पुरुषार्थद्वारा संसारबंधनतें मुक्त होना है, जिस पुरुषनें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, अरु किसी अवर देवकों मानी करी तिस परायण हुवा है, तिसका धर्म, अर्थ, काम औ मोक्ष नष्ट हो जावैगा, अरु नीचतें नीच गतिकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप है, अरु वास्तवरूप है, तिसका आश्रय जो आदि चित्त संवेदन स्फूर्ति है; जो अहं ममत्व संवेदन होयके फुरने लगती है, बहुरि इंद्रिय अहंस्फूर्ति हैं; जब यह स्फूर्नां संत अरु शास्त्रके अनुसार होवै, तब उह पुरुष परम शुद्धताकों प्राप्त होता है; अरु जो सत्शास्त्रके अनुसार न होवै, तब वासनाके अनुसार भावअभावरूप जो भ्रमजाल है, तिसविषे पर्या घटी यंत्रकी नांई भटकता है, शांतिवान् कबहु नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिस किसीकों सिद्धता प्राप्त हुई है, सो अपने पुरुषार्थकर हुई है, विना पुरुषार्थ सिद्धताकों प्राप्त न होवैंगा; जब किसी पदार्थकों ग्रहण करना होता है; सो भुजा पसारियें तौ ग्रहण करना होता है; अरु जो किसी देशकों प्राप्त होना होवै, तब जब चालियें तब जाय पहुंचीयें; अन्यथा नहीं होता; तातें पुरुषार्थ बिना सिद्ध कछु नहीं होता; जो कोउ कहता है, दैव करेगा सो होवैगा, सो मूर्ख है ॥ हे रामजी ! अवर दैव कोऊ नहीं, इस पुरुषार्थका नाम दैव है, यह दैवशब्द मूर्खहुका परचावा है; जो किसी कष्ट साथ दुःख पाया; तिसकों कहते हैं, दैवका किया है, सो अवर तौ दैव कोउ नहीं ॥ हे रामचंद्र ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागिके दैवके आश्रय हो रहैगा, सो सिद्धताकों प्राप्त न होवैगा; काहेतें जो अपने पुरुषार्थ विना सिद्धता किसीकों प्राप्त नहीं होती; अरु बृहस्पतिनें जो दृढ पुरुषार्थ किया है, तब सर्व देवताहुका राजा इंद्रका गुरु हुआ है; अरु शुक्रजी अपने पुरुषार्थद्वारा सर्व दैत्य

हुंका गुरु हुआ है, अरु अवर जो सामान्य जीव हैं तिनविषे जिसनें पुरुषप्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है; जिसकों जातिसिद्धता प्राप्त भई है, सो अपने पुरुषार्थकरी भई है; अरु जिस पुरुषनें संत अरु शास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया सो मेरे देखते देखते बडे राजा, अरु प्रजा अरु धनतें अवर विभूतितें छीन हो गये हैं, नरकहुविषे परे जलते हैं; जिस करके कछु अर्थ सिद्धि होवै, तिसका नाम पुरुषार्थ है; अरु जिस करके अनर्थकी प्राप्ति होवै तिसका नाम अपुरुषार्थ है ॥ हे रामजी ! इस पुरुषकों कर्त्तव्य यही है; जो सत्शास्त्र अरु संतहुको संग करी बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु शुभ गुणकों पुष्ट करै, दया, धैर्य, संतोष, वैराग्यका अभ्यास करके बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु तीक्ष्ण बुद्धि करके इनकों पुष्ट करै; जैसे बडे तालतें मेघ पुष्ट होता है, बहुरि वर्षा करके मेघ तालकों पुष्ट करता है; तैसे शुभ गुण करके बुद्धि पुष्ट होती है; अरु पुष्ट बुद्धि करी शुभ गुण पुष्ट होते हैं ॥ हे रामजी ! जो बालक अवस्थातें लेकर अभ्यास किया होता है, उसकों शुद्धता प्राप्त होती है; अर्थ यह जो दृढ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती है, जो किसी देश अथवा तीर्थ जाना होवै, तब मार्गविषे निरालस होयके चल्या जावै, तौ जाय पहुंचैगा, अरु जब भोजन करैगा तब क्षुधा निवृत्त होवैगी अन्यथा नहीं होवैगी; अरु जब मुखविषे जिव्हा शुद्ध होवैगी तब पाठ स्पष्ट होवैगा; गुंगेसों पाठ नहीं होता, तातें जो कछु कार्य सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थकर सिद्ध होता है, तूष्णीं हो रहनेतें कोउ कार्य सिद्ध नहीं होता; अरु सबही गुरु बैठे हैं, इनहुतें पूछि देखौ, आगे जो तुमारी इच्छा व्है सो करौ; अरु जो मुझसों पूछौ, तौ सब शास्त्रका सिद्धांत कहता हौं, जिसकरी सिद्धताकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! संत जो हैं ज्ञानवान् पुरुष, अरु सत्शास्त्र जो हैं ब्रह्मविद्या; तिनके अनुसार संवेदन अरु मन अरु इंद्रियहुका विचारना होवै; अरु इसतें विरुद्ध होवै तिसतें वर्ज्य रखना; तिस करके तुझकों संसार का राग दोष स्पर्श नहीं करैगा, सबतें निर्लेप रहैगा; जैसे जलतें कमल निर्लेप रहता है, तैसे तूं निर्लेप रहै

गा ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषहुतें शाति प्राप्त होवै, तिनकी भली प्रकार सेवा करियें, काहेतें जो उनका बडा उपकार है; जो संसारसमुद्रतें निकासी लेते हैं ॥ हे रामजी ! संत जन भी उही हैं, अरु सतशास्त्र भी उही हैं, जिसके विचारकरी अरु संगतिकरी संसारतें चित्त उपरत होवै, मोक्षका उपाय उही है; तातें अवर सब कल्पनाकों त्यागके अपने पुरुषार्थकों अंगीकार करहु, तब जन्ममरणका भय निवृत्त हो जावै ॥ हे रामजी ! जो यह वांछा करता है, अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करता है, तब अवश्यमेव तिसकों पावै अरु जो बडे तेज अरु विभूति करके संपन्न तुझकों दृष्ट आता है, अरु सुनता हैं; सो अपने पुरुषार्थ करी भये हैं; अरु जो महानिष्ठ सर्प कीट आदिक तुझकों दृष्ट आता है, तिननें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, तब ऐसे हुए हैं ॥ हे रामजी ! अपने पुरुषार्थकों आश्रय कर नहीं तौ सर्प कीटादिक नीच योनीकों प्राप्त होवैगा; जिन पुरुषनें अपना पुरुषार्थ त्यागया है, औ किसी देवका आश्रय धर्या है, सो महामूर्ख हैं, काहेतें जो यह वार्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है जो अपने उद्यम किये बिना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; तौ परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवै ? तातें दैवकों त्याग करी संतजन अरु सतशास्त्रोंके अनुसार यत्न करहु; परमपद पावनेके निमित्त जो दुःखहीतें मुक्त होवहीं ॥ हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी हैं, सो अवतार धारी करी दैत्यहूकों मारता है, अरु अवर चेष्टा भी करता है, परंतु पापका स्पर्श इसकों नहीं होता, काहेतें जो अपने पुषार्थ करके अक्षयपदकों प्राप्त हुवा है; तुम भी पुरुषार्थका आश्रय करौ, अरु संसारसमुद्रकों तरी जावहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपमावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो दैव शब्द है सो मूर्खहूनें कल्प्या है, जो दैव हमारी रक्षा करैगा; हमकों दैवका आकार कोउ दृष्ट नहीं आवता, न कोउ दैवका काल है, न दैव कछु करताही है; मूर्ख लोक दैव दैव परे कहते हैं; अवर दैव कोउ नहीं, इसका पूर्वका कर्मही दैव है॥ हे रामजी ! जिन पुरुषनें अपने पुरुषार्थका त्याग किया है, अरु दैवपरायण

हुए हैं; जो हमारा कल्याण करैगा सो मूर्ख है; काहेतें जो अग्निविषे यह जाय पडैं, अरु दैव इसकों निकासी लेवै, तब जानियें जो कोउ दैव भी है, सो तौ नहीं; अरु जो दैव करता है; तौ इह स्नान, दान, भोजन, आदिहूका त्याग करी तूष्णीं होय बैठे; आपेई दैव कर जावैगा; सो भी इसकों किये बिना नहीं होता; तातें अवर दैव कोउ नहीं; अपना पुरुषार्थही कल्याणकर्ता है ॥ हे रामजी! जो इसका किया कछु नहीं होता, अरु दैवही करनेहारा होता; तौ शास्त्र अरु गुरुका उपदेश भी नहीं होता; सो सतशास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुषार्थद्वारा इसकों वांछित पदवी प्राप्त होती है; तातें अवर जो कोउ दैव शब्द है सो व्यर्थ है; इस भ्रमकों त्याग करके संत अरु शास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थ करै, तब दुःखहुतें मुक्त होवैगा ॥ हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं; इसका पुरुषार्थ जो है स्पंद; सोई दैव है ॥ हे रामजी! जो कोउ अवर दैव करनेहारा होता, तौ जब इह शरीरकों त्यागता है, अरु शरीर सब नाश हो जाता है; क्रिया शरीरसों कछु नहीं होती; काहेतें जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है, जो दैव होता तौ सबी शरीरसों चेष्टा करावता; सो तौ चेष्टा कछु नहीं होती, तातें जानीता है जो दैव शब्द व्यर्थ है ॥ हे रामजी! पुरुषार्थकी वार्त्ता है, सो अज्ञानी जीवहुकों भी प्रत्यक्ष है, जो अपने परुषार्थ बिना कछु होता नहीं; गोपाल भी जानता है जो मैं गैयांकों चराउं नहीं तौ भूखीही रहेंगी; तातें अवर दैवके आश्रय बैठी नहीं रहता, आपही चराय ले आता है ॥ हे रामजी! अवर दैवकी कल्पना भ्रम करके परे करते हैं; अवर दैव तौ हमकों कोउ दृष्ट नहीं आता; हस्त, पाद, शरीर, दैवका कोउ दृष्ट नहीं आता; अपने पुरुषार्थ करी सिद्धता दृष्ट आवती है, अरु जो कोउ आकारतें रहित दैव कल्पियें तौ नहीं बनता; काहेतें जो निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवै ॥ हे रामजी! अवर दैव कोउ नहीं, अपना पुरुषार्थही, दैवरूप है जो राजा ऋद्धि, सिद्धि संयुक्त भासता है, सो भी अपने पुरुषार्थ करी हुए हैं ॥ हे रामजी! यह जो विश्वामित्र हैं, यानें दैवशब्दका दूरहीतें त्याग किया है; सो भी अपने पुरुषार्थ कर

के क्षत्रियतें ब्राह्मण हुए हैं; अरु अवर जो बडे विभूतिवान् हुवे हैं, सो भी अपने पुरुषार्थ करी दृष्ट आवते हैं, हे रामजी ! जो दैव पढेबिना पंडित करै तौ जानियें जो दैवनें किया, सो तौ पढेबिना पंडित कहूं नहीं होता; अरु जो अज्ञानीतें ज्ञानवान होते हैं, सो भी अपने पुरुषार्थ करी होते हैं, तातें अवर दैव कोऊ नहीं मिथ्या श्रमकों त्याग करी संतजन अरु सत्शास्त्रहुके अनुसार संसार समुद्र तरनेका प्रयत्न करहु; तेरे पुरुषार्थबिना अवर दैव कोउ नहीं; जो अवर दैव होता तौ बहुत बेर क्रियाबल भी अपनी क्रियाकों त्यागके सोई रहता, आपे दैवहीं पडा करैगा, सो ऐसे तौ कोउ नहीं करता; तातें अपने पुरुषार्थबिना कछु सिद्ध नहीं होता; अरु जो इसका किया कछु न होता तौ पाप करनेहारे नरक न जाते, अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते; परंतु पाप करनेहारे नरकमें जाते हैं; अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं, तातें जो कछु प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थ करी होता है ॥ हे रामजी ! जो कोउ अवर दैव करता है ऐसा कहै तिसका शिर काटियें ! ! अरु दैवके आश्रय जीवता रहै तौ जानीयें जो कोउ दैव है, सो तौ जीवता कोउ नहीं, तातें दैव शब्दकों मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सत्शास्त्रहुके अनुसार अपने पुरुषार्थ करी आत्मपदविषे स्थित होहु ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥

राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्महुंके वेत्ता, तुम कहते हौ और दैव कोउ नहीं, परंतु ब्राह्मण भी दैव है ऐसा कहते हैं; औ दैवका किया सब कछु होता है, अरु सुखदुःखकों देनेहारा दैव है यह लोकविषे प्रसिद्ध है ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं तुझकों ऐसे कहता हौं, ज्यों तेरा भ्रम निवृत्त हो जावै, इसहीका कर्म किया हुवा है; शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है, सो दैव कहौ; पुरुषार्थ कहौ अवर दैव कोउ नहीं; अरु कर्ता, क्रिया, कर्म आदिकहुविषे तौ दैव कोउ नहीं, अवर कोउ दैवका स्थान नहीं, रूप नहीं, तौ अवर दैव क्या कहियें ॥ हे रामजी ! मूर्खहुके परचावने निमित्त दैवशब्द कहा है; जैसे आकाश शू

न्य है, तैसे दैव भी शून्य है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्महुके वेत्ता; तुम कहते हौ जो अवर दैव कोउ नहीं, सो आकाशकी नांई शून्य है, सो तुमारे कहनेकर भी दैव सिद्ध होता है; तुम कहते हौ जो इसके पुरुषार्थका नाम दैव है, अरु जगतविषे भी दैव शब्द प्रसिद्ध है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मैं ऐसे तुझकों कहता हौं, जिस करी दैव शब्द तेरे हृदयसों उठि जावै, अर्थ यह जो शून्य हो जावै, दैव नाम अपने पुरुषार्थका है, अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका है अरु कर्म नाम वासनाका है, वासना मनतें होती है; अरु मनरूपी पुरुष है, जिसकी वासना करता है, सोई इसकों प्राप्त होता है, जो गांवकों प्राप्ति होनेकी वासना करता है, सो गांवकों प्राप्त होता है; जो पत्तनकी वासना करता सो पत्तनकों प्राप्त होता है; तातें अवर दैव कोउ नहीं; पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभ दृढ पुरुषार्थ किया, तिसका परिणाम सुखदुःख अवश्य होता है, औ तिसीकाई नाम दैव है ॥ हे रामजी ! तुम विचार कर देखौ जो आपना पुरुषार्थ कर्महूतें भिन्न नहीं तौ सुखदुःख देनहारा अरु लेनहारा दैव कोउ नहीं हुआ क्यों ? यह जो पापकी वासना करता है, अरु शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो किसकरी करता है ? पूर्वका जो इसका दृढ पुरुषार्थ कर्म है, तिसकरी यह पाप करता है; अरु जो पूर्वका पुण्य कर्म किया होता है, तौ यह शुभ मार्गविषे विचरता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह बिचरता है, तौ मैं क्या करौं ? मुझकों पूर्वकी वासनानें दीन किया है, अब मुझकों क्या कर्त्तव्य है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु इसकी पूर्वकी वासना दृढ हो रही है, तिसके अनुसार यह विचरता है; अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं सो अपने पुरुषार्थ करके पूर्वके मलीन संस्कारकों शुद्ध करते हैं; तिसके मल दूर हो जाते हैं; सत्‌शास्त्र अरु ज्ञानवानके वचन अनुसार दृढ पुरुषार्थ करौगे, तब मलीन वासना दूर हो जावैगी ॥ हे रामजी ! पूर्वके मलीन पाप कैसे जानियें अरु शुभ कैसे जानियें सो श्रवण करहु, जो चित्त विषयकी औंर धावै, अरु, अरु शास्त्रविरुद्ध मार्गकी औंर जावै, अरु शुभकी औंर न धावै, तौ

पुरुषार्थ करी संसारसमुद्रतें पार होवहु ॥ हे रामजी ! तूं चैतन्य है, जड तौ नहीं, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, मेरा भी यही आशीर्वाद है, जो तुमारा चित्त शीघ्रही शुभ आचरणविषे स्थिर होवै, अरु ब्रह्मविद्याका जो सिद्धांत सार है, तिसविषे स्थित होवै ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष भी वही है जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीन भी था, परंतु संत अरु सतशास्त्रके अनुसार दृढ पुरुषार्थ किया है, सो सिद्धताकों प्राप्त भया है; अरु जो मूर्ख जीव हैं तिनहुंने अपना पुरुषार्थ त्याग किया है, तातें संसारतें मुक्त नहीं होता; पूर्वका जो कोउ पापकर्म किया होता है, तिसके मलन करके पापमें धावता है; अपना पुरुषार्थ त्यागनेतें अंध हो जाता है, अरु विशेषकरी धावता है; जो श्रेष्ठ पुरुष हैं तिनकों यह कर्त्तव्य है; प्रथम तौ पांचौं इंद्रिय वश करनी; शास्त्र अनुसार तिनकों वर्त्तावनी; शुभ वासना दृढ करनी; अशुभका त्याग करना; यद्यपि त्यागनी दोनों वासना हैं; प्रथम शुभ वासनाकों इकट्ठी करनी; अरु अशुभका त्याग करना; जब शुद्धवासना करके कषाय परिपक्क होवैगा; अर्थ यह जो अंतःकरण जब शुद्ध होवैगा, हृदयविषे संत अरु सतशास्त्रका जो सिद्धांत है, तिसका विचार उत्पन्न होवैगा, औ तातें तुझकों आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी, तिस ज्ञानद्वारा आत्मसाक्षात्कार होवैगा; बहुरी क्रिया ज्ञानका भी त्याग हो जावैगा केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासैगा; तातें हे रामजी ! अवर सब कल्पनाका त्याग करी संतजन अरु सतशास्त्रहुके अनुसार पुरुषार्थ करहु ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मेरे वचनका ग्रहण करौ, सो वचन बांधव जैसे हैं; बांधव कहियें जो तेरे मित्र होवहींगे, अरु दुःखहुतें तेरी रक्षा करैंगे ॥ हे रामजी ! यह जो मोक्ष उपाय तुझकों कहता हौं, तिसके अनुसार तूं पुरुषार्थ करहु; तब तेरा परम अर्थ सिद्ध होवैगा; अरु यह चित्त जो संसारकी भोगकी और धावता है, तिस भोगरूपी खाडविषे चित्तकों गिरने मत देहु; भोगकों विरस जानिके त्याग देहु; उह त्याग तेरा प

रम मित्र होवैगा; अरु त्याग भी ऐसा करहु जो बहुरि भोगहुका ग्रहण न होय॥ हे रामजी ! यह मोक्ष उपाय संहिता है; चित्तकों एकाग्र करके इसकों श्रवण करी तिसकरी परमानंदकी प्राप्ति होवैगी; प्रथम शम अरु दमकों धारौ, अर्थ यह जो संपूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु, अरु उदारता करके तृप्त रहना, इसका नाम शम है; अरु दम अर्थ इह जो बाह्य इंद्रियकों वश करना; जब इसकों प्रथम धारैगा तब परम तत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवैगा; तिस विचारतें विवेकद्वारा परमपदकी प्राप्ति होवैगी, जिस पदकों पायकरी बहुरि दुःख कदाचित् न होवैगा; अविनाशी सुख तुझकों आय प्राप्त होवैगा; तातें जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है, तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु, तब आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, पूर्व जो कछु ब्रह्माजीनें हमकों उपदेश किया है, सो मैं तुझकों कहता हौं॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तुमकों जो ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सो किस कारण किया था, अरु कैसे तुमनें धाऱ्या सो कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र ! शुद्ध चिदाकाश एक है, अरु अनंत है, अविनाशी है, परमानंदरूप है, चिदानंदस्वरूप है; ब्रह्म है; तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होत है, सो विष्णुसों करी स्थित भई है, सो विष्णुजी कैसा है ? जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एकरस है, कदाचित् अन्यथाभावकों नहीं प्राप्त हुवा, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशतें स्पंद करके विष्णु उत्पन्न हुआ है; तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरणवाले नाभिकमलतें ब्रह्माजी प्रगट भया है; तिस ब्रह्माजीनें ऋषिमुनीश्वरसहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करी, सो मनोराज्य करी ब्रह्माजीनें जगतकों उत्पन्न किया; तिस जगतकी कौंनविषे जो जंबुद्वीप, भरतखंड है, तिसविषे मनुष्यकों दुःख करी आतुर देखी करी ब्रह्माजीकों करुणा उपजी, जैसे ज्यों पुत्रकों देखी पिताकों करुणा उपजती है; तब तिसके सुखनिमित्त ब्रह्माजीनें तप उत्पन्न किया, जो सुखी होवहीं; अरु आज्ञा करी जो तप करौ; तब तप करत भये; तिस तप करी स्वर्गादिकहुकों जाय प्राप्त होने लगे, तिन सुखहुकों

भोगी करी बहुरी गिरहीं, तब दुःखी रहे; ऐसे ब्रह्माजी देखीकरी सत्यवाक धर्मकों प्रतिपादन करत भये; तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी; तिस धर्मके प्रतिपादन करी लोकहुकों सुख प्राप्त होवने लगे; तहां केताक काल सुख भोगी करी बहुरि गिरहीं, तब दुःखीके दुःखी रहैं; बहुरि ब्रह्माजीनें दानतीर्थादिक पुण्यक्रिया उत्पन्न करके उनकों आज्ञा करी जो इनके सेवने करी तुम सुखी होहुगे; जब वह जीव उनकों सेवने लगे, तब बडे पुण्यलोकहुकों प्राप्त भये; अरु तिनके सुख भोगने लगे; बहुरि केताक काल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगी गिरे; तब तृष्णाकरी बहुत सुख दुःख भये; अरु दुःखकरी आतुर हुए, तब ब्रह्माजी देखत भया, जो जन्म अरु मरणके दुःखकरी महादीन होते हैं, तातें सोई उपाय करियें, जिसकरी उनका दुःख निवृत्त होवै ॥ हे रामचंद्रजी ! ब्रह्माजी विचारत भया, जो इसका दुःख आत्मज्ञानविना निवृत्त नहीं होनेका; तातें आत्मज्ञानकों उत्पन्न करियें, जो यह सुखी होवहीं, इस प्रकार विचार करी आत्मतत्त्वका ध्यान करत भया, आत्मतत्त्वके ज्ञानतें संकल्प किया; तिस ध्यानके करनेतें जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है, तिसकी मूर्त्ति होकरी मैं प्रगट भया; सो मैं कैसा हों? जो ब्रह्माजीके समान हों; जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है; जैसे उनके कंठविषे रुद्राक्षकी माला है, तैसे मेरे कंठमें भी रुद्राक्षकी माला है, जैसे उनके उपर मृगछाला है, तैसे मेरे उपर मृगछाला है; इस प्रकार ब्रह्माजीका अरु मेरा समान आकार है; अरु मेरा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, मुझकों जगत कछु नहीं भासता; सुषुप्तिकी नांई जगत मुझकों भासता है; तब ब्रह्माजीनें विचार किया जो इसकों मै जीवहुके कल्याण निमित्त उत्पन्न किया है; अरु यह तौ शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; अरु अज्ञानमार्गीकों उपदेश तब होवै, जब कछु प्रश्न उत्तर होवै, अरु तब मिथ्याका विचार होवै ॥ हे रामजी ! जीवहुके कल्याणनिमित्त मुझकों ब्रह्माजीनें गोदमें बैठाया, अरु शीशपें हाथ फेर्या, तिस करी मैं शीतल हो गया; जैसे चंद्रमाकी किरण करी शीतलता होती है, तैसे मैं शीतल भया; तब ब्रह्माजीनें मुझकों जैसे हंस कहै यौं क

हा; हे पुत्र ! जीवहुके कल्याणनिमित्त एक मुहूर्त्तपर्यंत तूं अज्ञानकों अंगीकार करहु, श्रेष्ठ पुरुष जो हैं सो अवरहुके निमित्त भी अंगीकार करते आये हैं ॥ जैसे चंद्रमा बहुत निर्मल है; परंतु श्यामताकों अंगीकार किया है, तैसे तूं भी एक मुहूर्त्त अज्ञानकों अंगीकार करहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मुझकों कही करि ब्रह्माजीनें शाप दिया, जो तूं अज्ञानी होवैगा; तब मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा मानी शापकों अंगीकार किया; तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आप था, तिसतें मैं अन्यकी नांई होत भया, मेरी स्वभावसत्ता मुझकों विस्मरण हो गई, अरु मेरा मन जागी आया, भावअभावरूप जगत मुझकों भासने लगा, अरु आपकों मैं वसिष्ठ जानत भया, अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानत भया, अरु नानाप्रकारके पदार्थसहित जगत जानत भया; अरु तिनकी ओर चंचल होत भया; तब मैं संसारजालकों दुःखरूप जानी करी ब्रह्माजीतें पूछत भया; हे भगवन् ! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है? हे रामजी ! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया, तब भली प्रकार मुझकों उपदेश करत भये तिसकरी मेरा अज्ञान नष्ट हो गया॥ जैसे सूर्य उदय हुवे तम निवृत्त हो जाता है तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त हो गया; अरु मैं शुद्धताकों प्राप्त भया; जैसे आदर्शकों मार्जन करता है, अरु शुद्ध हो आवता है; तैसे मैं शुद्ध हुवा ॥ हे रामजी ! मैं ब्रह्माजीतें भी अधिक होता भया, तब मुझकों परमेष्ठी ब्रह्माजीनें आज्ञा करी; हे पुत्र ! जंबुद्वीप भरतखंडमें जाउ, तुझकों अष्ट प्रजापतिका अधिकार है, तहां जाइ करी जीवहुकों उपदेश करहु; जिसकों संसारके सुखकी इच्छा होवै, तिसकों कर्ममार्गका उपदेश करना; तिसकरी स्वर्गादिक सुख भोगेंगे; अरु संसारतें विरक्त होवें, सो जिनकों आत्मपदकी इच्छा होवै, तिनकों ज्ञान उपदेश करना; तातें तूं अब भूलोकविषे जाहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुवा है, अरु इस प्रकार मेरा आवना हुवा है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्तिस्तथा वसिष्ठोपदेशागमनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार पृथ्वीविषे मेरा आवना भया ॥ मैं कैसा हौं ? जाकों जो ज्ञानकी वांछा होवै सो पूर्ण करिनेके लिये ब्रह्माजी मुझकों उत्पन्न करत भये ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तिस ज्ञानकी उत्पत्तितें अनंत जीवनकी शुद्धि कैसे भई, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है, तिसका स्वभावरूप संवेदन स्फूर्त्ति है; सो ब्रह्माजीरूप हो करी स्थित भई है, जैसे समुद्र अपनी द्रवता करके तरंगरूप होता है, तैसे ब्रह्माजी भया है; बहुरि संपूर्ण जगतकों उत्पन्न किया, अरु तीनों काल उत्पन्न किये तब केताक काल व्यतीत हुवा; अरु कलियुग आया तिसकरी जीवहुकी बुद्धि मलीन हो गई; अरु पापविषे विचरने लगे, शास्त्रवेदकी आज्ञा माननेतें रही गये, इस प्रकार धर्मकी मर्यादा छुपी गई, अरु पाप प्रगट भया; जेति कछु राजधर्मकी मर्यादा थी, सो सब नष्ट हो गई; अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव बिचरने लगे, तातें कष्ट पावने लगे; तिनकों देखि करी ब्रह्माजीकों करुणा उपजी, तिस दयाकों धारी करी भूमिलोकविषे मुझकों भेज्या, अरु कह्या, हे पुत्र ! जायकरी तुम धर्मकी मर्यादा स्थापन करौ; अरु जीवनकों शुद्ध उपदेश करौ; जिसकों भोगहुकी इच्छा होवै, तिसकों कर्मकांडका उपदेश करना, औ जप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिकका उपदेश करना; अरु जो संसारतें विरक्त हुए हैं, अरु मुमुक्षु हैं, जिनकों परम पद पावनेकी इच्छा है; तिनकों ब्रह्मविद्याका उपदेश करना ॥ हे रामचंद्र ! जिस प्रकार मुझकों आज्ञा करी भूमिलोकविषे भेजते भये, तैसेई सनत्कुमार, नारदकोंहु कहते भये; तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे हो करी बिचारत भये; जो जगतकी मर्यादा किस प्रकार होवै, अरु जीव शुभ मार्गविषे कैसे बिचरहीं; तब हमहुनें यह विचार किया, जो प्रथम राज्यका स्थापन करना, जो जीव तिनकी आज्ञा अनुसार बिचारहीं; प्रथम दंडकर्त्ता राज्यस्थापन किया, सो कैसा राजा जो बडा वीर्यवान्, अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया; तिन राजाहुकों हम अध्यात्मविद्याका उपदेश किया; तिसकरी परमपदकों प्राप्त भया; जो

परमानंदरूप अविनाशी पद है, तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसकों भया, तब सुखी भया; इस कारणतें ब्रह्मविद्याका नाम राजविद्या है; तब हमहुनें वेद, शास्त्र, श्रुति, पुराण करी धर्मकी मर्यादा स्थापन करी; सो जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रियाकों प्रगट कीनी; अरे जीव! तुम इसके सेवने करी सुखी होहुगे तब सब फलकों धारी करी तिनकों सेवने लगे; तामें कोउ विरला निरहंकार हृदयशुद्धताके निमित्त कर्म करता था ॥ हे रामजी ! जो मूर्ख थे सो कामनाके निमित्त मनमें फलके कर्म करते थे सो घटीयंत्रकी नांई भटकते फिरते थे, सो कबहु ऊर्ध्व अरु कबहु नीचे आते थे; औ जो निष्काम कर्म करते थे, तिनका हृदय शुद्ध होता है, फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं; ताके उपदेशद्वारा आत्मपदकी प्राप्ति होत है इस प्रकारसों जीवन्मुक्त हुए हैं; केई राजा विदितवेद सिद्ध हुए हैं, सो राज्यकों परंपरासें चलावते हमारे उपदेशद्वारा ज्ञानकों प्राप्त भये हैं, औ राजा दशरथहु ज्ञानवान् भया है, औ तूं भी इसी दशाकों आयके प्राप्त हुआ है, सो तूं सबतें श्रेष्ठ हुआ है, जैसे तूं विरक्त आत्मा हुआ है, तैसे आगेहु स्वाभाविक विरक्त आत्मा भये हैं, सो स्वभाव कर देहशुद्धि कर हुए हैं, इसी कारणतें तूं श्रेष्ठ है ॥ जो कोउ अनिष्ठ दुःख प्राप्त होता है, तिसकर विरक्तता उपजती है, सो तुझकों नहीं भई, तुझकों सब इंद्रियके विषय विद्यमान हैं, तैसे होत तेरेकों वैराग्य हुआ है, तातें तूं श्रेष्ठ है ॥ हे रामजी ! जो मसान आदिक कष्टके स्थानक हैं, सो देखके सबकों वैराग्य उपजता है, जो कछु नहीं मर जाना है, तिनमें जो कोउ श्रेष्ठ पुरुष होता है, सो वैराग्यकों दृढ कर रखता है; औ जो मूर्ख है, सो फिर विषयमें आसक्त हो जाता है, तातें जिनकों अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठ हैं ॥ हे रामजी ! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बल करके संसारबंधनतें मुक्त हो जाते हैं, जैसे हस्ती बंधनकों तोरके अपने बलसों निकस जाता है, तब सुखी होता है, तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनतें ज्ञानी मुक्त होते हैं ॥ हे रामजी ! यह संसार बडा अनर्थरूप है, जिन पुरुषनें अपने पुरुषार्थ करके बंधनकों

नहीं तोऱ्या, तिनकों रागदोषरूपी अग्नि जरावत है, अरु जिन पुरुषनें अपने पुरुषार्थ करके शास्त्र औ गुरुकों प्रमाण करके ज्ञान साध्या है, सो उस पदकों प्राप्त भये हैं, तिनकों आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, ताप जलाय शकता नहीं, जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होत वनकों दावानल जलाय नहीं शकता, तैसे ज्ञानीकों आध्यात्मिक आदि ताप कष्ट नहीं देते ॥ हे रामजी ! जिन श्रेष्ठ पुरुषनें संसारकों विरस जानकर त्याग किया है, तिनकों संसारके पदार्थ गिराय नहीं शकते; अरु जो मूर्ख हैं तिनकों गिराय देते हैं; जैसे अंधेरी चलत तीक्ष्णपवनके वेगसों वृक्ष गिर जाते हैं; परंतु कल्पवृक्ष गिरता नहीं; तैसे हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष वही जिसकों संसार विरस हो गया है सो केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके तिस परायण भये हैं; तिनकोंई ब्रह्मविद्याका अधिकार है; सोई उत्तम पुरुष है ॥ हे रामजी ! तूं भी तैसा उज्ज्वल पात्र है, जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं, तैसे तुझकों मैं उपदेश करता हों; औ जिसकों भोगकी इच्छा है, औ संसारकी ओर यत्न करता है, सो पशुवत है; श्रेष्ठ पुरुष वही है, जिसकों संसार तरनेका पुरुषार्थ होता है ॥ हे रामजी ! प्रश्न तिनके पास करियें, जाननेमें आवै जो मेरे प्रश्नका उत्तर देनेकों समर्थ है; औ जिसमें उत्तर देवेका सामर्थ्य दिखनेमें नहीं आवै, तिससों प्रश्न करना नहीं; औ उत्तर देनेकों जो समर्थ देखियें औ तिसके वचनमें भावना न होवै, तब भी तिससों प्रश्न नहीं करियें; काहेतें जो दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है; औ गुरु भी उपदेश तिनकों करता है, जो संसारतें विरक्त होवै; अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवै; अरु आस्तिकभाव होवै, ऐसा पात्र देखके उपदेश करै ॥ हे रामजी ! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते हैं, तब वचन शोभते हैं, तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो; जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सब तेरेमें पैयत हैं; औ मैं उपदेश करनेमें समर्थ हों तातें कार्य शीघ्र होवैगा ॥ हे रामजी ! शुभ गुण साथ तेरी बुद्धि निर्मल होय रही है; तेरा जो सिद्धांतका सारवचन है सो तेरे हृदयमें प्रवेश कर रहैगा ॥

जैसे उज्ज्वल वस्त्रकों केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है, तैसे तेरे निर्मल चित्तकों उपदेशका रंग लगैगा ॥ जैसे सूर्यके उदयतें सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसी तेरी बुद्धि शुभ गुणकर खिल आई है ॥ हे रामजी! जो कछु शास्त्रका सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुझकों कहता हौं तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेश करैगी; जैसे निर्मल जलमें सूर्यकी कांति प्रवेश करती है, तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धता करके प्रवेश करैगी ॥ हे रामजी! मैं तेरे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करता हौं, जो कछु मैं तुझकों उपदेश करता हौं, तिसविषे तूं आस्तिकभावना करियो, जो इन वचन कर मेरा कल्याण होवैगा; अरु जो तुझकों धारणा न होवै, तौ प्रश्न मत करना; जा शिष्यकों गुरुके वचनमें आस्तिकभावना होती है, तिसका शीघ्र कल्याण होता है, तातें मेरे वचनमें आस्तिकभावना करियो; औ जिसकर तूं आत्मपदकों प्राप्त होवैगा सो मैं कहता हौं; प्रथम तौ यह कर जो अज्ञानी जीवमें असत्य बुद्धि है, तिनका संग त्याग कर; अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं, तिनसों मित्रभावना कर; जब तिनसों मित्रभाव होवैगा, तब वह मोक्षद्वारमें पहूंचाय देवैंगे; तब आत्मदर्शन तुझकों होवैगा; सो द्वारपालोंके नाम श्रवण कर; शम, संतोष, विचार, सत्संग, यह चारों द्वारपाल हैं; जिन पुरुषनें इनकों वश किया है, तिनकों यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अंतर कर देते हैं ॥ हे रामजी! सो चारों वश न होवै, तौ तीनकों वश करने; अथवा दोकों वश कर ले, अथवा एककों वश कर; जो एक वश होवैगा, तौ चारोंई वश हो जावैंगे, इन चारोंका परस्पर स्नेह है; जहां एक आता है तहां चारों आयके रहते हैं; जा पुरुषनें इनसों स्नेह किया है सो सुखी भये हैं; औ जिननें इनका त्याग किया है, सो दुःखी हैं ॥ हे रामजी! यद्यपि प्राणका त्याग होवै, तौ भी एक साधन तौ बल करके वश करना; एकके वश कियेतें चारोंही वश होवैंगे; अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणनें आयके निवास किया है; जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आय हुवे हैं, तैसे संतनें अरु शास्त्रनें जो निर्मल गुण कहे हैं, सो सब तेरेमें पैयत हैं ॥ हे रामजी! अब तूं मेरे वचनका अधिकारी भया है; जैसे तंद्रीके सुनने

कों अंदोरा अधिकारी होता है; जैसे चंद्रमाके उदयतें चंद्रवंशी कमल खिल आते हैं, तैसे शुभ गुणकर तेरी बुद्धि खिल आई है ॥ हे रामजी ! सत्संग अरु सतशास्त्रद्वारा बुद्धिकों तीक्ष्ण कियेतें शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है, तातें श्रेष्ठ पुरुष वही हैं, जिननें संसारकों विरस जानके त्याग किया हैं; अरु संत अरु सतशास्त्रके वचनद्वारा आत्मपद पावनेका यत्न करते हैं, सो अविनाशी पदकों प्राप्त होते हैं, औ जो शुभमार्ग त्याग करके संसारकी और लगे हैं, सो महामूर्ख जड हैं; जैसे जल शीतलता करके बरफ हो जाता है, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके दृढ आत्ममार्गतें जड होई रहे हैं ॥ हे रामजी ! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है, सो कदाचित् शांति नहीं पावता, अरु आनंदसों कबहु प्रफुल्लित नहीं होता, अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है, जैसे अग्निविषे मांस संकुच जाता है ॥ हे रामजी ! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशाही है; जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होता है, तैसे आत्मतत्त्वके आगे दुराशा आवरण है; जब आशारूपी आवरण दूर होवै, तब आत्मपदका साक्षात्कार होवै ॥ हे रामजी ! आशा तब दूर होवै, जब संतकी संगति अरु सतशास्त्रका विचार होवै ॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक बडा वृक्ष है, सो बोधरूपी खड्गकर छेद्या जाता है; जब सत्संग अरु सतशास्त्रकर तीक्ष्ण बुद्धि होवै, तब संसाररूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट हो जाता है; जब शुभ गुण होते हैं, तब आत्मज्ञान आयके विराजता है; जहां कमल होते हैं, तहां भौंरे आयके स्थित होते हैं; तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहता है ॥ हे रामजी ! शुभ गुणरूप पवनकर जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है, तब आत्मारूपी चंद्रमाका साक्षात्कार होता है; जैसे चंद्रमाके उदय हुए आकाश शोभता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए तेरी बुद्धि खिलैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेशो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब तूं मेरे वचनका अधिकारी है, काहेतें जो तप, वैराग्य, विचार, संतोष, आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रनें कहे

हैं, सो सब तेरेमें पैयत हैं; तातें तूं मेरे वचनकों सुन, सो रज, तम गुणकों त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुन; राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होता है, सो दोउका त्याग करके सुन; जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सबकर तूं संपन्न है, अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं, सो सब मेरेमें हैं; जैसे रत्नकर समुद्र संपन्न है; तैसे मैं संपन्न हौं; तातें मेरे वचनका तूं अधिकारी है; औ मूर्खकों मेरे वचनका अधिकार नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे चंद्रमाके उदयतें चंद्रकांत मणि द्रवीभूत होता है, तब तामेंतें अमृत सरता है; औ पथ्थरकी शिला हैं, तिनतें द्रवीभूत नहीं होता है; तैसे जो जिज्ञासु होता है, तिसकों परमार्थवचन लगता है; अरु अज्ञानीकों नहीं लगता ॥ हे रामजी ! शिष्य तौ शुद्ध पात्र होवै, अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान न होवै तौ उसकों आत्माका साक्षात्कार नहीं होवै, जैसे चंद्रमुखी कमलिनी निर्मल होय, अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती तैसे; तातें तूं मोक्षका पात्र है; अरु मैं भी परमगुरु हौं; मेरे उपदेशपर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावैगा; मैं मोक्षका उपाय कहता हौं, जब तिसकों तूं भले प्रकार विचारैगा; तब जेती कछु मलिनरूपी मनकी वृत्ति हैं, तिनका अभाव हो जावैगा; जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जल जाता है; तातें हे रामजी ! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनकों अपने विषे लीन करके शांतात्मा होहु; तैंनें बालकावस्थासों लेकर अभ्यास कर रख्या है, तातें मन उपशम पायके आत्मपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा जो आत्मपद पाये हैं, सो सुखी भये हैं; फिर तिनकों दुःख नहीं लगता; काहेतें जो दुःख देहाभिमानकर होता है, सो देहका अभिमान तौ तैंनें त्याग दिया है, तैसे जिसनें देहका अभिमान त्याग दिया है; अरु देहका आत्मता करके बहुरि ग्रहण नहीं करता, तातें सुखी रहता है ॥ हे रामजी ! जिननें आत्माका बल धरके विचारद्वारा आत्मपद प्राप्त किया है, सो अकृत्रिम आनंदकर सदा पूर्ण है; सब जगत तिसकों आनंदरूप भासता है अरु जो असम्यग्दर्शी हैं; तिन

कों जगत् अनर्थरूप भासता है ॥ हे रामजी ! संसरणरूप जो यह संसार सर्प है; सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ हो गया है, सो योगरूपी गारुड मंत्र करके नष्ट हो जाता है; अन्यथा नहीं होता, औ सर्पका विष है, सो एक जन्ममें मारता है; अरु संसरणरूप जो विष है तिसकरके अनेक जन्म पायके मरता चल्या जाता है; शांतिवान् कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सत्संग अरु सत्शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदकों पाया है, सो आनंदित भया है; अरु अंतर्बाहिर सब जगत इसकों आनंदरूप भासता है; अब सब क्रिया करनेमें आनंद विलास है; औ जिननें सत्संग अरु सत्शास्त्रका विचार त्याग्या है, अरु संसारके सन्मुख है, तिसकर तिसकों संसार अनर्थरूप है, सो ऐसा दुःख देते हैं; जैसे सर्पके दंशतें दुःखी होते हैं, अरु शस्त्रकर घाएल होते हैं, अरु अग्निमें परेकी नांई जलते हैं, अरु जेवरीके साथ बंध होते हैं, अरु अंधकूपमें गिरेतें कष्ट पाते हैं; तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पाते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सत्संग अरु सत्शास्त्रद्वारा आत्मपदकों नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते हैं, सो नरकरूपी अग्निमें जरते हैं, अरु चक्कीविषे पिसाते हैं; पाषाणकी वर्षाकर चूर्ण होते हैं; कोलुमें पिलाते हैं; अरु शस्त्र साथ कटते हैं; इत्यादिक जो बडे कष्ट हैं, सो तिनकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा दुःख कोउ नहीं ! जो इस जीवकों प्राप्त नहीं होता; आत्माके प्रसादसों सब दुःख होते हैं; अरु जिन पदार्थकों यह रमणीक जानते हैं, सो चक्रकी नांई चंचल हैं; कबहु स्थिर नहीं रहते; सन्मार्गकों त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं, सो महादुःखकों प्राप्त होते हैं; अरु जिन पुरुषनें संसारकों विरस जान्या है, औ पुरुषार्थकी और दृढ भये हैं, तिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! जो पुरुषकों आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिनकों फिर दुःख नहीं होता, औ तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते, तौ ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोउ नहीं करता; जो अज्ञानी हैं तिनकों संसार दुःखरूप है; अरु ज्ञानीकों सब जगत आनंदरूप है; अपने आपई है; उनकों भ्रम कोउ नहीं रहता ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्में नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृढ आती हैं तौ भी सदा

शांतरूप हैं, अरु आनंदरूप हैं; संसारका दुःख कोउ नहीं स्पर्शकर शकता; काहेतें जो तिननें ज्ञानरूपी कवच पहिऱ्या है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवानकों भी दुःख होता है, बडे बडे ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि बहोत ज्ञानवान् भये हैं, सोऊ दुःखकों प्राप्त होते हैं; परंतु दुःखसों आतुर नहीं होते; क्यों जो ज्ञानवाननें ज्ञानका कवच पहिऱ्या है, तातें कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप हैं, जैसें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नानाप्रकारकी चेष्टा करते और जीवकों दृष्ट आवते हैं; अरु अंतरतें सदा शांतरूप हैं; इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान उत्तम पुरुष हैं सो शांतरूप हैं, ताकों कर्त्ताका अभिमान कोउ नहीं फुरता ॥ हे रामजी ! अज्ञानीरूपी जो मेघ है, तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है, सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट हो जाता है; तातें स्वसत्ताकों प्राप्त होवै है, अरु सदा आनंदकर पूर्ण है ॥ हे रामजी ! जो कछु क्रिया करते हैं, सो तिनकों विलासरूप हैं; अरु सब जगत् आनंदरूप है; अरु शरीररूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व, औ मनरूपी रसा, तासों अश्वकों खेंचता है; अरु बुद्धिरूपी रथ वही है, तिस रथमें वह पुरुष बैठा है; अरु इंद्रियरूपी अश्व इसकों खोटे मार्गमें डारते हैं; अरु ज्ञानवानके इंद्रियरूपी अश्व हैं, सो ऐसे हैं, जो जहां जाते हैं, तहां आनंदरूप हैं, किसी ठौरमें खेद नहीं पावता; सब क्रियामें उनकों विलास है; सर्वदा आनंद कर तृप्त रहते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी दृष्टीकों आश्रयकर, जो तेरा हृदय पुष्ट होवै, बहुरी संसारके इष्ट अनिष्ट कर चलायमान न होवै; जिस पुरुषकों इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो परम आनंदित भये हैं; शोककों कर्त्ता नहीं है; न याचना करता है, हेयोपादेयतें रहित परम शांतिरूप अमृतकर पूर्ण होय रहे हैं; सो पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा करते दृष्ट आवते हैं, परंतु कछु नहीं करते; जहां उनके मनकी वृत्ति जाती है, तहां आत्मसत्ता भासती है, सो आत्मानंदकर पूर्ण होय रहे हैं; जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरी पूर्ण रहता है, तैसे ज्ञानवान् परमानंदकरी पूर्ण रहता है ॥ हे

रामजी ! यह जो मैं तुझकों अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसकों जब जानैगा तब तुझकों साक्षात्कार होवैगा; जब जिसकों आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे चंद्रमाके मंडलमें ताप नहीं होता अरु अज्ञानीकों शांति कबहु नहीं होती; औ जो कछु क्रिया करता है, तिसमें दुःख पावता है; जैसे कक्करके वृक्षमें कंटककी उत्पत्ति होती है; तैसे अज्ञानीकों दुःखकी उत्पत्ति होती है ॥ हे रामजी ! इस जीवकों मूर्खता करके बडे दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसा दुःख अद्भुत और कोउ नहीं अरु किसी आपदा करके भी ऐसा दुःख नहीं होता, जैसा दुःख मूर्खता करके पाते हैं, ऐसा दुःख कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करै, औ आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा हौवै, तौ भी अवर ऐश्वर्यतें श्रेष्ठ है, परंतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थ है, तिस मूर्खताकों दूर करनेकों मोक्ष उपाय मैं कहता हौं ॥ हे रामजी ! यह मोक्ष उपाय परमबोधका कारण है; कछुक बुद्धि संस्कृत होवै, अर्थ यह जो पदपदार्थके जाननेहारी होवै, अरु मोक्ष उपाय शास्त्रकों विचारै, तौ तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावैगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है, तैसा और शास्त्र त्रिलोकीविषे कोउ नहीं; नानाप्रकारके दृष्टांतसहित इतिहास हैं; जामें तिसकों जब विचारैगा तब परमानंदकों प्राप्त होवैगा; अज्ञानरूपी तिमिर नाश करनेकों ज्ञानरूपी शलाका है; जैसे अंधकारकों सूर्य नाश करता है, तैसे अज्ञानकों यह शास्त्रका विचार नाश करता है ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार इसका कल्याण होता है, सो श्रवण कर; गुरु जो ज्ञानवान है, सो शास्त्रका उपदेश करै, अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावै, जब गुरु अरु शास्त्र औ अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलैं तब इसका कल्याण होवै; जबलग अकृत्रिम आनंदकों प्राप्त नहीं भया, तबलग दृढ अभ्यास करै; तिस अकृत्रिम आनंदकों प्राप्ति करनेहारा मैं गुरु हौं; जीवमात्रका मैं परम मित्र हौं; ऐसा मित्र अवर कोउ नहीं; हमारी संगती जीवकों आनंद प्राप्त करनेहारी है; तातें जो कछु मैं कहता हौं सो तूं कर ॥ हे रामजी ! यह जो संसारके

भोग हैं, सो क्षणमात्र हैं; तातें इनकों त्याग करहु; औ विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं; इनकों दुःखरूप जानकर त्याग देहु अरु हमसारिखे ज्ञानवानका संग कर औ हमारे वचनके विचारतें तेरे सब दुःख नष्ट हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषनें हमारे संग प्रीति करी है, तिसकों हमनें आनंदपदकी प्राप्ति कर दीनी है, जिस आनंदतें ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं; औ ज्ञानवानहु आनंदित भये हैं, सो निर्दुःखपदकों प्राप्त भये हैं ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है; जाने हमारे साथ प्रीति कीनी है; जिसनें संत अरु शास्त्रके विचारद्वारा दृश्यकों अदृश्य जान्या है, अरु निर्भय हुवा है, आत्माका प्रमाद जीवकों दीन करता है, अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग सखुच्या रहता है, जबलग तृष्णारूपी रात्र होती है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब तृष्णारूपी रात्र नष्ट हो जाती है; अरु हृदयरूपी कमल आनंदकर खिली आते हैं ॥ हे रामजी ! जा पुरुषनें परमार्थमार्गकों त्याग्या है, अरु संसारके खानपान आदि भोगमें मग्न हुवा है, तिसकों तुं मेंडुक जान, जैसे कीचमें मेंडुक पर्या शब्द करता है तैसा वह पुरुष है ॥ हे रामजी ! यह संसार बडा आपदाका समुद्र है; तामें जो कोउ श्रेष्ठ पुरुष है, सो सत्संग अरु सत्शास्त्रके विचार करके संसारसमुद्र उल्लंघता है, अरु परमानंदको प्राप्त होता है; आदि, अंत, मध्य रहित निर्भयपदकों प्राप्त होता है, अरु जो संसारसमुद्रके सन्मुख हुवा है, सो दुःखतें दुःखरूप पदकों प्राप्त भया है, कष्टतें कष्ट नरककों प्राप्त होता है; जैसे विषकों विष जानके तिसका पान करता है, सो विष उसकों नाश करता है, तैसे जो पुरुष संसार असत्य जानके वहुरी संसारके और यत्न करता हैं, सो मृत्युकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष आत्मपदतें विमुख है, अरु आत्मपदकों कल्याणरूप जानता है, अरु आत्मपदके अभ्यासका त्याग करके संसारकी ओर धावता है, सो जैसे किसीके घरमें अग्नि लगी, अरु तृणका घर, अरु तृणकी शय्या करीके शयन करता है, सो जैसे नाशकों पावै तैसे जन्ममृत्युको प्राप्त होवैंगे, औ संसारके पदार्थ देखकर राग

दोषवान् हुए हैं, सो सुख बिजुरीका चमका जैसा है, औ जो होयके मिट जावै, स्थिर नहीं रहै; तैसा संसारका दुःख आगमापायि है॥ हे रामजी! यह संसार अविचार करके भासता है अरु विचार कियेतें लीन हो जाता है; विचार कियेतें लीन जो नहीं होता,तौ तुमकों उपदेश करनेका काम नहीं था;सो तौ विचार कियेतें लीन हो जाता है, इसी कारणतें पुरुषार्थ चाहियें; जैसे हाथमें दीपक होवै, अरु अंध होय कूपमें गिरै सो मूर्खता है, तैसे संसार भ्रमके निवारणहारे गुरु शास्त्र विद्यमान हैं, तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है॥ हे रामजी! जो पुरुष संतकी संगति अरु सतशास्त्रके विचारद्वारा आत्मपदकों पाया है, सो पुरुष केवल कैवल्यभावकों प्राप्त भया; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यकों प्राप्त हुवा है; अरु संसारभ्रम तिसका निवृत्त होगया है॥ हे रामजी! यह संसार मनके संसरणतें उपज्या है; सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होता है; अरु धन करके भी नहीं होता है, प्रजा करके भी नहीं होता है, अरु तीर्थ अरु देवद्वार करके भी नहीं होता है, ऐश्वर्य करके भी नहीं होता है; एक मनके जीतनेतें कल्याण होता है॥ हे रामजी! जिसकों ज्ञान परमपद कहते हैं, औ जिसकों रसायण कहते हैं, जिसके पायेतें इसका नाश नहीं होय, अरु अमर होवै, अरु सब सुखकी पूर्णता होवै, इसका साधन समता अरु संतोष है, इनकर ज्ञान उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञानरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल शांति है; अरु स्थिति इसका फल है, जिस पुरुषकों यह ज्ञान प्राप्त हुवा है, सो शांतिवान हुवा है; सो निर्लेप रहता है, तिसकों संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं है; जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है, तब जगतकी क्रिया होती हैं, फिर जब सो अदृश्य होता है, तब जगतकी क्रिया भी लीन हो जाती हैं; जैसे तिस क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् सदा निर्लेप है; तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है॥ हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रकों श्रद्धासंयुक्त पढै अथवा सुनै तौ वाई दिन सो मोक्षका भागी होय रहै; अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुझकों कहता हौं; सो इनमेंतें एकहु जब अप

ने वश होवै, तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवै; सो चारोंका नाम कहों सो सुन ॥ हे रामजी ! यह शम इसकों परम विश्रामका कारण है, अरु यह संसार जो दिखता है; सो मरुस्थलकी नदीवत् है; इसकों देखकर मूर्ख अज्ञानीरूपी जो मृग हैं, सो सुखरूप जल जानकर दौरते हैं, अरु शांतिकों नहीं प्राप्त होते; जब शमरूपी मेघकी वर्षा होवै, तब सुखी होवै ॥ हे रामजी ! शमही परम आनंद है, अरु शमही परम पद है; औ शिवपद है; जिस पुरुषनें शम पाया है, संसारसमुद्रतें पार हुवा है; सो तिसकों शत्रु सो मित्र हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! जब चंद्रका उदय होता है, तब अमृतकी कणा फुटती हैं, अरु शीतलता होती है; तैसे जिसके हृदयमें शमरूपी चंद्रमा उदय होता है, तिसके सब ताप मिट जाते हैं, अरु परम शांतिवान् होते हैं ॥ हे रामजी ! शम देवताके अमृत समान है, वही परम अमृत है; शम करके इसकों परम शोभा प्राप्त होती है; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे शमकों पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है; जैसे विष्णुके दो हृदय हैं, सो एक तौ अपने शरीरमें है, दूसरा संतमें है; तैसे इसके दो हृदय होते हैं; एक अपने शरीरमें, दूसरा शम भी इनका हृदय होता है; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेतेंहु नहीं होता; अरु लक्ष्मीकी प्राप्तितें भी नहीं होता; जो आनंद शमवानकों होता है ॥ हे रामजी ! प्राणहुतें भी प्रिय कोई होवै सो अंतर्ध्यानकर फिर प्राप्त होवै, तैसा आनंद नहीं होवै जैसा आनंद शमवानकों होवै; तिसके दर्शनकर भी आनंद प्राप्त होता है; अरु ऐसा आनंद राजाकों भी नहीं होता, जो बाहिरतें श्रेष्ठ मंत्री होता है, अरु अंतरतें सुंदर स्त्रियां होती हैं, तिनकर भी ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद शमसंपन्न पुरुषकों होता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों शमकी प्राप्ति भई है, सो वंदना करने योग्य है अरु पूजने योग्य है; जिसकों शमकी प्राप्ति भई है, तिसकों उद्वेग नहीं आवै, अरु लोकहुतें उद्वेग नहीं पावै, उसकी क्रिया अमृतसमान हैं, अरु वचन भी उसके अमृतकी नांई मीठे हैं; जैसे चंद्रमाके किरण शीतल अरु

अमृतरूप हैं सो सबकों हृदयाराम हैं, तैसे संतजनके वचन हैं, जिस पुरुषकों शमकी प्राप्ति भई है, तिसकी संगति जब इस जीवकों प्राप्त होती है, तब सब परम आनंदित होते हैं ॥ हे रामजी! जैसे बालक माताकों पायके आनंदित होता है, तैसे जिसकों शमकी प्राप्ति भई है, तिसके संगकर जीव अधिक आनंदवान् होता है; जैसे जिसका बांधव मुवा हुआ फिर आवै, औ इसकों आनंद प्राप्त होवै, तिसतें भी अधिक आनंद शमसंपन्न पुरुषकों पायके होता है; हे रामजी! ऐसा आनंद चक्रवर्ती राज्यके पायेतें भी नहीं होता, अरु त्रिलोकीका राज्य पायेतें भी नहीं होता, जिसकों शमकी प्राप्ति भई है तिसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तिसकर कछु भय भी नहीं होता, अरु सर्पका भय भी तिसकों नहीं रहता; सिंहका भय भी तिसकों नहीं रहता; औरहु किसीका भय नहीं रहता; सदा निर्भय शांतरूप रहता है॥ हे रामजी! जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवै, औ कालकी अग्नि आय लगै, तौ भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतिरूप रहता है; जैसे शीतल चांदनी चंद्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अरु संपदा हैं, सो सब शमवान्के हृदयमें आय स्थित होते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष आध्यात्मिकादि तापकर जलता है; तिसकों हृदयमें शमकी प्राप्ति होवै, तब ताप मिट जाते हैं; जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा करके शीतल हो जाती है, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है; जिसकों शमकी प्राप्ति भई है, सो सब क्रियामें आनंदरूप है, तिसकों दुःख कोउ नहीं स्पर्श करता; जैसे वज्रशिलाकों बाण वेध नहीं शकता, तैसे जिन पुरुषनें शमरूपी कवच पहिन्या है, तिनकों आध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं शकता, वह सर्वदा शीतलरूप रहता है ॥ हे रामजी! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक, धनाढ्य, सो पूजा मान्य करने योग्य हैं, परंतु जिसकों शमकी प्राप्ति भई है सो सबसें उत्तम है; सो सबकों पूजने योग्य है; उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वकों ग्रहण करती है; शमकर पूर्ण है; अरु सब क्रियानमें सोहत है; जिस पुरुषकों शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह इंद्रियके विषय इष्ट अनिष्टमें रागदोष नहीं होता,

तिसकों शांतात्मा कहते हैं ॥ हे रामजी ! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता, अरु आत्मानंदकर पूर्ण है, तिसकों शांतिवान् कहते हैं वाकों संसारके शुभ अशुभकर मलिनपना नहीं लगता; सदा निर्लेप रहता है; जैसे आकाश सब पदार्थतें निर्लेप है तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है ॥ हे रामजी ! ऐसा जो पुरुष है सो इष्ट विषयकी प्राप्तिमें हर्षवान् होता नहीं; अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें शोकवान् होता नहीं; अरु अंतरतें सदा शांत रहता है; उसकों कोउ दुःख स्पर्श नहीं करता; अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहता है; जैसे सूर्यके उदय हुएतें अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे शांतिके पायेतें सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, सदा निर्विकार रहता है ॥ हे रामजी ! सो पुरुष सब चेष्टा करता दृष्ट आता है परंतु सदा निर्गुणरूप है; कोउ क्रिया उसकों स्पर्श नहीं करती ॥ जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है, तैसे शांतिवान् सदा निर्लेप रहता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष बडी राजसंपदाकों पायकर अरु बडी आपदाकों पायकर ज्योंका त्यों अलग रहता है, सो शांतिवान् कहियें ॥ हे रामजी ! जो पुरुष शांतितें रहित है, तिसका चित्त क्षण क्षण रागदोषकर तपता है; अरु जिसकों शांतिकी प्राप्ति भई है, सो अंतर्बाहिर शीतल है; अरु सदा एकरस है; जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, तैसे वह सदा शीतल रहता है; वाके मुखकी कांति बहोत सुंदर हो जाती है; जैसे निष्कलंक चंद्रमा होवै, तैसे शांतिवान् निष्कलंक रहता है ॥ हे रामजी ! जिनकों शांति प्राप्त भई है, सो परम आनंदित हुए हैं; परम लाभ तिनकों प्राप्त होता है; ज्ञानी इसीकों परम पद कहते हैं, जिसकों पुरुषार्थ करना है, तिसकों शांतिकी प्राप्ति करनी चाहिये ॥ हे रामजी ! जैसे मैंनें कह्या है, तिस क्रमकरके शांतिका ग्रहण करौ, तब संसारसमुद्रके पार पहुंचोगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब विचारका निरूपण सुन ! जब हृदय शुद्ध होता है, तब विचार होता है; अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है ॥ हे

रामजी ! अज्ञानरूपी जो वन है, तिसमें आपदारूपी वेलीकी उत्पत्ति होती है; तिसकों विचाररूपी खड्ग करके काटैगा, तब शांतआत्मा होवैगा, अरु मोहरूपी हस्ती है, सो जीवके हृदयकमलका खंड खंड कर डारता है, अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें रागदोषकर छेद्या जाता नहीं; जब विचाररूपी सिंह प्रगटै, तब मोहरूपी हस्तिका नाश करै; फिर शांतात्मा होवै ॥ हे रामजी ! जिसकों कछु सिद्धता प्राप्त हुई है, सो विचार अरु पुरुषार्थ कर भई है, जो राजा होता है, सो प्रथम विचार करके पुरुषार्थ करता है; तिसकर राज्यकों प्राप्त होता है ॥ बल, बुद्धि अरु तेज, चतुर्थ जो पदार्थका आगमन, अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है सो पांचोंकी प्राप्ति विचारकर होती है; अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना; अरु बुद्धि सो आत्मा व्यापिनी, अरु तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसों होती है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषनें विचारका आश्रय लिया है, सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करते हैं, तिसकों पावते हैं; तातें विचार इसका परम मित्र है; जो विचारवान् पुरुष है सो आपदाम मग्न नहीं होता; जैसे तुंबी जलमें डुबत नहीं, तैसे वह आपदामें डुबत नहीं ॥ हे रामजी ! वह विचारसंयुक्त जो करता है, देता है, लेता है, सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती हैं ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विचारकी दृढता करके सिद्ध होते हैं; विचाररूपी कल्पवृक्ष है, तिसमें जिसका अभ्यास होता है, सोई पदार्थकी सिद्धिकों पावता है ॥ हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहण करके आत्मज्ञानकों प्राप्त होहु; जैसे दीपकसोंकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे पुरुष विचारसोंकर सत्य असत्यकों जानता है; असत्यकों त्यागकर सत्यकी ओर यत्न किया है, सो विचारवान् कहते हैं ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्रविषे आपदारूपी तरंग चलते हैं, जो विचारवान् पुरुष है, सो संसारके भावअभावमें कष्टवान् नहीं होता है; जो कछु विचारसंयुक्त क्रिया होती है, तिसका परिणाम सुख है; जो विचारविना चेष्टा होती है, तिसकर दुःख प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! अविचाररूपी कंटकवृक्ष

है, तिसतें दुःखरूपी कंटक पडे उत्पन्न होते हैं; अरु अविचाररूपी रात्र है, तिसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी आय विचरती है; जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है, तब अविचाररूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट हो जाती है; हे रामजी ! हमारा यही आशीर्वाद है, जो तुमारे हृदयसों अविचाररूपी रात्र नष्ट होहु; विचाररूपी सूर्य करके अविचारित संसारदुःखका नाश होता है; जैसे बालक अविचार करके अपने परछैयाकों बैताल कल्पके भयकों पावता है, अरु विचार कियेतें भय नष्ट हो जाता है; तैसे अविचार करके संसार दुःखकों देता है, औ सच्छास्त्र युक्तिकर विचार कियेतें संसारभय नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जहां विचार है, तहां दुःख नहीं है; जैसे जहां प्रकाश होता है, तहां अंधकार नहीं रहता है; जहां प्रकाश नहीं तहां अंधकार रहता है, तैसे जहां विचार है, तहां संसारभय नहीं है, अरु जहां विचार नहीं तहां संसारभय रहता है; अरु जहां आत्मविचार उत्पन्न होता है, तहां सुखको देनहारे शुभ गुण आय स्थित होते हैं; जैसे मानससरोवरमें कमलकी उत्पत्ति होती है, तैसे विचारमें शुभ गुणकी उत्पत्ति होती है; जहां विचार नहीं तहां दुःखका आगमन होता है ॥ हे रामजी ! जो कछु अविचारकर क्रिया करते हैं, सो दुःखका कारण होता है; जैसे चुहा बीलकों खोदके मृत्तिका निकासता है, सो जहां इकट्ठी होती है, तहां बेलीकी उत्पत्ति होती है, तैसे अविचारकर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पापक्रियाकों इकट्ठी करता है, तिसतें आपदारूपी बेली उत्पन्न होती है, अरु अविचाररूपी घुनाका खाया शूका वृक्ष है, तिसकों सुखरूपी फल चाहते हैं, तेउ नहीं निकसते हैं; सो विचार किसका नाम है ? जिस करके अशुभ क्रिया न होवै; अरु जिसकर शास्त्रानुसार क्रिया होवै, तिसका नाम विचार है॥ हे रामजी ! विवेकरूपी राजा है, अरु विचाररूपी ध्वजा है, जहां विवेकरूपी राजा आता है, तहां विचाररूपी ध्वजा तिसके साथ फिरती है; अरु जहां विचाररूपी ध्वजा आती है, तहां विवेकरूपी राजा भी आता है; जो पुरुष विचार करके संपन्न है, सो पूजने योग्य है, तिसकों सब कोउ नमस्कार करते हैं; जैसे द्वितीया

के चंद्रमाकों सब नमस्कार करते हैं, तैसे विचारवान्कों सब नमस्कार करते हैं॥ हे रामजी! हमारे देखत देखत अल्पबुद्धिहु विचारकी दृढतातें मोक्षपदकों प्राप्त भये हैं; तातें विचार सबका परम मित्र है; विचारवान् पुरुष अंतर्बाहिर शीतल रहत हैं; जैसे हिमालय पर्वत अंतर्बाहिर शीतल रहता है, तैसे उह भी शीतल रहता है॥ देख! विचार करके ऐसे पदकों प्राप्त होता है; जो पद नित्य है, अरु स्वच्छ है, अनंत है, परमानंदरूप है, तिसकों पायकर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं; औरके ग्रहणकी इच्छा नहीं होती है; उनकों इष्ट अनिष्ट विषय सब समान हैं; जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र समान रहता है, तैसे विवेकी पुरुषकों इष्ट अनिष्टविषे समता रहती है, अरु संसारभ्रम मिट जाता है; आधाराधेयतें रहित केवल अद्वैततत्त्व उसकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोहतें उपजता है, अरु अविचारकर दुःखदायि दिखता है, जैसे अविचार करके बालकों बैताल भासता है, तैसे इसकों जगत् भासता है; जब ब्रह्मविचारकी प्राप्ति होवै, तब जगतभ्रम नष्ट हो जावै॥ हे रामजी! जिसके हृदयमें विचार होता है, तहां समताकी उत्पत्ति होती है; जैसे बीजतें अंकुर निकस आता है, तैसे विचारतें समता होत आती है; अरु विचारवान् पुरुष जिसकी और देखता है, तिस और आनंद दृष्ट आता है; दुःख कोउ नहीं भासता है; जैसे सूर्यकों अंधकार दृष्ट नहीं आवता, तैसे विचारवान्कों दुःख दृष्टिमें नहीं आवता; जहां अविचार है तहां दुःख है; जहां विचार है तहां सुख है; जैसे अंधकारके अभाव हुवे बैतालके भयका अभाव हो जाता है; तैसे विचार कियेतें दुःखका अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! संसाररूपी दीर्घ रोग है तिसका नाश करनेका विचार बडा औषध है; जिसकों विचारकी प्राप्ति भई है, तिसके मुखकी कांति उज्ज्वल हो जाती है; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी उज्ज्वल कांति होती है, तैसी विचारवान्के मुखकी उज्ज्वल कांति होती है॥ हे रामजी! विचार करके इसकों परमपदकी प्राप्ति होती है; जिस करी अर्थ सिद्ध होवै तिसका नाम विचार है; अरु जि

सकरी अनर्थ सिद्ध होवै तिसका नाम अविचार है; अविचाररूपी मदिरा है; जो इसका पान करता है सो उन्मत्त हो जाता है, तिसतें शुभ विचार कोउ नहीं हो आवता; शास्त्रके अनुसार जो कछु क्रिया है, सो तातें नहीं होती; तातें अविचार करी अर्थ सिद्ध नहीं होता ॥ हे रामजी ! इच्छारूपी रोग है, सो विचाररूपी औषध करके निवृत्त होता है; जिस पुरुषनें विचारद्वारा परमार्थसत्ताका आश्रय लिया है, सो परम शांत हो जाता है; अरु हेयोपादेय बुद्धि तिसकी नहीं रहती; सब दृश्यकों साक्षीभूत होकर देखता है; अरु संसारके भाव अभाव विषे ज्यौंका त्यौं रहता है; अरु उदय अस्ततें रहित निःसंगरूप है; जैसे समुद्र जलकरी पूर्ण है, तैसे विचारवान् आत्मतत्त्वकरी पूर्ण है; जैसे अंधकूप विषे पऱ्या हुवा हस्तके बल करी निकसता है, तैसे संसाररूपी अंधकूपमें गिऱ्या हुवा विचारके आश्रय होकर विचारवान् पुरुष निकसनेकों समर्थ होता है ॥ हे रामजी ! राज्यकों जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होता है, तब उह विचार करके यत्न करते हैं; तब कष्ट निवृत्त हो जाता है, तातें तूं विचार कर देख जो किसीकों कष्ट प्राप्त होता है सो विचारतें मिटता है; तुम भी विचारका आश्रय करके सिद्धिकों प्राप्त होहु; सो विचार इसकर प्राप्त होता है, जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतकों श्रवण करै, पाठ करै, भले प्रकार विचारैगा, तब विचारकी दृढताकर आत्मतत्त्वकों प्राप्त होवैगा; जैसे प्रकाशकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचनकर तत्त्वज्ञान होता है; जैसे प्रकाशमें अंधकों पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है, तैसे गुरु अरु शास्त्रसों जो विचारतें शून्य होवै, तिसकों आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी ! जो विचाररूपी नेत्रकर संपन्न हैं, सोई देखते हैं; अरु विचाररूपी नेत्रतें जो रहित हैं, सो अंध हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार कर, जो मैं कवन हौं ? अरु यह जगत् क्या है ? अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुई है; अरु लीन कैसे होता है; इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार करके सत्यकों सत्य जान, अरु असत्यकों असत्य जान, जिसकों असत्य जान्या है, तिसका त्याग कर, अरु सत्यमें स्थित होवै इसीका नाम विचार है; इस

बिचार कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी ! विचाररूपी दिव्य दृष्टि जिसकों प्राप्त भई है, तिसकों सब पदार्थका ज्ञान होता है, विचारसों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसकों पायेतें परिपूर्ण होता है, फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है; जबलग प्रारब्धवेग होता है, तबलग शरीरकी चेष्टा होती है; जबलग अपनी इच्छा होवै, तबलग शरीरकी चेष्टा करै, बहुरि शरीरकों त्यागकर केवल शुद्धरूप हो जाता है, तातें हे रामजी ! ब्रह्मविचारका आश्रय करके संसारसमुद्रकों तर जा; जो कोउ रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता, जेता रुदन विचाररहित पुरुष करता है; जिसकों कष्ट प्राप्त होता है, सो भी एता रुदन नहीं करता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विचारतें शून्य हैं, तिनकों सब आपदा आय प्राप्त होती हैं; जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं, तैसे अविचारमें सब आपदा आय प्रवेश करती हैं ॥ हे रामजी ! कीचका कीट होना सो भला है, अरु गर्त्तका कंटक होना सो भी भला है, अरु आंधरे बिलमें सर्प होना सो भला है, परंतु विचारतें रहित होना सो तुच्छ है, जो पुरुष विचारतें रहित है, अरु भोगमें दौरता है, सो श्वान है ॥ हे रामजी ! विचारतें रहित पुरुष बडे कष्टकों पावता है, तातें एक क्षणहु विचारतें रहित नहीं रहना; विचारसों दृढ होकर निर्भय रहना; जो मैं कवन हौं, अरु दृश्य क्या है, ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माकों जानकर दृश्यका त्याग करना ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विचारवान् है, सो संसारभोगमें नहीं गिर जाता, अरु सत्यमेंई स्थित होता है, विचार जब स्थिर होता है, तब तिसतें तत्त्वज्ञान होता है; तब तत्त्वज्ञानतें विश्राम होता है, विश्रामतें चित्तका उपशम होता है, अरु चित्तके उपशमतें दुःख नाश होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे अविचार शत्रुके नाशकर्त्ता रामजी ! जिस पुरुषकों संतोष प्राप्त भया है, सो परम आनंदित हुवा है, अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसकों तृणकी नांई तुच्छ भासता है; हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान किये

तें नहीं होता है; औ जो आनंद त्रिलोकके राज्यकर नहीं होता, तैसा आनंद संतोषवान्कों होता है ॥ हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि है; अरु सो हृदयरूपी कमलकों सकुचाय देती है; औ जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है; जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलता करके सोहता है, तैसे संतोषवान्की कांति सुशोभित होती है ॥ हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्री है, अरु जो निर्धन है, औ सो संतोषवान् है, सो सबका ईश्वर है; संतोष तिसका नाम है; श्रवण करी जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करै अरु प्राप्त होई इष्ट अनिष्टमें राग दोष न धरै, इसका नाम संतोष है; संतोष सोई परमपद है; संतोषवान् पुरुष सदा आनंदरूप है, अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुवा है तिसकों और इच्छा कछु नहीं स्फुरती, अरु संतुष्टताकर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुवा है, जैसे सूर्यके उदय हुवे सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे संतोषवान् प्रफुल्लित हो जाता है, जो अप्राप्त वस्तु हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता; अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई है, तिसकों यथाशास्त्र क्रम करके ग्रहण करता है, तिसका नाम संतोषवान् है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होता है, तैसे संतोषवान्का हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होता है, अरु जो संतोषतें रहित है, तिसके हृदयरूपी बनमें सदा दुःख अरु चिंतारूपी फूल फल उत्पन्न होतेई हैं ॥ हे रामजी ! जाका चित्त संतोषतें रहित है, तिसकों नानाप्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे उपजती हैं; संतुष्टात्मा परम आनंदित है, तिसकों जगतके पदार्थमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसा आनंद संतोषवान्कों होता है, तैसा आनंद अष्टसिद्धिके ऐश्वर्यकरके भी नहीं होता अरु अमृतके पान कियेतें भी नहीं होता, संतोषवान् सदा शांतिरूप है, औ सदा निर्मल रहता है, इच्छारूपी धूर सर्वदा उडती थी सो संतोषरूपी वर्षा कर शांत हो गई है; तिस कारणतें संतोषवान् निर्मल है ॥ हे रामजी ! संतोषवान् पुरुष सबकों प्यारा लगता है, जैसे आंबका परिपक्व फल सुंदर होता है,

अरु सबकों प्यारा लगता है, तैसा संतोषवान् पुरुष सबकों प्यारा लगता है; अरु स्तुति करने योग्य है; जिस पुरुषकों संतोष प्राप्त भया है, तिसकों परम लाभ भया है ॥ हे रामजी ! जहां संतोष है, तहां इच्छा नहीं रहती है; अरु संतोषवान् भोगमें दीन होकर नहीं रहता; वह उदारात्मा है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहता है, जैसे मेघ पवनके आयेतें नष्ट हो जाता है, तैसे संतोषके आयेतें इच्छा नष्ट हो जाती है; अरु जो संतोषवान् पुरुष है, तिसकों देवता, ऋषीश्वर सब नमस्कार करते हैं, अरु धन्य धन्य कहते हैं ॥ हे रामजी ! जब इस संतोषकों धरैगा, तब परम शोभा पावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे संतोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अवर जेते कछु दानतीर्थादिक साधन हैं, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; साधुसंगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसंगरूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल आत्मज्ञान है, जिस पुरुषनें फूलकी इच्छा करी है, सो अनुभवरूपी फलकों पावता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष आत्मानंदतें रहित है, सो संतसंगकर आत्मानंदसों पूर्ण होत है; अरु अज्ञान करके जो मृत्युकों पावता है, सो संतके संगतें ज्ञान पायकर अमर होता है; अरु जो आपदाकरके दुःखी है, सो संतके संगकर संपदाकों पावता है; आपदारूपी कमलका नाश करनहारी सत्संगरूपी बरफकी वर्षा है; संतसंगसों कर आत्मबुद्धि प्राप्त होती है, तिसकर मृत्युतें रहित होता है; औ सब दुःखतें रहित होता है; अरु परमानंदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! संतकी संगतीकर इसके हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक जलता है, तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट हो जाता है; अरु बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त होता है; बहुरि किसी भोगपदार्थकी इच्छा नहीं रहती अरु बोधवान् होता है; तब सबतें उत्तम पदमें विराजता है; जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेतें वांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे संसारसमुद्रके पार उतारनहारे संतजन हैं; जैसे धीवर नौका करके पार लगता है, तैसे संतजन युक्ति करके संसारसमुद्रतें पार करते हैं, अरु मोहरूपी मेघका नाश करनहारा संतका संग पवन

हैं; जिनकों देहादिक अनात्मसों स्नेह नष्ट भया है, अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति हैं; तिसकर तृप्त भये हैं, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टतें जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समताभावमें स्थित रहे हैं, ऐसे संसारसमुद्रके पार उतारनेमें पुल जैसे, अरु आपदारूपी वेलीकों जडसमेत नाश करनहारे हैं॥ हे रामजी! संतजन प्रकाशरूप हैं; तिनके संगतें पदार्थकी प्राप्ति होती है, अरु जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रतें हीन हुए हैं, तिनकों पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती, जिन पुरुषनें सत्संगका त्याग किया है, सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी नांई जरेंगे; अरु जिन पुरुषनें सत्संग किया है, तिनकों नरकरूपी अग्निका नाश करनहारा सत्संगरूपी मेघ है ॥ हे रामजी! सत्संगरूपी गंगा है; जाने सत्संगरूपी गंगाका स्नान किया ताकों बहुरि तप, दान आदि साधनका प्रयोजन नहीं; उह सत्संग करके परम गतिकों प्राप्त होनेका है; तातें अवर सब उपाय त्यागकर सत्संगकों खोजना, जैसे निर्धन चिंतामणी आदिक धनकों खोजता है, तैसे मुमुक्षु सत्संगकों खोजता है; आध्यात्मिकादि तीन तापसों जलता है, तिसकों शीतल करनेहारा सत्संग है, जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है, तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है ॥ हे रामजी! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुहाडा है; सत्संग करके यह पुरुष अविनाशी पदकों प्राप्त होता है, जिस पदके पायेतें और पावनेकी इच्छा नहीं रहती; ऐसा सबतें उत्तम सत्संग है; जैसे सब अप्सरानतें लक्ष्मी उत्तम है, तैसे सत्संगकर्त्ता सवतें उत्तम है; तातें अपने कल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमकों योग्य है ॥ हे रामजी! यह जो चारों मोक्षके द्वारपाल हैं; सो तुझकों कहे; जा पुरुषनें इनके साथ प्रीति करी है, सो शीघ्र आत्मपदकों प्राप्त होवेंगे; औ जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षकों प्राप्त नहीं होते ॥ हे रामजी! इन चारोंमेंतें एकहु जहां आता है, तहां तीनों औरहु आय जाते हैं; जहां समुद्र रहता है, तहां सब नदी आय जाती हैं, तैसे जहां शम आता है, तहां संतोष, विचार, अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं; जहां साधुसंगम होता है, तहां सं

तोष, विचार, अरु शम ये तीनों आय जाते हैं; जहा कल्पवृक्ष रहता है, तहा सब पदार्थ आय स्थित होते हैं; अरु जहां संतोष आता है, तहां शम, विचार, सत्संग, ये तीनों आय जाते हैं; जैसे पूर्णमासीके चंद्रमामें गुणकला सब इकट्ठी हो जाती हैं, तैसे जहां संतोष आता है, तहा और तीनों आय जाते हैं; अरु जहां विचार आता है, तहां संतोष, उपशम अरु सत्संग ये आय रहते हैं; जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसों कर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है, तैसे जहां विचार होता है, तहां और भी तीनों आते हैं; तातें हे रामजी ! जहां चारों इकट्ठे होत हैं, तहां परम श्रेष्ठता जानना; औ हे रामजी ! चारों न होहीं, तौ एकका तौ अवश्य आश्रय करना; जब एक आवैगा तब चारों आय स्थित होवैंगा; मोक्षकी प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन हैं; और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं ॥ हे रामजी ! यह परम कल्याण कर्ता, सो इन चारोंकरि संपन्न है तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं, तातें दंतकों दंत लगाय इनका आश्रय करके मनकों वशी कर ले॥ हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वश होता है, अरु मनरूपी वनमें वासनारूपी नदी चलती है, तिसके शुभ अशुभ दो किनारे हैं; अरु पुरुषार्थ करना यह है, जो अशुभकी औरतें रोकके शुभकी और चलावना; जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवैगा, तब तूं परम पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! प्रथम तौ पुरुषार्थ करना नहीं है, जो अविचाररूपी ऊंचाईकों दूर करना; जब अविचाररूपी बेट दूर होवैगा, तब आपही प्रवाह चलैगा ॥ हे रामजी ! दृश्यकी और जो प्रवाह चलता है, सो बंधनका कारण है; जब आत्माकी और अंतर्मुख प्रवाह होवै, तब मोक्षका कारण होय जाय; आगे जो तेरी इच्छा होवै सो कर ॥

॥ श्लोकः ॥ संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम् ॥ विचारः परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखम् ॥ १ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगानिरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! यह मेरे वचन हैं, सो परम पावन हैं; जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी है, तिन

कों यह वचन परम बोधके कारण हैं; जो पुरुष शुद्ध पात्र हैं, सो यह वचनकों पायके सोहत हैं; आ वचनहु उनकों पायके शोभा पावते हैं, जैसे मेघके अभावतें शरत्कालमें चंद्रमा अरु आकाश सोहते हैं, तैसे शुद्ध पात्रमें यह वचन शोभते हैं; अरु जिज्ञासु निर्मल वचनका महिमा सुनके प्रसन्न होता है ॥ हे रामजी ! तुम परम पात्र हौ, अरु मेरे वचन परम उत्तम हैं; यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र है, सो आत्मबोधका परम कारण है; अरु परम पावन वाक्यकी सिद्धता है; अरु युक्तियुक्तार्थ वाक्य हैं; अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं; जिनके बहुत जन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं, तिनकों कल्पवृक्ष मिलता है, सो फलकर झुक पडता है; तब तिसकों यह शास्त्र श्रवण होता है; अरु नीचकों इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है, उसकी वृत्ति इनके श्रवणमें नहीं आती है; जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्यायशास्त्रके श्रवणमें होती है, अरु जो पापात्मा राजा है, तिसकी इच्छा नहीं होती ॥ हे रामजी ! तैसे पुण्यवान्‌की इच्छा श्रवणमें होती है; अरु अधमकी इच्छा नहीं होती; जो कोई मोक्षोपायक यह रामायणका अध्ययन करैगा, अथवा निष्काम संतके मुखतें श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदितें लेकर अंतपर्यंत एकत्रभाव होकर विचारैगा, तब तिसका संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके जाननेतें सर्पका भ्रम दूर हो जाता है, तैसे अद्वैतात्मा तत्त्वके जाननेतें तिसका संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा; सो इस मोक्षोपायक शास्त्रका बत्तीस सहस्र श्लोक हैं, अरु षट् प्रकरण हैं; प्रथम वैराग्यप्रकरण है, सो वैराग्यका परम कारण है ॥ हे रामजी ! मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता, परंतु बडी वर्षा होवै तब तहां वृक्ष होता है; तैसे अज्ञानीका हृदय मरुस्थलकी नांई है, तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नहीं होता, परंतु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवै, तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है; तिसके एक सहस्र पांचसों श्लोक हैं; तिसके अनंतर मुमुक्षुव्यवहारप्रकरण है, तिसमें परम निर्मल वचन हैं, तिसकरके मलीन मणि हुई ताका मार्जन कियेतें उज्ज्वल हो आती है, तैसे यह वचनतें ज्ञानीका हृदय निर्मल होता है; अरु विचा

रके बलतें आत्मपद पावनेकों समर्थ होता है; तिसके एक सहस्र श्लोक हैं, तिसके अनंतर उत्पत्तिप्रकरण है तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं; तिसमें बडी सुंदर कथा दृष्टांतसहित कही हैं, जिस विचारतें जगत्का सत्यताभाव मनतें चलायमान रहता है; अर्थ यह जो जगत्का अत्यंत अभाव जान परता है ॥ हे रामजी ! यह जगत्में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी, आदि स्वर्गलोक, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, आदि स्थावर जंगम भासता है, सो अज्ञान करके है; अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है; जैसे जेवरीमें सर्प होता है, अरु छीपमें रूपा होता है, अरु सूर्यके किरणमें जल दिखता है; आकाशमें तरुवर दिखता है; औ जैसे दूसरा चंद्रमा दिखता है; जैसे गंधर्व नगर भासते हैं; मनोराज्यकी सृष्टि भासती है; अरु संकल्पपूर होता है, अरु सुवर्णमें भूषण होता है; समुद्रमें तरंग होता है; आकाशमें नीलता दिखती है; जैसे नौकामें बैठेतें किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्ट आते हैं; अरु बादरके चलेतें चंद्रमा धावता दिखता है, औ स्तंभमें पूतली भासती है; भविष्यत् नगरतें आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासते हैं; तैसे सब जगत् आकाशरूप है; अज्ञान करके अर्थाकार भासता है; सो अज्ञान करके उत्पत्ति दिखती है, अरु ज्ञान करके लीन हो जाता है; जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति होती है, अरु जागेतें निवृत्ति हो जाती है, तैसे अविद्या करके जगत्की उत्पत्ति होती है; अरु सम्यक् ज्ञान करके निवृत्ति हो जाती है, सो अविद्या कछु वस्तुहु नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाशरूप है, सो शुद्ध है, अनंत है; परमानंदस्वरूप है, तिसमें न जगत् उपजता है, न लीन होता है; ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसमें जगत् ऐसा है जैसे भीतमें चित्र होता है; जैसे स्तंभमें पूतरियां होती हैं, अरु हुवे बिना भासती हैं; तैसे यह सृष्टि मनमें रही है, वास्तवतें कछु बनी नहीं, सब आकाशरूप है; जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है; तब नानाप्रकारका जगत् होयके भासता है; अरु जब निस्पंद होता है; तब जगत् मिट जाता है; इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति कही है; तिसके अनंतर स्थितिप्रकरण है; तिसमें जगत्की स्थिति कही है; जैसे इंद्र

का धनुष्य आकाशरूप है औ अविचार करके रंगसहित भासता है; जैसे सूर्यकी किरणमें जल भासता है, जैसे जेवरीमें सर्प भासता है, सो सब सम्यक् दृष्टि करके निवृत्त होता है; तैसे अज्ञान करके जगत्की प्रतीति होती है, सो मनोराज्य करके जगत् रची लेता है, सो कछु उत्पन्न हुवा नहीं है; तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है; जबलग मनोराज्य है, तबलग उह नगर होता है, जब मनोराज्यका अभाव हुवा, तब नगरका अभाव हो जाता है, जबलग अज्ञान होता है तबलग जगत्की उत्पत्ति होती है; जब संकल्पका लय हुवा, तब जगत्का अभाव हो जाता है; जैसे ब्रह्माके दश पुत्रकी सृष्टि संकल्प करके स्थित भई, तैसे यह जगत् भी है; कोउ पदार्थ अर्थरूप नहीं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कह्या है; तिसके तीन सहस्र श्लोक हैं तिसके विचार करके जगत्की सत्यता जात रहती है; तिसके अनंतर उपशमप्रकरण है; तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं; तिसके विचारतें अहंममत्वादिक वासना लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नतें जागेतें वासना जात रहती है, तैसे विचार कियेतें अहंतादिक वासना लीन हो जाती है; काहेतें जो उसके निश्चयमें जगत् नहीं रहता; जैसे एक पुरुष सोया है, तिसकों स्वप्नमें जगत् भासता है, औ उसके निकट जो जाग्रत पुरुष है तिसके स्वप्नका जगत् आकाशरूप है; जब आकाशरूप हुवा तब वासना कैसे रहै ? जब वासना नष्ट भई तब मनका उपशम हो जाता है, तब देखनेमात्र उसकी सब चेष्टा होती है, औ इसके मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती; जैसे अग्निकी मूर्त्ति देखनेमात्र होती है, अर्थाकार नहीं होती; तैसे उसकी चेष्टा होती है ॥ हे रामजी ! जब मनतें इच्छा नष्ट होती है, तब मन भी निर्वाण हो जाता है; जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है तैसे इच्छातें रहित मन निर्वाण होता है; इस प्रकार उपशम प्रकरण है; तिसके अनंतर निर्वाणप्रकरण है; जो शेष है तिसमें परम निर्वाण वचन कहे हैं; अज्ञान करके चित्त अरु चित्तका संबंध है; सो विचार कियेतें निर्वाण हो जाता है; जैसे शरत्कालमें मेघके अभावतें शुद्ध आकाश होता है, तैसे पुरुष विचार कर

के निर्मल होता है ॥ हे रामजी ! अहंकाररूपी पिशाच है, सो विचार करके नष्ट होता है; जेती कछु इच्छा स्फूर्ति है; सो निर्वाण हो जाती है, जैसे पथ्थरकी शिला स्फुरनेतें रहित होती है तैसे ज्ञानवान् इच्छातें रहित होता है; तब जेती कछु जगत्की यात्रा हैं, सो इसकों होय चुकती हैं, जो कछु करना है सो कर चुकता है ॥ हे रामजी ! शरीर होतहीं उह पुरुष अशरीरी हो जाता है, अरु नानाप्रकारका जगत् उसकों नहीं भासता; जगत्की नेततें वह रहित होता है; अहंममत्वादिक तमरूप जगत् तिसकों नहीं भासता है; जैसे सूर्यकों अंधकार दृष्ट नहीं आवता, तैसे उसकों जगत् दृष्टिमें नहीं आता, अरु बडे पदकों प्राप्त होता है; जैसे सुमेरु पर्वतके किसी कोनेमें कमल होता है तिसके पर भौंरे स्थित रहते हैं, तैसे ब्रह्मके किसी कोनेमें जगत् तुषारूप है अरु जीवरूपी भौंरे तिसपर स्थित हैं; उह पुरुष अचिंत्य चिन्मात्र है, रूप, अवलोकन, मन, तिसका आकाशरूप हो जाता है, तिस पदकों वह प्राप्त होता है, जिस पदकी उपमायोग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र कहनेकों समर्थ नहीं; ऐसे अनुपमताके सदृश कोउ नहीं है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे षट्प्रकरणविवरणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह परम उत्तम वाक्य है, उनकों विचारनहारा उत्तम पदकों प्राप्त होता है; जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीज बोयेतें उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है, तैसे इसकों विचारनहारा उत्तम पदकों प्राप्त होता है; यह वाक्य कैसे हैं, जो युक्तिपूर्वक वाक्य हैं; औ युक्तितें रहित वाक्य आर्ष भी होहीं, तौ तिनका त्याग करियें; औ युक्तिपूर्वक वाक्य अंगीकार करियें ॥ हे रामजी! जो ब्रह्माके वचन युक्तितें रहित होहीं, तब तिनका भी सूखे तृणकी नाई त्याग करियें; अरु बालकके वचन युक्तिपूर्वक होहीं, तौ तिनका अंगीकार करियें; औ पिताके कूपका खारा जल होवै; तौ उसका त्याग करियें; औ निकट मिष्ट जलका कूप होवै तब तिसका पान करियें; तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करियें, युक्तिपूर्वक वचनका अंगीकार करना ॥ हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक

हैं, अरु बोधके परम कारण हैं; जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदितें अंतपर्यंत पढै अथवा पंडितसों श्रवण करके बिचारै तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवै; प्रथम वैराग्यप्रकरणकों विचारैगा, तब वैराग्य उपजैगा; जेते कछु जगत्के रमणीय भोग पदार्थ हैं, तिनकों विरस जानैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न करैगा; जब भोगमें वैराग्य होता है, तब शांतिरूप आत्मतत्त्वमें प्रतीति होती है; जब विचार करके बुद्धि संस्कारित होवैगी, तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवैगा; औ संसारके विकाररहित बुद्धि निर्मल होवैगी, जैसे शरत्कालमें बादुरके अभाव हुएतें आकाश सब औरतें स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धि निर्मल होवैगी; बहुरि आधिव्याधिकी पीडा उसकों न होवैगी ॥ हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवैगा; त्यों त्यों शांतात्मा होवैगा, तातें जेते कछु संसारके यत्न हैं, तिनका त्याग करके इस शास्त्रकों वारंवार विचारेतें चैतन्यसत्ता उदय होवैगी त्यों त्यों लोभमोहादिक विकारकी सत्ता नष्ट होवैगी; जैसे ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है; तैसे विकार नष्ट होवैगा तब तिस पदकी प्राप्ति होवैगी; जिसके पाये संसारके क्षोभ मिट जावैंगे; जैसे शरत्कालमें मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषकों संसारके रागदोष वेधी नहीं शकते, जैसे जिस पुरुषनें कवच पहिऱ्या होवै तिसकों बाण वेधी नहीं शकते; उसकों भोगकी इच्छा नहीं रहती; जब विषयभोग विद्यमान् आय रहैं, तब तिनकों विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती; अर्थ जानकर बाहिर नहीं निकसती; अंतर आत्मामेंई स्थित रहती है; जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अंतःपुरतें बाहिर नहीं निकसती;तैसे ताकी बुद्धि अंतरतें बाहिर नहीं निकसती ॥ हे रामजी! बाहिरतें तो उह भी प्रकृतिजन्यकी नांई दृष्ट आते हैं; जो कछु अनिच्छित प्राप्त होते हैं, तिनकों भुगतता हुवा दृष्टिमें आता है; औ अंतरतें उसकों रागदोष नहीं फुरता ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत्की उत्पत्तिप्रलयका क्षोभ है, सो ज्ञानवान्कों नष्ट नहीं कर शकता, जैसे चित्रकी बेलीकों अंधी चलाय नहीं शकती, तैसे उसकों ज

गतका दुःख चलाय नहीं शकता; अरु संसारकी ओरतें जड हो जाता है; वृक्षकी नाई गंभीर हो जाता है, अरु पर्वतकी नांई स्थिर हो जाता है, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल हो जाता है ॥ हे रामजी ! सो आत्मज्ञान करके ऐसे पदकों प्राप्त होता है; जिसके पायेतें और कछु पावने योग्य नहीं रहता; आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है, जामें नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं; जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवै, अरु देखनेमें न आई होवै; तिसका न्याय देखनेमें होवै; तिसकों दृष्टांत कर विधिपूर्वक समुझावै उसका नाम दृष्टांत है॥ हे रामजी! यह जगत् कार्यकारणतें रहित है; अरु आत्मा जगत्की एकता कैसे होवै; तातें जो मैं दृष्टांत कहौंगा, तिसका एक अंश अंगीकार करना; सब देशकर अंगीकार नहीं करना ॥ हे रामजी ! कार्यकारणकी कल्पना मूर्खनें करी है, तिसकों निषेधने निमित्त मैं स्वप्नदृष्टांत कहौं हौं, सो समुझनेतें तेरे मनका संशय नष्ट हो जावैगा; दृग् अरु दृश्यका भेद मूर्खकों भासता है; तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्नदृष्टांत कहौंगा, तिसके विचारने करी मिथ्या विभागकल्पनाका अभाव होता है, हे रामजी ! ऐसी कल्पनाका नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है; जो पुरुष आदितें अंतपर्यंत विचारैगा सो संस्कारी होवैगा; जो पदपदार्थकों जाननहारा होवै, अरु दृश्यकों वारंवार विचारै तब तिसका दृश्यभ्रम नाश पावै, इस शास्त्रके विचार विषे अवर किसी तीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षा नहीं; जहां स्थान होवै तहां बैठे; जैसा भोजन गृहविषे होवै तैसा करै; अरु वारंवार इसका विचार करै तब अज्ञान नष्ट हो जावै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! यह शास्त्र प्रकाशरूप है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ नहीं दिखता; अरु दीपकके प्रकाशकर चक्षुसहित दिखता है; तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित होवै तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञान विचारविना वर अरु शाप करी प्राप्त नहीं होता; जब विचार करी दृढ अभ्यास करियें तब प्राप्त होता है; तातें मोक्ष उपाय जो परमपावन शास्त्र, तिसके विचारतें जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा; जगकों

देखते देखते जगत्भाव मिट जावैगा; जैसे सर्पकी मूर्त्ति लिखी होती है, अरु अविचार करके तिसतें भय पाता है; जब विचार करी देखिये तब सर्पभ्रम मिट जाता है, सो सर्पका आकार दृष्ट आता है, परंतु उसका भय मिट जाता है; तैसे यह जगत्भ्रम विचार कियेतें नष्ट हो जाता है, अरु जन्ममरणका भय नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जन्ममरणका भय भी बडा दुःख है, परंतु इस शास्त्रके विचारतें नष्ट हो जाता है; जिनहुनें इसका विचार त्याग्या है सो माताके गर्भविषे कीट होवैंगे अरु कष्टतें नहीं छुटेंगे अरु विचारवान् पुरुष आत्मपदकों प्राप्त होवैगा; अरु जो श्रेष्ठ ज्ञानी है; तिसकों सृष्टि अनंत हैं, तिसकों अपना रूप भासता है, कोउ पदार्थ आत्मातें भिन्न नहीं भासता; जैसे जिसकों जलका ज्ञान हुवा है; तिसकों लहरी, आवर्त्त सब जलरूपहीं भासता है, तैसे ज्ञानवान्कों सब आत्मरूप भासता है; अरु इंद्रियहुके इष्टअनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा दोष नहीं करता, सदा एकरस मनके संकल्पतें रहित शांतिरूप होता है; जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेतें क्षीर समुद्र शांतिकों प्राप्त भया, तैसे संकल्पविकल्परहित यह पुरुष शांतिरूप होता है ॥ हे रामजी ! अवर जो तेज होता है; सो दाहक होता है, परंतु ज्ञानरूपी तेज जिस घट विषे उदय होता है, सो शीतल शांतिरूप होता है, बहुरि तिस विषे संसारका विकार कोउ नहीं रहता; जैसे कलियुगविषे शिखावाला तारा उदय होता है, सो कलियुगके अभाव हुवे नहीं उदय होता; तैसे ज्ञानवान्के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता ॥ हे रामजी ! संसारभ्रम आत्माके प्रमाद करी उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्नविना शांत हो जाता है; फूल पत्र काटणेतें भी कछु यत्न होता है; परंतु आत्माके पावनेमें कछु यत्न नहीं होता; काहेतें जो बोधरूपी बोधही करके जानता है ॥ हे रामजी ! जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूप है, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है; आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है; अरु जगत् भ्रममात्र है; जो पूर्व अपर विचार कियेतें जिसकी सत्यता न पाइते तिसकों भ्रममात्र जानियें, अरु पूर्व अपर विचार कियेतें सत्य होवै तिसका रूप

जानियें; सो इस जगत्की सत्यता आदि अंतविषे नहीं है, तातें स्वप्नवत् है, जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछु है नहीं, तैसे जाग्रत् भी आदि अंतमें नहीं है; तातें जाग्रत् स्वप्न दोनों तुल्य हैं ॥ हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानता है; जो आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाइयें, सो स्वप्नवत् है, जो आदिमें भी न होवै अरु अंतमें भी न रहै, तिसकों मध्यमें भी असत्य जानियें; तिसविषे दृष्टांत कहे हैं; संकल्प पुरीवत् ध्यान नगरकी नांई, स्वप्नपुरीकी नांई, वर शाप करके जो उपजता है, तिसकी नांई औषधितें उपजकी नांई इस पदार्थकी सत्यता न आदि होती है; न अनंतर होती है; अरु मध्यमें जो भासता है; सो भी भ्रममात्र है, तैसे यह जगत् अकारण है; अरु कार्यकारणभावसंबंधमें भासता है, तौ कार्यकारण जगत् भया, अरु आत्मसत्ता अकारण है; जगत् साकार है, अरु आत्मा निराकार है, इस जगतका दृष्टांत जो आत्माविषे देऊंगा तिसका तुम एक अंश ग्रहण करना; जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलता है, काहेतें जो अकारण है; अरु मध्यभावका दृष्टांत नहीं मिलता, काहेतें जो उपमेय अकारण है; तौ तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवै? तातें अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना॥ हे रामजी! जो विचारवान् पुरुष हैं, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं॥ हे रामजी! तिनकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, काहेतें जो सारग्राहक होते हैं; अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते अरु वाद करते हैं, तिनकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती; तातें दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना, सर्व भाव करके दृष्टांतकों नहीं मिलावना अरु पृथक्कों देखी करी तर्क नहीं करना; एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना जैसे अंधकारमें पदार्थ पड्या होवै, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपकके साथ प्रयोजन है; औ ऐसे नहीं कहना जो दीपक किसका है, अरु तेल वाती कैसा है, अरु किस स्थानका है; दीपकका प्रकाशहीं अंगीकार करना; तैसे एक अं

श दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना॥ हे रामजी! जिस करी वाक् अर्थ सिद्ध होवै, सो वचन लेना, औ जिसकर वाक्यार्थ सिद्ध न होवै तिसका त्याग करना; जो वचन अनुभवकों प्रगट करै तिसका अंगीकार करना॥ जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनकों ग्रहण करता है, सोई श्रेष्ठ है; अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है, सो चोगचुंच है; उह अर्थकों सिद्ध नहीं करता; जो कोउ अभिमानकों ले करी कहता है, सो हस्तीकी नांई शिरपर माटी डारता है, तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता; अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनकों ग्रहण करता है, अरु विचारकरी तिसका अभ्यास करता है, तब उह आत्मशांतिकों पावता है॥ हे रामजी! आत्मपद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिता है; जब शम, विचार, संतोष, अरु संतसमागम करी बोधकी प्राप्ति होवै, तब परम पदकों पावता है॥ हे रामजी! जिसका दृष्टांत कहता है सो एक देश ले करी कहता है, सर्वमुख कहने करी अखंडताका अभाव होय जाता है; अरु जो सर्वमुख दृष्टांत मुख्यकों जानियें, सो सत्यरूप होता है; ऐसे तौ नहीं; आत्मा सत्यरूप है; कार्यकारणतें रहित शुद्ध चैतन्य है; तिसके जनावने निमित्त कार्यकारण जगत्का दृष्टांत कैसे दीजियें? यह जगतका जो दृष्टांत कहता है; सो एक अंश लेके कहता है; अरु बुद्धिमान् भी दृष्टांतके एक अंशकों ग्रहण करते हैं; जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने बोधके निमित्त सारकों ग्रहण करते हैं, अरु जिज्ञासुकों भी यही चाहिता है, जो अपने बोधके निमित्त सारकों ग्रहण करै, अरु वाद न करै; जैसे क्षुधार्थीकों चावलपाक आय प्राप्त होवै; तब भोजन करनेका प्रयोजन है, अरु उसकी उत्पत्ति अरु स्थितिका वाद करना व्यर्थ है॥ हे रामजी! वाक्य सोई है, जो अनुभवकों प्रगट करै; अरु जो अनुभवकों प्रगट न करै तिसका त्याग करना; जो स्त्रीका वाक्य होवै अरु आत्मअनुभवकों प्रत्यक्ष करै तिसका ग्रहण करना; अरु परमगुरु वेदवाक्य होवै औ अनुभवकों प्रगट न करै तिसका त्याग करना; जबलग विश्रामकों नहीं पाया, तबलग विचार कर्त्तव्य है, विश्रामका नाम तूर्यपद है; जब विश्रामकी प्राप्ति भई तब अक्षय शांति

होती है; जैसे मंदराचल पर्वतके क्षोभतें क्षीरसमुद्र शांत रह्या है, तैसे शांति होती है ॥ हे रामजी! तूर्यपदसंयुक्त पुरुष है, तिसका श्रुति स्मृति उक्त कर्महुके करने करी प्रयोजन सिद्ध कछु नहीं होता; अरु न करने करी कछु प्रत्यवाय नहीं होता; सदेह होवै भावै विदेह होवै; गृहस्थ होवै भावै विरक्त होवै; तिसकों कर्त्तव्य कछु नहीं, उह पुरुष संसारसमुद्रतें पारई हुवा है ॥ हे रामजी! उपमेयकों उपमा करी जानता है; सो एक अंशकों ग्रहण करी जानता है, तब बोधकी प्राप्ति होती है, अरु जो बोधतें रहित है, सो मुक्तिकों प्राप्त नहीं होता, उह व्यर्थ वाद करता है ॥ हे रामजी! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटविषे विराजमान् है, तिसकों त्यागकरी अवर विकल्प उठावता है, सो चोगचुंच है, अरु मूर्ख है ॥ हे रामजी! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है; अवर जो अनुमान, अर्थापत्ति; आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करी होती है; जैसे सब नदीका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब प्रमाणहुका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है सो प्रत्यक्ष क्या है, सो श्रवण करहु ॥ हे रामजी! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षु करके विद्यमान होता है, तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है; तिन प्रमाणहुकों विषय करनेहारा जीव है; अपने वास्तवस्वरूपके अज्ञानकरी अनात्मारूपी दृश्य बन्या है; तिसविषे अहंकृति करके अभिमान भया है, अभिमान सब दृश्य है, तातें हेयोपादेयबुद्धि भई है, अरु राग दोष करके पड्या जलता है; आपकों कर्त्ता मानी करी बहिर्मुख हुवा भटकता है ॥ हे रामजी! जब विचार करके संवेदन अंतर्मुखी होवै, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है; अरु निजभावकों प्राप्त होता है, परिच्छिन्न भाव नहीं रहता; शुद्ध शांतिकों प्राप्त नहीं होता ॥ जैसे स्वप्नतें जागेतें स्वप्नका शरीर अरु दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है; तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएतें सब भ्रम मिट जाता है; अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है, सो मिथ्या है; जो द्रष्टा है; सो दृश्य होता है; अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है; जैसे पवनमें

स्पंदशक्ति रहती है; तैसे आत्मामें संवेदन रहती है, जब संवेदन स्पंदरूप होती है, तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है; जैसे स्वप्नमें अनुभवसत्ता दृश्यरूप होयके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; तातें सब आत्मसत्ता है; ऐसे विचार करी आत्मपदकों प्राप्त होवहु; अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदकों प्राप्त न होय सकौ, तब अहंकार जो उल्लेख फुरता है; तिसका अभाव करौ; पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ता है; जब शुद्ध बोधकों तुम प्राप्त होहुगे, तब ऐसे चेष्टा पडी होवैगी; जैसे यंत्रीकी पुतली संवेदनविना चेष्टा करती है, तैसे देहरूपी पुतलीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है, तिस विना पडी रहैगी; परंतु अहंकृतका अभाव होवैगा; तातें यत्न करके तिस पद पावनेका अभ्यास करौ, जो नित्य शुद्ध शांतरूप है ॥ हे रामजी! अवर दैव शब्दकों त्याग करी अपना पुरुषार्थ करौ, अरु आत्मपदकों प्राप्त होहु; कोउ पुरुषार्थमें सूरमा है सो आत्मपदकों प्राप्त होता है; अरु जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करता है सो संसारसमुद्रमें डुबता है ॥

॥ इति श्रीयोग०मु०प्र० दृष्टांतप्र०नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

॥ वसिष्ठ उ० ॥ हे रामजी! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्ध बुद्धि करै तब आत्मपद पावनेकों समर्थ होवै; प्रथम सत्संग यह है, जिसकी चेष्टा शास्त्रहुके अनुसार होवै तिसका संग करै! तिसके गुणहुकों हृदयविषे धरै; बहुरि महापुरुषहुके शम, संतोष आदिक गुणहुका आश्रय करै; शमसंतोषादिक करी ज्ञान उपजता है, जैसे मेघहु करी अन्न उपजता है अरु अन्न करी जगत् होता है; अरु जगतहुतें मेघ होता है; तैसे शम संतोष भी हैं; शमादिक गुण अरु आत्मज्ञान परस्पर होता है; शमादिक गुण करी ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञान करी शमादिक गुण आय स्थित होते हैं, जैसे बडे ताल करी मेघ पुष्ट होता है; अरु मेघकर ताल पुष्ट होता है; तैसे शमादिक गुण करी आत्मज्ञान होता है, अरु आत्मज्ञानतें शमादि गुण पुष्ट होते हैं, ऐसा विचार करके शमसंतोषादिक गुणोंका अभ्यास करहु, तब शीघ्रही आत्मतत्त्वकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषकों शमा

दिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं; अरु जिज्ञासुकों अभ्यास करके प्राप्त होते हैं, अरु जैसे धान्यकी पालना स्त्री करती है, उंचे शब्द करती है, जिस करी पक्षीहुकों उडावती है; जब इस प्रकार पालना करती है, तब फलकों पावती है; तिसतें पुष्ट होती है; तैसे शम संतोषादिकके पालने करी आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्रकों आदितें ले करी अंतपर्यंत विचारै, तब भ्रांति निवृत्त होवै; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सर्व पुरुषार्थ कर सिद्ध होते हैं; परंतु यह मोक्ष उपायका शास्त्र परम कारण है; जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसकों विचरैगा, तिसकों शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी तातें इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भली प्रकार अभ्यास करौ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

॥ समाप्तमिदं श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम् ॥

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयं प्रारभ्यते ॥

अनुक्रमणिका–(उत्पत्ति प्रकरण).

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१	वोधहेतुवर्णन	१	२३	ली॰पाख्याने पुनराकाशगमन	३७	४५	दैवशब्दार्थविचार	७२
२	प्रथमसृष्टिवर्णन	२	२४	लीलोपाख्याने ब्रह्मांडवर्णन	३८	४६	वीजावतार	७३
३	वोधहेतुवर्णन	४	२५	ली॰गगननगरयुद्धप्रेक्षका॰	३९	४७	बीजांकुरवर्णन	७४
४	वोधहेतुवर्णन	५	२६	लीलोपाख्याने रणवर्णन	४०	४८	जीवविचार	७५
५	प्रयत्नोपदेशवर्णन	८	२७	लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णन	४०	४९	संश्रितउपशमयोग	७६
६	दृश्यासत्यप्रतिपादन	९	२८	लीलोपाख्याने स्मृतिअनुभव	४१	५०	सत्योपदेश	७७
७	सच्छास्त्रनिर्णय	११	२९	लीलोपाख्याने भ्रांतिविचार	४४	५१	विषूचिकाव्यवहार	८०
८	परमकारणवर्णन	११	३०	लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यता	४७	५२	सूचिशरीरलाभवर्णन	८१
९	परमात्मास्वरूपवर्णन	१३	३१	लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णन	४८	५३	राक्षसीविचार	८३
१०	परमार्थरूपवर्णन	१६	३२	ली॰पाख्याने अग्निदाहवर्णन	४९	५४	राक्षसीविचार	८४
११	जगदुत्पत्तिवर्णन	१७	३३	ली॰पाख्याने सत्यकामसंकल्प	५०	५५	राक्षसीप्रश्नवर्णन	८५
१२	स्वयंभूत्पत्तिवर्णन	१८	३४	लीलोपाख्याने विदूरथमारण	५१	५६	राक्षसीप्रश्नभेद	८६
१३	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	१९	३५	ली॰मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिमा	५३	५७	सूचिउपाख्यानेपरमार्थनिरूप॰	८९
१४	मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादन	२२	३६	ली॰पाख्याने मंडपाकाशगमन	५५	५८	राक्षसीसुहृदतावर्णन	९२
१५	विश्रांतिवर्णन	२९	३७	लीलोपाख्याने मृत्युविचार	५६	५९	सूचिउपाख्यानसमाप्ति	९४
१६	विज्ञानअभ्यासवर्णन	३०	३८	ली॰पाख्याने संसारभ्रमविचार	५९	६०	मनअंकुरउत्पत्ति	९५
१७	लीलाविज्ञानदेहाकाशसमाग॰	३२	३९	ली॰पाख्याने मरणानंतरावस्था	६१	६१	आदित्यसमागमन	९७
१८	लीलोपाख्याने आकाशगमन	३३	४०	ली॰स्वप्नपदार्थसत्वतानिर्णय	६३	६२	ऐंदवसमाधि	९८
१९	लीलोपाख्याने भूलोकगमन	३३	४१	लीलोपाख्याने जीवजीवनव॰	६५	६३	जगतरचनानिर्वाण	९९
२०	लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहे॰	३४	४२	लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णन	६७	६४	ऐंदवनिश्चय	१००
२१	लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णन	३५	४३	प्रयोजनवर्णन	६७	६५	कृत्रिमइंद्रवाक्य	१००
२२	लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णन	३६	४४	जगतकिंचनवर्णन	७०	६६	कृत्रिमइंद्राहल्यानुराग	१०२

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
६७	जीवक्रमोपदेश	१०२	७८	मननिर्वाणोपदेश	११६	८९	यथाकथितदोषपरिहार	१३३
६८	मनोमाहात्म्य	१०४	७९	चित्तमाहात्म्य	११८	९०	सुखदुःखभोक्तव्योपदेश	१३५
६९	वासनात्याग	१०५	८०	इंद्रजालोपाख्याने नृपमोह	११९	९१	सात्विकजन्मावतार	१३७
७०	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	१०६	८१	राजाप्रबोध	१२०	९२	अज्ञानभूमिकावर्णन	१३८
७१	कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादन	१०६	८२	चांडालीविवाह	१२१	९३	ज्ञानभूमिकोपदेश	१३९
७२	मनोसंज्ञाविचार	१०८	८३	इंद्रजालोपाख्याने उपद्रववर्णन	१२२	९४	युक्तोपदेशवर्णन	१४०
७३	चिदाकाशमाहात्म्य	११०	८४	संवरोपाख्यानसमाप्ति	१२३	९५	चांडालीशोचना	१४०
७४	चित्तोपाख्यान	१११	८५	चित्तवर्णन	१२४	९६	चित्ताभावप्रतिपादन	१४१
७५	चित्तोपाख्यानसमाप्ति	११२	८६	मनशक्तिरूपप्रतिपादन	१२७	९७	परमार्थनिरूपण	१४२
७६	चित्तचिकीत्सा	११४	८७	सुखेनोपदेशकथन	१२९			
७७	बालकाख्यायिका	११५	८८	अविद्यावर्णन	१३०			

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयं प्रारभ्यते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्म अरु ब्रह्मवेत्ता, इह सब शब्द ब्रह्मसत्ताके आश्रयतें स्फुरते हैं; मैं अरु तूं इदं सः इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ताके आश्रयतें स्फुरते हैं; जैसे स्वप्नविषे शब्द होते हैं, सो सब अनुभवसत्ताविषे होते हैं; तैसे इह भी जान अरु और जो तिसविषे विकल्प होते हैं; जो जगत् क्या है, अरु कैसे उत्पन्न हुवा है; अरु किसका है; इत्यादिक जो विकल्प हैं सो चोगचंचु है ॥ हे रामजी! इह सब जगत् ब्रह्मरूप है; इहां स्वप्नका दृष्टांत विचारि लेना; प्रथम मुमुक्षुप्रकरण मैं तुझकों कहा है, अब उत्पत्तिप्रकरण कहता हौं, कैसी उत्पत्ति है सो श्रवण कर, जो ज्ञान है, जो वस्तु है, जो स्वभाव है, जो क्रम है ॥ हे रामजी! बढता भी उहि पदार्थ है; जो उपजा होता है अरु घटता भी उही है; जो उपजा होता है अरु बंध अरु मोक्ष भी उही होता है; उत्तम भी उही होता है, नीच भी उही है जो उपजा होता है अरु जो उपजा न होवैगा तिसका न बढना है, न घटना है, न बंध होना है, न मोक्ष होना है, न उत्तम होना है, न नीच होना है ॥ हे रामजी! स्थावर जंगम जो कछु जगत् दिखता है, सो सब आकाशरूप है; द्रष्टाका जो दृश्य साथ संयोग है इसीका नाम बंधन है, तिस संयोगका निवृत्त होना, इसीका नाम मोक्ष है; सो तिस निवृत्तिका उपाय मैं कहता हौं ॥ देहरूपी जो जगत् है सो चिन्मात्ररूप है; और कछु उपजा नहीं अरु जो उपजा भासता है सो ऐसे है, जैसे सुषुप्तितें स्वप्न होता है तैसे जगत्की उत्पत्ति होती है; जैसे स्वप्नतें सुषुप्ति होती है तैसे जगत्का प्रलय होता है; जो प्रलयविषे शेष रहता है तिसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त इह रखता है ॥ नित्य सत्य ब्रह्म आत्मा सच्चिदानंद इत्यादिक जिसके नाम रखे हैं सो सबका अपना आपरूप है; चैतन्यता करिके तिसका नाम जीव हुआ है, अरु शब्दअर्थोंकों ग्रहण करने लगा है ॥ हे रामजी! शब्दअर्थोंकों जो ग्रहण करता है सो जीव है अरु चैतन्यविषे जो स्पंदता हुई है सो संकल्पविकल्परूपी मन होकरि स्थित हुवा है, तिसके संसरणे करिके देश

काल नदियां पर्वत स्थावर जंगमरूप जगत् हुआ है; जैसे सुषुप्तितें स्वप्न होवै तैसे जगत् हुआ है; तिसकों कोउ अविद्या कहते हैं, कोउ जगत् कहते हैं, कोउ माया कहते हैं, कोउ संकल्प कहते हैं, कोउ दृश्य कहते हैं, अरु वास्तवतें सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णतें भूषण होता है सो भूषण स्वर्णरूप है, स्वर्णतें इतर भूषण कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे कछु भेद नहीं अरु भेद तब होवै जो कछु जग उपजा होवै; जो उपजा ही न होवै तब भेद कैसे भासै! अरु जो भेद भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग भासते हैं तहां सूर्यकी किरणांही जलकी नांई भासतीयां हैं ॥ जलका नाम भी नहीं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चैतन्यके अणुअणु प्राति सृष्टियां हैं; अरु केसीयां हैं जो आभासरूप हैं, कछु उपजियां नहीं, सर्वदा अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे जन्म मरण अरु बंध मुक्त कैसे होवै? जेती कछु कल्पना बंध मुक्त आदिक भासती हैं सो वास्तविक कछु नहीं, आत्माके अज्ञानकरके भासती हैं ॥ हे रामजी! और जगत् कोउ नहीं उपजा, अपनी कल्पनांई जगतरूप होइ करि भासती है, अरु प्रमाद करिके सत् होइ रही है निवृत्त होना कठिन हो रहा है अनियत नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं; ऐसे वचनों करि तौ जगत् दूर नहीं होता ॥ हे रामजी! युक्त अर्थ वचनों विना दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता; जो तर्कों करिके, तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करिके जगत्भ्रमकों निवृत्त कीया चाहतें हैं सो मूर्ख हैं, इस प्रकारतें तो दृढ होता है जहां जावैगा तहां इसकों देश काल क्रिया नित्य पांचभौतिक सृष्टिही दृष्ट आवैगी; और कछु दृष्ट न आवैगा; तातें इसका नाश न होवैगा अरु जो जगततें उपरांत होई करी समाधि लगाइ बैठैगा, तब भी चिरकालतें उतरैगा, बहुरि जगतके शब्द अरु अर्थ इसकों भास आवैगा; जो बहुरि अनर्थरूप संसार भास्या तौ समाधिका क्या सुख हुआ? जबलग समाधिविषे रहैगा तबलग सुख रहैगा, तातें इनों उपायों करिके जगत् निवृत्त नहीं होता; जैसे कमलडोडेविषे बीज होता है; जबलग

उस बीजका नाश नहीं होता; तबलग बहुरि उत्पन्न होता है; जो वृक्षके पात तोडियें तौ भी बीजका नाश नहीं होता; तैसे तपदानादिकों करी जगत् नहीं निवृत्त होता, तबलग अज्ञानरूपी बीज नष्ट नहीं होता, जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होवैगा तब जगत्‌रूपी वृक्षका अभाव हो जावैगा; और जो उपाय हैं सो पतोंका तोडना है अरु और उपायोंकरि अक्षय पद नहीं प्राप्त होता, अरु अक्षय समाधि नहीं प्राप्त होती ॥ हे रामजी! ऐसी समाधि तौ किसीकों प्राप्त होत नहीं जो शिलाकी नांई हो जावै, मैं सब स्थान देख रह्या हौं अरु जो ऐसे भी होवे तौ भी संसारसत्ता निवृत्त न होवैगी, काहेतें जो अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं भया, इह समाधि ऐसी है जैसे जाग्रततें स्वप्न होता है अरु अज्ञानरूपी वासना करि सुषुप्तितें बहुरि जाग्रत आती है; तैसे अज्ञानरूपी वासना करिके समाधितें भी जाग आता है उसकों वासना खैंच ले आती है ॥ हे रामजी! तप समाधि आदिकोंकरि संसारभ्रम निवृत्त नहीं होता; जैसे काजी करिके क्षुधा किसीकी निवृत्त नहीं होती, तैसे तप समाधिकरि चित्तकी वृत्ति एकाग्र होती है, परंतु संसार निवृत्त नहीं होता; जबलग चित्त समाधिविषे लगा है तबलग सुख होता है; जब उठ्या तब बहुरि नानाप्रकारके शब्द अरु अर्थोंसंयुक्त संसार भासता है ॥ हे रामजी! अज्ञान करिके जगत् भासता है अरु विचार कियेतें निवृत्त होता है, जैसे बालककों अपने अज्ञानकरि परछायेविषे बैतालकल्पना होती है अरु ज्ञान करिके निवृत्त होती है, तैसे इह जगत् अविचार करिके भासता है; विचारतें निवृत्त होता है ॥ हे रामजी! वास्तवतें कछु जगत् उपजा नहीं असद्रूप है, जो कछु स्वरूपतें उपजा होता तब निवृत्त नहीं होता; तातें विचारकरि निवृत्त होता है, तातें जानीता है जो बन्या कछु नहीं; जो वस्तु सत्य होती है तिसकी निवृत्ति नहीं होती, अरु जो असत् है सो स्थिर नहीं रहती ॥ हे रामजी! सो सत् स्वरूप आत्मा है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु असत्‌रूप जो जगत् है सो स्थिर नहीं होता; इह जगत् आत्माविषे आभासरूप है, आरंभ अरु

परिणाम करि कछु उपजा नहीं ॥ जहां चैतन्य अनहोता है, तहा सृष्टि भी होती है; काहेतें जो आभासरूप है, आत्मारूप आदर्श है, तिसविषे अनंतसृष्टि प्रतिबिंबित होती हैं, अरु आदर्शविषे प्रतिबिंब भी तब होता है, जो दूसरा निकट होता है, अरु आत्माके निकट दूसरा कोउ नहीं, अरु प्रतिबिंब होता है; काहेतें जो आभासरूप है, एकही आत्मसत्ता चैतन्यता करिके द्वैतकी नांई होकरि भासती है, और कछु बन्या नहीं; जैसे फूलविषे सुगंध होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु अग्निविषे उष्णता होती है, अरु जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे मनोराज्यतें मनोराज्यकी सृष्टि भिन्न नहीं तैसे इह जगत् आत्मातें भिन्न कछु बन्या नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्र० बोधहेतुवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान है, सो श्रवणका भूषण है अरु बोधका कारण है, तिसकों श्रवण कर; आकाशज एक ब्राह्मण होत भया, सो कैसा ब्राह्मण है ? शुद्ध चिदंशतें तिसकी उत्पत्ति भई है, धर्मनिष्ठ है अरु सदा आत्मामें स्थित रहता है; अरु भली प्रकार प्रजाकी पालना करता है, सो चिरंजीवी है; तब मृत्युदेवता विचार करत भया, जो मैं अविनाशी हौं; अरु जीव जो उपजते हैं तिनकों मैं मारता हौं; परंतु इह जो ब्राह्मण है; तिसकों मैं नहीं भोजन करि सकता; मेरी शक्ति इस ब्राह्मणपरी कुंठित हो गई है; जैसे खड्गकी धारा पत्थरपर चलाई कुंठित होय जाती है ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करिके मृत्यु ब्राह्मणकों भोजन करनेके निमित्त उठ्या; तैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मकों नहीं त्याग करते, तैसे मृत्यु अपने कर्मोंकों विचार करि चल्या ॥ जब ब्राह्मणके गृहविषे मृत्यु प्रवेश किया; तब इसकों अग्नि जलावनेकों उडत भया; जैसे प्रलयकालविषे महातेजसंयुक्त अग्नि सर्व पदार्थोंकों जलावने लगता है, तैसे तब मृत्यु दौडके आगे गया; जहां ब्राह्मण बैठा था अंतःपुरविषे जाईकरि पकडने लगा; परंतु ब्राह्मणकों पकडी न शक्या, जैसे बडा बलवान् पुरुष भी औरके संकल्परूप पुरुषकों पकड नहीं शकता; तैसे मृत्यु ब्राह्मणकों पकड न श

क्या, तब मृत्यु बहुरि धर्मराजाके गृहमें आवत भया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! जो कोऊ उपजा है तिसकों मैं भोजन करता हौं; परंतु एक ब्राह्मण जो आकाशतें उपजा है; तिसकों मैं वश नहीं कर शकता इह क्या कारण है?॥ ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु! तूं किसीकों नहीं मार शकता; जो कोउ मरता है, सो अपने कर्मोंकरि मरता है, जो कोउ कर्मोंका कर्त्ता है, तिसके मारनेकों तूं समर्थ होवैगा; अरु जिसका कर्म कोउ नहीं, तिसके मारनेकों समर्थ न होवैगा; तातें जाइकरि ब्राह्मणके कर्म खोजो; जब कर्म पावैगा, तब उसकों मारनेकों समर्थ होवैगा; अन्यथा समर्थ न होवैगा ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार यमनें कहा तब कर्म खोजनेके निमित्त मृत्यु चल्या; कर्म नाम है वासनाका, उहां जाइके ब्राह्मणके कर्मोंकों ढुंढने लागा; दशों दिशा देखियां; ताल समुद्र बगीचे देखे, द्वीपतें द्वीपांतर देखे, इत्यादिक सब स्थान देखते फिरे, परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रतिमा कहुं न पाई ॥ हे रामजी! मृत्यु बडा बलवंत है; परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकों न पाया; तब मृत्यु बहुरि धर्मराजा पास गया; कैसा धर्मराजा है जो संपूर्ण संशयोंका नाश करता है, अरु सदा ज्ञानस्वरूप है; तिसकों मृत्यु कहत भया हे संशयोंका नाशकर्त्ता! ब्राह्मणके कर्म मुजकों कहू नहीं दृष्ट आवते; बहुत प्रकार ढुंढ रहा हौं; जो शरीरधारी है, सो सब कर्मसंयुक्त है; इसका जो कर्म कोउ नहीं है सो क्या कारण है?॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु! इस ब्राह्मणकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशतें हुई है; तहां न कोउ कारण था, जो पदार्थ कारणबिना है, सो जिसविषे भास्या है सो ईश्वररूप है ॥ हे मृत्यु! शुद्ध आकाशतें जो इसका होना हुआ है; तौ इह भी उहि रूप है; इह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है; अरु इसका चेतनही वपु है, इसका कर्म कोउ नहीं, न कोउ कर्म किया है, शुद्ध चिदाकाश इसका स्वरूप है, अपने स्वरूपतें आपही इसका होना हुवा है इस कारणतें इसका नाम स्वयंभू है, अरु सदा अपने आपविषे स्थित है; इसकों जगत् और कछु नहीं भासता, सदा अद्वैतरूप है ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे भगवन्! जो इह आकाशस्वरूप है, तौ सा

काररूप क्यों दृष्ट आता है ॥ ॥ यम उवाच ॥ हे मृत्यु! इह सदा निराकार चैतन्यवपु है, इसके साथ आकार कोउ नहीं, अरु अहंभाव भी कोउ इसके साथ नहीं, तातें इसका नाश कैसे होवै? अहं त्वं कोउ जानताही नहीं, जगत्का निश्चय भी इसकेविषे कोउ नहीं, इह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है, जिसके मनविषे पदार्थोंका सद्भाव होता है, तिसका नाश भी होता है; जिसकों जगत् भासताही नहीं, तिसका नाश कैसे होवै? हे मृत्यु! जो बडा बली भी कोउ होवै, अरु जंजीरसें भी होवै तौ भी आकाशकों बांध न शकैगा, तैसे ब्राह्मण आकाशरूप है, इसका नाश कैसे होवै; तातें इसके नाश करनेका उद्यम त्याग करु, और देहधारियोंकों जाई मारौ; इह तुमसों न मरैगा ॥ हे रामजी! ऐसे सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् होकरि अपने गृहविषे आया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह तौ हमारे बडे पितामह ब्रह्माकी वार्त्ता तुमनें कही है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वार्त्ता तौ ब्रह्माकी कही है परंतु मृत्यु अरु यमके विवादनिमित्त मैं तुझकों श्रवण कराई है, इस प्रकार जब बहुत काल व्यतीत हुआ, अरु कल्पका अंत पात हुवा, तब मृत्यु सर्व भूतोंकों भोजन करि लाया; बहुरि ब्रह्माकों भोजन करनेकों गया; जैसे किसीका कर्म होता है, अरु एकवार सिद्ध न भया, तौ छोड नहीं देता, बहुरि उद्यम करता है; तैसे मृत्यु भी ब्रह्माके सन्मुख गया; तब धर्मराजानें कहा ॥ हे मृत्यु! इह जो ब्रह्मा है, सो आकाशरूप है, अरु आकाशही इसका शरीर है, तौ आकाशके पकडनेकों तूं कैसे समर्थ होवैगा? ॥ इह तौ पंचभूतके शरीरतें रहित है, जैसे संकल्प पुरुष होता है, तौ उसका आकाशही वपु होता है, तैसे इह आकाशरूप है; अरु आदि अंत मध्यतें रहित है; अहं त्वंके उल्लेखतें रहित है, अचेत चिन्मात्र है, इसके मारनेकों तूं कैसे समर्थ होवैगा; अरु इह जो इसका वपु भासता है, सो ऐसे है, जैसे शिल्पीके मनविषे स्तंभकी पुतली होती है, सो कछु नहीं है, तैसे स्वरूपतें इतर इसका होना नहीं इह तौ ब्रह्मस्वरूप है, हमारे तुह्मारे मनविषे इसकी प्रतिमा हुई है, इह तौ निर्वपु

है, जो पुरुष देहवंत होता है; तिसकों ग्रहण करना सुगम होता है; अरु वंध्यापुत्रके ग्रहणकों श्रम होता है, काहेतें जो निर्वपु है, तैसे इह भी निर्वपु है, इसकों मारनेकी कल्पनाकों त्याग, और देहधारीयोंकों जाईके मार ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रथमसृष्टिवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मृत्युकों यमनें कह्या; ब्रह्माजी आकाशरूप है, अरु द्वैतकल्पनातें रहित है ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता सूक्ष्म है; जिसविषे आकाश भी पर्वतकी नांई स्थूल है; तिस चित्तविषे जो अहं अस्मि चैत्योन्मुखत्व हुवा है; तिसकरि अपने साथ देहकों देखत भया, सो देह भी आकाशरूप हे ॥ हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यका उल्लेख किसी कारण करिके नहीं हुवा, स्वतःस्वभावही ऐसे उल्लेख आय फुर्या है तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माकों सदा ब्रह्महीका निश्चय है; ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, फूल अरु गंधविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद नहीं, जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होकरि भासता है, तैसे आत्मसत्ता चैतन्यता करिके ब्रह्मा हो करिके भासती है, ब्रह्मा दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा चैतन्य आकाश है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतें रहित है ॥ हे रामजी ! न कोउ इसका कारण है, न कोउ कर्म है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहा जो पृथ्वी आदि तत्त्वोंतें रहित ब्रह्माजीका वपु है, अरु संकल्पमात्र है, तौ स्मृतिका संस्कार इसका कारण क्यों न होवै? जैसे हमकों स्मृति है, और जीवोंकों स्मृति है; तैसे ब्रह्माकों भी होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! संस्कार स्मृति उसीका कारण होती है, जो आगे भी देहवान् होता है, जो पदार्थ आगे देख्या होता है, तिसकी स्मृति संस्कारतें भी होती है, अरु जो देख्या नहीं होता, तिसकी स्मृति संस्कारतें भी नहीं होती, सो ब्रह्माजी अद्वैत है, अज है, आदि मध्य अंततें रहित है, इसकी स्मृति कारण कैसे होवै; इह तौ शुद्ध बोधरूप

है; सो आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप होय करि स्थित हुआ है, अपने आपतें जो इसका होना हुआ है, इसीतें इसीका नाम स्वयंभू है, शुद्ध बोधविषे चैत्य उल्लेख हुआ है, अर्थ इह जो चित्त चैतन्यस्वरूपकों नाम है अपने चित्तका संवित् कारण होवै, और दूसरा इसका कारण कोउ नहीं; सदा निराकार है; अरु संकल्परूप इसका शरीर है, औ पृथ्वी आदिक भूततें शुद्ध अंतवाहक इसका वपु है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु जीव हैं, तिनकों दो दो शरीर हैं, एक अंतवाहक शरीर है, दूसरा आधिभौतिक शरीर है, सो ब्रह्माका एकही अंतवाहक शरीर कैसे है? यह वार्त्ता स्पष्ट करि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो सकारणरूप जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, अरु ब्रह्माजी अकारण हैं; इस कारणतें उनका एक अंतवाहकही शरीर है ॥ हे रामजी! सुनौ, जीवोंका कारण ब्रह्मा है, इस कारणतें इह जीव दोनों देहोंकों धरते हैं; अरु ब्रह्माजीका कारण कोउ नहीं, अपने आपतें उपजा है; इसका नाम स्वयंभू है, अरु आदि जो इनका प्रादुर्भाव हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं भया, सदा अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित है, तातें अंतवाहक है, अरु दृश्यकों अपने संकल्पमात्र जानता है, अरु जिनकों दृश्यविषे दृढ प्रतीति हुई है, तिनकों अधिभूत कहते हैं, जैसे जडता करिके जलका बरफ होता है, तैसे दृश्यकी दृढता करिके आधिभौतिक होते हैं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तुझकों दृष्ट आता है, सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतोंतें नहीं हुआ, भ्रम करिके आधिभौतिक भासता है, जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है, किसी कारणसों नहीं उपजा, न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतें उपजा है, सब आकाशरूप है, अरु निद्रा दोष करिके आधिभौतिक होय करि भासता है, तैसे इह जाग्रत् जगत् भी अज्ञान करिके आधिभौतिक आकाश भासता है; जैसे स्वप्न अज्ञान करिके अर्थाकार भासता है, तैसे जगत् अज्ञान करि अर्थाकार भासता है॥ हे रामजी! इह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, और कछु बन्या नहीं, जैसे मनोराज्यके

पर्वत आकाशरूप होते हैं; तैसे इह जगत् आकाशरूप है, वास्तव कछु बन्या नहीं, सब संकल्पके पुरुष हैं, सब जगत् मनतें उपजा है, जैसे बीजतें देशकाल करिके अंकुर निकसता है, तैसे सब दृश्य मनतें उपजता है, सो मनरूपी ब्रह्मा है, अरु ब्रह्मादि मनरूप हैं; तिसके संकल्पविषे संपूर्ण जगत् स्थित हैं, सो सब आकाशरूप हैं, आधिभौतिक कोउ नहीं ॥ हे रामजी! आधिभौतिक जो आत्माविषे भासता है, सो भ्रांति मात्र है, जैसे बालककों परछैयामें बैताल भासता है, तैसे अज्ञानीकों आधिभौतिक भासता है, सो भ्रांति मात्र है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जेते कछु जीव हैं, सो सबही अंतवाहक हैं, परंतु अज्ञानीकों अंतवाहकता निवृत्त हो गई है, अरु आधिभौतिकता दृढ हो गई है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो अंतवाहकरूप हैं ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंकों प्रमाद नहीं हुआ, सो सदा आत्माविषे स्थित हैं, अंतवाहकरूप हैं, अरु सब जगत् आकाशरूप है, जैसे संकल्पपुरुष होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे इह जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलीयां शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलीयां स्तंभविषे हैं, सो पुतलीयां उपजी कछु नहीं, ज्योंका त्यों स्तंभ स्थित है, पुतलीका सद्भाव शिल्पीके मनविषे होता है, तैसे सब विश्व मनविषे स्थित है, स्वरूपतें कछु बन्या नहीं ॥ दृश्यही मनरूप है, अरु मन दृश्यरूप है, जैसे तरंगही जलरूप है, जलही तरंगरूप है ॥ हे रामजी! जबलग मनका सद्भाव है, तबलग दृश्यका बीज मन है, जैसे कमलडोडेका सद्भाव उसके बीजविषे होता है, तिसकरि कमलडोडेकी उत्पत्ति होती है, तैसे जगत्का बीज मन है, सब जगत् मनतें उत्पन्न होता है ॥ हे रामजी! जब तुझकों स्वप्न आता है, तब तेराही चित्त दृश्यकों चेतता जाता है, और तौ हुवा कारण कोउ नहीं, तैसे इह जगत् भी जानना; इह तेरे अनुभवकी वार्त्ता कही है, काहेतें जो नित्य तुझकों अनुभव होता है ॥ हे रामजी! मनही जगत्का कारण है, और कोऊ नहीं, जब मन उपशम होवैगा; तब दृश्यभ्रम मिट जावैगा, जबलग मन उपशम नहीं होता, तबलग दृश्य

भ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु जबलग दृश्य निवृत्त नहीं होता, तबलग शुद्ध बोध नहीं होता, जबलग शुद्ध बोध नहीं होता, तबलग आत्मानंद नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार मुनिशार्दूल वसिष्ठजी कहिकरि तूष्णीं भये, अरु सर्व श्रोता वसिष्ठजीके वचनोंकों श्रवण करिके तिनके अर्थविषे स्थित भये; इंद्रियोंकी चपलताकों त्यागिकरि वृत्तिकों स्थित करते भये, अरु तरंगोंके घुघर छिनकते थे, सो स्थिर हो गये, पिंजरोंविषे जो तोते थे, सो भी सुनिकरि तूष्णीं हो गये, अरु ललना जो चपल थीयां, सो तिस कालविषे अपनी चपलताको त्याग करत भइयां अरु वनके जो पशु पक्षी निकट थे, सो भी सुनिकरि तूष्णीं भये, मध्यान्हका समय हुआ, तब राजाकों बडे भृत्योनें आय कहा ॥ हे राजन्! अब स्नानसंध्याका समय हुआ है, उठिकरि स्नानसंध्या करौ, जब इस प्रकार बडे भृत्योनें कहा, तब वसिष्ठजी बोले ॥ हे राजन्! अब जो कछु कहना था, सो कहि रहे हैं, कालि कछु बहुरि कहैंगे; तब राजानें कहा, अस्तु, ऐसेही होवै, तब राजा उठिकरि अर्घ्यपाद्यनैवेद्य करि वसिष्ठजीका पूजन करत भये, और जो ब्रह्मर्षि थे तिनकी यथायोग्य पूजा करी, तब वसिष्ठजी उठ खडे हुए, परस्पर आपसमें नमस्कार किये, अरु अपने स्थानोंकों चले, आकाशचारी आकाशकों गये, पृथ्वीपर रहनेवाले ब्रह्मर्षि राजर्षि पृथ्वीपर गये, पातालवासी पातालकों गये अरु सूर्य भगवान् दिनरातकी कल्पनाकों त्यागी करि स्थिर हो रहे, अरु मंद मंद पवन चल्या सुगंधसहित मानों पवन भी कृतार्थ होने आया है, तब सूर्य अस्त हुआ, और ठौरकों प्रकाशने लगा, काहेतें जो संतजन सब ठौरकों प्रकाशते हैं, अरु रात्र हुई, तारागण प्रकट हो आए, बहुरि अमृतरूपी किरणकों धारे हुए चंद्रमा आय उदय हुआ, अंधकारका अभाव हो गया, अरु राजका द्वार भी चंद्रमाकी किरण साथ शीतल होय रहा, मानौ वसिष्ठजीके वचनोंकों सुनिकरि इनकी तप्तता मिटी गई है, अरु सब श्रोता विचारपूर्वक रात्रि

कों व्यतीत करत भये, जब सूर्यकी किरण निकसी तब अंधकार नष्ट हो गया, जैसे संतोंके वचनोंकरि अज्ञानीके हृदयका तम नष्ट होता है, तैसे अंधकार नष्ट हो गया, अरु सब जगत्की क्रिया प्रगट हो आई, तब सूर्यकी किरण साथ सब श्रोता स्नानसंध्याकों करिके आय स्थित भये, खेचर भूचर पातालके वासी सब अपने अपने स्थानोंविषे आय बैठे, परस्पर नमस्कार किये, तब पूर्वके प्रसंगकों पायकरि बोलत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसा जो मन है, संसाररूपी दुःखोंकी मंजरी जिसतें बढती है, तिस मनका रूप मुझकों कहौ जो क्या है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस मनका रूप कछु देखनेविषे नहीं आता, इह मन नाममात्र है, वास्तवरूप इसका कछु नहीं, आकाशकी नांई शून्य है, जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे मन शून्यरूप है ॥ हे रामजी! मन आत्माविषे कछु नहीं उपजा, जैसे सूर्यविषे तेज होता है तैसे आत्माविषे मन है, जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे जलविषे तरंग हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण हैं, तैसे आत्माविषे मन है; जैसे मरीचिका जल है जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे मन आत्माविषे कछु वास्तव नहीं ॥ हे रामजी! इह आश्चर्य है, जो वास्तवतें कछु उपजा नहीं, अरु आकाशकी नांई सब घटोंविषे वर्त्तता है, अरु संपूर्ण जगत् मन करिके भासता है, असद्रूपी जगत जिस करिके भासता है, तिसका नाम मन है ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध अद्वैत है, तिसातिषे द्वैतरूप जगत् जिसकरी भासता है, तिसका नाम मन है, अरु संकल्पविकल्प जो फुरता है, सो मनका रूप है, जहां जहां संकल्प फुरता है, तहां तहां मन है, जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं; तहां तहां जल है; तैसे जहां जहां संकल्प फुरता है, तहा तहा मन है, और भी मनके नाम हैं; स्मृति कहिये, अविद्या कहिये, मलीनता कहिये, तम कहिये, सब इसके नाम हैं, ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं ॥ हे रामजी! जेती कछु जगतजाल भासती है, सो सब मनतें उत्पन्न हुई है; अरु सब दृश्य मनरूप है, काहेतें जो मनका रचा हुआ है, वास्तव कछु नहीं ॥ हे

रामजी! मनरूपी जो देह है, तिसका नाम अंतवाहक शरीर है, सो संकल्परूप है, अरु सब जीवोंका आदि वपु है, तिस संकल्पविषे जो दृढ आभास हुआ है, तिसकरि आधिभौतिक भासने लागा है; अरु आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है॥ हे रामजी! इह जगत् सब संकल्परूप है, स्वरूपके प्रमाद करिके पिंडाकार भासता है; जैसे स्वप्नदेहका आकार आकाशरूप है, पृथ्वी आदि तत्त्वोंका अभाव होता है, परंतु अज्ञानकरिके आधिभौतिकता भासती है; सो मनहीका संसरना है; तैसे इह जगत् है; सब मनके फुरने करी भासता है॥ हे रामजी! जहां मन है, तहां दृश्य है, जहां दृश्य है, तहां मन है, जब मन नष्ट होवै तब दृश्य भी नष्ट होवै; शुद्ध बोधमात्रविषे जो दृश्य भासता है सोई मन है; जबलग दृश्य भासता है, तबलग मुक्त न होवैगा, जब दृश्यभ्रम नष्ट होवैगा; तब शुद्ध बोधकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! द्रष्टा दर्शन दृश्य इह जो त्रिपुटी भासती है, सो मनकरी भासती है, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी भासती है, जब जागिके उठा तब त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, अरु अपना आप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागे हुए अपना आप अद्वैतही भासता है, जबलग शुद्ध बोध नहीं प्राप्त भया, तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता, अरु बाह्य देखता है, तब सृष्टिही दृष्ट आती है, जब अंतर देखैगा तौ भी सृष्टि दृष्ट आती है, अरु तिसकों सत्य जानिकरि रागदोषकल्पना उठती है, अरु जब मन आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे जब वायुकी स्पंदता मिटी, तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिटी जाता है, तातें मनरूपी दृश्यहि बंधनका कारण है॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! इह दृश्यरूपी विषूचिका रोग है, तिसकी निवृत्ति कैसे होवै सो कृपा करिके कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! संसाररूपी बैताल जिसकों लगा है; तिसकी निवृत्ति अकस्मात करि होती है, प्रथम तौ विचार करिके जगतका स्वरूप जानैगा, तिसके अनंतर जब आत्मपदविषे विश्रांत होवैगा, तब तूं सर्व आत्मा होवैगा॥ हे रामजी! दृश्यभ्रम जो तुझकों भासता है,

तिसकों मैं उत्तर ग्रंथ करि निवृत्त करौंगा, इसविषे संदेह नहीं, श्रवण कर, इह दृश्य मनतें उपजा है, इसका सद्भाव मनविषे हुआ है, जैसे कमलके डोडेका जो उपजना है, सो कमलडोडेके बीजविषे है, तैसे संसारका उपजना स्मृतितें होता है, सो स्मृति अनुभव आकाशविषे होती है ॥ हे रामजी ! स्मृति तिस पदार्थकी होती है, जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है, अरु जेता कछु जगत् तुझकों भासता है सो संकल्परूप है, कोउ पदार्थ सद्रूप नहीं, जो वस्तु असद्रूप है, तिसकी स्थिरता नहीं होती, अरु जो सद्वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, जेता कछु प्रपंच भासता है, सो असद्रूप है, मनके चिंतनतें उत्पन्न हुआ है, जब मन फुरनेतें रहित होवै तब जगत्भ्रम निवृत्त होता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी पर्वत आदिक जगत् असद्रूप नहीं होता, तब मुक्त भी कोउ नहीं होता, मुक्त जो होना है सो दृश्यभ्रमतें होना है, जो दृश्यभ्रम मन नष्ट न होता, तौ मुक्त कोउ न होता, सो तौ ब्रह्मर्षि राजर्षि देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुए हैं; इस कारणतें कहता है, जो दृश्य असत्यरूप है, मनके संकल्पविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! एक मनकों स्थिर करि देख, बहुरि अहं त्वं आदिक जगत् तुझकों कछु न भासैगा; चित्तरूपी आदर्श है, तिसविषे संकल्परूपी दृश्य मलीनता है, जब मलीनता दूर होवैगी, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा ॥ हे रामजी ! इह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय भया है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे इह जगत् भी है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तरूपी आदर्शविषे इह दृश्य प्रतिबिंबित है, मुकुरविषे जो पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो आकाशरूप है, कछु पर्वतका सद्भाव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत्का सद्भाव नहीं, जैसे बालककों भ्रमकरि परछैयाविषे पिशाचबुद्धि होती है, तैसे अज्ञानीकों जगत् भासता है, वास्तवतें जगत् कछु नहीं ॥ हे रामजी ! न कछु मन उपजा है, न कछु जगत् उपजा है, दोनों असद्रूप हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे आकाश अपनी शून्यता करिके पूर्ण

है, जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित पूर्ण है; तिसविषे जगत्‌का अत्यंत अभाव है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह तुमारे वचन ऐसे हैं, जैसे कहिये वंध्याके पुत्रनें पर्वत चूर्ण किया है; अरु सशेके शृंग अति सुंदर हैं; अरु रेतविषे तेल निकसता है अरु पत्थरकी शिला नृत्य करत हैं; अरु जैसे कहियें मूर्त्तिका मेघ गरजता है अरु पत्थरकी पुतलियां गान करतियां हैं; तैसे तुमारे शब्द मुझकों भासते हैं, तुम कहते हौ दृश्य कछु उपजा नहीं, अरु हैही नहीं, अरु मुझकों जरा मृत्यु आदिक विकारोंसहित प्रत्यक्ष भासता है, तातें मेरे मनविषे तुमारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थित होता; अरु जो तुमारे निश्चयविषे इसी प्रकार है, तौ अपना निश्चय मुझकों भी बताओ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह जो हमारे वचन हैं, सो यथार्थ हैं, हमनें असत् कदाचित् नहीं कहा, तुम विचार करि देखौ, इह जो जगत् आडंबर है, सो कारणविना है, जब महाप्रलय होता है, तब पाछे शुद्ध चैतन्य संवित् रहता है, तिसविषे कार्यकारणकल्पना कोउ नहीं रहती है; तिसविषे जो बहुरि जगत् फुरता है सो कारणविना फुरता है; जैसे सुषुप्तितें स्वप्नसृष्टि फुरी आती है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है, तैसे इह सृष्टि भी अकारण है॥ हे रामजी! जिसका समवायिकारण अरु निमित्तकारण न होवै, अरु प्रत्यक्ष भासै तब जानियें जो भ्रांतिरूप है, जैसे नित्य स्वप्नका अनुभव तुझकों होता है तिसविषे नानाप्रकारके पदार्थ कार्यकारणसहित भासते हैं, अरु कारणविना हैं, तैसे इह जगत् भी कारणविना है; तातें आदि कारणविना जगत् उपजा है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे इह जगत् भासता है, कोउ पदार्थ सत् नहीं, जैसे स्वप्नविषे राज्यपति भासते हैं अरु नानाप्रकारके पदार्थ भी भासते हैं; सो किसी कारणतें तौ नहीं उपजे, सब आकाशरूप हैं; मनके संसरने करिके भासते हैं तैसे इह जगत् चित्तके संसरने करिके भासता है; जैसे स्वप्नतें और स्वप्न भासता है, बहुरि और स्वप्न भासता है, तैसे इह जगत् भासता है, तैसे

जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पना करि भासती है ॥ हे रामजी ! चलना, दौरना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय रागद्वेषादिक जो विकार हैं, सो सब मनके फुरने करि होते हैं, आत्माविषे विकार कोउ नहीं, जब मन उपशम होता है, तब सब कल्पना निवृत्त हो जाती हैं; तातें संसारका कारण मन है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! मनका रूप क्या है ? इह तौ मायामय है, इसका होना जिसतें है, सो कवन पद है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत्का अभाव होता है, पाछे जो शेष रहता है, सो सद्रूप है, अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, सदा प्रकाशरूप है, अरु परम देव है, शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है, अद्वैत है, जिसकों वाणी नहीं कहि सकती, सो पद जीवन्मुक्त पावता है ॥ हे रामजी ! आत्मआदिक जो शब्द हैं, सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं, स्वाभाविक कोउ शब्द नहीं प्रवर्त्तता, शिष्यको जनावने निमित्त शास्त्रकारोंनें एते नाम देवके कल्पे हैं; मुख्य तौ देवकों पुरुष करि कहते हैं, वेदांतवादी ब्रह्म करि कहते हैं, विज्ञानवादी बौद्ध तिसकों विज्ञान करिके कहते हैं, एक कहते हैं निर्मलरूप है, शून्यवादी कहते हैं शून्यही शेष रहता है, एक कहते हैं, प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाश करि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसकों वक्ता कहते हैं, जो आदिवेदका वक्ता उही है; अरु स्मृतिकर्ता कहते हैं, जो सब कछु स्मृति करिके उह करनेहारा है, सब कछु उसकी इच्छा करिके हुआ है; तातें सबका कर्ता है, सर्व आत्मा है, सर्वका कर्ता है ॥ हे रामजी ! इत्यादिक संज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंनें करी हैं, सर्वका जो अधिष्ठान है, सो परम देव है, अरु अस्ति आदि षट् विकारोंतें रहित है; शुद्ध चैतन्य है, सूर्यवत् प्रकाशरूप है, सो देव सब जगत्विषे पूर्ण हो रहा है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है, ब्रह्मा विष्णुरुद्रादिक तिसकी किरणा हैं, अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग बुद्बुद उत्पन्न होता है, अरु लीन होता है, अरु सर्व पदार्थ आ

त्माके प्रकाश करि प्रकाशते हैं, जैसे दीपक अपनेआप करि प्रकाशता है, अरु औरोंकों भी प्रकाश देता है, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है; सर्वकों सत्ता देनेहारा है ॥ हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है, सो आत्मसत्ताकरि उपजता है, आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है, अग्निविषे उष्णता तिसकी करी है; जलविषे द्रवता तिसकी करी है, पवनविषे स्पर्श तिसका किया है, सर्व पदार्थोंकी सत्ता उही है; मोरके पंखोंविषे जो रंग है; सो आत्मसत्ताकरि हुआ है, पत्थरमें मुंगे तिसीकरि हुए हैं; औ पत्थरविषे जो जडता है; सो तिसीकी करी है; स्थावर जंगम जगत्का अधिष्ठानरूप ब्रह्म है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणोंसों ब्रह्मांडरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होत हैं; सो कैसा चंद्रमा है; जो शीतलता अरु अमृतकरि पूर्ण है; ब्रह्मरूपी मेघ है, तिसतें जीवरूपी बुंदां स्रवतियां हैं, जैसे वीजलीका प्रकाश होता है, अरु छुप जाता है, तैसे जगत् प्रगट होता है, अरु छुप जाता है, सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है; सो नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूप है, सत्यअसत्यरूप पदार्थ सब आत्मसत्ता करिके होते हैं ॥ हे रामजी ! तिस देवकी सत्ता करिके जडपुर्यष्टक चैतन्य होय करि चेष्टा करती हैं, जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ता करिके लोहा चेष्टा करता है, तैसे चैतन्यरूपी चुंबक मणि करि देह चेष्टा करता है; सो आत्मचैतन्य नित्य है, सबका कर्ता आत्माही है, तिसका कर्त्ता और कोउ नहीं, सब साथ अभेदरूप है, समान सत्ता है, उदयअस्ततें रहित है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवकों साक्षात् करता है, तिसकी सब क्रिया नष्ट हो जाती हैं; अरु चिज्जडग्रंथी भेदी जाती है, केवल वोधरूप होते हैं, जब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है, तब मृत्युकों सन्मुख देखिकरि भी विव्हल नहीं होता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं, अरु कहुं दूर भी नहीं, अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! घटघटविषे देव हैं; अरु अज्ञानीकों दूर भासता है, सो स्नान दान तप आदि करिके नहीं प्राप्त होता, ज्ञातव्यही करि प्राप्त होता है, कर्तव्य करिके नहीं प्राप्त होता, जैसे मृगतृष्णा

की नदी भासती है, सो कर्तव्यता करि नहीं निवृत्त होती, ज्ञातव्य करिके निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्मज्ञान करि होती है ॥ हे रामजी! कर्तव्य भी सोई है, जो प्राप्त होनेका जो ज्ञातव्यरूप है, अर्थ यह जो ज्ञातव्य स्वरूपकी प्राप्ति होती है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस देवके जाननेतें पुरुष बहुरि जन्ममरणकों नहीं प्राप्त होता, सो कहां रहता है? अरु किस तप क्लेशकरि तिसकी प्राप्ति होती है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! किसी तपकरि देवकों नहीं प्राप्त होता, अपने पुरुषप्रयत्नकरि प्राप्त होता है, जेता कछु राग, द्वेष, तम, क्रोध, मत्सर, अभिमानसहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इस करि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती॥ हे रामजी! परम औषध तत्संग अरु सत्शास्त्रहुका विचार है, जिस करि दृश्यरूपी विषूचिका निवृत्त होती है, प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकों साथ अविरुद्ध होवै, अर्थ इह जो शास्त्रोंके अनुसार होवै, अरु भोगरूपी गरताविषे गिरै नहीं, संतोषसंयुक्त यथालाभसंतुष्ट होवै, अनिच्छित भोग प्राप्त होवै, अरु शास्त्र अविरुद्ध होवै तिसकों ग्रहण करै, अरु विरुद्ध होवै तिसका त्याग करै, दीन न होवै; ऐसा जो उदार आत्मा है, तिसकों शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है॥ हे रामजी! आत्मपद पावनेका कारण सत्संग अरु सत्शास्त्र है, संत कौन है, जिसकों सब लोक भला साधु कहतें हैं, अरु सत्शास्त्र सो है, जिसविषे ब्रह्मनिरूपण होवै; ऐसे संतोंका संग अरु सत्शास्त्रोंका विचार होवै; तब शीघ्रहीं आत्मपदकी प्राप्ति होती है, जब इह पुरुष श्रुतिविचारद्वारा अपने परम स्वभावविषे स्थित होता है, तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी इसकी दया चाहते हैं, कहते हैं, जो इह पुरुष परब्रह्म हुआ है॥ हे रामजी! संतोंका संग अरु सत्शास्त्रों का विचार इसकों निर्मल करता है, दृश्यरूप जो है मैल तिसका नाश करता है, जैसे निर्मल रेत करिके जलका मैल दूर होता है; अरु परम निर्मल होता है; तैसे इह पुरुष निर्मल होता है; अरु चैतन्य होता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रयत्नोपदेशो नाम पंचमः सर्गः॥ ५॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्!

दृश्यअसत्य.

इह देव जो तुम कहा, जिसके जानवेतें संसारबंधनतें मुक्त होता है; सो देव कहां स्थित है; अरु किस प्रकार तिसकों पावता है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह देव दूर नहीं, शरीरविषे स्थित है, नित्य चिन्मात्र है; सर्वविषे पूर्ण है, अरु सर्व विश्वतें रहित है, चंद्रमाकों मस्तकविषे धरनहारा जो सदाशिव है, सो चिन्मात्ररूप है; अरु कमलज ब्रह्मा भी चिन्मात्ररूप है; अरु कमलनाभ विष्णु भी चिन्मात्र है, इंद्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं, अरु सब जगत् चिन्मात्ररूप है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तौ अज्ञानी बालक भी कहते हैं; जो आत्मा चिन्मात्र है; यह तुमारे उपदेश करि क्या सिद्ध हुवा? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह विश्व जो चिन्मात्र तूं जानता है, इसके जाननेतें संसारसमुद्रकों नहीं लंघ सकता, इह चैतन्यका नाम संसार है; इह चैतन्य जीव है, पशु है, संसार नामरूप है, इसतें जरामरणरूप तरंग उत्पन्न होते हैं, काहेतें जो हेयरूप दुःख पावता है ॥ हे रामजी! चैतन्य होकरि जो चैत्यता है, सो अनर्थका कारण है, अरु चैत्यतें रहित चैतन्य है, सो परमात्मा है, तिस परमात्माकों जानिकरि मुक्ति होती है, तब चैत्यता मिटि जाती है ॥ हे रामजी! परमात्माके जाननेतें हृदयकी चिज्जडग्रंथि टूट पडती है, अर्थ इह जो अहं मम नष्ट हो जाता है, अरु सर्व संशय छेदे जाते हैं, सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब आगे दृश्य भासता है, सो स्पष्ट भासता है, इसके होते चित्तके रोकनेकों कैसे समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! दृश्यसंयोगी जो चैतन्य है, सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है, इस चेतनकों जो चैत्य कहते हैं; अर्थ इह चिदाभास जीव प्रकाशी सो पंडित भी मूर्ख है, इह तौ संसारी जीव है; इसके जाननेतें मुक्ति कैसे होवै; मुक्ति परमात्माके जाननेतें होती है; अरु सर्व दुःख नाश होते हैं, जैसे विष विषूचिका रोग उत्तम औषध करि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेतें मुक्त होता है ॥ राम उवाच ॥

हे भगवन्! परमात्माका क्या रूप है; जिसके जाननेतें मोहरूपी समुद्रकों तरता है?॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! देशतें देशांतरकों निमेषविषे दूर जो संवित् जाता है, तिसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है, सो परमात्माका रूप है, अरु जहां संसारका अत्यंत अभाव होता है; तिसके पाछे बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है॥ हे रामजी! जहां दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है; ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है, अरु जो अशून्य है, अरु शून्यकी नांई स्थित है; जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है; ऐसी अद्वैत सत्ता है; सो रूप परमात्माका है॥ हे रामजी! महाचेतनरूप बडे पर्वतकी नांई स्थित है; अरु अजड है; अरु जडकी नांई स्थित है; सो रूप परमात्माका है; सबके अंतर बाहिर स्थित है; अरु सबकों प्रकाशता है; सो परमात्माका रूप है॥ हे रामजी! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है; अरु जैसे आकाश शून्यरूप है; तैसे इह जगत् आत्मरूप है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! जो सर्व परमात्माही है; तब सो क्यों नहीं भासता? औ सब जगत् भासता है; इस जगत्का निर्वाण कैसे होवै?॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह जगत् भ्रम करिके उत्पन्न हुआ है; वास्तव कछु नहीं जैसे आकाशविषे नीलता भासती है; तैसे आत्माविषे जगत् भासता है; जब जगत्का अत्यंत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा; और किसी उपायकरी नहीं होवैगा; जब दृश्यका अत्यंत अभाव करैगा; तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा; अरु तुझकों परमार्थसत्ताही भासैगी॥ हे रामजी! चित्तरूपी जो आदर्श है; सो दृश्यके प्रतिबिंब विना कदाचित् नहीं रहता; जबलग दृश्यका अत्यंत अभाव नहीं होता तबलग परम बोधका साक्षात्कार नहीं होता॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! इह दृश्य जाल आडंबर मनविषे कैसे स्थित हुआ है; जैसे सरस्योंके दाणेविषे सुमेरुका आना आश्चर्य है; तैसे जगत्का आना मनविषे आश्चर्य है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! एक दिन तूं वेदधर्मकी प्रवृत्ति सकाम यज्ञयागादिक त्रिगुणतें रहित होकरि स्थित हो; सत्संगति अरु सत्शास्त्र

दृश्यअसत्य.

परायण हौ; तब एक क्षणविषे दृश्यरूपी मैल दूर करौंगा; जैसे सूर्यकी किरणां जाननेतें जलका अभाव हो जाता है; तैसे दृश्यभ्रम तेरा अभाव हो जावैगा; जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा भी शांत होवैगा; जब दोनोंका अभाव हुआ तब पाछे शुद्ध आत्मसत्ताही भासैगी ॥ हे रामजी ! जबलग द्रष्टा है; तबलग दृश्य है; अरु जबलग दृश्य है तबलग द्रष्टा है; जैसे एककी अपेक्षा करि दो होते हैं; दो हैं, तौ एक है; एक है, तब दो भी हैं; एक न होवै तब दो कहां होवैं तैसे एकके अभाव हुए दोनोंका अभाव होता है; द्रष्टाकी अपेक्षा करि दृश्य है; दृश्यकी अपेक्षा करिके द्रष्टा है; एकके अभाव करि दोनोंका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! अहंतातें आदि लेकरि जो दृश्य है; सो तेरे अर्थ कार्य दूर करौंगा, मार्जन कर देवौंगा; आत्मसत्तातें जो इतर दृश्यसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! अनात्माआदि ले करि जो दृश्य है; सोई मैल है; तिसतें रहित हुआ चित्तरूपी दर्पण निर्मल होवैगा; जो पदार्थ असत्य है; तिसका कदाचित् सत् नहीं होना; अरु जो पदार्थ सत् है; सो असत् कदाचित् नहीं होना; जो वास्तव सत् न होवै; तिसका मार्जन करना क्या बात है ? हे रामजी ! इह जगत् आदि उत्पन्न नहीं भया; जो कछु दृश्य भासता है; सो भ्रांतिमात्र है; सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है, जैसे सुवर्णतें भूषण होता है; सो सुवर्ण भूषणतें भिन्न नहीं ॥ जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन अर्थ मैं बहुत प्रकारकी युक्ति तुझकों विस्तार करिके कहौंगा, तिसकरी तुझकों अद्वैत सत्ताका भान होवैगा; इह जगत् जो तुझकों भासता है, सो किसी कारणद्वारा उपजा नहीं; जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है; तैसे इह जगत् कारणविना भासता है; जैसे मरुस्थलविषे जल नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं तैसे इह जगत् है नहीं; जो कछु देखता है, सो निरामय ब्रह्म है; इह जो कछु तुझकों कह्या है, सो वाणी मात्र नहीं कह्या; युक्तिपूर्वक कह्या है ॥ हे रामजी ! गुरोंकी कही युक्तिकों जो मूर्खताकरि त्याग करते हैं; तिनकों सिद्धांत नहीं प्राप्त होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृ

श्यासत्यप्रतिपादनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! उह युक्ति कवन है, अरु कैसे प्राप्त होती है; जिसके धारेतें पुरुष आत्मपदकों प्राप्त होता है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मिथ्याज्ञान विषूचिका जगत् नामकी बहुत कालकी दृढ हो रही है; सो विचाररूपी मंत्र करिके शांत होती है ॥ हे रामजी! बोधकी सिद्धताअर्थ तुझकों आख्यान कहता हौं तिसकों श्रवण करके तूं मुक्तात्मा होवैगा; अरु जो अर्ध प्रबुद्ध होईकरि तूं उठ जावैगा; तब तिर्यगादिक धर्मकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! जिस अर्थके पावनेकी इच्छा करता है; तिसके पावने अनुसार यत्न भी करै; तौ अवश्यमेव तिसकों पावता है, जो थकीकरि फिरै नहीं तातें सत्संगति अरु सत्शास्त्र परायण होवै; जब तूं इनके अर्थविषे दृढ अभ्यास करैगा; तब केतेक दिनोंविषे परमपदकों पावैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्र है? शास्त्रोंविषे श्रेष्ठ कौन है? जिसके जाननेतें शोक न रहै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महामते रामजी! आत्मबोधका जो कारण है; सो शास्त्रविषे परमशास्त्र महारामायण है; जिसविषे बडे इतिहास हैं; जिसकरि परमबोधकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! सर्व इतिहासका सार मैं तुझकों कहता हौं; जिसकों समजीकरि जीवन्मुक्त होवैगा; अरु जगत् न भासैगा ॥ जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नके पदार्थ भासते हैं; जो कछु सिद्धांत है; तिन सबका सिद्धांत इसविषे है; अरु जो इसविषे नहीं सो औरविषे भी नहीं, इसकों सर्व शास्त्र विज्ञानभंडार बुद्धिमान् जानते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसकों श्रवण करै, अरु नित्यही सुनिके विचारै, तौ उसकी बुद्धि उदार होवै; अरु परमबोधकों प्राप्त होवै; इसविषे संशय नहीं; अरु जिसकों इस शास्त्रविषे रुचि नहीं सो पापात्मा है; उसकों चाहिये जो प्रथम और शास्त्रकों विचारै; तिसके अनंतर इसकों विचारै; इसकों विचारिकरि जीवन्मुक्त होवै; जैसे उत्तम औषधिकरि रोग शीघ्रही निवृत्त होता है; तैसे इस शास्त्रके श्रवण अरु विचारनेकरि शीघ्रही अज्ञान नष्ट होवैगा; अरु आ

त्मपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! आत्मपदकी प्राप्ति वरशापकी नांई नहीं होती; जो वर देणेकरि आत्मज्ञान प्राप्त होवै, जब विचार अभ्यास करै; तब आत्मज्ञान प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! दान देणेकरि, तपस्या करि, वेदके पठणे करि भी आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; केवल आत्मविचारकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है; अरु संसारभ्रम नष्ट अन्यथा नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिर्णयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त आत्माविषे है; अरु प्राणोंकी चेष्टा भी आत्माकी ओर है; अरु परस्पर बोध भी आत्माका है; अरु कहता भी आत्माका है; अरु तोषवान् भी आत्माकरि है; रमता भी आत्माविषे है; ऐसा जो जाननिष्ठ जीवन्मुक्त है; सो बहुरि विदेहमुक्त होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जीवन्मुक्त अरु विदेहमुक्तका क्या लक्षण है? जो उसकी दृष्टिकों लेकरी मैं भी तैसेही करौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पुरुष सब जगत्का व्यवहार करता है अरु हृदयमें द्वैतभ्रम शांत भया है; सो जीवन्मुक्त है, अरु जो सब क्रियाकों करता है; अंतरतें आकाशकी नांई निर्लेप रहता है; सो जीवन्मुक्त है; जो पुरुष संसारकी दशातें सुषुप्त भया है; अरु स्वस्वरूपविषे जगत भया है; जगतभ्रम जिसका निवृत्त भया है; सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! इष्टकी प्राप्तिविषे जिसके मुखकी कांति बढती नहीं; अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे न्यून नहीं होती; सो पुरुष जीवन्मुक्त है, औ जो पुरुष सब व्यवहार करता है; अरु अंतरमें रागद्वेषतें रहित शीतल रहता है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषादिकसंयुक्त दृष्ट आवता है; इष्टविषे रागवान् दिखता है; अनिष्टविषे द्वेषवान् दृष्ट आवता है; अरु अंतर सदा शांतिरूप है; सो जीवन्मुक्त है; जिस पुरुषकों अहं ममता अभाव है, अरु बुद्धि किसीविषे लेपायमान नहीं होती सो कर्म करै अथवा न करै परंतु जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों मान, अपमान, भय क्रोधविषे विकार कोउ नहीं उपजता, आकाशकी नांई शू

न्य हो गये हैं; सो जीवन्मुक्त हैं, जो पुरुष भोक्ता भी अंतरतें अभोक्ताहै; सचित दृष्ट आवता है, अरु अचित है सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषतें लोक उद्वेगवान् नहीं होता, अरु लोकोंतें उह उद्वेगवान् नहीं होता ॥ रागद्वेषभयक्रोधतें रहित है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष चित्तके फुरणेंकरि जगत्की उत्पत्ति जानता है, अरु चित्तके अफुरण हुए जगत्का प्रलय जानता है, अरु सर्वविषे समबुद्ध है, सो जीवन्मुक्त है; जो पुरुष भोगों करिके जीवता दृष्टि आता है, अरु मृतककी नांई स्थित है; चेष्टा करता दृष्ट आता है, पर्वतकी नांई अचल है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी !जो पुरुष व्यवहार करता दृष्ट आवता है, अरु चित्तविषे इष्ट अनिष्ट विकार कोउ नहीं सो जीवन्मुक्त है; जिस पुरुषकों सब जगत् आकाशरूप भया है ॥ अरु निर्वासना बुद्धि भई, सो जीवन्मुक्त है, काहेतें जो सदा आत्मस्वभावविषे स्थित है, सब जगत्कों ब्रह्मस्वरूप जानता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जीवन्मुक्तकी तुमने कठिन गति कही है, इष्ट अनिष्टविषे समशीतल बुद्धि कैसे होती है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानीकों भासता है, ज्ञानीकों सब आकाशरूप भासता है; राग द्वेष किसीविषे नहीं होता; औरकी दृष्टिविषे चेष्टा करता दृष्ट आता है, परंतु जगत्की वार्त्तातें सुषुप्त भया है ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त कोउ काल रहिकरि जब शरीरकों त्यागता है, तब ब्रह्मपदकों प्राप्त होता है, जैसे पवन स्पंदकों त्याग करि निस्पंद होता है, तैसे जीवन्मुक्त पदकों त्याग करि विदेहमुक्त होता है, तब ऐसे होईकरि स्थित होता है; सूर्य होईकरि तपावता उही है, ब्रह्मा होईकरि उत्पन्न करता है; विष्णु होईकरि प्रतिपालना करता है, रुद्र होयके संहार करता है, पृथ्वी होयके सब भूतोंकों धारता है, औषधिअन्नादिकोंकों उत्पन्न करता है; पर्वत होयके पृथ्वीकों राखता है, जल होयके द्रवता रस देता है; अग्नि होयके उष्णताकों धारता है; पवन होयके पदार्थोंकों सुकावता है, चंद्रमा होयके औषधियोंकों पुष्ट करता है; आकाश होयके सब पदार्थोंकों ठौर देता है; मेघ होयके

परमकारण.

वर्षा करता है, स्थावर जंगम जेता कच्छु जगत् है, सर्वविषे आत्मा होयके स्थित होता है॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! विदेहमुक्त शरीरके धारणतें क्षोभवान् होता है; फेर जगतविषे आवता है, त्रिलोकीका भ्रम क्यों नहीं मिटता?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जगत् आडंबर अज्ञानीके हृदयमें स्थित है, ज्ञानवान्कों सब चिदाकाशरूप है, विदेहमुक्त सोई रूप होता है, जहां उदय अस्तकी कल्पना कोउ नहीं, केवल शुद्ध बोधमात्र है॥ हे रामजी! इह जगत् आदितें उपजा नहीं, अज्ञानकरिके भासता है; मैं तूं अरु जगत् सब आकाशरूप है, जैसै आकाशमें नीलता औ दूसरा चंद्रमा भासते हैं, जैसे मरुस्थलमें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है॥ हे रामजी! जैसे स्वर्णमें भूषण उपजा कच्छु नहीं; जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं; तैसे आत्मामें जगत् उपजा नहीं; जेता कच्छु जगत्जाल है, सो मनके फुरनेतें भासता है, स्वरूपतें बन्या कच्छु नहीं, ज्ञानीकों सदा यही निश्चय रहता है; बहुरि जगत्क्षोभ उसकों कैसे भासै॥ हे रामजी! इह भी मैं तेरे जनावनेके मात्र कहा है; नहीं तौ जगत् कहां है, जगत्का अत्यंत अभाव है॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जगत्के अत्यंत अभाव हुएबिना आत्मबोधकी प्राप्ति नहीं होती!॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! दृश्य द्रष्टा मिथ्याभ्रम उदय हुआ है, जब दोनोंमेंतें एकका अभाव होवै, तब दोनोंका अभाव होवै॥ जब दोनोंका अभाव होवै तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहै; जिस प्रकार जगत्का अत्यंत अभाव होवै सो युक्ति तुझकों कहौं हौं॥ हे रामजी! चिरकालका जगत् दृढ हो रहा है सो मिथ्याज्ञान विषूचिका है, सो विचाररूपी मंत्रसों निवृत्त होता है, जैसे पर्वतपर चढना अरु उतरना शनैःशनैः होता है, तैसे अविरुद्धकभ्रम चिरकालका दृढ हो रहा है, विचारकरि अनुक्रमतें तिसकी निवृत्ति होती है॥ जगत्के अत्यंत अभाव हुएविना आत्मबोध नहीं होता; सो अत्यंत अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हौं; तिसके समझनेतें जगत्भ्रम नष्ट होवैगा; अरु जीवन्मुक्त हो करि तूं बिचरैगा॥ हे रामजी! बंधन करि सोई बंधता है; जो उपजा होता है,

अरु मुक्त भी सो होता है; जो उपजा होता है, इह जगत् तुझकों भासता है, सो उपजा नहीं अरु मरुस्थलविषे नदी भासती है; सो उपजी नहीं, भ्रमसें भासती है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है, सो उपजा नहीं, भ्रमकरिके भासता है; वास्तव नहीं, जैसे अर्धमीलितनेत्र पुरुषकों आकाशविषे तिरवरे भासते हैं, तैसे भ्रमकरिके जगत् भासता है॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है; तब स्थावर, जंगम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है; ताके अनंतर जो रहता है, सो इंद्रियग्राहक सत्ता नहीं, असत्य भी नहीं, न शून्य है, न प्रकाश है, न अंधकार है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न केवल है, न अकेवल है, न चेतन है, न जड है, न ज्ञान है, न अज्ञान है, न साकार है, न निराकार है, न किंचन है, न अकिंचन है, सर्व शब्दोंतें रहित है; तिसविषे वाणीकी गम नहीं॥ अरु जो है तो चैत्यतें रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्रही जिसविषे अहं त्वंकी कल्पना कोउ नहीं, ऐसे शेष रहता है; पूर्ण अपूर्ण आदिमध्यअंततें रहित है; सोई सत्ता जगत्रूप होय भासती है; और कछु जगत् बन्या नहीं; जैसे मरीचिकामें जल भासता है; तैसे आत्मामें जगत् भासता है॥ हे रामजी! जब चित्त शक्ति स्पंदरूप हो भासती है तब जगदाकार भासता है! अरु जब निस्पंद होती है, तब जगत्का अभाव होता है; अरु आत्मसत्ता सदा एकरस रहती है; जैसे वायु स्पंदरूप होता है, तब भासता है, निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, परंतु वायु एकही है, तैसे चित्त संवेदन स्पंदरूप होता है; तब जगत्रूप होय भासता है; जब निस्पंदरूप होता है, तब जगत् मिट जाता है॥ हे रामजी! चेतनका जानना भी तब होता है, जब संवेदन स्पंदरूप होता है, जैसे सुगंधिका ग्रहण आधारभूतकरि होता है, आधारभूत द्रव्यविना सुगंधिका ग्रहण नहीं होता; अरु वस्त्र श्वेत होता है; तब रंगकों ग्रहण करता है; अन्यथा रंग नहीं चडता; तैसे आत्माका जानना स्पंदकरि होता है, स्पंदविना जानवेकी कल्पना भी नहीं होती; जैसे आकाशमें शून्यता भासती है; जैसे अग्निमें उष्णता भासती है; तैसे

आत्मामें जगत् भासता है, अनन्यरूप है; जैसे जल द्रवतासों तरंगरूप होयके भासता है; तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप होयके भासती है, सो आकाशवत् शुद्ध है; अरु श्रवण चक्षु नासिका त्वचा देहतें रहित है; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधतें रहित है; अरु सर्व औरतें श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता, रस लेता भी आपही है; आत्मरूपी सूर्यकी किरणांविषे जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है, जैसे जलमें चक्र आवृत फुरते भासते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं; जलरूपही हैं, तैसे जगत् आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मारूप है॥ आत्माही जगत्रूप होकरि भासता है; रसना नहीं अरु बोलता है; अभोक्ता है सोई भोक्ता होयके भासता है; अफुर है सोई फुरता भासता है; अद्वैत है सोई द्वैतरूप होईकरि भासता है; निराकार है सोई साकार रूप होयके भासता है॥ हे रामजी! सर्व शब्दतें आत्मसत्ता अतीत है; सोई सर्व शब्दोंकों धारती है; अन्य द्रष्टा होयके भासतियां हैं, परंतु इतर कछु हुआ नहीं, केई सृष्टि समान होतियां हैं, केई विलक्षण होतियां हैं, परंतु स्वरूपतें इतर कछु हुई नहीं, सदा आत्मरूप हैं; जैसे सुवर्णमें भूषण समान आकार भी होते हैं; अरु विलक्षण आकार भी होते हैं; कंकणतें आदिलेके जो भूषण हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं होते, स्वर्णरूप ही हैं; तैसे जगत् आत्मस्वरूप है, शुद्ध आकाशतें भी निर्मल है, बोधमात्र है॥ हे रामजी! जब तिसमें तूं स्थित होवैगा, तब जगत्भ्रम मिट जावैगा, जगत् वास्तवतें कछु नहीं, सदा ज्यौंका त्यौं आपविषे स्थित है; मनके फुरणेकरि जगत् भासता है; मनके फुरणेतें रहित हुए सब कल्पना मिटि जाती है; आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं भासती है; सो सत्ता ज्यौंकी त्यौंही है, सबका अधिष्ठानरूप है, इह जगत् सब उसीतें हुआ है, अरु उहीरूप है; सबका कारण आत्मसत्ता है, उसका कारण कोऊ नहीं, अकारण है, काहेतें जो अद्वैत है, सो अजर है, अमर है; सब कल्पनातें रहित है; शुद्ध चिन्मात्ररूप है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! जब म

हाप्रलय होता है, अरु सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं अरु तिसके पाछे जो रहता है, सो शून्य कहिये अथवा प्रकाश कहिये; तम है नहीं, चेतन है; अथवा जीव है; मन है नहीं, बुद्धि है; सत् असत् किंचन अकिंचन इनहुमें कोउ तौ होवैगा? तुम कैसे कहते हौ जो वाणीकी गम नहीं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह तुझनें बडा प्रश्न किया है; तिसकों विना यत्न मैं नाश करौंगा; जैसे सूर्य उदय हुए अंधकार नष्ट होता है; तैसे तेरे संशयका नाश होवैगा ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है; तब संपूर्ण दृश्यका अभाव हो जाता है, पाछे जो शेष रहता है सो शून्य नहीं, अरु दृश्याभास उसविषे सदा रहता है; अरु वस्तुतें कछु हुआ नहीं; जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियांकों कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभसों निकसैंगी; सो उसविषे शिल्पी कल्पता है; उहां तौ स्तंभही है; जो स्तंभ न होवे तौ शिल्पी पुतलियां किसविषे कल्पै? तैसे आत्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी जगत्रूपी पुतलियां कल्पता है, जो आत्मा न होवे, तब पुतलियां किसविषे कल्पै? जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप हैं; तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर जगत्का होना नहीं, जैसे पुतलियोंका सद्भाव अरु असद्भाव स्तंभविषे है; काहेतें जो अधिष्ठानरूप स्तंभ है; स्तंभविना पुतलियां नहीं होतियां; तैसे जगत् आत्माविना नहीं होता ॥ हे रामजी! सद्भाव हो जाता है; सो सत्तें होता है; असत्तें नहीं होता, अरु असद्भाव भी सिद्ध होता है, सो सत्हीविषे होता है; असत्विषे नहीं होता; तातें सत् शून्य नहीं, जो शून्य होवे तौ भासना किसविषे होवे? जैसे सोमजलमें तरंगका सद्भाव भी होता है, अरु असद्भाव भी होता है; असद्भाव इस कारणतें होता है; जो तरंग भिन्न कछु नहीं, अरु सद्भाव इस कारणतें होता है, जो जलहीविषे तरंग होते हैं, सत् असद्भाव इसी कारणतें जलविषे होता है; तैसे जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्माविषे होता है; शून्यविषे नहीं होता; जैसे सोमजलमें कहने मात्र तरंग हैं नहीं; जल ही है, तैसे जगत् कहनेमात्र है, अरु हुआ कछु नहीं, एक सत्ताही है, अरु शून्यरूप अरु अशून्य भी नहीं, काहेतें जो शून्य अशून्य इह जो

दोनों शब्द हैं, सो उसविषे कल्पित हैं, काहेतें जो शून्य उसकों कहते हैं, जो अभावरूप होवै, सद्भावतें रहित अशून्य उसकों कहते हैं, जो विद्यमान पावै सो सत्ता इन दोनोंतें रहित है,अरु अशून्य भी शून्यका प्रतियोगी होता है, जो शून्य नहीं तौ अशून्य कहांतें होवै? इह दोनों अभावमात्र हैं ॥ हे रामजी! इह जो सूर्य तारा दीपक आदिक भौतिक प्रकाश है, सो भी उहां नहीं, काहेतें जो इह प्रकाश अंधकारका विरोधी है, जो इह प्रकाश होता तौ अंधकार सिद्ध न होता, सो तौ अंधकार भी सिद्ध होता है, इसी प्रकारतें कहता है, जो प्रकाश भी उहां नहीं, अरु जो कहियें तमहि रहता होवैगा, तौ तम भी नहीं; काहेतें जो सूर्य आदिक जिसकरि प्रकाशते हैं, सो तम कैसे होवै? आत्मप्रकाशविना सूर्यादिक भी तमरूप हैं, तातें न शून्य है, न अशून्य है, न प्रकाश है, न तम है, केवल आत्मतत्त्वमात्र है; जैसे स्तंभमें पुतलियां कछु हुई नहीं, तैसे आत्मामें कछु जगत् हुआ नहीं, जैसे बिली अरु बिलीकी मज्जाविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत् में भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे मृत्तिका अरु घटमें कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में कछु भेद नहीं, नाममात्र भेद है; वास्तवतें भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! जल अरु मृत्तिकाका दृष्टांत जो दिया है, सो आत्माविषे ऐसे भी नहीं ॥ जैसे जलमें तरंग होता है; मृत्तिकामें घट होता है, सो भी परिणामरूप होता है; अरु आत्मामें जगत्भान नहीं है, अरु जो मानसिक है, तौ आकाशरूप है; तातें जगत् भिन्न कछु नहीं; रूप अवलोकन मनसा कार्यता कछु भासता है; सो सब आकाशरूप हैं; आत्मसत्ताही चित्तके फुरणेकरि जगत्रूप होय भासती है; जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है; तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! स्तंभविषे जो पुतलियां कल्पता है, सो भी न होती हैं, अरु इहां कल्पनेवाला भी वीचकी पुतली है, उह भी होवै विना भासती है ॥ हे रामजी! जिसविषे इह जगत् भासता है, तिसकों शून्य कैसे कहियें? अरु जो कहियें चैतन्य है तौ भी नहीं,

काहेतें जो चैतन्य जानना भी तब होता है, जब चित्कला फुरती है; जहां फुरना न होवै, तहां चैतन्यता कैसे रहै? जैसे मिरचकों खाता है, तब तिसकी तीखाई भासती है; खाएविना नहीं भासती, तैसे चैतन्य जानना भी स्पंदकलाविषे होता है, आत्माविषे जानना भी नहीं ॥ चेतनतातें रहित चिन्मात्र है, अक्षय सुषुप्तिरूप है; तिसकों तुरीय कहत हैं; सो ज्ञेय ज्ञानवान्करि गम्य है ॥ हे रामजी! जो पुरुष तिसविषे स्थित हुए हैं, तिनकों संसाररूपी सर्प डस नहीं सकता; उह अचैत्य चिन्मात्र होता है; जिसकों आत्माविषे स्थिति नहीं, तिसकों दृश्यरूपी सर्प डसता है; आत्मसत्ताविषे तौ कछु द्वैत हुआ नहीं, आत्मसत्ता आकाशतें भी स्वच्छ है, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इनकी स्वतः जो अनुभवसत्ता है, सो आत्माका रूप है; जब अभ्यास करिके तब तिसकों प्राप्त होवैं ॥ हे रामजी! तिसविषे द्वैतकल्पना कछु नहीं, अद्वैतमात्र है; न द्रष्टा है, न जीव है; न कोउ विकार है, अरु न स्थूल है, न सूक्ष्म है, एक शुद्ध अद्वैतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, जो यह चैत्यका फुरणाही आदि नहीं हुआ, चेतनकलाका तब जीव कैसे होवै? जो जीवही नहीं तौ बुद्धि कैसे होवै? जो बुद्धिही नहीं तौ मन इंद्रियां कैसे होवैं? जो इंद्रियां नहीं तौ देह कैसे होवै? जो देह नहीं तौ जगत् कैसे होवै?॥ हे रामजी! आत्मसत्ताविषे सब कल्पना मिट जात हैं; तिसविषे कछु कहना नहीं बनता, पूर्ण अपूर्ण सत् असत्तें न्यारा है; भावअभावका विचार कोउ नहीं, आदिमध्यअंतकी कल्पना कोउ नहीं; अजर, अमर, आनंद, अनंत, चित्स्वरूप है; अचेत चिन्मात्र अवाच्य पद है; सूक्ष्मतें भी सूक्ष्म है; आकाशतें भी अधिक सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें भी स्थूल है; एक अद्वैतरूप है; अनंत चिद्रूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो अचिंत्य चिन्मात्र परमार्थ सत्ता तुमनें कही, तिसका रूप बोधके निमित्त मुझकों बहुरि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब सब जगत् नष्ट हो जाता है, परब्रह्मसत्ता शेष रहती है; तिसका रूप कहता हौं, मनरूपी ब्रह्म है, जब मनकी वृत्ति क्षीण होती है,

सो वृत्ति कौन है? एक प्रमाणवृत्ति है, दूजी विपययवृत्ति है, तीसरी विकल्पवृत्ति है, चौथी अभाववृत्ति है, पंचम स्मरणवृत्ति है, प्रमाणवृत्ति आगे तीन प्रकारकी है, एक प्रत्यक्ष, द्वितीय अनुमान, धुवा अग्नि जाननेकी वृत्ति शब्दरूप आप्तकामिका ये तीन प्रमाणवृत्ति हैं; द्वितीय विपर्ययवृत्ति है, होवै अरु भासै और तृतीय विकल्पवृत्ति सो शब्दज्ञान होवै अरु अर्थज्ञान न होवै; जैसे कहिये चैतन्य पुरुष कह्या जो एक पुरुष होवै, अरु उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूप होवै तब चैतन्य पुरुष कह्या जाय, चेतन ईश्वररूप है, अरु साक्षी पुरुषरूप होवै सो जैसे सीप पडी होवै तिसविषे संशय वृत्ति होवै;साक्षीरूपी भासै; साक्षी सीपीभास इसका नाम विकल्प है, चतुर्थ स्मरणवृत्ति है, पंचम निद्राअभाववृत्ति है, इह पंचम वृत्ति अरु इनका अभिमानी मन जो है, तीन शरीरका अभिमानी अहंकाररूप तिसका जब नाश होवै, तब पाछे जो रहता है, सो निश्चल सत्ता अनंत आत्मा है, असत् नहीं कही सकता है ॥ हे रामजी! जब जाग्रत्का अभाव होता है, अरु सुषुप्ति नहीं आई, उह जो रूप है, सो परमात्माका है; अंगुष्ठकों जो शीत उष्णका स्पर्श होता है, तिसके अनुभव करनहारी परमात्मसत्ता है, जिसविषे द्रष्टा, दर्शन, दृश्य उपजते हैं; अरु बहुरि लीन होते हैं, सो परमात्माका रूप है, किसी सत्ता है, जिसविषे चेतनता भी नहीं ॥ हे रामजी! चैतन्य जो है जीव, अरु जड जो है देहादिक, सो जिसविषे दोनों नहीं ऐसा जो अचेत चिन्मात्र है, सो परमात्मरूप है; अरु जो सब व्यवहार होता है; अरु अंतर जिसके आकाशरूप है, कोउ क्षोभ नहीं ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है; शून्य है, परंतु शून्यतातें रहित है ॥ हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जिसविषे तीनों प्रतिविंवित हैं, अरु आकार हैं; ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है, स्थावरविषे जो स्थावरभावकरि व्याप्या है, चैतन्यविषे जो चैतन्यभावकरि व्याप्या है, मनबुद्धि इंद्रियां जिसकों पाई नहीं सकतियां, ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है॥ हे रामजी! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनका जहां अभाव हो जाता है, तिस

के पाछे जो शेष रहता जिसविषे विकल्प कोउ नहीं, अचेत चिन्मात्र जो सत्ता है, सो रूप परमात्माका है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमात्मस्वरूपवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इह दृश्य जो स्पष्ट भासता है, सो महाप्रलयमें कहां जाता है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वंध्या स्त्रीका पुत्र कहांतें आता है, अरु कहां जाता है? आकाशका बन कहांतें आता है, अरु कहां जाता है? जैसे आकाशका बन है, तैसे इह जगत् है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! वंध्याका पुत्र अरु आकाशका बन तीनों काल है नहीं, शब्दमात्र है, उपजा कछु नहीं, अरु इह जगत् स्पष्ट भासता है, सो वंध्याके पुत्रसमान कैसे होवै? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे वंध्याका पुत्र अरु आकाशका बन उपजा नहीं, तैसे इह जगत् भी उपजा नहीं, जैसे संकल्पपुर होता है; जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है; अरु आकाशरूप है, कोउ पदार्थ सत् नहीं, तैसे इह जगत् आकाशरूप है, कछु उपजा नहीं, जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे काजर अरु श्यामतामें भेद नहीं, तैसे अग्नि अरु उष्णतामें भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं, सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलतामें भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में भेद नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अज्ञान करिके जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है; जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं; तैसे आत्माविषे अज्ञानकरि जगत् भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! दृश्यके अत्यंत अभावविना बोधकी प्राप्ति नहीं होती, अरु जगत् स्पष्टरूप भासता है, द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि उदय हुए हैं, सो भ्रम करिके हुए हैं, जो एक भी है, तौ दोनों बंध हुए हैं, जब दोनोंविषे एकका अभाव होवै, तब दोनों मुक्त होवैं; काहेतें

परमार्थरूप.

जो जहां द्रष्टा है, तहां दृश्य भी है; अरु जहां दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है; जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबविना नहीं होता, तैसे द्रष्टा दृश्यविना नहीं रहता, अरु दृश्य द्रष्टाविना नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! दोनोंविषे एक नष्ट होवै, तब दोनों निर्वाण होवैं, तातें सोई युक्ति कहौ जिसकरि दृश्यका अत्यंत अभाव होवै, अरु आत्मबोध प्राप्त होवै; एक ऐसा भी कहते हैं, जो दृश्य आगे था अब नाश हुआ है, तब उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जिसके विद्यमान नहीं भासता, अरु अंतर उसका सद्भाव है, तौ फेरी संसार देखैगा, जैसे सूक्ष्म बीजविषे वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरी संसारकों दिखावैगी; अरु तुम कहते हो, जगत्का अत्यंत अभाव होता है, अरु जगत्का कारण कोउ नहीं, आभासमात्र है; उपज्या कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जिसका अत्यंत अभाव होता है, उह वस्तु वास्तव नहीं होती है; जो नहीं तौ बंधन भी किसीकों हुआ, सब मुक्तस्वरूप हुवे, अरु जगत् प्रत्यक्ष भासता है, तातें सोई युक्ति कहौ, जिसकरि जगत्का अत्यंत अभाव होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! दृश्यके अत्यंत अभाव निमित्त एक कथा श्रवण कराता हौं; जिसके अर्थ निश्चयकर समुझेतें दृश्य शांत हो जावैगा, बहुरि संसार कदाचित् न उपजैगा; जैसे समुद्रविषे धूड नहीं उडती, तैसे तेरे हृदयविषे संसार न रहैगा ॥ हे रामजी ! इह जगत् तुझकों भासता है, सो अकारणरूप है, इसका कारण कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! जिसका कारण कोउ न होवै, अरु भासै, तिसकों जानियें जो भ्रममात्र है; उपज्या कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, सो कोई कारणतें उपजी नहीं, संवित्रूप है, तैसे स्वर्ग आदि कारणतें नहीं उपज्या, आभासरूप है, परमात्माका कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासै, सो जिसविषे भासता है, वस्तु सोई जो अधिष्ठानरूप है, जैसे तुमकों स्वप्नविषे स्वप्नका नगर होई भासता है, तौ और पदार्थ उहां कोउ नहीं, आभासरूप है, संवित् ज्ञान चैत्यता करिके नगररूप होइ भासता है; तैसे विश्व अकारण आभास आत्मसत्तातें होयके भासता है, जैसे जलविषे द्रवता है, वायुविषे स्पंदता है, जैसे

जलविषे रस है, जैसे तेजविषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे चित्तसंवेदन है, जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत्‌रूप होकरि भासता है और जगत् कोउ वस्तु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे और तत्त्वोंके अणु हैं, सो और ठौर भी पाइते हैं, अरु आकाशका अणु और ठौर नहीं पाइता है, काहेतें जो आकाश शून्यरूप है; तैसे आत्मातें इतर इस जगत्‌का भाव कहुं नहीं पाइता, काहेतें जो आभासरूप है, किसी कारणतें उपजा नहीं, जो तूं कहै जो पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतें जगत् उपजा है, तौ ऐसे कहना भी असंभव है; जैसे छायातें धूप नहीं उपजता, तैसे तत्त्वोंतें जगत् नहीं उपजता, काहेतें जो आदि आपही नहीं उपजे तौ कारण किसका होवै? तातें सर्वदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं, काहेतें जो उह अभूतरूप है; अरु अजडरूप है; सो भूतका अरु जडका कारण कैसे होवै? जैसे धूप परछावेका कारण नहीं, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌का कारण नहीं, तातें जगत् कछु हुआ नहीं, तौ है क्या? उही सत्ता जगत्‌रूप होइकरि भासती है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है, तौ भूषण कछु उपजा नहीं, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासती है, जैसे अनुभव संवित् स्वप्ननगररूप होइ भासता है, तैसे इह सृष्टि किंचनरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जेता कछु जगत् स्थावरजंगमरूप भासता है, सो आकाशरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता नित्य शुद्ध है, अजर अमर है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जिस प्रकार सृष्टि उदय भई हैं, सो श्रवण करु, तिसके जाननेतें जगत् कल्पना मिटि जावैगी॥ हे रामजी! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थों करी जीव पड्या छेदाता है, सो तिसतें तूं मुक्त होवैगा; जैसे चूहे सुमेरु पर्वतकों चूर्ण नहीं करि शकते तैसे तुझकों संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करी शकैंगे॥ हे रामजी! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे चै

त्यभाव सदा रहता है, काहेतें जो चैतन्यरूप है; जैसे वायुविषे स्पंदशक्ति सदा रहती है; तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यका फुरणा रहता है; अहं अस्मि इस भावकों प्राप्त हुआ है; इस कारणतें तिसका नाम चैतन्य है ॥ हे रामजी! चैतन्य संवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता; तबलग इसका नाम जीव है, संकल्पका नाम बीज चित्त संवित् है; तिसतें सर्व भूतजात उत्पन्न हुई है; तातें सबका जीव चित्त संवित् है; जीव संवित् जब चैत्यकों चेतता भया, तब प्रथम शून्य हुवा, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्रातें पद वाक्य प्रमाण सहित वेद उत्पन्न भये, जेता कछु जगत्विषे शब्द है, तिसका बीज तन्मात्रा है, जिसतें सर्व वायु अरस्परस होता है, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिसतें सूर्य, अग्नि आदिक प्रकाश हुवा है; बहुरि रस तन्मात्रा हुई, जिसतें सब जल होता है, सब जलोंका बीज उही है; बहुरि गंध तन्मात्रा हुई, जिसतें पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका बीज उही है ॥ हे रामजी! इस प्रकार पांचों भूत हुए हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशतें बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पंचीकृत भी हैं अरु अपंचीकृत भी हैं, इह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं, काहेतें जो संकल्प मैलयुक्त भये हैं, तैसे इस प्रकार चिद्अणुविषे सृष्टियां भासियां हैं, जैसे वटबीजमेंतें वटका विस्तार होता है, तैसे चिद्अणुविषे सृष्टि हैं, कहूं क्षणविषे युग भासता है, कहूं युगविषे क्षण भासता है, चिद्अणुविषे अनंत सृष्टि पडि फुरती हैं; जब चित्त संवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होइ भासयां हैं, अरु जब चित्त संवित् आत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सब सृष्टि पिंडाकार होइ जातियां हैं, अर्थ इह जो सब आत्मरूप होतीयां हैं, तातें इस जगत्का बीज सूक्ष्मभूत हैं, अरु इनका बीज चिद्अणु है ॥ हे रामजी! जैसा बीज होता है, तैसाही वृक्ष होता है, तातें सब जगत् चिदाकाशरूप है, संकल्प करके इह जगत् आडंबर होता है, संकल्पके मिटेतें सब चिदाकाश होता है; जैसे संकल्प आकाशरूप है, तैसे जगत् भी आकाशरूप है; जो सब आत्मानुभव आकाशरूप है, तातें क्षणविषे एकरूप होता है, जैसे संकल्प

नगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे इह जगत् है॥ हे रामजी! इस जगत्का मूल पंचभूत हैं, और तिसका बीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, तातें सब जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम एकादशः सर्गः॥ ११॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वदाकाल अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे समअसमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है; समरूप कहियें सजातीयरूप, असम कहियें भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुण, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ, तिसनें दृश्यकों चेत्या है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे हैं, तिन्होंतें पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पांचोंभूतरूपी वृक्ष हुआ है; तिस वृक्ष साथ ब्रह्मांडरूपी फल लगा है, तातें जगत्का कारण पंचतन्मात्राही हैं, अरु तन्मात्राका बीज आदि संवित् आकाश है; तातें सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ है॥ हे रामजी! जैसा बीज होता है; तैसाही फल होता है, जो इसका बीज परब्रह्म है, तौ इह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है, अरु जिस चैतन्य संवित्विषे जगत् भास्या है, सो जीवाकाश है, सो इह भी शुद्ध निर्मल है, काहेतें जो पृथ्वी आदिक भूतोंतें रहित है॥ हे रामजी! इह जगत् जो तुझकों भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, और द्वैत वास्तवतें कछु नहीं बन्या, इह मैं तुझकों ब्रह्माकाश अरु जीवाकाश कहे हैं, अब जिसकरि इसकों शरीर ग्रहण हुआ है; सो श्रवण कर॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रतें जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, अहं अस्मि तिस अहंभाव करिके आपकों जीव अणु जानत भया, अपना जो वास्तव स्वरूप था, तिसतें अन्यभावकी नांई हुआ, तिस जीव अणुविषे अहंभाव दृढ हुआ, तिसका नाम अहंकार हुआ, तिस अहंकारकी दृढता करिके निश्चयात्मक बुद्धि हुई, तिसतें आगे संकल्प विकल्परूपी मन हुआ, जब मन संसरने लगा, इसकी उर तब सुननेकी इच्छा करी, तिसकरी श्रवण इंद्रिय प्रकट

भई, जब रूप देखनेकों इच्छा करी, तब चक्षु इंद्रिय प्रकट भई, जब स्पर्शकी इच्छा करी तब त्वचा इंद्रिय प्रकट भई, जब रस लेनेकी इच्छा करी तब जिह्वा इंद्रिय प्रकट भई, इसी प्रकार देह इंद्रिय चेतनता करि भासियां; तिनविषे अहं प्रतीत करने लगा॥ हे रामजी! जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो पर्वततें बाह्य होता है, तैसे देह इंद्रियां बाह्य दृश्य हैं, अरु अपनेविषे भासियां हैं, तिसकरि तिन्होंविषे अहं प्रतीत होती है, जैसे कूपविषे मनुष्य आपकों देखै, तैसे देहविषे आपकों देखता है, जैसे डबेविषे रत्न होता है, तैसे देहविषे आपकों देखता है, सोइ चिद्‌अणु देह साथ मिलिकरि दृश्यकों रचता है, तिस अहंकारि रूपविषे इह क्रिया भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे दौडता जावै, जैसे स्थितविषे स्पंद होता है, तैसे आत्माविषे स्पंद क्रिया हुई है, सो चित्त संवित्‌कर हुई है, तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ, जैसे संकल्प करि दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मनोमय जगत् भासता है, जैसे शशेके शृंग होते हैं, तैसा इह जगत् है; कछु उपजा नहीं चित्तके स्पंदविषे जगत् फुरता है; जैसे जैसे चित्त फुर्या है, तैसे तैसे देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जंगम जगत्‌की मर्यादा भई है; तातें सब जगत् संकल्परूप है, संकल्पतें इतर जगत्‌का आकार कछु नहीं॥ जब संकल्प फुरता है, तब आगे जगत् दृश्य भासता है, जब संकल्प निस्पंद होता है, तब दृश्यका अभाव होता है॥ हे रामजी! इस प्रकार करके इह ब्रह्मा निर्वाण हुआ है, बहुरि और उपजे हैं, तातें सब संकल्पमात्र है, जैसे नटवा नानाप्रकारके पटके स्वांग करके बाहिर निकस आता है, तैसे देख जो सब मायामात्र है ॥ हे रामजी! जब चित्तकी और संसरणता है, तब दृश्यका अंत नहीं आवता, अरु जब अंतर्मुख होता है, तब सब जगत् आत्मरूप होता है; चित्तके स्पंद होनेकरि एक क्षणविषे निवृत्त होता है; क्यों जो संकल्परूपही है, तातें जो कछु जगत् भासता है, सो आकाशरूप है; उपजा कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदीयां भ्रम करी देखीते हैं, तैसे भ्रम करिके इह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नविषे आपकों मूआ

देखता है, सो भ्रममात्र है; तैसे इह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी! स्थावर जंगम जगत् कछु भासता है, सो सब चिदाकाश है, हमकों तौ सदा चिदाकाशही भासता है, आदि विराट्रूप ब्रह्मा भी वास्तवतें कछु उपजा नहीं; तौ जगत् कैसे उपजा होवै? जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके देश, काल, व्यवहार दृष्ट आते हैं, सो अकारणरूप हैं, उपजे कछु नहीं, आभासमात्र हैं, तैसे इह जगत् आभासमात्र है, कार्यकारण भासते हैं, तौ भी अकारण हैं ॥ हे रामजी! हमकों तौ जगत् ऐसा भासता है, जैसे स्वप्नतें जागे मनुष्यकों भासता है, जो वस्तु अकारण भासी है, सो भ्रांतिमात्र है, जो जगत् किसी कारणद्वारा उपज्या नहीं तौ स्वप्नवत् है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे इह जगत् भी जान, आदि विराट् आत्मा है, सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदि तत्त्वोंतें रहित है, आकाशरूप है, तौ इह जगत् अधिभूत करके कैसे होवै? सब आकाशरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह दृश्य मिथ्या असद्रूप है, जो है सो निरामय ब्रह्म है, सो ब्रह्म आकाश जीवकी नांई हुआ है, जैसे समुद्र द्रवता करके तरंगरूप होता है, तैसे ब्रह्म जीवरूप होता है, आदि जो संवित् स्पंदरूप हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्मातें आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीपकतें बहुत दीपक होते हैं, जैसे एक संकल्पके बहुत संकल्प होते हैं, तैसे एक आदि जीवतें बहुत जीव हुए हैं; जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मनविषे होतियां हैं, स्तंभ ज्योंका त्योंही स्थित है, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे मन कल्पै है, वास्तवतें ज्योंका त्यों आत्मा ब्रह्म है, तिनों पुतलियोंविषे बडी पुतली ब्रह्मा है, और जीव छोटी पुतलियां हैं; जैसे वास्तवतें स्तंभ है, पुतली कोउ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है, जगत् कछु उपजा नहीं; संकल्प करिके जगत् भासता है, संकल्पके मिटेतें जगत् कल्पना मिटि जात है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भग

वन्! एक जीवतें जो बहुत जीव हुए हैं; सो पर्वतविषे पाषाणकी नांई उपजते हैं, जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते हैं, कोई जीवोंकी खाण है, जो इस प्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते हैं, अथवा मेघविषे बूंदोंकी नांई हैं? अथवा अग्नितें विस्फुलिंगोंकी नांई उपजते हैं? सो कहौ; और एक जीव कौन है, जिसतें संपूर्ण जीव उपजते हैं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं, इह तेरे वचन ऐसे हैं, जैसे कोउ कहै मैं शशेके शृंग उडते देखे हैं, तैसे एक जीवही उपजा नहीं तौ मैं अनेक कैसे कहौं? जो ऐसे उपजे है शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनंत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब आकाशरूप है, कोउ पदार्थ उपज्या नहीं, संकल्पके फुरणेकरि जगत् भासता है, जीव शब्द अरु जीव शब्दका अर्थ आत्माविषे कोउ उपजा नहीं इह कल्पना भ्रमकरि भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नांई भासती है, तिसविषे न एक जीव है, न अनेक जीव हैं ॥ हे रामजी! आदि जो विराट् आत्मा है, सो आकाशरूप है, तिसतें और जगत् उपज्या सो तुझकों क्या कहौं? जगत् विराट्रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है, बहुरि और जगत् क्या रहा? अरु जीव क्या हुआ? सब चिदाकाशरूप है, इह जेते जीव भासते हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, और द्वैत कछु नहीं, न इनविषे कछु भेद है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुम कहते हौ, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंकों पालनेहारा कौन है? जिसकी आज्ञाविषे इह पडे विचरते हैं, सो नियामक कौन है? जो कोऊ हुआ नहीं तौ इह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योंकरि होत है, एकविषे इह कैसे है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसकों तूं आदिजीव कहता है, सो ब्रह्मरूप है, नित्य है, शुद्ध है, अनंतशक्ति है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनंत शक्ति है, तिसविषे जो आदि चित्त किंचन हुआ है, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ताही जीवकी नांई भासने

लगी है; स्पंदद्वारा हुएकी नांई भासती है; स्वरूपतें इतर कछु हुआ नहीं, चैतन्य संवित् आदि स्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होईकरि स्थित भया है, तिसतें आगे संकल्प करिके जगत् रच्या है; तिसविषे शुभ अशुभ कर्म रचे हैं, तिनकरि नीति रची है; जो इह शुभ है, इह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसेही महाप्रलयपर्यंत ज्यौंकी त्यौं चलि जात है ॥ हे रामजी! उह जो देव है, अनंतशक्ति है, तिसविषे जैसें आदि फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसेही है, जो अल्पज्ञ फुरियां हैं; सो अल्पज्ञ है ॥ हे रामजी! इह संसारके जो पदार्थ हैं, तिनोंविषे नीतिशक्ति प्रधान है, तिसके लंघणेकों कोउ समर्थ नहीं, जैसे रची है, तैसे महाप्रलयपर्यंत रहती है॥ हे रामजी! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतेंरहित है अरु इह जगत् भी अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतें नहीं उपज्या; सब संकल्परूप है; जैसे मनोराज्यका नगर शून्य होता है, तैसे इह जगत् शून्य है॥ हे रामजी! इस सर्गका निमित्तकारण कोउ नहीं, अरु समवायिकारण भी कोउ नहीं, जो पदार्थ निमित्तकारण औ समवायिकारणविना दृढ आवै सो भ्रममात्र जानियें, उपजा कछु नहीं, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजता है, सो जगत्का कारण कोउ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैत सत्ता है, तिसविषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवै? हे रामजी! इह जगत् अकारण है, भ्रांतिकरिके भासता है, जब तुझकों आत्मविचार उपजैगा, तब दृश्यभ्रम मिटि जावैगा; जैसे दीपक हाथ लेकरि अंधकारकों देखीयें, तौ दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकरि देखैगा, तौ जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जगत्भ्रम मनके फुरणेकरि उदय हुआ है, तातें संकल्पमात्र है, इसका अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप ब्रह्मसत्ताविषे कल्पित है, षट्विकार भी ब्रह्मसत्ताविषे फुरे हैं, औ सबतें रहित भी है, शुद्ध चिदाकाशरूप है, औ जगत् भी उहीरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिके तरंग, बुद्बुद, फैन भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है,

जैसे आदि चित्तविषे पदार्थसत्ता दृढ हुई है, तैसेही स्थित है; अरु आत्मा साथ अभेद है; इतर कछु नहीं, सब चिदाकाश है, इच्छा भी आकाशरूप है, देवता भी आकाशरूप हैं, समुद्र पर्वत भी आकाशरूप हैं ॥ हे रामजी! हमकों सदा चिदाकाशरूपही भासता है, आत्मसत्ताही मनरूप हो भासती है, औ बुद्धिरूप हो भासती है; पर्वत कंदरा सब जगत् होकरि भासता है, सब चैत्योन्मुखत्व होता है, तब जगत् भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, अरु निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत् भासता है, जब चित्तसंवेदन अस्फुररूप होता है तब जगत्कल्पना मिट जाती है ॥ हे रामजी! चिन्मात्रविषे जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत् है; जब चैत्यतें रहित हुआ, तब जगत् मिटि जाता है; जो जगत्ही न रहा तब भेदकल्पना रही, सो भेदकल्पना आत्माविषे कैसे होवै? तातें न कोउ कार्य है न कारण है; न जगत् है, सब भ्रममात्र कल्पना हैं, शुद्ध चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्त किंचन सदा रहता है, जैसे मिरचोंके बीजविषे तीक्ष्णता सदा रहती है, परंतु जब खाता है तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती, तैसे जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होता है; तब जीव जगत् चैतन्य भासता है, अरु संवेदनतें रहित जीव जगत् कल्पना नहीं भासती ॥ हे रामजी! जब संवेदन साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होता है, अरु जब इसतें रहित होता है, तब शुद्ध चिदात्मा ब्रह्म होताहै, जिस पुरुषकी अशेषविषे कल्पना मिटि गई है; अरु जिसकों शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआ है, सो पुरुष संसारभ्रमतें मुक्त हुआ है ॥ हे रामजी! इह सब जगत् आत्माका आभासरूप है; सो आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, नित्यशुद्ध है, सर्वगत स्थाणुकी नांई अचल है; सो अहंरूप है; सब जगत् चिदाकाशरूप है, हमकों तों सदा ऐसेही भासता है, अज्ञानी वादविवाद पडे करते हैं, हमकों वादविवाद कोउ नहीं, काहेतें जो हमारा सब भ्रम नष्ट हो गया है ॥

हे रामजी ! इह सब जगत् ब्रह्मरूप है; और द्वैत कछु नहीं, जिनकों निश्चय भया है, तिनके अंग अपना स्वरूपही है; तातें निराकार निर्वपु सत्ताके अंग अपना स्वरूप क्यों न होवै ! तातें जेता कछु प्रपंच है, सो सब चिदाकाशरूप है, परंतु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न भासता है; अरु जन्ममरण आदि विकार भासता है, अरु ज्ञानवान्कों सब आत्मरूपही भासते हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं, अरु चित्तशक्तिही ऐसे होइकरि भासती है, जैसे वसंतऋतु आता है, तिसविषे रसशक्ति करिके वृक्ष वेलियां सब प्रफुल्लित होइकरि भासतियां हैं; तैसे चित्तशक्ति स्पंदताकरिके जगत्रूप होइकरि भासती है ॥ हे रामजी ! जैसे वायु स्पंदताकरिके भासता है तैसे जगत् फुरणेकरि भासता है; तैसेही चित्तसंवित् जगद्रूप होइकरि भासता है ॥ इस फुरणेतें जगत् है अवर वस्तुतें जो कछु हुआ नहीं; इसीतें जगत् कछु नहीं; जैसे समुद्र तरंगरूप होइ भासता है तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है; इसतें जगत् दृश्यभावकरि भासता है; अरु संवित्तें कछु हुआ नहीं, परंतु वायु जड है, आत्मा चैतन्य है, अरु जल भी परिणाम करिके तरंगरूप होता है, आत्मा अच्युत है, निराकार है ॥ हे रामजी ! चैतन्यरूप रत्न है, जगत् तिसका चमत्कार है, चैतन्यरूपी अग्नि है, तिसविषे जगत्रूपी उष्णता है ॥ हे रामजी ! चैतन्यप्रकाश इह भौतिक प्रकाशरूप होकरि भासता है, इसतें जगत् है, अरु वस्तुतें कछु नहीं, चैतन्यसत्ता इह शून्य आकाशरूप होइकरि भासती है इस भावकरि जगत् है, वास्तव हुआ नहीं, इसतें जगत् कछु नहीं, चैतन्यसत्ताही पृथ्वीरूप होकरि भासती है, दृश्यविषे होता है इसतें जगत् है, अरु आत्मसत्तातें इतर कछु हुआ नहीं, इसतें चैतन्यबिन घन अंधकार है, तिसविषे जगत्रूपी कृष्णता है, चैतन्यरूपी काजलताका पहाड है, तिसका जगत्रूपी प्रमाण भ्रम है, चैतन्यरूपी सूर्य है, तिसविषे जगत्रूपी दिन है, आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्रूपी तरंग है, आत्मरूपी कुसुम है, तिसविषे जगत्रूपी सुगंध है, आत्म

रूपी बरफ़ है, तिसविषे शुक्लशीततारूपी जगत् है, आत्मरूपी वेली है, तिसविषे जगत्रूपी फूल है, आत्मरूपी स्वर्ण है, तिसविषे जगत्रूपी भूषण है, आत्मरूपी पर्वत है, तिसविषे जगत्रूपी जड सघनता है, आत्मरूपी अग्नि है, तिसविषे जगत्रूपी प्रकाश है, आत्मरूपी आकाश है, तिसविषे जगत्रूपी शून्यता है, आत्मरूपी ईख है, तिसविषे जगत्रूपी मधुरता है, आत्मरूपी दूध है, तिसविषे जगतरूपी घृत है, आत्मरूपी मधु है, तिसविषे जगत्रूपी मधुरता है, आत्मरूपी सूर्य है, तिसविषे जगत्रूपी जलभास है, हैही अरु नहीं हैही ॥ हे रामजी! इस प्रकार देख जो सर्व ब्रह्म है, नित्य है, शुद्ध है, परमानंदस्वरूप है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, भेदकल्पना कोउ नहीं; जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइ भासती है, अरु न कोउ उपजा है, न कोउ नष्ट होता है ॥ हे रामजी! आदि जो चित्तशक्ति स्पंदरूप होता है, सो विराट्रूप ब्रह्मा है, सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्तातें इतर भावकों नहीं प्राप्त भया, जैसे पत्रउपर लीकां होतियां हैं, सो पत्रतें भिन्न लीकां कछु नहीं, वस्तु उही है, पत्ररूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, कछु इतर नहीं, अरु पत्रउपर लीकां भी आकार है, ब्रह्मविषे जगत् कछु आकार नहीं, सब आकाशरूप मनविषे पडा फुरता है, जगत् कछु हुआ नहीं; जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है; तैसे आत्माविषे मननें जगत्कल्पना करी है, वास्तवतें कछु हुआ नहीं, शिलाही वज्रकी नांई पीन है, अरु सब जगत्कों धारि रही है; आकाशकी नांई विस्ताररूप होकरि अरु शांतरूप है, हुआ कछु नहीं; जो कछु है सो परम ब्रह्मरूप है, जो ब्रह्मही है, तौ कल्पना कैसे होवै? ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनिशार्दूल वसिष्ठजीनें कहा, तब सायंकालका समय हुआ सब सभा परस्पर नमस्कार करिके आश्रमकों गई, बहुरि सूर्यकी किरणां साथ अपअपने स्थानोंपरि आन बैठे ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! आत्माविषे कछु उपजा नहीं, भ्रम करिके पडा भासता है; जैसे आकाशविषे भ्रम करिके तरवरे मुक्तमाला भासते हैं, तैसे अज्ञान करिके आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे उकरे विना पुतलियां शिल्पीके मनविषे भासती हैं, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां कोउ नहीं, काहेतें जो किसी कारणतें नहीं उपजी; तैसे चैतन्यरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता है; परंतु कछु कारणकरि उपजी नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं स्थित है, जैसे सोमजलविषे त्रिकाल तरंगोंका सद्भाव होता है, वास्तवतें जगत्का होणा कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है; जैसे सूर्यकी किरणां झरोखेविषे आती हैं, तिसविषे सूक्ष्म त्रसरेणां होत हैं; तिसतें भी चिद्अणु सूक्ष्म है; जैसे त्रसरेणुतें सुमेरु पर्वत स्थूल है, तैसे चिद्अणुतें त्रसरेणु स्थूल है, ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुतें इह जगत् पडा फुरता है, सो क्या रूप है? आकाशही रूप है, कछु उपजा नहीं, फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो उपजा कछु नहीं, तौ और पदार्थ उपजे कहां होवैं, सब आकाशरूप है, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, जो कछु अनुभवविषे होता है, तौ भी असत् है; जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है, तौ भी उपजी कछु नहीं, असद्रूप है, तैसे इह जगत् असद्रूप है, शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिस सत्ताका त्याग करिके जो अवयव अरु अवयवीके विकल्प उठावते हैं; तिनकों धिक्कार है, इह सब जगत् आकाशरूप है, अरु अधिभूतक जगत् जो भासता है, सो गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टिवत् है ॥ हे रामजी! पर्वतोंसहित जगत् भासता है, सो रतिमात्र भी नहीं; जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्की रतिभार भी नहीं होते, काहेतें जो कछु हुए नहीं, तैसे इह जगत् आत्मरूप है, भ्रांतिकरिके भासता है, जैसे संकल्पका मेघ सूक्ष्म होता है, तैसे इह जगत् आत्माविषे तुच्छ है; जैसे शशेके शृंग असत् होते हैं, तैसे जगत् असत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे इह जगत

असत् है, असम्यक् ज्ञानकरिके जगत् भासता है, विचार कियेतें शांति हो जाती है, शुद्ध चैतन्य सत्ताविषे जब चित्तसंवेदन होती है तब उही संवेदन जगत्रूप होय भासता है; परंतु जगत् हुआ कछु नहीं, जैसे समुद्र अपनी द्रवता स्वभावकरिके तरंगरूप होइ भासता है; परंतु तरंग कछु और भाव वस्तु नहीं, जलरूप है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइकरि फुरती है, सो और तौ जगत् भिन्न पदार्थ कोउ नहीं ॥ ब्रह्मसत्ता किंचनद्वारा ऐसे भासती है, जैसा बीज होता है, तैसाही अंकुर निकसता है, जैसी आत्मसत्ता है, तैसेही जगत् है, दूसरी वस्तु कोउ नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, चित्तसंवेदनके स्पंदकरिके जगत्रूप होती है; तिस उपर, हे रामजी! एक आख्यान तुझकों कहता हौं, सो श्रवणका भूषण है; तिसके समुझेतें सब संशय मिटि जावैगा; अरु विश्रामकों प्राप्त होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मेरे बोधकी दृढताके निमित्त मंडप आख्यान जिसपर हुआ है, तैसे संक्षेपतें कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस पृथ्वीमें एक राजा पद्म होत भया है; सो कैसा था, जो कुलका कमल प्रफुल्लित था, अरु संतानवान् था, अरु बडी लक्ष्मीकरि संपन्न अरु समुद्रवत् मर्यादाके धारणेहारा, अरु दुष्टोंरूपी तमका नाशकर्त्ता, सूर्य, अरु सत्गुणोंरूपी हंसोंका मानससरोवर, अरु दोषरूपी कौवेकों नाशकर्त्ता, अरु दोषरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता अग्नि, अरु प्रजाके पालणेकों और शत्रुके नाश करणेकों विष्णुजी, तथा मित्ररूपी चंद्रमुखी कमलनीकों चंद्रमा था, अरु संपूर्ण राजसी सात्विकी गुणोंकर संपन्न था; एक लीला नाम तिनकी स्त्री थी, बहुत सुंदर थी, मानौ लक्ष्मीनें अवतार लिया है, सो राजाकी प्रसन्नताकों देखके आप भी प्रसन्न होवै, अरु राजाकों दिलगीर देखके आप भी दिलगीर होवै, अरु राजाकों क्रोधवान् देखै तब भयमान होवै, बहुत सुशीलतासंयुक्त रहै, तिस साथ राजा क्रीडा करत भया, बाग जावै, ताल कदंब वृक्षों कल्पवृक्षोंके नीचे जावै, सुंदर सुंदर स्थानोंविषे जायके क्रीडा करै, बरफके मंदिर बनायके तिसविषे रहै, अरु रत्नमणिके जडे हुए स्थानोंवि

षे शय्या बिछाइके विश्राम करै, इस प्रकार विचरते भये, बहुरी ठाकुरद्वार तीर्थ जो जो दूर भी पुण्यस्थान थे तहां गये; इस प्रकार राजसी अरु सात्विकी स्थानोंविषे विचरते भये ॥ आपसमें गुह्यार्थ पावै, एक एक पद कहै, दूसरा तिसकों श्लोक करि करि उत्तर देवै, अरु श्लोक भी ऐसे पढै जो पढनेमें भाषा भासै, अर्थविषे संस्कृत होवै, अरु शयनकी अरु शृंगारकी चतुराई सीखै, अरु राजा चंद्रमाकी नांई सुंदर, अरु राजसी विद्याकरि पूर्ण, हस्ती घोडे रथ आदिक चलावनेकों भी विद्यावान् शस्त्रोंके चलावनेकी विद्याकरि भी संपन्न हुआ ॥ इस प्रकार राजा बहुत चतुर हुआ, अरु दोनोंका परस्पर आपसमें स्नेह भया अरु दोनोंकी यौवन अवस्था हुई अरु दोनों गुणवान् भये, जो राजाका चित्त और किसी ठौर न जावै, अरु राणीका चित्त भी और किसी उर न जावै, राणी पतिव्रता अरु राजा धर्मात्मा हुआ, तब एक समय राणीनें विचार किया जो राजा मुझकों बहुत प्रिय है, अपने प्राणोंकी नांई प्यारा है, अरु बहुत सुंदर है, किसी प्रकार इसकी युवावस्था सदा रहै, जो अजर अमर रहै, इसका अरु मेरा वियोग कदाचित् न होवै, सोई उपाय करों, यज्ञ करों, दान करों, तप करों, ऐसे विचार करिके ब्राह्मणों ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंसों पूछती भई ॥ हे विप्रो ! अजर अमर नर किस प्रकार होता है ? जिस प्रकार होता है, सो हमकों कहौ ॥ ॥ विप्र उवाच ॥ हे देवि ! जप तप आदिकरिके सिद्धता प्राप्त होती है, परंतु अमर नहीं होता, सब जगत् नाशरूप है, इस शरीरकरि किसी स्थिर नहीं रहता ॥ हे रामजी ! इस प्रकार ब्राह्मणोंतें सुनिकरि राणी भर्त्ताके वियोगतें डरिकरि विचार करने लगी, जो भर्त्तारसों मैं प्रथम मरों; तब मेरे बडे भाग्य हैं, मैं सुखवान् होउंगी; अरु जो इह प्रथम मृतक होवै, तब सोइ उपाय करों, जिसकरि राजाका जीव मेरे अंतःपुरविषेही रहै, बाह्य न जावै, मैं दर्शन करती रहों, तातें सरस्वतीकों मैं सेवों ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके तपरूप जो सरस्वती है, तिसका पूजन करती भई, तब त्रिरात्र अरु दिनपर्यंत निराहार रहै चतुर्थ दिनमें पारणा करै, जिस प्रकार शा

स्त्रविधि है, तिस प्रकार करै; देवता, ब्राह्मण, पंडित, गुरु, ज्ञानीयोंकी पूजा करै; स्नान, दान, तप, ध्यान, नितप्रति करै; इह नियम किया, अरु गृहविषे कीर्तन जिस प्रकार आगे करती थी, उसी प्रकार विचरै, भर्त्ता कों लखावै नहीं, इस प्रकार नियमसंयुक्त क्लेशतें रहित तप करती भई, जब तीनसौ दिन व्यतीत भये, तब प्रीतिसंयुक्त होइकरि सरस्वतीकी पूजा करी, तब वागेश्वरी प्रसन्न होइकरि दर्शन देती भई, अरु कहा, हे पुत्रि! तुझनें भर्त्ताके निमित्त निरंतर तप किया है, सो मैं प्रसन्न भई हौं, जो तुझकों अभीष्ट वर है सो माग ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तेरी जय होवै, मैं अनाथ तेरी शरण हौं, मेरी रक्षा कर; इह जन्मजरारूपी जो अग्नि है, सो बहुत प्रकारकरि जलावत है, तिसके शांति करनेकों तुम चंद्रमा हौ, अरु हृदयविषे जो तम है, तिसके नाश करनेकों तुम सूर्य हौ ॥ हे माता! मुझकों दो वर देहु; इक इह वर देहु, जो जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब इसका वपु जो है पुर्यष्टक, सो बाह्य न जावै, अंतःपुरहीविषे रहै, अरु दूसरा वर इह देहु, जब मेरी इच्छा तुमारे दर्शनकी होवै तब दर्शन देहु ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ऐसेही होवैगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार वर देके सरस्वती अंतर्धान भई, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके लीन होते हैं, तैसे देवी अंतर्धान हो गई, ऐसे सुनिके लीला बहुत प्रसन्न भई; कालरूपी चक्र फिरता है, जिसकों क्षणरूपी आरा लगा हुआ है, तिसके त्रय सौ साठ कीले हैं; वर्षपर्यंत उसी ठौर बहुरि आते हैं, ऐसा जो कालचक्र है, तिसकरि राजा पद्म रणभूमिकातें फटके आय घरविषे पडा हुआ मृतक भया, तब ऐसा हो गया, जैसे सूके पत्रसों रस निकसि जाता है तैसे पुर्यष्टकके निकसणेकरि राजाका शरीर कुमलाई गया, तब राणी उसके मरणकरि बहुत शोकवान् भई, मुखकी कांति दूर हो गई, जैसे कमलनी जलबिना कुमलाइ जाती है; तैसे विलाप करने लगी, कबहू उंचे स्वरकरि रुदन करै, कबहू चुपकरि जावै, राजाके वियोगकरि बहुत शोकवान् भई, जैसे चकवेके वियोगकरि चकवी शोकवान् होती है, जैसे सर्पके फूत्कार लगेतें कोउ मूर्छित होता है; तैसे शोकके श्वा

सोंकरि लीला मूर्छित हो गई, अरु व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी; तब सरस्वतीजीनें दया करिके आकाशवाणी करी ॥ हे सुंदरि ! इह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है, तिसकों तूं सर्व ओरतें फूलोंकरी ढांपी राख, बहुरि तुझकों भर्त्ताकी प्राप्ति होवैगी; अरु इह फूल नहीं कुमलायेंगे, तेरे भर्त्ताकों ऐसी अवस्था है, जैसे आकाशकी निर्मल कांति है, अरु तेरेही मंदिरविषे है, कहूं गया नहीं॥ हे रामजी ! इस प्रकार कृपा करिके जब देवीनें वचन कहा, तब लीला कछुक शांतिवान् भई, जैसे जलविना मच्छी तडफडती हुई मेघकी वर्षाकरिके कछुक शांतिवान् होती है, तैसे लीला कछुक शांतिवान् होत भई, बहुरि कैसे हुई जैसे धन होवे अरु कृपणताकर धनका सुख न होवे, तैसे वचनोंकर शांतिवान् हुई, अरु भर्त्ताके दर्शनविना सब शांति न हुई, तब लीला ऐसेही करत भई, उपर नीचे फूलोंकरि भर्त्ताकों ढांप्या, उसके पास आप भी शोकवान् होइकरि बैठी रही, अरु रुदन करने लगा, बहुरि देवीकी आराधना करी, तब अर्धरात्रके समय देवीजी आय प्राप्त भई, अरु कहा॥ हे सुंदरि ! तैंनें मेरा स्मरण किस निमित्त किया है ? अरु तूं शोक किस कारण करती है; इह तो सब जगत् भ्रांतिमात्र है जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है, तैसे इह जगत् है, अहं त्वं इदंतें ले आदिक जो जगत् भासता है, सो सब कल्पनामात्र है, भ्रम करिके भासता है, आत्माविषे हुआ कछु नहीं, तूं किसका शोक करती है ? ॥ लीलोवाच ॥ हे परमेश्वरि ! मेरा भर्त्ता कहां स्थित है, अरु क्या रूप धार्या है ? तिसकों मुझे मिलाउ, तिस बिना मैं अपना जीना देख नहीं शकती ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! आकाश तीन हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है; इह जो आकाश है, सोभूताकाश है, चित्ताकाशके आश्रय है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है, तेरा भर्त्ता अब भूताकाशकों त्यागकरि चित्ताकाशकों प्रत्यक्ष गया है; सो चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, जब तूं चिदाकाशविषे स्थित होवैगी तब सब ब्रह्मांड तुजकों भासैगा; तिसविषे प्रतिबिंबित होते हैं; तहां तुझकों भर्त्ताका अरु जगत्का दर्शन होवैगा ॥ हे लीले !

देशतें देशांतरकों क्षणविषे संवित् जाता है, तिसके मध्य जो अनुभव आकाश है; सो चिदाकाश है; जब तूं संकल्पकों त्याग देवै तिसतें शेष रहै सो चिदाकाश है ॥ हे लीले ! इहां जो जीव विचरते हैं, सो पृथ्वीके आश्रय हैं, अरु पृथ्वी आकाशके आश्रय है, तातें इह सब जीव जो विचरते हैं, सो भूताकाशके आश्रय विचरते हैं, अरु चित्त जिसके आश्रयतें एक क्षणविषे देशदेशांतर भटकता है, सो चित्ताकाश है ॥ हे लीले ! जब दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, तब परम पदकी प्राप्ति होती है, सो चिरकालके अभ्यासतें प्राप्त होती है, अरु मेरा तुझकों इह वर है, जो तुझकों शीघ्रही प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब ईश्वरी कहिकरि अंतर्धान होत भई तब लीलाकरिके लीला राणी निर्विकल्पसमाधिविषे स्थित भई; अरु चित्तसहित देहका अहंकार त्यागिकरि उडी, जैसे पक्षी अपने गृहतें उडिकरि आकाशकों गमन करता है, तैसे राणी चिदाकाशकों उडी, तब एक क्षणमें आकाशकों प्राप्त भई, जो नित्य शुद्ध अनंत आत्मा है, परम शांतिरूप है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसविषे जाइकरि भर्त्ताकों देखती भई, स्पंद कल्पना ले गई थी, तिसकरिके अपने भर्त्ताकों देखती भई, अरु बहुत मंडलेश्वर सिंहासनोंपर आकाशविषे देखे, अरु बडे सिंहासनपर बैठे भर्ताकों देखती भई, चारौं उरतें जय जय शब्द होता है, जो हे राजा ! तेरी जय होवै ! तेरी जय होवै ! तूं बहुत जीवै, अरु बडे सुंदर मंदिरकों देखती भई; राजाके पूर्व दिशाकों देखे, तहां ब्राह्मण, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, अनेक बैठे हैं, अरु बडी ध्वनिसों पाठ करते हैं; दक्षिण दिशाकी उर देखे, तब सुंदर स्त्रियां बैठी हैं, अरु नाना प्रकारके भूषणसहित अनेक हैं; उत्तर दिशाकी उर देखे, तब हस्ती, घोडे, रथ, प्यादे चारौं प्रकारकी अनंत सेना है, पश्चिमकी उर मंडलेश्वर हैं, ऐसे देखके अरु चारौं दिशामंडलेश्वर इसके आश्रय जीवके बिराजते हैं; सो देखके आश्चर्यकों प्राप्त भई, औ नगर देखे, प्रजा देखी, सब अपअपने व्यवहारविषे स्थित हैं, बहुरि राजाकी सभाविषे जाइ बैठी, राणी सबकों देखै अरु राणीकों कोउ न देखै, जैसे औरके संकल्पपुरकों नहीं

देख शकता, तैसे राणीके कोउ देख न शकै, तब राणीनें उसका अंतःपुर देखा, जहां ठाकुरद्वारे बने हुए हैं, देवताकी पूजा होती है, अरु गंध धूपसों पवन करिके त्रिलोकी मग्न करती है; राजाका यश चंद्रमाकी नांई बहुत हुआ, तब पूर्व दिशासों हलकारा आयके तिसनें कहा ॥ हे राजन्! पूर्व दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि उत्तर दिशासों हलकारा आया, तिसनें कहा ॥ हे राजन्! उत्तर दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, तुमारे जो मंडलेश्वर हैं, सो युद्ध करते हैं, सोइ प्रकार दक्षिण दिशाकी औरसों आया; उसनें भी कहा और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि पश्चिम दिशासों आया, उसनें कह्या पश्चिम दिशामें क्षोभ हुआ है, बहुरि और आया, तिसनें कहा, सुमेरु पर्वत जु देवता सिद्धोंके रहनेका स्थान है, तहां क्षोभ हुआ है, बहुरि अस्ताचल पर्वतसों आया, तिसनें कहा, अस्ताचलमें क्षोभ हुआ है, तब राजाकी आज्ञाकरि बहुत सेना विद्यमान स्थित आन हुई, जैसे बडे मेघ आवैं तैसे सेना आई, अरु जेते मंत्री थे, अरु नंद आदिक जो टहलुए थे, और ऋषीश्वर मुनीश्वर तहां देखती भई, जेते भृत्य थे सो सब सुंदर अरु वर्षातें रहित श्वेत बादरोंकी नांई तिनके श्वेत वस्त्र देखती भई, अरु बडे वेदपाठी ब्राह्मण देखती भई, जिनके शब्दकर नगारेके शब्द भी सूक्ष्म भासे ॥ हे रामजी! इस प्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टलहुए, बालक देखती भई; सो अपूर्व देखती भई, अरु पूर्व भी देखती भई, देखके आश्चर्यवान् हुई, चित्तविषे इह शंका उपजी, जो मेरा भर्त्ताही मूआ है, के संपूर्ण नगर भी मृतक भया; जो परलोकविषे आए हैं, तब देख्या जो मध्यान्हका सूर्य शीशपर उदित है, अरु राजा सुंदर वर्षषोडशका है, प्रथमकी जरा अवस्थाकों त्यागिकरि नूतन शरीरकों धारके बैठा है, ऐसे आश्चर्यकों देखके राणी बहुरि अपने गृहविषे आवती भई, तब देखा जो अर्ध रात्र है, अपनी सहेलियांकों सोइयां हुइ देखती भई, सहेलियांकों जगावती भई, अरु कहा जो सिंहासनपर मेरा भर्त्ता बैठता था, तिसकों साफ करो, मैं तिसके उपर बैठती हों, अरु जिस प्रकार तिसके निकट मंत्री भृत्य

आन बैठते थे, तिसी प्रकार करौ; इस प्रकार सुनकर सहेलियोंनें बडे मंत्रीकों कहा, तिन मंत्रीयोंनें सबकों जगाया, सिंहासन झाडि करिके मेघकी नांई जलकी वर्षा करी, सिंहासन उपर वस्त्र बिछाए, आसपास भी वस्त्र बिछाए, मसालां जगाइयां, बडा प्रकाश हुआ, अंधकार नष्ट भया, जैसे अगस्त्यमुनीनें समुद्रका पान किया था, तैसे अंधकारका प्रकाशनें पान करि लिया, तब मंत्री, टहलुए, पंडित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् सब आयके स्थित हुए, जेते कछु राजाके पास थे, सो सब आके स्थित भये, सिंहासनके निकट बैठे और लोक भी आय स्थित हुए, मानौ प्रलयकालविषे समुद्रक्षोभ हुवा है, बहुरि जलसों पूर्ण हुए हैं, प्रलय हुइ सृष्टि मानौ तौ अनंत उत्पन्न भई हैं, इस प्रकार मंत्री, टहलुए, पंडित, बालक, भर्त्ताविना देखके बडे आश्चर्यकों प्राप्त भई, जो एक आदर्शकों दोनों और अन्तर्बाहिर दृष्टि भासती है इस प्रकार देखके अंतरकी वार्त्ता उनकों न जनावत भई, बहुरि अंतर आइकरि कहत भई, बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती, इह क्या है? इस प्रकार आश्चर्यवान् होइकरि सरस्वतीजीकी आराधना कीनी तब सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धारिकरि आन प्राप्त भई, तब लीलानें कहा ॥ हे भगवति! मैं वारंवार पूछती हों, तुम उद्वेगवान् नहीं होवणा, बडेका इह स्वभाव है, जो शिष्य वारंवार पूछै तौ भी खेदवान् नहीं होते, अब मैं पूछती हों जो इह जगत् क्या है? अरु उह जगत् क्या है? दोनोंविषे कृत्रिम कौन है? अरु अकृत्रिम कौन है?॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! तैनें पूछा जो कृत्रिम कौन है, अरु अकृत्रिम कौन है, पाछे मैं तुझकों कहौंगी ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जहां तुम हम बैठे हैं सो अकृत्रिम है, अरु उह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है, सो कृत्रिम है, काहेतें जो शून्यस्थानविषे उह सृष्टि हुई है ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसा कारण होता है, तैसाही कार्य होता है, जो कारण सत् होता है, तब कार्य भी सत् होता है, अरु सत्तें असत् नहीं होता अरु असत्तें सत् नहीं होता, कारणतें अन्य कार्य नहीं होता, तातें जैसे इह जगत् है, तैसा उह जगत्

है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! कारणतें अन्य कार्यसत्ता होती है, काहेतें जो मृत्तिका जलके उठावणेकों समर्थ नहीं होती, अरु जब मृत्तिकाका घट बनता है, तब जलकों उठावता है; तौ कारणतें अन्य भी कार्य की सत्ता हुई क्यौं ?॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! कारणतें अन्य कार्यकी सत्ता तब होती है, जो सहायकारी भिन्न भिन्न होते हैं, जहां सहायकारी नहीं होता, तहां कारणतें अन्य कार्यकी सत्ता नहीं, तेरे भर्त्ताकी सृष्टि जो भासी है, सो कारणविना भासी है, उसका जीव जो पुर्यष्टक थी, सो आकाशरूप थी, तहां न कोउ समवायिकारण था न निमित्तकारण था, तिसकों कृत्रिम कैसे कहियें? जो किसीका किया होवै, तो कृत्रिम होवै, उह तो आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वोंतें रहित है, जो समवायिकारण न होवै, तौ तिसका निमित्तकारण कैसे होवै? तातें उह जो तेरे भर्त्ताका स्वर्ग है, सो अकारण है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! उस स्वर्गकी स्मृति जो संस्कार है, सो कारण क्यौं न होवै?॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! स्मृति तौ कोउ वस्तु नहीं, स्मृति आकाशरूप है, स्मृति नाम संकल्पका है, सो संकल्प आकाशरूप है, और तौ वस्तु कछु नहीं, मनोराज्यरूप है, तातें उसकी सत्ता कछु नहीं, आभासरूप है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे महेश्वरि! जो उह संकल्पमात्र आकाशरूप है, तौ भी आकाशरूप है, जहां तुम हम बैठे हैं, जैसे उह है तैसे इह है, दोनौं तुल्य हैं ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसे तूं कहती है, तैसेही है, अहं त्वं इदं इह उह संपूर्ण जगत् आकाशरूप है; भ्रांतिमात्र भासते हैं, उपजा कछु नहीं, सब आकाशमात्र है, स्वरूपतें इनका कछु सद्भाव नहीं, जो पदार्थ सत्य न होवैं तौ तिनकी स्मृति कैसे सत् होवै ॥ ॥ लीलोवाच॥हे देवि! अमूर्त्तिवत् मेरा भर्त्ता था, सो मूर्त्तिवत् हुआ अरु तिसकों जगत् भासने लगा, सो कैसे भास्या? तिसका स्मृति कारण है? कै किसी और प्रकार है; इह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझकों वही रूप कहो ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! उस स्वर्ग भी भ्रमरूप है, इह भी भ्रमरूप है, जो इह सत् होवे तौ, इसकी स्मृति सत् होवै, इह जगत् असत्‌रूप है,

जैसे इह भ्रम तुझकों भास्या है सो सुन; एक महाचिदाकाश है, तिसका किंचन चिद् अणु है; तिसके किसी अंशविषे जगत् है, सो जगत्रूपी वृक्ष है, सुमेरु तिसका स्तंभ है; सप्त लोक तिसके डालां हैं, आकाश उसकी शिखा है, अरु सप्त समुद्र उसविषे रस है, तीनों लोक फल हैं, तिसविषे सिद्ध, गंधर्व, देवता, मनुष्य, दैत्यरूप मच्छर हैं, तारागण तिसके फूल हैं, तिस वृक्षके किसी छिद्रविषे एक देश है, तिसविषे एक पर्वत है, तिसके तरे एक नगर वसता है, तहां एक नदीका प्रवाह चालता है, तहां एक वसिष्ठ नाम ब्राह्मण था, सो बडा धर्मी था, सदा अग्निहोत्र करता था, धन अरु विद्यासंपन्न था, कैसा ऋषीश्वर वसिष्ठ है? विद्या अरु कर्म अरु धन पराक्रम सब तिसके समान था, परंतु ज्ञानविषे भेद था, जो खेचर वसिष्ठका ज्ञान है, तैसा भूचर वसिष्ठका न था; तिसकी स्त्रीका नाम भी अरुंधती, सो पतिव्रता थी, अरु चंद्रमाकी नांई मुख था जिसका, तिस अरुंधतीसमान विद्या, कर्म, कांति, धन, चेष्टा, पराक्रम जिसका, अरु चेतनता जो है ज्ञान सो समान था, और सब लक्षण एक समान था, उह आकाशकी अरुंधती है, इह भूमिकी अरुंधती थी, एक कालमें वसिष्ठ ब्राह्मण पर्वतके शिखरपर बैठा था, तहां सुंदर हारे तृणोंकरि शोभायमान स्थान था, एक राजा उस पर्वतके निकट शिकार खेलनेके निमित्त सब परिवारसहित चल्या जाता था, सो बहु सुंदर अरु नानाप्रकारके भूषणोंसहित भूषित किया हुआ, अरु शीशपर चंमर होता जाता था, मानौ चंद्रमाकी किरणां प्रसर रहीयां हैं, अरु शिरपर अनेक प्रकारके छत्रोंकी छाया, मानौ आकाश भी रूपेका किया है, अरु दूजे भी बहुत हैं, अरु रत्न मणिके भूषणों पहिरे हुए मंडलेश्वर साथ हैं, अरु हस्ती, घोडा, रथ, पैदल, चारौं प्रकारकी सेना आगे चली जाती है, तिनकी धूड वादल होइ करि स्थित भई, अरु नौबत नगारे वाजते हैं; तिसकों देखके वसिष्ठ ब्राह्मण मनविषे चिंतन करत भया, जो राजाकों बडा सुख प्राप्त होता है, जो सब सौभाग्य करिके राजा संपन्न होता है; इस प्रकार राज्य मुझकों भी प्राप्त होवै, इह वांछा करत भ

या, मैं कब दिशाकों जीतौंगा ? अरु मेरे यश साथ दश दिशा पूर्ण कब होवैगियां ? ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ठरैंगे ? अरु चारौं प्रकारकी सेना मेरे आगे कब चलैगी ? अरु सुंदर मंदिरोंविषे सुंदर स्त्रियां साथ मैं कब विलास करौंगा ? मंद मंद पवन शीतल सुगंधता साथ कब परस होवैगा ?॥ हे लीले ! इस प्रकार ब्राह्मण संकल्पकों धरता भया, अरु जो कछु अपने स्वकर्म हैं, सो भी करता रहै, अरु कामना हृदयविषे स्थिर हो रही तब ब्राह्मणकों जरा अवस्था आनि प्राप्त भई, शरीर जर्जरीभाव हुआ, जैसे कमल उपर बरफ पडता है, अरु कुमलाई जात है, तैसे ब्राह्मणका शरीर कुमलाई गया; अरु मृत्युका समय निकट आया, तब तिसकी स्त्री भर्त्तारका मृत्यु निकट देखके कष्टवान् भई, तब उसनें मेरी आराधना करी; जैसे तैंनें करी तैसे उसनें करी, भर्त्ताकी अजर अमरताकों दुर्लभ जानके मुझसों वर मांगत भई, हे देवि ! मुझकों इह वर देहु, जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब इसका जीव बाह्य न जावै; तब मैं कहा ऐसेही होवैगा ॥ हे लीले ! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब ब्राह्मण मृतक हुआ, तब उसका जीव मंदिरविषे रहा; जैसे मंदिरविषे आकाशही रहता है; तैसे मंदिर विषे रहै ॥ हे लीले ! जब आकाशरूप हो गये अरु जो उसकी पुर्यष्टकविषे राजाका दृढ संकल्प था, तब उह संकल्प उसकों आन फुर्या, जैसे बीजतें अंकुर निकस आवता है; तैसे आन फुर्या, तिसकरि अपने राज्यकों देखता भया, सो कैसा राज्य देखता भया, जो त्रिलोकीका राज्य है; अरु परम सौभाग्य करिके संपन्न है, दशों दिशा यश करिके पूर्ण होइ रही हैं, मानौ यशरूपी चंद्रमाकी इह पूर्णमासी है, अरु जैसे प्रकाश अंधकारकों नाश करता है, तैसे शत्रुरूपी अंधकारका नाशकर्त्ता प्रकाश हुआ, अरु ब्राह्मणोंके चरणोंका सिंहासन हुआ, अर्थ इह, जो ब्राह्मणोंकों बहुत पूजने लगा; अरु अर्थियोंका कल्पवृक्ष हुआ, अरु स्त्रीयोंकों कामदेव हुआ, इत्यादिक जो सात्विक राजस गुण हैं तिनोंकरि संपन्न हुआ, तिसकी स्त्री तिसकों मृतक देखके बहुत शोकवान् भई, जैसे ज्येष्ठआषाढकी मंजरी सूक जाती है, तैसे शोकवान् भई तब इह भी

शरीरकों छोडके अंतवाहक शरीरकरिके भर्त्ताकों जाय प्राप्त भई, जैसे नदी समुद्रकों जाय प्राप्त होती है, अरु ब्राह्मणके जो पुत्र थे, सो धनयुक्त अपने गृहविषे रहे, उस ब्राह्मणकों मृतक हुए अब आठ दिन हुए हैं; सो वसिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता पद्म हुआ, अरुंधती उसकी स्त्री, तूं लीला हुई है, अरु जेता कछु आकाश पर्वत समुद्र पृथ्वी त्रिलोकी है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके अंतःपुरविषे एक खुणेविषे स्थित है; उहां तुझकों आठ दिन व्यतीत भये हैं; सूतक भी नहीं गया; अरु इह तुम साठ सहस्र वर्ष राज्य किया है; नानाप्रकारके सुंदर भोग भोगे हैं ॥ हे लीले! इस प्रकार तैंनें जन्म लिया है; सो मैंनें सब कहा है, सो क्या है, सब भ्रममात्र है; जेता कछु जगत् तुझकों भासता है; सो आभासमात्र है, संकल्पकरिके पडा फुरता है, वस्तुगत कछु नहीं ॥ हे लीले! जो इह जगत् सत् न हुआ तौ तिसकी स्मृति कैसे सत्य होवै? तुम हम सब उस ब्राह्मणके मंदिरविषे स्थित हैं ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तुमारे वचनकों मैं असत् कैसे कहों; जो तुम कहते हौ उस ब्राह्मणका जीव अपने गृहविषे रहा; तहां हम तुम बैठे हैं; अरु देश देशांतर पर्वत समुद्र लोक अरु लोकपालक सब जगत् उसीही गृहविषे है, सो समावते कैसे हैं? इह वचन तुमारे ऐसे हैं, जैसे सरसवके दाणेविषे उन्मत्त हाथी बांधे हुए हैं; अरु सिंहोंसाथ मच्छर युद्ध करता है, अरु कमलके डोडेविषे सुमेरु पर्वत आया है, तिस कमलपर भमरा आन बैठा, तिसकों पान करी गया, अरु स्वप्नविषे मेघ गर्जत है; अरु चित्रामणके मोर नाचते हैं, ऐसी वार्त्ता कहते हौ, अरु जाग्रत्की मूर्ति उपरि लिखा हुआ मोर मेघकों गर्जता देखके नृत्य करता है, जैसे इह असंभव वार्त्ता है, तैसे तुमारा कहना मुझकों असंभव भासता है ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! इह मैंनें तुझकों झूट नहीं कहा, हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं, काहेतें, जो आदि परमात्माकी नीति है, जो महापुरुष असत् नहीं कहते, इसी कारण हम असत् नहीं कहते, हम तौ धर्मके प्रतिपादन करनेहारे हैं, जहां धर्मकी हानि होती है, तहां हम प्रतिपादन नहीं करते हैं, जो हम धर्मका प्रति

पादन न करैं, तब धर्मकों और कैसे मानैं? हे लीले! जैसे सोए हूएकों स्वप्नविषे त्रिलोकी भास आती है सो अंतःकरणविषेही होती है, अरु स्वप्नतें जाग्रत् होती है, तैसे मरना भी जान, जब जहां मृतक होता है, तहां जीव जो पुर्यष्टक है सो आकाशरूप होइ जाताहै, बहुरि वासनाके अनुसार तिसकों जगत् भासि आता है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासि आता है, सो क्या रूप है, आकाशरूप है, तैसे इसकों भी जान॥ हे लीले! इह सब जगत् तेरे उस अंतःपुरविषे है, काहेतें जो जगत् चित्ताकाशविषे स्थित है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तविषे जगत् है; अरु चित्त आकाशरूप है, जो चित्त अंतःपुरविषे हुआ, तौ जगत् भी हुआ क्यों ॥ हे लीले!इह जगत् जो तुझकों भासता है, सो आकाशरूप है, जैसे स्वप्ननगर भासता है, संकल्पनगर भासता है, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, तैसै इह जगत् भी है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, तैसै इह जगत् जान॥हे लीले! वास्तवतें कोउ पदार्थ उपजा नहीं, भ्रम करिके पडे भासते हैं; जैसे स्वप्नतें स्वप्नांतर भासता है; बहुरि और स्वप्न देखता है; तैसे तुमकों इह सृष्टिभ्रम भास्या है ॥ हे लीले! इह जगत् आत्मरूप है, जहां चिद् अणु है; तहां जगत् भी है; परंतु क्या रूप है? आभासरूप है, जैसे इह आकाशरूप है; तैसे इह जगतभी आकाशरूप है; जिस प्रकार इह चैत्यता है; तिस प्रकार होइ भासता है; तातें संकल्पमात्र है; जैसे स्वप्नपुर भासता है; जैसे संकल्पनगर होता है; तैसे इह जगत् है; जैसे मरुस्थलकी नदीके तरंग भासते हैं; तैसे इह जगत् भासता है; तातें इसकी कल्पना त्यागके रहहु ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणकों मुए आठ दिन बीते हैं, अरु हमकों इहां साठ सहस्र वर्ष बीते हैं; इह वार्ता सत् कैसे जानियें; इह थोडे कालविषे बडा काल कैसे हुआ? ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसे थोडे देशविषे बहुत देश आते हैं; तैसे थोडे कालविषे बहुत काल भी आता है, अहंता ममता आदिक जेता कछु जगत् है, सो आभासमात्र है; तिसकों क्रम करिके सुण; जब इह जीव मृतक होता है, तब मूर्छा हो जाती है, बहुरि मूर्छासों चेतनता फिरि आती है, तिसविषे इह भास

ता है; जो इह आधार है, इह आधेय है, इह मेरा हाथ है, इह शरीर है, इह मेरा पिता है, इसका मैं पुत्र हौं; अब एते वर्षका मैं हुआ हौं; इह मेरे बांधव हैं, तिनकै साथ स्नेह करता हौं; इह मेरा गृह है, इह मेरा कुल चिरकालका चल्या आता है; मरणेके अनंतर एते क्रमकों देखता है॥ हे लीले! जिस प्रकार उह देखता है, तैसे इह भी जान, एक क्षणविषे औरका और भासने लगता है, इह जगत् चेतनका किंचन है, जैसे चेतन संवित्विषे चैत्यता होती है, तैसे जगत् भासता है; जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा, दृश्य, दर्शन तीनों भासते हैं, तैसे आत्मसत्ताविषे इह जगत् किंचन होता है; भ्रम करिके भासता है, वास्तवतें नानात्व कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे कारणविना नानाप्रकारका जगत् भासता है; तैसे परलोकविषे नानाप्रकारका जगत् कारणविना भासता है, सो क्या रूप है, आकाशरूप है, मनके भ्रमकरिके भासता है, तैसे इह जगत् मनके भ्रमकरि भासता है; स्वप्न जगत् अरु परलोक जगत् अरु जाग्रत जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे उह भ्रममात्र हैं, तैसे इह भ्रममात्र है; वास्तवतें कछु उपजा नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं, असत्ही सत्की नांई भासता है; जिस कारणतें उपजा नहीं, तिस कारणतें अविनाशी है॥ हे लीले! जैसे चैत्योन्मुखत्व हुए, चेतन आकाश भासता है; तैसे चैत्यताविषे भी चेतन आकाश है; काहेतें जो कछु हुआ नहीं, जैसे समुद्रतें तरंग होता है, सो तरंग कछु जलतें इतर हुआ नहीं, जलही है; तैसे आत्माविषे जगत् कछु इतर नहीं हुआ, अरु जलविषे तरंगकी नांई भी आत्माविषे जगत् नहीं, जैसे शशेके शृंग असत् हैं; तैसे जगत् असत् है; कछु उपजा नहीं॥ हे लीले! जब इह पुरुष मृतक होता है; तब जैसा इसकों देश भासता है, जैसा काल जैसी क्रिया उत्पन्न नाश भई है, कुटुंब शरीर वर्ष आदिक नानारूप भासता है, सो क्या रूप है, आभासरूप है, जिस प्रकार क्षणक्षणविषे एते भास आवते हैं, तैसे कारणविना इह जगत् भास्या है, तौ दृश्य, द्रष्टा भी कोउ न हुआ, इह जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, देह, इंद्रियां,

प्राण, मन, बुद्धि सब भ्रम करिके भासते हैं, आत्मा उपाधितें रहित आकाशरूप है, तिसके प्रमाद करिके जगत्भ्रम उदय हुआ है ॥ हे लीले! भ्रमविषे क्या नहीं होता है, जैसे एक रात्रविषे हरिश्चंद्रकों द्वादशवर्ष भ्रम करिके भासे थे, तैसे इहां भी थोडे कालविषे बहुत काल भास्या है, दोइ अवस्थाविषे इसकों औरका और भासता है, स्वप्नविषे भी और भासता है; अरु उन्मत्तता करिके भी औरका और भासता है, अभोक्ता अरु आपकों भोक्ता मानता है; अरु भ्रम करिके उत्साह अरु शोककों एकठा देखता है; किसीकों उत्साह होता है; अरु स्वप्नविषे मृतकभाव शोककों देखता है; अरु बिछुर्या हुआ होता है, सो स्वप्नविषे मिल्या देखता है, अरु मिल्या मिल्या सो आपकों बिछुर्या जानता है, और काल है, अरु भ्रम करिके और काल देखता है; तातें देख जो सब भ्रमरूप है; जैसे भ्रमकरिके इह भासता है; तैसे इह जगत् भी भ्रमकरि भासता है; परंतु ब्रह्मतें इतर कछु नहीं; तातें न बंध है, न मोक्ष है, जैसे मिरचेविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां होती हैं; तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां कछु हुई नहीं, ज्योंका त्यों स्तंभ है, शिल्पीके मनविषे पुतलियां हैं, तैसे ब्रह्माविषे जगत् है नहीं, मनरूपी शिल्पीनें जगत्रूपी पुतलियां कल्पी हैं; ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; नित्य शुद्ध है, अज है, अमर है, स्वभावविषे स्थित है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मंडपाख्याने परमार्थप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

॥ देव्युवाच ॥ ॥ हे लीले! जब इह मृत्युकरि मूर्च्छा होती है, तब शीघ्रही उसकों बहुरि कुल जन्म भासि आता है; देश, काल, क्रिया, द्रव्य, अरु अपना परिवार भासि आता है; नानाप्रकारका जगत् भासि आता है; अरु वास्तव कछु नहीं, स्मृति भी असत् है, एक स्मृति अनुभवतें होती है, एक स्मृति अनुभवविना भी होती है; अरु दोनों स्मृति मिथ्या हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना देह देखता है, सो अनुभव असत् है, किसी अपने मरनेकी स्मृति करी नहीं भासा; अरु तिस मरनेकी स्मृति भी असत् है; स्वप्नविषे कोउ पदार्थ देख्या तिसकों जा

ग्रतविषे स्मरण करना उह भी असत्य है; वस्तुतें कछु हुआ नहीं; तातें इह जगत् अकारणरूप है, जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है, और न कछु विदूरथकी सृष्टि सत् है, न इह सृष्टि सत् है सब संकल्पमात्र है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो इह सृष्टि भ्रममात्र है, तौ उह जो विदूरथकी सृष्टि है, सो इह सृष्टिके संस्कार करिके हुई है, अरु इह सृष्टि उस ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी स्मृति संस्कारतें हुई है, तौ ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृतिविषे हुई? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! उह जो वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि है, सो ब्राह्मणके संकल्प विषे हुई है, अरु ब्रह्मा ब्राह्मणविषे फुर्या है, परंतु वस्तुतें कछु ब्रह्मा भी हुआ नहीं, तौ तिसकी सृष्टि क्या कहौं? इस जेती कछु सृष्टि हैं, सो उसी ब्राह्मणके मंदिरविषे हैं, वस्तुतें कछु हुई नहीं, सब संकल्परूप है, मनके फुरणेकरिके भासता है, जैसे जैसे संकल्प फुरता है, तैसा तैसा होइ करि भासता है, इह सृष्टि जो तेरे भर्त्ताकों भासि आई है, सो दृढ संकल्पके भावतें भासि आई है, थोडे कालकरि बहुत भ्रम होकरि भासता है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जहां ब्राह्मणकों मृतक हुए आठ दिन व्यतीत भये हैं; तिस सृष्टिकों हम किस प्रकार देखैं ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जब तूं योगाभ्यास करै तब देखै, अभ्यासविना देखनेकों समर्थ न होवैगी, काहेतें जो उह सृष्टि चिदाकाशविषे फुरती है ॥ जब तूं चिदाकाशविषे अभ्यास करिके प्राप्त होवैगी तब तुझकों सब सृष्टि भासि आवैगी; उह जो सृष्टि है सो औरके संकल्पविषे है, जो उसके संकल्पविषे प्रवेश करै तब उसकी सृष्टि भासै, अन्यथा नहीं भासती, जैसे एकके स्वप्नकों दूसरा नहीं जानि शकता तैसे औरकी सृष्टि नहीं भासती, जब तूं अंतवाहकरूप होवै तब उह सृष्टिकों देखै ॥ जबलग आधिभौतिक जो है, स्थूल पंचतत्त्वोंका शरीर, तिसविषे अभ्यास है, तबलग उसकों न देख शकैगी; काहेतें जो निराकारकों निराकार ग्रहण करता है, निराकारकों आकार नहीं ग्रहण करी शकता; तातें इह जो आधिभौतिक देह है सो भ्रम है, इसकों त्यागिकरि चिदाकाश सत्ताविषे स्थित होहु ॥ जैसे पक्षी आलयकों त्यागिकरि आका

शविषे उडता है तब इच्छा होवै तहां चला जाता है, तैसे चित्तकों एकाग्र करिके स्थूल शरीरकों त्याग देहु अरु योगअभ्यासकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, जब आधिभौतिककों त्यागिकरि चिदाकाशविषे अभ्यासके बलतें स्थित होवैगी; तब आवरणतें रहित होवैगी; बहुरि जहां इच्छा करैगी, तहां चली जावैगी; जो कछु देख्या चाहैगी, सो देखैगी ॥ हे लीले! हम सदा तिस चिदाकाशविषे स्थित हैं, हमारा वपु चिदाकाश है; इस कारणतें हमकों आवरण कोउ रोक नहीं शकता ॥ हमसारखे जो उदार हैं तिनकों सदा स्वरूपविषे स्थिति है, अरु सदा निवारण है; कोउ कार्य हमकों आवरण नहीं करि शकता; हम स्वइच्छित हैं; जहां गया चाहैं, तहां जाते हैं; सदा अंतवाहकरूप हैं, अरु तूं अबलग आधिभौतिकरूप है, इस कारणतें उह सृष्टि तुझकों नहीं भासती अरु तूं उहां जाय भी नहीं शकती ॥ हे लीले! आपनाही जो संकल्प मनोराज्य होता है, तिसविषे चित्तकी वृत्ति लागही, तिसविषे काल इह अपना शरीर नहीं भासता तौ औरका कैसे भासै? जब तुझकों अंतवाहकका दृढ अभ्यास होवै; अरु आधिभौतिक स्थूल शरीरकी औरतें वैराग्य होवै; तब आधिभौतिकता मिटि जावैगी, काहेतें जो आगेही सब सृष्टि अंतवाहकरूप हैं, संकल्पकी दृढता करिके आधिभौतिक भासता है, जैसे जल दृढ शीतता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे अंतवाहकतें आधिभौतिक हो जाते हैं; प्रमादरूप संकल्पतें वास्तवतें कछु हुआ नहीं, जब उही संकल्प उलट करि सूक्ष्म अंतवाहककी और आता है, तब आधिभौतिकता मिटि जाती है, अंतवाहकता आन उदय होती है, जब इस प्रकार तुझकों निवारणरूप उदय होवैगा; तब देखनेमात्र अरु जाननेविषे यत्न कछु न होवैगा; साकार साथ निराकारकों ग्रहण नहीं करी शकता, निराकारकी एकता निराकार साथ होती है, अन्यथा नहीं होती, जब तूं अंतवाहकरूप होवैगी, तब उसकी संकल्पसृष्टिविषे तेरा प्रवेश होवैगा ॥ हे लीले! इह जगत् संकल्पभ्रममात्र है, वास्तवतें कछु हुआ नहीं ॥ एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; द्वैत कछु है नहीं ॥ ॥ ली

लोवाच ॥ हे देवि! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है; तब कलना यही दूसरी वस्तु क्या हुई इह कहौ? देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वस्तु नहीं, जैसे सीपीविषे रूपा दूसरी वस्तु कछु नहीं, जेवरीविषे सर्प नहीं; तैसे कलना भी कछु वस्तु नहीं ॥ एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्योंही स्थित है, तिस विषे नानात्व भासता है, सो भ्रममात्र है, वास्तव अपना आप एक अनुभवसत्ता है ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता है; अरु मेरा अपना आप है; तौ मैं एता काल क्यों भ्रमती रही? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! अविचार भ्रम करिके भ्रमती रही है; विचार कियेतें भ्रम शांत हो जाता है; सो भ्रम भी अरु विचार भी दोनों तेरा स्वरूप है; तूंहितें उपजा है; अरु जब तुझकों अपना विचार होवै; तब भ्रम निवृत्त हो जावैगा; जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे विचारकरि द्वैतभ्रम नष्ट हो जावैगा; जैसे जेवरीके जाननेतें सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है; अरु सीपीके जाननेतें रूपाभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेतें आधिभौतिक भ्रम शांत हो जावैगा, जब दृश्यकों अत्यंताभाव जानके दृढ वैराग्य करियें, अरु आत्मस्वरूपका दृढ अभ्यास होवै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, भ्रम शांत हो जावै, इसकर कल्याण हो जावै ॥ हे लीले! जब दृश्य जगत्‌विषे वैराग्य होता है, तब वासना क्षय हो जाती है, वासना क्षय हुवे शांति प्राप्त होती है ॥ हे लीले! तूं आत्मसत्ताका अभ्यास कर, तब जगत्‌भ्रम शांत हो जावैगा, भ्रम भी कछु वस्तु नहीं; देह आदिक भ्रम भी कछु हुआ नहीं, जैसे जेवरीके जाननेतें सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेतें देहादिकोंका अत्यंत अभाव जनाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विश्रांतिवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जेते कछु शरीर तुझकों भासते हैं; सो स्वप्नपुरकी नांईं हैं, जैसे स्वप्नविषे शरीर भासता है, जब स्वरूपविषे स्मृति होती है, तब स्वप्नका शरीर वास्तव नहीं भासता; जैसे संकल्पके त्यागेतें संकल्पशरीर भासता नहीं, तैसे बोधकालविषे इह शरीर भासता नहीं, जैसे

मनोराज्यके त्यागे मनोराज्यका शरीर भासता नहीं, तैसे इह शरीर भी भासता नहीं, जब स्वरूपका ज्ञान होवै तब इह भी वास्तव न भासैगा; जैसे स्वरूपके स्मरण हुए स्वप्नशरीर शांत हो जावै, तैसे वासनाके शांत हुए जाग्रत् शरीर भी शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नका देह अभाव ज्ञानतें असत् होता है, तैसे जाग्रत् शरीरकी भावना त्यागेतें असत् भासता है, इसके नष्ट हुए अंतवाहक देह उदय होवैगा; जैसे निद्रा करिके स्वप्नविषे रागद्वेष कों पावता है, जब पदार्थोंकी वासना बोधकर निर्बीज होती है, तब उनतें मुक्त होता है, तैसे जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थोंविषे नष्ट भई है, सो पुरुष जीवन्मुक्त पदकों प्राप्त होता है, जब उसविषे बहुरि वासना भी दृष्ट आवै, तब उह वासना भी निर्वासना है; जो सर्व कल्पनातें रहित है; तिसका नाम सत्ता सामान्य है॥ हे लीले! जिस पुरुषने वासना रोकी है, अरु अज्ञान निद्राकरि आवर्या हुआ है, तब उसकों सुषुप्तिरूप जान, उसकी वासना सुषुप्त है; अरु जिसकी वासना प्रगट है, जागृतरूपकरि विचरती है, तिसकों अधिक मोहकरि आवर्या जानियें; जो पुरुष चेष्टा करता दृष्ट आता है, अरु अंतरवासना नष्ट भई है जिसकी, तिसकों तुरिया जान ॥ हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है, अरु अंतरवासनातें रहित है, सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषका चित्त सत् पदकों प्राप्त भया है, तिसकों जगत्की वासना नष्ट हो जाती है; जो वासना फुरती भासती है, तौ भी सत्य जानके नहीं फुरती; जब शरीरकी वासना नष्ट होती है, तब आधिभौतिकता नष्ट हो जाती है, अंतवाहकता आन प्राप्त होती है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यके तेज लागेतें जलरूप होइ जाती है; तैसे अधिभूतकता क्षीण हो जाती है, अंतवाहकता प्राप्त होती है, अब अंतवाहकता प्राप्त भई, इसका शरीर अमांसमय चित्तरूप होता है, अरु सर्वका ज्ञान इसकों होइ आवता है; अपने जन्मांतरोंका ज्ञान भी होइ आवता है, व्यतीत सृष्टिका ज्ञान भी होइ आवता है, अरु जहां जानेकी इच्छा करै तहां जाय प्राप्त होता है; किसी सिद्धिके मिलनेकी इच्छा करै, अथवा कोई देखनेकी इच्छा करै, सब कछु सिद्ध होता है, परंतु अंतवाहक विना शक्ति

नहीं होती, जब इस देहसों तेरा अहंभाव उठैगा, तब सब जगत् तुझकों प्रत्यक्ष भासैगा ॥ हे लीले! जब आधिभौतिक शरीरकी वासना नष्ट भई, तब अंतवाहक देह होती है? जब अंतवाहकविषे स्थिति होती है; तब औरके संकल्पकी सृष्टि भासती है; तातें वासना घटावनेका यत्न कर, जब वासना नष्ट होवैगी, तब तूं जीवन्मुक्त पदकों प्राप्त होवैगी ॥ हे लीले! जबलग तुझकों पूर्ण बोध नहीं प्राप्त भया; तबलग देहकों इहां स्थापन करि उह सृष्टि चलही करि देख; अंतवाहक शरीर साथ मांसमय स्थूल देहका व्यवहार सिद्ध नहीं होता; तैसे स्थूल देहसाथ सूक्ष्म कार्य नहीं होता; तातें अंतवाहक शरीरका अभ्यास कर; जब अभ्यास करैगी तब उह सृष्टि देखनेकों समर्थ होवैगी ॥ हे लीले! जैसे अनुभवतें संस्थित सो मैंनें तुझकों कही है; इह वार्ता बालक भी जानते हैं; जो वर अरु शापकी नांई नहीं; जब अपना अभ्यास करैगी, तब बोधकी प्राप्ति होवैगी; हे लीले! सब जगत् अंतवाहकरूप है;अर्थ इह जो संकल्परूप अबोधरूप संकल्पके अभ्यास करिके आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है;तिस करिके संसारकी वासना दृढ भई है; जन्म मरण आदिक जो विकार हैं;सो चित्तविषे पडे भासते हैं; जीव न मरता है; न जन्मता है; जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण भासते हैं; जैसे संकल्प करिके भ्रम भासता है; तैसे जन्ममरण भ्रम करिके भासता है; जब आत्मपदका अभ्यास करैगी;तब इह विकार मिट जावैगा; अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! तुमनें परम निर्मल उपदेश मुझकों कहा है; जिसके जाननेतें दृश्यविषूचिका निवृत्त होती है, सो अभ्यास क्या है, बोधका साधन, कैसे होता है, अरु अभ्यास पुष्ट कैसे होता है, अरु पुष्ट होनेसों फल क्या होता है?॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जो कछु कोउ करता है, जिस कालविषे, सो अभ्यासविना सिद्ध नहीं होता, सबका साधक अभ्यास है, तातें तूं ब्रह्म अभ्यास कर ॥ हे, लीले! चित्तविषे आत्मपदकी चिंतवना होवै, कथन भी आत्माका होवै, परस्पर बोध भी आत्माका होवै प्राणकी चेष्टा भी आत्माविषे होवै, मनन भी आत्मपदका होवै, इसका नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं, बुद्धिवा

न् चिंतना किसकों कहते हैं, जो शास्त्र अरु गुरुतें महावाक्य श्रवण किये हैं, तिनकों युक्तिपूर्वक विचारना, अरु कथन उसकों कहते हैं, जो शिष्यकों उपदेश करना, अन्योअन्य परस्पर बोध करना, समान धर्म निश्चय चर्चा निर्णय करना, इन तीनों परायण रहना, तिसका नाम ब्रह्म अभ्यास बुद्धिवान् कहते हैं; जिनों पुरुषोंके पाप अंतकों प्राप्त भये हैं; अरु पुण्य बढे हैं; सो रागद्वेषतें मुक्त भये हैं; तिनकों तूं ब्रह्मसेवक जान ॥ हे लीले! जिन पुरुषोंकों रात्र दिन अध्यात्मशास्त्रकी चितवनाविषे व्यतीत होते हैं; अरु वासनाकों प्राप्त नहीं हैं; तिनकों ब्रह्माभ्यासी जान, उह ब्रह्म अभ्यासविषे स्थित हैं ॥ हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण भई है, अरु संसारके अभावकी भावना करते हैं; ऐसे जो विरक्तचित्त माहात्मा पुरुष भव्य मूर्त्ति हैं, सो शीघ्रहीं आत्मपदकों प्राप्त होते हैं; जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंगसाथ रंगी है, अरु आत्मानंदकी उरवृत्ति धावतीं है, ऐसे जो उदार आत्मा हैं; सो ब्रह्म अभ्यासी कहाते हैं ॥ हे लीले! जिन पुरुषोंनें जगत्का अत्यंत अभाव जान्या है, जो इह जगत् आदितें उत्पन्न हुआ नहीं, ऐसे जानके दृश्यकों असत् जानके त्यागते हैं; अरु परमतत्त्वकों सत्य जान्या है, इस युक्तिविषे अभ्यास करते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं, जिस पुरुषकों दृश्य असंभवका बोध हुआ है, रागद्वेषतें रहित है, इह जगत्में मैं हौं इस बुद्धिका भी अभाव करिके परमात्मपदविषे प्राप्त करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं ॥ हे लीले! दृश्यके अभाव जाने विना रागद्वेष निवृत्त नहीं होता ॥ रागद्वेषबुद्धि लोकविषे दुःखोंकों प्राप्त करती है, अरु जिसकों दृश्यकी असंभवबुद्धि प्राप्त भई है; तिसकों ज्ञेय जो परमात्मतत्त्व है, तिसका ज्ञान प्राप्त होता है, जब दृढ अभ्यास तिस पदविषे होता है; तब परमानंद निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, इस निमित्त यत्न करता है, सो प्राकृत है ॥ हे लीले! बोधका साधन अभ्यास है, अरु अभ्यास शास्त्रतें होता है, अरु प्रयत्न करि पुष्ट होता है, पुष्ट हुए आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है ॥ हे लीले! इनका नाम ब्रह्माभ्यासी ब्रह्मका सेवक कहाते हैं, सो तीन प्रकार

के हैं; एक उत्तम है, एक मध्यम है, एक प्राकृत हैं; उत्तम अभ्यासी उह है, जिसकों बोधकला उत्पन्न हुई हैं; अरु दृश्यका असंभवबोध हुआ है, सो उत्तम है, अरु जिसकों दृश्यका असंभवबोध हुआ है, अरु बोधकला जो नहीं उपजी तिसके अभ्यासविषे है, सो मध्यम है, अरु जिसकों दृश्यका असंभव नहीं हुआ, अरु सदा इही हृदयविषे रहता है, जो दृश्यका असंभव होवै; तातें जिस प्रकार मैं तुझकों अभ्यास कहा है, तैसे अभ्यास कियेतें तूं परमपदकों प्राप्त होवैगी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी निद्राविषे इह जीव शयन कर रहा है, तिसकरि जगत्कों नानाप्रकार देखता है, तैसे अविद्यारूपी निद्रातें लीलाकों विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षा करिके देवीनें जगाई, तब अज्ञानरूपी निद्रा तिसकी नष्ट हो गई; जैसे शरत्कालविषे मेघकी कुहड नष्ट हो जाती है, तैसे लीलाका अज्ञान नष्ट भया ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरनें कहा; तब सायंकालका समय हुआ; तब सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गई, सूर्यकी किरणां जब उदय भई; तब बहुरि आय स्थित भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विज्ञानाभ्यासवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार अर्धरात्रके समय देवी अरु लीलाका संवाद हुआ; सब लोक सहेलियां बाहिर सोए पडे थे, लीलाका भर्ता फूलोंविषे दाब्या हुआ था; तिसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चंद्रमाकी नांई है कांति जिसकी ऐसी सुंदर देवियां सर्व कलनाकों त्यागके अंगोंकों संकोच करिके समाधिविषे स्थित भइयां; मानों रत्नके स्तंभसों पुतलियां उत्कीर्ण कियां स्थित हैं; अंतःपुर भी तिनके प्रकाशकरि प्रकाशमान भया है; बहुरि कैसियां हैं, मानौं कागद उपर मूर्त्तियां लिख छोडियां हैं; इस प्रकार सब दृश्यकलनाकों त्यागिके निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भइयां; जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आएतें आगले रसकों त्यागिके दूसरि ऋतुके रसकों अंगीकार करती है; तैसे दृश्यभ्रमकों त्यागिके आत्मतत्त्वविषे स्थित भइयां; तब अहंतातें आदि लेकरी

जो दृश्यभ्रम है, सो तिनका शांत हो गया; दृश्यरूपी पिशाचके शांत हुएतें निर्मल भावकों प्राप्त भइयां; जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है; तैसे निर्मल भावकों प्राप्त भइयां ॥ हे रामजी! इह जगत् शशेके शृंगकी नांई असत् है; जो आदि न होवै अरु अंत भी न रहै; जो वर्तमान दृष्ट आवै तौ भी असत् जानियें ॥ जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य है, तैसे इह जगत् असत्य है; ऐसे जब स्वभावसत्ता हृदयविषे चिदाकाशविषे स्थित भइयां; तब अन्यसृष्टिके देखनेका जो संकल्प था सो आन फुर्या; तिस फुरणेकरि आकाशरूप देह साथ चिदाकाशविषे उडियां; सूर्यचंद्रमाके मंडलकों लंघ गइयां, दूरतें दूर गइयां, अनंत योजनपर्यंत स्थान लंघियां, तब बहुरि भूतोंकी सृष्टि देखी, तिसविषे प्रवेश किया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार परस्पर हाथ पकडी करि दूरतें दूर चलियां जावै; मानों एकही आसनपर दोनों चलियां जातियां हैं; मेघोंके स्थान लंघे, अग्निके पवनके वेग नदियोंकी नांई चलते थे, तहांतें लंघियां गइयां, जहां निर्मल आकाशही भासै तहांतें आगे गइयां, कहूं चंद्रमा सूर्यका प्रकाशही नहीं, कहूं चंद्रमासूर्यका प्रकाश है; देवता विमानोंपर आरूढ फिरते हैं, सिद्ध उडते फिरैं हैं; विद्याधर किन्नर गंधर्व गायन करते हैं; कहूं सृष्टि उत्पन्न होती है, कहूं प्रलय पडी होतियां हैं; शिखाधारी तारे उपद्रवकर्त्ता उदय हुए हैं; कहूं प्राणी अपने व्यवहारविषे लगे हुए हैं; कहूं अनेक महापुरुष ध्यानस्थित हैं; कहूं हस्ती विचरते हैं; कहूं और पशुपक्षी विचरते हैं; कहूं दैत्य डाकिणी विचरते हैं; जोगिणिया लीला करती हैं; कहूं अंध गुंगे रहते हैं; कहूं गीध पक्षी सिंह घोडेके मुखवाले गण विचरते हैं; कहूं वरुण, कुबेर, इंद्र, यमादिक लोकपाल बैठे हैं; अरु बडे पर्वत सुमेरु मंदराचल आदिक देखे, कहूं अनेक योजनोंपर्यंत वृक्षही चले जाते हैं; कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी प्रकाश है; कहूं अनेक योजनपर्यंत अविनाशी अंधकार है; कहूं जलकरि पूर्ण स्थान हैं, कहूं

सुंदर पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चले जाते हैं; कहूं सुंदर बगीचे वावडियां ताल हैं; तिनोंविषे कमल लगे हुए हैं; कहूं भूतभविष्यत् होणा दृष्ट आवै है; कल्पवृक्षके वन हैं; चिंतामणि अनंत हैं; कहूं शून्य स्थान हैं, भूत प्राणी कोउ नहीं, कहूं देवता अरु दैत्यके युद्ध बडे होते हैं; नक्षत्रचक्र पडे फिरते हैं; कहूं प्रलय पडा होता है; देवता विमानोंसहित पडे फिरते हैं; कहूं स्वामि कार्त्तिकके राखे हुए मोरोंके समूह विचरते हैं; कहूं कुक्कुट मोर आदिक पक्षी विद्याधरोंके वाहन पडे विचरते हैं, कहूं यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते हैं; कहूं पाषाणसंयुक्त पर्वत पडे हैं, कहूं भैरवके गण नृत्य करते हैं, कहूं विद्युत् चमकते हैं, कहूं कल्पतरु हैं, मंद मंद शीतल पवन सुगंधसमेत चलता है, कहूं पर्वत रत्न अरु मणिकरि शोभते हैं ॥ हे रामजी! इत्यादिक जगतोंकी जाल तिनों देवियांनें देखी, जीवरूपी मच्छर त्रिलोकरूपी गुल्लरोंके अनंत वृक्ष देखे, तिसतें अनंतर भूमंडलकों देखके महीतलविषे प्रवेश किया ॥ ॥इति श्रीयोग०उत्प० लीलोपा० आकाशगमनवर्ण० अष्टादशः सर्गः॥ १८॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब देविया भूतल ग्रामविषे आवती भइयां, ब्रह्मांडखपरविषे प्रवेश किया, कैसा है ब्रह्मांड, त्रिलोकीरूपी कमल है; तिसकी अष्ट पंखडियां हैं; तिसविषे पर्वतरूपी डोडा है, चेतनतासुगंध है, नदीयां समुद्र तिसके अंबुकण हैं, जब रात्ररूपी भंवरे आन विराजते हैं, तब उह कमल संकुचाय जाते हैं, पातालरूपी कीचडविषे लागे हैं, पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं, दैत्य राक्षस तिसके कंटक हैं; अरु डोडी उसकी शेषनाग है, जब उह हलता है, तब भूचालन होता है; दिन करिके प्रकाशता है, ऐसा जो कमल है, तिसका इस प्रकार विस्तार है, एक लाख योजन जंबुद्वीप है, तिसके परे दूना खारा समुद्र है; तिस जलकरि द्वीप आवरण किया है, जैसे हाथकों कंकण होता है; तिसतें आगे दूना शाकद्वीप है; तिसतें दूना क्षीरसमुद्र है तिसकरि वेष्टित है; तिसतें आगे दूनी पृथ्वी है, तिसका नाम कुशद्वीप है; तिसतें दूना घृतके समुद्रकरि वेष्टित है; बहुरि दूनी पृथ्वी है; तिसका नाम क्रौंचद्वीप है; तहा दूने दधिके समुद्र हैं; तिसकरि वेष्टित है; बहुरि शा

ल्मली द्वीप है; तिसतें दूना मधुका समुद्र है; बहुरि प्लक्षद्वीप है, तिसतें दूना इक्षुरसका समुद्र है; बहुरि दूना पुष्करद्वीप है; तिसतें दूना मीठे जलका समुद्र है, इस प्रकार सप्त समुद्र हैं; तिनतें परे दशकोटि योजन कंचनकी पृथ्वी प्रकाशवान् है, तिसतें आगे लोकालोक पर्वत है, तिस उपर बडा शून्य बन है, तिसतें परे एक बडा समुद्र है, तिसतें परे दशगुणी अग्नि है, अग्नितें परे दशगुणी वायु है; वायुतें परे दशगुण आकाश है, आकाशतें परे लक्ष योजनपर्यंत घनरूप ब्रह्मांडका कंध है, तिसकों देखके दोनों फिरी आइयां ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकगमनवर्णनं नाम एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तहांतें फिरीके वासिष्ठ ब्राह्मण और अरुंधतीका मंडल देखत भइयां, बहुरि ग्राम अरु नगरकी शोभा देखी जो जाति रही है; जैसे कमलोंपर गडेकी वर्षा होवै, अरु कमलकी शोभा जाति रहै, जैसे बनकों अग्नि लगै अरु बनकी लक्ष्मी जाति रहै; जैसे अगस्त्यमुनिनें समुद्रकों पान करि लीया, अरु समुद्रकी शोभा जाति रही, जैसे तेल अरु बातीके पूर्ण भयेतें दीपकका प्रकाश अभाव हो जाता है; जैसे वायुके चलनेकरि मेघका अभाव होता है, तैसे ग्रामकी शोभाका अभाव देखती भइयां; जो कछु प्रथम शोभा थीं; सो सब नष्ट हो गई थी, दासियां रुदन करती थीयां, तब लीला राणी जिसनें चिरकाल तप ज्ञानका अभ्यास कीया था, तिसकों इह इच्छा उपजी, जो मैं अरु देवी मेरे बांधव देखैं; तब लीलाके सत् संकल्प करिके बांधवलोक देखते भये, कहा जो इह बनदेवी गौरी अरु लक्ष्मी आई हैं; इनकों नमस्कार करियें ॥ हे रामजी! तब उनकों वाने देखके ज्येष्ठशर्मा जो वसिष्ठका बडा पुत्र था, तिसनें फूलोंकरि दोनोंके चरण पूजे, अरु कहा; हे देवि! तुमारी जय होवो, हे देवियां! इहां ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी रहते थे, तिनका परस्पर स्नेह था,मेरे पिता अरु माता थे,सो अब दोनों कालके वश स्वर्गकों गए हैं,तिसकरि हम बहुत शोकवान् भए हैं, हमकों त्रयलोक शून्य भासते हैं; हम सबहीं रुदन करते पडे हैं;वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे, सोभी उनकों

सिद्धदर्शनहे.

मृतक देखके बनकों चलते रहे हैं, पर्वतकी कंदरासों पवन आता है, सो उन कंदरासों रुदन कर आता है, नदी जो वेगकरि आतियां हैं, अरु तरंग उछलते हैं, मानौ उह भी रुदन करते हैं, अरु कमलों उपर जो जलके कण हैं, मानौ कमलोंके नयनसें रुदनकरि जल चलता है, अरु दिशातें जो उष्ण पवन आता है, सो मानौं दिशा भी उष्ण श्वासोंकों छोडतियां हैं॥ हे देवियां! हम सबही शोककों प्राप्त भए हैं, तुम कृपा करिके हमारा शोक निवृत्त करौ, काहेतें जो महापुरुषोंका समागम निष्फल नहीं होता, अरु महापुरुषोंका शरीर परोपकारके निमित्त है॥ हे रामजी! जब इस प्रकार ज्येष्ठशर्मानें कहा, तब लीलानें कृपा करिके शिर उपर हाथ रख्या, लीलाके हाथ रखणे करि उसका सब ताप नष्ट हो गया, अंतःकरण शांतिकों प्राप्त भया, जैसे ज्येष्ठ आषाढके दिनोंविषे पृथ्वी तप्त हुई, अरु तिसपर मेघकी वर्षा होती है, तब शीतल हो जाती है, तैसे उसका अंतःकरण शीतल भया, अरु जो उहांके निर्धन थे, सो तिनके दर्शन करनेकरि लक्ष्मीवान् भए, अरु शांतिकों प्राप्त भए, शोक नष्ट हो गया, वृक्ष सूके हुए थे, सो तिस समय फलसहित हो गये॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! लीलाका पुत्र जो ज्येष्ठशर्मा था; तिसकों लीलानें मातारूपी होइकरि दर्शन क्यों न दीया? सो कारण मुझकों कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो स्पंद संवेदन हुई है, सो संवेदन भूतोंका पिंडाकार होइ भासती है, अरु वास्तवतें आकाशरूप है, भ्रांति करिके पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं; जैसे बालककों छायाविषे भ्रम करिके बैताल भासता है; तैसे संवेदनके फुरणेकरि पृथिव्यादिक भूत भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके पिंडाकार भासते हैं, अरु जागेतें आकाशरूप भासते हैं; तैसे भ्रमके नष्ट हुए पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं; जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालविषे अर्थाकार भासते हैं, अग्नि जलावती है, जागेतें सब शून्य होई जाती है, तैसे अज्ञानके निवृत्त हुएतें इह जगत् आकाशरूप होइ जाता है, जैसे मूर्च्छाविषे नानाप्रकारके नगर भासते हैं, जैसे परलोक जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, अरु

मुक्तमाला भासतियां हैं, जैसे नौकापर बैठेकों तटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे इह जगत् भ्रम करिके अज्ञानीकों भासता है; अरु जो ज्ञानवान् है तिसकों सब चिदाकाश भासता है, जगत्की कल्पना कोउ नहीं फुरती, तातें लीला उसकों पुत्रभाव अरु आपकों माताभाव कैसे देखै? उसका अहं अरु ममभाव नष्ट हो गया था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होता है, तैसे लीलाका अज्ञानभ्रम नष्ट हो गया था, सब जगत् उसकों चिदाकाश भासता था, इस कारणतें आपकों माताभाव न जानत भई, जो उसविषे कछु ममता होती तब उसकों माताभाव कर देखती, परंतु उसकों इह अहंममभाव न था, इस कारणतें माताभाव न देखा, न देवीरूप देखा, अरु शिरपर हाथ रख्या, अर्थ इह जो संतोंका दयालु स्वभाव है, औ मातापुत्रकी कल्पना उसविषे कछु न थी, इस कारणतें उसके शिरपर हाथ रख्या, और कल्पना कछु न थी, केवल आत्मरूप जगत् उसकों भास्या था ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तिस पर्वत उपर जो ग्राम था, अरु तिसविषे वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिस अंतःपुरसों देवी अरु लीला दोनों अंतर्धान हो गईयां, तब उहांके लोक कहने लगे, जो वनदेवियांनें हमारे उपर बडी कृपा करिके दुःख नाश किये; अरु अंतर्धान भईयां ॥ हे रामजी! तब दोनों आकाशविषे आकाशरूप अंतर्धान भईयां; अरु परस्पर संवाद करत भईयां; जैसे स्वप्नविषे संवाद होता है, तैसे उनका परस्पर संवाद हुआ, देवीनें कहा, हे लीले! जो कछु जानना था, सो तुझनें जान्या है, क्यौं? अरु जो कछु देखना था सो देख्या क्यौं? इह ब्रह्मकी शक्ति है, और कछु पूछना होवै सो पूछौ ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! मेरा जो भर्त्ता है विदूरथ; तिस पास मैं गई, तब उसनें मेरेकों क्यौं न देखी, अरु मेरी इच्छातें ज्येष्ठशर्मा आदिनें देखी सो कारण कहौ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट भया न था; अरु अद्वैतकों अभ्यासकरि प्राप्त न भई थी, जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभव

होता, तैसे तुझकों अद्वैतका अनुभव न था॥ हे लीले! जैसे ऋतुका फल मधु होता है, जो ज्येष्ठ आषाढ विदित होता है, अरु वर्षा आई नहीं तैसे तूं थी, अर्थ इह जो संसारमार्गकों लंघी थी; अरु अद्वैत तत्त्वकों प्राप्त न भई थी, तिसकरि आत्मशक्ति तुझकों प्रत्यक्ष न भई थी, तातें आगे तेरा सत्संकल्प न था, अरु अब तूं सत्संकल्प हुई है, अब तैनें सत्संकल्प कीया है; जो तुझकों ज्येष्ठशर्मानें देखी, तिसकरि तुझकों देखते भए, अब तूं विदूरथके निकट जावै, तब पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार होवै ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! इस मंडप आकाशविषे मेरा भर्त्ता वसिष्ठ ब्राह्मण हुआ है, बहुरि मृतक हुआ तब इसी लोक मंडप आकाशविषे उसकों पृथ्वी लोक फुरि आया, पद्मराजा होत भया, चिरकालपर्यंत उसनें चार द्वीपका राज्य कीया, बहुरि मृतक हुआ, तब इसी मंडप आकाशविषे उसकों जगत् भास्या, अरु पृथ्वीपति हुआ, तिसका नाम विदूरथ भया॥ हे देवि! इसी मंडप आकाशविषे जर्जरीभाव अरु जन्म मरण हुआ, अरु अनंत ब्रह्मांड इसविषे स्थित हैं, जैसे संपुटविषे सरसोंके दाणे अनेक होवैं, तैसे इसविषे ब्रह्मांड मुझकों समीपही भासते हैं; भर्ताकी सृष्टि भी मुझकों अब अंतर भासतियां हैं, अब जो कछु तुम आज्ञा करौ सो मैं करौं॥ देव्युवाच॥ हे भूतलअरुंधती! तेरे जन्म तौ बहुत विदित भए हैं, अरु अनेक तेरे भर्त्ता हुए हैं, तिनविषे इह जो तेरे भर्त्ता हैं, सो सब इस मंडपविषे हैं, एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, सो मृतक हुआ है, तिसका शरीर तौ भस्म हो गया है, बहुरि पद्मराजा हुआ, सो तेरे मंडपविषे शव पडा है; अरु तीसरा भर्त्ता संसारमंडपविषे वसुधापति हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे भोगरूपी कल्लोलकरि तिसकी चेतनता व्याकुल है, अरु राज्यकार्यविषे चतुर हुवा है, आत्मपदतें विमुख हुआ है; अज्ञानकरिके जानता है जो मैं ईश्वर हौं; मेरी आज्ञा सबके उपर चलती है; अरु मैं बडे भोगोंकों भोगनेहारा हौं; मैं सिद्ध हौं, बलवान् हौं ॥ हे लीले! ऐसे संकल्पविकल्परूपी जेवरी साथ बांध्या हुआ है, अब तूं किस भर्त्ताके पास चलती है? जहां तेरी इच्छा होवै तहां मैं तुझकों ले जाउं, जैसे सुगंधकों

वायु ले जाता है, तैसे मैं तुझकों ले जाउंगी ॥ हे लीले! जिस संसारमंडलकों तूं समीप कहती है, सो चिदाकाशकी अपेक्षा करिके समीप भासता है, अरु सृष्टिकी अपेक्षाकरि अनंतकोटि योजनोंका भेद है; अरु आकाशरूप है वपु तिनका, ऐसी अनंत सृष्टि पडी फुरती हैं, समुद्र अरु मंदराचल पर्वत आदिक अनंत हैं, तिन परमाणुविषे अनंत सृष्टि चिदाकाशके आश्रय पडी फुरती हैं, चिद्‌अणु चिद्‌अणुकेविषे रुचिके अनुसार सृष्टि बडे आरंभ करिके दृष्ट आती है, अरु बडी स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्ट आतियां हैं, अरु विचारकरि तोलियें तौ एक चावलके समान भी नहीं होतियां ॥ हे लीले! नानाप्रकारके रत्नोंकरि पर्वत भी दृष्ट आते हैं, अरु आकाशरूप हैं; जैसे स्वप्नविषे चेतनका किंचन नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आता है, तैसे इह जगत् चेतनका किंचन है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंकरि कछु उपजा नहीं ॥ हे लीले! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है, अरु जगत् आभास उपजता भी है, मिटि भी जाता है, जैसे नदीविषे नानाप्रकारके तरंग उपजते भी हैं अरु लीन भी होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत्‌जाल उपजती है, अरु नष्ट भी हो जाती है, अरु आत्मसत्ता इनके उपजनेविषे अरु लीन होनेविषे एकरस है, आभासरूप है, वास्तव कछु नहीं ॥

॥ लीलोवाच ॥

हे माता! अब पूर्वकी मुझकों सब स्मृति हुई है, प्रथम मैं जो राजसी जन्म ब्रह्मतें पाई हों? तिसतें आदि लेकरि नानाप्रकारके मैं अष्टशत जन्म पाइ हों, सो प्रत्यक्ष मुझकों भासते हैं; प्रथम जो चिदाकाशतें मेरा जन्म है, सो विद्याधरकी स्त्री भई हों, तिस जन्मविषे जो कोउ मेरा कर्म हुआ, तिसकरि मैं भूतलविषे आन स्थित भई, तिसकरि दुःखी भई, बहुरि पक्षिणी भई, तहां जालविषे फसी, तिसके अनंतर भिल्लिनी हुई हों, कदंबवनविषे विचरणे लगी, बहुरि वनलता भई हों, तहां गुच्छेही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे, तहां एक ऋषीश्वर मुझकों हाथकर स्पर्श कीया करता था, तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहां जो मुझसों कर्म होवै सो पुरुषहीका कर्म होवै, तिसतें मैं बडी लक्ष्मीकरि

गिरिग्रामव.

संपन्न राजा भई, तहां मुझसों दुष्ट कर्म हुए, तिसकरि मैं बंदरी भई, कुष्ठ अंगोंकरि अष्ट वर्ष मैं उहां रही, बहुरि मैं बलद हुई; मुझकों दुष्टनें खेतीके हलविषे जोडी; तिसकरि दुःख पाई; बहुरि भमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुगंध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत बनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्षपर्यंत उहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया, बहुरि राजहंसका जन्म लिया, इस प्रकार मैं जन्मों कों धारती भई, अरु बडे कष्ट पाई॥ हे देवि! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं; संसारसमुद्रविषे वासनाकरि घटीयंत्रकी नांई भ्रमी हौं॥ हे देवि! अब मैं निश्चय कीया है, जो आत्मज्ञानविना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता; तुमारी कृपातें अब निःसंकल्प पदकों पावती हुई हौं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः॥ २१॥ ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! वज्रसारकी नांई ब्रह्मांड खपर था, अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्मांड खपर था, ऐसे ब्रह्मांडकों दोनों कैसे लंघती गइयां?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! वज्रसार ब्रह्मांड खपर कहां है, अरु कौन गया है? न कोउ वज्रसार ब्रह्मांड है, न लंघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मंडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव करत भया हौं॥ हे रामजी! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपकों चारों ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मैं राजा पद्म हौं, अरुंधतीकों लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है, बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसकों और जगत्का अनुभव भया, आपकों राजा विदूरथ जानत भया, सो तूं देख जो कहां गया है, अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसकों सृष्टिका अनुभव भया, तातें जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवी जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपातें अपनेही देहाकाशविषे लीला उडी है, अंतवाहक देह जो आकाशरूप है, तिस करिके उडी है, ब्रह्मां

डकों लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नतें स्वप्नातरकों प्राप्त होवै, तैसे देख आईयां, तातें गईया कहां, अरु आईयां कहां? एकही स्थानविषे होयके एक सृष्टितें अन्य सृष्टिकों देखी हैं, अरु हे रामजी! इनकों ब्रह्मांडके लंघ जाणेविषे कछु यत्न नहीं, काहेतें जो उनका शरीर अंतवाहकरूप है॥ हे रामजी! मनकरि लंघ्या चाहीए; तहां लंघ्या जाता है, क्यों? तैसे उह प्रत्यक्ष लंघियां हैं; सत्यसंकल्परूप हैं, अरु वस्तुतें कहें तौ कछु नहीं॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बडी गंभीर भासती है, अरु आभासमात्र है, तैसे इह जगत् देखे हैं, न कोउ ब्रह्मांड है, न कोउ जगत् है, न कोउ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बन्या कछु नहीं; जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, तैसे आभास होई भासता है, केवल वासनामात्रही जगत् है, पृथ्वी आदिक भूत कोउ उपजा नहीं है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है, जैसे स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप पवनही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्माही है, किंचनविषेभी ज्योंका त्यों है, शांतरूप है, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आपही जगत्रूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं, जिन पुरुषोंनें आत्माकों जान्या है, तिनकों जगत् आकाशतें भी शून्य भासता है, अरु जिनोंनें नहीं जान्या तिनकों जगत् वज्रसारकी नांई दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते हैं, तैसे इह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है॥ हे रामजी! इस प्रकार देवी अरु लीला संकल्प करिके नानाप्रकारके स्थानोंकों देखती भईयां, झरनोंतें जल चल्या आवै, बावडीयां सुंदर ताल बगीचे वृक्ष देखे, शब्द करते हैं, अरु सुंदर मेघ पवनसंयुक्त देखते हैं, मानौ स्वर्ग इहां आया है॥ इति श्रीयो॰ उत्प॰ लीलोपाख्याने गिरिग्रामव॰ नाम द्वाविंशःसर्गः २२

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार देखके दोनों शीतल चित्तग्रामविषे वास करत भईयां; भोग अरु मोक्षकरि शीतल चित्त है, अर्थ इह जो संतुष्टचित्त है, चिरकाल जो आत्मअभ्यास कीया था, तिस

करि शुद्ध ज्ञानरूप होत भई; अरु त्रिकाल ज्ञानकरि संपन्न भई, तिसकरि पूर्वकी स्मृति होत भई; जो कछु अरुंधतीके शरीरकरि कीया था, सो देवीकों कहत भई ॥ हे देवि! तुमारी कृपातें पूर्वकी स्मृति मुझकों भई, जो कछु इस देशविषे मैं कीया था, सो प्रगट भासता है, एक इहां ब्राह्मणी थी, तिसका शरीर वृद्ध होत भया; नाडियां दृष्ट आवैं, अरु भर्त्ताकों बहुत प्यारी थी, अरु पुत्रोंकी माता थी, सो मैंही हौं ॥ हे देवि! मैंनें देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करी थी, इहां मैं दूध रखती थी, इहां अन्नादिकोंके वासन रखती थी, अरु मेरे पुत्र पुत्रीयां जमाई दुहितरे बैठते थे, इहां मैं बैठती थी, अरु भृत्योंकों कहती थी, जो शीघ्रही कार्य करौ; ऐसे शब्द मैं करती थी ॥ हे देवि! इहां मैं रसोई करती थी, भर्त्ता मेरा साक गोवर ले आता था, अरु सर्व मर्यादा कहता था, इह मेरे हाथके चुटे बोए थे, इह वृक्ष मेरे लगाए हुए हैं, कछुक फल मैं इनसों लिये हैं; कछुक रहते हैं; सो इह हैं, इहां मैं जलपान करती थी ॥ हे देवि! मेरा भर्त्ता सब कर्मोंविषे शुद्ध था, अरु आत्मस्वरूपतें शून्य था, सब कर्म मुझकों स्मरण होते हैं; इहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृहविषे पडा रुदन करता है; इहां वेली मेरे गृहविषे विस्तरी हैं, अरु सुंदर फूल लगे हैं, इनके गुछे छत्रोंकी नांई हैं, अरु झरोखे वेलीकरि आवरे हुए हैं; इह मेरा मंडप आकाश है; इसविषे मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! इह जो शरीर है, तिसकी नाभिकमलतें दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है; सो अंगुष्ठमात्र हृदय है, तिसविषे उसका संवित् आकाश है, तिसविषे जो राजसी वासना थी, तिसकरि तिसकों चारों समुद्रपर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरि आया; जो मैं राजा हौं; इहां आठ दिन मृतक हुए वीते हैं; अरु इहां चिरकाल राज्यका अनुभव करत भया है ॥ हे देवि! इस प्रकार थोडे कालविषे बहुत काल अनुभव करत भया है, अरु हमारेही मंडपविषे उह शव पड्या है, अरु तिसकी पुर्यष्टकविषे जगत् फुरि आया है, तिसविषे आपकों राजा विदूरथ जानत भया है, इस राज्यके संकल्पकरि उसकी संवित् इसी मंडप आकाशविषे स्थित है, जैसे

आकाशविषे गंधकों लेके पवन स्थित होवै, तैसे उसकी चेतनसंवित् संकल्पकों लेकरि इस मंडपाकाशविषे स्थित है, उसकी संवित् इस मंडप आकाशविषे है, उस राजाकी सृष्टि मुझकों कोटि योजनोंपर्यंत भासती है, पर्वत मेघ अनेक योजनोंपर्यंत लंघती जाओ तब भर्त्ताके निकट प्राप्त होहूं, अरु चिदाकाशकी अपेक्षा करके अपने पास भासती है, अब व्यवहारदृष्टिकरि कोटि योजनोंपर्यंत है, तातें चलौ जहां राजा विदूरथ मेरा भर्त्ता है, दूर है तौ भी निश्चयवानोंकों निकट है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि दोनों मंडपाकाशविषे उडियां; जैसे पक्षी उडता है, तैसे उडियां; जैसे खड्गकी धारा श्याम होती है, जैसे विष्णुजीका अंग श्याम होता है, जैसे काजर श्याम होता है, जैसे भमरेकी पीठ श्याम होती है; तैसे आकाश श्याम है, तिस आकाशविषे अंतवाहक शरीरकरिके उडियां; मेघोंके स्थान लंघियां; बडा वायुका स्थान लंघियां; सूर्य चंद्रमाकों लंघ गईयां; ब्रह्मलोकपर्यंत जो देवताके स्थान थे, तिनकों लंघ गइयां; इस प्रकार दूरतें दूर गईयां; शून्य आकाशविषे ऊर्ध्व जाइके अधकों देखत भईयां, जो सूर्य अरु चंद्रमा आदिक कोउ नहीं भासता तब लीलानें कहा ॥ हे देवि ! एता सूर्य आदिक प्रकाश था, सो कहां गया, इहां तौ महाअंधकार है, ऐसा अंधकार है, मानौ मुष्टिविषे ग्रहण होता है ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले ! हम महाआकाशविषे आए हैं, इहां अंधकारका स्थान है, सूर्य आदिक कैसे भासैं ? जैसे अंधकूपविषे त्रसरेणु नहीं भासती, तैसे इहां सूर्य चंद्रमा नहीं भासते, अपुन बहुत ऊर्ध्वकों आये हैं ॥ ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि ! बडा आश्चर्य है, जो हम दूरतें दूर आए हैं, जहां सूर्यादिकोंका प्रकाश नहीं भासता, इसतें आगे अब कहां जाना है? देव्युवाच ॥ हे लीले ! इसके आगे ब्रह्मांडकपाट आवैगा, सो बडा वज्रसार है, अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार है, जिसकी धूडकी कणिका भी इंद्रके वज्रसमान है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार देवी कहती थी, जो आगे ब्रह्मांडकपाट आया, महावज्रसार अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार दे

ख्या, तिसकों लंघि गये, अरु क्लेश कछु न भया, काहेतें जो जैसा किसीकों निश्चय होता है, तिसकों तैसा ही अनुभव होता है, निरावरण आकाशरूप जो देवियां हैं, सो ब्रह्मांडकपाटकों लंघ गईयां तिसके परे दशगुणा जलका आवरण है, तिसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व है, तिसके परे दशगुणा वायु है, तिसके परे दशगुणा आकाश है, तिसके परे परम आकाश है, तिसका आदि मध्य अंत कोउ नहीं, जैसे वंध्यापुत्रकी कथा चेष्टाका अंत आदि कोउ नहीं तैसे परम आकाश है, आकाशका आदि कोउ नहीं, नित्य शुद्ध अनंतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, तिसका अंत लेनेकों सदाशिव मनरूपी वेगकरि कल्पपर्यंत ध्यावे, तौ भी न पावे; अरु विष्णुजी गरुडपर आरूढ होइके कल्पपर्यंत ध्यावे, तौ भी तिसका अंत न पावे, अरु पवन अंत लेनेकों चाहै, तौ न पावे, आदि मध्य अंत कलनातें रहित बोधमात्र है ॥ ॥ इति श्रीयो०उत्प०पुनराकाशवर्ण०त्रयोविं०सर्गः ॥ २३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब पृथ्वी, आप, तेज आदिक आवरणकों लंघ गईयां, तब परमाणुतें रहित परम आकाश उनकों भास्या, तिसविषे ब्रह्मांड धूर कणिकाकी नांई भासी, जैसे सूर्यकी किरणांविषे त्रसरेणु भासते हैं, सो महाशून्यकों धारणेहारा परमआकाश है, अरु अपकण चिद्अणु सृष्टि जिसविषे फुरतियां हैं; ऐसा महासमुद्र है, कोई अधकों जाता है, तिसविषे कोई ऊर्ध्वकों जाता है, कोई तिर्यक् गतिकों जाता है ॥ हे रामजी! चित् संवित्विषे जैसा स्पंद स्फुरता है, तैसा तैसा आकार हो भासता है, वास्तव न कोउ अध है, न कोउ ऊर्ध्व है, न कोउ आता है, न कोउ जाता है, केवल ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेकरि जगत् भासता है, उत्पन्न होता है, बहुरि नष्ट होता है, जैसे बालकका संकल्प जो उपजके नष्ट हो जाता है, तैसे चेतन संवित्विषे जगत् फुरके नष्ट हो जाता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अध क्या होता है, अरु ऊर्ध्व क्या होता है, अरु तिर्यक् क्या भासता है? अरु इहां क्या स्थित है? सो मुझकों कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमाकाश जो सत्ता है, सो आवरणतें रहित है, शुद्धबोधरूप

है, तिसविषे जगत् ऐसे भासता है, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरि तरवरे भासते हैं, तिसविषे अध अरु ऊर्ध्व कल्पनामात्र है, जैसे हलोंके वटेके चौफेर कीडियां फिरती रहें, अरु उनकों मनविषे अध ऊर्ध्व पडा भासै, उनके मनविषे अध ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है ॥ हे रामजी ! इह जगत् आत्माका आभासरूप है, जैसे मंदराचलपर्वत उपर हस्तियोंके समूह विचरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक जगत् फुरते हैं, जैसे मंदराचलपर्वतके आगे हस्ती होवै, तैसे ब्रह्मके आगे जगत् है, अरु वास्तवतें सर्व ब्रह्मरूप है; कर्त्ता, कारण, कर्म, आदान, उपादान, अधिकरण सर्व ब्रह्मही है; इह जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग हैं, तिन जगत ब्रह्मांडोंकों देवियां देखत भईयां; कैसे ब्रह्मांड उनों देखे हैं, सो तूं श्रवण कर, केई सृष्टि उत्पन्न होतियां देखियां, केई प्रलय होतियां देखियां, केई उपजणेका आरंभ देख्या, जैसे नूतन अंकुर निकसता है, तैसे उपजणे लगियां हैं, कहूं जलही जल है, और कछु नहीं, कहूं अंधकारही है, प्रकाश कछु नहीं, कहूं सर्व व्यवहार संयुक्त है, कहूं अपूर्व वेदशास्त्रके कर्म हैं, कहूं आदि ईश्वर ब्रह्मा है, तिसतें सब सृष्टि हुई है, कहूं आदि ईश्वर विष्णु है, तिसतें सब सृष्टि हुई है, कहूं आदि ईश्वर सदाशिव है इसी प्रकार और प्रजापतिकरि उपजते हैं, कहूं नाथकों कोउ नहीं मानते, अनीश्वरवादी हैं, कहूं तिर्यक्ही जीव रहते हैं, कहूं देवताही रहते हैं, मनुष्यही रहते हैं, कहूं बडे आरंभ करिके संपन्न हैं, कहूं शून्यरूप हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनेक सृष्टि उत्पन्न होती चिदाकाशविषे देखत भईयां, तिनकी संख्या करनेकों कोउ समर्थ नहीं, चिदात्माके आभासरूप फुरती हैं ॥ जैसी फुरणा होती है, तिसके अनुसार फुरती हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मांडवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दोनों देवियां उठके राजाके जगत्विषे आईयां, तहां अपने मंडप स्थानोंकों देखत भईयां, जैसे सोया हुआ जागके देखता है, तैसे अपने मंडपविषे प्रवेश कीया, तब क्या देखे, जो राजाका फुलोंके साथ ढाप्या हुआ शव पडा है, अरु अर्धरात्रका समा है, सर्व लोक

गृहमें सोये पडे हैं, अरु राजा पद्मके शबके पास लीलाका शरीर था सो पडा है, अंतःपुरविषे धूप, चंदन, कपूर, अगरकी सुगंध भरी रही है, तब विचार करत भई जो उहां चलें, जहां राजा राज्य करता है, तब उस भर्त्ताकी जो पुर्यष्टक थी, जिसविषे विदूरथका अनुभव हुआ था, तिस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टि देखणेकों देवीके साथ चली, अंतवाहक शरीर साथ आकाशमार्गकों उडी, जाते जाते ब्रह्मांडकी वाटकों लंघ गईयां, तब विदूरथके संकल्पविषे जगत्कों देखत भईयां, जैसे तलावडीविषे सेवाल होती है, तैसे जगत्कों देखत भईयां, सप्तद्वीप देखे, नवखंड देखे, सुमेरु आदिक पर्वत देखे, समुद्रद्वीपादिक सब रचना देखत भईयां, तिसविषे जंबुद्वीप भरतखंड देख्या, तिसविषे विदूरथ राजाका मंडपस्थान देखत भईयां, तहां राजा सिद्धकों देखत भईयां, तिसने कछु विदूरथ राजाकी पृथ्वीकी हद भाईयोंनें दबाई थी, तिनके निमित्त सेनाकों भेजी, अरु राजा विदूरथनें भी सुणके सेनाकों भेजी, दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगी हैं, अरु त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखणे आई है, देवता विमानोंपर आरूढ होइके देखणे लगे हैं, सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर शस्त्रोंकों छोडके देखणेकों स्थित भए हैं, अरु विद्याधरियां अप्सरा आई स्थित भईयां हैं, जो सूरमें युद्धविषे प्राणोंकों त्यागेंगे, तब हम इनकों स्वर्गविषे ले जावेंगे, ऐसे विचार करि विद्याधरीयां आन स्थित भईयां हैं; अरु रक्तमांस भोजन करणेकों भूत, राक्षस, पिशाच, योगणीयां आन स्थित भईयां हैं, हे रामजी ! जो पुरुष सूरमे हैं, सो तौ स्वर्गके भूषण हैं, अरु अक्षय स्वर्गकों भोगेंगे; जिनका मरणा धर्म पक्ष करिके संग्रामविषे होवैगा, सोई स्वर्गकों जावैंगे ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सूरमा किसकों कहते हैं अरु जो युद्ध करिके स्वर्गकों नहीं प्राप्त होते सो कवन हैं ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते, अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्ध करते हैं, सो नरककों प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष धर्मके निमित्त युद्ध करते हैं सो सूरमे हैं, सोई स्वर्गलोककों प्राप्त होते हैं, अरु जो पुरुष गौके अर्थ युद्ध करते हैं, कै ब्रा

ह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, शरणागतके अर्थ, युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए स्वर्गलोककों प्राप्त होते हैं, स्वर्गके भूषण कहाते हैं, सो अरु जो राज्यपालनेके निमित्त युद्ध करते हैं, सो मुए हुए स्वर्गकों प्राप्त होते हैं, उनका यश स्वर्गविषे बहुत होता है, जो पुरुष धर्मके अर्थ युद्ध करते हैं, सो अवश्य स्वर्गलोककों प्राप्त होते हैं, अरु जो अधर्मकरि युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए नरककों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष कहते हैं, संग्रामविषे मुए सब स्वर्गकों प्राप्त होते हैं, सो मूर्ख हैं, स्वर्गकों उही जाते हैं, जिनका मरणा धर्मके अर्थ हुआ है, अरु जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते हैं, सो नरककों प्राप्त होवैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब दोनों देवियां रणसंग्रामकों देखत भईयां, क्या देखे जो महाशून्य बन है, तिसविषे दोनों सेना जोडीयां हैं, जैसे दो बडे समुद्र उछलिकरि परस्पर मिलने लगें तैसे सेना मिलियां; तिसकों इह देखणेकरि संकल्पकों रचिके दोनों विमान तिस उपर स्थित होके देखणे लगी, तब क्या देखे जो योद्धे आयके स्थित हुए हैं, मच्छव्यूह, गरुडव्यूह, चक्रव्यूह, इस प्रकार सेनाके भाग भिन्न हुए दोनों सेनाके योद्धे एक एक होइकरि युद्ध करणे लगे, प्रथम परस्पर देख जो इह बाण चलावै, ऐसे कहैं जो तूं प्रथम चलाउ, उननें कहा तूं प्रथम चलाउ, अरु क्रोधदृष्टिकरि स्थिर हो रहे, मानों मूर्त्तियां लिख छोडियां हैं, तिसके अनंतर और योद्धे दोनों सेनाके आए, मानौं प्रलयकालके मेघ उछले हैं, तिनके आनेकरि एक एक योद्धेकी मर्यादा दूर हो गई, एकठे युद्ध करने लगे, बडे शस्त्रोंके प्रवाहके प्रहार करने लगे, कहूं खड्गोंके प्रहार हों वहीं, कुहाडे त्रिशूल भाले बरछियां कटारी छुरी चक्र गदादिक शस्त्र चलने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हैं, तैसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, बडे शब्द करैं, अरु शस्त्र चलावैं ॥ हे रामजी! जेते कछु प्रलयकालके उपद्रव थे, सो एकठे आन हुए; योद्धा जो थे सो जानके युद्धकी उर आये, अरु जो कायर थे सो भागी जावैं,

ऐसा संग्राम हुआ; जो योद्धाके शिर काटे गये, तिनके हस्ती घोडे मृत्युकों प्राप्त भये, जैसे कमलके फूल काटे जाते हैं, तैसे तिनके शीश काटे जावैं, तब दोनों सेनाके राजा चिंता करने लगें, जो क्या होवैगा ? हे रामजी! ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरकी नदीयां चलीं; तिसविषे प्राणी वहते जावहीं, अरु बडे शब्द करैं, जिन शब्दके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासैं ॥ हे रामजी ! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पिके आकाशविषे स्थित हुई, क्या देख्या ऐसा युद्ध हुआ है जो महाप्रलयविषे समुद्र एकरूप हो जाते हैं, अरु विजलीकी नांई शस्त्रोंका चमकार होता है, अरु जो शूर वीर हैं, तिनके रक्तकी बुंदां पृथ्वीउपर पडतियां हैं, तिस बुंदोंविषे जेते मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं, ते ते वर्ष स्वर्गकों भोगैंगे, जो जो सूरमा युद्धविषे मृतक होवैं, तिनकों विद्याधरियां स्वर्गकों लेजावैं, अरु देवगण स्तुति करैं, जो इह सूरमा स्वर्गकों प्राप्त भया, अक्षय स्वर्ग भोगैगा, अर्थ इह जो चिरकाल स्वर्गसुखभोग भोगैगा ॥ हे रामजी ! शूरमे स्वर्गलोकके भोग मनविषे चिंतन करी हर्षवान् होवैं, अरु युद्ध करी नानाप्रकारके शस्त्र चलावैं, अरु संहारे हैं, बहुरि युद्धके सन्मुख होवैं, धैर्य धरके स्थित होवैं, जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् अचल स्थित है, तिसतें भी अधिक धैर्यवान् रहैं, ऐसे संग्रामविषे योद्धे चूर्ण होवैं, जैसे उखलाविषे चूर्ण होती है, तैसे रणविषे चूर्ण होवैं, अरु बहुरि सन्मुख होवैं, अरु हाहाकार शब्द बडे होवैं, अरु हस्तिसों हस्ती परस्पर युद्ध करैं, शब्द करैं ॥ हे रामजी ! अनेक जीव इस प्रकार नाशकों प्राप्त भये, जो जो सूरमा मरैं तिनकों विद्याधरियां स्वर्गकों ले जावैं, परस्पर बडे युद्ध होवहीं, खड़वाले साथ खड़वाले युद्ध करैं, त्रिशूलवाले साथ त्रिशूलवाले युद्ध करैं, जैसा जैसा शस्त्र किसीपास होवै तैसेही तिससाथ युद्ध करैं जब शस्त्र पूर्ण होइ जावै तव मुष्टिसाथ युद्ध करहीं, दश दिशा युद्धकरि पूर्ण होइ गईयां ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥२६॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार बडा युद्ध हुआ तब शूरमेके रुधिरका प्रवाह चल्या, जैसे गंगाका प्रवाह तीक्ष्ण चलता है, तैसा तीक्ष्ण प्रवाह चल्या, तिस प्रवाह

विषे हस्ती, घोडा, मनुष्य, रथ सब बहे जावैं; अरु सेना सृष्टि नाशकों प्राप्त होति जावै॥हे रामजी! बडा क्षोभ आनके उदय हुआ, तब राक्षस पिशाच आदिक जो तामसी जीव थे, सो भोजन करने लगे, मांस खावें, अरु रुधिरपान करैं, उनकों उत्साहक्रिया प्राप्त भई; जैसे मंदराचल पर्वतकरि क्षीरसमुद्रकों क्षोभ हुआ था, तैसे संग्रामभूमिविषे योद्धोंकों क्षोभ हुआ; रुधिरका समुद्र चल्या, तिसविषे हस्ती, घोडे, रथ सूरमें तरंगोंकी नांई उछलते दृष्ट आवहीं; रथवालेसों रथवाले युद्ध करैं; घोडेवालेसों घोडेवाले युद्ध करहीं; हस्तिवालेसों हस्तिवाले, प्यादेसों प्यादे युद्ध करैं ॥ हे रामजी! जैसे प्रलयकालकी अग्निविषे जीव पडे जलते हैं; तैसे जो योद्धा रणभूमिविषे आवैं, सो नाशकों प्राप्त होवैं; जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, जैसे समुद्रविषे नदीयां प्रवेश करतीयां हैं; तैसे रणभूमिविषे दश दिशाके योद्धे प्रवेश करैं, किसीका शीश काटा जावै, अरु धड युद्ध करै, किसीकी भुजा काटी जावै, किसीके उपर रथ चले जावैं; हस्ती घोडे उलट उलट पडैं, अरु नाश हो जावैं ॥ हे रामजी! दोनों राज्योंकी सहायताके निमित्त अनेक राजा आये थे, पूर्व दिशातें आये थे, काशी मद्रास देशके, मीला देशके, मालव देशके, सकला देशके, कवटा देशके, किरात देशके, म्लेच्छ देशके आये, जिनोंके अनुसार मर्यादा नहीं, सो म्लेच्छ हैं, पारसीवाले आये, काश्मीर देशके आये, तुरक देशके आये, पंजाब देशके आये, हिमालयपर्वतके आये, सुमेरुपर्वतके आये इत्यादिक अनेक देशपाल आये, जिनके बडे भुजदंड हैं, अरु बडे केश हैं, अरु बडे भयानक रूप हैं, सब युद्ध करनेके निमित्त आये, एते मूर्तिमंत आये, बडी ग्रीवावाले आये, एकटंगे पर्वततें आये, एकाचल एकाक्ष आये, घोडेके मुखवाले आये, श्वानके मुखवाले इसतें लेकरि योद्धे आये, स्त्रीराज्यतें आये, सुमेरु कैलासके राजा थे, जेते कछु पृथ्वीके राजा थे, सो सबही आये, जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं, अरु दिशास्थान जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरिके सब स्थान पूर्ण भये, दोनों उरतें युद्ध करणे लगे, चक्रवाले साथ चक्रवाले युद्ध

करें, खड्ग, कुऱ्हाडे, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाण, आदिक शस्त्रोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, उह कहैं, प्रथम मैं जाता हौं, उह कहैं मैं प्रथम जाता हौं ॥ हे रामजी! तिस कालमें ऐसा युद्ध होने लगा जो कहनेविषे नहीं आता; दौडदौडके योद्धे रणविषे जावैं, अरु मृत्युकों प्राप्त होवैं, जैसे अग्निविषे घृतकी आहुति भस्म होती है, तैसे रणविषे योद्धे नाशकों प्राप्त होवैं ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरका समुद्र चला तिसविषे हस्ती, घोडा, रथ, मनुष्य, तृणोंकी नांई वहते जावैं, अरु संपूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई, जैसे आंधीकरि फूल फल बूटे गिरते हैं; तैसे पृथ्वीपर कटकट शब्द करते शिर गिरैं ॥ हे रामजी! जो तिस कालमें युद्ध हुआ है, सो कहनेविषे नहीं आता, सहस्रमुख जो शेषनाग है, सो युद्धके कर्मोंकों उह वर्णन करै तौ भी संपूर्ण न करि शकैगा तब और कैसे कहैगा, सो संक्षेपतें कछु श्रवण कराया है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार युद्ध हुआ तब सूर्य अस्त हुआ, मानौ उसकी किरणां भी शस्त्रोंके प्रहारकरि अस्तताकों प्राप्त भईयां, तब विदूरथ जो सेनापति है, सो मंत्रीयोंकों बुलाइकरि कहत भया ॥ हे मंत्री! अब युद्धकों शांत करियें, काहेतें जो सूर्य अस्त भया है, अरु योद्धे भी सब युद्ध करिके थके हैं, रात्रिकों आराम करैं, बहुरि दिनकों युद्ध करैंगे, तातें वस्त्र फेरौ जो अब युद्ध शांत करौ, तब मंत्रीनें दोनों सेनाके मध्यविषे उंचे चढके वस्त्रकों फेरा, जो अब युद्धकों शांत करौ, बहुरि दिनकों युद्ध करैंगे, तब दोनों सेनानें युद्धका त्याग कीया, अरु अपनी अपनी सेनाविषे नूबत नगारे बजावने लगे, राजा विदूरथ भी अपने गृहविषे आय स्थित भया, रणभूमिका शांत होई गई, जैसे शरत्कालविषे मेघोंतें रहित आकाश निर्मल होता है, तैसे रणविषे संग्राम शांतिकों प्राप्त भया; तब रात्रिकों देखके राक्षस, पिशाच, गीधड, बघाड, डाकणी, मांसका भोजन करने आए, अरु रुधिर पान करैं, केईके शिर काटे गये केईके अंग काटे गये अरु पडे जीवते हैं, अरु हाय हाय स

ब पडे करते हैं; सो निशाचरकों देखके डरने लगे, अरु केई लोक भाईमित्रोंकों देखते भये ॥ हे रामजी! तब राजा विदूरथ स्वर्णके मंदिरविषे शय्या उपर विश्राम करत भया, कैसी शय्या है, जो फूलोंसहित चंद्रमाकी नांई शीतल अरु सुंदर है, तिस उपर सब किंवाडोकों चडाइके विश्राम किया है, अरु मंत्रीयों साथ विचार कीया, जो प्रातःकालकों उठके ऐसे करेंगे ऐसे विचार करिके शयन कीया, मुहूर्त्त एकपर्यंत राजा सोया, बहुरि चिंताकरि जाग उठा, अरु दोनों देवियोंनें आकाशतें उतरके गृहविषे सूक्ष्म रूपसों प्रवेश कीया; जैसे संध्याकालमें कमलके मुख मूंदत हैं, तिनोंमें वायु प्रवेश कर जावै तैसे मंदिरोंमें सूक्ष्म परमाणुके मार्गकरि प्रवेश कीया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शरीर साथ परमाणुके रंध्रविषे देवियां कैसे प्रवेश करत भईयां? उह तौ कमलके तंतूतें भी सूक्ष्म होते हैं, बालके अग्रतें भी सूक्ष्म होते हैं, तिस मार्गविषे कैसे प्रवेश करत भईयां ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भ्रांतिकरि जो अधिभूतक शरीर देह हुआ है, तिस आधिभौतिक शरीरकरि आपतें सूक्ष्मरंध्रविषे प्रवेश कोउ नहीं करीशकता है, परंतु मनरूपी शरीरकों रोक कोउ नहीं शकता ॥ हे रामजी! देवी अरु लीलाका अंतवाहक शरीर था, तिसतें सूक्ष्म परमाणुके मार्गसें उनकों प्रवेश करनेमें कछु विचार न हुआ, जो उनकों अधिभूत शरीर होता तौ यत्न भी होता, जहां अधिभूतक न होवै, तहां यत्नकी शंका कैसे होवै? हे रामजी! और भी सब शरीर चित्तरूपी है, अरु जैसा निश्चय अनुभव संवितविषे होता है, तैसेही सिद्धता होती है, अन्यथा नहीं होती, जिसके निश्चयविषे इह शरीरादिक आकाशरूप हैं, तिसकों अधिभूतकताका अनुभव नहीं होता, अरु जिसके निश्चयविषे अधिभूतकता दृढ हो रही है, तिसकों अंतवाहकका अनुभव नहीं होता, जिस पुरुषकों पूर्वार्धका अनुभव नहीं तिसकों उत्तरार्धविषे गमन नहीं होता, जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वकों नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है, अरु अग्निका चलना अधकों नहीं होता, जलका ऊर्ध्व नहीं होता; जैसे आदि चेतनसंवितविषे प्रवृत्ति भई है, तैसे अब

लग स्थित है, तातें जिसकों अंतवाहकशक्ति उदय भई है, तिसकों अंतवाहकशक्ति उदय भई है, तिसकों आधिभूतकता नहीं रहती अरु जिसकों अधिभूतकता दृढ है, तिसकों अंतवाहकशक्ति उदय नहीं होती ॥ हे रामजी! जो पुरुष छायाविषे बैठा होवै तिसकों धूपका अनुभव नहीं होता अरु जो धूपविषे बैठा है, तिसकों छायाका अनुभव नहीं होता, अनुभव तिसकों होता है, जिसके चित्तविषे दृढता होती है, अन्यथा किसीकों कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! जैसा प्रमाण चित्तसंवित्विषे होता है, जबलग और प्रतीति नहीं होती तबलग तैसेही सिद्धता होती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भयकरि कंपायमान होता है, सो कंपता भी तबलग है, जबलग सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब जेवरीका अनुभव उदय हुवा, तब सर्पभ्रम नष्ट होता है; तैसेही जैसा अनुभव चित्तसंवित्विषे प्रमाण दृढ होता है, तिसका अनुभव होता है, इह वार्त्ता बालक भी जानता है, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है, तैसाही रूप भासता है, निश्चय और होवै, अरु अनुभव और प्रकार होवै, सो कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! जिनकों इह आकार स्वप्नसंकल्पपुरकी नांई हुए हैं, सो आकाशरूप हैं, जिनकों ऐसा निश्चय होवै, तिनकों रोक कोउ नहीं शकता, औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है, अरु जैसा जैसा संवेदन दृढ भया है, तैसा तैसा आपकों जानता है॥ हे रामजी! आदि सर्ग आत्मातें स्वाभाविक उपजा है, सो अकारणरूप है, पाछेतें प्रमादकरि द्वैत कार्य आकारणरूप होयके स्थित भया है ॥ हे रामजी! आकाश तीन हैं; एक चिदाकाश है, एक चित्ताकाश है, एक भूताकाश है; तिनविषे वास्तव एक चिदाकाश है, अरु भावना करिके भिन्न भिन्न कलना हुई है, आदि शुद्ध चिदाकाश अचेतन चिन्मात्रविषे जो संवेदन फुर्या है, तिसका नाम चित्ताकाश है, तिसविषे इह संपूर्ण जगत् हुआ है ॥ हे रामजी! चित्तरूपी जो शरीर है, सो सर्वगत होइकरि स्थित भया है, जैसा जैसा तिसविषे स्पंद होता है, तैसा होयके भासता है; जेते कछु सर्व पदार्थ हैं, तिन सर्वोंविषे व्याप रहा है; त्रस

रेणुके अंतर भी सूक्ष्मभावकरि स्थित भया है, आकाशके अंतर भी व्याप रहा है, जिसके पत्र फल होते हैं, जलविषे तरंग होयके स्थित भया है, अरु शैल जो पर्वत हैं तिनके अंतर भी उही फुरता है, अरु मेघ होइके उही वर्षता है, अरु जलतें बरफ भी चित्तही होता है, अनंत आकाश भी उही है, परमाणुरूप उही है, अंतर बाहिर सर्व जगत्में यह है, जेता कछु जगत् है, सो चित्तरूपही है, अरु वास्तव आत्मासाथ अनन्य रूप है, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जिस पुरुषकों ऐसे अखंड सत्ता आत्माका अनुभव हुआ है, अरु सर्गके आदि चित्तही जिसका शरीर है, अधिभूतकता कों नहीं प्राप्त भया, सो महाआकाशरूप है, जिनकों पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है, इस कारणतें तिनका अंतवाहक शरीर है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों अंतवाहकविषे अहंप्रत्यय है, तिसकों सब जगत् संकल्प मात्र हो भासता है; जहां जानेकी इच्छा उह करता है, तहां जाता है, आवरण कोउ उसकों रोक नहीं शकता; अरुजिसकों आधिभूतकविषे निश्चय है, तिसकों अंतवाहक शक्ति नहीं होती॥ हे रामजी! सबही अंतवाहक रूप हैं, अरु भ्रम करिके अणहोता आधिभूतक देखते हैं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, स्वप्नविषे जैसे वंध्याके पुत्रका सद्भाव होता है, तैसे आधिभूतक जगत् भासता है; जैसे जलतें शीतलता करिके बरफ हो जाता है, तैसे जीव प्रमाद करके अंतवाहकतें अधिभूतक शरीर होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चित्तमें क्या है, अरु कैसे होता है, अरु कैसे नहीं होता, अरु इह जगत् कैसे चित्तरूप है, अरु क्षणविषे अन्यथा कैसे हो जाता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! एक एक जीवप्रति चित्त होता है, जैसा जैसा चित्त है, तैसी तैसी शक्ति है, अरु चित्तविषे जगत्भ्रम होता है; क्षणविषे कल्प अरु संपूर्ण जगत् उदय हो आता है, अरु क्षणविषे संपूर्ण लय होता है; किसीकों निमेषविषे कल्प होई आता है; किसीकों क्रम करिके भासता है; सो तूं सुण ॥ हे रामजी! जब मरणेकी मूर्छा होती है, तिस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्छाके अनंतर ना

स्मृतिअनु०

नाप्रकारका जगत् इसकों फुरि आता है; जैसे स्वप्नविषे सृष्टि फुरि आती है; जैसे संकल्पका पुर भासता है, तैसे मृत्यु मूर्छाके अनंतर सृष्टि भासती है; जैसे महाप्रलयके अनंतर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होता है, तैसे मृत्युके अनंतर इसकों अनुभव होता है, इह भी विराट् होता है, काहेतें जो इसका मनरूपी शरीर होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मृत्युके अनंतर जो सृष्टि होती है, सो स्मृति करिके होती है, स्मृतिविना तौ नहीं होती, जो मृत्युके अनंतर सृष्टि हुई तौ सकारणरूप हुई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब हरिहरादिक सबही विदेहमुक्त होते हैं; बहुरि स्मृतिका संभव कैसे होवै? हम आदिक जो बोध आत्मा हैं, जब विदेहमुक्त हुए, तब स्मृति संभव कैसे होवै, अरु अबके जो जीव हैं, तिनका जन्ममरण स्मृति कारणतें होता है, काहेतें जो मोक्ष नहीं होता, मोक्षका उनकों अभाव है ॥ हे रामजी! जब इह जीव मरते हैं, तब मृत्यु मूर्छा होती है, अरु कैवल्यभावविषे स्थित नहीं होते, मूर्छाकरि इसका संवित् आकाशरूप होता है, तिसतें बहुरि चित्तसंवेदन फुरि आता है, तब क्रम करिके जगत् फुरि आता है; जब बोध होता है, तब तन्मात्रा अरु काल क्रिया भाव अभाव स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है, जिसका संवेदन दृश्यकी और धांवता है, अज्ञानजन्य तिसकों मृत्यु मूर्छाके अनंतर संवेदन फुरता है, तिसकरि शरीर इंद्रियां भास आतियां हैं, कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर है, परंतु चिरकालकी प्राप्ति करिके आधिभूतक होई भासता है, तब इसकों देश काल क्रिया आधार आधेय उदय होईकरि स्थित होते हैं, जैसे वायु स्पंदनिस्पंदरूप है, जब स्पंद होता है, तब भासता है, अरु निस्पंद हुएतें नहीं भासता, तैसे संवेदन करिके जगत् भासता है, तब जानता है, जो मैं इहां उपजा हौं; जैसे स्वप्न अंगनाका स्वप्नविषे स्पर्शका अनुभव होता है, तौ भी मिथ्या है, तैसे भ्रम करिके आपकों उपजा देखता है, तौ भी मिथ्या है ॥ हे रामजी! जहां यह जीव मृतक होता है, तहांही जगत्भ्रम देखता है, अरु वास्तवतें जीव भी आकाशरूप

है, अरु जगत् भी आकाशरूप है, अरु अज्ञान करिके आपकों उपजा मानता है, अरु आगे जगत्भ्रम देखता है, इह नगर है, इह पर्वत है, इह सूर्य चंद्रमा हैं, इह तारागण हैं, अरु जरा मरण आधि व्याधि संकट करिके व्याकुल होता है, भाव अभाव भय स्थूल सूक्ष्म चर अचर पृथ्वी नदीया पर्वत भूत भविष्य वर्तमान क्षय अक्षय भूमिकों देखता है, मैं उपजा हों, अमुकोंका मैं पुत्र हों, इह मेरा कुल है, इह मेरी माता है, इह मेरे बांधव हैं, एता धन हमकों प्राप्त भया है, इत्यादिक वासनाजालोंविषे दुःखी होता है, अरु कहता है, इह सुकृत है, इह देहाकृति है, प्रथम मैं बालक था, अब मेरी इह अवस्था भई है, इह मेरा वर्ण है; इत्यादिक जगत्कल्पना एक एक जीवकों उदय होती है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी एक वृक्ष उदय हुआ है, चित्तरूपी बीज है, तारागण तिसके फूल हैं, अरु मेघ चंचल पत्र हैं, अरु जंगम, जीव, मनुष्य, देवता, दैत्य आदिक पक्षी बेठनेवाले हैं, अरु रात्रि तिस उपर धूड है, अरु समुद्र तिसकी तलावडी हैं, अरु पर्वत उसविषे सिलबटे हैं, अरु अनुभवरूप अंकुर है, जहां इस जीव मरता है, तहां क्षणविषे देखता है, इस प्रकार एकएककों अनेक जगत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! केई कोटि ब्रह्मा अरु विष्णु, रुद्र, इंद्र, पवन, सूर्य आदिक हुए हैं; जहां सृष्टि है, तहां इह होते हैं, तातें चिद्‌अणुविषे अनेक सृष्टि हैं; जो जीव भी अनंत हुए हैं, तिनोंविषे सुमेरु मंडल दीप लोक भी बहुतेरे हुए हैं, जो जो चिद्‌अणुविषे सृष्टिका अंत नहीं तौ परब्रह्मविषे अंत कहांतें आवै, अरु वास्तवतें है नहीं, जैसे पर्वतकी कंधविषे शिल्पी पुतलियां कल्पै, तौ कछु है नहीं, तैसे जगत् चिदाकाशविषे नहीं, मनमात्रही है ॥ हे रामजी ! मनन अरु स्मरण भी चिदाकाशरूप है अरु चिदाकाशविषे मनन अरु स्मरण है, जैसे तरंग भी जलरूप हैं, अरु जलही विषे तरंग होते हैं, जलतें इतर तरंग कछु वस्तु नहीं, तैसे मनन स्मरण भी चिदाकाशरूप जान ॥ हे रामजी ! दृश्य कछु भिन्न वस्तु नहीं, द्रष्टाही दृश्यकी नांई होकरि भासता है, जैसे इह मनाकाश नानाप्रकार होई भासता है, तैसे चिदाकाशका प्रकाश नानाप्रकार

जगत् होईकरि भासता है, इह विश्व सब चिदाकाशरूप है, हमकों तो ऐसे भासता है, तुमकों इह जगत् अर्थाकाररूप भासता है, इसी कारणतें कहा है, जो लीला अरु सरस्वती आकाशरूप थी, अरु सर्वज्ञ थी, स्वच्छरूप निराकार थी, जहां चाहै तहां जाइ प्राप्त होती थी, जैसी इच्छा करै, तैसी सिद्धि होवै; काहेतें जो जिसकों चिदाकाशका अनुभव हुआ है, तिसकों कोउ रोकी नहीं शकता, सर्वरूप होयके जो स्थित हुआ, तिस गृहविषे प्रवेशका क्या आश्चर्य है? उह अंतवाहकरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब दोनों देवियां राजाके अंतःपुरविषे प्रवेश करिके संकल्पकरि सिंहासनपर चढके स्थित भईयां, चंद्रमाकी नाई कांति है जिनकी, अरु निर्मल कल्पवृक्षोंकी सुगंध पवनकरि शरीरकों स्पर्श करत भईयां, तब बडा प्रकाश अंतःपुरविषे भया, अरु शीतलताकरि व्याधि ताप शांत भया, जैसे नंदनवन होता है, तैसे अंतःपुर भया, जैसे प्रातःकालविषे सूर्यका प्रकाश होता है, तैसे देवियोंके प्रकाश करिके अंतःपुर पूर्ण भया, मानौ देवियोंके प्रकाशसों राजाकेपर अमृतकी सिंचना भई, तब राजा देखत भया, मानों सुमेरुके शृंगतें दोनों चंद्रमा उदय हुए हैं, ऐसे देखके विस्मयकों प्राप्त भया, बहुरि चिंतना करत भया, जो इह देवियां हैं, शय्यातें उठ खडा भया, जैसे शेषनागकी शय्यातें विष्णु भगवान् उठता है, तैसे उठके वस्त्रकों एक ओर करि हाथोंविषे पुष्प लीये, हाथ जोडिके देवियोंके चरणोंउपर चढाये, अरु मस्तक टेक्या, पद्मासन बांधिके पृथ्वीउपर बैठा अरु कहत भया, हे देवियों! तुमारी जय होवै, जन्मदुःख तप्तके तुम शांत करनेहारी चंद्रमा हौ, अरु अपूर्व सूर्य हौ, अर्थ इह जो पूर्व सूर्यके प्रकाशकरि बाह्य तम नष्ट होता है, अरु तुमारे प्रकाशकरि अंतर अज्ञानतम भी नष्ट होता है, तातें अपूर्व सूर्य हौ, जब ऐसे राजानें पूजन करी कहा, तिसतें अनंतर मंत्री जो राजाके पास सोये थे; जैसे नदीके तटउपर फूलोंका वृक्ष होवै, तैसे राजाके पास सोये थे, तिनकों जन्म अ

रु कुलके कहावणे निमित्त संकल्प करिके देवी जगावती भई, तब मंत्री भी उठके फूलोंकरि देवियोंकों पूजन करिके राजाके समीप बैठ गये, तब सरस्वती कहत भई ॥ हे राजन्! तूं कवन है? किसका पुत्र है? अरु कबका जन्म लिया है? हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनें पूछा, तब निकट जो मंत्री बैठे थे सो बोलत भये ॥ हे देवि! तुमारी कृपाकरि राजाका जन्म अरु कुल मैं कहता हौं, इक्ष्वाकुकुलविषे एक राजा होत भया है, कमलकी नांई तिसके नेत्र थे, अरु श्रीमान् था, अरु तिसका नाम कुंदरथ भया है, तिसका पुत्र बुधरथ भया, तिसका पुत्र सिंधुरथ होत भया, तिसका पुत्र महारथ होत भया, तिसका पुत्र विष्णुरथ होत भया, तिसका पुत्र कलारथ होत भया, तिसका पुत्र सूर्यरथ होत भया, तिसका पुत्र नभरथ होत भया, तिस नभरथके पुत्र बडे पुण्यकरके विदूरथ होत भया है; जैसे क्षीरसमुद्रसों चंद्रमा निकसा है, तैसे सुमित्रा मातातें उपजा है, जैसे गौरीजीतें स्वामिकार्तिक उत्पन्न भया है, तैसे इह सुमित्रातें उत्पन्न भया है ॥ हे देवि! इस प्रकार तौ हमारा राजाका जन्म हुआ है, जब दश वर्षका भया, तब पिता इसकों राज्य देकरि आप बनकों उठ गया है, तिस दिनतें लेकरि इसनें धर्मकी मर्यादा साथ पृथ्वीकी पालना करी है, अरु बडे पुण्य कीये हैं, जो तिनों पुण्यका फल तुमारा दर्शन इसकों अब भया है ॥ हे देवि! तुमारे दर्शनके निमित्त जो बहुत वर्ष तप करते हैं, तिनकों तुमारा दर्शन पावना कठिन है, तातें इसके बडे पुण्य हैं, जो तुमारा दर्शन प्राप्त हुवा ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहिके मंत्री तूष्णीं रहत भया, तब देवीजीनें कृपा करिके राजा विदूरथके शीशपर हाथ रख्या, अरु कहा, हे राजन्! तूं अपने पूर्व जन्मकों विवेकदृष्टि करिके देख, जो तूं कवन है, जब इस प्रकार देवीनें कहा तब राजाके हृदयविषे अज्ञान था, सो देवीके हाथ रखनेकरि निवृत्त होत भया, अरु हृदय प्रफुल्लित हुआ, ऐसे देवीके प्रसादकरि राजाकों पूर्वकी स्मृति फुर आई; लीला अरु पद्मका वृत्तात संपूर्ण स्मरण करिके कहत भया ॥ हे देवि! बडा आश्चर्य मैं जान्या है, जो इह जगत् मनकरि रचा है,

तेरे प्रसादकरि मैं जाण्या है, जो मैं राजा पद्म था, अरु लीला मेरी स्त्री थी, एक दिन मुझकों मृतक हुवे ऐसे भास्या, अरु इहां मैं सिंतेर वर्षका भया हौं, सो भ्रमकरिके मैं नहीं जान्या, अब प्रत्यक्ष जानता हौं, अरु अनेक कार्य मैंनें कीये हैं, सिंतेर वर्षोंविषे सो मुझकों स्मरण होते हैं, अरु प्रपितामह भी मुझकों स्मरणविषे आता है, अपनी बालक अवस्था भी स्मरणविषे आती है, यौवन अवस्था भी स्मरणविषे आती है, मित्र बांधव स्मरण होते हैं, इह बडा आश्चर्य हुआ है ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! जब इह मृतक होते हैं, तब इनकों बडी मूर्छा होती है, तिस मूर्छाके अनंतर और लोक भासी आते हैं, एक मुहूर्त्तविषे वर्षोंका अनुभव होता है, जैसे स्वप्नविषे एक मुहूर्त्तसों अनेक वर्षोंका अनुभव होता है, तैसे मुझकों मृत्यु मूर्छाके अनंतर इह लोकभ्रम भास्या है ॥ हे राजन्! तूं जो पद्म राजा था, तिस अपने गृहविषे मृतक हुए तुझकों एक मुहूर्त्त वीती है, अरु इहां तुझकों बहुतेरे वर्षोंका अनुभव भया है, अरु तिसतें भी जो पीछला वृत्तांत है, सो श्रवण कर ॥ हे राजन्! एक पहाडके उपर ग्राम था, तिसविषे एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, अरुंधती तिसकी स्त्री थी, दोनों मंदिरविषे रहते थे, तिस अरुंधतीनें मुझसों वर लीया, जो जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब उसका जीव इसही मंडपाकाशविषे रहै ॥ हे राजन्! जब उह मृतक भया, तब उसकी पुर्यष्टक उसही मंदिरविषे रही, तिसके संवित्‌विषे राजाकी दृढ वासना थी तिस मंडपाकाशविषे तिसकों पद्मराजाकी सृष्टि फुरी आई; अरु अरुंधती तिसकी स्त्री तिसकों लीला होईकरि प्राप्त भई, अरु पद्मका मंडप उस ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित फुरि आया, बहुरि तिस मंडपविषे राजा पद्म तूं मृतक भया तब तेरे संवित्‌विषे नानाप्रकारके आरंभसंयुक्त तुझकों इह जगत् फुरि आया ॥ हे राजन्! इह जो तेरा जगत् है, सो पद्मराजाके हृदयविषे फुरि आया है, अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, सो उसही वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु उही वसिष्ठ ब्राह्मण तूं विदूरथ राजा भया है, सो कैसे स्थित है ? हे राजन्!

इह सब जगत् प्रतिभामात्र है, मनकी कलनाकरि भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ ॥ विदूरथ उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, जैसे मेरा इह जन्म भ्रमरूप भया, तैसे इक्ष्वाकुका कुल भ्रमरूप तैसे मेरा पिता माता सब भ्रमरूप भये, तिसविषे मैं जन्म लीया; बहुरि बालक हुआ, दश वर्षोंकाहुआ, तब पितानें मुझकों राज्य देके वनवास लीया, बहुरि मैं दिग्विजय करिके प्रजाकी पालना करी, शत वर्षोंका मुझकों अनुभव होता है अरु अब मुझकों दारुण अवस्था युद्धकी प्राप्ति आन भई है, युद्ध करिके रात्रिकों मैं गृहविषे आन स्थित भया हौं; बहुरि तुम दोनों देवियां मेरे गृहविषे आईयां हों, मैं तुमारी पूजा करत भया हौं, बहुरि तुम दोनोंविषे एक देवीनें कृपा करिके मेरे शीशपर हाथ रख्या है, तिसकरि मुझकों ज्ञानप्रकाश भया है; जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है, तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है, तैसे इनकी कृपातें कृतकृत्य भया हौं, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदकों प्राप्त भया हौं ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! जो कछु तुझकों भास्या है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतर भी भ्रममात्र हैं, काहेतें जो उहां तुझकों मृतक हुए एक मुहूर्त्त व्यतीत भई है; तिसके अनंतर उही मंडप आकाशविषे तुझकों इह जगत् भास्या है, अरु उह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझकों नदीयां पर्वत समुद्र पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये हैं; जैसे समुद्रविषे तरंग आवृत्त फुरि आते हैं, तैसे जगत् भासि आया है ॥ हे राजन्! मृत्यु मूर्छाके अनंतर कबहु उही जगत् भासता है, कबहु और प्रकार भासता है, कब पूर्व अरु अपूर्व भी भासता है, सो मनकी कल्पना करिके भासता है वास्तवतें असद्रूप है, अज्ञान करिके सत्की नांई भासता है; जैसे एक मुहूर्त्त शयन करिके स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखता है, तैसे जगत्का अनुभव होता है, जैसे संकल्पपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गंधर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौकाविषे बैठे हुएकों

तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणे करिके पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काट्या भ्रम करिके भासता है, तैसे इह जगत् भ्रम करिके भासता है॥ हे राजन्! अज्ञान करिके मिथ्या कल्पना तुझकों उपजी है, वास्तवतें न तूं मृतक भया है, न जन्म लीया है, शुद्ध विज्ञान शांतिरूप है, तूं अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हौ, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञान करिके सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ताही जगत्की नांई भासती है, जैसे बडी मणीकी करचां नानाप्रकार होई भासती हैं, सो मणितें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप जगत् भासता है, गिरि ग्राम तुम किंचनरूप हौ; जेता कछु जगत्विस्तार तुझकों भासता है, सो लीला अरु पद्म राजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु उह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है॥ हे राजन्! इह जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पडा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाशविषे स्थित है, न पृथ्वी न कोउ शैल पर्वत है, न कोउ मेघ है, न कोउ समुद्र है, न कोउ मुमुक्षु है, केवल शून्य शून्य स्थित है, और न कोउ जगत् है, न कोउ देखनेवाला है, इह सब भ्रांतिमात्र है॥ हे राजन्! इह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पडे फुरते हैं॥ ॥ विदूरथ उवाच॥ हे देवि! जो ऐसे है, तौ इह मेरे भृत्य भी अपने आत्मविषे सत् हैं, अथवा असत् हैं, सो कहौ॥ ॥ देव्युवाच॥ हे राजन्! विदितवेद जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसकों कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता, सब चिदाकाशरूपही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंकों आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है, तिनकों जगत् सत् नहीं भासता; जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलकों असत् जानै तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनकों आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्कों असत् जान्या है, तिनकों सत् नहीं भासता॥ हे राजन्! जैसे स्वप्नविषे कोउ भ्रम करिके अपना शीस काट्या देखै, अ

रु जागेतें स्वप्नका मरणा नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्कों जगत् सत् नहीं भासता; जैसे स्वप्नका मरणा भ्रमकरि देखता है, तैसे अज्ञानीकों जगत् सत् भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं, शुद्ध बोधविषे जगत्भ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघतें रहित शुद्ध आकाश होता है, तैसे शुद्ध बोधवालेकों अहं त्वं आदिक व्यर्थ शब्द्का अभाव होता है ॥ अरु हे राजन्! तूं अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो इह सृष्टि है, सो सब आत्मातें फुरै है; जैसे तूं फुर्या है, तैसे इह सब फुरै है, अरु वस्तुतें कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, भ्रम करि और कछु भासता है, शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब देवी अरु विदूरथका संवाद वसिष्ठनें रामजीकों कहा तब सूर्यका अस्त भया, सायंकालका समय भया, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गई, रात्रि व्यतीत भई, तब सूर्यके किरणांसहित सब अपअपने स्थानों उपर आईके बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने भ्रांतिविचारो नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पुरुष अबोध हैं, अर्थ इह जो परमपदविषे स्थित नहीं भये, तिनकों जगत् वज्रसारकी नांई दृढ भया है, जैसे मूर्ख बालककों अपने परछायेविषे बैताल भासता है, तैसे अज्ञानीकों असत्रूप जगत् सत् होय भासता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगकों असत्रूप जलाभास सत्य होई भासता है; जैसे स्वप्नविषे क्रिया अर्थ भ्रम करिके भासती है, जैसे जिसकों सुवर्णबुद्धि नहीं होती, तिसकों भूषणबुद्धि सत् भासती है, जैसे नेत्रदूषण करिके आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे असम्यग्दर्शीकों असत्रूप जगत् सत् होई भासता है ॥ हे रामजी! इह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, सो अहंताकरिके दृढ जाग्रतरूप हो भासता है, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, वस्तुतें परम चिदाकाश है, सर्वदा शांतिरूप है, अचिंत्य चिन्मात्रस्वरूप है, सो सब जगत् है, सर्वशक्ति सर्वात्मा है, जहां जैसा स्पंद फुरता है, तैसा जगत् होईकरि भासता है; जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, सो स्वप्नभ्रम चिदाकाशविषे

स्थित है, तिस चिदाकाशविषे एक स्वप्नपुर फुरता है,उह द्रष्टा हो दृश्यकों देखता है, सो द्रष्टा अरु दृश्य दोनों चेतन संवित्‌विषे आभासरूप हैं; तैसे इह जगत् भी आभासरूप है ॥ हे रामजी! सर्गकी आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी, तिसविषे आदि संवेदन स्पंद हुआ है, सो ब्रह्माजी है, तिसके संकल्पविषे इह संपूर्ण जगत् स्थित है, इह संपूर्ण जगत् स्वप्नकी नांई है, तिस स्वप्नरूपविषे तुमारा सद्‌भाव हुआ है, जैसे तुम हौ तैसे और भी हैं; जैसे स्वप्नविषे स्वप्ननगरकों और स्वप्न होवै, जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसे इह जगत् भी जो दृष्ट आता है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे असत्‌ही सत् होके भासता है,तैसे इह भी अहं त्वं आदिक भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे सब कर्म होते हैं, तैसे इह भी जान ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्नतें जब जागता है, तब स्वप्नके पदार्थ असत्‌रूप हो भासते हैं, अरु इह तौ ज्योंके त्यों रहते हैं, जब देखियें तब ऐसे ही हैं, बहुरि जाग्रत अरु स्वप्नकों तुल्य कैसे कहियें? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसा स्वप्न है, तैसा जाग्रत है, स्वप्न अरु जाग्रतविषे भेद कछु नहीं, स्वप्नकों भी स्वप्न असत् तब जानता है, जब जागता है, जबलग जाग्या नहीं तबलग असत् नहीं जानता, तैसे इह भी जबलग आत्मपदविषे नहीं जाग्या तबलग असत् नहीं भासता, जब आत्मपदविषे जागै तब इह जगत् भी असत्‌रूप भासैगा ॥ हे रामजी! इह जगत् असत्‌रूप है, अरु भ्रमकरिके सत्‌की नांई भासता है; जैसे स्वप्नकी स्त्री असत्‌रूप होती है, अरु सत्‌रूप जानता है, तैसे इह जगत् भी असत्‌रूप सत् हो दिखाइ देता है, आभासरूप जगत् है, अरु आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, अरु जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होके भासता है, जैसे डबेविषे अनेक रत्न होते हैं, तामेंतें जिसकों चाहता है, तिसकों लेता हैं, तैसे सर्वगत चिदाकाश है, जहां जैसा चिंतता है, तहां तैसा होई भासता है ॥ हे रामजी! अब पूर्वका प्रसंग सुन, जब देवीनें विदूरथपर अमृतरूपी ज्ञानवचनोंकी वर्षा करी तब उसके हृदयविषे विवेकरूपी सुंदर अकुंर आनि उत्पन्न भया, बहुरि सरस्वती क

हत भई ॥ हे राजन्! जो कछु कहना था, सो मैंनें तुझकों कहा है, अरु अब रणसंग्रामविषे मृतक होना है इह मैं जानती हों, अरु अब हम जाते हैं, लीलादिकों देखावणेनिमित्त हम आए थे, सो देख्या है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मधुर वाणीकरि सरस्वतीनें कहा तब बुद्धिवान् जो राजा विदूरथ है सो कहत भया ॥ ॥ विदूरथ उवाच ॥ हे देवि! अब तुमारा दर्शन किया, अरु बडेका दर्शन निरर्थक नहीं होता, महाफल देनेहारा है ॥ हे देवि! मैं भी ऐसा होता जो अर्थ मेरेतें आन प्राप्त होता, तिसकों मैं निरर्थक नहीं करता, सबका अर्थ पूर्ण करी देता था अरु तुम तौ साक्षात् ईश्वर हौ, तातें इह वर मुझकों देहु, जो देहकों त्यागिकरि लोकांतरमें पद्मके शव देहविषे जाय प्राप्त होउं, जैसे स्वप्नतें स्वप्नांतरकों प्राप्त होता है, तैसे प्राप्त होउं ॥ हे देवि! जो भक्त शरणकों आय प्राप्त होता है, तिसका बडे त्याग नहीं करते, उसका अर्थ सिद्ध करते हैं, तातें यही वर मुझकों देहु, जो उसी देहविषे प्राप्त होउं, मेरे मंत्री अरु भार्या अरु लीला भी मेरे साथ होवें ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! ऐसेही होवैगा, पद्म राजाके शरीरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बोधसहित निःशंक होईकरि राज्य करैगा, हमारा सेवना किसीकों व्यर्थ नहीं; जैसी कामना करिके कोउ हमकों सेवता है, सो तैसे फलकों प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ हे राजन्! अब तूं रणविषे मृतक होवैगा, मृतक होयके पूर्वके पद्म राजाके शरीरविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु इह तुमारी भार्या अरु मंत्री भी तहां जाय प्राप्त होवैंगे ॥ हे राजन्! तुम ऐसे चले जाओगे; जैसे वायु चल्या जाता है, अब हम जाते हैं तुमारा हमारा कैसे एकठा होवै, जैसे अश्व अरु खर मृग अरु उंट हस्तिका संग नहीं होता, तैसे तुमारा हमारा क्या संग है, तातें हम जाते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनें कहा, तब एक पुरुष आई निकसा, अरु कहत भया, हे राजन्! शत्रु आए हैं, अरु चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षा करते आ

ते हैं; जैसे प्रलयकालविषे मंदराचल पर्वत अस्ताचल आदिक पर्वत वायुकरि उडते हैं, तैसे शत्रु चले आते हैं, अरु सर्व दिशा सेनाकरि पूर्ण भई हैं; जैसे महाप्रलयविषे सर्व स्थान जलसों पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरि सर्व स्थान पूर्ण भए हैं, अरु अग्नि भी तिसनें लगाई दई है, तिसकरि स्थान जलने लगे हैं, अरु शब्द करते हैं, अरु बाण नदीके प्रवाहकी नांई चले आते हैं, अग्नि ऐसी लगी है; जैसे महाप्रलयकी वडवाग्नि समुद्रकों शोषती है, तैसे नगरोंकों जलाती है, तब दोनों देवियां अरु राजा अरु मंत्री उंचे होईके झरोंखाविषे बैठके देखने लगे, क्या देखे, जो बडी सेना चली आती है, जैसे प्रलयकालविषे मेघ चले आते हैं, तैसे सेना चली आती है, अरु जैसे प्रलयकी अग्निकरि दिशा पूर्ण होती हैं, तैसे अग्निकी ज्वालाकरि पूर्ण भईयां हैं, अरु तिसतें चिणगारे उडते हैं, मानौ तारागण गिरते हैं, अंगारोंकी वर्षा होती है, तिसकरि जीव पडे जलते हैं, अरु जो सुंदर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणोंसहित पूर्ण थीयां, सो तृणोंकी अग्निविषे पडी जलतियां हैं, पुरुषके देह अरु वस्त्र पडे जलते हैं, अरु हाय हाय शब्द करते हैं, अरु जलते जलते बांधव पुत्र स्त्रियांकों ढूंढते हैं ॥ हे रामजी! इह आश्चर्य देख, जो ऐसे स्नेह करिके जीव बांधे हुए हैं, जो मृत्युकालविषे भी स्नेहकों त्याग नहीं शकते, इस प्रकार बडा क्षोभ हुआ, अरु सेनाके लोक लोकोंकों मारिके स्त्रियांकों लेजाते हैं, केई अग्निविषे जलते हैं ॥ हे रामजी! तिस कालमें ऐसा शब्द हुआ, जो रणभूमिका शब्द छपा गया, ऐसा शब्द करे, भाई हाय, पिता हाय, माता हाय, पुत्र हाय, स्त्री हाय, इत्यादिक शब्दोंकरि रणभूमिका शब्द आच्छाद्या गया, अरु घोडे, गो, बलद, उंट, आदिक पशु एकठे मिल गये, अरु अग्निकी ज्वाला वृद्ध होती जावैं, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जैसे महाप्रलयकी अग्नि होती है, तैसे सब स्थान अग्निकरि पूर्ण भये, तिनोंविषे अनेक जीव अरु स्थानक पडे दग्ध होते हैं, अरु शब्द करैं हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उ

वाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा नगरकों देखता था, जो उस पुरमें लीला सहेलियोंसहित अपने दूसरे स्थानतें तहां आई, जहां राजा विदूरथ था, जैसे कमलोंविषे लक्ष्मी आवै, तैसे आई; महासुंदर भूषण कछुक टूटे हुए, कछुक शिथिल हैं, अरु सहेलियोंसहित आई, एक सहेली कहत भई ॥ हे राजन्! तेरे शत्रु बहुतेरे आन पसरे हैं, अंतःपुरविषे जो स्त्री थी, सो भी ले गये हैं, तहांसों इह लीला राणी हम चुराइ ले आये हैं, जैसे इंद्रके गृहविषे दैत्य आन पडै, तैसे, अरु इस राणीकों बचाई करि तुमारीपास ले आये हैं, सो हम बडा यत्न करी ले आये हैं, अरु लोकोंकों तिनों शत्रुनें बडा कष्ट दिया है; तुमारे द्वारेपर जो सेना बैठी है, तिसकों उह चूर्ण करते हैं, अरु नगर जलाय दिया है, लूटी दिया है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजाकों सहेलियोंनें कहा, तब राजानें सरस्वतीजीकों कहा, हे देविजी! इह लीला तुमारी सरन आई है, अरु तुमारे चरणकमलोंकी भ्रमरी है, इसकी रक्षा तुमारे करनी, मैं अब युद्ध करनेकों जाता हों ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा कहिकरि क्रोधसंयुक्त होईके युद्ध करनेकों रणकी और चला; जैसे मत्त हस्ती धांवता है, अथवा सिंह कंदरातें निकसकरि धांवता है, तैसे अर्धरात्रके समय राजा चल्या, जब उहां लीला सहेलियांसहित आई, तब देवीसाथ जो प्रथम लीला थी, सो देखत भई, क्या देख्या, जो अपनी मूर्ति जैसाही सुंदर आकार है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देखके कहत भई ॥ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि! इह मैं क्यों करि आन प्राप्त भई हों, जब मैं प्रथम आइ थी, तब मुझकों मंत्री टहलुए पुरवासी अनेक दृष्ट आये थे, उह संशय मैं तुमसों निवृत्त कीया था, बहुरि इह जो मैं उस प्रकार कैसे आन स्थित भई हों! इह दृश्य रूप कैसा आदर्श है, जिसके अंतरबाहिर प्रतिबिंब होता है, जैसें मंत्री टहलुए हैं, अरु मेरा स्वरूप इह है, इह क्यों है? दृश्यभाव दो क्यों कर भासता है? इह संशय मेरा दूर करो ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जैसे चित्तसंवित्विषे स्पंद फुरता है, तैसे तत्काल सिद्ध होता है, जिस अर्थकों चिंतवता चित्तसंवित् शरीरकों त्या

गता है, तिसी अर्थकों जाय प्राप्त होता है, तिसी क्षणविषे देश, काल, पदार्थकी दीर्घता होती है; जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, तैसे परलोक सृष्टि भास आती है ॥ हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा था, तब इसका स्नेह जो तेरेविषे अरु मंत्रियोंविषे बहुत था, तिसकरि उही रूप सत् होइकरि अपनी वासनाके अनुसार भास्या; जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे स्वप्नसेना भासती है, तैसे इह देश, काल, पदार्थ भासे हैं ॥ हे लीले! जो कोउ पदार्थ सत्‌रूप होइकरि भासते हैं, सो अज्ञानकालविषे भासते हैं, ज्ञानकालविषे सब तुल्य होइके जाते हैं ॥ अधिक न्यून कोउ नहीं रहता, जाग्रतविषे स्वप्न झूठ भासता है, स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है, जाग्रत शरीर मृतकविषे नाश हो जाता है, मृतक जन्मविषे असत् होय जाता है, मृतकविषे जन्म असत् होय जाता है ॥ हे लीले! जब इस प्रकार इनकों विचारि देखियें तौ सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं, वास्तव कोउ नहीं ॥ हे लीले! सर्गतें आदि अरु महाप्रलयपर्यंत कछु हुआ नहीं, सदा ज्यौंकी त्यौं ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जगत्कल्पना आभासमात्र है, अज्ञान करिके भासती है; जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रम करिके भासता है; अरु वास्तवतें किंचित् भी कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि लीन होते हैं, तातें अहं त्वं आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं ॥ हे लीले! इह जगत् मृगतृष्णाके जलवत् है, इसविषे आस्था करनी अज्ञान है, अरु भ्रांति भी कछु नहीं, जैसे घन तमविषे यक्ष भासता है, सो यक्ष वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं, जन्म, मृत्यु, मोह सब असत्‌रूप है, जेते कछु अहं त्वं आदिक शब्द हैं, सो महाप्रलयविषे अभाव हो जाते हैं, तिसके पाछे शुद्ध शांतरूप है, अब भी सोई जाण, ज्यौंकी त्यौं ब्रह्मसत्ता है ॥ हे लीले! इह जो पृथ्वीआदि भूत भासते हैं, सो भी संवित्‌रूप हैं, काहेतें जो चित्तसंवित् जब स्पंदरूप होता है, तब इह जगत् होयके भासता है, इस कारणतें संवित्‌रूप हैं ॥ हे लीले! जीवरूप जो समुद्र है, ति

सविषे जगत्‌रूप तरंग उत्पन्न होते हैं, अरु लीन भी होते हैं, अरु स्वरूपतें जलरूप हैं, इतर कछु नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे जीवविषे सर्ग है; जो ज्ञानवान् है, तिसकों सर्वात्मा भासता है, अरु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न कल्पना होती हैं॥ हे लीले! जैसे सूर्यकी किरणांविषे त्रसरेणु भासते हैं, तैसे पवनविषे स्पंद होता है, तिसविषे सुगंध होती है, सो निराकार है, तैसे जगत् आत्माविषे निर्वपु है, भाव अभाव ग्रहण त्याग सूक्ष्म स्थूल चर अचर सर्व ब्रह्मके अवयव हैं॥ हे लीले! इह जगत् जो साकाररूप भासता है, सो आत्मातें भिन्न नहीं; जैसे वृक्षके अंग पत्र फल टासरूप होइ भासते हैं, तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होइकरि भासती है, इतर कछु नहीं; जैसे चेतनसंवित्‌विषे स्पंद फुरता है, तैसे होइकरि भासता है, सो आकाशरूप संवित् ज्योंका त्यों है, तिसविषे और कल्पना भ्रममात्र हैं॥ हे लीले! इह जगत् भासता है, सो न सत् है, न असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जिसकों असम्यक् ज्ञान होता है, तिसकों जेवरीविषे सर्प भासता है, तो असत् न हुआ, अरु जिसकों सम्यक् बोध हुआ, तिसकों सर्प सत् नहीं, तैसे ज्ञानकरि जगत् सत्यभासता है, अरु जिसकों सम्यक् बोध हुआ है, तिसकों सर्प सत् नहीं, तैसे अज्ञानकरि जगत् असत् नहीं भासता, आत्मज्ञान हुए सत् नहीं भासता; काहेतें जो कछु वस्तु नहीं॥ हे लीले! जैसे जिसके अंतर स्पंद फुरता है, तिसका अनुभव करता है, जब इह जीव मृतक होता है, तब इसकों क्षणविषे जगत् फुरि आता है, किसीकों अपूर्वरूप फुरि आता है, किसीकों पूर्वरूप फुरि आता है, किसीकों पूर्व अपूर्व मिश्रित फुरि आता है, तिस कारणतें तेरे भर्त्ताकों उही मंत्री, स्त्री, सभा वासनाके अनुसार फुरि आये हैं, काहेतें जो आत्मा सर्वत्ररूप है, जैसा जैसा इसविषे तीव्र स्पंद फुरता है, तैसा होइकरि भासता है॥ हे लीले! जैसे अपने मनोराज्यविषे प्रतिभा उदय हो आती है, सो सत्‌रूप हो भासती है, तैसे इह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो एही हुई है, अरु तेरे भर्त्ताकी जो तेरेविषे तीव्र वासना थी, तिस

करि राजाकों तेरा प्रतिबिंबरूप होइकरि इह लीला आन प्राप्त भई है, तुझ जैसा शील अरु आचार कुल वपु इसकों प्रतिबिंब भया है॥ हे लीले! सर्वगत संवित् आकाश है, जैसा जैसा उसविषे फुरणा होता है, तैसा चिद्रूप आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जेता कछु जगत् है सो चेतन दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, वस्तुतें मैं तूं अरु जगत् आकाश भुवन पृथ्वी राजा आदिक सब आत्मरूप हैं, आत्माही जगत्रूप होई भासता है, जैसे बिल्लीविषे मज्जा होती है, सो बिल्लीतें इतर कछु नहीं, बिल्लीही सबरूप हैं; तैसे इह जगत् ब्रह्मरूप है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥

॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! तेरा जो भर्त्ता राजा विदूरथ है, सो रणविषे संग्राम करिके शरीर त्यागैगा, त्याग करि उसही अंतःपुरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बहुरि राज्य करैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनें कहा, तब विदूरथके पुरकी जो लीला है, सो हाथ जोडिके देवीकों प्रणाम करत भई अरु कहत भई ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ हे देवि! भगवति, मैं ज्ञप्तिरूपकों नित्य पूजत भई हौं; बहुरि स्वप्नविषे उसनें मुझकों दर्शन दिया है; जैसे उह ईश्वरी थी, तैसे तुम मुझकों दृष्ट आते हौ, तातें मुझपर कृपा करिके मनवांछित फलकों देहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार विदूरथकी लीलानें कहा, तब अपने भक्त उपर प्रसन्न होइकरि देवी कहत भई ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! तैंनें अनन्य होइकरि मेरी भक्ति करी है, तिसकरि तेरा शरीर भी जीर्ण भया है, अब मैं तुझ उपर प्रसन्न हौं, जो कछु तुझकों वांछित है, सो वर माग ॥ ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ जब मेरा भर्त्ता रणविषे देहकों त्यागकर जावै, तब मैं इसी शरीर साथ तिसकी भार्या होहुं ॥ देव्युवाच ॥ तुझनें भली प्रकार भावनासहित पुष्पादिकनसों निर्विघ्न सेवा करी है, तातें ऐसेही होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब देवीनें कहा, तब पूर्व लीला कहत भई ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ हे देवि! तुम तौ सत्यसंकल्प सत्यकाम ब्रह्मस्वरूप हौ, मुझकों उसी शरीरसाथ विदूरथके

गृहमें वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिविषे क्यों न ले गये ?॥ ॥देव्युवाच॥ हे लीले! मैं किसीका कछु नहीं करती, सर्व जीवके संकल्पमात्र देह हैं, अरु मैं ज्ञप्तिरूप हौं, एक एक जीवके अंतर चेतनमात्र देवता होइकरि स्थित हौं, जो जो जीव जैसी जैसी भावनाको धरता है, तैसी तैसी तिसकों सिद्धता होती है॥ हे लीले! जब तैंनें मेरा आराधन किया था, तब इह प्रार्थना करी थी, जो मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मंडपविषे रहै, अरु ज्ञानकी प्राप्ति भी मुझकों होवै, तब मैं तुझकों ज्ञानका उपदेश दिया, तुझकों ज्ञान प्राप्त भया है, अरु इसही निमित्त तैंनें पूजन किया है, तातें तुझकों इही प्राप्त भया है, जो देहसहित भर्त्ता साथ जावैगी, जैसा जैसा चित्तसंवित् विषे स्पंद दृढ होता है, तैसी सिद्धता होती है॥ हे लीले! इह जो कोउ तप करता है, तिसकी दृढता करके चिदात्माही देवतारूप होके फलकों देता है; जैसे जैसे संकल्पकी तीव्रता किसीकों होती है, चेतनसंवित्तें तिसकों तैसाही फल होता है, चित्तसंवित्तें इतर किसीतें किसीकों कदाचित् कछु फल नहीं प्राप्त होता, आत्मा सर्वगत सर्वके अंतर स्थित है; जैसे जिसविषे चैत्यताका यत्न होता है, तिसकों तैसाही शुभ अशुभ भाव प्राप्त होता है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्यकामसंकल्पवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३॥

॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! राजा विदूरथ जो देवीकों कहीकरि संग्रामविषे गया था, सो क्या करत भया?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब राजा गृहतें निकस्या अरु संपूर्ण सेनाकरिके शोभता भया; जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है, तैसे सेनाविषे शोभता भया, तब रथपर आरूढ सभासहित संग्रामविषे आया; कैसा रथ है, जो मोती अरु माणकोंसाथ पूर्ण है, अरु आठ घोडे हैं, वायुतें भी तीक्ष्ण चलते हैं, पंच ध्वजा हैं, ऐसे रथपर आरूढ हुआ, संग्रामविषे आनि पडा, जैसे सुमेरु पर्वत पंखोंसहित समुद्रविषे जाय पडै तैसे जाय पडा, तब दोनों सेना एकठी हो गईयां; जैसे प्रलयकालविषे समुद्र एकठे हो जाते हैं, तैसे सेना एकठी भईयां, बडा युद्ध होने लगा अरु मेघोंकी नांई योद्धेके शब्द होने लगे, अरु शस्त्रोंकी

विदूरथमार.

वर्षा होने लगी; जैसे मेघतें बूंदोंकी वर्षा होती है, जैसे अग्नितें चिणगारे निकसते हैं, तैसे युद्ध करने लगे; जैसे प्रलयकालकी वडवानलअग्नि होती है, तैसे शस्त्रोंतें अग्नि निकसै, तिनों शस्त्रोंकरि अनेक जीव मृत्युकों प्राप्त भये, जिनतें वडवाग्निकी नाइ अग्नि निकसे बडा युद्ध होने लगा, तब विदूरथकी सेना कछुक निर्बल भई, ऊर्ध्व जो दोनों लीला देवीकी दिव्यदृष्टि साथ देखतीथी, तिनोंनें कहा ॥ हे देवि! तूं तौ सर्वशक्ति है, अरु हमारेपर तेरी दया भी है, हमारे भर्त्ताका जय क्यों नहीं होता? इह कारण कहो ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! विदूरथका जो शत्रु सिद्धराजा है, तिसनें चिरकालपर्यंत जयके निमित्त मेरी पूजा करी है, अरु तुमारे भर्त्तानें जयके निमित्त पूजा नहीं करी, मोक्षके निमित्त पूजा करी है, तातें जीत सिद्धराजाकी होवैगी, अरु तेरे भर्त्ताकों मोक्षकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे लीले! जिस जिस निमित्तकरि हमारी सेवना कोउ करता है, हम तिसीकों तैसाही फल देते हैं; तातें राजा सिद्ध विदूरथकों जीतिकरि राज्य करैगा ॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार देवी कहती थी, फेर सेना सब देखने लगी, अरु दोनों राज्योंका परस्पर तीव्र युद्ध होने लगा, ऐसे बाण चलावैं जो मानौ दोनों विष्णु हो खडे हैं, एक बाण विदूरथनें चलाया, तिसके सहस्र हो गये, आगे गये तब उह भी लक्ष हो गये, बाणही परस्पर युद्ध करते टुकडे टुकडे होके गिर पडे अरु ऐसे बाण दूरतें दूर चले जावैं, जैसे दीपक निर्वाण किया नहीं भासता, तैसे बाण भासे नहीं, तब राजा सिद्धनें मोहरूपी अस्त्र चलाया, तिसके आनेकरि एक विदूरथविना सब सेना मोहित भई; जैसे उन्मत्तकों शुद्ध कछु नहीं रहती, तैसे उनकों शुद्ध कछु नहीं रहीं, नेत्रोंतें परस्पर करिके देखतेंही रहे, मानौ मूर्त्यां लिख छोडी हैं, तब राजा विदूरथकों भी मोहका आवेश होने लगा, तब राजा विदूरथनें प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया, तिसकरि सबका मोह गया, सबके देह प्रफुल्लित हो आये; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तब सिद्धराजानें नागास्त्र बाण चलाया, तिसकरि अनेक नाग निकस आये, ऐसे नाग आये मा

नौ पर्वत उडे आते हैं, सब दिशा नागोंकरि पूर्ण हो गईयां, अरु तिनके मुखतें विष अरु अग्निकी ज्वाला निकसै, तिसकरि विदूरथकी सेनानें बहुत कष्ट पाया, तब राजा विदूरथनें गरुडास्त्र चलाया, तिसकरि अनेक गरुड प्रकट हो आये, तिनोंकरि सब सर्प नष्ट हो गये; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सर्प नष्ट भये, नागोंकों नष्ट करिके गरुड भी अंतर्धान हो गये; जैसे संकल्पके त्यागेतें संकल्पसृष्टिका अभाव हो जाता है, तैसे गरुड अभाव हो गये, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्ननगरका अभाव हो जाता है, तैसे गरुडका अभाव हो गया, जो कोउ बाण सिद्ध चलावै, तिसकों विदूरथ नष्ट करै; जैसे सूर्य तमकों नाश करै अरु बडी बाणोंकी वर्षा करी, तिसकरि सिद्ध भी क्षोभकों प्राप्त भया, तब पिछली लीलानें झरोंखेविषे देखके देवीजीकों कहा ॥ हे देवि! मेरे भर्ताका अब जय होता है, तब देवी सुनके मुसकाय, मुखतें कछु न कहा, देवीनें हृदयमें कहा जो जीवका चित्त बहुत चंचल है, ऐसे देखते थे जो सूर्य आय उदय हुआ, मानौ सूर्य भी युद्धका कौतुक देखनेकों आया है, सिद्धनें जो तमरूप अस्त्र चलाया तिसकरि सर्व दिशा श्याम हो गई, कछु भास्या नहीं, मानौ काजलकी समष्टिता एकठी भई है, तब विदूरथनें सूर्यका प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सर्व तम नष्ट हो गया; जैसे शरत्कालकरि श्माम घटा सब नाश हो जाती है, शुद्ध आकाशही रहता है; जैसे आत्मज्ञानकरि लोभादिकका ज्ञानीकों अभाव हो जाता है, जैसे लोभरूपी कज्जलके निवृत्त हुए ज्ञानवान्की बुद्धि निर्मल होती है, तैसे प्रकाशकरि तम नष्ट हो गया, सर्व दिशा निर्मल भईयां, अरु जैसे अगस्त्य मुनि समुद्रकों पान करी गये थे, तैसे प्रकाश तमका पान करी गया, तब सिद्धनें वैताल रूप अस्त्र चलाया, तिसकरि विदूरथकी सेना मोहित हो गई, जिनकी महाविक्राल मूर्त्ति नग्नरूप परछायोंका रूप जिनका अरु श्यामरूप भासै, अरु ग्रहण किये न जावै, अरु जीवके अंतर प्रवेश करि जावै, तिनके जो रहनेके स्थान हैं, शून्य मंदिरविषे रहैं, चिकडोंविषे, पर्वतोंविषे, मसाणोंविषे इसतें लेकरि जो मलिन स्थान

हैं तिनोंविषे रहते है, सो पिशाच कवन होते हैं; जिसकी शास्त्र उक्त क्रिया नहीं होती, मृत्युके समय सो मरीके भूत पिशाच होकरि वैताल होते हैं, सो अंतरतें राग दोष तृष्णा भूखकरि जलते रहते हैं, अरु दृष्टिरूप इंद्रियकों नहीं प्राप्त होते, ऐसे जो दुष्ट जीव होते हैं, तातें विदूरथकी सेना दुःख पावने लगी, अरु उनका जो कोउ बडा था, सो विदूरथके निकट आने लगा, तब विदूरथनें रूपका नामक अस्त्र चलाया, तब महाभयानक रूप बडे नख केश जिव्हा उदर होठ अरु नग्नरूप तिन साथ उह कडकडि कर भया, अरु भैरव भोजन करै, मारे माहाविक्राल मूर्त्ति रक्त भरी खपरमें पीवै, नृत्य करै अरु सबनकों दुःख देवै, तब सिद्धकों क्रोध चढिके राक्षसरूपी अस्त्र चलाया, तिस करिके कोटि राक्षस निकस आये, भयानकरूप अरु कृष्णवपु अरु जिव्हा निकसी हुई, ऐसा चमत्कार करै, जैसे श्याम मेघविषे बिजली चमत्कार करती है, ऐसे अनेक राक्षस पातालतें अरु दिशातें निकसिके जो कोउ होवै, तिसकों मुखविषे पाइ ले जावैं, तिनकों देखके विदूरथकी सेना बहुत भयकों प्राप्त भई, जिसके सन्मुख हसिके देखै सो भयसों मरि जावै, तब राजा विदूरथनें अपनी सेनाकों कष्टवान् देखके विष्णुनामक अस्त्र चलाया, तिसकरि सब राक्षस नष्ट हो गये, बहुरि राजा सिद्धने अग्निनामक अस्त्र चलाया, तब संपूर्ण दिशाविषे अग्नि पसर गई, तिसकरि लोक जलने लगे, तब राजा विदूरथनें वरुणरूपी बाण चलाया, तिसकरि अग्निका दाह सब मिटी गया; जैसे संतोंके संगकरि अज्ञानीके तीनों ताप मिटी जाते हैं तैसे अग्निका ताप मिटी गया; तब जलकरि सब स्थान पूर्ण हो गये, अरु सिद्धकी सेना बहुत जलविषे वहती गई, तब सिद्धनें शोषणमय अस्त्र चलाया, तिसकरि सब जल सूकी गया कहूं कहूं चिकड रही गया, बहुरि तेजोमय बाण चलाया, तिसकरि चिकड भी सूक गया, अरु विदूरथकी सेना गरमीकरि व्याकुल हो गई, तपने लगी; जैसे मूर्खका हृदय क्रोधकरि जलता है, तब विदूरथनें मेघनामक अस्त्र जलाया, तब मेघ वर्षने लगा, अरु शीतल मंद मंद वायु चला, तिसकरि सेनाकी तपत मिट गई; जैसे आ

त्माकी और आते जीवका संसरना घटता जाता है, तैसे विदूरथकी सेना शीतल भई, तब सिद्धनें वायुरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सूके पत्रकी नांई विदूरथ फिरने लगा, तब विदूरथनें पहाड़रूपी अस्त्र चलाया, जिसकरि पहाडोंकी वर्षा पडी होवै, अरु वायुका मार्ग रोक्या गया, वायुका क्षोभ मिटि गया, सब पदार्थ स्थिरभूत हो गये; जैसे संवेदनतें रहित चित्त शांत होता है, तैसे शांत हो गए, अरु पहाड उडिके सिद्धकी सेनापर पडे, तब सिद्धनें वज्ररूप अस्त्र चलाया, तब पर्वत नष्ट भये, अरु वज्र पडे वर्षे, तब विदूरथनें ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब वज्र नष्ट भये, अरु ब्रह्मअस्त्र अंतर्धान हो गये ॥ हे रामजी! इस प्रकार परस्पर इनका युद्ध होत भया, जो सिद्ध अस्त्र चलावै, तब विदूरथ उसकों विदारण करै, अरु जो विदूरथ चलावै, तब सिद्ध विदारण कर डारै, विदूरथ राजानें एक ऐसा अस्त्र चलाया जो राजा सिद्धका रथ चूर्ण करी डारा, घोडे भी सब पटक डारे, तब सिद्ध राजा रथतें निकस खडा हुवा, बहुरि सिद्धनें ऐसा अस्त्र चलाया जो विदूरथका रथ अरु घोडे नष्ट कीये, तब दोनौं ढालां अरु तरवारां लेकर उतर पडे, अरु युद्ध करने लगे, बहुरि दोनौंके रथवाहक और रथ ले आये, तिसके उपर आरूढ होकरि युद्ध करने लगे, विदूरथनें सिद्धकों बरछी चलाई, तब उसके हृदयविषे लगी, अरु रुधिर चल्या, तिसकों देखी लीलानें देवीकों कहा; हे देवि! मेरे भर्त्ताका जय हुवा है॥ हे रामजी! इस प्रकार लीला कहती थी, तब सिद्धनें बरछी चलाई सो विदूरथके हृदयविषे लगी; तिसकों देखके विदूरथकी लीला शोकवान् भई अरु कहत भई॥ हे देवि! मेरा भर्त्ता मरता है, सिद्ध दुष्टनें बडा कष्ट दीया है॥ हे रामजी! ऐसे कहती थी तहां सिद्धनें खड़्ग चलाया, सो विदूरथका पाय काटे गये, बहुरि घोडे काटे गये, तौ भी विदूरथ युद्ध करता रहा, बहुरि विदूरथके शिरपर खड़्गका प्रहार कीया, तब विदूरथ मूर्छा पायके गिर पडा, ऐसे देखके उसके सारथि जो रथके चलानेहारे, सो रथकों गृहमें ले आने लगे, तब सिद्ध तिसके पाछे दौडा, जो शीश इसका मैं ले

आउं; जैसे बांदर कूदके पडै तैसे दौडने लगा, परंतु पकड न शका;जैसे अग्निविषे मच्छर प्रवेश नहीं करी सकता, तैसे देवीके प्रभावकरि विदूरथकों पकड न शका ॥ इति श्रीयो०उत्प०विदूरथम०नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब रथवाही राजाकों गृहमें ले आया, स्त्रियां, मंत्री, बांधव, कुटुंबी, रुदन करने लगे, बडे शब्द होने लगे, अरु सिद्धकी सेना लुटने लगी; हस्ती, घोडे स्वामीविना फिरैं, राजा सिद्धकी जय है, बहुरि दंडेरा फिराया, तब सर्व उरतें शांति भई, सिद्ध राजाके उपर छत्र होने लगा, सब पृथ्वीका राजा सिद्ध हुआ, तिसका हुकूम चला; जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल निकसेतें शांत भया, तैसे सर्व ओर शांति भई ॥ हे रामजी! जब विदूरथ राजा गृहविषे जाय प्राप्त हुआ, तब तिसकों अरु दूसरी लीलाकों देखके प्रबुद्धलीला कहत भई ॥ हे देवि; इह लीला इस शरीर साथ उहां क्योंकरि जाई प्राप्त होवैगी, इह तौ भर्त्ताकों ऐसे देखके मृतकरूप हो गई है, अरु राजा भी मृत्युके निकट पडा है; कछुक श्वास आते जाते हैं ॥

॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! इह जेते आरंभ तूं देखती है, जो युद्ध हुआ है, अरु नानाप्रकारका जगत् है, सो सब भ्रांतिमात्र है, अरु तेरा जो भर्त्ता पद्म था, तिसका हृदय जो मंडपाकाशविषे था, तहां इह संपूर्ण जगत् स्थित है ॥ अरु उह पद्मका मंडपाकाश वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु उह वसिष्ठ ब्राह्मणका मंडपाकाश सो चिदाकाशके आश्रय स्थित है ॥ हे लीले! इह संपूर्ण जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशकी पुर्यष्टकविषेही स्थित है, सो कैसे स्थित है, आकाशविषेही आकाश स्थित है, किंचन है, तिसकरिके संपूर्ण जगत् पडा फुरता है,अरु वास्तव किंचन भी कछु वस्तु नहीं, आत्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, तिस आत्मसत्ताविषे अहं त्वं जगत् भ्रमकरिके भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ हे लीले! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे नानाप्रकारके स्थान हैं, अरु तिनोंविषे प्राणी आते जाते व्यवहार होते भासते हैं; जैसे स्वप्नसृष्टिविषे नानाप्रकारके आरंभ भासते हैं, सो असत्‌रूप हैं, तैसे इह जगत् भी असत्‌रूप है ॥ हे लीले!

न इह द्रष्टा है, न आगे दृश्य है, सब भ्रमरूप है, अरु द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सो त्रिपुटी पदार्थोंविषे है, जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा कैसे होवै? सब असत्‌रूप है, अरु जो इनतें रहित परमपद है, सो उदय अस्ततें रहित, नित्य, अज, शुद्ध, अविनाशी, अद्वैतरूप, अपने आपविषे स्थित है, जब तिसकों जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है॥ हे लीले! दृश्य भ्रम करिके भासता है, वास्तवतें कछु नहीं, और न उपजैगा, जेते कछु सुमेरु आदिक पर्वतजाल भासते हैं अरु पृथिव आदिक तत्त्व भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, वास्तवतें कछु उपजा नहीं; जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे इह जगत् भी जान॥ हे लीले! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं, जैसे केलेके स्तंभसों सार कछु नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कीयेतें सार कछु नहीं निकसता, परंतु चित्तसंवेदनके फुरणेकरि पडे भासते हैं॥ हे लीले! तेरे भर्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है, अर्थ इह जो विदूरथका जगत् पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडा है, अरु राजा पद्मका शरीर शब पडा है॥ हे लीले! तेरे भर्ता पद्मकी जो सृष्टि है, सो हमकों प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्त्ताका जीवाकाश है, तिसविषे इह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है, अरु दूरतें दूर कोटि योजनोंपर्यंत है; मार्गविषे वज्रसारकी नांई तत्त्वोंका आवरण है, तिसकों लंघके तेरे भर्त्ताकी सृष्टि है, जहां उह शब पडा है, तिसके पास इह लीला जाय प्राप्त भई॥ ॥ लीलोवाच॥ हे देवि! ऐसे मार्गकों लंघके उह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई; अरु जिस शरीर साथ जाना था, सो तौ शरीर इहां ही पडा है, उह किस रूपकरिके प्राप्त भई है, अरु उहांके लोक उसकों कैसे देख जानते भये हैं, सो संक्षेपमात्रतें कहौ॥ ॥ हे लीले! इह लीलाके वृत्तांत कथाका महिमा ऐसा है, जिसके धारेतें इह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, संक्षेपमात्र कहती हौं॥ हे लीले! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है, इह भ्र

मरूप जगंत् पद्मके हृदयाविषे फुरता है, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, संग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरणा भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्‌विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तूं भी अरु राजा भी भ्रमरूप हैं, अरु मैं सर्वात्मा हौं, मुझकों सदा इही निश्चय रहता है, हम जौ उदय हुए हैं, सो उदयकी नांई उदय नहीं हुए॥ हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंकों पहिरे हुए तूं वासनाके अनुसार उसकों आन प्राप्त भई ॥ हे लीले! जब इह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, पाछेतें वासनाकरि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अंतवाहक शरीर था, तिसतें आधिभौतिक हो गया, जब आधिभूतक हुआ तब प्रथम उसकों जन्म भी हुआ, अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ, तब इसकों अपना जन्म अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ इह जो जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीला साथ विवाह भासि आया; जैसे तूं पद्मकों भासि आई थी, तैसे उह विदूरथकों भासि आये; इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसकों भासि आया है॥ हे लीले! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पंद होता है, तैसेही सिद्ध होता है, अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेकों जैसी इच्छा धारिके पूजते हैं, तैसे फलकी प्राप्ति होती है॥ हे लीले! जैसी जैसी इच्छा धरी कोउ हमकों पूजत है, तिसीकों तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसतें लीलानें जो मुझसों वर मांग्या था, जो मैं विधवा न होइ, इसी शरीरसाथ भर्त्ताके निकट जाउं, तब मैं कहा जो ऐसेही होवै, तब तिसकरि मृत्यु मूर्छाके अनंतर तिसकों अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्त्ता पद्मका शरीर शब पडा है; तहां मंडपविषे ऐसेही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई है॥ हे लीले! उसकों इह निश्चय रहा है, जो मैं उस शरीरसाथ आई हौं॥ ॥ इति श्री

योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्छानंतरप्रतिमावर्णनं नाम पंचत्रिंशतितमःसर्गः ॥ ३५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार उह लीला पद्मराजाके मंडपविषे जाय प्राप्त भई है, सो श्रवण करु, जब उह लीला मृतक मूर्छाकों प्राप्त भई, तिसके अनंतर उसकों पूर्वके शरीरकी नांई वासनाके अनुसार अपना शरीर भासि आया, जानती भई जो मैं उसही शरीरसाथ आई हौं; परंतु देवीके वरकों पायके आई हौं, सो कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर करके आकाशविषे पक्षीकी नांई उडती जावै, तब तिसकों अपने आगे कुंवारी दृष्ट आई तब लीलानें कहा ॥ हे देवि! तूं कवन है, तब देवीनें कहा, मैं ज्ञप्ति देवीकी पुत्री हौं, तेरेकों पहुंचावणेके निमित्त मैं आई हौं, तब लीलानें कहा ॥ हे देविजी! मेरे तांई, मेरे भर्ताके पास ले चलौ ॥ हे रामजी! तब उह कुंवारी आगे चली अरु लीला पाछे चली, दोनौं आकाशमें उडियां, चिरकालपर्यंत आकाशविषे उडती गईयां; आगे मेघोंके स्थान आये, बहुरि वायुके स्थान आये, तिनकों भी लंघ गईयां; बहुरि सूर्यका मंडल आया, तारामंडल आये, बहुरि और लोकपालोंके स्थान आये, तिनकों लंघ गये, आगे ब्रह्माका लोक आया, बहुरि विष्णुका लोक आया, बहुरि रुद्रका लोक आया, तिनकों भी लंघ गईयां, आगे ब्रह्मांडकपाट महा वज्रसार की नांई आया, तिसकों भी लंघ गईयां; जैसे कुंभविषे बरफ पाईयें, तिसकी शीतलता बाहिर प्रगट होती है; तैसे उह ब्रह्मांडतें बाह्य निकसी गईयां; तिस ब्रह्मांडतें दश गुण जलतत्त्व आया, तिसकों भी लंघ गईयां; इस प्रकार अग्नि वायु आकाश तत्त्व आवरणकों भी लंघ गईयां; तिसके आगे महाचेतन आकाश आया, तिसका अंत कहूं नहीं, आदि अंत मध्यतें रहित है ॥ हे रामजी! जो कोटि कल्पपर्यंत गरुड उडता जावै तौ भी तिसका अंत न पावै, ऐसे परमाकाशविषे गईयां; तहां इनकों कोटि ब्रह्मांड दृष्ट आये; जैसे वनविषे अनेक वृक्षोंके फल होते हैं, अरु परस्पर आपपरकों नहीं जानते; तैसे उह सृष्टि आपकों न जानै, तब एक ब्रह्मांडरूपी फलविषे दोनौं प्रवेश करत भईयां; जैसे फलके मुखमार्गमें चेंटी प्रवेश कर जाती है, तैसे यह ब्रह्मांडफलविषे

मंडपाकाश.

प्रवेश कर गईयां; तिसविषे बहुरि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसहित त्रिलोकी देखत भईयां; तिनके लोक लंघ गईयां; अरु तिनके नीचे और लोकपालके स्थान लंघे; बहुरि चंद्रमाका मंडल तारामंडल लंघ गईयां; वायु अरु मेघमंडलकों लंघके उतरियां; जहां राजाका नगर था, तिसविषे जो मंडपाकाश था, अरु जहां पद्म राजाका शव फूलोंसाथ ढांप्या पडा था; तहां आय प्रवेश किया, तिसकों देखत भईयां, तब उह कुमारी अंतर्धान हो गई; जैसे मायावी पदार्थ होवै, अरु अंतर्धान हो जावै, तैसे अंतर्धान हो गई, अरु लीला पद्मके पास बैठि रही; अरु मनविषे विचार करत भई, जो इह मेरा भर्त्ता है; उहां इसनें संग्राम किया था, सो अब सूरमाकी गतिकों प्राप्त भया है, इह परलोकविषे आयके शयन करि रहा है, तिसके पास मैं भी अपने शरीरसाथ देवीजीके वर करिके आन प्राप्त भई हौं; मेरे जैसा अब कोउ नहीं, मैं बडे आनंदकों प्राप्त भई हौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिके पास चमर पडा था, तिसकों हाथविषे लेके भर्त्ताकों चमर करने लगी; जैसे चंद्रमा किरणोंसाथ शोभा पावता है, तैसे चमर शोभा पावता है, अरु उहां देवीसों लीला पूछत भई॥ ॥प्रबुद्धलीलोवाच॥ हे देवि! इह राजा तौ अब मृतक होता है; इसके श्वास अब थोडेसे रहे हैं, जब इहांतें मृतक होके पद्मके शरीरविषे जावैगा, तब राजाके जागे हुए, मंत्री टहलुए कैसे जानैंगे? ॥ देव्युवाच॥ हे लीले! तब मंत्री टहलुए जो होवैंगे, तिनकों द्वैतकलना कछु न भासैगी, जो आश्चर्य हुआ है, इस वृत्तांतकों एक तूं जानैगी, एक मैं जानौंगी, एक उह लीला जानैगी, और कोउ न जानैगा, काहेतें जो इसके संकल्पकों और कोउ कैसे करी जानै? ॥लीलोवाच॥ हे देवि! लीला जो उहां जाय प्राप्त भई थी, सो शरीर तौ इहां पडा है, अरु तुमारा उसकों वर भी था, इस प्रकार इस देह साथ क्यों न जाय प्राप्त भई? देव्युवाच॥ हे लीले! छाया भी कदाचित् धूपविषे गई है, अरु साच झूट भी कदाचित् एकठा भया है, इह आदिनीति है, जैसे जैसे आदि नीति हुई है, तैसेही होता है, अन्यथा नहीं होता॥ हे लीले! जो परछायेविषे वैतालकल्पना मिटी तौ परछाया वै

ताल एकठे नहीं होते, तैसे भ्रमरूप जगत्का शरीर उस जगत्विषे नहीं जाता, जैसे दूसरेके संकल्पविषे दूसरा अपने शरीरसाथ जाई नहीं शकता; काहेतें जो उह और शरीर है, उह भी और शरीर है, तैसे उह उनके जगत् दर्पणविषे इनके संकल्पका शरीर नहीं प्राप्त होता अरु मेरे वरकरि प्राप्त होवै, जो जब उसकों मृत्यु मूर्छा प्राप्त भई, तब उसकों इसही जैसा अपना शरीर भासि आया, अरु उसका जो शरीर था, सो संकल्पविषे स्थित था, सो अपना संकल्प उह साथ ले गई है, तातें अपने उसी शरीर साथ उह गई है; ऐसे आपकों जानती भई है, जो मैं उही लीला हौं ॥ हे लीले! आत्मसत्ता जो है, सो सर्वात्मरूप है, जैसी जैसी भावना उसविषे दृढ होती है, तैसाही रूप इसका होई जाता है, जिसकों इह निश्चय हुआ, जो मैं पंचभूतकरूप हौं, तिसकों ऐसेही दृढ होता है, जो मैं उड नहीं शकता॥ हे लीले! इह लीला तौ अविदितवेदन थी, अर्थ यह जो अज्ञानसहित थी, आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त भया था, परंतु मेरा वर था, इस कारणतें उसकों मृत्यु मूर्छाके अनंतर भासी आया, जो मैं देवीके वरकर चली जाउंगी, इस वासनाकी दृढता करिके जाय प्राप्त भई है ॥ हे लीले! इह जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, सब जगत् आत्माविषे आभासरूप है, सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने आपही अज्ञान करिके दूर भासता है ॥ हे लीले! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सदा शांतरूप आत्मानंदकरि तृप्त रहते हैं; अरु जो अज्ञानी हैं, सो शांति कैसे पावैं? जैसे जिसकों ताप चडा होता है, तिसका अंतर भी पडा जलता है, अरु तृषाभी बहुत लगती है, तैसे जिसकों अज्ञानरूपी ताप चड्या हुआ है, तिसका अंतर रागद्वेषकरिके पडा जलता है, अरु विषयोंकी तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होत है, अरु जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट भया है, तिसका रागद्वेषादिककरि अंतर नहीं जलता, अरु विषयकी तृष्णारूपी तृषा भी नष्ट भई है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जो

पुरुष अविदितवेद है, अर्थ यह जो जानने योग्य पदकों नहीं जाण्या सो बडा पुण्यवान् होवै तौ भी तिसकों अंतवाहकता प्राप्त नहीं होती, अरु अंतवाहक शरीर भी झूठ है; काहेतें जो संकल्परूप है, सो झूठ है, तातें जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो उपजा कछु नहीं, शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है॥

॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जो इह सर्व जगत् संकल्पमात्र है, तौ भावरूप पदार्थ कैसे होते हैं, अरु अभावरूप कैसे होते हैं; जो अग्नि उष्णरूप है, पृथ्वी स्थिररूप है, बरफ शीतलरूप है, आकाशकी सत्ता है, कालकी सत्ता है, कोउ स्थूल पदार्थ है, कोउ सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण करना, त्याग करना, जन्म अरु मृतक होता है, मृतक हुआ बहुरि जन्मता है; इत्यादिक सत्ता कैसे भासती है? ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जब महाप्रलय होता है, तब सर्व पदार्थ अभावकों प्राप्त होते हैं, अरु कालकी सत्ता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे अनंत चिदाकाश सब कलनातें रहित बोधमात्र ब्रह्मसत्ताही रहती है, तिस चेतनमात्रसत्तातें जब चित्तसंवित् चैत्यता होती है, तब चेतन संवित्‌विषे आपकों तेज अणु जानत भई है, जैसे स्वप्नविषे कोउ आपकों पक्षीरूप उडता देखै तैसे देखता है, तिसतें स्थूलता होती है, सो स्थूलता ब्रह्मांडरूप होती है, तिसविषे तेज अणु आपकों ब्रह्मारूप जानती है, जो मैं ब्रह्मा हौं; बहुरि ब्रह्मारूप होईकरि जगत्‌कों रचता है; जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जावै तैसे तैसे स्थिरतारूप होता जावै, आदिरचनाकरि जैसे निश्चय धार्या जो इह ऐसे होवै, अरु एता काल रहै, तिसका नाम नीति है, जैसे आदिही रचना नीतिकरि है सो ज्योंकी त्यों होती है; तिसके निवारणकों कोउ समर्थ नहीं अरु वस्तुतें आदि ब्रह्माही अकारणरूप है, अर्थ यह जो उपजा कछु नहीं तौ जगत्‌का उपजना मैं कैसे कहौं?॥ ॥ हे लीले! स्वरूपतें कछु उपजा नहीं; परंतु चेतनसंवेदनके फुरणेविषे जगत् आकार होइके भासता है; तिसविषे जैसे निश्चय है, तैसेही स्थित है; अग्नि उष्णही है, बरफ शीतलही है, पृथ्वी स्थिररूपही है, जैसे उपजै है, तैसेही स्थित है॥ हे लीले! जो चेतन है, तिस उपर भी नीति है, जो उपदेशका अधिकारी

है, अरु जो जड है, तिनोंविषे उह स्वभाव है, जो आदि चित्तसंवित्‌विषे आकाशका फुरणा हुआ, तब आकाशरूप होकरि स्थित भया, जब कालका स्पंद फुरता है, तब उही चेतनसंवित् कालरूप होकरि स्थित होता है, जब वायुकी चेतनता हुई तब उही संवित् वायुरूप होकरि स्थित होता है; इसी प्रकार अग्नि जल पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया है, स्थूल सूक्ष्मरूप होइकरि चेतनसंवित्‌हि स्थित होइ रहा है; जैसे स्वप्नविषे चेतनसंवित्‌ही पर्वत वृक्षरूप होइकरि स्थित होता है, तैसेही चेतनसंवित् जगत्‌रूप होइकरि स्थित भया है ॥ हे लीले! जैसे आदि नीतिविषे पदार्थोंनें संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं, तिसके निवारणकों समर्थ कोउ नहीं; काहेतें जो तीव्र अभ्यास चेतनका कीया है, जब उही संवित् उलटीकरि और प्रकार स्पंद होवै, तब और प्रकार होवै, अन्यथा नहीं होता ॥ हे लीले! इह जगत् सत् नहीं, जैसे संकल्प नगर भ्रमसिद्ध है, जैसे स्वप्नपुरुष असत्‌रूप होता है, जैसे ध्याननगर असत्‌रूप होता है, तैसे इह जगत् असत्‌रूप है, अज्ञान करिके सत्‌की नांई भासता है; जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रतें आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे इह जागृत जगत्‌के आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिसतें किंचन अकारणरूप इह जगत् होता है ॥ हे लीले! इह जगत् कछु वास्तवतें उपजा नहीं, असत्‌ही सत्‌की नांई होकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी अग्नि स्वप्नविषे असत्‌ही सत्‌रूप होइ भासती है, तैसे इह जगत् अज्ञानकरि असत्‌रूप सत्‌करि भासता है, जैसे जन्म अरु मृत्यु अरु कर्मोंका फल होता है, सो तूं श्रवण कर ॥ हे लीले! बडा अरु छोटा जो होता है, सो देश काल अरु द्रव्यकरि होता है, एक बालक अवस्थाविषे मृतक होते हैं, एक यौवन अवस्थाविषे मृतक होते हैं, जिसकी क्रिया चेष्टा देश काल द्रव्यकी यथाशास्त्र होती हैं, तिसकी क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है, अरु जो चेष्टा शास्त्रतें विरुद्ध होती है, तौ आयुर्बल भी तैसा होता है, एक क्रिया ऐसी है, जिसकरि आयुकी वृद्धी होती है, एक क्रि

याकर घट जाती है, इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयुके घटावने बढावनेवाले हैं, तिनोंकरि जीवोंके शरीर सूक्ष्म बडी अवस्थाविषे सोये हैं, इह आदि नीति रची है, युगोंकी मर्यादा है, तैसेही है, कैसे है, एकसौ वर्ष दिव्य कलियुगके, दोसौ वर्ष दिव्य द्वापरके, त्रयसौ त्रेताके, चारसौ सत्ययुगके, इह दिव्य वर्ष हैं, अरु लौकिक वर्ष इस प्रकार हैं, चार लाख बत्तीस हजार कलियुग है, अष्ट लाख चौसठ हजार द्वापारयुग है, बारह लाख छन्नवे हजार त्रेता है, सतरा लाख अठाईस हजार सत्ययुग है, इस प्रकार युगोंकी मर्यादा है, तिसविषे जीव अपने कर्मोंके फलकरि आयु भोगते हैं ॥ हे लीले! जो पाप करनेवाले हैं, सो मृतक होते हैं, तिनकों मृत्युकालमें भी बडा कष्ट प्राप्त होता है ॥ ॥लीलोवाच॥ हे देवि! मृतक हुए सुख अरु दुःख कैसे होता है, अरु कैसे भोगता है ? ॥ देव्युवाच ॥ ॥ हे लीले! जीवकों तीन प्रकारके मृत्यु होते हैं, एक मूर्खकों मृत्यु होते हैं, दूसरा धारणाभ्यासीकों होता है, तीसरा ज्ञानवान्कों होता है, तिनका भिन्न भिन्न वृत्तांत सुन ॥ हे लीले! जो धारणाभ्यासी है, सो मूर्ख भी नहीं, अरु ज्ञानवान् भी नहीं ॥ सो जिस इष्ट देवताकी धारणा करते हैं, सो मृतक होइकरि, अर्थ यह जो शरीरकों त्यागिके तिसही देवताके लोककों प्राप्त होते हैं; इह धारणाभ्यासीका मृत्यु है, अरु जो ब्रह्माभ्यासी हैं, अरु पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई, तिनका सुखसों शरीर छूटता है, जैसे सुषुप्ति हो जाती है, तैसे धारणाभ्यासी शरीरकों त्यागता है, त्यागकरि सुखकों भोगिकरि फेरि आत्मतत्त्वकों प्राप्त होता है, अरु ज्ञानवान्का शरीर भी सुखसों छूटता है, तिसकों भी यत्न कछु नहीं होता, अरु उह ज्ञानीके प्राण भी तहांही लीन होते हैं, उह विदेहमुक्त होता है, अरु जब मूर्खका मृत्यु होने लगता है, सो बडे कष्टकों प्राप्त होता है, सो मूर्ख कौन है, जिनकों अज्ञानियोंकी संगति है, अरु शास्त्रोंके अनुसार विचरणा नहीं अरु सदा विषयोंकी उर धावते हैं, पापाचार करते हैं, ऐसे पुरुषकों शरीर त्यागनेविषे बडा कष्ट होता है ॥ हे लीले! जब इह मृतक होने लगता है, तब पदार्थों

करि आवरण अर्थबुद्धि जो संबंधी था तिनोंसाथ वियोग होने लगता है, अरु कंठका रोकना होता है; नेत्र फट जाते हैं, अरु शरीरकी कांति विरूप जैसी हो जाती है, जैसे कमलफूल काट्या हुवा कुमलाई जाता है, तैसे मृत्युकालमें शरीर विरूप होय जाता है, अरु अंग पडे टूटते हैं, प्राण नाडियांसों निकसते हैं, जिनों अंगोंसों तादात्म्यसंबंध हुवा था, अरु पदार्थोंविषे बहुत स्नेह था, तिनोंतें वियोग होने लगता है, तातें बडा कष्ट होता है, जैसे किसीकों अग्निके कुंडविषे डारेतें कष्ट होता है, तैसे उसकों कष्ट होता है, सब पदार्थ भ्रमतें भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप अरु आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं, महाविपर्ययदशाकों प्राप्त होता है, चित्तकी चेतनता घटती जाती है, ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है, त्यौं त्यौं पदार्थके ज्ञानतें अंध होता जाता है; जैसे सायंकालमें सूर्य अस्त होता है, तब नेत्र भ्रांतिवान्कों दिशाका ज्ञान नहीं रहता, तैसे इसकों पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता, अरु कष्टका अनुभव करता है, जैसे आकाशतें गिरते कष्ट पावता है, जैसे पाषाणविषे पीसाता कष्ट पावता है, जैसे पवनविषे तृण भ्रमता है, औ कष्ट पावता है, जैसे अंधकूपविषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे कोल्हूविषे पीलाता कष्ट पावता है, जैसे खंभाणीविषे चलाया पथ्थर बडा कष्ट पावता है, जैसे रथतें गिरता कष्ट पावता है, जैसे गलेमें फांसी डारके खेचनेतें कष्ट पावता है, जैसे वायुकरिके उछल्या तरंग वडवाग्निमें पडा जलता कष्ट पावता है, तैसे मूर्ख मृत्युकालविषे कष्ट पावता है, जब पुर्यष्टकका वियोग हुआ, तब मूर्छाकरि जड जैसा हो जाता है, शरीर तौ अखंडित पडा रहता है ॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! जब इह मृतक होने लगता है, तब इसकों मूर्छा कैसे होती है, शरीर तौ अखंडित पडा रहता है, कष्ट कैसे पावता है ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! जो कछु इस जीवनें अहंकारभावकों लेकरि कर्म किये हैं, सो सब एकठे होते जाते हैं, समय पाइके आप प्रगट होते हैं, जैसे बीज बोया हुआ समय पाइके फल आन लगता है, तैसे तिसकों कर्मवासनासहित फल आन प्रगट होता है, जब इस प्रकार शरीर छूट

ने लगता है, तब शरीरकी तादात्म्यता अरु पदार्थोंके स्नेहके वियोगकरि इसकों कष्ट होता है, जो प्राण अपानकी कला है, जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटने लगता है, जिनों स्थानोंविषे प्राण फुरते थे, तिनों स्थानों अरु नाडियोंसों निकसते हैं, जिस स्थानतें निकसते हैं, तहां बहुरि प्रवेश नहीं करते, उहां नाडियां जर्जरीभाव हो जातियां हैं, सब स्थानोंकों प्राण जब त्यागि जाते हैं; तब उह पुर्यष्टक शरीरकों त्यागि निर्वाण होता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे पथ्थरकी शिला जडीभूत होती है, तैसे पुर्यष्टक शरीरकों त्यागिकरि जडीभूत हो जाती है, प्राण अपानकी कला टूट पडती है ॥ हे लीले! इह मरणा अरु जन्म भी भ्रांति करिके भासता है, आत्माविषे कोउ नहीं; संवित्मात्रविषे जो संवेदन फुरता है, सो अन्य स्वभावविषे सत्ताकी नांई होकरि स्थित होता है, मरण अरु जन्म तिसविषे भासते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तिसके अनुसार सुखदुःखका अनुभव करता है, जैसे कोउ पुरुष नदीविषे प्रवेश करता है, तिसविषे कहूं बडा जल होता है, कहूं छोटा जल होता है, कहूं बडे तरंग होते हैं; कहूं सोमजल होता है, सो सब सोमजलविषे होते हैं; तैसे जैसी वासना होती है, तिसीके अनुसार सुखदुःखका अनुभव होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य वासनारूपी गिरतविषे पडे गिरते हैं; जैसे वेलीविषे गंठी होतियां हैं, तैसे संवेदनविषे जन्ममरणकी कल्पना होती है, अरु शुद्ध चेतनमात्रविषे कोउ कल्पना नहीं, अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं, अरु चेतनसत्ता ज्यौंकी त्यौं रहती है; जो चेतनसत्ता भी मृतक होवै, तब एकके नष्ट हुए सब नष्ट हो जावें सो ऐसे तौ नहीं, चेतनसत्ता सब कछु सिद्ध होती है, जो उह न होवै तौ कोउ किसीकों न जानै ॥ हे लीले! चेतनसत्ता जो है, सो न जन्मती है, न मरती है, सर्व कल्पनातें रहित केवल चिन्मात्र है, तिसका किसी कालविषे कैसे नाश होवै? जन्ममरणकी कल्पना संवेदनविषे होती है, अचेत चिन्मात्रविषे कछु हुआ नहीं ॥ हे लीले! मृत्यु सोई होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव होता है, जिसके निश्चयविषे मृ

त्युका सद्भाव नहीं सो कैसे मरै, जब इसकों दृश्यका अत्यंत अभाव होवै, तब बंधनोंतें मुक्त होवै, वासनाही इसकों बंधनका कारण है, जब वासनातें मुक्त होता है, तब बंधन कोउ नहीं रहता॥ हे लीले! आत्मविचारकरि ज्ञान होता है, अरु ज्ञानकरिके दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंताभाव हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है, इह जगत् उदय हुआ नहीं; परंतु उदय हुएकी नांई वासना करिके भासता है, तातें वासनाका त्याग करौ, जब वासना निवृत्त होवै तब बंधन कोउ न रहै॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मृत्युविचारवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥३७॥ ॥ ॥लीलोवाच॥ हे देवि! इह जीव मृतक कैसे होता है? अरु जन्म कैसे लेता है? मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त बहुरि कहो॥ ॥देव्युवाच॥ हे लीले! इसके अंतर पान अपानकी एक कला है, तिसके आश्रय इह शरीर रहता है, जबलग प्रारब्ध कर्म होता है, अरु जब मृतक होने लगता है, तब प्राणवायु अपने स्थानकों त्यागता है, जब जिस जिस स्थानसों नाडीसों निकसता है, सो स्थान शिथिल होता है, जब पुर्यष्टक शरीरसों निकसता है, तब प्राणकला टूट पडती है, अरु चेतनता जडीभूत हो जाती है, तब परिवारवाले लोक इसकों प्रेत कहते हैं, जो मृतक हुआ प्रेत भया है॥ हे लीले! इसके चित्तकी चेतनता जडीभूत हो जाती है, केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है, सो ज्योंकी त्यों रहती है, स्थावर जंगम सर्व जगतविषे व्यापक रही है, आकाश, पहाड, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थोंविषे व्यापि रहा है, उदय अस्ततें रहित है॥ हे लीले! जब इसकों मृत्यु मूर्छा होती है, तब प्राण पवन आकाशविषे लीन होते हैं; तिस प्राणविषे चेतनता होती है, अरु चेतनताविषे वासना होती है, ऐसी जो प्राण अरु चैतन्यसत्ता है, सो वासनाकों लेकरि आकाशविषे आकाशरूप स्थित होती है, जैसे गंधकों लेकरि आकाशविषे वायु स्थित होता है, तैसे वासनाकों लेकरि चेतनता स्थित होती है॥ हे लीले! तिस अपअपनी वासनाके अनुसार देश स्थान बहुरि जगत् फुरि आता है, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्र

व्य करिके देखता है, सो मृत्यु भी जीवकों दो प्रकारका है, एक पापात्माका मृत्यु है, एक पुण्यात्माका मृत्यु है, बहुरि पापी भी तीन प्रकारके हैं; एक महापापी है, एक मध्यमपापी है, तीसरे अल्पपापी है, ऐसेई पुण्यही तीन प्रकारके हैं, एक महापुण्यवान् है, एक मध्यमपुण्यवान् है, तीसरा अल्पपुण्यवान् है, प्रथम पापीयोंका मृत्यु सुण, जब बडा पापी मृतक होता है, तब मरिके जर्जरीभूत हो जाता है, घन पाषाणकी नांई सहस्र वर्षोंपर्यंत मूर्छाविषे पडा रहता है, केई ऐसे जीव हैं, तिस मूर्छाविषे भी उनकों दुःख होता है, जैसे बाहिर इंद्रियोंकों दुःख होता है, तिसके रागद्वेषकों लेकरि चित्तकी वृत्ति अंतर हृदयविषे जाय स्थित होती है,तैसे पापवासनाका दुःख अंतर होता है, तिसकरि दुःख होता है, अंतर जलता है, इस प्रकार जडीभूत मूर्छाविषे रहता है, तिसके अनंतर उसकों बहुरि चैतन्यता फुरि आती है, अपनेसाथ शरीर देखता है, बहुरि नरककों जाय भुगतता है, चिरकालपर्यंत नरककों भोगिके बहु तेरे जन्म पशु आदिकोंके भुगतता है, तिनकों भोगिके मनुष्यशरीरकों पाता है, महानीच अरु दरिद्री निर्धनोंके गृहविषे जन्म लेता है, तहां भी दुःखोंकरि तप्त रहता है॥ हे लीले! इह महापापियोंका मृत्यु तुझकों कहा; अब मध्यम पापीका मृत्यु सुण, जब मध्यमपापीका मृत्यु होता है, तब उह भी वृक्षकी नांई मूर्छा करि जडीभूत होई जाता है, अरु अंतर दुःखकरि जलता है, जडीभूततें थोडे कालविषे बहुरि चेतनताकों पाता है, नरकांतरकों जाय भुगतता है, नरककों भोगिके तिर्यगादिक योनिकों भुगतता है, तिनकों भोगिके वासनाके अनुसार मनुष्यशरीरकों पाता है, अब अल्पपापीका मृत्यु श्रवण कर॥ हे लीले! जब अल्पपापी मृतक होता है, तब मूर्छित होय जाता है, केतेक कालतें उसकों चेतनता आय फुरती है, चेतनताकों पायके नरककों जाइकरि भुगतता है, तिनकों भुगतके कर्मोंके अनुसार और जन्मोंकों भुगतता है, बहुरि मनुष्यशरीर आय धरता है॥ हे लीले! इह पापात्माके मृत्यु कहे, अब धर्मात्माके मृत्यु सुण॥ जो महाधर्मात्मा हैं, सो जब मृतक होते हैं तब उ

नके निमित्त विमान आते हैं, तिनपर आरूढ करिके स्वर्गमें ले जाता हैं, जिस इष्ट देवताकी वासना इसके हृदयविषे होती है; तिसके लोकविषे ले जाते हैं; तहां जाइकरि स्वर्गसुख भुगतता है, जैसे कर्म कीये होते हैं; तैसे सुखकों भुगतता है, कैसे स्वर्गसुख हैं, जो गंधर्व, विद्याधर, अप्सरा, आदिक भोग हैं, तिनकों भोगिके बहुरि गिरता है, जिस फलविषे आन स्थित होता है, तिस फलका मनुष्य भोजन करता है, जब वीर्यविषे जाय स्थित होता है, तिस वीर्य साथ माताके गर्भविषे जाय स्थित होता है, तहांतें वासनाके अनुसार बहुरि जन्म लेता है, जो कछु भोगकी कामना होती है, तब श्रीमान् धर्मात्माके गृहविषे जन्म होता है, अरु जो भोगतें निःकाम होता है, तब संतजनके गृहविषे जन्म लेता है ॥ अब मध्यम धर्मात्माका मृत्यु सुण ॥ हे लीले! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है, तिसकों शीघ्रही चेतनता फुरि आती है, अरु स्वर्गकों चला जाता है, अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गकों भोगिके बहुरि गिरता है, किसी फलविषे आनि स्थित होता है, उस फलकों पुरुष भोजन करता है, तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, वासनाके अनुसार जन्म लेता है, अरु जो अल्पधर्मात्मा मृतक होता है, तब उसकों इह फुरि आता है, जो मैं मृतक हुआ हौं, मेरे बांधव अरु पुत्रोंनें मेरी पिंडक्रिया करी है, मैं पितरलोककों चला जाता हौं ॥ उहां पितरलोकका अनुभव करता है, पितर लोकके सुख भोगके गिरता है, तब धान्यविषे आन स्थित होता है; जब धान्यकों पुरुष भोजन करता है, तब वीर्यरूप होयके स्थित होता है, तिस वीर्यद्वारा होयके माताके गर्भविषे आता है, बहुरि वासनाके अनुसार जन्म लेता है ॥ हे लीले! जब पापी मृतक होता है, तब तिसकों महाक्रूर मार्ग भासता है, तिस मार्गपर चलता है, चरणोंविषे कंटक चूभते हैं, शीशपर सूर्य तपता है, सूर्यके धूपकरि शरीर कष्टवान् होता है, अरु जो पुण्यवान् होता है, तिसकों सुंदर छायाका अनुभव होता है, बावडीयां अरु सुंदर स्थानोंके मार्गसों यमदूत उसकों ले जाते हैं; जहां धर्मराजा बैठा है, तिसके पास ले

प्राप्त करते हैं, धर्मराजा चित्रगुप्तसों पूछता है, तब चित्रगुप्त पुण्यवानोंके पुण्य प्रगट करता है;पापीके पाप प्रगट करता है, तिन कर्मोंके अनुसार स्वर्गनगरकों भुगतता है, तिसकों भोगिके बहुरि गिरता है, धान्य अथवा और किसी फलविषे आन स्थित होता है, जब उस अन्नकों पुरुष भोजन करता है, तब उह स्वप्न वासनाकों लेकरि वीर्यविषे आन स्थित होता है, जब पुरुषका इससाथ संयोग होता है, तब वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, तहां भी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भकों प्राप्त होता है; तिसके माताके गर्भविषे इसकों अनेक जन्मोंका स्मरण होता है, बहुरि बाह्य निकसिके बालक अवस्थाकों धरता है, तब पीछली स्मृति विस्मरण हो जाती है, महामूढ अवस्थाकों धरता है, परमार्थकी शुद्धि कछु नहीं होती, क्रीडाविषे मग्न होता है, तिसतें आगे यौवन अवस्था आती है, तब काम आदिक विकारोंविषे अंध हो जाता है, विचार कछु नहीं रहता, बहुरि वृद्ध अवस्था आती है, तब शरीर महाकृश जैसा हो जाता है, अरु रोग आन उपजते हैं, शरीर कुरूप हो जाता है, जैसे कमलोंपर बरफ पडता है, अरु कुमलाई जाते हैं, तैसे वृद्ध अवस्थाविषे शरीर कुमलाई जाता है, सब शक्ति घटती जाती है, अरु तृष्णा बढती जाती है, बहुरि मृतक होने लगता है, तब कष्टवान् होता है, कष्टकों भोगिके मृतक होता है, तब वासनाके अनुसार स्वर्गनरकके भोगकों प्राप्त होता है; इस प्रकार संसारचक्रविषे वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नांई भ्रमता है; स्थिर कदाचित् नहीं होता॥ हे लीले! इस प्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद करिके जन्ममरणकों प्राप्त होता है; बहुरि माताके गर्भविषे आते हैं, बाल अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था, मृतक अवस्थाकों प्राप्त होते हैं, बहुरि वासनाके अनुसार परलोककों देखते हैं; जाग्रतस्वप्नकी नांई भ्रमतें अनंतर भ्रमकों देखते हैं, जैसे स्वप्नतें स्वप्नांतर देखता है, तैसे अपनी कल्पना करिके जगत्भ्रम फुरता है; स्वरूपतें किसीकों कछु भ्रम नहीं, आकाशरूप, आकाशविषे स्थित है, भ्रम करिके विकार भासते हैं॥ लीलोवाच ॥ हे देवि! परब्रह्मविषे इह

जगत् भ्रमकरि कैसे हुआ है; सो मेरे बोधके दृढताके निमित्त कहौ ॥ देव्युवाच ॥ हे लीले! स्वरूपतें सब आत्मरूप है, पहाडभी परमार्थघन है, वृक्ष भी परमार्थघन है, पृथ्वी, आकाश, आदिक स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सो सब परमार्थघन है, परमार्थसत्ता सर्व आत्मा है ॥ हे लीले! तिस सत्ता संवित् आकाश विषे जब संवेदन आभास फुरता है, तिसकरि जगत्भ्रम भासता है, आदिसंवेदन जो संवित्मात्रविषे हुआ है, सो ब्रह्मारूप होईकरि स्थित भया है, बहुरि जैसे उह चेतता गया है, तिस प्रकार स्थावर जंगम जगत् होईकरि स्थित भया है ॥ हे लीले! शरीर जो हुआ है, तिसके अंतरविषे नाडी हैं, नाडीविषे छिद्र हैं, तिन छिद्रोंविषे प्राण स्पंदरूप होईकरि विचरता है, तिसकों जीव कहता हैं; जब उह जीव निकस जाता है, तब शरीर मृतक होता है ॥ हे लीले! जैसे जैसे आदि संवित्मात्रविषे संवेदन फुर्या है, तैसे अबलग स्थित है; जब चेत्या जो मैं जड होउं तब जडरूप पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये जडकी भावनाकरि जड हुए, चेतनकी भावनाकरि चेतनरूप होइकरि स्थित भए हैं ॥ हे लीले! जिसविषे प्राणक्रिया होती है, सो जंगमरूप बोलते चलते हैं, अरु जिसविषे प्राणस्पंद क्रिया नहीं पाइती, सो स्थावररूप हैं, अरु आत्मसत्ताविषे दोनों तुल्य हैं; जैसे जंगम हैं, तैसा स्थावर हैं; अरु दोनों चैतन्य हैं, जैसे जंगमविषे चैतन्यता है, तैसे स्थावरविषे चैतन्यता है, अरु जो तूं कहै स्थावरोंविषे चेतनता भासती क्यों नहीं, तिसका उत्तर यह है ॥ हे लीले! जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीकों दक्षिण दिशाके समुद्रवाले नहीं जानते; अरु दक्षिण दिशाके समुद्रवालेकी बोलीकों उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझ शकते, तैसे स्थावरोंकी बोलीकों जंगम नहीं समझ शकते, अरु जंगमोंकी बोलीकों स्थावर नहीं समझ शकते; परस्पर अपनी अपनी जातिविषे सब चेतन है, उसका ज्ञान उसकों होता है, औ उसका ज्ञान उसकों होता है, जैसे कूपविषे दर्दुर होता है, सो औरके कूपके दर्दुरकों नहीं जानता, अरु और कूपका दर्दुर उ

स कूपके दर्दुरकों नहीं जानता, तैसे जंगमोंकी बोली स्थावर नहीं जान शकते; अरु स्थावरोंकी बोलीकों जंगम नहीं जान शकते॥ हे लीले! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुर्या है, तैसा रूप होइकरि महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथा नहीं होता, जब तिस संवित्‌विषे अवकाशका संवेदन फुर्या, तब आकाशरूप होइकरि स्थित भया है; जब स्पंदताकों चेतता भया, तब वायुरूप होइकरि स्थित भया, जब उष्णताकों चेतता भया, तब अग्निरूप होइकरि स्थित भया; जब द्रवताकों चेतता भया, तब जलरूप होइकरि स्थित भया, जब गंधकी चिंतवना करी तब पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया, इस प्रकार जिस जिसकों चेतता भया, सो सो पदार्थ प्रगट भया, आत्मसत्ताविषे प्रतिबिंबित भया, वास्तवतें न कोउ स्थावर है, न जंगम है, केवल ब्रह्म सत्ता ज्यौंकी त्यौं है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रम करिके पडे भासते हैं, और दूसरी वस्तु कछु नहीं॥ हे लीले! अब राजा विदूरथकों देख जो मृतक होता है॥ ॥लीलोवाच॥ हे देवि! इह राजा पद्मशब शरीरवाले मंडपविषे किस मार्गसों जावैगा; अरु इसके पाछे हम किस मार्ग जावैंगे?॥ ॥देव्युवाच॥हे लीले! इह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्गके राह जावैगा, है चिदाकाशरूप, परंतु अज्ञानके वश इसकों दूर स्थान भासैगा; अरु हम भी इसहीके मार्गसें इसके संकल्प साथ अपना संकल्प मिलाइके जावैंगे; जबलग संकल्पसाथ संकल्प मिलता नहीं, तबलग एकत्वभाव नहीं होता, इसी कारणतें इसके संकल्पसाथ हम अपना संकल्प मिलाइकरि इसहीके मार्गसें जावैंगे॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! इस प्रकार देवीजीनें लीलाकों उपदेश कीया, कैसा उपदेश है, मानौ बोधका सूर्य उदय हुआ है, ऐसे संवाद करते थे, तहां राजा जर्जरीभूत होने लगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३८॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार देवी अरु लीला देखती थी, तहां राजाके नेत्र फाटि गये, अरु शरीर निरस हो गया, अरु गिर पडा, श्वास नासिकाके मार्गसें निकस गया, तब जैसे रसतें रहित पत्र होता है,

जैसे काट्या हुआ कमल विरस हो जाता है, तैसे राजाका शरीर निरस हो गया, जो कछु चित्तकी चेतनता थी, सो जर्जरीभूत हो गई, मृत्युमूर्छारूपी अंधकूपविषे राजा जाय पडा, अरु प्राण चेतना अरु वासनासंयुक्त आकाशविषे जाय स्थित भये, प्राणोंविषे चेतना थी अरु चेतनाविषे वासना थी सो चेतना अरु वासनासहित प्राणाकाशविषे जाय स्थित भये, जैसे वायु गंधकों लेकरि स्थित होता है॥ हे रामजी! उहराजा की पुर्यष्टक तौ जर्जरीभूत हो गई; परंतु दोनों देवियां उसकों दिव्य दृष्टिसाथ देखैं, जैसे भ्रमरी गंधकों देखती है, तब राजा एक मुहूर्तपर्यंत मूर्छाविषे रहा, बहुरि उसकों चेतनता फुरि आई, अपनेसाथ शरीर भासि आया, अरु जानता भया जो मेरे बांधवोंनें मेरी पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर भया है, अरु धर्मराजाके स्थानकों मुझे दूत ले चले हैं॥ हे रामजी! इस प्रकार अनुभव करता धर्मराजाके स्थानकों चला जावै, तिसके पाछे देवी अरु लीला भी चली जावैं, जैसे वायुके पाछे गंध चला जाता है, तैसे चली जावैं, जैसे गंधके पाछे दोनों भ्रमरी जावैं, तैसे तब राजा विदूरथ धर्मराजाके पास जाई प्राप्त भया, धर्मराजानें चित्रगुप्तकों कहा जो इसके कर्म विचारके कहौ, तब चित्रगुप्तनें कहा, हे भगवन्, इसनें कोउ अपकर्म नहीं कीये, अरु बडे बडे पुण्य कीये हैं, पाप नहीं कीये; अरु भगवती सरस्वतीका इसकों वर है; अरु इसका शब फूलोंसाथ ढांप्या हुआ है; तिस शरीरविषे भगवतीके वरकरि जाय प्रवेश करैगा; तातें और इसकों अब कछु कहना पूछना नहीं॥ देवीजीके वरसाथ बांधा है॥ हे रामजी! ऐसे उसनें कहा, तब राजाकों अपने स्थानतें चलाय दीया, जैसे खंभाणीकर पथ्थर बडा वेगसों चला जाता है, तैसेही चलाय दीया; तब आगे राजा चला जावै; तिसके पाछे दोनों देवियां चली जावैं, राजाकों इह देवियां देखैं, अरु राजा इनकों देख न शकै, तब तीनों एक ब्रह्मांडकों लंघ गये, जिसका राज्य विदूरथनें कीया था, तिसकों लंघिकरि दूसरे ब्रह्मांडविषे आए, तिसकों भी लंघते पद्म राजाके देशमें आये, तिसकों लंघकरि पद्मके मंदिरविषे आये; जहां फूलोंसाथ शब ढांप्या था;

एक क्षणविषे देवियां आन मिलियां; जैसे मेघकों वायु आन मिलता है, जैसे सूर्यमुखी कमलकों धूप आनि मिलता है, तैसे आन मिलियां ॥ ॥ राम उवाच ॥हे भगवन्! उह तौ राजा मृतक हुआ था, मृतक होइकरि तिस मार्गकों कैसे पिछानत भया, जो आय प्राप्त हुआ ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! उह विदूरथ जो मृतक भया था, सो उसकी वासना तौ नष्ट भई न थी, उस अपनी वासनाकरि अपने स्थानकों आइ प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! भ्रांतिमात्र जो जगत् है, सो चिद्‌अणु जीवके उदरविषे है, जैसे वटके बीजविषे अनंत वटवृक्ष होते हैं; तैसे चिद्‌अणुविषे अनंत जगत् हैं, जो अपने अंतर स्थित है; तिसकों क्यों न देखै; जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखता है, तैसे स्वभाव चिद्‌अणु त्रिलोकीकों देखता है; जैसे कोउ पुरुष किसी स्थानविषे धनकों दाबी राखै, अरु आप दूर देशकों जावै, तौ धनकों वासना करिके पडा देखता है ; तैसे वासनाकी दृढताकरि विदूरथ देखता भया, अरु जैसे कोउ जीव स्वप्नभ्रमकरि किसी बडे धनवान्के गृहविषे जाय उपजता है; भ्रमके शांत हुए तिसकों अभाव देखता है, तैसे अनुभव करत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिसकी वासना पाछे पिंडदानक्रियाकी नहीं रही, अरु मृतक भया है, तब उह कैसे अपने साथ शरीर देहकों देखता है, जिसकी पिंडक्रिया हुई नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह पुरुष पिता माता के पिंड जो करता है, उनकी वासना इसके हृदयविषे होती है, सोई वासना फलरूप होईकरि इसकों भासती है ; जो मेरा शरीर है; मेरे पाछे मेरे बांधवनें पिंडदान किया है, तिसकर मेरा शरीर हुआ है, अपनी वासनाकरि तिसकों इसी प्रकार अनुभव होता है ॥ हे रामजी! सदेह होवै अथवा विदेह होवै, अपनी वासनाके अनुसार इसकों अनुभव होता है; भावनातें इतर अनुभव नहीं होता, चित्तमय पुरुष है, जो चित्तविषे पिंडकी वासना दृढ होती है, तब आपकों पिंडवान्‌ही जानता है; जैसी भावना होती है, तैसेही होता है ; भावनाके वशतें असत् भी सत् हो जाता है; तातें पदार्थोंका कारण भावनाही है, कारणवि

ना कार्यका नहीं उदय होता, महाप्रलयपर्यंत कारणविना कार्य होता देखा नहीं, अरु सुन्या भी नहीं, तातें कहा है जो जैसी वासना होती है, तैसा अनुभव होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस पुरुषकों अपने पिंडदान आदिक धर्मकी वासना नहीं, उह जब मृतक होता है, तब प्रेतवासनासंयुक्त होता है, जो मैं प्रेत हुआ हौं, मैं पापी हौं, अरु पाछे तिसके बांधव उसके निमित्त धर्मक्रिया करते हैं, सो धर्म बांधवोंनें पिंड क्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर हुआ है, सो क्रिया उसकों प्राप्त होती है, अथवा नहीं होती? बांधवोंके मनविषे दृढ भावना भई जो इसकों प्राप्त होवैगी, अरु इसके मनविषे भावना नहीं, जो किस कारणतें धनके अभावतें अथवा पुत्रादिकोंके अभावतें उसकों निरास है, अरु किसी प्रभावतें किसीनें पिंडादिक क्रिया करी सो कैसे होत है?॥ उसकों प्राप्त होता है, अथवा नहीं होता, तुम तौ कहते हौ, जो भावनाके वशतें असत् भी सत् हो जाता है, इह क्या है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावना जो होती है,सो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, संपदा पांचोंकरि होती है, जैसी भावना होती है, तैसे सिद्ध होता है, जिसकी कर्तव्यता बली होती है, तिसका जय होता है, इह पुत्रदारादिक जो बांधव हैं, सो सब इसकी वासनारूप हैं, जो धर्मकी वासना होती है, तब तिसकी बुद्धिविषे प्रसन्नता उपज आती है, तिनके पुण्यकर्मोंकरि पूर्वभावना नष्ट हो जाती है, अरु शुभ गतिकों प्राप्त होता है, जो अतिबली वासना होती है, तिसहीका जय होता है, तातें अपने कल्याणके निमित्त शुभका अभ्यास कीया चाहिये ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! जो क्रिया देश काल द्रव्य संपदा पांचों करि वासना होती है तौ महाप्रलय सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोउ नहीं होती, जहां पांचों कारण नहीं होते, अरु तिनकी वासना भी नहीं होती, तिस अद्वैततें जगत्भ्रम बहुरि कैसे होता है? ॥ वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! महाप्रलय अरु सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोउ नहीं रहती, अरु निमित्तकारण समवायिकारणका अभाव होता है, अरु चिदात्मविषे जगत् कछु उपजा नहीं अरु है भी न

हीं, वास्तवतें दृश्यका अत्यंत अभाव है, अरु जो कछु भासता है, सो ब्रह्मका किंचन है, सो ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसे अनेक युक्तिकरि मैं तुझकों कहौंगा, अब तूं पूर्वकथा सुण॥ हे रामजी! जब उह दोनों देवियां तिस मंदिरविषे जाय प्राप्त भईयां, तब देखत भईयां, जो महाफूलोंकरि सुंदर शीतल स्थान बने हुए हैं, जैसे वसंतऋतुविषे वनभूमिका होती है, तैसे स्थान हैं, अरु प्रातःकालका समय है, सुवर्णके कुंभ जलसाथ भरे मंगलरूपी पडे हैं, दीपकोंकी प्रभा मिट गई है, किवाड चडे हुए हैं; अरु मंदिरोंविषे लोक सोए हुए हैं, तिनके श्वास आते जाते हैं, महासुंदर झरोखे हैं, ऐसे स्थान बने हुए हैं, जैसे संपूर्ण कलाकरि चंद्रमा शोभता है, तैसे भासते हैं, इंद्रके स्थान जैसे सुंदर हैं, तैसे सुंदर मंदिर हैं, जिस कमलतें ब्रह्माजी उपजा है, तैसे उह कमल सुंदर हैं, तैसे सुंदर स्थान मंदिरकों देखत भईयां॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मरणानंतरावस्थावर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ३९॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तब दोनों देवियां तिस शबके पास विदूरथकी लीलाकों देखती भईयां; जो उसके मृत्युतें प्रथम तहां आन प्राप्त भई है, पूर्व जैसे वस्त्र भूषण पहिरे हुए हैं, पूर्व जैसा आचार है, पूर्व जैसी सुंदरता है, पूर्व जैसा शरीर है तिस लीलाकों देखत भईयां; कैसा सुंदर मुख है, जैसे चंद्रमाकी नांई प्रकाशता है, अरु महासुंदर फूलोंकी भूमि उपर बैठी है; लक्ष्मीके समान लीला है, अरु विष्णुके समान राजा है, तिस लीलाकों कछुक चिंतासहित देखत भईयां; जैसे दिनके समय चंद्रमाकी मध्यम प्रभा होती है तैसे कछुक चिंतासहित राजाकी नांई और बैठी है, चिबुक हाथके आधार रख्या है, अरु दूसरे हाथकरि राजाकों चमर करती है, तिस लीलाकों दोनों देखत भईयां अरु उह लीला इनकों न देखत भई, काहेतें जो इह दोनों प्रबुद्धआत्मा थियां, अरु सतसंकल्प थियां, अरु उह लीला इनके समान प्रबुद्ध न थी, इस कारणतें उह न देखत भई॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तिस मंडपविषे जो पूर्व लीला देहकों स्थापन करी अरु ध्यानविषे विदूरथकी सृष्टि देखनेकों स

रस्वतीसाथ गई थी, सो तिस देहका तुमने वर्णन कछु न किया, जो उस देहकी क्या दशा भई, अरु कहां गई, तिसका वृत्तांत अब कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! लीला कहां थी, अरु लीलाका शरीर कहा था, अरु तिसकी सत्ता कहां थी, उह तौ अरुंधतीके मनविषे लीलाके शरीरकी भ्रांति प्रतिभा हुई थी; जैसे मरुस्थलविषे जलकी प्रतिभा होती है, तैसे लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुईथी ॥ हे रामजी ! इह अधिभूतक अज्ञान करिके भासता है, बोधकरिके अधिभूतकता निवृत्त होइ जाती है, जब तिस लीलाकों बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया; जैसे सूर्यके तेजकरि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिके तिसकी अधिभूतकता नष्ट हो गई, अरु अंतवाहकता आन उदय भई ॥ ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है; जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिके भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अंतवाहक है, अर्थ इह जो संकल्पमात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई, तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवतें न कोउ भूत आदिक तत्त्व हैं, न कोउ तत्त्वोंका शरीर है, इनका शब शशेके शृंगोंकी नांई असत् है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अज्ञानकरिके अधिभूतक भासै हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नविषे आपकों हरण देखता भया; जब जागि उठा, तब हरणका शरीर दृष्ट नहीं आता, तैसे अज्ञानकरिके अधिभूतकता दृष्ट आई है, अरु आत्मबोध हुए अधिभूतकता दृष्ट नहीं आती, जब सत्यका ज्ञान उदय होता है, तब असत्का ज्ञान लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञानतें सर्प भासै अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनतें उदय हुआ है, अज्ञानतें करिके अधिभूतकताकों प्राप्त भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् अधिभूतक होइ भासता है, अरु जागेतें स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है, अरु अंतवाहक शरीर भासता है ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! योगीश्वर जो अंतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोकपर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अंतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नविषे होवै, तिसकों पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर इसकों दृष्ट भी आता है, अरु तिसकों आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिके नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखणे मात्र होता है; तैसे योगीश्वर ज्ञानवान्का शरीर देखणेमात्र होता है, अरु अदृश्यरूप है, औरकों शरीर भासता है, उसकों आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी! इह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिके दृष्ट आता है, आत्मज्ञानकरिके निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिके सर्प भासता है, जब जेवरीका सम्यक्ज्ञान हुआ, तब सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्वबोधके हुए, देह कहां होवै? देहकी सत्ता कहां रहै? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अंतवाहकतें अधिभूतकरूप होता है, अथवा अधिभूतकतें अंतवाहकरूप होता है? सो मुझकों कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं तुझकों बहुत बार कहा है, जो तूं मेरे कहेकों धारता क्यों नहीं! मैं आगे कहा है जो जेते कछु जीव हैं, सो सब अंतवाहक हैं, अधिभूतक कोउ नहीं, आदि जो शुद्ध संवित्मात्रतें संवेदन आभास उठा, तिसकरिके इस जीवका आदि शरीर अंतवाहक संकल्परूप हुआ, जब उसविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब उह संकल्परूपी शरीर अधिभूतक होइकरि भासने लगा, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे प्रमादकरिके संकल्पके अभ्यासतें अधिभूतकरूप हो जाता है, तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर होता है, अरु कठोर भाव होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, इस कारणतें अधिभूतक कहाता है, अरु जब तत्त्वका बोध होता है, तब अधिभूतकता आकाशरूप हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे देहतें आदि लेकरि जगत् बडा स्पष्टरूप भासता है, अरु जब स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होता है, जो इह स्वप्न है, तब उह स्वप्नका श

रीर लघु हो जाता है, अर्थ इह जो संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके बोधतें अधिभूतक शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है॥ हे रामजी! जो अधिभूतकता इसकों प्राप्त भई है, सो अबोधके अभ्यासकरि प्राप्त भई है, जब उलटके उही अभ्यासका बोध होवै तब अधिभूतकता नष्ट हो जावै, अरु अंतवाहकता उदय होवै॥ हे रामजी! अन्य शरीरोंकों जो इह प्राप्त होता है, सो एक शरीरकों त्यागिके दूसरेका अंगीकार करता है; जैसे स्वप्नतें स्वप्नांतरकों प्राप्त होता है, अरु जब बोध होता है, तब शरीर और कछु वस्तु नहीं रहता, उही अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नशरीर शांत हो जाता है, तैसे बोध हुएतें अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब स्वप्नविषे भ्रममात्र है, अज्ञानकरिके सत्की नांई भासता है, जब आत्मबोध होवैगा, तब सब आकाशरूप होवैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नप० नि० चत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४०॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब उह दोनों देवियां अंतःपुरविषे गइयां, तब प्रबुद्ध लीला कहत भई॥ हे देविजी! समाधिविषे लगे मुझकों केता काल व्यतीत भया है, अरु मैं जो ध्यान करिके भूपालकी सृष्टिविषे गई थी, मेरा शरीर इहां पडा था, सो कैसे कहां गया!॥ ॥देव्युवाच॥ हे लीले! अब तुझकों समाधिविषे लगे एक तीस दिन व्यतीत भये हैं, अरु जब तूं ध्यानविषे लगी, तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टिविषे विचरता फिर्या, इस शरीरकी वासना तेरी निवृत्त हो गई, तब इह शरीर तेरा निर्जीव होइकरि गिर पडा; जैसे रसतें रहित पत्र सूकी जाता है, तैसे तेरा शरीर रसतें रहित भया था, जैसे काष्ठ पाषाण होता है, तैसे हो गया था, अरु बरफकी नांई शीतल हो गया, तब देखके सबनें विचार कीया, जो इह मृतक भया है, इसकों जलाइयें, तब चंदन अरु घृत साथ लपेटके जलाय दीया॥ बांधव जन रुदन करने लागे अरु पुत्रोंनें पिंडक्रिया करी॥ हे लीले! आगे जो तूं ध्यानतें उतरती तब तुझकों देखके लोक आश्चर्यमान् होते॥ अरु अब देखके आश्चर्यमान् होवैंगे, जो राणी पर

लोकतें बहुरि फिरी आई है॥ हे लीले! तुझकों बोध उदय हुआ है, तिसकरि उस शरीरकी वासना नष्ट भई है, अरु अंतवाहकविषे दृढ निश्चय भया, इस कारणतें उह शरीर जीवित भया, अब जो उसके समान तेरा शरीर है, सो इस कारणतें है, जो तुझकों बोध हुआ है, सो लीलावासनाविषे हुआ, जो मैं लीला हौं, ऐसे जो तेरी वासना भई, इस कारणतें तेरा शरीर तैसा रहा, इह लीलाशरीरकी तेरी वासना नष्ट भई न थी, इस कारणतें तूं निर्वाण न हुई, नहीं तौ विदेहमुक्त हो जाती, अब तूं सत्संकल्प भई है, जैसे तेरी इच्छा होवै, तैसे अनुभव होवैगा ॥ हे लीले! जैसी वासना जिसकों होती है, तिसके अनुसार तिसकों प्राप्त होता है, जैसे बालककों अंधकारविषे जैसी भावना होती है, तैसाही भान होता है, जो वैतालकी भावना होती है, तब वैताल होइ भासता है, परंतु वास्तव वैताल कोउ नहीं, तैसे जेती कछु अधिभूतकता भासती है, सो भ्रममात्र है, सब जीवोंकों आदि शरीर अंतवाहक है, सो प्रमादकरिके अधिभूतक भासता है॥ हे लीले! एक लिंगशरीर है, एक अंतवाहकशरीर है, सो दोनों संकल्पमात्र हैं, अरु इतना भेद है, लिंगशरीर संकल्परूपी मन है, तिसविषे जिसकों अधिभूतकताका अभिमान हुआ है, तिसकों गौरत्वरूप अरु कठोररूप अरु वर्णाश्रमका अभिमान हुआ है, जिस पुरुषकों ऐसे अनात्माविषे आत्माभिमान हुआ है, तिसकों अधिभूतक लिंगदेह है, अर्थ यह जो तिसकी चिंतना सत्य नहीं होती, अरु जिसकों अधिभूतकका अभिमान नहीं, सो अंतवाहक शरीर है, उह जैसी चिंतवना करता है, तैसी सिद्ध होती है॥ हे लीले! तूं अब अंतवाहकविषे दृढ स्थित भई है, इस कारणतें तेरा बहुरि उस जैसा शरीर हुआ है, अधिभूतकबुद्धि तेरी नष्ट हो गई है, उह शरीर शब होकरि गिर पडा; जैसे जलतें रहित मेघ होता है, जैसे सुगंधतें रहित फूल होवै, तैसे तेरा शरीर हो गया अरु अब तूं सत्यसंकल्प भई है, जैसी चिंतवना करै तैसे होता है ॥ हे लीले! इह जो कमलनयनी लीला तेरे भर्त्ताके पास बैठी है, तिसकों इह अंतःपुरके लोक सहेलियां जान नहीं सकतियां, काहेतें जो मैंनें इनकों निद्राकरि

के मोहित करे थे, जबलग मेरा दर्शन इसकों न होवै तबलग इसकों और कोउ न जानि शकै, अब इह हमकों देखैगी ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिके देवी उसकों अपने संकल्पसाथ ध्यान करती भई, तब उस लीलानें देख्या, जो अंतःपुरविषे बडा प्रकाश होत भया, जैसे बहुतेरे सूर्यका प्रकाश एकठा होवै, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल प्रकाश ऐसे प्रकाशवान् दोनों देवियांकों देखिके नमस्कार कीया, मस्तक नमाया, अरु दोनोंकों स्वर्णके सिंहासनपर उठायके कहत भई ॥ हे जीवकी दाता, तेरी जय होवै, तैनें मेरेपर बडी कृपा करी है; तेरे प्रसादकरि मैं इहां आइ प्राप्त भई हौं ॥ देव्युवाच ॥ हे पुत्रि! तूं इहां क्यों कैसे आन प्राप्त भई है? अरु क्या वृत्तांत तुझनें देख्या है, सो कहिदे ॥ विदूरथलीलोवाच ॥ हे देवि! जब मेरा भर्त्ता संग्राममविषे घायल भया था, तिसकों देखिके मैं मूर्छित भई, अरु गिर पडी, मैं मूर्छित भई, परंतु मृतक न भई तिसतें अनंतर बहुरि मुझकों चेतना फुरी आई, तब मैं अपने साथ उही शरीर देखती भई, तिस शरीरकरि मैं आकाशमार्गकों उडी, एक कुंवारी मुझकों उडाती इहां ले आई, जैसे वायु गंधकों ले आता है, तैसे उडावती परलोकविषे मुझकों भर्त्ताके पास बैठाई है, अरु आप अंतर्धान हो गई, अरु मेरा भर्त्ता जो संग्राम करी थका है, सो आयके सोय रहा है, अरु मैं संभालती देखती मार्गविषे आइ हौं, परंतु मुझकों तुम दृष्ट कहूं न आये, इहां कृपा करी तुमनें दर्शन दीया है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सुनिके देवी प्रबुद्धलीलाकों कहत भई, जो अब राजाकी जीवकलाकों छोडती भई हौं, ऐसे कहिके जीवकलाकों छोड दीनी, तब नासिकाके मार्गसों जीवकला प्रवेश कर गई, जैसे कमलकी अंतर वायु प्रवेश करी जावै, अथवा शरीरमें वायु प्रवेश करी जावै, तैसे शरीरमें जीवकला प्रवेश कर गई, कैसी जीवकला है, जो वासनाकरिके पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरिके पूर्ण होता है, तैसे पुर्यष्टक वासनाकरि पूर्ण है, ऐसी जीवकलानें शरीरविषे प्रवेश कीया, तब शरीरकी कांति उज्ज्वल होत भई, अंगोंविषे प्राणवायु पसर गया, जैसे वसंत ऋतुमें

रिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिके देवी अंतर्धान हो गई, तब प्रातःकालका समय हुआ, सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसे राजा दोनों लीलाकों कंठ लगावत भया, कृपाकरिके प्रसन्न भया, अरु आश्चर्यवान् भया, तब तिस मंदिरविषे नगारे वाजणे लगे, शब्द होने लगे, बहुरि बहुरि शब्द मंगल गावैं, अरु हुलास करैं, मंदिरविषे बडा हुलास आनंद आन बडा, अंगना अनेक नृत्य करने लगी, बडा उत्साह हुआ, विद्याधर सिद्ध देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे, अरु लोक बडे आश्चर्यकों प्राप्त भये, जो लीला परलोकतें आई है, अरु भर्त्ताकों भी और आप जैसी लीलाकों ले आई है ॥ हे रामजी ! इह कथा देशतें देशांतरकों चली गई, लोक श्रवण करिके आश्चर्यकों प्राप्त होवैं; जब इस प्रकार इह कथा प्रसिद्ध हुई, तब राजानें भी श्रवण किया, जो मैं मरीके फेर जीया हौं, इस प्रकार बिचारत भया, जो फेर मैं अभिषेक लेहुं ॥ राजा ऐसे विचारता भया, तब मंत्री अरु मंडलेश्वरनें उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों उरतें समुद्रका जल मंगाया, अरु सर्व तीर्थोंका जल मंगाया, अरु राजाकों राज्यका अभिषेक किया, तब चारों समुद्रपर्यंत राजा निःकंटक राज्य करत भया, राजा अरु लीला पूर्वकी कथाकों विचारै, अरु आश्चर्यमान् होवै, सरस्वतीके उपदेश अरु प्रसाद अरु अपने पुरुषार्थकों पायके राजा अरु दोनों लीलानें ऐसे सहस्र वर्षपर्यंत जीवन्मुक्त होइके राज्य कीया, कैसे राज्य कीया जो मनसहित षड्इंद्रियोंकों वश कीया, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहे, दृश्यभ्रम तिनका नष्ट हो गया, ऐसे जीवन्मुक्त होके राज्य करते भये ॥ कैसा सुंदर राजा है, जिसकी सुंदरताकी कणिका मानौ चंद्रमा है, बहुरि कैसा राजा है, जिसके तेजकी कणिका मानौ सूर्य है, इस प्रकार राज्य करत भए, सब प्रजाकों भली प्रकार संतुष्ट करत भया, सब प्रजा राजाकों देखिके प्रसन्न होवैं, बुद्धिवान् ब्राह्मणसभाकों प्रसन्न करनेहारा हुवा, बहुरि विदेहमुक्त निर्वाणपदकों दोनों लीला अरु तीसरा राजा प्राप्त हुए ॥ ॥ इति श्री

योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह दोनों कथा मैं तुझकों विस्तारकरि श्रवण कराइयां हैं, एक आकाशज ब्राह्मणकी, दूसरी लीलाकी, सो दृश्य दोषके निवर्तनअर्थ कहियां हैं॥ हे रामजी! दृश्यकी दृढता जो हो रही है, तिसकों त्यागिकरि अब तूं दोनों इतिहासोंकों संक्षेपमात्रतें श्रवण कर; इह जगत् जो तुझकों भासता है, सो आभासरूप है, आदितें कछु उपजा नहीं, जो वस्तु सत् होती है, तिसके निवारणविषे प्रयत्न होता है, अरु जो वस्तु असतही होवै; तिसके निवृत्त होणेविषे यत्न कछु नहीं, इस कारणतें ज्ञानवान्कों सब आकाशरूप हो जाता है अरु आकाशकी नांई स्थित होता है॥ हे रामजी! आदि जो ब्रह्मसत्ताविषे आभास संवेदन फुर्या है, सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है! सो ब्रह्मा पृथ्वी आदिक भूतोंतें रहित है, जो आपही आभासरूप होवै तिसके उपजाये जगत् कैसे सत् होवै? हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है; जिसकों आत्मपदका साक्षात्कार हुआ है, तिसकों दृश्यभ्रमका अभाव हो जाता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों जगत्भ्रम स्पष्ट भासता है, शुद्ध चिदाकाशका एक अणु जीव है, तिस जीवअणुविषे इह जगत् भासता है, तिस जगत्की सृष्टिमें तुझकों क्या कहौं, नीति क्या कहौं, वासना क्या कहौं, पदार्थ क्या कहौं॥ हे रामजी! और जगत् कछु उपजा नहीं, संवेदनके फुरणें करिके जगत् भासता है, शुद्ध संवित्विषे संवेदनरूपी नदी चली है, तिसविषे इह जगत् पडा फुरता है, जब संवेदनकों यत्नकरि रोकैगा, तब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावैगा सो प्रयत्न करना यही है, जो संवेदनकों अंतर्मुख करना, जबलग आत्माका साक्षात्कार होवै, तबलग श्रवण मनन निदिध्यासन करी दृढ अभ्यास करियें, जब साक्षात्कार हुआ तब दृश्य नष्ट हो जाते हैं॥ हे रामजी! इह सर्व जगत् जो तुझकों भासता है, सो हमकों अखंड ब्रह्मसत्ताही भासती है, जगत् मायामय है, परंतु माया भी कछु और वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है॥ राम उवाच॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है॥ हे मुनीश्वर!

तुमनें मुझकों परम दशा कही है, कैसा तुमारा उपदेश है, जो दृश्यरूपी तृणोंकों नाश करता दावाग्नि है, अरु अध्यात्मक अधिभूतक अधिदैवक तापोंकों शांतकर्त्ता चंद्रमा है ॥ हे मुनीश्वर ! तुमारे उपदेशकरि मैं ज्ञात ज्ञेय भया हौं अरु पांच विकल्प मैं विचारे हैं;जो यह जगत् मिथ्या है, स्वरूपतें अनिर्वचनीय है, १ आत्मा विषे आभास है, २ इसका स्वभाव परिणामी है, ३ अज्ञानकरि उपजा है, ४ अरु अनादि अज्ञानपर्यंत है, ५ ऐसे जानिके मैं शांतात्मा ज्ञानवानोंकी नांई भया हौं अरु निर्वाण मुक्तकी नांई भया हौं ॥ हे मुनीश्वर ! और शास्त्रोंतें इह तुमारा उपदेश आश्चर्य है; श्रवणरूपी पात्र तुमारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता तातें इह मेरा संशय दूर करौ,जो लीलाके भर्त्ताकों तीन सृष्टिका अनुभव कैसे भया ? प्रथम वसिष्ठकी बहुरि पद्मकी बहुरि विदूरथकी, तिनकेविषे कालका व्यतिक्रम देख्या, जो कहूं दिन हुवा,कहूं मास हुवा, कहूं वर्षों का अनुभव भया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुवा ? ॥ हे मुनीश्वर ! हलोहरके बटेरेविषे जल नहीं स्थित होता अरु कुंभविषे स्थित होता है, तातें स्पष्ट कर कहौ, जो तुमारे वचन मेरे हृदयविषे स्थित होवें, एकवार कहनेकरि हृदयविषे स्थित नहीं होता तातें बहुरि कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है, कहूं क्षणविषे कल्पोंके समूह वीते भासते हैं; कहूं कल्पविषे क्षणका अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जिसकों विषविषे अमृतभावना होती है, तिसकों अमृत होइ भासता है, अरु जिसकों अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब उही विषरूप होइ भासता है, किसी पुरुषका शत्रु होता है, अरु उसविषे मित्रकी भावना करता है, उह मित्ररूप होइ भासता है, अरु जिसकों मित्रविषे शत्रुभावना होती है, तब उही शत्रु होइ भासता है ॥ हे रामजी ! जैसा संवेदन फुरता है, तैसा स्वरूप होइ भासता है, जिसका संवेदन तीव्र भाव अभ्यासकरिके निर्मलभावकों प्राप्त होता है, तिसका संकल्प सत् होता है, जैसे चेतता है,तैसाही सिद्ध होता है, तातें संवेदनकी तीव्रता भ

ई॥ हे रामजी! जो कोउ पुरुष रोगी होता है, तिसकों एक रात्र कल्पके समान व्यतीत होती है, अरु जो अरोगी होता है, तिसकी रात्र एक क्षणकी नांई व्यतीत होती है, अरु एक मुहूर्त्तके स्वप्नविषे अनेक वर्षोंका अनुभव करता है, जानता है, जो मैं उपजा हौं, इह मेरे माता पिता हैं, अब मैं बडा हुवा हौं, इह मेरे बांधव हैं ॥ हे रामजी! एक मुहूर्त्तविषे एते भ्रम देखता है, अरु जागे हुए एक मुहूर्त भी नहीं वीती; हरिश्चंद्रकों एक रात्रिविषे बारह वर्षोंका अनुभव हुवा था, राजा लवणकों एक क्षणविषे सौ वर्षका अनुभव हुवा था, तातें जैसे जैसे रूप होइकरि संवेदन फुरता है, तैसे तैसे होइकरि भासता है ॥ हे रामजी! ब्रह्माके एक मुहूर्त्तविषे मनुष्यकी आयु व्यतीत हो जाती है, सो ब्रह्मा एक मुहूर्त्तका अनुभव करता है, मनुष्य पूर्ण आयुका अनुभव करता है, अरु जो ब्रह्मा अपनी संपूर्ण आयुका अनुभव करता है, सो विष्णुका एक दिन होता है, ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होता है, अरु विष्णुकों एक दिनका अनुभव होता है, तातें जैसे जैसे संवेदनविषे दृढता होती है, तैसा तैसा भान होता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तूं देखता है, सो संवेदन फुरणेविषे स्थित है, जब संवेदन स्थित होता है, तब न दिन भासता है, न रात्र भासती है, न कोउ पदार्थ भासते हैं, न अपना शरीर भासता है, सो केवल आत्मतत्त्व मात्र सत्ता रहती है, तातें तूं देख जो सब जगत् मनके फुरणेविषे होता है, जैसे जैसे फुरता है, तैसा तैसा रूप हो भासता है ॥ कटुकविषे जिसकों मधुरकी भावना होती है, तब कटुक तिसकों मधुर हो जाता है, अरु मधुरविषे जिसकों कटुकभावना होती है, तब मधुर भी तिसकों कटुकरूप होइ जाता है, अरु स्वप्नविषे शून्य स्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार होते भासते हैं, अरु अस्थिरही होता है, स्वप्नविषे दौडता फिरता है, तातें जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसाही हो भासता है ॥ हे रामजी! जो कोउ पुरुष नौकाविषे बैठा होता है, तिसकों नदीके तट वृक्षोंसहित दौडते भासते हैं, सो स्थिर पदार्थ चलते भासते हैं, जो विचारवान् हैं, सो चलते भास

नेविषे स्थिर जानते हैं, अरु जो पुरुष भ्रमता है, तिसकों स्थिरीभूत मंदिर भ्रमते भासते हैं, अरु जो विचारविषे दृढ है, तिसकों भ्रमते भासनेविषे भी अचलबुद्धि होती है; तातें जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसा तैसा होइ भासता है ॥ हे रामजी! श्वेत पदार्थ होता है, अरु किसके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसकों पीत वर्ण भासता है; अरु जिसके शरीरविषे वात, पित्त, कफका क्षोभ होता है, तब इसकों सर्व पदार्थ विपर्यय भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप पडी भासती है, अरु आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे अंगना असत्‌रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिके उसकों स्पर्श करती है, अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालककों परछायेविषे वैताल भासता है, सो असत्‌ही सत्‌रूप होइ भासता है, अर्थ यह जो भयकों देता है ॥ हे रामजी! शत्रु होता है, अरु जो इसविषे मित्रभावना होती है, तब उह शत्रु भी मित्र सुहृद् होइ भासता है, अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब उह सुहृद् शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं; परंतु भ्रमकरिके सर्प भासता है, अरु भयकों देता है, अरु बांधवमें जो उसविषे बांधवकी भावना न करै तब बांधव भी अबांधव हो भासता है, अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावतें बांधव हो जाता है ॥ हे रामजी! शून्य स्थानमें स्वप्नविषे बडे क्षोभ भासते हैं; औ निकटवर्त्ती जागेतें निकटकों कछु नहीं भासता, स्वप्नवालेकों स्वप्नका अनुभव होता है, अरु जाग्रतवालेकों जाग्रतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं; सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तबही भासता है, तैसे लीलाके भर्त्ताकों भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ, जैसे जाग्रतकी मूर्त्तिका स्वप्नमें बहुत कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्त्ताकों भी हुवा था, जैसा जैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित्‌विषे भासता है, अरु मुझकों सदा ब्रह्मका निश्चय है, तातें सब जगत् हमकों ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसकों जगत्‌भ्रम दृढ है, तिसकों

जगतही भासता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है, सो आदितें कछु उपजा नहीं, सब आकाशरूप है, रोकणेवाली भीत कोउ नहीं, बडे विस्तारकरि जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है, जैसे स्तंभविषे कोरे बिना पुतली शिल्पीके मनविषे भासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मारूपी स्तंभ है, तिसविषे संवेदन जगतरूपी पुतलियांकों रचता है, परंतु पदार्थ कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ हे रामजी! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोए होवैं, तिसविषे एक जाग्रत होवै, दूसरा स्वप्नविषे होवै, जो स्वप्नविषे है, तिसकों बडे युद्ध होते पडे भासते हैं, अरु जाग्रतकों आकाशरूप है, तैसे जो प्रबोध आत्मज्ञानवान् है, तिसकों जगत्का सुषुप्तिकी नांई अभाव है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों नानाप्रकार व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसंतऋतुविषे पत्र फूल गुछे रससहित भासते हैं, तैसे आत्मसत्ता चैत्यता करिके जगत्‌रूप भासती है, जैसे स्वर्गविषे द्रवता सदा रहती है; परंतु जब अग्निका संयोग होता है, तब उसविषे द्रवता भासती है॥ हे रामजी! आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं; जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, ब्रह्मसत्ताही संवेदनकरिके जगत्‌रूप होइ भासती है, और कछु दूसरी वस्तु नहीं; जब महाप्रलय होता है, अरु सर्ग नहीं होता, तब कार्यकारणकी कल्पना कोउ नहीं होती, केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसतें जो चिदाकाश बहुरि जगत् भासता है, तौ उही रूप हुआ अरु जो तूं कहै इस जगत्का कारण स्मृति होती है, तौ सुण ॥ हे रामजी! जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्माजी तौ विदेहमुक्त होता है, बहुरि उह जगत्का कारण कैसे होवै? अरु जो तूं स्मृतिका कारण मानै, तौ स्मृति भी अनुभवविषे होती है, जो स्मृतितें जगत् हुवा तौ भी अनुभवरूप हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पद्मराजाके मंत्री टहलुए सब लोक विदूरथकों जाय प्राप्त हुए, सो कैसे हुए इह वार्त्ता बहुरि कहौ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केवल चेतनसंवित् सबका अपना आप है, जैसे तिस

संवित्के आश्रयतें संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है॥ हे रामजी! जब राजा विदूरथ मृतक होने लगा, तब राजाकी वासना उनविषे वहती थी, अरु मंत्री टहलुए आदिक राजाके अंग हैं, इस कारणतें तैसेही मंत्री टहलुए राजाकों प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणां मणिके अंग हैं, तैसे मंत्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अंग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोउ आपकों देखै, जो मैं इस कुलविषे उपजा हौं, इह मेरा कुल आचार है, मैं राजा हौं, इह मेरे मंत्री हैं, टहलुए हैं, और अनेक पदार्थ हैं, तैसेही मृतकहुआ राजा विदूरथ देखत भया है॥ हे रामजी! जैसी जैसी भावना संवेदनविषे दृढ होती है, तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते हैं, एक अचल पदार्थ होते हैं, जो अचल पदार्थ होता है, तिसका प्रतिबिंब आदर्शविषे भासता है, अरु चल पदार्थ रहता नहीं भासता, तातें उनका प्रतिबिंब नहीं भासता, तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंब चेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होता है सो समुद्रकों शीघ्रही जाय प्राप्त होता है, और नहीं प्राप्त होइ सकते, तैसे जिसकी दृढ वासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावता है ॥ हे रामजी! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं, अरु जिसकी तीव्रता होती है, तिसका जय होता है; जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कोउ उपजता है, केइ नष्ट हो जाते हैं, केइ सदृश होते हैं, केइ विपर्यय होते हैं, तैसे उसकों सदृश मंत्री टहलुए हुए॥ हे रामजी! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती हैं, वास्तवतें कछु नहीं, चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, अरु इह जो जगत् भासता है, सो आकाशहीरूप है, जो जाग्रतरूप होइकरि असत्ही सत्रूपकी नांई भासता है, जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूप हैं, वृक्षही ऐसे रूप होइकरि स्थित है, तैसे अनंतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइकरि भासता है॥ हे रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो ज्ञानीकों अजन्मा पद भासती है, अरु अज्ञानिकों द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भा

सता है, कहूं प्रकाश भासता है, अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अंत, मध्य तें रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे सोमजलतें तरंग भी होते हैं, सो जलही रूप हैं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव है॥इति श्रीयो॰उ॰लीलो॰प्रयो॰नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥४३॥ ॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! अहं त्वं आदिक जो दृश्यभ्रांति है, सो कारणविना परमात्मातें कैसे उदय हुई है? जिस प्रकार मैं समझों तिसी प्रकार मुझकों बहुरि समुझाओ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्मातें सबही हुवा है, अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकरि एकठेही पदार्थ भासि आये हैं, अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थित है॥हे रामजी! इह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनातें रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुवर्णतें इतर भूषण नहीं, अरु जलतें इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मतें इतर जगत् नहीं, ब्रह्मस्वरूपहै॥हे रामजी! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगत्रूप है, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण शब्द अरु अर्थ कल्पित हैं, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवतें कछु नहीं॥हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं; जैसे अवयवीतें भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्मातें अवयवी जेता कछु जगत् है, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकरि तन्मात्रा फुरी है, आत्माविषे इनका उपजना सम हुआ है, पाछे विभागकल्पना हुई है, जो तिनतें भूत हुए हैं, इत्यादिक जगत्रूप कैसा है, सो आत्मातें अन्य नहीं; जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलिकों कल्पता है, सो शिलारूपही है, इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपी चितारेनें कल्पी है, सो चिद्घनरूपही है, इतर कछु नहीं, जैसे जल

विषे तरंग स्थित होते हैं, सो जलरूपही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोउ नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, अरु आत्मा जगत्के शब्द अरु अर्थतें रहित है ॥ हे रामजी! जगत् परमपदतें भिन्न नहीं, अरु परमपद जगत्विना नहीं, केवल चिद्रूप अपने आपविषे स्थित है, अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूप होइकरि भासता है, अरु निस्पंद हुए स्पर्श नहीं भासता, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं, अरु जब संवेदन किंचितरूप होता है, तब जगत्रूप होई भासता है, अरु संवेदनके निस्पंद हुएतें जगत् नहीं भासता, अरु आत्मसत्ता सदा एकरूप है ॥ हे रामजी! जब संवेदन फुरणेतें रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित होवै, तब संकल्परूप जगत् बहुरि भासै सो भी आत्मरूप भासै, जैसे वायुकों स्पंद निस्पंद दोनों रूप अपना आप भासता है, तैसे इसकों भासता है, जैसे वायुविषे स्पंदता वायुरूप स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूपकरि स्थित है, जैसे तेज अणुका प्रकाश मंदिरविषे होता है, तब बाहिर भी प्रकाश प्रगट होता है, तैसे जब केवल संवित्मात्रविषे संवेदन स्थित होता है, तब फुरणेविषे भी संवित्मात्रही भासता है ॥ हे रामजी! जैसे रसतन्मात्राविषे जल स्थित होता है; तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, जैसे गंधतन्मात्राके अंतर संपूर्ण पृथ्वी स्थित है, तैसे किंचनरूप जगत् आत्माविषे स्थित है, सो आत्मसत्ता निराकार चिन्मात्ररूप है, उदय अरु अस्ततें रहित अपने आपविषे स्थित है, प्रपंचभ्रम तिसविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों असत्रूप जगत् भी सत्रूप होइ भासता है ॥ हे रामजी! जैसा जैसा संवेदन चित्तसंवित्विषे फुरता है, तैसा तैसा रूप जगत् होइ भासता है, इह जेते तत्त्व हैं, अरु तन्मात्रा हैं, सो सब चित्तसंवेदनके फुरणेकरि स्थित हुए हैं, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, सोइ होइकरि भासता है, काहेतें जो आत्मा सर्वशक्तिवान्

जगत्किंचन.

है, जिस जिस पदार्थका फुरणा फुरता है, सोइ अनुभवविषे सत्‌रूप होइकरि भासता है; अरु जो कछु पंच ज्ञानेंद्रिय छटा मनका विषय होता है, सो सब असत्‌रूप है, अरु आत्मसत्ता इनतें अतीत है, अरु विश्व भी क्या रूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, जैसे तेज अरु प्रकाश अनन्यरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् अनन्यरूप हैं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां देखता है, जैसे मृत्तिकाके पिंडविषे कुलाल बर्तन देखता है, जैसे भींत उपर चितेरा मूर्ति रंग लिखता है, सो अनन्यरूप हैं, तैसे परमात्माविषे सृष्टि अनन्यरूप है ॥ हे रामजी! जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाका जल अरु तरंग असत् ही सत्‌रूप हो भासता है, तैसे आत्माविषे असत्‌रूप जगत् त्रिलोकी भासती है, जब चित्त संवित्‌विषे संवेदन फुरता है, तब जगत् भासता है, अरु जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता अरु जगत् कछु ब्रह्मतें भिन्न नहीं; जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं; जैसे क्षीर अरु मधुरताविषे भेद नहीं; जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे कछु भेद नहीं; जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं; जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं; तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक स्थित हैं, तैसे निराकार आत्माविषे सृष्टि स्वाभाविकही स्थित है ॥ हे रामजी! इह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किंचन है; जैसा जैसा किंचन होता है, तैसा तैसा होइकरि भासता है, जो किंचनरूप है, अकारण हुए जो पदार्थ अकारक होता है, अरु जिस अधिष्ठानविषे भासता है, तिससों अनन्यरूप होता है, अधिष्ठानतें भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती, तैसे इह जगत् आत्माविषे अनन्यरूप होता है, कछु उपजा नहीं; परंतु संवेदनके फुरणेकरि भासता है, जेता जगत् है, अरु वासना है, तिनका बीज संवेदन है, इसकरि जगत्‌भ्रम है, तातें संवेदनके अभावका पुरुषार्थ करौ, जब संवेदनका अभाव होवैगा, तब जगत्‌भ्रम नष्ट हो जावैगा, अरु वास्तवतें कछु न उपजा है, न कछु नष्ट होता है, सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नांई अपने आप

विषे स्थित है ॥ हे रामजी! चित्तपरमाणुविषे चैत्यताकरिके अनेक सृष्टि भासतिया हैं, तिनों सृष्टिविषे जो परमाणु है, तिनों परमाणुविषे अंतर और सृष्टि स्थित है, तिनकी संख्या कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग अनेक होते हैं; केइ गुप्तरूप होते हैं, केइ प्रगट होते हैं, सो जलकी शक्तिरूप हैं; जैसे जागृत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जीवोंके अंतर स्थित हैं; केइ गुप्त हैं; केइ प्रगटरूप हैं ॥ हे रामजी! जबलग इसका संवेदन द्वैतसाथ मिला हुआ है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं, जब चित्त उपशम होवैगा, तब जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जब कछु भी भोगोंविषे वृत्ति न उपजै तब जानियें जो आत्मपद प्राप्त होवैगा, इह श्रुतिका निश्चय है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं इसका ममत्व दूर होता है, त्यौं त्यौं बंधनोंतें मुक्त होता है; जब अहंभाव जो है जीवत्व भाव तिसका निर्वाण होता है, तब जन्मोंकी जो परंपरा संपदा है, सो भी नष्ट हो जाती है, केवल शुद्धरूप ही होता है, तब तिन पुरुषोंकों स्थावरजंगमरूप जगत् सब आत्मरूप होता है, जैसे समुद्रकों तरंग बुद्बुद सब अपना आपरूप भासता है, तैसे ज्ञानवान्कों सब जगत् आत्मरूप भासता है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो संवेदन फुर्या है, सो आपकों ब्रह्मारूप जानत भया है, तिस ब्रह्मानें आगे भावना करिके संकल्परूप नानाप्रकारका जगत् रचा है, तिसकों असत्यरूप अंतर अनुभव करता भया है, तिसविषे कहूं निमेषविषे अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंविषे निमेषका अनुभव होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगत्किंचनवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चिद् परमाणुविषे जो निमेष होता है, तिसके लाखवे भागविषे जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिनोंविषे सृष्टि फुरतियां हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो जलरूप हैं; तरंग शब्द अरु तिसका अर्थ भ्रमरूप है, तैसेही आत्माविषे भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरतियां हैं; जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी चलती दृष्ट आती है, तैसे आत्माविषे इह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि

दैवशब्दार्थ.

भासती है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे कथाका अर्थ चित्तविषे आय फुरता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, तैसे जगत् असतरूप सत् हो भासता है॥ ॥राम उवाच॥ हे ज्ञानवानोंविषे श्रेष्ठ! जिस पुरुषकों विचारद्वारा सम्यक् ज्ञान हुवा अरु निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिसकों देह अपने साथ कैसे भासता है? अरु देह उसकी कैसे रहती है? अरु देह प्रारब्धकरिके उसका शरीर कैसे रहता है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आदि जो ब्रह्मशक्तिविषे संवेदन फुर्या है, तिसका नाम नीति हुआ है, तिसविषे जो संभावना धारी है, जो इह पदार्थ ऐसे होवैगा अरु इसकरि होवैगा, एता काल रहैगा, सो अनेक कल्पपर्यंत ऐसेही होता है, जेता काल उसनें धारा है, तेता कालका नाम नीति है, महा सत् भी तिसकों कहते हैं; महाचेतना भी तिसकों कहते हैं, महाशक्ति भी तिसकों कहते हैं, महा अदृष्ट महा कृपा भी तिसकों कहते हैं, महा उद्भव भी तिसकों कहते हैं, अर्थ इह जो अनंत ब्रह्मांडोंकी उपजानेहारी है, जैसा फुरणा दृढ हुआ है, तैसा रूप होइकरि स्थित है; जो इह स्थावररूप है, इह जंगमरूप है, इह दैत्य है, इह देवता है, इह नाग है, इह नागिनी है, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत जैसे तिसविषे अध्यास है, तैसेही तिस प्रकार स्थित है, स्वरूपतें ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुवा, सदा अपने आपविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों जगत् अरु नीति भी भिन्न भासती हैं, ज्ञानवान्कों सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है, अज्ञानीकों चलनरूप जगत् भासता है, सो जगत कैसा है, जैसे आकाशविषे वृक्ष भासता है, जैसे शिलाके उदरविषे मूर्ति होती है, सो शिलारूपही होती है, तैसे इह जगत् ब्रह्मविषे है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों सर्ग अरु निमित्त सब ज्ञानरूपही भासता है, जैसे अवयवीके अवयव अपना रूप होता है, तैसे ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपना रूप है॥ हे रामजी! तिस नीतिकों दैव कहते हैं, जो कछु किसीकों प्राप्त होता है, सो तिस दैवकी आज्ञा करिके प्राप्त होता है, काहेतें जो आदि यही निश्चय धरा है, जो इस साधनकरि इह फ

ल इसकों प्राप्त होवैगा, जैसा साधन होवै तैसा फल अवश्य सर्वकों दैवतें प्राप्त होता है, इस कारणतें नीतिकों दैव कहते हैं, दैवकों नीति कहते हैं॥ हे रामजी! इह पुरुष जो कछु पुरुषार्थ करता है, तिसके अनुसार फलकों प्राप्त होता है, इस कारणतें इसका नाम नीति है, तिसहीका नाम पुरुषार्थ है, तुम जो मुझकों दैव अरु पुरुषोंका निर्णय पूछा अरु मैंनें कहा, तिसकी तुम पालना करौ, इसका नाम पुरुषार्थ है, तिसका जो फल तुमकों प्राप्त हुआ, तिसका नाम दैव है ॥ हे रामजी! जो पुरुष ऐसे दैवपरायण हुआ, जो मुझकों दैव भोजन करावैगा, सो करौंगा, अरु मौन धारीके अक्रिय होइ बैठे, तिसकों जो आइ प्राप्त होवै सो भी नीति है, अरु जो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थ करता है, सो भोगोंकों भोगैगा, अरु अनेक शरीरोंकों मोक्षपर्यंत धारैगा, इह भी नीति है ॥ हे रामजी! जो आदि संवितविषे संवेदन फुरिकरि भवितव्यता धरी है, तिसही प्रकार स्थित है, तिसका नाम भी नीति है, तिस नीतिके उल्लंघनकों ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक भी समर्थ नहीं, सब तिनके अनुसार स्थित हैं, तौ और कैसे उल्लंघ सकै? हे रामजी! जो पुरुष पुरुषार्थकों त्याग बैठे हैं, तिनकों फल नहीं प्राप्त होता, इह भी नीति है, अरु जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करता है, तिसकों फल प्राप्त होता है, इह भी नीति है, अरु जो प्रयत्नकों त्यागिकरि निष्क्रिय होइ बैठे हैं, अरु मनकरि विषयोंकी चित्तमें वासना करते हैं, सो निष्फलही रहते हैं, अरु जो पुरुष और कर्तव्यकों त्यागिकरि चित्तकी वृत्तितें शून्य दैवपरायण हो रहे हैं, विषयोंकी चित्तवासना नहीं करते, तिनकों सफलताही होती है, काहेतें जो फुरणेतें रहित होना भी पुरुषार्थ है, इह नीति है, जो अर्थ चिंतवणेवालेकों भी नहीं प्राप्त होता, अरु अयाचककों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! पुरुषार्थ सफल भी सोइ है, जो आत्मबोधके निमित्त होवै, जब ब्रह्मसत्ताकी और तीव्र अभ्यास होता है, तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है, जब परमपद पाया, तब सब जगत् चिदाकाशरूप होइ भासता है, नीति आदिक जो विस्तार कहा है, सो सर्व भ्रमरूप है, ब्रह्मसत्ताही ऐसे होइ भासती है, जैसे पृथ्वीविषे

रससत्ताही तृण, वेली, गुच्छे, फूलरूप होइकरि स्थित है, तैसे नीति आदिक सब जगत् होइकरि ब्रह्मही स्थित है, और वस्तु कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्प० दैवशब्दार्थविचारो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तुझकों भासता है, सो सर्व प्रकार सर्वकाल सर्व औरतें ब्रह्मतत्त्व सर्व औरकरि सर्वात्मा होइकरि स्थित भया है, सो अनंत आत्मा है, जब तिसविषे चित्तशक्ति प्रगट होती है, अर्थ इह जो शुद्ध चेतनमात्रविषे अहंफुरणा होता है, तब आगे जगत् भासता है, कहूं उपजता भासता है, कहूं नष्ट होता भासता है, कहूं हुल्लास भासता है, कहूं चित्त भासता है, कहूं न किंचन भासता है, कहूं प्रगट, कहूं अप्रगट भासता है; नानाप्रकारका जगत् है, जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है, तहां तैसा होइकरि भासता है, काहेतें जो आत्मा सर्वशक्ति सर्वरूप है, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे दृढ होता है, सोइ रूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी! इह जो नानाप्रकारकी शक्तियां कही हैं, सो वास्तव आत्मातें इतर कछु नहीं, बुद्धिवानोंनें समुझावनेके निमित्त नानाप्रकारकी विकल्पजाल कही है, आत्माविषे विकल्पजाल कोउ नहीं, जैसे जलतरंगविषे कछु भेद नहीं, जैसे सुवर्णभूषणोंविषे भेद कछु नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु शक्तिविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी! एक संवित् है, एक संवेदन है, संवित् जो है, सो वास्तव है, अरु संवेदन कल्पना है, जब संवित्‌विषे चिन्मात्र संवेदन फुरता है, तब उह जैसे चेतता जाता है, तैसे आगे होइकरि स्थित होता है, शुद्ध चिन्मात्र संवित्‌विषे अंतर अरु बाहिर कल्पना कोउ नहीं, जब स्वभावतें किंचनरूप संवेदन होता है, तब आगे कछु देखता है, तिस देखणेकरि नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो और तौ कछु नहीं, सर्व ब्रह्मही है ॥ हे रामजी! शक्ति अरु शक्तिमान्‌विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, अरु अवयवीअवयवभेद भी कल्पते हैं, परमार्थतें भेद कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संकल्पजाल आभास होती है, जिस संकल्पकी तीव्रता होती है, सो सत् होवै अथवा असत् होवै, परं

तु तिसहीका भान होता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजावतारो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह जो सर्वगत देव परमात्मा महेश्वर है, सो स्वच्छ अनुभव परमानंदरूप है, आदिअंततें रहित है, तिस शुद्ध चिन्मात्र परमानंदतें प्रथम जीव उपजा नहीं, तिसतें चित्त उपजा, चित्ततें आगे जगत् उपजा है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अनुभव परिणाम करिके जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व सर्वव्यापि द्वैततें रहित स्थित है, तिसविषे तुच्छरूप जीव कैसे सत्यता कों पावता भया है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्म सदाभास है, अर्थ यह जो असत्‌रूप जगत् जिसकरि सत् भासता है, अरु स्वच्छ है, अर्थ यह जो आभासरूपी जगत्‌तें भी रहित है, अरु बृहत, अर्थ यह जो बडा है, सो बडा भी दो प्रकारका है, अविद्याकृत जगत्करि जो बडा है, सो अविद्याकी बडाइ है, मिथ्या है, अरु ब्रह्म बडाइ है सो सर्वात्मकरूप है, सो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तुसों पूर्ण है, अरु अविद्याकृत देशकालवस्तुतें रहित निराकार है, सो ज्ञानीका विषय है, तातें बृहत् है, अरु परम चेतन है, अरु भैरव है, अर्थ यह जो जिसके भयकरि चंद्रमा अरु सूर्य अग्नि वायु जल अपनी मर्यादामें चलते हैं, परमानंद अविनाशी है, सर्व ओरतें पूर्ण सम है, शुद्ध है, अचिंत्य है, अर्थ यह जो वाणीकरि कह्या नहीं जाता, ऐसा परम शांत पद है, क्षोभतें रहित चिन्मात्र है, ऐसी जो आत्मसत्ता ब्रह्म है, तिसका जो स्वभावसंपत् है, तिसका नाम जीव है, अर्थ यह जो शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं ऐसे जो फुरणा है, तिसका नाम जीव है, तिस अनुभवरूपी दर्पणविषे अहंरूपी प्रतिबिंब फुरणेका नाम जीव कहते हैं, सो जीव अपने शांतपदकों त्यागेकी नांई स्थित होता है, सो चिदात्माही फुरणेद्वारा आपकों जीवरूप जानता भया है, जैसे समुद्रही द्रवता करिके तरंगरूप होता है; समुद्रतरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मही जीवरूप है, ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु

जीवविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! चित्तरूपी जो आत्मतत्त्व है, सो अपने स्वभाववशतें माया करिके संवेदनसहित जीवरूप कहते हैं, सो जीव आगे फुरणे करिके बडे विस्तारकों धारता है, जैसे इंधन करिके अग्निके बहुत अणु होते हैं, अरु बडे प्रकाशकों प्राप्त होता है, तैसे जीव फुरणेकरि जगत्‌रूपकों प्राप्त होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो नीलता कछु भिन्न वस्तु नहीं, तैसे अहंभाव करिके ब्रह्मविषे जीवरूप भासता है, अरु अहंकृतिकों अंगीकार करिके कल्पित रूपकी नांई स्थित होता है; जैसे घनकी शून्यता करिके आकाशमें नीलता भासती है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिके देशकालवस्तुके परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं, वास्तवतें चिदाकाशही चिदाकाशविषे स्थित है, जैसे वायु करिके समुद्र तरंगरूप होता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि आत्मसत्ता जीवरूप होती है, सो जीव चैत्योन्मुखत्वताकरिके एती संज्ञाकों पाता है, चित्त कहियें, जीव कहियें, मन बुद्धि अहंकार माया प्रकृतिसहित सब तिसही के नाम हैं, सो जीव संकल्पकरिके पंचभूत तन्मात्राकों चेतता भया, तब तिन पंच तन्मात्राके आकारतें अणुरूप होकरि स्थित भया; तिसतें अनउपजेही उपजेकी नांई स्थित भये, अरु भासने लगे, बहुरि उही चित्त संवेदन सो अणु अंगीकार करिके जगत्‌कों रचता भया, जैसे बीजतें सत् अंकुर वृक्ष होता है, तैसे संवेदन विस्तारकों पावत भया, प्रथम एक अंडरूपी होकरि स्थित भया, तिस अंडकों फोडत भया, तब तिसविषे जगत् भासने लगा, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तैसे जगत् भासने लगा, तिसतें भिन्न भिन्न देह अरु भिन्न भिन्न नाम कल्पे, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालक कल्पता है, तिनकों भिन्न भिन्न नाम रखता है, तैसे स्थावर जंगम आदिक नाम कल्पनाकरि इह पृथ्वी, इह जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं, तिनों पांचों भूतोंकी सृष्टि संकल्पतें उपजत भई ॥ हे रामजी! आदि ब्रह्मतें जो जीव फुरे, तिसका नाम ब्रह्मा है, सो ब्रह्मा आत्माविषे आत्मरूप होइकरि स्थित है, तिसतें आगे क्रम करिके जगत् हुआ है,

जैसे उह चेतता है, तैसा होइकरि स्थित होता है, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिके तरंग होता है, तैसे ब्रह्मविषे चित्त स्वभाव करिके जीव होता है, सो जीव जब प्रमाद करिके अनात्मभावकों धरने लगा तब कर्मोंकरि बंधमान होने लगा, जैसे जल जब दृढ जडताकों अंगीकार करता है, तब बरफरूप होइकरि पथ्थरसमान होता है, तैसे जीव जब अनात्मविषे अभिमान करता है, तब कर्मोंके बंधनमें आता है॥ हे रामजी! कर्मोंका बीज संकल्प है, अरु संकल्प जीवतें फुरता है, अरु जीवत्व भाव इसकों तब होता है, जब शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपतें इसका उत्थान होता है, उत्थान अर्थ यह, जब प्रमाद होता है तब इसकों प्रमाद जीवत्वभाव होता है, जब जीवत्वभाव होता है, तब आगे अनेक संकल्पकल्पना फुरती हैं; तिन संकल्पकल्पनातें कर्म होते हैं; कर्मोंतें जन्ममरण आदिक नानाप्रकारके विकार होते हैं; जैसे बीजतें अंकुर पत्र होते हैं, आगेतें फूल फल टास होते जाते हैं, तैसे संकल्प कर्मोंतें नानाप्रकारके विकार होते हैं, जैसे जैसे कर्म जीव करता है, तिनके अनुसार जन्म मरण अध ऊर्ध्वकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी! कर्म नाम मनके फुरणेका है, फुरणेका नाम चित्त है, अरु फुरणेका नाम कर्म है, फुरणेका नाम दैव है; तिसहीकरि इसकों शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है, सबका आदिकारण ब्रह्म है, तिसतें प्रथम मन उत्पन्न भया है, तिसही मननें संपूर्ण जगत्की रचना करी है, जैसे बीजतें अंकुर होता है, बहुरि पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे ब्रह्मतें मन अरु जगत् उपजा है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजांकुरवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४७॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आदिकारण ब्रह्मतें मन उत्पन्न भया है, सो मन संकल्परूप है, अरु मनकरि संपूर्ण जगत् भया है, अरु मन आत्माविषे मनत्व भाव करिके स्थित है, तिस मननें भावअभावरूपी जगत् कल्प्या है, जैसे गंधर्वकी इच्छा करिके गंधर्व नगर होता है, तैसे मनकरि जगत् होता है॥ हे रामजी! आत्माविषे द्वैत भेदकी कल्पना कछु नहीं, इस मन करिके ऐसी संज्ञा भई है, ब्रह्म अरु जीव अरु मन अरु माया कर्म जगत् द्रष्टा सब भेद मनकरि हुए हैं, आ

त्माविषे भेद कोउ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उछलते हैं, अरु बडे विस्तारकों धारते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रविषे संवेदन करिके नानाप्रकारका जगत् विस्तारकों पावता है, सो असत्‌रूपी जगत् है, काहेतें जो स्थिर नहीं रहता, सदा चलरूप है, अरु जो अधिष्ठान स्वरूपभावकरि देखियें, तौ सत्‌रूप है, तातें द्वैत कछु न हुआ, जैसे स्वप्नका जगत् सत्‌असत्‌रूप चित्त करिके भासता है, तैसे सत्‌असत्‌रूप इह जगत् भासता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, चित्तके भ्रम करिके भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके वृक्ष औषधि भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, तैसे इह जगत् भ्रममात्र है ॥ हे रामजी! इह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, मनके भ्रम करिके सत् होइ भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष असम्यक् ज्ञान करिके भासता है, अरु चोर जानके भयकों प्राप्त होता है, तैसे जीव अनित्यभावकों प्राप्त होइकरि शोककों करता है, जैसे बालक भ्रम करिके परछायाविषे भूत कल्पता है; अरु भयकों प्राप्त होता है, तैसे इह पुरुष चित्तके संयोगकरि द्वैतकों कल्पिके भयकों प्राप्त होत है, जैसे विचार कियेतें बैतालका भय नष्ट होता है, तैसे आत्मज्ञान करिके भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी! आत्मा अनादि दिव्यस्वरूप है, अरु अंशांशीभावतें रहित है, शुद्ध चैतन्यरूप है, जब उह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होता है, तब चित्त, अर्थ यह जो चेतनताका लक्षण हैं तिसतें आगे जीवकल्पना होती है, तिस जीवविषे अहंभाव होता है, जो मैं हौं; जब अहंभाव हुआ, तब तिसतें चित्त फुरता है, चित्ततें इंद्रियां होतियां हैं, तिन इंद्रियांतें देहभाव होता है, तिस देहभ्रमकरि मलिन हुआ नरक स्वर्ग बंध मोक्षकी कल्पना होती है, जैसे बीजतें अंकुर पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे अहंभावतें जगत्‌विस्तार होता है ॥ हे रामजी! जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे ब्रह्म अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु जीवविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु देहविषे कछु भेद नहीं, जैसे देहकर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे जीव अरु ईश्वरविषे भेद नहीं, तैसे ईश्वर अरु आत्माविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी! सर्व ब्रह्मस्वरूप है,

द्वैत कछु नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यता करिके एक सो अनेक रूप हो भासता है, जैसे एक दीपतें अनेक दीप होते हैं, तैसे एक परब्रह्म अनेकरूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! इह असत्‌रूपी जगत् जिसविषे आभास है, तिस आत्मतत्त्वका जब पदार्थज्ञान होता है, तब चित्तविषे जो अहंभाव है, सो नष्ट हो जाता है, तिस अहंभावके नष्ट हुएतें सब शोक नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! इह पुरुष चित्तरूपी है, अरु चित्तविषे जगत् हुआ है, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब जगत्भ्रम भी नष्ट हो जावैगा, जैसे अपने चरणविषे चर्मकी जूती पहिरते हैं, तब सर्व पृथ्वी चर्मकरि लपेटी भासती है, अरु ताप कंटक मिट जाते हैं, तैसे जब चित्तकूं शांति प्राप्त होती है, तब सर्व जगत् शांतरूप होता है, जैसे केलेका स्तंभ होता है, तिसविषे पत्रोंतें अन्य सार कछु नहीं निकसता, तैसे सब जगत् भ्रममात्र है, और सार कछु नहीं निकसता ॥ हे रामजी ! एता भ्रम चित्त करिके होता है, जो बाल अवस्थामें क्रीडा करता फिरता है, बहुरि यौवन अवस्थाकों धारता है, परंतु विषयोंकों सेवता है, वृद्ध अवस्थामें चिंताविषे जर्जरीभाव होता है, बहुरि मृत्युकों प्राप्त होता है, कर्मोंके अनुसार नरकस्वर्गकों चल्या जाता है ॥ हे रामजी ! इह सब मनका नृत्य है, मनही पडा भ्रमता है, जैसे नेत्र दूषण करिके आकाशविषे चंद्रमा भासता है; तैसे अज्ञान करिके जगत्भ्रम भासता है; जैसे मद्यपान करिके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे चित्तके संयोगभ्रम करिके जगत्द्वैत भासता है, जैसे बालक लीला करिके भ्रमता है, तब सब जगत्कों चक्रकी नांई भ्रमता देखता है, तैसे चित्तके भ्रम करिके इह जीव जगत्भ्रमकों देखता है ॥ हे रामजी ! जब चित्तद्वैतकों नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिट जाता है, जबलग चित्तसत्ता फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ शांतिकों नहीं प्राप्त होता, अरु जब घन चेतनताकों प्राप्त होता है, तब शांतिकों प्राप्त होता है, अरु जगत्

भ्रम मिटि जाता है, जैसे पपैया बकता है, और शांतिवान् नहीं होता; अरु जब घन वर्षाकों प्राप्त होता है, तब बकणेतें शांत होता है, तैसे जब इह महाचेतन घनताकों प्राप्त होता है, तब शांतिवान् हो जाता है, व्यवहारविषे होवै अथवा तूष्णीं हो रहै, सदा शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी! जब चित्तकी चेतनता फुरती है, तब जगत्भ्रम नानाप्रकारके विकार देखता है, अरु भ्रमकरिके ऐसे देखता है, जो मैं उपजा हौं, अब बडा भया हौं, मरौंगा, इत्यादिक विकार असत्रूप अपनेविषे जानता है, अरु स्वरूपतें चेतन ब्रह्मतें अनन्य है, जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु चेतनताविषे कछु भेद नहीं, जब वायु स्पंदरूप होता है, तब स्पर्श करिके भासता है, तैसे चेतनता मिटती नहीं, अरु ब्रह्मकी चेतनता होवै, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है; केवल ब्रह्मसत्ताही पडी भासती है, जैसे जेवरीके अज्ञान करिके सर्पभ्रम होता है, अरु जेवरीके यथार्थ जाननेतें सर्पभ्रम मिटि जाता है, तब जेवरी पडी भासती है, तैसे ब्रह्मके अज्ञानतें जगत् भ्रमकरिके भासता है, जब चित्तसों दृढ चैत्यता भासती है, तब भ्रमका पदार्थज्ञान होता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता भासती है॥हे रामजी! दृश्यरूपी इसकों व्याधिरोग लगा है, तिस रोगका नाशकर्ता संवित् मात्र है; जबलग चित्त बहिर्मुख होइकरि दृश्यकों चेतता है, तबलग शांत नहीं होता; अरु जब चित्त सर्व वासनाकों त्यागिकरि अंतर्मुख अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा, तब तिसही कालमें मुक्तिरूप शांत होवैगा, इसविषे संशय कछु नहीं, जैसे जेवरीके दूरसों देखणेकरि सर्प भासता है, अरु जब निकट होइकरि देखै है, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, जेवरीही भासती है, तैसे आत्माका विवर्तरूप जगत् है, जब बहिर्मुख होइके देखता है, तब जगत्ही भासता है, जब अंतर्मुख होइके देखता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है; आत्माही भासता है ॥ हे रामजी! जिस जिसविषे अभिलाषा होवै; तहां तिसकों त्यागि दे, जैसे निश्चयकरि मुक्ति प्राप्त होती है, सो त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, महात्मा जो पुरुष हैं, सो प्राणोंकों तृणकी नांई त्यागि देते हैं, अरु

बडे दुःखकों सहि रहते हैं, तुझकों अभिलाषा त्यागणेविषे क्या कठिनता है ॥ हे रामजी! आत्माके आगे अभिलाषाही आवरण है, अभिलाषाके होते आत्मा नहीं भासता है, जैसे बादलोंके आवरण करिके सूर्य नहीं भासता, जब बादलोंका आवरण नाश होता है तब सूर्य भासता है, तैसे अभिलाषाके निवृत्त हुए आत्मा भासता है, तातें जो कछु अभिलाषा उठै, तिसकों त्याग अरु निरभिलाषा होइकरि आत्मपदविषे स्थित होइ, अरु प्रकृत आचार जो कछु देह इंद्रियोंकरि ग्रहण करना, अरु जो कछु त्याग करना होवै, तिसकों त्याग करौ, अरु देहविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि न होवै ॥ हे रामजी! जो तूं संपूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागैगा, तब तुझकों प्रत्यक्ष आत्मपद भासैगा, जैसे हाथविषे बिल्लीफल प्रत्यक्ष होता है, जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासता है, तैसे अभिलाषाके त्यागतें आत्मपद तुझकों प्रत्यक्ष भासैगा, अरु सब जगत् भी आत्मरूप भासैगा, जैसे महाप्रलयविषे सब जगत् जलमय भासता है, और कछु दृष्टही नहीं आता, तैसे आत्मपदतें इतर तुझकों कछु न भासैगा, आत्मतत्त्वकों न जानना, इसीका नाम बंधन है, अरु आत्मपदका जानना इसीका नाम मोक्ष है, और मोक्ष कोउ नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे संश्रितोपशमयोगो नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ॥४९॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मन क्योंकरि उत्पन्न हुआ है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्म अनंतशक्ति है, तिसविषे अनेक प्रकारका किंचन होता है, जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है, जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतनविषे फुरती है, जो अहं अस्मि, तब तिस फुरनेकरि जीव कहाता है; सो चित्तशक्ति संकल्पका कारण भासती है, जब दृश्यकी उर फुरती है, तब जगत् दृश्य होइकरि भासता है, बहुरि नानाप्रकारके कार्य कारण होइ भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनिविषे श्रेष्ठ! जो इस प्रकार है, तौ देव किसका नाम है? अरु कर्म क्या है? अरु कारण किसकों कहते हैं? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! फुरणा अफुरणा दोनों चिन्मात्रसत्ताका स्वभाव है, जैसे फुर

णा अफुरणा दोनों वायुका स्वभाव है, परंतु जब फुरता है, तब आकाशविषे स्पर्श होइकरि भासता है; जब चलणेतें रहित होता है, तब शांत हो जाता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यताका लक्षण जो है, अहं अस्मि, अर्थ यह जो मैं हों, तब तिसका नाम स्पंदबुद्धीश्वर कहते हैं, तिसकरि जगत् दृश्यरूप हो भासता है, तिस जगत् दृश्यतें रहित होना तिसकों निस्पंद कहते हैं, चित्तके फुरणेकरि नानाप्रकार जगत् होइ भासता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत्भ्रम मिटि जाता है, नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! जीव अरु कर्म अरु कारण इह सब चित्तस्पंदके नाम हैं, अरु चित्तस्पंदतें अनुभव भिन्न नहीं, अरु अनुभवही चित्तस्पंद हुएकी नांई भासता है, जीव कर्म कारणका बीजरूप चित्तस्पंद है, चित्तस्पंद करिके आगे दृश्य होकरि भासता है, बहुरि चिदाभासद्वारा देहविषे अहंप्रतीति होती है, तिस देहविषे स्थित होइकरि चित्तसंवेदन दृश्यकी उर संसरता है; सो संसरना दो प्रकारका है, एक बडा है, एक अल्प है; तिनकों संसरणेविषे अनेक जन्म व्यतीत होते हैं, अरु किनोंकों एक जन्म होता है, आदिही फुरकर स्वरूपविषे स्थित है; तिनकों प्रथम जन्म होता है; अरु जो आदि उपजिकरि प्रमादि हुए हैं; सो फुरिकरि दृश्यकी ओर चले जाते हैं; तिसकों बहुतेरे जन्म होते हैं; चित्तके फिरणेकरि ऐसा अनुभव करता है, पुण्यक्रिया करिके स्वर्गकों जाते हैं, पापक्रिया करि नरककों जाते हैं, इस प्रकार दृश्यभ्रमकों देखते हैं; अज्ञान करिके बंधनविषे रहते हैं; जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब मोक्षका अनुभव करता है, सो बडा संसरना है; अरु जो एकही जन्म पाइकरि आत्माकी उर आते हैं, सो अल्प संसरना है ॥ हे रामजी! जैसे स्वर्णही भूषणरूपकों धारता है, तैसे संवेदनही काष्ठ लोष्ट आदिकरूप होइके भासता है; इस चित्तके संयोगकरि अज अविनाशी पुरुषकों नानाप्रकारके देह प्राप्त होते हैं, अरु जानता है जो मैं उपजा हों, अब जीता हों, बहुरि मर जाउंगा, इत्यादिक भ्रमकों देखता है; जैसे नौकाविषे बैठे हुए भ्रमकरि तटके वृक्ष भ्रमते दृष्ट आते हैं, तैसे भ्रम करिके अपनेविषे जन्मादि

अवस्था भासती है, आत्माके अज्ञानकरिके जीवकों अहं आदि कल्पना फुरती है; जैसे मथुराके राजा लवनकों स्वप्नमें चंडालका भ्रम भया था, तैसे चित्तके फुरणे करिके इह जीव जगत्भ्रमकों देखते हैं ॥ हे रामजी! इह सब जगत् मनके भ्रमकरिके पडा भासता है, शिव जो परम तत्त्व है, सो चिन्मात्र है, तिसविषे जब चैत्योन्मुखत्व होता है, जो मैं हौं, तिसका नाम जीव है, जैसे सोमजलविषे कछुक द्रवता होती है, तिसविषे चक्र फुरते हैं, बहुरि तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मरूपी सोमजल है, तिसविषे जीवरूपी चक्र फुरते हैं, बहुरि चित्तरूपी तरंग उदय होते हैं; बहुरि सृष्टिरूपी बुद्बुदे होते हैं, उपजिकरि लीन होते हैं॥ हे रामजी! चेतन फुरणे द्वारा जीवकी नांई भासता है; जैसे समुद्रही द्रवता करिके तरंगरूप होइ भासता है; चित्त चैत्यके संयोगकरि जीव कहाता है, तिस जीवतें जब संकल्पका फुरणा होता है; तब मन कहाता है; अरु संकल्प निश्चयरूप होता है, तब बुद्धि होकरि स्थित होता है; अरु जब अहंभाव होता है, तब अहं प्रतिकार कहाता है; तिस अहंभावकों पाइकरि तन्मात्राकी कल्पना होती है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इह सूक्ष्मभूत होते हैं, तिनके आगे जगत् होता है ॥ हे रामजी! असत्रूपी चित्तके संसरणे करिके जगत्रूप होइ भासता है, जैसे नेत्रदूषण करिके आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, जैसे भ्रममात्र गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नभ्रमकरि स्वप्नजगत् भासता है, तैसे चित्तके संसरणे करिके जगत्भ्रम भासता है॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मा नित्य तृप्त शांतरूप है, अरु सम अपणे आपहीविषे स्थित है, तिसविषे चित्त संवेदननें जगत्कों रच्या है, तिस जगत्कों भ्रम करिके सत्यकी नांई देखता है, जैसे स्वप्नसृष्टिकों भ्रमकरि देखता है, तैसे इह जगत् फुरणेकरि सत्य भासता है ॥ हे रामजी! मनके संसरणेका नाम जाग्रत् है, अरु अहंकारका नाम स्वप्न है, अरु चित्त जो सजातीयरूप चेतणेवाला है, तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु चिन्मात्रका नाम तुरीय पद है, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अत्यंत परिणाम होवै, तिसका नाम तुर्यातीत पद है, तिसविषे स्थित हुआ बहुरि शोकवान् क

दाचित् नहीं होता, तिस ब्रह्मसत्तातें सब उदय होते हैं; तिसहीविषे सब लीन होते हैं; अरु वास्तवतें न कोउ उपजा है; न कोउ लीन होता है; चित्तके फुरणेकरि सब भ्रम भासता है ॥ जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि इह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे वृक्षके बढनेकों आकाश ठौर देता है, जेती कछु बीजकी सत्ता होवै तेता आकाशविषे बढता जावै तैसे सबकों आत्मा ठौर देता है, अकर्त्तारूप भी संवेदन करिके कर्त्ता भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे लोहा निर्मल किया हुआ आरसीकी नांई प्रतिबिंबकों ग्रहण करता है, तैसे आत्माविषे संवेदन करिके जगत्का प्रतिबिंब होता है, अरु वास्तवतें जगत् भी कछु दूसरी वस्तु नहीं; जैसे एक बीजही पत्र फूल फल टास होइ भासता है, तैसे आत्मा संवेदनकरिके नानारूप जगत् होइ भासता है; जैसे पत्र फूल वृक्षतें भिन्न नहीं, तैसे अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्मातें भिन्न नहीं, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसकों अखंड सत्ता भासती है, अरु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न नामरूप सत्ता भासती है, जैसे समुद्रही तरंग बुद्बुद होइकरि भासता है, जैसे बीजही पत्र फूल फल टास होइकरि भासता है, जो मूर्ख देखता है, तौ तिनके नामरूप सत् मानता है, अरु ज्ञानवान् देखिके एकरूपही जानता है, तैसे जो मूर्ख अज्ञानी हैं, सो भिन्न भिन्न नामरूप जगत्कों जानते हैं, अरु ज्ञानवान्कों एक ब्रह्मसत्ता अनंत भासती है, औ जगत्भ्रम उनकों कोउ नहीं भासता है ॥ राम उवाच ॥ बडा आश्चर्य, बडा आश्चर्य है ! जो असत्रूपी जगत् सत् होइकरि भासता है, अरु बडे विस्तारकरि स्पष्ट भासता है, अरु इह जगत् ब्रह्मका आभास है, अनेक तन्मात्रा तिसके जल अरु बुंदोंकी नांई हैं, अरु अविद्या करिके फुरतियां हैं, ऐसे भी मैं श्रवण किया है ॥ हे मुनीश्वर ! इह कैसे फुरणा बहिर्मुख होती है, अरु अंतर्मुख कैसे होती है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दृश्यका अत्यंत अभाव है, अनहोते दृश्यके फुरणेकरि अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ताविषे फुरणेकरि जीवत्व हुआ है, सो जीवत्व असत् है,

अरु सत्की नांई होता है, अरु जीव ब्रह्मके साथ अभिन्न है, फुरणे करिके भिन्नकी नांई स्थित होता है, तिस जीवविषे संकल्पकलना होती है, तब मनरूप होके स्थित होता है, अरु स्मरण करिके चित्त होता है, निश्चय करिके बुद्धि होती है, अहंभाव करिके अहंकार होता है, बहुरि काकतालिकी नांई चिद्अणुविषे तन्मात्रा फुर आती है; जब शब्द श्रवणकी इच्छा भई तब श्रवणइंद्रिय प्रगट भई, जब देखनेकी इच्छा भई तब नेत्र इंद्रिय प्रगट भई, गंध लेणेकी इच्छा करिके नासिका इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा भई तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, जब रस लेनेकी इच्छा भई तब रसना इंद्रिय प्रगट भई, इस प्रकार पांचों इंद्रियां प्रगट भयां, भावना करिके सत्ही असत्की नांई भासणे लागियां हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार आदि जीव हुए हैं, तिसकी भावना करिके अंतवाहक शरीर होय आये हैं, चलते भासते हैं, तौ भी अचलरूप हैं, तातें जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं ॥ प्रमाता भी ब्रह्म है, प्रमाण भी ब्रह्म है, प्रमेय भी ब्रह्म है, अरु संवेदन ब्रह्म करिके अनेकरूप नानाप्रकार भासते हैं, जैसा जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है, जब दृश्यकों चेतता है, तब नानाप्रकारका दृश्य भासता है, अरु जब अंतर्मुख ब्रह्मकों चेतता है, तब ब्रह्मरूप होइकरि भासता है ॥ हे रामजी! दृश्य कछु उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ दृश्यका असंभव हुआ तब बंधन किसकों कहियें? अरु मोक्ष किसकों कहियें? विचार किसका करियें? सर्व कल्पनाका अभाव है, इह जो तेरा प्रश्न है, तिसका उत्तर सिद्धांतकालविषे होवैगा, इहां नहीं बनैगा, जैसे कमलफूलोंकी माला जो होती है सो अपने कालविषे बनती है, समयविना शोभा नहीं देती, तैसे तेरे प्रश्न सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, समयविना सार्थ शब्द भी निरर्थक होता है, इस कारणतें कहियें जो सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, सिद्धांतकाल विना इह प्रश्न शोभा नहीं पावता ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनका फल भी समय पायके होता

है, समयविना नहीं होता, अब पूर्व प्रसंग सुण ॥ हे रामजी ! ब्रह्मविषे चैत्योन्मुखत्व करिके उह आदि जीव आपकों पिता माता जानत भया, जैसे स्वप्नविषे आपकों कोउ देखै तैसे ब्रह्माजी आपकों जानता भया, सो ब्रह्मा प्रथम ओंशब्दकों उच्चारता भया, तिस शब्द तन्मात्रातें चारों वेद देखता भया, तिसतें अनंतर मनोराज्य करिके सृष्टिकों रचता भया, तब असत्‌रूप सृष्टि भावना करिके सत्य होई भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे सर्प भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासी आवता है, तैसे असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी ॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्तातें जैसे ब्रह्मा आदिका उपजना भया है, तैसे और जीवों कीट आदिका उपजना भया है, जगत्‌का कारण संवेदन है, संवेदन भ्रमकरिके जीवोंकों जगत् भासता है, तिनकों भौतिक शरीरविषे जो अहंप्रतीति भई है, तिसकरि अपने निश्चयके अनुसार शक्ति भई है, ब्रह्माविषे ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय भया है, चेंटीविषे चेंटीकी शक्तिका निश्चय भया है ॥ हे रामजी! जैसी जैसी वासना संवित्‌विषे होती है, तिसके अनुसारही अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ है, तिसविषे जो ज्ञानरूप सत्ता है, सो पुरुष है, तिसविषे जो फुरणा है, सो कर्म है, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे भासता है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ताविषे जो अहं हुआ है, तिसकानाम चित्त है; तिसतें आगे जगत् रचा है, सो भी अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें नष्ट हो जाता है, जैसे अविचार करिके अपने परछायेविषे भूत पिशाच कल्पता है, तिसतें भय उत्पन्न होता है, विचार कियेतें पिशाच अरु भय दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी! तैसे आत्मविचारतें चित्त अरु जगत् दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थितहै, तिसविषे चित्त कल्पना कोउ नहीं अरु प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय भी ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, तौ द्वैतकी कल्पना कैसे होवै? जैसे शशेके श्रृंग असत् हैं, तैसे आत्मातें द्वैतकल्पना असत्य है ॥ हे रामजी! इह ब्रह्मांड भावनामात्र है, जिसकों सत्य भासता है, तिसकों बंधनका कारण है, जैसे घुराण अपना गृह ब

नाती है, सो अपने बंधका कारण होता है, तिसविषे आप फसी मरती है, तैसे जगत्कों सत्य मानते हैं; तिसकों अपना माननाही बंधनकर्ता है, तिसकरि जन्ममरणकों देखता है, अरु जिसकों जगत्का असत्यनिश्चय हुआ है, तिसकों बंधन नहीं होता, उसकों उल्लास है, अरु हे रामजी ! अनुभवसत्ता सबकी अपनी आप है, तिसविषे जैसा जैसा निश्चय किया तिसकों अपने अनुभवके अनुसार पदार्थ भासते हैं, कोउ निमेषविषे कल्पका अनुभव करते हैं; अरु वास्तवतें जगत् उपजाही नहीं, जगत्का उपजना भी मिथ्या है, बढना भी मिथ्या है, रस भी मिथ्या है, रस लेनेवाला भी मिथ्या है, शुद्ध ब्रह्म सर्वगत नित्य अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है; परंतु अज्ञान करिके शुद्ध भी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है, ब्रह्म भी अब्रह्म भासता है, नित्य भी अनित्य भासता है; अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है ॥ हे रामजी! अज्ञानकरि ऐसा भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद मूर्ख मानते हैं, परंतु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे सुवर्ण अरु भूषणोंविषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मूर्ख देखते हैं; तैसे ब्रह्मविषे नानात्व मूर्ख देखते हैं, ज्ञानीकों सब चिदाकाश है ॥ हे रामजी ! जब आत्मसत्ताविषे अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यता होती है, तब कल्पना उत्पन्न होती है, सो कल्पना मनरूप होइके स्थित होती है; तिसतें अनंतर अहंभाव होता है; बहुरि तन्मात्राकी कल्पना होती है; बहुरि शब्द अर्थकी कल्पना होती है, इसी प्रकार चिद्सत्ताविषे जैसी जैसी चैत्यता फुरती है; तैसा तैसा रूप भासने लगता है, सत् असत् पदार्थ वासनाके वशतें फुरि आते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है; सो अनुभवरूपही होती है, तैसे इह जगत् फुरि आया है, सो अनुभवरूप है, तातें सृष्टिविषे भी चिन्मात्र है, अरु चिन्मात्रहीविषे सृष्टि है, सर्वकी सत्तारूपी अंतरबाह्य ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, सर्वपद चिन्मात्रहीविषे धारे हैं, नित्य उपशांतरूप है, सम सत् जगत्की सत्ता तिसहीकरि होती है, सो एकही सम है, अरु तुरीया अतीत पद है, नितही स्थित है ॥ इति श्री

योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रसंग उपर एक पुरातन इतिहास है, तिसविषे महाप्रश्नोंका समूह है, सो श्रवण कर; एक महा श्याम काजलके पर्वतकी नांई कर्कटी नाम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरउपर होती भई, विषूचिका भी तिसका नाम हुआ, अथिर विजलीके नांई तिसके नेत्र, अरु अग्निकी नांई बडी जिव्हा तिसकी चमत्कार करै, बडे नख अरु उंचा शरीर जिसका, जो भोजन करि तृप्त कदाचित् न होवै, जैसे वडवाग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे तृप्ति न होवै, तब उसके मनविषे उपजा जो जंबुद्वीपके संपूर्ण जीवोंकों भोजन करौं तब तृप्त होउं, अन्यथा तृप्ति नहीं होती, अरु आपदा उद्यम कियेतें दूर होती है, तातें उद्यम करौं, जो अखंड चित्त होइकरि तप करौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके एकांत हिमालय पर्वतकी कंदराविषे एक टंग करि स्थित भई, दोनों भुजा ऊर्ध्वकों धारी, अरु नेत्र आकाशकी ओर किये, मानौ मेघकों पकडती है, शरीर अरु प्राण स्थित करत भई, मूर्तिकी नांई हो गई, शीत अरु उष्णके क्षोभतें रहित भई, पवनकरि शरीर जर्जरीभाव हुआ, जब इस प्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत भये, दारुण तप किया, तब ब्रह्माजी आये, तब राक्षसीनें देखके मनकरि नमस्कार किया, अरु मनविषे विचार किया जो मेरे वरके निमित्त आये हैं, तब ब्रह्माजीनें आय कर कहा ॥ हे पुत्रि, तुझनें बडा तप किया है, ऊठ खडी होहु, जो कछु चाहत है सो वर माग ॥ कर्कट्युवाच ॥ हे भगवन् ! मैं लोहेकी नांई वज्रसूचिका होउं, जो जीवोंके हृदयविषे प्रवेश करि जाउं ॥ हे रामजी ! जब ऐसे मूर्ख राक्षसीनें कहा, तब ब्रह्माजीनें कहा, ऐसेही होवै, तेरा नाम भी प्रसिद्ध विषूचिका होवैगा, हे राक्षसी, जो दुराचारी जीव होवें, तिनके हृदयविषे तूं प्राण वायुके मार्गकरि जाय प्रवेश करैगी; अरु जो गुणवान् तेरेकों निवृत्त करणेके निमित्त ओं मंत्रकों पढेंगे, जो हिमालयके उत्तरशिखरविषे कर्कटी नाम राक्षसी विषूचिका है, सो दूर होवै, अरु दुःखी चंद्रमाके मंडलविषे चितवै, जो अमृतके कुंडविषे बैठा हों, अरु राक्षसी हिमालयके शिखरकों

गई, ऐसे चितवन करै, इस मंत्रकों पढै, शुचि पवित्र होकरि, तब तुमनें तिसकों त्याग जाना, इह मंत्र हैं, तिनविषे तूं प्रवेश न करि शकैगी ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहिके आकाशकों उडे, तब इंद्रके अरु सिद्धोंके मार्ग साथ गये, अरु उह मंत्र ब्रह्माजीनें कर्कटीकों कहा था, सो सिद्धोनें श्रवण कीया था, तिनोंनें तिस मंत्रकों प्रसिद्ध कीया, तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे संकल्पका पहाड संकल्पके क्षीण हुएतें क्षीण हो जाता है, तैसे क्रम करिके प्रथम जो मेघवत् आकार था, सो घटिकरि वृक्षवत् हो गया, फेर पुरुष रूप, फेर हस्तमात्र, फेर प्रादेशमात्र, फेर लोहेकी सूईकी नांई सूक्ष्म हो गई, जैसे संकल्पका तंतु होता है, तैसे हो गई ॥ हे रामजी ! ऐसे रूपकों कर्कटी धारती भई, तिसकों देखि मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नांई शरीरकों त्यागते हैं, अरु जो पुरुष परस्परकों विचारते हैं, सो पाछेतें कष्ट नहीं पातें, जो पूर्वापर विचारतें रहित हैं, सो पाछे कष्ट पावते हैं, अनर्थ होइकरि औरोंकों कष्ट देते हैं, एक पदार्थकों भला जानिके तिसके निमित्त यत्न करते हैं, न धर्मकी ओर देखते हैं, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीनें भोजनके निमित्त बडे गंभीर शरीरकों त्यागिकरि तुच्छ शरीरका अंगीकार कीया, सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया, सूक्ष्म शरीर जाकों इंद्रियां ग्रहण न कर शकें, तैसे शरीरसें कहूं विषूचिका प्रवेश करै, कहूं पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायुसाथ प्रवेश करिके दुःख देवै, प्राणोंकों विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टकों पावैं, रक्त आदिक जो रस हैं, तिनका पान करै, एक बूंदकरि उदर पूर्ण हो जावै; परंतु तृष्णा निवृत्त न होवै, अरु शरीरतें बाह्य निकसै, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकरि गिरतविषे गिरै, चिकडविषे गिरै, चरनोंके तले आवै, देशोंविषे रहै, घास तृणोंविषे रहै, जो नीच पापी जीव हैं, तिनकों कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवैं, तिनकों कष्ट देनेकों समर्थ न होवै, जो मंत्र पढै, तिसतें निवृत्त हो जावै, जो आप किसी छिद्रविषे गिरै, तब जानै जो बडे कूपविषे गिरी हों ॥ हे रामजी ! मूर्खता करिके ए

ते कष्टकों पाती भई ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकाल का समय हुआ, सब सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गई, विचारसंयुक्त रात्रिकों व्यतीत करिके सूर्य की किरणां जब उदय भइयां, तब बहुरि आयके बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार प्राणियोंके मारनेविषे केतेक वर्ष उसकों व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया, जो बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, इह विषूचिका शरीर मुझकों कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खता करिके इह वर ब्रह्माजीसों मागा था, मूर्खता बडे दुःखकों प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नांई मेरा शरीर था, जो सूर्यादिककों मैं आच्छाद लेती थी, मंदराचल पर्वतकी नांई मेरा उदर कहां गया, वडवाग्निकी नांई मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोउ अभागी पुरुष चिंतामणिकों त्यागि देवै, अरु काचकों अंगीकार करै, तैसे मैंनें बडे शरीरकों त्यागिके तुच्छ शरीरका अंगीकार कीया, कैसा तुच्छ है, जो एक बुंदकरि भी तृप्त हो जाता है; परंतु तृष्णा पूरी होत नहीं, उस शरीरसाथ मैं निर्भय विचरती थी, इह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दबी जाता है, अब मैं बडे कष्टकों पाइ हौं, अब मैं मृतक होउं, तब छूटौं, परंतु माग्या मृत्यु भी हाथ नहीं आता, तातें मैं बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, उह कवन पदार्थ है, जो उद्यम कीयेतें हाथ न आवै ॥ हे रामजी! इस प्रकार पूर्वके शरीरके निमित्त तप करनेकों समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरंजन स्थानविषे एक टंगके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्वकों करिके तप करने लगी ॥ हे रामजी! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल मांस जलके कणके राखै, परंतु उह अंतर ग्रहण न करै, मुखकों मुंदि लेवै, पवन देखिके आश्चर्यमान होवै, जो मैं सुमेरु आदिककों भी चलायमान कीया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता, मेघकी वर्षा करि चिकडविषे दब गई, परंतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकरि भी चलायमान नहीं भई ॥ हे राम

जी! इस प्रकार सहस्र वर्ष उसकों व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्य करिके उसका नाम चित्त निर्मल भया, तब सब संकल्पके त्यागतें तिसकों परम पदकी प्राप्ति भई, अरु बडे ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, परब्रह्मका तिसकों साक्षात्कार हुआ, तिसकरि परम पावनरूप भई, तब चित्तसूची होत भई, अर्थ यह जो चेतन विषे उसका एकत्वभाव हुआ, तिसके तप करि सप्त लोक तपायमान हुए, तब इंद्रनें नारदजीसों प्रश्न कीया, जो ऐसा तप किसनें कीया है, जिसके तपकरि लोक जलने लगे हैं, तब नारदनें कहा, हे इंद्र! सात सहस्र वर्ष कर्कटी नाम राक्षसीनें बडा दारुण तप कीया है, तिसकरि सूचिका भई थी, तिसकरि बहुत कष्ट पाया, अरु लोकोंकों कष्ट दिया; जैसे विराट आत्मानें सबविषे प्रवेश कीया है, जैसे चित्तशक्तिनें सबविषे प्रवेश कीया है, तैसे सब देहविषे प्रवेश कीया है, परंतु जहां मंत्रजाप होवै, तातें निवृत्त हो जावै, अरु जहां मंत्रजाप न होवै तिनके अंतर प्रवेश करिके रक्त मांस भोजन करै, परंतु तृप्त न होवै, मनविषे तृष्णा रहै, सूक्ष्म शरीर करी धूड विषे दबी जावै, बहुत कष्टकों पाइके विचार कीया, जो उद्यम करि सब कछु प्राप्त होता है, तातें पूर्वके शरीरके निमित्त बहुरि एकांत स्थानविषे तप जाइ करों, तब एक गीधपक्षी उहां आन बैठा कछु भोजन करने लगा, तिसकी चंचूके मार्गसों विषूचिका अंतर चली गई, तब उह पक्षी कष्ट पाइके उडा, उह विषूचिका उसकी पुर्यष्टकाके साथ मिलिके उसकों प्रेरिके हिमालय पर्वतकी ओर ले चली; जैसे वायु मेघकों ले जाता है, तैसे हिमालय पर्वतके वनमें ले गई, उहां इस गीधनें छर्द करि डारी; जैसे योगीश्वर संवेदनकों त्यागिके निर्विकल्पपद विषे जाता है, तैसे छर्दकों डारिकरि पक्षी उड गया; जैसे पेंडोई बिगार पोटकों त्यागिकरि सुखी होता है, तैसे पक्षी छर्दकों त्यागिकरि सुखी भया, तब उसी शरीर साथ विषूचिका तप करने लगी॥ हे रामजी! इस प्रकार इंद्रनें सुणिकरि उसकों देखणे निमित्त पवनकों चलाया, तब पवन आकाशकों छोडिके भूतलविषे उतरा; लोकालोक पर्वतकों लंघिकरि स्वर्णकी पृथ्वी लंघी, फेर समुद्र, फेर द्वीपकों लंघिके क्रमसों हिमालयके वनविषे

सूचिशरीर०

सूक्ष्म शरीर साथ उसकों देखत भया, पवन चल रहा, सूर्य तप रहा, परंतु चलायमान न भई, प्राणवायुका भी भोजन न करै तब पवननें भी आश्चर्यमान होइके कहा हे तपस्विनी! तूं किस निमित्त तप करती है? हे रामजी! ऐसे जब पवननें कहा तब भी विषूचिका न बोली, पवननें कहा, भगवती! विषूचिकानें बडा तप कीया है,अब कोउ कामना इसकों नहीं ऐसे कहिके उडा, क्रमसों इंद्रके पास गया, इंद्रनें विषूचिकाके दर्शनके महात्म्यकरि पवनकों कंठ लगाया, मिला आदर कीया जो तूं बडा पुण्यवान्का दर्शन कर आया है, पवननें भी सब वृत्तांत कहि सुनाया अरु कहा॥ हे राजन्! उसके तपतेजकरि हिमालयकी शीतलता आच्छादि गई है, तुम ब्रह्माजी पास चलौ, नहीं तौ उसके तपकरि जगत् जलैगा॥ हे रामजी! जब इस प्रकार पवननें कहा तब इंद्र पवन देवता गणोंसहित ब्रह्माजीके पास आये, प्रणाम करिके बैठी गये, तब ब्रह्माजीनें कहा, जो तुमारा वृत्तांत मैंनें जान्या है॥ हे रामजी! ब्रह्माजी इंद्रकों कहिकरि विषूचिका जिसका नाम सूची था, तिसके पास आय प्राप्त भये, तिसकों देखके आश्चर्यमान हुए जो तृणकी नांई विषूचिकानें सुमेरुतें भी अधिक धैर्य धरा है, जैसे मध्यान्हका सूर्य तेजवान् होता है, तैसे इसका तपतेज भया है, अरु परब्रह्मविषे स्थित भई है, अरु जगत् इसका अब शांत हो गया है, तातें वंदना करने योग्य है॥ हे रामजी! जब आकाशतलविषे स्थित होइकरि ब्रह्माजीनें कहा, हे पुत्रि कर्कटी! तूं अब वरकों ग्रहण करु, तब विषूचिका विचार करिके कहने लगी, जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जान्या है, अरु शांतरूप भई हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट हुए हैं,अब वर साथ मेरा क्या प्रयोजन है, इह जगत अपने संकल्पतें उपजा है, जैसे बालककों अपने परछायेंविषे बैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयकों प्राप्त होता है, तैसे मैं स्वरूपके प्रमादकरि भटकती फिरी हौं, अब इष्ट अनिष्ट जगतकी मुझकों इच्छा कछु नहीं, अब मैं निर्विकल्प शांतिविषे स्थित हौं॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि सूची तूष्णीं हो रही, तब ब्रह्माजी वीतराग प्रसन्नबुद्धि उसके भावकों देखिके कहत भये॥ ॥

॥ब्रह्मोवाच॥ हे कर्कटि! तूं कछुक वरकों ग्रहण करु, कछुक काल तुझे भूतलविषे विचारणा है, भोगोंकों भोगीके तूं विदेहमुक्त होवैगी, अब तूं जीवन्मुक्त होइकरि विचरैगी, नीतिके निश्चयकों लंघि कोउ नहीं शकता, अरु जब तूं तप करणे लगी थी, तब पूर्व देह पावणेका संकल्प कीया था, उह संकल्प अब सफल भया है, जैसे बीजविषे वृक्षका सद्भाव होता है, सो काल पाय विस्तारकों धरता है, तैसे तेरेविषे पूर्व शरीरका संकल्प था, सो अब प्राप्त होवैगा, उसी जैसा शरीर पाइके तूं हिमालयके वनविषे विचरैगी॥ हे पुत्रि! तेरे तौ अनिच्छित जोग हुआ है, जैसे कोउ छायाके निमित्त आंबफलके निकट आन बैठे अरु तिसकों छाया भी प्राप्त होवै अरु फल भी प्राप्त होवै है, तैंनें शरीरकी वृद्धिवासते यत्न किया था सो तृप्ति करणेहारा तेरे तांई हुआ है, अरु तेरे तांई ब्रह्मतत्त्व हुआ है, हे पुत्री! तूं राक्षसी शरीरविषे जीवन्मुक्त होइके·बिचरैगी, और जन्म तुझकों नहीं आवैगा, इस जन्मविषे तूं परम शांत रहैगी, अरु शरत्कालके आकाशकी नांई निर्मल होवैगी, जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरैगी, तब सब जगत् तुझकों आत्मरूप भासैगा, व्यवहारविषे समाधि रहैगी, अरु समाधिविषे भी समाधि रहैगी, पापी जीवकों तूं भोजन करैगी, न्यायबांधव तेरा नाम होवैगा, अरु विवेकपालक तेरा देह होवैगा, तातें पूर्वके शरीरकों अंगीकार कर॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होत भये, तब सूचिनें कहा, ऐसेही होवै, हमकों दोनों तुल्य हैं, तब जैसे बीजतें वृक्ष होता है, तैसे क्रमकरि तिसका शरीर बढ गया, कैसे बढा जो प्रथम प्रादेशमात्र हुआ! फेर हस्तमात्र, फेर वृक्षमात्र, फेर योजनमात्र हो गई, जैसे संकल्पका वृक्ष एक क्षणतें बढ जाता है, तैसे उसका शरीर बढ गया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीशरीरलाभो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः॥५२॥

॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जैसे वर्षाकालका बादल सूक्ष्मतें स्थूल हो जाता है, तैसे सूची सूक्ष्म शरीरतें बहुरी कर्कटि राक्षसी होती भई, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागिके फेर ग्रहण नहीं करता, तैसे राक्षसीनें शरी

रकों आत्मतत्त्वके कारण नहीं ग्रहण कीया, ऐसे शरीरकों पायके बहुरि पद्मासन बांधिके संवित्सत्ताविषे निर्विकल्पपदविषे स्थित भई, षट्मासपर्यंत पहाडके शिखरकी नांई समाधिस्थित रही, बहुरि प्रारब्धवेगकरि जाग आई, तब वृत्ति बहिर्मुख भई, तब क्षुधा लग आई, काहेतें जो शरीरके स्वभाव शरीरपर्यंत रहते हैं तब विचारत भई, जो विवेकी हैं तिनका मैं भोजन न करौंगी, तिनके भोजनतें मेरा मरणा श्रेष्ठ है, जो न्यायकर भोजन करणे योग्य है, तिसकों करौंगी, जो शरीर नष्ट होवै तौ भी न्यायविना भोजन न करौंगी, देहादिक सब संकल्पमात्र हैं, मुझे न मरणेकी इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि सूची तूष्णीं होइ बैठी, राक्षसी स्वभावका त्याग कीया, तब सूर्य भगवान आकाशवाणीकरि कहत भया ॥ हे कर्कटि ! तूं जाइके मूढ जीवोंका भोजन कर, जब तूं भोजन करैगी, तब उनका कल्याण होवैगा, मूढोंका उद्धार करनाभी संतोंका स्वभाव हैं, जो विवेकी पुरुष हैं, तिनका तुम भोजन नहीं करना, अरु जो तेरे उपदेशकरि ज्ञानकों पावैं तिनकों भी न मारना, अरु जो उपदेशकरि भी बोधात्मा न होवैं तिनका भोजन करना, इह न्याय है, तब राक्षसीनें कहा ॥ हे भगवन्! तुमनें अनुग्रह करिके कहा है, इसी प्रकार मुझकों ब्रह्माजीनें भी कहा था॥हे रामजी ! ऐसे कहिकरि सूची हिमालयके शिखरतें उतरी, तहां किरात देश था, बहुत मृग पशु रहते थे, तिनविषे विचरणे लगी, रात्रि भी श्याम, अरु राक्षसी भी श्याम, अरु तमाल वृक्ष भी श्याम, महा अंधकार भासे, जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है, मानौं कज्जलका मेघ आय स्थित भया है, ऐसी श्यामताविषे किरात देशका राजा मंत्री औ वीर यात्राकों निकले तिनकों आते देखिके राक्षसी विचारत भई, जो मुझे भोजन आय प्राप्त भया, इह मूढ अज्ञानी हैं, इनकों देह अभिमान है, इन मूर्खोंके जीनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, न इहलोक सिद्ध होता है, न परलोक सिद्ध होता है, ऐसे जीवोंका जीना दुःखके निमित्त है, इनकों यत्नकरि भी मारना योग्य है, इनकों पालना अनर्थके निमित्त है, पापकों उदय कर

ते हैं, आदि ब्रह्माकी नीति है, जो पापी मारणे योग्य हैं; अरु जो गुणवान् है सो मारणे योग्य नहीं ॥ कदाचित् गुणवान् होवै तौ मैं न मारौंगी, गुणवान् भी दो प्रकारके हैं, जो अमानी अदंभी अहिंसक शांतिवान् हैं, सो गुणवान् हैं, अरु पुण्यकर्म करणेवाले हैं, सो भी गुणवान् हैं, अरु महागुणवान् तौ ब्रह्मवेत्ता हैं, तिनके जीनेकरि बहुतका कार्य सिद्ध होता है,जो मेरा शरीर भोजनविना नष्ट हो जावै,तौ भी गुणवानकों न मारौंगी, जो उदार पुरुष है, सो पृथ्वीका चंद्रमा है, तिसकी संगतिकरि स्वर्ग भी होता है, अरु मोक्ष भी होता है, जैसे संजीवनी बूटीकरि मृतक भी जीता है, तैसे संतोंके संगकरि अमृत होता है, तातें मैं प्रश्नकरिके इनकी परीक्षा करौं, कदाचित् इह भी गुणवान् होवैं, इह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो तौ पूजने योग्य हैं, अरु जो मूर्ख हैं, सो दंड देणे योग्य हैं; मैं इनकों भोजन करौंगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब उह राक्षसी उनकों देखिके मेघकी नांई गरजणे लगी अरु कहत भई, अरे अटवीरूपी आकाशके चंद्रमा, सूर्य, तुम कवन हौ, बुद्धिवान् हौ, अथवा दुर्बुद्धि हौ, अब कहांतें आये हौ? अरु तुमारा क्या आचार है? तुम तौ मुझकों ग्रास आन प्राप्त भये हौ, अब मैं तुमकों भोजन करौंगी ॥ राजोवाच ॥ अरे इस भौतिक तुच्छ शरीरकों पाइकरि तूं कहां रहती है; हमकों देखके जो तूं गरजती है, सो तेरा शब्द हमकों भ्रमकरिके शब्दवत् भासता है, कछु हमकों भय नहीं होता ॥ हे राक्षसी! इह शरीर तेरा मायामात्र है, इस तुच्छ स्वभावकों त्यागिकरि जो कछु तेरा अर्थ है सो कहौ,हम पूर्ण करि देवैंगे ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजानें कहा,तब तिनके चलावने निमित्त राक्षसी प्रलयकालके मेघोंकी नांई बहुरि बडा शब्द करत भई, जो पहाड भी चूर्ण हो जावै,तैसा शब्द करणे लगी,सब दिशा शब्दकरि भर रही, ग्रीवाकों अरु भुजा ऊर्ध्व करिके भयानक शब्द करै,विजलीकी नांई नेत्रोंकों चमकावै,तिसकी मूर्ति देखके राक्षस अरु पिशाच भी कंपाय

मान होवैं,ऐसे भयानक स्वभावकों देखके भी दोनों धैर्यविषे रहे, तब मंत्रीनें कहा, अरे राक्षसी! ऐसे शब्द तूं व्यर्थ करती है, इनकरि तौ तेरा प्रयोजन कछु सिद्ध न होवैगा, इस आरंभकों त्यागिके अपना अर्थ होवै सो कह, बुद्धिमान् जो पुरुष होते हैं,सो तिस अर्थकों ग्रहण करते हैं, जो अपना विषयभूत होता है,जो अपना विषयभूत नहीं होता तिसके निमित्त यत्न नहीं करते, सो हम तेरा विषयभूत नहीं, तुझ जैसे सहस्रही मर्दन कीये हैं॥हे राक्षसी! हमारे धैर्यरूपी पवनकरि तुझ जैसी अनंत मखियां तृणवत् उडत फिरतियां हैं, तातें नीच स्वभावकों त्याग, स्वस्थचित्त होइके जो कछु अपना प्रयोजन है, सो प्रगट करु, बुद्धिवान् जो व्यवहार करते हैं, सो स्वस्थचित्त होइके करते हैं, स्वस्थ हुए बिना व्यवहार भी सिद्ध नहीं होता, इह आदि नीति है, तातें स्वस्थचित्त होइकरि अपना वृत्तांत अर्थ कहि दे, हम तेरा अर्थ सिद्ध करि देवेंगे, हमारे पासतें स्वप्नविषे भी कोउ अर्थी व्यर्थ नहीं गया, सबका अर्थ हम पूर्ण करते हैं, तातें अपना प्रयोजन कहि दे ॥ हे रामजी! जब ऐसे मंत्रीनें कहा, तब राक्षसी चितवत भई, जो इह बडे उदारआत्मा दृष्ट आते हैं, अरु उज्वल आचारवान् हैं, और जीवोंकें समान नहीं, इह बडे प्रकाशवान् हैं अरु धैर्यवान् हैं, उदारता करिके इनके वचन ज्ञानवानों साथ मिलते हैं, अब मैं इनकों जान्या है, अरु इननें मुझकों जानी है, मुझसों इनका नाश भी न होवैगा, काहेतें जो इह अविनाशी पुरुष हैं, ब्रह्मसत्ताविषे स्थित हैं, तातें ज्ञानवान् हैं, ऐसा निश्चय ज्ञानविना और किसका नहीं होता; परंतु कदाचित् अज्ञानी होवैं तौ बहुरि संदेहकों अंगीकार करिके पूछती हौं, संदेहवान् होकरि बोधवानकों नहीं पूछते हैं, सो भी नीचबुद्धि है ॥ हे रामजी! ऐसे मन विषे धारिके बहुरि पूछत भई, तुम कवन हौ, अरु तुमारा आचार क्या है? निष्पाप महापुरुषोंकों देखिके मित्रभाव उपज आता है॥मंत्र्युवाच॥हे राक्षसी! किरात देशका इह राजा है, अरु मैं इसका मंत्री हौं, अरु रात्र विषे तुम सारिखे दुष्टोंकों मारणेनिमित्त उठे हैं, रात्र दिनविषे हमारा यही आचार है, जो जीव धर्मोंकी म

यादाकों त्यागनेहारे हैं, तिनकों हम नाश करते हैं, जैसे इंधनोंकों अग्नि नाश करता है, तैसे हम दुष्टोंकों नाश करत हैं॥ ॥ राक्षस्युवाच॥ हे राजन्! इह तेरा दुष्ट मंत्री है, जिस राजाका मंत्री भला नहीं होता, उह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजाभी शांतिवान् होती है, भला मंत्री सो कहाता है, जो राजाकों न्यायविषे अरु विवेकविषे जोडै, जो राजा विवेकी होता है, तौ शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिवान् हुआ तब प्रजा भी शांतिवान् होती है, सब गुणोंतें जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है, जो आत्माकों जानता है, सोइ राजा है, अरु सोइ मंत्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै, अरु समदृष्टि होवै, अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टितें रहित है, सो न राजा है, न मंत्री है॥ हे राजन्! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हौ, तौ तुम कल्याणरूप हौ; अरु जो ज्ञानतें रहित हौ, तब मैं तुमकों भोजन करौंगी, तुमकों छूटनेका उपाय इही है, जो मैं प्रश्नका समूह पूछती हौं, तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नका उत्तर दीया तब मेरे पूजणे योग्य हौ, अरु जो मेरा अर्थ होवैगा, सो कहौंगी, तुम पूर्ण करोंगे, अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुमारा भोजन करौंगी॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५४॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राक्षसीनें कहा, तब राजानें कहा, तूं प्रश्न कर, हम तुझकों उत्तर देवैंगे॥ ॥ राक्षस्युवाच॥ हे राजन्! यह एक अणु कवन है, जिसतें अनेक प्रकार हुए हैं? एकके अनेक नाम हैं, अरु उह कवन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड होते हैं? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे अनेक ब्रह्मांड उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु उह आकाश कवन है, जो पोलतें रहित है अरु उह कवन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित है? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे तेरा अहं अरु मेरा अहं फुरता है? अरु अहं त्वं एकविषे जनाते हैं, सो कवन है? अरु उह कवन है, जो चल्या जाता है, अरु कदाचित् नहीं चलता? अरु सो कवन है, जो तिष्ठ

त भी है, अरु अतिष्ठत भी है, अरु उह कवन है, जो पाषाणवत् है, अरु उह कवन है, जिसनें आकाशविषे चित्र कीये हैं, अरु उह अग्नि कवन है, जो दाहकशक्तितें रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु उह अग्नि कवन है, जिसतें अग्नि उपज्या है? अरु उह कवन अणु है, जो सूर्य, अग्नि, चंद्रमा, ताराके प्रकाशतें रहित है, अरु अविनाशी है? अरु उह कवन है, जो नेत्रोंकरि देख्या नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंकों उत्पन्न करता है? अरु उह कवन ज्योति है, जो फूल फल वेलीकों प्रकाशती है? अरु जन्मांधकों भी प्रकाशता है? अरु उह कवन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंकों उपजाता है? अरु उह कवन अणु है, जो स्वाभाविक प्रकाशमान है? अरु उह भंडार कवन है, जिसतें ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम एकठे रहते हैं? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों एकठे रहते हैं? अरु उह कवन अणु है, जो दूर भी अदूर है, अरु उह कवन अणु है, जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे निमेषमें कल्प है, अरु कल्पमें निमेष है? अरु उह कवन है, जो प्रत्यक्ष है, अरु असद्रूप है? अरु उह कवन है, जो सत्‌रूप है, अरु अप्रत्यक्षरूप है? उह कवन चेतन है, जो अचेतन है? अरु उह कवन वायु है, जो आवायुरूप है? अरु उह कवन है, जो अशब्दरूप है? अरु उह कवन है, जो सर्व है? अरु निष्किंचित् है? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है? अरु उह कवन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पावता है? अरु पायके कहता है, जो कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है? अरु उह कवन अणु है? जिसविषे सुमेरु आदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं? अरु उह कवन है, जो अनेक योजनोंकों पूर्ण करता है? अरु उह कवन अणु है, जिसके देखणेकरि जगत् फुरि आता है? अरु उह कवन अणु है; जो अणुताकों त्यागेविना सुमेरु आदिक स्थूल आकारकों प्राप्त होता है? अरु उह कवन अणु है, जो बालका सोमा भाग सुमेरुतें भी उंचा भया है? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे सब

अनुभव स्थित है? अरु उह कवन अणु है, जो अत्यंत निस्वाद है? अरु आपही सब स्वाद होता है? अरु उह कवन अणु है, जो अपने ढांपणेकों समर्थ नहीं अरु सर्वकों ढांपी रहा है? अरु उह कवन् अणु है; जिस करि सब जीवते हैं? अरु उह कवन अणु है, जिसका अवयव कोउ नहीं, अरु सर्व अवयवकों धारी रहा है, अरु उह कवन निमेष है, जिसविषे बहुतेरे कल्प स्थित हैं? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे अनंत जगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है? अरु उह कवन अणु है, जिसविषे बीजतें आदि अरु फलपर्यंत न उदय हुए भी भासते हैं? उह कवन है, जो प्रयोजनतें अरु कर्तृत्वतें रहित है, अरु प्रयोजनवान् अरु कर्तृत्ववानकी नांई स्थित है? अरु उह कवन द्रष्टा है, जो दृश्यकों मिलिकरि दृश्य होता है? अरु उह कवन है, जो दृश्यके नष्ट हुए भी आपकों अखंड देखता है? अरु उह कवन है, जिसके जाननेतें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों लय हो जाते हैं? जैसे सोनेकों जाननेतें भूषणभाव लीन हो जाते हैं, अरु उह कवन है, जिसतें भिन्न कछु नहीं, जैसे जलतें भिन्न तरंगोंका अभाव है, अरु उह एकही कवन है, जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदतें रहित सत् असत्की नांई स्थित है? अरु उह कवन अद्वैत है, जिसतें द्वैत भी भिन्न नहीं; जैसे समुद्रतें तरंग भिन्न नहीं अरु सो कवन है, जिसके देखेतें सत्ता असत्ता सब लीन होता है, अरु उह कवन है, जिसविषे भ्रमरूपी अनंत जगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, अरु उह कवन है, जो सबके अंतर है? जैसे वृक्षविषे बीज होते हैं, अरु उह कवन है, जो सत्ता असत्तारूपी आपही भया है, जैसे बीज वृक्षरूप है, अरु वृक्ष बीजरूप है, अरु उह अणु कवन है, जिसविषे तंतु भी सुमेरुकी नांई स्थूल है, जिसके अंतर कोटि ब्रह्मांड हैं॥ हे राजन्! तिस अणुकों देखा है, तौ कहौ॥ हे राजा! इह मुझकों संशय है, तिसकों तुम अपने मुखकरि दूर करौ, जिसके विद्यमान संशय दूर निवृत्त न होवै, तिसकों पंडित नहीं कहना, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसकों इन प्रश्नोंका उत्तर कहना सुगम है; इस संशयकों उह शीघ्रही छेद डारता है, अरु

जो अज्ञानी हैं, तिनकों उत्तर कहना कठिन है ॥ हे राजन्! जो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दीया, तौ तुम मेरे पूजणे योग्य हौ; अरु जो मूर्खताकरिके प्रश्नोंका उत्तर न देओंगे, अरु प्रश्नोंका विपर्यय जानौंगे, तब तुम मेरे उदररूपी जठराग्निके इंधन हौ, दोनों मेरे उदरविषे जाइ पडौंगे, तिसतें अनंतर तुमारी सब प्रजाकों ग्रास करी लेउंगी, काहेतें जो मूर्ख पापीयोंकों मारणा श्रेष्ठ है, आगे पाप करणेतें छूटेंगे, तुमारा भोजन करिके पीछे तुमारी सब प्रजाकों भोजन करि लेउंगी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! श्याम मेघकी नांई जिसका आकार है, ऐसी राक्षसी इस प्रकार कहिकरि शुद्ध आशयकों लेकरि तूष्णीं भई; जैसे शरत्कालविषे मेघमंडल निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावकों प्राप्त भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह जो अर्धरात्रिके समय महाशून्य वनविषे महाराक्षसीनें महाप्रश्नोंकों जब कीया, तब महामंत्री तिसकों उत्तर कहत भया ॥ ॥ महामंत्र्युवाच ॥ हे राक्षसी! इह जो तैंनें संशयसों प्रश्न कीये हैं, तिनका मैं क्रमकरि उत्तर कहता हौं; अरु तेरे संशयकों छेदन करता हौं, जैसे उन्मत्त हस्तिकों केसरी सिंह नष्ट करता है, तैसे मैं तेरे संशयकों छेदन करता हौं ॥ हे राक्षसी! कमलनयनी, जेते कछु तैंनें प्रश्न कीये हैं, सो एक परमात्माहीके कीये हैं, तातें तेरा सब प्रश्नोंका एकही प्रश्न है, परंतु तुमनें अनेक प्रकार कर कीये हैं, सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं ॥ हे राक्षसी! जो अनामाख्य है, अर्थ यह जो सर्व इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु अगम है, अरु मनकी चिंतनातें रहित है, ऐसी सत्ता चिन्मात्र है, अरु आकार भी सूक्ष्म है, इस कारणतें सूक्ष्म कहाता है, सूक्ष्मता करिके तिसकी अणु संज्ञा है, नहीं कछु परमाणुता करिके तिसकी अणु संज्ञा है, काहेतें जो सर्वात्मा है, तिस अणुविषे सत् असत्की नांई जगत् स्थित है, अरु तिसही चिद्अणुविषे जब कछुक संवेदन फुरता है, तब उही संवेदन सत्य असत्य जगत्की नांई भासता है, तिस करिके चित्त कहते हैं, अरु सृष्टितें पूर्व तिस

विषे कछु न था, तिस करि निष्किचन कहाता है, अरु इंद्रियोंका विषय नहीं, तातें न किंचित् है, अरु उही चिद्अणुविषे सबका आत्मा है, तातें अनंत भोक्ता पुरुष किंचन है, तिसतें इतर कछु नहीं, तातें न किंचन है, अरु सोइ चिद्अणु सबका आत्मा है, अरु सोइ चिद्अणु एकही आभास करिके अनेकरूप भासता है, जैसे सुवर्णतें नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु उही चिद्अणु परमाकाशरूप है, जो आकाशतें भी सूक्ष्म है, अरु मनवाणीतें अतीत है; सो सर्वात्मा है, शून्य कैसे होवै, सत्कों जो शून्य कहतें हैं, सो उन्मत्त कहाते हैं ॥ काहेतें जो असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता, जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है, सो सत् है, अरु उही चिद्अणु पंचकोशोंविषे छिपता नहीं, जैसे कर्पूरकी गंध प्रगट होती है, छिपती नहीं, तैसे प्रगट होता है, पंचकोशोंविषे आत्मा छिपता नहीं, अनुभवरूप है, अरु उही चिन्मात्र सर्वरूपकरि किंचित् है, अरु अचेतन चिन्मात्र है, तातें अकिंचित् है, इंद्रियोंतें रहित है, तातें निर्मल है, तिसही चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् स्थित जैसे समुद्रविषे फुरणे करिके तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन होतें हैं; तैसे चिद्अणुविषे फुरणेकरि अनेक जगत् उपजिके लीन होते हैं, मन अरु इंद्रियोंतें अतीत है, तातें चिद्अणु शून्य कहता है, अपणे आप हीकरि प्रकाशता है, तातें अशून्य है॥ हे राक्षसी! मेरा अहं अरु तेरा अहं भया है, सो आत्मा एकही भया है, अहंकी अपेक्षा करिके त्वं है, अरु त्वंकी अपेक्षा करिके मैं, परिच्छिन्न हों; परंतु दोनोंका उत्थान जो है, सो एक आत्मतत्त्वतेंही है; तिसही चिद्अणुके बोधतें ब्रह्मरूप होता है, अरु तिसही बोधविषे अहं त्वं सब लीन होते हैं, अथवा सर्व आपही होता है, त्रिपुटीरूप भी उही है, अरु उही चिद्अणु अनेक योजनोंपर्यंत जाता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, काहेतें जो संवित् अनंतरूप है, योजनोंके समूह तिसके अंतर हैं, न कोउ आता है, न जाता है, अपने आकाशकोशविषे सब देशकाल स्थित हैं, जिसविषे सब कछु होवै, तिसकों प्राप्ति वास्तवतें कहां होवै? इह जेता जगत् है, सो तौ आत्माविषे है, फेर आत्मा कहां जावै, जैसे माताकी गोदविषे

पुत्र होवै, तिस निमित्त उह कहां जावै, तैसे आत्माविषे इह जगत् स्थित है, फेर आत्माकों जाता कहां कहना, अरु चलता जो भासता है, सो देहकी अपेक्षा करि भासता है, वह कदाचित् चल्या नहीं, जैसे आकाशविषे घटादिक स्थित है, तैसे चिद्अणुविषे देशकाल स्थित हैं, जैसे घट एकदेशतें देशांतरकों जावै तौ घट गया है, आकाश नहीं गया है, घटकी अपेक्षा करी आकाश जाता भासता है, घटाकाश कहूं गया नहीं, काहेतें जो आकाशविषे सब देश स्थित हैं, इह कहां जावै, तैसे आत्मा जाता है, अरु नहीं जाता; तिसही चिन्मात्र परमात्माविषे संवेदन आकार रचे हैं, आदिअंततें रहितविषे विचित्ररूपी जगत् रच्या है, अरु सोइ चिद्अणु अग्निकी नांई प्रकाशरूप है, अरु जलानेतें रहित है, ज्ञान अग्निकरि प्रकाशमान है, अग्नि भी तिसतें उपजा है, अरु सर्वगत उही है, अरु द्रव्योंकों पचाता भी उही है, प्रलयविषे सब भूत तिसविषे लीन होते हैं, अरु पुष्कल मेघ एकठा होवै तौ भी उसकों आवरण नहीं करै, सदा प्रकाशरूप अरु ज्ञानरूप है, आकाशतें भी निर्मल है, अरु प्रकाशरूप है, जो अग्नि भी तिसतें उत्पन्न होता है, अरु सबकों सत्ता देनेहारा है, सूर्यादिक भी तिसके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु अनुभवरूप है, नेत्रोंविना भासता है, ऐसा हृदयरूपी मंदिरका दीपक है सो आत्मा है, अनंत परम प्रकाशरूप है, अरु मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु लता फूल फल आदिक सबकों आत्मत्व करिके प्रकाशता है, सबका अनुभवकर्ता उही है, काल आकाशक्रिया आदिक पदार्थकों सत्ता देनेहारा उही चिद्अणु है, अरु सबका स्वामी कर्ता उही है, सबका पिता उही है, अरु सबका भोक्ता भी उही है, अरु स्वरूपतें सदा अकर्ता अभोक्ता है रूप जिसका, जैसे स्वप्नविषे कर्ता भोक्ता भासता है, अरु अकर्ता अभोक्ता है, तिसतें इतर कछु नहीं, इस कारणतें किंचन रूप है, जगत्कों धारणेहारा है, स्वरूपतें मातृ मान मेय जिसकरि प्रकाशते हैं, उपजा कछु नहीं चिदात्माका किंचनहै, किंचन करिके जगत्की नांई भासता है, जो तुझनें पूछा था, जो दूर अरु निकट कवन है, सो अलखभाव करिके दूर भी उही है, अ

रु चिद्रूप भाव करिके अदूर भी उही है, अथवा ज्ञान करिके अदूर भी उही है, अरु अज्ञान करिके दूरतें दूर है, अरु अज्ञान करिके तमरूप अरु ज्ञान करिके प्रकाशरूप भी उही है, अरु तिसही चिद्अणुविषे संवेदन करिके सुमेरु आदिक स्थित हैं ॥ हे राक्षसी! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संवेदनरूप है, सुमेरु आदिक पदार्थ कछु उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा आकार होइ भासता है, जहां निमेषका संवेदन फुरता है, तहां निमेष कहाता है, अरु जहां संवेदन कल्पका फुरता है, तहां कल्प कहते हैं, कल्प क्रिया आदिक जगत् विलास सब निमेषविषे फुरि आये हैं, जैसे मनके फुरणेकरिके बहुत योजनोंपर्यंत पुरुष भास आता है, अरु जैसे अल्प मुकुरविषे बडे विस्तार नगरका प्रतिबिंब समाइ जाता है, तैसे निमेषके फुरणेविषे सब जगत् फुरि आता है, अरु निमेषविषे कल्प समुद्र पुर अनंत योजनोंका विस्तार चिद्अणुविषे स्थित है, अरु द्वैत एक भ्रमतें रहित है ॥ हे राक्षसी! इह जगत् स्वरूपतें अवस्तुरूप है, संवेदन करिके भासता है; जैसे जैसे संवेदनविषे दृढ प्रतीति होती है, तैसा तैसा अनुभव होता है, तूं देख, क्षणके स्वप्नविषे सत् असत् जगत् फुरि आता है, अरु बहुत कालका अनुभव होता है, जो दुःखी होते हैं, तिनकों थोडे कालविषे बहुत भासते हैं, अरु जो सुखी होता है, तिसकों बहुत कालविषे थोडा काल भासता है, जैसे हरिश्चंद्रकों एक रात्रविषे द्वादश वर्षका अनुभव भया, तातें जेता जेता संवेदन दृढ होता है, तैसे देशकाल होइ भासता है, सत् भी असत्की नांई भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, तब भूषण भासते हैं, अरु समुद्रविषे तरंगोंकी दृढतातें तरंग भिन्न भासते हैं, तैसे निमेषविषे कल्प भासते हैं, अरु वस्तुतें न निमेष है, न कल्प है, न दूर है, न निकट है, सब चिद्अणु आत्माका आभास है ॥ हे राक्षसी! प्रकाश अरु तम, दूर अदूर, सब चेतन संपुटविषे रत्नोंकी नांई है, वस्तुतें अनन्यरूप है, भेदाभेद कछु नहीं ॥ हे राक्षसी! जबलग दृश्यका सद्भाव दृढ होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, जैसे जबलग

भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता, अरु जब स्वर्ण जान्या, तब भूषण बुद्धि नहीं रहती, स्वर्णही भासता है, तैसे जबलग दृश्यका स्पंदभाव होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब आत्मज्ञान होता है, तब केवल ब्रह्मसत्ता निर्मलही सद्रूप करिके सर्वत्र भासती है; अरु दुर्लक्षता करिके अर्थ यह जो मन इंद्रियोंके अविषयतें असत्रूप कहते हैं, चैत्यता करिके तिसकों चेतन कहते हैं, अरु चैत्यके अभावतें अचेतनरूप कहते हैं, अर्थ यह जो चैत्यके अभावतें अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं, सो चेतन चमत्कारतें जगत् की नांई होइ भासता है ॥ हे राक्षसी! और जगत् तिसविषे कोउ नहीं, जैसे वायुका विरोला वृक्षाकार होय भासता है, अरु जैसे सघन धूप करिके मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे एक अद्वैत चेतन है, सो घन चेतनता करिके जगत्की नांई होइ भासता है, जैसे सघन शून्यता करिके आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे दृढ सघन चेतनता करिके जगत् भासता है, जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणोंका किंचन मृगतृष्णाका जल होता है, तिस नदीका प्रमाण कछु नहीं, तैसे इह जगत् आस्था भासती है, सब आकाशरूप है, जैसे भ्रम करिके धूडके कणमें स्वर्णकी नांई चमत्कार होते हैं, तैसे जगत्कल्पना चित्तके फुरने करिके भासती है, जैसे स्वप्नपुर अरु गंधर्वनगर आकारसहित भासते हैं, सो न सत् है, न असत् है, तैसे इह जगत् दीर्घ स्वप्न है, न सत् है, न असत् है ॥ हे राक्षसी! जब तिसका आत्माविषे अभ्यास होवै, तब इह कुंडादिक ऐसेही रहैं, अरु आकाशरूपही भासैं, स्वरूपतें कुंडादिक भी आकाशरूप हैं, आकाश अरु कुंड आदिकोंविषे भेद कछु नहीं, मूढता करिके भेद भासता है, ज्ञानीकों सब चित्ताकाशरूप भासता है ॥ हे राक्षसी! ब्रह्मातें तृणपर्यंत संवेदनविषे कल्पना दृढ हो रही है, तैसेही भासती है, अरु वास्तवतें उही चिदाकाश प्रकाशता है, घन चेतनता करिके उही चिदाकाश आकारोंकी नांई प्रकाशता है, तिसीका इह प्रकाश है, सो अनन्यरूप है, जैसे बीज अरु वृक्ष अनन्यरूप है, तैसे असंख्यरूप जगत् ब्रह्मसत्ताविषे स्थित है, सो अनन्यरूप है, जैसे बी

जविषे वृक्षका भाव स्थित है, सो आकाशरूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है, अन्य भावकों नहीं प्राप्त हुए, सो ब्रह्मसत्ता सब औरतें शांतरूप है, अज है, एक है, आदि मध्य अंततें रहित है, तिसविषे एक अरु द्वैतकी कल्पना कोउ नहीं, अनउदयही उदय हुइ है, निर्मल स्वप्रकाश आत्माही है ॥ ॥ इति श्रीयो॰ उ॰ रा॰ प्रश्नभेदो नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, मंत्रीनें तौ इह परम पावन परमार्थ वचन कहे हैं, अब कमलनयन राजा भी कछु कहता है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी! इह जो जाग्रत जगत्की प्रतीति होती है, सो इसका जब अभाव होवै तब आत्मप्रतीति होती है, जब सब संकल्पकी चैत्यताका नाश होवै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, सो आत्मसत्ता कैसी है, जिसविषे संवेदन फुरणेकरि जगत् होइ भासता है, अरु संवेदनके संकोचकरि सृष्टिका प्रलय होता है, तिसका अधिष्ठानरूप आत्मसत्ता है, तिसकों वेदांतवाक्य जतावणेके अर्थ कछुक कहते हैं, काहेतें जो वाणीतें अतीत पद है ॥ हे राक्षसी! इह जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य है, तिसके अंतर अनुभवसत्ता है, सो परमात्मा है, सो परमात्माही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होइकरि भासता है, तिसविषे जगत् लीला है, नानात्व भाव करिके भी कछु खंडित भावकों नहीं प्राप्त भया, अखंडही रहा है, तिस चिन्मात्रसत्ताकों ब्रह्मकरी कहते हैं॥ हे भद्रे! सोइ चिद् अणु संवेदन करिके वायुरूप हुआ है, अरु वायु तिसविषे अत्यंत भ्रांतिमात्र है, काहेतें जो केवल शुद्ध चिन्मात्र है, जब तिसविषे शब्दका संवेदन फुरता है, तब शब्दरूप होइ भासता है, अरु शब्दरूप तिसविषे भ्रांति मात्र है, तिसविषे शब्द अरु शब्दका अर्थ देखणा दूरतें दूर है, काहेतें जो केवल चिन्मात्र है, तिसविषे अहं त्वं कछु नहीं, अरु उह निष्किंचन है, ऐसे रूप होइकरि भासता है, काहेतें सो सब शक्तिरूप आत्मा है, तिसविषे जैसी प्रतिभा फुरती है, तैसाही होइकरि भासता है, तातें फुरणाही इस जगत्का कारण है, अरु अनेक यत्नोंकरि पावणे योग्य है, सो भी आत्मसत्ता है, जब तिसकों पावता है, तब उसनें कछु नहीं

पाया, अरु सब कछु पाया है, पाया तौ इस कारणतें नहीं, जो आगे भी अपना आप था, अरु सब कछु पाया, इस कारणतें जो आत्माके पायेतें कछु और पावना नहीं रहता॥ हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसंतऋतु करिके जन्मोंकी परंपरा बेली तबलग बढती जाती है, जबलग इसके कातणेहारा बोधरूपी खड़्ग नहीं उदय भया, जब बोधरूपी खड़्ग उदय होता है, तब जन्मरूपी बेलीकों काटता है॥ हे राक्षसी! चिद्‌अणु संवेदन द्वारा आपकों दृश्यविषे प्राप्त करता है, जैसे किरणांका चमत्कार जलरूप होइकरि स्थित होता है, सो शुद्ध ही आपकों संवेदनद्वारा फुरता देखता है, तैसे चिद्‌अणुद्वारा जगत् हुआ है, सो मेरुतें आदि लेकरि तीनों भुवन किरणोंकी नांई स्थित होते हैं, अरु वस्तुतें मायामात्र हैं, भ्रम करिके पडे भासते हैं, स्वप्नविषे रागीकों स्वप्न स्त्रीका आलिंगन होता है, तैसे इह जगत् मनके फुरणे करिके पडा भासता है, सो भ्रममात्र है॥ हे राक्षसी! सर्व शक्तिरूप आत्माविषे जैसे सृष्टिका आदि फुरणा हुआ है, तैसा रूप होइकरि भासणे लगा है, जैसे संकल्प कीया है, तैसे स्थित भया है, तातें सब जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जिसविषे बालकका मन लगता है, तैसा रूप उसका होइ भासता है, तैसे संवित्के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है, तैसा रूप होइ भासता है॥ हे राक्षसी! चिद्‌अणु परमाणुतें भी सूक्ष्म है, अरु तिसनेंही सब जगत्कों पूर्ण कीया है, सब जगत् अनंतरूप आत्मा है, तिसविषे संवेदन करिके जगत्की रचना हुई है; जैसे नट नायक होता है, सो जैसे जैसे बालककों नेत्रों कर जतावता है, तैसे उह नृत्य करता है, अरु जब उह जतावणेतें ठैर जावै तब उह ठैर जावै है, तैसे चित्तके अवलोकनतें करिके सुमेरु आदिक तृणपर्यंत जगत् नृत्य करता है, जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, अनंतशक्ति आत्माविषे, तैसे तैसे होइ भासता है॥ हे राक्षसी! देश काल वस्तुके परिच्छेदतें आत्मसत्ता रहित है, इस कारणतें सुमेरु आदिकतें स्थूल है, तृणके समान सुमेरु आदिक है, अरु बालके अग्रतें सोमा भाग होवै, तैसे सूक्ष्म है, सो अल्पता करि ऐसा सूक्ष्म नहीं, जिसविषे सरसोंका दाणा भी सुमेरुवत् स्थूल है,

मायाकी कला बहुत सूक्ष्म है, तिसतें भी चिद्अणु सूक्ष्म है, काहेतें जो निर्मायिक पद परमात्मा है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणकी शोभा समान नहीं, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, समान कैसे होवै, तैसे माया परमात्माके समान नहीं, काहेतें जो कल्पित है ॥ हे राक्षसी ! जैसे कछु सूर्य आदिक प्रकाश हैं, सो सब अनुभवकरि प्रकाशते हैं, इनका सद्भाव कछु न था, तिसही सत्ताकरि इनका प्रगट होणा भया है, अरु बहुरि जर्जरीभूत होते हैं, प्रकाशरूप शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिस चिद्अणुके अंतर बाह्य प्रकाश है अरु इह जो सूर्य चंद्रमा अग्नि आदिक प्रकाश हैं, सो तम साथ मिले हुए हैं, अर्थ यह जो भेदरूप हैं, यह भी तमरूप हैं, काहेतें जो आपेक्षिक प्रकाश है, इनोंविषे एता भेद है, जो प्रकाश शुक्लरूप है, अरु तम कृष्णरूप है, रंगका भेद है, प्रकाशरूप कोउ नहीं, जैसे श्याम कुहिड मेघकी होती है, अरु शुक्ल कुहिड बरफकी होती है, अरु दोनों कुहिड हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों तुल्य हैं, अरु आत्मसत्ता दोनोंकों प्रकाशती है, तातें दोनोंकों आश्रयभूत आत्मसत्ता है ॥ हे राक्षसी ! रात्र दिन अंतर बाहिर नदियां पहाड आदिक सब लोक आत्मसत्ताके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे कमल अरु नीलोत्पल दोनोंकों सूर्य प्रकाशता है, कमल श्वेत है, अरु नीलोत्पल श्याम है, जहां श्वेत कमल है, तहां नीलोत्पलका अभाव है, अरु जहां नील कमल है, तहां श्वेत कमलका अभाव है, अरु दोनोंका प्रकाशक सूर्य है, तैसे तम अरु प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्मा है, जैसे रात्रि अरु दिन दोनों सूर्य करिके सिद्ध होते हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों आत्माकरि सिद्ध होते हैं; जैसे दिन तब कहाता है, जो सूर्य उदय होता है, अरु जब सूर्य अस्त होता है, तब रात्र होती है, आत्मा तैसे भी नहीं, आत्मप्रकाश सदा उदयरूप है, उदय अरु अस्ततें रहित है, तिसविना कछु सिद्ध नहीं होता, सबका प्रकाशक चिद्अणु है ॥ हे राक्षसी ! तिस अणुके अंतर विचित्र अनुभव अणु है, जैसे वसंतऋतुके अंतर पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे चिद्अणुतें

सब अनुभव अणु होते हैं, जैसे एक बीजतें अनेक वृक्ष क्रम करिके हो जाते हैं, तैसे अनेक चिद्अणुतें अनेक अनुभव अणु होते हैं, केई व्यतीत भये हैं, केई वर्त्तमान हैं, अरु केई भविष्यत् होवैंगे, जैसे समुद्र विषे तरंग होते हैं, सो केई अब वर्त्तते हैं, केई आगे होवैंगे, तैसे आत्माविषे तीनों कालकी सृष्टि वर्त्ततियां हैं ॥ हे राक्षसी ! चिद्अणु आत्मा उदासीन है, अरु आसीनकी नांई स्थित होता है, सबका कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है, अरु स्पर्श किसी साथ नहीं किया, जगत्की सत्यता तिसीतें उदय होती है, इस कारणतें सबका कर्त्ता है, अरु सबका अपना आप है, तातें सबकों भोगता है, अरु वास्तवतें न कछु उपजा है, न लीन होता है, चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु अखंड है, सूक्ष्म है, इस कारणतें किसी साथ स्पर्श नहीं किया ॥ हे राक्षसी ! जेता कछु जगत् दिखता है, सो सब आत्मरूप है, आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, आत्मा अरु जगत् कहणे मात्र दोनों नाम हैं, वस्तुतें एक आत्माही है, आत्माका चमत्कारही जगत्रूप होइ भासता है, जगत् कछु बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपणेआपविषे स्थित है, और जेता कछु कहणा है, सो उपदेश जतावणेके निमित्त है, वास्तवतें दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं ॥ हे राक्षसी ! द्रष्टा जब दृश्यपदकों प्राप्त होता है, तब स्वभाविक अपने भावकों नहीं देखता; जैसे नेत्र जब घटकों देखता है, तब घटही भासता है, अपना नेत्रत्वभाव नहीं दृष्ट आता, तैसे दृश्यके होते द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब दृश्य नष्ट होवै, तब द्रष्टा भी अवास्तव है, काहेतें जो द्रष्टा भी इसकों दृश्यके संबंधकरि कहाता है, जब दृश्य नष्ट हो जावै, तब द्रष्टा किसीका कहियें ? दृश्य विषयभूत सो होता है, जो अदृश्य है, सो विषयभूत किसीका नहीं, इस कारणतें तिसविषे और कल्पना कोउ नहीं बनती ॥ अरु इह जगत् भी तिसका आभास है ॥ हे राक्षसी ! जैसे भोक्ताविना भोग नहीं होते, तैसे द्रष्टाविना दृश्य नहीं होते, जैसे पिताविना पुत्र नहीं होता, तैसे एकविना द्वैत नहीं होते ॥ हे राक्षसी !

द्रष्टाकों दृश्य उपजानेकी समर्थता है, परंतु दृश्यकों द्रष्टा उपजानेकी समर्थता नहीं, काहेतें जो दृश्य जड है, जैसे सुवर्णतें भूषण बनता है, अरु भूषणतें स्वर्ण नहीं बनता, तैसे द्रष्टातें दृश्य होता है, दृश्यतें द्रष्टा नहीं होता ॥ हे राक्षसी! स्वर्णविषे जैसे भूषण हैं, तैसे द्रष्टाविषे दृश्य है, सो भ्रमरूप है, इसीतें जडरूप है, जब द्रष्टा दृश्यकों देखता है, तब दृश्य भासता है, दृष्टत्वभाव नहीं भासता, अरु जब द्रष्टा अपने स्वभाव विषे स्थित होता है, तब दृश्य नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता, भूषणही भासता है, अरु जब सुवर्णका ज्ञान होता है, तब सुवर्णही भासता है, भूषण नहीं भासता, अरु एक सत्ताविषे दोनों नहीं सिद्ध होते, जैसे अंधकारविषे पुरुष देखि करि तिसविषे पशुत्व भासै, तब जबलग पशुबुद्धि होती है, तबलग पुरुषका निश्चय नहीं होता, अरु जब निश्चय करिके पुरुष जाना तब बहुरि पशुबुद्धि नहीं रहती, तैसे जब द्रष्टा दृश्यकों देखता है, तब द्रष्टाभाव नहीं दिखता, दृश्यही भासता है, जैसे जेवरिके ज्ञानतें सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे बोध करिके दृश्यका अभाव होता है, तब एकही परमात्मसत्ता भासती है, द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती; जैसे दूसरेकी अपेक्षा करिके एक कहाता है, दूसरेके अभाव हुए एक कहना भी नहीं रहता, तैसे दृश्यके अभाव हुए द्रष्टा कहणा नहीं रहता, शुद्ध संवित् मात्र पद शेष रहता है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, जैसे दीपक पदार्थोंकों प्रकाशता है, तैसे द्रष्टा, दर्शन अरु दृश्यकों प्रकाशता है, अरु बोध करिके मातृ, मान, मेय त्रिपुटी लीन हो जाती है, जैसे सुवर्णके जाननेतें भूषणकल्पनाका अभाव हो जाता है, तैसे ज्ञानकरिके त्रिपुटीका अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है ॥ हे राक्षसी! परम अणु जो अत्यंत निस्वादरूप है, सो सर्व स्वादोंकों उपजाता है, जहां रससहित होता है, तहां चिद्अणु करिके होता है, जैसे आदर्शविना प्रतिबिंब नहीं होता, तैसे सब स्वाद चिद्अणु विना नहीं होते, सबकों रस देणेहारा चिद्अणु है, सब आत्मभावकरिके सबका अधिष्ठान है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है ; ता

तें निस्वाद है, सोइ चिद्अणु अपने गोप करणेकों समर्थ नहीं अरु सब जगत्कों ढांप राख्या है, आप किसीकरि आच्छाद्या नहीं जाता, सो सुण, जो चिदाकाशरूप है, अरु सब पदार्थोंकों सत्ता देणेहारा है, अरु सबका आश्रयभूत है, जैसे घांसके वनविषे हस्ति नहीं छिपता तैसे आत्मा किसी पदार्थकरि नहीं छिपता ॥ हे राक्षसी! जिसकरि सब पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु सदा प्रकाशरूप हैं, सो मूर्खोंकों नहीं भासता, इह आश्चर्य है, सो सदा अनुभवरूप है, इह सब जगत् तिहींकरि जीता है, जैसे वसंतऋतुकरि फूल फल टास पत्र फूलते हैं, तैसे सब जगत् आत्माकरि फूलता है, उही चिदात्मा जगत्रूप होइके भासता है, अरु सर्वात्मभाव करिके सर्व तिसके अवयव परमार्थ निरवयवरूप निराकाररूप हैं, कछु तिसविषे उदय नहीं भया ॥ हे राक्षसी! एक निमेषके अबोध करिके चिद्अणुविषे अनेक कल्पोंका अनुभव होता है, जैसे एक क्षणके स्वप्नविषे आपकों बालक बहुरि वृद्ध अवस्था देखणे लगता है, अरु तिनों कल्पोंविषे जो निमेष है, तिसविषे अनेक कल्प व्यतीत होते हैं, काहेतें जो अधिष्ठान सर्व शक्तिमान है, जैसा संवेदन जहां फुरता है, तैसा रूप तहां होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे अभोक्ताकों भोक्तृत्वका अनुभव होता है, तैसे निमेषविषे कल्पका अनुभव होता है, वासनाकरि आवेष्ट हुआ अभोक्ताही आपकों भोक्ता देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है, तैसे इह जगत्भ्रम भासता है, जैसे फुरण जहां दृढ होता है, तैसा होइकरि तहां भासता है ॥ हे राक्षसी! जेते कछु आकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जैसे निर्मल आकाशविषे नीलता भासती है, तैसेही आत्माविषे विश्व भासता है, आत्मा सर्वगत है, अरु सबका अनुभवरूप है ॥ हे राक्षसी! तिसविषे व्याप्य व्यापकभाव भी नहीं, काहेतें जो सर्व आत्मा है, अरु सर्वरूप भी वही है, जब शुद्ध चित्तसंवित्विषे संवेदन फुरता है, तब पृथक् पृथक् भावकों चेतता है, इच्छा करिके जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है, तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव कल्पना होती है, वस्तुतें जो इच्छा है, सोइ पदार्थ भया, जैसे जलविषे द्रव

ता होती है, तिसकरि तरंग फैन बुद्बुद होते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर तौ कछु नहीं, तैसे इच्छाकरि उपजे पदार्थ आत्मरूप हैं,इतर कछु नहीं, आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, केवल शुद्ध चिन्मात्र है, अरु सर्वरूप होइकरि स्थित भया है, सबका अनुभव भी तिसविषे भया है, सो तौ शुद्ध सत्तामात्र है, तिसविषे द्वैतकल्पना कैसे कहियें ॥ हे राक्षसी! जब कछु द्वैत होता है, तब एक भी होता है, जो द्वैतही नहीं तौ एक कैसे कहियें? जैसे धूपकी अपेक्षाकरि छाया है,अरु छायाकी अपेक्षाकरि धूप है,तैसे एककी अपेक्षा करि द्वैत कहाता है,इस कल्पनातें रहित है, सो चिन्मात्ररूप है, अरु जगत् भी तिसतें व्यतिरिक्त नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी! नानाप्रकारके आरंभ दृष्ट आते हैं, तौ भी आत्मसत्ता सम है ॥ हे राक्षसी! जब इसकों सम्यक् बोध होता है, तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है, काहेतें जो अज्ञान करि द्वैतकल्पना होती है, वास्तव कछु नहीं, अज्ञानके अभावतें द्वैतका भी अभाव हो जाता है, वास्तवतें ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदताविषे कछु भेद नहीं, जैसे आकाशविषे अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं ॥ हे राक्षसी! द्वैत अरु अद्वैत जानना दुःखका कारण है, द्वैत अद्वैत की कल्पनातें रहित होना इसीकों परमपद कहते हैं, अरु द्रष्टारूप जो जगत् है, सो चिद्‌परमाणुविषे स्थित है, तिसविषे सुमेरु आदिक स्थित हैं, तातें बडा आश्चर्य है, मायाही महा आश्चर्य है, सो चिद्‌परमअणुविषे त्रिलोकीयां परंपरा स्थित हैं, इसीतें असंभवरूप मायामय है, जैसे बीजविषे वृक्ष स्थित है, तैसे चिद्‌अणुविषे जगत् स्थित है, जैसे शाखा पत्र फूल फलकरि बीज अपणे बीजत्वकों नहीं त्यागता, अरु अखंड रहता है, तैसे चिद्‌अणुके अंतर जगत्का विस्तार है, अरु अणुत्वभावकों नहीं त्यागता, अखंडही रहता है ॥ हे राक्षसी! बीज भी परिणाम करिके वृक्षभावकों प्राप्त होता है, अरु चिद्‌अणु परिणाम करिके जगत्‌रूप हो

ता है, चिद्अणुका किंचनरूप है, चिद्अणुही ऐसे देखाय देता है, वास्तवतें न द्वैतरूप है, न अद्वैत है, न बीज है, न अंकुर है, न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न कछु उपजा है, न नष्ट होता है, न अस्ति है, न नास्ति है, न सम है, न असम है, न जगत् है, न अजगत् है, केवल चिदानंद आत्मसत्ता अचिंत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, सोइ सर्वात्मा है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसे तैसे हो भासता है, हे राक्षसी! उह अन उदयही संवेदनके वशतें उदय होइकरि भासता है, जैसे बीजतें वृक्ष अनन्यरूप अनेक होइ भासता है, तैसे एक आत्मा अनेक रूप होइ भासता है, न कछु उदय हुआ है, न मिटता है ॥ हे राक्षसी! तिस चिद्अणुतें भीहकी तंतु सुमेरुकी नाई स्थूल है, जैसे भीहकी तंतुतें सुमेरु स्थूल है, तैसे चिद्अणुतें भीहकी तंतु स्थूल है, अरु दृश्यरूप है, अरु चिद्अणु दृश्य नहीं, मनसहित षट् इंद्रियोंका विषय नहीं, इस कारणतें भीहकी तंतुतें सूक्ष्म है, तिस चिद्अणुविषे अनंत सुमेरु आदिक स्थित हैं, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे राक्षसी! जिसकों आत्माका बोध हुआ है, तिसकों जगत् सुषुप्तिकी नाई होता है, सो आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप है, अरु परिणामतें रहित है, तिसविषे मुक्त पुरुष सदा स्थित है, परमार्थतें जगत् भी ब्रह्मरूप है, भिन्न भाव कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचिउपाख्याने परमार्थनिरूपणं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजाके मुखतें श्रवण करिके कर्कटीनें वनके मर्कटीरूप जीवोंके मारणेकी चपलताका त्याग कीया, अरु अंतरतें शीतल भई, अरु विश्रामकों प्राप्त भई, अरु अंतरतें तप्तता मिटी गई, अरु परमानंदकों प्राप्त भई, जैसे वर्षाकालविषे मोरनी प्रसन्न होती है, अरु जैसे चंद्रमाकों देखिके चंद्रवंशी कमल प्रफुल्लित होता है, जैसे मेघके शब्दकरि बगली गर्भवान् होती है, तैसे राजाके वचन श्रवण करिके कर्कटी परमानंदकों प्राप्त भई ॥ राक्षस्युवाच ॥ बडा आश्चर्य है! बडा आश्चर्य है! हे राजा! तुमनें महा पा

वन वचन कहे हैं, तातें तुमारा बोध मैं विमल देख्या है, अरु अमृतसार है, अरु बोधरूपी सूर्य है, अरु शीतल है, समरसकरि पूर्ण है, अरु शुद्ध है, राग द्वेष आदिक मलतें रहित है, जैसे पूर्णिमाका चंद्रमा शीतल अमृतकरि पूर्ण शुद्ध होता है, तैसे तुमारा बोध है, विवेकी जगत्विषे पूज्य है, तुमारे वचनोंकरि मेरी बुद्धि प्रफुल्लित हो आई है, जैसे चंद्रमाकों देखिके कमलनी प्रफुल्लित होइ आती है, जैसे फूलों साथ मिलिकरि वायु सुगंधमान होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे संतोंकी संगति करि बुद्धि सुखकों प्राप्त होती है ॥ हे राजन्! उह कवन है, जो दीपक हाथविषे होवै, अरु टोयेविषे गिरै? तैसे उह कवन है, जो संतोंके संगकरि दुःखी रहै, उह कवन है, जिसके हाथविषे दीपक होवै, अरु तमकों देखै, तैसे उह कवन है, जो संतोंकी संगति करै, अरु दुःखी रहै, संतोंके संगकरि सबही दुःख नष्ट होते हैं ॥ हे राजन्! तुम जो इस बनविषे आये हौ, सो क्या प्रयोजन है? तुम तौ पूजने योग्य हौ, तुमारा प्रयोजन कहौ ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी! मेरे नगरविषे जो मनुष्य रहते हैं, तिनकों एक विषूचिका व्याधिरोग आनि लग्या है, तिस विषूचिकाकरि उह बहुत कष्टमान भये हैं, औषध भी बहुत करी रहे हैं, अरु दुःख दूर नहीं होता, अरु हमनें सुन्या है, जो एक राक्षसी है, उही जीवोंकों कष्ट देती है, अरु तिसका मंत्र भी है तिस मंत्रके पढेतें निवृत्त हो जाती है, तिस तुमसारखेके मारणे निमित्त मैं रात्रिकों वीरयात्रा करणे निकस्या हौं ॥ हे राक्षसी! जो उह राक्षसी सो तूंही है, तौ हमारा तुमारा संवाद भी हुआ है, तिसका अंगीकार करिके प्राणियोंकी हिंसा करणी छोड देहु, किसीकों कष्ट न देहु ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! तुमनें सत्य कहा है, अब मैं हिंसा धर्मका त्याग कीया है, किसी जीवकों न मारोंगी ॥ राजोवाच ॥ हे राक्षसी! तैंनें कहा मैं अब किसी जीवकों न मारौंगी, सो तेरा आहार तौ जीव हैं, जीवोंकों मारे विना तेरे शरीरका निर्वाह कैसे होवैगा? राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! छसौ वर्ष मैं समाधिविषे स्थित रही थी, तिसतें उपरांत समाधि खुली, तब क्षुधा

लगी, अब बहुरि हिमालय पर्वतकी कंदराविषे जाइकरि निश्चल समाधिविषे जुडौंगी, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे स्थित होउंगी, जब समाधितें उतरौंगी, तब अमृतकी धारणाविषे विश्राम करौंगी, जब तिसतें उतरौंगी; तब शरीरका त्याग करौंगी, परंतु हिंसा न करौंगी ॥ हे राजन्! जिस प्रकार मैं हिंसा धर्मकों अंगीकार किया है, सो सुण॥ मुझकों क्षुधा जब बडी लगी, तब तिसके निवारणके अर्थ हिमालय पर्वतके उत्तर शिखर उपर एक वन है, तिसविषे एक सोनेकी शिला है, तिसके पास मैं लोहेके स्तंभकी नांई आकाश साथ जीवोंके नाश निमित्त तप करणे लगी, जब बहु वर्ष व्यतीत भये, तब मन वांछित वर मुझकों ब्रह्माजीनें दीया, तब मेरे दो शरीर भये, एक आधारभूत सूर्यकी नांई, अरु दूसरा पुर्यष्टकरूप भया, तब मैं विषूचिका नाम राक्षसी भई, तिस शरीरसाथ मैं अनेक जीवोंकों भोजन करौं, अंतर जाय प्रवेश करौं, परंतु ब्रह्माजीनें मुझकों कहा है, जो गुणवान् होवैंगे, तिनपर तेरा बल न चलैगा, अरु जहां ओं मंत्र पढेंगे, तहां भी तेरा बल न चलैगा, तूं निवृत्त हो जावैगी॥ हे राजन्! उही मंत्रका उपदेश अब तुम भी अंगीकार करौ, तिस मंत्रके पाठकरि सबके व्याधि रोग नष्ट होवैंगे, ब्रह्माजीका जो उपदेश है, तिसकों तुम नदीके तटपर जाइकरि पवित्र होइकरि शीघ्रही ग्रहण करौ, तिसके पाठकरि तेरी प्रजाका दुःख नष्ट हो जावैगा ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार जब अर्धरात्रिके समय राक्षसीनें कहा, तब निकट नदीके तीरपर राजा, मंत्री, अरु राक्षसी तीनों गये, अरु अन्वयव्यतिरेक करिके आपसमों सुहृद भये, तीनों पवित्र होकरि नदीके तीरपर बैठे, तब जो मंत्र राक्षसीकों ब्रह्माजीनें उपदेश किया था, सोइ मंत्र विषूचिका प्रीतिसंयुक्त राजाकों उपदेश करती भई, जिसके जपणेकरि कार्य सिद्ध होवै, तिस मंत्रका क्रमकरि उपदेश कीया, अरु चलणे लगी, तब राजानें कहा ॥ हे महादेवी! तूं हमारी गुरु है, तुमारे विद्यमान हम कछु प्रार्थना करते हैं, सो अंगीकार करणा, जो महा पुरुष हैं, तिनका सुंदर सुहृदपणा बढता जाता है, अरु तुमारा शरीर भी इच्छाचारी है, तातें लघु शरीरकों धारौ, मनके हरणेहारे भूषण वस्त्र संयुक्त

स्त्रीका शरीर धारिके कोउ काल हमारे नगरविषे निवास करौ ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भोजन देणेकों तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरौंगी, तौ भी मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसकों तृप्त करणा समान जनोंकी नांई तौ नहीं, जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसेही रहता है, अन्यथा नहीं होता॥ राजोवाच ॥ हे कल्याणरूपी! तूं स्त्रीसमान शरीर धारिके हमारे नगरविषे चलकरि रहहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे, सो हम तेरे विद्यमान करैंगे, तब तूं स्त्रीरूपकों त्यागिकरि राक्षसी शरीरसाथ तिनकों ले जानां, अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करनां, काहेतें जो बडे भोजन करनेवालेकों एकांत खाना सुखरूप है, तिनकों भोजन करिके तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्रातें जागै तब समाधिविषे स्थित होना, जब समाधितें उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदीजन एकठे करि रखैंगे, तिनकों ले जाना, तिनकों भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं, अरु जिसकी हिंसा करता है, तिसका मरण भी नहीं, उस उपर दया करता है, काहेतें जो पाप करनेतें छूटता है॥ ॥ राक्षस्युवाच ॥ हे राजन्! तुम युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरीकरि तुमारे साथ चलती हों, युक्तिपूर्वक वचनकों सब कोउ मानते हैं॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिके बहुत कंकन आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे, अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं, अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसकों अपणे ठाम ले आया, एकांत स्थानोंविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिकों परस्पर चर्चा करते रहैं, तब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अंतःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रीयोंका व्यवहार है, सो करती रहै, राजा अरु मंत्री अपणे व्यवहारविषे लगै, जब षट् दिन व्यतीत भये तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे, उह सबही राजानें तिस कर्कटीके वि

द्यमान कीये, तब उसनें राक्षसीका शरीर धारिके उनकों भुजामंडलविषे लीये, जैसे मेघ बुंदोंकों धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरकों चली, जैसे किसी दरिद्रीकों स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे उह प्रसन्न भई, अरु लेकरि हिमालयके शिखरकों गई, तृप्त होइके भोजन कीया, अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोइ रही, उपरांत जागिके समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसतें जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इसही प्रकार जब आवै तब उह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन एकठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, उह ले जावै, अरु हिमालयकी कंदराविषे भोजन करै, भोजन करिके बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानतें उतरै, तब बहुरि तहां आवहीं, बहुरि ले जावै ॥ हे रामजी! इस प्रकार जीवन्मुक्त होकरि उह राक्षसी प्रकृत स्वभावकों करती है, अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेह मुक्त हुआ, बहुरि जो कोउ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीकी सुहृदता होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदतावर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नांई उसकी पूजा करै, अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै, विषूचिका अथवा कोउ रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त करि देवै, इस प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब एकवार उसकों ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरात देशका राजा वाका दुःख निवारणे अर्थ एक तिसकी प्रतिमा उंच स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरा देवी, दूसरा नाम मंगला देवी, तिसका ध्यान करके पूजा करने लगे, तिसकरि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा ॥ हे रामजी! तिस प्रतिमाके विषे उह देवी आप निवास करती भई, जो कोउ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, अरु न पूजे तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तब दुःख नष्ट होवै, तिसका कार्य सिद्ध होवै, तातें जो कछु कोउ कार्य करने लगै, सो

प्रथम मंगला देवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधि करिके तिसकी पूजा करै, तिसकरि बहुत प्रसन्न होवै॥ हे रामजी! अबलग उही प्रतिमा किरात देशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोउ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसकों देती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह आनंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंनें तुझकों कहा है॥ राम उवाच॥हे भगवन्!राक्षसीका कृष्ण वपु किस निमित्त था, अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था? जैसे हुआ है, तैसे कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है, अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्तपीत भी होता है॥हे रामजी! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था,तिसके समान उसकी इह पुत्री भई, इस कारणतें इसका नाम कर्कटी भया॥ हे रामजी! इहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु न था, इहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपण निमित्त मैं तुझकों कहा है, इह आश्चर्य है, जो असत्रूप जगत्के पदार्थ हैं, सो सत्रूप होइकरि भासते हैं, अरु जो आत्मसत्ता सदा संपन्नरूप हैं, सो अविद्यमानकी नांई भासते हैं ॥ हे रामजी! वस्तुतें तौ एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगत्रूप भासता है, अरु स्वरूपतें अनन्यरूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत् कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पंद दृढ होता है,तैसा रूप होइकरि भासता है, जैसे नर रतिकाकों इकठी करिके तिसविषे अग्निकी भावना करते हैं, अरु तापते हैं, तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शांतरूप आत्माविषे जब जगत्की भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे स्तंभविषे

पुतलियां अन उदयही शिल्पीके मनविषे उदयकी नांईं भासतियां हैं, तैसे भावनाके वशतें जगत् होइ भासता है, जैसे बीजाविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, अविचार करिके भेद भासता है, विचार कियेतें जगत्भेद नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! अब इह विचार नहीं करना, जो कैसे उपजा है, कहांसों आया है, अरु कबका हुआ हैं, जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करियें ॥ जब तूं जागैगा तब हृदयकी चिद्जड ग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठती हैं, सो मेरे वचनोंकरि स्वरूप स्थित भयेतें नष्ट हो जावैंगी ॥ हे रामजी! इह सब जगत् अनर्थरूप चित्ततें उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कीयेतें शांत हो जावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मतें उपजा है, अरु सब ब्रह्मही स्वरूप है, जब तूं ज्ञानविषे जागैगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! जो जिसतें होता है, सो तिसतें व्यतिरेक होता है, अर्थ यह जो पंचमीविभक्तिकरि जो निरूपण करता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, जैसे कुलालतें घट होता है, सो कुलालतें भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हो, जो सब जगत् ब्रह्मतें उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह जगत् ब्रह्मतें उपजा है, जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंनें कहे हैं, सो दृश्यविषे हैं, शास्त्रनें उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं, वास्तव इह शब्द कोउ नहीं, जैसे किसी बालककों परछायेविषे वैताल भासता है, अरु कोउ पूछता है, जो इस बालककों वैतालनें किस भागविषे स्थित होइकरि भय दीया है, तिसकों कहता है, अमकी ठौरविषे वैतालनें भय दीया है, सो व्यवहारके निमित्त उसकों कहता है, और वैताल तौ उहां कोउ नहीं, तैसे आत्माकेविषे उपदेशनिमित्त भेदकल्पना करी है, वास्तवतें तिसविषे द्वैतकल्पना कोउ नहीं ॥ हे रामजी! ब्रह्मतें जगत् हुआ, इह अर्थ केवल व्यतिरेकविषे नहीं होताहै, जो कुलाल दंडतें घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है; स्वामी

का टहलुआ इह भिन्नके अर्थ है, अरु इह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवय हैं, सुवर्णतें भूषण हुए हैं, मृत्तिकातें घट हुए हैं, सो इह अभिन्नरूप हैं, अवयवी कोशरूप है; भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है, तैसे ब्रह्मतें उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है, अरु वास्तवतें भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखःदुख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकरि उठती हैं ॥ ॥ हे रामजी! अबोध करिके भेदकल्पना हुई है, अरु ज्ञान करिके सब कल्पना शांत हो जाती है, अशब्द पद शेष रहता है, जब तूं ज्ञान योग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंततें रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्यों की त्यों स्थित है, अज्ञानकरिके अथवा जिज्ञासीकों उपदेशनिमित्त द्वैतवादकल्पना है, बोध हुएतें द्वैतभेद कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है, तातें महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करौ, अरु जेती कछु भेदकल्पना मननें रची है, तिसके निवृत्तिअर्थ मेरे वचन श्रवण करौ ॥ हे रामजी! इह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसतें आगे जगत्की रचना करी है, जैसे मैं देख्या है, तैसे तुझकों दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेतें सब जगत् तुझकों भ्रांतिमात्र भासैगा, अरु निश्चयकों धारिके जगत्की वासना दूरतें त्यागि देवैगा, बोध करिके सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपणे आपविषे निवास करैगा, अर्थ इह जो जगत्की कल्पना त्यागीकरि अपणे स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, तातें सावधान होइकरि सुण ॥ हे रामजी! इह मनरूपी बडा रोग है, विवेकरूपी औषधकरि तिसकों शांत करै, अरु सब जगत् चित्तकरि कल्प्या है, सो शरीर आदिक वास्तव कछु नहीं, जैसे रेतिसों तेल नहीं निकसता, तैसे जगत्तें वास्तव कछु नहीं निकसता, चित्त करिके भासता है, सो चित्तरूपी संसार स्वप्नकी नांई है, अरु राग द्वेष आदिक संकल्प करिके युक्त है, तिसतें जो रहित हुआ है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त हुआ है, तातें शुभ गुणों करिके चित्तकी शुद्धता करौ, अरु

जो विवेकी हैं, सो शुभ कार्य करते हैं, अशुभकों नहीं करते, आहार अरु व्यवहार सब विचारिके करते हैं, तैसेही आर्यकी नांई तुम सचेष्टा शास्त्र अनुसार करौ, जब ऐसे अभ्यास तुमकों होवैगा, तब शीघ्रही ज्ञानवान् होहुगे, अरु ज्ञानके प्राप्त हुए सब कल्पना मिटि जावैगी, आत्मस्थिति होवैगी, इह सब जगत्रूपी चित्र मनही रचे है, जैसे मोरका इंडा काल पाइ करि अनेक रंगोंकों धारता है, तैसे मन अनेक प्रकारके जगत्कों धारता है, सो मन जड अरु अजडरूप है, जो मनविषे चेतनभाग है, सो सब अर्थका बीजरूप है, बीज कहियें सबका उपादान है, अरु तिसका जो जडभाग है, सो जगत्रूप है ॥ हे रामजी! सर्गके आदिविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व अविद्यमान थे, तिनकों विद्यमानकी नांई ब्रह्मा देखत भया, जैसे स्वप्नविषे जगत् विद्यमानकी नांई भासता है, तैसे देखत भया, सो प्रमादकरि देखत भया, जड संवेदनकरि पहाड आदिक जगत् देखत भया, अरु चेतन संवेदनकरि जंगमरूप जगत्कों देखत भया, सो सब जगत् दीर्घ वेदना है, वास्तवतें सब देहादिक शून्यरूप है, सब आत्माकरि व्यापे हुए हैं, अरु तिसका शरीर कोउ नहीं, अपणे करिके जो दृश्यरूप मन चेत्या है, सोई मन आत्माका शरीर है, सो आत्मा विस्तरणरूप है, अरु निर्मल स्थित है, मन तिसका आभासरूप है, जैसे सूर्यकी किरणांकरि जलाभास होता है, तैसे आत्माका आभास मन है, सो मनरूपी बालक जगत्रूपी पिशाचकों अज्ञानकरि देखता है, अरु ज्ञानकरिके परमात्मपद शांतरूप निरामयकों देखता है ॥ हे रामजी! जब आत्मा चैत्यताकों प्राप्त होता है, तब उही चित्तरूप दृश्य द्वैत एक ब्रह्मकों देखता है, तिसके निवृत्ति अर्थ मैं तुझकों कथा कहता हौं, तूं श्रवण करु, जो वचन दृष्टांत दार्ष्टांतसहित होता है, अरु वाणी भी मधुर होती है, अरु स्पष्ट होवै तब गुरुका वचन श्रोताके हृदयविषे पसर जाता है, जैसे जलविषे तेलकी बूंद पसर जाती है, तैसे पसर जाता है, अरु जिसका वचन दृष्टांत दार्ष्टांततें रहित होता है, अरु अर्थ स्पष्ट नहीं होता, अरु क्षोभसंयुक्त वचन कहता है, अरु अक्ष

र पूर्ण नहीं होता, सो वचन श्रोताके हृदयविषे नहीं ठहरता, उपदेष्टाका वचन भी निष्फल हो जाता है, अरु मैं तुझकों आख्यान कहता हौं, सो नानाप्रकारके दृष्टांतसहित मधुर वाणीसहित कहता हौं, अरु स्पष्ट अर्थ करके कहता हौं, जैसे चंद्रमा अपणे गृहउपर उदय होवै, अरु मंदिर शीतल हो जावै, तैसे मेरे स्पष्ट वचन अरु प्रकाशरूप अर्थ श्रवण कीयेतें तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जो मुझकों ब्रह्मानें सर्गका वृत्तांत कहा है, सो मैं तुझकों कहता हौं, एक काल मैं ब्रह्माजीपास गया था, अरु पूछा था, जो हे भगवन्! इह जगत्गण कहांतें आये हैं, अरु कैसे उत्पन्न भये हैं, तब पितामहजी मुझकों इंद्र ब्राह्मणका आख्यान कहत भया ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इह सब जगत् मनतें उपजा है, अरु मनकरिके भासता है, जैसे जलतें द्रवताकरिके नानाप्रकारके तरंगचक्र पडे फुरते हैं, सो मनके फुरणेकरि सब जगत् फुरते हैं, अरु मनरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर ! पूर्वकल्पविषे एक वृत्तांत देख्या है, सो सुण, एक समय दिनका क्षय हुआ, मैं संपूर्ण सृष्टिकों संहार करिके एकाग्रभाव होकरि रात्रिकों स्वस्थभाव होकरि रहा, जब मेरी रात्रि व्यतीत भई, अरु मैं जागा, तब उठिकरि संध्यादिककर्म विधिसंयुक्त करत भया, अरु बडे आकाशकी उर मैं देखत भया, सो तम अरु प्रकाशतें रहित व्यापित शून्यरूप इतरतें रहित मैं देखत भया, अरु चिदाकाशविषे चित्तकों जोड्या, अरु सर्गके उपजाणेका संकल्प चित्तविषे धारा, तब मुझकों शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाशविषे सृष्टि दृष्ट आई, सो कैसी सृष्टि भासी, जो बडे विस्तारसहित अरु परस्पर अदृष्टरूप, जो एक सृष्टिकों दूसरी न देखै, अरु एक एक सृष्टिविषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीनों देवता रहैं, अरु देवता, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत, पृथ्वी, नदियां, सातों समुद्र, आदिक सब सृष्टिके विस्तारकों मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दश ब्रह्मा देखै, मानों मेराही प्रतिबिंब है, मेरीही मूर्ति कमलतें उत्पन्न हुई है, अरु राजहंसके

उपर आरूढ हुए दशही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखिया, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चंद्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते हैं, मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पातालविषे भोगोंकों भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश कोल हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक हैं, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आचार करिके नरक स्वर्ग भोगते हैं, अरु मोक्षफलकों पाते हैं, सृष्टिसृष्टिविषे सप्त द्वीप हैं, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, विजलीकी नांई सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, अरु गंधर्वके नगरवत् सृष्टि देखियां; एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गुलरके फूलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंनें देख्या ॥ हे मुनीश्वर! अंतवाहक दृष्टि करके मैं उन सृष्टिकों देखियां, जब मैं चर्मदृष्टिकरि देखौं, तब कछु न भासै, दिव्यदृष्टिकरि सब कछु भासै, चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित् चित्तभ्रम होवै अरु स्पष्टही भासै, तब एक सृष्टिके सूर्यकों देखिके मैं आवाहन कीया, तब सूर्य मेरे निकट आइके प्राप्त भया, तिसकों मैं कहत भया ॥ हे देवदेवेश भास्कर! तुमकों कुशल है, ऐसे कहिकरि मैं बहुरि कहा, जो हे सूर्य, तूं कवन है? अरु इह सृष्टि कहांतें उपजी है, इह एक जगत् है कै ऐसे अनेक जगत हैं, जैसे तुम जानते हौ तैसे कहौ, तब उह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखता था, मुझकों जानिके प्रणाम कीया, अरु आनंदितवाणी कहत भया ॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्यही कारण होते हौ, तुम आपही जानते हौ, मेरेकों किसनिमित्त पूछते हौ, अरु जो लीलाके अर्थ पूछते हौ, तौ जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुमारे विद्यमान प्रार्थना करता हौं ॥

हे भगवन्! इह जो सत् असत्रूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारोंसंयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरणे विषे स्थित है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे आदित्यसमागमनं नाम एकषष्टितमः सर्गः॥ ६१॥

॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुमारा जो कल्पका दिन व्यतीत भया है,तिस कल्पविषे जो जंबुद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था, तिसकी कंदराविषे स्वर्णज्येष्ठ नाम एक तुमारा पुत्र था, सो उहां कुटी रचता भया था, तहां जाइ साधु जन निवास करते थे,तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलतें प्रगट हुआ था, सो तिस कुटीकेविषे जाइके स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नांई स्नेह था, सो स्त्री पुत्रतें रहित होत भई, जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसतें संतान न उपजै,अरु बहुत सुंदर पुत्रतें रहित थी,जैसे शरद्कालकी वेली बहुत सुंदर होती है, परंतु फलतें शून्य होती है, तैसे उह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानविषे कुंजविषे एक वृक्ष था,तिसके उपर चढि बैठे, तहां, बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करैं, अरु भोजन कछु न करैं, इस प्रकार रात्रि दिन व्यतीत करैं, बहुरि एकही अंजली पान करनेलगे, फेर तिसका भी त्याग किया, फुरनेतें रहित वृक्षकी नांईके बैठे रहे,तिनकों तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमान होइकरि तिनके निकट आये, भवानीशंकर दोनों तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षउपर बैठे हैं, तब तिनोंनें शिवकों देखिके प्रणाम कीया, अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये, जैसे दिनकी तपत करि सुकुची हुई चंद्रमुखी कमलनियां चंद्रमा उदय हुए प्रफुल्लित हो आतियां हैं, तैसे महाहिमकी नांई शिवकों देखिकरि प्रफुल्लित भई, मानों आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिके आन खडे हुए हैं, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणकों कहते भये॥ ॥ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! तूं वर माग, मैं तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझकों वांछित वर है, सो तूं माग॥ हे ब्रह्माजी! जब ऐसे शिवनें कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित

होकरि कहत भया ॥ हे भगवन्! देवदेवेश, मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो बडे बुद्धिवान् होवैं, अरु कल्याणमूर्त्ति होवैं, जिसकरि मुझकों बहुरि शोक कदाचित् न होवै ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! इस प्रकार जब ब्राह्मणनें कहा, तब ईश्वरनें कहा, ऐसेही होवैगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिके मिट जाता है, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब उह पुरुष स्त्री दोनों शिवके चरणोंकों ग्रहण करिके प्रसन्न भये, जैसे सदाशिव अरु भवानीकी मूर्ति है, तैसे उह प्रसन्न होइकरि अपणे गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती होती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे उह गर्भकरि पूर्ण भई, समय पायके दशही पुत्र तिसकों होत भये, जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई, अरु षोडश वर्षके आकारकी नांई ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावकों न प्राप्त भई, अरु उह दशही संस्कारकों ले उपजे, अरु थोडे कालविषे बडे हो गये, जैसे वर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र बडी हो जाती है, तैसे उह थोडे कालविषे बडे हो गये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनोंके माता अरु पिता दोनों शरीरकों त्यागिके अपनी गतिकों प्राप्त भये, उह दशही ब्राह्मण मातापितातें रहित भये, अपणे गृहकों त्यागि करिके कैलासके शिखरऊपर चडे, अरु परस्पर विचार करने लगे, जो उह कवन ईश्वर है, जो परमेश्वररूप है, अरु उह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेतें बहुरि दुःखी न होवैं, अरु जिसका नाश भी न होवै, जिसके पायेतें सबका ईश्वर होवै, तब एक भाईनें कहा, जो सबतें बडा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबउपर तिसकी आज्ञा चलती है, बहुरि दूसरे भाईनें कहा, मंडलेश्वरकी विभूति भी कछु नहीं, काहेतें जो उह भी राजाके अधीन होता है, तातें राजाका पद बडा होता है, बहुरि और भाईनें कहा, राजाकी विभूति भी कछु नहीं, काहेतें जो राजा चक्रवर्तीके अधीन होता है, तातें चक्रवर्तीका पद बडा है, बहुरि और भाईनें कहा, चक्रवर्ती भी कछु नहीं, उह भी यमके अधीन होता है, तातें यमका पद बडा है, बहुरि और भाईनें कहा, जो

इंद्रके आगे यमकी विभूति कछु नहीं, तातें इंद्रका पद बडा है, तब और भाईनें कहा, इंद्रकी विभूति भी कछु नहीं, ब्रह्माके एक मुहूर्त्तविषे इंद्र नष्ट हो जाता है, तब सबसें ज्येष्ठ बडे भाईनें कहा, जैसे मृगके समूहकों मृग कहै, तैसे छोटे भाईकों बुद्धिवान् बडा भाई गंभीर वचनकरि कहत भया, जेती कछु विभूति हैं, सो सब ब्रह्माके कल्पविषे नष्ट हो जाती हैं, तातें बडा ऐश्वर्य ब्रह्माजीका है, इसतें बडा और कोउ नहीं ॥ हे भगवन्! इस प्रकार जब बडे भाईनें कहा, तब सबनें कहा, भली कही; भली कही! तब बडे भाईकों कही, हे तात, जो सब दुःखका नाशकर्त्ता जगत्पूज्य ब्रह्मपद है, तिसकों हम कैसे प्राप्तहोवें? जिस उपायकरि प्राप्त होवें, सो उपाय कहौ, बहुरि भाई कहत भया, हे भ्रात, और सब भावनाकों त्याग करौ, अरु इह भावना निश्चय करिके करौ, जो हम ब्रह्मा हैं, अरु पद्मासनपर बैठे हैं, मैं ब्रह्मा हौं, अरु सब सृष्टिका कर्त्ता हौं, अरु सबकी पालना कर्त्ता हौं, अरु संहारकर्त्ता मैंही हौं, जेती कछु जगत्जाल है, तिसका आश्रयभूत मैंही हौं, सब सृष्टि मेरे अंगविषे स्थित है, ऐसे निश्चयकों धरिके बैठो, अरु सजातीय भावनाकों धरिके बैठौगे तब तुमकों ब्रह्माका पद प्राप्त होवैगा ॥ हे भगवन्! जब इस प्रकार बडे भाईनें कहा, तब छोटे भाइयोंनें कहा, हे तात! तुमनें यथार्थ कहा है, जैसे तुमनें कहा है, तैसेही हम करते हैं, ऐसे मानिकरि बडे भाईसहित सब ध्यानविषे स्थित भए, जैसे कागदउपर मूर्ति लिखी होती है, तैसेही दशों ध्यानविषे जुरि गये, अरु मनविषे यही चितवना करते भये, जो मैं ब्रह्मा हौं, कमल आसन मेरा है, मैं सृष्टिकर्त्ता हौं, भोक्ता भी मैंही हौं, महेश्वर भी मैंही हौं, सांगोपांग जगत् कर्म मैंनेंही रचे हैं, अरु सरस्वती गायत्रीसहित जो वेद हैं, सो मेरे आगे आय खडे हैं, अरु इह लोकपाल अरु सिद्धोंके मंडलोंकों पालणेवाला हौं, सो सब मैंनेंही रचे हैं, स्वर्गलोक, भूमिलोक, पाताललोक, पाहाड, नदीयां, समुद्र सब मैंनेंही रचे हैं, अरु महाबाहु वज्रके धारणेहारा यज्ञोंका भोक्ता इंद्र मैंनेंही रचा है, अरु सूर्य मेरी आज्ञासें तपता है, अरु जगत्की मर्यादानिमित्त सब लोकपाल मैंनेंही रचे हैं, जे

से गौकों गोपाल पालता है, तैसे लोकपाल मेरी आज्ञा पाइकरि जीवोंकों पालते हैं, अरु जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि मिट जाते हैं, तैसे जगत् मुझतें उपजा है, बहुरि मेरेहीविषे लीन होता है, अरु मैं सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, अरु क्षण दिन मास वर्ष युग आदिक काल मेराही रचा हुआ है, मैंनेंही सब कालके नाम रखे हैं, मैंही दिनकों उत्पन्न करता हौं, अरु रात्रकों लीन करि लेता हौं, सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, पूर्ण परमेश्वर मैंही हौं ॥ ॥ हे ब्रह्माजी! इस प्रकार उह दशही भाई भावना धारिकरि बैठे रहे, मानों कागदउपर मूर्त्ति लिखी छोडी है, तैसे सब वृत्तिके जालकों अंतरतें त्यागिकरि एक ब्रह्माके ध्यानविषे जुरि गये ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रक॰ ऐंदवसमाधिवर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! इस प्रकार इंद्रके दशही पुत्र पितामहकी भावना धारिकरि बैठे, तब तिनके देह धूप अरु पवन करिके सूकी गए, जैसे ज्येष्ठ आषाढविषे कमलपत्र सूकीकरि गिर पडते हैं, तैसे तिनके देह सूकीकरि गिर पडे, तब वनचर जो जीव थे, सो तिनकों भक्षण करि गये, अरु शरीरकों आपोआप खैंचे, जैसे फलकों वानर पकडते हैं, अरु विदारण करते हैं तैसे इनके देहकों विदारणे लगे, अरु तिनकी वृत्ति ध्यानतें छूटके बाह्य देहादिक अध्यासविषे न आई, ब्रह्माकी भावनाविषेही लगी रही, इस प्रकार जब चतुर्युगका अंत भया, अरु तुमारे कल्पदिनका क्षय होने लगा, द्वादश सूर्य तपणे लगे, पुष्कल मेघ गर्जिके वर्षने लगे, बडा भूचालन भया, वायु चलने लगा, समुद्र उछल पडे, सब जलही जल हो गया, सब भूत क्षयकों प्राप्त भये, सबकों संहार करके रात्रकों तुम आत्मपदविषे जाय स्थित भये, तब उनके शरीर भी नष्ट हो गये, अरु पुर्यष्टक उनके आकाशविषे आकाशरूप होयके ब्रह्माके संकल्पकों लेकरि तीव्र भावनाके वशतें दशों सृष्टिसहित दश ब्रह्मा होत भये, भिन्न भिन्न अपनी अपनी सृष्टिके ब्रह्मा भये, अब तुम जागिकरि देखो हौ जो आकाशविषे फुरते हैं ॥ हे भगवन्! तिन दश ब्राह्मणके चित्त आकाशमेंही सृष्टि स्थित हैं, तिन दश सृष्टिके मध्यविषे एक सृष्टिका सूर्य मैं

हौं, आकाशविषे मेरा मंदिर है, काल जो है क्षण दिन पक्ष मास सब युग सो मुझहींकरि होते हैं, इस क्रिया विषे मुझकों उनोंनें जोडा है ॥ हे भगवन्! इस प्रकार मैं तुझकों दश ब्रह्मा अरु दश सृष्टि कही हैं, सो सृष्टि सब मनोमात्र हैं, आगे जैसी तुमारी इच्छा है, तैसे करौ, भिन्न भिन्न कल्पना जगत्जाल विस्तारकों प्राप्त भई है, सो इंद्रजालकी नांई है, चित्तके भ्रम करिके पडे भासते हैं ॥ इति श्रीयो० उ० जगत्रचनानिर्वाणवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे ब्राह्मण! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, इस प्रकार जब ब्रह्माके सूर्यनें ब्रह्माकों कहिकरि सो तूष्णीं हुआ, तब तिसके वचनोंकों विचारिकरि मैं कहत भया, हे भानु! तुमनें सृष्टि दश कही तिसतें अब मैं क्या रचौं? इह तौ दश सृष्टि हुई हैं, अरु दशही ब्रह्मा हैं, अब मेरे रचणेकरि क्या सिद्ध होवैगा ॥ हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार मैंनें कहा तब सूर्य विचार कर कहत भया॥ सूर्य उवाच ॥ हे प्रभो! तुम तौ निरिच्छित हो, तुमारेविषे इच्छा कछु नहीं, सृष्टि रचणेकी, सृष्टिका रचणा तुमकों विनोदमात्र है, किसी कामनाके निमित्त नहीं रचते, तुम निष्कामरूप हौ, जैसे जल करिके सूर्यका प्रतिबिंब होता है, जल विना प्रतिबिंबकी कल्पना नहीं होती, तैसे संवेदन करिके तुमारेविषे सृष्टिकी रचना होती है, अज्ञानीकों तुम सृष्टिकर्ता भासते हौ, तुम सदा ज्यौंके त्यौं निष्क्रियरूप हौ॥ हे भगवन्! तुमकों शरीरादिककी प्राप्ति अरु त्यागविषे रागद्वेष कछु नहीं, उत्पत्ति अरु संहारकी तुमारेविषे कल्पना कछु नहीं, लीलामात्र तुमतें सृष्टि होती है, जैसे सूर्यकरिके दिन होता है, अरु सूर्यके अस्त होणेकरि दिन लय होता है, अरु सूर्य असंसक्तरूप है, तैसे तुमारेविषे संवेदनके फुरणेकरि सृष्टि होती है, अरु संवेदनके अस्फुर हुए सृष्टिका लय होता है, अरु तुम सदा असंसक्त हौ, अरु जगत्की रचना तुमारा नित्यकर्म है, तिन कर्मके त्याग कियेतें तुमकों कछु अपूर्व वस्तु भी प्राप्त नहीं होती, तातें जो कछु तुमारा नित्यकर्म है, सो तुम करौ ॥ हे जगत्पते! महापुरुष जो होते हैं, सो जो कछु उनकों प्राप्त होता है, तिसमें यथाप्राप्त असंसक्त होइकरि बिचरते हैं, कार्यकों करते हैं,

जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिबिंबका अंगीकार करता है, तैसे महापुरुष यथाप्राप्त कर्मकों असंसक्त होइकरि अंगीकार करते हैं, जैसे ज्ञानवान्कों कर्म करणेविषे कछु प्रयोजन नहीं, तैसे तिसकों अकरणेविषे कछु प्रयोजन नहीं, करणा अकरणा दोनों तिसकों सम हैं, इस कारणतें दोनोंविषे सुषुप्तिरूप हौ ॥ हे भगवन्! तुम तौ सदा सुषुप्तिरूप हो, तुमकों उत्थान किसी प्रकार नहीं, तातें तुम सुषुप्ति प्रबोध होकरि अपणे प्रकृत आचारकों करौ, जो इंद्र ब्राह्मणोंके पुत्रोंकी सृष्टिकों देखौ, तब भी विरुद्ध कछु नहीं, जो ज्ञानदृष्टिकरि देखौ तौ एकही ब्रह्म अद्वैत है, और कछु नहीं बना, अरु जो चित्तदृष्टिकरि देखौ तब संकल्परूप अनेक सृष्टि फुरतियां हैं, तिनविषे आस्था करणी क्या है? अरु जो चर्मदृष्टि करिके देखौ तौ तुमारी सृष्टि भासतीही नहीं, उनके साथ तुमारे क्या है? उनकी सृष्टि उनहीके चित्तविषे स्थित है, अरु उनकी सृष्टिकों तुम नाश भी न करी शकौंगे, काहेतें जो कछु इंद्रियां साथ कर्म होता है, तिसके नाश करणेकों समर्थ होता है, परंतु मनके निश्चयकों नाश नहीं कर शकता ॥ हे भगवन्! जो दृढ निश्चय जिसके चित्तविषे हो गया है, तिसकों उह निवृत्त करै, तब निवृत्त होता है, और कोउ निवारणेकों समर्थ नहीं, देह नष्ट होवै, परंतु निश्चय नष्ट नहीं होता, जो चिरकालका निश्चय दृढ होइ रहा, तिसका स्वरूपतें नाश नहीं होता ॥ हे भगवन्! जो मनविषे दृढ निश्चय हो रहा है, सोइ पुरुषका रूप है, तिसका निश्चय और किसीकरि नहीं होता, जैसे जलके सींचणेकरि पर्वत नहीं चलायमान होता, तैसे चित्तका निश्चय औरकरि नहीं चलायमान होता, इति श्रीयो० उ० ऐंदवनिश्चयकथनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥ ॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे देवेश! इसपर एक पूर्व इतिहास हुआ है, सो तुम श्रवण करौ, एक इंद्रद्युम्न नाम राजा था, तिसकी कमलनयनी स्त्री थी, तिसका नाम अहल्या था, तिसके नगरविषे इंद्र नाम एक पुरुष था, सो ब्राह्मणका पुत्र बहुत सुंदर बडा बलवान् था, अरु अहल्या राजाकी पट्टराणी थी, तब तिस राणीनें पूर्वकी अहल्या गौतमकी स्त्री अरु इंद्रकी कथा सुणी, तब

एक सहेलीनें कहा, हे राणी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसे तूं है, अरु जैसा उह इंद्र सुंदर था, तैसे तुमारे नगर विषे भी एक इंद्र ब्राह्मण है॥ हे भगवन्! जब इस प्रकार राणीनें सुन्या, तब उस इंद्रविषे राणीका अनुराग हुआ, परंतु उह राणीकों प्राप्त न होवै, राणीका शरीर इसी कारणतें सूकता जावै, तब राजानें सुन्या, जो इसकों गरमीका कछु रोग है, तिसके निवारणे अर्थ केलेके पत्र और शीतल औषध तिसकों दिलवाये, परंतु उसकों वांछित पदार्थ कोउ दृष्ट न आवै, खान पान शय्यादिक जेते कछु इंद्रियोंके वांछित पदार्थ हैं, सो तिसकों सुखरूप कोउ न भासैं, उह दिनदिनविषे पीत वर्ण होती जावै, अरु इंद्रके वियोग करिके तलफत रहै, जैसे जलविना मच्छी मरुस्थलविषे तलफै, तैसे उह तलफती रहै, अरु कहै, हा इंद्र, हा इंद्र, ऐसे विलाप करती रहै, लोकलाजकों त्यागि दीनी, उस इंद्रविषे बहुत स्नेह बढि गया, तब विचारकरि एक सखीनें कहा, हे राणी! मैं इंद्र ब्राह्मणकों ले आती हौं, जब इस प्रकार सखीनें कहा; तब राणी सावधान हो आई, जैसे चंद्रमाकों देखिके कमलनी खिल आती है, तैसे उसके शब्दकरि राणी खिल आई, तब उह सखी ब्राह्मणके घर गई, उस इंद्रकों प्रबोध करिके रात्रिके समय अहल्याके पास ले आई, तब गोप्य स्थानविषे एकठे भये, तहां परस्पर लीलाकरि अरु दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहकरि बंधायमान भया, अरु बहुत प्रसन्न भी भये, जैसे चकवी अरु चकवेका आपसमें स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, जैसे रति अरु कामदेवका स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, एक दूसरे विना एक क्षण भी रहि न शकै, और सब क्रिया उनकी निवृत्त हो गई, अरु लज्जा भी दूर हो गई, जैसे चंद्रमाकों देखिके चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होवै, तैसे एक दूसरेकों देखिके उह प्रसन्न होवै॥ हे भगवन्! ब्रह्माजी उस राणीका भर्त्ता भी बडा गुणवान् था, परंतु राणीनें भर्त्ताका त्याग कीया, अरु इंद्रसाथ उसका परस्पर स्नेह भया, जब राजानें उनका संपूर्ण वृत्तांत श्रवण कीया, तब वलकरि इनकों दंडताडना करावणे लगा, परंतु उनकों खेद कछु न होवै, जब चिक्कडविषे उनकों डारै, तब

कमलकी नांई उपरही रहैं, कष्ट कछु न होवै, बहुरि बरफविषे उनकों डारि दीये तौ भी खेदवान् न हुवे, तब राजानें कहा, हे दुर्मतियो! तुमकों दुःख कछु क्यौं नहीं होता? उनोंनें कहा, हमकों दुःख कैसे होवै, हम तौ आपकों भी नहीं जानते, तब अहल्यानें कहा, मुझकों सब इंद्रही भासता है, भिन्न दुःख कहां होवै, इंद्रनें कहा, मुझकों सब अहल्याही भासती है, भिन्न दुःख कहां होवै, तेरे डंड करनेकरि हमकों कछु दुःख नहीं होता, परस्पर हम हर्षवान् हैं, तब राजानें उनकों बांध डारै, बहुरि अग्निविषे डार दीये, तौ भी जले नहीं, बहुरि हस्तिके चरणोंविषे डार दीये, तौ भी कष्ट कछु न भया, तब राजानें कहा, रे पापीयो! तुमकों अग्नि आदिकविषे दुःख क्यौं नहीं होते, तब इंद्रनें कहा, हे राजन्! जेती कछु जगत्जाल है, सो मनविषे स्थित है, अरु जैसा मन है, तैसा रूप पुरुषका है, जैसा निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसकों दूर करणेकों कोउ समर्थ नहीं, भावै सो डंड हमकों दे, परंतु कछु दुःख नहीं होवै, काहेतें जो हमारे हृदयविषे परस्पर प्रतिभा हो रही है, जो कोउ अनिष्ट हमकों होवै, तब दुःख भी होवै, अनिष्ट तौ कोउ नहीं तब दुःख कैसे होवै? हे राजन्! जो कछु मनविषे दृढीभूत होता है, सोई पडा भासता है, तिसका निश्चय दूर कोउ नहीं करि शकता, शरीर नष्ट हो जाता है, परंतु मनका निश्चय नाश नहीं होता ॥ हे राजन्! जो मनविषे तीव्र संवेग होता है, सो वर अरु शापकरि भी दूर नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वतकों मंदमंद वायु चलाय नहीं शकता, तैसे मनके निश्चयकों कोउ नहीं चलाय शकता, इसी कारणतें कहा है, जो मेरे हृदयविषे इसकी मूर्त्ति स्थिरीभूत है, इसके हृदयविषे मेरी मूर्त्ति स्थिरीभूत है, इसकों सब जगत् मैंही भासता हौं, अरु मुझकों सब जगत् इही भासती है, जो कछु दूसरा भासै तब दुःख भी होवै, जैसे लोहेके कोटविषे होवै तिसकों दुःख देणेकों कोउ समर्थ नहीं, तैसे मुझकों दुःख कोउ नहीं, जहां मैं जाता हौं, तहां सब उरतें अहल्याही भासती है, तातें दुःख कोउ नहीं, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी वर्षाविषे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे हमकों दुःख नहीं होता ॥ हे राजन्! मन

का नाम अहल्या है, अरु मनका नाम इंद्र है, अरु मननें सब जगत् रचा है, जैसा जैसा मनविषे दृढ निश्चय होता है, तैसाही भासता है, सुमेरुकी नांई स्थिर हो जाता है, नष्ट नहीं होता, जैसे पत्र, फूल, फल, टासके काटेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, जब बीजही नष्ट होवै, तब वृक्ष नष्ट होता है, तैसे शरीरके नष्ट हुएतें मनका निश्चय नष्ट नहीं होता, जब मनका निश्चयही उलट पडै, तबही दूर होता है, एक शरीर जब नष्ट होता है, तब और शरीर धारि लेता है, जैसे स्वप्नविषे इह शरीर रहता है, अरु और शरीर धारिके चेष्टा करता है, तौ शरीरके अधीन हुआ क्या? तैसे शरीरके नष्ट हुए मनका निश्चय दूर नहीं होता, जब मन नष्ट होवै, तब शरीरके होते भी कछु क्रिया सिद्ध नहीं होती, तातें सबका बीज मन है, जैसे पत्र टास फल फूल तिन सबनका कारण जल है, तैसे सब पदार्थका कारण मन है, जैसा चित्त है, तैसा रूप पुरुषका है, तातें जहां जाता है, तहां सब औरतें राणी भासती है, मुझकों दुःख कैसे होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्रवाक्यं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे भगवन्! इस प्रकार जब इंद्र ब्राह्मणनें कहा, तब कमलनयन राजा समीप जो भरत नाम मुनीश्वर बैठा था, तिसकों राजा कहत भया, हे सर्व धर्मोंके वेत्ता, भरत मुनीश्वर, तुम देखौ इह कैसे ढीठ पापात्मा हैं, जैसा इनका पापहै, तिनके अनुसार इनकों शाप देहु, जो इह मरि जावैं, जो मारने योग्य न होवै, तिसकों राजा मारै, तब राजाकों पाप होता है, जैसे तिसके मारणेतें पाप होता है, तैसे पापीकों न मारणेतें भी पाप होता है, तातें यह पापीयोंकों शाप देहु, जो यह नष्ट हो जावैं ॥ हे भगवन्! जब इस प्रकार राजा शार्दूलनें कहा, तब भरत मुनिनें तिनके पापकों विचारिके कहा, अरे पापीयो, तुम मरी जाओ, जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब उस इंद्र ब्राह्मणनें कहा, रे दुष्टो, तुमोंनें शाप दीया, तिससें कहा होवैगा? तिस करिके शरीर नष्ट होवैगा, तिसकरिके हमारा मन तौ नष्ट होनेका नहीं, तुम भावै लक्ष यत्न करो, तिस मनकरि शरीर होवैंगे, हमारेकों मनके नष्ट हुए विना

विपर्ययदशा नहीं होती, ऐसा कहिकरि दोनों पृथ्वीपर गिर पडे, जैसे मूलके काटेतें वृक्ष गिर पडता है, तैसे उह गिर पडे, अरु वासनासंयोग जो थे, तिसकरि दोनों मृग भये, तहां भी परस्पर स्नेहविषे रहे, बहुरि तिस जन्मकों त्यागिके पक्षी जन्मकों पाया ॥ हे ब्रह्माजी! तिस देहका भी त्याग कीया, अब हमारी सृष्टिविषे तप करता पुण्यवान् ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी भये हैं, तातें तुम देखौ जो भरत मुनिनें शाप दीया, तब उनके शरीर नष्ट हुए, परंतु मनका जो कछु निश्चय था, सो नष्ट न भया, जहां शरीर पावै, तहां दोनों एकठेही रहैं, आपसमें अकृत्रिम प्रेमवान् भये, सो और किसकरि आनंदवान् न होवैं ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥ ॥ भानुरुवाच ॥ हे नाथ! तूं देख जो जैसा मनका निश्चय होता है, तिसके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयकों कोउ दूर नहीं करी शकता है, जगत्के पति मनही जगत्का कर्त्ता है, अरु मनही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषध करिके दूर नहीं होता, जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है, सो मणिके उठाये विना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी अवरकरि दूर नहीं होता, जब मनही उलटै तबही दूर होवै, इसतें कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित हैं, तातें हे ब्रह्माजी! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिकों रचौ ॥ हे नाथ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, इनका अंत कहूं नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रय स्थित है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश इह दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, तातें चिदाकाशके आश्रय जेती तुमारी इच्छा होवै, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनंतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंनें तुमारा क्या लीया है? अपना नित्यकर्म तुम भी करौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे वसिष्ठजी! इस प्रकार जब सूर्यनें मुझकों कहा, जो सब जगत्जा

ल मनतें उठी है, तब मैं विचार करिके कहा, हे भानु! तुझनें युक्त वचन कहे हैं, जो एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, परंतु भूताकाश चित्ताकाश दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरते हैं तातें हम भी अपणे नित्यकर्मकों करते हैं, अरु जो कछु मैं तुमकों कहता हौं, सो तुम भी मानौ, मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजापति होहु, जैसे तुमारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिके अपणे दो शरीर करत भया, एक तौ पूर्वका सूर्यरूप कीया, उस सृष्टिका सूर्य हुआ, अरु दूसरा शरीर उस स्वयंभू मनुका कीया ॥ हे वसिष्ठजी! मेरी आज्ञाके अनुसार उसनें सृष्टि रची, तातें मैंनें तुझकों कहा है, जो इह जगत् सब मनका रचा हुआ है, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सोइ सफल होता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणकी सृष्टि हुई ॥ हे मुनीश्वर! देहके नष्ट हुए भी मनका निश्चय दूर नहीं होता, चित्तविषे उही भासी आता है, सो चित्त आत्माका किंचनरूप है, जैसे तिसविषे फुरना होता है, तैसाही होय भासता है, प्रथम जो शुद्ध संवित्‌रूपविषे उत्थान् हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, बहुरि जो उसविषे दृढ अभ्यास हुआ है, अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तब अधिभूतका शरीर हुए, जब अधिभूतकका अभिमानी भया तब इसका नाम जीव हुआ, अरु देहाभिमानकरि नानाप्रकारकी वासना होती है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नांई भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होवै, तब देहतें आदि लेकरि दृश्य शांत हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु दृश्य भासता है, सो ब्रह्म करिके भासता है, वास्तवतें न कोउ उपजा है, न कोउ जगत् है, इह भ्रम सब चित्तकरि रचा है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नांई भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होता है, तब देहतें आदि लेकरि सब प्रपंच शांत होता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु दृश्य भासता है, सो मन करिके भासता है, वास्तवतें न कोउ माया है, न कोउ जगत् है, इस सब भ्रम भासता है ॥ हे वसिष्ठजी! और द्वैत कछु नहीं, चित्तके फुरणे करिके अहं त्वं आदिक भ्रम भासता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके

पुत्र मनके निश्चय करिके ब्रह्मारूप होत भये, तैसे मैं ब्रह्मा हौं; शुद्ध आत्माविषे चैत्यता होती है, सोइ चैत्यता ब्रह्मारूप होइकरि स्थित है, अरु शुद्ध आत्माविषे जो चैत्यता होती है, सोई मनरूप है, तिस मनके संयोगकरि चेतनकों जीव कहते हैं, जब इसविषे जीवत्व होता है, तब अपनी देहकों देखता है, बहुरि नानाप्रकारके जगत्भ्रमकों देखता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रकों सृष्टि हुइयां, तैसे इह जगत् है, जैसे भ्रमकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो जगत् सत्य भी नहीं, अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष देखणेकरि सत्य भासता है, अरु नाशभावकरि असत्य है, सो सब मनविषे फुरता है, अरु मनके दो रूप हैं, एक जडरूप है, दूसरा चेतनरूप है, जडरूप मनका दृश्यरूप है, अरु चेतनरूप मनका ब्रह्म है, जब दृश्यकी उर फुरता है, तब दृश्यरूप होता है, जब चेतन भावकी उर स्थित होता है, तब जडभाव दृश्यरूप इसका नष्ट हो जाता है, जैसे स्वर्णके जाननेतें भूषणभाव नष्ट हो जाता है, तैसे; अरु जब जडभावविषे फुरता है, तब नानाप्रकारके जगत्कों देखता है, वास्तवतें ब्रह्मादि तृणपर्यंत सबही चेतनरूप हैं, जड तिसकों कहते हैं, जो अभावरूप होवै, जैसे लकडीविषे चित्त नहीं भासता, अरु प्राणधारियोंविषे चित्त भासता है, परंतु स्वरूपतें दोनों तुल्य हैं, काहेतें जो सब परमात्मा करिके प्रकाशता है॥ हे वसिष्ठजी! स्वरूपतें सब चेतनस्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न होवैं, तौ क्यों भासैं, चेतनताकरि उपलब्धरूप होते हैं, जड अरु चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्मविषे नहीं पाता, जडचेतनका विभाग प्रमाद दोषकरिके हैं, वास्तवतें नहीं, जैसे स्वप्नविषे दो प्रकारके भूत भासतेहैं, जड अरु चेतनरूप तिस रूपका प्रमाद होता है, तिस चेतनभूतप्राणीकों जड चेतन विभाग भासता है, अरु स्वरूपदर्शीकों सब एकस्वरूप है॥ हे मुनीश्वर! ब्रह्माविषे चैत्यता भई सो मन भया, तिस मनविषे जो चेतनभाग है, सो ब्रह्मा है, अरु जडभाग है, सो अबोध है, जब अबोधभाव होता है, तब दृश्य भ्रमकों देखता है, जब चेतनभावविषे स्थित होता है, तब शुद्धरूप होता है॥ हे मुनीश्वर! चेतनमात्रविषे अहंकार

उत्थान दृश्य है, अरु परमार्थतें कछु भेद नहीं, जैसे तरंग जलतें भिन्न नहीं, तैसे अहं चेतनमात्रतें भिन्न नहीं होता, सबकी प्रतीत ब्रह्महीविषे होती है, सो परम पद है, सब दुःखोंतें रहित है, सोई शुद्ध चित्त जीव चैत्यभावकों चेतता है, तब जडभावकों देखता है, जैसे स्वप्नविषे कोउ अपना मरणा देखता है, तैसे उह चित्त जडभावकों देखता है, सो आत्मा सर्वशक्ति है, कर्ता है, तौ भी कछु नहीं करता, तिसके समान और कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर! इह जगत् कछु वास्तवतें उपजा नहीं, चित्तके फुरणे करिके भासता है, जब चित्तका फुरणा होता है, तब जगतजाल भासता है, जब चेतन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनका जडभाव नहीं रहता, जैसे पारसमणिके मिलापतें लोहा स्वर्ण हो जाता है, बहुरि लोहाभाव तिसका नहीं रहता, तैसे जब मन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनकी जडता दृश्यभाव नहीं रहता, अरु जैसे सुवर्णकों शोधन करता है, तब मैल जलता है, शुद्धही शेष रहता है, तैसे चित्त जब आत्माविषे स्थित होता है, तब जडभाव इसका जलि जाता है, शुद्ध चेतनमात्र शेष रहता है, अरु वास्तवतें पूछे तौ शुद्ध भी द्वैतविषे होता है, आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, तातें शुद्ध कैसे होवै, जैसे आकाशके फूल वृक्ष वास्तवतें कछु नहीं, तैसे शोधन भी वास्तवतें कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर! जबलग आत्माका अज्ञान है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब आत्माका बोध होता है, तब जगत्भ्रम नष्ट हो जाता है, इह जगत्भ्रम चित्तविषे है, जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, इस उपर अहल्या अरु इंद्रका दृष्टांत कहा है, तातें जैसी भावना दृढ होती है, तैसा होइ भासता है ॥ हे वसिष्ठजी! जिसकों इही भावना दृढ है, जो मैं देह हौं, सो पुरुष जो कछु चेष्टा करता है, सो देहके निमित्त करता है, तिस कारणतें बहुत कालपर्यंत कष्ट पाता है, जैसे बालक वैतालकी कल्पना करता है, तिसकरि आप भय पावता है, तैसे देहविषे अभिमान करिके पुरुष कष्ट पावता है, अरु जिसकी भावना देहविषे निवृत्त भई है, अरु शुद्ध चेतनभावविषे प्राप्त भई है, तिसका देहादिक जगत्भ्रम शांत हो जाता

है॥ इति श्रीयोग० उ० जीवक्रमोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः॥६७॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार ब्रह्माजीनें मुझकों कहा, तब मैं बहुरि प्रश्न कीया, जो हे भगवन्! तुमोंनें कहा जो शापविषे मंत्रादिकोंका बल होता है, सो शाप भी अचलरूप है, मिटता नहीं,सो मैं ऐसे भी देखा है, जो शाप करिके मन,बुद्धि, इंद्रियां भी जडीभूत हो जातियां हैं, ऐसे तौ नहीं, जो देहकों शाप होवै, अरु मनकों न होवै॥ हे भगवन्! मन अरु देह तौ अनन्यरूप हैं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे घृत अरु चिकनाईविषे भेद नहीं, तैसे मन अरु जगतविषे भेद नहीं, अरु जो कहियें देह कछु वस्तु नहीं, चैतन्यही चित्त है, देह भी चित्तविषे कल्पित है, जैसे स्वप्नदेह होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो एकके नष्ट हुए, दोनों क्यों नहीं नष्ट होते, तैसे देहके शापकरि चाहियें जो मनको शापभी लगि जावै, सो मैं देख्या है, जो शापकरि भी जडीभूत हो गये हैं, अरु तुम कहते हौ, देहका कर्म मनकों नहीं लगता, सो कैसे जाणियें॥ ब्रह्मोवाच॥ हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोउ नहीं, जो सब कर्मकों त्यागिके पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेतें सिद्ध न होवै, पुरुषार्थ कियेतें सब कछु होता है, ब्रह्मा आदि चेटीपर्यंत जिस जिसकी भावना होती है, तैसा रूप हो भासता है, अरु सब जगत्के दो शरीर हैं, एक मनरूपी शरीर है, सो चंचलरूप है, दूसरा अधिभूतक मांसमय शरीर है, तिसका कीया कार्य निष्फल है, अरु जो मन करिके चेष्टा होती है, सो सफल होती है॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषकों मांसमय शरीरसाथ अहंभाव है, तिसकों आधि व्याधि अरु शाप भी अवश्य लगता है, अरु मांसमय शरीर जो मूक है, गुंगा है, अरु दीन है, अरु क्षणनाशी है, इससाथ जिसका संयोग है, सो दीन रहता है, अरु चित्तरूपी शरीर चंचल है, अपणा चित्त वश किसीकों नहीं होता, अर्थ यह जो वश करणा महाकठिन है, जब दृढ वैराग्य अभ्यास होवै, तब वश होवै, अन्यथा नहीं होता, मन महाचंचल है, अरु इह जगत् मनविषे है, जैसा जैसा मनविषे निश्चय है, सो दूर

नहीं होता, मांसमयका कीया सफल नहीं होता, अरु जो मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जिन पुरुषोंनें चित्तकों आत्मपदविषे स्थित कीया है, तिनकों अग्निविषे डारियें तौ भी दुःख कछु नहीं होता; अरु जलविषे डारियें तौ भी दुःख नहीं होता, काहेतें जो उनका चित्त बाह्य शरीरादिक भावकों ग्रहण नहीं करता, आत्माविषे स्थित होता है॥ हे मुनीश्वर! जो सब भावकों त्यागिकरि मनका निश्चय जिसविषे दृढ होता है, सोइ भासता है; जहां मन दृढीभूत होकरि लगता है, तिसकों उही भासता है, और किसी संसारके कष्टकरि अरु शापकरि मन चलायमान नहीं होता, अरु जो किसी दुःख शापकरि मन विपर्ययभावकों प्राप्त हो जावै, तौ जाणियें जो इह दृढ लगा न था, अभ्यासकी शिथिलता है॥ हे मुनीश्वर! मनकी तीव्रताके हिलावणेकों किसी पदार्थकी शक्ति नहीं, काहेतें जो सृष्टि मानसी है, तातें मनसाथ मनकों समाय चित्तकों परमपदविषे जोडौ; जब चित्त आत्माविषे दृढ होता है, तब जगत्के पदार्थोंकरि चलायमान नहीं होता; जैसे मांडव ऋषीश्वर शूलीपर चडा था, अरु तिसका जो चित्त आत्मपदविषे लगा हुआ था, तिसकों शूलीपर भी खेद न हुआ॥ हे मुनीश्वर! जिसविषे मन दृढ होकरि लगता है, तिसकों चलाय कोउ नहीं शकता, जैसे इंद्र ब्राह्मण चलायमान न भये तैसे मन आत्माविषे स्थिर हुआ, चलायमान नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जैसा जैसा मनविषे तीव्र भाव होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, दीर्घतपा एक ऋषि था, उह अंधे कूपविषे किसी प्रकार गिर पडा, तिस कूपविषे मनकरि यज्ञ करने लगा, मनविषे दृढकरि यज्ञकों कीया, तिस यज्ञकरि मनविषे देवता होकरि फल इंद्रपुरिविषे भोगणे लगा; अरु जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समान थे, अरु मनविषे जो ब्रह्माकी भावना करी, तिसकरि दशही ब्रह्मा भये; अरु दशही तिननें अपनी अपनी सृष्टि रची, सो कैसी सृष्टि हैं, जो मुझकरि भी खंडित नहीं होती, तातें जो कछु दृढ अभ्यास होता है, सो नष्ट नहीं होता, और भी जो देवता महाऋषि आदि धैर्यमान् हुए हैं, जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमा

न नहीं होती, तिनकों संसारका ताप, आधि, व्याधि, शाप, मंत्र, पाप, कर्म इसतें लेकरि जो संसारके क्षोभ दुःख हैं, तिनकों कोउ नहीं स्पर्श करता, जैसे कमलफूलका प्रहार शिलाकों फोड नहीं शकता, तैसे धैर्यवान् कों संसारका ताप नहीं खंडन करि शकता, अरु जिसकों आधि व्याधि दुःख करते हैं, सो जानियें जो परमार्थदर्शनतें शून्य है ॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूपविषे सावधान भये हैं, तिनकों दुःखका कोउ नहीं स्पर्श करते, स्वप्नविषे भी तिनकों दुःखका अनुभव नहीं होता, काहेतें जो तिनका चित्त सावधान है, तातें दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनकों मारौ, तिसकरि जगत्भ्रम नष्ट होजावैगा ॥ हे मुनीश्वर! जिसकों स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसकों क्षणविषे जगत्भ्रम दृढ हो जाता है, जैसे बालककों क्षणविषे वैताल भासि आता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है॥ हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलाल है, अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अनेक आकार क्षणविषे धरती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारकों धरती है, तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंकों पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावना करिके अंधकार कों देखते हैं, अरु किनकों चंद्रमाकी किरणांभी भावनाकरि अग्निरूप भासती हैं, किनकों विषविषे अमृत की भावना होती है, तिनकों विष भी अमृतरूप होइ भासता है; इसी प्रकार कटुक आम्ल लोण भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है तैसाही इसकों भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है, अरु मनका रचा जगत् है सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भाषणकरि सत्य है, असत्य नहीं, अरु नष्टभावतें असत्य है, सत्य नहीं, अरु सत्य असत्य भी मन करिके भासता है, वास्तव कछु नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार प्रथम ब्रह्माजीनें मुझकों कहा था, सो मैनें अब तुझकों कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहं शब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ,

अर्थ यह जो अहं अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढता हुई, तब मन हुआ, तिस मननें पंच तन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता ह ॥ हे रामजी! सो ब्रह्माजी मनरूप है, अरु मनही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा संकल्प करता है, तैसाही होता है, तिस ब्रह्मानें एक अविद्याशक्ति कल्पी है, अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी, इसी प्रकार पहाड, तृण, जल समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्कों उत्पन्न कीया, इस प्रकार ब्रह्मा हुआ, अरु इस प्रकार जगत् हुआ, जैसे तुमनें कहा सो जगत् कैसे उपजता है, अरु कैसे मिट जावै सो श्रवण करहु; जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रहीविषे लीन होते हैं, तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है, अरु ब्रह्महीविषे लीन होता है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहंकार उल्लेख हुआ है, सो मन है, अरु सोइ ब्रह्मा है, तिसहीनें नानाप्रकार जगत् रच्या है, सो सर्व चित्तशक्ति पसरी है, सो चित्तके फुरणेकरि नानात्व भासता है ॥ हे रामजी! जेते कछु जीव हैं तिनों सर्वोंविषे आत्मसत्ता स्थित है, परंतु अपणे स्वरूपके प्रमाद करिके पडे भटकते हैं, जैसे वायुकरिके बनके कुंजोंविषे सूके पात भटकते हैं, तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते हैं, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयंत्रकी नांई अनेक जन्मोंकों धरते हैं, जब काकतालीवत् सत्संगकी प्राप्ति होवै, अरु अपणा पुरुषार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बांधे हुए अनेकजन्मविषे भटकते हैं, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तबही दृश्यभ्रमतें छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे ॥ हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मातें जीव उपजते हैं अरु मिटते हैं, अनंत संकटोंका कारण वासनाही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है, अरु जगत्रूपी बनकी जन्मरूपी वैतालवेली वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक् ज्ञान प्राप्त होवै, तब सोइ कुठार करिके काटौ, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजतें उपजै नहीं, जैसे भूना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे वासनातें रहित मन शरीरकों नहीं धारता ॥ इति

श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥६९॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेती कछु भूतजाती हैं, सो ब्रह्मतें उपजी हैं,जैसे समुद्रतें तरंग बुद्बुदे केई बडे, केई छोटे, केई मध्यभावके होते हैं, सो सब जल हैं, तैसे इह जीव ब्रह्मतें उपजे हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, जैसे अग्नितें चिणगारे उपजते हैं, तैसे ब्रह्मतें जीव उपजते हैं; जैसे कल्पवृक्षकी मंजरी नानारूपकों धरती है, तैसे ब्रह्मतें जीव हुए हैं, जैसे चंद्रमातें किरणांका विस्तार होता है, अरु जैसे वृक्षतें पत्र, फूल, फल आदिक होता है, तैसे ब्रह्मतें जीव होते हैं, जैसे सुवर्णतें अनेक भूषण होते हैं, तैसे ब्रह्मतें जगत् होता है; जैसे झरणोंतें जलके कणके उपजते हैं, तैसे परमात्मातें भूत उपजते हैं, जैसे आकाश एकही है, तिसविषे घटमठकी उपाधिकरि घटाकाश मठाकाश कहाता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि जीवकल्पना होती है, जैसे जलही द्रवता करिके तरंग आवर्तरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मही संवेदन करिके जगत्‌रूप होइ भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य सब ब्रह्मतें उपजा है; जैसे सूर्यके तेजकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे संवेदन करिके ब्रह्मविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी भासती है, वास्तवतें द्रष्टा दर्शन दृश्य कल्पना कोउ नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे कछु भेद नहीं, जैसे सूर्य अरु प्रकाशविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रमेंही लीन होते हैं, तैसे जीव ब्रह्महीतें उपजते हैं, अरु ब्रह्महीविषे लीन होते हैं ॥ केई जन्मसहस्रके अनंतर प्राप्त होते हैं, केई थोडे, केई बहुत जन्मकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार जगत् परमात्मातें हुआ है, अरु तिसकी इच्छा अनुसार व्यवहार करते हैं, सोई व्यवहारकी नांई होइ भासते हैं ॥ ॥इति श्रीयो० उ० सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥७०॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! कर्त्ता अरु कर्म इह अभिन्नरूप हैं, अरु एकठेही ब्रह्मतें उत्पन्न हुए हैं,जैसे फूल अरु सुगंध वृक्षतें एकठे उत्पन्न होते हैं, तैसे कर्त्ता अरु कर्म एकठे उत्पन्न हुए हैं,

जब जीव सब संकल्प कलनाकों त्यागता है, तब निर्मल ब्रह्म होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत्कल्पना फुरती है, आत्मा अद्वैत सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु इह भी अज्ञानीके बोध जतावणेकों कहता है, जो जीव ब्रह्मतें उपजे हैं, अरु इस प्रकार सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेद स्थित हैं, जो ज्ञानवान् हैं, तिनोंप्रति इह कहणा भी नहीं बनता, जो ब्रह्मतें उपजे हैं, तौ भी दूसरा कछु नहीं, दूसरेकों अंगीकार करिके उपदेश करता है, वास्तवतें ब्रह्मसत्ताविषे कोउ कल्पना नहीं, सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है, अरु अज्ञानी दूरतें दूर चले जाते हैं, तिनकों सुमेरु अरु मंदराचलकी नांई आत्मा अरु जीवका अंतर भासता है, जैसे वसंतऋतु करिके नानाप्रकारके नूतन अंकुर उपजते हैं, अरु वसंतऋतुके अभाव हुए नष्ट होते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जीवराशि उपजते हैं, अरु चित्तके अफुर हुए नष्ट होते हैं, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, मन अरु कर्म एकठेही उत्पन्न होते हैं, जैसे वृक्षसों फल अरु सुगंध एकठे उपजते हैं, तैसे आत्मासों मन अरु कर्म एकठेही उपजते हैं, बहुरि आत्माविषे लीन होता है ॥ हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जेते कछु जीव तुझकों भासते हैं, सो आत्मातें उपजे हैं, अरु बहुरि आत्माहीविषे लीन होते हैं, इनका उत्पत्तिकारण अज्ञान है, आत्माके अज्ञानकरिके भटकते हैं, जब आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाण करिके सिद्ध है, सोई सत्य है, अरु शास्त्रप्रमाण उही है, जिसविषे रागद्वेषतें रहित निर्णय है, अरु अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन कीये हैं, तिस सब दृष्टिकरि जो उपदेश कीया है, सो पदार्थ प्रमाण हैं, तिनके अनुसार जो जीव विचरते हैं, सो भली उत्तम गतिकों प्राप्त होते हैं, अरु जो शास्त्रप्रमाणतें विपरीत वर्तते हैं, सो अशुभ गतिकों प्राप्त होते हैं, अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध सुनाता है, जो कर्मोंके अनुसार

जीव वर्तते उपजते हैं, जैसे बीजतें अंकुर उपजता है, सो जैसा बीज होता है, तैसाही तिसतें अंकुर उपजता है, तैसे जैसा कर्म होता है, तैसी गति इसकों प्राप्त होती है, अरु कर्ता करिके कर्म होता है, इह परस्पर अभिन्न हैं, इनका एकठा होना क्योंकरि होवै, कर्ताकरि कर्म होते हैं, अरु कर्मकरिके गति प्राप्त होती है, अरु तुम कहते हौ मन अरु कर्म ब्रह्मतें एकठेही उत्पन्न हुए हैं, इसकरिके शास्त्रके वचन अरु लोकके वचन अप्रमाण होते हैं, हे देवताविषे श्रेष्ठ! इह संशय दूर करनेकों तुमही योग्य हौ, जैसे सत्य है, तैसेही कहौ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह प्रश्न तुझनें भला कीया है, तिसका उत्तर मैं तुझकों कहता हौं, जिसके श्रवण कीयेतें तुझकों ज्ञानप्रकाश आवैगा ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित् मात्र आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुर्या सो कर्मका बीज मन हुआ, सो सबका कर्मरूप है, तिस बीजतें सब फल होता है, तातें कर्म अरु मनमें कछु भेद नहीं, जैसे सुगंध अरु कमलविषे कछु भेद नहीं, तैसे मन अरु कर्मविषे कछु भेद नहीं, मनविषे संकल्प होता है, सो अंकुर कर्म ज्ञानवान् कहते हैं ॥ हे रामजी! पूर्व इसका देह मनही है, तिस मनरूपी शरीरसाथ कर्म होते हैं, सो फलपर्यंत सिद्ध होता है, मनविषे जो फुरणा होता है, सोई क्रिया है, अरुसोई कर्म है, तिस मनकरि कीया कर्म अवश्य सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता, ऐसा पर्वत कोउ नहीं, न आकाश है, न कोउ लोक है, जिसकों प्राप्त होइकरि कर्मोंतें छूटै, जो कछु मनके संकल्पसाथ कीया है, सो अवश्यमेव सिद्ध होता है, पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कछु कीया है, सो निष्फल नहीं होता, अवश्यमेव तिसकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! ब्रह्मविषे जो चैत्यता हुई है, सोई मन है, अरु मन कर्मरूप है, अरु सर्व लोकोंका बीज है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! जब कोउ देशतें देशांतरकों जाणे लगता है, तब जाणेका संकल्प ले जाता है, सो चलणा कर्म है, तातें फुरणरूप कर्म हुआ, अरु फुरणा रूप मनका है, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है, तिसविषे द्रवतारूपी चैत्यता है, सो चैत्यता जीवरूप है, अरु तिसहीका नाम मन

है, सो मन कर्मरूप है, जैसे मन फुरता है, सोई सिद्ध होता है, जो कछु मनकरिके कार्य करता है, सोई सिद्ध होता है, शरीरकरि चेष्टा सिद्ध नहीं होती, इस कारणतें कहा है, जो मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, भिन्न भिन्न भासते हैं, सो मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं, बुद्धिवान् नहीं करते, जैसे समुद्र अरु तरंगोंविषे भेद मूर्ख मानते हैं, बुद्धिवान्कों भेद कछु नहीं भासता, प्रथम परमात्मासों मन अरु कर्म एकठेही उपजे हैं, जैसे समुद्रसें तरंग द्रवताकरि उपजते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि कर्म आत्मातें उपजते हैं, जैसे तरंग समुद्रविषे लीन होते हैं, तैसे मन अरु कर्म परमात्माहीविषे लीन होते हैं, जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होता है, तैसाही प्रतिबिंब भासता है, तैसे जो कछु मनका कर्म होता है, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे बरफका रूप शीतल है, शीतलताविना बरफ नहीं होता, तैसे चित्त कर्म है, कर्मोंविना चित्त नहीं होता, जब चित्तसों स्पंदता मिट जाती है, तब चित्त भी नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए कर्म भी नष्ट हो जाते हैं, अरु कर्मके नाश हुए मनका नाश होता है, जो पुरुष मनतें मुक्त हुआ है, सोई मुक्त है, जो चित्ततें मुक्त नहीं हुआ सो बंधनमें है, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होता है, जैसे अग्निके नाश हुए उष्णता भी नाश होती है, अरु जब उष्णता नाश होती है, तब अग्नि भी नाश होता है, तैसे मनके नष्ट हुए कर्म भी नाश होते हैं, अरु कर्म नाश हुए मन भी नष्ट होता है, एकके अभाव भये दोनोंका अभाव होता है, कर्मरूपी चित्त है, अरु चित्तरूपी कर्म है, परस्पर अभेदरूप हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम एकस०सर्गः ॥७१॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मान भावना मात्र है, भावना नाम फुरणेका है, अरु फुरणा क्रियारूप है, तिस क्रिया फुरणेकरि सर्व फलकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इस मनका रूप विस्तारिके कहौ, जड अजडरूप मनका है, तिसकों विशेष करी कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनंतरूप सर्वशक्तिमान् है, जब तिसविषे संकल्पशक्ति फुरती है, तब तिसकों मन कहते हैं, जड अजडके म

ध्यविषे डोलायमान होता है, तिस मिश्रितरूपका नाम मन है ॥ हे रामजी! भावरूप जो पदार्थ है, तिसके मध्यविषे जो सत्य असत्यका निश्चय करता है, तिसका नाम मन है, तिसविषे जो इह निश्चय करणा जो मैं चिदानंदरूप नहीं, मैं कृपण हौं, देहसों मिलीकरि ऐसे फुरता है, सो मनका रूप है, जो कल्पना करता रहता है, इसतें रहित मन नहीं होता, जैसे गुणोंविना गुणी नहीं रहता, तैसे कर्म कल्पनाविना मन नहीं रहता, जैसे उष्णताकी सत्ता अग्नितें भिन्न नहीं पडती, तैसे कर्मोंकी सत्ता मनतें भिन्न नहीं पाते, अरु मन अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! मनरूपी बीज है, तिसतें संकल्परूपी नानाप्रकारके फूल होते हैं, तिस करिके नानाप्रकारके शरीर होते हैं, तिसकरि संपूर्ण जगत् देखता है, जैसी जैसी मनविषे वासना होती है, तिसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, तातें मनका फुरणाही कर्मोंका बीज है, तिसकरि जो भिन्न क्रिया होती हैं, सो तिस वृक्षकी शाखा हैं, अरु नानाप्रकारके विचित्र फल हैं ॥ हे रामजी! जिस और मनका निश्चय होता है, तिसी और कर्म इंद्रियां भी प्रवर्त्तती हैं, अरु जो कर्म हैं, सोइ मनका फुरणा है, अरु मनही फुरणरूप है, इसी कारणतें कहा है, जो मन कर्मरूप है, तिस मनकी एती संज्ञा कही हैं, मन, बुद्धि, अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, इंद्रियांपर्यंत प्रकृति, माया इत्यादिक कल्पना संसारका कारण है, चित्तकों जब चैत्यका संयोग होता है, तब संसारभ्रम होता है, अरु इह जेती संज्ञा तुझकों कही हैं, सो चित्तके फुरणेकरिके काकतालिवत् अकस्मात् फुरी हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अद्वैत तत्त्व परम संवित् आकाशविषे एती कलना कैसे हुई है, अरु तिनविषे अर्थरूप दृढता कैसे हुई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित्मात्र जो सत्ता है, सो फुरणेकी नांई स्थित भई है, तिसका नाम मन है, अरु जब उह वृत्ति निश्चयरूप भई है, जो भाव अभाव पदार्थोंकों निश्चय करत भई, जो इह पदार्थ ऐसा है, यह पदार्थ ऐसे हैं, तिस वृत्तिका नाम बुद्धि है, अनात्मविषे आत्मभाव परिच्छिन्नरूप जब मिथ्या अभिमान दृढ हुआ,

तब तिसका रूप अहंकार हुआ, सोई मिथ्या अहंवृत्ति संसारबंधनका कारण है, किसी पदार्थकों ग्रहण करती है, किसीकों त्याग करती है, बालककी नांई विचारतें रहित धावती है, तिसका नाम चित्त है, अरु वृत्तिका फुरणा धर्म है, तिस फुरणेविषे फलकों आरोप करी तिसकी और धावणा, अरु कर्तव्यका अभिमान फुरै तिसका नाम कर्म है, अरु पूर्व जो कार्य कीये हैं, तिस पदार्थकों त्यागिके तिसका संस्कार चित्तविषे धारिकरि स्मरण करणा, तिसका नाम स्मृति है, अथवा पूर्व तिसका अनुभव नहीं हुआ, अरु हृदयविषे फुरि आवै, जो इह पूर्व मैंनें कीया था, तिसका नाम भी स्मृति है, अरु जिस पदार्थका अनुभव होवै, तिसका संस्कार हृदयविषे दृढ होवै, तिसके अनुसार जो चित्त फुरै, तिसका नाम वासना है ॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व अद्वैत है, तिसविषे अविद्यमान द्वैत विद्यमान होइकरि भासता है, जिसकरि तिसका नाम अविद्या है, अरु अपणे स्वरूपकों भूलायकरि अपणे नाशके निमित्त स्पंद चेष्टा करता है, अरु शुद्ध आत्माविषे विकल्प उठते हैं, तिसका नाम मूल अविद्या है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांचों इंद्रियांकों दिखावणेहारा परमात्मा है, अरु अद्वैत तत्त्व आत्माविषे जिस दृढ जालकों रचा है, तिस स्पंदकलनाका नाम प्रकृति कहाता है, अरु असत्यकों सत्यकी नांई दिखाती है, अरु सत्यकों असत्यकी नांई दिखाती है, सो माया कहाती है, अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इह कर्म हैं, अरु जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध होते हैं, सो कर्त्ता कहाता है, सोइ कार्य कारण कहाता है, अरु शुद्ध चेतन चैत्यकों प्राप्त होता है, सो कलनाकी नांई होता है, तिस फुरणवृत्तिकों विपर्यय कहै हैं, सो फुरणे करिके संकल्पजाल उठती है, तब इसकों जीव कहाता है, मन भी इसका नाम है, चित्त भी इसका नाम है, बंध भी इसका नाम है ॥ हे रामजी! परमार्थशुद्ध चित्तही चैत्यके संयोगकरि स्वरूपतें बरफकी नांई स्थित भया है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह मन जड है, किंवा चेतन है? सो एकरूप मुझकों कहौ, जो मेरे हृदयविषे स्थित होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मन

जड नहीं अरु चेतन भी नहीं,जडचेतनकी जो गांठ है, मध्यभाव तिसका नाम मन है, अरु संकल्पविकल्पविषे कल्पितरूप मन है, तिस मनतें इह जगत् उत्पन्न हुआ है,जड अरु चेतन दोनों भावविषे डोलायमान है, अर्थ यह जो कबहु जडभावकी ओर आता है, कबहु चेतनभावकी ओर आता है, तिसका नाम मन है, शुद्ध चेतनमात्रविषे जो फुरणा हुआ, तिसका नाम मन है, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञाकों मनही प्राप्त हुआ है, जैसे एक नटवा स्वांगों करिके अनेक संज्ञाकों पाता है, जिसका स्वांग ले आता है, तिसी नामकरि कहाता है, तैसे संकल्प करिके मन अनेक संज्ञाकों पाता है, जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंकरि अनेक संज्ञाकों पाता है, पाठकरि पाठक कहाता है, रसोइकरि रसोया कहाता है,तैसे मन अनेक संकल्प करि अनेक संज्ञाकों पाता है॥ हे रामजी! इह जो मैंनें तुझे चित्तकी अनेक संज्ञा कही हैं, सो अन्यथा अन्यथा करि बहुत प्रकार वादीयोंनें नाम राखे हैं, जैसा जैसा मत है, तैसा स्वभाव लेकरि मन बुद्धि इंद्रियोंकों मानते हैं, जो मनकों जड मानते हैं, अरु जिसकों मनतें भिन्न मानते हैं, अरु अहंकारकों भिन्न मानते हैं,सो मिथ्या कल्पना करते हैं,नैयायिक कहते हैं, सृष्टि तत्त्वोंके सूक्ष्म परमाणुतें उपजती है, जब प्रलय होता है,तब स्थूल तत्त्व लय हो जाते हैं, तिनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं, बहुरि उत्पत्ति कालविषे उही सूक्ष्म परमाणु दूणे त्रिगुणे आदिक होइ करि स्थूलताकों प्राप्त होते हैं, तिस पांचों तत्त्वोंतें सृष्टि होत है, अरु सांख्यमतवाले कहते हैं, प्रकृति मायाके परिणामतें सृष्टि होती है, अरु चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों तत्त्वोंके एकठे होणेकरि सृष्टि उपजती मानते हैं, अरु चारों तत्त्वोंके शरीरकों पुरुष मानते हैं, जब तत्त्व आपोआपविषे बिछुरि जाते हैं, तब प्रलय होता है, अरु आर्हत औरही प्रकार मानते हैं, बौद्ध वैशेषिक आदिक और और प्रकार करि मानते हैं, पांचरात्रिक और प्रकारही मानते हैं, परंतु सबहीका सिद्धांत एकही ब्रह्म आत्मतत्त्व है, जैसे एकही स्थानके अनेक मार्ग होवैं सो अनेक मार्गोंकरि उही स्थानकों पहुंचता है,तैसे अनेक मतोंका अधि

ष्ठान आत्मसत्ता है, अरु जो भिन्न भिन्न मत न मानिके वाद करते हैं, सो आत्मतत्त्वके अज्ञानकरिके करते हैं, सिद्धांत सबका एक है, तिसविषे वाद कोउ नहीं प्रवेश करता ॥ हे रामजी ! जेते कछु मतवाले हैं, सो अपणे अपणे मतकी और मानते हैं, दूसरेका अपमान करते हैं, जैसे मार्गके चलनेवाले अपणे अपणे मार्गकी उपमा करते हैं, दूसरेकी नहीं करते तैसे मनके भिन्न भिन्न रूप करिके अनेक प्रकार जगत्कों कहते हैं, एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं, जैसे एक पुरुषकों अनेक प्रकारकरि कहते हैं, स्नान करणेतें स्नानकर्त्ता, दान करणेतें दानकर्त्ता, तप करणेतें तपस्वी, इत्यादि क्रिया करिके अनेक संज्ञा होती हैं, तैसे अनेक शक्ति मनकी कही हैं, अनेक नामकरि कहाता है, मनहीका नाम जीव है, वासना भी मनहीका नाम है, कर्म भी तिसहीका नाम है ॥ हे रामजी ! चित्तहीके फुरणे करिके संपूर्ण जगत् हुआ है, अरु मनहीके फुरणेकरि भासता है, जब उह पुरुष चैत्यके फुरणेतें रहित होता है, तब देखता है, तौ भी कछु नहीं देखता, अरु इह प्रसिद्ध जाणियें जिस पुरुषकों शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जो इंद्रियोंके विषय हैं, सो इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक देते हैं, जो इष्ट सुखविषे हर्ष देते हैं, अनिष्ट दुःखविषे शोक होता है, तिसका नाम जीव है, मनहीकरि सिद्ध होता है, सब अर्थोंका कारण मनही है, जो पुरुष चैत्यतें छुटा है, सो मुक्तरूप है, अरु जिसकों चैत्यका संयोग है, सो बंधनमें बांध्या है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इस मनकों केवल जड मानते हैं, तिनकों अत्यंत जड जानना, अरु जो पुरुष इस मनकों केवल चेतन मानते हैं सो भी जड हैं, इह मन केवल जड नहीं अरु केवल चेतनभी नहीं, जो एकही मनका रूप होवै; तब सुख दुःख आदिक विचित्रता न चाहिये, अरु जगत्की लीनता भी नहीं होती, जो केवल चेतनही रूप होवै तब जगत्का कारण नहीं होता, अरु जो केवल जडरूप होवै, तब भी जगत्का कारण नहीं होता, काहेतें जो केवल जड पाषाणरूप होता है, सो पाषाणतेंकछु क्रिया नहीं उत्पन्न होती, तैसे केवल जड जगत्का कारण नहीं होता, अरु मन केवल चेतन भी नहीं, केवल चेतन आत्मा है, तिसविषे क

र्तृत्व आदि कल्पना नहीं होती, तातें मन केवल चेतन भी नहीं, अरु केवल जड भी नहीं, चेतन अरु जडके मध्यभावमें सोइ जगत्का कारण है ॥ हे रामजी ! सब अर्थोंका कारण मन है, जैसे प्रकाश पदार्थोंका कारण है, जबलग चित्त है, तबलग चैत्य भासता है, जब चित्त अचित्त होवै, तब सर्व भूतजाल लीन हो जाते हैं, जैसे एकही जल रस करिके अनेक रूप होइ भासता है, तैसे एकही मन अनेक पदार्थरूप होइकरि भासता है, अरु अनेक संज्ञा इसकी शास्त्रोंके मतवालेनें कल्पी हैं, सबका कारण मनही है, अरु मन भी परमदेव परमात्मा सर्व शक्तिकी एक शक्ति है, तिस परमात्मातें इह फुरी है, जडभाव फुरी बहुरि तिसहीविषे लीन होती है, जैसे बबोहा आपहीसों तंतुकों पसराता है, बहुरि आपविषे लीन करी लेता है, तैसे परमात्मातें जडभाव उपजता है ॥ हे रामजी ! नित्य शुद्ध बोधरूप ब्रह्म है, सोइ जब प्रकृतभावकों प्राप्त होता है, तब अविद्याके वशतें नानाप्रकारके जगत्कों धारता है, तिसहीके सर्व पर्याय हैं, जीव, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, इत्यादिक संज्ञा मलीनचित्तकी होती हैं, तिनकी संख्या भिन्न भिन्न वादीनें कल्पी हैं, हमकों संख्यासाथ क्या प्रयोजन है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्र० मनोसंज्ञाविचारो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इह सब जगत् आडंबर मनहीनें रचा है, सब मनरूप है, अरु मनही कर्मरूप है, इह तुमारे कहणेकरि मैं निश्चय कीया है, परंतु इसका अनुभव कैसे होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह मन भावनामात्र है, जैसे प्रचंड सूर्यका धूप होता है, सो मरुस्थलविषे जल होय भासता है, तैसे आत्माका आभासरूप मन होता है, तिस मनकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब मनरूप है, कहूं मनुष्यरूप होइकरि भासता है, कहूं देवता होइके भासता है, कहूं दैत्य, कहूं यक्ष, कहूं गंधर्वरूप भया है, नाग पुर पत्तन आदिक जेते कछु रूप भासते हैं, सो सबही मनकरि विस्तारकों प्राप्त भये हैं, सो कैसे हैं, तृण अरु काष्ठके तुल्य हैं, तिनके विचारणेकरि क्या है, इह सब मनकी रचना है, सो मन अविचारसिद्ध है, विचार कीयेतें नष्ट हो

जाता है, मनके नष्ट हुएतें परमात्माही शेष रहता है, सो साक्षीभूत सर्वपदतें अतीत है, अरु सर्वव्यापि सर्वका आश्रयभूत है, तिसके प्रमाद करिके मन जगत्कों रचणेकों समर्थ होता है इस कारणतें कहा है, जो मन अरु कर्म एकरूप हैं, अरु शरीरोंका कारण है ॥ हे रामजी! जन्म मरण आदिक जेते कछु विकार हैं, सो मन करिके भासते हैं, अरु मन अविचारसिद्ध है; विचार कीयेतें लीन हो जाता है, जब मन लीन हुआ, तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट हो जाता है, जो इस भ्रमतें छूटा सो मुक्त है, सो पुरुष बहुरि जन्म अरु मरण विषे नहीं आता, सब भ्रम उसका नष्ट हो जाता है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन्! तीन प्रकारके सात्त्विकी राजसी तामसी जीव तुमनें कहे, तिनका कारण प्रथम सत्य असत्यरूपी मन कहा, सो मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वतें उपजत भया, अरु उपजिकरि बडे विस्ताररूपी विचित्र जगत्कों कैसे प्राप्त भया? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है, अरु एक चित्ताकाश है, तीसरा भूताकाश है, सो आकाश भावकरिके समानरूप हैं, अरु अपअपनी सत्ता हुई है, चिदाकाश चित्ताकाशकरि नित्य उपलब्धरूप है, चेतनमात्र सबके अंतर बाहिर स्थित है, अरु अनुमातारूप है, बोधरूप है, सर्व भूतोंविषे सम व्यापि रहा है, सो चिदाकाश है, अरु जो भूतोंका कारणरूप है, अरु आप विकल्परूप है, अरु सब जगत्कों जिसनें विस्तारा है सो चित्ताकाश कहाता है, अरु दश दिशाकों विस्तारिकरि जिसका वपु प्रच्छेदकों नहीं प्राप्त होता, अरु शून्य है स्वरूप जिसका, अरु पवन आदिक भूतोंका आश्रयभूत है, सो भूताकाश कहाता है ॥ हे रामजी! चित्ताकाश अरु भूताकाश इह दोनों चिदाकाशतें उपजे हैं, अरु सर्वका कारण है, जैसे दिनकरि सब कार्य होते हैं, तैसे चित्तकरि सब पदार्थ प्रगट होते हैं, सो चित्त जड भी नहीं अरु चेतन भी नहीं ॥ आकाश भी तिसतें उपजता है ॥ हे रामजी! तीन आकाश भी अप्रबोधका विषय है, ज्ञानीका विषय नहीं, अरु ज्ञानवान् तीन आकाश कहते हैं, सो अज्ञानीकों उपदेश जतावणेके निमित्त कहते हैं, ज्ञानवा

नूकों एक परब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पनातें रहित भासता है, द्वैत अरु अद्वैत शब्द भी उपदेशके निमित्त कहते हैं, प्रबोधका विषय कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! जबलग प्रबोध आत्मा नहीं भया, तबलग मैं तीन आकाश कहता हौं, वास्तवतें कल्पना कोउ नहीं, जैसे दावाग्नि लगेतें वन जली जाता है सो शून्य जैसा भासता है, तैसे ज्ञानाग्निकरि जले हुए चित्ताकाश अरु भूताकाश चिदाकाशविषे शून्य कल्पना भासती है, सो फुरणेद्वारा भासती है, मलीन चेतन जो चैत्यताकों प्राप्त होता है, इसकरि इह जगत् भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजी होती है, तैसे इह जगत् है, बोधहीनकों इह जगत् भासता है, जैसे असम्यक्दर्शीकों सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे अज्ञानीकों जगत् भासता है, आत्मतत्त्व नहीं भासता; जब दृश्यभ्रम नष्ट हो जावै, तब मुक्तरूप होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमा०नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो कछु उपजा है, सो तूं चित्ततें उपजा जाण, सो जैसे उपजा तैसे उपजा, अब तूं इसके निवृत्ति वास्ते यत्न करिके आत्मपदविषे चित्तकों जोड, तब इह जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी ! इह चित्त उपर एक चित्ताख्यान हुआ है सो श्रवण करु, जैसे मैंनें देख्या है, तैसे तुझकों कहता हौं, एक महाशून्य बन था, तिसके कोउ कोणविषे इह आकाश स्थित है, तिस उजाडविषे मैं एक पुरुष देखत भया, सो कैसा था, जो सहस्र जिसके कर अरु लोचन थे, अरु चंचलरूप अरु व्याकुलरूप अरु बडा आकार जिसका, अरु सहस्रही भुजासाथ अपणे शरीरकों ताडना करै, मारै, बहुरि आपही कष्टमान होइकरि भागै, तब बहुतेरे योजनोंपर चला जावै, अरु दौडता दौडता थक पडै, अंग चूर्ण हो जावै, एक कृष्णरात्रिकी नांई भयानकरूप कूपविषे जाय पडै, जब केताक काल व्यतीत होवै, तब उहांतें निकसिकरि करजूवेके वनविषे जाय पडै, तहां कंकट चूभै तब कष्ट पावै, जैसे पतंग दीपककों सुखरूप जानिके तिसविषे प्रवेश करै अरु नाश पावै तैसे उह जहां सुखरूप जानिके तिसविषे प्रवेश करै तहांही कष्ट पावै; बहुरि करजूवेके ब

नविषे जाइ पडै, बहुरि निकसिकरि आपकों हाथोंकरि प्रहार करै तब तिसकरि कष्टमान होवै; बहुरि दौडता दौडता अंधे कूपविषे जाय पडै, उहांतें निकसिकरि कदलीके बनविषे जाय प्रवेश करै, तिसतें निकसिकरि बहुरि आपकों प्रहार करने लगै, जब कदली बनविषे जावै, तब कछुक शांतिवान् होवै, अरु प्रसन्नताकों प्राप्त होवै, बहुरि दौडै, आपकों प्रहार करै, कष्टमान होवै, होइके दूरतें दूर जाइ पडै, इसी प्रकार अपणा कीया आपही कष्ट भोगै, इस प्रकार भटकता फिरै, तब मैं उसकों पकडी करिके पूछत भया, अरे तूं कवन है, अरु इह क्या करता है, अरु किस निमित्त करता है? अरु तेरा नाम क्या है? अरु इहां क्यों मिथ्या जगत्विषे मोहकों प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मैंनें पूछा, तब उह मुझकों कहत भया, जो न मैं कछु हौं, न कछु इह है, न मैं कछु करता हौं, अरु तूं तौ मेरा शत्रु है, तेरे देखणेकरि मैं नाशकों प्राप्त होता हौं, इस प्रकार उह कही करि अपणे अंगोंकों देखत भया, देखै अरु रुदन करै, क्षणविषे उसका वपु नाश होणे लगा, मेरे देखते देखते उह पुरुष अपणे अंगोंकों त्यागत भया, प्रथम उसका शीस गिर पडा, बहुरि भुजा गिर पडियां, बहुरि वक्षस्थल, बहुरि उदर इस प्रकार क्रम करिके उह पुरुष अपणे शरीरकों त्यागत भया, जैसे स्वप्नतें जागै स्वप्नका शरीर नष्ट होता है, तब मैं नीतिशक्तिकों विचारि करिके आगे गया, तब और एक पुरुष मैंनें देख्या, सो भी इसी प्रकार आपकों आपही प्रहार करै, अरु कष्टमान होयके दौडै, जायकरि एक कूपविषे गिर पडै, उहांतें निकसिकरि बहुरि प्रहार करै, बहुरि बनविषे जावै, कहूं करजूवेके बनविषे, कबहु कदलीविषे जावै, जब कदली बनविषे जावै, तब पुष्ट होवै, अरु हर्षकों प्राप्त होवै, जब उहांतें निकसै तब बहुरि आपकों प्रहार करै, बहुरि दौडै, करजूवे कदली आदिक बनोंविषे जाय पडै, तब उसनें मुझकों देख्या, देखिके प्रसन्न भया, अरु वडे हर्षकों प्राप्त भया, अरु हस्या, तब तिसकों रोकिके मैंनें उसी प्रकार पूछा, जब मैंनें पूछ्या, तब उह भी मेरे देखते देखते अपणे अंगोंकों त्यागत भया, त्यागतें कष्टमान हुआ, अरु हर्षमान भी हुआ, उसकों देखिकरि

मैं बहुरि आगे गया, तब और एक पुरुष देख्या, उह भी इसी प्रकार करता है, अपणे हाथोंसों आपकों प्रहार करै, बडे अंधकूपविषे जाय पडै॥ हे रामजी! चिरकालपर्यंत मैं उसकों देखत भया, कूपतें निकसै तब मैं उस पर प्रसन्न होकरि उससों पूछत भया, जैसे उनोंसों पूछा था, तब उह मूर्ख मुझकों न जानिके दूरतें त्यागि गया, जो कछु अपणा व्यवहार था, तिसविषे जाइ लगा, तिसके अनंतर चिरकालपर्यंत मैं उस बनविषे विचरता रहा, तब उसी प्रकार मैं बहुरि पुरुष देखता रहा, जो आपही आपका नाश करै, जिसकों मैं पूछौं, अरु उह मेरे पास आवै, तिसकों मैं कष्टतें छुडाइ देउं, अरु आनंदकों प्राप्त करौं, अरु मेरे निकटही न आवै, मुझकों त्यागि जावै, उस अटवीविषे उही तिनका उही हाल होवैं, अरु व्यवहार करैं॥ हे रामजी! उह अटवी तुमनें भी देखी है, परंतु तुमनें उह व्यवहार नहीं किया, उस अटवीविषे जाणे योग्य भी नहीं, तूं बालक है, अरु उह अटवी महाभयानक है, तिसकों प्राप्त हुए कष्टतें कष्टकों प्राप्त होता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः॥७४॥ ॥ ॥राम उवाच॥ हे ब्राह्मण! उह कवन अटवी है, अरु मैंनें कब देखी है, अरु उह कवन है, अरु उह पुरुष अपणे नाशके निमित्त क्यों उद्यम करते थे, सो कहौ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! उह अटवी दूर नहीं, अरु उह पुरुष भी दूर नहीं, इह जो गंभीर बडा आकाररूप संसार है, सो अटवी है, कैसी अटवी है, जो शून्य है, अरु विकारोंकरि पूर्ण है, अरु इह अटवी भी आत्माकरि सिद्ध होती है, अरु तिसविषे जो पुरुष रहते हैं सो सब मन है, दुःखरूपी चेष्टा करते हैं, अरु विवेक ज्ञानरूपी जो मैं था सो उनकों पकडता था, जो मेरे निकट आते थे, सो मेरे प्रकाश करिके प्रफुल्लित होते थे, जैसे सूर्यके प्रकाश करिके सूर्यमुखी कमल खिली आते हैं, तैसे मेरे प्रवोध करिके उह महामति हुए, अरु उह चित्ततें उपशम हुए, परमपदकों प्राप्त हुए, अरु जो मेरे निकट न आये और अविवेक करिके मोहे हुए मेरा निरादर करत भये सो मोहकष्टहीविषे रहे, अब

तिनके अंग अरु प्रहार अरु कूप अरु करजुवे अरु केलेके बनका उपमान सुण ॥ हे रामजी! जेती कछु विषय अभिलाषा हैं, सो तिस मनके अंग हैं, अरु हाथोंकरि प्रहार करणा इह है, जो सकाम कर्म करते हैं, तिनकरि फटे हुए दूरतें दूर दौडते हैं, सो मृतक होते हैं, सोइ अंधकूपविषे गिरते हैं, सो विवेकका त्याग करणा इही है, इस प्रकार उह पुरुष आपसोंकरि आपही प्रहार करते भटकत फिरते हैं, अरु अभिलाषारूपी सहस्र अंगोंकरि आवरे हुए मृतक होकरि नरकरूपी कूपविषे पडे हुए जब बाह्य निकसैं तब पुण्यकर्मोंकरि स्वर्गविषे जाय प्राप्त होवैं, सोइ कदलीके वनसमान है, तहां कछुक सुख पावै, तिसतें जब निकसैं, तब करजूवेके बनविषे पडैं, स्त्री, पुत्र, कलत्र आदिक जो कुटुंब है, सो करजूवेके बन हैं, अरु करजूवेसाथ कंटक होते हैं, सो पुत्र धन अरु लोकोंकी कामना करते हैं, तिनकरि पडे कष्ट पाते हैं, जब महापापकर्म करते हैं, तब नरकरूपी अंधकूपविषे पडते हैं, अरु पुण्यकर्म करते हैं, तब कदलीबनकी नांई स्वर्गकों प्राप्त होते हैं, तब कछुक उल्लासकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप है, करजूवेके बनकी नांई है, इह मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं, जो अपणे नाशके निमित्तही यत्न करते हैं, बहुरि उही दुःखरूप कर्म करते हैं; अरु जो तिनविषे विहित करिके विवेकके निकट आते हैं, सो शुभ अशुभ कर्मोंके बंधनतें मुक्त होइकरि परमपद कों प्राप्त होते हैं; अरु जो विवेकसाथ हित नहीं करते, सो दूरतें दूर भटकते हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष भोग भोगणेके निमित्त यत्न करते हैं, तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं, सो उत्तम शरीरकों धारिके स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु उह जो मुझकों देखिके मनरूपी पुरुष कहता था, जो तूं हमारा शत्रु है, तुझकरि हम नष्ट होते हैं, अरु रुदन करते थे, सो विषय भोग त्यागणेके निमित्त मूर्ख चित्त कष्ट पाता है, मूर्खकी प्रीति विषयविषे होती है, तिसके त्यागणेतें कष्टमान होते हैं, अरु विवेककों देखिके रुदन करने लगते हैं, काहेतें जो अर्धप्रबुद्ध हैं, जिनकों परमपदकी प्राप्ति नहीं भई सो भोगोंकों त्यागेतें कष्टमान होते हैं, अरु रुदन करते हैं, अरु

जब अज्ञानकों मूर्ख चित्त अर्धप्रबोध अभिलाषारूपी अंगोंकों तपायमान न हुआ त्यागता है, अरु विवेककों प्राप्त होता है, तब परम तुष्टमान हुआ हसणे लगता है, तातें विवेककों प्राप्त होइकरि संसारकी वासनाकों त्यागौ, तब आनंदमान होहुगे, पूर्वका स्वभाव अरु नीच चेष्टाकों त्यागिकरि हसता है, जो मैं मिथ्या चेष्टा करता था, चिरकालपर्यंत मूर्खता करिके कष्ट पाता रहा ॥ हे रामजी! इस प्रकार विवेककों प्राप्त होइकरि चित्त परमपदविषे विश्राम पाता है, तब पूर्वकी दीन चेष्टाकों स्मरण करिके हसता है ॥ हे रामजी! जब मैं उस मनरूपी पुरुषकों रोकिकरि पूछता था, अरु उह अपणे अंगोंकों त्यागता जाता था, सो भी सुण; मैं विवेकरूप हौं, जब उस चित्तरूपी पुरुषकों मिला, तब उसके सहस्र कर अरु लोचनरूपी अभिलाषाका त्याग भया, अरु अपणे प्रहार करणेतें भी रही गये, अरु उसका शीस जो प्रथम गिर पडा, सो परिच्छिन्न देह अभिमानी जो अहंकार है, सोइ शीस था, जब उह गिर पडा, तब दुर्वासनारूपी अंगोंकों त्यागत भया, तिनकों त्यागिकरि आप भी नष्ट हो गया, सो अहंकार अपणी निर्वाणताकों देखत भया, अर्थ यह जो परम ब्रह्मविषे लीन हो गया ॥ हे रामजी! इस पुरुषकों बंधनका कारण वासना है, जैसे बालक विचारतें रहित चंचलरूपी चेष्टा करता है, सो कष्ट पावता है, अग्निविषे हाथ डारै, खड्डेविषे गिर पडै, अथवा और कोउ कार्य ऐसा करै, अरु जैसे घुराणकीट आपही अपणे बैठणेकी गुफा बनाइके फस मरती है, तैसे इह पुरुष अपणी वासनाकरि आपही बंधनमें पडता है, जैसे मर्कट लकडीविषे हाथ डारिके कीलीकों काढणे लगता है, लीला करता है, तब उसका हाथ फस पडता है, बहुरि कष्ट पाता है, तैसे अज्ञानीकों अपणी चेष्टाही बंधन करती है, काहेतें जो विचारविना करता है ॥ तातें हे रामजी! इस चित्तसाथ शास्त्र अरु संतोंके गुणोंकरि चिरपर्यंत चलौ, जो कछु शास्त्रविषे अर्थ प्रतिपाद्य है, तिसकी दृढ भावना करौ, जब अभ्यास करि तेरा चित्त स्वस्थ होवेगा, तब तुझकों शोक कोउ न होवैगा ॥ हे रामजी! जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब राग अरु

द्वेषकरि चलयमान न होवैगा.अरु जो कछु देहादिकों साथ प्रच्छन्न अहंकार है, सो नष्ट होवैगा, जैसे सूर्य उदय हुए बरफ गलि जाता है, तैसे तुच्छ अहंकार नष्ट हो जावैगा, अरु सर्व आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी! जबलग इसकों आत्मज्ञान नहीं प्राप्त भया, तबलग शास्त्रके अनुसार अनिंदित आचारविषे विचरै, अरु शास्त्रके अर्थविषे अभ्यास करै, अरु मनकों रागद्वेषादिकतें मौन करै, तब पाछे पावणे योग्य अजन्मा शुद्ध शांतरूप पदकों प्राप्त होवैगा, तब सर्व शोककों तरैगा, शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी! जबलग आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तबलग अनेक दुःख वृद्ध होते जाते हैं, शांति नहीं होती, अरु जब आत्मपदकी प्राप्ति हुई तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ ॥ इति श्रीयो०उ०प्र० चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह चित्त परब्रह्मतें उपजा है, सो आत्मरूप है, अरु आत्मरूप नहीं, जैसे समुद्रतें तरंग होते हैं, सो तन्मय भी हैं, अरु भिन्न भी हैं, तैसे चित्त है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों चित्त ब्रह्मरूपही है, इतर कछु नहीं, जैसे जिसकों जलका ज्ञान है, तिसकों तरंग भी जलरूप भासता है, अरु जो ज्ञानतें रहित हैं, तिनकों मन संसारभ्रमका कारण है, जैसे जिसकों जलका ज्ञान नहीं, तिनकों भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं, तैसे जो अज्ञानी हैं, तिनकों भिन्न भिन्न जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्कों केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीकों उपदेशनिमित्त भेद कल्पते हैं, अपनी दृष्टिविषे उनकों सर्व ब्रह्मही भासता है, अरु मन आदिक भी तुझकों भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं, अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप हैं, तिसतें अन्य कोउ पदार्थ नहीं, सर्वशक्त परब्रह्म है, सो नित्य है, अरु सब औरतें पूर्ण है, अविनाशी है, तिसतें अन्य कोउ पदार्थ नहीं, सबही ब्रह्मसत्ताविषे हैं, सर्व शक्तिवान् आत्मा है, जैसे उसकों रुचती है, सोइ शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसर्या है, चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूप करिके प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति उही है, पथ्थरविषे जडशक्ति है, जलविषे

द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेजशक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है, भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाशशक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदिताविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजाणेविषे उत्पत्तिशक्ति उही है, कल्पके अंतविषे सर्वका नाशकर्त्ता उही है, नाशविषे नाशशक्ति उसकी है, इसतें आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थशक्ति है, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है, सो बीजके अंतरभाव होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव अरु चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्म स्थित है, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल बीजके अंतर स्थितहोते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं ॥ हे रामजी! जैसे वसंतऋतु करिके एकही रस नानाप्रकारके फूल, फल, टास, बहुत रूपोंकों धारता है, तैसे एकही आकाश ब्रह्मचैत्यताकरि जगतरूप होइ भासता है, तिसविषे ओर देश काल आदिक विचित्रता कोउ नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है, नित्य उदितरूप है, बृहद्रूप है, जो सबतें बडा है वपु जिसका ॥ हे रामचंद्रजी! तिसविषे कछु मननकलना होती है, तब तिसकों मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे आंखसों तरवरे भासते हैं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे मन है ॥ हे रामजी! ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है सो मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारणतें ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु कल्पना करणी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मैं ऐसा उत्थान हुआ है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनतें आगे जगत् हुआ, मनही आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप इह सब मनके कल्पे हैं, प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या इनका भेद इह है, प्रतियोगी कहिये जैसे चेतनका प्रतियोगी जड, अरु व्यवच्छेदक कहियें, जैसे घट अविच्छिन्न पट अविच्छिन्न इत्यादिक संज्ञा कहियें, अनेक रूप जो दृश्य है, सो सब मनके कल्पे हैं, जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है, तैसा तैसा भासता है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंकी नांई, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिके तरंगचक्र होइ भासते हैं, तैसे शुद्ध चिन्मा

त्रविषे जीव फुरणे करिके नानाप्रकारका जगत् होइ भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्मही अपणे आप विषे स्थित है, जैसे तरंगोंके होणे अरु मिटणेविषे जल एकहि रस है, तैसे जगतके उपजणे अरु मिटणेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणांमें दृढ तेज करिके जल हो भासता है, तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परंतु सदा अपणे आपविषे स्थित है॥ हे रामजी! कारण कर्म कर्त्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है, न मोह है, न तृष्णा है, काहेतें जो अद्वैतरूप है, अरु सर्वात्मा है, जैसे सुवर्णतें नानाप्रकारके भूषण हो भासते हैं, तैसे ब्रह्मतें जगत् हो भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों सदा ऐसेही भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों भिन्न भिन्न कल्पना भासती हैं, जैसे किसीका बांधव होवै, अरु दूरतें दूर देशतें चिरकाल पाछे आवै, तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवकों अबांधव जानता है, तैसे अज्ञानके व्यवधान करिके अभिन्नरूप आत्माकों भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मननें शब्द अर्थ रूप भिन्न भिन्न कल्पना रची हैं, अरु आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो मनविषे निश्चय होता है, सोइ होता है, अन्यथा नहीं होता, अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बंधकी कल्पना मूर्ख करते हैं, तातें मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है, सो भी मिथ्या है, तातें बंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं, वास्तवतें न बंध है, न मोक्ष है॥ हे महामति रामजी! अज्ञान करिके अवस्तु भी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु ज्ञानवान्कों अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानतें सर्प नहीं भासता, तातें बंध मोक्ष कलना मूर्खोंकों भासती है, ज्ञानवान्कों बंध मोक्ष

कलना कोउ नहीं भासती ॥ हे रामजी ! आदि परमात्मातें मन उपजा, तिस मननेंही बंध अरु मोक्ष मोहकरि कल्प्या है, बहुरि दृश्यप्रपंचकों रचा है, सोइ प्रपंच कल्पनामात्र है, बालककी कथावत मूर्खोंकों रुचती है, अर्थ यह जो विचारतें रहित है, तिनकों इह जगत् सत्य भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! बालककी कथा क्या है; सो क्रमकरिके मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया, जो कोउ अपूर्व कथा कह; जो तुझकों आती है, जो आगे न हुई होवै, सो मुझकों कह॥हे रामजी ! जब इस प्रकार कहा, तब तिसके विनोद निमित्त महाबुद्धिवान् धात्री कथा कहत भई ॥ ॥ धात्र्युवाच ॥ हे पुत्र ! सुण, एक बडा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभ आचारवान् थे, अरु बडे सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे हैं, तैसे सुंदर तेजवान् थे, सो दोउ तौ उपजे न थे, अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभ आचारवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतणेकों चले, शून्य नगरतें बाहिर निकसे, निर्मार्गरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित एकठे जावैं, जैसे बुध अरु शुक्र अरु शनैश्चर एकठे चलैं, तैसे चलैं, अर्थ यह जो एकठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्चर अरु बुधका है नहीं, निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है, अरु सरसोंके फूलकी नांई तिनके अंग कोमल थे, सो मार्गमें थके, उपरतें सूर्यकी धूप तपै, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि कमल कुमलाई जाते हैं, तैसे कुमलाई गये, अरु चरण तप्त करि तपणे लगे, महाशोककों प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कंटक लगे, अरु मुख धूलकरि धूसर हो गया, तीनों कष्टमान् होइके आये, आगे तीन वृक्ष देखे, सो कैसे वृक्ष हैं, जो दो तौ उपजे नहीं, अरु तीसरेका बीजभी नहीं बोया, सो तीनों एक एक वृक्षके नीचे आइकरि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इंद्र अरु यम आइ बैठें, तैसे आइ बैठे, अरु तिनके फल भ

क्षण कीये, अरु फलोंका रस काटिके पान कीया, अरु तिनोंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी, अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम कीया, बहुरि चले, दूरतें दूर गये, उपर मध्यान्हका समय हुआ, तिसकरि तपायमान हुए, तब आगे तीन नदीयां देखी, तिनके निकट गये, तरंगोंकरि लीलायमान हैं, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूकी पडी है, तिसविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा अरु विष्णु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करैं, अरु जलपान करैं, तब दिन अस्त होणे लगा, तब उहांतें चले, एक भविष्यत् नगरकों देखत भये, बडी ध्वजा करिके संपन्न अरु रत्न मणि सुवर्ण करिके जडी है, मानौं सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरामणी करिके जडा एक मंदिर देखा, कैसा मंदिर जो निर्भयरूप, अर्थ इह जो निराकाररूप है, तिसविषे जाय प्रवेश कीया, तहां बहुत अंगना हैं, तिस मंदिरविषे जायकरि विचारत भये, जो रसोइ करियें, अरु ब्राह्मणकों भोजन खवाइयें, तब कंचनकी तीन बटलोइयां मंगाइयां, सो केसियां जो दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह जो आधारतें रहितरूप, अरु तीसरी चूर्णरूप; तिस चूर्णरूप बटलोइविषे तिनोंनें षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो कछु विदेहरूप देहहीन थे, तिनोंनें अरु निर्मुख ऋषियोंनें भोजन कीया, तिसकरि सेंकडों ब्राह्मणोंकों भोजन कराये, आप भी भोजन करत भये, अर्थ यह जो षोडश सेरका एक द्रोण होता है, तिनोंनें चावल रांधे, अर्थ यह जो साडे उनतालिस मण अरु चालीस सेर तिनका तोल होता है, तिनोंनें साडे उनतालीस मण चार सेर घट रांध्या, इस प्रकार उह तीन राजपुत्र आजपर्यंत सुखसाथ स्थित हैं ॥ हे पुत्र! इह रमणीक कथा मैं तुझकों अब सुनाई है, जब तूं इसकों हृदयविषे धारैगा, तब पंडित होवैगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार धात्रीनें बालककों कथा सुणाई, तब बालकके मनविषे साच आई गई, तैसे उस कथाका रूप संकल्पतें इतर कछु न था, तैसे इह जगत् हैं; सब संकल्पमात्र है, अज्ञान करिके हृदयविषे स्थिर हो रहा है, भ्रमकरिके इसविषे

आस्था भई है, बंध मोक्ष भी कल्पनामात्र है, संकल्पतें इतर इसका स्वरूप कछु नहीं ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मा निष्किंचनरूप है, संकल्पके वशतें किंचनरूप होइ भासता है, पृथ्वी वायु आकाशपर्यंत नदीयां देश आदिक जो पंचभूतक सृष्टि है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकार सृष्टि भासती है, अरु है कछु नहीं, उपजी भी नहीं, तैसे इह जगत् जाण; जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत् नगरविषे स्थित हुए, सो रचनासंकल्प बालककों स्थिरीभूत भया, तैसे इह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरणेकरि दृढ भया है, जैसे द्रवताकरिके जलतें तरंग होते हैं, सो जलही जलविषे है तैसे आत्माही आत्माविषे स्थित है, इह सब जगत् संकल्पकरि उपजा है, अरु बडे विस्तारकों प्राप्त भया है, जैसे दिनकरिके व्यवहार विस्तारकों प्राप्त होता है, तैसे संकल्पजालकरि उपजा जगत् विस्तारकों प्राप्त होता है, अरु चित्तका विलास है, चित्तके फुरणे करिके भासता है ॥ तातें हे रामजी! संकल्परूपी मैलकों त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मतत्त्वका आश्रय करौ, जब तिस पदविषे स्थित होहुगे तब परम शांतिकी प्राप्ति होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ॥ ७७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो मूढ अज्ञानी पुरुष है, सो अपणे संकल्पकरिके आपही मोहकों प्राप्त होता है, अरु जो पंडित है सो मोहकों नहीं प्राप्त होता; जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे पिशाच कल्पी करिके भयकों प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख अपणी कल्पना करि दुःखी होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, उह संकल्प क्या है, अरु छाया क्या है, जो असत्यही सत्यरूप पिशाचकी नांई दिखता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पांचभौतिक शरीर परछायेकी नांई है, काहेते जो अपणी कल्पना करि रचा है, अरु अहंकाररूपी पिशाच है, जैसे मिथ्या परछायेविषे पिशाचकों देखिके भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंकारकों देखिके खेदकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी! एक परमात्मा सर्वविषे स्थित है, तब अहं

कार कैसे होवै, वास्तवतें अहंकार कोउ नहीं, परमात्माही अभेदरूप है, तिसविषे अहंबुद्धि भ्रम करिके भासती है, जैसे मिथ्यादर्शीकों मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञान करिके अहंकारकल्पना होती है, जैसे मणिका प्रकाश मणिउपर पडता है, सो मणितें इतर कछु नहीं, मणिरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आत्माहीविषे स्थित है, जैसे जलविषे द्रवता करिके चक्रतरंग होइ भासते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकरिके नानात्व होइ भासता है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, असम्यक् दर्शन करिके नानात्व भासता है, तातें असम्यक् दृष्टिकों त्यागिके आनंदरूपका आश्रय करौ, मोहके आरंभकों त्यागिकरि शुद्ध बुद्धिसहित विचरौ, विचार करिके सत्यकों ग्रहण करौ, असत्यका त्याग करौ ॥ हे रामजी! तूं मोहका माहात्म्य देख, जो देह स्थूलरूप नाशवंत है, तिसके रखणेका उपाय करता है, सो रहता नहीं, अरु जिस मनरूपी शरीरके नाश हुएतें कल्याण होता है, तिसकों पुष्ट करता है ॥ हे रामजी ! सब मोहका आरंभ मिथ्याभ्रम करिके दृढ हुआ है,अनंत आत्मतत्त्वविषे कल्पना कोउ नहीं,कौन किसकों कहै ? जेता कछु नानात्व भासता है सो है नहीं, अरु जीव ब्रह्मसाथ अभिन्न है, तिस ब्रह्मतत्त्वकेविषे कौन बंध कहियें ? अरु कौन मोक्ष कहियें ? वास्तवतें न कोउ बंध है, न मोक्ष है; काहेतें जो आत्मसत्ता अनंतरूप है ॥ हे रामजी ! वास्तव कछु द्वैतकल्पना हुई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे है, जो आत्मतत्त्व अनंत है, सोइ अज्ञानकरिके अन्यकी नांई भासता है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, तब परिच्छिन्न कल्पना होती है, तब शरीरकों अच्छेदरूप जानिके कष्टमान होता है, अरु आत्मपदविषे भेद अभेद विकार कोउ नहीं; काहेतें जो नित्य शुद्धबोध अविनाशी पुरुष है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे न कोउ विकार है, न बंध है, न मोक्ष है; काहेतें जो आत्मतत्त्व अनंतरूप निर्विकार अच्छेदरूप है, निराकार अद्वैतरूप है; तिसकों बंधविकारकल्पना कैसी होवै ॥ हे रामजी ! देहके नष्ट हुए आत्मा नष्ट नहीं होता, जैसे चमडीविषे आकाश होता है, सो चम

डीके नाश हुएतें आकाशका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुएतें आत्माका नाश नहीं होता, जैसे फूलके नाश हुएतें गंध आकाशविषे लीन होता है, जैसे कमलउपर बरफ पडता है तब कमल नष्ट हो जाता है, भमरा नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुएतें आत्माका नाश नहीं होता; जैसे मेघके नाश हुएतें पवनका नाश नहीं होता ॥ हे रामजी! सबका शरीर मन है, सो मन आत्माकी शक्ति है, तिस मनविषे आगे इह शरीर आदिक जगत् रचा है, तिस मनका ज्ञानविना नाश नहीं होता, तौ बहुरि शरीर आदिके नष्ट हुएतें आत्माका नाश कैसे होवै ॥ हे रामजी! शरीरके नष्ट हुएतें तेरा नाश नहीं होता, तूं क्यों मिथ्या शोकवान् होता है; तूं तौ नित्य शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा है ॥ हे रामजी! मेघके क्षीण हुएतें पवन क्षीण नहीं होता, कमलोंके सूकेतें भमरा नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएतें आत्मा नहीं नष्ट होता, संसारविषे क्रीडाकर्त्ता जो मन है, तिसका भी संसारविषे नाश नहीं होता, तौ आत्माका नाश कैसे होवै? जैसे घटके नाश हुएतें घटाकाशका नाश नहीं होता॥ हे रामजी! जैसे जलका कुंडा होता है, तिसविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिस कुंडेके नाश हुएतें प्रतिबिंबका नाश नहीं होता, तिस जलकों और ठौर ले जाय तब प्रतिबिंब भी चलता भासता है, तैसे देहविषे जो आत्मा स्थित है, सो देहके चलणेतें चलता भासता है, जैसे घटके फूटेतें घटाकाश महाकाशविषे स्थित है, तैसे देहके नाश हुएतें आत्मा निरामय पदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी! सब जीवोंका देह मनरूपी है, जब मृतक होता है, तब कोउ काल मुहूर्तपर्यंत देश काल पदार्थका अभाव हो जाता है, तिसके अनंतर बहुरि पदार्थ भासते हैं, तिस मूर्छाका नाम मृतक है, और आत्माका नाश तौ नहीं होता, चित्तकी मूर्छा करिके देश काल पदार्थोंका अभाव होना, इसीका नाम मृतक है ॥ हे रामजी! संसारभ्रमकों रचनेहारा जो मन है, तिसका ज्ञानरूपी अग्निकरि नाश होता है, आत्मतत्त्वका नाश कैसे होवै ॥ हे रामजी! देश काल वस्तुकरि मनका निश्चय विपर्ययभावकों प्राप्त होता है, परंतु ज्ञानविना नष्ट नहीं होता, अनेक यत्न करै ॥ हे रामजी! जन्मक

ल्पित रूपका नाश नहीं होता, जगत्के पदार्थकरि आत्मसत्ताका नाश कैसे होवै, तिस कारणतें शोक किसीका नहीं करणा ॥ हे महाबाहो! तूं तौ नित्य शुद्ध अविनाशी पुरुष है, इह संकल्पवासना करिके तेरेविषे जन्ममरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं; तातें इस वासनाकों त्यागिकरिके शुद्ध चिदाकाशविषे स्थित होहु; जैसे गरुडपक्षी अंडेकों त्यागि करिके आकाशकों उडता है, तैसे वासनाकों त्यागिकरि तूं चिदाकाश विषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्माविषे जो मनन फुरता है, सोइ मन है, सो मननशक्ति इष्ट अनिष्ट करिके इसकों बंधनका कारण है, सो मन मिथ्या भ्रांति करिके उदय हुआ है, जैसे स्वप्नद्रष्टा भ्रांतिमात्र होता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भ्रांतिमात्र है ॥ हे रामजी! इह जगत् अविद्याकरिके बंधनमय है, अरु दुःखका कारण है, सो अविद्याकों तरणा कठिन है, अविचार करिके अविद्या सिद्ध है, विचार कियेतें नष्ट होती है, तिस अविद्यानें जगत्कों विस्तार्या है, इह जगत् बरफकी कंध है, जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होवै, तब निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी! इह जगत् आकाशरूप है, अविद्याभ्रांति दृष्टिकरि आकार होइ भासता है, असत्य अविद्या करिके बडे विस्तारकों प्राप्त होते हैं, दीर्घ स्वप्न है, विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! इह जगत् भावनामात्र है, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, जैसे आकाशविषे भ्रांति करिके मोरपीछकी नांई तरवरे भासते हैं, तैसे भ्रांतिकरिके जगत् भासता है, जैसे बरफकी शिला तप्त करिके लीन हो जाती है, तैसे आत्मविचारतें जगत् लीन हो जाता है, जैसे बरफकी शिला उष्णताविना शीतलभावकों त्यागती नहीं, तैसे आत्मविचारतें जगत् लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! इह जगत् अविद्या करिके बांध्या है, सो अनर्थका कारण है, जैसे जैसे चित्त फुरता है, तैसे तैसे होय भासता है, जैसे इंद्रजाली सुवर्णकी वर्षा आदिक माया रचता है, तैसे चित्त जैसे फुरता है, तैसा होइके भासता है, जेती कछु चेष्टा आत्माके प्रमाद करके मन करता है, सो अपणे नाशके कारण होती है, जैसे घुराणकी चेष्टा अपणे बंधनका कारण होती है,

तैसे मनकी चेष्टा अपणे नाशके निमित्त होती है, अरु जैसे नटवा अपणी क्रिया करिके नानाप्रकारके रूपकों धारता है, तैसे मन अपणे संकल्पकों विकल्प करिके नानाप्रकारके भाव अभावरूपोंकों धारता है, अरु जब चित्त अपणे संकल्पविकल्पकों त्यागिकरि आत्माकी ओर देखता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जबलग आत्माकी ओर नहीं देखता, तबलग जगत्कों पसारता है, सो दुःखका कारण होता है॥ हे रामजी! संकल्पमात्र होणा इसविषे तौ यत्न कछु नहीं, संकल्प आवरणकों दूर करौ, तब आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, संकल्पविकल्पही आत्माविषे आवरण है, जब दृश्यकों त्यागौगे तब आत्मबोध प्रकाशैगा ॥ हे रामजी! मनके नाशविषे बडा आनंद उदय होता है, अरु मनके उदय हुएतें बडा अनर्थ होता है, तातें मनके नाश करणेका यत्न करौ, मनकों बढावणेका यत्न मत करौ॥ हे रामजी! मनरूपी किरसाणनें जगत्रूपी वन रच्या है, तिस वनविषे सुखदुःखरूपी वृक्ष हैं, अरु मनरूपी सर्प तिसविषे रहता है, विवेकतें रहित पुरुष हैं, तिनकों भोजन करता है॥ हे रामजी! इह मन परमदुःखका कारण है, तातें इस मनरूपी शत्रुकों वैराग्य अरु अभ्यासरूपी खड्गसाथ मारौ, तब आत्मपदकों प्राप्त होहुगे॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गये, बहुरि सूर्यकी किरणांके उदय हुए अपअपणे स्थानपर आय बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनानिर्वाणोपदेशवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह चित्र भी परमात्मातें उठे हैं, जैसे समुद्रतें लीला करिके जलकणिका होती है, तैसे परमात्मातें मन हुआ है, बहुरि मननें जगत् रच्या है, सो जगत् बडे विस्तारकों प्राप्त हुआ है, छोटेकों बडा करि लेता है, अरु बडेकों छोटे करता है, जो अपणा आपरूप है, तिसकों अन्यकी नांई दिखावता है, अरु जो अन्यरूप है, तिसकों अपणा रूप दिखाता है, अर्थ यह जो आत्माकों अनात्मभाव प्राप्त करता है, अरु अनात्माकों आत्मभाव प्राप्त कर

ता है, ऐसा जो भ्रांतिरूप मन है, सो निकट वस्तुकों दूर दिखाता है, अरु दूर वस्तुकों निकट करि दिखाता है, जैसे निकट वस्तु स्वप्नविषे दूर होय भासती है, अरु दूर वस्तु निकट होय भासती है ॥ हे रामजी! एक निमेषविषे मन संसारकों उत्पन्न करता है, अरु निमेषविषे लीन करि लेता है, जेता कछु स्थावरजंगमरूप जगत् भासता है, सो सब मनहीतें उपजता है, देश काल क्रिया द्रव्य अनेकशक्ति विपर्ययरूप मन ही दिखाता है, अपणे फुरणे करिके नानाप्रकारके भावअभावकों मनही प्राप्त होता है, जैसे नट लीला करिके नानाप्रकारके स्वांगोंकों प्राप्त होता है, साचकों असाच अरु असाचकों साच करि देखाता है, तैसे मनविषे जैसा फुरणा दृढ होता है, तैसे हो भासता है, जैसा जैसा निश्चय चंचल मनविषे होता है, तिनके अनुसार इंद्रिय भी विचरती हैं, अन्यथा नहीं विचरती ॥ हे रामजी! जो मनकरि चेष्टा होती है, सोइ सफल होती है, शरीरकी करी चेष्टा मनविना सफल नहीं होती; जैसा जैसा वेलीका बीज होता है, तैसाही उसका फल होता है, और प्रकार नहीं होता, तैसे जो कछु मनविषे निश्चय होता है, सोई सफल होता है, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, अरु नानाप्रकारके नाम रखता है, तैसे मन भी संकल्प करिके जगत्कों रचि लेता है, जैसे माटीकी सेना माटीसों भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् कल्प्या है, सो आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे मन संकल्पविषे अर्थोंकों नानाप्रकार कल्पता है, तैसे इह जाग्रत जगत् भी भ्रमकरि कल्प्या है॥ हे रामजी! एक गोपदविषे मन अनेक योजनकों रचि लेता है, अरु कल्पका क्षण अरु क्षणका कल्प रचि लेता है, जैसा कछु मनविषे तीव्र संवेग होता है, तैसाही होइकरि भासता है, तिसकों रचणेविषे विलंब नहीं लगता, रचणेकों समर्थ है, जैसा तीव्र संवेग होता है, तैसाही भासता है, जेते कछु देश काल पदार्थ हैं, सो मनतें उपजे हैं, सबका कारणरूप मन है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास वृक्षतें उपजे हैं, सो वृक्षरूप हैं, अरु जैसे समुद्रतें लहरी, तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं, अरु जैसे अग्नि उष्णतारूप हैं, तैसे नानाप्रकारके स्वभाव

मनतें उपजे दृष्ट आते हैं, सो मनरूप हैं ॥ हे रामजी! कर्त्ता कर्म क्रिया, द्रष्टा दर्शन दृश्य, सब मनकाही पसारा है, जैसे सुवर्णतें नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, अरु जब सुवर्णका ज्ञान हुआ तब सर्व भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता, तैसे जबलग आत्माका प्रमाद है, तबलग द्वैतरूप जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान हुआ, तब सब भ्रम मिटि जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब एक वृत्तांत तुझकों कहता हों, जो पूर्व व्यतीत हुआ है; इह जगत् इंद्रजालवत् है, जैसे मनरूपी इंद्रजालविषे इह जगत् स्थित है, तैसे तूं सुण ॥ हे रामजी! इस पृथ्वीविषे एक उत्तरपाद नाम देश था, तहां तिसविषे एक बडा वन था, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल, फल, ताल थे, तहां विद्याधरी आयकरि कल्लोल करती थी, अरु बडे सुंदर स्थान थे, केलेके वृक्ष अरु खजूर अरु जोवेके वृक्ष थे, तहां मोर शब्द करते थे, और अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करते थे, अरु अनेक प्रकारकी फूलोंतें सुगंध निकसे है, तहां विद्याधर अरु सिद्धगण देवता आय विश्राम करते हैं, किन्नर आय गान करते हैं, मंद पवन चलता है, तिस स्थानविषे महासुंदर रचना बनी थी, सुवर्णवत् महाकल्पवृक्ष पारिजातकवृक्ष लगे थे, तिस देशका लवण नाम राजा हरिश्चंद्रके कुलविषे उपजा, सो बडा धर्मात्मा होत भया, मानौ दूसरा सूर्य बडा तेजवान् पृथ्वीविषे आय उदय हुआ है, जेते कछु शत्रु हैं, तिन सबका कुहाडेसाथ नाश कीया, अरु जो साधु पुरुष पुण्यवान् थे, तिनकी रक्षा करी, और दुष्टोंकों मारे ॥ हे रामजी! ऐसा तेज उसका हुआ, जो शत्रु राजाका नामस्मरण करै तब उसकों ताप चडि जावै, अरु श्रेष्ठ पुरुषकी पालना करै, तिस राजाके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूर्ण भई, स्वर्गविषे देवता विद्याधर यश गावैं, लोकपाल भी जिसका यश सुणैं, सब लोकविषे उसका यश प्रसिद्ध भया ॥ हे रामजी! तिस राजाके समान और कोउ स्वप्नविषे भी दृष्ट न आवै, कुटिलता अरु लोभ तिसविषे कछु दृष्ट न आवै, अरु बडा

बुद्धिवान् अरु उदार था, जैसे ब्रह्माजीके कंठ हाथविषे रुद्राक्षकी माला प्रत्यक्ष पाइयें, तैसे उसकी उदारता अरु तेज दृष्ट आवैं; सो धर्मात्मा एक दिन सभासंयुक्त बैठा था, अरु दो मुहूर्त दिन रहा तब बडे सिंहासनपर बैठा था, जैसे देवताकी सभाविषे इंद्र बैठै तैसे बैठा था, अरु मंडलेश्वरकी सेना अंतर प्रवेश करी बाहिर निकसै, स्त्रीयोंका नृत्य होता था, वाजिंत्र वाजते थे, मधुर ध्वनि होता था, चमर शीसपर झुलता था, मंत्री आगे खडे थे, जैसे देवगुरु बृहस्पति है, तिसके समान राजाकों देशमंडलकी वार्त्ता सुणाते हैं, अरु इतिहास कथाका पुस्तक वांचिके ढांप रख्या था, भट्ट कवि स्तुति करते थे, तिस कालविषे एक इंद्रजाली बाजीगर अपणी सभामें आडंबरसंयुक्त आया, जैसे वर्षाकालका मेघ जलकरि पूर्ण आता है, तैसे आया, अरु राजा सुमेरुके शिखर जैसे उंचे आसनपर ग्रीवाकों उंचे कर बैठा था, अरु जैसे पहाडउपर वृक्ष होता है, अरु तिसके फल लटकते हैं, तैसे राजा उंचे सिंहासनपर बैठा था, अरु चरण लटकते थे, तिस राजाके निकट इंद्रजाली आया, जैसे वृक्षके निकट मर्कट आते हैं, तैसे आयके कहत भया ॥ हे राजन्! एक तुम मेरा कौतुक देखौ, हे रामजी! ऐसे कहिकरि उसनें पेटारा खोला, तिसतें एक मोरका पूछ भ्रमावणे लगा, तिसके भ्रमणेकरि नानाप्रकारकी रचना भासणे लगी, मानौ परमात्माकी माया है, तिसतें नानाप्रकारके रंगोंकों राजा देखत भया, जैसे इंद्रधनुष्य आकाशविषे भासता है, तैसे सूर्यकी किरणांवत् प्रकाशवान् रंग भासणे लगे, बहुरि तिसी क्षणविषे एक मंडलेश्वरका दूत आया, जैसे आकाशकेविषे तारामंडलकों लंघकरि मेघ आता है, तैसे हाथविषे घोडा अरु सभाकों लंघिकरि आया, अरु कहत भया॥हे राजन्! इह महाबलवान् घोडा मेरे राजानें तुमकों दीया है, सो कैसा घोडा है, जैसे उच्चैःश्रवस् इंद्रका घोडा समुद्रके मथनेतें निकस्या है, तैसा इह घोडा है, अरु पवनकी नांई इसका वेग है, मानौ पवनकी मूर्त्ति है, मेरे स्वामीनें कहा, जो उत्तम पदार्थ है, सो बडेकों देना योग्य है, इस कारणतें घोडाविषे रत्न तुमकों दीया हैं, तुमारे योग्य है, तातें लेहु ॥

हे रामजी! जब इस प्रकार दूतनें कहा, तब इंद्रजाली बोला, जैसे मेघ गर्जिकरि चुप करता है, अरु पाछे बबोहा बोलत है, तैसे इंद्रजालीनें कहा ॥ हे राजन्! इस घोडेपर तुम आरूढ होकरि विचरौ, आप शोभा पाओगे, जैसे आकाशविषे सूर्य शोभता है, अरु जगत्कों भी शोभा देता है, तैसे तुम शोभौगे ॥ हे राजन्! तुम भी शोभौगे, अरु घोडा भी शोभैगा ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार इंद्रजालीनें कहा, तब राजा घोडेकी उर देखत भया, देखिकरि मूर्छित भया, जैसे कागदपर मूर्त्ति लिखी होती है, तैसे दो मुहूर्तपर्यंत राजा मूर्छित हो गया, जैसे वीतराग मुनीश्वर परमानंद आत्मपदविषे स्थित होता है, तैसे राजा हो गया ॥ हे रामजी! तिस राजाके भय करिके मंत्री भी जगावै नहीं, हाथ पाउं राजाके कछु हिले नहीं, शिरपर चमर होवै, जैसे चिक्कडविषे कमल अचल होता है, तैसे राजा अचल हो गया, जैसे मृत्तिकाके कमल स्पष्ट होता है, तैसे राजा हो गया, भाट कवि शब्द स्तुति करते थे, सो भी चुप हो रहे; जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जिकरि शांत हो जाता है, तैसे शांत हो गए, अरु मंत्री टहलुए सब भय संशयके समुद्रविषे डूब गए, जानत भये, जो राजाके मनविषे कोउ बडी चिंता उपजी है, अरु सब सभाके लोक आश्चर्यमान् हुए ॥ ॥ इति श्रीयो॰ उत्प॰ इंद्रजालो॰ नृपमोहो नामाशीति॰ सर्गः ॥८०॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब राजा दो मुहूर्तउपरांत चेतनताविषे आया, जैसे वर्षाकालके मेघतें छूटिकरि कमल प्रफुल्लित होइ आता है, तैसे राजा जागिके सिंहासनपर कंपणे लगा, जैसे भूकंपविषे पर्वत हिलते हैं, तैसे राजाके अंग हिलणे लगे, जैसे समुद्रके मंथनतें मंदराचल कंपता था, तैसे कंपिकरि राजा गिरने लगा, तब मंत्री अरु टहलुए भुजा पकडिके राजाकों थांभते भए, जैसे प्रलयकालविषे सुमेरु गिरने लगै, अरु पास पर्वत थांभ गिरने न देवै, तैसे राजाकों गिरने न दीया; परंतु राजाकी बुद्धि व्याकुल हो गई, तब राजा बोलत भया, इह नगर किसका है, अरु सभा किसकी है, अरु राजा कौन है, इह क्या है, हे रामजी! जब इस प्रकार राजाका वचन सुणा, तब मंत्री कछुक शांत भये, जैसे सूर्य राहुतें छूटता है,

तब कमल खिली आते हैं, अरु तिनकों देखिके भ्रमरे प्रसन्न होते हैं, अरु शब्द करते हैं, तैसे मंत्री टहलुए प्रसन्न होइके कहत भये, जैसे प्रलयक्षोभतें भ्रमत मार्कंडेय ऋषीकों देवता पूछते हैं, तैसे पूछत भये ॥ हे राजन्! तूं क्यों व्याकुलताकों प्राप्त भया है? तेरा तौ निर्मल मन है, तूं तौ उदार आत्मा है! हे देव! जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थविषे है, अरु आपातरमणीय भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है, अरु जो संतजन उदारचित्त हैं, तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडै ॥ हे देव! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बंधमान है, तिनका मन मोहकों प्राप्त होता है, अरु जो महापुरुष संतजन हैं, तिनका मन मोहविषे डूबता नहीं, जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है, अरु बडे गुणोंकरिके संपन्न है, तिनकों शरीरके रहणेविषे अरु नष्ट होणेविषे कछु मोह नहीं उपजता, अरु जिनकों आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया, अविवेकी हैं, तिनका चित्त देश, काल, मंत्र औषधके वशकरि मोहकों प्राप्त होता है, तुमारा चित्त तौ विवेकभावकों ग्रहण करता है, जो नित्यही नूतन उदार कथा, अरु शब्द सुणते हौ, अब कैसे मोहकरि चलायमान हुए हौ? जैसे वायुकरिके पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ, यह आश्चर्य है, तुम अपणी उदारताकों स्मरण करौ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मंत्री टहलुए कहत भये, तब राजा सावधान भया, अरु मुखकी कांति उज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मंजरी सूकी हुई, वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होती है, तैसे राजा नेत्रोंकों खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी उर देखता है, जैसे सर्प नोलेकी उर देखता है, तैसे इंद्रजालकी और देखिकरि कहा ॥ हे दुष्ट इंद्रजाल! तैनें इह क्या कर्म कीया, राजासों भी कोउ ऐसा कर्म करता है! जैसे जलविना मच्छी कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै, तेसे मैं हुआ हौं, बडा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देख्या, मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोहि गया, तौ प्राकृत जी

वोंकी बात क्या करनी, मैंनें बडा आश्चर्यभ्रम देखा है, सो सबही मुझतें सुणो, इह जो इंद्रजाली है, सो मानौं संबर दैत्य है, क्या जो दो मुहूर्तविषे मुझकों अनेक देश,काल, पदार्थ दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैसे एक मुहूर्तविषे इसनें मुझकों अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सबही मैं तुमारे आगे कहता हौं, मानौ सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजाप्रबोधो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नांई सिंहासनपर बैठता हौं, जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होते हैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी उदारताकरि मैं संपन्न हौं, सो मैं बडे भ्रमकों देखता भया ॥ हे साधो! जब इस इंद्रजालीनें पेटारेसों काढिकरि मोरके पूछकों भ्रमाया, तब उह पीछ मुझकों सूर्यकी किरणांकी नांई भास्या, जैसे बडा मेघ गर्जिके शांत होता है, अरु पाछेतें इंद्रधनुष्य दृष्ट आता है, तैसे विचित्ररूप पीछ मुझकों दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा ले आया, तिस घोडेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तहीकरि घोडा मुझकों दूरतें दूर ले गया, इहांही बैठा रहा, अरु घोडा मुझकों दूरतें दूर ले गया, जैसे भोगोंकी वासना करिके मूर्ख घरही बैठे दूरतें दूर भटकते फिरैं, तैसे मुझकों घोडा दूरतें दूर ले गया, एक महा भयानक निर्जन देशविषे ले गया, जैसे प्रलयकालकेविषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे ले गया, मानौ दूसरा आकाश है, मानौ सात समुद्र हैं, तिन समान अष्टमा समुद्र है, चारौं दिशांके जो चार समुद्र वर्णन कीये हैं, तिन समान मानौं पांचमा समुद्र है; महाभयानक स्थानोंकों ले गया, देशोंकों लंघिकरि महाअटवीविषे ले आया, जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है, अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है, अरु शून्य होता है, तैसा स्थानविषे ले गया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोउ दृष्ट न आवै, तहां मैं महा कष्टवान् दीनताकों प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु बांधवोंतें अरु देश अरु बलतें रहि

त पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत हो गया, तहां उजाडविषे कष्टसाथ मैं रात कों व्यतीत कीनी, रात्रिकों पृथ्वीपर शयन कीया, परंतु निद्रा न आई, कल्पसमान रात्रि हो गई, दुःख करिके जब सूर्यउदय हुआ तब मैं उहांतें चला, आगे गया, पक्षीयोंका शब्द सुणा, बहुरि वृक्ष दृष्टि आये, परंतु खानपान कछु न पाया, तिन वृक्षोंकों देखिके प्रसन्न भया, जैसे मरणेतें छूटे पुरुष रोगकरि भी प्रसन्न होवैं, तैसे मैं वृक्षोंकों देखिकरि प्रसन्न हुआ एक जामके वृक्षका मैंनें आश्रय लीया, जैसे मार्कंडेय ऋषीनें प्रलयके समुद्रविषे भ्रमता हुआ वटका आश्रय लिया था तैसे मैंनें वृक्षका आश्रय कीया, तब घोडा मुझकों छोडिके चलता रहा, जैसे गंगाविषे डबकी लेणेकरि पाप चलते रहते हैं, तैसे घोडा मुझकों छोडि गया, बहुरि सूर्य अस्त भया, तहां रात्रि मैं व्यतीत करी, न कछु भोजन कीया, न जलपान कीया, न स्नान कीया, महादीनता कों मैं प्राप्त हुआ, जैसे कोउ विकाया मनुष्य दीन हो जाता है, अरु जैसे अंधकूपविषे गिरा मनुष्य कष्टमान होवै, तैसे कष्टमान हुआ, अरु कल्पके समान रात्रि व्यतीत भई, दीन हुआ, कोउ फूल, फल, पत्र, जल, उहां दृष्ट न आवै, जैसे मूर्खके शरीरविषे कोउ गुण दृष्ट न आवै, तैसे उहां अन्नपान कछु दृष्ट न आवै, तब मैं आगे गया, तहां पक्षी शब्द करते थे, अरु आधा प्रहर दिन रहा, एक कन्या मुझे दृष्ट आई तिसके हाथविषे मृत्तिकाकी मटकी, तिसविषे रंधे चावल, अरु जांबूके रसकी टीड भरी हुई ले जाती है, तिसकों देखिकरि मैं तिसके सन्मुख आया, जैसे रात्रिके सन्मुख चंद्रमा आता है, तैसे मैं आइके कहा, हे बाले! मुझकों भोजन दे, मैं क्षुधा करिके आतुर हौं, जो कोउ दीन आर्तकों अन्न देता है, सो बडी संपदाकों प्राप्त होता है, तातें तूं भोजन मुझ कों देहु ॥ हे साधो! जब मैंनें वारंवार कहा, तब उसनें कहा, तूं तौ कोउ राजा भासता है, जो नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिरे हुए हैं, तूं जो भोजन मागता है, सो मैं न देउंगी, ऐसे कहीकरि आगे चली जावै, अरु मैं भी तिसके पाछे जैसे छाया जावै, तैसे चला जाउं, मैं कहता जाउं, हे बाले! मुझे भोजन देहु, जो मेरी क्षुधा शांत

होवै, तब उसनें कहा ॥ हे राजन्! हम नीच लोक हैं, अपने प्रयोजनविना किसीकों नहीं देते, जो तूं मेरा भर्त्ता होवै, तब मैं देवौं, इह अन्न मैं पिताके निमित्त ले चली हौं, उह मसानविषे वैतालकी नांई अवधूत होई बैठा है, अरु धूरसाथ अंग भरे हैं, जो तूं मेरा भर्त्ता होवै, तब मैं देती हौं, काहेतें जो भर्त्ता प्राणोंतें भी प्यारा होता है, पितासों क्षमा कराय लेउंगी ॥ हे साधो! जब चंडालीनें ऐसे कहा, तब मैंनें कहा, भला मैं भर्त्ता होउंगा, मुझे भोजन दे ॥ हे साधो! ऐसा कौन है, जो ऐसी आपदाविषे अपणे वर्णाश्रमके धर्मकों दृढ राखै? तब उसनें मुझकों अर्धभाग भोजन दीया, अरु अर्ध जांबूका रस दीया, तिसका भोजन पान कीया, तब कछुक शांतिवान् हुआ, परंतु मेरा मोह निवृत्त न भया, तब दोनों मेरे हाथ पकडीकरि मुझकों आगे लगाए लीया, अपणे पिताके निकट ले गई, जैसे पापीकों यमदूत लेजाते हैं, तब उसनें कहा, हे पिता! इह मैंनें भर्त्ता किया है, पितानें कहा, भला कीया, ऐसे कहीकरि चावल अरु जांबूके रसका भोजन कराया, भोजन करिके पितानें कहा ॥ हे पुत्रि! इसकों अपणे घर ले जा, तब मुझकों अपणे घर ले गई, जब घरके निकट गये, तब मैंनें देखा, जो अस्थि, मांस, रुधिर, बहुत पडा है, कुत्ते कूकुर गर्दभ हस्ती आदिक जीवोंकी खालडियां पडी हैं, तिनकों लंघिकरि अपणे घरविषे ले गई, जैसे पापीकों नरकविषे यमदूत ले जातें हैं, एक बगीचा निकट था, तिसके आगे अपणी माताके पास मुझे ले गई, अरु कहा, हे माता! इह तेरा जंवाई हुआ है, मातानें कहा, भली बात है, तब उनके घर हम विश्राम कीया, उस चंडालीनें मुझकों भोजन दीया, तिसकों भोजन कीया, मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगते हैं, बहुरि विवाहका दिन स्थापन कीया, तिस दिनविषे विवाह कीया, चंडाल हसै, अरु नृत्य करै, मानों पाप मेरे नृत्य करते हैं, उह चंडाली मुझकों विवाहि दीनी, जैसे पापीकों शासन देते हैं, तैसे चंडालीनें वस्त्र आदिक पदार्थसहित मुझकों विवाह करी दीया ॥ इति श्रीयोग०उ०चंडालीविवाहवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! बहुत कहणेकरि क्या

है? उहां मैं बडा चंडाल होता भया, सप्त दिन विवाहका उत्साह होता भया, तहां अष्ट मास मैं रहा, तिसके अनंतर मैं और स्थानोंविषे रहा, तब उह चंडाली गर्भवती भई, तिसतें एक कन्या उत्पन्न भई, जैसे पाप कीयेतें दुःख उत्पन्न होते हैं, तैसे दुःखनाम्नी कन्या भई, अरु शीघ्रही बढ गई, जैसे मूर्खके चित्तविषे चिंता बढ जाती है, बहुरि तीसरे वर्ष पाछे तिसकों बालक उत्पन्न हो गया, जैसे दुर्बुद्धितें अनर्थ उत्पन्न होता है, बहुरि पुत्र बहुरि कन्या उपजी, इसी प्रकार तीन पुत्र अरु तीन कन्या उत्पन्न हुए, तब मैं बडा चंडाल परिवारवान् हुआ, तिस चंडालीसाथ मैं चिरकालपर्यंत चंडालोंविषे विचरता रहा; जैसे ब्रह्महत्यारा नरकोंविषे चिंतासहित वसता रहै, तैसे मैं रहा, अरु तिसके साथ मेरा बहुत स्नेह भया, जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है, तैसे मैं तिन्होंविषे बंधमान भया॥ हे साधो! तिनोंविषे मैं बडी कष्ट पाया, प्रथम जो पटका वस्त्र भी चूभता था ऐसे तिस शिरविषे मैं भार उठाउं, अरु नीचे चरण तपायमान होवैं, अरु शिरपर सूर्य तपै, रात्रिकों कंटकोंपर शयन करौं, तिसकरि मैं बडे कष्टकों पाता भया, उपर वस्त्र कोउ प्राप्त न होवै, अरु पुरातन कौपीन जीवोंजंतोंके लोहिसाथ भरे हुए, अरु आर्द्र शिराने देवै, अरु कुक्कुट हस्ती आदिक अशुचि पदार्थोंका भोजन करै, अरु रुधिरका पान करै ऐसी हमारी चेष्टा होवै, जालसाथ पक्षी मारौं, कंडीसाथ मच्छ कच्छ आदिक मारौं, अनेक प्रकारके क्रूर नीच कर्म हम करते भये, जैसी कैसी वस्तु पाई सो भोजन करें, विचारतें हीन हम चिरकालपर्यंत ऐसी चेष्टा करते हैं, अरु ऐसी अवस्था भई, जो अस्थिमांसके निमित्त हम आपसमें लडहीं, पुत्र अरु स्त्री सब लडैं, अरु शीतकालमें शीतकरि कष्ट पावैं, उष्णकालमें उष्णताकरि कष्टमान होवैं, मेरा शरीर बहुत कृश हो गया, अवस्था भी वृद्ध भई; मसाणोंविषे हमारा बहुत काल व्यतीत भया, मांस अरु रक्तपान करें, अरु जो वैताल जन आवैं, तिनकों हम मारैं, जैसे चंडिकानें दैत्यकों मारा था, आंतेडे अरु चमडे तले बिछाइके शयन करैं, अरु शिरके शिरानें राखैं, ऐसे चिरकालपर्यंत हम चेष्टा

करते रहे; बांधवोंमें स्नेह बहुत बढ गया, ऐसी नीचताकों भी हम प्राप्त भये, अरु तृष्णा बढती जावै, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती जाती है, तैसे तृष्णा बढती जावै, मृत्तिकाके पात्रोंविषे आगे चंडाल भोजन करि जावैं, तिनों वासनोंविषे हम भोजन करैं, बहुरि वर्षा होणेतें रहि गई, काल पडा, सूर्य तपणे लगा, मानों द्वादश सूर्य एकठे तपे हैं, अरु दावाग्नि बनकों लगा, बनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पावणे लगे, अपणे देशकों छोडिके देशांतरकों जावैं, उहा उपद्रव आय प्राप्त हुआ, समयविना मानों प्रलय आया है, क्षुधा अरु तृष्णाकरिके केई जीव मृतक हो जावैं, केई गिर पडैं, बहुत कष्ट आय पडा, तब हम उहांसों निकसे; तीन पुत्र, तीन कन्या, स्त्रीसहित मैं निकस्या, जहां अन्न जल सुनैं, तहां जावैं, मांस खावैं, जल अथवा रक्त पान करैं, बहुरि इह भी हाथ न आवै, तब बहुत शोकवान् हुए, शरीर निरस जैसा हो गया, ऐसे कष्टमान हुए, पुत्र पिताकों न संभाले, अरु पिता पुत्रकों न संभाले, बांधवोंका स्नेह आपसमें छूटी गया, अपणे वास्ते सब दोडैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने उपद्रववर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥८३॥ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे सभा! इस प्रकार हम चिरकाल विचरत फिरे, मेरा शरीर वृद्ध हो गया, अरु बाल बरफकी नांई श्वेत हो गये, जैसे सूका पात वायु करिके विचरता है, तैसे हम कर्मों के वशतें भ्रमते रहे, जो कछु अपणे राजाका अभिमान था, सो मुझे विस्मरण हो गया, अरु चंडालभाव मेरेविषे दृढ हो गया, तब मैं तहां कंपायमान हुआ, तुमारी दृष्टीमें आया, अब कछु सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां वाजणे लागे, जैसे पंखोंके टूटेतें पहाड अचल भये, तैसे चंडाल कल्प मेरेविषे दृढ हो गया, अरु व्याकुलता करिके महाकष्टवान् हम हुए, तृण, फूल, फल, जल, कहूं दृष्ट न आवै, अरु अनेक मृगतृष्णाकी नदियां दृष्ट आवैं, जब वायु चलै तब रेतीके कणके उडते मेघकी नांई दृष्ट आवैं, सब जीव कष्टमान होइके कलत्रकों छोडि जावैं, कोउ पहाड उपर चढिकरि दुःखके निमित्त गिर गिर पडै, जैसे चिडीका बाज भोज

न करता है, तैसे जीवोंकों बिघाड भोजन करैं, बहुरि एक वृक्ष पाया, तिसके नीचे मैंनें विश्राम कीया, तब एक बालक जो सबतें छोटा था, सो मेरे पास आया, अरु कहा, हे पिता, मुझकों मांस देहु, जो मैं भोजन करौं, नहीं तौ मेरे प्राण निकसते हैं, तब मैंनें कहा, मांस तौ है नहीं, तब उह कहत भया, भावै तहांसों देहु, तब स्नेहकरि बांधा, अरु छोटा पुत्र सबतें प्यारा होता है, तिसकरि मैंनें कहा, हे पुत्र! मेरा मांस है, सो खाता है? तब उस दुर्बुद्धिनें कहा, देहु, तब मैं बनतें लकडीयां तिनकों एकठी करिके अग्नि जलाई, अरु कहा, हे पुत्र, मैं अग्निविषे प्रवेश करता हौं, जब परिपक्क होउं, तब तूं भोजन करना ॥ हे सभा! इस प्रकार मैंनें स्नेहकरिके कहा, जो किसी प्रकार इह जीते रहैं, ऐसे कहिकरि मैंनें चिताविषे प्रवेश कीया, जब मुझकों उष्णता लगी, तब मैं कंपायमान हुआ, तुमकों दृष्ट आया, बहुरि कछुक सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां वाजणे लगी ॥ हे साधो! मैं इस प्रकार चरित्र देखा है, तैसे तुमारे आगे कहा है, जैसे मार्कंडेयनें प्रलयविषे क्षोभकों देखा, अरु देवताकों कहा, तैसे मैंनें तुमकों अपणा वृत्तांत कहा है, जब इंद्रजालीनें पीछकों भ्रमाया, तिसके भ्रमाणेसाथ मैं घोडेपर आरूढ भया, तिसकरि एता काल मैं भ्रमकों प्रत्यक्ष देखता रहा, तातें बडा आश्चर्य है, जो मेरे जैसे विवेकवान् राजाकों इसनें मोहित कीया है, तौ और प्राकृत जीवोंकी क्या वार्ता है, माया महा आश्चर्य है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार तेजवान् राजानें कहा, तब उह सांबरीक अंतर्धान हो गया, अरु सभाविषे जो मंत्रीतें आदि लेकरि बैठे थे, सो सब आश्चर्यमान् हुए, अरु देखिके परस्पर कहणे लगे, बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, भगवान्की माया विचित्ररूप है, इह सांबरी माया नहीं, काहेतें जो सांबरी अपणे लोभके निमित्त दिखाता है, पाछे यत्न करिके धन आदिक पदार्थ मांगता है, अरु इह लीयेबिना अंतर्धान हो गया है, इह ईश्वरकी माया है, तिसकरि ऐसा विवेकवान् राजा मोहकों प्राप्त हुआ है, जो बडा तेजवान् अरु सूरमा राजा मोहित भया, तौ सामान्य जीवोंकी क्या बात है ॥ हे

रामजी! ऐसे संदेहमान होकरि सब स्थित भये, अरु मैं भी उस सभाविषे बैठा था, इह वृत्तांत मैंनें प्रत्यक्ष देख्या है, किसीके मुखतें श्रवणकरिके नहीं कहा ॥ हे रामजी! इह जो अणुरूप मन है, सो महामोह है, अरु अविद्या है, इसके फुरणेकरि अनेक प्रकारोंका मोह दिखता है, जब इह मन उपशम होवे, तबही कल्याण है, तातें मन जो बहुत कल्पना उठाता है, तिसकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित करौ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सांबरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! आदि जो शुद्ध परमात्मातें चित्तसंवेदन फुर्या है, सो कलनारूप होइके स्थित भया है, तिसकरि दृश्य सत्य होइ भासता है, आत्माके प्रमादकरिके मोहकों प्राप्त हुआ है, सो चित्तके फुरणे करिके चिरपर्यंत जगत्विषे मग्न हो रहा है, सो मन असत्यरूप है, अरु मननेंही, संपूर्ण जगत्कों विस्तारा है, तिसकरि अनेक दुःखकों प्राप्त हुआ है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पीकरि आपही भयमान् होता है, अरु उही मन जब संसारकी वासनाकों त्यागिकरि आत्मपदमें स्थित होता है, तब एक क्षणविषे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यकी किरणांकरि अंधकार नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो अभ्यास कीयेतें प्राप्त न होवै, तातें जब आत्मपदका अभ्यास करियें तब प्राप्त होता है, आत्मपदके अभ्यास कीयेंतें आत्मा निकट भासता है, अरु संसार दूर भासता है, अरु जब जगत्का अभ्यास दृढ होता है, तब जगत् निकट भासता है, आत्मा दूर भासता है ॥ हे रामजी! जो मूर्ख मनुष्य हैं, तिनकों अभयपदविषे भय होता है, जैसे पंथीकों दूरतें वृक्षविषे वैतालकल्पना होती है, और भयकों पाता है, तैसे चित्तकी वासनाकरि जीव भयकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जो वासनासहित मलीन मन होता है, तिसविषे नानाप्रकार संसारभ्रम उठता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब भ्रम मिट जाता है, अरु जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसाही हो भासता है, जब मित्रविषे शत्रुबुद्धि होती है,

तब निश्चयकरि शत्रु हो जाता है, अरु जो मदकरि उन्मत्त होता है, तिसकों संपूर्ण पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, अरु व्याकुल मन होता है, तब चंद्रमा भी श्याम जैसा भासता है, जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब अमृत भी विषकी नांई भासता है, जेते कछु जागृत पदार्थ देश, काल, क्रिया, पत्तन भासते हैं, सो मनकरि भासते हैं ॥ हे रामजी! संसारका जो कारण है, सो मोह है, तिस मोह करिके जीव भटकता है, तातें ज्ञानरूपी कुहाडेकरिके वासनारूपी मलीनताकों काटौ, आत्मपद पावणेविषे वासनाही आवरण है ॥ हे रामजी! वासनारूपी जालकरिके मनुष्यरूपी हरिण आवर्या है, अरु संसाररूपी वनविषे भटकता है, जिस पुरुषनें विचार करिके वासनाकों नष्ट कीनी है, तिसकों परमात्मप्रकाश भासता है, जैसे बादलतें रहित सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनारहित चित्तविषे आत्मा प्रकाशता है ॥ हे रामजी! मनहीकों तूं पुरुष जाण, देहकों मनुष्य नहीं जानना, काहेतें जो देह जड है, अरु मन जड अरु चेतनतें विलक्षण है, जो मनकरि कार्य करता है, सो कार्य सफल होता है, जो मनकरि दीया है, अरु जो मनकरि लीया है, सोई दीया अरु लीया है, जो देहकरि कीया है, सो मननेंही कीया है ॥ हे रामजी! इह संपूर्ण जगत् मनरूप है, मनही पर्वत है, मनही आकाश,वायु,जल,अग्नि,पृथ्वी सब मनही है,सूर्य आदिकोंका प्रकाश मनहीकरि होता है, अरु शब्द,स्पर्श,रूप, रस, गंध सब मनहीकरि ग्रहण होते हैं, अरु नानाप्रकारकी वासना करिके नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंकों धरता है, तैसे नानाप्रकारके रूप मनही धरता है, लघु पदार्थकों दीर्घ मनही करता है, सत्यकों असत्यकी नांई अरु असत्य जगत्के पदार्थकों सत्यकी नांई करता है, मित्रकों शत्रु करता है, शत्रुकों मित्र करता है ॥ हे रामजी! जैसी वृत्ति मनकी दृढ होती है, सोई सत्य होइ भासती है, हरिश्चंद्रकों एक रात्रिविषे बारह वर्षों होइ भासै, अरु इंद्रकों एक मुहूर्तविषे युगोंका अनुभव हुआ, अरु मनहीके दृढ निश्चयतें इंद्र ब्राह्मणके पुत्र दशही ब्रह्मपदकों प्राप्त भये ॥ हे रामजी! जो सुखसाथ बैठा है, अरु मनवि

षे कोउ चिंता आन लगी, तौ सुखहीविषे उसकों रौरव नरक हो जाता है, अरु जो दुःखविषे बैठा है अरु मनविषे शांत है, तौ दुःख भी सुख हो जाता है, तातें जैसा निश्चय मनविषे होता है, तैसाही होइ भासता है, अरु जिस उर मनका निश्चय होता है, तिसी और मन इंद्रियोंका समूह विचरता है, अरु इंद्रियोंका आधारभूत मन है, जो मन टूट पडता है, तब इंद्रियां भिन्न भिन्न हो जातियां हैं, जैसे तागेके टूटेतें मणके भिन्न भिन्न होइ पडते हैं, तैसे मनतें रहित इंद्रियां अर्थोंतें रहित भिन्न होतियां हैं, अरु वास्तव आत्मतत्त्व सबविषे अधिष्ठान स्थित है, सो स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म समभाव नित्य है, अरु सबका साक्षीभूत है, अरु सब पदार्थोंका ज्ञाता है, अरु देहतें भी अधिक सूक्ष्म रूप है, अर्थ यह जो अहंभावके उत्थानतें रहित चिन्मात्र है, तिसविषे मनके फुरणे करिके संसार भासता है, वास्तव द्वैतभ्रमतें रहित है, सब जगत् आत्माका किंचनमय रचा है, सबविषे चेतनशक्ति व्यापी है, वायुविषे स्पंदरूप उही है, पृथ्वीविषे कठोरता उही है, सूर्य अग्नि आदिकविषे प्रकाश उही है, जलविषे द्रवतारूपी उही है, आकाशविषे शून्यता उही है, सब पदार्थोंविषे चेतनशक्ति व्यापि रही है, सो अनेकता वास्तव नहीं, मन करिके अनेकता भासती है, शुक्ल पदार्थकों कृष्ण करता है, देश, काल, पदार्थ क्रिया द्रव्यकों मनही विपर्यय करता है ॥ हे रामजी ! जैसे निश्चय मनविषे दृढ होता है, सोइ सिद्ध होता है, मनविना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिव्हा करिके नानाप्रकारके भोजन करता है, परंतु मन और ठौर होता है, तब उसका स्वाद कछु नहीं आता, अरु नेत्रोंकरि चित्तसहित देखता है, बहुरि रूपका ज्ञान होता है, इस कारण मनविना किसी इंद्रियका विषय सिद्ध नहीं होता, अंधकार अरु प्रकाश भी मनविना नहीं भासता, अरु हे रामजी ! सब पदार्थ भासते हैं सो मनकरि भासते हैं, जैसे नेत्र भी होता है, परंतु प्रकाश नहीं होता, तौ नहीं भासता, तैसे विद्यमान पदार्थ मन विना नहीं भासते हैं ॥ हे रामजी ! इंद्रियांतें मन नहीं उपजा; परंतु मनतें इंद्रियां उपजी हैं, अरु जेता कछु इंद्रियांका

विषय दृश्यजाल है, सो सब मनतें उपजा है, जिन पुरुषनें मनकों वश कीया है, सोइ महात्मा पुरुष पंडित हैं, तिनकों नमस्कार है ॥ हे रामजी! नानाप्रकारके भूषण अरु फूल पहिरे हुए स्त्री प्रीतिसाथ कंठ मिलै, अरु जो चित्त इसका आत्मपदविषे स्थित है, तब उह उसकों मृतककी कंधके समान है, अर्थ यह जो उसकों इष्ट अनिष्टका राग, द्वेष कछु नहीं उपजता, इष्ट अनिष्टविषे राग, द्वेष मन उपजाता है, मनके स्थित हुएतें राग द्वेष कछु नहीं उपजता ॥ हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित बनविषे बैठा था, तिसके हाथकों कोउ वनचर जीव तोड ले गया, परंतु तिसकों कछु कष्ट न भया, काहेतें जो मन स्थिर था, इही मन फुरनेकरि सुखकों भी दुःख करता है, अरु अपणेविषे स्थित हुए दुःखकों भी सुख करता है ॥ हे रामजी! कथाके श्रवणविषे बैठा है, अरु जो मन चिंतवनाविषे जाता है, तब कथाकेअर्थ समझविषे नहीं आते, अरु अपणे गृहविषे बैठा है, अरु मनके संकल्पकरिके पहाड उपर दौडता टूट पडता है, तब उसकों प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो मनका भ्रम है, जैसी फुरना मनविषे फुरती है सोइ भासती है, जैसे स्वप्नविषे एक क्षणमें नदी, पहाड, आकाश आदि पदार्थ भासने लगते हैं, तैसे इह पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी! अपणे अंतर सृष्टि भी मनके भ्रमतें भासती है, जैसे जलके अंतर अनेक तरंग होते हैं, जैसे वृक्षके अंतर पत्र, फूल, फल, टास होते हैं, तैसे एक मनके अंतर जाग्रत स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं, जैसे सुवर्णतें भूषण अन्य नहीं होते, तैसे जाग्रत अरु स्वप्न अवस्था भिन्न नहीं होती, जैसे तरंग बुद्बुद जलतें भिन्न नहीं, जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंकों लेकर अनेक रूप धरता है, तैसे मन वासनाकरिके अनेक रूपोंकों धरता है ॥ हे रामजी! जैसे स्पंदविषे दृढ होता है, तैसाही अनुभव होता है, जैसे लवण राजाकों भ्रमकरिके चंडालीका अनुभव भया, तैसे इह जगत्का अनुभव मनोमात्र है, चित्तके भ्रमकरिके भासता है॥ हे रामजी! जैसी जैसी प्रतिमा मनविषे होती है, तैसाही इसकों अनुभव होता है, इह संपूर्ण जगत् मनमात्र है, जैसे ते

री इच्छा होवै तैसे कर, जैसा जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा होय भासता है, मनके फुरणेकरि देवता भी दैत्य हो जाते हैं, अरु दैत्य भी मनके फुरणेकरि देवता हो जाते हैं, मनुष्य नाग हो जाते हैं, वृक्ष हो जाते हैं, जैसे लवण राजा आपदाका अनुभव करता भया॥ हे रामजी! मनके फुरणेकरि मरणा होता है, बहुरि मनके फुरणेकरि जन्म होता है, संकल्पकरि पुरुषतें स्त्री हो जाती है, अरु स्त्रीतें पुरुष हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, अरु पुत्र पिता हो जाता है, जैसे नटवा शीघ्रही अपणे स्वांगकरि अनेक रूपोंकों धारता है, तैसे अपने संकल्पकरि मन भी अनेक रूपोंकों धारता है ॥ हे रामजी! जीव निराकार है, अरु मन करिके आकारकी नांई भासता है, तिस मनविषे जो मनन है, सो मूढता है, तिस मूढता करिके जो वासना हुई है, तिस वासनारूपी पवन करिके इह जीवरूपी पत्र भटकता है, संकल्पके वश हुआ सुख दुःख भयकों प्राप्त होता है, जैसे तेल तिलोंविषे रहता है, तैसे सुख दुःख मनविषे रहते हैं, जैसे तिलोंकों कोलुविषे पीडता है, तब तेल प्रगट भासता है, तैसे मनकों मनके संयोगतें सुख दुःख प्रगट भासते हैं, जो संकल्प देश, काल, क्रिया करिके घनत्व होता है, अरु देश काल आदिक भी मनविषे स्थित होते हैं, अरु जिनका मन फुरता है, तिनकों नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है॥ हे रामजी! जिनका मन आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनकों क्षोभ भी दृष्ट आता है; परंतु मन आत्मपदतें चलायमान नहीं होता, जैसे घोडेका असवार रणविषे जाय पडता है, तौ भी घोडा उसके वश रहता है, तैसे उसका मन जो विस्तारकी और जाता है, तौ भी अपणे वशही रहता है॥ हे रामजी! जब मनकी चपलता वैराग्य करिके दूर होती है, तब मन वश होइ जाता है, जैसे बंधनों करिके हस्ती वश होता है, तैसे जिस पुरुषका मन वश होता है, अरु संसारकी उरतें निवृत्त होइकरि आत्मपदविषे स्थित भया है, सो श्रेष्ठ महापुरुष कहाते हैं, अरु जिनका मन संसारकी और धावता है, सो चिक्कडके कीट हैं, अरु जिसका मन अचपल है, शास्त्रके अर्थरूपी संग

करि अरु संसारकी आरतें निवृत्त होकरि एकाग्र भावविषे स्थित हुआ है, अरु आत्मपदके ध्यानविषे लगा हुआ है, सो संसारके बंधनतें मुक्त होता है॥ हे रामजी! जब मनसों मनन दूर होता है, तब इसकों शांति प्राप्त होती है, जैसे क्षीरसमुद्रतें मंदराचल निकस्या, तब शांतिकों प्राप्त भया, जिस पुरुषका मन भोगोंकी और प्रवृत्त होता है, सो पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होता है॥ हे रामजी! जिनका चित्त स्वरूपतें मूढ हुआ है, अरु संसारके भोगोंविषे लगा है, सो बडे कष्टकों पाते हैं, जैसे तृण जलके चक्रविषे आया क्षोभमान होता है, तैसे इह जीव मनभावकों प्राप्त हुआ भ्रमकों प्राप्त होता है, तातें इस मनकों स्थित करौ, जो शांतात्मा होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, तिसकी निवृत्ति अर्थ मैं तुझकों श्रेष्ठ औषध कहता हौं, सो तूं सुण, यत्न भी अपणा होवै, अरु आपही साध्य होता है, अरु औषध भी आप होता है, सब पुरुषार्थ आपहीकरि सिद्ध होता है, तातें यत्न करिके चित्तरूपी वैतालकों नष्ट करौ ॥ हे रामजी! जो कछु पदार्थ तुमकों रससंयुक्त दृष्ट आवै, तिसकों त्याग करौ, जब वांछित पदार्थका त्याग करौगे, तब मनकी जीत होवैगी, अरु अचल पदकों प्राप्त होहुगे, जैसे लोहेसाथ लोहेकों काटता है, तैसे मनसाथ मनकों काटौ, अरु यत्नकरिके शुभ गुणोंकरिके चित्तरूपी वैतालकों दूर करौ, अवस्तु देहादिकविषे जो वस्तुकी भावना है, तिसकों त्याग, अरु वस्तु आत्मतत्त्वविषे जो देहादिककी भावना है, तिसका त्याग करके आत्मतत्त्वमें भावना जोडौ॥ हे रामजी! जैसे चित्तविषे पदार्थोंकी चिंतना होती है, तैसे आत्मपद पावणेकी चिंतना कर, सत्य कर्मकी शुद्धता लेकर चित्तकों यत्न करिके चेतनसंवित्की और लगाओ, अरु सब वासनाकों त्यागिके एकाग्रता करौ, तब परमपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंकों अपनी इच्छा त्यागनी कठिन हुई है, सो विषयोंके कीट हैं, काहेतें जो अशुभ पदार्थ मूढताकरि

के रमणीय भासते हैं, तिन अशुभकों अशुभ अरु शुभकों शुभ जानना यह पुरुषार्थ है ॥ हे रामजी ! शुभ अशुभ दोनों पहिलवान हैं, तिन दोनोंविषे जो बली होता है, तिसका जय होता है, तातें शीघ्रही पुरुषप्रयत्न करिके अपणे चित्तकों जीतौ, जब तूं अचित्त होवैगा, तब यत्नविना आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, जैसे बादलोंके अभाव हुएतें यत्नविना सूर्य भास आता है, आत्मपदके आगे चित्तका फुरणा जो बादलवत् आवरण है, सो चित्तका फुरणा जब अभाव होवैगा, तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भासैगा, सो चित्तके स्थित करणेका मंत्रभी आपकरि होता है, अरु जिसकों अपणा चित्त वश करणेकी भी शक्ति नहीं, तिसकों धिक्कार है, उह मनुष्यविषे गर्दभ है, अपणे पुरुषार्थ करिके मनकों वश करणा सो अपणेसाथ परम मित्रता है, अरु अपणे मनकों वश कीयेविना अपणा आपही शत्रु है, अर्थ यह जो मनकों उपशम कीयेविना घटीयंत्रकी नांई संसारचक्रविषे भटकता है, अरु जिन मनुष्योंनें मनकों उपशम कीया है, तिनकों परमलाभ हुआ है ॥ हे रामजी ! मनके मारणेका मंत्र यही है, जो दृश्यकी उरतें चित्तकों निवृत्त करना, अरु आत्मचेतन संवित् विषे लगाणा, इसही मनकों जीतणा है, आत्मचिंतनाकरिके चित्तकों मारणा, आप करिके सुखरूप है ॥ हे रामजी ! इच्छा करिके मन पुष्ट रहता है, जब अंतरतें इच्छा निवृत्त भई, तब मन उपशम होता है, जब मन उपशम हुआ, तब गुरुशास्त्रोंके उपदेश अरु मंत्र अर्थ आदिकोंकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ हे रामजी ! जब इह पुरुष असंकल्परूपी औषध करिके चित्तरूपी रोगकों काटै, तब तिस पदकों प्राप्त होवै, जो सर्व है, अरु सर्वगत शांतरूप है, अरु जो देह है, सो निश्चय करिके मूढ मननें संकल्प करिके कल्पी है, तातें पुरुषार्थ करिके चित्तकों अचित्त करौ, तब इस बंधनतें छुटौगे ॥ हे रामजी! शुद्ध चित्त आकाशविषे यत्न करिके चित्तकों जोडौ, जब चिरकालपर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होवैगा, तब चेतन चित्तका भक्षण करि लेवैगा, जब चित्तका चित्तत्व निवृत्त हो जावैगा, तब केवल चेतनमात्रही शेष रहैगा ॥ हे रामजी ! ज

ब जगत्की भावनातें तूं मुक्त होवैगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थतत्त्वविषे जुडैगी, अर्थ यह जो बोधरूप हो जावैगी, तातें इस चित्तकों चित्त करिके ग्रासकरि ले, जब तूं परम पुरुषार्थ करिके चित्तकों अचित्त करैगा, तब महा अद्वैत पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! मनके जीतणेविषे और तुझकों यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावणा है, जो दृश्यकी औरतें निवृत्त करिके आत्माकी ओर लगाणा, इसकरि चित्त अचित्त हो जावैगा, चित्तके क्षोभतें रहित होणा परम कल्याण है, तातें क्षोभतें रहित होहु, जिननें मनकों जीत्या है, तिनकों त्रिलोकीका जीतणा तृणसमान है ॥ हे रामजी! ऐसे सूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारकों सहते हैं, अरु अग्निकरि जलणा भी सहते हैं, अरु शत्रुकों मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहणेविषे तुझकों क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी! जिसकों अपणे चित्तके उलटावणेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका इह अनुभव होता है, जो मैं जन्म्या हों, अरु मरौंगा, मैं जीव हों, सो असत्यरूप प्रमाद चपलता करिके भासता है, जैसे किसी स्थानविषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकरि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है, तैसेही आपकों जन्म मरण भ्रमकरिके मानता है ॥ हे रामजी! इह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परलोकविषे भटकता है, सो मोक्ष होणेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता, तब तुझकों मृत्युका भय कैसे होता है? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व विकारतें रहित है, अरु इह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे मनके फुरनेतें उपजा है, मनतें इतर चित्तका रूप कछु नहीं, अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं, तिनके क्लेशकरि आपकों क्लेश मानते हैं, सो भी चित्तकरि मानता है, जब चित्त अचित्त हो जावै, तब सर्व बंधनतें मुक्त होवै ॥ हे रामजी! मैंनें ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं; अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिनकों एकांत बैठिकरि वारंवार विचारे हैं, जो शांति प्राप्त होनेकों और उपाय कोइ नहीं, चित्तका उपशम करणाही उपाय है, जबलग चित्त दृश्यकों चितव

ता है, तबलग शांति नहीं प्राप्त होती, अरु जब चित्त उपशम होवै, तब इसकों तिस पदविषे विश्राम होता है, जो नित्य है, अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयांविषे चेतन आकाश है, परम शांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा ॥ हे रामजी! हृदयाकाशविषे जो चैतन्यचक्र है, तिसका अर्थ यह जो ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिसकी ओर होवै, तब सबही दुःखोंका अभाव हो जावै, मनका मनभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासै नहीं, तब जानियें जो मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहं अरु त्वं आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिके इनकी अभावना होवै, तब मनकी वासना नष्ट हो जावै, जैसे दातृकरिके खेती नष्ट हो जाती है, तैसे वासना नष्ट होनेतें परम तत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरद्‌कालका आकाश निर्मल भासता है, तैसे वासनातें रहित मन शुद्ध भासैगा ॥ हे रामजी! मन इसका परम शत्रु है, सो मन इच्छा संकल्प करिके पुष्ट हो जाता है, अरु जब इच्छा कोउ न उपजे, तब आपही निवृत्त हो जावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारियें तब अग्नि बढ जाता है, अरु जब काष्ठ नहीं डारैं, तब अग्नि आपही नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! इस मनविषे जो संकल्पकल्पना उठती है तिसका त्याग करैं, तब तेरा मनः स्वतः नष्ट होवैगा, जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां सूरमा निर्भय होयके जाय पडते हैं, अरु शत्रुकों मारते हैं, प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझकों संकल्प त्यागनेमें क्या भय होता है॥ हे रामजी! चित्त पसारणेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएतें कल्याण होता है, इह वार्त्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालककों अनुग्रह करिके कहता है, तैसे मैं तुझकों समझाता हों, जो मनरूपी एक शत्रुनें भयकों प्राप्त कीया है, संकल्पकलना करिके जेती कछु आपदा हैं, सो मनतें उपजती हैं, जैसे सूर्यकी किरणा करिके मृगतृष्णाका जल दिखता है, तैसे सब आपदा मनतें दिखती हैं,

जिसका मन स्थित हुआ है, तिसकों क्षोभ कोउ नहीं होता ॥ हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चलै अरु सप्त समुद्र मर्यादाकों त्यागिके इकट्ठे हो जावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपैं तौ भी मनतें रहित जो पुरुष है, तिसकों विघ्न कोउ नहीं होता, उह सदा शांतरूप है ॥ हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसतें संसारवृक्ष उपज्या है, सप्त लोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पतें रहित नष्ट हो जाता है, संकल्पके बढणेतें अनर्थका कारण बढता है, तातें संकल्पतें रहित जो चक्रवर्त्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदकों प्राप्त होवैगा, जिस पदविषे स्थित हुए चक्रवर्त्ती राजा तृणवत् भासता है ॥ हे रामजी ! मनके क्षीण होणे करिके इह परमानंद उत्तम पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! संतोष करिके मन वश होता है, तब नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मन सम अरु अनंत सर्व विकार विकल्पतें रहित आत्मपद शेष रहाता है; सो तुझकों प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनशक्तिरूप प्रतिपादनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होता है, तिसकों मन देखता है, अज्ञान करिके जो दृश्यका तीव्र संवेग भया है, तिस करिके चित्त जन्ममरणादिक विकारोंकों देखता है, जिसका निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप हो जाता है, जैसे बरफका शीतल शुक्ल रूप है, अरु काजलका कृष्ण रूप है, तैसे मनका रूप चंचल है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! इह जो मनवेग अवेगका कारण चंचल रूप है, तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तूं सत्य कहता है, चंचलतातें रहित मन कहूं नहीं दिखता, काहेतें जो मनका चंचल स्वभाव है ॥ हे रामजी ! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोइ जगत् आडंबरका कारणरूप है; जैसे वायुका स्पंद रूप है; तैसे मनका चंचल रूप है, जहां चंचलतातें रहित मन है, तिसकों मृतक कहते हैं ॥ हे रामजी ! तपका अरु

शास्त्रका जो सिद्धांत है,सो यही है, मनके मृतक रूपकों मोक्ष कहते हैं, मन क्षीण हुएतें सब दुःख नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तब बडे दुःखकों प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएतें अनंत सुखभोग प्राप्त होते हैं, अर्थ यह जो परमानंद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! मनविषे जो चंचलता है, सोई अविचारसिद्ध है, विचारतें नष्ट हो जाती है, चित्तकी चंचलतारूप जो वासना अंतर स्थित है, जब इह नष्ट होवैगी तब परम सारकी प्राप्ति होवैगी, तातें यत्न करिके चपलतारूप अविद्याका त्याग करौ, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तब मन शांत हो जाता है, सो मनका रूप सुण ॥ हे रामजी! सत्य असत्यके मध्य जडचेतनके मध्य जो डोलायमान है, तिसका नाम मन है ॥ हे रामजी! जब इह तीव्रता करिके जडकी उर लगता है, तब आत्माके प्रमादकरि जडरूप हो जाता है, अर्थ यह जो अनात्मविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त हो जाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पडा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ होता है, तैसा अनुभव इसकों होता है, जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है, अभ्यासके वशतें चित्त तैसा रूप हो जाता है ॥ हे रामजी! जिस पदके निमित्त मन पुरुष प्रयत्न करता है, तिस पदकों प्राप्त होता है, अरु अभ्यासकी तीव्रतातें भावितरूप हो जाता है, इसी कार्यतें तुझकों कहता हौं, जो चित्तकों चित्त करिके स्थिर करौ, अरु अशोकपदका आश्रय करौ, जेते कछु भावअभावरूप संसारके पदार्थ हैं, सो सब मनतें उपजे हैं, तातें मनके उपशम करणेका प्रयत्न करौ, मनके उपशमविना और उपाय छूटणेका कोउ नहीं, अरु मनकों मनही निग्रह करता है, कोउ समर्थ नहीं, जैसे राजासाथ राजाही युद्ध करता है, और कोउ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मनही युद्ध करता है, तातें तूं मनहीसाथ मनकों मार, जो शांतिकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! इह पुरुष बडे संसारसमुद्रविषे पडा है, तिसविषे तृष्णारूपी तंतुनें इसका आवरण कीया है, तिसकरि अधकों चल्या जाता है, अरु रागद्वेषरूपी घूमर

घेरविषे कष्ट पाता है, तिसविषे तरणेके निमित्त भी मनरूपी बेडा है, जब शुद्ध मनरूपी बेडा पर आरूढ होवै, तब संसारसमुद्रतें पार पहुंचै, अन्यथा कष्टकों प्राप्त होवै॥ हे रामजी! अपणा मनही बंधनका कारण फांसी है; तिसकों मनहीसाथ छेदन करौ, सो किस प्रकार छेदीयें, दृश्यकी और मन जो सदा धावता है, तिसतें वैराग्य करै, अरु आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब छूटै; और उपाय छूटनेका नहीं, जहां जैसी वासनाकरि मन आशाकरि उठै, तिसकों तहांही बोधकरिके त्यागेतें तेरी अविद्या नष्ट हो जावैगी॥ हे रामजी! जब प्रथम भोगोंकी, वासनाका त्याग करैगा, तब यत्नविना जगत्की वासना छूटि जावैगी, जब भावअभावरूप जगत्का त्याग कीया, तब निर्विकल्प सुखरूप होवैगा, जब सब दृश्यभाव पदार्थोंका अभाव होता है, तब भावना करणेहारा मन भी नष्ट होता है॥ हे रामजी! जो कछु संवेदन फुरता है, इस संवेदनका होणा जगत् है, अरु असंवेदन होणा इसीका नाम निर्वाण है, अरु संवेदन होणेकरि दुःख है, तातें प्रयत्न करिके संवेदनका अभाव करणा कर्त्तव्य है, जब भावनाकी अभावना होवै, तब कल्याण होवै, जेते कछु भाव अभाव पदार्थोंका राग द्वेष उठता है, सो मनके अबोधकरि होता है, उह पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या हैं, तातें इनकी आस्थाका त्याग करौ, इह सब अवस्तुरूप है, अरु तेरा स्वरूप नित्य तृप्त अपणे आपविषे स्थित है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखोपदेशकथनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥८७॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह जो वासना है, सो भ्रांतिकरिके उठी है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रांति करिके भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रांतिकरि भासता है, इसकी वासना दूरतें त्याग करौ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों जगत् नहीं भासता, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों अविद्यमान विद्यमान भासता है, अरु संसार नाम करिके संसारकों अंगीकार करते हैं, अरु ज्ञानवान् सम्यक् दर्शीकों आत्मतत्त्वतें इतर सब अवस्तुरूप भासता है, जैसे समुद्र द्रवता करिके तरंग बुद्बुद होइके भासता है, परंतु जल

तें इतर कछु नहीं, तैसे अपणे विकल्प करिके भाव अभावरूप जगत्कों देखता है, वस्तुतें असत्यरूप है, आत्मतत्त्वही अपणे आपविषे स्थित है, सो नित्य शुद्ध सम अद्वैत तेरा अपणा आप है, न तूं कर्त्ता है, न अकर्त्ता है, अरु कर्त्ता अकर्त्ता ग्रहण अरु त्याग भेदकों लेकरि कहाता है, तूं दोनों विकल्पकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु जो कछु क्रिया आचार आय प्राप्त होवै, तिसकों कर, अरु अंतरतें अनासक्त होहु, अर्थ यह जो कर्तृत्व भोक्तृत्व अपणेविषे मानणेतें रहित होहु, काहेतें जो कर्त्तव्य आदिक तब होते हैं, जब कछु ग्रहण करणा होता है, कछु त्याग करणा होता है, अरु ग्रहणत्याग तब होता है, जब पदार्थ सत्य भासता है, सो तौ इह सब पदार्थ मिथ्या इंद्रजालकी मायावत् है ॥ हे रामजी! मिथ्या पदार्थोंविषे आस्था करणी तिसकरि ग्रहण अरु त्याग करणा क्या है, सब संसारका बीज अविद्या है, सो अविद्या स्वरूपके प्रमादकरि अविद्यमानही सत्यकी नांई हो भासती है ॥ हे रामजी! चित्तविषे चैत्यमय वासना फुरती है, सो मोहका कारण है, संसाररूपी वासनाका चक्र है, जैसे कुंभार चक्रपर चढायके मृत्तिकातें अनेक प्रकारके घट आदिक बर्तन रचता है, तैसे चित्ततें जो चैत्यमय वासना फुरती है, सो संसारके पदार्थोंकों उत्पन्न करती है, अरु इह अविद्यारूप संसार देखणेमात्र बडा सुंदर भासता है, परंतु अंतरतें शून्य है, जैसे बांस बडे विस्तारकों प्राप्त होते हैं, अरु अंतरतें शून्य हैं, अरु जैसे केलेका वृक्ष देखणेकों विस्तारसहित भासता है, अरु अंतर तिसके सार कछु नहीं, तैसे संसार असाररूप है, अरु जैसे नदीका प्रवाह चल्या जाता है, तैसे संसार नाशरूप है ॥ हे रामजी! इह अविद्या कैसी है, जो पकडीयें तौ ग्रहण कछु नहीं होती, अरु कोमल भासती है, अरु अत्यंत क्षीणरूप है, प्रगट आकार भी दृष्ट आते हैं, अरु मृगतृष्णाके जलसमान असत्यरूप है, अविद्या माया कहूं विकाररूप भासती है, कहूं स्पष्टरूप भासती है, कहूं दीर्घरूप भासती है, जिसकरि इह जगत उपजता है, अरु आत्मातें व्यतिरेकभावकों प्राप्त होती है, अरु जड है, परंतु आत्माकी सत्ता

पाइके चेतन होती है, चेतनरूप भासता है, तौ भी असत्यरूप है, अरु एक निमेषके भूलणेकरिके बडे भ्रमकों दिखाती है, जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है, तिसविषे तमकों दिखाती है, जो मैं आत्माकों नहीं जानता, जैसे उलूककों सूर्यविषे अंधकार भासता है, तैसे मूर्खोंकों अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है, अरु स्वरूपतें असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तारसहित भासती है, तैसे अविद्या नाना रंग विलास विकाररूप, विषमरूप, सूक्ष्मरूप, मृदु कहत कोमलरूप, अरु कठिनरूप है, अरु स्त्रीकी नांई चंचल है, अरु क्षोभरूप सर्पिणी है, सो तृष्णारूपी जिव्हासाथ मार डारती है, अरु दीपककी शिखावत् प्रकाशमान् है, जबलग स्नेह होता है, तबलग दीपकवत् प्रज्वलित होता है, जब तेल पूर्ण भया, तब निर्वाण हो जाता है, तैसे जबलग भोगोंविषे प्रीति है, तबलग अविद्या वृद्ध है, जब भोगोंविषे स्नेह क्षीण भया, तब नष्ट हो जाती है, रागरूप अविद्या तृष्णा विना नहीं रहती, अरु भोगरूप प्रकाश विजलीकी नांई चमत्कार करती है, इनके आश्रय मैं जो कार्य करों, सो नहीं होता, क्षणभंगुररूप है, जैसे विजली मेघके आश्रय है, तैसे अविद्या जडोंमूर्खोंके आश्रय रहती है, अरु अविद्या तृष्णा देणेहारी है, अरु भोगपदार्थ बडे यत्न करिके प्राप्त होते हैं, अरु जब प्राप्त होवैं, तब अनर्थकों उत्पन्न करते हैं, जो भोगोंके निमित्त यत्न करते हैं, तिनकों मेरा धिक्कार है, काहेतें जो भोग बडे यत्न करिके प्राप्त होते हैं, फेर स्थिर भी नहीं रहते, अरु अनर्थकों उत्पन्न करते हैं, तिनकी तृष्णाकरिके भटकते हैं, सो महामूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों इसका स्मरण होता है, त्यों त्यों अनर्थ होते हैं, अरु ज्यों ज्यों इसका विस्मरण होता है, त्यों त्यों सुख होता है, इस कारणतें अत्यंत सुखके निमित्त विस्मरण है अरु स्मरण दुःखके निमित्त है, जैसे किसकों दृष्टिमें क्रूर स्वप्न आता है, बहुरि तिसके स्मरणविषे कष्टमान होता है, जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होणेकी स्मृतिविषे अनर्थ जानता है, तैसे अविद्या जगतके स्मरणेविषे कष्ट अनर्थ होता है, अविद्या एक मुहूर्तविषे त्रिलोकीकों रचि लेती है, अरु एक क्षणविषे ग्रास लेती है ॥ हे राम

जी! जो स्त्रीका वियोगवान् रोगी पुरुष होता है, तिसकों रात्रि कल्पकी नाईं व्यतीत होती है, अरु जो बहुत सुखी होता है, तिसकों रात्रि क्षणकी नांईं व्यतीत हो जाती है, दुःखीकों दीर्घरूप होती है, काल भी अविद्या प्रमाद करिके विपर्ययरूप हो जाता है ॥ हे रामजी! ऐसा कोउ पदार्थ नहीं जो अविद्याकरिके विपर्यय न होवै, शुद्ध निर्विकार निराकार अद्वैत तत्त्वविषे इसकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पंद फुरता है ॥ हे रामजी! जेती कछु जगत्‌जाल तुझकों भासती है, सो अविद्याकरि भासती है, जैसे दीपकका प्रकाश इंद्रियोंकों रूप दिखाता है, तैसे अविद्या पदार्थोंकों दिखाती है, सो सब असत्यरूप है, जैसे नानाप्रकारकी सृष्टि मनोराज्यविषे भासती है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तिसविषे अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं, सो तिसविषे असत्यरूप हैं, तैसे इह जगत् असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी बडे आडंबरसहित भासती है, तैसे इह जगत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीकों देखिके मूर्ख मृग पानके निमित्त दौडते हैं, अरु कष्टमान होते हैं, तैसे मनुष्य नहीं दौडते हैं, जगत्‌के पदार्थोंकों देखिकरि अज्ञानी दौडिके यत्न करते हैं, तैसे ज्ञानवान् यत्न तृष्णा नहीं करते, ज्यौं ज्यौं मूर्ख मृग दौडते हैं, त्यौं त्यौं कष्ट पाते हैं, शांतिकों नहीं प्राप्त होते, तैसे अज्ञानी जगत्‌के भोगोंकी तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिकों नहीं प्राप्त होते, जैसे तरंग बुद्बुद सुंदर भासते हैं, परंतु ग्रहण कीयेतें कछु नहीं निकसते, तैसे शांतिका कारण जगत्‌विषे सार पदार्थ कोउ नहीं निकसता, जडरूप अविद्या चिदाकार हुई है, सो चेतनसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नांईं स्थित भई है, जैसे बबोहा अपणी तंतुकों पसारता है, बहुरि अपणेविषे लीन करी लेता है, सो तंतु बबोहेसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नांईं भासती है ॥ हे रामजी! अग्नितें धूम निकसिकरि बादलका आकार होता है, सो रसकों खैंचता है, बहुरि मेघ होइकरि वर्षा करता है, तैसे अविद्या आत्मातें उपजीकरि आत्माकी सत्ता पाइकरि जगत्‌कों रचती है, तिस जगत्‌विषे इह जीव घटीयंत्रकी नांईं भटकता है, जैसे जेवरी साथ बां

धी हुई टीड अध ऊर्ध्वकों भटकती है, तैसे तीनों गुणोंकी वासनासाथ बांध्या हुआ जीव भटकता है, जैसे चीक्कडतें मेह उपजती है, अरु तिसके अंतर छिद्र होते हैं, तैसे अविद्यारूपी चीक्कडतें इह जगत् उपजा है, अरु विकाररूपी दृश्य इसविषे छिद्र हैं, सारभूत इसविषे कछु नहीं उही रूप है, अरु जैसे अग्नि घृत अरु इंधनके संयोगतें बढता जाता है, तैसे अविद्या विषयोंकी तृष्णाकरि बढती जाती है, जैसे अग्नि घृत अरु इंधनोंतें रहित शांत हो जाता है, तैसे तृष्णातें रहित अविद्या शांत हो जाती है, जब विवेकरूपी जलका सिंच न होवै, तृष्णारूपी घृत न पडै, तब अग्निरूप अविद्या नष्ट हो जाती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी! इह अविद्या दीपककी शिखावत् है, अरु तृष्णारूपी तेलकरिके अधिक प्रकाशमान होती है, जब तृष्णारूपी तेलतें रहित होवै, अरु विवेकरूपी वायु चलै, तब दीपक शिखारूप अविद्या निर्वाण हो जावैगी, अरु न जाणियें जो कहां गई, अरु अविद्या कुहिडकी नांई आवरण करती भासती है; परंतु ग्रहण करियें तौ कछु नहीं हाथ आती, देखणेमात्र स्पष्ट दृष्ट आती है; परंतु विचार कीयेतें अणुमात्र भी नहीं रहती; जैसे रात्रिकों बडा अंधकार भासता है, परंतु जब दीपक लेकरि देखियें तब अंधकार अणुमात्र भी नहीं दृष्ट आता; तैसे अविद्या विचार कीयेतें नहीं रहती, बहुरि कैसी है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भ्रांतिकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र भासती है, जैसे बेडीपर चडेतें तटके वृक्ष किनारे चलते भासते हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिके भासती है, अरु जैसे सीपीविषे रूपा अरु जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिके भासता है, तैसे अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीकों सत्य भासता है ॥ हे रामजी! इह जाग्रत जगत् भी दीर्घकालका स्वप्न है; जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलबुद्धि मृगके चित्तविषे आई है, तैसे जगत्की सत्यता मूर्खके चित्तविषे रहती है ॥ हे रामजी! जिनों पुरुषोंकी पदार्थोंविषे रति आरूढ हो रही है, तिनकी भावना करिके उनका चित्त खेंचता है, अरु तिन पदार्थोंकों अंगीकार करिके बडे कष्टकों पाते हैं, जैसे पक्षी आका

शकों उडता है, अरु दाणेविषे उसकी प्रीति होती है, चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आता है, जब सुखरूप जानिके चुगणे लगता है तब जालविषे फसता है, बहुरि कष्टमान होता है, जैसे कणकी तृष्णा पक्षीकों दुःख देती है, तैसे जीवोंकों भोगोंकी तृष्णा दुःख देती है॥ हे रामजी! इह भोग प्रथम तौ अमृतकी नांई सुखरूप भासते हैं, अरु परिणामविषे विषकी नाईं होते हैं, मूर्ख अज्ञानीकों इह सुंदर भासते हैं, जैसे मूर्ख पतंग दीपककों सुखरूप जाणिके वांछा करता है, परंतु जब दीपकसाथ स्पर्श करता है, तब नाशकों प्राप्त होता है, तैसे इह भोगोंके स्पर्शकरि जीव नाश होते हैं; जैसे संध्याकालमें आकाशविषे लाली भासती है, तैसे अविद्याकरि जगत् भासता है, जैसे दूर वस्तु निकट भासती है, अरु निकट वस्तु भ्रमकरिके दूर भासती है, जैसे स्वप्नविषे बहुत कालमें थोडा भासता है अरु थोडे कालमें बहुत भासता है, तैसे इह जगत्जाल सब अविद्या करिके भासती है, सो अविद्या आत्मज्ञान करिके नष्ट हो जाती है, तातें यत्न करिके मनके प्रवाहकों रोकों ॥ हे रामजी! जो कछु दृश्यमान जगत् है, सो सब तुच्छरूप है, मिथ्या भावना करिके जगत् अंध हुआ है, बडा आश्चर्य है ॥ हे रामजी! अविद्याका रूप निराकार है अरु शून्य है, तिसनें सत्य होइकरि जगतकों अंध कीया है, अर्थ यह जो असत्‌रूप पदार्थोंकों सत् जानिके यत्न करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशविषे उलूककों अंधकार भासता है, भ्रांति करिके सूर्य उनकों नहीं भासता तैसे चिदानंद आत्मा सदा अनुभव करि प्रकाशता है, अरु अविद्या करिके नहीं भासता है, असत्यरूप अविद्यानें जगत्कों अंध कीया है, जो विकर्मोंकों कराती है, अरु विचार कीयेतें रहती भी नहीं; तिसकरि अपना आप नहीं भासता, बडा आश्चर्य है, जो धैर्यवान् धर्मात्माकों भी अपणे वश करिके समर्थ होणे नहीं देती, अरु अविचारित सिद्ध अविद्यारूपी स्त्रीनें पुरुषकों अंध कीया है, अनंत दुःखोंका विस्तार पसारती है, उत्पत्ति अरु नाश सुखदुःखकों करती है, आत्माकों भ्रमाती है, अनंत दुःख अज्ञानकरि दिखाती है, बोधतें हीन करती है, काम क्रोध उपजा

वती है, मनविषे वासनाकरि इही भावना दृढ करती है ॥ हे रामजी! इह अविद्या कैसी है, जो निराकार अरूप है, अरु इसनें जीवकों बांध्या है, अनहोता जैसे स्वप्नविषे कोइ आपकों बांध्या देखै, तैसी अविद्या है, स्वरूपके प्रमादका नाम अविद्या है, और कछु नहीं ॥ इति श्रीयो० उ० अविद्यावर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्या करिके उपजा है, सो अविद्या किस भांति निवृत्त होती है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे बरफकी पुतली क्षणविषे सूर्यके तेज करिके नष्ट हो जाती है, तैसे अविद्या आत्माके प्रकाश करिके नष्ट हो जाती है, जबलग आत्माका दर्शन नहीं भया, तबलग अविद्या पुरुषकों भ्रम दिखाती है, अरु नानाप्रकारके दुःखोंकों प्राप्त करती है, जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होती है, तब उही इच्छा मोहकों नाश करती है, जैसे धूपकरि छाया क्षीण हो जाती है, तैसे आत्मपदकी इच्छाकरि अविद्या क्षीण हो जाती है, अरु सर्वगत देव आत्माके साक्षात्कार हुएतें नष्ट हो जाती है, जैसे द्वादश सूर्य उदित हुएतें सब दिशाकी छाया नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी! जो दृश्य पदार्थकी इच्छा उपजती है, इसीका नाम अविद्या है, अरु तिस इच्छाके नाशका नाम विद्या है, अरु तिस विद्याहीका नाम मोक्ष है, सो अविद्याका नाश संकल्पमात्र है, जेता कछु दृश्य पदार्थ है तिसकी इच्छा न उपजे अरु केवल चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति स्थित होवै, यह अविद्या नाशका उपाय है, जब सब वासना निवृत्त होवैं, तब आत्मतत्त्व प्रकाश आवै, जैसे रात्रके क्षय हुएतें सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके क्षय हुएतें आत्मा प्रकाशता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें नहीं जानता, जो रात्र कहां गई, तैसे विवेकके उपजे नहीं जानता जो अविद्या कहां गई॥ हे रामजी! इह पुरुष संसारकी दृढ वासना करिके बांध्या है, जैसे संध्याकालविषे मूर्ख बालक परछायेविषे वैताल कल्पीकरि भयमान होता है, तैसे यह पुरुष अपणी वासना करि भयकों पाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो कछु दृश्य है, सो अविद्याकरि हुआ है, अरु अविद्या

आत्मभावकरि नाश होती है, सो आत्मा कैसा है ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ चैत्योन्मुखत्वतें रहित अरु सर्वगत समान अनुभवरूप ऐसा जो चेतन तत्त्व अशब्दरूप है, सो आत्मा परमेश्वर है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत जो जगत् है, सो सब आत्मा है, और अविद्या कछु नहीं ॥ हे रामजी ! सब देहोंविषे नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित है, तिसविषे मनोनाम्नी कल्पना आभास अन्यकी नांई होइकरि भासती है, अरु आत्मतत्त्वतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! कोउ न जन्मता है, न मरता है, न कोउ विकार है, केवल आत्मतत्त्व प्रकाशसत्ता समान है; अविनाशी चैत्यतें रहित शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, सो नित्य सर्वगत है, शुद्ध चिन्मात्र है, निरुपद्रव है, शांतरूप सत्ता समान निर्विकार अद्वैत आत्मा है ॥ हे रामजी ! तिस एक सर्वगत देव सर्व शक्ति महात्माकी जब विभागकलनाशक्ति होती है, तिसका नाम मन है, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिके लहरी होती है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्यता होती है, तिसका नाम मन होता है, संकल्प कलना करिके दृश्यकी नांई भासती है, तिसी संकल्पकल्पनाका नाम अविद्या है, संकल्पहीकरि उपजी संकल्पहीकरि नाश हो जाती है, जैसे वायुकरि अग्नि उपजता है, अरु वायुकरिही लीन होता है, तैसे संकल्प करिके अविद्यारूपी जगत् उपजता है, अरु संकल्पहीकरि नष्ट हो जाता है, जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी और फुरती है, तब अविद्या बढती है, जब वृत्ति दृश्यकी नष्ट हो जावै, दृश्यकों त्यागिकरि स्वरूपकी और आवै, तब अविद्या नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी! जब संकल्प करता है, जो मैं ब्रह्म नहीं, तब मन दृढ बंधनमय होता है, अरु जब इही संकल्प दृढ करता है, जो सब ब्रह्म है, तब मुक्त होता है, अरु जब अनात्मविषे अहं अभिमानका संकल्प दृढ करता है, तब बंधन होता है, अरु सर्व ब्रह्मके संकल्पकरि मुक्त होता है, दृश्यका संकल्प बंध है, अरु असंकल्प मोक्ष है, आगे जैसे तेरी इच्छा होवै, तैसे कर, जैसे बालक आकाशविषे स्वर्णके कमलोंकी कल्पना करै, जो सूर्यवत् प्रकाश अरु सुगंधकरि

पूर्ण है, सो भावनामात्र होतेहैं, तैसे अविद्या भावनामात्र है, जो अज्ञानी जाणता है, मैं कृश हों, अतिदुःखी हों, वृद्ध हों, हस्तपादइंद्रियवाला हों, ऐसे व्यवहारकरि बंधमान होता है, अरु जब ऐसे जानै, जो मैं दुःखी नहीं, न मेरा देह है, न मेरे बंधन है, तब भावनाकरि मुक्त होता है, न मैं मांस हों, न अस्थि हों, देहतें अन्य साक्षी हों; ऐसे निश्चयवान्कों अंतर अविद्यातें मुक्त कहते हैं; जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, मणिके प्रकाशविषे अंधकार नहीं, तैसे आत्माविषे अविद्या नहीं, जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशविषे नीलता कल्पता है, तैसे अज्ञानी आत्माविषे अविद्या कल्पता है, वास्तव कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सुमेरुकी छाया आकाशविषे पडती है, अथवा तमकी प्रभा है, अथवा और है, यह आकाशविषे नीलता कैसे भासती है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आकाशविषे नीलता है नहीं, इह शून्यता गुण है, न सुमेरुकी छाया है, अरु न तम है, आकाश पोलमात्र है ॥ हे रामजी! इह ब्रह्मांड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है, तमका स्वभाव नहीं, तम ब्रह्मांडके बाह्य है, अंतर नहीं, ब्रह्मांडका प्रकाशस्वभाव है, अरु इह जो नीलता भासती है, सो दृढ शून्यता करिके आकाशविषे नीलता भासती है, और नीलता कछु नहीं, जिसकी मंद दृष्टि है, तिसकों नीलता भासती है, जिसकी दिव्यदृष्टि है, तिसकों नीलता नहीं भासती, पोल भासती है, जैसे मंद दृष्टिकों आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे अज्ञानीकों अविद्या सत्य भासती है, जैसे दिव्यदृष्टिवालेकों नीलता नहीं भासती, तैसे ज्ञानवान्कों अविद्या नहीं भासती, ब्रह्मसत्ताही भासती है ॥ हे रामजी! जहांलग इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है, तहांलग अवकाश भासता है, अरु जहां वृत्ति कुंठित होती है, तहां इसकों नीलता भासती है ॥ हे रामजी! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है, तहां तिसकों नीलता भासती है, तैसे जहा इस जीवकी आत्मदृष्टि क्षय होती है, तहां इसकों अविद्यारूपी सृष्टि भासणे लगती है, सो इह दुःखरूप है ॥ हे रामजी! चेतनकों छोडिकरि जो कछु स्मरण करता है, तिसका नाम अविद्या है, अरु जब चित्त

अचल होता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, असंकल्प होणेकरि अविद्या नष्ट होती है, जैसे आकाशके फुल तैसे अविद्या है, इह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंकों सत्य भासता है वास्तवतें कछु नहीं, मनके फुरणेतें रहित होवै, तब जगत् कछु नहीं, भावनामात्र जगत् है, तिसीका नाम अविद्या है, सो मोहका कारण है, जब उही भावना उलटीकरि, आत्माकी और आवै, तब अविद्या नाश होवै, जो वारंवार चिंतवना करणी इसका नाम भावना है, जब भावना आत्माकी और वृद्ध होती है, तब आत्माकी प्राप्ति होती है, अविद्या नष्ट हो जाती है, मनके संसरणेका नाम अविद्या है, जब संसरणा आत्माकी और हुआ, तब अविद्या नष्ट भई ॥ हे रामजी! जैसे राजाके आगे मंत्री टहलुए कार्यकों करते हैं, तैसे मनके आगे इंद्रियां कार्यकों करतीयां हैं ॥ हे रामजी! बाह्यके विषय पदार्थोंकी भावना छोडिके तुम अंतर आत्माकी भावना करौ, तब आत्मपदकों प्राप्त होहुगे, जिनों पुरुषोंनें अंतर आत्माकी भावनाका यत्न कीया है, सो शांतिकों प्राप्त भये हैं ॥ हे रामजी! जो पदार्थ आदिविषे नहीं होता, सो अंतविषे भी नहीं रहै, तातें जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मसत्ता है, इतर कछु नहीं, जो कछु इतर भासता है, सो मननमात्र है, अरु तेरा स्वरूप निर्विकार आदि अंततें रहित ब्रह्मतत्त्व है, तूं क्यों शोक करता है, अपणे पुरुषार्थ करिके संसारके भोग वासना चित्तसों मूलतें उखाडौ, अरु आत्मपदका अभ्यास करौ, जो दृश्यभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! इह संसारकी वासनाका उदय होना, जरा मरण मोहकों देणेहारा है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब इसकों इह कल्पना उठती है, आशारूपी अनंत फासियोंकरि बंधमान होता है, अरु वासना वृद्ध हो जाती है, कहता है, मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, मेरे बांधव हैं, इह मैं हौं, उह और है, इसतें लेकरि वासना तिसके चित्तविषे उत्पन्न होती है ॥ हे रामजी! ऐसे शरीरसाथ मिलकरि इह कल्पना करता है, सो शरीर शून्यरूप है, जैसे वायुविरोलेसाथ तृण उडते हैं, तैसे अविद्यारूपी वासना करिके शरीर उडते हैं, अहं त्वं आदिक जगत् सब अज्ञानीकों भासता है, अरु

ज्ञानवान्कों केवल ब्रह्म सत्य भासता है, पृथिवी नदीयांतें लेकरि जगत् अज्ञानमात्र करिके भासता है, अरु ज्ञानतें नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीके न जानणेकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है, तैसे आत्माके अज्ञान करिके जगत् भासता है, अरु आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएतें जगत्भ्रम नष्ट हो जाता है, तातें आत्माकी भावना करौ ॥ हे रामजी! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीकों होते हैं, ज्ञानीकों दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासी होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे डोलायमान होती है, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसकों विचारतें रहित ब्रह्मतत्त्वही भासता है, तातें तूं अज्ञानी मत होहु, ज्ञानवान् होहु, जेती कछु जगत्की वासना हैं, सो सबकों त्याग करु, तब शांतिवान् होवैगा ॥ हे रामजी! संसारभोगकी वासना भी तब होती है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान होता है, सो तूं देहकेसाथ कायकों अभिमान करता है, इह देह तौ मूक जड है, अरु अस्थिमांसकी थेली है, ऐसे देह तूं क्यों होता है, जबलग देहविषे अभिमान होता है, तबलग सुख अरु दुःखकों भुगतता है, अरु इच्छा करता है, जैसे काष्ठ अरु लाखका संयोग होता है, अरु जैसे घट अरु आकाशका संयोग होता है, तैसे देह अरु देहीका संयोग होता है, जैसे चमडीके अंतर आकाश होता है, सो चमडीके नष्ट हुए आकाश नष्ट नहीं होता, अरु जैसे घटके नष्ट हुएतें घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएतें आत्मा नाश नहीं होता॥ हे रामजी! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिके भासती है, तैसे अज्ञानकरिके सुखदुःखकी कल्पना होती है, तातें सुखदुःखकी कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वभावसत्ताविषे स्थित होहु, बडा आश्चर्य है, जो ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है, सो मनुष्य भूली गया है, अरु जो असत्य अविद्या है, तिसकों वारंवार स्मरण करते हैं, ऐसी अविद्याकों तूं मत प्राप्त होहु॥ हे रामजी! मनका जो मनन है, सोइ अविद्या है, अरु इह अनर्थका कारण है, इसकरि जीव अनेक भ्रमकों देखता है, मनके फुरणेकरि चंद्रमाका बिंब अमृतकरि पूर्ण

भी नरकके अग्निसमान भासता है, अरु बडी लहरी तरंगसहित अरु कमलोंसंयुक्त जल भी मरुस्थलकी नदीसमान भासता है, जैसे स्वप्नविषे मनके फुरणे करिके नानाप्रकारके सुख अरु दुःखका अनुभव होता है, तैसे इह सब जगत्भ्रम चित्तकी वासना करिके भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे इह जीव विचित्र रचनाकों देखता है, सो मनके फुरणे करिके देखता है, जो स्वर्गविषे बैठा होता है, अरु स्वप्नविषे उसकों नरकोंका अनुभव होता है, तैसे आनंदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसकों दुःखका अनुभव होता है ॥ हे रामजी! अज्ञानी मनके फुरणे करिके शून्य अणुविषे संपूर्ण जगत्भ्रमकों देखता है, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चंडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, तातें संसारकी वासना चित्ततें त्याग होहु, इह संसार वासना बंधनका कारण है, सर्व भावोंविषे वरतौ; परंतु राग किसविषे न होवै, जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिंबकों लेता है, परंतु रंग किसीका नहीं लेता, तैसे तुम सब कार्य करौ, परंतु द्वेष किसीविषे न होवै, ऐसा जो पुरुष है, सो निर्बंधन है, तिसकों शास्त्रका उपदेश नहीं, उह निजरूप है ॥ हे रामजी! जो कछु प्रकृत आचार तुमकों आय प्राप्त होवै, देणा, लेणा, बोलणा, चलणा, आदिक सब कार्य करौ, परंतु अंतरतें अभिमान कछु न करौ, निरभिमान होकरि कार्य करौ, इह ज्ञान सबतें श्रेष्ठ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारोपदेशो नाम नवाशीतितमः सर्गः ॥ ॥ ८९ ॥ ॥

वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब महात्मा पुरुष वसिष्ठजीनें कहा, तब कमलनयन रामजी वसिष्ठजीकी और देखत भया; अरु अंतःकरण प्रफुल्लित हो आया; जैसे रात्रके मुंदे हुए कमल सूर्यके उदय हुए प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे प्रफुल्लित होइकरि रामजी बोलत भये ॥ ॥ राम उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, जो पद्मकी तंतुसाथ पर्वत बांधा है, अविद्यमान जो है अविद्या, तिसनें संपूर्ण जगत् वश कीया है, अरु अविद्यमान जगत्कों वज्रसारवत् दृढ कीया है, सब जगत् असत्यरूप है, सत्यकी नांई स्थित कीया है ॥ हे भग

वन्! इस संसारकी नटनी जो माया है, तिसका रूप क्या है, अरु लवणराजा महापुण्यवान् था, सो ऐसी बडी आपदाकों कैसे प्राप्त हुआ; अरु इंद्रजाल जो भ्रम दिखता भया, सो कवन था, अरु उसकों अपणा अर्थ कछु न था? सो इंद्रजाल कहां गया, अरु इस देही अरु देहका संबंध कैसे हुआ है? अरु शुभ अशुभ कर्मोंके फल भोगणेकों कैसे समर्थ होता है? एते प्रश्नोंका उत्तर मेरे बोधके निमित्त कहो॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह देह काष्ठ मार्टीके समान है, जैसे स्वप्नविषे चित्तके फुरणे करिके देह भासता है, तैसे इह देह चित्तका कल्पित हुआ है, अरु चित्त चैत्यसंबंध करिके जीवपदकों प्राप्त भया है, सो जीव चित्तसत्ताकरि शोभायमान है, तिस चित्तके फुरणे करिके संसार उपजा है, सो चित्त वानरके बालकसमान चंचल है, अरु अपणे फुरणेरूप कर्मोंकरि नानाप्रकारके शरीरोंकों धरता है, तिस चित्तके एते नाम हैं, अहंकार, मन, जीव, इत्यादिक नाम चित्तके हैं, सो चित्तही अज्ञानकरिके सुख दुःखकों भोगता है, शरीर नहीं भोगता, अरु जो प्रबोध चित्त है, सो शांतरूप है, जबलग मन अप्रबोध है, अरु अविद्यारूपी निद्रा करिके सोया है, तबलग स्वप्नरूप अनेक सृष्टिकों देखता है, अरु जब अविद्या निद्रातें जागता है, तब नहीं देखता है॥ हे रामजी! जबलग जीव अविद्यासाथ मलिन है, तबलग संसारभ्रमकों देखता है, अरु जब बोधवान् हुआ, तब संसारभ्रम निवृत्त होता है, जैसे रात्रकरि कमल मूंदे जाते हैं, अरु सूर्यके उदय हुएतें खिलि आते हैं, तैसे अविद्याकरि जगत्भ्रम देखता है, बोधकरिके अद्वैतरूप होता है, तातें अज्ञानही दुःखका कारण है, अविवेक करिके पंचकोश जो देह है, तिसविषे अभिमानी होइकरि जैसे कर्म करता है, तैसेही भोगता है, शुभ करता है, तब सुख भोगता है, अशुभ करता है, तब अशुभ दुःख भोगता है; जैसे नटवा अपणी क्रिया करिके अनेक स्वांगोंकों धरता है, तैसे मन अपणे फुरणे करिके अनेक शरीरकों धारता है, जैसे कछु इष्ट अनिष्ट सुख दुःख हैं सो एक मनके फुरणेविषे हैं, शरीरविषे स्थित होइकरि मन करता है, जैसे रथ उपर आरूढ होइकरि रथवाही चेष्टा

करता है, जैसे कोतरविषे बैठिके सर्प चेष्टा करते हैं, तैसे शरीरविषे स्थित होइकरि मन चेष्टा करता है ॥ हे रामजी! अचलरूप शरीरकों मन चंचल करता है, जैसे वृक्षकों वायु चंचल करता है, तैसे जड शरीरकों मन चंचल करता है, जेती कछु सुखदुःखकी कलना हैं, सो मनही करता है, मनही भोगता है, मनही मनुष्य है ॥ हे रामजी! अब लवणका वृत्तांत सुण, लवण राजा मनके भ्रमणे करिके चंडाल हुआ, जेता कछु मन करिके करता है, सो सफल होता है ॥ हे रामजी! एक कालमें हरिश्चंद्रके कुलतें उपजा जो राजा लवण, सो एकांत बगीचेमें बैठिके विचारत भया, जो मेरा पितामह बडा राजा हुआ है, अरु मेरे बडोनें राजसूय यज्ञ कीये हैं, अरु मैं भी उनके कुलविषे उत्पन्न भया हौं, मैं भी राजसूय यज्ञ करौं, इस प्रकार चिंतना करिके लवणनें मानसी यज्ञका आरंभ कीया, देवता, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सबनकी मनकरि पूजा करत भया, अग्नि पवन आदिक देवताकों पूजत भया, मंत्र अरु सामग्री जो कछु राजसूय यज्ञका कर्म है, सो संपूर्ण करत भया, अरु मनहीकरि सब दक्षणा देत भया, सवा वर्षपर्यंत यज्ञ पूर्ण कीया, अरु मनहीकरि तिसका फल भोगत भया, तातें हे रामजी! मनहीकरि सब कर्म होता है, अरु मनही भोगता है, जैसा चित्त है, तैसाही पुरुष है, पूर्ण चित्तकरि पूर्ण होता है, अरु नष्ट चित्तकरि नष्ट होता है, अर्थ यह जो जिसका चित्त आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है, सो पूर्ण है, अरु जो आत्मतत्त्वतें नष्टचित्त है, सो नष्ट पुरुष है ॥ हे रामजी! जिसकों इह निश्चय है, जो मैं देह हौं, सो बुद्धि नीच है, अनेक दुःखकों प्राप्त होवैगी, अरु जिसका चित्त पूर्ण विवेकविषे जाग्या है, तिसकों सब दुःखोंका अभाव हो जाता है, जैसे सूर्य उदय हुएतें कमलोंका सकूचणा दूर हो जाता है, अरु खिलि आते हैं, तैसे विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशतें रहित पुरुष दुःखोंकरि सकुच रहते हैं, अरु जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भये हैं, सो संसारके दुःखकों तरि जाते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदुःखभोक्तृत्व्योपदेशकथनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! राजा लवण

राजसूययज्ञ मनकरि करत भया, अरु मनहीकरि तिसका फल भोग्या, परंतु ऐसा सांबरी कौन था, जिसनें उसकों भ्रम दिखाया? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब उह सांबरी लवण राजाकी सभाविषे आया, तब मैं उहां था, मैं उह देखा था, तब तहां मुझसों लवण अरु मंत्री पूछत भये, जो इह कवन था, तब मैंनें उनकों जो कछु कहा था, सो तुझकों कहता हों॥ हे रामजी! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है, तिसकों द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्त होती है, तिस द्वादश वर्षमें अनेक दुःखकों देखता है, तब राजा लवण जो मन करि यज्ञ करत भया, तिसकों आपदा भी मनकरि प्राप्त भई, स्वर्गतें इंद्रनें अपणा दूत पठाया, आपदा भुगतावणे निमित्त सांबरी आकारवान् होइकरि आया, राजाकों चंडालकी आपदा भुगताईकरि बहुरि स्वर्ग कों चला गया ॥ हे रामजी! जो कछु मैंनें प्रत्यक्ष देख्या था, सो तुझकों कहा, तातें मनही करता है, अरु मन ही भोगता है, जैसा जैसा दृढ संकल्प मनविषे फुरता है, तिसके अनुसार इसकों सुखदुःखका अनुभव होता है ॥ हे रामजी! जबलग चित्त फुरता है, तबलग इसकों आपदा प्राप्त होती है, जैसे ज्यों ज्यों किंकरका वृक्ष बढता है त्यों त्यों कंटक बढते जाते हैं, तैसे मनके फुरणेकरि आपदा बढती जाती है, अरु जब मन स्थिर होत है, तब आपदा मिट जाती है॥ तातें, हे रामजी! इस चित्तरूपी बरफकों विवेकरूपी तप्तकरि गालो, तब परम सारकी प्राप्ति होवैगी; इह चित्तही परम सकल जगत् आडंबरका कारण है, तिसकों तूं अविद्या जान, जैसे वृक्ष, विटप, तरु, सो एकही वस्तुके नाम हैं, तैसे अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार, सब फुरणेके नाम हैं, इसकों विवेककरि लीन करो ॥ हे रामजी! जैसा संकल्प इसविषे दृढ होता है, तैसा देखता है ॥ हे रामजी! उह कवन पदार्थ है, जो यत्न कीयेतें सिद्ध न होवै? जो हठकरि पाछे न फिरै तौ सब कछु सिद्धता है, जैसे बरफके वासणोंकों जलविषे डारियें तब जलकी एकताही होइ जाती है, तैसे आत्मबोधकरि सब पदार्थोंकी एकता हो जाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो सुखदुःख सब मनहीविषे स्थित

हैं, अरु मनकी वृत्ति नष्ट हुएतें सब नष्ट हो जाती है सो चपल वृत्ति कैसे क्षय होवै ?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ आकाशके चंद्रमा ! मैं तुझकों मनके उपशमकी युक्ति कहता हौं, जैसे स्वारके वश घोडा होता है, तैसे मन तेरे वश रहैगा ॥ हे रामजी ! सब भूत ब्रह्महीतें उपजे हैं, सो तिनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी है, एक सात्त्विकी, एक राजसी, एक तामसी, प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मविषे कलना उठी है, तिस बाह्यमुखी फुरणेका नाम मन हुआ, सो ब्रह्मारूप है, सो ब्रह्मा संकल्परूप आगे संकल्प करता भया, जैसा संकल्प किया तैसा आगे देखत भया, तिसनें इह भुवन आडंबर कल्प्या, तिसविषे जन्म मरण सुखदुःख मोह आदिक संसारणा कल्प्या, इस प्रकार अपणे आरंभसंयुक्त जैसे बरफका कणका समुद्रतें उपजिकरि सूर्यके तेजकरि लीन हो जावै, तैसे आरंभकरि निर्वाण हो गया, बहुरि संकल्पके वशतें उपजा, बहुरि लीन हो गया, इस प्रकार केई अनंत कोटि ब्रह्मांड ब्रह्मातें उपजि उपजि लीन हो गये हैं, अरु केई होवैंगे, अब जैसे ब्रह्मतत्त्वतें उपजे हैं, अरु जैसे मुक्त होते हैं, सो सुण ॥ हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वतें प्रथम मनसत्ता उपजी है, सो जब आकाशकों चेतती भई, तब आकाश हुआ, तिसतें बहुरि पवन हुआ, बहुरि अग्नि भया, तिसतें आगे जल हुआ, तिसकी दृढतातें पृथ्वी भई, तब चित्तशक्ति दृढ संकल्पकरि पांच भूतकों प्राप्त भई, तब अंतःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है, सो पृथ्वी, तेज, वायुसाथ मिलिकरि धान्यविषे आय प्राप्त होती है, तिसकों पुरुष भोजन करते हैं, तब उह परिणाम होइकरि वीर्य रुधिररूप गर्भविषे निवास करती है, जिसतें पुरुष उपजता है, सो पुरुष जन्ममात्रतें वेदकों पढणे लगता है, बहुरि गुरुके निकट जाता है, बहुरि क्रमकरिके तिसकी बुद्धि विवेकसों चमत्कारवान् हो जाती है, ग्रहण अरु त्याग शुभ अशुभविषे विचार उसकों उपजता है, तब निर्मल अंतःकरणसहित पुरुष स्थित होता है, तब क्रमकरिके सप्त भूमिका चंद्रमाकी नांई तिसके चित्तविषे प्रकाशतियां हैं ॥ इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे सात्त्विकजन्मावतारो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे सर्व शास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता भगवन्! कैसे उह सप्त भूमिका ज्ञान किया निवास करणेहारीयां हैं, सो संक्षेपतें मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सप्त भूमिका अज्ञानकी हैं, अरु सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनके अंतर्गत और अवस्था बहुत हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं, ज्ञानकी अज्ञानकी असंख्य हैं, परंतु सप्तके अंतर्गत हैं ॥ हे रामचंद्र! आत्मरूपी वृक्ष है, अपणा पुरुषार्थरूपी वसंतऋतु है, तिसकरि दो प्रकारकी वेली उत्पन्न होती हैं, एक शुभ अरु एक अशुभ है, तिस पुरुषार्थरूपी रसके बढणे करि फलकी प्राप्ति होती है, अब ज्ञान किसकों कहते हैं, सो सुण, प्रथम शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्य दृश्य फुरणेतें रहित होइकरि स्थित होना इसीका नाम ज्ञान है, अरु शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतविषे अहं संवेदना उठती है, सो स्वरूपतें गिरना है, सोइ अज्ञानदशा है ॥ हे रामचंद्र ! इह मैंनें तुझकों संक्षेपतें ज्ञान अरु अज्ञानका लक्षण कहा है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जिनकी निष्ठा है, अरु सत्य स्वरूपतें चलायमान नहीं होता, अरु राग दोष किसीविषे नहीं, सो ज्ञानी है, अरु ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपतें जो गिरे हैं, सो अज्ञानी है, जगत्के पदार्थोंविषे मग्न है, सो अज्ञानीहै, इसतें पर मोह कोउ नहीं, न हुआ है, यही परम मोह है, अरु स्वरूप स्थिति किसका नाम है, एक अर्थकों छोडिके जो संवित् और अर्थकों प्राप्त होता है, जैसे जाग्रतकों त्यागिकरि सुषुप्तिकों प्राप्त होती है, तिसके मध्यविषे जो निर्मननरूप सत्ता है, तिसविषे स्थित होना, सो स्वरूपस्थिति कहाती है ॥ हे रामचंद्र! भली प्रकार सर्व संकल्प जिसके शांत हुए हैं, अरु शिलाके अंतरवत शून्य है, कैसी शून्यता है, जो निद्रा अरु जडतातें रहित है, तिस सत्ताविषे स्थित होना सो स्वरूपस्थिति कही है, कैसा स्वरूप है, अहं त्वं आदिक फुरणेतें रहित है, भेदविकारतें रहित है, जडतें रहित अचैत्य चिन्मात्र है, सो आत्मस्वरूप कहाता है, तिस तत्त्वतें फिरिकरि जो जीवोंकी अवस्था हुई है, सो सुण ॥ हे रामचंद्र! बीज जाग्रत १, जाग्रत २, महाजाग्रत ३, जाग्रतस्वप्न ४, पंचम स्वप्न ५, स्वप्न जाग्रत ६, सुषुप्ति ७, इ

ह सप्तप्रकार मोहकी अवस्था हैं, इनके अंतर्गत और अनेक हैं, मुख्य इह सप्त हैं, अब इनके लक्षण सुण ॥ हे रामजी! प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पद तत्त्वसों चेतनताका अहं है, तिसका भविष्यत् जीव नाम होता है, सो आदि सर्व पदार्थोंका बीजरूप है, सो तिसका नाम बीज जाग्रत है, अरु तिसके अनंतर जो अहं अरु इह मेरा इत्यादिक प्रतीत दृढ हो गई, जन्मांतरविषे भासै, तिसका नाम जाग्रत है, अरु इह है, सो है, मैं हौं, इत्यादिक शब्दसाथ तन्मय होना, और जन्मांतरविषे जो इह दृढ प्रतीति हो जावै, तिसका नाम महाजाग्रत है, अरु महाजाग्रतविषे बैठे हुए मन फुरता है, मनोराज्यविषे उह फुरणा दृढ हो भासै, अथवा अदृढ होवै, सो जाग्रत स्वप्न कहाता है, अरु दूसरा चंद्रमा भासै, सीपीविषे रूपा भासै, मृगतृष्णाका जल भासै, इत्यादिक विपर्यय भासणा सो जाग्रत स्वप्न है, अरु निद्रा आइ तिसविषे मन फुरणे लगा, नानाप्रकारके पदार्थ चित्तके फुरणेकरि भासणे लगे, जब जागी उठा तब कहता है, मैं अल्पकालविषे केते पदार्थ देखे, निद्राकालविषे जो पदार्थ देखे थे, तिनकों असत्यरूप जाग्रतमें जानता भया, तिस निद्राकालविषे फुरणेका नाम स्वप्न है, अरु स्वप्न आया, तिसविषे दीर्घकाल वीत गया, प्रफुल्लित अपना बडा वपु देखत भया, तिसविषे अहं मम भाव दृढ हुआ, अरु आपकों सत्य जानिकरि जन्ममरण आदिक देखता भया, इहां देह रहै, अथवा न रहै, तिसका नाम स्वप्न जाग्रत है, उह स्वप्न महाजाग्रत रूपकों प्राप्त होता है, इह स्वप्न जाग्रत है, अरु इस छ अवस्थाका जहां अभाव हो जावै, जडरूप होवै, अरु भविष्यत् होवै, तिसका नाम सुषुप्ति है, तिस अवस्थाविषे घास, पत्थर, वृक्ष आदिक स्थित हैं॥ हे रामजी! इह अज्ञानकी सप्त भूमिका कहियां हैं, तिनके एकएकविषे अवस्थाभेद हैं ॥ हे रामचंद्र! स्वप्न चिरकाल करिके जाग्रतरूप हो जाता है, तिसके अंतर्गत और स्वप्न जाग्रत है, तिसके अंतर और है, इस प्रकार एकएकके अंतर अनेक हैं, इह मोहकी घनता है, तिसकरि जीव भ्रमते हैं, जैसे जल नीचेतें नीचेकों चल्या जाता है, तैसे मोहतें अनंतर मोहकों पाते हैं ॥ हे रा

मजी! इह तुझकों अज्ञानकी अवस्था कहियां हैं, नानाप्रकारका मोहभ्रम विकार है, तिनतें तूं विचारिकरि मुक्त होहु, जब तूं महात्मा पुरुष आत्मविचार करिके निर्मल बोधवान् होवैगा, तब इस भ्रमकों तर जावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! अब तूं सप्त भूमिका ज्ञानकी सुण, भूमिका कहियें चित्तकी अवस्था, सो ज्ञानकी भूमिका जाननेतें बहुरि मोहरूपी चीक्कडविषे डूबता नहीं ॥ हे रामचंद्र! मतोंवाले भूमिकाकों बहुत प्रकार करि कहते हैं, अरु मेरा अभिमत पूछे तौ इह है, इसकरि सुगम निर्मल बोधकों प्राप्त होता है, स्वरूपविषे जागणेका नाम ज्ञान है, तिस ज्ञानकी सप्त भूमिका हैं अरु जो मुक्त इन सप्त भूमिकाके पर हैं, सो विदेहमुक्त हैं ॥ अब भूमिकाके नाम भेद सुण ॥ प्रथम शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चतुर्थ सत्त्वापत्ति, पंचम असंसक्ति, षष्ठी पदार्थाभाविनी, सप्तम तुरीया ॥ इसके सारकों प्राप्त हुआ बहुरि शोक नहीं करता, अब इसका अर्थ श्रवण करु ॥ हे रामजी! जिसकों इह विचार फुरि आवै जो मैं महा मूढ हो रहा हौं, मेरी बुद्धि सत्यविषे नहीं, अरु संसारकी ओर लगी है, ऐसे विचार करिके सत्‌शास्त्र अरु सज्जनोंकी संगति वैराग्यपूर्वक सत्यकी इच्छा होवै, इसका नाम शुभेच्छा है, अरु सत्‌शास्त्रोंकों विचारणा अरु संतोंकी संगति अरु विषयोंतें वैराग्य सत्यमार्गका अभ्यास इनसहित सत्य आचारविषे प्रवर्तणा, सत्यकों सत्य जानना, अरु असत्यकों असत्य जानिकरि त्याग करणा इसका नाम विचार है, विचार अरु शुभेच्छा सहित तत्त्वका अभ्यास करणा, अरु इंद्रियोंके विषयोंतें वैराग्य करणा, अरु मन सूक्ष्म होता है, सो तीसरी भूमिकाका नाम तनुमानसा है, तीन भूमिकाका अभ्यास करणा, अरु इंद्रियोंके अर्थतें वैराग्य करणा, जगततें वैराग्य करणा अरु श्रवण मनन निदिध्यासनकरि सत्य आत्माविषे स्थित होना, इसका नाम सत्त्वापत्ति है, तामें सत्य आत्माका अभ्यास होता है, इह चार भूमिका जो हैं संयमरूप, तिसका फल जो है शुद्ध विभूति, तिस फलविषे असंस

ज्ञानभूमि.

क्त रहणा, तिसका नाम असंसक्ति है, दृश्यका विस्मरण अरु आत्मारामीपना अंतरबाहिरतें नानाप्रकारके पदार्थोंका तुच्छ भासणा, तिसका नाम पदार्थाभाविनी है, सो छट्ठी भूमिका है ॥ हे रामचंद्र! चिरपर्यंत जो छट्ठी भूमिकाका अभ्यासकरि भेदकलनाका अभाव हो जाता है, स्वरूपविषे दृढ परिणाम होता है, छ भूमिका जहां एकताकों प्राप्त होवैं, तिसका नाम तुरीया है, इह जीवन्मुक्तकी अवस्था है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित है, अर्थ यह जो तीन भूमिका जगत्की जाग्रत अवस्थामें हैं, अरु चौथी तत्त्वज्ञानीकी है, अरु पंचमी छट्ठी अरु सातमी जीवन्मुक्तकी अवस्था हैं; अरु तुरीयातीत पदविषे विदेहमुक्त स्थित होता है ॥ हे रामचंद्र! जो पुरुष महाभाग्यवान् है, सो सप्त भूमिकाविषे स्थित होता है, सो आत्मारामी महापुरुष परम पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामचंद्र! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सो सुखदुःखविषे मग्न नहीं होते, शांतरूप होइके अपणे प्रकृत आचारकों करते हैं, अथवा नहीं करते, तौ भी तिनकों बंधन कछु नहीं, तिनकों क्रियाका बोध कछु नहीं रहता, जैसे सुषुप्त पुरुषके निकट जाइके क्रिया करै, तब बोध कछु नहीं, तैसे उसकों क्रियाबोध कछु नहीं, सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन हैं ॥ हे रामचंद्र! जैसे सुषुप्त पुरुषकों रूप अरु इंद्रियां इनका अभाव हो जाता है, तैसे सप्त भूमिकाविषे अभाव हो जाता है, इह सप्त भूमिका ज्ञानकी ज्ञानवान्का विषय है, पशु वृक्ष म्लेच्छवत् जो मूर्ख हैं, अरु पापाचारी हैं, तिनके चित्तविषे इनका अधिकार नहीं होता, जिसका मन निर्मल है, तिसकों भूमिकाविषे अधिकार है, अरु पशु म्लेच्छ आदिकों भी इनका अभ्यास होवै, तब उह भी मुक्त हो जाते हैं, इसविषे संशय कछु नहीं है ॥ हे रामचंद्र! आत्मज्ञानकरि जिनके हृदयकी गांठ टूटि गई है, तिनकों संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या भासता है, उह मुक्तरूप है, अरु जो संसारतें विरक्त होइकरि इन भूमिकाविषे आये हैं, अरु मोहरूपी समुद्रकों तरे नहीं, पूर्णपदकों प्राप्त नहीं भये, अरु सप्त भूमिकाविषे किसी भूमिकाविषे लगे हैं, सो भी आत्मपदकों पाइकरि पूर्ण आत्मा होवैंगे ॥ हे रामचंद्र! एक सप्त भूमिकाकों प्राप्त

हुए हैं, कोउ एक भूमिकाकों, कोउ दूसरी, कोउ तीसरीकों, प्राप्त हुए हैं, कोउ चौथी, कोउ पंचमी, कोउ छठीकों अरु कोउ अर्ध भूमिकाकों प्राप्त भया है, कोउ गृहविषे स्थित हैं, कोउ वनविषे है, कोउ तापसी है, कोउ अतीत है, इसतें आदि लेकरि सो पुरुष धन्य हैं, अरु बडे सूरमे उही हैं, जो बडे दिक्पाल हस्ती हैं, अरु बडे बडे सूरमे हैं, सो तिनके शूरत्व आगे तृणवत् हैं, काहेतें जो और शूरत्व सुगम है, परंतु इंद्रियांरूपी शत्रुकों जीतणा कठिन है, जिनों पुरुषोंनें इनकों जीता है, सो बडे सूरमे हैं, जिस पुरुषनें किसी भूमिकाकों जीती है, सो वंदना करणे योग्य है तिसकों चक्रवर्ती राजा जानना, राज्य अरु और बडा ईश्वर विभूति सब तिनकों तृणवत् है, उह परमपदकों प्राप्त हुए हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशो नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे सुवर्णविषे भूषण फुरे अरु सो अपणा सुवर्णभाव भूलि जावै अरु कहै मैं भूषण हौं, तैसे चित्तसंवेदन जिस स्वरूपतें फुर्या है, तिसतें भूलिकरि अहंवेदना हुई है, तातें अहंकाररूप धरा है, जो मैं इह कछु हौं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सुवर्णविषे जो भूषण होते हैं, सो मैं जानता हौं; परंतु आत्माविषे अहंभाव कैसे होता है, सो कहौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! अहंकार आदिकोंका जो होणा है, सो असत्यरूप आगमापायी है, तिसका कछु भिन्नरूप नहीं, इह आत्माका चमत्कार है, वास्तवतें द्वैत कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे अधऊर्ध्व जलही जल है, और कछु नहीं, तैसे परम तत्त्वविषे और विभागकल्पना कोउ नहीं, शांतरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिके तरंग आदिक भासते हैं, तैसे संवेदन करिके जगत्भ्रम भासते हैं, आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम भासता है, परंतु और कछु नहीं, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, जैसे जलविषे द्रवता औ वायुविषे स्पंद भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, फुरणेतें रहित शांतरूप परमपद है ॥ हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकी सेना होती है, तिसविषे हस्ती घोडा पशुही होते हैं, सो सब मृत्तिकारूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे स

ब जगत् आत्मरूप हैं; भ्रम करिके नानात्व भासता है, आत्माही पूर्णरूप है, आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है, सत्यविषे सत्य स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है; तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्वप्नविषे दूर पदार्थ अदूर भासते हैं, अरु अदूर दूर भासते हैं, सो भ्रममात्र है, तैसे आत्माविषे विपर्यय दृष्टिकरि जगत् भासता है ॥ हे रामजी! असत्य जगत् भ्रम करिके सत्‌रूप भासता है, वस्तुतें असत्यरूप है, जैसे दर्पणविषे नगरका प्रतिबिंब होवै, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे इह जगत् आत्माविषे भासता है, जैसे इंद्रजालके जोगकरि आकाशविषे नगर भासै, तैसे इह असत्यरूप जगत् अज्ञान करिके सत्य भासता है, जबलग आत्मविचाररूपी अग्निकरि अविद्यारूपी वल्लीकों तूं नहीं जलावैगा, तबलग जगत्‌रूपी बेल निवृत्त न होवैगी, अनेक प्रकारके सुखदुःख दिखावैगी, जब विचार करिके मूलसहित इसकों जलावैगा, तब शांतपद कों प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो मिथ्यारूप हैं, तैसे आत्माविषे अहं त्वं आदिक अविद्यारूप हैं, जो लवणकी कथा तैनें सुनी है, सो अब बहुरि सुण ॥ हे रामजी! उह जो लवण राजा था, सो दूसरे दिन विचार करने लगा, जो इह मुझकों भ्रम भास्या है; परंतु सत्यरूप होकरि देख्या है, देश नगर मनुष्य आदिक पदार्थ मुझकों प्रत्यक्ष दृष्ट आये हैं, बहुरि जायकरि देखौं, जो कैसे वार्त्ता है? ऐसे विचार करिके दिग्विजय मान करिके मंत्री अरु सेनाकों साथ लेकरि दक्षिण दिशाकी और चल्या; देशकों लंघता लंघता विंध्याचल पर्वतकों जाय प्राप्त हुआ; पूर्व अरु दक्षिणके समुद्रके मध्याविषे अटवीकों भ्रमता भ्रमता ॥१४०॥ जाय प्राप्त हुआ; जैसे आकाशवीथियांविषे सूर्य भ्रमता है, तैसे राजा भ्रमता देखता भया; जो वृत्तांत अरु देश ग्राम पदार्थ भ्रमविषे देखे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया; तब विस्मयकों प्राप्त भया, हे दैव, इह क्या है, जो

कछु मैं भ्रमविषे देखा था, सो अब मुझकों प्रत्यक्ष भासता है, यह बडा आश्चर्य है! ऐसे विचारिके आगे गया, क्या देख्या, जो अग्निकरि वृक्ष जले हैं, अरु अकाल दुर्भिक्ष पडा था, तिसकरि जो संबंधी देखे थे, तिनकी चेष्टाके स्थान देखे, अरु उनकी कथा सुणी, इस प्रकार देखते देखते आगे गया, क्या देख्या, जो चंडालशरीरकी सासु बैठी रुदन करती है, हे दैव! मेरा पुत्र कहां गया ? हे पुत्र! तुम कहां गये? मेरी कन्या जीर्णदेह हो गई है, चंद्रमाकी नांई जिसका मुख, ऐसा राजकुमार था, अरु मृगनयनी मेरी बेटी थी, अरु दुहित्रे दुहित्रीयां थीयां सो दुर्भिक्षताकरि सब जाते रहे; तिनके इह खाणेके पदार्थ हैं, चेष्टाके स्थान हैं, रति काकी माला कंठविषे डारते थे, अरु चेष्टा करते थे, जीवोंके मांस खाते थे, अरु रुधिरपान करते थे, उह कहां गये? इसतें लेकरि पुत्र, पुत्री, भर्त्ता जवाइका नाम लेकरि रुदन करै और लोक आय बैठे, उह भी रुदन करैं, तब राजानें उसकों रुदनतें छुडाई अरु वृत्तांत पूछने लगा, जो तूं किस निमित्त रुदन करती है, किससाथ तेरा वियोग हुआ है ? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीशोचनावर्णनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥ ॥ चांडाल्युवाच ॥ हे राजन्! एक काल वर्षा होणेतें रहि गई, काल पडा, जीवोंकों बडा दुःख प्राप्त भया, सब मेरे पुत्र, अरु दुहित्रे, दुहित्रियां, जवाई, भर्त्ता आदिक बांधव थे, सो निकस गये वह कहूं कष्टकों पावत मरि गये, उनके वियोग करिके मैं दुःखी होइकरि रुदन करती हौं; तीनों बिना मैं शून्य हो गई हौं; जैसे बिछुरी हुई कुंज कुरलाती है, तैसे मैं कुरलाती हौं ॥ हे रामचंद्र! जब इस प्रकार चांडालीनें कहा, तब राजा विस्मयकों प्राप्त भया, अरु मंत्रीके मुखकी और देखणे लगा, जैसे कागद उपर पुतली होती है; तैसे राजा हो गया, विचारै आश्चर्यमान होवै, उस चांडालीसों वारंवार पूछै, उह बहुरि कहै, और राजा आश्चर्यमान होवै तब राजा उसकों यथायोग्य धन देकरि चिरपर्यंत रह्या, बहुरि अपने राजमंदिरकों आता भया, जब प्रातःकाल हुआ, तब सभाविषे राजा मुझकों पूछत भया ॥ हे मुनीश्वर!

इह स्वप्न मुझकों प्रत्यक्ष कैसे भया, इसकों देखिकरि मैं आश्चर्यमान हुआ हौं; जब इस प्रकार राजानें कहा, तब मैंनें प्रश्नानुसार उसकों युक्तिसों उत्तर दिया, उसके चित्तका संशय दूर किया, जैसे मेघकों वायु दूर करै, सो तुझकों कहता हौं ॥ हे रामजी! अविद्या ऐसी है, जो असत्यकों शीघ्रही सत्य दिखाती है, अरु सत्यकों असत्य करी दिखाती है, बडे भ्रमकों दिखाणेहारी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्न सत्य कैसे हुआ, इह मेरे चित्तविषे संशय भारी स्थित भया है, तिसकों दूर करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसविषे क्या आश्चर्य है? अविद्याविषे सब कछु बनता है, स्वप्नविषे तूं प्रत्यक्ष देख जो घटतें पट हो जाता है, अरु पटतें घट हो जाता है, स्वप्नमें अरु मृत्युविषे मूर्छाके अनंतर बुद्धि विपर्यय हो जाती है, वासनाकरि वेष्टित जिनका चित्त है, तिनकों जैसा संवेदन फुरता है, तैसे भासता है ॥ हे रामजी! जिनका चित्त स्वरूपतें गिर्या है, तिनकों अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है ॥ हे रामजी! जैसे मद्यपान करणेवाला अरु विष पीणेवाला भ्रमकों प्राप्त होता है, तैसे अविद्याकरि जीव भ्रमकों प्राप्त होता है, एक और राजा था, तिसकों यह अवस्था प्राप्त हुई थी, सो सब लवण राजाके चित्तविषे फुर आई, जैसे उसकी चेष्टा हुई थी, तैसे इसकों फुरि आई, तब जानता भया, जो, मैंनें इह क्रिया करी है, जैसे अभोक्ता पुरुष आपकों स्वप्नविषे भोक्ता देखता है, जो मैं राजा हुआ हौं, अरु तृप्त हौं, अरु भूखा सोया हौं, अरु सोया तौ अकर्त्तारूप अरु आपकों कर्त्ता देखता है; जो इह क्रिया मैंनें करी है; स्वप्नविषे जैसे देशांतरकों जावै, तब अचलरूपही चलता भासता है, तैसे लवणकों फुरि आया, सो प्रतिमा भासमात्र है, सभाविषे बैठे चंडालीकी चेष्टा लवणकों फुरि आई, अथवा विंध्याचल पर्वतके चंडालोंकों लवणकी प्रतिमा फुरि, लवणके चित्तका भ्रम उनकों दृढ हो गया है, जैसे एकही सदृश भ्रम अनेककों फुरि आता है, स्वप्न सदृश होता है, एकही जेवरीविषे अनेककों सर्प भासता है, इसी प्रकार अनेक जीवोंकों एक भ्रम अनेक हो भासता है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, तिनकी सत्तारूप संवेदन है, जैसे तिसविषे संकल्प दृढ होता है,

तैसे होकरि भासता है, जो पदार्थ सत्यरूप होइ भासता है, सो सत्य होता है, अरु जो असत्यरूप होइ भासता है, सो असत्य हो जाता है, सबही पदार्थ संवेदनरूप हैं, तीनों काल संवेदनकरि उपजे हैं, इनका बीज संवेदन है, सब पदार्थ अविद्यारूप हैं, अरु जैसे रेतीविषे तेल है, तैसे आत्माविषे अविद्या है, आत्माकों अविद्याका संबंध कदाचित् नहीं, काहेतें जो संबंध तिसका होता है, जो समरूप होता है, जैसे काष्ठ अरु लाखका संबंध होता है, सो आकारसहित है, जो आकारतें रहित होवै, तिसका संबंध कैसे होवै? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, चेतनसाथ चेतनका संबंध होता है, सो सजातीयरूपका संबंध होता है, विजातीयका संबंध नहीं होता; तातें अविद्यारूप देहकों आत्मासाथ संबंध नहीं, जो जडसाथ आत्माका संबंध होवै, तब आत्मा जड होवै, सो तौ आत्मा सदा चेतनरूप है, सर्वदा अनुभव करिके प्रकाशता है, तिसकों जड कैसे कहियें? जैसे स्वादकों जिव्हा ग्रहण करती है, और अंग नहीं करते, तैसे चेतनसाथ चेतनकी, जडसाथ जडकी, जलसाथ जलकी, माटीसाथ माटीकी, अग्निसाथ अग्निकी, प्रकाशसाथ प्रकाशकी, तमसाथ तमकी, इसी प्रकार सर्व पदार्थोंकी सजातीयसाथ एकता होती है, विजातीयकी नहीं होती, तातें सब चैतन्याकाश है, और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोउ नहीं, भ्रम करिके इनके आकार भानरूप भासते हैं, जैसे स्वर्णबुद्धिकों त्यागिकरि नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, तैसे जब अहंवेदना आत्माविषे फुरती है, तब अनेकरूप होइकरि विश्व भासता है॥ जैसे सुवर्णकी ओर देखियें तब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं, तैसे जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखियें तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप भासता है, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालककों अनेकरूप भासती है, अरु बुद्धिवान्कों एक मृत्तिकारूप है, तैसे अज्ञानीकों इह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्कों एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, सो कौन ब्रह्म है, जो द्रष्टा दर्शन दृश्य, जिसविषे फुरे हैं, इनके मध्य अरु इनतें रहित जो सत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता है॥ हे रामचंद्र! जो सत्ता अजडरूप है, अरु शिलाके कोश

वत् निर्विकल्प है, तन्मयरूप है, तिसविषे जब स्थित होवैं, जब समाधिविषे रहै, अथवा उत्पत्ति न होवैगी, तब तुझकों सब उही रूप भासैगा ॥ हे रामचंद्र ! जो पुरुष निर्मन सत्ताविषे स्थित भया हैं, सो शरीरके इष्टविषे हर्षवान् नहीं होता, अरु अनिष्टविषे शोकवान् नहीं होता, निर्मनरूप होइकरि स्थित होता है, जैसे भविष्यत् नगरविषे जीव बसते हैं, अरु अनेक चिंताकरि संयुक्त भासते हैं, सो सब तिसके चित्तविषे स्थित होते हैं, जैसे पुरुष देशांतरकों जाते हैं, ताकों अनेक पदार्थ मार्गविषे इष्टअनिष्टरूप भासते हैं; परंतु जहां जाना है, तिसकी ओर वृत्ति रहती है, मार्गके पदार्थोंविषे उनकों राग द्वेष नहीं होता, तैसे तूं होजा, जैसे पत्थरसों जल नहीं निकसता, जैसे जलसों अग्नि नहीं निकसता, तैसे आत्माविषे चित्त नहीं, अविचार भ्रम करिके चित्त जानता है, विचार करिके नहीं पाता, जैसे भ्रम करिके आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे चित्त भासता है, वास्तवतें कछु नहीं, सो सत्ता नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप अपणे आपविषे स्थित अनुभवरूप है, तिसके विस्मरण करिके दुःखकों प्राप्त होता है, सो महामूर्खहै, तिसकों अमृतरूपी चंद्रमाविषे अग्नि प्राप्त होता है, तातें ॥ हे रामचंद्र! तूं सावधान होहु, इह जो फुरणा उठता है, इसीका नाम चित्त है, और तौ चित्त कोउ नहीं, इस चित्तकों दूरतें त्याग करौ, जो तूं है, सोइ स्थित है ॥ हे रामचंद्र! असत्यरूप चित्तही संसार है, तिसकों असत्य जानिके त्याग नहीं करता है, सो आकाशके वनविषे विचरता है, तिसकों धिक्कार है, अरु जिसका मननभाव नष्ट हुआ है, सो महापुरुष संसारके पारकों प्राप्त हुए हैं; परमपद निश्चितरूप हैं ॥ ॥इति श्रीयोग०उ०चित्ताभावप्रतिपादनं नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह पुरुष भूमिकाकों ज्यौं प्राप्त होता है तिनका क्रम सुण; प्रथम जन्मतें पुरुषकों कछुक बोध होता है, बहुरि क्रम करिके बडा होकरि संतोंकी संगति करता है, सदा सदृश्यरूप जो संसारका प्रवाहहै, तिसके तरनेकों सत्य शास्त्र अरु संतजनोंकी संगतिविना समर्थ नहीं होता; जब संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार

करणे लगता है, तब इसकों ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धि उपजती है, जो इह कर्तव्य है, अरु इह त्यागणे योग्य है; इह विचार उपजता है इसका नाम शुभेच्छा है, जब इह इच्छा हुई, तब शास्त्रद्वारा इसकों विचार उपजता है, जो इह शुभ है, अरु इह अशुभ है, शुभकों ग्रहण करणा, अशुभका त्याग करणा, यथाशास्त्र विचरणा इसका नाम विचार है, जब सम्यक् विचार दृढ होता है, तब मिथ्यारूप संसारकी वासना त्यागता है, अरु सत्यविषे स्थित होता है, इसका नाम तनुमानसा है, जब संसारकी वासना क्षीण होती है, अरु सत्यका दृढ अभ्यास होता है, तब तिस वैराग्य अरु अभ्यासकरि सम्यक् ज्ञान उपजता है, आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसका नाम सत्त्वापत्ति है, मनतें वासना नष्ट हो जाती है, अरु तिसकरि सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, तिनकी प्राप्तिविषे भी संसक्ति नहीं होती, स्वरूपविषे सदा सावधान रहता है, सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धकरि प्राप्त होते हैं, तिनकों स्वप्नरूप जानता है, और कर्मोंके फलविषे बंधमान नहीं होता, इसका नाम असंसक्ति है, इसके अनंतर मनकी तनुता हो गई, अरु स्वरूपकी और चित्तका परिणाम होता है, तब दृढ परिणाम करिके व्यवहारका भी अभाव हो जाता है, जो पलपलविषे कर्म करणा, अथवा प्रारब्धवेगकरि करता है; परंतु उसके चित्तविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, मन क्षीणभावकों प्राप्त होता है, कर्ता हुआ भी उह कछु करता नहीं, देखता है, तौ भी नहीं देखता, अर्ध सुषुप्तवत् होता है, कर्तव्यकी भावना नहीं फुरती, मन नहीं फुरता, इसका नाम पदार्थाभाविनी योगभूमिका है, इसविषे चित्त लीन हो जाता है, इस अवस्थाविषे जो अभ्यास होता है, सो स्वाभाविक चित्तका जब केताक काल इस अभ्यासविषे व्यतीत होता है, अरु अंतरतें पदार्थोंका अभाव दृढ होता है, तब तुरीयारूप होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, इष्टकों पायके हर्षवान् नहीं होता, अरु तिसकी निवृत्तिविषे शोकवान् नहीं होता, केवल विगतसंदेह होता है, सो उत्तम पदकों प्राप्त होता है॥ हे रामचंद्र! तूं भी अब ज्ञातज्ञेय हुआ है, जो कछु जानणे योग्य है, सो तुझनें ज्योंका त्यों

जान्या है, सब पदार्थोंकी भावना तेरी तनुताकों प्राप्त भई है, अब तेरे साथ शरीर रहै अथवा न रहै, हर्ष शोकतें रहित तूं निरामय आत्मा है, तूं स्वच्छ आत्मतत्त्वविषे स्थित है, सर्वगत सदा उद्योतरूप है, जन्म मरण जरा सुख दुःखतें रहित तूं आत्मरूप है, बोधरूप शोकतें रहित है, तूं अद्वैतरूप अपणे आपविषे स्थित है, देह उदय भी होता है, अरु लीन भी हो जाता है, देश काल वस्तुके भेदतें रहित जो आत्मा है, सो उदय अरु अस्त कैसे होवै? हे रामचंद्र! तूं अविनाशी है, आपकों नाशरूप जानिकरि शोक कायकों करता है, तूं अमृत स्वच्छरूप है, जैसे घटके फुटणेकरि घटाकाश नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुएतें तूं नाश नहीं होता, जैसे सूर्यकी किरणांके जाणेतें मृगतृष्णाके जलका नाश हो जाता है, कछु किरणां नाश नहीं होती, तैसे॥ हे रामचंद्र! जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तिनकी वासना भ्रांति करिके होती है, तूं तौ अद्वैतरूप है, यह सब तेरी छायामात्र है, तूं किसकी वांछा करता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध इह जो पांचों विषयरूप दृश्य हैं, सो तुझतें भिन्न रंचकमात्र भी नहीं, सब तेरा स्वरूप है, तूं भ्रमकों मत प्राप्त होहु ॥ हे रामजी! सर्वशक्ति आत्मा है, सोइ आभास करिके अनेकरूप करिके भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता शक्ति है, सो आकाशतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे सर्वशक्ति है, जो जगत् द्वैतरूप होइकरि भासता है, सोइ चित्त करिके दृढ हुआ है, सो तीन प्रकारके क्रमकरि त्रय लोक जगत् जीवकों भ्रम हुआ है, एक सात्त्विक, एक राजस, एक तामस, जब इन तीनोंकों उपशम होवै, तब कल्याण होता है, जब वासना क्षय होवै, तब तिसके कर्म क्षय हो जाते हैं, तिसकरि भी भ्रम नाश हो जाता है, चित्तके संसरणेका नाम वासना है, सो कर्म संसार मायामात्र है, इसके नष्ट हुएतें सब शांत हो जाता है ॥ हे रामजी! इह संसार घटीयंत्रकी नांई है, जीवरूपी टीड वासनारूपी रसीसाथ बांधे हुए भ्रमते हैं, तूं आत्मविचाररूपी शस्त्र करिके यत्नसों इसकों काट, अरु अविद्याकों जबलग जानता नहीं, तबलग इह बडे मोहभ्रमकों दि

खाती है; अरु जब इसकों जानता है, तब बडे सुखकों प्राप्त करती है, अर्थ यह जो जबलग अविद्याकों वस्तुतें नहीं जानता, जो क्या है, तबलग संसार सत्य भासता है, तिसविषे अनेक भ्रम भासते हैं, जब इसकों स्वरूपतें जान्या जो वस्तु कछु नहीं, भ्रमरूप है, तब संसारवृत्तिकों त्याग करता है अरु स्वरूपकों प्राप्त होता है, इह संसार भ्रमतें उपजा है, अरु उसीकरि भोग भोगता है, लीला करता है, बहुरि ब्रह्महीविषे लीन हो जाता है ॥ हे रामचंद्र! शिवतत्त्व जो है, सो अनंतरूप है, अरु अप्रमेय निर्दुःखरूप है, सब भूततत्त्वतें उपजते हैं, जलतें तरंग अरु अग्नितें उष्णता होती है, तैसे ब्रह्मतें जगत् होता है, अरु तिसविषे स्थित है, सो उही रूप है, सो सबका आत्मा है, सो आत्माही ब्रह्मकरि कहाता है, तिसके जाननेतें जगत् जानता है, अरु तीनों लोकोंकों जाननेतें उसकों नहीं जानता, अच्युत निर्वाणरूप है, तिसके जानणे निमित्त शास्त्रकारोंनें ब्रह्म आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं, वास्तवतें नाम संज्ञा कोउ नहीं ॥ हे रामचंद्र! जो पुरुष रागदोषतें रहित है, इंद्रियों अरु विषयोंके संयोगवियोगविषे द्वेषकों नहीं प्राप्त होता, जो एक चेतन शुद्ध संवित् अनुभवरूप है, अविनाशी अरु आकाशतें भी स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे जगत् ऐसे स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, अंतर्बाह्यरूप होइकरि स्थित है, ऐसे जो जानता है, तौ लोभमोहादिकतें भिन्न नहीं अरु बोध आत्मातें व्यतिरेक नहीं, उही रूप है, तातें द्वैतरूप कछु नहीं ॥ हे रामचंद्र! देहतें रहित निर्विकल्प चेतन तेरा आकार है, लज्जा मोह आदिक विकार तुझकों कहां हैं, तूं आदिरूप है, लज्जा हर्ष भय आदिक असत्यरूप है, तूं क्यों दुर्बुद्धि मूर्खकी नांई विकल्पजालकों प्राप्त होता है, तूं चेतन आत्मा अखंडरूप है, देहके खंडित हुएतें आत्माका अभाव नहीं होता, असम्यक्‌दर्शी भी ऐसे मानते हैं, बोधवानोंकी क्या कहनी है ॥ हे रामचंद्र! चित्तसंवेदन जो जानता है, तिसके अनुभव करणेवाली जो सत्ता है, जो सूर्यके मार्ग करिके भी नहीं रोकी जाती, तिसकों तूं चित्तसत्ता जाण, सोइ पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं ॥ हे

रामचंद्र! शरीर सत्य होवै अथवा असत्य होवै, पुरुष तौ शरीर नहीं, देहके रहणे अरु नष्ट होणेकरि आत्मा ज्योंका त्योंही है, अरु इह जो सुखदुःखकों ग्रहण करते हैं, सो देह इंद्रियांदिक चिदात्माकों नहीं ग्रहण करते, जिन पुरुषोंका अज्ञान करिके देहविषे अभिमान हुआ है, तिनकों सुखदुःखका अभिमान होता है, ज्ञानवानकों नहीं होता, आत्माकों दुःख स्पर्श नहीं करता, सब विकारोंतें रहित है, मनके मार्गतें अतीत शून्यकी नांई स्थित है, तिसकों सुख दुःख कैसे होवैं? अरु देहसाथ मिल्या हुआ भासता है, सो स्वरूपकों त्यागिकरि दृश्यके चेतणेकरि देहादिक भ्रम भासते हैं, अरु वासनाके अनुसार देहसाथ संबंध होता है, जैसे भमरे अरु कमलोंका संयोग होता है, सो देहपिंजरेके नाश हुएतें आत्माका नाश तौ नहीं होता, जैसे कमलके नाश हुएतें भमरेका नाश नहीं होता, तातें तूं क्यों वृथा शोक करता है? हे रामजी! जगत्कों असत्य जाणिकरि अभावना करै, मन निरिच्छित हौ, साक्षीभूत सम स्वच्छ निर्विकल्प चिदात्माविषे जगत् होइ भासता है, जैसे मणि प्रकाशरूप होइ भासता है, बहुरि जगत् अरु आत्माका संबंध कैसे होवै? जैसे अनिच्छित दर्पणविषे प्रतिबिंब आय प्राप्त होता है, तैसे आत्माकों जगत्का संबंध भासता है॥ जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब द्वैतरूप होता है, तैसे आत्माविषे जगत्भेद भी अभेदरूप है, जैसे सूर्यके उदयकरि सब जीवोंकी क्रिया होती है, जैसे दीपक करिके पदार्थोंका ग्रहण होता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत् पदार्थका अनुभव होता है, इह जगत् चैतन्यतत्त्वके स्वभावतें उपजा है, प्रथम आत्मातें मन उपजा है, तिस मनकरि इह जगतजाल रचा है, वास्तवतें आत्मसत्ताविषे आत्मसत्ता स्थित है, जैसे शून्याकाश शून्यताविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भास्या है, सो ऐसे है, जैसे आकाशविषे नीलता, इंद्रधनुष्य भासता है, सो नानारूप होता है, परंतु स्वरूपतें शून्य है, हुआ तौ कछु नहीं तैसे इह जगत् कछु हुआ नहीं॥ हे रामचंद्र! इह जगत् चित्तविषे स्थित है, सो चित्त संकल्परूप है, जब संकल्प क्षय होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता

है, जब चित्त नष्ट हुआ, तब संसाररूपी कुहिड नष्ट हो जाती है, निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है, सो चेतनमात्र सत्ता एक अज आदि अंत मध्यतें रहित है तिसतें स्पंद फुर्या है, सो संकल्परूप ब्रह्मा होइकरि स्थित भया है, तिसतें आगे नानाप्रकारका जगत् रचा है, सो जगत् शून्यरूप है, मूर्ख बालककों सत्यरूप भासता है, जैसे बालककों परछायेविषे वैताल भासता है, जैसे जीवोंकों अज्ञानकरि देहाभिमान होता है, असत्यरूपही सत्य होइकरि भासता है, जब सम्यक् ज्ञान होता है, तब लीन हो जाता है, अपणे आपतें उपजिकरि लीन हो जाता है, जैसे समुद्रतें तरंग उपजिकरि समुद्रविषे लीन होता है, तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि आत्माविषे लीन होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे आर्षे महारामायणे शतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये परमार्थनिरूपणं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयम् ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥

अनुक्रमणिका-(स्थितिप्रकरण).

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१	जगत्निराकरण	१
२	स्मृतिबीजोपन्यास	२
३	जगदनंतवर्णन	३
४	अंकुरवर्णन	४
५	भार्गवसंवितगमन	४
६	भार्गवमनोराजवर्णन	५
७	भार्गवसंगम	६
८	भार्गवोपाख्याने विविधजन्म	६
९	भार्गवकलेवर	७
१०	कालवाक्य	८
११	संसारावर्त्तवर्णन	१०
१२	उत्पत्तिविस्तार	१२
१३	भृगुआश्वासनवर्णन	१३
१४	भार्गवजन्मांतर	१४
१५	शुक्रप्रथमजीवन	१५
१६	भार्गवजन्मांतर	१६
१७	मनोराजसंमीलन	१७
१८	जीवपदवर्णन	१८
१९	जागृत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावर्णन	२०
२०	भार्गवोपाख्यानसमाप्ति	२२
२१	विज्ञानवाद	२२
२२	अनुत्तमविश्राम	२४
२३	शरीरनगरवर्णन	२६
२४	मनस्वीसत्यताप्रतिपादन	२८
२५	दामव्यालकटोत्पत्ति	२९
२६	दामव्यालकटसंग्राम	३०
२७	दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्य	३०
२८	सुरासुरयुद्धवर्णन	३२
२९	दामव्यालकटोपाख्याने असुर०	३३
३०	दामव्यालकटजन्मांतर	३३
३१	निर्वाणोपदेश	३४
३२	दामव्यालकटोपाख्याने देशा०	३६
३३	दामव्यालकटोपाख्याने पुरु०	३८
३४	दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्ति	४१
३५	उपशमरूपवर्णन	४२
३६	चिदात्मरूपवर्णन	४५
३७	शांतिउपदेशकारणं	४६
३८	मोक्षोपदेश	४६
३९	सर्वैकताप्रतिपादन	४८
४०	ब्रह्मप्रतिपादन	५०
४१	अविद्याकथन	५१
४२	जीवतत्त्ववृत्तिवर्णन	५३
४३	जीवबीजस्थान	५४
४४	संसारप्रतिपादन	५६
४५	यथार्थोपदेशयोग	५७
४६	यथाभूतार्थबोधयोग	५९
४७	जगतसत्यासत्यवर्णन	६१
४८	दासुरोपाख्याने वनोपरुदन	६४
४९	दासुरोपाख्याने अवलोकन	६५
५०	दासुरसुतबोध	६५
५१	श्वेतथवैभववर्णन	६६
५२	संसारविचार	६७
५३	दासुरोपाख्याने जगच्चिकित्सा	६९
५४	दासुराख्यानसमाप्ति	७१
५५	कर्त्तव्यविचार	७२
५६	पूर्णस्वरूपवर्णन	७४
५७	कचगाथावर्णन	७६
५८	कमलजाव्यवहार	७७
५९	विचारपुरुषनिर्णय	७९
६०	मोक्षविचार	८०
६१	मोक्षोपाय	८१

॥ ॐ सच्चिदानंदाय नमः ॥ ॥ अथ स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण श्रवण कर, जिसके सुननेतें जगत् निर्वाणताकों प्राप्त होवै, कैसा है जगत् ? अहंता है आदि जिसके, ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष्य भासता है, नाना प्रकारके रंगसहित सो असत्‌रूप है; तैसे इह जगत् है, जैसे द्रष्टाविना अनुभव होता है, अरु जैसे निद्राविना स्वप्न भासता है, जैसे भविष्यत् नगर चित्तके फुरनेकरि भासता है, तैसे भ्रम करिके जगत् चित्तविषे स्थित हुआ है, जैसे वानर रतिकाकों एकठी करी अग्निकी कल्पना करते हैं, सो तिसकरि शीत निवृत्त नहीं होता, भावनामात्र अग्नि होता है, तैसे यह जगत् भावनामात्र है, जैसे आकाशविषे रत्नमणिका प्रकाश अरु गंधर्वनगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे इह जगत् असत्‌रूप भ्रम करिके सत्‌रूप हो भासता है, जैसे संकल्प दृढ अनुभव करिके भासता है, तौ भी असत्‌रूप है, जैसे कथाके अर्थ चित्तविषे भासते हैं, तैसे निःसाररूप जगत् चित्तविषे साररूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे पहाड, नदीयां भास आतीयां हैं, तैसे सब भूत बडे भी भासते हैं, तौ भी आकाशवत् शून्यरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अंगनासाथ प्रेम करता है, सो अर्थतें रहित असत्‌रूप है, जैसे मूर्तिके लिखे अग्नि सूर्य होते हैं, परंतु तिनतें अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे इह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं, अर्थतें रहित है, जैसे चित्रके लिखी कमलनी सुगंधतें रहित होती है, तैसे इह जगत् शून्यरूप है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष्य भासता है, जैसे केलीका स्तंभ सुंदर भासता है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं निकसता; तैसे इह जगत् देखणेमात्र रमणीय भासता है, परंतु अत्यंत असत्‌रूप है, इसविषे सार कछु नहीं निकसता, प्रत्यक्ष देखणेविषे अनुभव होता है, परंतु मृगतृष्णाकी नदीवत् असत्‌रूप है; है कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व संशयके नाशकर्त्ता जब महाकल्पक्षय होता है, तब दृश्यमान जगत् सब आत्मरूप बीजविषे

जाय लीन होता है, जैसे बीजाविषे अंकुर रहता है, बहुरि तिसतें उपजता है, तिसकरि स्थित होता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, इह जो बुद्धि है, सो ज्ञानकी है, किंवा अज्ञानकी है? यातें सर्व संशयोंके निवृत्तिके अर्थ मुझकों स्पष्ट करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार महाकल्पके क्षय हुए बीजरूप आत्माविषे जगत् स्थित होता है, ऐसे कहते हैं, सो परम अज्ञानी हैं, महामूर्ख बालक हैं, जो ब्रह्मकों जगत्का कारण कहते हैं, बीजतें अंकुरकी नांई सो मूर्खका कहना है, बीज तौ दृश्यरूप इंद्रियहूका विषय होता है, जैसे बटबीजतें अंकुर होता है, बहुरि विस्तारकों पावता है, सो इंद्रियहूका विषय है, अरु जो मन सहित षट् इंद्रियतें अतीत है, अर्थ इह जो इंद्रियहूका विषय नहीं, आकाशतें भी अधिक निर्मल है, तिसकों जगत्का बीज कैसे कहियें? आकाशतें भी अधिक सूक्ष्म परम उत्तम अनुभवकरि उपलब्ध है, नित्य प्राप्त है, तिसकों बीजभाव कहना नहीं बनता ॥ हे रामजी! जो शांत सूक्ष्म सदा प्रकाशसत्ता है, अरु दृश्य जगत् जिसविषे असतरूप है, तिसकों बीजरूप कैसे कहियें? जो बीजरूप कहना नहीं बनता तब तिसतें जगत् कैसे कहियें? आकाशतें अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदविषे सुमेरु समुद्र आकाश आदिक जगत् नहीं बनता, जो किंचन अरु अकिंचन है, निराकार सूक्ष्मकी नांई सत्ता है, तिसविषे विद्यमान जगत् कैसे होवै? महासूक्ष्मरूप है, दृश्य तिसविषे विरुद्धरूप है, जैसे धूपविषे छाया नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, जैसे अग्निविषे बरफ नहीं, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता, सत्यरूप आत्माविषे असत्यरूप जगत् कैसे होवै? बटका बीज भी साकाररूप होता है, अरु निराकाररूप आत्माविषे साकाररूप जगत् होना अयुक्त है ॥ हे रामजी! कारण दो प्रकारका होता है, एक समवायिकारण, दूसरा निमित्तकारण है, सो आत्मा दोनों कारणभावतें रहित है, निमित्त कारण तब होता है, जब कार्यतें कर्त्ता भिन्न होता है, आत्मा अद्वैत है, तिसके निकट दूसरी वस्तु हैही नहीं, कर्त्ता कैसे होवै, अरु किस

का होवै ? सहकारी भी नहीं, जिसकरि कार्यकों करै, मन अरु इंद्रियहूतें रहित निराकार अविकृतरूप है, अरु समवायिकारण भी परिणाम करिके होता है, जैसे वटबीज परिणामकरि वृक्ष होता है, सो आत्मा अच्युतरूप है, परिणामकों कदाचित् प्राप्त नहीं होता, समवायिकारण कैसे होवै ? जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति, इन षट् विकारहूंतें रहित निर्विकार आत्मा जगत्का कारण कैसे होवै ? तातें इह जगत् अकारणरूप भ्रांति करिके भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे निद्रादोष करिके स्वप्नदृष्टि भासती है तैसे इह जगत् भ्रांति करिके भासता है, जब स्वरूपविषे जागै, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, तातें कारण कार्य भ्रमकों त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, दुर्बोध करि संकल्परचना हुई है, तिसकों त्यागिकरि आदि मध्य अरु अंततें रहित जो सत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, तब जगत्भ्रम मिटि जावै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगन्निराकरणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे देवताविषे श्रेष्ठ रामजी ! बीजतें अंकुरवत् आत्मातें जगत्का होना अंगीकार करियें तौ नहीं बनता, आत्मा सर्व कल्पनातें रहित महाचैतन्य निर्मल आकाशवत् है, तिसकों जगत्का बीज कैसे मानियें? बीज परिणामकरि अंकुर होता है, अरु कारण समवायिकरि होता है, आत्माविषे समवायि अरु निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते, जैसे वंध्या स्त्रीका संतान किसी नहीं देखा, तैसे आत्मातें जगत् नहीं होता, जो समवायि अरु निमित्तकारणविना सहकारी पदार्थ भासै, तौ जाणियें जो इह है नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सृष्टि स्थिति प्रलय करिके ब्रह्मसत्ताही अपने आपविषे स्थित है, जो इस प्रकार स्थित है, तौ कारणकार्यका क्रम कैसे होवै ? जो कारणकार्यका भाव न हुआ तौ पृथ्वी आदिक भूत कहांतें उपजे ? कहांही है नहीं, अरु जो कारण कार्य मानियें तौ पूर्व जो विकार कहे हैं, तिनका दूषण आवता है, तातें न कोउ कारण है, न कार्य है, कारणकार्यवि

ना जो पदार्थ भासै, तिसकों सतरूप जानै सो मूर्ख बालक है, उह विवेकतें रहित है, तातें इह जगत् न आगे था, न अब है, न पाछे होवैगा, स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब जगतका अत्यंत अभाव होता है, तब संपूर्ण ब्रह्मही दृष्ट आता है, जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अन्यथा कारणकार्यभाव कोउ नहीं, प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव कोउ नहीं, प्रागभाव कहियें जो प्रथम न था, जैसे प्रथममें पुत्र नहीं होता, अरु पाछे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासों घट उत्पन्न होता है, अरु प्रध्वंसाभाव उह है, जो प्रथम होकरि नष्ट हो जाता है, जैसे घट था, अरु नष्ट हो गया, अरु अन्योन्याभाव कहियें, जैसे घटविषे पटका अभाव है, अरु पटविषे घटका अभाव है, इह तीन प्रकारका भाव जिसके हृदयविषे है, तिसकरि जगत् दृढ होता है, उसकों शांति नहीं प्राप्त होती, जब जगत्का अत्यंताभाव दिखता है, तब चित्त शांतिवान् होता है, सो जगत्के अत्यंताभावका इस युक्तिबिना अवर उपाय नहीं, अरु अशेष जगत्की निवृत्तिविना मुक्ति नहीं, सूर्यतें आदि लेकरि जेता कछु प्रकाश है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं; अरु क्षण वर्ष कल्प आदिक जो काल है, इह मैं हों, इह और है, अरु रूप अलोक मन संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है, कल्प अरु कल्पक ब्रह्मांड अरु ब्रह्मा अरु विष्णु रुद्र इंद्र कीटतें आदि लेकरि जेता कछु जगत्जाल है, सो उपजी उपजी अंतर्धान हो जाता है, महाचैतन्य परम आकाशविषे अनंत वृत्ति उठती हैं, जैसे जगत्के पूर्व शांत सत्ता थी, तैसे तूं अब भी जान, अवर कछु हुआ नहीं, परमाणुका सहस्रांश होवै, तिसकी नांई सूक्ष्म चित्तकला है, तिस चित्तकलाविषे अनंतकोटि सृष्टियां स्थित हैं, उही चित्तसत्ता फुरनेकरि जगत्रूप हो भासती है, अरु प्रकाशरूप है, निराकार शांतरूप है, न उदय होता है, न अस्त होता है, न आता है, न जाता है, जैसे शिलाविषे रेषा होतियां हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे आकाशसत्ता फुरती है, तैसे आत्माविषे जगत् फुरता है, अरु आत्माहीविषे

जगत् स्थित है, निराकार निर्विकाररूप विज्ञानघनसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उदय अरु अस्ततें रहित विस्तृतरूप है ॥ हे रामजी ! जो सहकारी कारण कोउ न हुआ, तौ जगत् शून्य हुआ, क्यों जो ऐसे जाननेतें सर्व कलंककलना शांत हो जाती है, दीर्घ निद्राविषे सोया है, तिसका अभाव करिके ज्ञानभूमिकाकों प्राप्त होहु, जागेतें निःशोक पद प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! महाप्रलयके अंतविषे अरु सृष्टिके आदिविषे जो प्रजापति होता है, सो जगत्कों पूर्वकी स्मृति करिके तिसी भांति रचता है, तौ जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवै ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! महाप्रलयके आदिविषे जो प्रजापति होता है, अरु उह स्मरण करिके पूर्वकी नांई जगत्कों रचता है, ऐसे मानियें तौ नहीं बनता, काहेतें जो महाप्रलयविषे प्रजापति कहां रहता है, जो आपही न रहै, तिसकी स्मृति कैसी मानियें ? जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे महाप्रलयविषे प्रजापति नहीं होता ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मण्य ! जगत्के आदिविषे जो ब्रह्मा था, अरु तिसनें जगत्कों रचा था, महाप्रलयविषे तिसकी स्मृतिका नाश तौ नहीं होता, सुषुप्तितें उठेकी नांई बहुरि स्मृतिकरि जगत्कों रचता है, तौ बनता है, तुम कैसे कहते हौ जो नहीं बनता ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे शुभव्रत रामजी ! महा प्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं, सो महाप्रलयविषे सब निर्वाण हो जाते हैं, अर्थ इह जो विदेहमुक्त होते हैं, ब्रह्मतत्त्वविषे लीन होते हैं, जो स्मृति करनेवाले अंतर्धान हो गये तौ स्मृति कहां रहै, जो स्मृति निर्मूल भई, तो तिसकों जगत्का कारण कैसे कहीयें ? महाप्रलय तिसका नाम है, जहां सर्व शब्द अर्थसहित निर्मूल हो जाते हैं, जहां सर्व अंतर्धान हो गये तहां स्मृति किसकी कहीयें ? जो स्मृतिका अभाव भया, तौ कारण किसका किसकी नांई कहीयें ? तातें सर्व जगत् चित्तके फुरनेमात्र है, जब महाप्रलय होता है, तब, सब यत्नविना मोक्षभागी होते हैं, जो आत्मज्ञान होवैं तौ जगत्के होते भी मोक्षभागी होते हैं, अरु जो आत्मज्ञान न

हीं, तौ जगत् दृढ होता है, निवृत्त नहीं होता, जब दृश्य जगत्का अभाव होवै, तब स्वच्छ चैतन्यसत्ता प्रकाशती है, सो आदि अंततें रहित है, जगत् भी सब उहीरूप भासता है, अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्वही प्रकाशता है, तिसविषे जो आदि संवेदन फुरता है, सो ब्रह्मरूप है, अंतवाहक देह विराट जगत् हो भासता है, तिसका एक परमाणुरूप यह तीनों जगत् हैं, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्र क्रम हुआ है, बहुरि तिसके अणुविषे जगत् पडे फुरते हैं, सो क्या है? सब संकल्परूप है, ब्रह्मसत्ताका प्रकाश है, जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है, तिसकों सब जगत् एक ब्रह्मरूप हो भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसके चित्तविषे अनेक प्रकार जगत्की भावना होती हैं; द्वैतभावना करिके उह पडा भ्रमता है, जैसे इस ब्रह्मांडके अनेक जीव परमाणु हैं, तिनके अंतर अनंत सृष्टियां हैं, तिनके अंतर और अनंत स्रष्टा हैं, तैसे और जो अनंत स्रष्टा हैं, तिनके अंतर और अनंत सृष्टियां फुरतियां हैं, सो ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश है, जैसे बडे स्तंभविषे अनेक पुतलियां शिल्पी कल्पै, तिसके अंतर और अनेक पुतलियां कल्पै, तिनके अंतर और अनेक पुतलियां होवहीं; तैसे परमाणुपरमाणुके अंतर त्रिलोकी स्थित हैं, सो अभिन्नरूप है और कछु हुआ नहीं, जैसे पहाडके अंतर्गत असंख्य परमाणु होते हैं, सो तिससाथ अभिन्नरूप हैं, तैसे ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, तिसके अंतर अनेक जगतरूपी परमाणु हैं, सो अभिन्नरूप हैं ॥ हे रामजी! सूर्यहूकी किरणका समूह होवहीं तिनविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं; तिनकी संख्या करनेकों कोउ समर्थ भी होवै; परंतु आदिअंततें रहित जो आत्मरूपी सूर्य है, तिसके त्रिलोकीरूपी परमाणुकी संख्या करनेकों कोउ समर्थ नहीं, जैसे समुद्रविषे जलतें परमाणु होते हैं, जैसे पृथ्वीविषे धूडके परमाणु होते हैं, सो असंख्य हैं, तैसे आत्माविषे असंख्य परमाणु सृष्टियां हैं, जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है; इह जो मैंनें उसकों सृष्टि कही है, जो इनकों तूं जगत् शब्दकरि जानैगा, तौ अज्ञानबुद्धि है, अरु दुःख भ्रमकों देखैगा, अरु जो इनकों ब्र

ह्मशब्दका अर्थकरि जानैगा तौ इस बुद्धिकरि परम सारकों प्राप्त होवैगा, सर्व विश्व ब्रह्मतें फुरता है, अरु विज्ञानघन ब्रह्मरूप है, और द्वैत कछु हुआ नहीं, जब जागैगा, तब तुझकों ऐसेही भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनंतवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इंद्रियहूंका जो ग्राम है तिससाथ युद्ध करणा, तिनका जीतणा सो संसाररूपी समुद्रके पार करणेकों बेडा है, अर्थ इह जो इंद्रियहूंकों जीतणा मोक्षका कारण है, और किसी क्रम उपायकरि संसारसमुद्र तर्या नहीं जाता, संतका संग करना, अरु सच्छास्त्रका विचारना, इसकरि जब आत्मतत्त्वका बोध होता है, तब इंद्रियनका जीतना होता है, अरु जगत्का अत्यंत अभाव होता है, जबलग संसारका अत्यंत अभाव नहीं होता, तबलग आत्मबोध नहीं होता, इह मैंनें तुझकों क्रम कहा है, सो संसारसमुद्र तरनेका उपाय है, बहुत कहनेतें क्या है? सब कर्मका बीज मन है, मनके छेदेतें सब जगत्का छेद होता है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है, तब जगत्रूपी अंकुर भी नष्ट हो जाता है, सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपाय करो, मलीन मनतें अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं, इसके जीतनेतें सर्व लोकमें जय होता है, सब जगत् मन करिके हुआ है, मनरहित हुएतें देह भी नहीं भासता, जब मनसों दृश्यका अभाव होता है, तब मन भी मृतक हो जाता है, और उपाय कोउ नहीं ॥ हे रामजी! मनरूपी पिशाच है, तिसका नाश और उपाय किसी करि नहीं होता, अनेक कल्प बीत गये हैं, अरु बीत जाय, तब भी नाश नहीं होता, तातें जबलग दृश्यमान है, तबलग इसका उपाय करै, जगत्का अत्यंत अभाव चिंतवना अरु स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, यह परम औषध है, इस उपायकरि मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है, जबलग मन नष्ट नहीं होता, तबलग मनके मोहकरि जन्ममरणकों पावैगा, जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है, तब मन बंधनतें मुक्त होता है, संपूर्ण जगत् मनके फुरेणेकरि भासता है, जैसे आकाशविषे शून्य

ता भासती है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनविषे भासता है, जैसे पुष्पमें सुगंध रहता है, जैसे तिलमें तेल रहता है, जैसे गुणीमें गुण रहता है, जैसे धर्मीमें धर्म रहता है, तैसे इह सत् असत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यरूप जगत् मनमें रहता है, जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा फुरता है, जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल फुरता है, तैसे चित्तविषे जगत् फुरता है, जैसे सूर्यविषे किरणां हैं, जैसे तेजविषे प्रकाश है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे मनविषे जगत् है, जैसे बरफविषे शीतलता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे पवनविषे स्पंदता है तैसे मनविषे जगत् है, संपूर्ण जगत् मनरूप है, अरु मन जगत्रूप है, परस्पर एक रूप हैं, दोनोंमेंतें एक नष्ट होवै तब दोनों नष्ट हो जाते हैं, जब जगत् नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षके नष्ट हुएतें पत्र टास फूल फल नष्ट हो जाते हैं, फूलफलके नष्ट हुएतें वृक्ष नष्ट नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता! पूर्व अपरके ज्ञाता! मनके फुरणे करिके जगत् कैसे फुरता है? अरु कैसे भया है? जैसे प्राप्त भया है, तैसे दृष्टांतदृष्टिकरिके मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रहूंकी दश सृष्टियां होत भइयां अरु दशही ब्रह्मा होत भये, सो मनके फुरणेतें उपजिकरि मनके फुरणेविषे स्थित भये, अरु जैसे लवण राजाकों इंद्रजालकी माया करिके चंडालकी प्रतिमा दृढ होकरि भासी, तैसे इह जगत् मनमें स्थित भया है, जैसे भार्गव शुक्र मनके फुरणेकरि चिरकाल स्वर्गकों भोगता रहा, अरु अवर अनेक भ्रम देखे, सो मनहीका भ्रम दृष्ट होकरि भास्या, तैसे इह जगत् मनके भ्रमकरि स्थित भया है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! भृगुऋषीश्वरके पुत्रनें मनके भ्रमकरि कैसे स्वर्गसुख भोगे हैं? अरु कैसे भोगका अधिपति हुआ है? अरु कैसे संसारी होकरि भ्रमकों देखता भया है? ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भृगुके पुत्रका वृत्तांत सुन, भृगु अरु कालका संवाद मंदराचल पर्वतविषे

हुआ है, एक कालमें भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित थे, चंद्रमाकी नांई शुक्रका मुख अरु बडा प्रकाशी है, अरु भृगुजी बडा उदार आत्मा तहां स्थित है, जहां कल्पवृक्ष अरु मंदारवृक्ष आदिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्त्ति हैं, तहां भृगुजी तप करते थे, अरु शुक्रजी टहल करते थे, एक समय भृगुजी निर्विकल्प समाधिमें स्थित भये, तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकांत जाय बैठे, कंठविषे मंदारकल्पवृक्षहूके फुलहूंकी माला पहरी हुई, सो शुक्र विद्या अरु अविद्याके मध्यमें स्थित था, जैसे त्रिशंकु राजा चंडाल था, सो विश्वामित्रके वरकों पायके स्वर्गमें गया, तब देवतानें अनादर किया, स्वर्गतें गिराय दिया, जो इह चंडाल है, तब विश्वामित्रनें देखिके कहा, जो इहांही खडा रहौ, तब उह भूमि अरु आकाशके मध्य स्थित भया, तैसे शुक्र बैठा है, तौ एक अप्सरा तिसके ऊर्ध्व चली आवै, स्वर्गकी और महासुंदर तिसकों देखत भया, जैसे लक्ष्मीकी और विष्णुजी देखे, तैसे अप्सराकों देखी, जो महासुंदर अनेक प्रकारके भूषण पहरे हुए अरु दिव्य वस्त्र हैं, अरु माहासुगंधि है, अरु महासुंदर आकाशमार्ग भी तिसकरि सुगंधित भया है, पवन जो तिसकों स्पर्श करी चलता है, तिसकी सुगंधि पसरती है, अरु महामदकरि उसके घूर्ण नेत्र हैं, ऐसी अप्सराकों देखिके शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकों देखिके क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है, तैसे उसकी वृत्ति और मार्गतें रहित होकरि अप्सराविषे जाय स्थित भई, कामदेवका बाण जो है, स्मृति करना, सो आय लगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्भ्रमनं नाम पंचमः सर्गः॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! इस प्रकार उस अप्सराकों देखके नेत्र मूंदता भया, मूंदके मनोराज्यकों पसारत भया, चिंतने लगा, जो इह ललना मृगनयनी स्वर्गकों गई है, मैं तिसके निकट जाय प्राप्त होऊं, ऐसे विचारिके उसके पाछे चला, जाते जाते मनसों स्वर्गमें जाय प्राप्त भया, तहां मंदर कल्पतरु हैं, तिनकों फूलकी सुगंधतासहित देखता भया, द्रवत स्वर्णकी नांई शरीर जिनके, ऐसे

देवता हैं, अरु हास्य विलास संयुक्त स्त्रियां हरिणकी नांई नेत्र जिनके हैं, सो देखता भया, मणिके समूह देखे, अन्योन्य परस्पर उनविषे प्रतिबिंब पडते हैं, विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोकमें देखी, मंद मंद पवन चलता है, मंदारवृक्षसाथ मंजरी प्रफुल्लित हैं, तहां अप्सरागण विचरते हैं, इंद्र भागमें आगे गया, तौ ऐरावत हस्ती बडे मदसों मस्त खडा है, जिसनें युद्धमें दंतसाथ दैत्य चूर्ण कीयें हैं, अरु देवता आगे अप्सरा गायन करती हैं, अरु स्वर्णके कमल लगे हुए हैं, तहां ब्रह्माके हंस अरु सारस पक्षी विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, देवताके नायक तहां विश्राम करते हैं, बहुरि लोकपालके स्थान देखे, यम, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, वायु, अग्नि, लोकपाल, सब देखता भया, महाज्वालावत् प्रकाश है जिनका, ऐसे देवताके समूह देखता भया, ऐरावतके दंतमें दैत्यहूकी पंक्ति देखी, आगे देवता देखे, जो विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, भूषणसहित तिनके हार मणि करिके जडे हुए हैं, सुंदर विमानकी पंक्ति विचरती है, कहूं मंदारवृक्ष हैं, कहूं कल्पवृक्ष हैं, तिनसाथ सुंदर वल्लियां हैं, गंगाका प्रवाह चलता है, तहां अप्सरागण बैठे हैं, कहूं सुगंधतासहित पवन चलता है, कहूं झरणेमेंतें जल चलता है, सुंदर नंदनवन है, कहूं अप्सरा बैठी हैं, कहूं नारद आदिक बैठे हैं, अवर लोक जिननें पुण्य किये हैं, सो बैठे सुख भोगते हैं, विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, कहूं इंद्रकों अप्सरा सेवती हैं, कामदेवसों मस्त हैं शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनकों सेवती हैं, तैसे अप्सरा इंद्रकों सेवती हैं, जैसे कल्पवृक्षहूंसाथ पक्के फल लगते हैं, तैसे रत्न अरु चिंतामणि लगे हैं, कहूं चंद्रकांत मणि स्रवती है, इस प्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानौ त्रिलोकीकी रचना इहांही है, तब शुक्रकों देखिके इंद्र उठी खडा हुआ, जो दूसरा भृगु आया है, बडे प्रकाशसंयुक्त शुक्रकी मूर्तिकों इंद्रनें प्रणाम किया, अरु हाथ ग्रहण करिके अपने पास बैठाया, अरु कहत भया ॥ हे शुक्रजी! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुमारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुमारे आ

नेसें सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत इहांही स्थित होहु, जब ऐसे इंद्रनें कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिसकों देखिके सुरके समूह प्रणाम करत भये, जो भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है॥ हे रामजी! इस प्रकार शुक्रजी मनसों इंद्रके पास जाय बैठा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराज्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः॥ ६॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार शुक्रजी इंद्रपास जाय बैठा, तब अपना जो कोउ निज भाव था, तिसकों भुलाय दिया, उह जो मंदराचल पर्वत पैं अपना शरीर था, सो भूलि गया, अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ हो गया, एक मुहूर्त्तपर्यंत इंद्रके पास बैठा रहा, परंतु चित्त उस अप्सरामें रहा, तिसकी अनंतर उठ खडा हुआ, स्वर्गकों देखने लगा, देवतानें कहा, जो चलौ स्वर्गकी रचना देखौ, तब शुक्रजी देखत देखत जहां उह अप्सरा थी तहां गये, अरु और अप्सरा बहुत थी, तिनमें उह अप्सरा भी बैठी है, मृगके जैसे नेत्र हैं जिसके, तिसकों शुक्रजीनें देखी, जैसे चंद्रमा चांदनीकों देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत हो गया, प्रस्वेदसों पूर्ण होत भया, जैसे चंद्रमाकों देखिके चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर हो गया, कामदेवके बाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल हो गया, अरु शुक्रकों देखिके उसका चित्त भी मोहित हो गया, शुक्रविषे कामका बाण उसकों भी आय लगा, उह भी कामसों पूर्ण हो गई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती है, तैसे परस्पर स्नेह बढ्या, तब शुक्रजीनें मनसों तहां तमकों रच्या, तब सब स्थानमें तम हो गया, जैसे लोकालोक पर्वतके तटविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव हो गया, तब भूतजात सब अप अपने स्थानमें गये, जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अप अपने गृहकों जाते हैं, तैसे तमके होनेतें सब वनकों चलते रहे, तब उह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठ गया, अप्सरा भी चरणके निकट बैठी; सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हुए हैं, स्नेहकरि दोनों कामवश हुए; तब अप्स

रा मधुरवाणीसों कहत भई ॥ हे नाथ! मैं निर्बल होकरि तुमारी शरण आई हौं, मुझकों कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करौ, मैं इसकरि पूर्ण हो गई हौं, अरु स्नेहरूपी जो रस है, तिसकों सोइ जानता है, जिसकों प्राप्त भया है ॥ जिसकों रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जानै? हे साधु! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोउ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अब तुमारे चरणोंकों पायके आनंदवान् भई हौं, जैसे चंद्रमाकों पायके कमलिनी आनंदवान् होती है, जैसे चकोर चंद्रमाकी किरणांकों पायके आनंदवान् होता है, तैसे मुझकों स्पर्श करिके आनंद होवैगा, जब इस प्रकार अप्सरानें कहा, तब दोनों कामके वश होइ करि क्रीडा करने लगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंगमो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार तिसकों पायके शुक्र आपकों आनंदवान् मानता भया; मंदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलकी माला पहिरी हुई, वन अरु बगीचे किनारेविषे क्रीडा करते हैं, चंद्रमाकी किरणांके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरहीं, विद्याधरके गणसाथ रहते हैं, तिनके स्थानमें नंदनवन इत्यादिक स्थानाविषे क्रीडा करत भोगतें कैलास पर्वतमें गये; अप्सरासहित तहां वनकुंजमें फिरते रहैं, बहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मंदराचल पर्वतके कुंजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत बहुरि गंधर्वके नगरविषे रहे, इंद्रके बनविषे रहे, बत्रीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे, जब पुण्य क्षीण भया, तब भूमिलोकमें गिराय दिये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये, जैसे झरणेमेंतें जल बंध होवै, तैसे शरीर अंतर्धान हो गया; तब चिंतासंयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही, जैसे पक्षी नीडविना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चिंतासहित निराधार भई, तब वासनारूप दोनों चंद्रमाकी किरणांविषे जाय स्थित हुए, बहुरि किरणांद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तब दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसनें धान्यका भोजन कीया, तब उह चावल वीर्य होकरि ब्राह्मणीके ग

र्भमें जाय रहा, फेर वह धान्यका मालव देशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई; अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ; अरु उह मालव देशके राजाके ह्यां अप्सरा पुत्री हुई, तब क्रम करिके बडी हुई, जब षोडशवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई, तब महादेवकी पूजा करत भई, औ प्रार्थना करी जो, हे देव! मुझकों पूर्वके भर्तारकी प्राप्ति कर देहु, इस प्रकार नित्य पूजन करै, अरु वर मागै, अरु उहां उह यौवनवान् हुआ, इहां इह यौवनवती हुई, तब राजानें यज्ञका आरंभ किया, तिसमें सब राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रसहित आया, तब राजपुत्रीनें तिस पूर्वजन्मके भर्त्तारकों देख्या, जैसे चंद्रमाकों देखिके चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे राजकन्या हो गई, अरु स्नेहसों नेत्रतें जल चलने लगा, तब राजकन्या दशारण्यके पुत्रकों देखिके तिसके कंठविषे फूलकी माला डारिके अपना भर्त्तार किया, तब यज्ञमें देखिके राजा आश्चर्यमान् हुआ, अरु निश्चय किया जो भला हुआ, बहुरि क्रमसों विवाह किया, तब राजा, पुत्री अरु जवाईकों राज्य देके आप वनकों तप करने लिये चलता रहा, इहां इह पुरुष अरु स्त्री मालव देशका राज्य करने लगे, चिरकाल राज्य करते रहे, बहुरि दोनों वृद्ध भये, शरीर जर्जरीभूत हो गये, तब तिसकों शरीरमें वैराग्य हुआ, जो स्त्री महादुःखरूप है, सो दुःखरूप अवस्था देखिके समानवैराग्य हुआ, विशेष वैराग्य न उपजा, जर्जरीभूत अंगविषे सेवनेतें अशक्त भये; परंतु तृष्णा निवृत्त नहीं भई, राजा मृत्यु अवस्थाकों प्राप्त भया, सो बांधवनें जलाय दिया, यह महा अंधकूप मोहविषे जाय पडा, ज्ञानकी प्राप्तिविना ॥ हे रामजी! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर परलोक तिसकों भासी आया, तहां कर्मके अनुसार सुखदुःखकों भोगिके अंग व्यंग देशमें धीवर हुआ, तहां अपने धीवरकर्म करत भया, बहुरि वृद्ध अवस्था आई, तब शरीरविषे वैराग्य हुआ, जो इह संसार महादुःखरूप है, ऐसे जानिके सूर्यभगवान्का तप करने लगा, जब मृतक हुआ तब तपके वशतें, सूर्यवंश

विषे राजा भया, सो भावनाके वशतें तहा कछुक ज्ञानवान् हुआ, योग करै, अरु वेद पढै, योगकी भावना करि जो शरीर छूटा, तब बडा गुरु हुआ, सर्वकों उपदेश करै, मंत्रसिद्धि करता भया, वेदमें बहुत परिपक्क हुआ, तब मंत्रके वशतें विद्याधर हुआ, चिरकालपर्यंत विद्याधरमें एक कल्पपर्यंत रहा, जब कल्पका अंत भया, तब सशरीर अंतर्धान हो गया, तब इसका पवनरूपी शरीर वासनासहित हो रहा; जब ब्रह्माकी रात्र क्षय हुई, अरु दिन हुआ, बहुरि सृष्टि रची, तब एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ, तहां बडा तप करत भया, बहुरि सुमेरु पर्वतपर जाय स्थित भया, एक मन्वंतरपर्यंत उहां रहा, इकहतर चोकडी युग व्यतीत भई, तहां भोगकरि हरणीका पुत्र हुआ, अरु मनुष्यका आकार तहां रहा, तिस पुत्रके स्नेहसों मोहकों प्राप्त भया, जो इस मेरे पुत्रकों धन होहु, गुण आयुर्दा बल बहुत होहु, निरंतर यही चिंतन करने लगा, इस कारणतें अपने तप धर्मतें विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण भया, मृतरूप सर्पनें ग्रास लिया, तपोभ्रष्ट निमित्त अरु तपके बलकरि शरीर छूटा, तब भोगकी चिंतासंयुक्त मद्रदेशके राजाके गृहविषे पुत्र हुआ, तिस देशका राजा भया, चिरपर्यंत राजभोगकरि वृद्ध अवस्थाकों प्राप्त भया, शरीर जर्जरीभूत हो गया, तहां तपकी अभिलाषामें शरीर छूटा, तिसकरि तपेश्वर गृहविषे पुत्र हुआ, अब संतापतें रहित होइकरि गंगाजीके किनारेपर तप करनेकूं लगा है॥ हे रामजी! इस प्रकार मनके फुरणे करिके शुक्र अनेक शरीरकों भोगता भया॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः॥८॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार शुक्र मनसों भ्रमता फिर्या, तब भृगुके पास जो शरीर था, सो निर्जीव हुआ, पुर्यष्टक निकरि गई थी, पवन अरु धूपसों शरीर जर्जरीभूत हो गया, जैसे मूलतें काट्या वृक्ष गिर पडता है, तैसे शरीर गिर पडा, मन जो चंचल है सो भोगकी तृष्णासों वही गया था, जैसे हरण वन विषे भ्रमता है, जैसे चक्रपर चड्या बासन भ्रमता है, तैसे भ्रमतें भ्रमांतरकों देख्या, जब मुनीश्वरके गृहमें

जन्म लिया, तब चित्तमें विश्राम हुआ, गंगाके तटपर तप करने लगा, मंदराचल पर्वतवाला शरीर निरस हो गया, अस्थि चर्म मात्र शेष रही गया, अरु लोहु, सूकी गया, शरीरके रंध्रमार्गकरि पवन चलै, तब बांसुरीवत् शब्द होवै, मानौ चेष्टाकों त्यागिके शरीर आनंदवान् हुआ है, जब बडा पवन चलै तब भूमिविषे लोटणे लागे, नेत्र आदिक जो रंध्र थे, सो गर्त गडेलेवत् होय गये, अरु मुख पसरी गया, मानौ अपने पूर्व स्वभावकों देखिके हसत है, जब वर्षाकाल आवै, तब जलकरि पूर्ण हो जावै, अरु जल तिसविषे प्रवेश करी रंध्रके मार्गसों निकसै, जैसे झरणेसों जल निकसता है, तैसे निकसै, जब उष्णकाल आवै, तब धूपसों सूकि जावै, महाकाष्ठकी नांई वनविषे मौनरूप होकरि स्थित भया, अरु मृग पक्षी शरीरकों नाश करत न भये, सो एक तौ इह कारण है, जो रागदोषतें रहित पुण्य आश्रम था, अवर भृगुजी महातपस्वी तेजवान्, तिसके निकट कोउ आय न शकै, इस कारणतें देहकों नष्ट न करत भये, इहां शरीरकी इह अवस्था भई, अरु उहां शुक्र पवनके शरीरसों चेष्टा करत भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवर वर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब सहस्र वर्ष व्यतीत भये, सो भूमि लोकके तीन लाख अरु साठ सहस्र वर्ष भये, तब भगवान् भृगुजी समाधितें उतरे, जागिके देखते भये, अपने आगे शुक्रका शरीर दृष्ट न आया, जब भली प्रकार नेत्र पसारी देख्या तब तहां देख्या, जो कृश जैसा होयके शरीर गिर पडा है, जानत भया, जो कालनें इसकों भक्षण कीया है, शरीर धूप अरु वायु मेघकरि जर्जरीभूत हो गया है, नेत्र गडेलारूप हो गये हैं, शरीरमें कीट आय स्थित भये हैं, जीवनें आलयस्थान बनाये हैं, घुराण मखियां आवतियां जातियां हैं, श्वेतदंत निकसी आये हैं, मानौ शरीरकी दशाकों देखिके हसते हैं, मुख ग्रीवा महाभयानकरूप खपर श्वेत हो गया है, नासिका श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत हो गये हैं, वायु चलै तब वांसुरीवत् वाजणे लगते हैं, महा आश्चर्यरूप शरीर कृश होयके गिर पडा है, रागदोषतें रहित होकरि स्थित

भया है, मृग पक्षी भक्षण न करते भए, सो एकतौ पुण्यस्थान, दूसरा भृगुजीका तेज था, इस कारणतें हिंसक भक्षण न करत भये, शरीरकी इह दशा देखिके भृगुजी उठी खडे हुए, क्रोधवान् होकरि कहने लगे जो कालनें क्या समझा है? जो मेरे पुत्रकों मार्या है, शुक्र परम तपस्वी अरु सृष्टिपर्यंत रहनेवाला था, सो विनाकाल मेरे पुत्रकों क्यों मारा है? इह कौन रीति है? मैं कालकों शाप देकरि भस्म करौंगा? मेरे पुत्रकों समयविना मारा है, तब कालका रूप जो काल है, सो अद्भुत शरीर धारिकरि आया, षट्मुख, षट्भुजा, हाथविषे खड्ग, त्रिशूल अरु फांसी अरु कानमें मोती पहिरे हुए मुखसों ज्वाला निकसती हैं, महाश्याम शरीर अग्निवत् जिव्हा है, कमलकी नांई ज्वाला निकसती है, त्रिशूलके अग्रतें अग्निकी लाटा निकसतियां हैं, जैसे प्रलयकालके अग्नितें धूम निकसता है, तैसे श्याम शरीर बडे पहाडकी नाई उग्ररूप है, जहा चरण रखै तहां पृथ्वी पहाड कांपने लागहीं, महाभयानकरूप काल भगवान् भृगुऋषीश्वरके निकट आया, अरु भृगु जो महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधकरि पूर्ण था, तहां आगमन करि कहत भया ॥ हे मुनीश्वर! जो मर्यादाके वेत्ता हैं, अरु परावर परमात्माके वेत्ता हैं, सो पुरुष क्रोधकों नहीं प्राप्त होते, जो कोउ क्रोध करनेकों आवै, तौ भी मोहके वश होइकरि क्रोधवान् नहीं होते, तुम कारणविना काहेकों मोहित होयके क्रोधकों प्राप्त भये हौ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हौ, अरु हम नीतिके पालक हैं, हमारे करी तुम पूजणे योग्य हौ, यही नीतिकी इच्छा है, अरु तपके बलकरि तुम क्षोभ मत करौ, तुमारे शापकरि मैं भस्म भी नहीं होता, प्रलयकालका अग्नि भी मुझकों दग्ध करी नहीं शकता, तौ तुमारे शापकरि मैं कब भस्म होता हौं? ॥ हे मुनीश्वर! मैं तौ अनेक ब्रह्मांड भक्षण करि गया हौं, केई कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ग्रास लिये हैं, तेरा शाप मुझकों क्या करि शकता है, जैसे आदिनीति ईश्वरनें रची है, तैसे स्थित है, हम सबके भोक्ता हुए हैं, तुम सारिखे हमारा भोग हुए हैं, इह आदिनीति हुई है ॥ हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभावकरि ऊर्ध्वकों जाता है, अरु जल स्वभावकरि अधकों जा

ता है, अरु भोग जो है सो भोक्ताकों प्राप्त होता है, अरु सृष्टि सब कालके मुखमें प्राप्त होती है, आदि परमात्माकी नेत ऐसेही हुई है, जैसे रची है तैसे स्थित है, अरु जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टिकरि देखियें, तौ न कोउ कर्त्ता है, न कोउ भोक्ता है, न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ताही है, जो अज्ञानकलंक दृष्टिकरि देखियें तौ कर्त्ता भोक्ता अनेक प्रकारके भ्रम भासते हैं ॥ हे ब्राह्मण! कर्त्ता भोक्ता आदिक जो भ्रम है, सो असम्यक् ज्ञानकरि होता है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ, तब कर्त्ता कार्य भोक्ता कोउ नहीं, जैसे वृक्षसाथ पुष्प स्वभावतें उपजि आते हैं, अरु स्वभावतेंही नष्ट हो जाते हैं, तैसे भूत प्राणी सृष्टिविषे स्वाभाविक फुरि आते हैं, बहुरि स्वाभाविक रीतिसों नष्ट हो जाते हैं, ब्रह्मा उत्पन्न कर्त्ता है, बहुरि नष्ट कर्त्ता है, जैसे चंद्रमाका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, ठहरणेकरि ठहरा भासता है, तैसे मनके फुरणेकरि आत्माविषे कर्तव्य भोक्तव्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, मिथ्याही मनके फुरणेकरि लोकविषे कर्तव्य आदिक भासते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है, तैसे आत्माविषे कर्तव्य भोक्तव्य भ्रम करिके भासता है, वास्तव कछु नहीं, तातें क्रोध मत करौ, इह दुष्ट कर्म आपदाका कारण है॥ हे मुनीश्वर! मैं जो तुझकों इह वचन कहता हौं, सो अपनी विभुता अरु अभिमानकरि नहीं कहता, इह स्वतः ईश्वरकी नीति है, हम तिसीविषे स्थित हैं, जो बोधवान् पुरुष हैं, सो अपने प्रकृतिआचारविषे विचरते हैं, उह अभिमान करिके नहीं विचरते, जो कर्तव्यके वेत्ता हैं, सो बाह्य प्रकृत आचारकों करते हैं, जैसा आनि प्राप्त होवै, अरु अंतरतें सुषुप्तकी नांई स्थित है, उह ज्ञानदृष्टि कहा, उह धैर्यता कहा, अरु उदारदृष्टि कहा, जो शास्त्रकरि प्रसिद्ध है, तुम क्यों अंधकी नांई मोहमार्गविषे मोहित होते हौ? ॥ हे साधु! तुम तौ त्रिकालदर्शी हौ, अविचार करिके मूर्खकी नांई जगत्यंत्रविषे क्यों मोहकों प्राप्त होते हौ? तेरा पुत्र अपने कर्महूंके फलकों प्राप्त भया है, अरु तूं मूर्खकी नांई मुझकों शाप दीया चाहता है ॥ हे मुनीश्वर! इस लोकविषे जीव

हूके दो दो शरीर हैं, एक मनरूप है, दूसरा अधिभूतरूप है, अधिभूतरूप जड है, अत्यंत विनाशी है, जहां इसकों मन प्रेरता है, तहां चला जाता है आपतें कछु करि नहीं सकता, जैसे सारथी भला होता है, तौ रथकों भले स्थान ले जाता है, अरु जो सारथी भला नहीं होता, तौ रथकों दुःखके स्थान ले जाता है; तैसे जब मन भला होता है, तब उत्तम लोककों प्राप्त करता है, जब दुष्ट होता है, तब नीच स्थानकों प्राप्त करता है, जिसकों मन असत् करता है, सो असत् भासता है, जिसकों मन सत् करता है, सो सत् भासता है, जैसा कमलपत्ता है, तैसा हो भासता है, जैसे माटीकी सेना बालक बनावते हैं, बहुरि भंग करते हैं, कबहूं सत् करते हैं, कबहू असत् करते हैं, जैसे करते हैं, तैसे देखते हैं॥ हे साधो! इह चित्तरूपी पुरुष है, जो चित्त करता है, सो किया होता है, जो चिंतन करता है, सो न किया होता, इह जो फुरणा है, इह देह है, इह नेत्र है, इह शिर है, इह अंग है, इत्यादिक सब मनरूप है, जीव भी मनका नाम है, मनका जीवणा जीव है, उही मनकी वृत्ति निश्चयरूप होती है, तब तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंरूपकों धरता है, तब तिसका नाम अहंकार होता है, देहकों स्मरण करता है, तब तिसका नाम चित्त होता है, तातें पृथ्वीरूप शरीर कोउ नहीं, मन दृढभावनाकरि शरीररूप होता है, सोई अधिभूत हो भासता है, जब शरीरकी भावनाकों त्यागता है, तब चित्त परम पदकों प्राप्त होता है, जेता कछु जगत् है, सो मनके फुरणेविषे स्थित है, जैसा मनका फुरणा होता है, तैसाही रूप हो भासता है, अरु तेरा जो पुत्र था, शुक्र सो भी मनके फुरणे करि अनेक स्थानकों देखत भया, जब तुम समाधिविषे स्थित थे, तब विश्वाची देवसुंदरी जो अप्सरा थी, तिसके पाछे मनकरि चला गया, इंद्र लोक स्वर्गकों जाय प्राप्त भया, देवता होकरि मंदार वृक्षविषे विचरणे लगा, पारिजात वृक्षहूंविषे तमालहू अरु नंदनवनविषे विचरता रहा; लोकपालहूंके स्थानविषे विचरा, बत्तीस युगपर्यंत विश्वाची अप्सरासाथ विचरता रहा, जैसे भंवरा कमलकों सेवता है, तैसे तीव्र संवेगकरि भोगता रहा, जब पुण्य क्षीण हुआ, तब तहांतें गिराया, जैसे पका फल वृक्ष

तें गिरता है, तब देवताका शरीर आकाशमार्गविषे अंतर्धान हो गया, भूमिलोकविषे आनि पडा, धान्यविषे आयकरि ब्राह्मणके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीका पुत्र भया, मालव देशका राज्य किया, बहुरि धीवरका जन्म पाया, बहुरि सूर्यवंशी राजा हुआ, बहुरि विद्याधर हुआ, कल्पपर्यंत विद्याधरविषे बुद्धिवान् रहा, इस प्रकार अनेक शरीरहूंकों पायकरि अब गंगाके तटपर ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करता है, वसुदेव तिसका नाम है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार तेरा पुत्र वासना करिके अनेक शरीर पावता रहा है, विंध्याचल पर्वतविषे गैब हुआ, क्रांत देशविषे धीवर हुआ, तरंगित देशविषे राजा हुआ, क्रांत देशविषे हरिण हुआ, वनमें विचरा, बहुरि विद्यावान् गुरु हुआ, बहुरि विद्याधर श्रीमान हुआ, बहुरि कुंडलादिक भूषणहूकरि संपन्न बडा ऐश्वर्यवान् गंधर्वहूंका मुनिनायक भूषण हुआ, कल्पपर्यंत उहां रहा, जब प्रलय होने लगा, तब सब लोक पूर्व भस्म हो गये, जैसे अग्निविषे पतंग भस्म होते हैं, तब तेरा पुत्र निराधार निराकार वासना करिके आकाशमार्गविषे भ्रमता रहा, जैसे आलयविना पक्षी रहता है, तैसे रहा, जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत भई, तब सृष्टिकी रचना बनी, तब उह सत्युगविषे ब्राह्मणका बालक वसुदेव नाम गंगाके तटपर तप करता है, आठ सौ वर्ष तिसकों तप करते बीते हैं, तूं भी ज्ञानदृष्टिकरि देखैगा तौ सबही वृत्तांत उसका तुझकों भास आवैगा, तातें देख, जो इसी प्रकार है, अथवा किसी और प्रकार है? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्यं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

॥ काल उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! महातरंग उछलते हैं, अरु झनकार शब्द होते हैं, ऐसी गंगाके तटपर तेरा पुत्र तप करता है, शिरपर बडी जटा है, सर्व इंद्रियके भ्रमकों तिसनें जीत्या है, जो तुमकों इसके मनका विस्तार देखनेकी इच्छा है, तौ इनहूं नेत्रकों मूंदिकरि ज्ञानके नेत्रसों देखौ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार जगत्के ईश्वर कालनें कहा, कैसा काल है? जो समदृष्टि है जिसकी, तब मुनीश्वर चितवता भया, इन नेत्रहूंकों मूंदिकरि ज्ञाननेत्रसाथ देखा,

एक मुहूर्तविषे अपने पुत्रका सब वृत्तात देखता भया, जैसे कोउ अपनी बुद्धिविषे प्रतिबिंबकों देखै, तैसे देखिके बहुरि मंदराचल पर्वतपर जो भृगुशरीर था, तिसविषे प्रवेश किया, अंतवाहक शरीरकरि अरु अपने अग्रभागविषे काल भगवानकों देखता भया, पुत्रकों गंगाके तटपर देख्या, आश्चर्यकों प्राप्त हुआ, तब विकारदृष्टिकों त्यागिकरि निर्मल दृष्टिसाथ वीतराग मुनीश्वर वचन कहत भया॥ भृगुरुवाच ॥ हे भगवन्! तीनहूं कालके ज्ञाता ईश्वर! हम बालक हैं, इसीतें निर्दोष हैं, तुम सारखे बुद्धिवान हैं, तीन काल अमलदर्शी हैं ॥ हे भगवन्! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है, जीवहूंकों अनेक भ्रम दिखावती है, बुद्धिवानकों भी मोह करती है, मूर्खहूंकी क्या बात है? तुम सब कछु जानते हौ, जीवहूंकी वार्त्ता सब तुमारे अंतर्गत है, जीवके मनकी वृत्ति है, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुमारे अंतर्गत फुरती है, इन सबनहूंके तुम वेत्ता हौ, जैसे इंद्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है ॥ हे भगवन्! मैं जो भ्रमकों प्राप्त होकरि क्रोध किया, सो इस कारणतें जो मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरंजीवी था, अरु तिसकों मैं मृतक हुआ देखिके भ्रमकों प्राप्त भया, अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं, काहेतें जो मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देख्या, तब कहा, जो अकाल मृतक हुआ है, इस कारणतें क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ इह जो क्रोधका स्थान होवै, तहां क्रोध चहिता है, मैं संसारकी गति विचारिके क्रोध नहीं किया, अर्थ इह जो पुत्रकी अवस्था देखिके क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरकों देखिकरि क्रोध किया है, इसीतें इह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकरि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकरि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, इह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, इह नीति है, जबलग जीव है, तबलग जगत्क्रम है, जैसे जबलग अग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है, सो त्यागना है, इह नीति जगतविषे स्थित है, जो हेयोपादेय नहीं जानता, तिसकों त्यागना योग्य है,

तातें मैं पुत्रका अकाल मृत्यु देखिके क्रोध किया था; परंतु विचार करिके जब तुमनें स्मरण कराया, तब मैं विचारकरि देखा, जो मेरा पुत्र अनेक भ्रमकों पावता अब गंगाके तटपर तप करता है ॥ हे भगवन्! तुम जो कहा जीवहूंके दो दो शरीर हैं, एक मनोमय दूसरा अधिभूतक, अरु मैं तौ इह मानता हौं जो शरीर एक मनही है, दूसरा कोउ नहीं, मनहीका किया सफल होता है, शरीरका नहीं होता ॥ ॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमनें यथार्थ कहा है, शरीर एक मनही है, स्थूल देह मनकरि रचा है, जैसे घटकों कुलाल रचता है, तैसे मन देहकों रचता है, जो मन शरीरतें रहित निराकार होता है, क्षणविषे आकारकों रचि लेता है, जैसे बालक परछायेविषे वैतालकों रचता है, भ्रम करिके मनविषे जो फुरणसत्ता है, स्वप्न भ्रम तिसकरि दिखाता है, बडे आकार अरु गंधर्वनगर भासि आते हैं, सो मनहीकी सत्ता है, स्थूल दृष्टिकरि जीवकों दो शरीर भासते हैं, बोधवान्कों तीनों जगत् मनरूप भासते हैं, सब मनकरि रचे हैं, जब भेदवासना होती है, तब असत्रूप जगत् नानाप्रकार हो भासता है, जैसे असम्यक् दृष्टिकरि दो चंद्रमा भासते हैं, सम्यक्दर्शीकों एक चंद्रमावत् सब शांतरूप आत्माही भासता है, भेद भावनाकरि घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं, जो मैं दुर्बल हौं, मोटा हौं, सुखी हौं, दुःखी हौं, इह जगत् है, इह काल है, इत्यादिक अनेक भ्रमकों देखता है, सो संसार वासनामात्र है, जब मन शरीरकी वासनाकों त्यागिकरि परमार्थकी उर आवता है, तब भ्रमकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! समुद्रतें तरंग उठिकरि ऊर्ध्वकों जाता है, जो उह जानै, मैं तरंग होता सो मूर्ख है, यही अज्ञानदृष्टि है, ऊर्ध्वकों जावैगा, तब जानैगा मैं ऊर्ध्वकों गया हौं, नीचे जावैगा, तब जानैगा, मैं पातालकों गया हौं, इह कल्पना अज्ञान है; वास्तव नहीं, वास्तव दृष्टि इह है, जो अध होय, अथवा ऊर्ध्व होय, परंतु आपकों जलरूप जानै, तैसे जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिकविषे अहंप्रतीत करताहै, सो अनेक भ्रमकों देखता है, सम्यक्दर्शी सब आत्मरूप जानता है, सर्व जीव आत्म

रूप समुद्रके तरंग हैं, अज्ञानकरि भिन्न हैं, अरु ज्ञानकरि उहीरूप हैं, आत्मरूपी समुद्र सम है, स्वच्छ है, शुद्ध है, आदिरूप है, शीतल अविनाशी विस्तृतरूप अपने महिमाविषे स्थित है, सदा आनंदरूप है, जैसे कोउ जलविषे स्थित है, और तटउपर पहाड है, तिसकों अग्नि लगी होवै, अग्निका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, अरु उह कहै, मैं दग्ध होता हौं, सो जैसे भ्रमकरि उसकों ज्वलनता भासती है, तैसे जीवकों आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है, जैसे तटके वृक्ष पर्वतादि पदार्थ जलमें प्रतिबिंबित भासते हैं, अरु उनकों देखिके नानाप्रकार भासैं, तैसे आभासरूप जगत्कों जीव नानारूप मानते हैं, जैसे एक समुद्रविषे नाना तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक आकार जगत् भासता है, वास्तवतें द्वैत कछु नहीं, सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ता है, तिसकरि विचित्ररूप चंचल भासता है, तौ भी एकरूप है, अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजै हैं, बहुरि तिसविषे लीन होते हैं, औ भेद कछु नहीं, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे ईश्वरतें जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्र, डार, फूल, फल, वृक्षरूप हैं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, सो आत्मा अनेक शक्तिरूप है, जैसे एक पुरुष अनेक कर्मका कर्त्ता होता है, जैसा कर्म करता है, तैसे संगकों पावता है, पाठ करनेतें पाठक कहाता है, पाक करनेतें पाचक कहाता है, जापक तापक आदि अनेक नामकों धारता है, तैसे एक आत्मा अनेक शक्तिकों धारता है, जैसे एक परछाया जिस आकारका पडता है, तैसा आकार भासता है, जैसे एक मेघविषे अनेक रंगसहित इंद्रधनुष्य भासता है, तैसे इह अनेक भ्रमकों पावता है॥ हे साधो! सब जगत् ब्रह्मतें फुरे हैं, जड भासते हैं, सोभी चैतन्यसत्तातें फुरे हैं, जैसे बबोहा अपने मुखसों तंतु निकासिकरि आपही ग्रासी लेता है, तैसे चैतन्यतें जड उत्पन्न होते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, चैतन्य जीवतें सुषुप्ति जडता उपजती है, बहुरि तिसीविषे निवृत्त होती है, तातें अपणी इच्छाकरि इह पुरुष बंध

मान होता है, अरु अपनी इच्छाकरि मुक्त होता है, जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानसाथ मिलता है, तब आपकों बंधमान करता है, जैसे घुरान आपही गृह रचिके बंधमान होती है, अरु जो पुरुषार्थ करिके अंतर्मुख होता है, तब मुक्तिकों पावता है, जैसे अपने हाथके बलकरि बंधनकों तोडिके कोउ बली निकसी जाता है ॥ हे साधो! ईश्वरकी विचित्ररूप शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है, तैसा रूप दिखावती है, जैसे ओस आकाशविषे उपजती है, तिसीकों आच्छादि लेती है, तैसे आत्माविषे जो इच्छाशक्ति उपजती है, सोई आवरणकरि लेती है, तन्मयरूप हो जाती है, अरु वास्तवतें इसकों बंधनतें बंधन नहीं, मोक्षसों मोक्ष नहीं, बंध अरु मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्र हैं, मैं जानता नहीं, जो बंध अरु मोक्ष लोकविषे कहांतें आये हैं; आत्माकों न बंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सत्‌रूपकों असत्य रूपनें ग्रास्या है, जो कहता है, मैं दुःखी हों, सुखी हों, दुबला हों, मोटा हों इत्यादिक भ्रमकों देखता है, माया महाआश्चर्यरूप है, जिसनें जगत्‌कों मोहित किया है ॥ हे मुनीश्वर! जब चित्त संवित् कलनारूप होता है, अर्थ इह जो दृश्यसाथ मिलिके फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नांई आपही आपकों बंधन करता है, अरु जब दृश्यतें रहित अंतर्मुख होती है, तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है, बंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति है, जैसे जैसे मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप हैं, सब आत्मातें उपजी हैं, अरु आत्माविषे स्थित हैं, तिसविषे भिन्न होइकरि भासतियां हैं, तिसविषे लीन होतियां हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित होकरि लीन हो जाते हैं, जैसे चंद्रमातें किरणां उदय होइकरि भिन्न भासतियां हैं, बहुरि तिसीविषे लीन होतियां हैं, तैसे परमात्मरूपी महासमुद्र है, चेतनतारूपी तिसविषे जल है, तिसतें जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोउ तरंग ब्रह्मारूप, कोउ विष्णुरूप, कोउ रुद्ररूप होइकरि प्रकाशते हैं, जिसतें उपजे हैं, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादतें रहित कोउ ल

हरी यम, कोउ कुबेर, कोउ इंद्र, कोउ सूर्य, कोउ अग्नि, कोउ मनुष्य, कोउ देवता, कोउ गंधर्व, कोउ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकरि उपजते हैं, बहुरि लीन हो जाते हैं, कोउ स्थित होइकरि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं, कोउ उपजीकरि कछु काल रहिकरि विध्वंस हो जाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक हैं, अरु कोउ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट हो जाते हैं, आत्मसमुद्रतें तरंगवत् फुरते हैं, बहुरि तिसविषे लीन हो जाते हैं, कोउ ब्रह्मादिक उपजीकरि अप्रमादी रहता है, कोउ प्रमादी हो जाता है, तुच्छशरीर होते हैं, इस संसार स्वप्न आरंभ है, अरु दृढ होकरि भासता है, कोउ कैसे, कोउ कैसे रूपकरि स्थित है, स्वरूपके प्रमादकरि दीनताकों प्राप्त होता है, ऐसे मानते हैं, मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं, इत्यादिक भ्रमकों मूढताकरि देखते हैं, सो सब आत्मरूपके तरंग बडे फुरते हैं, कोउ जंगमरूप, कोउ स्थावररूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक्, पशु, पक्षी, सब आत्मसमुद्रकी लहरी हैं, उपजिकरि बहुरि लीन हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारावर्तवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

॥ काल उवाच ॥ हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्य, आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, इह सत् है, जब मिथ्या संकल्पसाथ जीव कलंकित होता है, तब जानता है, जो मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयकों पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अधोकों चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप है, अरु तिसविषे स्थित है, तौ भी भावनाके वशतें आपकों भिन्न जानिके मोहकों प्राप्त होता है, शुद्ध ब्रह्मविषे संवित्का उल्लेख होता है; सो कलंकितरूप कर्मका बीज होता है, तिसतें आगे विस्तारकों पावता है, जैसे जल जिस जिस बीजसाथ मिलता है, तिसी रसकों प्राप्त होता है, तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलता है, तैसी गतिकों प्राप्त होता है, संकल्पकरि कलंकित हुआ अनेक दुःख पावता है, इह प्रमादरूप कर्म कैसा है, जो करजुएका बीज है, तिसकों मुष्टी भरि भरि बोता है, सो अपने दुःखका कारण है, इह जगत् आत्मरूप स

मुद्रकी लहरीयां हैं, विस्तारकरि फुरतियां हैं; कोउ ऊर्ध्वकों जाती है, कोउ अधकों जाती है, बहुरि लीन हो जातियां हैं, ब्रह्मा आदि तृणपर्यंत इन सबनका इही धर्म है, जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भी है, तिनविषे केई निर्मल पूजणे योग्य हैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, केईक कछुक मोहसंयुक्त हैं, जैसे देवता मनुष्य, सर्प हैं, केईक अनंत मोहविषे स्थित हैं, जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं, केईक अज्ञान करिके मूढ हैं, सो कृमि कीट आदिक योनिकों प्राप्त हुए हैं, इह दूरतें दूर चले गये हैं, जैसे जलके प्रवाहकरि तृण चला जाता है, देवता, मनुष्य, सर्प आदि केईक भ्रमवान् भी होते हैं, केईक तटके निकट आयके बहुरि वही जाते हैं, अर्थ इह जो सत्संग अरु सत्शास्त्रोंकों पायके बहुरि मायाके व्यवहारमें वही जाते हैं, यमरूप जो चूहा है, सो तिनकों पडा काटता है, एक अल्प मोहकों प्राप्त होकरि बहुरि ब्रह्मसमुद्रविषे लीन भये हैं, अरु केईक अंतर्गत ब्रह्मसमुद्रकों जानिके स्थित हुए हैं, तम अज्ञानकों तरे हैं, केईक अनेक कोटि जन्मकरि प्राप्त होते हैं, केई अधतें ऊर्ध्वकों चले जाते हैं, बहुरि ऊर्ध्वतें अध चले जाते हैं, प्रमादकरि अनेक योनिदुःखहूंकों पडे भोगते हैं; जब आत्मज्ञान होता है, तब आपदातें छूटिके शांतिवान् होते हैं ॥ इति श्रीयो॰ स्थिति॰ उत्पत्तिविस्तारणं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ काल उवाच ॥ हे साधो! इह जेता कछु जगत् भूतजात विस्तार है, सो सब आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, एकही अनेक विचित्र विस्तारकों प्राप्त भया है, जैसे वसंतऋतुविषे एकही रस अनेक प्रकारके फूलफलकों धारता है, तैसे इह जीवहूंविषे जिननें मनकों जीतिकरि सर्वात्मा ब्रह्मका दर्शन किया है, सो जीवन्मुक्त हुए हैं, और मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व, आदिक सब पडे भ्रमते हैं, इनतें इतर भी स्थावर मूढ अवस्थाविषे हैं, तिनकी क्या बात करनी है, लोकविषे तीन प्रकारके जीव हैं, एक अज्ञानी महामूढ हैं, दूसरे जिज्ञासी हैं, तीसरे ज्ञानवान् हैं, जो मूढ हैं, तिनकों शास्त्रके श्रवण अरु विचारविषे कछु रुचि नहीं, अरु जो जिज्ञासी

हैं, तिनके निमित्त ज्ञानवान्नें शास्त्र रचे हैं, जिस जिस मार्गकरि उह प्रबुद्ध आत्मा हुए हैं, तिस तिस प्रकारके तिननें शास्त्र रचे हैं, तिस मार्गकरि अवर जीव भी मोक्षभागी होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! सत्शास्त्र जो ज्ञानवान्नें कीये हैं, सो जब निःपाप पुरुष तिनकों विचारता है, तब उसकों निर्मल बोध उपजता है, तिसकरि मोह निवृत्त होता है, जब निर्मलबुद्धि होती है, तब सत्शास्त्रके अभ्यासकरि मोह नष्ट होता है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि तम नष्ट हो जाता है, अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो आत्माके प्रमादकरि विषयकी तृष्णातें मोहकों प्राप्त होते हैं, जैसे अंधेरी रात्र होवै, अरु उपरतें कुहिड भी होवै, तब तमतें तम होता है, तैसे मूढ मोहतें मोहकों प्राप्त होते हैं, अपने संकल्पकरि आपही दुःखी होते हैं, जैसे बालक अपने परछायेविषे वैताल कल्पिकरि आपही दुःखी होता है, तातें जेते कछु भूतजात हैं, तिन सबकों सुखदुःखका कारण मनरूपी शरीर है, जैसे उह फुरता है, तैसी गतिकों प्राप्त होता है, मांसमय शरीरका किया कछु सफल नहीं होता, असत् मांस आदिकका मिल्या हुआ जो आधिभौतिक शरीर है, सो मनके संकल्पकरि रचा है, सो वास्तव कछु नहीं, संकल्पकी दृढतातें आधिभौतिक भासने लगा है, स्वप्नशरीरकी नांई है, मनरूपी शरीरकरि जो तेर पुत्रनें किया है तिसी गतिकों प्राप्त भया है, इसीमें हमारा कछु अपराध नहीं है ॥ हे मुनीश्वर! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोउ कर्म करता है, तैसे फलकों प्राप्त होता है, मांस शरीरमें कछु नहीं होता, जैसे जैसे तीव्र भावनाकरि तेरे पुत्रका मन फुरता गया है, तैसी तैसी गतिकों पावता भया है, स्वर्ग नरक सबका भोक्ता भया है, आपनें मनके मोहकरि सब देख्या है, बहुत कहनेकरि क्या है, उठहु, अब तहांही चलीयें, जहां उह ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करने लगा है, गंगाके तटपर तहां उसकों देखहीं ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब काल भगवाननें कहा, तब दोनों जगत्की गतिकों हसत उठि खडे हुए, हाथसाथ हाथ पकडिके कहते भये, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूप है, जीवकों

बडे भ्रमकों प्राप्त करती है, जैसे उदयाचल पर्वततें सूर्य उदय होता है, अरु आकाशमार्गविषे चलता है, तैसे प्रकाशकी निधि उदार आत्मा दोनों चले, इस प्रकार वसिष्ठजीनें रामजीकों कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सर्व सभा स्नानकों गई, दिन हुए बहुरि अपअपने आसनपर आनि स्थित भये॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृग्वाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! काल अरु भृगुजी दोनों मंदराचल पर्वतसों भूमिपें उतरे, जहां पुत्र बैठाथा, तहां चले, देवताके महा सुंदर स्थानकों लंघते लंघते तहां गए, जहां ब्राह्मण शरीरसाथ गंगाके किनारे उह तप करता था, समाधिविषे स्थित है, तिसकों देखते भए, मनरूपी जो मृग है, सो अचल होइकरि विश्रामकों प्राप्त भया है, जैसे चिरकालका थका चिरकालपर्यंत विश्राम पावै, तैसे विश्राम पाया है, अनेक जन्मकी चिंतनाविषे भटकता भटकता अब तपविषे लगा है, अरु विश्रामकों पाया है,जैसे चक्र भ्रमता ठहर जाता, तैसे ठहर गया है, संसाररूपी महासमुद्र है, तिसके आवर्ततें निकसिकरि एकांत स्थित भया है, इंद्रिय अरु मनकी चपलताकों त्यागिके निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है, स्थावरकी नांई अचल भया है, आधि व्याधि आदिक संपूर्ण कल्पनाजालतें मुक्त परम शांतिकों प्राप्त हुआ है; रागदोषतें रहित होइकरि परमानंद पदविषे स्थित भया है, परमबोधरूप उदारताविषे समाधिस्थित तिसकों देखिके कालनें कहा ॥ हे भृगु! देख, समाधिविषे स्थित है, अब जगाइयें, इस प्रकार मेघकी नांई बडे शब्दकरि काल भगवाननें कहा, तब तिसकी कलना फुरणे करि अरु बाहिर शब्दकरि शुक्रजी जागे, जैसे मेघके शब्दकरि मोर जागै, तैसे जाग्या, अर्धोन्मीलित नेत्र खोलिके काल अरु भृगुकों अपने आगे देखत भया, अरु पिछानता न भया, अरु देख्या जो दोनोंके श्याम आकार हैं; अरु बडे प्रकाशरूप हैं, जैसे विष्णुजी अरु सदाशिवजी होवहीं, तिनकों देखिके उठि खडा हुआ, अरु प्रीतिपूर्वक चरणवंदना करी, अरु कहा जो मेरे बडे भाग्य है, प्रभुके चरण इस स्थानविषे प्राप्त भये हैं,

बहुरि नम्रतासहित आदर किया, तब एक शिला पडी थी, तिसपर दोनों बैठि गये, अरु वसुदेव नाम जो शुक्र है, तपके संयोगकरि तिसका नाम शातातप भया, तिस तपसी शांत हृदय अगमवचन कहे काल अरु भृगुकों ॥ हे प्रभो ! मैं तुमारे दर्शनकरि शांतिकों प्राप्त भया हौं, तुम सूर्य अरु चंद्रमा एकठे मेरे आश्रम आये हौ, जो शास्त्रहू अरु तप करिके भी मोह निवृत्त होना कठिन है, सो तुमारे दर्शनकरि मेरे मन का मोह नष्ट भया है ॥ हे साधो ! ऐसा सुख ऐश्वर्यकरि नहीं प्राप्त होता, अरु अमृतकी वर्षाकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख महापुरुषके दर्शनकरि होता है, तुमारे दर्शनकरि हमारा मोह नष्ट भया है, तुम ज्ञानके सूर्य अरु चंद्रमा हौ॥ हे ऋषीश्वरो ! तुमनें हमारा स्थान पवित्र किया है, मैं शांतात्मा हुआ हौं, तुम कौन हौ ? जो इस प्रकाशरूप उदार आत्मा मेरे स्थानपर आये हौ ? जब इस प्रकार जन्मांतरके पुत्रनें भृगुजीकों कहा तब भृगुजीनें कहा ॥ हे साधो ! तूं आपकों स्मरण कर जो कौन है, अज्ञानी तौ नहीं; तूं प्रबोध आत्मा है, जब इस प्रकार भृगुजीनें कहा, तब नेत्र मूंदिकरि उही ध्यानविषे जुडि गया, एक मुहूर्तविषे अपना सब वृत्तांत देखिके नेत्र खोले, अरु विस्मय होइकरि कहत भया; जो ईश्वरकी गति विचित्ररूप है, इसके वश हुआ मैं बडे भ्रमकों प्राप्त हुआ हौं, जगत्‌रूपकी चक्रपर आरूढ हुआ अनंत जन्मविषे भम्या हौं, तिन सबनकों स्मरण करिके आश्चर्यमान होता हौं, जो मैं बहुत दुःख भोगे हैं, अरु अनेक अवस्था भोगी हैं, स्वर्गविषे रहा हौं, मंदार कल्पवृक्ष नीचे रहा हौं, सुमेरु कैलास आदिक वनकुंजविषे रहा हौं, अनेक स्थानविषे ऐसा पदार्थ पावनेका नहीं, जो मैं नहीं पाया; ऐसा कोउ कार्य नहीं, जो मैं नहीं किया; ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक स्वर्ग पदार्थ नहीं, जो मैं नहीं देख्या; अब जो कछु जानने योग्य है, सो पाया हौं, अब मैं आत्मतत्त्वविषे विश्रामवान् भया हौं, संकल्पभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, अब चलियें मेरा शरीर जहां मंदराचल पर्वतपर पडा है ॥ हे भगवन् ! अब मुझकों इच्छा कछु नहीं है, हेयोपादेय मुझकों कछु रहा नहीं,

तथापि नीतिकी रचना देखिके कहता हौं, जो बोधवान् हैं सो प्रकृत आचारविषे विचरते हैं, आगे जैसे इच्छा होवै तैसे करियें; बोधवान् उसी आचारकों अंगीकार करते हैं, तातें अपअपने प्रकृत आचारकों ग्रहण करिके व्यवहारविषे विचरहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ ॥ १४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचार करिके तीनों आकाशमार्गकों चले, शीघ्रही मेघमंडलकों उल्लंघिके सिद्धके मार्गसों मंदराचल पर्वतपर स्वर्णकी कंदराविषे आय स्थित भए, तब पूर्व जो शुक्रका शरीर था, तिसकों देखते भए, अरु ब्राह्मण तपस्वीनें कहा ॥ हे तात! मेरा पूर्व शरीर देखो, जो तुमनें बहुत पालन किया था, कपूर सुगंधिकरि शोभित किया था, फूलकी शय्यापर शयन करता था, सो अब माटिविषे लपटा पडा है, अरु सूकि गया है, जिस शरीरकों देवस्त्रियां देखिके मोहित होतियां थी, अरु मुक्तमाला कंठविषे शोभती थीं; मानौ तारेकी पंक्ति हैं, सो शरीर अब पृथ्वीपर गिर पडा है, नंदनवनविषे इसनें अनेक भोग भोगे हैं, आत्मरूप जानिके इसकों मैं पुष्ट करता था, सो अब मुझकों भयानक भासता है, जो शरीर देवांगनासाथ मिलता था, अरु रागवान् होता था, तिनकी चिंतातें सूकी गया है, जिन जिन विलासकों चहाता था, तिनकों करता था, अब तौ चिंतातें रहित स्थित हो रहा है, महाअभागी हुआ धूप करिके सूकि गया है, महाविकराल भयानक जैसा भासता है, जिसकों मैं आत्मरूप जानता था, जिसविषे अहंकरिके विलास करता था, जिस शरीरविषे फूल कमल पडते थे, अरु तारागण प्रकाशते थे, तिसविषे कीडियां फिरतियां हैं, जो शरीर द्रवत् स्वर्णवत् सुंदर प्रकाशरूप था, सो धूपकरि सूका भयानक भासता है, सब गुण इसकों छोडि गये हैं, मानौ विरक्त आत्मा भया है, विषयतें मुक्त निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है ॥ हे शरीर! तूं अदृष्ट तनकों प्राप्त भया है, अब तेरेविषे क्षोभ कोउ नहीं, चित्तरूपी वैताल तेरेविषे शांत हो गया है, आनेजानेतें रहित विश्रामवान् हु

आ है, सब कल्पना तेरी नष्ट भई है, संकल्पजाल मिट गई है, सुखसाथ सोया है, चित्तरूप मर्कटतें रहित शरीररूप वृक्ष ठहरि गया है, हलनेतें रहित भया है, सब अनर्थतें रहित पहाडकी नाई अचल भया है, इह देह अब सर्व दुःखतें रहित परमानंदविषे स्थित भया है ॥ हे साधो! सब अनर्थका कारण चित्त है, जबलग चित्त शांतिवान् नहीं होता, तबलग जीवकों आनंद प्राप्त नहीं होता, जब अमनशक्तिपदकों प्राप्त होते हैं, तब महा आधि व्याधि जगत्के दुःखकों तरी विगत जो परमानंदकों प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मके वेत्ता, भृगुका जो पुत्र था, तिसनें तौ अनेक शरीर धारे थे, अरु बहुरि बहुरि भोग भोगे थे, अरु भृगुतें जो उत्पन्न भया था शरीर, तिसकों बहुत परिदेवना करी, अरु औरका चितवना न किया सो क्या कारण है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुक्रकी जो संवेदनकलना थी सो जीवभावकों प्राप्त भई थी, सो कर्मात्मक होइकरि भृगुतें उपजी थी, सो सुण, आदि जो परमात्मतत्त्वतें चित्कला फुरी है, सो भूताकाशकों प्राप्त भई है, उही बात कलाविषे स्थित होइकरि पान अपानके मार्गसों भृगुके हृदयविषे प्रवेश करती भई, वीर्यके स्थानकों प्राप्त होइकरि गर्भमार्गसों उत्पन्न भई, क्रम करिके बडी हुई, विद्या अरु गुणसंपन्न शुक्रशरीर होत भया, तिसकों जो चिरकाल सेवन किया था, तिस कारणतें उसकों परिदेवना करी, यद्यपि वीतराग अरु निरिच्छित था, तौ भी जो चिरकालका अभ्यास किया था, सोई फुरि आया ॥ हे रामजी! ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै, व्यवहार दोनोंका तुल्य होता है; परंतु शक्ति अशक्तिका भेद है, ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है, अज्ञानी क्रियाविषे बंधमान् होता है, ज्ञानवान् मोक्षरूप है, अरु अज्ञानी दरिद्री है, जैसे वनविषे जालमें पक्षी फसता है, तैसे अज्ञानी लोक व्यवहारविषे बंधमान् होता है, व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसे अज्ञानी करता है, वासनारहित सो निर्बंध है, वासनासहित बंध है, वासना मात्र भेद है, जबलग शरीर है, तबलग सुखदुःख भी होता है; परंतु ज्ञानवान् दोनोंविषे शांतबुद्धि रहता है,

अज्ञानी हर्षशोककरि तपायमान् होता है, जैसे स्तंभका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, सो जलके हिलनेकरि हिलता भासता है परंतु स्वरूपतें स्थितही है, तैसे अज्ञानविषे सुखदुःखकरि सुखी दुःखी भासता है, परंतु स्वरूप ज्यौंका त्यौं है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलकें हिलनेकरि हिलता भासता है; परंतु स्वरूपतें ज्यौंका त्यौं है, तैसे ज्ञानवान् इंद्रियकरि सुखी दुःखी भासता है, स्वरूपतें ज्यौंका त्यौं है, अरु अज्ञानी बाह्यतें क्रियाका त्याग करता है, तौ भी बंध रहता है, ज्ञानवान् क्रिया करता है, तौ भी मोक्षरूप है, अंतःकरण इंद्रियकरि जो अनात्मधर्मविषे बंधमान् है, बाह्य कर्म इंद्रियकरि मुक्ति है, तौ भी बंधनमें है अरु अंतःकरणकरि मुक्ति है, कर्म इंद्रियकरि बंधन भासता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जो सब क्रीडाकों त्यागि बैठा है, अरु अंतर जगत्की सत्यता है, भावै कछु करै, भावै न करै, तौ भी उह बंधनमें है, अरु बाह्य भावै तैसा व्यवहार करै, अंतरतें अद्वैत ज्ञान है, तौ उह मुक्तिरूप है, तिसकों कर्म बंधन नहीं करता, तातें ॥ हे रामजी! सब कार्य करहू, अरु अंतरतें शून्य रहहू; सर्व ईषणातें रहित आत्मपदविषे स्थित होहु, अपने प्रकृति व्यवहारकों करहू, इह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे आधिव्याधिरूपी गडेले हैं, अहंममतारूपी गरत है, तिसविषे जो गिर्या है, सो ऊर्ध्वतें अधकों जाता है ॥ तातें संसारके भावविषे मत स्थित होहु, शुद्ध बुद्धि आत्मस्वभावविषे स्थित होहु, ब्रह्म है, शुद्ध है, सर्वात्मा है, निर्विकार निराकार आत्मपदविषे जो स्थित है, तिनकों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब शुक्रनें शरीरका वर्णन किया, अरु विकरालरूप देखिके उसविषे त्यागबुद्धि करी, तब काल भगवान् शुक्रके वचनकों न मानिके गंभीर वाणीसों बोलत भया ॥ ॥ काल उवाच ॥ हे शुक्र! तूं इस तपरूपी शरीरका त्याग कर अरु भृगुके पुत्रका जो शरीर है भार्गव, तिसकों अंगीकार कर, जैसे राजा देशदेशांतरकों भ्रमता अपने नगरविषे आता है, तैसे तूं इस शरीरविषे

प्रवेश कर; काहेतें जो भार्गव तनुसाथ असुरका गुरु होना है, इह आदि परमात्माकी नीति है, महाकल्पपर्यंत तेरा आयुर्बल है, महाकल्पका अंत होवैगा, तब भार्गवतनु नष्ट होवैगी, तुझकों बहुरि शरीरका ग्रहण न होवैगा, जैसे रस सूकेतें पुष्प गिर पडता है, तैसे प्रारब्धवेगके पूर्ण हुएतें तेरा शरीर गिर पडैगा, अरु शरीरके होते जीवन्मुक्ति पदकों प्राप्त हुआ प्रकृत आचारविषे विचरैगा, तातें तूं शुक्रशरीर था, दैत्यका महागुरु होकरि स्थित होहु; इह ईश्वरकी नीति है, तातें इस शरीरकों त्यागिकरि भार्गवशरीरविषे प्रवेश करु, अब हम जाते हैं, तुम दोनोंका कल्याण होवै, तुम अपने वांछितकों प्राप्त होवहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! काल भगवान् ऐसे कही दोनों उपर पुष्प डारे, अरु अंतर्धान हो गया, तब तपसी नीतिकों विचारणे लगा, जो क्या होना है? विचारकरि देख्या, जैसे काल भगवाननें कहा, तैसेही होना है, ऐसे विचारकरि महाकृशरूप जो शरीर था तिसविषे प्रवेश किया, अरु तपसी ब्राह्मणका देह त्यागि दिया; जैसे वसंतऋतुविषे वल्लीमें रस प्रवेश करता है, तैसे भार्गवशरीरमें प्रवेश किया, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागता है, तैसे तपस्वी शरीरका त्याग किया, तब उस शरीरकी शोभा जाती रही, कंपी कंपी पृथ्वीपर गिर पडा, जैसे मूलके काटेतें वल्ली गिर पडती है, तैसे उह देह गिर्या, अरु शुक्र देह जीवकलासंयुक्त हो आया, तब भृगुजी जीवकलासंयुक्त देह कृश जैसा देखिके उठि खडे हुए, हाथविषे जलका कमंडलु लिया, अरु मंत्रविद्या जो पुष्टिशक्ति है, तिसकों पाठ करी पुत्रके शरीरउपर जल डार्या, तिसके पावनेकरि शरीरकी नाडी सब पुष्ट हो गइयां, जैसे वसंतऋतुविषे कमलनी प्रफुल्लित होती है तैसे शरीर प्रफुल्लित हो आया, श्वास आने लगे, तब पिताके सन्मुख होइकरि नमस्कार करत भया, जैसे मेघ जलसों पूर्ण होइकरि पर्वतके आगे नमता है, तैसे विधिसंयुक्त नमस्कार करी नमता भया, अरु स्नेहकरि नेत्रतें जल चलणे लगा, तब पुत्रकों देखिके भृगुजी कंठ लगाया, जो मेरा पुत्र है, ऐसे स्नेहकरि पूर्ण हो गया ॥ हे रामजी! जबलग देह है, तबलग देहके धर्म फुरि आते हैं,

इस प्रकार ज्ञानीकों ममता स्नेह फुरी आई; तौ अवरकी क्या बात कहनी है, पिता अरु पुत्र दोनों बैठि गये, एक मुहूर्तपर्यंत कथा वार्ता करत रहे, बहुरि उठिकरि तपस्वी शरीरकों जलाया, जो बुद्धिवान् सो शास्त्राचारविषे स्थित होते हैं, तिसके अनंतर दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित भए तप करिके प्रकाशत है वपु जिनका, अरु श्याम कांति है, जीवन्मुक्त उदार आत्मा होइकरि उहां रहते भये, समय करिके शुक्रजी दैत्यका गुरु होवैगा, अरु भृगुजी समाधिविषे स्थित होवैगा, तातें जो सब विकारतें रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत् गुरु है, सो सबकों पूजने योग्य है ॥ इति श्रीयो॰स्थि॰ भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जैसे भृगुके पुत्रकों इह प्रतिभा फुरती गई, अरु सिद्ध होती गई तैसे अवर जीवकों सिद्धि क्यों नहीं होती ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वतें फुरणा हुआ है, सो भार्गवजन्म हुआ है, अवर जन्मकरि कलंकित नहीं भया, सर्व ईषणातें रहित शुद्ध चैतन्य था, निर्मल हृदयकों जैसा फुरणा होता है, तैसी सिद्धि हो जाती है; अरु मलिन हृदयवान्का शीघ्रही संकल्प सिद्ध नहीं होता, जैसे भृगुके पुत्रकों मनोराज्य हुआ, अरु भ्रमता फिर्या है, तैसे सबही स्वरूपके प्रमादकरि भ्रमते हैं, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, इह मैनें भृगुके पुत्रका वृत्तांत तुझकों सुनाया है, मनोराज्यकी दृढता अर्थ जैसे बीजतें अंकुर फूल फल अनेक भावकों प्राप्त होते हैं, तैसे सब भूतजातिकों मनका भ्रमणा अनेक भ्रमकों प्राप्तकर्त्ता है, जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब मनके फुरनेका रूप है, मिथ्या भ्रम करिके नानात्व भासता है, और कछु हुआ नहीं, एक एक प्रति ऐसा भ्रम है, सब संकल्पमात्र है, न कछु उदय होता है, न अस्त होता है, कदाचित् किसीकों सब मिथ्यारूप मायामात्र है, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगर भासता है, परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं, अरु हुआ कछु नहीं, तैसे इह जाग्रत्भ्रम भी अज्ञानकरि दृष्ट आवता है, भूत पिशाच आदिक जेते कछु जीव हैं, तिनका

भी संकल्पमात्र शरीर है, जैसे उनकों सुखदुःखका भोग होता है, तैसे तुम हमकों होता है, जैसे इह जगत् है, तैसे अनंत जगत् पडे वसते हैं, परस्पर अज्ञानत्व है, एककों दूसरा न जानता, जैसे एक स्थानविषे बहुत पुरुष शयन करते हैं, तिनकों मनोराज्य स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है, तैसे इह जगत् है, वास्तवतें कछु हुआ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो इस जगत्कों सत् जानता है, तिसका पुरुषार्थ नष्ट होता है, जो भ्रांतिकरि वस्तु भासती है, तिसका सम्यक् ज्ञानकरि अभाव हो जाता है, इह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्न है, चित्तरूप हस्तीकों बंधन है, चित्तसत्ता करिके जगत् सत् भासता है, अरु जगत्सत्ता करिके चित्त है, एकके नाश हुएतें दोनोंका नाश हो जाता है, जो जगत्का सत्भावनष्ट होता है, तब चित्त नहीं रहता, जब चित्त उपशम होता है, तब जगत् शांत होता है, इस प्रकार एकके नाश हुए दोनोंका नाश होता है, सो दोनोंका नाश आत्मविचार करिके होता है, अरु विचार तहां उपजता है, जहां हृदय निर्मल होता है, जैसे उज्ज्वल वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, मलीन वस्त्रपर नहीं चढता, सो निर्मलहृदय तब होता है, जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है॥ हे रामजी! एक एक जीवकों हृदयविषे अपअपनी सृष्टि है, मलीन चित्तकरि एककों दूसरा नहीं जानता, जब चित्त शुद्ध होता है, तब औरकी सृष्टिकों भी जान लेता है, जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिली जाती है, इसकों जब दृढ अभ्यास होता है, चिरपर्यंत, तब सब कछु भासने लगता है, काहेतें जो सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है, तिसविषे स्थित होनेतें सबका ज्ञान होता है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! शुक्रकों प्रतिभा मात्र आभास हुआ था, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, उसकों दृढ होकरि कैसे भास्या है? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो कछु जगत् शुक्रनें देख्या है, सो अपने अनुभवरूप भंडारविषे मनकरि देख्या है, जैसे मोरके अंडेसों अनेक रंगवान् निकसते हैं, तैसे उसकों अपने अंतर भ्रम भासि आया, जैसे बीजसों पत्र, टास, फूल, फल, निकसता है, तैसे जीव जीव

कों अपअपने अनुभवविषे संसार खंड पडे फुरते हैं, इहां स्वप्नदृष्टांत प्रत्यक्ष है, जैसे एकएकके स्वप्नविषे जगत् होता है, तैसे इह जगत् है, दीर्घ स्वप्न जाग्रत हो भासता है, जैसा दृढ होता है, तैसा भासने लगता है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवान्! सृष्टिके समूह परस्पर मिलते कैसे हैं, अरु नहीं मिलते कैसे हैं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मलिन चित्त है, सो परस्पर नहीं मिलता है, शुद्ध है, सो मिलते हैं, जैसे शुद्ध धातु मिलि जाती है, सुषुप्तरूप आत्मासों सब फुरते हैं, सो तन्मयरूप है, जिसकों तिसविषे विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टि करि सबसाथ मिलि जाता है, जैसे जलसाथ जल मिलि जाता है, तैसे उह सबसाथ मिलिकरि सबकों जानता है अवर नहीं जानता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमीलनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेते कछु संसार खंड हैं, तिन सबका बीजरूप आत्मा है, सब आत्माहीका आभास है, सो आभासके उदय अस्त होणेविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपणे स्वभावके त्यागतें रहित है, अरु सर्व जीवका अपनाआप वास्तवरूप है, अरु सुषुप्तकी नांई अस्फुरण है, तिस सत्तातें जीव फुरते हैं, सब स्वप्नवत् जगत् भ्रमकों देखते हैं, सो जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि स्थित है, जो पुरुष उलटिके आत्मपरायण होता है, सो आत्मपदकों प्राप्त होता है, जिन पुरुषकों आत्मब्रह्मसाथ एकता भई है, तिनकों परस्पर औरकी सृष्टि भासती है, अंतःकरणविषे सृष्टि होती है, सो तिनका अंतःकरण मिलता है, तिस अंतःकरण जीवकलाके मिलेतें परस्पर सृष्टि भासी आती है, उह जानते हैं, जीवकों अपअपनी सृष्टि है, सबकों अपनी आप सन्मात्रसत्ता है, तिसविषे सब सृष्टि स्थित होतियां है, जैसे कपूरका पर्वत होवै, तिसके अणु अणुविषे सुगंधता होती है, अरु सर्व अणुकी सुगंधताकों पर्वतविषे एकता होती है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, जैसे सब नदीके जलका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मा है, सो सृष्टि कहूं परस्पर मिलतियां हैं, कहुं भिन्न भिन्न स्थित हैं, जहां चैतन्यमात्र सत्तासाथ एकता है, तहां चित्तकी वृ

त्ति जिससाथ मिली चाहै, तिसकों मिल जाती है, मलीनचित्तवाला नहीं मिली शकता, अरु एक एक जीव विषे सहस्र सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होतियां हैं, जहां जैसा फुरणा दृढ होता है, तहां तैसाही भासता है, जहां मनका फुरणा कोमल होता है, सो सफल नहीं होता, अरु जहां दृढ होता है, सो भासणे लगता है ॥ हे रामजी! जब देहकी भावना मिटि जाती है, अरु प्राणपवनही स्थित करणेतें जित्तकी वृत्ति स्वभावकरि स्थित होती है, तब अवरके चित्तकी चेष्टा इसके चित्तविषे फुरि आती है, अरु जबलग चित्त मलीन होता है, देहकी भावनाकों त्यागता नहीं, तबलग किसी पदार्थसाथ एकता नहीं होती, अरु जिसका चित्त निर्मल होता है, तिसकों जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है, तैसे और सृष्टिविषे भी मिलनेकी शक्ति हो आती है, अशुद्धकों नहीं होती, अरु सर्व जीवकी तीन अवस्था जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति होती हैं, इह तीनोंही अवस्था आत्माविषे जीवत्वका लक्षण है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग कीरणोंविषे होते हैं, तिनका अभाव है, अरु जीवकों आत्माविषे प्रमाद है, तिसकरि तीनहू अवस्थाविषे पडा भटकता है, जब चित्तकला तुरियाविषे स्थित होती है, तब जीवन्मुक्त होता है, आत्मसत्ता स्वभावविषे स्थित हुएतें आत्मासाथ एकताकों प्राप्त होता है, अरु सब जीवसाथ सुहृदभाव होता है, जब अज्ञानी सुषुप्त आत्मसत्तातें जागता है, अर्थ इह जो संसारकों चिंतवता है, तब संसारकों प्राप्त होता है, संसारविषे और संसार, तिसविषे और, इस प्रकार प्रमाद करिके अनेक सृष्टिकों देखता है, जैसे केलिके स्तंभसों पत्रका समूह निकसी आता है, तैसे सृष्टिसों सृष्टिकों देखता है, शांतिकों नहीं प्राप्त होता, अनेक भ्रमकों देखता है, जब उलटिके अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब नानात्वभाव मिटि जाता है, शांतरूप होता है, जैसे केलेका अंतर शीतल होता है ॥ हे रामजी! जगत्‌के समूह भासते हैं, तौ भी आत्माविषे कछु द्वैत नहीं, आत्मासाथ एकरूप है, जैसे केलेके अंतर पत्रतें इतर कछु नहीं निकसता, तैसे आत्मातें इतर जगत् कछु नहीं, जैसे बीज फूलभावकों प्राप्त होता है,

फूलतें बहुरि बीज होता है, तैसे ब्रह्मतें मन होता है, बहुरि बुद्धिकरि ब्रह्म होता है, बीजका कारण उही रस है, आत्माविषे कारण कार्य भाव कछु बनता नहीं, अद्वैत अचिंत्यरूप है, आदिपरमात्मा अकारणरूप है, सोई विचारणे योग्य है, और साथ क्या प्रयोजन है? बीज जब अपने भावकों त्यागता है, तब फूलभावकों प्राप्त होता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावकों कदाचित् नहीं त्यागती, अरु बीज परिणामकरि आकाररूप है, आत्मा अकृत्रिम निराकार अच्युतरूप है, इस कारणतें आत्मा बीजकी नांई भी कहना नहीं बनता, आकाशतें आकाश नहीं उपजता है, अरु अभिन्नरूप है, न कोउ उपजता है, न किसीकों उपजाया है, केवल ब्रह्म आकाश अपने आपविषे स्थित है, जब द्रष्टा पुरुषकों देखता है, तब आपकों नहीं देखि शकता, काहेतें जो मनोराज्यका जगत्विषे परिणाम जाता है, तब विद्यमानवस्तुकी संभाल नहीं रहती, देहादिकविषे आत्मअभिमान होता है, जो पुरुष आत्मसत्ताकों देखता है, तिसकों जगत्भाव नहीं रहता, अरु जो जगत्कों देखता है, तिसकों आत्मसत्ता नहीं भासती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीकों झूठ जानता है, तिसकों जलभाव नहीं रहता, अरु जल जानता है, तिसकों असत्बुद्धि नहीं होती, आकाशकी नांई पूर्ण पुरुष द्रष्टा है, जब इस दृश्यकी उर जाते हैं, तब आपकों देखि नहीं शकते, आकाशकी नांई ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, सो अज्ञानीकों नहीं भासती, अरु जो दृश्यका अत्यंत भाव है, सोई पडा भासता है, अनुभवका भासना दूर हो गया है॥ हे रामजी! जो कोउ स्थूल पदार्थ होता है, पहाड वृक्ष आदिक तिसके आगे पटल आवता है, तब उह नहीं भासता, तौ जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है, तिसके आगे आवरण आवै, उह तब कैसे भासै! जो द्रष्टा पुरुष सो अपनेही भावविषे स्थित है; दृश्यभावकों नहीं प्राप्त होता, अरु दृश्य भासता है, तब द्रष्टा देखणेविषे नहीं आवता; अरु दृश्य कछु वस्तु है नहीं, तातें द्रष्टा एक परमात्माही अपने आपविषे स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान देव है, जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसाही शीघ्र भास आवता है, जैसे वसंतऋ

तुविषे एक रस अनेकरूपकों धारता है, टास, फूल, फल होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ता अनेक जीवदेह होके भासती है, जैसे अपणेही अंतर अनेक स्वप्नभ्रमकों देखता है, तैसे अहं आदिक जगत् दृश्यभ्रमकों अनुभव प्राप्तही होता है, अरु स्वरूपतें कछु अवर हुआ नहीं; जैसे एक बीजके अंतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं, तिसविषे और बीज होता है, बीजके अंतर और वृक्ष, तिसके अंतर और बीज, इसी प्रकार एक बीजके अंतर अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक आत्माविषे चिद्‌अणु अनेक फुरते हैं, तिनके अंतर सृष्टि, बहुरि सृष्टिके अंतर चिद्‌अणु, बहुरि चिद्‌अणुके अंतर सृष्टि, इसी प्रकार आत्माविषे अनेक सृष्टि ब्रह्मांड हैं, तिनकी संख्या कछु कही नहीं जाती, अपने आपकरि फुरते हैं, आप स्वाद लेता है, एक एक चिद्‌अणुके अंतर अनेक सृष्टि हैं, जैसे तिलविषे तेल है, तैसे चिद्‌अणुविषे आकाश पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं, आकाशविषे पवन, अग्निविषे जल; सर्व भूतविषे पृथ्वी सृष्टि स्थित हैं, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो चित्तसत्तातें रहित होवै, अरु जहां चित्त है, तहां तिसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है, जैसे एक डब्बेविषे लौंग होते हैं, तिनके नष्ट हुएतें डब्बा नष्ट नहीं होता, जैसा जैसा तिसविषे फुरना होता है, तैसा स्थित होता है, सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे जेते कछु कमल हैं, तिनकों पूरणहारा जल है, तिसकरि सब विस्फूर्जित होते हैं, अरु प्रकाशते हैं, तैसे सब नष्टहूंकों सत्ता देणेहारा आत्मा है, सबका आश्रयरूप आत्मतत्त्व है, अरु इह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभवतें उदय हुआ है, सो बाह्यरूप होइकरि भासता है, तिस स्वप्नतें आगे और स्वप्नांतर होता है, तिसतें आगे और स्वप्न इसी प्रकार सृष्टिकी स्थिति भई है, जैसे एक वीजतें अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक चिद्‌अणुविषे अनेक सृष्टि स्थित हैं, जैसे जलविषे अनेक तरंग भासते हैं, तैसे आत्मानुभवविषे अनेक जगत् भासते हैं, सो अभिन्नरूप है, तातें द्वैतभ्रमकों त्यागि दे, न कोउ देश है, न कालक्रिया जगत् है, केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे आ

काशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, ब्रह्मा आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् भासता है, सो एक परमात्माही अपणे आपविषे किंचनरूप होता है, जैसे एक रससत्ता कहूं फूल सुगंधसहित भासती है, कहूं काष्ठरूपकों प्राप्त होती है, तैसे एक परमात्मसत्ता कहूं चेतनरूप होइकरि भासती है, कहूं जडरूप होइकरि देखाइ देती है, जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है, सोई सबका बीजरूप है, तिसीके अंतर सब जगत् स्थित है, जिसकों आत्माका प्रमाद है, तिसकों नानारूप भासता है, जैसे जलविषे डुबै, बहुरि निकसै, बहुरि डुबै, बहुरि निकसै, अरु जैसे स्वप्नविषे और स्वप्नांतरकों प्राप्त होता है, तैसे प्रमाद दोष करिके भ्रमतें भ्रमांतर नानाप्रकारके जगत्कों देखता है, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जगत् कछु हुआ नहीं, काहेतें जो आत्माही जगत् जैसा हो भासता है, भ्रांति करिके जगत् भासता है, जैसे विचाररहितकों स्वर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, विचार कियेतें भूषणबुद्धि नष्ट हो जाती है, एकही स्वर्ण भासता है, तैसे जो विचारतें रहित है, तिसकों इह जगत्पदार्थ भासते हैं, जो इह मैं हौं, इह जगत् है, इह उपज्या है, लीन होता है, अरु जिसकों सत्संग शास्त्रके संयोगतें विचार उपज्या है, तिसकों दिन दिन प्रति भोगकी तृष्णा घटती जाती है, आत्मविचार दृढ हो जाता है, जैसे किसीकों ताप आता है, सो औषध करिके निवृत्त हो जाता है, सो दो लक्षण तिसविषे प्रत्यक्ष होते हैं, एक तृषा बहुत थी, सो निवृत्त हो जाती है, दूसरी शरीरसों तप्त निवृत्त हो जाती है, शीतलता प्रगट होती है, तैसे ज्यौं ज्यौं विवेक दृढ होता है, त्यौं त्यौं इंद्रियका जीतणा होता है, संतोषकरि अंतर शीतल होता है, सर्व आत्माही भासता है, इह विवेका फल है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों वचनका विवेक है, अरु निश्चयविषे नहीं, तिसका विवेक कछु कार्य सिद्ध नहीं करता, जैसे मूर्तिका अग्नि लिखा होता है, तिसतें कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे निश्चयतें रहित वचनका विवेक है, सो दुःखकों निवृत्त नहीं करता, शांति नहीं प्राप्त होती है, जैसे जब पवन चलता है, तब पत्र वृक्ष हिलते हैं, उस

का लक्षण भासता है, अरु वाणीकरि कहियें तब हिलते नहीं तैसे जब विवेक हृदयविषे आता है, तब भोग की तृष्णा घटी जाती है, मुखके कहनेकरि तृष्णा घटती नहीं; जैसे चित्रकी मूर्तिपर अमृत लिख्या होवै, सो पान करने अरु अमर होनेका कार्य नहीं करता, अरु मूर्तिका लिखा अग्नि तिसकों निवृत्त नहीं करता, अरु मूर्तिकी लिखी स्त्री स्पर्श करने अरु संतान उपजनेका कार्य नहीं करती, तैसे मुखका विवेक वाणीविलास है, अरु भोगकी तृष्णाकों निवृत्त करी शांतिकों प्राप्त नहीं करता, जैसे मूर्त्यां देखणेमात्र हैं, तैसे उह विवेक वाग्विलास है ॥ हे रामजी! प्रथम जो विवेक आता है, तब रागदोषकों नाश करता है, अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जेते कछु विषय भोगरूप हैं, तिनकी तृष्णा अरु वैरभावकों नष्ट करता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें अंधकार नष्ट होता है, तैसे विवेकके उदय हुएतें अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु पावनपदकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व जीवका बीज परमात्मा है, सो सर्व उरतें आकाशकी नांई स्थित है, तिसके फुरने का नाम जीव है, सो जीवजीवके अंतर जगत् है, तिसके आगे और नानाप्रकारकी रचना है, वस्तुतें चिद्घन जीवके रूपसों अंतर स्थित भया है, तातें सब जीव चिद्घनरूप हैं, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्मसत्ताके अंतर जीव स्थित हैं, जैसे पुरुषके अंतर कीट होते हैं, तैसे आत्माके अंतर जीवराशि हैं, जैसे प्रस्वेद करिके जुवां लीखां आदिक जीव उपजते हैं, और पदार्थतें कीट उपजी आवते हैं, तैसे आत्मासों चित्कलाके फुरनेकरि जीवके समूह फुरि आवते हैं, बहुरि जीव जैसी जैसी सिद्धताके निमित्त यत्न उपासना करते हैं, तैसी गतिकों प्राप्त होते हैं, उपासनाकी विचित्रतातें नानाप्रकारकी गतिकों प्राप्त होते हैं, जो देवताकी उपासना करते हैं सो देवताकों प्राप्त होते हैं, यक्षके उपासक यक्षकों प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार जिसकी उपासना करते हैं, तिसीकों प्राप्त होते हैं, ब्रह्मके उपासक ब्रह्मकों प्राप्त होते हैं, तातें जो अ

तुच्छ पद है, तिस महत्पदका आश्रय करहु, जैसे शुक्र जब दृश्यके और लगा, तब अनेक प्रकारके दृश्य भ्रमकों प्राप्त हुआ, जब शुद्ध बुद्धकी उर आया, तब निर्मल बोधकों प्राप्त हुआ, जैसे जिसकी कोउ उपासना करता है, सो तिसकों प्राप्त होता है, अन्यकों न प्राप्त होता ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जाग्रत् अरु स्वप्नका जो भेद है, सो कहौ, जो जाग्रत् क्या है, अरु स्वप्न क्या है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! स्थिर प्रतीतिका नाम जागृत् है, अरु अस्थिर प्रतीतिका नाम स्वप्न है, जो चिरकाल रहता है, तिसका नाम स्थिर है, अरु जो अल्पकाल रहै, तिसका नाम अस्थिर है, दीर्घ काल प्रतीतिका नाम जागृत् है, अल्प कालका नाम स्वप्न है, और भेद कोउ नहीं, दोनोंका अनुभव सम होता है, जो शरीरके अंतर स्थित होइ करि शरीरकों जीवावता है, तिसका नाम जीव है, तेजरूप है, बीजरूप है, जीवधातु है, इह सब तिसके नाम हैं, जब जीवधातु स्पंदरूप होता है, जीवतके रंध्रविषे पसरती है, तब मन वाणी देहकरि सब व्यवहार होता है, रंध्र खुलि जाते हैं, तब इसकों जागृत् कहते हैं, अरु जब चित्तकला जागृत् व्यवहारविषे स्पष्टरूप होती है, अरु अंतर होइकरि फुरती है, तिसकरि अंतर जगत्भ्रम भासणे लगता है, तब स्वप्न कहाता है, अब सुषुप्तिका क्रम श्रवण कर, मन, वाणी अरु शरीरकरि जहां क्षोभ कोउ नहीं, अरु स्वच्छवृत्ति जीवधातु अंतर स्थित होती है, हृदयकोशविषे प्राणवायुकरि क्षोभ नहीं होता, नाडी रसकरि पूर्ण होतियां हैं, उस मार्गतें प्राण आने जानेसों रहित होते हैं, क्षोभतें रहित सम वायु चलता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, जैसे वायुतें रहित दीपक गृह विषे एकांत उज्वल प्रकाशता है, तैसे तहां संवितसत्ता अपने आपका अनुभव लेती है, जैसे तिलविषे तेल स्थित होता है, तैसे जीव संवित्कलना करिके जो कल्पता है, सो तिस कालमें अपने आपविषे स्थित होता है, जैसे बरफविषे शीतलता होती है, घृतविषे चिकणाई होती है, तैसे तहां संवित्विषे संवितसत्ता स्थित होती है, तिसका नाम सुषुप्ति अवस्था है, जडरूप तिस सुषुप्ति अवस्थातें जागै अरु दृश्यभावकों प्राप्त न हो

जागृतस्वप्न.

वै निर्विकल्प प्रकाशताविषे स्थित होवै, सो ज्ञानरूप तुरीया है, तब व्यवहार पडा करै, तौ भी जीवन्मुक्त है, जागृत्, स्वप्न सुषुप्तिविषे बंधमान् नहीं होता ॥ हे रामजी! आत्मसत्तातें फुरना होता है, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, अरु फुरना दृढ होकरि स्थित होता है, इसीका नाम जागृत् है, अरु स्वरूपतें प्रमाद दोष करिके फुरै, जगत् भासै, तिसकों सत्रूप जाणै, इह प्रतीति थोडा काल रहिकरि बहुरि निवृत्त हो जावै, तिसका नाम स्वप्न है, अरु दृश्य फुरनेका अभाव हो जावै, अरु अज्ञातवृत्ति जडतारूप, तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु अनुभवविषे ज्ञान स्थित है, जागृत् स्वप्न सुषुप्ति तिनहुका व्यवहार होवै, अरु निश्चयविषे इनका सद्भाव रंचक भी न होवै, केवल ज्ञानाविषे अहंप्रतीति होवै, वृत्ति तिसतें चलायमान् न होवै, तिसका नाम तुरीया पद है, तिसविषे स्थित भया जीवन्मुक्त होता है, और जो जीव है, सो जागृत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थाविषे स्थित होते हैं, जब नाडी अन्नके रससों पूर्ण हो जातियां हैं, प्राणवायु हृदय नामनी नाडीविषे नहीं आवता, तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्त होता है, जब अन्न उस नाडीसों पचता है, अरु प्राणवायु चलणे लगता है, तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरणे लगता है, तिस फुरणेकरि अपणे अंतरही बडे जगतभ्रमकों देखता है, जैसे बीजतें वृक्ष होता है, जब वायुका रस नाडीविषे बहुत होता है, तब चित्तसत्ता आकाशविषे उडणा, अरु वायु अंधारीयादिक पदार्थकों देखता है, अरु जब कफका रस नाडीविषे अधिक होता है, तब फूल, वेलियां, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे, आदिक पदार्थ भासते हैं, जब पित्तकी अधिकता होती है, तब उष्णरूप अग्नि रक्त वस्त्र आदिक भासने लगते हैं, इस प्रकार वासनाके अनुसार जगतभ्रमकों देखता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही पदार्थ दृढ हो भासता है, अरु जब पवन क्षोभायमान् होता है, चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारसों बाह्य निकसिकरि रूपादिकका अनुभव करती है, सत् जानिके चिरपर्यंतका नाम जागृत् है, वासनाके अनुसार मनरूपी शरीरसाथ नेत्र जिव्हादिक

विना रूपरसादिकका अनुभव होता है, तिसका नाम स्वप्न है, स्वरूपतें न कोउ स्वप्न है, न जाग्रत् है, न सुषुप्ति है, केवल सत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जागृत् स्वप्न सुषुप्ति है, चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत् है, अल्प कालका नाम स्वप्न है, सो प्रतीतिका भेद हुआ, वस्तुतें भेद कछु नहीं, जो वस्तुसें भेद हुआ, तौ जगत् स्वरूप हुआ क्यों? तातें इही भावना दृढ करहु, जो जगत् असत्‌रूप स्वप्नवत् है, सत्‌भावना करनी, इसविषे दुःखका कारण है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूपवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह मैं तुझकों मनका रूप निरूपण करि दिखाया है, अवस्थाका निरूपण भी इस निमित्त किया है, और प्रयोजन कछु नहीं, तातें जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसाही हो भासता है, जैसे अग्निविषे लोहा डारियें सो अग्निरूप हो जाता है, तैसे मन जिस पदार्थसाथ लगता है, तिसका रूप हो जाता है; भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीकरि होते हैं, और न कोउ सत् है, न असत् है, केवल मनकी चपलताकरि पडे फुरते हैं, मनके मोहकरि जगत् भासता है, मनके नष्ट हुएतें जगत् नष्ट हो जाता है, जो मलीन मन है, सो अपणे फुरनेकरि जगत्कों रचता है, इह मनही पुरुष है, इसकों तुम अशुभ मार्गविषे नहीं जोडना, जब मनकों जीतौगे, तब सर्व जगतविषे तुमारी जय होवैगी, मनके जीते सब जगत् जीता जाता है, तब बडी विभूति प्राप्त होती है, जो शरीरका नाम पुरुष होवै, तौ शुक्रका शरीर पडा था, और शरीर न रचता, शरीर उहां पडा रहा, अरु मन और शरीरकों रचता फिरा, तातें शरीरका नाम पुरुष नहीं, मनहीका नाम पुरुष है, शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका किया चित्त नहीं होता, जिस उर चित्त जाय लगता है, तिसी पदार्थकी प्राप्ति होती है, इसविषे संशय नहीं, तातें अति तुच्छ पद है, आत्मसत्ताका चित्तविषे सदा अभ्यास करहु, और भ्रमकों त्यागि देहु, जब मन दृश्यकी ओर संसरता है, तब

अनेक जन्मके दुःखकों प्राप्त होता है, अरु जब आत्माकी और इसका प्रवाह होता है, तब परम पदकों प्राप्त होता है, तातें दृश्य भ्रमकों त्यागिके आत्मपदविषे स्थिति करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सब धर्मके वेत्ता! मेरे हृदयविषे बडा संशय उत्पन्न भया है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके पसरी जाता है, तैसे मेरे हृदयविषे संशय पसरी गया है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित नित्य निर्मल विस्तृत निरामय आत्मसत्ता है, तौ तिसविषे मलीन संवित् जो है मन नामक सो कहांतें आया, अरु कैसे स्थित भया, जिसतें इतर और वस्तुही कछु नहीं, न आगे होवैगी, तिसविषे कलंकता कहांतें आई ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तुझनें भला प्रश्न किया है, अब तेरी बुद्धि मोक्षभागी हुई है, जैसे नंदनवनके कल्पवृक्षसाथ कल्पमंजरी लगती है, तैसे तेरी बुद्धि पूर्व अपरके विचारतें जागी है, तूं अब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जिस पदकों शुक्र आदिक प्राप्त हुए हैं, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांत कालविषे कहौंगा; अरु तिस कालविषे तुझकों आत्मपद हस्तामल भासैगा ॥ हे रामजी! सिद्धांतका प्रश्न उत्तर सिद्धांत कालविषे सोहता है, जिज्ञासु कालविषे जिज्ञासुका सोहता है, जैसे वर्षाकालविषे मोरकी वाणी शोभती है, अरु शरत्कालविषे हंसकी वाणी शोभती है, अरु जैसे वर्षाकालके नष्ट हुएतें स्वाभाविकही आकाशकी नीलता पडी भासती है, अरु जैसे वर्षाकालविषे मेघकी घटा शोभती है, तैसे प्रश्न उत्तर भी जैसा समय होवै, तैसाही शोभता है ॥ हे रामजी! मैं तुझकों अनेक प्रकारके दृष्टांत युक्तिकरि कहौंगा, मनका स्वरूप अरु जिस प्रकार इह निवृत्त होता है, सो भी क्रमकरि बहुत प्रकार कहौंगा, मनकी शांतिका उपाय वेदनें निर्णय किया है, अरु शास्त्रकारनें कहा है, तिनके लक्षण तूं श्रवण कर, चंचल जो मन है, तिसनें जैसा जैसा भाव अंगीकार किया है, तैसाही रूप होइकरि भासणे लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिसाथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव हो

जाता है, जैसे जल जिस रंगसाथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थसाथ मिलता है, तिसका रूप हो जाता है, जो मनतें रहित शरीरसाथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता, अरु मनकरिके करता है, तिसका फल पूर्ण होता है, जिस उर मन जाता है, शरीर भी तिसी उर लगा जाता है, जो कर्म इंद्रिय क्षोभवान् होवैं, अरु बुद्धि इंद्रिय जो मनरूप है, सो क्षोभकों प्राप्त होवै, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवै, तौ कार्य होता है, जैसे धूलि क्षोभायमान् होवै, तौ पवनविना आकाशकों उडी नहीं शकती, अरु पवन क्षोभायमान् होवै तौ भावै तैसी धूड स्थित होवै, तिसकों उडाय ले जाता है, तैसे देह पडा रहता है, मन अपने फुरनेकरि स्वप्नविषे अनेक अवस्थाकों प्राप्त होता है, अरु जाग्रत्विषे भी जिस ओर मन फुरता है, देहकों भी तहां ले जाता है, तातें सब कार्यका बीज मन है, मनतें सब कर्म होते हैं, मन अरु कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं, जैसे फूल अरु सुगंध अभिन्नरूप होते हैं, तैसे मन अरु कर्म हैं, जिस कर्मका अभ्यास मनविषे दृढ होता है, तिस कर्मकी शाखा पसरता है, अरु तिसी फलकों प्राप्त होता है, अरु तिसी स्वादका अनुभव करता हैं, जिस जिस भावकों चित्त ग्रहण करता है, तिसी भावकों प्राप्त होता है, अरु तिसीकों कल्पनारूप मानता है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इह चार पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी भावना मन दृढ कर्ता है, तिसकों सिद्ध करता है, कपिल देवनें जो सब शास्त्र किये, सो मनकी सत्ताकरि किये हैं, तिसनें निर्णय किया है, प्रकृति जो माया है, तिसके दो स्वभाव हैं, एक अनुलोम परिणाम है, दूसरा प्रतिलोम परिणाम है, प्रतिलोम परिणाम होता है, तब दृश्यभावकों प्राप्त होता है, अरु अनुलोम परिणाम होता है, तब अंतर्मुख आत्माकी और आता है, आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी और अनुलोम परिणाम मोक्षका कारण है, और उपाय कोउ नहीं, अरु वेदांतवादीनें इह निश्चय किया है, जो इह सर्व ब्रह्मही है, शम दम आदिककरि जब मन संपन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है, जो सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञानविना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता,

उनके चित्तविषे यही निश्चय है, अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग संसार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होता है, तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब उह काल आवैगा, तब मोक्षकी प्राप्ति होवैगी, अर्हत जैसे बडे हैं, तिनकों अपने निश्चय अनुसार भासता है, मीमांसा पातंजल, वैशेषिक न्यायतें आदिक लेकरि शास्त्रकार हैं, सो अपनी बुद्धिकरि जैसा निश्चय तिननें धारा है, तैसाही तिनकों भासता है, स्वरूपतें न कोउ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मन है, मनकों अंगीकार करिके सब मत डूबे हैं, सबका कारण मन है, न निंब कडु है, न मधु मिष्ट है, न अग्नि उष्ण है, न चंद्रमा शीतल है, जैसा जैसा जिनके मनविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसकों भासता है, किसीकों निंब प्यारी होती है, मधु कटु लगती है, नीमका जो कीट है, तिसकों मधु नहीं रुच आता, तौ मधु कटुक हो गया क्यों? इसी कारणतें वास्तव नहीं, विरहिणीस्त्रीकों चंद्रमा अग्निवत् भासता है, चकोर अग्निकों भक्षण करि लेता है, जैसी जैसी भावना पदार्थविषे हो गई है, तैसा तैसा हो भासता है, सब जगत् भावनामात्र है, जिस पुरुषकों दृश्यविषे भावना है, सो अनेक दुःख भ्रमकों देखता है, अरु जिसकों शमदमादिक साधन करिके अकृत्रिम पदकी प्राप्ति हुई है, अरु मन तदाकार भया है, सो शांतिकों प्राप्त भया है, और नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! इह जगत् दृश्य तेरे मनके स्मरणविषे स्थित भया है, सो तुच्छरूप है, इसका मनतें त्याग करहु, इह सुख दुःख आदिक महाभ्रमकों देणेहारा है, इह संसार अपवित्र अरुअसत् मोहरूप महाभयका कारण है, आभासरूप है, मायामात्र अविद्यारूप है, इसकी भावना भयका कारण है, जगत्साथ संवित्की तन्मयता होती है, इसका नाम कर्मबुद्धीश्वर कहते हैं, जब द्रष्टाकों दृश्यकेसाथ संयोग होता है, तब बडे मोहकों प्राप्त होता है, दृश्यसाथ मिलिके भ्रमकरि अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, देहादिककों अपना आप जानता है, संसाररूप मद करिके उन्मत्त हो जाता है, स्वरूपकी संभाल इसकों नहीं रहती, इसका नाम अविद्या

बुद्धीश्वर कहते हैं, जो दृश्यसाथ मिल्या है, तिसका कल्याण नहीं होता, जिसके आगे मनका पटल है, तिसकों स्वरूपका भान नहीं होता, जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण आता है, तौ नहीं भासता, तैसे मनके आवरणकरि आत्मा नहीं भासता, तातें मनरूपी आवरणकों दूर करहु, मनका रूप जो है सो फुरणा है, तिसकों संकल्प कहियें, जो जो संकल्प फुरे तिसका त्याग करहु, असंकल्प होनेतें मन नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! जब तूं सर्व भावविषे असंग होवैगा, सर्व पदार्थविषे तब द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होवैगा, तिसकरि निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होवैगी, तहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है, न दुःख है, केवल केवलीभाव है, सो अपने आपविषे प्रकाशता है; जब संसारकी भावना तेरे हृदयतें उठि जावैगी, तब निर्मल स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जावैगा, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानतें सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे चिदात्माके सम्यक् ज्ञानतें जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, तातें दृश्य भावनाकों त्यागिके चिदात्माकी भावना कर, जैसे भावना होती है, तैसे हो भासता है, जब प्रथम भावनाका त्याग करी और भावना करता है तब प्रथमका अभाव हो जाता है, जैसे दिन हुएतें रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे आत्मभावना दृश्य भावनाका अभाव होता है, जैसे लोहेकों लोहा काटता है, तैसे भावनाकों भावना काटती है, तातें अतुच्छ पद निरुपाधि निःसंशयरूपका आश्रय करहु, जब तिसकी भावना दृढ होवैगी, तब भ्रमतें रहित सिद्ध पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप आत्मा है, तूं बुद्धि आदिककी कल्पना मत करु, जैसे बालककों कहियें जो शून्यविषे सिंह है, तब उह भयवान् होता है, तैसे जब शून्य शरीरादिकविषे विचारतें बुद्धि नहीं पाइती, इह मैं हौं, इह अवर है इत्यादिक जो कल्पना होती है, आत्माकेविषे सो ऐसे है, जैसे बालककों अपने परछायेविषे वैतालकल्पना होती है, तैसे इसकों अपनी कल्पनाके वशतें भाव अभाव शुभ अशुभ क्षणक्षणविषे प्राप्त होते हैं, कोउ सतरूप कोउ असत्रूप भासते हैं, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा भा

सता है ॥ परस्त्रीविषे कामबुद्धि होती है, तब स्पर्श करी स्त्रीवत् आनंददायक होता है, अरु जो स्त्रीकेविषे माताकी भावना करता है तब तिसतें कामबुद्धि जाती रहती है, तातें तूं देख, जैसी जैसी भावना होती है, तैसाही हो भासता है, भावनाके अनुसार इसकों फल होता है, तत्काल तिसी आकारकों देखता है, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो सत् नहीं, अरु ऐसा कोउ नहीं, जो असत् नहीं, जैसा जैसा किसी निर्णय कीया है, तैसाही तिसकों भासता है, तातें इस संसारकी भावनाकों त्यागिके स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! मणिविषे जो प्रतिबिंब पडता है, तिसके दूर करणेकों मणि समर्थ नहीं होता, तूं तौ मणिवत् जड नहीं, तूं चैतन्यरूप आत्मा है, तेरेविषे जो दृश्यका प्रतिबिंब पडता है, तूं तिसका त्याग करहु, कैसे त्याग, जो संकल्प दृश्यका उठै, तिसकों असतरूप जानिके त्यागि देहु; अरु प्रकृति व्यवहार आनि प्राप्त होवै, तिसकों करहु, अरु मणिकी नांई अंतरतें रंजतें रहित होहु, जैसे प्रतिबिंब बहिर्दृष्टि आता है, अरु अंतरतें रंग नहीं चढता, तैसा बहिर्दृष्टि व्यवहार तेरेविषे भासै, अरु अंतर राग दोष स्पर्श न करै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब जीवकों संतके संग अरु सत्शास्त्रके विचारकरि विचार उपजता है, तब अवर उरतें वृत्ति उपरत होती है, अरु संसारका मनन निवृत्त हो जाता है, विवेकरूप बुद्धि आनि उदय होती है, तब संसार दृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा आत्माविषे अंगीकारबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है; दृश्य जो है सो अदृश्यताकों प्राप्त होता है, अर्थ इह जो द्रष्टाके लक्षकरि दृश्यकों असत्रूप जानता है, जब इह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है, तब परम तत्त्वविषे जागता है, अरु संसारकी उरतें घन सुषुप्त मृतकी नांई होता है, संसारकी उरतें वैराग्य भोगविषे अभोग, रसविषे निरस बुद्धि उपजती है, जब ऐसी बुद्धि हुई तब मन अपणी सत्ताकों त्यागिकरि आत्मरूप होता है, जैसे बरफका पूतला सूर्यके तेजक

रि जलरूप हो जाता है, जब मनविषे संसारकी सतता होती है, तिस फुरनेकरि जडभागी होता है, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब मन गलिके आत्मरूप हो जाता है; जैसे जबलग मरुस्थलविषे धूप होता है, तबलग उहांतें मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती, जब वर्षा होती है, तब नष्ट हो जाती है, तैसे जबलग संसारकी सत्यता होती है, तबलग मन नष्ट नहीं होता, जब ज्ञानकी वर्षा होती है, तब दृश्यसहित मन नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! संसाररूपी वासनाकी जाल है, तिसविषे जीवरूपी पक्षी फसे हैं, जब वैराग्यरूपी चूहा इसकों कतर जाता है, तब जीव निर्बंध होता है, जैसे मलीन जल निर्मल होता है, तैसे वैराग्यके वशतें जीवका स्वभाव निर्मल होता है, जब जीव निराग निरुपाधि असंग होता है, अरु रागदोष मोहतें रहित होता है, तब जैसे पिंजर टूटेतें पक्षी निर्बंध होता है तैसे जीव निर्बंध होता है, संदेहकी जो दुर्मति है, सौ शांत हो जाती है, जगत्भ्रम नष्ट होता है, अंतर पूर्ण हो जाता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे ज्ञानवान् शोभता है, सबतें उत्तम सौंदर्यताकों प्राप्त होता है, उदय अस्त राग दोष नष्ट हो जाता है, अरु सर्व समताभाव आनि वर्तता है, न्यूनता औ विशेषता भाव नष्ट हो जाता है, जैसे पवनतें रहित सोम समुद्र अचलरूप होता है, तैसे असंग पुरुष मूक जड अंध कर्मकी वासनातें रहित अचल हो जाता है, उह सब चेतन प्रकाश देखता है, तिसकी बुद्धि विवेककरि प्रफुल्लित हो आती है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे उह पुरुष परम लक्ष्मीकरि शोभता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, अरु बहुत कहनेकरि क्या है ज्ञान ज्ञेय पुरुष जो है, सो आकाशवत् हो जाता है, न उदय होता है, न अस्त होता है, विचार करिके जिसनें आत्मतत्त्वकों जान्या है, सो तिस पदकों प्राप्त होता है, जहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्थित हैं, सबही तिसपर प्रसन्न होते हैं, प्रकट आकार उसका भासता है, अरु अंतर अहंकारतें रहित है, विकल्पके समूह तिसकों खैंची नहीं शकते, जैसे जलका अभाव जाननेवालेकों

मृगतृष्णाकी नदी खैंची नहीं शकती ॥ हे रामजी ! आविर्भाव अरु तिरोभावरूप जो संसार है, तिसकों रमणीयरूप जानिके ज्ञानवान् खेद नहीं पावता, देहके नाशविषे अपना नाश नहीं मानता, उपजणेविषे उपजणा नहीं मानता, जैसे घट उपजेतें आकाश उपजता नहीं; काहेतें जो आगे सिद्ध है, अरु घटके अभावतें आकाशका अभाव नहीं होता, तैसे देहके उपजेतें आत्मा उपजता नहीं, देहके नष्ट हुएतें नष्ट नहीं होता, जब ऐसा विवेक उदय होता है, तब वासनाका जल नष्ट हो जाता है, कोउ भ्रम नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी ज्ञान करिके अभाव हो जाती है, जबलग इसकों इह विचार नहीं उपजता, जो मैं कौन हौं, अरु जगत् क्या है, तबलग संसाररूपी अंधकार रहता है, अरु जो पुरुष ऐसे जानता है, जो संसारभ्रम मिथ्या उदय हुआ है, परम आपदाका कारण देह, अनात्मरूप है, आत्मातें भिन्न इह जगत् कछु नहीं, सब आत्मसत्ता करिके स्थित है, जो ऐसे देखता है, सोई यथार्थ देखता है, सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनंत चिदाकाशरूप हौं, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित हौं, आधि व्याधि भय उद्वेग जरा मरण जन्म आदिक संयुक्त देह है, सो मैं नहीं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, बालके अग्रके लक्षभाग करियें, बहुरि एक भागके कोटि भाग करियें, ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापि है, ऐसे जो देखता है, सोई देखता है, मैं सर्वशक्त अनंत आत्मा हौं, सर्व पदार्थविषे स्थित, मैं अद्वैत चिदादित्य हौं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, अध ऊर्ध्व मध्य सबविषे व्याप्या हौं, मुझतें इतर द्वैत कछु नहीं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, जैसे सूत्रकरि मणके परोये होते हैं, तैसे सर्व मुझकरि परोये हैं, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, न मैं हौं, न इह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, सत् असतके मध्यविषे जो एक देव प्रकाशक है, त्रिलोकीविषे जो एक है, सो मैं एक अविनाशी पुरुष हौं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, ऐसे जो देखता है, अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है, सो

न मैं हौं न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अहं अरु मम तिसविषे कोउ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यतें रहित मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हौं, मैं जगत्जालकों पूर्ण करी रहा हौं, ऐसे जो देखता है, सो देखता है ॥ जो पुरुष ज्ञानवान् है, सो सुखदुःख भाव अभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूपविषे स्थित है, औ जगत्के भाव अभावतें रहित अनाभास सन्मात्ररूप है, जो हेयोपादेय बुद्धितें रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भया है, कोउ पदार्थ जगत्का उसकों अपने वशकरि नहीं शकता, सो महात्मा पुरुष महेश्वर तमप्रकाशतें रहित है, सर्व कल्पनातें मुक्त समस्वच्छरूप है, उदयअस्ततें रहित समवृत्त है, जिसकों ऐसी परम बोध अनंतसत्ताविषे स्थिति है, तिसकों मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थि० अनुत्तमविश्रामवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उत्तम पदका जिसनें आश्रय किया है, ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है, जिसका कुंभारचक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहा है, सो पुरुष शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है, अरु लेपायमान नहीं होता, तिसकों भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं, जैसे इंद्रका वन सुखरूप है, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है, शरीरके सुखकरि सुखी नहीं होता, दुःखकरि दुःखी नहीं होता है, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है॥ ॥ राम उवाच॥ ॥ हे महामुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है, अरु इसविषे रहिके योगिराज कैसे करता है, अरु सुख कैसे भुगतता है? ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय होता है, सर्व गुणसंयुक्त ज्ञानवान्कों अनंत आनंद विलास दिखावता है, जैसे सूर्य प्रकाशकों उदय करता है, तिस नगरका स्वरूप और लक्षण श्रवण करहु, शरीरविषे गंठी है, सो ईटां हैं, अरु रुधिर मांस चिक्कडके स्थान हैं, अस्थि लकडियां स्तंभ हैं, अरु किवाट पट है, अरु रोमवनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं, तिनविषे नेत्र झरोखे हैं, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होता है, हाथ गली है, जिसकरि लेता देता है, मुख बडी कंदरा है, ग्रीवा सीस

बडे मंदिर है, अरु रेषा माला हैं, भिन्न भिन्न लगी हुई हैं, अरु नाडी विभाग करनेके स्थान हैं, अरु प्राणवायु आदिककरि नाडीविषे जीव विचरते हैं, आत्मचिंतामणिरूपी तिसविषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है, अरु जिननें इंद्रियरूपी वानर बांधि छोडे हैं, हसनेरूप जिसविषे महासुंदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान्कों महासुखके निमित्त है, सौभाग्य सुंदररूप है, शरीरके सुखदुःखकरि ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता ॥ हे रामजी! जो अज्ञानी है, तिसकों शरीर रूपी नगर अनंत दुःखका भंडार है, अज्ञान करिके शरीरके नष्ट हुएतें आपकों नष्ट हुआ मानता है, अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएतें नाश नहीं पावता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध इनकों ग्रहण करता है,इष्टरूप होके भासते हैं, अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमतें रहित निष्कंटक राज्य करता है, लोभतें रहित है, इस कारणतें शत्रु कछु लेता नहीं, अरु उनकों अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन है, काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देश हैं, तिनकेविषे आप प्रवेश नहीं करता, अरु अपने देशविषे तिनकों आने नहीं देता, सावधानही रहता है, सो अपना देश कौन है, उदारता, धैर्य, संतोष, वैराग्य, समता, मैत्रता, मुदता, उपेक्षा, ज्ञानदेश है, तिसविषे अज्ञानकों प्रवेश करने नहीं देता, अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियांकों साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियांकरि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होके तीर्थके स्नानकों गमन करता है, विचाररूपी तिसकों लगाम रखता है, अरु जीवब्रह्मकी एकतारूपी संगम तीर्थविषे स्नान करता है, सदा आनंदमान रहता है, भोग अरु मोक्ष दोनोंकरि संपन्न होता है, जैसे इंद्र अपने पुरविषे शोभता है, तैसे ज्ञानवान् देहविषे शोभता है, अरु जैसे घटके फूटेतें आकाशकी कछु न्यूनता नहीं होती, तैसे देहके नाश हुएतें ज्ञानीकी कछु हानि नहीं होती, ज्योंका त्यों रहता है, जो देह होता है, तौ भी तिससाथ स्पर्श नहीं करता, जै

से घटसाथ आकाश स्पर्श नहीं करता, सर्व क्रियाका कर्त्ता भोक्ता है; परंतु किसीकरि लेप नहीं पावता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवविषे रहता है, जब विमानपर आरूढ होइके शरीररूप नगरविषे विचरता है, तब मैत्रीरूप नेत्रसाथ सबकों देखता स्थित होता है, मैत्रीभाव सदा तिसविषे रहता है, अरु सत्यता एकता सदा तिसके पास है, तिसकरि शोभता है, सदा आनंदमान विचरता है, अवर जीवकों दुःखरूपी आरेसाथ कटाते देखता है, जैसे कोउ पहाड उपर चढिके पृथ्वीविषे लोककों जलता देखै, अरु आप आनंदवान् होवै, तैसे ज्ञानवान् जीवकों दुःखी देखता है, अरु आप आनंदमान है, उसीकी दृष्टिविषे तौ सदा अद्वैतरूप है, अरु आत्मानंदकी अपेक्षाकरि अनात्मधर्मकों दुःखी देखता कहता है, उसके निश्चयविषे जगत् जीव कोउ नहीं, अरु चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनके पूर्णताकों प्राप्त होता है, किसी उरतें उनकों न्यूनता नहीं, सर्व संपदा संपन्न विराजमान होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा न्यूनतातें रहित विराजता है, यद्यपि भोगकों सेवता तौ भी तिसकों दुःखदायक नहीं होते, जैसे कालकूट विषकों सदाशिवनें पान किया था; परंतु दुःखदायक तिसकों न भया, तैसे उह भी समर्थ है, तातें भोग दुःखदायक नहीं होते, जैसे चोरकों जानिके अपने वशवर्ती किया, तब मित्रभाव हो जाता है, तैसे भोग उसकों दुःख नहीं देते, जब भोगकों जानता है, जो इह कछु वस्तु नहीं, तब सुखका कारण होते हैं, जबलग इनकों सत् जानिके आसक्त होता है, तबलग दुःखका कारण होता है ॥ हे रामजी ! जैसे कोउ यात्राकों जाता है, अरु मार्गविषे स्त्रियां पुरुष मिलते हैं, उनविषे एकठा बैठना, अरु चलना भी होता है, परंतु आपसमें आसक्त नहीं होते, आगे पाछे चले जाते हैं, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थविषे चित्तकों नहीं लगता, जैसे कोउ कासीद किसी देशविषे जाता है, अरु मार्गविषे केई सुंदर रमणीय स्थान इष्ट आते हैं, केई मलीन कष्टके स्थान भासते हैं, परंतु रागदोष किसीविषे नहीं करता, जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ज्ञानवान् भोगक्रियाविषे रागदोषकरि बंधमान नहीं हो

ता, सर्व संशय तिसके सम्यक् ज्ञानकरि शांत हो जाते हैं, कोउ पदार्थ उसकों आश्चर्यता करि देखाई नहीं देता, वासनाके समूह नष्ट हो जाते हैं, चक्रवर्ती राजाकी नांई शोभता है, परिपूर्ण होके स्थित होता है, जैसे क्षीर समुद्र अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं, तैसे ज्ञानी अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं ॥ हे रामजी! इन जीवकों भोगकी इच्छा दीन करती है, तिसकरि आत्मपदतें गिरते हैं, अनात्मविषे प्राप्त हुए कृपण हो जाते हैं, तिनकों देखिके आत्म उत्तमपद आलंबी हसते हैं, जो इह मिथ्या दीन भावकों प्राप्त हुए हैं, जैसे स्वामी होइकरि स्त्रीके वश होवै, स्त्री स्वामीकी नांई होवै, अरु भर्त्ता दीन हो जावै, अरु तिसकों देखिके लोक हसते हैं, तैसे ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेकों दीन देखिके हसते हैं, चंचल मनही परम सिद्धांतसुखतें जीवकों गिरावता है, तातें मनरूपी हस्तीकों विचाररूपी कुंदे साथ वश करहु; तब सिद्धपदकों प्राप्त होवैगा, जिसका मन विषयकी ओर पडा धावता है, सो संसाररूपी विषका बीज बोवता है, तातें प्रथम इस मनकों ताडन कर, तब शांतिकी प्राप्ति होवैगी, जो मानी होता है, अरु कोउ उसका मान करता है, तब उह उपकार कछु नहीं मानता, जब प्रथम उसकों ताडन करता है, तब बडे थोडे उपकार कियेतें प्रसन्न होता है, जैसे धान्य जलकरि पूर्ण होते हैं, तब जलके सीचणेकरि उनतें उपकार नहीं होता अरु जो ज्येष्ठ आषाढकी धूपकरि तप्त होते हैं, तब थोडा जल सीचणेकरि भी उनकों अमृतवत् होता है, तैसे जो प्रथम मनका सन्मान करियें तब मित्रभाव नहीं होता, अरु जब ताडन करिके पाछे सन्मान करियें, तब उपकार मानिके मित्रभाव हो रहैगा, सो ताडन करना इह है, जो विषयतें संयम करना, जब संयम करिके निर्मान हुआ तब इह सन्मान करना जो संसारके पदार्थविषे वर्तावना, तब शत्रुभावकों त्यागिके मित्र हो जाता है, जैसे वर्षाकालविषे नदी जलकरि पूर्ण होती है, तिसविषे जलका उपकार नहीं होता, शरत्कालविषे जलका उपकार होता है, जैसे राजाकों अवर देशका राज्य प्राप्त होवै, तब उह कछु प्रसन्नताकों नहीं प्राप्त होता, प्रथम

बंदीस्थानविषे डारियें, पाछे एक थोडा गिरास दीजियें, तिसकरि भी प्रसन्न होता है, तैसे जब प्रथम मन कों ताडन करियें, तब पाछे थोडे सन्मानकरि भी सुखदायक होता है, तातें हाथसों हाथ मीटके अरु दंतसों दंत मिलाइके अरु अंगसों अंग रोकीके इंद्रियकों जीति ले; इस पुरुषके हृदयविषे मनरूपी सर्प कुंडल मारी बैठा है, अरु कल्पनारूपी विषकरि पूर्ण है, जिस पुरुषनें उसकों मर्दन किया है, तिसकों मेरा नमस्कार है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अज्ञानी जीव महानरककों प्राप्त होता है, आशारूपी बाणकी शलाका तिनकों लगती है, इंद्रियरूपी शत्रु मारते हैं, इंद्रियां दुष्ट बडी कृतघ्न हैं, जिस देहके आश्रय रहतियां हैं, तिसकों शोक अरु इच्छाकरि पूर्ण करतियां हैं, अरु महा दुष्ट दुःखदायक भंडार है, इनकों तुम जीतहु, इंद्रियां मनरूपी चील पक्षी है, जब विषय नहीं होते, तब ऊर्ध्वकों उडते हैं, जब विषय प्राप्त होते हैं, तब नीचेकों आय गिरते हैं, जिस पुरुषनें विवेकरूपी जालसाथ इनकों बांध्या है, तिसकों इह भोजन नहीं करी शकते, जैसे पाषाणके कमलकों हस्ती भोजन करी नहीं शकता ॥ हे रामजी ! इह भोग आपातरमणीय हैं, अत्यंत विरस हैं, जो पुरुष इनविषे रमण करता है, सो अंत नरककों प्राप्त होवैगा, जो पुरुष ज्ञानके धनकरि संपन्न है, अरु देहरूपी देशविषे रहता है, सो परम शोभाकों पावता है, अरु आनंदवान् होता है, काहेतें जो बडे ऐश्वर्यकरि तिसनें इंद्रियरूपी शत्रु जीते हैं ॥ हे रामजी ! स्वर्णके मंदिरविषे रहणेकरि ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान्कों होता है, जो अपणे शरीर नगरविषे रहता है, जिस पुरुषनें इंद्रियां अरु असत्‌रूपी शत्रुकों जीत्या है, सो परम शोभाकरि शोभता है, जैसे हिमऋतुकों जीतिके वसंत ऋतुविषे मंजरी शोभती है, जिस पुरुषके चित्तका गर्व नष्ट भया है, अरु इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, तिसकी भोगवासना नष्ट हो जाती है, जैसे शीतकालविषे पद्मनियां नष्ट हो जाती हैं ॥ हे रामजी ! वासनारूपी

वैताल निशाचर तबलग विचरते हैं, जबलग एक तत्त्वका दृढ अभ्यास करिके मनकों नहीं जीता, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट हो जाता है, जब विवेककरि मनकों वश करता है, तब इंद्रियां भृत्य टहलुए हो जाते हैं, अरु मनरूपी सब मित्र हो जाते हैं, आप राजा होके स्वरूपराज्यकों भुगतता है ॥ हे रामजी! विवेकीकी इंद्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् हो जातियां हैं, अरु मन सीताकी नांई पालना करनेवाला होता है, अरु चित्त सुहृद हो जाता है, जब निश्चयवान् पुरुष सच्छास्त्रकों विचारता है, तब परम सिद्धांतकों प्राप्त होता है, अरु मन अपने मननभावकों त्यागिके शांतरूप सो पितावत् प्रतिपालक हो जाता है, तातें मनकों विवेक करिके वश करहु, जैसे मणीकों घसाय छेद पाडिके धागेसाथ परोते हैं, अरु कंठविषे पावते तब बडी शोभाकों प्राप्त होते हैं, तैसे मनरूपी मणि है, तिसकों आत्मविचार शिलासाथ घसावणा, वैराग्य जलकरि उज्ज्वल करणा, अभ्यासरूपी छेद पाडिके विवेकरूपी तागेसाथ परोय कंठविषे स्थित करणेसें शोभा देती है, विवेक कैसा है, जो जन्मरूपी वृक्षकों कुहाडा जैसा काटि डारता है, अरु मनरूपी शत्रुकों मित्र करता है, सदा शुभ कर्मकों करता है, अरु विषयके परिणामिक दुःखकों निकट आने नहीं देता, तातें मनकों वश करणा आनंदका करणा है, जो मन वश नहीं होता, तौ दुःख देता है, जब वश होता है तब सुखदायक होता है ॥ हे रामजी! मनरूपी मणि है, सो भोगकी तृष्णाकरि कलंकित हुई है, जब विवेकरूपी जलकरि इसकों शुद्ध करै, तब शोभायमान होवैगी, इह संसार महाभयका देणेहारा है, अल्पविवेकवान् पुरुष भी मायारूप संसारविषे गिरि पडै हैं, तूं छलकरि इतर जीवकी नांई इसविषे मत गिरहु, इह संसार मायारूप है, अनेक अर्थकी सांकरसंयुक्त है, महामोहरूपी कुहिडकरि जीव अंध हो गये हैं, तातें तूं विवेक पदका आश्रय कर, बोधकरि सतका अवलोकन कर, इंद्रियतें वैराग्यरूपी नौकाकरि संसारसमुद्रकों तरि जावहु; शरीर भी असत् है, इसविषे सुख अरु दुःख भी असत् हैं; तुम दाम व्याल कटकी

नांई मत होवहु, भीम भास दटकी स्थितिकों ग्रहण करिके विशोक होहु, अहं मम आदिक जो निश्चय है, सो वृथा है, तिसकों त्यागिके तत्पदका आश्रय करहु, चलते, बैठते, खाते, पीते, मनविषे मननका अभाव न होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

॥राम उवाच॥ हे भगवन्! संसारपापके दूर करणेहारे इह तुमनें क्या कहा? इसकों खोलिकरि कहौ; दाम व्याल कटकी नांई कैसे अरु भीम भास दटकी स्थिति कैसे है? जैसे वर्षाकालके मेघ तप्तकों दूर करता है, मोरकों शब्दकरि जगावता है, तैसे तुम अपनी कृपा करि जगावहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम इनकी नांई स्थित होय श्रवण करु, पाछे जो इष्ट होवै, तिसविषे विचरना, पाताल कुहरविषे संबर नाम दैत्यराजा होत भया था, सो मायारूप गणिका समुद्र अरु सर्व आश्चर्यरूप मनके मोहनहारा रमणीय था, सो दैत्य अपनी मायाकरिके आकाशविषे नगर रचता भया; बाग रचे, दैत्यके मंदिर रचे, सूर्य अरु चंद्रमा रचे, अनंत ऐश्वर्यकरि संपन्न दैत्य रचे, अरु रत्नकी स्त्रियां रची,सो गान करहीं, तिस गानकरि देवताकी स्त्रियां भी तिननें जीतियां, अरु वृक्ष रचे, चंद्रवत् तिनसाथ फल लगे, अरु कमलनी श्वेत पीत रत्नकी रची, स्वर्णके हंस रचे, अरु सारस पक्षी स्वर्णके कमल स्वर्णके वृक्षकी बडी शाखापर बैठे हुए, अरु करज्ञुवे के बूटे, तिनसाथ कमलवृक्षके फूल लगे, रत्नकरि जडे हुए सुंदर स्थान बरफकी नांई शीतल बगीचे, वन स्थान चंदनके रचे, इंद्रका नंदनवन तिसतें विशेष, सर्व ऋतुके फूल तिनविषे दैत्यहूंकी स्त्रियां क्रीडा करती फिरहीं, अरु बडे ऐश्वर्य रचे, विष्णु अरु सदाशिवके सदृश ऐश्वर्यसंयुक्त अपना नगर किया, रत्नके तारागण रचे, बडे प्रकाशसंयुक्त जब रात्र पडै तब सो चंद्रमाकेसाथ उदय होवैं, अरु पूतलियां गान करहीं, अरु मायाके हस्ती ऐसे रचे, जो इंद्रके ऐरावतकों जीति लेवहीं, त्रिलोकीकी विभूतितें उत्कृष्ट विभूति उसनें रची, अंतर्बाहिर सर्व संपदाकों पूर्ण किया, सब ऐश्वर्यकरि संपन्न अरु सब दैत्य मंडलेश्वर वंदना करहीं, आ

प सर्व दैत्यका राजा हुआ, शासन करनेहारा, सब इसकी आज्ञामें वर्त्तहीं, महा बडी भुजा तिनके नीचे सब दैत्य विश्राम करहीं, इस प्रकार संपूर्ण राज्य अरु स्थानके मंडलेश्वर तिसनें रचे, सैना रची, अरु राज्य करत भया, जब संबर दैत्य शयन करै, अथवा देशांतरकों जावै, तब अवकाश देखिके देवताके नायक तिसकी सैनाकों मारि जावैं, अरु स्थान लूटि ले जावैं,तब संबरनें रक्षा करनेहारे सैनापति रचे, बहुरि समय देखिके देवता तिनकों भी मारि गये, तब संबरनें सुणिके कोप किया, जो इनकों मारों, ऐसे विचारिके अमरापुरीपर चढिके गया, देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वतमें भवानीशंकरके पास जायके छपते हुए, अवर वन कुंज अरु समुद्रविषे जाय छुपे, जैसे प्रलयकालविषे सब दिशा शून्य हो जाती हैं, तैसे अमरपुर स्वर्ग शून्य हो गया, तब दैत्यराज अमरपुरीकों शून्य देखिके कोपमान हुआ, अग्नि लगाय दे, लोकपालके पुर सब जलाय दिये, देवताकों ढूंढी रहा; परंतु कहूं देखणेविषे न आये, जैसे पापी पुण्यकों देखै, अरु कहूं दृष्टि न आवहीं, तैसे देवता कहूं न भासैं, तब संबर कोपमान होके बडे बली राक्षस सैनाकों रक्षाके निमित्त माया करिके रचत भया, मानौं कालकी मूर्त्त्यीं हैं, ऐसे होकरि स्थित भये, बडे आकार मानौं, पंखहूं संयुक्त पर्वत हिलते हैं, ऐसे शरीर दाम, व्याल, कट इह तीन तिनके नाम हैं, अरु हाथविषे बडे शस्त्र, अरु भुजा कल्पवृक्षकी नांई, अरु यथाप्राप्त कर्मविषे लगे रहहीं, इह उनका धर्म अरु उनकों कर्मका अभाव, काहेतें जो पूर्व वासना, कर्म उनकों न था, निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था, अरु अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित न थे, अरु अनात्म भावकों प्राप्त भये न थे, एक स्पंदमात्र कर्मरूप चेतना उनविषे थी, सो कर्मका बीज चित्तकलना स्पंदरूप हुई थी, मननात्मक शस्त्रप्रहारकों रचे थे, तिसीकों पडे करहीं, परंतु अंतरविषे स्पष्ट वासना उनकों कोउ न फुरै, आकाशमात्र स्वभावकरि क्रिया उनकी पडी होवै, जैसे अर्ध सुषुप्त बालक अपने अंगकों स्वाभाविक हिलाता है,वासनातें रहित,तैसे उह वासनाबिना चेष्टा करहीं,गिरना अरु गिरावना क

छु न जानहीं, अरु न जानहीं, जो हम इसकों मारते हैं, न इह जानहीं हम मरते हैं, न दौडि जानहीं, न भागि जानहीं, न जानहीं हम जीवते हैं, न जानहीं हम मरते हैं, जीत अरु हारकों कछु न जानहीं, केवल शस्त्रका प्रहार करहीं, जैसे यंत्रकी पूतली तागेपर पडी चेष्टा करती है, विना संवेदन तैसे दाम, व्याल, कट चेष्टा करहीं, महावली जिनके प्रहारकरि पहाड भी चूर्ण हो जावहीं, तिनकों देखिके संबर प्रसन्न हुआ, जो इह सैनाकी रक्षाकों बडे बली हैं, इनका नाश भी उनसों न होवैगा, काहेतें जो इनकों इष्ट अनिष्ट कछु नहीं, जिनकों इष्ट अनिष्टका ज्ञान अरु वासना नहीं, तिनका नाश कैसे होवै, अरु भागेही कैसे? जैसे देवताके हाथी भी बडे बली हैं, तौ भी सुमेरुकों उखारी नहीं शकते, दंतके चूर्ण हो जाते हैं, तैसे देवता बडे बली भी हैं, परंतु इनकों मारी नहीं शकेंगे, यह बडे बली रक्षक हैं॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटउत्पत्तिवर्णनं नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार निर्णय करिके संबरनें दाम व्याल कटकों स्थापन किये, अरु भूतलविषे देवताकी सैना भी आई, जब संबर चडता था, तब भागी जाते थे, अरु सैनाकों देखिके उह भी निकसे, समुद्र अरु पहाडसे उछलिके एक ओर देवता निकसे, बडी सेनासहित युद्ध करने लगे, जैसे प्रलयकालके समुद्र क्षोभते हैं, अरु सब जलमय हो जाता है, तैसे देवता अरु दैत्य सर्व उरतें पूर्ण हो गए, बडे बाणकरि युद्ध करने लगे, शंखध्वनिकरि शस्त्र जलहीं, तिनतें शब्द होवहीं, अरु अग्नि निकसै, ताराकी नांई चमत्कार करहीं, शरीरके शिर काटे जावहीं, अरु धड कंपि कंपि गिर पडहीं, परस्पर दोनों उरतें शस्त्र चलहीं, दाम, व्याल, कट, भागी नहीं जावहीं; मारतेही जावहीं, जिनके प्रहारसाथ पहाड चूर्ण हो जावहीं, सब दिशाविषे शस्त्र पूर्ण हो गए, रुधिरके प्रवाह चलहीं, तिनविषे देव दैत्य मरे वहते जावहीं, महाप्रलयकी नांई भय उदय हुआ, एक एक अस्त्र ऐसा चलै, जिसतें शस्त्रकी नदियां जलहीं, कोउ अग्निका अस्त्र चलावै, कोउ मेघका अस्त्र चलावै, कोउ तम अस्त्र चलावै, दू

सरा प्रकाशरूप अस्त्र चलावै, कोउ निद्रारूप, दूसरा प्रबोधरूप, कोउ सर्परूप, दूसरा गरुडरूप, इस प्रकार परस्पर युद्ध करहीं, बहुरि ब्रह्मास्त्र चलावहीं, शिलाकी वर्षा होवै, सब पृथ्वी रक्त अरु मांसकरि पूर्ण हो गई, अनेक जीवके धड शीश गिरि पडे, जैसे वृक्षतें फल गिरते हैं, तैसे देवता दैत्य गिरे, बडा युद्ध हुआ, गंधर्व, किन्नर, देवता, बहुत नष्ट भये, दैत्य भी बहुत नष्ट हुए, परंतु कछु उनकी जीत रहे, इस प्रकार मायावी संबरकी सैना अरु देवताका युद्ध हुआ, जैसे वर्षाकालमें आकाशविषे मेघ घटा पूर्ण हो जाती है, तैसे देवता अरु दैत्यकी सेना एकठी होगई, दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होत भए ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्रामवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार घोर संग्राम हुआ, देवता अरु दैत्यके शरीर गिरे, जैसे पंख टूटेतें पर्वत गिरते हैं, रुधिरके प्रवाह चलहीं, बडे शब्द होवहीं, आकाश, पृथ्वी शब्दकरि पूर्ण हो गए, दामनें देवताके समूह वेष्टित किये, व्यालनें पकडिके देवताकों पहाडविषे पीसि डारे, कटनें देवताके समूह चूर्ण किये, उनके स्थान तोडी डारे, बडा क्रूर संग्राम किया, देवताका हस्ती जो मदकरि मस्त था, सो ताडनकरि क्षीण हो गया, सो उहांतें भागा, भयभीत होइकरि देवता भी भागे, तब दैत्यकी सैना वृद्धि होत भई, जैसे मध्यान्ह के सूर्यका बडा प्रकाश होता है, तैसे दैत्य प्रकाशवान् भए, देवता बहुत मारे गए, जैसे जलका प्रवाह फूल टूटेतें तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, जलके प्रवाहवत् मर्यादा छूटि गई, दाम व्याल कटकी सैना जीत पावती भई, देवताके पाछे लागे मारते जावहीं, जैसे काष्ठतें रहित अग्नि अंतर्धान हो जाता है, तैसे बलवान् देवता बलसों हीन भए अंतर्धान हो गए, दैत्य ढूंढते फिरें, परंतु देवता कहूं न पावें, जैसे जालसों निकसे पक्षी कहूं हाथ नहीं आते, तैसे देवता तिनके हाथ नहीं आये, जैसे मृग बंधनसों छूटा निकसी जावै, अरु हाथ न आवै, तब दाम, व्याल, कट, तीनों सेनासहित पातालविषे आनि

स्थित भए, अपना स्वामी जो संबर था, तिसपास आए प्रसन्नताके लिये, अरु उही देवतानें श्रवण किया, जो दैत्य पातालविषे जाए स्थित भए, तब विचार करिके चितवते भए, जो किसी प्रकार इनतें ईश्वर हमारी रक्षा करै, ऐसी चिंताकरि आतुर भए, तब ब्रह्माजी देवताके निकट आनि प्राप्त भए, अमित तेज है जिसका, अरु अमित जिसके रक्तवस्त्र हैं, जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादल होते हैं, तिनविषे चंद्रमा शोभता है, ऐसे प्रकाशवान् ब्रह्माजीकों देखिके इंद्रादिक देवता प्रणाम करत भये, संबर दैत्यकी शत्रुता करिके कहत भये ॥ हे त्रिलोकीके ईश्वर! हम तेरी शरण आए हैं, हमारी रक्षा करु, संबर दैत्यनें हमकूं बहुत दुःख दिया है, तिसके सैनापति दाम, व्याल, कट हैं, सो बडे दैत्य हैं, किसी प्रकार हमसों मारे नहीं जाते, अरु हमारी सैना उननें बहुत चूर्ण करी ॥ हे रामजी! इस प्रकार संपूर्ण वृत्तांत दाम, व्याल, कटका ब्रह्माजीप्रति कहत भये, अरु कहा जो इनके मारनेका उपाय हमकों कहौ, जिस प्रकार इह नष्ट होवहीं, तब संपूर्ण जगतपर दया करनेहारा ब्रह्माजी वचन कहत भया, कैसे वचन जो शांतिका कारन है ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे अमरेश! इह दैत्य अब तौ नष्ट नहीं होवैंगे, जब इनकों अहंकार उपजैगा, तब यह मरैंगे, तुमहीं उनकों जीतौगे, मैं इनकी भविषत देखी है, अरु दाम, व्याल, कट युद्धविषे भागि नहीं जानते, अरु मरने मारनेका ज्ञान भी इनकों नहीं, इह संबर दैत्यकी मायाकरि रचे हैं, इनका नाश कैसे होवै, जिसकों अहंममका अभिमान होवै, तिसका नाश भी होता है, सो अहं मम आदिक शत्रुकों इह जानते नहीं, इनका नाश कैसे होवै! इस प्रकार इनका नाश कदाचित् होना नहीं, जब इनकों अहंकार उपजैगा, तब इनका नाश होवैगा, सो अहंकार उपजानेका उपाय मैं तुमकों कहता हौं, तुम उनके साथ युद्ध करते रहौ, इस प्रकार करौ कब उनके सन्मुख कब दाहिने कब बांये होहु, कब भागि जाहु, इस प्रकार जब तुम वारंवार करौगे, तब उनके युद्धके अभ्यासवशतें अहंकारका अंकुर आनि उपजैगा, जब अहंकारका चमत्कार हृदयविषे उपजा; तब तिसका प्रति

बिंब इदंरूप भी देखैंगे, बहुरि वासना भी फुरि आवैगी, जो हम इह हैं, हमकों इह कर्त्तव्य है, इह ग्रहण करने योग्य है, इह त्यागने योग्य है, इत्यादिक वासनाजाल उनके चित्तविषे फुरि आवैगी, आपकों दाम व्याल कट जानैंगे, तब तुम उनकों वश करी लेहुगे, तुमारी जय होवैगी, जैसे जालविषे फस्या पक्षी वश होता है, तैसे उह अहंकार करिके वश होवैंगे, अब उह वश नहीं होते, सुखदुःखतें रहित बडे धैर्यवान् हैं, अब तुमारे जीतना उनकों कठिण है ॥ हे साधो ! जो पुरुष वासना तंतुसाथ बांधे हुए हैं, अरु कीटके कार्यके वश हैं, सो इस लोकविषे वश हो जाते हैं, अरु जो निर्वासनिक पुरुष बुद्धिवान् हैं, सर्वत्र असंसक्तबुद्धि हैं, किसविषे बंधवान् नहीं होते, इष्ट अनिष्टविषे समभाव रहते हैं, सो किसीकरि जीते नहीं जाते, उह अजित पुरुष हैं, अरु जिनके अंतर वासना है, इसी जेवरीसाथ बांधे हुए हैं, देहविषे अभिमान है, अथवा सर्वका वेत्ता भी है, तौ बालक भी उसकों जीति लेते हैं, अहं मम आदिक कल्पनाकरि जो कलंकित है, सो सब आपदाका पात्र है, सब आपदा तिसविषे आनि प्रवेश करती हैं, इह देह मात्र परिच्छिन्नरूप जो पुरुष आपकों जानता है, तिसविषे भावना भावती करी है, जो सर्वज्ञ है, तौ भी उह कृपणताकों प्राप्त होता है, उसविषे उदारता कहां है, इसका अपना स्वरूप अनंत आत्मा है, अप्रमेय है, तिस स्वरूपका जिसकों प्रमाद हुआ है, अरु देहादिकविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसनें आपकों आपहीं दीन किया है, जबलग आत्मतत्त्वतें इतर इसकों त्रिलोकीविषे कछु भी सत् भासता है, तबलग तिसकी उपादेय बुद्धि होती है, भावना साथ बांध्या रहता है, संसारविषे सत् भावना करनी अनंत दुःखका कारण है, अरु संसारविषे असत् बुद्धि सुखका कारण है, हे साधो, जबलग दाम व्याल कटकों जगत्के पदार्थविषे आस्थाभाव नहीं, तबलग तुम इनकों जीतनेकों समर्थ न होहुगे, जैसे मख्खी वायुकों जीतनेकों समर्थ नहीं होती, जिसकों देहविषे अहंभावना होती है, अरु जगत्विषे सत्बुद्धि होती है, सो जीव है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है, भावै कैसा

बली होवै, उहीकों जीतना सुगम है, अरु तुच्छ कृपण है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं अरु मक्षिकावत् है, तौ भी सुमेरुकी नांई गरिष्ठ हो जाता है ॥ हे देवता! जो वासना संयुक्त है, सो परम कृपणताकों प्राप्त होता है, सो गुणी गुणोंकरि बंध्या जाता है, जैसे मणकेविषे छिद्र होता है, तब तागेकरि परोया जाता है, अरु छिद्रतें रहित है, सो परोया नहीं जाता, तैसे जिसका हृदय वासनाकरि वेध्या है, तिसके अंतर गुणावगुण प्रवेश करते हैं, अरु जो निर्वेंध है, तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते हैं, तातें जिस प्रकार अहं इदं आदिक वासना दाम व्याल कटके अंतर उपजै, सोई उपाय करौ, तब तुमारी जय होवैगी, जिस जिस इष्ट अनिष्टके भावअभावकों जीव प्राप्त होते हैं, सो तृष्णारूपी करजुवेका बूटा है, तिसकरि आपदाकों प्राप्त होते हैं, इसतें रहित हुएतें आपदाका अभाव हो जाता है, जो वासनारूपी तंतुसाथ बांधे हुए हैं, सो अनेक जन्म दुःखकों प्राप्त होवैंगे, जो बलवान् है, अरु सर्वज्ञ है, कुलका अधिष्ठाता बडा भी है, अरु तृष्णासंयुक्त है, तौ बांध्या है, जैसे सिंह है, अरु संकरसें पिंजरेविषे बांध्या है, तब उसका बलअरु बढाई किसी कार्य नहीं आती, तैसे जो तृष्णाकरि बांध्या है, सो तुच्छ है, जिसकों देहमात्रविषे अहंभाव है, हृदयविषे तृष्णा पडी उत्पन्न होती है, सो पुरुष ऐसा है, जैसा पक्षी तागेसाथ बांध्या होवै, अरु यम भी तिसकों वश करता है, जैसे रज्जुसाथ बांधे हुए पक्षीकों बालक भी खैंची वश करता है, अरु जो निर्वासनिक पुरुष है, तिसकों मारि कोउ नहीं शकता, जैसे आकाशविषे उडते पक्षीकों पकडी कोउ नहीं शकता, तातें शस्त्रयुद्धकों त्याग, अरु उनकों वासना उपजावहु, तब वश होवैंगे ॥ हे इंद्र! जिसकों अहं मम इदं आदिक वासना नहीं, रागदोषकरि अंतःकरण क्षोभवान् नहीं होता, तिसकों शस्त्रकरि अरु अस्त्रकरि जीति कोउ नहीं शकता, तातें दाम व्याल कटके जीतनेकों अवर उपायकरि समर्थ न होहुगे, युद्धके अभ्यासकरि जब इनकों अहंकार उपजाओगे, तव इह तुमारे वश होवैंगे, तुम इनके जीतणेकों समर्थ होहुगे ॥ हे साधो! इह तौ संबर दैत्यके रचे

हुए यंत्र पुरुष हैं, इनके अंतर वासना कोउ नहीं, जैसे उसनें रचे हैं, तैसेही निर्वासनिक पुरुष हैं, जब तुम उनकों युद्धका अभ्यास करावहुगे, तब इनकों अहंकार वासना उपजि आवैगी, इह तुमकों वंश करनेकी परम युक्ति कही है, जबलग उनके अंतर वासना नहीं फुरती तबलग तुमकरि उह अजीत हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिके ब्रह्माजी अंतर्धान होता भया, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके शब्दकरि लीन होता है, तैसे शब्द करिके अंतर्धान हो गया, तब देवता वचन सुनिके अपनी वांछित दिशांकों गमन करते भये, जैसे कमलकी सुगंधिकों पवन ले जाता है; तैसे जायकरि कोउ दिन अपने स्थान विषे रहे, जैसे भंवरे कमलविषे रहते हैं, तैसे रहिके अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करनेकों उठे, अपने स्थानतें उठिके युद्धकों चले, प्रथम देवतानें शंख बजाए, महा बडे शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघ गर्जते हैं, तैसे शब्दकरि संस्थान पूर्ण हो गए, तब पाताल छिद्रतें शब्द सुणिके दैत्य निकसे, आकाश मार्गतें देवता आए, युद्ध होणे लगा, तब बरछी, बाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड, वृक्ष, सर्प अग्नि, आदिक शस्त्रअस्त्र चलाए; एक उर देवता चलावहीं, एक और दैत्य चलावहीं, शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले, देशप्रदेशविषे पहाड वृक्षकी नदी चलियां; चक्र, मूसल, त्रिशूल, आदिक शस्त्र ऐसे चलैं; जैसे गंगाका प्रवाह चलता है, तैसे शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले जावहीं, और अग्नि लगाई, देवता अरु दैत्यके समूह नष्ट हो गए, अंग फूटि गए, शीश, भुजा, काटे गए, संपूर्ण पृथ्वी रक्तकरि पूर्ण हो गई, जैसे समुद्रके उछलणे करि पृथ्वी जलसों पूर्ण हो जाती है, तैसे रुधिरकरि पूर्ण हो गई, आकाश दिशाविषे अग्निका तेज बढि गया, जैसे प्रलयकालविषे द्वादशसूर्यका तेज होता है, बडे पहाडकी वर्षा होवै, रुधिरके प्रवाहविषे पहाड भ्रमते फिरहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग घूमर घेर फिरते हैं ॥ हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, क्षणविषे पहाडके प्र

वाह दृष्टि आवहीं, क्षणविषे शस्त्रके प्रवाह, क्षणविषे सर्पके, क्षणविषे गरुडके, क्षणविषे अप्सरागण, अंतरिक्षविषे भासहीं; क्षणविषे जलमय हो जावै, क्षणविषे सभास्थान अग्निसों पूर्ण हो जावै, क्षणविषे सूर्यका प्रकाश भासै, क्षणविषे सर्व उरतें अंधकार भासै, महाभयानक युद्ध होने लगा; दैत्य आकाशविषे उडैं, उडी उडी युद्ध करहीं, देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावहीं, जैसे पंखतें रहित पहाड गिरते हैं, तैसे दैत्य गिरैं, सो भूमिलोकविषे आय पडैं, अनेक देवता दैत्यके समूह गिर पडैं, किसीका शिर, किसीकी भुजा, कटि गई, चरण हात काटे गये, जैसे वृक्ष पहाड होते हैं, ऐसे जिनके शरीर हैं, सो गिर गिर पडैं, अनेक संकटकों देवता अरु दैत्य प्राप्त भये, महादारुण युद्ध होने लगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब देवता अरु दैत्यका युद्ध हुआ, बहुरि देवताका धैर्य नष्ट हो गया, युद्धतें कृपण होके अंतर्धान भए, बहुरि पैंतीस वर्षतें उपरांत युद्ध करने लगे, कब दिन पांच सात अष्ट उपरांत, कब मास उपरांत, युद्ध करहीं, बहुरि छुपी जावहीं, ऐसे विचारकरि छलसों उनसाथ युद्ध करहीं, कबहूं दाम व्याल कटके निकट जावहीं, कबहूं दाहिने, कबहूं बांये, कबहूं आगे, कबहूं पाछे, दौडने लगै, इधर उधर देखिके मारने लगैं, इस प्रकार जब देवतानें बहुत उपाय किया, तब युद्धके अभ्यासतें दाम व्याल कटभी देवताके पाछे दौडने लगैं, उह भी इधर उधर देखने लगैं, देहादिकविषे तिनकों अहंकार फुरि आया ॥ हे रामजी ! जैसे निकटता करिके दर्पणमें प्रतिबिंब पडता है, दूरका नहीं पडता, तैसे अतिशय अभ्यासतें अहंकार फुरि आता है, अन्यथा नहीं फुरता, जब अहंकार तिनकों फुर्या, तब पदार्थकी वासना भी फुरि आई, बहुरि इह फुर्या, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसी प्रकार जीते रहैं, जीनेकी इच्छाकरि दीनभावकों प्राप्त भये, अरु भय पावने लगे, जो इस प्रकार हमारा नाश होवैगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होवैगी, सो उपाय करहीं, जिसकरि हम जी

वते रहहीं, इस प्रकार आशाकी फांसीविषे बांधे हुए, दीनभावकों प्राप्त हुए, आपकों देहमात्रविषे आस्था करत भए, जो देहरूपी लता हमारी स्थिर रहैं, हम सुखी होवैं, इस वासनासंयुक्त पूर्वकी धैर्यकों त्यागते भये, और जानने लगे, जो इह हमारे शत्रु हैं, नाशकर्त्ता हैं, इनतें हमारी रक्षा होवै, इत्यादिक कृपणताकों प्राप्त हुए धैर्य नष्ट हो गई, जैसे जलविना कमलकी शोभा जाती है, तैसे इनकी शोभा जाती रही, खानपानकी वासना फुरि आई, संसारकी भयानक गतीकों प्राप्त भये, युद्ध करैं, तब आश्रय लेकर करहीं, ढाल आदिक आगे रखहीं, अहंकार करिके भयभीत हुए, इह हमकों मारते हैं, हम इनकों मारते हैं, इस चिंता करिके इनके सबके हृदय फसि गये, शनैः शनैः युद्ध करने लगे, जब देवता शस्त्र चलावहीं, तब बच जावहीं, भयभीत होकरि भागहीं, अहंकार जो आय उदय हुआ, तिसकरि तिनके मस्तकपर आपदानें चरण आनि रखा, महादीन जैसे हो गए, मुखकी शोभा जाती रही, धैर्य बल नष्ट हो गया, ऐसे हो गये, जो कोउ आगे पडै, तौ भी तिसकों मारी न शकै, जैसे काष्ठतें रहित हुआ अग्नि क्षीरकों नहीं भक्षण करता, तैसे उह निर्मल हो गए, अंग काटे जावहीं, भागि जावहीं, जैसे और सामान्य सूरमे युद्ध करते हैं, तैसे युद्ध करने लगें ॥ हे रामजी! बहुत कहना क्या है, मरनतें डरने लगे, युद्धकरि न शकैं, तब देवता जो वज्र आदिककरि तिनकों प्रहार करने लगें, तिसकरि चूर्ण हो गए, भयभीत होकरि भागे, सब सैना दैत्यकी भागी जावें, जो जो देश देशांतरसों आए थे, सो सब भागें, अरु मारें, कोउ किसी देशकों, कोउ किसी देशकों, पहाड कंदरा जलविषे गये, जहां जहां स्थान देख्या, तहां तहां चले गए, दैत्य भयभीत होकरि हारकों प्राप्त भये, अरु देवताकी जीत भई, दैत्य भागिके पातालविषे जायके छिपे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने असुरहननं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ ॥ २९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार भया तब देवता प्रसन्न हुए, अरु दाम व्याल कट भयभीत हो

के पातालकों गए, देवताका भय पाये,अरु संबरसों भी भय पाये, जैसे प्रलयकालकी अग्नि प्रज्वलित होती है, तैसे संबर प्रज्वलित अग्निका रूप है,तिसके भयकरि दाम व्याल कट सप्तमे पातालविषे जाय स्थित भए, तहां दैत्यके मंडलकों छेदिके जहां यमकिंकर रहते हैं,तिसविषे जाय रहे, कुकुहा नाम होइकरि तहांतें भए, नरकरूपी समुद्रके आपालक यमकिंकर हैं, तिनके दयाकरि इनकों बैठाये, जैसे पापीकों चिंता प्राप्त होती है, तैसे इनकों स्त्रियां प्राप्त भइयां, इन सहित सप्तमे पातालविषे रहत भए, आगे इनका बडा संतान पुत्रपौत्रादिक भए, सहस्र वर्ष व्यतीत किए, तहां वासना दृढ हो गई, इह मैं हौं, इह मेरी स्त्री है, पुत्र कलत्र बांधवविषे स्नेह बहुत होगया, एक कालमें तहां अपनी इच्छाकरि धर्मराज आवत भया, नरकका कछु कार्य करणा था, तिसकों देखिके सब किंकर उठी खडे हुए प्रणाम किया, अरु दाम, व्याल, कट, तिसकी बडाईकों जानते न थे, और किंकर समान जानिके प्रणाम कछु न करत भए, तब वैवस्वत यम राजानें क्रोध किया; जो इह दुष्ट मानी हैं, इनकों शासना दीनी चाहिए, इस प्रकार विचार करिके किंकरकों इसारत कीनी, जो इनकों परिवारसंयुक्त अग्निकी खाइविषे डारि देहु, रुदन करते पुकारते रहे, अरु इनकों डारि दिये, परिवारसंयुक्त नरककी अग्निविषे जलि गए, जैसे दावाग्निविषे पत्र टास फूल फलसंयुक्त वृक्ष जलि जाता है, तैसे जलि गए, तब मलीन वासना करिके क्रांत देशका जो राजा था, तिसके किंकर धीवर जाय हुए, तहां जीवकी हिंसा करते रहे, जब धीवरका शरीर छूटा, तब कुंजा हुए, बहुरि चील हुए, बहुरि बगले हुए, बहुरि तिरगत देशविषे धीवर हुए, बर्बर देशविषे मच्छर हुए, मगधदेशविषे कीट जाय हुए ॥ हे रामजी! इस प्रकार दाम व्याल कट तीनों वासनाकरि अनेक जन्मोंकों प्राप्त भए, बहुरि अब काशमीर देशविषे एक ताल है, तिसविषे तीनों मच्छ हुए हैं, बनकों अग्नि लगि थी, तिसकरि जल भी सूकि गया, अल्प जैसा उष्णजल रहा, तिसविषे रहते हैं, अरु उही जलपान करते हैं, न मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो संपदा है, तिनकों

भी नहीं भोगते, चिंताकरि पडे जलते हैं ॥ हे रामजी! अज्ञानकरि अनेकवार जन्मते मरते हैं, जैसे समुद्र विषे तरंग उपजते अरु मिटते हैं, जैसे जलके धूमर घेरविषे तृण आय भ्रमता है, तैसे वासना करिके भ्रमते फिरैं, अबलग उनकों शांति नहीं प्राप्त भई, अहंकार वासना महादुःखका कारण है, इनके त्यागतें सुख है, अन्यथा सुख कदाचित् नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतरवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे प्रबोधके निमित्त मैं तुझकों दाम व्याल कटका न्याय कहा है, जो तिनकी नांई तूं मत होहु, इस निमित्त इतिहास कहा है, अवर कोउ लीलाका प्रयोजन न था, अविवेकीका निश्चय ऐसा है, अनेक आपदाकों प्राप्त करता है, जो अनंत दुःखकों भुगतता है, कहां संबर दैत्यकी सेनाके नाथ अरु देवताके नाशकर्त्ता अरु कहां तप्त जलके मच्छ जजरीभावकों प्राप्त हुए जिनके शरीर, कहां उह धैर्य अरु बल जिसकरि देवताकों नाश करना, अरु भगावणा, अरु आप चलायमान न होना, अरु कहां क्रांत देशके राजाके किंकर धीवर होना? कहां उह निरहंकार चित्त शांत उदारता अरु धैर्य, अरु कहां वासनाकरि मिथ्या अहंकारसों संयुक्त होना? एते दुःख आपदाकों प्राप्त हुए, सो अहंकारकरि हुए हैं, अहंकार करिके संसाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बडी हैं, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है, जबलग अहंकार है, तबलग अनेक दुःख आपदा प्राप्त होते हैं, तातें तुम अहंकारकों यत्न करिके मार्जन करहु, मार्जन करना इह है जो अहंवृत्ति है तिसकों असत्‌रूप जान जो मैं कछु नहीं; इस मार्जनकरि सुखी होवैगा ॥ हे रामजी! आत्मरूपी अमृतका चंद्रमा है, शीतल शांत रूप तिसका अंग है, अहंकाररूपी मेघ आया है, तिसकरि उह अदृष्ट हुआ भासता नहीं, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकार बादल नष्ट होवै आत्मारूपी चंद्रमा प्रत्यक्ष भासै, अहंकार पिशाच जब उपजा, तब दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाकों भोगते हैं, अबलग काशमीरके

तालविषे मच्छ पडे हैं, सिवालके भोजन करनेकों पडे यत्न करते हैं, जो अहंकार न होता तौ एती आपदाकों प्राप्त क्यों होते? ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! सत्का अभाव नहीं होता, अरु असत्का भाव नहीं होता, असत् दाम व्याल कट सत् कैसे भये? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार है, जो सत् नहीं सो किसीकों कबहु कछु भान नहीं होता; परंतु सत् किसीकों असत्कों प्राप्त हुआ देखता है, अरु असत्कों न हुआ देख्या है; जो स्थित हुआ है, इसी तेरे कहनेसों मैं युक्तिकरि तुझकों प्रबोध करौंगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! हम तुम जो इह सब हैं, सो सत्यरूप हैं; अरु दामादिक जो थे, सो मायामात्र असत्रूप थे, सत् कैसे भए सो कहौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप असत्करि स्थित भये मृगतृष्णाके जलवत् तैसेही तुम हम देवता दानव संपूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है, वस्तुतें कछु हुआ नहीं; जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा भासता है, सो असत्रूप है तैसा हम तुम आदिक इह जगत् भासता है, सो असत्रूप है, जैसे स्वप्नविषे अपने मरे बांधव आनि मिलते हैं, औ चर्चा करते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, सो असत्रूप होते हैं, तैसे इह जगत् असत्रूप है ॥ हे रामजी! इह जो मेरे वचन हैं, सो मूढकों विषयभूत नहीं, उनकों नहीं सोभते, काहेतें जो अज्ञानीके हृदयविषे संसारका सद्भाव दृढ हो गया है, अरु अभ्यासविना इस निश्चयका अभाव नहीं होता, जैसा निश्चय किसीके हृदयविषे दृढ हो रहा है, सो दृढ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूर नहीं होता, जिसकों इह निश्चय है सो जगत् सत् है, सो मूर्ख उन्मत्त है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसके हृदयविषे जगत्का सद्भाव नहीं होता, केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होता है, अरु अज्ञानीकों जगत् सत् भासता है, अज्ञानीके निश्चयकों ज्ञानी नहीं जानता, अरु ज्ञानिके निश्चयकों अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मदकरि मत्त होवै तिसके निश्चयकों अमत्त नहीं जानता, अरु अमत्तके निश्चयकों मत्त नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय एकठा नहीं होता, जैसे प्रकाश अरु

अंधकार एकठा नहीं होता, धूप अरु छाया एकठी नहीं होती, तैसे ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय एकठा नहीं होता, जिसके चित्तविषे जो निश्चय है, तिसकों उरी दूर करै अभ्यास यत्नकरि, तब दूर होता है, अन्यथा नहीं होता, ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयकों दूर नहीं करि शकता, जैसे मृतककी जीवकलाकों मनुष्य ग्रहण नहीं करि शकते, जो उसके निश्चयविषे क्या है, जो ज्ञानवान् है, तिसके निश्चयविषे सर्व ब्रह्मका भान होता है, और जगत् द्वैत कछु नहीं, तिसीकों मेरे वचन शोभते हैं, आत्मअनुभव सर्वदा सत्‌रूप है, और सब असत् पदार्थ हैं, इह वचन प्रबुद्धका विषय है, तिसकों शोभते हैं, अरु अज्ञानीकों जगत् सत् भासता है, तातें ब्रह्मवाणी तिसकों शोभा नहीं देती, ज्ञानीकों इह निश्चय है जो जगत् रंचकमात्र भी सत्य नहीं, एक ब्रह्मही परम सत्तास्वरूप है, इह अनुभव बोधवान्‌का है, तिसके निश्चयकों कोउ दूर नहीं करि शकता, परमात्मातें व्यतिरेक कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषणभाव नहीं, तैसे आत्माविषे सृष्टिभाव नहीं, अरु अज्ञानीकों पंचभूततें व्यतिरेक कछु नहीं भासता, जैसे स्वर्णविषे भूषण नाममात्र होता है, तैसे उह आपकों नाममात्र जानता है, सम्यक्‌दर्शीकों इसतें विपरीत भासता है, अरु जो पुरुष होवै औ कहै मैं घट हौं, जैसे इह निश्चय उन्मत्त है, तैसे हम तुम आदिक असत्‌रूप् हैं, सत् उही है जो शुद्ध संवित्‌बोध आकाश निरंजनरूप है, सर्वगत शांतरूप है, उदयअस्ततें रहित है, जैसे नेत्र दूषणवालेकों आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानीकों जगत् सत्‌रूप भासता है, आत्मसत्ताविषे जैसा जैसा किसीकों निश्चय हो गया है, तैसाही तत्काल हो भासता है, वस्तुतें जैसे दामादिक अणहोते थे, तैसे तुम हम आदिक जगत् है, अनंत चेतन आकाश सर्वगत निराकारविषे फुरना होता है, सोइ देहाकार हो भासते हैं, जैसे संवित्‌का किंचन दामादिक निश्चयसों आकारवान् हो भासै, तैसे हम तुम भी फुरने मात्र हैं, संवेदनके फुरनेहीकरि स्थित भए हैं, जैसे स्वप्ननगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे हम तुम आदिक जगत्

आत्मरूप भासता है, प्रबुद्धकों सब चिदाकाशही भासता है, अवर सब मृगतृष्णा अरु स्वप्ननगर भासता है, जो आत्माकी उर जागे हैं, अरु जगतकी उर सोये हैं, सो मोक्षरूप हैं, अरु जो आत्माकी उरतें सोये हैं, जगत्की उर जागे हैं, सो अज्ञानी बंधरूप हैं, अरु वास्तवतें न कोउ सोये हैं, न जागता है, न बधे हैं, न मोक्ष है, केवल चिदाकाश है, सोइ जगत्रूप हो भासता है, निर्वाण सत्ताही जगत्लक्ष्मी होइकरि स्थित भई है, अरु जगत् निर्वाणरूप है, दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं, जैसे तरु अरु विटप एकही वस्तुके दो नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके पर्याय हैं, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, अरु हैं नहीं, आकाश ही है, तैसे अज्ञानीकों ब्रह्मविषे जगत् भासते हैं सो हैं नहीं, ब्रह्मही है, जैसे किसीकों नेत्रविषे तिमिरका रोग होता है, तिसकरि तरवरे भासते हैं, सो तरवरे नेत्ररोगतें भिन्न नहीं, तैसे अज्ञानीकों अपना आपही अन्यत्रूप हो भासता है, सो चिदाकाश स्थानविषे भासता है, सो चिदाकाश सर्व और व्यापकरूप है, तिसतें इतर जगत् असत् है, कछु वस्तु नहीं, सत्यरूप एक विस्तृत आकार उही सत्ता है, महाशिलावत् घन स्वच्छ निस्पंद उदयअस्ततें रहित है, सर्व कलनाकों त्यागिकरि तिसी अपने आपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशो नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ ३१ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! असतही सत्की नांई होके स्थित भया है, जैसे बालककों अपने परछाये विषे वैताल हो भासता है, सो जैसे हुआ तैसे हुआ है, अब इह कहो, दाम व्याल कटके दुःखका अंत कैसे होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब तिसकों अग्निविषे यमराजानें भस्म कराये, तब यमराजसों किंकर पूछते भए, जो हे प्रभो! इनका उद्धार कब होवैगा, तब यमराजनें कहा, हे किंकरो! जब इह तीनों आपस में विछुरि जावहींगे, अरु अपनी संपूर्ण कथा श्रवण करैंगे, तब निःसंदेह होके मुक्त होवैंगे इह नीति है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह वृत्तांत कहां सुणैंगे, अरु कब सुणैंगे, अरु कौन निरूपण करैगा? ॥ वसिष्ठ

उवाच ॥ हे रामजी ! काशमीरदेशविषे एक बडा ताल है, अरु कमलोंकरि पूर्ण है, तिसके निकट एक छोटा ताल है, तिसविषे चिरपर्यंत वारंवार मच्छ होवहींगे, तब मच्छका शरीर त्यागिकरि सारस पक्षी होवैंगे, कमलोंके तालउपर रहैंगे, कमल अरु कमलनिया उत्पल आदिक फूलोंविषे विचरेंगे, सुगंधकों लेते चिरकाल व्यतीत करैंगे तब दैवसंयोगकरि उनके पाप नष्ट होवैंगे, अरु बुद्धि निर्मल हो आवैगी, तब तीनों आपसमें बिछुरि जावैंगे, अरु मुक्तियुक्तिकों प्राप्त होवहींगे; जैसे राजसी तामसी सात्त्विक गुण आपमें स्वेच्छित बिछुरि जाते हैं; तैसे उह स्वेच्छित बिछुरि जावैंगे, काशमीर देशविषे एक पहाड है, तिसके शिखरपर एक नगर बसैगा, तिसका नाम प्रद्युम्न होवैगा, तिस शिखरपर कमलोंकरि पूर्ण एक ताल होवैगा, तहां एक राजाका स्थान होवैगा, ईशान कोणकी और राजाका मंदिर होवैगा, तिस मंदिरके इक छिद्रविषे घास तृणकरि आलय बनाया व्यालनाम दैत्य चिडियां होइकरि तहां रहैगा, कैसा आलय, जो वायुकरि तिसके तृण पडे हिलहींगे तहां उह शब्द करैंगा, कैसा जो तिसका अर्थ कछु समझियें नहीं निरर्थक शब्द होवैगा, तिस कालमें श्रीशंकर नाम राजा होवैगा, गुण अरु भूतिकरि संपन्न मानौ दूसरा इंद्र है, तिसके मंदिर छतकी कडीके छिद्रविषे दामनाम दैत्य मच्छर होकरि रहैंगा, भूं भूं शब्द करता विचरैगा, अरु कट नाम दैत्य तहां क्रीडाका पक्षी होवैगा, रत्नोंकरि ज़डे हुए पिंजरेविषे रहैगा, तिस राजाका मंत्री बडा बुद्धिवान् होवैगा, जैसे हाथविषे आंवला होता है, तैसे उस मंत्रिकों बंध अरु मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्ध होवैगा, अरु नरसिंह मंत्रीका नाम होवैगा, सो मंत्री राजाके आगे दाम व्याल कटकी कथा, श्लोक बांधिकरि कहैगा, तब करकर नामा पक्षी हुआ जो कट दैत्य है, सो पिंजरेविषे श्रवण करैगा, तिस श्रवण करनेसों उसकों अपना वृत्तांत सब स्मरण आनि होवैगा, तिसकों विचारैगा, तब मिथ्या अहंकार शांत होवैगा, परम निर्वाण सत्ताकों प्राप्त होवैगा, इसी प्रकार राजाके मंदिरविषे चिडियां हुआ व्याल नाम दैत्य भी श्रवण करैगा, उह भी परम निर्वाण

सत्ताकों प्राप्त होवैगा, इस प्रकार लकडीके छिद्रविषे मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी श्रवण करिके मोक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! करकर पक्षी अरु चिडियां अरु मच्छर तीनों पहाडके शिखरपर राजमंदिरविषे वसणेहारे मोक्ष होवैंगा, इह संपूर्ण क्रम तुझकों कहा है, सो संसारभ्रम मायामय है, अत्यंत भास्वर प्रकाशरूप भासता है, तौ भी महाशून्य अविचारतें सिद्ध है, विचार करिके ज्ञान हुएतें शांत हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भली प्रकार देखेतें शांत हो जाता है, यद्यपि अज्ञानी बडे पदकों प्राप्त होता है, तौ भी अधोतें अधो मोहतें चला जाता है, जैसे दाम व्याल कट महाजालविषे पडे थे, कहां उह बल जो भोहां टेढी करनेसें सुमेरु मंदराचल जैसे पर्वत पडि जावहीं, अरु कहां राजाके गृहविषे काष्ठके छिद्रसों मच्छर होना ! कहां उह बल जिसके हाथकी चपेटीकरि सूर्य अरु चंद्रमा गिरि पडैं, अरु कहां प्रद्युम्न पहाडके गृहछिद्रविषे चिडियां होना ! कहां उह बल जो सुमेरु पर्वतकों पीले फूलकी नांई लीलाकरि उठाय लेणा, अरु कहां पाहाडके शिखरपर गृहविषे पक्षी होना ! एक अज्ञानरूपी अहंकार करिके एती लघुताकों जीव प्राप्त होते हैं, अज्ञान करिके रंजित हुए मिथ्या भ्रमकों देखते हैं, प्रकाशरूप चिदाकाशसत्ताविना इनकों भासता हैं, अपनी वासनाकी कल्पना करिके जगत् सतरूप भासता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रम करिके सत् भासता है, तैसे अपनी कल्पना करिके जगत् सत् भासता है, इह संसारसमुद्रके तरणेकों उही समर्थ होता है, जो शास्त्रके विचार द्वारा निर्वासनिक पुरुष हुआ है, अरु जो संसारनिरूपणका शास्त्र है, तारक कहनेकों बडा प्रकाशरूप है शब्द जिसका, तिसका आश्रय करता है, सो संसारके पदार्थकों शुभरूप जानता है, तिसकरि अधकों गिरता है, जैसे टोयेकों जलरूप जानिके स्नानके निमित्त जावै, अरु गिर पडै ॥ हे रामजी ! अपना अनुभवरूपी जो प्रसिद्ध मार्ग है, तिसविषे जो प्राप्त भये हैं, तिनका नाश नहीं होता, सुखसों स्वच्छंद चले जाते हैं, जैसे पंथिक सुधे मार्ग चल्या चल्या जाता है, ब्रह्मनिरूपक जो शास्त्र है, सो निर्वेद मार्ग है, औ संसार निरूपक

शास्त्र दुःखदायक मार्ग है, इह जगत् असतरूप भ्रांतिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसीविषे है, जो इह पदार्थ इह सुख मुझकों प्राप्त होवै, इस प्रकार संसारके विषकी तृष्णा करते हैं, सो अभागी हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिसकों जगत्घास तृणकी नांई तुच्छभासता है, जिस पुरुषके हृदयविषे परमात्माका चमत्कार भया है, सो इस ब्रह्मांड खंड लोक अरु लोकपालकों तृणवत् देखता है, जैसे जीव आपदाकों त्यागता है, तैसे उसके हृदयविषे ऐश्वर्य भी आपदारूप त्यागने योग्य है, तातें अंतर निश्चयात्मक तत्त्वविषे रहहु, अरु बाहिर जैसा अपना आचार है, तैसा करहु, आचारका व्यतिक्रम नहीं करना, व्यतिक्रम करनेकरि शुभकार्य भी अशुभ हो जाता है, जैसे राहु दैत्यनें जो अमृतपान करनेका यत्न किया तौ भी व्यतिक्रमतें शरीर कटता भया, तातें शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारण है, संतजनकी संगत अरु सतशास्त्र करि बडा प्रकाश प्राप्त होता है, जो पुरुष इनकों सेवता है, सो मोह अंधकूपविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी! वैराग्य, धैर्य, संतोष, उदारता आदिक जो गुण हैं, सो जिसके हृदयविषे प्रवेश करते हैं, सो पुरुष परम संपदावान् होता है, आपदाकों नष्ट करता है, जो पुरुष शुभ गुणकरि संतुष्ट है, अरु सत्शास्त्रके श्रवणरागविषे राग है, अरु सत्की वासना है, सो पुरुष है, और सब पशु हैं, जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकरि चांदनी पसरती है, अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है, सो पुरुष शरीर नहीं, मानौ क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजत है, जो कछु तिनहीं भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना है, सो देख्या है, बहुरि भोगणे अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है, अरु निश्चय है, तिसकों भोगकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तिन पुरुषके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते हैं, सो मृत्युकों तरते हैं, अवर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते ॥ हे रामजी! जिन पुरुषके गुण चंद्रमाकी नांई शीतल हैं, अरु सिद्ध अप्सरा गान करते हैं, सो पुरुष जीवते हैं, और सब मृत

क हैं, तातें परम पुरुषार्थका आश्रय करहु, तब परम सिद्धताकों प्राप्त होवैगा, उह कौन वस्तु है, जो शास्त्र अनुसार पुरुषार्थ कीयेतें अनुद्वेग होइकरि प्राप्त न होवै ॥ अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै, अरु चिरकाल व्यतीत हो जावै, सिद्धता न होवै, तौ भी उद्वेग न करै, उह फल परिपक्व होइकरि प्राप्त होवैगा; जैसे वृक्षसों परिपक्व होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदकों प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट हो जाते हैं, अरु शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी! मूर्ख जीवकी नांई संसारकूपविषे मत गिरहु, इह संसार मिथ्या है, तुम उदार आत्मा हौ, उठि खडे होहु, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु, अरु इस शास्त्रकों विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने लगैं तौ भागता नहीं, शस्त्रकों पकडिके युद्ध करता है, जो अमरपद प्राप्त होवै, तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र हैं, इही पुरुषार्थही करौ जो शास्त्रकों विचारौ जो कर्तव्य क्या है! जो विचारतें रहित है, सो दुर्भागी दीनता अशुभकों प्राप्त करनेहारी है, महामोहरूपी घन निद्रा है, तिसकों त्यागिकरि जागौ, पुरुषार्थकों अंगीकार करौ, सो जरामृतके शांतिका कारण है, और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान हैं, संपदा सब आपदारूप हैं, इह सब त्यागणे योग्य हैं, सत्मार्गकों अंगीकार करिके अपने प्रकृत आचारविषे विचारौ शास्त्र अरु लोकमर्यादा अनुसार व्यवहार करौ, शास्त्रके अनुसार कर्मका करणा सुखदायक होता है, जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है, तिसका संसारदुःख नष्ट हो जाता है, आयुर्बल यश गुण लक्ष्मी वृद्ध होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे उह प्रफुल्लित होता है ॥ इति श्रीयो॰ स्थितिप्र॰ दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व दुःखके देनेहारा, सर्व सुखका फल, सब ठौर सब कालविषे सबकों अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपें जाय

के सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि उसनें मृत्युकों जीता, अरु प्रथम नंदी था, सो नंदीगण नाम भया, अरु मित्र बांधव सबकों सुख देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्न करिके भया, अरु दैत्य शास्त्रके अनुसार यत्न करते हैं, तब क्रम करिके देवताकों मारते हैं, कैसे देवता हैं, जो सबतें उत्कृष्ट वर्तते हैं, जैसे हस्ती कमलकों उखाडते हैं, तैसे देवताकों दैत्य उखाडते हैं, सो अपनाही पुरुषार्थ है, अरु मरुत राजाके यज्ञविषे संवृत नामक एक महाऋषि आया, तिसनें देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रची लीनी, मानौ दूसरा ब्रह्मा है, सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थ करि रची, अरु विश्वामित्रनें वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकरि राजर्षितें ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपनेही शुद्धाचार करि हुआ ॥ हे रामजी! एक दुर्भागी ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसकों अपने गृहविषे भोजनकी सामान्य प्राप्ति होती, फेर उसनें एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन किया, दूध चावल खंडसहित भोजन करिके अपने गृहविषे आया, बहुरि पिताकों कहने लगा, मुझकों उही भोजन देहु, जो खाया था सो, तब पितानें सांवेके चावल अरु आटेका दूध घोलिके दिया, उसनें भोजन किया तब तैसा स्वाद न लगा, बहुरि पिताकों कहा, मुझकों उही भोजन देहु, जो उहांतें खाया था, पितानें कहा ॥ हे पुत्र! उह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिवके पास उह भोजन है, जो उह देवै, तौ हम खावें, तब उह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करने लगा, ऐसा तप किया जो शरीर अस्तिमात्र हो रहा, अरु रक्त मांस सब सूकि गया, तब शिवजीनें प्रसन्न होइकरि दर्शन दिया, अरु कहा, हे ब्राह्मण! जो तुझकों इच्छा है, सो वर माग, ब्राह्मणनें कहा, दूध अरु चावल देही, तब सदाशिवनें कहा, दूध अरु चावल क्या, कछु और माग, अरु तुझनें कहा है, तौ इही भोजन किया कर, तब उसकों उही भोजन प्राप्त हुआ, अरु कहा, जब तूं चिंतन करैगा, तब मैं दर्शन देउंगा ॥ हे रामजी! तौ इह भी अपना पुरुषार्थ हुआ, त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु

हैं, तिनकों काल तृणकी नांई मर्दन करता है, तिस कालकों श्वेतनें जीत्या है, सो अपना उद्यम हुआ, अरु सावित्रीका भर्ता मृतक हुआ था, उह पतिव्रता थी, सो स्तुति नमस्कार करिके यमकों प्रसन्न करती भई, भर्ताकों परलोकसों ले आई, इह भी अपना पुरुषार्थ है, श्वेतनामा एक ऋषीश्वर हुआ है, सो अपने पुरुषार्थकरि कालकों जीति, मृत्युंजय नामकों पावत भया, तातें ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम कियेतें प्राप्त न होवै, जो अपने पुरुष प्रयत्नका त्याग करियें नहीं तौ सुखफल सर्वकी प्राप्ति होती है, जो अविनाशी सुखकी इच्छा होवै, तौ आत्मबोधका अभ्यास करै, अवर जेते कछु संसारके सुख हैं, सो दुःखसाथ मिले हुए हैं, अरु आत्मसुख सब दुःखका नाश कर्त्ता है, किसी दुःखसाथ मिल्या नहीं, वास्तव कहियें तौ सम असम सर्व ब्रह्मही है, यद्यपि ऐसे है, तौ भी सम परम कल्याणका कर्त्ता है, तातें अभिमानका त्यागकरि समका आश्रय करहु, अरु निरंतर बुद्धिकरि विचार करहु, अरु यत्नकरि संतका संग करौगे, तब परमपदकों प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी! संसारसमुद्रके पार करनेकों ऐसा समर्थ तप नहीं, न तीर्थ करनेकरि और समान शास्त्रों करिके तरनेकों समर्थ होता है, जैसे संतजनके सेवनसों भवसागरतें सुखसों तरना होता है, जिस पुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन दिन प्रति क्षीण हो जाते हैं, अरु यथाशास्त्र तिसका कर्म है, ऐसे पुरुषकों संतजन कहते हैं, अरु आचार्य कहते हैं, तिनकी संगति संसार पापकर्मतें निवृत्त करती है, अरु शुभविषे जोडती है, आत्मवेत्ता जो पुरुष है, तिसकी संगतिकरि इसकी बुद्धिविषे संसारका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ, तब शेष आत्मा रहता है, इस क्रमकरिके जीवका जीवनभाव निवृत्त हो जाता है, शेष बोध तत्त्व रहता है, जगत् न उपजता है, न आगे होवैगा, न वर्तमानविषे है, इस प्रकार मैंनें तुझकों अनंत युक्तिकरि कहा है, अरु कहौंगा, ज्ञानवान्कों सर्वदा ऐसेही भान होता है, अचल चिदात्माविषे चंचल चित्त फुर्या है, तिसनें ज

गत् आभासकों रचे हैं, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे जगत् भासता है, अरु वस्तुतें अवर कछु हुआ नहीं, आत्मरूपी सूर्य है, जगत् तिसकी किरणांरूप है, जैसे सूर्य अरु किरणांविषे भेद कछु नहीं, तैसे जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अहंरूप आत्मा है, तिसविषे आपकों न जानना, सो आत्माकाशविषे मेघरूपी मलीनता है, जब परमार्थमें अहंभावकों जानैगा, तब अनात्मविषे अहंभाव लीन हो जावैगा, तब चिदाकाशसाथ जीवकी अत्यंत एकता होती है, जैसे घटके फूटेतें घटाकाशकी महाकाशसाथ एकता होती, अहं आदिक जो दृश्य है, सो निश्चयकरि जान, जो वास्तवतें कछु नहीं, विचार कियेतें नहीं रहता, जैसे बालककों परछायेविषे पिशाच भासता है, सो भ्रांतिमात्र होता है, तैसे इह जगत् भ्रांतिसिद्ध है, अपनी कल्पनाकरि भासता है, अरु दुःखदायक होता है, विचार कियेतें नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! आत्मरूपी चंद्रमा सदाप्रकाश है अरु अहंकाररूपी तिसके आगे मेघ बादल आया है, तिसकरि परमार्थ बुद्धिरूपी कमलनी विकाशकों नहीं प्राप्त होती, मूंदे मुख हो रही है, तातें विवेकरूपी वायुकरि तिसकों नष्ट करौ, नरक, स्वर्ग, बंध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण त्याग आदिक सब अहंकारकरि पडे फुरते हैं, हृदयरूपी आकाशविषे अहंकाररूपी मेघ जबलग गर्जता वर्षा करता है, तबलग तृष्णारूपी कटकमंजरी बढती जाती है, जबलग अहंकाररूपी बादलनें आत्मरूपी सूर्यकों आक्रमण किया है, तबलग जडता अरु अंधकार है, प्रकाश उदय नहीं होता, अहंकारवृक्ष है, तिसकी अनंत शाखा पसरती हैं, अहं मम आदिक विस्तार अनेक अर्थकों प्राप्त करता है, जो कछु संसारविषे सुखदुःख आदिक प्राप्त होता है, सो सब अहंकार करिके प्राप्त होता है, संसाररूपी चक्र है, अहंकार तिसकी नाभी है, तिस करिके पडा भ्रमता है, अरु अहं ममरूपी बीज है, तिसतें अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय होती है, अक्षय हो जाती है, जो नष्ट कबहूं नहीं होती, तातें यत्न करिके इसकों नाश करौ, जबलग अहंकाररूपी अंधकार है, तबल

ग चिंतारूपी पिशाचनी विचरती है, अरु अहंकाररूपी पिशाचनें जिसकों ग्रहण किया है, तिस नीच पुरुषकों मंत्र तंत्र भी दीनतातें छुडाय नहीं शकते ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! निर्मल जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है, सो अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अहंकाररूपी मलीनता कहांतें प्रतिबिंबित हुई? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! अहंकारका जो चमत्कार भासता है, सो वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है, वासनाभ्रमकरि हुआ है, पुरुष प्रयत्न करिके नष्ट हो जाता है, जो न मैं हौं, न मेरा कोई है, अहंमममें सार कछु नहीं, जब इह शांत होवैगा, तब दुःख भी कोउ न रहैगा, जब ऐसी भावनाका निश्चय दृढ होवैगा, तब अहंकार नष्ट हो जावैगा, आत्माविषे अहं कोउ नहीं, न दृश्यमें सार है; इस प्रकार जब इसका फुरना शांत हुआ, तब अहंकार भी नष्ट हो जावैगा, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब हेयोपादेयबुद्धि भी शांत हो जावैगी; समता आदिक प्रसन्नता आय उदय होवैगी; अहंकारकी प्रवृत्ति दुःखका कारण है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो! अहंकारका रूप क्या है? अरु त्याग कैसे होता है? अरु शरीरतें रहित कब होता है, अरु इसके त्यागेतें फल क्या होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अहंकार तीन प्रकारका है, दो प्रकारका श्रेष्ठ अंगीकार करने योग्य है, अरु तीसरा त्यागने योग्य है, सो सुन, इसका त्याग शरीरसहित होता है, इह दृश्य सब मैंही हौं, सो मैं परमात्मा अद्वैतरूप हौं, मुझतें इतर कछु नहीं, इह निश्चय परम अहंकारका है, मोक्षकों देनेहारा है, बंधनका कारण नहीं, इसविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु इह अहंकार भी मैं तुझकों उपदेशके निमित्त कल्पिके कहा है, वास्तवतें इह भी नहीं, केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है, अरु दूसरा अहंकार इह है, जो मैं सर्वतें व्यतिरेक हौं; अरु बालके अग्रतें सौमा भाग सूक्ष्म हौं; ऐसा जो निश्चय है, सो भी जीवन्मुक्तिका है, मोक्षदायक बंधनका कारण नहीं, इह अहंकार भी तुझकों कल्पिके कहा है, वास्तवतें इह कहना भी नहीं, अरु तीसरा अहंकार इह है, जो हाथपादतें आदि लेकरि इतना मात्र आपकों जानना इसविषे

जिसका निश्चय है, सो तुच्छ है, बंधनका कारण है, इसकों त्याग करौ, इह दुष्टरूप परम शत्रु है, इसकरि जो जीव मरै हैं,सो परमार्थकी उर नहीं आते, इह अहंकाररूपी जो शत्रु है, सो चतुर अरु बडा बली है, नानाप्रकारके जन्म अरु मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, दोष आदिकका देनेहारा है, सब जीवकों नीच करता है, अरु संकटविषे जोडता है, इस दुष्ट अहंकारके त्यागेतें पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मभगवान् मुक्तिरूप सत्ता है ॥ हे रामजी! लोकविषे जो अहंकारभावना है, सो वपुकी है, मैं इह हौं, एता मात्र हौं, सो दुःखका कारण है, इसकों महापुरुषनें त्याग किया है, उह जानतें हैं, हम देह नहीं, शुद्ध चिदानंदस्वरूप हैं, प्रथम जो दो अहंकार मैंनें तुझकों कहे हैं, सो अंगीकार करने योग्य हैं, अरु मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है, काहेतें जो दुःखका कारण है, अरु तिसी अहंकारकों ग्रहण करिके दाम, व्याल, कट आपदाकों प्राप्त हुए, जो महाभयदायक कहनेविषे नहीं आते, जिननें भोगे हैं, तिनकी क्या कहनी है, उही जानते हैं॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो तुमनें कहा है, तिसका त्याग कियेतें पुरुषका क्या भाव रहता है, अरु तिसकों क्या विशेषता प्राप्त होती है॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इह जीव अनात्मा अहंकारकों त्याग करता है, तब परमपदकों प्राप्त होता है, जेता जेता त्याग करता है, तेता तेता दुःखतें मुक्त होता है, तातें इसकों त्यागकरि आनंदमान होहु, इसकों त्यागिके महापुरुष शोभता है, जब तुम इसकों त्यागौगे, तब उंचे पदकों प्राप्त होहुगे, सर्वकाल सर्व यत्न करिके दुष्ट अहंकार जो लोक कहे हैं, तिसकों नष्ट करौ, परमानंद बोधके आगे आवरण इह है, इसके त्यागतें बोधवान् कहते हैं, जब इह अहंकार निवृत्त होता है, तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है, अरु परम सारके आश्रयकों प्राप्त होता है, इही परमपद है, जब स्थूल अहंकारका त्याग किया, तब सर्व व्यवहार चेष्टाविषे आनंदमान होता है, जिस पुरुषका अहंकार शांत हुआ है, तिसकों भोग अरु योग दोनों स्वाद नहीं देते, जैसे अमृतकरि जो तृप्त भया है, तिस

कों खाटा अरु मीठा दोनों स्वाद नहीं देते, अर्थ इह जो राग दोषकरि चलायमान नहीं होता, एकरस रहते हैं, जिसका अनात्माविषे अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसकों भोगविषे राग नहीं होता, तृष्णा राग दोष नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अपने दृढ पुरुषार्थ करिके जिसके हृदयसों अहंकारका अनुसंधान नष्ट हो जाता है, सो संसारसमुद्रकों तरि जाता है, तातें इही निश्चय धारौ, न मैं हौं, न कोउ मेरा है, अथवा सर्व मैंही हौं, मुझतें इतर कछु वस्तु नहीं, इह निश्चय जब दृढ होवैगा, तब संसारकी द्वैतवासना मिटि जावैगी, केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भान होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब दाम, व्याल, कट, युद्ध करते भाज गए, तब संबरके नगरकी अवस्था हुई, सो सुण, कैसा नगर है, जो पहाडके समान है, तहां संबरकी जेती कछु सैना थी, सो सब नष्ट हो गई, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नष्ट हो गई, तब देवता जीतिकरि अपने स्थानविषे जाय बैठे, अरु संबर भी क्षोभकों पायके बैठि रहा, जब केतेक वर्ष व्यतीत भए, तब देवताके मारणेनिमित्त संबर युक्ति चितवता भया, जो दामादिक मायाकरिके रचे थे, सो मूर्ख थे, बलवान् थे, परंतु मिथ्या अहंकारका बीज अज्ञान उनकों था, तिसकरि उनकों मिथ्या अहंकार आनि फुर्या, तब नष्ट हुए अरु भागे, अब मैं ऐसे योद्धे रचौं, जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् निरहंकार होवहीं, जिनकों अहंकार कदाचित् उत्पन्न न होवै, तिनकों जीति कोउ न शकैगा, सब देवताकी सेना मारैंगे ॥ हे रामजी! इस प्रकार चिंतनकरि संबर मायाकरि दैत्यकों रचता भया, जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचि लेवै, तैसे संबरनें दैत्यकों रचि लिया, सो कैसे रचे, सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता, अरु वीतराग आत्मा अरु यथाप्राप्त कामकों करते, आत्मभाव निश्चय, अरु आत्मरूप, ऐसे उत्तम पुरुष उपजे, भीम अरु भास अरु दट तिनके नाम, सो तीनों इस संपूर्ण जगत्कों तृणवत् जानें, परम पवित्र तिनके हृदय, ऐसे पुरुष उपजाये, अरु

गर्जत भये, महाबलकरि शब्द करहीं, तिनके शब्दकरि आकाश पूर्ण हो गया, इंद्रादिक देवता स्वर्गविषे शब्द श्रवण करते भये, सुनिके बडी सैनाकों संग लेकरि आये, अरु इह भी बडे चली चमत्कार विजलीवत् करहीं, महाबडे योद्धे दोनों ओरतें युद्ध करने लगे, शस्त्रकी नदीयांके प्रवाह चलहीं, अरु भीम, भास, दट, धैर्यसों खडे रहैं, कबहूं कोउ शस्त्रका प्रहार लगै, तब युद्धके अभ्यासकरि देहका मोह आनि फुरै, बहुरि विचारविषे सावधान होवहीं, जो हम तौ अशरीर हैं, चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं, हमारे संग शरीर कहां है, जब जब मोह आवै, तब तब ऐसे विचार करै, जरा मरण उनकों कछु न भासै, निर्भय होकरि वर्तमान युद्धकार्य करते भये, वासनाकी जालतें मुक्त होवैं, शत्रुकों पकडी मारहीं, हेयोपादेयतें रहित समदृष्टि युद्धकार्यकों करते हैं, दृढ युद्ध आनि हुआ, तब देवताकी सेना मारी, कछु भीम भास दटके भयतें शेष रहे सो भागे, जैसे जल पर्वततें उतरता है, तीक्ष्ण वेगकरि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, सो क्षीरसमुद्रविषे विष्णु भगवानकी शरणकों प्राप्त भये, जैसे वायुकरि मेघबादल चला पर्वतके आश्रय जाय रहता है, तैसे भयकरि भाग गए, तब तिनकों देखिके विष्णु भगवाननें कहा, तुम इहां स्थित होहु, मैं इनकों युद्धकरि मारी आता हौं, ऐसे कहिकरि सुदर्शन चक्रकों लिया, विष्णु भगवान् संबरकी उर आए, तब विष्णुभगवान् अरु संबरका युद्ध होता भया, बडा युद्ध हुआ, मानौं अकाल प्रलय आया है, बडे बडे पर्वत उछलहीं, अरु युद्ध होवै, तब संबर चलि खडा हुआ, महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्र साथ विष्णुजीनें संबरकों मारि लिया, संबर शरीरकों त्यागिके विष्णुपुरीकों प्राप्त भया, तब विष्णु भगवाननें भीम भास दटके अंतःपुर्यष्टकाविषे जाय प्रवेश किया, उनकी चित्तकला जो प्राणसाथ मिश्रित थी; तिसकों असत् किया, जैसे पवन दीपककों निर्वाण करता है, तैसे उनकी पुर्यष्टक फुरणेतें निर्वाण हुई; आगे जीवन्मुक्त थे, सो विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी! उह भीम भास दट निर्वासनिक थे, इस कारणतें दीपकवत् निर्वाण हो गये, तातें जो वासनासंयुक्त है, सो बंधमान है, जो निर्वास

निक है, सो मुक्तरूप है, तुम भी विवेक करिके निर्वासनिक होहु, जब यह निश्चय होवै, जो सर्व जगत् असत्‌रूप है तब वासना इसकी उर नहीं फुरती, इसी यथार्थ देखना है, जो किसी जगत्‌के पदार्थविषे आसक्त बुद्धि न होवै, वासना कहियें, चित्त कहियें, इह एकही वस्तुके नाम हैं, सर्व पदार्थके शब्द अरु अर्थ चित्तविषे स्थित हैं; जब सत्‌का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होवैगा; तब इह लय हो जावैगा; परमपद शेष रहैगा; जो चित्त वासनासंयुक्त है, तिसविषे अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है, तिसतें जो मुक्त है सोई मुक्त कहाते हैं, नानाप्रकारके घट पट आदिक आकार भासते हैं, सो चित्त फुरनेकरि अनेकताकों प्राप्त होता है, जैसे परछायेविषे वैतालभ्रम होता है, तैसे नानात्वभ्रम चित्तविषे भासता है, हे रामजी! जैसी जैसी वासनाकों लेकरि चित्त स्थित होता है, तैसाही आकार निश्चय होइकरि भासता है, दाम, व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामकरि विपर्यय हो गया, तुमकों भीम भास दटका निश्चय होवै, दाम व्याल कटका निश्चय मत होवै ॥ हे रामजी! इह वृत्तांत मुझकों पूर्व ब्रह्माजीनें कहाथा, सो मैनें अब तुमकों कहा है, इस संसारविषे कोउ विरला सुखी है, दुःखदशा अनेक हैं, जब तुम इस संसारकी भावना त्यागोगे, तब देहादिकविषे बंधमान न होहुगे, व्यवहारविषे भी आसक्तता न होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अविद्याकरि संसारकी ओर जो मन सन्मुख भया है, तिसकों जिन पुरुषनें जीता है, उही सुखी है, उही सूरमा है, तिनहीकी जय है, इह संसार सर्व उपद्रवके देणेहारा है, इसका उपाय यही है, जो अपने मनकों वश करना, इह जो मेरा शास्त्र है, सो सर्व ज्ञानसंयुक्त है; इसकों सुनिके आपकों विचारै, जो इह जगत् क्या है! ऐसे विचारिके भोगतें उपरांत होना, अरु सत्स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, जेती कछु भोग इच्छा है, सो बंधनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं, और शास्त्रका सर्व विस्तार है, जो

विषयभोग हैं, तिनकों विषकी नांई अरु अग्निकी नांई जानै, जैसे विष अरु अग्नि नाशका कारण हैं, तैसे विषयभोग नाशका कारण हैं, ऐसे जानिके इनका त्याग करै, वारंवार इही विचार करै, जो विषयभोग विषकी नांई हैं, ऐसे विचारिकरि चित्तसों त्यागैगा, तब सेवते हुए भी दुःखदायक न होवहींगे, जैसे मंत्रशक्ति संपन्नकों सर्प दुःखदायक नहीं होता, तैसे तिसकों भोग दुःखदायक नहीं होते, तातें संसारकों सत् जानिके वासना फुरती है, सो दुःखका कारण है, जैसे पृथ्वीविषे जो बीज बोता है, सो ऊगाता है, कटुकतें कटुक उपजता है, मिष्टतें मिष्ट उपजता है, तैसे जिसकी बुद्धिविषे संसारभोग वासनारूपी बीज है, तिसतें दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, अरु जिस बुद्धिविषे शांतिकी शुभ वासना गर्भित होती है, तिसतें शुभ गुण वैराग्य, धैर्य, उदारता, शांतिरूप उत्पन्न होते हैं, अरु शुभ वासनाका अनुसंधान होवैगा; मन बुद्धि निर्मल भावकों प्राप्त होवैंगे, जब मन निर्मल हुआ, तब शनैःशनैः करि अज्ञान नष्ट हो जावैगा, अरु सज्जनताकी वृद्धि होवैगी, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढती जाती है, जब इन शुभ गुणनकी परंपरा स्थित होती है, तब विवेक उत्पन्न होता है, तिसके प्रकाशकरि हृदयका मोहरूपी तम नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें तम नष्ट हो जाता है, तब धैर्य उदारता, वृद्ध होते हैं; जब सत्संग अरु सतशास्त्रके अभ्यासद्वारा इस विषे शुभ गुण आनि उदय होते हैं, तब महाआनंदका कारण शीतल शांतरूप प्रगट होता है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति होती है, आनंददायक शीतलता पसरि जाती है, तैसे सत्संगरूपी वृक्षका फल इसकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! सत्संगरूपी वृक्ष है, तिसतें विवेकरूपी फल प्रगट होता है, तिस विवेकतें समतारूपी अमृत स्रवता है, तिसकरि मन निर्द्वंद्व हो जाता है, सर्व कामनातें रहित निरुपद्रव होता है, मनकी चपलता शोक अनर्थका कारण है; सो मनके अचल हुएतें शांत हो जाता है, शास्त्रके अर्थ धारणेकरि संदेह नष्ट हो जाते हैं, नानाप्रकारकी कल्पनाजाल शांत हो जाती है, इसतें जीवन्मुक्त अलेप होता है, कोउ संसा

रका क्षोभ तिसकों स्पर्श नहीं करता, निरिच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होता है, शोकरूप कुहीडतें रहित हुआ चित्त जड ग्रंथिसों मुक्त परमानंदरूप होता है, तृष्णारूपी सूत्रकी जालतें जो पुरुष निकसि गया है, सोइ सूरमा है, अरु जिस पुरुषनें तृष्णाकों नष्ट नहीं कीनी, सो अनेक जन्म दुःखविषे पडा भ्रमता हैं; जब तृष्णा घटती है, तब मन भी सूक्ष्म हो जाता है, जो भोगकी तृष्णा नष्ट हुई, तब मन भी नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! जैसे भले टहलुए होते हैं, सो स्वामीके निमित्त रणविषे तृणवत् शरीरकों त्यागते हैं, तिसकरि स्वामीकी जय होती है, जो दुष्ट हैं, सो नहीं त्यागते, तिसकरि दुःखका कारण होते हैं, तैसे मनका उदय होना, जीवकों दुःखका कारण है, अरु मनका नष्ट होना सुखदायक है, ज्ञानवान्का मन नष्ट हो जाता है, अज्ञानीका मन वृद्ध होता है, संपूर्ण जगत्चक्र मनोमात्र है, इह पर्वतमंडल भी मनोमात्र है; स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है सो सब मनरूप है, मन किसकों कहते हैं, सो श्रवण कर, शुद्ध कला चिन्मात्रविषे जो चित्तकलाका फुरणा हुआ है, अरु उही संवेदन संकल्पविकल्पसाथ मिलिकरि मलीन हुआ है; अरु स्वरूप विस्मरण भया है, तिसका नाम मन है, सोई मन वासना करिके संसारभागी होता है, जब चित्त संवेदन दृश्यसाथ मिलता है, तिससाथ तन्मय होने करि चित्त संवित्का नाम जीव होता है, सो जीव दृश्य वर्गसाथ मिलिके संसारदशामें चला जाता है, अनेक विस्तारकों प्राप्त होता है, अरु आत्मपुरुष जो है, सो परब्रह्म है, संसारी नहीं, सो उह न रुधिर है, न मांस है, न शरीर है, शरीरादिक सर्व जडरूप है, आत्मा चैतन्य आकाशवत् अलेप है, सो जब शरीरकों भिन्न भिन्न करि देखियें, तब रुधिर मांस अस्थितें इतर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेकेवृक्षकों फोलि देखियें, तौ पत्रतें इतर कछु नहीं निकसता, तैसे मनही जीव है, जीवही मन है, मनतें इतर आकार कोउ नहीं, सर्व विकारभावकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! इस पुरुषकों बंधनका कारण अपनी कल्पना है, जैसे घुराण अपने यत्नकरि आप

ही बंधनकों प्राप्त होती है, तैसे पुरुष अपनी वासनाकरि आपही संसारबंधनकों पावता है, तातें भोगकी वासना मनतें दूर करौ, संसारका बीज वासनाही है, जिस वासनासंयुक्त दिनविषे विचरता है, तैसा स्वप्न आता है; जैसी जैसी वासना होती है, तैसा पुण्य पाप अनुसार परलोक भासता है, अपनी वासनाकरि जगत् भास आता है; जैसे अन्न जिस द्रव्य स्वादसाथ मिलता है, तैसा भासता है, मिष्टसाथ मिष्ट, खट्टासाथ खट्टा, कटुकसाथ कटुक होता है, तैसे जैसी वासना जिसके हृदयविषे दृढ होती है, तैसे हो भासता है, जैसे बडा पुण्यवान् होता है, तिसकों स्वप्नविषे अपनी इंद्रकी मूर्ति भासती है, नीचकों नीच मूर्ति भासती है, भूतके संगीकों भूतादिक भासी आता है, तैसे वासनाके अनुसार परलोक भासी आता है, जब मनविषे निर्मल भाव स्थित होता है, तब मनकी कल्पना पापवासना मिटि जाती है, अरु जब मनविषे मलीन वासना बढती है, तब निर्मलता नहीं भासती, उही रूप फल प्राप्त होता है, तातें दुर्वासना कलंककों त्यागिके पूर्णमासीके चंद्रमावत् विराजमान होहु; इह संसार भ्रांतिमात्र है, सत्‌रूप नहीं, अज्ञान करिके भेद विकार भासते हैं, वास्तवतें न कोऊ बंध है, न मोक्ष है, न कोउ बंध करनेहारा है, इस सर्व इंद्रजालकी नांई मिथ्याभ्रम भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर मिथ्या होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो असत्‌रूप है, तैसे इह जगत् असत्‌रूप है, जीवकों अज्ञान करिके ऐसा निश्चय हो रहा है, जो मैं अनंत आत्मा नहीं, मैं लघु नीच हौं, जब इस निश्चयका अभाव होवै, अरु आपकों अनंत आत्मा निश्चयकरि जानै, सो प्रथम इसका अभ्यास करै, तब हृदयविषे स्थित होवै, इस निश्चयकरि उस नीच निश्चयका अभाव होता है, सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है, तिसविषे जिसकों देहादिक भावना हुई है, तिसकों लोकविषे बंधन होता है, अपने संकल्पकरि आपही बंधनमें आता है, शुक्रकी नांई, अरु जिसकों स्वरूपविषे भावना होती है, तिसकों मोक्ष भासता है, आत्मसत्ता मोक्ष अरु बंध दोनोंतें रहि

त है, एक अरु द्वैततें रहित अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जब मन निर्मल होता है, तब इस प्रकार भासता है, किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होता, जब मनभावतें रहित अमन होता है, तब ब्रह्मसत्ता कों देखता है, अन्यथा नहीं देखता, जब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी जलकरि मनकों निर्मल भाव होता है, तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढि जाता है, सर्व आत्माही भासता है, जब सर्वात्मभावना हुई, तब ग्रहणत्याग की वृत्ति नष्ट हो जाती है, बंध मोक्ष भी नहीं रहता, जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं, अर्थ इह जो भोग की सूक्ष्म वासनातें मुक्त होता है, सत्शास्त्रके विचारकरि वैराग्यके क्रमतें बुद्धिविषे वैराग्य उपजता है, तब परम बोधकों प्राप्त होता है, कमलकी नांई बुद्धि खिली आती है, मनकरि सर्व पदार्थ रचे हैं, तिनसों मिलि करि तद्रूप हो जाता है, तिसका नाम असम्यक् ज्ञान है, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब तिसका तत्काल नाश करता है, जब अंतर्बाहिर दृश्यका त्याग करता है, अरु मन सत्भावविषे स्थित होता है, तब परम पदकों प्राप्त हुआ कहिता है ॥ हे रामजी! इह द्रष्टा अरु दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं, सो असत् हैं, तिस असत्साथ तन्मय हो जाना, इह मनका रूप है, जो पदार्थ आदि अंतविषे न होवै, अरु मध्यविषे भासै, तिस कों असत्रूप जानियें, सो इह दृश्य आदिविषे भी नहीं उपजा, अरु अंतविषे भी नहीं रहता, मध्यविषे जो भासता है, सो असत्रूप है, अज्ञान करिके जिनकों सत् भासता है, तिनकों दुःखकी प्राप्ति है, आत्मभावना विना दुःखनिवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यविषे आत्मभावना होती है, तब दृश्य भी मोक्षदायक हो जाता है, जल और है, तरंग और हैं, इह अज्ञानीका निश्चय है, जल अरु तरंग एकही रूप हैं, इह ज्ञानीका निश्चय है, तैसे नानारूप जगत् अज्ञानीकों भासता है, तिसकरि दुःख पावता है, ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धिविषे पडा भटकता है, अरु ज्ञानीकों सर्व आत्मा भासता है, भेद भावनातें रहित अंतर्मुख सुखी होता है ॥ हे रामजी! नानात्व है, सो मनके फुरणेकरि रचा है, अरु मनका रूप है, अपने संकल्पबलका नाम मन है,

सो असतरूप है, जो असत् विनाशीरूप है, तिसकों सत् माननेकरि क्लेश होता है, जैसे किसीका बांधव परदेशतें आवता है, अरु उसकों पिछानता नहीं, दृष्टि आता है, अरु तिसविषे राग नहीं होता, जब उसविषे अपनेकी भावना करता है, तब राग भी होता है, तैसे जब आत्माविषे अहंप्रतीति होती है, अरु देहादिकविषे नहीं होती, तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते, जब देहादिकविषे भावना होती है, तब स्पर्श करते हैं ॥ हे रामजी ! शिवतत्त्वका ज्ञान होवै, तब दुःख कोउ नहीं रहता, सो कैसा शिव है, जो द्रष्टा अरु दृश्यके मध्यविषे व्यापक है, तिसविषे स्थित हुएतें मन शात हो जाता है, जैसे वायुतें रहित धूड उडणेसों रहि जाती है, तैसे मनके शांत हुएतें देहरूपी धूड शांत हो जाती है, बहुरि संसाररूपी कुहीड नहीं रहती, वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण हो जाती है, तब जान्या नहीं जाता, जो जडतारूपी वल्ली कहां गई, जब अज्ञानरूपी मेघ शांत हुआ, तब तृष्णारूपी वल्ली सूकी जाती है, हृदयरूपी पवनसों मोहरूपी कुहीड नष्ट हो जाती है, जैसे प्रातःकाल हुएतें रात्रि नष्ट हो जाती है, अज्ञानरूपी मेघके क्षीण हुएतें देह अभिमानरूपी जडता जानी नहीं जाती जो कहां गई, जबलग अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है, तबलग संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं, जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट हो जाता है, तब परम निर्मल चिदाकाश आत्मरूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है, जब मोहरूपी वर्षाकालका अभाव भया, तब ज्ञानरूपी शरत्कालविषे दिशा निर्मल हो जाती हैं, आत्मारूपी चंद्रमा शीतल चांदनीसों प्रकाशता है, सो सर्व संपदाका देनेहारा है, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है, जब प्रथम शुभ गुणकरि विवेकरूपी बीज संचित होता है, सो शुभ मन सर्व संपदाके देनेहारा परमानंद अति सफल भूमिकों प्राप्त होता है, तिस विवेकी पुरुषकों वन पर्वत चतुर्दश भुवन सर्व आत्माही प्रकाशता है, सो निर्मलतें निर्मल शीतलतें शीतल भावनाविषे भासता है, हृदयरूपी तलाव अति विस्तारवान् होता है, स्फटिक मणिवत् उज्वल स्वच्छ जलकरि पूर्ण होते हैं, तिसविषे धैर्य उदारतारूपी कमल

विराजते हैं, तिस हृदयरूपी कमलपर अहंकाररूपी भंवरा विचरता है, सो नष्ट हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता; जो पुरुष निरपेक्ष सर्वतें श्रेष्ठ निर्वासनिक शांतमन अपने देहरूपी नगरविषे विराजमान ईश्वर होता है, जिसकों आत्मप्रकाश उदय हुआ है, तिस बोधवान्‌का मन अत्यंत गलि जाता है, भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं, देहरूपी नगरविषे विगतज्वर होके विराजमान होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्रह्मन्! आत्मा चैतन्यरूप है, अरु विश्वतें अतीत है, तिस चिदात्माविषे विश्व कैसे उत्पन्न भया, बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि मुझकों कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे सौमजलविषे तरंग अव्यक्तरूप होते हैं, परंतु त्रिकालदर्शीकों तिनका सद्भाव नहीं भासता, तिनका रूप दृष्टमात्र होता है, तैसे आत्माविषे जगत् संकल्पमात्र होता है, जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु सूक्ष्म भावकरि लखणेविषे नहीं आता है, तैसे आत्मा निरंश, निराकार सर्वगत, सर्वव्यापक है, परंतु लख्या नहीं जाता, अव्यक्त अच्युतरूप है, तिस आत्माविषे जगत् ऐसे है, जैसे कोउ स्तंभ मणि रूप होवै, तिसविषे शिल्पी कल्पता है, जो एती पूतलियां इसविषे हैं, सो क्यों हैं, शिल्पीके मनविषे अणहोतियां फुरतियां हैं, तैसे इह जगत् आत्माविषे मनरूपी शिल्पीनें कल्प्या है, सो आत्माके आधार है, आत्माके आश्रय आत्माविषे स्थित है, अरु आत्मा कदाचित् इससाथ स्पर्श नहीं करता, जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाशविषे स्थित होता है, परंतु आकाश तिससाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे आत्मा अस्पर्श है, अरु सर्वत्र पूर्ण है, परंतु पुर्यष्टकरूप हृदयविषे भासता है, जैसे सूर्यका प्रकाश सब ठौर व्यापक है, परंतु जलविषे प्रतिबिंब भासता है, पृथ्वी काष्ठविषे प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे आत्माका देह इंद्रियां प्राणविषे प्रतिबिंब नहीं होता, हृदय पुर्यष्टकविषे भासता है, सो आत्मा सर्व संकल्पतें रहित है, सर्व संगतें रहित स्वरूप तिसकों ज्ञानवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी आत्मा ब्रह्मादिक

संगीकरि कहते हैं; सो आकाशतें भी सूक्ष्म निर्मल है, आकाश कलंकित है, आत्मा आभास करिके जगत्रूप हो भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप हो भासता है, परंतु तरंग कछु भिन्न वस्तु नहीं तैसे आत्मातें व्यतिरेक जगत् नहीं, चैतन्यसत्ता चैत्यता फुरनेकरि जगत्रूप हो भासते हैं, परंतु जगत् कछु वस्तु नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों तौ एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकार जगत् भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनुभव स्वभाव करिके प्रकाशता है, सूर्य आदिक सर्वकों प्रकाशनेहारा है, सर्व स्वादका स्वाद उही है, सर्व भाव तिसीकरि सिद्ध होते हैं, सो सत्ता उदय अस्ततें रहित है, अरु चलने अचलनेतें रहित है, न लेत है, न देत है, अपने आपविषे स्थित है, जैसे अग्निका समूह लाटारूप हो भासता है, जलका समूह तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है, अपने संवेदन फुरनेकरि नाना प्रकारके संकल्पसों विपर्ययरूप देखता है, इह पदार्थ है, इह मैं हौं, इह अवर है, इत्यादिक भावनाकों प्राप्त होता है, जब अपने आपकों जानता है, तब अज्ञानभ्रम नष्ट हो जाता है, जैसे वृक्षविषे बीजसत्ता है, सो परिणामकरि आकारके आश्रयसों बढता जाता है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तसंवेदन फुरता है, फुरनारूपी रस विपरिणामके आत्मसत्ताके आश्रय विस्तारकों प्राप्त होता है, सो संकल्परूप है, तिसविषे जगत्की दृढता है, जैसे संवेदन फुरता है, तैसे स्थित होता है, तिसविषे नीति हुई है, जो इह पदार्थ इस प्रकार होवै, सो तैसे स्थित है, अन्यथा नहीं होता, वसंतऋतुविषे रस अति विस्तारकों पावता है, कतकविषे धान्य उपजते हैं, हिमऋतुविषे जल पाषाणरूप हो जाता है, अग्नि उष्ण है; बरफ शीतल है; इत्यादिक जेते पदार्थ रचे हैं, तैसेही महाप्रलयपर्यंत स्थित हैं,अन्यथाभावकों नहीं प्राप्त होते, जगत्विषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात हैं, तिनविषे जिनकों आत्मज्ञान प्राप्त होता है, सो शांतिरूप आत्माकों पायके आनंदमान होते हैं, अरु जि

नकों प्रमाद है, सो पडे भटकते हैं, जन्ममरणकों प्राप्त होते हैं, जैसे जैसे कर्म करते हैं, तैसे गतिकों पावते हैं, अवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखविषे जाय पडते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजीकरि लय हो जाते हैं, तैसे जन्मी जन्मी मरी जाते हैं, उन्मत्तकी नांई प्रमादि पडे भ्रमते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जगत्की स्थिति है, सो सर्व चंचल आकार विपरिणामरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग चंचलरूप हैं, तैसे जगत्की गति चंचल है, आत्मातें जगत् उपजता है, सो स्वतः होता है, किसी कारणकरि नहीं होता, पाछे कारणकार्यभाव हो जाता है, सोई चित्तविषे दृढ हो भासता है, आत्माविषे इह कोउ नहीं, जैसे स्वाभाविक जलतें तरंग उठिकरि लय हो जाते हैं, तैसे आत्मातें स्वाभाविक जगत् उपजिके लय होते हैं, जैसे गीष्मऋतुविषे तप्तकरि मरुस्थल जलकी नांई स्पष्ट भासता है, अरु है कछु नहीं, जैसे मदकरि मत्तपुरुष आपकों औरका और जानता कहता है, तैसे इह पुरुष आत्मरूप है, चित्तकरि आपकों देवता मनुष्य आदिक शरीर जानते अरु कहते हैं ॥ हे रामजी! इह जगत् आत्माविषे न सत् है, न असत् है, जैसे स्वर्णविषे भूषण हैं, तैसे मूढ जीव आपकों आकार मानते हैं, तातें तुम दृश्यकों त्यागिके द्रष्टाविषे स्थित होहु, जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदिक सर्वकों जानता है, तिसकों आत्म ब्रह्म जान जो सर्वविषे पूर्ण स्थित है, स्वच्छ निर्मल आत्मसत्ताविषे एक द्वैतकल्पना कछु नहीं, जबलग आत्मातें इतर कछु वस्तु भासती है, तबलग वासना तिसकी उर धावती है ॥ हे रामजी! आत्मातें व्यतिरेक कछु सिद्ध नहीं होता, जब ऐसे भासै तब किसकी वांछा करै, किसका अनुसंधान करै, अरु ग्रहण त्याग किसका करै? आत्माकों ईप्सित अनीप्सित इष्ट अनिष्ट आदिक विकार विकल्प कोउ स्पर्श नहीं करता, कर्त्ता कारण कर्म तीनोंकी एकता है, न कोउ आधार न आधेय है, द्वैतकल्पनाका असंभव है, अहं त्वं आदिक कछु नहीं, केवल

ब्रह्मसत्ता स्थित है, ऐसे जानि सर्वदा निर्द्वंद्व होइकरि सर्व संतापतें रहित कार्यविषे प्रवर्तहु, पूर्व जो तुमनें कछु किया अरु नहीं किया, तिस करणे न करणेकरि तुमकों क्या सिद्ध हुआ है, अरु क्या पद पावणे योग्य पाया है, और भूतकी गणतीविषे क्या बात है, तुम आपकों हृदयविषे अकर्त्ता भावना करहु, अरु बाहिरतें इंद्रियांकरि जगत्के कार्य करहु, जब स्थिरतारूप समुद्रविषे तुमारी वृत्ति धैर्यवान् होवैगी, तब शांत आत्मा होहुगे, दृश्य जगतविषे तौ दूरतें दूर भी गये, अरु अंतरतें शांति नहीं होती, जहां जावै तहां भावै तैसा पदार्थ पावनेका यत्न करै तिसके पायेतें भी शांति प्राप्त न होवैगी, सर्व दृश्य जगत्के पदार्थकरि त्यागकरि जो शेष अपना स्वरूप रहता है, सो चिदात्मा है, तिसविषे स्थित हुएतें शांति प्राप्त होवैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शांत्युपदेशकरणं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष है, तिसविषे कर्तव्यभाव भी दृष्टि आता है, यज्ञादिक सर्व कर्त्ता है, हिंसादिक तामसी कर्म भी दृष्ट आते हैं, तौ भी स्वरूपके ज्ञानकरि उह अकर्ताही है, कदाचित् कछु नहीं किया, जरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो जैसा कर्म करते हैं, तैसा फल भोगते हैं, कर्तव्य किसका नाम है, सो श्रवण करहु, मनविषे सत्य जानिके जिस पदार्थके ग्रहणकी इच्छा करता है, सो फुरना वासनारूप होता है, तिस सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है, तिस चेष्टातें फलकी प्राप्ति होती है, जिस पदार्थकों सत् जानिके वासना फुरती है, तिसका अनुभव होता है, शरीर करै अथवा न करै, जैसी वासना मनविषे दृढ होती है, शुभ अथवा अशुभ, तिसके अनुसार दृश्यकों भासी आता है, शुभ करिके स्वर्ग भासता है, अशुभ करिके नरक भासता है, जिस पुरुषकों आत्माका ज्ञान है, यद्यपि प्रत्यक्ष अकर्त्ता है, तौ भी अनेक कर्मके फलके अनुभव करते हैं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनके हृदयाविषे पदार्थका सद्भाव अरु वासना दोनों नहीं, इस कारणतें तिनविषे कर्तव्यका अभाव है, यद्यपि करते हैं, तौ भी कर्तव्यके फलकों नहीं

प्राप्त होते; संसारकों असत्य जानते हैं, केवल शरीरके स्पंदमात्र उनका कर्म है, हृदयविषे बंधमान नहीं होते, पूर्वके प्रारब्ध करिके सुखदुःख फल तिनकों भी प्राप्त होता है, परंतु आत्मातें भिन्न तिसकों नहीं जानते, सर्व ब्रह्मही देखते हैं, अरु जो अज्ञानी है, सो अवयवके स्पंदविषे आपकों कर्त्ता मानता है, तिसके अनुसार सुखदुःख भोगते हैं, मोहकों प्राप्त होते हैं, मन जिनका अनात्मभावविषे मग्न है, सो अकर्त्ता हुए भी कर्त्ता होते हैं, मनतें रहित, केवल शरीरकरि किया है, सो किया भी न किया है, तातें मन करता है, शरीर कछु नहीं करता, इह जगत् सब मनतें उपजा है, अरु मनरूप है, मनहींकरि स्थित है, जिसका मन अमनभावकों प्राप्त भया है, तिसकों सर्व शांतिरूप है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जब वर्षा होती है, तब शांत हो जाती है, तैसे जब आत्मज्ञान होता है, तब इह जगत् सब शांत हो जाते हैं, संसारके सुख दुःख तिसकों स्पर्श नहीं करते, न उह चंचल है, न सत्य है, न असत्य है, सर्व विकारतें रहित शांतिरूप है, संसारकी वासनाविषे नहीं डूबता, अज्ञानी है सो डूबता है, तिसका मन संसारभ्रमविषे मग्न रहता है, सदा पदार्थकी तृष्णा पडा करता है, ज्ञानी नहीं करता ॥ हे रामजी! और दृष्टांत करिके श्रवण कर, जो अज्ञानीकों अकर्तव्यविषे कर्तव्य है, अरु ज्ञानीकों कर्तव्यविषे अकर्तव्य है, जैसे एक पुरुष शय्याउपर शयनकरि रहा है, अरु स्वप्नविषे गिर्या दुःख पावता है, सो अकर्तव्यविषे कर्तव्य भया, अरु एक गिरताविषे गिर्या है, अरु उसका मन समाधिविषे स्थित है, सो उसकों सर्व शांतरूप है, सो कर्तव्यविषे अकर्तव्य भया; क्यों जो शय्यापर सोया था, तिसका मन चलता था, तातें अकर्तव्यविषे उसकों कर्तव्य भया, दुःखका अनुभव करने लगा; दूसरेकों सुखका अनुभव भया; तातें इह निश्चय हुआ, जैसा मन होता है, तैसी सिद्धताकों प्राप्त होता है, तुम भी असंसक्त होइकरि कर्म करौ, तब अकर्त्ताही रहोगे, जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्मातें व्यतिरेक नहीं, जिसकों इह निश्चय होता है, तिस ज्ञानवान्कों सुख दुःख स्पर्श नहीं करते,

आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता, जब इसकों ऐसे निश्चय होता है, मैं देह नहीं, सर्व पदार्थहूंतें व्यतिरेक बालके अग्रतें सौमा भाग सूक्ष्म हौं; अथवा जो कछु दृश्य जगत् है, सो सर्व मैंही हौं, सर्वतत्त्वका प्रकाशक हौं; सर्वव्यापी हौं, इह निश्चयकरि तिसकों सुखदुःखका क्षोभ नहीं होता, विगतज्वर होइकरि स्थित होता है, यद्यपि दुःख संकट ज्ञानवान्कों आय प्राप्त होता है, तौ भी उसकों नहीं भासता, परमानंदकरि आनंदवान् लीलामात्र विचरता है, जैसे चंद्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशती है, तैसे उह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है, तिसकों न चिंता होती है, न कोउ दुःख होता है, शांतरूप कर्मकों करता भी अकर्त्ता है, मनकरि सदा अलेप रहता है ॥ हे रामजी ! हस्तपादादिक इंद्रियांकरि कर्त्ताका नाम कर्म नहीं, मनके करनका नाम कर्म है, मनही सर्व कर्मका कर्त्ता है, अहं त्वं सब भाव, सब लोकका बीज सर्वगत मन है, जब मन नाश होवै तब सब कर्म नष्ट हो जाता है, सब दुःख मिटि जाते हैं, जैसे बालक मनकरि नगर रचै, बहुरि लीनकरि लेवै तिसकों उपजावणे लीन करणेविषे हर्ष शोक कछु नहीं होता; तैसे परमार्थदर्शीकों किसी कर्मका लेप नहीं होता, कर्त्ता हुआ कछु नहीं करता, तिसविषे कर्तव्य भोक्तव्य सुखदुःख अज्ञान मोह करिके अध्यारोप करीते हैं, अरु कछु नहीं, ज्ञानवान्कों बंध मोक्ष सुखदुःख कछु नहीं भासता, क्यौं जो उह असंसक्त मन है, अरु जिसका मन आसक्त है, तिसकों नाना दृश्य भासता है, ज्ञानवान्कों केवल आत्मसत्ता भासती है, एक द्वैत कलनातें रहित है, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्मातें जगत् भिन्न नहीं, न कोउ बंध है, न कोउ मोक्ष है, न कोउ बंधणे योग्य है, अज्ञान दृष्टिकरि दुःख है, बोध करिके लीन हो जाते हैं, बंध अरु मोक्ष संकल्पकरि कल्पित मिथ्यारूप हैं, तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारकों त्यागी आत्मविषे निश्चय करहु, धैर्य बुद्धिवान् होकरि प्रकृत आचारकों करहु, तव स्पर्श कछु न करैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपदेशो नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सत् चित् आनंद अद्वैत निर्विकार आदिक गुणकरि संपन्न जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसविषे जो अविद्यमान जगत् अविद्या विचित्र कहांतें आई है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजपुत्र! इह संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म सत्ता सब शक्ति है, इस कारणतें दृश्यरूप होइकरि स्थित रही है, सत्य असत्य एक अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है, सो स्वरूपतें ऐसे है, जैसे जलविषे जल उल्लासरूप नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे आवर्त आकार हो भासता है, तौ भी जल एकरूप है, तैसे चिद्घनविषे चिद्घन सब शक्ति सब रूप होइकरि फुरता है, कहूं कर्मरूप, कहूं वाणीरूप, कहूं गुंगेरूप, कहूं मनरूप, कहूं भरण पोषण नाश कारण होता है, सब पदार्थका बीज उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मसत्ता है, जैसे समुद्रतें तरंग उपजिकरि तिसीविषे लय होते हैं, तैसे सब पदार्थ उपजिकरि ब्रह्मविषे लय होते हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह तुमारे वचनका उच्चार प्रगट है, तौ भी कठिन अतिगंभीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता, तातें अतोल हैं, इनका यथार्थभाव मैं पाय नहीं शकता, मनसंयुक्त षट् इंद्रियांकी वृत्तितें रहित स्वरूप अरु सर्व पदार्थकी रचनातें रहित है, सो कहां, अरु जगत् कहां, जो पदार्थ जिसतें उपजता है, सो उहीरूप होता है, जैसे दीपकतें उपज्या दीपक होता है, मनुष्यतें मनुष्य अरु अग्नितें अग्नि होता है, इस प्रकार कारणतें जो कार्य उपजता है, सो तिसीके सदृश होता है, तैसे जो निर्विकार आत्मातें जगत् उपज्या है सो जगत् भी निर्विकार चाहिए, सो तौ ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार शांतरूप है, अरु जगत् विकारी दुःखरूप है, तिसतें कलंकरूप जगत् कैसे उपज्या है ॥ वाल्मीक उवाच जब इस प्रकार रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी ब्रह्मऋषि बोलत भया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह सब जगत् ब्रह्मरूप है, नानाप्रकार मलिनरूप संसार भासता है, सो मलिनता नहीं, जैसे तरंगके समूह समुद्रविषे फुरते हैं, सो मलिनता धूलि नहीं, उहीरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् कछु कलंक नहीं, उहीरूप है, जैसे अग्निविषे उष्णता अग्निरूप है,

तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, इतर नहीं॥ ॥राम उवाच॥हे ब्रह्मन्! निर्दुःख निर्धर्मतें जो जगत् दुःखरूप उपजा, सो इह कलंक है, इह जो तुमारे वचन हैं, सो आकाशरूप हैं, सो मेरे तांई अस्पष्ट भासते हैं, मैं इसकों जाणि नहीं शकता॥ वाल्मीक उवाच॥ हे पुत्र! जब इस प्रकार रामजीने कहा, तब वसिष्ठजी मुनिशार्दूल विचारते भये, जो अब परम प्रकाशकों इसकी बुद्धि प्राप्त नहीं भई, कछुक निर्मलभावकों प्राप्त भई है, पदार्थ भूमिकाकों जानता भया है, अरु परमार्थवेत्ता नहीं भया, जिसकों परमार्थ बोध प्राप्त भया है, अरु मन शांत हुआ है, ऐसा जो ज्ञातज्ञेय पुरुष है, सो मोक्ष उपायकी बाणीके पारकों प्राप्त होता है, संसाररूपी अविद्या मल उसकों नहीं भासता, केवल अद्वैतसत्ता भासती है, जबलग और उपदेश रामजीकों न करौं, तबलग इसकों विश्रामही नहीं होवैगा, जो अर्ध प्रबुद्ध है, तिसकों सब ब्रह्म कहना नहीं शोभता, काहेतें जो चित्त उसका भोगतें सर्वथा व्यतिरेक नहीं भया, सर्व ब्रह्मके वचन सुनिके भोगविषे आसक्त होवैगा, सो नाशका कारण है, तिसकरि नाश होवैगा, अरु जिसकों परम दृष्टि प्राप्त हुई है, तिसकों भोगकी इच्छा नहीं उपजती, तातें सर्व ब्रह्मका कहणा रामजीकों सिद्धांत कालविषे शोभैगा, प्रथम गुरुकों शिष्यप्रति सर्व ब्रह्म कहणा नहीं बनता, प्रथम शम दम आदिक गुणकरि शिष्यकों शुद्ध करै, पाछे सर्व ब्रह्म शुद्ध तूं है, ऐसे उपदेश करै, तिसकरि जागी उठता है, अरु जो अज्ञानी अर्धप्रबुद्ध है, तिसकों ऐसे कहना जो सर्व ब्रह्म तूं है, सो ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसकों महानरकविषे जोडता है, जो प्रबुद्ध है, तिसकी भोगकी इच्छा क्षीण हो जाती है, उह निष्काम पुरुष है, तिसकों अविद्यारूपी मल नहीं रहता, तिसकों कहणा नहीं बनता है, इस प्रकार विचारिकरि भगवान् वसिष्ठजी अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता ज्ञानके सूर्य मुनि रामजीप्रति कहत भया॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे राघव! कलनारूप कलंक ब्रह्मविषे है अरु नहीं, इह मैं तुझकों सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अथवा तूं आपही जानैगा, ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप सर्वव्यापक सर्वगत है, सब तिसीकरि रचे हैं, जैसे इंद्रजाली वि

चित्र शक्तिकरि अनेक रूप रचता है, सत्यकों असत्य अरु असत्यकों सत्य करी दिखावता है, तैसे आत्मा मायावी परम इंद्रजाली अघटनघटना है, अर्थ इह जो न बनै तिसकों बनावै, तिसकी शक्ति है, जो पहाड कों गडेला करता है, अरु वल्लीविषे पाषाण लगते हैं, पाषाणविषे वल्ली लगती हैं, वनकी पृथ्वीकों आकाश करता है, आकाशकों पृथ्वी करता है, अरु वृक्षवल्लीसाथ पाषाण लगते हैं, अरु आकाशविषे वन लगते हैं, जैसे गंधर्वनगर आकाशमें भासता है, अरु वनकों आकाश करता है, जैसे पुरुषकी छाया आकाश हो जाती है, आकाशकों पृथ्वीभाव प्राप्त करती है, जैसे रत्नकी कंदरा पृथ्वीपर होवै, तिसविषे आकाशका प्रतिबिंब पडता है ॥ हे रामजी! इह विचित्ररूप दृश्य तुझकों कहा है, सो शुद्ध व्यक्त तत्त्व अचैत्य चिन्मात्रविषे जो चेतनताका लक्षण जानना है, तिसकरि रची है, सो कैसी रची है, उही चित्तसंवेदन फुरनेकरि जगत्‌रूप हो भासता है, तातें सब प्रकार सबरूप उही है, जो एकरूप अविद्यमान है, हर्ष शोक आश्चर्य किसकी नांई किसका मानियें, इह अन्यथा कोउ नहीं, सब एकरूप है, इसी कारणतें हमकों समताभाव रहता है, हर्ष, शोक, आश्चर्य, मोह हमकों नहीं प्राप्त होता, ममता अरु चपलता आदिक विकार कोउ नहीं होता, कदाचित् हम जानतेही नहीं, देश काल वस्तु इह जगत् अवसानकों प्राप्त हो भासते हैं, तिनका विपर्यय होना भी भासता है, अरु उह अपणे स्वभावविषे स्थित हैं, काहेतें जो इह दृश्य उनकों अपणे स्वरूपका अभास फुरता भासता है, जेता कछु दृश्य प्रपंच है, सो सत्य चित्तसंवित्‌की स्पंदकला करिके फुरता है, नानाप्रकार देश, काल, क्रिया द्रव्य होकरि भासते हैं, तिसकों आत्मसत्ता किसी यत्नकरि नहीं रचती, स्वाभाविक फुरनेकरि पडे फुरते हैं, जैसे समुद्र तरंगकों यत्नकरि नहीं उपजाता, अरु लीन करता, स्वाभाविक चमत्कार फुरता अरु लीन होता है, तैसे आत्माविषे स्वाभाविक सृष्टि फुरतियां हैं, अरु लय होतियां हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, उहीरूप है, जैसे दूध घृतरूप है, जैसे

घट पृथ्वीरूप है, जैसे पट तंतुरूप होता है, तैसे जगत् आत्मरूप है, जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा जगतरूप हो भासता है॥ हे रामजी! इन दृष्टांतका एक अंग लेणा है, कारणकार्यभावकों लेना नहीं, आत्माविषे न कोउ कर्त्ता है, न कोउ भोक्ता है, न कोउ विनाश कों प्राप्त होता है, केवल आत्मतत्त्व साक्षी निरामय अद्भुत अपणे आप स्वभावसत्ताविषे स्थित है, इह जगत् आत्माका प्रकाश है, जैसे दीपकका प्रकाश स्वभाव है, सूर्यका प्रकाश स्वभाव है, पुष्पका सुगंध स्वभाव है, तैसे आत्माका स्वभाव जगत् है, किसी कारणकार्यकरि नहीं भया, जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं हुआ, जैसे पवनका स्वभाव स्पंदरूप है, सो जब निस्पंद होता है, तब नहीं भासता, अरु स्पंदकरि भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन फुरता है, तब जगत् हो भासता है, जब लय होता है, तब जगत् नहीं भासता, अरु जगत् कछु है नहीं, न सत् है, न असत् है, कहूं जगत् प्रगट भासता है, कहूं अप्रगट भासता है, अरु नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है, जैसे वनविषे पुष्पका रस होता है, तिनके उपजणे अरु नष्ट होणेकरि न वन उपजता है, न नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्के उपजणे अरु नष्ट होणेतें रहित है, अरु वास्तवतें उपजा कछु नहीं, तातें आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, असम्यक् ज्ञानकरि जगत् भासता है, अनंत शाखाकरि पसरी रहा है, इनकों ज्ञानरूपी कुठारसाथ काटहु, तब सुखी होवै, जगतरूपी वृक्ष है, असम्यक् ज्ञान इसका बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं, आशारूपी वल्लीकरि वेष्टित है, दुःखरूपी शाखा हैं, अरु भोगजरारूपी फल हैं, तृष्णारूपी लताकरि भूसर भासते हैं, ऐसा जो संसाररूपी वृक्ष है, तिसकों आत्मविवेकरूपी कुठारसाथ यत्नकरिके काटके मुक्त होहु, जैसे गजपति अपणे बलसों बंधन तोडिकरि सुखेनचेत विचरता है, तैसे तुम निर्बंध होइकरि विचरो॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ३९॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह जो जीव हैं, सो ब्रह्मतें उत्पन्न कैसे हुए हैं, अरु केतेक हुए हैं, सो मुझकों विस्तार करिके कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो! जैसे इह विचित्रतातें उपजते हैं, अरु नाश होते हैं, अरु बढते हैं, स्थित होते हैं, सो क्रम सुण ॥ हे निष्पाप राम! शुद्ध जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसकी जो वृत्ति चेतनशक्ति है, सो निर्मल है, जब उह स्फुरणरूप होती है, तब कलनारूप घनभावकों प्राप्त होती है, तब संकल्परूपकों धारती है, बहुरि तन्मय होइकरि मनरूप होती है, सो मन संकल्पमात्र करिके जगत्कों रचता है, विस्तारभावकों प्राप्त करता है, जैसे गंधर्वनगर विस्तारकों प्राप्त होता है, तैसे मनकरि जगत्विस्तार होता है, अरु ब्रह्मदृष्टिकों त्यागिके रचता है, सो सब आत्मसत्ताका चमत्कार है, बन्या कछु नहीं, हमकों तौ, सब आकाशरूप भासता है, दूरदर्शीकों जगत् भासता है, जैसे चित्तसंवित्विषे संकल्प फुरता है, तैसा रूप होता है, प्रथम ब्रह्माका संकल्प फुर्या है, सो चित्तसंवित् आपकों ब्रह्मारूप देखता भया, ब्रह्मारूप होइकरि जगत्कों कल्पता भया, तब प्रजापति होइकरि चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न किये, वस्तुतें सब ज्ञप्तिरूप है, तिसके फुरनेकरि जगत् भासता है, सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है, औ वस्तुतें शरीर कछु नहीं, संकल्पमात्र नगरवत् भ्रांति करिके भासतें हैं, तिस भ्रांतिरूप जगत्विषे जो जीव भये हैं, कोउ मोहकरि संयुक्त हैं, कोउ अज्ञानी हैं, कोउ मध्यस्थित हैं, कोउ ज्ञानी उपदेष्टा हैं, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब आधि व्याधि दुःखकरि दीन हुए हैं, तिनविषे ज्ञानवान सात्विक सात्विकी हैं, अरु राजसी सात्विकी हैं, जो शांतात्मा पुरुष है, तिसकों संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते, उह सदा ब्रह्मविषे स्थित है ॥ हे रामजी! इह मैं तुझकों भूतजात कहे हैं, सो ब्रह्म शांत अमृतरूप सर्वव्यापी, निरामय चैतन्यस्वरूप अनंत आत्मा आधि व्याधि दुःखतें रहित निर्भ्रम है, तिसके किसी एकदेशविषे जगत् स्थित है, जैसे अनंत सोमजलके किसी स्थानविषे तरंग फुरते हैं, तैसे परब्रह्मसत्ताके किसी स्थानविषे जगत्

प्रपंच फुरता है ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! ब्रह्मतत्त्व तौ अनंत निराकार निरवयरूप है, तिसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ, निरवयवविषे अवयवक्रम कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तिस करिके उपजे हैं, अथवा तिसतें उपजे हैं, इह जो कारण अरु उपादान है, सो भ्रांतिमात्र है, इह शास्त्ररचना व्यवहारके निमित्त कही है, परमार्थतें कछु नहीं, अवयवकरि जो देशादिक कल्पना है, सो क्रमतें नहीं उपजी, उदय अरु अस्तपर्यंत दृष्टिमात्र भी होती है, अरु कल्पनामात्र है, सो कल्पना भी आत्मरूप है, आत्मातें रहित कल्पना भी कछु वस्तु नहीं, न हुई है, न कछु होवैगी, तिसविषे जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति हैं, सो व्यवहारके निमित्त हैं, परमार्थतें कछु नहीं, शब्द अर्थमात्र जगत्कलना है, सो तिसकरि उपजा है, अरु तिसतें उपजा है, इह द्वितीयकल्पना भी नहीं, तन्मयरूप है, शांतरूप आत्माही है, और कछु नहीं, जैसे अग्नितें अग्निकी लाटा फुरतियां हैं, सो अग्निरूप हैं, अरु तिसतें उपजी सो तिसकरि उपजी इह कल्पना अग्निविषे कोउ नहीं, अग्निही अग्नि है, तैसे जन्य अरु जनक जो हैं, कार्य अरु कारण भेद सो आत्माविषे कोउ नहीं, कार्यकारणभाव कल्पनामात्र हैं, जहां अधिकता अरु ऊनता होती है, तहां कारणकार्यभाव होता है, जो इह अधिक कारण है, ऊन कार्य है, भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनता भी है, जहां भेद होता है, तहां भेदकल्पना भी होवै, तहां एक अद्वैतविषे शब्द कैसे होवै, अरु शब्दका अर्थ कैसे होवै, जैसे अग्नि अरु अग्निकी शिखाविषे भेद नहीं तैसे कारणकार्यभाव आत्माविषे कोउ नहीं, शब्द अर्थ कल्पनामात्र हैं, जहां प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या भ्रम होता है, तहां द्वैत नानात्व होताहै, अर्थ इह जैसे चेतनका प्रतियोगी जड अरु जडका प्रतियोगी चेतन है, अरु व्यवच्छेद कहियें परिच्छिन्न, जैसे घटविषे आकाश होता है, संख्या कहिये जो जीव ईश्वर इह शब्द अर्थ द्वैतकल्पनाविषे होते हैं, जहां एक अद्वैत आत्माही है, तहां शब्द अर्थ कोउ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सबही जलतें है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे शब्द अरु

अर्थकल्पना ब्रह्म है, जो बोधवान् पुरुष हैं, तिनकों सब ब्रह्मही भासता है, चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है, ज्ञान शब्द अर्थ ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, तिसविषे जो इतर भासता है, सो मिथ्या ज्ञानके विकल्प है, जैसे अग्नि अरु अग्निकी लाटाकी कल्पना भ्रांतिमात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगत्की भिन्न कल्पना असत्‌रूप हैं, जो ज्ञानतें रहित हैं, तिनकों दृष्टिदोषकरि सत्य हो भासता है, तातें सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, निश्चयकरि परमार्थ ब्रह्मतें सब ब्रह्मही है, सिद्धांत कालविषे तुझकों इही दृष्टि उपजैगी, इह जो सिद्धांतपिंजर मैंनें तुझकों कहा है, तिसके उपर उदाहरण कहौंगा; जो इह क्रम अविद्याका कछु भी नहीं, अज्ञानके नाश भएतें अत्यंत असत् जाणैगा, जैसे तम करिके जेवरीविषे सर्प भासता है, जब प्रकाश उदय होता है, तब ज्यौंका त्यौं भासता है, सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानदृष्टिकरि जगत् भासता है, जब शुद्ध विचारकरि भ्रांति नष्ट होवैगी, तब निर्मल प्रकाशसत्ता तुझकों भासैगी, इसविषे संशय नहीं, यह निश्चितार्थ है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! इह जो तुमारे वचन हैं, सो क्षीरसमुद्रके तरंगवत् उज्वल हैं, तीन तापके नाशकर्त्ता हृदयकों मल दूर करनेकों निर्मलरूप हैं, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता प्रकाशरूप हैं, अरु गंभीर हैं, तिनका तोल मैं पाय नहीं शकता, एक क्षणविषे संशयकरि अंधकारकों प्राप्त होता हों; अरु एक क्षणविषे निःसंशयरूप प्रकाशकों प्राप्त होता हों, जैसे चपलरूप मेघकरि सूर्यका प्रकाश कबहूं भासता है, कबहूं आच्छाद्या जाता है, तातें मेरा संशय दूर करहु, जो आत्मानंदसत्ता अप्रमेयरूप है, सब उही प्रकाशरूप है, असत्यभावतें रहित साररूप है, तौ तिस अद्वैत तत्त्वविषे कल्पना कहांतें आई ?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु मैंनें तुमकों कहा है, सो मेरे वचन यथार्थ हैं, जैसे कहा है, तैसेही है, अरु असमर्थरूप वचन भी नहीं, जिसके हृदयविषे ठहरहीं तिसकों आत्मपदविषे प्राप्त करहीं, अरु विरूप भी

नहीं, इसका रूप फल प्रगट है, जिनके धारेतें सब दुःख संसारके मिटि जाते हैं, अरु पूर्वापर विरोध भी नहीं, जो प्रथम कछु और कहा, पाछे और कहा, जो कछु कहा है,सो यथार्थ कहा है, परंतु ज्ञानदृष्टि करिके जब तेरा हृदय निर्मल होवैगा, विस्तृत बोधसत्ता हृदयविषे प्रकाशैगी, तब तूं मेरे वचनके तात्पर्यकों हृदयविषे जानैगा, अरु जो तुझकों उपदेश करता हौं, सो वाच्य वाचक शास्त्रके संबंध तेरे जतावणे निमित्त करता हौं, जब इन युक्त वचनकरि तूं जागैगा, तब तुझे अद्वैतसत्ता निर्मल भासैगी, और जो कछु वाच्य वाचक शब्द अर्थरचना है, तिसकों त्याग करैगा, ज्ञानवान्कों सदा परमार्थ अद्वैतसत्ता भासती है, इच्छादिक कल्पना कछु आत्माविषे नहीं पाइती, आत्मा निर्दुःख निर्द्वंद्व है, सोइ जगतरूप होइकरि स्थित भया है, इस प्रकार मैं तुझकों विचित्रयुक्तिकरि कहौंगा, जबलग सिद्धांत उपदेशका आकाश है, तबलग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती, जब आत्मबोध होवैगा, तब आपही जानैगा, अज्ञानरूपी तम है, सो वाक्विस्तार विना शांत नहीं होती, इस प्रकार मैं तुझकों अनेक युक्तिकरि कहौंगा, तबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है॥ हे रामजी! शुद्ध जो आत्मसत्ता है, तिसके आश्रय संवेदनाभास फुरता है, तिसीका नाम अविद्या है, सो दो रूप रखती है, एक उत्तम एक मलिन है, जो स्पंदकला अपने अविद्या नाशनिमित्त प्रवर्त्तती है, सो उत्तम है, विद्या भी तिसीका नाम है, सब दुःखकों नाश करती है, अरु जो संसारकी और फुरती है, सो अविद्या है, अर्थ इह जो आत्माकी उर फुरती है,सो विद्या है, अरु जो दृश्यकी उर फुरती है, सो अविद्या है, सो दोनों स्पंदरूप हैं, तातें अविद्याकरि अविद्याका नाश करौ, जैसे ब्रह्म अस्त्रकरि ब्रह्म अस्त्र शांत करता है, जैसे मेलकों कलर मेल दूर करता है, जैसे विषकों विष नाश करता है, जैसे शत्रुकों शत्रु मारता है, तैसे अविद्याकरि अविद्या नाश होती है, जो ऐसे हुआ तौ तुम इसकों नाश करहु, तब सुखदायक होवैगा, विचारकरि इसका नाश होता है, तब जानी नहीं जाती जो कहां गई, जैसे दीपकसाथ अंधकार देखीयें तौ नहीं जानता, जो कहां ग

या; बडा आश्चर्य है, जो जीवका ज्ञान इसनें आच्छादि लिया है, सदा अनुभव आत्मसत्ता उदयरूप है, सो जीवकों नहीं भासती; जबलग अविद्या नहीं जानी, तबलग फुरती है, जब जानी तब नहीं जानता, जो कहांगई; भ्रममात्र सिद्ध है, बडा आश्चर्य है, जो मायानें संसारकों बांध्या है, सत्यकी नांई प्राप्त भई है, अरु असत्य है, बुद्धिवान्कों भी इसनें नाशकरि छोडे हैं, तौ इतर जीवकी क्या कहनी है, निरंतर अभेदरूप आत्मा है, तिसविषे अविद्या भेद कल्पना कोउ नहीं, जिस पुरुषनें संसार मायाकों जौंका त्यौं जान्या है, सो पुरुषोत्तम है, जिसकों इह भावना हुई है, जो अविद्या परमार्थतें कछु नहीं, असत्यरूप है, सो ज्ञानवान् है, जो कछु जानने योग्य है, सो तिसनें जान्या है, इसविषे संशय नहीं; जबलग तूं स्वरूपविषे जाग्या नहीं, तबलग मेरे वचनविषे आसक्तबुद्धि कर, अरु बढे निश्चयकों धार, जो अविद्या नाशरूप है, अरु है नहीं, जेता कछु जगत् दृश्य भासता है, सो मनका मन असत्रूप है, जिसकों इह निश्चय हुआ, सो पुरुष मोक्षभागी है, इह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभावकों प्राप्त हुआ है, सो सब ब्रह्मरूप है, जिसके अंतर इह निश्चय स्थित है, सो पुरुष मोक्षभागी है, अरु जिसकों चराचर जगत्विषे दृढ भावना है, सो बंधभागी है, जैसे पक्षी जालविषे बंधायमान होता है ॥ हे रामजी! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टिकरि बांधे हुए हैं, सब जगत् स्वप्न भ्रांतिरूप है, तिसविषे जिसकों असत्बुद्धि है, अथवा सत् ब्रह्मबुद्धि है, सो आसक्त होकरि संसारदुःखविषे नहीं डूबता, अरु जिसकों अनात्मधर्म देहादिकविषे भावना है, स्वरूपविषे आत्मबोध नहीं, सो हर्ष शोक आपदाकों प्राप्त होता है, अरु जिसकों स्वरूपविषे स्वरूपबोध है, अरु अनात्म धर्मका त्याग है, तिसकों संसार अविद्या नहीं रहती, दुःख विकार स्पर्श नहीं करी शकता, जैसे जलविषे धूप नहीं उडती, तैसे तिस महात्मा पुरुषके चित्तविषे दुःख उदय नहीं होते; ज्ञानवान् पुरुषके हृदयविषे जगत्के शब्द अर्थका रंग नहीं चढता; जैसे तंतुबिना पट नहीं होता, पट तंतुही रूप है, तैसे आत्मावि

ना जगत् नहीं होता, जगत् आत्मारूप है, ऐसे जानिके जो व्यवहारविषे वर्तता है, सो पुरुष मानसीक दुःखकों नहीं प्राप्त होता, अरु जो अविद्याकरि संसारविषे पडा भटकता है, सो आत्मतत्त्वकों पाय नहीं शकता, विद्यमान भी तिसकों नहीं भासता, सो आत्मज्ञानकरि अविद्याका नाश होता है, जिसकों आत्मज्ञान हुआ, सो अविद्यारूपी नदीकों तरी जाता है, आत्मसत्ताके प्राप्त हुएतें अविद्या क्षीण हो जाती है, जिनकों अविद्यारूप संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है, सो अविद्यारूपी नदीविषे वही जाते हैं ॥ हे रामजी! इह अविद्या बडे मोहभ्रमकों देती है, दृढ होईकरि स्थित हुई है, अरु तत्पदकों आच्छादि लिया है, तातें तुम इह न विचारौ जो अविद्या कहांतें उपजी है, अरु कौन इसका कारण है, इत्यादिक विचारभ्रम मत करहु, इही विचारौ, जो इह नाश कैसे होता है, इसके क्षयका उद्यम करौ, जब नष्ट होवैगी, तब इसकी उत्पत्ति भी जानि लेवैगा, जो इस प्रकार उपजी है, अरु इह स्वरूप इसका है, अरु इह कारण, अरु इह कार्य है ॥ हे रामजी! अविद्या वस्तुतें कछु है नहीं, अविचारसिद्ध है, विचारदृष्टितें नष्ट हो जाती है, तब जानी नहीं जाती जो कहां गई, जब स्वरूप विस्मरण होता है, तब उपजीकरि दृढ होती है, बहुरि दुःखकों देती है, तातें बलकरि इसका नाश करहु, बडे बडे सूरमे भी हुए हैं, तिनकों अविद्यानें व्याकुल किया है, ऐसा बुद्धिवान कोउ नहीं जिसकों अविद्यानें व्याकुल नहीं किया, अविद्या सर्व रोगका मूल है, यत्न करिके इसका औषध करहु, जिसकरि जन्म दुःख कुहिड न प्राप्त होवै, जेती कछु आपदा हैं, तिनकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञानरूपी वृक्षकी वल्ली है, अनर्थरूपी अर्थकी जननी है, ऐसी अविद्यारूपी मलीनताकों दूर करहु, मोह भय आपदा दुःखकों देणेहारी है, हृदयविषे मोह उपजायकरि जीवकों व्याकुल करती है, अज्ञान चेष्टाकरि वृद्ध होती है, जब अविद्यारूपी संसारसमुद्रतें पार होवैगा, तब शांति प्राप्त होवैगी ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥ ॥ ॥ ॥वसिष्ठ

उवाच ॥ हे रामजी! अविद्यारूपी रोगकों काटिकरि शांतरूप स्थित होते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रतें देखते हैं, इह नष्ट हो जाती है, सो इस विस्तृत व्याधिका औषध सुण, जीवजातका बिस्तार मैं तुझकों कहता हौं, सात्विक राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारणे अर्थ मैं प्रवर्ताया था, सो अब सुण, जो तत्त्व अमृत ब्रह्म स्वरूप है, सो सर्वव्यापी निरामय चैतन्यप्रकाश अनंत है, आदिअंततें रहित निर्भ्रम चेतन प्रकाश तिसका वपु है, जब उह चेतन प्रकाश स्पंदरूप हो फुरता है, तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत्कों चेतने लगती है, तब जगत् फुरता है, जैसे सोमजल समुद्रविषे द्रवताकरि तरंग फुरता है, सो जलतें इतर कछु नहीं, तैसे सर्वात्मातें इतर कलाका रूप कछु नहीं, इह स्पंदरूप भी अभेद है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, जैसे नदीविषे वायुके संयोगतें तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकला सो दृश्य जगत् होता है, ऐसे भी नहीं, आत्मा अद्वैत है, स्वतः तिसविषे चित्तकला हो आती है, जैसे वायुविषे स्वाभाविक स्पंद होता है, स्पंदनिस्पंद दोनों वायुके रूप हैं; जब स्पंद होता है, तब भासता है, निस्पंद होता है, तब अलक्ष हो जाता है, तैसे चित्तकला फुरती है, तब लक्षमें आती है, निस्पंद हुई अलक्ष होती है, शब्दकी गम नहीं होती, निस्पंद करिके जगत्भावकों प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे तरंगचक्र फुरते हैं, तैसे चेतनविषे चित्तकला फुरती है, जैसे आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, सो है नहीं, तैसे आत्माविषे वस्तुतें है नहीं, स्पंदभावकरि कछु भूषितदूषित हो भासती है, आत्मातें भिन्न कछु नहीं, परंतु भिन्नकी नांई भासती है, जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि जैसी स्थित होती है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, देश, काल, क्रिया द्रव्यकों जैसे जैसे चेतती है, तैसे तैसे हो भासती है, आगे नामसंज्ञा होती है, अपने स्वरूपकों विस्मरणकरि दृश्यसाथ तन्मय होती है, तौ भी स्वरूपतें व्यतिरेक नहीं होती, परंतु व्यतिरेककी नांई भावना होती है, जैसे समुद्रतें तरंग भिन्न नहीं, सुवर्णतें भूषण भिन्न नहीं, तैसे आ

त्मातें चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परंतु अपणे अनंत स्वभावकों विस्मरण करि देश, काल, क्रिया द्रव्यके भेद् मानती है, संकल्पके धारणेकरि कलनाभावकों प्राप्त होती है, विकल्पकलनाकरि चित्तशक्ति क्षेत्रज्ञरूप होती है, शरीरका नाम क्षेत्र होता है, शरीरकों अंतर्बाहिर जाननेकरि क्षेत्रज्ञ नाम होता है, सो क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है, तिस अहंकारकरि आत्मातें इतर रूप धरती है, बहुरि अहंकारविषे निश्चय कलना होती है, तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंभावसों जब निश्चय संकल्पकलना होती है, तिसका नाम मन होता है, उही चित्तकला मनभावकों प्राप्त होती है, जब मनविषे घन विकल्प उठते हैं, तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी भावनाकरि इंद्रियां फुरि आतियां हैं, बहुरि हस्त पाद् प्राणसंयुक्त देह भासी आता है, इस प्रकार जगत्विषे देहकों पायकरि जन्ममृत्युकों जीव प्राप्त होता है, वासनाविषे बांध्या हुआ दुःखके समूहकों पाता है, कर्मकरि चित्तविषे दीन रहता है, जैसे कर्म करता है, तैसे आकारकों धारता है, जैसे समय पायके फल परिपक्कताकों प्राप्त होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जीव दृश्यभावकों प्राप्त होता है, आपकों कारण कार्य मानिके अहंभावकों प्राप्त होता है, निश्चय वृत्तिकरि बुद्धिभावकों प्राप्त होता है, संकल्पसंयुक्त मनभावकों प्राप्त होता है, सो मन देह इंद्रियरूप होइकरि स्थित होता है, अपना अनंतरूप भूलि जाता है, परिच्छिन्नभावकों ग्रहण करिके प्रतियोग व्यवच्छेदभाव भासता है, तब इच्छामोहादिक शक्तिकों प्राप्त होता है, जैसे मद्करि माते बैलकों गौ आनि मिलती है, तैसे सब आपदा दुःख इसकों आय प्राप्त होता है, जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्रवेश करतियां हैं, इसी प्रकार अहंकार अपणी रचनाकरि आपही बंधमान होता है, जैसे घुराण अपणे स्थानकों रचिकरि आपही बंधमान होती है, बडा खेद है, जो आपही संकल्पकरि दृश्यकों रचता है, बहुरि तिसी देहविषे आस्था करता है, तातें आपही दुःखी होता है, अंतरतें तपता रहता है, आपकों बंधायमानकरि संसारजंगलविषे अविद्यारूप आकाशकों ले फिरता

है, अपणे संकल्पकलनाकरि तन्मात्रा देह हुई है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, तैसे देहादिक उदय हुए हैं, तिनसाथ बांध्या हुआ दुःख पाता है, जैसे सिंह संकरकरि बांध्या जावै, तैसे बांध्या है, एक स्वरूप है, सोइ फुरनेके वशतें नानाभावकों प्राप्त हुआ है, कहूं मन, कहूं बुद्धि, कहूं अहंकार, कहूं ज्ञान, कहूं क्रिया, कहूं पुर्यष्टक, कहूं प्रकृति, कहूं माया, कहूं कर्म, कहूं विद्या, कहूं अविद्या, कहूं इच्छा, कहाती है ॥ हे रामजी! इस प्रकार जीव अपणे चित्तकरि भ्रमकों प्राप्त हुआ है; तृष्णारूपी शोक रोगकरि दुःख पाता है, तुम यत्नकरिके इसकों तरहू, जरामरण आदिक जो विकार हैं, अरु संसारकी भावना इसकों नष्ट करती है; यह भला है, ग्रहण करियें यह बुरा त्याग करने योग्य है, तिसकरि ग्रस्या अविद्याके रंग साथ रंजित भया है, इच्छा करनेसों इसका रूप सकुची गया है, कर्मरूपी अंकुरसों संसाररूपी वृक्ष बढि गया है, अपना वास्तव स्वरूप विस्मरण हुआ है, कलनाकरि आपकों मलिन जानता भया है, अविद्याके संयोगकरि नरककों भोगता है, संसारभावनारूपी पर्वतके नीचे दबि गया है, आत्मपदकी और उठणेकों समर्थ नहीं होता, संसाररूपी विषका वृक्ष जरामरणरूपी शाखाकरि बढि गया है, आशारूपी फांसीसाथ वांधे हुए जीव पडे भटकते हैं, तिसकरि चिंतारूपी अग्निविषे जलते हैं, क्रोधरूपी सर्पनें जीवका चर्वण किया है, अपनी वास्तवता इसकों विस्मरण हो गई है, जैसे हरिण अपणे यूथसमूहतें भूला शोककरि दुःखी होता है, है, जैसे पतंग दीपककी शिखामें जल मरता है, जैसे मूलतें काट्या कमल विरूप होता है, तैसे आशाकरि क्षुद्र हुआ मूर्ख बडा दुःख पाता है, जैसे कोउ मूढ विषकों सुखरूप जानिके भक्षण करै, तब दुःख पाता है, तैसे इसकों भोगविषे मित्रबुद्धि हुई है, परंतु इसके परमशत्रु हैं, इसकों उन्मत्त करिके मूर्छा करते हैं, बडे दुःखकों देते हैं, जैसे बांधा हुआ पक्षी पिंजरेविषे दुःख पावता है, तैसे इह दुःख पावता है, तातें इसकों काटहु, इह जगत्जाल असत् है, गंधर्वनगरवत् शून्य है, इसकी इच्छा अनर्थका कारण है, इस संसारसमुद्रविषे म

त डूबहु, जैसे हस्ती कीचडसों अपने बलकरि निकसता है, तैसे अपना उद्धार करहु, संसाररूपी गडेलेविषे मनरूपी बैल गिर्या है, तिसकरि अंग जीर्ण हो गये हैं; अभ्यास अरु वैराग्यके बलकरि इसकों निकासहु, अपना उद्धार करहु, जिस पुरुषकों अपने मनपर भी दया नहीं उपजती; जो संसारदुःखतें निकसै, सो मनुष्यका आकार है, परंतु राक्षस है, तातें तुम उद्धार करि लेहु ॥ इति श्रीयो० स्थि० जीवतत्त्ववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जीव परमात्मातें फुरिकरि संसारभावना करते हैं, तिनकी संख्या कछु करी नहीं जाती, केई पूर्व उपजे हैं, केई अपूर्व उपजे हैं, अबलग उपजते हैं, जैसे फुरणेसों जलके कणके प्रगट होते हैं, तैसे ब्रह्मसत्तासों जीव फुरते हैं, अपनी वासनाकरि बांधे हुए भटकते हैं, विवश होकरि नानाप्रकारकी दशाकों प्राप्त होते हैं, चिंताकरि दीन हो जाते हैं, दशों दिशा जलस्थलविषे पडे भ्रमते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नष्ट होते हैं, तैसे जन्म अरु मरण पाते हैं, केईकों प्रथम जन्म हुआ है, केईकों सौ जन्म हुए हैं, केईके असंख्य जन्म हुए हैं, केई आगे होवैंगे, केई होकरि मिटि गए हैं, केई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञानकरि पडे भटकैंगे, अब केई जराविषे स्थित हैं, केई यौवनविषे स्थित हैं, केई मोहकरि नष्ट भए हैं, केई अल्पवय होइकरि स्थित हैं, केई अनंत आनंदी हुए हैं, केई सूर्यवत् उदितरूप हैं, केई किन्नर, केई विद्याधर होकरि स्थित हैं, केई सूर्य, चंद्रमा, इंद्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु होइकरि स्थित भए हैं, केई यक्ष, वैताल, सर्प, आदिक होइकरि स्थित भए हैं, केई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गण कहाते हैं, केई ऋात चांडाल आदिक स्थित हैं, केई तृण, औषधी, पत्र, फूल, मूलकों प्राप्त भए हैं, केई लता गुच्छे पाषाण शिखर हुए हैं, केई कदंब वृक्ष ताल तमाल हुए हैं, केई मंडलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते हैं; केई मुनीश्वर मौन पदविषे स्थित हैं, केई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिक रूप हैं, केई सिंह, मृग, घोडे, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशु स्थित हैं, केई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगला

दिक पक्षी होइकरि स्थित हैं, केई कमल कली कुमुद सुगंधादिक स्थित हैं, केई आपदाकरि दुःखी हैं, केई संपदावान् हैं, केई स्वर्ग, केई नरकविषे स्थित हैं, केई नक्षत्रचक्र, केई आकाश, वायु सूर्यकी किरणांविषे; केई चंद्रमाकी किरणांविषे स्थित हैं; रस लेते हैं, केई जीवन्मुक्त हैं, केई अज्ञानकरि पडे भ्रमते हैं, केई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगकों पडे भोगते हैं, केई परमात्माविषे परिणमी गए हैं, केई अल्पकाल, केई शीघ्रही आत्मतत्त्वविषे लय भए हैं, केई चिरकालकरि जीवन्मुक्त होवहींगे, केई मूढ दुर्भावना करते हैं, अनात्माविषे भ्रमते हैं, केई मृतक होइकरि इस जगत्विषे जन्मते हैं, केई और जगत्विषे जाय स्थित होते हैं, केई न इहां न उहां उपजते हैं, आत्मतत्त्वविषे लय होते हैं, केई मंदराचल सुमेरु आदि पर्वत होइकरि स्थित होते हैं, केई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस जल आदिक समुद्र हुए हैं, केई नदियां तडाग वापिका आदि भए हैं, केई स्त्रियां, केई पुरुष, केई नपुंसकरूप हुए हैं, केई मूढ, केई प्रबुध, केई अत्यंत मूढ हुए हैं, केई ज्ञानी, केई अज्ञानी, केई विषयतप्त, केई समाधिविषे स्थित हैं, इसी प्रकार जीव अपनी वासनाकरि बांधे हुए भमते हैं, संसारभावनाकरि जगत्विषे कबहूं अधकों कबहूं ऊर्ध्वकों, जाते हैं, कामक्रोधादिक दुःखकी पीडाकों पाते हैं, कर्मकरि भ्रमते हैं, आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुए हैं, अनेक देहकों उठाइ फिरते हैं, जैसे भारवाही भारकों उठावते हैं, तैसे केई मनुष्य शरीरतें बहुरि मनुष्य शरीरकों धारते हैं, बहुरि वृक्षतें वृक्ष होते हैं, केई औरतें और शरीरकों धारते हैं, इसी प्रकार आत्मरूपकों भुलायकरि देहसाथ मिले हुए वासनारूप कर्म करते हैं, तिनके अनुसार अध ऊर्ध्व पंथविषे भ्रमते हैं, जिनकों आत्मबोध हुआ है, सो पुरुष कल्याणरूप है, और सब दुःखी मायारूप संसारविषे मोहित भए हैं; इह संसाररचना इंद्रजालकी नांई है, जबलग अपने आनंद स्वरूपकों नहीं पाया, साक्षात्कार नहीं भया, तबलग संसारभ्रमविषे भमता है, अरु जिस पुरुषनें अपणे स्वरूपकों जान्या है, और जीवकी नांई त्याग नहीं किया, वारंवार संसारके प

दार्थतें रहित आत्माकी उर धांवता है, सो समय पायकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, बहुरि जन्म न पावैगा, केई जीव अनेक जन्म भोगिके ज्ञानकरि अथवा तपकरि ब्रह्माके लोककों प्राप्त होते हैं, बहुरि परम पद पावते हैं, केई सहस्र जन्म भोग भोगिकरि बहुरि संसारविषे प्राप्त होते हैं, केई बुद्धिवान् विवेककों भी प्राप्त होते हैं, बहुरि संसारविषे गिरते हैं, अर्थ इह जो मोक्षज्ञानकों पायके बहुरि संसारी होते हैं, केई इंद्रपद पायकरि तुच्छ बुद्धिसों बहुरि तिर्यक् पशु योनिकों पाते हैं, बहुरि मनुष्याकार धारते हैं, केई महाबुद्धिवान् ब्रह्मपदतें उपजिकरि तिसी जन्मविषे ब्रह्मपदकों प्राप्त होते हैं, केई अनेक जन्मकरि, केई थोडे जन्मकरि प्राप्त होते हैं, केई एक जन्मकरि और ब्रह्मांडकों प्राप्त होते हैं, केई इसीविषे देवतातें पशुजन्म पावते हैं, केई पशुतें देवता हो जाते हैं, केई नाग हो जाते हैं, जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही रूप हो जाता है, जैसे इह जगत् विस्ताररूप है, तैसे अनेक जगत हैं, केई समानरूप हैं, केई विलक्षण आकार हैं, केई हुए हैं, केई होवैंगे, विचित्ररूप सृष्टि उपजतियां हैं, अरु मिटतियां हैं, केई गंधर्वभाव, केई यक्ष देवता आदिक भावकों प्राप्त भए हैं, जैसे जीव इस जगत्विषे व्यवहार करते हैं, तैसे और जगत्विषे व्यवहार करते हैं, आकार विलक्षण है, अपणे स्वभावके वश हुएतें जन्ममरणकों पाते हैं, जैसे समुद्रतें तरंग उपजते मिटते हैं, तैसे सृष्टिकी प्रवृत्ति उत्पत्ति लय होता है, जब संवित् स्पंद होते हैं, तब उपजते हैं, जब निस्पंद होता है, तब लय होता है, जैसे दीपकका प्रकाश लय होता है, अरु जैसे सूर्यतें किरणां निकसतियां हैं, जैसे तप्त लोहेतें चिणगारे निकसते हैं, जैसे अग्नितें चिणगारे निकसते हैं, जैसे कालतें ऋतु निकसतियां हैं, पुष्पतें सुगंधी प्रगट होती है, समुद्रतें तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, तैसे आत्मसत्तातें जीव उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, जेते कछु जीव हैं, सो सबही समय करिके अपने पदविषे लय होवैंगे, स्वरूपतें इनका उपजणा भी मिथ्या है, स्थिति बंधन भी मिथ्या है, नष्ट होना मिथ्या है, त्रिलोकीरूप महामायाके मोहकरि

उपजते समुद्रके तरंगकी नांई नाश होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! जीव इस क्रमकरि आत्मस्वरूपविषे स्थित है, बहुरि अस्थिमांसकरि पूर्ण देह पिंजर इसकों कैसे प्राप्त भया है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैनें प्रथम तुझकों अनेक प्रकार कहा है, तूं अबलग जागृत नहीं भया, पूर्वापरके विचार करनेहारी तेरी बुद्धि कहां गई है? जेता कछु शरीरादिक स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है; सो सब आभासमात्र है, स्वप्नकी नांई उठ्या है, दीर्घ स्वप्न है, मिथ्या भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र होता है, जैसे भ्रमणेकरि पर्वत भ्रमते भासते हैं, तैसे जगत् अज्ञानकरि भासता है, अरु जिन पुरुषकी अज्ञाननिद्रा नष्ट भई, अरु निश्चयकरि संसारवासना गलित भई, हैं, सो प्रबुद्धचित्त हैं, संसारकों स्वप्नरूप देखते हैं, अरु स्वरूपभावकरि कछु देखते नहीं, अपणेही स्वभावकरि संसार कल्पत हैं, इह जीव संसार मोक्षतें प्रथम सर्वदा सत्‌रूप देखते हैं; तिनकी संसारभावना असत् नहीं होती, जगत् आकार सर्वदा अपने अंतर कल्पते हैं, अरु जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभंग होते हैं, जैसे जलविषे तरंग चंचलरूप होते हैं, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, तिसीके अंतर पत्र फूल फल होते हैं, तैसे कल्पनारूपी देह मनके फुरनेविषे रहता है ॥ हे रामजी! देह न होवै परंतु जहां मन फुरता है, तहांही देहकों रची लेता है, जैसे स्वप्नविषे मनोराज्य देहकों रचि लेता है, तैसे इह देह अरु जगत् भी मनकरि रचा हुआ है, जैसे मृत्तिकाका पिंड चक्र उपर चडाया घटरूप हो जाता है, तैसे मनके फुरनेकरि देह बनता है, सब देह मनके फुरनेविषे स्थित हैं, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्प मात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्‌रूप होता है, तैसे इह जगत् असत्य है, जैसे बालककों अपणे परछायेविषे बैताल भासता है, तैसे जीवकों अपने फुरनेकरि देहादिक भासते हैं ॥ हे रामजी! सृष्टिके आदिविषे जो शरीर उत्पन्न भए हैं, सो आभासमात्र

संकल्पकरि उपजे हैं, प्रथम ब्रह्मा पद्मविषे स्थित भया; तिसनें संकल्पके क्रमकरि विस्तार किया है, जैसे संकल्प पुर स्थित होवै, तैसे स्थित किया है, सो सब मायामात्र है, मायाकी घनताकरि इह जगत् भासता है, स्वरूपतें कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरनेकों पायकरि ब्रह्मपदकों प्राप्त भया है, सो ब्रह्मा जैसे हुआ है, अरु स्थित भया है, सो मुझकों क्रमकरि कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी! प्रथम ब्रह्मशरीरकों पायकरि ग्रहण किया है, तिसके श्रवणकरि स्थिति भी जानैगा, देश काल आदिकके परिच्छेदतें रहित आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, सो अपणी लीला शक्ति करि देश काल क्रिया कल्पितरूप भया है, तिसकरि जीवके एते नाम हुए हैं, वासनाकरि तद्रूप हुई चित्कला चपलरूप मन हुआ है, सो दृश्य कलनाके सन्मुख हुई, प्रथम उही चित्कला मानसी शक्ति होइकरि आकाशकी भावना करत भई, स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है, तिसके सन्मुख मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, तैसे आकाश पोलरूप फुरि आया, बहुरि स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरि आया, जब शब्द स्पर्श आकाश पवनका संघर्षण भया, तब मनके तन्मय होणेकरि अग्नि उपजा, बडा प्रकाश हुआ, बहुरि रस तन्मात्राकी भावना करी तब शीतलभावनासों जल फुरि आया; जैसे अति उष्णतातें स्वेद निकसी आता है, बहुरि गंध तन्मात्राकी भावना करी तिसकरि घ्राण इंद्रिय निकसी आई, स्थूलकी भावनाकरि जलचक्र पृथिवी होकरि स्थित भये, आकाशविषे बडा प्रकाश हुआ, अहंकारकी कलाकरि युद्ध अरु बुद्धिरूपी बीजकरि समुचितरूप हुई, अष्टम जीवसत्ता हुई, इन अष्टका नाम पूर्यष्टक भया; सो देहरूपी कमलका भंवरा हुआ, तिस आत्मसत्ताविषे तीव्र भावना करिके उही चित् सत्ता बडा स्थूल वपु देखती भई, जैसे बीजतें वृक्ष फूल होणेकरि रस परिणमता है, तैसे निर्मल आकाशविषे वृत्ति स्पंदअस्पंदरूप हुई है, जैसे संचेविषे भूषण निमित्त स्वर्ण आदिक धातु पाइती हैं, सो भूषणरूप हो जाती हैं, तैसे ब्रह्माजी अपनी चेतन

संवेदन मनरूपी संवित्‌विषे तीव्र भावनाकरि तिसकरि स्थूलताकों प्राप्त भये, स्वतः इह फुरणा दृश्यका रूप क्रमकरि हुआ, जो ऊर्ध्व शीश है, मध्य उदर है, अधः पाद हैं, चारों दिशा हस्त हैं, मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, महा उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटावत् अंग होते हैं, तैसे ब्रह्माका शरीर उत्पन्न भया है, इस प्रकार वासनाकरि कल्पित मनकरि शरीर उत्पन्न करी लिया है, आदि ब्रह्माका प्रकाशही शरीर भया, सब बुद्धिकी समष्टिरूप उसकी बुद्धि अरु बल उत्साहकी समष्टि है, बहुरि कैसा है, सदा ज्ञानरूप है, संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्ण शक्ति, अरु तेज उदारताकरि संपन्न स्थित है, इस प्रकार सब जीवका ब्रह्माजी अधिपति नायक होता भया है, अरु द्रवत स्वर्णवत् कांति, ऐसा शरीर परम आकाशतें उपजिकरि आकाशरूप स्थित भया है, अपनी लीलाके निमित्त अपणे निवासका गृह रचता भया है॥

हे रामजी! कबहूं ब्रह्माजी परम आकाशविषे रहता है, कबहूं कल्पांतर महाभास्कर अग्निविषे रहता है, कबहूं स्वर्णकमल विष्णुजीके नाभिकमलविषे रहता है, इसी भांति अनेक प्रकारके आसन रचिकरि कबहूं कहां कबहूं कहां स्थित होता है, लीला करता है, जब परम तत्त्वसों प्रथम इस प्रकार फुरता है, तब अपनेसाथ शरीर देखता है, जैसे बालक निद्रातें जागिकरि अपनेसाथ शरीर देखता है, तैसे ब्रह्माजी अपने संग शरीर देखता भया, कैसा शरीर प्राणके प्रवाहसंयुक्त प्राण अपान जाते आते हैं, तब पंचतत्त्व जो द्रव्य हैं, तिनकरि रचना भया, बत्तीस दंत हैं, तीन स्तंभ हैं, अरु पंच देवता शरीरविषे स्थित हैं, सो कौन हैं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव पंच भाग शरीरके हैं, नव द्वार हैं, दो जंघ स्थल, दो पाद, अरु दो भुजा, वीस अंगुली हैं, हस्तपादके वीस नख हैं, एक मुख दो नेत्र हैं, कबहूं अपणी इच्छासों अनेक भुजा अनेक नेत्रकरि लेता है, मांसकी कहगीलकरि है, ऐसा शरीर हुआ, सो चित्तरूपी पक्षीका आलणा है, कामदेव भोगणेका स्थान है, वासनारूपी पिशाचनीका गृह है, जीवरूपी सिंहकी कंदरा है, अभिमानरूपी

हस्तीका वन है, इस प्रकार ब्रह्माजी शरीरकों देखता भया, बडा उत्तम कांतिवान् शरीरकों देखिकरि ब्रह्माजी चितवत भया, जो त्रिकालदर्शी है, जो इसके आदि क्या हुआ अरु अब हमारे क्या करना है; ऐसे परम आकाशविषे सदा निर्मलदर्शी देखत भया, जो आगे भूतका सर्ग व्यतीत भया है, वेदसंयुक्त ऐसे अनेक हुए हैं, तिनके सब धर्म स्मरण करिके देखत भया, वाग्मय भगवतिका स्मरण किया, वेदका स्मरण सर्व सृष्टिके धर्म गुण विकार उत्पत्ति स्थिति बढणा परिणाम क्षीण नाश होता, सब धर्मकों स्मृतिशक्तिकरि देखता भया, जैसे योगीश्वरनें अपना अनुभव किया अरु अवरका किया, चित्तशक्तिविषे स्थित होइकरि स्मृतिशक्तिसों देखि लेता है, तैसे ब्रह्माजी अनुभव करता भया, दिव्य नेत्रसों बहुरि इच्छा हुई, जो लीलाकरि विचित्ररूप प्रजाकों उत्पन्न करौं, ऐसे विचारकरि उत्पत्ति करता भया, जैसे गंधर्वनगर तत्काल हो जाता है, तैसे सृष्टि हो गई है, तिसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ तिनके साधन रचे, बहुरि तिनविषे विधिनिषेध रचे जो इह कर्तव्य है, इह अकर्तव्य है, तिनके अनुसार फलकी रचनाकरि, शुभ अशुभ विचित्रता रची ॥ हे रामजी! इस प्रकार फुरनेकरि सृष्टि हुई है, फुरनेकी दृढताकरि स्थितिकों प्राप्त भई है, तिसविषे नीति, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म, रचे हैं, जैसे नीति करी है, तैसे स्थित है, जैसे वसंत ऋतुकरि पुष्प उत्पन्न होते हैं, तैसे ब्रह्माके मनकरि सृष्टि रची है, विचित्ररूप रचनाका विलास चित्तरूप कमलजा ब्रह्माके चित्तकरि कल्प्या है, सो कलनारूप है, कालविषे उत्पन्न हुई है, कालहीकरि स्थित है, स्वरूपतें न कछु उपजा है, न कछु नष्ट होता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे इह संसाररचना है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति० संसारप्रतिपादनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जो उपजा है, सो कछु नहीं उपजा, न स्थित है, शून्य आकाशरूप है, मनके फुरणेकरि सृष्टि भासती है, बडे देश काल क्रियासंयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टि आता है, सो परमार्थतें तिसनें कछु भी स्थान रो

क्या नहीं, स्वप्न पुरवत् संकल्पमात्र है, आधारविना चित्र है, जैसे मूर्तिका चित्र आधारविना मिथ्या होता है, तैसे इह जगत् बडा भासता है तौ भी मिथ्या है, असत्य तमरूप है, आकाशविषे चित्रकी नांई है, जैसे स्वप्नविषे भासरूप जगत् भासता है तौ भी असत्‌रूप है, तैसे इह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेकरि भासता है, मनका फुरनाही इसका कारण है, जैसे नेत्रका कारण प्रकाश है, तैसे जगत्‌का कारण चित्त है, सब जगत् आकाशमात्र है, घट पट टोयादिक क्रम सहित भासते हैं, तौ भी असत्‌रूप हैं, जैसे जलविषे चक्र आवर्त भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तैसे प्रथम पर्वत आदिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवासके निमित्त मननें इह शरीर रचा है, जैसे घुराण अपणे निवासके निमित्त गृह रचती है, अरु आपही बंधनमें आती है, तैसे मन शरीरादिककों रचिकरि आपही दुःखी होता है, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो संकल्पतें रहित सिद्ध होवै, अरु मनके यत्नकरि सिद्ध न होवै, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनकरि सिद्ध होता है, परमात्मा जो देव है, सो सब शक्तिमान् है, मन भी तिसकी शक्ति है, उह कवन पदार्थ है, जो मनकरि सिद्ध न होवै, सब कछु बन जाता है, काहेतें जो जेते कछु पदार्थ हैं, तिनविषे सत्ता परमात्माकी है, तिसतें इतर कछु नहीं, तातें परमात्मा देवविषे सब कछु संभवता है, आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होइकरि उदय भई है, तिस भावनाके अनुसार आपकों ब्रह्माका शरीर देखत भई, तिस कमलजा ब्रह्मानें कलनारूप जगत् रचा है, देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर जंगमरूप जगत् संकल्पविषे स्थित है, जबलग उसका संकल्प है, तबलग तैसेही स्थित है, जब संकल्प मिटि जावैगा तब सृष्टि भी नष्ट हो जावैगी, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे जगत् भी हो जावैगा, सो आकाशवत् सबही कलनामात्र है, दीर्घ स्वप्नवत् स्थित है, वस्तुतें न कोउ उपजा है, न मरता है, परमार्थतें तौ ऐसे है, अरु अज्ञानकरि सब पदार्थ विकारसंयुक्त भासते हैं, न कोउ वृद्ध है, न नष्ट होता है, तिसविषे और विकार कैसे मानियें; जैसे पत्रकी रेखा होवै, तिसके उपजणे अरु नाश होणेविषे वनकों कछु अधिकता

ऊनता नहीं होती, तैसे शरीरके उपजणे अरु नष्ट होणेविषे आत्माकों लाभ हानि कछु नहीं, सब जगत् दृश्य भ्रांति करिके भासता है, ज्ञानदृष्टिकरि देख, अज्ञानीवत् क्यों मोहित होता है? जैसे मृगतृष्णाका जल प्रत्यक्ष भासता है, सो मिथ्या भ्रममात्र होता है, तैसे ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सब भ्रांतिमात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरि जगत् भासता है, जैसे नौकापर बैठेकों तटके वृक्षस्थान चलते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरि जगत् भासता है, इस जगत्कों तूं इंद्रजालवत् जान, मायाकरि रचा जगत् देह पिंजर है, मनके मननकरि असत्यरूपही सत्यकी नांई स्थित भया है, और जगत् द्वैत कछु हुआ नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, और शरीरादिक कैसे किसकी नांई स्थित कहियें, पर्वत तृण आदिक जो जगत् आडंबर है, सो भ्रांतिमात्र मनकी भावनाकरि दृढ हो भासता है, असत्यही सत्यरूप हो स्थित भया है॥ हे रामजी! इह प्रपंच नानाप्रकारकी रचनासंयुक्त भासता है, तौ भी अंतरतें तुच्छ है, इसकी कामना तृष्णा त्यागकरि सुखी होहु, जैसे स्वप्नविषे बडे आडंबर भासते हैं सो भ्रांतिमात्र असत्यरूप हैं, वास्तवतें कछु नहीं, तैसे इह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, चित्तकरि कल्पित है, देखणेविषे बडा विस्ताररूप भासता है, विचार करिके ग्रहण करियें तौ हाथ कछु नहीं आता है, जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत्विषे कछु नहीं पाइती, जैसे घुराणकों अपणा रचा गृहबंध न करता है, तैसे अपणा रचा जगत् मनकों दुःख देता है, तातें इसकों त्याग करहु, जिस पुरुषनें इसकों असत्य जान्या है, सो जगत्की भावना बहुरि नहीं करता, जैसे मृगतृष्णाके जलकों जिसनें असत्य जान्या है, सो पानके निमित्त धावता नहीं, जैसे अपणे मनकी कल्पी स्त्रीसों बुद्धिवान् राग नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थविषे राग नहीं करता, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागकरि बंधायमान् होते हैं, जैसे स्वप्नविषे असत्य स्त्रीसों चेष्टा करते हैं, तैसे अज्ञानी असत्य जगत्कों सत्य जानिके चेष्टा करते हैं, बुद्धिवान् सत्य मानिकरि नहीं करते, जैसे जेवरीविषे सर्प भा

सता है, तैसे मनके मोहकरि जगत् भासता है, अरु भयदायक होता है, सर्व जगत् भावनामात्र है, जैसे जलविषे चंद्रमाका प्रतिबिंब चंचल भासता है, तिसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिवान् नहीं करता है, तैसे जगत्के पदार्थकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानवान् नहीं करते ॥ हे रामजी! इह मैं परम गुणका समूह तुझकों उपदेश किया है, तिसकी भावना करिके तूं सुखी होवैगा अरु जो मूर्ख इन वचनकों त्यागिके दृश्यकी उर सुखरूप जानिके लगते हैं, सो पुरुष ऐसे हैं, जैसे कोउ शीतकरि दुःखी होवे, अरु प्रत्यक्ष अग्निकों त्यागिकरि जलविषे प्रतिबिंब अग्निका आश्रय करै, तिसकरि शीत निवृत्त किया है, सो मूढ है, तैसे आत्मविचारकों त्यागिके जो जगत्के पदार्थकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं, सो मूढ है, सब जगत् असत्यरूप है, मनके मननकरि रचा है, जैसे स्वप्नविषे चित्तकरि नगर भासता है, अरु स्वप्नविषे नगर जलता भासै, तौ पुरुष कदाचित् नहीं जलता, तैसे जगत्के नाश हुएतें, आत्मनाश नहीं होता, उपजणे बढणे घटणे नाश होणेतें आत्मा रहित है, जैसे बालक अपणी क्रीडाके निमित्त हस्ती घोडा नगर रचि लेता है, अरु समेटि छोडता है, तौ उह उपजणे मिटणेविषे ज्यौंका त्यौं है, जैसे बाजीगर बाजीकों पसारता है, बहुरि लय करता है, सो उत्पत्तिलयविषे बाजीगर ज्यौंका त्यौं है, तैसे आत्मा जगकी उत्पत्तिलयविषे ज्यौंका त्यौं है, तिसीका कछु कदाचित् नष्ट नहीं होता, जो सब सत्य है तौ किसीका कछु नाश नहीं होता; इस कारणतें जगत्विषे हर्ष शोक करणा योग्य नहीं, अरु जो सब असत् है, तौ भी नाश किसीका न हुआ, अरु दुःख भी किसीकों न हुआ, सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता, स्वरूपतें किसीका नाश नहीं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, तौ दुःख सुख कहां है, ब्रह्मसत्ताविषे कछु द्वैत जगत् बन्या नहीं, सब जगत् प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है, तौ भी असत्यरूप है, तिस असत्यरूप संसारविषे ज्ञानवान्कों ग्रहण करने योग्य पदार्थ कोउ नहीं, जो जगत् सब भूतविषे ब्रह्मतत्त्व है, इतर कछु नहीं, त्रिलोकीविषे तौ इसी पदार्थके ग्रहणत्यागकी इच्छा करियें, जग

त् सत्यरूप होवै अथवा असत्यरूप होवै, ज्ञानवान्कों सुखदुःख कोउ नहीं, तृतीय भ्राति दृष्टि अज्ञानीकों दुःखदायक होती है, जो वस्तु आदि अंतविषे असत्य है, सो मध्यविषे भी असत्य जानियें, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो सत्यरूप है, जिसकरि असत्य भी सिद्ध होता है, जो मोहकरि आवृत बालबुद्धि हैं, सो जगत्के पदार्थकी इच्छा करते हैं, बुद्धिवान् नहीं करते, बालककों जगत् विस्ताररूप भासता है, तिसकरि अपणा प्रयोजन वांछते हैं, बहुरि सुखदुःख भोगते हैं, तूं बालक मत होहु, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागिकरि सत्यात्माविषे स्थित होहु, अरु जो आपसंयुक्त संपूर्ण जगत् असत्‌रूप जाणै, तौ भी विषाद कछु नहीं, जो आपसंयुक्त सब सत्य जानै तौ भी इस दृष्टिकरि हर्ष शोक नहीं, इह दोनों निश्चय सुखदायक हैं, आपसंयुक्त सब असत्यरूप जानैगा तौ दुःख नहीं होता ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा नमस्कार करिके अपणे स्थानकों गई, बहुरि सूर्यकी किरणां संग अपणे आसनपर आय बैठे ॥ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो धन स्त्री आदि नष्ट हो जावहीं तौ इंद्रजालकी बाजीवत् देखियें, इसकरि भी शोकका अवसर नहीं होता, क्षण दृष्टिविषे आये बहुरि नष्ट हो गये, तिनका शोक करणा व्यर्थ है, गंधर्वनगर जो रत्नमणिकरि भूषित किया होवै, अथवा दुःखकरि दूषित किया होवै, हर्षशोकका स्थान कहां है, तैसे अविद्याकरि रचे पुत्र स्त्रीधनादिक हैं, तिसके सुखदुःखका क्रम कहा है, जो पुत्रधनादिक बढै तौ भी हर्ष करना व्यर्थ है, जैसे मृगतृष्णाका जल बढ्या तौ भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे धन दारा आदिक बढें तौ हर्ष कहां है, शोकवान्‌ही रहता है, उह कवन पुरुष है, जो मोहमायाके बढे हुए शांतिवान् होवै, उह दुःखदायक है, जो मूढ हैं, सो भोगकों देखिके हर्षवान् होते हैं, अधिकतें अधिक चाहता है, अरु बुधिवान्कों तिन भोगतें वैराग्य उपजता है, जिनकों आत्माका सा

क्षात्कार नहीं भया, अरु भोगकों अंतवंत नहीं जान्या, तिनके भोगकी तृष्णा बढती है, अरु जो बुद्धिवान् हैं, सो भोगकों आदितें अंतवंत नहीं जानते हैं, दुःखरूप जाणिकरि तिसकी इच्छा नहीं करते; तातें हे राघव! ज्ञानवान्की नांई व्यवहारविषे विचरौ, जो नष्ट होवै सो होवै, जो प्राप्त होवै सो होवै, तिनविषे हर्ष शोक न करहु, तिसकों यथाशास्त्र हर्षशोकतें रहित भोगहु, अरु जो न प्राप्त होवै, तिसकी इच्छा न करहु, इह पंडितका लक्षण है ॥ हे रामजी! इह संसार दुःखरूप भोगकरि आया है, इसविषे मोहकों प्राप्त नहीं होणा, तैसे ज्ञानवान् विचरते हैं, तैसे विचरणा, मूढवत् नहीं विचरणा, इह संसार आडंबर अज्ञानकरि रचा है, जो इसकों ज्यौंका त्यौं नहीं देखते, सो कुबुद्धि नष्ट होते हैं, जिस जिस संसारके पदार्थकी इच्छा होती है, सो बंधनका कारण है, तिनविषे डूबि जाता है, जो बुद्धिवान् है सो जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, जिस निश्चयकरि जगत्कों असत्यरूप जान्या है, सो किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होता, अविद्यारूप पदार्थ तिसकों खेद नहीं देते, वस्तु बुद्धिकरि खैंची नहीं शकता, जिसकी बुद्धिविषे इह निश्चय हुआ जो सर्व मैं हौं, ऐसे जानिके किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगत्के मध्यभाव है, अंतरतें तिसका आश्रय करहु, औ जो अंतर बाहिर जगत् दृश्य पदार्थ हैं, तिनकों मत ग्रहण करहु, इनकी आस्था त्यागिकरि परमपदकों प्राप्त होहु, अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्माविषे स्थित होहु, रागदोषतें रहित सब कार्य करहु, जैसे आकाश सब पदार्थमें व्यापक अरु निर्लेप है, तैसे सब कार्य करत निर्लेप होहु, रागदोषतें रहित होहु, जिस पुरुषकों पदार्थविषे न इच्छा है, न अनिच्छा है, कर्मविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसकों कर्मका स्पर्श नहीं होता, कमलवत् सदा निर्लेप रहता है, देखना सुणना आदिक इंद्रियांकरि व्यवहार होता है, तातें तुम इंद्रियांकरि व्यवहार करहु, अथवा न करहु, परंतु इनविषे निरिच्छित रहौ, अभिमानतें रहित होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, इह मैं हौं, इह मेरा है,

इस मिथ्या कल्पनातें रहित सुखी होहु, इंद्रियके अर्थका सार जो अहंकार है, जब इह हृदयविषे न फुरैगा, तब तुम जो योग्य पदकों प्राप्त होहुगे, रागदोषतें रहित संसारसमुद्रकों तरि जाहुगे, जब इंद्रियाके रागदोषतें रहित हुए, तब मुक्तिकी इच्छा न करै, तौ भी मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी ! इस देहतें आपकों व्यतिरेक जानिकरि जो उत्तम आत्मपद है, तिसविषे स्थित होहु, तब तुमारा परम यश होवैगा, जैसे पुष्प सुगंधी प्रगट होता है, इह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे वासनारूपी जल है, तिसविषे जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी बेडेपर चडते हैं, सो तरि जाते हैं, अरु जो नहीं चडते सो डूबि जाते हैं, इह बोध मैं तुझकों क्षुरधारकी नांई तीक्ष्ण कहा है, सो अविद्याके काटणेहारा है, जिसकों विचारकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्वकों जानिकरि व्यवहारविषे विचरते हैं, तैसे तुम भी विचरौ, अज्ञानीकी नांई नहीं विचरणा, जैसे जीवन्मुक्त पुरुषनें नित्य तृप्तका आचार है, तिसकों अंगीकार करना, भोगविषे दीन नहीं होना, मूढके आचारवत् आचार अंगीकार न करणा, जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं, सो न कछु ग्रहण करते हैं, न त्याग करते हैं, न किसीकी वांछा करते हैं, जैसा व्यवहार प्रारब्धवेगकरि प्राप्त होता है, तिसीविषे विचरते हैं, राग दोष किसीविषे नहीं करते, बडा ऐश्वर्य होवै, बडे गुण होवैं, लक्ष्मी आदिक बडी विभूति होवै, तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते, अरु महाशून्य वनविषे खेदवान् नहीं होते, देवताका सुंदर वन विद्यमान होवै, तिसकरि हर्षवान् न होवै, न किसी इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, रागदोषतें रहित तिसीविषे विचरते हैं, जैसे सूर्य समभावसों लीन विचरता है, तैसे अभिमानतें रहित देहरूपी पृथ्वीविषे विचरते हैं, अब तूं भी विवेककों प्राप्त होहु, बोधके बलकरि इसविषे स्थित होहु, और किसी पदार्थकी उर दृष्टि नहीं करणी, निर्वैर निर्मन दृष्टिकों ले विचरणा, समभावविषे सम उत्तम भाव पृथ्वीमें स्थित होणा, संसारकी इच्छा दूरतें त्यागिकरि यथा व्यवहारविषे विचरणा, परम शांतरूप

रहणा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार निर्मल वाणीकरि वसिष्ठजीनें कहा, तब निर्मल चित्त रामजीका हृदय अमृतकरि शीतल अरु पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि शीतल पूर्ण होता है, तैसे रामजी शांतिकरि पूर्ण भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थ बोधयोगो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्म वेद वेदांतके पारज्ञ, तुमारे शुद्ध वचनकरि मै स्वस्थ भया हों, कैसे तुमारे वचन हैं, उदार विरक्तरूप हैं, कोमल अरु उचित हैं, तिन तुमारे वचनरूपी अमृतकों पान करी मेरी तृप्ति नहीं होती, हे भगवन्! तुम राजस सात्त्विक जगत् कहणे लगे थे, सो कछु संक्षेपतें कहा था, तिनविषे अवकाशकों पायकरि तुमनें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति कही, तिसकरि मुझकों इह संदेह उत्पन्न भया, सो हृदयविषे विस्तारकों पावता भया है, जो कहूं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलतें कही है, कहूं आकाशतें, कहूं अंडतें, कहूं जलतें कही है, सो विचित्ररूप शास्त्रकरि कैसे कहा है, तुम सब संशयके नाशकर्ता हौ, कृपाकरि शीघ्र मुझकों उत्तर कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केई लक्ष ब्रह्मा हुए हैं, केई अनेक विष्णु रुद्र होते हैं, अब भी अनेक ब्रह्मांडविषे अनेक प्रकारके व्यवहार संयुक्त होते हैं; केई तुल्य होते हैं, केई बडे छोटे कालके होते हैं, स्वप्नजगत्की नांई उत्पन्न होते हैं, केई बीते हैं, केई आगे होवैंगे, तिनविषे तुझनें इक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछी है, सो सुन अरु इह भी अनेक प्रकारके होते हैं, कबहू सृष्टि सदाशिवतें उत्पन्न होती है, कबहू ब्रह्मातें, कबहू विष्णुतें, कबहू मुनीश्वर रचि लेते हैं, कबहू ब्रह्मा कमलतें उपजता है, कबहू जलतें, कबहू पवनतें, कबहू अंडतें उपजा है, कबहू किसी ब्रह्मांडविषे इंद्र त्रिनेत्र होता है, कबहू पुंडरीकाक्ष विष्णु होता है, कबहू सदाशिव होता है, कबहू सृष्टिविषे पर्वत उपजते हैं, तिनकरि पृथ्वी निरंध्र हुई रही है, कबहू मनुष्यकरि पूर्ण, कबहू वृक्षकरि पूर्ण होती है, अनेक प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, किसी ब्रह्मांडविषे मृत्युका भय होता है, कबहू पाषणमय होती है, कबहू मांसमय होती है, कबहू स्वर्ण

मय होती है, इस प्रकार पृथ्वी होती है, केई सृष्टि ऐसीयां हैं, चतुर्दश लोक हैं, किसी सृष्टिविषे केई लोक भये हैं, किसी सृष्टिविषे ब्रह्मा नहीं हुआ, इसी प्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वतें फुरी हैं, बहुरि लय भइयां हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय होता है, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि उपजिकरि लय हो जातियां हैं, जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि होती है, तैसे परमात्माविषे जगत् है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे त्रसरेणु भासते हैं, तिनकी संख्या कही नहीं जाती, कोउ ऐसा समर्थ भी होवै; जो तिनकी संख्या करै, परंतु ब्रह्मतत्त्वविषे जो सृष्टि फुरतियां हैं, तिनकी संख्या करनेकों समर्थ न होवैगा, जैसे वर्षाऋतुविषे गनियेके क्षेत्रविषे मच्छर होते, अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि उपजिकरि नष्ट हो जाती है, उह काल जान्या नहीं जाता, जिस कालविषे सृष्टिका उपजणा हुआ है, आत्मतत्त्वविषे नित्यही सृष्टिका उपजणा लय होणा है, सो अंत कछु नहीं, जैसे समुद्रतें तरंग फुरते हैं, उनतें पूर्व और बहुरि उनतें पूर्व और, इसी प्रकार आदि अरु अंत कछु जान्या नहीं जाता, जैसे आत्माविषे सृष्टिका आदि अंत कछु नहीं, देवता दैत्य मनुष्य आदिक केई उपजिकरि लय भये हैं, केई आगे होवैंगे, जैसे इह ब्रह्मांड ब्रह्माकरि रचा है, तैसे अनेक ब्रह्मांड हो गये हैं, जैसे अनेक घटिका एक वर्षविषे व्यतीत होतियां हैं, तैसे बीते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मतत्त्वविषे असंख्य जगत् होते हैं, केई सृष्टि हो बीतियां हैं, केई अब होतियां, केई आगे होवैंगियां, जैसे मृत्तिकाविषे घट होता है, जैसे वृक्षविषे अनेक पत्र होते हैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे जबलग समुद्र है, तिसविषे जल है, तबलग उर्मी तरंग आवर्त्त निवृत्त नहीं होते, केई उपजते हैं, केई लय होते है, तैसे ब्रह्म चिदाकाश है, तबलग त्रिलोकी जगत् उपजि उपजिकरि लय होते हैं, जबलग अपणे स्वरूपका प्रमाद है, तबलग विकारसंयुक्त जगत् फुरते हैं, वडे विस्तारसंयुक्त भासता है, जब आत्मस्वरूप दृष्टिकरि देखैगा, तब कोउ विकार न भासैगा, जबलग आ

त्मदृष्टिकरि नहीं देख्या, तबलग आभासगतिविषे उपजते अरु मिटते हैं, न सत्य कहे जाते हैं, न असत्य कहाते हैं, वास्तवतें ब्रह्म अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, समुद्रविषे तरंगकी नांई अभेद है, भिन्न होइकरि जो भासते हैं, सो अविद्याकरि भासते हैं, विचार कियेतें निवृत्त हो जाते हैं, चरअचररूप जगत् नानाप्रकारकी चेष्टासंयुक्त अनंत सर्वेश्वर आत्माविषे फुरते हैं, सो भिन्न नहीं, जैसे शाखा फूल फल वृक्षतें भिन्न नहीं, भिन्न भासते हैं, तौ भी अभिन्न हैं, तैसे आत्मातें जगत् भिन्न भासते हैं, तौ भी भिन्न नहीं, आत्मरूप हैं॥ हे रामजी! मैं जो तुझकों सृष्टि चतुर्दश भुवनसंयुक्त कही है, कोउ अल्प कनिष्ठरूप है, कोउ बडे हैं, सो सब परमात्मा आकाशविषे उपजते हैं, अरु उही रूप हैं, कबहूं ब्रह्मतत्त्वसों प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है, सो उपजिकरि प्रतिष्ठाकों पाता है, तिसतें ब्रह्मा उपजता है, तब तिसका नाम आकाशज होता है, कबहू प्रथम पवन उपजता है, प्रतिष्ठित होता है, तिसतें ब्रह्मा उपजता है, सो वायुज नाम हुआ, प्रजापतिकरि कबहू होता है, कबहू प्रथम जल उत्पन्न होता है, जलस्थित भया, तिसतें ब्रह्मा उपजिकरि जलज नाम होता है कबहू प्रथम पृथ्वी उत्पन्न भई है, सो विस्तारभावकों प्राप्त भई है, तिसतें ब्रह्मा उपजा है, तब पार्थिवज नाम हुआ है, अग्नितें उपजा तब अग्निज नाम पाया है॥ हे रामजी! यह पंचभूततें ब्रह्माकी उत्पत्ति भई तुमकों कही, जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं, पंचम तत्त्व सबतें बढता है, तब तिसतें प्रजापति उपजीकरि अपणे जगत्कों रचता है, कबहू ब्रह्मतत्त्वतें आपही फुरि आता है, जैसे पुष्पतें सुगंधि फुरि आती है, तैसे ब्रह्माजी उपजिकरि पुरुषभावनातें पुरुषरूप स्थित होता है, तिसका नाम स्वयंभू होता है, कबहू पुरुष जो विष्णुदेव है, तिसकी पीठसों उपजि आता है, कबहू नेत्रतें प्रगट होता है, कबहू नाभितें उत्पन्न होता है, तब प्रजापति, नेत्रज, पद्मज, होता है, वास्तवतें सब मायामात्र है, स्वप्नवत् मिथ्यारूपही सत्य हो भासता है, जैसे मनोराज्य सृष्टि भासी आती है, तैसे इह जगत् है, जैसे नदीविषे तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं,

तैसे आत्मासों अभेद जगत् फुरता ह, वास्तवतें कछु है नहीं, जब शुद्ध सत्ताका आभास संवेदन फुरता है, तब उही जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे बालकके मनोराज्यविषे सृष्टि फुरती है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे इह है, कबहू शुद्ध आकाशविषे मननकला फुरती है, तिसतें स्वर्णका अंड उपजता है, अंडतें ब्रह्मा उपजि आता है, कबहू पुरुष विष्णुदेव जलविषे वीर्य डारता है, तिसतें पद्म उपजता है, तिसी पद्मसों ब्रह्मा प्रगट होता है, कबहू सूर्यसों फुरि आता है, इसी प्रकार विचित्र रूप, रचना ब्रह्मपदतें उपजती है, बहुरि लय हो जाती है, तेरे दिखावणेके निमित्त मैंनें अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कही है, सो सब मनके फुरणेमात्र है, अवर हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंनें सृष्टिका क्रम कहा है, अरु इनहूंका रूप है, सो मनोमात्र है, उपजि उपजिकरि लय हो जाती है, बहुरि दुःख, बहुरि सुख, बहुरि अज्ञान, बहुरि ज्ञान, बहुरि बंध, बहुरि मोक्ष होते हैं, कबहू मित्र, कबहू शत्रु होते हैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे दीपकका प्रकाश उपजिकरि नष्ट हो जाता है, तैसे देह उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, कालकी ऊनता अरु विशेषता यही है, जो कोउ चिरकालपर्यंत रहता है, कोउ शीघ्रही नष्ट हो जाता है, परंतु सबही विनाशरूप हैं, ब्रह्मातें आदि कीटपर्यंत जेते कछु आकार भासते हैं, सो कालके भेदकों त्यागिकरि देख, जो सब नाशरूप हैं, कबहू सत्ययुग, कबहू त्रेतायुग, कबहू द्वापार, कबहू कलियुग आता है, बहुरि बहुरि उही आते हैं, अरु जाते हैं, इसी प्रकार कालका चक्र पडा भ्रमता है, बहुरि मन्वंतरका आरंभ होता है, कालकी परंपरा व्यतीत होती है, जैसे प्रातःकालविषे बहुरि प्रातःकाल आता है, तैसे जगत्‌की उही उही गती है, बहुरि अंधकार, बहुरि प्रकाश होता है, ब्रह्मतत्त्वतें स्फुरणरूप होइकरि बहुरि लीन होता है, जैसे तप्त लोहेतें चिणगारे उडते हैं, सो लोहविषे होते हैं; तैसे इह सब भाव चिदाकाशतें उपजते हैं, सो चिदाकाशविषे स्थित हैं, कबहू अव्यक्तरूप होते हैं, कबहू प्रगट होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु वृक्षविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्र दूषण

करि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि आत्माविषे जगत् भासते हैं, तिसीविषे स्थिति अरु लय होते हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणां उत्पन्न स्थित होइकरि लय होतियां हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो स्वरूपतें कहूं आरंभ नहीं हुआ, मनके फुरणेकरि भासते हैं ॥ हे रामजी! आत्मा सर्वशक्ति है, जो शक्ति तिसतें फुरती है, सो तिसीका रूप हो भासता है, जगत् सब असत्यरूप है, जिसके चित्तविषे महाप्रलयकी नांई असत्यका निश्चय है, सो पुरुष बहुरि संसारी नहीं होता, स्वरूपविषे जुड्या रहता है, ऐसे महामति ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सर्व ब्रह्मका निश्चय होता है, हमकों इही निश्चय है, जो संसार नहीं, सर्व ब्रह्म तत्त्वही है, सदा विद्यमान है, अरु अज्ञानीकी दृष्टिविषे जगत् निरंतर सत्यरूप है, संसार उसकों विद्यमान है, सो बहुरि बहुरि उपजिकरि नष्ट होता है, स्वरूपतें उपजणे बिनसणेकरि भी नष्ट नहीं होता; परंतु अज्ञानी जगत्कों असत्य नहीं जानते, सदा स्थित जानते हैं, तिसकरि सब नष्ट होते हैं, सब पदार्थ जगत्के विनाशरूप हैं, परंतु दृश्यकरि जगत् असत्य नहीं भासता, जो पदार्थकी सत्यता दृढ हो गई है, सो नाशरूप है, रहणा किसीका नहीं, कोउ पदार्थ सत्य भासता है, कोउ असत्य भासता है, ऐसा कौन पदार्थ है, इस जगतविषे जो कलनारूप करनेकरि विस्ताररूप ब्रह्मविषे न बनै, इह जगत् महाप्रलयविषे नष्ट हो जाता है, बहुरि उत्पन्न हो आता है, बहुरि जन्म अरु मरना होता है, सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत, सब बहुरि बहुरि उपजि आते हैं ॥ जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्तकों प्राप्त होती रहती है, तैसे सृष्टि उदय अस्त होती भासतिया हैं, बहुरि देवता, बहुरि दैत्य लोकांतर क्रम होते हैं, स्वर्ग, मोक्ष, इंद्र, चंद्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि, आदिक लोकपाल बहुरि बहुरि हो आते हैं, सुमेरु आदिक स्थान फुरि आते हैं, तमरूप जो हस्ती है, तिनके भेदणेकों सूर्यरूप केसरी सिंह उपजि आते हैं, स्वर्ग इंद्र अप्सरागण अमृतकरि आते हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभअशुभरूप

हो आते हैं, यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व क्रियाकरि संयुक्त जीव संसारी होते हैं, शुभकर्म करनेहारे स्वर्ग विषे विचरते हैं, सुख भोगतें हैं, पुण्यके क्षीण हुएतें गिराय देते हैं, मृत्युलोकविषे आते हैं, इस प्रकार कर्म करते हैं, उपजते अरु नष्ट होते हैं, स्वर्गरूपी कमल है, तिसविषे इंद्ररूपी भंवरा है, तिस स्वर्गकी सुगंधि लेकरि उह इंद्र चलता रहता है, अवर इंद्ररूपी भंवरा स्वर्गकमलकी सुगंधिकों लेणे आता है, जेता पुण्य कर्म किया होता है, तेता काल सुख भोगिकरि नष्ट हो जाता है, अरु सत्ययुग आदिक युग आते हैं, सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य जीव उपजी आते हैं, जैसे कुलालचक्र करिके वासण बनता है, तैसे चित्कला फुरणेकरि जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है, सुंदर स्थान जीवसंयुक्त होते हैं, बहुरि नष्ट हो जाते हैं, असत्यमात्र जगत्जाल जीविततें रहित शून्य मसाण हो जाते हैं, कुलाचल पर्वतके आकारवत् जल मेघ वर्षा करते हैं, तिसविषे जीव बुद्बुदेरूप होइकरि स्थित होते हैं, द्वादशसूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखतें अग्नि निकसता है, तिसकरि सब जगत् दग्ध होता है, बहुरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, एक शून्य आकाशही शेष रहता है, रात्र हो जाती है, जब रात्रका भोग चूकता है, बहुरि जीव जीर्ण देहकरि संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रचि लेता है, इस प्रकार शून्य आकाशविषे मन जगत्कों रचता है, जैसे शून्य स्थानाविषे गंधर्वमायाकरि नगर रचि लेता है, तैसे जगत्कों मन रचि लेता है, बहुरि प्रलय हो जाता है, इस प्रकार जगत्गण उपजिकरि महाप्रलयविषे नष्ट होते हैं, ब्रह्माके दिन क्षय हुएतें फेर जब ब्रह्माका दिन होता है, तब बहुरि रचि लेता है; बहुरि महाप्रलयविषे ब्रह्मादिक सब अंतर्धान हो जाते हैं, इस प्रकार प्रलयमहाप्रलय अनेक जगत्गण व्यतीत होवे हैं, महादीर्घ मायारूपी कालचक्र पडा फिरता है, तिसविषे मैं तुझकों सत्य क्या कहौं, असत्य क्या कहौं, सर्व भ्रांतिरूप दासुरके आख्यानवत् जगत् है, कल्पनामात्ररचित चक्र है, वस्तुतें शून्य आकाशरूप है, बडे आरंभसंयुक्त विस्ताररूप भासता है, तौ भी असत्यरूप है, जैसे भ्रमकरि दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे इह

जगत् मूढके हृदयविषे सत्य भासता है, तुम मूढ होना नहीं, ज्ञानवान्वत् विचारिकरि जगत्कों असत्य जानना ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगतसत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४७॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भोग अरु ऐश्वर्य करिके खैंचा है चित्त जो सो नानाप्रकार क्रियाके आरंभ करते हैं, राजस तामस सात्त्विककर्म करते हैं, उह मूढ आत्मा शांतिकों नहीं प्राप्त होता; जब भोगकी तृष्णातें रहित होवै, तब आत्माकों देखही, जिन पुरुषकों इंद्रियां गण वश नहीं करि शकते; सो आत्माकों प्रत्यक्ष हस्तविषे बिल्वफलवत् देखते हैं, जिस पुरुषनें विचार करिके अहंकाररूपी मलीन शरीरका त्याग किया है, तिनका शरीर जगतरूप हो जाता है, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागता है, अरु नूतन पाता है, तैसे मिथ्या शरीरकों त्यागिकरि आत्मविचारतें आत्मशरीरकों पाता है, ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं, सो जगतके पदार्थविषे आसक्त भासते हैं, तौ भी जन्ममरणकों नहीं पाते, जैसे अग्निकरि भूना बीज क्षेत्रमें नहीं उपजता, तैसे ज्ञानवान् बहुरि जन्म नहीं पाते, अरु जो अज्ञानी भोगविषे आसक्तबुद्धि हैं, सो मन अरु शरीरके दुःखकरि दुःखी होते हैं, वारंवार जन्म अरु मरणकों पाते हैं, जैसे दिन होता है, बहुरि रात्र होती है, तैसे उह जन्ममरण पाते हैं, तातें तुम अज्ञानीकी नांई नहीं होणा, व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है, तैसे करहु परंतु अंतरतें भोगादिककी ओर चित्तकों न देहु, आत्मपरायण रखहु ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! तुम जो कहा संसारचक्र दासुरके आख्यानवत् है, कल्पना करिके रचित है, तिसका आकार वस्तुतें शून्य है, यह तुमनें क्या कहा, इसकों प्रगट करी कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जगत् मायारूप वर्णनके निमित्त मैंनें तुमकों कहा है, अरु दासुरके प्रसंगसाथ प्रयोजन कछु न था, परंतु तेंनें पूछा है, तौ अब सुण ॥ हे रामजी! इस सृष्टिविषे मगध नाम देश है, सो विचित्र वृक्ष फलकरि पूर्ण है, वडा कदंब वनस्पति ताल करिके जंगल विचित्ररूप पक्षी सहित है, मनकेसोहणेहारा चतुर उरतें निरंध्र क

मलपुष्पसंयुक्त तडाग बगीचे अति सुंदर देश है, तहा एक पर्वतके तटके उपर निरंध्ररूप केलका खंड है, अरु और अनेक वृक्ष जो फूल फलकरि पूर्ण जीवके जीवनरूप हैं, कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं, तहां नगरविषे एक परम धर्मात्मा तापसी होता भया, दासुर तिसका नाम था, महातपकरि संयुक्त कदंब वृक्ष पर बैठिकरि वीतराग महाबुद्धिवान् तप करता था ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऋषीश्वर तापसी वनविषे किसनिमित्त आया था, अरु कदंब वृक्षपर किसनिमित्त बैठा सो कारण कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सरलोमा नामक ऋषीश्वर तिसका पिता होत भया है, मानौ दूसरा ब्रह्मा था, सो तिस पर्वतपर रहता था, तिसके गृहविषे दासुर नामक पुत्र होता भया, जैसे बृहस्पतिके गृहविषे कच होवै; तैसे दासुरने पुत्र संयुक्त वनविषे चिरकाल व्यतीत किया, तहा जगके क्षीण भोगकरि देहका त्याग किया, स्वर्ग लोककों गमन करत भया, जैसे पक्षी आलयकों त्यागिकरि आकाशमें उडता है, तिस वनविषे दासुर एकाएकी रहि गया, पिताके वियोगकरि रुदन करत भया, जैसे कुंज वियोगकरि कुरलाती है, जैसे हिमऋतुविषे कमलकी शोभा नष्ट हो जाती है, तैसे दीन हो गया, तब उहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी, सो दया करी आकाशवाणी करत भई ॥ हे ऋषिपुत्र! बुद्धिवान् अज्ञानीकी नांई क्या रुदन करता है, इह संसार सर्व असत्‌रूप है, तूं इस संसारकों देखता नहीं, इह तौ नाशरूप महाचंचल है, सब काल उत्पन्न अरु विनाश होता है, कोउ पदार्थ स्थित नहीं रहता, ब्रह्मातें आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब नाशरूप है, इसविषे संदेह कछु नहीं, तातें तूं पिताके मरनेका विलाप मत कर, इह बात अवश्य इसी प्रकार है, जो उत्पन्न भया है, सो नष्ट होवैगा, स्थिर कोउ नहीं रहैगा, जैसे सूर्य उदय होता है, बहुरि अस्त होता है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार अशरीर देवीकी वाणी दासुरनें सुणी, तब रक्तनेत्र दासुर धैर्यकों प्राप्त भया, जैसे मेघका शब्द सुणीकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे शांतिवान् होइकरि यथाशास्त्र पिताकी जो क्रिया थी,

सो सब करत भया, तिसके अनंतर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम करत भया, ब्राह्मणका जो कर्म है, तप, विद्या, सो सब शीख तिसके अध्ययनकरि श्रोत्रिय भया था, परंतु अज्ञान हृदय था, ज्ञानी न था, ऐसा श्रोत्रिय होइकरि तपके निमित्त उठि विचार किया, जो कोउ पवित्र स्थान होवै, तहां जाय तप करौं, देखता देखता पृथ्वीविषे किसी स्थानमें चित्त विश्रांतिवान् न भया, सब पृथ्वी उसकों अशुद्ध दृष्टि आई, कहूं कोउ विघ्न भासै, इस प्रकार सब पृथ्वीकों अशुद्ध देखिकरि, विचारत भया सो और स्थान तौ सब अशुद्ध हैं, परंतु वृक्षकी शाखापर बैठी तप करौं, ऐसा कोउ उपाय होवै, जो वृक्षकी शाखापर अग्रभाग विषे मैं स्थित पाउं, ऐसे चिंतवीकरि अग्नि प्रज्वलितकरि अरु अपणे मुखका मांस काटिकरि होमनें लगा, तब देवताका मुख जो अग्नि है, सो विचारत भया, जो ब्राह्मणका मास मेरे मुखविषे न आवै, तब अरुचि जैसे देह धारि करि ब्राह्मणके निकट आया, अरु कहत भया, जैसे ब्रह्माकों सूर्य कहै, तैसे बडे प्रकाश शरीरकों धरके अग्नि कहता भया ॥ हे ब्राह्मणकुमार! जो कछु तुझकों वांछित वर है, सो माग, जैसे भंडारकों खोलिकरि मणि लेता है, तैसे मुझसों वर लेहु, जब अग्निनें ऐसे कहा, तब दासुरनें पुष्प धूप सुगंधि आदिककरि अग्निका पूजन किया, अरु प्रसन्न होइकरि कहत भया ॥ हे भगवन्! प्राणाहुतीके पवन शरीरसों मैंनें तप करनेके निमित्त उद्यम किया है, सो और शुद्ध स्थान कोउ नहीं मुझकों भासता है, अरु मैं चाहाता हौं जो इस वृक्षकी अग्र शिखाविषे स्थित होणेकी मुझकों शक्ति होवै, इहां बैठीकरि तप करौं, इह वर देहु, जब इस प्रकार मुनीपुत्रनें कहा, तब अग्नि देवनें कहा, ऐसेही होवै, इस प्रकार कहिकरि अंतर्धान हो गया, जैसे संध्याकालके मेघ अंतर्धान हो जाते हैं, तब वरकों पायके ब्राह्मणकुमार प्रसन्न भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा पूर्ण कलाकरि प्रसन्न होता है, तैसे भया, जैसे चंद्रमाके प्रकाशकों पायकरि कमलनी शोभती है, तैसे वरकों पायकरि शोभत भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्र

करणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार वरकों पायकरि दासुर कदंब वृक्षउपर चढनेकी इच्छा करता भया, कैसा है वृक्ष, अद्भुत सुंदर बडा विस्तार है जिसका, ऐसे वृक्षकों देखिके बुद्धिवान् दासुर वृक्षके टासके अग्रउपर जाय बैठा, नूतनकमल पत्र उपर खिलते देखने लगा, दिशाका कौतुक चंचलरूप देख्या, दृश्यरूप मानौ चंचल पुतली है, श्याम आकाश तिसका शीस है, तिसपर श्याम केशही प्रकाशरूप हैं, पाताल तिसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र हैं, पुष्पवत् गौर अंग हैं, ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास तिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरणेतें जल चलता है, सो मानौ उरका झनकार है, मोहरूपी शरीर वनस्पति रोम हैं, सूर्य चंद्रमा जिसके कुंडल हैं, पर्वत बेडे हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता तिसके पित्त हैं, चंद्रमा कफ है, ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसके उपर स्थित होइकरि उह तप करणे लगा, तहां तिसका नाम कदंबतपासुर हुआ, एक क्षण दिशाकों देखिके उहांतें वृत्तिकों खैंचत भया, पद्मासन बांधिकरि मनकों एकाग्र किया, सो दासुर परमार्थपदतें अज्ञात था, फलकी कृपणताकरि कर्मांतरविषे स्थित था, फलकी ओर मन था, अरु जिस वृक्षका पत्र आकाशकों लगता था, उस पत्र उपर स्थित भया, अरु मनकरि यज्ञका आरंभ किया, जेती कछु सामग्री विधि थी, सो सब यथाशास्त्र मनकरि करत भया, दश वर्ष मनविषे व्यतीत किये, सर्व देवताका पूजन किया, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधिसंयुक्त मनकरि करत भया, ब्राह्मणोंकों बहू दक्षिणा दी, इस प्रकारतें समय पायकरि उसका अंतःकरण शुद्ध भया, विस्तीर्ण निर्मल चित्तविषे स्थित भया, बलात्कारसों ज्ञान उसके हृदयविषे प्रकाशत भया, आत्माके आगे वासना मलीन आवरण था, सो नष्ट हो गया,

जैसे शरत्कालविषे तडाग निर्मल होता है, तैसे मुनीश्वरका चित्त संकल्पतें रहित भया, तब उह जो मुनीश्वर बैठा था, वृक्षपर टासके अग्रमें, तहां एक वनदेवीकों अग्रभागविषे देखत भया, बडे विलास नेत्र अरु चपलरूप पुष्पकी नांई दंत,कामदेवकी नांई महासुंदर शरीर, अरु कामके मदकरि पूर्ण नील कमलकी नांई लोचन, मनके हरनेहारी है, तिसकों मुनीश्वर कहता भया, अरु उह नम्रभूत होइकरि देखत भई, जैसे कोकिला कुसुमकरि पूर्ण वनलताके आगे नम्र होवै, तैसे उसकों कहत भया ॥ हे कमलनयनी! तूं कवन है, कैसी तूं शोभितरूप है, अरु इस पुष्पकरि संयुक्त लताविषे किस निमित्त आय स्थित भई है, जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब कामदेवके मोहनेहारी गौरी बोलत भई ॥ हे मुनीश्वर! जो पदार्थ इस पृथ्वीविषे बडे कष्टकरि प्राप्त होता है, सो महापुरुषकी कृपाकरि सुगम प्राप्त होता है, हम इस वनके देवता हैं, लीला करते फिरते हैं, अरु जिस निमित्त मैं तुमारे आगे आई हौं सो सुणो ॥ हे मुनीश्वर! पीछले दिनकी जो चैत्रशुद्ध त्रयोदशी थी, तिस दिन इंद्रके नंदनवनमें उत्साह हुआ था, तब सब वनदेवियां एकत्र भई थीआं, त्रिलोकीमें आगमन किया था, तहां सब देवियां पुत्रसंयुक्त बडे पुष्पकरि विलासक्रीडा करत भइयां, अरु मैं अपुत्र थी, तिस कारणतें मैं दुःखित भई, अरु दुःखके निवारणे अर्थ तुमारेपास आई हौं, तुम अर्थके सिद्धकर्ता हौ, बडे वृक्षपर तुम स्थित हौ, मैं अनाथ पुत्रकी वांछाकरि तुमारे निकट आई हौं, तातें मुझकों पुत्र देहु, अरु जो न देहुगे तब मैं अग्नि प्रज्वलितकरि जलि मरौंगी,इस प्रकार पुत्रका दुःख दाहकरि निवृत्त करौंगी॥ हे रामजी! जब इस प्रकार वनदेवीनें कहा, तब मुनीश्वरनें हसिकरि कहा, अरु दया करिके हस्तमें पुष्प दिया ॥ हे सुंदरी! तूं जा, तुझकों एक मास उपरांत पूजणे योग्य अरु महासुंदर पुत्र होवैगा, परंतु तैनें जो इच्छा धारी थी, जो पुत्र न प्राप्त होवै, तौ जलि मरौंगी, तिसकरि अज्ञानी पुत्र होवैगा, यत्नकरि ज्ञान तिसकों प्राप्त होवैगा, जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब प्रसन्न होइकरी वनदेवी कहत भई ॥ हे मुनीश्वर!

श्वेतथवैभव.

मैं इहां रहिकरि तुमारी टहल करौंगी, परंतु मुनीश्वरनें तिसका त्याग किया अरु कहा, हे सुंदरी! तूं अपणे स्थानविषे जाय रह, तब उह अपणी वनदेवीविषे जाय रही, तिसकों समय पाय पुत्र उत्पन्न हुआ, जब दस वर्षका बालक भया, तब मुनीश्वरके निकट ले आई, आयकरि पुत्रसंयुक्त दोनौंनें प्रणाम किया, अरु पुत्रकों मुनीश्वरके आगे स्थापन करी कहत भई ॥ हे भगवन्! इह कल्याणमूर्ति बालक है, सो तुम हम दोनौंका पुत्र है, उसकों मैंनें संपूर्ण विद्या शिखाई है, अरु परिपक्क किया है, सर्वका वेत्ता भया है, परंतु केवल ज्ञानकों प्राप्त नहीं भया, तातें जिसकरि इह संसारयंत्रविषे बहुरि दुःख न पावै, सो ज्ञान कृपाकरि तुम उसकों उपदेश करौ, हे प्रभो! जो शुभ कुलविषे उपजा होवै, अरु चाहै, मेरा पुत्र मूढ रहै, सो ऐसी बात कवण है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनें कहा, तब मुनीश्वरनें कहा, इसकों तुम इहां छोडि जाहु, तब उह देवी छोडिकरि गमन करत भई, अरु बालक पिताके पास रहा, सो बडे यत्न करिके तिसकों ज्ञानकी प्राप्ति भई, नानाप्रकारके उक्त आख्यान, इतिहास, अरु अपणे दृष्टांत कल्पिकरि चिरपर्यंत पुत्रकों जगात भया, वेदवेदांतका निश्चय अनुद्वेग होइकरि उपदेश किया, विस्तार करिके कथाके क्रम जो अनुभव बडे गूढ अर्थ हैं, सो कहे, जो अपणे अनुभववशतें प्रत्यक्ष हैं, सो बल करिके उपदेश किया, शृंगार आदिक जो अष्ट कर्म हैं, तिनतें रहित परमार्थ तत्त्वका उपदेश किया, जो अर्थ भये कहणा है, सो महात्मा पुरुषनें इसकों उपदेश किया, तिसकरि जाग्या, अरु शांत आत्मा होता भया, जैसे मेघके शब्दकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे उह बालक प्रसन्न भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरसुतबोधनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजीके स्नानकों चला जाता था, अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षिके मंडलतें चला था, जिस वृक्षपर उह बैठे थे, तिसके पाछे मैं आया, तब कछुक शब्द श्रवण किया, वनविषे जो वृक्ष हैं, तिसके उपर छिद्रसों शब्द होता है, जैसे मुंदे कम

लसों भंवरेका शब्द होता है, तैसे वृक्षके अग्रसों शब्द श्रवण किया, जो कहता है, हे पुत्र बुद्धिवान्! तूं श्रवण कर, मैं तुझकों वस्तुके निरूपण निमित्त आश्चर्याख्यान कहता हों, एक राजा होता भया है, सो महापराक्रमी अरु त्रिलोकविषे प्रसिद्ध नाम उसका श्वेतथ, बडा लक्ष्मीवान् जगत्की रचना क्रम उह करता है, अरु सब मुनी जो जगतविषे बडे नायक हैं, सो भी उत्तम चूडामणि करिके तिसकों शीशविषे धरते हैं, अरु कर्म जो करता है, सो सहस्र असंख्य है, नानाप्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है, अरु तिस महात्मा पुरुषकों त्रिलोकीविषे किसीनें वश नहीं किया, सहस्रही तिसके आरंभ हैं, सुख अरु दुःखकों देणेहारा है, तिसके आरंभकी संख्या कछु कही नहीं जाती, जैसे समुद्रके कल्लोल तरंगकी कछु संख्या कही नहीं जाती, तैसे उसके आरंभ हैं, अरु उसका जो वीर्य पराक्रम है, सो किसी शस्त्र अस्त्र अग्निकरि छेद्या नहीं जाता, जैसे आकाशकों मुष्टिप्रहारकरि तोडी नहीं शकता, तैसे उह है, बडी विस्तृत तिसकी भुजा हैं, अरु लीला करि आरंभकों रचता है, तिसके आरंभ दूर करनेकों कोउ समर्थ नहीं, इंद्र विष्णु सदाशिव भी समर्थ नहीं ॥ हे महावाहो! तीन उसके देह हैं, दिशाकों भरि रहे हैं, तीन देहकरि जगत्विषे पसरि रहा है, उत्तम अधम मध्यम करिके अरु बडे विस्ताररूपी आकाशतें उत्पन्न भया है, अरु तहांही शरीरविषे स्थित भया है, जैसे आकाशका पक्षी आकाशविषे रहता है, जैसे पवन आकाशविषे है, तैसे तिस पुरुषनें तिस परम आकाशविषे वगीचे संयुक्त एक स्थान अपणी क्रीडाका रचा है, पर्वतके शिखरमें मोतीकी वल्लीयां रची हैं, सप्त वावडियां करियां हैं, तिनकरि स्थान शोभता है, दो दीपक रचे हैं, जो तेल अरु बातीतें रहित प्रकाशते हैं, सो शीत अरु उष्णरूपहैं, कबहू अधकों, कबहू उर्ध्वकों नगरविषे भ्रमते हैं, मूर्ख वरांकगण रचे हैं, कोउ गण ऊर्ध्व स्थित हैं, कोउ मध्य, कोउ अधविषे स्थित हैं, केई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, केई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, केई वस्त्रकरि आच्छादित हैं, केई वस्त्ररहित हैं, नव द्वारकरि स्थान किया है, तिसमें निरं

तर बहुत वृक्ष रोपे हैं, पंच दीप देखणे निमित्त किये हैं, तीन स्तंभ किये हैं, तिनविषे और छोटे स्तंभ किये, मूलमेंके तिनउपर लेपन किया है, पादतलीकरि संकुली किये हैं, महामायाकरि तिस राजानें उह नगर रचे हैं, नगरकी रक्षानिमित्त सैना रची है, एक नीति देखणेवाले यक्ष हैं, विवरक गणकरि उह चलते नानाप्रकारकी क्रीडा करते हैं, तिन शरीरकरि सब ठौरविषे विचरता है, यक्ष सब ठौरविषे समीप रहता है, लीलाकरि एक स्थानकों त्यागिकरि और स्थानविषे जाय चेष्टा करता है, कबहू इच्छा होती है, तब चंचल चित्तसों भविष्यत् पुरकों रचिकरि तिसविषे स्थित होता है, भयकरि वेष्टित हुआ तहांतें उठि आता है, वेग करिके गंधर्वनगरकों रचता फिरता है, जब इच्छा करता है जो मैं उपजों तब उपजि आता है, जब इच्छा करता है, जो मैं मरि जाऊं तब मरि जाता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि लय हो जाते हैं, इस प्रकार राजा बडे व्यवहारकों करता है, वारंवार रचना करिके कबहू आपही रुदन करने लगता है, मैं क्या करों, मैं अज्ञानी हों, मैं दुःखी हों, चित्तसों आतुर होता है, ऐसे विचार करिके कबहु उदय होइकरि बडा स्थूल हो जाता है, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती है, तैसे बढिकरि आपकों सुखी मानता है, विस्तारकों पायकरि चलता फिरता है, बडे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तिस महीपतिका बडा महिमा है, उचितरूप होइकरि नगरमें स्थित है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे श्वेतथवैभववर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥५१॥ ॥ ॥

॥हे रामजी! जब इस प्रकार दासुरनें कहा, तब वृक्षके अग्रभाग बैठे पुत्रनें प्रश्न किया॥ ॥पुत्र उवाच॥ हे भगवन्! उह श्वेतथ राजा कवन है, जगत्विषे जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है, अरु नगर तिसनें कवन रच्या है, जो भविष्यत् नगरविषे रहता है, रहणा तौ वर्तमानविषे होता है, भविष्यत्विषे कैसे रहता है, इह विरुद्ध अर्थ कैसे बनता है? इह वचनकरि मेरी बुद्धि मोहित भई है॥ ॥दासुर उवाच॥ हे पुत्र! मैं तुझकों यथार्थ कहता हों तूं श्रवण करु, जिसके जानणेतें संसारचक्रकों ज्योंका त्यों देखैगा, जो इह वस्तुतें क्या

है, इह संसार आरंभ असत्य उठा है, बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, तौ भी असत्यरूप है, कछु हुआ नहीं, जैसे इह संसार स्थित है, तैसे मैं तुझकों कहता हौं, इह आख्यान मैंनें तुझकों जगत् निरूपण निमित्त कहा है ॥

हे पुत्र ! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है, तिसतें जो संकल्प उठ्या है, तिस संकल्पका नाम श्वेतथ है, सो आपही उपजता अरु आपही लीन हो जाता है, सब जगत् तिसका रूप है, जो बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, सो तिसके उपजणेकरि जगत् उपजता है, नष्ट होणेकरि नष्ट होता है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इंद्रादिक सब तिसके अवयव हैं, जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं, जैसे पर्वतके अंग शिखर होते हैं, तैसे तिसके अंग हैं, शून्य आकाशविषे तिसनें इह जगत्रूपी नगर रचा है, प्रतिभासके अनुसंधानतें उही चित्कला विरंचिपदकों प्राप्त भई है, अरु चतुर्दश स्थान जो कहे हैं सो विस्तारसंयुक्त चतुर्दश लोक हैं, वन बगीचे उपवनसंयुक्त पर्वत महाचल मंदराचल सुमेरु आदिक क्रीडाके स्थान हैं, उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बातीविना कहे हैं, सो सूर्य अरु चंद्रमा हैं, जगत्रूपी नगरविषे अध ऊर्ध्वकों प्रकाशते हैं, सूर्यकी किरणांका जो प्रकाश है, मानौ मोतिके तरंग फुरते हैं, अरु इस समुद्र आगे क्षीर जल आदिक जो सप्त समुद्र हैं, सो बावडीयां हैं, जीवरूपी किरायती व्यवहार करते लेते देते अध ऊर्ध्वकों जाते हैं, पुण्यकरि स्वर्गलोकमें जाते हैं, पापकरि नरककों चले जाते हैं, अरु जगतविषे संकल्प करिके जो क्रीडाके निमित्त तिसनें विवरण रचे हैं, सो देह है, कोउ देवता होइकरि ऊर्ध्व स्वर्गविषे रहते हैं, कोउ मनुष्य होइकरि मध्यलोकविषे रहते हैं, अरु दैत्य नाग आदिक पातालविषे रहते हैं, पवनरूपी प्रवाहकरि समस्त यंत्र चलते फिरते हैं, अस्थितरूपी तिनविषे लकडियां हैं, रक्तमांसकरि लेपन किये हैं, केई दीर्घ कालकरि नष्ट होते हैं, केई शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं, शीशपर केश हैं, सो श्याम वस्त्र है, कर्ण, नासिका, नेत्र, जिव्हा, अरु मूत्रपुरीषके स्थान लिंग इंद्रिय गुद इह नव द्वार हैं, तिनसों निरंतर पवन चलता है, शीत उष्ण रूपसों पान

अपान हैं, नासिक आदिक तिसके झरोंखे हैं, भुजारूप गलियां हैं, पंच दीपक पंच इंद्रिया हैं॥ हे महाबुद्धिवान्! इह सर्व संकल्परूपी मायाकरि रचे हैं, अहंकाररूपी तिसविषे यक्ष हैं, महाभयका स्थान इह अहंकारकरि होता है, देहरूपी विवरण हैं, सो अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं, हे असत्यरूप परंतु सत्य होइकरि इसके साथ पीडा करते हैं, जैसे भांडविषे बिलाड बैठे, जैसे भश्रकाविषे सर्प बैठे, जैसे बांसविषे मोती है, तैसे देहविषे अहंकार है, क्षणविषे उदय होता है, क्षणविषे शांत हो जाता है, दीपकवत् देहरूपी गृहविषे संकल्प उठता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, अरु भविष्यत् नगर जो कहा है, सो सुण, अपणा जो कोउ स्वार्थ चितवता है, जो इह कार्य इस प्रकार करौंगा, अमके दिन इस देशकों जाउंगा, जैसे चितवता है, तैसे भासि आता है, तिसविषे जाय प्राप्त होता है, सो अणहोतेकों वर्तमान करता है, जबलग दुर्वासना है, तबलग अनेक दुःख होते हैं, अरु इह दुष्ट मन अहंकार स्थूल हो जाता है, अरु संकल्पतें रहित हुए शीघ्रही इसका नाश होता है, जब तूं संकल्पनाश करैगा, तब शीघ्रही कल्याणकों प्राप्त होवैगा, अपणा संकल्प उठिकरि आपहीकों दुःखदायक होता है, जैसे बालककों अपणे परछायेविषे वैतालकल्पना होती है, अरु आपही भय पाता है, तैसे अपणा संकल्प अनंत दुःखदायक होता है, सुख कोउ नहीं पाता, संपूर्ण जगत्विस्तार संकल्पकरि होता है, आत्माकी सत्ताकरि बढता है, बहुरि नष्ट हो जाता है, विचार कियेतें नहीं रहता, जब मनविषे विचार उत्पन्न होता, तब नष्ट हो जाता है, जैसे सायंकालविषे धूपका अभाव हो जाता है, जैसे प्रकाश उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, तैसे विचार करिके संकल्प आपही नष्ट हो जाते हैं, मन आपही क्रिया करता है, अरु आपही दुःख पाता है, बहुरि रुदन करने लगता है, जैसे वानर काष्ठके यंत्रकी कीलीकों हिलाइकरि फसता है, अरु निकरी नहीं शकता, दुःख पाता है, तैसे अपणाही संकल्प आपकों दुःखदायक होता है, संकल्पकरि जो कल्पित विषयका आनंद है, सो जब जी

वकों प्राप्त होता है, तब उंची ग्रीवा करी हर्षवान् होता है, जैसे आकाशमात्र किसी वृक्षके फल उंटके मुखमें आय लगै, अरु उह उंची ग्रीवाकरिके विचारै, तैसे अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्तिविषे उंची ग्रीवाकरि हर्षवान् होते हैं, क्षणविषे जीवकों विषयकी प्राप्ति उपजती है, विशेष करिके इष्टकी प्राविप्तिषे बढते हैं, जब कोउ दुःख होता है, तब उह प्रीतिकी प्रसन्नता उठी जाती है, क्षणविषे विकारी होता है, क्षणविषे प्रसन्न होय बैठता है, वस्तु गुणकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, शुभसंकल्पकरि शुभकों देखता है, अशुभ संकल्पकरि अशुभकों देखता है, शुभकरि निर्मल होता है, अशुभकरि मलीन होता है, जैसे आगे तेरी इच्छा होवै, तैसे कर, श्वेतथके मैंनें जो तुझकों तीन यह शरीर कहे थे, उत्तम, मध्यम, अधम, सो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन गुण तीन देह हैं, यही सबका कारण जगत्विषे स्थित है, जब तामसी संकल्पसाथ मिलता है, तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करता है, महाकृपणताकों प्राप्त होता है, मृतक होइकरि कृमि कीट जन्मकों पाता है, जब राजसी संकल्पसाथ मिलता है, तब लोकव्यवहार करता है, स्त्रीपुत्रादिकके रागसों रंजित होता है, पापकर्म नहीं करता, तब मृतक होइकरि संसारविषे मनुष्यशरीर पाता है, जब सात्त्विकी भावविषे स्थित होता है, तब धर्मज्ञानपरायण होता है, मोक्षपदकी तिसकों अंतर्भावना होती है, धर्मज्ञान पायकरि चक्रवर्त्ती राजाकी नांई स्थित होता है, जब तिन भावकों त्याग करता है, तब संकल्पभाव नष्ट हो जाता है, अक्षय परमपद शेष रहता है, तातें संसारदृष्टिकों त्याग करिके मनकरि मनकों वश करके अंतरबाहिरतें जो दृश्यका अर्थ चित्तविषे स्थित है, तिस संस्कार अंकुरकों निवृत्त करके जो शांतात्मा होवै ॥ हे पुत्र! इसविना और उपाय नहीं, जो तूं सहस्र वर्ष दारुण तप करै, अथवा लीलावत् आपकों शिलासम चूर्ण करै, अथवा समुद्रविषे प्रवेश करै, वडवाग्निविषे प्रवेश करै, गरताविषे गिरै, खड्गधाराके सन्मुख युद्ध करै, अथवा सदाशिव तुझकों उपदेश करै, ब्रह्मा, विष्णु, वृहस्पति दया करिके उपदेश करैं, अथवा पातालविषे जाय स्थि

त होवै, पृथ्वीविषे स्वर्गविषे जाय स्थित होवै, इत्यादिक अवर स्थानविषे जावै, तौ भी अवर उपाय कल्याणके निमित्त कोउ नहीं, जैसे संकल्पका उपशम करणा उपाय है, तैसे जो अनादि अविनाशी अविकारी परम पावन सुख है, सो संकल्पके उपशमतें पाता है, तातें यत्नसों संकल्पकों उपशम करहु, जेते कछु भाव पदार्थ हैं, सो सब संकल्परूपी तत्त्वसाथ परोए हुए हैं, जब संकल्परूपी तंतु टूटि पडता है, तब नहीं जानता, जो पदार्थ कहां गए, सत्य असत्य पदार्थ सब संकल्पमात्र हैं, जबलग संकल्प है, तबलग इह भासते हैं, संकल्पके निवृत्त हुएतें असत्य हो जाते हैं, संकल्प करिके जैसी जैसी चितवना करता है, क्षणविषे तैसे हो जाता है, संसारभ्रम संकल्पकरि उदय भया है, संकल्प निवृत्त कियेतें चित्त अद्वैतके सन्मुख होता है, सर्व जगत् असत्यरूप है, माया करिके रचा है, जब संकल्पकों त्यागिकरि यथाप्राप्तिविषे विचरैगा, तब तुझकों खेद कछु न होवैगा, असत्यरूप जगत्के कार्यविषे दुःखित होना व्यर्थ है; आपसंयुक्त जगत्कों असत्य जानैगा, तब दुःख भी न होवैगा, जबलग जगत्का सद्भाव भासता है, तबलग दुःख होता है, जब असत्य जान्या, तब दुःख भी नहीं रहता, बोधवान हैं, तिनकों दुःखी कोउ नहीं भासता, तातें जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है, तिसविषे स्थित होहु, विकल्पके जो बडे समूह हैं, तिनकों त्याग करहु, अरु जो अद्वैत आत्मपद है, तिसविषे विश्रामसुखकों प्राप्त होइकरि सुषुप्तिरूप चित्तवृत्तिकों धारि करिके विचरहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥ पुत्र उवाच ॥ हे भगवन्! संकल्प कैसा है? अरु सो उत्पन्न कैसे होता है? अरु वृद्ध कैसे होता है? अरु नाश कैसे होता है? ॥ दासुर उवाच ॥ हे पुत्र! अनंत जो आत्मतत्त्व है, सो सत्ता समानरूप है, सो चेतनसत्ता जब द्वैतके सन्मुख होती है, तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूप है, सो संकल्पका अंकुर ज्ञान उही बीजरूपी संवित् उल्लासमात्र सत्ताकों पायकरि घनभावकों प्राप्त होता है, सोई फुरनाकरि आकाशकों चेतता है, तिसकरि आकाश

कों पूर्ण करता है, जैसे जलकरि मेघ स्पष्ट होता है, तैसे फुरणेकी दृढताकरि आकाश हाता है, अपना स्वरूप इसकों आत्मसत्तातें भिन्न भासता है, इह भावना चित्तविषे भावित हो जाती है, जैसे बीज अंकुरभावकों प्राप्त होता है, तैसे चित्तसंवित् संकल्पभावकों प्राप्त होता है, संकल्पहीकरि संकल्प उपजता है, आपहीकरि स्वतः बढता है, तिसकरि सुखी दुःखी होता है, जब अचलरूपतें चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर फुरता है, तब तिस फुरणेका नाम संकल्प होता है, स्वरूपतें भूलिकरि जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब संकल्प वृद्ध होता है, सोइ वृद्ध हुआ जगत्जालकों रचता है, जेता कछु प्रपंच है, सो संकल्पका रचा संकल्पमात्र है, जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलतें इतर नहीं, तैसे जगत् भी संकल्पतें इतर नहीं, अरु आकाशमात्रतें भ्रांतिरूप जगत् फुरि आया है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा भासता है, तैसे तुमारा उपजणा अरु बढणा भ्रममात्र है, जैसे तमका चमत्कार होता है, तैसे इह जगत् मिथ्या संकल्पकरि उदय हुआ तुझकों भासता है ॥ हे पुत्र! तेरा उपजणा भी असत्य है, अरु बढणा भी असत्य है, जब तूं इस प्रकार जानैगा, तब इसकी आस्था लीन हो जावैगी, इह पुरुष है, उह है, मैं हौं, इह जो भाव दुःख सुखकरि संयुक्त पदार्थ भासते हैं, सो इह अज्ञान करिके व्यर्थ भासता है, इनविषे आस्था करिके अंतरतें तपता रहता है, अहं त्वं आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं, जब इह भावना करैगा, तब तूं पृथ्वीविषे कल्याणरूप होइकरि विचरैगा, बहुरि संसारकों प्राप्त न होवैगा, अहं त्वंतें आदि लेकरि जब सब सर्व दृश्यकी भावना हृदयतें जावै, तब इसका अभाव हो जावैगा ॥ हे पुत्र! फलकों तोडिकरि मर्दन करनेविषे भी कछु यत्न होता है; परंतु आपकरि सिद्ध जो भावमात्र संकल्पका त्याग करणा तिसविषे यत्न कछु नहीं, फूलके ग्रहणविषे भी यत्न है, हस्तका स्पंद होता है, तातें जो कछु भावरूप है, सो है नहीं, तौ तिसके त्यागणेविषे क्या यत्न है, तातें कछु है नहीं, इस दृश्य प्रपंच सबका जो होणा है, तिसका विपर्ययभाव करना, जो न मैं हौं, न जगत् है, जि

स पुरुषनें इस दृश्य जगत्का सद्भाव संकल्प नाश किया है, सो शांतरूप होता है, इह संकल्प तौ एक निमेषविषे लीलासों जीति लेता है, भावरूप जो आत्मसत्ता है, तिसविषे जब अपणा आप उपशम करै, तब स्वस्तिक होता है, अपणे मनके संकल्पकरि मन संकल्पकों छेदैगा, जो आत्मतत्त्वविषे स्थित होवैगा, इसविषे क्या यत्न है, संकल्पके उपशम हुएतें जगत् उपशम होता है, अरु सब दुःख संसारके मूलतें नाश हो जाते हैं, संकल्प मन बुद्धि जीव अहंकार आदिक सब नाम हैं, सो भेद कहणेमात्र हैं, इनके अर्थरूपविषे भेद कछु नहीं, जेता कछु दृश्य प्रपंचजाल है, सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पके अभाव हुएतें कछु नहीं रहता, तातें संकल्पकों हृदयतें काटहु, आकाशकी नांई जगत् शून्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रांतिकरि भासती है, तैसे इह जगत् असत्य विकल्पकरि ऊठा है, संकल्प अरु जगत् दोनों असत्य हैं, तातें कछु नहीं, सब असत्यरूप हैं, असत्यरूप संकल्पनें सिद्ध किया है, तिसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है, जब ऐसे जान्या, तब इष्टरूप किसकों जानै अरु वासना किसकी करै, अरु अनिष्ट किसकों जानै, सब वासना नष्ट हो जाती है, वासनाके नष्ट हुएतें सिद्धताकी प्राप्ति होती है ॥ हे पुत्र! जो इह सत्य जगत् होता तौ विचार कियेतें भी दृष्ट आता, सो तौ विचार कियेतें इसका शेष कछु नहीं रहता, जैसे प्रकाशकरि देखेतें तम दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखेतें जगत् सत्य नहीं भासता, तातें अविचारतें सिद्ध है, सो असत्यरूप है, बुद्धिकी चपलता करिके भासता है, जिस पुरुषकों जगत्भावना उठि गई है, तिसकों जगत्के सुखदुःख स्पर्श नहीं करते, निर्णयकरि जो असत्यरूप जान्या, तिसविषे बहुरि आस्था नहीं उदय होती, जब आस्था गई, तब भाव अभाव बुद्धि भी नहीं रहती, संसारके सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेकरि रचे हैं, मनोराज्यके नगरवत् स्थित भए हैं, भूत भविष्य वर्तमान काल जगत् मनकी वासनाकरि फुरता है, मानसी शक्तिविषे स्थित है, सो मन क्षणविषे बडा दीर्घ आकार करता है, क्षणविषे सूक्ष्म आकारकों धरता है, ग्रहण क

रियें तौ ग्रहण किया नहीं जाता; जैसे समुद्रकी लहरीकों ग्रहण करियें तौ पकडी नहीं जाती, तैसे मन है, यद्यपि बडे आकारसंयुक्त जगत् भासता है, तौ भी कछु वस्तु नहीं, क्षणभंगुर असार है, वासनाकरि जगत् भासता है, वासनाके क्षय हुएतें शांत हो जाता है, जब तुझकों वासना फुरै, तब तिसी कालविषे तिसकों शीघ्रही त्याग करहु, इह दृश्य प्रपंच कछु है नहीं, असत्यरूप है, ऐसी भावना करिके वासना नष्ट हो जावैगी, इसविषे संदेह कछु नहीं, जो इह संकल्परूप जगत् होवै, तौ इसके त्याग करनेविषे यत्न होवै, इह तौ असत्यभूत प्रपंच है, तिसका अनर्थ चिकित्साकरि तुझकों खेद कछु न होवैगा; जो हैही नहीं, तिसके त्यागविषे क्या यत्न है, जो इह संसार मूल सत्य होता, तौ इसके नाशनिमित्त कोउ न प्रवर्तता, जैसे कोयलेकों श्वेत करणे निमित्त धोणेकों कोउ नहीं प्रवर्तता, तैसे सब जगत् असत्यरूप है, विचार कियेतें कछु नहीं पाता, तातें असत्य अहंकाररूप दृश्यकों त्यागिकरि सत्य आत्माका अंगीकार करहु, जैसे धान्यसों तूष डारि देते हैं, अरु चावलका अंगीकार करते हैं, तैसे यत्न करिके सर्व दृश्यकों त्यागी आत्मपदविषे प्राप्त होहु, इह परम पुरुषार्थ है, और क्रिया किस निमित्त करता है, मलरूप संसारका नाश करहु, जैसे तंदुलसों तूष दूर करते हैं, तब वास्तव आकार तंदुल भासते हैं, तातें युक्ति करिके जान जो संसार असत्य कृत्रिमरूप है, तिसके नाशविषे क्या यत्न है, जैसे तांबेसों मल युक्ति करिके दूर करते हैं, तब निर्मल भासता है, तैसे युक्तिकरि दृश्य मल जब दूर होवै, तब बोध स्वरूप प्राप्त होवै, तिस कारणतें उद्यमवान होहु ॥

हे पुत्र! इह संसार संकल्पविकल्पतें उत्पन्न भया है, विचारकरि अल्प यत्नसों निवृत्त हो जाता है, अरु तूं देख जो इह कवन है, जो सदा स्थिर रहता है, सब पदार्थ असत्यरूप हैं, देखते देखते नष्ट हो जाते हैं, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार अभाव हो जाता है, जैसे भ्रांति दृष्टिकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, स्वच्छ दृष्टिकरि दूसरा अभाव हो जाता है, तैसे विचार करिके जगत्भ्रम नष्ट होता है, न इह

जगत् तेरा है, न तूं इसका है, इह भ्रमकरि भासता है, भ्रमकों त्यागिकरि देख जो असत्यरूप है, अपणी गुरुत्वताका बडा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास है, सो तेरे हृदयविषे मत होवै, इह मिथ्या भ्रमरूप है, अंतरतें उठै तौ आपकों भी अरु जगत्कों भी असत्य जान, आत्मतत्त्वतें इतर कछु नहीं, जब ऐसे निश्चय करैगा, तब जगत्भावना नष्ट हो जावैगी, सर्वात्मप्रकाश भासैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगत्चिकित्सावर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रघुकुलरूपी आकाशके चंद्रमा रामजी! जब इस प्रकार पुत्रकों उपदेश किया; तब मैं उसके पीछे आकाशविषे स्थित था, सो कदंब वृक्षके अग्रभागमें जाय स्थित भया, जैसे मेघ वर्षातें रहित तूष्णीं होइ करि पर्वतके शिखरपर जाय स्थित होता है, तैसे मैं जाय स्थित भया, आगे दासुर जो सूरमा अज्ञानरूपी शत्रुका नाश करता है, अरु परम शक्तिकरि प्रकाशवान् है, अरु तपकरि देह ऐसा हो गया है, मानौ स्वर्णका चमत्कार है, तिस दासुरनें मुझकों अपणे अग्रमें देख्या, जो वसिष्ठमुनी आया है, ऐसे जाणिकरि उठी अर्घ पाद्यकरि पूजन किया, बहुरि हम दोनों वृक्षके पत्रउपर बैठी गये, बहुरि पूजन किया, जब पूजन करी रहा, तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलावणे लगे, तिस चर्चाके वचनकरि तिसके पुत्रकों जगाते भये, संसारसमुद्रके पार करणेनिमित्त बहुरि मैनें वृक्षकी और देखता था, कैसा वृक्ष है, जो महासुंदर फूलफलकरि शोभायमान है, अरु दासुरकी इच्छाद्वारा मृग अरु पक्षी तिसके आश्रय रहते हैं, बहुत गुणसंयुक्त वृक्ष मैं देखता भया, अरु तिसके पुत्रकों हम और और कथा करिके विद्यानदृष्टिसों रमणीय दृष्टांत अरु युक्तिसहित उपदेश करत भये, नानाप्रकारके विचित्र इतिहासकरि तिस बालककों जगाया, रात्रिकों सिद्धांत कथाविषे लागे रहे, हमकों एक मुहूर्तवत् रात्रि व्यतीत हुई, जब प्रातःकाल भया तब मैं ऊठि ठाडा भया, दासुर अपने पुत्रसंयुक्त मेरेसाथ चला, जहांलग कदंबका आकाशतल था, तहांलग आये, तिसके अंतर में बहुतकरि ति

नकों ठहरावता भया, अरु मैं गंगाजीकी उर चला, बहुरि स्नान करिके सप्तर्षिके मंडलविषे जाय स्थित भया ॥ हे रघुनंदन! इह दासुरका आख्यान मैंनें तुझकों कहा है, इह जगत् प्रतिबिंब आभासके सदृश है, प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी असत्यरूप है, जगत्के निरूपणनिमित्त इह आख्यान श्रवण कराया है, जो इह जगत् असत्यरूप है, कछु वस्तु नहीं, बुद्धिकरि तुझकों राग मत होवै, इस कथाका सिद्धांत हृदयविषे धारिकरि विचरैगा तब संसाररूपी मल तुझकों स्पर्श न करैगा ॥ ॥ इति श्रीयो॰ स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥५४॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह प्रपंच है नहीं, ऐसे जानिके सब पदार्थतें निराग होहु, जो वस्तुही न होवै, तिसकी आस्था करणी क्या है, इह प्रपंच जो दृष्ट आता है, इसके भासणे न भासणे विषे तुमकों क्या है, तुम निर्विघ्न होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, ऐसे जानै, जगत् है भी अरु नहीं भी, इस निश्चयकरि भी तुम असंग होहु, इस चल अचल दृष्टि आनेविषे तुमकों क्या खेद है ॥ हे रामजी! इह जगत् न आदि है, अनादि है, केवल श्वेतथका जो चित्तसंवित् मनरूप है, तिसके फुरने करिके इस प्रकार भासता है, वास्तवतें कछु नहीं, इह जगत् किसी कर्त्तानें किया नहीं, न किसी अकर्त्तानें किया है, केवल आभासरूप है, आभासविषे कर्ता अकर्ता पदकों प्राप्त भया है, अकृत्रिमरूप है, किसीका किया तौ नहीं, इससाथ तुझकों संबंध मत होवै, इह भावना हृदयविषे धार जो है कछु नहीं, काहेतें जो किसी कर्त्ताकरि हुआ नहीं, आत्मा सर्व इंद्रियांतें अतीत है, जडकी नांई अकर्त्तारूप है, तिसकों कर्त्ता कैसे कहियें? इह कहणा नहीं बनता, अकस्मात इह जगत्जाल फुरि आई है, सो आभासरूप है, जो अकस्मात् उपजा तिसविषे आसक्त होणा क्या है, इह असत् भ्रांतिरूप है, इसविषे आस्था मूढ बालक करते हैं, बुद्धिवान् तौ नहीं करते, स्वरूपतें जगत् कछु उपजा नहीं, अरु नाश भी कछु नहीं होता, निरंतर दृष्टिमें आता है; अज्ञानकरि वारंवार भावना होती है, तौ भी जगत् कछु है नहीं, असत्रूप है, प्रत्यक्ष निरंतर नष्ट होता जाता है, तुम विचार करिके देखौ, जो

अवस्था स्थान कहा जाते हैं, अरु कहां गये हैं, तातें तुम सब इंद्रियांतें अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूप है, तिसविषे स्थित होइकरि विगतज्वर होहु, वास्तवतें जगत् कछु बन्या नहीं, आभाससत्ताविषे बन्या भासता है, तुम आभाससत्ताविषे नित्य दृढ होहु, जैसे हुआ है, तैसे है, भाव अभाव दुःख दिशा है, आदर्शरूपी आभासविषे दीर्घरूप दृश्य स्थित भया, सो जैसे हुआ है, तैसे है, विपर्यय नहीं होता ॥ हे रामजी ! दृश्य धर्मविषे अपराजित काल है, सो अनंत है, दृश्य पदार्थका कछु अंत नहीं, अरु जो आत्मविचारकरि देखियें, तौ स्वप्नवत् है, कछु है नहीं, जो वस्तुतें ऐसे होवै, तिसविषे आस्था करिके यत्न करणा व्यर्थ है, जगत्के पदार्थ नाशरूप हैं, इनविषे आस्था नहीं बनती, काहेतें जो आत्मा सत् है, अरु जगत् असत् है, अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है, जड अरु चेतनका संयोग कछु नहीं बनता, जो जगत्के पदार्थ स्थिर मानियें तौ रहते नहीं, इस कारणतें आस्था शोभा नहीं पाती, जैसे जलके तरंगका आश्रय लेकरि कोउ पार हुआ चाहै तौ दुःख पाता है, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय कियेतें दुःखी होता है, जगत्की आस्था करणीही बंधन है, जगत् नाशरूप है, तुम स्थिररूप हौ, तातें आस्था नहीं संभवती, कहूं जलके तरंगका अरु पर्वतका संबंध भया है ? जो तुम जगत्कों असत्य जान्या, अरु आपकों सत्य जान्या तौ भी जगत्के पदार्थकी वांछा नहीं बनती, काहेतें जो सत्यकों असत्यकी वांछा नहीं संभवती, अरु असत्यकों असत्यविषे भावना करनी क्या है, अरु जो आपसंयुक्त जगत् सत्य जानते हौ, तौ भी वांछा नहीं संभवती, काहेतें जो सत्य अद्वैत आत्मा है, तिसके समीप कछु द्वैत वस्तु नहीं, तुम तौ एक अद्वैत हौ, वांछा किसकी करते हौ, तातें तुमकों किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहीं बनती, हेयोपादेयतें रहित केवल स्वस्थ होइकरि अपणे आपविषे स्थित होहु, कैसा आत्मतत्त्व है, जो सबका कर्त्ता है, अरु सर्वदा अकर्त्ता है, कदाचित् कछु किया नहीं, उदासीनकी नांई स्थित है, जैसे दीपक सब पदार्थोंकों प्रकाश करता है, अरु किसीकी इच्छाद्वारा अर्थकी सिद्धि क

रनेनिमित्त नहीं प्रवर्तता, स्वाभाविकही प्रकाशरूप है, तैसे आत्मतत्त्व सबका कर्त्ता है, तिसका कर्त्ता कोउ नहीं, जैसे सूर्य सबकी क्रियाकों सिद्ध करता है, अरु आप किसी क्रियाके आश्रय नहीं, काहेतें जो आपही प्रकाशरूप है, चलता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, अरुजो सूर्यका प्रतिबिंब चलता भासता है, सो प्रतिबिंबका चलणा सूर्यविषे नहीं, तैसे तुमारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्त्ता अचल है, तिसविषे स्थित होहु, जेता कछु जगत् भासता है, तिसविषे विचरहु, परंतु भावना करिके इसविषे बंधायमान मत होहु, इह असत्‌रूप है ॥ हे रामजी! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकरि जगत् सत् भासता है, तौ भी है नहीं, स्वतः चित्त होइकरि आपकों विचार अरु आपविषे स्थित होहु, तब जगत् कछु न भासैगा, जो प्रत्यक्ष बडे तेज बल अरु वीर्यकरि संपन्न भासता है, अरु अंतर्धान हो गया, तौ सत्य कैसे कहियें; इस विचार करिके भी तुमकों जगत्की भावना नहीं बनती, जैसे चक्रपर आरूढ हुएतें सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं, जैसे स्वप्ननगर भ्रम करिके भासता है; सो किसी कारणकार्यकरि नहींही होता, आभासरूप मनके फुरणेकरि उपजि आता है, जैसे कोउ जीव अकस्मात् आय निकसता है, सो मित्राईका भागी नहीं होता, विचार कियेविना, बुद्धिवान् तिसविषे रुचि नहीं बांधते उह सुहृदताका पात्र नहीं, तैसे भ्रम करिके जो भास्या जगत् है, सो आस्था करिके भावना बांधणे योग्य नहीं, जैसे चंद्रमाविषे उष्णता, अरु सूर्यविषे शीतलता, मृगतृष्णाकी नदीविषे जल, इनकी भावना करनी अयोग्य है, तैसे जगत्विषे सत्यभावना अयोग्य है, इह संकल्पपुर स्वप्ननगर द्वितीय चंद्रमावत् असत्य है, भ्रम करिके सत्य भासता है ॥ हे रामजी! अंतरतें भावपदार्थकी आस्था लक्ष्मीकों त्याग कर, अरु बाह्य लीला करते विचरहु, अंतरतें अकर्त्ता पदविषे स्थित होहु, अरु सब भावपदार्थविषे स्थित सबतें अतीत होहु, आत्मा सब पदार्थविषे सर्वदाकाल स्थित है, अरु सबतें अतीत है, तिसकी सत्ता करिके जगत् नीतिविषे स्थित है, जैसे दीपककरि सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं, अरु दीपक इच्छातें रहित प्रकाशता है, तिस

करि सबकी क्रिया सिद्ध होती है, अरु जैसे सूर्य आकाशविषे उदय होता है, अरुतिसके प्रकाशकरि जगत् का व्यवहार होता है, तैसे अनिच्छित आत्माकी प्रकाशसत्ताकरि सब जगत् प्रकाशता है, जैसे इच्छातें रहित रत्नका प्रकाश होता है, अरु स्थानविषे पसरी जाता है, तैसे आत्मदेवकी सत्ता करिके जगत्गण प्रवर्त्तते हैं, तातें कर्ता है, सब इंद्रियके विषयतें अतीत है, इस कारणतें अकर्त्ता अभोक्ता है, अरु सब इंद्रियों के अंतर्गत स्थित है, इस कारणतें कर्त्ता भोक्ता उही है, इस प्रकार दोनों आत्माविषे बनते हैं, कर्त्ता भोक्ता भी संभवता है, अरु अकर्त्ता अभोक्ता भी संभवता है, जिसविषे तूं अपणा कल्याण जानैं, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! इस प्रकार निश्चय करौ, जो सब मैंही हौं अकर्त्ता अभोक्ता हौं, ऐसी दृढ भावना करि जगत्के कार्यकों करते भी कछु बंधन न होवैगा, अरु सब आत्मा कर्तव्य भोक्तव्यतें रहित है, इस प्रकार निश्चय कियेतें भोगकी वासना निवृत्त हो जावैगी, तब चेतन भोगकी उर बहुरि न आवैगा, जिसकों इह निश्चय है, जो मैं कदाचित् कछु किया नहीं, सदा अक्रियरूप हौं, सो भोगके समूहकी कामना किसनिमित्त करैगा, अरु त्याग किसका करैगा, तातें तुम यही निश्चय धरहु, जो मैं नित्य अकर्त्तारूप हौं, जब इह बुद्धि दृढ होवैगी, तब परम अमृतरूप जो समानसत्ता है, सो शेष रहैगी, अथवा यही निश्चय धरहु, जो सबका कर्त्ता मैंही हौं, मैं महाकर्ता हौं, सबके अंतर स्थित होइकरि सब कार्य मैं करता हौं ॥ हे रामजी! इह दोनों निश्चय तुझकों कहे हैं, जिसविषे तेरी इच्छा होवै, तिसविषे स्थित होहु, जहां इह निश्चय होता है, जो सबका कर्ता मैं हौं, सब जगत् भ्रम भी मैं हौं, तब इन पदार्थके भावअभावविषे राग दोष न होवैगा, जो सब आपही भया, तौ राग दोष किसका करैगा, उसकों इह निश्चय होता है, जो इह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगंध्यादिककरि लीला करता है, तिसकों खेद अरु उल्लास किसका होवै, तातें तुझकों जगत्के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तविषे सुख दुःख मत होवै, सबका कर्त्ता मैं हौं, तौ खेद उल्लास भी

मैं करता हौं, जब आत्मा अरु कर्तव्यकी एकता हुई, तब खेद उल्लास सब आपही लय हो जाता है, सत्ता समान शेष रहता है, सोइ सत्ताभाव पदार्थविषे अनुस्यूत होइकरि स्थित है, तिसविषे जब चित्तकी इच्छा स्थित होती है, तब बहुरि दुःखकों नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! सबका कर्ता आपकों जाण; जो कर्ता पुरुष मैं हौं, अथवा अकर्त्ता जाण; जो मैं कछु नहीं करता, अथवा दोनों निश्चय त्यागिकरि निःसंकल्प निर्मन होहु, तब जो तेरा स्वरूप है, सोई सत्ता शेष रहैगी, अरु इह जगत् है, इह मैं हौं, इह मेरा है, इस कुत्सित भावनाकों त्याग करहु, इस अभिमानविषे स्थित नहीं होणा, इस देहविषे अहंकार कालसूत्र नाम करिके नरककी प्राप्तिका कारण है, नरककी जाल है, शस्त्रकी वर्षा होती है, जिन दुःखहुतें दुःखस्थान देह अभिमान है, अर्थ इह जो अंत दुःखदायक है, तातें पुरुष प्रयत्न करिके इसका त्याग करहु, इह सबके नाशविषे स्थित है, भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष है, सो इससाथ स्पर्श नहीं करते, जैसे चंडाली होवै, अरु तिसकी गोदविषे श्वानका मांस होवै, तिससाथ श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते, तैसे देहाभिमानसाथ स्पर्श नहीं करणा, इह महानीच है, इह अहंकाररूपी बादल नेत्रके आगे पटल आया है, तिस्करि आत्मा नहीं भासता, जब विचारकरि तिस पटलकों दूर करैंगे, तब आत्मसत्ता प्रकाश उदय होवैगा, जैसे मेघ घटाके दूर हुएतें चंद्रमा प्रकाश आता है, तैसे अहंकारके अभावतें आत्मा प्रकाशता है, जब तूं इन निश्चयविषे कोउ निश्चय धरैगा, तब सब दुःखतें रहित शांतपदकों प्राप्त होवैगा, इह निर्णय सबतें उत्तम है, इह निश्चयविषे पुरुष उत्तम सदा स्थित है, अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनोंविषे कोउ निश्चय धारहु ॥इति श्रीयो० स्थि० कर्त्तव्यविचारो नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जेते कछु तुमनें सुंदर वचन कहे हैं, सो सत्य हैं, अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतकों धारणेहारा, सबका आश्रयभूत, अरु सर्वगत, व्यापक, चिन्मात्र, निर्मलपद अनुभवरूप देव सर्व भूतके अंतर स्थित है ॥

हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है, सो मेरे हृदयविषे रम्य हुआ है, तुमारे वचनकरि प्रकाशणे लगा है, तुमारे वचन शीतल शांतरूप तप्तताकों मिटाते हैं, जैसे वर्षाकरि पृथ्वी शीतल होती है, तैसे मेरा हृदय शीतल भया है, आत्मा उदासीनकी नांई अनिच्छित स्थित है, कर्तव्य भोक्तव्यतें रहित अरु सब जगत्कों प्रकाशता है, सब क्रिया तिसकरि सिद्ध होती हैं, इस कारणतें कर्त्ता भी उही है, अरु भोक्ता भी उही है, परंतु कछुक संशय मुझकों है सो हृदयविषे विस्तारकों प्राप्त भया है, तिसकों अपणी वाणीकरि छेदहु, जैसे चंद्रमाका प्रकाश तमकों नाश करता है, तैसे संशय दूर करहु, जो इह सत्य है, इह असत्य है, यह मैं हों, उह अवर है, इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत शांतरूपविषे कहांतें स्थित भई हैं, निर्मलविषे मल कैसे हुआ है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांतकालविषे कहौंगा, अथवा तूं आपही जानि लेवैगा, मोक्ष उपाय जो इह शास्त्र है, तिसका सिद्धांत जब भली प्रकार तेरे हृदयविषे स्थित होवैगा, तब तूं इस प्रश्नका पात्र होवैगा, अनर्थ योग्य न होवैगा, तिस अवस्थातें अन्यथा नहीं होता ॥ हे रामजी! सुंदर स्त्रियांकी सुंदर वाणीसों गीत होता है, तिसके अधिकारी कामी जीव यौवनवान् पुरुष होते हैं, तैसे तूं सिद्धांत अवस्थाविषे मेरे वचनका अधिकारी होवैगा, जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहणी व्यर्थ होती है, तैसे बोधसमयविना उदार कथा कहणी व्यर्थ होती है, जैसे शरत्कालविषे पत्रसंयुक्त वृक्ष शोभता है, अरु वसंतऋतुविषे पुष्पकरि शोभता है, तैसेही जैसी अवस्था पुरुषकी होती है, तैसा उपदेश कहणा शोभता है, किसी समय कैसा, किसी समय कैसा शोभता है, अरु उपदेश भी तब दृढ लगता है, जब बुद्धि शुद्ध होती है, मलीन बुद्धिविषे दृढ नहीं लगता, जैसे निर्मल वस्त्रऊपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, मलीन वस्त्रऊपर नहीं चढता, तैसे प्राप्तरूप जो आत्मा है, तिसका विज्ञान उपदेश सिद्धांत अवस्थावालेकों लगता है, जिसकों बोधसत्ता प्राप्त भई है, अरु तेरे प्रश्नका उत्तर

मैंनें संक्षेपमात्र कहा भी है, विस्तारकरि नहीं कहा, जो तूं नहीं जानता, तौ भी प्रत्यक्ष है, जब तूं आपकरि आपकों प्राप्त होवैगा, तब आपही इस प्रश्नके उत्तरकों जानि लेवैगा, इसविषे संदेह कछु नहीं, जब सिद्धांतकालविषे बोधकों प्राप्त होइकरि स्थित होवैगा, तब मैं भी इस प्रश्नका उत्तर विस्तारकरि कहुंगा, जब आपकरि अपणा आप निर्मल करैगा, तब अपणे आपकों जानि लेवैगा ॥ हे रामजी ! जो कर्ता अरु कर्मका विचार मैंनें तुझकों कहा है, तिसकों विचारिकरि वासनाका त्याग करहु, जबलग संसारकी वासना इस हृदयविषे होती है, तबलग बंधमान है, जब वासना छेद होती है, तब मुक्ति होती है, तातें तूं वासनाका त्याग करहु, अरु मोक्ष अर्थ जो वासना है, तिसका भी त्याग करहु, तब सुखी होवैगा, इस क्रम करिके वासनाकों त्यागी प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासनाका त्याग करहु, बहुरि विषयकी वासनाका त्याग करहु, अरु मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इस निर्मल वासनाकों अंगीकार करहु, मैत्री अर्थ इह जो सबविषे ब्रह्मभावकरि द्रोह किसीका नही करणा, लक्ष्मीवान् साथ मित्रभाव होवै, अरु दुःखीपर दया करनी, इह करुणा कहियें, अरु धर्मात्मा पुरुषकों देखिके प्रसन्न होणा, इसका नाम मुदिता है, पापीकों देखिके उदासीन रहणा, निंदा न करणी, इसका नाम उपेक्षा है, इन चहुं प्रकारकी वासनाकरि संपन्न होणा, अरु अंतरतें इनका भी त्याग करणा, हृदयविषे इनका अभिमान भी न होवै, अरु बाह्य इनका व्यवहार होवै, बहुरि अंतरतें दृश्यमें गुणकी वासना त्यागिकरि चिन्मात्र वासना रखनी, पाछे इनकों भी मनबुद्धिसाथ मिश्रित जानी त्याग करणा, तब जिसकरि वासना त्यागी है, सो शेष रहैगा, तिसकों भी त्याग करना ॥ हे रामजी ! चिन्मात्रतत्त्वतें कल्पना करिके देह इंद्रियां प्राण अरु तम प्रकाशवासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं, जब मूलसंयुक्त इनकों त्याग करैगा, मूल कहियें अहंकारसंयुक्त, तब आकाशवत् सम स्वच्छ होवैगा, इस प्रकार सबकों त्यागिकरि पाछे जो तेरा स्वरूप है, सो तूं होहु, जो हृदयसों इस प्रकार त्यागकरि

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्थित होता है, सो पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, समाधिविषे रहै, अथवा कर्म करै, अथवा न करै, जिसके हृदयतें सब अर्थकी आस्था नष्ट भई है, सो मुक्त है, अरु उत्तम उदार चित्त है, तिस पुरुषकों करणे न करणेविषे कछु लाभ हानी नहीं होती, न समाधि करणेविषे अर्थ है, न तपकरि अर्थ है, काहेतें जो मन तिसका वासनातें रहित भया है ॥ हे रामजी! मैं चिरकाल पर्यंत अनेक शास्त्र विचारे हैं, अरु उत्तम पुरुषसाथ चर्चा करी है, परस्पर इह निश्चय किया है, जो भली प्रकार वासनाका त्याग करना, तातें उत्तम मौन है, इसविना उत्तमपद पावणेयोग्य कोउ नहीं, जो कछु देखणे योग्य है, सो मैंनें सब देख्या है, अरु दशों दिशा भ्रम्या हों, तामें कितनेक जन यथार्थदर्शि दृष्टि आए हैं, अरु कितनेक हेयोपादेयसंयुक्त मुझकों दृष्टि आए हैं, यही यत्न करते हैं, इनतें इतर कछु नहीं करते, किसीकों ग्रहणकी, किसीकों त्यागकी इच्छा होती है नानाप्रकार क्रियाके आरंभसों सब देहके अर्थ करते हैं, आत्माके अर्थ कछु नहीं करते, पाताल स्वर्ग ब्रह्मलोक आदि सब लोक देखे हैं, तिनविषे केतेक संत मुझकों दृष्टि आए हैं, जिननें देखणे योग्य आत्मतत्त्वपद देख्या है; औ ग्रहण त्याग सब असत्य भ्रांतिकरि उठे हैं, इह निश्चय जिनका गलित भया है ऐसे ज्ञानवान् केई विरले हैं, सब ब्रह्मांडका राज्य करै, अग्निविषे प्रवेश करै, जलविषे प्रवेश करै ऐसे ऐश्वर्य शक्तिकरि संपन्न भी होवै तौ भी आत्मलाभविना जीवकों शांति नहीं प्राप्त होती, बडे बुद्धिवान् संत भी वही हैं, जिननें अपणी इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, सोई सूरमे हैं, तिनकों जराजन्म मृत्युका अभाव है, उह पुरुष उपासना करने योग्य हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्कों किसी दृश्य पदार्थविषे प्रीति नहीं होती, काहेतें जो पृथ्वी आदिक पंचभूतकी सब ठौर पाइते हैं, त्रिलोकीविषे इनतें इतर अवर पदार्थ कोउ नहीं, तौ प्रीति किसविध होवै? युक्ति करिके ज्ञानवान् संसारसमुद्रकों गोपदवत् करिके तरि जाते हैं, अरु जिननें युक्तिका त्याग किया है, तिनकों सप्तसमुद्रकी नांई संसार हो जाता है; अरु जो पुरुष उदारचित्त हैं, तिनकों इह संपूर्ण ज

गत् कदंब वृक्षके गालवत् हो जाता है, तिसविषे उह त्याग किसका करैं अरु भोग किसका करैं? हेयोपादेयतें रहित पुरुषकों जगत् तुच्छ जैसा भासता है, इस कारणतें जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न नहीं करता, अरु जो दुर्बुद्धि जीव होते हैं, सो तुच्छ ब्रह्मांडरूप पृथ्वीपर युद्ध करते हैं, अनेक जीवकी घात करते हैं, ममताविषे बंधमान हैं, अरु इह जगत् कैसा है, संकल्पमात्रविषे नष्ट हो जाता है, अरु क्षणक्षणविषे आस्थाकरि यत्न करणा बडी मूढता है, सब जगत् आत्माके एक अंशकरि कल्पित है, इसकी उपमा तृणसमान भी नहीं, इस प्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जगत्कों जानिकरि आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्षशोकविषे बंधमान नहीं होते, ग्रहण अरु त्यागतें रहित हैं, सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल रस देह जो राजस सात्त्विक तामसकरि संयुक्त जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, सो ज्ञानवान्कों प्रसन्न करी नहीं शकते, उसकी इच्छा किसीविषे नहीं होती; एक अद्वितीयात्मभावकों प्राप्त भया है, आकाशवत् व्यापकबुद्धि होता है, अपणे आपविषे स्थित है, चित्त दृश्यतें रहित अचेतन चिन्मात्र है, शरीररूप जाल है, सोई भयानक कुहीड तिसकरि जगत्रूपकों टरधूसर हो रहा है, सो तिस पुरुषका शांत हो जाता है, द्वितीय वस्तुका अभाव भया है, ब्रह्मरूपी बडा समुद्र है, तिसविषे झगके बोयेवत् कुलाचलपर्वत हैं, चेतनरूपी सूर्य है, तिसविषे मृगतृष्णाकी नदीरूप जगत्की लक्ष्मी है, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग उठते अरु लय होते हैं, ऐसे जानणेहारा जो ज्ञानवान् है, तिसकों इह जगत् आनंददायक कैसे होवै? सूर्य चंद्रमा अग्नि जो तुझकों प्रकाशरूप भासते हैं, सो भी घट काष्ठ आदिकवत् जडरूप हैं, जिसकरि इह प्रकाशते हैं, सो सबकों सिद्ध करती आत्मसता है, और कोउ नहीं, देह जो रुधिर मांस अस्थिकरि बनी है, इंद्रियांसंयुक्त वेष्टित है, तिस देह जगत्रूप डब्बेविषे चेतन जीवरूप रत्न हैं, तिसकरि बिराजता है, चेतनविना जड मुग्धरूप है॥ हे रामजी! इह जो स्त्रीका देह भासता है, सो, चर्मकी पुतली बनी है, तिसकों देखिके मूढ बालक प्रसन्न होता है,

जो बुद्धिवान् है, सो प्रसन्न नहीं होते, इस प्रकार ज्ञानवान्कों विषयभोग प्रसन्न नहीं करते, जैसे वायुके चलणेकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थकरि प्रसन्न नहीं होता, ज्ञानवान् तिस उत्तम पदविषे विराजता है, तिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा सूर्य पातालविषे भासते हैं, अर्थ यह जो इनका बडा प्रकाश भी तुच्छ जैसा भासता है, परम उत्तम पदविषे ज्ञानवान् विराजता है, अरु इह संसार मूढ जीव संसारी समुद्रविषे सर्पकी नांई बहे जाते हैं, जैसे हमकों भासते हैं, तैसे कहते हैं, इस जगत्विषे ऐसा भाव पदार्थ कोउ नहीं, जो ज्ञानवान्को रागकरि रंजित करै, जैसे नगरका राजा होवै, तिसके ग्रहविषे महासुंदर विचित्ररूप राणीयां होवैं, तिसकों ग्रामकी मूढ नीच स्त्रियां प्रसन्न करी नहीं शकती, तैसे इह जगत्के भाव पदार्थ तत्त्ववेत्ताके हृदयविषे प्रवेश नहीं करी शकते, जैसे आकाशविषे मेघ बादर रहते हैं, परंतु आकाशकों स्पर्श नहीं करी शकते, जैसे सदाशिव महासुंदर गौरीका नृत्य देखणेहारा है, अरु गौरी संयुक्त है, तिसकों वानरीका नृत्य हर्षदायक नहीं होता तैसे ज्ञानवान्कों जगत्के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते, जैसे जलकरि पूर्ण कुंभविषे रत्नका प्रतिबिंब होवै, तिसकों देखिके बुद्धिवान्का चित्त ग्रहण नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्का चित्त जगत्के पदार्थ नहीं चाहता, इह संसारचक्र बडा विस्ताररूप भासता है, सो असत्यरूप है, तिसकों देखिके ज्ञानवान् कैसे इच्छा करै, इह तौ चंद्रमाके प्रतिबिंबवत् है, शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ करते हैं, जैसे सेवालकों मत्सर भोजन करते हैं, राजहंस नहीं करते, तैसे संसारके विषयकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानी नहीं करते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूप वर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह सिद्धांत जो परम उचित वस्तु है, तिसकी गाथा बृहस्पतिका पुत्र जो कच है, तिसनें गाइ थी, सो परम पावनरूप है, एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानविषे देव गुरुका पुत्र कच जाय स्थित भया, अभ्यासके वशतें कदाचित् उस

कों आत्मतत्त्वविषे विश्रांति भई, अरु अंतःकरण उसका सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतकरि पूर्ण भया, अरु पांचभौतिक जो मलिन दृश्य है, तिसतें विरक्त भया, ब्रह्मभावविषे अस्फुर होइकरि रमता भया, निराभास आत्मतत्त्वतें इतर कछु नहीं, एक अद्वैत भासै, ऐसे देखता हुआ, गद्गद वाणीसों बोलत भया, मैं क्या करौं, अरु कहां जाउं, क्या ग्रहण करौं, किसका त्याग करौं, सब विश्व एक आत्मपूर्ण हो रहा है, जैसे महाकल्पविषे सब औरतें जल पूर्ण हो रहता है, तैसे दुःख भी आत्मा है, सुख भी आत्मा है, आकाश दशों दिशा अहं त्वं आदि सब जगत् आत्माही है, बडा कष्ट है, जो अपणा आपविषे नष्ट हुआ बंधमान था, देहके अंतर भी आत्मा है, बाहिर भी आत्मा है, अध ऊर्ध्व इत उत सब आत्मा है, आत्मातें इतर कछु नहीं, सब औरतें एक आत्माही स्थित है, अरु सबही आत्माविषे स्थित है, इह सब मैं हौं, अपणे आपविषे स्थित हौं, अपणे आपविषे मैं नहीं समाता, अर्थ इह जो आदि अंततें रहित अनंत आत्मा हौं, अग्नि मैं हौं, वायु मैं हौं, आकाश जल पृथ्वी मैं हौं, जो पदार्थ मैं नहीं सो है नहीं, जो कछु है, सो सब विस्तृतरूप मैंही हौं, एक पूर्ण परम आकाश भैरव हौं, अर्थ यह जो भरी रहा हौं, सब जगत् भी ज्ञानरूप है, समुद्रवत् एक पूर्ण स्थित है, सो कल्याणमूर्ति इस प्रकार भावना करता हुआ स्वर्णके पर्वतके कुंजविषे कच स्थित भया, तिसके अनंतर ॐकारका उच्चार बडे स्वरसों करने लगा, अरु ॐकारकी जो अर्ध कला है, जिसकों अर्धमात्रा कहते हैं, सो फूलतें भी कोमल है, बहुरि तिसविषे स्थित होत भया, सो अर्धमात्रा कैसी है, न अंतःस्थित है, न बाह्य है, हृदयविषे भावना करता हुआ तिसविषे स्थित भया; कलनारूपी जो मल था, तिसतें रहित निर्मल भया, चित्तकी वृत्ति निरंतर लीन हो गई, जैसे मेघके नष्ट भयेतें शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलंकित कलनाके दूर हुएतें निर्मल भया, जैसे पर्वतकी पूतली अचलरूप होती है, तैसे कच समाधिविषे स्थित अचल भया॥ इति श्रीयो० स्थितिप्र० कचगाथावर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! अंगनाके शरीरादिक जो भोग पदार्थ हैं, सो इनतें इतर तौ जगत् विषे सुख कछु नहीं, अरु ज्ञानवान्कों इह पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इनविषे आस्था नहीं करते, बहुरि इच्छा किस पदार्थकी करैं, इन भोग ऐश्वर्य पदार्थकरि मूढ असाधु तोष पाते हैं, जो ज्ञानवान् साधु हैं, सो इनविषे प्रीति नहीं करते, जो कृपण अज्ञानी हैं, तिनकों भोगही सरस हैं, अरु भोग कैसे हैं, आपातरमणीय आदि अंत मध्यविषे दुःखरूप हैं, जो पुरुष इनविषे आस्था करते हैं, सो गर्दभ नीच पशु हैं॥ हे रामजी! स्त्री कैसी है, रक्त मांस अरु अस्थि आदिकरि पूर्ण है, जो इसकों पायकरि तोषित होते हैं, सो गीदड हैं, मनुष्य तौ नहीं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, सो किसी जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, पृथ्वी सर्व मृत्तिकारूप है, वृक्ष सर्व काष्ठरूप हैं, देह सर्व मांसरूप हैं, पर्वत सर्व पाषाणरूप हैं, पाताल अध है, आकाश ऊर्ध्व है, सो दिशाकरि व्याप्या है, सर्व विश्व पांचभौतिकरूप है, इसविषे तौ अपूर्व सुख कोउ नहीं, जिसविषे ज्ञानवान् प्रीति करते हैं, इंद्रियके जो पंच विषय हैं, सो मोहके देणेहारे हैं, विवेक मार्गके रोकणेहारे हैं, जेती कछु जगत्जालकी संपूर्ण विभूति हैं, बडे ऐश्वर्य पदार्थ, सो सब दुःखरूप हैं, प्रथम इनका प्रकाश भासता है, पाछे कलंककों प्राप्त करते हैं, जैसे दीपक प्रथम प्रकाशकों दिखावता है, बहुरि काजल कलंककों देता है, तैसे इंद्रियांके विषय आगमापायी हैं, इनकरि शांति प्राप्त नहीं होती, अज्ञानीकों स्त्रियांआदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं, ज्ञानवान्की वृत्ति इनकी उर नहीं फुरती, अज्ञानीकों स्थिररूप भासता है, अरु स्वाद देते हैं, तुष्ट करते हैं, ज्ञानवान्कों असत्य अरु चलरूप भासता है, तुष्टताका कारण नहीं होते, इह विषयभोग कैसे हैं, विषकी नांई हैं, इह स्मरणमात्रतें भी विषवत् मूर्छा करते हैं, सत्य विचार भूलि जाता है, तातें इनकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु ज्ञानवान्की नांई विचरहु ॥ हे रामजी! जब इस जीवकों अनात्मविषे आत्मअभिमान होता है, तब असंगरूप जगत्जाल

भी सत्य हो भासता है, ब्रह्माकों भी वासनाके वशतें कल्पदेहका संयोग होता है, जैसे स्वर्णका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, अरु तिसकी झलक कंधउपर पडती है, सो कंधसाथ स्वर्णका संयोग कछु नहीं, तैसे ब्रह्माका संयोग देहसाथ वास्तव कछु नहीं, कल्पनामात्र देह है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे महामती ! विरंचिके पदकों प्राप्त होइकरि बहुरि इह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं, सो क्रम करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब प्रथम कमलज जो ब्रह्मा उत्पन्न भया है, तब जैसे बालक गर्भतें उपजता है, तैसे उपजिकरि वारंवार इस शब्दका उच्चार किया, जो ब्रह्म ब्रह्म इस कारणतें तिसकों ब्रह्मा कहते हैं, बहुरि संकल्प जाल है, रूप जिसका, ऐसा कल्पित आकार मन हो आया, तिस मननें आगे संकल्प लक्ष्मी पसारी, प्रथम संकल्पतें जो माया उपजती है, उह तेज अग्निके चक्रवत् फुरने लगी, तिसतें बडा आकार हो गया, ज्वालाकी नांई स्वर्णलतारूप बडी जटाकरि संयुक्त प्रकाशकों धारे, शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होइकरि स्थित भया, अपने समान आकार बडे प्रकाशसंयुक्त कल्पता भया, ज्वालाका मंडल आकाशके मध्य स्थित भया, अग्निरूप अग्निही अंग हैं जिसके ॥ हे महाबुद्धिवान् रामजी ! इस प्रकार तौ ब्रह्मातें सूर्य भया है, अरु अवर जो तेजकिरण फुरतियां हैं, सो आकाशविषे तारागण बिंबपर आरूढ फिरते हैं, बहुरि ज्यौं ज्यौं उह संकल्प करता गया, त्यौं त्यौं तत्काल भी आगे सिद्ध होइकरि भासणे लगा, इसी प्रकार आगे जगत्कों रचता भया, जिस प्रकार इस सृष्टिविषे ब्रह्मा रचता है, तिसी प्रकार अवर सृष्टिविषे रचते हैं, प्रथम प्रजापतिकों रचता है, बहुरि कालकलना नक्षत्र तारागण रचे, बहुरि देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गंधर्व, यक्ष, नदीयां, समुद्र, पर्वत, सर्व इसी प्रकार कल्पता भया; जैसे समुद्रविषे तरंग कल्पित होते हैं, तैसे सिद्ध रचे, तिनके कर्म रचे, सो भी शुभ संकल्परूप जैसा उह संकल्प करै, सोइ सिद्ध होकरि भासणे लगे, प्रजापतिनें संकल्पकरि सिद्ध उत्पन्न किये, तिनतें आगे और बहुरि उत्पन्न किये, इसी प्रकार बहुरि भूत तारागण

आगे और उत्पन्न किये, तिननें और उत्पन्न किये, तब ब्रह्माजी वेदकों उत्पन्न करता भया, जीवके नाम आचार कर्म वृत्ति पुण्य क्रिया सब जगत्की मर्यादाकरि, नीतिरूप स्त्रीकों रचता भया, सो जगतरूपी ग्रहकी मर्यादा है, इस निमित्त उत्पन्न किया सो इस प्रकार ब्रह्मकी माया ब्रह्मारूपकरि बडे शरीरकों धर रही है, आगे सृष्टिका विस्तार है, लोक अरु लोकपालके क्रम किये हैं, सुमेरु पृथ्वीके मध्य दशों दिशा रचे, सुख मृत्यु राग द्वेष प्रगट किये, इस प्रकार संपूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजी रचता भया, जैसे जैसे उसनें रचे हैं, सब तैसेही स्थित भई है, अरु है क्या, जो कछु संपूर्ण दृश्य भासता है, सो सब मायामात्र है ॥ हे रामजी! इस प्रकार जगत्का क्रम हुआ है, सो संकल्परूप संसार बडा स्थित होइकरि अज्ञानकरि भासता है, इह तौ संकल्पकरि रचा है, संकल्पके वशतें जगकी क्रिया पसरता है, अरु संकल्पवशतें दैवनीति होइकरि स्थित भया है, सर्व जगत् ब्रह्मातें संकल्पविषे स्थित है, जब तिसका संकल्प निर्वाण होता है, तब जगत् भी लय हो जाता है, एक समय ब्रह्माजी पद्मासनकों धरि बैठे थे, अरु चितवत भये जो इह जगत्जाल मनके संकल्प फुरणेमात्र है, मनके फुरणेकरि उपजि आता है, बडा विस्ताररूप नानाप्रकारके व्यवहार विकारसंयुक्त इंद्र, उपेंद्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीतें लेकरि जगत्जाल सर्व मायामात्र है, बडा पसरि रहा है, अब मैं इसतें निवृत्त होउं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चितविकरि ब्रह्माजी संकल्प अनर्थरूपतें उपरत भया, आदि अंत रहित जो अनादि मत परब्रह्म स्फार आत्मारूप है, तिस आत्मा तत्त्वविषे मनकों लय करता भया, आनंदरूप आत्मा होकरि अपणे आपविषे स्थित भया, निर्मल निरहंकार परमतत्त्वकों प्राप्त भया, जैसे कोउ व्यवहारतें थका हुआ विश्राम करता है, तैसे अपणे आपकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित भया, जैसे अक्षोभ समुद्र होता है, तैसे अक्षोभ भया, ध्यानविषे जुडि गया, बहुरि ध्यानतें जाग्या, जैसे द्रवता करिके समुद्रतें तरंग फुरि आवैं, तैसे चित्तके वशतें ब्रह्माजी फुरनरूप हो

आया, तब जगत्कों देखिके चितवत भया, कैसा संसार है, दुःखसुखकरि संयुक्त अनंत फांसीकरि बंधमान है, रागद्वेष भयमोहसों दूषित है ॥ हे रामजी! इस प्रकार जीवकों देखिके ब्रह्माजीकों दया उपजी, दया करिके अध्यात्मज्ञानकरि संपन्न वेद उपनिषद् वेदांतकों प्रगट करता भया, बडे अर्थसंयुक्त नानाप्रकारके शास्त्र रचे, बहुरि पुराण रचे, सब जीवके मुक्तिनिमित्त, तिनकों रचिकरि परम पद जो आपदातें रहित है, तिसविषे स्थित भया, जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेतें क्षीरसमुद्र शांत होता है, तैसे शांतरूप होइकरि स्थित भया, बहुरि उसी प्रकार जागी जगत्कों देखि मर्यादाविषे जोड्या, बहुरि कमलपीठविषे स्थित होकरि आत्मतत्त्वके ध्यानपरायण भया, इसी प्रकार जो कछु अपणे शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीनें करी है, तिसी प्रकार नीतिके संस्कारपर्यंत क्रीडा करते हैं, कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरता है, जैसे ताडना अरु वासनातें रहित चक्र फिरता है, तैसे जन्मकारणतें रहित है, तिसकों शरीरके रखणे अरु त्यागणेविषे कछु इच्छा नहीं, न कछु जगत्की स्थिति अस्थितिविषे इच्छा है, किसी इस पदार्थके ग्रहण त्यागकी भावनाविषे आसक्त नहीं, सर्व पदार्थविषे समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है, कबहू सब संकल्पतें रहित शांतरूप हो रहता है, कबहू अपणी इच्छाकरि जगत्कों रचता है; परंतु उसकों जगत्के रचणेविषे कछु भेद नहीं, सर्व पदार्थकी अवस्थाविषे तुलता है ॥ हे रामजी! इह मैंनें तुझकों ब्रह्माकी स्थिति कही है, इह परम दशा अवर भी किसी देवताकों उपजै तौ तिसकों समता जानियें, उह शुद्ध सात्त्विकरूप है, सृष्टिके आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्वविषे चित्तकला फुरी है, सो फुरनारूप मनकला ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भई है, जब बहुरि जगत्केस्थितिक्रमविषे कलना उत्पन्न होती है, तब उही ब्रह्मारूप आकाश पवनकों आश्रय लेकरि औषधि पत्रविषे आय प्रवेश करता है, कहूं देवताभावकों प्राप्त होता है, कहूं मनुष्यभावकों प्राप्त होता है, कहूं पशु पक्षी तिर्यक् आदिककों प्राप्त होता है, चंद्रमाकी

किरणद्वारा अन्नादिक औषधीविषे प्राप्त होता है, जैसे भावकों लेकरि चित्तकला फुरती है, तैसा भाव शीघ्रही उत्पन्न हो आता है, केई उपजिकरि संसर्ग संसारके वशतें तिसी जन्मके बंधनतें मुक्त हो जाते हैं, अपणे स्वरूपका चमत्कार होता है, केई अनेक जन्मकरि मुक्त होते हैं, केई थोडे जन्मकरि मुक्त होते हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार जगत्का क्रम है, प्रत्यक्ष संकट कर्म बंधमोक्षरूप उपजते हैं, केई मिटि जाते हैं, इस प्रकार संसार बंधमोक्षकरि पूर्ण है, जब इह कलना मल नष्ट होता है, तब संसारतें मुक्त होता है, जब लग कलना मल होता है, तबलग संसार भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी निर्मल पदविषे स्थित होइकरि सर्ग विस्तारता भया, जो संसाररूपी कूप है, तिसविषे जीव भ्रमते हैं, जीवरूपी टीड तृष्णारूपी जेवरीसाथ बांधे हुए कबहू अधकों जाते हैं, कबहू ऊर्ध्वकों जाते हैं, जब वासनारूपी जेवरी टूट पडती है, तब ब्रह्मतत्त्वसों उठे सो बहुरि ब्रह्मतत्त्वसाथ एकत्र हो जाता है, ब्रह्मसत्तातें जीव उपजते बहुरि ब्रह्मसत्ताविषे लय होते हैं, जैसे समुद्रतें मेघजल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं, बहुरि वर्षाकरि तिसीविषे प्रवेश करते हैं, तैसे जब तन्मात्रा मंडलसाथ चित्तकला मिलती है, तब तिससाथ जीव एकरूप हो जाते हैं, जैसे मंदार वृक्षके पुष्पकी सुगंधि वायुसंग मिश्रित एकरूप हो जाती है, तैसे चित्तकला जीव तन्मात्रासों मिलिकरि प्राणनामकों पाती है, इस प्रकार प्राणवायुतें आदि तन्मात्रा जीवकलाकों खैंचणे लगता है, जैसे बडे प्रचंड दैत्यके समूह देवताकों खैंचै, तैसे खैंचा हुआ जीव तन्मात्रासाथ एकरूप हो जाता है, जैसे गंध अरु वायु तन्मय होता है, उह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरविषे वीर्यस्थानमें जाय प्राप्त होता है, तब जगत्‌विषे उपजिकरि प्राण प्रत्यक्ष होते हैं, और केई धूम्रमार्गकरि देहवान्‌के शरीरविषे प्रवेश करते हैं, मेघविषे प्रपेश करी बुंद मार्गसों औषधीविषे रसरूप होइकरि जाय स्थित होते हैं, तिसकों

भोजन करनेहारेके अंतर वीर्यरूप होइकरि स्थित होते हैं, केई और प्राणवायुद्वारा प्रगट होते हैं, उह चर स्थावररूप होते हैं, केई पवनमार्गकरि धान्यक्षेत्रविषे चावलरूप स्थित होते हैं, तिसकों जीव भोजन करते हैं, तिसकरि वीर्यविषे प्राप्त होते हैं, नानाप्रकारके रंगभेदकरि प्राणधर्म उपजते हैं, केई उपजणेमात्रतें जीवकी परंपरा तन्मात्राकरि वेष्टित आकाशविषे जाय स्थित होते हैं, जबलग चंद्रमा उदय नहीं भया, जब चंद्रमा उदय होते हैं, तब उसका रस जो किरणां शीतल अरु श्वेत क्षीर समुद्रवत् तिनविषे जाय प्राप्त होते हैं, तिनके अंतर्गत होकरि पत्र औषधिविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भंवरे आये स्थित होते हैं, तैसे औषधिविषे जायकरि जीव स्थित होते हैं, फलविषे स्वादरूप होइकरि स्थित होता है, जैसे घुना रसकरि पूर्ण होता है, तैसे जीवकरि औषधि फल पूर्ण हो जाते हैं, जैसे दूधकरि स्तन पूर्ण होते हैं, तैसे जीवकरि फल पूर्ण होते हैं, तब उह फल परिपक्व होते हैं, तिनकों देहधारी भक्षण करते हैं, तिसविषे जीव वीर्यरूप जडात्मकरूप होइकरि स्थित होते हैं, सो सुषुप्ति वासनाकरि वेष्टित हुए गर्भ पिंजरविषे जाय पडते हैं॥ हे रामजी! वीर्यविषे सदा जीव रहते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे सदा घटादिक रहते हैं, काष्ठविषे सदा अग्नि रहता है, दूधविषे घृत रहता है, तैसे वीर्यविषे जीव रहते हैं, इस प्रकार परमात्मा महेशरूपतें जीवकी परंपरा उपजती है, वायुमार्गकरि, धूम्रमार्गकरि, मेघमार्गकरि, औषधिमार्गकरि, प्राणमार्ग, चंद्रमाकी किरणांमार्गकरि, इत्यादिक अनेक प्रकारकरि जीव उपजते हैं; जो उपजणेकरिके आत्मसत्तासों अप्रमादी रहते हैं, अपणा स्वरूप विस्मरण नहीं होता, सो शुद्ध सात्त्विकी है, महा उदार व्यवहारवान् होते हैं, अरु जिनकों उपजणेकरि विस्मरण हो जाता है, बहुरि उसी शरीरविषे आत्माका साक्षात्कार होता है, सो सात्त्विकीरूप है, अरु जो उपजिकरि नानाप्रकारके व्यवहारकों प्राप्त होते हैं, अरु स्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मकी परंपरा पायकरि स्वरूपका साक्षात्कार होता है, सो राजस सात्त्विकी कहाते हैं, अरु जिनकों अंतका जन्म आय रहता है, ति

नकों जिस प्रकार मोक्ष होता है, सो क्रम अब तुझकों कहता हौं, जो सहज सत्ता सात्त्विकभावकों प्राप्त होते हैं, अरु मोक्ष होते हैं ॥ हे रामजी ! उपजणेमात्रतें जो अप्रमादी हुए सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, उह ब्रह्मादिक हैं, अरु जो प्रथम जन्मकरि बोधवान् हुए सो सात्त्विकी हैं, अरु दुर्लभ हैं, अरु जो कबहू किसी जन्मकरि मोक्ष हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी हैं, इनतें इतर हैं, सो नानाप्रकारके मूक जड अनेक हैं, तमसंयुक्त स्थावरादिक हैं, जिनकों आत्मपद प्राप्त भया है, तिनकों जो मिलते हैं, तिनकों अंतका जन्म है, ऐसे पुरुष विचारते हैं, जो मैं कवन हौं, इह जगत् क्या है, इस विचारके क्रमकरि मोक्षभागी होता है, सो राजसतें सात्त्विकी होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजसतें सात्त्विकी हुए हैं, सो पृथ्वीपर महागुणकरि शोभायमान होते हैं, सदा उदितरूप रहते हैं, जैसे आकाशविषे चंद्रमा रहता है, तैसे उह पुरुष खेदकों नहीं प्राप्त होते हैं, जैसे आकाशकों मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे उनकों आपदा स्पर्श नहीं करती, जैसे रात्रिके आयेतें स्वर्णके कमल मूंदे नहीं जाते, जो कछु प्रकृत आचार है, तिसके अनुसार चेष्टा करते हैं, और प्रकार नहीं करते, जैसे सूर्य अपणे आचारविषे विचरता है, और आचार नहीं करता, तैसे उह सत्यमार्गविषे विचरते हैं, अंतरतें पूर्ण शांतरूप हैं, आपदाकरि भी नहीं त्यागते, जैसे चंद्रमाकी कला क्षीण होती है, तौ भी अपणी शीतलताकों नहीं त्यागती, तैसे ज्ञानवान् आपदाके प्राप्त हुएतें भी मलिनताकों प्राप्त नहीं होता, सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणकरि संपन्न रहता है, सदा तिनकरि शोभता है; समतारूप जो समरस है, तिसकरि पूर्ण शांतरूप है, निरंतर स्वशुद्ध समुद्रवत् अपणी मर्यादाविषे स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! तुम भी महापुरुषके मार्ग सदा चलहू, जो मार्ग परम पावन आपदातें रहित सात्त्विकी है, तिसके अनुसार चलहू, तब आपदाके समुद्रविषे न डूबौगे, जैसे उह खेदतें रहित जगत्विषे विचरते हैं, तैसे विचरहू, जिस क्रमक

रि राजसतें सात्त्विकी मोक्षभागी होता है, सो सुण, प्रथम आर्जवपदकों प्राप्त होणा, अर्थ यह जो यथाशास्त्र सत् व्यवहार करणा, तिसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है; तिस आर्जवपदकों पायकरि संतसाथ मिलणा अरु वारंवार सत्शास्त्रकों विचारणा, अरु जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं, तिनविषे प्रीति न करणी, विरक्तता उपजाणी, तिनतें निरिच्छ होणा अरु जो पदार्थके उपजे विनसणे त्रिलोकीविषे सत्यरूप है, वारंवार तिसकी भावना करणी, अवर भावना शीघ्रही मिथ्या जाणिकरि त्यागणी, जो कछु दृश्य जगत् भासता है सो असम्यक् दृष्टि है, निष्फल नाशरूप व्यर्थ जाणिकरि तिसकी भावना त्यागणी, अरु सम्यक् ज्ञानकों स्मरण करना; संतजन अरु सत्शास्त्र जो ज्ञानके सहायक हैं, तिन संग मिलिके विचार करणा, जो मैं कवन हौं, जगत् क्या है, भलि प्रकार प्रयत्नकरि विवेकसंयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्रका विचार करणा; सत्य व्यवहार सात्त्विकी कर्म करणे; अवज्ञा करिके मृत्युकों विस्मरण न करना, जो मृत्यु विस्मरणकरि संसार कार्यविषे लगि जाता है, सो डूबता है, तातें स्मरण करिके सत्मार्गविषे लगणा, जिस पदविषे ज्ञानी पुरुष महा उदार शीतलचित्त स्थित हैं, तिस पदके मार्ग अरु दर्शनविषे सदा इच्छा राखणी, जैसे मोरकों मेघकी इच्छा रहती है ॥ हे रामजी ! अहंकार जो देहविषे स्थित है, इह देह संसारविषे उपजी है, तिनकों भली प्रकार विचार करिके नाश करहु, इह देह संसार रुधिर मांस मज्जा आदिककी बनवता है; जेते कछु भूतजाति हैं; सो सब चेतनरूपी तागेविषे मोती परोये होवैं, तैसे हैं, तिन भूतकों त्यागिकरि चिन्मात्र तत्त्वकों देखौ, चेतन सत्ता सत्य है, नित्य विस्तृतरूप है, शुद्ध है, सर्वगत सर्वभाव तिसविषे हैं, सो त्रिलोकीका भूषण आश्रयभूत है, जो चेतन आकाशमें सूर्यविषे है, सोई चेतन पृथ्वीके छिद्रमें कीट है, तिसविषे है, जैसे घटाकाश अरु महाकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे शरीरमें चेतनाविषे भेद कछु नहीं, जैसे बहुत मिरचा हैं, तिनविषे तीक्ष्णता एकही है, तैसे सर्व भूतविषे चेतनता एकही अनुस्यूत है, अनुभवकरि जानता है, तिस एक चिन्मात्र

विषे भिन्नता कहांतें होवै, एक सत्य सत्ता जो निरंतर चिन्मात्र वस्तुरूप है तिसविषे जन्म मरण आदिक अज्ञानकरि भासता है, वास्तवतें न कोउ उपजा है, न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्यौंका त्यौं स्थित है, जगत्विकार तिसविषे आभासमात्र है, न सत्य है, न असत्य है, चित्तके फुरनेकरि भासते हैं, चित्तके शांत हुएतें शांत हो जाता है, जो जगत्कों सत्य मानियें तौ अनादि हुआ इसकरि भी शोक किसीका नहीं बनता; अरु जो जगत् असत्य मानियें तौ भी शोकका स्थान नहीं बनता, तातें दृढ विचार करिके स्थित होहु, शोककों त्यागहू, तुमकों न जन्म है, न मरण है, आकाशवत् निर्मल सम शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो धैर्यवान पुरुष बुद्धिवान है, सो सतशास्त्रकों विचारै अरु संतजनका संग करै तिनके आचारकों ग्रहण करै, जो जो दुःखके नाशकर्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं, तिनकों यत्न करिके अंगीकार करै, तब इसकों भी संतजनता आय प्राप्त होवैगी, संतजन जो विरक्त आत्मा है, तिनसों मिलिकरि सत् शास्त्रकों विचारैं, तब परम पदकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सत्शास्त्रके विचारणेहारा है, अरु संतजनका संग वैराग्य अभ्यास आदरसंयुक्त करता है, सो तुमारी नांई विज्ञानका पात्र है, तुम तौ उदारआत्मा हौ, धैर्यवानके जो गुण शुभ आचार हैं, तिनके समुद्र हौ, निर्दुःख होइकरि स्थित होहु, अब राजस सात्त्विकी भये हौ, मननशील भये हौ, बहुरि ऐसे दग्धरूप संसारविषे दुःखके पात्र न होउगे; इह तुमारा अंतका जन्म है, जो अपणे स्वभावकी और धावते हौ, अंतर्मुख यत्न करते हौ, निर्मल दृष्टि तुमकों प्रगट भई है, यथाभूत जगत् वस्तुकों जानते भये हौ; जैसे सूर्यके प्रकाशकरि यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है, अब मेरे वचनकी पंक्तिकरि सर्व मल दूर हो जावैगा, जैसे अग्निविषे धातुका मल जलि जाता है, तैसे तुमारा मल जलि जावैगा, निर्मलताकरि शोभायमान होवैगा, जैसे मेघके नष्ट भएतें शरत्कालका आकाश शोभता है, तैसे संसारकी भावनातें मुक्त होइकरि चिं

तातें रहित निर्मल भावकरि शोभौगे, अहं मम आदिक कल्पनातें मुक्त भये हैं, सो मुक्त हैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ हे रामजी! तेरा जो इह अनुभव उत्तम व्यवहार है, तिसके अनुसार विचरैगा तौ तूं अशोक पदकों प्राप्त होवैगा; अरु अवर कोउ इस व्यवहारविषे वरतैगा, सो भी संसारसमुद्रकों अनुभवरूपी बेडेकरि तरि जावैगा, तुमारे तुल्य जिसकी मति होवैगी, सो समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है; जैसे सर्व कांतिमान सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चंद्रमा होता है; अरु तुम तौ अशोकदशाकों प्राप्त भये हौ, यथाप्राप्तविषे वर्तते हौ, जबलग देह है, तबलग रागदोषतें रहित स्थितबुद्धि रहौ, यथाशास्त्र जो उचित आचार है, सो बाह्यतें करौ, अरु अंतरतें सर्व कल्पनातें रहित शीतलचित्त होहु, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतल होता है ॥ हे रामजी! इन सात्त्विक अरु राजस सात्त्विकतें जो इतर जीव हैं तामसी, तिनका विचार इहां नहीं करना, उह मूढ गिदड हैं, मद्यादिकके खाणेहारे हैं, तिनके विचारसाथ क्या प्रयोजन है, जो मैं तुझकों सात्त्विकी जन कहे हैं, तिनके सेवणेकरि बुद्धि अंतके जन्मवती होती है; अरु जो तामसी तिनकों सेवै तौ उनकी बुद्धि भी उदार हो जाती है, अरु जिस जिस जातिविषे जीव उपजता है, तिस जातिके गुणकरि शीघ्रही संयुक्त हो जाता है, पूर्व जो कोउ भाव होता है, सो जातिके वशतें उहां जाता रहता है, अरु जिस जातिविषे उह जन्मता है, तिस जातिके गुणकों जीतणेका पुरुषार्थ करता है, तब यत्नकरि पूर्वके स्वभावकों जीति लेता है, जैसे धैर्यवान सूरमा शत्रुकों जीति लेता हैं; जो इसका पूर्व संस्कार मलीन है तौ धैर्य करिके मलीन बुद्धिका उद्धार करै; जैसे मुग्ध पशु गरतविषे फसि जावै, अरु तिसकों काढि लेवै, तैसे बुद्धिकों मलीन संस्कारतें काढि लेवै ॥ हे रामजी! जो तामस राजसी जात हैं, तिनकों भी जन्म अरु कर्मके संस्कारवशतें सात्त्विक प्राप्त होता है, अरु उही भी अपणे विचारद्वारा सात्त्विक जातिकों प्राप्त होते हैं; इस पुरुषके अंतर अनुभवरूपी चिंतामणी है, तिसविषे जो कछु निवेदन करता

है, सोई रूप इसका हो जाता है, तातें पुरुषार्थ करिके अपणे उद्धार करहु, पुरुषप्रयत्नकरि इह पुरुष बडे गुणकरि संपन्न होता है, अरु मोक्षकों प्राप्त होता है; अंतका जन्म होता है, आगे जन्म नहीं पावता; अशुभ जातिके कर्म निवृत्त हो जाते हैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वी आकाश देवलोकविषे कोउ नहीं, जो यथाशास्त्र प्रयत्नकरि न पाइयें, सो अवश्य पाता है ॥ हे रामजी! तुम तौ बडे गुणकरि संपन्न हौ, धैर्यता अरु उत्तम वैराग्य दृढ बुद्धिसंयुक्त हौ अरु तिसके पावणेकों धर्मबुद्धिकरि वीत शोकरूप हौ; तुमारे क्रमकों जो कोउ जीव ग्रहण करैगा सो मूढतातें रहित होइकरि अशोकपदकों प्राप्त होवैगा; अब तुमारा अंतका जन्म है, बडे विवेककरि संयुक्त हौ, बुद्धिविषे शांतिके गुण आनि पसरे हैं, तिनकरि तुम शोभते हौ, सात्त्विक गुण क्रमकरि सर्वविषे रमी रहे हौ, संसारकी बुद्धि मोह चिंता तुमकों मिथ्या है, तुम अपणे स्वस्थ स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ समाप्तमिदं योगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणं चतुर्थम् ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणं पंचमं प्रारभ्यते ॥

अनुक्रमणिका– (उपशम प्रकरण).

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१	पूर्वदिनवर्णन	१	२३	बळवृत्तांतविरोचनगाथा	३३	४५	राजप्रध्वंस	६४
२	उपदेशानुसारवर्णन	१	२४	बळोपाख्याने चिकित्सोपदेश	३४	४६	गाधीबोधप्राप्ति	६५
३	सभास्थानवर्णन	३	२५	बळचित्तसिद्धांतोपदेश	३७	४७	राघवसेवन	७०
४	राघवप्रश्न	४	२६	बळोपदेश	३७	४८	उद्दालकविचार	७३
५	प्रथमोपदेश	५	२७	बळविश्रांतिवर्णन	३८	४९	उद्दालकविश्रांति	७६
६	क्रमोपदेश	७	२८	बळविज्ञानप्राप्ति	३९	५०	उद्दालकनिर्वाण	७९
७	क्रमसूचनावर्णन	८	२९	बळोपाख्यानसमाप्ति	४०	५१	ध्यानविचार	८०
८	सिद्धगीतावर्णन	८	३०	हिरण्यकशिपुवध	४२	५२	भेदनिराशा	८२
९	जनकविचार	९	३१	प्रल्हादविज्ञान	४३	५३	सुरघवृत्तांतमांडवोपदेश	८३
१०	जनकनिश्चय	१२	३२	प्रल्हादोपाख्यानेविवि॰	४४	५४	सुरघवृत्तांतवर्णन	८४
११	चित्तानुशासन	१३	३३	प्रल्हादा॰नारायणागमन	४५	५५	सुरघवृत्तांतसमाप्ति	८६
१२	प्राज्ञमहिमा	१४	३४	प्रल्हादोपदेश	४६	५६	सुरघपरिघसमागम	८६
१३	मननिर्वाण	१५	३५	प्रल्हादात्मलाभचिंतन	५०	५७	समाधिनिश्चय	८८
१४	चित्तचैत्यरूपवर्णन	२०	३६	प्रल्हादोपाख्याने संस्तवन	५३	५८	सुरघपरिघनिश्चय	८९
१५	तृष्णावर्णन	२२	३७	दैत्यपुरीप्रभंजन	५६	५९	कारणोपदेश	९०
१६	तृष्णाचिकित्सोपदेश	२३	३८	भगवान्चित्तविवेक	५६	६०	भासविलासवृत्तांत	९१
१७	तृष्णोपदेश	२४	३९	नारायणवचनोपन्यास	५७	६१	अनित्यताप्रतिपादन	९२
१८	जीवन्मुक्तिवर्णन	२५	४०	प्रल्हादबोधवर्णन	५८	६२	अंतरासंघविचार	९३
१९	पावनबोधवर्णन	२८	४१	प्रल्हादाभिषेक	५९	६३	संसक्तविचार	९५
२०	पावनबोधवर्णन	२९	४२	प्रल्हादावस्थावर्णन	६०	६४	शांतिसमाचारयोगोपदेश	९६
२१	तृष्णाचिकित्सोपदेश	३१	४३	प्रल्हादविश्रांति	६१	६५	संसक्तचिकित्सा	९७
२२	विरोचनवर्णन	३२	४४	गाधीआख्याने चांडा॰	६३	६६	सारयोगोपदेश	९८

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
६७	मोक्षस्वरूपोपदेश	१०१	७५	उपशमयोग	११५	८३	वीतवनिर्वाणयोगोपदेश	१२८
६८	आत्मविचार	१०३	७६	चित्तशांतिप्रतिपादन	११७	८४	वीतवोपाख्यानसमाप्ति	१२९
६९	नीरास्पदमौनविचार	१०४	७७	वीतवोपाख्याने चित्ता०	११८	८५	सिद्धिलाभविचार	१२९
७०	मुक्तामुक्तविचार	१०८	७८	वीतवोपाख्याने अनुशा०	१२१	८६	ज्ञानविचार	१३२
७१	संसारसागरयोगोपदेश	११०	७९	चित्तोपदेश	१२२	८७	स्मृतिबीजविचार	१३३
७२	जीवन्मुक्तवर्णन	१११	८०	मनोयज्ञवर्णन	१२४	८८	संशयनिराकरण०	१३७
७३	जीवन्मुक्तिज्ञानबंध	११३	८१	वीतवोपाख्याने समाधियोगो०	१२५	८९	मोक्षोपाय	१३९
७४	सम्यक्ज्ञानवर्णन	११५	८२	इंद्रियनिर्वाण	१२६			

॥ ॐ परमात्मने नमः ॥ ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणं पंचमं प्रारभ्यते ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! अब स्थितिप्रकरणके अनंतर उपशमप्रकरण कहता हौं; जिसके जाननेतें निर्वाणताकों प्राप्त होहुगे, जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें वचन कहे, तब सब सभा शोभित भई, जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं, अरु वसिष्ठजीके वचन कैसे हैं, जो परमानंदके कारण हैं, ऐसे पावन वचन श्रवण करिके अर्थ धरिके मौन हो गये, जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानिविषे स्थित होवै, तैसे सभाके लोक अरु राजा स्थित भये, अरु स्त्रियां जो झरोखेविषे बैठियां थियां, सो तिनके महाविलासकी चंचलता शांत हो गई, अरु घटीयंत्रोंके शब्द जो गृहविषे होते थे, सो भी शांत हो गये, शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्त्तिवत् अचल हो गये, राजातें आदि लेकरि जो लोक थे, सो कथाके सन्मुख भए, कैसी कथा है, जो विज्ञान कथा है, सर्वही विचारविषे मग्न हो गए, रामजी बडे विकाशकों प्राप्त भए, जैसे प्रातःकालविषे कमल विकाशमान होता है, तैसे तमकों त्यागत भया, प्रकाश आनि उदय भया, जैसे सूर्यके उदय हुएतें प्रकाश आनि उदय होता है, अरु वसिष्ठजीकी कही जो वाणी थी, तिसकरि राजा दशरथ बहुत प्रसन्नताकों प्राप्त भया, जैसे मेघकी वर्षाकरि मोर प्रसन्नताकों प्राप्त होता है, तैसे गदगद हो गए, सर्वके जो मनरूपी चंचल वानर थे, सो विषयभोगतें रहित स्थित भए, मंत्री श्रवण करिके स्थित हो रहे, अपने स्वरूपकों जानत भए, जैसे चंद्रमाकी कला प्रकाशती है, तैसे आत्मकला प्रकाशती भई, लक्ष्मण अपने लक्ष्य स्वरूपकों देखता भया, तीव्र बुद्धि करिके वसिष्ठजीके उपदेशकों जानता भया, अरु शत्रुघ्न जो शत्रुकों दलनहारा था, तिसका चित्त अति आनंदकरि पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा स्थित होता है, तैसे मंत्रीयोंके हृदयविषे मित्रता होती भई, मन शीतल हो गया, हृदय प्रफुल्लित होता भया, जैसे सूर्यके उदय हुएतें कमल तत्काल विकासमान होता है, अरु और जो मुनि राजा ब्राह्मण स्थित थे, तिनके चित्तरूपी जो रत्न थे, सो स्वच्छ निर्मल

हो गए, तब मध्याह्नकालका समय हुआ, तब वाजिंत्र वाजणे लगे, बडे शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघके शब्द होते हैं, तैसे भेरीके शब्द होणे लगे, तिनके बडे शब्दकरि मुनीश्वरोंका शब्द आच्छादित भया, जैसे मेघके शब्दकरि कोकिलाका शब्द छपत हो जाता है, तब वसिष्ठजी तूष्णीं हो गए, एक मुहूर्तपर्यंत शब्द होत रहा, बहुरि तूष्णीं भया, जब घन शब्द शांत हुआ, तब मुनीश्वर रामजीप्रती कहत भया ॥ हे रामजी! जो कछु मैं आज कहना था, सो कहि रहा हौं, बहुरि काल कहौंगा, तब सर्व सभाके लोक अपने स्थानकों गए, तब वसिष्ठजीनें राजातें लेकरि रामजी आदिकों कहा, तुम भी अपने गृहकों जावहु, तब सर्वनें चरणवंदना नमस्कार करे, अवर जो नभचारी, वनचारी, जलचारी थे, सो सबकों विदाय किये, अपअपने स्थानोंकों गये, ब्राह्मणकी सुंदर वाणीकों विचारत भए, अपने अधिकारकी क्रियाकों दिनकों करत भए ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पूर्वदिनवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार अपने स्थानोंकों जायके बडे सूरमे राजपुत्र महासुंदर चंद्रमाकी नांई जिनकी कांति है, सो अपने स्थानविषे यथा उचित क्रियाकों करते भए; वसिष्ठ, राजा, राघव, मुनि, ब्राह्मण थे, सो अपने स्थानविषे स्नान आदिक क्रियाकों करत भए; तालविषे जो कमल थे, कुमुदनी उत्पल आदिक थे, तहा स्नान करत भए; गौ, स्वर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन, आदिक ब्राह्मणोंकों यथायोग्य दानपात्रोंकों देते भए, स्वर्णरत्नोंकरि जडे हुए जो स्थान थे, तिनविषे आइकरि राजा देवताका पूजन करते भए, किसी विष्णुका, किसी सदाशिवका, किसी अग्निका, किसीनें सूर्य आदिका पूजन किया, पूजन करिके पुत्र पौत्र सुहृद मित्र बांधवसंयुक्त भोजन करते भए, नानाप्रकारके महा उचित भोजन किए, दिनका अर्ध पौर आय रहा, तब अपने संबंधियोंसंयुक्त और क्रिया करत भए, जब सांझकाल भया, सूर्य अस्त भया, तब सायंकालकी विधि करत भए; अघमर्षण गायत्री आदिक जाप करत भए; पाठ श्रौत्र

अरु पुनरपि मनोहर कथा, मुनीश्वरोंकी करहीं, तिसतें उपरांत रात्र भई, तब जो स्त्रियां हैं, सो रामजी आदिकोंकी शय्या बिछावत भइयां; तिस उपर विराजत भए, रामजीविना सर्वोंकों रात्र एक मुहूर्त व्यतीत भई, अरु रामजी स्थित होइकरि वसिष्ठजीके वचनकी जो पंक्ति थी, तिसकों विचारत भया, कैसे वचन हैं, जो मधुर अरु उचितरूप हैं, तिनकों कैसे चितवत भए, जैसे हस्तीका बालक किसी वनके स्थानमेंतें कछु भोजन समेटि लेवै, अरु आयके तिसका स्मरण करै, तैसे विचारत भया, संसार है नाम जिसका, इसविषे भ्रमणेका पात्र कवन है, अरु नानाप्रकारके जो भूतजात हैं, सो कहांतें आते हैं, अरु कांहां जाते हैं, अरु मनका स्वरूप क्या है? शांति कैसे होती है, इह माया कहां तें उठी है, अरु कैसे निवृत्त होती है, निवृत्त हुए विशेषता क्या होती है, अरु नष्टता किसकी होती है, अनंतरूप जो आत्मा विस्तृत है, सो तिसविषे अहंकार होना कैसे है, अरु मनके क्षय होनेविषे मुनीश्वरनें क्या कहा है, अरु इंद्रियोंके जीतणेविषे क्या कहा है? आत्माके पावणेविषे क्या युक्ति वसिष्ठजीनें कही है, जीव, चित्त, मन अरु माया सबही एकरूप है, विस्ताररूप संसार इननेंही रचा है, सो असत्‌रूप है, तिनहुने संपूर्ण संसार बांधि छोडा है; तिसकरि जीव पडे दुःख पावते हैं, जैसे तंदुएनें हस्तिकों बांध्या था, अरु उह कष्ट पावता था, तैसे जीव कष्ट पावते हैं, तिस दुःखके नाश करनेनिमित्त कौन औषध है, अरु भोगरूपी जो मेघमाला है, तिसविषे मोहित हुई मेरी बुद्धि गलित हो गई है, तिसकों मैं किसप्रकार भिन्न करौं? यह तौ भोगसाथ तन्मय हो गई है, जैसे जल अरु दूधकों हंस भिन्न करता है, अरु मुझकों भोगोंके त्यागनेकी समर्थता भी नहीं, भोगोंके त्यागनेविना बडी आपदा है, अरु तिसके संहारणेकों भी समर्थ नहीं, बडा आश्चर्य है, हमकों बडा कष्ट प्राप्त भया है, आत्मपदकी प्राप्ति मनके जीतणे करि होती है, वेदशास्त्रके कहणेका प्रयोजन भी यही है, अरु गुरुके वचन करिके भ्रम नष्ट हो जाता है, जैसे बालककों परछायेविषे बैताल भासता है, तिस भ्रमकों जैसे बुद्धिवान् दूर करता है, तैसे मनरूपी भ्रमकों गुरु दूर क

रते हैं, उह कौन समय होवैगा, जो मैं शातिकों प्राप्त होऊंगा, अरु संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा, जैसे यौवनवान स्त्री भर्तारकों पायके सुखसों विश्राम करती है, तैसे मेरी बुद्धि आत्माकों पायके कब विश्रामवान् होवैगी, अरु नानाप्रकार संसारके आरंभ कब मेरे शांत होवैंगे, कब मैं आदि अंततें रहित पदविषे विश्रांतवान् होऊंगा, नम मेरा कब पावनरूप होवैगा, मैं पूर्णमासीके चंद्रमावत् संपूर्ण कलाकरि संपन्न कब होऊंगा, स्वच्छ शीतल प्रकाशरूप पदविषे कब स्थित होऊंगा अरु कब जगत्कों देखिके हसौंगा, कब मलीन कलनांकों त्यागिके आत्मपदविषे स्थित होऊंगा? कब मैं मनकों संकल्पविकल्पतें रहित शांतरूप देखौंगा, जैसे तरंगतें रहित नदी शांतरूप दिखती है, तृष्णारूपी तरंगकरि व्याकुल जो संसारसमुद्र है, सो माया जलकरि पूर्ण है, अरु रागदोषरूपी मच्छसंयुक्त है, तिसकों त्यागिके मैं वीतज्वर कब होऊंगा, उपशम सिद्ध पदकों मैं कब पावौंगा? जो पद बुद्धिवानोंनें मूढताकों त्यागिके पाया है, अरु मैं कब निर्दोष समदर्शी होऊंगा, अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होवैगा, जिसकरि संपूर्ण अंग मेरे पडे तपते हैं, सब धातु क्षोभरूप हो गईयां हैं, तिसकरि बडा दीर्घ ज्वर हुआ है; तातें कब मेरा चित्त शांतिवान् होवैगा, जैसे वायुविना दीपक शांत होता है, कब भ्रमकों त्यागिके प्रकाशवान् होऊंगा, अरु मैं कब लीलाकरि इंद्रियांके दुःखोंकों तरि जाऊंगा, दुर्गंधरूप देहतें मैं कब न्यारा होऊंगा, अहं त्वं आदिक मिथ्या भ्रम उठ्या है, तिसकों नाशरूप मैं कब देखौंगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होता है, अरु जिस पदके आगे इंद्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मंदार आदिक वृक्षोंकी सुगंधि अरु नानाप्रकारके भोगजात सो तृणवत् भासते हैं, सो आत्मसुख हमकों कब प्राप्त होवैगा? वीतराग मुनीश्वरनें हमकों निर्मलदृष्टि ज्ञानकी कही है, तिसकों पायके मन विश्रामवान् होता है, अरु इह संसार तौ दुःखरूप है॥ हे मन! तूं किस पदकों पायके विश्रामवान् भया है, माता पिता पुत्रादिक जो संबंधि हैं, तिनका पात्र मैं बहुरि नहीं होता, इनका पात्र भोगी होता है, बुद्धि, तूं मेरी भगि

नी है, तौ मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातवत् पूर्ण कर, जो तुम हम दोनों दुःखतें मुक्त होवें, मुनीश्वरके वचनोंकों विचारिके हमारी आपदा नाश होवैगी, अरु परमपदकों प्राप्त होवैंगे, तुझकों शांति होवैगी ॥ हे मेरी बुद्धि! तूं ज्यौंका त्यौं स्मरण कर, जो वसिष्ठजीनें क्या कहा है, प्रथम तौ वैराग्य कहा है, तिसके अनंतर मोक्ष व्यवहार कहा है, बहुरि उत्पत्तिप्रकरण कहा है, जो संसारकी उत्पत्ति इस क्रमकरि हुई है, बहुरि स्थिति प्रकरण कहा है, जो ईश्वरकरि जगत्की स्थिति है, नानाप्रकारके दृष्टांतोंकरि निरूपण किया है, अरु जेते प्रकरण कहे हैं, सो ज्ञानविज्ञानसंयुक्त हैं ॥ हे बुद्धि ! जिस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा है, तैसे तूं स्मरण कर, जो अनेक वार विचार कर अरु बुद्धिविषे निश्चय न होवै,तौ उह किया भी निष्फल होवै, जैसे शरत्कालका मेघ बडा घन भी दृष्ट आता है, परंतु वर्षातें रहित निष्फल होता है, तैसे बुद्धिविषे अनुसंधानतें रहित विचार किया, निष्फल होता है ॥ जो बुद्धिविषे अनुसंधान करियें, सो विचार सफल होता है॥ ॥इति श्रीयो० उप० उपदेशानुसारवर्णनं नाम द्वि० ॥ २ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार बडे उदार आत्मा रामजी चित्त संयुक्त रात्रिकों व्यतीत करत भए, जैसे सूर्यकी कक्षा कमलतें रात्रि वीतावत है, तैसे रामजी वीतावते भए, कछु तमसंयुक्त तारागण आनि रहे, अरु दिशा भासणे लगी, अरु प्रातःकालके नगारे नौबद वाजणे लगे, तब रामजी उठे, जैसे कमलोंकी खानीतें कमल उठै, तैसे रामजी उठिकरि भ्रांतिसंयुक्त प्रातःकालके संध्यादिक कर्म करत भए, बहुरि कछुक मनुष्यसंयुक्त वसिष्ठजीके आश्रम आये, वसिष्ठजी एकांत समाधि विषे स्थित थे, आत्मपरायण आत्माविषे एकाग्रभूत है चित्त जिसका, ऐसे वसिष्ठ मुनीकों दूरतें देखि, रामजी नमस्कारसहित चरणवंदना करत भए, प्रणामकरि वसिष्ठजीके सन्मुख हस्त बांधिके ठाडे भए, जब दिशाका तम नष्ट भया, तब राजा अरु राजपुत्र ऋषि, ब्राह्मण, सब वसिष्ठजीके आश्रमविषे आवत भए, जैसे ब्रह्मलोकविषे देवता आवैं तैसे ॥ तब वसिष्ठजीका आश्रम जनोंकरि पूर्ण हो गया; हस्ती, घोडे, र

थ, प्यादा चार प्रकारकी सेना राजा इनकरि स्थान शोभित भया, तब तत्काल वसिष्ठजी समाधितें उतरे, सर्व लोक प्रणाम करत भए, तब तिन सबनकों प्रणाम, आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण करत भये, बहुरि उठे, विश्वामित्रकों संग लेकरि सबसों आगे हो चले, बाहिर निकसीकरि रथपर आरूढ भये, जैसे, कमलजा ब्रह्मा पद्मविषे बैठे, तैसे रथपर बैठिकरि दशरथके गृहकों चले, अरु बडी सेना संग वेष्टित है, जैसे ब्रह्माजी देवतासें वेष्टित इंद्रपुरीकों आते हैं, तैसे वसिष्ठजी दशरथके गृह आवत भए, जो विस्तृत रमणीय सभा थी, तिसविषे प्रवेश करत भए, जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंविषे जाइ प्रवेश करै, तब राजा दशरथ जो बडे सिंहासनपर बैठा था, सो तिसतें उठिकरि आगे आय, चरणवंदना करी नम्रभूत होइकरि चरण चुंबे अरु वसिष्ठजी सर्वके अग्र होइकरि शोभते भए, वसिष्ठजीतें आदि लेकरि मुनि ऋषि ब्राह्मण आए, अरु दशरथतें लेकरि राजा, सर्व मंत्री, बंदिवान्, रामजीतें आदि लेकरि राजपुत्र, मंडलेश्वर, जगतके अधिष्ठाता अरु मालव आदिक सर्व भृत्य टहलुए आए, सब अपणे यथायोग्य आसनपर बैठि गए, सबकी दृष्टि वसिष्ठजीके और भई, बंदीजन जो भाट हैं, सो स्तुति करते थे, सर्व लोक शब्द करते थे, सो बोलणेतें रहित हो गए, तब सूर्य उदय हुआ, किरणांनें झुककरि झरोंखेके मार्गांतर प्रवेश किया, तब कमल खिली आए, पुष्पकरि स्थान पूर्ण हो गए, तिनकी महासुगंधि पसरी, अरु झरोंखेविषे स्त्रियां स्थित भईयां, अरु सो अपनी चंचलताकों त्यागिकरि मौन हो बैठियां, चमर करनेहारी मौन होइकरि शीशपर चमर करत भईयां, अरु वसिष्ठजीकी जो महासुंदर वाणी कोमल मधुर है, तिसकों स्मरण करी आपसमें आश्चर्यवान् होवें, तब दिशातें पर आकाशतें राजर्षि आए, सिद्ध विद्याधर अरु मुनि आए, वसिष्ठजीकों प्रणाम करत भए, अरु गंभीरतासों मुखतें बोले नहीं, अरु प्रणाम करिके यथायोग्य आसनपर बैठि गए, पुष्पकी सुगंधि चली, अगरचंदनादि धूप चलाए, सभाविषे बडी सुगंधि पसरी रही, भंवरे शब्द करते फिरैं, कमलों

कों देखि प्रसन्न होवैं, रत्नमणि भूषण जो राजानें अरु राजपुत्रोंनें पेरे हैं, तिसपर सूर्यकी किरणां पडै तातें बडा प्रकाश चंदोराविषे करहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ मेघ जैसे बडे गंभीर वचन बोधसहित सुंदर पद हैं जिनविषे, ऐसे प्रमाणवचन राजा दशरथ मुनीविषे श्रेष्ठ वसिष्ठजीकों कहत भया ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ हे भगवन्! कालका जो दिन व्यतीत भया है, तिसविषे तुमनें हमकों कहा था, तिसके श्रमतें रहित हो क्यों? तुमारा शरीर तप्तकरि अति कृश जैसा हो गया है, इसनिमित्त तुमकों कहा है ॥ हे मुनीश्वर! तुम आनंदवचन जो कहे हैं, सो प्रगटरूप हैं, तुमारे वचनरूपी अमृतकी वर्षा है, तिसकरि हम आनंदमान भए हैं, तुमारे निर्मल वचनकरि हमारे हृदयका तम दूर भया है, शीतलचित्त भए हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणांकरि तम अरु तप्त दोनों निवृत्त होते हैं, तैसे तुमारे वचनोंकरि हम अज्ञानरूपी तम अरु तप्ततें रहित भए हैं, तुमारे वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनंद देते हैं, ज्यों ज्यों ग्रहण करियें, त्यों त्यों विशेष रस आनंद आता है, शोकरूपी तप्तकों दूर करणेहारे हैं, अमृतकी वर्षारूप हैं, अरु आत्मारूपी रत्न है, तिसकों दिखाणेहारे परमार्थरूप दीपक है, ऐसे आनंदकों देणेहारे तुमारे वचन हैं, सो संतजनरूपी वृक्षकी यह वेली है, दुरिच्छा अरु दुष्ट आचरण नानाप्रकारके जो नीच हैं, तिसके नाश करणेहारे वचन हैं, जैसे तमकों दूर करणेकों अरु शीतलता करणेकों शांतरूप चंद्रमा है, तैसे संतजनरूपी चंद्रमा है, तिनके वचनरूपी जो किरणांकरि अज्ञानरूपी तप्तता नाश होती है, हे मुनीश्वर! तृष्णा अरु लोभादिक जो विकार हैं, सो तुमारी वाणीकरि नष्ट हो गया है, जैसे शरत्कालका पवन मेघकों नष्ट करता है, तैसे तुमारे वचनकरि हम निष्पाप भए हैं, आत्मदर्शनके निमित्त प्रवर्तते हैं, अरु तुमनें हमकों परम अंजन दिया है, तिसकरि हम सचक्षु भए हैं, जैसे जन्मका अंध सचक्षु होके नेत्र करिके पदार्थोंकों देखै, तैसे हम सचक्षु हुए हैं, अरु संसाररूपी कुहीड निवृत्त हुई है,

जैसे शरत्कालविषे कुहीड नष्ट हो जाती है, अरु जैसे कल्पवृक्षकी लता अरु अमृतका स्नान आनंद देता है, तैसे उदारबुद्धिकी वाणी आनंददायक होती है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ ऐसे वसिष्ठजीकों कहीकरि रामजीकी ओर मुख करत भए, अरु कहा ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ हे राघव! जो जो काल संतोंकी संगतिकरि व्यतीत होता है, सो सो दिन, सो सो काल, सफल होता है, अरु जो जो दिन सत्संगविना व्यतीत होता है, सो वृथा होता है ॥ हे कमलनयन रामजी! बहुरि तुम वसिष्ठजीकों जगावहु, अर्थ यह जो कछु पूछहु, जो बहुरि उपदेश करै, यह हमारे कल्याणविषे स्थित हैं, अर्थ यह जो हमारा कल्याण चाहते हैं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा, तब रामजीकी ओर मुख करिके उदारआत्मा वसिष्ठजी भगवान् बोलत भये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! अपणे कुलरूपी आकाशके चंद्रमा, मैं जो बचन कहे थे, सो तुमकों स्मरण आवते हे क्यों? अरु तिन वाक्योंका अर्थ स्मरणविषे है क्यों? पूर्व अरु अपरका विचार कछु किया है क्यों? हे महाबोधवान् महाबाहो! अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता, सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेदकी उत्पत्ति विचित्ररूप है, सो मैंनें कही है, सो तुमारे चित्तमें है क्यों? सर्व भी उही है, असर्व भी उही है, सत्य भी उही है, असत्य भी उही है, सदा शांत अद्वैतरूप है, यह परमात्मा देवका विस्तृतरूप स्मरण है क्यों? जैसे विश्व उदय हुआ है, ईश्वरतें सो स्मरण है क्यों? यह जो देववाणी है, तिसका पात्र शुद्ध चित्त है, अशुद्ध नहीं ॥ हे सत्यबुद्धि रामजी! अविद्या जो विस्तृतरूप भासती है, तिसका रूप स्मरण है क्यों? अर्थतें शून्य क्षणभंगुररूप है, सम्यक् दर्शनतें रहित निर्जीव है यह जो लवणके विचार द्वारा मैं प्रतिपादन किया है, सो भली भ्रांति स्मरण है, क्यों? वाक्योंका समूह मैंनें तुझकों कहा है, तिनोंकों रात्रिविषे विचारिकरि हृदयविषे धारे है क्यों? जब वारंवार विचारता है, अरु तात्पर्य हृदयविषे धारता है, तब बडा फल प्राप्त होता है, अरु जो अवज्ञा करिके अर्थका विस्मरण करता है, तौ फलकों नहीं पाता ॥ हे

रामजी! तुम तौ इन वचनोंके पात्र हौ, इह जो वचन परम उदार हैं, सो तिसके हृदयविषे फलीभूत होता है, जैसे उत्तम बांसविषे मोती फलीभूत होते हैं, अवरविषे नहीं उपजते, तैसे जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं, तिनके हृदयविषे इह वचन फलीभूत होता है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब कमलासन ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीनें कहा, तब महा ओजवान् गंभीर रामजी अवकाश पाईके बोलत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता, जो तुम परम उदार वचन कहे हैं, तिनकरि मैं बोधवान् भया हौं, अरु जैसे तुम अब कहते हौ, तैसेही सत्य हैं, अन्यथा नहीं ॥ हे भगवन्! मैं रात्रिकों निद्रातें रहित भया था, तुमारे वाक्यके विचारविषे रात्रि व्यतीत करी है; तुम तौ हृदयके अज्ञानरूपी तमकों नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हौ ॥ हे भगवन्! तुम जो व्यतीत दिनविषे आनंददायक प्रकाशरूपी वचन कहे थे, सो मैं सर्व अपणे हृदयविषे भली प्रकार धरे हैं, सो तुमारे वचन कैसे हैं, रमणीय अरु पवित्र हैं, अरु नानाप्रकारके विचित्र हैं, जैसे समुद्रतें नानाप्रकारके रत्न निकसते हैं, तैसे तुमारे वचन कल्याणकर्त्ता हैं, अरु बोधवान् हैं, अर्थ यह जो सर्वके सहायक हैं, अरु हृदयगम्य आनंदका कारण है उह कवन है, जो तुमारी आज्ञाकों शिरपर न धरै, जो मुमुक्षु जीव है, सो सब तुमारी आज्ञाकों सिशपर धरते हैं, अपने कल्याणके निमित्त जानते हैं ॥ हे मुनीश्वर! तुमारे वचन करिके मेरे संशय निवृत्त भए हैं, जैसे शरत्कालविषे मेघ कुहीड नष्ट हो जाती है, अरु निर्मल आकाश भासता है, तैसे तुमारी कृपाकरि मैं संशयतें रहित निर्मलचित्त भया हौं, इह संसार आपातरमणीय होइ भासता है, जबलग पदार्थोंका अभाव नहीं होता, तबलग सुखदायक भासता है, अरु जब विषयपदार्थ इंद्रियोंतें दूर होते हैं, तब दुःखदायक हो जाता है, अरु तुमारे वचन कैसे हैं, जिनके आदि यत्न भी कछु नहीं, सुगम मधुर आरंभ है, अरु मध्यविषे सौभाग्य मधुर वचन हैं, अर्थ यह जो कल्याणकर्ता हैं, पाछेतें अनुत्तम पदकों प्राप्त करते हैं, जिसके समान अवर पद कोउ

नहीं, सो अनुत्तम पदकों प्राप्त करते हैं, यह तुमारे पुण्यरूप वचनका फल है, अरु तुमारे वचनरूपी पुष्प सदा कमलसमान खिले हुए हैं, निर्मल आनंदकों देणेहारे हैं, अरु उदित फूल हैं, तिसका फल हमकों प्राप्त होवैगा, सर्व शास्त्रोंविषे जो पुण्यरूपी जल है, तिसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हौं, मुझ कों उपदेश करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघव प्रश्न वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे सुंदरमूर्ति रामजी! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशमप्रकरण है, सो श्रवण कर, तेरे कल्याणनिमित्त मैं कहता हौं, इह संसार महादीर्घरूप है, इसकों राजसी अरु तामसी जीव धरी रहे हैं, जैसे दृढ स्तंभके आश्रय गृह होता है, तैसे राजसी जीवोंका आश्रय संसार मायारूप है, अरु जो तुमसारिखे सात्त्विकविषे स्थित हैं, सो सूरमे हैं, वैराग्य विवेक आदिक गुणकरि संपन्न हैं, सो लीला करिके यत्नविना संसारमायाकों त्यागि देते हैं, जो बुद्धिवान् सात्त्विक जागे हुए पुरुष हैं, अरु राजस और सात्त्विक हैं, सो भी उत्तम पुरुष हैं, उह पुरुष जगतके पूर्व अपूर्वकों विचारते हैं, संतजन अरु सत्शास्त्रोंका संग करते हैं, तिनके आचारपूर्वक विचरते हैं, तिसकरि ईश्वर जो परमात्मा है, तिसकों देखणेकी बुद्धि उपजती है, दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है ॥ हे रामजी! जबलग अपणे विचार करिके अपणा स्वरूप नहीं पिछानता, तबलग उह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जो उत्तम कुल निष्पाप सात्त्विक राजसी जीव हैं, तिनकों विचार उपजता है, तिस विचारकरि अपणे आपसों आपकों पावता है, सो दीर्घदर्शी है, संसारके जो नानाप्रकारके आरंभ हैं, तिनकों विचारता है, अरु विचारद्वारा आत्मपदकों पाता है, परमानंद सुखविषे प्राप्त होता है, तातें तुम इसी संसारकों विचारहु, जो सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि असत्का त्याग करहु, अरु सत्यका आश्रय करहु, जो पदार्थ आदिविषे न होवै, अरु अंतविषे न रहै, सो मध्यविषे भी असत्य जानियें, जो आदिअंत एकरस है, तिसकों सत्य जानियें, तिसतें इतर कछु नहीं, जो आदिअंत

विषे नाशरूप है, तिसविषे जिसकों प्रीति है, अरु तिसके रागकरि रंजित है, सो मूढ पशु है, तिसकों विवेकका रंग नहीं लगता, मनही उपजता है, मनही बढता है, सम्यक् ज्ञानके उदय हुएतें मन निर्वाण हो जाता है, मनरूप संसार है, अरु आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जो कछु तुम कहते हौ, सो मैंनें जान्या है, जो इह संसार सर्व भावनाविषे मनरूप है, जरा मरण आदिक विकारका पात्र भी मनही है, तिसके तरनेका उपाय निश्चयकरि तुम कहौ, जिसकरि इसकों तरि जाओं, हम सब रघुवंशीयोंके कुलका अज्ञानरूपी तम हृदयसों दूर करणेकों तुम ज्ञानके सूर्य हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम तौ इस जीवकों इह कर्तव्य है, जो विचारपूर्वक वैराग्य कहा है, जो संतजनोंका संग अरु सत्शास्त्रोंकरि मनकों निर्मल करना, जब मनकों निर्मल करैगा, तब स्वजनता जो आर्जव तिसकरि संपन्न होवैगा, बहुरि इसकों वैराग्य आनि उपजैगा, जब वैराग्य प्राप्त हुआ, तब ज्ञानवान् जो गुरु हैं, तिनके निकट जावैगा, जब उह उपदेश करैंगें, तब ध्यान अर्चनादिकके क्रमकरि परमपदकों प्राप्त होवैगा, जब इसकों निर्मल विचार आनि उपजता है, तब इह अपणे आपकों आपकरि देखता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपणे बिंबकों आपकरि देखता है, तैसे उह देखता है, जबलग विचाररूपी तटका आश्रय नहीं लिया, तबलग संसारविषे तृणवत् भ्रमता है, विचार करिके वस्तु ज्यौंकी त्यौं जानता है, तब सब दुःख मनतें नष्ट हो जाते हैं, जैसे सोमजलके नीचे रेत जाइ रहती है, तैसे आधि पीडा उसकी रहि जाती है, बहुरि उत्पन्न नहीं होता, जैसे स्वर्ण अरु राख मिली हुई है, तबलग सोनारा संशयविषे रहता है, जब स्वर्ण अरु राख भिन्न होवै, तब संशयरहित स्वर्णकों प्रत्यक्ष देखता है, तब निःसंशय होता है, तैसे अज्ञान करिके जीवोंकों मोह उत्पन्न भया है, देह इंद्रियसाथ मिल्या हुआ संशयविषे रहता है, जब विचारकरि भिन्न भिन्न जानै, तब मोह नष्ट हो जावै, औ तब संशयतें रहित शुद्ध अविनाशीरूप आत्माकों देखता है, विचार कियेतें मोहका अवसर नहीं रहता, जैसे अज्ञा

त पुरुष चिंतामणिकी किंमतकों जानि नहीं शकता, जब उसकों ज्ञान प्राप्त भया, तब ज्यौंका त्यौं जानता है, तब मोह संशय निवृत्त हो जाता है, तैसे जीव जबलग आत्मतत्त्वकों नहीं जानता तबलग दुःखका भोगी होता है, अरु जब ज्यौंका त्यौं जानता है, तब शुद्ध शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! देहके संगकरि मिश्रित भासता है, वास्तवतें कछु मिश्रित नहीं भया, तातें अपणे स्वरूपविषे शीघ्रही स्थित होहु, निर्मल स्वरूप जो आत्मा है, तिसकों रंचकमात्र भी देहसाथ संबंध नहीं, जैसे स्वर्णकीचविषे मिश्रित भासता है, तौ भी स्वर्णकों कीचका लेप कछु नहीं लगता, निर्लेप रहता है, तैसे जीवकों देहसाथ संबंध कछु नहीं, निर्लेपही रहता है, आत्मा भिन्न, देह भिन्न है, जैसे जल अरु कमल भिन्न रहते हैं, मैं उंची भुजा करिके पुकारता हौं, मेरा कहा कोउ नहीं मानता, संकल्पतें रहित होणा परम कल्याण है, यही भावना अंतरमें क्यौं नहीं करते, जबलग जडधर्म है, अर्थ यह जो विषयभोगोंविषे आस्था करता है, अरु आत्मतत्त्वतें शून्य रहता है, तबलग मूढ टोएजैसा रहता है, जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग इसके हृदयसों संसारका तम अवर किसी प्रकार दूर नहीं होता, चंद्रमा उदय होवै, अग्निका समूह होवै, द्वादश सूर्य एकठे उदय होवैं, तौ भी हृदयका तम रंचकमात्र भी दूर नहीं होता, अरु जब स्वरूपकों जानिकरि आत्माविषे स्थित होवै, तब हृदयका तम नष्ट हो जावैगा, जैसे सूर्यके उदय हुएतें जगत्का अंधकार नष्ट होता है, तैसे जबलग आत्मपदका बोध नहीं, अरु भोगोंविषे तद्रूप मन है, तबलग संसारसमुद्रविषे वही जावैगा, अरु दुःखका अंत न आवैगा, जैसे आकाशविषे धूलि भासती है, परंतु आकाशकों धूलिका संबंध कछु नहीं, जैसे जलविषे कमल भासता है, परंतु जलसाथ स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है, तैसे आत्मा देहसाथ मिश्रित भासता है, परंतु देहसाथ आत्माका कछु स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे स्वर्ण कीचमलतें अलेप रहता है, देह जड है, आत्मा तिसतें भिन्न है, सुखदुःखका अभिमान आत्माविषे भासता है, सो भ्रममात्र असत्यरूप है, जैसे

आकाशविषे दूसरा चंद्रमा असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो असत्यरूप है, तैसे आत्माविषे सुखदुःखादि असत्यरूप है, सुखदुःख देहकों होता है, सर्वतें अतीत जो आत्मा है, तिसविषे सुखदुःखका अभाव है, यह अज्ञान करिके कल्पित है, अरु देहके नाश हुएतें आत्माका नाश नहीं होता, तातें सुखदुःख आत्माविषे कोउ नहीं, न किसीकों कछु सुख है, न किसीकों कछु दुःख है, सर्व आत्मामय शांतरूप है, अरु जो इह विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है, सो मायामय है, जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे यत्न भासता है, सो आत्माही है, न एक है, न दो हैं, सर्व आभासमात्र है, मिथ्या दृष्ट आकार भासता है, जैसा मणिका प्रकाश मणितें भिन्न नहीं, अरु अपणी छाया दृष्ट आती है, तैसे आत्माका प्रकाशरूप जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, मैं और हौं, यह जगत् और है, इस भ्रमकों त्याग करहु, विस्तृतरूप जो ब्रह्म घनसत्ता है, तिसविषे और कल्पना कोउ नहीं, जैसे जलविषे तरंग कछु इतर वस्तु नहीं, जलरूपही है, तैसे सर्वरूप आत्मा है, सो एकरूप है, तिसविषे द्वितीय कल्पना कोउ नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फके कणके नहीं होते, तैसे ब्रह्मविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, तातें अपणे आप स्वरूपकी आपही भावना करहु, जो मैं चिन्मात्ररूप हौं, जगत्जाल सर्व मेराही स्वरूप है, मैंही विस्तृतरूप हौं; जो कछु है, सो देवही है, न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है; ऐसे जानिके विगतज्वर होहु, अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तुमारी स्थिर बुद्धि है, तुम शांतरूप श्रेष्ठ मणिवत् निर्मल होहु, ऐसे जानिके विगतज्वर होहु ॥ हे राघव ! तुम निर्द्वंद्व होहु, नित्य स्वरूपविषे स्थित निर्योगक्षेम आत्मवान् विशोक होइकरि स्थित होहु, सत्यसंकल्प धैर्यवान् यथाप्राप्तिविषे वर्तता विगतज्वर होहु, तुम वीतराग निर्यत्न निर्मल वीतकल्मष होहु, न देते हौ, न लेते हौ, ग्रहणत्यागतें रहित शांतरूप होहु, विश्वतें अतीत जो पद है, तिसकों प्राप्त होइकरि जो पावणे योग्य पद है, तिसकों पायकरि परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप संतापतें रहित विचरो ॥ हे रामजी ! संकल्प

जालतें मुक्त मायामलतें रहित अपणे आपकरि तृप्त विगतज्वर होहु, आत्मवेत्ताका शरीर अंनत है, आदि अंततें रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वर होहु॥ हे रामजी! तुम अपणे आपकरि उदार होहु, अरु अपणे आपकरि आनंदकरि आनंदी होहु, जैसे समुद्र अपणे आनंदकरि आनंदवान् है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपणे आनंदकरि आनंदवान् है, तैसे तुम आनंदवान् होहु, यह जो प्रपंचरचना भासती है, सो असत्य है, जो ज्ञानवान् हैं, सो असत्य जाणिकरि इसकी ओर नहीं धावते, तुम तौ ज्ञानवान् हौ, असत्य कल्पना त्यागिकरि दुःखतें रहित होहु, नित्य उदित शांतरूप शुभ गुणसंयुक्त उपदेशद्वारा चक्रवर्ती होइकरि तुम पृथ्वीका राज्य करौ, अरु प्रजाकी पालना करौ, समदृष्टिसों विचरौ, बाह्य शुभ चेष्टा यथाशास्त्र करौ अरु राज्यकी मर्यादा करनी अंतर निर्लेप रहणा, तुमकों न त्याग साथ कछु प्रयोजन है, न ग्रहणसाथ प्रयोजन है, ग्रहणत्यागविषे समबुद्धि समभावकरि राज्य करहु ॥ इति श्रीयोगवा॰ उप॰ प्रथमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी ! सर्व कार्यकों करता हुआ हृदयतें वासना नष्ट भई है, उह पुरुष कार्यविषे वर्तता है तौ भी मुक्त है, हमारे मतविषे इसकों बंधनका कारण वासना है, जिसकी वासना क्षय हुई है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु जिसकी वासना पदार्थोंविषे सत्य है, सो बंधमें है, कोइ पुरुष अपणे पुरुषार्थकों आश्रयकरि कर्तव्य भी करते हैं, प्रीति करिके प्रवर्तते हैं, सो अपणी वासना करिके स्वर्गकों प्राप्त होते हैं, बहुरि स्वर्गकों त्यागिकरि दुःख नरक भुगतते हैं, सो अपणी वासनाकरि बांधे हुए पशु आदिक स्थावर योनिकों प्राप्त होता है, अरु कोइ आत्मवेत्ता पुण्यपुरुष है, सो मनकी दशाकों विचारता है, अरु तृष्णारूपी बंधनकों काटिकरि निर्मल आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु कोई पुरुष पूर्व जन्मकों भोगिकरि इस जन्मविषे मुक्त हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी होता है, जिनका यह जन्म अंतका होता है, सो क्रम करिके परिपूर्ण पदकों प्राप्त होते हैं, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा क्रम करिके पूर्णमासीका होता है, अरु सर्वका

लकरि पूर्ण होता है, जैसे वर्षाकालविषे कटक वृक्षकी मंजरी बढि जाती है, तैसे सौभाग्यलक्ष्मी तिनकी बढती जाती है ॥ हे रामजी ! जिनका इह जन्म अंतका होता है, तिसविषे निर्मल गुण जो वेदनें कहे हैं, सो आय प्रवेश करते हैं, जैसे उत्तम वांसविषे मोती उपजता है, तैसे राजसी सात्त्विकीविषे शुभ गुण उपजते हैं, मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता, आर्यता यह गुण प्रवेश करते हैं, सर्व जीवोंपर दया करणी सो मैत्री, अरु हृदयविषे सदा समताभाव अंतःकरणविषे क्षोभ कोउ न उठै, सो मुक्तता; अरु सदा प्रसन्न रहणा सो सौम्यता, यथाशास्त्र आचार करणा, इसका नाम आर्यता है, ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे श्रेष्ठ अंगना आय प्रवेश करती है, तैसे जिसकों अंतका यही जन्म है, सो राजस सात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुण आय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यकों करता है; परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागदोष नहीं होता, सर्वदा काल समभाव रहता है, न तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकरि रागदोष नष्ट हो जाते हैं, सर्व गुण सिद्धताकों प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है, अरु मधुर तिसका आचार होता है; सर्व जीव तिसके आचारकी वांच्छा करते हैं, अरु तिसकों देखिके मोहित हो जाते हैं, जैसे सुंदर बांसरीकी ध्वनिकरि मृग मोहित होता है, तैसे उसकों देखिके विस्मय होते हैं, जैसे मेघकी ध्वनिकरि बगले आय प्रवेश करते हैं; तैसे उस पुरुषविषे सब गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसों पूर्ण होइकरि गुरुकों शरण जाता है, तब उह विवेकका उपदेश करता है, तिस विवेककरि परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जो वैराग्य अरु विचारकरि संपन्नचित्त है, सो आत्मा देवकों देखता है, तिसकों दुःख स्पर्श नहीं करता, यथार्थ एक आत्मरूपकों देखता है; तुम विचारिके आश्रय करिके मनकों जगाओ; कैसा मन है जिसविषे मननही मथन है; अर्थ यह जो सदा प्रपंच दृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अंत

का जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगकों जगावता है, प्रथम तौ गुणज्ञानकरि जगावता है, बहुरि बडे गुणहुकरि जगावता है, फेर जानिके सेवणेका यत्न करता है, तिसकरि जगावता है; निर्मल बुद्धिसाथ चित्तरूपी रत्नोंकों विचार करता है; तिस विचारकरि जगत्कों आत्मारूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुमकों क्रम कहा है, सो सब जीवोंकों समान है, इसतें जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इह जगत्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव हैं, तिन जीवोंका दो प्रकारसें मोक्ष होता है; एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावे, उह इसकों उपदेश करै तिस उपदेशके धारणेतें शनैःशनैः एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है, अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपणे आपकरि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह जो समझ लेता है, जैसे वृक्षतें फल गिरैं अरु इसकों आय प्राप्त होवें, तैसे इसकों ज्ञान प्राप्त होता है, इसीपर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझकों कहता हों, सो तूं श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भए हैं, अरु अकस्मात फल जिनकों प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुण ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचनावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई हैं, अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ है, सो बडा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवें, तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नांई पूर्ण करै, अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनकों सूर्यवत् प्रफुल्लित करै, बांधवरूपी पुरुषोंकों वसंतऋतु अरु स्त्रियोंकों कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनकों शीतल चंद्रमा अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य, स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु सूर्य आय स्थित भये हैं, ऐसा राजा जनक एक समय लीला करिके अपणे बागकों गमन करता भया; कै

सा बाग है, मधुरता करिके प्रफुल्लित भए हैं फल जिसके, कोकिला शब्द करतियां हैं, नानाप्रकारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकरि सुगंधि पसरी रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनकों दूरतें त्यागिकरि आप एकलाही कुंजोंविषे विचरणे लगा, एक शाल्मली नामक वृक्ष था, तहांतें शब्द श्रवण किया, जो अदृष्ट सिद्ध है, सो गीता गाता है, विरक्तचित्त अरु नित्य पर्वतोंविषे विचरणेवाला कमलवत् नेत्र जिसके, सो आत्मगीताकों उच्चार करता है, जिसकरि आत्मबोध प्राप्त होता है, तिस गीताकों राजा श्रवण करते भए ॥ ॥ प्रथमसिद्ध उवाच ॥ इस द्रष्टा जो पुरुष है, अरु दृश्य जो जगत् है, तिस द्रष्टा अरु दृश्यके मिलापविषे जो बुद्धिमें निश्चित आनंद होता है, सो इष्टके संयोगका अरु अनिष्टके वियोगका जो आनंद है, सो चित्तविषे दृढ होता है, सो आनंद आत्मतत्त्वतें उदय होता है, स्पंदरूप जिस आत्मा आनंदतें लव उठता है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ ॥ द्वितीयसिद्ध उवाच ॥ द्रष्टा, दर्शन, अरु दृश्य इनकों वासनासहित त्यागकर, जो दर्शनतें प्रथम प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि यह तीनों प्रकाशते हैं, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ ॥ तृतीयसिद्ध उवाच ॥ जो निराभास निर्मलरूप है, अरु आभास अरु मननके भावका अभाव है, जिसविषे द्वितीय कल्पनाका अभाव है, अद्वैतरूप है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ ॥ चतुर्थसिद्ध उवाच ॥ दोनोंके जो मध्यविषे है, अस्ति नास्ति दोनोंके पक्षोंतें रहित प्रकाशरूप सत्ता है, सब सूर्य आदिककों भी प्रकाशता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ पंचमसिद्ध उवाच ॥ जो ईश्वर सकार हकार भया हैं, अर्थ यह जो सकार जिसके आदिविषे औ हकार है जिसके अंतविषे, ऐसे सोहं है, सो अंततें रहित आनंद अनंत जो शिव परमात्मा है, सो अनंत आत्मा सर्व जीवके हृदयविषे स्थित है, निरंतर जो अहंरूप होइकरि उच्चार होता है, तिस आत्माकी हम उपासना करतेहैं ॥ ॥ षष्ठसिद्ध उवाच ॥ हृदयविषे स्थित जो ईश्वर

है, तिसकों त्यागिकरि जो और ठौर देवके पावणेकी यत्न करते हैं, सो पुरुष हस्तविषे कौस्तुभमणिकों त्यागिकरि और रत्नोंकी वांछा करता है ॥ ॥ सप्तमसिद्ध उवाच ॥ जब सर्व आशाकों त्यागता है, तब इसकों फल प्राप्त होता है, जो आशारूपी विषकी वल्ली है, सो मूलसंयुक्त नष्ट हो जाती है, अर्थ यह जो जन्म अरु मरण आदिक दुःख नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नहीं उपजते, जो पदार्थोंकों अत्यंत विरसरूप जानता है, अरु बहुरि उसविषे आशा बांधते हैं, सो दुर्बुद्धि गर्दभ हैं, मनुष्य नहीं, जहां जहां विषयोंकी और दृष्टि उठती है, तिनकों विवेककरि नष्ट करहु, जैसे इंद्रनें वज्रसाथ पर्वतकों नष्ट किया था, तैसे नष्ट करहु, जब इस प्रकार शुद्ध आचरण किया, तब समभावकों प्राप्त होवैगा, तिसकरि मन आत्मपद उपशमकों प्राप्त होवैगा, अक्षय अविनाशी पदकों पावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सिद्धोंकी गीता महीपति सुणीकरि जैसे संग्रामविषे कायर विषादकों प्राप्त होता है, तैसे विषादकों प्राप्त भया, बहुरि सेनासंयुक्त अपणे गृहविषे आया, टहलुए भृत्य सर्व लोक किनारेविषे स्थानोंपर ठाडे हो रहे, तिनकों त्यागिकरि उपर चौखंडी झरोंखेमें जाय स्थित भया, जैसे तटके वृक्षोंकों नदीका प्रवाह स्पर्श करता है, तैसे तिनके मार्गकों स्पर्श करता उपर जाय बैठा, एक मंदिरके उपर जाय स्थित भया, जैसे सूर्य उदयाचल पर्वतपर चढता है, तैसे चढीकरि संसारकी चंचल गतिकों इधर उधर देखणे लगा, अरु विलाप करणे लगा, बडा कष्ट है, जो मैं भी संसारविषे लोकोंकी चंचल दिशा है, तासों आस्था बांधी रहा हौं, यह तौ जीव सर्व जडरूप हैं, चैतन्य कोउ नहीं, जैसे अवर जीव पाषाणरूप हैं, तैसे मैं भी तिनविषे पाषाण हो रहा हौं, काल जो है, सो अंततें रहित अनंत है, तिसके कछुक अंशविषे मेरा जीना है, तिस जीणेविषे मैं आस्था बांधी रहा हौं, सो मुझकों धिक्कार है, अरु जो मैं अधम चेतन हौं, यह जो केतेक मंत्री मेरे हैं, सो राज्य अरु जीणा सर्व क्षणभंगुर

है, यह जो सुख है, सो दुःखरूप है, इनतें रहित मैं किस प्रकार स्थित होहुं, जैसे महापुरुष बुद्धिवान् स्थित होते हैं, आदि अंतविषे तुच्छरूप है, अरु मध्यविषे जीवणा पेलवरूप है, तिसविषे मैं क्या मिथ्या आस्था बांधी है? जैसे बालक चित्रके चंद्रमाकों देखिके चंद्रमा मानीकरि आस्था बांधै, तैसे यह प्रपंचरचना इंद्रजालकी बाजीवत् है, बडा कष्ट है, जो तिसविषे मैं क्यौं मोहित भया हौं, जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार अरु अकृत्रिम है, सो इस संसारविषे रंचक भी नहीं, मेरी बुद्धि क्यौं नष्ट भई है? जो पदार्थ दूर होवै, अरु तिसके पावणेका मेरे मनविषे यत्न होवै, तौ उह निकटही है, यह निर्णय करौ, अथवा अर्थाकार जो संसारके पदार्थ हैं, तिनकी आस्था मैं त्यागता हौं, यह जो लोक हैं, सो सब आगमापायी हैं, उदय होते हैं, अरु मिट जाते हैं, जलके तरंगोंवत् सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, जेते कछु सुख दृष्टि आते हैं, सो दुःखसाथ मिश्रित हैं, तिनविषे मैं क्या आस्था बांधी है, सुख कदाचित् दिन पक्ष मासवर्षादिककरि आते हैं, अरु दुःख वारंवार आते हैं, मैं किस सुखकरि जीणेकी आस्था बांधौं, जो बडे बडे हुए हैं, सो नष्ट हो गए हैं, स्थिर किसीका रहणा नहीं, वारंवार विचारी देखता हौं, तिसकरि मैं जाण्या है, जो इह जगत्विषे सत्य पदार्थ कोउ नहीं, सब नाशरूप है, ऐसा कवन पदार्थ है, जो जिसविषे आस्था बांधौं, जो अब बडे ऐश्वर्यवान् बिराजते हैं, सो केतेक दिन पीछे अधकों गिरि पडते हैं, हे चित्त! बडा खेद है, तुझनें किस बडाईविषे आस्था बांधी है, जो आयुर्बलकरि मैं बांध्या हुआ किसबिना कलंकित भया हौं, उंचे पदविषे स्थित भी मैं, अधकों गिर्या हौं; बडा कष्ट है, जो मैं आत्मा हौं अरु नाशकों प्राप्त भया हौं, किस कारणकरि अकस्मात् मुझकों मोह आया है, मेरी बुद्धिकों इसनें उपहत कीनी है, जैसे सूर्य आगे मेघ आता है, अरु सूर्य नहीं भासता, तैसे आत्मा नहीं भासता, भोगोंसाथ मेरा क्या है, अरु बांधवोंसाथ मेरा क्या है, इनबिषे मैं क्यौं मोहित भया हौं? जैसे बालक परछायेविषे भयकों पावता है, तैसे देहअभिमानकरि यह पुरुष आपही बंधायमान होता है, देहविषे अहं

कार जरामरणादिक विकारका कारण होता है,तातें इनसाथ मेरा क्या प्रयोजन हैं, इन अर्थोंकी बडाई राज्यविषे मैं क्यौं धैर्य धारी बैठा हौं, इह सब पदार्थ क्षोभका कारण है, यह ज्यौंके त्यौं रहते हैं, इनविषे न मुझकों ममता है, न संग है, इह सर्व असत्यरूप है, संसारके सुख विषरूप हैं, इसविषे आस्था करणी मिथ्या है, जो बडे बडे ऐश्वर्यवान् हुए हैं, बडे पराक्रमी गुणवान् हुए हैं, सो सब परिवारसंयुक्त मृत्युकों प्राप्त भये हैं, तौ वर्तमानविषे क्या धैर्य करना है, कहां उह धन अरु राज्य अरु कहां उस ब्रह्माका जगत्! केई पुरुषनकी पंक्ति वीत गईयां; हमकों तिनविषे क्या विश्वास है, देवताके नायक अनेक इंद्र नष्ट हो गये हैं, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकरि नष्ट हो जाता है, तौ मैं क्या इस संसारविषे आस्था बांधीकरि जीवौं? संतजन मुझकों हसैंगे; केई ब्रह्मा हो गए हैं, केइ पर्वत हो गए हैं, केई धूलिकी कणिकावत् राजा हो गए हैं, तौ मुझकों इस जीवणेविषे क्या धैर्य है, संसाररूपी रात्रि है, तिसविषे देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है, तिस भ्रमरूपविषे जो आस्था बांधी है, तातें मुझकों धिक्कार है, यह सो, अरु मैं, इत्यादिक भ्रम आत्माविषे मिथ्या कल्पना उठी है, अज्ञानीयोंकी नांई मैं स्थित भया हौं; अहंकाररूपी पिशाच करिके क्षणक्षणविषे आयुबल व्यतीत होती है, देखते हुए भी नहीं दिखती, कालकी सूक्ष्म गती है, कैसा काल है, जो सबकों चरणके नीचे धरे है, सदाशिव अरु विष्णुकों जिसनें खेलणेका गेंद किया है, ऐसा काल जो सबकों भोजन करी जाता है, सो मुझकों जीणेविषे क्या आस्था बांधनी है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो निरंतर नाश होते हैं, कोउ दिन, कोउ पक्ष वर्षकरि नाश हो जाता है, अरु जो अविनाशी वस्तु है, सो अबलग नहीं देखी, वर्ष व्यतीत हो गये हैं; जीवोंकी जों चित्तरूपी नदी है, तिसविषे भोगोंकी तृष्णारूपी तरंग उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होता, जैसे वायुकरि नदीविषे तरंग उछलते हैं; सोमतातें रहित हो जाते हैं, तैसे जिनकों चित्तविषे भोगोंकी अभिलाषा है, तिनकों अतुच्छ पद दृष्टि नहीं आता, कष्टतें कष्टकों प्रात होते हैं, दुःखतें दुःखांतरकों प्राप्त होते हैं,

अबलग मैं विरक्तताकों प्राप्त नहीं भया, तातें मुझकों धिक्कार है, अरु नीच है अंतःकरण जिसका, तातें जिस जिस वस्तुविषे कल्याणरूप जानिके आस्था बांधी है, सो सो नष्ट होती दिखती है, यह क्या उत्तमता है, जो जिसविषे मैं आस्था बांधी है, सो यह शरीर कैसा है, अस्थिमांसकरि बन्या है, आदि अंतसंयुक्त इसका आकार है, मध्यविषे कछुक रमणीय भासता है, परंतु सब अपवित्र पदार्थोंकरि रचा है, विनाशरूप है, स्पर्श करणेकों भी योग्य नहीं, तिससाथ मुझकों क्या प्रयोजन है, जिस जिस पदार्थसाथ लोक आस्था बांधते हैं, तिसतिसविषे मैं दुःखही देखता हौं, अरु यह जीव ऐसे जडमूढ हैं, जो सदा इसविषे लगे रहते हैं, काल यह पदार्थ मुझकों प्राप्त होवैगा; अगले दिन यह प्राप्त होवैगा; दिन दिन पाप करते हैं, दिनदिनविषे खेदकों पाते हैं, तौ भी त्याग नहीं करते, ऐसे मूढ हैं, बालक अग्निविषे पूर्ण मूढताकरि विचरते हैं, यौवन अवस्था कामादि विकारकरि मिश्रित है, शेष जो वृद्धावस्था है, तिसविषे चित्तकरि दुःखी होता है, इह जड मूर्ख परमार्थ कार्यकों किस कालविषे साधैगा; यह जगत्के पदार्थ सब आगमापायी विरस हैं, विषम दिशाकरि दूषित हैं, अर्थ यह जो एक भावमें नहीं रहते, सर्व जगत् असाररूप है, सत्य बुद्धितें रहित असत्यरूप है, सार पदार्थ इसविषे कोउ नहीं, राजसूय अरु अश्वमेध आदि जो यज्ञ करते हैं, तब महाकल्पके किसी अंश कालमें स्वर्गकों पाते हैं, अधिक तौ नहीं भोगते, जो अश्वमेध यज्ञ करता है, सो इंद्र होता है, जो एक दिन ब्रह्माका होता है, तिसविषे चतुर्दश इंद्र राज्य भोगिकरि नष्ट हो जाते हैं, सहस्र चोकडी युगोंकी व्यतीत होती है, तब ब्रह्माका एक दिन होता है, ऐसे तीस दिनोंका एक मास, द्वादश मासका एकवर्ष ऐसे सौ वर्ष ब्रह्माकी आयुर्बला है, तिस आयुर्बलाकों भोगिकरि ब्रह्मा अंतर्धान हो जाता है, तिसका नाम महाप्रलय है, तिस महाप्रलयके अंतविषे इसनें स्वर्गभोग किया, तौ असार सुखकी क्या आस्था योग्य है, ऐसा सुख ऊर्ध्व स्वर्गमें कोउ नहीं, न पृथ्वीविषे है, न पातालविषे है, जो सुख आपदा दुःखसंग मिश्रित न होवै, ऐसा कहां है? सर्व लोक आपदासंयुक्त

हैं, अरु सब दुःखोंका मूल चित्त है, सो शरीररूपी खुरविषे सर्पवत् रहता है, आधिव्याधि बडे दुःखरूपी विषकों देता है, इह किसी प्रकार निवृत्त होवै, तब सुखी होवै, इसकरि जीव नीच प्राकृत हो रहे हैं, कोउ विरला साधु है, जिसके हृदयविषे चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता, सो तौ दुर्लभ है, यह जगतके पदार्थ कैसे हैं, जो सत्यता है, तिसके मस्तकपरि असत्यता है, जो रमणीय भासता है, तिसके मस्तकपरि अरमणीयता स्थित है, जो सुखरूप है, तिसके मस्तकपर दुःख स्थित है, किसी एककों मैं आश्रय करों, तौ दुःखसाथ मिश्रित है, दुःख तौ दुःखसाथ मिश्रित क्या कहियें, आपही दुःख है, जो सुख संपदा है, सो दुःख आपदासंग मिश्रित है, बहुरि मैं किसका आश्रय करों? यह जीव जन्मते हैं, अरु मरते हैं, तिनविषे कोउ विरला दुःखतें रहित है, जो सुंदर स्त्रियां हैं, नील कमलवत् नेत्र जिनके हैं, परम हास्य विलास आदिक भूषणों संयुक्त हैं, तिनकों देखिके मुझकों हासी आती है, जो यह तौ अस्थिमांसकी पुतली हैं॥ क्षणमात्र इनकी स्थिति है, जिन पुरुषोंके निमेष खोलणेकरि जगत् होता है, अरु उन्मेष मुंदणेकरि जगत्का अभाव हो जाता है, निमेष अरु उन्मेष जिनकरि जगत् उत्पन्न प्रलय होता है, इस प्रकार जिनकों भासता है, ऐसे भी नष्ट हुए हैं, तौ हमसारिखेकी क्या गिणती है? जो पदार्थ बडे रमणीय भासत हैं, सो अस्थितरूप हैं, अरमणीय हो जाते हैं, नाश हो जाणा है, तिन पदार्थोंकी चिंता करणी अरु इच्छा करणी क्या है, नानाप्रकारकी संपदा प्राप्त होती है, यह जगत् क्या है, अरु उनविषे जब चित्तकों कोउ आय लगता है, तब सर्व संपदा आपदारूप हो जाती है, अरु जो बडी आपदा आय प्राप्त होती है, अरु इनके चित्तविषे क्षोभ नहीं होता, शांतरूप है, तब उह आपदा संपदारूप है, तौ सिद्ध क्या भया! यही सिद्ध भया जो सर्व मनके फुरणेमात्र है, मनकी वृत्ति क्षणभंगुररूप अकस्मात् जगत्की इनकी स्थित भई है, अज्ञान करिके अहं सो इदं कल्पना करी है, तिसविषे त्याग अरु ग्रहणकी भावना मिथ्या है, अरु क्षीणरूप

जो संसार है, तिसमें सुख है, सो आदिअंतसंयुक्त है, तिसविषे सुख तौ कछु नहीं, अरु जो सुख जाणीकरि इसकी उर धांवता है, सो सुख बहुरि नष्ट हो जाता है, जैसे पतंग दीपकशिखाकों सुखरूप जानिकरि इसकी उर धांवता है, तौ दग्ध हो जाता है, तैसे संसारके सुख ग्रहण करनेहारे तृष्णाकरि दग्ध हुए हैं; जैसे नरकका अग्नि दग्ध करता है, सो भी श्रेष्ठ है, परंतु क्षणभंगुर जो संसारके सुख हैं, सो नीच हैं, नष्ट हुए भी दुःख दे जाते हैं, दुःखकी सीमा है, अर्थ यह जो भोगोंकी तृष्णातें अधिक दुःख अवर कोउ नहीं, जो इस संसारसमुद्रविषे गिरते हैं, सो सुखकों नहीं पावते, संसारविषे दुःख स्वाभाविक है; अरु सुखदुःखसाथ मिश्रित हैं, मैं भी अज्ञानीकी नांई काष्ठलोष्ठकी नांई स्थित हो रहा हौं, बडा खेद है, अज्ञानीवत् शमादिक सुखकों त्यागिकरि क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्त यत्न करता हौं, जैसे बरफतें अग्नि नहीं उपजता, तैसे संसारतें सुख नहीं उपजता, जेते कछु जीव हैं, सो जडधर्मात्मक हैं, संसाररूपी एक वृक्ष है, सहस्र तिसके अंकुर शाखा पत्र फल फूल हैं, तिनकरि पूर्ण है, तिस संसाररूपी वृक्षका मूल मन है, तिसके संकल्परूपी जलकरि विस्तारकों प्राप्त भया है, संकल्पके उपशम हुएतें नष्ट हो जाता है, तातें जिस प्रकार यह नष्ट होवै, सोइ उपाय करौंगा, संसारकेविषे भोग देखणेमात्र सुंदर भासता है, अंतरतें दुःखरूप है, अरु मन जो है सो मर्कटवत् चंचलरूप है; तिसकरि यह रचना रची है, जबलग वस्तुतें इसकों जान्या नहीं, तबलग चंचल है, जब विचार करी जानता है, तब पदार्थोंकी रमणीयतासहित मनका अभाव हो जाता है, तातें मैं नाशरूप पदार्थोंविषे नहीं रमता, संसारकी वृत्ति कैसी है, अनेक फांसीयोंसों मिश्रित है, तिसविषे गिरते हैं, बहुरि उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, ऐसी संसारकी वृत्तिकों मैं चिरकालपर्यंत भोगियां हैं, अब मैं भोगतें रहित होइकरि ब्रह्मही होता हौं, इस संसारविषे वारंवार जन्म मरण होता है, शोकही प्राप्त होता है, अब संसारकी वृत्तितें रहित हुआ शोकतें रहित होता हौं, अब मैं प्रबुद्ध भया हौं, अरु हर्षवान् भया हौं, मैं अपणे चोर आ

पही देखे हैं, मन है नाम जिसका, इसीकों मारौंगा, इस मननें मुझकों चिरपर्यंत मारा है, अरु एते कालपर्यंत मेरा मनरूपी जो मोती था, सो अवेध रहा था, अब मैंनें इसकों वेध्या है, अर्थ यह जो आत्मविचारतें रहित था, अब तिसकों आत्मविचारविषे जोड्या है, आत्मज्ञानके योग्य है, मनरूपी एक बरफका कण था, सो जडताकों प्राप्त भया था, अब विवेकरूपी सूर्यकरि गलि गया है, अब मैं अक्षय शांतिकों प्राप्त भया हौं, अनेक प्रकारके वचनोंकरि साधुरूप जो सिद्ध थे तिननें मुझकों जगाया है, मैं आत्मपदकों प्राप्त भया हौं, परमानंद करिके अब मैं चिंतामणि आत्मरूपीकों पायकरि एकांत सुखी होऊंगा, अरु स्थित होऊंगा; जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे होऊंगा, मनरूपी जो शत्रु है, तिसनें मुझकों भ्रम दिखाया था, सो अब विवेककरि नाश किया है, उपशमकों प्राप्त भया हौं ॥ हे विवेक! तुझकों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार चितवता था, तब दासी राजाके निकट आई, जैसे सूर्यके आगे अरुण आय स्थित होता है, तैसे प्रतिहारी जो दासी है, सो कहत भई ॥ हे देव! अब उठौ, ठाढे होहु, दिनका जो उचित विचार है, स्नान आदिक सो करौ, स्नानशालाविषे पुष्प अरु केसर गंगाजल आदिकी घागर लेकरि स्त्रियां ठाढी हो रहियां हैं, कमलपुष्प पडे हैं, तिनपर भंवरे फिरते हैं, छत्र चमर पडे हैं, स्नानका समय है ॥ हे देव! पूजनके निमित्त सर्व सामग्री आई है, रत्न औषधि ले आए हैं, हाथोंविषे पवित्र डारीकरि ब्राह्मण बैठे हैं, स्नान करिके अघमर्षण जाप करी रहे हैं, तुमारे आगमनकी और देखते हैं, हाथोंविषे चमर लेकरि सुंदर कांता तुमारे सेवणेनिमित्त खडी हैं, अरु भोजनशालाविषे भोजन सिद्ध हो रहा है, तातें शीघ्र उठौ, जो कार्य है, सो करौ, जैसा काल होता है, तिसके अनुसार कर्म बडे पुरुष करते हैं, इनका त्याग नहीं करते, तातें उठौ, कालकों व्यतीत न करौ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार दासीनें क

हा, तब राजा चितवत् भया, विचित्र जो स्थिति है, संसारकी सो कितनेक मात्र है, राज्यसुख इनसाथ मुझकों कछु प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है, इस मिथ्या आडंबर संपूर्णकों त्यागिके मैं एकांत जाय बैठता हौं, जैसे समुद्र तरंगोंतें रहित शांतरूप होता है, तैसे शांतरूप होऊंगा, यह जो नानाप्रकारके राजभोग हैं, अरु क्रिया कर्म हैं, तिनतें अब मैं तृप्त भया हौं, सर्व कर्मोंकों त्यागिकरि केवल सुखविषे स्थित होऊंगा, मेरा चित्त जो भोगोंकरि चंचल था, सो भोग तौ भ्रमरूप हैं, इनविषे शांति नहीं होती, तृष्णा बढती जाती है, जैसे जलउपर सेवाल बढती जाती है, अरु जलकों आच्छादि लेती है, तैसे तृष्णा आच्छादि लेती है, अब मैं इसकों त्याग करता हौं॥ हे चित्त ! तूं जिस जिस दिशाविषे गियाँ है, अरुजो जो भोग भोगे हैं, सो सब मिथ्या हैं, तृप्ति तौ किसीविषे न भई, तातें भ्रमरूप भोगोंतें उपरत होऊंगा, तब परम सुखी होऊंगा, बहुत उचित अनुचित भोग वारंवार भोगे हैं, परंतु तृप्ति किसी करिके न भई, तातें हे चित्त ! इनकों त्यागिकरि, परमपदके आश्रय होहु, जैसे बालक एककों त्यागिकरि दूसरेकों अंगीकार करता है, तैसे यत्नविना तूं भी कर, जब इन तुच्छ भोगोंकों त्यागैगा, अरु परमपदकों आश्रय करैगा, तब आनंदी तृप्तिकों प्राप्त होवैगा, तिसकों पायकरि बहुरि संसारि न होवैगा॥ हे रामजी ! इस प्रकार चिंतन करी जनक तूष्णीं हो रहा, मनकी चपलताकों त्यागिकरि सोम आकारकरि स्थित भया, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे हो गया, अरु प्रतिहारी भी भयमान होइकरि बहुरि कछु न कही शकी, जो कदाचित् राजा अप्रसन्न होवै, तिसके अनंतर मनकी समतानिमित्त बहुरि राजा चितवत भया, जो मुझकों ग्रहण अरु त्याग करणे योग्य यत्न करिके कछु नहीं, किसकों मैं साधौं, किस वस्तुविषे मैं धैर्य धारौं, सर्व पदार्थ नाशरूप हैं, मुझकों करणेसाथ क्या प्रयोजन है, अरु अकरणेकरि क्या हानि है, ग्रहण त्याग किसका करौं, जो कछु कर्तव्य है, सो शरीर करता है, निर्मल अचलरूप चेतन है, सो न करता है, न भुगतता है, तातें मुझकों कर्तव्य कछु नहीं, जो त्याग करौंगा,

तौ शरीर करणेतें रहित होवैगा, अरु जो करौंगा, तौ भी शरीर करैगा, मुझकों क्या प्रयोजन है, तातें करणे अकरणेविषे मुझकों लाभ हानि कछु नहीं, तातें जो कछु प्राप्त भया है, प्रवाह, तिसविषे विचरता हौं, अप्राप्तकी मैं वांछा नहीं करता, अरु प्राप्तका मैं त्याग नहीं करता; अपणे स्वरूपविषे स्थित होइकरि स्वस्थ होऊंगा, जो कछु प्राप्त कर्म है, सोई करता हौं, न कछु मुझकों करणेविषे अर्थ है, न अकरणेविषे दोष है, जो क्रिया होवै सो होवै, करौं अथवा न करौं, युक्त होवै अथवा अयुक्त होवै, मुझकों ग्रहण त्याग करणेयोग्य कछु नहीं, तातें जो कछु प्राप्त करणेयोग्य कर्म है, सोइ करौं, कर्मका करणा शरीर प्रकृतिकरि होता है, आत्माकों तौ कर्तव्य कछु नहीं, तातें मैं इनविषे निःसंग हो रहौंगा, जो निस्पंद चेष्टा होवै, तौ क्या सिद्ध भया, अरु क्या किया, जो मन कामनातें रहित स्थित विगतज्वर भया, अर्थ यह जो हृदयविषे राग दोष मलिनता न उपजी, तौ देहकरि कर्म होवै, तौ भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिविषे तुलना रहैगी, जो देहसाथ मिलिकरि मन कर्म करता है, तब कर्ता भोक्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषवान् होता है, जब मनका मनन उपशम हुआ, तब कर्तव्यविषे भी अकर्तव्य है, जैसा निश्चय अंतर दृढ होता है, सोई रूप पुरुषका होता है, जिसके हृदयविषे अहंकृति नहीं, अरु बाह्य कर्मचेष्टा करता है, तौ भी उसनें किया कछु नहीं, अरु जिसके हृदयविषे अहंकृति अभिमान है, सो बाह्य अकर्ता भासता है, तौ भी अनेक कर्म करता है, तातें जैसे निश्चय अंतर दृढ होता है, तैसे फल पुरुषकों होता है, जो बाह्य कर्ता भी है, परंतु अंतरकर्तव्यका अभिमान नहीं, तौ उह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदकों प्राप्त होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार चितवना करिके यथाप्राप्त जो क्रिया हैं, तिनके करणेकों उठि खडा हुआ, जो इष्टअनिष्टकी वासना है, सो चित्ततें त्यागत भया, अरु यथाप्राप्तविषे करता हुआ, जाग्रतविषे सुषुप्तिकी नांई जैसे सुषुप्ति पुरुषरूप होता है,

तैसे उह जागृतविषे हो रहा, अरु दिनकों तिनके आचारकों करत भया, यथाशास्त्र क्रियाविषे दिनकों विचरै, अरु रात्रिकों लीलाकरिके ध्यानविषे स्थित होवै, मनकों समरस करत भया, जब रात्रि क्षीण भई, तब इस प्रकार चित्तकों बोध करत भया॥ हे चंचलरूप चित्त! परमानंदस्वरूप जो आत्मा है, सो तुझकों सुखदायक नहीं भासता? जो यह मिथ्या संसारसुखकी इच्छा करता है? जब तेरी इच्छा शांत हो जावैगी तब तूं सारसुख आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, ज्यों ज्यों तूं संकल्प लीलाकरि उठावता है, त्यों त्यों संसार, जाल विस्तार हो जाती है, इस दुःखरूप संसारसाथ तुझकों क्या प्रयोजन है॥ हे मूर्ख चित्त! ज्यों ज्यों संकल्प इच्छा करता है, त्यों त्यों संसारका दुःख बढता जाता है, जैसे जल सिंचणेकरि वृक्षकी शाखा बढती हैं, तैसे संसारसुखतें अधिक दुःख प्राप्त होता है, ऐसे दुःखरूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजालतें उपजा है, जब तूं इसका त्याग करैगा, तब दुःख मिटि जावैगा, फुरणेका नाम दुःख है, इसके मिटेतें दुःख भी कोउ न रहैगा, यह संसार महाचंचल है, देखणे मात्र सुंदर है, वास्तवतें कछु नहीं, जो कछु तुझकों इसतें सार प्राप्त होवै, तब इसका आश्रय कर, सो तौ यह क्षणभंगुर है, अरु दुःखकी खाण है, तातें इसकी आस्था त्याग अरु आत्मतत्त्वकों आश्रय कर, शुद्ध निर्मल होइकरि जगत्विषे विचरहु, तब तुझकों दुःख स्पर्श न करैगा, जगत् स्थित होवै अथवा शांत हो जावै, इसके उदयअस्तकी वासनाकरि इसके गुण अवगुणविषे आसक्त मत होहु, जो अविद्यमान् असत्यरूप होवै, तिसकी आस्था क्या करणी है, यह असत्यरूप है, अरु तूं सत्यरूप है, असत्य अरु सत्यका संबंध कैसे होवै, मृतक अरु जीतेका कबी संबंध हुआ है, जो तूं कहै चेतनतत्त्व दृश्यरूप है, तौ दोनौं सत्यस्वरूप हैं, तौ सदा विस्तृतरूप आत्माही हुआ, हर्ष विषाद किसका करता है, तातें तूं मूढ मत होहु, समुद्रकी नांई अक्षोभरूप अपणे आपविषे स्थित होहु, संसारकी भावना त्यागिकरि मान मोह मलकों त्याग करहु, संसारकी इच्छा दुःखका कारण है, इसकों त्या

गिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवै, तब परिपूर्ण पदकों प्राप्त होवैगा, तातें बलकरि तिसकों आश्रय करिके चंचलताकों त्याग ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचार करिके राजा सब कार्यकों करता भया, आनंदवृत्ति विषे मन उसका प्रबोधवान् मोहकों न प्राप्त भया, इष्टविषे हर्षवान् न होवै, अनिष्टविषे दोषवान् न होवै, केवल सम स्वच्छ अपणे स्वरूपविषे स्थित भया, जगत्विषे विचरै, न कछु त्याग करै, न कछु ग्रहण करै, न कछु अंगीकार करै, केवल वीतशोक होइकरि संतापतें रहित वर्तमानविषे कार्य करै, बहुरि उसके हृदयविषे कल्पना कोउ स्पर्श न करै, जैसे आकाशकों धूलिकी मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे मलिनतातें रहित अपणे स्वरूपके अनुसंधानतें सम्यक् ज्ञान अनंतप्रकाशविषे मन निश्चलताकों प्राप्त किया, मनकी जो कोउ संकल्पवृत्ति थी, सो नष्ट हो गई, महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयविषे प्रकाशित भया, जैसे आकाशविषे सूर्य प्रकाशता है, तैसे अनंत आत्मा प्रगट भया, संपूर्ण पदार्थ तिसविषे प्रतिबिंबित देखता है, जैसे शुद्ध मणीविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे सर्व पदार्थ आपणे स्वरूपविषे आत्मभूत देखता भया, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंकी प्राप्तिविषे हर्ष खेद मिटि गया, सर्वदा समान होइकरि प्रकृत व्यवहारकों करी जीवनन्मुक्त होइकरि इस प्रकार राजा जनक विचरत भया ॥ हे रामजी! जनककों ज्ञानकी दृढता भई, तिस करिके लोकोंके परावरकों जानिकरि विदेहनगरका राज्य करता भया, जीवोंकी पालनाविषे राजा जनक हर्षविषादकों प्राप्त न भया, संतापतें रहित हुआ राजका कोउ अर्थ उदय होवै, अथवा अस्त हो जावै, परंतु हर्षशोककों कदाचित् प्राप्त न होवै, कार्य करता दृष्ट आवै, परंतु हृदयकरि कछु न करै ॥ हे रामजी! तैसे तुम भी कार्य सब करो, परंतु निरंतर आत्मस्वरूपविषे स्थित रहो, तुम जीवन्मुक्त वपु हो, राजा जनककी सब पदार्थ भावना अस्त हो गई हैं, सुषुप्तिवत् वृत्ति भई हैं, भविष्यत्की इच्छा नहीं करता, व्यतीतकों चितवता नहीं,

जो वर्तमान कार्य प्राप्ति होवै तिसकों यथाशास्त्र करता है, अपणे विचारके वशतें कछु पावणे योग्य पद था सो पाया, और इच्छा कछु नहीं ॥ हे रामजी! जबलग इह आत्मपदकों प्राप्त नहीं होता, तबलग इसके हृदयविषे अपणा पुरुषार्थरूपी विचार उपज्या नहीं, जब अपणे आपकरि अपणा विचाररूप पुरुषार्थ जागै, तब सब दुःख मिटि जावै, अरु परम संपदाकों प्राप्त होवै, ऐसा पद शास्त्र अर्थ अरु पुण्यक्रियाकरि नहीं प्राप्त होता, जैसा पद अपणे हृदयविषे विचार कियेतें प्राप्त होता है; सो पद निर्मल अरु स्वच्छ है, हृदयकी तपतकों निवृत्त करता है, बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशकरि हृदयका अज्ञान नष्ट हो जाता है, और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता, जो बडा आपदारूप दुःख तरणेकों कठिन है, सो अपणी बुद्धिकरि तरणा सुगम होता है, जैसे जहाजकरि समुद्रकों लंघ जाता है, अरु जो बुद्धितें रहित मूर्ख हैं, तिनकों थोडी आपदा भी बडे दुःखकों देती है, जैसे थोडा पवन भी तृणकों बहुत भ्रमावता है, अरु जो बुद्धिवान् हैं, तिनकों बडी आपदा भी दुःख नहीं देती, जैसे बडा वायु भी पर्वतकों चलाय नहीं शकता, इसी कारणतें प्रथम चहीता है, जो यह पुरुष संतोंका संग, अरु सत्शास्त्रोंका विचार करै, अरु बुद्धिकों बढावै, जब बुद्धि सत्य मार्गकी और बढैगी, तब परम बोध इसकों प्राप्त होवैगा, जैसे जलके सिंचणे अरु रखणेकरि फूलसों फल प्राप्त होता है, तैसे जब बुद्धि सत्य मार्गकी और धावती है, तब इसकों परमानंद प्राप्त होता है, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा पूर्णमासीकरि प्रकाशकों बहोत प्राप्त होता है, जेते कछु जीव संसारके निमित्त यत्न करते हैं, उही यत्न सत्यमार्गकी और करैं, तौ दुःखतें मुक्त होवैं, अरु परम संपदाके भंडारकों पावैं, संसाररूपी वृक्ष है, तिसका बीज बुद्धिकी मूढता है, तातें मूढतातें रहित होणा बडा लाभ है, स्वर्ग पातालका राज्य आदिक जो कछु पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, सो अपणे बोधरूपी भंडारतें प्राप्ति होती है; संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरणेका अपणी बुद्धिरूपी जहाज है, और तप तीर्थ आदिक शुभ आचार करिके जहाज बही जा

ता है, बोधरूप पुष्पलता है, तिसकों बढावणेकों दैवी संपदा जल है, तिसीके बढणेकरि सुंदर फल प्राप्त होता है, जो बोधतें रहित बल ऐश्वर्यकरि बडा भी है, तिसकों तुच्छविषे नाश करी डारता है, जैसे बलतें रहित सिंहकों गीधड हरण भी जीति लेते हैं, तातें जो कछु प्राप्त होता दृष्ट आता है, सो अपणे प्रयत्नकरि आता है, अपणी बोधरूपी चिंतामणी हृदयविषे स्थित है, तिसतें विवेकरूपी फल पावता है, जैसे कल्पलतातें जो चितवना करियें सोई पाते हैं, तैसे सर्व फल बोधतें पाता है, जैसे जानणेवाला महासमुद्रतें पार करता है, अजाण नहीं उतरी शकता; तैसे सम्यक् बोध संसारसमुद्रतें पार करता है, असम्यक् बोध जडताविषे डारता है, जो अल्प भी बुद्धि सत्य मार्गकी और होती है, तब उह बडे संकटकों दूर करती है, जैसे छोटी बेडी भी नदीतें उतारि देती है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष बोधवान् है, तिसकों संसारके दुःख वेधि नहीं शकते, जैसे लोह आदिक कवच पेहर्या होवै, तिसकों बाण वेधी नहीं शकते, बुद्धि करिके यह पुरुष सर्वात्मपदकों प्राप्त होता है, जिस पदके पावणेतें हर्ष विषाद संपदा आपदा कोउ नहीं रहती, अहंकाररूपी मेघ है, सो आत्मारूपी सूर्यके आगे आया है, माया मलिनता जडरूप है, तिसकरि आत्मरूप सूर्य नहीं भासता, बोधरूपी वायुसों जब यह दूर होवै, तब ज्योंका त्यों भासता है, जैसे कृशान प्रथम हल आदिककरि पृथ्वीकों शुद्ध करता है, तब पाछे बीज बोता है, जब जल सिंचता है, अरु नाश करनेहारे पदार्थतें रक्षा करता है, तब फलकों पाता है, जैसे जब आर्जवादि गुणोंकरि बुद्धि निर्मल होती है, बहुरि शास्त्रके उपदेशरूपी बीज मिलता है, अरु अभ्यास वैराग्य करिके करता है, तिसकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, सो अतुल पद है, तिसके समान और कोउ नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्राज्ञमहिमावर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जनककी नांई अपने आपकरि आपकों विचार कर, पाछे जो विदितवेद पुरुषोंनें किया है, तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न होहु, जो बुद्धिवान् पुरुष हैं, जिनका यह अंतका

जन्म है, सो राजस सात्त्विकी पुरुष आपही परम पदकों प्राप्त होते हैं, जबलग अपणे आपकरि आत्मदेव प्रसन्न नहीं होवैगा, तबलग इंद्रियांरूपी शत्रुकों जीतणेका यत्न करौ, जब आत्मदेव प्रसन्न होवैगा, सर्वगत जो परमात्मा ईश्वरोंका ईश्वर है, सो आपही स्वयंप्रकाश दिखता है, अरु सर्व दोषदृष्टि क्षीण हो जाती है, मोहरूपी बीजकी जो मुष्टि भरिभरि बोता था, सो नानाप्रकारकी आपदारूप वर्षाकरि महामोहकी वेली होती हैं, अरु दृष्ट आती हैं, सो सब नष्ट हो जाती हैं, जब परमात्माका साक्षात्कार होता है, तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती ॥ हे रामजी! तुम सदा बोधकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु जनकवत् कार्योंका आरंभ करौ, ब्रह्म लक्षवान् होइकरि जगतविषे विचरौ; तब तुमकों खेद कछु न होवैगा, जब नित्य आत्मविचार होता है, तब परम देव आपही प्रसन्न होता है, तिसके साक्षात्कार हुएतें चंचलरूप संसारी जनकों देखिकरि जनककी नांई हसैगा ॥ हे रामजी ! संसारके भयकरि जो जीव भयभीत हुए हैं, तिसतें रक्षा करणेकों अपणा ही पुरुषप्रयत्न है, और देवकरिके अथवा कर्मकरिके धन बांधव करिके रक्षा नहीं होती, जो पुरुष देवकों निश्चय करिके रहै है, अरु शास्त्रविरुद्ध आप कर्म करता है, संकल्पविकल्पविषे तत्पर होता है सो मध्यबुद्धि है, तिसके मार्गकी और तुम नहीं गमन करना, उसकी और बुद्धि नाश करती है, तुम परम विवेककों आश्रय करौ, अरु अपणे आपकों आपकरि देखौ, वैराग्यवान् शुद्ध बुद्धिकरिके संसारसमुद्रकों तरि जाता है, यह मैंनें तुझकों जनकका वृत्तांत कहा है, जैसे आकाशतें फल गिर पडै तैसे उसकों सिद्धोंके विचारकरि ज्ञानकी प्राप्ति भई, यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मंजरी है, जैसे अपणे विचार करिके राजा जनककों आत्मबोध हुआ है, तैसे तुमकों भी प्राप्त होवैगा, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यकों देखिकरि प्रसन्न होता है, तैसे इस विचारकरि हृदय प्रफुल्लित हो आवैगा, मनका जो मननभाव है, सो शांत हो जावैगा, जैसे बर्फका कणका सूर्यकरि तप्त हो गलि जाता है, जब अहं त्वं आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यकरिके क्षीण हो जावैगी, तब परमात्मा

का प्रकाश साक्षात् होवैगा, अरु भेदकल्पना नष्ट हो जावैगी, अनंत ब्रह्मांडविषे जो व्यापक आत्मतत्त्व है, सो प्रकाशी आवैगा, जैसे अपणे विचारकरि जनकनें अहंकार वासनाका त्याग किया है, तैसे तुम भी विचार करिके अहंकार वासनाका त्याग करौ, अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होवैगा, अरु चित्ताकाश निर्मल होवैगा, तव आत्मरूपी सूर्य प्रकाशैगा, जबलग अहंकाररूपी मेघ आवरण है, तबलग आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता; विचाररूपी वायुकरि जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो जावै, तब प्रगट भासैगा ॥ हे रामजी! ऐसे धार जो न मैं हौं, न कोउ और है, न नास्ति है, न अस्ति है, जब ऐसी भावना दृढ होवैगी, तब मन शांत हो जावैगा; हेयोपादेयबुद्धि जो इष्ट पदार्थोंविषे होती है, तिसविषे न डुबेगा, इष्टअनिष्टके ग्रहणत्यागविषे भावना होती है, यह मनका रूप है, अरु यही बंधनका कारण है, इसतें इतर बंधन कोउ नहीं, तातें तुम इंद्रियोंके इष्टअनिष्टविषे हेयोपादेयबुद्धि मत करौ, दोनोंके त्यागेतें जो शेष रहै, तिसविषे स्थित होहु; इष्ट अनिष्टकी भावना तिसकी जाती है, जिसकों हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती; जबलग हेयोपादेयबुद्धि क्षीण नहीं होती, तबलग समताभाव नहीं उपजता; जैसे मेघके नष्ट हुएविना चंद्रमाकी चांदनी नहीं भासती, तैसे जबलग पदार्थोंविषे इष्टअनिष्टबुद्धि है, मन लोलुप होता है, तबलग समता उदय नहीं होती; जबलग युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती, तबलग शुद्ध समता अरु निरसता नहीं उपजती; एक जो ब्रह्मतत्त्व निरामयरूप नानात्वतें रहित है, तिसविषे युक्त क्या अरु अयुक्त क्या? जबलग इच्छा अनिच्छा वांछित अवांछित यह दोनों बात स्थित हैं, अर्थ यह जो फुरते हैं, क्षोभ करते हैं, तबलग सौम्यता अचलभाव नहीं होता, अरु जो हेयोपादेयबुद्धितें रहित ज्ञानवान् है, तिस पुरुषकों यह शक्ति आय प्राप्त होती है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे पट्टराणी स्थित होती है, तैसे सो कौन शक्ति है, एक तौ भोगोंविषे निरसता, देहाभिमानतें रहित निर्भयता, नित्यता, समता, सब पूर्ण आत्मादृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, सब इच्छातें रहित

अरु निरहंकारता, आपकों सदा अकर्ता जानना, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनंदस्वरूप रहणा, धैर्यसों सदा एकरस रहणा, स्वरूपतें इतर वृत्ति न फुरै, अरु सर्व जीवोंसाथ मैत्री भाव, अरु सत्यबुद्धि निश्चयात्मकरूपकरि तुष्टता, अरु मुदिता, अरु मृदु भाषणा, एकी शक्ति हेयोपादेयतें रहित पुरुषकों आय प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है, तिसकों वैराग्यकरि उलटाय खैंचणा, जैसे पुल करिके जलके वेगका निवारण होता है, तैसे जगत्सों निवारिकरि मनकों आत्मपदविषे लगावणा, तिसकरि आत्मभाव प्रकाशता है, तातें अंतरसों सब वासनाकों त्याग करौ, अरु बाह्यतें सब क्रियाविषे रहौ, वेगि चलौ, स्वास लेहु, सर्वदा सर्व प्रकार चेष्टा करौ, अरु सर्वदा सर्व प्रकारकी वासना त्याग करौ, संसाररूपी समुद्र है, जिसविषे वासनारूपी जल है, अरु चिंतारूपी सूत्र है, तिस जल करिके तृष्णावान्‌रूपी मत्स्य फसे हैं, यह विचार जो तुमकों कहा है, तिस विचाररूपी शिलासाथ बुद्धिकों तीक्ष्ण करौ, अरु इस जालकों छेदौ, तब संसारतें मुक्त होहुगे, अरु संसाररूपी वृक्ष है, तिसका मूल बीज मन है, यह वचन जो कहे हैं, तिसकों हृदयविषे धरिकरि धैर्यवान् होहु, तब आधि व्याधि दुःखोंतें मुक्त होवैगा; मन करिके मनकों छेदहु, जो बीती है, तिसका स्मरण करौ, अरु भविष्यत्‌की चिंता न करौ, काहेतें जो असत्यरूप है, अरु वर्तमानकों भी असत्य जानिके तिसविषे विचरौ, जब मनतें संसारका विस्मरण हुआ, तब मनविषे बहुरि न फुरैगा, मनविषे असत्यभाव जानिके चलौ, बैठौ, श्वास लेहु, निश्वास करौ, उछलौ सोवहु, ऐसी चेष्टा होवै, परंतु अंतर सब असत्यरूप जाणहु, तब खेद न होवैगा; अहंममरूपी जो मल है, तिसकों त्यागिकरि अथवा प्राप्तिविषे विचरौ, राज्य आय प्राप्त होवै, तब तिसविषे विचरौ, परंतु अंतरतें इसविषे आस्था न होवै; जैसे आकाशका सब पदार्थोंविषे अन्वय है, परंतु किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे बाह्य कार्यकों करौ, परंतु मनकरि किसीसाथ बंधायमान न होहु, तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्व

र पुरुष हौ, तुमसों भिन्न कछु नहीं, सबविषे व्यापि रहे हौ, जिस पुरुषोंकों सदा यही निश्चय रहता है, अपणे स्वरूपविषे तिनकों संसारपदार्थ चलायमान करी नहीं शकते, अरु जिनकों संसारविषे आसक्त भावना है, अरु स्वरूपतें भूले हैं, तिनकों संसारके पदार्थोंतें विकार उपजता है, हर्ष अरु शोक भय खैंचते हैं, तिस करि बांधे हुए हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष रागद्वेषतें रहित हैं, तिनकों लोह हडका बटा अरु पाषाण स्वर्ण एक समान हैं, संसारवासनाका त्याग किया इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी स्वरूपविषे स्थिति भई है, अरु सुखदुःखविषे समता है, सो जो कछु करता है, भोगता है, देता है, लेता है, इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कछु नहीं करता, यथाप्राप्त कार्यविषे वर्त्तता है, अंतःकरणविषे इष्टअनिष्टकी भावना नहीं फुरती, कार्यविषे रागदोषवान् होइकरि डुबता नहीं, जिसकों सदा यह निश्चय रहता है, जो सर्व चिदाकाशरूप है, अरु भोगोंके मननतें रहित है, सो समता भावकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! मन जडरूप है, आत्मा चेतनरूप है, तिस चेतनकी सत्ताकरि पदार्थोंकों ग्रहण करता है, इसकेविषे अपणी सत्यता कछु नहीं, जैसे सिंहकरि मार्या जो पशु है, तिसकों खानेकों बिल्ली भी जाती है, उनकों अपणा बल कछु नहीं, तैसे चेतनके बलकरि मन दृश्यका आश्रय करता है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाइकरि जीता है, अरु संसारके चिंतवनकों समर्थ होता है, प्रमाद करिके चिंतासों तपायमान होता है, यह वार्त्ता प्रसिद्ध है, जो मन जड है, अरु चेतनरूपी दीपककरि प्रकाशता है, चेतनसत्तातें रहित सब समान है, आत्मसत्तातें रहित उठणेकों भी समर्थ नहीं होता, आत्मसत्ताकों भुलाइकरि जो कछु करता है, तिस फुरणेकों बुद्धिवान् कलना कहते हैं, जब उही कलना शुद्ध चेतनरूप आपकों जानती है, तब आत्मभावकों प्राप्त होते हैं, प्रमादतें रहित आत्मरूप है, चित्तकला जब चैत्य दृश्यतें स्फुरण होती है, तिसका नाम तब सनातन ब्रह्म होता है, अरु जब चैत्यसाथ मिलती है,

तब तिसका नाम कलना होता है, स्वरूपतें इतर कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है, तिसविषे भ्रांति करिके मन आदि भासते हैं, जब चेतनसत्ता दृश्यके सन्मुख होती है, तब उही कलनारूप होती है, अपणे स्वरूप विस्मरण कियेतें संकल्पकी और धावणेतें कलना कहाती है, सो आपकों परिच्छिन्न जानती है, तिसकरि परिच्छिन्न हो जाती है, हेयोपादेयधर्मिणी होती है ॥ हे रामजी ! चित्तसत्ता अपणेही फुरणेकरि जडताकों प्राप्त भई है, जबलग विचार करिके जगावै नहीं, तबलग स्वरूपविषे जागती नहीं, इसी कारणतें सत्यत्व शास्त्रोंके विचार अरु वैराग्यकरि इंद्रियोंका निग्रह करी अपनी कलनाकों आप जगाओ, सब जीवकी जो कलना है, सो विज्ञान अरु शम करिके जगावणेतें ब्रह्मतत्त्वकों प्राप्त होती है, इसतें इतर मार्गकरि भ्रमता रहता है, मोहरूपी जो मदिरा है, तिसकरि जो पुरुष उन्मत्त हुआ है, सो विषयरूपी गर्तमें गिरते हैं, आत्मबोधतें सोई हुई कलना जगावते नहीं, अप्रबोधही रहते हैं, सो चित्तकलना जड रहती है, जो भासती है, तौ भी असत्यरूप है, ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोउ नहीं, जो संकल्पकरि कल्पित न होवै, तातें तूं अजडधर्मा होउ, कलना जड उपलब्धरूपिणी है, परमार्थसत्ताकरि विकासमान होती है, जैसे सूर्यकरि कमल विकासमान होता है तैसे; जैसे पाषाणकी मूर्तिकों कहीयें तूं नृत्य कर, तब उह नहीं करती, काहेतें जो जडरूप है, तैसे देहविषे जो कलना है, सो चेतन कार्य करणेकों समर्थ नहीं होती, जैसे मूर्तिका लिख्या हुआ राजा गुरगुर शब्दकरि युद्ध करणेकों समर्थ नहीं होता, अरु मूर्तिका चंद्रमा औषधिकों पुष्ट करी नहीं शकता, तैसे कलना जडरूप है, कार्य करणेकों समर्थ नहीं होती, जैसे निरवयव अंगनासाथ आलिंगन नहीं होता, जैसे संकल्पके रचे आकाशके वनकी छायातले कोउ नहीं बैठता, मृगतृष्णाके जलसाथ कोउ तृप्त नहीं होता, तैसे जडरूप मन क्रिया करणेकों समर्थ नहीं होता, जैसे सूर्यके धूपकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे चित्तकलनाके फुरणेकरि जगत् भासता है, शरीरविषे जो स्पंदशक्ति भासती है, सो प्राणशक्ति है,

प्राणोंकरि बोलता चलता बैठता है, ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है, तिसतें इतर कछु नहीं, जब संकल्प कला फुरती है, तब अहं त्वं इत्यादिक कलनाकरि उहीरूप हो जाता है, जब आत्मा अरु प्राणका फुरना एकठा आया होता है, अर्थ यह जो प्राणोंसाथ चेतनसंवित् मिलता है, तब तिसका नाम जीव होता है, बुद्धि चित्त मन सब तिसके नाम हैं, सब संज्ञा अज्ञानकरि कल्पित होती हैं, अज्ञानीकों जैसे भास्या है, तैसे तिसकों है, अरु परमार्थतें कछु हुआ नहीं, न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है, केवल आत्मा मात्र अपणे आपविषे स्थित है, अवर द्वैत कछु हुआ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है, काल क्रिया सब आत्मरूप है, आकाशतें भी निर्मल है, अस्ति नास्ति सर्व उही रूप है, द्वितीय फुरणेतें रहित है, इस कारणतें है, अरु नांई, ऐसा स्थित है, अरु सर्व रूपतें सत्य है, आत्मा सब पदोंतें रहित है, इस कारणतें असत्यकी नांई है, अनुभवरूप है, तातें सत्य है, सर्व कलनांतें रहित केवल अनुभवरूप है, ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होता है, तहां मन क्षीण हो जाता है, जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है, तहां अंधकार क्षीण हो जाता है, अरु जब आत्मसत्ताविषे संवित् करिके इच्छा फुरती है, सो संकल्पके सन्मुख हुई थोडी भी बडे विस्तारकों पावती है, तब चित्तकलाकों आत्मस्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मोंकी चेष्टाकरि जगत्स्मरण हो आता है, परम पुरुषकों संकल्पसाथ तन्मय होणे करिके चित्त नाम कहाता है, अरु जब चित्तकला संकल्पतें रहित होती है, तब मोक्षरूप होती है, चित्तकला फुरनेका नाम चित्त अरु मन कहते हैं, अरु दूसरी वस्तु कोउ नहीं, एकतामात्रही चित्तका रूप है, संपूर्ण संसारका बीज मन है, संकल्पके सन्मुख हो करिके चेतनसंवित्का नाम मन होता है, निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है, सो जब संकल्प करिके मलिन होती है, तब तिसकों कलना कहते हैं, उही मन घटादिककी नांई परिच्छिन्न भेदकों प्राप्त होता है, तब क्रियाशक्ति जो प्राण तिससाथ अरु ज्ञानशक्तिसाथ मिलती है, तब तिस संयोगका नाम संकल्पविकल्पका कर्त्ता मन होता है, सो

इ जगत्का बीज है, तिसके लीन करणेके दो उपाय हैं, एक तत्त्वज्ञान, दूसरा प्राणोंका रोकणा, जब प्राणशक्तिकों निरोध करता है, तब मन भी लीन हो जाता है, अरु सत्य शास्त्रोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है, तौ भी लीन हो जाता है, प्राण किसका नाम है, अरु मन किसका नाम है, सो श्रवण कर, हृदयकोशतें निकसता है, अरु बाह्य जाता है, अरु बहुरि बाह्यसों अंतर आता है, सो प्राण है, शरीर बैठा है, अरु वासनाकरि देशदेशांतरकों भ्रमता है, तिसका नाम मन होता है, तिसकों वैराग्य अरु योगाभ्यासकरि वासनातें रहित करणा, अरु प्राणवायुकों स्थित करणा, यह दोनों उपाय हैं ॥ हे रामजी ! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब मन स्थिर हो जाता है, काहेतें जो प्राण अरु चित्तकलाका आपसमें वियोग होता है, अरु जब प्राण स्थित होता है, तब मन स्थित हो जाता है, काहेतें जो प्राण स्थित हुए चेतनकलासाथ नहीं मिलते, तब मन भी स्थित हो जाता है, सो नहीं रहता, मनका रूप चेतनकला अरु प्राण फुरणविना नहीं रहता, ऐसा भी होवै, जो पाषाणकों स्वाद लेणेकी शक्ति हो आवै, सो पाषाणकों अपणी सत्ता शक्ति कछु नहीं, तैसे मनकों भी अपणी सत्ता शक्ति कछु नहीं, चेतनसत्ता अरु प्राणोंविना कछु होवै स्पंदरूप जो शक्ति है, सो प्राणोंकी है, सो चलरूप जडात्मक है, आत्मसत्ता चेतनरूप है, सो अपणे आपविषे स्थित है, चेतनशक्ति अरु स्पंदशक्तिके संबंध होणे करिके मन उपजा है, सो मनका उपजणा भी मिथ्या है, इसीका नाम मिथ्याज्ञान है ॥ हे रामजी ! मैंनें तुझकों अविद्या परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषकों देणेहारी कही है, चित्तशक्ति अरु स्पंदशक्तिका संबंध संकल्प करिके कल्पित है, जो तूं संकल्प न उठावै, तब मन संज्ञा न रहैगी, क्षीण हो जावैगी, तातें संसारभ्रमसों भयमान मत होहु, अरु जब स्पंदरूप प्राणकों चित्तसत्ता चेतती है, तब चेतणेकरि मन चित्तरूपकों प्राप्त होता है, अपणे फुरणेकरि दुःखकों प्राप्त होता है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसे अखंड मंडलाकार जो चेतनसत्ता है, सो सर्वगत है, तिस

का संबंध किसकेसाथ होवै, अखंडशक्ति उन्निद्ररूप आत्माके एकठे करणेकों समर्थ कोउ नहीं, इसी कारणतें संबंधका अभाव है, जो संबंधही नहीं तौ मिलणा किससाथ होवै, मिलाप न हुआ तौ मनकी सिद्धता क्या कहियें, चित्त अरु स्पंदकी एकताकों मन कहते हैं, और मन वस्तु नहीं, जैसे रथ, घोडा, हस्ती, प्यादा इनोंविना सेनाका रूप और कछु नहीं निकसता, तैसे चित्तस्पंदविना मनका रूप और कछु नहीं, तिस कारणतें दुष्टरूप जो मन है, सो तीनों लोकोंविषे इसकेसमान कोउ नहीं, जब सम्यक्ज्ञान होवै, तब मृतरूप मन नष्ट हो जाता है, तातें मिथ्या अनर्थका कारण चित्त है, जो तिसकों मत धरौ, अर्थ यह जो संकल्पका त्याग करौ ॥ हे रामजी ! मनका उपजणा मिथ्या है, परमार्थतें नहीं, संकल्पका नाम मन है, इस कारणतें कछु है नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है, तैसे मन मिथ्या है, हृदयरूपी मरुस्थल है, अरु चेतनरूप सूर्य है, तहां मनरूपी मृगतृष्णा है, तिसका जल भासता है, जब सम्यक्ज्ञान होता है, तब इसका अभाव हो जाता है, मन जडतातें निःस्वरूप है, सर्वदा मृतकरूप है, तिस मृतकनें सर्व लोकोंकों मृतक किये हैं, यह बडा आश्चर्य है, जो अंग भी कछु नहीं, देह भी नहीं, न आधार है, न आधेय है, सो जगत्का भक्षण करता है, अणहोती जालसों लोकोंकों फसाये हैं, जो सामग्रीतें रहित बल तेज विभूति हस्ती पदाति रहित लोकोंकों मारता है, मानौ कमलके मारनेकरि मस्तक फटि जाता है, जो जड मूक अधम हैं, सो पुरुष ऐसे मानते हैं; जो हम बांधे हैं; मानौ पूर्णमासीके चंद्रमाकी किरणांकरि जलते हैं, जो सूरमे होते हैं, सो तिसकों हनन करते हैं, जो अविद्यमान् मन हैं, तिननें मिथ्याही जगत्कों हत किया है, मिथ्या संकल्पकरि उदय अरु स्थित हुआ है, ऐसा दुष्ट है जो किसीनें उसकों देखा नहीं, मैंनें तुझकों तिसकी शक्ति कही है, सो तौ बडा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है, चंचल असत्रूप चित्तकरि मैं विस्मित हुआ हों, जो मूर्ख है, सो सर्व आपदाका पात्र है, जो मन है नहीं, तिसकरि एते दुःखकों प्राप्त भया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि

मूर्खता करिके चली जाती है, सर्व मनकरि तपते हैं, यह मैं मानता हौं, जो सर्व जगत् मूढरूप है, तरंगरूपी शस्त्र करिके कण कण हो गए हैं, पैलवरूप है, जो कमलकरि विदारण हुआ है, चंद्रमाकी किरणांकरि दग्ध हो गए हैं, दृष्टिरूपी शस्त्रकरि उह पुरुष वेधे हैं, संकल्परूपी मनकरि मृतक हो गए हैं, वास्तवतें कछु है नहीं, मिथ्या कल्पनातें नीच कृपण करिके लोककों हनन किये हैं, तातें मूर्ख हैं, मूर्ख हमारे उपदेशयोग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासी है, जिसकों स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, अरु संसारतें उपरांत हुआ है, अरु मोक्षकी इच्छा रखता है, अरु पदार्थका ज्ञाता है, सो उपदेश करणेयोग्य है, अरु ज्ञानवान् जो पूर्ण है, तिसकों उपदेश नहीं बनता है, अरु अज्ञानी मूर्खकों भी नहीं बनता; मूर्ख कैसा है, बीनाकी ध्वनि सुनिकरि भयवान् होता है, अरु बांधव निद्रामें सोया पडा है; तिसकों मृतक जानिके भयवान् होता है, अरु स्वप्नविषे हस्तीकों देखिकरि भय पावता है, भागता है, तिस मननें अज्ञानीयोंकों वश किया है, भोगोंका जो लव तुच्छ सुख है, तिसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं, अरु दुःख पावते हैं, हृदयविषे स्थित जो अपणा स्वरूप है, तिसकों नहीं देखि शकते, प्रमादकरि अनेक कष्ट पावते हैं, अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे मननिर्वाणवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे रागदोषरूपी बडे कल्लोल उठते हैं, तिसविषे उह पुरुष वहे हैं, जो मनकों मूढ जडरूप नहीं जाणते, तिनकों उदार जो आत्मफल है, सो प्राप्त नहीं होता, यह विचार विवेकी वाणी मैंनें तुझकों कही है, सो तुमसरिखेकों योग्य है, अरु जिन मूढ जडकों मनके जीतणेविषे समर्थता नहीं, तिनकों नहीं शोभती, इन वचनकों नहीं ग्रहण करी शकते, तिनकों कहणेकरि क्या प्रयोजन है, जैसे जन्म अंधकों सुंदर मंजरी वन दिखाईयें, तब वह निष्फल होता है, काहेतें जो वह देखि नहीं शकता, तैसे विवेक वाणीका उपदेश करणा उनकों निष्फल होता है, जो मनकों जीति

नहीं शकते, इंद्रियोंकरि लोलुप पुरुष हैं, तिनकों आत्मबोधका उपदेश करणा कछु कार्य नहीं करता, जैसे कुष्टकरि जिसका शरीर गलि गया है, तिसकों नानाप्रकारकी सुगंधिका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे मूढकों आत्मउपदेशका बोध सुखदायक नहीं होता; जिसकी इंद्रियां व्याकुल विपर्यय हैं, अरु मदिराकरि उन्मत्त है, तिसकों धर्मके निर्णयविषे साक्षी करणा कोऊ प्रमाण नहीं करता, ऐसा कुबुद्धि कवन है, जो मसाणविषे शवकी मूर्तिकों पाइकरि तिससाथ चर्चाविचार करै, अरु तिससों प्रश्नोत्तर करै, अपणे हृदयरूपी कूडाविषे मनरूप मूक जड सर्पवत् स्थित है, जो तिसकों निकासी डारै, सो पुरुष है, अरु जो तिसकों जीति शकता नहीं तिस दुर्बुद्धिकों उपदेश करणा सो व्यर्थ है ॥ हे रामजी! मन महातुच्छ है, जो वस्तु कछु न होवै, तिसके जीणेविषे कठिनता होवै, जैसे स्वप्ननगर निकट होता है, अरु चिरपर्यंत भी स्थित है, अरु जागिकरि देखियें तौ कछु नहीं पाइता, तैसे मनकों जो विचारकरि देखियें तौ कछु नहीं पाइता, जिस पुरुषनें अपणे मनकों जीत्या नहीं सो दुर्बुद्धि है, वह अमृतकों त्यागिकरि विषकों पान करता है, सो विषकी मूर्छाकरि मरि जाता है, अरु जो ज्ञानी है, सो सदा आत्माही देखता है, इंद्रियां अपणे अपणे धर्मविषे विचरतियां हैं, प्राणकी स्पंदशक्ति है, अरु ज्ञानशक्ति परमात्माकी है, इंद्रियांकों अपणी शक्ति है, जीव किसकरि बंधायमान होता है, वास्तवतें सर्वशक्त सर्वात्मा है, तिसतें भिन्न कछु नहीं, यह मन कहा है, जिसनें सब जगत्कों नीच किया है ॥ हे रामजी! मूढोंकों देखिकरि मैं दया करता हौं, अरु तपता हौं, जो मूढ क्यों खेद पाते हैं, दुःखदायक कवन हैं, जिसकरि तपते हैं, जैसे उष्ट्र कंटकके वृक्षोंकी परंपराकों प्राप्त होता है, तैसे मूढ प्रमाद करिके दुःखोंकी परंपराकों पावता है, उह दुर्बुद्धि देहकों पाइकरि मरी जाता है, जैसे समुद्रविषे बुद्बुदे उपजिकरि मिटि जाते हैं, तैसे संसारसमुद्रविषे उपजिकरि नष्ट हो जाता है, तिसका शोक करणा क्या है, वह तौ तुच्छ पशुतें नीच है, तूं देख जो दशों दिशाविषे पशु आदिक होते हैं, अरु मरते हैं, तिनका शोक कौन करता है,

मच्छरादिक जीव नष्ट हो जाते हैं, केई जलचर जलविषे भक्षण करते हैं, तिनका विलाप कौन करता है, छोटे जीवोंकों बडे जलविषे मच्छ भक्षण करते हैं, आकाशविषे केई पक्षी मृत्यु होते हैं, तिनका कवन शोक करता है, अनेक जीव नाश होते हैं, तिनका विलाप कछु नहीं होता, तैसे अबके जो हैं, तिनका विलाप करणा नहीं, काहेतें जो स्थिर रहणा किसीकों नहीं, सर्व नाशरूप है, अरु तुच्छ है, निरंतर नष्ट होता है, सर्वका प्रतियोगी काल है, अनेक जीवोंकों भोजन करता है, जुं आदिककों मक्षिका अरु मच्छर आदिक खाते हैं, मक्षिका अरु मच्छरादिकों दादुर खाते हैं, दादुरकों सर्प, सर्पोंकों नोले, नोलेकों बिल्ले, बिल्लेकों कूकर, कूकरोंकों बघाड, बघाडकों सिंह, सिंहकों शरभ, शरभकों मेघकी गर्जना नष्ट करती है, मेघकों वायु, वायुकों पर्वत, पर्वतकों इंद्रका वज्र, इंद्रके वज्रकों सुदर्शन चक्र जीति लेता है, सो चक्र विष्णुजीका होता है, सो विष्णु भी अवतारोंकों धरता है, सुखदुःख जरामरणसंयुक्त होता है, जीवोंकरि बडी देहकों धरता है, विद्यारूप है, तौभी जुंआ लिखां आदिक शरीरसाथ लगातियां हैं, वह रुधिरपान करतियां हैं, इस प्रकार निरंतर भूतजातिकों काल जीर्ण करता है, अरु परस्पर जीव जीवोंकों खाते हैं, अरु निरंतर नानाप्रकारके भूतजात दशों दिशाविषे उपजते हैं, जैसे जलविषे मच्छ कच्छ आदिक उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीविषे कीट आदि उपजते हैं, अंतरिक्षविषे पक्षीआदिक, वनवीथिविषे सिंहादिक मृग उपजते हैं, स्थावरविषे पिपीलिका दर्दुर कीटादि उपजते हैं, विष्ठाविषे कृमि उपजते हैं, नानाप्रकारके जीवगण इस प्रकार निरंतर उपजते हैं, अरु मिटि जाते हैं, कोउ हर्षवान्, कोउ शोकवान् होता है, कोउ रुदन करते हैं; सुख अरु दुःख मानते हैं, पापी पापके दुःख करि निरंतर मरते हैं, अरु सृष्टिविषे उपजते नाश होते हैं, जैसे वृक्षसों पत्ते उपजते हैं, तैसे भूत उपजिकरि नाश हो जाते हैं, तिनकी गिणती कछु नहीं, जो बोधवान् पुरुष है, सो अपणे आप करिके अपणे आप उपर दया करिके आपकों संसारसमुद्रकों पार करते हैं ॥ हे रामजी! अवर जेते कछु जीव हैं, सो पशुवत्

हैं, मूढों अरु पशुविषे भेद कछु नहीं, तिनकों हमारी कथाका उपदेश नहीं, वह पशुधर्मा इस वाणीकों योग्य नहीं, देखणेमात्र मनुष्य हैं, परंतु मनुष्यका अर्थ तिनतें सिद्ध कछु नहीं होता, जैसे उजाड वनविषे ठूंठा वृक्ष होता है, सो छाया फलतें रहित किसीकों विश्रामदायक नहीं होता, तैसे मूढ जीवोंतें कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जैसे जेवरी गलेविषे डारिकरि पशुकों जहां खैंचता है, तहां चले जाते हैं, तैसे मूढ चित्तकरि खैंचते हैं, जहां चित्त खैंचता है, तहां चले जाते हैं, मूढचित्त पशु विषयरूपी कीचडविषे फसे हैं, तिसकरि बडी आपदाकों प्राप्त होते हैं, तिन मूढोंकों आपदाविषे देखिके पाषाण भी रुदन करते हैं, जिन मूर्खोंनें अपणे चित्तकों नहीं जीत्या तिनकों दुःखोंके समूह प्राप्त होते हैं, अरु जिनहुनें चित्तकों बंधनतें निकास्या है, सो संपदावान् हैं, दुःख तिनके सब मिट जाते हैं, संसारविषे बहुरि नहीं उपजते, तातें अपणे चित्तके जीतेविना दुःख नष्ट नहीं होता, अरु जो चित्त जीतणा न होता, अरु परमसुख प्राप्त नहीं होता, तौ चित्त जीतणेकों बुद्धिवान् न प्रवर्त्तते, सो बुद्धिवान् प्रवर्तते हैं, तातें जाणियें जो चित्त भी वश होता है, मनरूपी भ्रमके नष्ट हुएतें आत्मसुख प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मन भी कछु है नहीं, मिथ्या भ्रमकरि कल्पते हैं, जैसे बालककों अपणे परछायेविषे बैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे भ्रमरूप मनकरि नाश मानते हैं, जबलग आत्मसत्ताका विस्मरण होता है, तबलग मूढता है, अरु हृदयविषे मनरूप सर्प विराजता है, जब अपणा विवेकरूपी गरुड उदय होवै, तब उह नष्ट हो जाता है, अब तुम जागे हौ, ज्योंका त्यों जानते हैं ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! अपणे संकल्पकरि चित्त बढता है, तिस संकल्पका शीघ्रही त्याग करौ, तब चित्त शांत होवैगा, जो तुम दृश्यकों आश्रय करौगे, तौ बंधन होवैगा, अरु अहंकार आदिक दृश्यकों त्याग करौगे, तौ अचित्त मोक्षवान् होहुगे, यह गुणोंका संबंध मैंनें तुझकों कहा है, जो दृश्यका आश्रय करणा बंधन है, इसतें रहित होणा मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा होवै, तैसा करहु, इस प्रकार ध्यान करहु, जो न

मैं हौं, न यह जगत् है, केवल अचलरूप हौं, ऐसे निःसंकल्प हुएतें आनंद चिदाकाश हृदयविषे आय प्रकाशैगा; आत्मा अरु जगत्विषे जो विभागकलना आय उदय हुई है सो मल है, इस द्वैतभावका त्याग कियेतें जो पाछे शेष रहैगा, तिसविषे स्थित होहु, आत्मा अरु जगत्का अंतर क्या है, द्रष्टा अरु दृश्यका अंतर जो दर्शन है, अनुभवसत्ता है, सर्वदा तिसीकी भावना करौ, स्वाद् अरु अस्वाद लेणेवालेका त्याग करौ, तिनके मध्य जो स्वादरूप है, तिसविषे स्थित होहु, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे तन्मय होहु, अनुभव जो द्रष्टा है, अरु दृश्य है, तिसके मध्यविषे जो निरालंब साक्षीरूप आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! भव जो है संसार, सो भावअभावरूप है, तिसकी भावनाका त्याग करी, भावरूप आत्माकी भावना करौ, सो अपणा स्वरूप है; प्रपंच दृश्यका त्याग कियेतें जो वस्तु अपणा स्वरूप है, सोई होवैगा; जो परमानंदस्वरूप है, अरु चित्तभावकों प्राप्त होणा अनंत दुःख है, चित्तरूपी संकल्प बंधन है, तिस बंधनकों अपणे स्वरूपके ज्ञानयुक्त बलकरि छेदहु, तब मुक्ति होवैगी, अरु जब आत्माका त्याग करी जगत्विषे गिरता है, तब नानाप्रकार संकल्प विकल्प दुःखोंविषे प्राप्त होता है, जब तूं आत्माकों व्यतिरेक शब्द करैगा, तब मन दुःखके समूहसंयुक्त प्रगट होवैगा, अरु व्यतिरेक भावना त्यागेतें सब मनके दुःख नष्ट हो जावैंगे, यह सर्व आत्मा है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जब इह ज्ञान उदय हुआ, तब चैत्य चित्त चेतना तीनोंका अभाव हो जावैगा, मैं आत्मा नहीं, जीव हौं, इसका नाम चित्त है; तिसकरि अनेक दुःखकों प्राप्त होता है, अरु जब यह निश्चय हुआ जो मैं आत्मा हौं, जीव नहीं, सो सत्य है, इतर कछु नहीं, इसीका नाम चित्त उपशम कहाता है, जब यह निश्चय भया जो सब आत्मतत्त्व है, आत्मातें इतर कछु नहीं, तब चित्त, शांत हो जाता है, इसविषे संशय कछु नहीं, इस प्रकार आत्मबोध करिके मन नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें तम नष्ट हो जाता है, सो मन सब शरीरोंके अंतर स्थित है, जबलग होता है, तबलग बडा जीव

कों भय होता है, यह जो परमार्थयोग मैंनें तुझकों कहा है, तिसकरि मनकों काटि डारहु, जब मनका त्याग किया तब भय भी न रहैगा; यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है, चित्तरूपी वैताल है, सम्यक्ज्ञानरूप मंत्रकरि अभाव हो जाता है ॥ हे बलवानोंविषे श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! तेरे हृदयरूपी गृहमेंतें चित्तरूपी वैताल निकसि जावैगा, तब तूं दुःखोंतें रहित स्थित होवैगा; भय उद्वेग कछु न व्यापैगा; अब तूं मेरे वचनोंकरि वैरागी भया है, मनरूपी जो मन है, तिसकों जीता है, इस विचार विवेकसों चित्त नष्ट शांत हो जाता है, निर्दुःख आत्मपदकों प्राप्त होता है, सब ईषणाकों त्यागिकरि शांतरूप स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तचैतन्यरूपवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार तूं देख, जो चित्त आप विचित्ररूप है, संसाररूपी बीजकी कणिका है, अरु जीवरूपी पंखीकों बंधनका जाल है, जब चित्तसंवित् आत्मसत्ताकों त्यागता है, तब दृश्यभावकों प्राप्त होता है, तब चित्त उपजता है, कलनारूप मलकों धारता है, सो चित्त बढिकरि मोह उपजता है, तिसकरि संसारका कारण होता है, तब तृष्णारूपी जो विषकी वेली है, सो प्रफुल्लित होती है, तिसकरि मूर्छित हो जाता है, आत्मपदकी और सावधान नहीं होता, ज्यौं ज्यौं उदय होती है, त्यौं त्यौं मोहकों बढावती है, तृष्णारूप श्याम रात्रि है, अनंत अंधकारकों देती है, परमार्थसत्ताका आवरण करती है, प्रलयकालकी अग्निवत् जलावती है, तिसकों संहारणेकों समर्थ कोउ नहीं होता, सर्वकों व्याकुल करती है, तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड़की धारा है, दृष्टिमात्र कोमल शीतल सुंदर है, स्पर्श कियेतें नाश करी डारती है, अनेक संकटकों देती है, जो बडे असाध्य दुःख हैं, जिनकी प्राप्ति बडे पापोंकरि होती है, सो तृष्णारूपी फूलका फल है, तृष्णारूपी कूकरि है सो दुर्गंधादिकरि चित्तशरीररूपी गृहविषे सदा रहती है, क्षणविषे बडे हुल्लासकों प्राप्त होती है, क्षणविषे शून्यरूप हो जाती है, जो पुरुष, बडे ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो जब तृष्णा उपजि तब दीन हो जाता है, अरुजो देखनेकरि निर्धन, कृपण

भासता है, अरु अंतर तृष्णातें रहित है, तब उह बडा ऐश्वर्यवान् है, जिसके हृदयरूपी छिद्रविषे तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं बैठी, तिसके प्राण अरु शरीर स्थित हैं, उसका हृदय शांतरूप होता है, निश्चयकरि जाण जो जहां तृष्णारूपी काली रात्रिका अभाव हुआ है, तहां पुण्य आय बढते हैं, जैसे शुक्ल पक्षका चंद्रमा बढता है ॥ हे रामजी! जो पुरुषरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनानें भोजन किया है, तिसकी पुण्यरूपी हरियावल नहीं रहती, प्रफुल्लित नहीं होती, तृष्णारूपी नदी है, अनंत कल्लोल आवर्त तिसविषे उठते हैं, तृणवत् वहती है, अरु जीवरूपी खेलणेकी पुतली है, तृष्णारूपी यंत्री तिनकों भ्रमावती है, सब शरीरोंके अंतर तृष्णारूपी तागा है, तिसकरि परोये हैं, तृष्णा करिके मोहित हुए कष्ट पाते हैं, अरु समझते नहीं, जैसे हरे तृण कर आच्छादी गिर्त होती है, तिसकों देखिकरि हरणका बालक ग्रहण करता है, अरु गिर्तविषे गिर पडता है ॥ हे रामजी! ऐसा कोउ अवर इसके कलेजेकों काटि नहीं शकता, जैसे तृष्णारूपी डाकिणी इसका उत्साह बलरूपी कलेजा निकास लेती है, तिसकरि दीन जैसा हो जाता है, तृष्णारूप अमंगल इन जीवोंके हृदयविषे स्थित होइकरि नीचताकों प्राप्त करती है, तृष्णा करिके विष्णु भगवान् है सो भगवान्‌की नाई स्थित भया है, अर्थ यह जो त्रिलोकीनाथ विष्णुजी इंद्रके हेतकरि जब अर्थ हृदयविषे धरा, तब अल्प जैसी मूर्त्ति कों धारिकरि बलिके द्वार गए, तहां तृष्णा करिके जीव भ्रमते हैं, जैसे सूर्य नीतिकों धारिकरि आकाशविषे भ्रमता है, तैसे तृष्णारूपी तागेकरि बांधे जीव भ्रमते हैं, तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषकरि पूर्ण होती है, सर्व जीवोंकों दुःखदायक है, तातें इसकों दूरतें त्याग करौ, पवन जो चलता है, सो तृष्णाकरि चलता है, पर्वत तृष्णाकरि स्थिर है, पृथ्वी तृष्णाकरि जगत्‌कों धरती है, तृष्णाकरि त्रिलोकी वेष्टित करी है ॥ सब लोक तृष्णाकरि बांधे हुए हैं, जेवरीकरि बांधा हुआ छूटता है, परंतु तृष्णाकरि बांधा छूटता नहीं, तृष्णावान् मुक्त कदाचित् नहीं होता, तृष्णातें रहित मुक्त होता है, तिस कारणतें हे राघव! तुम तृष्णाका त्याग करहु,

सब जगत् मनके संकल्पविषे है, तिस संकल्पतें रहित होहु, मन भी कछु अवर वस्तु नहीं, युक्तिसों निर्णय करि देखौ, संकल्पप्रमादका नाम मन है, जब इसका नाश होवै, तब तृष्णा सब नाश हो जावै, अहं त्वं इदं इत्यादिक चितवना मत करहु, यह महामोहमय दृष्टि है, इसकों त्यागिकरिके एक अद्वैत आत्माकी भावना करौ, अनात्माविषे जो आत्मभाव है, सो दुःखोंका कारण है, इसके त्यागेतें ज्ञानवानोंविषे प्रसिद्ध होहुगे, अहंभावरूप अपवित्र भावना है, तिसकों अपणे स्वरूप शलाकाकी भावनारूपकरि काटि डारहु; यह भावना पंचमभूमिका है, तहां संसारका अभाव है ॥ ॥इति श्रीयो० उप०तृष्णावर्णनं नाम पंच०॥१५॥

॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! यह तुमारे वचन गंभीर तोलतें रहित हैं, तुम कहते हौ, अहंकार तृष्णाकों मत करहु, जो अहंकारकों त्यागैगा तौ यह चेष्टा कैसे होवैगी, देहका भी त्याग हो जावैगा, जैसे वृक्ष स्तंभके आश्रय होते हैं, स्तंभहीनें वृक्षकों धरा है, स्तंभके नाश हुएतें वृक्ष नहीं रहता, तैसे देहकों अहंकार धरि रहा है, तिसतें रहित देह भी गिर जावैगी, तातें मैं अहंकारकों त्यागिकरि कैसे जीता रहौंगा, यह अर्थ मुझकों निश्चय करि कहौ, तुम कहणेहारेविषे श्रेष्ठ हौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे कमलनयन रामजी! सर्व ज्ञानवानोंनें वासनाका त्याग किया है, सो दो प्रकारका है, एकका नाम ध्येयत्याग, दूसरेका नाम नेयत्याग है, मैं यह हौं, पदार्थरूप मैं इनकरि जीता हौं, इनविना मैं कछु जीता नहीं, अरु मोंविना यह भी कछु नहीं, यह जो अंतर निश्चय है, तिसकों त्यागिकरि विचारत भया हौं, न मैं पदार्थ हौं, न मेरे पदार्थ हैं, ऐसी भावना करणेहारे जो पुरुष हैं, तिनका अंतःकरण आत्मप्रकाशकरि शीतल हो जाता है, जो कछु क्रिया करते हैं, सो लीलामात्र हैं, जिस पुरुषनें निश्चयकरि वासनाका त्याग किया है, सो पुरुष सर्व क्रियाविषे सर्व आत्मा जाणता है, उसकों बंधनका कारण नहीं होता, तिसके अंतर सर्व वासनाका त्याग है, अरु बाह्य इंद्रियोंकरिके चेष्टा करता है, जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, तिसनें वासनाका त्याग किया है, तिस वासनाका त्याग नाम ध्येय वास

नाका त्याग, अरु जिस पुरुषनें मनसंयुक्त देहवासनाका त्याग किया है, अरु तिस वासनाका भी त्याग किया है, सो नेयवासनाका त्याग है, नेयवासनाके त्यागतें विदेहमुक्त कहाता है, जिस पुरुषनें अहंकार देह अभिमानका त्याग किया है, संसारकी वासना लीलासों त्याग करी है, स्वरूपविषे स्थित होइकारि क्रिया भी करता है, सो जिवन्मुक्त कहाता है, जिसकी सब वासना नाश भई हैं, अंतर बाहिरकी चेष्टातें रहित भया है, अर्थ यह जो अंतर संकल्प बाहिरकी क्रिया त्यागी है, तिसका नाम नेयत्याग विदेहमुक्त जान, जिसनें ध्येयवासनाका त्याग किया है, लीला करिके कर्त्ता हुआ स्थित है, सो जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है, अरु जिसनें नेयवासनाकों त्यागी है, उपशमरूप हो गया है, सो विदेहमुक्त होइकरि परमतत्त्वविषे स्थित है, परात्पर जिसकों कहते हैं, सोई होता है ॥ हे राघव ! यह दोनों त्यागी समपदविषे स्थित हुए, ब्रह्मपदकों प्राप्त होता है, विगतसंताप उत्तम पुरुष दोनों मुक्त स्वरूप हैं, निर्मल पदविषे स्थित होते हैं; एककी देह स्फुरणरूप होती है, दूसरेकी अस्फुर होती है, देह युक्तरूप देहविषे स्थित होता है, क्रियाकों करता संतापतें रहित जीवन्मुक्त सो ज्ञानकों धरता है, दूसरी देहकों त्यागिके विदेहपदविषे स्थित होता है, उसकेसाथ वासना अरु देह दोनों नहीं भासते, तातें विदेहमुक्त कहाता है, जीवन्मुक्तके अंतर वासनाका त्याग है, बाह्य क्रिया करता है, जैसे समयकरि सुख दुःख आय प्राप्त होता है, तैसे निरंतर रागदोषतें रहित प्रवर्तता है, सुखविषे हर्ष नहीं, दुःखविषे शोक नहीं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जिस पुरुषनें संसारके इष्ट आनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है, सो सब कार्यविषे सुषुप्तिकी नांई अचल वृत्ति है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, हेयोपादेय मैं अरु मेरा सब कलना जिसके अंतर क्षीण हो गई है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसकी वृत्ति संपूर्ण पदार्थहुतें सुषुप्तकी नांई हो गई है, अरु सदा जाग्रत् चित्त जिसका है, कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें आकाशवत् निर्मल है, सो जीवन्मुक्त पूजणे योग्य है॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्र

कार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब सूर्य भगवान् अस्त भया, सब सभाके लोक स्नानके निमित्त परस्पर नमस्कार करिके उठे, रात्रिकों व्यतीत करिके सूर्यकी किरणांसाथ परस्पर नमस्कार करिके यथायोग्य अपणे अपणे आसनपर आय बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विदेहमुक्त है, सो हमारी वाणीका विषय नहीं, तातें तूं जीवन्मुक्तका लक्षण सुण, जो कछु प्रकृत कर्म है, तिसकों करता है, परंतु तृष्णा अरु अहंकारतें रहित है, निरहंकार होइकरि विचरता है, सो जीवन्मुक्त है, बहार जो दृष्ट पदार्थ है, तिसविषे जिसकी दृढ भावना है, तृष्णा करिके सदा इच्छता रहता है, संसारके दृढ बंधनकरि सो बंध कहाता है, अरु जिसनें निश्चयकरिके अंतरतें संकल्पका त्याग किया है, अरु बाह्यतें सब व्यवहार करता है, सो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, जो बाह्य जगत्विषे बडे आरंभ करता है, इच्छासंयुक्त दृष्ट आता है अरु हृदयविषे सब अर्थोंकी वासना तृष्णातें रहित है, सो मुक्त कहाता है, जिस पुरुषकों भोगोंकी तृष्णा मिटि गई है, वर्तमानविषे निरंतर विचरता है, सो निर्दुःख निष्कलंक कहाता है ॥ हे महाबुद्धिवान् ! जिसके अंतर इदं अहंका निश्चय है, तिसकों धारिकरि संसारकी भावना करता है, तिसकों तृष्णारूप सांकलकरि बांधा, अरु कलनाकरि कलंकित जान, तातें तूं मैं अरु मेरा सत्य अरु असत्यबुद्धि संसारके पदार्थोंका त्याग कर, जो परम उदार पद है, सर्वदा काल तिसविषे स्थित होहु, बंधमुक्त सत्यअसत्यकी कल्पनाकों त्यागिकरि समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित होहु, न तुम पदार्थजाल हौ, न यह तुमारे हैं, असत्यरूप जानिके इनका विकल्प त्याग, यह जगत् भ्रांतिमात्र है, इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है, इनतें रहित आकाशकी नांई सन्मात्र तूं सत्यस्वरूप है; अरु तृष्णा मिथ्यारूप है, तेरा अरु इसका क्या संग है ॥ हे रामजी ! चार प्रकारका निश्चय जीवकों होता है, सो बडे विस्तार आकारकों प्राप्त होता है, चरणोंतें लेकरि मस्तकपर्यंत शरीरविषे आ

त्मबुद्धि है, अरु मातापिताकरि उत्पन्न भया है, यह निश्चय बंधनरूप है, असम्यक्दर्शन भ्रांतिकरि होता है, अरु द्वितीय निश्चय यह है, जो सब भावपदार्थोंतें अतीत हौं, बालके अग्रतें भी सूक्ष्म हौं, साक्षीभूत सूक्ष्मतें अति सूक्ष्म हौं, यह निश्चय भी शांतिरूप मोक्षकों उपजाता है, अरु जेता कछु जगत्जाल है, सो सब पदार्थों मैंही हौं, आत्मारूप मैं अविनाशी हौं, यह तीसरा निश्चय है, सो भी मोक्षदायक है, अरु चौथा निश्चय यह है, जो मैं भी असत्य अरु जगत् भी असत्य है, इनतें रहित आकाशकी नांई सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है ॥ हे रामजी ! यह चार प्रकारका निश्चय मैंनें तुझकों कहा है, तिसविषे प्रथम निश्चय बंधनका कारण है, और तीनों मोक्षका कारण हैं, सो शुद्ध भावनाकरि उपजे हैं, जो प्रथम निश्चयवान् है, सो तृष्णारूप सुगंधिकरिके संसारविषे भ्रमता है, अरु तीन भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरषकी हैं, जिसकों यह निश्चय है, जो सर्व जगत्में आत्मस्वरूप हौं, तृष्णा अरु राग द्वेष तिसकों बहुरि दुःख नहीं देता, अध ऊर्ध्व मध्य मैं आत्माही व्याप्या हौं, सब मैंही हौं, मुझतें इतर कछु नहीं, जिसके अंतर यह निश्चय है, सो संसारके पदार्थमें बंधायमान नहीं होता, शून्य प्रकृति माया, ब्रह्मा, शिव, पुरुष, ईश्वर, सब तिसके नाम हैं, सो विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है, सदा सर्वदा एक अद्वैत मैं आत्मा हौं, अवर द्वैत भ्रम चित्तमें नहीं, सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हौं, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत जेता कछु जगत्जाल है, सो सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भरी रहा हौं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं, तैसे सर्व जगत्जाल आत्मस्वरूपही है, सत्यस्वरूप आत्मातें इतर द्वैत कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रतें इतर बुद्बुदे तरंग कछु नहीं, जैसे स्वर्णतें इतर कछु भूषण नहीं, तैसे आत्मसत्तातें कोउ पदार्थ भिन्न नहीं, द्वैत अरु अद्वैत जो जगत्रचनाविषे भेद है, सो परमात्मा पुरुषकी फुरणाशक्ति है, सोइ द्वैत अरु अद्वैतरूप होइकरि भासता है, यह अपणा है, यह अवरका है, यह भेद सर्वदा सबविषे रहता है अरु पदार्थोंके उपजणे मिटणेविषे सुखदुःख भासता है, तिनकों मत ग्रहण करौ, भावरूप जो अद्वैत आत्मसत्ता है,

तिसीका आश्रय करौ, भ्रमद्वैतकों त्यागिकरि अद्वैत पूर्णसत्ता होहु, संसारके जो कछु भेद भासते हैं, तिनकों मत ग्रहण करौ, यह भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है, सो दुःखदाइ जानौ, जैसे अंध हस्ती नदीविषे गिरता है, बहुरि उछलता है, तैसे तुम पदार्थोंविषे मत गिरौ, तुम पूर्णस्वरूप हौ, महात्मा पुरुषकों रागदोष कछु संभव नहीं होता, सर्वगत आत्मा एकअद्वैत निरंतर उदयरूप सर्वव्यापक है, एक अरु द्वैततें रहित भी है, अरुसर्वरूप भी उही है, निष्किंचनरूप भी उही है, न मैं हौं, न यह जगत् है, सब अविद्यारूप है, ऐसे चिंतहु, अरु इसका त्याग करहु, अथवा ऐसे चिंतहु जो ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैंही हौं, तुमारा जो स्वरूप है, सो आनंदरूप सर्वका प्रकाशक अजर अमर निर्विकार निष्क्रिय निराकार परम अमृतरूप है, बहुरि कैसा है, जो निष्कलंक जीवशक्तिका जीवनरूप है, सर्व कलनातें रहित कारणका कारण है, निरंतर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है, अनुभवस्वरूप सब अनुभवका बीज है, अपणा आप आत्मपद उचितस्वरूप ब्रह्म मैं अरु मेरा भावतें रहित है, तातें अहं अरु इदं कलनाकों त्यागिकरि अपणे अंतर यह निश्चय धरहु, अरु यथाप्राप्त क्रियाकों करहु, तुम अहंकारतें रहित शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है, ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनका यह स्वभाव है, जो असम्यक् दृष्टि देहाभिमानकरि नहीं रहते, लीलाकरि जगत् कार्यविषे विचरते हैं, अरु जीवन्मुक्त शांतस्वरूप हैं, जगत्की गति जो है, सो आदि अंत मध्यविषे विरसरूप है, अरु नाशरूप है, तिसतें शांतरूप है, सब प्रकार जो अपणा कार्य है, सो करता है, सब वृत्तिविषे स्थित हुए हृदयसों ध्येयवासना त्यागी है, निरालंबतत्त्वका आश्रय किया है, सबविषे उद्वेगतें रहित सर्व अर्थविषे संतुष्टरूप है, विवेकरूपी जो वन है, तिसविषे सदा विचरते हैं, बोधरूपी बगीचेविषे स्थित हैं, सबतें अतीत पदका अवलंबन किया है, पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतःकरण शीतल भया है, सं

सारके पदार्थकरि कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होता, उद्वेग अरु असंतुष्टत्व दोनोंतें रहित है, सो संसारविषे दुःखी कदाचित् नहीं होता, सब शत्रुओंके मध्य स्थित होइकरि युद्ध करै, अथवा दया करता दृष्ट आवै, बडे भयानक कर्म करता दृष्ट आवै, तौ भी उह जीवन्मुक्त है, संसारविषे दुःखी नहीं होता, सदा सुखी रहता है, न किसी पदार्थविषे आनंदमान होता है, न किसीविषे कष्टमान होता है, न किसी पदार्थकी इच्छा करता है, न शोक करता है, मौनविषे स्थित यथाप्राप्त कार्य करता है, संसारविषे दुःखतें रहित सुखी होता है, जो कोइ पूछता है, तौ यथाक्रम ज्यौंका त्यौं कहता है, अरु पूछेविना मूक जड वृक्षवत् हो रहता है, इच्छा अनिच्छातें मुक्त संसारविषे दुःखी नहीं होता, सबकों हितकरि बोलता है, कोमल अरु उचित वाणीकरि कहता है, यज्ञादिक कर्म भी करता है, परंतु संसारकार्यविषे डुबता नहीं ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नाना प्रकारकी उग्र दिशासंयुक्त जगत्की वृत्तिकों जानता है, जैसे हाथविषे बील फल होवै तैसे प्रकट जाणता है, परंतु परमपदविषे आरूढ होइकरि जगत्की गतिकों देखता रहता है, अपणा अंतःकरण शीतल अरु और जीवोंकों तप्त देखता है, स्वरूपतें कछु द्वैत नहीं देखता है, परंतु व्यवहारकी अपेक्षाकरि उसका महिमा कहा है ॥ हे राघव! जिनोंनें चित्त जीत्या है; अरु परमात्मा देख्या है, तिन महात्मा पुरुषकी स्वभाववृत्ति मैंनें तुझकों कही है, अरु जो मूढ हैं, जिननें अपणा चित्त नहीं जीता, भोगोंरूपी कीचडविषे मग्न हैं, ऐसे गर्दभोंके जो लक्षण हैं, सो हमारे कहणेविषे नहीं आते, तिनकों उन्मत्त कहीयें; उन्मत्त इस प्रकार है, महानरककी ज्वाला स्त्री है, अरु उह उष्ण नरक अग्निके इंधन हैं, तिसकरि जलते हैं, नानाप्रकारकी अर्थोंनिमित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं, भोगोंकी दीनता अनर्थरूप है, तिसकरि उनके चित्त हत भए हैं, संसारके आरंभकरि दुःखी होते हैं, जो नानाप्रकारके कर्म करते हैं, तिनके फल हृदयविषे धारते हैं, तिन कर्मके अनुसार सुखदुःख भोगते हैं, ऐसे जो भोगलंपट हैं, तिनके लक्षण हम कहणेकों समर्थ नहीं ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुषकी पूर्वदृ

ष्टि कही है, तिसीका तुम आश्रय करौ, हृदयसों ध्येय वासनाकों त्यागहु; जीवन्मुक्त होइकरि जगत्विषे विचरौ, अंतरतें संपूर्ण इच्छाकों त्यागिकरि वीतराग निर्वासनिक होहु, बाह्य सब आचारवान् होइकरि लोकोंविषे विचरहु, सर्व दिशा अवस्थाका भली प्रकार विचारकरि तिनविषे अतुच्छ पद होवै, तिसकों आश्रय करौ, अरु लोकोंविषे विचरौ, अंतर सर्व पदार्थोंतें निरस अरु बाह्य इच्छाके सन्मुख होहु, अंतर शीतल रहहु, बाह्य तपायमान होहु, ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरौ, बाह्य सब कार्यका आरंभ करौ, अरु हृदयकरि सब आरंभतें विवर्जित होहु, बाह्य कार्योंका कर्त्ता अरु अंतरतें सदा अकर्त्ता ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरहु ॥ हे रामजी! अब तूं ज्ञानवान् हुआ है, सब पदार्थोंकी भावनाका अभाव भया है, जैसे इच्छा होवै, तैसे विचरहु, जो इंद्रियोंका इष्ट पदार्थ हो आवै, तब कृत्रिम हर्षवान् होणा, अरु दुःख आय प्राप्त होवै, तब शोक करणा, कृत्रिम क्रियाका आरंभ करना, अरु हृदयाविषे सारभूत रहणा, बाह्य अरु कृत्रिमका अर्थ एक है, अंतरत्यागी, बाह्य कर्त्ता ऐसे होइकरि जगत्विषे विचरौ, बाह्य क्रिया करहु, अंतर अहंकारतें रहित आकाशवत् निर्मल रहौ, कार्य कलनातें रहित होइकरि जगत्विषे विचरहु, आशारूप फांसीतें मुक्त होइकरि इष्ट अनिष्टविषे हृदयमें सम रहणा अरु बाह्य कार्य करते लोकोंविषे विचरौ, इस चेतन पुरुषकों न वास्तवतें बंध है, न मोक्ष है, मिथ्या इंद्रजालवत् बंध मोक्ष संसारका वर्तणा है, सब जगत् भ्रांतिमात्र है, प्रमाद करिके जगत् भासता है, जैसे तीक्ष्ण धूप करिके मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे अज्ञान करिके जगत् भासता है, आत्मा अबंध सर्वव्यापकरूप है, तिस सर्वात्माकों बंध कैसे होवै, जो बंध नहीं, तौ मुक्त कैसे कहीयें, आत्मतत्त्वके अज्ञानकरि जगत् भासता है, तत्त्वज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञान करिके सर्प भासता है, जेवरीके जाननेतें सर्प लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! तूं तौ ज्ञानवान् हुआ है, अपणी सूक्ष्म बुद्धि करिके निरहंकार भया है, अब आकाशकी नांई निर्मल स्थित होहु, जो तूं असत्यरूप है, तौ संपूर्ण मित्र भ्रात तैसेही हैं, तिनकी

ममताकों त्यागीकरि जो आप कछु न हुआ, तौ भावना किसीकी करैगा, अरु जो तूं सत्यस्वरूप है, तौ अत्यंत सत्य आत्माकी भावनाकरि दृश्य जगत्की भावनातें रहित होहु, यह जो अहं मम भोगवासना है, जगत्विषे सो प्रमाद करिके भासती है, अहं मम बांधवोंका कर्म शुभ आदिक जो जगत्जाल भासती है, सो आत्माका संयोग इनसाथ कछु नहीं, इनकरि तूं काहेकों शोकवान् होता है! तूं आत्मतत्त्वकी ऐसी भावना कर, तेरा संबंध किसीसाथ नहीं, यह प्रपंच भ्रममात्र है, जो निराकार अजन्मा पुरुष होवै, तिसकों बांधव पुत्र दुःख सुखका क्रम कैसे होवै, स्वतःअजन्मा निराकार निर्विकार है, तेरा संबंध किसीसाथ नहीं, इनंका शोक तूं काहेकों करता है, शोक करणेका स्थान उह होता है, जो नाशरूप होवै, सो न कोउ जन्मता है, न मरता है, जो जन्म मरण भी मानियें तौ आत्मा तिसकों सत्ता देणेहारा है, इस शरीरके आगे भी अरु शरीरके पाछे भी होवैगा, आगे जो तुमारे बांधव बडे बुद्धिवान् सात्त्विक गुणवान् अनेक व्यतीत भये हैं, तिनका शोक, काहेकों नहीं करता! जैसे उह थे, तैसे यह भी हैं, जो प्रथम थे, सो अब भी हैं, तूं शातरूप है, तातें मोहकों प्राप्त क्यों होता है, जो सत्यस्वरूप है, तिसका न कोउ शत्रु है, न नाश होता है, तातें तूं शोक करनेकों योग्य नहीं, जो तूं ऐसे मानता है, अब मैं हौं, आगे न होउंगा; तौ भी वृथा शोक क्यों करता है, तेरा संशय नष्ट भया है, कष्टसंयुक्त काहेकों बनता ! अपनी प्रकृतिविषे हर्षशोकतें रहित होइकारि विचरहु, संसारके सुख दुःखविषे समभाव रहहु, सर्वत्र परमात्मा व्यापकरूप स्थित है, तिसतें इतर कछु नहीं, तूं आत्मा आनंद स्वच्छ आकाशवत विस्तृतरूप है, अरु नित्य शुद्ध प्रकाशरूप है, जगत्के पदार्थों निमित्त क्यों शरीरकों सुकाता है, सर्व पदार्थ जातिविषे एक आत्मा व्यापक होता है, जैसे मोतीकी मालाविषे एक सूत्र तागा व्यापक होता है, तैसे आत्मा अनुस्यूत है, ज्ञानवानोंकों सदा ऐसेही भासता है, अरु अज्ञानीकों ऐसे नहीं भासता, तातें ज्ञानवान् होइकरि सुखी होहु, अरु यह जो संसरणरूप संसार भासता है, सो प्रमादकरि सारभूत हो गया

हैं, अरु तूं तौ ज्ञानवान् शांत बुद्धि है, दृश्य भ्रममात्र संसारका क्या रूप है, भ्रम अरु स्वप्नमात्रतें इतर कछु नहीं, स्वप्नविषे क्या क्रम अरु क्या वस्तु है! सब मिथ्याही है, तैसे यह संसार है, सर्वशक्त जो सर्वात्मा है, तिसविषे जो भ्रममात्र शक्ति है, तिसकरि यह संसारमाया उठि है, सो न सत्य है, वास्तवतें पूछै तौ केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे सूर्य प्रकाशता है, तिसकों न किसीकों बेध है, न किसी साथ स्नेह है, सर्वरूप सर्वत्र सर्वदा सर्वका ईश्वर है, तिस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्ति है, तिसकरि नानारूप जगत् भासता है, केई भिन्नाभिन्नरूप निरंतरही उत्पन्न होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे देहधारी जैसी वासना करता है, तिसके अनुसार जगत्विषे विचरते हैं, उपजते हैं, चक्रकी नाई भ्रमते हैं, स्वर्गविषे जो स्थित जीव हैं, सो नरककों जाते हैं, अरु जो नरकविषे स्थित हैं, सो स्वर्गकों जाते हैं, योनितें योन्यंतर अरु द्वीपतें द्वीपांतरकों जाय प्राप्त होते हैं, अज्ञान करिके धैर्यवान् कृपणताकों प्राप्त होता है, अरु कृपण धैर्यकों प्राप्त होता है, इस प्रकार भूत उछलते हैं, अरु गिरते हैं, अज्ञानकरिके अनेक भ्रमकों प्राप्त होते हैं, आत्मसत्ता एकरूप स्थित है, स्थिर स्वच्छ अपणे आपविषे अचल है, दुःखभ्रम तिसविषे कोउ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे बरफका कणका नहीं पाता, तैसे जो आत्मसत्ताविषे स्थित हैं, तिनकों दुःखक्लेश कोउ नहीं होता, उनका हृदय शीतल रहता है, सो आत्मसत्ताकी बडाई है, संसारविषे यही अवस्था है, जो बडे बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न भगवान् दृष्ट आते थे, सो कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं, तूं अरु मैं इत्यादिक भावना आत्माविषे मिथ्या भ्रम करिके भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह बांधव है, यह अन्य है, यह मैं हौं, इत्यादिक मिथ्या दृष्टि है, सो तेरी अब नष्ट भई है, संसारकी जो विचारदृष्टि है, जिसकरि जीव नष्ट होते हैं, तिसकों मूलतें काटिकरि तुम जगत्विषे क्रिया करौ, जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारविषे विचरते हैं, तैसे विचरौ, भारवाहककी नांई भ्रमविषे नहीं वर्त

णा, जहां नाश करणेहारी वासना उठै, तहां यह विचार करहु, जो यह पदार्थ मिथ्या हैं, तब वासना शांत हो जावैगी, यह बंध है, यह मोक्ष है, यह पदार्थ नित्य है, इत्यादिक गिनती लघुचित्तविषे उठती है, उदारचित्तविषे नहीं उठती, उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके आचरणकों विचरता हुआ देहदृष्टि नष्ट हो जावैगी, ऐसे विचार जो जहां मैं नहीं सो पदार्थ कोउ नहीं, सब मैंही हौं, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो मेरा नहीं, सब मेराही है, ऐसे विचारकरि देहदृष्टि तेरी नष्ट हो जावैगी, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो किसी संसारके पदार्थकरि उद्वेगकों प्राप्त नहीं होता, अरु किसी पदार्थके अभाव हुएतें आतुर भी नहीं होता, उह चिदाकाशरूप सर्वकों सत्य स्थितरूप देखता है, आकाशकी नांई आत्माकों व्यापक देखता है, भाई बांधव भूतजातकों अत्यंत असत्यरूप देखता है, नानाप्रकारके अनेक जन्मविषे भ्रम करिके अनेक बांधव हो गए हैं, वास्तवतें त्रिलोक अरु बांधवविषे भी बांधव उही है॥ इति श्रीयोग०उप०जीवन्मुक्त वर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रसंग उपर एक पुरातन भाईयोंका इतिहास है, बडे भाईनें छोटे भाईकों कहा है, एक मुनीश्वरके दो पुत्र थे, यह बांधव है, यह अन्य है, इसी प्रसंग उपर एक कथा है, सो बांधव अरु मोक्ष आदिक जो नानाप्रकारकी कलना है, तिसकों दूर करणेहारी है, पवित्र अरु आश्चर्यरूप कथा है, सो तुम श्रवण करौ ॥ हे रामजी! इसी जंबुद्वीपविषे किसी स्थानविषे महेंद्र नामा एक पर्वत है, तहां कल्पवृक्ष हैं, तिनकी छाया नीचे देवता किन्नर आय विश्राम करते हैं, तिस पर्वतके बडे शिखर ऊर्ध्वकों गए हैं, ब्रह्मलोकपर्यंत प्राप्त भए हैं, तिस उपर देवता सामवेदकी ध्वनि करते हैं, अरु गायन करते हैं, किसी उरतें जलकरि पूर्ण बडे मेघ विचरते हैं, कहूं पुष्पकरि पूर्ण लता हैं, कहूं जलके झरे वहते हैं, कंदरासाथ उछलते हैं, मानौं समुद्रके तरंग जाते हैं, कहूं पक्षी शब्द करते हैं, कहूं कंदराविषे सिंह गर्जते हैं कहूं कल्पवृक्ष कदंबवृक्ष हैं, कहूं अप्सरागण विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, किसी स्थानविषे

महासुंदर रत्नमणी रमणीय विराजते हैं, तहां गंगाके तटपर स्नाननिमित्त मुनीश्वर विश्राम करता भया; सो कैसा तट है, सुंदर वृक्ष अरु स्वर्णके कमलकरि शोभता है, तहां महातपस्वी ज्ञानवान् उदारबुद्धि मुनि दीर्घतपा भया है, तपकी मानो मूर्ति स्थित है, सो मुनि स्त्रीसंयुक्त गंगाके तटपर शोभता भया, तिसकों दो पुत्र थे, महासुंदर चंद्रमाकी नांई तिनका मुख था, पुण्य अरु पावन जिसका नाम तिनों संयुक्त तटपरि रहणे लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब पुण्य नामक जो पुत्र था, सो ज्ञानवान् होता भया, अरु पावन अर्ध प्रबुद्ध भया, जैसे संध्याकी पूर्व अवस्थामें कमल अर्धोन्मीलित होता है, तैसे सो पुण्य गुणोंकरि पावनसों अधिक होता भया, अरु पावन लोलुप अवस्थाविषे रहा, पुण्य ज्ञानवान् भया, जब कालचक्रके फिरते हुए केतेक वर्ष गण व्यतीत भए, तब दीर्घतपाका शरीर जर्जरीभूत हो गया, शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखिकरि चित्तकी वृत्ति देहतें विरक्त करता भया, अर्थ यह जो विदेह होणेकी इच्छा करता भया, तब दीर्घतपाकों पुर्यष्टका कलनारूप शरीरकों त्यागत भई, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागि देवै, तैसे पर्वतकी कंदराविषे जो आश्रम था, तिसविषे शरीरकों उतारि दिया, तब कलनातें रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्तास्वरूपविषे स्थित भया, रागद्वेषतें रहित जो पद है, तिसविषे शरीरकों त्यागिकरि प्राप्त भया, जैसे धूम्र आकाशविषे जाय स्थित होवै, तैसे चिदाकाशविषे स्थित भया, तब मुनीश्वरकी स्त्री भर्त्ताकों शरीर प्राणोंतें रहित देखत भई, जैसे दंडतें कमल काट्या होवै, तैसे चित्तविना शरीरकों देखत भई, चिरपर्यंत योगकर्म किया था, तिसकरि अपणे शरीरकों त्यागणे लगी, तब प्राण अरु पवनकों वश करिके शरीरकों त्यागत भई, जैसे भंवरा कमलिनीकों त्यागै तैसे त्यागिकरि भर्त्ताके पदकों प्राप्त भई, जैसे आकाशविषे चंद्रमा अस्त होता है, अरु तिसकी प्रभा तिसके पाछे अदृष्ट होवै, तैसे दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पाछे अदृष्ट भई, जब दोनों विदेहमुक्त भए, तब पुण्य जो बडा पुत्र था, तिसके देहिक कर्मविषे सावधान होइकरि कर्म करणे लगा, अरु पावन मातापितातें र

हित दुःखकों प्राप्त भया, शोक करिके चित्त उपहत व्याकुल होइगया, वनकुंजोंविषे भ्रमणे लगा, जब पुण्य माता पिताकी देहादिक क्रिया कर रहा, तब जहां पावन शोककरि विलाप करता था तहां आया, अरुशोक संयुक्त भाईकों देखिकरि कहत भया ॥ ॥ पुण्य उवाच ॥ ॥ हे भाई! शोकगणकों क्यों प्राप्त भया है, जो वर्षाकालके मेघवत् आंसुका प्रवाह चला जाता है, ऐसा रुदन तूं करता है ॥ हे बुद्धिवान्! तूं किसका शोक करता है, तेरे पिता अरु माता तौ आत्मपदकों प्राप्त भये हैं, जो मोक्षपद है, सोई सर्व जीवोंका स्थान है, अरु ज्ञानवान्का स्वरूप है, यद्यपि सबका अपणा आप स्वरूप एकही है, तौ भी ज्ञानवान्कों इस प्रकार भासता है, अरु अज्ञानीकों ऐसे नहीं भासता, सो तौ उह ज्ञानवान् थे, अपणे स्वरूपकों प्राप्त भये हैं, तिनका शोक तूं किस निमित्त करता है, यह क्या भावना तुझनें बांधी है, मोक्षदायक जो संसारविषे शोक है, सो तूंकरता नहीं, अरु जो शोक करणे योग्य नहीं सो करता है, न उह तेरी माता थी, न उह तेरा पिता था, न तूं उनका पुत्र था, अरु केई तेरे माता पिता हो गए हैं, अरु केई पुत्र हो गए हैं, असंख्यवार तूं इनका पुत्र हुआ है, अरु असंख्य पुत्र उननें उत्पन्न किए हैं, जैसे नदी अनेक तरंगो उत्पन्न करती है, तैसे अनेक तेरे पिता माता हुए हैं, अरु तूं उनका पुत्र होइकरि मर गया है, जैसे पत्र फूल फल लता वृक्षसाथ लगते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, ऐसे पुत्र मित्र बांधवके समूह तेरे जन्मजन्मके बीति गए हैं, जैसे ऋतुऋतुविषे बडे वृक्षोंकी शाखा में फल होते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे जन्म होते हैं; तूं काहेकों मातापिताके स्नेहकरि शोक करता है, अवर जो तेरे सहस्रही माता पिता होइकरि बीति गए हैं, तिनका शोक काहेकों नहीं करता? जो तूं इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है, तौ उनका भी शोक करहु ॥ हे महाभाग! जो प्रपंच तुझकों दृष्ट आता है सो जाग्रत भ्रम है, परमार्थतें न कोउ जगत् है, न कोउ मित्र है, न कोउ बांधव है, जैसे मरुस्थलविषे बडी नदी भासती है, परंतु तिसविषे जलका एक बुंद भी नहीं पावता, तैसे वास्तवतें जगत् कछु नहीं पाता, जो

बडे लक्ष्मीवान् तुझकों भासते हैं, छत्र चामरों संपन्न शोभते हैं, सो यह लक्ष्मी चंचलस्वरूप है, केते दिनोंतें अभाव हो जाते हैं ॥ हे पुत्र! तूं परमार्थदृष्टि करिके विचारि देख, न तूं है, न जगत् है, यह दृश्य भ्रांतिरूप है, इसकों अंतरतें त्याग, इस मायादृष्टिकरि वारंवार उपजता है, अरु बिनसता है, यह जगत् अपणे संकल्पतें उपजा है, इसविषे सत पदार्थ कोउ नहीं, अज्ञानरूप मरुस्थल है, तिसविषे जगत्रूपी नदी है, तिसतें शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते हैं, बहुरि नष्ट हो जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनं नाम एकोनविंशतिमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ पुण्य उवाच ॥

हे भाई! केई माता, केई पिता होइ होइकरि मिटि गए हैं, जैसे वायुसों धूलिके कण उडते हैं, तैसे बांधव हैं, न कोउ मित्र है, न कोउ शत्रु है, संपूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है, तिसविषे जैसी भावना फुरती है, तैसेही हो भासती है, बांधव मित्र पुत्र आदिकोंविषे स्नेह होता है, सो मोहकरि कल्पित है, अपणे मनकरि मातापितादिक संज्ञा कल्पी है, प्रपंचविषे जैसी संज्ञा कल्पता है, तैसी हो भासती है, जहां बांधवकी भावना होती है, तहां बांधव भासता है, जहां औरकी भावना होती है, तहां और होइ भासता है, अरु जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तौ अमृत भी विष हो जाता है, कछु अमृतविषे विष नहीं, भावनारूप भासता है, तैसे न कोउ बांधव है, न कोउ शत्रु है, विद्यमान् सर्वदाकाल एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है, तिसविषे अपनी अरु औरकी कल्पना कोउ नहीं, अरु जेते कछु देहादि हैं, सो रक्तमांसादिके समूहकरि रचे हैं, तिनविषे अहं सत्ता सो कौन है, अहंकार अरु चित्तबुद्धि मन कौन है, परमार्थदृष्टिकरि यह तौ कछु नहीं, विचार कियेतें न तूं है, न मैं हौं, पुण्य अरु पावन दोनों मिथ्या ज्ञानकरि भासता है, एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है, अरु पिता कौन है, सर्व मिथ्या भ्रम करिके भासता है, वास्तवतें कछु नहीं, शरीरकरि देखियें, तौ जेते कछु शरीर हैं, सो पंचतत्त्वोंकरि रचे जडरूप हैं, तिनविषे

जो चेतन है, सो तौ एकरूप है, तिसविषे अपणा अरु पराया कौन है, इस भ्रमदृष्टिकों त्यागिकरि तत्त्वका विचार कर, मिथ्या भावना करिके मातापिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुआ है, जो सम्यक् दृष्टिकों आश्रय करिके तिस स्नेहका शोक करता है, तौ और जन्मोंके तेरे बांधव मित्र हैं, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक पुष्पलताविषे तूं मृगपुत्र हुआ था तिसजन्मके तेरे अनेक मित्र बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक कमलोंसंयुक्त तलावमें हस्ती आय विचरे थे, तहां तूं हस्तिका पुत्र था, तिन हस्ती बांधवों का शोक क्यों नहीं करता, बडे वनविषे वृक्ष हुए थे, तेरे साथ फलपत्र हुए थे, अनेक वृक्ष तेरे बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि नदी तलावविषे मत्स्य हुए थे, तिस मत्स्य जानिके बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि दशार्णव देशविषे काक वानर हुआ, तुषार्ण देशविषे तूं राजपुत्र हुआ, बहुरि वनकाक हुआ, वंगदेशविषे तूं हाती भया, विराज देशविषे तूं गर्दभ हुआ, सावल देशविषे सर्प भया, अरु वृक्ष हुआ, वंग देशविषे गृध्र हुआ, मालव देशविषे पर्वतविषे पुष्पलता हुआ, मंदराचल पर्वतविषे गीदड हुआ, कौशल देशविषे तूं ब्राह्मण भया, वंग देशविषे तीतर हुआ, तुषार देशविषे घोडा भया, बहुरि कीट अवस्थाविषे अनेक हस्ती भया, बहुरि एक नीच ग्रामविषे बछरा हुआ, पंचदश मास तहां रहा, बहुरि एक वनविषे तडाग था, तहां कमल पुष्पविषे भमरा भया, सो तूं मेरा भाई है, इत्यादिक अनेक जन्म तूं पाया है, जंबुद्वीपविषे तूं अनेकवार उत्पन्न भया है ॥ हे भाई! इस प्रकार वासनापूर्वक वृत्तांत मैंनें कहा है, जैसी वासना हुई है, तैसे जन्म तूं पाया है, सो सूक्ष्म निर्मल बुद्धिकरि देखता हौं, जो ज्ञानविना तूं अनेक जन्म पाया है, तिन जन्म जानिके किस किस बांधवका शोक करैगा; अरु किसका स्नेह करैगा, जैसे उह बांधव थे, तैसे यह भी जानि ले, अरु मेरे भी अनेक बांधव हुए हैं, जिनजिनविषे जन्म पाया है, अरु बीति गए हैं, तैसे सर्व मेरे स्मरणविषे आते हैं, अरु अब मुझकों अद्वैत ज्ञान भया है ॥ हे भाई! त्रिराग

देशविषे मैं तोता भया, तडागके तटपर हंस भया हौं, पंखीविषे काक हुआ हौं बहुरि बेलि हुआ हौं, वंगदेशविषे वृक्ष हुआ, इस वन पर्वतविषे बडा उष्ट्र होइकरि विचर्या हौं, पौंड्रदेशविषे राजा हुआ हौं, सह्याचल पर्वतकी कंदराविषे बिघाड हुआ हौं, सो तूं उहां बडा भाई भया, जो मैं मृग होइकरि दश वर्ष रहा, बहुरि पंचमास मृग रहा, सो तेरा भ्रात होइकरि रहा, सो तेरा बडा भ्रात हौं, इस प्रकार ज्ञानतें रहित वासना कर्मके अनुसार जन्मविषे भ्रमते फिरे हैं, मैं तुझकों सर्व कहा है, सब मुझकों स्मरणविषे आता है, इस प्रकार जगत्जालकी स्थिति मैं तुझकों कही है, तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता भाई मित्र भए हैं, तिनका शोक तूं क्यौं नहीं करता? यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारणतें सबकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, सब प्रपंच भ्रांतिरूप है, इसकी वासना त्याग, जब अहंकार वासनाकों त्याग करै, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं, तातें हे भाई! यह जो जीव भाव है, जन्ममरण ऊर्ध्व जावणा बहुरि गिरणा यह जो व्यवहार है, तिसविषे बुद्धिवान् शोकवान् नहीं होता, दुःखके निवृत्ति अर्थ अपणे स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूप भावअभावतें रहित जरामरणतें रहित नित्य शुद्ध परमानंद है, तूं तिसका स्मरण कर, मूढ मत होहु, तुझकों न सुख है, न दुःख है, न जन्म है, न मरण है, न माता है, न पिता है, तूं एक अद्वैतरूप आत्मा है, और किसीसाथ संबंध नहीं, काहेतें जो इतर कछु नहीं ॥ हे साधु! यह जो नानाप्रकारका संसारविषयसंयुक्त यंत्र है, अज्ञानरूप नटुआ इसकों ग्रहण करता है, इष्ट अनिष्टकरि बंधायमान् होता है, जो आत्मदर्शी पुरुष हैं, तिनकों कछु क्रिया स्पर्श नहीं करती, केवल सुखरूप है, अरु जो अज्ञानी है, सो देह इंद्रियोंके गुणोंविषे तद्रूप हो जाता है; इष्टअनिष्टकरि सुखदुःखका भोक्ता होता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देखणेहारे साक्षीभूत होते हैं, कर्ता हुआ भी अकर्तारूप है, जैसे दीपक प्रकाशरूप होइकरि रात्रिकों सब जगत्के अर्थ सिद्ध करता है, अरु अपणी इच्छातें रहित

है, तातें अकर्ता है, तैसे ज्ञानवान् देह इंद्रियांके कर्म करता भी अकर्ता है, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषतें रहित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब आइ पडता है, परंतु दर्पण भले बुरे रंगकरि रंजित नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेष करिके रंजित नहीं होता, सब इच्छातें अरु भयकलनातें रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है, पुत्र कलत्र बांधवोंके स्नेहतें रहित है हृदयकमल जिसका, सर्व इच्छा अहं ममतें रहित अपणे स्वरूपविषे संतुष्टवान् होता है, तातें मिथ्या देहादिकोंकी भावनाकों त्यागिकरि अपणे नित्य शुद्ध शांत परमानंदस्वरूपविषे तूं भी स्थित होहु, तूं परब्रह्मरूप है, अरु अति निर्मलरूप है ॥ इति श्रीयोग० उप० पावनबोधो नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार पुण्यनें पावनकों बोध उपदेश किया, तब पावन बोधकों प्राप्त भया, जैसे प्रातःकालविषे पृथ्वी प्रकाशवान् होती है, अरु तम नष्ट हो जाता है, तैसे पावनकों बोध प्राप्त भया, तब दोनों ज्ञानवान्के पारगामी होइकरि बनविषे विचरणे लगे, निरिच्छित आनंदित पुरुष चिरकालपर्यंत विचरत भया, बहुरि दोनों विदेहमुक्त निर्वाणपदकों प्राप्त हुए, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे प्रारब्ध कर्मके क्षीण हुएतें दोनों विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! इस प्रकार तूं भी जान, जैसे उह मित्र बांधव धनादिकके स्नेहतें रहित होइकरि विचरै, तैसे तुम भी स्नेहतें रहित होइकरि विचरौ, जैसे उनोंनें विचार किया, तैसे तूं भी कर, यह मिथ्यारूप संसारविषे किसकी इच्छा करै, औ किसका त्याग करै, ऐसे विचारकरि अनंत इच्छा अरु तृष्णाका त्याग करणा यह औषध है, इच्छा तृष्णाकी पालना औषध नहीं, काहेतें जो पालणेकरि पूर्ण कदाचित् नहीं होती, जेता कछु जगत् है, सो चित्ततें उत्पन्न भया है, चित्तके नष्ट हुएतें संसारदुःख नष्ट हो जाता है, जैसे काष्ठके पावणेकरि अग्नि बढता जाता है, अरु काष्ठोंतें रहित शांत हो जाता है, तैसे चित्तकी चितवना करिके जगत् विस्तारकों पाता है, चितवनातें रहित शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ध्येय वासनावान् त्यागरूपी रथपर आरूढ होइकरि

होहु, अरु करुणा दया उदारतासंयुक्त होइकरि लोकोंविषे विचरहु, इष्टअनिष्टविषे रागदोषतें रहित होहु, यह ब्रह्मस्थिति तुमकों कही, निष्काम निर्दोष स्वस्थरूपकों पाइकरि बहुरि मोहकों प्राप्त नहीं होता, इसका परम आकाशही हृदय मात्र विवेक है, बुद्धि इसकी सखी है, जिसके निकट विवेक अरु बुद्धि है, सो परम व्यवहार करते भी संकटकों प्राप्त नहीं होते, तातें तूं परम विवेक अरु बुद्धिकों संग लेकरि जगत्विषे विचरैगा, तब संकट दुःखकरि मोहित न होवैगा, नानाप्रकारके दुःख संकट स्नेह आदिक विकाररूप समुद्र है, तिसके तरणेनिमित्त एक अपणा धैर्यरूपी बेडा है, और कोउ उपाय नहीं, सो धैर्य क्या है, दृश्य जगत्सों वैराग्य अरु सच्छास्त्रका विचार अरु श्रेष्ठ गुण अभ्याससंयुक्त आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भांडार है, जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यकरि भी नहीं पावता, सो वैराग्यविचार अभ्यास बडे गुणोंकरि चित्तके धारणेसों पावता है, तबलग यह पुरुष जगत्कोशविषे उपजता है, जबलग मन तृष्णारूपी तापतें रहित नहीं होता, तबलग कष्ट है, जब आत्मविवेकसों मन पूर्ण होता है, तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है, जैसे जूतीके पहिरनेकरि पृथ्वी सर्व चर्मसों वेष्टित हो जाती है, तैसे सो पूर्णपद इच्छा तृष्णाके त्यागणेकरि पाता है, जैसे शरत्कालका आकाश मेघतें रहित निर्मल होता है, तैसे इच्छातें रहित पुरुष निर्मल होता है, जिन पुरुषोंके हृदयविषे आशा फुरती है, तिसके वश हुए शून्याचित्त हो जाता है, जैसे अगस्त्य मुनीनें समुद्रकों पान किया, तब समुद्र जलतें रहित शून्य हो गया, तैसे आत्मजलतें रहित समुद्रवत् चित्त शून्य हो जाता है, जिस पुरुषके चित्तरूपी वृक्षविषे तृष्णारूपी चंचल मर्कटी रहती है, तिसकों स्थिर होणे नहीं देती, क्षोभायमान सदा होती है, अरु जिसका चित्त तृष्णातें रहित है, तिस पुरुषकों तीनों जगत् कमलकी डोडीवत् हो जाते हैं, जो जनोंके समूह गोपदवत् सुगम हो जाते हैं, अरु महाकल्प अर्धनिमेषवत् हो जाता है॥ हे रामजी! ऐसा शीतल चंद्रमा अरु हिमालय पर्वत भी नहीं, ऐसा शी

तल केलेका वृक्ष अरु चंदन भी नहीं, जैसा शीतल चित्त तृष्णातें रहित होता है, पूर्णमासीका चंद्रमा अरु क्षीर समुद्र भी ऐसा सुंदर नहीं होता, अरु लक्ष्मीका मुख भी ऐसा नहीं होता, जैसा इच्छातें रहित मन शोभायमान् होता है, जैसे चंद्रमाकी प्रभावकों मेघ आच्छादि लेता है, अरु जैसे शुद्ध स्थानोंकों अपवित्र लेपन मलिन करता है, तैसे अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषोंकों मलिन करती है, चित्तरूपी जो वृक्ष है, तिसके बडे टास दिशा विदिशा पसरी रही है, सो आशारूप है, जब विवेकरूपी कुहाडेसाथ तिसकों काटै, तब अचित्त पदकी प्राप्ति होवै, अरु जिनकी अनेक शाखा हैं, तिसकों जब काटै तब एक स्थानरूपी चित्त रहै, अविवेक अधैर्य शाखा तृष्णासंयुक्त है, सो अनेक शाखा बहुरि होवैगी, तब आत्मधैर्यकों धरहू, जो चित्त वृद्धताकों न प्राप्त होवै, उत्तम धैर्य करिके चित्त जब नष्ट हो जावैगा, तब अविनाशी पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! उत्तम हृदयरूपी क्षेत्र है, तिसविषे जब चित्तकी स्थिति होती है, तब आशारूपी दृश्यकों नहीं उपजणे देती, ब्रह्मरूप शेष रहता है, जब तुमारा चित्तवृत्तितें रहित अचित्तरूप होवैगा, तब मोक्षरूप जो विस्तृत पद है, सो प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी उलूक पक्षी है, तिसकी तृष्णारूपी स्त्री है, ऐसा पक्षी जहां विचरता है, तहां अमंगलकों विस्तारता है, जहां उलूकपक्षी विचरते हैं, तहां उजाड होती है, विवेकादि जन तातें रहित होय गये हैं, तातें तूं चित्तकी वृत्तितें रहित होउ, ऐसे होइकरि विचरैगा, तब अचित्त पदकों प्राप्त होवैगा, जैसी जैसी वृत्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप जीवकों हो जाता है, इस कारणतें चित्त उपशमके निमित्त तुम यही वृत्ति धरौ, जिसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे महात्मा पुरुष! जिसकों संसारके पदार्थोंकी इच्छा ईषणा उपशम हुई है, अरु भावअभावतें मुक्त भया है चित्त जिसका, सो उत्तम पदकों पावता है, अरु जिसका चित्त आशारूपी फांसीसाथ बांधा है, सो मुक्त कैसे होवै, आशासंयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता, अरु सदा बंधायमान् रहता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम एकविंशतित

मः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो मैंनें तुमकौं उपदेश किया है, तिसकौं विचारौ, हे रघुकुलआकाशके चंद्रमा, बलबंत बुद्धिसौं मेरे वचनौंकौं विचारिकरि निर्मल ज्ञानकौं प्राप्त होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मोंके वेत्ता, तुमारे प्रसादतें जो कछु जानने योग्य था, सो जान्या है, अरु पावणे योग्य पद पाया है, निर्मल पदविषे विश्राम किया है, भ्रमरूपी मेघतें रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मलचित्त भया हौं, मोहरूपी अहंकार नष्ट हो गया है, अमृत करिके हृदय पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल भया है, संशयरूपी मेघ नष्ट हो गया है, परंतु तुमारे वचनौंरूपी अमृतकौं पान करता तृप्त नहीं होता, अरु जिस प्रकार बलिकौं विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त भया है, सो बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझकौं ज्यौंका त्यौं कहौ, नम्रीभूत शिष्यप्रति कहते हुए बडे खेद नहीं मानते, तातें प्रगट करी कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! बलिका जो उत्तम वृत्तांत है सो मैं कहता हौं, सो तूं श्रवण कर, तिसकरि निरंतर बोधकौं प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! इस जगत्की किसी एक दिशाविषे पाताल नाम जिसका सो प्रसिद्ध है, इस लोकके अध पृथ्वीविषे स्थित है, तिस पातालविषे बलिराजा रहता था, महाक्षीरसमुद्रकी नांई सुंदर उज्वल स्थान है, कहूं महासुंदर नागकन्या विराजती हैं, कहूं विषधर सर्प विराजते हैं, सहस्र सीस जिनके, कहूं दैत्यपुत्र विराजते हैं, कट कट शब्द होते हैं, कहूं सुंदर सुखके स्थान हैं, कहूं जीवोंके परंपरासमूह जलते हैं, नर्कोंविषे कहूं दुर्गंधके स्थान हैं, सप्त पाताल हैं, सबविषे जीव स्थित हैं, कहूं रत्नोंकरि खचित स्थान हैं, कहूं देवता अरु दैत्य जिसके चरणोंकौं सीसपर धरते हैं ऐसे भगवान् कल्पिलदेव बैठे हैं, कहूं रत्नका बाग सुगंधीक है, ऐसे पातालविषे दोई भुजाकरि पालित करी है पृथ्वी जिसनें, ऐसा दानवोंविषे श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजा बलि होता भया, सर्व देवता विद्याधर अरु किन्नर जिसनें लीलाकरिके जीते हैं, अरु त्रिलोकी अपणे वश करी छोडी है, टहलुएवत् हो रहे हैं, सर्व देवताका राजा जो है इंद्र, सो तिसके च

रणसेवनकी वांछा करता है, अरु त्रिलोकीविषे जो जातिजातिके रत्न हैं, सो सब तिसके विद्यमान् रहते हैं, सब शरीरोंकी रक्षा करणेहारा, अरु भावनाके धर्मोंकों धरणेहारा, विष्णुदेव जिसका द्वारपाल है, अरु ऐरावत हस्ती, जिसके गंडस्थलसों मद झरता है सो इंद्रका हस्ती तिसकी वाणी सुणि भयमान् होता है, जैसे मोरकी वाणी सुणिकरि सर्प भयमान् होता है, ऐसा तिसका तेज, जैसे सप्त समुद्रोंका जल कुहीड क्षीर शोष लेती है, जैसे प्रलयकालके द्वादश सूर्यकरि समुद्र सूकने लगता है, अरु ऐसे यज्ञ करे जिसके क्षीर घृतकी आहुतीका धुंवा मेघबादल होइकरि पर्वतोंपर विराजे, अरु जिसकी दृढ दृष्टिसों देखणेकरि कुलाचलपर्वत भी नम्रीभूत हो जावै, जैसे फलोंकरि पूर्ण लता नमती है, तैसे, अरु लीला करिके भुवनकों विस्तारसहित जीत्या है, त्रिलोकीकों जीतिकरि दशकोटि वर्षपर्यंत राजा बलि राज्य करता भया, तब एक दिन राजा बलि सुमेरुके शिखर जैसे उंचे झरोंखेविषे जाय स्थित भया, सो राजा बलिनें युगोंके समूह व्यतीत हुए देखे हैं, देवता दैत्य उपजते अरु मिटते जिसनें अनेक वार देखे हैं, त्रिलोकीके भोग भोगे हैं, सो भोगोंतें उद्वेग पाया, तब उंचे झरोंखेमें एकलाही बैठिकरि संसारकी स्थितीकों चितवत भया, सो इस बडे राज चक्रवर्तीकरि मुझकों क्या प्रयोजन है; यद्यपि त्रिलोकीका राज्य बडा है, तौ भी क्या आश्चर्य है, इसविषे मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हौं, परंतु शांति प्राप्त न भई, अरु यह भोग आपातरमणीय हैं, उपजिकरि बहुरि नष्ट हो जाते हैं, भोगोंकरि शांतिसुख प्राप्त नहीं भया, अरु वारंवार मैं उही कर्मव्यवहार करता हौं, बहुरि दिन, बहुरि रात्रि, बहुरि वही क्रिया करणी, तिसविषे लज्जा भी नहीं आती, अरु वही स्त्री आलिंगन करणी, बहुरि भोजन करणा, पुष्पोंकी शय्यापर शयन करणा, क्रिया करणी, यह कर्मों बडेकों लज्जाका कारण हैं, तिस तिस निरस व्यवहार करणा, जो एक वार निरस हुआ अरु उस कालमें तृप्त हुआ, बहुरि वारंवार दिनदिनविषे करते हैं, यह मैं मानता हौं, जो बुद्धिवानोंकों हरणे योग्य लज्जाका कारण है, जीवोंके चित्तविषे वृथा संकल्प विकल्प उठते

हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु मिटते हैं, तैसे संकल्प इच्छाजाल उठते हैं, अरु मिटते हैं, सो उन्मत्त की नांई जीवोंकी चेष्टा है, यह तौ हांसी करणे योग्य बालकोंकी लीला है, मूर्खताकरि अनर्थोंकों पसारती है, इसविषे जो कछु बडा उदार फल होवै सो मैं नहीं देखता, इसविषे भोगोंतें इतर कार्य कछु नहीं पाता, जो कछु इसतें रमणीय अरु अविनाशी होवै, तिसकों शीघ्रही चिंतन करौं, ऐसे विचारिकरि कहणे लगा, बलि जो है दैत्योंका राजा, सो अपणे मनविषे जगत्कों नाशवत् जानिकरि तिसी क्षणमें स्मरण करने लगा, जो मैं प्रथम भगवान् विरोचनसों पूछा था, मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्वका ज्ञाता था, जिसतें लोकोंका आदि अंत न था, अर्थ यह जो सर्व लोकोंविषे गमन किया था, तिससों मैंनें प्रश्न किया था ॥ हे भगवन्! महात्मा, जहां सर्व दुःखों अरु सर्व सुखोंका अंत हो जाता है, अरु सर्व भ्रम शांत हो जाता है, सो कवन स्थान है सो मुझकों कहौ, जहां मनका मोह नाश हो जाता है, अरु सर्व इच्छातें मुक्त होता है, रागदोषतें रहित जिसविषे सर्वदा विश्रामवान् होता है, बहुरि क्षोभ नहीं रहता अरु हे तात, उह कवन पद है, जिसके पायेतें अवर पावणा कछु नहीं रहता, अरु जिसका दर्शन देखेतें और देखणा कछु नहीं रहता, यद्यपि अत्यंत जगत्के भोगपदार्थ हैं, तौ भी सुखदायक नहीं भासता है, काहेतें जो क्षोभ करता है, अरु योगीश्वरोंके मन भी मोहिकरि गिर पडता है ॥ हे तात! जो सुख सुंदर विस्तीर्ण आनंद है, सो तैसा मुझकों कहौ, तिसविषे स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाउंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ ॥ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र! एक अति विस्तीर्ण विपुल देश है, तिसविषे अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासतियां हैं, अरु जहां न समुद्र है, न जलधारा है, न पर्वत है, न वन है, न तीर्थ है, न नदीयां हैं, न तलाव हैं, न पृथ्वी है, न आकाश है, न नंदनवन है, न पवन है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न सूर्य है, न लोक है, न देश, न देवता, न दैत्य, न यक्ष न राक्षस

हैं, न वन हैं, न कमलोंकी शोभा है, न काष्ठ तृणभूत हैं, न चर, न अचर, न जल, न अग्नि, न दिशा हैं, न ऊर्ध्व, न अध, न मध्य है, न प्रकाश है, न तम है, अहं नहीं, न विष्णु इंद्र रुद्रादिक हैं, सो एकही है, अरु महानता नानाप्रकार प्रकाशकों धरणेहारा है, अरु सर्वका कर्ता सर्वव्यापक है, अरु सर्वरूप है, सो तूष्णीं भावसों स्थित है, तिसनें सर्व मंत्रीयोंसहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनै तिसकों शीघ्रही बनाय लेता है, जो बनै तिसकों न बनावणेकों भी समर्थ है, आपतें कछु नहीं भोगता, अरु जानणेकों समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्ता है, यद्यपि आप जड अज्ञ है, तौ भी राजाके बल करिके तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंकों करता है, तिसका महिपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ बलिरुवाच ॥ हे प्रभु ! आधिव्याधि दुःखतें रहित जो प्रकाशवान् है, सो देश कौन है ? अरु प्राप्ति किस साधनसों है ? अरु आगे किसनें पाया है ? अरु ऐसा मंत्री कौन है ? अरु महाबलिराजा कौन है ? जो जगत्जालसंयुक्त हमनें भी नहीं जीत्या ? हे देव ! यह जो अपूर्व आख्यान तुमनें कहा है, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संशयरूपी बादर उदय भया है, सो वचनरूपी पवन करिके निवर्त करहु ॥ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि क्षण एक भी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इंद्र है, तिसके वश नहीं होता, यम कुबेर वश करी नहीं शकते, देवता असुरोंकरि भी जीत्या नहीं जाता, मूसल वज्र चक्र गदादिक पढंग तिसपरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित हो जाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बडे युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता, देवता दैत्य सर्वकों तिसनें वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दीये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्पवृक्षकों गिराइ देता है, नारायणतें लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका बटलोइविषे निवास हो

जाता है, तिसके प्रमादकरि इस त्रिलोकीकों वश करी चक्रवर्ती राजावत् स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिसकरि भासते हैं, यद्यपि गुह्य है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं, सो इसकी क्रीडा है, ऐसा मंत्रोंसंयुक्त मंत्री है ॥ हे पुत्र! जब तिसके राजाकों वश करियें तब तिसके मंत्रीकों वश करना सुगम होता है, राजाकों वश किये बिना मंत्री वश नहीं होता, कबहु अंतर रहता है, कबहु बाह्य जाता है, जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है, जो मंत्री अपणेकों जीतै तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि मल्ल है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासकों प्राप्त भए हैं, कैसा मंत्री मानौं सूर्य है, तिसके उदय भयेतें त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानी विकाशकों प्राप्त होती है, अरु तिसके लय हुएतें जगत्रूपी कमल लय हो जाता है ॥ हे पुत्र! जब जीतणेकी तुझकों शक्ति है, तब तूं पराक्रमवान् है, जब मोहतें रहित एकत्र बुद्धि होवै, तिसकरि एकके जीतणेकों समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है, अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेतें जो तिसके जीतणेतें जो नहीं जीता, तिसपरि जात पाता है, अरु जो तिसकों नहीं जीता, अरु अवर लोक सब जीते हैं, तौ भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणतें जो तूं अनंत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तौ उसके जीतणे निमित्त यत्नसों स्थित होहु, अरु बडे कष्ट चेष्टा करिके भी तिसकों वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य, अरु यक्ष मनुष्य अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली हैं, तौ भी वश सर्व उरतें यत्नविना होता है, तातें उसकों वश कर ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथानाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ ॥ ॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन्! किस उपायकरि तिसकों जीतियें? अरु ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है, अरु राजा कौन है, यह वृत्तांत सब मुझकों शीघ्र कहौ, जो उपाय करौं ॥ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र! स्थित हुएकों भी त्यागणे योग्य है, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि जीतियें, सो भली प्रकार कहता हौं, तूं श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण

कियेतें शीघ्रही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे बालकों युक्तिकरि वश करता है, तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्रीकों वश करता है, तिनकों राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपदकों पाता है, जब राजाका दर्शन होता है, तब मंत्री वश हो जाता है, तिस मंत्रीकों वश कियेतें बहुरि राजाका दर्शन होता है, जबलग राजाकों न देख्या, तबलग मंत्री वश नहीं होता, अरु जबलग मंत्रीकों वश नहीं किया, तबलग राजाका दर्शन नहीं होता, राजाकों देखेविना मंत्री जीतना कठिण है, मंत्रीके जीतेविना राजाकों देखणा कठिन है, तिस कारणतें दोनोंका एकठा अभ्यास करी राजाका दर्शन अरु मंत्रीका जीतणा अपणे पुरुषप्रयत्नकरि शनैःशनैः अभ्यासतें होता है, दोनोंके संपादनकरि यह पुरुष शुभताकों प्राप्त होता है, जब तूं अभ्यास करैगा, तब तिस देशकों प्राप्त होवैगा, यह अभ्यासका फल है॥ हे दैत्यराज ! जब तिसकों पावैगा, तब रंचक शोक भी तुझकों न रहैगा, सब यत्नोंतें शात हो जावैगा, नित्य प्रफुल्लित प्रसन्न रहैगा, जो साधु जन हैं, सो सर्व संशयतें रहित तिस देशविषे स्थित होते हैं ॥ हे पुत्र ! सुण, उह देश तुझकों प्रगट करी कहता हौं, देश नाम मोक्षका है, जहां सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं, अरु राजा तिस देशका आत्मभगवान् है, जो सर्व पदोंतें अतीत है, तिस महाराजानें मंत्री मनकों किया है, सो मन परिणामकों पाइकरि सर्व उरतें विश्वरूप भया है, जैसे मृत्तिकाका पिंड घटभावकों प्राप्त भया है, जैसे धूम्र बादरकों धरता है, तैसे मननें विश्वरूप धरा है, तिस मनकों जीतेतें सब सुख विश्वकेपर जीत पाता है, मनकों जीतणा कठिन है, परंतु युक्तिसों वश होता है॥ ॥ बलिरुवाच॥ हे भगवन् ! तिस मन वश करणेकी युक्ति मुझकों कहो, जिसकरि दारुण मनकों जीतों ॥ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! शब्द स्पर्श रूप रस अरु गंध जो विषय हैं, तिनकी प्रतिभा जो रस हैं, तिनकी सर्वदा सर्व उरतें आस्था त्यागणी, अर्थ यह जो नाशवंत भ्रमरूप जानना, यह मनके जीतणेकी परम युक्ति है, मनरूपी हस्ती विषयरूपी रस मदसों मस्त है, सोई युक्तिकरि शी

घ्र दमन हो जाता है, युक्ति कठिन है, अति दुःखतें प्राप्त होती है, परंतु अपने अभ्यासकरि सुखनेसों प्राप्त होती है, क्रमकरि अभ्यास किए विषयतें विरक्तता सर्व उरतें प्रगट होती है, जैसे रसवान् पृथ्वीतें लता उपजती हैं, तैसे जो शठ जीव हैं, सो इसकी वांछा करते हैं, परंतु अभ्यासविना नहीं प्राप्त होती, अभ्यासवानकों यह युक्ति प्रगट होती है, तातें अभ्याससहित युक्तिका आश्रय करौ, जबलग इन विषयोंतें पुरुषकों विरक्तता नहीं उपजती, तबलग संसाररूपी अटवीके दुःखोंविषे भ्रमता है, सो विषयतें विरक्तता अभ्यासविना किसीकों प्राप्त नहीं होती, जैसे किसी पुरुषकों देशांतरकों जाणा होवै, सो जब मार्गविषे चलता है, तब पहुंचता है, चलणेके अभ्यासविना नहीं पहुंचता, तैसे जब आत्मा ध्येयकों पुरुष निरंतर धरता है, तब विषयोंविषे अप्रतीति अभ्यासवान्‌की वृत्ति होती है, जैसे जलरूप अभ्यास करिके वेलीकों सिंचता है, तब लता वृद्ध होती है, ऐसे पुरुषार्थकरि सर्व कार्योंकों प्राप्त होता है, इतर नहीं होता, यह निश्चय किया है, जो क्रिया आपकरि आप करियें, तिसका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो लोकोंविषे दैव कहाता है, जो अवश्य होणा है, तिसकी जो नीति है, सो दूर नहीं होती, सोई दैव शब्द कहियें, नीति कहियें, जो अपणे पुरुषार्थका फल पाता है, जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकरि जल भासता है, सम्यक्ज्ञानतें भ्रम निवृत्त हो जाता है, तिस दैव अरु नीतिकों अपणे पुरुषार्थकरि जीतौ, जैसा पुरुषार्थकरि संकल्प दृढ करता है, तैसाही भासता है, जैसे आकाशकों नीलता ग्रहण करती है, सो नीलता कछु है नहीं, तैसे सुखदुःख देणेहारा अवर कोउ नहीं, जैसा संकल्प करता है, तैसा हो भासता है, अरु जैसी नीति होती है, तैसा संकल्प करता है, सोई नीतिसाथ मिलिकरि कदाचित् कर्म करता है, तिसकरि इस जगत् कोशविषे जीव शरीर धारिकरि फिरता है, जैसे आकाशविषे पवन फिरता है, सो कदाचित् नीतिसों अरु कदाचित् नीतितें रहित फिरता है, तैसे दोनों सीडियां मनविषे होती हैं, आकाशरूपी मनविषे नीति अनीतिरूपी वायु फुरता है, तिस कारण जबलग मन है, तबलग नीति है, अरु दैव है, मनतें रहित न नीति है, न

दैव है, मनके अस्त भए जो रहता है, सो तैसेही है, जीव पुरुषसों पुरुषार्थकरि जैसा संकल्प इस लोकविषे दृढ होता है, सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता ॥ हे पुत्र ! अपने पुरुषार्थविना इहां कछु सिद्ध नहीं होता, तातें परम पुरुषार्थकरि विषयतें विरक्त होहु, जबलग विरक्तता नहीं उपजती, तबलग परम सुखके देणेहारी मोक्षपदवी संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्त होती, जबलग विषयोंविषे मोहकारण प्रीति है, तबलग संसारदशा डोलायमान करती है, दुःखदायक होती है, सर्पकी नांई विषकों पसारती है, सो अभ्यास कियेविना निवृत्त नहीं होती ॥ ॥ बलिरुवाच ॥ हे सर्व असुरोंके ईश्वर ! भोगोंतें विरक्तता चित्तविषे कैसे स्थित होती है, जो जीवोंकों दीर्घ जीणेका कारण है ॥ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! जैसे शरत्कालमें महालतामें फूलसों फल परिपक्क होता है, तैसे आत्मावलोकनहारे पुरुषकों भोगोंतें विरक्तता प्रगट होती है, आत्माके देखणेकरि विषयोंकी प्रीति निवृत्त हो जाती है, हृदयविषे स्थिति प्राप्त होती है, जैसे कमलोंके उदरविषे सुंदर शोभा स्थित होती है, तैसे बीज लक्ष्मी स्थित होती है, तातें सूक्ष्म बुद्धि विचारवेत्तानें आत्मदेवकों देखिकरि विषयोंकी प्रीति करी है, सो सब औरतें निवारहु, प्रथम दो भाग दिनके भोग कर्मदेहके कार्य करहु, एक भाग शास्त्रोंका श्रवण विचार करहु, एक भाग गुरुकी सेवा टहल करहु, जब कछु विचारसंयुक्त मन होवै, तब द्वे भाग वैराग्यसंयुक्त शास्त्रोंकों विचारहु, अरु द्वे भाग ध्यान अरु गुरुके पूजन विषे रहौ, इस क्रमकरि जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है, क्रमकरि निर्मलभावकों ग्रहण करता है, शनैःशनैः उत्तम पदकी भावना होती है, शास्त्रोंके अर्थविचारविषे चित्तरूपी बालककों परचावहु, जब परमात्माविषे ज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म फांसितें छूटि जाता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुएतें चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शीतल हो विराजता है, बुद्धिके विचारसों सर्वदा सम आत्मदृष्टि देखणी, अरु तृष्णाका बंध न त्यागणा,यह परस्पर कारण हैं, परमात्माके देखणेकरि तृष्णा दूर हो जाती है, अरु तृष्णाके त्यागक

रि आत्माका दर्शन होता है, जैसे नौकाकों मलहा ले जाता है, अरु नौका मलहाकों ले जाती है, तैसे परमात्माका दर्शन होता है, अरु भोगोंका त्याग होता है, इसकरि परब्रह्मविषे अनंत विश्रांति नित्य उदय होती है, सो मोक्षरूप आनंद उदय होता है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, सो आनंद जीवोंकों आत्मविश्रांतिविना नहीं प्राप्त होता, न तपोंकरि, न दानोंकरि, न तीर्थोंकरि होता है, जब आत्मस्वभावका दर्शन होता है, तब भोगोंतें विरक्तता उपजती है, सो आत्मस्वभावका दर्शन अपणे प्रयत्नविना और किसी युक्तिकरि नहीं प्राप्त होता है ॥ हे पुत्र! भोगोंका त्याग करणा, अरु परमार्थदर्शनका यत्न करै, तब ब्रह्मपदविषे विश्रांत परमानंद मोक्षकों प्राप्त होता है, ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत इस जगत्विषे ऐसा आनंद कोई नहीं पाता, जैसा परमात्माविषे स्थित भयेतें पाता है, तातें पुरुषप्रयत्नका आश्रय करौ, दैवकों दूरतें त्यागौ, इस मार्गकों रोकणेहारे भोग हैं, तिनकी निंदा बुद्धिवान् करते हैं, जब भोगोंकी निंदा दृढ भई, तब विचार उपजता है, जैसे वर्षाकाल गएतें सर्व दिशा शरत्कालकी निर्मल हो जाती हैं, भोगोंकी निंदातें विचार अरु विचारतें भोगोंकी निंदा, यह परस्पर होते हैं, जैसे समुद्रकी अग्निसें धूम उदय होता है, सो बादलरूप होइकरि वर्षणेसों समुद्रकों पूर्ण करता है, अरु जैसे मित्र आपसों परस्पर कार्य सिद्धकरि देता है, तातें प्रथम तौ दैवका अनादर करौ, पुरुषप्रयत्नकरि दंतोंसों दंत मरोडी भोगोंकी प्रीति त्यागौ, पुरुषार्थकरि प्रथम अविरोध उपजावहु, सो गुणवान् अपणे जन्म अरु कल्याणमूर्तिकों अर्पण करहु, भोगोंतें असंग होइकरि निंदा करहु, तब विचार उपजैगा; शास्त्रज्ञानकों बहुरि संग्रह करौ, तब परमपदकी प्राप्ति हो जावैगी ॥ हे दैत्यराज! समय पाइकरि जब तूं विषयोंतें विरक्तचित्त होवैगा, तब विचारके वशतें परमपदकों पावैगा; अपणे आपविषे जो पावन पद है, तिसविषे भली प्रकार अत्यंत विश्राम पावैगा; बहुरि कल्पना दुःखविषे न गिरैगा; अंग देशाचारके कर्मकरि अल्पधन उपजावणा, बहुरि निंदाकरि साधुसंग लगावणा

तिनके संगकरि वैराग्य अरु विचारसंयुक्त हुएतें तुझकों आत्मलाभ होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ बलिरुवाच ॥ इस प्रकार मुझकों पूर्व पितानें कहा था, अब मैं स्मृति दृष्टिकरि प्रसन्नताकों प्राप्त भया हों, अरु भोगोंतें विरक्तता उपजी है, जो शांत अरु सम निर्मल अमृतरूपी शीतल सुखविषे स्थित होउं, धन एकत्र करता है, तौ नाश हो जाता है, बहुरि आशा उपजती है, बहुरि धनकरि पूर्ण होता है, बहुरि स्त्रियोंकी वांछा उपजती है, बहुरि अंगीकार करते हैं, अब मैं विभूतिकी स्थितिकरि खेदवान् भया हों, अहो आश्चर्य है, इस रमणीय पृथ्वीतें समशीतल चित्त होता हों, दुःखसुखकी दशातें रहित सर्व शांतिकों प्राप्त होता हों, जैसे चंद्रमाके मंडलविषे स्थित हुआ समशीतल होता है, तैसे अंतरतें हर्षवान् शीतल होता हों, दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्यतें रहित हुआ अक्षोभ होवैगा, इह सब मनरूपी बालककी दिन दिन प्रति कला है, अंगोंसों अंग, मांससों मांस, प्रथम मैं स्त्रीसों चीडता था, मोहकरि मेरी प्रीति बढि गई थी, जो कछु दृष्ट देखणेयोग्य था, सो मैंनें देख्या है, सो यह शोक है, जो कछु भोगणे योग्य था, सो चिरकालपर्यंत अखंड भोग्या है, सर्व भूतजातकों वश करी रहा हों, तासों क्या शोभनीक हुआ, बहुरि बहुरि तिनविषे उही चेष्टाकरि और और देखै, इसकरि चित्त अपूर्व पदार्थकों नहीं देखता, उही उही जगत्के पदार्थ हैं, तातें अपणी बुद्धिकरि निश्चय सर्वसों त्यागकरि पूर्ण समुद्रवत् अपणे आपकरि आपविषे स्वच्छ स्वस्थ स्थित होहु, पाताल पृथ्वीविषे स्वर्गविषे स्त्रियां अरु रत्नपन्नगादिक सार हैं, सो भी तुच्छ हैं, समय पाइकरि काल ग्रास लेता है, एते कालपर्यंत बालक था, जो तुच्छ पदार्थ मनके रचे हुए हैं, तिनकी इच्छासों दुःखकरि देवतासाथ दोष करता था, तिनके दुःखोंके त्यागणेकरि क्या महात्माका अनर्थ होवैगा, बडा कष्ट है, जो मैंनें चिरकाल अनर्थविषे अर्थबुद्धि करी थी, अज्ञानरूपी मदकरि मचता था, जैसे बालक कूकरोंकों से

वता है, चंचल तृष्णा करिके इस जगतविषे क्या नहीं किया, जो कार्य पाछे तापकों बढावते हैं, सो मैंनें किये हैं, अब पूर्व तुच्छ चिंताकरि क्या मुझकों है, वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थकरि सफल होवैगा, जैसे समुद्र मथणेकरि अमृत प्रगट भया है, तैसे अपरिमितरूप आत्माकी भावनाकरि अब सर्व उरतें सुखी होवैगा, मैं कवन हौं, इस आत्माका दर्शनयुक्ति गुरूतें पूछौंगा, अज्ञानके नाशनिमित्त शुक्र भगवान्का चिंतवन करौं, जो प्रसन्न होइकरि उपदेश करैगा, तिसकरि अनंत विभव अपणे आपविषे आपकरि स्थित होवैगा, निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयविषे फलैगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिचिंतासिद्धांतोपदेशो नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार चितवीकरि बलि नेत्रोंकों मुंदत भया, अरु शुक्रजीका ध्यान किया, कैसा शुक्र आकाशविषे मंदिर है जिसका, सर्वत्र पूर्ण जो चिन्मात्र तत्त्व है, सदा तिसके ध्यानविषे स्थित है, ऐसे भार्गवका आवाहनरूप ध्यान करत भया, तब शुक्रजी जानत भया, जो हमारे शिष्य बलिनें हमारा चितवन किया, तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपणे देहकों तहां ले आवत भए, जहां रत्नके झरोंखेविषे बलि बैठा था, तब बलि उज्वल प्रभारूप गुरुकों देखिकरि उठ्या, अरु चित्त प्रफुल्लित हो आया, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यकों देखिकरि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे रत्न अर्घ्य पाद्य पुष्पोंकरि चरणवंदना करत भया, रत्नोंकरि अर्घ्य दिया, बडे सिंहासनपर बैठाइकरि कहत भया॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मेरे हृदयतें जो प्रतिभा उठती है, सो स्थिर होइकरि मुझकों प्रश्नविषे जोडती है, जैसे सूर्यकी प्रतिभा जीवकों कार्यविषे जोडती है, तैसे अब मैं भोगोंतें विरक्त भया हौं, सो कैसे भोग हैं, जो मोहके देणेहारे हैं, अरु तत्त्वज्ञानकी इच्छा करता हौं, जिसकरि महामोह निवृत्त हो जाता है, इस ब्रह्मांडविषे स्थिर वस्तु कौन है, औ केताक तिसका प्रमाण है, इंद्र क्या है, अरु अहं क्या है, मैं कवन हौं, तुम कवन हो ? अरु यह लोक क्या है ? इन प्रश्नोंका उत्तर कृपा करी कहौ

॥ शुक्र उवाच ॥ हे दैत्यराज ! बहुत कहणेकरि क्या है, मैं आकाशविषे गमन किया चाहता हौं, तातें सर्वका सार संक्षेपतें मैं तुझकों कहता हौं, सो श्रवण करु, जो चेतन तत्त्व है, अरु विस्तृतरूप है, इदं यह सर्व चेतनमात्र है, अरु चेतनही प्रमाण है, तूं भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हौं, यह लोक भी चेतनरूप हैं, यह सबका सार है, इस निश्चयकों अंतर दृढ करी धरैगा, तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धिकरि अपणेकों आपकरि देखैगा, अरु तिसतें विश्रांतिवान होवैगा ॥ हे रामजी ! जब तूं कल्याणमूर्त्ति है, तब इसी कहणेकरि सब सिद्धांतकों प्राप्त होवैगा, सबका सार चिदात्मा है, तिसकों पावैगा, अरु जो कल्याणमूर्ति नहीं, तौ बहुरि कहणा भी निरर्थक होता है, भस्मविषे आहुतिकी नांई होता है, चेतनकों जो चैत्यकलाका संबंध है, सोई बंधन है, तिसतें जो मुक्त है सोई मुक्त है, अरु आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलनातें रहित है, यह सर्व सिद्धांतका संग्रह है ॥ हे राजन् ! इस निश्चयकों धारि निर्मल बुद्धिसों अपणे आपकरि आपकों देखौ, यह आत्मपदकी प्राप्ति है; अब मैं आकाशकों जाता हौं, सप्त ऋषिसाथ कोउ देवताका कार्य है, तिसनिमित्त जाता हौं, जबलग यह देह है, तबलग मुक्त बुद्धिकों यथाप्राप्त कार्य त्यागणे योग्य नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बडे वेगसाथ आकाशकों शुक्र चल्या, जैसे समुद्रतें तरंग उठिकरि लीन हो जावै, तेसे शुक्रजी अंतर्धान हो गए ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशो नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देवता अरु दैत्यकरि पूजणे योग्य भृगुपुत्र शुक्र है, तिसके गमन कियेतें बलवानोंविषे श्रेष्ठ जो है बलि, सो मनविषे चितवता भया, जो भगवान् शुक्रजी क्या कही गए, त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है, मैं भी चेतन हौं, दिशा भी चेतनरूप हैं, परमार्थतें आदि जो सत्स्वरूप है चेतन, तिसतें भिन्न कछु नहीं, यह जो सूर्य है तिसमें चेतन होवै नहीं तौ सूर्यका सूर्यत्व भाव भासै नहीं, अरु यह जो भूमि है, तिसकों चेतन चेतै नहीं तौ भूमिविषे भूमित्वभाव कोउ नहीं

पाइता, यह जो दश दिशा हैं, इनकों चेतन चेतै नहीं तौ दिशाविषे दिशात्वभाव कोउ नहीं रहता, पर्वत विषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगत्विषे जगत्भाव, आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोउ चेतनविना न पाइयें, इंद्रियां भी चेतन हैं, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है, चिदात्माही अहं त्वं भावरूप होइकरि स्थित है, चेतन मैं हौं, सब इंद्रियां संयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करता हौं, अरु कदाचित् कछु किया नहीं, अरु काष्ठ लोष्ट तुल्य शरीरसाथ मेरा क्या है, संपूर्ण जगत् मैं आत्मा चेतन हौं, आकाशविषे एक मैं आत्मा हौं, सूर्यविषे भी मैं हौं, और भूतपिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं, देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं, स्थावरजंगमका चेतन आत्मा मैं हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैतकलना नहीं पाइती, जो इस लोकविषे द्वैतका असंभव है, तौ शत्रु कौन है, अरु मित्र किसकों कहीयें, बलि है नाम जिसका, ऐसा जो शरीर है, तिसका सीस काटा तौ आत्माका क्या काटा, जो सर्व लोकोंविषे आत्मा पूर्ण है, जब चित्त दुःखकों चेतता है, तब दुःखी होता है, चेतणेतें रहित दुःखकों नहीं पाइता, तिस कारणतें जो दुःखदायक भाव अभाव पदार्थ भासते हैं, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनतत्त्वतें भिन्न कछु है नहीं, सब औरतें आत्मा पूर्ण है, आत्मातें इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोउ दुःख है, न कोउ रोग है, न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है; और विकल्पकलना कोउ नहीं, सब औरतें चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनंद अद्वैतरूप विकल्पकलना कोउ नहीं, सर्वतें अतीत हौं, अंशांशीभावतें रहित, चेतनसत्ता हौं, अरु चेतन आदिक नामतें भी रहित हौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, जो चेतन आत्माकी स्फुरणशक्तिहै, सोई विस्तारकरि जगत्रूप होइकरि भासती है, द्रष्टादर्शनतें मुक्त केवल अद्वैतरूप है, प्रकाशप्रकाशकभावतें रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप हौं, कलनाकलंकतें रहित हौं, इनतें

पर हौं, अरु यह स्वरूप भी मैं हौं, यह मेरेविषे आभासमात्र है, मैं उदित नित्यरूप हौं, आभासतें भी रहित मैं एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूप करिके मेरा जो चित्त है सो दृश्यके रागतें रहित मुक्तरूप है, जो प्रत्यक्ष चेतन मेरा स्वरूप है, तिसकों नमस्कार है, चित्त जो है दृश्य, तिसतें रहित है, युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूप मैं हौं, मुझकों नमस्कार है, चित्ततें रहित मैं चेतन हौं, सब औरतें शांतरूप हौं, फुरणेतें रहित भली प्रकार शांत जो मैं संवित्मात्र विस्ताररूप हौं, आकाशकी नांई मैं अनंत सूक्ष्मतें सूक्ष्म हौं, दुःख सुखतें मुक्त हौं, संवेदनतें रहित असंवेदनरूप हौं, चैत्यतें रहित चेतन हौं, जगत्के भाव अभाव पदार्थ मुझकों छेदि नहीं शकते, अथवा यह जगत्के पदार्थ छेदते हैं सो भी मुझतें भिन्न नहीं, छेद मैं हौं, छेदणेहारा भी मैं हौं, जो स्वभावभूत वस्तुकरि वस्तु ग्रहण होती है, अथवा नहीं होती, तौ भी किसकरि किसका नाश होवै ! मैं सर्वदा सर्व प्रकार सर्वशक्तिरूप हौं, संकल्पविकल्पकरि अब क्या है, मैं एकही चेतन अजडरूप होइकरि प्रकाशता हौं, जेते कछु जगत्जाल हैं, सो सब मैंही हौं, मुझतें इतर कछु नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार चितवता हुआ राजा बलि तत्त्वका वेत्ता, तब ॐकारकी अर्धमात्र तुरीया पदकी भावनासों ध्यानविषे स्थित भया, भली प्रकार संकल्प तिसके शांत हो गए हैं, सब कलना चित्त चैत्यतें रहित निःसंग होइकरि स्थित भया, बहुरि कैसा भया, जो ध्याता है अहंकार, अरु जो ध्यान है मनकी वृत्ति, अरु जो ध्येय है, जिसकों ध्याता था सो तिनोंतें रहित हुआ, मनतें सर्व वासना नष्ट हो गई, जैसे वायुतें रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है, तैसे बलि शांतरूप पदकों प्राप्त भया, मन शांत हो गया, रतोंके झरोंखेविषे बैठी दीर्घकाल वीत गया, जैसे स्तंभविषे पुतली होवै, तैसे सर्व ईषणातें रहित समाधि स्थित रहा, सब क्षोभ दुःख विघ्नतें रहित निर्मलचित्त शरत्कालके आकाशवत् हो रहा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्ग ॥ २७॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! जब इस प्रकार दैत्यराजा समाधिविषे स्थित भया, अरु केताक काल व्यतीत भया, तब बांधव मित्र टहलुए मंत्री थे सो रत्नोंके झरोंखेविषे देखणे चले, जो क्या भया राजा बलिकों, ऐसे विचारिकरि किवाडोंकों खोलि उपर जाय चढे, कुकह अरु देवादि मंत्री, अरु मंडलेश्वर राजा, अरु यह ग्रीवादिक बांधव सुहृद बालक थे सो उपर चले गए, यक्ष विद्याधर अरु नाग एक ओर हो खडे हैं, रंभा अरु तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथों विषे चमर ले खडी हैं, नदीयां समुद्र पर्वत आदिक मूर्ति धारिकरि स्थित भए हैं, रत्न आदिक भेट लेइकरि सर्व प्रणाम निमित्त खडे भए, त्रिलोकीके उदरवर्त्ती जो कछु थे, सो आय स्थित भये अरु राजा बलि ध्यानविषे स्थित था, मानौ चित्रकी मूर्ति लिख छोडी है, पर्वतवत् स्थित है, तिसकों देखिकरि दैत्य प्रणाम करत भए, केई देखिकरि शोककों प्राप्त भये, केई आश्चर्यवान् भये, केई आनंदवान् भए, केई भयकों प्राप्त भए तब देखिकरि मंत्री विचारत भए, जो राजाकों क्या दशा प्राप्त भई है, तब राजाके निमित्त भार्गव शुक्रजीका चितवन करत भया, जो गुरु है, सर्वका वेत्ता है, तब चितवना कियेतें भार्गव जिसका बडा प्रकाश है, सो झरोंखेविषे आय प्राप्त भया, जैसे गंधर्वनगर देखणेविषे आते हैं, तैसे आए, तिसकों देखिकरि दैत्यगण सब पूजन करत भए, अरु बडे सिंहासनपर गुरुकों आरूढ किया, अरु बलिकों ध्यानस्थित देखिकरि शुक्रजी अतिप्रसन्न भए जो पद मैंनें उपदेश किया था, तिसविषे विश्राम पाया, देख्या बडा आनंद है, जो विचार करिके बलिनें परम पद पाया है, भ्रम इसका अब नष्ट भया है, क्षीरसमुद्रवत् इसका प्रकाश है, ऐसे देखिकरि शुक्रजी कहत भए ॥

॥ शुक्र उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, जो दैत्यराज अपना विचारकरि निर्मल आत्मप्रकाशकों पाया है, अब भगवान् सिद्ध भया है, अपणे स्वरूपविषे विश्रांतिकों पाया है, जो सब दुःखोंतें रहित पद है; तिसविषे स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहीड नष्ट भई है, अब इसकों मत जगाउ, यह आत्मज्ञानकों प्राप्त भया है, यत्न क्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें अंधकार नष्ट हो जाता है,

अब मैं इसकों जगावता नहीं, सो आपही चिरकालतें जागैगा, काहेतें जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकरि अपना राज्यकार्य करैगा, दिव्य सहस्र वर्षतें यह जागैगा, अब तुम इसकों मत जगावौ, अपणे राज्यकार्यविषे जाय वर्तौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार शुक्रजीनें कहा, तब सुनीकरि सूके वृक्षकी मंजरी जैसे हो गए, तब कहीकरि शुक्रजी अंतर्धान हो गया, अरु दैत्य अपणे राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकरि अपणे अपणे व्यवहारविषे जाय वर्ते, और जो खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपणे अपणे स्थानकों गए, देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग, किन्नर, गंधर्व सब अपणे अपणे व्यवहारविषे जाय वर्ते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानप्राप्तिर्नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भये, तब दैत्यराजा समाधितें उतर्या, नौबत नगारे बाजणे लगे, देवता दैत्य बडे जयजय शब्द करणे लगे, नगरवासी प्रबुद्ध भए देखिकरि बडी प्रसन्नताकों प्राप्त भए, जैसे सूर्यके उदय हुएतें कमल खिलि आते हैं, तैसे खिलि आए, जब लग दैत्य न आये, तबलग राजा चितवता भया, बडा आश्चर्य है, जो परम पदकी ऐसी रमणीय पदवी शांतरूप शीतल है, तिसविषे स्थित होइकरि मैं परम विश्राम पाया हौं तातें बहुरि उसी पदका आश्रय करौं, तिसीविषे स्थित होऊं, राज्यविभूतिसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, ऐसा आनंद शीतल चंद्रमाके मंडलविषे भी नहीं पाइता, जैसा अनुभवविषे स्थित हुएतें पाइता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार चितविकरि बहुरि समाधि करणे लगा, जो गलित मन होवै, तब दैत्यसैना मंत्री भृत्य बांधव आय वेष्टित भए, जैसे चंद्रमाकों मेघ घेरि लेता है तैसे घेरी करिके दैत्य प्रणाम करणे लगे, बडे पर्वतोंकी नांई अचल आकार जो है बलिराजा, सो मनविषे विचारता भया, सो कैसा राजा है, जो क्षीण भए हैं संकल्प जिसके, सो विचारता भया, जो मुझकों त्यागणे योग्य क्या है, अरु ग्रहण करणेयोग्य क्या है, त्याग तिसका करता है, जो अनिष्ट दुःखदायक

होवै अरु ग्रहण तिसका करता है, जो आगे न होवै, सो आत्मातें व्यतिरेक कछु नहीं, तिसविषे ग्रहण त्याग किसका करौं, अरु मोक्षकी इच्छा भी मैं किस कारणतें करौं, काहेतें जो बंध होता है, तौ तिसतें मोक्षकी इच्छा करता है, सो बंध नहीं तौ मोक्षकी इच्छा कैसे होवै, यह बंध अरु मोक्ष बालककों क्रीडा कही है, न बंध है, न मोक्ष है, यह कल्पना भी मूढताविषे है, सो मूढता मेरी नष्ट भई है, अब मुझकों ध्यान विलाससाथ क्या प्रयोजन है, अरु ध्यानकरि क्या है, अब मुझकों न परमतत्त्वकी इच्छा है, न कछु ध्यानसाथ प्रयोजन है, अर्थ यह जो न विदेहमुक्तिकी इच्छा है, न जगत्विषे स्थित रहणेकी इच्छा है, न मैं मरता हौं, न जीता हौं, न सत्य हौं, न असत्य हौं, न सम हौं, न विषम हौं, न कोउ मेरा है, न कोउ अवर है, अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हौं, सो मुझकों नमस्कार है, इस राजक्रियाविषे मैं स्थित हौं, तौ भी मैं आत्मपदविषे स्थित हौं, सदा शीतल हौं, ध्यान दिशाकरि मुझकों सिद्धता नहीं, न राजकार्य विभूतिकरि कछु सिद्ध होणा है, जय अजय सो न मैं यह कछु हौं, न मेरा कछु है, तातें राजकार्यकरि मेरा कछु प्रयोजन नहीं, मैं आकाशवत् होइ रहता हौं, जो मैं न कछु इच्छा करौंगा, न राज्य करौंगा, तौ भी मेरा कार्य कछु सिद्ध नहीं होता, तातें जो कछु प्रकृत आचार है, तिसीकों मैं करौं, बंधनका कारण अज्ञान है, सो मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कोउ क्रिया मुझकों बंधनरूप नहीं, तातें जो कछु प्रकृत आचार है, तिसकों करौं ॥ हे रामजी! इसी प्रकार निर्णय करिके बलि दैत्योंकी और देखता भया, तब देवता अरु दैत्य सब सीसकरि प्रणाम करत भए, तब दृष्टि करिके तिनकी प्रणाम वंदना अंगीकार करत भए, जैसे पवन पुष्पोंकी सुगंधि लेता है, तब राजा बलिनें ध्येय वासनाकों मनतें त्याग कीनी, अरु राज्यके कार्य करता भया, ब्राह्मण देवता गुरुका पूजन करता भया, जिस जिस प्रकार सो जिस जिसका पूजन करता था, सो यथायोग्य किया, और जो कोउ अर्थी थे, मित्र बांधव टहलुए, तिनका अर्थ पूर्ण करता भया, अरु ललना जो स्त्रियां थी, तिनकों नानाप्रकारके वस्त्र भूषण देते भये, जो शासना दंड देणेयो

ग्य थे, दुष्ट तिनकों दंड करते भए, बहुरि यज्ञका आरंभ किया, तिस यज्ञविषे स्वरगणोंकों पूजता भया, शुक्रजीतें आदि ले जो बडे मुख्य देवता यज्ञ करावणे निमित्त बैठे थे, सो शुक्र कैसा था, जिसनें भोगविलासकों क्षणभंगुर जाने हैं सो, अरु सबकों वांछित सिद्धताके निमित्त प्राप्त किया है, अपना शरीर ऐसा जो है हरि विष्णु, भोगोंतें अचाह है चित्त जिसका, तिसनें इंद्रके अर्थ सिद्ध करनेनिमित्त, कैसे हैं इंद्र, जिसके वह क्रमकरि बडा भया है, तिस विष्णु भगवाननें कर्ममात्र छलकों धारा, तिसकरि बलिराजाकों वंचित करी लिया, तब बांधिकरि पातालविषे स्थित किया, जैसे बानरकों बांधीता है, तैसे बांध्या, अबलग पातालविषे स्थित है, बहुरि इंद्र होवैगा, अब जीवन्मुक्त स्वस्थ वपु सदा ध्यानास्थित ईषणातें रहित पुरुष पातालविषे है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष जो बलि है, सो संपदा आपदाविषे समचित्त विचरता है, संपदाविषे हर्ष नहीं, आपदाविषे शोक नहीं, दुःखसुखविषे समचित्त है जिसका, जैसे मूर्त्तिका लिख्या सूर्य उदय अस्ततें रहित होता है, अनेक जीवोंका उपजणा अरु लय होणा बलि देखताभया, अरु दश क्रोड वर्षपर्यंत तीनों लोकोंका कार्य करता भया, बडे विषयभोग भोगे, अंत भोगोंकों विरस जाणिकरि तिसका मन विरस हुआ, विचारकरि तृष्णा नष्ट हो गई, मन उपशम हुआ है, हेयोपादेयकी चेष्टा नानाप्रकार बलिनें देखी, पदार्थोंके भावअभावविषे मन शांतिकों न प्राप्त भया, अब भोगोंकी अभिलाषा त्यागिकरि आत्मारामी भया, नित्य स्वरूपविषे स्थित पाताल कोटरमें विराजता है ॥ हे रामजी ! इस बलीकों बहुरि इस जगत्का इंद्र होणा है, संपूर्ण जगत्का कार्य करना है, अनेक वर्ष आज्ञा चलावैगा, परंतु इंद्रपदकों पाइकरि तुष्टवान न होवैगा, अपणे ऐश्वर्यपदके गिरनेकरि खेदवान् भी न होवैगा, सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवैगा, आकाशकी नांई दोनोंविषे रागदोषतें रहित अचल रहैगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिकों आश्रय करी तुम भी स्थित होहु, बलिकी नांई अपणे विवेककरि

नित्यतृप्त आत्मनिश्चयकों धारौ, जो सर्व में हौं, इस निश्चयकरि निर्द्वंद्वपदकों प्राप्त होवैगा; अपणे पुरुषार्थकरि बलिकी नाई निश्चयकों धारिकरि परमपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! दशक्रोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंत विरक्तताकों प्राप्त भया, तैसे तूं भी भोगोंतें विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनकों त्यागिकरि परमपदविषे प्राप्त होहु, यह जो दृश्य प्रपंच नानाप्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोउ तेरा है, न तूं किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बडा भेद है, तैसे जिस पुरुषका मन संसारकी और धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डुबता है, जब तूं मनकों हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तूं आत्मस्वरूप है, तौ अपणा क्या अरु पराया क्या, यह सब मिथ्या कल्पना है, तूं सबका आदि पुरुषोत्तम है, तूंही साकाररूप पदार्थ है, तुंही सब और पूर्ण है, सब जगतविषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकरि परोया है, जैसे सूतकरि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतितें रहित है; जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकरि बलात्कारसों भोगोंका त्याग करि सर्वका भोक्ता होहु, तूं केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत् तेरे प्रकाशकरि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोउ नहीं, तूं शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्टअनिष्टकों त्यागिकरि केवल अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्टआनिष्टके त्यागतें निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताकों हृदयविषे धारिकरि फिरि जन्ममरण भी नहीं आता, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसतें निकासिकरि आत्मतत्त्वविषे जोडहु, जब इस प्रकार तूं दृढ अभ्यास करैगा तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो बांध्या जावैगा, तब सर्व सिद्धांतके परम सारकों तूं प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! तूं मूढोंकी नांई मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है, मिथ्या चेष्टाकरि जिनकी बुद्धि नष्ट भई है अरु अविद्यारूपी धूर्त्ततें विके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बडा विस्ताररूप जो

दृष्ट आता है, सो निर्णयकरि देख्या है, जो मूढता करिके भास्या है, मूढता परम दुःखरूप है, इसतें अधिक दुःख कोउ नहीं, आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्ता अज्ञानरूपी मेघ है, तिसकों विवेकरूपी पवनकरि नाश करौ, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकरि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंतें वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, वेदरूप वेदांतशास्त्र है, अरु जो द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकरि भी अपणे विचारविना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकरि पुरुषार्थकरि आत्माकी प्रसन्नता होती है, अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकरि प्राप्ति होती है, तातें संकल्पविकल्पतें रहित होइकरि चेतनतत्त्व विषे स्थित होहु, विस्तृत व्यापकरूप जो आत्मतत्त्व है, तिसकी स्थिति मेरे वचनोंकरि ग्रहणकरि सर्व संकल्प तेरे लीन हो गए हैं, संवेदनरूपी भ्रम शांत भया है, संसार कौतुकरूपी कुहिड तेरी नष्ट हो गई है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तूं विज्ञानप्राप्तिके कारण और क्रम सुण, जैसे दैत्य असुर प्रल्हाद कों आत्माकी सिद्धता भई तैसे तूं भी होहु, पातालकोटरविषे एक हिरण्यकशिपु दैत्य होता भया; सो कैसा था, जिसनें देवताके इंद्र भगाए हैं, विष्णुजीके सम जिसका पराक्रम, अरु संपूर्ण भुवन भोग जिसनें वश करि छोडे थे, सर्व देवता दैत्यकों वश करिके जगत्का कार्य करता भया, दैत्योंका ईश्वर अरु तीनों भुवनोंका ईश्वर भया, समय पाइकरि पुत्रोंकों उत्पन्न किया, जैसे वसंतऋतु अंकुरकों उत्पन्न करती है, बडा ऐश्वर्यवान् होइ करी वृद्ध भया, सर्व दिशाविषे सूर्यकी नांई प्रकाश किया, आकाशकों ग्रहण करी चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे बडा पुत्र प्रल्हाद होता भया, सो प्रल्हाद सबसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकरि वसंतऋतु शोभती है, तैसे अपणे बल अरु पुत्रोंकी सुंदरता अरु ईश्वर भंडार तिनोंकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, इन लो

कोंकों अपणे वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सब लोकोंकों तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीडाकरि देवताकों दैत्य दुःख देवैं, तब सब देवता मिलिकरि विष्णुकी शरण गए, अरु विनती करी, जो यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करौ, अरु हमारी रक्षा करौ, वारंवार दुखावणेकरि महापुरुष भी क्रोधवान् हो जाता है॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवतानें प्रार्थना करी, तब विष्णुदेवनें कहा, अब तुम जाओ, मैं तिसकों पुत्रके हेतकरि मारौंगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान हो गया, अरु हिरण्यकशिपु अपणे ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रल्हादकों देवै, परंतु वह ग्रहण न करै, बहुत प्रकार उहि ताडना भी दे रहा, तौ भी उसकी शिक्षाका प्रल्हाद न अंगीकार करै, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इस कारणतें ताडनाका दुःख प्रल्हादकों कछु न होवै, तब दैत्य अपणे हाथ खड्ग लेकरि कहणे लगा ॥ हे दुष्ट! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तूं आराधन करता है, अब मुझविना ईश्वर अवर कौन है; तब प्रल्हादनें कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तब हिरण्यकशिपूनें कहा, इस स्तंभेविषे कहां है, जो है तौ दिखाय दे, न दिखावैगा तौ तुझकों मारौंगा; तब सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तंभेसों भासणे लगा, बडे शब्द होणे लगे, तिस स्तंभेकों फोडिकरि भुजा अरु बडे नखौं, जो वज्रकों तोडनेहारे, ऐसे संयुक्त विष्णु प्रगट भया, महाभयानकरूप, बडे हस्तीके समान दंत, ऐसे स्थित जैसे विजलीका प्रकाश होवै, अरु अग्निकी नांई कुंडल प्रकाश, अरु दोइ भुजा मानौ ब्रह्मांड खपरके तोडनेहारियां हैं, मुखतें श्वास जो निकसता है, सो पर्वतोंके चूर्ण करनेहारा है, अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्नितें भी अधिक है, अरु बडे सूर्यवत् प्रकाश करै, ऐसे महाभयानक नरसिंहरूप विष्णु देवनें करिके हिरण्यकशिपूकों नखोंसाथ विदारण किया, अरु ऐसा कोपवान् रूप धरा, जिसकरि दैत्योंके स्थान जलणे लगे, अरु दृष्टिकरि मानौ, पर्वत चूर्ण होते हैं, अरु नरसिंहरूप वायुकी खभाणीकरि दैत्य उडते हैं, अरु दैत्यके समूह केई मारे, केई भाग गए, दि

शा विदिशाकों दोडि गए, जैसे वायुके मारे मच्छर उड जाते हैं, पाताल छिद्रमें कछु नाश हो गया, प्रलयकालवत् स्थान शून्य हो गए, मानों अकाल प्रलय आया है, दैत्य नाश हो गए, दैत्योंका नाश करी बहुरि विष्णुदेव अंतर्धान हो गए, कछुक दैत्य बांधव टहलुए रहे थे, सो प्रल्हादके निकट आए, मुख कुमलाय गए, जैसे जलतें रहित कमल होता है, भाई बांधव मिलिकरि प्रल्हादकों समुझावणे लगे, प्रल्हादनें मिलिकरि पिताकी परिदेवना करी, बहुरि उठिकरि सब कर्म किये, संशयकरि दैत्य भी बैठे, अरु विचारकरि अरु शोकवान् होवै, सब दैत्य सूकिकरि चित्रकी पुतली हो गए, जैसे दग्ध वृक्ष सूकी जाता है, अरु रसतें रहित हो जाता है, तैसे हिरण्यकशिपूविना दैत्य शोकवान् महादुःखी भए ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारणेकरि दैत्य बहुत दुःखी भए, तब प्रल्हाद मौनवान् होइकरि चितवता भया, पाताल कोटरविषे सब दैत्य मिलिकरि चिंतासंयुक्त बैठे तिसकों प्रल्हाद कहता भया, जो अब अपणी रक्षाके निमित्त कौन उपाय करियें, हमारे दैत्यके नाश करणेहारा विष्णु तो बडा बली है, जिसके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारावत् हैं, जैसे सिंह मृगोंकों मारता है, तैसे हमकों मारता है, पाताल कोटरविषे दैत्य शांतिवान् कदाचित् नहीं होते हैं, जब दैत्य वर्धमान होते हैं, तब विष्णु आय नाश करता है, जैसे कमलोंपर पर्वत आय पडै, तैसे चूर्ण करता है, बडे आकाश गौरव शब्द करनेहारे दैत्य उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, तैसे अंतर बाहिर हमकों कष्ट देता है, हमारा शत्रु बडा दृढ है, बडा अपूर्वतम आय बढ्या है, हमारा हृदय तमकरि पूर्ण हो गया है, संपदा नष्ट हो गई है, जो हमारे पिताकरि देवता चूर्ण भए थे, तिसका बल हमतें अधिक हो गया है, हमारी स्त्रियांकों वश करि ले गए हैं, जैसे मृगकों व्याध ले जाता है, अरु धन लक्ष्मी हमारा सब ले गए हैं, हम दीन हो रहे हैं, जैसे जलविना कमल कु

मलाइ जाता है, तैसे हम बांधवविना भए हैं, हमारे घरोंविषे धूलि उडती है, जो बडे स्थान मिलिकरि खचित किए थे, सो शून्य हो गए, जो हमारे स्थान बडे कल्पवृक्ष लगे थे, सो उखाडिकरि नंदनवनविषे जाय लगाये हैं, नरसिंहजीकी सहायताकरि ऐसा बल देवता पाये हैं, हमारे वृक्ष स्थान नरसिंहजीनें जलाय दिए हैं, जो देवताकी स्त्रियांके मुख दैत्य देखते थे, सो अब दैत्योंकी स्त्रियांके मुख देवता देखते हैं, कल्प मंदार वृक्षोंके समूह दैत्योंके स्थानविषे थे, अरु सुमेरु पर्वतविषे विराजे थे, सो स्थान अब शून्य हो गए, धूलि उडती है, सुमेरु दुर्लभ हो गए हैं, जो दैत्योंकी स्त्रियां अपणे स्थानविषे बैठी थियां, सो अब देवांगनाके शिरपर चमर करतियां हैं, अरु उह हास्यविलास करतियां हैं, यह बडा कष्ट है, हमकों आपदानें दीन किये हैं, हे दैत्यों! हमकों और उपाय कोई दृष्ट नहीं आता, जब उसही विष्णुकी शरणकों जावें, तब सुखी हौवैं, वह कैसा पुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षकी छायाविषे देवता विश्राम करते हैं, विष्णुके प्रतापकरि तपायमान भी नहीं होता, जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता, तैसे जो पुरुष विष्णुकी शरण जाता है, सो तपायमान नहीं होता, तातें हम भी उसीकी शरणकों प्राप्त होवैं, तुम देखते हौ, जो देवांगना असुरोंकी स्त्रीयांका पूजन करतियां थियां, सो अब अपणेकों पूजावणे लगियां हैं, हम दैत्योंकी स्त्रीयांके मुख कुमलाय गये हैं, जैसे बरफकी वर्षाकरि कमल सूकि जाता है, तैसे हमारे मंडप टूटि गए हैं, नील मणीके स्तंभे थे, सो गिर पडे हैं, दैत्यसैना जो आपदाके समुद्रविषे डुबती थी, तिसके रक्षा करणेकों वडा समर्थ था, डुबणे न देता था, जैसे क्षीरसमुद्रविषे मंदराचलकों कच्छरूपनें डूबणे न दिया, तैसे हमारे पितादि जो वडे वडे बली रक्षा करणेहारे थे, तिनकों विष्णुजीनें मारी चूर्ण किये, जैसे प्रलयकालका पवन पर्वतोंकों चूर्ण करता है, उनका मित्र सुहृद् होता है, ऐसे मधूसूदनकी गति अति विषम है, दैत्योंकी भुजारूपी दंड हैं, तिनके काटणेहारा कुठार है, तिनकी साह्यताकरि इंद्रादिक देवता दैत्यसैनाकों

जीतणे मारणे लगे हैं, जैसे बालककों वानर मारे, यह पुंडरीकाक्ष विष्णुकों जीतणा कठिण है, जो यह शस्त्रों विना होवै, तौ भी हमारे शस्त्र इनकों छेदि नहीं शकते, वज्र भी छेदि नहीं शकता, महापराक्रमी है, युद्धका इसनें बडा अभ्यास किया है, यह पर्वतोंसाथ युद्ध करता रहता है, जो हमारा पिता बडा बली था, जिसनें त्रिलोकीके राज्य अरु सब देवता वश किए थे तिसकों इसनें मारी डार्या तौ हमकों मारनेविषे क्या यत्न है! यह महाबली है, इसकों जीतणा नहीं होता, तातें एक उपाय मैं तुमकों कहत हौं, तिसकरि विष्णु प्रगट वश आवैगा, सो यह उपाय है, जो विष्णु सर्वात्मा है, सर्वका प्रकाशक है, अरु सबका कारण है, तिसकी हम शरण हैं, और हमारी गति आश्रय कोउ नहीं ॥ हे दैत्यों! उसतें अधिक इस त्रिलोकीविषे कोउ नहीं, जगत्का उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्त्ता वही देवता है, उसके ध्यानविषे लागौ, एक निमेष भी तिसके ध्यानतें उतरौ नहीं, मैं भी उसके ध्यानविषे लगता हौं, सो नारायण अजन्मा पुरुष है, मैं सदा तिसके परायण हौं, सब प्रकार नारायण मैं हौं, ॐनमोनारायणाय यह मंत्र सब अर्थोंका सिद्धकर्ता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुए हमारे हृदयविषे आय स्फुरणरूप होवैगा, सो कैसा हरि है, सबका आत्मा हरि है, पृथ्वी भी हरि है, यह सब जगत् हरि है, मैं भी हरि हौं, आकाश भी हरि है, सबका आत्मा भी हरि है, अविष्णु जो होइकरि विष्णुका पूजन करते हैं, सो पूजणेका फल नहीं पावता, अरु जो विष्णु होइकरि विष्णुका पूजन करता है, सो परम उत्तम फलकों पावते हैं, तातें मैं विष्णुरूप होइकरि स्थित होता हौं; मैं अनंत आत्मा आकाश हौं, गरुडपर आरूढ हौं अरु स्वर्णके भूषण पहिरे हैं, मेरे हस्तरूप वृक्षकरि जीवरूप सब पक्षी विश्राम पावतें हैं, यह मेरी चतुर्भुजा हैं, भुजाविषे बहुरि पटेहरे हैं, जब मैं क्षिरसमुद्र मथन किया था, तबके यह परस्पर घसाए हैं, अरु इस मेरे पार्षद स्थित हैं, सुंदर चमर हस्तविषे हैं, इसकों क्षीरसमुद्रतें उपजाये हैं, अरु त्रिलोकीरूपी वृक्षकी यह सुंदर मंजरी हैं, महाधवल मनकों हरणहारी है, यह मेरे पार्षदविषे माया है, जिसनें

अनंत जगत्जाल निरंतर उत्पत्ति प्रलय कीनी है, अरु इंद्रजालकी विलासनी है, यह मेरे पार्षदविषे जो शक्ति है, जिसनें लीला करिके त्रिलोकी खंड वश किया है, जैसे कल्पवृक्षलता फुलती है, तैसे मेरे पार्षदविषे फुलती है, शीत उष्ण यह दोइ मेरे नेत्र हैं, संपूर्ण जगत्कों प्रकाशते हैं, चंद्रमा अरु सूर्य तिनके नाम हैं, यह मेरा नील कमलवत् देह है, महासुंदर श्याम मेघवत् है, महा प्रकाशरूप है, यह मेरे हस्तविषे पांचजन्य शंख है, जिसकी फुरणरूप ध्वनी है, सो क्षीरसमुद्रतें निकस्या है, यह नाभिकमल है, जिसतें ब्रह्मा उत्पन्न भया है, अरु इसविषे निवास करता है, जैसे भ्रमर कमलविषे निवास करता है, तैसे यह मेरे हस्तविषे कुमोदकी गदा है, सुमेरुके शिखरवत् रत्नोंकी बनी हुई है, दैत्य दानवोंके नाश करणेहारी है, ज्वालाके पुंजवत् जिसका तेज है, यह मेरे हाथोंविषे महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र साधुकों सुख देणेहारा है, यह मेरे हाथोंविषे अग्निके समूहवाला कुठार है, सो दैत्यरूपी वृक्षोंकों काटणेहारा है, अरु साधुकों आनंददायक है, यह मेरे हाथविषे सारंग धनुष्य है, महाप्रकाशवत् जिसकी ध्वनी है, यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयंती माला है, कौस्तुभमणि मेरे कंठविषे है, ऐसा मैं विष्णु देव हौं, अनंत जगत्की उत्पत्ति लय हो गई है, सर्वोंके धारनहारा मैं हौं, केई बी बीति गये हैं, केई होवैगा, यह पृथ्वी मेरे चरण है, आकाश मेरा शीस है, तीनों लोक मेरा वपु है, दशों दिशा मेरे वक्षस्थल हैं, मैं साक्षात् विष्णु हौं, नील मेघवत् मेरी कांति है, गरुडपर आरूढ शंख चक्र गदा पद्मके धारणेहारा मैं हौं, दुष्ट है चित्त जिनका, सो हमकों देखिकरि भागी जाते हैं, यह सुंदर शीतल चंद्रमावत् मेरी कांति है, पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारी है, लक्ष्मी मेरे वक्षस्थलविषे है, अच्युतरूपी विष्णु मैं हौं, उह कवन है, जो मेरेसाथ विरोध करणेकों समर्थ होवै? मैं त्रिलोकीकों जलावणेकों समर्थ हौं, जो मेरेसाथ युद्ध करणेकों सन्मुख होवै, तिसकों अपणे नाशका कारण है, जैसे अग्निविषे पतंग जलि मरते हैं;तैसे मेरा ऐसा तेज है, जिसकी दृष्टि संहारणेकों कोउ समर्थ नहीं है,

मैं विष्णु ईश्वर हौं, ब्रह्मा, इंद्र, यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं, अरु तृण काष्ठ स्थावर जंगम जेता कछु जाल है, सबके अंतर व्यापकरूप हौं, त्रिलोकीविषे मैं प्रकाशरूप हौं, अजन्मा हौं, भयकौं नाशकर्त्ता हौं, ऐसा जो मेरा स्वरूप है, तिसकौं मेरा नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादविज्ञानं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार प्रल्हाद नारायणस्वरूप अपणा करिके चितवता भया, बहुरि पूजनके निमित्त वैष्णवनकौं चितवता भया, मनविषे दूसरी मूर्ति विष्णुकी करी प्राण पवनकरि संपन्न, अरु गरुडपर आरूढ धर्म अर्थ काम मोक्ष चार शक्तिकरि संपन्न, अरु शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे श्याम अंग चतुर्भुजा, चंद्रमा अरु सूर्य जिसके नेत्र ऐसा लक्ष्मीधर महासुंदर आनंदके देणेहारे विशाल नेत्र हैं जिसके, सारंग धनुष्य हस्तविषे बडा प्रकाशरूप है, ऐसी मूर्त्ति विष्णुकी पूजता भया, परिवारसंयुक्त भली प्रकार पूजन किया, बडे रत्नौंसंयुक्त प्रल्हाद मनकरि पूजत भया, माधव कमलाधरकौं रत्नौंका अर्घ्य दिया, अरु चंदनका लेपन धूप दीप विचित्र नानाप्रकारके भूषणौंकरि अरु मंदार कल्पवृक्षौंके कमलौंकरि रत्नमणिके गुच्छे नानाप्रकारके पुष्पौंकरि, अरु पिस्ता खजूरी बदाम आदिक मेवाकरि, भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य चतुर प्रकारके भोजन, नानाप्रकारके स्वाद अरु वस्त्र भूषणकरि पूजन किया, बहुरि अपणा आप विष्णुकौं अर्पण किया, परम भक्तिकौं प्राप्त भया, अरु जिस प्रकार मनकरि पूजन किया, तिसी प्रकार अंतःपुरविषे विष्णुकी मूर्त्ति देखिकरि पूजत भया, इस प्रकार दिन दिनप्रति विष्णुका पूजन करत भया, जिस प्रकार प्रल्हाद मनकी चितवनाकरि पूजा करै, तिस प्रकार और भी दैत्य मानसी पूजा करते भये, तिनकौं प्रल्हादनें सिखाया, तिस पुरविषे सब दैत्य वैष्णव हो रहे, कल्याणमूर्त्ति विष्णुभक्त हो गये, जैसा राजा होता है, तैसी तिसकी प्रजा होती है, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, तब इह वार्त्ता देवलोकविषे प्रगट भई, जो दैत्यौंनें विष्णुका दोष त्याग किया है, अरु भक्त हुए

हैं, तब देवता आश्चर्यकों प्राप्त भये, इंद्रादिक अमरगण चितवत भया, जो यह क्या हुआ! दैत्योंनें विष्णु भक्ति ग्रहण करी है, इनकों प्राप्ति कैसे भई है, ऐसे आश्चर्यवान् होइकरि विष्णुके निकट क्षीरसमुद्रकों गए, दैत्योंकी वार्ता कहणेनिमित्त, यह तौ अपूर्व वार्ता हुई है, दैत्य कहां अरु विष्णुभक्ति कहां, विष्णुके निकट जाय कहते भये ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ हे भगवन्! यह तुमनें क्या माया पसारी है, जो दैत्य सर्वदा विरोध करते थे, सो तुमारेसाथ तन्मयरूप हो रहे हैं, कहां उह दुर्वृत्ति पर्वतकों चूर्ण करनेहारे दैत्य, अरु कहां तुमारी भक्ति, जो अनेक जन्मोंकरि भी दुर्लभ है ॥ हे जनार्दन! तेरी भक्ति कहां अरु उनकी वृत्ति कहां, यह तौ अपूर्व वार्ता भई है, जैसे समयविना पुष्पोंकी माला नहीं शोभती, तैसे पात्रविना तुमारी भक्ति नहीं शोभती, यह हमकों सुखदायक नहीं भासती, जैसा जैसा कोउ होता है, तैसे तैसे स्थानविषे शोभता है, जैसे काचविषे महामणि नहीं शोभती, तैसे दैत्योंविषे तुमारी भक्ति नहीं शोभती, जैसा गुण किसीविषे होता है, सो तैसी पंक्तिविषे शोभता है, अवरविषे स्थित हुआ नहीं शोभता है, जो सदेश नहीं होता, तौ दुःखदायक होता है, जैसे अंगोंविषे वज्र दुःखदायक होता है, तैसे पदार्थ क्रमकरि प्राप्त होता है, सो जैसा गुणवान् होवै तैसा प्राप्त होता है, वह शोभा पावता है, विपर्यय होवै तब शोभा नहीं पावता, जैसे कमलिनी जलविषे शोभती है, मरुस्थलविषे नहीं शोभती, तैसे कहां उह अधम नीचजन भयानक कर्म करणेहारे अरु कहां तेरी आश्चर्यभक्ति, जैसे कमलिनी पृथ्वीपर नहीं शोभती, तैसे तेरी भक्ति दैत्योंविषे नहीं शोभती, तैसे भक्ति हमकों उनविषे सुखदायक नहीं भासती ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विविधव्यतिरेको नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बडे शब्दकरि देवता कहणे लगे, तब माधव आयकरि बोले, जैसे मेघ मोरकों कहै, तैसे गंभीर वाणीकरि बोलत भया ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे देवगण! तुम शोक मत करौ, प्रल्हाद मेरा भक्त है, शत्रुकों नाश

कर्ता यह प्रल्हादका अंतका जन्म है, अब मोक्षकों प्राप्त होइकरि बहुरि जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज बहुरि अंकुर नहीं लेता, तैसे इसकों बहुरि जन्म नहीं होवैगा ॥ हे देवगण! जो गुणवान् होवै, अरु गुणों कों त्यागिकरि दोष ग्रहण करै, तब इह कर्म अनर्थरूप होता है, अरु जो प्रथम गुणोंतें रहित निर्गुण होवै, बहुरि तिनकों त्यागिकरि गुण ग्रहण करै, शास्त्रमार्गविषे विचरै, तौ यह सुखदायक होता है, प्रल्हादकी विचित्र चेष्टा तुमकों सुखदायक होवैगी, अब तुम अपणे स्थानोंकों जाओ, प्रल्हाद मेरा भक्त है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि भगवान् क्षीरसमुद्रविषे अंतर्धान हो गए, देवता नमस्कार करिके अपणे स्थानकों गए, अरु प्रल्हादसाथ दोषभावनाका त्याग करत भये अरु बडेके चित्तसों दोष त्यागणेतें अवरोंके मन भी विश्रामकों पावते हैं, प्रल्हाद दिनादिनविषे अपने घरप्रति जनार्दनकी मनसा वाचा कर्मणा भक्ति करत भया, समय आइकरि दैत्यविषे भक्ति बडी हो गई, परम विवेककों प्राप्त भया, अरु विषयभोगतें वैराग्यवान् भए, देखिकरि आनंदी न होवै, जैसे सूके वृक्षविषे टास होता है, तिसविषे पक्षी प्रीति नहीं करते, तैसे उह विषयोंसाथ प्रीति नहीं करै, सुंदर स्त्रियांसाथ न रमहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदीकों जानणेहारे मृग रमणीय देखिकरि प्रसन्न नहीं होते, तैसे शास्त्रार्थ कथनविना और दृश्यविषे तिनकों प्रीति न उपजै, यह भोग रोगरूप हैं, तिनविषे उनका चित्त विश्रामवान् न होवै, राग न करै, परंतु मुक्तकर्ता जो आत्मबोध है, सो प्राप्त नहीं भया, मुक्तिफलके तुल्य आय स्थित भये हैं, भोगोंकी अभिलाषाकों त्यागिकरि निर्मल हो रहे हैं, परम समाधिकों नहीं प्राप्त भये, चित्त मध्य अवस्थाविषे डोलायमान् रहै, भोगोंतें वैराग्य अरु ईश्वरकी भक्तिविषे स्थित भये, तब श्याममूर्त्ति जो विष्णुदेव है, सो प्रल्हादकी वृत्तिकों विचारिकरि पातालविषे प्रल्हादके गृहपूजास्थानविषे महाप्रकाश सुंदररूप प्रगटे, तिसकों देखिकरि प्रल्हाद विशेष पूजाकों करता भया, प्रल्हाद प्रेमकरि गदगद हो गया, चरणवंदनाकरि पूजन बहुत किया, व

हुरि ऐसे कहते भये॥ ॥ प्रल्हाद उवाच॥ हे ईश्वर ! त्रिलोकीविषे सुंदर मूर्ति सबके धारणेहारे अरु सब कलंक हरणेहारे प्रकाशस्वरूप अशरणोंके शरण अजन्मा अच्युत मैं तेरे शरण हौं ॥ हे निलोत्पल कमलों के पर्वत शरत्कालके निरुपम श्यामरूप असंग चित्त करिके धरणेहारे, मैं तेरी शरण हौं॥ हे निर्मलरूप! केलेवत कोमल अंग, श्वेत कमलकी नांई, श्वेत शंख हस्तविषे है, अरु नाभिकमलविषे भंवरेरूप ब्रह्मा स्थित है, वेदका उच्चाररूपी गुरगुर शब्द कर्ता है,अरु हृदयकमलविषे विराजणेहारे जलके ईश्वररूप, मैं तेरी शरण हौं, श्वेत नख तारागणवत् प्रकाशरूप हैं, हसता मुख चंद्रमाके मंडलवत् है, हृदयरूपी मणि सबका प्रकाशक है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे त्रिभुवनरूपी कमलनियोंके प्रकाशनेहारा चंद्रमा, मोहरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य है, अजड चिदात्मा संपूर्ण जगत्के कष्ट हरनेहारे, मैं तेरी शरण हौं ॥ हे नूतन विकसितरूप कमलपुष्पोंकरि भूषित अंग, अरु स्वर्णवत् पीतांबरधारी, महासुंदर स्वरूप, मैं तेरी शरण हौं ॥ हे ईश्वर ! लीला करिके सृष्टिके उत्पत्ति स्थिति नाश करणेहारे परमशक्ति शंकर योगिवत् दृढ देह मैं तेरी शरण हौं, अरु दामनीवत् प्रकाशरूप सबकों संहार करी जलविषे बालकरूपधारी वटके नीचे शयन करनेहारे, मैं तेरी शरण हौं, देवतारूप कमलोंके प्रकाश करनेहारे, सूर्यमंडल दैत्यपुत्ररूपी कमलिनीयोंके तुषाररूपी बरफ जलावणेहारे, अरु हृदयरूप कमलोंके आश्रयभूत मैं तेरी शरण हौं ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार अनेक गुणोंकरि अष्ट श्लोक प्रल्हादनें कहे, तब नीलोत्पल कमलवत् देह जिसका है, ऐसा परमात्मा पुरुष प्रसन्न होइकरि प्रल्हादकों कहते भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशम०प्रल्हादाष्टकानंतरनारायणागमनं नाम त्रयस्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे गुणनिधि! दैत्यकुलके शिरोमणि, जो तुझकों वांछित फल है, सो माग, बहुरि जन्मदुःखके शांतिनिमित्त जिसकरि तुझकों जन्मदुःख न होवै सो माग॥ ॥ प्रल्हाद उवाच ॥ हे सर्व संकल्पके फलदायक! सर्व लो

कोंविषे व्यापकरूप जो वस्तु दुर्लभतर है, सो शीघ्रही मुझकों कहो अरु देहु॥ ॥श्रीभगवानुवाच ॥ हे पुत्र ! सब भ्रमके नाश करणेहारा अरु परम फलरूप ब्रह्मतें विश्रांति होती है, सो आत्मविवेककी समताकरि प्राप्ति होती है, सो आत्मविवेक तुझकों होवैगा॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दैत्येंद्रकों कहिकरि विष्णु अंतर्धान हो गए, तरंग समुद्रतें गुरगुर शब्द करिके उठैं, अरु गुप्त हो जावैं, तैसे विष्णुजी कों देखिकरि प्रल्हादनें पुष्पांजलि दीनी, पूजा करिके श्रेष्ठ आसन बिछाया, तिसीपरि आप पद्मासन धरि बैठे, उत्तम शास्त्रोंका पाठ विधिसंयुक्त करणे लगा, पाठकरि चिंतनाकरि, जो विष्णुनें मुझकों क्या कहा है, यह कहा था, जो तुझकों विवेक होवैगा, सो संसारके समुद्र तरणेनिमित्त शीघ्रही विचार करों, इस संसार आडंबरविषे मैं कवन हों, जो बोलता हों, स्थित हों, इह जंतु तो मैं नहीं, यह असत्य उपजा है, जडरूप पवन करि स्फुरणरूप होता है, सो मैं कैसे होउं, यह देह भी मैं नहीं, क्षणक्षणविषे कालकरि लीन होता है, यह जडरूप है, सो मैं नहीं, यह श्रवणरूपी जड है, सो मैं नहीं, अरु शब्द सुणते हैं, सो शब्द शून्यतें उपज्या है, सो भी मैं नहीं, अरु त्वचा इंद्रिय भी मैं नहीं, इसका क्षणक्षणविषे विनाशस्वभाव है, प्राप्त हुआ, न हुआ यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह आप जड है, इसके जानणेहारा चेतनतत्त्व है, चेतनके प्रमादकरि यह विषय उपलब्ध होते हैं तातें न मैं त्वचा इंद्रिय हों, न स्पर्श विषय है, यह जडात्मक है, अरु यह जो चंचलरूपी जिव्हा इंद्रिय तुच्छ है, अल्प जल अणु जिसके अग्रविषे स्थित हैं, सो रसकों ग्रहणकर्ता है, उह रस भी आत्मसत्ता करिके लब्धिरूप होता है, आप जड है, तातें यह जडरूप जिव्हा अरु रस मैं नहीं, अरु यह जो दृश्यके दर्शनविषे लीन है, विनाशरूप नेत्र सो मैं नहीं, अरु न मैं इनका विषयरूप हों, यह जड है, अरु यह जो नासिका पृथ्वीका अंश है, सो केवल आत्माके आधार है, अरु आप जड है, इसके जानणेहारा चेतन है, सो न मैं नासिका हों, न गंध हों, मैं अहंममतें रहित हों, मनके मननतें रहित शांतरूप

हौं, अरु यह पंच इंद्रियां मेरेविषे नहीं, मैं शुद्ध चेतनरूप हौं, कलना कलंकतें रहित हौं, मैं चित्ततें रहित चिन्मात्र हौं, सर्वका प्रकाशक सबके अंतर बाहिर व्यापकरूप हौं, निःसंकल्प निर्मल शांतरूप हौं, आश्चर्य है, अब मुझकों अपना स्वरूप स्मरण आता है, प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत मेरे अनुभव चेतन करिके स्थित हौं, सूर्य घटपटादिक सब पदार्थमें प्रकाशता है, जैसे उत्तम तेज दीपककरि भासै, तैसे चेतन अनुभव करि इंद्रियांकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, जैसे तेजकरि चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं, तैसे सर्वज्ञ अनुभव सत्ता करिके मनकी मननरूप शक्ति फुरती है, जैसे सूर्यके तेजकरि मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी फुरती है, तैसे अनुभवसत्ता करिके पदार्थों भासते हैं, जैसे दिपकमें शुक्लादि रंग भासते हैं, तैसे इह पदार्थोंविषे अहं आदिक पदार्थ भासते हैं, जागृतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है; सबकों अनुभव करिके भासता है, सबके अंतर आत्मभाव करिके स्थित है, जैसे बीजविषे अंकुर स्थित होता है, तैसे चेतनरूप दीपकके प्रकाशकरि विकल्परूपी पदार्थोंकी शक्ति भासती है, उष्णरूप सूर्य है, अरु शीतलरूप चंद्रमा है, घनरूप पर्वत है, द्रवतारूप जल है, इस प्रकार अनुभवसत्तातें पदार्थ प्रगट होते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि घटपटादिक होते हैं, ब्रह्मा विष्णु इंद्र इन सर्वके कारणरूप जगत्विषे स्थित है, अरु इनका कारण अनुभवतत्त्व है, आदि अंततें रहित है, अरु सब कारणोंका कारण है, जैसे बरफतें शीतलता उपजती है, तैसे अनुभवतें जगत् उदय होता है, चित्त चैत्त्य दृश्य दर्शन कलनातें रहित सत्ता प्रकाशरूप आत्मा मेरा मुझकों नमस्कार है, इसविषे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति होइकरि बहुरि लय होते हैं, सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयभूत आत्मा है, जो इस चित्तकरि अंतर कल्पितरूप हो जाता है, सोई होता है, आत्मातें रहित सत्य भी असत्य हो जाता है, जो चेतन संवित्विषे कल्पितरूप होता है, सो पदार्थ अपणे स्वरूपकों पाता है, जो यह ऐसे है, अरु जो चित्तसंवितविषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह जो घटप

टादि पदार्थका समूह भासता है, सो विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है, सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन संत पुरुषोंकों ऐसे दृढ भाव प्राप्त हैं, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यासकरि तन्मय हो जाता है, सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होणे करि वृद्ध नहीं होती, अरु नष्ट होणेकरि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवै, अथवा असत्य होवै, सूर्य ज्योंका त्यों है, संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्र रचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेसंयुक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत उपर स्थित होती है, तैसे संसाररूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरीकों धरणेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जेते कछु भूतगण त्रिलोकीके उदरविषे वर्तते हैं, सो आत्मासाथ अभिन्नरूप हैं, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अंततें रहित है, सर्वरूप जिसका आकार है, स्थावर जंगम सर्व जगद्भूतजात अंतर अनुभवरूप स्थित हैं, सो एक अनुभव आत्मा मैं हौं, द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हौं, सहस्र नेत्र सहस्र हस्त मेरे हैं, मैं चिदाकाशरूप हौं, सूर्य देहकरि आकाशविषे विचरता हौं, पवनदेहकरि मैं वहता हौं, वायु वाहनपर आरूढ हौं, अरु मैं विष्णुरूप शंख चक्र गदा पद्मके धारणहारा हौं, सर्व सौभाग्य देखणेहारा हौं, सर्व दैत्योंकों भगावता नाशकर्त्ता मैंही हौं, मैं नाभिकमलतें उत्पन्न हुआ पद्मासनकरि निर्विकल्प समाधि स्थितरूप ब्रह्मा हौं, अरु मन वृत्तिरूप कों प्राप्त भया, मैंही त्रिनेत्र आकार लिया है, गौरी मेरी अर्धांगना है, सृष्टिके अंगविषे सर्वकों संहार करता हौं, जैसे कोउ अपणे अंगोंकों संकोचि लेवै, तैसे मैं संहार करता हौं, त्रिलोकीरूपी मढी है, इंद्ररूप होइकरि मैं तिसकी पालना करता हौं, कर्मोंके अनुसार जैसा कोउ तप करे, तैसा फल देता हौं, तृण वल्लीविषे गुच्छे रस होइकरि स्थित हौं, मैंही उत्पत्तिकर्ता हौं, मैंही चैतनरूप हो जगत् आडंबर लीलाके नि

मित्त विस्ताररूप मैंनेंही किया है, जैसे मृत्तिकाके खिलोने बालक रचि लेता है तैसे, अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण करी सर्व शांतिकों प्राप्त होती है, मुझतें रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मैं आदर्श हौं, सब पदार्थ मेरे विषे प्रतिबिंबित होते हैं, तब इह असत्यरूप भी सत्यताकों प्राप्त होता है, तातें मुझतें भिन्न कछु नहीं, पुष्पोंविषे सुगंधि मैं हौं, पत्रोंविषे सुंदरता छबि मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौं, स्थावर जंगमरूप जो जगत् दृष्ट आता है, सो सब मैं हौं, सब संकल्पतें रहित परम चैतन्य हौं, अहं त्वं आदिकतें पर हौं, जलविषे रसशक्ति मैं हौं, अग्निविषे उष्णता, बरफविषे शीतलता मैं हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वविषे स्थित हौं, सब पदार्थों विषे मैं परमात्मा व्यापक हौं, सबकों अपणी इच्छाकरि उपजाता हौं, जैसे दूधविषे घृतशक्ति, जलविषे रसशक्ति, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, तैसे चेतनस्वरूप मैं सब पदार्थोंविषे स्थित हौं, त्रिकालका जगत् सब मेरेविषे स्थित है, सो मैं चित्तके उपचार फुरणेतें रहित शुद्ध स्वरूप हौं, सर्वकों भरणपोषणहारा हौं, मैंही वैराट राजा होइकरि स्थित भया हौं, त्रिलोकीका राज्य मुझकों अपूर्व प्राप्त भया है, कैसा राज्य है, शस्त्रों विना देवके, दलविना निरिच्छित विस्तृत राज्यप्राप्ति है, बडा आश्चर्य है, मैं बडा विस्तृतरूप हौं, मैं अपणे आपविषे समाता नहीं, जैसे कल्पांतरके वायुकरि उछल्या समुद्र आपविषे नहीं समाता, तैसे मैं अनंतरूप आत्मा अपणी इच्छाकरि आप प्रकाशता हौं, जैसे क्षीर समुद्र अपणी उज्वलताकरि शोभता है, तैसे मैं अपणे आपकरि शोभता हौं, यह जगत्‌रूपी मटकी महा अल्परूप है, जैसे बिल्लविषे हस्ती नहीं समाता, तैसे मैं अपणे आपविषे विस्तृतरूपकरि जगत्‌विषे नहीं समाता, कोटि ब्रह्मांडविषे व्यापक हौं, ब्रह्मलोकतें पर जो तत्त्वोंका अंत आता है, तिसतें भी पर मैं अनंतरूप हौं, यह मैं हौं, यह मैं नहीं, यह मेरेविषे निर्बलता थी, सो तुच्छरूप है, मैं तौ आदि अंततें रहित चेतन आकाश हौं, मेरेविषे परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी, मैं तूं यह उह आदिक मिथ्या भ्रम है, देह क्या, अरु पर क्या, अपर क्या, मैं तौ सर्वव्यापक चेतन हौं, तत्त्व हौं, मेरे पितामह

बडे नीच बुद्धिहीन थे, जो ऐसे ऐश्वर्यकों त्यागिकरि तुच्छ ऐश्वर्यविषे खचित भए, कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्ता ब्रह्म वपु, अरु कहां उह संसारभ्रमका राज्य दुःखदायक अनित्यरूप सुख भोग ? अनंत सुख परम उपशम स्वभाव शुद्ध चेतन दृष्टि अब मेरेविषे भई है, सब भाव पदार्थोंविषे चैत्त्यतें रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हौं, अब मुझकों नमस्कार है, मेरी जय हुई है, जीर्णरूप संसारभ्रमतें निकस्या हौं, तातें जीत पाई है, पावणेयोग्य आत्मपद पाया है, जीवितसार्थक भया है, ऐसा उत्तम सम राज्य जो चक्रवर्ती है, तिसविषे नहीं रमता, निरंतर बोधकों त्यागिकरि दुःखरूपी काजोंविषे रमते हैं, काष्ठ जल मृत्तिकाकरि संयुक्त जो पृथ्वी है, तिसकों पाइकरि जो भूलायमान भए हैं, तिनकों धिक्कार है, वह कीट है, यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अरु अविद्याकरि उपजा है, अरु अविद्यारूप इसका बढणा है, इसविषे गुण क्या है, जिसनिमित्त यत्न करते हैं, इस जगत्रूपी मढीविषे केतेक वर्षविषे हिरण्यकशिपु राज्यसुख भोगते भए, परंतु उपशम जो शांति सुख है, तिसकों प्राप्त कछु न भये, इसनें जगत् एकका राज्य किया है, परंतु जो सो जगतोंका राज्यसुख होवै, तौ भी अनास्वाद है, वह जो समतारूप आत्मानंद है, सो नहीं प्राप्त होता, जब तिस आत्मानंदके स्वादका यत्न होवै, तब प्राप्त होवै, अन्यथा नहीं होता, जिस पुरुषकों बडे ऐश्वर्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त भए हैं, अरु समतासुखतें रहित हैं, जब जानियें जो तिसकों कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया, अरु जिनकों कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया, अरु समता सुखसंयुक्त है, तब उसकों सब कछु प्राप्त भया जानियें, यह परम अमृतकरि संपन्न है, अखंडित सुख जो आत्मा है तिस परम सुखकों प्राप्त भया है, सो आनंदरूप है, अरु जो अखंड पदकों त्यागिकरि परिच्छिन्नताकों प्राप्त है, सो मूढ है, अरु जो पंडित ज्ञानवान् है, सो परिच्छिन्नताविषे नहीं प्रीति करता, जैसे उंट दूसरे पदार्थोंकों त्यागिकरि कंटकों पास धावता है, और पशु नहीं जाता, मूढविना ऐसा कवन अज्ञानी है जो आत्मसुखकों त्यागिकरि जले हुये राज्यसुखविषे रमता

है, अमृतकों त्यागिकरि कंटक नीमका पान करै, मेरे पितामह जो बडे थे, सो सब मूढ भए, इस परम अमृतरूप दृष्टिकों त्यागिकरि राज्यकंटकविषे प्रीतिवान् भए हैं, कहां फूल फलादिककरि संयुक्त नंदनवनकी भूमिका, अरु कहां जले हुए मरुस्थलकी भूमिका, तैसे कहां यह बोधदृष्टि शांतरूप, अरु कहा भोगों विषे आत्मबुद्धि, तातें ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोउ नहीं, जिसकी मैं इच्छा करौं, सब चेतनस्वरूप है, अनुभवकर्त्ता चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव निर्विकार है, सर्वदा सर्वविषे सर्व औरतें स्थित है, जैसे है तैसा पाइता है, ज्ञानवानकों प्रत्यक्ष है, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, चंद्रमाविषे अमृत स्रवणकी शक्ति है, ब्रह्माविषे महतशक्ति, इंद्रविषे त्रिलोकपालनकी शक्ति है, सब औरतें पूर्ण लक्ष्मीशक्ति विष्णुजीकी है, शीघ्र मनकर्ता शक्ति मनकी है, बलवानशक्ति पवनविषे है, दाहकशक्ति अग्निविषे है, जलविषे रसशक्ति है, अरु मौन करिके महातपकी सिद्धताशक्ति, अरु विद्याशक्ति बृहस्पतिविषे है, देवताविषे विमानोंपरि आरूढ होइकरि आकाशमार्ग गमन करनेकी शक्ति है, पर्वतोंविषे स्थिरता शक्ति, वसंतऋतुविषे पुष्पशक्ति, सर्व कालविषे मेघोंकी शांत शक्ति, यक्षोंविषे ममत्वशक्ति, आकाशविषे निर्लेपताशक्ति, बरफविषे शीतलताशक्ति, ज्येष्ठ आषाढविषे तप्तशक्ति है, इत्यादिक देश काल क्रिया रूप नानाप्रकारके आकार विकार त्रिकालके उदरविषे स्थित हैं, सो सर्व शक्ति स्वच्छ निर्विकार चेतनकी है, कलनारूप कलंकतें रहित है, सो इस प्रकार होइ भासता है, सोइ आत्मतत्त्व सम पदार्थ जातिविषे व्यापक भया है, जैसे सूर्यके प्रकाश सर्व उरतें समान उदय होता है, तैसे सर्व देश पदार्थोंका भंडार सर्वका आश्रयभूत है, त्रिकाल तिसविषे कल्पितरूप होते हैं, जैसा अनुभव तिसविषे होता है, तैसा तत्काल हो भासता है, जैसे जैसे चेतनतत्त्वविषे देश काल क्रिया द्रव्यका फुरना होता है, तैसा तैसा भासता है, अरु आत्माविषे त्रिकालोंकी सम प्रतिभा फुरी है, तिसविषे बहुरि अनंतकालकी प्रतिभा हुई है, शुद्ध चेतनतत्त्वविषे सर्व उरतें पूर्ण है, त्रिकालके स्मरणविषे दृश्यसं

युक्त भासता है, तौ चेतनतत्त्व शेष रहता है, अरु इसकों त्रिकालका ज्ञान होता है, मधुर कटुक आदिक भिन्नभिन्नसों एकसमता भासती है, जैसे मधुरता पान करनेहारे जो जीव हैं, तिनकों मधुरता भासती है, अवरकों नहीं भासती, तैसे सर्व जो संकल्पकलना है, सबकों भोगता है, सूक्ष्म चेतन है, सत्तास्वरूप सर्व पदार्थोंका अधिष्ठान है, तिससाथ अनागत होइकरि द्वैत जगत् भासता है, नानाप्रकारकी जो पदार्थ लक्ष्मी है, अत्यंत दुःखकों प्राप्त करती है, जब त्रिकालका अनुभव होता है, तब सबही सम भासता है, भाव पदार्थोंविषे जो पदार्थ हैं, सो ईश्वरके हैं, तिन भाव पदार्थोंकों त्यागिकरि अभावकी भावना करणी तिसकरि दुःख सब नष्ट हो जाते हैं, संतुष्टता प्राप्त होती है, तातें त्रिकालकों मत देखहु, यह बंधनरूप है, त्रिकालतें रहित जो चेतनतत्त्व है, तिसकों देखणेकरि विभाग कल्पना कालका अभाव हो जाता है, एक सम आत्मा शेष रहता है, तिसकों वाणी वश करी नहीं शकती, असत्यकी नांई जो निरंतर स्थित है, तिसकी प्राप्ति होती है, अनामय सिद्धांत है, जो शून्यवादीकी नांई स्थित होता है, निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता है, अथवा सर्वरूप परम उपशमविषे लीन होता है, अरु जिसका अंतःकरण मलीन है, संकल्प करिके असम्यक्दर्शी है, तिसकों ज्यौंका त्यौं नहीं भासता, जगत् भासता है, अरु जिनकी इच्छा नष्ट भई है, परम पदका अभ्यास करते हैं, तिनकों आत्मतत्त्व भासता है, अरु जो किसी जगत्के पदार्थकी वांछा करते हैं, किसीका त्याग किया चाहते हैं, हेयोपादेय फांसीसाथ बांधे हैं, सो परम पद उपायके पावणेकों समर्थ नहीं होते, जैसे पेटकरि बांध्या पक्षी आकाशमार्गविषे उडणेकों समर्थ नहीं होता, तैसे, जो पुरुष संकल्प कलनासंयुक्त है, सो मोहरूपी जालविषे गिर पडते हैं, जैसे नेत्रोंविना गिर पडता है, तैसे संकल्प कलना जालकरि जिसका चित्त वेष्टित है, सो विषयरूपी गर्त्तविषे गिऱ्या है, अच्युत पदवीकों प्राप्त नहीं होता, अरु मेरे पितामह केतेक दिन पृथ्वीविषे फुरिफुरि लीन हो गए हैं, सो बालक नीच थे, जैसे गर्त्तविषे मच्छर लीन हो जाते हैं, तैसे अज्ञान

करि परमतत्त्वकों न जानते भये, भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है, सो अज्ञानी करते हैं, तिसतें भावअभावरूप गर्त्त अंधकूपविषे नष्ट होते हैं, इच्छा अरु दोषकरि जो उठ्या है, सो रागदोषकरि बंधमान भए हैं, जैसे पृथ्वीविषे कीट मग्न होते हैं, वह जीव तिनके तुल्य हैं, अरु मृगतृष्णारूप जगत्के पदार्थोंविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि जिनकी शांत भई है, सो पुरुष जीते हैं, अवर सब नीच मृतकरूप हैं, निर्मल अविच्छिन्नरूप चैतन्य चंद्रमावत् शीतलता कहां, अरु उष्णकाल कलंकसंयुक्त चित्तकी अवस्था कहां! अब मेरे आत्माकों नमस्कार है, कैसा आत्मा है, जो अविच्छिन्न प्रकाश है, प्रकाश अरु तम दोनोंका प्रकाशरूप है ॥ हे चिदात्मा देव! मुझकों तूं चिरकालकरि प्राप्त भया है, परमानंद भया जो विकल्परूपी समुद्रतें मेरा उद्धार किया है, जो तूं है, सो मैं हौं, औ मैं हौं सो तूं है, तुझकों नमस्कार है, अनंत शिव आत्मतत्त्वका चंद्रमा संकल्पविकल्प कलाके नष्ट हुएतें सो निर्मल सदा उदितरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३४ ॥ ॥ प्रल्हाद उवाच ॥ ॐ जिसका नाम है सो ब्रह्म मैं हौं, विकारतें रहित हौं, जो कछु जगत् है, सो सब आत्मस्वरूप है, सत्य असत्यतें अतीत है, चेतनस्वरूप है, सब जीवोंके अंतर है, सूर्यादिक प्रकाश दीपक है, अग्नि आदिककों उष्णकर्त्ता इही है, अरु चंद्रमाविषे शीतकर्त्ता अमृतका स्रवणा आत्मातेंही है, इंद्रियोंके भोगोंका भोक्ता अनुभवरूप यही है, राजाकी नांई ठाढा हौं, तौ मैं कबहू नहीं ठाढा, बैठा हौं तौ मैं कबहू नहीं बैठा, चलता हौं तौ कबहू नहीं चलता, व्यवहार करता हौं, सदा शांतरूप हौं, कर्ता हौं तौ किसीकरि लेपायमान नहीं होता, त्रिकालोंविषे समरूप हौं, सर्वदा सर्व अवस्थाविषे पदार्थोंके उपजणेविषे अरु मिटणेविषे सदा ज्योंका त्यौं हौं, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है, पवन जो स्पंदरूप है, तिसतें भी मैं अति सूक्ष्म स्पंदरूप हौं, पर्वत स्थान जो हैं, अचल पदार्थ तिनतें भी मैं अचल हौं, आकाशतें भी अति निर्लेप हौं, अरु मनकों भी आत्मा चलाता है, जैसे पत्रोंकों पवन च

लाता है, इंद्रियोंकों आत्मा फेरता है, जैसे घोडेकों सवार चलाता है, अरु समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नांई भोग भोगता हौं, अरु अपणे ऐश्वरकरि आप शोभता हौं, संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार करणेहारा आत्मा है, सो सबतें सुलभ है, अपणे आपकरि जाणीता है, बांधवकी नांई प्राप्त होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं, तिन सर्वोंका भंवरा है, खैंचे बुलाएविना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसकों बुलाता है, तब तिसी क्षणविषे सन्मुख होता है, इसविषे कोउ संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक परम संपदावान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रसस्वाद है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि है, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमात्मा देहोंविषे स्थित है, तौ भी अविचारके वशतें जान्या नहीं जाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपणे अग्र आनि स्थित होता है, तिसकों नहीं पिछानी शकता, तैसे जब विचार उदय होता है, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरकों जाणि लेता है, जैसे किसी प्रीतम बांधवके पाएतें आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार हुएतें परम आनंद उदय होता है, सब बंधन नष्ट हो जाता है, जेती कछु दुष्ट चेष्टा है, सो अभाव हो जाती हैं, सब औरतें बंधन फांशी टूटि जाती है, सब शत्रु क्षय हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतकों चुवा तोडी नहीं शकता, तैसे, ऐसे देवके देखतें सब कछु देख्या होता है, अरु सुणेतें सब कछु सुन्या होता है, तिसके स्पर्श कियेतें सब जगत्का स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकरि सर्व जगत् स्थित भासता है, यह जाग्रत है, सो संसारकी औरतें स्वप्न है, तिसी जाग्रतकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिसका कष्ट दूर होता है, आत्माके प्राप्त हुएतें आत्मामय हो जाता है, सो विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है, जगत्की स्थितिविषे भोगोंतें राग उठा है, सब उरतें आत्मतत्त्व अपणा प्रकाश भासता है, अंतर शांतरूप सबकों अनुभव करनेहारे सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिरचेविषे तीक्ष्णता स्थित है, तैसे सब जगत्के अंतर बाहिर व्यापी रहा हौं, जेते कछु

जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो सबविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे शून्यतारूप, वायुविषे स्पंदतारूप, तेजविषे प्रकाश, जलविषे रस, पृथ्वीविषे कठोरता, चंद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्वही व्यापी रहा है, जैसे बर्फविषे श्वेतता पुष्पोंविषे गंध होती है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होती है, मुझतें भिन्न और कलना कोउ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशकों स्पर्श नहीं करि शकते, अरु कमलोंकों जल स्पर्श नहीं करता; जैसे पाषाणकों स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता, तैसे मेरेसाथ किसीका संबंध नहीं स्पर्श करता, सुखदुःखका संबंध देहकों होता है, जो देह चिर काल रहै, अथवा अबही नष्ट होवै, तौ मुझकों लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बांधि नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसाथ आच्छाद्या नहीं जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबंधरूप है, जैसे आकाश किसीकरि बांध्या नहीं जाता, अरु मन किसीकरि रोक्या नहीं जाता, तैसे परमात्माकों देह इंद्रियका संबंध वास्तवतें नहीं होता, जो शरीरसों टुकडे हो जावें, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घट फूटेतें दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परंतु आकाश कहुं नहीं जाता, ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भएतें प्राणकला निकसी जाती है, आत्माका कछु नाश नहीं होता, अरु पिशाचकी नांई उदय होइ करि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनतें जगत् भास्या है, तिसविषे जड शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है, दुःखसुखतें वासना जिसके मनतें नाश होती है, सो भोगोंतें निवृत्ति सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्ते भोगतें इंद्रियके अज्ञानकरि मूढ दुःख पावते हैं, तिसकरि दुःखसंकट पावते हैं, यह वडा आश्चर्य है, आत्माके अज्ञानकरि दुःख मूढ पावते हैं, अब मैं आत्मतत्त्वकों देख्या है, तिसकरि मेरा भ्रम शांत हो गया है; कछु भी किसीकरि मुझकों क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करणेकी इच्छा

है, न त्यागकी वांछा है, जो जावै सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझकों देहादिक सुखकी अपेक्षा है, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षा है, सुखदुःख आवै, अरु जावै, मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करणेतें नानाप्रकारकी वासना उपजती हैं, सो देहभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, यह वासना नहीं फुरती, एते कालपर्यंत मुझकों अज्ञानरूपी शत्रुनें नाश किया था, अब मैं आपकों जान्या है, अब इसकों मैं चूर्ण करता हौं, इस शरीररूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पिशाच था, सो मैंनें परम बोधरूपी मंत्रकरि दूर किया है, इस शरीररूपी वृक्षसों अज्ञानरूपी पिशाच नष्ट भया है, तातें पवित्र हुआ हौं, प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभता हौं, मोहरूपी दृष्टि मेरी शांत भई है, दुःख सब नष्ट भए हैं, विवेकरूपी धन मुझकों प्राप्त भया है, अब मैं परम ईश्वररूप होइकरि स्थित भया हौं, जो कछु जानणे योग्य था, सो जान्या है, अरु जो कछु देखणे योग्य था, सो देख्या है, मैं तिस पदकों प्राप्त भया हौं, जिसके पायेतें कछु पावणे योग्य नहीं रहे, आत्मतत्त्वकों देख्या है, अनेक रस विषयरूपी सर्प मुझकों त्यागि गया है, मोहरूपी कुहीड नष्ट हो गई है, इच्छारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, रागदोषरूपी धूलितें रहित सब औरतें निर्मल भया हौं, उपशमरूपी वृक्षकरि शीतल भया हौं, सब औरतें विस्तृतरूपकों प्राप्त भया हौं, सबतें उचित परमात्म देव परमार्थकों उस तत्त्व करिके परिणाम करिके ज्ञान विचार करिके पाया हौं, अब प्रगट देख्या है, अधोगतिका कारण जो अहंकार तिसकों दूरतें त्याग्या है, अपणां स्वभावरूप जो है आत्मा भगवान् सनातन ब्रह्म, सो अहंकारके वशतें विस्मरण भया था, अब चिरकाल करिके देख्या है, इंद्रियांरूपी गर्तविषे मैं गिऱ्या था, रागदोषरूपी सर्प होइकरि दुःख पाया था, अरु मृत्युकों प्राप्त भया था, मृत्युकी भूमिका टोएविषे तृष्णारूपी करजुएकी कुंजोंविषे रहा, कामरूपी कोयलकें जहां शब्द होते थे, जन्मरूपी कूपविषे दुःख पावता था, सुखकों पावणेकी दिशाविषे डुबा, वासनारूपी जालविषे फस्या, दुःखरूपी दावाग्निविषे जल्या, आशारूपी फांसीसाथ बांध्या हु

आ केईवार जन्ममरणकों प्राप्त भया था, अहंकारके वश हुएतें जन्ममृत्युकों प्राप्त होता है, जैसे रात्रिविषे पिशाच दिखाइ देवै, अरु अधीरताकों प्राप्त करै, तैसे मुझकों अहंकारनें किया था, सो अब है, परमात्मरूप मुझकों तुमनें प्रेरणाकरि अपणी मुक्ति विष्णुरूप धारीकरि विवेक उपदेश किया है, अरु जगाया है॥ हे देव ईश्वर, तुमारे बोधकरि अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है॥ हे विभु! तिसकों मैं नहीं देखता, जैसे दीपकरि तम नहीं भासता तैसे॥ अहंकाररूपी यक्ष था, अरु मनविषे वासना थी, सो सब नष्ट भए हैं, अब मैं जाणता नहीं जो कहां गये, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब नहीं जाणता, जो प्रकाश कहां गया! हे ईश्वर, तुमारे दर्शनकरि मेरा अहंभाव नष्ट भया है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें चोरभय मिट जाता है, तैसे देहरूपी रात्रिविषे अहंकाररूपी पिशाच उठा था, सो अब नष्ट भया है, अब मैं परम स्वस्थ भया हौं, जैसे बानरोंतें रहित वृक्ष स्वस्थ होता है, तैसे मैं परम निर्वाणकों प्राप्त भया हौं, समशांत बोधविषे मैं जाग्या हौं, चिरपर्यंत चोरोंतें अब छूटा हौं, अंतर मेरा शीतल भया है, आशारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, जैसे जलतें पर्वतकी तप्तता मिटै, अरु वर्षाकरि शीतलताकों प्राप्त होवै, तैसे विवेकरूपी विचारकरि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गई है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां, अरु नरक कहां! बंध अरु मुक्त कहां, अहंकारके होणेकरि पदार्थ भासते हैं, अहंकारके गयेतें इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध उपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश उपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता, सुखदुःखादिकका पात्र होती है, जैसे मलीन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता तैसे उसविषे ज्ञान नहीं शोभता, जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै, तब तृष्णारूपी कुहीड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है जिसविषे, ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकरि शोभता हौं॥ हे आत्मा, तुझकों नमस्कार है, इंद्रियांरूपी जिसविषे तंदु

ए अरु चित्तरूपी वडवाग्नि है, दोनों जिसतें नष्ट भये हैं ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस मुझ आत्माकों नमस्कार है, जिसतें दूर भया है, अरु अहंकार मेघ शांत भई है, दावाग्नि ऐसा जो आत्मानंदरूपी पर्वत है, तिस आनंदके आश्रय मैं विश्राम पाया हों ॥ हे देव, तुझकों नमस्कार है, प्रफुल्लित है आनंदरूपी कमल जिसविषे, अरु शांत भये हैं, चित्तरूपी तरंग जिसतें ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हों, तिसकों नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवित्‌रूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी कमलोंकरि पूर्ण मानस सरोवर पर विश्राम करनहारे, तिसकों नमस्कार है, कालरूपी कलनातें रहित निष्कलंक सदा उदितरूप सब ओरतें पूर्ण शांत आत्मा, तुझकों नमस्कार है, सदा उदित शीतल हृदयका तम दूर कर्त्ता सर्वव्यापक हों, परंतु अज्ञानकरि अदृष्ट भया था, सो चेतन सूर्यकों नमस्कार है, मनके मनकरि जो उपजे थे सो अब शांत भये हैं, मनकों मनकरि अहंकों अहंकरि छेदेतें जो शेष रहै, सो मेरी जय है, भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं, तिनकों आत्मभावकरि छेदेतें, अरु तृष्णाकों अतृष्णाकरि छेदेतें अनात्माकों आत्मविचारकरि नष्ट कियेतें, ज्ञानकरि ज्ञेयकों जानणेतें मैं अबके निरहंकारपदकों प्राप्त भया हों, भाव अभावक्रिया नष्ट हो गई है, मैं अब केवल स्वस्थित हों, निर्भय निरहंकार निर्मन निस्पंद शुद्धात्मा हों, मेरा शरीर जीवकी नांई स्थित है, लीला करिके मननें अहंकारकों जीत्या है, परम उपशमकों प्राप्त भया हों, परम शांति मुझकों प्राप्त भई है, मोहरूपी वेताल शांत भया है, अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है, वासनारूपी कुत्सित भूमिकातें मुक्त विगतज्वर हुआ हों, तृष्णारूपी जेवरी गंठीकरि हुआ देह पिंजरा था, तिसविषे अहंकाररूपी पक्षी फस्या था, सो तृष्णारूपी जेवरी विवेकरूपी कातरसाथ काटी है, अब जान्या नहीं जाता जो शरीररूपी पिंजरतें अहंकाररूपी पक्षी कहां निकस गया ? अज्ञानरूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पक्षी रहता था, तिसके जानणेकरि जान्या नहीं जाता, जो कहां गया ? दुराशारूपी दुर्मतिनें धूसर किया था, भोगरूपी भस्मनें शुद्ध

दृष्टि दूर करी थी अरु वासनाकरि हम मृतक हो गये थे, एता काल हम चित्तकी भूमिकाविषे मिथ्या अहंकारकों प्राप्त भया था, अब मैं उपज्या हौं, अरु आजही मेरी बडी शोभा बढी है, अहंकाररूपी महामेघ था, सो नष्ट भया है, तिसविषे तृष्णारूपी सामता थी, सो नष्ट भई है, निर्मल आकाशवत् शोभता हौं, अब मैं आत्मा भगवान् देख्या है, अपणे स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, अनुभवरूप सदा प्राप्त है, प्रभुताके समूहके आगे अज्ञान अल्परूप है, कैसा है, निस्पंदगति मननरूपी इच्छातें रहित निरिच्छित निरहंकार अरु दूरि दूरि भया है, रजनीरूपी राग जिसतें, अरु विगतज्वर कौतुकतें रहित अरु शांत भया है मन जिसतें, अरु महा आपदा दीर्घ दुःख देणेहारी क्षय भई है जिसतें, ऐसा अद्वैत महेश्वर चित्ततें रहित है ॥ ॥ इति श्रीयो० उप० आत्मलाभचिंतनं नाम पंचत्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३५ ॥

॥ प्रल्हाद उवाच ॥ हे महात्मा पुरुष! तुझकों नमस्कार है, तूं आत्मा है, सर्व पदतें अतीत चिरकालतें मुझकों शरण आया है, कल्याण भया है जो अब तुझकों पाया ॥ हे भगवन्! तुमकों देखिकरि सब औरतें नमस्कार करता हौं, अंतरतें तुमकों आलिंगन करौंगा, त्रिलोकीविषे तुझतें अन्य ऐसा बांधव कोउ नहीं, तूं सबतें सुखदायक है, अरु सबका तूंही संहार करता है, सबकी रक्षा भी तूंही करता है, देणेलेणेहारा सब तूंही है, अब तूं क्या करैगा, अरु कहां जावैगा? अपणी सत्ताकरि विश्वकों पूर्ण किया है, अरु विश्वरूप भी उही है, अब सब औरतें तुझकों देखता हौं, तूंही नित्यरूप सर्वत्र है, तेरे अरु मेरेविषे अनेक जन्मोंका अंतर पडा था, अब कल्याण हुआ जो तुझकों देख्या है, तूं अत्यंत निकट है, अरु परमबांधवरूप है, तुझकों नमस्कार है, कृतकृत्य स्वरूप सबका कर्त्ता हर्त्ता है, संसार तेरी नृत्य है, नित्य निर्मल स्वरूप तुझकों नमस्कार है, शंख चक्र गदा पद्मके धारणेहारे तुझकों नमस्कार है, अर्धचंद्रमाके धारणहारा सदाशिवरूप तुझकों नमस्कार है, सहस्रनेत्र इंद्र तुझकों नमस्कार है, पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्याका संबंध तूंही है, तेरेविषे भेद कछु नहीं तौ तुमारे हमारेविषे भेद कैसे होवै, जैसे

समुद्र अरु तरंगोंका संयोग अभेद है, तैसे तेरा अरु मेरा संयोग अभेद है, तूंही अनंत विचित्ररूप है, भावअभावरूप जगत्के धरणेहारी नीति है, जगत्की मर्यादाकों करती है, हे द्रष्टारूप, तुझकों नमस्कार है ॥ हे सर्वज्ञ सर्व स्वभावरूप आत्मा देव ! जन्मजन्मप्रति मैं बहुत दुःखमार्गविषे विचरा हों, तेरी माया करि चिरकालदग्ध भया हों ॥ हे देवेश ! देश लोक मैं अनंत देखे हैं, दृष्टांत द्रष्टा भी अनेक देख्या है, परंतु किसीकरि तृप्त न भया, जगत्कों जिसी ओर देखों तिसी ओरतें काष्ठ पाषाण जल मृत्तिका आकाश दृष्ट आता था, अब तुझविना कछु और दृष्ट नहीं आता, वांछा किसकी करों, अब तुझकों देख्या है, उपलब्ध स्वरूपकों प्राप्त भया हों, तुझकों नमस्कार है, नेत्रोंकी श्यामताविषे जो पुतलियांरूप स्थित है, अरु रूपकों देखता है, साक्षीभूत, सो अंतर कैसे नहीं देखता, जो त्वचाविषे स्पर्श करता है, शीत उष्णादिककों जानता है, ऐसा सर्व अंगोंविषे व्यापक अनुभव कर्त्ता है, जैसे तिलोंविषे तेल व्यापक होता है, तिसका अनुभव कोउ नहीं करता, जो शब्द श्रवण इंद्रियके अंतर ग्रहण करता है, तिस शब्द शक्तिकों जो जानणेहारी सत्ता है, जिसविषे शब्द शक्तिका विचार होता है, जिसकरि रोम खडे होइ आते हैं, सो सत्ता दूर कैसे होवै, जो जिव्हाके अग्रविषे रसस्वादकों ग्रहण करता है, तिस रसका अनुभव करणेहारी जो सत्ता हैं, सो दूर कैसे होवै, नासाविषे जो ग्रहण शक्ति है, जिसतें गंध आती है, तिसकों अनुभव करनेहारी अलेप सत्ता है, सो सन्मुख कैसे न होवै, वेद वेदांत सप्त सिद्धांत पुराण गीताकरि जो ज्ञेय जानणे योग्य आत्मा है, तिसकों जब जान्या तब विश्राम कैसे न होवै, परावर परमात्मा पुरुष है, जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था, सो भोग रमणीय विद्यमान आनि होता है, तौ भी तेरे दर्शनकरि रस नहीं देते ॥ हे स्वच्छरूप निर्मलप्रकाश ! तूं सूर्यभाव होइकरि प्रगट भया है, अरु तेरी सत्ताकरि चंद्रमा शीतल भया है, तेरी सत्ताकरि पृथ्वी स्थित है, तेरी सत्ता करि देवता आकाशमार्गमें विचरते हैं, तेरी सत्ताकी करी आकाशविषे आकाशभाव है, मेरी अहंता तेरेवि

षे तत्त्वकों प्राप्त भई है, तेरे अरु मेरेमें भेद कछु नहीं, तेरेकों मेरेकों नमस्कार है, मैं सम स्वच्छ साक्षीरूप निर्विकार देशकाल पदार्थके छेदतें रहित हौं, मन जब क्षोभकों प्राप्त होता है, तब इंद्रियांकी वृत्ति स्फुरणरूप होंती है, प्राण अपानशक्ति जब उल्लासकों प्राप्त होती है, तब देहरूपी यंत्र वहता है, कैसा यंत्र है, चर्म अस्थि आदिक जिससाथ लकडियां अरु जेवरी है, इंद्रियांरूपी घोडे हैं, मनरूपी सारथि चलावणेहारा है, तिस देह रूपी रथविषे मैं चेतनरूपी स्थित हौं, परंतु मैं किसीविषे आस्था नहीं करता, देह रहै, अथवा गिरै, मुझकों इच्छा कछु नहीं, मैं अब आत्मलाभकों प्राप्त भया हौं, चिरकालतें उपशमकों प्राप्त भया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे जगत् शांतिकों प्राप्त होता, तैसे दीर्घ संसारमार्गविषे चिरकाल भ्रमता भ्रमता अब विश्राम पाया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे वायु चलता चलता रही जाता है ॥ हे सबरूप आत्मा ! तुझकों नमस्कार है, जो तुझकों अरु मुझकों इस प्रकार जानते हैं ॥ हे देव ! संपूर्ण जगत्जाल जो विस्तृतरूप है, तिसकों तुम कदाचित् स्पर्श नहीं किया, तुमारी जय है, जैसे पुष्पोंविषे गंध होती है, तिलोंविषे तेल रहता है, तैसे तुम सब देहोंविषे रहते हौ, तूं सर्व जगत्का प्रकाशक दीप है, उत्पत्तिप्रलयकर्त्ता अरु सदा अकर्तारूप तेरी जय है, तेरे परमाणु चिद्अणु हैं, तिनविषे यह विस्ताररूप जगत् स्थित है, सो जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, बहुरि अवरविषे अवर होता है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे एक बादरके अनेक आकार दृष्ट आते हैं, तैसे चित्तकला फुरणेकरि अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं, इस संसारके जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं, तिनकी अभावना कियेतें अब भाव अभावतें रहित भावकों देखता हौं, यह निश्चय भया है, मान मद क्रोध अरु कलुषता कठोरता आदिक विकारोंविषे महापुरुष नहीं डुबते, अरु प्रकृति नीच जन इन दोषों गुणोंविषे डुबते हैं, पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीच अवस्था थी, तिसका स्मरण करिके हसता हौं, जो मैं कवन था, अरु क्या जानता था ॥ हे मेरे आत्मा ! मैं तिन पदकों प्राप्त भया था, जहां चिंतारू

पी अग्निकी ज्वाला थी, जहां दग्ध हुए जीर्ण संसारके आरंभ थे, अब देहरूपी नगरविषे स्फाररूप मनोरथकी जय है, अब दुःख ग्रहण करी नहीं शकते, जहां दुष्ट इंद्रियांरूपी घोडे जाते थे, अरु मनरूपी हस्ती जाता था, सो अब भोगरूपी शत्रुकों चारों ओरतें भक्षण किया है, अरु निष्कंटक राजा चक्रवर्ती भया हौं, तूं परम सूर्य है, परम आकाशविषे तेरा मार्ग है, उदयअस्ततें रहित, तूं नित्यप्रकाशरूप है, सबके अंतर बाहिर तूं प्रकाशता है, अब भोगोंकों लीलारूप देखता हौं, जैसे अकामी कामनीकों देखै, परंतु इच्छातें रहित होवे है तैसे तूं ग्रहण करता है, नेत्ररूपी झरोंखेविषे बैठिकरि तूं रूपविषयकों ग्रहण करता है, अपणी शक्तिकरि इसी प्रकार सब इंद्रियांविषे वहीरूप धारिकरि तूंशब्द स्पर्शरूप रस गंधविषयकों ग्रहण करता है, ब्रह्मकोटरविषे जो देश हैं, तिनविषे प्राण अपान शक्तिकरि तूंही विचरता है, आता है, जाता है, ब्रह्मपुरीविषे जाता है, क्षणविषे बहुरि आता है, सब जगत् देहोंविषे तूं विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तूं सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तूं अमृत है, देहरूपी वृक्षविषे तूं रस है, देहरूपी बर्फविषे तूं शीतलता है, चिन्मयस्वरूप है, दूधविषे तूं घृत है, काष्ठविषे तूं अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तूं स्वाद है, तेजविषे तूं प्रकाश है, सर्व असर्व अर्थ कर्त्ता, पूर्ण तूंही है, सर्व जगत्का प्रकाशक तूंही है, वायुविषे स्पंद तूंही है, मनविषे मुदित तूंही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तूंही है, प्रकाशविषे तूं प्रकाश है, सब पदार्थोंकों सिद्धकर्त्ता तूं दीपक है, लीन भएतें जान्या नहीं जाता, जो कहां गए, केई और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जेते कछु संसारकेविषे पदार्थ अरु अहं त्वं आदिक शब्द हैं, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपणी लीलाके निमित्त किए हैं, आपही तूं प्रसन्न होता है, जैसे मंदवायुकरि खंड खंड हुएतें बादरके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तूं भौतिक दृष्टि करिके भिन्न भिन्नरूप भासता है ॥ हे देव! ब्रह्मांडरूपी मोती हैं, तिनविषे तूं निरिच्छित व्यापक है अरु भूतोंरूपी जो अन्न हैं, तिनका तूं खेत है, चेतनरूपी रसकरि बढावणेहारा है, अरु तूं अस्तकी नांई स्थित है, अर्थ यह इंद्रियांके विषयतें रहित अव्यक्त

रूप है, अरु सब पदार्थोंका प्रकाश है, जो पदार्थ शोभासंयुक्त विद्यमान होता है, अरु तेरी अवस्था उस विषे नहीं होती, तब उह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै तौ उह अस्तभूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै, अरु तूं न कल्पै तौ अस्त हो जाता है, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब होता है, तिसकों देखिकरि अपणी सुंदरताविना प्रसन्न कोइ नहीं होता ॥ हे आत्मा! तेरे संकल्पविना देह, त्रुटित हो जाता है, काष्ठ लोष्ठवत् होता है, जब पुर्यष्टका शरीरतें अदृष्ट होती है, तब सुखदुःख आदिक क्रम नष्ट हो जाता है, किसीका ज्ञान नहीं होता, जैसे तमविषे कोउ पदार्थ दृष्ट नहीं आता, तेरे देखणे करि सुखदुःख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकरि प्रातःकाल शुक्लवर्णकरि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपकों प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाता है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्यौंका त्यौं भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भएतें आत्मा ज्यौंका त्यौं भासता है, यह जो मनरूप तूं है, तेरे उपजणेकरि सुखदुःखकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएतें सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपतें तूं अनामयरूप है, क्षणभंगुर देहविषे जो मननें आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुखदुःखादिककी भावना करिके अनीश्वरताकों प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकरि स्फुरणरूप होता है, अरु तेरे देखणेकरि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टका तेरा रूप है, तिसके देखणेकरि क्षणविषे पदार्थ जात भासी आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलणेकरि रूप भासी आता है, अरु अंतर्धान मनके मरनेकरि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकरि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभंगुर है, तिसतें कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकरि कोउ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अंतर्धान होणेकरि देहतें कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपजिकरि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसतें कार्य क्या सिद्ध होवै, देहादिक जड नाशवंत है, अरु जो सबकों प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुखदुःख

आदिक अज्ञानीके चित्तकों स्पर्श करता है, अरु जिसका समचित्त है, तिसकों स्पर्श नहीं करते ॥ हे देव! यह जो सुखदुःख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है, तूं निरीह निरंश निराकार है, सत् असत्यतें परभैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तूं सर्व शास्त्रोंका असिपद है, तूं जातअजातरूप सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी, तेरे अभावरूपकी जय है, जीतणे योग्य तेरी अजीतणेयोग्य तेरी जय है, माया हुलासकों प्राप्त हुआ है, अरु उपशांतिकों प्राप्त हुआ है, तुझ कों नमस्कर है ॥ हे निर्दोष ! तेरेविषे स्थित होणेकरि मेरे राग दोष मिटि गए हैं, अब बंध कहां अरु मोक्ष कहा, अरु आपदा कहां, संपदा कहां, भाव अभाव कहां, सर्व विकार शांत भए हैं, सम समाधिविषे स्थित भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादोपाख्याने संस्तवनं नाम षट्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३६ ॥

॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार चितवीकरि महाधैर्यवान् प्रल्हाद निर्विकार निरानंद समाधिविषे स्थित भया, जैसे मूर्तिका पर्वत होवै, तैसे अपणे पदविषे स्थित भया, जब बहुत काल अपणे गृहरूपी भुवनविषे सुमेरुवत् ऐसी समाधिविषे स्थित भया, तब दैत्य ईश्वर तिसकों जगाने लगे, परंतु प्रल्हाद न जाग्या, जैसे समयविना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे पंचसहस्र वर्ष समाधिविषे व्यतीत भए, अरु शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा, दैत्योंके नगरविषे शांति हो गई, परमानंद आत्माकों प्राप्त भया, निरानंद जो प्रकाश है, सो प्रकाशमात्र रही गया, और कलना सब मिटि गई, एता काल जब व्यतीत भया, तब रसातल मंडलविषे राजभय दूर हो गया, छोटेकों बडा भक्षणकरि लेवै, हिरण्यकश्यपु मृत्यु भया, तिसका पुत्र समाधिविषे स्थित भया, अवर कोउ राजा न हुआ, दैत्यमंडलकी विपर्यय दशा भई, निर्बलकों बलवान् मारी लूटि लेवै, तब अनेक मल्ल मिलिकरि प्रल्हादकों जगाय रहे, तौ भी न जाग्या, जैसे सूर्यमुखी कमलकों रात्रिविषे भंवरे गुंजारव करैं, तौ भी प्रफुल्लित नहीं होता, मुंद्या रहता है,

तैसे प्रल्हाद न जाग्या, संवित्कला जो चित् धातु है, सो तिसके अंतरफूर्ति न भासै, जैसे मूर्तिका लिख्या सूर्य प्रकाशतें रहित होता है तैसे देखिकरि दैत्य उद्वेगवान् भए, जहां किसीकों सुखदायक देशस्थान भास्या, तहां जाई रहे, पाताल मंडलकों राजातें हीन देखते भए, मर्यादा सब दूर हो गई; मत्सर आय प्रवर्त्या, जो बलवान् होवै, सो निर्बलकों ग्रासि लेवै, मर्यादाका क्रम नष्ट हो गया, अपणे अपणे वांछित देशकों चले जावैं, पुरुष स्त्रीयां रुदन करें, शोकवान् होवैं, केई मारे जावैं, केई लूटे जावैं, व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले हो गए, दैत्यता परायण हुए, बांधव नष्ट हो गए, उपद्रव उत्पन्न होणे लगे, दिशाके मुख अग्निरूप हो गए, देवता आनि दिखाइ देवैं, दैत्य निर्बलकों बांधि लेजावैं, दैत्य मूलभूमितें रहित निर्लक्ष्मी उजाड जैसे हो गए, दैत्यपुरविषे अनीति अकांड उपद्रव आनि हुआ, जैसे कल्पके अंतविषे जीव दुःख पाते हैं, तैसे दैत्य दुःख पावणे लगे ॥ ॥इति श्रीयो० उप० दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब दैत्यपुरीकी दशा भई, तब संपूर्ण जगत्जालका क्रम पालनेहारा जो विष्णु देव है, क्षीरसमुद्रविषे शेषनागकी शय्यापर शयन करनेहारा, सो चतुर्मास वर्षाकालकी निद्रातें जाग्या, बुद्धिके नेत्रोंकरि जगत्की मर्यादाकों विचारत भया, तब देख्या जो पातालविषे प्रल्हाद दैत्य समाधिविषे पद्मासन बांधीकरि स्थित भया है, तब शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे धरणेहारा, अरु सर्व देहोंविषे व्यापक है, ऐसा विष्णु देव पद्मासन बांधीकरि विचार करता भया, जो प्रल्हाद आत्मपदविषे स्थित हुआ पुतलीवत् हो गया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि दैत्यतें रहित भई, तब देवता जीतणेकी इच्छातें रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित हो जावैंगे, जब देवता, दैत्योंका विरोध रहता है, तब जीतणेके निमित्त याचना करते हैं, जो दैत्य नष्ट होवैं, तब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होइकरि परमपदकों प्राप्त होवैंगे, जैसे रसतें रहित वल्ली सूकी जाती है, तैसे अभिमान इच्छातें रहित देवता जगत्की औरतें सूकिकरि आत्मपद

कों प्राप्त होवैंगे, जब देवताके समूह शांतिकों प्राप्त भये, तब पृथ्वीविषे यज्ञ तप आदिक जो उत्तम क्रिया हैं, सो सब निष्फल हो जावैंगी, न कोउ करैगा, न किसीकों प्राप्त होवैगा, जब पृथ्वी लोकतें शुभ क्रिया नष्ट भई, तब लोक भी नष्ट हो जावैगा, अकाड प्रलय प्रसंग होवैगा, सब मर्यादा क्रम जगत्का नष्ट हो जावैगा, जैसे धूपकरि बर्फ नष्ट होता है, तैसे जगत्क्रम सब नष्ट होवैगा, इसकों नष्ट हुएतें भी मुझकों कछु नहीं, परंतु मैंनें अपणी लीला रची है, सो सब नष्ट हो जावैगी, तब मैं भी इस शरीरकों त्यागिकरि परमपदविषे स्थित होउंगा, अकांडही जगत् उपशमकों प्राप्त होवैगा, तातें इसविषे कल्याण नहीं देखता, जो दैत्योंके उद्वेगतें रहित देवता भी शांत हो जावैगा, तप क्रिया नष्ट हो जावैगी, जीव दुःखी होइकरि नष्ट हो जावैगा, मैं तातें जगत्कर्मकों स्थापन करौं, जो परमेश्वरकी नीति इसी प्रकार है, अब रसातलकों जाउं, अरु जगत्की मर्यादा ज्यौंकी त्यौं स्थापन करौं, जो प्रल्हादतें इतर पातालका मैं राजा करौं, तौ वह देवताका शत्रु होवैगा, तातें ऐसे न करौं, प्रल्हादकी जो देह है, सो अंतका जन्म है, परम पावन देह है, अरु कल्पपर्यंत रहैगी, यह ईश्वरकी नीति है, सो ज्यौंकी त्यौं है, तातें मैं जाइकरि दैत्येंद्र प्रल्हादकों जगाउं जो जागिकरि जीवन्मुक्त हुआ दैत्योंका राज्य करै, जैसे मणि मलतें रहित प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तैसे प्रल्हाद भी इच्छातें रहित होइकरि प्रवर्त्तै, इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्योंसंयुक्त रहैगी, अरु परस्पर इनका द्वेष न होवैगा, मेरी क्रीडा लीला इच्छा होवैगी, यद्यपि सृष्टिका होणा न होणा मुझकों तुल्य है, तौ भी कछु जो नीति है, सो जैसे स्थित है, तैसेही रहै, जो वस्तु भावविषे तुल्य होवै, नाशविषे अरु स्थितिविषे तिसका प्रयत्न करणा कुबुद्धि है, सो जैसे आकाशके हननका यत्न करियें तैसे है, तातें मैं पातालकों जाउं, अरु प्रल्हादकों जगाउं, जगत्की मर्यादा स्थापन करौं, जो नीति है, तिसकों अपणी लीलाकरि प्रतिपादन करौं, दैत्यपुरीविषे प्राप्त होइकरि तिसकों जगाउं, अरु उसीकों अपणे प्रकृति आचारविषे जोडि

आवौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवान् चित्तविवेको नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार चितविकरि सर्वात्मा जो विष्णु देव हैं, अपणे परिवारसहित क्षीरसमुद्रतें चले, जैसे मेघघटा एकत्र होइकरि चलै, तैसे आइकरि प्रल्हादके नगरकों प्राप्त भए, कैसा नगर है, मानौ दूसरा इंद्रलोक है, मंदिरविषे प्रल्हादकों विष्णुजी देखते भए, अरु जो निकट दैत्य थे सो विष्णुजीकों दूरतें देखिकरि भाजि गए, जैसे सूर्यतें उलूकादिक भाजि जावहीं, तब जो मुख्य दैत्य थे, तिनसाथ दैत्यपुरीविषे विष्णुजी प्रवेश करते भये, जैसे तारासंयुक्त चंद्रमा आकाशविषे प्रवेश करता है, तैसे विष्णुजी गरुडपर आरूढ हुआ लक्ष्मी साथ चमर करती और ऋषि देव अनेक आते भये, विष्णुजी प्रल्हादके गृह आते भये, अरु आतेही विष्णुजी कहते भये ॥ हे महात्मा पुरुष, जाग जाग, ऐसे कहीकरि पांचजन्य शंखकों बजावत भये, महाशब्द भया, बहुरि प्रल्दादके श्रवणोंसाथ लगाया, कैसा शब्द है, जो विष्णुजीके प्राणोंतें जिसका फुरणा है, जैसे प्रलयकालविषे एकठा मेघका शब्द होवै, तैसे बडे शब्दकों सुणिकरि दैत्य पृथ्वीपर गिरगिर पडे, भयभीत होइकरि अरु शनैःशनैः दैत्येंद्रकों जगाया, जैसे कटकमंजरी मेघकरि प्रफुल्लित होती हैं, तैसे विष्णुजीनें जगाया, प्राणशक्ति जो ब्रह्मरंध्रविषे थी, तहांतें विष्णुजीनें उठाइ, तब शरीरविषे प्रवेश करी गई, जैसे सूर्यके उदय हुएतें सूर्यकी प्रभा बनविषे प्रवेश कर जाती है, तैसे नव द्वारोंविषे प्रवेश करत भई, तब प्राणरूपी दर्पणविषे चित्तसंवित् प्रतिबिंबित होइकरि चैतन्यमुखत्व हुई, अरु मनभावकों प्राप्त भई, जैसे प्रातःकालविषे कमल खिली आते हैं, तैसे नेत्र प्रफुल्लित हो आए, प्राण अरु अपान नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे, जैसे वायुकरि कमल स्फुरणे लगते हैं, तैसे मन अरु प्राणशक्ति करिके अंग फुरणे लगे, अरु जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे, तब जाग्या, अरु जानत भया जो मुझकों विष्णु भगवाननें जगाया है, जैसे मेघका शब्द सुणिकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न भया, मनविषे दृढ स्मृति हो आई, तब त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुदेव कहता भया, जैसे पूर्व

कमलोद्भव ब्रह्माकों कहा था, तैसे प्रल्हादकों कहता भया ॥ हे साधु ! तूंमहालक्ष्मी अपणीका स्मरण कर, जो तूं कवन है, समयविना देहके त्यागणेकी इच्छा काहेकों करी थी, ग्रहणत्यागके संकल्पतें रहित पुरुष हैं, तिनकों भावअभावके होणेविषे क्या प्रयोजन है, उठिकरि अपणे आचारविषे सावधान होहु, यह तेरा शरीर कल्पपर्यंत रहैगा, नष्ट नहीं होवैगा, यह नीतिकों ज्यौंकी त्यौं जानते हैं, हे आनंदित ! तूं जीवन्मुक्त हुआ राज्यविषे स्थित होहु, क्षीणमन गतउद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहैगा, बहुरि कल्पके अंतविषे तूं शरीर त्यागैगा, त्यागिकरि अपणी महिमाविषे स्थित होवैगा, जैसे घटके फुटेतें घटाकाश महाकाशकों प्राप्त होता है, अब तूं निर्मल दृष्टिकों प्राप्त भया है, अरु लोकोंका तुझनें परावर देख्या है, अब तूं जीवन्मुक्त विलासी भया है ॥ हे साधो ! द्वादश सूर्य तौ उदय नहीं भए हैं, जो प्रलयकालविषे तपते हैं, अब तूं क्यों शरीर त्यागता है ! उन्मत्त पवन तौ चल्या नहीं, जो त्रिलोकीकी भस्मकों उडावनेहारा है, अरु देवताके विमान तिसकरि गिरे नहीं, तूं क्यौं व्यर्थ शरीरकों त्यागता है ! सब लोकोंके शरीर सूके वृक्षकी मंजरीवत् नहीं सूके, पुष्कर मेघ अरु उह विजली फुरणे लगी नहीं, जगत्विषे तूं क्यौं व्यर्थ शरीर त्यागता है ! पर्वत तौ युद्धकरि परस्पर टहकणे लगे नहीं, अबलग मैं भूतोंकों खैंचणें लगा नहीं, अब लोकोंविषे विचरता हौं, यह अर्थ है, यह मैं हौं, यह पर्वत है, यह भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तूं देहकों मत त्याग, देहकों धारे रहौ ॥ हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोगकरि शिथिल भया है, अर्थ यह जो देहविषे आत्म अभिमान है, जो मैं अरु मम तिसकरि व्याकुल रहता है, दुःखोंकरि जीर्ण होता है, तिसकों मरणा शोभता है, जो मैं कृश हौं, दुःखी मूढ हौं, अनात्मा अभिमानका दृढ निश्चय है, यह भावना जिसके अंतर है, तिसकों मरण श्रेष्ठ है, जिसकों तृष्णा जलावती है, हृदयविषे संसार भावना जीर्ण करती है, जैसे पुरातन गृहकों चुवा जीर्ण करता है, जिसके मनरूपी वनविषे चित्तरूपी लता जो दुःखसुखरूपी पुष्पोंकरि प्रफुल्लित

है, अरु उदय होती है, तिसकों मरण श्रेष्ठ है, जो पुरुष अपणे देहविषे आधि व्याधि दुःखोंकरि जलता है, अरु कामक्रोधरूपी सर्प जिसके अंतर फुरते हैं, देहरूपी सूका वृक्ष निष्फल है, अरु चित्त चंचल है, यह देह त्यागणेकों लोकविषे मरणा कहते हैं, स्वरूपकरि नाश किसीका नहीं होता, ज्ञानीका क्या अज्ञानीका क्या? हे साधो ! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनतें उपरांत नहीं होती, ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है, जिसका अंतर शीतल रागद्वेषतें रहित हुआ है, अरु दृश्यवर्गकों साक्षीभूत होइकरि देखता है, तिसका जीणा श्रेष्ठ है, जो पुरुष सम्यक् ज्ञानकरि हेयोपादेयतें रहित है, चेतनतत्त्वविषे तद्रूप चित्त भया है अरु संकल्पमलतें रहित चित्तकों आत्मपदविषे जोड्या है, जिस पुरुषकों जगत्के पदार्थ इष्ट अनिष्ट समान भासते हैं, शांत चित्त हुआ लीलावत् जगत्के कार्यकों करता है, ऐसा जो वासनातें रहित पुरुष है, अरु इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेष नहीं करता, अरु ग्रहणत्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती, अरु जिसके श्रवण कियेतें अरु दर्शन कियेतें औरोंकों आनंद उपजता है, तिसका जीवना शोभता है, जिसके उदय हुएतें जीवोंके हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं, तिसका चिर जीवणा प्रकाशवान् शोभता है, उह पूर्णमासीके चंद्रमावत् सफल प्रकाशता है, और नीच नहीं शोभते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादोपाख्याने नारायणवनोपन्यासयोगो नाम एकोनचत्वारिंशातितमः सर्गः ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे साधो ! यह जो देहसंग दृष्ट आती है, तिसका नाम जीणा कहते हैं अरु इस देहका त्याग करी अवर देहविषे प्राप्त होणा तिसका नाम मरणा कहते हैं ॥ हे बुद्धिवान् ! इन दोनों पक्षोंतें अब तूं मुक्त है, तुझकों मरणा क्या, अरु जीना क्या, दोनों भ्रममात्र हैं, इस अर्थके दिखावणे निमित्त में तुझकों मरणा अरु जीवणा कहा है, जो गुणवानोंका जीणा श्रेष्ठ है, अरु मूढोंका मरणा श्रेष्ठ है, अरु तूं न जीता है, न मरैगा, देहके होते भी तूं विदेह है, आकाशकी नांई अंग है, जैसे आकाशविषे वायु नित्य चल

ता है; परंतु आकाश तिसतें निर्लेप रहता है, तैसे तूं देहविषे निर्लेप रहैगा, देह इंद्रियां मन आदिककी क्रिया सब तुझकरि होती हैं, सबका कर्त्ता सत्ता देणेहारा तूंही है, अरु स्वरूपकरि सदा अकर्त्ता है, जैसे वृक्ष की उंचाईका कारण आकाश है, तैसे तेरेविषे कर्त्तव्य हैं, तूं अब जाग्या है, वस्तुकों ज्योंकी त्यों जानी है, तूं अस्ति नास्ति सर्वका आत्मा है, यह परिच्छिन्नरूप जो देह है, सो अज्ञानीका निश्चय है, यह केवल दुःखोंका कारण है, अरु तूं सर्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है, तुझकों देह अदेह क्या, ग्रहण क्या, अरु त्याग क्या! तत्त्वदर्शी जो पुरुष हैं, तिनका भाव पदार्थ उदय होवै, अथवा लीन होवै, प्रलयकालका पवन चलै, तौ भी चलाय नहीं शकता, भावअभावतें तिसका मन रहित है, जो पर्वत उपर पर्वत पडै, अरु चूर्ण होवै, अरु कल्पके अग्निविषे जलणे लगै, तौ भी ज्ञानवान् अपणे आपविषे स्थित है, चलायमान नहीं होता, सब भूत स्थित होवैं, अथवा एकठे नष्ट हो जावैं, अथवा वृद्ध होवैं, उह सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु इस देहके नष्ट भएतें नाश नहीं होता, विरोधी हुएतें नहीं प्राप्त होता, इस देहविषे जो स्थित परमेश्वर आत्मा है, सो मैं हौं, अरु अनात्मा भ्रम नष्ट हो गया है, ग्रहण त्याग यह मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती, जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है, तिसका संकल्पभ्रम नष्ट हो जाता है, जो यह मैं हौं, यह करौंगा, यह त्याग किया है, यह ग्रहण किया है, इत्यादिक भ्रम नष्ट हो जाता है, जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो सब क्रिया करता भी अकर्त्तापदकों प्राप्त होता है, सर्व अर्थोंविषे अकर्त्ता अभोक्ता रहता है, किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत भया, तब आत्मपद शेष रहता है, यह निश्चय करी दृढताकों बुद्धिवान् मुक्त कहते हैं, प्रबुद्ध पुरुष जो हैं, सो चिन्मात्र स्वरूप हैं, सर्वकों अपणे वश करिके स्थित हैं, ग्रहण किसका करैं, त्याग किसका करैं, ग्राह्य अरु ग्राहक शब्दभाव अविद्या है, देह इंद्रियांकरि होता है, सो ग्रहण करणा क्या, अरु त्याग करणा क्या, जब ग्राह्यग्राहकभाव हृदयतें दूर हुआ, इ

सीका नाम मुक्त है, तिसकों ऐसी स्थिति आनि उदय होती है, जो परमार्थसत्ताविषे सदा स्थित रहता है, सो पुरुषोंविषे पुरुषोत्तम सुषुप्तिकी नांई स्थित है, उसके अंगोंकी चेष्टा करता बोधकों प्राप्त भई है, परम विश्रांतिवान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत्‌विषे स्थित दृष्ट आती है, अर्ध सुषुप्तिकी नांई चेष्टा करता है, सब जगत्‌विषे आत्मा देखता है, आत्माविषयिणी बुद्धिकरि सुखविषे हर्षवान् नहीं होता, दुःखविषे शोकवान् नहीं होता, एकरस आत्मपदविषे स्थित रहता है, नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावकों ग्रहण करता है, जैसे इच्छातें रहित दर्पण प्रतिबिंबकों ग्रहण करता है, तैसे भली बुरी भावना तिसकों स्पर्श नहीं करती, तिनकों आत्मपदविषे जाग्रत है, अरु संसारकी औरतें सोए हैं, सो पुरुष सुशुप्तिरूप हैं, जैसे बालक पालनेविषे सोया हुआ स्वाभाविक अंगकों हलाता है, तैसे उनका हृदय सुषुप्तिरूप है, अरु व्यवहार करते हैं ॥ हे पुत्र! तूं अजात परमपदकों प्राप्त भया है, गुणवान् हुआ, तूं एक दिन ब्रह्माका इस देहकों भोगैगा, इस राज्यलक्ष्मीकों भोगिकरि बहुरि अच्युत परमपदकों प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादबोधो नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः॥४०॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जगत्‌रूपी रत्नोंका डबा, अद्‌भुत दर्शन है जिसका, सो विष्णु देवनें शीतल वाणीकरि जब इस प्रकार कहा, तब प्रल्हाद नेत्रों खोलीकरि धैर्यसहित कोमल वचन मननभावकों ग्रहण करी देख्या है, अरु चर्मदृष्टिकरि बाह्य देख्या है, बडा कल्याण हुआ है, परमेश्वर अपणा आप स्वरूप अनंत आत्मा है, सर्व संकल्पतें रहित आकाशवत् निर्मल है, अब मुझकों न शोक है, न मोह है, न वैराग्यकरि देहत्यागकी चिंता है, जो कछु कार्य भयदायक होता है, सो एक आत्माके विद्यमान शोक कहां, अरु नाश कहां, देहरूप संसार कहां, संसारकी स्थिति कहां, अरु भय कहां? अरु अभयता कहां ? मैं यथा इच्छित अपणे आपकरि आपविषे स्थित हों, इस प्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप केवल पावनविषे स्थित हों, संसारबंधनकों त्यागि

करि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं, तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहता है, अरु देहके भावविषे सुख मानता है, अभावविषे दुःखी होता है, यह चिंतारूपी विषकी पंक्ति मूढोंकों लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करणे योग्य है, यह त्यागणे योग्य है, इस प्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, उह भिन्न है, यह अज्ञान करिके अंधवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंतें रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करियें, यह ग्रहण करियें, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानिके अंतर होता है, ज्ञानवान्के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता ॥ हे कमलनयन ! जो सर्व तूंही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभावकल्पना कहां है, यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्विषे ग्रहणत्याग किसका करियें, केवल अपणे स्वभावकरि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिवान् हुआ था, अब भाव अभाव जगत्के पदार्थोंतें मुक्त भया हौं, हेयोपादेयतें रहित आत्मतत्त्व मुझकों भासता है, समभावकों प्राप्त भया हौं, अब मुझकों संशय कछु नहीं रहा, जो कछु करता हौं, सो आत्माकरि करता हौं, त्रिलोकीविषे तबलग तूं पूजणे योग्य है, जबलग यह उन्मत्त नहीं भया, तातें पूजन करता हौं, आदरसंयुक्त तुम ग्रहण करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दैत्यराज कहीकरि क्षीरसमुद्रविषे शयन करनेहारे विष्णुकों श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसों पूजत भया, बहुरि शंख चक्र गदा पद्म आदिक शस्त्रका पूजन करत भया, बहुरि गरुडकी पूजा करत भया, बहुरि देवता विद्याधरकी पूजा करी, इस प्रकार भगवान्कों परिवारसंयुक्त पूजत भया, अंतर आत्मस्वरूपकी अरु बाहिर विष्णु देवकी मूर्तिका पूजन किया, तब लक्ष्मीपति कहत भए ॥ ॥ श्री भगवानुवाच ॥ हे दैत्येश्वर! तूं ऊठिकरि सिंहासनपर बैठ, मैं तुझकों अपणे हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख व

जावता हौं, तिसका शब्द सुणीकरि सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि विष्णुजीनें दैत्यकों सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे, तैसे बैठाइकरि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिकका तीर्थोंका जल मगाया, बहुरि पांचजन्य शंख बजाया; तिसके शब्द करि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आए, सर्वात्म पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबकों खैंची ले आये, पवनगण देवगण सब स्तुती करत भए, प्रल्हादकों इस प्रकार अभिषेक देइकरि मधुसूदन कहत भया ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे निष्पाप! जबलग सुमेरुके धरणेहारी पृथ्वी है, अरु सूर्यचंद्रमाका मंडल है, तबलग तूं अखंडित गुणवान् राज्य करी इष्टआनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधतें रहित होइकरि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझकों पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसविषे स्थित हुए जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे हर्षशोकतें रहित होइकरि विचरौ, स्वर्ग प्राप्त होवै, अथवा नरक प्राप्त होवै, तूं उद्वेगतें रहित होइकरि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवै, तैसे होवै, तैसेही स्थित होहु, हेयोपादेयतें रहित हुआ तूं बंधमान न होवैगा, संसारकी स्थिति तुझनें सब देखी है, अरु सबकों जानता है, अवर मैं तुझकों क्या उपदेश करौं, तूं रागदोषतें रहित होइकरि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरनीपर न पडैगा, अर्थ यह जो देवतासाथ विरोध न होवैगा, आजतें लेकरि देवता अरु दैत्योंका संग्राम गया, जैसे मंदराचलतें रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयतें दूरि भया है, सदा प्रकाश स्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासकों राज्यलक्ष्मीकरि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादाभिषेको नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि पुंडरीकाक्ष विष्णु परिवारसंयुक्त चले, मानौ दूसरी संसारकी रचना दैत्यमंदिरतें चली है, ता पाछे प्रल्हादनें पुष्पांजलि दीनि, क्रम करिके क्षीरसमुद्रकों प्राप्त

भए, देवताकों बिदा करिके आप शेषनागके आसनपरि स्थित भए, जैसे श्वेत कमलपर भंवरा बैठे, तैसे बैठीकरि इंद्रकों सब देवतासंयुक्त सबविषे स्थित किए, अरु पाताल लोकविषे दैत्येश्वरकों बैठाया, तब आप विगतज्वर हुआ, जो सृष्टिकी स्थितिविषे जो चिंतना थी, सो दूर हो गई, देवता अरु दैत्यका विरोध रहता था, सो नष्ट भया, सब शांतिकों प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! यह दृष्टि संपूर्ण मल अज्ञानके नाश करणेहारी है, जो प्रल्हादके बोधकी प्राप्तिकी अवस्था मैंनें तुझकों कही है, सो कैसी अवस्था है, चंद्रमाके मंडलवत् शीतल है, जो मनुष्यलोकविषे बडा पापी होवै, अरु इसकों बिचारै, तब उह भी शीघ्रही परमपदकों प्राप्त होवै, अवर जो पापोंतें रहित है, तिसकी क्या वार्ता कहीयें, सम्यक् विचार करिके पाप नष्ट हो जाता है, जो इन वाक्योंके विचारकरि सो कवन है, जो परमपदकों प्राप्त न होवै ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूप जो पाप है, सो इसके विचारणेकरि नष्ट हो जाता है, पापोंका कारण जो अज्ञान है, तिसका नाश करणेहारा यह विचार है, तातें विचारका त्याग कदाचित् न करौ, यह जो प्रल्हादकी सिद्धता कही है, इसकों जो मनुष्य विचारै, तिसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! प्रल्हादका मन तौ परमपदविषे प्रणमी गया था, पांचजन्य शब्द करिके तिसकों कैसे जगाया ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निष्पाप रामजी ! लोकविषे मुक्ति दो प्रकारकी हैं, एक सदेह अरु एक विदेह, तिनका भिन्न भिन्न विभाग सुण, जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिकोंतें असंसक्त है, ग्रहणत्यागकी जिसकेविषे ईषणा नहीं, निरहंकार हुआ चेष्टा करता है, तिसकों तूं सदेहमुक्त जाण, अरु देहादिक सब नष्ट हो जावै बहुरि जन्मकों धरै नहीं, तिसकों विदेहमुक्ति जाण, तिस पदकों प्राप्त होता है, जो अदृश्यरूप है, अरु अज्ञानीकी वासना कच्चे बीजकी नाई है, जन्मरूपी अंकुरकों प्राप्त करती है, अरु ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूने बीजकी नांई जन्मरूपी अंकुरतें रहित होती है, अरु विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्ट नहीं आता, जीवन्मुक्त पु

रुषके हृदयविषे शुद्ध वासना होती है, पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यानमें है, अरु संसारकी औरतें सुषुप्तिकी नांई शांतरूप है, सहस्र वर्षका अंत हो जावै, अरु शुद्ध वासनाका बीज हृदयविषे होवै, तौ उह पुरुष समाधितें जागैगा, सो जीवन्मुक्त है, तातें प्रल्हादके अंतर शुद्ध वासना थी, तिसकरि पांचजन्य शंखके शब्दसों जागि आया, अरु विष्णु सब भूतोंका आत्मा है, जैसे जिसकी इच्छा फुरती है, तैसेही तत्काल होता है, सर्वज्ञ सबका कारण है, जब विष्णु चिंतना करै तब प्रल्हाद जाग्या, आप अकारण है, कोउ इसका कारण नहीं, यह सब भूतोंका कारण है, सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषनें यह विष्णुवपु धार्या है, आत्माके देखणेकरि माधव विष्णुका दर्शन होता है, अरु विष्णुकी आराधनाकरि शीघ्रही आत्माका दर्शन होता है, आत्माके देखणेनिमित्त तुम भी इसी दृष्टिकों आश्रय करौ, तूं विराटरूप है, इसी दृष्टिकरि शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, जो निरंतर आत्मपद है, यह वर्षाकालकी नदीवत् संसार असार बादर है, सो विचाररूपी सूर्यके देखेविना जडताकों दिखावता है, विष्णुरूप जो आत्मा है, तिसकी प्रसन्नतातें बुद्धिवान्कों यह भास्वररूप माया नहीं वेधती, जैसे यक्षमाया यक्षमंत्रवालेकों नहीं वेधी शकती, तैसे आत्माकी इच्छातें यह संसार माया घनताकों प्राप्त होती है, अरु आत्माकी इच्छाकरि निवृत्त होती है, यह संसारमाया ईश्वरकी इच्छासाथ वृद्ध होती है, जैसे अग्निकी ज्वाला वायुकरि वृद्ध होती है, अरु वायुहीकरि नष्ट होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादव्यवस्थावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् सब धर्मोंके वेत्ता ! तुमारे वचन परम शुद्ध कल्याणस्वरूप हैं, तिनकों श्रवणकरि में आनंदमान भया हौं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि औषधि पुष्ट होती हैं, तुमारे वचन श्रवणकी जिसकों वांछा है, सो पुरुष जैसे पुष्पोंकी मालाकरि सुंदर छाती शोभती है, तैसे शोभता है, कैसे वचन हैं, परम पावन अरु कोमल हैं ॥

हे गुरु! तुम कहते हौ, सब कार्य अपणे पुरुषप्रयत्नकरि सिद्ध होता है, जो ऐसे है तौ प्रल्हाद माधवके वरविना क्यौं जागता भया, जब विष्णुनें वर दिया, तब ज्ञान जानता भया॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे राघव! जो कछु प्रल्हादकों प्राप्त भया है, सो महात्मा पुरुषोंकों अपणे पुरुषार्थकरि प्राप्त भया है, पुरुषार्थविना कछु नहीं प्राप्त होता, काहेतें जो जैसे तिलों अरु तेलविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु विष्णुविषे भेद कछु नहीं, जो विष्णु है, सो आत्मा है, अरु आत्मा है, सो विष्णु है, विष्णु अरु आत्मा दोनों एक वस्तुके नाम हैं, जैसे विटप अरु पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं तैसे प्रल्हादनें प्रथम अपणे आपकरि अपणी प्रेमशक्तिकों विष्णुभक्तिविषे जोडी, सो आत्मशक्तिकरि जोडी हुई आत्मातें आपही वर पाता भया, अरु आपही विचारकरि अपणे मनकों जीत्या, यह कदाचित् आत्माविषे आपही अपणी शक्तिकरि जागता है, अथवा विष्णुभक्तिकरि जागता है॥ हे रामजी! चिरपर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ, तातें विचारतें रहितकों विष्णु भी ज्ञान देणेकों समर्थ न भया, आत्माके साक्षात्कारविषे मुख्य कारण अपणे पुरुषार्थतें उपज्या विचार है, अरु गौण कारण वर आदिक हैं, तातें तूं मुख्य कारणकों आश्रय कर, प्रथम पांच इंद्रियांकों वश कर, चित्तकों आत्मविचारविषे जोड, यह अभ्यास कर, प्रथम पांच इंद्रियांकों वश कर, जो कछु किसीकूं कदाचित् प्राप्त होता है, सो अपणे पुरुषार्थकरि होता है, पुरुषार्थविना नहीं होता, अपणे पुरुषार्थप्रयत्नकरि इंद्रियांरूपी जो पर्वत हैं, तिनतें उल्लंघन होवै, बहुरि संसारसमुद्रकों तरि जावै, तब परम पदकी प्राप्ति होवै, जो पुरुष प्रयत्नविना जनार्दन दिखता होवै, तौ मृग पक्षीगणोंकों क्यौं दर्शन देइकरि उद्धार करी नहीं जाता, जो गुरु अपणे पुरुषार्थविना उद्धार करते होवैं, तौ अज्ञानी अविचारि उंट बेल आदिक पशुकों क्यौं नहीं करी जाते; तातें न विष्णुकरि, न गुरुकरि, न किसी अवरकरि, पावणेकी इच्छा बुद्धिवान् करते हैं, अपणे मनके स्वस्थ कियेविना परम सिद्धताकी प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते, वैरा

ग्य अरु अभ्यासकरि जिननें इंद्रियांरूपी शत्रु वश किये हैं, सो अपणे आपकरि तिसकों पाते हैं, अवर किसीकरि नहीं पाता ॥ हे रामजी ! आपकरि अपणी आराधना करहु, आपकरि अपणी अर्चना करहु, आपकरि आपकों देखहु, आपकरि आपविषे स्थित होहु, शास्त्रविचारतें रहित मूढ अवर जो हैं, तिनके निमित्त वैष्णवभक्ति कल्पी है, सो प्रवृत्तिकी स्थितिनिमित्त प्रथम सुख जो अभ्यास यत्नका कहा है, तिसतें जो रहित पुरुष हैं, तिनकों गौण पूजाका क्रम कहा है, काहेतें जो इंद्रियांकों वश नहीं किया, अरु जिननें इंद्रियांकों वश किया, तिनकों भेद पूजासाथ क्या प्रयोजन है, विचार उपशमविना विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती, अरु जब विचार उपशमसंयुक्त भया, तब कमल पाषाणसाथ क्या प्रयोजन है, तातें विचार संयुक्त होइकरि आत्माका आराधन करहु, तिसकी सिद्धतातें तूं सिद्ध होवैगा, तिसकों सिद्ध नहीं किया,तौ वनका गर्दभ है, जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं सो अपणे चित्तके आगे क्यों नहीं करते, सब जीवोंके अंतर विष्णुजी स्थित हैं, तिसकों त्यागिकरि जो बाह्य विष्णुपरायण हो जाते हैं, सो बुद्धिवान् नहीं, हृदयगुफाविषे जो चेतनतत्त्व स्थित है, सो ईश्वरका मुख्य सनातन वपु है, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हस्तविषे हैं, सो आत्माका गौण वपु है, जो मुख्यकों त्यागिकरि गौणकी ओर धावते हैं, सो विद्यमान अमृतकों त्यागिकरि जो साधनकरि सिद्ध होवै, तिसकी प्राप्तिनिमित्त यत्न करते हैं ॥ हे रामजी ! मनरूपी हस्तीकों जिस पुरुषनें आत्मविवेकसाथ वश नहीं किया, तिस अविवेकी चित्तकों राग दोष ठहरणे नहीं देते, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथविषे हैं, तिस ईश्वरकी जो अर्चना करते हैं, सो कष्ट तपस्याकरि पूजन करते हैं, तिनका चित्त समय पाइकरि निर्मल भाव अभ्यास वैराग्यकों प्राप्त होता है, अरु नित्य अभ्यासकरि भी चित्त निर्मल होता है,तब आत्मफलकों प्राप्त होता है,चित्त निर्मलविना आत्मा फलकों प्राप्त नहीं होता, जब चित्त निर्मल हुआ, तब वैराग्य अभ्यासवान् होइकरि आत्मफलका भोगी होता है, जे

से बीज बोया समयकरि फल देता है, तैसे क्रमकरि फल होता है ॥ हे रामजी! विष्णुपूजाका जो क्रम है, सो भी निमित्तमात्र मधुसूदननें वर कहे हैं, अरु अमित प्रकाश है जिसका तिस आत्मतत्त्वतें अभ्यासरूपी शाखाकरि फल प्राप्त होता है, अरुसबतें उत्तम जो परम संपदाका अर्थ है, सो अपणे मनके निग्रहकरि सिद्ध होता है, अपणे मनका निग्रह करणा बीज है, सो चेतनरूपी क्षेत्रतें प्रफुलित होइकरि फलदायक होता है, संपूर्ण पृथ्वीकी निधि अरु संपूर्ण शिला बडी बडी मणिकी होवहीं, तौ भी मनके निग्रह समान नहीं, जैसा दुःखका नाशकर्त्ता बडा पदार्थ मनका निग्रह है, तैसा अवर कोउ नहीं, तबलग यह जीव अनेक जन्म पाता है, जबलग उपशमकों नहीं प्राप्त भया, मनरूपी मत्स्य संसारसमुद्रविषे भ्रमता है॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु महेशकों चिरकालपर्यंत पूजता रहे, अरु मन उपशम विचारसंयुक्त न भया, तौ जो देवता कृपाल होवैं, तौ भी इसकों संसारसमुद्रतें तराइ नहीं शकते, यह जो भासर आकार जगत्के पदार्थ भासते हैं, तिनकों इंद्रियोंकरि त्याग करियें तब जन्मके अभावका कारण जाणियें, विषयोंकी चिंतवनातें रहित होइकरि निरामय सब दुःखोंतें रहित आत्मसुख है, तिसविषे स्थित होहु; जो सत्तामात्र तत्त्व है, अरु सबका साररूप है, तिसका स्वाद लेइकरि मनरूपी नदीके पारकों प्राप्त होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रल्हादविश्रांतिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो संसारूप नाम्नी माया है, सो अनंत है, औ किसी प्रकार इसका अंत नहीं आता, जब चित्त वश होवै, तब यह निवृत्त हो जाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती, जेता कछु जगत् देखणे सुनणेविषे आता है, सो सब मायामात्र है, सो मायारूप जगत्के भ्रमकरि भासता है, इसपर पूर्व इतिहास हुआ है, सो तूं सुन ॥ हे रामजी! इस पृथ्वीपर एक कोशल नाम देश है, सो कैसा है, जो रत्नोंकरि पूर्ण है, जैसे सुमेरु पर्वत रत्नोंकरि पूर्ण है तैसे उह रत्नोंकरि पूर्ण है, जाति जातिविषे जो उत्तम पदार्थ हैं, सो सब तिस देशविषे पाइते थे, तहां एक गाधि नाम ब्राह्मण होता भया,

सो कैसा था, वेदविद्‌विषे प्रवीण माना वेदकी मूर्ति था, अरु बालक अवस्थातें लेइकरि वैराग्य आदिक गुणोंसहित शोभता भया, जैसे प्रकाशकरि भुवन शोभता है, तैसे शोभता भया, एक कालमें कछु कार्य मनविषे धारि तप करनेनिमित्त वनकों गया, एक वनविषे कमलोंकरि पूर्ण ताल देखता भया, तिसविषे कंठपर्यंत जलमें स्थित होइकरि तप करने लगा, अपणा कार्य मनविषे धारिकरि विष्णुके ध्यानमें खडा हो रहा, अष्टमासपर्यंत दिन रात्रि जलमें खडा रहा, तिसके दृढ तपकों देखिकरि जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब जहां ब्राह्मण तप करता था, तहां आनि प्राप्त भये, जैसे ज्येष्ठआषाढकी तपी पृथ्वीपर मेघ आता है, तैसे आइकरि विष्णु कहता भया ॥ हे ब्राह्मण! जलतें बाहिर निकसी आवहु, अरु जो कछु वांछित फल है, सो माग, तब गाधिनें कहा ॥ हे भगवन्! असंख्य जीवोंका हृदय कमल है, तिनके छिद्रविषे तुम भंवरे हौ, अरु त्रिलोकिरूपी कमलोंके तुम तलाव हौ, ऐसे ईश्वर जो तुम हौ, सो मेरा तुमकों नमस्कार है ॥ हे भगवन्! यही इच्छा तुझकों है, जो तुमारी आश्चर्यरूप माया है, जिसकरि यह जगत् रच्या है, किसी प्रकार मैं तिसकों देखौं ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार गाधी ब्राह्मणनें कहा, तब विष्णुनें कहा ॥ हे ब्राह्मण! तूं मायाकों देखैगा, अरु देखीकरि बहुरि त्यागि भी देवैगा, ऐसे कहीकरि विष्णु अंतर्धान हो गया, तब ब्राह्मण वरकों पाइकरि आनंदवान् हुआ, अरु जलतें निकस्या, जैसे निर्धन पुरुष धनकों पाइकरि आनंदमान् होता है, तैसे ब्राह्मण वरकों पाइकरि आनंदमान् भया, अरु चलते बैठते उसकी सूरत विष्णुके वरकी और लागि रहे, जो मैं माया कब देखौंगा, तब एक कालमें तिसी तलावपर स्नान करने लगा, अरु डुबकी दीनी, मनविषे अघमर्षण मंत्रकों जपणे लगा, अघमर्षण कहियें पापोंकों नाश कर्त्ता, तिस मंत्रकों जपते तिसका चित्त विपर्यय होइकरि निकसी गया, तब उसकों कृष्ण मंत्र भूला गया, अरु आपकों बहुरि अपणे ग्रहविषे स्थित देखता भया, बहुरि आपकों मृतक हुआ देख्या जो मैं मृत्यु पाया हौं, अरु सब कुटुंबके लोक रुदन करते हैं, शरीरकी कांति

जाती रही है, जैसे टूटे कमलोंकी शोभा जाती रहती है, तैसे प्राण निकसी गया, जैसे पवनके ठहरेतें वृक्ष अचल हो जाता है, तैसे अंग अचल हो गया, अरु होठ फाटि विरस हो गये, मानौ अपणे जीवणेकों हसते हैं, माता गाधीकों पकडि बैठी है, सब परिवार एकठे हुए हैं, जैसे वृक्षपर पक्षी एकठे आनि होते हैं, जैसे फूलके टूटे जल चलता है, तैसे रुदन करते हैं, तब बांधव लोक कहते भये, अब यह अमंगलरूप है, इसकों जलाइयें, ऐसे कहीकरि जलावणेकों ले चले, चितामें डारिके जलाय दिया, बहुरि अपणे ग्रहमें आइकरि क्रिया कर्म करते भये ॥ हे रामजी ! तिसतें उपरांत ब्राह्मण एक देशविषे चंडाल भया, उन देशविषे एक चंडालोंका ग्राम था, तहां आपकों एक चंडालीके गर्भविषे देखता भया, जो मैं इहां आनि पडा हों, जैसे श्वानकी विष्ठाविषे कृमि होता है, तैसे आपकों प्रवेश किया देखता भया, तब समय पाइकरि गर्भतें बाहार निकस्या, जैसे पक्का फल वृक्षतें गिरता है, तैसे श्याम मूर्ति चंडालीतें निकस्या, अरु बहुत सुंदर बालक जन्म्या, चंडालीकी इससाथ प्रीति भई, बढता जावै, जैसे छोटा वृक्ष बढ जाता है, तैसे द्वादश वर्षका भया, बहुरि षोडश वर्षका भया, तब श्वानसाथ लेकरि वनमें जावै, मृगोंकों मारै, इस प्रकार बहुत स्थानोंमें विचरै, बहुरि विवाह भया, यौवन अवस्थाकों यौवनविषे व्यतीत करता भया, बहुत बडा कुटुंबी भया, पुत्र कलत्र बहुत भये, बहुरि वृद्ध भया शरीर जर्जरीभाव हुआ, तृणोंकी कुटी बनायकरि बाहिर जाय रहा, जैसे मुनीश्वर रहते हैं, उहां दुर्भिक्ष पडी, इसके बांधव क्षुधाकरि मरणे लगे, तब उहातें एकलाही निकस्या बहुतेरे स्थानोंकों लंघता गया, एक क्रांत देश है, तहां जाइ प्राप्त भया, सो सुंदर देशका राजा मृतक भया, अरु यह राजमार्गकों चला जाता था, सो उस राजाका एक बडा हस्ती था, तिसकों मंत्रियोंनें छोड्या था, जो जो कोउ पुरुष इसके मुखकों लगे, तिसकों राजा करियें, तब वह हस्ती चला आवै, इसनें तिसकों देख्या, बहुत सुंदर चरणोंकरि चला आवै, मानौ सुमेरु पर्वत चरणोंकरि चला आता है, जब निकट आया, तब इ

सकों सीसपर चडाय लिया, जैसे सूर्यकों सुमेरु सीसपर बैठा लेवै, तैसे हस्तीनें इस चंडालकों बैठाय लिया, तब नगारे तुरीयां बाजणे लगीयां, अरु बडे शब्द होणे लगे, मानौ प्रलयकालके मेघ गर्जते हैं, अरु भाट आदिक आनि स्तुति करणे लगे, अरु इसके मुखकी शोभा हस्तीपर बैठेतें और हो गई, तब सेनासहित राजा शोभता भया, जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभता है, तैसे शोभता चल्या, अंतःपुरविषे जाय राणियोंमें स्थित भया, सब राणियां सहेलियां इसके निकट आय स्थित भइयां, अरु इसकों मिलनें लगियां, स्नान कराइके नानाप्रकारके हीरे मोती भूषण अरु सुंदर वस्त्र पहिराये, तिसकरि शोभायमान भया, राजा होइकरि राज्य करत भया, सब स्थान अरु सब देशोंविषे इसकी आज्ञा चलणे लगी, सब लोक इसतें भय पावें, बडे तेज अरु बडी लक्ष्मीकरि संपन्न हुआ, अरु तेजवान् होइकरि विचरणे लगा, जैसे वनविषे सिंह विचरता है, इस प्रकार चिरपर्यंत राज्य करता भया, हस्तीपर चढिकरि शिकार खेलै, गवल नाम राजा होइकरि सब देशपर आज्ञा करता भया॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने चंडालीवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशतितमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार लक्ष्मीकों पाइकरि आनंदवान् हुआ, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे शोभता भया, अरु आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया, तब एक समय भूषण वस्त्रोंकों पहरि बैठा है, अरु मनविषे संकल्प आनि फुर्या, जो मुझकों वस्त्र भूषणके पहिरनेकरि क्या ? अरु इनकी सुंदरता क्या है, मैं तौ राजाधिराज अपणे तेजकरि तेजस्वी शोभायमान् हौं॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि भूषण वस्त्र उतारि डारे, शुद्ध श्याम मूर्ति होइकरि स्थित भया, जैसे प्रातःकालविषे तारागणतें रहित श्याम आकाश होता है, तैसे होइकरि वहुरि अपणी चंडाल अवस्थाके वस्त्र पहिरे, एकलाही निकसिकरि बाहिर देवडीविषे जायकरि स्थित भया, जैसे सूर्य आकाश मार्गकों एकला चलता है, तैसे एकला होइकरि राजमार्गकी देवडीविषे जाय

खडा हुआ, तब उन देशके चंडाल जो दुर्भिक्षकरि यह छोडी आया था, तामेंतें बडे चंडाल उस मार्गमें आय निकसे, तिनविषे एक चंडाल तंद्री हाथविषे लेइकरि आता था, तिसनें राजाकों देखिकरि पिछान्या, तब राजाके सन्मुख आया, मानौ श्याम पर्वत चला आता है, अरु कहत भया ॥ हे भाई ! एता काल तूं कहां था, हमकों छोडिकरि इहां आइकरि सुख भोगणे लगा है ॥ हे भाई ! इहांके राजानें तुझकों सुखी किया होवैगा, काहेतें जो तूं गाता भला है, राजाकों राग प्यारा होता है, अरु तूं कोकिलाकी नांई गाता है, इस कारणतें प्रसन्न होइकरि बहुत धन दिया होवैगा, अथवा किसी और धनीनें तुझकों प्रसन्न होइकरि मंदिर धन दिया होवैगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार उह चंडाल मुखतें कहता अरु भुजा पसारता इसकेसन्मुख चला आवै, अरु यह नेत्रों हाथोंसाथ उसकों जनावै, जो तूष्णीं होउ, मुखतें कछु न कहहु, परंतु वे चंडालसमुझे कछु नहीं, सन्मुख होइकरि चला आवै, ज्यौं ज्यौं उह चल्या आवै, त्यौं त्यौं राजाकी कांति घटती जावै, जैसे गडेकरि मारे हुए कमलोंकी कांति घटि जाती है, अरु उपर झरोंखेविषे सहेलीयां देखत भईयां उनोंनें देखिकरि विचार किया, जो राजा चंडाल है, ऐसे विचारकरि महाशोककों प्राप्त भईयां, कहत भईयां, जो हमकों बडा पाप प्राप्त भया है, जो इसके साथ हमनें स्पर्श किया है, अरु भोजन किया है, चिरपर्यंत विचरे हैं, ऐसे शोकवान् होइकरि सबकी कांति नष्ट हो गई, जैसे बर्फ पडनेकरि कमलपंक्तिकी कांति जाती रहती है, जैसे बनकों अग्नि लगणेकरि वृक्षोंकी कांति जाती रहती है, तैसे उनकी कांति जाती रही, शोकवान् होइकरि कष्ट पाइयां, अरु सब नगरवासी भी सुणिकरि शोकवान् भए, अरु हाय हाय शब्द करणे लगे, तब उह चंडाल राजा अपणे अंतःपुरविषे आया, जेते कछु अंतर लोक थे सो तिसकों देखि करके भागे, निकट कोउ न आवै, जैसे पर्वतकों अग्नि लगे, उहांतें मृगपक्षी भाग जावैं, तैसे चंडाल राजाके निकट कोउ न आवै, मंत्री टहलुए स्त्रीयां सब दूरतें भाग जावैं, तब तिस देशविषे जो पंडित बुद्धिवान् थे, तिनोंनें विचार किया जो

बडा अनर्थ भया है, एता काल हम चंडाल राजा करिके जीवे हैं, हमकों बडा पाप लगा है, इस पापका और पुरश्चरण कोउ नहीं, हम सबहीं चिता बनाय अग्निविषे प्रवेश करी जलि मरैंगे, तब यह पाप निवृत्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब यह विचार ब्राह्मण क्षत्रिय लोकोंनें किया, तब तिसके अनंतर चिता बनाइकरि जलणे लगे, पुत्र कलत्र बांधवोंकों छोडिकरि प्रवेश करैं, जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करै, तैसे जलैं अरु जैसे आकाशविषे तारे दृष्ट आवैं, तैसे अनेक चिताका चमत्कार दृष्ट आवैं, अरु धूम्रकरि अंधकार हो रहा, केई मनुष्य धर्मात्मा अपणी इच्छाकरि जलैं, अरु जो अपणी इच्छाकरि न जलैं, तिनकों अवर ले जलावैं, तब चंडाल राजा विचारत भया, जो मैं एकके निमित्त एते नगरवासी जलते हैं, जीना भी तिसका श्रेष्ठ है, जिसतें शोभा उत्पन्न होवै, जिसके जीणेकरि पाप उत्पन्न होवै, तिसकों मरणा श्रेष्ठ है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि उस राजानें भी चिता बनाई, अरु जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, तैसे राजा प्रवेश करता भया, अरु अग्निका तेज शरीरकों लगा, तब गाधीका शरीर जो तलावविषे डुबकी लगाया था, सो कंपायमान हुआ, तब जलतें बाह्य शीस निकास्या, परंतु सावधान न भया ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब सूर्य अस्त भया, सब सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गये, बहुरि रात्र नष्ट भएतें आनि स्थित भए ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राजप्रध्वंसवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशतितमः सर्गः ॥ ४५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एता भ्रम उसनें दो मुहूर्तविषे देख्या, अर्ध घटिपर्यंत बोध कछु न हुआ, तिसतें उपरांत बोधवान् भया, अरु उस संसारभ्रमतें रहित हुआ, जैसे मद्यपानका केफ क्षीण भयेतें बोधवान् होवै, तैसा बोधवान् हुआ, बाहार निकसिकरि विचारने लगा, जो मुझकों कछु भ्रम जैसा हुआ, कहां था उह मेरा गृहविषे मरणा, बहुरि चंडालके गृहविषे जन्म लेणा, बहुरि कुटुंबविषे रहणा, बहुरि राज्य करणा, बडा भ्रम मुझकों भया है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि

बहुरि संध्यादिक कर्म करता भया, इस भ्रमकों बहुरि बहुरि सुमरण करिके आश्चर्यवान् होवै, अरु ऐसे न जानि शकै जो भगवान्का वर पाइकरि मैंनें माया देखि, जब केताक काल व्यतीत भया, तब एक ब्राह्मण दुर्बल जैसा क्षुधार्थी अरु थका हुआ इसके आश्रमपर आया, मानौं ब्रह्माके आश्रमपर दुर्वासा ऋषि आया है, तब गाधीनें उस ब्राह्मणकों आदरसंयुक्त बैठाया, अरु फल फूल एकठे करिके तिसके आगे आनि रखे, जैसे वसंतऋतु करिके फल फूलसाथ वृक्ष पूर्ण होता है, तैसे उसकों पूर्ण किया, अरु केतेक दिन उहां रहा, संध्यादिक कर्म मंत्र जाप एकठे करैं, रात्रिकों पत्रोंकी शय्या बनाइकरि शयन करैं, तब एक रात्रिके समय शय्या पर बैठे चर्चा वार्ता करते थे, तब प्रसंग पाइकरि गाधीनें पूछा, जो हे ब्राह्मण! तेरा शरीर कृश जैसा अरु थका हुआ है, सो क्या कारण है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार गाधीनें ब्राह्मणकों पूछा, तब उसनें कहा ॥ हे साधो! जो कछु तैंनें पूछा है, सो मैं कहता हौं, हम सतवादी हैं, जैसे वृत्तांत हुआ है, सो तूं सुण, एक कालमें देशांतर फिरता फिरता उत्तरदिशाकी ओर गया, तहां क्रांतदेशविषे जाय प्राप्त भया, उहां रहणे लगा, उहांके गृहस्थ भली प्रकार टहल करैं, तिनके भले भोजन वस्त्र करिके प्रसन्न होउं, रस स्वाद करिके मेरा चित्त मोहि गया, तब एक दिन मेरे मुखतें यह शब्द निकस्या, जो इहांके लोक बहुत श्रद्धावान् दयावान् हैं, तब पास जो लोक बैठे थे, सो कहने लगे ॥ हे साधो! आगे इहां दया धर्म बहुत था, अब कछु घटि गया है, तब मैंनें पूछा जो क्यौंकरि घट्या है, सो वृत्तांत कहौ, तब उनहुनें कहा, जो इस देशका राजा मृतक हुआ था, बहुरि राजा एक चंडाल हुआ था, प्रथम किसीनें न जान्या, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, जब उसकी वार्ता प्रगट भई, जो यह चंडाल है, तब देशके रहणेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय थे, सो चिता बणाइ करिके जलि मरे, अनेक जीव इस प्रकार ब्राह्मण आदिक जलि मरे, बहुरि राजा भी जलि मरा, ऐसा पाप इस देशविषे हुआ है, इस कारणतें दया धर्म कछु घटि गया है॥ हे ब्राह्मण! जब इस

प्रकार नगरवासीयोंतें सुण्या, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ, अरु उहांतें चला, जो हाय हाय मैं बडे पापी देशविषे रहा हौं, ऐसे विचारिकरि मैं प्रयागादि तीर्थोंपर चल्या, तीर्थ करिके कृच्छ्र अरु चांद्रायण व्रत राखे, कृष्णपक्षविषे एक एक ग्रास घटावता गया, जब अमावास्या आवै, तब निराहार रहा, बहुरि जब शुक्लपक्ष आवै, तब एक एक ग्रास बढाता गया, पूर्णमासीके चंद्रमाकी कलाकरि बढावणा, अरु कलासाथ घटावणा, इस प्रकार मैंनें तीन कृच्छ्र चांद्रायण किये हैं, उहांतें चल्या तेरे आश्रमपर वृत्त खोल्या है, हे साधो! इसनिमित्त मेरा शरीर कृश अरु निर्बल हुआ है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार ब्राह्मणनें कहा, तब गाधी विस्मयकों प्राप्त भया, जो मैं जानता था, मुझकों भ्रम जैसा हो गया, सो इसनें प्रत्यक्ष वार्ता कही सुनाई, ऐसे विचारिकरि बहुरि पूछा, बहुरि उसनें ऐसे कहा, तब सुनीकरि आश्चर्यवान् हुआ, जब रात्रि व्यतीत भई, अरु सूर्य उदय भया, तब संध्या आदिक कर्म करता भया, उह अतीत रमता रहा, तब एकला होइकरि विचारत भया, जो मैंनें कैसा भ्रम देख्या है, अरु ब्राह्मणनें सत्यकरि देख्या सो कैसे हो गया, तातें अब तिस देशकों चलिकरि देखौं, जहां मुझकों चंडालका शरीर भया है ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचारिकरि मनोराज्यके भ्रमकों देखणे गाधी ब्राह्मण चला, चलता चलता उस देशविषे जाय प्राप्त भया, जैसे उंट कंटकोंकों ढुंढता कंटकोंके वनविषे जाता है, तैसे यह चंडालके स्थानोंकों प्राप्त भया, तब चंडालके स्थान देखता भया, जहां अपणा स्थान था, तिसकों देख्या, अपणे खेति लगावणेका स्थान देखता भया, वाडी कछु खडी है, कछु गिर गई है, अरु पशुके हाड चर्म जो अपणे हाथसों डारे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, देखिकरि आश्चर्यवान् भया ॥ हे देव! यह क्या आश्चर्य है, चित्तका भ्रम मैंनें प्रत्यक्ष देख्या है, जो बालक अवस्थाविषे क्रीडा करणेके स्थान थे सो देखे, अरु भोजनके स्थान, मद्यपानके स्थान, अरु पात्र थे, इत्यादिक जो खानपानके भोगके स्थान थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, अरु महा वैराग्यकों प्राप्त भया, अरु ग्रामवासी मनु

ष्यकों भी पूछता भया, जो कदाचित् कैसे कहैंगे ॥ हे साधो ! इहां एक चंडाल हुआ था, बडे श्याम शरीर वाला तुमकों भी कछु स्मरण है ? ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार ब्राह्मणनें पूछा तब ग्रामवासी कहत भये ॥ हे ब्राह्मण ! इहां एक कंटजल नाम चंडाल होता भया, क्रम करिके बडा हुआ, बहुरि उसका विवाह हुआ, बेटा बेटी परिवारसहित बडा कुटुंबी हुआ, वृद्ध भया, सो दैव संयोगकरि एकलाही निकस्या, जाता जाता क्रांत देशविषे गया, उहांका राजा मृत्यु पाया था, उननें राज्य इसकों दिया, तहां आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया, तब नगरवासीयोंनें सुण्या जो यह चंडाल है, तब बहुत शोकवान् भये, अरु चिता बनाइकरि जलि जलि मरे, इस प्रकार सुणिकरि गाधी बहुत आश्चर्यवान् हुआ, एकसों सुणिकरि अवरसों पूछा, उह भी इस प्रकार कहे, ऐसे वारंवार लोकोंसों पूछता रहे, एक मास उह रहा, बहुरि आगे चल्या; नदियां पहाड देश हिमालय पर्वतकी उत्तर दिशाविषे क्रांतदेशमें जाय प्राप्त भया, जेता कछु स्थानोंका वृत्तांत था, सो सबही देखता भया, जहां सुंदर स्त्रीयां थीयां, जहां चमर झूलते थे तिनकों प्रत्यक्ष देख्या, बहुरि नगरवासियोंतें पूछता भया, जो इहां कोउ चंडाल राजा भी हुआ है, तुमकों कछु स्मरण है, तौ मुझकों कहौ ॥ हे रामजी ! तब नगरवासी कहत भए ॥ हे साधो ! इहांका राजा मृत्यु पाया था, अरु मंत्रीयोंनें हस्ती छोड्या था, जो कोउ मनुष्य हस्तीके सन्मुख आवै, तिसकों राजा करना, जब हस्ती चला, तब तिसके सन्मुख चंडाल आइ निकस्या, तब हस्तीनें चंडालकों सीसपर चडाइ लिया, बहुरि और विचार किसीनें न किया, उसकों राज्यतिलक दिया, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, पाछे जब उसके बांधव आए, अरु तिससाथ चर्चा करने लगे, तब सहेलियों नें उपरसों देख्या, जो यह चंडाल है, ऐसे देखी उनहुनें उसका त्याग किया, बहुरि लोक विचारवान् जो उससाथ चेष्टा करते थे, भाई जाणिकरि सो जलि मरे, अरु उह राजा भी आपकों धिक्कार करी जलि मरा, अष्ट वर्षपर्यंत उह राज्य करता भया, अरु उसकों द्वादश वर्ष मृत्यु पाये व्यतीत भये॥ हे रामजी ! इस प्रका

र श्रवण करिके गाधी ब्राह्मण आश्चर्यकों प्राप्त भया, जो कहां मैं जलविषे स्थित था, अरु कहा एती अवस्थाकों देखता भया, ऐसे विचार करता था, इतनेमैं पूर्वका वृत्तांत स्मरण आया, जो यह आश्चर्य भगवान्की माया है, मैं वर माग्या था, इस मायाकरि एता भ्रम देख्या है, यह आश्चर्य है, जो इहां दो मुहूर्त हैं, अरु उहांतें एता काल मुझकों भास्या है, स्वप्नभ्रमकी नांई अरु सत्यकरि स्थित भया है, सो बडा आश्चर्य है, तातें संशय निवृत्त करनेनिमित्त बहुरि विष्णुजीका ध्यान करौं, जिसकी मायाकरि मैंनें एता भ्रम देख्या है, और कोइ इस संशय निवारणेकों समर्थ नहीं॥ हे रामजी! इस प्रकार विचारिकरि गाधी ब्राह्मण बहुरि पाहाडकी कंदराविषे जाय तप करणे लगा, एक अंजली जलपान करै, औ भोजन कछु न करै, इस प्रकार देढ वर्षपर्यंत तप किया, तब त्रिलोकीका नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि निकट आइकरि प्राप्त भए, अरु कहा॥ हे ब्राह्मण! मेरी मायाकों देखी जो जगत्जालकों रचनेहारी है! अब और क्या इच्छा करता है॥ हे रामजी! जब विष्णु भगवान्नें ऐसे कहा, तब ब्राह्मण कहता भया, जैसे मेघकों देखिकरि पपैया बोलता है, तैसे ब्राह्मण बोलता भया॥गाधिरुवाच॥ हे भगवन्! तेरी माया तौ मैंनें देखी, परंतु एक संशय मुझकों है, जो यह स्वप्न भ्रमकी नांई मैंनें देख्या, इसविषे कालकी विषमता कैसे हुई, जो इहां दो मुहूर्त व्यतीत भए हैं, अरु उहां चिरकाल पर्यंत भ्रमता रहा हौं, अरु तिन झुट पदार्थोंकों जागृतविषे प्रत्यक्ष कैसे देखे॥ ॥श्रीभगवानुवाच॥ हे ब्राह्मण! और कछु नहीं, तेरे चित्तहीका भ्रम है, जिसके चित्तविषे तत्त्वकी अदृष्टता है, तिसकों यह चित्त भ्रम होता है, अरु उह क्या भ्रम था, जेता कछु जगत् प्रत्यक्ष देखता है; सो भी तेरे मनविषे स्थित है, बाहिर पृथ्वी आदिक तत्त्व कोउ नहीं, सब तेरे अंतर स्थित है, जैसे बीजके अंतर फूल फल पत्र हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश जेता कछु पांचभौतिक है, सो सब विस्तार चित्तविषे स्थित है, जैसे वृक्षका विस्तार बीजविषे दृष्ट नहीं आता, जब बोया हुआ उगता है, तब विस्तार दृष्ट आता है, तैसे जब चित्त ज्ञानविषे लीन होता है, तब जगत् नहीं

भासता, अरु जब स्पंदरूप होता है, तब बडे विस्तारसंयुक्त जगत् भासता है ॥ हे ब्राह्मण! जेता कछु जगत् देखता है, सो सब चित्तका भ्रम है, जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है, तैसे एकही चित्त अनेक भ्रमरूप पदार्थकों उत्पन्न करता है ॥ अरु जो चित्त वासनातें रहित है, तिसतें भ्रमरूप पदार्थ कोउ नहीं उपजता, तातें चित्तकों स्थित कर ॥ हे ब्राह्मण! इस चित्तविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो तुझकों चंडाल अवस्थाका अनुभव हुआ है, तौ इसविषे क्या आश्चर्य हुआ? अरु तूं कहता है? जो मैं बडी आश्चर्यरूप माया देखी है, सो उसकोंही माया कहता है, अब जो तुझकों विद्यमान भासता है, सो सबही माया है, जो तुझकों अपणे गृहविषे अनुभव भया था, अरु चंडालके गृहविषे जन्म लिया, कुटुंबी हुआ, अरु राज्य किया, बहुरि चिताविषे जल्या, बहुरि अतिथि ब्राह्मणकों मिल्या, बहुरि जाइकरि सबही स्थान देखे, सो भी माया थी, जैसे एता भ्रम तुझनें मायाकरि देख्या, तैसे इह पसरा भी सब माया है ॥ हे साधो! जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, अरु जैसे मदिरापान करनेवालेकों सब पदार्थ भ्रमते हैं, तैसे इह जगत् भी भ्रमतें भासता है, अरु जैसे नौकापर बैठेकों तटके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है, अरु चित्तके स्थित कियेतें जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, अन्यथा भ्रम निवृत्त न होवैगा, जैसे पत्र फूल फल टास काटणेकरि वृक्ष नाश नहीं होता, जब मूलतें काटियें तब वृक्ष नाश हो जाता है, तैसे जब जगत् भ्रमका मूल चित्तही नष्ट हो जावैगा, तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जावै, सो चित्तका नाश होणा क्या है, जो चित्तकी चैत्यता दृश्यकी और धावती है, सोई जगत्का बीज है, जब यही चैत्यता दृश्यकी और फुरणेतें रहित होवै, तब जगत्भ्रम भी मिटि जावै, अरु जगत्की और फुरणा तब मिटै, जब जगत्कों मायामात्र जानै ॥ हे साधो! यह सब जगत् मायामात्र है, कोउ पदार्थ सत्य नहीं, जैसे उह भ्रम तुझकों मायामात्र भास्या है, तैसे यह भी सब मायामात्र जाण, तातें इस भ्रमकों त्यागिकरि अपणा जो ब्राह्मणका

कर्म है, तिसविषे जाय स्थित होहु ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहिकरि विष्णुदेव उठि खडे हुए, तब गाधि अरु अवर ऋषीश्वर जो उहां थे, सो विष्णुकी पूजा करते भए, पूजा लेइकरि विष्णु क्षीरसमुद्रकों गमन करते भए, तब उह ब्राह्मण बहुरि उसी भ्रमकों देखणे चल्या, क्रांत देशविषे गया, तिनकों देखिकरि आश्चर्यवान् होवै, अरु कैसे विष्णु हैं, मायामय कहाते हैं, यह जो प्रत्यक्ष मैं देखता हौं, जो कछु भ्रमविषे देख्या था, सोई प्रत्यक्ष देखता हौं, ऐसे विचारिकरि बहुरि कहता भया, जो इस संशयकों दूर करणेकों और कोउ समर्थ नहीं, तातें बहुरि विष्णुका आराधन करता भया ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचारिकरि गाधी बहुरि पाहाडकी कंदराविषे जाय तप करने लगा, तब थोडे कालमें विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि आए, जैसे मेघ मोरकों कहै, तैसे ब्राह्मणकों भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण! अब क्या चाहता है, तब गाधीनें कहा, हे भगवन्, तुम कहते हौ, सब भ्रममात्र है, अरु यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, जो भ्रम होता है, सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, अरु मैंनें बहुरि उह स्थान देखे हैं, अरु थोडे कालकरि बहुत काल देखणेका मुझकों संशय है, सो दूरि करौ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार गाधीनें कहा, तब भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण! जो कछु तुझकों यह भासता है, सो सब मायामात्र है, अरु जिस प्रकार तुझकों यह भासता है सो सब मायामात्र है, अरु जिस प्रकार तुझकों यह अनुभव भया है, सो श्रवण कर ॥ हे ब्राह्मण! उह कंटजल नाम चंडाल एक चंडालके गृहविषे उत्पन्न भया था, बहुरि क्रमकरि बडा हुआ था, अरु कुटुंबी हुआ, बहुरि उहां दुर्भिक्ष पडी, तब उस देशकों त्यागिकरि जाइ क्रांत देशका राजा हुआ, बहुरि लोकोंनें सुण्या, तब सबही अग्निविषे जले, बहुरि उहां चंडाल आप भी अग्निविषे जले, सो कंटजल चंडाल और था, यह अवस्था तिसकों भइ थी सोइ प्रतिभा तुझकों आनि फुरी है, जैसी अवस्था तिसकों हुई थी, सो तेरे चित्तविषे आनि फुरी, इस कारणतें तूं जानता भया जो यह अवस्था मैंनें देखी है ॥ हे साधो! अकस्मात् ऐसे भी होता है, जो औरकी प्रतिभा औरकों फु

रि आती है, कहूं अन्यथा भी होती है, कहूं एक जैसे भी होती है, इस भ्रमका अंत लेणा नहीं आता, यह चित्तके फुरणे करिके होता है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होता है, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु कालकी विषमता भी होती है, जैसे जाग्रतकी दो घडीविषे अनेक वर्षोंका स्वप्न देखता है, तैसे यह जाण, सब चित्तका भ्रम है, तूं इस भ्रमकों न देख, चित्तकों स्थिर करिके अपणे ब्राह्मणका आचार कर ॥ हे रामजी ! ऐसे कहीकरि विष्णु गुप्त हो गए, परंतु ब्राह्मणका संशय दूर न भया, उह ऐसे मनविषे विचारै, जो औरकी प्रतिभा मुझकों कैसे भई है, यह तौ मैंनें प्रत्यक्ष भोगी है, अरु जाइकरि देखी है, यह औरकी वार्त्ता कैसे होवै, जो आंखोसों देखि नहीं होती तिसका अनुभव नहीं होता, अरु मैंनें तौ प्रत्यक्ष अनुभव किया है, ऐसे ऐसे विचारिकरि बहुरि उह स्थान देखै, अरु आश्चर्यमान् होवै, बहुरि विचार करता भया, जो यह मुझकों बडा संशय है, इसकों दूर करणेका उपाय भगवान्सों पूछौं ॥ हे रामजी ! ऐसे चितवीकरि बहुरि तप करने लगा, जब केताक काल पहाड कंदराविषे तप करते वीत्या, तब बहुरि विष्णुनें आइकरि कहा ॥ हे ब्राह्मण ! अब तेरी क्या इच्छा है ! ऐसे जब विष्णुनें कहा, तब ब्राह्मण गाधी कहता भया ॥ हे भगवन्, तुम कहते हौ, यह औरकी प्रतिभा तुझकों फुरि आई है, अरु मुझकों अपणी होइकरि भासती है अरु कालकी विषमता भासती है, यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्ततें दूर होवै, सो उपाय कहौ, और प्रयोजन मेरा कछु नहीं, यह भ्रम निवृत्त करौ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह जगत् सब मेरी मायाकरि रच्या है, तिसविषे मैं तुझकों सत्य क्या कहौं, अरु असत्य क्या कहौं, जो कछु तुझकों भासता है, सो सब मायामात्र है, सो चित्तके भ्रमकरि भासता है, अरु उस चंडालकी अवस्था भई है, सो तेरे चित्तविषे भासि आई है, जैसे एक जेवरीविषे किसीकों सर्प भासै, इसी प्रकार औरोंकों भी जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसेही प्रतिभा तुझकों भासि आई है, अरु काल जो है तिसका रूप आकार कछु नहीं, अरु काल भी तुझकों एक पदार्थकी नांई फुरि आया है, चित्तविषे पदार्थ काल

करि भासते हैं, अरु काल पदार्थोंकरि भासता है, अन्योन्य घट वध जो भासता है सो स्वप्नकी नाईं है, जैसे जाग्रतके एक मुहूर्तविषे स्वप्नका अनंत कालका अनुभव होता है, यह चित्तका फुरणा जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे हो भासता है, रोगीकों थोडा काल भी बहुत हो भासता है, अरु भोगीकों बहुत काल भी थोडा भासता है॥हे साधो ! जो नहीं भोग्या होता तिसका भी अनुभव होता है, जैसे त्रिकालदर्शीकों भविष्य वृत्तांत भी वर्त्तमानकी नांई भासता है तैसे तुझकों भी अनुभव भया है, अरु एक ऐसे भी होता है, जो प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण हो जाता है, यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है, जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं भया, तबलग अनेक भ्रम भासते हैं, जब चित्त स्थित होता है, तब भ्रम मिटि जाता है, केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासता है, जैसे सम्यक् मंत्रके पाठकरि गडेका मेघ नष्ट हो जाता है, असम्यक् मंत्रकरि नाश नहीं होता, तैसे तेरा चित्त अबलग वश नहीं भया, चित्तकों आत्मपदसों जोडेतें सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु अहं त्वं आदिक जेते कछु शब्द हैं, सो अज्ञानीके चित्तविषे दृढ होते हैं, ज्ञानवान् इनविषे नहीं फसता ॥ हे साधो! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञान करिके भासता है, आत्मज्ञान हुएतें नाश हो जाता है, जैसे जलविषे तुंबी नहीं डुबती, तैसे अहं त्वं आदिक शब्दोंविषे ज्ञानवान् नहीं डुबता, सब शब्द चित्तविषे वर्तते हैं, सो ज्ञानीका चित्त अचित्तपदकों प्राप्त भया है, तातें तूं दश वर्षपर्यंत तपविषे स्थित होहु, तब तेरा हृदय शुद्ध होवैगा, जब तेरा हृदय शुद्ध हुआ, तब सब संकल्पतें रहित आत्मपद तुझकों प्राप्त होवैगा, जब आत्मपद प्राप्त हुआ, तब सब संशय जगत्भ्रम मिटि जावैगा॥हे रामजी! ऐसे कहीकरि त्रिलोकीका नाथ विष्णु अंतर्धान हो गए, तब गाधी ब्राह्मण ऐसे मनविषे धारिकरि जाय तप करने लगा, जो कछु मनका संसरना है, तिसकों स्थित करता भया, दश वर्षपर्यंत समाधिविषे चित्तकों स्थित किया, जब ऐसे परम तप किया तब शुद्ध चिदानंद आत्माका साक्षात्कार बहुरि तिसकों भया; बहुरि शांतिवान् होइकरि विचरत भया, जेते कछु राग दोष आ

दिक विकार हैं, तिनतें रहित शांतिकों प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशतितमः सर्गः ॥ ४६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह गाधीका आख्यान तुझकों मायाकी विषमता जतावणेनिमित्त कहा है, जो परमात्माकी ऐसी माया है, सो मोहकों देणेहारी है, विस्तृतरूप दुर्गम है, जो आत्मतत्त्वतें भूला है, तिसकों आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है, तूं देख जो दो मुहूर्त कहां, अरु एता काल कहां, अरु जो चंडाल अरु राजभ्रमकों वर्षोंपर्यंत देखता रहा, बहुरि भ्रमकरि भासणा अरु प्रत्यक्ष देखणा, यह सब मायाकी विषमता है, सो असत्यरूप भ्रम है, सो दृढ होइकरि प्रसिद्ध भास्या, तातें आश्चर्यरूप परमात्माकी माया है, जबलग बोध नहीं होता, तबलग अनेक भ्रमकों दिखाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह माया संसारचक्र है, तिसका बडा तीक्ष्ण वेग है, अरु सब अंगोंकों छेदणेहारा है, जिसकरि इस चक्रका रोधना होवे, अरु इस भ्रमतें छूटियें सोइ उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मायामय संसारचक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, जब चित्त वश होवै, तब संसारचक्र वेग रोक्या जावै, और किसी प्रकार रोक्या नहीं जाता ॥ हे रामजी ! यह वार्त्ताकों तूं भली प्रकार जानता है ॥ हे निष्पाप ! जब चक्रकी नाभि रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है, रोकणेविना स्थित नहीं होता, संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभिकों रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है, रोकेविना स्थित नहीं होता, जब चित्तकों स्थित करैगा, तब जगत्भ्रम निवृत्तहो जावैगा अरु जब चित्त स्थित होता है, तब परम ब्रह्म प्राप्त होता है, अरु जो कछु करणा था, सो किया होता है, कृतकृत्य होता है, अरु जो कछु प्राप्त होणा था, सो प्राप्त होता है, बहुरि पाछे पावणा कछु नहीं रहता, तातें जेते कछु तप ध्यान तीर्थ दान आदिक उपाय हैं, तिन सबकों त्यागिकरि चित्तके स्थित करनेका उपाय करौ, संतोंका संग अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रका विचार इस उपायकरि चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, जो कछु संतों अरु शास्त्रोंनें किया है, तिसका वारंवार अभ्यास करणा, संसार मृगतृष्णाके

जल अरु स्वप्नवत् जाणिकरि इसतें वैराग्य करणा, इन दोनों उपायोंकरि चित्त स्थित होवैगा, आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, और किसी उपायकरि आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी ॥ हे रामजी! बोलणेचालणेका वर्जन नहीं, बोलियें, दान करियें, अथवा लेइयें, परंतु अंतर चित्तकों मत लगावहु, इनका साक्षी जानणेवाला जो अनुभव आकाश है, तिसकी और वृत्ति होवै, युद्ध करना होवै, तौ भी करियें, परंतु वृत्ति साक्षीकी और होवै, तिसकों अपणा रूप जानियें, अरु स्थित होइयें, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह जो पांच विषय इंद्रियांके हैं, इनकों अंगीकार करियें, परंतु इनके जानणेवाले साक्षीविषे स्थित होहु, तेरा अपणा स्वरूप उही चिदाकाश है, जब तिसका अभ्यास वारंवार करियें, तब चित्त स्थित होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, तबलग जगत्भ्रम निवृत्त नहीं होता, इस चित्तके संयोगतें चेतनका नाम जीव है, जैसे घटके संयोगतें आकाशकों घटाकाश कहते हैं, जब घट टूटि जावै, तब महाकाशही रहैगा, तैसे जब चित्तका नाश होवैगा, तब यह जीव चिदाकाशही होवैगा, अरु यह जगत् भी चित्तविषे स्थित है, चित्तके अभाव हुएतें जगत्भ्रम शांत हो जावैगा, हे रामजी! जबलग चित्त है, तबलग संसार भी है, जैसे जबलग मेघ है, तबलग बुंदां भी है, जब मेघ नष्ट हो जावै, तब बुंदां भी नहीं रहती, अरु जैसे जबलग चंद्रमाकी किरणां शीतल हैं, तबलग चंद्रमाके मंडलविषे तुषार हैं, तैसे जबलग चित्त है, तबलग संसारभ्रम है, जैसे मांसका स्थान मसान होता है, तहां पक्षी भी होता है, और ठौर एकठे नहीं होता, तैसे जहां चित्त है, तहां राग दोष आदिक विकार भी होता है, अरु जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारका अभाव है ॥ हे रामजी! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिविषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग दोष भय इच्छा आदिक विकार होता है, चित्तविषे जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्निविना उष्णता नहीं होती, अरु बरफ़ शीतलताविना नहीं होता, सूर्यविना प्रकाश नहीं होता, जल

विना तरंग नहीं होता, तैसे चित्तविना जगत्भ्रम नहीं होता ॥ हे रामजी! शांति भी इसीका नाम है, अरु शिवता भी उही है, सर्वज्ञता भी उही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी उही है, तृप्तता भी उही है, अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! चित्ततें रहित चैतन्य है सो चैतन्य कहाता है, अरु अमनशक्ति है, अरु सब कलनातें रहित है, जबलग इसकों बोध नहीं, तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी! ज्ञानसंवित्की और वृत्तिकों रखणा, जगत्की और नहीं रखणा, जाग्रतकी और नहीं जाणा, जाग्रतके जानणेवालेकी और जाणा, स्वप्न अरु सुषुप्तिकी और नहीं जाणा, जो अंतरके जाननेवाला साक्षीसत्ता है, तिसकी और वृत्ति रखणी यह चित्तकों स्थित करणेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै, अरु जो अभ्यास न होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सत्शास्त्रोंका श्रवणकरि बल करियें, तब सहजहीं चमत्कार हो आवैगा, मनकों मनसाथ मथियें, तिसतें ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीकों जलाइ डारैगी, अरु जबलग चित्त आत्मपदतें विमुख है, तबलग संसारभ्रमकों देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब मुझकों आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब कालकूट विष भी अमृत समान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा, अरु यह जब अपणे स्वभावविषे स्थित होता है, तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है, अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्तें गिरता है, तब संसारका कारण मोह आनि प्राप्त होता है, अरु जब निरंश निर्मल आत्मसंवित्विषे स्थित होता है, तब संसारसमुद्रकों तरि जाता है, अरु जेते ईश्वर बलवान् हैं, तिन सबनतें तत्त्ववेत्ता उत्तम हैं, उनके आगे सब लघु हो जाते हैं, तिन पुरुषकों किसी संसारके पदार्थकी अपेक्षा नहीं, उनका चित्त सत्यपदकों प्राप्त हुआ है, तातें चित्तकों स्थिर

करौ, तब वर्तमानकाल भी भविष्यत्कालकी नांई हो जावैगा, जैसे भविष्यत्कालका राग दोष नहीं स्पर्श करता, तैसे वर्तमानकालका राग दोष स्पर्श न करैगा ॥ हे रामजी! आत्मा परम आनंदरूप है, तिसके पायेतें अमृत भी विषसमान हो जाता है, अर्थ यह जो अमृतरूप होइकरि चित्तकों खैंचता सो नहीं खैंचता, जिस पुरुषकों आत्मपदविषे स्थिति भई है, सो सबतें उत्तम है, जैसे मेरु पर्वतके निकट हस्ती तुच्छ भासता है, तैसे तिसके निकट त्रिलोकीके पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु उह बडे दिव्य तेजकों प्राप्त होता है, जिसकों सूर्य नहीं प्रकाश करी शकता, परम प्रकाशरूप सब कलनातें रहित अद्वैततत्त्व है ॥ हे रामजी! तिस आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जो पुरुष ऐसे स्वरूपकों पाया है, सो सब कछु पाया है, अरु जो ऐसे स्वरूपकों नहीं पाया, सो कछु नहीं पाया, हमकों ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवान्कों देखिकरि लज्जा कछु नहीं आवती, अरु जो तिस ज्ञानस्वरूपकी वार्त्तातें विमुख हैं, यद्यपि महाबाहो होवें, तौ भी गर्दभवत् हैं, जो बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न हैं, अरु आत्मपदतें विमुख हैं, तिनकों तूं विष्ठाके कीटतें भी नीच जाण, अरु जीवना तिनका श्रेष्ठ है, जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं, अरु जीवना तिनका वृथा है, जो संसारके निमित्त यत्न करते हैं, देखणेमात्र तौ चैतन्य हैं, परंतु शवकी नांई हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता भए हैं, सो अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, अरु जिनकों शरीरविषे अभिमान है, सो मृतकसमान हैं ॥ हे रामजी! इस जीवकों चित्तनें दीन किया है, ज्यौं ज्यौं चित्त बडा होता है, त्यौं त्यौं इसकों दुःख होता है, अरु जिसका चित्त क्षीण भया है, तिसकों कल्याण हुआ है, जब आत्मभाव अनात्मविषे दृढ होता है, अरु भोगोंकी तृष्णा होती है, तब चित्त बडा हो जाता है, अरु आत्मपदतें दूर पडता है, जैसे बडे मेघके आवरणकरि सूर्य नहीं भासता तैसे अनात्मा अभिमानकरि आत्मा नहीं भासता, अरु जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तब चित्त क्षीण हो जाता है, जैसे वसंतऋतुके गएतें पत्र कृश हो जाते हैं, तैसे भोगवासनाके

अभाववतें चित्त कृश हो जाता है ॥ हे रामजी! चित्तरूपी सर्प है, दुर्वासनारूपी दुर्गंध अब भोगरूपी वायु करि अरु शरीरविषे दृढ आस्थारूपी मृत्तिका स्थानकरि बडा हो जाता है, तिनों पदार्थोंकरि जब बडा भया, तब मोहरूपी विषकरि इसकों मारता है ॥ हे रामजी! ऐसे दुष्ट चित्तरूपी सर्पकों जब मारै, तब कल्याण होवै; देहविषे जो आत्म अभिमान होइ गया है, अरु भोगोंकी तृष्णा फुरती है, अरु मोहरूपी विष चढि गया है, जब विचाररूपी गरुड मंत्रकों चितवता रहै, तब विष उतरि जावै, और उपाय विष उतारणेकों कोइ नहीं ॥ हे रामजी! अनात्माविषे आत्माभिमान, अरु पुत्र दारा आदिकविषे ममत्व, इसकरि चित्त बडा हो जाता है, अहंकाररूपी विकारकरि अरु ममतारूपी क्रीडाकरि अरु यह मेरा, इस भावनाकरि चित्त कठिन हो जाता है, अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है, अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, संकल्प विकल्प इसके टास हैं, दुर्वासनारूपी पत्र हैं, अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म हैं, सो जल है, तिसके सींचणेकरि बढता है, कामभोगरूपी पुष्प हैं, चिंतारूपी बडी वल्ली है, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसकों काटैं, तब शांतिकों प्राप्त होवैं, अन्यथा शांतिकों प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी! चित्तरूपी एक हस्ती है, अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है, शुभ वासनारूपी जलकों मलीन करी डारा है, अरु धर्म संतोष वैराग्यरूपी कमलकों तोरि डारा है, भोगोंकी तृष्णारूपी सूंढकरिके तिसकों तूं आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद ॥ हे रामजी! चित्तरूपी कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंकों भोजन करता है, अरु सर्वदा कां कां करता है, तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे बैठता है, अरु सर्वदा भोगोंकी उर धावता है, तिनके रसकों ग्रहण करता है, मौन कबहु न करता, अरु दुर्वासना करिके काककी नांई कृष्णरूप है, जैसे काकका एकही नेत्र होता है, तैसे चित्त एक विषयों कों धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाकों विचाररूपी धनुष्यसाथ मारहु, तब सुखी होवैगा, अरु चित्तरू

पी ईल पंखेरू है, भोगरूपी मांसके निमित्त सर्व औरकों भ्रमता है, अरु जहां अमंगलरूपी ईल आता है, तहांतें विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु मांसकी उर उंचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी ईल शरीररूपी स्थानविषे बैठता है, आत्मज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है,अरु भोगरूपी मांसकों देखिकरि गिरता है, अरु अभिमानरूपी ग्रीवाकों उंची राखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप ईल है, तिसकों जब नाश करै, तब शांतिवान् होवैगा, अरु जैसे पिशाच आय जिसकों लगता है, सो खेदवान् होता है, अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसकों पिशाच लगा है, अरु तृष्णारूपी पिशाचनी साथ शब्द करता है, तिसकों काढहु, आत्मातें इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है,तिसकों वैराग्यरूपी मंत्रकरि दूर करहु, तब स्वभावसत्ताकों प्राप्त होवैगा, अरु इह चित्तरूपी वानर है, सो महा चंचल है, सदा भटकता रहता है, स्थिर कबहु नहीं रहता, कबहु किसी पदार्थविषे धावता है; जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है, तिसकों ठहरणे नहीं देता ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जेवरी है, तिससाथ संपूर्ण जगत् बांधा है, कर्त्ता कर्म क्रियारूपी गांठि करिके, जैसे एक सांकली साथ अनेक बंधवान् बांधते हैं, अरु एक तागेसाथ अनेक मणके परोते हैं, तैसे एक चित्तसाथ सब देहधारी बांधे हैं, तिस जेवरीकों असंग शस्त्रकरि काटैं, तब सुखी होवैं ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी अजगर सर्प है, अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विषकरि पूर्ण है, तिस सर्पनें फूत्कारेसाथ बडे बडे लोक जलाए हैं, शम दम धैर्यरूपी जो कमल हैं, सो सब जलि गए हैं, इस दुष्टके मारनेंकों और समर्थ कोउ नहीं, एक विचाररूपी गरुड है, जब विचाररूपी गरुड उपजै, तब इसकों नष्ट करै, जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हुआ, तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी! यह चित्त शस्त्रोंकरि काट्या नहीं जाता, अरु अग्निकरि जलता नहीं, न और किसी उपायकरि नाश होता है, एक साधुसंग अरु सच्छास्त्रोंके विचार अभ्यासकरि नाश हो जाता है, और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह चित्तरू

पी गडेका मेघ है, सो बडा दुःखदायक है, अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विजलि इसविषे चमकती है, अरु जहां वर्षा होती है, तहां बोधरूपी क्षेत्र अरु शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मंत्र होवै, तब शांत हो जावै ॥ हे रामजी! चित्तकी जो चपलता है, तिसकों असंकल्प करिके त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्र करिके ब्रह्मास्त्रकों छेदिता है, तैसे मनसाथ मनकों छेदहु, अर्थ यह जो अंतर्मुखी करी स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै, तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभतें रहित होवैगा ॥ हे रामजी! शुद्ध बोध करिके मनकों जीतौ, यह जगत् तृणतें भी तुच्छ है, तिसके पारकों प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशतितमः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टकों ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तूं प्रीति मत कर, इसकों मिथ्या जानिकरि त्याग कर ॥ हे रामजी! बोधरूपी वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ काल करिके प्राप्त भई है, तिसकों विवेकरूपी जलकरि सिंचियें, तब परमपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! जबलग शरीर मलीनताकों प्राप्त भया है नहीं, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिर्या, तबलग बुद्धिकों उदारकरि संसारतें मुक्त होहु, मैं तुझकों वचन कहे, तिनकों तैंनें जाने हैं, इनका दृढ अभ्यास करै तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह पंच भूतका शरीर जो तुझकों भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तूं शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोध विचार करिके अनात्मा पंच भूतके अभिमानकों त्यागहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचार करिके परमपदकों प्राप्त भया है, सो तूं श्रवण कर ॥ हे रामजी! जगत्‌रूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है, तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं, अरु महामणीके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वत एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक ना

म ब्राह्मण था, सो बुद्धिवान् मान करनेयोग्य विद्वान था, परंतु अर्द्ध प्रबुद्ध था, काहेतें परमपद तिसनें पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छा करिके यम नियम तपकों शास्त्रोंयुक्त साधत भया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ, जो जिसके पाएतें बहुरि कछु पावणे योग्य न रहै, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएतें बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएतें बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव! ऐसा पद मुझकों कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मैं मनके मननभावकों त्यागिकरि विश्रांतिवान् होउंगा? जैसे मेघ भ्रमणेकों त्यागिकरि पहाडके शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगतें रहित समुद्र शांतिवान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पतें रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाह करिके कब तरि जाउंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसकों विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारकों कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घुघु जगततें अंध होवै, हे देव! सब आरंभोंकों त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होउंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझकों कर्म स्पर्श न करै, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्की गतिकों हसौंगा, अरु अंतर तोषकों पाउंगा, वैराट आत्मा पूर्ण बोधकी नांई होउं, उह समय कब होवैगा, जो मैं जन्मोंके अंधकों ज्ञानरूपी नेत्र कब प्राप्त होवैगा, जिसकरि मैं परम बोधपदकों देखौंगा, अरु उह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुतें रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिवान् होउंगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अब उह समय कब होवैगा, जो मन काया प्रकृतियांकों देखिकरि मैं हसौंगा, अरु उह समय कब होवैगा, जो जगतके कर्म बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत् मुझकों सुषुप्तिकी नांई हो जावैगा, अरु

उह समय कब होवैगा, जो पथरकी शिलावत् मुझकों निर्विकल्प समाधि लगैगी, अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे, निःसंग होइकरि छातीपर आनि बैठैंगे ॥ हे देव ! उह समय कब होवैगा, जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तितें मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान न होवैगी, अरु वैराटकी नांई सर्वात्मा होउंगा, अरु उह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंतें निरिच्छितरूप मैं हो जाउंगा, अरु कब मैं उपशमकों प्राप्त होउंगा, जैसे मंदराचलतें रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है, कब मैं अपणा चेतन वपु पाईकरि शरीरकों अशरीरवत् देखौंगा, अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी, अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैगी, अरु संपूर्ण चिन्मात्रही मेरे तांई भान होवैगा, अरु मैं इहता अरु ग्रहणत्यागतें रहित कब संतोषकों प्राप्त होउंगा, अपणे स्वप्रकाशविषे स्थित होइकरि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंतें रहित कब होउंगा, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित कब होउंगा ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि उद्दालक चित्तकों ध्यानविषे जोडने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसी जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोडै, बहुरि भोगोंकी और निकसी जावै, जैसे वानर ठेरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं, जो बाहिर विषयोंकों त्यागिकरि चित्तकों अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौ भी विषयोंकों चितवणे लगा, निर्विकल्प होवै नहीं, जब रोकी राखै, तब सुषुप्तिविषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब उहांतें उठिकरि और स्थानकों चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाकों चलता है, तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुंदर अरु पशु पक्षी मृगोंतें रहित ऐसा एकांत स्थान है, जो देवताकों भी देखणा कठिन है, अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं, अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्तिक होता है, निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है, तैसे तिस पर्वतविषे

कुटी बणाई हुई, बनदेवका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरकी गम नहीं, तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिके उपर मृगछाला बिछाई, तिस उपर बैठिकरि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगत्कों उपजाइकरि छांडी बैठे तैसे सब कलनाकों त्यागिकरि पद्मासन बांध्या, अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन, तूं कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है, एता काल तूं जगतविषे भटकता रहता है, कहूं तुझकों शांति प्राप्त न भई, काहेतें जो वृथा धावता है ॥ हे मूर्ख! मन उपशमकों त्यागिकरि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतकों त्यागिकरि विषका बीज बोवता है, यह सब तेरी चेष्टा दुःखोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपणा घर बनाइकरि आपहीकों बंधन करती है,तैसे तूं आपकों आप संकल्प उठाईकरि बंधन करता है, अब तूं संकल्पके संसर्गकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझकों शांति प्राप्त होवै ॥ हे मन! जिव्हा साथ मिलिकरि जो तूं शब्द करता है, सो दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसाथ मिलिकरि श्रवण करता है, तब शुभ शुभ वाक्य ग्रहण करिके मृगकी नांई तूं नष्ट होता है, अरु त्वचासाथ मिलिकरि जो तूं स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नांई नाश होता है, अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नांई नाश होता है, अरु गंध लेणेकी तूं इच्छा करता है, सो भंवरेकी नांई नाश हो जावैगा, जैसे भंवरा सुगंधिके निमित्त फूलविषे फसि मरता है, तैसे तूं फसि मरैगा, अरु सुंदर स्त्रियांकी वांछा करता है, सो पतंगकी नांई जलि मरैगा ॥ हे मूर्ख मन! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते हैं, सो भी नाश पाते हैं, तूं तौ पंचविषयके सेवणेवाला है, नाश क्यों न होवैगा, तातें तूं इनकी इच्छा त्याग, जो तुझकों शांति प्राप्त होवै, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मैंही तुझकों त्याग छोडौंगा, तूं तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, विचार करी मैं तेरा त्याग करता हों, मूर्ख मन जो तूं देहविषे अहं अहं करता है,सो तेरा अहं किस पदार्थविषे है, अंगुष्ठतें लेइकरि मस्तकपर्यं

त अहं वस्तु कछु नहीं, यह शरीर तौ अस्थि मांस रक्तका थेला है, यह तौ अहंरूप है नहीं, अरु श्वास जो है, सो वायुरूप है, अरु पोल आकाशरूप है, यह पंचतत्त्वोंका जो शरीर बन्या है, तिसविषे अहंरूप वस्तु तौ कछु नहीं है, मूर्ख मन, तूं अहं अहं क्यों करता है, यह जो तूं कहता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, मैं सुंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, मैं इनके इष्ट अनिष्टविषे राग दोषकरि जलता हौं, सो वृथा कष्ट पाता है, रूपकों नेत्र ग्रहण करता है, सो नेत्र रूपतें उत्पन्न भया है, तेजका अंश नेत्रविषे स्थित है, सो अपणे विषयकों ग्रहण करता है, इनके साथ मिलिकरि तूं क्यों तपायमान होता है, अरुशब्द आकाशतें उत्पन्न हुआ है, आकाशका अंश श्रवणविषे स्थित है, सो अपणे गुण शब्दकों ग्रहण करता है,इसके साथ मिलिकरि तूं क्यों रागदोषवान् तपायमान होता है,अरु स्पर्शइंद्रिय वायुतें उत्पन्न भया है, वायुका अंश त्वचाविषे स्थित है, उही स्पर्शकों ग्रहण करता है, तिस साथ मिलिकरि तूं क्यों रागदोषकरि तपायमान होता है, अरु रसना इंद्रिय जलतें उत्पन्न भई है, जलका अंश जिव्हा है, अग्रभागविषे स्थित है,सोइ रसकों ग्रहण करता है, इस साथ मिलि तूं क्यों वृथा तपायमान होता है, अरु घ्राण इंद्रिय गंधतें उपजी है,सो पृथ्वीका अंश घ्राणविषे स्थित है, उही गंधकों ग्रहण करती है, तिससों मिलिकरि तूं क्यों वृथा रागदोषवान्होता है ॥ हे मूर्ख मन ! इंद्रियां तौ अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, तूं इनविषे क्यों अभिमान करता है, जो मैं देखता हौं, मैं सुणता हौं, मैं सुंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, रस लेता हौं, यह तौ इंद्रियां सब आत्मभर हैं, अर्थ यह जो अपणे विषयकों ग्रहण करती हैं, औरके विषयकों ग्रहण नहीं करतियां, जो नेत्र देखते हैं, श्रवण नहीं करते अरु कर्ण श्रवण करते हैं, देखते नहीं, इत्यादिक सर्व इंद्रियां अपणा धर्म किसीकों देतियां भी नहीं, अरु लेतियां भी नहीं, अपणे धर्मविषे स्थित हैं, अरु विषयकों ग्रहण करी इनकों रागदोष कछु नहीं होता, अरु इनकों ग्रहण करणेकी वासना भी कछु नहीं, अरु तूं ऐसा मूर्ख है, औरोंके धर्म आपविषे मानिकरि राग

दोषसों जलता है, जो तूं भी रागदोषतें रहित होइकरि चेष्टा करे, तौ तुझकों दुःख कछु न होवै, जो वासनासहित कर्म करता है, सोई बंधनका कारण होता है, वासनाविना दुःख कछु नहीं, अरु तूं मूर्ख है, जो विचार करी नहीं देखता, तातें मैं तुझकों त्याग करता हौं, तेरे साथ मिलिके मैं बडे खेदकों पाता हौं, जैसे बिघाडके बालककों सिंह चूर्ण करता है, तैसे तैनें मुझकों चूर्ण किया है, तेरे साथ मिलिकरि मैं तुच्छ हुआ हौं, अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कछु नहीं, मैं तौ निर्विकल्प शुद्ध चिदानंद हौं, जैसे महाकाश घटसाथ मिलिकरि घटाकाश होता है, तैसे तेरे साथ मिलिकरि मैं तुच्छ हो गया हौं, इस कारणतें मैं तेरा संग त्यागिकरि परम चिदाकाशकों प्राप्त होउंगा, मैं निर्विकार हौं, अहं त्वंकी कल्पनातें रहित हौं, तूं क्यों अहं त्वं करता है, शरीरविषे व्यर्थ अहं करनेवाला और कोउ नहीं, तूंही चोर है, अब मैं तुझकों पकडीकरि तेरा त्याग किया है, तूं तौ अज्ञानतें उपजा मिथ्या असत्यरूप है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल जाणिकरि आपही भयकों पावता है, तैसे तुझनें सर्वकों दुःखी किया है, जब नाश होवैगा, तब आनंद होवैगा, तेरे उपजणेकरि महादुःख है, जैसे कोई उंचे पर्वततें गिरिके कूपविषे जाय पडे, अरु कष्टवान् होवै तैसे तेरे संगकरि मैं आत्मपदतें गिर्या, देह अभिमानरूपी गिर्तविषे रागदोषरूपी दुःख पाया था, अब मुझकों त्यागिकरि मैं निरहंकारपदकों प्राप्त भया हौं, सो कैसा पद है, न प्रकाश है, न तम है, न एक है, न दो है, न बडा है, न छोटा है, अहं त्वं आदिकतें रहित अचैत्य चिन्मात्र है, जरा मृत्यु राग दोष भय सब तेरे संयोगतें होते हैं, अब तेरे वियोगतें मैं निर्विकार शुद्ध पदकों प्राप्त होता हौं ॥ हे मन! तेरा होणा दुःखका कारण है, जब तूं निर्वाण हो जावैगा, तब मैं ब्रह्मरूप होउंगा, तेरे संगकरि मैं तुच्छ हुआ हौं, जब तूं निवृत्त हुआ, तब मैं शुद्ध हुआ, जैसे मेघ आकाश कुहीडके होणेकरि मलिन आकाश भासता है, जब वर्षा गई तब शुद्ध निर्मल आकाश हो रहता है, तैसे तेरे निवृत्त हुएतें आत्मा निर्लेप अपणा आप भासता है ॥ हे चि

त्त, यह जो देह इंद्रियांदिक पदार्थ हैं सो भिन्न हैं, इनविषे अहंवस्तु कछु नहीं, इनकों एक तुझनेंही एकठा किया है, जैसे एक तागा अनेक मणकेकों एकठा करता है, तैसे सबकों एकठा करिके तूं अहं अहं करता है, अरु तूं मिथ्या राग दोष करता है, तातें तूं शीघ्रही सब इंद्रियांकों लेइकरि निर्वाण होहु, जो तेरी जय होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम अष्टचत्वारिंशतितमःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ ॥

॥ उद्दालक उवाच ॥ आत्मा सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, शुद्ध निर्विकार शांतरूप है, सो मैं हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, मेरेविषे विकार कोउ नहीं, जेते कछु जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं, सो आत्माविषे चित्तके कल्पे हैं, आत्माकों कोउ नहीं, जन्म तिसकों कहते हैं जो पहिले न होवै, औ पाछे उपजै, आत्मा तौ आगेही सिद्ध है, बहुरि जन्म कैसे कहियें, अरु मृत्यु तिसकों कहते हैं जो पाछे न होवै, पहिले अभाव हो जावै, आत्मा तौ जगतविषे अंत भी सिद्ध है, तातें सब विकारोंतें रहित है, बहुरि मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहियें! देहके आदि मध्य अंत तीनों काल सिद्ध हैं, तातें सब विकारोंतें रहित है, सो चित्तके संयोगतें विकारोंसहित भासता है ॥ हे चित्त! तेरे संयोगकरि मैं एते भ्रमकों प्राप्त भया था, अरु शरीरविषे व्यर्थ अहं अहं होता है, सो जान्या नहीं जाता जो कौन है, शरीर तौ रक्तमांसका पिंड है, इंद्रियां मन आदिक सब जड हैं, अहं करनेवाला कौन है, जब अहं होता है, तब भाव अभाव पदार्थकों ग्रहण करता है, जहां अहंका अभाव है, तहां भाव अभाव कैसे होवै, अहंकार झूठ है, इंद्रियां अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, अरु मनादिकविषे भी अपणे स्वभावविषे स्थित है, यह अहं करनेवाला नहीं पाईता जो कौन है, अहंका रूप कछु नहीं पाईता, तातें, निश्चय भया जो सब पदार्थ झूठ हैं, अहंकार पदार्थ ग्रहण करणेवाला भी झूठ है, जेते कछु पदार्थ हैं सो अहंकारकरि होते हैं, मैं क्यों इससाथ मिलिकरि देह इंद्रियांके इष्ट अनिष्टविषे राग दोष करौं, इसका अरु मेरा संयोग तौ कछु नहीं,

मैं तौ आत्मा निर्लेप अद्वैत हौं, संयोग किससाथ होवै, भावरूप वस्तु ब्रह्म है, सो मैं हौं, मेरा संयोग किससाथ होवै, यह तौ है नहीं, सब असत्यरूप है, अरु जो कहियें देहादिक हैं, तौ भी संयोग नहीं बनता, जैसे लोहे अरु बटेका संयोग नहीं होता, यह बडा आश्चर्य है, जो सबका अहं करनेवाला कौन था, यह मिथ्या अहंकार अज्ञान करिके दुःखदायक था, जैसे अज्ञान करिके बालककों वैताल भासिकरि सो दुःख देता है, तैसे अविचार करिके दुःख होता है, जैसे पहाडपर बादल स्थित होता है, सो पहाड बादल नहीं होता, अरु बादल पहाड नहीं होता तैसे आत्मा अनात्मा नहीं होता, अरु अनात्मा आत्मा नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे अहंकार भासता है, विचार कियेतें अहंकार कछु नहीं निकसता, जहां अहंकार होता है, तहां दुःख भी आय स्थित होते हैं, जैसे जहां मेघ होता है, तहां बिजलि भी होती है, तैसे जहां अहंकार होता है, तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढती है, जैसे गरुडके विद्यमान सर्प नहीं रहता, तैसे आत्मविचारके विद्यमान अहंकार नहीं रहता, तातें चित्तादिक सब झूठ हैं, अज्ञानकरि भासते हैं, इनकरि रच्या हुआ जगत् सत्य कैसे होवै? यह जगत् अकारण है, तातें मिथ्या भ्रम करिके भासता है, जैसे भ्रांति करिके आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे नौकाविषे बैठेतें तटवृक्ष चलते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रमका अभाव हो जाता है, देहविषे जो अभिमान है सो दुःखोंका कारण है, जबलग विचार नहीं उपजता, तबलग भासता है, जैसे बरफकी पुतली तबलग होती है, जबलग सूर्यका तेज नहीं लगा, जब सूर्यका तेज लगा, तब बरफकी पुतली गलि जाती है, जैसे बालककों भ्रमणेकरि पृथ्वी भ्रमती भासती है, तैसे चित्तके भ्रमकरि यह जगत् भासता है, अरु विचारके उपजेतें अहंकार गलि जाता है ॥ हे मन ! तेरेसाथ मिलणेकरि बडा दुःख होता है, अरु तुझतें रहित मैं आपकों देख्या है, अब तूं सब इंद्रियोंसहित निर्वाण होहु, आत्मवि

चारकरि आत्मअग्निविषे स्थित होहु, जो सब मल तेरा जलै, अरु शुद्धताकों प्राप्त होवै, अरु इस देहसाथ तेरा मिलाप है, सो दुःखके निमित्त है, मन अरु देहके अंतरतें आपसमें शत्रुभाव है, अरु बाहिरतें स्नेह भासता है, अंतर परस्पर नाश करनेकी इच्छा करते हैं, जो दुःख होता है, तौ मन इसके नाशकी इच्छा करता है, अरु देह कहती है, मन नाश होवै तौ मेरेविषे दुःख कोउ नहीं, इसका मिलनाही दुःखका कारण है ॥ हे मूर्ख मन ! देहकों तेरे संगकरि दुःख होता है, आपतें इसविषे भी कोउ नहीं, मनविषे देहका अभिमान न होवै, तौ भी दुःख कोउ नहीं, इनके संयोगकरि दुःख होता है, अरु बिछुरनेकरि दुःख कछु नहीं, तैसे मन अरु देहविषे वियोग कछु नहीं, जैसे जहां अंगारेकी वर्षा होती है, तहां बुद्धिवान् नहीं रहते, तैसे इनविषे मिलाप हमकों रहणा योग्य नहीं ॥ हे मूर्ख मन ! जेता कछु दुःख तुझकों होता है, सो देहके मिलापतें होता है, इसकेसाथ तूं किसनिमित्त मिलता है, अरु आपकों सुख जानता है, इसके मिलणेकरि तुझकों दुःखही होता है, परंतु ऐसा मूर्ख है, जो वारंवार देहकी औरही दौडता है, तूं सुख जानता है, अरु तेरा नाश होता है, जैसे पतंग दीपकों सुखरूप जानिकरि मिलणेकी इच्छा करता है, अरु जल मरते हैं, जैसे मच्छी मांसकी इच्छा करती है, सो कंडिविषे फस मरती है, तैसे तूं देहकी इच्छा करता है, अरु नाशकों प्राप्त होता है, तातें इसका अभिमान त्याग, जो तुझकों शांति प्राप्त होवै, अरु देह कछु वस्तु नहीं, मनहीका विकार है, पंचतत्त्वोंकी देह बनी हुई है, सो भी कछु वस्तु नहीं, सब मनके फुरणेकरि रचे हैं, तातें फुरणेकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझकों शांति प्राप्त होवै, अरु मैं तौ सबतें अतीत शुद्ध चिदानंद स्वरूप हौं, मेरे पास न कोउ मन है, न इंद्रियां हैं, मैं अद्वैतरूप हौं, जैसे राजाके समीपमें दोइ नहीं होता, तैसे मेरे निकट मन इंद्रियां कोउ नहीं, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हौं, भोगोंसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, जो इस साथ मिलिकरि दीनताकों प्राप्त होउं, मुझकों इनकेसाथ कछु प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहें, अथवा अ

बही नष्ट हो जावें, इनके नाश होणेकरि मेरा नाश नहीं होता, अरु ठहरणेविषे प्रयोजन नहीं होता, इनतें आपकों भिन्न जान्या है, जैसे तिलोंतें तेल निकासि लिया तब बहुरि नहीं मिलता, अरु दूधतें माखण निकास लिया तब बहुरि नहीं मिलता, तैसे विचार करिके अपणा आप काढि लिया, तब बहुरि इनके साथ नहीं मिलता, मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हौं, सब जगत् मेरे आश्रय है, सबविषे मैं एकही अनुस्यूत व्याप्या हौं, अब तिस स्वरूपविषे स्थित होउं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे विचारिकरि उद्दालक ब्राह्मणनें वृत्तिकों विषयोंतें निवृत्त करिके पद्मासन धारा, अरु प्रणव अर्धमात्र अकार उकार मकार क्रम करिके तिसकी उपासना करने लगा, प्राणायाम करिके मात्राका ध्यान करत भया, अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, अर्धमात्र तुरीया, इनकों क्रमसहित करने लगा ॥ प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा, अकारकी ध्वनीसाथ रेचक करत भया, तिसकरि सब प्राणवायु अंतरतें निकसे, तब अंतर शून्य अरु शुद्ध हुआ, जैसे अगस्त्यमुनिनें समुद्रकों शून्य किया था, तैसे अरु आकाशकरि ऐसी ध्वनी उचरी जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रपर्यंत चलि गई, अरु देहअभिमानकों त्यागिकरि पुर्यष्टकाकों सुषुम्नाके मार्गविषे प्राप्त किया, जैसे पक्षी आलयकों त्यागिकरि आकाशमार्गकों उडता है, तैसे उद्दालकनें पुर्यष्टकाकों ब्रह्मरंध्रविषे स्थित किया, जबलग चित्त सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा, काहेतें जो हठ करनेसों दुःख होता है, इसी कारणतें जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा, जब थका तब पुर्यष्टकका वायु अधतें आया, तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि अरु ध्यानसाथ कुंभक किया, सब प्राणवायुकों आधार चक्रविषे रोक्या, न तलेकों गमन करै, न उपरकों गमन करै, तिसकरि प्राण स्थित संघट भए, तिसतें अग्नि निकसी, तिस अग्निकरि इसका पाप पुण्यरूपी शरीर जलि गया, तिसविषे जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, काहेतें जो हठयोग दुःखदायक है, इस कारणतें जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, बहुरि मकारकी ध्वनिसों रुद्रका ध्यान करिके पूरकप्राणायाम करत भया, पूरक प्रा

णायाम करिके सब स्थान वायुसों पूर्ण किये, ऊर्ध्वकों चित्तकला प्राप्त भई अरु जिसका स्पर्श महाशीतल है, जैसा चंद्रमाका मंडल शीतल है, तिसतें अमृतकी वर्षा होती है, तिसकरि यह औरकों पवित्र करनेहारा हुआ है, जैसे धुआ आकाशकों जाता है, अरु जलकों पाइकरि औरोंकों शीतल करनेहारा होता है, तैसे इसका शरीर औरोंकों पवित्र करनेहारा हुआ, जैसे मंदराचलकरिके मथ्या क्षीरसमुद्र तिसतें कल्पवृक्ष निकस्या, तैसे इसके शरीरविषे प्राणवायु स्थित भया, पद्मासन बांधिकरि इंद्रियांकों रोकता भया, जैसे हस्ती बंधनोंसाथ बंधाता है, तैसे इंद्रियांकों रोकता भया, अर्धमात्रा जो तुरीया पद है, तिसके दर्शननिमित्त यत्न करने लगा, नेत्रोंको अर्ध मुंदत भया, अरु बाह्य विषयोंका त्याग किया इंद्रियोंकों भी त्यागिकरि प्राण अपानकों मूलचक्रविषे रोकता भया, तिसकरि नवही द्वार रोके गए, जैसे बालकके खेलणेका पाणी चोर होता है, तिसके मुंदणेकरि चलता पाणी सब छिद्रोंतें रोक्या जाता है, तैसे मूलचक्रके रोकणेकरि नवही द्वार रोके गए, इस प्रकार चित्तकों रोकता भया जब मनरूपी चंचल मृग दोडैं, तब वैराग्य अरु अभ्यासके बलकरि बहुरि ले आवैं, जैसे पुलकरि जलका वेग रोकीता है, तैसे चित्तकों स्थित किया, तब अंतःकरणकी जो सात्त्विकी वृत्ति है, तिसकों त्यागिकरि स्थित भया, तब मनकी वृत्ति जो है, निद्रारूप जडता, तिसविषे मन मूर्छित हो गया, जैसे सूर्य बादलोंविषे होवै, तैसे निद्राविषे लीन हो गया, तब राजस तामसका प्रवाह बहुरि फुरणे लगा, तिसकों आत्मविवेककरि निवृत्त किया, जैसे प्रकाशकरि तमकों निवृत्त करता है, तैसे यह विकल्परूपी तमकों निवृत्त करता भया, विवेकके बलकरि चित्तकलाविषे लगाया, तिसकों चित्तकी वृत्तिसाथ साक्षात्कार किया, महाप्रकाशवान् अरु शांतिरूप तिसविषे एक क्षण चित्त स्थित रहा, बहुरि बाह्य निकसी गया, जैसे पुलकों तोडिकरि जल निकसी जाता है, तैसे निकसी गया, बहुरि अभ्यासके बलकरि आत्मकलाविषे लगाया, तब तिस परमपद शांत आत्मपदविषे चित्तकी वृत्ति स्थित भई, तहां परम आनंद अमृतविषे मग्न भई, जो अशब्द

आनंदपरिणामतें रहित है, तिसविषे स्थित हुआ, जिस पदविषे देवता ऋषीश्वर स्थित हैं, जिस पदविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्थित हैं, तिस पदविषे उद्दालक स्थित भया ॥ हे रामजी! जो एक क्षण भी तिस पदविषे स्थित भया है, अरु जो वर्षपर्यंत स्थित भया है, सो दोनों तुल्य हैं, जिसकों तिस पदका अनुभव भया है, सो भोगोंकी इच्छा नहीं करता, जैसे जिसनें स्वर्गका नंदनवन देख्या है, सो करज्जुएके वन देखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् भोगोंकी वांछा नहीं करता, अरु शोक कदाचित् नहीं उपजता, जैसे जिसकों राज्य प्राप्त भया है, सो दीनताकों प्राप्त नहीं होता, तैसे जिसनें आत्मपदविषे स्थिति पाई है, तिसकों विषयोंकी तृष्णा अरु शोक नहीं उपजता ॥ हे रामजी ! इस प्रकार उद्दालक स्थित था, तब सिद्ध गंधर्व विद्याधरोंके समूह तिसके निकट आय प्राप्त भए, बडे तेजवान् अरु चंद्रमाकी नांई मुख जिनके, सो आइकरि इसकों नमस्कार करत भए, अरु कहा, हे भगवन् ! स्वर्गकों चलौ, अरु दिव्य भोग भोगौ, तुमनें बडी तपस्या करी है, धर्म अर्थ पुण्यका सार काम है, अरु कामका सार जो स्त्रियां हैं, सो तुमारे भोगणे निमित्त हैं, सो कैसी स्त्रियां हैं, विद्याधरियां महादेवमूर्त्ति स्वर्ग भी इनोंकरि शोभता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरियां और पुष्पोंकरि पृथ्वी शोभती है, तातें तुम विमानोंपर आरूढ होइकरि स्वर्गकों चलौ, बहुत कालपर्यंत भोग भोगौ ॥ हे रामजी ! जब सिद्धोंनें इस प्रकार बहुत कहा, तब उद्दालकनें तिनका अतिथि जाणिकरि निरादर न किया, यथायोग्य पूजा करिके कहत भया, हे सिद्धों ! तुमकों नमस्कार है, तुम जाओ, तिसकी सिद्धताविषे आसक्त न भया, काहेतें जो परमानंदविषे स्थित रहा, विषयोंके सुख तुच्छ जानता भया, जैसे अमृत खाणेवाला विषकी इच्छा नहीं करता, तैसे उद्दालक विषयोंके सुखकों न चाहता भया, तब कछुक दिन रही सिद्ध पूजते भये, बहुरि उठि गए, यह परमपदविषे स्थित भया, तिस पदविषे स्थित हो अपणे प्रकृत व्यवहारकों करता भया, मेरुपर्वत मंदराचल पर्वतविषे विचर्या, कंदराविषे ध्यानकर बैठे, कहूं एक दिन

बैठे रहै, कहूं वर्षोंके समूह बीति जावै, इस प्रकार समाधि करिके उतर्या, तब समाधि हो गई, हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यास करिके महाचेतन तत्त्वकों प्राप्त होता है, अरु दिशाविषे जैसे चित्रका सूर्य होता है, तैसे उदयअस्ततें रहित हुआ उपशम परमपदकों पाया, अरु चित्त भली प्रकार शांत हो गया, अरु जन्मरूपी फांसीकों तोडत भया, अरु देहरूपी भ्रम क्षीण हो गया, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भया, अरु विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उद्दालकका वपु हो गया, अरु सत्तासामान्यविषे स्थित होइकरि विचरणे लगा, परम शांतिकों प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिवर्णनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे आत्मरूप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य ! हे संशयरूपी तृणोंके जलावणेहारे अग्नि ! हे अज्ञानरूपी तापोंके शांतकर्त्ता चंद्रमा ! हे ईश्वर वसिष्ठजी ! सत्तासामान्यका रूप क्या है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगत्के अत्यंत अभावकी भावना करिके जब चित्त क्षीण हो जावै, तिसतें शेष जो रहै, सो सत्तासामान्य है, जब चित्ततें रहित आत्मसत्ता होवै, जिसविषे चित्त लीन हो जावै, तब सत्तासामान्य उदय हो आवै, जो असत्यकी नांई स्थित है, सो सत्तासामान्य है ॥ हे रामजी ! जब सब इंद्रियां प्रपंच शांत हो जावै, अरु शुद्ध बोध रहै, अंतर बाहिरका व्यवधान मिटि जावै, सब जगत् एकरूप हो जावै, समाधि अरु उत्थान एक जैसा हो जावै, ऐसी दशाकी जो प्राप्ति है, सो सत्तासामान्य है, सो देहके होतेही विदेहरूप है, तिसकों तुरीयातीतपद कहते हैं, समाधिविषे स्थित होवै, तौ भी केवलरूप है, उत्थान होवै, तौ भी केवलरूप है, अरु अज्ञानी जो है, तिसकों समाधि उत्थान तुल्य नहीं होता, काहेतें जो ज्ञानतें उपजी समाधि तिसकों नहीं प्राप्त भई, जो जीवन्मुक्त पुरुष है, हमतें आदि लेकरि जिनकों ज्ञानदृष्टि प्राप्त भई है, नारद देवर्षि ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिक और भी ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सत्तासामान्यविषे स्थित हैं, तिनकों समाधि अरु उत्थानविषे तुल्यता है, जैसे आका

शविषे पवनका चलणा अरु ठहरणा समान है, जैसे पृथ्वीविषे जल स्थित है, अरु अग्निविषे उष्णता स्थित है, तैसे सत्तासामान्यविषे स्थित है, तिस पदविषे स्थित होइकरि उद्दालक विचार करता था, जबलग जगत्कोटरविषे विचरणेकी इच्छा थी, तबलग ऐसे विचरता रहा, जब विदेहमुक्त होणेकी इच्छा भई तब पहाडके कंदराविषे पत्रोंका आसन बनाइकरि पद्मासन बांधा, बाह्य इंद्रियोंके विषयोंका त्याग किया, दंतों साथ दंतों मिलाइकरि सब संकल्पका त्याग किया, प्राणवायुकों मूल आधार चक्र करिके नवही द्वार खेचरी मुद्राकरि रोकता भया, न अंतर, न बाहिर, न अध, न ऊर्ध्व, सर्व भावअभाव विकल्पकों त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे चित्तकी वृत्तिकों जोडता भया, तब शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति जाय प्राप्त भई, रोम खडे हो आए, तिस व्युत्थानकों भी त्याग किया, तब सत्तासामान्य विश्वंभर पदकों प्राप्त भया, परम विश्रांत अनादि आनंद सुंदररूप है, तिस पदकों प्राप्त हुआ, चिरकाल करिके क्षीण मन भया, तब पुतलीकी नांई शरीर हो गया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल पदकों प्राप्त भया, जिसतें चित्त उपजा था, तिसविषे जाय लीन भया, जैसे सूर्यकी किरणांद्वारा वृक्षविषे रस होता है, अरु सूर्यही खैंचि लेता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि तिसहीविषे लीन होता है, तैसे चित्त लीन हो गया, अरु संकल्प संपूर्ण उपाधिविलासतें रहित भया, तिस आनंदपदकों प्राप्त भया, जिसविषे इंद्रादिककों आनंद तुच्छ भासता है, ऐसा विश्वंभर आनंद जो उत्तम पुरुषोंकरि सेवणे योग्य है, तिसकों उद्दालक प्राप्त भया, अद्वैत अशब्द सत्ता सामान्य पदविषे स्थित भया, परमशांतिरूप होता भया, तब केतेक काल पीछे तिसका शरीर गिर पडा, जैसे रस सूकेतें वृक्ष गिर पडता है, सूर्यकी किरणांकरि सूका हुआ शरीर वीणाकी नांई होत भया जैसे वीणा वाजती है, अरु तिसका शब्द प्रगट होता है, तैसे जब वायु चलै, तब तिस शरीरविषे प्रवेश करी निकसेतें शब्द प्रगट होता है, केतेक काल पीछेतें देवताकी स्त्रियां अरु अश्विनीकुमारकी शक्ति आदिक आइयां,

महाअग्निकी नांई जिनका प्रकाश है, अरु देव देवी हैं, सब देवताकरि पूज्यसों सखियोंसहित आइ करिके गलेविषे सुंदर पुष्पोंकी माला पहिराइ, अरु मोरके पिच्छवत् सुंदर करिके तिसके आगे पूजा करी नृत्य करने लगियां, अरु लीला करिके शोभत भइयां॥ हे रामजी! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनातें रहित विवेकरूपी वल्ली प्रगट भई, तिसकों आत्मानंदरूपी फल भया, और जिसके हृदयविषे ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थित होवै, सो भी सब भ्रमकों तरि जावै, जिसकों ऐसा विवेक प्राप्त होवै, सो सब भ्रमतें मुक्त होवै॥ इति श्री योगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः॥ ५०॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदकों प्राप्त भया है, तैसे क्रमकरिके अपणे आपकों विचार करिके तूं आत्मपदकों प्राप्त होहु॥ हे कमलनयन! कर्तव्य यही है, जो गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंकों धारिकरि जगत्भ्रमतें मुक्त होहु, अरु आत्माभ्यासकरि शांत पदकों प्राप्त होणा, प्रथम गुरु अरु शास्त्रोंके वाक्योंकों समजीयें, तिसकरि जो विषयभूत अर्थ है, तिसके अभ्यासविषे बुद्धिकों लगाईयें, इस प्रकार जब दृढता होवै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, अथवा एक बुद्धिविषे तीक्ष्ण अभ्यास होवै, कलंककलनातें रहित ऐसा बोध होवै, अरु साधनादि सामग्रीतें सहित होवै, अथवा वैराग्यादिक सामग्रीतें रहित होवै, तौ भी अविनाशी पदकों प्राप्त होवै॥ राम उवाच॥ ॥ हे भूतभविष्यके ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष समाधिविषे स्थित होता है, बहुरि जगत्व्यवहारविषे विचरता है, अरु एक समाधिविषे स्थित है, जगत्का व्यवहार नहीं करता, तिन दोनोंविषे श्रेष्ठ कौन है?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! प्रथम समाधिका लक्षण सुन, जो समाधि किसकों कहते हैं, अरु व्युत्थान किसकों कहते हैं, सो सुन; यह गुणोंका समूह अहंकारतें लेकरि तत्त्वगुणात्मक है, जो इनकों अनात्मरूप देखता है, अरु आपकों केवल इनका साक्षी चेतन जानता है, अरु स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है, तिसकों समाधि कहते हैं, जो मैत्री करुणा अमा

न्यता आदिक गुणकरि स्थित हुआ है, मन आत्मविषयकरि शांतिकों प्राप्त होता है, तिसकों समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिसकों ऐसा निश्चय होता है, जो मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप हौं, अरु दृश्यके संबंधतें रहित हौं, ऐसे निश्चयकरि जिसका अंतःकरण शीतल होता है, सो कोउ वनविषे अथवा गृहविषे रहै, सो दोनों स्थान उनकों तुल्य हैं, अरु उह दोनों पुरुष तुल्य हैं, जो अंतःकरण शीतल होवै, सो बडे तपोंका फल अनंत है ॥ हे रामजी ! जो इंद्रियोंकों शमन करिके बैठा है, अरु मनकरि जगत्के पदार्थकी चितवना करता है, तिसकी समाधि मिथ्या है, उह उन्मत्तकी नांई नृत्य करता है, अरु जिसकों वासना कोउ नहीं, अरु मनविषे व्यवहार करता है, तिसकों बुद्धिवान्की समाधिके तुल्य जाण, कोउ ज्ञानी व्यवहार करता है, कोउ ज्ञानवान् व्यवहारकों त्यागिकरि वनविषे समाधिविषे स्थित हो बैठता है, सो दोनों निश्चयकरि परम पदकों प्राप्त होतेहैं, इसविषे संशय नहीं करना, ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करता भी दृष्ट आता है, तौ भी अकर्ताहै, अरु जो अज्ञानी कर्ता भी नहीं, परंतु वासना करिके कर्तव्यभावकों प्राप्त होता है, जैसे कोउ पुरुष कथा श्रवण करने बैठा है, अरु मन किसी और ठौर निकसी गया है, तौ सुनता बैठा भी नहीं सुनता, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदकी और लगा है, तातें उह कर्त्ता भी नहीं कर्त्ता, उसकों कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं होता, अरु घनवासनासहित जो अज्ञानी सब इंद्रियांकों स्थित करिके सोइ गया है, तिसकों स्वप्न आया सो पर्वततें टोएविषे आपकों गिर्या देखता है, अरु कष्टवान् होता है, तातें जहां वासना है, तहां क्षोभ भी है, जहां वासना कछु नहीं तहां शांति है ॥ हे रामजी ! जिसविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, अरु निश्चयकरि आपकों अकर्त्ता जानता है, तिसकों केवलीभावतें समाधिस्थित जाण, अरु जिसविषे कर्तृत्व अभिमान है, अरु समाधिकरि बैठा है, तौ भी तिसकों व्युत्थान जाण ॥ हे रामजी ! चित्तकों चलावणेका कारण स्मृति है, जो स्मृति जगतकी लेकरि समाधि लगाय बैठता है, तौ भी चित्तवासनाकरिके विस्तारकों पावता

है, जैसे बीजसों अंकुर उपजता है, अरु विस्तारकों पावता है, तैसे मनविषे जो स्मृति वासनाकी होती है, तिसकरि चित्त विस्तारकों पावता है, अरु जो जगत्की वासना मनतें जाती रही; अर्थ यह जो जगत्का सततभाव निवृत्त होवै, तब चित्त अचल हो जाता है ॥ हे रामजी! जिस चित्तसों वासना नष्ट होती है, तिसकों अचल स्थिति कहते हैं, सो ध्यानविषे केवलीभावविषे स्थित होता है, अरु जिसके चित्तविषे सदा वासना फुरती है, तिसकों सदा क्षोभ होता है, तातें निर्वासनिक होइकरि परम पदकों प्राप्त होहु ॥ हे रामजी! जिस चित्तविषे वासना गंध होती है, तहां कर्तृत्वका अभिमान स्फुरता है, तिसकरि सदा दुःखी होता है, वासनाके क्षीण हुएतें मुक्त होता है, जिस पुरुषके चित्तसों जगत्की आस्था निवृत्त भई है, अरु वीतशोक भया है, सो स्वस्थ आत्मा है, तिसकों समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी! जिसके अंतरतें संसारका राग दोष मिटि गया है, अरु शांतिकों प्राप्त भया है, तिसकों सदिव्य समाधि कहते हैं, तातें चित्तविषे जो पदार्थभावना है, तिसकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, तब गृहविषे रहहु, अथवा बनविषे जावहु, दोनों तुझकों तुल्य हैं ॥ हे रामजी! गृहविषे स्थित हैं, अरु चित्त जिनका समाहित है, अहंकारके दोषतें रहित हैं, तिनकों कुटुंब अरु जनोंके समूह भी बनकी नांई हैं, जैसे उसकों बन है, तैसे ज्ञानवान्कों गृह वनतुल्य है, अरु देह अभिमानी जो अज्ञानी है, सो बनविषे जाय समाधि लगाय बैठता है, अरु चित्तकी वृत्ति विषयोंकी और रहती है, तब उह जगत्के समूहकों देखता है, अथवा सुषुप्तिविषे जडभूत हो जाता है ॥ हे रामजी! चित्त उत्थानविषे स्वरूपतें गिर्या हुआ जगत्भ्रमकों दिखाता है, अरु जो चित्त निर्वाणपद आत्माविषे स्थित होता है, तब उपशम होता है ॥ हे रामजी! जो पुरुषभाव पदार्थों सर्वोतें आत्माकों अतीत जाणता है, सो समाहित चित्त कहाता है, अरु जिसकों जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है, सो समाहित चित्त कहाता है, उह पुरुष जनके समूहविषे रहता है, तौ भी उसका संबंध किसीसाथ

नहीं, जैसे कोउ पुरुष राजमार्गविषे चला जाता है, तहा किसी मार्गके पदार्थसाथ संबंध नहीं होता, तैसे उस पुरुषका अभिमान किसीविषे नहीं स्फुरता, जिस पुरुषका चित्त अंतर्मुख हुआ है, सो सोवै, अथवा बैठै, अथवा चलै, देखै, नगर ग्राम सब उसकों महाबनरूप भासता है, सब जगत् उसकों आकाशरूप भासता है, जिस पुरुषकों आत्माविषे प्रीति भई है, तिसकों अंतर्मुखी कहते हैं, जिसका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल भया है, तिसकों सब जगत् शीतलरूप भासता है, जबलग जीता है, तबलग विगतज्वर होइकरि जीता है, अरु जिसका अंतर तृष्णाकरि जलता है, तिसकों सब जगत् दावाग्निसाथ तपता भासता है ॥ हे रामजी! यह सब जगत् इसके चित्तविषे स्थित है, जैसी भावना चित्तविषे होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, स्वर्ग पृथ्वी लोक पाताल वायु नदीयां आकाश देश काल जेता कछु जगत् है, सो सब चित्त अंतःकरणविषे है, उही बाहिर विस्तार होइकरि भासता है, जैसे बटके बीजविषे बटका विस्तार होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का विस्तार होता है, अरु बाहिर जो सूर्य आदिक भासता है, सो भी चित्तके अंतर स्थित है, जैसे फूल खिलता है, तिसके अंतरकी सुगंधि बाहिर भासती है, अरु वस्तुतें न कछु अंतर है, न बाहिर है, जैसा किंचन होता है, तैसाही चैत्यताकरि फुरता है, तैसे उही सत्ता जगत्रूप होइकरि भासती है, जगत् सब आत्मरूप है, और न कोउ सत्य है, न असत्य है, एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों सदा ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी! जिसके अंतर शांति है, तिसकों सब जगत् शांतिरूप है, अरु जिसका अंतर देहाभिमानविषे स्थित है, सो नाशरूप होता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, किसी औरतें शांति उसकों प्राप्त नहीं होती, स्वर्ग पृथ्वीलोक पाताल वायु आकाश पर्वत नदीयां देश काल सबकों प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है, जिसके अंतर ताप होता है, तिसकों सब जगत् तपाता भासता है, आत्मज्ञानीकों शांतरूप भासता है, जैसे अंधकों सब जगत् तमरूप भासता है,

अरु नेत्रोंवालेकों सब जगत् प्रकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों आत्मपदविषे प्रतीति भई है, अरु इंद्रियोंसाथ कर्म भी करता है, परंतु हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो समाहितचित्त कहाता है, जो पुरुष सबकों आत्मा देखता है, चित्तकों चितवता नहीं, अरु भविष्यत्की इच्छा नहीं करता, वर्तमानविषे रागदोषतें रहित होइकरि विचरता है, सो समाहितचित्त कहाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जगत्की पूर्वापर गतिकों देखिकरि हसता है, अरु समपदविषे स्थित होता है, किसीविषे ममता नहीं करता, सो समाहितचित्त कहाता है, अरु जो पुरुष अहंममतातें रहित है, अरु जगत्की विभागकलनातें रहित है, चेतन अचेतनभाव जिसकों नहिं फुरता, सो पुरुष सत्य है, अरु आकाशकी नांई स्वच्छ निर्मल है, राग दोष क्रोध विकारोंतें काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है, अरु सब भूतोंकों अपणेसमान देखता है, अरु औरके द्रव्यकों देखिकरि दृष्टि नहीं करता, स्वभावहीकरि नहीं चाहता, कछु द्वंद्वके भयकरि नहीं त्यागता, ऐसे जो देखता है; अरु अहंकारतें रहित होता है, जगत्के न सत्य भावकों देखता है, न असत्य भावकों देखता है, न ज्ञानकों देखता है, न अज्ञानकों देखता है, न जड देखता है, न चेतन देखता है, केवल अद्वैततत्त्व देखता है, सो महाशांत पदविषे स्थित है, सो उठि खडा होवै, अथवा बैठा रहै, उदय होवै, अथवा अस्त होवै, बडे भोगोंविषे रहै, अथवा वनविषे जाय बैठै, अथवा मद्यपानकरि उन्मत्त होवै, अरु नृत्य करै, अरु गयादिक तीर्थोंविषे निवास करै, अथवा कंदराविषे जाइ निवास करै, शरीरकों अगर चंदनका लेपन करै, अथवा चीकडसाथ लपेटै अथवा देह अबही गिरै, अथवा कल्पपर्यंत रहै, कछु कदाचित् भी तिस पुरुषकों कलंक नहीं लगता, जैसे स्वर्णकों चीकडके मिलापका दोष नहीं लगता, तैसे ज्ञानवान्कों कर्तृत्वका दोष नहीं लगता ॥ हे रामजी ! इस संवित्कों अहंताही कलंक है, सो महापुरुष अहंकारतें रहित है, तातें स्पर्श नहीं होता, जैसे सीपीकों रूपेका आभास नहीं स्पर्श करता तैसे ज्ञानवान्कों क्रिया स्पर्श न

भेदनिराशा.

हीं करती॥हे रामजी! अहंताही करिके यह दीन होता है, जब अहंता इसकों फुरती है, तब अनेकप्रकारके दुःख सुख देखता है, परंपरा जन्मोंकों देखता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, जैसे किसीकों जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भय पावता है, जब भली प्रकार दीपकके प्रकाशकरि देखता है, तब सर्प भय निवृत्त होता है, तैसे अहंताकरि यह दुःख पावता है, अहंताके शांत हुएतें शांतिवान् होता है, ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् जो कछु कर्म करता है, खाता पिता लेता देता हवन करता है, तिसविषे अहंताका अभिमान नहीं करता, तातें करनेविषे तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो नहीं करता तिसविषे कछु अभिमान नहीं, तातें करणेतें उसकी हानि कछु नहीं होती, अपणे स्वभावविषे स्थिति है, जगत्कों द्वैतभावकरि नहीं देखता, सर्व आत्मभावकरि देखता है, तातें कर्म स्पर्श नहीं करता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ध्यानविचारो नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्त आदिक जो जगत् है, सो वास्तव आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मारूपी मिरच है, तिसविषे चित्त अहंतारूपी देश काल तीक्ष्णता भिन्न नहीं, जैसे इक्षुतें मधुरता भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्थरविषे कठोरता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पर्वतविषे जडता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक होती है, जैसे फूल फल टास वृक्षतें भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक अभेद होते हैं, जैसे तीक्ष्णता मिरचतें भिन्न नहीं तैसे चित्त अहंतारूपी देश काल आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, बरफविषे शीतलता होती है, सूर्यविषे प्रकाश होता है, गुडविषे मधुरता है, तैसे आत्माविषे जगत् होता है, जैसे अमृतविषे स्वादवेदना होती है, तैसे आत्माविषे देशकाल वेदना होती है ॥ हे रामजी! जैसे मणिविषे प्रकाश होता है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्मातें अहंता भिन्न आदिक नहीं होते, जे

ता कछु जगत् भासता है, सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है, सो आत्मा अनंत है, सबविषे पूर्ण है, एकही ईश्वरभावविषे स्थित है, महाघनाशिलाकी नांई स्थित है, तिसतें भिन्न कछु नहीं, जैसे आकाश अपणे भावविषे स्थित है, तैसे सत्य केवल आत्माविषे स्थित है, अपणे आपकरि निर्वेद है, अरु वेदना भी तिसतें भिन्न कछु नहीं, जैसे जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा वेदनरूप हो भासता है, जैसे जलविषे द्रवता भासती है, अरु पवनविषे चलना भासता है, तैसे ज्ञानरूप आत्माविषे अहंतारूप देश काल जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जीवोंका जीवणा ज्ञानकरि होता है, अरु ज्ञानसत्ताका जीवणा चेतनकरि होता है, तैसे चिन्मात्र अरु जीवोंविषे रंचक मात्र भी कछु भेद नहीं, जैसे ज्ञान चेतनसत्ता अरु जीवविषे भेद नहीं, तैसे ज्ञाता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, एकही अखंडसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है ॥ हे रामजी! सर्व सत्ता एक अज अनादि अरु आदि अंत मध्यतें रहित प्रकाशरूप है, चिन्मात्र अद्वैत तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, अशब्द है, तिसविषे वाणी प्रवेश नहीं करी शकती, अरु जेते कछु वाक्य हैं, सो तिसके जतावणे निमित्त कहे हैं, वास्तवतें द्वैत वस्तु कछु नहीं, एक आत्मतत्त्वकों अपणे हृदयविषे धारिकरि स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भेदनिराशावर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ है, तिसकों ऋषीश्वर कहते हैं, सो तूं सुण, क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया है, तिसका एक वृत्तांत है, सो विस्मयके उपजावणेहारा है ॥ हे रामजी ! उत्तर दिशाविषे पृथ्वी है, तहां सुंदर सुगंधता है, मानों कपूरकरि लीपी हुई है, मानों सदाशिवके हंस आय स्थित हुए हैं, हिमालयके शिखर उपर कैलास पर्वत है, सो सब पर्वतोंतें उत्तम है, अरु उज्ज्वल श्वेत है, सो रुद्रके रहणेका स्थान है, तहां कल्पवृक्ष अरु गंगाका प्रवाह चलता है, और भी बडी नदी चलती हैं, अरु कमलोंसहित ताल बहुत महासुंदर स्थित हैं, जो मृग पक्षी बहुत हैं, तिस हिमालयके तले स्वर्णवत् ज

सुरघवृ०

टावाले क्रांत रहते हैं, जैसे वृक्षके मूलविषे पिपीलिका रहती है, तैसे पर्वतके आश्रय क्रात देशके जीव रहते हैं, तिस क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया है, कैसा राजा मानौ प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्ति धारी भुजाविषे है, वेगवान् ऐसा मानौ पवनकी मूर्ति है, अरु वैराग्यवान् ऐसा मानौ जनेंद्र हैं, अरु बुद्धिवान् ऐसा मानौ बृहस्पति, अरु कवी ऐसा मानौ शुक्र है, अरु राजा ऐसा मानौ इंद्र है, अरु धनी ऐसा मानौ कुबेर, ऐसा राजा होइकरि राज्य करत भया, भली प्रकार प्रजाकी पालना करै, जो भले मार्गविषे वर्तै, तिनकी रक्षा करै, अरु जो पापकर्म चोरी आदिक करैं, तिनकों दंड देवै, जैसा कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागदोषतें रहित होइकरि व्यतीत करै, एक कालमें अपणे स्थानविषे बैठा है, जो चित्तविषे विचार आनि उपजा, संशयरूपी वायु करिके तिसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान भई है, बडा अनर्थ है, जो मैं जीवोंकों कष्ट देता हौं, तातें इसकों धन देउं, अरु कष्ट न देउं, जैसे तिलोंकों तेली पीलता है, तैसे मैं पापियोंकों कष्ट देता हौं, अरु दुष्टोंकों कष्ट दीयेविना राज्य नहीं चलता, जैसे जलविना नदीका प्रवाह नहीं चलता, तैसे दुष्टोंकों कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता, अरु जब दंड देता हौं तब दुःख पावते हैं, मैं क्या करौं, दोनों वार्तोविषे कष्ट है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारविषे राजा भ्रमता रहै, तब एक दिन तिसके गृहविषे मांडव मुनि आनि प्राप्त भया, जैसे इंद्रके गृहविषे नारद आवै, तैसे आया, तब राजा भली प्रकार तिसका पूजन करता भया, अरु संदेहवान् होइकरि पूछता भया, संशयरूपी कुत्सित वृक्षके नाशकर्त्ता कुहाडे सर्ववेत्तासों ॥ ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मगत ! तुमारे आवणेकरि मैं बडे आनंदकों प्राप्त भया हौं, जैसे वसंतऋतुकरि पृथ्वी प्रफुल्लित होती है, तैसे प्रफुल्लित भया हौं, मैं भी अब आपकों पुण्यवान् जानत भया हौं, जो मैं भी पुण्यवानोंविषे प्रसिद्ध होउंगा, काहेतें जो तुम मेरे गृहविषे आये हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएतें प्रकाश हो आता है, तैसे मैं तुमारे दर्शनकरि प्रसन्न भया हौं ॥ हे भगवन् ! मुझकों संशय है, तिसके निवारणकों योग्य हौ, जै

से सूर्यके उदय हुयतें अंधकार नष्टहो जाता है, तैसे तुमकरि मेरा संशय निवृत्त हो जावैगा, जो कोउ महापुरुषोंका संग करता है, तिसका संशय अवश्य निवृत्त हो जाता है, अरु संशय परम दुःखोंका कारण है, तातें मेरे संशयकों तुम दूर करौ, सो यह मुझे संशय है, जो कोउ दुष्ट कर्म करता है, तिसकों मैं दंड देता हौं, अरु जब उसकों दुःख देखता हौं, तब मुझकों दया उपजती है, जैसे सिंहके नख हस्तीकों खैंचते हैं, तैसे यह संशय मुझकों खैंचता है, तातें यही उपाय कहौ, जिसकरि मुझकों समता प्राप्त होवे, जैसे सूर्यकी किरणा सब ठौरविषे सम होतियां हैं, तैसे इष्ट अनिष्टविषे मैं सम होउं, कृपाकरि मुझकों कहौ ॥ ॥ मांडव उवाच ॥ हे राजन्! यह तौ बहुत सुगम है, अरु अपणे आधीन है, आपहीकरि सिद्ध होता है, अरु अपणेही गृहविषे है ॥ हे राजन्! सब उपाधि मनविषे उठती हैं, सो मन तुच्छ है, विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि बरफ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेतें मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेतें कुहीड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेतें मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इस प्रकार जो मैं कौन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, अरु जगत् क्या है, जन्ममरण किसकों कहते हैं, इस विचारकरि जब तूं अपणे स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझकों हर्ष शोक अरु क्रोध राग दोष चलायमान न कर शकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तूं अचल रहैगा ॥ हे राजन्! जब आत्मबोध होवैगा, तब मन अपने मनभावकों त्यागि देवैगा, तूं संतापतें रहित अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटणेकरि जल निर्मल हो जाता है, तैसे तूं अचल होवैगा, मन धर्म भी रहैगा, परंतु मध्यसों अज्ञान नष्ट हो जावैगा, आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल उही रहता है, परंतु ऋतु और हो जाता है, तैसे मन उही होवैगा, परंतु स्वभाव और हो जावैगा, अरु तेरे टहलुए प्रजा भी साधु हो जावैंगे, तेरी आज्ञामें वर्तैंगे, अरु तुझकों देखी प्रसन्न हो जावैंगे ॥

हे राजन् ! जब तुझकों विवेकरूपी दीपकसाथ आत्मारूपी मणी पावैगा, तब तेरी बडाइ सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशतें भी अधिक होवैगी, जब तुझकों विवेकसों आत्ममहत्तत्त्वताका प्रकाश होवैगा, तब तूं संसारकी तुच्छ वृत्तिविषे न डुबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डुबता, तैसे तूं रागदोषविषे न डुबैगा, जिसकों देहविषे अभिमान है, अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डुबते हैं, तातें जेता कछु अनात्मभाव दृश्य है, तिसका त्याग करी पाछे जो शेष रहे, सो परम तत्त्व आत्मा है ॥ हे राजन् ! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसकों हृदयविषे धर, अरु जो असत्य है, तिसका त्याग कर, जैसे तबलग कलरकरि सोनारा धोता है, जबलग स्वर्ण नहीं निकसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोणेका त्याग करता है, तैसे तबलग आत्मविचार कर्तव्य है, जबलग आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है, तब विचारसाथ प्रयोजन नहीं रहता ॥ हे राजन् ! सबविषे सब प्रकार सब काल सब आत्माकी भावना कर, अथवा जेता कछु दृश्यभाव है, सो सब त्यागिकरि जो शेष रहैगा, सो तुझकों भासि आवैगा, जबलग सर्व दृश्यका त्याग न करैगा, तबलग आत्मपदका लाभ न होवैगा, सर्व दृश्यके त्यागतें आत्मपद भासैगा ॥ हे राजन् ! किसी वस्तुके पावणेका यत्न करता है, तौ औरका त्याग करी उसका यत्न करियें तौ प्राप्त होता है, तौ आत्मतत्त्व अनन्य होइकरि चित्तविना कैसे प्राप्त होवैगा, जब संपूर्ण अपणा यत्न एकही उर लगता है, तब तिस पदकी प्राप्ति होती है, तातें आत्मपद पावणे निमित्त सब दृश्यका त्याग कर, सबके त्याग कियेतें जो शेष रहे, सो परम पद है ॥ हे राजन् ! सबके त्याग कियेतें पाछे जो सत्ता अधिष्ठान रहैगा सो तुझकों आत्मभावकरि प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतमांडवोपदेशो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि मांडव मुनि अपणेस्थानकों गया, तब सुरघ राजा एकांतमें बैठिकरि विचार करने लगा,

जो मैं कौन हौं, न मैं सुमेरु हौं, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हौं, न मेरा जगत् है, न मैं पृथ्वी हौं, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रांत मंडल हौं, न मेरा क्रांत मंडल है, काहेतें जो यह अपणे भावविषे स्थित है, मेरे भावकरि तौ यह स्थित नहीं, जो मैं न होउं, तौ भी यह ज्योंकी त्यों स्थित हैं, तौ मेरे कैसे होवें, अरु मैं इनका कैसे होउं, न मैं नगर हौं, न मेरा नगर है, हस्ती घोडा मंदिर धन स्त्रीपुत्रादिक जेते कछु पदार्थ हैं, सो न मेरे हैं, न मैं इनका हौं, इनविषे आसक्त होणा वृथा है, इनविषे संबंध मेरा कछु नहीं, जेते कछु भोगोंके समूह हैं, न मैं हौं, न यह मेरे हैं, टहलुए भृत्य कलत्र सब अपणे भावकरि सिद्ध हैं, मेरा इनसाथ संबंध कछु नहीं, न मैं राजा हौं, न मेरा राज्य है, मैं एकाएकी शरीरमात्र हौं, इनविषे मैं ममत्व करता हौं, सो वृथा है, अरु शरीरविषे जो मैं अहं कर्त्ता हौं, सो भी व्यर्थ है, काहेतें जो हाथ पाव आदिकका स्वरूप है, सो भिन्न है, न यह मैं हौं, न यह मेरे हैं, इनविषे मेरा शब्द कछु नहीं, रक्त मांस हाड आदिकरूप है, सो मैं नहीं, यह जड है, मैं चेतन हौं, इनकेसाथ मेरा कैसे संबंध होवै? जैसे जलका स्पर्श कमलकों कछु नहीं, तैसे इनका स्पर्श मुझकों नहीं, न मैं कर्म इंद्रियां हौं, न मेरी कर्म इंद्रियां हैं, यह जड है, मैं चैतन्य हौं, न मैं ज्ञान इंद्रियां हौं, न मेरी ज्ञानेंद्रियां हैं, इनतें पर मन है, सो भी मैं नहीं, यह जड है, मन बुद्धि चित्त अहंकार यह सब अनात्मारूप है, मेरा इनकेसाथ अविद्याकरि संबंध है, भ्रांति करिके मैं इनकों अपणा स्वरूप जानता था, इह सब भूतोंका कार्य है, इनके पाछे चेतन जीव है, सो चेतन दृश्यकों चेतणेवाला है, सो चेतन चेतना मैं नहीं, इस सर्वतें शेष अचैत्य चिन्मात्र है, सो सत्ता मेरा स्वरूप है, बडा कल्याण भया, जो मैं अपणा आप पाया हौं, अब मैं जाग्या हौं, अपणा स्वरूप पाया हौं, बडा आश्चर्य है, जो मैं वृथा देहादिककों आप जाणी शोकमोहकों प्राप्त होता था, मैं तौ एक निर्विकल्प चेतन हौं, अरु अनंत आत्मा हौं, सबविषे व्यापी रहा हौं; ब्रह्मरूप आत्मा हौं, इंद्रियांतें आदि जेते भूतगण हैं, सो सबका आत्मा हौं, यह भगवान् आत्मा सबके अंतर व्याप्या है, जैसे

सबके अंतर तत्त्व होते हैं, तैसे यह चेतनरूप सर्व भावकों भरि रहा है, अरु सर्व भावोंविषे व्यापि रहा है, भैरव अरु उदय अस्तभाव आदि विकारोंतें रहित है, ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सबका आत्मा यही है, सब प्रकाशोंका दीपक प्रकाशनेहारा है, अरु संसाररूपी मोतियोंके परोवणेहारा तागा यही है, सबका कारण कार्य यही है, अरु साकारतें रहित है, शरीर आदिक सब इसकी सत्ताकरि उपलब्ध होते हैं, शरीररूपी रथ इसीकरि चलता है, अरु वास्तवतें शरीरादिक कछु वस्तु नहीं, यह जगत् चित्तरूपी नटकी नृत्य लीलारूप है, चित्तविषे जगत् फुरता है, वास्तव और वस्तु कछु नहीं, बडा कष्ट है, मैं वृथा संग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह है, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था, बडा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझकों दिखता था, अब मैं निश्चय करिके सम प्रबोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भई, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैंनें देखी है, अरु जो कछु पावणे योग्य था, सो मैं पाया हौं, अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वकों प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसकों मैंनें स्वरूपतें देखा है, अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानंदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या! यह क्लेश कोउ नहीं, न कोउ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है, और दूसरी वस्तु कछु नहीं, राग किसका करौं! अरु दोष किसका करौं! मैं मिथ्या मूढताकों प्राप्त होइकरि दुःखी होता था, अब कल्याण हुआ, मैं अमूढ होइकरि अपणे आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कारविना दुःखी था, इसके देखेतें अब किसका शोक करौं, अरु कैसे मोहकों प्राप्त होउं, अब मैं क्या देखौं, अरु क्या करौं, कहां स्थित होउं, यह सब जगत् आत्माके प्रकाशकरि है, अरु सब आत्मारूप है॥ हे अतत्त्वरूप! अर्थ यह जो जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं, तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझहीकों नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमतें रहित निष्कलंक सब इच्छा

तें रहित सुषुप्तिकी नांई शांतरूप हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, सदा अपणे आपविषे स्थित हौं॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः॥ ५४ ॥ ॥ ॥ ॥ वासिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! क्रांत जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदकों प्राप्त भया, इस प्रकार विचार अभ्यासकरि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधीका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिके उसी शरीरसाथ क्षत्रियतें ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंकों करत भया, जैसे सूर्य इष्टअनिष्टविषे सम है, विगतज्वर होइकरि दिनोंकों व्यतीत करता है, तैसे रागदोषतें रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल उंची नीची ठौरविषे गमन करता है, अपना जलभाव नहीं त्यागता, सम रहता है, तैसे राजा हर्षशोकतें रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया, अरु स्वभावकों न त्यागत भया, आत्मविचारकों धारी सुषुप्तिकी नांई वृत्ति हो गई, संसारभावका फुरणा कछु न फुरै, जैसे वायुतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशकों धारताभया ॥ हे रामजी! दया करता भी दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं, अरु दयातें रहित भी औरोंकों दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे निर्दयता नहीं, न कछु सुख न दुःख, अर्थ न अनर्थ न, सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आत्मा देखै, अरु अंतरतें पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल रहै, अरु आत्माका किंचनरूप जगत्कों जानत भया, सुखदुःखका भाव शांत हो गया, जैसे सूर्यके उदय हुएतें अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गए, अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता, अरु पांचों विषयोंकों ग्रहण कर्त्ता, रागदोषकों प्राप्त न भया, जैसे पथ्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरता; तैसे उसकों कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुर्या, सब कर्तव्य कों कर्त्ता भी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ, वहुत काल वीतावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया, जैसे बरफका कणका सूर्यके तेजकरि

जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपणे भावकों त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया, जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपणे भावकों त्यागिकरि उज्ज्वल भावकों प्राप्त भया, कलनारूपी मलकों त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानंद ज्योतिभावकों प्राप्त भया, जैसे घट फूटेतें घटाकाश महाकाश हो जाता है, तैसे पूर्णब्रह्म चिदानंद तत्त्व होता भया ॥ इति श्रीयोग० उप० सुरघवृत्तांतसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तुम भी इसी दृष्टिकों आश्रय करिके विचारो, तब सब भय मिटि जावैगा, जैसे घोर तमविषे बालक भयकों पावता है, सो जब दीपकका प्रकाश होता है, तब निर्भय होता है, तैसे संसाररूपी घोर तमविषे आया पुरुष दुःख पाता है, जब ज्ञानरूपी दीपका उदय होवै, तब निर्भय हो जाता है ॥ हे रामजी! जब आत्मविचारविषे कछु भी चित्त विश्राम पावता है, तब तिस विश्रामकों आश्रयकरि संसारसमुद्रतें निकसि जाता है, जैसे टोएविषे गिरै ताकों तृणका बूटा हाथ लगै, तौ भी तिसके आश्रयकरि निकसी आता है ॥ हे राम ! यह पावन दृष्टि मैंनें तुझकों कही है, इसकों चित्तविषे विचार, परस्पर मिलिकरि उदाहरणसाथ अभ्यासकरि नित्य एक समाधिविषे स्थित होहु, अरु पृथ्वीका भूषण होइकरि लोकोंविषे विचरौ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक समाधि किसकों कहियें, अरु कैसे होती है, सो कहौ, औ जो मेरा चित्त फुरता है, सो स्थित होवै, जैसे वायुकरि मोरका पुच्छ हलता है, तैसे चंचलरूप चित्त सदा फुरता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था, तब तिसका संवाद पर्णादि राजा ऋषिसों हुआ था, महाअद्भुत समाधि है, तिसकों सुणिकरि विचारै तौ तूं एक समाधिवान् होवैगा, जो इननें मिलिकरि परस्पर चर्चा करी है, सो सुण ॥ हे रामजी ! पारस देशका राजा महावीर्यवान् था, अरु परघ तिसका नाम था, सो सुरघका मित्र था, जैसे नंदन वनविषे कामदेव अरु वसंतऋतुका

मित्रभाव होता है, तैसे सुरघ अरु परघका मित्रभाव होत भया, एक कालमें परघके देशविषे प्रलयकाल विना प्रलयकालकी नाईं होत भया, तिसकरि सब जीव दुःख पावणे लगे, प्रजाके जीवोंकी जो पापबुद्धि थी, तिसीका फल आनि लगा, महादुर्भिक्ष पडा, केई क्षुधाकरि मृतक भए, केई अग्निकरि जलि मरे, केई झगडाकरि मृतक भए, प्रजाके लोक बहुत दुःखकों प्राप्त भए, अरु राजाकों दुःख कछु न प्राप्त भया, जब प्रजा बहुत दुःख पाई, तब राजा प्रजाकों दुःखी देखत भया, अरु प्रजाके दुःख निवारणेकों समर्थ न भया, तिसकरि प्रजा अरु कुटुंबकों त्यागि गया, जैसे बनकों अग्नि लगेतें पक्षी त्यागि जाते हैं, जैसे ग्रामकों अग्नि लगे तौ पेंढाई त्यागि जाते हैं, तब एक पहाडकी कंदराविषे तप करने लगा, ऐसा तप करने लगा, जैसा जिनेंद्रनें तप किया था, तिस कंदराविषे फल न पावै, सूके पान ले खावै, जैसे अग्नि सूके पानकों भक्षण करती है, तैसे सूके पान खावै, तिसकरि तिसका नाम पर्णाद होत भया, वह तौ एकांत जाइकरि तप करने लगा, परंतु द्वीपविषे तिसका नाम पर्णाद प्रसिद्ध भया, अरु तप यही जो चित्तकी वृत्तिकों आत्मपदविषे जोडता भया, सहस्र वर्षपर्यंत तप किया, तब अभ्यासकरि चित्त स्थित भयेतें केवल ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलताकरि प्रकाशि आया, तब सब तप्तता मिटि गई, रागदोषतें रहित निष्क्रिय आत्मदर्शी जीवन्मुक्त होइकरि विचरणे लगा, रागदोषतें रहित हुआ, त्रिलोकीरूपी मढीविषे विचरै, सिद्धोंके स्थानोंविषे जावै, जैसे सरोवरोंविषे कमलोंके निकट भंवरा हंसोंसाथ जाय मिलता है, तैसे सिद्धोंसाथ राजा जाय मिले, ऐसे फिरता फिरता क्रांत देशविषे सुरघके स्थानोंकों जाय प्राप्त भया, तब सुरघ पूर्व मित्रकों देखिकरि उठि खडा भया, परस्पर कंठ लगाइकरि मिले, अरु परस्पर भाव करिके एक आसनपर चंद्रमा अरु सूर्य जैसे बैठी गए, अरु आपसमें कुशल पूछणे लगे, प्रथम परघ बोलत भया ॥ ॥ परघ उवाच ॥ हे मित्र ! तेरे दर्शनतें परमानंदकों प्राप्त भया हों, जैसे कोई चंद्रमाके मंडलविषे जाय आनंदमान् होवै, तैसे आनंदमान् हु

आ हौं, बहुत कालका जो वियोग होता है, तब बहुत प्रीति बढती है, जैसे वृक्षकों उपरतें काटेतें बहुरि बढता है, तैसे प्रीति बढती है ॥ हे साधो ! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ, अरु तूं भी मांडव मुनि अरु आत्माके प्रसादकरि ज्ञानकों प्राप्त भया है ॥ हे राजन् ! मेरा अभीष्ट प्रश्न है, जो अब दुःखोंतें मुक्त भया है क्यौं, अरु विश्रामकों प्राप्त भया है क्यौं, अरु आत्मपद पावणेकी बडाइ मेरु आदिकतें भी उंची है, तिसकों तूं प्राप्त भया है क्यौं ? परम कल्याणवान् आत्मारामी हुआ है क्यौं ? अरु तूं राग द्वेष मलतें रहित हुआ है क्यौं ? जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल हुआ है क्यौं ? अरु सब कार्योंकों कर्ता समभावविषे रहता है क्यौं ? अरु आधि व्याधि तापो तेरे दूर भये हैं क्यौं ? अरु तेरी प्रजा भी विगतज्वर भई है क्यौं ? अरु धन राज्य मालविषे भी कुशल है क्यौं ? जैसे चंद्रमाकी किरणांकरि शीतलता पसरी रही है, तैसे तेरा यश दशों दिशामें पसरी रहा है क्यौं ? अरु तेरा यश ग्रामवासी क्षेत्रोंविषे अरु कुडिया गावतियां हैं क्यौं ? हे राजन् ! प्रजा टहलुए पुत्र कलत्र सब आधिव्याधितें रहित हुए है क्यौं ? अरु आपातरमणीय जो विषय पदार्थ हैं, तिनविषे अब तेरी प्रीति नहीं है क्यौं ? अरु तृष्णारूपी सर्पिणी तुझकों अब तौ दिसती नहीं क्यौं ? हे राजन् ! तुमारी हमारी मित्राइ हुई थी, सो समय पाइकरि तुम कहां रहे, हम कहां रहे, अब बहुरि एकठे आनि हुए हैं, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति जानि नहीं जाती, सुखतें दुःख हो जाता है, अरु दुःख गएतें सुख हो जाता है, संसारकी दिशा आगमापायि है, संयोगका वियोग होता है, वियोगका संयोग होता है, तैसे तुमारा हमारा संयोगका वियोग हो गया था, बहुरि वियोगका संयोग आनि हुआ है, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति अद्भुतरूप है ॥ ॥ सुरघ उवाच ॥ हे देव ! परमात्मा देवकी नीतिकों जानि नहीं शकते, सो महागंभीर विस्मयकों देणेहारी अरु दुर्ज्ञात है, तुमारा हमारा वियोग हुआ तब दूरतें दूर जाय पडे, तुम कहां अरु हम कहां, बहुरि एकठे आनि भए हैं, जो देवकी नीति आश्चर्यरूप है, तुम जो मुझ

कों कुशल पूछा, सो तुमारा आवणाही जो पुण्य है, तिसकरि मैं परम पावन हुआ हों, तुमारे दर्शनकरि पाप सब नष्ट हो जाता है, आज हमारे पुण्यका फल लगा है, जो तुमारा दर्शन भया है, अरु जेता कछु यश संपदा है, सो सब आज प्राप्त भया है ॥ हे भगवन्! संतोंका जो आवणा है, सो मधुर अमृतकी नांई है, जैसे अमृत झरनेतें निकसता है, तैसे तुमारे दर्शनतें अरु वचनोंकरि परमार्थरूपी अमृत स्रवता है, जिसकों पाइकरि जीव निर्भयताकों प्राप्त होता है, संतोंका मिलना परमपदके तुल्य है, सो हम परम शुद्धताकों प्राप्त भए हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार पूर्व वृत्तांत कही रहे, तब बहुरि परघ बोलत भया ॥ ॥ परघ उवाच ॥ हे राजन्! जो जो समाहितचित्त इस जगत्जालविषे कर्म करता है, सो सुखरूप होता है, अब संकल्पतें रहित जो परम विश्राम अरु परम उपशम समाधि है, तिसविषे स्थित हुआ है क्यों?॥ ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन्! तुमही कहौ जो सब संकल्पतें रहित परम उपशम समाधि किसकों कहते हैं, अरु जो तुम मुझतें पूछौ, तौ श्रवण करौ, जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं, सो तूष्णीं रहैं, अथवा व्यवहार करैं, उह असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते ॥ हे साधो! नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है, अरु जगत्के कार्य भी करते हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हैं, तौ उह सर्वदा समाधिविषे स्थित हैं, अरु पद्मासन बांधिकरि बैठते हैं, ब्रह्मअंजली हाथविषे रखते हैं, अरु चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, अरु विश्रांतिकों नहीं पावता, उनकों समाधि कहां! वह समाधि नहीं कहाती ॥ हे भगवन्! परमार्थ तत्त्वबोध है, सो सब आशारूपी तृणोंकों जलावणेहारी अग्नि है, ऐसी निरासरूप जो समाधि है, सोइ समाधि है, तूष्णीं होणेका नाम समाधि नहीं ॥ हे साधो! जिसका चित्त समाहित अरु नित्य तृप्त है, सदा शांतरूप है, अरु यथाभूतार्थ है, अर्थ यह जो यथार्थ ज्योंका त्यों ज्ञान हुआ है, अरु तिसीविषे नि

श्चय है, सो समाधि कहाती है, तूष्णीं होणेका नाम समाधि नहीं, जिसके हृदयविषे संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं, निरहंकार है, अरु अनउदयही उदय है, सो पुरुष समाधिविषे कहाता है, ऐसा जो बुद्धिवान् है, सो मेरुतें भी अधिक स्थित है॥ हे साधो! जो पुरुष निश्चित्त है, ग्रहणत्यागतें जिसकी बुद्धि निवृत्त भई है, अरु पूर्ण आत्मतत्त्वही भासता है, अरु व्यवहार भी करता दृष्ट आता है, तौ भी तिसकों समाधि कही है, जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, तिसकी अत्यंत समाधि हो जाती है, क्षणक्षण बढती जाती है, निवृत्त नहीं होती, जैसे अमृतके पान कियेतें अमृतकी तृष्णा बढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि बढती जाती है, जैसे सूर्यके उदय हुएतें सब किसीकों दिन भासता है, तैसे ज्ञानवानकों सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है, जैसे नदीका प्रवाह किसीतें रोक्या नहीं जाता, तैसे ज्ञानवानकी आत्मदृष्टि किसीतें रोकी नहीं जाती, जैसे कालकी गति कालकों एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती, तैसे ज्ञानवानकों आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती, जैसे पवन चलते ठहरतेकों अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवानकों चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहीं होता, जैसे सत् शब्दविना कोउ पदार्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ज्ञानवानकों आत्माविना कोउ पदार्थ नहीं भासता, जिस और ज्ञानवानकी दृष्टि जाती है, तहां अपणा आप भासता है, जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे सर्व और अपणा मुख भासता है, तैसे ज्ञानवानकों सर्व उर अपणा आपही भासता है, जैसे उष्णताविना अग्नि नहीं, शीतलताविना बर्फ नहीं, श्यामताविना काजर नहीं पाइता तैसे आत्माविना जगत् नहीं पाइता॥ हे साधो! जिसकों आत्मातें भिन्न पदार्थ कोउ नहीं भासता, तिसकों उत्थान कैसे होवै, सर्वदा मैं बोधरूप हौं, अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हौं, तातें उत्थान मुझकों कदाचित् नहीं, आत्मातें भिन्न मुझकों कोउ नहीं भासता, सर्व प्रकार आत्मतत्त्व मुझकों भासता है॥ हे साधो! आत्मतत्त्व सर्वदा जानणे योग्य है, सर्वदा और सर्व प्रकार आत्मा स्थित

है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवै? जिसकों कार्यकारणविषे विभागकलना नहीं फुरती, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसकों समाहित असमाहित क्या कहियें! समाधि अरु उत्थानका वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत भेद कछु नहीं, तौ समाहित असमाहित क्या कहियें ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७॥

॥ सुरघ उवाच ॥ हे राजन्! निश्चय करिके अब तूं जाग्या है, अरु परमपदकों प्राप्त भया है, अरु पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल अंतःकरण भया है, अरु परम शोभाकरि मुख शोभित भया है, अरु ब्रह्मलक्ष्मी करि संपन्न परमानंदसों पूर्ण भया है, शीतल अरु स्निग्ध तेरा हृदयकमल विराजमान है, निर्मल विस्तृत गंभीरता तेरी मुझकों प्रगट भासती है, अरु निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तेरा हृदय भासता है, अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट भया है ॥ हे राजन्! अब तुझकों सर्वत्र स्वस्थ अरु सर्वथा संतुष्टता है, अरु किसीविषे राग नहीं, वीतराग होइकरि विराजता है, सारअसारकों तुझनें भली प्रकार जान्या है, अरु जानिकरि असार संसाररूपी समुद्रतें पारकों प्राप्त भया है, अरु महाबोधकों ज्योंका त्यों जानिकरि अखंड स्थिति पाई है, भाव अभाव पदार्थ दोनोंकों तूं जानत भया है, सम असम जो जगत्के पदार्थ हैं, तिनतें मुक्त भया है, मुदित शांत आशय हुआ है, इष्ट अनिष्ट ग्रहण त्याग तेरा निवृत्त भया है, राग दोष तृष्णारूपी मेघ बादलोंतें रहित निर्मल आकाशवत् तूं शोभता है, अरु अपणे आपकरि तृप्त भया है, कछु इच्छा तुझकों नहीं ॥ सुरघ उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस जगत्विषे ग्रहण करनेयोग्य वस्तु कोउ नहीं, जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सब आभासरूप हैं, तौ किसकों ग्रहण करियें, अरु जो कहियें ग्रहण करने योग्य नहीं तौ त्याग करियें, सो आभासरूप पदार्थों का त्याग क्या करियें, अरु ग्रहण क्या करियें, काहेतें जो है, नहीं, सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं, जैसे सूर्य की किरणांविषे जल भासता है, सो जलभासका कौन अंग ग्रहण करियें, अरु कौन अंग त्याग करियें, ते

से यह जगत् भी है ॥ हे मुनीश्वर! जगत्के तुच्छ पदार्थ हैं, एक अतुच्छ हैं, जो थोडे कालविषे नष्ट हो जाता है, सो तुच्छ है, अरु चिरकालपर्यंत रहते हैं, सो अतुच्छ हैं, परंतु दोनों कालतें उपजे हैं, अब मैं अकाल स्वरूपकों देखा है, तब दोनों तुल्य हो गए हैं, बहुरि इच्छा किसकी करौं, जो है कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो रमणीय पदार्थ जाणते हैं, तिसकी इच्छा करते हैं, सो त्रिलोकीविषे रमणीय पदार्थ कोउ नहीं, सब तुच्छ नाशरूप हैं, अरु जीवोंकों जो बडे पदार्थ भासते हैं, सो अविचारकरि भासते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंध जेते इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब असाररूप हैं, स्त्रीकों बडा पदार्थ जानते हैं, सो देखणे मात्र सुंदर हैं, अंतरतें रक्त मांस विष्ठा मूत्रका थेला बण्या हुआ है, इसविषे सार कछु नहीं, अरु पर्वत बडे पदार्थ हैं, सो पत्थर बंटे हैं, अरु समुद्र है सो जल है, वनस्पती काष्ठ पत्र हैं, इनतें आदि जो कछु पदार्थ हैं, सो आपातरमणीय हैं, सो विचारविना सुंदर भासतें हैं, इनकी जो इच्छा करते हैं, सो अपणे नाशके निमित्त करते हैं, जैसे पतंग दीपककी इच्छा करता है, सो अपणे नाशके निमित्त करता है, जैसे हरण श्रवण नादकी इच्छा करता है, सो नाशकों प्राप्त होता है, तैसे जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं, सो अपणे नाशकों करते हैं, तातें विचारतें रहित जो अज्ञानी है, सो पदार्थकों रमणीय जानिकरि इच्छा करता है, अपणे नाशके निमित्त, अरु जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं, सो अरमणीय जानिकरि किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करते, जैसे सूर्य उदय हुएतें अंधकारका अभाव होता है, तातें जब पदार्थोंका राग उठि गया, तब तृष्णा किसविषे रहै ॥ हे साधो ! राग दोष इच्छा ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं, तिन सबतें रहित शुद्ध आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, बहुत कहणेकरि क्या है, जिस पुरुषके मनतें वासना नष्ट हो गई है, सो उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपदकों प्राप्त हुआ है, अरु संसारसमुद्रकों तरि गया है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघनिश्चयवर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवा

च॥ हे रामजी! इस प्रकार सुरघ अरु परघ जगत्कों भ्रमरूप विचारते भये, विचार करिके परस्पर गुरु जाणिकरि पूजते भये, बहुरि परघ चलता रहा॥ हे रामजी! इनका परस्पर संवाद तुझकों श्रवण कराया है, सो परम बोधका कारण है, इस विचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोध करिके जब विचार करैगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा, अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, तातें परम पदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादलके अभावका यत्न करो, सो आत्मा सत्य है, सब आनंदकी संपदा है, चिदाकाश है, तिसविषे स्थिति पावैगा॥ हे रामजी! जो पुरुष नित्य अंतर्मुखी अध्यात्ममय है, अरु नित्य चिदानंदविषे चित्तकों जोडता है, सो सदा सुखी है, तिसकों शोक कदाचित् नहीं होता, जो पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है, सो बडे व्यवहार करै, अरु रागदोषसहित दृष्ट आवै, तौ भी तिसकों कछु कलंक प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्ट आता है, तौ भी उंचा रहता है, जल उसकों स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्कों व्यवहारका रागद्वेष अंतर स्पर्श नहीं करता॥ हे रामजी! जिसका अंतर मन शांत हुआ है, तिसकों संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सकते, जैसे सिंहकों मृग दुःख दे नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्कों जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुषकों आत्मानंद प्राप्त भया है, तिसकों विषयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विषयों निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुष नंदनवनविषे स्थित भया है, सो कंकरेके वृक्षकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता॥ हे रामजी! जिस जिस पुरुषनें जगत्कों अविद्यारूप जानिकरि त्याग किया है, तिसके चित्तकों जगत्के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते, जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरि जावै, तब उसकों दुःख नहीं होता, सो ज्ञानवान्के चित्तविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नंदनवनविषे कंकरका वृक्ष नहीं उपजता, जिस पुरुषकों आत्मबोध हुआ है, अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के

कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, परंतु उसकों स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशविषे अंधकार दृष्ट आता है, परंतु आकाशकों स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! अविद्याके निवृत्तिका कारण विद्या है, और किसी उपायतें निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाशविना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचारविना अविद्या निवृत्त नहीं होती, अविचारका नाम अविद्या है, अरु विचारका नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैगे, आत्मानंदकरि संतुष्टमान रहैगा ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्कों विचारतें इंद्रियोंके व्यवहार अंधकरि नहीं सकते, जैसे जलविषे मच्छी रहती है, तिसकों जल अंधकरि नहीं सकता, और अंध हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता, और जीव अंध हो जाता है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, अरु चित्त परमानंदकों प्राप्त होता है, अरु रागदोषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहकों प्राप्त नहीं होता, जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है तिसका जन्म अरु कुल सफल होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतकों पाइकरि अपणेविषे शीतल होता है, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास करता है, सो शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी उही, अरु मृत्यु भी उही है, अरु शास्त्र भी वही है, जिसकरि संसारतें वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै, जब आत्मपदकों पावता है, तब इसका सब क्लेश मिटि जाता है, अरु जिनकों आत्मचिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा, जन्मरूपी जंगलके वृक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध है, अरु अनेक आशारूपी फांसीयोंकरि बांधा है, अरुजरा अवस्थारूपी पत्थरोंके मार्ग करिके जर्जरीभाव होता है, भोगरूपी तलावडी गिरतविषे गिर्या है, कर्मरूपी भारकों लिये जन्मरूपी जंगलविषे भटकता हुआ कर्म चीकडविषे फस्या हुआ रागदोषरूपी मच्छरोंकरि दुःखी होता है, स्नेहरूपी रथकों पकडी खैंचता है, अरु पुत्र स्त्रीयांदिककी ममतारूपी

चीकडविषे गोते खाता है, अरु मोहसंसाररूपी मार्गविषे कर्मरूपी रथकेसाथ जोडता है, अरु उपरतें अज्ञानरूपी तप्तताकरि जलता है, संतजन अरु सत्‌शास्त्ररूपी वृक्षकी छायाकों नहीं पावता ॥ हे रामजी! जीवरूपी बलध ऐसा है, सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै, तब चित्तभ्रम नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरणेका उपाय सुन, महापुरुष संत जन है, मलाह है, सो अरु तिनकी युक्तिरूपी जहाज होवै, तिसकरि संसाररूपी समुद्रकों तरि जावैगा, और उपाय कोइ नहीं, यह परम उपाय है, जिस देशविषे संतजनरूपी वृक्ष नहीं, जिनकी फलोंसहित शीतल छाया है नहीं, तिस निर्जन देश मरुस्थलविषे एक दिन भी न रहिए ॥ हे रामजी! संतजनरूपी कैसे वृक्ष हैं, स्निग्ध अरु शीतल वचनरूपी जिनके पत्र हैं, अरु उनका प्रसन्न होणां सुंदर फूल हैं, अरु उनका निश्चय उपदेशरूपी फल हैं, जब यह पुरुष तिनके निकट जावै, तब महामोहरूपी तप्ततातें छूटैगा, अरु शांतिकों प्राप्त होवैगा, अरु तिनकों पाइकरि तृप्त होवैगा, अरु तिन फलोंकों पाइकरि अघावैगा, सब दुःखोंतें मुक्त होवैगा ॥ हे रामजी! अपणा आपही मित्र है, अरु अपणा आपही शत्रु है, अपणे आपकों जन्मरूपी चीकडविषे न डारै, जो देहविषे अहंभावनाकरि विषयोंकी तृष्णा करता है, सो अपणा आपही नाश करता है, अरु जो देहभावकों त्यागिकरि आत्म अभ्यास करता है, तब अपणा आप उद्धार करता है, सो अपणा आपही मित्र है, अरु जो आपकों संसार समुद्रविषे डारता है, सो अपणा आपही शत्रु है ॥ हे रामजी! प्रथम विचार यह करि देखै, जो जगत् क्या है, अरु कैसे उत्पन्न भया है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, अरु मैं कौन हौं, अरु सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि जो सत्य है, तिसकों अंगीकार करै, अरु जो असत्य है, तिसका त्याग करै ॥ हे रामजी! न इसका धन कल्याण करता है, न मित्र बाधवकें न शास्त्र कल्याण करते हैं, अपणा उद्धार आपही करता है, तातें अपणे मनसाथ मित्राइ करौ, दृढ वैराग्य अरु अभ्यास करै तब संसार कष्टतें छूटै,

जब वैराग्य अभ्यासकरि तत्त्वके अवलोकनरूपी बेडी करै, तब संसारसमुद्रतें तरि जाता है ॥ हे रामजी! जीवरूपी हस्ती है, अरु जन्मरूपी गर्तविषे गिर्या हुआ है, अरु तृष्णा अहंकाररूपी जंजिरेसाथ बांध्या है, अरु कामनारूपी मदकरि उन्मत्त है, जब तिनोंतें छूटै, तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी! हृदयरूपी नेत्रोंविषे अनात्मा अभिमानरूपी मल रक्त हो गया है, जब विचाररूपी औषधिकरि तिसकों दूर करिए, तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शन होवै ॥ हे रामजी! और उपाय कोउ न करै तौ एक उपाय करै, जो देहकों काष्ठ लोष्टवत् जानिकरि इसका अभिमान त्याग, जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आपही आत्मारूपी सूर्य प्रकाश आवैगा, जब अहंकाररूपी बादल लय होवैगा, तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासैगा, सो परमानंदस्वरूप है, सुषुप्तितें मौन अंकुर है, केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणीकरि कह्या नहीं जाता, अनुभव करिके आपही जानीता है, हे रामजी! सब जगत् अनंत आत्मा है, जब चित्तका दृढ परिणाम उसविषे होवै, तब स्थावरजंगमरूप जगत्विषे उही दिव्य देव भासैगा, और वासना सब निवृत्त हो जावैगी, केवल परमानंद आत्मतत्त्व अनुभवकरि दिखाइ देवैगा, सो स्वरूप पूर्ण अद्वैत है, और सब जगत्का त्यागकरि तिसके पावणेका यत्न करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे कारणोपदेशो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मनकरि मनकों छेदौ, अरु अहं मम भावकों त्यागौ, जबलग मन नष्ट नहीं होता, तबलग जगत्के दुःख निवृत्त नहीं होता, जैसे मूर्तिका सूर्य मूर्तिके नष्ट हुएविना अस्त नहीं होता, जब मूर्ति नष्ट होवै तब सूर्यका आकार दूर हो जावै, तैसे जब मन नष्ट होवै, तब संसारके दुःख नष्ट हो जावैंगे, अन्यथा नष्ट नहीं होते ॥ हे रामजी! जैसे प्रलयकालविषे अनंत दुःख होता है, तैसे मनके होणेकरि अनंत दुःख होते हैं, जैसे मेघके वर्षणेकरि नदी बढती जाती है, तैसे मनके जागेतें आपदा बढती जाती है, इसही पर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं, सो परस्पर सुहृदोंका है, तूं श्रवण कर ॥ हे रामजी!

सह्याचल पर्वतोंविषे बडा पर्वत है, तिस उपर फूलोंके समूह हैं, अरु नानाप्रकारके वृक्ष हैं, अरु जलके झरने चलते हैं, मोतियोंके स्थान अरु स्वर्णके शिखर हैं, कहूं देवताके स्थान हैं, पक्षी शब्द करते हैं, अरु तले क्रांत रहते हैं, उपर सिद्ध देवता विद्याधर रहते हैं, पीठविषे मनुष्य रहता है, नीचे नाग रहते हैं, मानो संपूर्ण जगत्का गृह इही है, तिसके उत्तर दिशा सुंदर तलाव है, वृक्ष फूलोंकरि पूर्ण है, महासुंदर रचना स्वर्ग जैसी उपमा तिनकी, तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहता था, साधुओंके श्रम दूर करनेहारा था, तिसके आश्रमपास दो तपसी आनि रहे, जैसे आकाशविषे बृहस्पति अरु शुक्र आय रहे हैं, तैसे यह दोनों रहैं, तिन दोनोंके गृहविषे दो पुत्र महासुंदर उत्पन्न भए, जैसे कमल उत्पन्न होवैं, तैसे उत्पन्न भए, एकका नाम भास, एकका नाम विलास भया, दोनों क्रमकरि बडे हुए, जैसे अंगुरीके दोनों पत्र हैं, सो बढते हैं, तैसे बढता जावै, अरु परस्पर तिनकी प्रीति बहुत बढी अरु एकठेही रहैं, जैसे तिल अरु तेल एकठेही रहते हैं, जैसे फूल अरु सुगंधि एकठे रहते हैं, जैसे स्त्री अरु पुरुषकी प्रीति आपसमें होती है, तैसे उनकी प्रीति बढी, अरु देखणेमात्र तौ दो मूर्त्ति दृष्ट आवैं, परंतु मानो एकही है, स्नान आदिक क्रिया भी तिनकी एक समान, मानसी क्रिया भी एकसमान, अरु महासुंदर प्रकाशवान्, जैसे चंद्रमा अरु सूर्य हैं, तैसे जब केताक काल व्यतीत भया, तब तिनके माता पिता शरीरकों त्यागिकरि स्वर्गकों गये, तिनके वियोगतें दोनों शोकवान् भए, जैसे कमलकी कांति जलविना जाती रहै, तैसे उनके मुखकी कांति कुमलाइ गई, फेरि इनके मरनेकी क्रिया सब करत भए, पाछे उनके गुन स्मरण करिके विलाप करैं, महाशोकवान् होवैं, महापुरुष भी लोकमर्यादा लंघते नहीं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार शोककरि उनका शरीर कृश हो गया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे उजाड बनका वृक्ष जलविना सूकि जाता है, तैसे उनका शरीर सूकि गया, तब दो

नों विगतज्वर होकरि विचरने लगा, जैसे यूथ समूहसों विछुर्या हरण शोकवान् होता है, तैसे आपसमें बिछुरि गए अरु शोककों प्राप्त भए, एक एकले फिरने लगे, निर्मल ज्ञान तिनकों प्राप्त न था, सो जब केतक काल व्यतीत भया तब बहुरि आय मिले अरु विलास कहत भये ॥ हे भाई! मेरे हृदयकों आनंद देणेहारे अमृतके समुद्र जीवणेरूपी जो वृक्ष है, तिसका फल सुख है, सो तूं एता काल सुखसों रहा है क्यौं, अरु तेरा मेरा वियोग हो गया, तब तूं कैसी क्रिया करत भया, तुझनें कछु निर्मल चित्त किया है क्यौं, तुझनें अब आत्मपद पाया है क्यौं, अरु तेरी बुद्धि शोकतें रहित है क्यौं, अब विद्या तुझकों फली है क्यौं, तूं अब कुशलरूप हुआ है क्यौं ॥ भास उवाच ॥ हे साधो! अब हमकों कुशल भया है, जो तेरा दर्शन भया है, अरु जो जगतविषे कहौ तौ कुशल कहां है, इस संसारविषे स्थित हुए हमकों सुख अरु कुशल कहां है? हे साधो! जबलग ज्ञेय परमात्मतत्वकों नहीं पाया, अरु जबलग चित्तभूमिका क्षीण नहीं भई, अरु जबलग संसारसमुद्रकों नहीं तरै, तबलग कुशल कहां है, जबलग चित्तसों दुःख निवृत्त नहीं होता, तबलग चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती, जबलग संसारसमुद्रतें पारकों प्राप्त नहीं भया, तबलग हमकों सुख कहां है, जबलग चित्तरूपी क्षेत्रविषे आशारूपी कंटकोंकी वल्ली बढती जाती है, सो आत्मविचाररूपी दात्रिसाथ नहीं काटी, तबलग हमकों कुशल कहां, जबलग आत्मज्ञान उदय नहीं भया, तबलग हमकों कुशल कहां है ॥ हे साधो! संसाररूपी विषूचिका रोग है, आत्मरूपी औषधविना दूर नहीं होता, सब जीव नित्य उही क्रिया करते हैं, जिसकरि दुःखकी प्राप्ति होवै है, सुखकों नहीं प्राप्त होते, देहरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे बाल अवस्थारूपी पत्र हैं, यौवन अवस्थारूपी फूल हैं, वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं, सो मृत्युके मुखमें जाय पडता है, उपजता है, बहुरि नष्ट होता है, यह सुख जो लवाकार है, अरु दुःख जिसका स्थावर दीर्घतें दीर्घ है, ऐसे जो शुभ अशुभ आरंभ हैं, तिनविषे इनकों दिन रात्र व्यतीत होते हैं ॥ हे साधो! चित्तरूपी हस्ती

है, सो वैराग्यरूपी सांकरविना दूरतें दूर तृष्णारूपी हस्तिनीके पाछे चला जाता है, जैसे इल्लु पक्षी मांसकी ओर चला जाता है, तैसे चित्त विषयोंकी ओर धावता है, आत्मारूपी जो चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इल्लु है, सो देहादिकरूपी मासकों धावता है, अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमानरूपी धूलकरि भुसर हो जाता है, अरु योगरूपी बर्फकरि नष्ट हो जाता है ॥ हे साधो ! देहरूपी कूपविषे गिर्या है, भोगरूपी तिसविषे सर्प हैं, अरु आशारूपी कंटक हैं, तृष्णारूपी जल है, तिसविषे यह दुःख पावता है ॥ हे साधो ! नानाप्रकारके रंगरंजनारूपी जिसविषे रंग हैं, अरु जिसविषे तृष्णारूपी चंचलता है, ऐसे चैत्य दृश्यविषे मग्न है, चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है, अरु चिंतारूपी तिसविषे घुमर घेर हैं, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पावता है, अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पावती है, यह मैंनें किया है, यह करता हौं, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जलविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पावती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती ॥ हे भाई ! यह चित्तरूपी कमल है, इसकों रागदोषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, जो यह मेरा सुहृद है, यह मेरा शत्रु है, अहं मम इसकों मारता है, शुद्ध आत्मरूपकों त्यागिकरि देहादिक अनात्मारूपविषे अहंभाव करता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है, जैसे राजतें रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावतें रहित कष्ट पावता है, देहाभिमान करिके जन्ममरणके दुःखोंकों देखता है, जब देहाभिमानका त्याग करै, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अनित्यताप्रकरणं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार उननें परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनकों निर्मल ज्ञान प्राप्त भया, अरु मोक्षपदकों प्राप्त हुआ, तातें हे रामजी ! ज्ञानतें और मार्ग कल्याणनिमित्त कोउ नहीं, जि

सका चित्त आशारूपी फांसीसाथ बांध्या हुआ है, सो संसारसमुद्रके पार होणेकों समर्थ नहीं होता, तातें जीव संसारसमुद्रविषे गोते खाता है, अरु ज्ञानवान् शीघ्रही तरि जाता है, जैसे गोपद लंघणेविषे सुगम होता है, अरु जिस पक्षीके पक्ष टूटे हैं, सो समुद्रकों नहीं तरी सकता, बीचमेंही गिरिके गोते खाता है, अरु पंखोंसाथ गरुड शीघ्रही लंघि जाता है, तैसे जिन पुरुषोंके वैराग्य अरु अभ्यासरूपी पंख टूटे हैं, सो संसारसमुद्रतें पार नहीं हो सकता, अरु जिन पुरुषोंकों वैराग्य अभ्यासरूपी पंख हैं, ऐसा ज्ञानवान् शीघ्रही तरी जाता है ॥ हे रामजी ! जो देहतें अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्वविषे स्थित हुए हैं, सो उंचे होकरि देखते हैं, अरु अपणे देहकों देखि हसते हैं, जैसे सूर्य जनताकों देखि हसता है, अर्थ यह जो जगत्की क्रियातें निर्लेप रहता है, जैसे रथके टूटेतें रथ वायुकों खेद कछु नहीं, तैसे देहके दुःखकरि ज्ञानवान्कों खेद कदाचित् नहीं होता, अरु मनके क्षोभकरि भी आत्मतत्वविषे कछु क्षोभ नहीं होता, जैसे तरंगउपर धूलि परती है, तिसकरि समुद्रकों कछु लेप नहीं होता, तैसे मनके दुःखकरि आत्माकों क्षोभ नहीं होता ॥ हे रामजी ! देह अरु आत्माका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु हंसका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडीका संबंध कछु नहीं, तैसे देह अरु आत्माका संबंध कछु नहीं, जैसे पहाड समुद्रका संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु पथ्थर अरु काष्ठ एक ठौर रहते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडी संघट्ट होता है, तौ जलकणके उठते हैं, तैसे देह अरु आत्माके संयोगतें चित्तवृत्ति फुरती है ॥ हे रामजी ! इसकों दुःख जो होता है, सो संगकरि होता है, जहां अहं मम अभिमान होता है, तहां दुःख भी होता है, अरु अहं ममका अभिमान नहीं, तहां दुःख भी कछु नहीं, अरु मच्छीकों जलविषे ममत्व होता है, तिसके वियोगकरि कष्ट पावती है, तैसे जिस पुरुषकों देहविषे अहं ममभाव है, सो बडा कष्ट पावता है, अरु जिसकों देहविषे अभिमान नहीं, तिसकों दुःख भी कछु नहीं ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों मनतें संसर्गता निवृत्त होती है, त्यों त्यों

भोग प्रवाह कष्ट नहीं देता, जैसे जल अरु पथ्थरकों कष्ट नहीं होता, जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणकों प्रतिबिंबका संग नहीं होता, अरु कष्ट भी नहीं होता, तैसे जब देहविषे संसर्गभाव उठि जावै, तब कष्ट कोउ नहीं होता, जैसे दर्पणकों कछु नहीं होता, तैसे आत्मा अरु जगत्की क्रिया है ॥ हे रामजी! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है, सो शुद्ध है, द्वैत शब्दके फुरणेतें रहित है, जो तिसविषे स्थित है, तिसकों द्वैत शब्द नहीं फुरता, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों द्वैतकलना उठती है ॥ हे रामजी! यह सब जीव अदुःखरूप हैं, परंतु अज्ञानभ्रमकरि आपकों दुःखी जानता है, जैसे स्थाणुविषे चोरभावना अविचारकरि होती है, तैसे आत्माविषे दुःखकी भावना अविचारकरि होती है, यह पुरुष अशब्दरूप है, परंतु कलनाके वशतें आपकों संबंधी जानता है, जैसे स्वप्नविषे अंगना बंधन करती है, जैसे स्थानविषे वेताल भासता है, अरु भयकों प्राप्त करता है, तैसे अपणी कल्पनाकरि बंधमान होता है ॥ हे रामजी! देह अरु आत्माका संबंध असत्य है, जैसे जल अरु बेडीका संबंध असत्य है, जब जलका अभाव होवै; तब बेडीकों चिंता कछु नहीं होती अरु बेडीका अभाव हो जावै तौ जलकों कछु चिंता नहीं होती, तातें असत्य संबंध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध असत्य है, जब ऐसे जाणीकरि अंतर संगतें रहित होवै, तब देहका दुःख कछु नहीं लगता, देहके दुःखविषे आपकों दुःखी मानना, देहविषे अहंभावनाकरि आत्मा दुःखी होता है; जब देहविषे अभिमानकों त्यागि देवै, तब सुखी होवै, ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं, जैसे जल अरु पथ्थर एकठे रहते हैं, परंतु अंतरसंगका अभाव है, तातें दुःख कछु नहीं लगता, तैसे अंतरतें संगरहित होवै, तब देह इंद्रियोंके होते भा दुःखका स्पर्श कछु न होवै, निर्दुःख पदविषे प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसकों देहविषे आत्माभिमान है, तिसकों जन्म मरण दुःखरूप संसार है, जैसे बीजतें वृक्ष उत्पन्न होता है, तैसे देहाभिमानतें सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है, अरु संसारसमुद्रविषे डुबता है, अरु जो अंतरसंग

तें रहित होता है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जिसके अंतर देहाभिमान है, तिसके चित्तरूपी वृक्षविषे अनेक मोहरूपी शाखा उत्पन्न होती है, अरु जो अंतर संगतें रहित है, तिसका मोह लीन हो जाता है, उसकों चित्त लीन कहता है, जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान है तिसकों नानाप्रकारका भ्रमरूप जगत् भासता है, अरु जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान नहीं, सो एक आत्मभावकों देखता है, जैसे टूटी आरसीविषे अनेक प्रतिबिंब भासते हैं, अरु सारी एकही प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तैसे संशयित चित्तविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु शुद्धचित्तविषे एक आत्मा भासता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता है, अरु संगतें रहित है, ऐसे जो निर्मल पुरुष है, सो संसारतें मुक्त है, अरु जो सर्व व्यवहारकों त्यागि बैठा है, अरु तप भी करता है, अरु अंतर चित्त आसक्त है, सो बंधनमें है, अरु जो अंतरसंगतें रहित है, सो मुक्त है, अरु अंतर चित्त किसी पदार्थविषे बंध है, सो बंध है, बंध अरु मुक्तका एताही भेद है, अंतर असंग है सो सर्व कार्यकर्ता भी अकर्ता है, जैसे नट स्वांगकों धरता भी अलेप है, तैसे वह पुरुष अलेप है, अरु जो अंतर अभिमानसहित है, सो कछु नहीं करता है, तौ भी करता है, जैसे सर्व व्यवहार त्यागि करि शयन करता है, अरु स्वप्नविषे अनेक सुख दुःख भोगते हैं, तैसे उह सब कछु कर्ता है, चित्तके करनेकरि करता है, चित्तके अकरनेकरि अकर्ता है, शरीरकरि करना सो करना नहीं, अरु शरीरकरि अकरना सो अकरना नहीं, जो ब्रह्महत्या करता है, तौ असंसक्त पुरुषकों कछु पाप नहीं लगता, अरु जो अश्वमेध यज्ञ करैं तौ कछु पुण्य नहीं होता, जिसके चित्ततें सर्व आसक्तता दूर भई है, सो पुरुष मुक्तस्वरूप है, अरु धन्य धन्य है, अरु जिसका चित्त आसक्त है, सो बंध अरु दुःखी है, जो पुरुष आसक्ततातें रहित है, सो आकाशकी नांई निर्मल है, समभाव एक अद्वैत आत्मतत्वविषे स्थित है॥ ॥ इति श्रीयोवगासिष्ठे उपशमप्रकरणे अंतरासंगविचारो नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! संग किस

कों कहते हैं, अरु बंधरूप संग किसकों कहते हैं, अरु मोक्षरूप संग किसकों कहते हैं, अरु संगबंधनोंतें मुक्त किसकों कहते हैं, अरु किस उपायकरि मुक्त होता है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देह अरु देहीका जो विभाग है, तिसका त्याग कर, अरु तिससाथ जो मिलिकरि करता है, अरु देहमात्रविषे अपणा विश्वास करता है, जो एताही मात्र मैं हौं, इसीकों संग अरु बंध कहते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व अनंत है, अरु देहमात्रविषे अहंभावनाकरि आपकों एता मान पुरुष जानता है, तिसविषे अभिमान करता है, अरु सुखकी इच्छा करता है, इसका नाम बंध अरु संग कहते हैं, अरु जिसकों यह निश्चय हुआ है, जो सर्व आत्माही है, किसकी इच्छा करौं, अरु किसका त्याग करौं, इस असंगकरि जीवन्मुक्त कहाता है, अथवा न मैं हौं, न यह जगत् है, सर्व भाव अभावकों त्यागिकरि अद्वैत सत्ताविषे स्थित होता है, इसका नाम जीवन्मुक्त है, न कर्मोंके त्यागकी इच्छा है, न करनेकी इच्छा है अरु अंतरतें कर्तृत्वभाव नहीं, इस संगका जिसनें त्याग किया है, सो असंग कहाता है ॥ हे रामजी ! जिसकों आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, अरु राग दोष हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो असंसर्ग कहाता है, अरु सर्व कर्मोंका फल जिसने त्याग किया है, जो मैं कछु नहीं करता, ऐसा जो मनकरि त्यागी है, सो असंसर्ग कहाता है, तिसकों कोउ कर्म बंधन नहीं करि सकता, सर्व संपदा तिसकों होती है, अरु जो संसक्त पुरुष कर्तृत्वभोक्तृत्वके अभिमानसहित हैं, तिसकों अनंत दुःख उत्पन्न होते हैं, जैसे कोउ गिरतविषे गिर पडै, तिसविषे कंटकोंके वृक्ष होवैं, तिसकरि कष्ट पावता है, तैसे संसक्त पुरुष कष्ट पावता है ॥ हे रामजी ! संगके वशतें विस्तृत दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, जैसे टोएके वृक्षसाथ कंटक उत्पन्न होवै ॥ हे रामजी ! जैसे नासिकाविषे रसडी पाइकरि उंट बैलगंधर्व भार उठाइ फिरते हैं, अरु मार खाते हैं, तैसे संसक्त पुरुष आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुए दुःख पावते हैं, उही संसक्तका फल उंटादिक भोगते हैं, जलविषे रहते हैं, शीत उष्णकरि कष्टमान् होता है, अरु कुहाडेसाथ काटते हैं, इस प्रकार संसक्तताका

फल वृक्ष भोगते हैं, पृथ्वीके छिद्रविषे कीट होते हैं, अरु अंगपीडाकरि कष्ट पाते हैं, सो संसक्तताका फल पावता है, और जो क्रियादिक अन्नादिक उगते हैं, अरु दात्रीसाथ काटते हैं, सो अंतर दुःख पावते हैं, बहुरि बोता है, बहुरि काटते हैं, सो संसक्तताका फल भोगता है, इस प्रकार योनिकों पावते हैं, अरु कष्टमान् होता है, सो संसक्त है, हरे तृणोंकों हरण खाते हैं, अरु वधक इसकों बाणकरि मारता है, अरुकष्टमान् होता है, जो जीव तुझकों दृष्ट आते हैं, सो इस प्रकार संसक्तताकरि बांधे हुए हैं, सो संसक्तता भी दो प्रकारकी है, एक बंध है, एक बंधन करणे योग्य है, जो मूढ जीव है, अरुजो तत्त्ववेत्ता है, सो वंदना करणे योग्य है॥ हे रामजी! आत्मतत्त्वतें जो गिर्या है, अरु देहादिकविषे अभिमानी हुआ है सो मूढ है, संसारविषे जन्ममरणकों प्राप्त होता है, अरु जिसकों आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है, अरु निष्ठा है सो वंदना करने योग्य है, तिसकों बहुरि जन्म मरण संसार नहीं होता, शंख चक्र गदा पद्म जिसके हाथविषे हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, आत्मतत्त्वविषे संसक्त है, अरु तीन लोककी पालना करता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो निरालंब सूर्य आकाशविषे विचरता है, अरु सदा स्वरूपनिष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो महाप्रलयपर्यंत जगत्कों उत्पन्न करता है, अरु सदाशिव स्वरूपविषे संसक्त है, ब्रह्मारूप होकरि विराजता है, सो वंदना करणे योग्य है, अरु जो लीलाकरि स्त्रीकों अर्धांग रखता है, उसके प्रेमरूपी बंधनसाथ बांध्या है, अरु भभूतीकों लगावता है, सदा स्वरूपविषे संसक्त है, शंकर वपुकों धारिकरि स्थित है, सो वंदना करने योग्य है, इसतें आदि लेकरि सिद्ध देवता विद्याधर लोकपाल जिनकी संसक्ति स्वरूपविषे है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु वंदना करने योग्य है, अरु जो देहादिकोंविषे संसक्त है, सो बंध है, जन्म जरा मृत्युकों पावता है, अरु कष्टमान् होता है ॥ हे रामजी! जिनकों शरीरविषे अभिमान है, अरु बाहिरतें उदार भी दृष्ट आता है, परंतु जब भोगोंकों देखता है, तब इस प्रकार गिरता है, जैसे मांसकों देखीकरि आकाशतें इल्ल पंखेरु गिरते हैं, तैसे उही गिरते हैं, अ

रु वृथा यत्न करते हैं ॥ हे रामजी! संसक्त जो जीव है, सो बांधे हुए केई देवता रूप धारी स्वर्गविषे रहते हैं, केई मनुष्यलोकविषे रहते हैं, केई सर्प आदिक पातालविषे रहते हैं, तीनों लोकोंविषे भटकते फिरते हैं, जैसे गुल्लरविषे मच्छर रहते हैं, तैसे ब्रह्मांडविषे संसक्त जीव रहते हैं, अरु मिट जाते हैं, कालरूपी बालकका जीवरूपी गेंद है, कबू अधकों उछालता है, कबू ऊर्ध्वकों उछालता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो सब असत्यरूप है, मनरूपी चितेरेनें संगरूपी रंगसाथ शून्य आकाशविषे देहादिक जगत् लिख्या है, सो सब असत्यरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं, तैसे जीव ब्रह्मांडविषे उपजते रहते हैं, जिसका मन देहादिकविषे संसक्त है, सो तृष्णारूपी अग्निकरि तृणोंकी नांई जलते हैं ॥ हे रामजी! जो संसक्त पुरुष है, तिसके शरीर पावणेकी कछु संख्या नहीं, मेरुके शिखरतें लेकरि चरणोंपर्यंत गंगाका प्रवाह चलै, तरंगोंसहित तिसके मोतियोंवत् जो लव कणके हैं, तिसके गिननेकी संख्या होवै, परंतु संसक्त जीवके शरीर गिननेकी संख्या नहीं, अरु जेती कछु आपदा है, सो तिनकों प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे सब नदियां आय प्राप्त होती हैं, तैसे सब आपदा तिसकों प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करता है, सो रौरव कालसूत्र आदिक जो नरक हैं, सो नरक अग्निकी लकडियां होवैंगे, जलैंगे, कष्ट पावैंगे, और जेते कछु दुःखके स्थान हैं, सो सब संसक्त जीवकों प्राप्त होवैगा, अरु जो असंग संगति चित्त हैं, तिन पुरुषोंकों सब विभूति पदार्थ प्राप्त होवैगा, जैसे वर्षाकालविषे नदियां जलकरि पूर्ण होतियां हैं, जैसे मानससरोवरविषे सब हंस आनि स्थित होता है, तैसे असंसक्तचित्त पुरुषकों सब संपदा प्राप्त होती है, अरु जिस पुरुषका देहाभिमान बढि जाता है, सो विषकी नांई जान, अरु जिसका देहाभिमान घटि जाता है, तिसकों अमृतरूप जान, विष ज्यों ज्यों बढती है, त्यों त्यों मारती है, अरु अमृत ज्यों ज्यों बढता है, त्यों त्यों अमर होता है, यह हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमानका त्यागिकरि स्वरूप

विषे संसक्त होता है, सो सुखी होता है, अरु जिसकों अंतर दृश्यका संग है, तिसकों यह संसक्तरूपी अंगार अंगोंकों जलावैगा, अरु जिसके अंतर संग नहीं, उह असंगरूपी अमृतकरि सुखी होवैगा अरु चंद्रमाकी नांई शीतल मुक्तरूप है, अविद्यारूपी विषूचिका रोग तिसका नष्ट हो जाता है, शांतरूप होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो मैंनें तुझकों उपदेश किया है, तिसकों विचार करि अभ्यास कर, जो सर्वदा काल सर्व स्थान सर्व कर्मोंकों कर्त्ता चित्तकों देहादिकविषे संसक्ति मत कर, केवल आत्मचेतनविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! न संसक्तविषे चित्त होवै, न चेष्टाविषे चित्त होवै, न किसी वस्तुविषे सत्य जानि चित्त होवै, न आकाशविषे, न अधविषे, न ऊर्ध्व, न दिशाविषे, न बाहिर, न अंतर चित्त होवै, न प्राणोंविषे, न उरविषे, न मूर्ध्नि तालुविषे, न भ्रौंहके मध्यविषे, न नासिकाविषे, न जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिविषे न तम न प्रकाशविषे न श्यामवर्ण न रक्त पीत श्वेतविषे, न स्थिरविषे, न चलविषे, न आदि न अंतविषे, न मध्यविषे, न दूर न निकटविषे, किसी पदार्थविषे न चित्तादि अंतःकरणविषे, न शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषे, न कलना अकलनाविषे, चित्तकों लगावहु, सर्व औरतें चित्तकों वर्जिकरि चेतनतत्त्वविषे विश्राम कर, कछुक द्वैतकों लेकरि चेतनतत्त्वका आश्रय न कर ॥ हे रामजी! जब सर्वतें निरास हुआ, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ, तब विगतसंग होवैगा; जीवका जीवतत्त्व चलता रहैगा, केवल चिदात्मा होकरि स्थित होवैगा, सर्व व्यवहार करै, अथवा न करै, करते भी अकर्त्ता होवैगा, अथवा इसका भी त्यागकरि केवल चिदानंद शांतरूप जो तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासैगा, जैसे बदलोंके दूर भये, सूर्य स्वाभाविक भासि आवैगा, तैसे फुरणेतें रहित चेतनतत्त्व भासि आवैगा ॥ जैसे चिंतामणि प्रकाशरूप स्वाभाविक भासि आती है, तैसे आत्मा प्रकाश स्वाभाविक भासि आवैगा, बहुरि जो कछु क्रिया करैगा, सो फलदायक न

होवैगी, जैसे कमलकों जल नहीं स्पर्श करता, तैसे तुझकों क्रिया स्पर्श न करैगी, अरु चित्त आत्मगत निर्वाणरूप होवैगा, क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्ता रहैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे शांतसमाचारयोगोपदेशो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असंसक्त पुरुष है सो ध्यान करै, अथवा व्यवहार करै, सदा ध्यानविषे स्थित है, अरु शोकतें रहित है, जैसे बाह्य क्षोभमान् दृष्ट आता है, परंतु अंतर सर्व कलनातें रहित है, उह संपूर्ण लक्ष्मीकरि शोभता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका चित्त चैत्यतें रहित अचलचित्त है, सो विगतज्वर है, तिसकों कछु दुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे जल कमलोंकों स्पर्श नहीं करता, अरु औरोंकों भी निर्मल वह करता है, जैसे निर्मली मलीन जलकों निर्मल करती है, तैसे उह जनताकों निर्मल करता है, अरु जो आत्मतत्त्वविषे लीन है, सो क्षोभमान् भी दृष्ट आता है, परंतु क्षोभ कदाचित् नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब क्षोभमान् दृष्ट आता है, परंतु सूर्यकों क्षोभ कदाचित् नहीं, तैसे ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान् दृष्ट आता है, तौ भी क्षोभ कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मारामी जो पुरुष है, सो बाह्य मोरके पुच्छवत् चंचल भी दृष्ट आता है, परंतु अंतर सुमेरु पर्वतकी नांई अचल है, जिनका चित्त आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनकों सुख दुःख अपणे वश नहीं करि सकते, जैसे फाटककों प्रतिबिंबका रंग नहीं चढता, तैसे ज्ञानवान्कों सुखदुःखका रंग नहीं चढता, जिस पुरुषकों परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है, तिनका चित्त रागदोषकरि रंजित नहीं होता, जैसे आकाशविषे बादल दृष्ट आता है, परंतु आकाशकों स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तकों रागदोष स्पर्श नहीं करता, जो आत्मध्यानी है, जिसकों परम बोधका साक्षात्कार भया है, अरु कलनामलतें मुक्त हुआ है, सो पुरुष असंसक्त कहाता है ॥ हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुष है, तिसकों आत्मज्ञानके अभ्यासकरि संसक्तता निवृत्त हो जाती है, अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता, जब चित्त परिणाम आत्माकी और होवैगा,

जैसे चंद्रमा परिणामके वशतें अमावास्याकों सूर्यरूप हो जाता है, तैसे चित्त दृढ परिणामके वशतें आत्मारूप हो जाता है, जब चित्त चैत्यभावतें हीन होता है, तब क्षीणचित्त कहाता है, अरु शांत कलना कहाता है, तब जाग्रत इसकों सुषुप्तिरूप हो जाता है, तिस अवस्थाविषे जो कछु क्रिया करता है, सो फलका आरंभ नहीं होता, काहेतें जो निरहंकार हो जाता है, जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारतें रहित चेष्टा करती है, अरु संवेदनतें रहित है, तिसकों कोउ दुःख नहीं होता, तैसे निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख अरु निर्लेप कहाता है ॥ हे रामजी ! इष्ट अनिष्ट भावअभावरूपी जगत् चित्तविषे होता है, जब चित्त आत्मभावकों प्राप्त हुआ, तब किसकरि किसकों किसका बंधन होवै, सर्व आत्मतत्त्व होता है, जैसे नट सर्व स्वागकों धारता है, अरु अपणा अभिमान किसीविषे नहीं होता, तैसे सुषुप्ति बोध पुरुष जगत्की क्रिया करता है, अरु बंधमान् नहीं होता, जीवन्मुक्त होकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सुषुप्तिबोधकों आश्रय करिके जगत्की क्रिया करौ, क्रिया कर्म करता त्रिपुटीकी भावनातें रहित होहु, तब तुमकों दुःख कछु न होवैगा, न आदानविषे न त्यागविषे अभिमान होवैगा, यथाप्राप्तिविषे स्थित होवैगा, सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो कर्त्ता हुआ भी कछु नहीं करता; ऐसे निश्चयकों धारि करिके जैसे इच्छा होवै तैसे करौ ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्की चेष्टा बालकवत् होती है, जैसे बालक अभिमानतें रहित पिंगुडेविषे अंगोंकों हिलाता है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानतें रहित कर्म करता है, फलका स्पर्श नहीं होता, जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है, तब जाग्रत जगत् सुषुप्तिरूप हो जाता है, अरु जो कछु क्रिया करता है, सो स्पर्श नहीं करती ॥ हे रामजी ! इसकों जब जगततें सुषुप्तिदशा प्राप्त भई, तब इसका अंतर शीतल हो जाता है, रागदोष कछु नहीं फुरते, आत्मानंदकरि पूर्ण होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे उह शोभता है, जो सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो महातेजवान् महाधूर्म होता है, आत्मानंदकरि पूर्ण चंद्रमाकी नांई हो जाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्था

विषे स्थित है, सो किसी संसारके क्षोभकरि चलायमान नहीं होता, जैसे पर्वत सर्वदा कालविषे क्षोभायमान नहीं होता, जैसे भूकंपविषे सब वृक्षादिक चलायमान होता है, अरु अस्ताचलपर्वत कंपायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता, जैसे पर्वत सर्व कालविषे सम रहता है, अरु तरु उगिके गिर पडता है, पर्वत ज्यौंका त्यौं रहता है, तैसे ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियाविषे सम रहता है॥ हे रामजी! ऐसी सुषुप्ति दशा अभ्यासयोगकरि प्राप्त होती है, जब यह दशा प्राप्त होती है, तब इसकों तत्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं, सो परमानंदरूप है, तिसविषे सर्व दुःख नाश हो जाता है, असंसक्त हो जाता है, मनका मननभाव निवृत्त हो जाता है, तब ज्ञानवानकों परम सुख उदय होता है, तिसकरि परमानंद घूर्म हो जाता है, इस संसाररचनाकों लीलारूप देखता है, सर्व शोकतें रहित निर्भय होता है, संसारभ्रम दूर हो जाता है, जब तुरीया पदविषे प्राप्त हुआ है, तब संसारविषे बहुरि नहीं गिरता, जो यत्नवान पुरुष परमपावन पदविषे स्थित हुए है, सो संसारकी अवस्थाकों देखीकरि हसते हैं, जैसे पहाड उपर बैठा पुरुष नगरकों जलता देखिकरि हसता है, तैसे ज्ञानवान् आत्मानंदकों पाइकरि संसारके कार्यांमें दुःख जाणिकरि हसता है॥ हे रामजी! तुरीयावस्थाविषे स्थित है, सो अविनाशी होता है, अरु आनंदरूप आनंदकलनातें आनंदकलना है, जब ऐसे तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, तब जन्ममरणके बंधनतें मुक्त होता है, अभिमान आदिक कलनातें रहित परम ज्योतिविषे लीन होता है, जैसे लूनकी गोली समुद्रविषे जलरूप हो जाती है, तैसे आत्मरूप उह हो जाता है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सा नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

॥वसिष्ठ उवाच ॥हे रामजी! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता है, इसतें उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो बाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशकों भुजाकरि कोई पकडी नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं; तुरीयातीत पदतें विश्रांति भी दूर है, विदेहमु

क्त कर पाईता है, अब तुम कछुक काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होई पाछे परमानंद पदविषे स्थित होणा॥ हे रामजी! तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावकों प्राप्त हुआ है, जब तूं सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा, तब जगत्के कार्य भी करता रहैगा, अरु सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भाव कों कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्त्तिका चंद्रमा लिख्या उदय अस्तकों नहीं प्राप्त होता है, तैसे तूं उदय अस्तभावकों प्राप्त न होवैगा॥ हे रामजी! इस शरीरकों आप जाणिकरि रागदोषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है, जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होता है, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै, तैसे भ्रमकों मत अंगीकार करहु, तूं सदा ज्यौंका त्यौं है, तेरा सन्निवेश तौ इसविषे कछु न हुआ, तातें ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता, अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता, काहेतें जो देहके साथ संबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तिविषे निर्दोष होकरि विचरता है, अभिमानादिक विकारोंतें रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे चंद्रमाकरि आकाश निर्मल होता है, तैसे मनकी वृत्ति विकारोंतें रहितकरि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी और नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धिकरि संपन्न आकाशविषे उडता जाता है, सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता॥ हे रामजी! तूं भी अपणे प्रकृतिभावविषे स्थित होकरि यथाप्राप्त क्रियाकों कर्त्ता निर्द्वंद्व होउ, अरु तूं भी अब स्वरूपका ज्ञाता हुआ है, अरु परम पदविषे जाग्या है, अपणे स्वरूपकों प्राप्त हुआ है, पृथ्वीविषे विशोकवान हुआ विचरौ, इच्छा अनिच्छाकों त्यागिकरि शीतल प्रकाश अंधकार तप्त अरु मेघतें रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभैगा॥ हे रामजी! यह जगत् चिदानंदस्वरूप है, अरु आदि अंततें रहित है, अहं त्वं आदिक भ्रमतें रहित तिसविषे स्थित होउ, आत्मा केवल अव्यक्त चिंतनातें रहित है, तिसका शरीरसाथ संबंध कैसे होवै, आत्मा आदिक नाम

भी उपदेश व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, नामरूप भेद भयतें रहित अशब्द पद है, सोई जगतरूप होकरि स्थित भया है, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, सो जलतें कछु भिन्न वस्तु तरंग नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न जगत् कछु नहीं, जैसे समुद्र सब जलरूप है, जलतें इतर कछु भिन्न नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद नहीं, पट अरु तंतुविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं॥ हे रामजी! और द्वैत कछु वस्तु है नहीं, परंतु मैं तेरे उपदेशके निमित्त द्वैतकों अंगीकारकरि कहता हौं, यह जो शरीर है, तिसकेसाथ तेरा संबंध कछु नहीं, जैसे धूप अरु छायाका संबंध नहीं होता, प्रकाश अरु तम एकठे नहीं होता, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, देह जड अरु मलिन है, अरु दृश्य असत्य है, आत्मा निर्मल चेतन है, अरु सत्य है, तिसका देहसाथ संबंध कैसे होवै, जैसे शीत अरु उष्णका परस्पर विरोध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, जैसे वनकों अग्नि लगेतें जंतु जलते हैं, तैसे भ्रम दृश्यरूप देहविषे अहंभाव करिके जलते हैं॥ हे रामजी! जैसे दावाग्निविषे कुबुद्धि जलबुद्धि करै तैसे अज्ञानी देहविषे आत्मबुद्धि करते हैं, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणांमें जल भासता है, तैसे आत्माविषे देहभाव रखते हैं॥ हे रामजी! चिदात्मा निर्मल अरु नित्य स्वयंप्रकाश है, अरु देह मलिन है, अस्थि मांस रक्तमय है, इसकेसाथ आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्माविषे देहका अभाव है, केवल एक अद्वैत तत्व अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे, द्वैतभ्रम कैसे होवै॥ हे रामजी! स्वरूपतें न कोउ बंध है, न कोउ मुक्त है, सर्व सत्ता एक आत्मतत्वस्थित है, अंतर बाहिर सर्व उही है, मैं सुखी हौं, मैं दुःखी हौं, मूढ हौं, इस मिथ्या दृष्टिकों दूरतें त्याग, आपकों केवल आत्मरूप जाणिकरि स्थित होहु, यह जो दृश्य है, सो परम दुःख देणेहारा है, इसकरि दुःख प्राप्त होवैगा, जैसे तृण अरु पहाडकी एकता नहीं होती, पट अरु पथ्थरकी एकता नहीं होती, तैसे आत्मा अरु शरीरकी

एकता नहीं होती, जैसे तम अरु प्रकाशका संयोग नहीं होता, तैसे देह अरु आत्माका संयोग नहीं होता, अरु दोनों तुल्य भी नहीं होते, जैसे शीत अरु उष्णकी एकता नहीं होती, जैसे जड अरु चेतनकी एकता नहीं होती, तैसे शरीर अरु आत्माकी एकता नहीं होती ॥ हे रामजी! शरीर जो बोलता है, सो वायुके बलकरि चलता बोलता है, आठ स्थानोंविषे वायुके बलकरि अक्षरोंका उच्चार होता है, उर, कंठ, शिर जिव्हामूल, दंत, नासिका, होठ, तालु, यही अष्ट स्थान हैं, क ख ग घ, इन चारोंका उच्चार कंठविषे होता है, च छ ज झ, चारोंका तालुस्थानविषे उच्चार होता है, ट ठ ड ढ, इन वर्गोंका मूर्द्धनी शिरविषे उच्चार होता है, त थ द ध, इनका दंतोंविषे उच्चार होता है, प फ ब भ म, इन पांचोंका होठोंविषे उच्चार होता है, ङ ञ न ण, इनका नासिकाविषे उच्चार होता है, जिव्हामूलविषे जिव्हाका उच्चार होता है, जिस पदके आदिक हकार होवै, सो हृदयविषे उच्चार होता है, आठों स्थानोंविषे इन वर्गोंका वायुकरि उच्चार होता है, अरु नव स्वर सूक्ष्मका उच्चार होता है, आत्मा इनतें निर्लेप होता है, जैसे बांसरी वायुकरि शब्द करती है, तैसे यह पाच तत्त्वोंकरि शब्द होता है, इनविषे आत्माभिमान करनां जो मैं कर्त्ता हौं, सो महामूर्खता है, अरु नेत्रादिक भी इंद्रियां वायुकरि चेष्टा करतियां हैं, तातें इस भ्रमकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, आत्मा आकाशवत् सर्वविषे पूर्ण है, जैसे आकाश सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां आदर्श होता है, तहां प्रतिबिंब होकरि भासता है, तैसे आत्मा सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां चित्त होता है, तहां भासता है ॥ हे रामजी! जहां वासनाकरि चित्तरूपी पक्षी जाता है, तहां आत्माकों अनुभव होता भासता है, जो मैं इहां हौं, जैसे जहां पुष्प होता है, तहां सुगंधि भी होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां अहंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परंतु जहां प्रतिबिंब होता है, तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परंतु भासता तहां है, जहां खोदीता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासता तहां है, जहां चित्त है, जैसे

सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर है, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परंतु चित्तके अहंभावकरि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहींविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकरि जगत्‌रचनाकों पसरता है, जैसे सूर्यकी किरणां धूपकों पसारती हैं, ॥ हे रामजी! भूतोंका कारण अंतःकरणही है, अरु आत्मा तत्त्व तौ अतीतही है, आदिकारण नहीं है, अरु वास्तवतें अकारण है, जगत् जो सत्‌भासता है, सो अविचारकरि भासता है, तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है॥हे रामजी! संसारका कारण अंतःकरण है, असम्यक् ज्ञान करिके सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञान करिके जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि चित्त नष्ट हो जाता है, संसारका कारण अपणां चित्तही है, इसका नाम जीव, अंतःकरण, चित्त मन है ॥राम उवाच॥ हे माहाआनंदके देणेहारे, एती संज्ञा चित्तकी कैसे हुई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदीयां, तरंग आदि संज्ञा एक जलही धरता है, तैसे चित्तादिक अनेक संज्ञाकों आत्मा धारता है, अरु सदा एकरूप है, संवेदन फुरणेकरि अनेकरूप धरता है, जैसे एक जलकों अनेक तरंग, कहूं बुद्‌बुदे, कहूं जल, कहूं चक्र, कहूं स्थिर, एती संज्ञाकों धारता है, परंतु सबही जलरूप है, तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व शरीरोंविषे सर्वरूप होता है, जब स्पंदकलना दूर होती है, तब शुद्ध स्वरूप हो भासता है, अरु जहां अज्ञान संसर्णेकों अंगीकार करता है, तहां उही अनंत आत्मा जीव कहाता है, जैसे केसरी सिंह पिंजरेविषे फसता है, तैसे यह जीवरूप होता है॥ हे रामजी! जहां अहंभाव फुर्ता है, तहां जीव कहाता है, अरु जो निश्चय वृत्तिकरि फुरता है, तिसकों बुद्धि कहते हैं, संकल्पविकल्पकरि मन कहाता है, चिंता कर्णेतें चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है॥ हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड कहाता है, अरु चेतन

है सो जीव कहाता है, अरु जड जो दृश्यभावकरि संवित् भाग है, अजड जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्त्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्य उपनिषद्विषे बहुत प्रकार करिके औ वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसतें इतर संज्ञा शास्त्रकारनें कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभाव करिके चित्त संसरता है, तबलग जगत्भ्रम होता है, जैसे जबलग सूर्य है, तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्माबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेतें यह अधोर्ध्व संयोग है जो आत्माका, ऐसे संयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रकों त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है, तैसे आत्मा पुरातन शरीरकों त्यागिकरि नूतन शरीरकों अंगीकार करता है, इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता॥ हे रामजी ! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छूटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाता है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरकों त्यागिकरि और शरीरकों पावता है, तौ भी शरीरके नाश हुए, आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपकों नाश मानता है, सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञान करिके वेताल भासता है, जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालककों वेताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है, अरु जो इसका आत्मतत्त्व नाश होवै, अर्थ यह जो चित्तनाश हो जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ, अरु जो शरीरके नाश हुए आत्माका नाश कहते हैं, सो

मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोउ देशतें देशांतरकों जाता है, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरकों त्यागिकरि और शरीरकों प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुर्त्ता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुर्त्ता है, तैसे आत्मा एक शरीरकों त्यागिकरि औरकों धारता है, जैसे पक्षी उडता उडता दूर जाता है, तब दृष्ट नहीं आता, परंतु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! वासनाके वशतें यह जीव एक शरीरकों त्यागिकरि और शरीरकों जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांध्या जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है ॥ हे रामजी ! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ, कबहु ऊर्ध्वलोक, कबहु मनुष्यलोकविषे घटीयंत्रकी नांई भ्रमता है ॥ हे रामजी ! जीवकों हृदयविषे जो वासना होती है, तिसकरि जरा मृत्यु जन्म आदिक दुःखोंकों पावता है, अरु कर्मोंरूपी भारकों उठाइ फिरता है, कबहु स्वर्गकों जाता है, कबहु पातालकों जाता है, कबहु मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिकों प्राप्त कदाचित् नहीं होता, तातें हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसार है, इसकों भ्रमरूप जाणिकरि इसकी वासनाका त्यागकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होउ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिके अपअपने स्थानकों गए, रात विताय सूर्यकी किरणांसाथ आई बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा देहके उपजेतें उपजता नहीं, अरु नाश हुएतें नाश नहीं होता, सो तूं निष्कलंक आत्मा है, तुझकों देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घट आकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं हो

ता, अरु जो देहके नाशविषे अपणा नाश मानता है, सो मूर्ख जड है, तिस अर्ध चेतनताकों धिक्कार है ॥ हे रामजी ! जैसे रथ अरु रसडियां अरु घोडेका स्नेहतें रहित संयोग होता है, तैसे शरीर अरु चित्त अरु इंद्रियांका संयोग है ॥ हे रामजी! रथ टूटेतें रथ वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इंद्रियांके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाडउपर जलके प्रवाहका संयोग होता है, अरु वियोग भी होता है सो एकके नाश हुएतें दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इंद्रियका संयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे स्थाणुविषे वेताल भासता है, अरु भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंभावकरि राग द्वेष, सुख दुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतली होतियां हैं, सो काष्ठतें इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु शरीर हैं, सो पंच भूतोंके हैं, पंच भूतोंतें इतर कछु वस्तु नहीं, बहुरि यह पंच भूतोंका शरीर पंच भूतोंविषे लीन होता है, तिसकों मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पंच भूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, बहुरि हर्षकरि शोककों प्राप्त होते हैं, इसीतें मूर्ख हैं ॥ हे रामजी! न कोउ पुरुष है, न कोउ स्त्री है, अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं, जैसे मृत्तिकाके खिलोनें हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिवान अरु खेदवान होता है, तैसे अज्ञानी पांचभौतिक रचना देखिकरि प्राप्तिविषे राग दोष करता है, ज्ञानवान्‌कों सब भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं, जैसे माटीके पुरुष आपसमें मिलही तब उनकों राग दोष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रियां मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझकों रागदोष कछु नहीं होता, जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलतियां हैं, उनकों स्नेहबंधन कछु नहीं होता, तैसे देह इंद्रिया प्राण आत्माका आपसमें स्नेहबुद्धितें रहित है, तातें तूं स्नेहतें रहित होउ, शोक काहेकों करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका संयोग होता है, तृण इधर उधर जाता है, जलकों कछु हर्ष शोक नहीं होता है, तैसे देहभूत आत्माका

योग है इनकों मिलाप अरु बिछुरेका दुःख सुख कछु नहीं होता, आत्मा अरु अनात्मा देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक विलक्षण भाव है, परस्पर इनके क्षय अरु उदयविषे हर्ष शोक कछु नहीं, परंतु चित्तके उदय करिके अनात्मा धर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भासता है, तातें तुम तत्त्वबोधका विचार करिके चित्तकों त्यागि अपणे स्वरूपविषे स्थित होउ, जैसे जल तरंग भावकों त्यागिकरि अपणे स्थिर स्वभावकों प्राप्त होता है, तैसे तूं अपणे अक्षोभभावकों प्राप्त होवैगा, तब भौतिक देहतें आपकों भिन्न जाणैगा, जैसे वायुमंडलकों प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमंडलकों देखता है, तैसे तूं आत्मपदकों स्थित हुआ देहादिक भूतोंकों देखैगा ॥ हे रामजी ! तूं देहादि भूतोंकों देखी त्यागिकरि अतीत अजन्मा पुरुष होइ रहो, तब तुम प्रकाश परमकों पावैगा, जैसे सूर्यकांतमणि सूर्यके उदय हुए परम प्रकाशकों प्राप्त होता है, तैसे जब बोध करिके द्रष्टा दर्शन दृश्यभाव तेरा जाता रहैगा, तब तूं अपणे भावकों ज्योंका त्यों जाणैगा, जैसे मद्यकरि क्षीबा हो जाता है, मद्यके उतरेतें आपकों ज्योंका त्यों जाणता है, अरु मद्यभावकों स्मरण करता है, तैसे स्मरण करैगा, आत्मतत्त्वका जो स्पंद फुर्ना हुआ है, तिसका नाम चित्त है, सो अवस्तुरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंगभाव उदय होता है, सो कछु वस्तु नहीं, तैसे चित्तादिक कछु वस्तु नहीं, भ्रांतिरूप है, इस प्रकार जाणिकरि महाबुद्धिवान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं, महा शीतपदकी प्राप्तिमें विचरते हैं, जैसे रत्नमणिकी किंचन नानाप्रकारकी लहरी होती हैं, सो मननकलनातें रहित चमत्कार है, तैसे मनुष्योंविषे जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं, तिनका व्यवहार कलनातें रहित होता है, जैसे कूपविषे प्रतिबिंब पडता है, जैसे आकाशविषे धूलि उडती भासती है, आकाश मलभावकों प्राप्त नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष अपणे व्यवहारविषे कर्तृत्वके अभिमानकों नहीं प्राप्त होता, जैसे मेघके आवणे जावणेकरि समुद्रकों राग दोष नहीं होता, तैसे आत्मा ज्ञेय पुरुषकों भोगोंके आणे जाणेविषे राग दोष नहीं होता ॥ हे

रामजी! जिस मनषिवे जगत्के किसी पदार्थोंकी मननवासना नहीं फुरती, तिस चित्तविषे जो कछु फुरणा भी भासता है, सो विलासस्वरूप जाण, उसकों बंधनका कारण कछु नहीं होता, अरु जिस चित्तविषे अहं त्वं आदिक जगत्की भावना है, परंतु अंतरतें तिसकों सत्यताबुद्धि है, तिसकरि उह दृश्य द्रष्टा अरु दर्शन संबंध तीनों कालों संयुक्त जगत्कों विस्तारैगा, जो कछु दृश्य है, सो असत्यरूप है, अरु जो सत्य है, सो एक अव्यक्तरूप है, तिसकों आश्रय करिके अलेप होहु, तब हर्षशोककी दिशा कहां है, जेता कछु दृश्य जगत् भासता है, सो सब असत्यरूप है, जो सत्य है, सो सदा ज्योंका त्यों है, असत्यरूप दृश्यके निमित्त तूं क्यों वृथा मोहकों प्राप्त होता है, असम्यक् दर्शनकों त्यागिकरि सम्यक्दर्शी होहु॥ हे सुलोचन रामजी! जो सम्यक्दर्शी है, सो मोहकों प्राप्त नहीं होता, दृश्य जो विषय अरु दर्शन कहियें इंद्रियां, तिनके विषे संबंध मिलणेविषे जो आत्मसुख है अनुभवरूप सो परब्रह्म कहाता है, अरु अनुत्तम सुख सो तिस संवित्विषे स्थित है, सो ज्ञानवान् है, तिसकों मोक्ष प्राप्ति है, अरु जो दृश्य दर्शनविषे स्थित होता है, तिस अज्ञानीकों उह संवित् संसारभ्रम दिखावती है, अरु दृश्य दर्शनविषे जो अनुभवसत्ता है, सो सुख आत्मारूप है, जो दृश्यसाथ लगा है, सो बंध है, अरु जो दृश्यतें मुक्त होइ संवित्विषे स्थित है, सो मुक्त कहाता है॥ हे रामजी! दृश्य दर्शनके संबंधविषे मध्य जो संवित् है, सो अनुभवगोचर है, तिस संवित्कों आश्रय करिके दृश्य दर्शनतें जो मुक्त है, सो संसारसमुद्रकों तरैगा, यह सुषुप्तिरूप अवस्था है, इसकों प्राप्त हुआ परम प्रकाशकों प्राप्त होता है, इसीकों मुक्त कहते हैं, जो दृश्य दर्शनतें मुक्तबुद्धि है, सो मुक्त कहाता है, अरु जो दृश्य दर्शनसाथ बांध्या है, सो बंध है, अन्य सर्वोंका अनुभव करनेहारा आत्मा है, सो न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है, न दूर है, न आस्ति है, न नास्ति है, न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है,

न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ है, न अपदार्थ है, न पंचभौतिक है, न अपंचभौतिक है, जेती कछु दृश्य जाति है, सो मनसहित षट् इंद्रियांकरि भावकों प्राप्त होता है, जो इनतें अतीत है, सो इनका विषय नहीं, सो विषय कैसे होवै, निष्किंचनरूप है, अरु यह भी सब उही रूप है, ज्यौंका त्यौं जाणेतें सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मारूप कछु नहीं, सम्यक् ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्तातें इतर कछु नहीं, आत्मातें इतर जगत्कों मानणां उन्मत्त चेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषकों काल कलनारूप जगत् सब आत्मरूप है, कल्पतें आदि लेकरि अंतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं, ऐसे जाणिकरि तुम अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु संसारसमुद्र तरि जावहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो मैं तुझकों द्वैतके त्यागकी विचारदृष्टि कही है, इस विचार करिके अपणा जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्त है, जैसे बुद्धिवान्कों उपासना अभ्यासकरिके चिंतामणि प्राप्त होता है, अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुण, जिस दृष्टि करिके अचल आत्मरूपकों देखता है, जो मैंही आकाश हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही सूर्य हौं, अध ऊर्ध्व मैंही हौं, देवता दैत्य मैंही हौं, प्रकाश तम अरु मेघ पर्वत मैंही हौं, पृथ्वी समुद्र पवन धूलि, अग्नि, आदिक स्थावर जंगम जगत् मैंही हौं ॥ हे रामजी! सर्व जगत् आत्माही है, तौ अहं अरु त्वंतें भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवै, ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसकों सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोककों नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है तौ अपणा अरु पराया क्या कहिये? ज्ञानवान्कों आत्मातें इतर नहीं भासता, तातें हर्षविषादकों नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्र

कार सात्त्विक निर्मल हैं, तत्त्वज्ञानकरि प्रवर्तता है, अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है, अरु तिसरा संसारकों दिखावता है, एक अहं है, जो तुझकों कहा है, सर्व मैंही हौं, मुझतें अन्य कछु नहीं, अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मतें अतिसूक्ष्म है, साक्षीभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा यह जो आपकों नख शीसपर्यंत देहरूप जाननां, सो दुःखदायक संसारका कारण है, शांति सुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंका त्यागकरि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धांतका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वतें अतीत है, अरु सर्वतें पर है, तौ भी अपणी सत्ता करिके जगत् पूर्णकरि रहा है, अरु सर्वका प्रकाशरूप उही है, अपणे अनुभवकरि सदा वस्तु उदयरूप है, अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनतें पर रहित है, अरु सर्वकाल सर्वकों अपणे प्रकाश करि प्रकाशता है, अरु यह जो दृश्य जगत् है, सो सब आत्मा भगवान् है, अरु दृश्य दर्शन सत् असत् सूक्ष्म स्थूल सबतें आत्मा रहित है, अरु उही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहणेविषे भी उही आता है, अरु किसीके कहणेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासता है, सो भी तिसतें अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रोंनें उपदेशके निमित्त कल्पी है, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी है, सर्वत्र तीनों कालोंविषे स्थित है, अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्मभावकरि भी उही है, स्थूलरूप भावकरि भी उही है, सो सर्व ठौर व्यापक है, अरु अपणे फुरणेकरि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित् फुर्णेरूप होती है, तब जीव आदिकरूप हो भासता है, फुर्णेतें रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुर्ता है, तब उष्ण शीत हो भासता है, तैसे फुर्णेकरि जीवादिक भासता है, अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है, अरु कवहु किसी भावकों प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपणे अपणे भावविषे स्थित हैं तैसे परम स्वर आत्मा अपणे स्वभावविषे स्थित है, परंतु तिसका भासणां पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुविना धूलि उडती

नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाशविना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टकाविना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सर्व जीवोंका व्यवहार होता है, अरु सूर्यके अस्त हुएतें लीन होता है, अरु सूर्य दोनोंविषे अलेप है, तैसे आत्मा सर्वका प्रकाशक अरु निर्लेप है, शरीरोंके व्यवहार होणेविषे अरु इष्टताविषे ज्योंका त्यों है, न उपजता है, न बिनसता है, न वांछता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बंध है, सर्वदा सर्व प्रकार आत्मा ज्योंका त्यों एकरूप है, तिसके अज्ञानकरि जीव अनात्मभावकों प्राप्त होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु केवल दुःखोंका कारण होता है, आत्मा आदिअंततें रहित अज अविनाशी है, अपणे आपतें इतर कछु नहीं हुआ, इसतें वांछा त्यागि देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, तातें बंध नहीं, जो बंध नहीं तो मुक्ति कैसे होवै, सर्व कलनातें रहित ऐसा आत्मा सर्वका अपणां आप है, अविचार करिके मूढ रुदन करते हैं, तातें मैं जो तुझकों उपदेश किया है, तिसकों आदितें लेकरि अंतपर्यंत भली प्रकार विचारि देख, इस युक्ति करिके शोकका त्याग कर, मूर्खोंवत् लोकोंविषे शोककों मत प्राप्त होहु ॥ हे सुमते ! बंधमोक्षकी कल्पनाका त्याग कर, न बंधके त्यागकी इच्छा कर, न मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा कर, यंत्रकी पुतलीवत् अभिमानतें रहित चेष्टा कर, इसका नाम आत्मा मौन है ॥ हे रामजी ! मोक्षका नाम कोउ पदार्थ आकाशविषे स्थित नहीं, न कोउ पातालविषे स्थित है, न भूमिलोकविषे स्थित है, चित्तका निर्मल होणां मोक्ष है, जो अनात्मासाथ आपकों मिलावणां, तिसविषे आत्मअभिमान करनां, यह मैल है, इसका त्याग करनां, अरु शुद्ध आत्माविषे चित्तकों लगावणां, इसका नाम मोक्ष है, जब चित्तसों गुणोंमें वृत्तिका त्याग होवै, अरु सम्यक् आत्मज्ञान होवै, तिसकों तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी ! जबलग आत्मबोध नहीं होता, तबलग यह दीन दुःखी होता है, जब आत्माका निर्मल बोध होता है, तब दुःखोंतें मुक्त होता है, तातें और उपयोंकों त्यागि भक्ति करिके मोक्षकी वांछा क

र, अरु चिरकाल करिके जब इस बोधकों साध्य चित्त विस्तृत पदकों प्राप्त हुआ, तब दश मोक्षकी वाछा नहीं करता, एक मोक्ष क्या है॥ हे रामजी! जीवकों और उपाय मोक्षका कोउ नहीं, आत्मबोधकों पाइ करि सुखी होवैगा, जब चित्त अचित्त होता है, तब सब जगत् भ्रम मिटि जाता है, अरु जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व है, जो उही है, तौ बंध किसकों कहिये? अरु मोक्ष किसकों कहिये? बंधमोक्षकी कल्पना तुच्छ है, तिसका त्यागकरि चक्रवर्ती हो पृथ्वीकी पालना कर, तुझकों कर्तृत्वका स्पर्श कछु न होवैगा

॥ इति श्रीयोग० उप० आत्मविचारो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसके संकल्पतें जगत् उपजा है, अज्ञान करिके आपकों शरीर जानता है, अपणे संकल्पकों उपजाइके अपणां स्वरूप जानता है, जैसे कोउ सुंदर पुरुष होवै, तिसकों देखेविना कुरूप जाणै, तैसे आत्माके साक्षात्कारविना देहरूप आत्माकों जानता है, जो मैं देह हौं, ज्यौं ज्यौं आत्माका प्रमाद होता है, त्यौं त्यौं देहविषे अधिक अभिमान होता है, जैसे ज्यौं ज्यौं मद्यपान करता है, त्यौं त्यौं उन्मत्त होता है॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारका दृश्य जो भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणां करिके मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे असम्यक्ज्ञान करिके आत्माविषे जगत् भासता है, एक कलनाके फुरनेकरि मन बुद्धि चित्त अहंकार इंद्रियां देह भासते हैं, सो एक फुरणेकी एती संज्ञा है, जैसे एक जलकी अनेकसंज्ञा होती हैं, तैसे एक फुरणेकी अनेक संज्ञा हुई हैं, जो चित्त है, सो अहंकार है, जो अहंकार है, सोइ मन है, जो मन है, सोइ बुद्धि है, इनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शुक्लता अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं तैसे मन बुद्धि आदिकविषे कछु भेद नहीं, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होजाता है, तातें मनविषे जो कछु कलना है, तिसका त्यागकरि मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरि बंधन वृत्तिकों भी त्याग कर॥ हे रामजी! वैराग्य अरु विवेक अभ्यास करिके मनकों निर्मल करौ, जब मन निर्मल हुआ, तब मनका म

ननभाव नष्ट हो जावैगा, जब यह फुरणा फुरता है, जो मैं मुक्त होउं, तब भी मन जागि आता है, अरु मनके जागेतें मनन भी हो आता है, मनन हुआ, तब अपणेसाथ शरीर भी भासी आता है, अरु अनेक दुःख भी भासी आता है ॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व सबतें अतीत है, अरु सर्वरूप भी उही है, तब कौन बंध है, अरु कौन मोक्ष है, जब मनका मनन निवृत्त हुआ, तब न कोउ बंध है, न कोउ मुक्त है, आत्मा सर्व क्रियातें अतीत है, अरु क्रिया भी इस प्रकार होती है, जैसे वायुके हिलणेकरि वृक्षके पत्र फूल हलते हैं, तैसे प्राणोंके फुरणेकरि हाथ पांव आदिक इंद्रियां चेष्टा करती हैं ॥ हे रामजी ! चित्तशक्ति है सो सर्वव्यापी सूक्ष्म है, अरु अचल है, न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है, सदा स्थितिरूप है, जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है, न वायुकरि चलाया चलता है, तैसे चित्तशक्ति अचल है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं; सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंबित भासता है, जैसे सर्व पदार्थोंकों दीपक प्रकाशता है, तैसे सब पदार्थोंकों आत्मा प्रकाश करता है, अरु सब पदार्थोंविषे एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है, अहं त्वं आदिक कलनातें रहित है, जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती, तहां सुख दुःख भी नहीं फुरता, जैसे वृक्षों अरु पहाडोंतें अहं त्वं शब्द नहीं फुरता, तैसे आत्माविषे नहीं फुरते, तातें ज्ञानवानविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते ॥ हे रामजी! आत्मा निरहंकार अरु निराकार है, तिसविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै ? कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्माविषे अज्ञानकरि भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी मदिरापान करिके मनरूपी मृग मन हुआ है, तिसकरि सत्असत्का विचार नहीं करि सकता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत्ही सत् भासती है, मृग तिसकों सत् जाणिकरि पान करणेके निमित्त दोडता है, तैसे यह जीव अरूपसंसारकों रूप जाणिकरि दोडता है, जब आत्मसत्ताका सम्यक् बोध होता है, तब यह अविद्या नाश हो जाती है, जैसे ब्राह्मणोंके मध्य चंडाली आनि बैठे, जब उन ब्राह्मणोंनें उसकों पिछानी जो यह

चंडाली है, तब छुप जाती है, तैसे जब अविद्याकों जानि जो यह अविद्या है, तब नष्ट हो जाती है॥ हे रामजी! जब अविद्याकों ज्यौंकी त्यौं जानी तब अविद्यारूप जगत् मनकों खैंची नहीं सकती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीकों जब जानी, तब तृष्णा होवै तौ भी मनकों जल खैंची नहीं सकता, हे रामजी! जब परमार्थसत्ताका बोध हुआ तब मूलतें वासना नष्ट हो जाती है, जैसे दीपके उदयतें अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि अविद्या वासनासहित नष्ट हो जाती है॥ हे रामजी! अविद्या अविचारतें सिद्ध है, जब सत्शास्त्रोंकी युक्तिकरि विचार इसकों प्राप्त होता है, तब अविद्या नाश हो जाती है, जैसे बरफका कणका धूपकरि गलि जाता है, अरु जलमय हो जाता है, तैसे विचारकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है॥ हे रामजी! देह जड है, आत्मा सदा चेतनरूप है, बहुरि देह जडके निमित्त भोगोंकी वांछा करनी यह बडी मूर्खता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो इस बंधनकों तोडि डारते हैं॥ हे रामजी! आशारूपी फांसीकों हृदयतें काटौ, जब आशारूपी आवरण दूर भया, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतर शीतल हो जावैगा, तैसे यह पुरुष भी तीन तापोंतें मुक्त शीतल हो जाता है, जैसे पर्वत होकरि अग्नि लगै, तिसके उपर जलकी महद् वर्षा होवै, तब तप्ततातें मुक्त हुआ शांतिवान् होता है॥ हे रामजी! जैसे केसरी सिंह पिंजरेकों तोडिकरि निकसता है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भोगवासनाके बंधनकों तोरि डारता है॥ हे रामजी! आत्माके साक्षात्कार हुए परमानंदकों प्राप्त होता है, जैसे रंककों त्रिलोकीके राज्य मिलनेकरि आनंदकी प्राप्ति होवै, तैसे ज्ञानवानकों आनंद प्राप्त होता है, परम निर्मल लक्ष्मीकरि शोभता है, जब इसके हृदयसों आकाशरूपी मैल जाता है, तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे शोभता है॥ हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपणे आपविषे नहीं समावता है, जैसे महाकल्पका समुद्र नहीं समावता अरु जैसे मेघ जलकों त्यागिकरि मौन हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् आशाकों त्यागिकरि आत्ममौन हो जाता है, जेसे अग्नि लकडीकों जलाइ

करि धुंवातें रहित अपणे आपविषे स्थित हो जाता है, तैसे चित्तकी वृत्तितें रहित हुआ आत्मपदविषे निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे चित्त निर्वाण हुआ परमानंदकों प्राप्त होता है, जैसे अमृतकों पानकरि पुरुष आनंदवान् होता है, तैसे परमानंदकरि पूर्ण अपणे आपविषे प्रकाशता है, जैसे वायुतें रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपणे आपकरि प्रकाशता है, मैं सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौं, केवल चिदानंद आत्मा हौं, सदा अपणे आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे ज्ञानी अपणे आपकों जाणता है, अरु पूर्व दिन व्यतीत हो गया है, तिनकों हसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकरि आपकों कर्त्ता भोक्ता मानता था ॥ हे रामजी ! ऐसे जाणिकरि राग दोषतें रहित परम शांतिकों प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते हैं, अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व उरतें पूर्ण हो जाता है, अरु सबकों पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रतें मुक्त होता है, जन्मोंके बंधन काटि डारता है, राग दोष आदिक द्वंद्व अरु सर्व भयतें मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रकों तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीकों प्राप्त होता है, अर्थ यह, जो परम पदकों प्राप्त होता है, बहुरि संसारके जन्ममरणकों नहीं प्राप्त होता, अरु कर्मोंका अंत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवानकी क्रियाकों देखिकरि और वांछा सब करते हैं, परंतु औरोंकी क्रियाकों देखिकरि ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता, अरु सबकों आनंदवान् करता है, अरु आप किसीकरि आनंदवान् नहीं होता, न किसीकों देता है, न लेता है, न किसीकी स्तुति न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंकों पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टकों पाइकरि नष्ट होता है, हर्षशोकतें रहित है, अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधितें रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वतें आपकों न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है, हे रामजी ! जब तूं सर्व इच्छा त्यागकरि

मौन करै है, तब निर्विशेष भावकों प्राप्त होवैगा, जैसे मेघ जलका त्यागकरि मौनभावकों प्राप्त होता है, तैसे तूं मोक्षभावकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जैसे कामी पुरुष स्त्रीकों कंठ लगायकरि आनंदवान् होता है, तिसकों ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद निर्वासनिक पुरुषकों होता है, अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा वसंतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौनवान् शोभता है, अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनकों प्राप्त हुआ ऐसे सुखकों नहीं पावता, अरु चंदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है, अरु चंद्रमाकों स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चंद्रमा बाहिरकी तप्तता मिटावता है, परंतु अंतर तप्त निवृत्त नहीं करता, अरु निराशता करिके अंतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिकों प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगकरि होती है, तैसी और किसी उपायतें नहीं प्राप्त होती॥ हे रामजी! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता, अरु सुंदर स्त्रियांके स्पर्शकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिककों प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखकों प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत् भासते हैं॥ हे रामजी! आशारूपी एक कर्जुएका वृक्ष है, तिसके काटणेकों उपशमरूपी कुहाडा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसकों सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है, अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्षसमान भासता है, अरु दिशा डब्बीके समान भासतियां हैं, काहेतें जो उत्तमपदकों प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नांई तुच्छ देखता है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, सो जगत्कों देखिकरि हसता है, अरु कदाचित् जगत्के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत् जाणिकरि जगत्कों त्याग दिया है, अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसकों उपमा किसकी दीजे, तिस पुरुषकी उदय

अस्त अहं त्वं आदिक कलना नष्ट हो गई है, केवल आत्मस्वभावकों प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माकों तोलि कौन सकै ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै ॥ हे रामजी ! उह पुरुष सब संकटोंके अंतकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नग भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत् भ्रम करिके भासता है, इसकी आशा मत कर, तूं बुद्धिवान् पंडित है, मूर्खोंकी नांई मोहकों प्राप्त क्यों होता है, यह मैं, यह मेरा अज्ञान करिके भासता है, इस कलनाकों चित्ततें दूर कर, यह वास्तव कछु नहीं, सब जगत् आत्मारूप है, नानात्व कछु है नहीं, जो सम्यक्दर्शी पुरुष है, सो जगत् एकरूप जाणिकरि धैर्यवान् रहता है, खेदकों कदाचित् प्राप्त नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, अरु आत्मा विचारकरि आत्मपदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों देखिकरि मोहणेवारी माया भी भागि जाती है, निकट नहीं आती, जैसे सिंहके निकट मृग नहीं आता, तैसे ज्ञानवान्के निकट माया नहीं आवती, सुंदर स्त्रीयां अरु मणि कंचन आदिक धन अरु पत्थर काष्ठ तिसकों तुल्य भासता है, भोगोंकरि उसकों सुख नहीं होता, अरु आपदाकारि खेद नहीं होता, सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे पर्वत वायुकरि चलायमान् नहीं होता, तैसे उह पुरुष सुख दुःखकरि चलायमान् नहीं होता, सुंदर बाल स्त्री उसके चित्तको खैंचि नहीं सकती, अरु कामदेवके बाण चलाय उसपर टुक टुक हो जाता है, राग दोष उसकों खैंचि नहीं सकता, सदा आपकों निराकार अद्वैत निष्क्रिय निर्गुण जानता है, अरु सुंदर बगीचे ताल वल्ली शय्या इंद्रियोंके विषयभोग अरु दुःख देणेहारे उसकों तुल्य है, रागदोषकों नहीं प्राप्त करते, जैसे पर्वतविषे ऋतु अनुसारकरि मीठे कटु फुल होता है, सो उसकों किसीविषे रागदोष नहीं होता, अकस्मात् जो भोग आय प्राप्त होता है, तिसकों भोगता है, परंतु हर्ष शोकवान् नहीं होता ॥ हे रामजी ! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्टविषे च

लायमान नहीं होता, जैसे वसंतऋतुके आवणे जाणेविषे पर्वत सुखदुःखकों नहीं प्राप्त होता, कर्मइंद्रियांकरि कर्म करता है, परंतु तिसविषे आसक्त नहीं होता है, बाह्य दृष्टिसों आसक्त भासता है, परंतु अंतर आसक्त नहीं होता, अरु जो बाह्य आसक्त दृष्ट नहीं आता, परंतु अंतर देहविषे चित्त आसक्त है, सो मग्न हो डुबता है, जैसे शुद्धमणि चीकडविषे दृष्ट आती है, तौ भी तिसकों कलंक कछु नहीं अरु जो बीचतें खोटी है, बाह्य उज्ज्वल भी भासती है, तौ भी सकलंक है, तैसे जो चित्तकरि आसक्त है, सो आसक्त है, अरु जो चित्तभावकरि आसक्त नहीं सो आसक्त नहीं ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप है, अरु नित्य शुद्ध परम आनंदस्वरूप है, जिस पुरुषकों अपणे शुद्ध स्वरूपका ज्ञान है, तिसकों विस्मरण नहीं होता ॥ हे रामजी! शरीरसों अहंभाव जिसका उठि गया है, इंद्रियोंकरि कर्म करता है तौ करता भी नहीं करता, अरु जो देहविषे अहंभाव है, सो नहीं करता भी करता है, जैसे किसीकों बांधव चिरकालतें मिल्या बहुरि विस्मरण नहीं होता, तैसे अपणां स्वरूप जिननें जाण्या है, तिसकों विस्मरण नहीं होता ॥ हे रामजी! जिनकों शुद्ध स्वरूपका सम्यक्ज्ञान होता है, तिनकों भ्रांतिरूप जगत् नहीं भासता, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जब भ्रम निवृत्त हुआ, तब ज्यौंकी त्यौं जेवरी भासती है, सर्प नहीं भासता, जैसे मरुस्थलविषे जलबुद्धि निवृत्त भई बहुरि जलबुद्धि नहीं होती, तैसे आत्माके जाणेतें देहभाव नहीं होता, जैसे पहाडतें नदी उतरती है, सो बहुरि पहाडपर नहीं चढती, जैसे स्वर्णका खोट अग्निकरि जल्या हुआ बहुरि खोटा नहीं होता, चीकडविषे डारिए तौ भी खोटा नहीं होता, तैसे जब हृदयकी चिद्ग्रंथी टूटी तब गुणोंके व्यवहारविषे भी गांठ नहीं पडती, अर्थ यह जो बंधमान नहीं होता, जैसे वृक्षतें टूटा फल बहुरि नहीं लगता, तैसे जिसका देहाभिमान टूटा है, सो बहुरि नहीं होता है, अरु स्वरूपविषेही अभिमान होता है, जैसे लोहके हथोडेसाथ परका चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जिस पुरुषनें अविद्याकों जाणी है, सो बहुरि उसकी संगति नहीं

करता, जैसे जिस ब्राह्मणनें चंडालोंकी सभा जाणी, तब बहुरि उनकी संगति नहीं करता, तैसे जब आत्मविचारकरि मनकों चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जैसे जिस पुरुषनें अविद्यारूप जगत्कों जाणा है, सो बहुरि जगत्के पदार्थोंविषे आसक्त नहीं होता ॥ हे रामजी! विष जो मधुर जलसाथ मिला होवै, सो जबलग जाण्या नहीं, तबलग तिसकों पान करता है, अरु जब उसकों जान्या तब बहुरि नहीं पान करता, तैसे जबलग इस संसारकों ज्यौंका त्यौं नहीं जाण्या, तबलग इसके पदार्थोंकी इच्छा करता है, जब जाण्या जो मायामात्र है, तब इसकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी! सुंदर स्त्रीयां जो नानाप्रकारके वस्त्रों भूषण सहित दृष्ट आतियां हैं, इनकों जाणता है, जो यह असत्मांस रुधिर आदिककी पुतलीयां बणी हैं, और कछु नहीं, ऐसे जाणिकरि जो तिनकी इच्छा त्यागता है, सो निवृत्त हो जाता है, जैसे मूर्त्तिउपर रंग नील पीत श्याम लिखे होते हैं, तैसे उसके वस्त्र अरु केश हैं, हे रामजी! जिस पुरुषकों आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसकों अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि नहीं होती, अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि तब होती है, जब वस्तुका विस्मरण होता है, सो तौ ज्ञानवानकों सदा स्वरूपका स्मरण है, तिसकों अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि कैसे होवै, जिसकों आत्मबुद्धि हुई है, उसकों विस्मरण नहीं होता, जैसे किसी पुरुषनें गुड किसी पास रख्या होवै, अरु उह खाय जावै, तौ उसकों दंड आदिक कर्मकरि सकैगा, परंतु उसका रस दूर करनेकों समर्थ नहीं, तैसे जिसकों आत्माका अनुभव हुआ है, तिसकों दूर करनेकों कोउ समर्थ नहीं ॥ हे रामजी! जैसे परव्यसनी नारी होती है, किसी पुरुष साथ उसका चित्त लगता है, तब गृहका कार्य भी करती है, परंतु चित्त तिसका सदा उसविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान् क्रिया करता है, परंतु तिसका चित्त सदा आत्मपदविषे रहता है, जैसे परव्यसनी नारीकों अपना भर्ता दंड भी करता है, तौ भी स्पर्शका सुख उसके हृदयतें दूर नहीं करि सकता, तैसे जिसकों आत्मअनुभव हुआ है, तिसके दूर करनेकों कोई समर्थ नहीं, देवता दैत्य दूर नहीं

करि सकते, तौ औरकी क्या वार्त्ता है, बडे जो सुख अथवा दुःखका अनुभव प्रवाह आनि पडै तौ भी तिसकों खंडन नहीं करि सकता, कर्ता हुआ भी अकर्ता हुआ है, जैसे परव्यसनी नारी परपुरुषके संयोगकरि दुःख पावती है, परंतु इसकों स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है, तिसके संकल्पकरि अनुभव अखंड करती है, तिसकरि उसकों दुःख नहीं भासता, तैसे जिसकों आत्मसुख प्राप्त भया है, तिसकों दुःख सुख अवर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! सम्यक् ज्ञानकरि जिसकी अविद्या नष्ट भई है, सो दुःखोंकों नहीं देखता, जो उसके अंग काटैं, तौ भी दुःख नहीं होता, शरीरके नष्ट हुए नष्ट नहीं होता, सुख दुःख उसके नष्ट हो गए हैं, सदा आत्मपदविषे निश्चय रहता है, संकटवान् भी दृष्ट आता है, परंतु तिसकों संकट कोउ नहीं, वनविषे रहै अथवा गृहविषे रहै, व्यवहार करै अथवा समाधि करै, उह सदा ज्योंका त्यों रहता है, उसकों खेद कष्ट किसी प्रकार नहीं होता ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे निरास्पदमौनविचारो नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! राजा जनक राज्यव्यवहार करता रहा, परंतु आत्मपदविषे स्थित था, तिसकरि उसकों कलंक न भया, सदा विगतज्वरही रहा, अरु तेरा पितामह जो राजा दिलीप था, सो भी सर्व आरंभोंकों करता रहा, परंतु अंतर रागदोषकों न प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीका राज्य राजा करत भया, अरु राजा अज नानाप्रकारके युद्ध राज्यव्यवहारकी पालना करत भया, अरु सदा जीवन्मुक्त स्वभावविषे स्थित भया, राजा मांधाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता रहा, परंतु सदा परम पदविषे निश्चय रहा, कदाचित् मोहकों प्राप्त न भया, अरु राजा बली पातालविषे स्थित हुआ, महात्यागी राज्यव्यवहारकों करता भी दृष्ट आया, परंतु स्वरूपके ज्ञानकरि सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरता भया, अरु नभचर दैत्योंका राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रियाविषे रहा, देवतासाथ सदा विरोध है, परंतु हृदयविषे कछु ताप न भया, अरु इंद्रके युद्धविषे वृत्रासुर दै

त्य मार्या, परंतु सदा शीतल कदाचित् क्षोभकों प्राप्त न भया, अरु दैत्योंका राजा प्रल्हाद पातालविषे राज्य करता रहा, परंतु हृदयविषे कछु क्षोभ न भया ॥ हे रामजी! शंबर नामक दैत्य अपणी सृष्टिके रचणेकों उदय भया, सो तिस रचणेविषे बंधमान न भया, सदा सांबरी मायापरायण भया, अरु मायासाथ एक मायावीरूप होकरि स्थित हुआ ॥ हे रामजी! यह संसार जो सांबरीमायारूप है, तिसका सांबरी त्यागकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित रहै, अरु विष्णु भगवान् सदा दैत्योंकों मारता है, युद्ध करता रहता है, अरु हृदयविषे अलेप बुद्धि है, तिसकरि सदा सुखी जीवन्मुक्त है, अरु मूसल नाम दैत्य विष्णुसाथ युद्धकरि शरीरकों छांडत भया, परंतु अंतर देहसाथ संबंध कछु न था, तिसकरि जीवन्मुक्त सुखी रहा, पिंडकों न प्राप्त भया ॥ हे रामजी! सर्व देवताका मुख अग्नि है, सो यज्ञलक्ष्मीकों चिरकालपर्यंत भोगता है, परंतु ज्ञानवान् है, इसकरि क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है, अरु देवता सदा चंद्रमाकी किरणांतें अमृत पान करता है, परंतु चंद्रमाकों कछु क्षोभ नहीं होता, अरु देवताका गुरु बृहस्पति स्त्रीउपर चंद्रमासाथ युद्ध करता भया, अरु देवताके निमित्त नानाप्रकारके कर्म करता है, अरु रागदोषकों नहीं प्राप्त होता, तातें जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी! दैत्योंका गुरु शुक्रजी सो दैत्योंके निमित्त सदा यत्न करता रहता है, अरु लोभीकी नांई अर्थकों चितवता है, परंतु जीवन्मुक्त है, जो अंतर सदा शीतल रहता है, कदाचित् खेदकों प्राप्त नहीं होता, अरु पवन प्राणीयोंके अंगोंकों चिरकाल फेरता है, चेष्टा करता है, अरु खेदकों प्राप्त नहीं होता, तातें जीवन्मुक्त है, अरु ब्रह्मा सदा लोकोंकों उत्पन्न करता है, अरु प्रलयपर्यंत इसकी क्रियाविषे रहता है, परंतु स्वरूपका साक्षात्कार है, तातें जीवन्मुक्त है, अरु विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वंद्वोंविषे रहता है, जरा मृत्युआदिक भावकों प्राप्त होता है, परंतु सदा मुक्तस्वरूप है, अरु सदाशिव त्रिनेत्र है, अर्धांगधारि रहा है, परंतु हृदयविषे संसक्त नहीं, तातें जीवन्मुक्त है, अरु गौरी मोतियोंकी माला कंठविषे पावती है, अ

रु त्रिनेत्रकों सदा मालावत् कंठसाथ रखती है, परंतु अंतरतें शीतल रहती है, तातें जीवन्मुक्त है, अरु स्वामी कार्तिक दैत्यसाथ युद्ध करता रहा, परंतु ज्ञानरूपी रत्नोंका समुद्र था, अंतरतें शीतल रहा, अरु सदा शिवका भृंगीगण अपणा रक्त मांस माताकों देत भया, परंतु धैर्यविषे रहा; खेदकों न प्राप्त भया, नानाप्रकारकी क्रिया करता भया, परंतु जीवन्मुक्त है, तातें सदा सुखी है, अरु नारद मुनी सदा मुक्त स्वभाव है, सदा जगत्की क्रियाजालविषे रहता है, परंतु क्षोभकों नहीं प्राप्त भया, तातें जीवन्मुक्त है, अरु जीवन्मुक्त मनमौन जो विश्वामित्र है, सो वेदोक्त कर्म कर्ता है, अरु फिरता रहता है, तातें जीवन्मुक्त है, अरु सूर्य भगवान् दिनकों प्रकाश करता है, अरु फिरता रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, सदा सुखी रहता है, अरु यम सदा जीवोंकों दंड करता रहता है, अरु क्षोभविषे रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, इंद्र कुबेरतें आदिलेकरि त्रिलोकीविषे जीवन्मुक्त हैं, व्यवहारविषे शीतल हैं, केई मूढ शिलावत् हो रहे हैं, केई परमबोधवान् वनविषे जाय स्थित भये हैं, जैसे भृगु, भारद्वाज, विश्वामित्र, जाय स्थित भये हैं, अरु केई चिरकालपर्यंत राज्य पालनां करते रहते हैं, जैसे जनक मांधाता आदिक करते हैं, केई आकाशविषे बडी कांति धारिकरि बृहस्पति, चंद्रमा, शुक्र, सप्तर्षि, आदिक जाय स्थित भये हैं, केई, स्वर्गविषे अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक जाय स्थित भये हैं, जीवन्मुक्त केई पातालविषे प्रल्हादादिक जाय स्थित भये हैं, केई देवतारूप धारिकरि आकाशविषे स्थित हैं, केई मनुष्यरूप धारिकरि मनुष्यलोकविषे स्थित हैं; केई तिर्यक् योनिविषे स्थित हैं, उनकों सर्वथा सर्व प्रकार सर्वविषे सर्वात्मारूप भासता है, इतर कछु नहीं, नानाप्रकारका व्यवहार है, सो भी अद्वैतकरि किया है॥ हे रामजी! दिव्य विष्णु अरु धाता अरु सर्व ईश्वर अरु शिव आदिक सब आत्माके नाम हैं, अरु वस्तुरूपाविषे जो अवस्तु है, अरु अवस्तुविषे जो वस्तु है, सो अवस्तुसों वस्तु तब निकसती है, जब युक्ति होती है, अरु वस्तुसों अवस्तु भी युक्तिकरि दूर होती है, जैसे अवस्तुरूप रेत है, तिससों स्वर्ण युक्तिकरि नि

कसता है, अरु वस्तुरूपी सोनेसों मैल युक्तिकरि दूर होता है, तैसे अवस्तुरूप देहादिकोंविषे वस्तुरूप आत्मा शास्त्रोंकी युक्तिकरि पाईता है, अरु वस्तुरूप जो आत्मासों दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रोंकी युक्तिकरि दूर होती है ॥ हे रामजी ! जो पापतें भय करता है, सो जब धर्मविषे प्रवर्त्तता है, तब निर्भय होता है, तैसे दुखोंके भय करिके जीव आत्मपदकी और प्रवर्त्तता है, तब भावनाके वशतें असत्सों सत्कों पावता है, ध्यान अरु योग भी शून्य है, परंतु यत्नके बलकरि तिससों सत् पावता है, अरु जो असत् है, सो उदय होकरि सत् भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजीसों शशकेसींग भासी आता है, तैसे आत्माविषे असद्रूप जो जगत् सो अज्ञानकरि दृढ हो भासता है, परंतु कल्पके अंतविषे यह भी नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! यह जो सूर्य चंद्रमा इंद्रादिक हैं, तिनके नाम भिन्न रहैंगे, अरु बडे सुमेरु आदिक पर्वत अरु समुद्र आदिक सब नाश हो जावैंगे, जेते कछु भाव पदार्थ तुझकों भासते हैं, उत्तम मध्यम कनिष्ठ सो सब नाश हो जावैंगे, सब मायामात्र है, कोउ नहीं रहैगा, ऐसे विचार करिके इनके भावअभावविषे हर्ष शोक मत कर, अरु समताभावकों प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! जो असत् है, सो सत्यकी नांई भासता है, अरु जो सत् है सो असत्की नांई भासता है, तातें यथार्थ विचारकरि सत्‌रूप आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु असत्‌रूप जगत्की आस्थाकों त्यागि समताभावकों ग्रहण कर, इस लोकविषे जो अविवेकमार्गविषे विचरता है, सो मुक्त नहीं होता, इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्रविषे डुबते हैं, अरु जो विवेकविषे प्रवर्तता है सो मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है, तिसकों मुक्तरूप जाण, अरु जिसका मन क्षय नहीं भया, सो बंधनविषे है, तातें जिसकों सर्व दुःखोंतें मुक्तिकी इच्छा होवै सो आत्मविचार करै, तिसकरि सर्व दुःखनाश हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! दुःखोंका मूल चित्त है, जबलग चित्त है, तबलग दुःख है, जब चित्त नष्ट हो जाता है, तब दुःख सब मिटि जाते हैं ॥ हे रामजी ! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव हो जाता है, अरु दुःख सब मिटि जाता है, अरुराग इच्छा सब भ

य मिटि जाता है, केवल शांतरूप होता है, जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुए हैं, सो निराग निःसंदेह होकरि महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे, परंतु सदा शीतलचित्त रहे हैं, तातें तूं भी विवेककरि चित्तकों लीन कर, हलोहर बंटा पथ्थर अरु स्वर्णसम जीवन्मुक्त होकरि विचर ॥ हे रामजी! मुक्ति भी दो प्रकारकी है, एक जीवन्मुक्ति है, एक विदेहमुक्ति है, जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे असंसक्त है, अरु मन शांतभावकों प्राप्त हुआ है, सो मुक्त कहाता है, अरु जिस पुरुषका सर्व पदार्थोंका ज्ञानकरि स्नेह नष्ट भया है, अरु व्यवहार करता दृष्ट आता है, तौ भी शीतलचित्त है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जो पुरुष सर्व भाव अभावपदार्थोंकों त्यागिकरि केवल अद्वैततत्त्वकों प्राप्त हुआ है, अरु शरीर आदिक क्रिया कोउ दृष्ट नहीं आती सो विदेहमुक्त कहाता है, अरु जो तीसरा है, जिसका स्नेह पदार्थोंतें दूर हुआ नहीं सो बंध कहाता है, मुक्ति अर्थ भी यत्न करता है, जब युक्तिपूर्वक यत्न करता है, तब दुस्तर भी सुगम हो जाता है, अरु जो युक्तितें रहित यत्न करता है, तिसकों गोपद भी समुद्र हो जाता है ॥ हे रामजी! जिनहुनें आत्मकरि आत्मविचार किया है, तिसकों विस्तृत जगत् समुद्र गोपद हो जाता है, अरु अज्ञानीकों गोपद भी दुस्तर हो गया है, कोउ इष्ट अनिष्ट अल्प भी आनि प्राप्त होता है, तिसविषे डुबि जाता है, निकसी नहीं सकता, तिसकों गोपद भी समुद्र है, अरु ज्ञानिकों अत्यंत विभूति ऐश्वर्य आनि प्राप्त होवै, अथवा विपर्यय तिसका अभाव हो जावै, तौ भी तिसविषे रागदोषकरि नहीं डुबता ॥ हे रामजी! जिसकों कछु प्राप्ति होवै, सो अपणे प्रयत्नके बलकरि होता है, जो कोउ प्रधान हुआ है, सो प्रयत्नरूपी वृक्षके फलकरि हुआ है, आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है, तातें और उपाय त्यागिकरि आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न कर ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेती कछु जगत्जाल है, सो सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है, अज्ञा

नकरि स्थिरताकों प्राप्त हुआ है, विवेककरि शांति हो जाती है, ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी आवृत्त फुरते हैं, तिनकी संख्या करणेकों कोउ समर्थ नहीं, आत्मरूपी सूर्यके जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं॥ हे रामजी! असम्यक् दर्शन जगत्‌की स्थितिका कारण है, अरु सम्यक् दर्शनकरि शांत हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् दर्शनकरि जल भासता है, सम्यक् दृष्टिकरि अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र अपार घोररूप है, सो शास्त्र युक्ति अरु आत्मअभ्यासविना तरणा कठिन है॥ मोहरूपी जलकरि पूर्ण है अरु मरणरूपी आवर्त्त है अरु पुण्यरूपी जग है॥ अरु वडवाग्नि इसके अंगोंविषे नरक समान है अरु तृष्णारूपी घुमरघेर है, अरु इंद्रियां मनरूपी तंदुए मच्छ हैं, क्रोधरूपी सर्प हैं, तिनविषे जीवरूपी नदीयां हैं, सो प्रवेश कर्तियां हैं, जन्ममरणरूपी वृत्तचक्र हैं, तिनकों जो तरि जाता है, सो पुरुष है, अरु स्त्रीयां जो सुंदर लगतियां हैं, सो महाबलवंत हैं, नेत्र जिनके पाहाडके खैंचणेविषे समर्थ हैं कमलकी नांई, अरु दंत मोतियोंकी नांई हैं, होठ तरियांवत् हैं, इत्यादिक जो सुंदर अंग हैं, सो महादुःखके देणेहारे हैं, वडवाग्निकी नांई हैं, जो इनकों तरि जाता है सोई पुरुष है॥ हे रामजी! जो जहाज अरु मलाह होते हैं, तो भी इनकों नहीं तरता, तिसकों धिक्कार है, जहाज अरु मलाह कौन हैं, सो श्रवण कर, मनुष्यशरीरविषे कछु विचारसहित बुद्धि है सो जहाज है, अरु संतरूपी मलाह है, इनकों पाइकरि जो संसारसमुद्रकों नहीं तर्ते तिनकों धिक्कार है, ऐसे संसारसमुद्रकों ग्रहणकरि जो तरि गया है, तिसकों पुरुष कहते हैं॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें आत्मविचारविषे बुद्धिकों लगाइ है, सो तरि जाता है, अन्यथा तरि नहीं सकता, जिसकों आत्म अभ्यास दृढ भया है, सो तर्णेकों समर्थ होता है॥ हे रामजी! प्रथम आर्जव सो ज्ञानवान् पुरुषोंसाथ विचार अरु बुद्धिकरि संसारसमुद्रकों देखौ, जब तैनें इसकों ज्यौंका त्यौं जाण्या, तब तूं विलास क्रीडा करणे योग्य होवैगा॥ हे रामजी! तूं तो भगवान् है, परंतु बोधके विचारकरि संसारसमुद्रकों तरि जाउ, तूं तो ज़ुवान है, तेरे पाछे और तेरे स्वभावकों विचारकरि संसारस

मुद्रकों तरि जावैंगे, अरु जो इस शुभ मार्गकों त्यागिकरि विषयमार्गकों धारते हैं, सो संसारसमुद्रविषे डुबे हैं॥ हे रामजी! यह जो विषयभोग हैं सो विषरूप हैं, जो इनकों सेवैगा, सो नष्ट होवैगा, परंतु जिसकों ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसकों यह जैसे गरुड मंत्र पढनेवालेकों सर्प दुःख नहीं दे सकते, तैसे दुःख दे नहीं सकते, जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है सो विभूतिवान् है, बल वीर्य तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारकरि चढि आवते हैं, जैसे वसंतऋतुके आएतें रस फूल फल सब सुंदर हो आते हैं॥ हे रामजी! जो ज्ञानकी धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई सो पूर्ण अमृततुल्य है, शीतल शुद्ध सम प्रकाशरूप है, लक्ष्मीकों पाइकरि विदितवेद स्थित हो रहते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नाम एकसप्ततितमः सर्गः॥ ७१॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच॥ हे मुनीश्वर! संक्षेपतें तत्त्ववेत्ताके लक्षण बहुरि कहौ, जिनकों तत्त्वका चमत्कार हुआ है, तिनकी उदार वाणीकरि वृत्ति कहौ, ऐसे कवन हैं, जो तुमारे वचन सुनते तृप्त होवैं?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तके लक्षण मैं तुझकों बहुत प्रकार आगे कहे हैं, बहुरि भी सुण॥ हे महाबाहो! संसारकों ज्ञानवान् सुषुप्तकी नांई जाणता है, अरु सब ईषणां तिसकी नष्ट हो गई हैं, अरु सब जगत्कों आत्मारूप देखता है, केवल भावकों प्राप्त होता है, अरु संसार सुषुप्तिरूप हो जाता है, आत्मानंदविषे घूर्म रहता है, देता है, परंतु अपणे जानणेकरि किसीकों नहीं देता, अरु लोक दृष्टिकरि प्रत्यक्ष हाथोहाथ ग्रहण कर्ता है, परंतु अपणी दृष्टिकरि कछु नहीं लेता, ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है, सो यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है, जैसे यंत्रकी पुतली अभिमानतें रहित चेष्टा करती है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानतें रहित चेष्टा करता है, देखता है, हसता है, लेता है, देता है, परंतु अंतरतें सदा शीतलबुद्धि रहता है, भविष्यका कछु विचार नहीं करता अरु भूतका चितवन नहीं करता, अरु वर्तमानविषे स्थिति नहीं कर्ता, सर्व कार्योंविषे अकर्ता है, संसारकी उरतें सोइ रहा है, आ

त्माकी उरतें जागृत है, अंतरतें सर्वका त्याग किया है, बाह्य सर्व कार्योंकों करता है, अंतर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, अरु बाह्य जैसे प्रकृत आचार आनि प्राप्त होता है, अभिमानतें रहित तैसे करता है, दोष किसीविषे नहीं करता, सुखदुःखविषे पवनकी नांई होता है, भ्रमकों त्यागिकरि सर्व कार्य कर्मोंकों करता है, उदासीकी नांई, न किसीकी वांछा है, न किसीविषे खेदवान् है, बाह्यतें सब कछु कर्ता दृष्ट आवै, अंतरतें सदा असंग है॥ हे रामजी! भोक्ताविषे भोक्ता है, अभोक्ताविषे अभोक्ता है, मूर्खोंविषे मूर्खवत् स्थित है, बालकोंविषे बालकवत् स्थित है, वृद्धविषे वृद्धवत्, धैर्यवान्विषे धैर्यवान् स्थित है, सुखविषे सुखी है, दुःखविषे धैर्यवान् है, अरु सदा पुण्यकर्ता बुद्धिवान् है, सदा प्रसन्न मधुर वाणीसंयुक्त है, अरु अंतरतें सदा तृप्त है, दीनता तिसकी निवृत्त भई है, सर्वथा कोमलभाव है, चंद्रमाकी नांई शीतल है, पूर्ण शुभ कर्म करणेविषे कछु अर्थ नहीं, अशुभविषे कछु पाप नहीं, ग्रहणविषे ग्रहण नहीं, न त्यागविषे त्याग है, न बंध है, न मुक्त है, न आकाशविषे कार्य है, न पातालविषे कार्य है, यथावस्तु यथादृष्ट आत्माकों देखता है, द्वैतभाव तिसकों कछु नहीं फुरता, अरु बंध मुक्तके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं, सर्व संदेह सम्यक्ज्ञानकरि जलि गए, जैसे पेटीतें मुक्त हुआ पक्षी आकाशमें उडता है, तैसे शंकातें रहित चित्त उनका आत्मआकाशकों प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! जिसका मन संसारभ्रमतें मुक्त हुआ है, अरु समरस आत्मभावविषे स्थित भया है, तिसकों इष्टअनिष्टविषे कछु राग दोष नहीं होता, आकाशकी नांई सबविषे सम रहता है, जैसे पिंगुडेविषे बालक अभिमानतें रहित अंगोंकों हिलाता है, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानतें रहित होती है, जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है, तैसे आत्मानंदविषे ज्ञानी घूर्म हो जाता है, द्वैतकी संभाल तिसकों कछु नहीं, हेयोपादेय बुद्धितें रहित होता है॥ हे रामजी! सर्वकों सर्व प्रकार ग्रहण कर्ता है, अरु त्याग भी कर्ता है, परंतु अंतरतें ग्रहण त्याग कछु नहीं कर्ता, जैसे बालकोंकों ग्रहणत्यागकी बुद्धि नहीं होती,

तैसे ज्ञानीकों नहीं होती, उसकों सर्व कार्योंविषे राग दोष नहीं फुर्ता, जगत्के पदार्थोंकों न सत् जाणिकरि ग्रहण करता है, न असत् जाणिकरि त्याग करता है, सर्वविषे एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टविषे सुखबुद्धि करता है, न अनिष्टविषे दोषबुद्धि करता है ॥ हे रामजी ! जो सूर्य शीतल हो जावै, अरु चंद्रमा उष्ण हो जावै, अग्नि अधोकों धावै, तौ भी ज्ञानीकों कछु आश्चर्य नहीं भासता, उह जाणता है, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है, न किसीपर दया करता है, न अदया है, न लज्जा करता है, न अलज्जा कर्ता है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, न हर्ष है, न उद्वेग है, सर्व विकारोंतें रहित शुद्ध अपणे आपविषे स्थित है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं उदय होता, तैसे उसकों राग दोष नहीं उदय होता ॥ हे रामजी ! ऐसा पुरुष सुखदुःखकों कैसा ग्रहण करै, उसकों जगत्जाल ऐसे भासता है, जैसे जलविषे तरंग होता है, ऐसे जाणिकरि तूं भी अपणे स्वभावविषे स्थित होउ ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे एक निमेषकरि स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, अरु क्षणविषे नष्ट हो जाती है, तैसे जाग्रतविषे सृष्टि उपजि आती है, अरु लीन हो जाती है, जेती कछु इच्छा अनिच्छा दुःख सुख शोक मोह आदिक विकार हैं, सो सब मनविषे फुरते हैं, जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जैसे जहां समुद्र होता है, तहां तरंग भी होता है, तैसे जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारोंका भी अभाव है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग जगत्भ्रम होता है, जब विचाररूपी सूर्यके तेजकरि मनरूपी बरफका पुतला गलिगया, तब आनंद हुआ, तब सुखदुःखकी दशा शांत हो जाती है, जब सुख दुःखका अभाव हुआ, तब ग्रहण त्याग मिटि जाता है, इष्टअनिष्ट वांछित नष्ट हो जाते हैं; जब यह नष्ट हो जाते हैं, तब शुभ अशुभ भी नहीं रहता, जब शुभ न रहै, तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाता है, अरु भो

गोंकी इच्छा भी नष्ट हो जाती है, जब भोगोंकी इच्छा नष्ट हो जाती है, तब मन भी निराशपदविषे लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! जब मूलसहित मन नष्ट भया, तब मनविषे जो संसारके संकल्प सो कहां रहहीं, जैसे तिलोंके जलेतें तेल नहीं रहता, तैसे मनविषे संकल्प विकल्प नहीं रहते तब केवल शांत आत्मा शेष रहता है, जैसे मंदराचलके क्षोभ मिटेतें क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है, तैसे चित्त शांत होता है ॥ हे रामजी! तातें भावविषे अभावकी भावना दृढ करहु, अरु स्वरूपका अभ्यास करहु, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाकों त्यागिकरि महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे जलविषे द्रवता करिके चक्र आवृत्त होते हैं, सो असतही सत् होकरि भासता है, तैसे चित्तके फुरणे करि असत् जगत् सत् हो भासता है, जैसे नेत्रोंके दूखणेकरि आकाशविषे तरवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं, सो असतही सत् भासते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है, जैसे बादलोंके चलणेकरि चंद्रमा धावता दृष्ट आता है, तैसे चित्तके फुर्णेकरि जगत् भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिसकरि चित्त फुरता है, अरु जिसकरि अफुर होता है सो प्रकार कहौ, जो तिसका उपाय करौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु फूलोंविषे सुगंध होता है, अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे चित्तविषे फुरना होता है, चित्त अरु फुरना दोनों एक वस्तु अभेद हैं, दोनोंविषे जब एक नष्ट होवै, तब दोनों नष्ट हो जावैं, जैसे शीतल अरु श्वेतताके नष्ट हुए बर्फ नष्ट हो जाता है, तैसे एकके नाश हुए दोनों नाश हो जाते हैं, सो चित्तके नाशके दो क्रम हैं, योग अरु ज्ञान, योग कहिए चित्तकी वृत्तिका निरोध करणां अरु ज्ञान कहिए सम्यक् विचरणां ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वृत्तिका निरोध किस युक्तिकरि होता है, प्राण अपानका पवनका रोकणा कैसे होता है, जिस योगकरि अ

नंत सुख संपदा प्राप्त होती है? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस देहविषे जो नाडी हैं, तिनविषे प्राण वायु फिर्ता है, जैसे पृथ्वी उपर नदियांका जल फिर्ता है, सो प्राण वायु एक है, स्पंदके वशतें नानाप्रकारकी विचित्र क्रियाकों प्राप्त होता है, तिसकरि अपान आदिक संज्ञाकों पावता है, योगीश्वर कल्पते हैं, जैसे पुष्पविषे सुगंधि अभेदरूप है, अरु बर्फविषे श्वेतता अभेद है, आधार आधेय एकरूप है, तैसे प्राण अरु चित्त अभेदरूप है, जब अंतर प्राणवायु फुरता है, तब चित्तकला फुरती है, फुरिकरि संकल्पके सन्मुख होती है, तिसका नाम चित्त कहाता है, जैसे जल द्रवीभूत होता है, तिसविषे लहरीचक्र फुरि आते हैं, तैसे प्राणोंकरि चित्त फुरि आता है, चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायु है, जब प्राणवायुका निरोध होता है, तब निश्चयकरि मन भी शांत होता है, सो मनके लीन हुए, संसार भी लीन हो जाता है, जैसे सूर्यप्रकाशके अभाव हुए रात्रिविषे मनुष्योंका व्यवहार शांत हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो दिन अरु रात्र निरंतर आगमन करते हैं, देहरूपी ग्रहविषे प्राणवायुका रोकणां किस प्रकार होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संतजनोंका संग अरु सत् शास्त्रका विचार, अरु विषयतें वैराग्य तिसकरि योग्य अभ्यास होता है, प्रथम जगतविषे असतबुद्धि करणी, अरु वांछित जो अपना इष्ट देव है, तिसका ध्यान करणा, जब चिरकाल ध्यान करता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है तिसकरि प्राणोंका स्पंद रोक्या जाता है, रेचक पूरक कुंभक जो प्राणायाम हैं, जब अखेदचित्त होकरि अभ्यास दृढ करता है, अरु एकध्यान संयुक्त होता है, तिसकरि भी प्राणोंका स्पंद रोक्या जाता है, उकारका उच्चार करणां, ऊर्ध्व तिसकी जो सूक्ष्म ध्वनि होती है, प्रथम शब्द बडी ध्वनिसों होता है, सूक्ष्म ध्वनि शेष रहती है, तिसविषे चित्तकी वृत्तिकों लगावणी, तब सुषुप्ति रूप अवस्थाविषे वृत्ति तद्रूप हो जाती है, तब प्राणस्पंद रोक्या जाता है, अरु रेचक प्राणायाम जो करता है, तिसके अभ्यासकरि विस्तृत प्राणवायुसों शून्यभाव आकाशविषे जाय लीन होता है,

तब प्राणस्पंद रोक्या जाता है, अरु कुंभककरि जो प्राणवायुकों अभ्यासके बल स्थित करणां, तब प्राणवायु रोक्या जाता है, अरु तालुमूलसाथ यत्नसों जिव्हाकों ताल घंटासाथ लगानी, इस खेचरी मुद्राकरि वायु ऊर्ध्व रंध्रकों जाता है, ऊर्ध्वरंध्रविषे गया भी प्राणवायुका स्पंद रोक्या जाता है, अरु जो द्वादश अंगुल पर्यंत नासिकाके अग्रविषे अपानरूपी चंद्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है, तिसका देखणां ज्योंका त्यों होवै, तौ भी प्राणस्पंद रोक्या जाता है, तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्व रंध्रका अभ्यास होवै, तिसके अंतविषे जब प्राणोंकों लगावै, तब तिस संवित्विषे प्राणोंका फुरणां नष्ट हो जाता है, अरु जो भवमध्य त्रिपुटीविषे और प्रकाशकों त्यागिकरि तिसविषे चेतनकला रहती है तहां वृत्तिकों जोडै, वृत्तिके जोडेतें प्राणकला रोकी जाती है, अरु जो सर्व वासनाकों त्यागिकरि हृदय आकाशविषे चेतनसंवित्का ध्यान करै, तौ भी चिरकालके अभ्यासकरि ऐसे प्राणस्पंद रोक्या जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जगत्के भूतोंका हृदय किसकों कहते हैं, जिस महाआदर्शविषे सर्व पदार्थ प्रतिबिंबित हो जाते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जगत्के भूतके दो हृदय हैं, एक ग्रहण करणे योग्य है, एक त्यागणे योग्य है, तिसका भेद सुण, नाभितें जो देहविषे दश अंगुल ऊर्ध्व है, सो त्यागणे योग्य है, परिच्छिन्न भाव करिके देहके एक स्थानविषे स्थित है, अरु तिसविषे जो संवित्मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभवकरि प्रकाशता है, सो मनुष्यकों ग्रहण करने योग्य है, जो अंतर बाहिर व्यापी रहा है, अरु वास्तव अंतर बाहिरतें भी रहित है, सो प्रधान हृदय है, अरु सर्व पदार्थोंका प्रतिबिंब धरणेहारा आदर्श है, सर्व संपदाका भंडार है, सो सर्व जीवोंका संवित् हृदय है, एक अंगका नाम हृदय नहीं, जैसे जलविषे एक पथ्थर पुरातन पडा होवै, सो जल नहीं हो जाता, तैसे संवित्मात्रके निकट संवित्मात्र तौ नहीं होता, यह जडरूप है, आत्मा चेतन आकाश है, सो यह प्रधान हृदय है, तातें बल करिके संवित्मात्रकी उर चित्तकों लगावहु, तब प्राणस्पंद भी रोक्या जावैगा ॥ हे राम

जी ! यह प्राणोंका रोकणां मैंनें तुझकों कहा है, और भी शास्त्रोंविषे अनेक प्रकारकरि कहा है, जिस जिस प्रकार गुरुके मुखतें श्रवण किया है, तिसी प्रकार अभ्यास करै, तब प्राणोंका निरोध होता है, गुरुके उपदेशतें अन्यथा सिद्ध नहीं होता, जिसकों अभ्यास करिके निरोध सिद्ध भया है, सो कल्याणमूर्ति है, और कल्याणमूर्ति नहीं होता ॥ हे रामजी ! अभ्यास करिके प्राणायाम होता है, अरु वैराग्यकी दृढता करिके वासनायाम होता है, अर्थ यह जो वासना रोकी जाती है, जब दृढ अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! भृकुटीके दश अंगुलपर्यंत जो वायु जाता है, तिसका वारंवार जब अभ्यास करता है, तब क्षीण हो जाता है, अरु खेचरी मुद्रातें तालुसाथ जिव्हा लगाइ करिके जो अभ्यास करै, तौ भी प्राण रोके जाता है,इसके अभ्यासकरि चित्तकी व्याकुलता जाति रहती है, परम उपशमकों प्राप्त होता है, यह पुरुष आत्मारामी होता है,सब शोक दूरि हो जाता है,अंतर आनंदकी प्राप्ति होती है, तातें तूं भी अभ्यास कर, जब प्राणस्पंद मिट जाता है, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, तिसके पाछे जो पद है,सो निर्वाणरूप है ॥ हे रामजी! जब प्राणस्पंद मिटि जाते हैं, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, जब चित्त स्थित हुआ, तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है, जबलग चित्त वासनाकरि लपेट्या है, तबलग जन्ममरणकों देखता है, जब मन वासनातें रहित होता है, तब मोक्ष होता है ॥ हे रामजी ! प्राणवायुकों रोकीकरि वासनातें रहित हुआ, जहां तेरी इच्छा होवै, तहां विचर, तुझकों बंधन न होवैगा, जब प्राण फुरता है, तब मन उदय होता है, जब मन उदय हुआ, तब संसारभ्रम होता है, जब मन क्षीण होता है, तब संसारभ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! जब मनसों संसारकी वासना कलना मिटि जाती है, तब अशब्द पद प्राप्त होता है, तिसतें यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, अरु जिसतें न सर्व है, अरु जो न सर्व है, अरु जो न सर्वविषे है, जिसविषे न यह सर्व है, ऐसा जो निर्गुण तत्त्व है, सो सर्व कलनांके त्यागतें प्राप्त

होता है, तिसकों उपमा किसकी दीजै! आत्मा अविनाशी निर्विकल्प निर्गुण है, यह जगत् नाशरूप संकल्पके रचित गुणरूप तिसकों किस पदार्थसाथ दृष्टांत दीजै! अर्थ यह जो दूसरा कछु नहीं, जेते कछु स्वाद तिनकों स्वादकर्ता उही है, अरु जेते प्रकाश हैं, तिनकों प्रकाशकर्त्ता उही है, सर्व कलनाका कलनारूप उही है, जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबनका अधिष्ठानरूप उही है, सो चित्त अरु आवरणके दूर हुए प्राप्त होता है, अरु सर्व पदार्थोंकी सीमा उही है, ऐसा जो आत्मारूप चंद्रमा शीतल है, जब तिसविषे बुद्धिवान् स्थित होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, अरु सर्व इच्छा आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्वं आदिक कल्पना मिटि जाती है, सर्व व्यवहार विस्मरण होता है, ऐसा जो मुक्त मन है, सो पुरुषोत्तम होता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबंधो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः॥ ७३॥

॥ राम उवाच॥ हे प्रभो! योगीकी युक्ति तुमनें कही, जिसकरि चित्त उपशम होता है, अब सम्यक्ज्ञानका लक्षण भी कृपा करि कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह निश्चय है, जो आत्मा आनंदरूप, आदिअंततें रहित, प्रकाशरूप सर्व परमात्मा तत्व है; इस निश्चयकों सम्यक् ज्ञान बुद्धीश्वर कहते हैं, अरु यह जो, घटपटादिक अनेक पदार्थशक्ति है, सो सब आत्मा परमानंदरूप है, तिसतें इतर नहीं, ऐसा जो देखणां है, सो सम्यक् देखणां है, सर्वात्मा है, नित्यशुद्ध है, परमानंदस्वरूप है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, ऐसा निश्चय सम्यक् ज्ञान है, अरु जो इसतें इतर होवै, सो असम्यक् ज्ञान है॥ हे रामजी! सम्यक्दर्शीकों मोक्ष है, असम्यक्दर्शीकों बंध है, तिसकों आत्मा जगत्रूप भासता है, सम्यक्दर्शीकों केवल आत्मा भासता है, जैसे जेवरीविषे असम्यक्दर्शीकों सर्प भासता है, सम्यक्दर्शीकों जेवरी भासती है, सर्व संवेदन संकल्पतें रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है, तिसकों जो जानता है, सो परमात्माके जानणेवाला बुद्धीश्वर है, इसतें इतर है सो अविद्या है, हे रामजी! आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतक

लना कोउ नहीं, ऐसा जो यथार्थदर्शी है, सोइ सम्यक्दर्शी है, सर्व आत्मा पूर्ण है, भाव अभाव बंधमोक्षकोउ नहीं, न एक है, न द्वैत है, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, जो सर्व चिदाकाश है, तौ बंध कौनकों कहीए, अरु मोक्ष कौनकों कहिए, ऐसा जिनकों ज्ञान है, तिनकों काष्ठ पाषाण ब्रह्मातें चेंटीपर्यंत सब सम भासता है, अल्पमात्र भेद भी नहीं भासता, कल्पनाके सन्मुख कैसे होवै ॥ हे रामजी ! वस्तुके आदि अंत जो अन्वय व्यतिरेक करिके आत्मा सिद्ध होता है, अर्थ यह जो पदार्थ है सो है, तौ भी आत्मसत्ताकरि सिद्ध होता है, अरु जो पदार्थका अभाव हो जाता है, तौ भी आत्मसत्ता शेष रहती है, तूं तिस परायण होउ, जो अविनाशी अनुभव धारि तिसके विषे स्थित होउ, उही अनुभवसत्ता जगत्रूप होकरि भासती है, जरामरण आदिक जो नानाप्रकारके विकार वस्तुरूप भासते हैं, सो वस्तु अपणे आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे द्रवता करिके नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे चित्तके फुरणे करिके नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, आत्मतत्त्वही अपणे आपविषे स्थित है, जब तिसविषे स्थित होता है, तब बहुरि दीन नहीं होता, जो पुरुष दृढ विचारवान् है, सो भोगोंकरि चलायमान् नहीं होता, जैसे मंद पवन करिके मेरुपर्वत चलायमान नहीं होता, अरु जो अज्ञानी हैं, विचारतें रहित मूढ हैं, तिनकों भोगों ग्रासि लेते हैं, जैसे जलतें रहित मच्छीकों बगला ग्रासि लेता है, अरु जिसकों सर्व आत्माही भासता है, सो सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है, उही मुक्तरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञानवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष भोगोंके निकट आय प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता, काहेतें जो अर्थ बुद्धिही तिसविषे कछु नहीं, जैसे सुंदर कमलिनी चित्रकी लिखी हुइके निकट भवरा आनि प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता; तैसे विवेकी भोगोंविषे अर्थबुद्धि नहीं करता ॥ हे रामजी! सुखदुःखकी

प्राप्ति अरु निवृत्तिविषे इच्छा तबलग होती है, जबलग देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ, तब कछु इच्छा नहीं होती ॥ हे रामजी ! ममता करिके दुःख होता है, जब रूपकों नेत्र देखता है, तिसकों इष्ट मानिकरि प्रसन्न होता है, अरु अनिष्ट मानिकरि दोष करता है, जैसे बलद भारवाहक चेष्टा करता है, तिसकों लाभ टोटा कछु नहीं होता, जिसकों उसविषे ममत्व होता है, उह लाभ टोटेका हर्ष शोक करता है, तैसे यह ममत्वकरि इंद्रियोंके विषयोंमें हर्षशोकवान् होता है, जैसे गर्दभ कीचडविषे डूबै, अरु राजा शोक करता है, जो मेरे नगरका गर्दभ डूबा है, तैसे यह ममत्व करिके इंद्रियोंके विषयोंमें दुःख पावता है, नहीं तौ गर्दभ कीचडविषे डूबेतें राजाका क्या नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह इंद्रियां तौ अपणे विषयोंकों ग्रहण करतीयां हैं, इनविषे जीव तपायमान होता है, सो आश्चर्य है, अरु इन विषयोंकी यह चेष्टा इच्छा करते हैं, सो क्षण क्षणविषे नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! जो मार्गविषे किसीसाथ स्नेह हो जाता है, तौ ममत्व प्यारकरि दुःख होता है, तब जो देहविषे ममत्व करैगा, तिसकों दुःख क्यों नहीं होवैगा, भावै तैसा बुद्धिवान् होवै, सूरमा होवै, तौ भी संगकरि बंधमान होता है, अर्थ यह जो इंद्रियोंके विषयोंका अहंभावकरि ग्रहण करैगा, तौ तिनके नाश होणेकरि इह भी नाश होवैगा, जिन नेत्रोंका विषय रूप है, सो नेत्र साक्षी होकरि रूपकों ग्रहण करता है, अरु ऐसा मूर्ख है, जो औरोंके धर्म आपविषे मानि लेता है, अरु तिनविषे तपायमान होता है, जैसे भ्रमदृष्टि करिके आकाशविषे मोर पुच्छवत् तर्वरे भासते हैं, अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मूर्खता करिके इंद्रियोंके धर्म अपणेविषे मानि लेता है, जैसे इंद्रियां साक्षी होकरि विषयोंकों ग्रहण करतियां हैं, तैसे चित्त भी अभिमानतें रहित साक्षी होकरि ग्रहण करै तौ रागदोषकरि तपायमान न होवै, जैसे जलविषे चक्र तरंग फुरते दृष्ट आते हैं, तैसे यह इंद्रियोंके रूप विषय अरु इंद्रियां फुरि आतीयां हैं, आधार आधेयकरि इनका संबंध होता है, अरु चित्त इनकेसाथ मिलि व्याकुल हो

ता है, रूप इंद्रिय अरु मन इनका परस्पर असंगभाव है, जैसे मुख अरु दर्पण अरु प्रतिबिंब भिन्न भिन्न असंग हैं, तैसे यह भिन्न भिन्न असंग हैं, परंतु अज्ञानकरि मिले हुए भासते हैं, जैसे लाख करिके सोने रूपे चीनीका संयोग होता है, तैसे अज्ञानकरिके रूप अवलोकन मन संस्कारका संयोग होता है, जब ज्ञान अग्निकरि अज्ञानरूपी लाख जलि जावै, तब परस्पर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, बहुरि किसीका दुःख सुख किसीकों नहीं लगता, जैसे दो लकडीका संयोग लाखकरि होता है, तैसे अज्ञानकरि विषय इंद्रियां मनका संयोग होता है, ज्ञानरूपी अग्निकरि जब बिछुरी जाते हैं, तब बहुरि नहीं मिलते, जैसे भिन्न भिन्न मणके सूत्रके तागेकरि एकठे होते हैं, तैसे देह इंद्रियांविषे अज्ञानकरि एकठे होते, जब विचार करिके तागा टूटि पडै, तब भिन्न भिन्न हो जावै, बहुरि मिलै नहीं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंकों आत्मविचार भया है, सो ऐसे विचारता है, जो हमकों दुःख देणेहारा चित्त था, चित्तके नष्ट हुए आनंद भया है, जैसे मंदिरविषे दुःख देणेहारा पिशाच रहता है, तब दुःख होता है, नहीं तौ मंदिर दुःख नहीं देता, पिशाच दुःख देता है,तैसे शरीररूपी मंदिरविषे दुःख देणेहारा चित्त है ॥ हे चित्त! तुझनें मिथ्या मुझकों दुःख दिया था, अब मैं आपकों जान्या है, तूं आदि भी तुच्छ है, अंत भी तुच्छ है, वर्तमानमें भी तूं मिथ्या जीवकों दुःख देता है, जैसे मिथ्या परछावा बालककों वैताल होकरि दुःख देता है, बडा आश्चर्य है ॥ हे चित्त! तूं तबलग दुःख देता है, जबलग आत्मस्वरूपकों नहीं जान्या, जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया, तब तूं कहूं दृष्ट न आवैगा, तूं तौ मायामात्र है, अब तूं रहु अथवा जाउ, मैं अब तुझसों मोहित नहीं होता, तूं तौ मूर्ख जड है, अरु मृतक है, तेरा आकार अविचारतें सिद्ध है, अब मैं पूर्वका स्वरूप पाया है, तूं तत्त्व नहीं, भ्रांतिमात्र है, जो मूढ है सो तुझकरि मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता, जैसे दीपककरि अंधकार दृष्ट नहीं आता, तैसे ज्ञानकरि तूं दृष्ट नहीं आता ॥ हे मूर्ख चित्त! तूं बहुत काल इस देहरूपी गृहविषे रहा

है अरु तूं वेतालरूप है, जैसे अपवित्र स्थानविषे वेताल रहता है, जहां मसाण आदिक स्थान होते हैं, तैसे सत्संगतें रहित देहरूपी गृह सो मसाणके समान सदा अपवित्र है, तहां तेरे रहणेका स्थान है, अरु जहां संतोंका निवास होता है, तहां तुझसारखे ठौर नहीं पावते हैं, सो मेरे देहरूपी गृहविषे सत् विचार संतोषादिक संतजन आनि स्थित हुए हैं, तेरे वसणेका ठौर नहीं॥ हे चित्त पिशाच! तूं पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचनी अरु कामक्रोधादिक गुह्यक अपणेसाथ लेकरि चिरपर्यंत विचर्या था, अब विवेकरूपी मंत्रकरि मैं तुझकों निकास्या है, तब कल्याण हुआ ॥ हे चित्त! पिशाचरूप! तूं प्रमादरूपी मद्यपानकरि मत्त हुआ था, अरु चिरपर्यंत नृत्य करता था, विवेकरूपी मंत्रकरि तुझकों काढ्या, अब देहरूपी कंदरा शुद्ध भई है, अरु शुद्धभाव पुरुषोंनें निवास किया है, जैसे सिंह कंदरासों निकसी जाता है, तब मुनीश्वर आनिं निवास करता है, तैसे इहां शुद्धभावहुनें प्रवेश किया है॥ हे चित्त! मैं तुझकों विवेकरूपी मित्र करिके वश किया है, अब तेरा क्या पराक्रम है, तूं तबलग दुःख देता था, जबलग विचाररूपी मित्र पाया न था, अब तेरा बल कछु नहीं चलता, अब मैं महा केवलभावविषे स्थित हौं, आगे भी मैं तुझकों जगावता था, आपतें तूं सबरूप हैं, जैसे कच्चे मंत्रवाला सिंहकों जगावता है, अरु आप कष्ट पावता है, तैसे मैं तुझकों जगाइकरि कष्ट पावता था, अब मैं आत्मविचारकरि परिपक्क मंत्रकरि वश किया है, तब शांतिवान् हुआ हौं, ममता मान मेरे कछु नहीं, मोह अहंकार सब नष्ट हो गया है, इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है, मैं निर्मल चेतन आत्मा हौं, मेरा मुझकों नमस्कार है, न मेरेविषे कोउ आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, न देह है, ऐसा जो निर्गुणरूप आत्मा है, मेरा मुझकों नमस्कार है, न कोउ आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है, किसी शब्दका प्रवेश नहीं, ऐसा निराश है, न रूप हौं, प्रकाशरूप हौं, अरु निर्मल आत्मा हौं, अपणे आपविषे स्थित हौं, ऐसा जो मैं आत्मा हौं, मेरा मुझकों नमस्कार है,

न विकार हौं, नित्य हौं, निराश हौं, सर्व कार्योंविषे अनुस्यूत हौं, अंशांशीभावतें रहित हौं, ऐसा सर्वात्मा जो मैं हौं, सो मेरा मुझकों नमस्कार है, सम हौं, सर्वगत हौं, सूक्ष्म हौं, अपणे स्वभावविषे स्थित हौं, पृथ्वी पर्वत समुद्र आकाश आदिक जगत् मैं नहीं, अरु मैंही सर्व पदार्थ होकरि भासता हौं, ऐसा मैं सर्वात्मा हौं, अब मैं सर्व भावकों प्राप्त भया हौं, अरु मनभाव मुझतें दूर भया है,मेरे प्रकाशकरि विश्व भासता है, अजर अमर अनंत हौं, गुणातीत अद्वैत हौं, मनन जिसतें दूर भया है, ऐसा जो मैं सुंदररूप हौं, कैसा हौं, जिसविषे विश्व प्रगट है, अरु स्वरूपतें अविनाशी हौं, अनंत अजर अमर गुणातीत ईश्वररूपकों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्त उप० नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचारकरि तत्त्ववेत्ता आत्माकों सम्यक्करि जानते हैं, तूं भी आत्मविचारका आश्रय करिके आत्मपदकों आश्रय होउ, यह जगत् सब आत्मरूप है, ऐसे जाणिकरि चित्तसों जगत्की सत्यताकों त्यागिकरि जब ऐसे विचार करै, तब चित्त कहां है, बडा आश्चर्य है, जो चित्त वस्तुरूप दिखाइ देता था, सो चित्त अविदित मायामात्र असतरूप था, जैसे आकाशके फूल कहणेमात्र हैं, तैसे चित्त कहणेमात्र है, अविचारकरि दिखाइ देता है, विचारवान्कों चित्त असत् भासता है, काहेतें, जो अविचारतें सिद्ध है, जैसे नौकापरि बैठे बालककों तटके वृक्ष चलते भासते हैं, बुद्धिवान्कों चलणेविषे सद्भाव नहीं होता, तैसे मूर्खकों चित्तसत्ता भासती है, अरु विचारवान्का चित्त नष्ट होजाता है, जब मूर्खतारूप भ्रम शांत हुआ, तब चित्त कछु नहीं पाइता, जैसे बालक चक्रपर चडा हुआ फिरता है, तौ पर्वत आदिक पदार्थ तिसकों भ्रमते भासतेहैं, जब चक्र ठहरि जाताहै,तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासता है, तैसे चित्तके ठहरणेतें द्वैत कछु नहीं भासता, आगे मुझकों द्वैत भासता था, सो चित्तके फुरणेकरि नानाप्रकारकी तृष्णा इच्छा उठती थी, अब चित्तके नष्ट हुए इन पदार्थोंकी भावना न

ष्ट भई है, संशय शोक सब मेरे नष्ट होगए हैं, अब विगतज्वर स्थित हौं, जो मैं स्थित हौं तैसे हौं, ईषणा कोउ नहीं, जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ, तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे, जैसे प्रकाश नष्ट हुए वर्णज्ञान कछु नहीं रहता है, तैसे चित्तके नाश हुए इच्छा आदिक नहीं रहते, अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट हो गई, मोहका पींजरा टूटि पडा, अब मैं निरहंकार हौं, बोधवान् हौं, सब जगत् शांतरूप आत्मा हौं, और नानात्व कछु नहीं, मैं निराभास आदिअंततें रहित आनंदपदकों प्राप्त हुआ हौं, सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपणा आप है, तिसविषे मैं स्थित हौं, निरंतर इन विचारोंसाथ अब क्या प्रयोजन है, जबलग आपकों मैं देह जाणता था, तबलग यह विचार मूर्ख अवस्थाविषे थे, अब मैं अमित निराकारकों प्राप्त हुआ हौं, केवल परमानंद सच्चिदानंदकों प्राप्त हुआ, किस पदका विचार करौं, आगे मैं चित्तरूपी वैतालकों आपही जगावता था, अरु आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मंत्रकरि मैं इसकों नष्ट किया है, अरु निर्णयकरि अपणे स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, शांतआत्मा अपणे आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! जिसकों यह निश्चय प्राप्त हुआ है, सो निर्द्वंद्व रागद्वेषतें रहित होकरि स्थित होता है, प्रकृत कर्म करता है, मानमदतें रहित आनंद करिके पूर्ण होता है, जैसे शरत्कालकी रात्रिकों पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण होता है, तैसे प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान्कों शांत पूर्ण आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशांतिप्रतिपादनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विचार वेदविदोनें कहा है, पूर्व मुझकों ब्रह्मानें विंध्याचल पर्वतविषे कहा था, इस विचार करिके उह परम पदविषे स्थित हुआ है, इस दृष्टिकों आश्रय करिके आत्मविचार होकरि तमरूपी संसार समुद्रकों तरिजावहु ॥ हे रामजी ! इस उपर एक और परम दृष्टि सुण, सो दृष्टि परम पदकों प्राप्त करनेहारी है, जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचार करिके निःशंक स्थित हुआ है, सो सुण, वीतव मुनीश्वर महातेजवान् था, सो सं

सार अधिव्याधितें वैराग्य करत भया, अरु नागादि होके पर्वतोंकी कंदराविषे विचरने लगा, जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चौफेर फिर्ता है, तैसे विचरने लगा, अरु संसारकी क्रियांकों दुःखरूप विचारता भया, जो यह बडे श्रमके देणेहारी है,ऐसे जाणिकरि उद्वेगवान् हुआ निर्विकल्प समाधिकी इच्छा करत भया, अपणा जो कछु व्यवहार था, तिसकों त्यागत भया, अरु गौर जो अपणी कुटी थी, तिसका त्याग करिके और केलेके पत्रोंकी बनाइकरि बैठा, जैसे भंवरा कमलहुकों त्यागिकरि नील कमलपर जाय बैठता है, तैसे गौर कुटीकों त्यागिकरि श्याम कुटीविषे जाय बैठा, नीचे कुश बिछाइ तिस उपर मृगछाला बिछाइकरि पद्मासन बिछाइ बैठे, जैसे मेघ जलकों त्यागिकरि शुद्ध मौन स्थित होता है, तैसे और क्रियाकों त्यागिकरि शांतिके निमित्त शांतरूप स्थित है, हाथोंकों तले किया मुखकों उपर किया, ग्रीवाकों सुधाकरिके स्थित करत भया, इंद्रियांकी वृत्तिकों रोकत भया, बहुरि मनकी वृत्तिकों भी रोकि दिया, जैसे सुमेरुकी कंदराविषे सूर्यका प्रकाश बाह्यतें मिट जाता है, तैसे इंद्रियांकी वृत्ति रोकी बाहिरतें मिट जाती है, अरु अंतरतें भी विषयोंकी चितवनाका त्याग किया, इस प्रकार उह क्रम करिके स्थित करत भया, जब मन निकरी जावै, तब कहै, बडा आश्चर्य है, मन महाचंचल है, जो मैं स्थित करता हौं, तौ बहुरि निकसी जाता है, जैसे सूका पात तरंगविषे पाया ठैरता नहीं, तैसे मन एकक्षण भी ठैरता नहीं, सर्वदा इंद्रियांकरि विषयोंकी उर धावता है, जैसे गेंदकों ज्यों ज्यों ताडना कर्ता है, त्यौं त्यौं उछलता है, तैसे इस मूर्ख मनकों जिस उरतें खैंचता है, तिसी उर बहुरि धावता है, उन्मत्त हस्तीकी नांई, जो घटकी उरतें खैंचता है, तौ रसकी उर निकसी जाता है, अरु जो रसकी उर खैंचता है, तौ गंधकी उर धावता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, जैसे वानर कबहु किसी टासपर, कबहु किसी टासपर, जाय बैठता हे, इस प्रकार मूर्ख मन शब्द स्पर्श गंध रूप रसकी उर धावता है, स्थिर नहीं होता, इसके ग्रहण करणेकों पंच स्थान हैं, जिस मार्गकरि विषयों

कों ग्रहण करता है, सो पंच ज्ञानइंद्रियां हैं ॥ अरे मूर्ख मन ! तूं किस निमित्त विषयोंकी उर धावता है, यह तौ आप जड असत्‌रूप भ्रांतिमात्र है, तूं इनकरि शांतिकों कैसे प्राप्त होवैगा, इनविषे चपलताकरि इच्छा करनां अनर्थका कारण है, ज्यों ज्यों इनके अर्थोंकों ग्रहण करैगा, त्यों त्यों दुःखके समूहकों प्राप्त होवैगा, यह विषय भी जड असत्‌रूप हैं, तूं भी जड है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह असत्‌रूप है ॥ हे मुनी ! यह तौ सब असाररूप है, अरु तूं भी इंद्रियां सहित जडरूप है, तूं कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है, सबका कर्ता चिदानंद आत्मा भगवान् है, अरु सदा साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, तूं क्यों वृथा तपायमान होता है, जैसे सूर्य सबकी क्रियाकों करावता साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, अरु जगत् सब भ्रांतिमात्र है, जैसे अज्ञानकरि जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अज्ञान करिके आत्मा विषे जगत् भासता है, जैसे आकाश अरु पातालका संबंध कछु नहीं होता, जैसे ब्राह्मण अरु चंडालका संयोग नहीं होता, जैसे सूर्य अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अरु चित्त इंद्रियांका संबंध कछु नहीं होता, आत्मा सत्तामात्र है, यह जड असत्‌रूप है, इनका संबंध कैसे होवै, आत्मा न्यारा साक्षीभूत है, जैसे सूर्य सब जनोंतें न्यारा रहता है, तैसे आत्मा न्यारा साक्षीभूत है ॥ हे चित्त ! तूं तौ मूर्ख है, विषयरूपी चबेणेविषे तूं रहै, उरतें भक्षण कर्त्ता तूं तृप्त कदाचित् नहीं होता, अरु विचार मिथ्या कूकरकी नांई चेष्टा करता है, तेरेसाथ हमकों कछु प्रयोजन नहीं ॥ हे मूर्ख! तूं तौ मिथ्या अहं अहं करता है, अरु तेरी वासना अत्यंत असत्‌रूप है, अरु जिस पदार्थोंकी तूं वासना करता है, सो भी असत्‌रूप है, तेरा अरु आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतनरूप है, अरु तूं मिथ्या जडरूप है, अरु यह मैं जान्या है, जो जन्ममरण आदिक विकार अरु जीवत्वभावकों तुझने मुझकों प्राप्त किया था, मैं तौ केवल चेतन परब्रह्म हौं, मिथ्या अहंकार करिके जीवत्वभावकों प्राप्त किया था, अरु देहमात्र आपकों जाणता था, मैं

तौ संवित्मात्र नित्य शुद्ध हौं, आदिअंततें रहित परमानंद चिदाकाश अनंत आत्मा हौं, अब मैं स्वरूपविषे आप जाग्या हौं, और सद्भाव मुझकों कछु नहीं दृष्ट आता॥ हे मूर्ख मन! जिन भोगोंकों तूं सुखरूप जाणिकरि धावता है, सो अविचार करिके प्रथम तो अमृतकी नांई भासता है, अरु पाछे विषकी नांई हो जाता है, वियोग करिके जलावते हैं, अरु आपकों तूं कर्त्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तूं भी कर्त्ता भोक्ता नहीं, अरु इंद्रियां भी कर्त्ता भोक्ता नहीं, काहेतें जो जड है, जो तुम जड हुए तौ तुमारेसाथ मित्रभाव कैसे होवै, अरु जो तूं जड असत्रूप है, तौ कर्त्ता भोक्ता कैसे होवै, अरु जो चेतन सत्रूप है, तौ भी तेरेविषे कूर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं संभवता, तूं मिथ्या है, मैं प्रत्यक्ष चेतन हौं, तूं कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपणेविषे स्थापन करता है, तूं मिथ्या है, जब मैं तुझकों सिद्ध करता हौं, तब तूं होता है, तूं निश्चयकरि जड है, तुझकों कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै, जैसे पत्थरकी शिला नृत्य करनेकों समर्थ नहीं होती, तैसे तुझकों कर्तृत्व की समर्थता नहीं, तेरेविषे कर्तृत्व जो है, सो मेरी शक्ति है, जैसे दात्री घास तृण आदिककों काटती है, सो केवल आपतें नहीं काटती, पुरुषकी शक्तितें काटती है, अरु खङ्गकरि जो हननक्रिया होती है, सो भी आपतें नहीं होती, पुरुषकी शक्ति है, तैसे तुमारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरि होती है, जैसे पात्रकरि जलपान करता है, सो पात्र नहीं करता, पान पुरुष करता है, पात्र करिके पान करता है, तैसे तुमारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है, मेरी सत्ता पाइकरि तुम अपणी चेष्टाविषे विचरते हौ, जैसे सूर्यका प्रकाश पाइकरि लोक अपणी अपणी चेष्टा करता है, तैसे मेरी शक्ति पाइकरि तुमारी चेष्टा होती है, अज्ञान करिके तुम जड जीवते रहते हौ, ज्ञान करिके लीन हो जाते हौ, जैसे सूर्यके तेजकरि बर्फका पुतला गलि जाता है, तातें हे चित्त! अब मैं निश्चय किया है, जो तूं मृतकरूप मूढ है, परमार्थतें न तूं है, न इंद्रियां हैं, जैसे इंद्रजालके बाजीके पदार्थ भासते हैं, सो सब मिथ्या हैं, केवल विज्ञानरूप मैं अपणे आपविषे स्थित नि

रामय अजर अमर नित्य शुद्ध बोध परमानंदरूप हौं, अरु मैंही नानारूप होकरि भासता हौं, परंतु कदाचित् द्वैतभावकों प्राप्त न हुआ, सदा अपणे आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे दृष्ट आवते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थ मेरेविषे भासते हैं, सो इतर कछु नहीं ॥ हे चित्त ! तूं भी चिन्मात्रभावकों प्राप्त हुआ, जब तूं चिन्मात्रभावकों प्राप्त होवैगा, तब तेरा भिन्न भाव कछु न रहैगा, अरु शोकतें रहित होवैगा, आत्मतत्त्व सर्व भावविषे स्थित सर्वरूप है, जब तिसकों तूं प्राप्त होवैगा, तब सब कछु तुझकों प्राप्त होवैगा, न कोउ देह है, न जगत् है, सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मही ऐसे भासता है, वास्तव अहं त्वं कल्पना कोउ नहीं ॥ हे चित्त ! जो आत्मा चेतनरूप है, सो सर्वगत आत्मा है, आत्मातें इतर कछु नहीं, तौ भी तुझकों संताप नहीं, अरु जो अनात्मा जड असत्‌रूप है, तौ भी तूं न रहा, जो कछु परिच्छिन्न जैसा तूं बणता है, सो मिथ्या भ्रम है, आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है, द्वैत कछु नहीं, सर्व उही है, तौ भिन्न अहं त्वंकी कल्पना कैसे होवै, अरु असत्‌सों कार्यकी सिद्धता कछु नहीं होती, शशेके सींग जैसे असत हैं, तिनसों कछु मारणेका कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे तुम असत् हौ, तुमसों कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे होवै, अरु जो तूं कहे, मैं सत् असत् चेतन जडके मध्यभाव हौं, जैसे तम अरु प्रकाशका मध्यभाव छाया है, तैसे सूर्यरूप परमात्मा निरंजनके विद्यमान मंदभावी छाया कैसे रहती है, तातें कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझकों नहीं होता, काहेतें जो तूं जड है, जैसे दात्री पडी होवै, तिसकों पास काटणेका कार्य आपतें नहीं होता, जब पुरुषकी हाथशक्ति होती है, तब कार्य होताहै, तैसे तुमसों कार्य कछु नहीं होता, जब आत्मसत्ता तुमसों मिलतीहै, तब तुमसों कार्य होता है, तुम क्यों अहंकार करिके वृथा तपायमान होते हौ, अरु हे चित्त ! जो तुं कहै, ईश्वरका उपकार है तौ ईश्वर जो परमात्मा है, तिसकों करणे अकरणेविषे कछु प्रयोजन नहीं, अरु सबका कर्त्ता भी उही है, अरु अकर्ता है, जैसे आकाश पोल करिके सबकों वृद्ध

ता देणेहारा है, परंतु स्पर्श किसीसाथ नहीं करता, तैसे परमात्मा सबकों सत्ता देणेहारा है, अरु अलेप है॥ हे मूर्ख मन ! तूं क्यौं भोगोंकी वांछा करता है, तूं तौ जड असत्‌रूप है, अरु देह भी जड असत्‌रूप है, भोग कैसे भोगैंगे, अरु जो परमात्माके निमित्त इच्छा करता है, तौ परमात्मा सदा तृप्त है, अरु इच्छातें रहित है, सर्वविषे उही पूर्ण है, दूसरेतें रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित है, तुझकों किसकी चिंता है, तातें वृथा कल्पनाकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, जहां सर्व क्लेश शांत हो जाता है, अरु जो तूं कहै जो परमात्मासाथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्वका संबंध है, तौ नहीं बणता, जैसे फूल अरु पथ्थरका संबंध नहीं होता, तैसे परमात्मासाथ तेरा संबंध नहीं होता, समान अधिकरण द्रव्यका संबंध होता है, जैसे जलमृत्तिकाका संबंध होता है,जैसे औषधिविषे चंद्रमाकी सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्यकी तप्तकरि शिला तपी जाती है, जैसे बीज अंकुरका संबंध होता है, जैसे पिता अरु पुत्रका संबंध होता है, सो द्रव्य अरु गुणका संबंध होता है, जो आकारसहित वस्तु है, तिसका कैसेहू संबंध बणता है, अरु जो निराकार निर्गुण वस्तु है, तिसका कैसे संबंध होवै, समानकरि संबंध नहीं, जो परमात्मा चेतन है, तूं जड है, उह प्रकाशरूप है, तूं तमरूप है, उह सत्‌रूप हैं, तूं असत्‌रूप है, संबंध तौ किसिसाथ नहीं बणता, तुं क्यौं वृथा जलता है, तूं मननरूप है, परमात्मा सर्व कलनातें रहित है, तेजकी एकता तेजकरि होती है; अरु जलकी एकता जलसाथ होती है, तूं कलंकरूप है, परमात्मा निष्कलंकरूप है, तेरी एकता तिससाथ कैसे होवै, जिसका अंग कछु होता है, तिसका संबंध भी होता है, सो संबंध तीन प्रकारका है, सम, अर्धसम, अरु विलक्षण, इनका संबंध होता है, जैसे जलसाथ जलकी एकता होती है, तेजसाथ तेजकी एकता होती है, यह सम है, जो तेरा आत्मसाथ सम संबंध नहीं, एक अर्धसम है, जैसे स्त्री अरु पुरुषके अंग समान होते हैं, परंतु विलक्षण रूप हैं, सो अर्धसम भी तेरा अरु आत्माका संबंध नहीं, अरु कछुक अन्यकी नांई भी तेरा संबंध नहीं, जैसे

जल अरु दूधका संबंध होता है, तैसे तेरा भी नहीं, अरु अत्यंत जो विलक्षण है, तिनकी नांई भी तेरा नहीं; जैसे काष्ठ अरु लाखका अरु पुरुष अरु हाथी घोडा आदिक संबंध नहीं, अरु आधार आधेयवत् भी तेरा संबंध नहीं, जैसे बीज अंकुर पिता पुत्र आदिक जो संबंध हैं, तैसे भी तेरा अरु आत्माका संबंध कोउ नहीं, काहेतें जो संबंध तिसका होता है, तिससाथ कछु भी अंग मिलता है, जिसका अंग कोउ नहीं मिलता, परस्पर विरोध होवै, तिसका संबंध कैसे कहिए, जैसे कहिए शशके सिंग उपर अमृतका चंद्रमा बैठा है, तम अरु प्रकाश एकठे हैं, जैसे यह नहीं बणता, तैसे आत्मसाथ देह मन इंद्रियोंका संबंध नहीं बणता, काहेतें जो आत्मा सर्व कलनातें अतीत नित्य शुद्ध अद्वैत प्रकाशरूप है, अरु मनादिक जड असत् मिथ्या तमरूप है, इनका संबंध नहीं, जो परस्पर विरोध होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, तुम तौ परमात्माके अज्ञानकरि मन इंद्रियां देहादिक उदयहुए हौ, आत्माके ज्ञानकरि अभाव हो जाते हैं, बहुरि संबंध कैसे होवै, हे मन! जेते कछु जगत् हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, तिसतें इतर द्वैत कछु नहीं, अहं त्वंकी कल्पना कोउ नहीं, ब्रह्म सत्ता अपणे आपविषे स्थित है, सब कलना तेरेविषे थी, अरु तूं तबलग था, जबलग स्वरूपका अज्ञान था, जब स्वरूपका ज्ञान भया, अरु अज्ञान नष्ट भया, तब तूं कहां है, जैसे रात्रिके अभावतें निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानके नाश हुवे तेरा अभाव हो जाता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥ ७७॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनीश्वर विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे विचार करत भया, तीक्ष्ण बुद्धिसाथ और भी जो कछु कहा है, सो सुण, अनात्मा जो देह इंद्रियां मनादिक सो संकल्पतें उपजे हैं, जब ज्ञान उदय हुआ, तब इनका अभाव हो जाता है॥ हे मन! जैसे सुर्यके उदय हुए, तम नष्ट हो जाता है, तैसे नित्य उदितरूप परमात्मा अनुभव स्वरूपके उदय हुए तुमारा अभाव हो जाता है, वासना करिके

तिसका आवरण था, जब वासनाका अभाव हो जाता है, तब आवरणका भी अभाव हो जाता है, जैसे मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके अभाव हुए आत्मतत्व प्रकाशता है, वासनाका मूल अज्ञान है, जब अज्ञानसहीत वासना नष्ट भई, तब चिदानंद ब्रह्म प्रकाशताहै, वासनाहीका नाम बंध है, वासनाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है, जब वासनारूपी जेवरी काटैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जैसे प्रकाशविना अंधकार नाश नहीं होता, तैसे मन इंद्रियां देहादिक आत्मविचारविना नाश नहीं होता, जब विचार करिके आत्मपद प्राप्त होवै, तब मनसहित षट् इंद्रियांका अभाव हो जाता है, अर्थ यह जो इनका अभिमान नष्ट होता है, इनके धर्म अपनेविषे नहीं भासते, जबलग देह इंद्रियांसाथ आवर्या है, तबलग आत्मपदकों पाइ नहीं सकता; तातें आत्मपद पावणेका कल्याणके निमित्त अभ्यास कर, जबलग मन इंद्रियांके गुणोंसाथ आपकों मिल्या जाणता है, तबलग इसकों अपणे स्वरूपकों विभुता अरु सिद्धता नहीं भासती, जब आत्माका साक्षात्कार हो जावै, तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट हो जावैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए विकारोंका अभाव हो जाता है, जिसके देखेतें इनका अभाव होजाता है, तिनका आत्मासाथ संबंध कैसे होवै, जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे सत् असत्का संबंध नहीं होता, जैसे जीवते अरु मृतकका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अनात्माका संबंध नहीं होता, आत्मा सर्व कल्पनातें रहित है, मन आदिक सर्व कल्पनारूप है, कहां यह मूक जड अनात्मारूप, अरु कहां नित्य चेतन प्रकाश निराकार आत्मरूप, इनका परस्पर विरोधरूप है, संबंध कैसे कहिए, यह तौ निश्चयकरि अनर्थका कारण है, जबलग इनका अभिमान है, तबलग जगत् दुःखरूप है, जब इनका वियोग होवै, तब जगत् परमात्मारूप होता है, जबलग इसकों आत्माका अज्ञान है, तबलग आपकों इनमें मिला देखता है, दुःख पावता है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब अपणेसाथ इनका संयोग

नहीं देखता है, अरु यह मैं निश्चयकरि जाण्या है, जो इंद्रियां अरु मनके संयोगतें जगत् भासता है, जब इंद्रियोंका ग्राम नष्ट हो जाता है, तब जगत् परमात्मारूप हो जाता है, अरु मैं जो आत्मा अरु मन इंद्रियांकों एकठा जाणता था, सो प्रमादरूपी मद्यके पानकरि मत्त हुआ मनकरि जाणता था, अब आत्मविचारकरिके मन नष्ट भया, तब सुखी भया, जो विषकों पानकरि मूर्छित होवै, सो तौ बणता है, परंतु पान कियेविना मूर्छित होवै, सो आश्चर्य है, तातें जब अनात्माका इससाथ संयोग होता, तब सुखदुःख करिके राग द्वेषवान् होणा भी बणता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है, सुखदुःखका संयोगही जिससाथ नहीं, अरु रागद्वेषकरि जलता है, तौ महामूर्खता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है, जैसा तिसके आगे अभ्यास होता है, तैसाही भासता है, कदाचित् विपर्यय भावकों प्राप्त नहीं होता, सुखदुःखविषे मूर्खमनादिक रागद्वेषवान् होता है, आत्मा तौ सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है, तिससाथ इंद्रियांका संयोग कैसे होवै, जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ, तौ आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिए, जहां चित्तकलना होती है, तहां कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, जहां चित्तकलनाका अभाव है, तहां कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव है, ऐसा निष्कलंक आत्मा तत्त्व मैं हौं, जो न कर्त्ता हौं, न भोक्ता हौं, न मेरेविषे बंध है, न मोक्ष है, न हंता है, न अहंता है, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हौं ॥ हे मन! तूं भी मै हौं, अरु पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पांचों तत्त्व मैं हौं, इस प्रकार निर्णय करि जिसनें धारा है, सो मोहकों प्राप्त नहीं होता, जो अहं अभिमान करनेवाला आत्मातें भिन्न आपकों जाणता है, तब दुःखी होता है, जब अपणे स्वभावविषे स्थित होता है, तब परमसुखी होता है, तातें जिसकों कल्याणकी इच्छा होवै, तिसकों एक आत्मपरमात्मपरायण होणा योग्य है, जब स्वरूपका त्यागकरि संकल्पके उर धावता है, तब दुःखोंके समूहकों प्राप्त होता है, हे चित्त! जो तूं अपणेविषे कर्तृत्व देखता था, सो तूं इंद्रियांसहित जडरूप पथ्थरके समान है, जैसे आकाशविषे पवन नहीं लगता, तैसे तुमसों कर्तृत्व नहीं हो

ता, जब इसकों स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्त आदिकसाथ आपकों मिला जाणता है, अरु चित्तादिक आत्माकी सत्ता पाइकरि चेतन होता है, जैसे अग्निकी सत्ता पाइकरि लोह जलावणेकों समर्थ होता है, तैसे तुम आत्माकी सत्ता पाइकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वविषे समर्थ होते हौ, जब आत्मविचार करिके स्वरूपका साक्षात्कार होता है, अरु अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है, मनादिकका वियोग होताहै, सर्व कलनातें रहित हुआ, तब केवल मोक्षरूप आत्मा होता है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे लालीका अभाव है, तैसे आत्माविषे कर्तृत्वका अभाव है, सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जैसे समुद्र तरंग आदिक नानाप्रकार होता है, सो सब जलरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सर्व जगत् आत्मरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, सो सच्चिदानंद आत्मा मैं सदा अपणे आपविषे स्थित हौं, और द्वैतकलना मेरेविषे कोउ नहीं, जैसे समुद्र उष्णतातें रहित है, तैसे परमात्मा सर्व कलनातें रहित है, जैसे आकाशविषे वन नहीं होता, तैसे परमात्माविषे कलना नहीं होती, संवेदनतें रहित संवित्मात्र सर्वात्मा है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहं त्वं आदिक कलनाका अभाव हो जाता है, सो अनादि अरूप सर्वगत है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है, तिसकों द्वैतकलना आरोपणेकों कौन समर्थ है, सो ऐसा कौन है, जो आकाशविषे ऋग्वेदकों लिखै, नित्य उद्योत सर्वका सार अद्वैत आत्मा है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, सर्वविषे पूर्ण निर्मल नित्य आनंदरूप है, ऐसा आत्माकों अब मैं प्राप्त हुआ हौं, जगत्का सुखदुःख अब नष्ट भया है, समशांतरूप हुआ हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने अनुशासनायोगोपदेशो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचार करता भया, बहुरी जो कछु निर्मल बुद्धिसाथ विचारणे लगा सो सुण, हे इंद्रियरूप मन, तुम क्यों अपने अर्थोंकी उर धावते हौ, तुमकों विषयोंकरि शांति प्राप्त नहीं

होती, जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखीकरि दोडता है, अरु शांतिवान् नहीं होता तातें तुम विषयोंकी उर तृष्णाकरि शांतिवान् न होहुगे, इनकी इच्छा त्यागिकरि जो सत्य है, परमात्मतत्त्व अविनाशी सर्व अवस्थाविषे एकरस है, तिसकों ग्रहण करौ, तब सर्व दुःख तुमारे मिटि जावैंगे, तुमारेसाथ मैं मिल्या था, सब मैं भी दुःख पाया था, तुम अज्ञान करिके उत्पत्ति भए हौ, जो तुमारेसाथ मिलता है, तिसकों भी दुःख प्राप्त होता है, जैसे तपी हुइ लाख जिसके शरीरसाथ स्पर्श करती है, तिसकों जलावती है, तैसे जिसकों तुमारा संग भया है, सो दुःखकों प्राप्त होता है ॥ हे मन! यह जीव जो मरता है सो कालके मुखमें जाय प्रवेश करता है, सो तुमारे संगकरि जाय पडता है, जैसे नदी जल सहित होती है, तब समुद्रकी उर चली जाती है, जलतें रहित होवै, तौ क्यौं जावै, तैसे तुमारे संगकरि कालके मुखमें जाय पडता है, तुमारा संग न होवै तौ काहेकों पडै, जैसे मेघ कुहीडकरि सूर्यकों आच्छादि लेता है, तैसे मनरूपी मेघ तूं इच्छारूपी कुहीडकरि आत्मारूपी सूर्यकों आच्छादि लेता है, अरु परंपरा दुःखोंकी वर्षा करनेहारा है॥ हे मन! तेरेविषे चिंता उठती है, सो तूं मर्कटकी नांई है, जैसे मर्कट वृक्षकों ठहरणे नहीं देता, पडा हिलावता है, तैसे चित्त देहकों ठरणे नहीं देता, अरु चित्तरूपी पंखेरू है, लोभ लज्जा तिसकी दो पांख हैं, अरु रागद्वेषरूपी चंचू हैं, तिसकरि शरीररूपी वृक्षपर बैठी, शुभ गुणोंकों काटि काटि खाता है, अरु चित्तरूपी कूकर महानीच है, भोगभावनारूपी जो महा अपवित्र पदार्थ है, तिनकों हृदयरूपी स्थानविषे एकठा करता है, ऐसी चेष्टातें कदाचित् रहित नहीं होता, अरु चित्तरूपी उलूक है, अज्ञानरूपी रात्रविषे आइ विचरता है, चेष्टाकरि प्रसन्न होता है, अरु शब्द करता है, जैसे मसाणविषे वेताल शब्द करता है, जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होवै, तब चित्तरूपी उलूकका अभाव होवै, अरु संपदा आनि प्रवेश करै, जैसे सूर्यके उदय हुए, सूर्यमुखी कमल उदय होता है, तैसे संपदा प्रफुल्लित होती है, जहां मोहरूपी कुहीड अरु इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाशसों निवृत्त होती है, तब निर्मल आकाश प्रगट होता है ॥

हे चित्त! जबलग तूं नष्ट नहीं होता, तबलग शांति नहीं होती, अरु जैसे अकस्मात् मेघ आवै, अरु गडेकी वर्षा करै, तिसकरि मार्ग चलणेवाले पैंदोई कष्ट पावते हैं, तैसे स्वस्थ बैठे हुए, जो चिंता आनि प्राप्त होती है, सो तेरे संयोगकरि होती है, संकल्पविकल्परूपी गडेकी वर्षाकरि सत्मार्ग चलणेवाला दुःख पावता है, अरु जहां चित्त नष्ट होता है, तहां सर्व आनंद होता है, शीतलता अरु मित्रताकरि पावन होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए आत्मा प्रकाशता है, तब प्रसन्नता, गंभीरता, महत्त्वता, अरु समता होती है, जैसे वायु अरु मंदराचल पर्वततें रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् भया, अरु जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए आत्मानंद पाइकरि यह शोभता है॥ हे चित्त! यह स्थावर जंगम जगत संवित्रूप आकाशविषे है, तिस महत् ब्रह्मकों तूं भी प्राप्त होउ, जो पुरुष आशारूपी फांसीकों तोडिकरि आत्मपदविषे प्राप्त हुआ है, अरु संसारका सद्भाव निवृत्त किया है, सो जन्ममरणके बंधनमें नहीं पडता जैसे जल्या पत्र बहुरि हरा नहीं होता, तैसे चित्त नष्ट हुआ जन्ममरणकों नहीं पावता॥ हे चित्त! सर्वकों भक्षण करनेहारा जो तूं संसारकों सत् मानीकरि तिसकी उर धावैगा, तब तेरा कल्याण न होवैगा, अरु जो आत्माकी उर आवैगा, तब तेरा परम कल्याण होवैगा, जब तूं अपणा अभाव करि आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब कल्याणरूप होवैगा, अरु जब तूं अपणा सद्भावकरैगा, जो आकारकों न त्यागैगा, तब दुःखी होवैगा, जो तेरा जीवणा है सो मृत्यु समान है, अरु जो मृत्यु है, सो जीवणेसमान है, दोनों पक्षविषे जो तेरी इच्छा है, सो अंगीकार कर, जो तूं अवही आपकों आत्मपदविषे निर्वाण करैगा, तब परमपदकों प्राप्त होवैगा, अरु परमसुखी होवैगा, अरु जो न करैगा, तौ परमदुःखी होवैगा, जो आत्मपदका त्याग करैगा, सो मूढ है, तेरा निर्वाण होणा आत्मपदविषे जीवणेनिमित्त है, अरु आत्मातें इतर जो तूं जीवणेकी इच्छा करता है, सो तेरा जीवणा मि

थ्या है, अर्थ यह जो तूं आदि भी मिथ्या है, अब भी विचारविना भ्रममात्र है, विचार किएतें नाश हो जावैगा, जैसे सूर्यके प्रकाशविना अंधकार होता है, प्रकाशकरि नाश हो जाता है, तैसे विचारविना चित्त है, विचारकरि नाश हो जाता है, एता काल मैं अविवेककरि नाश हो जाता था, जैसे बालकोंकों अपणे परछायेविषे वेतालकल्पना होती है, विचारविना भयकों पावता है, विचार किएतें निर्भय होता है, तैसे अब मैं तेरे संगतें छूटा, अपणे पूर्व स्वरूपकों प्राप्त हुआ हौं, विवेककरि तेरा अभाव हुआ है, तातें विवेककों नमस्कार है ॥ हे चित्त! अविवेककरि तूं मेरा मित्र था, अब बोध करिके तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया, तूं परमेश्वररूप है, अब वासना नष्ट भई है, आगे तेरेविषे नानाप्रकारकी वासना थी, तिसकरि तूं मलीन दुःखरूप था, अब वासना नष्ट भई है, तौ परमेश्वररूप भया है, चित्तस्वभाव तेरेविषे अज्ञानकरि उपजा दुःखोंका कारण था, सो विवेककरि लीन भया है, जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्यके उदय हुए लीन हो जाता है, तैसे विवेककरि चित्तभाव नष्ट भया है, सो सिद्धांतका कारण है, तेरे संगकरि मैं तुच्छ जैसा हो गया था, अब शास्त्रोंकी युक्तिकरि निर्णय किया है, जो न तूं आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, जबलग मैं आपकों जाणा न था तबलग तेरा सद्भाव था, अब मैं आपकों जाण्या है, अरु अपणे आपविषे स्थित भया हौं, अब मैं परम निर्वाण शांतरूप हौं, सब ताप मेरे नष्ट भये हैं, नित्य शुद्ध चिदानंद परब्रह्मस्वरूप हौं, जगत्की सत्य असत्य कलना मेरी नष्ट भई है, काहेतें जो कलना सब चित्तविषे थी, जब चित्त निर्वाण हो गया, तब कलना कहां रही, मैं केवल शुद्ध आत्मा हौं, प्रतियोगि कोउ नहीं, न व्यवच्छेद है, काहेतें जो दूसरा कोउ नहीं, चित्तकी चेतना फुरती थी, सो निर्वाण होगई है, अब मैं स्वस्थ भया हौं, जैसे तरंगोंतें रहित समुद्र अचल होता है, तैसे मैं सर्व कलनातें रहित वीतराग हौं, संवेदनतें रहित समसत्तामात्र अपणे आपविषे स्थित हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशो नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥७९॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे

रामजी! इस प्रकार वीतवनें निर्वासनिक होकरि निर्णय किया, विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे समाधि करता भया, आकाशवत् निर्मलचित्त इंद्रियांकी वृत्ति बाह्यतें खैंचीकरि अचल करत भया, शिर अरु ग्रीवाकों सम करिके चित्तकी वृत्ति अनंत आत्मा साक्षीभूतविषे स्थित करी, जैसे लकडियांकों जलाइकरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, तैसे प्राण अरु मनकी वृत्तिका स्पंद मिट गया, जैसे शिलाविषे उकरि पुतली होती है, जैसे मूर्त्तिकी लिखी पुतली होती है, तैसे स्थित होगया, तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, जैसे एक घडी होती है, तैसे समाधि लगे हुए व्यतीत हो गया, मेघोंकी वर्षा शिरउपर होवै, अरु मंडलेश्वर आनि शिकार खेलै, अरु बडे शब्द होवैं, रींछ वानरोंके शब्द होवैं, सिंहके हाथीयोंके शब्द होवैं, वनकों अग्नि लगै, गडेकी वर्षा होवै, वायु चलै, धूप पडै, तौ भी समाधितें न जागै, जैसे पहाडविषे शिला दबी होती है, तैसे शरीर दब्या गया, जब तीन सौ वर्ष व्यतीत भये, तब चित्त आनि फुर्या, जो शरीर मेरेसाथ है, परंतु प्राण नहीं फुरैं, तब चित्तके फुरनेविषे आपकों कैलास पर्वतउपर देखत भया, कदंब वृक्षके नीचे देखत भया, सौ वर्षपर्यंत मौन होकरि जीवन्मुक्त निर्मल आत्माकरि विचरा, बहुरि विद्याधरोंविषे विद्याधर होकरि विचरा, सौ वर्षपर्यंत तिसके अनंतर और पंच युग होकरि इंद्र हुआ, देवता नमस्कार करै हैं॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! देश काल अरु मन आदिक प्रतिभा अनियत अनियम उसकों कैसे भास्या॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! चित्त सर्व आत्मारूप है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, जैसे जैसे देशकालका फुरणा होता है, तैसेही अनुभव होता है ॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच है, सो मनोमात्र है; जैसा फुरणा तीव्र होता है, तैसे अनुभवसत्ताविषे भासता है, तहां स्थित होता है, जब और भ्रमाविषे गया तौ नियमके जैसा होता जाता है, तैसेही जो अज्ञानी होता है, तिसकों वासनाकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु जो ज्ञानवान् होता है, सो सब आत्माकों देखता है, तिसका फुरणा भी अफुरणा है, अ

रु वासना भी अवासना है, वीतव मुनीश्वर जो देखता भया, सो चित्तके फुरणेकरि देखता भया, परंतु स्वस्थरूप था, उसकी वासना भी अवासना थी, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासना अवासना थी, भ्रांतिका कारण न था, कल्पपर्यंत चंद्रधारी सदाशिवका गण होकरि विचरा, समस्त विद्याका ज्ञाता सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकरि विचर्या ॥ हे रामजी ! जैसा किसीका संस्कार दृढ होता है, तैसा तिसकों अनुभव होता है, जैसे वीतव चित्तकों स्पंद करिके जीवन्मुक्तका अनुभव करत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो ऐसे है तौ जीवन्मुक्तके मतविषे बंध मोक्ष हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तकों सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, बंध मोक्ष अवस्था तिसविषे कहां है, ज्ञानमात्र आकाशविषे जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, हे अंग, यह सब चिन्मात्रस्वरूप है, अरु जगत् जो नानाप्रकार भासता है, सो मनकरि भासता है, वास्तवतें न जगत् है, न अजगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, जगत्के भूत भविष्य केवल ब्रह्मसत्ता भासती है, चिन्मात्रतें इतर जो कछु जगत् भासता है, सो मनके फुरणेकरि भासता है, जिनकों ऐसा ज्ञान नहीं तिनकों जगत् वज्रसारतें दृढ हो भासता है, अरु ज्ञानवान्कों आकाशवत् भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञान करिके मन उपज्या है, तिसकरि संपूर्ण जगत् हुआ है, वास्तवतें और कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग हुल्लास होता है, तैसे चिदाकाशविषे आकार भासते हैं, जब चित्त अचित्त हो जाता है, तब द्वैत कछु नहीं भासता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवमनोयज्ञवर्णनं नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विंध्याचल पर्वतविषे फस्या था, बहुरि तिसकी क्या अवस्था भई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके अनंतर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर जो तेजवान् था, सो एक कालविषे शरीर गणोंकों मनकरि विचारत भया, केई नष्ट हो गए हैं, केई अनष्ट हैं, तिन अनष्टोंविषे पृथ्वीके मध्य जो स्थित था, तिसकों देखत भया, जो कंदरा

विषे धूलि पडी थी, वर्षा करिके क्षुभी गया है, चीकडविषे फस्या उपर तृण जाल जमी गया है, तिसकों देखिकरि कहणे लगा, जो इसविषे प्रवेश करौं, बहुरि विचार किया, जो यह तौ जड गुंग है, अरु फस्या हुआ है, इसके निकासणेकों मैं समर्थ नहीं, तातें सूर्यमंडलकों जाउ, जो सूर्यका सारथी अरुण पंगु है, सो इसकों निकासैगा, अथवा इसकेसाथ मेरा क्या प्रयोजन है,यह नाश हो जावै अथवा रहै, एता यत्न मैं किस निमित्त करौं, अपणे निर्गुण स्वरूपविषे स्थित होउं, देहसाथ मेरा क्या है, इस प्रकार वीतव तूर्णीं हो गया है, एक क्षणके अनंतर बहुरि चितवनी भई, जो पृथ्वीविषे देहकरि न कछु त्यागणे योग्य है, न कछु ग्रहण करणेयोग्य है, तातें देहका त्यागणा रखणा समान है, यह शरीर किस निमित्त दब्या रहै, अरु कछुक काल इसका प्रारब्धवेग है, आकाशविषे सूर्य स्थित है, तिसविषे प्रवेश करौं, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब प्रवेश करता है, तैसे करौं, अरु शरीरकों सूर्यके सारथिकरि निकासौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकरि मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसों आकाशमार्ग चढौं, सूर्यके अंतर वायुरूप प्रणाम करिके प्रवेश किया, जैसे शस्त्र पिंडविषे अग्नि प्रवेश करती है, तब सूर्य जानत भया जो वीतव मुनीश्वरनें प्रवेश किया है, सो किस निमित्त आया है, सर्वज्ञ था, तिसकरि जानत भया, जो पृथ्वीविषे इसका शरीर चीकड अरु तृणोंकरि आच्छाद्या हुआ है, तिसके निकासणे निमित्त आया है, ऐसे विचारी अपणे सारथीकों कहत भया ॥ हे सारथी ! विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे वीतव मुनीश्वरका शरीर दब्या पडा है, तिसकों तूं जाइकरि निकासी देही, तब अरुण नामक जो सारथी जिसका शरीर हस्तीवत् है, सो विंध्याचल पर्वतविषे आइकरिके नखोंसाथ शरीरकों निकासत भया, सो कैसे नख जिनसाथ पहाड उखारी डारे हैं, उन नखोंसाथ धराकोंटरविषे गाडे हुए शरीरकों काढत भया, जैसे समुद्रके तीर भिहका तंतु काढी पाइते हैं, तैसे पर्वतकी कंदरातें शरीरकों निकासी डारा तब मुनीश्वरनें पुर्यष्टका करिके शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पक्षी आका

शमार्गतें उडता आलयविषे आइ प्रवेश करै, तैसे शरीरविषे आइ प्रवेश किया, अरु सावधान होकरि अरुणकों नमस्कार करत भया, अरुण वीतवकों नमस्कार करत भया, परस्पर नमस्कार करिके अपणे कार्यकी उर हुए, अरुण आकाशमार्गकों गया, अरु मुनीश्वर तलावकी उर गया, चीकडसाथ भऱ्या हुआ शरीरसों मुनीश्वर तिस तलावविषे डुबकी मारत भया, जैसे हस्ती मल धोता है, तैसे स्नान करिके संध्यादिक कर्म करत भया, सूर्य भगवान्का पूजन किया, जैसे प्रथम तपकरि शरीर शोभता था, तैसे भूषित किया, मैत्री समता सत्य मुदिता आदिक गुणोंकरि संपन्न भया, ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभत भया, अरु सबके संगतें रहित भया, जो इन गुणोंकों भी स्वरूपविषे स्पर्श न करै, आपकों शुद्ध स्वरूप जाणै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब केतेक दिन व्यतीत भये, तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदय हुआ, तब जाइकरि विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे स्थित भया, पूर्व जो विचार अभ्यास किया था अरु परावर परमात्मा दृष्टि भई थी, तिसकरि बहुरि चित्तकों कहत भया ॥ हे चित्त ! इंद्रियों मैं तुमारा पूर्वही प्रहारकरि छोड्या है, अब तुमारे अचित्तविषे अनर्थ अर्थ कोउ नहीं, काहेतें जो अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट भई है, अस्ति नास्तिकेपाछे जो शेष रहता है, तिसविषे स्थित हौं, जैसे पहाडका सिंह अचल होता है, तैसे अचल हौं, अरु सदा उदयरूप असतकी नांई स्थित हौं, उदय स्वरूप इसकरि जो सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हौं, अरु असत्की नांई इस प्रकार जो सदा अक्रियरूप हौं, अरु असत् रूप उदयकी नांई स्थित हौं, असत् इस कारणतें जो मन इंद्रियांका विषय नहीं, अरु उदयकी नांई इस कारणतें जो सबका साक्षीभूत हौं, अरु सदा समरस प्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित हौं, बहुरि कैसा हौं, प्रबुद्ध हौं, अरु सुषुप्तिविषे स्थित हौं, प्रबुद्ध इस कारणतें जो इंद्रियांकों विषयकी उपलब्धि करता हौं, अरु सुषुप्त इ

स कारणतें जो हर्ष शोक इष्ट अनिष्ट सों रहित हौं, अरु जगत्‌की उरतें सुषुप्ति समाधिविषे हौं, तहां जाग्रत हुआ, तुरीयापद आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं, जैसे स्थाणु स्तंभ स्थित होता है, तैसे स्थितरूप हौं, नित्य शुद्ध समानसत्ता आत्मपद तहां मैं निरामय स्थित हौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चितवता हुआ मुनीश्वर ध्यानविषे जुड्या, षट् दिनपर्यंत ध्यानविषे रहा, उपरांत जाग्या, तब एक क्षणके समान जानत भया, जैसे सोया हुआ क्षणविषे जागै, इसी प्रकार वीतव शुद्ध पदकों प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होकरि चिरकालपर्यंत विचरत भया, न कोउ वस्तु हर्ष देवै, न शोक देवै, चलता हुआ भी स्थिर रहै, इंद्रियांका व्यवहार करता इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहै, कदाचित् किसीविषे चलायमान न होवै, चलता बेठता मन इंद्रियांकों कहै ॥ रे इंद्रियां मरहु, हे मन! तूं शमवान् अब हुआ है, आत्माकों पाइकरि अब देख, तुझकों क्या सुख है, जिस सुखके पाएतें और पावणे योग्य कछु न रहता, निराग सुख है, ऐसा जो परम शांतरूप अचल सुख है, तिसकों आश्रय करिके चंचलताकों त्याग, अरु हे इंद्रियों, तुमारा वास्तवतें स्वरूप कछु नहीं, अरु आत्मपदविषे तुम दृष्ट नहीं आतियां, अपणे स्वरूपके जाणेबिना तुम मुझकों, दुःख देतियां थी, अब मै अपणे स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, मेरेकों वश करणेकी समर्थता तुमकों नहीं, काहेतें जो तुम अवस्तुरूप हौ, आत्माके प्रमादकरि तुमारा भान होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे अनात्मभावना अरु अनात्माविषे आत्मभावना होती है, सो अविचारकरि होती है, अरु विचार करिके नहीं होती, अव विचार करिके यह भ्रम निवृत्त भया है, तुम इंद्रियांगण और हौ, अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है, औरका दुःख आपविषे मानणा यही मूर्खता है, जैसे बनकी लकडी और हैं, वांस और हैं, चर्म और है, जिस करिके रथ बणता है, अरु लोहा और पीतल और बडे और जिसकरि रथ जड्या है, बैल और जो रथकों चलावते हैं, तिन सब करिके रथ बणता है, जैसे ग्रहका आकार होता है,

तैसे रथ है, तिसविषे बैठणेवाला पुरुष और होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिसविषे बैठणेवाले कहें जो मैं रथ हौं तौ नहीं बणता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञान करिके मिल्या है, इंद्रियां और हैं, मनादिक और हैं, तिसविषे पुरुष है, सो जीव है, जीव कहै मैं शरीर हौं, बडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खता करिके आपकों मानते हैं, जो विचार करिके देखैं तौ रागद्वेषके क्षोभतें मुक्त होवै, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपकों दूरतें त्यागी हैं, अरु स्वरूपकी स्मृति स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसकों सत् जाण्या है, अरु अनात्मा असत् है, तिसकों असत् जाण्या है, जो सत् है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनी विचार करिके जीवन्मुक्त हुआ, अपणे स्वरूपविषे बहुत वर्षोंकों व्यतीत किया, अपणा जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्मध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागणेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदकों प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि, तिस पदकों पाइकरि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिस कालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है, सो सुण, वीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त होकरि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छातें रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागदोषतें रहित पदकों प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासनधारी करि हाथ जोडीकरि अवही कहत भया ॥ हे राग! तूं निरागताकों प्राप्त होउ, अरु तूं निर्दोषताकों प्राप्त होउ, तुमारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकतें रहित करीहै, तुम अब जाओ, मेरा तुमकों नमस्कार है, अरु हे भोग, तुमारी लालसा करि मुझकों परमपदका विस्मरण होगया था, जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जाणीकरि तुमारी लालसा करता था, अब जाओ, तु

मकों मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदकों प्राप्त होता हौं ॥ हे दुःख! तुझकों भी नमस्कार है, तेरे उपदेश करि मैं आत्मपदकों प्राप्त हुआ हौं, काहेतें जो मैं सदा भोग सुखकों चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझकों भी साथ ले आवता था, सुखतें तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पावता रहा, अरु जब सुख आवै तब तुझकों भी साथ ले आवै, तुझकों देखीकरि मुझकों आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकरि मैं परम शीतल पदवीकों प्राप्त हुआ हौं ॥ हे दुःख! तूं तौ दुःख था, परंतु मुझकों सुख प्राप्त कीया, तातें तेरा कल्याण होवै, तूं अब जाउ, हे मित्र! संसारविषे जीवणा असार है, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझनें मेरे साथ बडा उपकार किया है, जो अपणा नाश किया है, अरु मुझकों सुख प्राप्त किया है, जो तूं मुझकों प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता तुझनें अपणा नाश करणा मान्या, परंतु मुझकों सुख प्राप्त किया ॥ हे मित्र! तूं बांधवोंकी न्यांई चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तूं कदाचित् मुझतें दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझनें अपणा नाश आपही किया है, तूं मुझकों जब प्राप्त हुआ था, तब मुझकों विवेक उत्पत्ति भया, तिस विवेकनें तेरा नाश किया है, तातें तुझकों मेरा नमस्कार है, अरु हे माता तृष्णा! तुझकों नमस्कार है, तूं सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझनें मेरा त्याग नहीं किया, अब तूं जा ॥ हे कामदेव! तुझनें आपही विपर्यय होकरि अपना नाश किया है, जब तूं बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख हुआ, तब तूं मिट गया, तुझकों नमस्कार है, अरु हे सुकृतो! तुमकों नमस्कार है, तुमनें भी बडा उपकार किया था, जो नरकोंसों निकासीकरि सर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होणा है, तातें तुम भी जाउ; हे दुष्कृतो! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तुमारा क्षेत्र है, अरु जुवा अवस्था बीज है, तिसतें नरक दुःख फल होता है, सो तुमारे साथ भी संयोग हु

आ था, तातें तुमकों भी नमस्कार है, तुम भी जाउ ॥ हे मोह! तुमकों भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बांध्या था, अरु नाना प्रकारके स्थानकों प्राप्त होता था, अरु भय तूं दिखावता था, तिसकरि मैं भयकों प्राप्त होता था, तातें तुझकों नमस्कार है, अब तूं जाउ ॥ हे गिरिकंदरा! तुझकों भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि! हे विवेक! तुमकों भी नमस्कार है, तुम मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनतें मुक्त किया है, तुम भी जाओ ॥ हे दंड! अरु तुंबा! तुमकों भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे संबंधी रहे हो ॥ हे देह! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तूं मेरे साथ बहुत काल रही है, अरु तुझनें उपकार किया है, जो विवेक उपजावणेका स्थान तूंही है, तेरे संयोग करि मैं परम पद पाया है, तूं भी अब जा, तुझकों नमस्कार है ॥ हे संसारके व्यवहारो! तुमकों भी नमस्कार है, तुमारेविषे मैं बहुत क्रिया करी है, स्थान देश क्रिया कर्म किया है, ऐसा पदार्थ जगतविषे कोइ नहीं जो दिया लिया न होवैगा, अरु ऐसा कर्म कोइ नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा, अरु ऐसा देश कोउ नहीं, जो देखा न होवैगा, अब सबकों नमस्कार है ॥ हे इंद्रियों! प्राण मन आदिक तुमकों नमस्कार है, तुमारा हमारा चिरकाल संयोग था, अब वियोग हुआ, काहेतें जो जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, तातें तुमारा हमारा भी वियोग होता है, नेत्रोंकी जो ज्योती सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, घ्राणोंकी गंध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनविषे जाय लीन होवैगी, श्रवण आकाशविषे लीन होवैगा, मन चंद्रमाविषे लीन होवैगा, जिव्हा रसविषे लीन होवैगी, इसी प्रकार सब अपणे अपणे अंशविषे जाय लीन होवैंगे; जैसे लकडीयांके जलेतें अग्नि शांत हो जाती है, जैसे शरतकालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है, तैसे मनादिक शांत हो जावैंगे ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंतें रहित प्रणवके ध्यानविषे

लगा, सर्व दृश्यतें शांत होगया, मोहरूपी मलकों त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमें लगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने इंद्रियनिर्वाणं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसकों प्राप्त भया है, अंतर बाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं, अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपणे प्रकाशविषे स्थित होती है, जैसे पूर्ण काल करि चंद्रमा अपणे आपविषे स्थित भया है, अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भया है, जैसे मंथणेतें रहित मंदराचल स्थित भया है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता फिरता ठहरी जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहार क्रिया जीवोंकी ठहरी जाती है, अरु जैसे मेघतें रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, जैसे प्रकाश तमतें रहित आकाश होता है, तैसे फुरणतें रहित मन शांतिकों प्राप्त भया, प्रणवकेध्यान करिके बहुरि तिस वृत्तिके अंतकों प्राप्त भया, मंत्रकों भी त्यागत भया, जैसे महापुरुष क्रोधकों त्यागता है,तैसे वृत्तिकों त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसकों भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है,न तम है, तिसविषे अभाव वृत्ति रहती है, तिसकों भी निमेषविषे त्यागत भया, तब जैसे नूतन बालक जन्मकों पदार्थ ज्ञानतें रहित अवस्था होती है, तैसे अवस्था प्राप्त भई, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपद है, तिसका आश्रय किया, महाअचल जो सुमेरुकी नांई स्थिर अवस्था है, तिसकों प्राप्त हुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंद है, जिसविषे स्वरूपतें इतर और आनंद नहीं, ऐसे आनंदकों प्राप्त हुआ, जो असत् सतरूप है, सर्व क्रियातें अतीत है, इस कारणतें असत् है, अनुभवरूप है, इस कारणतें सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदकों प्राप्त हुआ, जो परम शुद्ध पावन पद है, अरु सर्व भावके अंतर प्राप्त है, अरु सर्व भाव शब्दतें रहित है, जिसकों शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं, विज्ञानवादी जिस

कों विज्ञान कहते हैं, सांख्यमतवाले जिसकों पुरुष कहते हैं, जोगवाले जिसकों ईश्वर कहते हैं, शैवी जिसकों शिव कहते हैं, वैष्णव जिसकों विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसकों परम शक्ति कहते हैं, कालवादी जिसकों काल कहते हैं, आत्मवादी जिसकों आत्मा कहते हैं, अरु माध्यमिक जिसकों माध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहते हैं, काहेतें जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप उही है, ऐसे सर्वात्माकों वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंदसमुद्रके बलकरि सर्वकों आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपणे आनंदकों प्राप्त हुआ उही रूप होत भया, जो अन्य है, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमर है, सबकी आदि है, सकलंक है, अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशतें निर्मल पद है, तिसकों वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परम पदकों प्राप्त हुआ, जिस पदके प्राप्त हुए, जन्ममरणकों बहुरि नहीं पावता, जिस पदविषे स्थित हुआ परम शांत उपशम आनंदकों प्राप्त भया, जैसे समुद्रविषे बुंद पडी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया, अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकरि गिर पडा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूके पत्र गिर पडते हैं, तैसे शरीर गिर पडा, शरीररूपी वृक्ष था, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहता था, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ, जैसे खंभाणीकरि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपणे स्वरूपविषे स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह मैं वीतवकी कथा तुझकों सुनाई है, सो अनंत विचारकरि युक्त है, इस प्रकार विचारकरि वीतव विश्रामवान् हुआ है, तुम भी उसकों विचारकरि सिद्धता सारकों प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाकों त्यागि सावधान होउ ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं तुझकों पूर्व कहा है, जो जिस पदविषे प्राप्त हुआ बहुरि पावणे योग्य कछु नहीं रह

ता, अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौंगा, तिसकों विचार, जो मुक्ति ज्ञानहीकरि होती है, अरु ज्ञानहीकरि सब दुःखनाश होता है, ज्ञानहीकरि अज्ञान निवृत्त होता है, अरु ज्ञानहीकरि परम सिद्धताकों प्राप्त होता है, पावणे योग्य यही वस्तु है, दुःखोंके नाश करणेकों और कोई समर्थ नहीं, यह निश्चय है, जो ज्ञानकरि सब फांस काटे जाते हैं, ज्ञानहीकरि वीतवनें मनकों चूर्ण किया ॥ हे रामजी ! वीतवकी संवित जगत्के अतीत होत भई, जेता कछु दुःख है, सो मनकरि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत् अनुभवरूप हो जाता है, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तूं भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनतें इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है, अरु जगतही मनरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मनकी दिशाकों त्यागिकरिके केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागदोष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वीतवकी नाई विदितवेद होकरि रागदोषतें रहित स्थित होउ, जैसे तिस सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचर्या है, तैसे तूं भी विचर और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राजादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तूं भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु ॥ हे रामजी ! सुखदुःख कर्म आत्माकों स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तूं किस निमित्त शोक करता है, बहुत विदितवेद पृथ्वीविषे विचरते हैं, परंतु शोककों कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम नहीं अब शोक करते हैं ॥ हे रामजी ! तूं अब स्वस्थ है, उदार है, सम सर्वज्ञ है, आत्मा है, तुझकों बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपणे स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोककों नहीं प्राप्त होता है, जैसे सिंह वानर गीदड आदिकके वश नहीं होता, तैसे जीवन्मुक्त विकारोंतें रहित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इस प्रसंगविषे मुझकों संदेह हुआ है, तिसकों निवृत्त

करौं, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नाश करौ ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यों नहीं दृष्ट आती, जो आकाशविषे उडता फिरै, अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे प्रवेशकरि जावै, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आकाशगमनादि जो सिद्धि है, सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति है, जेते कछु जगत् विचित्र हैं, देखाइदेणा बहुरि गुप्त हो जाणा, इत्यादिक वस्तुद्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके ज्ञानके नहीं ॥ हे रामजी! कोउ द्रव्य क्रिया कालकों यथाक्रम साधता है, तिसकों शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होती है, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीकों आत्मज्ञानकी सिद्धता होती है, उह आत्मकरि आपविषे तृप्त होता है, सिद्धि जो अविद्यारूप है, तिसकी उर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है, सो तिसने अविद्यारूप जाणा है, ऐसे जाणीकरि पदार्थोंविषे नहीं डुबता, जो अज्ञानी है, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंकों साधता है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंवास्ते यत्न नहीं करता, अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकों पावता है, अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है, अज्ञानी इनकी उर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, उह सर्वतें अतीत है, सर्व इच्छाका जिसनें त्याग किया है, अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, उह इनकी इच्छा नहीं करता, इनकी इच्छा भोगों अथवा बडाइके निमित्त होती है, अथवा मान अरु जीवणेके निमित्त सिद्धिके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीकों न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेतें जो सब अनात्मा धर्म हैं, उह नित्य तृप्त परम शांतरूप है, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है, अरु आकाशकी नांई सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आता है, शरीरके सुखदुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असंग होता है, जीवन मरणकी वृत्ति उसकों नहीं फुरती, स

र्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करतियां हैं, अरु समुद्र अपणी मर्यादाविषे स्थित है, तैसे ज्ञानवान्कों क्षोभ नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! जो कछु ज्ञानवान्कों प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्चन करते हैं, तिसकों करणेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरणेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, अरु तिसकों किसीका आश्रय नहीं, सदा अपणे स्वरूपविषे स्थित है, अरु यह जो सिद्धि हैं, सो मंत्र काल कर्मकरि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है; तिसके साधणेकरि उडणेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंकरि शक्ति होती है, एक गुटका मुखमें रखणेकरि उडणेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथमही नीति हो रहती है, तिसतें अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है, तिसके अन्यथा करणेकों सदाशिव भी समर्थ नहीं, काहेतें जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदि शीतलता है, अरु अग्निविषे उष्णता है, इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेकों समर्थ कोउ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करणेकों समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी! जिस द्रव्यविषे मारणेकी सत्ता है, सो मारता है, मद्यविषे मत्त करणेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीति हुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करणेकी शक्ति है, तिसके पायेतें क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपणी अपणी शक्ति है, जो इनकों साधता है, तिसकों यह प्राप्त होती है, जो आत्मज्ञानी इसका साधन करै, वह कर्तेविषे भी अकर्त्ता है, अरु आत्मज्ञानके पावणेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं करी सकतियां, परंतु जो इनकी वांच्छा करै, तौ यत्न करिके पावता है, यत्नविना नहीं पावता, आत्मज्ञानीकों इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायणही होता है, आत्मलाभकरि सर्व इच्छा तिसकी शांत हो जाती है ॥ हे रामजी! जेते लाभ हैं, तिनतें परम आत्मलाभ है, आत्माकों पाइकरि बहुरि इच्छा किसकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किए और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभकरि औ

र इच्छा नहीं होती, ऐसे आत्मलाभ जिननें पाया है, तिनकों इनकी इच्छा कैसे होवै, जैसी जैसी किसीकों इच्छा होती है, तिसकों तैसाही प्राप्त होता है, ज्ञानी होवै अथवा ज्ञानतें रहित होवै, इच्छा प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होता है, यह जो वीतव था, तिसकों इच्छा कछु न रही थी, अरु प्रथम जो सूर्यपास गमनकी शक्ति इसविषे दृष्ट आई थी, सो जो क्रियाके साधन करिके थी, पाछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कछु न रही ॥ हे रामजी! जो कछु किसीकों फल प्राप्त होता है, सो अपणे प्रयत्नकरि होता है, जो ज्ञानवान् है, सो सदा तृप्त रहता है, तिसकों इष्ट अनिष्टकी इच्छा कछु नहीं फुरती ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! एता काल जो वीतव तीन सौ वर्ष समाधिविषे रहा, तब तिसका शरीर पृथ्वीसाथ पृथ्वी क्यों न हो गया, अरु सिंह बघाडादिक उसकों क्यों भोजन न करि गए? अरु पाछे विदेहमुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ? जो पृथ्वीविषे दबे हुएकों निकासणे निमित्त बडा यत्न किया, इस संशयकों निवारण करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो संवित् वासनासाथ बांधी हुई है, सो सुखदुःखकों भोगती है, अरु मलीन भावकरि आवरी हुई है, अरु जो वासनातें रहित है, सो शुद्ध समतारूप है, सुखदुःखके भोगतें रहित है, किसी कारणकरि छेदी नहीं जाती॥ हे रामजी! जिस जिस पदार्थविषे चित्त लगता है, सोइ सोइ पदार्थ स्वरूपविषे भासता है, यह पदार्थकी शक्ति है, जैसी पदार्थोंविषे शक्ति होती है, तैसी भासती है, इस कारणतें बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं, तौ भी समाधिके बलकरि तिसका शरीर ज्योंका त्यों रहता है, काहेतें जो चित्त जिस पदार्थविषे लगता है, तिसका रूप हो जाता है, जैसे मित्रकों मित्रभावकरि देखता है, स्वाभाविकही प्रसन्न होता है, अरु शत्रुकों देखिकरि चित्तविषे स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरि आती है, मिष्ट वस्तुकों देखिकरि चित्त स्वाभाविक लोलुप हो जाता है, कटुकविषे विरसताकों प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलणेवालेका चित्त मार्गके पर्वत वृक्षोंके रागकरि बंधायमान नहीं होता, अरु जैसे चंद्रमाके निकट गएतें शीतलता होती है,

सूर्यके निकट उष्णता प्राप्त होती है, सो पदार्थकी शक्ति है, जिस पदार्थसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है, तिसका स्वाभाविक आरंभ विफल प्राप्त होता है, तैसे जब योगी देह इंद्रियोंकी वासना ममत्वभावकों त्याग करै, समभावविषे प्राप्त होता है, तब तिसकों समभावका अनुभव होता है, अर्थ यह जो सर्वविषे एकही भासता है, इस कारणतें शरीरकों सिंहादि कछु कोउ छेदी सकते नहीं, जो जीव उसके घात करनेकों आवते हैं, सो हिंसाभावकों त्यागि देता है, अहिंसक हो जाता है, इस कारणतें निकट आय शांत हो जाते हैं, वीतवका शरीर छेदकों न प्राप्त भया, न पृथ्वीविषे पृथ्वी हो गया, सर्वत्र समता आकाश एकही स्थित है, काष्ठ लोष्ट पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्वविषे एक अनुस्यूत है, अरु जहां पुर्यष्टका होती है, तहां भासता है, जहां पुर्यष्टका नहीं होती, तहां नहीं भासती, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां स्वच्छ ठौर दर्पण जलतें आदि लेकरि होते हैं, सो भासते हैं, जहां उज्ज्वल ठौर नहीं होता, तहां प्रतिबिंब नहीं भासता, तैसे जहां पुर्यष्टका है, तहां संवित भासती है, अन्यथा नहीं भासती, इस कारणतें जो वीतवकी संवित समभावविषे स्थित है, उसकों किसी तत्त्वका अरु जीवका क्षोभ नहीं होता, अरु पंच तत्त्वोंका क्षोभ तब होता है, जब प्राण फुरते हैं, जब प्राण फुरणेतें रहित होता है, तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता, सो वीतवकी बाह्य अरु अंतर स्पंदकला प्राणोंकी शांति हो गई थी, प्राण अरु चित्तकला दोनों फुरनेतें रहित थियां, इसका हृदय भी क्षोभित न भया ॥ हे रामजी! देहरूपी गृहविषे चित्त अरु वायुका स्पंद शांत हो जाता है, जब इनका फुरणा शांत होता है, तब शरीर नाश हो जाता है, तब सब सुमेरुकी नांई स्थित हो जाता है, किसीकी समर्थता नहीं, जो तिसकों क्षोभ करै, अरु नाश करै; योगीश्वरका चित्त अरु प्राण निस्पंद हो जाता है, सो इनकों वश करिके जुडता है, तब उसकों न तत्त्वोंका क्षोभ होता है, न वात पित्त कफका क्षोभ होता है, न और कछु क्षोभ होता है, इस करिके योगीका शरीर सहस्र वर्षपर्यंत भी ज्योंका त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता है, जैसे वज्रकों

कोउ चूर्ण नहीं करी सकता, तैसे तिसके शरीरकों कोउ नाश नहीं करी सकता, सबकी शक्ति तिसउपर कुंठित हो जाती है, इस कारणतें वीतवका शरीर ज्यौंका त्यौं रहा, अरु तब क्यौं न विदेहमुक्त हुआ सो सुण॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ विदितवेद वीतराग महाबुद्धि है, जिनकी अभिमानरूपी गाठी टूट पडी है, सो पुरुष स्वतंत्र स्थित होता है, तिनकों न कोउ प्रारब्ध कर्म है, न संचित कर्म है, न वर्तमानका कर्म है, सबतें मुक्ततत्त्ववेत्ता स्वतंत्र स्थित होते हैं, अरु स्वेच्छ विचरते हैं, जैसी इच्छा करै, तैसी शीघ्र होती है॥ हे रामजी! वीतवकों आकाशमात्रतें जीवणेका स्पंद फुर आया, तब केताक काल जीवता रहा, जब उसकी संवित्‌विषे विदेहमुक्त होणेका स्पंद फुर्या, तब विदेहमुक्त हो गया, उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वांछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनकों कछु कृत्य कर्तव्य नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धिलाभविचारो नामपंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब विचारकरि वीतवका चित्त शांत हो गया, तब उसकों मैत्री करुणा आदिक गुण आनि प्राप्त हुआ, यह तुमने कहा, परंतु जब विवेक करिके चित्त उसका नष्ट हो गया, बहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि प्राप्त भए॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्तका नाश दो प्रकारका है, जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप होइ जाता है अरु विदेह मुक्तका चित्त स्वरूपतें नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाणा होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखणेकरि चित्तरूप है, सो बीचतें शब्दभाव नहीं, अरु जैसे दाणा नष्ट हो जावै तैसे विदेहमुक्तका चित्त है सो देखणेमात्र भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जो चित्तकी सत्यता है, सो दुःखोंका कारण है, अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंके देणेहारा है, अरु दुःखोंका कारण है, गुणोंके संग करि अहं ममभावविषे रहता है अरु चित्तकी सत्यताकरि जीव कहाता है॥ हे रामजी ! जबलग चित्त वि

द्यमान है, तबलग अनंत दुःख होता है, दुःखरूपी वृक्षका बीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कल्याण हुआ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! मन किसका नाम हुआ, अरु कैसे नष्ट होता है, अरु अस्त कैसे होता है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रश्नवेत्ता विषे श्रेष्ठ ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरे तांई कहा है, अब चित्त मृतकका लक्षण सब सुण, सुख अरु दुःखकी दिशा जिसकी धैर्यकों स्वरूपकों चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुकों पवन चलाय नहीं सकता, तैसे जिसके चित्तकों दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जाण, अर्थ यह जो उह चित्त सतपदकों प्राप्त भया है, उस चित्ततें चिंता नाश होगई है, जैसे भूने दाणेतें अंकुर नाश हो जाता है, तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्मातें इतर जिसकों कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है ॥ हे रामजी ! अहं इच्छा द्वेषादिक विकार जिसके चित्तकों तुच्छकारि सकै नहीं, तिसका चित्त मृतक जाण अरु जिसकों इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं, अरु राग द्वेषकारि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजै, ज्योंका त्यों रहै, तिस पुरुषका चित्त मृतक जाण, जिसका चित्त नाश हुआ है, सो जीवन्मुक्त जाण, अरु जिसकों संसारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकारि ग्रहणकी इच्छा करता है, अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष करिके त्यागणेकी इच्छा करता है, अहं ममभाव संयुक्त देहविषे अभिमान है, तिसकारि आपकों सुखी दुःखी मानता है, अपणेविषे अनुभव होता है, सो चित्त जीवता है, यह चित्त सत्यता है, अरु जब चित्त संसारतें विरक्त होवै, अरु जब चित्त सत्संग करै, सतशास्त्रोंका श्रवण मनन करै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है, तब जीवन्मुक्त होकारि विचरता है, अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुण ॥ हे रामजी ! चित्तविषे जो संसारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकारि नष्ट हो जाता है, तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है, अरु प्रकाश उदय होता है, अरु जैसे भूने दाणेका

अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकरि चित्तका चित्तत्त्वभाव नष्ट हो जाता है, अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं, देखणेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नांई यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाणा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी जन्मता नहीं, जैसे चंद्रमा राहुतें छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक गुण आनि उदय होते हैं, जैसे वसंतऋतुके आए वल्लीयां सब प्रफुल्लित हो आतियां हैं, तैसे चित्तभाव मिटेतें मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक आनि फुरते हैं, अरु जो विदेहमुक्त होता है, तिसका चित्त स्वरूपतें भी नष्ट हो जाता है, उहां गुण कोउ नहीं रहता, उह अवस्था और कोइ नहीं जाणता, विदेहमुक्त जाणता है, तिसविषे द्वैत कल्पना कछु नहीं फुरती, निर्मल पावन पद है॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपविषे अचित्त होकरि रहता है, अरु विदेहमुक्तविषे चित्त स्वरूपतें नष्ट हो जाता है, इसकारणतें जीवन्मुक्तविषे मैत्री आदिक गुण पाइते हैं, विदेहमुक्तविषे आत्मा निर्मल निष्कलंक है, सो चित्तके नष्ट हुए विदेहमुक्तविषे रहता है, गुणोंकी कल्पना तिसविषे कोउ नहीं फुरती, परम पावन निर्मल पदविषे स्थित होता है, अरु आंति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते हैं, काहेतें जो चित्त स्वरूपतें नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए चित्तकी अवस्था कहां रहै, न कोउ गुण रहता है, न अवगुण रहता है, न उह गुणोंतें उत्पन्न भया सार कहाता है, न अवगुणोंतें उत्पन्न भया असार कहाता है, न लोलुप है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है, न अंजन है, न निरंजन है, न सत्य है, न असत्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न सूर्य है, ऐसा जो सर्व कलनातें रहित पद है, शरत्कालके आकाशकी नांई निर्मल है, अरु बुद्धितें परपद है, तिसविषे औरकी गम नहीं, जैसे आकाशके स्थानकों पवन जाणता है, तैसे उसकी अवस्था

कों उही जाणै, तहां स्थित हुए सर्व दुःख शांत हो जाते हैं, ब्रह्मानंदविषे लीन हो जाता है, ज्ञानवान् आकाशकी नांई निर्मल पदकों प्राप्त होता है, जिसके पाएतें और पावणा कछु नहीं रहता ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारोनाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! परमाकाशके कोशविषे एक पहाड है, तिसउपर एक जगत्‌रूपी वृक्ष है, तारे तिसके फूल हैं, अरु मेंदु पत्र हैं, सूर्य चंद्रमा स्कंध हैं, देवता दैत्य मनुष्यादिक जीव सब तिसउपर पंखेरु रहते हैं, सप्त समुद्र तिसकेपास बावडीयां हैं, अनंत नदियां तिसविषे प्रवेश करतियां हैं, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न होते हैं, सुखदुःखरूपी फलोंकरि पूर्ण है, मोहरूपी जलकरि सींचता है, सो दृढ होकरि स्थित हुआ है, तिसका बीज कवन है, यह ज्ञानरूपी सार बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझकों संक्षेपतें कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस संसारका बीज बडा शरीर है, जिसके अंतर आरंभकी घनता है, जब शुभ अशुभका आरंभ शरीरका अंकुर होता है, तब शुभ अशुभ करता है, तातें संसारका बीज शरीर है, तिस शरीरका बीज चित्त है, राजस सात्त्विक तामस वृत्ति जिसके टास हैं, अरु जन्ममरणका भंडार है, अरु सुखदुःखरूपी रत्नका डबा है, ऐसा जो चित्त है, सो इस शरीरका कारण है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत्‌जाल दृष्ट आता है, सो सब असत्‌रूप है, चित्तके फुरणेकरि नानाप्रकारके आडंबर भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर नानाप्रकारके आरंभ सहित भ्रम करिके भासते हैं, जैसे संकल्पपुर भासता है सो असत् है, तैसे यह जगत् असत् है, जैसे मृत्तिकाविषे घटभाव होत है, तैसे चित्तविषे जगत्का सद्भाव होता है, चित्तरूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा दृढ भावना, जब प्राणस्पंद होती है, हृदय गात्र जो है, एकोतेर सौ नाडी है, जब तिनकी उर संवेदनरूप चित्त उदय होता है, तब प्राणस्पंद तिनकी उर नहीं फुरता, जब प्राण फुरता है, तब शुद्ध सात्त्विक चित्त आनि उपजता है, तिसविषे जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भा

सती है, तैसे प्राणविषे नीलता भासती है, जब प्राणस्पंद होता है, तब चित्त संवित् उछलती है, जैसे हाथ करि ताडना किया गेंद उछलता है, जैसे प्राणस्पंदविषे सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकरि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मतें सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोइ संवित्रूपकों त्यागिकरि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नानाप्रकारके जगत् भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना उठती है, तिस करिके अनेक दुःखोंकों प्राप्त होता है ॥ तातें हे रामजी! संवित्कों अंतर्मुख रोकणा कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है,तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्विषे अहं उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होता है, चित्तका होणा अनर्थका कारण है, जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है, अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिए अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकरि योगीश्वर प्राणोंकों रोकताहै, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकरि अनुभव करता है, अरु ज्ञानकरि भी अनुभव सुण॥ हे रामजी! चित्त वासना करिके उत्पन्न होता है, सो वासना विचारतें रहित फुरती है, जैसे बालकोंकों जन्मतेंही स्तनोंतें दूध चुगणेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्माततें भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है॥ हे रामजी! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोइरूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमाद करिके भास्या है,तिसविषे दृढ प्रतीति हो गई है, तिसकी भावना करता है, जगत्की वासनाकरि मोहकों प्राप्त भया है, जो स्वतः सिद्ध अनुभवरूप आत्मा है, तिसकों जाणि नहीं सकता, अरु वासनाकी प्रबलताकरि स्वरूपका त्याग किया है, अरु भ्रांतिरूप जगत्कों सत्य देखाता है, जैसे मद्यकरि मत्तकों पदार्थ विपर्यय हुआ औरके और भासते हैं, तैसे मूर्खोंकों वासनाके बलकरि जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं॥ हे रामजी! असम्यक् ज्ञानकरि जीव दुःखी होता है, शांतिकों नहीं प्राप्त होते, मनकी चिंताकरि जलते हैं, मन किसका नाम है, सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकरि अनात्माविषे आत्म

भावना होवै, अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है, सो मन कैसे उत्पन्न होता है, चेतन संवित्‌विषे जो पदार्थोंकी चिंतवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थकी दृढ भावना होती है, तब उही चेतन संवित् चित्तरूप हो जाती है, तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते हैं, बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका संकल्प अंतरतें निवृत्त होवै, तब चित्त भी मृतक हो जावै, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मन अमन पदकों प्राप्त होता है, मनका अमन होणा परम उपशमका कारण है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिसकी अभावना करिए अरु सब जगत् अवस्तु भूतकरि त्यागिए, तब हृदय आकाशविषे चित्त शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंतें रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकरि जो अनात्माविषे आत्मभावना है, ज्यों ज्यों यह दृढ होती है, त्यौं त्यौं चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढता जाता है, अरु ज्यों ज्यों अनात्मासों आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है, जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यौं त्यौं चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त है, जब चित्त यथा भूत यथार्थकों देखता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती है, परम शांति शीतलता हृदयविषे स्थित होती है, तब पदार्थोंकों ग्रहण भी करता है, परंतु अंतरतें रागसंयुक्त वासना निवृत्त भई है, तिसकरि चित्त शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्ट आती है, परंतु जन्मका कारण नहीं होती, काहेतें जो मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानतें रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारता है, तैसे उह अभिमानतें रहित चेष्टा करता है, जैसे कुंभारका चक्र भ्रमता ताडनातें रहित हुआ सने सने स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्‌का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है, परंतु जन्मका कारण नहीं, जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभा

विक ठहरि जाता है, जैसे भूना बीज नहीं उगवता, तैसे रागतें रहित ज्ञानीकी चेष्टा है, जन्मका कारण नहीं होता, देखणेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती, काहेतें जो चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिसकी चेष्टा अभिमानतें रहित है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसका चित्त केवल चिन्मात्रकों प्राप्त हुआ है, जब शरीरकों त्यागता है, तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है ॥ हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं, एक प्राणोंका फुरणां, दूसरा वासनाका फुरणां, दोनोंविषे जब एकका अभाव हो जाता है, तब दोनों नाश हो जाता है, यह परस्पर कारणरूप हैं, जैसे तालतें मेघ जलपानकरि जाता है, बहुरि वर्षाकरि ताल पुष्ट होता है, सो परस्पर कारणरूप है, तैसे प्राण स्पंद अरु वासना परस्पर कारणरूप हैं, जैसे बीजतें अंकुर होते हैं, अरु अंकुरतें बीज होते हैं, तैसे प्राण स्पंदतें वासना होती है, अरु वासनातें प्राण स्पंद होता है, यह दोनों चित्तका कारण हैं, जैसे फूलविना सुगंधि नहीं होती, सुगंधिविना फूल नहीं होता, तैसे वासनाविना प्राण नहीं होते, प्राणविना वासना नहीं होती ॥ हे रामजी ! जब वासना फुरती है, तब संवित्‌विषे क्षोभ होता है, उह प्राणोंकों जगावती है, तिसकरि जगत् उपजता है, जब हृदयविषे प्राण स्पंदके धर्म होते हैं, तब संवित् क्षोभ होता है, अरु चित्तरूपी बालक उपजता है, इस प्रकार वासना अरु प्राण दोनों चित्तका कारण है, दोनोंविषे एकका नाश होवै, तब दोनों नाश हो जावें, अरु चित्तका भी नाश हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक वृक्ष है, सुखदुःखरूपी तिसके स्कंद हैं, चिंतारूपी फल हैं, कार्यरूपी पत्र हैं, वृत्तिरूपी वल्लीसाथ वेष्टित हुआ है, अरु रागदोषरूपी दोनों बगले उपर आनि बैठे हैं, अरु तृष्णारूपी काली सर्पिणी करि वेष्टित किया है, अरु इंद्रियांरूपी पक्षी तिसपर आनि स्थित होता है, इच्छादिक रोगोंकरि पुष्ट होता है, अज्ञान इसका मूल है, अवासनारूपी खड्गकरि शीघ्रही काटा जाता है,

संसारकी अभावना अरु स्वरूपकी भावनाकरि शीघ्रही नाश हो जाता है, जैसे तीक्ष्ण पवनकरि पाका फल वृक्षसों शीघ्रही गिर पडता है, तैसे आत्मभावकरि फल गिरि पडता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी आधी है, सर्व दिशा तिसनें मलीन करी हैं, प्रकाशकों आच्छादि लिया है, अरु तृष्णारूपी तृण तिसविषे पडे उछलते हैं, अरु शरीररूपी स्तंभाकार अज्ञानरूपी कुंडेतें उपजा हुआ वायु विरोला बडे क्षोभकों प्राप्त करता है, जब अंतर प्रकाश होवै तब तम दूर करै, जब स्पंद रोकीए तब धूलि शांत हो जाती है, आत्मविचारतें जब वासनातें रहित होवै, तब शरीररूपी धूलि शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! प्राणोंके रोकणेकरि शांति होती है; अरु वासनाके अनउदयतें चित्त स्थिर हो जाता है, प्राणस्पंद अरु वासनाका बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित् मात्रविषे संवेदनका त्याग करै, तब वासना अरु प्राण दोनों न फुरै, जैसे वृक्षका बीज मूल काटिए तब बहुरि नहीं होता, तैसे इनका मूल है, संवेदन जब संवेदनका अभाव होवै, तब दोनों नहीं बणते, संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, संवित् सत्तातें संवेदन प्रगट भया है, तिसतें इतर नहीं, जैसे तिलोंविना तेल नहीं पाइता, अंतर बाह्य और कछु नहीं, सब संवित्सत्ताविना अंतर नहीं पाइता, वही संकल्पद्वारा संवेदनकों देखती है, जैसे स्वप्नविषे अपणे मृत्युकों देखता है, देश देशांतरकों प्राप्त होते हैं, तैसे सब सत्ता संवेदनकों देखती है, संवित् चिन्मात्रविषे संवेदनका उत्थान होता है, जो अहं अस्मि तब संवेदन जगत्जाल दिखावती है, अपणी संवेदन उठिकरि आपकों भ्रम दिखावती है, जैसे बालककों अपणे संकल्पतें उपजा, वैताल सत्य भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तैसे संवित्विषे संवेदन भासती है ॥ हे रामजी ! असम्यक् ज्ञानकरिके संवेदनरूप हो जाती है, तिसविषे आत्मबुद्धि होती है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिके लीन होजाती है, जैसे जेवरीविषे असम्यक् ज्ञान करि सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन भासती है, तीनों जगत् ब्रह्म संवित्रूप हैं, संवेदन भी कछु भिन्न नहीं, यह निश्चय जिसकों दृढ होवै, इसकों बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष

जगत् है, तिससों वास्तव बुद्धि त्याग करणी, इसकरि भी संसारके पारकों प्राप्त होवैगा, अरु जो अवस्तु बुद्धिकरि न त्यागैगा, तौ जगत् बडे विस्तारकों पावैगा॥हे रामजी! संवेदनका जो उत्थान होता है, सो बडे दुःखोंकों देणेहारा है, अरु संवेदन जो जडवत् अजड है, सो परम सुखसंपत्का कारण है, सो आनंद उत्थानतें रहित आनंद स्वरूप है, जिसकों संवेदन उत्थानतें रहित असंवेदन संवित् आत्माकी बुद्धि हुई है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होता है ॥ राम उवाच॥ हे प्रभो ! जडतातें रहित असंवेदन कैसे होता है, अरु असंवेदनकरिके जडता कैसे निवृत्त होती है ? वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सर्व ठौरविषे आसक्त नहीं होता, अरु कहुं चित्तकी वृत्ति नहीं लगाती, अरु जीवतत्वका ज्ञान कछु न रहै, सो असंवेदन जडतातें रहित है, संवेदन जो है, स्पंदरूप जिसकरि दृश्य भासता है, सो दृश्यकी उरतें जड है, अरु स्वरूपविषे चेतन है, सो अजड कहाता है, ॥हे रामजी! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है तिससाथ संवेदनका स्पर्श कछु न होवै, ऐसा संवित् अजड है, देवता भी उही है, नाग, दैत्य, अरु राक्षस, हस्ती, मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सब उही धारि रहती है ॥ हे रामजी ! अपणी चेष्टा करिके संवित् आपकों आपही बंधावती है, जैसे घुराण आपही आपकों ग्रहविषे बंधावती है, तैसे संवित् आपकों बंधावता है, जब आपणी उर आती है; तब आपही आपकों प्राप्त होती है॥हे रामजी ! जगत् जाग्रतरूपी समुद्र है, संवितरूपी तिसविषे जल है, तिसकरि सब स्थान पूर्ण होगया है; अंतरिक्ष पृथ्वी आकाश पर्वत नदियादिक सब संवितरूपी जलकी लहरि है; तातें सर्व जगत् संवित् मात्र है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, यह सम्यक् ज्ञान है, इस संवितका बीज सन्मात्र है, सन्मात्र सत्तातें संवितका उदय होणा हुआ है, जैसे प्रकाशतें ज्योति उदय होती है, अरु इस सत्ताके दो रूप हैं, एक रूप नानाप्रकार हो भासता है, द्वितीय एकही रूप है, घट पट तत्त्वं आदिक एक सत्ताके नानाप्रकारके विभाग स्थित हैं, अरु विभागतें रहित एक सत्ता स्थित है, सो सत्ता सामा

न्य अद्वैतरूप परमार्थ सत्ता है॥ हे रामजी! विषयकों त्यागिकरि जो सन्मात्र है सो अलेप एकरूप है, सो महा सत्ता है, तिसकों ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं, अरु नाना आकार भी सत्ता कबहु नहीं धारती, यह संवेदन करिके हुए हैं, इस कारणतें अवस्तुरूप है, एकरूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है, न कबहु नाश होती है, न विस्मरण होती है, काहेतें अनुभवरूप है॥ हे रामजी! एक काल सत्ता, एक आकाश सत्ता है, सो यह सत्ता अवस्तुरूप हैं, इस विभागसत्ताकों त्यागिकरि सन्मात्रसत्ता जो है, तिसी परायण होउ, कालसत्ता आकाश सत्ता यद्यपि उत्तम है, परंतु वास्तव नहीं, जहां नाना विभाग कलना आकार अरु नाना कारण हैं, सो पवित्रकर्त्ता पावन नहीं, इसीतें कहा है, जो आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं, अरु सत्ता सामान्य जो संवित्मात्र है, सो सर्वका बीज है, तिसतें सबकी प्रवृत्ति होती है॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनकी कलणा सत्ता सामान्य पर्यंत है, जो तिस परमपद अनंत अनादि बीजरूपका बीज और कोइ नहीं, जब तिसका भान होवै, तब यह निर्विकार होकरि स्थित होवै, तिसकों जीवन्मुक्त कहते हैं, जब दृश्यकी भावना कछु न फुरै, जैसे बालक मूक गुंगा होता है, अभिमानतें रहित होता है, तैसे ज्ञान करिके यह निर्वासनिक होवै, तब जडतातें मुक्त होता है, अरु सर्व आत्मभावकों प्राप्त होता है, अरु जिस संवित्‌विषे दृश्यका स्पर्श होता है, सो संवित् जड है, काहेतें जो शुद्ध स्वरूपविषे मलिनका स्पर्श होता है, इसीतें जड है, अरु जो संवित् द्वैत फुरणेतें रहित है, सो शुद्ध है, अरु अजड है, अरु जो द्वैतभावकों ग्रहण करती है, सो स्वरूपकी उरतें जड है॥ हे रामजी! जिसकों स्वरूपकी उर स्थिति भई है, अरु दृश्यभावका लेप नहीं होता, सो सर्व वासनाकों त्यागिकरि निर्विकल्प समाधिविषे जुडता है, जैसे आकाशविषे नीलता स्वाभाविक वर्तती है, तैसे योगी आनंदविषे वर्तता है, अरु निःसंवेदन संवित्‌विषे नष्ट होता है, उहीरूप हो जाता है, मनकी वृत्ति तहां स्थिर हो जाती है, बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगंध लेते, देखते, सुणते, सब इंद्रियोंकी क्रिया कर

ते भी मन स्थिर रहता है, दृश्यका अभिमान नहीं फुरता, सो अजड कहाता है, संवेदनतें रहित सुखी होता है ॥ हे रामजी! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है, परंतु सब दुःखाकों नाशकर्ता होती है, तातें इसी दृष्टिकों आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्रकों तरि जाउ, कैसा संसार है, जैसे वटका बीज सूक्ष्म है, विस्तारकों पाइकरि आकाशकों स्पर्श करणे लगता है, तैसे सूक्ष्म संवेदनतें जब संकल्प पसरता है, तब उही बडे जगत्के विस्तारकों धारती है, अरु जन्मके जालकों प्राप्त होती है, बीजरूपकरि आपही जन्मोंविषे डारता है, बहुरि बहुरि मोहविषे गिरता है, जब संवित् अपणी उर होती है, तब मोक्षकों प्राप्त होता है, जैसी भावना स्वरूपविषे दृढ होती है, सोइ सिद्ध होती है, जैसे नटुआ अनेक स्वांगकों धारता है, तैसे संवित् अनेक आकारोंकों धारती है, जब नट भूमिकाकों त्यागता है, तब अपणे स्वरूपविषे प्राप्त होती है ॥ हे रामजी! संवित्रूपी नटिणी है, अरु जगत्रूप धारिकरि नृत्य करती है, अरु जो दुःखरूप संसारसमुद्रविषे गिरे नहीं, सो सत्ता सब कारणोंका कारण है, तिसका कारण कोउ नहीं, अरु सर्व सारोंका सार है, तिसका सार कोउ नहीं, तिस चेतनरूपी बडे दर्पणविषे सम सत् जगत् भासता है, प्रतिबिंबित होता है, जैसे तालविषे किनारेके वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, तैसे सब वस्तु चिद् दर्पणविषे प्रतिबिंबित होती है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, सो आत्मसत्ताकरि सिद्ध होते हैं, उसी अनुभवविषे सबका अनुभव होता है, जैसे षट् रसोंका स्वाद जिव्हाकरि सिद्ध होता है, तैसे सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रय सिद्ध होता है, सब जगत्गण तिसीतें उपजे हैं, तिसीविषे वर्तते हैं, बढते हैं, तिसीविषे स्थित दिखते हैं, तिसीविषे लीन होते हैं, सबका अधिष्ठान उही सत्ता है, बहुरि कैसी है, गुरूका गुरू उही है, लघुकी लघुता उही है, स्थूलकी स्थूलता उही है, सूक्ष्मकी सूक्ष्मता उही है, द्रव्योंका द्रव्य उही है, कष्टोंविषे कष्टता उही है, बडेविषे बडाइ उही है, तेजोंका तेज उही है, तमका तम उही है, वस्तुकी वस्तु उही है, द्रव्यका द्रव्य उही है,

द्रष्टाका द्रष्टा उही है, किंचनविषे किंचन उही है, निष्किंचनविषे निष्किंचन उही है, तत्त्वोंका तत्त्व उही है, असत्यका असत्य उही है, सत्यका सत्य भी उही है, आश्रमविषे आश्रम उही है, अनाश्रमविषे अनाश्रम उही है ॥ हे रामजी ! ऐसे जो परम पावन सत्ता है, तिसविषे प्रयत्न करिके स्थित होउ, बहुरि जैसे इच्छा होवै, तैसे करहु, सो आत्मतत्त्व निर्मल है, अजर है, अमर है, शांतरूप है, चित्तके क्षोभतें रहित है, भवसंसारतें मुक्तिके निमित्त तिसविषे स्थित होउ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे महानंदके देणेहारे ! यह जो बीजोंका बीज तुमनैं कहा है, सो किस प्रकार प्राप्त होवै, जिस प्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्ति होवै सो उपाय कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इन सबके बीजका जो उत्तर दिया है, तिस तिस उपायकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, अब और भी जो तैनें पूछा है, सो सुण, सत्ता सामान्यविषे स्थित होणे निमित्त यत्न कर्तव्य है, जेती कछु संसारकी वासना है, बलकरि तिसकों त्याग करिए, अरु शुद्ध आत्माविषे तीव्र अभ्यास करिए, तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदविषे क्षीण भी स्थित होहुगे, तब अक्षय भावकों प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! सत्ता सामान्य संवित्मात्र तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, जो इच्छा होवै सो करौ, तिसविना कछु अवर सिद्ध न होवैगा, सब उही भासैगा, ऐसा जो अनुभव तत्त्व है, सो तेरा स्वरूप है, तिसके ध्यानविषे स्थित हुए तुझकों खेद कछु न होवैगा, ऐसा संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, अरु उंचा पद हैं, पुरुष प्रयत्नकरि तिस पदकों प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! केवल संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, काहेतें जो सर्वत्र संभव संवित् तत्त्व है, संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है, अरु सबसाथ मिली हुई है, जो कछु चितवै, जहां इच्छित होवै, जो कछु करै, सो सब संवित् करि सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है, तिसका भान नहीं होता, और कछु भासता है, यही अविद्या

आवरण है, सो इसकों दुःख होता है, जो स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यकी वासना करता है, तिसकी दृढताकरि अंतःकरण दुःख पावता है, जब यत्न करिके वासनाका त्याग करिये, तब मन अरु शरीरके दुःख सब नाश हो जावैंगे, अरु पूर्व जो इसकों मोह दृढ हो रहा है, जैसे मेरुकों मूलतें उखाडना कठिण है, तैसे वासनाका त्याग कठिण हो रहा है, सो वासना मनतें होती है, जबलग मन क्षय नहीं होता, तबलग वासना भी क्षय नहीं होती, अरु तत्त्वज्ञानविना मन नाश नहीं होता, जब वासना अरु मनका आवरण दूर होता है, यह परस्पर कारणरूप हैं, तातें हे रामजी! तूं पुरुष प्रयत्न करिके मनके संकल्पविकल्पकों निवृत्त करौ, अभ्यास अरु विचार करिके विवेककों उपाय करि भोगोंकी वासना दूरतें त्याग, इसकरि तूं शांतिवान् होवैगा, इन तीनोंका सम अभ्यासकरि तत्त्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षयका वारंवार अभ्यास कर, जबलग इनकों न साधैगा, तबलग अनेक उपायोंकरि शांतिकों न प्राप्त होवै ॥ जो हे रामजी! वासनाका क्षय होवै, अरु मनोनाश तत्त्वज्ञानका अभ्यास न करै, तौ कार्य सिद्ध नहीं होता, अरु जो मनोनाश करै, अरु तत्त्वज्ञानकरि वासनाक्षय न करै, तब भी कल्याण न होवैगा, अरु तत्त्वज्ञानका विचार करै, अरु वासना क्षय न होवै, तौ भी कुशल न होवैगा, जब तीनोंका सम अभ्यास होवै, तब फलकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! एकके सेवनेतें सिद्धता नहीं प्राप्त होती, जैसे मंत्रोंकों कोउ प्रतिबंध लय करै, तब फलदायक नहीं होता, अर्थ यह जो मंत्र संपूर्ण हुआ फलदायक होता है, एक एक चरण पढै तौ फलदायक नहीं होता, जबलग सब मंत्र संध्यादिक एक ठौर नहीं पढता, तबलग मंत्र नहीं फुरते, तैसे एकला किसीकरि कार्य सिद्ध नहीं होता, जब चिरकाल इनका एकठाही सेवणा होवै, तब कार्य होवै, जैसे बडे शत्रु सैन्यसंयुक्त होवै, तिसकों मारणेकों एक सूरमा जावै, तब शत्रुकों मारि न सकै, जब एकठे सैनाउपर जाय पडै, तब उसकों जीति लेवै, तैसे संसाररूपी शत्रु है, जब तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाका क्षयका एकठा अभ्यास होवै, तब

संसाररूपी शत्रु नाश होवै ॥ हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यास करैगा, तब हृदयकी अहं मम ग्रंथी टूटि पडती है, जैसे अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयविषे स्थित हो रही है, सो अभ्यास योगकरि टूटि पडैगी, नाश हो जावैगी, तातें चलते, बैठते, खाते, पीते, सुणते, सुंघते, स्पर्श करते, जागते, इन तीनोंका अभ्यास करौ ॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागेतें प्राणस्पंद रोक्या जाता है, जब प्राणोंका स्पंद रोक्या, तब चित्त अचित्त हो जाता है, एक प्राणोंके रोकेतें वासना क्षय हो जाती है, तब भी चित्त अचित्त हो जाता है, आत्मयोगकरि अथवा वासना त्यागकरि आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, इनविषे जो तेरी इच्छा होवै, सोइ कर, प्राणोंका रोकणां योगकरि भावै, वासनाका त्याग कर, प्राणायाम तब होता है, जब गुरुकी दीनी युक्ति स्थित होती है, आसन अरु आहारके संयमकरि प्राणोंका स्पंद रोक्या जाता है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिके जगत्कों अवास्तव जाणता है, तब वासना नहीं प्रवर्तती, जो जगत्की आदि भी अरु अंत भी स्थित है, तिसविषे मन जब स्थित होता है, तब वासना नहीं उपजती ॥ हे रामजी ! जब व्यवहारविषे निःसंग हुआ, अरु संसारकी भावनातें विवर्जित हुआ, अरु शरीरविषे नाशवंत बुद्धि भई, तब वासना नहीं प्रवर्तती, जब विचार करिके वासना क्षय होवै, तब चित्त भी नष्ट हो जावैगा, जैसे वायुके ठहरेतें धूलि नहीं उडती, तैसे वासनाके क्षय हुए चित्त नहीं उपजता, जो प्राणस्पंद है, सोइ चित्तस्पंद है, जब वासना फुरती है, तब जगत्भ्रम उपजता है, जैसे अरुडतें धूलि उपजती है, तैसे चित्ततें वासना उपजती है, जब प्राणस्पंद ठहरता है, तब चित्त भी ठहरी जाता है, तातें यत्नकरि प्राणस्पंद अथवा वासनाके जीतणेका अभ्यास करौ, तब शांतिवान् होवैगा, अरु जो यह उपाय न करैगा, अरु औरकों चित्त वश करणेका उपाय करैगा, तौ बहुत कालतें पावैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतणेका अन्य उपाय इन युक्तिविना और कोउ नहीं, जैसे मतवाले हस्तीकों अंकुशविना वश करणेका उपाय और कोउ नहीं, तैसे मन युक्ति

विना वश नहीं होता, सो युक्ति कौन है, संतोंकी संगति सत्शास्त्रोंका विचार करणां, जो इस उपायकरि तत्त्वज्ञान अरु वासना क्षय, अरु प्राणोंका स्पंद रोकणां यह चित्त वश करणेकों परम युक्ति है, इसकरि चित्त शीघ्रही जीत्या जाता है, अरु जो इन उपायोंका त्यागकरि हठसों मन वश किया चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे तमके नाश करणेकों दीपक जगावै, तौ नाश हो जाता है, अरु शस्त्रोंकरि तमकों काटै, तौ तम नाश न होवैगा, तैसे और उपायोंकरि चित्त वश न होवैगा, इसविना और उपाय करते हैं, सो मूर्ख हैं, जैसे मतवाले हस्तीकों भेहकी तंतुसाथ बांध्या नहीं जाता, जो कोउ इसकरि बांधणे लगै तौ महामूर्ख है, तैसे मनके जीतणेकों और प्रकार जो हठ करते हैं, सो महामूढ हैं, और उपाय करिके क्लेश प्राप्त होवैगा, आत्मसुख न प्राप्त होवैगा, जैसे दुर्भागी जीवोंकों कहूं सुख नहीं होता है, हे रामजी ! तीर्थ दान तप देवताकी पूजा यह चारों साधन जिननें किए हैं, अरु मन जीतणेका उपाय नहीं किया, सो मृगकी नांई हुए भ्रमते फिरते हैं, पहाडोंकी कंदराविषे फल पत्र खाते फिरते हैं, मनका नाश किया नहीं, तातें आत्मपदकों नहीं पाया, सो और पशुओंके समान हैं, जैसे और पशु मृग पहाडोंविषे होता है, तैसे उह भी है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषनें मनकों वश नहीं किया, तिसकों शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे कोमल अंग मृग ग्रामविषे गया शांतिकों प्राप्त नहीं होता, जैसे जलविषे आया तृण नदीके वेगकरि भटकता फिरता है, कष्टमान होता है, तैसे उह पुरुष कर्म करता है, मनकों स्थित किएविना कष्ट पावता है, कबहूं दुःखसाथ जलता है, कबहूं कर्मोंके वशतें स्वर्गकों प्राप्त होता है, सो भी नाश हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उछलता है, कबहूं अधकों जाता है, तैसे कर्मोंके वशतें जीव स्वर्ग नरकविषे मध्यविषे भ्रमते हैं, तातें ऐसी दृष्टिका त्यागकरि शुद्ध संवित्मात्रकों आश्रय कर, अरु वीतराग होकरि स्थित होउ ॥ हे रामजी ! जगत्विषे ज्ञानवान् सुखी है, अरु जीता भी उही है, और सब दुःखी हैं, अरु मृतक समान हैं, अरु बली भी ज्ञानवान्

है, सो मोहरूपी शत्रुकों मारीकारि संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होता है, और सब निर्बल है, तातें तुम भी ज्ञानवान् होहु, संवेदन रहित जो संवित्मात्र तत्त्व है, सो एक है, अरु सर्वकी आदि है, सबतें उत्तम कलनाते रहित सर्वविषे स्थित है, तिसविषे स्थित होहु, तब कर्त्ता हुआ भी अकर्त्ता होवैगा, अरु परम ब्रह्म उदय होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संशयनिराकरणोपदेशो नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषनें आत्मविचारकरि अल्प भी चित्त अपणा निग्रह किया है, सो संपूर्ण फलकों प्राप्त होवैगा, अरु तिसका जन्म सफल हुआ है ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे विचाररूपी कणका उदय हुआ है, सो अभ्यास करिके बडे विस्तारकों पावैगा, निरागपूर्वक जिसके हृदयविषे विचार उपजा है, सो बढता जाता है, अरु अविद्यारूपी गुणोंके फलकों काटि डारैगा अरु सब शुभ गुण आनि आश्रय करैंगे, जैसे जलकरि पूर्ण हुआ तालका सब पक्षी आनि आश्रय करते हैं ॥ हे रामजी ! जिसकों सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है, अरु निर्मल बोधकरि यथादर्शन हुआ है, तिसकों इंद्रियोंकेविषे चलाइ नहीं सकते, जबलग स्वरूपका प्रमाद होता है, तबलग आधि दुःख इसकों होता है, अरु जब स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शरीर अरु मनके दुःख इसकों वश नहीं करि सकते, जैसे बिजुरीकों ग्रहण कोउ नहीं करता, जैसे पुष्टिकारि मेघोंकों मुष्टिविषे कोउ पकडी नहीं सकता, जैसे आकाशके चंद्रमाकों मुष्टिविषे कोउ नहीं पकडी सकता, जैसे मूढ स्त्री चंद्रमाकों मोहणेकों समर्थ नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्कों दुःख कोउ वशकरि नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जो हस्ती मदकरि मत्त है, अरु मद मस्तकतें झरता है, अरु भवरे तिसके आगे शब्द करते हैं, मच्छरोंके प्रहार अरु स्त्रियोंके श्वास तिसकों नहीं छेदि सकते, तैसे ज्ञानवान्कों विषयोंके रागदोष चलाय नहीं सकते, अरु जिस हस्तिके मस्तकसों मोती निकसते हैं, ऐसे बलवान् हस्तिकों नखोंसाथ विदारणेहारा जो सिंह है, जैसे उस सिंहकों हर

ण मारि नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्कों दुःख चलाय नहीं सकता, अरु जिसके फूत्कारेसाथ वनके वृक्ष जली जाते हैं, ऐसा जो सर्प है, जैसे उह सर्पकों दर्दुर ग्रासी नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्कों रागदोष चलाय नहीं सकते, अरु जैसे कोउ राजा सिंहासनपर बैठेकों तस्कर दुःख दे नहीं सकते, तैसे जो ज्ञानी स्वरूपविषे स्थित है, तिसकों इंद्रियोंके विषय दुःख दे नहीं सकते, अरु जो विचारतें रहित देह अभिमानी है, आत्मतत्त्वकों नहीं प्राप्त हुए; तिनकों विषय उडाइ ले जाता है, जैसे सूके पत्रकों पवन उडाइ ले जाता है, अरु ज्ञानवान्कों चलाय नहीं सकते, अरु जैसे पर्वत मंद पवनकरि चलायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् सुख दुःखविषे चलायमान नहीं होता, अरु जो विचारतें रहित है, सो देशके परिणामभावविषे स्थित मानता है, अरु जगत्भाव है, संसार भाव पदार्थोंविषे मनुष्य जन्मविषे गुरुशास्त्रका मार्ग तिसकी उरतें सोइ रहा है, अरु मूढ हो रहा है, खावणे पीवणेविषे सावधान है, अरु विचारतें शून्य है, सो मृतक समान है, मृतक कहाता है, यह विचार इसकों कर्तव्य है, जो मैं कौन हौं, अरु यह जगत् क्या है, कैसे उत्पत्ति हुआ है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, इस प्रकार संतोंका संग अरु अध्यात्मशास्त्रकरि विचारकरि जो पुरुष दृश्य भावकों त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, सो परम पदकों पावता है, जैसे दीपके प्रकाशकरि पदार्थकों पाइता है, तैसे विचारकरि आत्मतत्त्व पाइता है ॥ हे रामजी! जो शास्त्रविचारकरि आत्म तत्त्वका बोध होता है, सो ज्ञान कहाता है, सो ज्ञान ज्ञेयके साथ अभिन्नरूप है, अध्यात्मविद्याके विचार करिके आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जैसे दूधसों मथिकरि मांखण काढता है, तैसे विचारकरि आत्मज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञेय इसके अंतर होता है, सो ज्ञेय परब्रह्म स्वरूप है, सत्य है, असत्यकी नांई होकरि स्थित है, ज्ञानवान् तिसकों पाइकरि तृप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त होकरि अपणे आपविषे प्रकाशता है, जैसे चक्रवर्ती राज्यविषे आनंदकरि तृप्त होता है, तैसे ज्ञानवान् ब्रह्मानंदविषे इंद्रियोंकी इच्छातें रहित शोभता है, शब्द

स्पर्श रूप रस गंध पाचों इंद्रियोंमें आसक्त नहीं होता, सुंदर राग तंद्रीके शब्दविषे स्त्रियोंके गावणेविषे और भी जो कोकिला पक्षी है, अरु गंधर्व गंधर्वीविषे लेकरि गायन है, तिनकी किसीविषे आसक्ति नहीं होता, अरु जेते कछु स्पर्श हैं, सुंदर फूल अग्र चंदन मंदार कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगंधि अरु सुंदर स्त्रियोंका स्पर्श करना, अप्सरा नागकन्या अरु स्वर्णके द्रवत्की नांई जिनके अंग हैं, तिसका स्पर्श करनां, अरु हीरा मणि भूषण नानाप्रकारके वस्त्र हैं, तिनविषे बंधमान नहीं होता, जैसे चंद्रमा सुंदर अरु शीतल है, परंतु सूर्यमुखी कमलोंकों विकास नहीं करि सकता, तैसे सुंदर स्पर्श ज्ञानीके चित्तकों हर्षवान् नहीं करते, जैसे मरु स्थलविषे हंस प्रसन्न नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् स्पर्शविषे नहीं प्रसन्न होते, अरु ज्ञानवान् रसादिकविषे भी बंधमान् नहीं होता, दूध दही घृतादिक जो रस हैं, अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके भोजन हैं, अरु कटु तीक्ष्ण मीठा खारा जितना रस है, तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते, किसीविषे बंधमान नहीं होते, आकाश बोधकरि नित्य तृप्त है, किसी भोगकी इच्छा नहीं करते, जैसे ब्राह्मण कूकरका मांस खाणेकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् उर्वशी रंभा मेनका आदिक अप्सराकी इच्छा नहीं करता, अरु गंधकी इच्छा भी नहीं करता, चंदन अगर कस्तूरी मंदार वृक्षके फूल सुगंधिकी इच्छा नहीं करते, जैसे मच्छी मरुस्थलकी इच्छा नहीं करती, तैसे ज्ञानवान् सुगंधिकी इच्छा नहीं करता अरु रूपकी इच्छा भी नहीं करते, सुंदर स्त्रीयां बाग तलाव नदीयां इत्यादिक जो रूपवंत पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे चंद्रमा बदलोंकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते, औरकी क्या बात है, इंद्र यम विष्णु रुद्र ब्रह्मा समुद्र कैलास मंदराचल रत्न मणी कांचन यह जो बडे बडे पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे राजा नीच पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, समुद्रके गर्जणे सिंहके गर्जणेतें बीजलीके गर्जणेतें आदि भयानक शब्द हैं, तिनकों सुणीकारि भयमा

न नहीं होता, जैसे शूरमा धनुष्यका शब्द सुणिकरि भयमान नहीं होता, जैसे ज्ञानवान् मतवाले हस्ती अरु वैताल पिशाचके शब्द सुणी अरु इंद्रके वज्रके शब्द देवता सुणता हुआ कंपायमान नहीं होता, सत् स्वरूप की स्थितितें चलायमान कदाचित् नहीं होता, अरु जो आरेसाथ शरीरकों काटियें अरु खड्गसाथ कणकण करियें, बाणोंसाथ वेध्या जावै, तौ भी कंपायमान नहीं होता, उसकों राग दोष किसीविषे नहीं होता, शरीरपर एक उर जलता अंगार राखियें, अरु एक उर फूलोंका स्पर्श राखियें तौ भी हर्ष शोकवान नहीं होता, अरु एक उर खड्ग धारावत् तीक्ष्ण स्थान होवे, अरु एक उर पुष्प शय्या होवे तिसकों दोनों तुल्य हैं, एक उर शीतल स्थान होवै, एक उर तप्त शिला होवै, दोनों उसकों तुल्य हैं, एक उर मारणेवाला विष होवै, दुसरी उर जीवणेवाला अमृत होवै, सो दोनों तुल्य उसकों हैं ?॥ हे रामजी ! संपदा प्राप्त होवै, भावै आपदा प्राप्त होवे, भावै मृत्यु प्राप्त होवै, इनविषे व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें हर्षशोक नहीं, उसका मन अंतरतें मुक्त है, सदा सम रहता है ॥ हे रामजी ! लोहके जंबुरासाथ उसका मांस तोडियें, अरु नरकविषे डारियें, अरु उपर शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी ज्ञानवान् पुरुष भयकों न पावैगा, अरु न उद्वेगवान व्याकुल होवैगा, न दीन होवैगा, ज्ञानवान् इनविषे सदा सममन रहता है, पाहाडकी नांई धैर्यवान स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् रागदोषतें रहित है, देहअभिमानतें मुक्त जो हुआ है, तिसका शरीर अग्निविषे पडै, अथवा खाइविषे गिरै, अथवा स्वर्गविषे होवै, उसकों दोनों तुल्य हैं, हर्षशोकतें रहित है॥ हे रामजी ! जिसकों स्वरूपविषे दृढ स्थिति भई है, सो चलायमान नहीं होता, जैसे मेरु स्थित है, उसकों पवित्र पदार्थ होवै, अथवा अपवित्र होवै, पंथ होवै, अथवा कुपंथ होवै, विष होवै, अथवा अमृत होवै, मीठा, खटा, सलोना, कडवा, दूध, दहीं, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य भोजन हैं, सो सम हैं, न इष्टविषे रागवान होता है, न अनिष्टविषे दोषवान होता

है, जो प्राणोंके निकसणेकों सन्मुख आवै, अरु दूसरा प्राणोंकी रक्षानिमित्त आवै, तौ दोनोंकों आत्मस्वरूप शांत मन मधुररूप देखता है, रागदोषतें रहित है, रमणीय अरमणीय पदार्थोंकों सम देखता है, संसारकी आस्था त्यागि दीनी है, बोधस्वरूपविषे निश्चय भया है, चित्त निराग पदकों प्राप्त भया है, सब जगत् उसकों आत्मस्वरूप भासता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध पंच विषयोंके भोग अवरस अपणा नहीं पावते, जैसे दर्पणकों देखणे लगें, प्रतिबिंब भासता है, दर्पणकी सुरती नहीं रहती, तैसे विषयोंविषे आत्मा देखता है, विषयोंकी सुरती नहीं रहती, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों इंद्रियां ग्रास लेतियां हैं, जैसे तृणोंकों मृग ग्रासि लेता है, अरु जिसनें आत्मपदविषे विश्रांति पाई है, तिसकों इंद्रियां ग्रास नहीं शकती ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्रविषे जो पडा है, अरु वासनारूपी लहरीसाथ मिलिकरि उछलता है, अरु गिरता है, तिसकों आशारूपी तंदुआ ग्रास लेता है, हाय हाय करता है, शांतिकों प्राप्त नहीं होता है, अरु जो विचार करिके आत्मपदकों प्राप्त भया है, सो विश्रांतिकों पाइ चलायमान नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वत जलके समूहकरि चलायमान नहीं होता, तैसे उह संकल्पविकल्पविषे चलायमान नहीं होता, सर्व संकल्पकी सीमा आत्मपदविषे विश्रांति जिसकों भई है, सो उत्कृष्टताकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! तिसकों यह जगत्ज्ञानमात्र भासता है, संवित्मात्र जाणिकरि विचार करता है, न किसीका ग्रहण त्याग करता है, तातें भ्रांतिकों त्यागिकरि संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है, किसका ग्रहण करता है, जो आदिविषे भी न होवै, अंतविषे भी न रहै, मध्यविषे कछु भासै सो भ्रममात्र जाणीयें, इस प्रकार जाणिकरि भावअभावकी बुद्धिकों त्यागिकरि निःसंवेदनरूप होइकरि संसारसमुद्रकों तारि जावहु, मन बुद्धि इंद्रियां करिके कर्म करौ, भावै न करौ, निःसंग होहुगे तब तुमकों लेप न लगैगा ॥ हे रामजी ! जिसका मन अभिमानतें रहित हुआ है, सो कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता, जैसे मन और ठौर गया होता है, तौ

विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थोंकों होते भी नहीं जाणता, तैसे जिसका मन आत्मपदविषे स्थित हुआ है, तिसकों सुख दुःख कर्म नहीं लगता, जो पुरुष अभिमानतें रहित है, सो कर्मोंविषे सुखदुःखकों भोगता दृष्ट आता है, परंतु उसकों स्पर्श नहीं करते, देखो तौ यह बालक भी जानते हैं, जो मन और ठौर जाता है, तौ सुणता भी नहीं सुणता तैसे उह पुरुष करता भी नहीं करता॥ हे रामजी! जिसका मन असंग, हुआ है, सो देखता है, परंतु नहीं देखता, सुणता है, परंतु नहीं सुणता, स्पर्श करता है, परंतु नहीं करता है, सूंघता है, रस लेता है, परंतु नहीं लेता, इत्यादिक जो कछु चेष्टा हैं, सो कर्त्ता भी अकर्त्ता है, उसका चित्त आत्मपदविषे लीन भया है, जैसे कोउ पुरुष देशांतरकों जाता है, सो उस देशविषे व्यवहार कर्म करता है, परंतु उसका चित्त ग्रहविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदविषे रहता है, यह बात मूर्ख भी जाणता है, जो जैसा वेग मनविषे तीव्र होता है, तिसकी सिद्धता होती है, सोइ भासता है और नहीं भासता ॥ हे रामजी! सर्व अनर्थोंका कारण संग है, संसारके संगकरि जन्ममरणके बंधनकों प्राप्त होता है, तातें सब अनर्थोंका संसारका कारण संग है, सब इच्छाका कारण संग है, अरु सब आपदाका कारण संग है, संगत्यागकरि मोक्षरूप अजन्मा होता है, तातें संगकों त्यागिकरि जीवन्मुक्त होइकरि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व संशयरूपी कुहाडके नाशकर्ता शरत्कालका पवन, संग किसकों कहते हैं, संक्षेपतें मुझकों कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावअभाव जो पदार्थ हैं, सो हर्षशोककों देणेहारे हैं, जिस मलीन वासनाकरि यह प्राप्त होता है, सो वासना संग कहाता है ॥ हे रामजी! जो देहविषे अहंबुद्धि होती है, अरु संसारकी सत्य प्रतीति होती है, तिस संसारके इष्ट अनिष्टकों राग दोष सहित ग्रहण करता है, ऐसी जो मलिन वासना संग कहाता है, अरु जीवन्मुक्तकी वासना हर्षशोकतें रहित शुद्ध होती है, सो निःसंग कहाता है, तिसकी वासना जन्ममरण नहीं होती॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों देहविषे अ

भिमान नहीं होता, अरु स्वरूपविषे स्थित है, शरीरके इष्ट अनिष्टविषे राग दोष नहीं करता, उसकी शुद्ध वासना है, उह जो कर्त्ता है, सो बंधनका कारण नहीं होता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे ज्ञानवान्की वासना जन्ममरणका कारण नहीं होती, अरु जिसकी वृत्ति जगत्के पदार्थविषे स्थित है, अरु रागदोष करि ग्रहण त्याग करता है, ऐसी जो मलिन वासना है, सो जन्मोंका कारण है, इस वासनाकों त्यागिकरि जब तूं स्थित होवैगा, तब तूं कर्त्ता हुआ भी निर्लेप रहेगा, हर्ष शोकादि विकारोंतें जब तूं रहित होवैगा, तब वीतराग भय क्रोधतें असंग होवैगा ॥ हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ सो जीवन्मुक्त हुए हैं, तातें तूं भी वीतराग होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवहु, जीवन्मुक्त पुरुष इंद्रियोंके ग्रामकों निग्रह करिके स्थित होता है, अरु मान मद वैरकों त्यागिकरि संतापतें रहित स्थित होता है, जो कछु कर्म करते हैं, सो सब आत्मा जाणी करते हैं, परंतु व्यवहारबुद्धितें रहित असंग होइकरि कर्म करते हैं, सो करते भी अकरते हैं, तिसकों आपदा अथवा संपदा प्राप्त होवै, अपणे स्वभावकों नहीं त्यागते, जैसे क्षीरसमुद्रकों मंदराचल पर्वत पाइकरि शुक्लताकों न त्यागता भया, तैसे जीवन्मुक्त अपणे स्वभावकों नहीं त्यागते ॥ हे रामजी ! आपदा प्राप्त होवै अथवा चक्रवर्ति राज्य प्राप्त होवै, अथवा सर्पका शरीर प्राप्त होवै, अथवा इंद्रका शरीर प्राप्त होवै, इन सबविषे सम आत्मभाव स्थित होते हैं, हर्ष शोककों नहीं प्राप्त होते हैं, अरु सर्व आरंभकों त्यागिकरि नानात्व भावतें रहित स्थित होते हैं, विचार करिके जिननें आत्मतत्त्व पाया है, जैसे स्थिति होवै, तैसे स्थित होवै, तुम भी इसी दृष्टिकों पाइकरि आत्मतत्त्वकों देखौ, तब वीतज्वर होवैगा, आत्मपदकों पाइकरि बहुरि जन्ममरणके बंधनमें न आवैगा ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षे देवदूतोक्तमहारामायणे मोक्षोपायो नाम ऊननवतितमः सर्गः ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणं पंचमं समाप्तम् ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणं षष्ठं प्रारभ्यते ॥

अनुक्रमणिका– (निर्वाण प्रकरण).

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१	दिवसरात्रिव्यापारव०	१	२४	परमार्थयोगोपदेश	३०	४७	ब्रह्मैक्यताप्रतिपादन	६४	७०	हस्त्याख्यान	१११
२	विश्रामदृढीकरण	२	२५	देहसत्ताविचार	३३	४८	स्मृतिविचारयोग	६५	७१	हस्तिवृत्तांत	११२
३	ब्रह्मैकप्रतिपादन	४	२६	वसिष्ठाश्रमवर्णन	३७	४९	संवेदनविचार	६६	७२	शिखरध्वजसर्वत्याग	११३
४	चित्तभावाभाववर्णन	५	२७	रुद्रवसिष्ठसमागम	३७	५०	यथार्थोपदेश	६८	७३	चित्तत्यागवर्णन	११५
५	राघवविश्रांति	५	२८	ईश्वरोपाख्याने जग०	३९	५१	नारायणावतार	७१	७४	राजाविश्रांतिवर्णन	११७
६	अज्ञानमाहात्म्य	६	२९	वसिष्ठेश्वरसंवादे चैत०	४०	५२	अर्जुनोपदेश	७२	७५	शिखरध्वजविश्रांतिव०	११९
७	अविद्यालता	९	३०	ईश्वरोपाख्याने मन०	४३	५३	अर्जुनोपदेशे सर्वब्र०	७५	७६	शिखरध्वजबोधन	१२०
८	अविद्यानिराकरण	१०	३१	देहपातविचार	४६	५४	जीवनिर्णय	७६	७७	शिखरध्वजप्रथमबोध	१२२
९	अविद्याचिकित्सा	११	३२	दैवप्रतिपादन	४७	५५	श्रीकृष्णसंवादे अर्जु०	७८	७८	शिखरध्वजबोध	१२३
१०	जीवन्मुक्तिनिश्चयोप०	१३	३३	ईश्वरो०परमेश्वरोपदेश	४९	५६	श्रीकृष्णार्जुनसंवादेभ०	७९	७९	शिखरध्वजबोध	१२४
११	जीवन्मुक्तिनिश्चयव०	१६	३४	देवनिर्णय	५०	५७	प्रत्यक्आत्मबोध	८०	८०	परमार्थोपदेश	१२५
१२	ज्ञानज्ञेयविचार	१७	३५	महेश्वरवर्णन	५१	५८	विभूतियोगोपदेश	८२	८१	शिखरध्वजबोध	१२६
१३	भुषंडोपाख्याने सुमेरु०	१७	३६	नीतिनृत्य	५२	५९	जागृत्स्वप्नविचार	८३	८२	शिखरध्वजस्त्रीप्राप्ति	१२८
१४	भुषंडदर्शन	१८	३७	अंतर्बाह्यपूजा	५२	६०	ब्रह्मैक्यप्रतिपादन	८३	८३	विवाहलीलाव०	१३२
१५	भुषंडसमागम	१९	३८	देवार्चनाविधान	५३	६१	वैतालप्रश्नोक्ति	९०	८४	मायाशक्रागमन	१३३
१६	भुषंडोपाख्याने अस्ता०	१९	३९	देवपूजाविचार	५५	६२	राजवैतालसंवादेवै०	९१	८५	मायापिंजर	१३४
१७	संतमाहात्म्य	२१	४०	जगन्मिथ्यात्वप्रतिपा०	५६	६३	भगीरथोपदेश	९२	८६	चूडालाप्राकट्य	१३५
१८	भुषंडोपाख्याने जीव०	२३	४१	परमार्थविचार	५८	६४	निर्वाणवर्णन	९४	८७	शिखरध्वजचूडालाख्या०	१३७
१९	चिरअतीतवर्णन	२४	४२	विश्रांत्यागमन	५९	६५	भगीरथोपाख्यानस०	९४	८८	बृहस्पतिबोधन	१३८
२०	भुषंडोपाख्याने संक०	२५	४३	चित्तसत्तासूचन	६०	६६	शिखरध्वजचूडाला०	९५	८९	मिथ्यापुरुषाकाशर०	१३९
२१	भुषंडोपाख्याने प्राण०	२६	४४	बिलोपाख्यान	६१	६७	चूडालाप्रबोध	९६	९०	मिथ्यापुरुषोपाख्यान०	१४०
२२	भुषंडोपाख्याने चिरं०	२८	४५	शिलाकोशोपदेश	६२	६८	अग्निसोमविचारयोग	९७	९१	परमार्थयोगोपदेश	१४१
२३	भुषंडोपाख्यानसमाप्ति	२९	४६	सत्तोपदेश	६३	६९	चिंतामणिवृत्तांतव०	१०४	९२	महाकर्त्तादिउपदेश	१४३

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
९३	कलनानिषेध	१४४	११८	विश्वपरिणाम	१८२	१४३	सुखेनयोगोपदेश	२१४	१६७	मोक्षोपदेश	२
९४	संतलक्षणमाहात्म्य	१४६	११९	जगताभावप्र०	१८३	१४४	मंकीऋषिपरमवैराग्य	२१७	१६८	विवेकदूतवर्णन	४
९५	इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेश	१४८	१२०	पिंडनिर्णय	१८५	१४५	मंकीऋषिवैरागयोग	२१९	१६९	सर्वसत्तोपदेश	६
९६	राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्ष०	१४९	१२१	बृहस्पतिबलसंवाद	१८६	१४६	मंकीऋषिप्रबोधन	२२०	१७०	सप्तप्रकारजीवसृष्टि०	८
९७	मनुइक्ष्वाकूपाख्याने०	१५२	१२२	बृहस्पतिबलसंवाद	१८७	१४७	मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्ति	२२२	१७१	सर्वशांत्युपदेश	९
९८	परमनिर्वाणवर्णन	१५४	१२३	चित्ताभावप्र०	१८८	१४८	सुखेनयोगोपदेश	२२३	१७२	ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादन	११
९९	मोक्षरूपवर्णन	१५५	१२४	पंचमभूमिका	१८९	१४९	निरासयोगोपदेश	२२४	१७३	निर्वाणवर्णन	१३
१००	परमार्थोपदेश	१५६	१२५	षष्टोभूमिकोपदेश	१९०	१५०	भावनाप्रतिपादनो०	२२६	१७४	द्वैतएकताप्रतिपादन	१३
१०१	समाधानवर्णन	१५८	१२६	सप्तमभूमिकालक्षण०	१९२	१५१	हंससंन्यासयोग	२२८	१७५	परमशांतिनिर्वाण	१४
१०२	मनुइक्ष्वाकुसंवादस०	१६०	१२७	संसरणाभाव	१९२	१५२	निर्वाणयुक्तिउपदेश	२२९	१७६	आकाशकुटीवसिष्ठ	१५
१०३	ज्ञानिलक्षणविचार	१६१	१२८	इच्छाचिकित्सोपदेश	१९३	१५३	शांतिस्थितियोगोप०	२३१	१७७	विदितवेदाहंकार	१६
१०४	कर्माकर्मविचार	१६२	१२९	कर्मबीजदाहोपदेश	१९५	१५४	परमार्थयोगोपदेश	२३३	१७८	ब्रह्मजगेदकताप्रति०	१८
१०५	तुरीयापदविचार	१६५	१३०	अहंकारनाशविचार	१९६	१५५	परमार्थयोगोपदेश	२३५	१७९	जगतजालसमूह	१९
१०६	काष्ठमौनिवृत्तांत	१६६	१३१	विद्याधरवैराग	१९८	१५६	इच्छानिषेधयोगोपदेश	२३६	१८०	जगतजालसमूह	२०
१०७	अविद्यानाशरूप०	१६७	१३२	संसारवृक्ष	२०२	१५७	जगत्उपदेश	२३७	१८१	बोधजगतएकताप्रति०	२२
१०८	जीवत्वाभावप्रतिपादन०	१६८	१३३	संसाराडंबरोपदेश	२०२	१५८	परमनिर्वाणयोग०	२४१	१८२	जगतएकताप्रतिपाद०	२४
१०९	सारप्रबोध	१६९	१३४	चित्तचमत्कार	२०३	१५९	वसिष्ठगीतोपदेश	२४२	१८३	विद्याधरीविशोकव०	२५
११०	ब्रह्मैकत्वप्रतिपादन	१७०	१३५	सर्गोपसर्गोपदेश	२०४	१६०	संसारोपदेश	२४४	१८४	विद्याधरीवेग	२९
१११	निर्वाणवर्णन	१७२	१३६	यथाभूतार्थभावरूप	२०५	१६१	जगतउपशमयोगो०	२४५	१८५	विद्याधरीअभ्यास	३०
११२	तृतीयभूमिकालक्षण	१७३	१३७	इंद्रोपाख्यानेत्रसरेणु	२०६	१६२	पुनःनिर्वाणोपदेश	२४५	१८६	प्रत्यक्षप्रमाणजगतनि०	३२
११३	तृतीयभूमिकाविचार	१७५	१३८	संकल्पासंकल्पएकता	२०७	१६३	ब्रह्मैकताप्रतिपादन	२४७	१८७	शिलांतरवसिष्ठब्रह्मता	३४
११४	विश्ववासनारूपवर्णन	१७७	१३९	भुषंडविद्याधरोपा०	२०८	१६४	हरिणोपाख्याने वृ०	२५०	१८८	अन्यजगतप्रलयवर्ण०	३७
११५	सृष्टिनिर्वाणैकता०	१७८	१४०	अहंकारासत्ययोगो०	२०९	१६५	मनमृगोपाख्यानयो०	२५१	१८९	निर्वाणवर्णन	३८
११६	विश्वकाशैकताप्र०	१७९	१४१	विराटआत्मवर्णन	२१०		**उत्तरार्धस्य अनु०**		१९०	विराटआत्मावर्णन	३९
११७	विश्वविलय	१८०	१४२	ज्ञानबंधयोग०	२१३	१६६	स्वभावसत्तायोगोप०	१	१९१	विराटशरीरवर्णन	४१

सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक	सर्गांक	सर्गनाम	पृष्ठांक
१९२	जगत्ब्रह्मप्रलय	४२	२१७	विश्वाभावप्रतिपा०	८८	२४२	सिद्धनिर्वाण	१३६	२६७	कुंददंतोपदेश	१८०
१९३	ब्रह्मजलप्रलयवर्णन	४२	२१८	विपश्चितसमुद्रप्राप्ति	८९	२४३	विपश्चितदेशांतभ्रम	१३९	२६८	कुंददंतविश्रामप्राप्ति	१८३
१९४	वासनाक्षयप्रति०	४३	२१९	जीवन्मुक्तिलक्षण	९१	२४४	स्वर्गनरकप्रारब्ध	१४१	२६९	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	१८४
१९५	जगत्मिथ्यात्वप्रतिपा०	४४	२२०	विपश्चितोपाख्याने ब्र०	९८	२४५	निर्वाणोपदेश	१४४	२७०	जीवसंसारवर्णन	१८८
१९६	देवीरुद्रोपाख्यान	४६	२२१	विपश्चितशरीरप्राप्ति	१००	२४६	अविद्यानाशोपदेश	१४५	२७१	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	१९०
१९७	अंतरोपाख्यान	४७	२२२	वटधानोपाख्यान	१०३	२४७	इंद्रियजयव०	१४७	२७२	विद्यावादबोधोपदेश	१९१
१९८	पुरुषप्रकृतिविचार	४८	२२३	विपश्चितकथावर्णन	१०४	२४८	ब्रह्मजगत्एकताप्र०	१४९	२७३	रामविश्रांतिव०	१९६
१९९	अनंतजगत्वर्णन	५३	२२४	महाशववृत्तांत	१०६	२४९	जागृत्स्वप्नप्रति०	१५०	२७४	रामविश्रांतिव०	१९६
२००	अंतरोपाख्याने पृथ्वी	५५	२२५	स्वयंमाहात्म्य	१०७	२५०	शिलोपाख्यानसमाप्ति	१५१	२७५	रामविश्रांतिव०	१९८
२०१	अंतरोपाख्यानजलरूप	५६	२२६	मच्छरव्याधि	१०८	२५१	जागृत्स्वप्नसुषुप्त्यभा०	१५२	२७६	रामविश्रांतिव०	१९९
२०२	अंतरोपाख्याने चिद०	५७	२२७	हृदयांतरस्वप्नमाहात्म्य०	११०	२५२	सालभजनकोपदेश	१५४	२७७	चिंतामणिप्राप्ति	२००
२०३	ब्रह्मजगत्एकताप्र०	५९	२२८	हृदयांतरप्रलयाग्निदाह	११४	२५३	जीवन्मुक्तलक्षण	१५७	२७८	गुरुशास्त्रोपमा	२०१
२०४	आकाशकुटीसिद्ध०	६०	२२९	कर्मनिर्णय	११६	२५४	जीवन्मुक्तबाह्यलक्षण	१५८	२८९	विश्रामप्रकटीकरण	२०२
२०५	अंतरोपाख्यान	६३	२३०	महासवोपाख्याने नि०	११८	२५५	द्वैतएकताभाव	१६०	२८०	निर्वाणवर्णन	२०७
२०६	अंतरोपाख्यानवर्णन	६६	२३१	कार्यकारणाकारण०	१२१	२५६	स्मृतिअभावजगतप्र०	१६१	२८१	चिदाकाशजगतैक०	२०८
२०७	जीवन्मुक्तसंज्ञा	६७	२३२	जागृत्स्वप्नसुषुप्तिवि०	१२३	२५७	ब्रह्मजगत्एकताप्र०	१६३	२८२	जगदाभाव	२०९
२०८	जीवन्मुक्तिव्यवहार	७०	२३३	जागृत्स्वप्नसुषुप्ति	१२३	२५८	ब्रह्मगीतापरमनिर्वाण	१६४	२८३	राजाप्रश्नव०	२११
२०९	परमार्थरूपवर्णन	७१	२३४	सुषुप्तिवर्णन	१२५	२५९	परमार्थगीता	१६६	२८४	प्रश्नोत्तरव०	२१२
२१०	नास्तिकवादनिराकरण	७२	२३५	सुषुप्तिवर्णन	१२६	२६०	ब्रह्मांडोपाख्यान	१६८	२८५	प्रश्नोत्तरद्वि०	२१३
२११	परमोपदेश	७५	२३६	स्वप्ननिर्णय	१२७	२६१	ब्रह्मगीताव०	१६९	२८६	प्रश्नोत्तरसमाप्ति०	२१४
२१२	चेतनाकाशपरमज्ञान	७६	२३७	स्वप्नविचार	१२९	२६२	इंद्राख्यान	१७१	२८७	पूर्वरामकथाव०	२१५
२१३	सर्वपदार्थाभाव	८०	२३८	रात्रिसंवाद	१३०	२६३	सर्वब्रह्मप्रतिपादन	१७३	२८८	उत्साहवर्णन	२१७
२१४	जागृत्स्वप्नैकताप्र०	८४	२३९	रात्रिप्रबोध	१३३	२६४	ब्रह्मगीतागौरीबाग	१७४	२८९	ग्रंथप्रशं०मोक्षोपा०	२१८
२१५	जगत्निर्वाणप्र०	८६	२४०	यथार्थोपदेश	१३४	२६५	ब्राह्मणकथा	१७७			
२१६	कारणकार्याभाव	८७	२४१	भविष्यतकथा	१३४	२६६	ब्राह्मणभविष्यतराज्य	१७८			

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणं षष्ठं प्रारभ्यते ॥ वाल्मीक उवाच ॥ ॥ हे भारद्वाज ! उपशम प्रकरणके अनंतर तूं निर्वाण प्रकरण सुण, जिसके जाननेकरि तूं निर्वाण पदकों प्राप्त होवैगा, बडे उत्तम वचन मुनिनायकनें रामजीप्रति कहे हैं, सो रामजी कैसे हैं, जो मुनिश्वरनें वाक्य अर्थ कह्या है, तिसविषे सब औरतें मनकों खैंचिकरि जिसनें स्थापित किया है, अरु और भी जो राजा लोक हैं, सो सब निस्पंद हो रहे हैं, मानौं कागद उपर मूर्तियां लिख छोडियां हैं; ऐसे होकरि वसिष्ठजीके वचनों कों विचारते हैं, अरु जेते राजकुमार हैं, सो विचारते हैं, अरु कंठोंकों हिलावते हैं, शिर अरु भुजाकों फेरते हैं, अरु विस्मयकों प्राप्त हुवे हैं, तिसकरि प्रसन्नताकों प्राप्त हुवे हैं, इह जगत् सत्य जानीकरि विचरते थे सो हैही नहीं, ऐसे आश्चर्यविषे आश्चर्यकों प्राप्त हुवे हैं, तब दिनका चतुर्थ भाग अंत रह्या, अरु सूर्य अस्त हुआ मानौं वसिष्ठजीके वचन सुणिकरि इसकों फल लगा है, सब तेज क्षीण होगया है, अरु शीतलता आनि प्राप्त भई है, अरु स्वर्गतें जो सिद्ध देवता आये थे, तिनके गलेविषे मंदार आदिक वृक्षोंके फूल थे, पवनके चलणेकरि सब स्थान सुगंधित होत भये, अरु भमरे फूलोंपर गुंजारव शब्द करे हैं, अरु झरोंखेके मार्गसों सूर्यकी किरणां आवैं हैं, तिनकरि कमलफूल सूर्यमुखी राजा अरु देवताके शीस उपर थे, सो सूकके चलणे लगे, जैसे मनसों जगत्की सत्ता निवर्त्त होवै, अरु वृत्ति सकुचती जाती है, तैसे सूकते जाते हैं, अरु बालक जो सभाविषे बैठे थे, अरु पिंजरोंविषे पक्षी बैठे थे, खेलणेकूं, तिसके भोजनका समा हुआ, बालकोंके भोजननिमित्त माता उठियां, अरु चोथे प्रहर राजाकी नोबत; नगारे; भेरी; शरनाई बाजणे लगियां, वसिष्ठजी जो बडे उंचे स्वरसाथ कथा करता था, तिसका शब्द नगारे वाजित्रोंकरि आच्छादि गया; जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जता है, अरु मोर तूष्णीं हो जाते हैं, तैसे वसिष्ठजी तूष्णीं हो गये; ऐसा शब्द हुआ जिसकरि आकाश पृथ्वी सब दिशा भर रही, पिंजरेविषे पक्षी भडभड शब्द करणे लगे पंखोंकों पसार

करि जैसे भूकंप हुएतें लोक कंपते शब्द करते हैं, तैसे पक्षी भडकणे लगे, बालक थे सो माताकी त्वचासाथ मिल गये, बडा शब्द हुआ, तिसके अनंतर मुनिशार्दूल वसिष्ठजी बोले सबके मध्यविषे ॥ हे निःपाप रघुनाथ! मैं तेरे चित्तरूपी पक्षीके फसावणे निमित्त अपणे वाक्रूपी जाल पसारी है, तिसतें अपणे चित्तकों वश करिके आत्मपदविषे जोड ॥ हे रामजी! इह जो मैं तुझकों उपदेश किया है, तिसका जो सार है, तिसविषे दुर्बुद्धिकों त्यागकरि चित्तकों लगाव, जैसे हंस जलकों त्यागिकरि दूधकों पान करता है, तैसे सब उपदेश आदितें लेकरि अंतपर्यंत वारंवार विचारकरि सारकों अंगीकार कर, इस प्रकार संसारसमुद्रतें पार उतरिकरि परम पदकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा न होवैगा ॥ हे रामजी! जो इन वचनोंकों अंगिकार करैगा, तब संसारसमुद्रकों तर जावैगा, अरु जो अंगीकार न करैगा, तब नीचगतिकों प्राप्त होवैगा, जैसे विंध्याचल पर्वतकी खातविषे हस्ती गिर्या कष्ट पावता है, तैसे संसारविषे कष्ट पावैगा॥ हे रामजी! इह जो मेरे वचन हैं, इनकों ग्रहण न करैगा, तब अधकों गिरैगा, जैसे पंथी हातविषे दीपक त्यागिकरि रात्रिकेविषे टोहेपर गिरता है, तैसे गिरैगा, अरु जो असंग होकरि व्यवहारविषे विचरैगा, तब आत्मसिद्धताकों प्राप्त होवैगा, इह जो मैं तुझकों तत्त्वज्ञान अरु मनोनाश अरु वासनाक्षय कहे हैं, इह अभ्यासकरि सिद्धताकों प्राप्त होवैगा, इह शास्त्रका सिद्धांत है ॥ हे सभा! हे महाराजो राम लक्ष्मण भूपती! जो कछु मैंनें तुमकों कहा है, तिसकों तुम विचारौ, अरु और जो कछु कहणां है, सो प्रातःकालकों कहौंगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! इस प्रकार जब मुनीश्वरनें कह्या, तब सब सभा उठ खडी हुई, अरु वसिष्ठके वचनोंकों पाइकरि सब खिल आये, जैसे सूर्यकों पाइकरि कमल खिलि आता है, तैसे सब खिलि आये, अरु वसिष्ठ विश्वामित्र दोनों एकठे उठे, वसिष्ठजी विश्वामित्रकों अपणे आश्रमकों ले गये, अरु आकाशचारी जो देवता थे, अरु सिद्ध थे, सो वसिष्ठजीकों नमस्कार करिके अपणे अपणे स्थानोंकों गये, राजा दशरथ अर्घ

पाद्यकरि वसिष्ठजीकों पूजत भया, पूजाकरि अपणे अंतःपुरविषे गया, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि वसिष्ठजीकों पूजत भये, पूजाकरि अपणे अंतःपुरविषे गया, और श्रोता भी आज्ञा लेकरि अपणे अपणे स्थानोंकों गये, राजकुमार अपणे मंडलकों गये, मुनीश्वर वनकों गये, राम लक्ष्मण शत्रुघ्न वसिष्ठजीके आश्रमकों गये, पूजा करिके बहुरि अपणे ग्रहमें आये, तब श्रोता अपणे अपणे स्थानकों जाइकरि स्नानसंध्यादिक कर्म करते भये, बहुरि पितृदेवताकों पूजते भये, बहुरि ब्राह्मणतें लेकरि भृत्यपर्यंत सबकों भोजन कराइकरि अपने मित्र भाइ साथ भोजन किया, बहुरि यथाशक्ति अपणे वर्णाश्रमके धर्मकों साधते भये, तब सूर्य भगवान् अस्त हुए, दिनकी क्रिया निवर्त्त हो गई, रात्र आनि प्राप्त भई, निशाचर आय विचरणे लगे, तब भूचर अरु राजर्षि ब्रह्मर्षि राजपुत्र जेते कछु श्रोते थे सो रात्रकों एकात बैठिकरि अपनी शय्या बिछाइकरि विचारते भये, राजकुमार राजा अपणे स्थानोंपर बैठे, ब्राह्मण तपस्वी सो कुशादिकबिछाइकरि विचारते भये, जो संसारके तरणेका उपाय क्या कहे हैं, वसिष्ठजीनें वचन कहे हैं, तिनविषे भले प्रकार चित्तकों एकाग्र करते भये, एक प्रहर भले प्रकार विचारकरि निद्राकों प्राप्त भये, जैसे सूर्य उदय हुए पद्मिनीयां मूंदियां जातियां हैं, तैसे सुषुप्तिकों प्राप्त भये, अरु राम लक्ष्मण शत्रुघ्न तीन प्रहर वसिष्ठजीके उपदेशकों विचारते रहे, अर्ध प्रहर सोए, बहुरि उठे, इस प्रकार सब विचारपूर्वक रात्रकों चिंतायुक्त भये, प्रातःकाल होणेपर आया, सूर्यके प्रकाशकरि चंद्रमाकी कांति जाती रहि, चंद्रमुखी कमल मूंदे गये॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे दिवसरात्रिव्यापारवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः॥ १॥ ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच॥ हे साधो! इस प्रकार रात्र व्यतीत भई, तमका पटल निवर्त्त हुआ, तब राम लक्ष्मण शत्रुघ्न उठिकरि स्नान करते भये, संध्यादिक कर्म किये, बहुरि वसिष्ठजीके आश्रमकों गये, तहां जाइ स्थित भये, बहुरि वसिष्ठजी संध्यादिक करिके अग्निहोत्र करणे लगे, जब करि चूके तब रामादिक वसिष्ठजीकों अर्घपा

द्यकरि पूजत भये, चरणोंपर भले प्रकार मस्तक राखा, जब रामजी गये थे, तब वसिष्ठजीके द्वारेपर मौन था, एक घडीविषे केई अनेक सहस्र जीव आनि प्राप्त भये, राजकुमार ब्राह्मण मुनीश्वर हस्ती घोडा रथ बहुत सेना आय प्राप्त भई, तब वसिष्ठजी रामादिककों साथ लेकरि राजा दशरथके ग्रहविषे आये, तब राजा दशरथ ताकूं सहाय लेणेकूं आगे आया, अरु वसिष्ठजीका आदरसाथ पूजन करत भया, और लोकोंनें भी बहुत पूजन किया, इस प्रकार सभाविषे आय प्राप्त हुए, तब नभचर अरु भूचर जेते कछु श्रोता थे, सो सब आय प्राप्त हुए, सभाविषे आइकरि नमस्कार करिके बैठ गये, जेते कछु सभाके लोक थे सो निस्पंद एकाग्र होइकरि स्थित भये, जैसे निस्पंद वायुकरि कमलोंकी पंक्ति अचल होती है, तैसे स्थित भये, भाट जन जो स्तुति करणेवाले थे, सो एक और स्थित भये, तब सूर्यकी किरणां झरोंखेके मार्ग आय प्राप्त भइयां, मानों किरणां भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करणे आइयां हैं, तब वसिष्ठजीकी और रामजी देखते भये, जैसे स्वामिकार्तिक शंकरकी और देखै, जैसे कच बृहस्पतीकी और देखै, जैसे प्रल्हाद शुक्रकी और देखै, तैसे वसिष्ठकी और रामजी देखते भये, जैसे भ्रमरा भ्रमता भ्रमता आकशमार्गतें कमलपर आय बैठता है, तैसे रामजीकी दृष्टि औरकों देखते देखते वसिष्ठजीपर आय स्थित भई, अरु वसिष्ठजी रामजीकी और देखत भये, देखीकरि बोलत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

॥ हे रघुनंदन! मैं जो तुमकों उपदेश किया है, सो तुम कछु स्मरण किया, जो इह वचन कहे हैं, कैसे कहे हैं, जो परमार्थबोधका कारण आनंदरूप महागंभीर कहे हैं, अब और भी बोधका कारण अरु अज्ञानरूप शत्रुके नाश करता इंदुप्रमाण वचन हैं, तिनकों सुन, आत्मसिद्धांत निरंतर शास्त्र तुझकों कहता हों ॥ हे रामजी! वैराग्य, अरु अभ्यास, अरु तत्त्वका विचार, इन करिके संसारसमुद्रकों तरता है; सम्यक् तत्त्वके बोधकरि दुर्बोध निवर्त्त हो जाता है, तब वासनाका आवेश नष्ट हो जाता है, अरु

निर्दुःख पदकों प्राप्त हो जाता है, कैसा पद है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सोइ ब्रह्म जगत् रूप होइकरि स्थित भया है, अरु भ्रम करिके द्वैतकी नांई भासता है, जो सब भाव करिके अविच्छिन्न है, सर्वत्र ब्रह्म है, इस प्रकार मत्स्वरूप जाणिकरि शांतिवान् होहु ॥ हे रामजी ! केवल ब्रह्मतत्त्व अपणे आप विषे स्थित है, न कछु चित्त है, न अविद्या है, न मन है, न जीव है, इह सब कलना ब्रह्मविषे भ्रम करिके पडी फुरती है, जो स्पंद फुरणा दृश्य है, अरु चित्त है, सो कलनारूप संभ्रम है, ब्रह्मतें इतर् पदार्थ कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! स्वर्ग पाताल भूमिविषे सदाशिवतें आदि अरु तृणपर्यंत जो कछु दृश्य है, सो सब परब्रह्म है, चिद्रूपतें अन्य कछु नहीं, उदासीन अरु मित्र बांधव आदितें लेकरि सब ब्रह्म है, जबलग अज्ञान कलना करि जगत्विषे स्थित बुद्धि है, अरु ब्रह्मभाव नानात्व है, तबलग चित्तादि कलना होती है, अरु जबलग देहविषे अहंभाव है, अरु अनात्म दृश्यविषे ममत्व है, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है, जबलग संतजन अरु सत्शास्त्रोंकरि उंचे पदकों नहीं प्राप्त भया, अरु मूर्खता क्षीण नहीं भई, तबलग चित्तादिक भ्रम होता है ॥ हे रामजी ! जबलग देहाभिमान शिथिलताकों नहीं प्राप्त भया, अरु संसारकी भावना नहीं मिटि, अरु सम्यक् ज्ञानकरिके स्थिति नहीं पाई, जबलग चित्तादिक प्रकट हैं, जबलग अज्ञान करिके अंध है, जबलग विषयोंकी आशाके आवेशकरि मूर्छित है, जबलग मोहमूर्छातें उठ्या नहीं, तबलग चित्तादिक कलना होती है ॥ हे रामजी ! जबलग आशारूपी विषकी गंध हृदयरूपी वनविषे होती है, तबलग विचाररूपी चकोर तहां नहीं प्राप्त होता, भोग वासना नहीं मिटती है, जब भोगोंकी आशा मिट जावै, अरु सत्य शीतलता संतुष्टता हृदयविषे आय प्राप्त होवै, तब चित्तरूपी भ्रम निवर्त्त हो जाता है, जब मोह अरु तृष्णा निवर्त्त करीये, अरु नित्य संवित होवै, तब चित्त शांत भूमिकाकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्थिति स्वरूपविषे भई है, सो आपकों देहतें दूर देखता है, तिस सम्यक् दर्शीके चित्तकी भूमिका क

ही है, जब अनंत चैतन्य तत्त्वकी भावना होती है, अरु दृश्यकों त्यागिकरि आत्मरूपविषे प्राप्त होता है, तब उह पुरुष सब जगत्कों आपणा अंगही देखता है, अर्थ यह जो सब अपणा स्वरूप देखता है, ऐसे जो आत्मरूप देखता है, तिसकों जीवत्वादिक भ्रम कहा है, जब अज्ञान भ्रम निवर्त्त होता है, तब परम अद्वैत पद उदय होता है, जैसे रात्रिके क्षीण हुए सूर्य उदय होता है, तैसे मोहके निवर्त्त हुए आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब चित्त नष्ट हो जाता है, जैसे सूका पत्र अग्निविषे दग्ध हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्त जो महात्मा पुरुष है, अरु परावरदर्शी है, सर्वत्र ब्रह्म जिसकों दृष्ट आया है तिसका चित्त सत्य पदकों प्राप्त होता है, सो चित्त सत्य कहाता है, अरु तिसविषे वासना भी दृष्ट नहीं आती है, सो चेतन मन है, उह चित्त सत्य पदकों प्राप्त भया है, इह, जगत् ज्ञानवान्कों लीलामात्र भासता है, अरु अंतरतें शांतरूप है, नित्य तृप्त है, सर्वदा उसकों आत्मज्योति भासती है, विवेक करिके उसके चित्तसों जगत्की सत्ता निवर्त्त हो गई है, अरु स्वरूपविषे स्थिति पाई है, सो चित्तसत्ता कहिती है, बहुरि उह कर्म चेष्टा करता भी दृष्ट आता है, अरु मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे भून्या बीज उगता नहीं, तैसे ज्ञानीकों चेष्टा जन्मका कारण नहीं, अरु जो अज्ञानी है, तिसकी वासना मोहसंयुक्त है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानी वासना करिके बहुरि बहुरि जन्म लेता है, अरु जिस चित्तसों आसक्ति निवर्त्त भई है, सो तिसकी वासना जन्मका कारण नहीं, उह चित्तसत्ता कहिती है ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषोंनें पावणेयोग पद पाया है, अरु ज्ञानाग्नि करिके चित्तकों दग्ध किया है, सो बहुरि जन्म नहीं लेता, जेता कछु जगत् है, सो तिसकों सब ब्रह्मरूप है, जैसे वृक्ष अरु तरु नाममात्र हैं, वस्तुतें एकही है, तैसे ब्रह्म अरु जगत् नामात्र दोनों हैं, वस्तुतें एकही है, जैसे जलविषे तरंग अरु बुदबुदे जलरूप हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, चेतन आत्मारूपी मिरच है, अरु जगत्रूपी तीक्ष्णता

है॥ हे रामजी! ऐसा ब्रह्म तूं है, अरु जो तूं कहै मैं चित्त नहीं, तौ कछु मान्या जाता है, क्यौं जो तूं कहै, मैं जड हों, तौ तूं आकाशवत् हुआ, तेरेविषे कलनाका उल्लेख कैसे होवै, अरु जो चेतन है तौ शोक किसका करता है, अरु जो चिन्मय है तौ निरायास आदि अंततें रहित हुआ, सब तूंही है, अपणे स्वरूपकों स्मरण करौ, तब शांतिकों प्राप्त होवैगा, जो सब भावविषे स्थित है, अरु सबकों उदय करणेहारा है, सो तूंही है, शांतरूप है, तूं चैतन्य ब्रह्मरूप है॥ हे रामजी! ऐसी जो चेतनरूपी शिला है, तिसके उदरविषे वासनारूपी फुरणा कहां होवै, उह तौ महाघनरूप है॥ हे रामजी! जो तूं है, सो सोई है, उस अरु तेरेविषे भेद कछु नहीं, सोई सत अरु असतरूप होइकरि भासता है, सब पदार्थ जिसके अंतर हैं, अरु नानात्व जिसविषे कछु नहीं, अहं त्वं अज्ञ तज्ज्ञ जिसविषे कलना कछु नहीं, ऐसा जो सत्यरूप चिद्घन आत्मा है, तिसकों नमस्कार है॥ हे रामजी! तेरी जय होवै, कैसा है तूं आदि अरु अंततें रहित विशाल है, अरु शिलाके अंतर्वत चिद्घनस्वरूप है, आकाशवत निर्मल है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, तैसे तेरेविषे जगत् है, सो लीलामात्र है, तूं अपणे घनस्वरूपविषे स्थित होहु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामदृढीकरणं नाम द्वितीयः सर्गः॥ २॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे निःपाप रामजी! जिस चेतनरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग फुरते हैं, अरु लीन हो जाते हैं, ऐसा अनंत आत्मा है, सो तूं भवकी भावनातें मुक्त है, अरु भाव अभावतें रहित है, ऐसा जो चिदात्मा तेरा स्वरूप है, सो सर्व जगत् उहीरूप है, तब वासनादिक आवरण कहां है, जीव अरु वासना सब आत्माका किंचन है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, तब अवर कथा प्रसंग कैसे होवै॥ हे रामजी! महासरल गंभीर प्रकाशरूप जो चैतन्यसमुद्र है, सो तेरा रूप है, अरु रामरूपी एक तरंग फुरि आया है, सो समुद्र तूं है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सोइ जगत्‌रूप होकरि व्यापारी भासता है, जैसे अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं अरु जैसे फुलतें सुगंधि भिन्न नहीं, जैसे कज्जलतें कृष्णता भिन्न नहीं,

अरु बरफतें शुक्लता भिन्न नहीं, जैसे गुडतें मधुरता भिन्न नहीं, जैसे सूर्यतें प्रकाश भिन्न नहीं तैसे ब्रह्मतें अनुभव भिन्न नहीं, नित्यरूप है, अनुभवतें अहं भिन्न नहीं, अहंतें जीव भिन्न नहीं, जीवतें मन भिन्न नहीं, मनतें इंद्रिय भिन्न नहीं, इंद्रियांतें देह भिन्न नहीं, देहतें जगत् भिन्न नहीं, इस प्रकार महाचक्र प्रवृत्तकी नांई हुआ है, सो कछु प्रवृत्त नहीं, न शीघ्र प्रवृत्या है, न चिरकालका प्रवृत्या है, न कोउ ऊन है, न अधिक है, सर्वदा एक अखंड सत्ता परमात्मतत्त्व है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, उही सत्ता वज्रभूत होकरि स्थित है, उही पूर्ण होकरि स्थित है, इतर द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे अपणे स्वरूपविषे जो पुरुष स्थित है, सो जीवन्मुक्त है, ऐसा जो ज्ञानवान् है, सो मन इंद्रियां शरीरकी चेष्टा भी कर्त्ता है, अरु उसकों कर्तव्यका लेप कछु नहीं लगता ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्कों न कछु त्यागणे योग्य रहता है, न ग्रहण करणे योग्य रहता है, सर्व पदार्थतें निर्लेप रहता है, जबलग इसकों ग्रहण त्यागकी बुद्धि होती है, तबलग संसारके सुखदुःखका भागी होता है, इस हेयोपादेयका जिसकों अभाव है, सो सुखदुःखका भागी नहीं होता ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो एक अद्वैत आत्मतत्त्व है, अन्यत कछु नहीं, जैसे घट मठकी उपाधिकरि आकाश नाना प्रकार भासता है, जैसे समुद्र तरंगकरि अनेकरूप भासता है, अरु नानात्वभावकों प्राप्त नहीं होता; तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु नानात्वकों नहीं प्राप्त होता; ऐसे स्वरूपकों जाणिकरि तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! अंतर प्रकाशकी नांई निर्मल स्थित होहु, अरु बाह्यतें अपणे वर्णाश्रमका व्यवहार करौ, काष्ठ पत्थरकी नांई अंतर हर्षशोकतें रहित स्थित होहु, संवितमात्र आत्माकों जो अपणा रूप देखता है, सोइ सम्यक्दर्शी है, तिसका, अज्ञान अरु मोह नष्ट हो जाता है, जैसे नदीका वेग मूलसहित तटके वृक्षकों काटता है, तैसे आत्मज्ञान मोहसहित अज्ञानकों काटता है, मित्रता वैर हर्ष शोक राग दो

ष आदिक जो विकार है, सो चित्तविषे रहते हैं, सो चित्त उसका नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानी सोता भी दृष्टि आता है, अरु सोता कदाचित् नहीं, जिसका अनात्मविषे अहंभाव निवृत्त भया है, अरु बुद्धि जिसकी लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष इस लोककों मारै तौ भी उसने कोउ नहीं मार्या अरु न उह बंधायमान होता है ॥ हे रामजी ! जो वस्तु होवै नहीं अरु भासै, तिसकों मायामात्र जाणियें, उसकों जाणेतें नष्ट हो जावैगी, जैसे तेलविना दीपक शांत हो जाता है, तैसे ज्ञानकरि वासना क्षय हो जाती है, चित्त अचित्त हो जाता है, जिसकों सुखदुःखविषे ग्रहण त्याग नहीं सो जीवन्मुक्त आत्मास्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकप्रतिपादनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मन बुद्धि अहंकार इंद्रियांदिक जो दृश्य है, सो सब अचिंत्य चिन्मात्र है, जीव भी अभिन्नरूप है जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं तैसे चिन्मात्र अरु जीवादिक अभिन्न है, जबलग चित्त अज्ञानमें होता है, तबलग जगत्का कारण होता है, जब अज्ञान नष्ट होता है, तब चित्तादिकका अभाव हो जाता है, अध्यात्मविद्या जो वेदांतशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि नष्ट हो जाता है, जैसे अग्निके तेजकरि शीतका अभाव हो जाता है, तैसे अध्यात्म विद्याके अभ्यास विचारतें अज्ञान नष्ट हो जाता है, जबलग अज्ञानका कारण तृष्णा उपशमकों प्राप्त नहीं भई, तबलग अज्ञान है, जब तृष्णा नाश होवै, तब जाणिये जो अज्ञानका अभाव भया है ॥ हे रामजी ! तृष्णारूपी विषूचिका रोग है, तिसके नाश करणेका मंत्र अध्यात्मशास्त्र है, तिसके अभ्यासकरि तृष्णा क्षीण हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे आत्म आभ्यासकरि चित्त शांत हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे विचारकरि मूर्खता नष्ट हो जाती है, जब चित्त अचित्तताकों प्राप्त होता है, तब वासनाभ्रम क्षीण हो जाता है, जैसे तागेसाथ मोती परोये होते हैं, तागेके टूटेतें मोती भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे अज्ञानके नष्ट हुवे मनादिक

सब नष्ट हो जाते हैं, अरु जो पुरुष अध्यात्मशास्त्रके अर्थकों नहीं धारते, अरु प्रीति नहीं करते सो पापी कीटादिक नीचयोनिकों प्राप्त होवैंगे ॥ हे कमलनयन ! तेरेविषे जो कछु मूर्खता चंचलता थी सो नष्ट हो गई है, जैसे पवनके ठहरेतें जल अचल होता है, तैसे तूं स्थिरताकों प्राप्त भया है, भावअभावरहित परम आकाशवत् निर्मल पदकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! ऐसे मैं मानता हौं, जो मेरे वचनोंकरि तूं बोधकों प्राप्त हुआ है, अरु विस्तृत अज्ञानरूपी निद्रातें जाग्या है, सामान्य जीव भी हमारी वाणीकरि जागि आते हैं, तूं तौ अति उदार बुद्धि है, तेरे जागणेविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! जब गुरु भी दृढ होता है, अरु शिष्य भी शुद्ध पात्र होता है, तब गुरुके वचन उसके अंतर प्रवेश करते हैं, सो मैं गुरु भी समर्थ हौं, जो मुझकों अपणा स्वरूप सदा प्रत्यक्ष है, अरु सत्शास्त्रके अनुसार मैं वचन कहे हैं, अरु तेरा हृदय भी शुद्ध है, तिसविषे प्रवेशकरि गये हैं, जैसे तृप्त पृथ्वीके क्षेत्रविषे जल प्रवेशकरि जाता है, तैसे तेरेविषे वचनोंनें प्रवेश किया है ॥ हे राघव ! हम महानुभाव रघुवंश कुलके बडे गुरुके गुरु हैं, हमारे वचन तुमकों धारणे आते हैं, अरु खेदतें रहित होकरि अपणे प्रकृत आचारकों करौ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार मुनीश्वरनें जब कह्या तब सूर्य अस्त होणे लगा, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके अपणे स्थानकों गई, रात्रिके व्यतीत हुवे सूर्यकी किरणांसाथ बहुरि आय बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावाभाववर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! मैं परम स्वस्थताकों प्राप्त भया हौं, अब अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु तुमारे वचनोंकी भावनाकरि जगतजाल स्थित हुवे भी मुझकों शांत हो गई है, अरु आत्मानंदकरि तृप्त भया हौं, जैसे बडी वर्षाकरि पृथ्वी तृप्त होती है, तैसे मैं तृप्त सम शीतल भया हौं, अरु प्रसन्नताकों पायकरि स्थित हौं, अरु सर्व उरतें केवल आत्मरूप मुझकों भासता है, नानात्वका अभाव भया है, जैसे कुहिडतें रहित दिशा अरु आकाश निर्मल भासता है, तै

से सम्यक्ज्ञानकरि मुझकों शुद्ध आत्मा भासता है, अरु मोह निवृत्त हो गया है, मोहरूपी जंगलविषे तृष्णारूपी मृग था, अरु रागद्वेष आदिक धूर कुहिड थी, सो सब निवृत्त हो गये हैं, ज्ञानरूपी वर्षाकरि सब शांत हो गये हैं, अब मैं आत्मानंदकों प्राप्त भया हौं, जो आदिअंततें रहित है, अरु अमृत है, अमृतका स्वाद भी तिसके आगे तुच्छ भासता है, ऐसे आनंद अपणे स्वभावकों प्राप्त भया हौं, मैं राम हौं, अर्थ यह जो सबविषे रमणेहारा हौं, मेरा मुझकों नमस्कार है, अब मैं सर्व संदेहतें रहित हौं, सब संशय अरु विकार मेरे नष्ट भये हैं, जैसे प्रातःकालकरि निशाचर वैताल आदिक निवृत्त हो जाते हैं, तैसे मेरे रागद्वेषादिक विकारका अभाव भया है, निर्मल विस्तीर्ण हिमकी नांई हृदयकमलविषे स्थित हौं, जैसे भंवरा फिरता फिरता कमलविषे आय स्थित होता है, तैसे मैं आत्मरूपी सारविषे स्थित हौं, अविद्यारूपी कलंक आत्माकों कहां था, मैं तौ निश्चयकरि निर्मलताकों प्राप्त भया हौं, जैसे सूर्यके उदय हुए तमका अभाव हो जाता है, तैसे मेरे संशय अरु अविद्या नाश भई है, सर्व आत्मा भासता है, अरु कलना कोउ नहीं, भावित आकार अपणे स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, पूर्व प्रकृतिकों देखिके हसता हौं, जो क्या जानता था, अरु क्या करता था, मैं तौ नित्य शुद्ध ज्यौंका त्यौं आदिअंततें रहित हौं ॥ हे मुनीश्वर! तेरे वचनरूपी अमृतके समुद्रविषे मैं स्नान किया है, तिसकरि अजर अमर आनंद पदकों प्राप्त भया हौं, अरु सूर्यतें भी उंचे पदकों प्राप्त भया हौं, अरु वीतशोक होकरि परमशुद्धता समता शीतलता अनुभव अद्वैतकों प्राप्त भया हौं

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राघवविश्रांतिवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो! बहुरि भी मेरे परम वचन सुण, तेरे हितकी कामना करिके मैं कहता हौं, अब आत्मपदकों तूं प्राप्त भया है, परंतु बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि सुण, जिसके श्रवण करि अल्पबुद्धि भी आनंद पदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसकों अनात्मविषे आत्मअभिमान है, अरु आत्मज्ञान

नहीं, तिसकों इंद्रियारूपी शत्रु दुःख देते हैं, जैसे निर्बल पुरुषकों चोर दुःख देते हैं, तैसे अज्ञानीकों इंद्रियां दुःख देतिया हैं, अरु जिसकों आत्मपदाविषे स्थिति भई है, तिसकों इंद्रियां नहीं दुःख देतियां, जैसे दृढ राजाके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, तैसे ज्ञानवानके इंद्रियगण मित्र होते हैं, अरु जिस पुरुषकों देहविषे स्थित बुद्धि है, अरु इंद्रियांके विषयकी सेवना करते हैं, तिसकों बडे दुःख प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! आत्मा अरु शरीरका संबंध कछु नहीं, यह परस्पर विलक्षण स्वभाव है, जैसे तम अरु प्रकाश विलक्षण स्वभाव हैं, तैसे आत्मा अरु देहका परस्पर विलक्षण स्वभाव है, आत्मा सर्व विकारतें रहित नित्यमुक्त है, अरु उदय अस्ततें रहित सबसों निर्लेप है, सदा ज्योंका त्यों प्रकाशरूप भगवान आत्मा सत्‌रूप है, तिसका संबंध किससाथ होवै, देह जड अरु असत्य अज्ञानरूप तुच्छ विनाशी अकृतज्ञ है, तिसका संयोग किस भ्रांति होवै, आत्मा चेतन ज्ञान सत प्रकाशरूप है, तिसका देहसाथ कैसे संयोग होवै, अज्ञान करिके देह अरु आत्माका संयोग भासता है, सम्यक्ज्ञान करिके संयोगका अभाव भासता है ॥ हे रामजी! यह मैं निपुण वचन कहे हैं, तिनका वारंवार अभ्यास करेतें संसारमोहका अभाव हो जावैगा, जब संसारका कारण मोह निवृत्त हुआ, तब बहुरि सद्‌भाव न होवैगा, जबलग अज्ञानरूपी निद्रातें दृढ होकरि नहीं जागता, तबलग बहुरि आवरण हो जाता है, जैसे निद्राके जागेतें बहुरि निद्रा घेरी लेते हैं, जब दृढकरि जागै; तब बहुरि नहीं घेरती, तैसे दृढ अभ्यासकरि अज्ञान निवृत्त हुआ, बहुरि आवरण न होवैगा, तातें मोह दुःख निवृत्तिके अर्थ दृढ अभ्यास करहु॥ हे रामजी! आत्मा देहके गुणकों अंगिकार नहीं करता, जब देहके गुण अंगीकार करैं, तब आत्मा भी जड हो जावै, सो तौ सदा ज्ञानरूप है, अरु जो देह आत्माका गुण परमार्थतें अंगीकार करैं, तौ देह भी चेतन हो जावै, सो तौ जडरूप है, इसकों अपणा ज्ञान कछु नहीं, जब ज्योंका त्यों इसका ज्ञान होवै, तब शरीर तुच्छ जड भासै॥ हे रामजी! देह अरु आत्माका संयोग संबंध

कछु नहीं, अरु समवाय संबंध भी नहीं, बहुरि इससाथ मिलिकरि वृथा दुःखकों ग्रहण करना, इसतें अवर मूर्खता क्या है, यही मूर्खता है, जब कछु बी इसका समान लक्षण होवै; तब संबंध भी होवै, जिनका समान लक्षण कछु न होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतन है, देह जड है, आत्मा सत्‌रूप है, देह असत्‌रूप है, आत्मा प्रकाशरूप है, देह तमरूप है, आत्मा निराकार है, देह साकार है, आत्मा सूक्ष्म है, देह स्थूल है, बहुरि आत्मा अरु देहका संबंध कैसे होवै, जब संयोग नहीं, तब दुःख किसका होवै; जैसे सूक्ष्म अरु स्थूलका संयोग नहीं होता, जैसे दिन अरु रात्रका संयोग नहीं होता, जैसे ज्ञान अरु अज्ञानका संयोग नहीं होता, जैसे धूप अरु छायाका मिलाप नहीं होता, जैसे सत अरु असतका संयोग नहीं होता, तैसे आत्मा अरु देहका संयोग नहीं होता, अज्ञान करिके तत्त्वरूप मिले हुए भासते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे वायु अरु आकाशका संयोग नहीं होता, तैसे इनका संयोग नहीं होता, देहके सुखदुःखकरि आत्माकों सुखी दुःखी जानना मिथ्या भ्रम है, जरा मरण सुखदुःख भाव अभाव आत्माविषे रंचकमात्र भी नहीं, जब देहविषे अभिमान होता है, तब उंच नीच जन्मकों पावता है, वास्तवतें कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे विकार कोउ नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे होता है, अरु जलके हलणेकरि प्रतिबिंब चलता भासता है, तैसे देहके सुखदुःखकरि आत्माविषे सुखदुःख विकार मूर्ख देखतें हैं, आत्मा सदा निर्लेप है, अरु जब सम्यक् यथाभूत आत्मज्ञान होवै, तब देहविषे स्थित भी भ्रमकों न प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जब यथाभूत ज्ञान होता है, तब सत्‌को सत् जाणता है, अरु असतकों असत् जाणता है, जैसे दीपक हाथविषे होता है, तब सत् असत् पदार्थ भासते हैं, तैसे ज्ञानकरि सत् असत् यथार्थ जाणता है, अरु अज्ञानकरि मोहविषे भ्रमता है, जैसे वायुकरि पत्र भ्रमता है, तैसे मोहरूपी वायुकरि अज्ञानी जीव भ्रमता है, स्वस्थ कदाचित् नहीं होता, जैसे यंत्रीकी पूतली तागे करिके चेष्टा करती है, तैसे अज्ञानी जीव प्राणोंरूपी तागेकरि चे

ष्टा करते हैं, जैसे नटुआ अनेक स्वांगकों धारता है, तैसे कर्मकरि जीव अनेक शरीरकों धारता है, जैसे पेषणकी पुतली तृण काष्ठ फूलादिककों लेती त्यागती हैं, अरु नृत्य करती है, तैसे यह प्राणी चेष्टा करते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंधका ग्रहण करते हैं, जैसे पुतलियां जड हैं, तैसे यह जड है, अरु जब कहिये इनविषे प्राण है, तब जैसे लुहारकी खाल होती है, उह श्वासकों लेती त्यागती है, तैसे यह जीव भी चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी! अपणा वास्तव स्वरूप है, सो ब्रह्म है, तिसके प्रमाद करिके मोह कृपणताकों प्राप्त होते हैं, जैसे लुहारकी खाल वृथा श्वासकों लेती है, तैसे इनकी चेष्टा व्यर्थ है, इनकी चेष्टा अरु बोलणा अनर्थके निमित्त हैं, जैसे धनुष्यतें जो बाण निकसता है, सो हिंसाके निमित्त है, और कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा अरु बोलणा अनर्थ दुःखके निमित्त है, सुखके निमित्त नहीं, तिसकी संगति भी कल्याणके निमित्त नहीं, जैसा जंगलका ठुंठा वृक्ष होता है, तिसके छाया अरु फलकी इच्छा करणी व्यर्थ है, तिसतें कछु फल नहीं प्राप्त होता, अरु विश्रामके निमित्त छाया भी नहीं प्राप्त होती, तैसे अज्ञानी जीवकी संगतीतें सुख नहीं प्राप्त होता, तिनकों देणा भी व्यर्थ है, जैसे चीकडविषे घृत पाया व्यर्थ होता है, तैसे मूर्खकों दान दिया व्यर्थ होता है, अरु तिनकेसाथ बोलणा भी व्यर्थ है, जैसे यज्ञविषे श्वानकों बुलावणा निष्फल है, तैसे उनके साथ बोलणा निष्फल है ॥ हे रामजी! जो अज्ञानी जीव हैं, सो संसारविषे आते जाते जन्मते मरते हैं, शरीरविषे आस्था करते हैं, अरु पुत्र दारा बांधव धनादिकविषे ममत्त्वबुद्धि करते हैं, इस मिथ्या दृष्टि करिके दुःख पावते हैं, मुक्ति कदाचित् नहीं होती, काहेतें जो अनात्माविषे आत्मबुद्धिकों त्याग नहीं करते, अरु ममता बुद्धिविषे दृढ रहते हैं, इसीतें मुक्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! जो अज्ञानी हैं, सो असत् पदार्थकों देखते हैं, अरु वस्तुरूपकी औरतें अंध हैं, इसकरि परमार्थ धनतें विमुख रहते हैं, नरकका सार जो स्त्रियादिक हैं, तिनविषे प्रीति करते हैं, अरु तिनकों देखिकरि प्रसन्न होते हैं, जो नरकका साधन हैं, जैसे मेघकों

ता है, अरु लक्ष्मीका आश्रय करिके जो सुखकी इच्छा करता है, सो भी सुखी न होवैगा, जैसे पहाड दूरतें देखणेमात्र सुंदर भासता है, तैसे यह भी देखणेमात्र सुंदर लगती है, और लक्ष्मीका आश्रय करिके सुखकी इच्छा करै सो न होवैगा, अंत दुःखकों प्राप्त होवैगा, जब लक्ष्मी प्राप्त होती है, तब अनर्थ पापकों करणे लगता है, अरु दुःखका पात्र होता है, जब जाती है, तब दुःखकों दे जाती है, तिसकरि जलता रहता है ॥ हे रामजी! जगत्विषे जो सुखकी इच्छा करै, सो न होवैगा, प्रथम जन्म लेता है, तब भी दुःखसाथ जन्म लेता है, बहुरि जन्मीकरि मूर्ख नीच बालक अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसविषे विचार कछु नहीं होता, तिसकरि दुःख पावता है, अरु शक्ति कछु नहीं होती, तिसकरि दुःख पाता है, जब यौवन अवस्थारूपी रात्र आवती है, तब तिसविषे काम क्रोध लोभ मोहरूपी निशाचर आय विचरते हैं, अरु तृष्णारूपी पिशाचिनी आय विचरती है, विवेकरूप चंद्रमा उदय नहीं होता, तब अंधकारविषे सब क्रीडा करते हैं॥ हे रामजी! यौवन अवस्थारूपी वर्षाकाल है, तिसविषे बुद्धि आदिक नदियां मलिन भावकों प्राप्त होती हैं, अरु कामरूपी मेघ गर्जता है, तृष्णारूपी मोरणी तिसकों देखिकरि प्रसन्न होती है, अरु नृत्य करती है, अरु लोभरूपी दुजाग आवते हैं, अरु शब्द करते हैं, इत्यादिक अनर्थका बीज होता है, बहुरि यौवन अवस्थारूपी चूहेकों जरारूपी बिल्ली भोजनकरि लेती है, अंग महाजर्जरीभूत हो जाते हैं, शरीर आसक्त हो जाता है, तृष्णा बढती जाती है, अंतरतें पडा जलता है, बहुरि मृत्युरूपी सिंह जरारूपी हरिणकों भोजन करि लेता है, इस प्रकार उपजता अरु मरता है, आशारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ घटीयंत्रकी नांई पडा भटकता है, शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! ब्रह्मांडरूपी एक वृक्ष है, अरु जीवरूपी तिसकों पत्र लगे हैं, सो कर्मरूपी वायुकरि हलते हैं, अरु अज्ञानरूपी तिसविषे जडता है, अरु चित्तरूपी उंचा वृक्ष है, तिसउपर लोभादिक घुघु आय बैठते हैं, अरु जगत्रूपी ताल है, तिसविषे शरीररूपी कमल हैं,

तिनविषे जीवरूपी भंवरे आय बैठते हैं, अरु कालरूपी हस्ती आयकरि तिसकों भोजनकरि जाता है॥ हे रामजी! यत्नरूपी जीर्ण पक्षी है, आशारूपी फांसी साथ बांधे हुए वासनारूपी शिक्षाविषे पडे रहे हैं, रागदोषरूपी अग्निविषे पडे हुए कालरूपी पुरुषके मुखमें प्रवेश करते हैं, अरु जनरूपी पक्षी उडते फिरते हैं, सो कोउ दिन तिसकों जब कालरूपी व्याध जाल पसारैगा, तब फसाय लेवैगा ॥ हे रामजी! संसाररूपी ताल है, अरु जीवरूपी तिसविषे मच्छीयां हैं, कालरूपी बगला तिनकों भोजन पडा करता है, अरु कालरूपी कुंभार है, जनरूपी मृत्तिकाके बासन करता है, बहुरि शीघ्रही फुटि जाते हैं, अरु जीवरूपी नदी है, कर्मरूपी तरंगकों पसारती है, सो कालरूपी वडवाग्निमें जाइ पडती है, अरु जगत्‌रूपी हस्ती है, जीवरूपी मोती तिसके मस्तकविषे है, तिस हस्तिकों कालरूपी सिंह भोजन करि जाता है, सो कालरूपी भक्षक है, जिसनें ब्रह्माहूकों भोजन किया है, अरु करता है, तृप्त नहीं होता, जैसे घृतकी आहुतीकरि अग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे काल जीवके भोजनकरि तृप्त कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! एक निमेषविषे जगत् उपजता है, अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है, सबके अभाव हुए जो शेष रहता है, सो रुद्र है, बहुरि निवृत्त हो जाता है, सबके पाछे इक परमतत्त्व ब्रह्मसत्ता रहती है॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञान करिके भासता है, जन्ममरण बालक यौवन वृद्धादिक विकार अज्ञानकरि भासते हैं, अज्ञानके नष्ट हुए सब नष्ट हो जाते हैं, अरु जबलग आत्मविचार नहीं उपजा, तबलग अज्ञान रहता है, जब आत्मविचार उपजता है, तब अज्ञानरूपी रात्र निवृत्त हो जाती है, केवल ब्रह्मपद भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अज्ञानमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह संसाररूपी जो वन है, सो चेतनरूपी पर्वतके सिंगउपर स्थित है, तिसविषे अविद्यारूपी वल्ली बढी है, अरु विकासकों प्राप्त भई है, अरु सुख दुःख भाव अभाव अज्ञान इसके पत्र फूल फल हैं, जहां अविद्या सुखरूप होकरि

स्थित होती है, तहां उंचे सुखकों भोगावती है, तिसके सत्ताभावकों प्राप्त होती है, अरु सुखरूप होकरि स्थित होती है, तहां दुःखरूप भासती है, सोइ सुखदुःख इसके फल गुंछे हैं, दिनरूपी फूल हैं, अरु रात्ररूपी भंवरे हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, अरु भोगरूपी रसकरि पूर्ण है, जब विचाररूपी घुणा अविद्यारूपी वृक्षकों खाणे लागता है, तब नष्ट हो जाती है, जबलग विचाररूपी घुणा नहीं लगा, तबलग दिन दिन बढती जाती है, अरु दृढ हो जाती है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी वल्ली है, अरु मूल इसका संवित् फुरणा है, तिसकरि पसरी है, तारागण इसके किसी और फूल हैं, चंद्रमा सूर्य इसका प्रकाश है, अरु दुष्कृत कर्मरूपी नरकस्थान कंटक हैं, अरु शुभकर्मरूपी स्वर्ग इसके फूल प्रकाशे हैं, अरु सुखदुःखरूपी फल लगते हैं, जीवरूपी इसके पत्र हैं, अरु कालरूपी वायुकरि हलते हैं, केई जीर्ण होकरि गिर पडते हैं, पृथ्वीरूपी त्वचा है, पर्वत घोडे हैं, मरणरूपी इसविषे छिद्र हैं, जन्मरूपी अंकुर हैं, मोहरूपी कलियां हैं, महासुंदर गौर अंग हैं, तिसकरि जीव मोहित होते हैं, जैसे स्त्रीकों देखिकरि मोहित होते हैं, अरु सप्त समुद्रके जलकरि सिंचिती हैं, तिसकरि पुष्ट होती है, तिस वल्लीविषे एक विषकी भरी सर्पिणी रहती है, जो कोउ उसके निकट जाता है, तिसकों काटती है, तब उह मूर्छाकरि गिर पडता है, संसाररूपी मूर्छाकों देणेहारी तृष्णारूपी सर्पिणी है, सो वल्ली अन्यथा नष्ट नहीं होती, जब विचाररूपी घुणा इसकों लगै, तब नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच तुझकों भासता है, सो अविद्यारूप है, कहूं अविद्या जलरूप हुई है, कहूं पहाड, कहूं नाग, कहूं देवता, कहूं दैत्य, कहूं पृथ्वी हुई है, कहूं चंद्रमा, कहूं सूर्य, कहूं तारे, कहूं तम, कहूं प्रकाश कहूं तेज, तमतें रहित, कहूं पाप, कहूं पुण्य, कहूं स्थावर मूढरूप, कहूं अज्ञानकरि दीन होती है, कहूं ज्ञानकरि आपही क्षीण हो जाती है, कहूं तप दान आदिककरि क्षीण होती है, पापादिककरि वृद्ध होती है, कहूं सूर्यरूप होकरि प्रकाशती है, कहूं स्थानरूप होती है, कहूं नरकविषे लीन है, कहूं स्वर्गनिवासी है, कहूं देवता

होती है, कहूं कृमि होती है, कहूं विष्णुरूप होकरि स्थित भई है, कहूं ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, कहूं रुद्र है, कहूं अग्निरूप, कहूं पृथ्वीरूप भई है ॥ कहूं आकाशकों काल भूत भविष्य वर्तमान भई है॥ हे रामजी! जो कछु देखणेमें आता है, सो बहु महिमा इसका है, ईश्वरतें आदि तृणपर्यंत सब अविद्यारूप है, जो इस दृश्यजालतें अतीत है, तिसकों आत्मलाभ जाण॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यालतावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥७॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! हरि विष्णु अरु हर आदिक तौ शुद्ध आकार आकाश जाति हैं, इनकों अविद्या तुम कैसे कहते हौ, इह सुणिकरि मुझकों संशय उत्पन्न हुआ है॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! प्रथम अविद्या अरु तत्त्व श्रवण कर, जो किसकों कहते हैं, जो अविद्यमान होवै, अरु विद्यमान भासै, सो अविद्या है, अरु जो सदा विद्यमान है, तिसकों तत्त्व कहते हैं॥ हे रामजी! शुद्ध संवित् कलनातें रहित चिन्मात्र आत्मसत्ता है, सो तत्त्व है, तिसविषे जो अहं उल्लेखकरि संवेदन कलना पूर्णरूप फुरी है, सो चिन्मात्र संवित्का आभास है, सोइ फुरिकरि सूक्ष्म स्थूल मध्यभावकों प्राप्त भई है, स्थानभेदकरि बहुरि उही दृढ स्पंदकरि मनभावकों प्राप्त भई है, अरु सात्त्विक राजस तामस तीनों उसके आकार हुए हैं, सो अविद्या त्रिगुण प्राकृत धर्मिणी होत भई है, अरु तीन गुण जो तुझकों कहे हैं, सो भी एक एक गुण तीन प्रकार हुआ है, अविद्याके गुण नव प्रकारके भेदकों प्राप्त भये हैं, जेता कछु तुझकों दृश्य भासता है, सो अविद्याके नवगुणविषे ऋषीश्वर मुनीश्वर सिद्ध नाग विद्याधर देवता जो हैं, सो अविद्याका सात्त्विक भाग है, तिस सात्त्विकके विभागविषे नाग सात्त्विक तामस हैं, अरु विद्याधर सिद्ध देवता मुनीश्वर यह अविद्याके सात्त्विक भागविषे सात्त्विक राजस हैं, अरु हरिहरादिक सात्त्विक हैं॥ हे रामजी! सात्त्विक जो प्रकृत भाग है, तिसकरि तत्त्वज्ञ जो हुए हैं, सो मोहकों नहीं प्राप्त होवैं, मुक्तिरूप होते हैं, सो हरिहरादिक शुद्ध सात्त्विक हैं, सदा मुक्तरूप होकरि जगत्विषे

स्थित हैं, जबलग जगतविषे हैं, तबलग जीवन्मुक्त हैं, जब विदेहमुक्त हुवे तब परमेश्वरकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! एक अविद्याके दो रूप हैं, एक अविद्यारूप बहुरि उही विद्यारूप होती है, जैसे बीज फलकों प्राप्त होता है, अरु फल बीजभावकों प्राप्त होता है, जैसे जलविषे बुद्बुदा उठता है, तैसे अविद्यातें विद्या उपजती है, अरु विद्याकरि अविद्या लीन होती है, जैसे काष्ठतें अग्नि उपजीकरि काष्ठकों दग्ध करती है, तैसे विद्या अविद्यातें उपजीकरि अविद्याकों नाश करती है, अरु वास्तवतें सब चिदाकाश है, जैसे जलविषे तरंग कलनामात्र हैं, तैसे विद्या अविद्या भावनामात्र इसकों त्यागिकरि शेष आत्मसत्ता रहती है, अविद्या अरु विद्या आपसमें प्रतियोगी हैं, जैसे तम अरु प्रकाश होता है, तातें इन दोनोंकों त्यागिकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, विद्या अरु अविद्या कल्पनामात्र हैं, विद्याके अभावका नाम अविद्या है, अरु अविद्याके अभावका नाम विद्या है, इह प्रतियोगी कल्पना मिथ्या उठी है, जब विद्या उपजती है, तब अविद्याका भास करती है, पाछे आप भी लीन हो जाती है, जैसे काष्ठतें उपजी अग्नि काष्ठकों जलायकरि आप भी शांत हो जाती है, तैसे अविद्याकों नाश करिके विद्या आप भी लीन हो जाती है, तिसतें शेष रहता है, सो अशब्द पद सर्वव्यापि है, जैसे वटबीजविषे पत्र टास फूल फल पाते हैं, तैसे सर्वविषे एक अनुस्यूत सत्ता व्यापी है, सो ब्रह्मतत्त्व सर्वशक्त है, सर्व शक्तिका संपद है, अरु आकाशतें भी शून्य है, जैसे सूर्यकांतविषे अग्नि होता है, जैसे दूधविषे घृत होता है, तैसे सब जगतविषे ब्रह्म व्यापि रहा है, जैसे दधिके मथेविना घृत नहीं निकसता, तैसे विचारविना आत्मा नहीं भासता, जैसे अग्नितें चिणगारे निकसते हैं, अरु सूर्यतें किरणां निकसतियां हैं, तैसे इह जगत् आत्माका किंचनरूप है, जैसे घटके नाश हुए घटाकाश अविनाशी है, तैसे जगतके अभावतें भी आत्मा अविनाशी है ॥ हे रामजी! जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ता करिके जड लोह चेष्टा करता है, परंतु चुंबक सदा अकर्त्ताही है, तैसे आत्माकी सत्ता करिके जगत् देहादिक

चेष्टा करते हैं, चैतन्य होते हैं, परंतु आत्मा सदा कर्ता है, इस जगत्का बीज चेतन आत्मसत्ता है, तिसविषे संवित् संवेदन आदिक शब्द भी कल्पनामात्र हैं, जैसे जलकों कहिये बहुत सुंदर चंचल है, सो जलही जल है, तैसे संवेदन आदिक सब चेतनरूप है, जहां न किंचन है, न अकिंचन है, सो तेरा स्वरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानिराकरणं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो आधिभौतिकता कों नहीं प्राप्त भया, सब चिदाकाशरूप है, तिसविषे कछु भावअभावकी कल्पना नहीं, अरु जीवादिक भेद भी नहीं, हमकों तौ भेदकल्पना कछु नहीं भासती, जैसे जेवरीविषे सर्पका अभाव है, तैसे ब्रह्मविषे भेदकल्पनाका अभाव है ॥ हे रामजी ! आत्माके अज्ञान करिके भेदकल्पना भासती है, आत्माके जाणेतें भेदकल्पना मिटि जाती है, सो सर्व संपदाका अंत है, अरु जब शुद्ध चेतनविषे चित्तका संबंध होता है, तब इसीका नाम अविद्या है, जो पुरुष चित्तकी उपाधितें रहित चिन्मात्र है, सो शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता, अरु शरीरके उपजेतें नहीं उपजता, शरीरके उपजणे अरु बिनसणेविषे सदा एकरस ज्योंका त्यों स्थित है, जैसे घटके उपजणे अरु बिनसणेविषे घटाकाश ज्योंका त्यों होता है, तैसे शरीरके भावअभावविषे आत्मा ज्योंका त्यों है, जैसे बालक दउडता है, तिसकों सूर्य भी दउडता भासता है, अरु स्थित होणेविषे स्थित भासता है, परंतु सूर्य ज्योंका त्यों है, तैसे चित्तकी चंचलता करिके मूर्ख आत्माकों व्याकुल देखते हैं, अरु चित्तके अचलताविषे अचल देखते हैं, अरु चित्तके उपजणेविषे उपजता देखते हैं, परंतु आत्मा सदा ज्योंका त्यों है, जैसे बबोहा अपणी तंतुकरि आपही वेष्टित होता है, निकसी नहीं सकता, तैसे इह जीव अपणी वासनाकरि आपही बंधमान होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अत्यंत मूर्खता कों प्राप्त होकरि जो स्थावर आदिक तनकों पाइकरि घन स्थित हुए हैं, तिनकी वासना कैसे होती है, सो

कृपा करिके कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो स्थावर जीव हैं, सो अमन सत्ताकों नहीं प्राप्त हुए, अरु केवल मन अवस्थाविषे भी तिष्ठित नहीं, मध्य अवस्थाविषे हैं, उनकी पुर्यष्टका सुषुप्तिरूप है, सो केवल दुःखका कारण है, उनका मन नहीं नष्ट हुआ, सुषुप्ति अवस्थाविषे जडरूप स्थित है, सो कालकरि जागहिंगे, अब उनकी सत्ता मूक जड होकरि स्थित है, सत्तामात्र स्थित है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे देवदेवताविषे श्रेष्ठ! जब उनकी सत्ता अद्वैतरूप होकरि स्थावरविषे स्थित हैं, तब मुक्ति अवस्था तिनके निकट भई, इह सिद्ध हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मुक्ति कैसे निकट होती है, मुक्ति तब होती है, जब बुद्धिपूर्वक वस्तुकों विचारै है, तब यथाभूत अर्थ दृष्टि आवै, जब सत्तासमानका बोध होवै, तब केवल आत्मपदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी ! जब ज्यौंका त्यौं पदार्थ जाणिकरि वासनाका त्याग करै, सो उत्तम है, तब सत्ता समान पद प्राप्त होवै, प्रथम अध्यात्मशास्त्रकों विचारै तिसविषे जो सार है, तिसकी वारंवार भावना करै, तिसकरि जो प्राप्त होवै, सो सत्तासमान परम ब्रह्म कहाता है, स्थावरके अंतर वासना है, परंतु बाह्य दृष्टि नहीं आती, काहेतें जो उनकी सुषुप्त वासना है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, बहुरि उगता है, तैसे उनकों जन्म होवैंगे, अरु वासना जागैगी, जो उनके अंतर जगत्की सत्यता है, अरु बाह्य नहीं दृष्टि आती, सो सुषुप्तवत् जड धर्म है, बहुरि अनंत जन्मके दुःख पावैंगे ॥ हे रामजी ! स्थावर जो अब जड धर्म सुषुप्त पदविषे स्थित हैं, सो वारंवार जन्मकों पावहिंगे, जैसे बीजविषे पत्र टास फूल फल स्थित होते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे घटशक्ति स्थित होती है, तैसे स्थावरविषे वासना स्थित है, जहां वासनारूपी बीज है, सो सुषुप्तरूप कहाता है, सो सिद्धता जो मुक्ति है, तिसकों नहीं प्राप्त करती, अरु जहां निर्बीज वासना है, सो तुरीया पद है, सिद्धताकों प्राप्त करती है ॥ हे रामजी ! जब चित्तशक्ति वासनासाथ मिली होती है, तब स्थावर होती है, सो बहुरि जागती है, जैसे कोउ कर्म करता सोय जाता है, सुषुप्तितें उठिकरि ब

हुरि उही कर्म करणे लगता है, कर्मरूपी वासना तिसके अंतर रहती है, तैसे स्थावर वासना करिके बहुरि जन्मकों पावैंगे, जब उह वासना अंतरतें दग्ध हो जावै, तब जन्मका कारण नहीं होती, अरु आत्मसत्ता समान करिके घट पट आदिक सर्व पदार्थविषे स्थित है, जैसे वर्षाकालका मेघ एकही नानारूप होकरि स्थित होता है, तैसे अत्मसत्ता एकही सर्व पदार्थविषे स्थित होती है, तातें सर्व आत्माही व्यापि रहा है, ऐसी दृष्टितें जो रहित है, तिसकों विपर्ययदृष्टि भ्रमदायक होती है, जब आत्मदृष्टि प्राप्त होती है, तब सर्व दुःख नाश हो जाते हैं ॥ हे रामजी! असम्यक् दृष्टिका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं, सो अविद्या जगत्का कारण है, तिसकरि सब पसारा होता है, तिसतें रहित जब अपणा स्वरूप भासै तब अविद्या नष्ट होती है, जैसे बरफकी कणिका धूपकरि नाश हो जाती है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे स्वप्नतें रहित जब अपणा स्वरूप देखता है, तब बहुरि स्वप्नकी उर नहीं जाता है, तैसे शुद्ध स्वरूपके अभ्यासकरि संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! जब वस्तुकों वस्तु जाणता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, दीपककों हाथ लेकरि देखिये तब अंधकारकी मूर्ति कछु दृष्ट नहीं आती, जैसे उष्णता करिके घृतका पीन उडा गलि जाता है, तैसे आत्माके दर्शन हुए अविद्या नहीं रहती, अरु वास्तवतें अविद्या कछु वस्तु नहीं, अविचारतें सिद्ध है, विचार कियेतें लीन हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि तम लीन हो जाता है, तैसे विचारकरि अविद्या लीन हो जाती है, अज्ञानकरि अविद्याकी प्रतीति होती है, जबलग आत्मतत्त्वकों नहीं देखा, तबलग अविद्याकी प्रतीति होती है, जब आत्माकों देखा, तब अभाव हो जाता है, प्रथम इह विचार करै जो रक्त मांस अस्थिका यंत्र शरीर है, तिसविषे मैं क्या वस्तु हौं, सत्य क्या है, अरु असत्य क्या है, तिसविषे जिसका अभाव होता है, सो असत्य है, अरु जिसका अभाव नहीं होता सो सत्य है, बहुरि अन्वयव्यतिरेककरि विचारै, जो कार्य क

ल्पितके होते भी होवै, अरु तिसके अभावविषे भी होवै, सो अन्वय सत्य है, जो देहादिक भावविषे भी आत्मा अधिष्ठान है, अरु इनके अभावविषे भी निरुपाधि सिद्ध है, सो सत्य है, अरु देहादिक व्यतिरेक असत्य हैं, ऐसे विचारकरि आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, अरु असत् देहादिकतें वैराग्य करै, तब निश्चय करिके अविद्या लीन हो जाती है, काहेतें जो वास्तव नहीं, असत्यरूप है, तिसके नष्ट हुए जो शेष रहै सो निष्किंचन किंचनरूप है, सो सत्य है, ब्रह्म निरंतर है, सो तत्त्ववस्तु उपादेय करणे योग्य है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे गनेका रस जिव्हासाथ लगता है, तब अवश्य स्वाद भी आता है, तैसे आत्मविचारकरि अविद्या अवश्य नष्ट हो जाती है, अरु जब वास्तवतें कहैं, तब अविद्या भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, सर्व एक अखंडित ब्रह्मतत्त्व है, घटपटरथ आदिक जेते कछु पदार्थ हैं, जिसकों भिन्न भिन्न भासते हैं, तिसकों अविद्या जान, अरु जिसकों सर्वविषे एक ब्रह्मभावना है, तिसकों विद्या जान, इस विद्याकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्याचिकित्सावर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधके निमित्त मैं तुझकों वारंवार सार कहता हौं, जो आत्मसाक्षात्कार भावना अभ्यासविना न होवैगा, इह जो अज्ञान अविद्या है, सो अनंत जन्मका दृढ भया है, सो अंतर बाहिर करिके देखाई देता है, आत्मा सर्व इंद्रियतें अगोचर है, जब मनसहित षट् इंद्रियका अभाव हो जावै, तब केवल शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जेती कछु वृत्ति बहिर्मुख फुरती है, सो अविद्या है, काहेतें जो आत्मतत्त्वतें इतर जाणिकरि फुरती है, अरु जो अंतर्मुख आत्माकी उर फुरती है, सो विद्या है, सो विद्या अविद्याकों नाश करैगी, अविद्याके दो रूप हैं, एक प्रधान रूप है, एक निकृष्ट रूप है, तिस अविद्यातें विद्या उपजीकरि अविद्याकों नाश करती है, बहुरि आप भी नाश हो जाती है, जैसे बांसतें अग्नि उपजती है, अरु बांसकों जलायकरि आप भी शांत हो जा

ती है, तैसे जो अंतर्मुख है, सो प्रधानरूप विद्या है, अरु जो बहिर्मुख है, सो अविद्या निकृष्टरूप है, तातें अविद्या भागकों नाश करहु ॥ हे रामजी ! अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जो कछु किसीकों प्राप्त होता है, सो अभ्यासरूपी वृक्षका फूल है, चिरकाल जो अविद्याका दृढ अभ्यास हुआ है, तब अविद्या दृढ भई है, जब आत्मज्ञानके निमित्त यत्न करिके दृढ अभ्यास करैगा, तब अविद्या नाश हो जावैगी ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी वृक्ष है, तिससाथ अविद्यारूपी बुरी लता दृढ हो रही है, तिसकों ज्ञानरूपी खड्ग करिके काटहु, अरु जो कछु अपणा प्रकृत आचार है, तिसकों करहु, तब तुझकों दुःख कोउ न होवैगा, जैसे जनक राजा ज्ञातज्ञेय होकरि व्यवहारकों करत भया है; तैसे आत्मज्ञानका दृढ अभ्यासकरि तूं भी विचर ॥ हे रामजी ! जैसे पवन निश्चयकों धारिकरि कार्याकार्यविषे विचरता है, अरु जैसे निश्चय विष्णुजीकों स्वरूपविषे है, सब कार्य करता है, अरु जैसे निश्चय सदाशिवकों है, जो गौरी अर्धांगमें रहती है, अरु कदाचित् क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, सदा शांतरूप है, अरु जैसे निश्चय ब्रह्माकों है, जो बाह्य रागदोष दृष्टि आता है, अरु अंतर रागदोष कछु नहीं, जैसे निश्चय बृहस्पती देवताके गुरुका है, अरु जैसे निश्चय चंद्रमा अरु अग्निका है, जैसे निश्चय नारद पुलह पुलस्त्य अंगिरा भृगु शुकदेवका है, और भी ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्राह्मणका है, क्षत्रियादिकका ज्ञान ज्ञेयका निश्चय है, सो तुझकों प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥

॥ हे ब्राह्मण ! जिस निश्चय करिके बुद्धिवान् विशोक होकरि स्थित भये हैं, सो मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे संपूर्ण ज्ञानवान्का निश्चय है, अरु व्यवहारविषे सम रहे है, सो सुण, विस्ताररूप जेता कछु जगत्जाल तुझकों भासता है, सो निर्मल ब्रह्मसत्ता अपणे महिमाविषे स्थित है, जैसे तरंग समुद्रविषे स्थित होते हैं, अरु नानाप्रकार उत्पन्न होते हैं, सो एक जलरूप है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थजाल भासता है, भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूप है, जो ग्रहण करणेवाला है, सो भी ब्रह्म है,

अरु जिसकों भोजन करता है, सो भी ब्रह्म है, मित्र भी ब्रह्म है, शत्रु भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, इह निश्चय ज्ञानवान्कों सदा रहता है, बहुरि कैसा है, ब्रह्मकों ब्रह्म स्पर्श करता है, तब किसकों स्पर्श किया ॥ हे रामजी ! जिनकों सदा यही निश्चय रहता है, तिसकों रागद्वेष कछु दुःख नहीं दे सकते, ब्रह्मही ब्रह्मविषे फुरता है, भावरूप भी ब्रह्म है, अभावरूप भी ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, बहुरि रागद्वेषकलना कैसे होवै, ब्रह्मही ब्रह्मकों चेतता है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, ब्रह्मही अहं अस्मि है, ब्रह्मही सम है, ब्रह्मही अंतर आत्मा है, घट भी ब्रह्म है, पट भी ब्रह्म है, ब्रह्मही विस्तारकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जब सर्वत्र ब्रह्मही है, तब राग विराग कलना कैसे होवै, मृत्यु भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, मरता भी ब्रह्म है, मारता भी ब्रह्म है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रम करिके भासता है, तैसे आत्माविषे सुखदुःख मिथ्या है, भोग भी ब्रह्म है, भोगणेवाला भी ब्रह्म है, भोक्ता देह भी ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्मही है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिटि जाते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं, तैसे शरीर उपजते अरु मिट जाते हैं, सो ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है ॥ हे रामजी! जलके तरंग जो मृत्युकों प्राप्त होते हैं, सो क्या हुआ, उह तौ जलही है, तैसे मृतक ब्रह्मनें जो देह मृतक ब्रह्मकों मार्या! तब कवन मुआ, अरु किसनें मार्या, जैसे एक तरंग जलतें उपजा, अरु दूसरे तरंगसाथ मिलि गया, दोनों एकठे होकरि मिटि गये, सो जलही जल है, तहां मैं तूं दूसरा कछु नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, तेरा मेरा भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, जलविषे तरंग होते हैं, सो अभेदरूप हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष यथार्थदर्शी हैं, तिनकों सदा यही निश्चय रहता है, अरु जिनकों सम्यक्ज्ञान नहीं प्राप्त भया, तिनकों विपर्ययरूप अवरका अवर भासता है, वास्तवतें सदा एकरूप है, परंतु ज्ञान अरु अज्ञानका भेद है, जैसे जेवरी एक होती है, परंतु जिसकों सम्यक्ज्ञान होता है, तिसकों जेवरी भी भासती

है, अरु जिसकों सम्यक्ज्ञान नहीं होता तिसकों सर्प हो भासता है, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों सब ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों जगत्रूप भासता है, तिसकों नानाप्रकारका जगत् दुःखदायक होता है, अरु ज्ञानवान्कों सुखरूप है, जैसे अंधकों सर्व उर अंधकार भासता है, अरु चक्षुवान कों प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व जगत् आत्मस्वरूप है, परंतु ज्ञानीकों आत्मसत्ता सुखरूप भासती है, अज्ञानीकों दुःखदायक है, जैसे बालककों अपणे परछायेविषे बैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, अरु बुद्धिवान निर्भय होता है, तैसे अज्ञानीकों जगत् दुःखदायक है, ज्ञानीकों सुखरूप है, अरु जब मेरा निश्चय पूछै, तब ऐसे है, मैं सर्व ब्रह्म हौं, नित्य शुद्ध सर्वविषे स्थित हौं, न कोउ बिनसता है, न उपजता है, जैसे जलविषे तरंग है सो न कछु उपजा है, न बिनसता है, जलही जल है, तैसे भूत भी आत्माविषे है, जगत् भी आत्मारूप है, आत्मा ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, मृतरूप भी ब्रह्म है, शरीर भी ब्रह्म है, ब्रह्मही अनेकरूप होकरि भासता है, ब्रह्मतें भिन्न कछु शरीरादिक सिद्ध नहीं होते, जैसे तरंग फेन बुद्बुदे जलरूप है, तैसे देहकलना इंद्रियां इच्छा दैवतादिक सब ब्रह्मरूप है ॥ जैसे स्वर्णतें भिन्न भूषण नहीं होता, स्वर्णही भूषणरूप होता है, तैसे ब्रह्मतें व्यतिरेक जगत् नहीं होता, ब्रह्मही जगत्रूप है ॥ जो मूढ हैं, तिनकों द्वैतकलना भासती है ॥ हे रामजी ! मन बुद्धि अहंकार तन्मात्र इंद्रियां सब ब्रह्महीके नाम हैं, अवर सुख दुःख कछु नहीं, अहं ऐसे जो शब्द है, तिसविषे भिन्न भिन्न भावना करणी सो व्यर्थ है, अपणा अनुभवही अन्यकी नांई हो भासता है, जैसे पहाडविषे शब्द करता है, तिसकरि प्रतिशब्दका भास होता है, सो अपणाही शब्द है, तिसविषे अवरकी कल्पना मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे अपणा शिर काट्या देखता है सो व्यर्थ है, सोइ भासी आता है, जिसकों असम्यक् ज्ञान होता है, तिसकों ऐसे है ॥ हे रामजी ! ब्रह्म सर्वशक्त है, तिसविषे जैसी भावना होती है, सोई भासि

आता है, जिसकों सम्यक्ज्ञान होता है,सो निरहंकार स्वप्रकाश सर्वशक्त देखता है, कर्त्ता कर्म करण संप्रदान अपादान अधिकरण इह जो षट्कारक बुद्धि हैं, सो सब सर्वत्र ब्रह्मही देखता है, ब्रह्म अर्पण, ब्रह्म हवि, ब्रह्म अग्नि, ब्रह्म होत्र, ब्रह्म हुतणेवाला ब्रह्मही फल देता है, ऐसे जानणेवालेका नाम ज्ञानी है, ऐसे न जाणेतें अज्ञानी है, जानणेवालेका नाम ब्रह्मवेत्ता है ॥ हे रामजी! जब चिरकालका बांधव होवै, अरु उसकों देखिये तब जाणिये जो बांधव है, अरु जो देखणेमें न आया, उसका अभ्यास दूर हो गया, तब बांधव भी अबांधवकी नांई हो जाता है, तैसे अपणा आप ब्रह्मस्वरूप है, जब भावना होती है, तब ऐसे भासि आवता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु द्वैतकल्पनाभी लीन हो जाती है, सर्व ब्रह्मही भासता है, जैसे जिसनें अमृतपान किया है, सो अमृतमय होता है, अरु जिसनें नहीं पान किया सो अमृतमय नहीं होता, तैसे जिसनें जान्या जो मैं ब्रह्म हौं सो ब्रह्मही होता है, जिसनें नहीं जान्या तिसकों नानात्वकल्पना जन्म मरण भासता है, अरु ब्रह्म अप्राप्तकी नांई भासता है ॥ हे रामजी! जिसकों ब्रह्मभावनाका अभ्यास जाग्या है, सो अभ्यासके बलकरि शीघ्रही ब्रह्म होता है, ब्रह्मरूपी बडे दर्पणविषे जैसी कोउ भावना करता है, तैसा रूप हो भासता है, मन भावनामात्र है, दुर्वासना करिके इसका स्वरूप आवरण भया है, जब वासना नष्ट होती है, तब निष्कलंक आत्मतत्त्व भासता है, जैसे शुद्ध वस्त्रउपर केसरका रंग शीघ्रही चढी जाता है, तैसे वासनातें रहित चित्तविषे ब्रह्मस्वरूप भासि आता है ॥ हे रामजी! आत्मा सर्व कलनातें रहित है, अरु तीनों कालविषे नित्य शुद्ध सम शांतरूप है, जिसकों ज्ञान होता है सो ऐसे जाणता है, जो मैं ब्रह्म हौं, सदाकाल सर्वविषे सर्व प्रकार सर्व घटपटादिक जो जगत्जाल है, सो मैंही ब्रह्म आकाशवत् सर्वविषे व्यापि रहा हौं, न कोउ मुझकों दुःख है, न कर्म है, न किसीका त्याग करता हौं, न वांछा करता हौं, सर्व कलनातें रहित निरामय हौं, मैंही रक्त हौं, मैंही पीत हौं, मैंही श्वेत हौं, मैंही श्याम हौं, रक्त मांस अस्थिकों वपु भी मैंही हौं,

घटपटादिक जगत् भी मैंही हौं, तृण वल्ली फूल गुछे टास मैंही हौं, वन पर्वत समुद्र नदीआं मैंही हौं, ग्रहण करणा, त्याग करणा, संकुचणा, भूतशक्ति सब मैंही हौं, विस्तारकों प्राप्त मैंही भया हौं, वृक्ष, वल्ली, फूल, गुछे जिसके आश्रय फुरते हैं, सो चिदात्मा मैंही हौं, सबविषे रसरूप मैंही हौं, जिसविषे इह सर्व है, जिसतें यह सर्व है, जो सर्व है, जिसकों सर्व है, ऐसा चिदात्मा ब्रह्म है, सो मैंही हौं, चेतन आत्मा ब्रह्म सत्य अमृत ज्ञानरूप इत्यादिक जिसके नाम हैं, ऐसा सर्वशक्तचिन्मात्र चैत्यतें रहित मैं हौं, प्रकाशमात्र निर्मल सर्वभूतप्रकाशक मैंही हौं, मन बुद्धि इंद्रियांका स्वामी मैं हौं, जेती कछु भेदकलना है, सो इननें करी थी, अब इनकी कलनाकों त्यागिकरि अपणे प्रकाशविषे स्थित हौं, चेतन ब्रह्म निर्दोष हौं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब जगतका कारण है, तिन सबका चेतन आत्मारूप ब्रह्म निरामय मैंही हौं, अविनाशी हौं, निरंतर स्वच्छ आत्मा प्रकाशरूप मनके उत्थानतें रहित मौनरूप मैं हौं, परम अमृत निरंतर सर्व भूतके सत्तारूप करिके मैंही स्थित हौं, सदा अलेपक साक्षी सुषुप्तकी नांई हौं, द्वैतकलनातें रहित अक्षोभरूपानुभव मैंही हौं, शांतरूप सब जगतविषे मैंही पसरी रहा हौं, सर्व वासनातें रहित अक्षोभरूप अनुभव मैंही हौं, सब स्वादका जिसकरि अनुभव होता है, सो चेतन ब्रह्म आत्मा मैंही हौं, स्त्रीविषे आसक्त है चित्त जिसका, अरु चंद्रमाकी कांतिकरि मुदिता अधिक है जिसकों, स्त्रीका स्पर्श अरु मुदिताका जिसकरि अनुभव होता है, ऐसा चेतन ब्रह्म मैंही हौं, पृथ्वीविषे स्थित जो पुरुष है, तिसकी दृष्टि चंद्रमाके मंडलमें जाय लगती है, तिसका अनुभव जिसविषे होता है सो मैंही हौं, सुखदुःखकी कलनातें रहित अमनसत्ता अनुभवरूप जो आत्मा है, सो चेतनरूप आत्मा ब्रह्म मैंही हौं, खजूर अरु निंब आदिकविषे स्वादरूप मैंही हौं, खेद अरु आनंद लाभ अलाभ मुझकों तुल्य हैं, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति साक्षी तुरीयारूप आदि अंततें रहित चेतन ब्रह्म निरामय मैं हौं, जैसे क्षेत्रके गनेहूंविषे एकही रस होती है, तैसे अनेक मूर्त्तिविषे एक ब्रह्मसत्ता स्थित

है, सो सत्य शुद्ध सम शांतरूप सर्वज्ञ है, प्रकृत जो सूक्ष्म तिसका प्रकाशक है, सूर्यकी नाई सो प्रकाशरूप ब्रह्म मैंही हौं, सब शरीरविषे व्यापी रहा हौं, जैसे मोतिविषे तंतु गुप्त होता है, तिसविषे मोती परोये हैं, तैसे मोतीरूप शरीरविषे तंतुरूप गुप्त मैंही हौं, अरु जगत्‌रूपी दूधविषे ब्रह्मरूपी घृत मैंही व्यापी रहा हौं ॥ हे रामजी ! जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण बनते हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे सब पदार्थ आत्माविषे स्थित हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, पर्वत समुद्र नदीविषे सत्तारूप आत्माही है, सर्व संकल्पका फलदाता, अरु सर्व पदार्थका प्रकाशक आत्माही है; अरु सर्व पावणे योग्य पदार्थका अंत है, तिस आत्माकी उपासना हम करते हैं, घट पट तट कंधविषे स्थित हैं, अरु जागृताविषे सुषुप्तरूप स्थित है, जिसविषे फुरणा कोउ नहीं, ऐसे चेतनरूपी आत्माकी उपासना हम करते हैं, मधुरविषे जो मधुरता है, अरु तीक्ष्णविषे तीक्ष्णता है, अरु जगत्‌विषे चलणा शक्ति है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया तुरीयातीतविषे जो समतत्त्व है, तिसकी हम उपासना करते हैं, त्रिलोकीके देहरूपी जो मोती हैं, तिनविषे जो तंतुकी नांई अनुस्यूत है, अरु पसारणे संकोचणेका कारण है, तिस चेतनरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं, जो षोडश कला संयुक्त अरु षोडश कलातें रहित है, अरु अकिंचन किंचनरूप है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, चेतनरूप अमृत है, जो क्षीरसमुद्रतें निकस्या है, चंद्रमाके मंडल विषे रहता है, ऐसा जो स्वतःसिद्ध अमृत है, जिसकों पाइकरि कदाचित् मृतक न होवै, तिस चेतन अमृतकी हम उपासना करते हैं, जो अखंड प्रकाश है, अरु सर्व भूतकों सुंदर करता है, तिस चिदात्माकों हम उपासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जिसकरि प्रकाशते हैं, अरु आप इनतें रहित है, तिस चेतन आत्माकी हम उपासना करते हैं, सर्व मैं हौं, अरु सर्व मैं नहीं, और भी कोउ नहीं, इस प्रकार विदित जाणीकरि अपणे अद्वैतरूपविषे विगतज्वर होकरि स्थित होते हैं, यही निश्चय ज्ञानवान्‌का है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीव

न्मुक्ति निश्चयोपदेशो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो निष्पाप पुरुष हैं, तिनकों यही निश्चय रहता है, जो सत्यरूप आत्मतत्त्व है, इह पूर्ण बोधवानका निश्चय है, तिनकों न किसीविषे राग होता है, न दोष होता है, जीणा मरणा उसकों सुखदुःख नहीं देता, इक समान रहता है, सो विष्णु नारायणका अंग है, अर्थ यह जो अभेद है, सदा अचल है; जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि नहीं चलायमान होता, तैसे उह दुःखकरि नहीं चलायमान होता, ऐसे जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो वनविषे विचरते हैं, नगर द्वीप नानाप्रकारके स्थानविषे फिरते हैं, परंतु दुःखकों नहीं प्राप्त होते, स्वर्गविषे फूलके वन बगीचेविषे फिरते हैं, केई पर्वतकी कंदराविषे रहते हैं, केई राज्य करते हैं, शत्रुकों मारिकरि शिर उपर झुलावते हैं, केई श्रुति स्मृति अनुसार कर्म करते हैं, केई भोग भोगते हैं, केई विरक्त होकरि स्थित हैं, दानयज्ञादिक कर्म करते हैं, केई स्त्रीसाथ लीला करते हैं, कहूं गीत सुनते हैं, कहूं नंदनवनविषे गंधर्व गायन करते हैं, केई गृहविषे स्थित हैं, केई तीर्थ यज्ञ करते हैं, केई नोबत नगारे तुरीयां सुणते हैं, इत्यादिक नानाप्रकार केई स्थानविषे रहते हैं, परंतु आसक्त कोउ नहीं होते, जैसे सुमेरु पर्वत तालविषे नहीं डुबता, तैसे ज्ञानवान् किसी पदार्थविषे बंधमान नहीं होते, इष्टकों पायकरि हर्षवान नहीं होते, अनिष्टकों पायकरि दुःखी नहीं होते, आपदा संपदाविषे तुल्य रहते हैं, प्रकृत आचार कर्मकों करते हैं, परंतु अंतर सर्व आरंभतें रहित है ॥ हे राघव! इस दृष्टिकों आश्रय करिके तुम भी विचरौ, इह दृष्टि सर्व पापका नाश करती है, अहंकारतें रहित होकरि जो इच्छा होवै सो करौ, जब यथाभूतदर्शी हुए तब निर्बंध हुए, जो कछु पतित प्रवाहकरि आय प्राप्त होवै, तिसविषे सुमेरुकी नांई तुम अचल रहौगे ॥ हे रामजी! इह सब जगत् चिन्मात्र है, न कछु सत्य है, न असत्य है, उही इसप्रकार होकरि भासता है, इस दृष्टिकों आश्रय करिके अवर तुच्छ दृष्टिकों त्यागहु ॥ हे रामजी! असंसक्तबुद्धि होकरि सर्व भावअभावविषे स्थित होकरि रागद्वेषतें चलायमान नहीं

होवैगा, अब सावधान होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बडा आश्चर्य है, मैं तुमारे प्रसादकरि जानणे योग्य पद जाण्या है, अरु प्रबुद्ध हुआ हौं, जैसे सूर्यकी किरणांकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे तुमारे वचनकरि मेरा संदेह नष्ट हुआ है, मान मोह मद मत्सर सब नष्ट होगये हैं, मैं अब सर्व क्षोभतें रहित शांतिकों प्राप्त भया हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिनिश्चयवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सम्यक् ज्ञान विलासकरि वासना उदय होती है, सो जीवन्मुक्ति पदविषे किस प्रकार विश्रांति पाइये सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसार तरणेकी युक्ति है सो योगनाम्नी है, सो युक्ति दो प्रकारकी है, एक सम्यक् ज्ञान करिके अरु दुसरी प्राणके रोकणे करिके ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इन दोनोंविषे सुगम कवन है, जिसकरि दुःख भी न प्राप्त होवै, अरु बहुरि क्षोभ भी न होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! दोनों प्रकार योग शब्दकरि कहाता है, तौ भी योग नाम प्राणके रोकणेका है, संसारके तरणेके योग अरु ज्ञान दोनों उपाय हैं, इन दोनोंका फल एकही सदाशिवनें कहा है ॥ हे रामजी! किसीकों योग करणा कठण है, अरु ज्ञानका निश्चय सुगम है, किसीकों ज्ञानका निश्चय कठिन है, अरु योग करणा सुगम है, अरु जो मुझतें पूछै तौ दोनोंविषे ज्ञान सुगम है, इसविषे यत्न कष्ट थोडा है, जानणे योग्य पदार्थकों जाणेतें बहुरि स्वप्नविषे भी भ्रम नहीं होता है, साक्षीभूत होकरि दृष्ट देखता है, अरु जो बुद्धिमान योगीश्वर हैं, तिनकों भी यत्न कछु नहीं, स्वाभाविक चले जाते हैं, तिनकी एक युक्ति समझीकरि चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! दोनोंकी सिद्धता अभ्यास यत्न करि होती है, अभ्यासविना कछु प्राप्त नहीं होती, सो ज्ञान तौ मैं तुझकों कहा है, जो हृदयविषे विराजमान ज्ञेय है; तिसकों जानणा ज्ञान है, अरु जो प्राणअपानके रथ उपर आरूढ है, हृदयरूपी गुहाविषे स्थित है ॥ हे रामजी! तिस योगका भी क्रम सुण, परम सिद्धताके निमित्त है, प्राणवायु जो नासिका अरु मुखके मार्ग

सुमेरुशिखर.

पडी आती जाती है, तिसके रोकणेका क्रम कहता हौं, तिसकरि चित्त उपशम हो जाता है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानज्ञेयविचारो नाम द्वादशः सर्गः॥ १२॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके किसी कोणविषे इह जगतरूपी स्पंद आभास फुर्या है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणांकरि मृगतृष्णाका जल फुरि आता है, तैसे जगत् ब्रह्मतें फुरि आया है, तिस जगत्के कारणभावकों सोइ प्राप्त हुआ है, अरु ब्रह्मके नाभिकमलतें उत्पत्ति है जिसकी, अरु पितामह नामकरि कहाता है, तिसका मानसी पुत्र श्रेष्ठ आचार है जिसका, ऐसा जो मैं वसिष्ठ हौं, अरु नक्षत्र ताराचक्रविषे मेरा निवास है, जुग जुग प्रति मैं तहां रहता हौं, सो मैं जब नक्षत्रचक्रतें उठ्या, तब इंद्रकी सभाविषे आया, तहां ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे थे, जब नारद आदिकविषे चिरंजीविका कथाप्रसंग चल्या तब तहां शातातप नाम एक ऋषीश्वर था, सो कैसा था, मन जो मान करणेकों योग्य बुद्धिवान था, सो कहत भया, जो हे साधो ! सबविषे चिरंजीवि है सो एक है, सुमेरु पर्वतकी जो कंदरा है, तिसकी कोण पद्मराग नाम्नी है कंदरा, तिसके शिखरपर एक कल्पवृक्ष है, सो महासुंदर अपणी शोभाकरि पूर्ण है, तिस वृक्षके दक्षिण दिशा टास हैं, तहां पक्षी रहते हैं, तिन पक्षीविषे महा श्रीमान एक कउवा रहता है, भुषंड तिसका नाम है, सो कैसा है, वीतराग अरु बुद्धिमान उह उहां रहता है, उसका आलय कल्पवृक्षके टास उपर बन्या हुआ है, जैसे ब्रह्मा नाभिकमलविषे रहता है, तैसे उह आलयविषे रहता है, जैसे उह जीया है, तैसे न कोउ जीया है, न जीवैगा, उसकी बडी आयुर्बला है, अरु श्रीमान महाबुद्धिवान विश्रांतिवान शांतरूप अरु कालका वेत्ता ऐसा उह है॥ हे साधो ! बहुत जीणा भी तिसका सफल है, अरु पुण्यवान भी उही है, जिसकों आत्मपदविषे विश्रांति भई है, अरु संसारकी आस्था जाती रही है, ऐसा जो पुरुष है सो उह है, ऐसे गुणकरि संपन्न तिसका नाम काकभुषंड है, इस प्रकार जब उस देवताके देवनें कहा, संपूर्ण सभाविषे, तब ऋषी

श्वरनें दूसरी वार पूछा, जो उसका वृत्तांत बहुरि कहौ, तब उसनें बहुरि वर्णन किया, तिस कालमें सब आश्चर्यकों प्राप्त हुए, जब ऐसे कथा वार्ता होए चूकी, तब सबही सभा उठी खडि हुई, अपणे अपणे आश्रमकों गये, अरु मैं आश्चर्यमान हुआ, जो ऐसे पक्षीकों किसी प्रकार देखियें, ऐसे विचार करिके मैं सुमेरु पर्वतकी कंदराके सन्मुख हुआ, अरु चल्या, तब एक क्षणविषे जाय प्राप्त भया, क्या देखा जो महाप्रकाशरूप कंदराका शिखर है, रत्नमणिकरि पूर्ण है अरु गेरीकी नांई रंग है, जैसे अग्निकी ज्वाला होती है, तैसे प्रकाशरूप है, मानौ प्रलयकालमें अग्निकी ज्वाला पडी जागती है, ऐसे मणि अरु रत्नका प्रकाश है, अरु वीज जो नील मणी है, सो धूम्रके समान है, मानौ धुआं पडा निकसता है, अरु सर्व रंगकी खाण है, अरु जेते कछु संध्याके बदल लाल होते सो मानौ एकठे आनि हुए हैं, मानौ जोगीश्वरके ब्रह्मरंध्रतें अग्नि निकसि एकठी आय भई हैं, जठराग्नि एकठी हुई है, मानौ वडवाग्नि समुद्रतें निकसिकरि मेघकों ग्रहण करणे निमित्त आनि स्थित भई है, महासुंदर रचना बणी हुई है, फल अरु रत्नमणिसंयुक्त प्रकाशमान है, उपर गंगाका प्रवाह चल्या जाता है, सो यज्ञोपवीतरूप हुआ है, गंधर्व गीत गाते हैं, देवीके रहणेके स्थान हैं, हर्ष उपजावणेकों महासुंदर लीलाका स्थान विधातानें रच्या है, तिसकों मैं देखत भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने सुमेरुशिखरलीलावर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे शिखर उपर कल्पवृक्षकों मैं देखत भया, जो महासुंदर फूलकरि पूर्ण रत्न अरु मणिके गुछे लगे, स्वर्णकी वल्ली लगी हुई है, अरु तारेसों दूणे फूल दृष्टि आते हैं, अरु मेघके बदलतें दूणे पत्र दृष्टि आते हैं, अरु सूर्यकी किरणांतें दूणे त्रिवर्ग भासते हैं, बिजलीकी नांई चमत्कार है, अरु पत्रपर देवता किंनर अरु विद्याधर देवी आय बैठते हैं, अप्सरा आय नृत्य करतिया हैं, अरु गायन करतियां हैं, जैसे भंवरे गुंजारव करते फिरते हैं ॥ हे रामजी ! तहां रत्नके गुछे निरंध्र अरु कलियां फूल भी

निरंध्र पत्र फल भी निरंध्रमणिके गुछे निरंध्र सब निरंध्रहीं दृष्टि आवैं, अरु सब स्थान फूल फल गुछेकरि पूर्ण, अरु षट्ऋतुके फूल फल तहां पावत हैं, महाविचित्र रचना बणि हुई है, तिसके एक टासपर पक्षी बैठे हैं, सिंह बैठे खाते हैं, कहूं फूलफलादिक खाते हैं, कहूं ब्रह्माजीके हंस बैठे हैं, कहूं अग्निके वाहन तोते बैठे हैं अरु कहूं अश्विनीकुमार अरु भगवतीके मोर शिखावाले हैं, कहूं बगले, कहूं कबूतर, कहूं गरुड बैठे हैं, अरु ऐसे शब्द करते हैं, मानौ ब्रह्मकमलतें उपजा हुआ ओंकारका उच्चार करता है, केई ऐसे पक्षी जो हैं, तिनकी दो दो चूंच हैं, तहां मैं देखिकरि आगे दक्षिणकी कोणकों गया, जहां उस वृक्षका टास था, तहां कउए अनेक बैठे हैं, जैसे महाप्रलयविषे मेघ लोकालोक पर्वतपर आय बैठते हैं, तैसे उहां कउए अचल आकार बैठे हैं, सोम, सूर्य, इंद्र, वरुण, कुबेर, इनकी यज्ञकी रक्षा उहांतें लेणेहारे हैं, अरु पुण्यवान स्त्रियांकों प्रसन्नता देणेहारे भर्त्ताके संदेसे पहुचावणेवाले हैं, सो उहां बैठे हैं, तिनकों मैं देखत भया, तिनके मध्य महा श्रीमान भुषंड बैठा है, उंची ग्रीवा किये हुए अरु बडी कांती है, जैसे नील मणि चमकती है, तैसे उसकी ग्रीवा चमकती है, अरु पूर्ण मन अरु मानी अर्थ यह जो मान करणे योग्य है, अरु श्याम सब अंग सुंदर अरु प्राण स्पंदकों जीतणेहारा नित्य अंतर्मुख अरु नितही सुखी चिरंजीवी पुरुष तहां बैठा है, जगतविषे दीर्घ आयु, जगत्की आगमापायी, जिसनें देखते देखते बहुत कल्पका स्मरण किया है, अरु इंद्रकी केई परंपरा देखियां हैं, लोकपाल वरुण कुबेर यमादिकके केई जन्म देखे हैं, देवता सिद्धके अनेक जन्म इस पुरुषनें देखे हैं, प्रसन्न अरु गंभीर अंतःकरण जिसका, अरु सुंदर है वाणी जिसकी, अरु वक्रतातें रहित निर्मम अरु निरहंकार सबकों सुहृद मित्र है, बडी कोंटर हलवेकी नांई है, जो पिता समान है, तिनकों पुत्रकी नांई है, अरु जो पुत्रके समान हैं, तिनकों उपदेश करणेनिमित्त पिता अरु गुरुकी नांई समर्थ होता है, अरु सर्वथा सर्व प्रकार सर्वकाल सबविषे समर्थ है, अरु प्रसन्न महामति हृदय पुंडरीक व्यवहारका वेत्ता है, गंभीर

अरु शांतरूप महाज्ञातज्ञेय है, ऐसे पुरुषकों मैं देखत भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडदर्शनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तिसके अनंतर मैं आकाशमार्गतें उहां आया, महातेजवान दीपकवत् प्रकाशवान मेरा शरीर, जब मैं उतर्या तब जेते कछु पक्षी बैठे थे, सो जैसे वायुकरि कमलकी पंक्ति क्षोभकों प्राप्त होती है, जैसे भूकंपकरि समुद्र क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे क्षोभकों प्राप्त हुए, तिनके मध्य जो भुषंड था, सो मुझकों देखत भया, सो मैं कैसा था, जो अकस्मात् गया था तौ भी उसनें मुझकों जान्या, जो यह वसिष्ठ है, ऐसे देखीकरि उठी खडा हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनीश्वर! स्वस्थ हौ क्यौं अरु कुशल है क्यौं? ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि संकल्पके हाथ रचे, तिनसाथ मेरा अर्घ्य पाद्य किया, भावसंयुक्त पूजन करत भया, अरु टहलुकों दूर करिके आपही वृक्षके बडे पत्र लिये तिनका आसन रचिकरि मुझकों बैठाया, अरु कहत भया ॥ भुषंड उवाच ॥ अहो, आश्चर्य है ॥ हे भगवन्! तुम बडी कृपाकरि दर्शन दिया है, चिरपर्यंत दर्शनरूपी अमृतकरि हम वृक्षसहित पूर्ण हो रहे हैं ॥ हे भगवन्! मेरे पुण्य जो एकठे हुए थे, सो एकठे होकरि तुमकों प्रसन्नताके निमित्त प्रेरि ले आये हैं ॥ हे मुनीश्वर! देवता पूजणे योग्य हैं, तिनके भी तुम पूज्य हौ, सो तुमारा आवणा किस निमित्त हुआ है, इस मोहरूप संसारतें तुम ही रहे हौ, अरु अखंड सत्ता समानविषे तुम स्थित हौ, सदा पावन हौ, अभीष्ट प्रश्न यह है जो तुमारा आवणा किस निमित्त हुआ है, इह मुझकों कहो, आपका मनोरथ क्या है? ॥ अर्थ यह जो क्या इच्छा है, अरु तुमारे चरणके दर्शन करिके मैं तौ सब कछु जान्या है, जिन निमित्त तुमारा आवणा हुआ है, स्वर्गकी सभा विषे चिरंजीविका प्रसंग चल्या था, तब मैं शरणविषे आया था, तिसकरि तुम मुझकों पवित्र करणे आए हौ, इह तुमारे चरणके प्रताप करिके मैं जाण्या है, परंतु प्रभुके वचनरूपी अमृतके स्वादकी तुझकों इच्छा है, इस निमित्त मैं प्रभुके मुखतें श्रवण करौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चिरंजीवि भुषंड नाम पक्षीनें मुझकों कहा,

तब मैं कहत भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीके महाराजा! जो कछु तुमनें कहा है सो सत् कहा है, मैं अभ्यागत तेरे आश्रम इस निमित्त आया हौं, जो चिरंजीविकी कथा चलीथी, सो तूं मुझकों शीतल चित्त दृष्टि आता है, अरु कुशलमूर्ति है, अरु संसाररूपी जालतें निकस्या हुआ दृष्ट आता है, तातें मेरे संशयकों दूर करु जो किस कालविषे तूं जन्म्या है, अरु ज्ञातज्ञेय कैसे हुआ है, अरु तेरी आयु केतीक है, अरु कवन कवन वृत्तांत तुझनें देख्या हुआ स्मरण है, अरु किस कारण तहां निवास किया है, ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो कछु तुमनें पूछा है, सो सर्वही कहता हौं, शनैः शनैः तुम श्रवण करौ, तुम जो हौ सो साक्षात् प्रभु त्रिलोकीके पूज्य हौ, अरु त्रिकालदर्शी हौ, परंतु जो कछु तुम आज्ञा करी है, सो मानणी योग्य है, तुम सारखे जो महात्मा पुरुष मानणी योग्य है, तुमसारखे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनके विद्यमान कहे हुए भी अपणेविषे जो कछु तप्तता होती है, सो निवृत्त हो जाती है, जैसे मेघके आगे आये हुए सूर्यकी तप्तता मिटि जाती है, तैसे तुमारे आगे कहनेकरि तप्तता निवृत्त हो जाती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडसमागमो नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे कहीकरि भुषंड मुझकों कहत भया, कैसा भुषंड है, सर्वज्ञ अरु सुंदर अरु समता संयुक्त है, सो स्निग्ध अरु गंभीर वाणीकरि कहत भया, जिसनें ताकडीविषे ब्रह्मांड तोलि छोड्या है, अरु जगत् जिसकों तृणकी नांई तुच्छ भासता है, काहेतें जो लोककी उत्पत्ति अरु प्रलय उसनें बहुत देखी है, अरु चित्तकी वृत्ति किसीविषे लगाइ नहीं, जैसे क्षीरसमुद्रतें निकस्या मंदराचल परिपूर्ण सम शुद्ध है, तैसे उसका मन शुद्ध है, जैसे क्षीरसमुद्र उज्वल है, तैसे उह आत्मपदविषे विश्राम पायकरि आनंदसों पूर्ण है, अरु जगत्के उत्पत्ति विनाश जिसनें देखे हैं, ऐसा योगीश्वर मुझकों मधुर अरु उचित आगम वाणी कहत भया ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस जगत्विषे जो बडा है, सो सदाशिव सबका नायक देवताविषे देवताका देव है, अरु अर्धां

गा भगवती गौरीकों शरीरविषे धारी है, महासुंदरमूर्ति त्रिनेत्र है, अरु बडी जटा है, अरु मस्तकपर चंद्रमा है, अमृत जिसतें स्रवता है, अरु गंगा जिसकी जटाके चऊफेर चलती है, जैसे फूलमाला कंठविषे होती है, तैसे चलती है, अरु नीलकंठ है, कालकूट विषके पानकरि उह विषभूषण हो गया है, अरु कंठविषे रुंडकी माला है, अरु सर्व उरतें भस्म लगी हुई है, अरु दिशा जिसके वस्त्र हैं, अरु मसाणविषे जिसका गृह है, अरु महाशांत रूप विचरता है, अरु साथ जो सैना है, तिसके महाभयानक आकार हैं, किसीकों तो रुद्रकी नांई तीन नेत्र हैं, अरु किसीका तोतेकी नांई मुख है, किसीका उंटका मुख है, किसीका गर्दभका मुख है, किसीकों बैलका मुख है, भूत विचरणेहारे हैं, केई जीवके अंतर प्रवेशकरि जाणेहारे हैं, रक्तमांसका भोजन करणेवाले जिसके साथ फिरते हैं, केई पहाडविषे रहते हैं, केई वनविषे, केई कंदराविषे, मसाणविषे, इत्यादिक स्थानविषे उनका निवास होता है, अरु साथ देवियां भी ऐसीआं है, जिनकी महाभयानक चेष्टा आचार है, तिन देवीविषे जो मुख्य देवियां हैं, तिनका जिस जिस दिशाविषे निवास है, सो सुणो, जया अरु विजया अरु जित अरु अपराजित वाम दशाकी और तुंबर रुद्रके आश्रित हैं, सिद्ध अरु सुखका अरु रक्तका अरु उतला भैरव रुद्रके आश्रित है, सो सर्व देवीके मध्य यह अष्ट नायका, अवर शत सहस्र देवियां हैं, रुद्राणी, वैष्णवी, अरु ब्रह्माणी, वाराही, वायवी, अरु कौमारी, वासवी अरु सौरी इत्यादिक शतसहस्र देवियां हैं, इनकों साथ मिलि हुई आकाशविषे उत्तम देव, किन्नर, गंधर्व पुरुषासुर संभवतियां हैं, तिनहूंसाथ मिलियां हुइयां भूचर पृथ्वीविषे कोट है, नाना प्रकार रूप नाम धारणेहारियां पृथ्वीविषे जीवकों भोजन करतियां हैं, किनके वाहन उंट हैं, किनके गर्दभ हैं, किनके काक, किनके वानर हैं, तिनके वाहन तोते, इत्यादिक वाहन तिनके तीनों जगत्विषे रहते हैं, तिन देवीविषे केई पशुधर्मिणी हैं, जो क्षुद्रधर्मविषे स्थित हैं, अरु केई विदितवेद जीवन्मुक्त पदविषे स्थित हैं, तिनके मध्य नायक अलंबसा देवी है, जैसे विष्णुका वाहन गरुड है, तैसे देवीका वाहन काक है, सो देवी अ

ष्टसिद्धिके ऐश्वर्यसंयुक्त हैं, सो देवियां एक कालमें समागम करत भइयां, अरु विचार करत भइयां, जगत् के पूज्य तुंबर अरु भैरवकों पूजत भइयां, अरु विचार किया जो सदाशिव हमारेसाथ भावसंयुक्त नहीं बोलता, अरु हमकों तुच्छ जाणता है, हम इसकों कछु अपणा भाव दिखावैं, प्रभाव दिखायेविना कोउ किसीकों नहीं जाणता, ऐसे विचार करिके उमाकों वश करि दुराय ले गइयां, अरु उहां उत्साह किया, मद्य मांसादिक भोजन करत भइयां, अरु मायाके छल करिके पार्वतीकों मारीकरि चावलकी नांई रांधी, अरु नृत्य करणे लगियां, कछुक अंग उसके रांधे हुए सदाशिवकों आनि दिये, तब सदाशिवनें जान्या जो मेरी प्यारी पार्वती इननें मारी है, ऐसे निश्चय करिके कोपणे लगा, तब उन देवीनें अपणे अपणे अंगतें उसके अंग निकासे, सौरीनें नेत्र निकासे, कौमारीनें नासा निकासी, इह प्रकार अपणे अपणे अंग निकासीकरि तैसीही पार्वतीकी मूर्त्ति ल्याय दीनी, अरु नूतन विवाहकरि दिया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, सर्व ठउर उत्साह आनंद किया, तब सर्व देवीयां अपणे अपणे स्थानकों गइयां, अरु चंदनाम काक जो अलंबसा देवीका वाहन था, सो ब्रह्माणीकी हंसणीसाथ क्रीडा करत भया, क्रम करिके सबसाथ रमण क्रीडा करी, तब उन सबकों गर्भ प्राप्त भये, अरु हंसिणीयां ब्रह्माणीके पास गइयां, तब ब्रह्माणीनें कहा, अब तुमकों मेरे उठावणेकी शक्ति नहीं, तुम गर्भवती भइयां हौ, जहां तुमारी इच्छा होवै तहां जावहु, बहुरि फिरी आवणां ॥ हे मुनीश्वर! ऐसे कहीकरि ब्रह्माणी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई, अरु नाभिसरोवर जो ब्रह्माजीका उत्पत्तिस्थान है, तहां जाय स्थित भई, तिस तालके कमलपत्रउपर आय निवास किया, जब तहां केताक काल व्यतीत भया, तब उन हंसिणीनें तीन तीन अंड दिये, जैसे वल्लीतें अंकुर उत्पन्न होता है,तैसे उनके एकविंशति अंड क्रमकरि उत्पन्न भये, तिनकों फोडत भइयां, जैसे ब्रह्मांड खपरकों फोडिये, तीन अंडतें हमारे अंग उत्पन्न भये हैं, क्रम करिके हम बडे उडणेयोग्य हुए, तब माता हमकों ब्रह्मा

णीपास ले गइयां, तिसके आगे हम मस्तक टेके, तब ब्रह्माणी समाधितें उतरी थी, तब उसनें देखिकरि हमकों कृपाकी वृत्ति धारी, हमारे शीसपर हाथ रखा, उसके हाथ रखणेसाथ हमारी अविद्या नष्ट हो गई, अरु हमारा मन तृप्त शांतरूप होगया, जीवन्मुक्तपदविषे हम स्थित भये, तब हमको यह वृत्ति फुरि आई, जो किसी प्रकार एकांत ध्यान विषे स्थित होवैं, देवीनें आज्ञाकरि अब तुम जावहु, तब देवीजीकी आज्ञा करि हम पितापास आये, पितानें हमकों कंठ लगाया, अरु मस्तक चुंब्या, तब हम अलंबसा देवीकी पूजा करत भये, तब पितानें हमकों कहा॥ हे पुत्रो! तुम संसाररूपी जालविषे तौ नहीं फसे, अरु जो तुम निकसे नहीं फसे हौ, तब मैं भगवती देवीजीकी प्रार्थना करता हौं, उह भृत्यपर दयाल है, जैसे तुम प्राप्त होहुगे, तैसे तुमकों प्राप्त करैगी॥ हे मुनीश्वर! तब हमनें कहा, हे पिता, हम तौ ज्ञातज्ञेय हुए हैं, जो कछु जानणे योग्य है, सो जाण्या है, अरु जो पावणे योग्य है, सो हम पाया है, ब्रह्माणी देवीजीके प्रसाद करिके अब हमकों एकांतस्थानकी इच्छा है, जहा एकात होवै तहां जाय स्थित होवै, तब चंदपितानें कहा॥ ॥ हे पुत्रो! एकांत स्थान सुण, निर्दोष महापान सुंदर आलय बन्या हुआ है, निर्भय निर्मोह सर्व क्षोभतें रहित जहां कोउ दुःख नहीं, ऐसा एकांतस्थान है, अरु सर्व रत्नकी खाण है, अरु सर्व देवताका आश्रयरूप है, सुमेरु जो पर्वत है, सूर्य चंद्रमा उसके दीपक हैं, चउफेर फिरते हैं, ब्रह्मांडरूपी मंडपका उह स्तंभ है, अरु स्वर्णका है, चंद्र सूर्य तिसके नेत्र हैं, अरु ताराकी कंठविषे माला है, दशोंदिशा तिसके वस्त्र रत्नमणीका भूषण है, वृक्षवल्ली तिसके रोमावली हैं, त्रिलोकीविषे तिसकी पूजा है, षोडश सहस्र योजन पातालविषे हैं, तहां नाग दैत्य इसकी पूजा करते हैं, अरु चउरासी सहस्र योजन ऊर्ध्वकों है, तहां गंधर्व देवता किन्नर राक्षस मनुष्य इसकी पूजा करते हैं, ऐसा पर्वत जंबुद्वीपके एक स्थान विषे स्थित है, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उसके आश्रय रहते हैं, बडा उंचा पर्वत है, तिसका पद्मराग ना

म एक शिखर है, मानौ सूर्य आय उदय हुआ है, ऐसा प्रकाशरूप है, तिस शिखर उपर एक बडा कल्पवृक्ष है, मानौ जगत्रूपी शिखरका प्रतिबिंब आय पडा है, तिस कल्पवृक्षके दक्षिण दिशाकी और जो टास हैं, तिसके महारत्न गुछे हैं, अरु स्वर्णके पत्र चंद्रमाके बिंबवत् जिसके फूल हैं, अरु सघन रमणीय गुछे लगे हैं, तहां एक आलय बन्या हुआ है, उहां मैं भी आगे रहि आया हौं, जब देवीजी समाधिविषे स्थित भई थी, तब मैं उहां आलणा बणायकरि स्थित भया था, चिंतामणीकी उसकों शलाका लगी है, महारत्नसाथ बन्या है, स्वर्णवत् कुटीर बणी है, तहां तुम जाय निवास करौ, आगे भी उहां कउवेके पुत्र रहते हैं, उनका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल है, अरु बाह्यते फूलफलकरि शीतल है, तहां तुम भी जायकरि स्थित होहु, तुमकों, उहां भोग भी है, अरु मोक्ष भी है, खेदतें रहित तहां जाय स्थित होहु ॥ हे वसिष्ठजी ! जब इस प्रकार पितामहनें हमकों कहा, तब सबही पिताके चरण लगे, पितानें हमारा मस्तक चुंबन किया, तब हम विंध्याचल पर्वततें उडे, आकाशमार्गकों मेघके स्थान लंघे, नक्षत्रचक्र लंघे, लोकांतरके स्थान लंघिकरि, ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त हुए, देवीजीकों प्रणाम करत भये, भली प्रकार उसनें हमारे उपरि कृपादृष्टिकरि, दया अरु स्नेहसहित कंठ लगाय मस्तक चुंब्या, हम भी मस्तक टेंकीकरि सुमेरुकों चले ॥ सूर्य चंद्रमाके लोककों लंघ गये, तारागण लोकपाल देवताके लोकस्थानकों लंघ गये, मेघपवनके स्थानकों लंघिकरि सुमेरु पर्वतके कल्पवृक्षपर आनि स्थित भये ॥ हे मुनीश्वर ! जिस प्रकार हम उपजे हैं, अरु जिसकरि ज्ञानकों प्राप्त भए हैं, जिस प्रकार इहां आय स्थित भये हैं, सो तुमारे आगे अखंडित कहा है, आगे तुमकों जो कछु संशय होए सो पूछो ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने अस्ताचल लाभो नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इह चिरकालकी वार्त्ता तुमकों कही है, बहुत कल्प व्यतीत भये हैं, उह सृष्टि इस सृष्टितें दूरि है, बहुत युग व्यतीत भये हैं, परंतु मैं तुम

कों वर्त्तमानकी नांईं सुणाया है, अभ्यासके बलतें ॥ हे मुनीश्वर ! मेरा कोउ पुण्य था, सो फल्या है, जो तुमारा निर्विघ्न दर्शन हुआ है, यह जो आलय अरु शाखा हैं, अरु वृक्ष हैं, सो आज पावनताकों प्राप्त हुवे हैं, जो तुमारा दर्शन हुआ है, अब जो कछु संशय रहता है, सो पूछो, मैं कहों ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि उसनें मेरा भली प्रकार अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया आदर सहित, तब मैं उस कों कहा, हे पक्षीके ईश्वर ! तेरे उह भाई कहां हैं, जो तेरेसमान तत्त्ववेत्ता थे, सो तौ दृष्टि नहीं आते, एकला तूंही दृष्टि आता है ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इहां मुझकों बहुत काल व्यतीत भया है, युगकी पंक्ति व्यतीत भई है, जैसे सूर्यकों केई दिन रात्र व्यतीत हो जाते हैं, तैसे मुझकों युग व्यतीत भये हैं, केताक काल उह भी रहे थे, समय पायकरि उननें शरीर त्यागि दिये, तृणकी नांईं त्यागकरि शिव आत्मपद कों प्राप्त हुये ॥ हे मुनीश्वर ! बडी आयुर्बला होवै, अथवा सिद्ध महंत होवै, बली होवै, अथवा ऐश्वर्यवान् होवै, काल सबकों ग्रासि लेता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो ! जब प्रलयकालका समय आता है, तब सूर्य, चंद्रमा, वायु, मेघ यह अपणी मर्यादा त्यागि देते हैं, तब बडा क्षोभ होता है, तुझकों खेद किसी कारण तें नहीं होता, सूर्यकी तप्तकरि अस्ताचल उदयाचल आदिक पर्वत भस्म हो जाते हैं, तिस क्षोभविषे तूं खेदवान् किसकरि नहीं होता ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक जीव जगत्विषे आधारकरि रहते हैं, एक निराधार रहते हैं, जिनकों ऐश्वर्य सेनादिक पदार्थ होते हैं, सो आधारसहित है, अरु जो इन पदार्थ तें रहित है, सो निराधार है, सो दोनोंकों हम तुच्छ देखते हैं, सत् कोउ नहीं, बडे बडे ऐश्वर्यवान् बली भी हैं, परंतु सत्य कोउ नहीं, तिनविषे पक्षीकी जात महातुच्छ है, उजाड वनविषे उनका निवास है, उहांही इनका दाणा पाणी है, यह निरालंब है, इनकी जीविका दैवनें ऐसे बणाइ है ॥ हे भगवन् ! मैं तौ सदा सुखी हौं, अपणे आपविषे स्थित हौं, आत्मसंतोषकरि मैं तृप्त हौं, कदाचित् इस जगत्के क्षोभकरि मैं नहीं खेदकों प्राप्त हो

ता, स्वभावमात्रविषे संतुष्ट हौं, कष्ट चेष्टातें मुक्त हौं ॥ हे ब्राह्मण! अब हम केवल कालकों व्यतीत करते हैं, अवर जगत्के इष्ट अनिष्ट हमकों चलाय नहीं सकते, न मरणेकी हमकों इच्छा है, न जीवणेकी इच्छा है, काहेतें जो जीणां मरणां शरीरकी अवस्था है, आत्माकी अवस्था नहीं, हमकों जीवणेविषे राग नहीं, मरणेविषे दोष नहीं, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, तिसीविषे संतुष्ट है ॥ हे मुनीश्वर ! ऐसे ऐसे देखे हैं, सो बहुरि भस्म हो गये हैं, तिनकी अवस्थाकों देखिकरि हमारे मनकी चपलता जाती रही है, अरु हम इस कल्पवृक्षपर बैठे हैं, कैसा कल्पवृक्ष है, रत्नकी वल्ली जिसकों लगी है, तिसपर बैठीकरि मैं प्राण अपानकी गतिकों देखता हौं, इनकी कलाकी जो सूक्ष्म गति है, तिसका मैं ज्ञाता हौं अरु दिनरात्रका मुझकों ज्ञान कछु नहीं, सत् बुद्धि करिके मैं कालकों जानता हौं, अरु सारअसारकों भले प्रकार जानता हौं॥ हे मुनीश्वर ! जेता कछु विस्तार भासता है, सो सब झूठे हैं, सत् कछु नहीं, इसी कारणतें हमकों किसी दृश्य पदार्थकी इच्छा नहीं, परम उपशम पदविषे स्थित हौं, सब जगत् भी हमकों शांतरूप है, जो कोउ इस जगत्जालकों आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता, इह जगत् सब चंचल रूप है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, इसकी अवस्थाविषे हम पत्थरवत् अचल हौं, न किसीका हमकों राग फुरता है, न दोष फुरता है, किसीकी इच्छा करै, सब जगत् हमकों तुच्छ भासता है, इह सब भूतरूपी नदियां कालरूपी समुद्रविषे जाय पडतियां हैं, अरु हम कांठेपर खडे हैं, कदाचित् नहीं डूबते, अवर जेते कछु जीवभूत हैं, सो बडे डूबते हैं, केई एक तुम सारखे निकसे हुए हैं, अरु तुमारी कृपा करिके हम भी निर्विकार पदकों प्राप्त हुए हैं॥ हे मुनीश्वर! मैं निर्विकार हौं, सब जगत्के क्षोभतें रहित हौं, आत्मपदकों पायकरि उपशमरूप हौं ॥ हे मुनीश्वर ! तुमारे दर्शन करिके मैं अब पूर्ण आनंदकों प्राप्त हुआ हौं, संतकी संगति चंद्रमाकी चांदनीवत् शीतल है, अमृतकी नांई आनंदकों देणेहारी है, ऐसा कवन है, जो संतके संगकरि आनंदकों प्राप्त न होवै, सब आनंद

कों प्राप्त होते हैं, यह अर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! संतका संग चंद्रमाके अमृततें भी अधिक है, काहेतें जो उह शीतल गौण है, अंतरकी तप्त नहीं मिटावती, अरु संतका संग अंतरकी तप्त मिटावता है, उह अमृत क्षीरसमुद्रके मथनतें क्षोभसाथ निकस्या है, अरु संतका संग सुखने प्राप्त होता है, आत्मानंदकों प्राप्त करता है, तातें यह परम उत्तम है, मैं तौ इसतें पर अवर उत्तम नहीं मानता, संतका संग सबतें उत्तम है, अरु संत भी उही है, जिनकी सर्व इच्छा आपातरमणीय निवृत्त भई हैं, अर्थ यह जो विचारविना दृश्य पदार्थ सुंदर भासता है, अरु नाशवंत है, जिनकों ऐसे पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु सदा आत्मानंदकरि तृप्त हैं, अरु अद्वैत निष्ठा है, द्वैतकलनाका जिनकों अभाव भया है, सदा आत्मानंदविषे स्थित है, ऐसे पुरुष संत कहीते हैं, तिन संतकी संगति ऐसी है, जैसे चिंतामणि होता है, जिसके पायेतें सर्व दुःख नाश होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी कमलके भंवरे एक तुमही दृष्ट आते हौ, सब ज्ञानवानतें उत्तम दृष्ट आये हौ, तुमारे वचन स्निग्ध अरु कोमल अरु आत्मरसकरि पूर्ण अरु हृदयगम्य अरु उचित है, अरु हृदय महागंभीर अरु उदार धैर्यवान सदा आत्मानंदकरि तृप्त है, तातें तुम सबतें उत्तम मुझकों दृष्टि आये हौ, तुमारे दर्शनकरि मेरे दुःख नष्ट भये हैं, आज मेरा जन्म सफल भया है, तुम सारखे संतका संग आत्मपदकों प्राप्त करता है, अरु दुःखभयकों नष्ट करिके निर्भयताकों प्राप्त करता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतमहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुमनें पूछा था, जो सूर्य वायु जलका क्षोभ होता है, तब तूं खेदवान किसकरि नहीं होता, तिसका उत्तम श्रवण करहु, जब जगत्कों क्षोभ होता है, तब मेरा कल्पवृक्ष इह स्थिर रहता है, क्षोभकों यह नहीं प्राप्त होता ॥ हे मुनीश्वर! यह मेरा वृक्ष सब लोककों अगम है, भूत नष्ट होते हैं, तब भी मैं इसकरि सुखी रहता हौं, जब हिरण्यकशिपु दीपसहित पृथ्वीकों समेटिकरि पाताल लेगया था, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भ

या, जब देवताका, अरु दैत्यका युद्ध हुआ, तब अवर पर्वत सब चलायमान भये, अरु मेरा वृक्ष स्थिर रहा, अरु जब क्षीरसमुद्रके मथणेनिमित्त विष्णुजी सुमेरुकों भुजासाथ उखाडनें लगे तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान न भया, बहुरि मंदराचलकों ले गये, तब क्षीरसमुद्रकों मथणे लगे, प्रलयकालका पवन अरु मेघका क्षोभ हुआ है, तब भी मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया, बहुरि एक दैत्य सुमेरुकों आय पटकणे लगा, उसनें कछुक उखाड्या परंतु मेरा वृक्ष कंपायमान नहीं भया ॥ हे मुनीश्वर! इत्यादिक बडे बडे उपद्रव आनि हुए हैं, प्रयकालके मेघ अरु पवन अरु सूर्य तपै हैं, तब भी मेरा वृक्ष स्थिर रहा है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे साधो! जब प्रलयकालके वायु अरु मेघ आय क्षोभते हैं,तब तूं विगतज्वर कैसे रहता है॥ ॥भुषंड उवाच॥ हे साधो! जब प्रलयकालके वायु मेघादिक क्षोभ करते हैं, तब मैं कृतघ्नकी नांई अपणे आलणेकों त्यागी जाता हौं, सब क्षोभतें रहित आकाशविषे जाय स्थित होता हौं, अरु सब अंगकों संकुचाय लेता हौं, जैसे वासनाकों रोकेतें मन सकुचि जाता है,तैसे मैं अंगकों सकुचाए लेता हौं॥ हे मुनीश्वर! जब प्रलयकालका सूर्य तपता था, तब मैं जलकी धारणाकरि जलरूप हो जाता था, अरु जब वायु चलता था, तब पर्वतकी धारणा बांधिकरि स्थित हो जाता था, जब बहुत तत्त्वता क्षोभ होता था, तब सबकों त्यागिकरि ब्रह्मांड खपरके पार जो निर्मल परमपद है, तहां मैं जाय स्थित होता हौं, सुषुप्तिवत् अचल गंभीर हो जाता हौं, जब ब्रह्मा उपजीकरि बहुरि सृष्टिकों रचता है, तब मैं सुमेरुके वृक्ष उपर इसी आलणेविषे स्थित होता हौं॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे पक्षीश्वर! जैसे तुम अखंड स्थित होते हौ तैसे अवर योगीश्वर स्थित क्यौं नहीं होते॥ ॥भुषंड उवाच॥ हे मुनीश्वर! यह परमात्माकी नीति है, सो किसीकों लंघी नहीं जाती, उन योगीश्वरकी नीति इसप्रकार हुई है, अरु मेरा होणा इसी प्रकार हुआ है, ईश्वरकी नीति अतुल है, उनविषे तुल्यता किसीकों करि नहीं जाती, जहां जैसी नीति हुई है, तहांतैसीही है, अन्यथा किसीकों नहीं होती, इसी प्रकार हमकों

भई हैं, जो कल्पकल्पविषे इसी पर्वतके वृक्ष उपर आलणा होता है, हम आय निवास करते हैं॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे पक्षीके नायक! तुमारी अत्यंत दीर्घ आयु, ज्ञानविज्ञानकरि संपन्न हौ, अरु योगीश्वर हौ, तुम अनेक आश्चर्य देखे हैं, तिनविषे जो स्मरणमें आता है, सो कहौ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! एक वार ऐसे स्मरण आता है, जो पृथ्वीपर तृण अरु वृक्षही थे, अवर कछु न था, बहुरि एक वार एकादश सहस्र वर्षपर्यंत भस्मही दृष्ट आवै जो वृक्ष तृण जलि गये, एक वार ऐसी सृष्टि हुई जो तिसविषे चंद्र सूर्य न उपजैं, दिन अरु रात्रकी गति कछु जाणिये नहीं, कछु कछु सुमेरुके रत्नोंका प्रकाश होवै, एक कल्प ऐसे हुआ है, जो देवता अरु दैत्यका युद्ध हुआ, दैत्यकी जीत भई, सब देवता तिननें मनुष्यकी नांई हत किये, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनोंही देवता रहे, अवर सब सृष्टि इननें जीती, वीस युगपर्यंत तिनहीकी आज्ञावर्ती, बहुरि एक वार ऐसे चित्त आता है, जो दो युगपर्यंत पृथ्वीपर वृक्षही रहै, अवर सृष्टि कछु न भासै, बहुरि एक वार दो युगपर्यंत पृथ्वी उपर पर्वतही सघन हो रहै, अवर कछु न भासै, अरु एक वार ऐसे हुआ, जो सब जलही हो गया, अवर कछु न भासै, एक सुमेरु पर्वत स्तंभेकी नांई भासै, अरु एक वार अगस्त्यमुनी दक्षिण दिशातें आया, अरु विंध्याचलपर्वत बढ्या, सब ब्रह्मांड चूर्णकरि दिया, यह स्मरण आता है ॥ हे मुनीश्वर ! बहुत कछु स्मरण आता है, परंतु संक्षेपतें सुणो, एक कालकों सृष्टिविषे देवताही मनुष्य दैत्यादिक कछु न भासै, एक वार ऐसी सृष्टि हुई, जो ब्राह्मण मद्यपान करही अरु शूद्र बडे हो बैठें, अरु जीवविषे विपर्ययही धर्म होवें, अरु एक वार ऐसी सृष्टि स्मरणमें आती है, जो पृथ्वीविषे पर्वत कोउ दृष्टि न आवैं, बडा उजाडही हो रहा, एक वार ऐसी सृष्टि हुई जो सूर्य चंद्रमा नक्षत्र लोकपाल कोउ न उपजा, एक सृष्टि ऐसी हुई जो सबही उपजें, एक सृष्टि ऐसी हुई जो तिसविषे स्वामी कार्तिक न उपजा, दैत्य वधि गये, दैत्यहीका राज्य हो गया, इत्यादिक मुझकों बहुत स्मरण है, केताक कहौं, सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, इंद्र

उपेंद्र लोकपाल इनके बहुत जन्म मुझकों स्मरण आते हैं, जब हिरण्यकशिपुकों हरिने मार्या है, सो भी चित है, जो वेदकों चुराय ले आया हैं, अरु क्षीरसमुद्र मथे है, सो भी बहुत स्मरणमें आते हैं, ऐसी सृष्टि भी देखी है, जो विष्णुजीका वाहन गरुड हुआ नहीं, अरु ब्रह्माजी हंसवाहनविना हुआ है, अरु रुद्र बैल वाहनविना हुआ है, इसतें आदिलेकरि बहुत कछु देखा है, क्या क्या तुमारे आगे वर्णन करौं? ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने जीवितवृत्तांतवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच॥ हे मुनीश्वर! जब बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई, तब तुम उत्पन्न हुए भारद्वाज पुलस्त्य नारद इंद्र मरीचि उद्दालक क्रित भृगु अंगिरा सनत्कुमार भृगेश आदिक उपजें, बहुरि सुमेरु मंदराचल कैलास हिमालय आदिक पर्वत उपजें, अत्रि, व्यासदेव वाल्मीक इत्यादिक यह जो अल्पकालके उपजे हैं॥ हे मुनीश्वर! तुम ब्रह्माके पुत्र हौ, तुमारे आठ जन्म मुझकों स्मरण आते हैं, कबी तुम आकाशतें उपजे हौ, कबहूं जलतें उपजे हौ, कबहूं पहाडतें, कबहूं पवनतें, कबहूं अग्नितें उपजे हौ॥ हे मुनीश्वर! मंदराचल पर्वत क्षीरसमुद्रविषे पाएकरि जब मथणे लगे हैं, तब देवता अरु दैत्य क्षोभवान हुए मंदराचल अधकों चला जाता है, तब विष्णुजी कछुवाका रूप धारी पर्वतकों ठहरावत भये, अरु अमृतकों निकास्या, सो मुझकों द्वादशवार स्मरण में आता है, अरु तीनवार हिरण्यकशिपु पृथ्वीकों समेटी ले गया है, पातालविषे अरु षष्ठवार परशुराम रेणुका माताका पुत्र हुआ है, बहुत सृष्टिके पाछे हुआ है, जब दैत्य क्षत्रियके गृहविषे उपजणे लगे तिसनिमित्त विष्णुजी परशुरामका अवतार लेत भया, बहुत काल युगके व्यतीत हो गए हैं॥ हे मुनीश्वर! एक सृष्टि ऐसी भई है, जो अगलेतें विपर्ययरूप शास्त्र अरु पुराणके अर्थ अवर अवर प्रकारके, अरु एक कल्पविषे अवरही पाठ अवरही युक्ति, अवरही अर्थ, काहेतें जो युग युग प्रति अवरही पुराण होते हैं, केई देवता करते हैं, केई ऋषीश्वर मुनीश्वर कहते हैं, अवर कथा इतिहास बहुत स्मरणमें आते हैं, वाल्मीकनें द्वादश

वार रामायण कीनी हैं, सो विस्मरण हो गया है, जगत्‌विषे दो वार महाभारत व्यासनें किये हैं, अरु यह जो व्यासनामा जीव है, तिसनें सप्तवार किया है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार आख्यान कथा इतिहास शास्त्र जो जो हुए हैं, सो मुझकों बहुत स्मरणमें आते हैं ॥ हे साधो! दैत्यके मारणेनिमित्त विष्णुजीनें अवतार धरे हैं, युग युग प्रति एकादश वार मुझकों रामजी स्मरणमें आता है, अरु वसुदेवके गृहविषे पृथ्वीके भार उतारणेनिमित्त कृष्णजीनें सोलह वार अवतार लिए हैं, सो मुझकों स्मरण है, तीन वार नरसिंह अवतार धारिकरि हिरण्यकशिपुकों मारा है, हे मुनीश्वर! इस प्रकार मुझकों अनेक सृष्टि स्मरण आती है, परंतु सबही भ्रममात्र है, कछु उपजती नहीं, जब आत्मतत्त्वविषे देखता हों, तब सृष्टि कछु नहीं भासतियां; सब सत्तामात्र है, जैसे जलविषे बुद्‌बुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसे आत्माविषे मनके फुरणेकरि केई सृष्टि उपजतियां हैं, अरु लीन हो जातियां हैं, तिस फुरणेकरि केई सृष्टि देखियां हैं, केई सदृशही उपजतियां हैं, केई अर्ध सदृश, केई विपर्ययरूप उपजतियां हैं ॥ हे मुनीश्वर! केई सृष्टिविषे उनही जैसे आकार अरु उनही जैसे कर्म आचार होते हैं, केई मन्वंतर मन्वंतरप्रति अवरही अवर सृष्टि होतियां हैं, किसीविषे ऐसे होता है, पुत्र पिता हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है, बांधव अबांधव अरु अबांधव बांधव हो जाता है, इस प्रकार विपर्यय होते दृष्ट आये हैं, हेमलतावान् कबहूं इसही कल्पवृक्षपर हमारा आलय होता है, कबहूं मंदराचलविषे, कबहूं हिमालय पर्वतविषे, कबहूं मालव पर्वतविषे हमारा आलय होता है, इसी प्रकार वन वृक्ष वल्लीउपर हो जाता है, कबहूं इसी कल्पवृक्षउपर हो जाता है, अब तौ बहुत काल हुवा है, जो इसी कल्पवृक्षपर होता है, अरु इसी आलयविषे हमारा निवास होता है, जब सृष्टि नाश हो जाती है, तब भी मेरा यही शरीर रहता है, मैं आसन लगाएकरि अपणी पुर्यष्टककों ब्रह्मसत्ताविषे स्थिति करता हौं, इसी कारणतें मुझकों बहुरि यही शरीर प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प फुर

ता है, तैसा आगे जगत् हो भासता है, यह जगत् सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं, केवल भ्रमरूप है, तिस जगत्भ्रमविषे अनेक आश्चर्य दृष्ट आते हैं, पिता पुत्र हो जाता है, मित्र शत्रु हो जाता है, स्त्री पुरुष हो जाती है, पुरुष स्त्री हो जाता है, अनेकवार ऐसे होते हैं, कबहुं कलियुगविषे सतयुग वर्तणे लागता है, सत्ययुग विषे कलियुग वर्तणे लागता है, द्वापरविषे त्रेता, त्रेताविषे द्वापर वर्तणे लागता है, अदृश्यही वेदविद्याके अर्थ होते हैं, नानाप्रकारके आश्चर्य भासते हैं ॥ हे मुनीश्वर! सहस्र चोकडी युगकी व्यतीत होती है, तब ब्रह्माजीका एक दिन होता है, सो दो दिन ब्रह्मा समाधिविषे जुडी रहा, सृष्टि शून्यही रही, यह भी स्मरण आता है, अवर भी केई देश क्रिया विचित्ररूप चित्त आते हैं, क्या क्या कहौं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिरअतीतवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब भुषंडने कहा, तब मैं बहुरि जिज्ञासाके अर्थ पूछत भया, जो हे पक्षीके ईश्वर! तूं चिरपर्यंत जगत्विषे व्यवहार करता रहा है, तेरे शरीरकों मृत्युनें किसनिमित्त ग्रास न किया ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तूं सर्व जाणता है, परंतु ब्रह्मजिज्ञासा करिके पूछता है, तातें जैसे भृत्य टहलुआ वेदार्थ पढीकरि बहुरि गुरुके आगे कहते हैं, तैसे मैं आज्ञा मानीकरि कहता हौं ॥ हे मुनीश्वर! मृत्यु जिसकों मारता है, अरु जिसकों नहीं मारता, सो श्रवण करहु, दुःखरूपी जो मोती है, सो वासनारूपी तंतुसाथ परोए हैं, इह माला जिसके हृदयरूपी गलेविषे पडी हुई है, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु जिसके कंठ विषे इह माल पडी नहीं, तिसकों मृत्यु नहीं मारता, शरीररूपी वृक्ष है, अरु चित्तरूपी सर्प तिसविषे बैठा है, आशारूपी अग्नि जिस वृक्षकों नहीं जलावता, सो मृत्युके वश नहीं होता, अरु रागदोषरूपी विषसों पूर्ण जो चित्तरूपी सर्प है, अरु तृष्णाकरि चूर्ण होता है, लोभरूपी व्याधकरि नष्ट होता है, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु ग्रासि लेता है, जिसकों इनका दुःख नहीं स्पर्श करता, तिसकों मृत्यु भी नहीं नाश करता ॥ हे मुनीश्वर! शरी

ररूपी समुद्र है, क्रोधरूपी वडवाग्निकरि जलता है, जिसकों क्रोधरूपी अग्नि नहीं जलावता, तिसकों मृत्यु भी नहीं मारता, जिसका मन परमपावन निर्मल पदविषे दृढ विश्रांत स्थित हुआ है, तिसकों मृत्यु नाश नहीं करता है॥हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, तृष्णा, चिंता, चंचलता, अभिमान, प्रमाद, इत्यादिक दुःख जिसविषे होते हैं, तिसकों मृत्यु मारता है, अरु जिसकों काम, क्रोध, लोभादिक रोग संसारबंधन का कारण बांधि नहीं सकते, अरु जो इनकरि लेपायमान नहीं होता, तिसकों आधिव्याधिरूपी मल जिसकों स्पर्श नहीं करते, तिसकों अरु जो लेता है, देता है, सब कार्य करता है, अरु चित्तविषे अनात्मअभिमान स्पर्श नहीं करता, तिसकों अरु जो पुरुष इष्टकी वांछा नहीं करता, अनिष्टविषे दोष नहीं करता, दोनोंकी प्राप्तिविषे सम रहता है, तिसकों समाहतचित्त कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु ऐश्वर्यवान् सुंदर पदार्थ हैं, सो सब असत् रूप हैं, चक्रवर्ती राजा अरु स्वर्गविषे गंधर्व विद्याधर किन्नर देवता तिनकी स्त्री गण अरु सुरकी सेना आदिक सब नाशरूप हैं, मनुष्य दैत्य देवता असुर पहाड ताल समुद्र नदियां जेते कछु बडे पदार्थ हैं, सो सबही नाशरूप हैं, स्वर्गलोक पृथ्वीलोक पाताललोक जेता कछु जगत् है, भोग हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, अरु अशुभ हैं, कोउ पदार्थ श्रेष्ठ नहीं, न पृथ्वीका राज्य श्रेष्ठ है, न देवताका रूप श्रेष्ठ है, न नागका पाताललोक श्रेष्ठ है, न कछु शास्त्रका विचारणा श्रेष्ठ है, न काव्यका जानणा श्रेष्ठ है, न पुरातन कथाके क्रम वर्णन करणे श्रेष्ठ हैं, न बहुत जीणा श्रेष्ठ है, न मूढताकरि मर जाना श्रेष्ठ है, न नरकविषे पडना श्रेष्ठ है, न इस त्रिलोकीविषे अवर कोउ पदार्थ श्रेष्ठ है, जहां संतका मन स्थित है, सोइ श्रेष्ठ है, यह नानाप्रकारका जगत्क्रम चलरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मूढ होकरि चल पदार्थविषे नहीं रमते, उह बहुत जीणेकी इच्छा भी नहीं करते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने संकल्पनिराकरणं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! केवल एक आत्मदृष्टि सबतें श्रेष्ठ है, जिसके

पायेतें सर्व दुःख नाश होते हैं, अरु परमपदकों प्राप्त होते हैं, सो आत्मचिंतवन सर्व दुःखका नाश करता है, चिरकालके तीन तापकरि तप्या जो जीव है, अरु जन्मके मार्गकरि थका हुआ है, तिसके श्रमकों दूर करती है, अरु तप्तता मिटावती है, समस्त दुःखकों जो अविद्या सत्ता अनर्थ प्राप्त करणेहारी है, तिसकों नाश करती है, जैसे अंधकारकों प्रकाश नाश करता है, तैसे इसके अंतर शीतल प्रकाश उपजाती है॥ हे भगवन्! ऐसी जो आत्मचिंतवना है, सो सब संकल्पतें रहित है, सो तुमसारखेकों सुगम प्राप्त है, अरु हमसारखेकों कठिण है, काहेतें जो सम सत्कलनातें अतीत है॥ हे मुनीश्वर! तिस आत्मचिंतनकी सखी अवर भी कोउ इसकों प्राप्त होवै, तौ इसका ताप मिटि जावै, अरु महाशीतल होवै, तिनविषे मुझकों एक सखी प्राप्त भई है, सब दुःखका नाश करती है, सब सौभाग्य देणेहारी, अरु जीणेका मूल है, ऐसी प्राणचिंता मुझकों प्राप्त भई है॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मुझकों काक भुषंडनें कहा, तब मैं जाणता हुआ भी क्रीडाके निमित्त बहुरि पूछा, जो हे सर्व संशयके छेदणेहारे, चिरंजीवी पुरुष! सत् कहो, प्राणचिंता किसकों कहते हैं॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे सर्व वेदांतके वेत्ता, सर्व संशयके नाशकर्त्ता! मुझकों उपहासके निमित्त पूछाता है, तूं तौ सब कछु जाणता है, परंतु तुमतें शिक्षा मैं कहता हौं, गुरुके आगे कहणाभी कल्याणके निमित्त है, भुषंडकों जीवणेका कारण अरु भुषंडकों आत्मलाभ देणेहारी प्राणचिंता कहाती है॥ हे भगवन्, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके मैं परम पदकों प्राप्त भया हौं, बंधन मुझकों कहूं नहीं होता, बैठते चलते जागते सोते सब ठौर, सब अवस्थाविषे मेरा चित्त सावधान रहता है, इस कारणतें बंधन कोउ नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! प्राण अरु अपानके संसरणेकी गति मैं पाई है, तिस युक्तिकरि मुझकों आत्मबोध हुआ है, तिस बोधकरि मेरे मदमोहादिक विकार नष्ट हो गये हैं, अरु शांतरूप होकरि स्थित भया हौं, हे मुनीश्वर! जिसकों प्राण अपानकी गति प्राप्त भई, सो सब आरंभ कर्मकों करै, अथवा सब आरंभका त्याग करै, परंतु

सदा शांतरूप है, सुखसाथ तिसका काल व्यतीत होता है ॥ हे मुनीश्वर! प्राण जो उपजता है, सो हृदयकोटतें उपजता है, उपजीकरि द्वादश अंगुलपर्यंत बाहिर जाता है, तहां जायकरि स्थित होता है, तिस ठौरतें अपानरूप होकरि उदय होता है, सो अंतर आता है, हृदयविषे आइकरि स्थित होता है ॥ हे मुनीश्वर! बाह्य आकाशके सन्मुख जो प्राण जाता है, सो अग्निमुखवत् उष्ण होता है, अरु जो हृदयाकाशके सन्मुख आता है, सो शीतल नदीके प्रवाहवत् आता है, अपान चंद्रमारूप है, अरु बाहिरतें अंतर आता है, अरु जो अंतरतें बाहिर जाता है, सो प्राण है, अग्नि उष्ण सूर्यरूप है, प्राणवायु हृदयाकाशकों तपाता है, अरु अन्नकों पचावता है, अरु अपना हृदयकों शीतल करता है, चंद्रमाकी नांई है ॥ हे मुनीश्वर! अपानरूपी चंद्रमा जब प्राणरूपी सूर्यविषे लीन होता है, तहां साठ तत्त्व हैं, तिनविषे मन स्थित हुआ बहुरि शोककों नहीं प्राप्त होता, अरु प्राणरूपी सूर्य जब अपानरूपी चंद्रमाके घरविषे जाय लीन होता है, तिस अवस्थाविषे मन स्थित हुआ बहुरि जन्मका भागी नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! सूर्यरूप जो प्राण है, उसने अपणे सूर्यभावकों त्याग्या, अरु अपानरूप चंद्रमाकों जबलग नहीं प्राप्त भया, तिस अवस्थाके देशकालकों विचारै तब बहुरि शोककों नहीं प्राप्त होता, सब भ्रम नाश हो जाता है, अरु द्वादश अंगुलपर्यंत जो आकाश है, तिसतें अपानरूपी चंद्रमा उपजीकरि हृदयविषे प्राणरूपी सूर्यमें लीन होता है, अरु सूर्यभावकों जबलग नहीं प्राप्त होता, तिसके मध्य भाव अवस्थाविषे जिसका मन लागा है, सो परम पदकों प्राप्त होता है, हृदयविषे चंद्रमा अरु सूर्यके अस्तभाव अरु उदयभावका यह ज्ञाता हुआ, अरु इसका आधारभूत जो आत्मा है तिसकों जान्या, तब मन बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो हृदय आकाशविषे सूर्य चंद्रमा उदय अरु अस्त होते हैं, तिनके प्रकाशकरि हृदयविषे भास्कर देव है, तिसकों जो देखता सोइ देखता है, अरु बाहर जो सूर्य प्रकाशता है, कबहूं अंधकार होता है, तब प्रकाशके उ

दय हुए अरु तमके क्षीण हुए कछु सिद्धता नहीं होती, परंतु जब हृदयका तम दूर होता है, तब परम सिद्धताकों प्राप्त होता है, बाहरके तम नष्ट हुए लोककों प्रकाश होता है, अरु हृदयके तम नष्ट हुए आत्मप्रकाश उदय होता है, अरु अज्ञान अंधकारका अभाव हो जाता है, परम पदकों जाणिकरि मुक्त होता है, प्राण अपानकी युक्ति जाणेतें तम नष्ट हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानरूपी जो चंद्रमा अरु सूर्य है, सो यत्न विना उदय अरु अस्त होते हैं, जब प्राणरूपी सूर्य हृदयकोटतें उपजीकरि बाहरकों गमन करता है, तब उसी क्षण अपानरूपी चंद्रमाविषे जाय लीन होता है, अपानरूपी चंद्रमा उदय हो आता है, अरु जब अपानरूपी चंद्रमा हृदय कोटविषे प्राणवायुरूपी सूर्यविषे आनि स्थित होता है; तब उसी क्षणविषे प्राणरूपी सूर्य उदय होता है, प्राणके अस्त हुए अपान उदय होता है, अरु अपानके अस्त हुए प्राण उदय होता है, जैसे छायाके अस्त हुए धूप उदय होता है, अरु धूपकके अस्त हुए छाया उदय होती है, तैसे प्राण अपानकी गति है ॥ हे मुनीश्वर! जब हृदय कोटतें प्राण उदय होता है, तब प्राणका रेचक होणे लगता है, अरु अपानका पूरक होणे लगता है, जब जाणिकरि अपानविषे स्थित हुआ, तब अपानका कुंभक होता है, तिस कुंभकविषे जब यह स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकरि नहीं तपता, जब अपानका रेचक होता है, तब प्राणका पूरक होणे लगता है, जब अपान जाय स्थित होता है तब प्राणका कुंभक होता है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब बहुरि तीन तापकरि तपायमान नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण अपानके अंतर जो शांतरूप आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है, तब तपायमान नहीं होता, जब अपान आय स्थित होता है, अरु प्राण उदय नहीं भया, तिस अवस्थाविषे जो साक्षीभूत सत्ता है, सो आत्मतत्त्व है, तिसविषे जब स्थित होता है तब बहुरि सो कठिन नहीं होता, जब अपानके स्थानविषे प्राण जाय स्थित होता है, अरु अपान जबलग उदय नहीं भया, तहां जो देश काल अवस्था है, तिसविषे मन स्थित होता है, तब मनका

मनत्वभाव जाता है, बहुरि नहीं उपजता ॥ हे मुनीश्वर! प्राण जो स्थित होता है अपानविषे, अरु अपान उदय नहीं भया, उह कुंभक है, अरु अपान आनि प्राणविषे स्थित भया है, प्राण जबलग उदय नहीं भया, उह जो कुंभक है, तिसविषे जो शांत तत्त्व है, सो आत्माका स्वरूप है, सो शुद्ध है, परम चैतन्य है, जो तिसकों प्राप्त होता है, सो बहुरि शोकवान् नहीं होता, जैसे पुष्पविषे गंधसाथ प्रयोजन होता है, तैसे प्राण अपानके अंतर जो अनुभवतत्त्व स्थित है, तिससाथ प्रयोजन है, सो न प्राण है, न अपान है, तिस अनुभव आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, प्राण क्षयकों प्राप्त होता है, अपानकोटविषे, अरु अपान क्षय होता है प्राणकोटविषे, तिस प्राण अपानके मध्यविषे चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ हे मुनीश्वर! प्राणका जो प्राण है, अरु अपानका जो अपान है, जीवका जीव है, अरु देहका आधारभूत है, ऐसा चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जिसविषे सर्व हैं, जिसतें यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, ऐसा जो चिदात्मा है, तिसकी हम उपासना करते हैं, जो सर्व प्रकाशका प्रकाश है, अरु सर्व पावनका पावन है, अरु सर्व भाव अभाव पदार्थका आपका अपणा आप है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जो पवन परस्पर हृदयविषे संपुटरूप है, तिसविषे स्थित जो साक्षीरूप है, अरु अंतर बाहिर सब ठौर उही है, तिस चिदात्माकी हम उपासना करते हैं, जब अपान अस्त होता है, अरु प्राण उपजा नहीं, तिस क्षणविषे कलंकतें रहित है, तिस चेतनतत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जब प्राण अस्त होता है, अरु अपान उपजा नहीं, ऐसा जो नासिकाके अग्रविषे शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो सत्यता है, तिस चिद्सत्यताकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके उत्पत्तिका स्थान है, अंतर बाहिर सर्व उरतें व्याप्या है, सब योगकलाका आधारभूत है, तिस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं, जो प्राण अपानके रथपर आरूढ है; अरु शक्तिका शक्तिरूप है, तिस चिद्तत्त्वकी हम उपासना करते हैं॥ हे मुनीश्वर! जो संपूर्ण कला कलं

कतें रहित, अरु सर्व कला जिसके आश्रय हैं,ऐसा जो अनुभवतत्त्व है,सर्व देवता जिसकी शरणकों प्राप्त होते हैं, तिस आत्मतत्त्वकी हम उपासना करते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने प्राणापानसमाधिवर्णनं नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं प्राणसमाधिकों प्राप्त हुआ हौं, इस क्रम करिके मैं आत्मपदकों प्राप्त हुआ हौं, इस निर्मल दृष्टिकों आश्रय करिके स्थित हौं,एक निमेष भी चलायमान नहीं होता,सुमेरु पर्वतकी नांई स्थित हौं, चलता हुआ भी स्थिर हौं, जाग्रतविषे भी सुषुप्त हौं, स्वप्नविषे भी स्थित हौं, सर्वदा आत्मसमाधिविषे लगा रहता हौं, विक्षेप कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! नित्य अनित्य भावकरि जो जगत् स्थित है, तिसकों त्यागिकरि मैं अंतर्मुख अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु प्राण अपानकी कला जो तुमारे विद्यमान कही है, सो तिसका सदा ऐसेही प्रवाह चल्या जाता है, तिसविषे अयत्नसमाधि है, इसकरि मैं सदा सुखी रहता हौं, कष्ट कछु नहीं होता, अरु जिसकों यह कला नहीं प्राप्त भई, सो कष्ट पाता है ॥ हे मुनीश्वर! अज्ञानी जो जीव हैं, महाप्रलयपर्यंत संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, निकसी बहुरि डूबते, इसी प्रकार पडे गोते खाते हैं, अरु जिन पुरुषनें पुरुषार्थकरि आत्मपद पाया है, सो सुखसाथ विचरते हैं ॥ हे मुनीश्वर! भूत कालकी मुझकों चिंता नहीं, अरु भविष्यकालकी इच्छा नहीं, वर्त्तमानविषे यथाप्राप्त रागदोषतें रहित होकरि विचरता हौं, सुषुप्तकी नांई स्थित हौं, तातें केवल स्वरूपविषे स्थित हौं, भाव अभाव पदार्थतें रहित अपणे आपविषे स्थित हौं, इस कारणतें चिरंजीवता हौं, अरु दुःखतें रहित हौं, प्राण अपानकी कलाकों सम करिके स्वरूपविषे स्थित हौं, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं, आज यह कछु पाया है, अरु यह काल पाउंगा, यह चिंता दूर गई है, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं, न किसीकी उत्पत्ति करता हौं, न कदाचित् निंदा करता हौं, अरु सर्व आत्मस्वरूप देखता हौं, इस कारणतें सुखी जीवता

हौं, इष्टकी प्राप्तिविषे मैं हर्षवान नहीं होता, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान नहीं होता, इस कारणतें निर्दुःख चिरंजीवता हौं, मैं परम त्याग किया है, सर्व आत्मभाव देखता हौं, जीवभाव दूरी हो गया है, इस कारणतें अदुःख जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर! मनकी चपलता मिटि गई है, अरु रागदोष दूर हो गए हैं, मन शांतिकों प्राप्त भया है, इस कारणतें अरोग जीता हौं, काष्ठ अरु सुंदर स्त्री अरु पहाड तृण अग्नि स्वर्ण सर्वत्र समभाव देखता हौं, तातें निर्दुःख जीता हौं, अब हे मुनीश्वर! जरा मरणके दुःखविषे अरु राज्यलाभके सुखविषे शोकहर्षतें रहित समभावविषे स्थित हौं, तातें निर्दुःख जीता हौं, यह मेरे बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, यह मेरा है, यह कलना मुझकों कछु नहीं, तातें सुखी जीता हौं, आहार व्यवहार करता हौं, बैठता चलता सुंघता स्पर्श करता स्वास लेता हौं, परंतु यह जो अभिमान है, मैं देह हौं, इस अभिमानतें रहित सुखी जीता हौं, इस संसारकी उरतें सुषुप्तरूप हौं, अरु इस संसारकी गतिकों देखीकरि हसता हौं, जो है नहीं, यह आश्चर्य है, इस कारणतें निर्दुःख जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर! सर्वदा काल सर्व प्रकार सर्व पदार्थविषे सम बुद्धि हौं, विषमता मुझकों कछु नहीं भासती, न किसीकरि सुखी होता हौं, न दुःखी होता हौं, जैसे हाथ पसारीयें तौ भी शरीर है, अरु संकोचियें तौ भी शरीर है, इस प्रकार मैं सर्वात्मा आपकों जान्या है, तातें मुझकों दुःख कोउ नहीं, मेरी बोली अरु निश्चय स्निग्ध अरु कोमल सबकों हृदयगम्य है, सर्वत्र जो ऐसे रेखता हौं, इस कारणतें निर्दुःख जीता हौं, चरणतें आदि मस्तकपर्यंत देहविषे मुझकों ममता नहीं, अहंकाररूपी चीकडसों निकस्या हौं, इस कारणतें अरोग जीता हौं, कार्यकर्ता अरु भोजनकर्ता भी दृष्ट आता हौं, परंतु मेरे मनविषे निष्कर्मता दृढ है, इस कारणतें निर्दुःख जीवता हौं ॥ हे मुनीश्वर! समर्थता करिके कार्य करौं, तौ भी मुझकों अभिमान नहीं, अरु दरिद्री होउं, तौ भी संपत्ति सुखकी इच्छा नहीं, किसीविषे आसक्त नहीं होता, इस कारणतें अदुःख जीता हौं, इस असत्यरूप शरीरके नाश हुए अभिमान

भू०समाप्ति.

नाश नहीं होता, अरु भूतका समूह सब असत्यरूप है, आत्मा सत्यरूप है, ऐसे जाणिकारि मैं स्थित हौं, इस कारणतें सुखसों जीता हौं; आशारूपी फांसीतें मुक्त चित्तकी वृत्ति समाहत हुई है, अनात्मविषे आत्म अभिमानकी वृत्ति नहीं फुरती, इस कारणतें सुखी जीता हौं ॥ हे मुनीश्वर! मैं जगत्कों असत्य जान्या है, अरु आत्माकों सत्य हाथविषे बीलफलवत् प्रत्यक्ष जान्या है, इस जगत्विषे सुषुप्त प्रबुद्ध हौं, तिस कारणतें निर्दुःख जीता हौं, सुखकों पायकरि सुखी नहीं होता, दुःखकों पायकरि दुःखी नहीं होता, सर्वका परममित्र हौं, इस कारणतें मैं निर्दुःख जीता हौं, आपदाविषे अचलचित्त हौं, संपदाविषे सब जगत्का मित्र हौं, भावअभावकरि ज्योंका त्यों हौं, इस कारणतें सदा सुखी जीता हौं, न परिच्छिन्न अहं मैं हौं, न कोउ अन्य है, न कोउ मेरा है, न मैं किसीका हौं, इह भावना मेरे चित्तविषे दृढ है, तिस कारणतें सुखी जीता हौं, बहुरि कैसा हौं, मैंही जगत् हौं, मैंही आकाश हौं, देश काल क्रिया सब मैंही हौं, इह निश्चय मुझकों दृढ है, तातें अरोग जीता हौं, घट भी चेतन है, पट भी चेतन है, रथ भी चेतन है, इस सब चेतन तत्त्व है, यह निश्चय मुझकों दृढ है, इस कारणतें अदुःख जीता हौं ॥ हे मुनिशार्दूल! यह सब मैं तुझकों कहा है, भुषंडनाम काक त्रिलोकीरूपी कमलका भंवरा है, तिसनें कहा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्याने चिरंजीविहेतुकथनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जैसा मैं हौं, तैसा तुमारे आगे कहा है, सो तुमारे आज्ञाके सिद्धि अर्थ कहा है, नहीं तौ गुरुके आगे कहणा भी ढिठाई है, तुम ज्ञानके पारगामी हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! आश्चर्य हैं, आश्चर्यतें आश्चर्य है, तुमनें श्रवणका भूषण कहा है, आत्म उदितरूप वचन जो तुम कहे हैं, सो परम विस्मयका कारण है ॥ हे भगवन्! तुम धन्य हौ! तुम महात्मा पुरुष हौ, चिरंजीविके मध्य तुम मुझकों साक्षात् दूसरे ब्रह्मा भासते हौ, आज हम भी धन्य हैं, जो तुमारे सारखे महापुरुषके मुखतें आत्मउदित इस प्रकार सुन्या है, जैसे मैं पूछा तैसे

तुमनें कहा ॥ हे साधो ! मैं सब भूमिलोक देख्या है, अरु दिशागण देखे हैं, आकाशलोक देख्या है, पाताललोक देखा है, त्रिलोकी देखी है, तुम सारखा कोउ विरला है, जैसे बांस बहुत है, मोतीवाला विरला होता है, तैसे तुम सारखे विरले हैं ॥ हे साधो ! आज हम पुण्यरूप हुए हैं, हमारी देह आज पवित्र हुइ है, जो तुम सारखे मुक्त आत्माका दर्शन हुआ है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि बहुरि कहा ॥ हे साधो ! अब हम जाते हैं, हमारे मध्यान्हका समा हुआ है, सप्तर्षिके मध्य जाते हैं, जब मैं ऐसे कहा तब कल्पलतातें उठी खडा हुआ, अरु संकल्पके हाथ करिके उसनें स्वर्णका पात्र रचिकरि मोती रत्नसाथ भार्या, मुझकों अर्घ्य पाद्य किया, पूजन करत भया, जैसे त्रिनेत्र सदाशिवकी पूजा करता है, तैसे चरणतें लेकरि मस्तकपर्यंत मेरा पूजन किया, अरु बहुत नम्र होकरि प्रणाम किया, अरु मैं उसकों प्रणाम किया, इस प्रकार परस्पर नमस्कार करिके मैं उहांतें उठि खडा हुआ, अरु आकाशमार्गकों चला, जैसे पक्षी उडता है, तैसे मैं उडा, उह भी मेरे साथ उडा, परस्पर हम दोनों हाथ ग्रहण किये, एक योजनपर्यंत चले गये, तब मैं उसकों कहा ॥ हे साधो ! तुम अब इहांहीतें फिरौ, वारंवार कहिकरि उसकों स्थित किया, मैं चल्या गया, जबलग मैं उसकों दृष्ट आता रहा तबलग उह देखता रहा, जब मैं दृष्ट आणेतें रहा तब उह अपणे स्थानमें जाय बैठा, मैं सप्तर्षिके मंडलविषे आय स्थित भया, अरुंधतिकरि पूजित हुआ ॥ हे रामजी ! यह भुषंडके वचन मैं तुझकों आश्चर्यरूप सुणाये हैं, अब भी सुमेरुके श्रृंग उपर उस कल्पवृक्षकी लताविषे कल्याणरूप सम स्थित है, अरु शांतिरूप है, मान्य करणेकों योग्य है; अरु सदा समाधिवान् है, ऐसा पुरुष अबलग उहांही स्थित है ॥ हे रामजी ! इह हमारा अरु उसका समागम जब सत्ययुगके दो सौ वर्ष व्यतीत हुए थे तब हुआ था, अब सत्ययुग क्षीण हुआ है, त्रेतायुग वरत्या है, तिसविषे तुम उपजे हौ, हे रामजी ! अब भी अष्ट वर्ष व्यतीत हुए हैं, जो हमारा उसका मिलाप हुआ था, तिसी वृक्षलता ऊपर है ॥ हे रामजी ! इह मैं तुझकों इ

तिहास कहा है, सो परम उत्तम है, इसकों विचारैगा, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, अब इह मुनि वसिष्ठ अरु भुषंडकी कथा है, जो निर्मलबुद्धिसाथ विचारैगा, सो भवरूप संसारके भयतें तरैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुषंडोपाख्यानसमाप्तिर्नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे अनघ! इह मैं तुझकों भुषंडका वृत्तांत सब कहा है, इस बोध करिके भुषंड महासंकटकों तर्या है, इस दशाकों तुम भी आश्रय करिके प्राणकी युक्तिका अभ्यास करौ, तब तुम भी भुषंडकी नांई भवसमुद्रके पारकों प्राप्त होहुगे, जैसे भुषंड ज्ञानयोगकरि पावणे योग्य पद पाया है, तैसे तुम भी पावहु, जैसे प्राण अपानके अभ्यास करिके भुषंड परम तत्त्वकों प्राप्त भया है, तैसे तुम भी अभ्यास करिके प्राप्त होहु, विज्ञानदृष्टि जो तुझनें श्रवण करि है, तिसकी और चित्तकों लगायकरि आत्मपदकों पावहु बहुरि जैसे इच्छा होवै तैसे करौ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! पृथ्वीविषे तुमारे ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणांके प्रकाशकरि मेरे हृदयसों अज्ञानरूपी तम दूर हो गया है, अब प्रबुद्ध हुआ हौं, अपणे आनंदरूपविषे स्थित भया हौं, अरु जानणे योग्य पदकों जानत भया हौं, मानौं दूसरा वसिष्ठ भया हौं ॥ हे भगवन्! इह जो भुषंडका चरित्र तुमनें कहा है, सो परम विस्मयका कारण परमार्थ बोधके निमित्त कहा है, तिसविषे शरीररूपी गृह रक्त मांस अस्थिका किसनें रचा है, अरु कहांतें उपजा है,अरु कैसे स्थित हुआ है, अरु कवन इसविषे स्थित है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमार्थ तत्त्वके बोधनिमित्त अरु दुःखके निवृत्ति अर्थ यह मेरे वचन हैं, सो सुण, अस्थि इस शरीररूपी गृहका स्तंभ है, अरु नव इसके द्वारे हैं, अरु रक्त मांससाथ इह लेपन किया है, सो किसीनें वणाया नहीं, आभासमात्र है, मिथ्या भ्रम करिके भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रम करिके भासता है, तैसे असत्यरूप शरीर भ्रम करिके भासता है ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञान है, तबलग देह सत्य भासता है, जब ज्ञान होता है, तब देह असत्यरूप भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थ स

त्य भासते हैं, अरु जाग्रत्कालविषे स्वप्न असत्य भासता है, तैसे अज्ञानकालविषे अज्ञानके पदार्थ देहादिक सत्य भासतें हैं, अरु ज्ञानकालविषे असत्य हो जाते हैं, जैसे बुदबुदा जलविषे जलके अज्ञान करिके सत्य भासता है, जलके जाणेतें बुद्बुदा असत्य भासता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे मरुस्थलकी नदी भासती है, तैसे आत्माविषे देह भासता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्र अज्ञान करिके भासता है, अहं त्वं आदिक कल्पना सब मननमात्र मनविषे फुरती है, तूं कहता है, देह अस्थि मांस का गृह रचा है, सो अस्थिमांसकरि नहीं रचा, संकल्पमात्र है, संकल्पकरि भासता है, संकल्पके अभाव हुए देह नहीं पाता ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे जो देह धारीकरि दिशा तट पर्वत तूं देखता फिरता है, जाग्रतविषे उह तेरा देह कहां जाता है, जब कछु देह सत्य होता, तब जाग्रतविषे भी रहता, अरु मनोराज्य करिके स्वर्गकों जाता है, अरु सुमेरुविषे भ्रमता है, भूमिलोकविषे फिरता है, तब इह देह तेरा कहां होता है ॥ हे रामजी! इन स्थानविषे जैसे मनका फुरणां देह होकरि भासता है, सो असत्यरूप है, तैसे यह शरीर मनके फुरणेमात्र है, तातें असत्य जाणहु, यह मेरा धन है, यह मेरा देह है, यह मेरा देश है, इत्यादिक कल्पना मनकी रची हुई है, सबका बीज चित्त है ॥ हे रामजी! इस जगत्कों दीर्घ कालका स्वप्न जाण, अथवा दीर्घ चित्तका भ्रम जाण, अथवा दीर्घ मनोराज्य जाण, अवर वास्तवतें जगत् कछु नहीं, जब अपणे वास्तव परमात्मस्वरूपकों अभ्यासकरि जानता है, तब जगत् असत्यरूप भासता है ॥ हे रामजी! मैं पूर्व भी तुझकों ब्रह्माजीके वचनोंकरि कहा है, जो जगत् सब मनका रचा हुआ है, तातें संकल्पमात्र है, चिरकाल का जो अभ्यास हो रहा है, तिसकरि सत भासता है, जब दृढ पुरुषप्रयत्न करि आत्म अभ्यास होवै, तब असत्य भासै ॥ हे रामजी! जो भावना इसके हृदयविषे दृढ होती है, तिसका अभाव भी सुगम नहीं होता, जब उसकी विपर्ययभावनाका अभ्यास करिए, तब उसका अभाव हो जाता है, जो यह मैं हौं, यह

अवर है, इत्यादिक कलना हृदयविषे दृढ हो रही है, जब इसकी विपर्ययभावना होवै, अरु आत्मभावना करिए, तब उह मिटि जावै, सर्व आत्माही भासै ॥ हे रामजी ! जिसकी तीव्र भावना होती है, उहीरूप फल उसका हो जाता है, जैसे कामी पुरुषकों सुंदर स्त्रीकी कामना रहती है, तैसे इसकों आत्मपदकी चिंता रहै, तब उहीरूप होता है, जैसे कीट भृंगी हो जाता है, जैसे दिनविषे व्यापारका अभ्यास होता है, रात्रकों स्वप्नविषे भी उही देखता है, तैसे जिसका इसकों दृढ अभ्यास होता है, सोई अनुभव होता है, जैसे आकाशविषे सूर्य तपता है, अरु मरुस्थलविषे जल होकरि भासता है, सो जलका अभाव है, तैसे पृथ्वी आदिक पदार्थ भ्रम करिके भावतें रहित भावरूप भासते हैं, जैसे नेत्र दूखणे करिके आकाशविषे तरवरे मोरपुच्छवत् भासते हैं, तैसे अज्ञानकरिके जगत्जाल भासते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब आभासरूप है, स्वरूपके प्रमाद करिके भय अरु दुःखकों प्राप्त होता है, जब स्वरूपकों जानता है, तब भ्रमभयदुःखतें रहित होता है, जैसे स्वप्नपुरविषे चित्तके भ्रम करिके सिंहिणीतें भय पाता है, जब जाग्रत् स्वरूप चित्त आता है, तब सिंहका भय निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मज्ञान करिके निर्भय होता है, जब वैराग्य अभ्यास करिके निर्मलशुद्ध आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब बहुरि क्षोभको नहीं प्राप्त होता, रागदोषरूपी मल इसकों नहीं स्पर्श करता; जैसे तांवा पारसके स्पर्श करिके स्वर्ण होता है, तब तांबेभावकों नहीं ग्रहण करता, तैसे बहुरि मलीन नहीं होता, अहं त्वं आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आभासमात्रही है ॥ हे रामजी ! प्रथम सत्य असतकों जाणे, असत्यका निरादर करै, अरु सतका अभ्यास करै, तब चित्त सर्व कलनातें रहित होता है, अरु शांतपदकों प्राप्त होता है, जो तत्त्वज्ञानकरि सम्यक्दर्शी हुआ है, तिसकों जगत्के इष्ट पदार्थ पायेतें हर्ष नहीं होता, अरु अनिष्टके पाएतें शोक नहीं होता, न किसीकी स्तुति करता है, न किसीकी निंदा करता है, अंतरतें शीतल शांतरूप हो जाता है, जब कोउ बांधव मृतक होगया है, तब तिसकरि

तपायमान क्यौं होणा, सो तौ मरणेकाही था, जब अपणा मृत्यु आवै, तब अवश्य शरीर छूटणा है, वृथा क्यौं तपायमान होणा,जब संपदा आनि प्राप्त होवै,तब उसकरि हर्षवान नहीं होता, काहेतें जो कछु भोगणा था, हर्ष किसकरि होणा, अरु दुःख आनि प्राप्त होवै, तब क्यौं शोक करणां, शरीरका व्यवहार सुखदुःख आता जाता है, यह अमिट है, जब अपणा किया कर्म उत्पन्न होता है, तब भी शोक क्यौं करणां ॥ हे रामजी ! जो सत्य है सो असत्य नहीं, जो असत्य है, सो सत्य नहीं, बहुरि रागदोष किसनिमित्त करणां, जिसकों ऐसा निश्चय हुआ है, जो न मैं हौं, न जगत् है, न पृथ्वी है, तौ भी शोक किसका करणां अरु जब देहतें अन्य हौं, चेतन हौं, चेतनका तौ नाश नहीं, तब शोक किसनिमित्त करणां ॥ हे रामजी! दुःख तौं किसी प्रकार नहीं, जबलग विचार नहीं, तबलग दुःख होता है, विचार कियेतें दुःख कोउ नहीं, सम्यक्दर्शी जो मुनीश्वर है, सो सत्यकों सत्य जाणता है, असत्यकों असत्य जाणता है, इस कारणतें दुःख नहीं पाता, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो अज्ञान करिके दुःख पावता है, जैसे दिनके अंतविषे मंडल शीतल हो जाता है, तैसे सम्यक्दर्शीका अंतर शीतल होता है, जिसकों कर्तव्यविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, सो सम्यक्दर्शी है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनकों अंतरतें आभासमात्र जाण, अरु बाहर जैसे आचार होवै तैसे करु, अथवा तिसका भी त्याग करु, निराभास होकरि स्थित होहु, मैं चिदाकाश हौं, नित्य हौं, सर्वज्ञ हौं, अरु सर्वतें रहित हौं, ऐसे अभ्यासकरि एकांत निर्मल आपकों देखैगा, अथवा ऐसे धार जो न मैं हौं, न इह भोग हैं, न अर्थरूप जगत् आडंबर है, अथवा ऐसे धार जो सर्व मैं ही हौं, नित्य शुद्ध चिदात्मा हौं, आकाशरूप हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, मैंही अपणे आपविषे स्थित हौं, इन दोनों पक्षविषे जो इच्छा होवै, सो धर, तुझकों सिद्धताका कारण होवैगा, अरु जगत्कों आभासमात्र जाण, परंतु यह भी कलंकरूप है, इस चिंतनाकों भी त्यागिकरि निराभास होहु, तूं चिदाकाश नित्य

है, सर्वव्यापी है, अरु सर्वतें रहित है, आभासकों त्यागिकरि निर्मल अद्वैत होय रहहु, अथवा विधिनिषेध दोनों दृष्टिकों आश्रय कर ॥ हे रामजी! क्रियाकों करहु, परंतु रागदोषतें रहित होहु, जब रागदोषतें रहित होवैगा, तब उत्तम पदार्थ ब्रह्मानंदकों प्राप्त होवैगा, जो सर्वका अधिष्ठान है, तिसकों पावैगा ॥ हे रामजी! जिसका हृदय रागदोषरूपी अग्निकरि जलता है; तिसकों संतोष वैराग्य आदिक गुण नहीं प्राप्त होते, जैसे दग्ध भूतलके वनविषे हरण नहीं प्रवेश करते, तैसे रागदोषादिकवाले हृदयविषे संतोषादिक नहीं प्रवेश करते ॥ हे रामजी! हृदयरूपी कल्पतरु है, जो ऐसा वृक्ष रागदोषादिक सर्पहूंतें रहित है, तिसतें कवन पदार्थ है, जो न प्राप्त होवै, शुद्ध हृदयतें सब कछु प्राप्त होता है, यह अर्थ है ॥ हे रामजी! जो बुद्धिवान् भी है, अरु शास्त्रका ज्ञाता भी है, परंतु रागदोषसंयुक्त है, सो गीदडकी नांई नीचे है, तिसकों धिक्कार है, जिन पदार्थके पावणेनिमित्त यह यत्न करते हैं, सो तौ आते जाते हैं, धनकों इकट्ठा कोउ करता है, कोउ अवर ले जाता है, भोक्ता कोउ अवर है, तब राग दोष किसका करिये, जो कछु प्रारब्ध है, सो अवश्य होता है, धनका व्यर्थ क्या यत्न करिये, बांधव अरु वस्त्र आते हैं, बहुरि जाते भी हैं, जैसे समुद्रविषे झषका आश्रय बुद्धिवान् नहीं लेते, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय ज्ञानवान् नहीं लेते, भावअभावरूप परमेश्वरकी माया है, संसारकी रचना स्वप्नकी नांई है, तिसविषे जो आसक्त होते हैं, तिनकों सर्पिणीवत् दंसती है, धन बांधव जगत् वास्तवतें मिथ्याही अज्ञान करिके सत्य भासते हैं ॥ हे रामजी! जो आदि न होवै, अंत भी न रहै, अरु मध्यविषे भासै, तिसकों भी असत्य जाणियें, जैसे आकाशविषे फूल असत्य हैं, तैसे संसाररचना असत्य है, जैसे संकल्प रचना असत्य है, जैसे गंधर्वनगर सुंदर भासता है, अरु नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नपुर दीर्घ कालका भासता है, सो भ्रमरूप है तैसे इह जगत् असत्यरूप भ्रममात्र है, संकल्परूप अभ्यासके वशतें दृढताकों प्राप्त भया है, कंध जो आकारवान् भासता है, सो आकारतें रहित आकाशरूप है, अ

रु आत्मपद सुषुप्तकी नांई अद्वैतरूप है, तिस सुषुप्तरूप पदतें जब गिरता है, तब दीर्घरूप स्वप्नकों देखता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्राकरि अपणे स्वभावतें जो गिर्या है, सो संसाररूपी स्वप्नभ्रमकों देखता है, जब अज्ञानरूपी निद्राका अभाव होवै, तब अपणे आत्मराज्यपदकों प्राप्त होता है, अरु निर्विकल्प मुदिता आत्मपदकों प्राप्त होता है, जैसे सूर्यकों देखीकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे ज्ञानकरि शुभ गुण फूलते हैं, आत्मरूपी सूर्य कैसा है, सर्व दुःखतें रहित है, जो पुरुष निद्राविषे होता है, सो सूक्ष्म वचनकरि नहीं जागता, बडे शब्द अरु जल डारणेकरि जागता है, सो मैं तुमकों मेघकी नाई गर्जिकरि वचनरूपी जलकी वर्षा करी है, ज्ञानरूपी शीतलतासहित वचन है, तिन वचनोंकरिके अब तूं ज्ञानरूपी जाग्रत बोधकों प्राप्त भया है, ऐसे ज्ञानरूपी जगत्कों भ्रमरूप देखैगा ॥ हे रामजी ! तुझकों न जन्म है, न मृत्यु है, न कोउ दुःख है, न कोउ भ्रम है, सर्व संकल्पतें रहित आत्मपुरुष अपणे आपविषे स्थित है, सम है, शांत है, सुषुप्तकी नांई तेरी वृत्ति है, अतिविस्तृत सम शुद्ध अपणे स्वरूपविषे स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इसी प्रकार जब वसिष्ठजीनें वचन कहे, तब रामजी सम शांत चेतन तत्त्वविषे विश्रामकों पावत भया, अरु परमानंदकों प्राप्त भया, अरु अवर सभा जो बैठी थी, सो भी वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिके सम आत्मसमाधिविषे स्थित हो रहे, बोलणेका व्यवहार शांत हो गया, पिंजरेमें पक्षी बोलते थे, सो भी शांत हो गए, बनके जो वानर थे, सो भी वचन सुणीकरि स्थिर हो रहे, सर्व उरतें शांति हो रही, जैसे अर्धरात्रके समय भूमिलोक शांतरूप हो जाता है, तैसे सभाके लोक तूर्ष्णीं हो रहे, अरु वचनोंकों विचारणे लगे, जो क्या उपदेश मुनीश्वरने किया है, एक घडी पर्यंत शाति हो रही, तिसके अनंतर बहुरि वसिष्ठजी बोले ॥ हे रामजी ! अब तूं सम्यक् प्रबुद्ध हुआ है, अरु अपणे आपविषे स्थित भया है, जो कछु

जाण्या है, तिसके अभ्यासका त्याग नहीं करणां, इसीविषे दृढ रहणां ॥ हे रामजी ! संसाररूपी चक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, तिस चित्तनाभिके स्थिर हुए संसारचक्र भी स्थिर हो जाता है, इसी संसाररूपी चक्रका तीक्ष्ण वेग है, यद्यपि रोकता है तौ भी फुरणे लगता है, तातें दृढ प्रयत्न बल करिके इसकों रोकिए, संतके संग अरु सत्शास्त्रके वचन युक्ति बुद्धिकरि रोकता है॥ हे रामजी ! अज्ञानकरि जो दैव कल्प्या है, तिसका त्यागकरि अपणे पुरुषार्थकों आश्रय करहु, इसकरि परम शांतपद प्राप्त होता है, ब्रह्मातें आदि लेकरि चेंटीपर्यंत सब अज्ञानरूपी संसारचक्र है, सो असत्यरूप है, भ्रम करिके सत्यकी नांई भासता है, तिसका त्याग करहु ॥ हे रामजी ! असत्यरूप पदार्थविषे जो राग दोष करते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनतें चित्रका पुरुष भी श्रेष्ठ है, जब इष्ट विषय प्राप्त होता है, तब हर्षकरि प्रफुल्लित होते हैं, अरु अनिष्ट प्राप्त होता है, तब दोष करते हैं, अरु चित्रके पुरुषकों राग दोष किसीविषे नहीं, इस कारणतें मैं कहता हौं, जो चित्तका पुरुष भी इनतें श्रेष्ठ है, अरु यह आधि व्याधिकरि पडे जलते हैं, उह सदा ज्योंका त्यों है, अरु चित्रका पुरुष तब नाश होवै, जब आधारभूतकों नाश करिए, अधिष्ठानके नाशविना नाश नहीं होता, अरु यह पुरुष अविनाशीके आधार है, तिसका नाश होता नहीं, अरु मूर्खता करिके आपकों नाश होता मानते हैं, रागदोषकरि संयुक्त है, तातें चित्रके पुरुषतें भी तुच्छ है, अरु मनोराज्य संकल्परूप देह इस देहतें श्रेष्ठ है, जेते कछु दुःख इसकों होते हैं, सो बडे कालपर्यंत रहते हैं, अरु मनोराज्यका दुःख हुआ बहुरि अवर संकल्पके आयेतें उसका अभाव हो जाता है, तातें थोडा दुःख है, संकल्प देहतें भी स्थूल देह तुच्छ है ॥ हे रामजी ! जो थोडे कालतें देह हुई है, तिसविषे दुःख भी थोडा है, अरु जो दीर्घ संकल्परूपी देह है, सो दीर्घ दुःखकों ग्रहण करता है, तातें महानीच है ॥ हे रामजी ! यह देह भी संकल्पमात्र है, सो न सत्य है, न असत्य है, तिसके भोगनिमित्त मूर्ख यत्न करते हैं, अरु क्लेश पावते हैं, अरु देह अभि

मानकरिके इसके सुखसाथ सुखी होते हैं, दुःखसाथ दुःखी होते हैं, इसके नष्ट हुए आपकों नष्ट हुआ मानते हैं, परंतु देहके नष्ट हुए पुरुषका नाश तौ नहीं होता, जैसे मनोराज्यके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे दूसरे चंद्रमाके नाश हुए चंद्रमाका नाश नहीं होता, तैसे इस देहके नाश हुए देही पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे संकल्प पुरुषके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, जैसे स्वप्नभ्रमके नाश हुए पुरुषका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घन धूप करिके रणविषे जल भासता है, अरु भली प्रकार जाय देखिये तब जलका अभाव हो जाता है, परंतु देखणेवालेका अभाव नहीं होता, तैसे संकल्पकरि रचा विनाशरूप जो देह है, तिसके नाश हुए तुमारा नाश तौ नहीं होता ॥ हे रामजी! दीर्घकालका रचा जो स्वप्नमय देह है, तिसके दुःख अरु नाशकरि आत्माकों दुःख अरु नाश नहीं होता, चेतन आत्मसत्ता नाश नहीं होती, अरु स्वरूपतें चलायमान भी नहीं होती, न विकारकों प्राप्त होती है, सर्वदा शुद्ध अच्युतरूप अपणे आपविषे स्थित है, देहके नाश हुए तिसका नाश नहीं होता, अज्ञानका दृढ अभ्यास हुआ है, तब देहके धर्म अपणेविषे भासणे लगे हैं, जब आत्माका दृढ अभ्यास होवै, तब देहाभिमान अरु देहके धर्म अभाव हो जावैं, जैसे चक्रऊपर कोउ चढता है, अरु भ्रमता है, जब उतरता है, तब केताक काल भ्रमता भासता है, जब चिरकाल व्यतीत होता है, तब स्थित हो जाता है, देहरूपी चक्र इसकों प्राप्त भया है, अज्ञानकरिके भ्रम्या हुआ आपकों भ्रमता देखता है, जब अज्ञानका वेग निवृत्त होता है, तब भी कोइ काल देहभ्रम भासता है, तिसकरि जानता है, मेरा नाश होता है, मुझकों दुःख होता है, इत्यादिक कल्पना अज्ञानकरि भासती है, तिस भ्रम दृष्टिकों धैर्य करिके निवृत्त करता है, तब अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जैसे भ्रम करिके जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता असत्य है, जड है, न कर्मकों करती है, न मुक्त होणे इच्छा करती है, अरु दैव परमात्मा भी कछु करता नहीं, उह

सदा शुद्ध द्रष्टा प्रकाशक है, जैसे निर्वात दीप अपणे आपविषे स्थित है, तैसे तूं शुद्धस्वरूप अपणे आपविषे स्थित होहु, जैसे सूर्य आकाशविषे स्थित होता है, अरु सर्व जगत्कों प्रकाश करता है, तिसके आश्रय लोक चेष्टा करते हैं, परंतु सूर्य कछु नहीं करता, सबका साक्षीभूत है, तैसे आत्माके आश्रय देहादिककी चेष्टा होती है, परंतु आत्मा साक्षीरूप है, पापपुण्यतें रहित है ॥ हे रामजी ! इह देहरूपी शून्य गृह है, तिसविषे अहंकाररूपी पिशाच कल्पित है, जैसे बालक परछायेविषे वैताल कल्पता है, अरु भयकों पावता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाच कल्पिकरि भयकों पावता है, सो अहंकाररूपी पिशाच महानीच है, सर्व संतजनकरि निंद्य है, जब अहंकाररूपी वैताल निकसै, तब आनंद होवै, देहरूपी शून्य गृहविषे इसका निवास है, जो पुरुष इसका टहलुआ हो रहा है, तिसकों इह नरकविषे जाता है, तातें तुम उसका टहलुआ नहीं होणां, इसके नाशका उपाय करौगे, तब आनंदकों प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! इह चित्तरूपी उन्मत्त वैताल है, जिसकों स्पर्श करता है, तिसकों अशुद्ध करता है, अर्थ इह जो तिसका धैर्य अरु निश्चय विपर्ययकरि देता है, तिसकरि दुःखकों प्राप्त करता है, अपणे स्वरूपतें गिराय देता है, जो बडे बडे साधु महंत हैं, सो भी इसके भय करिके समाधिविषे स्थित होते हैं, जो किसी प्रकार अहंकार अभाव होवै ॥ हे रामजी ! अहंकाररूपी पिशाच जिसकों स्पर्श करता है, तिसकों आप जैसाकरि लेता है, जैसा आप तुच्छ करता है, तैसा अवरकों तुच्छ करता है, अरु उजाडविषे रहता है, जहां संतसंग अरु सत्शास्त्रका विचार नहीं, अरु आत्मज्ञानका निवास नहीं, तहां शून्य उजाडरूपी देहमंदिरविषे रहता है, जो कोउ ऐसे स्थानविषे प्रवेश करता है, तिसकों प्रवेशकरि जाता है ॥ हे रामजी ! जिसकों अहंकाररूपी पिशाच लगा है तिसका धनकरि कल्याण नहीं होता, न बांधवमित्रकरि कल्याण होता है, अरु अहंकार पिशाचसाथ मिल्या हुआ जेती कछु क्रिया कर्म करता है, सो अपणे नाशकेनिमित्त करता है, विषकी वल्लीकों

उपजावता अरु बढावता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष विवेक अरु धैर्यतें रहित है, तिसकों अहंकाररूपी पिशाच शीघ्रही खाइ जाता है, सो कैसा है, सब रूप है, जिसकों स्पर्श करता है, तिसकों शवकारि छांडता है, अरु जिसकों अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो नरकरूपी अग्निविषे काष्ठकी नांई जलैगा, अरु अहंकाररूपी सर्प है, जिस देहरूपी वृक्षके छिद्रविषे विषकों धारे बैठा है, तिसके निकट जो जावैगा, तिसकों मृतक करैगा, जो अहंममभावकों प्राप्त होवैगा, सो मृतकसमान होवैगा, जन्ममरणकों पावैगा, अहंकाररूपी पिशाच जिसकों लगा है तिसकों मलिन करता है, स्वरूपतें गिरायकरि संसाररूपी गरतविषे डारता है, अरु बडी आपदाकों प्राप्त करता है, जेती आपदाकों अहंकार प्राप्त करता है, सो बहुत वर्षपर्यंत करता रहै, तौ भी आपदाका वर्णनकरि न सकौंगा ॥ हे रामजी! यह जो अभिमान है, जो मैं हौं, मैं मरता हौं, मैं दग्ध होता हौं, मैं दुःखी हौं, मनुष्य हौं इत्यादि कल्पना जो मलिन उठती है, सो अहंकाररूपी पिशाचकी शक्ति है, आत्मस्वरूप नित्यशुद्ध चिदाकाश सर्वगत सच्चिदानंद है, सो सबका अपणा आप है, अहंकारके वशतें आपकों परिच्छिन्न अलेप दुःखी मानता है, जैसे आकाश सर्वगत अलेप है, तैसे आत्मा सर्वविषे अलेप है, अरु सर्वसाथ असंबंध है, अहंकारके संबंधतें रहित है ॥ हे रामजी! ग्रहण त्याग चलणां बैठणां इत्यादिक जेती कछु क्रिया होती है, सो देहरूपी यंत्र अरु वायुरूपी रसडीकरि अहंकाररूपी यंत्री करावता है, आत्मा सदा निर्लेप है, सवका अधिष्ठानरूप है, कारणकार्यभावतें रहित है, जैसे वृक्षकी उंचाइका कारण आकाश है, अरु निर्लेप है, तैसे आत्मा सर्व चेष्टाका कारण अधिष्ठान है, अरु निर्लेप है, जैसे आकाश अरु पृथ्वीका संवंध नहीं, तैसे आत्मा अरु अहंकारका संवंध नहीं, चित्तकों जो आप जाणते हैं, सो महामूर्ख हैं, आत्मा प्रकाशरूप है, नित्य सर्वगत है, विभु है, चित्त मूर्ख है, जड है, आवरण करता है ॥ हे रामजी! आत्मा सर्वज्ञ है, चेतनरूप है, चित्त मूढ है, अरु पत्थरवत् जड है, इसकों दूर करहु, इसका अ

रु तेरा संबंध कछु नहीं, तुम मोहकों तरहु, देहरूपी शून्य ग्रहविषे चित्तरूपी वैतालका निवास है, जिसकों अपणे वश करता है, तिसकों बांधव भी नहीं छुडाय सकते, अरु शास्त्र भी नहीं छुडाय सकते, अरु जिसका देहाभिमान क्षीण हो गया है, तिसकों गुरु शास्त्र भी छुडावणेकों समर्थ होते हैं, जैसे अल्प चीकडतें हरिणकों काढि लेता है, तैसे गुरु शास्त्र निकसि लेते हैं ॥ हे रामजी! जेते देहरूपी शून्य मंदिर है, तिन सबविषे अहंकाररूपी पिशाच रहता है, कोउ देहरूपी गृह अहंकार पिशाचविना भी है, अवर भयसाथ मिल्या हुआ है, जैसे पिशाच अपवित्र स्थानविषे रहता है, पवित्रस्थानविषे नहीं रहता, तैसे जहा संतोष, विचार, अभ्यास, सत्संगतें रहित देह है, तिस स्थानविषे अहंकार निवास करता है॥ अरु जहां संतोष, विचार, अभ्यास, सत्संग होता है, तहांतें अभाव हो जाता है, जेते कछु शरीररूपी मसाण हैं, सो चित्तरूपी वैतालकरि पूर्ण है, अरु अपरिमित मोहरूपी वैताल हैं, जगत्रूपी महावनविषे मोहकों प्राप्त होते हैं, जैसे बालक मोह पावता है॥ हे रामजी! तूं आपकरि अपणां उद्धार करु, सत्य विचार करिके धैर्यकों प्राप्त होहु, इह जगत्रूपी पुरातन वन है, तिसविषे जीवरूपी मृग विचरतें हैं, अरु भोगरूपी तृणकों आश्रय करते हैं, सो भोगरूपी तृण कैसे है, देखणेमात्र सुंदर भासते हैं, परंतु तिनके नीचे गरत है, जैसे गरत उपर हरियावल तृण आच्छादन होते हैं, तिसकों देखिकरि मृगके बालक भोजन करणे लगते हैं, अरु गरतविषे गिर पडते हैं, तैसे जीवरूपी मृगकों रमणीय जाणिकरि भोगणे लगते हैं, तिनकी तृष्णाकरि नरक आदिक जन्मविषे गिरते हैं, अग्नीकी नांई जलते हैं ॥ हे रामजी! तुम ऐसे नहीं होणा, जो कोउ भोगकी तृष्णा करैगा, सो नरकरूपी गरतविषे गिरैगा, तातें तुम मृगमतिकों त्यागिकरि सिंहवृत्तिकों धारहु, मोहरूपी हस्तिकों सिंह होकरि अपणे नखहूंसाथ विदारहु, भोगकी तृष्णातें रहित होणा यह अर्थ है, भोगकी तृष्णावाले जीव जंबुद्वीपरूपी जंगलविषे मृगकी नांई भटकतें हैं, तिनहूंकी नांई तुम नहीं विचरणां ॥ हे रामजी! स्त्री

जो रमणीय भासती है, तिनका स्पर्श अल्प कालविषे शीतल सुखदायक भासता है, परंतु चीकडकी नांई है, जैसे चीकडका लेप भी शीतल भासता है, परंतु तुच्छ है, जैसे संदा चीकड दलदलविषे फस्या हुआ निकसी नहीं सकता, तैसे इह भोगरूपी दलदलविषे फस्या हुआ निकसि नहीं सकता, तातें तूं संतकी वृत्ति कों ग्रहण कर, सो ग्रहण करणां किसकों कहते हैं, अरु त्याग करणां किसकों कहते हैं, ऐसे विचारकरि असत् वृत्तिका त्याग करौ, अरु आत्मतत्त्वकों आश्रय करौ ॥ हे रामजी! यह देह अपवित्र है, अस्थि मांस रुधिरकरि पूर्ण है, अरु तुच्छ है, अरु दुष्ट इसका आचार है, देहके निमित्त भोगकी इच्छा करणी, इसकरि परमार्थ कछु सिद्ध नहीं होता, देह अवरनें रची है, अवरकरि चेष्टा करती है, अवरनें इसविषे प्रवेश किया है, दुःखकों अवर ग्रहण करता है, जो दुःखका भागी होता है, संकल्पनें देह रची है, अरु प्राणकरि चेष्टा करता है, अहंकार पिशाचनें इसविषे प्रवेश किया है, अरु गर्जता है, मनकी वृत्ति सुखदुःखकों ग्रहण करती है, अरु दुःखी जीव होता है, तातें आश्चर्य है ॥ हे रामजी! परमार्थसत्ता एक है, अरु सर्वसमान है, इतर सत्ता तिसविषे कोउ नहीं, जैसे पत्थर घन जड होता है, तिसविषे अवर कछु नहीं फुरता, तैसे सत्तामात्रतें इतर अवर द्वैतसत्ता किसी पदार्थकी नहीं, जैसे पत्थर घनरूप है, तैसे परमात्मा घनरूप है, अवर जड चेतन भिन्न कोउ नहीं, यह मिथ्या संकल्पकी रचना है, जैसे बालककों परछायेविषे वैताल भासता है, तैसे सब कल्पना मनकी है, जैसे एक गनेके रसकरि गुड हो जाता है, कहूं सकर खंड होती है, तैसे एक परमतम सत्ता समान सर्व है, तिसविषे जडचेतनकी कल्पना मिथ्या है, जबलग सम्यक्दृष्टि नहीं प्राप्त भई, तबलग जडचेतनकी दृष्टि होती है, जब यथार्थदृष्टि प्राप्त होती है, तब भेदकल्पना सब मिटि जाती है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, सो न सत्य होता है, न असत्य होता है, तैसे आत्माविषे जड चेतन सत्य असत्य विलक्षण कल्पना है ॥ हे रामजी! जो सत्य है, सो असत्य नहीं होता, अरु जो

असत्य है, सो सत्य नहीं होता, आत्मा सदा सत्यरूप है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैत एकका अभाव है, जैसे पत्थरविषे अन्य सत्ताका अभाव है, तैसे, आत्माविषे द्वैतसत्ताका अभाव है, नानारूप भासता है, तौ भी द्वैत कछु नहीं, सदा अनुभवरूप है, विभागकल्पना तिसविषे कछु नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जेती कछु भेदकल्पना भासती है, सो चित्तकरि भासती है, जब चित्तका अभाव होता है, तब जडचेतनकी कल्पना मिटि जाती है, जैसे वंध्याके पुत्रका अभाव है, जैसे आकाशविषे वृक्षका अभाव है, तैसे आत्माविषे कल्पनाका अभाव है ॥ हे रामजी! यह जो कल्पना है, जो यह चेतन है, यह जड है, यह उपजता है, यह मिटि जाता है, इत्यादिक सब कल्पना मिथ्या हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे केवल निर्विकल्प चिन्मात्र आत्माविषे कल्पना मिथ्या है, अरु गुरुशास्त्र भी जो आत्माकों चेतन कहते हैं, अनात्माकों जड कहते हैं, सो भी बोधके निमित्त कहते हैं, दृष्टांत युक्तिकरि दृश्यकों आत्मस्वरूपविषे स्थित करते हैं, जब स्वरूपविषे दृढ स्थिति होवैगी तब जडचेतनकी भेद कल्पना जाती रहैगी, केवल अचैत्य चिन्मात्र सत्ता भासैगी, जो तत्त्व है, इस प्रकार गुरु भी जडचेतनके विभागका उपदेश करते हैं, तौ भी मूर्ख नहीं ग्रहण करि सकते, तौ जब प्रथमहीं अचैत्य चिन्मात्र अवाच्यपदका उपदेश करैं, तब कैसे ग्रहण करैं ॥ हे रामजी! और आश्चर्य देख, जो चित्त और है, इंद्रिय और हैं, देह और है, देहका कर्ता कोउ दृष्टि नहीं आता, अरु अहंकार करिके वेष्टितकरि है, इह जीव ऐसे मूर्ख हैं, जो देहकों अपणा आप जाणते हैं, अरु दुःखकों प्राप्त होते हैं, अरु जो विचारवान् पुरुष हैं, आत्मपदविषे स्थित हुए हैं, तिन महानुभावकों कोउ क्रिया दुःख बंधनकरि नहीं सकती, जैसे मंत्र जानणेवालेकों सर्प दुःख दे नहीं सकता, तैस ज्ञानवान्कों कर्मबंधन नहीं करता ॥ हे रामजी! न तूं शीस है, न नेत्र है, न रक्त है, न मांस है, न अस्थि आदिक है, न मन है, न तूं भूतजात है, तूं चित्ततें रहित चेतन केवल चिन्मात्र साक्षीरूप है, शरीरसों ममता त्यागिकरि नि

त्य शुद्ध सर्वगत आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देहसत्ताविचारो नाम पंचविंशतितमः सर्गः॥ २५॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इसी दृष्टिकों आश्रय करु, अरु भेद् कष्टदृष्टिका त्याग कर, नाश कर, जब कष्टदृष्टि नष्ट होवैगी, तब आत्मानंद प्रगट होवैगा, जिस आनंदके पायेतें अष्टसिद्धिका ऐश्वर्य भी अनिष्ट जाणिकरि त्यागैगा, अब अवर दृष्टि सुण, कैसी दृष्टि है, जो महामोहका नाश करती है, अरु जो आत्मपद पावणा कठिण है, सो सुखेन प्राप्त होवैगा, बहुरि कैसी दृष्टि है, जिसका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु दुःखतें रहित आनंदरूप में शिवजीतें श्रवण करी है, पूर्व कैलासकी कंदराविषे संसारदुःखकी शांति अर्धचंद्रधारि सदाशिवनें मुझकों कही थी॥ हे रामजी! महाचंद्रमाकी नांई शीतल अरु प्रकाश है जिसका, ऐसा जो हिमालय पर्वत, तिसकी कंदरा कैलास पर्वत तहां गौरीके रमणीय स्थान मंदिर हैं, तहां गंगाका प्रवाह झरणेतें चला जाता है, अरु पक्षी शब्द करते हैं, अरु मंद मंद पवन् सुखदायक चलता है, अरु कुबेरके मोर विचरते हैं, कल्पवृक्ष लगे हुए हैं, महाउज्वल शीतल सुंदर कंदरा है, मंदारवृक्ष तमाल वृक्ष लगे हुए हैं, तिनकेसाथ फूल ऐसे हैं, मानों श्वेत मेघ है, गंधर्व किन्नर आये गान करते हैं, देवताके रमणीय सुंदर स्थानक हैं, तिस पर्वत उपर सदाशिव विराजते हैं, त्रिनेत्र है, अरु हाथविषे त्रिशूल है, गणकरि वेष्टित है, अरु भगवती अर्धांगविषे विराजती है, ऐसा जो सर्व लोकका कारण ईश्वर है, सो तहां विराजता है, बहुरि कैसा है, कामदेवका गर्व नाश किया है; अरु षण्मुखसहित स्वामी कार्तिकपास प्राप्त है, अरु महाभयानक शून्य मसाणोंविषे तिसका निवास है, तिस देवकों में पूजत भया, तिस पर्वत उपर एक कालमें में तप करणे लगा था, महापुण्यवान् एक कुटी बणाई, तिसविषे यथाशास्त्र पुण्यक्रियाकरि मैं तप करणे लगा, एक कमंडल पास राख्या, वृक्षके फूल माला पूजणेनिमित्त रखे, जल पान करौं, फल भोजन करौं, बहुरि विद्यार्थी शिष्य साथ रहहीं तिनकों पढावौं, शास्त्रका अर्थ विचारौं, ब्र

ह्मविद्याके पुस्तकका समूह पडा हूआ आगे मृग अरु मृगके बालक विचरहीं, इस प्रकार हम कालकों बीतावहीं, वेदका पढणा, ब्रह्मविद्याकों विचारना, अरु शास्त्र अनुसार तप करणा इन गणहूं संयुक्त कैलास वनकुंजविषे हम विश्राम करहीं, तिसके अनंतर एक कालमें एक दिन श्रावण विद अष्टमी अर्धरात्र व्यतीत भई है, तिस कालमें समाधितें उतरीकरि देखता भया, दशों दिशा काष्ठ मौनवत् शांतरूप हैं, अरु ऐसा तम है, जो शस्त्रहूंकरि छेदणेवाला है, अरु मंद मंद पवन चलता है, उसके कणका गिरते हैं, मानौं पवन हांसी करता है, तिसी समय चंद्रमा आनि उदय हुआ, महाशीतल अमृतरूप किरणांकों प्रकाशता भया, औषधिकों रससाथ पुष्ट करता भया, चंद्रमुखी कमल खिली आये, चकोर अमृतकी किरणांकों पान करणे लगे, मानौं चंद्रमारूप हो गये हैं, प्रातःकालविषे मणितारेकी नांई उपर आनि पडने लगियां, अरु सप्तर्षि शीसपर आनि स्थित भये, मानौं मेरे तपकों देखणे आये हैं, सप्तर्षिविषे पिछले जो तीन तारे हैं, तिनके मध्याविषे मेरा मंदिर है, तहां मैं सदा विराजता हौं, तब चंद्रमाकरि शीतल स्थान हो गये, पवनकरि फूल गिरे हैं, अरु चंद्रमाका प्रकाश महाशीतल है, तिसकरि स्थान शीतल हो गये, ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठाश्रमवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अर्धरात्रके समय जो मैं समाधितें उतर्या, तब मुझकों तेज प्रकाश दृष्ट आणे लगा, जैसे मंदराचल पर्वतके पायेतें क्षीरसमुद्र उछली आता है, मानौं हिमालय पर्वत मूर्ति धारिकरि स्थित है, मानौं माखनका पहाड पिंड आनि स्थित हुआ है, मानौं सब शंखकी स्पष्टता आनि स्थित भई है, मानौं मोतीका समूह एकठा होकरि उडणे लगा है, महातीक्ष्ण प्रकाश दृष्टि आवै, मानौं गंगाका प्रवाह उछलने लगा है, परंतु तिस प्रकाशकी शीतलतानें सब दिशा तट पूर्णकरि लिये हैं, तब मैं देखिकरि आश्चर्यमान हुआ, अकाल प्रलय होणे लगा है, तब बोधदृष्टिकरि विचारणे लगा, जो यह क्या है, तब मैं देख्या, जो देवताके गुरु ईश्वर सदाशिव चले आते हैं, चंद्रकला

कों धारे हुए अरु गौरी भगवतीके साथ हाथ ग्रहण किया है, अरु गणोंके समूहकरि वेष्टित हैं, कानोंविषे सर्प पडे हुए हैं, कंठविषे रुंडकी माला है, शीसपर जटा है, तिसपर कदंब वृक्ष है, अरु तमाल वृक्षके फूल पडे हुए हैं, ऐसे सदाशिव जो सबकों फल देणेहारा है, तिनकों मन करिके मैं देखत भया, अरु मनहीकरि मंदार वृक्षके पुष्प लेकरि अर्घ्यपाद्य करत भया, अरु मनहीकरि प्रणाम करत भया अरु मनहीकरि प्रदक्षिणा देत भया, ऐसे करिके मैं अपणे आसनतें उठि खडा हुआ, अपणे शिष्यकों जगावत भया, जगाएकरि अर्घ्यपाद्य ले चला, जायकरि त्रिनेत्र शिवकों पुष्पांजलि दिया, देकरि प्रदक्षिणाकरि प्रणाम किया, तब मुझकों चंद्रधारी कृपादृष्टिकरि देखत भया, अरु सुंदर मधुर वाणीकरि कहत भया, हृदयका तम नष्टकर्ता, शरन पडेकों परम शांतिपद प्राप्तकर्ता ऐसा सदाशिवजी मुझकों देखिकरि कहत भया ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! ले आउ अर्घ्यपाद्य, हम तेरे आश्रमविषे अतिथि आए हैं ॥ हे निष्पाप! तुझकों कल्याण तौ है क्यौं, तूं मुझकों महाशांतरूप भासता है, अरु महासुंदर उज्ज्वल तपकी लक्ष्मीकरि तूं शोभता है, चलौ हम तुमारे आश्रमकों चले हैं ॥ हे रामजी! फूलके स्थानविषे सदाशिव बैठे थे, सो ऐसे कहिकरि उठि खडे हुए, तब एकठे अपणे आश्रमपरि कुटीविषे आनि स्थित हुए, तहां मैं बहुरि पुष्प अर्घ्यकरि चरणोंकी पूजा करी, बहुरि हाथकी पूजा करी, इसी प्रकार चरणोंतें लेकरि शीसपर्यंत सर्व अंगकी पूजा करी, बहुरि गौरी भगवतीका तैसे पूजन किया, सखियांका पूजन किया, बहुरि गणोंका पूजन किया ॥ हे रामजी! इस प्रकार भक्तिपूर्वक जब मैं पार्वती परमेश्वरका पूजन करी चूका, तब शशीकलाधारी शीतल वाणीकरि मुझकों कहत भया ॥ हे ब्राह्मण! नानाप्रकारकी चिंतवणेहारी जो चित्तकी वृत्ति है, सो तेरे स्वरूपविषे विश्रांतिकों प्राप्त भई है क्यौं, अरु संवित तेरी आत्मपदविषे स्थित भई है क्यौं, अरु तुमारे शिष्यकों कल्याण तौ है क्यौं, अरु तुमारेपास जो हरिण विचरते हैं, यह भी सुखसाथ हैं क्यौं, अरु मंदारवृक्ष तुमकों पूजाकेनिमि

त्त फूल फल भली प्रकार देते हैं क्यों, अरु मंदाकिनी जो गंगा है, सो तुमकों भली प्रकार स्नान कराती है क्यों, अरु देहके इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे तुम खेद्वान् नहीं होते क्यों, अरु इस पर्वतविषे कुबेरके अनुचर यक्ष राक्षस रहते हैं, सो तुमकों दुःख तौ नहीं देते क्यों, अरु मेरे गण जो चक्षु निशाचर हैं, उह भी तुमकों कष्ट तौ नहीं देते क्यों ॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार जब देवेशनें मुझकों वांछित प्रश्न कहे, तब मैं उनकों कहत भया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महेश्वर! जो कल्याणरूप तुझकों सदा स्मरते हैं, तिनकों इस लोकविषे ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो पावणा कठिण होवै, अरु भय भी किसीका नहीं, जिनका चित्त तुमारे स्मरणकरि आनंदसों सर्व उरतें पूर्ण भया है, सो जगत्विषे दीन नहीं होते, तेई देश, तेई जनोंके चरण, अरु दिशा पर्वत वंदना करणे योग्य हैं, जहां एकांतबुद्धि बैठिकरि तुमारा स्मरण करते हैं ॥ हे प्रभो! तुमारा स्मरण पूर्वपुण्यरूपी वृक्षका फल है, अरु वर्तमान कर्मोंकरि सिंचता है, तुम मनके परम मित्र हौ, सर्व आपदाका हरणारा तुमारा स्मरण है, सर्व संपदारूपी लताके बढावणेहारा तुमारा स्मरण वसंत्ऋतु है ॥ हे प्रभो! वडा महिमा अरु बडेतें बडे कर्मोंके कारणका कारण तुमारा स्मरण है ॥ हे प्रभो! विवेकरूपी समुद्रविषे परमार्थरूपी रत्न है, अरु ज्ञानरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्यका समूह तुमारा स्मरण है, ज्ञान अमृतका कलश अरु धैर्यरूपी चांदनीका चंद्रमा, अरु मोक्षका द्वार तुमारा शरण है ॥ हे प्रभो! तुमारा स्मरण अपूर्वरूपी दीपक उत्तम है, चित्तका मंडप जो है संसार, तिस सर्वकों प्रकाशता है ॥ हे प्रभो! तुमारा स्मरण उदार चिंतामणीकी नांई सर्व आपदाकों छेदणेहारा है, अरु बडे उत्तम पदकों देणेहारा है ॥ हे प्रभो! तुमारा स्मरण एक क्षण भी चित्तविषे स्थित होवै, तब सर्व दुःख अरु भयकों नाश करता है, अरु वरदायक है, तिसकरि तुमारे नांई सुखसों वसता हौं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब मुनीश्वरनें कहा, तब दिनका अंत हुआ, सर्व सभा उठी, परस्पर नमस्कार करिके अपणे स्थानोंकों गये, सूर्यकी किरणांसाथ बहु

रि अपणे अपणे आसनपर आय बैठे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रुद्रवसिष्ठसमागमो नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं कहा, तब गौरी भगवती जगत्माता मुझकों जैसे माता पुत्रकों कहै, तैसे कहत भई ॥ गौरीभगवत्युवाच ॥ हे वसिष्ठजी! पतिव्रता जो अरुंधती है, सो कहां है, जो पतिव्रताविषे मुख्य है; तिसकों ले आउ, जो उह मेरी प्यारी सखी है, तिससाथ मैं कथा शब्दचर्चा करौंगी ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब मुझकों पार्वतीनें कहा, तब मैं शीघ्रही जायकरि अरुंधतीकों ले आया, उह दोनों परस्पर कथा चर्चा वार्ता संवादविषे पराचियां, अरु मैं विचारता भया, जो मुझकों ईश्वर प्राप्त भया है अरु पूछणेका अवसर पाया है, तातें सर्व ज्ञानके समुद्रकों पूछौं, संदेहकों दूरि करौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करिके गौरीशकों पूछत भया, जो कछु चंद्रकलाधारीनें मुझकों कहा है, सो तुझकों कहता हौं, जो है सो सुण ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन् ! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके ईश्वर, अरु सर्व कारणके कारण, तुमारे प्रसाद करिके मैं कछु पूछणेकों समर्थ हुआ हौं ॥ हे महादेव ! जो कछु मैं पूछता हौं, सो प्रसन्नबुद्धि होकरि तत्त्वतें शीघ्रही उद्वेगकों त्यागिकरि कहौ ॥ हे सर्व पापके नाश करणेहारे, अरु सर्व कल्याणकी वृद्धि करणेहारे, देव अर्चनका विधान मुझकों कहौ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! उत्तम जो देव अर्चन है, जिसके कियेतें संसारसमुद्रकों तरि जाइयें, सो सुण ॥ हे ब्राह्मणविषे श्रेष्ठ! पुंडरीकाक्ष जो विष्णु है, सो देव नहीं, अरु त्रिलोचन जो शिव है, सो भी देव नहीं, कमलतें उपजा ब्रह्मा है, सो भी देव नहीं, अरु सहस्रनेत्र इंद्र भी देव नहीं, न देव पवन है, न सूर्य है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तूं, न मैं हौं, न देह, न चित्त है, न कलनारूप है, अकृत्रिम अनादि अनंत संवितरूप देव कहाता है, अवर आकारादिक परिच्छिन्नरूप है, सो वास्तवतें कछु नहीं, एक अकृत्रिम अनादि अनंत चेतनरूप देव है सो देव शब्द करि कहाता है, तिसका जो पूजन है, सोइ पूजन है, तिस देवकों सर्वत्र जानणा, जिसतें यह सर्व हुआ है,

जो सत्ता शांत आत्मरूप है, सर्व ठौरविषे तिसकों देखणा यही उसका पूजन है, अरु जो तिस संवित तत्त्वकों नहीं जाणते, तिनकों आकारकी अर्चना कही है, जैसे जो पुरुष योजनपर्यंत नहीं चलि सकता, तिसकों एक कोशका दो कोशका चलणा भी भला है, तैसे जो पुरुष अकृत्रिम देवकी पूजा नहीं करि सकता, तिसकों आकारका पूजणा भी भला है ॥ हे ब्राह्मण! जिसकी भावना कोउ करता है, तिसके फलकों तिसी अनुसार भोगता है, जो प्रच्छन्नकी उपासना करता है, तिसकों फल भी प्रच्छन्न प्राप्त होता है, अरु जो अकृत्रिम आनंद अनंत देवकी उपासना करता है, तिसकों उही परमात्मरूपी फल प्राप्त होता है ॥ हे साधो! अकृत्रिम फलकों त्यागिकरि कृत्रिमकों चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कोउ मंदार वृक्षके वनकों त्यागिकरि करजुएके वनकों प्राप्त होवै, तैसे उह करते हैं, सो देव कैसा है, अरु उसकी पूजा क्या है, अरु क्यों करि होती सो सुण, तीन फूल हैं, तिन फूलहूंसाथ तिसकी पूजा होती है, एक बोध १, एक साम्य २, एक शम ३, ए तीनों पुष्प हैं, बोध नाम सम्यक्ज्ञानका जो आत्मतत्त्वकों ज्यौंका त्यौं जानणा, अरु साम्य नाम है, जो सर्वविषे पूर्ण देखणा, शमका अर्थ यह जो चित्तकों निवृत्त करणा आत्मतत्त्वतें इतर कछु न फुरै, इन तीनों फूलसाथ शिव चिन्मात्र शुद्ध देवकी पूजा होती है ॥ हे मुनीश्वर! बोध, साम्य, शम, इन पुष्प करि आत्मा देवकी पूजा करत है, एही देवकी पूजा है, आकार अर्चनकरि अर्चा नहीं होती, जो आत्मसंवित् चिन्मात्र है, तिसकों त्यागिकरि अवर जुडकी जो अर्चना करते हैं, सो चिरपर्यंत क्लेशके भागी होते हैं ॥ हे ब्राह्मण! जो ज्ञान ज्ञेय पुरुष हैं, सो आत्मध्यानतें इतर पूजन अर्चन बालककी क्रीडावत मानते हैं, आत्मा भगवान् एकदेव है, सो शिव है, परम कारणरूप है, तिसको सर्वदाही ज्ञान अर्चनकरि पूजन है, अवर पूजा कोउ नहीं, चेतन आकाश अवयव स्वभाव एक आत्मदेवकों तूं जाण, अवर पूज्य पूजक पूजा त्रिपुटीकरि आत्मदेवकी पूजा नहीं होती ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे भगवन्! चेतन आकाशमात्र आत्माकों जैसे यह जगत् है, अरु चे

तनकों जीव कहते हैं, सो कहौ॥ ॥ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर! चेतन आकाश प्रसिद्ध है, सर्व प्रकृतितें रहित है, जो महाकल्पविषे शेष रहता है, सो आपही किंचनरूप होता है, तिस किंचनकरि यह जगत् होता है, जैसे स्वप्नविषे चिदात्माही सर्वगत जगत्रूप होकरि भासता है, तैसे जाग्रत जगत् भी चिदाकाशरूप है, आदि सर्गतें लेकरि इस कालपर्यंत आत्मातें इतरका अभाव है, जैसे स्वप्नविषे जो जगत् भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अवर इतर कल्पना कोउ नहीं, चिन्मात्रही पहाडरूप है; चिन्मात्रही जगत् है, चिन्मात्रही आकाश है, चिन्मात्रही सब जीव हैं, चिन्मात्रही सब भूत हैं, चिन्मात्रतें इतर कछु नहीं, सृष्टिके आदि अरु अंतपर्यंत अवर जो कछु द्वैतकल्पना भासती है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे किसीके अंग काटे सो किसीके काटे तौ नहीं, निद्रादोषकरि ऐसे भासते हैं, तैसे इह जाग्रत जगत् भी भ्रममात्र है॥ हे मुनीश्वर! आकाश परमाकाश ब्रह्माकाश तीनों एकहीके पर्याय हैं, जैसे सप्नविषे संकल्पकरि मायामेंतें अनुभव होता है, सो सब चिदाकाश है, तैसे इह जाग्रत जगत् चिदाकाशरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे आकाशतें इतर कछु नहीं होता, तैसे जाग्रत स्वप्न भी आत्मतत्त्व होकरि भासता है, आत्मातें इतर दुजी वस्तु कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्नविषे चिदाकाशही घट पट आदिक होकरि भासता है, तैसे स्थितिप्रलयादि जगत् चिदात्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही ऐसे भासता है, जैसे शुद्ध संवितमात्रतें इतर स्वप्नविषे नगर नहीं पाइता, तैसे जागृतविषे अनुभवतें इतर कछु नहीं पाइता॥ हे मुनीश्वर! भावअभावरूप पदार्थ तीनों काल जगत् भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं॥ हे मुनीश्वर! इह देव मैं तुझकों कहा है सो परमार्थतें कहा है, तूं मैं अरु सब भूतजाति जगत् सर्वका जो देव है, सो चिदाकाश परमात्मा है, तिसतें इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पपुरविषे चिदाकाशही शरीररूप हो भासता है, इतर कछु नहीं बन्या, तैसे इह सब चिदाकाशरूप है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने जगत्परमात्मरूपवर्णनं नाम अष्टा

विंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह सर्व विश्व केवल परमात्मरूप है, परमात्माकाश ब्रह्महीं एक देवकरि कहाता है, तिसहीका पूजन सार है, तिसहीतें सर्व फल प्राप्त होते हैं, सो देव सर्वज्ञ है, अरु सर्व तिसविषे स्थित हैं, अकृत्रिम देव अज परमानंद अखंडरूप है, तिसकों साधना करिके पावणा है, तिसकरि परम सुखकों प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! तूं जाग्या हुआ है, तिस कारणतें इस प्रकारकी देव अर्चना मैं तुझकों कही है, अरु जो असम्यक्दर्शी बालक हैं, जिनकों निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त नहीं भई, केवल चित्त है,तिनकों धूप दीप पुष्प कर्म आदिक अर्चना कही है, आकार करिके कल्पित देवकी मिथ्या कल्पना करी है॥ हे मुनीश्वर! अपणे संकल्पकरि जो देव बणावते हैं, तिसकों पुष्प धूप दीपादिककरि पूजते हैं, सो भावनामात्र है, तिसकरि तिनकों संकल्परचित फलकी प्राप्ति होती है, सो बालक बुद्धिकी अर्चना है, जो तुम सारखे हैं,तिनकों यही पूजा है; जो तुमकों सर्व आत्मभावनाकरि कही है॥ हे मुनीश्वर! हमारे मतविषे तौ अवर देव कोउ नहीं, एकही परमात्मा देव है, तीनों भुवनविषे तिसतें अवर देव कोउ नहीं, सो शिव है, अरु सर्व पदतें अतीत है, सर्व संकल्पतें उल्लंघन वर्तता है, अरु सर्व संकल्पका अधिष्ठान उही है, अरु देशकाल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सर्व प्रकार शांतरूप है, एक चिन्मात्र निर्मल स्वरूप है, तिसकों देवकरि कहता है॥ हे मुनीश्वर! जो संवितसत्ता पंचभूतकलातें अतीत है, अरु सर्व भावके अंतर उही स्थित है, अरु सर्वकों सत्ता देणेहारा देव है, अरु सर्वकी सत्ता हरणेहारा भी उही है॥ हे ब्राह्मण! जो ब्रह्म सत्य असत्यके मध्य अरु असत्य सत्यके पर कहाता है, सो देव परमात्मा है, परम स्वतः सत्ता स्वभाव करिके सबकों प्राप्त भया है, अरु महाचित्त करिके कहाता है, सो परमात्म देव सत्ता है, ऐसे सर्वविषे स्थित है, जैसे सर्व वृक्षकी लताके अंतर रस जल स्थित है, तैसे सत्ता समानरूप करिके परम चेतन आत्मा सर्व उर स्थित है, जो चेतन तत्त्व अरुंधतीका है, अरु जो चेतन तत्त्व तुझ नि

ष्पापका है, अरु जो चेतन तत्त्व पार्वतीका है, सोइ चेतन तत्त्व मेरा है, सोइ चेतन तत्त्व जगत् त्रिलोकीका है, सो देव है, अवर देव कोउ नहीं, अरु जो अवर हस्तपादसंयुक्त देव कल्पते हैं, सो भी चिन्मात्र सार कछु नहीं, चिन्मात्रही सर्व जगत्का सारभूत है, सोइ अचना करणे योग्य है, तिसीतें सब फलकी प्राप्ति होती है, सो देव कहूं दूर स्थित नहीं, अरु किसी प्रकार किसीकों प्राप्त होना भी कठिन नहीं, सर्वकी देहविषे स्थित है, अरु सर्वका आत्मा है, सो दूर कैसे होवै, अरु कठिनतासों प्राप्त कैसे होवै, सब क्रिया उही करता है, भोजन भी उही करता है, भरण पोषण भी उही करता है, उही श्वास लेता है, सबका ज्ञाता उही है, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंबित होकरि प्रकाशता उही है, जैसे पर्वत उपर चरअचरकी चेष्टा होती है, चलते बैठते स्थित होते हैं, सो सबका आधारभूत पर्वत है, तैसे मनसहित षट् इंद्रियांकी चेष्टा आत्माके आश्रय होती है, तिस देवकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त तत्त्ववेत्तानें कल्पी है, सो एक देव चिन्मात्र है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापि है, निरंजन है, आत्मा है, ब्रह्म है, इत्यादिक नाम ज्ञानवान्नें शास्त्र बुद्धि उपदेश व्यवहारके निमित्त राखे हैं ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु विस्तार सहित जगत् भासता है, सो सबका प्रकाश उही है, अरु सर्वतें रहित है, सो नित्य शुद्ध अद्वैतरूप है, सब जगतविषे अनुस्यूत है, जैसे वसंतऋतुविषे नानाप्रकारके फूल वृक्ष भासते हैं, अरु सर्वविषे एकही रसव्यापार है, उही अनेकरूप हो भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत् है, सो आत्माका चमत्कार भासता है, आत्मतत्त्वविषे स्थित है, कहूं आकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं जीवरूप होकरि स्थित है, कहूं चित्तरूप, कहूं अहंकाररूप होकरि स्थित है, कहूं दिशारूप, कहूं द्रव्यरूप, कहूं भाविकारूप, कहूं तम, कहूं प्रकाशरूप होकरि स्थित है, कहूं सूर्य, कहूं पृथ्वी, कहूं जल, कहूं अग्नि, वायु आदिक स्थावरजंगमरूप होकरि उही स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, तैसे एक परमात्मा देवविषे त्रिलोकियां हैं, हे मुनी

श्वर! देवता दैत्य मनुष्य आदिक सब एक देवविषे पडे वहते हैं, जैसे जलविषे तृण वहते हैं, तैसे परमात्मा विषे जीव वहते हैं, उही चेतनतत्त्व चतुर्भुज होकरि दैत्यकों नाश करता है, जैसे जल मेघरूप होकरि धूपकों रोकता है, उही चेतनतत्त्व त्रिनेत्र, मस्तकपर चंद्रधार, वृषभउपर आरूढ, पार्वतीरूपी कमलिनीके मुखका भंवरा, रुद्र होकरि स्थित होता है, अरु उही चेतन विष्णुरूप सत्ता है, तिसके नाभिकमलतें उत्पन्न हुआ ब्रह्मा, त्रिलोकी वेदत्रयरूप कमलिनीकी तलावडी होकरि स्थित भया है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार एकही चेतनतत्त्व अनेकरूप होकरि स्थित भया है, अरु जैसे एकही रस अनेकरूप होकरि स्थित होता है, अरु जैसे एकही स्वर्ण अनेक भूषणरूप होकरि स्थित होता है, तैसे एकहि चेतन अनेकरूप होकरि स्थित होता है, तातें सर्व देह एक चेतनतत्त्वके हैं, जैसे एक वृक्षके अनेक पत्र होते हैं, तैसे एकही चेतनके सर्व देह हैं, उही चेतन मस्तकपर चूडामणि धारणहारा त्रिलोकपति इंद्र होकरि स्थित भया है, देवतारूप होकरि भी उही स्थित भया है, अरु दैत्यरूप होकरि भी उही स्थित भया है, मरण उपजणेका रूप भी उही धारता है, जैसें एक समुद्रविषे तरंगके समूह उपजते अरु मिट जाते हैं, सो जलही जलरूप है, तैसे उपजणा अरु बिनसणा चेतनविषे होता है, सो चेतनरूप परमात्मा एकही वस्तु है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनरूपी आदर्श है, तिसविषे जगत्‌रूपी प्रतिबिंब होता है, अपणी रची हुई वस्तुकों आपही ग्रहण करिके अपणेविषे धारता है, जैसे गर्भिणी स्त्री अपणे गर्भकों धारती है, तैसे चेतनतत्त्व जगत् प्रतिबिंबकों धारता है ॥ हे मुनीश्वर! सर्व क्रिया उसी देवकरि सिद्ध होती हैं, देणा, लेणा, बोलणा, चालणा सब उसी करि सिद्ध होता है, सूर्यादिक प्रकाशरूपी उसीकरि प्रकाशते हैं, अरु उसीकरि प्रफुल्लित होते हैं, जैसे नील कमल अरु रक्त कमल सूर्यकरि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्माकरि अंधकार अरु प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं ॥ हे मुनीश्वर! त्रिलोकीरूपी धूलि चेतनरूपी वायुकरि उडती है, जेते कछु जगतके आरंभ हैं, तिन सर्वकों चेतनरूपी दीपक

प्रकाश करता है, जैसे फूलके सिंचणेकरि वल्ली प्रफुल्लित होती है, अरु फूलफलकों प्रगट करती है, तैसे चेतनसत्ता सर्व पदार्थकों प्रगट करती है, सबकों सत्ता देकरि सिद्ध करती है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनहीकरि जडकी सिद्धता होती है, अरु चेतनहीकरि जडका अभाव होता है, जैसे प्रकाशहीकरि अंधकार सिद्ध होता है, अरु प्रकाशहीकरि अंधकारका अभाव होता है, तैसे सर्व देह चेतनकरि सिद्ध होते हैं, अरु चेतनहीकरि देहोंका अभाव होता है, चेतन भी उसीकरि होता है, शिव भी उसीकरि होता है ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो चेतनविना सिद्ध होवै, जो कोउ पदार्थ है, सो आत्माहीकरि सिद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष सुंदर है, बडे उंचे टाससहित है, परंतु चेतनरूपी मंजरीविना नहीं शोभता, जैसे रसविना वृक्ष नहीं शोभता, तैसे चेतनविना शरीर नहीं शोभता, बढणा घटणा आदिक जो विकार हैं, सो भी एक आत्माकरि सिद्ध होते हैं, यह जगत् सब चेतनरूप है, चेतनमात्रही अपणे आपविषे स्थित है ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार अमृतरूपी वाणीकरि त्रिनेत्रनें मुझकों कहा, तब मैं अमृतरूपी भली प्रकार वाणीकरि पूछत भया ॥ हे देव! जब सर्वगत चेतन देव व्यापकरूप स्थित है, अरु चेतनही वडे विस्तारकों प्राप्त भया है, तब यह प्रथम चेतन था, अब यह चेतनतातें रहित है, यह कल्पनाका सब लोकविषे प्रत्यक्ष अनुभव कैसे होता है? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ! महाप्रश्न यह तुझनें किया है, तिसका उत्तर सुण ॥ हे ब्राह्मण! इस शरीरविषे दो चेतन स्थित हैं, एक चैतन्योन्मुखत्वरूप है, एक निर्विकल्प आत्मा है, जो चैतन्योन्मुखत्व दृश्यसाथ मिल्या हुआ है, सो जीव है, संकल्पके फुरणेकरि अन्यकी नांई हो गया है, अरु वास्तवतें अवर कछु नहीं हुआ, परंतु दृश्यसंकल्पके अनुभवकों ग्रहण किया है, तिसकरि जीवरूप हुआ है, जैसे स्त्री अपणे शील धर्मकों त्यागिकरि दुराचरणी होती है, तब शीतलता उसकी जाती रहती है, परंतु स्त्रीका स्वरूप नहीं जाता, तैसे चैतन्योन्मुखत्व करिके अनुभवरूपी जीवरूप हो जाता है;

चैतन्योन्मु०

परंतु चेतनस्वरूपका त्याग नहीं करता, जैसे पुरुष संकल्पके वशतें एक क्षणविषे अवररूप हो जाता है, तैसे चित्तसत्ता फुरणे भाव करिके अन्यरूप हुई है, जैसे जल दृढ जडता करिके पथ्थरवत् हो जाता है, तैसे चेतनकला जीवरूप भई है ॥ हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तस्पंद चित्कलाविषे हुआ है, तब शब्दके चेतणेतें आकाश हुआ, बहुरि स्पर्श तन्मात्राका चेतणा हुआ, तब वायु प्रगट भया, इसी प्रकार पंच तन्मात्राके फुरणेकरि पंच तत्त्व हुए, बहुरि देश आदिकका उपाय हुआ, तिसविषे जीव प्रतिबिंबित भया, बहुरि निश्चयवृत्ति हुई, तिसका नाम बुद्धि हुआ, बहुरि अहंवृत्ति फुरी, तिसका नाम अहंकार हुआ, बहुरि संकल्पविकल्पवृत्ति फुरी, तिसका नाम मन हुआ, चिंतवना करिके चित्त हुआ, बहुरि संसारकी भावना हुई, तब संसारका अनुभव हुआ, अभ्यासके वशतें संसार भासणे लगा, जैसे विपर्ययभावना करिके ब्राह्मण आपकों चंडाल जानै, तैसे भावनाके विपर्ययकरि आपकों जीव मानणे लगा है, संकल्पकी जडता करिके चेतनरूपी जीवकों ग्रहणकरि संकल्पविषे वर्तता है, अनंत संकल्पतें जडता तीव्रताकों प्राप्त होकरि जडभावकों ग्रहणकरि देहभावकों प्राप्त होता है, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे चेतन अनंत संकल्प करिके जड देहभावकों प्राप्त होता है; तब चित्त मन मोहित हुआ, जडताकों आश्रय करिके संसारविषे जन्म लेता है, मोहकों प्राप्त हुआ तृष्णा करिके पीडित होता है, कामक्रोधसंयुक्त भावअभावविषे प्राप्त होता है, अपणी अनंतताकों त्यागिकरि परिच्छिन्न व्यवहारविषे वर्तता है, दुःखदायक अग्निकरि तप्त हुआ शून्यभावकों प्राप्त होता है, भेदभावकों ग्रहण करिके महादीन हो रहता है॥ हे मुनीश्वर! मोहरूपी जो गरत है, तिसविषे जीवरूपी हस्ती फस्या है, भावअभावकरि सदा डोलायमान होता है, जैसे जलविषे तृण भ्रमता है, तैसे असाररूप संसारविषे विकारसंयुक्त रागद्वेषकरि तपता रहता है, शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, जैसे यूथतें बिछुरा एक मृग कष्टवान् होता है, तैसे आवरण भाव जन्ममरणकरि

कष्टवान् होता है, अपणे संकल्पकरि आपही भय पावता है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पिकरि आपही भय पावता है, तैसे जीव अपणे संकल्पकरि आपही भयभीत होता है, अरु संकटकों पावता है, आशारूपी फांसीकरि बांधा हुआ कष्टतें कष्टकों पावता है, कर्म करिके तपायमान हुआ अनेक जन्म पावता है, अरु भयविषे रहता है, बालक होता है, तब महादीन परवश होता है, बहुरि यौवन अवस्थाविषे कामादिकके वश हुआ स्त्रीविषे चित्त रहता है, अरु वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, दुःख कष्ट पडा पावता है, जब मृतक होता है, तब कर्मोंके वश चल्या जाता है, बहुरि जन्मता है, गर्भविषे दुःख पावता है, बहुरि बालक यौवन वृद्ध अरु मृतक अवस्थाकों पावता है, इसी प्रकार भटकता है, स्वरूपतें गिर्या हुआ स्थिर कदाचित् नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! एक चित्तसत्ता स्पंदभाव करिके अनेक भावकों प्राप्त होती है, कहूं दुःखकरि रूदन करती है, कहूं दुःख भोगती है, कहूं स्वर्गविषे देवांगना होती है, पातालविषे नागिनी होती है, असुरविषे असुरी, राक्षसविषे राक्षसी होती है, वन कोट वानरी सिंहहूंविषे सिंहिणी, किंनरहूंविषे किंनरी, हरिणोंविषे हरिणी होती है, विद्याधरी, गंधर्वी, देवताविषे देवी इत्यादिक जो रूप धारती है, सो चैत्योन्मुखत्व जीवकलारूप धारती है, क्षीरसमुद्रविषे विष्णुरूप होकरि स्थित होती है, ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्मारूप होकरि स्थित होती है, पंचमुख होकरि रुद्ररूप स्थित होती है, स्वर्गविषे इंद्ररूप होकरि स्थित होती है, तीक्ष्ण कलाकरि सूर्यरूप दिनका कर्ता होती है,क्षण दिनमास वर्षकों करती है, चंद्रमा होकरि रात्रिकों करती है, काल होकरि नक्षत्रकों फेरती है, कहूं प्रकाश, कहूं तम होती है, कहूं बीज, कहूं पाषण, कहूं मनरूप होती है, कहूं नदी होकरि वहती है, कहूं फूल होकरि फूलती है, कहूं भंवर होकरि सुगंधि लेती है, कहूं फल होकरि दिखावती है, कहूं वायु होकरि चलती है, कहूं अग्नि होकरि जलावती है, कहूं बरफ होती है, कहूं आकाश होकरि दिखावती है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार सर्वात्मा सर्वगत सर्व शक्तता करिके एक

हीरूप चित्तशक्ति आकाशतें भी निर्मल है, जैसे चेत्या तैसे होकरि स्थिति भई है, जैसी जैसी भावना करती है, शीघ्रही तैसा रूप हो जाती है, परंतु खरूपतें इतर कछु नहीं होती, जैसे समुद्रविषे फैन तरंग होकरि भासता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं होता, जलही जल हैं, तैसे चित्तशक्ति अनेक रूप धारती है, परंतु चेतनतें कछु इतर नहीं होती, कहूं हंस, कहूं काक, कहूं शूकर, मखी, चिडी इत्यादिक रूप धारिकरि संसारविषे प्रवर्तती है, जैसे जलविषे आय तृण भ्रमता है, तैसे भ्रमती है, अरु अपणे संकल्पतें आपही भय पावती है, जैसे गधेडा अपणे शब्दकरि आपही पडा दउडता है, अरु भय पावता है, तैसे जीव अपणे संकल्पकरिके आपही भय पावता है ॥ हे मुनीश्वर! जीवशक्तिका आचार मैंनें तुझकों कहा है, इस आचारकों ग्रहण करिके बुद्धि नीच पशुधर्मिणी हुई है, स्वरूपके प्रमाद करिके जैसा जैसा संकल्प करती है, तैसी तैसी कर्मगतिकों प्राप्त होती है, अरु शोकवान् होती है, अनंत दुःखकों प्राप्त होती है, अपणी चैत्यता करिके मलिन होती है, जैसे चावलका स्वरूप तुषकरि आवर्या जाता है, अरु बडे संतापकों प्राप्त होता है, बहुरि बहुरि बोता है, बहुरि उगता काटता है, तैसे स्वरूपके आवरण करिके जीवकला दुर्भागता जन्ममरणदुःखकों प्राप्त होती है, जैसे भर्तारतें रहित स्त्री शोकवान् होती है, तैसे इह कष्टकों पावती है ॥ हे मुनीश्वर! जड जो है, दृश्य अनात्मरूप, तिससाथ प्रीति करणेकरि अरु निजस्वरूपके विस्मरणकरि आशारूपी फांसीसाथ बांधा हुआ चित्त जीवकों नीच योनिविषे प्राप्त करता है, जैसे घटीयंत्रके टींद कबहूं अधकों जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वकों जाते हैं, तैसे जीव आशाके वश हुआ कबहूं पाताल, कबहूं आकाशकों जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठेश्वरसंवादे चैतन्योन्मुखत्वविचारो नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! स्वरूपके विस्मरण करिके इस प्रकार होता है, जो मैं हंता हौं, मैं दुःखी हौं, सो अनात्माविषे अहंप्रतीति करिके दुःखका अनुभव करता

है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपकों पर्वततें गिरता देखता है, दुःखी होता है, अरु मृतक हुआ आपकों देखता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिके अनात्माविषे आत्मअभिमान करिके दुःखी आपकों देखता है ॥ हे मुनीश्वर! शुद्ध चेतनतत्त्वविषे जो चित्तभाव हुआ है, सो चित्तकला फुरणेकरि जगत्का कारण हुआ है, तिसकरि जगत् होता गया है, परंतु वास्तव स्वरूपतें इतर कछु नहीं भया, जैसे जैसे चेतती गई है, तैसे तैसे जगत् होता गया है, उह चित्तका कारणरूप भी नहीं भया, जब कारणही नहीं भया, तब कार्य किसकों कहिये ॥ हे मुनीश्वर! न उह चित्त है, न चेतन है, न चेतणेवाली है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न दर्शन है, जैसे पत्थरविषे तेल नहीं होता, सो न कारण है, न कर्म है, न करण इंद्रियां हैं, जैसे चंद्रमाविषे समता नहीं होती, न मन है, न मानणे योग्य दृश्य वस्तु है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं होता, न अहंता है, न तूं है, न दृश्य है, जैसे शंखकों सामता नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! न नाना है, न अनाना है, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, न शब्द है, न शब्दका अर्थ है, जैसे मरुस्थलविषे वल्ली नहीं होती, न वस्तु है, न अवस्तु है, जैसे बरफविषे उष्णता नहीं होती, न शून्य है, न अशून्य है, न जड है, न चेतन है, जैसे सूर्यमंडलविषे अंधकार नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्द अरु अर्थकी कल्पना उसविषे कछु नहीं, जैसे अग्निविषे शीतलता नहीं होती, केवल केवलीभाव अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व है, स्वरूपतें किसीकों कछु भी दुःख नहीं ॥ हे मुनीश्वर! जगत्कों असत जाणिकरि अभावना करणी, अरु आत्मकों सत् जाणिकरि भावना करणी, इस भावनाकरि सर्व अनर्थ निवृत्त हो जाते हैं, सो अवर किसीकरि प्राप्त नहीं होता, अपणे आपहीकरि प्राप्त होता है, अरु अनादिही सिद्ध है, जब तिसकी उर भावना होती है, तब भ्रम सब मिटि जाता है, जब अनात्मभावना होती है, तब पावणा कठिण होता है, यत्नविना उह कैसे पावै, जो यत्न साथ है, सो यत्नविना नहीं पाया जाता, आत्मा कैसा है, निर्विकल्प है, अद्वैत है, सर्वतें अतीत है, सो अभ्यासविना कैसे पाइए, आत्मतत्त्व परम है, एक है, स्वच्छ है, तेजका भी प्रकाशक है,

सर्वगत निर्मल नित्य है, सदा उदित निर्मन शक्तिरूप है, निर्विकार निरंजन है, सो घट पट वट वृक्षविषे, गादीविषे, वानरविषे, दैत्य देवता समुद्रविषे, हस्तिविषे इत्यादिक स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है, सो सर्वविषे एक आत्मतत्त्वविषे साक्षीरूप होकरि स्थित है, दीपकवत् सर्वकों प्रकाशता है, अरु सर्व क्रियातें अतीत है, अरु तिसीकरि सर्व कार्यसिद्धि होती है, सर्व क्रिया संयुक्त भासता है, अरु सर्व विकल्पतें रहित जडवत् भी भासता है, परंतु परम चेतन है, सर्व चेतनका सार चेतन है, निर्विकल्प परम सूक्ष्म है, अरु अपणे आपविषे किंचन हो भासता है, अरु अपणे प्रमाद करिके रूप अवलोकन नमस्कार त्रिपुटी भासती है, जब बोध होता है, तब ज्योंका त्यों आत्मा भासता है, नित्य शुद्ध निर्मल परमानंदरूप है, तिसके प्रमाद करिके चित्तभावकों प्राप्त होता है, जैसे साधु भी दुर्जनके संगकरि असाधु हो जाते हैं, तैसे अनात्माके संगकरि यह नीचताकों प्राप्त होता है, जैसे सोना धातुकी मिलवनीकरि खोटा हो जाता है, जब शोधना करता है, तब शुद्धताकों प्राप्त होता है, तैसे अनात्माके संगकरि यह जीव दुःखी होता है, जब अभ्यास यत्न करिके अपणे शुद्धरूपकों पावता है, तब उहीरूप होय जाता है, जैसे मुखके श्वासकरि दर्पण मलीन हो जाता है, तब उसविषे मुख नहीं भासता, जब मलिनता निवृत्त होती है, तब शुद्ध होता है, तिसविषे मुख स्पष्ट भासता है, तैसे चित्त संवेदनके प्रमादतें फुरणेकरि जगत्भ्रम भासणे लगता है, अरु आत्मास्वरूप नहीं भासता, जब यह जगतसत्ता फुरणेसहित दूर होवैगी, तब आत्मतत्त्व भासैगा, जगत्की असत्यता भासैगी ॥ हे मुनीश्वर! जब शुद्ध संवितविषे चेतनताका फुरणा निवृत्त होता है, तब अहंताभावकों प्राप्त होता है, जब अहंकारकों प्राप्त भया, तब अविनाशी रूपकों विनाशी जाणता है ॥ हे मुनीश्वर! स्वरूपतें कछु भी उत्थान होता है, तिसकरि स्वरूपतें गिरिके कष्ट पावता है, जैसे पहाडतें गिर्या अध चला जाता है, अरु चूर्ण होता है, तैसे स्वरूपतें उत्थान हुआ, अरु अनात्माविषे अभिमान अहं प्रतीत हुई,

तब अनेक दुःखहूंकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! सर्व पदार्थका सत्तारूप आत्मा है, तिसके अज्ञानकरिके देवत्वभावकों प्राप्त हुआ है, जब तिसका बोध होवै, तब देवत्वभाव निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप है, तिसकी सत्ता करिके देह इंद्रियांदिक भी चेतन होते हैं, अरु अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि सब जगत्का व्यवहार होता है, प्रकाशविना व्यवहार नहीं होता, तैसे आत्माकी सत्ता करिके देह इंद्रियांदिकका व्यवहार होता है, अपणे अपणे विषयकों ग्रहण कर लिया है ॥ हे मुनीश्वर! प्राणवायुकों लिये जो नेत्रहूंविषे सुख श्यामता है, सो अपणे आपविषे रूपकों ग्रहण करती है, तिसका बाह्य विषयसाथ संयोग होता है, तिस रूपका जिसविषे अनुभव होता है, सो परम चैतन्यसत्ता है, त्वचा इंद्रियां अरु स्पर्शविषे जब संयोग होता है, इन जडहूंका जिसकरि अनुभव होता है, सो साक्षीभूत परम चेतन सत्ता है, अरु नासिका इंद्रियका जब गंध तन्मात्रासाथ संयोग होता है, तिसके संयोगविषे जो अनुभवसत्ता है सो परम चेतन है, इसी प्रकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह जो पांचों विषय हैं, अरु श्रोत्र नेत्र त्वचा रसना नासिका पांचों इंद्रियसाथ मिलिकरि इनके जानणेवाला साक्षीभूत परम चेतन आत्मतत्त्व है, सो सुख संवित् परम चेतन कहाता है, अरु जो बहिर्मुख फुरिकरि दृश्यसाथ मिल्या है, सो मलिन चित्त कहाता है, अरु जब उही मलीनरूप अपणे शुद्ध स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शुद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर! इह जगत् सब आत्मा स्वरूप है, शिला घनकी नांई अद्वैत सर्व विकार तें रहित है, न उदय होता, न अस्त होता है, संकल्पके वशतें जीवभावकों प्राप्त होता है, संकल्पके निवृत्त हुए परमात्मारूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! आदि जो चित्तकला फुरी है सो जीवरूपी रथपर आरूढ हुए हैं, अरु जीव अहंकाररूपी रथपर आरूढ हुआ है, अहंकार बुद्धिरूपी रथपर आरूढ है, अरु बुद्धि मनरूपी रथपर आरूढ है, मन प्राणरूपी रथपर चढ्या है, अरु प्राण इंद्रियांरूपी रथपर चढे हैं, इंद्रियका

रथ देह है, अरु देहका रथ पदार्थ हैं, जो कर्म करती है, कर्महूंकरि जरामरणरूपी संसारपिंजरेविषे भ्रमती है, इस प्रकार चक्र वर्त्तता है, तिसविषे जीव प्रमाद करिके पडा भटकता है॥ हे मुनीश्वर! यह चक्र आत्माका आभास विरूप है, जैसे स्वप्नपुरविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे इह जगत् वास्तव कछु नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रम करिके भासती है, तैसे इह जगत् भ्रम करिके भासता है॥ हे मुनीश्वर! मनका रथ प्राण है, जब प्राणकला फुरणेतें रहित होती है, तब मन भी स्थित हो जाता है, प्राणके स्थित हुए मनका मनन शांत हो जाता है, अरु जब प्राणकला फुरती है, तब मनका मनन भी फुरता है, प्राणकला स्थित भई, तब मनन निवृत्त हो जाता है, जैसे प्रकाशविना पदार्थ नहीं भासते, जैसे वायुके शांत हुए धूलि उडणेतें रहि जाती है; तैसे प्राणके फुरणेतें रहित मन शांत होता है, जैसे जहां पुष्प होते हैं, तहां गंध भी होता है, जहां अग्नि है, तहां उष्णता भी होती है, तैसे जहां प्राणस्पंद होता है, तहां मन भी होता है, हृदयविषे जो नाडी हैं, तिसविषे प्राण स्वतः फुरते हैं, तिसकरि मनन होता है, संवित् जो है स्वच्छरूप सो जड अजड सर्वत्र भासती है, अरु संवेदन प्राणकलाविषे फुरती है॥ हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सर्वत्र अनुस्यूत है, परंतु जहां प्राणकला होती है, तहां भासती है, जहां प्राणकला नहीं तहां नहीं भासती, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां उज्वल स्थान, जल अथवा दर्पण होता है, तहां प्रतिबिंब भासता है, अवर ठौर नहीं भासता, तैसे आत्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां प्राणकला पुर्यष्टक होती है, तहां भासती है, अवर ठौर नहीं भासती, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, शिलाविषे नहीं भासता, तैसे पुर्यष्टक जो मनरूप है, सर्वका कारण है, अहंकार बुद्धि इंद्रियां सो तिसीके भेद हैं, जो आपहीकरि कल्पित है, सर्व दृश्य जाल तिसहीकरि उदय होते हैं, अवर वस्तु कोउ नहीं, यह भली प्रकार अनुभव किया है, तातें मनही देहादिककों प्रवर्त्तता है, सो परम तत्त्ववस्तु तिसहीविषे भास

ता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने मनप्राणोक्तप्रतिपादनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! आत्मसत्ताविना जीव कंधवत् होता है, अरु आत्मसत्तातें चेतन होकरि चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पाषाणकी सत्तातें जड लोहा चेष्टा करता है, तैसे सर्वगत आत्माकी सत्ताकरि जीव फुरता है, अरु आत्मसत्ता भी जीवकलाविषे भासती है, अवर ठौर नहीं भासती, जैसे मुखका प्रतिबिंब दर्पणविषे भासता है, अवर ठौर नहीं भासता, तैसे परमात्मा सर्वगत सर्वशक्त भी है, परंतु भासता जीवकलाहीविषे है॥ हे मुनीश्वर! शुद्ध वास्तव स्वरूपतें जो इस जीवकलाका उत्थान हुआ है, अरु दृश्यकी उर वही है, तिसकरि चित्तभावकों प्राप्त भई है, जैसे शूद्रहूंकी संगति करिके ब्राह्मण भी आपकों शूद्र मानणे लगता है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिके जीवकला आपकों चित्त दृश्यभाव जानणे लगी है, अज्ञान करिके आच्छाद्या जीव महादीन भावकों प्राप्त हुआ है॥ जड देहके अध्यासकरि कष्ट पावता है, कामक्रोधादिक वातपित्तादिककरि जलता है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा कर्म करता है, तिन कर्मकी भावनासाथ मिल्या हुआ भटकता है, जैसे खंभाणीकरि चलाया पत्थर चला जाता है, तैसे कर्मवासनाका प्रेर्या जीव भ्रमता है, जैसे रथपर आरूढ होकरि रथी चलता है, तैसे आत्मा मन अरु प्राण कर्मकों दृढ करिके चलता है॥ हे मुनीश्वर! चेतनही जड दृश्यकों अंगिकार करिके जीवत्वभावकों प्राप्त होता है, मन प्राणरूपी रथपर चडीकरि पदार्थकी भावनातें नानाप्रकारके भेदकों प्राप्त हुएकी नांई स्थित होता है, जैसे जलही तरंगभावकों प्राप्त होता है, तैसे चेतन नानाप्रकार होकरि स्थित होता है, सो यह जीवकला आत्माकी सत्ताकों पायकरि वृत्तिविषे फुरणरूप होती है, जैसे सूर्यकी सत्ताकों पायकरि नेत्र रूपकों ग्रहण करते हैं, तैसे परमात्माकी सत्ता पायकरि जीव वृत्तिविषे फुरता है, परमात्मा चिद्तत्त्वविषे जो स्थित है, तिसकरि फुरणरूप जीवता है, जैसे घरविषे दीपक होता है, तब प्रकाश होता है, दीपकविना प्र

काश नहीं होता, अपणे स्वरूपकों भुलायकरि जो जीव दृश्यकी उर लगा है, इस कारणतें आधिव्याधि करि दुःखी होता है, जैसे कमल डोडीसाथ लगता है, तब भंवरे आनि स्थित होते हैं, तैसे जब जीव दृश्य की उर लगता है, तब दुःख आनि स्थित होते हैं, तिसकरि जीव दीन हो जाता है, जैसे जल तरंगभावकों प्राप्त होता है, जैसे घुराण अपणी क्रियाकरि आप बंधायमान होती है, जैसे बालक अपणे परछायेकों देखीकरि आपही अविचारतें भय पावता है, तैसे अपणे स्वरूपके प्रमाद करिके आपही दुःख पावता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! चिद्‌शक्ति सर्वगत् अपणा आप है, तिसकी अभावना करिके दीनताकों प्राप्त हुआ है, जैसे सूर्य् बादलकरि आच्छाद्या जाता है, तैसे मूढता करिके आत्माका आवरण हुआ है, जब प्राणोंका अभ्यास करै, तब जडता निवृत्त होवै, अपणा आप आत्मस्मरण होवै, जिनकी वासना निर्मल भई है, हृदयतें दूर नहीं होती सो स्थिर हुई एकरूप हो जाती है, तब जीव जीवन्मुक्त होकरि चिरपर्यंत जीवता है, हृदयकमलविषे प्राणोंकों रोकीकरि शांतिकों प्राप्त होता है, जैसे काष्ठ लोष्ट होता है, तैसे देह गिर पडती है, तब पुर्यष्टका आकाशविषे लीन हो जाती है, जैसे आकाशविषे पवन लीन होता है, तैसे तिसका मन पुर्यष्टका तहांही लीन हो जाती है ॥ हे मुनीश्वर! जिनकी वासना शुद्ध नहीं भई, सो मृत्युकालविषे तिनकी पुर्यष्टका आकाशविषे स्थित होती है, तिसके अनंतर बहुरि फुरी आती है, वासनाके अनुसार स्वर्गनरककों देखणे लगता है, जब शरीर मनपवनतें रहित हुआ, तब शून्यरूप हो जाता है, जैसे पुरुष घरकों त्यागिकरि दूर जाय रहता है, तैसे शरीरकों त्यागिकरि मन अरु प्राण अवर ठौर जाय रहते हैं, तब शरीर शून्य हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! चिद्‌सत्ता सर्वत्र है, परंतु जहां जीव पुर्यष्टका होती है, तहां भासती है, चेतनताका अनुभव होता है, अवर ठौर नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! जब यह जीव शरीरकों त्यागता है, तब पंच तन्मात्राकों ग्रहण करिके संग लेजाता है, जहां इसकी वासना होती है, तहां जाय प्राप्त

होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है, बहुरि दृश्यके दृढ अभ्यासकरि स्थूलभावकों प्राप्त हो जाता है, अंतवाहकता विस्मरण हो जाती है, जैसे स्वप्नविषे भ्रमकरि स्थूल आकार देखता है, तैसे मोह करिके मरता है, तब अपणेसाथ स्थूल आकार देखता है, बहुरि स्थूल देहविषे अहंप्रतीति करता है, तिससाथ मिलिकरि क्रिया करता है, तब असत्यकों सत्य जाणता है, अरु सत्यकों असत्य जाणता है, इस प्रकार भ्रमकों प्राप्त होता है, जब सर्वगत चिदंशकरि जीव मन होता है, तब जगत्भावकों प्राप्त होता है, जब देहसों पुर्यष्टका निकसती है, तब आकाशविषे जाय लीन होती है, तब देह फुरनेतें रहित होती है, तिसकों मृतक कहते हैं, अपणे स्वरूपशक्तिकों विस्मरण करिके जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, जब जीवशक्ति हृदयकमलविषे मूर्छित होती है, प्राण रोके जाते हैं, तब यह मृतक होता है, बहुरि जन्म ले जाता है, बहुरि मरी जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे वृक्षसाथ पत्र लगते हैं, काल पायकरि नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नूतन लगते हैं, तैसे यह जीव शरीरकों धारता है, उह नष्ट हो जाता है, बहुरि अवर शरीर धारता है, उह भी नष्ट हो जाता है, जो वृक्षके पत्रहूंकी नांई उपजते अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करणा व्यर्थ है ॥ हे मुनीश्वर! चेतनरूपी समुद्रविषे शरीररूपी तरंग बुदबुदे अनेक उपजते हैं, अरु नष्ट होते हैं, तिनका शोक करणा व्यर्थ है, जैसे दर्पणविषे अनेक पदार्थका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणतें इतर कछु नहीं, तैसे चेतनविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो चेतन निर्मल आकाशकी नांई विस्तीर्णरूप है, तिसविषे जो पदार्थ फुरते हैं, सो अनन्यरूप हैं, विधि शरीर भी उही रूप हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देहपातविचारो नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे अर्धचंद्रधारी! जो चेतन तत्त्व परमात्मा पुरुष है, सो अनंत एकरूप है, तिसकों यह द्वैत कहांतें प्राप्त भया है, अरु भूतभविष्यत काल कहांतें दृढ हो रहा है? एकविषे अनेकता कहांतें

प्राप्त भई है, अरु बुद्धिवान् दुःखकों कैसे निवृत्त करते हैं, अरु कैसे निवृत्त होता है?॥ ईश्वर उवाच ॥ हे ब्राह्मण! ब्रह्म चेतन सर्वशक्त है, जब उह एकही अद्वैत होता है, तब निर्मलताकों प्राप्त होता है, एकके भाव करि द्वैत कहाता है, द्वैतकी अपेक्षाकरि एक कहाता है, सो दोनों कल्पना मात्र हैं, जब चित्त फुरता है, तब एक अरु दोनोंकी कल्पना होती है, चित्तस्पंदके अभाव हुए, अरु दोनोंकी कल्पना मिटि जाती है, अरु कारणकरि जो कार्य भासता है, सो भी एकरूप है, जैसे बीजतें लेकरि फलपर्यंत वृक्षका विस्तार है, सो एकरूप है, अरु बढणा घटणा उसविषे कल्पना होती है, तैसे चेतनविषे चित्तकल्पना होती है, तब जगत् रूप हो भासता है, परंतु तिस कालविषे भी उहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर! वृक्षके समय भी वस्तु बीज एकरूप है, कछु अवर नहीं हुआ, परंतु बीज फुरता है तब वृक्ष हो भासता है, तैसे जब शुद्ध चेतनविषे चेतनकलना फुरती है, तब जगत्रूप हो भासता है॥हे मुनीश्वर! यह जो कारणकार्य विकाररूप जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टिकरि भासता है, जैसे जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, जैसे शशेके सिंग असत् हैं, जैसे जलविषे द्वैत तरंगकलना असत् हैं, अज्ञान करिके भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके जगत् भासता है, जैसे द्रवता करिके जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे फुरणेकरि आत्मतत्त्व जगत्रूप हो भासता है, अवर द्वैत कछु नहीं, चेतनरूपी वल्ली पसरी है, तिसविषे पत्र फूल फल एकहीरूप हैं, जैसे एक वल्ली अनेकरूप हो भासती है, तैसे एकही चेतन अहं त्वं देश काल आदिक विकार होकरि भासता है, सो उही रूप है ॥ हे मुनीश्वर! जब सबही चेतन है, तब तेरे प्रश्नका अवसर कहां होवे, देश काल क्रिया नीति आदिक जो शक्ति पदार्थ हैं, सो एकही चिदात्मा है, जैसे जलविषे जब द्रवता होती है, तब तरंगरूप हो भासता है, तिसका नाम तरंग होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, तब अहं त्वं आदिक नानाप्रकारके नाम होते हैं, परम ब्रह्म शिव परमात्मा चेतनसत्ता द्वैत अद्वैत आदिक नाम भी फु

रणे करिके कहते हैं, जो इन नामतें अतीत है, सो वाणीका विषय नहीं, ऐसा निर्विकल्प निर्विषय तत्त्व है, सो सदा अपणे आपविषे स्थित है, इह जगत् जो कछु भासता है, सो भी उही चेतनतत्त्व है, जैसे वल्ली फूल पत्र होकरि पसरती है, तैसे चेतन सर्वरूप होकरि पसरता है, सो उहीरूप है ॥ हे मुनीश्वर! महाचेतनाविषे जब किंचन होता है, तब जीवरूप होकरि स्थित होता है, आगे द्वैतकलनाकों देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा स्वरूप त्यागिकरि अवर परिच्छिन्न वपुकों धारता है, अरु आगे द्वैतरूप जगत्कों देखता है; जब जागता है, तब अपणे अद्वैतरूपकों देखता है, परंतु जागेविना भी द्वैत कछु हुआ नहीं, तैसे इह जाग्रत जगत् भी कछु हुआ नहीं, भ्रमकरि भासता है, जब इह जीव अपणे वास्तव स्वरूपकी उर सावधान होता है, तब तिसके अभ्यासकरि उहीरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! इस जीवका जो आदि वपु है, सो अंतवाहक है, संकल्पही तिसका रूप होता है, जब तिसविषे अहंभावना तीव्र होती है, तब उही आधिभौतिक होकरि भासता है, तिसविषे सत्यता दृढ हो जाती है, तिसकी सत्यताकरि रागद्वेषसों क्षोभायमान होता है, जब काकतालीयवत अकस्माततें हृदयविषे विचार आनि उपजता है, तब संकल्परूपी आवरण दूर हो जाता है, अरु अपणे वास्तव स्वरूपकों प्राप्त होता है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पिकरि भयकों पावता है, तैसे इह जीव अपणे संकल्प करिके आपही भय पावता है ॥ हे मुनीश्वर! इह जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प इसके हृदयविषे दृढ होता है, तैसाही भासने लगता है, प्रत्यक्ष देख जो पुरुष कछु कार्य करता है, तब सो कर्तृत्वभाव तिसकेहृदयविषे दृढ होता है, बहुरि कहता है, यह कार्य मैं न करौं, जब यही संकल्प दृढ होता है, तब उस कार्यतें आपकों अकर्त्ता जाणता है, तैसे दृश्यकी भावनाकरि जगत् सत्य दृढ हो गया है, जब दृश्यका संकल्प निवृत्त करता है, अरु आत्मभावनाविषे जुडता है, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, आत्माही भासता है ॥ हे मुनीश्वर! परमार्थतें कछु

द्वैत हैही नहीं, सब संकल्परचना है, संकल्पकरि रच्या जो दृश्य सो संकल्पके अभावतें अभाव हो जाता है, जैसे मनोराज्य गंधर्वनगर मनकरि रचित होता है, बहुरि संकल्पके अभाव हुएतें अभाव होता है, तब क्लेश कछु नहीं रहता ॥ हे मुनीश्वर! इह जगत् संकल्पकी पुष्टता करिके जीव दुःखका भागी होता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प करिके दुःखी होता है, इस संकल्पमात्रकी इच्छा त्यागणेविषे क्या कृपणता है, अरु स्वप्नविषे जो सुख भोगता है, सो सुख भी कछु वस्तु नहीं, भ्रममात्र है, तैसे इह सुख भ्रममात्र है ॥ हे मुनीश्वर! संकल्पविकल्पनें इसकों दीन किया है, जब संकल्पविकल्पका त्याग करता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परम उंच पदविषे विराजमान होता है, जिस पुरुषनें विवेकरूपी वायुकरि संकल्परूपी मेघकों दूर किया है, सो परम निर्मलताकों प्राप्त होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे संकल्पविकल्परूपी मलतें रहित उज्ज्वलभावकों प्राप्त होता है, संकल्पके त्यागेतें जो पाछे शेष रहता है, सो सत्तामात्र परमानंद तेरा स्वरूप है ॥ हे मुनीश्वर! आत्मा सर्वशक्तिरूप है, जैसी भावना होती है, तैसा ही अपणी भावनाकरि देखता है, तातें सब संकल्पमात्र है, भ्रम करिके उदय हुआ है, संकल्पके लीन हुए सब लीन हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! संकल्परूपी लकडी अरु तृष्णारूपी घृत करिके जन्मरूपी अग्निकों इह जीव बढावता है, तिसकरि अंत कदाचित् नहीं होता, जब असंकल्परूपी वायुकरि अरु जलकरि इसका अभाव करैं, तब शांति हो जाती है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे जन्मरूपी अग्निका अभाव हो जाता है, अरु संकल्परूपी वायुकरि तृणकी नांई भ्रमता है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी करजुएकी वल्ली है, तिसकों संकल्परूपी जलकरि पडा सिंचता है, जब असंकल्परूपी शोषता अरु विचाररूपी खड्गकरि काटै, तब तिसका अभाव हो जावै, जो आभासमात्र है, सो आभासके क्षय हुए अभाव हो जाता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे इह जगत् असम्यक् ज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे कोउ राजा होवै, अरु स्वप्न

विषे रंक हो जावै, पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो जावै, अरु दीनताकों प्राप्त होवै, जब पूर्वका स्वरूप स्मरण आवै, तब आपकों राजा जाणै, अरु दुःख मिटी जावै, निर्दुःखपदकों प्राप्त होवै, तैसे इस जीवकों अपणा वास्तव पूर्वका स्वरूप विस्मरण हो गया है, तिसकरि आपकों परिच्छिन्न दीन दुःखी जाणता है, जब स्वरूपका ज्ञान होवै, तब सब दुःखका अभाव हो जावै, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल हो जावै, जैसे वर्षाकालका मल गयेतें आकाश निर्मल होता है, तैसे अज्ञानरूपी मलतें रहित जीव निर्मल होता है, शुद्ध पदकों प्राप्त होता है, जो ऐसे युक्तिकरि भावना करता है, मैं आत्मा हौं, एक हौं, द्वैततें रहित हौं, जब ऐसी भावना करैगा, तब सोइ होवैगा, द्वैतका अभाव हो जावैगा, उत्तम पद ब्रह्मदेव पूज्य पूजक पूजा किंचित् निष्किंचनकी नांई चित्त एकरूप हो जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देव प्रतिपादनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥ ॥ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! देव निरंतर स्थित है, द्वैत अरु एक पदतें रहित है, अरु द्वैत एक संयुक्त भी उही है, संकल्पसाथ मिलिकरि चेतनरूप संसारकों प्राप्त भया है, अरु जो संकल्पमलतें रहित है, सो संसारतें रहित है, जब ऐसे जाणता है, जो मैं हौं, तब इसी संकल्पकरि बंधमान होता है, जब इसके भावतें मुक्त होता है, तब सुखदुःखका अभाव हो जाता है, शुद्ध निरंजन एक सत्ता सर्वात्मा आकाशवत् होता है, इसीका नाम मुक्ति है, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रभो! जब मनविषे मन क्षीण होता है, अरु इंद्रियां मनविषे लीन होतियां हैं, द्वितीय अरु तृतीय पद किसकी नांई शेष रहता है, जो महासत्ता आत्मसत्ता सर्वकों लीन करता है, सो किसकी नांई है?॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! मनकरि जब मन छेदता है, इंद्रियां जिसके अंग हैं, विचार करिके अथवा अवर उपासना करिके जब आत्मबोध इसकों प्राप्त होता है, तब द्वैत एककी कल्पना नष्ट हो जाती है, जगत्जालकी सत्यता नष्ट हो जाती है, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो

आत्मतत्त्व प्रकाश्या है, जैसे भूने बीजतें अंकुर नहीं उपजता, तैसे जब मन उपशम होता है, तब तिसविषे जगत्सत्ताका अभाव हो जाता है, चेतनसत्ता जो है सो चित्तसत्ताकों भक्षणकरि लेती है, जब मनरूपी मेघकी सत्ता नष्ट होती है, तब शरत्कालके आकाशवत् निर्मल आत्मसत्ता भासती है, चित्तकी चपलता मिटि जाती है, तब परमनिर्मल पावन चिन्मात्र तत्त्व प्राप्त होता है, अवर द्वैत एक भाव अभावरूपी संसारकल्पना मिटि जाती है, समसत्तारूप तत्त्व जो सर्वव्यापक है, अरु संसारसमुद्रतें पार करणेहारा है, सो प्राप्त होता है, सुषुप्तकी नांई बोध निर्भय हो जाता है, शांतिरूप आत्माकों पाइकरि शांतरूप हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! मनकी क्षीणताका प्रथम पद यह तुझकों कहा है, अब द्वितीय पद सुण ॥ हे मुनीश्वर! जब यह चित्तशक्ति मनके मननतें मुक्त होती है, कैसी मननवृत्ति है, जो अनेक उरकों धावती है, तिसतें जब मुक्त होता है, तब चंद्रमाके प्रकाशवत् शीतल हो जाता है, अरु आकाशवत् विस्तृतरूप अपणा आप भासता है, अरु घन सुषुप्तरूप हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला पोलतें रहित होती है, तैसे दृश्यतें रहित घन सुषुप्त इसका रूप होता है, लोणवत् रसमय ब्रह्म हो जाता है, जैसे आकाशविषे शब्द लीन हो जाता है, तैसे इसका चित्त आत्माविषे लीन हो जाता है, जैसे वायु चलणेतें रहित अचल होता है, तैसे चित्त अचल हो जाता है, जैसे गंध पुष्पविषे स्थित होता है, तैसे चित्तवृत्ति आत्मतत्त्वविषे विश्रामकों पाती है, सो आत्मसत्ता कैसी है, न जड है, न चेतन है, सर्व कलनातें रहित अचैत्य चिन्मात्र है, अंकुररूप सर्व सत्ताके धारणेहारी देशकालके परिच्छेदतें रहित है, जिसकों उह प्राप्त होती है, तिसकों तुरीया पद भी कहते हैं, सर्व दुःखकलंकतें रहित पद है, तिस सत्ताकों पाइकरि साक्षीकी नांई स्थित होता है, सर्वत्र सर्वदा काल सम स्थित है, सर्व प्रकाश उही है, अरु शांतिरूप है, तिस आत्मसत्ताका जिसकों आत्मतत्त्वकरि अनुभव होता है, तिसकों द्वितीय पद प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह द्वितीयपद तुझकों

कहा है, अब तृतीयपद श्रवण कर, जब वृत्तिका अत्यंत प्रणाम आत्मतत्त्वविषे होता, तब ब्रह्म आत्मा आदिक नामकी भी तहां निवृत्ति हो जाती है, भाव अभावकी कलना कोउ नहीं फुरती, स्थाणुकी नांई अचल वृत्ति हो जाती है, परम शांत निष्कलंक तुरीयातीत सबतें जो उल्लंघित पद है, तिसकों प्राप्त होता है, सो सर्वका अंत अरु सर्व आधाररूप है, एक अद्वैत नित्य चिन्मात्र तत्त्व है, तुरीयातें भी आगे पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, तिस पदकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! सर्व कलनातें रहित अतीत पद मैं तुझकों कहा है, तिसविषे स्थित होहु, सोइ सनातन देव है, अरु विश्व भी उही रूप है, उही तत्त्व संवेदनके वशतें ऐसे रूप होकरि भासता है, अरु वास्तवतें न कछु प्रवृत्त है, न कछु निवृत्त है, समसत्ता प्रकाशरूप अद्वैत तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, आकाशवत् निर्मल है, तिसविषे द्वैत एक भ्रमका अभाव है, एक चिद्घनसत्ता पाषाणवत् अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे अरु जगत्विषे भेद रंचक भी नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, सम सत्य सत्ता शिव शांतिरूप है, अरु सर्व वाणीके विलासतें अतीत है, इसकी चतुर्मात्रा हैं, तुरीया शांत परम है ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार जब ईश्वरनें कहा, अरु परम शांतिरूप आत्मतत्त्वका प्रसंग वसिष्ठजीनें श्रवण किया, तब दोनोंकी वृत्ति आत्मतत्त्वविषे स्थित हो गई, अरु तूर्ष्णीं हो रहे, मानौ मूर्त्ति लिखी छोडियां हैं, एक मुहूर्तपर्यंत चित्तकी वृत्ति ऐसे रही, बहुरि ईश्वर जाग्या ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने परमेश्वरोपदेशो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ एक मुहूर्त उपरांत सदाशिवजी तीनों नेत्रकों खोलत भया, जैसे पृथ्वीरूपी डबेतें सूर्य निकसै, तैसे नेत्र निकसे, जैसे द्वादश सूर्यका प्रकाश एकठा होवै, तैसे नेत्रका प्रकाश हुआ, अरु देखत भया, जो वसिष्ठजीके नेत्र मुंदे हुए तब कहा, हे मुनीश्वर! जागौ, अब नेत्र काहेकों मुंदि छोडे हैं, जो क

छु देखणा था, सो तौ देख्या है, अब समाधिविषे जुडनेका श्रम किस निमित्त करते हौ, तुमसारखे तत्त्ववेत्ता कों हेयोपादेय किसीविषे नहीं होता, तूं जैसा बुद्धिवान् है तैसाही है, तूं आत्मदर्शी है, जो कछु पावणेयोग्य था, सो पाया है, जानणेयोग्य था, सो जाण्या है, अरु बालकके बोधनिमित्त जो तुम मुझतें पूछा सो मैं कहा है, अब तुमकों तूष्णींसाथ क्या प्रयोजन है ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि मेरे अंतर प्रवेश करिके चित्तकी वृत्तिसाथ जगाया, जब मैं जाग्या, तब बहुरि ईश्वर कहत भया ॥ हे वसिष्ठजी! इस शरीरकी क्रियाका कारण प्राणस्पंद है, प्राणोंकरि शरीरकी चेष्टा होती है, तिसविषे आत्मा उदासीनकी नांई स्थित है, न कछु करता है, न भोगता है, जब इस जीवकों अपणे स्वरूपका प्रमाद होता है, तब देहविषे अभिमान होता है, क्रिया करता आपकों मानता है, बहुरि भोगता मानता है, इसकरि दुःख पावता है, इस लोक परलोकविषे भटकता है, अरु जब आत्मविचार उपजता है, तब आत्माका अभ्यास होता है; देह अभिमान मिटि जाता है, दुःखतें मुक्त होता है, शरीरके नष्ट हुए आत्माका नाश नहीं होता, अरु शरीर जो चेतन होकरि फुरता है, सो प्राणोंकरि फुरता है, जब बीचतें प्राण निकसि जाते हैं, तब शरीर मूक जडरूप हो जाता है, अरु जो चलावणेहारी अरु पवित्र करणेहारी संवितशक्ति है, सो आकाशतें भी सूक्ष्म है, उह शरीरके नाश हुए नाश नहीं होती, जब नाश नहीं होती, तौ नाशका भ्रम कैसे होवै ॥ हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व ब्रह्मसत्ता सर्वत्र है, परंतु भासती तहां है, जहां सात्त्विक गुणका अंश मन होता है, अरु प्राण होते हैं, मन अरु प्राणोंसहित देहविषे भासती है, जैसे निर्मल दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब भासता है, अरु आदर्श मलीन होता है, तब मुख विद्यमान भी होता है, परंतु नहीं भासता है, तैसे मन अरु प्राण जब देहविषे होते हैं, तब आत्मा भासता है, जब मन अरु प्राण निकसि जाते हैं, तब मलीन शरीरविषे आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे मुनीश्वर! आत्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासती नहीं, जब तिसका अभ्यास होवै, तब

सर्वात्मरूप होकरि भासती है, सर्व कलनातें रहित शुद्ध शिवरूप, सर्वकी सत्तारूप, उही है, विष्णु भी उही है, शिव भी उही है, ब्रह्माभी उही है, देवताजात भी उही है, अग्नि, वायु, चंद्रमा सूर्यादिक सब जगत् का आदि वपु उही है, सो एक देव है, शुद्ध चेतनरूप है, सर्व देवहूंका देव है, अवर सब तिसके टहलुए हैं, अरु सब तिसके चित्त उल्लास हैं॥ हे मुनीश्वर! हम जो इस जगत्विषे बडे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हैं, सो उसही तत्त्वतें प्रगट भए हैं, जैसे अग्नितें चिणगारे उपजते हैं, जैसे समुद्रतें तरंग प्रगट होते हैं, तैसे हम तिसतें प्रगट भये हैं, यह अविद्याभी तिसतें प्रगट भई है, अरु अनेक शाखाकों प्राप्त भई है, देव अदेव वेद अरु वेदके अर्थ, अरु जीव सब उस अविद्याकी जटा हैं, अरु अनंतभावकों प्राप्त भई है, बहुरि बहुरि उपजती अरु मिटती है, देश काल पृथिव्यादिक सब उसीकरि संपन्न हैं, परंतु सर्वकी सत्तारूप उही आत्मा देव है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हम जो हैं, सो हमारा परम पिता आत्मा है, सर्वका मूल बीज उही देव है, सब तिसतें उपजे हैं, जैसे वृक्षतें पत्र उपजतें हैं, तैसे सब महादेवतें उपजते हैं, सर्वका अनुभवकर्त्ता उही है, सर्वकों सत्ता देणेहारा उही है, सब प्रकाशका प्रकाश उही है, सो तत्त्ववेत्ताकरि पूजणेयोग्य है,. सर्वविषे प्रत्यक्ष है, सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे उदित आकार चेतन अनुभवरूप है, तिसके आवाहनविषे मंत्र आसन आदिक सामग्री नहीं चहीती, काहेतें जो सर्वदा अनुभवरूप करिके प्रत्यक्ष है, अरु सर्व प्रकार सर्व ठौरविषे विद्यमान है, जहां जहां तिसके पावणेका यत्न करिये, तहां आगेही विद्यमान है, उह शिवतत्त्व आदिही सिद्ध है, मन वाणीविषे तीनों रूप उही हो भासता है, सबकी आदि है, अरु पूजणे योग्य है, अरु नमस्कार करणे योग्य भी उही है, अरु जानणेयोग्य भी उही है॥ हे मुनीश्वर! ऐसा जो आत्मतत्त्व है, सो जरा मृत्यु शोक भयके काटणेहारा है, तिसकों आपकरि आपही देखता है, तिसके साक्षात्कार हुए चित्त भूने बीज की नांई हो जाता है, बहुरि नहीं उगता, सो शिवतत्त्व जीवका जीव है, सर्व पदका पद उही है, अनुभव

रूप है, आत्मा है, परम पद है, इतर दृष्टिका त्याग करौ ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवनिर्णयो नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

॥

॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! सो चिद्रूप तत्त्व सर्वके अंतर स्थित है, अरु अनुभवमय शुद्ध देव ईश्वर है, सब बीजका बीज उही है, सर्व सारका सार उही है, कर्मका कर्म, धर्मका धर्म उही है, सो चेतन धातु निर्मलरूप सब कारणका कारण उही है, अरु आप अपणा कारण है, सर्व भाव अभावका प्रकाशक उही है, सर्व चेतनका चेतन उही है, परम प्रकाशरूप है, भौतिक प्रकाशतें रहित है, अलौकिक प्रकाशकहै, सर्व जीवका जीव उही है, चेतनघन निर्मल आत्मा अस्ति सन्मयरूप है; सतअसततें रहित महासतरूप है, सर्व सत्ताकी सत्ता उही सो चिन्मात्र तत्त्व है, सोइ नानारूप हो रहा है, जैसे एकही आत्मसत्ता स्वप्नविषे आकाश कंध पहाड आदिक होकरि भासती है, तैसे नाना रंग रंजना उही होकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे मरुस्थलकी नदी हो भासती है, अनेक कोट किरणांतें अनेक तरंग हो भासते हैं, तैसे यह जगत् तिसविषे भासता है ॥ हे मुनीश्वर! उसी आत्मतत्त्वका यह आभास प्रकाश है, तिसतें इतर कछु नहीं, जैसे अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं, उही रूप है, तैसे आत्मातें जगत् कछु भिन्न नहीं, उही स्वरूप है, अरु सुमेरु भी तिसके आगे परमाणुरूप है, अरु संपूर्ण काल तिसका निमेषरूप है, कल्पकी निमेष उन्मेषवत् उदय अरु लय होते हैं, अरु सप्तसमुद्रसंयुक्त पृथ्वी तिसके रोमके अग्रवत तुच्छ है, ऐसा उह देव है, बहुरि कैसा है, संसाररचनाकों करता नहीं, अरु कर्तृत्वभावकों प्राप्त होता है, बडे कर्मोंका करता भासता है, तौ भी कछु नहीं करता, द्रव्यरूप दृष्टि आता है, तौ भी द्रव्यतें रहित है, निर्द्रव्य है, तौ भी द्रव्यवान् है, देहवान् नहीं तौ भी देहवान् है, अरु वडा देहवान् है, तौ भी अदेह है, सर्वका सत्तारूप उही देव है, हंढी, भोलि, घले, मतचुल, पिंढली, मागले, वेली, घिलिमिला, लोवलाग, युगुल, सभस इत्यादिक वाक्य निरर्थक हैं, इनका अर्थ कछु नहीं सो भी देव

करि सिद्ध होते हैं, ऐसा कछु नहीं, जो देवविषे असत नहीं, अरु ऐसा भी कछु नहीं जो देवकरि सत नहीं॥ हे मुनीश्वर! जिसतें यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, जो सर्वमें नित्य है, तिस सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महेश्वरवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३५॥ ॥ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर! इत्यादिक शब्दकी सत्तारूप उही है, सर्वसत्तारूप रत्नका डब्बा उही है, उही तत्त्व चमत्कार करिके फुरता है, जैसे जल तरंग फैन बुदबुदा आदिक आकार करिके फुरता है, तैसे देव नानाप्रकारके आकार होकरि फुरता है, उही फूल गुच्छेरूप होकरि स्थित होता है, आपही तिसविषे सुगंध होकरि स्थित होता है, घ्राणइंद्रियविषे स्थित होकरि आपही सूंघता है, आपही त्वचा इंद्रिय होता है, आपही पवन होकरि चलता है, आपही स्पर्शकरि ग्रहण करता है, आपही जलरूप होता है, आपही वायु होकरि सुकावता है, आपही श्रवणेंद्रिय होकरि, आपही शब्द होकरि, आपही ग्रहण करता है, इसी प्रकार जिव्हा त्वचा नासिका कर्ण नेत्र होकरि आपही स्पर्श रूप रस गंध शब्दकों ग्रहण करता है, उसीनें पदार्थ रचे हैं, उसीनें नीति रची है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव पंचम ईश्वर सदाशिव तिसपर्यंत उही देव, इस प्रकार हुआ है, आपही साक्षीवत् स्थित होता है, जैसे दीपकके प्रकाशकरि मंदिरकी सर्व क्रिया होती है, तैसे संसाररूपी मंडपकी सब क्रिया साक्षीकरि होती है, तिसविषे उसकी शक्ति नृत्य करती है, अरु आप साक्षीरूप होकरि देखता है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे जगन्नाथ! शिवकी शक्ति क्या है, अरु कैसे स्थित है, अरु देवकों साक्षात् कैसे है, अरु तिसका नृत्य कैसा होता है?॥ ॥ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर! आत्मतत्त्व स्वभावतें अचल है, अरु शांतरूप है, शिव परमात्मा निर्मल चिन्मात्ररूप निराकार है, तिसकी आसक्ति इच्छाशक्ति है, कालशक्ति है, नीतिशक्ति है, मोहशक्ति है, ज्ञानशक्ति है, क्रियाशक्ति है, कर्त्ताशक्ति है, परंतु स्वरूपतें सदा अकर्त्ता है, इत्यादिक आत्माकी शक्ति हैं, तिन शक्तिका अंत नहीं, अनंतरूप चिन्मात्र देव है, यह जो मैं तुझकों शक्ति कही है, सो भी

शिवरूप है, भिन्न नहीं, जो कर्तृत्व भोक्तृत्व साक्षिता आदिक भावनातें शक्ति विविधरूप धार्या है, शिव अरु शक्ति एक रूप है, अरु बहुत भासती है, पदार्थविषे अर्थशक्ति है, आत्माविषे साक्षिशक्ति कल्पित है, तैसे कालशक्ति है, नृत्यकी नांई ब्रह्मांडरूपी नृत्यमंडलविषे नृत्य करती है, क्रियाशक्ति कर्तृत्वकरि नृत्य करती है, इत्यादिक शक्ति कहाती है, जैसे आदि नीति हुई है, ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होती॥ हे मुनीश्वर! यह संपूर्ण जगत् नृत्य करता है, संसाररूपी नटणी है, तिसके प्रेरणेहारी नीति है, अरु परमेश्वर परमात्मा है, सो साक्षीरूप है, सदा उदित प्रकाशरूप है, एकरस देव स्थित है, अरु नीति आदिक शक्ति भी तिसतें भिन्न नहीं, उहीरूप है, तातें देवही जाण, अवर द्वैत कछु नहीं॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने नीतिनृत्यवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३६ ॥

॥ईश्वर उवाच॥ हे मुनीश्वर! जो एक देव परमात्मा है, सो संतकरि पूजणे योग्य है, चिन्मात्र अनुभव आत्मा सर्व है, घट पट गादी कंद बांतर आदिक सर्वविषे उह स्थित है, ब्रह्मा इंद्रादिक देवता अवर जीव सबके अंतर बाहिर उही स्थित है, सर्वात्मा शांतरूप देवका पूजन दोप्रकार होता है, सो सुण, इष्ट देवताका पूजन ध्यान है, अरु ध्यान है सो पूजन है, त्रिभुवनका आधारभूत आत्मा है, तिसकी ध्यान करि पूजा करौ, जहां जहां मन जावै, तहां तहां छल चिद्रूप आत्माकों करौ, सबका प्रकाशक आत्माही है, सो चिद्रूप अनुभव करिके अंतर स्थित है, अहंता करिके सिद्ध है, सो सबका साररूप है, अरु सबका आश्रयरूप है, तिसका जो विराटरूप है, सो सुण, तिसकों जाणिकरि पूजन करौ, बाह्य कैसा है, अनंत है, पारावारतें रहित है, परमाकाश है, सो उसकी ग्रीवा है, अरु अनंत पाताल उसके चरण हैं, अनंत दिशा तिसकी भुजा हैं, सर्व प्रकाश उसके शस्त्र हैं, हृदयकोश कोणविषे स्थित है, ब्रह्मांडसमूहोंकों परंपरा प्रकाशता है, परमाकाश पारअपाररूप है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता जीव उसके रोमावली है, त्रिलोकीविषे

जो देहरूपी यंत्र हैं, तिनविषे इच्छादिक शक्तिरूप सूत्र व्याप्या है, तिसकरि सब चेष्टा करते हैं, सो देव एकही है, अरु अनंत है, अरु सत्तामात्र स्वरूप है, सब जगत्जाल तिसका निवृत्त है, अरु काल तिसका द्वारपाल है, पर्वतादिक ब्रह्मांड जगत् तिसके देहविषे किसी कोणमें स्थित हैं, तिस देवकी चिंतवना करौ, बहुरि कैसा देव है, सहस्र जिसके चरण हैं, अरु सहस्र नेत्र, सहस्र जिसके शीस हैं, अरु सहस्र भुजा हैं, अरु सहस्र भुजाविषे भूषण हैं, सर्वत्र जिसकी नासिका इंद्रिय हैं, सर्वत्र जिसकी रसना इंद्रिय हैं, सर्वत्र श्रवण इंद्रिय हैं, सर्व उर जिसका मन है, अरु सर्व मननकलातें अतीत है, सर्व उर उही शिवरूप है, सर्वदा सर्वका कर्त्ता है, सर्व संकल्पके अर्थका फलदायक है, सर्व भूतके अंतर स्थित है, अरु सर्व साधनका सिद्धकर्त्ता है, ऐसा जो देव है, सो सर्वविषे सर्व प्रकार सर्वदा काल स्थित है, तिस देवकी चिंतवना करौ, ऐसे देवके ध्यानविषे सावधान रहौ, सदा तिनहीका आकार रहणा, इह उस देवका पूजन है, अब अंतरका पूजन श्रवण करौ ॥ हे ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ! संवित्मात्र जो देव है, सो सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका पूजन दीपककरि नहीं होता, न धूपकरि होता है, न पुष्पकरि होता है, न दानकरि, न लेपकेसरकरि तिसका पूजन होता है, अर्घ्यपाद्यादिक जो पूजाकी सामग्री है, तिसकरि देवका पूजन नहीं होता, तिसका पूजन क्लेशविना नितही होता है ॥ हे मुनीश्वर! एक अमृतरूपी जो बोध है, तिस देवका सजातीय प्रतीत ध्यान करणा सो तिसका परम पूजन है ॥ हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्र जो देव है, सो अनुभवरूप है, तिसका सर्वदाकाल सर्व प्रकार पूजन करौ, देखता है, स्पर्श करता है, सूंघता है, श्रवण करता है, बोलता है, देता है, लेता है, चलता है, बैठता है, इसतें लेकरि जो कछु क्रिया करता है, सो सब प्रत्यक्ष चेतन साक्षीविषे अर्पण करौ, तिसी परायण होहु, इस प्रकार आत्मदेवका पूजन करौ ॥ हे मुनीश्वर! आत्मदेवका जो ध्यान करणा यही धूप दीप हैं, अरु सर्व सामग्री पूजनकी यही है, ध्यानही देवकों प्रसन्न करता है, तिसकरि परमानंद प्राप्त

होता है, अवरकरि देवकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! मूढ होवै अरु इस प्रकार ध्यानकरि ईश्वरकी पूजा करै, तब त्रयोदश निमेष जगत् उद्दानफलकों पावता है, अरु सत निमेषके ध्यानकरि प्रभुकों पूजै, तब मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलकों पावै, अरु ध्यानके बलकरि आत्माका घडीपर्यंत पूजन करै, तब उह पुरुष राजसूय यज्ञ किएके फलकों पावै, जो दो प्रहरपर्यंत ध्यान करै, तब लक्ष राजसूय यज्ञके फलकों पावै, जो दिनपर्यंत ध्यान करै, सो असंख्य फलकों पावै ॥ हे मुनीश्वर! यह परम योग है, अरु यही परम क्रिया है, यही परम प्रयोजन है ॥ हे मुनीश्वर! दोनों पूजा मैं तुझकों कही है, जिसकों यह परम पूजा प्राप्त होती है, सो परम पदकों प्राप्त होता है, सर्व देवता तिसकों नमस्कार करते हैं, सर्व करिके उह पुरुष मेरुवत् पूजणे योग्य होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने अंतर्बाह्यपूजावर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! अब अभ्यंतरका पूजन तूं श्रवण कर जो सर्वत्र पवित्र करणेहारेकों भी पवित्र करता है, अरु सर्व तम अज्ञानका नाश करता है, सो आत्मपूजन मैं तुझकों कहता हौं; कैसा पूजन है, जो सर्व प्रकार करिके सर्वदा कालविषे तिस देवका पूजन होता है, व्यवधान कबहूं नहीं पडता, चलते, बैठते, जागते, सोवते, सर्व व्यवहारविषे नित्य ध्यानमें रहता है ॥ हे मुनीश्वर! इस संसारविषे नित्य स्थित संवितरूत चिन्मात्र है, तिसका पूजन करौ, जो सर्व प्रत्ययका कर्त्ता है, सदा अनुभवकरि प्रकाशता है, तिसका आपकरि आप पूजन कर, सो तूं है, उठता चलता खाता पीता जेते कछु बाह्य अर्थ हैं, त्याग करता, ग्रहण करता, भोगकों भोगता, तिन सबकों करता भी देवकी पूजा कर ॥ हे मुनीश्वर! शरीरविषे जो शिव लिंग है, चिन्हतें रहित लिंग जो बोधरूप चिन्ह है, सो देव है, यथाप्राप्तविषे सम रहणा सो तिस देवका पूजन है, यथाप्राप्तके सम भावविषे स्नान करिके शुद्ध होकरि बोधरूप लिंगका पूजन करहु, जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागदोषतें रहित होणा सर्वदा साक्षीरूप अनुभवविषे स्थित र

हणा यही तिसका पूजन है ॥ हे मुनीश्वर! सूर्यके भुवन आकाशविषे उही सूर्य होकरि प्रकाशता है, चंद्रमाके भुवनविषे उही चंद्रमा होकरि स्थित होता है, इनतें आदि लेकरि जो पदार्थके समूह हैं, जैसी जैसी भावनाकरि फुरणा हुआ है, सोइरूप होकरि देव स्थित है ॥ हे मुनीश्वर! नित्य शुद्ध बोधरूप अद्वैत है, तिसकों देखणा, अवरविषे वृत्तिकों न लगावणी, यही देवका पूजन है, प्राण अपानरूपी रथपर आरूढ हुआ, अंतर गुहाविषे जो स्थित है, तिसका जो ज्ञान है, अरु जेते कछु कर्म हैं, तिन सबका कर्त्ता उही है, सर्व भोगका भोक्ता उही है, अरु सर्व शब्दका स्मरण करणेहारा उही है, अरु भागवतरूप है, सबकी भावना करणेहारा परम प्रकाशरूप है, ऐसा जो संवित तत्त्व है, तिसकों सर्वज्ञ जाणीकरि चिंतवना करणी सो तिसका पूजन है, बहुरि कैसा है देव ॥ सकल भी उही है, निष्कल भी उही है, देहविषे स्थित है, तौ भी आकाशवत् निर्मल है, जाता भी है, अरु नहीं जाता भी उही है, प्राणरूपी आलयविषे प्रकाशता है, हृदय कंठ तालु जिव्हा नासिका पीठविषे व्यापक है, शब्द आदिक विषयकों कर्त्ता मनकों प्रेरता है, जैसे तिलविषे तेल आश्रयभूत है, तैसे आत्मा सर्वविषे आश्रयभूत है, कलनारूपी कलंकतें रहित है, अरु कलनागणकरि संयुक्त भी उही है, संपूर्ण देहोंविषे एकही देव व्यापी रहा है, परंतु प्रत्यक्ष हृदयविषे होता है, सो निर्मल चिन्मात्र प्रकाशरूप है, कलनारूपी कलंकतें रहित सदा प्रत्यक्ष है, अपणे आपहीकरि अनुभव होता है, सर्वदा पदार्थका प्रकाश प्रत्यक्ष चेतन आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, सो अपणे फुरणे करिके शीघ्रही द्वैतकी नांई हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु साकाररूप जगत् दृष्ट आता है, सो सब विराट आत्मा है, तातें आपकों विराटकी भावना करु, हस्त पाद नख कैसे यह संपूर्ण ब्रह्मांड मेरा देह है, मैं ही प्रकाशरूप एक देव हौं, अरु नीति इच्छादिक मेरी शक्ति हैं, सब मेरी उपासना करतियां हैं, जैसे स्त्री श्रेष्ठ भर्तारकी सेवा करती है, तैसे शक्ति मेरी उपासना करतियां हैं, बहुरि कैसा हौं, मन मेरा द्वारपाल है, त्रि

लोकीका निवेदन करणेहारा है, अरु चिंतवना मेरी आणेजानेवाली प्रतिहारी है, नानाप्रकारके ज्ञान मेरे अंगके भूषण हैं, कर्म इंद्रियां मेरे द्वार हैं,ज्ञान इंद्रियां मेरे गण हैं, ऐसा मैं एकअनंत आत्मा अखंडरूप हौं, व्यवच्छेदभेदतें रहित अपणे आपविषे स्थित हौं, सर्वविषे परिपूर्ण एक मैंही हौं॥ हे मुनीश्वर! इसी भावना करिके जो एक देवकी पूजा करता है, सो परमात्मादेवकों प्राप्त होता है, तब दीनता आदिक क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक नहीं उपजा, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष नहीं उपजता, न तोषवान् होता है, न कोपवान् होता है, विषयकी प्राप्तिकरि न तृप्ति मानता है,इनके वियोगकरि न खेद मानता है, न अप्राप्तकी वांछा करता है, न प्राप्तके त्यागकी इच्छा करता है, सर्व पदार्थविषे समभाव रहता है, ऐसा जो पुरुष है, सो देवका परम उपासक है, ग्रहणत्यागतें रहित सबविषे तुल्य है, भेदभावकों नहीं प्राप्त होता, सो देवका अर्चन उत्तम है, हे मुनीश्वर! चेतन तत्त्व देव मैं तुझकों कहा है, जो इसी देहविषे स्थित है, जो प्राप्त वस्तु होवै, तिसकों अर्चन करणी, सब तिसीके आगे रखणी, सबका साक्षी आत्माकों देखणा, किसीतें खेदवान न होणा, अहं प्रतीत तिसविषे रखणी, इतर दृश्यकी भावना नहीं करणी, यही देवकी अर्चना है॥ हे मुनीश्वर! जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसविषे यत्नविना तुल्य रहणा, जो भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य, आनि प्राप्त होवै, सो देवके आगे रखणां, ग्रहणत्यागकी बुद्धि तिसविषे न करणी, सो देवका पूजन है, सर्व पदार्थकी प्राप्तिविषे देवकी पूजा करणी, इसकरि अनिष्ट भी इष्ट हो जाता है, मृत्यु आवै तौ देवकी पूजा, जीवणा आवै तब देवकी पूजा, दारिद्य आवै तब देवकी पूजा, राज्य प्राप्त होवै तौ भी देवकी पूजा, विचित्र नानाप्रकारकी चेष्टा करणी, सो सब देवके आगे पुष्प हैं, रागदोषविषे सम रहणा सो समताकरि देवकी पूजा है, संतके हृदयकी रहणेहारी जो है मैत्री, जो संपूर्ण विश्वका मित्र होणा, तिस मित्रता करिके देवका पूजन है, भोगकरि त्यागकरि रागकरि जो कछु आनि प्राप्त होवै, तिसकरि देवका पूजन करु, हंता होहु, अहंता होहु, यु

क्ति करु, अयुक्ति करु,हेयोपादेयतें रहित होकरि तिस देवका पूजन करु, जो नष्ट हुआ सो हुआ; जो प्राप्त हुआ सो हुआ, दोनोंविषे निर्विकार रहणा, इसकरि देवका अर्चन करु, यह भोग आपातरमणीय हैं, होते भी हैं; नष्ट भी हो जाते हैं, इनकी इच्छा न करणी, सदा संतुष्ट रहणा, जैसे आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषतें रहित होणा सो देवका अर्चन है ॥ हे मुनीश्वर! जो कछु प्रारब्ध करिके आनि प्राप्त होवै तिसकरि आत्माका अर्चन करौ, इच्छा अनिच्छाकों त्यागिकरि जो प्राप्त होवै, तिसकरि देवका अर्चन करौ ॥ हे मुनीश्वर! ज्ञानवान् न किसीकी इच्छा करता है, न त्याग करता है, जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसकों भोगता है, जैसे समुद्रविषे नदी जाय प्राप्त होती है, तिनकरि न कछु हर्ष करता है, न शोक करता है, तैसे ज्ञानवान् इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषतें रहित यथाप्राप्तकों भोगता है, सो देवका पूजन है, देश काल क्रिया शुभ अथवा अशुभ प्राप्त होवै, तिसविषे संसरणविकारकों प्राप्त न होणा, सो देवकी अर्चना है, जब द्रव्य अनर्थरूप होवै, तब भी समरससाथ मिल्या हुआ अमृत हो जाता है, जैसे षट्रसस्वाद हैं सो खांडसाथ मिले हुए मधुर हो जाते हैं, तैसे अनर्थरूपी रस समरससाथ मिले हुए अमृत हो जाते हैं, खेद नहीं करते, अनंतरूप हो जाते हैं, चंद्रमाकी नांई सब भावना अमृतमय हो जाती है, जैसे आकाश निर्लेप है, तैसे समताभाव करिके चित्त रागदोषतें रहित निर्मल हो जाता है, द्रष्टाकों दृश्यसाथ मिल्या न देखणा, साक्षीरूप रहणा, सो देवकी अर्चना है, जैसे पत्थरकी शिला निस्पंद होती है, तैसे विकल्पतें रहित चित्त अचल होता है, सो देवकी अर्चना है ॥ हे मुनीश्वर! अंतरतें आकाशवत् असंग रहणा अरु बाह्य प्रकृत आचारविषे रहणा, किसीका संग अंतर स्पर्शे न करै, सदा समभाव विज्ञानकरि पूर्ण रहणा, सो देवका उपासक होता है, जिसके हृदयरूपी आकाशतें अज्ञानरूपी मेघ नष्ट हो गया है, तिसकों स्वप्नविषे भी विकार नहीं प्राप्त होता, अरु जिसके हृदयरूपी आकाशतें अहंतारूपी कुहिड शांत हो गई है, सो शरत्कालके

आकाशवत् उज्ज्वल होता है ॥ हे मुनीश्वर! जिसकों समभाव प्राप्त भया है तिसकरि देवकों पाया है, सो पुरुष ऐसा हो जाता है, जैसा नूतन बालक रागदोषतें रहित होता है, जीवरूपी चेतनाकों उल्लंघिकरि परम चेतन तत्त्वकों प्राप्त होता है, सकल इच्छाभ्रमतें रहित सुख दुःख भ्रमतें मुक्त शरीरका नायक तिष्ठित होता है सो देव अर्चना है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवार्चनाविधानं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जैसी कामना होवै, जो कछु आरंभ करै अथवा न करै, सो अपणे आपकरि चिन्मात्र संवित तत्त्वकी अर्चना कर, इसकरि देव प्रसन्न होता है, जब देव प्रसन्न हुआ तब प्रगट होता है, जब उसकों पाया, अरु स्थित भया, तब रागदोषादिक शब्दका अर्थ नहीं पाइता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाइता, तैसे इसविषे रागदोषादिक नहीं पाइता, तातें तिस देवकी अर्चना करणी योग्य है, जो राज्य आनि प्राप्त होवै, अथवा दारिद्र्य आनि प्राप्त होवै, सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहणा, सो देव अर्चना करणी ॥ हे मुनीश्वर! शुद्ध चिन्मात्रसों प्रमादी न होणा, इसीका नाम अर्चना है, जेता कछु घट पट आदिक जगत् भासता है, सो सब आत्मारूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, सो आत्मा शिव शांतिरूप अनाभास है, एकही प्रकाशरूप है, संपूर्ण जगत् प्रतीतमात्र है, आत्मातें इतर कछु द्वैत वस्तु आभास नहीं, सर्वात्मारूप अद्वैत तत्त्व जब भासै तब तिसविषे हुआ जाणता है जो बडा आश्चर्य है, घट पट आदिक सब उहीरूप है, अवर तौ कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर! यह सर्वात्मा अनंतरूप शिव तत्त्व है, जिसकों ऐसे निश्चय प्राप्त भया है, तिसनें देवकी पूजा जाणी है, घट पट आदिक जो पदार्थ हैं, पूज्य पूजा पूजक भाव सो सब ब्रह्मरूप हैं, निर्मल देव आत्माविषे कछु भेदभाव नहीं ॥ हे मुनीश्वर! आत्मदेव सर्वशक्ति अनंतरूप है, तीनों जगतविषे तिसतें भिन्न कछु नहीं, निर्मल प्रकाश संवित्‌रूप आत्मा स्थित है, हमकों तौ ईश्वर देवतें इतर कछु नहीं भासता, सर्वत्र सर्व प्रकार सर्वात्मा संपूर्ण दृष्ट आता है, अरु जिन

कों देश कालके परिच्छेदसहित ईश्वर भासता है, सो हमारे उपदेशके पात्र नहीं, उह ज्ञानबंध नीच हैं, तिनकी दृष्टिकों त्यागिकरि मेरी दृष्टिका आश्रय लेहु, जो मैं तुझकों कही है, तिसकरि स्वस्थ वीतराग निरामय होहु, यथाप्रारब्ध जो कछु सुख दुःख आनि प्राप्त होवै, खेदतें रहित होकरि तिस देवका अर्चन करु, तब शांतिकों प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर! तिस देवकी सर्व प्रकार सर्वात्मा करिके भावना करु, यही तिसका पूजन है, जो वृत्ति सदा अनुभवरूपविषे स्थित रहै, अरु यथाप्राप्तविषे खेदतें रहित विचरणा यही देवकी अर्चना है, जैसे स्फाटिकके मंदिरविषे प्रतिबिंब भासते हैं, सो कछु नहीं, निष्कलंक स्फाटिक है, तैसे सर्व उरतें रहित जन्मादिक दुःखतें रहित निष्कलंक आत्मा है, तिसकी प्राप्तितें तेरेविषे कलंक जन्मादिक दुःख कछु न रहैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ईश्वरोपाख्याने देवपूजाविचारो नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥३९॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे देव! शिव किसकों कहते हैं, अरु ब्रह्म किसकों कहते हैं, आत्मा किसकों कहते हैं, अरु परमात्मा किसकों कहते हैं, तत् सत् किसकों कहते हैं, निष्किंचन शून्य विज्ञान किसकों कहते हैं, इत्यादिक भेद संज्ञा किस निमित्त हुई हैं, सो कृपा करिके कहो ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जब सबका अभाव होता है, तब अनादि अनंत अनाभास सत्तामात्र शेष रहता है, जो इंद्रियांका विषय नहीं, तिसकों निष्किंचन कहते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे ईश्वर! जो इंद्रियां बुद्धि आदिकका विषय नहीं, तिसका पावणा किसकरि होता है? ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो मुमुक्षु है, अरु वेद आश्रयकरि संयुक्त सात्विकी वृत्ति जिसकों प्राप्त हुई है, तिसकों सात्विकीरूप जो गुरु शास्त्र नाम्नी विद्या प्राप्त होती है, तिसकरि अविद्याका भाग नष्ट हो जाता है, अरु आत्मतत्त्व प्रकाशी आता है, जैसे साबु करिके धोबी वस्त्रका मैल उतारता है, तैसे गुरु शास्त्र अविद्याका सात्त्विकी भाग अविद्याकों दूर करते हैं, जब केते कालतें अविद्या नाश होती है, तब अपणा आपहीकरि देखता है, जैसे वायु करि बादल दूर होते हैं, अरु नेत्रकरि सूर्य दे

खता है, जैसे किसीके हाथकों झाइ लगै, सो मृत्तिका जलकरि धोये दूर हो जाती है, सो मैलकरि मैल दूर होता है, तैसे अविद्याका सात्त्विकी भाग गुरुशास्त्र सो अविद्याके आवरणकों नष्ट करते हैं॥ हे मुनीश्वर! जब गुरुशास्त्रकों मिलिकरि विचार प्राप्त होता है, तब विचारकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है, अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है, सर्व आत्माही प्रकाशता है, जब विचारद्वारा आत्मतत्त्व निश्चय हुआ, जो सर्व आत्मा है, इतर कछु नहीं, ऐसा निश्चय जहां होता है, तहांतें अविद्या जाती रहती है॥ हे मुनीश्वर! आत्माकी प्राप्तिविषे गुरुशास्त्र प्रत्यक्ष कारण नहीं, काहेतें जो वस्तु जिनके क्षय हुएतें पाइए सो तिनके विद्यमान हुए कैसे पाइयें! इंद्रियके समूहका नाम गुरु है, अरु ब्रह्म सर्व इंद्रियतें अतीत है, इनकरि कैसे पाइयें! अकारण है, परंतु कारण भी है, काहेतें जो गुरुशास्त्रके क्रम करिके अज्ञानकी सिद्धता होती है, गुरुशास्त्र विना बोधकी सिद्धता नहीं होती, आत्मा निर्देश है, अरु अदृश्य है, तौ भी गुरुशास्त्रकरि पाता है ॥ अरु न गुरुकरि न शास्त्रकरि पाता है ॥ अपणे आपहीकरि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, जैसे अंधकारविषे पदार्थ होवै अरु दीपक प्रकाशकरि देवै, सो दीपककरि नहीं पाया, अपणे आपकरि पाया है, तैसे गुरुशास्त्र भी हैं, जब दीपक होवैं, अरु नेत्र न होवैं, तब कैसे पाइयें! नेत्र होवैं, अरु दीपक न होवै, तौ भी नहीं पाता, जब दोनों होवैं, तब पदार्थ पाता है, तैसे गुरुशास्त्र भी होवैं, अरु अपणा पुरुषार्थ तीक्ष्ण बुद्धि भी होवै, तब आत्मतत्त्व पाता है, अन्यथा नहीं पाता है, गुरु शास्त्र अरु शुद्ध बुद्धि शिष्यकी तीनों एकठे मिलते हैं, तब संसारके सुख दुःख दूर होते हैं, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, गुरु शास्त्र आवरण दूर करि देते हैं, तब आपकरि आपही पावता है, जैसे वायु बादलकों दूर करता है, तब नेत्र करि सूर्य दिखता है, अब नामके भेद सुण॥ हे मुनीश्वर! जब बोधके वशतें कर्मइंद्रियां, बुद्धिइंद्रियां क्षय होय जातियां हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है, तिसका नाम संवितितत्त्व आत्मसत्ता आदिक नामकरि

कहाता है, जहा यह संपूर्ण नहीं, इनकी वृत्ति भी नहीं तिसके पाछे जो शेष सत्ता रहती है, सो आकाशतें भी सूक्ष्म अरु निर्मल है, अनंत है, परम शून्यरूप है, जहां शून्यका भी अभाव है ॥ हे मुनीश्वर! अब शांतरूप जो है मुमुक्षु, अरु मननकलनाकारि संयुक्त हैं, तिनकों जीवन्मुक्तिपदके बोधनिमित्त शास्त्र मोक्षोपाय रचे हैं, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र लोकपाल पंडित पुराण वेद शास्त्र सिद्धांत रचे हैं, तिनविषे यह नाम तीनमें कहे हैं, चेतन ब्रह्म शिव आत्मा परमात्मा ईश्वर सत् चित् आनंद आदिक संज्ञा अनेक कही हैं, शिव आत्मा ब्रह्म परमात्मा आदिक भिन्न भिन्न नाम शास्त्रकारनें कल्पे हैं, अरु ज्ञानीकों कछु भेद नहीं ॥ हे मुनीश्वर! ऐसा जो देव है, तिसका ज्ञानवान् इस प्रकार अर्चन करते हैं, जिस पदके हम आदिक टहलुए हैं, तिस परम पदकों प्राप्त होते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! यह जगत् सब अविद्यमान है, अरु विद्यमानकी नांई स्थित है, सो कैसे हुआ है, समस्त कहणेकों तुमही योग्य हौ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो ब्रह्म आदिक नामकरि कहता है, सो शुद्ध केवल संवितमात्र है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, जिसके आगे आकाश भी ऐसा स्थूल है, जैसा अणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तिसविषे जब वेदना शक्ति आभास होकरि फुरी तब तिसका नाम चेतन हुआ, बहुरि अहंताभावकों प्राप्त हुआ, जो अहं अस्मि, जैसे स्वप्नविषे पुरुष आपकों हस्ती देखणे लगै, तैसे आपकों अहं मानणे लगा, बहुरि देशकाल आकाश आदिक देखणे लगा, तब चेतनकला जीव अवस्थाकों प्राप्त भई, अरु वासना करणेहारी भई जब जीवभाव हुआ, तब बुद्धि निश्चयात्मक होकरि स्थित भई, शब्द अरु क्रिया ज्ञानसंयुक्त भई, एक एकसाथ मिलिकरि शीघ्रही कल्पित भई, तब मन हुआ सो मन संकल्परूपी माषाका बीज है, तब अंतवाहक शरीरविषे आत्मस्वरूप होकरि ब्रह्मसत्ता स्थित भई, इस प्रकार यह उत्पन्न भई है, बहुरि वायुसत्ता स्पंद हुई, तिसतें स्पर्शसत्ता त्वचा प्रगट भई, बहुरि तेजसत्ता हुई, तिसतें प्रकाशसत्ता हुई, प्रकाशतें नेत्रसत्ता

प्रगट भई, बहुरि जलसत्ता जलतें, स्वादसत्ता स्वादतें, रससत्तातें जिव्हा प्रगट भई, बहुरि गंधसत्ता गंधतें, भूमिसत्ता भूमितें, घ्राणसत्ता पिंडसत्ता प्रगट भई, देशसत्ता कालसत्ता सर्वसत्ता हुई, इनकों एकठा करिके फुरी, जैसे बीज पत्र फूल फलादिकका आश्रय होता है, तैसे यह पुर्यष्टका जाण, यही अंतवाहक देह है, तिसका आश्रय भई, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, केवल परमात्मसत्ता अपणे आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे जल फुरता है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे फुरती है ॥ हे मुनीश्वर! संवित्‌विषे जो संवेदन पृथक्‌रूप होकरि फुरै, सो निस्पंद करिके जब स्वरूपकों जाण्या, तब नष्ट हो जाती है, जैसे संकल्पका रचा नगर संकल्पके अभाव हुए अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके ज्ञानतें संवेदनका अभाव हो जाता है॥ हे मुनीश्वर! संवेदन तबलग भासता है, जबलग इसकों जान्या नहीं, जब जाणता है, तब संवेदनका अभाव हो जाता है, संवित्‌विषे लीन हो जाती है, भिन्नसत्ता इसकी कछु नहीं रहती ॥ हे मुनीश्वर! जो प्रथम अणु तन्मात्रा थी, सो भावनाके वशतें स्थूल देहकों प्राप्त भई, स्थूल देह होकरि भासणे लगी, आगे जैसे जैसे देश काल पदार्थकी भावना होती गई, तैसे तैसे भासणे लगे, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नपुर भासता है, तैसे भावनाके वशतें यह पदार्थ भासणे लगे हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! गंधर्वनगर अरु स्वप्नपुरके समान इसकों कैसे कहते हौ, यह जगत् तौ प्रत्यक्ष दिखाता है ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! संसार दुःख इसकों वासनाके वशतें दिखता है, जो अविद्यमानविषे स्वरूपके प्रमाद करिके विद्यमान बुद्धि हुई है, जगत्‌के पदार्थकों सत् जाणिकरि जो वासना फुरती है, तिस वासना करि दुःख होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् अविद्यमान है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, तिसविषे वासना अरु वासक वासना करणेयोग्य तीनों वृथा हैं, जैसे मृगतृष्णाका जल पानकरि तृप्त कोउ नहीं होता, काहेतें जो जलही असत् है, तैसे यह जगतही असत् है, इनके पदार्थ

की वासना करणी वृथा है, ब्रह्मातें आदि कृमिपर्यंत सब जगत् मिथ्यारूप है, वासना वासक वासना करणेयोग्य पदार्थ तीनोंके अभाव हुए केवल आत्मतत्त्व रहता है, सब भ्रम शांत हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् भ्रममात्र है, वास्तवतें कछु नहीं, जैसे बालककों अज्ञानकरि अपणे परछायेविषे वैताल भासता, जब विचारकरि देखै तब वैतालका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि यह जगत् भासता है, आत्मविचारकरि इसका अभाव हो जाता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके देह भासता है, जिसकी देहादिकविषे स्थिर बुद्धि है, सो हमारे उपदेशके योग्य नहीं है ॥ हे मुनीश्वर! जो विचारवान् है, तिसकों उपदेश करणा योग्य है, अरु जो मूर्ख भ्रमी है, अरु असत्वादी सत्कर्मतें रहित अनार्जव है, तिसकों ज्ञानवान् उपदेश करै, जिसविषे विचार अरु वैराग्य होवै, कोमलता अरु शुभ आचार होवै, तिसकों उपदेश करणा योग्य है, अरु जो इन गुणतें रहित विपर्यय है, तिसकों उपदेश करणा ऐसे होता है, जैसे महासुंदर स्वर्णवत् कांति ऐसी कन्या किसीकी होवै, अरु स्वप्नकल्पित पुरुषकों विवाहि देणेकी इच्छा करै, तैसेही अपात्रकों उपदेश करणा मूर्खता है ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे भगवन्! उह जीव जो आदि सर्गतें उत्पन्न भया, अरु देहभ्रम अपणेसाथ देखता भया, तिसके अनंतर कैसे स्थित हुआ ॥ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे मुनीश्वर! परमाकाशतें उपजा, जैसे तुमकों कहा है, सो अपणेसाथ शरीर देखत भया, स्वप्ननगरकी नांई सर्वगत चिद्घनआत्माके आश्रय उपजिकरि जीव अपणे शरीरकों देखत भया॥ हे मुनीश्वर! आदि जो जीव फुर्या है, अरु प्रमादकों प्राप्त न भया, अपणे स्वरूपहीविषे अहंप्रत्यय रहा, इस कारणतें ईश्वर होकरि स्थित भया, तिसकों यह निश्चय रहा, जो मैं सनातन हौं, नित्य हौं, शुद्ध परमानंदस्वरूप हौं, अव्यक्तरूप परम

पुरुष हौं, इस प्रकार आदि जीवका निश्चय रहा, आत्माकी अपेक्षा करिके तिसकों जीव कहा है, अरु सृष्टि जगत्की अपेक्षा करिके उसकों ईश्वर कहा है ॥ हे मुनीश्वर! उह जो आदि जीव है, सो कोउ विष्णुरूप होकरि ब्रह्माकों नाभिकमलतें उत्पन्न किया है, किसी सृष्टिविषे प्रथम ब्रह्मा हुआ है, विष्णु रुद्र तिसतें हुए हैं, किसी सृष्टिविषे प्रथम रुद्र हुआ है, विष्णु ब्रह्मा तिसतें हुए हैं, चेतन आकाशविषे जैसा जैसा संकल्प फुर्या है, तैसा होकरि स्थित भया है, आदि जीव उपजीकरि जिस जिस प्रकारका संकल्प किया है, तैसा हो करि स्थित भया है, वास्तवतें सब असत्‌रूप है, अज्ञानभ्रम करिके हुआ है, जैसे परछायेविषे वैताल होता है, तैसे अज्ञान करिके सत्‌रूप हो भासता है, आदिपुरुषतें लेकरि जो सृष्टि है, सो परमाकाशके एक निमेषतें हुई है, अरु उन्मेषविषे लय हो जाती है, एक निमेषके प्रमादकरि कल्पके समूह व्यतीत हो जाते हैं, अरु परमाणुपरमाणुविषे सृष्टि फुरतियां हैं, कल्प अरु महाकल्प तिनविषे भासते हैं, केई सृष्टि परस्पर दिखतियां है, केई अन्योन्य अदृश्यरूप हैं, इसी प्रकार सृष्टि तिसके स्पंदकलाविषे फुरियां हैं, चमत्कार होता है, अरु जब स्पंदकला स्वरूपकी उर आती है, तब लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नका पर्वत जागेतें लीन हो जाता है, तैसे जाग्रत्की सृष्टि अफुर हुए लीन हो जाती है॥हे मुनीश्वर! जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, तिन सृष्टिकों कोउ देश काल रोकी नहीं सकता, काहेतें जो अपणे अपणे संकल्पविषे स्थित है, अरु आत्माका चमत्कार है, जैसा फुरणा फुरता है, तैसा चमत्कार हो भासता है॥ हे मुनीश्वर! न कछु उपजा है, न कछु नाश होता है, स्वतः चेतनतत्त्व अपणे आपविषे चमकता है, जैसे स्वप्ननगर उपजीकरि नष्ट हो जाते हैं, जैसे संकल्पका पहाड उपजीकरि मिटि जाता है, तैसे जगत् उपजीकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्न अरु संकल्प पहाडकों कोउ रोकी नहीं सकता, तैसे अपणी अपणी सृष्टिकों देशकाल रोकी नहीं सकता, काहेतें जो अवर ठौरविषे इनका सद्भाव नहीं, तातें यह जगत् अपणे अपणे कालविषे स

तरूप है, आत्माविषे सद्भाव नहीं, संकल्परूप है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे आदितत्त्वतें जीव ईश्वर फुरे हैं, तैसे कर्म फुरे हैं, रुद्रतें लेकरि वृक्षपर्यंत सब एक क्षणविषे उसी तत्त्वतें फुरी आये हैं, सुमेरु आदिक भी अपणे स्थितिविषे रोकते हैं, अन्य अणुकों नहीं रोकी सकते, काहेतें जो उहां हैही नहीं, तातें आत्माविषे सृष्टि आभासरूप है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब जगत् मायामात्र है, भावनाकरि भासता है, जब आत्माका अभ्यास होता है, तब भेद कल्पना मिटि जाती है,केवल उपशमरूप शिव तत्त्व भासता है ॥ हे मुनीश्वर! निमेषका जो समभाग है, तिसके अर्धभाग प्रमाद होणेकरि नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, सत्असत् रूप जगत् मनरूपी विश्वकर्मा बनावता है, आत्मतत्त्व न दूर है,न निकट है, न अध है, न ऊर्ध्व है, न पूर्व है, न पश्चिम है, सत्असत्के मध्य अनुभवरूप सर्वका ज्ञाता है, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण तिसकेविषे नहीं करि सकते, जैसे जलविषे अग्नि नहीं निकसता है ॥ हे मुनीश्वर! जो कछु तुझनें पूछा था, सो मैं कहा है, तिसविषे चित्तकों लगावणा, तेरा कल्याण होवै, अब हम अपणे वांछित स्थानकों जाते हैं, चलौ पार्वती, अपणे स्थानकों जावैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार ईश्वरनें जब कहा, तब मैं अर्घ्यपाद्यकरि पूजन किया, पार्वती अरु गणकों लेकरि ईश्वर आकाशमार्गकों चलते रहे, जबलग मुझकों दृष्टि आवते रहे, तबलग उनकी उर मैं देखता रहा, बहुरि मैं अपणे कुशके स्थानपर आनि बैठा, जो कछु ईश्वरनें उपदेश किया था, सो मैं अपणी सुध बुध साथ विचारणे लगा॥ ॥इति श्रीयो॰ निर्वाणप्रकरणे परमार्थविचारो नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु ईश्वरनें तुझकों कहा सो मैं आप भी जाणता था, अरु तूं भी जाणता है, यह जगत् भी असत् है, देखणेवाला भी असत् है, तिस मायारूप जगतविषे मैं तुझकों सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पवनविषे स्पंद होता है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे रामजी! जो कछु पतित प्रवाहकरि आ

नि प्राप्त होता है, तिसकरि मैं देव अर्चन करता हौं, इस क्रम करिके मैं निर्वासनिक हौं, जगत्की क्रियाविषे भी मैं निर्दुःख होकरि चेष्टा करता हौं, व्यवहार करता दृष्टि आता हौं, तौ भी सदा शांतिरूप हौं, यथाप्राप्त आचाररूपी फूलकरि मैं आत्मदेवकी अर्चना करता हौं, छेद भेद तुझकों कोउ नहीं होता ॥ हे रामजी! विषय अरु इंद्रियांका संबंध सर्व जीवकों तुल्य है, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सावधान रहते हैं, जो कछु देखते, सुणते, बोलते, खाते, सूंघते, स्पर्श करते हैं, सो आत्मतत्त्वविषे अर्चन करते हैं, आत्मातें इतर नहीं जाणते, इस प्रकार सावधान रहते हैं, अरु अज्ञानी हैं, तिनकों कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान होता है, तिसकरि दुःखी होते हैं ॥ हे रामजी! तुम भी ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके संसाररूपी बनविषे विचरौ, निःसंग हो करि तुमकों खेद कछु न प्राप्त होवैगा, जिसकी वृत्ति इस प्रकार समान हो गई है, तिसकों बडा कष्ट आनि प्राप्त होवै, धनबांधवका वियोग होवै, तौ भी तिसकों खेद नहीं होता, इह जो दृष्टि मैं तुझे कही है, तिसका आश्रय करैगा, तब तुझकों दुःख कोउ न होवैगा ॥ हे रामजी! सुख दुःख धन बांधवका वियोग यह सब पदार्थ अनित्य हैं, यह आते भी हैं, जाते भी हैं, इनकों आगमापायी जाणिकरि विचरौ, यह संसार विषमरूप है, एकरस कदाचित् नहीं रहता, इसकों स्थित जाणीकरि दुःखी नहीं होणा ॥ हे रामजी! पदार्थ काल जैसे जावै, तैसे जावै, अरु जैसे सुखदुःख आवै, तैसे आवै, यह सब आगमापायी पदार्थ हैं, आते भी हैं, जाते भी हैं, इष्टकी प्राप्ति अनिष्टकी निवृत्तिविषे हर्षवान् नहीं होणा, अरु अनिष्टकी प्राप्ति इष्टके वियोगकरि खेदवान् नहीं होणा, जैसे आवै, तैसे जावै, जैसे जावै तैसे आवै, जिस आवणा है सो आवैगा, जिस जाणा है सो जावैगा, इह सुखदुःख प्रवाहरूप हैं, इनविषे आस्थाकरि तपायमान नहीं होणा ॥ हे रामजी! यह सब जगत् तूंही है, अरु तूंही जगत्रूप है, अरु चिन्मात्र विस्तृत आकार तूं है, जब तूंही है, तब बहुरि हर्ष शोक किस निमित्त करता है, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके जगत्विषे सुषुप्तकी नांई विचरु, बहुरि तुरीयाती

तअवस्थाकों प्राप्त होवैगा, जो सम प्रकाशरूप है॥ हे रामजी! जो कछु मैं तुझकों कहणा था, सो कहा है, आगे जो तेरी इच्छा होवै सो करु, अरु पाछे तुझनें पूछा था, जो ब्रह्म अनंत रूपविषे मैं कलंक कैसे प्राप्त भया है, सो अब बहुरि प्रश्न करु, जो मैं उत्तर कहौं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! अब मुझकों संशय कछु नहीं रहा, सब संशय नष्ट हो गया है, जो कछु जाणना था सो मैं जाण्या है, अब मैं परम अकृत्रिम तृप्तताकों प्राप्त भया हौं ॥ हे मुनीश्वर! आत्माविषे न मैल है, न द्वैत है, न एक है, कोउ कल्पना नहीं, पूर्व मुझकों अज्ञान था, तब मैं पूछा था, अब तुमारे वचनोंकरि मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कलंक कछु नहीं भासता, आत्माविषे न जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्महीं है ॥ हे मुनीश्वर! प्रश्न संशयकरि उपजता है, सो संशय मेरा नष्ट हो गया है, जैसे जंत्रीकी पुतली हिलावणेतें रहित अचल होती है, तैसे मैं संशयतें रहित अचल चित्त स्थित हौं, सर्व सारोंका सार मुझकों प्राप्त भया है, जैसे सुमेरु अचल होता है, तैसे अचल हौं, कोउ क्षोभ मुझकों नहीं, ऐसा कोउ पदार्थ नहीं जो मुझकों त्यागणे योग्य होवै, अरु ऐसा भी कोउ नहीं जो ग्रहण करणेयोग्य होवै, न किसी पदार्थकी मुझकों इच्छा है, न अनिच्छा है, शांतरूपविषे स्थित हौं, न स्वर्गकी मुझकों इच्छा है, न नरकविषे द्वेष है; सर्व ब्रह्मरूप मुझकों भासता है, मंदराचल पर्वतकी नांई आत्मतत्त्वविषे स्थित हौं ॥ हे मुनीश्वर! जिसकों अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि होती है, अरु कलनाकला हृदयविषे स्थित होती है, सो किसीका ग्रहण करता है, किसीका त्याग करता है, अरु दीनताकों प्राप्त होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह संसार महासमुद्ररूप है, रागद्वेषरूपी तिसविषे कल्लोल हैं, अरु शुभअशुभरूपी तिसविषे मत्स्य रहते हैं, ऐसे भयानक संसारसमुद्रतें अब मैं तुमारे प्रसाद करिके तरी गया हौं, सब संपदाके अंतकों प्राप्त भया हौं, सब दुःख नष्ट हो गये हैं, सर्वके सारकों प्राप्त भया हौं, पूर्ण आत्मा हौं, अदीन पदकों प्राप्त भया हौं, अरु परम शांत अभेदसत्ताकों प्राप्त भया हौं, आशारूपी हस्तीकों मैंनें सिंह होकरि मा

न्या है, आत्मातें इतर मुझकों कछु नहीं भासता, सब विकल्पके जाल गलित हो गये हैं, इच्छादिक विकार नष्ट हो गये हैं, दीनता जाती रहती है, तीनों जगत्विषे मेरी जय है, सदा उदितरूप हौं॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रांत्यागमनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! देहइंद्रियांकरि जो केवल करता है, अरु मनविषे असंगता है, तब जो कछु उह कर्त्ता है, सो भी कछु नहीं करता, जो कछु इंद्रियांकरि इष्ट प्राप्त होता है, सो एक क्षणमात्र सुख प्राप्त होता, तिस क्षण प्रसन्नताविषे जो बंधमान होता है, सो बालकवत् मूर्ख है, जो ज्ञानवान् है, सो तिसविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! वांछाही इसकों दुःखी करती है, जो सुंदरविषयकी वांछा करता है, जब यत्नकरि तिनकी प्राप्ति होती है, तब मध्य क्षण सुख होता है, बहुरि वियोग होता है, तब इसकों दुःख दे जाते हैं, तिस कारणतें इनकी वांछा त्यागणी योग्य है, इनकी वांछा तब होती है, जब स्वरूपका अज्ञान होता है, अरु देहादिकविषे भाव होता है, जब देहादिकविषे अहंभाव होता है, तब अनेक अनर्थकी प्राप्ति होती है, तातें हे रामजी! ज्ञानरूपी पहाड परि चडे रहणा, अहंतारूपी गरतविषे नहीं गिरना ॥ हे रामजी! आत्मज्ञानरूपी सुमेरु पर्वत् है, तिसपर चडी बहुरि अहंता अभिमान करिके गरतविषे वास लेणा सो बडी मूर्खता है, तातें गरतविषे नहीं गिरणा, जब दृश्यभावकों त्यागैगा, तब अपणे स्वभावसत्ताकों प्राप्त होवैगा, जो सम शांतरूप है, अरु विकल्पजाल सब मिटि जावैगी, समूद्रवत् पूर्ण होवैगा, द्वैतरूप फुरणा कोउ न फुरैगा ॥ हे रामजी! जब अंतरतें विषयकों विष जानै, तब मन भी निरस हो जाता है, चित्त निःसंग होता है, वस्तुतें देखै तौ सबविषे सत्ता समानरूप ब्रह्म चिद्घन स्थित है, तिसतें जो कछु इतर द्वैत भासता है, सो स्वरूपके प्रमादकरि भासता है॥ हे रामजी! आत्माका अज्ञानही बंधनरूप है, आत्माका बोधही मुक्तरूप है, तातें बल करिके आपकों आपही जगावहु, तब इस बंधनतें सु

क्त होहुगे ॥ हें रामजी ! जिसविषे विषयका स्वाद नहीं, अरु जिसविषे इनका अनुभव होता है, सो तत्त्व आकाशवत् निर्मल सत्ता वासनातें रहित है, जो वासनातें रहित होकरि पुरुष कछु क्रिया करता है, सो विकारकों नहीं प्राप्त होता, यद्यपि अनेक क्षोभ आनि प्राप्त होवें, तौ भी उसकों विकार कछु नहीं प्राप्त होता, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ए तीनों आत्मरूप भासते हैं, जब ऐसे जाण्या तब भय किसीका नहीं रहता, चित्तके फुरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके अफुर हुए लीन हो जाता है, जब वासनासहित प्राण उदय होते हैं, तब जगत् उदय होता है, जब वासनासहित प्राण लीन होते हैं, तब जगत् लीन होता है, अभ्यास करिके वासना अरु प्राणोंकों स्थित करौ, जब मूर्खता उदय होती हैं, तब कर्म उदय होते हैं, अरु मूर्खताके लीन हुए कर्म भी लीन होते हैं, तातें सत्संग अरु सच्छास्त्रोंके विचारकरि मूर्खताकों क्षय करौ, जैसे वायुके संगकरि धूलि उडीके बादल आकार होती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जब चित्त फुरता है, तब नानाप्रकारका जगत् फुरि आवता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत् लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! वासना शांत होवै, अथवा प्राणोंका निरोध होवै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, सो वासनाके क्षय हुए अथवा प्राणोंके रोकेतें चित्त अचित्त होता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब परम पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शन संबंधके मध्यविषे जो सुख है, सो परमात्मसुख है, जो एकांतका सुख है, सो संवित ब्रह्मरूप है; तिसके साक्षात्कार हुए मनक्षय होता है, जहां चित्त नहीं उपजता सो चित्ततें रहित अकृत्रिम सुख है, ऐसा सुख स्वर्गविषे भी नहीं जैसे मरुस्थलविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे चित्तसहित विषयकेविषे सुख नहीं होता, चित्तके उपशमविषे जो सुख है, सो अवाच्य है, वाणीकरि कह्या नहीं जाता, तिसके समान अवर सुख कोउ नहीं, औ तिसतें अतिशय सुख भी नहीं, अवर सुख नाश हो जाता है, आत्मसुख नाश नहीं होता अविनाशी है, उपजणे बिनसणे दोनोंतें रहित है ॥ हे रामजी ! अबोध करिके चित्त उदय होता है,

अरु आत्मबोध करिके शांत हो जाता है, जैसे मोह करिके बालककों वैताल दिखाइ देता है, मोहके नष्ट हुए वैताल नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि चित्त उदय होता है, अज्ञानके नष्ट हुए चित्त नष्ट हो जाता है, जब विद्यमान भी चित्त भासता है, तब भी बोधकरि निर्बीज होता है, जैसे तांबा पारससाथ मिलीकरि स्वर्ण होता है, आकार तौ उही दृष्टि आता है, परंतु तांबेभावका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानकरि जगत् भासता है, अरु ज्ञानकरि चित्त अचित्त हो जाता है, अरु जड जगत् नहीं भासता, उही ब्रह्मसत्ता होकरि भासता है, सत् पदकों प्राप्त होता है, परंतु नाम रूप तैसेही भासता है ॥ हे रामजी! ज्ञानीका चित्त भी क्रिया करता दृष्ट आवता है, परंतु चित्त अचित्त हो जाता है, जो अज्ञान करिके भासता है, सो ज्ञान करिके शून्य हो जाता है, जेता कछु जगत् अबोध करिके भासता था, सो बोध करिके शांत हो जाता है, बहुरि नहीं उपजता, उह चित्त शांत पदकों प्राप्त होता है, कोउ काल तौ उह भी तुरीया अवस्था विषे स्थित हुआ विचरता है, बहुरि तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य सर्व ब्रह्मही सम इस प्रकार अनेक होकरि स्थित भया है, अनेक भ्रम करिके भी एकही है, सर्वात्माही है, अवर चित्तादिक कछु नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तसत्तासूचनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तूं संक्षेपतें एक अपूर्व आश्चर्यरूप बोधका कारण अज्ञान सुण, एक बीलफल है, अरु अनंत योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अरु अनंत युग व्यतीत हो गये हैं, उह जर्जरीभावकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, अरु अनादि है, तिसविषे अविनाशी रस है, कबहूं नाश नहीं होता, रसकरि पूर्ण है, अरु चंद्रमाकी नांई सुंदर है, बहुरि कैसा है, जो सुमेरु आदिक बडे पहाड हैं, तिनकों महाप्रलयका पवन तृणोंकी नांई उडावता है, सो पवन भी तिसकों हिलाय नहीं सकता ॥ हे रामजी! योजनके अनंत कोट कोटान करिके तिसकी संख्या नहीं करि जाती, ऐसा उह बीलफल है, बहुरि कै

सा है, बहुत बडा है, जैसे सुमेरुके निकट राइका दाणा सूक्ष्म तुच्छ भासता है, तैसे तिस बीलफलके आगे ब्रह्मांड सूक्ष्म तुच्छ भासता है, सो बील रसकरि पूर्ण है, गिरता कबहूं नहीं, अरु पुरातन है, तिसका आदि, अंत, मध्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक भी नहीं जाणि शकते, न उसके मूलकों कोइ जाणि शकता है, न मध्यकों कोई जाणि शकता है, अदृष्ट उसका आकार है, अरु अदृष्ट फल है, अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, बहुरि कैसा है, एक घन है आकार जिसका, अरु सदा अचल है, किसी विकारकों नहीं प्राप्त होता, सत् है, निर्मल निर्विकार निरंतररूप है, निरंध्र है, अरु चंद्रमाकी नांई शीतल सुंदर है, अरु अज्ञान संवित्‌रूपी तिसविषे रस है, सो अपणा रस आपही लेता है, अरु सर्वकों रस देणेहारा भी उही है, सबकों प्रकाश करता भी उही है, तिसविषे अनेक चित्र रेषा आनि निवास किया है, परंतु अपणे स्वरूपकों त्यागता नहीं ॥ अनेकरूप होकरि भासता है, तिसविषे स्पंदरूपी रस फुरता है, तत्त्वं, इदं, देश, काल, क्रिया, नीति, राग, दोष, हेयोपादेय, भूत, भविष्यत् काल, प्रकाश, तम, विद्या, अविद्या, इत्यादिक कलनाजाल रसके फुरणेकरिके फुरते हैं, सो बिल आत्मरूप है, अनुभवरूपी तिसविषे रस है, सो सदा अपणे आपविषे स्थित है, नित्य शांतरूप है, तिसकों जाणिकरि पुरुष कृतकृत्य होता है ॥ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बिलोपाख्यानं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मके वेत्ता, तुम इह बिलरूपी महा चिद्‌घनसत्ता कही, सो ऐसे मेरे निश्चय भया जो चेतन मज्जारूप अहंतादिक जगत् है, इसविषे भेद रंचक भी नहीं, द्वैत एक कलना सर्व उही है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे ब्रह्मांडकी मज्जा सुमेरु आदिक पृथ्वी है, तैसे चेतन बिलकी मज्जा यह ब्रह्मांड है, सब जगत् चेतन बिलरूप है, इतर कछु नहीं, तिस सर्व जगत् चेतनका विनाश संभवता नहीं ॥ हे रामजी! चेतनरूपी मिरच बीज है, तिसविषे जगत्‌रूपी चमत्कार तीक्ष्णता है, सो सु

शिलाकोरत.

षुप्तवत् निर्मल है, शिलाके अंतरवत् अमिश्रित है॥ हे रामजी! अब अवर आश्चर्यरूप आख्यान सुण, चंद्रमावत् महासुंदर प्रकाश अरु स्निग्ध शीतल स्पर्श है; अरु विस्तृतरूप शिला है, सो महानिरंध्र है, घनरूप है, तिसविषे कमल उपजते हैं, ऊर्ध्व तिसकी वल्ली है, अरु अध मूल है, अरु अनेक तिसकी शिखा हैं॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! सत्य कहता हौं, इह शिला मैं भी देखी है, जो विष्णुकी मूर्त्ति नदीविषे शालग्राम है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ऐसे तूं जाणता है, अरु देखा भी है, परंतु तैसी तिसके सब अंतर हैं, जो शिला मैं कहता हौं सो अपूर्व शिला है, तिसके अंतर ब्रह्मांडके समूह हैं, और कछु भी नहीं॥ हे रामजी! चेतनरूपी शिला मैं तुझकों कही है, तिसविषे संपूर्ण ब्रह्मांड है, सो घन चेतनता करिके शिला वर्णन करी है, अनंत घन अरु निरंध्र है, सो परब्रह्म आकाशवत् शिला है, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, देश, नदीयां, समुद्र इत्यादिक, सबही विश्व तिस शिलाके अंतर स्थित हैं, अरु कछु है नहीं, जैसे शिलाके उपर कमल लिखे होते हैं, सो शिलारूप हैं, शिलातें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूपी शिलाविषे है, आत्मातें भिन्न कछु नहीं॥हे रामजी! भूत भविष्यत् वर्तमान जो तीनों काल हैं, सो उस शिलाकी पुतलियां हैं, जैसे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस शिलातें निकसै तैसे यह जगत् आत्माविषे है, उपजा नहीं, काहेतें जो मनरूपी शिल्पी कल्पता है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है, आत्माविषे कछु उपजा नहीं, जैसे सुषुप्तरूप शिलाकेपर कमलरेखा लिखी होती है, सो शिलातें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् आत्माविषे है, सो आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, सो न उदय न अस्त होती है, ज्यौंकी त्यौं शिला है, तैसे आत्माविषे जगत् न उदय न अस्त होता है, काहेतें जो वास्तव कछु नहीं, अरु आत्मातें इतर जो कछु द्वैतकल्पना होती है, सो अज्ञान करिके भासती है, जब बोध हुआ तब शांत हो जाती है, जैसे जलकी बूंद समुद्रविषे डारी समुद्ररूप हो जाती है, तैसे बोधकरि कल्पना

आत्माविषे लीन हो जाती है ॥ हे रामजी ! चेतन आत्मा अनंत है, तिसाविषे विकार कल्पना कोउ नहीं, अज्ञानकरि कल्पना भासती है, ज्ञान करिके लीन हो जाती है, विकार भी आत्माके आश्रय भासते हैं, अरु आत्मा विकारतें रहित है, ब्रह्मतें विकार उत्पन्न होते हैं, अरु ब्रह्महीविषे स्थित हैं, अरु वास्तवतें कछु हुए नहीं, सब आभासमात्र है, जैसे किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत्‌विकार आभास होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, पत्र टास फूल फलका विस्तार एकही बीजके अंतर होता है, अरु बीजसत्ता सबविषे अनुस्यूत होती है, बीजतें इतर कछु नहीं होता, तैसे चिद्‌घन आत्माके अंतर जगत्‌विस्तार है, सो चिद्‌घन आत्मातें इतर कछु नहीं, उही अपणे आपविषे स्थित है, अरु जगत् भी उहीरूप है, जब एक मानियें तब द्वैत भी होता है, जब एक कहणा भी नहीं, तब द्वैत कहां होवै, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, आत्माही अद्वैत अपणे आपविषे स्थित है, जैसे शिलाविषे मूर्त्ति लिखी होती है, सो शिलारूप है, तैसे जगत् आत्मारूप है, जैसे शिलाविषे भिन्न भिन्न विषमरूप मूर्तियां होतियां हैं, आधाररूप शिला अभेद है, तैसे आत्माविषे जगत् मूर्तियां भिन्न भिन्न विषमरूप भासतियां हैं, अरु आधार चेतन अभेद है, ब्रह्मसत्ता समान सुषुप्तवत् सम स्थित है, बडे विकार भी तिसविषे दृष्ट आवते हैं, परंतु वास्तव सुषुप्तवत् विकारतें रहित स्थित है, फुरणेतें रहित चेतन शिला स्थित है, तिस नित्य शांत चिद्घनरूप सत्ताविषे यह जगत् कल्पित है, अधिष्ठानसत्ता सदा सर्वदा शांतरूप है, भेदकों प्राप्त कदाचित् नहीं होती, जैसे जलविषे तरंग अभेदरूप हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण अभिन्नरूप हैं, तैसे आत्माविषे जगत् अभिन्नरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलाकोशोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे बीजके अंतर फूल फल वृक्ष संपूर्ण होता है, सो आदि भी बीज है, अरु अंत भी बीज है, जब फल परिपक्क होता है, तब बीजही होता है, तैसे आत्मा भी जगत्‌विषे है, परंतु सदा अच्युत है, अरु सम, है कदाचि

त् भेदविकार परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अपणी सत्ताकरि स्थित है, जगत्के आदि भी उही है, मध्य भी उही है, अंत भी उही है, कछु अवर भावकों प्राप्त नहीं भया, देश काल कर्म आदिक जेती कछु कलना भासती है, सो उहीरूप है, जेते कछु शब्द अरु अर्थ हैं, सो आत्मातें भिन्न नहीं पाइते, जैसे वृक्षके आदि भी बीज है; अरु अंत भी बीज है, मध्य जो कछु विस्तार भासता है, सो भी उहीरूप है, भिन्न कछु नहीं तैसे जगत्के आदि भी आत्मसत्ता है, अंत भी आत्मसत्ता है, मध्य जो कछु भासता है, सो भी उहीरूप है ॥ हे रामजी! चेतनरूपी महा आदर्श है, तिसविषे संपूर्ण जगत् प्रतिबिंब होता है, अरु संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा किसीविषे फुरण दृढ होता है, तैसाही आत्मसत्ताके आश्रित होकरि भासता है, जैसे चिंतामणिविषे जैसा कोउ संकल्प धारता है, तैसाही प्रगट हो आता है, सो संकल्प मात्रही होता है, तैसे जैसी जैसी भावना कोउ करता है, तैसी तैसी आत्माके आश्रित होकरि भासती है, अनंत जगत् आत्मरूपी मणिके आश्रित स्थित होते हैं, जैसी कोउ भावना करता है, तैसाही तिसकों हो भासती है ॥ हे रामजी! आत्मरूपी डबा है, तिससों जगत्रूपी रत्न मोती पडे निकसते हैं, जैसा फुरणा होता है, तैसा जगत् भासि आता है, जैसे शिलाके अंतर रेषा होतियां हैं, सो नानाप्रकार चित्र भासतियां हैं, सो अनन्यरूप हैं, तैसे आत्माविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे शिलाके अंतर शंखचक्रादिक रेषा भासती हैं, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासता है, सो आत्मारूप है, आत्मारूपी शिला निरंध्र है, तिसविषे छिद्र कोउ नहीं, जैसे जलविषे तरंग जलरूप होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, सो कैसा ब्रह्म है, सम शातरूप सुषुप्तवत् स्थित है, तिसविषे जगत् कछु फुर्या नहीं, शिलाकी रेषावत् है, जैसे बिलके अंतर मज्जा स्थित होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, जैसे वायुविषे स्पंदता होती है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे तरु अरु वृक्षविषे भेद कछु

नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्मही जगत् है, जगतही ब्रह्म है ॥ हे रामजी! भाव अभाव भेदकल्पना कोउ नहीं, ब्रह्मसत्ताही प्रकाशती है, ब्रह्मही जगत्रूप होकरि भासता है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणा जलरूप होकरि भासतियां हैं, तैसे ब्रह्म जगत्रूप होकरि भासता है ॥ हे रामजी! सुमेरु आदिक पर्वत अरु तृण बन अरु चित्त जगत् परिणामतें लेकरि भूतकों विचारि देखियें तौ परम सत्ताही भासती है, सम पदार्थविषे स्थूल अरु सूक्ष्म भावकरि उही सत्ता व्यापी है, जैसे जलका रस वनस्पतिविषे व्याप्या हुआ है, तैसे सब जगत्विषे सूक्ष्मता करिके आत्मसत्ता व्यापी हुई है, जैसे एकही रससत्ता वृक्ष तृण गुच्छेविषे व्यापी हुई है, अरु एकही अनेकरूप होकरि भासती है, तैसे एकही ब्रह्मसत्ता अनेकरूप होकरि भासती है ॥ हे रामजी! जैसे मोरके अंडविषे अनेक रंग होते हैं, जब अंड फूटता है, तब शनैःशनैः अनेक रंग तिसतें प्रगट होते हैं, सो एकही रस अनेकरूप हो भासता है, तैसे एकही आत्मा अनेकरूप जगत् आकार होकरि भासता है, जैसे मोरके अंडविषे एकही रस होता है, परंतु जो दीर्घसूत्री अज्ञानी हैं, तिनकों भविष्यत् अनेक रंग उसविषे भासते हैं, सो अनउपजेही उपजे भासते हैं, तैसे यह जगत् अनउपजाही नानात्व अज्ञानीके हृदयविषे स्थित होता है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों एकरस ब्रह्मसत्ता भासती है, जैसे मोरका रस परिणामकों नहीं प्राप्त भया, एकरस है, अरु जब परिणामकों प्राप्त होकरि नानारूप भया, तब भी एकरस है, तैसे यह जगत् परमात्माविषे गुह्य है, तौ भी परमात्माही है, अरु जब नानारूप होकरि भासता है, तौ भी उही है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, परंतु अज्ञानीकों नानात्व भासता है, ज्ञानवान्कों एक सत्ता भासती है, अथवा इस दृष्टांतका दूसरा अर्थ है, जैसे मोरके अंडविषे नानात्व कछु हुई नहीं, जिसकों दिव्यदृष्टि है, तिसकों उसविषे अनउपजी नानात्व भासती है, अरु जिसकों दिव्यदृष्टि नहीं, तिसकों बीजही भासता है, नानात्व नहीं भासती, तैसे जिनकों अज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि है, तिनकों अ

नउपजा जगत् नानात्व हो भासता है, अरु जो अज्ञानदृष्टितें रहित हैं, तिनकों एकही ब्रह्म भासता है, अवर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी ! नानात्व भासता है, तौ भी कछु नानात्व है नहीं, जैसे मोरके अंडविषे नानारंग भासते हैं, तौ भी एकरूप है, तैसे यह जगत् भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, तौ भी एक ब्रह्मसत्ता है, द्वैत कछु नहीं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सत्तोपदेशो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४६॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे अनउपजी कांतिरंग मयूरके अंडविषे होते हैं, सो बीजतें इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् आत्माविषे अनउदयही उदयरूप भासता है, जैसे बीजविषे उन रंगहूंकी उदय भी अनउदयरूप है, तैसे आत्माविषे जगत्की उदय भी अनउदयरूप है, अरु आत्मसत्ता अशब्द पद है, वाणीकरि कछु कहा नहीं जाता, ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं पाइता है, अरु अवर भी किसी स्थान विषे ऐसा सुख नहीं पाइता, जैसा सुख आत्माविषे स्थित हुए पाइता है ॥ हे रामजी ! आत्मसुखविषे विश्रांति पावणेनिमित्त मुनीश्वर, देवता, गण, अरु सिद्ध महाऋषि दृश्य दर्शन संबंध फुरणेकों त्यागिकरि स्थित होते हैं, तातें उत्तम सुख है, संवित्‌विषे जो संवेदनका फुरणा है, सो जिनका निवृत्त हुआ है, तिसका जिननें त्याग किया है, तिन पुरुषकों दृश्यभावना कोउ नहीं फुरती, न कोउ तिनकों कर्म स्पर्श करता है, अरु प्राण भी तिनके निस्पंद होते हैं, चित्त चेतनके संबंधतें रहित चित्रकी मूर्तिवत् स्थित होते हैं, अरु शांतरूप स्थित होते हैं ॥ हे रामजी ! जब चित्तकला फुरती है, तब इसकों संसारभ्रम प्राप्त होता है, अरु जब चित्तका फुरणा मिटि जाता है, तब इह शांतरूप अद्वैत स्थित होता है, जैसे राजाकी सैना युद्ध करती है, अरु जीत हार राजाकी होती है, तैसे चित्तके फुरणेद्वारा आत्माविषे बंध मोक्ष होता है, यद्यपि आत्मा सतरूप अच्युत है, परंतु मन बुद्धि अंतःकरणद्वारा आत्माविषे बंधमोक्ष भासता है, आत्मा सबका प्रकाशक है, जैसे चंद्रमाकी चांदणी वृक्षादिककों प्रकाशती है, तैसे आत्मा सर्व पदार्थकों प्रकाशता है, सो कैसा

है, न दृश्य है, न उपदेशका विषय है, न विस्ताररूप है, न दूर है, केवल अनुभव चेतनरूप आत्माकरि सिद्ध है, न देह है, न इंद्रियगण है, न चित्त है, न वासना है, न जीव है, न स्पंद है, न अवरकों स्पर्श करता है, न आकाश है, न सत् है, न असत् है, न मध्य है, न शून्य है, न अशून्य है, न देश काल वस्तु है, न अहं है, न इतर है, इत्यादिक सर्व शब्दतें रहित हृदयस्थानविषे प्रकाशता है, अनुभवरूप है, तिसका न आदि है, न अंत है, न शस्त्र काटते हैं, न अग्नि जलाय सकता है, न जल गिलाय सकता है, न यह है, न उह है, न वायु शोष सकता है, अवर किसीकी समर्थता नहीं; सो चित्तरूप आत्मतत्त्व है, न जन्मता है, न मरता है; अरु देहरूपी घट केईवार उपजते हैं, केईवार नष्ट होते हैं, अरु आत्मरूपी आकाश सबके अंतर बाहिर अखंड अविनाशी है, जैसे अनेक घटविषे एकही आकाश स्थित होता है, तैसे अनेक पदार्थविषे एकही ब्रह्मसत्ता आत्मरूप करिके स्थित है ॥ हे रामजी! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आवता है, सो सब ब्रह्मरूप है, कैसा ब्रह्म है, निर्धर्म निर्गुण है, निरवयव निराकार है, निर्मल निर्विकार है, आदि अंततें रहित सम शांतरूप है, ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके स्थित होहु ॥ हे रामजी! इस दृष्टिकों आश्रय करौगे तब बडे आरंभ कार्य भी तुमकों स्पर्श न करैंगे, जैसे आकाशकों बदल स्पर्श नहीं करते हैं, तैसे तुमकों कर्म स्पर्श न करैंगे, काल क्रिया कारण कार्य जन्म स्थिति संहार आदिक जो संसरणारूप संसार है, सो सब ब्रह्मरूप है, इसी दृष्टिकों आश्रय करिके विचरौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकता प्रतिपादनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब प्रत्यक् ब्रह्मविषे कोउ विकार नहीं, तब भाव अभावरूप जगत् किसकरि भासता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! विकार किसकों कहते हैं, प्रथम तौ यह सुण, जो वस्तु अपणे पूर्वरूपकों त्यागिकरि विपर्ययरूपकों प्राप्त होवै, अरु बहुरि पूर्वके स्वरूपकों प्राप्त न होवै, तिसकों विकार कहते हैं, जैसे दूधतें दहीं होता है, बहुरि दूध नहीं

होता, अरु जैसे बालक अवस्था बीति जाती है, बहुरि नहीं आवती, अरु युवा अवस्था गई हुई बहुरि नहीं आवती, तिसका नाम विकार है, अरु ब्रह्म निर्मल है, आदि भी निर्विकार है, अंत भी निर्विकार है, मध्य जो तिसविषे कछु विकार मल भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, मध्यविषे भी ब्रह्म अविकारि ज्योंका त्यों है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ विपर्ययरूप हो जाता है, सो बहुरि अपणे स्वरूपकों नहीं प्राप्त होता, अरु ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यौं अद्वैतरूप आत्मअनुभव करिके प्रकाशती है, जो कबहु अन्यथा रूपकों प्राप्त न होवै, तिसकों विकार कैसे कहियें ॥ हे रामजी! जो वस्तु विचार ज्ञान करिके निवृत्त हो जावै, तिसकों भ्रममात्र जाणिये, वास्तव कछु नहीं, जेते कछु विकार हैं, सो अज्ञान करिके भासते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब निवृत्त हो जाते हैं, जिसके बोध करिके विकार नष्ट हो जावै हैं, तिसविषे विकार कैसे करिये, जो ब्रह्म शब्द करिके कहाता है, सो निर्वेदरूप आत्मा है, जो आदि अंतविषे सत् होवै, सो मध्यविषे भी जाणियें जो सत् है, इसतें इतर होवै, सो अज्ञानकरि जाणियें, आत्मरूप सदा सर्वदा समरूप है, आकाश पवन भी अन्यभावकों प्राप्त हो जाते हैं, परंतु आत्मतत्त्व कदाचित् अन्यभावकों प्राप्त नहीं होता, प्रकाशरूप है, अरु एक नित्य है, निर्विकार ईश्वर है, भावअभाव विकारकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विद्यमान एक तत्त्व है, सो ब्रह्म सदा सर्वदा निर्मलरूप है, तिस संवित् ब्रह्मविषे यह अविद्या कहांतें आई है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है, आगे भी ब्रह्म था, अरु पाछे भी ब्रह्म होवैगा, तिस निर्विकार आदि अंत मध्यतें रहित ब्रह्मविषे अविद्या कोउ नहीं, यह निश्चय है, जिसकों वाच्य वाचक कर्मकरि उपदेशनिमित्त ब्रह्म कहते हैं, तिस विषे अविद्या कहां है ॥ हे रामजी! अहं त्वं आदिक जगत्भ्रम अग्नि वायु आदिक सर्व ब्रह्मसत्ता है, अवर अविद्या रंचकमात्र भी नहीं, जिसका नामही अविद्या है, सो भ्रममात्र असत् जाण, जो विद्यमान

है नहीं, तिसका नाम क्या कहियें ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उपशमप्रकरणविषे तुम क्यौं कहा, जो अविद्या है, अब इस प्रकार कैसे कहते हौ, जो विद्यमान है नहीं?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एते कालपर्यंत तूं अबोध था, तिसनिमित्त मैं कल्पकरि तुझकों युक्ति कही थी, सो तेरे जगावणेनिमित्त कही थी, अरु अब तूं प्रबुद्ध हुआ है, तब मैं कहा अविद्या अविद्यमान है॥ हे रामजी! अविद्या अरु जीव जगत् आदिकका क्रम अप्रबोधकों जगावणेनिमित्त वेदवादीनें वर्णन किया है, जबलग अप्रबोध मन होता है, तबलग इसकों अविद्याभ्रम है, सो युक्तिविना अनेक उपायकरि भी बोधवान् कदाचित् नहीं होता, अरु जब बोधवान् होता है, तब सिद्धांत उपदेशकों युक्तिविना भी पाय लेता है, अरु अबोध मन युक्तिविना पाय नहीं सकता ॥ हे रामजी! जो कार्य युक्तिकरि सिद्ध होता है, अवर यत्नकरि साध्य नहीं होता, जैसे अंधकार युक्तिरूपी दीपककरि दूर होता है, अवर बल यत्नकरि निवृत्त नहीं होता, तैसे युक्तिविना अवर यत्नकरि अज्ञान निद्रा निवृत्त नहीं होती, जो अप्रबोधकों सर्व ब्रह्मसिद्धांतका उपदेश करिये, तब उह उपदेश व्यर्थ होता है, जैसे कोउ दुःखी अपणां दुःख स्थाणुके आगे जाय कहै तब उसका कहा वह सुणता नहीं, उसका कहणा भी वृथा होता है, तैसे अप्रबुद्धकों सर्व ब्रह्मका उपदेश व्यर्थ होता है, तातें मूढकों युक्तिकरि जगावता है, अरु बोधवानकों प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश करता है ॥ हे रामजी! एता काल तूं अप्रबोध था, इस कारणतें मैं तुझकों नानाप्रकारकी युक्ति उपदेशकरि जगाया है, अब तूं जाग्या है, तब मैं तुझकों प्रत्यक्ष तत्त्वका उपदेश किया है, हे रामजी! अब तूं ऐसे धार जो मैं ब्रह्म हौं, यह तीनौं जगत् भी ब्रह्म हैं, अहं त्वं आदिक सब ब्रह्म है, द्वैतकल्पना कछु नहीं, ऐसे धारिकरि जो तेरी इच्छा होय सो कर, दृश्य संवेदन फुरै नहीं, सदा आत्माविषे स्थित रहै, इस प्रकार अनेक कार्यविषे भी लेप न होवैगा॥ हे रामजी! जो चेतन वपु परमात्मा प्रकाशरूप है, सो सदा अहंभाव करिके फुरता है, ऐसा जो अनुभव

रूप है, चलते, बैठते, खाते, पीते, चेष्टा करते, तिसीविषे स्थित रहु, तब अहं ममभाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, अवेदन जो शांतरूप ब्रह्म सर्व भूतविषे स्थित है, तिसकों तूं प्राप्त होवैगा, तब आदि अंततें रहित प्रकाशरूप आपकों देखैगा, शुद्ध संवित्मात्र आत्माकों देखैगा, जैसे मृत्तिकाके पात्र टिंद दोली घट आदिक सब मृत्तिकाका अपणा आप है, तैसे तूं सर्वभूत आत्मकों देखैगा, जैसे मृत्तिकातें घट भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें जगत् भिन्न नहीं, जैसे वायु अरु स्पंद भिन्न नहीं, अरु जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें प्रकृति भिन्न नहीं, जैसे जल अरु तरंग शब्दमात्र दो हैं, तैसे आत्मा अरु प्रकृति शब्दमात्र दो हैं, भेदभाव कछु नहीं, अज्ञान करिके भेद भासता है, ज्ञान करिके भेद नष्ट हो जाता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे प्रकृति है ॥ हे रामजी! चित्तरूप वृक्ष है, अरु कल्पनारूपी बीज है, जब कल्पनारूपी बीज बोता है, तब चित्तरूपी अंकुर उत्पन्न होता है, तिसतें भावरूप संसार उत्पन्न होता है, जब आत्मज्ञान करिके कल्पनारूपी बीज दग्ध होता है, तब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! चित्तरूपी अंकुरतें सुखदुःखरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, जब चित्तरूपी अंकुर नष्ट हो जावै, तब सुखदुःखरूपी वृक्ष कहां उपजै ॥ हे रामजी! जेता कछु द्वैतभ्रम है, सो अबोधकरि उपजता है, बोधकरि नष्ट हो जाता है, आत्मा जो परमार्थ सार है, तिसकी भावना करु, संसारभ्रमतें मुक्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृतिविचारयोगो नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो कछु जानणे योग्य था, सो मैं जाण्या है, अरु जो कछु देखणे योग्य था, सो देख्या है, अब मैं परम पदविषे पूर्ण आत्मा हुआ हौं, तुमारे ज्ञानरूपी अमृतके सिंचणे करिके ॥ हे मुनीश्वर! पूर्णनें सब विश्व पूर्ण करी है, पूर्णतें पूर्ण प्रतीतकरि है, पूर्णविषे पूर्णही स्थित है, अवर द्वैत कछु नहीं, यह मुझकों अब अनुभव भया है॥ हे मुनीश्वर! ऐसे मैं जानिकरि लीलाके निमित्त अरु बोधकी वृद्धिके नि

मित्त तुमसों पूछता हौं, ज्यौं बालक पितासों पूछता है, तब पिता उद्वेग नहीं करता, तैसे तुम उद्वेगवान् नहीं होणा ॥ हे मुनीश्वर! श्रवण नेत्र त्वचा रसना घ्राण पांचों इंद्रिय प्रत्यक्ष दृष्ट आतियां हैं, जब यह मरी जाता है, तब तिस कालविषे विषयकों ग्रहण क्यौं नहीं करतियां, अरु जीवते कैसे ग्रहण करतियां हैं, अरु मुए क्यौं नहीं ग्रहण करतियां हैं, अरु घटादिककी नांई जड बाह्यस्थित है, अंतर इनका अनुभव कैसे होता है, लोहेकी शलाकावत् यह भिन्न भिन्न है, इनका एकठा होणा कैसे हुआ है, परस्पर जो एक आत्माकरि अनुभव होता है, मैं देखता हौं, मैं सुणता हौं, इत्यादिक एकठी वृत्ति क्योंकरि हुई है, मैं समान करिके जाणता भी हौं, परंतु विशेषकरि तुमसों पूछता हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इंद्रियां अरु चित्त अरु घट पट आदिक पदार्थ हैं, सो निर्मल चेतनरूप आत्मातें भिन्न नहीं, आत्मतत्त्व आकाशतें भी सूक्ष्म स्वच्छ है ॥ हे रामजी! जब चेतन तत्त्वतें चैत्यता पुर्यष्टकाकी भावना फुरी है, तब आगे इंद्रियगणहूंसहित देखती भई, तब चित्तके आगे इंद्रियगण हुए हैं, इनकी घनता करिके चेतनतत्त्व पुर्यष्टकाभावकों प्राप्त हुआ है, तिसविषे सब घटादिक पदार्थ प्रतिबिंबित हुए हैं, पुर्यष्टकाविषे भासै हैं ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! अनंत जगत् जो रचे हैं, अरु महा आदर्शविषे प्रतिबिंबित है, तिस पुर्यष्टकाका रूप क्या है, अरु कैसे हुई है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि अंततें रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, सो निरामय है, अरु प्रकाशरूप है, कल्पनातें रहित जो जगत्का बीजरूप अनादि ब्रह्म है, कलनातें रहित शुद्ध चिन्मात्र अचेतन है, सो सब कलनाके सन्मुख हुआ, तब तिसका नाम जीव कहा, सो जीव देहकों चेतता भया, जब अहंभाव फुऱ्या, तब अहंकार हुआ, जब मनन करणे लगा, तब मनन हुआ, जब निश्चय करणे लगा, तब बुद्धि हुई, अरु परमात्माके देखणेवाली इंद्रियांकी भावना हुई, तब इंद्रियां भई, जब देहकी भावना करणे लगा, तब देह हुई, घटपटकी भावना हुई तब घट पट हुए, इसी प्रकार जैसी जैसी भावना होती गई तै

सेही पदार्थ होते गये ॥ हे रामजी ! यही स्वभाव जिसका है, तिसकों पुर्यष्टका कहते हैं, स्वरूपतें विपर्ययरूप जो दृश्यकी और भावना भई है, अरु कर्तृत्व भोक्तृत्व सुख दुःख आदिककी भावनाकलना अभिमान जो चित्तकलाविषे हुआ, इसकरि तिसकों जीव कहते हैं, जैसी जैसी भावनाका आकार हुआ, तैसी तैसी वासना करत भया, जैसे जलकरि सिंच्या हुआ बीज टास पत्र फूल फल भावकों प्राप्त होता है, तैसे वासनाकरि सिंच्या हुआ स्वरूपके प्रमादकरि महाभ्रमजालविषे गिरता है, ऐसे जाणता है, जो मैं मनुष्य देहसहित हौं, अथवा देवता हौं, स्थावर हौं, इत्यादिक देहकों पाएकरि देहसाथ मिल्या हुआ जाणता है, ऐसे नहीं जाणता जो मैं चिदात्मा हौं, देहसाथ मिल्या हुआ परिच्छिन्न तुच्छरूप आपकों देखता है, इस मिथ्या ज्ञान करिके डूबता है, देहविषे अभिमान करिके वासनाके वश हुआ चिरपर्यंत अध ऊर्ध्व मध्यविषे यह जीव भ्रमता है, जैसे समुद्रविषे आया हुआ काष्ठ तरंगकरि उछलता है, अध ऊर्ध्वकों जाता है, अरु जैसे घटीयंत्रके टिंड अध ऊर्ध्वकों जाते हैं, तैसे जीव वासनाके वशतें अध ऊर्ध्वकों भ्रमता है, अरु जब विचार अभ्यास करिके आत्मबोधकों प्राप्त होता है, तब संसारबंधनतें मुक्त होता है, आदि अंततें रहित जो आत्मपद है, तिसकों प्राप्त होता है, बहुत काल योनिकों भोगिके आत्मज्ञानके वशतें परम पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! स्वरूपतें गिरे हुए जीव इस प्रकार भ्रमते हैं, अरु शरीरकों पावते हैं अब यह सुण, जो इंद्रियां मृतक हुए विषयकों किसनिमित्त ग्रहण नहीं करतियां ॥ हे रामजी ! जब शुद्ध तत्त्वविषे चित्तकलना फुरती है, तब उह जीवरूप होती है, बहुरि मनसहित षट् इंद्रियांकों लेकरि देहरूपी गृहविषे स्थित होती है, तब बाह्य विषयकों ग्रहण करती है, मनसहित षट् इंद्रियके संबंधकरि विषयका ग्रहण होता है, इनतें रहित विषयकों कदाचित् नहीं ग्रहण करती, इस प्रकार इनविषे स्थित होकरि जीवकला विषयकों ग्रहण करती है, यद्यपि इंद्रियां भिन्न भिन्न हैं, तौ भी इनकों एकताकरि लेती है, इनका एकठा होणा अ

हंकाररूपी तागेकरि होता है, देह इंद्रियां माणिक्यकी नाईं हैं, इनकों एकठा करिके जीव कहता है, मैं देखता हों मैं सूंघता हों, सुणता हों, मैं बोलता हों, इत्यादिक इनके अभिमान करिके विषयकों ग्रहण करता है ॥ हे रामजी ! देह इंद्रियां मन आदिक जड हैं, परंतु आत्माकी सत्ता पायकरि अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करती हैं, जबलग पुर्यष्टका देहविषे होती है, तबलग इंद्रियां विषयकों ग्रहण करतियां हैं, जब पुर्यष्टका देह सों निकसी जाती है, तब इंद्रियां नहीं विषयकों ग्रहण करतियां ॥ हे रामजी ! यह जो प्रत्यक्ष नेत्र नासिका कान जिव्हा त्वचा भासतियां हैं, सो यह इंद्रियां नहीं, इंद्रियां सूक्ष्म तन्मात्रा है, यह तिनके रहणेके स्थान हैं, जैसे गृहविषे झरोंखे होते हैं, तैसे यह स्थान है, अरु जीवका रूप सुण ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व सब ठौर पूर्ण है, परंतु तिसका प्रतिबिंब तहां भासता है, जहां निर्मल ठौर होती है, जैसे जल निर्मलविषे प्रतिबिंब होता है, अरु जैसे दो कुंडे होवैं, एक जलकरि पूर्ण होवै, दूसरा जलतें रहित होवै, तब सूर्यका प्रकाश दोनों विषे तुल्य होता है, परंतु जिसविषे जल है, प्रतिबिंब तहांही होता है, जलके डोलणेकरि प्रतिबिंब भी हलता दृष्ट आवता है, जहां जल नहीं, तहां प्रतिबिंब भी नहीं, तैसे जहां सात्त्विक अंश अंतःकरण होता है, तहां आत्माका प्रतिबिंब जीव भी होता है, सो जबलग शरीरविषे होता है, तबलग शरीर चेतन भासता है, जब उह जीवकला पुर्यष्टकारूप शरीरकों त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है, जैसे कुंडेतें जल निकसि जावै, तब कुंड सूर्यके प्रतिबिंबतें हीण भासता है, तैसे अंतःकरण अरु तन्मात्रा पुर्यष्टकाविषे आत्माका प्रबिबिंब होता है, जब पुर्यष्टका शरीरकों त्यागि जाती है, तब शरीर जड भासता है ॥ हे रामजी ! जैसे झरोखे आगे कोउ पदार्थ राखिये तब झरोखेकों पदार्थका ज्ञान नहीं होता, जब उसका स्वामी आनि देखता है, तब पदार्थकों ग्रहण करता है, तैसे इंद्रियांके स्थानविषे सूक्ष्म तन्मात्रा ग्रहण करणेवाली होती है, तब विषयकों ग्रहण करती है, जब तन्मात्रा नहीं होती, तब इंद्रियां नहीं ग्रहणकरि सकतियां ॥ हे राम

जी! प्रत्यक्ष देख जो कोउ कथाका श्रोता पुरुष कथाविषे बैठा होता है, अरु चित्त उसका अवर ठौर निकसी जाता है, तब प्रत्यक्ष बैठा है, परंतु सुणता कछु नहीं, काहेतें जो श्रवण इंद्रिय मनकेसाथ गई है, जैसे जब पुर्यष्टका निकसी जाती है, तब मृतक होता है, इंद्रियां विषयकों ग्रहण नहीं करतियां ॥ हे रामजी! अहंममतें आदि लेकरि जो दृश्य सो भी है, स्वर्गके आदिविषे आत्मरूपी समुद्रतें तरंगवत् फुरी है, तिस करि आगे दृश्यकलना हुई है, सो न देश है, न काल है, न क्रिया है, यह सब असत्‌रूप है, वास्तवतें कछु नहीं, ऐसे जाणीकरि असंग विचरु, संसारके सुखदुःख हर्ष शोक रागदोषतें रहित होकरि विचरु, तब तूं मायाकों तरि जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संवेदनविचारो नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वास्तवतें इंद्रियांदिक गण कछु उपजे नहीं, जैसे आदि कमलजा ब्रह्माकी उत्पत्ति मैं तुझकों कही है, सो सब तुझनें सुणी है, जैसे आदि जीव पुर्यष्टकारूप ब्रह्मा उपजा है, तैसे अवर भी उपजे हैं ॥ हे रामजी! जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी जैसी भावना करता गया है, तैसे तैसे भासने लगा है, बहुरि तिसकी सत्ता पायकरि अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करणे लगे हैं, अरु वास्तवतें इंद्रियां भी कछु वस्तु नहीं, सब आत्माके आभासकरि फुरतियां हैं, इंद्रियां अरु इंद्रियके अर्थ यह संवेदनतें उपजै हैं, जैसे उपजै हैं, तैसे तुझकों कहे हैं ॥ हे रामजी! शुद्ध संवित् सत्तामात्र विषे जो अहं उल्लेख हुआ है, सो संवेदन हुई है, उही संवेदन जीवरूप पुर्यष्टकाभावकों प्राप्त होकरि बुद्धि मन अरु पंच तन्मात्राकों उपजायकरि जीवकला आपही तिनविषे प्रवेशकरि स्थित भई है, तिसकों पुर्यष्टका कहते हैं, परंतु यह उपजी भी स्पंदविषे हैं, आत्माविषे उपजणा कछु नहीं, सो आत्मा न एक है, न अनेक है, परमात्मतत्त्व अस्ति अनामय है, अरु वेदना भी तिसविषे अनन्यरूप है ॥ हे रामजी! तिस विषे न कोउ द्वैतकलना है, न कछु मनशक्ति है, केवल शांत सत्ता है, तिसकों परमात्मा कहते हैं, सो मन

सहित षट् इंद्रियातें अतीत है, अचेतन चिन्मात्र है, तिसतें जीव उत्पन्न हुआ है, यह भी उपदेशके निमित्त कहता हौं, वास्तवतें कछु उपजा नहीं, केवल भ्रममात्र है, जहां जीव उपजा है, तहां तिसकों अहंभाव विपर्यय हुआ है, यही अविद्या है, सो उपदेशकरि उपदेशकों पाए लीन हो जाती है, जैसे निर्मलकरि जलकी मलिनता लीन हो जाती है, तैसे गुरु अरु शास्त्र उपदेशके पायकरि अविद्या लीन हो जाती है, तब भ्रमरूप आकार शांत हो जाते हैं, ज्ञानरूप आत्मा शेष रहता है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे परमाणुके आगे सुमेरु स्थूल होता है, तैसे आत्माके आगे आकाश स्थूल है ॥ हे रामजी! आत्माके आगे जो स्थूलता भासती है, सो भ्रममात्र है, जो बडे उदार आरंभ भासते हैं, सो असत् हैं, तब अवर पदार्थकी क्या बात है॥ हे रामजी! आत्माविषे जगत् कछु नहीं पाइता, काहेतें जो वस्तु असम्यक् ज्ञान करिके भासती है, सो सम्यक् ज्ञानकरि नहीं पाइती, जेते कछु जगत्जाल भासते हैं, सो सब मायामात्र हैं, अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाका जल तनक पान किया नहीं जाता तैसे जगतके पदार्थकरि कछु परमार्थ सिद्ध नहीं होता, सब अज्ञान करिके भासते हैं ॥ हे रामजी! जो वस्तु सम्यक् ज्ञानकरि पाइयें सो सत् जाणियें, जो सम्यक् ज्ञानकरि न रहै, सो भ्रममात्र जाणियें, यह जीव पुर्यष्टका अविद्धक भ्रम है, असत्ही सत् हो भासता है, जब गुरु अरु शास्त्रोंका विचार होता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, अरु पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी भावना करता है, तैसी सिद्धि होती है, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है; तैसे जीवकला अपणे आपविषे देश काल तत्त्व आदिक कल्पती है, भावनाके अनुसार तिसकों भासते हैं, जैसे बीजतें पत्र टास फूलफलादिक विस्तार होता है, तैसे तन्मात्रातें अवर भूतजात सब अंतर बाहिर देश काल क्रिया कर्म हुआ है, आदि जीव फुरीकरि जैसा संकल्प धारता भया है, तैसे हो भास्या है, सो यह संवेदन भी आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे मिर्च अरु तीक्ष्णता अनन्यरूप हैं, जैसे आकाशविषे शून्य

ता अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे संवेदन अनन्यरूप है, तिस संवेदननें उपजीकरि निश्चय धारा जो यह पदार्थ ऐसे हैं, यह ऐसे होवैं, सो तैसेही स्थित हैं, अन्यथा कदाचित् नहीं होते, आदि जीव फुरिकरि जैसा निश्चय धाऱ्या है, तिसीका नाम नीति है, अरु स्वरूपतें सर्व आत्मसत्ता है, आत्मसत्ताही रूप धारिकरि स्थित भई है, जैसे एकही गनेका रस सकरखंडादिक आकारकों पावता है, जैसे एक मृत्तिका घट मठ टिंडादिक आकारकों धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व ज्ञानकों पावती है, जैसे एकही जलका रस पत्र टास फूल फलादिक होकरि भासता है, तैसे एकही आत्मसत्ता घट पट कंध आदिक आकार हो भासती है ॥ हे रामजी! जैसे आदि जीव निश्चय किया है, तैसेही स्थित है, अन्यथा कदाचित् नहीं होता, परंतु जगत् कालविषे ऐसे है, वास्तवतें न बिंब है, न प्रतिबिंब है, यह द्वैतविषे होते हैं, सो द्वैत कछु नहीं, केवल चिदानंद ब्रह्म आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित हैं, देहादिक भी सब चिन्मात्र हैं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माका अकिंचनरूप है, जैसे जेवरी सर्परूप भासती है, तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है, जैसे स्वर्ण भूषण हो भासता है, तैसे आत्मा दृश्यरूप हो भासता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे दृश्य वास्तव नहीं, जैसे स्वप्न पतन असतही सत् हो भासता है, तैसे जीवकों देह अवर भासता है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, परंतु फुरणेकरि अनेकरूप धारती है, जैसे एक नटवा अनेक स्वांग धारता है, तैसे आत्मसत्ता देहादिक अनेक आकारकों धारती है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनेकरूप धारी चेष्टा करता है, तैसे जगत्विषे नानारूपकों धारता है ॥ हे रामजी! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वका अपणा आप है, अपणे स्वरूपके प्रमादकरि आपकरि आपका जन्ममरण जाणता है, सो जन्ममरण असत्रूप है, जैसे कोउ पुरुष आपकों स्वप्नविषे श्वानरूप देखै, तैसे यह आपकों जन्मता मरता देखता है, जैसे जैसे इसकों पूर्व भावना है, भ्रम करिके असत्कों सत् जाणता है, जैसे स्वप्न

विषे वस्तुकों अवस्तु, अरु अवस्तुकों वस्तु देखता है, तैसे जाग्रतविषे विपर्यय देखता है, जैसे जाग्रतके ज्ञानतें स्वप्नभ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे आत्मा अधिष्ठानके ज्ञानतें जगतभ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे पूर्वका दुष्कृत कर्म किया होवै, अरु तिसके पाछे सुकृत कर्म करै, तब उह आच्छाद्या जाता है तैसे पूर्व संस्कार जब नीच वासना होती है, अरु पाछे आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब पुरुष प्रयत्न करिके मलिन वासना नष्ट हो जाती है, जबलग वासना मलीन होती है, तबलग उपजता बिनसता गोता खाता है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रहूंके विचारकरि आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारबंधनतें छूटता है, अन्यथा नहीं छूटता॥ हे रामजी! चित्त वासनारूपी कलंककरि जीव आवर्या है, देहरूपी मंदिरविषे बैठीकरि अनेक भ्रमकों देखता है आदिक जीवकों फुर्या है, सो अपणे स्वरूपकों त्यागिकरि अनात्मभ्रमकों देखता भया है, जैसे बालक परछायेविषे भूत कल्पै, तैसे कल्पिकरि जैसी भावना करी, तैसा भासणे लगा, आदि जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित हुआ है, पुर्यष्टका कहियें बुद्धि मन अहंकार अरु तन्मात्रा इनका नाम पुर्यष्टका है, अरु अंतवाहक देह है, चैतन्य आत्मा अमूर्त है, आकाश भी तिसके निकट स्थूल है, प्राण वायु गुच्छेके समान है, देह सुमेरुके समान है, ऐसा सूक्ष्म जीव है, सुषुप्त जडरूप अरु स्वप्नभ्रम दोनों अवस्थाविषे स्थावर जंगमरूपी जीव भटकते हैं, कबहूं सुषुप्तिविषे स्थित होते हैं, कबहूं स्वप्नविषे स्थित होते हैं, इस प्रकार दोनों अवस्थाविषे जीव भटकते हैं॥ हे रामजी! सर्वका देह अंतवाहक है, तिसी देहकरि चेष्टा करते हैं, कबहूं स्थावरविषे जाते हैं, तब वृक्ष पथरादिक योनिकों पावते हैं, जब स्वप्नविषे होते हैं, तब जंगम योनिकों पावते हैं, सो भी कर्म वासनाके अनुसार पावते हैं, जब तामसी वासना घन होती है, तब कल्पवृक्ष चिंतामण्यादिक स्वरूपकों प्राप्त होते हैं, जब केवल तामसी घन मोहरूप होती है, तब अवर वृक्ष पथरादिक योनिकों पावतें हैं, इसका नाम सुषुप्ति है, सो लयघन मोहरूप है, अरु इसतें इतर विक्षेपरूप स्वप्न अवस्था है, कबहू तिसविषे

होता है, कबहू सुषुप्तिरूप स्थावर होता है ॥ हे रामजी! सुषुप्ति अवस्थाविषे वासना सुषुप्तिरूप होती है, सो बहुरि उगती है, इस करिके मोहरूप है, अरु तिस सुषुप्तितें जब उतरता है, तब विक्षेपरूप स्वप्न होता है, जब बोध होवै, तब जागृत अवस्थाकों पावै, सो जागृत दो प्रकारकी है, सोई जागृत है, जो लय अरु विक्षेपतातें रहित चेतन अवस्था है, तिसतें रहित अवर मनोराज्य सब स्वप्नरूप है, एक जीवन्मुक्ति जागृत है, दूसरी विदेहमुक्ति है, जीवन्मुक्ति तुरीयारूप है, विदेहमुक्ति तुरीयातीत है, यह अवस्था जीवकों बोधकरि प्राप्त होती है, अरु बोध पुरुषप्रयत्नकरि होता है, अन्यथा नहीं होता ॥ हे रामजी! जीवका फुरणा ज्ञानरूप है, जब दृश्यकी उर लगता है, तब उहीरूप हो जाता है, अरु जो सत्की उर लगता है, तब सत् रूप हो जाता है, जब दृश्यके सन्मुख होता है, तब दीर्घ भ्रमकों देखता है, जीवके अंतर जो सृष्टिरूप हो फुरता है, सो भी आत्मसत्तातें इतर कछु वस्तु नहीं, जैसे वटलोहीविषे दाणेवत् जल उछलता है, सो जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे आत्माविना जीवके अंतर कछु अवर वस्तु नहीं, अवर सृष्टि जो भासती है सो माया मात्र है ॥ हे रामजी! जीवकों स्वरूपके प्रमाद करिके सृष्टि भासती है, जो सत्वत् हो गई है, तिसकरि नानाप्रकारका विश्व भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना फुरती है, तिसकरि बंधमान हुआ है, जब वासना क्षय होवै, तब मुक्तिरूप है ॥ हे रामजी! घन वासना मोहरूपका नाम सुषुप्ति जड अवस्था है, अरु क्षीण स्वप्नरूप है, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब दृश्यविषे सत्बुद्धि होती है, तिसविषे प्रतीति होती है, तब नानाप्रकारकी वासना उदय होती हैं, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब संसारसत्यता नाश हो जाती है, बहुरि वासना नहीं फुरती ॥ हे रामजी! घनवासना तबलग फुरती है, जबलग दृश्यकी सत्बुद्धि होती है, जब जगत्का अत्यंत अभाव हुआ, तब वासना भी नहीं रहती, जैसे भूषण गालीकरि स्वर्ण किया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, जो अज्ञानकरि वस्तु उपजी है, सो ज्ञानकरि लीन हो जाती है, सो वास

नाभ्रम अबोधकरि उपजा है, बोधतें लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! घन वासनाकरि सुषुप्त जड अवस्था होती है, अरु तन वासनाकरि स्वप्न देखीता है, घन वासना मोह करि जीव स्थावर अवस्थाकों प्राप्त होता है, अरु मध्य वासनाकरि तिर्यक् योनि पशु पक्षी सर्पादिककों प्राप्त होता है, अरु तन वासनाकरि मनुष्यादिक शरीरकों पावता है, अरु नष्ट वासनाकरि मोक्षकों पावता है ॥ हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प करि रचा है, जो बाह्य घट पट आदिक देखीता है, अरु ग्रहण करीता है, सो एक अंतर देहविषे स्थित होकरि उही बाह्य घट पट आदिक होकरि स्थित होता है, तिनकों ग्रहण करता है, ग्राह्यग्राहकका संबंध देखता है, यह मैं ग्रहण किया है, यह मैं लिया है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो न ग्रहण करणेका अभिमान करता है, न कछु त्यागणेका अभिमान करता है, तिसकों अंतर बाहिर सब चिदाकाश भासता है, चेतनसत्ताका यह चमत्कार है, तीनों जगत्‌रूप होकरि उही प्रकाशता है, रंचकमात्र भी कछु अन्य नहीं, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे होकरि भासते हैं, परंतु जलही जल है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जगत्‌रूप होकरि भासता है, अवर द्वैतवस्तु कछु नहीं ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस जीवकों स्वप्नविषे संसार उदय होता है, सो कल्पनामात्र होता है, न सत् असत् है, जीवकों एक फुरणेकरि भ्रम भासता है, तैसे यह जाग्रत अवस्था भ्रममात्र है, स्वप्न अरु जाग्रत एकरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे जाग्रतका एक क्षण भी दीर्घकाल होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जाग्रत भी दीर्घकाल भ्रम हुआ है, सत्कों असत् जाणता है, अरु असत्कों सत् जाणता है, जडकों चेतन जाणता है, अरु चेतनकों जड जाणता है, विपर्यय ज्ञान करिके इस प्रकार जाणता है, जैसे स्वप्नविषे एकही जीव अनेकताकों प्राप्त होता है, तैसे आदिक जीव एकतें अनेक होकरि भासता है, जैसे स्थाणुविषे चोर भ्रम भासता है, तैसे आत्मा

विषे तीनों जगत्भ्रम भासता है, जैसे सुषुप्तितें स्वप्न भ्रम उदय होता है, तैसे अद्वैत तत्त्व आत्मविषे जगत्भ्रम होता है, आत्मा अनंत सर्वगत है, जीवका बीजरूप है, जैसा तिसके आश्रय फुरणा होता है, तैसा सिद्ध होकरि भासता है, ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों स्वरूपकी स्थिति भई है, सो सदा निःसंग होकरि विचरते हैं, जैसे पुंडरीकाक्ष विष्णुजी निःसंगता उपदेश करैगा, तिसकों पायकरि अर्जुन मुक्त होकरि विचरैगा, तैसे हे महाबाहो! तुम भी विचरौ ॥ हे रामजी! पांडवका पुत्र अर्जुन नाम जैसे सुखसाथ जीवणा व्यतीत करैगा, सर्व व्यवहारविषे भी सुखी स्वस्थ रहैगा, तैसे तूं भी निःसंग होकरि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! पांडवका पुत्र अर्जुन कब होवैगा, अरु कैसे विष्णुजी तिसकों निःसंग उपदेश करैगा? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अस्ति तन्मात्र जो तत्त्व है, जिसविषे आत्मादिक संज्ञा कल्पिकरि कही हैं, सो आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, आदिअंततें रहित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे निर्मल तत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत् भ्रममात्र फुरता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण फुरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे चउदश प्रकारके भूतजात फुरते हैं, इस संसारजालविषे भूत प्राणी भ्रमते हैं, जैसे पक्षी जालविषे भ्रमते हैं, तैसे जगतविषे जीव भ्रमते हैं, चंद्रमा सूर्य लोकपाल होकरि स्थित हैं, पंचभूतका कर्म तिन रचा है, जो यह पुण्य ग्रहण करणे योग्य है, यह पाप त्यागणे योग्य है, पुण्यकरि स्वर्गादिक सुख प्राप्त होता है, पापकरि नरक प्राप्त होता है, यह मर्यादा लोकपालनें स्थापन करि है, इसप्रकार संसाररूपी नदीविषे वहते हैं, कैसी संसाररूपी नदी वहती है, अवच्छिन्नरूप भासती है, अरु नाशरूप क्षणक्षणविषे नष्ट होती है, जैसे नदीका वेग समान प्रवाह करिके उही भासता है, परंतु होता अवर है, क्षणक्षणविषे उह प्रथम जाता रहता है, तैसे संसार अपणे कालविषे अवच्छिन्नरूप सत् भासता है, अरु आत्माकी अपेक्षा करिके नाशरूप है, क्षणक्षणविषे नष्ट होता

है, तिस जगतविषे वैवस्वत सूर्यका पुत्र यमराज लोकपाल बडा प्रतापवान् स्थित है, सो बडा तेजवान् है; अरु सब जीवकों मारता है, ऐसे नेमकों धारिकरि प्रजाविषे स्थित है, आदि प्रवाह इस प्रकार हुआ है, तिस प्रति प्रवाह कार्यके कर्मविषे स्थित है, जीवकों मारणा अरु दंड करणा यही उसका नेम है, अरु चित्तविषे पहाडकी नांई स्थित है, सो यमराज चहूं चहूं जुगहूं प्रति एक नेमकों धारता है, जो किसी जीवकों मारणा नहीं, कबहूं अष्टवर्ष, कबहूं बारह वर्षका नेम धारता है, कबहूं सप्तवर्ष, कबहूं षोडशवर्ष नेम धारता है, तब उदासीनकी नांई स्थित होता है, किसीकों नहीं मारता ॥ तब पृथ्वीविषे नीरंध्र भूत हो जाता है, चलणेकों मार्ग नहीं रहता, तब केई दुष्ट जीव होते हैं, जो जीवकों दुःखदेते हैं, तिसकरि पृथ्वी भारी होती है, अरु दुःखी होती है, तिस पृथ्वीके भार उतारणेनिमित्त विष्णुजी अवतार धारिकरि दुष्ट जीवकों नाश करता है, अरु धर्ममार्गकों दृढ करता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार नेमकों धारणेहारे यम अनंत जुग अपणे व्यवहारकों करते व्यतीत हो गये हैं, भूत अरु जगत् अनेक हो गये हैं, इस सृष्टिका जो अब वैवस्वत यम है, सो आगे नेम करैगा, द्वादश वर्षपर्यंत किसीकों न मारैगा ऐसा नेम करैगा तब जीव क्रूर कर्मोंकों करणे लगैंगे, पृथ्वी भूतोंसाथ नीरंध्र हो जावैगी, जैसे वृक्षसाथ गुच्छे संघट्ट हो जाते हैं, तैसे पृथ्वी प्राणीसाथ संघट्ट हो जावैगी, तब पृथ्वी भारसाथ दुःखित होकरि विष्णुजीकी शरण जावैगी, जैसे चोरतें डरीकरि स्त्री भर्त्ताकी शरण जावै, तैसे पृथ्वी विष्णुकी शरण जावैगी, तब विष्णु दो देहकों धारीकरि पृथ्वीका भार उतारैगा, अरु सन्मार्ग स्थापन करैगा, अरु सब देवता अवतार धारीकरि साथ आवैंगे, नरोंविषे नायक भावकों प्राप्त होवैगा, एक देहकरि वसुदेवके गृहविषे पुत्ररूप कृष्ण नाम होवैगा, अरु दूसरी देहकरि पांडवके गृह अर्जुन नाम होवैगा, युधिष्ठिर नाम धर्मका पुत्र होवैगा, समुद्र जिसकी मेखला है, ऐसी जो पृथ्वी है, तिसका राज्य करैगा, पांडवका पुत्र धर्मका वेत्ता तिसके चाचेका पुत्र दुर्योधन नाम हो

वैगा, तिसका अरु भीमका बडा युद्ध होवैगा, दोनों उर संग्रामकी लालसा होवैगी, अठारह क्षोणी सैना एकठी होवैगी, तिसविषे बडा भयानक युद्ध होवैगा, तिनके बलकरि हरी पृथ्वीका भार उतारैगा ॥ हे रामजी ! तिस सैनाके युद्धविषे विष्णुका जो अर्जुन नाम देह होवैगा, सो गांडीव धनुष्य धरैगा, सो प्रकृत स्वभावविषे स्थित होवैगा; हर्षशोकादिक विकारसंयुक्त निर्धर्मा होवैगा, सो युद्धविषे अपणे बांधव संबंधीकों देखीकरि मूर्छित होवैगा, मोह कायरताकरि तिसके हाथतें धनुष्य गिर पडैगा, अरु आतुर होवैगा, तब बोध देहकरि तिसकों हरि उपदेश करैगा, दोनों सैनाके मध्यविषे जब अर्जुन मोहित होकरि गिरैगा, तब हरि कहैगा, हे राजसिंह अर्जुन, तूं मनुष्यभावकों क्यों प्राप्त हुआ है, अरु मोहित क्यों हुआ है, इस कायरताका त्याग करु, तूं परम प्रकाश आत्मतत्त्व है, सर्वका आत्मा तूं आनंदअविनाशी है, आदि अंत मध्यतें रहित है, वृथा कायरताकों प्राप्त क्यों हुआ है, सर्वव्यापी परम अंकुररूप है, अरु निर्मल है, दुःखके स्पर्शतें रहित है, नित्य शुद्ध निरामय है ॥ हे अर्जुन ! आत्मा न जन्मता है, न मरता है, होयकरि बहुरि कछु अवर नहीं होता, काहेतें जो अज है, नित्य है, निरंतर पुरातन है, सर्वकी आदि है, तिसका शरीरके नाश हुए नाश नहीं होता ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नारायणावतारो नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! जो इस आत्माकों हंता मानते हैं, कै हनन क्रिया कर्त्ता है, अरु इस आत्माकों हत होता मानते हैं, सो आत्माकों नहीं जाणते, न यह आत्मा मारता है, न मरता है, काहेतें मारता मरता नहीं, जो अक्षयरूप है, अरु निराकार आकाशतें भी सूक्ष्म है, तिस आत्मा परमेश्वरकों कवन किस प्रकार मारै ॥ हे अर्जुन ! तूं अहंकाररूप नहीं, इस अनात्म अभिमानरूपी मलका त्याग करु, तूं जन्ममरणतें रहित मुक्तिरूप है ॥ जिस पुरुषकों अनात्मविषे अहंभाव नहीं अरु बुद्धि जिसकी कर्तृत्वभोक्तृत्वविषे लेपायमान नहीं होती, सो पुरुष सब विश्वकों मारै तौ भी उनकों नहीं मारता,

न बंधमान होता है ॥ हे अर्जुन! जिसकों जैसा दृढ निश्चय होता है, तैसाही तिसकों अनुभव होता है, तातें यह मैं, मेरा जो मलिन संवितनिश्चय होता है, तिसका त्यागकरि स्वरूपविषे स्थित होउ, जो ऐसी भावनाविषे स्थित नहीं होते, अरु आपकों नष्ट होता मानते हैं, सो सुखदुःख करिके रागदोषविषे जलते हैं ॥ हे अर्जुन! अपणे गुणोंके असंख्य कर्मोंविषे वर्तते हैं, शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनतें पांचों तत्त्व, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी उपजे हैं, तिन भूतोंके अंश श्रवण त्वचा नेत्र जिव्हा नासिका विषयविषे स्थित हैं, उह अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, नेत्र रूपकों ग्रहण करते हैं, त्वचा स्पर्शकों, जिव्हा रसकों, नासिका गंधकों, श्रवण शब्दकों ग्रहण करते हैं, तिसविषे अहंकारकरि जो मूढ हुआ है, सो आपकों कर्त्ता मानता है, मैं देखता हों, मैं सुणता हों, स्पर्श करता हों, स्वाद लेता हों, गंध लेता हों ॥ हे अर्जुन! यह सब कर्म कलना करिके रचे हैं, सो इंद्रियकरि कर्म होते हैं, अहंभावकरि यह वृथा क्लेशका भागी होता है, बहुत मिलिकरि कर्म किया, अरु तिसविषे एकही अभिमानी होकरि दुःख पावता है, सो बडा आश्चर्य है, देह इंद्रियकरि कर्म होते हैं, अरु अभिमानी होकरि सुखदुःखविषे रागदोष होकरि जीव जलता है, तातें इनका संग अभिमान त्यागकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होउ, मनकरि बुद्धिकरि केवल इंद्रियांकरि योगी कर्म करता है, अरु तिनविषे अभिमानवृत्ति नहीं करता, निःसंग होकरि करता है, तिसकी आत्मपदकी सिद्धताका कारण होते हैं ॥ हे अर्जुन! इस जीवकों अहंकारही दुःखदायक है, अनात्मविषे आत्मअभिमान करता है, तिस अभिमानसहित जो कछु कर्म करता है, सो सब दुःखदायक होते हैं, अरु जो अभिमानरूपी विषके चूर्णसें रहित होकरि चेष्टा करता है, लेता है, देता है, सो दुःखका कारण नहीं होता, सदा सुखरूप है ॥ हे अर्जुन! सुंदर शरीर होवै, अरु विष्ठा मलसाथ मलिन किया होवै, तब तिसकी शोभा जाती रहती है, तैसे बुद्धिवान् भी होवै, अरु शास्त्रका वेत्ता होवै, इत्यादिक गुणोंकरि

संपन्न होवै, अरु अनात्मविषे आत्मअभिमान होवै, तिसकी शोभा जाती रहती है, अरु जो निर्मम निरहंकार अरु सुखदुःखविषे सम है, ऐसा क्षमावान् है, सो शुभ कर्म करै, अथवा अशुभ करै तिसकों किसी कर्मका स्पर्श नहीं होता ॥ हे अर्जुन ! ऐसे निश्चयवान् होकरि कर्मकों करौ, तातें हे पाडवपुत्र ! यह युद्ध कर्म तेरा धर्म है, सो कर, अपणा कर्म अति क्रूर भी होवै, परंतु कल्याण करता है, अरु पराया धर्म उत्तम भी होवै तौ भी दुःखदायक है, अपणा धर्म अमृतकी नांई अल्प भी सुखदायक है ॥ हे अर्जुन ! भावै तैसा कर्म करु, जब तेरे विषे अहंभाव न होवैगा, तब तुझकों स्पर्श न करैगा, संग अभिमानकों त्यागिकरि योगविषे स्थित होकरि कर्म करु, जो निःसंग पुरुष है, तिसकों कोउ कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसकों करता हुआ बंधमान नहीं होता, तातें ब्रह्मरूप होकरि ब्रह्ममय कर्मकों करु, तब शीघ्रही ब्रह्मरूप हो जावैगा, जो कछु आचार कर्म होवै, सो ब्रह्मविषे अर्पण करु ॥ हे अर्जुन ! सर्व कर्म ईश्वरविषे समर्पण करु, सो ईश्वर आत्मा है, निर्मल कहिये निर्दुःख कहिये भावनाकरि भावित हुआ ईश्वर आत्मा होकरि पृथ्वीका भूषण होकरि विचरु, संन्यास योग युक्ति होकरि कर्मों करता मुक्तरूप होवैगा, सर्व संकल्पतें संन्यास सम शांत होकरि विचरु॥ ॥अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन् ! संगत्याग किसकों कहते हैं, अरु ब्रह्म अर्पण किसकों कहते हैं, ईश्वर अर्पण किसकों कहते हैं, अरु संन्यास किसकों कहते हैं, योग किसकों कहते हैं, इनकों विभाग करिके कहौ, मोहके निवृत्ति अर्थ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! प्रथम तूं ब्रह्म सुण, जो किसकों कहते हैं, जहां सर्व संकल्प शांत हैं, एक घन वेदना है, अवर कछु भावनाका उत्थान नहीं, अचेतन चिन्मात्र सत्ता है, तिसकों परब्रह्म कहते हैं, ऐसे जाणीकरि तिसकों पावणेका उद्यम करणा, जिस विचारसाथ तिसकों पाइये, तिसका नाम ज्ञान है, अरु तिसविषे स्थित होणा तिसका नाम योग है, अरु यह सर्व ब्रह्म है; मैं ब्रह्म हौं, सर्व जगत् मैंही हौं, ब्रह्मतें इतर कछु भावना न करणी, इसका नाम ब्रह्म अर्पण है, अरु जो नानाप्रकारका जगत् भासता है, सो क्या है, अंतर भी

शून्य, बाहर भी शून्य, जिसकों शिलाकी उपमा है, ऐसा जो आकाशवत् सत्तारूप है, सो न शून्य है, न शिलावत् है, किसके आश्रय स्पंदकलना फुरेकी नांई, कछु होकरि अन्यवत् भासती है, सो जगत्रूप होकरि स्थित भई है, परंतु कैसी है, आकाशकी नांई शून्य है, तिसविषे जो विभागकलना हुई है, सो कोटि कोटि अंश जीवकला होती गई है, एकही अपृथक् अनेकभूत पृथक् पृथक् होकरि स्थित भई है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे अनेकरूप होकरि स्थित होते हैं, सो जलही है, अवर कछु नहीं, एकही जल अनेकरूप भासता है, तैसे एकही वस्तुसत्ता घट पट आदिक आकार होकरि भासती है, संवितसारमें आत्माविषे भेदकलना कछु नहीं, अज्ञान करिके अनेकरूप भेदकलना विकल्पजाल भासते हैं, अरु अनेक भावकों एक देखणा भी अज्ञान है अरु एककों अनेक देखणा भी अज्ञान है सो एक अनेक देखणा क्या है, अरु अनेक एक देखणा क्या है, जो एक आत्मा है, तिसकों अनेक नामरूप देखणा सो अज्ञान है, अरु भिन्न भिन्न देह इंद्रियां प्राण मन बुद्ध्यादिक अनेक हैं, तिनविषे अहंप्रतीतिकरि एकत्र भाव देखणा सो भी अज्ञानकरि यह कलना हुई है, अरु ज्ञान करिके नष्ट हो जाती है॥ हे अर्जुन! जेते कछु संकल्पजाल हैं, तिनका त्याग करणा इसका नाम असंग संगतेंरहित कहते हैं, अरु सब कलनाजालकों ईश्वर साथ इतर भाव नहीं करणा, इस भावनाकरि द्वैतभाव गलित हो जावैगा, इसका नाम ईश्वरसमर्पण कहते हैं ॥ हे अर्जुन! जब ऐसी अभेदभावना होती है, तब आत्मबोध प्राप्त होता है, अरु बोधकरि सब शब्द अर्थ एकरूप भासते हैं, सर्व शब्दोंका एकही शब्द भासता है, अरु एकही अर्थ सर्व शब्दोंविषे भासता है ॥ हे अर्जुन! सर्व जगत् मैं हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही आकाश हौं, मैंही कर्म हौं, मैंही काल हौं, द्वैत भी मैंही हौं, अद्वैत भी मैं हौं, ऐसा जो सर्वात्मा मैं हौं, सो तूं मेरेविषे मनकों लगाय, मेरी भक्ति करु, अरु मेराही भजन करु, अरु मुझहीकों नमस्कार करु, तब तूं मुझहीकों प्राप्त होवैगा ॥ हे अर्जुन! मैं आत्मा हौं, तूं मेरेही परायण होहु ॥ ॥ अर्जुन

उवाच ॥ हे देव! ऐसे तेरे दो रूप हैं, एक पररूप है, एक अपररूप है, तिन दोनों रूपविषे मैं किसका आश्रय करौं, जिसकरि मैं परम सिद्धांतकों प्राप्त होउं ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अनघ! एक समानरूप है, अरु एक परमरूप है, यह जो शंखचक्रगदादिक संयुक्त है, सो मेरा समानरूप है, अरु परमरूप मेरा आदिअंततें रहित एक अनामय है, सो ब्रह्म आत्मा परमात्मा आदिक शब्दोंकरि कहाता है, जबलग तूं अप्रबोध है, अनात्म देहादिकविषे तुझकों आत्म अभिमान है, तबलग मेरे चतुर्भुज आकारकी पूजापरायण होउ, अरु कर्मोंकों करु, जब प्रबोध होवैगा, तब मेरे परमरूपकों प्राप्त होवैगा, आदि अंत मध्यतें रहित मेरा रूप है, तिसकों पायकरि बहुरि जन्ममरणविषे न आवैगा, जब तूं शत्रुकों नाश करता हुआ ज्ञानवान भया, तब आत्माकरि आत्मासों मेरा पूजन करु, मैं सर्वका आत्मा हौं, यह मैं हौं, ऐसे जो मैं कहता हौं, सो आत्मतत्त्व बहुरि बहुरि कहता हौं॥ हे अर्जुन! मैं मानता हौं जो तूं अब प्रबोध हुआ है, अरु आत्मपदविषे विश्रामवान् हुआ है, अरु संकल्पकलनातें रहित मुक्त हुआ है, एक आत्मसत्ताविषे स्थित हुआ है, ऐसे योगकरि सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माकों देखैगा, अरु सर्व भूत आत्माविषे स्थित देखैगा, अरु सर्वत्रविषे तुझकों समबुद्धि होवैगी, तब स्वरूपविषे तुझकों दृढ स्थित होवैगी ॥ हे अर्जुन! जो सर्व भूतोंविषे स्थित आत्माकों देखता है, अरु एकत्वभावकरि भजन करता है, आत्मातें इतर जिसकों अवर भावना नहीं फुरती, ऐसे एकत्वभावविषे जो स्थित हैं, सो सर्व प्रकार वर्तमान भी है, तौ भी बहुरि जन्ममरणविषे नहीं आवता ॥ हे अर्जुन! जिसविषे सर्व शब्दोंका अर्थ है, अरु सर्व शब्दोंविषे जो एक अर्थरूप है, ऐसी जो आत्मसत्ता है, सो न सत् है, न असत् है, सतअसततें जो रहित सत्ता है, सो आत्मसत्ता है, सो सर्व लोकके चित्तविषे प्रकाशरूप करिके स्थित है, सो आत्मा है ॥ हे भारत! जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित होता है, अरु जलविषे रस स्थित होता है, तैसे मैं सर्व लोकके अंतर तत्त्वरूप स्थित हौं, सर्व श

रीरविषे जो चेतन है, तिस चेतनयुक्त जो सूक्ष्म अनुभवसत्ता है, सो मैं हौं, सर्वगत आत्मा स्थित हौं, जैसे सर्व दूधविषे घृत स्थित है, तैसे सर्व पदार्थके अंतर मैं आत्मा स्थित हौं, जैसे रत्नके अंतर बाहर प्रकाश होता है, तैसे मैं सर्व पदार्थके अंतर बाहर स्थित हौं, जैसे अनेक घटके अंतर बाहर एकही आकाश स्थित है, तैसे मैं अनेक देहकों अंतर बाहर अव्यक्तस्वरूप स्थित हौं ॥ हे अर्जुन! ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सर्व पदार्थविषे सत्ता समान करिके मैं स्थित हौं, अरु नित्य अजन्मा हौं, मेरेविषे जो चित्त संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मसत्ताकी नांई होत भई है, अरु फुरणेकरिके जगत्रूप हो भासता है, अहंता ममता आदिककों प्राप्त भई है, अरु आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, अवर द्वैत कछु नहीं ॥ हे अर्जुन! आत्मा सबका साक्षीरूप है, तिसकों जगत्का सुखदुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे दर्पण प्रतिबिंबकों ग्रहण करता है, परंतु सबविषे सम है, किसीकरि खेदवान् नहीं होता, तैसे सब पदार्थ अवस्था साक्षीभूत आत्मा है, परंतु किसीकों स्पर्श नहीं करता, अरु शरीरके नाशविषे तिसका नाश नहीं होता, जो ऐसे देखता है, सो यथार्थ देखता है॥ हे अर्जुन! पृथ्वीविषे गंध मैं हौं, अरु जलविषे रस मैं हौं, पवनविषे स्पर्श अरु स्पंदशक्ति मैं हौं, अग्निविषे प्रकाशशक्ति, आकाशविषे शब्दशक्ति मैं हौं, अवर तुझकों क्या कहौं, जो यह मैं हौं, सर्वात्मा सर्वका आत्मा मैं हौं, मुझतें इतर कछु नहीं ॥ हे पांडव! यह जो सृष्टि प्रवर्त्तती है, उत्पन्न अरु प्रलय होती दृष्ट आती है, सो मेरेविषे ऐसे है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, जैसे पहाड पंत्थररूप है, अरु वृक्ष काष्ठरूप है, तरंग जलरूप है, तैसे सर्व पदार्थविषे मैं आत्मरूप हौं, जो सर्व भूतोंकों आत्माविषे देखता है, सो आत्माकों अकर्ता देखता है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे नाना आकार यह आत्माविषे भासते हैं ॥ हे अर्जुन! यह नानाप्रकारके पदार्थ ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें भिन्न कछु नहीं, तब अवर क्या कहियें, भाव विकार क्या कहियें, जगत् द्वैत क्या क

हियें, जो उही है, तब वृथा मोहित क्यों होता है, इस प्रकार बुद्धिवान् सुणीकरि समुजसों अंतर भावना निश्चित होकरि जीवन्मुक्त इस लोकविषे समरस चित्त विचरते हैं ॥ हे अर्जुन! तिस पदकों तूं क्यों नहीं प्राप्त होता, जो पुरुष निर्मान अरु निर्मोह हुए हैं, अरु अभिलाषादोष जिनका निवृत्त भया है, सर्व कामनातें रहित हुए हैं, सो अव्यय पदकों प्राप्त हुए हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे महाबाहो! बहुरि मेरे परम वचन सुण, मैं तेरी प्रसन्नताके निमित्त कहता हों, जो तेरा हितकारी हों, यह जो उष्ण शीत विषय हैं, सो इंद्रियकों स्पर्श होते हैं, अरु आगमापायी हैं, आते हैं, बहुरि निवृत्त हो जाते हैं, तातें अनित्य हैं, तिनकों तूं सहि रहु, आत्माकों स्पर्श नहीं करते, तूं तो आत्मा है, एक है, आदि अंत मध्यतें रहित है, निराकार अखंड पूर्ण है, तुझकों शीत उष्ण सुखदुःख खंडित नहीं करी शकते, यह कलनाकरि रचे हुए हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषणका निवास है, तैसे आत्माविषे इनका असत् निवास है ॥ हे भारत! जिसकों इंद्रियांके भोगस्पर्श भ्रमरूप चलायमान नहीं करी शकते, अरु सुखदुःख जीवकों सम हैं, तिस पुरुषकों मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ हे अर्जुन! आत्मा नित्य शुद्ध सर्वरूप है, अरु इंद्रियांके स्पर्श असत्‌रूप हैं, सो असत्‌रूपविषे सत्‌रूप आत्माकों मोह नहीं शकते, यह अल्पमात्र तुच्छ है, कछु वस्तु नहीं, अरु बोधरूप आत्मतत्त्व सर्वगत शुद्धरूप है, तिसकों इनका स्पर्श कैसे होवै, सत्‌कों असत् स्पर्श नहीं करी शकता, जैसे जेवरीविषे सर्प आभास होता है, सो जेवरीकों स्पर्श नहीं करी शकता, अरु जैसे मूर्तिकी, अग्नि कागदकों जलाय नहीं शकती, अरु जैसे स्वप्नके क्षोभ जाग्रत पुरुषकों स्पर्श नहीं करी शकते, तैसे इंद्रियां अरु तिनके विषय आत्माकों स्पर्श नहीं करी शकते ॥ हे अर्जुन! जो सत् है, सो असत् नहीं होता, अरु जो असत् है सो सत् नहीं होता, सुखदुःखादिक असत्‌रूप हैं, कछु है नहीं, अरु परमात्मा सत्‌रूप हैं, जगत्‌के सतवस्तु घटादिक

अरु आकाशके असत् फूलादिक तिन दोनोंके त्यागतें पाछे जो निष्किंचन महासत्पद है, तिसविषे स्थित होउ ॥ हे अर्जुन! ज्ञानवान् पुरुष इष्टअनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, इष्टसुखकरि हर्षवान् नहीं होता, अनिष्ट दुःखकरि शोकवान् नहीं होता, अरु चेतन पाषाणवत् शरीरविषे स्थित होता है ॥ हे साधो! यह चित्त भी जड है, अरु देह इंद्रियादिक भी जड हैं, अरु आत्मा चेतन है, इनके साथ मिल्या हुआ आपकों देह क्यों देखता है, चित्त अरु देह भी आपसमें भिन्न भिन्न हैं, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट नहीं होता, इनके नष्ट हुए जो आपकों नष्ट होता मानता है, अरु इनके सुख दुःखसाथ सुखी दुःखी होता है, सो महामूर्ख है ॥ हे अर्जुन! स्वरूपके प्रमाद करिके देहादिकविषे अहंप्रतीति करता है, अरु कर्त्ता भोक्ता आपकों मानता है, जब आत्माका बोध होता है, तब आपकों अकर्त्ता अभोक्ता अद्वैत देखता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, अरु जेवरीके बोधकरि सर्पका अभाव होता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि देह इंद्रियाके सुख दुःख भासते हैं, अरु आत्मज्ञानकरि सुखदुःखका अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन! यह विश्व एक अज ब्रह्मस्वरूप है, न कोउ जन्मता है, न मरता है, यह सत् उपदेश है, प्रबोधकरि ऐसे जाणता है ॥ हे अर्जुन! ब्रह्मरूपी समुद्रविषे तूं एक तरंग फुर्या है, केताक काल रहिके बहुरि तिसविषे लीन हो जावैगा, तातें तेरा स्वरूप निरामय ब्रह्म है, सब जगत् ब्रह्मका स्पंद है, समय पायकरि दृष्टि आता है, तातें मान मद शोक सुख दुःख सब असत्‌रूप हैं, तूं शांतिवान् होहु ॥ हे अर्जुन! प्रथम तौ तूं ब्रह्ममय युद्ध करु, जेती कछु अक्षौहिणी सैना है, सो सब अनुभवकरि नाश कर, जो यह द्वैत कछु नहीं, एकही सर्वदा परब्रह्मरूप स्थित है, यह ब्रह्ममय युद्ध कर, अरु सुख दुःख लाभ अलाभ अरु जय अजय ब्रह्मयुद्धविषे इनकों एकता करु, जो कछु ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, ऐसे जाणिके लाभअलाभ

विषे सम होकरि स्थित होउ, अवर चिंतवना कछु न करु॥ हे अर्जुन! जड शरीरसाथ कर्म स्वाभाविक होते हैं, जैसे वायुका फुरणा स्वाभाविक होता है, तैसे शरीरकरि कर्म स्वाभाविक होते हैं॥ हे अर्जुन! जो कछु कार्य करै, अरु भोजन करै, जो कछु यजन करै, दान करै, सो आत्माहीविषे अर्पण कर, अरु सदा आत्मसत्ताविषे स्थित रहु, अरु सबकों आत्मरूप देख॥ हे अर्जुन! जो किसीके अंतर दृढ निश्चय होता है, सोइ रूप उसकों भासता है, जब तूं इस प्रकार अभ्यास करैगा; तब ब्रह्मरूप हो जावैगा, इसविषे संशय कछु नहीं॥ हे अर्जुन! कर्मोंविषे जो आत्माकों अकर्ता देखता है, अरु अकर्ता जो है, अकरणा अभिमानसहित तिसकों करता देखता है; सो मनुष्यविषे बुद्धिवान् है, अरु संपूर्ण कर्मोंका कर्त्ता भी है, कर्तव्य कछु न रहै, यह अर्थ है॥ हे अर्जुन! कर्मोंके फलकी इच्छा भी न होवै, अरु कर्मोंविषे विसरता भी न होवै, जो मैं न करौं, योगविषे स्थित होकरि कर्मकों कर॥ हे धनंजय! कर्तृत्व अभिमान अरु फलकी वांछाकों त्यागिकरि कर्म करु, जो कर्मोंके फल अरु संगकों त्यागिकरि नित्य तृप्त हुआ है, सो कर्त्ता हुआ भी कछु नहीं करता, कार्य अकार्यकों कर्त्ता भी नहीं करता॥ हे अर्जुन! जिसनें सर्व आरंभोंविषे कामनासंकल्पका त्याग किया है, ज्ञान अग्निकरि कर्म जलाए हैं, तिसकों बुद्धिवान् पंडित कहते हैं, जो सम आत्माविषे स्थित है, सर्व अर्थविषे निस्पृह है, निर्द्वंद्वसत्ता स्थित यथाप्राप्त वर्तता है, सो पृथ्वीका भूषण है, समुद्रकी नांई अचल है, अरु अपणे आपविषे तृप्त है, जैसे समुद्रविषे अनिच्छित जल प्रवेश करता है, तैसे ज्ञानवान्‌विषे सुख प्रवेश करते हैं, सो शांतरूप सर्व कामनातें रहित है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अर्जुनोपदेशे सर्वब्रह्मपतिपादनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५३ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे अर्जुन! तूं आत्मा है सो कैसा आत्मा है, जो देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, अविनाशी है, अरु अजर है, अजर कहियें परिणामतें रहित॥ हे अर्जुन! तूं शोक मत कर, यह जो तुझकों जगत् भासता है, सो अज्ञा

न करिके भासता है, अज्ञान कहियें अपणा प्रमाद, अरु प्रमाद कहियें अनात्मविषे आत्मअभिमान, इसका नाम अज्ञान है ॥ हे अर्जुन! यह जो संसाररूप तेरा देह है, इसविषे अभिमान मत कर, यह मिथ्या है, इसकरि दुःख होता है, अरु तूं असंग है, अविनाशी है, तेरा नाश कदाचित् नहीं होता ॥ हे अर्जुन! जो विनाशरूप है, तिसका होणा कदाचित् नहीं, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव होणा कदाचित् नहीं, तत्ववेत्तानें इन दोनोंका निर्णय किया है ॥ हे अर्जुन! तिसकों तूं अविनाशी जाण, जिसकरि यह सर्व प्रकाशता है, तिसके विनाश करणेकों कोउ समर्थ नहीं ॥ हे अर्जुन! सो तूं ऐसा है, अरु यह आत्मा सर्वका अपणा आप है, तिसका विनाश कैसे होवै, अरु अज्ञानी मनुष्य तिसका विनाश होता मानते हैं ॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, आत्मा अविनाशी है, अरु सबका अपणा आप है, तब उनका क्यों करि नाश होता है ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! तूं सत्य कहता है, परमार्थतें किसीका नाश नहीं होता, परंतु अज्ञान करिके उनका नाश होता है, तिनकों मृत्यु ग्रासि लेता है ॥ हे अर्जुन! तूं आत्मवेत्ता होउ, सो आत्मा एक है, अरु अद्वैत है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं संभवता, तब द्वैत कहां होवै ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, आत्मा एक है, तब मृत्यु भी द्वितीय न भया, अरु लोक मरते हैं, मरिके नरक स्वर्ग भोगते हैं, जब मृत्यु नहीं, तब लोक मरते क्यों हैं, अरु पाप पुण्य भोगते क्यों हैं ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! न कोउ मरता है, न जन्मता है, यह स्वप्नकी नांई मिथ्या कल्पना है, जैसे निद्रादोषकरि जन्म अरु मरण भासता है, तैसे संसारविषे यह जन्म मरण भासता है, सो अज्ञान करिके भासता है, अज्ञान नाम फुरणेका है, तिस फुरणेहीकरि नरक अरु स्वर्ग कल्प्या है ॥ हे अर्जुन! जैसे यह जीव भोगता है, सो तूं श्रवण कर, अपणे स्वरूपके प्रमाद होणेकरि आगे संकल्पके शरीर रचे हैं, पुर्यष्टका कहियें सो क्या है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार तिसविषे जीव प्रवेश करता है, तिससाथ मिलीकरि जैसी वासना करता

है, तैसीही आगे भोगता है, सो वासना तीन प्रकारकी है, एक सात्विकी, एक राजसी, एक तामसी है, जैसी वासना होती है, तैसा स्वर्ग नरक बनि जाता है, सात्विकी वासनातें स्वर्ग बनि जाता है, इतरतें नरकादिक बनि जाते हैं, स्वर्ग नरक केवल वासनामात्र है, वास्तवतें न कोउ स्वर्ग है, न कोउ नरक है, न कोउ मरता है, न जन्मता है, केवल एक आत्माही ज्यौंका त्यौं स्थित है, परंतु यह जगत्भास भ्रम करिके भासता है, अज्ञान करिके चिरकाल वासनाका अभ्यास किया है, तिसकरि भ्रमकों देखता है ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे जगत्के पति! नरकस्वर्गादिक योनिकों जगत्विषे यह जीव देखता है, तिस नानाप्रकारके देखणे विषे कारण कवन है ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! अज्ञान करिके जो अनात्माविषे आत्मअभिमान हुआ है, तिसकरि जगत्कों सत् जाणने लगा है, सत् जाणीकरि वासना करणे लगा है, बहुरि जैसे जैसे जगत्कों सत् जाणीकरि वासना करता है, तैसे जगत्भ्रमकों देखता है, जब इसकों आत्मविचार उपजता है, तब जगत्कों स्वप्नकी नांई देखता है, अरु वासना भी क्षय हो जाती है, जब वासना क्षय होती है, तब कल्याणकों प्राप्त होता है ॥ अर्जुन उवाच ॥ हे भगवन्! चिर अभ्यासकरि जो जो संसारभ्रम दृढ हो रहा है, सो किस प्रकार उपजा है, अरु किस प्रकार लीन होवैगा ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! मूर्खता अज्ञानता करिके जो अनात्म देहादिकविषे आत्मभावना होती है, तिसकरि जगत्कों सत् जाणी वासना करता है, तिस वासनाके अनुसार जगत्भ्रमकों देखता है, जब स्वरूपका अभ्यास करता है, तब वासना नष्ट हो जाती है, तातें हे अर्जुन! तूं स्वरूपका अभ्यास कर, अहं मम आदिक वासनाकों त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु ॥ हे अर्जुन! यह देह वासनारूप है, जब वासना निवृत्त होवैगी, तब देह भी लीन हो जावैगा, जब देह लीन भया, तब देश काल क्रिया जन्ममरण भी न रहैंगे, यह अपणेही संकल्पकरि उठे हैं, भ्रमरूप हैं, तिनकी वासनाकरि वेष्टित हुआ जीव भटकता है, जब आत्मबोध होता है, तब वासनातें मु

क्त होता है, निरालंब असंकल्प अविनाशी आत्मतत्त्वकों पावता है, तिसीकों मोक्ष कहते हैं, जिसकी वासना क्षय हुई है ॥ हे अर्जुन! जब जीवकों तत्त्वबोध होता है, तब वासनारूपी जालतें मुक्त होता है, जो वासनातें मुक्त हुआ सो मुक्त हुआ, जो पुरुष सर्व धर्मपरायण भी है, अरु सर्वज्ञ है, शास्त्रोंका वेत्ता भी है, परंतु वासनातें मुक्त नहीं हुआ, सो सर्व उरतें बंध है, जैसे दृष्टिके दोषकरि निर्मल आकाशविषे तरवरे मोरके पुच्छवत् भासते हैं, तैसे मूर्खकों शुद्ध आत्माविषे वासनारूपी मल जगत् भासता है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांध्या होता है, तैसे उह बंध होता है, जिसके अंतर वासना है, सो बंध है, अरु जिसके अंतर वासना नहीं, तिसकों मोक्ष जाण ॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर जगत्की वासना है, अरु बडी प्रभुतासंयुक्त दृष्ट आवता है, तौ भी दरिद्री है, अरु दुःखका भागी है, अरु जिसकी वासना नष्ट भई है, अरु प्रभुतातें रहित दृष्ट आता है, तौ भी बडा प्रभुतावान् है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवनिर्णयो नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे अर्जुन! इस प्रकार तूं निर्वासनिक जीवन्मुक्त होकरि विचर, तब तेरा अंतःकरण शीतल हो जावैगा, अरु जरामरणतें मुक्त निःसंग आकाशवत् होवैगा, इष्टअनिष्टकों त्यागि वीतराग होकरि स्थित होवैगा ॥ हे अर्जुन! पतित प्रवाह जो कार्य आनि प्राप्त होवै, तिसकों करु, युद्धविषे कायरता मत करु, आत्मा अविनाशी है, अरु देह नाशवंत है, देहके नाश हुए आत्मा नाश नहीं होता ॥ हे अर्जुन! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सो रागद्वेषतें रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यकों करते हैं, तूं भी जीवन्मुक्त स्वभाव होकरि विचरु, अरु यह मैं करौं, यह न करौं, इस ग्रहणत्यागके संकल्पकों त्याग, इसीकरि ज्ञानवान् बंधमान नहीं होते, अरु मूर्ख हैं सो इसविषे बंधमान होते हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं; सुषुप्तवत् स्थित होकरि प्रवाहपतित कार्यकों करते हैं, अरु प्रबुद्धकी नांई वासनातें रहित हुए कार्य करते हैं, जैसे कच्छप अपणे अंग खैंचि लेता है, तैसे ज्ञानवान् वासना

कों संकुचाए लेता है, अरु आपकों चिन्मात्ररूप जाणता है, अरु जगत् मेरेविषे मणकेकी नाई परोया हुआ है, अरु सब जगत् मेरे अंग हैं, जैसे अपणे हाथ पसारे अरु खैंचै, जैसे समुद्रतें तरंग उठते अरु लीन होते हैं, तैसे विश्व आत्मातें उपजता अरु लीन होता है, भिन्न कछु नहीं ॥ हे अर्जुन! जैसे चंदोए उपर नाना प्रकारके चित्र लिखे होते हैं, परंतु उह रंगवस्त्रतें भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे मनरूपी चितेरेनें जगत् रचा है, अरु अनउपजा होकरि भासता है, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है, जो एती पुतलियां निकसैगियां, सो आकाशरूपी पुतलियां तिसके मनविषे फुरतियां हैं, तैसे यह तीनों जगत् कालसंयुक्त चित्तविषे फुरते हैं, चितेरा भी मूर्तियां तब लिखता है, जब भीत होती है, यह आश्चर्य है, जो आकाशविषे मन मूर्तियांकों कल्पता है॥ हे अर्जुन! यह मूर्तिया स्पष्ट भासतियां तौ भी आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे यह भी है, आकाश अरु कंधविषे भेद नहीं, परंतु आश्चर्य है, जो भेद भासता है, जैसे मनोराज्य स्वप्नपुरविषे जगत् मनके फुरणेकरि भासता है, अरु अफुर हुए लय हो जाता है, सो मनोमात्र है, तैसे यह जगत् मनोमात्र है, आकाशतें भी शून्यरूप है, जैसे स्वप्नपुर अरु मनोराज्यविषे एकक्षणमें बडे कालका अनुभव होता है, पूर्वरूपके विस्मरणकरि सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् सत् हो भासता है, जबलग प्रमाद होता है, तबलग भासता है, जब इस क्रम करिके आत्माकों देखता है, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, प्रगट देखिता है, परंतु लीन हो जाता है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भासता है, जैसे चितेरेके मनविषे चित्र फुरते हैं, सो आकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है ॥ हे अर्जुन! भाव अभाव वृत्तिकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, तब आकाशवत् निर्मल हो जावैगा, जैसे मेघकी प्रवृत्तिविषे भी आकाश निर्मल होता है, अरु निवृत्तिविषे भी निर्मल होता है, तैसे तूं पदार्थके भावअभावविषे निर्मल है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, जैसे चितेरेके मनविषे पुतलियां भासतियां हैं, तैसे यह जगत् आकाशरू

प है, जैसे एक क्षणविषे मनके फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासि आते हैं, अफुर हुए लीन हो जाते हैं, तैसे प्रमाद करिके जगत् भासता है, आत्माके जाननेतें लीन हो जाता है, अरु आत्माविषे निर्वाणरूप है, आत्माविषे एक निमेषके फुरणेकरि प्रमादतें वज्रसारकी नांई दृढ हो भासता है, अरु चित्तके फुरणेकरि यह सत् भासता है, सब जगत् आकाशरूप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, बडा आश्चर्य है, जो आकाशपर मूर्त्यां लिखियां हैं, अरु नानारूप रमणीय होकरि भासतियां हैं, अरु मनकों मोहतियां हैं ॥ हे अर्जुन! यही आश्चर्य है, जो कछु है नहीं, अरु नानाप्रकारके रंग भासते हैं, आकाशरूपी नीला ताल है, चंद्रमा तारे आदिक तिसविषे फूल खिले हैं, अरु मेघरूपी तिनकों पत्र लगे हैं ॥ हे अर्जुन! और आश्चर्य देख, चित्र भी तब होता है, जब प्रथम तिसका आधार भीत अथवा वस्त्र होता है, अरु इहां चित्र प्रथम उत्पन्न होते हैं, आधारभूत कंध पाछे बनती है, प्रथम यह मूर्तियां चित्र बनै हैं, अरु पाछे भीत हुई है, यह आश्चर्य है॥ हे अर्जुन! यह मायाकी प्रधानता है, जो वास्तव आकाशरूप चितेरेनें आकाशविषे आकाशरूप पुतली रची है, आकाशविषे आकाशरूप पुतलियां उपजियां हैं, अरु आकाशविषे लीन होतियां हैं, आकाशहीकों भोजन करतियां हैं, अरु आकाशहीकों आकाश देखता है, आकाशही यह सृष्टि है, आकाशहीरूप आकाश आत्माविषे आकाशरूप स्थित है ॥ हे अर्जुन! वास्तवतें आत्मा ऐसे है, तिस ऐसे अद्वैतरूप आत्माविषे जो उत्थान हुआ है, तिस उत्थानकरि उसकों स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिसकरि आगे दृश्यभ्रमकों देखता है, अरु अनेक वासना होती हैं, वासनारूपी जेवरीसाथ बांध्या हुआ भटकता है, वासनाकरि आवर्या हुआ अहं त्वं आदिक शब्दोंकों जानणे लगता है, अरु नानाप्रकारके भ्रमकों देखता है, तौ भी स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, अरु दर्पण ज्योंका त्यों रहता है, तैसे आत्माविषे जगत् प्रतिबिंबित होता है, अरु आत्मा छेदभेदतें रहित है, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, जब सर्व उही है, त

ब छेद भेद किसका होवै, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे यह सब ब्रह्महीकरि पूर्ण है, तिसविषे द्वैत कछु नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे आत्मा स्थित है, तिसविषे वासवासक कल्पना कोउ नहीं, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि वासवासक भेद होता है, जब स्वरूपका ज्ञान होता है, तब वासना नष्ट हो जाती है ॥ हे अर्जुन! जो वासनातें मुक्त है, सोइ मुक्त है, अरु वासनासाथ बांध्या हुआ है, सोई बंध है, जो सर्व शास्त्रोंका वेत्ता भी है, अरु सर्व धर्मोंकरि पूर्ण है, जब वासनातें मुक्त नहीं हुआ, तब बंधही है, जैसे पिंजरेविषे पक्षी बांध्या होता है, तैसे उह वासनाकरि बांध्या हुआ है॥ हे अर्जुन! जिसके अंतर वासनाका बीज रहा है, अरु बाह्य दृष्टि नहीं आता, सो बीज भी बडे विस्तारकों पावैगा, जैसे वटका बीज बडे विस्तारकों पावता है, तैसे उह वासना विस्तारकों पावैगी, अरु जिस पुरुषनें आत्माका अभ्यास किया है, तिसकरि ज्ञानरूपी अग्नि उपजाई है, उसकरि वासनारूपी बीज जलाया है, तिसकों बहुरि संसार भ्रम उदय नहीं होता, अरु वस्तुबुद्धिकरि पदार्थकों ग्रहण नहीं करता, अरु सुखदुःख आदिकविषे नहीं डूबता, सदा निर्लेप रहता है, जैसे तुंबा जलके उपरही रहता है, तैसे उह सुखदुःखके उपर रहता है॥ हे अर्जुन! तूं शांत आत्मा है, तेरा भ्रम अब दूर भया है, अरु आत्मपदकों तूं प्राप्त भया है, मन मोह तेरा निर्वाण हो गया है, तूं सम्यक्ज्ञानी हुआ है, व्यवहार अरु तूष्णीं तुझकों तुल्य भई हैं, शांतरूप निःशंकपदकों प्राप्त भया है, यह मैं जाणता हौं ॥ ॥ इति श्रीयोग॰ निर्वाणप्र॰ श्रीकृष्णसंवादे अर्जुनविश्रांतिवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥५५॥

॥ अर्जुन उवाच ॥ हे अच्युत! मेरा मोह अब नष्ट भया है, अरु आत्मस्मृतिकों मैं प्राप्त भया हौं, तेरे प्रसादतें मैं अब निःसंदेह होकरि स्थित भया हौं, अब जो कछु तुम कहौ सो मैं करता हौं॥ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे अर्जुन! मनकी जो पांच वृत्ति हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, अभाव, स्मृति जब यह पांचों हृदय सों निवृत्त हो जावैं, तब चित्त शांत होवै, तिसके पाछे जो शेष रहता है, चैत्यतें रहित चेतन तिसकों प्रत्यक्

चेतन कहते हैं, सो वस्तुरूप है, सर्व उपाधितें रहित सर्व है अरु सर्वरूप है, जो तिस पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों आधि व्याधि आदिक दुःख बाधि नहीं शकते, जैसे जालतें निकसीकरि पक्षी आकाशमार्गकों उडता है, तैसे उह देहअभिमानतें मुक्त होकरि आत्मपदकों प्राप्त होता है, तिसकों दुःख नहीं बांध शकते ॥ हे अर्जुन! प्रत्यक् जो चेतनसत्ता है, सो परम प्रकाशरूप शुद्ध है, संकल्पविकल्पतें रहित है, इंद्रियके विषय में नहीं आता, इंद्रियांतें अतीत है, जो पुरुष सर्वतें अतीत पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों वासना नहीं स्पर्श करी शकती, तिसके प्राप्त हुए इह घट पट आदिक पदार्थ सब शून्य हो जाते हैं, तहां तुच्छ वासनाका बल कछु नहीं चलता, जैसे अग्निसमूहके निकट बरफ गलि जाती है, तिसकी शीतलता नहीं रहती, तैसे शुद्ध पदके साक्षात्कार हुए चित्तवृत्ति नष्ट हो जाती है, अरु वासनाका भी अभाव हो जाता है ॥ हे अर्जुन! वासना तबलग फुरती है, जबलग संसारकों सत्य जाणता है, जब आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब संसार अरु वासनाका अभाव हो जाता है, इस कारणतें विरक्त पुरुषकों सत्य जाननेतें कछु वासना नहीं रहती, तबलग नानाप्रकारके आकार विकार संयुक्त विद्या फुरती है, जबलग शुद्ध आत्माकों अपणे आपकरि नहीं जाण्या, शुद्ध आत्माकों प्राप्त हुए जगत्भ्रम सब नष्ट हो जाता है, आत्मतत्त्व स्वच्छ पदविषे स्थित होता है, आकाशवत् निर्मलभावकों प्राप्त होता है, अरु अपणे आपकरि सबकों पूर्ण देखता है, सोइ आत्मसत्ता सर्व आकाररूप है, अरु सब आकाररूपतें रहित है ॥ हे अर्जुन! जो शब्दतें अतीत परम वस्तु है, तिसकों किसकी उपमा दीजें, जो वासनारूपी विषूचिकाकों त्यागिकरि अपणे आत्मस्वभावविषे स्थित हुआ पृथ्वीमें विचरता है, सो त्रिलोकीका नाथ है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार त्रिलोकीका नाथ कहैगा, तब अर्जुन एक क्षण मौनविषे स्थित हो जावैगा, तिसके उपरांत कहैगा ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! सब शोक मेरे नष्ट हो गये हैं, तुमारे वचनोंकरि बोध उदय हुआ है, जैसे सू

र्यके उदय हुए कमल खिली आते हैं, तैसे तुमारे वचनोंकरि मेरा बोध खिली आया है, अब जो कछु तुमारी आज्ञा होवै सो मैं करौंगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि अर्ज़ुन गांडीव धनुष्यकों ग्रहण करैगा, भगवान्कों सारथी करिके निःसंदेह निःशंक होकरि रणलीला करैगा, कैसा युद्ध करैगा, जो हस्ती घोडा मनुष्य मारैगा, लोहीके प्रवाह चलैंगे, तौ भी आत्मतत्त्वविषे स्थित रहैगा, स्वरूपतें चलायमान न होवैगा, सुरकों नष्टकरि देवैगा, परंतु ज्यौंका त्यौं रहैगा, जैसे पवन मेघका अभावकरि देता है, तैसे योद्धेका नाश करैगा, परंतु स्वरूपतें चलायमान न होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे श्रीकृष्णार्ज़ुनसंवादे भविष्यतगीतानामोपाख्यानसमाप्तिर्नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसी दृष्टिकों आश्रय करिके निःसंग संन्यासी होहु, कैसी दृष्टि है, दुःखका नाश करती है, जो कछु कर्म चेष्टा होवै सो ब्रह्म अर्पण करु, जिसविषे यह सर्व हैं, अरु जिसतें यह सर्व है, ऐसी जो सत्ता है, तिसकों तूं परमात्मा जाण, अनुभवरूप आत्मा है, तिसकी भावनाकरि तिसीकों प्राप्त होता है, इसविषे संशय नहीं, जो सत्ता संवेदन फुरणेतें रहित है, चेतनतें रहित जो चेतन प्रकाशता है, तिसिकों तूं परमपद जाण, सो सबका परम द्रष्टारूप है, अरु सबका प्रकाशक है, सो महाउत्तम परम गुरुका गुरु है, सो आत्मरूप है, शून्यवादी जिसकों शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी जिसकों विज्ञान कहते हैं, ब्रह्मवादी जिसकों ब्रह्म कहते हैं, सो परमसाररूप है, सो शिवरूप है, शांतरूप अपणे आपविषे स्थित है, सो आत्मा इस जगत्रूपी मंदिरकों प्रकाश करणेहारा दीपक है, अरु जगत्रूपी वृक्षका रस है, अरु जगत्रूपी, पशुका पालणेहारा गोपाल है, अरु जीवभूतरूपी मोतीकों एकत्र करणेहारा आत्मा तागा है, अरु हृदय आकाशविषे स्थित है, अरु भूतरूपी मिरचविषे आत्मरूपी तीक्ष्णता है, अरु सर्व पदार्थविषे पदार्थरूप सत्ता उही है, सत्यविषे सत्यता उही है, असत्यविषे असत्यता उही है; जगत्रूपी गृहविषे पदार्थका

प्रकाशणेहारा दीपक उही है, तिसीकरि सब सिद्ध होते हैं, अरु चंद्रमा सूर्य तारे आदिक जो प्रकाशरूप दिखते हैं, तिनका प्रकाशक उही है, यह जड प्रकाश है, उह चेतन प्रकाश है, तिसकरि इह सिद्ध होते हैं, तिसीतें सब प्रकाश प्रगट भये हैं, सो आत्मसंवित अपणे विचारकरि पाता है ॥ हे रामजी! जेते कछु भावअभाव पदार्थ भासते हैं सो असत् हैं, वास्तव कछु हुए नहीं, प्रमाद दोष करिके नानारूप भासते हैं, जब विचार उपजता है, तब यह नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी! अहंभाव जिसके अंतर है, ऐसा जो जगत्जाल है सो मिथ्या भ्रमकरि भासता है, तिसकों उपजा क्या कहिये, अरु सत्य क्या कहिये, किसकी आस्था करियें, इह जगत् कछु वस्तु नहीं, आदि अंत मध्यकी कल्पनातें रहित जो देव है, सो ब्रह्मसत्ता समान अपणे आपविषे स्थित है, अवर द्वैत कछु बन्या नहीं, जब यह निश्चय तुझकों दृढ होवैगा, तब तूं व्यवहार करता भी अंतरतें निःसंग शांतरूप होवैगा ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी तिस समान सत्ताविषे स्थिति भई है, सो इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषतें रहित अंतरतें सदा शांतरूप रहता है, उह न उदय होता है, न अस्त होता है, सदा समताभावविषे स्थित रहता है, स्वस्थरूप अद्वैत तत्त्वविषे स्थित होता है, जगतकी उरतें सुषुप्तवत् हो जाता है, व्यवहार भी करता है, परंतु क्षोभवान् नहीं होता, दर्पणकी नांई, जैसे मणि सब प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, परंतु तिसकों अंतर संग नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष कदाचित् कल्पनाकलंककों नहीं प्राप्त होता, तिसका चित्त व्यवहारविषे भी सदा निर्मल रहता है, ज्ञानवान्कों जगत आत्माका चमत्कार भासता है, न एक है, न अनेक है, आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, चित्तविषे जो यह चेतनभाव भासता है, तिस चित्त फुरणेका नाम संसार है, अरु फुरणेतें रहित अफुरका नाम परमपद है ॥ हे रामजी! महाचेतनविषे जो निजका अभाव है, कि मैं नहीं आत्माकों जाणता, इसीका नाम चित्तस्पंद संसारका कारण है, जब यह भावना क्षय होवै, तब चित्त अफुर हो जावै ॥ हे रामजी! जहां

निजभाव होता है, तहां पदार्थका अभाव होता है, सो निज सब ठौर अपणे अर्थकों सिद्ध करती है, परंतु आत्माविषे प्रवर्ती नहीं सकती, जब यह कहता है, मैं आत्माकों नहीं जाणता, तब भी आत्माका अभाव नहीं होता, अभावकों जानणेवाला भी आत्माही है, जो आत्मतत्त्व न होवै तब अभाव क्यों न कहै, सो आत्मा परमशून्य है, परंतु कैसा शून्य है, जो अजडरूप परम चेतन है॥ हे रामजी! सो निजका अर्थ तूं आत्माविषे कर, जो आत्माकों निजकी भावना नहीं होती, अर्थ यह जो आत्माका अभाव न मानौं, अरु अनात्मविषे जो निजका भाव है, तिसका अभाव करु, अर्थ यह जो अनात्माकों अभावरूप मान, जब इस प्रकार दृढ भावना करैगा, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा, केवल आत्माभाव शेष रहैगा ॥ हे रामजी! चित्तके फुरणेका नाम संसार है, चित्तके फुरणेकरि संसारचक्र वर्तता है, माता मान मेय त्रिपुटी रूप चित्तही होता है, जैसे स्वर्णतें भूषण प्रगट होते हैं, तैसे चित्तकरि त्रिपुटी होती है, अरु चित्तस्पंद भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्माका आभासरूप है, अज्ञान करिके चित्तस्पंद होता है, ज्ञान करिके लीन हो जाता है, जैसे स्वर्णके भूषणकों गालेतें भूषणबुद्धि नहीं रहती, तैसे चित्त अचल हुए चित्तसंज्ञा जाती रहती है, जैसे भूषणके अभाव हुए स्वर्णही रहता है, तैसे बोधकरि चित्त जगत्के लीन हुए शुद्ध चेतनसत्ता शेष रहती है, बहुरि भोगती तृष्णा लीन हो जाती है, जब भोगभावना निवृत्त भई तब ज्ञानका परम लक्षण सिद्ध होता है ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुष है, जिसनें सतस्वरूपकों जाण्या है, तिसकों भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे जो पुरुष अमृतपानकरि अघाय रहता है, तिसकों खलआदिक तुच्छ भोजनकी इच्छा नहीं रहती, तैसे आत्मज्ञानकरि जो संतुष्ट भया है, तिसकों विषयकी तृष्णा नहीं रहती, यह निश्चयकरि जाण, जब चित्त फुरता है, तब जगत्भ्रम हो भासता है, अरु सत्य जाणीकरि भोगकी इच्छा होती है, जब बोध होता है, तब जगत्भ्रम लीन हो जाता है, बहुरी तृष्णा किसकी करै, अरु जब इंद्रियके विषय आनि प्राप्त होवैं, अरु ह

ठकरि तिनकों न भोगै, तब उह मूर्ख है, मानौ शस्त्रकरि आकाशकों छेदता है ॥ हे रामजी! मन जो वश होता है, सो गुरुशास्त्रोंकी युक्ति करि होता है, उनकी युक्तिविना शुद्धता नहीं प्राप्त होती, जब कोउ अपणे अंगहीकों काटै अरु तिसकरि चित्तकों स्थित किया चाहै, तौ भी चित्त स्थिर नहीं होता, अरु संसारभ्रम नहीं मिटता, जबलग चित्त कोटिविषे स्थित है, तबलग जगत्भ्रमकों देखता है, जब गुरुशास्त्रोंकी युक्तिकों ग्रहण करिके चित्तका अभाव करता है, तब चित्त नष्ट होता है, चित्त अचल हो जाता है, जैसे बालककों अंधकारविषे पिशाच भासता है; अरु दीपक लगाय देखेतें अंधकार निवृत्त हुए पिशाचभ्रम नष्ट हो जाता है, तब बालक निर्भय होता है, तैसे आत्मज्ञान युक्तिकरि अज्ञान निवृत्त होता है, असम्यक् बुद्धि करिके जगत्भ्रम हुआ है, सम्यक् बोधकरि निवृत्त हो जाता है, बहुरि जाण्या नहीं जाता, जो अज्ञानका जगत्भ्रम कहां गया, जैसे दीपकके निर्वाण हुए नहीं जानता जो प्रकाश कहां गया, तैसे अज्ञान नष्ट हुए नहीं जाणता जो जगत् कहां गया, चित्तके फुरणेकरि बंध होता है, अरु अफुरण हुए मोक्ष होता है, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी! जब इसकों मोक्षकी इच्छा होती है, तब भी इसकी पूर्णताका क्षय होता है, अरु निःसंवेदन हुए कल्याण होता है, जो अनाभास अजडरूप परमपद है, सो चैतन्योन्मुखत्वतें रहित है ॥ हे रामजी! बंध मोक्ष आदिक भी कलनाविषे होते हैं, जब कलनातें रहित बोध होता है, तब बंध मोक्ष दोनों नहीं रहते, जबलग विचारकरि नहीं देख्या, तबलग बंध अरु मोक्ष भासता है, विचार कियेतें दोनोंका अभाव हो जाता है, जब अहं त्वं इदं आदिक भावनाका अभाव हुआ, तब कवन किसकों बंध कहै, अरु कवन किसकों मोक्ष कहै, सब कलना चित्तके फुरणेकरि होती है, जब चित्तका फुरणा नष्ट होता है, तब सब कलनाका अभाव हो जाता है, तब शांतिवान् होता है, अन्यथा नहीं होता, तातें चित्तकों आत्मपदविषे लीन कर, जिसके आश्रय यह जगत उपजता है, अरु

लीन होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसी अनुभवरूप प्रत्यक् आत्मप्रकाशविषे स्थित होउ ॥ इति श्रीयो॰ निर्वा॰ प्रत्यगात्मबोधवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५७॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! परमतत्त्व जो परमात्मपद है, सो हमकों सदा प्रत्यक्ष है, वस्तुरूप उही है, तिसतें इतर कछु नहीं, यह प्रत्यक् आत्मा है, सर्व सत्ताका दर्पण है, सर्व सत्ता इसीतें प्रगट होती है, जैसे बीजतें वृक्षकी सत्ता प्रगट होती है, तैसे आत्मातें जगतसत्ता प्रगट होती है ॥ हे रामजी! मन बुद्धि चित्त अहंकार जडात्मक हैं, उनतें रहित है, सो परमपद है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक सब तिसविषे स्थित हैं, तिस सत्ताकों पायकरि बडी उंची प्रभुताकरि शोभते हैं, जैसे चक्रवर्ती राजा निर्धनतें उंचा शोभता है, तैसे यह सर्व लोकतें उंचे शोभते हैं, तिस आत्माकों जो प्राप्त होता है, सो मृत्युकों नहीं प्राप्त होता, अरु शोकवान् कदाचित् नहीं होता, अरु क्षीण नहीं होता, एक क्षणमात्र भी जो अप्रमादी होकरि आत्माकों ज्योंका त्यों जाणता है, सो संसारकलनाकों त्यागिकरि मुक्त होता है ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! मन बुद्धि चित्त अहंकारके अभाव हुए सत्तासामान्य शेष रहती है, सो तिसका भान कैसे होवै ?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो सर्व देहोंविषे स्थित होकरि भोजन करता है, जलपान करता है, देखता सुणता बोलता इत्यादिक क्रिया करता दृष्टि आता है, सो आदि अंततें रहित संवितसत्ता है, सर्वगत अपणे आपविषे स्थित है, अरु सर्व विश्व उहीरूप है; आकाशविषे आकाशरूप उही है, शब्दविषे शब्दरूप उही है, स्पर्शविषे स्पर्श, नासिकाविषे गंधरूप उही है, शून्यविषे शून्य, रूपविषे रूप, नेत्रोंविषे नेत्रों उही है, पृथ्वीविषे पृथ्वी, जलविषे जल, तेजविषे तेज, वृक्षविषे रस उही है, मनविषे मन, बुद्धिविषे बुद्धि, अहंकारविषे अहंकाररूप उही है, अग्निविषे अग्नि, उष्णताविषे उष्णता, घटविषे घट, पटविषे पटरूप उही है, बटविषे बट, स्थावरविषे स्थावर, जंगमविषे जंगमरूप, चेतनविषे चेतन, जडविषे जडरूप उही है, कालविषे काल, नाशविषे नाश, उत्पन्न

होकरि स्थित होता है, बालकविषे बालक, यौवनविषे यौवन, वृद्धविषे, वृद्ध, मृत्युविषे मृत्यु होकरि उही परमेश्वर स्थित है ॥ हे रामजी! इस प्रकार सर्व पदार्थविषे अभिन्नरूप स्थित है; नानात्वदृष्टि भी आती है, परंतु अनाना है, भ्रम करिके नानात्व भासती है, जैसे परछायेविषे भ्रम करिके वैताल भासता है, तैसे आत्माविषे नानात्व भासता है, सर्वविषे सर्व ठौर सर्व प्रकार सर्व आत्माही स्थित है, ऐसा जो आत्मदेव सत्तासमान है, तिसविषे स्थित होउ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार जब वसिष्ठजीनें कहा, तब दिन अस्त हुआ, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानकों गये, बहुरि दिनकों अपणे अपणे आसनपर आनि बैठे

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विभूतियोगोपदेशो नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जैसे हमारे स्वप्नविषे पुर नगर मंडल होते हैं, तैसे ब्रह्मादिकनें देवकों ग्रहण किया है, उनकों असत्में प्रतीति है, हमकों दृढ प्रतीति कैसे उपजी है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम ब्रह्माकों सर्ग असत्वत् भासता है, वास्तव नहीं भासता, सर्वगत चेतनसंवितकों संसारके दर्शनकरि जब सम्यक् दर्शनका अभाव भया, स्वप्नरूपविषे आपतें अहंप्रतीति उपजी, तब दृढ होकरि देखणे लगा, जैसे अपणे स्वप्नविषे जगत् दृढ भासता है, स्वप्न नहीं जाणता, तैसे ब्रह्माका जगत् भी दृढ भासता है, स्वप्न नहीं भासता; जो स्वप्नपुरुषतें उपजा है सो स्वप्नरूप है ॥ हे रामजी! ऐसा जो सर्ग है सो जीव जीव प्रति उदय हुआ है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे चेतनतत्त्वका आभास जगत् फुरते हैं, जैसे स्वप्नपुरविषे अवास्तव पदार्थ होते हैं, तैसे यह पदार्थ भी अवास्तव हैं, भ्रममात्रही मनके संकल्पकरि भासते हैं ॥ हे राममजी! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो इस जगत्विषे सिद्ध नहीं होता, अरु अवरका अवर नहीं भासता, अरु मर्यादाकों नहीं त्यागता, काहेतें जो मनके संकल्प मात्र उपजे हैं, तूं देख, जलविषे अग्नि स्थित है, जैसे समुद्रविषे वडवाग्नि है, सो विपर्यय है क्यों! इसी कारणतें मैं कहता हौं, जो मनोमात्र हैं, अरु देख जो आ

काशविषे नगर वसते हैं, विमान प्रत्यक्ष चलते हैं, अरु शिला जो हैं, चिंतामणि आदिक, तिनतें कमल उपजते हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे बरफ उपजती है, अरु सर्व ऋतुके फूल एकही समय उपजते हैं, जैसे संकल्पवृक्षतें पथ्थर निकसी आते हैं, रत्नोंके गुच्छे जो लगते हैं, शिलाविषे जल निकसता है, तैसे चंद्रकांतसों अमृत द्रवता है, एक निमेषविषे घट पट हो जाते हैं, अरु घट पट हो जाते हैं, स्वरूपके विस्मरण हुए सत् कों असत् देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा मरणा देखता है, जल ऊर्ध्वकों चलता देखता है, मेघ होकरि स्वर्गका चंदोआ होकरि गंगा वहती है, पथ्थर उडते हैं, जैसे पंखहूंसहित पहाड उडते थे, चिंतामणि शिलारूपतें सब पदार्थ उपजते हैं, इत्यादिक भ्रमकरि नानात्व विपर्ययरूप हुए फुरते हैं, तातें तूं देख, जो मनोमात्र हैं, अवरका अवर हो जाते हैं ॥ हे रामजी! यह इंद्रजाल गंधर्व नगर सांबरमायावत् है, असत् ही भ्रम करिके सत् हो भासते हैं, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो सत् नहीं अरु असत् भी नहीं, मनविषे फुरते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रतस्वप्नविचारो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, जो पुरुष इसकों सत्य जाणता है, सो महामूर्ख है, अरु भ्रमविषे भ्रमकों देखता है, अरु महामोहकों प्राप्त होता है, जैसे कोउ मृग टोएविषे गिर पडता है, तब महादुःखी होता है, बहुरि उसतें भी बडे टोएविषे गिरता है, तब अति दुःखकों प्राप्त होता है, तैसे जो मूर्ख पुरुष है, सो आत्माके अज्ञान करिके संसाररूपी टोएविषे गिरता है, तिसविषे अवर अवर भ्रमकों देखता है, स्वप्नतें स्वप्नांतरकों देखता है, इसीतें एक इतिहास कहता हौं ॥ हे रामजी! तूं श्रवण करु, एक संन्यासी था, सो मननशीलवान् था, योगका अष्टवा अंग समाधि है, तिसविषे स्थित था, अरु हृदय उसका समाधि करते करते शुद्ध हुआ था, समाधिकरि दिनकों व्यतीत करै, जब समाधितें उतरै, तब आसन बनायकरि बहुरि समाधिविषे जुडै, इसी प्रकार जब बहुत काल व्यतीत भया, तब एक समय

समाधितें उतरै हुए, यह चिंतना करणे लगा, जो जैसे प्रकृत पुरुष विचरते हैं, अरु चेष्टा करते हैं, तैसे मैं भी कछु चेष्टा रचौं, ऐसे विचार करिके मनके संकल्पतें विश्व कल्पी तिसविषे एक आप भी बण्या, तिसका नाम झीवट भया, मद्यपान करै, अरु ब्राह्मणकी सेवा भी करै, तिस झीवट शरीरविषे वर्तणे लगा, चेष्टा करते हुए सोय गया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे ब्राह्मणका शरीर तिसकों भान हुआ, जो मैं ब्राह्मण हौं, तब ब्राह्मणके शरीरविषे वेदका अध्ययन करणे लगा, तब पाठ बहुत करै, ऐसी चेष्टाकरि चिरकाल व्यतीत भया, तब सोए हुए स्वप्न पाया, तहां आपकों राजा देखत भया, जो मैं राजा हौं, बडी सैनासंयुक्त राजा होकरि विचरणे लगा, केताक काल इसी प्रकार व्यतीत भया, तब सोए हुए बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपकों चक्रवर्ती राजा देखत भया, जो मैं चक्रवर्ती राजा हौं, तब चक्रवर्ती होकरि सारी पृथ्वीपर आज्ञा चलावणे लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपकों देवांगना देखत भया, जो मैं देवताकी स्त्री हौं, तब देवताकी स्त्री होकरि देवताके साथ बागविषे विचरै, जैसे वल्ली वृक्षके साथ शोभा पावती है, तैसे देवताके साथ शोभा पावणे लगा, इसी प्रकार कोइ काल देवताके साथ व्यतीत भया, तब बहुरि स्वप्न पाया, तिस स्वप्नविषे आपकों हरिणी देखत भया, जो मैं हरिणी हौं, हरिणी होकरि वनविषे विचरणे लगा, कोइ काल ऐसे व्यतीत भया, बहुरि स्वप्न पाया, तब आपकों वल्ली देखत भया, जो वल्ली हौं, देवताके वनकी, जब ऐसे कोई काल व्यतीत भया, तब स्वप्न पाया, स्वप्नविषे आपकों भंवरी देखत भया, जो मैं भंवरी हौं, भंवरी होकरि सुगंधिकों ग्रहण करने लगा, तिसके अनंतर बहुरि स्वप्न पाया, तब देखत भया, जो मैं कमलिनी हौं, कमलिनी हुई, तहां एक दिन हस्ती आएकरि वल्लीकों खाए गया, जैसे कोउ मूर्ख बालक भली वस्तुकों भी तोडी डारता है, तैसे मूर्ख हस्ती वल्लीकों तोडीकरि खाय गया, तिसके उप्रांत तिस वल्लीमें हस्तीका शरीर पाय बडा दुःख भी पाया, टोएविषे गिर्या, के

ताक काल व्यतीत भया, तब हस्तीकों स्वप्न आया, बहुरि भंवरी होकरि कमलविषे विचरणे लगा, केताक काल व्यतीत भया, तब बहुरि वल्ली हुआ, उस वल्लीके निकट एक हस्ती आया, हस्तिके पादकरि उह वल्ली चूर्ण भई, तब उस वल्लीकों एक हंसनें खाया, उह वल्ली हंस भई, हंस होकरि बडे मानससरोवरविषे विचरणे लगा, बहुरि हंसके मनविषे आया, जो ब्रह्माका हंस होउं, तब संकल्प करिके ब्रह्माका हंस बनि गया, जैसे जलका तरंग बनि जावै, तैसे उह हंस ब्रह्माके बनि गया, तब ब्रह्माके उपदेशकरि हंसकों आत्मज्ञान प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! अज्ञान करिके ऐसे भ्रमकों प्राप्त भया, सो ज्ञान करिके शांत भया, बहुरि विदेहमुक्त होवैगा, उह हंस सुमेरु पर्वतविषे उड्या जाता था, बहुरि उसके मनविषे आया जो मैं रुद्र होउं तब सत्संकल्प करिके रुद्र हो गया, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब शीघ्रही पडता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणके संकल्पकरि रुद्र भया, रुद्र कहियें, जिसकों अनुत्तर ज्ञान है, अनुत्तर ज्ञान कहियें जिसके जानणेतें अवर जानणा कछु न रहै, सर्वतें श्रेष्ठ ज्ञान सो रुद्रकों अनुत्तर ज्ञान है, तिस अनुत्तर ज्ञानकरि शोभित रुद्र होकरि अपणी चेष्टा करत भया, अरु अपणे गुणकों देखत भया, रुद्रके मनविषे विचार हुआ जो बडा आश्चर्य है, मैं अज्ञान करिके एते बडे भ्रमकों प्राप्त हुआ था, ऐसी आश्चर्य माया, मैं तौ एक रूख पडा हौं, अरु यह विश्व मेरा स्वरूप है, अपणे जो मेरे शरीर हैं, तिनकों जायकरि जगावौं, तब रुद्र उठी खडा हुआ, अपणे स्थानोंकों चला, प्रथम जो संन्यासीका शरीर था, तिसकों आयकरि देखा, देखिकरि तिसकों चित्तशक्तिसों जगाया, तब संन्यासीके शरीरविषे ज्ञान हुआ, जो सर्व मैंही खडा हौं परंतु संन्यासीनें जाण्या जो मेरे तांई रुद्रनें जगाया है, तब जानत भया जो इतनें शरीर मेरे और भी हैं, तब उहांतें रुद्र अरु संन्यासी दोनों चले, झीवटके स्थानमें आये, देख्या जो झीवट सबकी नांई पडा है, अरु मदिराके वासन पडे हैं, अरु चेतना उहांही पडी भ्रमती है, नानाप्रकारके स्थानोंकों देखती है, जैसे झरणेके छिद्रविषे कीडी भ्रमती है, तब झीवटकों

रिके अरु इंद्रियां करिके चेष्टा भी होवै, अरु आत्मातें इतर अवर न भासै, यह उत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै, जो न मैं हौं, न जगत् है, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणा, यह महाउत्तम मौन है, अथवा ऐसे होवै, जों सर्व मैंही हौं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणा, यह बडी उत्तम मौन है ॥ हे रामजी! विधि करिके भी आत्माकी सिद्धि होती है, अरु निषेध करिके भी आत्माकी सिद्धि होती है, तिस आत्माविषे स्थित होणा यह बडी मौन है ॥ हे रामजी! यह जो मैं सुषुप्त मौन कही है, सो क्या है, तूं सुण, संसार द्वैतरूपके फुरणेतें सुषुप्त होणा, अरु आत्माविषे जागणा यही सुषुप्त मौन है, द्वैतके फुरणेतें रहित होणा, यही सुषुप्ति है, अरु आत्माविषे जागणा यही तेरे तांई कहा है, अरु ऐसे देखणां जो न मेरेविषे जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, इस निश्चयविषे स्थित होणा, यह तुरीयातीत सो पंचम मौन है, ऐसा जो तुरीयातीत पद है, सो अनादि है, अनंत है, अरु जरातें रहित है, शुद्ध है, अरु निर्दोष है, इस निश्चयविषे स्थित होणा, यह उत्तम मौन है ॥ हे रामजी! ज्ञानी इंद्रियांके रोकणेकी इच्छा भी नहीं करता, अरु न विचरणेकी इच्छा करता है, जैसे स्वाभाविक होती है, तिसीविषे स्थित होता है, यह परंम मौन है, अरु ज्ञानीकों सुखकी इच्छा भी नहीं, दुःखका त्रास भी नहीं, हेयोपादेयतें रहित होणा यह परम मौन है ॥ हे रामजी! तुम रघुवंशकुलविषे चंद्रमा हौ, अपणे स्वभावविषे स्थित होणा परम मौन है ॥ हे रामजी! संसारभ्रम मनके फुरणे करिके होता है, सो मिथ्या है, वास्तव कछु नहीं, न शरीर सत्य है, न माया सत्य है ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप ओंकार है, ओंकारकों अंगीकार करिके स्थित होणा, यह परम उत्तम मौन है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो सब रुद्र तुम कहा, सो रुद्र थे, अथवा रुद्रगण थे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसकों रुद्र कहते हैं, तिसीकों गण कहते हैं, यह सबही रुद्र हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुम कहा, सब रुद्र हुए, सो यह तौ एकचित्त था, सब क्योंकरि हुआ, जैसे दीपकतें दीपक होता

है, इसी भांति हुए क्यों ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक सावरण है, एक निरावरण है, जहां शुद्ध अंतःकरण है, सो निरावरण है, अरु जहां मलिन अंतःकरण है, सो सावरण है, शुद्ध अंतःकरणविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा तत्काल आगे सिद्ध होता है, अरु मलिन अंतःकरणका फुरणा सिद्ध नहीं होता, तातें शुद्ध जो निरावरण रुद्र है, सो आत्मा है, अरु सर्व व्यापी है, जैसा उनका निश्चय होता है, सो सत्य है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! रुद्र सदाशिवकी चेष्टा तौ मलिन है, जो रुंढोंकी माला गलेविषे धारता है, अरु भभूत लगाई हुई है, अरु मसाणविषे विहरता है, अरु स्त्री डावे अंग रहती है, तिसकों तुम कैसे कहते हौ जो शुद्ध अंतःकरण है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह शुद्ध अशुद्ध अज्ञानीकों कहते हैं, जो शुद्धविषे वर्तै, अशुद्धविषे न वर्तै, अरु नागे हिंडता है, अरु जो ज्ञानी है, सो क्रियाकों अपणेविषे नहीं देखता, तिसकों शुद्ध अशुद्ध मलिनकरि राग दोष कछु नहीं होता, ऐसा जो सदाशिव है, तिसकों न ग्रहण करणा है, न त्याग करणा है, जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, सो होवै, सो कैसीहोती है, श्रवण करु, आदि परमात्मविषे विष्णु भगवान्का फुरणा हुआ, जो चार भुजा धारै, संसारकी रक्षा करणी, शुद्ध चेष्टा राखणी अरु अवतार धारण धर्मकी रक्षा करणी, अरु पापीकों मारणे यह आदि फुरणा हुआ है ॥ हे रामजी! यह क्रिया स्वाभाविकही जो आनि प्राप्त हुई है, इस क्रियाका इनकों रागदोष करिके हेयोपादेय कछु नहीं, अरु क्रियाका इनकों अभिमानही नहीं, जो हम करते हैं, इसीतें क्रिया इनकों बंध नहीं करती, तातें इह संसार फुरणे मात्र है, जब तूं फुरणेतें रहित होवैगा, तब तेरे तांई त्रिपुटी न भासैगी, आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तातें तूं अज्ञानरूप फुरणेतें रहित होहु, जब तुमकों आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब तूं जाणैगा, जो मेरेविषे फुर दृश्य अदृश्य कछु नहीं, अरु आत्मपद है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, तब द्वैत कहांतें होवै ॥ हे रामजी! दृश्य अदृश्य फुरणा अफुरणा, अरु विद्या अविद्या, यह सब जतावणेके निमित्त क

हते हैं, अरु आत्माविषे कहणा कछु नहीं, आत्मा एक है, जिसविषे द्वैतका अभाव है, जब चित्तपरिणाम बहिर्मुख होते हैं, तब विश्वका भान होता है, अरु जब चित्त अंतर्मुख परिणाम पावता है तब अहंता ममताका नाश होता है, अरु चेतनमय शेष रहता है, अरु जब अतिशय अंतर्मुख परिणाम पावता है, तब चेतन कहणा भी नहीं रहता, अरु जब इसतें भी अतिशय परिणाम पावता है, तब है नहीं, कहणा भी नहीं रहता ॥ हे रामजी! ऐसा आत्मा तेरा आपणा आप स्वरूप है, अरु शांत पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं जो ऐसा कहियें अरु तैसा कहियें, ऐसा कहियें इंद्रियांका विषय है, अरु तैसा कहियें इंद्रियांतें पर है, जब तूं अपणेविषे स्थित होवैगा, तब जाणैगा, जो मेरेविषे अहं फुरणा कछु नहीं, आत्मरूपी सूर्यके साक्षात्कार हुएतें दृश्यरूपी अंधकारका अभाव हो जावैगा, काहेतें जो आत्मा तेरा अपणा आप है, केवल शांतरूप है, अरु निर्मल है, जैसे गंभीर समुद्र वायुतें रहित होता है, तैसे आत्मारूपी समुद्र संकल्परूपी वायुतें रहित गंभीर शुद्ध होता है, अरु यह संसार चित्तका चमत्कार है, सो चित्त निरंश है, तिसविषे अंशांशीभाव नहीं, अद्वैत है ॥ हे रामजी ! जब ऐसे बोधविषे स्थित होवैगा, तब इस विश्वकों भी आत्मरूप देखैगा, अरु बोधविना देखैगा, तब विश्वका भान होवैगा, तातें हे रामजी ! बोधविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सदाशिवका आदि फुरणा हुआ है, जो त्रिनेत्र अरु विश्वका संहार करणा अरु शिरकी माला धारणी, अरु ब्रह्माके चार मुख, अरु चारों वेद हाथविषे, अरु संसारकी उत्पत्ति करणी, ऐसे फुरणा हुआ है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा विष्णु रुद्र यह तिनों एक रूप हैं, अरु चेष्टा इनकी स्वाभाविक यही बनी पडी है, न राग करिके अंगिकार किया है, न द्वेष करिके त्याग करते हैं, अरु यह संज्ञा भी लोकके देखणेमात्र हैं, अपणे ज्ञानविषे कछु नहीं करते, जो बोधविषेही जाग्रत है, बोधविषे जाग्रत क्या कहियें, अरु कैसे होता है, सो श्रव

ण करु, एक सांख्य मार्गकरि होता है, अरु एक योगमार्गकरि होता है, सांख्य कहियें तत्त्व अरु मिथ्याका विचारणा, तत्त्व कहियें मैं आत्मा हौं, सत् हौं, अरु चेतन हौं, अरु मिथ्या सर्व दृश्य जड असत है, मेरेविषे अज्ञान करि कल्पित है, मैं आत्मा अद्वैत हौं, मेरेविषे अज्ञान अरु दृश्य दोनों नहीं, ऐसे निश्चयविषे स्थित होणा, सो सांख्य विचार है, अरु योग कहियें प्राणोंका स्थित करणा, जब प्राण स्थित होते हैं, तब मन भी स्थित हो जाता है, अरु जब मन स्थित हो जाता है, तब प्राण भी स्थित होते हैं, इनका परस्पर संबंध है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब प्राण स्थित हुए मुक्त होता है, तब मृतक पुरुषके प्राण नहीं रहते, निवृत्त हो जाते हैं, तब सब मुक्त हुए चहिये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम तौ वर्णाश्रम करु जो क्या है, यह जीव पुर्यष्टकाविषे स्थित होकरि जैसी वासना करता है, बहुरि शरीरकों त्यागिकरि आकाशविषे स्थित होता है, इसका नाम मरणा है, तिस वासनारूप प्राण करिके बहुरि इसकों संसारभान होता है, अरु जब प्राणकी वासना क्षय होती है, तब मुक्त होता है, ज्ञानीकी वासना क्षय हो जाती है, तातें जन्ममरणसों रहित होता है, जैसे भूना बीज बहुरि न उगता, तैसे ज्ञानीकों वासनाके अभावतें जन्ममरण नहीं होता ॥ हे रामजी! जन्ममरण दोनों मार्गकरि निवृत्त होता है, अरु दोनोंका फल कहा है ॥ हे रामजी! ज्ञानकरिके चित्त सत्य पदकों प्राप्त होता, अरु योगकरिके प्राणवायु स्थित होता है, तब वासना क्षय हो जाती है, जब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, तब संसारके पदार्थका अभाव हो जाता है, जैसे रसायणकरि तांबा सोना भया, तब तांबाभाव नहीं रहता, तैसे विश्वरूपी तांबेकी संज्ञा नहीं रहती, जैसे तांबाभाव जाता रहता है, तैसे ज्ञानकरि जब चित्त सत्यरूप हुआ फिरि संसारी नहीं होता, अरु आत्माविषे न बंध है, न मुक्त है, एक परमात्मा अद्वैत है, तब बंध कहां अरु मुक्त कहां, बंध अरु मुक्त चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्त शांत करणेकों जो उपाय है, सो कहा है, तिसकरि शांत होता है, इसीकों मुक्त कहते हैं, अवर बंध मुक्त कोउ नहीं,

चित्तके उदय होणेका नाम बंध है, चित्तका शांत होणा यही मुक्ति है ॥ हे रामजी! जब मन अपणे वश होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अथवा प्राण स्थित होते हैं, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु यह संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है, जब वासना निवृत्त होती है, तब आत्मपदविषे स्थिति होती है, जैसे मेघ जलसंयुक्त होते हैं, तब गर्जत हैं, अरु वर्षा करते हैं, जब वर्षाकरि रहित हैं, तब शांत हो जाते हैं, तैसे जब वासना क्षय होती है, तब शांत चित्त हो जाता है, जैसे शरत्कालविषे बादल अरु कुहीड निवृत्त हो जाते हैं, अरु शुद्ध निर्मल आकाशही रहता है, तैसे वासनारूपी बादल अरु कुहीडके निवृत्त हुएतें आत्मा शुद्ध केवल चेतनही भासता है, एक मूहूर्त भी चित्त विना स्थित होवै, तब तेरे तांई आत्मपदकी प्राप्ति होवै, जबलग चित्तकी वासना क्षय नहीं होती, तबलग बडे भ्रमकों देखता है ॥ हे रामजी! यह संसार मृगतृष्णाका जलरूप है, असत् है, आभासमात्र पडा फुरता है, तिसपर एक आख्यान आगे हुआ है, सो कहता हूं, तूं श्रवण कर, मंदराचल पर्वत दक्षिण दिशाविषे है, तिसकी अटवीविषे एक वैताल रहता था, महाभयानक तिसका आकार था अरु मनुष्यका आहार करता था, तिसके मनविषे विचार उपजा, जो किसी नगरकों भोजन करौं, अरु वैताल एक समय साधुका संग भी करता था, जो कछु वह साधु तिस वैतालकों भोजन करावता था, तब साधुसंगके प्रसादकरि वैतालके मनविषे यह उपजी, जो मेरी कवन गति होवैगी, मेरा आहार मनुष्य हो रहा है, अरु मैं जो मनुष्यका भोजन करता हौं सो बडी हत्या है, तातें मैं एक वृत्ति करौं, जो मूर्ख अज्ञानी मनुष्य हैं, तिनका भोजन करौं, अरु जो उत्तम पुरुष हैं, तिनका आहार न करौं ॥ हे रामजी! ऐसा व्रत तिस वैतालनें किया, यद्यपि क्षुधाकरि आतुर भी होवै, अरु भले मनुष्य आय प्राप्त होवैं, तौ भी उनका आहार न करै, ऐसे होते एक समय क्षुधाकरि बहुत व्याकुल भया, अरु रात्रके समय घरतें बाहर निकस्या, तब उस नगरका राजा वीर यात्राकों रात्रके समय निकसा था, तिस राजाकों दे

खिकरि वैतालनें कहा ॥ हे राजा! तूं मेरे तांई अब आय प्राप्त हुआ है, मैं तुझकों भोजन करता हौं, तूं कहां जावैगा, तब राजानें कहा, हे रात्रके विचरणेहारे वैताल! जब तूं मेरे निकट अन्यायकरि आवैगा, तब तेरा शीस सहस्र टुकडे होवैगा, अरु तूं गिरैगा, तब वैतालनें कहा, हे राजा! मैं तुझतें डरता नहीं, हे आत्महत्यारे! मैं तेरे तांई भोजन करौंगा, भावै तैसा बलि तूं होवै, मैं डरता नहीं, परंतु एक प्रतिज्ञा मेरी है, अज्ञानीकों भोजन करता हौं, अरु ज्ञानीकों नहीं मारता, जब तूं ज्ञानी है, तब न मारौंगा, जब तूं अज्ञानी है तब मारौंगा, जैसे बाज चीडीकों मारता है, तैसे तुझकों मारौंगा, जब तूं ज्ञानी है, तब मेरे प्रश्नका उत्तर देहीं, एक प्रश्न यह है, जिसविषे ब्रह्मांडरूपी अणु है, सो सूर्य कवन है, अरु दूसरा प्रश्न यह है, जिस पवनविषे आकाशरूपी अणु उडते हैं, सो पवन कवन है, अरु तीसरा प्रश्न यह, जो केलेके वृक्षवत् जिसविषे अवर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेकी छिलतें अवर कछु नहीं निकसता, सो कवन वृक्ष है, अरु चउथा प्रश्न यह है, वह पुरुष कवन है, जो स्वप्नतें स्वप्न बहुरि तिसविषे अवर स्वप्न देखता है, अरु एक रहता है, परिणामकों नहीं प्राप्त होता, इन प्रश्नका उत्तर कहु, जो प्रश्नका उत्तर न दिया तौ तेरे तांई आहार करौंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वैतालप्रश्नोक्तिर्नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥

॥ राजोवाच ॥ हे वैताल! इन प्रश्नका उत्तर सुण, ब्रह्मांडरूपी एक मिरच बीज है, अरु तिसविषे तीक्ष्णता आत्मा चेतन सत्पद है, अरु ऐसे मिरच एक टाससाथ केई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे टास एक वृक्षसाथ केई सहस्र लगे हुए हैं, अरु ऐसे वृक्ष एक वनविषे केई सहस्र हैं, अरु ऐसे केई सहस्र वन एक शिखरपर स्थित हैं, अरु ऐसे केई सहस्र शिखर एक पर्वतपर स्थित हैं, अरु ऐसे केई सहस्र पर्वत एक नगरविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र नगर एक द्वीपविषे हैं, अरु ऐसे सहस्र द्वीप एक भव पृथ्वीविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र पृथ्वी भव एक अंडविषे हैं, अरु ऐसे केई सहस्र अंड एक समुद्रविषे लहरी हैं, अरु ऐसे केई सहस्र

समुद्र एक पुरुषके उदरविषे हैं, अरु ऐसे केई पुरुष एक पुरुषके गलेविषे माला परोई हुई है, ऐसे केई लाख कोटि सूर्यके अणु हैं, जिस सूर्यकरि सर्व प्रकाशमान है, सो सूर्य आत्मा है, जिसविषे अनंत सृष्टि स्थित हैं ॥ हे वैताल! जैसे यह सृष्टि भासती है इदं करिके तैसे सर्व सृष्टि जाण, जब यह सृष्टि सत्य है, तौ सब सृष्टि सत् जाण, जब यह सृष्टि स्वप्न है, तब सर्व सृष्टि स्वप्न जाण, अरु आत्मा ऐसा सूर्य है, जिसतें इतर अवर अणु भी कछु नहीं, अरु सदा अपणे आपविषे स्थित है, इसतें अवर क्या पूछता है, ऐसे आत्माविषे स्थित होउ, जो आत्मसत्ता मात्र पद है, जिस सत्तामात्र पदतें कालसत्ता हुई है, तिसीतें आकाशसत्ता हुई है, तिस ऐसे सत्पदतें सर्व सत्ता प्रगट हुई है, सो सब संकल्पतें उदय हुए हैं, अरु संकल्पके लय हुए सब लय हो जाता है, अरु तैंनें जो प्रश्न किया था, वह कवन सूर्य है, जिसतें ब्रह्मांडरूपी अणु होते हैं, सो उह ब्रह्म सूर्य है, जिसतें इतर अवर कछु नहीं, अरु केलेका वृक्ष जो तैंनें पूछा था, सो केलेकी नांई अंतर बाहिर विश्वके आत्मा स्थित है, जैसे केलेके अंतर फोलेतें शून्य आकाशही निकसता है, तैसे विश्वके अंतर बाहिर आत्मातें इतर अवर सार कछु नहीं निकसता, जो अद्वैत है, तिसतें इतर द्वैत कछु नहीं, अरु उह पवन ब्रह्म है, जिस पवनविषे ब्रह्मांडके समूह उडते हैं, अरु उह पुरुष स्वप्नतें स्वप्न आगे अवर स्वप्न देखता है, अरु एक अपणे स्वतःविषे स्थित है, स्वप्न कहियें जो चित्तकला फुरती है, तब अनंत ब्रह्मांड भान होते हैं, तब भी इतर कछु हुआ नहीं, एकही रूप नटवत् रहता है, यह सब उसकी आज्ञासों वर्तते हैं, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, स्थूलतें स्थूल है, अरु जिसविषे मंदराचल पर्वत भी अणु है, ऐसा स्थूल है, अरु जिसविषे वाणीकी गम नहीं, अपणे आपहीविषे स्थित है, इंद्रियांतें अगोचर इसकरि, सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु पूर्णता करिके स्थूलतें स्थूल है ॥ हे मूर्ख वैताल! तूं आहार किसकों करता है, अरु क्षुधाकरि व्याकुल क्यों भया है, तूं तौ आत्मा अद्वैतरूप है, अरु आनंदरूप है, तूं अपणे स्वतःविषे स्थित होउ, ज

ब ऐसे प्रश्नका उत्तर देकरि राजानें उपदेश किया, तब वैताल उहांतें चल्या, जो एकांत स्थानविषे स्थित होउं, ऐसे झूठ संसार मृगतृष्णाके जलविषे मेरे तांई क्या प्रयोजन है, तब एकांत स्थानविषे जायकरि स्थित हुआ, अरु ध्यान लगाय बैठा, ध्यान कहियें, जो एक धाराप्रवाहक प्रवाह स्थित हुआ, धारा प्रवाह प्रवाहक कहियें आत्माका अभ्यास दृढ किया, आत्मातें इतर कछु फुरै नहीं, एकरस स्थित हुआ, ऐसे ध्यानविषे स्थित होकरि वैताल सत् आत्मा पदकों प्राप्त हुआ; हे रामजी! यह राजा अरु वैतालका आख्यान तुझकों श्रवण कराया, सो आत्मा कैसा है, जिसविषे ब्रह्मांड अणुकी नांई स्थित है, तातें निर्विकल्प आत्माविषे स्थित होउ, अरु इंद्रियांकों बाहिरतें संकोचकरि स्थित करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजवैतालसंवादे वैतालब्रह्मपदप्राप्तिर्नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक आख्यान आगे हुआ है, सो श्रवण करु, एक भगीरथ नाम राजा था, उसकी मूढता गई है, अरु स्वस्थ चित्त होकरि आत्मपदविषे स्थित हुआ, अपणे प्रति प्रवाहविषे विचरा है, अरु अपणे पुरुषार्थ करि स्वर्गलोकतें गंगा मध्यलोकविषे ले आया है, तैसे तूं विचरु, सो कैसा था, जो अर्थी कोई आता था, तिसका अर्थ पूर्ण करता था, जिस पदार्थका कोई संकल्पकरि आवै; सो राजा उसका पूर्ण करै, अरु जो राजासों मित्र भाव है, तिनकों चंद्रमारूप होवै, जैसे चंद्रमाकों देखीकरि चंद्रमणी अमृतकों द्रवता है; तैसे मित्रभावकों राजा था, अरु जो राजासों शत्रुभाव है; तिनकों नाश करनेहारा था, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नाश हो जाता है, तैसेही शत्रुकों नाश करणेहारा था, जैसे अग्नितें अनेक चिणगारे उठते हैं, तैसे शत्रुकों शस्त्रोंकी भी वर्षा करता था, अरु प्रतिप्रवाहविषे स्थित रहता था, भले बुरे सुखदुःखविषे एक समान रहता था ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसा जो भगीरथ था, तिसके मनविषे क्या आई जो गंगाकों ले आया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक समय अपणे नगरकों देखत भया, जो लोक भले मार्गकों त्या

गिकरि बुरे मार्ग पापकर्मविषे सब लगे हैं, अरु लोक मूर्ख हुए हैं, तब लोकके उपकारनिमित्त तप करणे लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु यज्ञऋषि तिनका तप करिके आराधन किया, अरु गंगाके ल्यावणेनिमित्त मंत्र जपणे लगा, सो गंगा कैसी है, जिसका एक प्रवाह स्वर्गविषे चलता है, अरु एक प्रवाह पातालविषे चलता है, अरु एक प्रवाह राजा भगीरथनें मध्यलोकविषे चलाया है, अरु भगीरथ राजानें गंगाके आणनेकरि समुद्र परि भी उपकार किया है, कैसा समुद्र जो अगस्त मुनिकरि सुकाया है, तिस गंगाके आवणेकरि समुद्रका दारिद्य भी निवृत्त हुआ, ऐसा जो राजा है, तिसके मनविषे विचार उपजा, संसारकों देखीकरि कहणे लगा, जो एकही वारंवार करणा यह बडी मूर्खता है, नित्य उही भोगणा, उही खाणा, इत्यादिक कर्म बहुरि करणे, अरु जिस कर्म कियेतें पाछे सुख निकसै, तिसके करणेका कछु दूषण नहीं ऐसे वैराग्य करिके विचार उपजा, जो संसार क्या है, सो राजा यौवन अवस्थामैं था, जैसे मरुस्थलविषे कमल उपजणा आश्चर्य है, तैसे यौवन अवस्थाविषे विचार उपजणा आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! जब राजाकों ऐसे विचार उपजा तब घरतें निकस्या, अरु त्रितल ऋषीश्वर जो गुरु था, तिसके निकट जायकरि प्रश्न करत भया ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! वह कवन सुख है, जिसके पायेतें जरामृत्युके दुःख निवृत्त होते हैं, अरु यह संसारके सुख अंतरतें शून्य हैं, इनके परिणामविषे दुःख है ॥ त्रितल ऋषिरुवाच ॥ ॥ हे राजा ! एक ज्ञेय है, जानणे योग्य, जिसके जानणेतें शांत पद प्राप्त होता है, सो आत्मज्ञान है, सो आत्मसुख कैसा है, न उदय होता है, न अस्त होता है, ज्यौंका त्यौं अपणे आपविषे है ॥ हे राजा ! यह जरा मृत्यु तबलग भासता है, जवलग अज्ञान है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवैगा, तब अज्ञानरूपी अंधकार निवृत्त हो जावैगा, केवल शांत पदविषे स्थित होवैगा, अरु आत्मानंद सर्वज्ञ है, जिसके जानणेतें चित्तजडग्रंथी टूटि जाती है, चित्तजड ग्रंथी कहियें अनात्म देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान करना, सो निवृत्त हो जाता है, अरु सब कर्म

भी निवृत्त होते हैं, संशय सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध स्वरूपकों पायकरि ज्ञानी स्थित होते हैं, सो सत्तां सर्व है, सर्वगत नित्य स्थित है, उदय अस्ततें रहित है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! ऐसे मैं जाणता हौं, जो आत्मा चिन्मात्र सत्ता है, अरु देहादिक मिथ्या है, अरु आत्मा सर्वज्ञ है, अरु शांतरूप है, निर्मल अच्युतरूप है, ऐसे जाणता भी हौं, परंतु शांति मेरे तांई नहीं प्राप्त भई, जो आत्मा चिन्मात्र मेरे तांई नहीं भासता, अरु स्थिति नहीं भई, सो कृपाकरि कहौ, जो मैं स्थित होउं ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हे राजा! ज्ञान तेरे ताईं कहता हौं, जिसके जानणेतें बहुरि दुःख कोई न रहैगा, तिस ज्ञानकरि ज्ञेयविषे तेरे तांई निष्ठा होवैगी, तब तूं सर्वात्मरूप होकरि स्थित होवैगा, जीवभाव तेरा नष्ट हो जावैगा ॥ श्लोक ॥ आसक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ आसक्त न होवैगा, अरु अनभिष्वंग होवैगा, आसक्त न होणा कहियें देहइंद्रियादिकविषे आत्मअभिमान न करणा, इनकों आप न जानणा, अरु अनभिष्वंग कहियें पुत्र स्त्री कुटुंबके दुःखकरि आपकों दुःखी न जानणा, अरु नित्यही समचित्त रहणा इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे एकरस रहणा, अरु चित्तकों आत्मपदविषे जोडणा, आत्मातें इतर चित्तकी वृत्ति न जावै, अरु एकांत देशविषे स्थित होणा, अरु अज्ञानीका संग न करणा, अरु ब्रह्मविद्याका सदा विचार करणा, तत्त्वज्ञानके दर्शननिमित्त यह तेरे तांई ज्ञानके लक्षण कहे हैं, अरु इसतें विपरीत है सो अज्ञान है ॥ हे राजा! यह ज्ञेय जानणे योग्य है, इसके जानणेतें केवल शांतपदकों प्राप्त होवैगा, अरु देहका अहंकार भी निवृत्त होवैगा ॥ हे राजा! पहिले अहं होता है, तब पाछे मम होती है, तातें तूं अहंममका त्याग करु, जब अहंममका त्याग करैगा, तब आत्मपद अहंप्रत्ययकरि भासैगा, सो आत्मा सर्वज्ञ है, अरु सर्व भी आप है, स्वतः प्रकाश है, अरु आनंदरूप है, कैसा आनंदरूप है, जो संसारके आनंदतें रहित है, जब ऐसे गुरुनें कहा, तब राजा बोलत भया ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! यह अ

हंकार तौ चिरकालका देहविषे रहता है, अरु अभिमानी है, जैसे पर्वत चिरकालका वृक्ष स्थित होता है, अरु तिसका नाम प्रसिद्ध होता है, तैसेही अहंकार चिरकालका देहविषे अभिमानी है, तिसका त्याग कैसे करौं सो कहौ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ हे राजा! अहंकार पुरुषप्रयत्न करिके निवृत्त होता है, सो श्रवण कर, प्रथम भोगविषे दोषदृष्टि करणी, भोगकी वासना न करणी, अरु वारंवार अपणे स्वरूपकी भावना करणी, विचार करणा, इस करिके जीव अहंकार तेरा निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजा! जब तेरा अहंकार निवृत्त होवैगा, तब तेरे तांई सर्वात्माही भासैगा, अरु दुःखतें रहित शांतरूप स्वप्रकाश होवैगा ॥ हे राजन्! यह लज्जारूप फांसी जबलग निवृत्त नहीं होती, तबलग आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती, लज्जा कहियें मैं हौं, अरु मेरा है, तृष्णा अरु शोक दुःख अरु भला कहावणेकी इच्छा इत्यादिक जो मोहके स्थान हैं, सो लज्जा है, तातें तूं अहंममतें रहित होउ, अरु तेरे शत्रु जो तेरा राज्य लेणेकी इच्छा करते हैं, तिनकों अपणा राज्य देही, अरु क्षोभतें रहित होकरि पुत्र स्त्री बांधव इनके मोहतें रहित होउ, अरु मेरे मोहतें भी रहित होउ, अरु राज्यका त्याग करिके एकांत देशविषे स्थित होउ, अरु तिन शत्रुके घरतें भिक्षा मांग, जो तेरे तांई भला कहणेकी इच्छा न रहै, तातें उठि खडा होउ ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० भगीरथोपदेशो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब त्रितल ऋषीश्वरनें उपदेश किया, तब राजा उठि खडा हुआ, घरकों गमन किया, गुरुका उपदेश हृदयविषे धारिकरि अपणे राज्यविषे आनि स्थित हुआ, अरु राज्य करणे लगा, मनविषे विचार भी करै, जब केताक काल बीत्या तब राजानें अग्निष्टोम यज्ञका आरंभ किया, अग्निष्टोम यज्ञ कहियें धनका त्याग करणा, सो राजा धनका त्याग करणे लगा, दिनत्रय विषे धनका त्याग किया, हस्ती घोडे रथ भूषण वस्त्र इत्यादिक जो ऐश्वर्य था, सो लोककों दिया, ब्राह्मणों अरु अर्थी अरु पुत्र स्त्रीकों अरु अपणे जो शत्रु थे तिनकों, पृथ्वीका राज्य दिया, जब इस प्रकार राज्य दि

या तब राजा जो थे शत्रु तिननें देख्या जो अब राजा भगीरथविषे पराक्रम कछु नहीं रहा, तब उन शत्रुनें आयकरि इसका देश लिया, हवेलीपर आनि स्थित हुए, जेते राजाके स्थान थे सो रोकि लिये, राजा धोती अंगोछासाथ रहि गया, अवर सब शत्रुनें लिया, तब राजा उहांतें निकस्या ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब राजा निकस्या, तब वनकों गया, वनतें अवर वनविषे विचरता रहै, अरु शांतपद आत्माविषे स्थित हुआ, अनिच्छित विचरै, जब केताक काल व्यतीत भया, तब राजा भगीरथ अपणे देशविषे आया, जो शत्रु थे राजाके तिनके गृहतें भिक्षा मागणे लगा, तब शत्रु अरु लोकनें देख्या, बहुत पूजाकरि, अरु कहा ॥ हे भगवन्! तुम राज्यकों ग्रहण करौ, तब राज्य ग्रहण न किया, जैसे पृथ्वीपर पडा तृण तुच्छ बुद्धि करिके नहीं ग्रहण करता, तैसे राज्यका ग्रहण न किया, केताक काल उहां रहीकरि बहुरि चल्या, तब त्रितल ऋषि जो अपणा गुरु था, अनिच्छित तहां गया, तब गुरुनें भी आत्मत्व करिके ग्रहण किया, अरु शिष्यनें भी गुरुकों आत्मत्व करिके ग्रहण किया, गुरु अरु शिष्यकी भावनातें दोनों रहित हुए, फुरै कछु नहीं, केताक काल एक स्थानविषे रहे, बहुरि मनविषे एकठे विचरणे लगे, अरु शांत आत्मपदविषे दोनों स्थित रहे, अरु राग दोषतें रहित केवल एकरस स्थित रही हैं, तिनकों न देह त्यागणेकी इच्छा, न देह रखणेकी इच्छा, अनिच्छा प्रारब्धविषे स्थित रहहीं, तब स्वर्गलोकके जो सिद्ध थे, तिननें आनि पूजा करी, अरु बडे ऐश्वर्य पदार्थ चढाये, अरु बहुत अप्सरा आई, जेते ऐश्वर्य भोग पदार्थ थे, सो आनि स्थित हुए, तिनकों उननें तुच्छ जाण्या, जो आत्मसुखकरि तृप्त थे, अरु केवल आकाशवत् निर्मल थे, प्रकाशरूप अरु समचित्त रहहीं, कलंकतारूपी मलतें रहित॥ हे रामजी! जैसे राजा भगीरथ स्थित हुआ है, तैसे तुम भी स्थित होउ ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे निर्वा० नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! केताक काल बीत्या, तब भगीरथ उहांतें चल्या, एक देशका राजा मृतक हुआ था, तिसकी जो लक्ष्मी

थी, सो राजाकी याचना करती थी, तिस कालमें अनिच्छित राजा भगीरथ भिक्षा मागता आया, तब उस राजाके मंत्रीनें राजा भगीरथकों देख्या, तब क्या देखे जो जेते कछु गुण राजाविषे होते हैं, तैसेही इसविषे हैं, तब राजा भगीरथकों कहा ॥ हे भगवन्! तुम इस राज्यकों अंगीकार करौ, काहेतें जो तुमकों अनिच्छित आय प्राप्त हुआ है, तब राजानें राज्यका ग्रहण किया, अरु न कछु भला जाण्या, न बुरा, ऐसे ग्रहण किया तब राजा हस्तिपर आरूढ हुआ, अरु सैनाकरि शोभत भया, देश अरुस्थान सैनाकरि पूर्ण भये हैं, जैसे मेघकरि ताल पूर्ण होते हैं, तैसेही देश अरु स्थान सैनाकरि पूर्ण करत भया, जब नगारे अरु साज बाजणे लगे, तब राजा गृहविषे गया, सब महलस्त्रियां आय विद्यमान भई, तब उह देश जो राजा भगीरथका पहिला था, तिस देशतें लोक आये, तब मंत्री अरु प्रजानें आनिकरि कहा ॥ हे भगवन्! जिन शत्रुकों तुमनें राज्य दिया था, तिनकों मृत्युनें भोगिकरि लिया है, जैसे मच्छी कोमल मांस ग्रासी लेती है, तैसे उनकों मृत्युनें ग्रासी लिया है, तातें तुम राज्य करौ, यद्यपि तुमकों इच्छा नहीं, तौ भी राज्य करौ, काहेतें जो वस्तु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसका त्याग करणा श्रेष्ठ नहीं, तातें तुम राज्य करौ, तब राजानें उस राज्यका भी अंगिकार किया अरु राज्य करणे लगा, जब पिछला वृत्तांत राजानें श्रवण किया; जो मेरे पितर कपिल मुनीके श्रापतें भस्म हुए हैं, अरु कूपविषे पडे हैं, तब राजानें चिंतवना करी जो मैं तिनका उद्धार करौं, तब राजा अपणे मंत्रीकों राज्य देकरि एकला वनकों चला, अरु व्रत किया जो तप करौं, तब राजा एक स्थानविषे स्थित होकरि तप करणे लगा, ब्रह्मा रुद्र अरु जगत् ऋषिका गंगाके ल्यावणेनिमित्त आराधन किया, सहस्रवर्षपर्यंत तप किया, तब गंगा मध्यमंडलविषे आई, सो कैसी गंगा है, जो विष्णु भगवान्के चरणोंतें प्रगट भई है, तिस गंगाके प्रवाहकों पितरोंके उद्धारनिमित्त राजा ले आया, बहुरि राजा भगीरथ समचित्त अरु शांत पदविषे स्थित होकरि विचरणे लगा, जिसविषे न कोउ क्षोभ है, न भय है, न

कोउ इच्छा है, केवल शांत आत्मपद है, तिसविषे स्थित भया है, जैसे पवनतें रहित समुद्र अचल होता है, तैसेही संकल्पविकल्पतें रहित होकरि स्थित भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भगीरथोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो भगीरथकी दृष्टि तेरे तांई कही है, तिसकों आश्रय करिके विचरौ, कैसी यह दृष्टि है, जो सर्व दुःखका नाश करती है, अरु एक आख्यान ऐसा आगे भी व्यतीत भया है, ऐसाही शिखरध्वज राजा होत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह शिखरध्वज कवन था, अरु किस प्रकार चेष्टा करत भया, सो कृपा करिके कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज आगे था, अरु बहुरि भी होवैगा, सप्त मन्वंतर व्यतीत भये थे, अरु चउकडी चतुर द्वापारयुगकी थी, तिस कालविषे हुआ है, सो कैसा राजा था, जो संपूर्ण पृथ्वीका तिलक था, अरु जेते शूरवीर हैं, तिनतें उत्तम था, अरु जेता ऐश्वर्य है, तिसकरि संपन्न था, अरु तिसविषे बंधमान न होत भया, अरु जेते भोग हैं, तिनके भोगणेकों समर्थ था, अरु बडे ओजकरि संपन्न था, उदार अरु धैर्यवान् था, किसीपर जोर जुलुम न करता था, समचित्त अरु शांतपदविषे स्थित था, संपूर्ण दुःखतें रहित, अरु जो कोई अर्थी होवै, तिसका अर्थ पूर्ण करता था, ऐसा था, अरु बहुरि भी होवैगा ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसा जो ज्ञानवान् राजा था सो बहुरि जन्म किस निमित्त पावैगा, ज्ञानी तौ बहुरि नहीं जन्म पावता, उह कैसे पावैगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे एक समुद्रविषे केई तरंग समान उठते हैं, केई अर्ध सम, केई विलक्षण भावकरि फुरते हैं, तैसे आत्मसमुद्रविषे केई आकार एक जैसा फुरते हैं, केई अर्धभावकरि फुरते हैं, केई विलक्षणभाव फुरते हैं, जो समान फुरते हैं, तिनकी चेष्टा अरु आकार एक जैसे दृष्ट आवते हैं, तातें जानीता है, उही है, तैसे शिखरध्वजकी आगे ऐसी प्रतिभा होवैगी ॥ हे रामजी! इस सर्गविषे सप्त मन्वंतर व्यतीत भये, अरु चतुर चवकडी द्वापार युगकी बीती, तब जंबुद्वी

प मालव देशविषे श्रीमान् शिखरध्वज राजा होत भया, परंतु उस जैसा शिखरध्वज अवर होवैगा, उह न होवैगा, जब आयुष्य षोडश वर्षकी मैं राजकुमार था, तब एक समय राजा शिकारकों निकस्या, अरु वसंतऋतुका समय था, तब राजा अपणे बागमें जाय स्थित भया, तहां फूलके अचंभा स्थान बणे हुए थे, तहां कमलनियां मानौं स्त्रियां हैं, अरु धूडके कणके तिनके भूषण हैं, अरु पुष्प तिनके समीप वृक्ष हैं, इसी प्रकार भंवरीभंवरेकी सुंदर लीला देखत भया, तब राजाकों चिंतवना भई जो मेरे तांई स्त्री प्राप्त होवै, तब मैं चेष्टा करौं, अरु अधिक चिंतना भई, जो कब मेरे तांई स्त्री प्राप्त होवै, अरु कब फूलकी शय्यापर शयन करौंगा, इत्यादिक जो भोगकी वृत्ति हैं सो राजा चिंतना करणे लगा, तब मंत्रीनें देख्या जो हमारे राजाका मन स्त्रीपर है, ऐसे होवै जो राजाका विवाह करियें, सो मंत्री राजाके त्रिकाल ज्ञान रखते थे, शरीरकी अवस्था जानते थे, इसीतें जानत भये, तब एक राजा था, तिसकी कन्या बहुत सुंदर अरु वरप्राप्ति चाहती थी, तिस राजाकी पुत्रीसाथ राजा शिखरध्वजकों विवाह किया, शास्त्रकी विधिसहित, तब राजा बहुत प्रसन्न होकरि अपणे गृहविषे आया अरु तिस स्त्रीका नाम चूडाला था, अरु बहुत सुंदर थी, तिसविषे राजाका हेत बहुत हुआ, अरु स्त्रीका हेत राजाविषे बहुत हुआ, जो कछु राजाके मनविषे चिंतवना होवै, सो राणी आगे सिद्ध करि देवै, इस प्रकार परस्पर प्रीति आपसविषे बढी, जैसी भंवरे अरु भंवरीकी प्रीति आपसविषे होती है, तब एक समय राजा मंत्रीयांकों राज्य देकरि वनकों गया, वनविषे नानाप्रकारकी चेष्टा करत भया, अरु वनविषे विचरै, जैसे सदाशिव अरु पार्वती, जैसे विष्णु भगवान् अरु लक्ष्मी विचरहीं, तैसे राजा अरु राणी विचरणे लगे, बहुरि योगकला सीखणे लगे, तब राणी राजाकों योगकला सिखावै, संपूर्ण कलाकरि संपन्न हुए, परंतु चूडालाकी बुद्धि राजाकी बुद्धितें तीक्ष्ण शीघ्रही जाणि लेवै, अरु राजाकों सिखावै, इसी प्रकार बहुत चेष्टा करि अरु विचरै॥ ॥इति श्रीयो

गवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजचूडालाप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार राजा अरु राणीनें अनंत भोग भोगे, जैसे छिद्रकरि कुंभतें शनैः शनैः जल निकसता है तैसे शनैः शनैः यौवनके गये वृद्ध अवस्था आय प्राप्त भई, तब राजा अरु राणीकों वैराग्यका कणका आनि उत्पन्न भया, तब वैराग्य करिके यह विचरणे लगे, जो यह संसार मिथ्या अरु विनाशी है, एक जैसा नहीं रहता, अरु यह विषय भोग भी मिथ्या हैं, जो एता काल हम भोगते रहे, तब तृष्णा पूर्ण न भई, वधती गई ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा अरु राणी वैराग्य करिके विचारत भये जो यह भोग मिथ्या हैं, अरु हमारी यौवन अवस्था भी व्यतीत हो गई हैं, जैसे बिजलीका चमत्कार क्षणमात्र होकरि बीति जाता है, तैसे यौवन व्यतीत हो गया, अरु मृत्यु निकट आया, जैसे नदीका वेग तलेकों चला जाता है, तैसे आयुर्बला व्यतीत हो जाती है, जैसे हाथ ऊपर जल पाया वहि जाता है, तैसे यौवन अवस्था निवृत्त हो गई है, अरु यह शरीर कैसा है, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे उपजीकरि लीन हो जाते हैं, तैसेही शरीर क्षणभंगुर है, अरु जहां चित्त जाता है, तहां दुःख भी इसके साथ चले जाते हैं, निवृत्त नहीं होते, जैसे मांसके तुकडे पाछे ईल पक्षी चला जाता है, तैसे जहां अज्ञान है, तहां दुःख भी पाछे जाते हैं, अरु इह शरीर भी निवृत्त हो जाणा है, जैसे अंबका फल पका वृक्ष साथ नहीं रहता, गिरि पडता है, तैसे शरीर भी नष्ट हो जाता है, जिस शरीर अवश्य गिरता है, तिसका आसरा करणा क्या है, जैसे सूका पात वृक्षतें गिर पडता है, तैसे इह शरीर गिर पडता है, तातें हम ऐसा कछु करैं, जो संसाररूपी विषूचिका निवृत्त होवै, सो संसाररूपी विषूचिका ब्रह्मविद्याके मंत्रकरि निवृत्त होती है, ब्रह्मविद्याकरि ज्ञान उपजता है, अरु आत्मज्ञानकरि सर्व दुःख निवृत्त हो जाते हैं, इसतें अवर उपाय कोउ नहीं, तातें आत्मज्ञानकेनिमित्त हम संतपास जावैं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके राजा अरु चूडाला संत जो हैं, आत्मज्ञानी तिनके पास चलैं, अरु आत्मज्ञानकी वार्ता करहीं, आत्म

ज्ञानविषे तिनका चित्त अरु भावना आपसमें विचार अरु चर्चा करणी, आत्मपरायण होकरि संतपास गये, सो कैसे संत हैं, जो संसारसमुद्रतें तरावणेवाले हैं, अरु आत्मवेत्ता हैं, तिनपास जाएकरि पूजा करत भया, अरु उनसों प्रश्न किया, तब राजा अरु राणी उनसों ब्रह्मविद्या श्रवण करने लगे, आत्मा शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, जिसके पायेतें दुःख निवृत्त हो जाते हैं, चेतन है, अरु एक है, इस प्रकार सुणते भये ॥ हे रामजी! तब राणी चूडाला विचारविषे लगी, जब राजाकों कोउ टहल करै, परंतु उसके चित्तकी वृत्ति विचारविषे रहै, सो विचार यह, जो मैं क्या हौं, अरु यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसतें है, ऐसे विचार करी जानणे लगी जो यह पंचतत्त्वका शरीर है, सो भी मैं नहीं, काहेतें जो शरीर जड है, अरु यह कर्म इंद्रियां भी जड हैं, जैसा शरीर है, तैसे शरीरके अंग हैं, यह जो चेष्टा करते हैं, सो ज्ञानइंद्रियां करिके करते हैं, सो ज्ञान इंद्रियां भी मैं नहीं, काहेतें जो यह भी जड है, मनकरि मनकी चेष्टा होती है, सो मन भी जड है, तिसविषे संकल्प विकल्प चेतना है, सो बुद्धिकरि है, अरु बुद्धि भी जड है, जो तिसविषे निश्चय चेतना है, सो अहंकार करिके होता है, अरु अहंकार भी जड है, जो तिसविषे अहं चेतना करिके होती है सो चेतनता भी जीव करिके होती है, सो जीव भी मैं नहीं, काहेतें जो यह जीवत्व फुरनरूप है, अरु मेरा स्वरूप अफुर है, सदा उदयरूप है, अरु सन्मात्र है, बडा कल्याण है, जो चिरकाल करिके मैं अपणे स्वरूपकों पाया है, सो कैसा पद है, अविनाशी है, अनंत है, अरु आत्मा है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे मैं निर्मल हौं, अरु विगतज्वर हौं, रागदोषरूपी तापतें रहित हौं, अरु चिन्मात्र पद हौं, अरु अहं त्वंतें रहित हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, इसीतें शांतरूप हौं, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल पर्वततें रहित शांतरूप है, तैसे चित्ततें रहित अचल हौं, अरु अद्वैत हौं, कदाचित् स्वरूपतें परिणामकों नहीं प्राप्त भया, ऐसा जो तन्मात्र पद है, तिसकी ब्रह्मवेत्तानें संज्ञा कही है, जो ब्रह्म है, चेतन है, अरु परमात्मा है, इत्या

दिक नाम आचार्यनें रखे हैं, अरु यह आत्माही मन बुद्धि आदिक अरु दृश्य संसाररूप होकरि पसर्या है, अरु स्वरूपतें अच्युत है, गिर्या कदाचित् नहीं, अरु फुरणे करिके आकार भासते हैं, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे बडा पर्वत होता है, तिसके पत्थरवटे होते हैं, तौ भी पर्वततें इतर कछु नहीं, तैसे यह दृश्य आत्मातें इतर कछु नहीं, अरु यह आकार कैसे हैं, जैसे गंधर्वनगर नानाआकार हो भासता है, तैसे यह संसार है, ज्ञानवान्कों एकरस है, अरु अज्ञानीकों भेदभावना है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलौनें कल्पता है, हस्ती घोडा राजा प्रजातें आदि लेकरि नाम रखता है, अरु जिसकों मृत्तिकाका ज्ञान है, तिसकों मृत्तिकाही भासती है, इतर कछु नहीं भासता, तैसे अज्ञान करिके नाना रंग भासते हैं, अब मैं जाण्या है, एकरस हौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार चूडाला आपकों जाणती भई, जो मैं सन्मात्र हौं, अरु अच्छेद हौं, अदाह हौं, स्वच्छ हौं, अरु अक्षर हौं, निर्मल हौं, मेरेविषे अहं त्वं एक अरु द्वैत शब्द कोई नहीं, अरु जन्म मृत्यु भी कोउ नहीं, यह संसार चित्तकरि भासता है, अरु आत्मा स्वरूप है, देवता यक्ष अरु राक्षस स्थावर जंगम आदिक सर्व आत्मरूप है, जैसे तरंग बुदबुदा समुद्रसों भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, दृश्य द्रष्टा दर्शन यह भी आत्माकी सत्ताकरि चेतन है, इनकों आपतें सत्ता कछु नहीं, अरु मेरेविषे अहंका उत्थान कदाचित् नहीं, अपणे आपविषे स्थित हौं, अब इसी पदकों आश्रय करिके चिरकाल इस संसारविषे विचरौंगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्रबोधो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार चूडाला विचार करत भई, सो कैसी चूडाला है, जो तृष्णा निवर्त भई है जिसकी, दुःख भय अरु भोगवासना सब निवृत्त भई है, केवल शांत आत्मपदकों पायकरि शोभत भई है, जो पावणे योग्य पद है, तिसकों पायकरि जाणत भई जो एता काल मैं अपणे स्वरूपतें गिरि रही हौं, अब मेरे तांई शांति हुई है, अरु दुः

ख सब मिटि गये हैं, अब मेरे तांई ग्रहण त्याग कछु नहीं॥ हे रामजी! अपणे आत्मस्वभावविषे स्थित भई, अरु एकांत बैठिकरि समाधिविषे लगी, जैसे वृद्ध गो पर्वतकी कंदराकों पायकरि बहुत तृणघासकरि प्रसन्न होती है, तैसे अपणे आनंदरूपकों पाएकरि चूडाला स्थित भई॥ हे रामजी! ऐसे आनंदकों प्राप्त भई, जिसकों वाणीकरि कही न सकता, तब राजा शिखरध्वज आय राणीकों देखिकरि आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु कहा, हे अंगना! अब तूं बहुरि यौवन अवस्थाकों प्राप्त भई है, तेरे तांई कोउ बडा आनंद प्राप्त भया है, कदाचित् तैनें अमृतका सार पान किया है, तातें अमर भई है, अथवा तेरे तांई किसी योगेश्वरनें कलाकों प्राप्त करी है, अथवा त्रिलोकिका ऐश्वर्य तुझे प्राप्त भया है॥ हे अंगना! तेरे तांई कवन वस्तु प्राप्त भई है, तेरे चित्तकी वृत्ति मैं ऐसे जानता हौं, जो अमृतका सार तैनें पान किया है, अरु त्रिलोकीके राज्यतें भी तैंनें कोउ अधिक पदार्थ पाया है, तूं बडे आनंदकों प्राप्त भई है, तिस आनंदका आदि अंत कोउ नहीं दिखता, अरु तेरेविषे भोगवासना भी नहीं दिखती, शांत हो गई है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे तेरेविषे निर्मलता दिखती है, अरु तेरे श्वेत वाल भी बडे सुंदर दृष्ट आते हैं, सो कहहु तेरे तांई क्या वस्तु प्राप्त भई है॥ ॥ चूडालोवाच॥ हे राजन्! यह जो कछु देखिता है, सो किंचित् है, अरु इसतें जो रहित निष्किंचन पद है, तिसकों मैं पाई हौं, तिसका आकार निष्किंचित है, अरु दूसरेका अभाव है, तिसीकों पायकरि मैं श्रीमान् भई हौं, अरु जेते कछु भोग हैं, तिनतें रहित अभोगकों भोग्या है, तिस भोगकरि तृप्त भई हौं, अभोग कहियें आत्मज्ञान, तिसकों मैं पाया है, आत्माविषे विश्राम पाया है, सदा शांतरूप श्रीमान् हौं॥ हे राजन्! जेते यह राजभोग सुख हैं, तिनकों त्यागिकरि परम सुखकों भोगती हौं, रागदोषतें रहित होकरि मैं कैसी हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही स्थित हौं, अरु जेता कछु नेत्रोंकरि दिखता है, अरु इंद्रियांकरि जाणता है, अरु मनकरि चिंतवना करता है, सो सब मिथ्या है, स्वप्नवत्, अरु मैं तहां

स्थित भई हौं, जहां इंद्रियां अरु मनकी गम नहीं, अरु अहंकारका उत्थान भी जिसविषे नहीं, तिस पद कों मैं पाई हौं, जो सर्वका आधार है, अरु सर्वका आत्मा है, अरु सर्व जो अमृत हैं, तिनका सार अमृत मैं पान किया है, तातें मेरा नाश कदाचित् नहीं, अरु भय भी कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी! इस प्रकार राणीनें जब कहा, तब राजा शिखरध्वज तिसके वचनोंकों न जानत भया, हांसी करी, अरु कहा, हे मूर्ख स्त्री! यह तूं क्या कहती है जो प्रत्यक्ष वस्तुकों झूट कहती है, अरु कहती है मैं नहीं देखती, अरु जो असत् है, दिखता नहीं, तिसकों सत्य कहती है, मैं देखती हौं, यह वचन तेरे कवन मानैगा, इन वचनोंवाला शोभा नहीं पावता, अरु कहती है, जो ऐश्वर्यकों त्यागिकरि श्रीमान् भई हौं, निष्किंचनकों पायकरि इन वचनोंवाला शोभा नहीं पावता, अरु कहती है, इन भोगका त्याग किया है, अरु इनतें जो रहित अभोग है, तिसकों मैं भोगती हौं, तातें तूं मूर्ख है, अरु कहती है, मैं कछु नहीं, बहुरि कहती है, मैं ईश्वर हौं, इसतें महामूर्ख दृष्ट आती है, अरु जब इसीविषे तेरा चित्त प्रसन्न है, तब त्यौं विचरु परंतु यह बात सुणीकरि सत् कोउ न मानैगा, जैसे तेरी इच्छा है, तैसे विचरु; परंतु तेरे तांई यह शोभा नहीं ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि राजा उठि खडा हुआ, मध्यान्हका समय था, स्नानकेनिमित्त गया, तब राणी मनविषे बहुत शोकवान् भई, अरु विचार किया जो बडा कष्ट है, राजानें आत्मपदविषे स्थिति न पाई, अरु मेरे वचनों कों जानत न भया, राणी ऐसे मनविषे धारीकरि अपणे आचारविषे प्रवर्तणे लगी, बहुरि अपणा निश्चय राजाकों न दिखाया, जैसे अज्ञान कालविषे चेष्टा करती थी, तैसेही ज्ञानकोंकरि चेष्टा करणे लगी, तब एक समय राणीके मनविषे आया, जो मैं प्राणोंके उपर चडाउं, अरु ऊर्ध्वकों ल्यावौं, अपणे वश करौं, उदान अरु अपानकों, किस निमित्त जो आकाशकों भी उडौं, अधकों भी गमन करौं, ऐसे चिंतवना करिके राणी योगविषे स्थित भई, प्राणायाम करणे लगी ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! यह संसार संकल्पतें उत्प

न्न भया है, स्थावर जंगमरूप संसारवृक्ष है, अरु संकल्प इसका बीज है, तब वह प्राणायाम पवन है, जिस करि आकाशकों उडते हैं, अरु फिरि तलेकों आते हैं, अरु अज्ञानी पुरुष यत्न करिके सिद्धि करते हैं, अरु ज्ञानवान् कैसे लीलाकरि विचरते हैं, इसका उत्तर कहौ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तीन प्रकार सिद्धि होती है, सो श्रवण करु, एक तौ उपादेय है, जो यह वस्तु मेरे तांई प्राप्त होवै, तिसनिमित्त अज्ञानी यत्न करते हैं, अरु एक जो यह दुःख मेरा निवृत्त होवै, मैं सुखी होउं, महाअज्ञानीकों यह चिंता रहती है, अरु एक यह है, जो मैं कर्म करता हौं, तिसका फल मेरे तांई सिद्धि होवै, यह भी अज्ञानी है, काहेतें जो आपकों करता मानते हैं, अरु ज्ञानवान् इनतें उल्लंघित वर्तता है, कदाचित् ज्ञानवान् इसविषे वर्तता है, तौ भी तिसके निश्चयविषे यह जो न मैं कर्त्ता हौं, न भोगता हौं, अरु योग करिके इस प्रकार सिद्ध होते हैं, जो देश काल वस्तु क्रिया तिनके आधीन हो जाते हैं, क्रिया कहियें मुखविषे गुटका राखणा, तिसकरि जहां चाहै तिसि ठौरविषे जाय प्राप्त होवैं, अरु अंजन नेत्रोंविषे पावणा, जिसकों देख्या चाहैं, तिसकों देखि लवैं, अरु खड्ग हाथविषे धारिकरि संपूर्ण पृथ्वीकों वशकरि लेणा, यह तौ क्रिया पदार्थ हैं, अरु देश यह जो सर्व पर्वत हैं, तिनविषे केती पीठ हैं, अरु बडा उत्तम है, अरु जिस प्रकार यह सिद्ध होते हैं, सो श्रवण कर, एक कुंडलनी शक्ति है, आधार चक्रविषे नाभिके तले सर्पिणीकी नांई तिसविषे कुंडल हैं, कुंडलकों मारि बैठी है, अरु वासनाही तिसविषे विष है, अरु जेती नाडी हैं, तिनकी समष्टि नहीं है, तिस कुंडलनीविषे जव मनन होता है, तब मन होकरि प्रगट होता है, अरु जव निश्चय होता है, तब बुद्धि प्रगट होती है, जब अहंभाव होता है, तब अहंकार प्रगट होता है, जब स्मरण होता है, तब चित्त प्रगट होता है, अरु जव तिसविषे स्पर्शकी इच्छा होती है, तब पवन प्रगट होता है, इसी प्रकार पंच तन्मात्रा अरु चारौं अंतःकरण प्रगट होते हैं, अरु जेती नाडी हैं, सो सर्व कुंडलनीतें प्रगट होती हैं, अरु आत्माका

प्रगट होणा भी तिसीतें जाणता हौं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आत्माका प्रगट तिसतें कैसे जाणीता है, आत्मा तौ देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तुकरि पूर्ण है ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलविषे देखीता है, अरु धूप सर्व ठौर देखीता है, तैसे ब्रह्मसत्ता सर्वत्र समान है, अरु प्रगट सात्त्विक गुणविषे देखता है, जेती कछु नाडी अरु इंद्रियां हैं, तिनका उदय होणा कुंडलनी शक्तिसों है, अरु जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होकरि पवनकों स्थिर करता है, तब जेती कछु अंतर प्राणवायु है, सो सर्व इसके वश होती है, जैसे सर्व सेना राजाके वश होती है, तिसी प्रकार सर्व इंद्रियां इसके वश होतियां हैं, अरु जो इसके वश प्राणवायु नहीं होती, तौ इसकों आधि व्याधि रोग उपजते हैं॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधि व्याधि कैसे होती हैं, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आधि नाम है मनकी पीडाका, अरु व्याधि नाम है देहके दुःखका, आधि तब होती है, जब इसकों संकल्प होता है, जो यह सुख मेरे तांई प्राप्त होवै, अरु उह वस्तु इसकों नहीं प्राप्त होती, तब चिंता करिके दुःख पावता है, अरु व्याधि तब होती है, जब वात पित्त कफका विकार शरीरविषे होता है, अरु दुःख पावता है, जब मन अरु शरीरका दुःख एकठा होता है, तब आधि व्याधि दुःख एकठे होते हैं, जब भिन्न भिन्न होते हैं, तब दुःख भी भिन्न भिन्न होते हैं, अज्ञानीकों अरु ज्ञानवान्कों न आधि होती है, न व्याधि होती है, अरु यह योगकी कला मैं विस्तारकरि नहीं कही, काहेतें जो पूर्वके ज्ञानक्रमका प्रसंग रही जाता हैं, अरु जेती कला हैं, तिन सर्वकों मैं जानता हौं, परंतु यह कला ज्ञानमार्गकों रोकणेहारी हैं, इसीतें विस्तार करिके नहीं कहता, अरु वासना चार प्रकारकी है, सो श्रवण कर, एक वासना सुषुप्ति है, अरु एक वासना स्वप्न है, अरु एक वासना जाग्रत है, अरु एक क्षीण वासना है, स्थावर योनिकों सुषुप्तवासना है, सो आगे फुरैगी, अरु तिर्यक् योनिकों स्वप्न वासना है, जो उन

कों वासनाका ज्ञान भी नहीं, अरु जंगम जो है मनुष्य अरु देवता आदिक तिनकों जाग्रत वासना है, जो वासनाहिविषे लगे हैं, यह तीन वासना अज्ञानीकों हैं, अरु क्षीण वासना ज्ञानीकी है, जो वासनाकी सत्यता नष्ट भई है, तिसकों वासना कोउ नहीं रहती, जब इस प्रकार वासना निवृत्त भई, तब आगे संसार भी नहीं रहता, अरु जब कुंडलनीशक्तितें वासना फुरती है, तब पंच तन्मात्राद्वारा संसारभान होता है, संसाररूपी वृक्षका बीज वासनाहि है, दशों दिशा संसारवृक्षके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभकर्म तिसके फूल हैं, अरु स्थावर जंगम तिसके फल हैं, जैसी जैसी वासना पुर्यष्टकासाथ मिलीकरि जीव करता है, तैसाही आगे फल होता है ॥ हे रामजी! तातें वासनाका त्याग कर, वासनाही संसाररूपी वृक्षका बीज है; यही पुरुष प्रयत्न है, जो निर्वासनिक होणा, तब विश्व कदाचित् न भासैगा, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकाररूपी रात्र नहीं रहती, तैसे ज्ञानरूपी सूर्यके उदय हुए संसाररूपी अंधकार निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! आधि व्याधि बडे रोग हैं, सो मनकरि होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधि रोग तौ मनकरि होता है, अरु व्याधि तौ शरीरका रोग है, मनकरि कैसे होता है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! व्याधि दो प्रकारकी हैं, एक लघु है, एक दीर्घ है, लघु कहियें जो शरीरकों कोउ दुःख आनि प्राप्त होवै, सो पुण्यकरि अथवा स्नानकरि अथवा जपकरि निवृत्त हो जावै, यह लघु कही है, अरु दीर्घ व्याधि सो कहियें, जो जन्ममरणका रोग है, सो बडा रोग है, मनके शांत हुए विना निवृत्त नहीं होता, इसतें आधि व्याधि दोउ मनकरि होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! व्याधि मनकरि कैसे होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब चित्त शांत होता है, तब रोग कोउ नहीं रहता, अरु जबलग चित्त शांत नहीं होता, तबलग आधि व्याधि होती हैं, सो श्रवण कर, जो कैसे होती हैं, जो कछु बाहिर अग्निकरि परिपक्व होता है, तिसकों पुरुष भोजन करते हैं, तब अंतर कुंडलनी जो है, पुर्यष्टकासाथ मिली हुई जीवक

ला अरु प्राणोंकी समष्टिता, सो उदान पवन ऊर्ध्वमुख हो फुरती है, अरु अपान पवन तिसतें अधकों फुरता है, उदान अरु अपानका आपसविषे विरोध है, तिनके क्षोभतें अग्नि उठते हैं, सो हृदयकमलविषे आनि स्थित होते हैं, तब बहिर अग्निका पक्का भोजन हृदयकी अग्नितें बहुरि पक्व होते हैं, अरु सर्व नाडी अपणे अपणे भाग रसकों ले जातियां हैं,तब वीर्यवाली नाडी वीर्य करिके राखत है, अरु रुधिरवाली नाडीयां रुधिरकरि राखत है, अरु जब राग अरु द्वेष करिके चित्त कुंडलनी शक्तिविषे क्षोभ होता है, तब नाडी अपणे स्थानोंकों छोडी देती है, अन्न भी अंतर पक्व नहीं होता, तिस कच्चे रसकरी रोग उठत है, जैसे राजाकों क्षोभ होता है, तब सैनाकों भी क्षोभ होता है, अरु जब राजाकों शांति होती है, तब सैनाकों भी शांति होती है, तैसेही जब मनविषे क्षोभ होत है, तब रोग होत है, अरु जब मनविषे शांति होती है, तब नाडी अपणे अपणे स्थानोंविषे स्थित होत हैं, रोग कोउ नहीं होता ॥ तातें हे रामजी! आधि व्याधि तब होत हैं, जब पुरुषका चित्त निर्वासना नहीं होता, जब चित्त शांत होत है, तब रोग कोउ नहीं रहता, तातें निर्वासनापदविषे स्थित होहु, तब रामजीनें कहा ॥ हे भगवन्! पीछे तुमनें कहा जो मंत्रोंकरि भी रोग निवृत्त होत है, सो कैसे निवृत्त होत है यह कहौ? तब वसिष्ठनें कहा ॥ हे रामजी! प्रथम पुरुषकों श्रद्धा होत है, जो इसमंत्रकरि रोग निवृत्त होवैगा, अरु पुण्यक्रिया जो दान आदिक हैं, अरु संतजनकी संगति होत है, अरु यरलव आदिक जो अक्षर हैं इनके जाप करिके अरु जेते कछु जाप अरु मंत्र हैं, सो इन अक्षरों करि सिद्ध होत है, जब इनकों जाप करता है, भावनासहित, तब व्याधि रोग निवृत्त हो जाता है, अरु योगेश्वरका क्रम जो है, अणु अरु स्थूल सो श्रवण कर, जब इह प्राण अरु अपान कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होत है, अरु इनकों वश करिके योगी गंभीर होत हैं, जैसे मिसकविषे पवन होवै, इसी प्रकार पवनकों स्थित करिके कुंडलनी सुषुम्नाविषे प्रवेश करत है, तब ब्रह्मरंध्रविषे जाय स्थित होती है, एक मूहूर्तपर्यं

त तहां स्थित होवै, तब आकाशविषे सिद्धिकों देखत है, जिस प्रकार क्रम है, तैसे तुझकों कहता हों ॥ हे रामजी ! सुषुम्नाके अंतर जो ब्रह्मरंध्र है, पूरककरि तिसविषे कुंडलनी शक्ति जब जाय स्थित होती है, तहां अथवा रेचक प्राणवायुके प्रयोगतें द्वादश अंगुलपर्यंत मुखसों बाह्य अथवा अंतर ऊर्ध्वभूत मुहूर्त एक लगे स्थित होती है, तब आकाशविषे सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जब ब्रह्मरंध्र जीवकला जाय स्थित होती है, तब तहां सिद्धोंका दर्शन कैसे होता है, दर्शन तौ नेत्रोंकरि होता है, सो नेत्र आदिक इंद्रियां उहां कोउ नहीं होती, नेत्रोंविना दर्शन कैसे होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहु रामजी ! भूचर जो हैं, पृथ्वीविषे विचरणेवाले इंद्रियगण, तिनकों नभश्चर जो हैं, आकाशविषे विचरणेवाले, तिनका दर्शन नहीं होता, परंतु दिव्य दृष्टिकरि दृष्ट आती है, चर्मदृष्टिसाथ नहीं दृष्ट आतें, विज्ञानके निकट जो निर्मल बुद्धि नेत्र होते हैं, तिनसाथ दर्शन होता है, जैसे स्वप्नविषे चर्मनेत्रों विना भी सर्व पदार्थ दृष्ट आते हैं, तैसे सिद्धोंका दर्शन होता है, परंतु एती विशेषता है, जो स्वप्नके पदार्थ जाग्रतविषे नहीं भासते, अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु सिद्धोंके समागमकी चेष्टा जाग्रतविषे भी स्थिर प्रतीत होती है, मुखके बाह्य जो द्वादश अंगुलपर्यंत अपानका स्थान है, जो रेचकप्राणायामका अभ्यास होता है, अरु चिरपर्यंत प्राण स्थिरभूत होता है, तब और पुरियां अरु दिशाके स्थानमें प्राप्त होणे कों सामर्थ्य होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! जो पदार्थ चंचलरूप है, तिसका स्थिर होणा कैसे होता है, वक्ता जो गुरु है, सो कृपाकरि कहते हैं, दुष्ट प्रश्न जो तर्करूप है, तिस करिके भी खेदवान् नहीं होते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसी जैसी वस्तु हैं, तैसी तिसकी शक्ति स्वाभाविक होती है, इह आदि जगत्के फुरणेकरि नीति भई है, तैसे अबलग आत्माविषे स्वभावशक्तिका फुरणा होता है, इह जो अविद्या है सो असत्रूप है, जो कहूं वस्तुरूप होकरि भी भासती है, सो जैसे वसंतऋतुविषे भी शर

त्कालके फूल दृष्ट आवते हैं, अरु वसंतऋतुके शरत्कालविषे भासते हैं, अरु यह भी एक नीति है, जो इस करिके इह द्रव्यकी शक्ति ऐसे हो जावै, परंतु स्वरूपतें सब ब्रह्मरूप है, और द्वैत नानात्व कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, व्यवहारके निमित्त नानात्वकी कल्पना हुई है, वास्तवतें द्वैत कछु नहीं॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! सूक्ष्म रंध्रतें स्थूलरूप कैसे निकस जाती है, अरु अणु सूक्ष्मरूप होकरि बहुरि स्थूलभावकों कैसे प्राप्त होती है॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जैसे आरेसाथ काष्ठ काटीता है, अरु उसके दो तुकडे हुए तिनकों शीघ्रही घर्षण करियें, तब तिनसों स्वाभाविक अग्नि प्रगट होता है, तैसे मांसमय जो कमल है उदरविषे, तिसके मध्य हृदयकमल है, तिसविषे सूर्य अरु चंद्रमाकी स्थिति है, तिस कमलके अंतर दो कमल हैं, एक अध, दूसरा ऊर्ध्व, सो अधःचंद्रमाकी स्थिति है, अरु ऊर्ध्व सूर्यकी स्थिति है, तिसके मध्यविषे कुंडलनी लक्ष्मी स्थित है, जैसे पद्मराग मणिका डबा होवै, जैसे मोतियोंका भंडार होवै, तैसे उसका महाउज्ज्वलरूप है, जैसे आवर्त फैनके मिलनेतें शल शल शब्द प्रगट होता है, तैसे उसतें शब्द निकसता है, जैसे डंडसाथ हलायेतें सर्पिणी शब्द करती है, तैसे उस कुंडलनीसों प्रणव शब्द उदय होता है॥ हे रामजी! आकाश अरु पृथ्वी जो है, ऊर्ध्व अरु अधःरूप दो कमल तिनके मध्यविषे कुंडलनी शक्ति स्पंदरूपिणी स्थित है, जीवकला पुर्यष्टक अनुभवरूप अतिप्रकाश सूर्यकी नांई हृदयरूप कमलकी भ्रमरी है, सो सबनका अधिष्ठान आदिशक्ति है, हृदयकमलविषे विराजमान है, तिस हृदय आकाशविषे कुंडलनी शक्ति सो स्वाभाविक वायु निकसती है, सो कोमल मृदुरूप है, उही पवन निकसीकरि दो रूप होता है, एक प्राण अरु दूसरा अपान, सो अन्योन्य मिलिकरि स्फुरणरूप होता है, जैसे वृक्षके पत्र हलाते हैं, तिसकरि शीघ्रही अग्नि प्रगट होत है, अरु वांसोके घर्षणेतें अग्नि प्रकट होता है, तैसे प्राण अपानतें अग्नि प्रगट होकरि आकाशविषे उदय होती है, तब सर्व औरतें अंतर प्रकाश होता है, जैसे सूर्यके उदयहुए

सर्व औरतें भुवन प्रकाशरूप होता है, तैसे सर्व औरतें प्रकाश होता है, सूर्यरूप तारा अग्निवत् तेज आकार है, हृदयकमलका स्वर्णरूप भ्रमरा है, तिसके चिंतवते योगी तद्गत होते हैं, सो प्रकाश ज्ञानरूप है, तिस तेजसाथ योगीकी वृत्ति तद्गत होती है, अर्थ यह एकत्वभावकों प्राप्त होती है, तब लक्ष योजनपर्यंत जो पदार्थ होवैं तिनका ज्ञान हो आता है, प्रत्यक्ष दृष्ट पडे आते हैं, तिस अग्निका हृदयरूपी ताल स्थान है, जैसे वडवाग्नि समुद्रविषे रहता है, अरु जलही ताके इंधन हैं, जो जलकों दग्ध करता है, तैसे हृदयरूपी तालविषे तिसका निवास है, अरु रस शीतलता जलरूपकों पचावत है, तिस हृदयकमलतें जो अपानरूप शीतल वायु उदय होता है, तिसका नाम चंद्रमा है, अरु प्राणरूप उष्ण पवन उदय होता है, सो सूर्यरूप है, सोई उष्ण अरु शीतल सूर्य चंद्रमा नामकरि देहमें स्थित हैं, आदि प्राणवायुरूप सूर्यतें अपानरूप चंद्रमातें सूर्यरूप होकरि स्थित होता है, सूर्य उष्ण अरु चंद्रमा शीतल है, इन दोनोंकरि जगत् हुआ है, विद्या अविद्या सत्य असत्यरूप जगत् दोनोंकरि युक्त है, सत् चित् प्रकाश विद्या उत्तरायण सूर्य अग्नि आदिक नाम सो बुद्धिवान् निर्मलभाव कहते हैं, अरु असत् जड अविद्या तम दक्षिणायन आदिक मार्ग इह चंद्रमारूप मलिन भाव कहते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अग्निसूर्यरूप जो प्राण वायु है, तिसतें शीतल जलरूप चंद्रमा अपानरूप कैसे उत्पन्न होता है, अरु अपानजल चंद्रमारूपतें सूर्य कैसे उत्पन्न होत है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! सूर्य चंद्रमा जो हैं, अग्निसोम सो परस्पर कार्यकारणरूप हैं, जैसे बीजतें अंकुर अरु अंकुर वृक्षतें बीज होता है, जैसे दिनसों रात्रि अरु रात्रिसों दिन होता है, छायासों धूप अरु धूपसों छाया होती है, तैसे सूर्य चंद्रमा परस्पर कार्यकारण होते हैं, कबहूं इनकी एकठी भी उपलब्धि होती है, जैसे सूर्यके उदय हुए धूप अरु छाया दोनों एकठे हो आवते हैं, अरु कार्यकारण भी दो प्रकारका है, एक कार्य सत्यरूप परिणाम करिके होता है, एक विनाशरूप परिणाम करिके होता है, एकतें जो दूसरा होता है, जैसे बीज नष्ट

हो गया तिसतें अंकुर होता है, सो विनाशरूप परिणाम होता है, अरु जैसे मृत्तिकातें घट उपजता है, सो सत्यरूप परिणाम कहाता है, जो कारणकार्यके भावविषे भी इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष पाइयें, तिसकर नाम सत्यरूप परिणाम है, अरु जो कार्यविषे इंद्रियोंकरि प्रत्यक्ष नहीं पाइता, दिनविषे रात्रि अरु रात्रिविषे दिनकी नांई सो विनाशरूप परिणाम कहाता है, जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है, तैसे अभाव भी प्रमाण है, तातें एक विनाशभाव भी कारणरूप है, जो कहते हैं, अपना संवित्‌विषे कर्तव्य नहीं बनता, इत्यादिक युक्तिवादी कहते हैं, सो इस अर्थकी अवज्ञा करते हैं, अपणे अनुभवकों नहीं जाणते हैं, अनुभवकी युक्ति उनकों नहीं आवती, इह अभाव प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रगट होता है, अरु शीतलता प्रमाण है, जैसे अग्निके अभावतें शीतलताके अभावविषे उष्णता पाइती है, दिनके अभावविषे रात्रि, छायाके अभावविषे धूप, इत्यादिकका नाम अभाव प्रमाण कारण है, अरु अग्नितें धूम्रभाग निकसता है, सो मेघ जाय होता है, इस प्रकार सत्त्वरूप प्रमाणकरि सोम जो है चंद्रमा, तिसका कारण अग्नि होता है, अरु अग्नि नाश होकरि शीतलभावकों प्राप्त होता है, तब इसका नाम विनाश प्रमाणकरि अग्नि सोम चंद्रमाका कारण होता है, सप्त समुद्रोंका जल पान करिके वडवाग्नि धूम्रकों उद्गीर्ण करता है, सो धूम्र मेघकों प्राप्त होकरि अत्यर्थ जलका कारण होता है, अरु सूर्य जो सो विनाशके अर्थ चंद्रमाकों पान करता है, अमावास्यापर्यंत वारंवार भक्षण करता है, वहुरि शुक्ल पक्षविषे उद्गीर्ण करता है, जैसे सारस पक्षी भेहकों भक्षण करिके उद्गीर्ण करी डारता है ॥ हे रामजी! अमृतके समान शीतल जो अपानवायु चंद्रमारूप है, सो मुखके अग्रविषे रहते हैं, उह जल कणकारूप जव शरीरविषे जाता है, तब उह जलका अणु अपानरूप सूर्यरूप प्राणी फुरणेकों प्राप्त होता है, इस प्रकार सत्यरूप परिणामसों जल अग्निका कणका होता है, अरु जब जलका नाश हो जाता है, तब उह उष्णभाव अग्निकों प्राप्त होता है, इनका नाम विनाशपरिणाम है, इस प्रकार जल अग्निका कारण कहाता

है, अग्निके नाश हुए चंद्रमा उत्पन्न होता है, इसका नाम विनाशपरिणाम है, अरु चंद्रमाके अभाव हुए अग्निका होणा होता है, इसका नाम भी विनाशपरिणाम है, जैसे तमके अभावतें प्रकाश उदय होता है, अरु प्रकाशके अभावतें तम होता है, दिनके अभावतें रात्रि, अरु रात्रिके अभावतें दिन होता है, इसके मध्य विषे जो विलक्षणरूप है, सो बुद्धिवानोंकरि भी नहीं पाइता, तम अरु प्रकाश दोनों रूपोंकरि युक्त है, इनके मध्यविषे जो संधि है, सो आत्मरूप है, तिसविषे स्थित होउ, चेतन अरु जड दोनों रूपोंकरिके भूत फुरण होते हैं, जैसे दिन अरु रात्रि तम अरु प्रकाश करिके पृथ्वीविषे चेष्टा करते हैं, चेतन अरु जडरूप सूर्य अरु चंद्रमा दोनों रूप करिके युक्त हैं, निर्मलरूप जो प्रकाश चिद्रूप है, तिसका नाम सूर्य है, अरु जडात्मक तमरूप है, सो चंद्रमाका शरीर है, जब निर्मल चेतनरूप सूर्य आत्माका दर्शन होता है, तब संसारके दुःखरूप जो तम है सो नष्ट हो जाता है, जैसे बाह्य आकाशविषे सूर्य उदय हुएतें श्याम रात्रिका तम नष्ट हो जाता है, अरु जड चंद्रमारूप जो देह है, जब तिसकों देखता है, तब चेतनरूप सूर्य नहीं भासता, असत्यकी नांई हो जाता है, अरु चेतनकी और देखता है, तब देह नहीं भासता, केवल लक्षविषे दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती, केवल चेतनपदकों प्राप्त हुएतें द्वैततें रहित निर्वाणभाव होता है, अरु जडभावकों प्राप्त हुए चेतन नहीं भासता, तातें संसारके दर्शनका कारण दोनों हैं, सूर्यचेतनकरि चंद्रमाजडकी उपलब्धि होती है, अरु जडचंद्रमाकरि सूर्यचैतन्यकी उपलब्धि होती है, जैसे दीपक अग्निका अंधकारविना प्रकाश नहीं होता, तैसे इन दोनोंविना आत्माकी उपलब्धि नहीं होती, अरु प्रकाशविना केवल जडकी उपलब्धि भी नहीं होती, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब कंधउपर प्रकाशता है सो कंध प्रकाशकरि भासता है, अरु प्रकाश कंधकरि भासता है, तैसे चित्त फुरता है, तब चेतनकों जगत भासता है, अरु फुरणा जगत्करि होता है, फुरणेतें रहित अचैत्य चिन्मात्र निर्वाण होता है॥ तातें हे रामजी! जगत्कों अग्नि अरु सोम जाणो, देहदेह

विषे है संबंध है, परंतु जिसका अतिशय होवै, तिसका जय होता है, प्राण अग्नि उष्णरूप है, अरु अपान शीतल चंद्रमारूप है, प्रकाश अरु छायारूप है, इनकों जानणा सुखका मार्ग है ॥ हे रामजी! जब बाह्यसों शीतलरूप अपान अंतरकों आवता है, तब उष्णरूप प्राणविषे जाय स्थित होता है, अरु जो हृदयस्थानसों निकसीकरि प्राण उष्णरूप बाह्यकों द्वादश अंगुलपर्यंत जाता है, तब अपान जो है, चंद्रमाका मंडल, तिसकों प्राप्त होता है, सो अपान प्राणरूप होकरि उदय होता है, अरु प्राण अपानरूप होकरि उदय होता है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब पडता है, तैसे इनका परस्पर आपसमें प्रतिबिंब पडता है, जहां षोडश कला चंद्रमाकों सूर्य ग्रास लेता है, तिस मध्यभावविषे स्थित होउ, जब अपान प्राणोंके स्थानविषे आनि स्थित होता है, अरु प्राणरूप होकरि उदय नहीं भया, सो शांतिरूप भाव है, तिसविषे स्थित होउ, अरु प्राण निकसीकरि मुखसों द्वादश अंगुलपर्यंत जब बाह्य स्थित होता है, अरु जबलग अपान भावकों प्राप्त होकरि उदय नहीं भया, उह जो मध्यभाव है, तिसीविषे स्थित होउ, अरु मेष आदिक जो द्वादश राशि हैं, तिस एककों त्यागिकरि दूसरी राशिकों संक्रांति नहीं प्राप्त भई, तिसका नाम संक्रांति है, तिनके मध्यविषे जो संधि, तिसका नाम पुण्यकाल है, सो पुण्यसमय अंतर अरु बाह्य प्राण अपानकी संधिके समयमें तृणवत् है, अरु तिन संक्रांतिविषे जो वृषवती संक्रांति वैशाखकी है, जो शिवरात्रि चैत्रकी संक्रांति त्रयोदश दिन होत है, अरु आस्तकी संक्रांति त्रयोदश दिन इनका नाम वर्षवती है, जहां दिन अरु रात्रि सम होत है, दक्षिणायन अरु उत्तरायनकी जो संधि होत है, इनके अंतर अरु बाह्य भेदकों जाणै, तब जन्मतें रहित परम बोधकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! उत्तरायणमार्ग योगीश्वरोंका है, सो क्रमकरि मुक्त होत हैं, अरु दक्षिणायन मार्ग कर्म करणेवालोंका है, तिसकरि बहुरि संसारभागी होत हैं, तिनके मध्यविषे जो संधि है, तिसविषे स्थित हुएतें परम उत्तम पदकों प्राप्त होत है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र

करणे अग्निसोमविचारयोगो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! यह सर्व कला योगकी विस्तार करिके कही है, अरु उत्तम प्रभाव तामें वर्णन भया है, अरु प्रयोजन यही है, जो निर्वाण पदमें स्थित होवै, आत्मा ब्रह्मकी एकता होवै, जो बहुरि जन्मादिकोंका दुःख न होवै, ब्रह्म चित् सत् आनंद स्वभावमात्र है, जो एकवार तामें तद्भाव जो है, एकत्वभावसों होता है, तब सदैव उही भाव रहत है, अरु धनी शक्तिका होत है, अविद्या नाश हो जाती है, इस प्रकार वही चूडा राणी योगके अभ्यास अरु ज्ञानके अभ्याससों पूर्ण होत भई, तब सर्व शक्तिसों संयुक्त होइकरि अरु अणिमा आदि सिद्धोंकी प्राप्ति होत भई, तब मध्य आकाशकों उडी, एक निशामें राजा शयन करी रहा था, अरु तामें अवकाश पाया, अरु मध्य आकाशके बहुत स्थानोंमें विचरत भई, अरु मध्य देवलोकके कालिरूप अरु अविद्यत विलोचन अति चंचल धारिके गमन करत भई, अरु मध्य दिशाके जात भई, अरु मध्य देवलोक अरु मध्य दैतोंके, अरु मध्य राक्षसोंके अरु मध्य विद्याधरोंके, अरु मध्य सिद्धोंके, अरु मध्य सूर्यलोकके, अरु मध्य चंद्रमा लोकके, मध्य तारामंडलके, मध्य मेघमंडलके, अरु मध्य इंद्रलोकके गमन करत भई, तहांका कौतुक देखीकरि बहुरि अधलोकमें आई, अरु मध्य समुद्रके प्रवेश करिके बहुरि मध्य अग्निके प्रवेश करत भई, अरु मध्य पवनके पवनरूप होत भई अरु मध्य नागलोकके कन्याविषे क्रीडा करत भई, मध्य वनोंके, मध्य पर्वतोंके, अरु मध्य भूतोंके, अरु मध्य अप्सराके, अरु मध्य त्रिलोकीके विचरती भई, लीला करिके एक क्षणमें तिसी स्थान आवत भई, जहां राजा शयन करी रहा था, समीप राजाके शयनकरि रही; जैसे भंवरीभंवरा कमलनीके मध्य शयन करते हैं; अरु राजा तिसकों न जाणत भया, जो राणी गई थी, अथवा न गई थी, बहुरि रात्र व्यतीत भई, प्रातःकाल हुआ, अरु राजा स्नानशालामें जायकरि स्नान करत भया, अरु प्रवाह कर्म वेदोक्त हैं, सो करत भया, अरु राणी भी प्र

वाह कर्म करत भई, अरु राजाकों शनैःशनैः उपदेश तत्त्वका किया, जैसे पिता पुत्रकों मिष्ट वाणीकरि उपदेश करता है, अरु पंडितोंकों कहत भई; जो राजाकों तुम भी उपदेश करौ, जो यह जगत् स्वप्नवत् भ्रम है, अरु दीर्घ रोग है, दुःखका कारण है, सो आत्मज्ञान औषधतें नाश होता है, अवर इसका औषध कोउ नहीं, इसी प्रकार आप भी राजाकों उपदेश करै, अरु पंडितों भी उपदेश करैं, परंतु राजा तिस ज्ञानकों पावत न भया, अरु विक्षेपताविषे रहा, उत्तमपदमें विश्राम पावत न भया, जो अपणा आप है, अरु केवल चित्तरूप प्रत्यक आत्मा है ॥ राम उवाच ॥ हे महामुनिजी! वह राणी तौ सर्वशक्तिसंपन्न भई थी, योगकलाविषे भी अति चतुर, अरु ज्ञानकलाविषे भी तद्रूप भई थी, अरु राजा भी अति मूढ न था, तिसकों उसका उपदेश दृढ क्यों न होत भया, अरु राणी भी तिसकों प्रीतिकरि उपदेश करती थी, उह कारण क्या था, जो अपणे पदविषे स्थिति पावत न भया ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे अच्छिद्र मोतिविषे तागा प्रवेश नहीं करता, तैसे चूडालाका उपदेश राजाकों न वेधत भया, सो जबलग आप विचार न करै, अरु तिसविषे दृढ अभ्यास न होवै, तबलग ब्रह्मा उपदेश करै, तब भी तिसकों न वेधै, काहेतें जो आत्मा आपहीकरि जाण्या जाता है, अरु इंद्रियका विषय नहीं, जो अधिष्ठानरूप है, अरु स्वभावमात्र है, अरु आपही आपकों देखता है, अरु किसी मन इंद्रियका विषय नहीं, अरु सर्वका अपणा आप है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! जब अपणे आपकरि देखता है, तब गुरु अरु शास्त्र उपदेश किसनिमित्त करते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! गुरु अरु शास्त्र जताय देते हैं, जो तेरा स्वरूप आत्मा है, परंतु इदं करिके नहीं दिखावते; अरु विचारनेत्रसों आपकों आपही देखीता है, विचारतें रहित तिसकों नहीं देखी सकता, जैसे किसी पुरुषकों चंद्रमा कोउ सचक्षु दिखावता है, जो अमके स्थानमें देख उदय है, जब वह सचक्षु होता है, तौ देखता है, अरु मंददृष्टि होता है, तब नहीं देखता, तैसे गुरु अरु शास्त्र आत्माका रूप वर्णन करते हैं, अरु ल

खावते हैं, जब उह विचार नेत्रसों देखत है, तब कहता है, जो मैं देख्या, अरु अवरके दिखावणेका योग्य होता है ॥ हे रामजी! आत्मा किसी इंद्रियका विषय नहीं, जो अपणा आप मूलरूप हैं, अरु इंद्रिय कल्पित हैं अरु जब तूं कहै के तुम भी उपदेश इंद्रियकरि करते हौ; तौ सर्व इंद्रियांका विस्मरण करु, जो मूल अपणा तुझे भासै, अरु अभाववृत्ति इंद्रियां किसीकों तेरा अभाव न होवैगा ॥ हे रामजी! इसीपर एक इतिहास क्रांतका है सो श्रवण करु, एक क्रांत था, उस पास धन अनाज भी बहुत था; परंतु कृपण था, किसीकों देता कछु न था, अरु अवर धनकी तृष्णा करता रहै, जो किसी प्रकार चिंतामणि मेरे तांई प्राप्त होवै, सदा इही वांछा करै, इसी वांछाकरि एक समय घरतें बाहिर निकस्या, अरु पृथ्वीकी उर देखता जावै, तब एक स्थान था, तहां घास अरु भूस पडा था, तिसविषे एक कउडी दृष्ट पडी, तब कउडीकों उठाय लिया, बहुरि देखणे लगा, जो कछु अवर भी निकसै, तब दूसरी कउडी निकसी, इसी प्रकार ढुंढते हुए त्रय दिन व्यतीत भए, तब चार कउडी निकसी, बहुरि अष्ट निकसी जब त्रय दिन अवर व्यतीत भये ढुंढते, तब चिंतामणि चंद्रमाकी नांई प्रगट देखा, तब मणि लेकरि अपणे घर आया; अरु बडे हर्षकों प्राप्त भया ॥ हे रामजी! तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मिका पावणा, सो कउडीयांका खोजणा है, अरु आत्मा चिंतामणिरूप है, परंतु जैसे कउडियांके खोजते चिंतामणिविना खोजे न पाई, तैसे गुरु अरु शास्त्रोंकरि आत्मपद पाइता है, गुरुशास्त्रोंविना नहीं पाइता, धनकरि तपकरि कर्मकरि आत्मा नहीं पाइता, केवल अपणे आपकरि पाइता है ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज चूडालाके पासतें उठिकरि स्नानकों गया, तब राजाके मनविषे वैराग्य उपजा, जो यह संसार मिथ्या है, बहुत भोग हम भोगे हैं, तौ भी हृदयकों शांति न भई, अरु इन भोगका परिणाम दुःखदायक है, जब मनविषे ऐसा विचार उपजा, तब राजानें गौ, पृथ्वी स्वर्ण, मंदिर अरु अवर सामग्री बहुत दान करी, जेते कछु ऐश्वर्यके पदार्थ हैं, सो दान किये, ब्राह्मणोंकों दिये, अवर

गरीब अतिथिकों दिया, जैसे जैसे किसीका अधिकार देख्या, तैसे दिया, अरु राणीनें भी ब्राह्मणों मंत्रीयों कों कहा, जो राजाकों तुम यही उपदेश किया करौ, जो यह भोग मिथ्या हैं, इनविषे सुख कछु नहीं, अरु आत्मसुख बडा सुख है, जिसके पायेतें जन्ममृत्युसों मुक्त होता है, इसी प्रकार राजा ब्राह्मणोंतें श्रवण करै, अरु अपणे मनविषे भी वैराग्य उपजा था, तब राजा कहत भया, जो इस संसारदुःखतें मैं रहित होउं यह संसार बडा दुःख है, इसविषे सदा जन्ममरण है, तब राजाके मनविषे हुआ जो मैं तीर्थोंकों जाउं, अरु स्नान करौं, बहुरि राजा तीर्थोंकों चला, तब स्नान भी करै, दान भी करै, इस प्रकार देवता अरु तीर्थों अरु सिद्धोंके दर्शन किये, स्नानकरि बहुरि ग्रहकों आया, तब आयकरि रात्रके समय, राणी साथ शयन किया, अरु राणीकों कहा, जो हे अंगना! अब मैं वनकों जाता हौं, तप करणेके निमित्त जो यह भोग मेरे तांई दुःखदायक भासते हैं, अरु राज्य भी वनकी नांई उजाड भासता है, तातें मैं तपकेनिमित्त वनकों जाता हौं, अरु यह भोग बहुत कालपर्यंत हम भोगते रहे तौ भी इनविषे सुख दृष्ट न आया, तातें मेरे तांई अटकावणा नहीं, मैं वनकों जाता हौं, तब राणीनें कहा ॥ हे राजन्! अब तेरी कवन अवस्था है, जो तूं वनकों जाता है, अब तौ हम राज्य भोगहीं, जैसे वसंतविषे फूल शोभा पावते हैं, अरु शरत्कालविषे नहीं शोभते, तैसे हम भी वृद्ध होवैंगे, तब वनकों जावैंगे, अरु वनहीविषे शोभा पावैंगे, जैसे वनके फूल श्वेत होवैं तैसे हमारे केश श्वेत होवैंगे, तब शोभा पावैंगे, अब तौ राज्य करौ ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब राणीनें कहा, तब राजाका चित्त वैराग्यहीविषे रहा, राणीका कहणा चित्तविषे न ल्यावता भया, जो तीर्थोंके स्नान अरु दानकरि राज्यसुखतें राजाकों वैराग्य उपजा, परंतु शांति न पाई, जैसे चंद्रमाविना कमलिनी शांति नहीं पावती, तैसे ज्ञानविना राजाकों शांति न प्राप्त भई, परंतु वैराग्य करिके कहणे लगा, हे राणी! अब मेरे तांई अटकावणा नहीं, अब राज्य मुझकों फीका लगा है, मैं वनकों जाता हौं, जो ठहराव मेरा इहां नहीं होता,

जो तूं कहै हम इहां तेरी टहल करते थे, पाछे कवन करैगा, तब पृथ्वीही हमारी टहल करैगी, अरु वनकी वीथियां भी स्त्रीयां होवैंगिया, अरु मृगके बालकही पुत्र हैं, आकश हमारे वस्त्र हैं, फूलके गुच्छे भूषण हैं, ऐसे राजानें कहा, तब आगे रात्रका समय हुआ अरु राजा उहांतें चला, तब उहांतें राणी अरुनगरतें सैना भी पाछे चली, बडी भयानक रात्रविषे चले, कोटके बीचही जाय स्थित भये, तब राजा अरु राणी सोए, जैसे भंवराभंवरी सोवते हैं, सैना अरु सहेलियां सब सोए गये, कर्मनिद्रा करि जड होगये, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, जब अर्ध रात्र व्यतीत भई, तब राजा जाग्या, अरु देख्या जो सब सोए गये हैं, तब शय्यातें उठ्या, राणीके वस्त्र एक उर करिके हाथविषे खड्ग लेकरि निकस्या, जैसे क्षीरसमुद्रतें विष्णु भगवान् लक्ष्मीसों उठता है, तैसे उठ्या, अरु सब लोक लंघता जब दरवाजे कोटकेपर आया, तब अर्ध मनुष्य जागे थे, अरु अर्ध सोए थे, उननें राजाकों देख्या, तब राजानें कहा, द्वारपालो! तुम इहांही बैठे रहौ, मैं एकलाही वीरयात्राकों जाता हौं, तब राजा तीक्ष्ण वेगकरि चल्या गया, अरु बाहिर निकसीकरि कहा॥ हे राजलक्ष्मि! तुझकों नमस्कार है, अब मैं वनकों चला हौं, तब एक वनविषे आया, जहां सिंह अरु सर्प अवर भयानक जीव हैं, तिनके शब्द सुणता आगे चला गया, तिसतें आगे अवर बेला आया तिसकों भी लंघी गया, जब आठ प्रहर राजा चला गया, तब एक ठौर जाय स्थित भया, जब सूर्य उदय हुआ, तब राजानें स्नान करिके संध्यादिक कर्म किये अरु वृक्षके फल लेकरि भोजन किये, बहुरि आगे चला, जो कोइ पाछेतें आयकरि मेरे तांई अटकावता होवै, इसनिमित्त तीक्ष्ण चला, बडे पहाड अरु नदियां बेले राजा उल्लंघिकरि दिन द्वादशपर्यंत चला गया, जब मंदराचल पर्वतके निकट गया, तब एक वनविषे जाय स्थित भया, अरु स्नान करिके कछु भोजन किया, अरु पत्र लेकरि झुपडी बणाई, मेघकी रक्षा अरु छायाकेनिमित्त तहां स्थित भया, अरु वासन भी बनाए, तिनविषे फूल फल राखे, जब प्रातःकाल होवै, तब स्नान करिके प्रहरपर्यंत जाप करै, बहु

रि देवताके पूजननिमित्त फूल चुणै, अरु द्वितीय स्नान करिके प्रहर ऐसे व्यतीत करै, जब तीसरा प्रहर होवै, तब फलभोजन करै, चउथा प्रहर बहुरि संध्या जाप करै, इसी प्रकार दिन अरु रात्र व्यतीत करै, कछुक काल रात्रकों शयन करै, अवर जापविषे व्यतीत करै, इसी प्रकार कालकों व्यतीत करै ॥ हे रामजी! राजाकी तौ यह अवस्था भई, अब राणीकी अवस्था श्रवण करु, जब अर्ध रात्रतें पाछे राणी जागी, तब क्या देखै जो राजा इहां नहीं, वनकों गया है, अरु शय्या खाली पडी है, तब राणीनें सहेलियांकों जगाई, अरु कहणे लगी बडा कष्ट है, राजा वनकों निकसी गया है, अरु बडे भयानक वनविषे जावैगा, ऐसे कहीकरि मनविषे विचार किया, जो राजाकों देखा चाहिये, तब योगविषे स्थित होकरि आकाशकों उडी, आकाशकी नांई देहकों अंतर्धान करिके जैसे योगेश्वरी भवानी उडती है; तैसे उडी, अरु आकाशविषे स्थित होकरि देखा जो राजा चला जाता है, तब राणीके मनविषे आया जो इसका मार्ग रोकौं, बहुरि एक क्षणमात्र स्थित होकरि भविष्यतकों विचारणे लगी, जो राजा अरु मेरा संयोग नीतिविषे कैसे रचा है, तब देखत भई जो राजा अरु मेरा मिलाप होणेविषे बहुत काल रहता है, अरु अवश्य मिलाप होणा है, मेरे उसकों उपदेशकरि जगावणा है, परंतु केतेक काल उपरांत अब इसीके कषाय परिपक्क नहीं, तातें अब राजाका मार्ग नहीं रोकणा, तब राणी बहुरि अपणे घर आई, अरु शय्यापर शयन किया, अरु बडी प्रसन्नताकों प्राप्त भई, जब रात्र व्यतीत भई, तब मंत्रीकों कहणे लगी जो राजा एक तीर्थ पर्सणे गया है, दर्शन करिके बहुरि आवैगा, ऐसे मंत्री अरु प्रजाकों कहा, बहुरि मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे कार्यविषे वर्तो तब मंत्री अपणी चेष्टाविषे वर्तणे लगे, इसी प्रकार राणीनें अष्ट वर्षपर्यंत राज्य किया, अरु प्रजाकों सुख दिया, जैसे बागवान् कमलोंके क्यारेकों सुखी पालता है तैसे राणीनें प्रजाकों सुख दिया, अरु उहां राजाकों अष्ट वर्ष तप करते व्यतीत भये हैं, अरु राजाके अंग दुर्बल हो गये, अरु उहां राणीनें राज्य किया, जैसे

भंवरा अवर ठौर होवै, तैसे इनकों व्यतीत भया, और और ठौरविषे, तब राणीनें विचार किया, जो राजा अब मेरे वचनोंका अधिकारि भया है, अंतःकरण राजाका तप करिके शुद्ध हुआ है, अब राजाकों देखियें, तब राणी उडी आकाशकों गई, अरु नंदवन इंद्रका है सो देख्या, उहांके जो दिव्य पवन हैं, तिनका स्पर्श हुआ, तब राणीके चित्तविषे आया, जो मेरे तांई भर्त्ता कब मिलैगा, बहुरि कहणे लगी जो बडा आश्चर्य है, मैं तौ सत्पदकों प्राप्त भई थी, तौ भी मेरा मन चलायमान भया है, तातें इतर जीवकी क्या कहणी है, तब उहांतें चली, आगे कमल फूल देखे, देखिकरि कहणे लगी, जो मेरे तांई यह भर्त्ता कब मिलैगा, जिस करि भर्त्ताकों पाइता है, मैं कामातुर भई हौं, बहुरि मनकों कहणे लगी॥ हे दुष्ट मन! तूं तौ सत्पदकों प्राप्त भया था, तेरा भर्त्ता आत्मा है, अब तूं मिथ्या पदार्थोंकी अभिलाषा काहेकों करता है, बहुरि कहणे लगी, जबलग देह है, तबलग देहके स्वभाव भी साथ रहते हैं; जो मेरे तांई यह अवस्था प्राप्त भई है, तौ भी मन चलायमान होता है, तातें इतर जीवकी क्या वार्त्ता करणी है, तब राणी मेघके स्थानोंकों लंघी अरु महाबिजलीके स्थान लंघे, बडे पर्वत अरु नदियांकों लंघी, समुद्र भयानक स्थानोंकों लंघी, अरु मंदराचल पर्वतकेपास वनविषे आनि स्थित भई, अरु कहणे लगी, जो मेरा भर्त्ता कहां है, बहुरि समाधिविषे स्थित होकरि देखा जो अमके स्थानमें बैठा है, तप करिके अंग महादुर्बल हो गये हैं, अरु ऐसे स्थानविषे प्राप्त भया है, जहां अवर जीवकी गम नहीं, अरु महावैतालकी नांई रात्रिकों चला आया है, तातें अज्ञान महादुष्ट है, जो ऐसा राजा तपकों लगा है, स्वरूपके प्रमाद करिके जड है, अब ऐसे होवै, जो किसी प्रकार अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवै, परंतु मेरे इस शरीर करिके ज्ञान इसकों न उपजैगा, काहेतें जो राजाकों प्रथम यह अभिमान होवैगा, जो मेरी स्त्री है, अरु बहुरि कहैगा, मैं इसहीके निमित्त राज्य छोडा है, बहुरि मेरे तांई दुःख देणेकों आई है, तातें अवर शरीर ब्रह्मचारिका धारौं ऐसे विचार करिके शीघ्र

ही ब्रह्मचारिका शरीर धारत भई, जैसे जलका तरंग एक स्वरूपकों छोडता है, अरु अवर हो जाता है, तैसे महासुंदर शरीरकों धारिकरि एक ग्रिंठ पृथ्वीतें ऊपर चलणे लगी, अरु हाथविषे रुद्राक्षकी माला अरु कमंडलुकों धारै, अरु मृगछालाकों धारै, अरु मस्तकपर विभूति लगाई, जैसे सदाशिवके मस्तकपर चंद्रमा विराजता है, तैसे सुंदर विभूतिकों लगाया, अरु श्वेतही यज्ञोपवीतकों पाया, ऐसा चिन्ह धारिकरि चली, तब राजा देखिकरि आगेतें उठि खडा हुआ, अरु नमस्कार किया, फूल चरणोंपर चडाये, अरु अपणे स्थानपर बैठाया, अरु कहणे लगा ॥ हे देवपुत्र! आज मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा दर्शन भया ॥ हे देवपुत्र! तुमारा आवणा कैसे हुआ? ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन्! हम बडे बडे पर्वत देखते आये हैं, अरु तीर्थ करते आये हैं, परंतु जैसी भावना तेरेविषे देखी है, तैसी किसीविषे नहीं देखी ॥ हे राजन्! तुझनें बडा तप किया है, अरु तूं इंद्रियजित दृष्टि आवता है, अरु मैं जानता हौं, जो तेरा तप खड्गकी धारा जैसा तीक्ष्ण है, तातें तूं धन्य है, तेरे तांई नमस्कार है ॥ परंतु हे राजन्! आत्मयोगके निमित्त भी कछु तप किया है, अथवा नहीं किया, सो कहु॥ तब राजानें जो फूलकी माला देवपूजनके निमित्त रखी थी सो देवपुत्रके गले पाई, अरु पूजा करी बहुरि कहा ॥ हे देवपुत्र! तुमसारखेका दर्शन दुर्लभ है, अरु अतिथिका पूजन देवतातें भी अधिक है ॥ हे देवपुत्र! तेरे अंग बहुत सुंदर दृष्ट आवते हैं, ऐसेही मेरी स्त्रीके अंग थे, नखशिखपर्यंत तेरे उही अंग दृष्ट आते हैं, परंतु तूं तो तपसी है, तेरी मूर्ति शांतिके लिये हुई है, मैं कैसे कहौं जो उही है ॥ तातें हे देवपुत्र! कहु जो तूं पुत्र किसका है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, अरु आगे कहा जावैगा, यह संशय मेरा निवृत्त करौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! एक समय नारद मुनि सुमेरु पर्वतकी कंदराविषे आया था, सो महासुंदर कंदरा है, जहां आश्चर्यके वृक्ष अरु मंजरियां फूलफलसाथ सब पूर्ण हैं, ब्राह्मणोंकी कुटी तहां बणी हुई हैं, तिस स्थानकों देखीकरि ब्रह्मवेत्ता नारद मुनि समाधि लगाय बै

ठा, अरु गंगाका प्रवाह चलता है, जहां सिद्धोंकी गम है, अवर जीवोंकी गम नहीं, तब केताक काल समाधिविषे स्थित रहा, जब समाधितें उतऱ्या, तब भूषणका शब्द हुआ, तब नारदजीके मनविषे महाआश्चर्य हुआ, जो इहां तौ आवणेकी गम किसीकी नहीं, यह भूषणोंका शब्द कहांतें आया, तब उठीकरि देखणे लगा, जो गंगाका प्रवाह चला आवता है, तहां उर्वशी आदिक अप्सरा स्नान करतियां हैं, वस्त्रों कों उतारे हुए महासुंदर हैं, जब उनकों देख्या, तब नारदजीका विवेक आवरण भया, अरु वीर्य चल्या, तिसके पास सुंदर वल्ली थी, तिसके पत्रपर जाय स्थित भया, चंद्रमाकी नांई उज्ज्वल इस प्रकार सुणीकरि शिखरध्वज कहत भया ॥ हे देवपुत्र! ऐसा ब्रह्मवेत्ता नारदमुनि सर्वज्ञ अरु बडा मननशील तिसका वीर्य किसनिमित्त चल्या, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जबलग शरीर है, तबलग अज्ञानीका अरु ज्ञानीका भी शरीरस्वभाव निवृत्त नहीं होता, परंतु एक भेद है, जब ज्ञानवान्कों दुःख आय प्राप्त होता है, तब दुःख नहीं मानता, अरु जब सुख आय प्राप्त होता है, तब सुख नहीं मानता, हर्षवान् नहीं होता, अरु जब अज्ञानीकों दुःखसुख आय प्राप्त होता है, तब हर्षशोक करता है, जैसे श्वेत वस्त्रपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, तैसे अज्ञानीकों दुःखसुखका रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु जैसे सोमके वस्त्रकों जलका स्पर्श नहीं होता है, तैसेही ज्ञानवान्कों दुःखसुखका स्पर्श नहीं होता अरु जिसके अंतःकरणरूपी वस्त्रकों ज्ञानरूपी मोम नहीं चढी, तिसकों दुःखसुखरूपी जलस्पर्शकरि जाता है, अरु ज्ञानवान् मेणवत् है, उनके अंतःकरणकों दुःखसुख नहीं होता, अज्ञानीकों होता है, जो दुःखकी नाडी भिन्न है, अरु सुखकी नाडी भिन्न है, जब सुखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब दुःख कोउ नहीं देखता, जब दुःखकी नाडीविषे स्थित होता है, तब सुख नहीं देखता, अज्ञानीकों कोउ दुःखका, कोउ सुखका स्थान है, अरु ज्ञानीकों एक आभासमात्र दिखाई देता है, बंधमान नहीं होता, जबलग इसकों ज्ञानका संबंध है, तबलग दुःख निवृत्त

नहीं होता, तब राजानें कहा, वीर्य जो गिरता है, सो वीर्य कैसे निवृत्त होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब इसका चित्त वासना करिके क्षोभवान् होता है, तब नाडी भी क्षोभ करतियां है, अरु अपणे स्थानोंकों त्यागणे लगतियां हैं, तब वीर्यवाली नाडीतें स्वाभाविकही वीर्य नीचेकों चला आवता है, बहुरि राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! स्वाभाविक क्या कहियें, देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! आदि परमात्मशुद्ध चेतनविषे जो फुरणा हुआ है, तिस क्षणमात्र शक्तिके उत्थानकरि आगे प्रपंच बनि गया है, तिसविषे आदि नीति हुइ है, जो यह घट है, यह पट है, यह अग्नि है, इसविषे उष्णता है, यह जल है, इसविषे शीतलता है, तैसेही नीति है, जो वीर्य उपरतें नीचेकों आवता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरता है, सो नीचेकों चला आता है, तैसे वीर्य भी नीचेकों आता है, तब राजानें प्रश्न किया ॥ हे देवपुत्र ! इसकों दुःख कैसे होता है, अरु सुख कैसे होता है, अरु दुःखसुखका अभाव कैसे होता है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन् ! जब यह जीव कुंडलनी शक्तिविषे स्थित होता है, अरु दृश्य जो है, चार अंतःकरण, अरु इंद्रियां देह तिनविषे अभिमान करिके दुःखी सुखी होता है, इनके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इनके सुखसाथ सुखी होता है, जैसा जैसा आगे प्रतिबिंब होता है, तैसा तैसा दुःखसुख भासता है, जैसे शुद्ध मणीविषे प्रतिबिंब पडता है, सो अज्ञान करिके भासता है, ज्ञान करिके इनका अभाव हो जाता है, अरु जब तिसकों ज्ञानरूपका आवरण करिके आगे पडल होत है, तब प्रतिबिंब नहीं पडता, ज्ञान कहियें जो देहादिकके अभिमानतें रहित होणा, जो न देहादिक हैं, अरु न मैं इनकरि कछु करता हौं, जब ऐसे निश्चय होवै, तब दुःखसुखका भान नहीं होता, काहेतें जो संसारका दुःखसुख इसकी भावनाविषे होता है, जब वासनातें रहित हुआ, तब दुःखसुख भी सब नष्ट हो जाते हैं, जैसे जब वृक्षही जलि जाता है, तब पत्र फूल फल कहां रहै, तैसे अज्ञानरूप वासनाके दग्ध हुए, दुःखसुख कहां रहैं ? बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन् ! तुमारे वचन श्रवण करते हुए मैं तृप्त नहीं होता, जैसे मेघका शब्द सुणते मोर

तृप्त नहीं होता, तातें कहौ, जो तुमारी उत्पत्ति कैसे भई, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो कोउ प्रश्न करता है, तब बडे तिसका निरादर नहीं करते, तातें तूं जो पूछता है, सो मैं कहता हौं ॥ हे राजर्षि! उह वीर्य था सो नारदमुनिनें एक मटकीविषे पाया, अरु उह कैसी मटकी थी स्वर्णवत् जिसका उज्ज्वल चमत्कार, तिसविषे वीर्य पायकरि तिसके उपर दूध पाया, अरु उपर उसके दूध पाया, मटकीकों पूर्ण किया, अरु वीर्यकों एक कोणकी उर किया, बहुरि मंत्रोंका उच्चार किया, अरु आहुति किये, भली प्रकार पूजन किया, जब एक मास व्यतीत भया, तब मटकीतें बालक प्रगट हुआ, सो कैसा बालक, जैसा चंद्रमा क्षीर समुद्रतें निकसा है, तिस बालककों लेकरि नारद आकाशकों उडता भया, तब नारदका जो पिता है ब्रह्माजी, तिसके पास ले आया, अरु आयकरि नमस्कार किया, तब बालककों पितामहनें गोदविषे बैठाया, अरु आशीर्वाद किया, जो तूं सर्वज्ञ होवैगा, अरु शीघ्रही अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवैगा, अरु कुंभतें जो उपजा बालक है, तिसका नाम भी कुंभ राखा, सो कुंभ सर्वज्ञ मैं हौं, नारदजीका पुत्र अरु ब्रह्माजीका पौत्रा हौं, सरस्वती मेरी माता है, गायत्री मेरी मासी है, मेरे तांई सर्व ज्ञान है, तब राजानें कहा, हे देवपुत्र! तुम सर्वज्ञ दृष्ट आते हौ, तुमारे वचनोंकरि मैं जानता हौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! जो तुम पूछा सो मैं कहा, अब कहु जो तूं कवन है, अरु इहां कर्म क्या करता है, अरु इहां किसनिमित्त आया है, तब राजानें कहा ॥ हे देवपुत्र! आज मेरे बडे भाग्य उदय हुए हैं, जो तुमारा दर्शन भया है, तुमारा दर्शन बडे भाग्यसों प्राप्त होता है, यज्ञ अरु तपतें तुमारा दर्शन श्रेष्ठ है, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! अपना वृत्तांत कहु, जो तूं कवन है, राजानें कहा, हे देवपुत्र! मैं राजा हौं, अरु शिखरध्वज मेरा नाम है, अरु राज्यका मैंनें त्याग किया है, जो मेरे तांई संसार दुःखदायक भास्या, तिसके भयकरि त्याग किया, वारंवार जन्म अरु मृत्यु संसारविषे दृष्ट आता है, तातें राज्यका त्यागकरि इहां तप करणे लगा हौं, तुम त्रिकालज्ञ हौ, अरु जान

ते हौ, तथापि तुमारे पूछणेकरि कछु कहा चहिये, मैं त्रिकाल संध्या करता हौं, अरु जाप करता हौं, तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, सोइ उपाय कहौ ॥ हे देवपुत्र! मैं तीर्थ बहुत फिर्या हौं, बहुत देश स्थान फिर्या हौं, अब इसी वनविषे आनि बैठा हौं तौ भी मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, तातें जिसकरि मेरे दुःख निवृत्त होवैं, अरु शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजर्षि! तैनें राज्यका त्याग किया, अरु बहुरि तपरूपी टोयेविषे आय पडा है, यह तैनें क्या किया है, जैसे पृथ्वीका कृम बहुरि पृथ्वीविषे रहता है, तैसे तूं एक टोयेकों त्यागिकरि बहुरि दूसरे टोयेविषे आइ पडा है, अरु जिस निमित्त राज्यत्याग किया, तिसकों न जानत भया, अरु इहां आयकरि एक लाठी अरु मृगछाला अरु फूल राखे, इनकरि तौ शांति नहीं प्राप्त होती, तातें अपने स्वरूपविषे जाग, जब स्वरूपविषे जागैगा, तब दुःख सब निवृत्त होवैंगे, इसी पर एक समय ब्रह्माजीसों मैंनें प्रश्न किया था, जो हे पितामहजी! कर्म श्रेष्ठ है, अथवा ज्ञान श्रेष्ठ है, दोनोंविषे क्या श्रेष्ठ है, जो मुझकों कर्तव्य है, सो कहौ, तब पितामहनें कहा, ज्ञानके पायेतें दुःख कोउ नहीं रहता, सर्व आनंदका आनंद ज्ञान है, तिसतें आगे आनंद कोउ नहीं, अरु अज्ञानीकों कर्म श्रेष्ठ हैं, क्यौं जो पापकर्म करैंगे, तब नरककों प्राप्त होवैंगे, तातें तप दान करणेतें स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तौ भी अज्ञानीकों श्रेष्ठ है, जो नरक भोगणेतें स्वर्ग विशेष है, जैसे कंबलतें पटका वस्त्र श्रेष्ठ है, परंतु पटका न पाइयें तब कंबल भी भला है, तैसे ज्ञान पटकी नांई है, अरु तप कर्म कंबलकी नांई है, कर्मकरि शांति नहीं प्राप्त होती ॥ तातें हे राजन्! तूं काहेकों इस टोयेविषे पडा है, आगे राज्यवासी था, अब वनवासी भया, तातें यह क्या किया है, जो अज्ञानविषे पडा रहा है, मूर्खताके वश पडा है, जबलग तेरे तांई क्रियाभान होता है, जो मैं यह करौं, तबलग प्रमाद है, इसकरि दुःख निवृत्त न होवैंगे, तातें निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे जाग, निर्वासनिक होणाही मुक्ति है, अरु वासना

सहितही बंधन है, पुरुषप्रयत्न यही है, जो निर्वासनिक होणा, जबलग वासनासहित है, तबलग अज्ञानी है, जब निर्वासनिक होवै, तब ज्ञेयरूप है, निर्वासनिक कहिये सदा ज्ञेयकी भावना करणी, अरु ज्ञेय कहिये आत्मस्वरूप तिसकों जाणीकरि बहुरि इच्छा कोउ न रहै, केवल चिन्मात्र पदविषे स्थित होणा, इसीका नाम ज्ञेय है, जो जाणने योग्य है, सो जाण्या, तब अवर वासना नहीं रहती, केवल स्वच्छ आपही होता है॥ हे राजन्! तैनें अपणे स्वरूपकों जानणा था, तूं अवर जंजालविषे किसनिमित्त पडा है, आत्मज्ञान विना अवर अनेक यत्न करै, तौ भी शांति न प्राप्त होवैगी, जैसे पवनतें रहित वृक्ष शांतरूप होता है, जब पवन होता है, तब क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे जब वासना निवृत्त होवैगी, तब शांत पद प्राप्त होवैगा, अरु क्षोभ कोउ न रहैगा, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया ॥ हे भगवन्! तुम मेरे पिता हौ, अरु तुमही गुरु हौ, अरु, तुमही कृतार्थकरणेहारे हौ, मैं वासना करिके बडा दुःख पाया है, जैसे किसी वृक्षके पत्र टास फूल फल सूकि जावैं, अरु एकला ठूंठ रहि जावै, तैसे ज्ञानविना मैं भी ठूंठेसा हो रहा हौं, तातें कृपाकरि मेरे तांई शांतिकों प्राप्त करौं, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! तैनें त्याग करिके संतका संग करणा था, अरु यह प्रश्न करणा था, जो हे भगवन्! बंध क्या है, अरु मोक्ष क्या है, अरु मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, अरु संसारकी उत्पत्ति किसकरि होती है, अरुलीन कैसे होता है, तैनें यह क्या किया है, जो संतविना ठूंठ वनका आयकरि सेवन किया है, अब तूं संतजनकों प्राप्त होकरि निर्वासनिक होउ, ऐसे ब्रह्मादिकनें भी कहा है, जो जब निर्वासनिक होता है, तब सुखी होता है, बहुरि राजानें कहा॥ हे भगवन्! तुमही संत हौ, अरु तुमही मेरे गुरु हौ, अरु तुमही मेरे पिता हौ, जिसप्रकार मेरे तांई शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब कुंभनें कहा॥ हे राजन्! मैं तेरे तांई उपदेश करता हौं, तूं हृदयविषे धारि लेहु, अरु जो तूं हृदयविषे धारै नहीं, तौ मेरे कहणेकरि क्या होता है, जैसे टासपर कउआ होवै, अरु शब्द भी श्रवण करै, तौ भी अपणे कउए स्व

भावकों नहीं छांडता, तैसे जो तूं भी कउएकी नांई होवै, तौ मेरे कहणेका क्या प्रयोजन है, अरु जैसे तोते पक्षीकों जो कहता है सो ग्रहण करता है, तातें तोते पक्षीकी नांई होउ, तब शिखरध्वजनें कहा ॥ हे भगवन्! जो तुम आज्ञा करौगे सो मैं करौंगा, जैसे शास्त्रवेदके कहे कर्म करता हौं, तैसेही तुमारा कहणा करौंगा, यह मेरा नियम है, जो तुम आज्ञा करौ सो मैं करौंगा, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! प्रथम तौ तूं ऐसे निश्चय कर, जो मेरा कल्याण इन वचनोंसों होवैगा, अरु ऐसे जाण, जो पितापुत्रकों कहता है सो शुभही कहता है, तैसे मैं जो तेरे तांई कहौंगा, सो शुभही कहौंगा, अरु तेरा कल्याण होवैगा, तातें निश्चय जाण, जो इन वचनोंकरि मेरा कल्याण होवैगा, तातें एक आख्यान आगे व्यतीत भया है सो श्रवण करु, एक पंडित था, सो धन अरु गुणकरि संपन्न था, अरु सर्वदा चिंतामणि पावणेकी इच्छा करता था, जैसे शास्त्रकरि उपाय कहे, तैसेही उपाय करता था, जब केताक काल व्यतीत भया, तब जैसे चंद्रमाका प्रकाश होता है, तैसे प्रकाशवान चिंतामणि आय प्राप्त भया, ऐसे निकट जाना, जो हाथकरि उठाई लीजै, जैसे उदयाचल पर्वतके निकट चंद्रमा उदय होता है, तैसे चिंतामणि निकट आय प्राप्त भया, तब पंडितके मनविषे विचार हुआ, जो यह चिंतामणि है, अथवा कछु और है, जो चिंतामणि होवै, तौ उठाइ लेहुं, जो चिंतामणि न होवै, तौ किसनिमित्त पकडौं, बहुरि कहै, पकडी लेता हौं, मणिही होवैगा, तब मणि न होवै क्या पकडौं, यह मणि नहीं, काहेतें जो मणि बडे यत्नकरि प्राप्त होता है, मेरे तांई सुखेन क्या प्राप्त होणा है, इसतें जाणीता है, जो चिंतामणि नहीं, जो सुखेन प्राप्त होता होवै, तौ सब लोक धनी हो जावैं, परंतु सुखेन नहीं पाइता, तातें यह चिंतामणि नहीं; जब ऐसे संकल्पविकल्पकरि पंडित विचार करणे लगा, अरु इसीकरि तिसका चित्त आवरण भया, तब मणि छपन हो गया, काहेतें जो सिद्धि है, तिनका मान आदर न करियें तौ उलटा शाप देती हैं, जिस वस्तुका आवाहन करता है, तिसका पूजन न करियें तौ त्याग जाती है,

अरु शाप देती है, जब उह चिंतामणि अंतर्धान हो गई, तब उह बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो चिंतामणि मेरे पासतें निवृत्त हो गई, अरु बहुरि यत्न करने लगा, जब बहुरि उपाय किया, तब काचकी मणि किसी हासीकरि तिसके आगे दोडि गई, सो तिसके पास आय पडी, उसकों देखत भया, देखीकरि कहणे लगा, जो इह चिंतामणि है, तब उसकों उठाय लीनी, लेकरि अपणे घर आया, अबोधके वशतें उसकों चिंतामणि जानत भया, जैसे मोहकरि असत्कों सत् जानता है, अरु रज्जुकों सर्प जानता है, अरु जैसे दो चंद्रमा अरु शत्रुकों मित्र अरु विषकों अमृतरूप जानता है, तैसे उह काचकों चिंतामणि जानत भया, अरु जेता कछु अपना धन था, सो लुटाय दिया, अरु कुटुंबका त्याग किया, कहणे लगा, जो मेरे तांई चिंतामणि प्राप्त भई है, अब कुटुंबसाथ क्या प्रयोजन है, अरु घरतें निकसिकरि वनकों गया, वनविषे जाय बडे दुःखकों प्राप्त भया, जो काचकी मणिसाथ कछु प्रयोजन सिद्ध न हुआ, तैसे हे राजन्! जो विद्यमान वस्तु होवै, तिसकों मूर्ख त्यागते हैं, तिसका माहात्म्य नहीं जाणते, अरु नहीं पावते ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिवृत्तांतवर्णनं नाम नवषष्टितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ ॥ ॥ देवपुत्र उवाच ॥ हे राजन्! इसी पर एक अवर आख्यान कहता हों, सो श्रवण करु, मंदराचल पर्वतके वनविषे एक हस्ती रहता था, सो सर्व हस्तीका राजा था, कैसा था सो मानों मंदराचल पर्वत है, जिसकों अगस्त मुनिनें रोक्या था! ऐसा जो मंदराचल पर्वत है, तिसविषे रहता था, अरु जिसके बडे दंत हैं, इंद्रके वज्रकी नांई तीक्ष्ण हैं, बडा बलवान अरु प्रकाशवान, जैसे प्रलयकालकी वडवाग्नि होती है, ऐसा प्रकाशवान अरु बलवान ऐसा जो सुमेरु पर्वतकों दंतसाथ उठावै, तिस हस्तीकों महावतनें बल छल करिके बांधा, जैसे बलि राजाकों विष्णु भगवाननें बांधा, तैसे लोहकी संकरसों हस्तिकों पाय, अरु आप महावत जो निकट वृक्ष था, तिसपर चढि बैठा, किसनिमित्त बैठा था, जो कुंदकरि हस्तीके ऊपर चढि बैठौं, अरु हस्ती संकर

करि महाकष्टकों प्राप्त भया, कैसे दुःखकों प्राप्त भया, जो वाणीकरि कह्या नहीं जाता, जब ऐसा दुःख पाया तब हस्तिके मनविषे विचार उपजा, जो अब मैं बलसाथ संकर न तौडौंगा, तौ कब छूटौंगा, तिन संकरकों बल करिके तोडि दिया, अरु वृक्षपर जो महावत बेठा था, सो गिर्या, सो हस्तिके चरणों आगे आय पडा, अरु भयकों प्राप्त भया, जैसे फल पवनकरि गिर पडता है, तैसे महावत भयकरि गिर पडा, जब इस प्रकार महावत गिऱ्या, तब हस्तिनें विचार किया, जो यह मृतकसमान है, तातें मुएकों क्या मारणा है, यद्यपि मेरा शत्रु है, तौ भी मैं नहीं मारता, इसके मारणेकरि मेरा क्या पुरुषार्थ सिद्ध होता है, तातें मैं नहीं मारता ॥ हे राजन् ! जब ऐसे दयाकरि हस्तिनें महावतकों न मारा, जो पशुयोनिविषे भी दया मुख्य है, तब महावतकों छांडीकरि हस्ती वनविषे चला, जैसे बंधकों पाणी तोडीकरि वेगसाथ चलता है, तैसे संकरकों तोडीकरि हस्ती वनकों गया, जैसे स्वर्गके द्वारे तोडीकरि दैत्य जाय प्रवेश करते हैं, तैसे संकरकों तोडीकरि हस्ती वनविषे जाय प्रवेश किया, अरु हस्तिकों गया देखि महावत जो पडा था सो उठी बैठा, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित भया, बहुरि हस्तिके पाछे चला, अरु हस्तिकों खोजि लिया, जैसे चंद्रमाकों राहु खोजि लेता है, तैसे वनविषे हस्तिकों खोजि लिया, देखा जो वृक्षके तले सोया पडा हैः जैसे संग्रामकों सूरमा जीतिकरि निचिंत होता है, तैसे हस्तिकों निचिंत सोया पडा देखा, जो संकरकों तोडिकरि आय सोया है, तब महावतनें विचार किया जो इसकों वश करियें अरु यही उपाय करत भया, जो बेलेके चउफेर खाइकरि, जैसे ब्रह्मानें विश्वकों उत्पन्न करिके पृथ्वीके चउफेर समुद्रचक्र किया है, तैसे बेलेके चउफेर खाइका चक्र करि लिया, अरु खाइके पर कछु तृण घास पाया, जैसे शरत्कालके आकाशविषे बादल देखणे मात्र होता है, तैसे तृण घास खाइ ऊपर देखणे मात्र दृष्ट आवैं, अरु बीच खाईकरि, तब एक समय हस्ती उठीकरि चल्या, अरु खाइके बीच गिर पडा, जब गिर पडा तब महावत हस्तिके निकट आया, अरु

संकरोंसाथ बांधा, जैसे दैत्य छल करिके देवताकों वश करते हैं, जैसे अगस्त्यमुनिनें छल करिके मंदराचलकों रोकि छोडा था, तैसे हस्तिकों महावतनें वश किया, अरु हस्ति गिर पडा, जैसे सूके समुद्रविषे पर्वत गिर पडता है, तैसे खाड्डविषे हस्ती गिर पडा, अरु बडे दुःखकों प्राप्त हुआ, जो अब तप वनविषे पडा दुःख पावता है, काहेतें जो भविष्यका विचार न किया, अज्ञानीकों भविष्यकता विचार नहीं, इसीतें दुःख पावता हैं, वर्तमानकालविषे विचार नहीं करता, जो आगे क्या होणा है, इसीतें अज्ञानी हस्ती दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे राजन्! यह जो आख्यान तेरे तांई मैं श्रवण कराये हैं, एक मणिका, एक हस्तिका, तिनकों जब तूं समझैगा, तब आगे मैं, उपदेश करौंगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्त्याख्यानवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब देवपुत्रनें ऐसे कहा तब राजा कहत भया॥ हे देवपुत्र ! यह दो आख्यान तुमनें कहे हैं सो तुम जानते हौ, मैं तौ कछु नहीं समझा, तातें खोलिकरि तुमही कहौ, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! तूं शास्त्रके अर्थविषे तौ बहुत चतुर है, सब अर्थका ज्ञाता है, परंतु स्वरूपविषे तेरे तांई स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पर्वत नहीं ठहरता, तातें जो वचन मैं कहता हौं, सो बुद्धिकरि ग्रहण करु, जो हस्ती क्या है, अरु चिंतामणि क्या है, प्रथम जो सर्व त्याग तैंनें किया था, सो चिंतामणि थी, तिसके निकट तूं प्राप्त होकरि सुखी भया, जब तिसकों तूं अपणे पास राखता, तब दुःख सब निवृत्त हो जाते, सो मणिकों तैंनें निरादर किया, जो तिसकों त्याग्या, अरु काचकी मणि तप क्रियाकों प्राप्त भया, सो दरिद्रीही रहा ॥ हे राजन्! सर्वत्यागरूपी चिंतामणि थी, अरु यह क्रियाका आरंभ काचकी मणि है, सो तैंनें ग्रहण करी, तिसतें दारिद्यकी निवृत्ति नहीं होती, दुःखीही रहता, त्यागरूपी चिंतामणिका आवाहन था, अरु क्रियारंभ तिसका अनादर है ॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंनें नहीं किया, किया भी था परंतु कछुक रहता था, तिसके रहणेतें बहुरि विस्तारकों प्राप्त

भया, जैसे बडा बादल वायुकरि क्षीण होता है, अरु सूक्ष्म रहि जाता है, अरु पवनके रहेतें बहुरि विस्तारकों पावता है, अरु सूर्यकों छिपाय लेता है, सो बादल क्या है, अरु सूर्य क्या है, अरु थोडा रहणा क्या है सो सुण, स्त्रियां अरु कुटुंबतें आदि त्याग किया, अरु अहंकार इनविषे करणा सो बडा बादल है, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि राज्य अरु कुटुंबका अहंकाररूपी बडा बादल निवृत्त हुआ अरु देहादिकविषे जो अहंकार रहा सो सूक्ष्म बादल रहा, सो बहुरि वृद्ध होगया, जो अनात्म अभिमान करिके क्रियाका आरंभ किया, इस करिके आत्मारूपी सूर्य जो अपणा आप है, सो अहंकाररूपी बादलकरि आच्छाद्या गया, ज्ञानरूपी चिंतामणि ज्ञानरूपी काचकी मणि करिके जैसे छपन भई, जब ज्ञान करिके आत्माकों जाणैगा, तब आत्मा प्रकाशैगा, अन्यथा न भासैगा, जैसे कोउ पुरुष घोडेपर चढिके दउडावता है, तिसकी वृत्ति घोडेविषे होती है, तैसे जिस पुरुषका आत्माविषे दृढ निश्चय होता है, तिसकों आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता है ॥ हे राजन्! आत्माका पावणा सुगम है, जो सुखेनही पाइता है, अरु बडे आनंदकी प्राप्ति होती है, अरु तपादिक क्रिया जो हैं, तिसकों कष्टकरि सिद्धि होता है, अरु स्वरूपसुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे राजन्! मैं जानता हौं, तूं मूर्ख नहीं, शास्त्रोंका ज्ञाता है, अरु बहुत चतुर है, तथापि तेरे तांई स्वरूपविषे स्थिति नहीं, जैसे आकाशविषे पत्थर नहीं ठहरता, तातें मैं उपदेश करता हौं, तिसकों ग्रहण करु, तेरे दुःख निवृत्त हो जावैंगे, अरु पाछे जो राज्यका त्याग आया है, जैसे ब्रह्माकी रात्रविषे संसारका अभाव हो जाता है, तैसे त्याग किया था ॥ हे राजन्! यह सर्वतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, तैंनें जो तपक्रियाका आरंभ किया है, अरु तिसका जो फल जाण्या है, तिस ज्ञानतें श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, अरु कहता हौं, जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! चिंतामणिका तात्पर्य संपूर्ण तेरे तांई कहा, अब हस्तिका वृत्तांत जो आश्चर्यरूप है, सो श्रवण करु, जिसके समझणेकरि अज्ञान निवृत्त हो जावैगा, मंदराचलका हस्ती

सो तूं है, अरु महावत तेरे तांई अज्ञानता है, इस अज्ञानरूपी महावतनें तेरेकों बांधा है, अरु हस्ती जो संकलहुंसाथ बांधा था, सो आशारूपी संकलोंकरि बांधा था, अरु संकलतें भी तूं अधिक बाधा है, जो संकल तौ घसते भी हैं, अरु आशारूपी फांसी घटती नहीं, दिन दिन बढती जाती है ॥ हे राजन्! आशारूपी फांसी करिके तूं महादुःखी है, अरु जो हस्तीके बडे दंत थे, जिसकरि संकलोंकों तोडा था, सो तेरे दंत विवेक अरु वैराग्य हैं, जो तैंनें विचार किया, मैं बल करिके छूटौं, अरु राज्य कुटुंब पृथ्वीका त्यागकरि आया, अरु फांसीकों काट्या, तब आशारूपी रसे काटे, अज्ञानरूपी महावत् भयकों प्राप्त भया, अरु तेरे चरणोंके तले आय पडा, जैसे वृक्ष ऊपर वैताल रहता है, अरु कोउ वृक्षकों काटणे आवता है, तब वैताल भयकों प्राप्त होता है, तैसेही तैंनें वैराग्य अरु विवेकरूपी दंतहूं करिके आशाके फांस काटे तब अज्ञानरूपी महावत गिर्या, अरु तैंनें एक घाउ लगाया, परंतु मारि न डारा तब महावत तुझतें भागि गया, जैसे वृक्षपर वैताल रहता है, वृक्षकों कोऊ काटणे लगता है, तब वैताल भागि जाता है ॥ हे राजन्! तैसे वृक्षकों तैंनें काट्या, वैराग्यरूपी शस्त्र करिके तब अज्ञानरूपी वैताल भागा, अरु मूर्खता करिके तिसकों तैंनें न मारा, तिसकों छांडीकरि तूं वनविषे गया, जब तूं वनविषे आया, तब अज्ञानरूपी महावत तेरे पाछे चला आया, आयकरि तेरे चउफेर खाइ करि जो तपादिक क्रियाका आरंभ किया, तिस खाइविषे तूं गिर पडा, अरु महादुःखकों तूं प्राप्त भया, तब तेरेकों संकलहूंसाथ बहुरि बांधा, अरु देखणे लगा, जो अबतक दुःख पावता है, अरु तूं कैसी खाइविषे गिर्या है, जो अनात्माभिमान करिके इहां तपादिक क्रियाका आरंभ किया है, जो मैं कहाता हौं ऐसी खाइविषे तूं पडा है ॥ हे राजन्! तूं जाणिकरि खाइविषे नहीं पडा, खाइके उपर घास तृण पडा था, छल करिके तूं गिर पडा है, सो छल अरु तृण कवन हैं, तूं श्रवण करु, प्रथम जो अज्ञानरूपी शत्रुकों न मारा अरु संकलोंके भय करिके तूं भागा, जो वन मेरा कल्याण करैगा, संत अरु शास्त्रके वचनोंकों न जान्या, जो ते

रे दुःखकों निवृत्त करही, अरु उन वचनरूपी खाइपर तृणादिक था, मूर्खता करिके तूं गिर्या, जैसे बलि राजा पातालविषे छल करिके बाधा हुआ है, तैसे भविष्यतका विचार किया नहीं, जो अज्ञानशत्रु रहा हुआ मेरा नाश करैगा, तिस विचार विना तूं बहुरि दुःखी हुआ, सर्व त्याग तौ किया परंतु ऐसे न जाना जो मैं अक्रिय हौं, इह क्रियाका आरंभ काहेकों करता हौं, इसीतें तूं बहुरि फांसीसाथ बांधा है ॥ हे राजन्! जो पुरुष इस फांसीतें मुक्त भया, सो मुक्त है, अरु जिसका चित्त अनात्म अभिमानकरि बांधा है, जो यह मेरेकों प्राप्त होवै, तिसकरि दुःखकों पावता है, जिस पुरुषनें वैराग्यविवेकरूपी दंतोंकरि आशारूपी जंजीरकों नहीं काटा, सो कदाचित् सुख नहीं पावता, विवेकतें वैराग्य उत्पन्न होता है, अरु वैराग्यतें विवेक होता है, विवेक कहिये सत्यकों जानणा, अरु असत् देहादिककों असत्य जानणा, जब ऐसे जाण्या तब असत्की उर भावना नहीं जाती, सो वैराग्य हुआ, अरु वैराग्यतें विवेक उपजता है, विवेकतें वैराग्य उपजता है, इन विवेक अरु वैराग्यरूपी दंतकरि आशारूपी संकलकों तोड ॥ हे राजन्! यह हस्तीका वृत्तांत जो तुझकों कहा है, इसके विचार कियेतें मोह तेरा निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! हस्ती बडा बली था, अरु महावत छोटा बली था, तिस अज्ञानरूपी महावतकों मूर्खता करिके न मारा तिस करिके दुःख पावता है, तातें तूं वैराग्यविवेकरूपी दंतकरि आशारूपी फांसीकों तोड, तब दुःख सब मिटि जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हस्तिवृत्तांतवर्णनं नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ ॥ ॥

॥ देवपुत्र उवाच ॥ ॥ हे राजन्! ऐसी जो तेरी स्त्री चूडाला ब्रह्मवेत्ता थी, अरु सर्वज्ञान श्रेष्ठ साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अरु सत्वादी, तिसनें तेरे तांई उपदेश किया; अरु तैंनें तिसके वचनोंका निरादर किस निमित्त किया, मैं तौ सर्व जाणता हौं, जो त्रिकालज्ञ हौं, तौ भी तूं अपणे मुखतें कहू, जो तिसका उपदेश अंगीकार क्यों न किया, एक तौ यह मूर्खता करी, जो उपदेश न अंगीकार किया, अरु दूसरी यह मूर्खता

है, जो सर्व त्याग न करिके बहुरि वन अंगीकार किया, जो सर्व त्याग करता तौ सर्व दुःख मिटि जाते, जब ऐसे देवपुत्रनें कहा, तब राजा कहत भया॥ हे देवपुत्र! मैं तौ सर्व त्याग किया है, स्त्री पृथ्वी मंदिर हस्ती इत्यादिक जो ऐश्वर्य अरु कुटुंब हैं, सो सर्व त्याग किया है, तुम कैसे कहते हो जो त्याग नहीं किया, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! तैंनें क्या त्यागा है, राज्यविषे तेरा क्या था, जैसे ऐश्वर्य आगे था, तैसे अब भी है, अरु स्त्रियां भी जैसे अवर मनुष्य थे, तैसे स्त्रियां थी, तिनविषे तेरा क्या था, जो त्याग किया, पृथ्वी, मंदिर अरु हस्ती जैसे आगे थे, तैसे अब भी हैं, तिनविषे तेरा क्या था जो त्याग किया है॥ हे राजन्! सर्व त्याग तैंनें अब भी नहीं किया, जो तेरा होवै, तिसका तूं त्याग कर, जो निर्दुःख पदकों प्राप्त होवै॥ वसिष्ठ उवाच॥ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब सूर वीर जो इंद्रजित राजा था, सो मनविषे विचारत भया, जो यह वन मेरा है, अरु वृक्ष फूल फल मेरे हैं, इनका त्याग करौं, अरु कहत भया॥ हे देवपुत्र! वन अरु वृक्ष फूल फल टास जो मेरे थे, तिनका मैं त्याग किया, अब तौ सर्व त्याग हुआ क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, जो वन अरु वृक्ष फूल फल तुझतें आगे भी थे, इनविषे तेरा क्या है, जो तेरा है, तिसकों त्याग, तब सुखी होवै॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा, तब राजा मनविषे विचारत भया जो मेरी जलपानकी बावली है, अरु मेरे बगीचे हैं, इनका त्याग करौं, जो सर्व त्याग सिद्ध होवै, अरु कहा॥ हे भगवन्! मेरी यह बावली अरु बगीचे हैं, तिनका त्याग किया, अब तौ मेरा सर्व त्याग सिद्ध हुआ क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा॥ हे राजन्! सर्व त्याग अब भी नहीं भया, जो तेरा है, तिसकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवपुत्रनें कहा तब राजा विचारणे लगा, जो अब मेरी मृगछाला अरु कुटी है, तिसका त्याग करौं, अरु कहा॥ हे देवपुत्र! मेरे पास एक मृगछाला अरु एक कुटी है, तिसका त्याग किया, अब सर्व त्यागी भया

क्यौं? तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! मृगछालाविषे तेरा क्या है, यह तौ मृगकी त्वचा है, अरु कुटीविषे तेरा क्या है, कुटी तौ माटी अरु शिलाकी है, इसकरि तौ सर्व त्याग सिद्ध नहीं होता, जो कछु तेरा है, तिसकों त्यागै तब सर्व त्याग होवै, अरु तूं सर्व दुःखतें रहित होवै ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभनें कहा तब राजानें मनविषे विचार किया, जो अब मेरा एक कमंडलु है, अरु एक माला है, एक लाठी है, इसका त्याग करौं, ऐसे विचार करी राजा शांतिके लिये बोलत भया ॥ हे देवपुत्र! मेरी लाठी अरु कमंडलु अरु एक माला है, तिसका भी त्याग किया, अब मैं सर्व त्यागी भया क्यौं, तब देवपुत्रनें कहा ॥ हे राजन्! कमंडलुविषे तेरा क्या है, कमंडलु तौ वनका तुंबा है, तिसविषे तेरा कछु नहीं, अरु लाठी भी वनके वासकी है, अरु माला भी काष्ठकी है, तिनविषे तेरा क्या है, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जब तिसका त्याग करैगा तब दुःखतें रहित होवैगा ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा शिखरध्वज मनविषे विचारत भया, जो अब मेरा क्या रहता है, तब देखा जो एक आसन रहता है, अरु वासन है, जिसविषे फूल फल राखते हैं, अब इनका त्याग करौं, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! आसन अरु वासन यह मेरे पास रहते हैं, इनका भी त्याग किया, अब तौ सर्व त्यागी भया क्यौं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं भया, आसन तौ भेडकी उनका है, अरु वासन मृत्तिकाके हैं, इनविषे तेरा कछु नहीं, जो कछु तेरा है, तिसका त्याग कर, जो सर्व त्याग होवै, अरु दुःख निवृत्त हो जावै ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, तब राजा उठि खडा हुआ, अरु वनकी लकडी एकठीयां करी, अरु अग्नि लगाई, जब बडी अग्नि लगी, तब लाठीकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे लाठी! मैं तेरेसाथ बहुत देशोंका रटन किया है, परंतु मेरे साथ उपकार कछु न किया, अब मैं कुंभ मुनिकी कृपातें तरौंगा, तेरे नमस्कार है, ऐसे कहिकरि लाठीकों अग्निविषे डारि दिया, बहुरि मृगछालाकों हाथविषे ले

करि कहा ॥ हे मृगकी त्वचा! बहुत काल मैं तेरे उपर आसन किया है, परंतु तुझनें उपकार कछु न किया, अब कुंभ मुनिकी कृपासों मैं तरौंगा, तेरे तांई नमस्कार है, ऐसे कहिकरि मृगाछलाकों अग्निविषे डारि दीनी, बहुरि कमंडलुकों लेकरि कहणे लगा ॥ हे कमंडलु! धन्य है, मैं तेरे तांई धारा, अरु तुझनें मेरे जलकों धारा, तैंनें तुझसाथ, गुण गोप नहीं किया, तौ भी कमंडलुकी जैसे प्रवृत्ति त्यागणी है, तैसे निवृत्तिकी कल्पना भी त्यागणी है, तातें तेरेकों नमस्कार है, तुम जावहु, ऐसे कहीकरि कमंडलु भी अग्निविषे जलाय दिया, बहुरि मालाकों हाथविषे लेकरि कहणे लगा ॥ हे माला! तेरे मणके जो मैं फेरे हैं, सो मानो अपणे मैनें जन्म गिने हैं, तेरे संबंधकरि जाप किया है, अरु दिशा विदिशा गया हौं, अब तेरेकों नमस्कार है, ऐसे कहीकरि मालाकों भी अग्निविषे डारि दीनी, इसी प्रकार फल फूल कुटी आसन सब जलाय दिये, बडी अग्नि जागी, अरु बडा प्रकाश भया, जैसे सुमेरु पर्वतकेपास सूर्य चढै, अरु मणिका भी चमत्कार होवै, तौ बडा प्रकाश होता है, तैसे बडी अग्नि लगी, अरु राजानें संपूर्ण सामग्रीका त्याग किया, जैसे पके फलकों वृक्ष त्यागता है, जैसे पवन चलणेतें ठेरता है, तब धूडतें रहित होता है, तैसे राजा सर्व सामग्रीकों त्यागी निर्विघ्न हुआ, अरु सर्व सामग्री अग्निविषे डारी, अरु अग्निरूप होत भई; जैसे नदियां समुद्रविषे जाय समुद्ररूप होतियां हैं, तैसे सब सामग्री अग्निरूप होत भई ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजसर्वत्यागवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब संपूर्ण सामग्री जलाई, अरु भस्म हो गई, जैसे सदाशिवके गणनें दक्षप्रजापतिके यज्ञकों स्वाहाकरि दिया था, तैसे जेती कछु सामग्री थी, सो सब स्वाहा हो गई अरु वन बडा प्रज्वलित भया, जेते कछु वृक्षके रहणेवाले पक्षि थे, सो भाजि गए, अरु मृग पशु केई आहार करते, केई जुगली करते थे, सब भाजि गये, जैसे पुरकों आग लगेतें पुरवासी भाजि जावैं, तैसे भाजि गये, तब राजा मनविषे विचारत भया, जो अब कुंभकी कृपातें मैं

बडे आनंदकों प्राप्त भया॥ अब दुःख मेरे मिटि गये हैं, जेती कछु वस्तु मनके संकल्पकरि रची थी, जो मेरी हैं सो जलाय दीई, तिसका न मेरे तांई हर्ष है, न शोक है, जेते कछु दुःख होते हैं, सो ममत्वकरि होते हैं, सो मेरा ममत्व अब किसीसाथ नहीं रहता, तातें दुःख भी कोउ नहीं, अब मैं ज्ञानवान भया हौं, अब मेरी जय है, अब निर्मल भया हौं, अरु सर्व त्याग किया है, ऐसे विचार करिके राजा उठि खडा हुआ, हाथ जोडी कहत भया ॥ हे देवपुत्र! अब मैं सर्व त्याग किया है क्यौं, जो आकाशही मेरे वस्त्र हैं, अरु पृथ्वी मेरी शय्या है, जब राजानें ऐसे कहा, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजन्! अब भी सर्व त्याग नहीं किया, जो तेरा है, तिसका त्याग करु, तब दुःख तेरे निवृत्त हो जावहीं, बहुरि राजानें कहा ॥ हे भगवन्! अब तौ अवर मेरेपास कछु नहीं रहता, नागा होकरि तुमारे आगे खडा हौं, अब एक रक्त मांसका देह है इंद्रियाकों धारणहारा, जौ कहौ; तौ इसका भी त्याग करौं, पर्वत उपर जायकरि डारी देऊं, ऐसे कहीकरि राजा पर्वतकों दोड्या, जो देहकों डारि देऊं, तब कुंभ मुनिनें कहा ॥ हे राजा! ऐसे पुण्य देहकों क्यौं त्यागता है, इसके त्यागेतें सर्व त्याग नहीं होता, जिसके त्यागणेतें सर्व त्याग होवै, इसका त्याग करु, इस देहविषे क्या दूषण है, जैसे वृक्षसाथ फूल फल होते हैं, जब वायु चलता है, तब फूल फल गिरते हैं, सो फूल फल गिरनेका कारण वायु है, वृक्षविषे दूषण कछु नहीं, तैसे देहविषे दूषण कछु नहीं, जो देहके पालणेहारा अभिमान है, त्याग तिसका करु, जो सर्व त्याग सिद्धि होवै, अरु देह तौ गुण है, जो कछु इसकों देता है, सोइ लेता है, आगेतें बोलता नहीं, जड है, इसके त्यागतें क्या सिद्धि होता है, जैसे पवनकरि वृक्ष हीलता है, अरु भूकंपकरि पर्वत कंपते हैं, तैसे देह आप कछु नहीं करता, अवरके प्रेरी चेष्टा करता है, जैसे पवनकरि समुद्रविषे तरंग होते हैं, अरु तृणकों जहां जल ले जाता है, तहां चले जाते हैं, तैसे देह आपतें कछु नहीं करता, इसका जो प्रेरनेवाला है, तिसकरि चेष्टा करता है, तातें देहके प्रे

रनेवालेका त्याग करु जो सुखी होवै ॥ हे राजा ! जिसकरि सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है, तिसका त्याग कर, जो तेरे सर्व दुःख मिटि जावें, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन् ! उह कवन है जो सर्व है, अरु जिसविषे सर्व शब्द हैं, अरु जो सर्व उरतें त्यागणे योग्य है ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ ! जिसके त्यागेतें जरा मृत्यु नष्ट हो जावै सो कहौ, तब कुंभनें कहा, हे राजा ! जिसका नाम चित्त है, अरु प्राण है, अरु देह है, ऐसा जो चित्त है, तिसका त्याग कर, अरु बाहर जो नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं, सो चित्तही करि दृष्ट आते हैं, तातें चित्तका त्याग करु ॥ हे राजा ! जैसे सर्प खुदविषे बैठा होवै तौ खुदका दूषण कछु नहीं, विष सर्पविषे है, जिसकरि डसता है, तिसके नाश करणेका उपाय करु, अरु सर्व शब्द भी इस चित्तविषे है, अरु आत्मा है, जो मात्रपद है, जिसविषे न एक कहणा है, न द्वैत कहणा है, अरु सर्व उरतें इसी चित्तका त्याग करणा योग्य है, जब इस चित्तका त्याग करैगा, तब त्यागरूपी अमृतकरि अमर हो जावैगा, अरु जरा मृततें रहित होवैगा, अरु जब चित्तका त्याग न करैगा, तौ बहुरि देहकों धारैगा, अरु दुःख भोगैगा, अरु जैसे एक क्षेत्रतें अनेक दाणे उत्पन्न होते हैं, अरु जब क्षेत्रही जलि जाता है, तब अन्न नहीं उपजता, तैसे यह जो देह है, अरु जरा मृत्यु दुःख संसार इनका बीज चित्त है, जैसे अनेकका कारण क्षेत्र है, तैसे दुःख संसारका कारण चित्त है, तातें हे राजा ! चित्तका त्याग करु, जब इसका त्याग करैगा, तब सुखी होवैगा ॥ हे राजा ! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी हुआ है, जैसे आकाश सर्व पदार्थतें रहित है, किसीका स्पर्श नहीं करता, अरु सर्वतें बडा है, अरु सुखरूप है, अरु सर्व पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, तौ भी ज्योंका त्यों रहता है, जो आकाश सर्व त्याग किया है, हे राजा ! तूं भी सर्वत्यागी होउ, राज्य अरु देह अरु कुटुंब गृहस्थ आदिक जो आश्रम हैं, सो सर्व चित्तनें कल्पे हैं, अरु जो एकका त्याग नहीं होता, तौ कछु नहीं त्यागा, जब चित्तका त्याग करै, तब सर्व त्याग होवै ॥ हे राजा ! यह धर्म अरु वैराग्य अरु ऐश्वर्य तीनों चित्तके कल्पे हुए हैं,

जब चित्त पुण्यक्रियासों लगता है, तब पुण्यही प्राप्त होता है, जब पापक्रियासों लगता है, तब पापही प्राप्त होता है, अधर्म अरु अवैराग्य अरु दारिद्य होता है, जब पुण्यका फल उदय होता है, तब सुख प्राप्त होता है, अरु जब पापका फल उदय होता है, तब दुःख प्राप्त होता है, तातें जन्ममृत्यु दुःख नहीं मिटते, जब चित्तका त्याग होता है, तब सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजा ! जो कोउ पुरुष किसी वस्तुकों नहीं चाहता, जो मैं नहीं लेता, तब तिसकी पूजा बहुत होती है, अरु कोउ कहता है, जो मैं इस वस्तुकों लेउं, मेरे कों यह देवै, तब उसकों देता कोऊ नहीं, तातें सर्व त्याग करु, जो सुखी होवै, अरु सर्व त्याग कियेतें सर्व तूंही होवैगा, सर्वात्मा होवैगा, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपणेविषे देखैगा, जैसे मालाके मणकेविषे तागा होता है, अरु मणके भी सूत्रके आधार होते हैं, तिनविषे अवर कछु नहीं होता, तैसे देखैगा, जो सर्व मैंही हौं, अरु एकरस हौं, मेरेहीविषे ब्रह्मांड स्थित है, अरु मैंही हौं, तुझतें इतर कछु नहीं ॥ हे राजा ! जिसनें सर्व त्याग किया है, सो सुखी है, अरु समुद्रकी नांई स्थित है, उसकों दुःख कोउ नहीं, तातें तूं चित्तका त्याग करु, जो राज्य दोष मिटि जावै, अरु इस चित्तके एते नाम हैं, चित्त मन अहंकार जीव अरु माया, यह सर्व चित्तहीके नाम हैं ॥ हे राजन् ! त्यागणे अरु अवरकी भिक्षा लेणेतें तौ चित्त वश नहीं होता, चित्त तबही वश होता है, जब पुरुष निर्वासनिक होता है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग सर्व त्याग नहीं होता, जब यही फुरना निवृत्त होता है, तब चित्तका त्याग होता है, अरु चित्तकों त्यागिकरि भी त्यागके अभिमानतें रहित होणा, ऐसा शून्य पाछे जब तूं रहैगा, तब सर्वात्मा होवैगा, जब चित्तकों त्यागैगा, तब तिस पद कों प्राप्त होवैगा, जो जेते ऐश्वर्यसुख हैं, तिनका आश्रय है, अरु जेते दुःख हैं, तिनका नाश करणेहारा है, अरु जिसके जाणेतें किसी पदार्थकी इच्छा न रहैगी, काहेतें न रहैगी, जो सर्व आनंदके धारणेहारा तेरा स्वरूप है, बहुरि इच्छा किसकी रहै, जैसे आकाशके आश्रय देवलोकतें आदि सर्व विश्व रहता है, अरु आ

काशकों इच्छा कछु नहीं, जो इच्छा नहीं करता तौ भी सर्व आकाशहीविषे है, अरु सर्वका धारणेहारा है॥ हे राजन्! जब तूं भी इच्छा किसकी न करैगा, तब निर्वासनिक होकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, अरु जाणैगा जो सर्वका आत्मा मैंही हौं, सर्वकों धारी रहा हौं, अरु भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल भी मेरे आश्रय हैं, जैसे समुद्रके आश्रय तरंग हैं, तैसे मेरे आश्रय काल है, अरु चित्तका संबंध तेरे तांई प्रमाद करिके है, अरु प्रमाद यही है, जो चिन्मात्र पदविषे चित्त होकरि फुरता है, अरु चित्त कैसा है, जो जड भी है, अरु चेतन भी है, इसीका नाम चिद्‌जड ग्रंथि है, जब इह ग्रंथि खुल जावैगी, तब अपणे आपकों वासुदेवरूप जाणैगा, जब निर्वासनिक होवैगा, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे चित्तविषे संसार है, जैसे बीजके जलणेतें वृक्ष भी जलि जाता है, तैसे वासनाके दग्ध हुएतें संसार भी दग्ध होता है॥ हे राजा! जैसे एकडब्बेविषे रत्न होते हैं, तौ रत्नोंके नाश हुए डब्बा नाश नहीं होता, अरु डब्बेके नष्ट हुए रत्न नष्ट होते हैं, सो डब्बा क्या है, अरु रत्न क्या है; श्रवण करु, डब्बा चित्त है, अरु रत्न देह है, तातें चित्त नष्ट होणेका उपाय करहु, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब देहतें रहित होवैगा, देहके नष्ट हुए चित्त नष्ट नहीं होता, अरु चित्तके नष्ट हुए देह नष्ट हो जाता है, जब चित्तरूपी धूडतें रहित होवैगा, तब केवल शुद्ध आकाश होवैगा॥ ॥ इति श्रीयो०नि०चित्तत्यागवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः॥ ७३॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभनें कहा, जो चित्तका त्यागणाही सर्व त्याग है, तब शिखरध्वजनें कहा, हे भगवन्! मैं चित्तकों स्थित कैसे करौं, संसाररूपी आकाशकी चित्तरूपी धूड है, अरु संसाररूपी वृक्षका चित्तरूपी वानर है, जो कबहुं, स्थित नहीं होता, तातें ऐसे चित्तकों मैं कैसे स्थित करौं, तब कुंभनें कहा, हे राजन्! चित्तका रोकणा तौ सुगम है, नेत्रोंके खोलणे अरु मुंदणेविषे भी कछु यत्न है; परंतु चित्तके रोकणेविषे कछु यत्न नहीं, परंतु सुगम किसकों है, जो दीर्घदर्शी है, अरु अज्ञानीकों चित्तका

रोकणा कठिण है, जैसे चंडालकों पृथ्वीका राजा होणा कठिण है, अरुजैसे तृणकों सुमेरु होणा कठिण है तैसे अज्ञानीकों चित्तका रोकणा कठिण है॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! चित्तका तोडना कठिण है, तौ भी टूटि जाता है, परंतु मनका रोकणा अति कठिण है, जैसे बडे मच्छकों बालक रोकी नहीं शकता, तैसे मैं चित्तकों रोकी नहीं शकता ॥ हे देवपुत्र! तुम कहते हौ, जो मनका रोकणा सुगम है, अरु मुझकों ऐसे कठिण भासता है; जैसे मूर्त्ति लिखी हुई अंध पुरुषकों नेत्रसों नहीं दृष्ट आवती, तौ वे हाथविषे कैसे लेवै, तैसे तिनकों वश करणा मेरे तांई कठिण भासता है, प्रथम चित्तका रूप मेरे तांई कहौ जो क्या है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! इस चित्तका रूप वासना है, जब वासना नष्ट होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर, तब चित्तरूपी वृक्ष भी नष्ट होवै, न कोउ टास रहै, न कोउ फूल फल रहै, अरु जब टासकों काटैगा, तब बहुरि होवैगा, टासके काटणेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, बहुरि केई टास होता है, जब बीजकों नष्ट करै, तब वृक्ष भी नष्ट हो जावै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! संसाररूपी सुगंधी है, तिसका चित्तरूपी फूल है, अरु संसाररूपी तंतु है, तिसका चित्तरूपी भीह है, अरु देहरूपी तृण है, तिसके उठावणे उडावणेवाला चित्तरूपी पवन है, अरु जरा मृत्यु अध्यात्मक अधिभूतक तेल हैं, तिनका यह तिल है, जिसतें तेल उपजता है, अरु संसाररूपी अंधेरी है, तिसका यह चित्तरूपी आकाश है, जो आकाशविषे केई अंधेरी होतियां हैं, अरु हृदयरूपी कमलका चित्तरूपी भंवरा है, तिस बीज भी कहौ, अरुटास भी कहौ, जो क्या है, अरु टासका काटणा क्या है अरु वृक्ष क्या है, अरु फूल फल क्या हैं, सो कृपाकरि कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! चेतनरूपी क्षेत्र स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे अहंभाव बीज है, इसीकों अहंकार कहते हैं, अरु इसीकों चित्त कहते हैं, इसीकों मन कहते हैं, अरु इसीकों जड कहते हैं, इसीकों मिथ्या कहते हैं, तिस अहंविषे जो संवेदन है, सोई देह इंद्रियां हो पसरी है, तिसविषे जो निश्चय है, सो बुद्धि है, तिस बुद्धिविषे जो निश्चय

है, यह मैं हौं, यह संसार है, सोइ जीव अहंकार है, अहंकार इस वृक्षका बीज है, अरु वासना इस चित्तरूपी वृक्षके टास हैं, अरु सुखदुःख इस चित्तरूपी वृक्षके फल हैं ॥ हे राजन्! इसका जो काटणा है, सो सुण, एकांत बैठीकरि चिंतवनातें रहित होणा, एक आश्रयकों त्यागिकरि दूसरेका अंगीकार करणा, इस प्रकार स्थित होणा, जो मैं ऐसा त्यागी हौं, इसका चिंतवना यही टासकों काटणा है ॥ हे राजन्! इस टासके काटेतें वृक्ष नष्ट नहीं होता, काहेतें जो ऐसा होकरि स्थित होणा, जो मैं हौं, अरु वासना त्याग करै, कछु फुरै नहीं, जब अहंरूपी बीज नष्ट हो जाता है, तब चित्तरूपी वृक्ष नष्ट हो जाता है, काहेतें जो इसका बीज अहं है, जब अहंभाव बीज नष्ट हुआ, तब वृक्ष भी नष्ट हो जाता है, तातें चित्तका बीज तूं नष्ट कर ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! तुमारा निश्चय मैं इहां जाण्या है, जो चित्तके त्यागेतें चित्तका बीज नष्ट करणा श्रेष्ठ है ॥ हे भगवन्! एता काल मैं टास काटता रहा हौं, इसीतें दुःख मेरे नष्ट नहीं भये, अरु तुमनें कहा, जो अहंही दुःखदायी है, सो अहंका उत्पन्न होणा कैसे होता है? ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! शुद्ध चेतनविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंका फुरणा हुआ जो मैं हौं, सो दृश्यरूप हुआ है, मिथ्या संवेदन करिके हुआ है, जैसे शांत समुद्रविषे पवन करिके लहरी तरंग होते हैं, तैसे शुद्ध आत्माविषे अहं फुरणा है, तिस करिके संसार हुआ है, तातें अहंभावकों नष्ट करु, जो शांतपदविषे स्थित होवै, जो दुःखदायक वस्तु है, तिसकों नष्ट करै सो शांत होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! उह कवन वस्तु है, जो जलावणे योग्य है, अरु उह कवन अग्नि है, जिसविषे जलती है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे त्यागवानविषे श्रेष्ठ राजा! तेरा जो अपणा स्वरूप है, तिसका विचार कर, जो मैं क्या हौं, यह संसार क्या है, इसका दृढ विचार करणा सोइ अग्नि है, अरु मिथ्या अनात्मा जो देह इंद्रियांदिकविषे अहंभाव है, तिसकों वास्तवरूप विचार अग्निकरि जलावहु, जब विचार अग्नि करिके अहंकार बीजकों जलावैगा, तब केवल चिन्मात्र होवैगा ॥ हे राजा! मेरे उपदेश करिके तूं आपकों क्या जा

नत भया है, सो मेरे तांई कहौ, तब राजानें कहा, मैं राजा भी नहीं, अरु पृथ्वी भी मैं नहीं, अरु पर्वत भी मैं नहीं, अरु आकाश भी मैं नहीं, अरु दशों दिशा भी मैं नहीं, अरु मैं रुधिरमांसकी देह भी नहीं, अरु कर्म इंद्रियां, ज्ञान इंद्रियां भी नहीं, अरु मन बुद्धि भी मैं नहीं, अरु मैं अहंकार भी नहीं, इनतें रहित शुद्ध आत्मा हौं, परंतु हे भगवन्! अहंरूपी कलंकता मेरे तांई कहांतें लगी है, तिस कलंकके दूर करणेकों मैं समर्थ नहीं, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजा! इसी अहंका त्याग करु, जो मैं त्याग किया है, यह फुरणा भी न फुरै, शून्य हो रहु, जब इसका त्याग करैगा तब चेतन आकाश होवैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे जाणिकरि देख, जो कवन है, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! मैं यह जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, सो सर्वका आत्मा है, अरु मैं आनंदरूप हौं, सर्व मेरा प्रकाश है, परंतु यह नहीं जानता जो अहंभावकलना कहांतें लगी है, इसके नाश करणेकों मैं समर्थ नहीं, अरु इह मैं जाण्या जो संसारका बीज चित्त है, अरु चित्तका बीज अहंकार है, तुमारी कृपातें मैं जाण्या है जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अहं त्वं मेरेविषे कोउ नहीं, तुम भी इस अहंरूप कलंकताकों दूरकरि रहे हो, मेरेतें दूर नहीं होता, बहुरि बहुरि आय फुरता है, जो मैं शिखरध्वज हौं, इस अहं करिके मैं संसारी हौं, इसके नाश करणेका उपाय तुम कहौ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! कारणविना कार्य नहीं होता, अरु जो कारणविना कार्य भासै तो जाणियें जो भ्रममात्र है, अरु मिथ्या है, अरु जिसका कारण पाइयें सो जाणियें जो सत्य है, तातें तूं कह, इस अहंकारका कारण क्या है, तब मैं उत्तर कहौंगा ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अहंकारका कारण शुद्ध आत्मा है, शुद्ध आत्माविषे जो जानना हुआ है, जानणेमात्रविषे जानणेका उत्थान हुआ है, जो दृश्यकी उर लगा है, सो जानणा संवेदनही अहंका कारण है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! इस जानणेका कारण क्या है, प्रथम तूं यह कहु, पाछे दूर करणेका उपाय मैं कहौंगा ॥ हे राजा! जिसका कारण सत् होता है, तौ कार्य भी सत् होता है, अरु जो कारण झूठ होता है, तौ

कार्य भी झूठ होता है, जैसे भ्रम दृष्टि करिके दूसरा चंद्रमा आकाशविषे देखता है, सो कारण तिसका भ्रम है, तातें इस जानणे संवेदनका कारण कहूं जो क्या है, जो जानणा संवेदन दृष्ट अरु दृश्यरूप होकरि स्थित भई है, अरु दृश्यदृष्टरूप होकरि स्थित भई है ॥ राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! जानणेका कारण देहादिक दृश्य है, काहेतें जो जानणा तब होता है, जब जानणे योग्य वस्तु आगे होती है, जो आगे वस्तु नहीं होती है तौ तिसका जानणाभी नहीं होता, तातें जानणेका कारण देहादिक हुए॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह देहादिक मिथ्या हैं, भ्रम करिके हुए हैं, इनका कारण तौ कोउ नहीं॥ ॥राजोवाच ॥ हे देवपुत्र! देहका कारण तौ प्रत्यक्ष है, खाता पिता है, अरु पितातें इसकी उत्पत्ति भई है, अरु प्रत्यक्ष कार्य करता दृष्ट आता है, तुम कैसे कहते हौ, जो कारणविना है, अरु मिथ्या है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! पिताका कारण कवन है, पिता भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे पिता अरु पुत्र देखियें सो दोनों मिथ्या हैं, तातें कहु पिताका कारण क्या है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! पुत्रका कारण पिता अरु पिताका कारण पितामह है, इसी प्रकार परंपरा करिके सर्वका कारण ब्रह्मा प्रत्यक्ष जानीता है, जो सर्वकी उत्पत्ति ब्रह्माजीतें भई है॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सर्व सृष्टि संकल्पकी रची है, अरु देह भी भ्रम करिके भासता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे देह भासता है, जैसे आकाशविषे दो चंद्रमा भ्रम करिके देखिते हैं, तैसे आत्माविषे यह संसार भ्रम करिके भासता है, अरु जो तूं कहै, क्रिया कैसे दृष्ट आते हैं, तौ सुण, जैसे कोउ कहै, वंध्याके पुत्रकों भूषण पहराये हैं, जो वंध्याके पुत्रही नहीं तौ भूषण किसनें पहिरे सो भ्रम करिके भासता है, जैसे स्वप्नविषे सब क्रिया होती हैं सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह संसार तेरे भ्रमविषे है, जब भ्रम निवृत्त होवैगा, तब केवल आत्माही भासैगा ॥ हे राजन्! जैसे तूं आपणा देह जानता है, तैसे ब्रह्माका भी जाण, ब्रह्माका कारण कवन है, तातें इस भ्रमतें जाग, जो

तेरा भ्रम नष्ट हो जावै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! मैं जाग्या हौं, अब मेरा भ्रम नष्ट भया है, अरु मैंनें यह संसार मिथ्या जाण्या है, जो केवल संकल्पमात्र है, जो कछु दृश्य है सो मिथ्या है, अरु एक आत्माही मेरे निश्चयविषे सत् भया है ॥ हे भगवन्! ब्रह्माका कारण भी ब्रह्म है, अरु अद्वैत है, अविनाशी है, अरु सर्वात्मा है, ब्रह्मा कारण यह हुआ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! कारण अरु कार्य द्वैतविषे होते हैं, सो असत् हैं, जो तिस कारणका देशतें भी अंत होता है, वस्तुतें भी अरु कालतें भी अंत हो जाता है, अरु परिणामी होता है, जो वस्तु परिणामी होवै सो मिथ्या है ॥ हे राजा! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे न एक कहणा है, न द्वैत कहणा है, न भोगता है, न भोग है, न कर्म है, अद्वैत है, जो स्वरूपतें परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु सर्वात्मा है, जो सर्व देश है, अरु सर्वकाल भी है, जो सर्व वस्तुविषे पूर्ण है, अरु अद्वैत है, जो अद्वैत है, तौ कारण कार्य किसका होवै, कारणकार्यका संबंध द्वैतविषे होता है, अरु परिणामी होता है, अरु जिसविषे देशकालका अंत है सो आत्मा अद्वैत है, तिसविषे न कोउ देश है, न काल है, न कोउ वस्तु है, चिन्मात्रपद है ॥ हे राजा! मैं जानता हौं, जो तूं जाग्रत होवैगा, भ्रम तेरा नष्ट हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किरणांसों क्षीण हो जाती है, तैसे तेरा अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुएतें तूं आत्माही होवैगा, तूं अपणे प्रत्यक् चेतनस्वरूपविषे स्थित होहु, अरु देख, जो ब्रह्मा आदिक सर्व परमात्माका किंचन है, परमात्माही ऐसे होकरि स्थित भया है, अरु जो दृष्टि पडता है, तिस सर्वका अपणा आप आत्मा है, जो जागै तौ जाणै, जागैबिना नहीं जाणता ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मैं जाग्या हौं अरु जानता हौं, जो मेरा स्वरूप आत्मा है, अरु मैं निर्मल हौं, अब मेरा मुझकों नमस्कार है, एक मैंही हौं, मेरेतें इतर कछु नहीं, अरु मैं आपकों जान्या है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजविश्रांतिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भग

वन्! तुम कैसे कहते हौ, जो ब्रह्माका कारण कोउ नहीं, आत्मा ऐसा ईश्वर है, जो अनंत है अरु अच्युत अव्यक्त अरु अद्वैत है, परमाणुका विषय नहीं, अरु परमब्रह्म है, सोइ ब्रह्माका कारण है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! तूंही कहता है, जो आत्मा अनंत है, जो अनंत है, तिसकों देश काल वस्तुका परिच्छेद नहीं, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पूर्ण है, सो कारण कार्य तिसका होवै, कारण तब होवै जब प्रथम द्वैत होवै सो आत्मा अद्वैत है, अरु कारण तिसकों कहते हैं, जो कार्यतें पूर्व होवै, अरु पाछे भी उही होवै, जैसे घटके आदि मृत्तिका है, अंत भी मृत्तिका होती है, तिसकों कारण कहते हैं, सो आत्माविषे न आदि है, न अंत है, आत्मा अनंत है, अरु कारण तब होता है, जब परिणाम होता है सो आत्मा अच्युत है, अपणे स्वरूपतें कदाचित् नहीं गिर्या, अरु भोक्ता भी द्वैतविषे होता है, सो आत्मा अद्वैत है, भोग भोक्ता दोनों नहीं, अरु आत्माविषे कर्म भी नहीं, जो आत्मातें आदि कवन है, जिसकरि आत्मा सिद्ध होवै, अरु किसीका कार्य भी नहीं, काहेतें जो कार्य होता है सो इंद्रियांका विषय होता है, सो आत्मा अव्यक्त है, अरु जो कार्य होता है, तिसका कारण भी होता है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, तिसका कारण कवन होवै जो सर्वात्मा है, अरु स्वच्छ है, आकाशवत् निर्मल है, सो तेरा स्वरूप है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! वडा आश्चर्य है, मैं जाण्या है, जो आत्मा अद्वैत है, सो न किसीका कारण है, न कार्य है, अरु अनुभवरूप है सो मैं हौं, अरु निर्मल हौं, विद्या अविद्याके कार्यतें रहित हौं, अरु निर्वाण पद हौं, अरु निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, बहुरि कैसा हौं, जो मैं नहीं अरु मैंही हौं, ऐसा जो सर्वात्मा हौं, मेरा मुझ कों नमस्कार है ॥ ॥ इति श्रीयो॰ निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजविश्रांतिवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! राजा शिखरध्वज कुंभमुनिकों प्रबोध हुआ, ऐसे वचन कहीकरि केवल निर्वाणपदविषे स्थित भया, जब निर्विकल्प फुरणेतें रहित एक मुहूर्तपर्यंत स्थित रहा, जैसे दीपक वायु

तें रहित स्थित होता है, तब कुंभनें जगायकरि कहा ॥ हे राजन्! तेरा समाधिसाथ क्या है, अरु उत्थान क्या है, तूं तौ केवल आत्ममात्र है, अरु मैं जानता हौं, जो तूं परम ज्ञानकरि शोभत भया है, जैसे डब्बेविषे रत्न होता है, तिसका प्रकाश बाहिर दृष्ट नहीं आता, अरु जब डब्बेसों निकासीकरि देखियें, तब बडा प्रकाश भासता है, तैसे अविद्यारूपी डब्बेसों तूं निकस्या है, अरु परमज्ञान करिके शोभत भया है ॥ हे राजा! तेरेविषे न कोउ क्षोभ है, न कोउ उपाधि है, संसारके रागदोषतें तूं रहित भया है, शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरु, तेरे तांई उपाधि कोउ न लगैगी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार कुंभमुनिनें कहा तब राजा शांतरूप हो गया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! जो कछु तुमनें आज्ञा करी सो सर्व भली प्रकार मैं जाण्या है, अब एक प्रश्न अवर है, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ, जो मैं दृढ स्थित होउं ॥ हे भगवन्! आत्मा तौ एक है, अरु शुद्ध है, केवल आकाशरूप है, चेतनमात्र है, तिसविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी कहांतें उपजी है सो कहौ ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु स्थावर जंगम संसार है, सो महाप्रलयपर्यंत है, जब महाप्रलय होता है, तब केवल आत्माही शेष रहता है, अरु स्वच्छ निर्मल होता है, तहां न तेज होता है, न अंधकार होता है, केवल अपणे आप स्वभावविषे स्थित होता है, अरु जेता कछु आनंद है, तिसका अधिष्ठान आत्मा है, अरु सतअसततें रहित है, सत कहियें जिसकों बुद्धि इदंकरि कहते हैं, अरु असत् कहियें जिसकों नहीं कहते हैं, तिस सतअसततें रहित अरु सर्व लक्ष्मीकरि संयुक्त है, जो अपणा स्वभावमात्र है, जिसविषे उपाधि कोउ नहीं, अरु सर्वदा प्रकाशवान् है, अरु सर्वदा उदयरूप है, तिस परमात्माका यह संसार चमत्कार है, जैसे रत्नका चमत्कार लाट होती है, तैसे ब्रह्मका चमत्कार यह संसार है, तातें ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं हुआ, केवल ब्रह्मरूप है, अरु ब्रह्मतें इतर करिके है, सो मिथ्याही भ्रम जानणा, जो कछु आकार भासते हैं, सो असत हैं ॥ हे राजा! जो सब आकार मिथ्या हैं, तौ तेरी सं

वेदन भी मिथ्या है, आत्माविषे अहंत्वंका उत्थान कोउ नहीं, केवल ज्ञानमात्र है, अरु केवल सत्‌रूप है, अरु आनंदरूप है, अरु अविद्या तमतें रहित प्रकाशरूप है, अरु प्राणोंकरि नहीं जाणीता, जो इंद्रियांका विषय नहीं, अरु मनकी चिंतवनातें रहित है, काहेतें जो सर्वका द्रष्टा है, अरु सर्वका अपणा आप अनुभवरूप है ॥ हे राजा ! तिसविषे स्थित होहु, बहुरि आत्मा कैसा है, जो बडेतें बडा है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरुस्थूलतें स्थूल है, जिसविषे आकाश भी किसी उर अणु जैसा पाइता है, अरु ब्रह्मांड भी तिसविषे तृणसमान पाइते हैं, अरु अपणे आपकरि पूर्ण है, अरु अपणे आपकरि घूर्म है, अरु किंचित् भी तिसतें उत्पन्न नहीं भया, अरु नानाप्रकार करिके स्थित भया है, फुरणे करिके जगत् भासता है, फुरणेके निवृत्त हुए केवल शुद्ध आत्मा है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, जो संसार फुरणेमात्र है, अरु आत्मा शुद्ध शांतिरूप है, अरु निर्विकल्प है, तौ तिसविषे संवेदन फुरणा कहांतें आया है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन् ! फुरणा भी आत्माका चमत्कार है, जैसे पवनविषे सस्पंद फुरणा शक्ति भी है, अरु निस्पंद ठहरणा शक्ति भी है, जब फुरता है, तब स्पर्श चलणा प्रगट होता है, जब ठहर जाता है, तब प्रगट नहीं होता, तैसे संवेदन जब फुरता है, तब नानाप्रकार होते हैं, अरु जगत् भासता है, जब फुरणा मिट जाता है, तब केवल शुद्ध आत्मा भासता है ॥ हे राजन् ! आत्मसत्तामात्र है, अरुसंसार भी सन्मात्र आत्माही है, जो सम्यक् दृष्टिकरि देखियें तौ आत्माही भासता है, अरु असम्यक् दृष्टिकरिके दुःखदायक जगत् भासता है, जिसके मनविषे संसारभावना है, तिसकों दुःखदायक भासता है, अरु जिसके हृदयविषे आत्मभावना होती है, तिसकों आत्माही भासता है, अरुसुखरूप होता है, काहेतें जो आत्मा नाम अपणे आपका है, जिसनें जगत्कों अपणा आप जाण्या, तिसकों दुःख कहां होवै ॥ हे राजन् ! यह संसार भावनामात्र है, जैसी भावना होती है, तैसेही भासता है, जिसकी भावना विषविषे अमृतकी होती है, तौ विष भी अमृत हो जाता है, अरु जिसकी भावना अमृ

तविषे विषकी होती है, तब अमृत भी विष हो जाता है, काहेतें जो संसार भावनामात्र है, जैसी भावना दृढ करता है, यद्यपि आगे उह वस्तु न होवै तौ भी हो जाती है, तातें संसार भावनामात्र मिथ्या है, ज्ञानवान्कों दुःख कदाचित् नहीं देता अरु अज्ञानीकों सुख कदाचित् नहीं देता ॥ हे राजन्! अहंता अरु संवेदन चित्त अरु चैत्य यह भी आत्माकी संज्ञा हैं, जैसे आकाश कहियें, शून्य कहियें, नभ कहियें इह सर्व संज्ञा आकाशकीही हैं, तैसे सर्व संज्ञा आत्माकी हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, अहं त्वं सर्व आत्माके आश्रय हैं, जैसे भूषण स्वर्णके आश्रय होते हैं, परंतु स्वर्ण परिणामकरि भूषण होता है, जो पूर्वरूपकों त्यागता है, आत्मा तैसे भी नहीं, केवल एकरस है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, यह संवेदन आत्माका चमत्कार है, अरु सत् असततें आत्मा पर है, जेती कछु दृश्य है, सो आत्माविषे नहीं, चित्त करिके रची है, इसीतें पर है ॥ हे राजन्! सो कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब दृश्य होता है, सो आत्मा किसीका विषय नहीं, कारण कार्य किसीका होवै, अरु विश्वकी आदि भी आत्मा है, अंत भी आत्मा है, अरु मध्यविषे भी आत्माही है, जो कछु अवर भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे घर मंडल पुर दृष्ट आते हैं, तिसकी आदि भी आकाश है, अंत भी आकाश है, अरु मध्य भी आकाश है, जो घर मंडल पुर भासते सो मिथ्या हैं, जैसे अग्नि नानाप्रकार दृष्ट आता है, सो मिथ्या आकार है, एक अग्निही है, तैसे सर्वकी आदि मध्य अंत एक आत्माही सार है ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे भी देश काल होता है, काहेतें जो दृश्य है सो इंद्रियांका विषय है, यह तरंग अमके स्थानतें उठा है, अरु अमके स्थानविषे जाय लीन भया, तौ स्थान देश हुआ, अरु उपजीकरि एता काल रहा सो काल हुआ, अरु जिसकों इंद्रियविषयकरि न शकही, तिसविषे देश काल कैसे होवै ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! मैं भली प्रकार जाण्या है, जो आत्मा चिन्मात्र है, ज्ञान इंद्रियां कर्मइंद्रियांतें पर है

अरु देश काल इंद्रियां मनकरि जाणता है, जो अमका देश है, अमका काल है, जहां इंद्रियां अरु मनही न होवै, तहां देश काल कहां है ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! जो तैंनें ऐसे जाण्या तौ तूं जाग्या है, आत्मा विषे देश काल कोउ नहीं, इह मन इंद्रियांकरि जाणीता है, जो यह देश है, अरु यह काल है, जो इनतें रहित होकरि देखै तौ आत्माही भासै,अरु जो इनसहित देखै तौ संसारही दृष्ट आवैगा॥हे राजन्! इनतें रहित होकरि देख, जो संसार तेरेविषे कछु न रहै, जो अमका प्रश्न किया, अब अमका प्रश्न करौं, संसार तब लग होता है, जबलग इनका संयोग अपणेसाथ होता है॥ हे राजन्! ब्रह्मकरि ब्रह्मकों देखै, अरु पूर्णकों देखै, जो तूं भी पूर्ण होवैही, जब पूर्ण होवैगा, तब सर्व उर आपकों जाणैगा, अरु सर्व संज्ञा तेरीही होवैगी, अरु निर्वाच्य पदकों प्राप्त होवैगा, जहां इंद्रियांकी गम नहीं, केवल आकाशरूप है, जैसे आकाश अपणी शून्यताकरि पूर्ण है, तैसे तूं अपणे चेतन स्वभावकरि आप पूर्ण होवैगा, जब मनसहित षट् इंद्रियांतें रहित होकरि देखैगा, अपणे आपकों बहुरि इनसहित देखैगा तौ भी तेरे तांई चेतन आत्माही भासैगा, संसार का शब्द अर्थ तेरे हृदयतें उठि जावैगा, शब्द यह जो संसार है, अरु तिसकों सत् जानणा यह अर्थ है, सो भावना निवृत्त हो जावैगी, केवल आकाशरूप आत्माही भासैगा, अरु संसार संवेदनमात्र है, संवेदन कहियें चित्तशक्तिका चमत्कार है, यही चित्तशक्ति ब्रह्मा होकरि स्थित भई है, अरु संसारकों देखणे लगी है, जब अंतर्मुख होती है, तब आत्माही दृष्ट आता है, आत्मा सदा एक रस है, जब बहिर्मुख होती है, तब संसार दृष्ट आता है, जैसी यह भावना करता है, तैसेही आगे दृष्ट आता है, जब संसारकी भावना होती है तब संसारही भासता है, जब आत्माकी भावना होती है, तब आत्माही भासता है, आत्मा सदा एकरस है, अरु असंसारी है, तातें हे राजन्! तूं आत्माकी भावना करु, जो तेरे तांई आत्माही भासै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! यह संसार जो तेरे तांई भासता है, सो आत्माविषे नहीं, केवल शुद्ध आत्माविषे जो अहं उत्थान है, सोइ संसार है, सो अहंका चमत्कार न सत् है, न असत् है, न अंतर न बाहिर है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु संसारका प्रध्वंसा भाव भी नहीं, प्रध्वंसाभाव कहियें जो पहिले होवै, पाछे नाश हो जावै, सो संसारका उदय अरु अस्त होणा आत्माविषे नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है, तिसतें इतर कछु नहीं, यह कहणा भी आत्माविषे नहीं, जो केवल अपणे आपविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, वाणी तिसकों कहते हैं, जहां दूसरा होता है, जहां दूसरा न होवै तहां वाणी क्या कहै, यह कहणा भी तेरे उपदेशनिमित्त कहा है, आत्माविषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति नहीं ॥ हे राजा! ऐसा आत्माका कारण कार्य किसका होवै, आत्मा शुद्ध है, निर्विकार है, अरु प्रमाणोंतें रहित है, जो किसी लक्षणकरि प्रमाण किया नहीं जाता, सो आकार होकरि स्थित भया है, अरु शांतरूप है ॥ हे राजा! ऐसा आत्मा है, कारण कार्य किसका होवै, कारण कार्य तब होता है, जब प्रथम परिणामकों प्राप्त होता है, अरु क्षोभकों प्राप्त होता है, सो आत्मा शांतरूप है, अरु कारण तब होवै, जब क्रिया करिके कार्यकों उत्पन्न करै, सो आत्मा अक्रिय है, क्रियातें रहित है, अरु कारणकों कार्यतें जाणीता है, सो आत्मा चिन्हतें रहित है, अरु प्रमाणोंका विषय नहीं तातें कारण कार्य आत्मा किसीका नहीं, अरु आत्माकों कारण कार्य मानणा मेरे तांई आश्चर्य आता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु उपजती है, सो नष्ट भी होती है, अरु जो नष्ट होती है सो उपजती भी है, सो आत्मा सर्वकी आदि है, अरु अजन्मा है, अरु निर्विकार है, तिसविषे स्थित होउ, जो तेरा संसार निवृत्त हो जावै, यह संसार अज्ञान करिके भासता है, जब तूं स्वरूपविषे स्थित होकरि देखैगा, तब संसार न भासैगा, अरु ऐसे भी न भासैगा, जो संसार आगे था, अब निवृत्त हुआ है, एकरस आत्माही भासैगा, केवल शून्य आकाश हो जा

वैगा, शून्य कहियें संसारतें रहित हो जावैगा, स्वरूप चेतन नाना करिके भी उही है, अरु एक भी उही है, शून्य है, अरु शून्यतें रहित है, द्वैतरूप भी उही है, अद्वैतरूप भी उही है, ऐसा भासैगा॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजप्रथमबोधो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥ ७७॥ ॥

॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजा! जो कछु देखता है, सो चेतन घन है, तिसविषे अहं त्वं शब्द कोउ नहीं, अरु अहं त्वं शब्द प्रमादकरि होते हैं, जब आत्माविषे स्थित होकरि देखैगा, तब आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तौ अहं त्वं शब्द कहां भासै॥ हे राजन्! यह नानाप्रकारकी संज्ञा चित्ततें कल्पी हैं, जब चित्ततें रहित होवैगा, तब नाना अरु एक संज्ञा कोउ न रहैगी॥ हे राजन्! सर्व ब्रह्म है, यह वाक्य वेदका सार है, जब इस वाक्यविषे दृढ भावना बुद्धि होवैगी तब एकरस आत्माही दृष्ट आवैगा, अरु चित्त नष्ट हो जावैगा, जब चित्त नष्ट हुआ, तब केवल महाशुद्ध आकाशकी नांई स्थित होवैगा, निर्दुःख पदकों प्राप्त होवैगा, जो पद सर्वकी आदि है, अरु सर्वदा मुक्तरूप है॥ ॥ राजोवाच॥ हे भगवन्! तुम कहा जो चित्तके नष्ट हुएतें दुःख कोउ न रहैगा, सो चित्तनष्टका उपाय तुम कहा है, परंतु मैं दृढकरि नहीं समझा, तातें मेरे दृढ होणेके निमित्त कृपा करिके बहुरि कहौ, जो चित्त नष्ट कैसे होता है॥ कुंभ उवाच॥ हे राजन्! यह चित्त न किसी कालका है, अरु न किसीकों है, न यह देखता है, चित्त हैही नहीं, तौ मैं तेरे तांई क्या कहौं॥ अरु जो चित्त तुझकों दृष्ट आता है, तौ तूं आत्माही जाण, आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं॥ हे राजन्! महासर्गके आदि अरु अंत सृष्टि कोउ नहीं, केवल आत्मा है, अरु यह कहणा भी आत्माविषे नहीं, मैं तेरे जतावणेके निमित्त कही है, अरु मध्य जो कछु दृष्ट आता हे, सो अज्ञानीकी दृष्टिविषे है, आत्मा विषे सृष्टि कोउ नहीं, आत्मा किसीका उपादान कारण, अरु निमित्त कारण नहीं काहेतें जो अच्युत है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु उपादान भी परिणामकरि होता है, आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है,

आकाशरूप है, सो कारण कार्य किसका होवै, अरु चित्त भी वासनारूप है, वासना तब होती है, जब वास होती है, वास कहियें वासना करणेयोग्य, जो आगे सृष्टि भी नहीं तौ वासना किसकी फुरै, अरु चित्त विषे संसारकी स्थिति कैसे होवै, तातें चित्त कछु नहीं, यह विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु सृष्टि आत्माविषे कोउ नहीं, निरालंब केवल अपणे आपविषे स्थित है॥ हे राजन्! संसार भी नहीं भया, अरु चित्त भी नहीं भया, तौ अहं त्वं आदिक शब्द भी आत्माविषे कोउ नहीं, यह शब्द तब होते हैं, जब चित्त होता है, अरु चित्त तबलग है, जबलग वासना है, जब निर्वासनिक पदकों प्राप्त भया, तब कल्पना कोउ नहीं रहती॥ हे राजन्! यह संसार महाप्रलयविषे नष्ट हो जावैगा, सत् असत् संसार कछु न रहैगा, एक आत्माही शेष रहैगा, जो निराकार अब शुद्ध है, जबलग महाप्रलय नहीं भया, तबलग संसार है, सो महाप्रलय क्या है, श्रवण करु, एक क्षण आत्माका साक्षात्कार होणा, तिसकरि सृष्टिका शेष भी न रहैगा, सो ज्ञानही महाप्रलय है, अरु अब जो दृष्टि आता है, सो मिथ्या है, यह क्रिया भी मिथ्या है, अरु इसका भान होणा भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी क्रिया भी मिथ्या है, तिसका भान होणा भी मिथ्या है, तैसे जाग्रत संसार स्वप्नमात्र है, कारणविनाही भासता है, जो कारणविना है, सो मिथ्या है, इसका कारण अज्ञानही है, जो अपणा न जानणा, जब आपकों जाण्या तब अपणा आपही भासैगा, जैसे स्वप्नविषे अपणे न जानणेकरि भिन्न आकार भासते हैं, जब जाग्या तब अपणा आपही जाणता है जो मैंही था॥ हे राजन्! मेरे तांई तौ एक आत्माही दृष्ट आता है, आत्माही है, आत्मातें इतर संसार कोउ नहीं, अरु इस संसारकों स्थित मानणा मूर्खता है, सदा चलरूप है, वेद शास्त्र अरु लोक भी कहता है जो संसार मिथ्या है, अरु आप भी जाणता है जो नष्ट हो जाता है, दृष्टि आता है, तिसविषे आस्था करणी मूर्खता है, आत्माविषे संसार नाना अनाना कोउ नहीं, आत्मा सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, शुद्ध है, अरु अच्युत

ज्योंका त्यों है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजबोधो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः॥७८॥

॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे भगवन्! अब मेरा मोह नष्ट भया है, अरु अपणा आप मैंनें जाण्या है, तुमारी कृपातें मेरा संसार निवृत्त भया है, शोकसमुद्रकों अब तर्या हौं, अरु शांत पदकों प्राप्त भया हौं, अहं त्वं शब्द मेरेविषे कोउ नहीं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अच्युत हौं, चिन्मात्र हौं, केवल हौं, अरु शून्य हौं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा शुद्ध आकाशकी नांई निर्मल है, आकाशतें भी सो अति निर्मल है, तिसविषे अहं मल है, सो अहंमोहतें उपजी है, मोह कहियें अविचार, जब विचार होता है, तब अहंकों नहीं पाइता, यह विश्व संवेदनविषे है, संवेदन सर्वके आदि होकरि स्थित भई है, जब संवेदन अंतर्मुख होती है, तब सर्व विश्व लीन हो जाती है, संवेदनहीविषे बंध अरु मुक्ति है, जब बहिर्मुख होती है, तब बंध है, जब अंतर्मुख होती है, तब मोक्ष है, जिसनें मन अरु इंद्रियांतें रहित होकरि अपणा आप देख्या है, तिसकों ज्योंका त्यों दृष्ट आता है, अरु जो मोहसंयुक्त देखता है, तिसकों विपर्यय भासता है, जैसे सम्यक् दृष्टि करिके भूषणविषे स्वर्ण भासता है, जब भूषणके आकार जाते हैं, तब भी स्वर्णही है, अरु मूर्खकों सोनेविषे भूषण दृष्टि आते हैं, चिरकालके अध्यास करिके जो बुद्धि इनविषे फुरती है, तौ भी प्रारब्धके वेगपर्यंत चेष्टा होती है, तब चेष्टाविषे भी आत्माही दृष्टि आता है; तातें केवल आत्माहीका किंचन होता है, जैसे सोनेविषे भूषण अरु आकाशविषे नीलता अरु वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे आकाशविषे नीलता देखणेमात्र है, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे सृष्टि वास्तव कछु नहीं, भ्रांतिमात्रही है, जब भ्रांति निवृत्त होवैगी, तब जगत्का शब्द अर्थ सर्व उरतें शांत होवैगा, अरु शब्द अर्थकी भावनातें जो चेष्टा होती है, तिसतें जब अभिलाषा निवृत्त हो जाती है, तब दुःख कोउ नहीं होता, इसीकों मुनीश्वर निर्वाण कहते हैं, जब ऐसा निश्चय निर्वाण पदका हुआ, तब शांतरूप शून्य पदकों पायकरि स्थित हो

ता है ॥ हे राजन्! अहंका उत्थान होणा यही बंधन है, अरु अहंका निर्वाण होणा यही मुक्ति है, अरु अहंके होणेकरि संसार दुःख है, जबलग अहंका उत्थान है; तबलग संसार है, अरु जबलग संसार है, तबलग अहंका उत्थान है, जब संसारकी सत्ता जाती रहै तब अहं फुरणा भी नष्ट हो जावैगा, जब फुरणा नष्ट भया, तब अहं भी नष्ट हो जावैगा, जब अहं नष्ट भया, तब केवल शुद्ध आत्माही शेष रहैगा, अरु अनामय एकही एक निर्दुःखही भान होवैगा, अहं ब्रह्मका उत्थान भी शांत हो जावैगा, अरु चेतनमात्रही रहैगा ॥ हे राजन्! जिसकों सर्व ब्रह्मकी बुद्धि भई है, तिसकों संसारकी बुद्धि नहीं, अरु जिसकों संसार बुद्धि है, तिसकों ब्रह्मबुद्धि नहीं, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसाही आगे भासता है, जिसकों ब्रह्म भावना दृढ होती है, सो ब्रह्मरूप हो जाता है, अरु जिसकों जगत्की भावना दृढ होती है, तिसकों जगत् भासता है ॥ हे राजन्! तूं अब जाग्या है, अरु ब्रह्मस्वरूप हुआ है, जो शुद्ध निर्मल है, अरु प्रत्यक् है, जो किसी शब्द अरु लक्षणका विषय नहीं, अरु इंद्रियांका विषय नहीं ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा कारण कार्य जिसका होवै, जो केवल अद्वैत है अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग पवनकरि उपजते हैं, तौ भी समुद्रतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारकी विश्व संवेदन फुरणे करिके उपजती है तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, फुरणेमात्र है, जैसे स्तंभेविषे मनोराज्यकरि कोउ पुरुष पूतलियां कल्पता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करता है, इनकी चेष्टा तबलग है, जबलग संकल्प है, जब संकल्प निवृत्त हुआ, तब शून्य स्तंभही रहता है, जैसा आगे भी शून्य था, अरु तिसकी संवेदनविषे सृष्टि थीं, तैसे यह संसार संकल्पमात्र है, जब संकल्प अंतर्मुख भया, तब संसारकी सत्ता जाती रहती है ॥ हे राजन्! संसार सत्ता जाती तब है जो आगेही असत् है, अरु जो वस्तु सत् होती है, तिसका नाश कदाचित नहीं होता, तातें केवल संवेदन कल्पी है, जैसे एक शिलाविषे पुरुष पूतलियां कल्पता है, तौ

शिलाविषे तौ पूतली कोउ नहीं, ज्यौंकी त्यौं शिलाही है, तैसे फुरणे करिके आकार दृष्ट आते हैं, जब चित्त फुरणेतें रहित होवैगा, तब आत्माकों अपणा आप जाणैगा, अरु अशब्द पदकों प्राप्त होवैगा, जो शांति पद है, अरु शुद्ध आकाशरूप है ॥ हे राजन्! सर्व शब्द अरु सर्व अर्थकी अभावना यह ब्रह्म अर्थ है, जहां कोउ कल्पना नहीं, जब सम्यक् दृष्टि होती है, तब शेष आत्माही भासता है, अरु यह भावना भी उठ जाती है, जो यह संसार है, यह ब्रह्म है, केवल ज्ञेयमात्रही होय रहता है, कैसा ज्ञेयमात्र है, जो शिलाकी नांई ज्ञान है, ऐसा शेष रहता है ॥ इति श्रीयो० नि० शिखरध्वजबोधवर्णनं नाम नवसप्ततितमः सर्गः॥७९॥

॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जैसे तुम कहते हौ, सो सत्य है, अरु मैं ऐसे जाणता हौं जो संसार आत्माका कार्य है,अरु आत्मा कारण है, जो आत्माका कार्य हुआ तौ आत्मस्वरूप हुआ, आत्मातें इतर नहीं ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आत्मा चेतनमात्र है, कारण कार्य किसीका नहीं, जो आत्मा अप्रत्यक् है, अरु अक्रिय है, अच्युत है, निरस है, जो अशब्द पद है, सो कारण कार्य किसका होवै अरु कारणकों कार्यद्वारा जाणीता है अरु आत्मा किसी प्रमाणका विषय नहीं, जो अप्रत्यक् है, अरूप है, अरु कारण तब होता है, जो क्रिया होती है, न किसीका कारण कार्य है, न कर्म है, केवल ज्योंका त्यौं अपणे आपविषे स्थित है, चेतनमात्र है, शिवरूप है, शुद्ध है यह विश्व भी चेतनमात्र है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे विश्व आत्मरूपकरि स्थित है, ऐसी विश्व चेतनमात्र है, तिसाविषे असम्यक्दर्शी अज्ञानकरि नानाप्रकार कल्पता है, अज्ञान कहियें वस्तुका न जानणा, जो वस्तु परमात्मा है, तिसके प्रमाद करिके वासनारूप चित्तसों विश्वकों कल्पता है, सो विश्व शब्दमात्र है, अर्थ कछु नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा आकाशविषे, जैसे तरंग समुद्रविषे, जैसे जल मृगतृष्णाविषे, जैसे वैताल परछायेविषे तैसे असम्यक्दृष्टि आत्माविषे विश्व कल्पता है, अरु सम्यक्दर्शी ऐसे जाणता है जो आत्मा शुद्ध है, अजन्मा है, अविनाशी

है, परम निरंजन है॥ हे राजन्! जब तूं सम्यक् दृष्टिकरि देखैगा तब संसारका प्रध्वंसाभाव भी न देखैगा, काहेतें जो चित्तका कल्प्या हुआ है, अरु चित्त अज्ञान करिके उपजा है, स्वरूपविषे न चित्त है, न अज्ञान है, न संसार है, केवल अद्वैत मात्र है, तहां एक कहां, अरु द्वैत कहां, केवल मात्र पद है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब अहं त्वं चित्त फुरणा सब नष्ट हो जावैगा, बहुरि भ्रम दृष्ट न आवैगा॥ हे राजन्! आत्मातें इतर जो कछु भासता है सो अज्ञान करिके है, विचार कियेतें नहीं रहता॥ राजोवाच॥ हे भगवन्! अज्ञान क्या है, अरु नाश कैसे होवै सो कहौ॥ ॥ कुंभ उवाच॥ हे राजन्! एक ज्ञान है, अरु एक अज्ञान है, ज्ञान यह जो पदार्थकों प्रत्यक्ष जानणा, अरु अज्ञान यह जो पदार्थकों न जानणा, अरु एक ज्ञान भी अज्ञान है, सो श्रवण करु, मृगतृष्णाका जल देखीकरि आस्था करणी जो है, अरु जेवरीविषे सर्प, सीपीविषे रूपा देखणा अरु तिसकों सत्य जानणा, यह ज्ञान भी अज्ञान है, काहेतें जो सम्यक्दर्शी होकरि नहीं देखता, यह दृष्टांत है, अरु दार्ष्टांत यह है, जो शुद्ध आत्मा निराकार अच्युत है, तिसविषे मैं हौं, अरु मेरा अमका वर्णाश्रम है, अरु नानाप्रकार विश्व जानणा, यह ज्ञान भी अज्ञान है, अरु मूर्खता है॥ हे राजन्! न कोउ जन्मता है न कोउ मृत होता है, ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है, तिसविषे जन्म मरण आदिक विकार देखणा, ऐसा जो ज्ञान है सो अज्ञान है॥ हे राजन्! जैसे कोउ ब्राह्मण होवै, अरु ऊंची बाहुकरि कहै, मैं शूद्र हौं, मेरे तांई वेदका अधिकार नहीं, अरु जैसे कोउ पुरुष कहै, मैं मुआ हौं, तिसकों मैं जाणता हौं, तैसे आपकों कछु वर्णाश्रमका अभिमान लेकरि कहणा सो मूर्खता है, काहेतें जो असम्यक्दर्शन है, जब ज्यौंका त्यौं जाणै, तब दुःखी न होवै॥ हे राजन्! ऐसा ज्ञान जो सम्यक्दर्शनकरि नष्ट हो जावै सो अज्ञान है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलबुद्धि होती है, किरणके ज्ञानतें जलका ज्ञान नष्ट हो जाता है, सो जलका जानणा अज्ञान था, जैसे जेवरीविषे सर्प जानणा, सो सर्पका ज्ञान जेवरीके ज्ञानतें नष्ट हो जा

ता है, यह अज्ञान है, सम्यक्दर्शन करिके नष्ट होता है, जब ऐसा सम्यक्दर्शी होवैगा, तब अध्यात्मक ताप निवृत्त हो जावैगा, अरु शुद्ध होवैगा, जो आत्मा है, अज है, अरु शांतरूप है, सत् असत् सर्व आत्मा है, तिसतें इतर कछु नहीं, अरु प्रकाशरूप है सो ऐसा तूं है ॥ हे राजन्! अज्ञान भी अवर कोउ नहीं, इस चित्तके उदय होणेका नाम अज्ञान है, अज्ञानका कारण चित्त है, अरु जो पदार्थ चित्त करिके उदय हुआ है, सो नष्ट भी चित्त करिके होता है, तातें तूं चित्त करिके चित्तकों नाश कर, जैसे अग्नि पवन करिके उपजता है, अरु पवनहीकरि शांत होता है, तैसे चित्तकरि चित्तकों नष्ट करु ॥ हे राजन्! न तूं है, न मैं हौं, न इंद्रिय है, न संसार है, न यह जगत् है, केवल शुद्ध आत्मा है ॥ हे राजन्! जो चित्तही नहीं, तौ चित्तका कार्य विश्व कहां होवै, यह अज्ञानीकों भासता है, जो चित्त है, अरु विश्व है, केवल अपणे आपविषे आत्मा स्थित है ॥ हे राजन्! चित्तका उदय होणा अज्ञानतें है, जब अज्ञान नष्ट हुआ, तब चित्त अरु अहं त्वं सर्व नष्ट हो जाते हैं ॥ हे राजन्! तूं शुद्ध आत्मा है, एक है, अरु प्रकाशरूप है, अच्युत है, अरु निरंतर है, अरु देह इंद्रियांदिकरूप होकरि भी तूंही स्थित भया है, इच्छा अनिच्छा भी तूंही है, जैसे चंद्रमा की किरणां चंद्रमातें भिन्न नहीं, तैसे तूं है, अरु निर्विकल्प है, कछु फुरणा तेरेविषे नहीं तूं केवल ज्योंका त्यों स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थोपदेशो नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे कुंभमुनिनें कहा, तब शिखरध्वज श्रवण करिके शांतिकों प्राप्त भया, नेत्र मुंदिके सब अंगकी चेष्टातें रहित हुआ, जैसे शिला उपर पुतली लिखी होवै, तैसे स्थित हुआ, एक मुहूर्तपर्यंत निर्विकल्प स्थित रहा, अरु बहुरि उठ्या, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! आत्मा जो निर्विकल्प है, तिस निर्विकल्प शिलाविषे तैंनें शयन किया, अरु ज्ञेय जो जानणेयोग्य है सो तैंनें जाण्या है क्यों, अब अज्ञान तेरा नष्ट भया, अथवा नहीं भया, अरु शांतिकों प्राप्त भया अथवा नहीं भया सो कहु ॥ ॥ रा

जोवाच॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मैं उत्तम पदकों प्राप्त भया हौं॥ हे भगवन्! तत्त्ववेत्ताके संगतें जो अमृत पावता है, सो क्षीरसमुद्रतें भी नहीं पाइता, अरु देवताविषे भी नहीं पावता, तुमारी कृपातें मैं ऐसे अमृतकों पाया है, जिसका आदि अंत कोउ नहीं, अनंत है, अरु अमृतसार है, अब मेरे दुःख सर्व नष्ट हो गये हैं, अब मैं जाग्या हौं, अरु अपणे आपकों जाण्या है, मैं आत्मा हौं, मेरेसाथ चित्त कोउ नहीं, मैं केवल अपणे आपविषे स्थित हौं, अब इच्छा मेरे तांई कोउ नहीं, अपणे स्वभावकों पाया है, अरु सर्वके आदिपदकों प्राप्त भया हौं, जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, ऐसे निर्विकल्प पदकों प्राप्त हुआ हौं॥ हे भगवन्! ऐसा मेरा अपणा आप है, जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं, तिसके जाणेविना कोटि जन्म पाये थे, अब दुःख मेरे नाश भये हैं, तुमारी कृपातें एक क्षणविषे जाण्या है, आगे श्रवण भी करता, सो कारण कवन था, जो आगे न जाण्या, अरु अब जाण्या है॥ कुंभ उवाच॥ हे राजन्! तेरे कषाय अब परिपक्व हुए हैं, जैसे फल परिक्व होता है, तब यत्नविना वृक्षतें गिर पडता है, तैसे तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है, अब अज्ञान तेरा नष्ट हो गया है, जब अंतःकरण मलिन होता है, तब संतके वचन नहीं लगते, अरु जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब संतके वचन लगते हैं, जैसे कोमल भिहकों बाण लगै, तब शीघ्रही वेध्या जाता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे शीघ्रही उपदेश प्रवेश करता है॥ हे राजन्! अब भोगकी तेरी वासना नष्ट भई है, अरु स्वरूप जाननेकी तेरी इच्छा भई है तातें तूं जाग्या॥ हे राजन्! मैं उपदेश तब किया है, जो तेरा अंतःकरण शुद्ध भया है अरु प्रतिबिंब भी तहां पडता है, जहां निर्मल ठौर होता है, जैसे श्वेत वस्त्र ऊपर केसरका रंग शीघ्रही चढि जाता है, अरु रंग भी उज्ज्वल होता है, तैसे शुद्ध अंतःकरणविषे संतके वचन शीघ्रही प्रवेश करते हैं, अरु शोभा पावते हैं॥ हे राजन्! जबलग अंतःकरण मलिन होता है, भावै जेता उपदेश करियें तोउ स्थित नहीं होता, जब भोगतें वैराग्य होता है तब वासना कोउ नहीं रहती, केवल आत्म

पदकी इच्छा होती है, तब स्वरूपका साक्षात्कार होता है ॥ हे राजन्! अब तेरा सर्व त्याग सिद्ध हुए हैं; अरु अज्ञान नष्ट भया है, जो अवर उपाधि कोउ नहीं, चित्तही बडी उपाधि है, जब चित्त नष्ट हुआ, तब दुःख कोउ नहीं रहता, अब तूं सुखेन विचरु, तुझकों दुःख कोउ नहीं, शोक अरु भय कोउ नहीं, तूं शांतिपदकों प्राप्त भया है ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! अज्ञानीकों चित्तका संबंध है, अरु ज्ञानवान्कों चित्तका संबंध नहीं होता, जो स्वरूपविषे स्थित है तौ चित्तविना जीवन्मुक्ति क्रियाविषे कैसे वर्त्तता है ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तूं सत् कहता है, जो ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं, जैसे पत्थरकी शिलाविषे अंगुरी नहीं होती, तैसे ज्ञानीकों चित्तका संबंध नहीं होता ॥ हे राजन्! चित्त वासनारूप है, सो वासना जन्ममरणका कारण है, अरु जीवन्मुक्तकी वासना नहीं रहती, ज्ञानवान्का चित्त सत्य पदकों प्राप्त है, अरु अज्ञानी चित्तविषे बंधमान है, तिस करिके जन्मता भी है, अरु मरता भी है, अरु जो ज्ञानीका चित्त शांतिविषे स्थित है, तिसकों न बंध है, न मोक्ष है, प्रारब्ध अनुसार भोग भोगता है, अरु सर्वात्माही देखता है, यद्यपि इंद्रियां करि चेष्टा भी करता है, तौ भी सर्व ब्रह्मही देखता है, अरु क्रिया करणेविषे अभिमानतें रहित होता है, जो मैं करता हौं, अरु भोगता हौं, अरु अज्ञानी आपकों करता मानता है, तिसकों संसार सत्य भासता है, सत्य जाणीकरि संकल्प विकल्प करता है, अरु ज्ञानवान्कों संसारकी सत्यता नहीं भासती; आपकों अकर्ता अभोक्ता देखता है, अरु अभिलाषतें रहित चेष्टा करता है ॥ हे राजन्! संसारकों सत्य जानणा; अरु अपणेविषे क्रिया देखणी तबलग होती है जबलग चित्तका संबंध होता है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब संसार अरु फुरणा कहां रहै ॥ हे राजन्! अब चित्तका तैंनें त्याग किया है, तातें सर्वत्यागी भया है, अरु आगे सर्व त्याग न था किया, जो अज्ञान नष्ट न था भया, अब अहंभाव तेरा दूर भया है, जो अज्ञानका कार्य था, जब अज्ञान नष्ट भया, तब अहंभाव न रहा, अहंके त्याग करणेतें सर्व त्याग सिद्ध

हुआ, अरु आगे तैंनें राज्यका त्याग किया था, सो राज्यविषे तेरा कछु न था, बहुरि तमका त्याग किया, बहुरि वनतें आदि सर्व सामग्रीका त्याग किया, अब तिसका त्याग किया जो त्यागणे योग्य अहंभाव है, तातें सर्व त्याग भया, अरु जो कछु जानणे योग्य है सो जाण्या है, अरु शांतपदकों प्राप्त भया है ॥ हे राजन्! तूं आत्मा है, सर्व दुःखतें रहित है, जैसे मंदराचल पर्वततें रहित क्षीरसमुद्र शांतपदकों प्राप्त भया है, तैसे तूं अज्ञानतें रहित शांतपदकों प्राप्त भया है, अब तूं जाग्या है, अरु चित्तका त्याग किया है, तातें सर्व आत्मा अद्वैत भया है॥ हे राजन्! जब दो अक्षर होते हैं, तब तिनकी संज्ञा नानाप्रकार होती है, जो अमृत विष अरु सुखदुःख अरु धर्म अधर्म यह होते हैं, जब एकाएकी अक्षर होता है, तब सर्वका आत्मा है, तैसे दूसरा अज्ञान नष्ट भया है, अरु सत्यपदकों प्राप्त भया है, अरु शुद्ध निर्मल है ॥ हे राजन्! जो ज्ञानवान् है, सम्यक् दृष्टि करिके तिस चित्तका त्याग किया है, बहुरि तिसकों दुःख कोउ नहीं होता, सो तूं तिस पदकों प्राप्त भया है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, अरु तिस पदकों प्राप्त भया है, जहां स्वर्गादिक सुख तुच्छ हैं; स्वर्गविषे भी क्षय अतिशय होता है, अतिशय कहियें जो बडे पुण्यवाला आपसों उंचा देखता है, तब चाहता है, जो मैं भी इसी जैसा होउं, अरु क्षय कहियें मत इन सुखसों गिरौं, दोनों प्रकार दुःख होता है, सो पुण्य पाप दोनोंका तैंनें त्याग किया है, तातें तूं सर्व त्यागी है, अरु अज्ञानी जो पापी जीव हैं, तिनकों स्वर्ग भी भला है, जैसे स्वर्णका पात्र न पाइयें तौ पीतलका भी भला है, तैसे स्वर्णका पात्र जो ज्ञान है, जबलग प्राप्त न होवै, तबलग पीतलका पात्र जो स्वर्गादिक हैं, सो नरकतें भला है, अरु तुम सारखेकों कछु नहीं, जो आत्माविषे सर्व पदार्थकी पूर्णता है, अरु सर्वकी उत्पत्ति आत्मातें है ॥ हे राजन्! वर्णाश्रमविषे क्या अवस्था करणी है, जहांतें इनकी उत्पत्ति है, अरु जहां लीन होते हैं, अरु मध्यविषे जिसके अज्ञानतें दृष्ट आते हैं, तिसविषे स्थित होइयें, जिसके ज्ञानतें सर्व लीन हो जाते हैं॥ हे राजन्! संकल्प विकल्प जो उठते हैं, तिनाविषे स्थित मत होहु;

हीं करणा, मेरे आवणेपर्यंत स्वरूपविषे स्थित रहणा, अवर किसी चेष्टाविषे नहीं लगणा, अरु स्वरूपकों भली प्रकार जाणिकरि भावे तैसे विचरहु, ऐसे कहीकरि कुंभमुनि उठी खडा हुआ, तब राजानें अर्घ्य अरु फूल चडावणेके निमित्त हाथविषे लिये, सो जल फूल हाथविषे रहे, जो कुंभमुनि अंतरधान हो गया, जब राजा कुंभमुनिकों अपणे आगे न देखत भया, तब विचार करणे लगा, देखौ ईश्वरकी नीति जाणी नहीं जाती, जो नारदमुनि कहां था, अरु तिसका पुत्र कुंभमुनि कहां, अरु मैं राजा शिखरध्वज कहां, नीतिहीनें कुंभमुनिका रूप धारीकरि मुझकों आय जगाया है, अरु कुंभ बडा मुनि दृष्ट आया, जिसनें मेरेतें उपदेश करी जगाया है, अब मैं अज्ञानरूपी गरतसों निकस्या हौं, अरु स्वरूपकों प्राप्त भया हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भये हैं, अरु निर्दुःख पदविषे स्थित भया हौं, अरु अज्ञान निद्रातें जाग्या हौं, बडा आश्चर्य है ॥ हे रामजी! ऐसे कहीकरि राजा शिखरध्वजनें संपूर्ण इंद्रियां अरु प्राण मन स्थित किया, अरु चेष्टातें रहित भया, जैसे शिलाके उपर पुतली लिखी होते हैं, जैसे पर्वतका शिखर स्थित होता है, तैसे स्थित भया, अरु उहां चूडाला कुंभरूप शरीरका त्यागकरि अरु चूडालाका सुंदर रूप धारीकरि उडी आकाशकों लंघिकरि अपणे नगरविषे आवत भई, अरु अंतःपुर जहां स्त्री रहती थी, तहां प्रवेश किया, अरु मंत्रीकों आज्ञा करी जो तुम अपणे अपणे स्थानविषे स्थित होउ, अरु राणी राजाके स्थानविषे स्थित भई, भली प्रकार प्रजाकी खबर लीनी, तीन दिन रहीकरि बहुरि उडी, जहां राजा वनविषे था, तहां आय प्राप्त भई, अरु कुंभका रूप धारीकरि देखा जो राजा समाधिविषे स्थित है, देखीकरि बहुत प्रसन्न भई ॥ हे रामजी! ऐसे प्रसन्न होकरि चूडाला विचारत भई, बडा सुख कार्य हुआ, जो राजानें स्वरूपविषे स्थिति पाई, अरु शांतिकों प्राप्त भया, बहुरि विचार किया, जो इसकों जगावौं, तब सिंहकी नांई गर्जी अरु बडा शब्द किया, तिस शब्द करिके जेते वनके पशु पक्षी थे, सो सर्व भयकों प्राप्त भये, परंतु राजा न जाग्या, बहुरि हाथ करिके

हिलावती भई, तौ भी राजा न जाग्या, जैसे मेघके शब्दकरि पर्वतका शिखर चलायमान नहीं होता, तैसे राजा चलायमान न भया, काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित रहा, तब राणीनें विचार किया जो राजा शरीरकों त्यागि न देवै तौ भला, अरु जो राजानें शरीरका त्याग किया होवै, तौ मैं भी त्यागौंगी ॥ हे रामजी! चूडालानें शरीर न त्यागा, परंतु आरंभ करणे लगी, जो राजा अरु मैं एकठा शरीर त्यागणा है, बहुरि विचार करणे लगी, जो इसकी भविष्यत क्या होणी है, तब राजाके नेत्र पर हाथ लगाया, अरु देहसाथ देहका स्पर्श किया, तब देखा जो प्राण राजाके शरीरविषे हैं, अरु भविष्यतका भी विचार किया, जो इसका सत्व शेष रहता है, जीवन्मुक्त होकरि राज्यमें विचरणा है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें कहा जो राजा काष्ठ अरु पाषाणकी नांई स्थित भया, बहुरि कहा जो हाथ लगायकरि देख्या, जो इसविषे प्राण हैं, जीवता है, तौ कुंभनें क्योंकरि जाण्या, यह मुझकों संशय है, सो दूर करौ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस शरीरविषे पुर्यष्टका होती है, तिसविषे हरियावलता होती है ॥ हे रामजी! अज्ञानीका चित्त रहता है, अरु ज्ञानीका सत्व रहता है, जो प्रारब्धवेग करिके फुरता है, अरु ब्रह्माकार वृत्ति होती है, अरु अज्ञानीका चित्त फुरणे करिके बहुरि शरीर पावता है, अरु ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे एक समान रहता है, अरु अज्ञानी एक समान नहीं रहता, इष्टविषे प्रसन्न अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोकवान् होता है ॥ हे रामजी! ज्ञानी जब शरीरकों त्यागता है, तब ब्रह्मसमुद्रविषे स्थित होता है, अरु जबलग सत्व शेष है; तबलग फुरता है, अरु अज्ञानी शरीरकों त्यागता है, तब तिसविषे सूक्ष्म संसार होता है, जैसे बीजविषे वृक्ष फूल फल सूक्ष्मता करिके स्थित होते हैं, सो काल पायकरि बहुरि निकसता है, तिसी प्रकार राजाका सत्व शेष रहता था, तिस करिके बहुरि फुरैगा, तब कुंभरूप चूडालानें विचार किया जो इसके अंतर प्रवेश करिके जगावौं, जो मैं न जगावौंगी, तौ भी नीति करिके इसकों जानणा है,

तातें मैंही जगावौं, ऐसे विचार करिके अपणे शरीरका त्याग किया, चेतनताविषे स्थित होकरि अरु फुरणेकों लेकरि उसविषे जाय प्रवेश किया, प्रवेश करि उसकी जो चेतनता सत्व शेष था, उसकों फोडत भई, बडा क्षोभ किया, जब राजा उहांतें हिल्या, तब आप निकस आई, अरु अपणे शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पंखेरू आकाशविषे उडता है, बहुरि आलयविषे आय प्रवेश करता है, तैसे अपणे शरीरविषे आनि स्थित भई, अरु सामवेदका गायन करणे लगी, महासुंदर स्वरसाथ, तब राजानें श्रवण किया, अरु जाणत भया, जो कोउ सामवेद गावता है, ऐसे श्रवण करि जाग्या, अरु देखा जो कुंभमुनि बैठा है, देखी करि बहुत प्रसन्न भया, तब फूल जल चडाया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! मेरे बडे भाग्य हैं, देखीकरि बहुत प्रसन्न भया, जो तुमरा दर्शन हुआ ॥ हे भगवन्! कुलरूपी जो कुलाचल पर्वत है, तिसविषे जो देहरूपी वृक्ष है, सो अब फूल्या है, तुमनें हमकों पावन किया है॥ हे भगवन्! किसीकी समर्थता नहीं, जो तुम सारखेके चित्तविषे प्रवेश करै, जिसविषे सर्वदा आत्माका निवास है, तिस चित्तविषे मेरी स्मृति हुई है, जो दर्शन किया है, तातें मेरे बडे भाग्य हैं ॥ हे भगवन्! अमृतरूपी वचनोंकरि तुम प्रथम मेरे तांई पवित्र किया था, अरु अब जो चित्त किया है, सो मेरे तांई पावन किया है॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! तेरा दर्शन करिके मैं भी बहुत प्रसन्न हुआ हौं, अरु तुम जैसी प्रीति मैं आगे किसीकी नहीं देखी ॥ हे राजन्! तेरे निमित्त मैं स्वर्गतें आया हौं, स्वर्गके सुख मेरे तांई भले न लगें, अरु तूं मेरे तांई बहुत प्रीतम है, इसी निमित्त मैं आया हौं, अब स्वर्गविषे भी नहीं जाता, तेरेही पास रहौंगा ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! जिस उपर तुम सारखेकी कृपा होती है, तिसकों स्वर्ग आदिक सुख भले नहीं लगते, तौ तुम सारखेकी बात क्या कहणी है, यह वन है, यह झुपडी है, इसविषे विश्राम करौ, मेरे बडे भाग्य हैं, जो तुमारा चित्त इहां रहणेकों भया है॥ ॥ कुंभ उवाच॥ हे राजन्! अब मेरे तांई शांति प्राप्त भई है, अरु संकल्पबीज नष्ट भया है, जैसे नदीके किनारेपर वली होती है, अरु

जलके प्रवाहकरि मूलसमेत गिरती है, तैसे तेरा संकल्पबीज नष्ट भया है, अब तूं यथाप्राप्तिविषे संतुष्ट हुआ है, कै नहीं हुआ, हेयोपादेयतें रहित हुआ है, कै नहीं हुआ, अरु जो पावणे योग्य पद है सो पाया है, कै नहीं पाया, अपणा अनुभव कहहु ॥ ॥राजोवाच॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें सर्वसों श्रेष्ठ पद मैं पाया हौं, जहां संसार सीमाका अंत है, अरु अब मेरे तांई उपदेशका अधिकार नहीं रहा, जो संपूर्ण संशय मेरे नष्ट भए हैं, हेयोपादेयतें रहित हौं, इसकरि सुखी विचरता हौं, अरु जो कछु जानणे योग्य था, सो मैं जाण्या है, अब दुःख मेरेविषे कोउ नहीं, सर्व ठौर मैं तृप्त हौं, अनीति प्राप्तरूप हौं, अरु आत्मा हौं, निर्मल हौं, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित हौं, अरु सर्वात्मा हौं, निर्विकल्प हौं, मेरेविषे फुरणा कोउ नहीं, मैं शांतरूप हौं, अरु चिरपर्यंत सुखी हौं ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार राजा अरु कुंभका तीन मुहूर्त संवाद हुआ, तिसतें उपरांत दोनों उठी खडे हुए, अरु चले, निकट एक तलाव था, जहां बहुत कमलिनी थी, तहां आयकरि दोनों स्नान करत भये, अरु गायत्री संध्या करी, पूजा करिके बहुरि उहांतें चले, वनकुंजोंविषे आये, तब कुंभनें कहा, चलियें, राजा कहा, भली बातां चलियें, तब चले, बहुत नगर देश ग्राम अरु तीर्थ देखे, अरु नानाप्रकारके वनविषे विचरे, जो फूल फल संयुक्त थे, तिनविषे विचरे अरु मरुस्थलविषे विचरे॥ हे रामजी! ऐसे राजसी सात्विकी तामसी स्थानोंविषे विचरे, तीर्थादिक सात्विकी स्थान हैं अरु सुंदर वन आदिक राजसी स्थान हैं, अरु मरुस्थल आदिक तामसी स्थान हैं; तिनविषे विचरे, तौभी हर्षशोककों न प्राप्त भये, समताविषे रहे॥ हे रामजी! कुंभका प्रयोजन फिरणेका भी यह था, जो राजा शुभ अशुभ स्थानोंकों देखिकरि हर्ष शोक करैगा, अथवा न करैगा, तौ भी राजा हर्षशोककों न प्राप्त भया, बहुरि बडे पर्वतकी कंदरा देखियां, अरु वन कुंज बडे कष्टके स्थान देखे, अरु एक वनविषे जाय स्थित भए, केते कालविषे राजा अरु कुंभ एक जैसे हो गए, एकठेहि स्नान करहीं, अरु एक जैसी मूर्तियां, अरु एक जैसे जाप जपहीं, एक

जैसी पूजा करहीं, अरु एक जैसे दोनों सुहृद भए, जो उपकारकी अपेक्षाविना उपकारी भए, किसी ठौर माटी शरीरकों लगावैं, किसी ठौर चंदनका लेप करें, किसी ठौर शरीरकों भस्म लगावैं, किसी ठौर दिव्य वस्त्र पहिरें किसी ठौर केले पत्र उपर सोवैं, किसी ठौर फूलकी शय्या होवैं, किसी ठौर क्रूर स्थानोंविषे शयन करें ॥ हे रामजी! ऐसे शुभ अशुभ ठौरविषे भी दोनों ज्योंके त्यों रहें, जो हर्षशोकको न प्राप्त भए, केवल सत्त्व शुद्ध विषे स्थित रहें, आत्माविना अवर कछु न फुर्या, एक वनविषे जाय स्थित भये, तब राणीके मनविषे विचार हुआ, जो यह मेरा भर्त्ता है, मैं इसकों भोगों, हमारी अवस्था है जो भले कुलकी स्त्री है सो भर्ताकों प्रसन्न रखती है, अरु राजाका शरीर भी देवता जैसा हुआ है, अरु स्थान भी शुभ है, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी साथ हैं, अरु बहुरि विचार किया जो राजाकी परीक्षा भी करौं, जो क्या कहैगा, तब कुंभनें कहा, हे राजन्! अब हम स्वर्गकों जाते हैं, जो चैत्र शुद्ध एकमकों ब्रह्माजीनें सृष्टि उत्पन्न करी है, इसी दिन वर्षके वर्ष उत्सव होता है, अरु नारदमुनि भी आवैगा, तातें हम जाते हैं, अरु आजही फिरि आवैंगे, मेरे आवणेपर्यंत तुम ध्यानविषे रहणा, अरु ध्यानतें उतरौ तब फूलकों देखणा, ऐसे कहीकरि फूलोंकी मंजरी राजाकों दीनी, अरु राजानें भी कुंभकों फूलकी मंजरी दीनी, जैसे नंदनवनविषे स्त्री भर्ताके हाथ देवै, अरु भर्ता स्त्रीके हाथ देवै तैसे दोनों परस्पर देते भए, बहुरि कुंभ आकाशकों उड्या, अरु पाछे राजा देखता रहा, जैसे मेघकों मोर देखता है, तैसे राजा देखता रहा, जेतेपर्यंत राजाकी दृष्टि पडती थी, तब लग कुंभका शरीर रख्या, जब दृष्टिसों अगोचर भया, आकाशविषे, तब फूलकी माला जो गलेविषे थी, सो तोडिकरि राजाके उपर डारि दीनी, अरु चूडालाका शरीर धारि आकाशकों लंघिकरि अपणा अंतःपुर जो था स्त्रीका स्थान, तहां आय प्राप्त भई, अरु राजाके स्थानपर बैठीकरि मंत्रीकों बुलाया, अपणे अपणे स्थानोंविषे स्थित किये, अरु प्रजाकी खबर लीनी, बहुरि उडी, सूर्यके किरणोंके मार्ग मेघ मंडलकों लंघती आई, जहां रा

जाका स्थान था तहां आयकरि देखा, जो राजा बिछुरेकरि शोकवान् है, अरु कुंभ भी दिलगीर जैसा राजाके आगे आय स्थित भया, तब राजानें कहा॥ हे भगवन्! शोक तुमारे तांई कैसे प्राप्त भया है, ऐसा कष्ट मार्गविषे तुमारे तांई कवन हुआ है, अरु सर्व दुःखका नष्ट करणेहारा ज्ञान है, सो तुम सारखे ज्ञानवान्कों शोक होवै तौ अवरकी क्या बात कहणी है॥ हे मुनि! तुमारे तांई दुःखका कारण कोउ नहीं, तुम क्यौं शोकवान् होते हौ, अरु तुमारे तांई कवन अनिष्ट प्राप्त भया है, तब कुंभनें कहा॥ हे राजन्! मेरे तांई एक दुःख है, सो कहता हौं, जो मित्र पूछे तौ सत् कहा चाहियें, अरु दुःख भी नष्ट होता है, जैसे मेघ जड अरु श्याम भी होता है, अरु उसका सज्जन जो है, क्षेत्र अरु पृथ्वी, तिस ऊपर वर्षा करता है, तिसकी जडता अरु श्यामता नष्ट होती है, तातें मैं तेरे तांई कहता हौं, हे राजन्! जब स्वर्गविषे सभा स्थित थी, तब मैं नारदके पास था, जब सभा उठी, तब नारदमुनि भी उठ्या, अरु मुझकों कहा, जहां तेरी इच्छा होवै तहां जाहु, अरु मैं भी जाता हौं, काहेतें जो नारद एकही ठौरविषे नहीं ठहरता; विश्वविषे सैल करता फिरता है, इसीतें मेरे तांई कहा जो तूं भी जाहु, तब मैं आकाशतें चला, एक ठौर सूर्यसाथ मिलाप हुआ, बहुरि आगेकों चला, मेघके मार्ग तीक्ष्ण वेगकरि चला आया हौं, जैसे नदी पर्वततें तीक्ष्ण वेगकरि आती है, तैसे मैं तीक्ष्ण वेगकरि चला आता था, तब दुर्वासा ऋषीश्वर उडता आता है, महामेघकी नांई श्याम वस्त्र पहिरे हुए, अरु भूषणसंयुक्त जैसे बीजलीका चमत्कार होता है, तैसे भूषणोंका चमत्कार देखिकरि मैं दंडवत करिके कहा॥ हे मुनीश्वर! तुम क्या रूप धार्या है, जो स्त्रीकी नांई भासता है, तब दुर्वासानें मेरे तांई कहा॥ हे ब्रह्माके पोत्रे! तूं कैसा वचन कहता है, ऐसा वचन मुनीश्वरप्रति कहणा उचित नहीं, हम क्षेत्र हैं, जैसा बीज क्षेत्रविषे बोइयें तैसा उगता है, तातें मेरे तांई स्त्री तैंनें कहा है, तूं भी स्त्री होवैगा, अरु रात्रिकों तेरे अंग सब स्त्रीके होवैंगे॥ हे मुनीश्वर! जो कल्याणकृत ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों नम्रता होती है, जैसे फलसंयुक्त वृक्ष

नम्र होता है, तैसे ज्ञानी भी नम्र होता है, ऐसा वचन तेरे तांई कहणा न चाहियें ॥ हे राजा! ऐसे श्रवण करिके मैं तेरे पास चल्या आया हौं, अरु मेरे तांई लज्जा आती है, जो स्त्रीका शरीर धारे देवताविषे कैसे विचरौंगा, यही मुझकों शोक है, तब राजानें कहा, क्या हुआ, जो दुर्वासानें कहा, अरु स्त्रीका शरीर भया, तुम तौ शरीर नहीं, आत्मा निर्लेप है, किसीसाथ लेप नहीं ॥ हे मुनीश्वर! तुम अपणी समताविषे स्थित रहते हौ, अरु ज्ञानवान् पुरुषकों हेयोपादेय किसीका नहीं रहता, अपणी समताविषे स्थित रहता है, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! तूं सत्य कहता है, मेरे तांई क्या दुःख है, जो शरीरका प्रारब्ध है, सो होता है, तिससाथ हमारा क्या प्रयोजन है, यह ईश्वरकी नीति है, जबलग शरीर होता है, तबलग शरीरके स्वभाव भी रहते हैं, अरु शरीरका स्वभाव त्याग करणा भी मूर्खता है, जिस स्थानविषे ज्ञानकी प्राप्ति होवै तिसी चेष्टाविषे विचरियें, अरु यह भी मूर्खता है, जो इंद्रियांकों रोकणा, अरु मनकरि विषयकी चिंतना करणी, तातें इंद्रियां अरु देहकी चेष्टा ज्ञानवान् भी करते हैं, परंतु तिसविषे बंधमान नहीं होते, इंद्रियां विषयविषे वर्ततियां हैं, आदि नीति ईश्वरकी इसी प्रकार है ॥ हे राजन्! नीतीका त्याग किसीतें किया नहीं जाता, तातें नीतिका त्याग क्यौं करियें, यह नीति है, जो जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जैसे जबलग तिल है, तबलग तेल भी होते हैं, तैसे जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी होते हैं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देह इंद्रियांकरि चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान नहीं होते, अरु अज्ञानी बंधायमान होते हैं, अरु चेष्टा ज्ञानी करते हैं, अज्ञानी भी करते हैं, जैसे ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि ज्ञानवान् हैं, सर्व चेष्टा भी करते हैं, परंतु बंधायमान किसीकरि नहीं होते ॥ हे राजा! तैसे जो अनिच्छित आय प्राप्त होवै, अरु जिसकों शास्त्र प्रमाण करैं, तिसके भोगणेविषे दूषण कछु नहीं ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवान्कों दूषण कछु नहीं, जो सत्ता समानविषे स्थित है, तिस करिके दूषण कछु नहीं हो

ता, अरु अज्ञानी शरीरके दुःख अपणेविषे देखता है, तिसकरि दुःखी होता है; अरु ज्ञानवान् शरीरके दुःख अपणेविषे नहीं देखता ॥ हे रामजी! ऐसे कहते सूर्य अस्त हुआ, तब राजा अरु कुंभ दोनों सायंकालविषे संध्या करी, अरु जाप किया, जब रात्र हुई तब तारागण निकसे, अरु सूर्यमुखी कमलोंके मुख मुंदे गए, तब कुंभनें कहा ॥ हे राजन्! देख, जो मेरे शिरके बाल बढते जाते हैं, अरु वस्त्र भी गिटेपर्यंत हो गये हैं, अरु स्तन भी स्त्रीकी नांई भए हैं, इत्यादिक वस्त्र भूषण जेती कछु चेष्टा है, सो स्त्रीकी हुई, तब राजाकों भी शोक प्राप्त भया, अरु महासुंदर स्त्री लक्ष्मीकी नांई चूडाला हो गई, तिसकों देखिकरि राजाकों एक मुहूर्त शोक रहा, तिसतें उपरांत सावधान हुआ, अरु कहत भया ॥ हे मुनि! क्या हुआ जो शरीर स्त्रीका हुआ, तुम तौ शरीर नहीं, तुम आत्मा हौ, तातें शोक क्यों करियें, तुम अपणी सत्ता समानविषे स्थित होहु, तब रात्र हुई अरु राणी महासुंदर रूप धारैं, फूलोंकी शय्या बिछाई, तिसपर दोनों एकठे सोए, हे रामजी! ऐसे रात्रि व्यतीत भई, कोउ फुरणा न फुऱ्या, सत्ता समानविषे दोनों स्थित रहैं, अरु मुखतें कछु न बोले, सोई गए, जब प्रातःकाल हुआ, तब बहुरि कुंभका शरीर धारा, स्नान किया, अरु गायत्रीतें आदि जो कर्म हैं, सो किये इसी प्रकार रात्रिकों स्त्री बणि जावैं, अरु दिनकों कुंभ पुरुषका शरीर धारैं, जब कछु काल ऐसे व्यतीत भया, तब उहांतें चलैं, अरु सुमेरु पर्वत उपर गए, मंदराचल अरु अस्ताचलतें आदि सर्व सुख स्थानोंकों देखते भये ॥ हे रामजी! एक दृष्टिकों लिये रहैं, न कोउ हर्षवान् हुए, न शोकवान् हुए, ज्योंका त्यों रहैं, जैसे पवनकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसेही शुभ अशुभ स्थानोंविषे समान रहैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिखरध्वजस्त्रीप्राप्तिर्नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचरते विचरते मंदराचलकी कंदराविषे जाय स्थित भए, तब कुंभरूप चूडाला राजाकों परीक्षाके निमित्त कहत भई ॥ हे

राजन्! मैं रात्रिकों स्त्री होती हौं, तब मेरे तांई भर्त्ताके भोगणेकी इच्छा होती है, काहेतें जो ईश्वरकी नीति ऐसेही है, जो स्त्रीकों अवश्यमेव पुरुष चहिता है, अरु जो उत्तम कुलका पुरुष होता है, तिसकों कन्या विवाह करिके पिता देता है, अथवा जिसकों स्त्री चाहै तिसकों आप देखि लेवैं ॥ तातें हे राजन्! मेरे तांई तुझतें अधिक कोउ नहीं दृष्ट आता, तूंही मेरा भर्त्ता है, अरु मैं तेरी स्त्री हौं, तूं अपणी भार्या जाणीकरि जो कछु स्त्री पुरुष चेष्टा करते हैं, सो किया कर, मेरी अवस्था भी यौवन है, अरु तूं भी सुंदर है, ज्ञानवान् अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग नहीं करते, यद्यपि तुझकों इच्छा न होवै, तौ भी ईश्वरकी नीति इसी प्रकार है, तिसकों उल्लंघणेकरि क्या सिद्ध होता है, जो अपणे स्वरूप सत्ताविषे स्थित है, तिसकों ग्रहण त्यागकी कछु इच्छा नहीं, परंतु जो नीति है, सो करी चाहियें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! जो तेरी इच्छा है, सो करियें, मुझकों तौ तीनों जगत् आकाशरूप भासते हैं, प्राप्त होणेकरि मेरे तांई सुख कछु नहीं, अप्राप्तिविषे दुःख नहीं, न कोउ मेरे हर्ष है, न शोक है, जो तेरी इच्छा होए सो करियें ॥ ॥ कुंभ उवाच ॥ हे राजन्! आजही पूर्णमासीका भला दिन है, अरु यह मैंनें आगे लग्न भी गिनि छोडा है, तातें मंदराचल पर्वतकी कंदराविषे बैठिकरि विवाह करियें, अब सामग्री एकठी करियें, तब राजा अरु कुंभ दोनों उठे, जो कछु सामग्री शास्त्रकी है, सो एकठी करी अरु दोनोंनें गंगापर स्नान किया, अरु वेहली पूजन करि अरु वस्त्र फूल फलतें आदिलेकरि जो विवाहकी सामग्री है, सो कल्पवृक्षसों लीनी, बहुरि फलकों भोजन किया, तब सूर्य अस्त भया, दोनों संध्या उपासना करी, बहुरि राजाकों दिव्य वस्त्र भूषण पहिराए, अरु शिरपर मुकुट पहिराया, बहुरि कुंभका शरीर त्याग किया, अरु स्त्रीका शरीर होत भया, तब स्त्रीनें कहा ॥ हे राजन्! अब तूं मेरे तांई भूषण पहिराए, तब राजाने संपूर्ण भूषण फूल अरु वस्त्र पहिराए, अरु पार्वतीकी नांई सुंदर बनी, तब चूडालानें कहा ॥ हे राजा! मैं अब तेरी स्त्री हौं, अरु नाम मेरा मदनिका है, अरु तूं मेरा भर्त्ता है, कामदेवतें

भी तूं सुंदर भासता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी प्रकार चूडालानें बहुत कछु कहा, तौ भी राजाका चित्त हर्षकों न प्राप्त भया, अरु वैराग्यकरि शोकवान् भी न भया, ज्यौंका त्यौं रहा, तिसतें उपरांत विवाहका आरंभ किया, चंदोआ आदियां अरु वस्त्र कल्पवृक्षतें लिये, अरु पास स्वर्णके कलश राखे, देवताका पूजन किया, इत्यादिक जो शास्त्रकी विधि थी सो संपूर्ण करी, लावांलिया अरु मंगल किया, बहुरि संकल्प यह दिया जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी अरु राजा भी संकल्प किया, जो संपूर्ण ज्ञाननिष्ठा तेरे तांई दीनी, जब रात्र एक प्रहर रही तब राजा अरु राणी फूलोंकी शय्या बिछाई, शयन करिके आपसविषे चरचाही करते रहै, अरु मैथुन कछु न किया, जब प्रातःकाल हुआ, तब स्त्रीका शरीर त्यागिकरि कुंभका शरीर धारा, अरु स्नान किया, संध्यादिक कर्म किये ॥ हे रामजी! इसी प्रकार एक मासपर्यंत मंदराचलपर्वतविषे रहे, जो रात्रकों स्त्रीका शरीर अरु दिनकों कुंभका शरीर करें, जब तीसरा दिन होवै, तब राजाकों शयन करायके राजकी शुद्ध आय लेवै, बहुरि राजाके पास जाय शयन करैं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवाहलीलावर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब उहांसों चले, अस्ताचल पर्वतविषे रहे, उदयाचल अरु सुमेरु कैलास पर्वत इत्यादिक जो पर्वत अरु कंदरा वनोंविषे रहे, कहूं एक मास, कहूं दश मास, कहूं पांच दिन, कहूं सप्त दिन रहे, जब एक वनविषे आये, तब राणीनें विचार किया, जो एते स्थान राजाकों दिखाये हैं, तौ भी इसका चित्त किसविषे बंधमान नहीं भया, तातें अब अवर परीक्षा लेउ ॥ ऐसे विचारकरि अपणी माया पसारी, तब इंद्र तेतीस कोटी देवतासंयुक्त किन्नर गंधर्व सिद्ध अरु अप्सरा आगे नृत्य करती आतीयां हैं ॥ अवर भी जो कछु इंद्रकी सामग्री है, तिससंयुक्त इंद्रकों देखीकरि राजा उठ्या, बहुत प्रीतिसंयुक्त इंद्रकी पूजा करी, अरु कहा, हे त्रैलोक्यके पति! तुमारा आवणा इस वनविषे कै

से हुआ है, सो कहौ, तब इंद्रनें कहा ॥ हे राजन्! जैसे पक्षी होता है, अरु ऊर्ध्वकों उडता है, तिसकी पेटी तागा होता है, तिसकरि उडता हुआ भी नीचे आता है, तैसे हम ऊर्ध्वके वासी तेरा गुणरूपी जो तागा है, तप अरु शुभ लक्षण, तिसकों श्रवण करिके हम स्वर्गतें खैंचे चले आते हैं, इस वनविषे इस प्रकार हमारा आवणा हुआ है, तातें राजा! तूं स्वर्गकों चल, अरु स्वर्गविषे स्थित होकरि दिव्य भोगकों भोगहु, ऐरावत हस्ती है, तिसपर आरूढ होहु, अथवा यह उच्चैःश्रवा घोडा है, जो क्षीरसमुद्रके मथनतें निकसा है, इसपर आरूढ होकरि चल, अरु सिद्धि भी है, एक तौ यह सिद्धि है, जिसपर पाउं रखिये तौ जहां चाहिये तहां पहुंचावै, अरु एक खड्ग सिद्धि है, खड्गकों हाथमें धारिकरि जहां इच्छा होए तहां चला जावै, एक गुटिका है, जो मुखमें राखिकरि जहां इच्छा होए तहां इच्छाचारी चला जाइये, इसतें लेकरि अष्टसिद्धि भी विद्यमान हैं, जो इच्छा होए सो लेहु, अरु स्वर्गविषे चलौ ॥ हे राजन्! तुम तत्त्ववेत्ता हौ, तुमकों ग्रहण त्याग करणा कछु नहीं रहा, परंतु जो अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसका त्याग करणा योग्य नहीं, तातें स्वर्गविषे चलो ॥ राजोवाच ॥ ॥ हे देवराज! जाणा तहां होता है, जहां आगे नहीं होता, अरु जहां आगे होइये तहां कैसे जाइये ॥ हे देवराज! हमकों सर्व स्वर्गही दृष्टि आता है, जो उहां स्वर्ग होवै, इहां न होवै तौ जाइए भी, परंतु जहां हम बैठे हैं, तहांही स्वर्ग भासता है, तातें हम कहां जावैं, हमकों तीनो लोक स्वर्ग दृष्ट आते हैं, अरु सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है, हम तिसीविषे स्थित है, हमारे तांई सर्वथा स्वर्ग भासता है, हम सदा तृप्त आनंदरूप हैं, तातें हम कहां जावै ॥ इंद्र उवाच ॥ हे राजन्! जो विदितवेद पूर्ण बोध है, सो भी यथाप्राप्त भोगकों सेवते हैं, तुम क्यों नहीं सेवते, ऐसे जब इंद्रनें कहा तब राजा त्यौंही कहीकरि चुपकरि गया ॥ बहुरि इंद्रनें कहा, भला जो तुम नहीं आते तौ हम जाते हैं, तेरा अरु कुंभका कल्याण होवै ॥ हे रामजी! ऐसे कहिकरि इंद्र उठि खडा हुआ अरु चल्या, जबलग दृष्टि

आता था, तबलग देवता भी साथ दृष्टि आते हैं, बहुरि दृष्टि अगोचर भए, तब अंतर्धान हो गए, जैसे समुद्रतें तरंग उठिकरि बहुरि लीन हो जाता है, अरु नहीं जाणीता जो कहां गया, तैसे इंद्र अंतर्धान हो गया, सो इंद्र कुंभरूप चूडालाके संकल्पतें उठ्या था, जब संकल्प लीन भया तब अंतर्धान हो गया, तब चूडालानें देखा जो ऐसे ऐश्वर्य अरु सिद्धि अरु अप्सराके प्राप्त भए भी राजाका चित्त समताविषे रहा, अरु किसी पदार्थविषे बंधमान न हुआ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मायाशक्रागमनवर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब चूडाला इंद्रका छलकरि रही, तब विचार किया जो ऐसा चरित्र राजाके मोहणे निमित्त किया, तौ भी राजा किसीविषे बंधायमान न भया, ज्योंका त्योंही रहा, बडा कल्याण हुआ, जो राजा सत्ता सामान्यविषे स्थित रहा, तातें बडा आनंद हुआ, अब अवर चरित्र करियें, जो क्रोध होवै, जिसविषे बडा खेद होवै, ऐसे विचार करि चरित्र किया, राजाकी परीक्षाके निमित्त, जब सायंकालका समय हुआ, तब गंगाके किनारे राजा संध्या करणे लगा, अरु कुंभ वनविषे रहा, तब वनविषे संकल्पका मंदिर रचा, जैसे देवताकी रचना होती है, तैसे मंदिरकेपास फूलकी वाडी पाई, अरु कल्पवृक्षतें आदि नानाप्रकारके फूल फल संयुक्त वृक्ष रचे, ऐसे वनके स्थानविषे एक संकल्पकी शय्या रची, अरु एक संकल्पका महासुंदर पुरुष रचा, तिससाथ सोए रही, अंगसों अंग लगायकरि अरु गलेविषे फूलोंकी माला डारी, अरु कामचेष्टा करणे लगी, तब राजा संध्याकरि उठ्या, अरु राणीकों देखणे लगा, दृष्ट न आई, ढूंढते ढूंढते तिस मंदिरके निकट आया, तब क्या देखे जो कामी पुरुषकेसाथ मदनिका सोई हुई है, अरु कामचेष्टा करते हैं, तब राजानें कहा भले, आरामसाथ सोए पडे हैं, सोए रहे इनके आनंदविषे विघ्न क्यों करियें ॥ हे रामजी! इस प्रकार राजानें अपणी स्त्रीकों देखी, तौ भी शोकमान न हुआ, अरु क्रोध भी न किया, ज्योंका त्यों शांतपदविषे स्थित रहा, क्षोभकों न प्राप्त भया, अरु मंदिरके बाहिर निकसे, तहां एक स्वर्णकी शिला पडी

थी, तिस उपर बैठी रहा, अरु समाधिविषे स्थित भया, परंतु उन्मीलितलोचन तब दो घडी उपरांत मदनिका कामी पुरुषकों त्यागिकरि बाहिर आई, अरु राजाके निकट आएकरि अंगोंकों नग्न किया, बहुरि वस्त्रोंसाथ ढांपे, जैसे अवर स्त्रीयां कामकरि व्याकुल होतिया हैं, तैसे चूडालाकों देखिकरि राजानें कहा ॥ हे मदनिका, तूं ऐसे सुखकों त्यागिकरि क्यों आई है, तूं तौ बडे आनंदकरि मग्न थी, अब तहांही फिरि जाहु, मेरे तांई तौ हर्ष शोक कछु नहीं, मैं ज्योंका त्यों हौं, परंतु तेरी अरु कामी पुरुषकी प्रीति परस्पर देखी है, परस्पर प्रीति जगत्विषे नहीं होती, अरु तुमारी देखी है, तातें तूं उसकों सुख देहु, उह तेरे तांई सुख देवै, अब जाही, तब मदनिका लज्जासों शिरकों नीचे करिके बोली ॥ हे भगवन्! तुम क्षमा करौ, मेरे उपर क्रोध न करौ, मुझतें अवज्ञा बडी हुई है, परंतु मैं जाणी न करी, जैसे वृत्तांत है सो श्रवण करौ, जब तुम संध्या करणे लगे, तब मैं वनविषे आई थी, तहां एक कामी पुरुषका मिलाप भया, मैं निर्बल थी, उह बली था, तिसनें मेरेतें पकडि लीनी, अरु जो पतिव्रता स्त्रीकी मर्यादा है, सो भी मैं करी, जो उसपर क्रोध किया, अरु निरादर किया, अरु पुकार भी करी, यह तीनों पतिव्रताकी मर्यादा हैं, सो मैं करी, अरु तुम दूर थे, उह बली था, मेरे तांई पकडी लीनी, अरु गोद्विषे बैठाई जो कछु उसकी भावना थी, सो करी, हे भगवन्! मुझविषे दूषण कछु नहीं, तातें तुम क्षमा करौ, क्रोध न करौ ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे मदनिका! मेरे तांई क्रोध कदाचित् नहीं होता, आत्माही दृष्ट आता है, तौ क्रोध किसपर करौं, मेरे तांई न कछु ग्रहण है, न कछु त्याग करणा है, तथापि यह कर्म साधोंकरि निंदित है, तातें अब तेरा त्याग किया है, सुखे विचरौंगा, अरु जो हमारा गुरु कुंभ है सो हमारे पासही है, उह अरु हम सदा निरागरूप हैं, अरु तूं तौ दुर्वासाके श्रापतें उपजी है, तेरेसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, तूं अब उसी पास जाहु ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० मायापिंजरवर्णनं नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तब मदनिका नाम जो चूडा

ला है, तिसनें विचार किया, बडा कार्य हुआ, जो राजा आत्मपदविषे प्राप्त भया, ऐसे सिद्धि अरु ऐश्वर्य देखे, अरु क्रूर स्थान भी दिखाए तौ भी राजा शुभ अशुभविषे ज्यौंका त्यौं रहा, तातें बडा कल्याण हुआ, जो राजाकों शांति प्राप्त भई, अरु रागदोषतें रहित भया, अब पूर्वला रूप चूडालाका है सो दिखावौं, अरु संपूर्ण वृत्तांत राजाकों बतावौं, ऐसे विचार करि मदनिका शरीरतें चूडालारूप होकरि प्रगट भई, भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सहित, तब राजा देखीकरि महा आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु ध्यानविषे स्थित हुआ, अरु देखा जो यह चूडाला कहांतें आई है, बहुरि पूछा, हे देवि! तूं कहांतें आई है, तेरे ताईं देखिकरि मैं आश्चर्यकों प्राप्त भया हौं, जो ऐसी मेरी स्त्री चूडाला थी, अरु तूं इहां किसनिमित्त आई है अरु कबकी आई है॥

॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! मैं तेरी स्त्री चूडाला हौं, अरु तूं मेरा स्वामी है॥ हे राजन्! कुंभतें आदि अरु यह चूडाला शरीरपर्यंत सर्व चरित्र तेरे जगावणेके निमित्त मैंही किये हैं, तूं ध्यानविषे स्थित होकरि देख, जो यह चरित्र किसनें किये हैं, अरु मैं अब पूर्वका शरीर चूडालाका धारा है॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तब राजा ध्यानविषे स्थित होकरि देखणे लगा, एक मुहूर्तपर्यंत वृत्तांत सब देखि लिया, तिसतें उपरांत राजा आश्चर्यकों प्राप्त होकरि नेत्र खोले, अरु राणीके गलेसाथ कंठ लगायकरि मिल्या, अरु दोनों हर्षकों प्राप्त भये, जो सहस्र वर्षपर्यंत शेष नाग उस सुखकों वर्णन करे तौ भी कही न सकैगा, ऐसे सत्ता समानविषे स्थित हुए, अरु शांतिकों प्राप्त भए, जिसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, राजा अरु राणी जुगल कंठ लगाए मिलेथे, तिसतें अंगोंविषे उष्णता उपजी, तब शनैः शनैः करि खोल्या, हर्षमान होकरि राजाके रोमावलि खडे हो आए, अरु नेत्रतें जल चलणे लगा, ऐसी अवस्थासाथ राजा बोल्या॥ हे देवि! मेरे उपर तैंनें बडा अनुग्रह किया है, तेरी स्तुति करणेकों मैं समर्थ नहीं, कैसे स्तुति करौं, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं सो सब मायामय हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु तैंनें मेरे ताईं सत्पदकों प्राप्त किया है, तातें मैं ते

री उपमा क्या करौं ॥ हे देवि! मैंनें जाण्या है, जो जब मैं राज्यका त्याग किया है, अरु इस चूडालाके शरीर पर्यंत सब तेरे चरित्र हैं, अरु मेरे वास्ते बडे कष्ट तैंनें सहन किये हैं, अरु बडे यत्न किये हैं, आणा अरु जाणा, शरीरका स्वांग धारणा, अरु उडणा इत्यादिक बडा तैंनें कष्ट पाया है, अरु बडे यत्नकरि मेरे तांई संसारसमुद्रतें पार किया है, अरु बडा उपकार किया है, तूं धन्य है, अरु जेती कछु देवियां हैं, तिनसों तैंनें श्रेष्ठ कार्य किया है, तातें तूं सबतें अधिक है, सो कवन देवियां हैं, जिनतें तूं अधिक है, अरुंधती अरु ब्रह्माणी अरु इंद्राणी अरु पार्वती, सरस्वती, इत्यादिक देवियांकों तैंनें तिरस्कार किया है ॥ हे देवि! जो श्रेष्ठ कुलकी कन्या है, अरु पतिव्रता है सो जिस पुरुषकों प्राप्त होती है, तिसका सर्व कार्य सिद्ध होता है, सो कवन कवन श्रेष्ठ स्त्रियां हैं, श्रवण कर, बुद्धि अरु शांति अरु दया अरु शक्ति अरु कोमलता, मैत्री इत्यादिक जो शुभ लक्षण हैं, सो पतिव्रता स्त्रीकरि प्राप्त होते हैं ॥ हे देवि! मैं तेरे प्रसादकरि शांतपदकों प्राप्त भया हौं, अब मेरे तांई क्षोभ कोउ नहीं, ऐसा पद शास्त्रोंकरि भी नहीं पाइता, अरु तपकरि नहीं पाइता, जो पतिव्रता स्त्रीकरि पाइता है ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! तूं काहेकों मेरी स्तुति करता है, मैं तौ अपणा कार्य किया है ॥ हे राजा! जब तूं राज्यका त्याग करी वनविषे आया, तब तूं मोहकों साथही लिये आया, मोह कहिये अज्ञान, तिस अज्ञानकरि नीच स्थानविषे पडा, जैसे कोउ गंगाजलका त्यागकरि चीकडके जलका अंगिकार करै तैसे तैंनें आत्मज्ञान अक्रिय पदका त्यागकरी तपका अंगीकार किया ॥ हे राजा! मैं देखा जो तूं चीकडविषे गिर्या है, तातें मैं तेरे निकासणेनिमित्त एते यत्न किये हैं ॥ हे राजा! मैं अपना कार्य किया है ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवि! मेरा यही आशीर्वाद है, जो कोउ पतिव्रता स्त्री होवै, सो सब ऐसे कार्य करै, जैसे तुमनें किया है, जो पतिव्रता स्त्रीतें कार्य होता है, सो अवरतें नहीं होता॥ हे देवि! जेती अरुंधतीतें आदि पतिव्रता स्त्रीयां हैं, तिनतें तूं प्रथम गिनायगी, अरु मैं जानता हौं, ब्रह्माजीनें तेरे तांई क्रो

धकरि इसनिमित्त उपजाई है, जो अरुंधतीतें आदि देविया हैं, तिनों आपसविषे गर्व किया होवैगा, तिस गर्वकों सुणीकरि तिनके गर्व निवारणेनिमित्त तुझकों अधिक उत्पन्न किया है, तातें हे देवि! तूं धन्य है, जो तैंनें मेरे ऊपर बडा उपकार किया है, ॥ हे देवि! तूंबहुरि मेरे अंग लाग जो तैंनें बडा उपकार मेरेसाथ किया है, हे रामजी! ऐसे कहीकरि राजानें राणीकों बहुरि गले कंठ लगाई, जैसे नोल अरु नोली मिलैं, अरु मूर्त्तिकी नांई लिखी है, ऐसे भासै ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे भगवन्! एक तौ मेरे तांई यह कहु, जो ज्ञानरूप आत्माके एक अंशविषे जगत् लीन हो जाता है, ऐसा जो तूं है, सो आपकों अब क्या जानता है, अरु अब तूं कहा स्थित है, अरु राज्य तेरे तांई कछु दिखाई देता है, अथवा नहीं देता, अब तेरे तांई इच्छा क्या है ॥ ॥ शिखरध्वज उवाच ॥ हे देवी! जो स्वरूप तैंनें ज्ञानकरिके निश्चय किया है, सोई मैं आपकों जानता हौं, अरु शांतरूप हौं, इच्छा अनिच्छा मेरे तांई कोउ नहीं रही; केवल शांतरूप हौं ॥ हे देवी! जिसपदकी अपेक्षा करिके ब्रह्मा विष्णु रुद्रकी मूर्त्यां भी शोकसंयुक्त भासतियां हैं, तिस पदकों मैं प्राप्त भया हौं, जहां उत्थान कोउ नहीं, अरु निष्किंचित् है, जिसविषे किंचित् मात्र भी जगत् नहीं, अरु मैं जो था सोइ भया हौं, इसतें इतर क्या कहौं, हे देवि! तैंनें संसारसमुद्रतें मेरे तांई पार किया है, तातें तूं मेरा गुरु है, ऐसे कहिकरि चूडालाके चरणोंपर राजा गिर पडा, अरु कहा, अज्ञान मेरे तांई कदाचित् स्पर्श न करैगा, जैसे तांबा पारसके संगकरि स्वर्ण हुआ, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे मैं मोहरूपी चीकडतें तेरे संगकरि निकसा हौं, बहुरि कदाचित् न गिरौंगा, अरु अब इस जगतके सुखदुःखकरि न तुष्ट होता हौं, ज्यौंका त्यौं स्थित हौं, रागदोषके उठावणेवाला जो चित्त है, सो मेरा नष्ट हो गया है, अब मैं प्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, अरु जलके नष्ट हुए प्रतिबिंब भी सूर्यरूप होता है, तैसे मेरा चित्त भी आत्मरूप भया है, अब मैं निर्वाणपदकों प्राप्त भया हौं, अरु सर्वतें अ

तीत भया हौं, अरु सर्वविषे स्थित हौं, जैसे आकाश सर्व पदार्थविषे स्थित है, अरु सर्व पदार्थतें अतीत है, तैसे मैं भी हौं, अहं त्वं आदिक शब्द मेरे नष्ट भये हैं, अरु शांतिकों प्राप्त भया हौं, अब मेरेविषे ऐसा तैसा शब्द कोउ नहीं, मैं अद्वैत हौं, अरु चिन्मात्र हौं, न सूक्ष्म हौं, न स्थूल हौं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! जो तूं ऐसे स्थित हुआ है, तौ तूं अब क्या करैगा, अब तेरे तांई क्या इच्छा है ॥ राजोवाच ॥ हे देवी! न मेरे कछु अंगीकार करणेकी इच्छा है, न त्याग करणेकी इच्छा है, जो कछु तूं कहैगी सो करौंगा, तेरे कहणेका अंगीकार करौंगा, जैसे मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तैसे मैं तेरे वचनकों ग्रहण करौंगा ॥ चूडालोवाच ॥ हे प्राणपति! हृदयके प्रीतम राजा, अब तूं विष्णु हुआ है, अरु भला कार्य हुआ जो तेरी इच्छा नष्ट भई है॥ हे राजन्! अब तूं अरु मैं मोहतें रहित होकरि अपने प्रकृत आचारविषे विचरें, अखेद जीवन्मुक्ती हुए अपणे प्रकृत आचारकों हम क्यों त्यागें॥ हे राजा! जो अपणे आचारकों त्यागेंगे तौ अवर किसीका ग्रहण करैंगे, तातें हम अपणेही आचारविषे विचरें, अरु भोग मोक्ष दोनोंकों भोगे हैं॥ हे रामजी! ऐसे परस्पर विचार करते दिन व्यतीत भया, अरु संध्याकालकी संध्या राजा करत भया, बहुरि शय्याका आरंभ किया, तिस उपर दोनों शयन करत भए, अरु रात्रिकों परस्पर चर्चाही करते रहे, एक क्षणकी नांई रात्रिकों व्यतीत करी॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चूडालाप्राकट्यं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब ऐसे रात्र वीती, अरु सूर्यकी किरणां पसरियां, अरु सूर्यमुखी कमल खिली आए, तब राजानें स्नानका आरंभ किया, चूडाला मनके संकल्प करिके रत्नोंकी मटकी रची, अरु हाथपर धारी, तिसविषे गंगा आदिक तीर्थोंका जल पाया, अरु राजाकों स्नान कराया, शुद्ध किया, अरु संध्यादिक सर्व कर्म किए, तब चूडालानें कहा॥ हे राजन्! मोहकों नाश करिके सुखेनही अपणे राज्यकार्यकों करें, अरु आनंदसाथ भोग भोगें ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे देवि! जो सुख भोगणेकी तेरे तांई इच्छा है तौ स्वर्गविषे भी ह

मारा राज्य है, अरु सिद्धविषे भी हमारा है, तातें स्वर्गहीविषे विचरैं ॥ ॥ चूडालोवाच ॥ हे राजन्! हमकों न सुख भोगणेकी इच्छा है, न त्यागणेकी इच्छा है, हम ज्यौंके त्यौं हैं ॥ हे राजन्! इच्छा अनिच्छा तब होती है, जब आगे कछु पदार्थ भासता है, हमकों तौ केवल आकाश आत्मा दृष्ट आता है, स्वर्ग कहां अरु नरक कहां, हम सर्वदा एकरस स्थित हैं ॥ हे राजा! यद्यपि हमकों कछु नहीं, तौ भी जबलग शरीर का प्रारब्ध है, तबलग शरीर रहता है, तौ चेष्टा भी हुई चहिए, अवर चेष्टा करणेतें अपणे प्रकृत आचारकों क्यों न करियें, जो रागदोषतें रहित होकरि अपणे राज्यकों भोगें, तातें अब ऊठ, अष्ट वसुके तेजकों धारिकरि राज्य करणेकों सावधान होहु ॥ हे रामजी! जब ऐसे चूडालानें कहा, तब राजा कहत भया, ऐसेही होवै, अरु अष्ट वसुके तेजसंयुक्त होत भया, जब ऐसा तेज राजाकों प्राप्त भया, तब कहा ॥ हे देवि! तूं मेरी पट्टराणी है, अरु मैं तेरा भर्त्ता हौं, तौ भी एक तूं है, एक मैं हौं, अवर कोउ नहीं, अरु राज्य तब होता है, जब सैना भी होवै, तातें तूं सैना रच, तब चूडाला संपूर्ण सैनाकों रचती भई, हस्ती, घोडे, रथ, नउबत, नगारे, निशान इत्यादिक जो राज्यकी सामग्री है सो रची है, अरु प्रत्यक्ष आगे आनि स्थित भई, नउबत, नगारे, तुरियां, सरनाई बाजणे लगे, जो कछु राज्यकी सामग्री है सो अपणे अपणे स्थानविषे स्थित भई, राजाके शिरऊपर छत्र फिरणे लगा, अरु बेरक खडी हुई, तब राजा अरु राणी हस्तीपर आरूढ होकरि चले, मंदराचल पर्वतके उपर आगे पाछे सब सैना भई अरु राजा जिस जिस ठौर तप करत भया था, सो राणीकों दिखावता जावै, जो इस स्थानविषे मैं ऐता काल रहा हौं, इसविषे एता रहा हौं, जब राज्यका त्याग किया था, ऐसे दिखावता जावै अरु तीक्ष्ण वेगकरि चलै, तब आगे जो मंत्री अरु पुरवासी अवर नगरवासी थे, सो राजाकों लेणे आये, अरु बडे आदरसंयुक्त पूजन किया, अरु अपणे मंदिरविषे आनि स्थित भए, अष्ट दिनपर्यंत राजाकों मिलणेनिमित्त लोकपाल मंडलेश्वर आते रहे, तिसतें उपरांत राजा सिंहासनपर आय बैठा, अरु राज्य करणे

लगा, एक समदृष्टिकों लिए दश सहस्र वर्षपर्यंत राज्य किया, चूडालासंयुक्त जीवन्मुक्त होकरि विचरत भए, बहुरि विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी! दश सहस्र वर्षपर्यंत राजा अरु चूडालानें राज्य किया, अरु सत्ता समानविषे स्थित रहे, किसी पदार्थविषे रागवान न भए, अरु दोष भी न किया, ज्यौंके त्यौं शांत पदविषे स्थित रहे, जेती कछु राज्यकी चेष्टा हैं, सो करते रहे, परंतु अंतःकरणकरि किसीविषे बंधमान न भए, केवल आत्मपदविषे अचल रहे, बहुरि राजा अरु चूडाला विदेहमुक्तिकों प्राप्त भए, जैसे आपकों जानते थे, तिसी केवल परमाकाश अक्षोभ पदविषे जाय स्थित भए, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे प्रारब्धवेगके क्षय हुए निर्वाण पदविषे प्राप्त भये ॥ हे रामजी! जैसे शिखरध्वज अरु चूडाला जीवन्मुक्त होकरि भोगकों भोगते विचरे हैं, तैसे तुम भी रागदोषतें रहित होकरि विचरौ ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० शिखरध्वजचूडालाख्यानसमाप्तिर्नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शिखरध्वजका वृत्तांत मैं संपूर्ण तुझकों कहा, ऐसी दृष्टिकों आश्रय करौ, कैसी दृष्टि है, जो पापका नाश करती है, तिस दृष्टिका आश्रय करि जिस मार्ग शिखरध्वज तत्पदकों प्राप्त भया है, अरु जीवन्मुक्त होकरि राज्यका व्यवहार किया है, तैसे तुम भी तत्पदका आश्रय करौ, अरु तिसी परायण होउ, आत्मपदकों पायकरि भोग मोक्ष दोनोंकों भोगौ, अरु तिसी प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच भी बोधवान हुआ है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार बृहस्पतिका पुत्र कच बोधवान हुआ है, सो प्रकार सबही संक्षेपतें मुख्यकरि मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसा कच था, जो बालक अवस्था अज्ञात है, तिसकों त्यागिकरि पदपदार्थकों जानणे लगे, जब ऐसा हुआ तब पिता बृहस्पतिसों प्रश्न किया, जो हे पिता, इस संसारपिंजरतें मैं कैसे निकसौं, जेता संसार है, सो जीवितकरि बांधा हुआ है, जीवित कहियें अनात्म देहादिकोंविषे मिथ्या अभिमान करणा, इसीकरि बांधा हुआ है, जो अहं त्वं मान

ता है, तिस संसारतें मुक्त कैसे होउं ? ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात ! इस अनर्थरूप संसारतें तब मुक्त होता है, जब सर्व त्याग करता है, सर्व त्याग कियेविना मुक्ति नहीं होती, तातें तूं सर्व त्याग करु, जो मुक्ति होवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें कहा, तब कच ऐसे पावन वचनोंकों श्रवणकरि ऐश्वर्यका त्यागकरि वनकों गया, वनविषे जायकरि एक कंदरामें स्थित भया, तप करणे लगा ॥ हे रामजी ! बृहस्पतिका पुत्र कच तिसके जाणेकरि उसकों खेद कछु न भया, जो ज्ञानवान् पुरुषकों संयोग वियोगविषे समभाव रहता है, हर्षशोककों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, ज्योंका त्यों रहता है, जब अष्ट वर्षपर्यंत तप किया, तब बृहस्पति आया, अरु देखा जो कच एक कंदराविषे बैठा है, तहां कचके पास आनि स्थित भया, अरु कचनें पिताका पूजन गुरौंकी नांई किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब दुःखकरि गदगद वाणीसहित कचनें प्रश्न किया, हे पिता ! अष्ट वर्ष बीते हैं, जो मैं सर्व त्याग किया है, तौ भी शांतिकों नहीं प्राप्त भया, जिसकरि मेरे ताईं शांति प्राप्त होवै, सो कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा, हे तात ! सर्व त्याग करु जो तेरे तांई शांति होवै, ऐसे कहीकरि बृहस्पति उठि खडा हुआ, अरु आकाशकों चला गया ॥ हे रामजी ! जब ऐसे बृहस्पति कहीकरि चला गया, तब कच आसन, अरु मृगछाला, अरु वनकों त्यागिकरि आगे वनकों चला, एक कंदराविषे जायकरि स्थित भया, तब तीन वर्ष उहां व्यतीत भए, बहुरि बृहस्पति आय प्राप्त भया, देखा, जो कच स्थित है, तब कचनें भली प्रकार गुरौंकी नांई पूजन किया, अरु बृहस्पतिनें कचकों कंठ लगाया, तब कचनें कहा, हे पिता ! अबलग मेरे तांई शांति नहीं प्राप्त भई, अरु मैं सर्व त्याग भी किया, जो अपणे पास कछु नहीं राख्या, तातें जिसकरि मेरा कल्याण होवै, सोई कहौ, तब बृहस्पतिनें कहा ॥ हे तात ! अब भी सर्व त्याग नहीं, तातें सर्व पद चित्तका नाम है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब सर्व त्याग होवैगा, तातें चित्तका त्याग करु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे

कहीकरि बृहस्पति आकाशकों चला गया, तब कच विचारणे लगा, जो पितानें सर्वपद चित्तकों कहा है, सो चित्त क्या है, प्रथम वनके पदार्थोंकों देखिकरि विचारत भया, जो यह चित्त है; तब देखा जो यह भिन्न भिन्न है, तातें यह चित्त नहीं, अरु नेत्र भी चित्त नहीं, जो नेत्र श्रवण नहीं, श्रवण नेत्रहुंतें भिन्न हैं, अरु श्रवण भी चित्त नहीं, इसी प्रकार सर्व इंद्रियां चित्त नहीं, जो एकविषे दूसरेका अभाव है, तातें चित्त क्या है, जिसकों जाणीकरि त्याग करौं, बहुरि विचार किया, जो पिताके पास स्वर्गविषे जाउं ॥ हे रामजी! ऐसे विचारकरि उठि खडा हुआ, दिगंबर आकार आकाशकों चला, जब पिताके पास जाय प्राप्त भया, तब पिताका पूजन किया, अरु कहा, हे तेतीस कोटि देवताके गुरु! चित्तका रूप क्या है, तिसका रूप कहौ, जो मैं तिसकों त्याग करौं ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे पुत्र! चित्त अहंकारका नाम है, सो अज्ञानतें उपजा है, अरु आत्मज्ञान करिके इसका नाश होता है, जैसे रसडीके अज्ञानतें सर्प भासता है, अरु रसडीके जानणेतें सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तातें अहंभावका त्याग कर, अरु स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ कच उवाच ॥ हे पिता! अहंभावका त्याग कैसे करौं, अहं तौ मैं हौं ॥ बहुरि अपणा त्याग करिके स्थित कैसे होउं, इसका त्याग करणा महाकठिण है ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे तात! अहंकारका त्याग करणा तौ महासुगम है, फूलके मिलणेविषे भी कछु यत्न है, अरु नेत्रोंके खोलणे अरु मिटणेविषे भी कछु यत्न है, परंतु अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे पुत्र! अहंकार वस्तु कछु नहीं, भ्रम करिके उठ्या है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु मरुस्थलविषे जल कल्पता है, अरु आकाशविषे भ्रमकरि दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे परिच्छिन्न अहंकार अपणे प्रमादकरि उपजा है, अरु आत्मा शुद्ध है, आकाशतें भी निर्मल है, अरु देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सत्ता समान चिन्मात्र है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरा स्वरूप है, अरु तूं आत्मा है, तेरे

विषे अहंकार कदाचित् नहीं, हे साधो! आत्मा सर्वदा सर्व प्रकार सर्वविषे स्थित है, तिसविषे अहंभाव ऐसे है, जैसे धूड समुद्रविषे कदाचित् नहीं तैसे तिसविषे अहंकार कदाचित् नहीं, कैसा है आत्मा, जिसविषे न एक कहणा है, न दो कहणा है, केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो आकार दृष्ट आते हैं, सो चित्तके फुरणे करिके हैं, चित्तके नष्ट हुए आत्माही शेष रहता है, तातें अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो तेरा दुःख नष्ट हो जावै, अरु जो कछु यह दृष्ट आता है, तिसविषे भी आत्मा है, जैसे पत्र फूल फल सर्व बीजतें उत्पन्न होते हैं, तैसे सर्व आत्माका चमत्कार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबोधनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार बृहस्पतिनें उत्तम उपदेश किया, तब कच श्रवण करिके स्वरूपविषे स्थित भया, योग जो है, आत्मा अरु परिच्छिन्न अहंकारकी एकता तिसकों प्राप्त भया, अरु आत्मस्वरूप हुआ, अरु जीवन्मुक्त होकरि विचरत भया ॥ हे रामजी! जैसे कच जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, निरहंकार हुआ, तैसे तूं भी निराश होकरि विचरु, केवल अद्वैत पदकों प्राप्त होहु, जो निर्मल अरु शुद्ध है, जिसविषे एक अरु दो कहणा नहीं, तूं तिस पदविषे स्थित होहु, तेरेविषे दुःख कोउ नहीं, तूं आत्मा है, अरु तेरेविषे अहंकार नहीं, तूं ग्रहण त्याग किसका करै, जो पदार्थ होवै नहीं, तिसका ग्रहण त्याग क्या कहियें ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वनविषे फूल हैं नहीं, तिसका ग्रहण क्या अरु त्याग क्या, तैसे आत्माविषे अहंकार नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो अहंकारका ग्रहण त्याग नहीं करते, अरु मूर्खकों एक आत्माविषे नाना आकार भासते हैं, किसीका शोक करणा, कहूं हर्ष करणा, अरु तूं कैसे दुःखका नाश चाहता है, दुःख तेरेविषे है नहीं, तूं कैसे नाश करणेकों समर्थ हुआ है, अरु जेते कछु आकार भासते हैं, सो मिथ्या हैं, तिनविषे जो अधिष्ठान है, सो सत है, अरु मूर्ख मिथ्या करिके सतकी रक्षा करते हैं, जो मेरे दुःख नाश होवैं ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तु

मारे प्रसाद करिके मैं तृप्त हुआ हौं, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि अघाया हौं, जैसे पपैया एक बुंदकों चाहता है, अरु कृपा करिके मेघ तिसपर वर्षा करता है, अरु अघाय रहता है, तैसे मैं तुमारी शरणकों प्राप्त हुआ था, अरु तुमारे दर्शनकी इच्छा बूंदकी नांई करता था, अरु तुमनें कृपा करिके ज्ञानरूपी अमृतकी वर्षा करी, तिस वर्षा करिके मैं अघाया रहा हौं, अब मैं शांतपदकों प्राप्त हुआ हौं, तीनों ताप मेरे मिटि गये हैं, कोउ फुरणा मेरेविषे नहीं रहा, अरु तुमारे अमृत वचनोंकों श्रवण करता तृप्त नहीं होता, जैसे चकोर चंद्रमाकों देखिकरि किरणांतें तृप्त नहीं होता, तैसे तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं तृप्त नहीं होता, तातें प्रश्न करता हौं, तिसका उत्तर कृपाकरि कहौ ॥ हे भगवन्! मिथ्या क्या है, अरुसत क्या है, जिसकी रक्षा करते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस उपर एक आख्यान है, सो कहता हौं, जिसके सुनणेतें हांसी आवै, एक आकाशविषे शून्य वन है, तिसविषे एक मूर्ख बालक है, जो आप मिथ्या है, अरु सत्यके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं इसकी रक्षा करौंगा, अधिष्ठान जो सत्य है, तिसकों नहीं जाणता, अरु मूर्खता करिके दुःख पावता है, क्या जाणता है, सो श्रवण करु, यह आकाश है, मैं भी आकाश हौं, मेरा आकाश है, मैं आकाशकी रक्षा करौंगा, ऐसे विचार करि एक गृह बनाया, गृहविषे जो आकाश है तिसकी रक्षा करौंगा, जो इसका नाश न होवै, इस निमित्त गृह बनाया ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके गृहकी बनावट बहुत करी, जब किसी ठौरतें टूटै तब बहुरि बनाय लेवै, जब केता काल इस प्रकार व्यतीत भया तब कालकरि गृह गिर पडा, तब रुदन करणे लगा, हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, जैसे एक ऋतु व्यतीत होवै, अरु दूसरा आवै, तैसे कालकरि गृह गिरि गया, तिसतें उपरांत एक कुआ बनाया, अरु कहणे लगा, जो यह आकाश न जावैगा, जो इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुएकों बनायकरि सुख मान्या, जब केता काल वीत्या तब जैसे सूका पात वृक्षतें गिरता है, तैसे कुआ भी गिर प

डा, तब बडे शोककों प्राप्त भया, जो मेरा आकाश गिर पडा, नष्ट हो गया, मैं क्या करौंगा, ऐसे शोक संयुक्त केता काल वीत्या तब एक कुटी बनाई, जैसे अनाज राखणेके निमित्त बनाते हैं, तैसे बनायकरि कहणे लगा, जो अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं अब इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, ऐसी कुटी करिके बहुत सुख मान्या, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह कुटी भी तूटि पडी, जो उपजी वस्तुका विनाश होणा अवश्य है, बहुरि रुदन करणे लगा, जो मेरा आकाश नष्ट हो गया, जब केता काल शोक संयुक्त वीत्या तब एक घट बनाया, अरु घटाकाशकी रक्षा करणे लगा, तब केते कालकरि घट भी नष्ट हो गया, बहुरि एक कुंड बनाया, अरु कुंडाकाशकी रक्षा करणे लगा, केता कालकरि कुंड भी नष्ट हो गया, तब शोकवान हुआ, बहुरि एक हवेली बनाई अरु कहणे लगा; अब मेरा आकाश कहां जावैगा, मैं इसकी भली प्रकार रक्षा करौंगा, अरु बडे हर्षकों प्राप्त हुआ, जब केता काल व्यतीत भया, तब उह हवेली भी गिर पडी, बहुरि दुःखकों प्राप्त भया, जो हाय हाय, मेरा आकाश नष्ट हो गया, मेरे तांई बडा कष्ट आनि प्राप्त भया है॥ हे रामजी! इसी प्रकार आत्मज्ञानविना अरु आकाशके जानणेविना मूर्ख बालक दुःख पावता रहा, जो आपकों भी यथार्थ जाणता, अरु आकाशकों भी ज्यौंका त्यौं जाणता, तौ यह कष्ट काहेकों पावता॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषाकाशरक्षाकरणं नाम एकोननवतितमः सर्गः॥ ८९॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! मिथ्या पुरुष कवन था, अरु जिसकी रक्षा करता था, सो आकाश क्या था, अरु जो गृह कूप आदिक बणावता था, सो क्या था? यह प्रगट करि कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मिथ्या पुरुष जो संवेदन फुरणेतें उपजा अहंकार है, अरु आकाश चिदाकाश है, तिसतें उपजा बहुरि जाणता है, जो मैं आकाशकी रक्षा करौं, अरु आकाश गृहघटादिक जो कहा सो देह हैं, तिसविषे जो आत्मा अधिष्ठान है, तिस आत्माकी रक्षा करणेकी इच्छा मूर्ख

ता करिके करता है, आपकों नहीं जाणता, जो मेरा स्वरूप क्या है, तिस अपणे स्वरूपकों न जानणेकरि दुःख पावता है, आप है, मिथ्या अरु मिथ्या होकरि आगे आकाशकों कल्पिकरि राखणेकी इच्छा करता है, जो देह करिके देहीके राखणेकी इच्छा करता है, जो मैं जीता रहौं, अरु देह तौ कालकरि उपजा है, बहुरि देहके नष्ट होणेकरि शोकवान होता है, अरु अपणे वास्तव स्वरूप वस्तुकों नहीं जाणता, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, ऐसे विचारतें रहित क्लेश पावता है ॥ हे रामजी! जिसविषे भ्रम उपजता है, तिसका अधिष्ठान सत्ता नहीं होता, सर्वका अपणा आप आत्मा है, सो कदाचित् नाश नहीं होता, तिसविषे मूर्खता करिके अहंरूप संसारकों कल्पता है, अरु एते इसके नाम हैं, अहंकार, मन, जीव, बुद्धि, चित्त, माया, प्रकृति, दृश्य, यह सर्व इसके नाम हैं, सो मिथ्या हैं, अरु इसका अत्यंत अभाव है, अणहोता उदय हुआ है, जो मैं हौं, क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण आश्रम अरु मनुष्य देवता दैत्य इत्यादिक कल्पना करता है ॥ हे रामजी! यह कदाचित् हुआ नहीं, अरु न होवैगा, न किसी काल न किसीकों है, अविचार सिद्ध है, विचार कियेतें कछु नहीं, जैसे जेवरीके अज्ञानतें सर्प कल्पीता है, अरु जानणेतें नष्ट हो जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि अहंकार उदय हुआ है, सो तेरा स्वरूप कैसा है श्रवण करु, आत्मा है अरु प्रकाशरूप है, निर्मल है जो विद्याअविद्याके कार्यतें रहित चेतनमात्र है, अरु निर्विकल्प है, ज्यौंका त्यौं स्थित है, अद्वैत है, अरु प्राणकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता, आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संसार कैसे होवै, अरु अहंकार कैसे होवै, सम्यक्दर्शीकों आत्मातें इतर नहीं भासता, अरु असम्यक्दर्शीकों संसार भासता है, पदार्थकों सत् जाणता है, अरु संसारकों वास्तव जाणता है, जो अपणे वास्तव स्वरूपकों नहीं जाणता है, जो मैं कवन हौं, जानणेतें अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु जेती कछु आपदा हैं, तिनकी खाण अहंकार है, सर्व ताप अहंकारतें उत्पन्न होते हैं, इसके नष्ट हुए अपणे स्वरूपविषे स्थित होता है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, इतर नहीं, जैसे समुद्र

विषे पवनकरि नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, अरु स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, सो उहीरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न कछु नहीं, अरु स्वर्ण भी परिणामकरि भूषण होता है, अरु समुद्र भी परिणामकरि तरंग होता है, अरु आत्मा अच्युत है, परिणामकों नहीं प्राप्त भया, तातें समुद्र अरु स्वर्णतें विलक्षण हैं, आत्माविषे संवेदनकरि चमत्कारमात्र विश्व है, सो आत्मामात्र स्वरूप है, सो न कदाचित् जन्म्या है, न मृत्युकों प्राप्त होता है, न किसी कालविषे न किसीसों मृतक है, ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, अरु जन्म मृत्यु तब होवै जब दूसरा होवै, आत्मा तौ अद्वैत है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, तौ दूसरा कहा होवै, तातें प्रत्यक् आत्मा अपणा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, तब दुःख ताप सब नष्ट हो जावैं, सो आत्मा शुद्ध है, अरु निराकार है ॥ हे रामजी! जो निराकार शुद्ध है, सो किसकरि ग्रहण करियें अरु रक्षा कैसे करियें, कवन समर्थ है, जो रक्षा करै, जैसे घटके नष्ट हुए घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुए देही आत्माका नाश नहीं होता, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु जन्ममरण पुर्यष्टका करिके भासते हैं, जब पुर्यष्टका देहतें निकसी जाती है, तब मृतक भासता है, जब पुर्यष्टका संयुक्त है, तब जीवत भासता है, अरु आत्मा सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तिसका ग्रहण कैसे होवै, अरु रक्षा कैसे करियें, अरु स्थूल भी उपदेश जतावणेके निमित्त कहता है, आत्मा वाचातें अगोचर है, अरु भाव अभाव रूप संसारतें रहित हैं, सर्वका अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अहंकारका त्याग कर, अपणे स्वरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मिथ्यापुरुषोपाख्यानसमाप्तिर्नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह संसार आत्मरूप है, जैसे इनकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध आत्मा निर्विकल्पविषे विवर्त्त चेतन लक्षण मनकरि स्थित भया है, अरु आगे तिसनें जगत्कल्पना करी है, सो मन कैसा है, जैसे समुद्रविषे तरंग, अरु स्वर्णविषे भूषण,

जेवरीविषे सर्प, सूर्यकी किरणांविषे जलाभास, तैसे आत्माविषे विवर्त्त मन है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जिसकों तरंगका ज्ञान है, तिसकों समुद्रबुद्धि नहीं होती, अरु तरंगकों अवर जाणता है, जिसकों भूषणका ज्ञान है, सो स्वर्णकों नहीं जाणता, अरु सर्पके ज्ञानकरि जेवरीकों नहीं जाणता, अरु जलके ज्ञानकरि किरणोंकों नहीं जाणता, तैसे नानाप्रकार विश्वके ज्ञानकरि परमात्माकों नहीं जाणता, जैसे जिस पुरुषनें समुद्रकों जाण्या है, जो जल है, तिसकों तरंग बुदबुदे भी जलही भासते हैं, भिन्न कछु नहीं भासता, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों जेवरीका ज्ञान हुआ, तिसकों सर्पबुद्धि नहीं होती, सो पुरुष निर्विकल्प है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान हुआ है, तिसकों भूषणबुद्धि नहीं होती, ऐसा पुरुष है, सो निर्विकल्प है, जिसकों किरणोंका ज्ञान हुआ है, तिसकों जलबुद्धि नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों निर्विकल्प आत्माका ज्ञान हुवा है, तिसकों संसारभावना नहीं होती, तिसकों ब्रह्मही भासता है, ऐसा जो मुनीश्वर है सो ज्ञानवान है॥ हे रामजी! मन भी आत्मातें इतर कछु नहीं, आदि जो परमात्मातें मन होकरि फुर्या है, सो अहं त्वं आदिक होकरि फुर्या, मात्र पदविषे जो अहंभाव होणा सो उत्थान है, बहिर्मुख होणेकरि अपणे निर्विकल्प चिन्मात्र आत्मा स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तिस प्रमाद होणेकरि आगे विश्व हुई है, अरु मन भी कैसा है, जो कदाचित् उदय नहीं भया, अरु आत्मास्वरूप है सो उदय हुएकी नांई भासता है, मन अरु संसार सत्य भी नहीं, असत्य भी नहीं, जो दूसरी वस्तु होवै तौ सत् असत् कहियें, आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है, तिसका विवर्त्त मन होकरि फुर्या है, सोइ मन कीट है, सोइ मन ब्रह्मा है, बहुरि ब्रह्मानें मनोराज्य करिके स्थावर जंगम सृष्टि कल्पी है, सो न सत्य है, न असत्य॥ हे रामजी! सर्व प्रपंच मननें कल्प्या है, तिसीनें नानाप्रकारके विचार रचे हैं, मन बुद्धि चित्त अहंकार जीव सर्व मनके नाम हैं, जब मन नष्ट हो जावै, तब न संसार है, न कोउ विकार है, अरु जबलग मन दृश्यसाथ मिलिकरि कहै, जो मैं संसारका अंत

लेउं तौ कदाचित् अंत न आवैगा, काहेतें जो संसरनाहीं संसार है, संसरणे संयुक्त संसारका अंत कहा आवै, अंत लेणेवारा बणीकरि आगे फुरीकरि देखता है तौ अंत कहातें आवै, जैसे कोउ पुरुष दौडता जावै, अरु कहै, मैं अपणे परछायेका अंत लेउं जो कहांलग जाता है ॥ हे रामजी! जबलग पुरुष चला जावै, तबलग परछायेका अंत नहीं आता, अरु जब ठहरि जावै, तब परछायेका अंत हो जाता है, तैसे जबलग फुरणा है, तबलग संसारका अंत नहीं आता, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब संसारका भी अंत होवै, आत्माही दृष्ट आवै, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, अरु जो फुरनेसंयुक्त देखैगा तौ संसारही भासैगा ॥ हे रामजी! जिस पदार्थकों यह देखता है, सो पदार्थ पूर्व कोउ नहीं, चित्तके फुरणेकरि उदय होता है, जब चित्त फुर्या जो यह पदार्थ है, तब आगे पदार्थ हुआ, अरु फुरणेतें रहित होकरि देखै तौ पदार्थ कोउ नहीं भासता; केवल शांतपद है ॥ हे रामजी! यह जो नानाप्रकारकी कल्पना है, तिसतें रहित निर्विकल्प ब्रह्मपदविषे अहंकारका त्यागकरि स्थित होहु, अहंकार जो है, नामरूप देह वर्णाश्रमविषे मायाकरि कल्पित, जब तिसतें रहित होकरि देखैगा, तब केवल सत्चिदानंद आत्मपद शेष रहैगा, जब तिस पदकों अपणा आप जाणैगा, तब तूंही सर्वात्मा होकरि विचरैगा, दुःख तेरे तांई कोउ नहीं रहैगा ॥ हे रामजी! मनही संसार है, मनही ब्रह्मा है, अरु मनही कीटी है, मनही सुमेरु है, मनही तृण है, मनही सर्व विश्वरूप होकरि स्थित भया है, सो मन कैसा है, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे फलहीविषे संपूर्ण वृक्ष है, तैसे मन आत्मास्वरूप है, आत्मातें इतर मन कछु वस्तु नहीं, ऐसे जाणीकरि आत्मस्वरूप होवैगा, यह जो संज्ञा है, बंध अरु मोक्ष, तिसका त्याग करु, न बंधकी वांछा करु, न मोक्षकी इच्छा करु, इस कल्पनातें रहित होहु, अरु ऐसे न होवै जो मुक्त हौं, अरु यह अवर बंध हैं, केवल सत्तासमान आत्मपदविषे स्थित होहु, यही भावना कर, जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं, ऐसा जो पुरुष है तिसका चित्तभाव नहीं रहता, सर्व आत्मा तिसकों भासता

है, जैसे जिस पुरुषनें सूर्यकों जाण्या है, तिसकों किरणां भी सूर्यही दृष्ट आता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिसकों जगत् भी आत्मस्वरूप भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! महाकर्त्ता होहु; अरु महाभोक्ता अरु त्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्य धारीकरि स्थित होहु ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! महाकर्त्ता क्या कहियें, महाभोक्ता अरु महात्यागी क्या कहियें, कृपा करिके कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे प्रश्न उपर एक आख्यान है सो श्रवण करु, एक समय सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशाके शिखरतें सदाशिवजी आय प्राप्त भया, सो कैसा है सदाशिव, चंद्रमाकों मस्तकविषे धर्या है, अरु गुणसंयुक्त अरु गौरी डावे अंगविषे धारे हैं, सुमेरु पर्वतके शिखरपर आनि स्थित भया, तब भृंगीगण जो है सदाशिवका, तिसनें हाथ जोडकरि प्रश्न किया, कैसा है भृंगीगण, महातेजवान अरु आत्मजिज्ञासा जिसकों उपजी है, तिसनें प्रश्न किया कै, हे भगवन्! देवके देव, यह संसार मिथ्या भ्रम है, तिसविषे मैं सत्य पदार्थ कोउ नहीं देखता, सदा चलरूप भासता है, अरु जो सत्पदार्थ है, तिसकों मैं नहीं जाणता, मेरे ताप नष्ट नहीं भए, मैं शांतिकों नहीं प्राप्त भया, तातें आपकों दुःखी देखता हौं, जिसकरि शांति प्राप्त होवै सो कृपाकरि कहौ, अरु खेदतें रहित होकरि चेष्टाविषे विचरौं, सो खेदतें रहित तब होता है, जब कोउ आसरा होता है, अरु जेता कछु संसार है सो मिथ्या है, मैं किसका आसरा करौं, तातें सोई मेरे ताई कहौ, जिसकों आश्रय किये, दुःख मेरे नष्ट होवैं ॥ ईश्वर उवाच ॥ हे भृंगी! तूं महाकर्त्ता होहु, अरु महाभोक्ता होहु, अरु महात्यागी होहु, सर्व शंकाकों त्यागिकरि निरंतर धैर्यकों आश्रय करिके तेरे दुःख नष्ट होवैंगे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसा जो है भृंगीगण जिसकों सदाशिवनें पुत्रकरि रखा है, तिसनें श्रवण करिके प्रश्न किया ॥ हे परमेश्वर! महाकर्त्ता क्या कहियें, महा भोक्ता महात्यागी क्या

कहियें, सो कृपाकरि ज्योंका त्यों मेरे ताई कहौ ॥ ईश्वर उवाच॥ हे पुत्र ! सर्वात्मा जो अनुभवरूप है, तिसका आश्रय करिके विचरु, जो दुःखतें रहित होवै, अरु इन तीनों वृत्तिकरि दुःख तेरे नष्ट हो जावैंगे, जो कछु शुभक्रिया आय प्राप्त होवै, तिसकों शंका त्यागके करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, धर्म अधर्मक्रिया अनिच्छित आनि प्राप्त होवै, तिसकों रागदोषतें रहित होकरि करै ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, जो पुरुष मौनी निरहंकार निर्मान है, मत्सरतें रहित होकरि ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अनिच्छित प्राप्त हुएका त्याग न करै, अरु जो नहीं प्राप्त हुआ, तिसकी वांच्छा न करै, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु पुण्य पाप क्रिया जो अनिच्छित आय प्राप्त होवैं, तिसकों अहंकारतें रहित होकरि करै, पुण्यक्रिया करणेतें आपकों पुण्यवान नहीं मानता, अरु पाप कियेतें पापी नहीं मानता, सदा आपकों अकर्त्ता जाणता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जो सर्वविषे विगतस्नेह है, सत्यवत् स्थित है, निरिच्छा वर्तता है, कार्यविषे सो महाकर्त्ता है, जो दुःखके प्राप्त हुएतें शोक नहीं करता, अरु सुखके प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, स्वाभाविक चित्तसमताकों देखता है, कदाचित् विषमताकों प्राप्त नहीं होता, जो सुखकी भिन्न भिन्न विषमता है, तिसतें रहित है, सो पुरुष महाकर्त्ता है, अरु जिस पुरुषनें सुखदुःखका त्याग किया है, जो सुखदुःखकी भावना नहीं फुरती, यही त्याग है, जो अवर कछु नहीं फुरता है, ऐसा पुरुष महाकर्त्ता है ॥ हे भृंगी ! जो पुरुष प्राप्त हुई वस्तुकों रागदोषतें रहित होकरि भोगता है, सो महाभोक्ता है, अरु जो बडा कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसविषे दोष नहीं रहता, अरु बडे सुखकी प्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो बडे राज्यके सुख भोगणेविषे आपकों सुखी नहीं मानता, राज्यके अभाव होणे अरु भिक्षा मागणेविषे आपकों दुःखी नहीं मानता, सदा स्वरूपविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो मान अहंकार अरु चिंतनातें रहित है, केवल समताविषे स्थित है, सो महाभोक्ता है, अरु जो कोउ कछु देवै, तौ आपकों लेणेवाला नहीं मानता, अरु

शुभक्रियाविषे भोक्ता हुआ आपकों कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं मानता सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जो मीठा खाटा तीक्ष्ण सलोणा कटु यह रस प्राप्त होते हैं, तिनके भोगणेविषे समचित्त रहता है, अरुसम जाणता है, सो महाभोक्ता है, जो रसवान पदार्थ प्राप्त हुएतें हर्षवान नहीं होता, अरु विरसके प्राप्त हुएतें दोषवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, जैसा आय प्राप्त होवै भला बुरा, तिसकों दुःखतें रहित होकरि भोगता है, ऐसा पुरुष है सो महाभोक्ता है, अरु जेती कछु क्रिया हैं, शुभ अशुभ भाव अभाव तिसके सुखदुःखतें चलायमान नहीं होता, सो पुरुष महाभोक्ता है, अरु जिसकों मृत्युका भय नहीं, अरु जिणेकी आस्था नहीं, उदय अस्तविषे समान है सो महाभोक्ता है, बडे सुखप्राप्तिविषे हर्षवान नहीं होता, अरु दुःखकी प्राप्तिविषे शोकवान नहीं होता, ज्यौंका त्यौं रहता है, सो महाभोक्ता है, जो कछु अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तिसकों कर्त्ता हुआ अहंकारतें रहित है, सो पुरुष महाभोक्ता है, जो पुरुष शत्रु मित्र सुहृदविषे समबुद्धि रहता है, विषमताकों कदाचित् नहीं प्राप्त होता सो पुरुष महाभोक्ता है, जेता कछु शुभ अशुभ दुःख सुख आय प्राप्त होवै, तिसकों धारि लेता है, कदाचित् विषमताकों नहीं प्राप्त होता, जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्राप्त होतियां हैं, तिनकों धारिकरि सम रहता है, तैसे ज्ञानवान शुभअशुभकों धारिकरि सम रहता है, जो संसार अरु देह इंद्रियां अरु अहंकारकी सत्ताकों त्यागिकरि स्थित हुआ है अरु जानता है, न मैं देह हौं, न मेरा देह है, इनका साक्षी हौं, इस वृत्तिकों धारी रहै, सो महात्यागी है, अरु जो सर्व चेष्टा करता है, रागदोषतें रहित होकरि सो महात्यागी है, अरु शुभ अशुभ प्राप्त हुएकों अहंकारतें रहित होकरि करता है, सो महात्यागी है, अरु जो मन इंद्रियां देहकरि इच्छातें रहित हुआ सर्व चेष्टा भी करता है सो महात्यागी है, अरु जो पुरुष समचित्त इंद्रियजीत है, अरु क्षमावान है जो सो महात्यागी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुष नें धर्मअधर्मकी देह संसारकी मद मान मननकी इत्यादिक कल्पनाका त्याग किया है, सो महात्यागी है ॥

हे रामजी! इस प्रकार भृंगीगणकों सदाशिवनें उपदेश किया, सो कैसा सदाशिव है, खपरकों हाथविषे धारे, अरु व्याघ्रांबरकों लिए हुए मस्तकविषे चंद्रमाकों धारे, तिसनें सुमेरुके शिखरपर उपदेश किया॥ हे रामजी! तूं भी इसी वृत्तिकों धारिकरि विचरु, तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावेंगे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाण प्रकरणे महाकर्त्राद्युपदेशो नाम द्विनवतितमः सर्गः॥ ९२॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच॥ हे मुनीश्वर! जो तुमनें उपदेश किया सो मैं जान्या है अरु तुमनें आगे उपशम प्रकरणविषे उपदेश किया था, जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तब मैं प्रश्न किया था जो आत्मा अनंत है, अरु शुद्ध है, तौ यह कलना कैसे उपजी है, जैसे समुद्र निर्मल है, तिसविषे धूड कैसे होवै, बहुरि तुमनें कहा, इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालविषे कहेंगे, सो मैं अब सिद्धांतका पात्र हौं, मेरे तांई कहौ, जैसे स्त्री भर्त्तासों प्रश्न करती है, अरु भर्त्ता कृपा करिके उपदेश करता है, तैसे मैं तुमारी शरण हौं, कृपा करिके मुझकों उत्तर कहौ, जो आशा अरु तृष्णा के फांस मेरे टूटे हैं, अरु आशारूपी जालतें निकसा हौं, अरु संशयरूपी धूड मेरे हृदयविषे उठी है, तिसकों वचनरूपी वर्षाकरि शांत करौ, अरु संशयरूपी मेरे हृदयविषे अंधकार है, वचनरूपी क्रीडाकरि तुम निवर्त करौ, तुमारे वचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता॥ हे भगवन्! अपणे विचार ज्ञानकरि यह गुरुके उपदेश कियेविना नहीं शोभता॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो पुरुष शांतिवान् अरु क्षमावान् है, अरु इंद्रियजित है, अरु मनकी क्रिया संकल्पविकल्पकों जीता है, सो सिद्धांतका पात्र है॥ हे रामजी! तूं अब सिद्धांतका पात्र है, तातें उपदेश करता हौं, अरु जो पुरुष रागदोषसहित क्रियाविषे स्थित है, अरु इंद्रियांके सुखकरि जिसकों आराम है, सो सिद्धांतके वाक्य अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्म तिनकों श्रवणकरि भोगविषे स्थित होता है, अरु अधोगतिकों पावता है, काहेतें जो उसकों निश्चय नहीं होता, हृदय तिसका मलीन है, तातें इंद्रियांके सुखकरि आपकों सुखी मानता है, इसी नीच स्थानोंकों प्रा

प्त होता है, अरु जो पुरुष क्षमा आदिक साधन करि पवित्र हुआ है, तिसकों अहं ब्रह्म अस्मि, सर्व ब्रह्मके श्रवणकरि शीघ्रही भावनातें आत्मपदकी प्राप्ति होती है, अरु तुमसारखे जो पुरुष हैं, क्षमा आदिक साधनकरि पवित्र हुए हैं, तिनकों स्वरूपकी प्राप्ति सुगम होती है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन है, तिनकों प्राप्त होणा कठिण है, जैसे भूना बीज कलरकी पृथ्वीविषे बोइयें, तब उसकी अंगुरी नहीं होती, तैसे इंद्रियारामी पुरुषकों आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, अरु तुमसारखे जिनका हृदय शुद्ध है, तिनकों ज्ञानकी प्राप्ति होती है, अरु इन वचनोंकों पायकरि शोभते हैं, जैसे वर्षाकालविषे धान पृथ्वीमें शोभा पावते हैं, वर्षा करिके तैसे सिद्धांत वचनोंकों पायकरि ज्ञानरूपी दीपकसों प्रकाशते हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष उंची बाहोकरि कहते हैं, अरु सर्व शास्त्र भी कहते हैं, सो सर्व शास्त्रोंके सिद्धांतकों अरु तिनके दृष्टांतोंकों मैं जाणता हौं, तातें सर्व सिद्धांतोंका सार कहता हौं, तूं श्रवण करु, जो तेरा स्वरूप है, तिसकों जाणैगा ॥

हे रामजी! जिसकों अभ्यास करिके एक क्षण भी साक्षात्कार हुआ है, सो बहुरि गर्भविषे नहीं आता, अरु सत् असत्‌विषे भेद कछु नहीं, उसके संवेदनविषे भेद है, जैसे जाग्रतका सूर्य अरु स्वप्नका सूर्य प्रकाश दोनोंका समान है, जाग्रतविषे जाग्रत सूर्यका प्रकाश अर्थाकार होता है, अरु स्वप्नविषे स्वप्नका सूर्य अर्थाकार होता है, प्रकाश दोनोंका सम है, अरु संवित भिन्न है, स्वप्नकों मिथ्या जानता है, अरु जाग्रतकों सत्य जानता है, संवेदनतें भेद हुआ स्वरूपतें भेद कछु न हुआ, जैसे एक बडा पर्वत मन करिके रचियें तौ संकल्पकरि देखता है, अरु एक पर्वत बाहिर प्रत्यक्षकरि देखता है; तौ संवित् करिके भेद हुआ, स्वरूप दोनोंका तुल्य है, जैसे समुद्रविषे तरंग हैं, स्वरूपविषे जलतरंगोंका भेद कछु नहीं, जिसकों जलका ज्ञान नहीं सो तरंगही जानता है, तातें संवित्‌विषे भेद है, तैसे स्वरूपविषे सत् असत् तुल्य हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल शांतरूप आत्मा है, अरु शब्द अर्थ संवेदनविषे है, शब्द कहियें नाम, अर्थ कहियें नामी

सो संवेदन फुरणे करिके है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब सर्व अर्थ भी आत्मा है, ऐसे भासैगा, जगत्की सत्ता तबलग है, जबलग आत्माका प्रमाद है, अरु प्रमाद तबलग है, जबलग अहंभाव है, जब अहंभाव नष्ट हो जावै, तब केवल आत्मा शेष रहै, सो आत्मा शुद्ध है, विद्याअविद्याके कार्यतें रहित है, कदाचित् स्पर्श नहीं किया ॥ हे रामजी! अविद्याकी दो शक्ति हैं, एक आवरण, एक विक्षेप, आवरण कहियें आत्माका न जानणा, विक्षेप कहियें अवर कछु जानणा, सो आत्मा सदा ज्ञानरूप है, तिसकों आवरण कदाचित् नहीं, आत्मा अद्वैत है, तिसतें इतर कछु नहीं बण्या, इसीतें आत्मा शुद्ध है, केवल ज्ञानमात्र है ॥ हे रामजी! तिसविषे कलनारूपी धूड कहां होवै, जो आत्ममात्र है, चिन्मात्र जिसविषे अहंकार उत्थान है नहीं, केवल निर्वाणपद है, जहां एक अरु द्वैत कहणा भी नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्म है तौ मन बुद्धि आदिक यह कवन हैं, जिसकरि तुम इह शास्त्र उपदेश करते हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शास्त्रके व्यवहारके अर्थ शब्द यह हैं, परमार्थतें कल्पना है नहीं, यह मन बुद्धि आदिक कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे तरंग जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे मनादिक हैं, आत्मा तत्त्व कैसा है, नित्य है, शुद्ध है, सन्मात्र है, नाहींकी नांई स्थित है ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माविषे संसार अविद्याका नाम आदिक कैसे होवै, आत्मा ब्रह्म है, जिसतें इतर कछु नहीं, सर्व अधिष्ठान है, अरु अविनाशी है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, इसीतें ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ऐसा जो अपणा आप आत्मा है, तिसीविषे स्थित होहु, अरु यह जगत् जो दृष्ट आता है, सो सर्व चिदाकाश है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे विश्व देखीता है, सो अनुभवमात्र है, जैसे जाग्रत विश्व आत्मरूप है, ऐसा जो तेरा शुद्ध अरु नित्य उदित अविनाशी रूप है, तिसविषे जब स्थित होवैगा, तब कलना जो तेरे तांई भासती है, सो नष्ट हो जावैगी ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कलनानिषेधो नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंकार है, जब अहंभाव होता है, तब संसार होता है, सो अहंकार कछु वस्तु नहीं, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, जैसे मूर्ख बालक परछायेविषे पिशाच कल्पता है, सो पिशाच कछु वस्तु नहीं, उसके भ्रमविषे होता है, तैसे अहंकार कछु वस्तु नहीं, स्वरूपके भ्रमविषे होता है ॥ हे रामजी! जो वास्तव कछु वस्तु न होवै, तिसके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, तेरेविषे अहंकार वास्तव नहीं, तूं केवल शांतरूप चेतनमात्र है, तिसविषे अहंभाव होणा उपाधि है, तिसतें सुमेरु पर्वत आदिक जगत् बनि जाता है, सौ संवेदनरूप है, चित्तरूपी पुरुष चेतनके आश्रयतें फुरता है, अरु विश्व कल्पता है, जैसे जेवरीके आश्रयतें सर्प फुरता है, तैसे चेतनके आश्रय विश्व अरु चित्त फुरते हैं, सो आत्मातें इतर नहीं, अरु अहंकार हुएकी नांई हुआ है, जो मैं हौं ऐसा जो अहंभाव है, सो दुःखकी खाण है, सर्व आपदा अहंकारतें होती हैं, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब सर्व दुःख नष्ट होवैंगे ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यके आगे बादल होते हैं, तौ प्रकाश नहीं होता, जब बादल दूर होते हैं; तब प्रकाशवान भासता है; अरु सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होते हैं, तैसे आत्मारूपी सूर्यकों अहंकाररूपी बादलका आवरण हुआ, अहंकार कहियें किसी मायाके गुणसाथ मिलिकरि कछु आपकों मानणा, जब अहंकाररूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आत्मारूपी सूर्यका प्रकाश होवैगा, अरु ज्ञानवानरूपी कमल तिस प्रकाशकों पायकरि बडे आनंदकों प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! तातें अहंकारके नाशका उपाय करौ, जो तुमारे दुःख नष्ट हो जावैं, उह कवन पदार्थ है, जो उपाय किये सिद्ध नहीं होता, जो अहंकारके नाशका उपाय करियें तौ नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार अहंकार नष्ट होवै सो श्रवण करु, सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करि संतके संग जो कथा परस्पर चर्चा करणी, तिसकरि अहंकार नष्ट हो जाता है, जैसे पाणी भरणेकी जेवरीकरि पथ्थरकी शिलाकों घासि पडी जाती है, तैसे ब्रह्मविद्याका अभ्यासकरि अहंकार नष्ट होता है, अरु शि

लाके घसणेविषे कछु यत्न है, अहंकारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं ॥ हे रामजी! सदा अनुभवरूप आत्मा है, तिसका विचार करौ जो मैं कवन हौं, अरु इंद्रियां क्या है, गुण क्या हैं, अरु संसार क्या है, जो ऐसे विचारकरि इनका साक्षीभूत होहु, जो मेरेविषे अहं त्वं कोउ नहीं, इसकरि अहंकारका नाश करौ, अरु तूं शुद्ध है, मेरा भी आशीर्वाद है, जो तूं सुखी होवै, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब कलना कोउ न फुरैगी, केवल सुषुप्तकी नांई स्थित होवैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो अहंकार तुमारा नष्ट हुआ है, तौ प्रत्यक्ष उपदेश करते कैसे देखते हैं, अरु जो अहंकार नहीं, तौ सर्व शास्त्र ब्रह्मविद्या कहांतें उपजे हैं, अरु उपदेश कैसे होता है, उपदेशविषे चारौं सिद्ध होते हैं, अंतःकरण जो प्रथम उपदेश करणेकी इच्छा होती है, तब अहंकार सिद्ध होता है, अरु जब स्मरण होता है, जो उपदेश करौं, तब चित्त भी चैत्यकरि सिद्ध होता है, बहुरि यह उपदेश करियें, यह नहीं करियें, ऐसे संकल्प किये मनकी सिद्धता होती है, बहुरि निश्चय किया यह उपदेश करियें, तब बुद्धिकी सिद्धता होती है, तातें चारौं अंतःकरण सिद्ध होते हैं, तुम कैसे कहते हौ, जो अहंकार नष्ट हो जाता है, अरु सर्व चेष्टा होती हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मस्वरूपविषे अहंकार आदिक अंतःकरण अरु इंद्रियां कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं अरु शास्ता शास्त्र उपदेश भी कल्पना हैं, आत्मा केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे संवेदन करिके अहंकारादिक दृश्य फुरे हैं, तिसके निवृत्त करणेकों प्रवर्तते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तब भयकरि दुःख पावता है, जब किसनें कहा जो यह जेवरी है, तूं भय मत करु, इसकों भली प्रकार देख, यह सर्प नहीं, तिसके उपदेश करि उह भली प्रकार देखता है, तब भय शोक तिसका निवृत्त हो जाता है, जो भ्रम करिके उसकों सर्पभान हुआ था, सो भी मिथ्या है, अरु उसकों उपदेश करणा जेवरीका सो भी मिथ्या है, काहेतें जो जेवरी तौ, आगे सिद्ध है, उपदेशकरि सिद्ध नहीं होती, तैसे जेवरीकी नांई आत्मा है,

तिसका निवृत्त जो चेतन लक्षण तिसकों अहंभाव है, तिस अहंकारके निवृत्त करणेकों शास्त्र हुए हैं, जो आत्मारूपी जेवरीके प्रमादकरि अहंकाररूपी सर्प फुर्या है, तिसके निवृत्त करणेकों शास्त्रके उपदेश हुए हैं, आत्माकों जताय देते हैं, जब भली प्रकार जेवरीकी नांई आत्माकों जाण्या, तब सर्पकी नांई जो परिच्छिन्न अहंकार है, सो नष्ट हो जाता है, जैसे नेत्रविषे मेल होता है, अरु अंजनके पावणेकरि नष्ट हो जाता है, तब ज्योंका त्यों निर्मल नेत्र होते हैं, तैसे अज्ञानरूपी जो मेल है, सो गुरुशास्त्रके उपदेशरूपी सूरमेकरि नष्ट हो जाती है, वास्तव न कोउ अहंकार है, न शास्त्र है, काहेतें जो आत्मा सर्वदाकाल उदयरूप है, परंतु तौ भी गुरुशास्त्रकरि जाणीता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्के साथ चारों अंतःकरण अरु इंद्रियां भी दृष्ट आते हैं, सो तिनविषे सत्यता नहीं होती, जैसे भूना बीज दृष्ट आता है, परंतु ऊगणेकी सत्यता नहीं राखता, जैसे जल्या वस्त्र होता है, सो देखणेमात्र है, सत्यता उसविषे कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्कों अभिलाषरूप अहंकार नहीं होता, तिसकरि कष्ट नहीं पावता, जैसे सूर्यकी किरणांकरि मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तिसकों देखिकरि जलपान करणेनिमित्त मृग दौडता है, अरु दुःखी होता है, तैसे दृश्यरूपी मरुस्थलविषे पदार्थरूपी जलाभास है, तिसकों देखीकरि अज्ञानीरूपी मृग दौडते हैं, अरु दुःख पावते हैं, जब ज्ञानरूपी वर्षाकरि आत्मारूपी जल चडा, तब चित्तरूपी मृग कहां दौडै, जब ज्ञानरूपी वर्षा होती है, अरु अनुभवरूपी जल चडता है, तब चित्तरूपी मृग तिसविषे यत्नरूपी जो फुरणा था, सो नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! अहंकार अविचारतें सिद्ध है, विचारतें क्षीण हो जाता है, जैसे बरफकी पुतली सूर्यकी किरणांकरि क्षीण होती है, जब अधिक तेज होता है, तब जलरूप हो जाती है, बरफकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे अहंकाररूपी बरफ विचाररूपी किरणाकरि क्षीण हो जाता है, जब दृढ विचार होता है, तब अहंकारसंज्ञाही जाती है, केवल आत्मा हो रहता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे सर्वतत्त्वज्ञ भगवन्! जिसका

अहंकार नष्ट हुआ है, तिसका लक्षण क्या है, सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी टोया संसार है, तिसविषे पदार्थकी भावनाकरि नहीं गिरता, अरु क्षमा शांति आदिक शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं, जैसे समुद्रविषे नदियां स्वाभाविक आय प्राप्त होतीयां हैं, अरु क्रोध भी तिसका नष्ट हो जाता है, देखणेमात्र भासता है तौ भी अर्थाकार नहीं होता, जो विषमता करिके भिन्न भावना अंतरतें नहीं फुरती केवल सत्तासमानविषे स्थित होता है, जैसे शरत्कालका मेघ गर्जता है, अरु वर्षातें रहित होता है, तैसे इंद्रियांकी चेष्टा अभिमानतें रहित होकरि करता है, जैसे वर्षा ऋतुके जाणेकरि कुहिड नहीं रहती, तैसे अभिमान चेष्टा तिसकी नष्ट हो जाती है, अरु लोभ भी तिसके मनतें जाता रहता है, जैसे वनकों अग्नि लगती है, अरु मृग पक्षी तिस वनकों त्याग जाते हैं, तैसे लोभरूपी मृग तिसकों त्याग जाते हैं, तिसके मनविषे कामना कोउ नहीं रहती, जैसे दिनबिषे उल्लूक पिशाच नहीं विचरते, जहां ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तहां संपूर्ण कामनारूपी तम नष्ट हो जाता है, शांतरूप आत्माविषे स्थित रहता है, जैसे पैंदोइ दो पोटकों ज्येष्ठ आषाढकी धूपविषे उठावता है, अरु गरमी होती है, थकता भी है, तिसकों डारीकरि वृक्षके नीचे सुखसों स्थित होता है, तैसे वासनारूपी पोट है, अज्ञानरूपी धूप है, तिसकरि दुःखी होता है, ज्ञानरूपी बलकरि वासनारूपी पोटकों डारिके सुखसों स्थित होता है ॥ हे रामजी! भोगभावना तिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, बहुरि दुःख नहीं देती, जैसे गरुडकों देखीकरि सर्प भागता है, बहुरि निकट नहीं आवता, तैसे ज्ञानरूपी गरुडकों देखिकरि भोगरूपी सर्प भागते हैं, बहुरि निकट नहीं आते, आत्मपदकों पायकरि शांतिरूपी दीपकवत् प्रकाशवान् होता है, भाव अभाव पदार्थ तिसकों स्पर्श नहीं करते, संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है, सो ज्ञान समुझणे मात्र है, कछु यत्न नहीं, संतपास जायकरि प्रश्न करणा, मैं कवन हौं, जगत् क्या है, परमात्मा क्या है, अरु भोग क्या हैं, इनकों तरिकरि

कैसे परमदकों प्राप्त होवैं, बहुरि जो ज्ञानवान् उपदेश करैं, तिसके अभ्यासकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा न होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संतलक्षणमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार तुमारा बडा इक्ष्वाकु नामक राजा जीवन्मुक्त होकरि विचर्या है, तैसे तुम भी विचरौ, तुम भी तिस कुलतें उपजे हौ ॥ हे रामजी! इक्ष्वाकु राजा सूर्यवंशी होत भया है, सो मनुका पुत्र अरु सूर्यका पौत्र, सब राजातें श्रेष्ठ था, जैसे पितरोंका राजा धर्म है, अरु बर्फकी नांई तिसका शीतल स्वभाव था, जैसे सूर्यकों देखिकरि मणितें तेज प्रगट होता है, तैसे तिसकों देखिकरि शत्रु तपायमान होवैं, ऐसा परंतप था, साधु अरु मित्र प्रजाकों रमणीय भासै, तिसकों देखिकरि सब शांतिवान् होवैं, जैसे चंद्रमाकों देखिकरि चंद्रमुखी कमल प्रसन्न होते हैं तैसे उसकों देखिकरि प्रसन्न होवैं, अरु पापरूपी वृक्षोंके काटणेहारा कुहाडा अरु मित्रका सुखदायक जैसे मोरोंका मेघ सुखदायक है, अरु सुंदर ऐसा जिसकों देखिकरि लक्ष्मी स्थित हो रही है, दरिद्री कदाचित् न होवै, तिसके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूरि रही थी, जैसे चंद्रमाकी चांदनीकरि रात्र पूर्ण होती है, ऐसा राजा भली प्रकार प्रजाकी पालना करत भया, एक काल तिसके मनविषे विचार उपजा, जो जरा मरण आदिक संसारविषे बडा क्षोभ है, इस संसारदुःखके तरणेका उपाय कवन है, ऐसे विचारता था जो एक समय शंभु मुनी ब्रह्मलोकतें आया, तिसका भली प्रकार पूजन किया, अरु कहत भया ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपाका जो पराक्रम है, सो मेरे हृदयविषे बैठीकरि प्रश्न करणेकों प्रेरता है, तातें मैं प्रश्न करता हौं ॥ हे भगवन्! मेरे हृदयविषे संसार फुरता है, जैसे समुद्रकों वडवाग्नि जलावता है, तैसे मुझकों संसार जलावता है, तातें सोइ उपाय कहौ जिसकरि मुझकों शांति प्राप्त होवै ॥ हे भगवन्! यह संसार कहांतें उपजा है, अरु दृश्यका स्वरूप क्या है, अरु कैसे निवृत्त होता है, जैसे जालसों पक्षी निकसि जाता है, तैसे जन्म

मरण संसार महाजालहै, तिसतें निकसणेका उपाय मुझकों कहौ, जैसे वरुण सब स्थान समुद्रके जानता है, तैसे तुम जगत्के सब व्यवहारकों जानते हौ, अरु संशयरूपी वृक्षके काटणेहारे तुम कुहाडे हौ, अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्य हौ, तुमारे अमृतरूपी वचनोंकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउंगा ॥ मुनिरुवाच ॥ हे साधो! मैं चिरकालपर्यंत जगत्विषे विचरता रहता हौं परंतु ऐसा प्रश्न किसीनें नहीं किया, तुझनें परमसार प्रश्न किया है, सर्व अनर्थके नाश करणेहारा प्रश्न है, तेरी बुद्धि विवेककरि विकासमान हुई दृष्ट आवती है ॥ हे राजन्! जो कछु जगत् तुझकों भासता है सो सब असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे गंधर्वनगर, जैसे मरुस्थलविषे जल, जैसे सीपिविषे रूपा, जैसे आकाशविषे नीलता, दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत् असत्यरूप है, जैसे जलविषे चक्रतरंग असत्‌रूप हैं, तैसे जगत् असत्‌रूप है, अरु जो मनसहित षट् इंद्रियांतें अतीत है, अरु शून्य भी नहीं, सो सत् अविनाशी आत्मा कहाता है, सो निर्मल परम ब्रह्म सर्व उरतें पूर्ण अनंत है, तिसविषे जगत् कल्पित है॥ हे राजन्! जैसे सर्व वृक्षोंविषे एकही रस व्यापक है, तैसे सर्व पदार्थोंविषे एक चिन्मात्रसत्ता व्यापक है, जैसे समुद्र अचलविषे द्रवताकरिके तरंग फुरते हैं, तैसे परमात्माविषे जगत फुरते हैं, तिस महादर्पणविषे सर्व वस्तुजात प्रतिबिंब होते हैं, जैसे समुद्रविषे कोउ तरंगरूप, कोउ बुदबुदे चक्रादिक होते हैं, तैसे आत्माविषे जीवादिक आभास होते हैं, प्रथम फुरणरूप होते हैं, पाछे कारणकार्यरूप होते हैं, सो चित्तशक्ति अपणे संकल्पतें भूतादिक देह रचीकरि तिसविषे स्वरूपके प्रमादकरि आत्मअभिमान करता है, जैसे घुराणकों अपणी क्रिया अपणे बंधनके निमित्त होती है, तैसे इसकों अपणा संकल्प वंधनका कारण होता है ॥ हे राजन्! जीवकलाकों स्वरूपका अज्ञान हुआ है, सो जैसे बालककों अपणा परछाया यक्षरूप होकरि भय देता है, तैसे यह नानाप्रकारके आरंभकों प्राप्त हुआ है, अकारणही ब्रह्मशक्ति फुरणे करिके कारणभावकों प्राप्त हुआ हैं, तिसकरि बंध अरु मोक्ष भासते हैं, वास्तवतें न बंध है, न मो

क्ष है, निरामय ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे एक अरु अनेक कहणा कछु नहीं, तातें बंधमोक्षकी कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ ॥ ॥

॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! जैसे द्रवता करिके जलही तरंगभावकों प्राप्त होता है, तैसे चिन्मात्रही संकल्पके फुरणेकरि जीव होता है, सो जीव संसारविषे कर्मोंके वशतें भ्रमता हुआ आपकों कर्त्ता देखता है, अरु सर्वात्मा परम ब्रह्म कर्त्ता हुआ भी कछु नहीं करता; जैसे सूर्यकरि सब चेष्टा होती हैं, अरु सूर्य अकर्त्ता है, तैसे आत्माकी शक्तिकरि जगत् चेष्टा करता है, जैसे चुंबक पथ्थरके निकट लोहा चेष्टा करता है, तैसे आत्माकी चेतनताकरि सब देहादिक चेष्टा करता है, अरु आत्मा सदा अकर्त्ता है, जैसे जलविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे देहादिक फुरते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पना होती है, तैसे आत्माविषे मोहकरि दुःख सुख कल्पते हैं, आत्माविषे कल्पना कछु नहीं, शुद्ध आत्माविषे मूढनें सुखदुःखकी कल्पना करी है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों मन चित्त सुख दुःख सब आकाशरूप हैं, उह देहतें रहित केवल चिदाकाशभावकों प्राप्त होते हैं, जरामरणकों नहीं प्राप्त होते, सब कार्यकों करते दृष्ट आते हैं, अरु अंतरतें सदा अकर्त्तारूप हैं, जैसे जल अरु दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब पडता है, परंतु स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्कों क्रिया स्पर्श नहीं करती, शरीरके व्यवहारविषे भी उह सदा निर्मलभाव है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा स्थितरूप है, परंतु भ्रम करिके चंचल भासता है, जैसे जलकी चंचलता करिके पर्वतका प्रतिबिंब भी चंचलहोता है, तैसे देहादिककरि आत्मा चलता भासता है, सो आत्मा नित्य शुद्ध अपणे आपविषे स्थित है, जैसे घटके नाश हुए घटत्वनाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे शुद्ध मणिविषे नानाप्रकारके प्रतिबिंब होते हैं, तिनकरि रंजित नहीं होती, तैसे आत्माविषे मन इंद्रियां देह दृष्ट आवते हैं, सो स्पर्श नहीं करते, जैसे मिष्ट पदार्थविषे

मिठाई एकही व्यापी है, तैसे सब पदार्थविषे एक आत्मसत्ता व्यापी है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अचलरूप है, परंतु अज्ञान करिके चलरूप भासता है, जैसे बालक दौडतेकों सूर्य दौडता भासता है, तैसे आत्मा देहके संगतें अज्ञानकरि विकारवान् भासता है, जैसे प्रतिबिंबका विकार आदर्शकों नहीं स्पर्श करता, तैसे देहका विकार आत्माकों स्पर्श नहीं करता, जैसे अग्निविषे स्वर्ण डारियें, तब मैल दग्ध हो जाता है, स्वर्णका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, सो आत्मा नित्य शुद्ध अवाक् अचिंत्यरूप.है ॥ हे राजन्! चितवणेविषे नहीं आता, परंतु चेतनवृत्तिकरि देखिता है, जैसे राहु अदृष्ट है, परंतु चंद्रमाके संयोगकरि दृष्ट आता है, तैसे आत्मा अदृष्ट है, परंतु चेतनवृत्तिकरि जाणीता है, जैसे शुद्ध दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे बुद्धि निर्मलविषे आत्मा साक्षात् भासता है, सो संकल्पतें रहित अपणे आपविषे स्थित है, जब बुद्धि निर्मल होती है, तब अपणे आपविषे तिसकों पावती है ॥ हे राजन्! शास्त्रोंकरि परमेश्वर नहीं पाइता, अरु गुरुकरि भी नहीं पाइता, जबलग अपनी बुद्धि निर्मल न होवै, जब अपनी बुद्धि सत्पदविषे निर्मल होवै, तब अपणे आपकरि देखता है, सो बुद्धि कैसे निर्मल होती है, जब संसारकी सत्यता हृदयतें दूर होवै, अरु आत्माका अभ्यास होवै, तब बुद्धि निर्मल होती है ॥ हे राजन्! सर्व भाव अभावरूप जो देहादिक पदार्थ हैं, सो असत् हैं, केवल भ्रममात्र हैं, तिनकी आस्थाका त्याग करु, जैसे कोउ मार्गमें चलता है, अरु मार्गविषे अनेक मिलते हैं, परंतु तिनविषे रागदोष कछु नहीं होता, तैसे देहइंद्रियांसाथ स्नेहतें रहित आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है तिसविषे देहादिक इंद्रजालकी नांई मिथ्या हैं, तिनकी भावना दूरतें त्यागिकरि नित्य आत्मा शीतल चित्तविषे स्थित होहु ॥ हे राजन्! अपणा मित्र आपही है, अरु शत्रु भी अपणा आपही है, काहेतें जो आत्माविषे अवरकी ठौर नहीं, आत्माविषे आत्माका भाव है, अवर द्वैत कछु नहीं, इस कारणतें अपणा आपही शत्रु

है, आपही अपणा मित्र है, जो दृश्य पदार्थका उरतें अनात्मधर्म विषयसों खैंचिकरि चित्तकों अपणे आप विषे स्थित करता है, सो अपणा आपही मित्र है, अरु जो अनात्म धर्मविषे पदार्थकी उर चित्तकों लगाता है, सो अपणा आपही शत्रु है, अरु वास्तवतें जेता कछु दृश्यजाल है सो भी आत्मारूप है, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रजलतें इतर कछु वस्तु नहीं, जलही जल है, तैसे आत्मातें इतर जगत् कछु वस्तु नहीं, सबविषे अनुस्यूत एक आत्मसत्ताही स्थित है,जैसे अनेकघटके जलविषे एकही सूर्यका प्रकाश प्रतिबिंब होता है, तैसे अनेक देहोंविषे एकही आत्मा व्यापी रहा है, सो न अस्त होता है, न उदय होता है,सदा एकरस अविनाशी पुरुष ज्योंका त्यों स्थित है, तिसविषे अहंभावना करिके संसार भासता है, जैसे सीपीविषे रूपेकी बुद्धि होती है, तैसे आत्माविषे अहंबुद्धि संसारका कारण है, इस बुद्धिकरि सर्व दुःखका भागी होता है, जैसे वर्षाकालकरि सब नदियां समुद्रविषे आय प्रवेश करतियां हैं, तैसे अनात्म अभिमान करिके सब आपदा आनि प्राप्त होती हैं, वास्तवतें चिन्मात्र अरु जीवविषे रंचक भी भेद नहीं, एकही रूप है, ऐसी जो बुद्धि है, सो बंधनतें मुक्तिका कारण है, आत्मा सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है,जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ठौरविषे होता है, परंतु जहां शुद्ध जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु शुद्ध बुद्धिविषे भासता है, जैसे तरंग बुदबुदेविषे जलही व्यापी रहा है, तैसे आत्मा अविनाशी दृश्य कलनातें रहित सर्वत्र व्याप्या है, जैसे स्वर्णविषे भूषण नहीं, तैसे आत्माविषे जगत्का आभाव है ॥ हे राजन्! यह संसार आत्माविषे नहीं, केवल आत्माही है, जो एक वस्तु पात्रकी नांई होती है, तिसविषे दूसरी वस्तु होती है, आत्मा तौ अद्वैत है, दूसरी वस्तु संसार कहां होवै, अरु स्वर्णविषे भूषण जैसे चित्तकरि कल्पित हैं, वास्तव कछु नहीं, तैसे आत्माविषे संसार अज्ञानकरि कल्पित है,वास्तव कछु नहीं, केवल चिदाकाश है, जैसे नदियां अरु समुद्र नाममात्र हैं, सो जलही है, तैसे केवल चिदाकाशविषे विश्व नाममात्र है, अरु जेते आकार भासते हैं, ति

नका काल भक्षण करता है, जैसे नदियांकों समुद्र भक्षण करिके अघाता नहीं, तैसे पदार्थ समूहकों काल भक्षण करता अघाता नहीं ॥ हे राजन्! ऐसे पदार्थविषे अभिलाषा करणी क्या है, केई कोटि सृष्टि तपती होतियां हैं, तिनकों काल भक्षण अबलग करता है, कोउ पदार्थ कालतें मुक्त नहीं होता, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे केई उपजते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तातें तूं कालतें अतीत पदकी भावना करु, जो कालकों भी भक्षण करै, कैसे भावना करियें, अरु कैसे भक्षण करियें, सो श्रवण करु, जैसे मंदराचलनें अगस्त्य मुनिके आनेकी भावना करी है, तैसे तूं अपणे स्वरूपकी भावना करु, तब कालकों भक्षण करैगा, जैसे अगस्त्य मुनीनें समुद्रका भक्षण कियाथा, तैसे आत्मारूपी अगस्त्य कालरूपी समुद्रकों भक्षण करैगा ॥ हे राजन्! जन्ममरणादिक जो विकार हैं, सो भ्रमकरिके हैं, आत्माके प्रमादकरि भासते हैं, जब आत्माकों निश्चयकरि जाणैगा, तब विकार कोउ न भासैगा, काहेतें जो अज्ञानकरि रचे हैं, आकाशविषे कोउ नहीं, जैसे जेवरीविषे भ्रमसंयुक्त सर्प भासता है, सो तबलग है, जबलग जेवरीकों नहीं जाण्या, जब जेवरीकों जाणी तब सर्पभ्रम निवृत्त हो जाता है, तैसे जन्म मरण आदिक विकार आत्माविषे तबलग भासते हैं, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब सर्व विकार नष्ट हो जावैंगे ॥ हे राजन्! ऐसा आत्मा विकारतें रहित तेरा स्वरूप है, तिसकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अरु आत्मपदकों कहूं खोजणे नहीं जाणा, अरु किसी वस्तुकों जायकरि ग्रहण नहीं करणा, जो यह आत्मा है, अरु किसी कालकी अपेक्षा भी नहीं, जो इस कालकरि पावैगा, आत्मा तेरा अपणा स्वरूप है, अरु सर्वदा अनुभवरूप है, तुझतें इतर कछु वस्तु नहीं, तूं आपकों ज्यौंका त्यौं जाण, आत्माके न जानणेकरि आपकों दुःखी जानता है, जो मैं मरौं, दरिद्री हौं, मैं दास हौं, इत्यादिक दुःख तबलग होते हैं, जबलग आत्माकों नहीं जाण्या, जब आत्माकों जाणैगा, तब आनंदरूप हो जावैगा, जैसे किसी स्त्रीके गोदविषे

पुत्र होवै, अरु स्वप्नविषे देखत भई जो बालक मेरे पास नहीं, तब बडे दुःखकों प्राप्त भई, अरु रुदन करणे लगी, जब स्वप्नतें जागे, तब देखा जो बालक मेरे गोदविषे है, अरु एता दुःख मैं भ्रम करिके पाया है, बडे आनंदकों प्राप्त भई, अरु दुःख शोक नष्ट होगए ॥ हे राजन्! तिसी प्रकार आत्मा तेरा अपणा आप है, अरु सदा अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि तूं आपकों दुःखी जाणता है, जब अज्ञानरूपी निद्रातें तूं जागैगा, तब आपकों जाणैगा, अरु दुःख शोक तेरे नष्ट हो जावैंगे, सो अज्ञानरूपी निद्रा क्या है, श्रवण करु, देह इंद्रियादिक जो दृश्य हैं, तिनसाथ मिलिकरि आपकों जानणा जो मैं हों, यह अज्ञान निद्रा है, इसतें रहित होकरि देख जो आनंदकों प्राप्त होवै, अरु जेते यह पदार्थ भासते हैं, सो मिथ्या हैं, जैसे बालक मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना अरु हस्ती घोडा कल्पता है, सो न कोउ राजा है, न सैना है, न कोउ हस्ती घोडा है, एक मृत्तिकाही है, तैसे चित्तरूपी बालकनें आत्मरूपी मृत्तिकाविषे राजा अरु सैना आदिक संपूर्ण विश्व कल्पी है, सो मिथ्या है ॥ हे राजन्! एक उपाय तेरेकों कहता हों सो करु, जो दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, एक वस्तुका त्याग करु, सो कवन है, अहं अभिलाषसहित जो फुरना है, तिसका त्यागकरि जहां इच्छा है, तहां विचरु, तेरेकों दुःखका स्पर्श न होवैगा, संकल्पही उपाधि है, अवर उपाधि कोउ नहीं, जैसे मणि तृणकरि आच्छादी होती है, जब तृण दूर करियें, तब मणि प्रगट हो आती है, तैसे आत्मरूपी मणि वासनारूपी तृणकरि आच्छादी है, जब वासनारूपी तृण दूर करियें, तब आत्मरूपी मणि प्रगट हो आवै॥ हे राजन्! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तितें रहित जो आत्मपद है, जब तिसकों प्राप्त होवैगा, तब जाणैगा जो मैं मुक्त हों, सो तेरा स्वरूप है, तिस पदविषे स्थित होहु, जो केवल आत्मरूप है, अरु अजन्मा है, नित्य है, अरु चेतनमात्र है, सर्वका अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि दुःख होता है, जैसे बालक मृत्तिकाके खिलोने बनाते हैं, हस्ती घोडा नाम कल्पते हैं, अ

भिमान करते हैं, जो मेरे हैं, अरु तिनके नाश होणेकरि दुःखी होते हैं, तैसे अज्ञानी जो है, बालकरूप सो स्वरूपके प्रमादकरि अभिमान करता है, हय मेरे हैं, मैं इनका हौं, तिनके नाश होणेकरि दुःखी होता है, ऐसे नहीं जाणता, जो सत्का नाश नहीं होता, असत्के नाश होणेकरि सत्का नाश मानता है, जैसे घटके नाश होणेकरि घटाकाश नाश मानियें, तैसे मूर्खता करिके दुःख पावता है ॥ हे राजन्! तूं आपकों आत्मा जाण, अरु आत्मादिक संज्ञा भी शास्त्रोंनें कल्पी हैं, जतावणेके निमित्त, नहीं तौ आत्मा निर्वाच्य पद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, अरु इनहीकरि जाणता है, काहेतें जो मनवाणीविषे भी आत्मसत्ता है, तिसीकरि आत्मादिक संज्ञा सिद्ध होती हैं, जैसे जेते कछु स्वप्नके पदार्थ हैं, तिनविषे अनुभवसत्ता है, तिसीकरि पदार्थ सिद्ध होते हैं, तैसे जेति कछु अर्थसंज्ञा हैं, सो सब आत्माकरि सिद्ध होती है, ऐसा जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जो तेरे जरा मृतादिक दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! जब निस्पंद होकरि देखैगा, तब स्पंदविषे भी उही भासैगा, स्पंद निस्पंद तुल्य होकरि भासैंगे, जो समाधिविषे होवैगा, अथवा ऐसेही चेष्टा करैगा, तौ भी तुल्य होवैगी, न समाधिविषे शांति भासैगी, न चेष्टाविषे दुःख भासैगा, दोनोंविषे एकरस रहैगा, विषमता कछु न भासैगी ॥ हे राजन्! जो कछु प्रकृत आचार आय प्राप्त होवै, देणा अथवा लेणा, यज्ञ दान आदिक क्रिया है, तिसकों मर्यादासहित अरु शास्त्रकी विधि संयुक्त करु, अरु निश्चय आत्मा स्वरूपविषे होवै, जैसे नट स्वांगकों धारि संपूर्ण चेष्टा करता है, अरु निश्चय तिसविषे नटत्वहीका राखता है, तैसे तुम सर्व चेष्टा करौ, तिसके अभिमान अरु संकल्पतें रहित होहु, ग्रहण अथवा त्याग जो कछु स्वाभाविक आय प्राप्त होवै, तिसविषे ज्यौंके त्यौं रहौ, जब निर्विकल्प होकरि अपणे स्वरूपकों देखैगा, तब उत्थान कालविषे भी तेरे तांई आत्माही भासैगा, जैसे जलके जानणेतें तरंग फैन बुदबुदा सर्व जलही भासते हैं, तैसे जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब तुझकों संसार भी आत्मरूप भासैगा, अरु जो आत्माकों नहीं जाणता

तिसकों जगत्ही दृष्ट आता है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें तूं अंतर्मुख होहु, संकल्पकों त्यागिकरि परम निर्वाण अच्युत पदविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजाइक्ष्वाकुप्रत्यक्षोपदेशो नाम षण्णवतितमः सर्गः॥९६॥ ॥ मनुरुवाच॥ हे राजन्! यह जो संकल्प पुरुष है, सो संकल्प करिके आप बंधाता है, अरु आपहि मुक्त होता है, जब संकल्पकरि दृश्यकी भावना करता है, तब जन्ममृत्युकों पावता है, अरु दुःखी होता है, आपही संकल्प करता है, आपही बंधनकों प्राप्त होता है, जैसे घुराण कीट आपही गुंफा बनाती है, अरु आपही तिसकों मुंदीकरि फसती है, तैसे अपणे संकल्पकरि आपही दुःख पावता है, अरु जब संकल्पकों अंतर्मुख करता है, तब मुक्त होता है, अरु मुक्तिही मानता है, तातें हे राजन्! संकल्पकों त्यागिकरि आत्मा जो सर्वका अपणा आप है, तिसकी भावना करु, जो तूं सुखी होवै ॥ हे राजा! आत्माके प्रमादकरि देह आस्थाकी भावना हुई है, तिसकरि दुःख पावता है, तातें आत्मस्वरूपकी भावना करु, जो तूं आत्मा है, चिद्रूप है, महाआश्चर्यमाया है, जिसनें संसारकों मोही लिया है, आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अंग अंग व्यापी है, तिसकों नहीं जाणते यही आश्चर्य है ॥ हे राजन्! आत्मा सदा अनुभवरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार आत्माके प्रमादकरि फुरणेतें हुआ है, सो सत् भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, जो आत्मातें भिन्न करि देखियें, तौ मिथ्या है, तातें सत् नहीं, अरु आत्माविना दूसरा है नहीं, सर्वात्मा है, तातें असत् भी नहीं, तूं आत्माकी भावना करु, जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मातें भिन्न न जाण, सर्वात्माही है, जो आत्माविना अवर भावना है, तिसका त्याग करु ॥ हे राजन्! जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलतें इतर नहीं, जलही ऐसे भासता है, तैसे जगत् जो दृष्ट आता है, सो आत्मा है, ऐसे भासता है, जैसे सूर्य अरु किरणांविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, आत्माही जगत्रूप है, अरु भिन्न भिन्न जो आकार भासते हैं, सो चित्तशक्तिकरिके हैं, इतर नहीं,

आत्मसत्ता है, जैसे लोहा तप्त हुआ वस्त्रादिककों जलावता है, सो लोहेकी अपणी सत्ता नहीं, अग्निकी है, तैसे चेतनकी सत्ता जगत्‌रूप होकरि स्थित भई है, अरु आत्मा सदा केवलरूप है, जिसविषे प्रकाश अरु तम दोनों नहीं, न सत् है, न असत् है, न कोउ देश है, न काल है, न कोउ पदार्थ है, केवल चेतन मात्र गुणातीत है, न कोउ गुण है, न माया है, केवल शांतरूप आत्मा है ॥ हे राजन्! न शास्त्रोंकरि पाइता, न गुरोंके वचनकरि पाइता है, न तपकरि पाइता है, केवल अपणे आपकरि जाण्या जाता है, शास्त्रादिक लखाय देते हैं, परंतु इदंकरि नहीं जणावते, जो द्रष्टा पुरुष अपणे आपकरि जाणीता है, जैसे सूर्यकी ज्योती नेत्रविषे है, सोई सूर्यकों देखती है, तैसे आत्माही आत्माकों देखता है, अंतर्मुख होकरि संकल्पतें रहित हुआ अपणे आपकों देखता है, जब संकल्प बहिर्मुख होता है, तब वही दृढ होकरि स्थित होता है, बहुरि तिसकी भावना होती है, जब संकल्परूप जगत् दृढताकरि स्थित होता है, तब दुःखदायी होता है ॥ हे राजन्! अवर दुःखदायि तिसका कोउ नहीं, अपणेही संकल्पकरिके असम्यक्‌दर्शी दुःखी होता है, अरु सम्यक्‌दर्शीकों जगत् दृष्ट भी आता है, तौभी दुःखदायी नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्पकी भावना होती है, तब भयकों प्राप्त होता है, जब जेवरीके जानणेतें सर्पभावना दूर भई तब भय भी जाता रहता है, तैसे जिस पुरुषकों संसारकी भावना होती है, सो दुःखदायी है, तातें आत्माकी भावना करु जो तेरे सर्व दुःख नष्ट हो जावैं ॥ हे राजन्! तूं सर्वदा आनंदरूप है, अरु अद्वैत है, तेरेविषे कल्पना कोउ नहीं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु आत्मा षट् विकारतें रहित है, विकार मिथ्या देहके हैं, आत्मा शुद्ध है, आत्माके प्रमादकरिके विकार भासते हैं, जब तूं आत्माकों जाणैगा, तब विकार कोउ न दृष्ट आवैगा, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है॥ ॥ राजोवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ आत्मा अद्वैत है, जो इस प्रकार है तौ पर्वत आदिक विश्व कैसे भान होता है, पत्थररूप महाबडे आकार बनिके कहांतें उ

पजे हैं, इसका रूप क्या है, सो कृपा करिके कहौ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्माविषे संसार कोउ नहीं, सदा शांतरूप है, अरु निराकार है, तिसविषे स्पंद निस्पंद दोनों शक्ति हैं, जब निस्पंदशक्ति होती है, तब केवल अद्वैत भासता है, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब जगत्के नानाप्रकारके आकार भासते हैं, वास्तवतें आत्माही है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग कछु अवर नहीं, उहीरूप हैं, पवनके संयोगतें फुरते हैं, तौ भिन्न भिन्न दृष्ट आवते हैं, तैसे फुरणशक्तिकारि अहंकार भिन्न भिन्न भासते हैं, वास्तवतें आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे वटका बीज होता है, अरु तिसविषे पत्र टास फूल फल अनेक दृष्ट आते हैं, तैसे आत्मसत्ताके नानाप्रकारके आकार धारे यद्यपि दृष्ट आते हैं, तौ भी बन्या कछु नहीं, केवल आत्मा अद्वैत ज्योंका त्यों स्थित है, अरु सूक्ष्मतें भी अतिसूक्ष्म है, अरु पर्वत आदिक जो विश्व भासता है, सो आत्माका चमत्कार है, जैसे स्वप्नविषे पर्वत वृक्षादिक नानाप्रकारके आकार भान होते हैं, तौ भी अनुभवरूप हैं, तिसतें इतर कछु नहीं, तैसे जाग्रत विश्व भी आत्मा अनुभवरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ इक्ष्वाकुरुवाच ॥ हे भगवन्! जो आत्मा सूक्ष्म है, तौ पर्वतादिक स्थूल असत्रूप सत् होकरि कैसे भासता है, सो कृपा करिके कहौ ॥ ॥ मुनिरुवाच ॥ हे राजन्! आत्मा अनंतशक्ति है, सो शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, उहीरूप है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माकी शक्ति आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे पवनविषे दो शक्ति हैं, स्पंद अरु निस्पंद सो उहीरूप हैं, स्पंदशक्तिकारि प्रगट भासता है, अरु निस्पंदकरि प्रगट नहीं भासता, तैसे आत्माविषे स्पंद निस्पंद दो शक्ति हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है तब अहंभाव प्रगट होता है, जब अहंभाव हुआ, तब चित्त उदय होता है, अहंही चित्त है, जब चित्त हुआ, तब आकाशकी भावनातें आकाश बणी जाता है, जब स्पर्शकी भावना हुई, तब पवन उत्पन्न होता है, जब रूपकी भावना करी, तब अग्नि बणी गई, जब रसकी भावना हुई तब जल उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार चि

त्तकी कल्पनाकरि तत्त्व उपजे हैं, जब चारों तत्त्वका समष्टि भया, तब एक अंड हुआ, जब दृढ संकल्प किया, तब स्वायंभू मनु हुआ, जब अंड फुले तब तीन लोक हुए, स्वर्ग मध्य अरु पाताल, सो तीनों लोक तीनों गुण राजस सात्विक तामस हुए, बहुरि पर्वत आदिक दृश्य पदार्थ सर्व हुए ॥ हे राजन्! केवल संकल्प मात्रही सब हुए हैं, जब स्पंदशक्ति फुरती है, तब इस प्रकार आत्माविषे भासते हैं, परंतु बण्या कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे फैन बुदबुदे फुरते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, अरु आदिमनु जो स्वयंभु है, तिस संकल्पकरि आगे मन कल्पे हैं, त्रिगुणमय सृष्टि इस प्रकार उत्पन्न होती है, सो केवल संकल्पमात्र है, जबलग चित्त है, तबलग विश्व है, जब चित्त फुरणेतें रहित हुआ, तब निस्पंदशक्ति होती है, जब निस्पंद हुई, तब बहुरि जगत् नहीं देखाय देता ॥ हे राजन्! इह विश्व मनके फुरणे विषे है, अरु सत्यकी नांई स्थित हुई है, सो श्रवण करु, सत् जो है, सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता, अरु जो असत् है, सो सत्यकी नांई भासता है, सत् कैसे असत्की नांई हुआ है, अरु असत् कैसे सत्की नांई हुआ है सो सुणु, सत् जो है, सर्व देश, सर्व काल, सर्व वस्तु पाइता है, सो नहीं भासता अरु असत् जो है, परिच्छिन्नरूप देश काल वस्तु परिच्छेदसंयुक्त है, सो सत्की नांई हुआ है, जहां देखियें तहां दृश्यही गुणमय संसारभान होता है, महाआश्चर्यरूप माया है, जिसनें सत्यकों असत्यकी नांई किया है, अरु असत् कों सत्की नांई स्थित किया है, सो चित्तके संबंधकरि संसार भासता है, आत्माविषे संसार कोउ नहीं, जब चित्तकों स्थित करि देखैगा, तब तेरे तांई संसार न भासैगा, जैसे गंभीर जल होता है, तौ चलता नहीं भासता जो कहां जाता है, तैसे गंभीर जो आत्मा है, तिसविषे संसार नहीं जाणता, जो कहां फुरता है, अरु संसार भी आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, आत्मास्वरूपही है, जैसे अग्निके चिणगारे अग्नितें भिन्न नहीं, अरु जलके तरंग जलतें भिन्न नहीं, अरु मणिका प्रकाश मणितें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें संसार भिन्न नहीं,

केवल आत्मस्वरूप है, ऐसे आत्माकों जाणिकरि शातिवान् होहु जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, केवल शांत पद आत्मा है, सो तेरा अपणा आप है, अपणे स्वरूपकों भूलिके दुःखी हुआ है, जब आत्माकों जाणैगा तब संसार भी आत्मस्वरूप भासैगा, काहेतें जो आत्मस्वरूप है, आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं, ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु॥ हे राजन्! यह सर्व जगत् चिदाकाशरूप है, यही भावना दृढ करु, ऐसी भावना जिसकी दृढ है, अरु सब इच्छा शांत हो गई हैं, तिस पुरुषकों दुःख कोउ नहीं लगता, उसनें निरिच्छारूपी कवच पहिऱ्या है ॥ हे राजन्! अहं अर्थतें रहित जो पुरुष है, सर्व जिसकों शून्य हो गया है, निरालंबका आसरा किया है, सो पुरुष मुक्तिरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुआख्याने सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! यह संसार आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे जल अरु तरंग भिन्न नहीं, जैसे सूर्य अरु किरण भिन्न नहीं, जैसे अग्नि अरु चिणगारे भिन्न नहीं, तैसे आत्मा अरु संसार भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे इंद्रियांके विषय इंद्रियांविषे रहते हैं, तैसे आत्माविषे संसार है, जैसे पवनविषे स्पंद निस्पंदशक्ति हैं, सो पवनतें भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें भिन्न नहीं, आत्मस्वरूप है ॥ हे राजन्! विषयकी सत्यताकों त्यागिकरि केवल आत्माकी भावना करु, जो तेरे संशय मिटि जावैं, तूं आत्मस्वरूप है, अरु निर्गुण है, तुझकों गुणोंका स्पर्श नहीं होता, तूं सर्वतें पर है, जैसे आकाशविषे धूड अरु धुवा अरु मेघ बादल विकार भासते हैं, आकाशकों लेप कछु नहीं करते, केवल आकाश अद्वैतरूप है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष जिसकों आत्मज्ञान भया है, तिसकों सुख दुःख राजस तामस सात्त्विक गुण लेप नहीं करते, तिनविषे दृष्टि भी आते हैं, लोक दृश्य करि तौ भी अपणेविषे नहीं देखते, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग जलरूप होते हैं, जैसे शुद्ध मणिविषे नील पीत आदिक प्रतिबिंब पडते हैं, सो देखणेमात्र हैं, मणिकों स्पर्श नहीं करते, तैसे जिस पुरुषके हृदयतें

वासना मल दूर भई है, तिसके शरीरकों संबंधकरिके राजस सात्विक तामस गुणोंके कार्य सुख दुःख देखणे मात्र होते हैं, परंतु स्पर्श नहीं करते, केवल सत्तासमान पदका निश्चय तिसविषे होता है, अवर रंग उसकों स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशकों धूडका लेप नहीं होता, तैसे आत्माकों गुणोंका संबंध नहीं होता, जो पुरुष ऐसे जाणता है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब निस्पंद होता है, तब आत्मा होता है, जब स्पंद होता है, तब संसारी होता है, जब चित्त फुरता है तब अनेक सृष्टि भासतियां हैं, जब चित्त फुरनेतें रहित हुआ, तब संसारका अत्यंत अभाव होता है, प्रध्वंसाभाव भी नहीं भासता, जो पूर्व सृष्टि थी, अब लीन हो गई है, संसार भी केवल आत्मरूप हो जाता है, तातें हे राजा! वासनाकों त्याग, चित्तकों स्थिर करु, यह वासनाही मल है, जब वासनाका त्याग हुआ, तब केवल आकाशकी नांई आपकों स्वच्छ जाणैगा, सो आत्मा वाणीका विषय नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, सर्वदा उदयरूप है, अरु विश्व भी आत्माका चमत्कार है, भिन्न वस्तु कछु नहीं, जैसे जलतें तरंग भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्मरूप है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी है, सो अज्ञान करिके भासती है, आत्मा सर्वदा एकरूप है, अरु त्रिपुटीतें रहित है, फुरणे करिके आत्माही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे स्वप्नाविषे एक अनुभवरूप होता है, अरु चेतनता करिके काल विषमतारूप हो भासता है, सो दूसरी वस्तु कोउ नहीं, तैसे आत्माही त्रिपुटीरूप भासता है, तातें चित्तकों स्थिर करि देख, आत्मातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, अरु फुरणेविषे संसार है, जब फुरणा मिटि गया, तब संसार भी मिटि जाता है, सो फुरणा कैसे मिटता है, अरु स्वरूपकी प्राप्ति कैसे होती है सो श्रवण करु, सप्त भूमिका कहता हौं, जब प्रथम जिज्ञासु होता है, तब चाहता है, जो संतजनका संग करणा, अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रकों देखणा अरु श्रवण करणा सो प्रथम भूमिका है, भूमिका कहियें चित्तके ठहरावणेकी ठौर, बहुरि जब संतोंके संग अरु शास्त्रोंक

रि बुद्धि बढी, तब संतों अरु शास्त्रोंके कहणेकों विचारत भया जो मैं कवन हौं, अरु संसार क्या है, सो यह दूसरी भूमिका है; तिसके उपरांत विचाऱ्या जो मैं आत्मा हौं, अरु संसार मिथ्या है, मेरेविषे संसार कोउ नहीं, ऐसी भावना वारंवार करणी सो तीसरी भूमिका है; जब आत्मभावकी दृढतातें आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासना संपूर्ण मिटि जाती है, जब स्वरूपतें उतरिकरि देखता है, तब संसार भासता है, परंतु स्वप्नकी नांई जाणता है, तातें वासना नहीं फुरती, ऐसे जो अवलोकन है, सो चतुर्थ भूमिका है; जब अवलोक हुआ, तब आनंद् प्रगट होता है, ऐसे महाआनंदका प्रगट होणा सो पंचम भूमिका है; अरु जब आनंद् प्रगट हुआ, अरु तिसविषे स्थित होणा, अपणे बलतें सुषुप्तवत् इसका नाम पंचम भूमिका है; अरु तुरीयापद् छट्ठी भूमिका है; चित्तके दृढताका नाम तुरीया है, जब तुरीयातीत पदकों प्राप्त होता है, तब परम निर्वाण होता है, तिसकों सप्तम भूमिका कहते हैं; तिस परम निर्वाण पदकी जीवन्मुक्तिकों गम नहीं, काहेतें जो तुरीयातीत पद है, तिसकों वाणीकरि कहि नहीं सकता, प्रथम तीन भूमिका जो कही हैं सो जाग्रत अवस्था है, तिसविषे श्रवण मनन निजध्यासन करता है, अरु संसारकी सत्ता भी दूर नहीं होती, इसीतें जाग्रत अवस्था कही है; अरु चतुर्थ भूमिका स्वप्नवत् है, संसारकी सत्ता नहीं होती, अरु पंचम भूमिका सुषुप्ति अवस्था है; काहेतें जो आनंद्घनविषे स्थित होता है, अरु छट्ठी भूमिका तुरीयापद् है, जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका साक्षी है, केवल ब्रह्महीं प्रकाशता है, अरु निर्वाण पद्विषे चित्तका लय हो जाता है, सो तुरीया पदविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं, अरु सप्तम भूमिका तुरीयातीत पद है, सो परमनिर्वाण पद है, तुरीयाविषे ब्रह्माकारवृत्ति रहती है, अरु ब्रह्माकारवृत्ति भी लीन हो जाती है, जहां वाणीकी गम नहीं, तहां चित्त नष्ट हो जाता है, केवल आत्मत्व मात्र है, चेतनका मात्र तहां अपणा अहंभाव होणा भी नहीं, शांत अरु परम निर्वाण ऐसा जो निर्वाण है,

सो तेरा स्वरूप है, सर्व विश्व उहीरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णही भूषण है, अरु स्वर्णविषे भूषण कल्पता है, अरु भूषण भी परिणामकरि होता है, आत्मा सदा अच्युतरूप है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, केवल एकरस है, तिसविषे चित्त फुरणेतें विश्व कल्पी है, विकारसंयुक्त भासता है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है॥ हे राजा! ऐसा आत्मा तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे निरहंकार हुआ विचरु, अरु अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्यागकरि केवल आत्मरूप हो रहु॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणवर्णनं नाम अष्टनवतितमः सर्गः॥ ९८॥ ॥ ॥ मनुरुवाच॥ हे राजन्! सर्व चिदाकाशसत्ता आदिमध्य अंततें रहित अनाभास ज्यौंका त्यौं स्थित है, अरु आगे भी उही स्थित रहैगा, तिसविषे न ऊर्ध्व है, न अध है, न तम है, न प्रकाश है, न तिसतें इतर है, सर्वकी सत्ता है, सो चिन्मात्र परम सार है, सो आपही संकल्पकरि चेतनता भया, तब जगत् हुआ, अरु क्यौंकरि हुआ, क्या रूप है सो श्रवण कर॥ हे राजन्! यह विश्व आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मस्वरूपही है, जैसे जलविषे तरंग हैं अरु मीरचविषे तीक्ष्णता है, खांडविषे मधुरता है, अग्निविषे उष्णता है, अरु बरफविषे शीतलता है, सूर्यविषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे वायुविषे स्पंद है, तैसे आत्माविषे विश्व है, सो आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं॥ हे राजन्! जो आत्मस्वरूप है तौ शोक अरु मोह किसका करता है, अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जैसे नीतिका प्रवाह आनि प्राप्त होवै तिसविषे विचर, जैसे काष्ठकी पुतली यंत्रीके तागेकरि अनिच्छित चेष्टा करती है, तैसे नीतिरूपी तागेसों अभिमानतें रहित होकरि विचरु, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, किसीविषे रागदोष न करणा, जैसे शिला ऊपरमूर्त्ति लिखी होती है, तिसीकों न किसका राग है, न दोष है, तैसे शिलाकी मूर्त्तिकी नांई विचरु, आत्मातें इतर कछु फुरै नहीं, ऐसा निरहंकार हो

हु, भावै व्यवहारी गृहस्थ होहु, भावै संन्यासी होहु, भावै देहधारी, भावै देहत्यागी होहु, भावै विक्षेपी होहु, भावै ध्यानी होहु, तेरे तांई दुःख कोउ न होवैगा; ज्योंका त्योंही रहैगा, फुरणाही संसार है, फुरणेतें रहित असंसार है, जब फुरता है, तब संसारी होता है, जब फुरणा मिटि जावै, तब केवल आकाशरूप भासता है ॥ हे राजन्! यह जगत् सब आत्मरूप है, आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, जो सर्वात्माही है तौ शोक अरु मोह किसका करियें ॥ हे राजन्! आत्मा सर्वदा एकरस है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु नाना विकार जन्ममरणतें आदि जो भासते हैं, सो आत्माके अज्ञान करिके भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब आत्मरूपही एकरस विषमता कछु न भासैगी, जैसे जलके न जानणेकरि तरंग बुदबुदेका ज्ञान होता है, जब जलकों जाण्या, तब तरंग बुदबुदेकी विषमता कछु नहीं, सर्व जलरूप है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि विकार भासते हैं, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब एकरस सर्वात्माही भासता है, अरु संवेदन करिके आकार भासते हैं, संवेदन कहियें अहंकारवासनाका संबंध, अहंकार चित्त दोनो पर्याय हैं ॥ हे राजन्! अहंकारसाथ इसका होणा दुःखदायी है, केवल चिन्मात्रविषे अहंभाव मिथ्या है, जबलग संवेदन दृश्यकी उर फुरती है, तबलग दृश्यका अंत नहीं आता, अरु नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब संवेदन आत्मा अधिष्ठानकी उर आवती है, तब आत्मा शुद्ध अपणा आप होकरि भासता है, अरु संवेदन भी आत्माका आभास कल्पित है, आभासके आश्रय विश्व कल्पी है, अरु आत्मा ज्योंका त्यों है, फुरणेविषे भी अफुरणेविषे भी, परंतु फुरणेविषे विषमता भासती है, अफुरणेविषे ज्योंका त्यौं भासता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरि सर्प भासता है, जब जेवरीका ज्ञान भया, तब सर्पकी विषमता जाती रहती है, ज्योंकी त्यों जेवरी भासती है, सो सर्प भासणेकालविषे भी जेवरी ज्योंकी त्यों थी, जेवरीविषे कछु हुआ नहीं, जानणे न जानणेविषे एक समान है, तैसे आत्मा भी फुरणेकालविषे जगत् भासता है, फुरणेके निवृत्त हुए

आत्माही भासता है, आत्मा दोनों कालविषे एक समान है, जैसे सूर्यकी किरणां सूर्यतें भिन्न नहीं; अरु अग्नितें उष्णता भिन्न नहीं, तैसे आत्मातें विश्व भिन्न नहीं, आत्माही स्वरूप है ॥ हे राजन्! अहंकारकों त्यागिकरि सत्ता समान अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तब तेरे सर्व दुःख निवृत्त हो जावैं, एक कवच तेरे तांई कहता हौं, तिसकों धारिकरि विचरु, यद्यपि अनेक शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी छेदकों न प्राप्त होवै, सो श्रवण करु, जो कछु देखता सुणता है, सो सर्व ब्रह्म जाण, वारंवार यही भावना करु, जो ब्रह्मतें इतर कछु न भासै, जब ऐसी भावना दृढ करहीं, तब शस्त्र कोउ छेदी न शकैगा, इह ब्रह्मभावनाही कवच है, जब इसकों तूं धारैगा, तब सुखी होवैगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीनें रामजीकों मनु अरु इक्ष्वाकुका संवाद सुणाया, तब सायंकाल हुआ, सूर्य अस्त भया, अरु संपूर्ण सभा स्नानकों उठी, वसिष्ठजी भी उठे, बहुरि सूर्यकी किरणांसाथ आय प्राप्त भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षरूपवर्णनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ मनुरुवाच ॥ हे राजन्! जिसका कारणही मिथ्या है, तौ तिसका कार्य कैसे सत् होवै, यह आभास जो संवेदन है सो विश्वका कारण है, जो आभास मिथ्या है, तौ विश्व कैसे सत्य होवै, जो विश्वही असत् है, तौ भय किसका करता है, अरु शोक किसका करता है, हे राजन्! न कोउ जन्मता है, न कोउ मरता है, न सुख है, न दुःख है; ज्यौंका त्यौं आत्मा स्थित है, तिसविषे संवेदन विश्व कल्पी है, तातें संवेदनका त्याग करु, जो न मैं हौं, न यह है, जब तेरे तांई ऐसा निश्चय दृढ होवैगा, तब पाछे आत्माही शेष रहैगा, अरु अहंकार निवृत्त हो जावैगा, काहेतें जो आत्माके अज्ञानतें हुआ है, आत्मज्ञानतें नष्ट हो जाता है ॥ हे राजन्! जो वस्तु भ्रम करिके सिद्ध होवै, अरु सत् दृष्ट आवै, तिसकों विचारियें, जो विचार कियेतें रहै, तौ सत्य जाणियें, अरु आत्मा जाणियें; अरु जो विचार कियेतें नष्ट हो जावै, तिसकों मिथ्या जाणियें, जैसे हीरा भी श्वेत

है, अरु बरफका मणका भी श्वेत होता है, एक समान दोनों भासते हैं, तिनकी परीक्षाके लिये सूर्यके सन्मुख दोनों राखियें जो धूपकरि गलि जावै जो झूठा जाणियें, अरु ज्योंका त्यों रहै, तिसकों सत् जाणियें, तैसे विचाररूपी सूर्यके सन्मुख करियें तौ अहंकार बरफकी नांई नष्ट हो जाता है, काहेतें जो अहंकार अनात्म अभिमानविषे होता है, सो तुच्छ है, सर्वव्यापी नहीं, अरु इंद्रियांकी क्रिया अपणेविषे मानता है, जो परधर्म अपणेविषे कल्पता है, सो तुच्छ है, अरु आपकों भिन्न जाणता है, आपतें अवर पदार्थ भिन्न जाणता है, तातें विचार कियेतें बरफके हीरेकी नांई मिथ्या होता है, अविचार सिद्ध है, जब विचार किया, तब नष्ट हो जाता है, अरु आत्मा सर्वका साक्षी ज्योंका त्यों रहता है, अहंकारका भी अरु इंद्रियांका भी साक्षी है, अरु सर्वव्यापी है ॥ हे राजा! जो सत् वस्तु है, तिसकी भावना करु, अरु सम्यक्दर्शी होहु, सम्यक्दर्शीकों दुःख कोउ नहीं, जैसे जेवरी मार्गविषे पडी है, तिसकों जेवरी जाणियें तौ दुःख कोउ नहीं, अरु जो सर्प जाणियें तौ भयमान होता है, तातें सम्यक्दर्शी होहु, असम्यक्दर्शी मत होहु ॥ हे राजन्! जो कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सुखदायी नहीं, दुःखदायी हैं, जबलग इनका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब वियोग हुआ, तब दुःखकों प्राप्त करते हैं, तातें तूं उदासीन होहु, किन दृश्य पदार्थकों सुखदायी न जाण, अरु दुःखदायी भी न जाण, सुख अरु दुःख दोनों मिथ्या हैं, इनविषे आस्था मत करु, अहंकारतें रहित जो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जब अहंकार नष्ट होवैगा, तब आपकों जन्म मरण विकारोंतें रहित आत्मा जाणैगा, जो मैं निरहंकार हों, अरु ब्रह्म हों, चिन्मात्र हों, ऐसे अहंभावतें रहित होणा, अपणा होणा भी न रहैगा, केवल चिन्मात्र रहैगा, आनंदरूप होवैगा, अरु शांतरूप रागदोषके क्षोभतें रहित होवैगा, जब ऐसा आपकों जाण्या, तब शोक किसका करैगा ॥ हे राजा! इस दृश्यकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु इस मेरे उपदेशकों विचार; जो मैं सत्य कहता हों,

अथवा असत्य कहता हौं, अरु विचारेतें जो संसार सत्य होवै तौ संसारकी भावना करु, अरु जो आत्मा सत्य होवै, तौ आत्माकी भावना करु॥ हे राजन्! तूं सम्यक्दर्शी होहु, सत्कों सत् जाण, अरु असत्कों असत् जाण, अरु जो असम्यक्दर्शी है, सो सत्कों असत्य मानता है, अरु असत्यकों सत्य मानता है, असत् वस्तु तौ स्थिर नहीं रहती, ऐसे न जानणेकरि अज्ञानी दुःख पावता है, जैसे कोउ पुरुष कुटीकों रचीकरि चितवणे लगा, जो आकाशकी मैं रक्षा करी है, जब कुटी नष्ट भई तब शोक करता है, जो आकाश नष्ट हो गया, काहेतें जो आकाशकों कुटीके आश्रय जानता था, तैसे अज्ञानी पुरुष आत्माकों देहके आश्रय जाणीकरि देहके नष्ट हुए आत्माका नाश मानता है, अरु दुःखी होता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो भूषणोंके नष्ट हुए मूर्ख स्वर्णकों नष्ट मानता है, तैसे अज्ञानी देहके नष्ट हुए, आपकों नष्ट जानता है, अरु जिसकों स्वर्णका ज्ञान है, सो भूषणोंके नाशतें भी स्वर्णकों देखता है, अरु भूषणसंज्ञा कल्पित जानता है, तैसे जो ज्ञानवान् है सो आत्माकों अविनाशी जानता है, अरु देह इंद्रियांकों असत् जानता है॥ हे राजन्! तूं देह इंद्रियांके अभिमानतें रहित होहु, जब अभिमानतें रहित इंद्रियांकी चेष्टा करैगा, तब शुभ अशुभ क्रिया बांधि न सकैगी, अरु जो अभिमानसहित करैगा, तब शुभ अशुभ फलकों भोगैगा॥ हे राजन्! जो मूर्ख अज्ञानी है, सो ऐसी क्रियाका आरंभ करता है, जिसका कल्प पर्यंत नाश न होवै, अरु देह इंद्रियांके अभिमानका प्रतिबिंब आपविषे मानते हैं, मैं कर्त्ता हौं, मैं भोक्ता हौं, ऐसे माननेकरि अनेक जन्म पावते हैं, तिनके कर्मोंका नाश नहीं कब होता, अरु जो तत्त्ववेत्ता ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो आपकों देह इंद्रियां गुणतें रहित जानते हैं, तिनके कर्म संचित अरु क्रियमाण नष्ट हो जाते हैं, संचित कर्म वृक्षकी नांई हैं, अरु क्रियमाण फूल फलकी नांई हैं, जैसे रुईसों लपेटीकरि अग्निकों लगायेतें वृक्ष फूल फल सूके तृणवत् दग्ध होते हैं, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि संचित अरु क्रियमाण

कर्म दग्ध हो जाते हैं, तातें हे राजा! जो कछु चेष्टा फुरणे वासनातें रहित होकरि करैगा, तिसविषे बंधन कोउ नहीं, जैसे बालकके अंग स्वाभाविक भली बुरी प्रकार हिलते हैं, परंतु उसके हृदयविषे अभिमान फुरता नहीं, तातें उसकों बंधन नहीं करता, तैसे तूं भी इच्छातें रहित होकरि चेष्टा करु, तब तेरे तांई बंधन कोउ न होवैगा, यद्यपि सब चेष्टा तेरेविषे भासैंगी तौ भी वासनातें रहित होवैगा, बहुरि अवर जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज देखणेमात्र होता है, अरु उगता नहीं, तैसे तेरेविषे सर्व क्रिया दृष्ट आवैंगी परंतु जन्मका कारण न होवैगा, पुण्य क्रियाका फल सुख न भोगैगा, अरु पाप क्रियाकरि दुःख न भोगैगा, तेरे तांई पापपुण्यका स्पर्श न होवैगा, जैसे जलविषे कमल स्थित होता है, अरु जल तिसकों स्पर्श नहीं करता, तैसे पापपुण्यका स्पर्श तेरे तांई न होवैगा तातें अभिलाषतें रहित होकरि जो कछु अपणा प्रकृत आचार है, सो करु ॥ हे राजा! जैसे आकाशविषे जलसाथ पूर्ण मेघ भासते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे तुझकों कोउ क्रिया बंधन न करैगी, जैसे जो विषके खाणेवाला है, तिसकों विष नहीं मारि सकता, तैसे ज्ञानीकों क्रिया नहीं बांधि सकती, ज्ञानवान् क्रिया करणेविषे भी आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अज्ञानी न करणेविषे भी अभिमानकरि कर्त्ता होता है, जो देह इंद्रियांके न करते आपकों कर्त्ता मानता है, अरु जो देह इंद्रियांकरि करता है, तिसके अभिमानतें रहित है, सो करणेविषे भी अकर्त्ता है, अरु जो पुरुष कर्मतें इंद्रियांका संयम करि बैठता है, अरु मनविषे विषयके भोगकी तृष्णा राखता है, अंतःकरण जिसका रागदोषकरि मूढ है, बडी क्रियाकों उठावता है, अरु दुःखी होता है, सो मिथ्याचारी है, जो पुरुष मनकरि इंद्रियांके रागदोषतें रहित है, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करता है, सो विशेष है, अपणे जाणेविषे कछु नहीं करता, मोक्षकों पावता है ॥ हे राजा! अज्ञानरूप वासनातें रहित होकरि विचरु; ऐसे होकरि विचरैगा, तब आपकों ज्योंका त्यों आत्मा जाणैगा, अरु सदा उदयरूप सर्वका प्रकाशक

आपकों जाणैगा, जन्ममरण बंधमुक्त विकारतें रहित ज्योंका त्यों आत्मा भासैगा ॥ हे राजन्! तिस पदकों पायकरि शांतिवान होवैगा, अरु अवर सर्व कला अभ्यास विशेषविना नष्ट होती हैं, जैसे रसविना वृक्ष होता है, यद्यपि फैलाववाला होता है, तौ भी उगता नहीं, अरु ज्ञानकला अभ्यासविना नहीं उपजती है, उपजी हुई नाश नहीं होती, जैसे धान बोते हैं अरु दिन दिन प्रति बढणे लगते हैं, तैसे ज्ञानकला प्राप्त हुई दिन दिन प्रति बढती है॥ हे राजन्! ज्ञान उपजे हुए ऐसे जाणता है, जो मैं न मरता हौं, न जन्मता हौं, निरहंकार निष्किंचनरूप हौं, सर्वका प्रकाशक हौं, अजर हौं, अमर हौं ॥ हे राजा! ऐसी ज्ञानकलाकों पायकरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधतें दही हुआ बहुरि दूध नहीं होता, तैसे ज्ञान प्राप्त हुए मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे दूधकों मथीकरि घृत काढि लिया, बहुरि नहीं मिलता, तैसे जिसकों ज्ञानकला उदय हुए बहुरि मोहका स्पर्श नहीं होता ॥ हे राजन्! पुरुष प्रयत्न यही है, जो अपणे स्वरूपविषे स्थित होणा, अरु अवर उपायका त्याग करणा, जिस पुरुषकों आत्माकी भावना हुई है, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, अरु जिसकों संसारकी भावना है सो संसारी जरा मृत्यु दुःखकों प्राप्त होता है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा०परमार्थोपदेशो नाम शततमः सर्गः ॥१००॥ ॥मनुरुवाच॥ हे राजन्! बडा आश्चर्य है, जो शुद्ध आत्मा चिन्मात्रविषे माया करिके नानाप्रकारके देह इंद्रियां दृश्य भासी आई हैं ॥ हे राजा! दृश्यका कारण अज्ञान है, जिस आत्माके अज्ञानकरि दृश्य भासती है, तिसीके ज्ञानकरि लीन हो जाता है, तातें इस संवेदनकों त्यागिकरि आत्माकी भावना करु, यह मैं हौं, यह मेरे हैं, सो मिथ्याही फुरते हैं ॥ हे राजन्! प्रथम जो कारणरूपतें एक जीव उपजा है, तिस आदि जीवतें अनेक जीवगण होत भये हैं, जैसे अग्निके चिणगारे निकसते हैं, तैसे तिस जीवनें आगे अनेक रूप धारे हैं, कोउ गंधर्व, कोउ विद्याधर, कोउ मनुष्य, कोउ राक्षस इत्यादिक बहुरि जैसे जैसे संकल्प होते गये हैं, तैसे रूप होते गये, वास्तवतें क्या है, जै

से जलविषे तरंग स्वरूपके प्रमादकरि अनेक भावकों प्राप्त होते हैं, अपणे संकल्प आपहीकों बंधनरूप होतेगये हैं, तातें संकल्प नानात्व कलना मिथ्या है ॥ हे राजन्! इस भावनाकों त्यागिकरि आत्मपदकी शरणकों प्राप्त होहु, जो आत्मा अनंत है, कोउ विश्व भान अवर प्रकारकी होती है, जैसे समुद्र सम है, तिसविषे कोउ आवर्त उठते हैं, कोउ बुदबुदे उठते हैं, सो जलतें भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे अनेक प्रकारकी विश्व फुरती है, सो आत्मातें भिन्न कछु नहीं, आत्मस्वरूपही है, तातें आत्माकी भावना करु, कहूं ब्रह्म सत् संकल्प होकरि फुरता है, तहां जानता है, मैं ब्रह्म हौं, अरु शुद्ध रूप हौं, सदा मुक्तरूप हौं, मैं इस संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया हौं, अरु जहां चेतनताशक्ति है, तहां आपकों जीवता मानता है, अरु दुःखी भी जानता है, सो जीवका लक्षण श्रवण करु, अंतःकरणसाथ मिलिकरि भोगकी वासना करणी, अरु सदा विषयकी तृष्णा करणी, सो जीवात्मा कहियें, अरु जहां वासना क्षय हुई है, अरु शुद्ध आत्माविषे आत्मप्रत्यय है, तहां जीवसंज्ञा नष्ट हो जाती है, केवल शुद्ध आत्मा प्रकाशता है॥ हे राजन्! जब चेतन अंतःकरणसाथ मिलिकरि बहिर्मुख फुरता है, तब संसारी हुआ जरा मरण करिके दुःखी होता है, जहा चेतनशक्ति अंतर्मुख होती है, तब जन्ममरणकी भावनाकों त्यागिकरि स्वरूपकी भावना करता है, सर्व दुःखकी निवृत्ति होती है, जब इसकी भावना स्वरूपकी उर लगती है, तब दुःख कोउ नहीं रहता, जब स्वरूपका प्रमाद भया, तब दुःख पावता है, जब स्वरूपका ज्ञान हुआ, तब आनंदरूप मुक्त होता है ॥ हे राजन्! संसाररूपी कूपकी टिंड नहीं होणा, जब टिंड रसीसाथ बांधिता है, कबहूं ऊर्ध्वकों जाता है, कबहूं अधकों जाता है, जब रसी टूटि पडती है, तब न ऊर्ध्वकों जाता है, न अधकों जाता है, दुःख पावता है, सो कूप क्या है, अरु अध क्या है, ऊर्ध्व क्या है, सो श्रवण करु॥ हे राजन्! संसाररूपी कूप है, स्वर्गलोक ऊर्ध्व अरु पाताल नरक अध है, पुण्यकर्मकरि स्वर्गकों जाता है, पापकर्मकरि नरककों जाता है, सो आशारूपी रसडीसाथ बांध्या हुआ जन्ममरणरूपी चक्रविषे फिरता है, स्वर्गनरकके फेरणेका कारण आशा है, जब

आशा निवृत्त होती है, तब न कोउ नरक है, न स्वर्ग है, जबलग देहविषे अभिमान है, तबलग नीचतें नीचगति कों प्राप्त होता है, जैसे पत्थरकी शिला समुद्रविषे डारियें, तौ नीचेतें नीचे चली जाती है, तैसे नीच स्थानोंकों देखिकरि देह अभिमानी नीचेकों चला जाता है, अरु जब इंद्रियादिकका अभिमान त्याग किया, तब जैसे क्षीरसमुद्रतें निकसीकरि चंद्रमा ऊर्ध्वतें ऊर्ध्वकों चला जाता है, तैसे ऊर्ध्वकों जाता है ॥ हे राजा! जब आत्माकी भावना करैगा, तब आत्माही होवैगा, तातें आशारूपी फासीकों तोडीकरि शांत पदकों प्राप्त होहु, आत्मा चिंतामणिकी नांई है, जैसी भावना करियें, तैसी सिद्धि होवै, जब तूं आत्मभावना करैगा, तब संपूर्ण विश्व अपणेविषे देखैगा, जैसे पर्वत शिला पत्थर सर्व अपणेविषे देखता है, तैसे तूं सर्व आत्माविषे जाणैगा ॥ हे राजा! जेती कछु दृष्टि हैं, सो सर्व आत्माके आश्रय हैं, शास्त्र अरु शास्त्रदृष्टि सब आत्माके आश्रय हैं, राजा आत्माके आश्रय हैं, सो सर्व सत्य है, आत्मा चिंतामणि कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है, तैसी सिद्धि होती है ॥ हे राजन्! फुरणेविषे यह दृष्टि सर्व सत्य है, जब फुरणा नष्ट भया, तब न कोउ शास्त्र है, न कोउ दृष्टि है, केवल अद्वैत आत्मा है, तब निषेध किसका करियें, अरु अंगीकार किसका करियें, जो पुरुष अहंकारतें रहित हुआ है, सो सर्व शास्त्रदृष्टिऊपर बिराजता है, सर्व आत्मा होता है, जैन उसीकों जिन कहते हैं, कालवाले उसीकों काल कहते हैं, सर्वका आश्रय आत्मा है, जो पुरुष देह अभिमानी है, सो मूर्ख है, स्वरूपके अज्ञानकरि अधऊर्ध्व लोककों गमन आगमन करता है, अरु पशु पक्षी स्थावर जंगम योनिकों पावता है, अरु आशारूपी फांसीसाथ बांध्या हुआ दुःखकों प्राप्त होता है, अरु जो पुरुष सम्यक्दर्शी है, शुद्ध चेष्टा जिसकी है, तिसकों विकार कोउ दृष्ट न आता है, आकाशकी नांई सदा निर्मल भासता है, अरु संपूर्ण विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासता है, अरु जेती कछु चेष्टा ब्रह्मा विष्णु इंद्रादिक करते हैं, तिसका कर्त्ता भी आपकों जानता है, तिसकों सर्व दुःखका अंत होता है, दुःखतें र

हित आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु सर्व सुखकी सीमा तिनकों प्राप्त होती है॥हे राजन्! जब ऐसे सुखकों तूं प्राप्त होवैगा, तब तृष्णा तेरे तांई कोउ न रहैगी, जैसे नदी तबलग चलती है, जबलग समुद्रकों नहीं प्राप्त भई, जब समुद्रकों प्राप्त भई, तब चलणेतें रहित होती है, तैसे जब तूं आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, तब इच्छा तेरे तांई कोउ न रहैगी ॥ हे राजन्! तूं अहंकारका त्याग कर, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मैंही हों, अरु जरा मरण आदिक दुःख तबलग हैं, जबलग आत्मबोध नहीं प्राप्त भया, जब आत्मबोध भया, तब दुःख कोउ नहीं रहता, अरु दोनोंही दुःख भारी हैं, जन्म अरु मृत्युसों मिटि जाते हैं॥ इंद्रके वज्रसमान भी दुःख होवै, तौ भी ज्ञानवान्कों स्पर्श नहीं करता ॥ हे राजन्! जैसे बूटा होता है, जब तिसकों फल पडता है, तब सूकीकरि गिरता है, तिसी प्रकार जब ज्ञानरूपी फल प्राप्त होता है, तब मन बुद्धि अहंकार बूटेकी नांई गिर पडते हैं, जबलग मनकी चपलता है, तबलग दुःख पावता है, जब मनकी चपलता निवृत्त भई तब क्षोभ कोउ नहीं रहता, शांतपदकों प्राप्त होता है, अरु शांति तब होती है, जब प्रकृतिका वियोग होता है, अरु प्रकृतिके संयोगतें संसारी होता है, अरु दुःख पावता है, तातें प्रकृति कहियें अहंकार तिसका त्याग करु, अहंकारतें रहित होकरि चेष्टा करु, जब तूं अहंकारतें रहित हुआ, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो न जड है, न चेतन है, न शून्य है, न अशून्य है, न केवल है, न अकेवल है, न आत्मा कहियें, न अनात्मा कहियें, न एक कहियें, न दो कहियें, जेते कछु नाम हैं, सो प्रतियोगीसाथ मिले हुए हैं, प्रतियोगी हुआ सो द्वैत हुआ, अरुआत्मा अद्वैतमात्र है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, जो अवाच्य पद है, तिसकों कैसे कहियें, जेती कछु नाम संज्ञा हैं, सो उपदेशमात्र हैं, आत्मा अनिर्वाच्य पद है, तातें संकल्पका त्याग करु, अरुआत्माकी भावना करु, जब आत्मभावना करैगा, तब केवल आत्माही प्रकाशैगा, जैसे फूलका अंग सुगंधतें रहित कोउ नहीं, तैसे आत्मातें इतर कछु नहीं॥हे राजन्! जब अहंकारका त्याग करैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान हो

वैगा, आकाशकी नांई निर्मल आत्माविषे स्थित होवैगा, अहंकारकों त्यागिकरि तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जहां शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थ नहीं प्राप्त होते, अरु संपूर्ण इंद्रियांके रस तहां लीन हो जाते हैं, अरु सर्व दुःख तहा नष्ट हो जाते हैं, केवल मोक्षपदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे राजा! मोक्ष किसी देशविषे नहीं, जो तहां जायकरि पावैगा; अरु मोक्ष किसी कालविषे नहीं, जो अमका काल आवैगा, तब मुक्त होवैगा, अरु मोक्ष कोउ पदार्थ नहीं, जो तिसकों ग्रहण करैगा, हे राजन्! प्रकृत जो है अहंकार तिसीतें मोक्ष होणा है, जब अहंकारका तूं त्याग करै तबही मोक्ष है, जब इस अनात्मअभिमानकों त्यागैगा, तब अपणे आपकरि शोभायमान होवैगा, जैसे धूम्रतें रहित अग्नि प्रकाशमान होती है, तैसे अहंकारतें रहित तूं प्रकाशैगा, जैसे बडे पर्वत उपर तलाव निर्मल अरु गंभीर शोभता है, तैसे तूं शोभैगा ॥ हे राजा! तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे समाधानवर्णनं नाम एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ मनुरुवाच ॥ हे राजा! तूं आत्मारामी होहु, अरु शुद्ध होहु, रागदोषतें रहित नित्य अंतर्मुख होहु ॥ हे राजन्! जब तूं आत्मारामी हुआ तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जावैगी, अरु अंतर शीतल सोम चंद्रमा पूर्णवत् हो जावैगा, ऐसा होकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु अरु किसी फलकी वांछा न करु, जो पुरुष वांछातें रहित होकरि कर्म करता है, सो सदा अकर्त्ता है, अरु महाशोभा पावता है ॥ हे राजा! ऐसी अवस्थाविषे स्थित होकरि भोजन आवै, तिसका भक्षण करु, अरु जो अनिच्छित वस्त्र आवै तिसकों पहिरु, जहां निंद आवै तहां शयन करु, अरु रागदोषतें रहित होहु, जब तूं ऐसा होवैगा तब तूं शास्त्र अरु शास्त्रोंके अर्थतें उल्लंघित वरतैगा, जो ऐसा पुरुष है, सो परम रसकों पायकरि मतवाला होता है, तिसकों संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती ॥ हे राजन्! ज्ञानवान् काशीविषे देह त्यागै, अथवा चंडालके गृहविषे त्यागै, जहां तहां मुक्ति है, उह सदा आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु वर्तमान कालविषे देहकों नहीं त्यागता, काहेतें

जो जिस कालविषे उसकों ज्ञान हुआ है, तिसी कालविषे देहका अभाव भया है, ज्ञानकरि देह दग्ध हो जाता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान् सदा मुक्तरूप है, न किसीकी स्तुति करता है, न निंदा करता है, काहेतें जो चित्तकी कलना तिसकी मिटि गई है, यद्यपि रागदोष ज्ञानवान्विषे दृष्ट भी आता है, अरु हसता रोता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतःकरण अपणे जानणेकरि न राग है, न दोष है, न हसता है, न रोता है, ज्यौंका त्यौं है, जैसे आकाश शून्यरूप है, अरु मेघ बादल भी दृष्टि आते हैं, परंतु आकाशकों लेप नहीं करते, तैसे ज्ञानवान्कों कोउ क्रिया बंधन नहीं करती, अज्ञानी जाणते हैं, जो ज्ञानवान् क्रिया करता है ॥ हे राजन्! ज्ञानवान् सर्वदा नमस्कार करणेकों योग्य है, अरु पूजणे योग्य है, जिस स्थान ज्ञानवान् बैठता है, तिस स्थानकों भी नमस्कार है, जिससाथ बोलता है, तिसकों भी नमस्कार है, जिस ऊपर ज्ञानवान् दृष्टि करता है, तिसकों भी नमस्कार है, सो सबका आश्रयभूत है ॥ हे राजन्! जैसा ज्ञानवान्की दृष्टितें आनंद पाइता है, सो तप करिके नहीं पाइता, दानकरि नहीं पाइता, अरु यज्ञ कर्मोंकरि भी नहीं पाइता, ऐसी दृष्टि किसीकरि नहीं पाइती, जैसी संतकी दृष्टि है, ऐसे आनंदकों पाइता है, जिस पदकों वाणीकी गम नहीं अरु जो पुरुष संतकी दृष्टिकों पायकरि कैसा होता है, जिसतें लोक दुःख नहीं पावते, अरु लोकतें उह दुःख नहीं पावता न किसीका भय करता है, न किसीका हर्ष करता है॥ हे राजन्! सिद्धि पावणेका सुख अल्प है, क्या है, जो उडणेकी सिद्धि पाई, तौ पक्षी अनेक उडते फिरते हैं, इसीकरि आत्मज्ञान तौ नहीं पाइता, अरु आत्मज्ञानविना शांति नहीं होती, जब आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, तब जरा मृत्यु आदिक दुःखतें मुक्त होता है, दुःख इसविषे कोउ नहीं रहता, जैसे सिंह पिंजरेतें छुटा बहुरि पिंजरेतें बंधनविषे नहीं पडता तैसे उह पुरुष अज्ञानरूपी पिंजरेविषे नहीं फसता ॥ हे राजन्! तातें तूं आत्माकी भावना करु, जो तेरे दुःख नष्ट हो जावैं, अज्ञानकरिके तेरे तांई दुःख भासते हैं, अज्ञानतें रहित तूं सदा आ

नंदरूप है, आत्मा अनुभवरूप है, तिस अनुभवरूप प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होहु, जब तूं आत्माविषे स्थित होवैगा, तब चेष्टा तेरेविषे दृष्ट भी आवैगी, परंतु स्पर्श न करैगी, जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसा रंग राखियें, श्वेत रक्त पीत श्याम तिसके प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, तौ भी रंग कोउ स्पर्श नहीं करता, उसविषे कल्पित जैसे भासते हैं, तैसे तूं प्रकृत आचारकों अंगीकार करता हुआ तेरे तांई पाप पुण्यका स्पर्श न होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनुइक्ष्वाकुसंवादसमाप्तिर्नाम द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मनु उपदेश करिके तूर्ष्णीं हो गया, तब राजानें भली प्रकार मनुका पूजन किया, बहुरि मनु भी आकाशकों उडी ब्रह्मलोकविषे जाय प्राप्त भया, अरु राजा इक्ष्वाकु राज्य करणे लगा ॥ हे रामजी! जैसे राजा इक्ष्वाकुनें जीवन्मुक्त होकरि राज्य किया है, तैसे तूं भी इस दृष्टिकों आश्रय करिके विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा, जैसे राजा इक्ष्वाकु ज्ञानकों पायकरि राज्य चेष्टा करत भया है, तैसे तूं करु, तिसविषे मेरा प्रश्न है, जो अपूर्व अतिशय होवै तिसका पावणा विशेष है, अरु जो पूर्व केइनें पाया है, तिसका पावणा अपूर्व अतिशय नहीं, तातें मेरे तांई सो कहौ, जो अपूर्व अतिशय सर्वतें विशेष है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञानवान् सदा शांतरूप है, अरु रागदोषतें रहित है, अरु अपूर्व अतिशयकों पावता है, जेती कछु अवर अतिशय है, सो पूर्व अतिशय है, अरु ज्ञानवान् अपूर्व अतिशयकों पावता है, सो ज्ञानीतें अन्य कोउ नहीं पावता, आत्मज्ञानकों ज्ञानीही पावता है, सो ज्ञान एकही है ॥ हे रामजी! जो दूसरा नहीं पावता तौ अपूर्व अतिशय हुआ क्यों ॥ हे रामजी! अपूर्व अतिशयकों पायकरि ज्ञानवान् प्रकृत आचार सर्व चेष्टा भी करता है, तौ भी निश्चय सर्वदा आत्माविषे रखता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवान् ऐसा जो सर्व चेष्टा करता है, अज्ञानीकी नांई तौ उसकों क्या लक्षणोंकरि तत्त्ववेत्ता जाणियें ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक स्वसं

वेद लक्षण है, अरु एक परसंवेद लक्षण है, स्वसंवेद कहियें जो आपही आपकों जाणता, अवर नहीं जाणता अरु परसंवेद कहियें जिसकों अवर भी जाणते हैं ॥ हे रामजी ! परसंवेद लक्षण है सो मैं कहों हों, जो तप दान यज्ञ व्रत करणे सो परसंवेद है, अरु दुःखसुखकी प्राप्तिविषे धैर्यकारि रहणा सो समान साधुके लक्षण हैं, अरु महाकर्त्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, क्षमा दया यह लक्षण साधुके हैं, ज्ञानवान्के नहीं, अरु जेती कछु अणिमातें आदि सिद्धि हैं, उडणा, छुपि जावणा यह भी समान लक्षण हैं, परंतु यह स्वाभाविक तिसविषे आनि फुरते हैं, सो अवरकरि भी जाणे जाते हैं, अरु जो ज्ञानीके लक्षण हैं सो स्वसंवेद हैं, अवर कोउ इसतें इतर उसके शिर विषे सिंग नहीं जो तिसकरि जाणियें, जैसे अवर व्यवहार हैं, तैसे सिद्धि ज्ञानीकों समान हैं, यह भी ज्ञानवान्का लक्षण नहीं, अरु पुण्यपापादिक क्रिया परसंवेद हैं, सो मायाके कल्पे हैं, ज्ञानीके नहीं, जेते कछु लक्षण देखणेविषे आवैंगे, सो मिथ्या हैं, मायाके कल्पे हैं, अरु स्वसंवेद हैं, ज्ञानीका लक्षण जो सर्वदा आत्माविषे स्थित है, अरु अपणे आपकरि संतुष्ट है, न किसीका हर्ष है, न शोक है, अरु देहके जीवित मृत्यु विषे समान है, अरु काम क्रोध लोभ मोह सर्वकों जानता है, इसका लक्षण इंद्रियांका विषय नहीं, काहेतें जो निर्वाच्यपदकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! जिसकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसका चित्त स्वाभाविक विषयतें विरस होता है, अरु इंद्रियजित होता है, भोगकी इच्छा तिसकी निवृत्त हो जाती है, स्वाभाविकही तिसके विषय निवृत्त होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानीलक्षणविचारो नाम त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! मायाजालका काटणा महाकठिन है, यह आदिकलना जीवकों भई है, जो कोउ इसविषे सत्य बुद्धि करता है, सो पंखेरुकी नांई जालविषे फस्या हुआ निकसी नहीं सकता है, तैसे अनात्म अभिमानतें निकसी नहीं सकता ॥ हे रामजी ! बहुरि मेरे वचन सुण, जो मेरे वचन तुझकों प्रियतम लगते हैं, जैसे मेघका शब्द मोरकों प्रियतम लगता है, अरु मैं भी तेरे हि

तके निमित्त कहता हौं, उपदेश करता हौं, अरु ऐसा गुरु रघुकुलका कोउ नहीं हुआ, जो शिष्यका संशय निवृत्त करै ॥ हे रामजी ! मेरा शिष्य भी ऐसा कोउ नहीं हुआ, जो मेरे उपदेशकरि न जाग्या होवै, सब जाग हुए हैं, इसनिमित्त मैं तप ध्यान आदिककों भी त्यागिकरि तेरे ताईं जगावौंगा, तातें मैं तुझकों उपदेश करता हौं, श्रवण करु॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्माविषे जो अहंभाव हुआ है, जो कछु अहंकारकरि भासता है, सो मिथ्या है, इसविषे सत्य कछु नहीं, अरु जो इसका साक्षीभूत ज्ञानरूप है, सो सत्य है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु जो जो वस्तु फुरणेकरि उपजी है सो सर्व नाशवंत है, यह बात बालक भी जानते हैं, जो सत्य है सो असत्य नहीं होता, अरु जो वस्तु असत्य है सो सत्य नहीं होती, जैसे रेततें घृत निकसणा असत्य है, कदाचित् नहीं निकसता, जैसे दर्दुरकों नीकाचूर्ण भी करियें, एक दर्दुरके लाख कणका करियें, अथवा शिला ऊपर घसाइयें, जब तिस ऊपर वर्षा हुई, तब सर्व कणके दर्दुर हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! सो दर्दुर तब उत्पन्न हुए, जब उनविषे सत्यता थी, तातें सत्यका नाश कदाचित् नहीं होता, अरु असत्यका सद्भाव कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी ! सत्य जो है ब्रह्म, तिसकी भावना कर, जो ब्रह्मकी भावना करता है, सो ब्रह्मही होता है, जैसे घृतविषे घृत एक हो जाता है, अरु दूधविषे दूध मिलता, जलविषे जल मिलि जाता है, तैसे यह जीव भावना करिके चिद्धन ब्रह्मसाथ एक हो जाता है, जीवसंज्ञा इसकी निवृत्त हो जाती है, जैसे अमृतके पान कियेतें अमर होता है, तैसे ब्रह्मकी भावना करणेतें ब्रह्म होता है, अरु जो अनात्माकी भावना करता है तौ पराधीन होकरि दुःख पावता है, जैसे विषके पान कियेतें अवश्य मरता है, तैसे अनात्माकी भावनातें अवश्य दुःख पावता है, तिसका नाश होता है, तातें आत्मभाव करु ॥ हे रामजी ! जो वस्तु संकल्पकरि उदय होती है, तिसका रहणा भी थोडा काल होता है, जो चल वस्तु है सो अवश्य नाश होती है, यह दृश्य आत्माविषे भ्रम करिके सिद्ध है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु सीपी

विषे रूपा भ्रम करिके सिद्ध है, अरु आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तव नहीं तैसे अहंकार देह इंद्रियांकरि सुख भासता है, सो सब मिथ्या है, तातें दृश्यकी भावना त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब मोहकों प्राप्त न होवैगा, जैसे पारसके स्पर्शकरि तांबा स्वर्ण हुआ, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे तूं जब आत्मपदकों जाणैगा, तब बहुरि मोहकों प्राप्त न होवैगा, जो मैं हौं, यह मेरा है, अहं त्वं भाव तेरा निवृत्त हो जावैगा, यह भावना न रहैगी ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मच्छर अरु जुं आदिक जो प्रस्वेदतें उत्पन्न होते हैं, सो सब कर्म करिके उत्पन्न होते हैं, देवता मनुष्यादिक जो उत्पन्न होते हैं, सो कर्मोंकरि यह सब उत्पन्न होते हैं अथवा कर्मोंविना भी कछु होते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आदि परमात्मातें जब उत्पत्ति भई है, सो चार प्रकारके जीव हैं, एक कर्मोंकरि उत्पन्न हुए हैं, एक कर्मोंविना हुए हैं, एक आगे होणे हैं, एक अब भी उत्पन्न होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी हृदयके अंधकार निवृत्त करणेहारे सूर्य! अरु संशयरूपी बादलोंके निवृत्तिकों पवन! कृपाकरिके कहो, जो कर्मोंविना कैसे उत्पन्न होते हैं, अरु कर्मोंकरि कैसे उत्पन्न होते हैं, कैसे कैसे हुए हैं, कैसे होते हैं, अरु कैसे आगे होणें हैं सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा चिदाकाश है, अपणे आपविषे स्थित है, जैसे अग्नि अपणी उष्णताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणे स्वभावविषे स्थित है, अनंत है, अरु अविनाशी है, तिसविषे फुरणाशक्ति स्वाभाविक स्थित है, जैसे पवनविषे स्पंदशक्ति स्वाभाविक है, जैसे फूलविषे सुगंध स्वाभाविक रहती है, तैसे आत्माविषे फुरणाशक्ति है ॥ हे रामजी! फुरणाशक्ति जैसे आद्य फुरी है, तिस शब्दकी अपेक्षाकरि तब आकाश हुआ, जब स्पर्शकी अपेक्षाकरि, तब पवन प्रगट भया, इसी प्रकार पंचतन्मात्रा हो आई, सो शुद्ध संवितविषे जो आदि फुरणा हुआ, प्रथम अंतवाहक शरीर हुए, तिनका निश्चय आत्माविषे रहा जो हम आत्मा हैं, सं

पूर्ण विश्व हमारा संकल्प है ॥ हे रामजी ! केई इस प्रकार उत्पन्न होकरि अंतवाहकतें बहुरि विदेहमुक्तिकों प्राप्त भये, जैसे जलसों बरफ होकरि सूर्यके तेजतें शीघ्रही जल हो जाती है, तैसे शीघ्रही विदेहमुक्त हुए, अरु केई अंतवाहक शरीरविषे स्थित भये, उनका निश्चय आत्माविषे रहा, अरु केई अंतवाहकतें अधिभूतक हो गए, जबलग अंतवाहकविषे स्मरण रहा, तबलग अंतवाहक रहे, जब स्वरूपका प्रमाद भया, अरु संकल्पकरि जो भूत रचे थे, तिनाविषे दृढ निश्चय भया, अरु जानत भए, इह हम हैं, तब अधिभूतक हो गए, जैसे ब्राह्मण शूद्रोंके कर्म करणे लगे, उसके निश्चयविषे हो जावैं, जो मेरा यही कर्म है, अरु जैसे शीत करिके जलतें बर्फ हो जाती है, तैसे संवित्‌विषे दृढ संकल्प हुआ, तब आपकों अधिभूतक जानत भया ॥ हे रामजी ! आदि परमात्मातें जो फुरे हैं, सो कर्मविना उत्पन्न हुए हैं, तिनका कर्म कोउ नहीं, जो अंतवाहकविषे रहै, तिनकी ईश्वरसंज्ञा भई, बहुरि उनके संकल्पकरि जीव उपजे, तिनका कारण ईश्वर हुआ, अरु आगे जीवकलनाकरि उनका फुरणा कर्म हुए, आगे जैसे कर्म करते हैं, संकल्पकरि तैसे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मातें जो जीव उपजे हैं, सो आदि अकारण होते हैं, जो आज उपजे हैं, तौ भी, अरु चिरकाल उपजे हैं तौ भी, उह पाछे कारणभावकों प्राप्त हुए हैं, कर्मके वशतें ॥ हे रामजी! जो आदि फुरणा हुआ है, अरु स्वरूपविषे जिनका दृढ निश्चय रहा, तिनकी संज्ञा पुण्य है, अरु जो स्वरूपकों विस्मरणकरि अधिभूतकविषे निश्चय करत भये, तिनकी धन संज्ञा है ॥ हे रामजी! पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु धनतें पुण्य होणा कठिण है, कोउ भाग्यवान् पुरुष होता है, जो यत्न करिके धनतें पुण्यवान् होता है, जैसे पर्वततें पत्थर गिरना सुगम है, तैसे पुण्यतें धन होणा सुगम है, अरु जैसे पत्थरकों पर्वतपर चडावणा कठिण है, तैसे धनतें पुण्य होणा कठिण है, केई चिरकाल धनविषे वहते हैं, केई यत्नकरि शीघ्रही पुण्यवान् होते हैं, हे रामजी! जो सदा अंतवाहक रहते हैं, तिनकी संज्ञा ईश्वर है, अरु अंतवाहककों त्यागिकरि अ

धिभूतक होते हैं, सो जीव कहाते हैं, अरु परतंत्र हैं, जैसे कर्म करते हैं, तैसे आगे शरीर धारते हैं, अरु जो धनतें पुण्य होते हैं, सो ज्ञानवान् हैं, तिनकों बहुरि जन्म नहीं होता, अब भी जो उत्पन्न होते हैं, सो प्रथम कर्मविना होते हैं, जब अपणे स्वरूपतें गिरते हैं, तब जैसा संकल्प करते हैं, संकल्पही कर्म है, तैसे आगे शरीर धारते हैं ॥ हे रामजी! यह विश्व संकल्पमात्र है, तातें संकल्पका त्याग करौ, इस दृश्यकी आस्था न करु ॥ हे रामजी! खाणा पीणा चेष्टा करौ, परंतु तिसविषे अहंभाव न होवै, अहंकार अज्ञानकरि सिद्ध हुआ है, सो दृश्य मिथ्या है, अहंभावके होणेकरि दुःखी होता है, तातें अहंकारतें रहित चेष्टा करौ ॥ हे रामजी! बंध अरु मोक्षका लक्षण श्रवण करु, ग्राह्य ग्राहक जो है, विषय अरु इंद्रियांका संयोग, तिनके इष्टविषे राग करणा, अनिष्टविषे दोष करणा, यही बंधन है, जैसे जलविषे पक्षी बंधायमान होता है, अरु ग्राह्य ग्राहक इंद्रियां अरु विषयका संबंध तिनके इष्ट अनिष्ट होणा है, जिसविषे इंद्रियांका संयोग होता है, तिसविषे समबुद्धि रहै, इनके धर्म अपणेविषे न देखै, इनके जाणनेवाला जो अनुभवरूप आत्मा है, तिसीवीषे साक्षीरूप होकरि स्थित रहै, इस प्रकार जो इनका ग्रहण करता है सो सदा मुक्तरूप है, इसतें इतर हैं, सो मूर्ख जीव बंध हैं, तुम इस ग्राह्य ग्राहक संबंधविषे सावधान रहौ, इनका संबंध धन है, इनतें रहित होणा मुक्त है, अरु राग दोष करणेवाला मन है, इस मनका त्याग करौ, मनही दुःखदायी है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता है, तिसतें वासन उत्पन्न होते हैं, तैसे मनरूप चक्रतें पदार्थरूपी वासन उत्पन्न होते हैं, मनके फुरणेकरि संसार सत्य होता है, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब दुःख कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! फुरणे अफुरणेविषे समान होवैगा, तब रागदोषतें रहित होकरि विचरैगा, यह होवै, यह न होवै, इसतें रहित होकरि चेष्टा कर, अभिलाष पूर्वक संसारविषे न फुरै ॥ हे रामजी! पूर्व जो ज्ञानवान् हुए हैं, तिनकों वीतीकी चिंतवना नहीं अरु आगे होणेकी आशा नहीं, वर्तमानकालविषे शास्त्र अनुसार रागदोषतें रहित चेष्टा करणी, तातें तूं भी संकल्प

कों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत किसी पदार्थविषे राग हुआ, तौ बंधन है, अरु मेरा यही आशीर्वाद है, जो ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंतकरि तेरी रुचि मत होवै, अपणे आपहीविषे रुचि होवै ॥ हे रामजी ! यह संसार मिथ्या है, इसविषे पदार्थ कोउ सत् नहीं, सर्व मनके रचे हुए हैं, तातें मनकों स्थित करौ, जैसे धोबी साबू मिलायके वस्त्रकी मैल दूर करता है, तैसे मनकरि मनकों स्थिर करौ, जब मनकों स्वरूपविषे स्थित करैगा, तब मन अपणे संकल्पकों आपही नाश करैगा, जैसे कोउ दुष्ट पुरुष धनकरि वृद्ध होता है, तब भाई आदिककों नाश करणेका उपाय करता है, तैसे मन जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब अपणे संकल्पकों नाश करता है, जब मन तेरा स्वरूपविषे स्थित हुआ, तब तूं अमन होवैगा, अरु दुःख तेरे सब नष्ट हो जावैंगे, अरु मनके नाशविना सुख कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! यह मन ऐसा दुष्ट है, जो जिसतें उपजता है, तिसीके नाशनिमित्त होता है, जैसे वांसतें अग्नि उपजता है, बहुरि तिसीकों जलावता है, तैसे आत्मातें उपजीकरि यह मन आत्माहीकों तुच्छ करता है, जैसे राजाका टहलुआ राजाकी सत्ता पायकरि राजाकों मारीकरि आप राजा होता है, तैसे मन आत्माकी सत्ता पायकरि तिसकों आच्छादी आपही कर्त्ता भोक्ता हो बैठा है, तातें मनकों मनहीकरि नाश कर, जैसे लोहा तपायकरि लोहेकों काटता है, तैसे मनसाथ मनहीकों शुद्ध करु ॥ हे रामजी ! वृक्ष वल्ली फूल फल पशु पक्षी देवता यक्ष नाग जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो प्रथम कर्मोंविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछे जब स्वरूपतें गिरे, अरु धनपदकों प्राप्त हुए, तब शरीर कर्मोंकरि होते हैं, अरु कर्मोंका बीज अहंकार है, अहंकारविषे शरीर है, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, समय पायकरि फूल फल प्रगट होते हैं, तैसे अहंकारतें शरीर प्रगट होते हैं, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब शरीर कोउ नहीं, केवल आत्मपद है, अहंकार है नहीं, अरु प्रत्यक्ष देखाइ देता है, अरु आत्मा अच्युत है, गिरेकी नांई भासता है, निरालंब है, अरु आलंबकी

नांई दृष्ट आता है, आत्मा निराकार है, अरु आकारसहित भासता है, निराभास है; अरु आभाससहित दिखाई देता है, तातें केवल चिन्मात्र आत्माविषे स्थित होहु, यह सब चिन्मात्रहीरूप है ॥ हे रामजी! जब ऐसी भावना होती है, तब चित्त अचित्त हो जाता है, जब चित्त अचित्त हुआ, तब जगतकलना मिटि जाती है, केवल आत्मतत्त्वही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्माकर्मविचारो नाम शताधिकचतुर्थः सर्गः ॥ १०४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस जीवके तीन स्वरूप हैं, एक स्वरूप शुद्धात्मा है, चिदानंद ब्रह्म, जिसकरि सर्व प्रकाशते हैं, अरु दूसरा अंतवाहक पुण्यनाम है, आत्माके प्रमाद करिके हुआ है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ है, तौ भी प्रमाद नहीं, जो आत्माका स्मरण रहा है, जब आत्माका स्मरण भूला, तब तीसरा अधिभूतक हुआ, पंच तत्त्वकों अपणा आप जाणने लगा है ॥ हे रामजी! यह तीन स्वरूप जीवके हैं, आत्माके प्रमादकरि जीव संज्ञा पावता है, अरु दुःखी होता है, अरु परतंत्र हुआ है, तातें पंचभूतक अरु अंतवाहककों त्यागिकरि वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! यह जो दो शरीर हैं, स्थूल अरु सूक्ष्म विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, अरु तीसरा जो स्वस्वरूप है, सो सत्य है, तूं तिसविषे स्थित होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह तीन रूप जो तुमनें जीवके कहे, तिनके मध्यविषे नाशरूप कवन है, अरु सत्‌रूप कवन है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! हाथ पावकरि जो देह संयुक्त है, भोगसाथ बलगत करी हुइ सो देह स्थूलरूप है, अरु जीव अपणेही संकल्प करिके सदा पसार रचता है, अवर चित्तरूपी देह इस फुरणे रूपसों अंतवाहक है, सो सदा प्राणवायुके रथ ऊपर स्थित रहता है, देह होवै, भावै, न होवै ॥ हे रामजी! यह दोनों शरीर उपजते भी अरु नष्ट भी होते हैं, अरु आदिअंततें रहित चिन्मात्र निर्विकल्प हैं, सो जीवका परमरूप जाण, तुरीयापद है उसीतें जाग्रतादिक उपजते हैं, अरु लीन होते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मैं तीनकों जानता हों, एक जाग्रत है

निद्रातें रहित, जिसविषे इंद्रियां अरु चार अंतःकरण अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करते हैं, अरु दूसरा स्वप्न है, तहां भी विषयकों जाग्रतकी नांई संकल्प करी ग्रहण करते हैं, विषयविना, अरु तीसरा तहां इंद्रिय अपणे विषयतें रहित होतियां हैं, अरु जडता आती है, भासता कछु नहीं, शिलाकी नांई जडता तमोगुण आता है, सो सुषुप्ति है, यह तीनोंकों मैं जानता हों, तुरीया अरु तुरीयातीत सो कृपाकरि तुम कहो, जो किसकों कहते हैं? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अपणा होणा अनहोणा दोनोंकों त्यागिकरि पाछे केवल तुरीयापद रहता है, सो शांतपद है, अरु निर्मल है॥ हे रामजी! तुरीया जाग्रत नहीं, काहेतें जो जाग्रत संकल्प जाल है, इंद्रियां करिके रागदोष होता है, अरु तुरीया स्वप्न अवस्था भी नहीं, काहेतें जो स्वप्न भ्रमरूप होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो अवरका अवर संकल्प होता है, अरु तुरीया सुषुप्ति भी नहीं, काहेतें जो अत्यंत जडता है, अरु तुरीया चेतनरूप है, उदासीन है अरु शुद्ध है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्तितें रहित है, जीवन्मुक्त तुरीयापदविषे स्थित रहता है॥ हे रामजी! जो तुरीयापदविषे स्थित है, तिसकों यह स्थित भी है, जगत्सों भी शांतरूप हो जाता है, अरु अज्ञानीकों वज्रसारवत् दृढ है, अरु ज्ञानी सदा शांतरूप है, जो तीनों अवस्थाका साक्षी है, न उसके राग है, न दोष है, उदासीनकी नांई है, अरु तुरीयातीत पदकों वाणीकी गम नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जब विदेहमुक्त होता है, तब उसी पदकों प्राप्त होता है, जहां वाणीकी गम नहीं, जबलग जीवन्मुक्त है तबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु रागदोषतें रहित होता है, इंद्रियां भी अपणे विषयविषे स्वाभाविक वर्ततियां हैं, परंतु रागदोषतें रहित होकरि अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न होते हैं, सो तुरीयापदकों नहीं प्राप्त भया, अरु चित्तसहित है, अरु जिस पुरुषकों रागदोष उत्पन्न नहीं होते, तिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त भया है, जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, तिसकों संसारकी सत्यता नहीं भासती, स्वप्नवत् जगत्कों देखता है,

तातें तूं सत्पदविषे स्थित होकरि साक्षीरूप हो रहु ॥ ॥ इति श्रीयो॰ नि॰ तुरीयापदविचारो नाम शताधिकपंचमः सर्गः ॥ १०५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! कर्त्ता कारण कर्म यह तीनों पडे होवें, तूं इनका साक्षी होहु, इनका कर्तृत्व अभिमान तेरे तांई मत होवै, जो मैं यह कर्त्ता हौं, अथवा इसका मैं त्याग किया है, यह अभिमान भी नहीं करणा, तूं उदासीनकी नांई हो रहु अरु इसीपर एक आख्यान कहता हौं, सो श्रवण कर, तूं आगे भी प्रबुद्ध है, तौ भी दृढ बोधके निमित्त सुण, हे रामजी ! एक वनविषे काष्ठमौनि था, अरु एक वेधक मृगकों बाण चलावते हुए मृगके पाछे दउडता जाता था, अरु आगे गये तौ मृग वेधककी दृष्टितें अगोचर हो गया, वेधकने देखा जो एक तपसी बैठा है, तिसीतें पूछत भया ॥ हे मुनीश्वर! इहां एक मृग आया था सो किस उरकों गया, तुम देखा है तौ मेरे तांई कहौ ॥ काष्ठमौनिरुवाच ॥ हे वेधक! हमारे तांई सुधि कछु नहीं, काहेतें जो हम निरहंकार हैं, हमारेसाथ चित्त अहंकार दोनों नहीं, तातें निरहंकार हैं, अरु जो तूं कहै, इंद्रियांकी चेष्टा कैसे होती है तौ सुण, जैसे सूर्यके आश्रय लोककी चेष्टा होती है, अरु दीपक मणिके आश्रय चेष्टा होती है, अरु सूर्य दीपक मणि प्रकाशके साक्षीभूत हैं, तैसे हम इंद्रियांके साक्षीभूत इनकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, हमारे तौ इनसाथ प्रयोजन कछु नहीं ॥ हे वेधक! अहंभाव करणेवाला अहंकार होता है, जैसे तागेके आश्रय मणके पोते हैं, सो मणके भिन्न भिन्न होते हैं, अरु तागा सर्वविषे एक होता है, तब माला होती है, जब तागा टूटि पडै तब मणके भिन्न भिन्न हो जाते हैं, तैसे इंद्रियांरूपी मणके हैं, अरु अहंकाररूपी तागा है, तिस अहंकाररूपी तागेके टूटणेसों इंद्रियां भिन्न भिन्न हो गइयां हैं, जैसे राजाके नाश हुए सैना भिन्न भिन्न हो जाती है, जैसे गोपालके नष्ट हुए गौआं भिन्न भिन्न हो जातियां हैं, अरु जैसे पिताके नष्ट हुए बालक व्याकुल हो जाते हैं, तैसे अहंकारविना इंद्रियां व्याकुल हुइयां हैं, इनका अभिमान मेरे तांई कछु नहीं, इनका अभिमानी अहंकार था, सो मेरा नष्ट हो गया है, इंद्रियां अपणे अपणे विषयवि

षे विचरतियां हैं, मुझकों इनका न राग है, न दोष है ॥ हे साधो! मेरे तांई न जाग्रत भासता है, न स्वप्न, न सुषुप्ति, इन तीनोंतें रहित हम तुरीयापदविषे स्थित हैं, जिसविषे अहं त्वंका अभाव है, जो अहं त्वं हमारा मिटि गया तौ हम साख किसकी देवैं, जो मृग डाबे गया, कै दाहने गया, जो नेत्र इंद्रियां देखणेवाली हैं, तिनकों बोलणेकी शक्ति नहीं, यह अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, एक इंद्रियकों दूसरेकी शक्ति नहीं, बहुरि तेरे तांई कवण कहै, इन सबके धारणेवाला अहंकार था, जो सबकों अपणा आप जानता था, मैं देखता हौं, मैं बोलता हौं, सो अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होते हैं, तैसे अहंकारके नष्ट होणेकरि हम स्वच्छ निर्मल शांत तुरीयापदविषे स्थित हैं, अरु इंद्रियांका जीव अहंकार मृतक हो गया है, अरु इंद्रियां भी मृतक हो गइयां हैं, देखणेमात्र दृष्टि आतियां हैं, जैसे भीत ऊपर पुतलियां लिखियां होवैं अरु कार्य तिनके कछु न होवैं, तैसे हमारी इंद्रियांतें कार्य कछु नहीं होता, तौ तेरे तांई कवन कहै? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामचंद्र! जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब वेधक समुझी करि अपणी इच्छाचारी उठिगया ॥ हे रामजी! तुरीयापद शांतरूप है, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव है, केवल अद्वैत पद है, यह जो संज्ञा है, ब्रह्म आत्मा चिदानंदतें आदि लेकरि सो तुरीयापदविषे है, अरु तुरीयातीत पदविषे शब्दकी गम नहीं, अशब्दपद है, विदेहमुक्त पुरुष तिसी पदकों प्राप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त तुरीयापदकों साक्षात् करिके तुरीयावस्थाविषे विचरते हैं, जहां जाग्रत जो दीर्घ दुःख सुखका भान है सो नहीं, अरु स्वप्न जो रागदोषकों लिये अल्पकाल है, सो भी नहीं, अरु जडता तामस अवस्था भी नहीं, इन तीनोंतें रहित है, सो तुरीयापद है, अरु शांत जिसविषे क्षोभ कोउ नहीं, अरु यह जगत तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वास्तव कछु नहीं, जलही है, तैसे केवल तुरीयास्वरूप सत्तासमान तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु तिसविषे जो स्थित हुए हैं, सो श्रवण करु, ब्र

ह्मा विष्णु रुद्र सिद्ध ज्ञानी इत्यादिक जो ज्ञानवान् हैं, सो तिसी पदविषे स्थित हैं, अरु काष्ठमौनि वेधककों उपदेश करणेवाला भी तुरीयापदविषे स्थित है, विशेष कलना तिसकी निवृत्त हुई थी, जो भिन्न भिन्न नामरूपकों देखणेवाली केवल सत्ता समानविषे स्थित था, तातें कलनाकों त्यागिकरि तुम भी तुरीयापदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे काष्ठमौनिवृत्तांतवर्णनं नाम शताधिकषष्ठः सर्गः १०६

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व केवल आकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माका चमत्कार है, जैसे मेघविषे विजलीका चमत्कार होता है, तैसे यह विश्वरूप चित्तकला आत्माका चमत्कार है ॥ हे रामजी! वास्तव ब्रह्मही है, इतर कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह विश्व जो तुम ब्रह्मरूप कही, मेघविषे विजलीकी नांईं क्षणमें उपजती है, क्षणविषे लीन होती है, सो मेघविषे विजली दृष्ट आती है, जहां मेघ होता है, तहां विजली भी होती है, तातें मेघतें विजली उत्पन्न भई तिसका कारण मेघ है ॥ हे मुनीश्वर! इस चित्त स्पंद कलाके कारणकी उत्पत्ति ब्रह्मतें कैसे हुई है, सो कृपा करिके मुझकों समुझाय कहौ, ब्रह्मही इसका कारण हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो वितंडक होकरि तर्क करता है सो कछु नहीं, इस नाशबुद्धिकों त्याग, यह तौ बालक भी जाणते हैं, जो विजली क्षणभंगुररूप है, सत्य कछु नहीं, अवर तेरा क्या प्रयोजन है सो कहु, यह तर्क कारणकार्यरूपका कैसा करता है ॥ ॥राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह स्पंदकला सत्य है कै असत्य है, इसका कारण कवन है, जिसकरि यह फुरती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व प्रकारकरि सर्वात्माही स्थित है, अवर चित्त अरु चित्तस्पंद इह भेदकल्पनां वास्तव कछु नहीं, ब्रह्मही अपणे स्वरूपविषे आप स्थित है, अवर जो कछु उसतें इतर भासता है, सो भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, जैसे नेत्र मुंदीकरि खोलते हैं तब तरवरे आकार भासते हैं, तैसे इह जगत् भ्रम करिके भासता है ॥ हे रामजी! हम इस संसारसमु

द्रके पारकों प्राप्त हुए हैं, हमतें आदि लेकरि जो ज्ञानवान् हैं, सो तिनके यथार्थ वचन सुणीकरि हृदयविषे धारैं तौ शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु जो मूर्खता करिके मेरे वचनोंकों न धारैगा, जो यह क्या कहते हैं, तब तेरा दुःख नष्ट न होवैगा, वृक्ष तृण वल्ली आदिक योनिकों पावैगा ॥ हे रामजी! आकाश अरु काल आदिक पदार्थ हैं, सो सब कलनाकरि सिद्ध हुए हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! वायुतें रहित जो समुद्रका चमत्कार है, तिस चमत्कारका कारण कवन है, अरु दीपकका जो प्रकाश है, अरु अग्निविषे उष्णता है, तिस प्रकाश अरु उष्णताका कारण कवन है, अरु वायु जो निस्पंद है, जब उही स्पंद हुई, स्पंदका कारण कवन है, जैसे इनका कारण कोउ नहीं, जो वायुका रूप स्पंद निस्पंद है अरु अग्निका रूप उष्णता है, अरु दीपकका रूप प्रकाश है, तैसे कलना भी आत्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, हे रामजी! यह कलना जो तुझकों भासती है, तिसकों त्यागिकरि जब अपणे आपकों देखै, तब संशय सब मिटि जावै, जैसे प्रलयकालका जल चडता है, तब सर्व जलमय हो जाता है, इतर कछु नहीं होता, तैसे अपणे स्वरूपकों जब तूं देखैगा तब तेरे तांई सर्व आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु दृष्ट न आवैगा ॥ हे रामजी! आत्मा एकरस है, सम्यक्दर्शनकरि ज्यौंका त्यौं भासैगा, अरु असम्यक्दर्शनकरि अवरका अवर भासैगा, जैसे जेवरी एक होती है, तिसकों यथार्थ न देखियें तौ सर्पभ्रम होता है, अरु देखीकरि भयमान होता है, जब ज्यौंकी त्यौं जेवरी जानी तब सर्पभ्रम निवृत्त होता है, तैसे आत्माके न जानणेतें संसारी होता है, अरु भयमान होता है, आपकों जन्मता मरता मानता है, सर्व विकार देहके आत्माविषे जानता है, जब आत्माकों जानता है, तब सर्व भ्रम निवृत्त हो जाते हैं, जैसे नेत्रकरि तारे देखता है, जब नेत्र मुंदि लेवै, तौ भी उनका आकार अंतःकरणविषे भासता है, काहेतें जो तिनकी सत्यता हृदयविषे होती है, अरु जब हृदयतें सत्यता उनकी उठि जावै, तब बहुरि नहीं भासते,

तेसे संसार चित्तके भ्रमकरि हुआ है, इसकों मिथ्या जाण ॥ हे रामजी! फुरणेविषे जो दृढ भावना हुई है, सो सत्य होकरि संसार स्थित हुआ है, जब चित्तका त्याग करैगा, तब संसारकी सत्यता जाती रहैगी ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो यह विश्व कल्पनामात्र है, सो मैं जान्या इस प्रकार है, कछु सत्य नहीं, जैसे लवण राजा, अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्र, अरु शुक्र इनकी कलना फुरणेविषे दृढ भई, तब फुरणरूप विश्व सत्य होकरि स्थित भये, अरु भासणे लगे ॥ हे भगवन्! यह मैं जाणता हौं, जो विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणा मिटि जाता है, तिसके पाछे जो शांतिरूप शेष रहता है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब तूं सम्यक् बोधवान् हुआ है, जो जानणे योग्य है, सो तैंनें जाण्या है ॥ हे रामजी! यह अध्यात्म शास्त्रका सिद्धांत है, जो अवर सब दृश्यका असंभव है, एक चिद्घन ब्रह्म अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अरु निर्मल है, विद्या अविद्यातें रहित है, संसारका तिसविषे अत्यंत अभाव है, जेती कछु शुद्ध आदिक संज्ञा कहते हैं, सो भी फुरणेविषे है, आत्मा निर्वाच्य पद है, सो शेष रहता है, तिसरी संज्ञा शास्त्रकारोंनें कही है, सो श्रवण करु, एक शून्यवादी उसीकों शून्य कहते हैं, विज्ञानवादी विज्ञानरूप कहते हैं, केई उपासनावान् उसीकों ईश्वर कहते हैं, केई कहते हैं आत्मा सर्वका कारण है, वही शेष रहता है, अरु एक आत्माकों सर्वशक्त कहते हैं, अरु एक कहते हैं आत्मा निःशक्त है, साक्षी आत्माकों अरु शक्तिकों भिन्न मानते हैं ॥ हे रामजी! जेते वाद हैं, सो सर्वही कलनाकरि हुए हैं, कलनाकों मानिकरि वाद उठावते हैं, वास्तव वाद कोउ नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, अरु मेरा जो सिद्धांत है, सो भी श्रवण करु, जेती कछु कलना है, आत्मा तिसतें अतीत है, जैसे पवन स्पंदशक्तिकरि फुरता है, निस्पंदकरि ठहरि जाता है, जो स्पंद भी पवन है, निस्पंद भी पवन है, इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा जो शुद्ध अद्वैतरूप है, अरु कलना भी आत्माके आश्रय फुरती है, आत्मातें इतर कछु नहीं; अरु जो इतर प्रतीत होती है,

तिसकों मिथ्या जाणी त्याग, अपणे निर्विकार स्वरूपविषे स्थित होहु, जब तूं आत्मस्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जेते कछु शास्त्रोंके भिन्न भिन्न मतवाद हैं, सो कोउ न रहैगा, केवल अपणा आप स्वच्छ आत्माही भासैगा॥ हे रामजी! तिस निर्विकल्प पदकों पायकरि शांतिवान् हुए हैं, अरु असत्की नांई स्थित भए हैं, जो द्वैतकलना तिनकी कछु नहीं फुरती॥ हे रामजी! आत्मा ब्रह्म आदिक शब्द भी उपदेशनिमित्त कहे हैं, आत्मा शब्दतें अतीत है, अरु सर्व जगत् भी आत्मस्वरूप है, अरु संसाररूप विकार आत्माविषे असम्यक्दर्शनकरि भासते हैं, जैसे शून्य आकाशविषे तरवरे मोतीवत् भासते हैं, सो अविदित हैं, तैसे आत्माविषे जगत् द्वैत अविदित भासता है, तातें जगत् द्वैतकी भावना त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मस्वरूपविषे स्थित होहु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशरूपवर्णनं नाम शताधिकसप्तमः सर्गः॥ १०७॥ ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! देह इंद्रियां अरु कलनाविषे सार वस्तु क्या है सो कहो॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो कछु यह जगत् दृश्य है, अहं त्वंतें लेकरि सो सब चिन्मात्र है, जैसे समुद्र जलही मात्र है, तैसे जगत् है, अरु मनसहित षट् इंद्रियांकरि जो कछु दृश्य भासती है सो भ्रममात्र है॥ हे रामजी! देह इंद्रियां सब मिथ्या है, आत्माविषे कोउ नहीं, चित्तके कल्पे हुए हैं, अरु चित्तही इनकों देखता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगकों जलबुद्धि होती है, देखिकरि जलके निमित्त दउडता है, अरु दुःख पावता है, तैसे चित्तरूपी मृग आत्मारूपी मरुस्थलविषे देह इंद्रिया विषयरूपी जल कल्पिकरि दउडता है, अरु दुःख पावता है, सो देह इंद्रियांविषे भ्रम करिके भासते हैं, जैसे मूर्ख बालक परछायेविषे वैताल कल्पता है, तैसे मूर्ख चित्तनें देह इंद्रियांदिक कल्पना करी है॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध निर्विकार है, तिसविषे चित्तनें भ्रम करिके विकार आरोपण किये हैं, जैसे भ्रांतिदृष्टि करिके आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तनें देह इंद्रियां कल्पियां हैं, अरु चित्त भी आपतें कछु नहीं, आत्माकी

सत्ता लेकरि चेष्टा करता है, जैसे चुंबककी सत्ता लेकरि लोहा चेष्टा करता है, तैसे निर्विकार आत्माकी सत्ता लेकरि चित्त नानाप्रकारके विकार कल्पता है, तातें चित्तका त्याग कर, जो विकारजाल तेरा मिटि जावै ॥ हे रामजी! देह इंद्रियांविषे सार क्या है सो सुण, जेता कछु संसार है, तिसविषे सार देह है, जो सब देहके संबंधी हैं, जब देह मिटि जावै, तब संबंधी भी नहीं रहते, अरु देहविषे सार इंद्रियां हैं, अरु इंद्रियांविषे सार प्राण हैं, प्राणोंविषे सार मन है, अरु मनका सार बुद्धि है, बुद्धिका सार अहंकार है, अरु अहंकारका सार जीव है, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहियें, वासना संयुक्त चेतना जिसकरि इसका संबंध है, अरु चिदावलीका सार चित्ततें रहित शुद्ध चेतन है, जिसविषे सर्व विकल्पकी लय है, शुद्ध अरु निर्मल है, चिन्मात्र ब्रह्म आत्मा है, जिसविषे उत्थान कोउ नहीं ॥ हे रामजी! चिदावलीपर्यंत सर्वकों त्यागिकरि इनका जो सार चेतनमात्र आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, विश्वकलनामात्र है, आत्माविषे कछु नहीं, संकल्पकी दृढता करिके सत्की नांई भासती है, अरु आगे भी शुक्र, अरु लवणराजा, अरु इंद्रके पुत्रोंका वृत्तांत कहा है; जो संकल्पकी भावनातें दृढ होकरि भासि आया था, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी चित्तके फुरणेविषे स्थित है, असम्यक् दृष्टि करिके अद्वैत आत्माविषे दृश्य भासी है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे अहंकार आदिक अज्ञानकरि दृश्य भासी है, तातें इनकों त्यागिकरि अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! एक गड तेरे तांई कहता हौं, जिसविषे किसी शत्रुकी गम नहीं, तिसविषे स्थित होहु, हम भी तिसी गडविषे स्थित हैं, जेते ज्ञानवान् हैं, सो भी तिसीविषे स्थित होते हैं ॥ हे रामजी! काम क्रोध लोभ अभिमानादिक विकार आत्माविषे नहीं पाइते, जैसे रात्रिविषे दिन नहीं पाइता, तैसे विकाररूपी दिन गडरूपी रात्रिविषे नहीं पाइता, तातें अचिंत्यरूप गड है, जहां फुरणा कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, तिसविषे अहंभाव त्यागिकरि स्थित होवै, तब अहं त्वं भाव निवृत्त

हो जावै, जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब ज्ञानी फुरणे अफुरणेविषे स्वरूपकों तुल्य देखता है, संपूर्ण जगत् तिसकों आत्मरूप भासता है, तातें चिदावलीतें आदि देहपर्यंत जो अनात्म है, तिसकों क्रम करिके त्याग, प्रथम देहकों त्याग, बहुरि इंद्रियांके अभिमानकों त्याग, इसी क्रमकरि सर्वकों त्यागिके अपणे वास्तव स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवत्वाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टमः सर्गः ॥ १०८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह संसार चेतनमात्र है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही विश्वरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणांही जलाभास होता है, तैसे आत्माका चमत्कार दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे संकल्प अरु संकल्पकर्त्ता भिन्न नहीं, जैसे आकाशही मोतीकी माला होकरी भासता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि भासता है, जैसे बीजही वृक्ष फूल फल होता है, तैसे आत्माही दृश्यरूप होकरि स्थित हुआ है, जैसे जलके तरंग जलही हैं, तैसे विश्व आत्माही है ॥ हे रामजी ! चिदावली भी आत्माही है, जीव भी आत्माही है, अहंकार बुद्धि प्राण इंद्रियां देह विश्व आकाश काल दिशा पदार्थ सर्व आत्माही हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, तातें विश्वकों अपणा स्वरूप जाण, जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्यही है, तैसे तूं जाण, सर्व मैं हों, जो ऐसे न जाणी सकै तौ ऐसे जाण, जो देह भी जड है, इंद्रियांकरि पालित है सो मैं नहीं, अरु इंद्रियां भी मैं नहीं, जो प्राण इंद्रियांका सार है, जो प्राण न होवें तौ इंद्रियां किसी कामकी नहीं, अरु प्राण भी मैं नहीं, प्राणका सार मन है, जो मन मूर्छा होता है, प्राण आते जाते भी हैं तौ भी किसी कामके नहीं, अरु मन भी मैं नहीं, जो मनके प्रेरणेवाली बुद्धि है, जो निश्चय बुद्धि करती है, मन भी तहां जाता है सो भी मैं नहीं, जो बुद्धिका प्रेरक अहंकार है, अहंकार भी मैं नहीं, अहंकारका सार जीव है, जीवविना अहंकार किसी कामका नहीं, अरु जीव भी मैं नहीं, जीवका सार चिदावली है, चिदावली कहियें शुद्ध चिद्विषे चैतन्योन्मुखत्व होणा, जीव संज्ञातें प्रथम ईश्वरभाव चिदावली भी मैं नहीं, जो चिदावलीका सार चिन्मात्र

हैं, सो अद्वितीय निर्विकल्प स्वरूप है, इह सर्व अनात्म भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, मैं केवल शांतरूप आत्मा हौं ॥ हे रामजी! तेरा वास्तव स्वरूप है, सोइ होहु, तिसतें इतर अनात्मविषे अहंप्रतीतिका त्याग कर, तूं देहतें रहित निर्विकार है, तेरेविषे जन्ममृतादि विकार कोउ नहीं, अरु शांतरूप ज्यौंका त्यौं स्थित है, तूं कदाचित् स्वरूपतें अवर नहीं हुआ, तिसी स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सारप्रबोधनं नाम शताधिकनवमः सर्गः ॥१०९॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मा चिन्मात्रतें सार अवर कछु नहीं, तिसीविषे स्थित होहु, जो ताप मिटि जावै ॥ हे रामजी! सर्व आत्माही स्थित है, जैसे बीज ही फल फूल होकरि स्थित होता है, तैसे सर्व आत्माही स्थित है, तौ निषेध अरु त्याग किसका करियें॥ ॥वाल्मीक उवाच ॥ हे शिष्य! ऐसे वसिष्ठजीके वचन श्रवण करिके रामजी प्रसन्न हुआ, जैसे कमल सूर्यकों देखिकरि खिलि आता है, तैसे रामजीकी बुद्धि वसिष्ठजीके वचनोंरूपी सूर्यकरि खिलि आई अरु बोलत भया॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! सर्वधर्मज्ञ, तुमारी कृपातें अब मैं जाग्या हौं, अरु बडा आश्चर्य है, जो आत्मा सर्वदा अनुभवरूप है, अरु अपणा आप है, तिसके प्रमादकरि मैं एता काल दुःख पाया है, जो अहंताममतारूपी वडा बोझा शिर उपर था, तिसकरि मैं दुःखी था, जैसे किसीके शिर उपर पत्थरकी शिला होवै, अरु ज्येष्ठआषाढका सूर्य तपै, अरु पैंदे चलैं, तब दुःख पावते हैं, अरु जो उसके शिरतें कोउ उतारी लेवै, बलसों छायाविषे बैठावै तौ बडे सुखकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानरूपी पैंदे अरु धूप तिसविषे अहंताममतारूपी शिलाकरि दुःखी था, तुम वचनरूपी बलकरि उतारि लीनी है, अरु आत्मरूपी वृक्षकी छायाविषे विश्राम कराया है ॥ हे भगवन्! अब मेरे तांई शांत पद प्राप्त हुआ है, अरु तीनों ताप मिटि गए हैं, अव जो सुमेरु पर्वतका भार आनि प्राप्त होवै तौ भी मेरे तांई कष्ट कोउ नहीं, अब मेरे सर्व संशय निवर्त हुए हैं, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल स्वच्छरूप होता है, तैसे रागदोषरूपी द्वंद्व मेरा नष्ट भया

है, अब मैं अपणे स्वभावविषे स्थित हुआ हौं, परंतु एक प्रश्न है, उत्तर कृपाकरि कहौ, जो महापुरुष वारंवार प्रश्न करणेविषे खेद नहीं मानते ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ सर्व ब्रह्मही है, तौ शास्त्रका विधि निषेध उपदेश किसकों है, जो यह कर्म कर्तव्य है, यह कर्म कर्तव्य नहीं, सो इह उपदेश किसकों है ?॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे पवन करिके नानाप्रकारके तरंग फुरते हैं, अरु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मा चेतनमात्र है, तिसतें चैत्योन्मुखत्व अहंभावकों लेकरि फुऱ्या है, तिसकरि देशकाल वस्तु बनि गए हैं, अरु शास्त्र फुरे हैं, बहुरि फुरणेनें दो रूप धारे हैं, एक विद्या, एक अविद्या; तिसविषे जो विद्यारूप जीव हुए हैं, सो ईश्वर कहाते हैं, अरु अविद्यारूप हुए हैं, सो इतर जीव हैं, जिनकों अपणे स्वरूपविषे अहंप्रत्यय वास्तवकी रही है, सो ईश्वर हैं, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु संकल्पविकल्पविषे वहते हैं, सो जीव दुःखी हैं, हे रामजी! एती संज्ञा फुरणेविषे हुई है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे एकही रस फूल फल वृक्ष हुआ है, रसतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा रसकी नांई भी प्रमाणकों नहीं प्राप्त भया, फुरणेकरि ईश्वर जीव विद्या अविद्या हुई है, आत्माविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! जिसका संकल्प अधिभूतकविषे दृढ नहीं हुआ, सो जीव शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होता है, तिसकों आत्माका साक्षात्कार शीघ्रही होता है, अरु जिनका संस्कार अधिभूतकविषे दृढ हुआ है, सो चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, आत्मपदकी प्राप्तिविना दुःख पावते हैं, अरु जिनकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो सुखी होते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अरु अज्ञानीके स्वरूपविषे भेद कछु नहीं, सम्यक् अरु असम्यक् दर्शनका भेद है ॥ हे रामजी! विद्या भी दो प्रकारकी है, एक ईश्वरवाद, एक अनीश्वरवाद है, जो ईश्वरवादी हैं, सो तुरत पदकों प्राप्त होते हैं, जो अनीश्वरवादी हैं, तिनकों जब ईश्वरकी भावना होती है, तब शास्त्र गुरु करिके ईश्वरकी प्राप्ति होती है, अरु ईश्वरवाद भी

दो प्रकार है, एक यह है, जो अवर वासना त्यागिकरि ईश्वरपरायण होते हैं, तौ शीघ्रही ईश्वरकों प्राप्त होते हैं, सो आत्माही ईश्वर है, जो सर्वका अपणा आप है, अरु एक ईश्वरकों मानते हैं; वासना संसारकी उर होती है, तौ चिरकालकरि प्राप्त होते हैं, अरु अनीश्वरवादी भी दो प्रकारके हैं, एक कहते है, जो कछु होवैगा, तिनकों होते होतेकी भावनातें शास्त्र गुरुकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु एक कहते हैं, कछु नहीं, तिनकों चिरकालकरि जब आस्तिकभावना होवैगी, तब आत्मपदकों प्राप्त होवैंगे ॥ हे रामजी! तिनके निमित्त विधि अरु निषेध कही है, जो इस शुभ कर्मकों अंगीकार करौ, अरु अशुभ कर्म त्यागौ, तिसकरि जब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, इसनिमित्त विधिनिषेध कही है, जो विधिनिषेध शास्त्र न कहै तौ बडा छोटेकों भोजन करि लेवै, इसनिमित्त शास्त्रका दंड है ॥ हे रामजी! स्वरूपतें किसीकों उपदेश नहीं, भ्रमविषे उपदेश है, जिस पुरुषका भ्रम निवृत्त हुआ है, सो मोहविषे बहुरि नहीं डुबता, जैसे जलविषे तूंबा नहीं डुबता, तैसे ज्ञानवान् संसार अज्ञानविषे नहीं डुबता, अरु जिसका चित्त वासनाकरि आवर्या हुआ संसरता है, तिसकों इस संसारतें निकसणा कठिन है, जैसे उजाडका कूआ होता है, तिसविषे कोउ गिरै, तौ निकसणा कठिण होता है, तैसे चित्तसाथ मिलीकरि संसारतें निकसणा कठिण होता है ॥ हे रामजी! इस चित्तकों स्थिर कर, जो दुःख तेरे मिटि जावैं, अरु सत्ता समान पदकों प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु अनात्मविषे अहंप्रत्यय निवृत्त भया है, सो पुरुष जो कछु करता है, तिसकरि बंधायमान नहीं होता, सदा अकर्त्ता आपकों देखता है, अरु जिसकी अहंप्रत्यय अनात्मविषे है, सो पुरुष करै तौ भी करता है, अरु जो न करै तौ भी करता है ॥ हे रामजी! जो ज्ञानी शुभ कर्म करता है, तौ शुभ कर्म करता हुआ स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु अशुभ कर्म करणेसों नरककों प्राप्त होता है, अरु जो शुभ कर्मकों त्यागता है, तौ भी

नरककों प्राप्त होता है, काहेतें जो अनात्मविषे आत्मअभिमान है, तातें बुद्धि इंद्रियांकों मनकरि निग्रह करु, अरु कर्म इंद्रियांकरि चेष्टा करु, देखणे सुनणे सुंघणेतें मैं तुझकों वर्जन नहीं करता, यही कहता हौं जो अनात्मविषे अभिमानकों त्याग, जब अनात्म अभिमानकों त्यागैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, जहां तेरा चित्त फुरैगा, तहां आत्माही भासैगा, आत्मातें इतर कछु न भासैगा, तातें चित्तकों त्याग, चित्त कहियें अहंभाव, अहंभावकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु जैसे विश्वकी उत्पत्ति भई है, सो सुण, शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपविषे चिदावलीरूप अहं तरंग फुर्या है, अरु तिस चिदावलीरूपी समुद्रविषे जीवरूपी तरंग उपजता है, अरु जीवरूपी समुद्रविषे अहंकाररूपी तरंग भास्या है, अरु अहंकाररूपी समुद्रविषे बुद्धिरूपी तरंग उपजा है, तिस बुद्धिरूपी समुद्रविषे चित्तरूपी तरंग भास्या, अरु चित्तरूपी समुद्रविषे संकल्परूपी तरंग उपजा है, तिस संकल्परूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उपजा है, अरु जगत्‌रूपी समुद्रविषे देहरूपी तरंग भास्या है, तिसके संयोगतें दृश्यका ज्ञान हुआ है, जो यह पदार्थ है, यह नहीं, यह ऐसे है, तिसविषे देश काल दिशा सर्व हुए हैं ॥ हे रामजी! संकल्पकरि हो गए हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, केवल शांतरूप एकरस आत्मा है, तिसविषे नानाप्रकारके आचार रचे हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकार हो भासती है, सो अपणाही अनुभव होता है, तैसे यह जगत् भी जाण, आत्मा सर्वदा एकरस अद्वैत है, शुद्ध है, परम निर्वाण है, सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, फुरणे करिके नानाप्रकारकी कलना उदय भई है ॥ हे रामजी! शुद्ध आत्माविषे जो चिदेव हुई है, चिदेव पंचभूतानि, चिदेव भुवनत्रयं, सो चिदेव संज्ञा भी संकल्पविषे हुई है, आत्माविषे चिदेव संज्ञा भी नहीं, आत्मा निर्वाच्य पद है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे चिदेव जो फुरी है, तिस फुरणेविषे संसार हुएकी नांई स्थित है, जैसे एकही बीजनें वृक्ष फूल फल आदिक संज्ञा पाई है, सो

बीजतें इतर कछु नहीं, अरु आत्मा बीजकी नांई भी परिणम्या नहीं, संकल्पतेंही नाना संज्ञा कल्पी है, अरु जगत् स्थित हुआ है, तौ भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे वायु चलता है, तौ भी वायु है, ठहरता है, तौ भी वायु है, तैसे आत्माविषे नानात्व कछु नहीं, केवल शुद्ध अद्वैत आत्मा है, आत्मारूपी समुद्र विषे नानाप्रकार विश्वरूपी तरंग स्थित हैं॥ हे रामजी! आकार भी आत्मातें इतर कछु नहीं, जो आत्मातें इतर भासै सो मिथ्या जाण, मृगतृष्णाके जलकी नांई जाणीकरि तिसकी भावना त्याग, अरु स्वरूपकी भावना करु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकत्वप्रतिपादनं नाम शताधिकदशमः सर्गः॥ ११०॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मेरे वचनोंकों धारि, अरु हृदयविषे आस्तिक भावना करु, जो यह सत्य कहते हैं, अरु सर्व त्याग करु, जब सर्व त्याग करैगा, तब चित्त क्षीण हो जावैगा, जब क्षीणचित्त हुआ, तब शांति होवैगी॥ हे रामजी! काष्ठ मौन होकरि अंतरतें सर्व त्याग करु, अरु बाह्य कर्मों कों करु, अभिमानतें रहित होकरि अंतर्मुखी होहु, अंतर्मुखी कहिये आत्माविषे स्थित होणा, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब विद्यमान दृश्य भी तेरे तांई न भासैगा, काहेतें जो सर्व आत्माही भासैगा, अरु जो तेरे पास भेरीके शब्द होवैंगे तौ भी न भासैगा, अरु जो सुगंधि लेवैगा, तौ भी नहीं लीनी, जो कछु क्रिया करैगा, सो तेरे तांई स्पर्श न करैगी, आकाशकी नांई सर्वतें असंग रहैगा॥ हे रामजी! कछु देखै सो स्वरूपतें इतर न देखै, अरु जो बोलै सो भी आत्मातें इतर न फुरै, अंध अरु गुंगेकी नांई अरु पत्थरकी शिलावत् मौन हो रहु, संकल्पतें रहित अरु चेष्टा तेरी यंत्रकी पुतलीवत् खडी होवैगी, जैसे यंत्रकी पुतली तागेकी सत्ता करि चेष्टा करती है, तैसे नीति शक्तिकरि प्राणोंकी चेष्टा तेरी होवैगी, स्वाभाविक जो कछु किया है, सो अभिमानतें रहित होकरि स्थित होणा, अरु जो अभिमानसहित चेष्टा करता है, सो मूर्ख असम्यक्दर्शी है, अरु जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों अनात्मविषे अभिमान नहीं होता॥ हे रामजी! जिसकों अनात्म अभिमान

नहीं अरु चित्त जिसका लेपायमान नहीं होता, सो सारी सृष्टिका संहार करै, अथवा उत्पत्ति करै, तौ उसकों बंधन कछु नहीं होता, जो सर्व कर्म अभिलाषतें रहित होकरि करता है ॥ हे रामजी! समाधिविषे स्थित होहु, अरु जागृतकी नाई सब कर्म करु, तेरेविषे दृष्टि भी आवै तौ भी तिनतें सुषुप्तकी नांई फुरणा कोउ न फुरै, अपणे स्वरूपकी समाधि रहै, अरु समाधि भी तब कहिए जो कोउ दूसरा होवै, जो इसविषे स्थित होइयें इसका त्याग करियें॥ हे रामजी ! जहां एक शब्द अरु दो शब्द कहणा भी नहीं, अद्वितीयात्मा परमार्थसत्ता है, तिसविषे चित्तनें नानाप्रकारके विकार कल्पे हैं, ज्ञानीकों एकरस भासता है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानी जानता है, जैसे सर्पके खोजकों सर्प जानता है, तैसे ज्ञानीकों एकरस आत्माही भासता है, सो ज्ञानीही जानता है, अरु मूर्खकों संकल्पकरि नानाप्रकार जगत् भासता है, तातें संकल्पकों त्यागिकरि अपणे प्रकृत आचारविषे विचरु, जैसे उन्मत्तकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, जैसे बालककी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अंग हलते हैं, तैसे अभिमानतें रहित होकरि चेष्टा करु, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे दृश्यकी भावनातें रहित होहु, जो फुरै कछु नहीं, जडकी नांई जब ऐसा होवैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! चित्तके संबंध करि क्षोभ उत्पन्न होता है, जैसे वसंतऋतुविषे फूल उत्पन्न होते हैं, तैसे चित्तरूपी वसंतऋतुविषे दुःखरूपी फूल उत्पन्न होते हैं, जब तूं चित्तकों शांत करैगा, तब परमपदकों प्राप्त होवैगा, सो पद कैसा है, सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, तातें तूं असंग होहु, जब तूं स्थूलतें स्थूल होवैगा, तब भी असंग रहैगा, ऐसे पदकों पायकरि काष्ठपत्थरकी नांई मौन होहु ॥ हे रामजी! दृश्य पदार्थकों त्यागिकरि जो द्रष्टा है जानणेवाला, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! इंद्रियां अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतियां हैं, तिनकी उर तूं भावना मत करु, जो यह सुंदररूप है, इसकी प्राप्ति होवै, भलेविषे प्राप्त होणेकी भावना तूं मत करही, इनके जानणेवाला जो आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु, जो पुरुष द्रष्टाविषे स्थित होता है, सो

गोपदकी नांई संसारसमुद्रकों लंघि जाता है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ दृष्ट आते हैं, तिनविषे अपणी अपणी सृष्टि है, कैसी सृष्टि है, जो संकल्पमात्रही है, अपणे अपणे संकल्पविषे स्थित है, अरु सर्व संकल्प आत्माके आश्रय हैं, जैसे सब पदार्थ आकाशविषे स्थित हैं, तैसे सर्व संकल्पकी सृष्टि आत्माके आश्रय है, अरु एकके संकल्पकों दूसरा नहीं जानता, सृष्टि अपणी अपणी है, जैसे समुद्रविषे जेते बुदबुदे हैं, तिनकों जलकरि एकता है, अरु आकारकरि एकता नहीं, तैसे स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु संकल्प सृष्टि अपणी अपणी है, अरु जो पुरुष ऐसे चिंतवता है, जो मैं उसकी सृष्टिकों जाणों तब जानता है ॥ हे रामजी! आत्मा कल्पवृक्ष है, जैसी कोउ भावना करता है तैसी सिद्धि होती है, जब ऐसीही भावना करिके स्वरूपविषे जुडता है, जो सब सृष्टि मेरे तांई भासै तौ भावना करिके भासी आती है, अरु ज्ञानी ऐसी भावना नहीं करता, काहेतें जो आत्मातें इतर कोउ पदार्थ नहीं जानता, अरु जानता है, जो स्वरूपतें सबकी एकता है, अरु संकल्परूपकरि एकता नहीं होती, जैसे तरंगोंकी एकता नहीं, अरु जलकी एकता है, अरु जो एक तरंग दूसरेसाथ मिलि जाता है, तौ उससाथ एकता होती है, तैसे एकका संकल्प भावनाकरि दूसरेसाथ मिलता है, तातें ज्ञानी जानता है, संकल्परूप आकार नहीं मिलते, अरु स्वरूपकरि सबकी एकता है, अरु जिसकी भावना होती है, जो मैं इसकी सृष्टिकों देखों, तब उसके संकल्पसाथ अपणा संकल्प मिलायकरि देखता है, तब उसकी सृष्टिकों जानता है, जैसे दो मणि होवें, तिनका प्रकाश भिन्न भिन्न होता है, जब दोनों एकठी राखियें, एकही ठौरविषे, तब दोनोंका प्रकाश भी एकठा हो जाता है, तैसे संकल्पकी एकता भावनाकरि होती है, अरु ज्ञानीकों प्रथम संकल्प हुआ होवै, जो मैं उसकी सृष्टिकों देखौं तौ संकल्पकरि देखता है, अरु ज्ञानके उपजेतें वांछा नहीं रहती ॥ हे रामजी! इच्छा चित्तका धर्म है, जब चित्तही नष्ट हो गया, तब इच्छा किसकी रहै, जब स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्तरूपी दैत्य प्रसन्न होता

है, जो यह मेरा आहार हुआ, मैं इसका भोजन करौंगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष चित्तकी उर हुआ अरु स्वरूपकी भावना न भई, तब चित्तरूपी दैत्य जन्मरूपी वनविषे फिरता है, अरु तिसका भोजन करता रहता है, जो उसका पुरुषार्थ नाश करता है, अरु आत्मभावनावाली बुद्धि उत्पन्न होणे नहीं देता, जैसे वृक्षकों अग्नि लगै, तब बहुरि उसविषे फल नहीं पडते, तैसे पुरुषार्थरूपी वृक्षकों भोगरूपी अग्नि लगी, तब शुद्धबुद्धिरूपी फल उत्पन्न नहीं होता ॥ हे रामजी! चित्त आत्माविषे जोड, विषयकी उर जाणे न देवहु, यह चित्त दुष्ट है, जब इसकों स्थिर करौगे, तब परम अमृतकरि शोभायमान होहुगे, जैसे पूर्णमासी का चंद्रमा अमृतकरि शोभता है, तैसे ब्रह्म लक्ष्मीकरि शोभौगे, अरु परम निर्वाण पदकों प्राप्त होहुगे ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकादशः सर्गः ॥ १११ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सप्तभूमिका ज्ञानकी हैं, इनकरि ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिस भूमिकाविषे जिज्ञासी प्राप्त होता है, तिसका लक्षण क्या है, यह सप्त भूमिका क्या हैं, अरु प्राप्त कैसे होतियां हैं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका तुझकों कहता हौं, जिस प्रकार प्राप्त होतियां हैं, अरु जिस प्रकार भूमिकातें ज्ञान प्राप्त होता है, सो श्रवण करु ॥ हे रामजी! जब बालक माताके गर्भविषे होता है, अरु बाह्य निकसता है, तब इसकों दृढ सुषुप्ति जड अवस्था होती है, जैसे ज्ञानीकी होती है, परंतु बालकविषे संस्कार रहता है, तिसकरि संस्कारकी सत्यता आगे होणी है, जैसे बीजविषे अंकुर होता है, तिसतें आगे वृक्ष होणा है, तैसे बालककी भावी होणी है, अरु ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, जैसे दग्धबीजविषे अंकुर नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी भावी नहीं होणी, संसारतें सुषुप्त है, अरु स्वरूपविषे नहीं, इसीतें भावी तिसविषे नहीं होणी, जब बालककों बाह्य निकसेतें कोउ काल व्यतीत होता है, तब दृढ जडता निवृत्त होती है, अरु सुषुप्ति रहती है, केते कालतें उपरांत सुषुप्ति भी लय

होती है, अरु चेतनता होती है, तब जानता है जो यह मैं हौं, यह मेरे पिता माता ह, तब कुलवाले तिस कों सिखावते हैं जो यह मीठा है, यह कडवा है, यह तेरी माता है, यह पिता है, यह तेरा कुल है, इसकरि पाप होता है, इसकरि पुण्य होता है, इसकरि स्वर्ग पावता है, इसकरि नरक पावता है, इस प्रकार यज्ञ होता है, इस प्रकार तप होता है, इस प्रकार दान करता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार कुलके उपदेशकरि अरु शास्त्रके भयकरि धर्मविषे विचरता है, अरु पापका त्याग करता है, ऐसा जो शास्त्र अनुसार विचरणेवाला पुरुष सो धर्मात्मा कहता है, सो धर्मात्मा पुरुष भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिकी उर हैं, एक निवृत्तिकी उर हैं, जो प्रवृत्तिकी उर हैं सो पुण्यकर्मोंकरि स्वर्गफल भोगते हैं, उह मोक्षकों उत्तम नहीं जानते, इसतें संसारविषे भ्रमते हैं, जलके तृणवत्, कबी चिरकालतें इस क्रमविषे आयकरि मुक्त होते हैं, अरु जो निवृत्तिकी उर होता है, तिसकों विषयभोगतें वैराग्य उपजता है, अरु कहता है जो यह संसार मिथ्या है, मैं इसकों तरौं, अरु तिस पदकों प्राप्त होउं, जहा क्षय अरु अतिशय न होवै, यह संसार सर्वदा चलरूप है, अरु दुःखदाई है ॥ हे रामजी! तिस पुरुषकों इस क्रम करिके ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होते हैं, अरु जो पशुधर्मा मनुष्य हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, पशुधर्मा कहिये जो शास्त्रके अर्थकों नहीं जानते, जो शुभ क्या है, अरु अशुभ क्या है, अपणी इच्छाविषे वर्त्तणा, अनुभवकों ग्रहण करणा, विचारतें रहित होणा, अरु मनुष्य भी दो प्रकारके हैं, एक प्रवृत्तिका लक्षण, एक निवृत्तिका लक्षण है, प्रवृत्ति कहियें जिसकों शास्त्र शुभ कहैं, तिसकों ग्रहण करणा, अशुभका त्याग करणा, कामना धारिके यज्ञादिक शुभ कर्म करणे फलके निमित्त, जो स्वर्गधनपुत्रादिक मेरे तांई प्राप्त होवैंगे, तिन प्रार्थना धारीकरि शुभ कर्म करणे, इस प्रकार संसारसमुद्रविषे वहते हैं, अरु चिरकालकरि निवृत्तिकी उर भी आते हैं, तब स्वरूपकों पावते हैं, सो निवृत्ति क्या है, जो निःकाम होकरि शुभ कर्म करणे; तिनकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब तिस

कों वैराग्य उपजता है, अरु कहता है, मेरे तांई कर्मोंसाथ क्या है, अरु फलोंकरि क्या है, मैं किसी प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होउं, अरु संसारतें कब मुक्त होउंगा, यह संसार मिथ्या है, अरु भोगकरि मेरे तांई क्या है, यह भोग सर्प हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार भोगकी निंदा करता है, अरु उपरत होता है, अरु शम दम आदिक जो ज्ञानके साधन हैं तिनविषे विचरता है, अरु देश काल पदार्थकों शुभ अशुभ विचारता है, अरु मर्यादासाथ बोलता है, अरु संतजनका संग करता है, सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों वारंवार विचारता है, इस प्रकार उसकी बुद्धि बढती जाती है, अरु संतजनका संग करता है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला दिन दिनप्रति बढती है तैसे इसकी बुद्धि बढती है, अरु विषयतें उपरत होती है, तीर्थ ठाकुरद्वारे शुभ स्थान पूजता है, अरु देह इंद्रियांकरि संतकी टहल करता है, अरु सर्वसाथ मित्रभाव दया सत्य कोमलताकरि विचरता है, ऐसा वचन बोलता है, जिसकरि सब कोउ प्रसन्न होवें, अरु यथाशास्त्र होवें, अरु इतर किसीकों नहीं कहणा, अरु अज्ञानीका संग त्यागणा, अरु स्वर्ग आदिक सुखकी भावना न करणी, केवल आत्मपरायण होणा, संत अरु शास्त्रोंकी दृढ भावना करणी, तिनके अर्थोंविषे सुरती लगावणी अवर किसी उर चित्त न लगावणा, जैसे कदर्यदरिद्री सर्वदा धनकी चिंतवना करता है, तैसे उह सदा आत्माकी चिंतवना करता है, जो पुरुष एते गुण संयुक्त है, तिसकों प्रथम भूमिका प्राप्त भई है, अरु पापरूपी सर्पकों मोर समान सिरनी करिके नाश करता है, संतजन सच्छास्त्र अरु धर्मरूपी मेघकों गर्दन उंची करि देखता है, अरु प्रसन्न होता है, इसका नाम शुभेच्छा है, तिसकों बहुरि दूसरी भूमिका आय प्राप्त होती है, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढती जाती है, तैसे उसकी बुद्धि बढती जाती है, तिसके यह लक्षण हैं, जो सच्छास्त्र ब्रह्मविद्याकों विचारणा, अरु दृढ भावना लगावणी, तिस विचारका कवच गलेविषे पावता है, तिसकरि शस्त्रोंका घाउ कोउ नहीं लगता, जो इंद्रियांरूपी चोर हैं, इच्छारूपी तिनके हाथविषे बरछी

है, सो विचाररूपी कवच पहिरणेवालेकों नहीं लगती ॥ हे रामजी ! इंद्रियांरूपी सर्प हैं, तृष्णा तिनविषे विष है, तिसकरि मूर्खकों मारतियां हैं, अरु विचारवान् जो पुरुष है, सो इंद्रियांके विषयकों नाशकरि छोडता है, अरु सर्व उरतें उदासीन रहता है, दुर्जनकी संगतिका बल करिके त्याग करता है, जैसे गधा तृणकों त्यागता है, तैसे मूर्खकी संगति देहतें लेकरि त्यागता है, अरु सर्व इच्छाका त्याग किया है, परंतु एक इच्छा तिसविषे भी रहती है, सो दया सर्वपर करता है, अरु संतोषवान् रहता है, अरु निषेध गुण स्वाभाविक जाते रहते हैं, दंभ गर्व मोह लोभ आदिक तिसके स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सर्प कंचुकीकों त्यागिकरि शोभायमान होता है तैसे विचारवान् बाह्य इंद्रियांकों त्यागि करिके शोभता है, अरु जो क्रोध भी तिसविषे दृष्ट आता है, तौ क्षणमात्र होता है, हृदयविषे स्थित नहीं हो शकता है, अरु खाणा पीणा लेणा देणा जो कछु क्रिया है, सो विचारपूर्वक करता है, अरु सर्वदा शुद्धमार्गविषे विचरता है, संतजनोंका संग करणा, अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ विचारणे, बोधकों बढावणा, तप करणा, तीर्थोंका स्नान करणा इस प्रकार कालकों व्यतीत करता है ॥ हे रामजी ! यह दूसरी भूमिका है, जब तीसरी भूमिका आती है, तब श्रुति जो हैं वेद अरु स्मृति जो हैं धर्मशास्त्र तिनके अर्थ हृदयविषे स्थित होते हैं, जैसे कमलपर भंवरा आनि स्थित होता है, तैसे तिस पुरुषके हृदयविषे शुभ गुण स्थित होते हैं, फूलोंकी शय्या भी सुखदाई नहीं भासती, वन अरु कंदरा सुखदायक भासते हैं, जो वैराग्य तिसका दिन दिन बढता जाता है, अरु तलाव बावलियां नदियांविषे स्नान करणा अरु शुभस्थानोंविषे रहणा, पत्थरकी शिलापर शयन करणा, अरु देहकों तपकरि क्षीण करणा, अरु धारणाकरि चित्तकों किसी ठौरविषे न लगावणा, अरु आत्मभावना ध्यान करणा, अरु भोगतें सर्वदा उपरांत होणा, भोगकों अंतवंत विचारणा, जो यह स्थिर नहीं रहते, अरु देहके अहंकारकों उपाधि जाणीकरि त्यागता है, रक्त मांस पुरीषादिकतें पूर्ण जाणीकरि इसविषे अहंकारकों त्यागता है, अरु

निंदा करता है, सूके तृणकी नाई तुच्छ जाणीकरि त्यागता है, जैसे तृण विष्ठाकरि संयुक्त होवै, अरु तिसकों त्यागता है, तैसे देहके अहंकारकों त्यागता है, अरु कंदराविषे विचरणा, फूलफलका आहार करणा, अरु संतजनोंकी टहल करणी, इस प्रकार आयुर्बलाकों वीतावता है, सदा असंग रहता है, यह तीसरी भूमिका है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रथमद्वितीयतृतीयभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकद्वादशः सर्गः ॥ ११२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह ज्ञानका साधन है, ब्रह्मविद्याकों विचारणा, वारंवार उसके अर्थकी भावना करणी, अरु पुण्यक्रियाविषे विचरणा, इसतें इतर ज्ञानका साधन नहीं, इसकरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिस पुरुषकों ऐसी भावना हुई है, तिसकों नानाप्रकारकी सुगंधि अगर चंदन चोएतें आदि लेकरि अरु अप्सरा अनिच्छित आय प्राप्त होवै, तब तिनका निरादर करता है, अरु जो स्त्रीकों देखता है, तौ भी मातासमान जाणता है, अरु पराए धनकों पत्थरे वटे समान देखीकरि वांछा न करता है, अरु सर्व भूतकों देखीकरि दयाही कर्त्ता है, जैसे आपकों सुख करि प्रसन्न दुःखकरि अनिष्ट जानता है, तैसे उह अवरकों भी आप जाणीकरि सुख देता है, अरु दुःख किसीकों नहीं देता, इस प्रकार पुण्यक्रियाविषे विचरता है, अरु सच्छास्त्रके अर्थका अभ्यास करता है, सर्वदा असंग रहता है, अरु असंगता भी दो प्रकारकी है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! असंग संगका लक्षण क्या है, तिनका भेद तौ तुमकों होवैगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असंग दो प्रकारका है, एक समान है, एक विशेष है, तिनका लक्षण श्रवण करु, प्रथम समान यह है, जो उह कहता है, मैं कछु नहीं करता, न मैं किसीकों देता हों, न मेरे तांई कोउ देता है, सर्व ईश्वरकी आज्ञा वर्ती है, जिसकों धन देणेकी इच्छा होती है, तिसकों धन देता है, जिससों लेणा होता है, तिससों लेता है, इसके आधीन कछु नहीं, अरु जो कछु दान तप यज्ञादि करता है, सो ईश्वरार्पण करता है, अपणा अभिमान कछु नहीं करता, अरु कहता है, सब ईश्वरकी शक्तिकरि होता है,

इस प्रकार निरभिमान होकरि धर्मचेष्टाविषे स्वाभाविक विचरता है, अरु जो कछु इंद्रियांके भोगकी संपदा है, तिसकों आपदा जानता है, भोगकों महाआपदारूप मानता है, संपदा आपदारूप है, संयोग वियोगरूप है, जेते पदार्थ हैं, सो सब संनिपातरूप हैं, विचारकरि नष्ट हो जाते हैं, सबकों नाशरूप जानता है, संयोगवियोगविषे दुःखदाई है, परस्त्रीकों विषकी वल्ली समान रसतें रहित जानता है, अरु सर्व पदार्थों कों परिणामी जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करता है, अरु संपूर्ण विश्वका जो ईश्वर है, जिसकों सुख देणा है, तिसकों सुख देता है, जिसकों दुःख देणा है, तिसकों दुःख देता है, इसके हाथ कछु नहीं, करणे करावणेवाला ईश्वर है, न मैं कर्त्ता हों, न मैं भोक्ता हों, न मै वक्ता हों, जो कछु होता है, सो सब ईश्वरकी सत्ता होकरि होता है, ऐसे निरभिमान होकरि पुण्यक्रियाकों करता है, सो समान असंग है, तिसके वचन सुनणेतें श्रवणकों अमृतकी प्राप्ति होती है, इस प्रकार संतके मिलणेकरि भूमिकातें जिसकी बुद्धि बढी है, अरु निरभिमान है, तिसके उपदेशविषे अनुभवकरि तबलग अभ्यास करै, जबलग हाथपर आंवलेकी नांई आत्माका अनुभव साक्षात्कार प्रत्यक्ष होवै, अरु यह जो कहा था ईश्वर सब कर्त्ता है, सो समान असंग है, अरु विशेष असंगवाला कहाता है, जो न मैं कछु करता हौं, न करावता हौं, केवल आकाशरूप आत्मा हौं, न मेरेविषे करणा है, न करावणा है, न कौउ अवर है, न मेरा है, केवल आकाशरूप अद्वैत आत्मा हौं ॥ हे रामजी! उह पुरुष न अंतर न बाहिर देखता है, न पदार्थ न अपदार्थ, न जड, न चेतन, न आकाश न पातालकों देखता है, न देशकों, न पृथ्वीकों, न मैं मेरेकों देखता है, निर्वास अज अविनाशी सर्व शब्द अर्थोंतें रहित केवल शून्य आकाविषे स्थित है, चित्ततें रहित चेतनविषे जो प्रस्थित है, तिसकों असंग श्रेष्ठ कहिता है, बाह्य उसकी चेष्टा दृष्ट भी आती है, तौ भी अंतर पदार्थकी भावनाका अभाव है, जैसे जलविषे कमल दृष्ट भी आता है, परंतु उंचाही रहता है, तैसे क्रियाविषे विचरता दृष्ट भी आता है, परंतु असंग र

हता है, कामना उसकों कोउ नहीं रहती, जो यह होवै, अरु यह न होवै, काहेतें जो उसकों संसारका अभाव निश्चय भया है, सर्व कलनातें रहित है, आत्मातें इतर किसी पदार्थकी सत्ता नहीं फुरती, सो श्रेष्ठ असंग कहता है, अरु करणेकरि उसका अर्थ कछु सिद्ध नहीं होता, अकरणेविषे प्रत्यवाय नहीं होता, उह सर्वदा असंग है, संसारविषे डूबता कदाचित् नहीं, संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त हुआ है, अरु अनात्मविषे आत्मभावना तिस पुरुषनें त्यागी है, अहंभावका त्याग किया है, जेते पदार्थ हैं, इष्टअनिष्टरूप, तिनके सुखदुःखकी वेदना नहीं फुरती, सदा मौनरूप है, ऐसा पत्थरसमान है, सो श्रेष्ठ असंग कहता है॥ हे रामजी! एक कमल है, सो अज्ञानरूपी कीचसों निकसीकरि आत्मारूपी जलविषे विराजता है, संसारकी अभावना उसका बीज है, अरु तृष्णारूपी उस जलविषे मच्छियां हैं, कमलके चउफेर फिरतियां हैं, अरु कुकर्म दुःखरूपी तिससाथ कांटे हैं, अज्ञानरूपी रात्रिकरि मुख मूंदि रहता है, अरु विचाररूपी सूर्यके उदय हुएतें खिलता है, अरु शोभता है, सुगंधि तिसविषे संतोष है, सो हृदय बीच लगता है, फल तिसका असंग है, तीसरी भूमिकाविषे यह उगता है॥ हे रामजी! संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंका विचरणा सारकों प्राप्त करता है, इन करिके अमृत मोक्षकों प्राप्त होता है, बडा कष्ट है, जो ऐसे स्वरूपकों विस्मरण करिके जीव दुःखी होते हैं, इसका स्वरूप दुःखोंका नाश करता है, जिसविषे दुःख कोउ नहीं, आनंदरूप है, इन भूमिकाद्वारा प्राप्त होता है, बहुरि बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! यह तीसरी भूमिका ज्ञानके निकट वरती है, अरु विचारवान् इन भूमिकाविषे स्थित होकरि बुद्धिकों बढावते हैं, जब इस प्रकार बोधकों बढावता है, अरु शास्त्र युक्तिसाथ रक्षा करता है, तब क्रम करिके यह तीसरी भूमिकाकों प्राप्त होता है, तहां इसकों असंगता प्राप्त होती है, जैसे किरसांणी खेतीकी रक्षा करता है, बढावता है, तैसे विचाररूपी जलकरि बुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है,

अरु अहंकार मोहादिक शत्रुतें रक्षा करता है ॥ हे रामजी ! इस भूमिकाकों प्राप्त होकरि यह ज्ञानवान् होता है, सो यह भूमिका क्रम करिके प्राप्त होती है, कै बडे पुण्य कर्म कियें होवें, तिनकरि आनि फुरती है, अथवा अकस्मात् आनि फुरती है, जैसे नदीके तटपर कोउ आय बैठा होवै, अरु नदीके वेगकरि बीच जाय पडै, तैसै जब पहिली भूमिका प्राप्त होती है, तब फेरिबुद्धिकों बढावता है, जब बुद्धिरूपी वल्ली बढती है, तब ज्ञानरूपी फल लगता है, जब ज्ञान उपजा, तब प्रत्यक्ष क्रिया तिसविषे दृष्ट भी आवै, तौ भी इसका अभिमान नहीं रहता, जैसे शुद्ध मणि प्रतिबिंबकों ग्रहण भी करती है, परंतु रंग कोउ नहीं चढता ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे तृतीयभूमिकाविचारो नाम शताधिकत्रयोदशः सर्गः ॥११३॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमनें भूमिका वर्णन करि, तिसविषे मेरे तांई यह संशय है, जो भूमिकातें रहित हैं, अरु प्रकृतिके सन्मुख हैं, तिनकों भी कदाचित् ज्ञान उपजैगा, अथवा न उपजैगा, अरु जिसनें एक भूमिका पाई होवै, कै दो भूमिका पाई होवें, अथवा तीसरी भूमिका पाई होवै, और शरीर तिसका छूटि गया, अरु आत्मपदका साक्षात्कार न भया, अरु स्वर्गादिककी उसकों कामना भी नहीं तब उह किस गतिकों प्राप्त होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उह पुरुष जो विषयी हैं, तिनकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, उह वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरते हैं, कबहू स्वर्ग, कबहू पाताल जाते हैं, अरु दुःख पावते हैं, कदाचित् अकस्मात काकतालीयन्यायकी नांई उसकों संतका संग, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण करणा यह वासना आय फुरती है, अरु जैसे मरुस्थलविषे वल्ली लगणी कठिन है, तैसे जिस पुरुषकों आत्माका प्रमाद है, अरु भोगकी भावना है, तिसकों ज्ञान प्राप्त होणा कठिन है, परंतु जब अकस्मात् संतके संगतें तिसकों वैराग्य उपजता है, अरु बुद्धि उसकी निवृत्तिकी उर आती है, तब भूमिका द्वारा ज्ञान तिसकों प्राप्त होता है, तब मुक्त होता है ॥ हे रामजी! यह भावना अकस्मात् उपजेंविना यो

निविषे भ्रमता है, अरु जिसकों एक अथवा दो भूमिका प्राप्त भई हैं, अरु शरीर तिसका छूटि गया, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, पिछला संस्कार जागि आता है, अरु दिन दिन बढता जाता है, जैसे बीजतें वृक्षका अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फलकरि बढता जाता है, तैसे उसकों अभ्यासका संस्कार बढता जाता है, अरु ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे पहिलवान खेलता है, अरु रात्रिकों सोय जाता है, बहुरि दिन हुए उठता है, तब पहिलवानहिका अभ्यास आय फुरता है, जैसे कोउ मार्ग चलता चलता सोय जावै, अरु जागिकरि चलणे लगै, तैसे उह फेरि पूर्वके अभ्यासकों लगता है॥ हे रामजी! जिसकों भावना होती है, जो मेरे तांई विशेषता प्राप्त होवै, तिसकरि जन्मकों पावता है, ब्रह्मा आदि चीटीपर्यंत जिसकों विशेष होणेकी कामना है, सो जन्म पावता है, अरु ज्ञानीकों भोगकी इच्छा, अरु विशेष प्राप्ति होणेकी इच्छा नहीं होती, जिनकों भोगकी इच्छा होती है, सो भोगकरि आपकों विशेष जानता है, अरु अनिष्टके निवृत्तिकी इच्छा करते हैं, अरु ज्ञानीकों वासना कोउ नहीं होती, जो यह विशेषता मेरे तांई प्राप्त होवै, इसीतें बहुरि जन्म नहीं पावता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासनातें रहित ज्ञानी जन्म नहीं पावता॥ हे रामजी! जन्मका कारण वासना है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसी अवस्थाकों प्राप्त होता है; सो नानाप्रकारकी वासना है, जब शरीर छूटणेका समय आवता है, तब जो वासना दृढ होती है, जिसका सर्वदा अभ्यास होता है, अंतकालविषे उह सर्व वासना दिखाइ देती है, पाठकी अरु तपकी कर्मकी देवताकी इत्यादिक वासना आगे आनि स्थित होती हैं, तिस समय सबकों मर्दन करिके उही भासती है॥ हे रामजी! तिस समय अग्रगत पदार्थ होते हैं, सो भी नहीं भासते, पांचों इंद्रियके विषय विद्यमान होवैं तौ भी नहीं भासते, उही पदार्थ भासता है, जिसका दृढ अभ्यास किया होता है, वासना तौ अनेक होती हैं, परंतु जैसी वासना दृढ होती है, तिसीके अनुसार शरीर धारता है, जब देह छूटता है, तब मुहूर्त

पर्यंत जडता रहती है, सुषुप्तिकी नांई, तिसके उपरांत चेतनता होती है, तब वासनाके अनुसार शरीरकों देखता है, अरु जानता है, यह मेरा शरीर है, मैं उत्पन्न हुआ हौं, एक इसी प्रकार होते हैं, अरु एक ऐसे होते हैं, जो तहां तिसी क्षणविषे युगका अनुभव करते हैं, बहुरि एक ऐसे होते हैं, जो चिरकालपर्यंत जड रहते हैं, चिरकालतें उनकों चेतनता फुरती है, तिसके अनुसार संसारभ्रमकों देखते हैं, अरु एक संस्कारवान् होते हैं, तिनकों शीघ्रही एक क्षणतें चेतनता होती है, अरु जानता है, जो मैं उस ठौरतें मुआ हौं, अरु इस ठौर आय जन्म्या हौं, यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, यह मेरा कुल है, इस प्रकार एक मुहूर्तविषे जागिकरि देखता है, अरु बडे कुलकों देखता है, इसी प्रकार परलोककों देखता है, अरु यमराजाके दूतकों देखता है, अरु जानता है, यह मेरे तांई लिये जाते हैं अरु देखता है जो मेरे पुत्रोंनें मेरे पिंड किये हैं, तिनकरि मेरा शरीर हुआ है, अरु मेरे तांई दूत ले चले हैं, तब आगे धर्मराजाकों देखता है, तिसके निकट जाय खडा होता है, अरु पुण्य पाप दोनों मूर्त्त्यां धारिकरि इसके आगे आनि स्थित होते हैं, तब धर्मराज अंतरजामीसों पूछता है; जो इसनें क्या कर्म किये हैं, जब पुण्यवान् होता है, तब स्वर्गभोग भोगायकरि बहुरि योनिविषे डारि देते हैं, जो पापी होता है तौ नरकविषे डारि देते हैं, इस प्रकार जन्मकों धारता है, सर्पकी योनिमें कहता है, मैं सर्प हौं, बलद् वानर तीतर मच्छ बगला गर्दभ वल्ली वृक्ष इत्यादिक योनिकों पावता है, अरु जानता है, मैं यही हौं, अकस्मात् काकतालीय योगकी नांई कदाचित् मनुष्य शरीर पावता है, अरु माताके गर्भविषे जानता है, जो इहां मैं जन्म लिया है, यह मेरी माता है, मैं पितातें उत्पन्न भया हौं, यह मेरा कुल है, बहुरि बाहिर निकसता है, बालक होता है, अरु जानता है जो मैं बालक हौं, बहुरि यौवन अवस्था होती है, तब जानता है, मैं ज़्वान हौं, बहुरि वृद्ध होता है, तब जानता है, मैं वृद्ध हौं, इस प्रकार कालकों वीतावता है, बहुरि मृत्युकों पावता है, अरु सर्प तोता तीतर वानर

मच्छ कच्छ वृक्ष पशु पक्षी देवता इत्यादिक जन्म धारता है ॥ हे रामजी! संसारविषे घटीयंत्रकी नाई फिरता है, कबहू ऊर्ध्वकों, कबहू अधकों जाता है, स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है ॥ हे रामजी! एता विस्तार जो तुमकों कहा है, सो बन्या कछु नहीं, केवल अद्वैत आत्मा है, चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, वासनाद्वारा विमानोंकों देखता है, तहां आकाशमें जाता है, जैसे पवन गंधकों ले जाता है, तैसे पुर्यष्टकाकों ले जाता है, अरु शरीरकों देखता है ॥ हे रामजी! आत्मातें इतर कछु नहीं, परंतु चित्तके संयोगकरि एते भ्रमकों देखता है, तातें चित्तकों स्थित करौ, तब भ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मतत्त्वमात्रही शेष रहैगा, सो शुद्ध है, अरु आनंदरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्ववासनारूपवर्णनं नाम शताधिकचतुर्दशः सर्गः ॥ ११४ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पूर्व तुझकों प्रवृत्तिवालेका क्रम कहा है, अब निवृत्तिका क्रम सुण, जिसकों भूमिका प्राप्त भई है, अरु आत्मपद नहीं प्राप्त भया, तिसके पाप तौ सर्व दग्ध हो जाते हैं, जब उसका शरीर छूटता है, तब वासनाके अनुसार शून्याकार हुआ, बहुरि अपणेसाथ शरीर देखता है, बहुरि बडेपर लोककों देखता है, तहां स्वर्गके सुख भोगता है, विमानपर चढता है, लोकपालके पुरोंविषे विचरता है, जहां मंद मंद पवन चलता है, सुंदर वृक्षोंकी सुगंधी है, पांचों इंद्रियांके रमणीय विषय हैं, तिन स्थानोंविषे विचरता है, देवताविषे क्रीडा करता है, भोगकों भोगीकरि संसारविषे उपजता है, बहुरि भूमिका क्रमकों प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलता कोउ सोय जावै, जागिकरि बहुरि चलता है, तैसे शरीर पायकरि बहुरि भूमिकाके क्रमकों प्राप्त होता है, जेसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसे हो भासता है, यह सब जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पके अनुसारही भासता है, वासनाके अनुसार परलोक भ्रम सुख दुःख देखता है, तहांतें भोगीकरि बहुरि संसारविषे आनि पडता है, इसी प्रकार संकल्पकरि भटकता है, जब आत्माकी उर आता है,

तब संसारभ्रम मिटि जाता है, जबलग आत्माकी उर नहीं आता, तबलग अपणे संकल्पकरि संसारकों देखता है, जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि भासती है, देवता दैत्य भूमिलोक स्वर्ग सब संकल्पके रचे हुए हैं, जेता कछु संसार भासता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि सब जगत् मनोमात्र है, मनके संकल्पतें उदय हुआ है, असत्‌रूप है, जैसे मनोराज्य गंधर्व नगर स्वप्नसृष्टि भ्रमरूप है, तैसे यह जगत् भ्रमरूप है, सब जीवकी अपणी अपणी सृष्टि है, परस्पर अदृष्ट है, उसकी सृष्टि उह नहीं जाणता, कहूं उदय होती भासती है, कहूं लय हो जाती है, जैसे मूर्ख अवर देशकों जाता है, तैसे देहकों त्यागिकरि परलोक जाता है, अरु स्वरूप विषे आणा जाणा अहं त्वं कल्पना कोउ नहीं, केवल सत्तामात्र अपणे आपविषे स्थित है, जगत् भी उहीं है ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे मणीका चमत्कार होता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, अरु जो कछु तेरे तांई भासता है, सो आत्माही है, आत्माविना आभास नहीं होता, जैसे इक्षुविषे मधुरता होती है, अरु मिरचविषे तीक्ष्णता होती है, तैसे आत्माविषे विश्व है, जो कछु देखता है, श्रवण करता है, जो स्पर्श करै, सुगंध लेवै, सो सर्व आत्माही जाण, अथवा जो इनके जाणनेवाला है अनुभवरूप तिसविषे स्थित होहु, इंद्रियां अरु विषयकों त्यागिकरि अनुभवरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! यह विंश्व संवितरूप है, अरु संवितही विश्वरूप है, जब संवित बहिर्मुख होकरि रस लेती है, तब जागृतकों देखती है, जब अंतर्मुख होकरि रस लेती है, तब स्वप्न होता है, जब शांत हो जाती है, तब सुषुप्ति होती है, संसारकों सत्य जाणीकरि जो रस लेती है, तब जागृत् स्वप्न अरु सुषुप्ति अवस्था होती है, अरु जब संविततें रसकी सत्यता जाणी रहै, तब तुरीया पद होता है, जो इसकों जाणना फुरता है, यह पदार्थ है, यह नहीं; जब यह नष्ट होवै तब तुरीया पद है ॥ हे रामजी! यह विश्व फुरणेमात्र है, जब फुरणा नष्ट होवै तब विश्व देखी नहीं जाती, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ जागेतें मिथ्या होते हैं, तैसे यह ज

गत् भी मिथ्या है, अरु जीव जीव प्रति जो अपणी अपणी सृष्टि होती है, तिसविषे आप भी कछु बनि पडता है, तातें दुःखी होता है, जब इस अहंकारकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवै, तब विश्व कहूं नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सृष्टिनिर्वाणैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचदशः सर्गः ॥११५॥ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी! यह सृष्टिका स्वरूप संकल्पमात्र है, अरु संकल्प भी आकाशरूप है, आकाश अरु स्वर्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, कैसी सृष्टि है जो अनेक पदार्थ हैं, परंतु परस्पर रोकती नहीं, अरु वास्तवतें विश्व भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मरूप है, जो आत्मरूप है, तौ राग किसविषे करियें, अरु दोष किसविषे करियें, चेतन धातुविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, अरु यह आश्चर्य है, जो आत्मातें इतर हुआ कछु नहीं, अरु भिन्न भिन्न संवेदन दृष्ट आती है, अरु नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं ॥ हे रामजी! जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, एक सृष्टि ऐसी है जो तिनका संकल्प एक दृष्ट आता है, परंतु सृष्टि अपणी अपणी है, अरु एक ऐसे है जो भिन्न भिन्न है, परंतु समानता करिके एकही दृष्ट आती है, जैसे जलकी बूंदां एकठी होतियां हैं, जैसे धूडके कणके भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु एकही धूड भासती है, जैसे नदीविषे नदी पडती है, तौ एकही जल हो जाता है, तैसे समान अधिकरण करिके एकही भासते हैं, एक एककेसाथ मिलते हैं, अरु नहीं भी मिलते, जैसे क्षीरसमुद्रविषे घृत डारियें तौ नहीं मिलता, तैसे एक संकल्प ऐसे है, जो अवरसाथ नहीं मिलते, जैसे एक सूर्यका प्रकाश होवै, अरु एक दीपकका प्रकाश होवै, अरु एक मणीका प्रकाश होवै, तब उहां भिन्न भिन्न दृष्ट आते हैं, अरु एक जैसे होते है, तैसे केई सृष्टि एकही भासतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न होतियां हैं, अरु केई एकठी होतियां हैं, अरु भिन्न भिन्न दृष्ट आतियां हैं ॥ हे रामजी! एती सृष्टि जो मैं तेरे तांई कही है, सो सब अधिष्ठानविषे फुरणे करिके केई कोटि उत्पन्न होती हैं, अरु केई कोटी लीन हो जातियां हैं, जैसे जलविषे तरंग बु

दबुदे उपजीकारि लीन हो जाते हैं, तैसे सृष्टि उत्पन्न अरु लीन होतियां हैं, अधिष्ठान ज्योंका त्यों है, काहेतें जो तिसतें इतर कछु नहीं, अरु ब्रह्म आत्मा आदिक जो सर्व हैं, सो भी फुरणेविषे हुए हैं, जबलग शब्द अर्थ की भावना है, तबलग भासते हैं, जब भावना निवृत्त हुई तब शब्द अर्थ कोउ नहीं भासैगा, केवल शुद्ध चेतनमात्रही शेष रहैगा, बहुरि संसारका भाव किसी ठौर न होवैगा, जैसे पवन जबलग चलता है, तबलग जाणता है जो पवन है, अरु गंध भी पवन करिके जाणीती है, सुगंध आई अथवा दुर्गंध आई अरु जब पवन चलणेतें रहित होता है, तब नहीं भासता, अरु गंध भी नहीं भासती, तैसे जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब संसार अरु संसारका अर्थ दोनों नहीं भासते, अरु फुरणेविषे जीव जीव प्रति ज्यों ज्यों अपणी अपणी सृष्टि है, तिस सृष्टिविषे सत्ता समान ब्रह्म स्थित है, अरु सर्वका अपणा आप है, द्वैतभावकों कदाचित् नहीं प्राप्त भया ॥ हे रामजी! तातें ऐसे जाण जो आकाश भी आत्मा है, पृथ्वी भी आत्मा है, जल भी आत्मा है, अग्नि आदिक सर्व पदाथ आत्माही है, अथवा ऐसे जाण जो सर्व मिथ्या है, इनका साक्षीभूत सत् ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, उसी ब्रह्मविषे अंशतें अनेक सुमेरु अरु मंदराचल आदिक स्थित हैं, अरु अंशांशीभाव भी आत्माविषे स्थूलताके निमित्त कहे हैं, वास्तव नहीं, जतावणेनिमित्त कहे हैं, आत्मा एकरस है ॥ हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो आत्मसत्ताविना होवै, जिसकों सत्य जाणता है सो भी आत्मा है, अरु जिसकों असत्य जाणता है, सो भी आत्मा है, आत्माविषे जैसे सत्यका फुरणा है, तैसे असत्यका फुरणा है, फुरणा दोनोंका तुल्य है, जैसे स्वप्नविषे एक सत्य जाणता है, एक असत्य जाणता है, तैसे जो इंद्रियांके विषय होते हैं, तिनकों सत् जाणता है, अरु आकाशके फूल, ससेके सिंगकों असत् कहता है, सो सर्व अनुभवकरि फुरे हैं, तातें अनुभवरूप है, अरु ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो आत्माविषे असत् नहीं, जो कछु भासते हैं सो सर्व फुरणेविषे हुए हैं, सत्य क्या अरु असत्य क्या, सब मिथ्या है, स्वप्नके सत् अ

रु असत्की नाईं है, जो अनुभव करिके सिद्ध है, सो सर्व सत्य है, अरु सत्य अनुभवतें इतर है, सो सब असत्य है ॥ हे रामजी ! गुणातीत परमात्मस्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालविषे ज्ञानवान् पुरुष सम है, अरु दशों दिशा आकाश जल अग्नि आदिक पदार्थ तिसकों सर्व आत्माही दृष्ट आता है, आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सूर्य चंद्रमा तारे सर्व आत्मा हैं, यह विश्व आकाशरूप है, अरु शुद्ध निर्मल हैं, आकाशविषे आकाश स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु जो तेरे तांई इतर भासै, सो मिथ्या जाण, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सत् कछु नहीं, अरु जो परमार्थकरि देखैं तौ, सर्व आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वाकाशैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकषोडशः सर्गः ॥ ११६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विश्व स्वप्नसमान है, जैसे स्वप्नकी सैना नानाप्रकार दिखती है, शस्त्र चलते हैं, इत्यादिक भासते हैं, अरु आत्माविषे इनका रूप देखणा, अरु मानणा, शब्द अर्थ कोउ नहीं, जगत्तें रहित है, अरु जगत्रूप भान होता है, अहं त्वं मेरा तेरा जेता कछु भासता है, सो सब स्वप्नवत् है, भ्रम करिके सिद्ध हुआ है, सर्वका अधिष्ठान है, सो सत्य है, सर्व तिसीविषे कल्पित है, अरु जो अनुभवकरि देखियें तौ सर्व आत्मस्वरूप है, इतर देखियें तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके देश काल पदार्थ सब अर्थाकार भी भासते तौ भी मिथ्या है, तैसे यह विश्व भ्रम करिके फुरती है, उनकी अपेक्षाकरि उह तूं है, उसकी अपेक्षाकरि उह अहं है, वास्तवतें दोनों नहीं, जो है सो आत्माही है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहा जो त्वं आदिक अहंपर्यंत अरु अहं आदिक त्वंपर्यंत सर्व स्वप्नसैनाकी नांई मिथ्या है, अरु अनुभवकरि देखिये तौ आत्मस्वरूप है, हम स्वप्न सैनाविषे हैं, अथवा हमारा अहं आत्मा है सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! जो अनात्म देहादिकविषे अहंभावना करणी मैं हौं तौ स्वप्नसैनाके तुल्य हैं, अरु जो अधिष्ठान चिन्मात्रविषे दृश्यतें अरु अहंकारतें रहित अहंभावना करणी सो आत्मरूप है ॥ हे रामजी ! तूं आत्मरूप है, अरु यह वि

श्व सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, जो अधिष्ठानरूपकरि देखियें सो आत्मरूप है, अरु जो अधिष्ठानतें रहित देखियें तौ मिथ्या है, सो अधिष्ठान शुद्ध है, आनंदरूप है, चित्ततें रहित चिन्मात्र परम ब्रह्म है, तिसविषे अज्ञानकरि दृश्य दिखती है, जैसे असम्यक्दृष्टि करिके सीपिविषे रूपा भासता है, तैसे आत्माविषे अज्ञानी दृश्य कल्पते हैं ॥ हे रामजी! दृश्य अविचारतें सिद्ध है, विचार कियेतें कछु वस्तु नहीं होती, जिसके आश्रय कल्पित है सो अधिष्ठान सत्य है, जैसे सीपीके जाणेतें रूपेकी बुद्धि जाती रहती है, तैसे आत्मविचारतें विश्वबुद्धि जाती रहती है, जैसे समुद्रविषे पवनकरि चक्र तरंग फुरते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, विचार कियेतें चक्रविषे भी जलबुद्धि होती है, तैसे आत्मरूपी समुद्रविषे मनके फुरणेकरि विश्वरूपी चक्र उठते हैं, विचार कियेतें तुझकों मनके फुरणेविषे भी आत्मरूप भासैगा, विश्वरूपी चक्र न भासैंगे, भ्रम निवृत्त हो जावैगा, जो वस्तु फुरणेविषे उपजी है, सो अफुर करिके निवृत्त हो जाती है, यह विश्व अज्ञानकरि उपजी है, अरु ज्ञान करिके लीन हो जावैगी, तातें विश्व भ्रममात्र जाण ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहा जो ब्रह्मा रुद्र आदि अरु उत्पत्ति संहार करणेपर्यंत सब विश्व भ्रममात्र है, ऐसे जानणेकरि क्या सिद्ध होता है, यह तौ प्रत्यक्ष दुःखदायक भासती है यौं दिखती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तूं देखता है, सो सर्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, सम्यक्दृष्टि करिके, अरु असम्यक्दृष्टि करिके विश्व है, तौ दृष्टिका भेद है, सम्यक् असम्यक् देखणेका अधिष्ठान ज्यौंका त्यौं है, जैसे एक जेवरी पडी होवै, अंधकारकी उपाधिकरि सर्प हो भासै, अरु भयदायक होवै, जो प्रकाशकरि देखियें तौ जेवरीही भासती है, तैसे जिसतें आत्माकों जाण्या है, तिसकों दृश्य भी आत्मरूप है, अज्ञानीकों विश्व भासती है, अरु दुःख पावता है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पिकरि भयमान होता है, अपणे न जानणेकरि दुःख पावता है, जो जाणै तौ भय किस निमित्त पावै ॥ हे रामजी! अपणेही संकल्पकरि आप बंधायमान होता है, जैसे धुरा

ण कीट अपणे बैठणेका स्थान बनावती है, आपही फसी मरती है, तैसे अनात्मविषे अहंप्रतीति करिके आपही दुःख पावता है ॥ हे रामजी! आपही संसारी होता है, आपही ब्रह्म होता है, जब दृश्यकी उर फुरता है, तब संसारी होता है, जब स्वरूपकी उर आता है, तब ब्रह्म आत्मा होता है, तातें जो तेरी इच्छा होवै सो करु, जो संसारी होवणेकी इच्छा होवै तौ संसारी होउ, अरु जो ब्रह्म होणेकी इच्छा होवै तौ ब्रह्म होउ, अरु जो मेरेसों पूछै तौ दृश्य अहंकारकों त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, विश्व भ्रम मात्र है, वास्तव कछु नहीं, यही पुरुषार्थ है, जो संकल्पसाथ संकल्पकों काटहू, जब बाह्यतें अंतर्मुख हुआ; तब ब्रह्मही भासैगा, दृश्यकी कल्पना मिटिजावैगी, काहेतें, जो आगे भी नहीं ॥ हे रामजी! जो सत् वस्तु आत्मा है, अनेक यत्न करियें तौ नाश नहीं होता, अरु जो असत्य अनात्मा है, तिसके निमित्त यत्न करियें तौ सत् नहीं होता, जो सत् वस्तु है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं, अरु जो असत् है, तिसका भाव नहीं होता, असत् वस्तु तबलग भासती है, जबलग तिसकों भली प्रकार नहीं जाण्या, जब विचार करि देखियें तब नाश हो जाती है, अविद्यक पदार्थ विद्याकरि नष्ट हो जाता है, जैसे स्वप्नका सुमेरु पर्वत सत्य होवै तौ जाग्रतविषे भी भासै, तातें है नहीं, जो जाग्रततें नष्ट हो जाता है, तैसे यह संसार जो तुझकों भासता है, सो स्वरूपके ज्ञानतें नष्ट हो जावैगा, अरु जो हमतें पूछै तौ हमकों आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, सर्व आत्माही है, यह भी नहीं, जो यह जीव अज्ञानी है, किसी प्रकार मोक्ष होवै, न हमारि तांई ज्ञानसाथ प्रयोजन है, न मोक्षहोणेसाथ प्रयोजन है, काहेतें जो हमकों सर्व आत्माही भासता है ॥ हे रामजी! जबलग चेतन है तबलग मरता अरु जन्म भी पावता है, जब जड होता है, तब शांतिकों प्राप्त होता है, अरु मुक्त होता है, चेतन कहिये दृश्यकी उर फुरणा, इसीकरि जन्ममरणके बंधनमें आवता है, जब दृश्यके फुरणेतें जड हो जावै, तब मुक्त होवै, इसका होणाही दुःख है, न होणा मुक्ति है, अहंकारका होणा बंधन है,

अहंकारका न होणा मुक्ति है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो अहंकारका त्याग करणा, अरु चेतन ब्रह्म घन अपणे आपविषे स्थित होणा, जिसकों संसारकी सत् भावना है, तिसकों संसारही है, ब्रह्म नहीं, अरु जिसकों ब्रह्मभावना हुई है, तिसकों ब्रह्मही भासता है॥ हे रामजी! जो पाताल जावें, अथवा संपूर्ण पृथ्वी फिरें, दशों दिशा फिरें, आकाशविषे देवताके स्थान फिरें, तोऊ सुखकों न पावैगा, अरु आत्माका दर्शन न होवैगा, काहेतें जो अनात्माविषे अहंकार कियेतें सुख नहीं, अरु जो आत्मदर्शी होकरि देखें तौ सर्व आत्माही भासैगा॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वविलयो नाम शताधिकसप्तदशः सर्गः॥११७॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह संसार संकल्पमात्र है, अरु तुच्छ है, पर्वत नदियां देश काल सर्व भ्रमकरि सिद्ध हैं, जैसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां देश काल भासते हैं, निद्रा दोष करिके अरु हुआ कछु नहीं, तैसे अज्ञान निद्राकरि यह संसार भासता है॥ हे रामजी! जागीकरि देखें तौ संसार हैनहीं, इसका तरणा महा सुगम है, अरु सुमेरु पर्वतादिक जो भासते हैं, सो कमलकी नांई कोमल हैं, जैसे कमलके मूंदणेविषे यत्न कछु नहीं, तैसे यह कोमल निवृत्त होते हैं, अरु आकार जो भासते हैं, भूत प्राणी, सो इनकी स्थूल दृष्टि है, आकारकों देखी रहे हैं, जैसे पवनका चलणा जाण्या जाता है, अरु जब जलणेतें रहित होता है, तब मूर्खकी गम नहीं, जो निराकारकों जाणै, तैसे भूत प्राणी आकारकों जानते हैं, इसविषे जो निराकार स्थित है, तिसकों नहीं जानते, जैसे पवन चलता है, तौ भी पवन है, जो ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व फुरती है, सो भी आत्मा है, अफुरविषे भी उही है, तातें विश्व भी आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों फुरणेअफुरणेविषे आत्माही भासता है, जैसे स्पंद निस्पंदरूप पवनही है, तैसे ज्ञानीकों सर्वदा एकरस है, अरु अज्ञानीकों द्वैत भासता है, जैसे वृक्षविषे पिशाचबुद्धि बालक करता है, तैसे आत्माविषे जगतबुद्धि अज्ञानी करता है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे मनके फुरणेकरि

जगत् भासता है॥ हे रामजी! जैसे वायुका रूप कदाचित् नहीं, तैसे जगत्का रूप अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, तैसे आत्माविषे जगत्का अभाव है॥ हे रामजी! सुमेरु पर्वत आकाश पाताल देवता यक्ष राक्षस इत्यादिक ऐसे अनेक ब्रह्मांड एकठेकरि विचाररूपी काटेविषे पाए, अरु पाछे अर्धरति पाई तौ भी पूरी नहीं होते, काहेतें जो है नहीं, अविचारसिद्ध है, स्वप्नके पर्वत जागे हुए चावल प्रमाण नहीं रहते, काहेतें, जो है नहीं, भ्रममात्र है॥ हे रामजी! इस संसारकी भावना मूर्ख करते हैं, ऐसे जो अनात्मदर्शी पुरुष हैं, तिनकों ऐसे जाण, जैसे लुहारकी खलोतें पवन निकसता है, तैसे तिन पुरुषके श्वास वृथा आते जाते हैं, जैसे आकाशविषे अंधेरी व्यर्थ उठती है, तैसे तिन पुरुषका जीवणा अरु चेष्टा सर्व व्यर्थ है, अरु यह आत्मघाती है, अपणा आप नाश करते हैं, उनकी चेष्टा दुःखके निमित्त है॥ हे रामजी! यह अपणे आधीन है, जो दृश्यकी उर होता है, तौ संसार होता है, अरु जो अंतर्मुख होता है, तौ सर्व आत्मा ही होता है, अरु यह संसार मिथ्या है, न सत् कहिये, न असत् कहिये, भ्रममात्रकरि हुआ है, पूर्व काल, भविष्यत् काल, वर्तमान कालविषे बंध होता है, अरु अग्नि शीतल होवै, अरु आकाश पातालविषे होवै, अरु पाताल आकाशविषे होता है, अरु तारे पृथ्वी उपर हैं, पृथ्वी आकाश उपर भी होती है, अरु बादर विना मेघ वर्षा करता है, ऐसे कौतुक मैं देखता हौं, आकाशविषे हल फिरते देखता हौं॥ हे रामजी! इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, मन करिके सब कछु होता है, जैसा मनोराज्य किया तैसा आगे स्थित होता है, अरु सिद्ध होती है, पर्वत भिक्षा मागते फिरते हैं, पुरविषे भिक्षुककी नांई अरु ब्रह्मांड उडते फिरते हैं, वालुतें तेल निकसता है, अरु मृतक युद्ध करते हैं, मृग गाते हैं, अरु वन नृत्य करते हैं॥ हे रामजी! मनोराज्य करिके सब कछु बणता है, चंद्रमाकी किरणासाथ पर्वत भस्म होते भी मानते हैं, इसविषे क्या आश्चर्य है, तैसे यह संसार भी मनोराज्य है, अरु तीव्र संवेग है, तातें इसकों सत् मानता है, अरु आगे जो वालुतें ते

लादिक कहे, तिनकों सत् नहीं जानता, काहेतें जो उसविषे मृदु है, अरु हैं दोनों तुल्य ॥ हे रामजी ! जिनकों सत् अरु असत् कहते हैं, सो आत्माविषे दोनों नहीं, अरु यह जो तेरे तांई पदार्थ सत् भासते हैं, तौ अग्नि आदिक शीतल भी सत्य हैं, अरु जो यह मिथ्या भासते हैं, तौ उह भी मिथ्या है, तीव्र अरु मृदु संवेगका भेद है, तीव्र संवेग जब दूर हुआ तब सब मिथ्या मानते हैं, जैसे स्वप्नतें जाग्या तब स्वप्नकों मिथ्या कहता है, अरु जाग्रत्कों सत् कहता है, दोनों मनोराज्य हैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु आकार दृष्ट आवते हैं, सो सब मिथ्या जाण, न तूं है, न मैं हौं, न यह जगत् है, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसविषे अहं त्वंका उत्थान कोउ नहीं, केवल शांतरूप है, आकाशरूप अरु निराकाशरूप है, जिसविषे द्वैत कछु नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है, जैसे बालक मृत्तिकाके हस्ती घोडे मनुष्य बनावता है, अरु नाम कल्पता है, यह राजा है, यह हस्ती है, यह घोडा है, सो मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, अरु बालकके मनविषे उनके नाम भिन्न भिन्न दृढ होते हैं, तैसे मनरूपी बालक नानाप्रकारकी संज्ञा कल्पता है, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं, तातें भय किसका करता है, तूं निर्भय होउ, तेरा स्वरूप शुद्ध है, अरु निर्भय है, अविद्याके कारणकार्यतें रहित है, तिसविषे स्थित होउ, यह संसार तेरे फुरणेविषे हुआ है, आत्मा न सत्य कहिये, न असत्य कहिये, न जड कहिये, न चेतन कहिये, न प्रकाश है, न तम है, न शून्य है, न अशून्य है, अरु शास्त्रनें जो विभाग कहे हैं, यह जड है, चेतन है, सो इस जीवके जगावणेनिमित्त कहे हैं, आत्माविषे वास्तव संज्ञा कोउ नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, तातें दृश्यकी कलना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होउ, ब्रह्मातें आदि स्थावरपर्यंत सर्व कलनामात्र है, इसविषे क्या आस्था करणी, संसारके भाव दोनों तुल्य हैं, फुरणा जैसा भावका है, तैसा अभावका है, स्वरूपविषे दोनोंकी तुल्यता है, अरु व्यवहार कालविषे जैसा है, तैसाही है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्वप्रणामवर्णनं नाम शताधिक अष्टादशः सर्गः ॥ ११८ ॥ ॥ ॥ राम

उवाच ॥ हे भगवन्! भूमिकाका प्रसंग इहा चल्या था, तिसविषे सार तुम कहा सो मैं जाण्या, अब भूमिकाका विस्तार कहौ, अरु योगीका शरीर जब छूटता है, अरु स्वर्गके भोगकों भोगीकरि गिरता है, तब फिरि उसकी क्या अवस्था होती है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस योगीकों भोगकी वांछा होती है; तब स्वर्गकों प्राप्त होता है, अरु भोगकों भोगता है, जब उसकों अवर भी भोगणेकी इच्छा होती है, तब पवित्र स्थान अरु धनवान्के गृहविषे आय जन्म लेता है, मध्य मंडल मनुष्य लोकविषे प्राप्त होता है, जो भोगकी वांच्छा तिनकों अवर नहीं होती, तौ ज्ञानवान्के गृहविषे जन्म लेता है, केते काल उपरात तिसकों पिछला संस्कार आय फुरता है, तिसका स्मरण करिके आत्माकी उर आगे होता जाता है, जैसे कोउ पुरुष लिखता हुआ सोय जाता है, जब जागता है, तब उस लिखेकों देखी करि बहुरि आगे लिखता है, तैसे उह योगी पूर्वके अभ्यासकों पायकरि दिन दिन बढावता जाता है, अरु अज्ञानका संग नहीं करता, जो भोगके सन्मुख है, अरु आत्ममार्गतें बहिर्मुख है, अरु जो चुगली करणेवाले तिनका संग नहीं करता, सर्व अवगुण तिसकों त्याग जाते हैं, दंभ गर्व अरु राग दोष भोगकी तृष्णा यह स्वाभाविक तिसके छूटि जाते हैं, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, कोमलता दयातें आदि शुभ गुण तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं ॥ हे रामजी! इस निश्चयकों पायकरि वर्ण आश्रमके धर्म यथाशास्त्र करता हुआ संसारसमुद्रके पारकों निकट जाय प्राप्त होता है, पार नहीं भया, यह भेद है सो तीसरी भूमिका है, बहुरि मोहकों नहीं प्राप्त होता, जैसे चंद्रमाकी किरणां कदाचित तप्तकों नहीं प्राप्त होतियां तैसे तीसरी भूमिकावाला संसाररूपी गरतविषे नहीं गिरता ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका ब्रह्मरूप हैं, एताही भेद है, जो तीन भूमिका जाग्रत अवस्था हैं, चतुर्थ स्वप्न अरु पंचम सुषुप्ति है, षष्ठ तुरीया, सप्तम तुरीयातीत है ॥ हे रामजी! प्रथम तीन भूमिकाविषे संसारकी सत्यता भासती है, तातें जाग्रत कही है, अरु अवर चारों

विषे संसारका अभाव है, तातें जाग्रततें विलक्षण है, जाग्रतविषे घट पट आदिक सत् भासते हैं, घट घटही है, पट पटही है, अन्यथा नहीं, अपणा अपणा कार्य सिद्ध करते हैं, तातें अपणे कालविषे ज्यौंके त्यौं हैं, इसी प्रकार सर्व पदार्थ हैं, स्थावर जंगमकों जानता है, नामरूपकरि ग्रहण करता है, अरु हृदयविषे राग दोष नहीं धारता, जो विचार करिके तुच्छ जाणे है, सो संसारका अत्यंत अभाव नहीं जाण्या, अरु ब्रह्मस्वरूप भी नहीं जानता, काहेतें जो तिसकों स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, जब स्वरूपकों जाणै तब संसारका अत्यंत अभाव हो जावै, इन तीनों भूमिकाकरि संसारकी तुच्छता होती है, नष्टता नहीं होती, इनकों पायकरि जब शरीर छूटता है, तब अवर जन्मविषे उसकों ज्ञान प्राप्त होता है, अरु दिन दिनविषे ज्ञानपरायण होता है, जब दृढबुद्धि हुई, तब ज्ञान उपजता है, जैसे बीजके प्रथम अंकुर होता है, बहुरि टास फूल फल निकसते हैं, तैसे प्रथम भूमिका ज्ञानका बीज है, दूसरी अंकुर है, तीसरी टास है, चतुर्थ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, सो फल है, प्रथम तीन भूमिकावाला धर्मात्मा होता है, पुरुषोंविषे श्रेष्ठ है, तिसका लक्षण यह जो निरहंकार अरु असंगी धीर्य होता है, जिसकी बुद्धितें विषयकी तृष्णा निवर्त भई है, अरु आत्मपदकी इच्छा है, सो पुरुष श्रेष्ठ कहाता है, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरता है, शास्त्र मार्गतें उल्लंघित कदाचित् नहीं वर्तता, शास्त्रमार्गकी मर्यादासाथ अपणे प्रकृत आचारविषे विचरता सो पुरुष श्रेष्ठ है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पाछे तुमनें कहा जो जब उह पुरुष शरीर छोडता है, तब एक मूहूर्तविषे उसकों युग व्यतीत होता है, जन्मतें आदि मृत्युपर्यंत जैसी किसीकों भावना होती है, तैसा आगे भासता है, सो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, यह कहौ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जगत् जो तीनों काल भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं भासता, समानहीं है; जैसे इक्षुविषे मधुरता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, जैसे तिलोंविषे तेल है अरु मिरचविषे तीक्ष्णता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे तिलोंविषे तेल होता है,

तैसे ब्रह्मविषे जगत् कहूं सत्, कहूं असत्, कहूं जड, कहूं चेतन, कहूं शुभ, कहूं अशुभ, कहूं नरक, कहूं मृतक, कहूं जीवित, ब्रह्मा आदि काष्ठपर्यंत भाव अभावरूप होता है, सो सत् असत्तें विलक्षण है, आत्मसत्तातें सर्व सत्य है; अरु भिन्नकरि देखियें तौ असत्य है ॥ हे रामजी! जिनकों सत्य असत्य जाणता है, जो पृथ्वी आदिक पदार्थ सत्य भासता है, अरु आकाशके फूलादिक असत्य भासते हैं, सो दोनों तुल्य हैं, जो विद्यमान पदार्थ सत्य मानियें तौ आकाशके फूल भी सत् मानियें, जैसे स्वप्नविषे केई पदार्थ सत् भासते है, केई असत् भासते हैं, तैसे जाग्रतविषे भासते हैं, फुरणा दोनोंका समान है; जैसे सत्य पदार्थोंका फुरणा हुआ तैसा असत्का फुरणा हुआ, फुरणेतें रहित सत् असत् दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे जलविषे पवन करिके चक्र आवर्त उठते हैं, तैसे आत्माविषे फुरणे करिके संसार भासता है, इसकी भावना त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुझनें प्रश्न किया जो एक मुहूर्तविषे युग कैसे भासता है, तिसका उत्तर सुण, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आता है, तौ एक क्षणविषे वडा काल वीत्या भासता है, अवरका अवर भासता है, आश्चर्य तौ कछु नहीं, मोहतें सब कछु उत्पन्न होता है, भ्रम करिके दृष्ट आता है ॥ हे रामजी! पुरुष सोया है तौ एक आपही होता है, तिसविषे नाना प्रकारका जगत् भ्रम करिके भासता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि केई भ्रम देखता हैं, स्वरूपके जानणेविना भ्रमका अंत नहीं होता, तातें तूं अवर प्रश्न किसनिमित्त करता है, एक चित्तकों स्थिर करि देख, न कोउ संसार भासैगा, न कोउ जन्म मृत्यु भासैगा, न कोउ बंध मोक्ष भासैगा, केवल आत्माही भासैगा, जब संकल्प फुरता है, तब आपकों बंध जानता है, संकल्पतें रहित मुक्त जानता है, सो अविद्याकरि बंध जानता है, विद्याकरि मुक्त जानता है, अरु आत्मस्वरूप ज्यौंका त्यौं है, न बंध है, न मुक्त है, न विद्या है, न अविद्या है, केवल शांतरूप है, तातें सर्वदा सर्व प्रकार सर्व उरतें ब्रह्मही है, दूसरा कछु नहीं ॥ हे रामजी!

जब स्वरूपकी भावना हुई, तब संसारकी भावना जाती रहती है, यह सर्व शब्द कलनाविषे हैं, यह पदार्थ है, यह नहीं, आत्माविषे कोउ नहीं, जैसे पवन चलणे ठहरणेविषे एकही है, तैसे विश्व चित्तका चमत्कार है, ब्रह्मादि चीटिपर्यंत ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, अरु आत्माहीके आश्रय सर्व शब्द फुरते हैं, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे सम है, काहेतें जो दूसरा कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जो ब्रह्मसत्ताही है यह प्रश्न क्या है, आकाश क्या है, पृथ्वी क्या है, मैं क्या हौं, यह जगत् क्या है, यह प्रश्न बणतेही नहीं, एक मनकों स्थिरकरि देख, जो ब्रह्मा आदि चीटिपर्यंत कछु भी पदार्थ भासै तौ प्रश्न करियें, तातें यह पदार्थ भ्रम करिके भासते हैं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रम करिके भासता है, रूप अवलोक नमस्कार इनके शब्द कलनाविषे फुरे हैं, रूप कहिये दृश्य, अवलोक कहिये इंद्रियां, नमस्कार कहिये मनका फुरणा; सो सर्व मिथ्या हैं, आत्माविषे कोउ नहीं ॥ हे रामजी! आकाश आदिक जो पदार्थ हैं, सो भावनाविषे स्थित हुए हैं, जैसी भावना कराती है, तैसे पदार्थ सिद्ध होता है, अरु भासता है, जब संसारकी भावना उठि जावै, तब पदार्थ कोउ न भासै ॥ हे रामजी! सुषुप्तिविषे भी इसका अभाव हो जाता है तौ तुरीयाविषे कैसे भान होवै, जब स्वरूपतें गिरता है, तब इसकों संसार भासता है, अरु संसारविषे वासना करिके घटीयंत्रकी नांई फिरता है, प्रमाद करिके अबलग वहता जाता है, प्रमाद कहिये स्वरूपतें उतरीकरि अनात्माविषे अभिमान करणा, जो मैं हौं सो अज्ञान है, तिस करिके दुःख पावता है, जब अज्ञान नष्ट होवै, तब संसारके शब्द अर्थका अभाव हो जावै, अहंकारतें संसार होता है, संसारका बीज अहंकार है, अहंकार कहिये अनात्माविषे आत्मअभिमान करणा ॥ हे रामजी! आत्मा शुद्ध है, अहंके उत्थानतें रहित है, केवल शांतरूप है, अरु विश्व भी उहीरूप है, इसकी भावनाविषे दुःख है, यह संवितशक्ति आत्माके आश्रय फुरती है, जैसे तेलकी बुंद जलविषे डारिये तौ चक्रकी नांई फिरती है, तैसे संवेदन शक्ति

आत्माके आश्रित फुरती है, अरु ब्रह्म एक स्वरूप है, तिसका स्वभाव ऐसे है, जैसे मोरका अंडा अरु तिसका वीर्य एकरूप है, अपणे स्वभाव करिके वीर्यही नानाप्रकारके रंगकों धारता है, तौ भी मोरतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माके संवेदन स्वभाव करिके नानाप्रकारकी विश्व भासती है, परंतु आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्मरूप है, सम्यक्दर्शीकों नानाप्रकारविषे एक आत्माही भासता है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक शिला है, तिसविषे त्रिलोकीरूपी अनेक पुतलियां कल्पित हैं, जैसे एक शिलाविषे खुरपी पुतलियां कल्पता है, जो इसविषे एती पुतलियां हैं, सो उसके चित्तविषे हैं, जो शिलाविषे हुआ कछु नहीं, तैसे आत्मरूपी शिलाविषे चित्तरूपी खुरपी नानाप्रकारके पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है, सो सर्व आत्मरूप है, तातें पदार्थकी भावना त्यागिकरि आत्माविषे स्थित होहु, अरु यह संसार भी निर्वाच्य है, काहेतें जो ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, न कोउ उपजता है, न कोउ बिनसता है, कदाचित् भी ज्यौंका त्यौं आत्माही स्थित है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत् अभावप्रतिपादनं नाम शताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः॥ ११९॥ ॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! इस संसारका बीज अहंकार हुआ, इसका पिता अहंकार है, तौ मिथ्या संसार अविद्यमान जो विद्यमान भासता है, सो भ्रमरूप हुआ, जो भ्रमरूप है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति कहते हैं, जो इसका शरीर पिंडकरिके होता है, जो पिंडकरि होता है, तौ तुम कैसे भ्रम कहते हौ, अरु जो ब्रह्म है, तौ लोक शास्त्र श्रुति स्मृति क्यों पिंडकरि कहते हैं, इस मेरे संशयकों निवृत्त करौ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! मेरा कहणा सत् है, तैसेही है, अरु ब्रह्मविषे ब्रह्मतत्त्व स्वभाव है, अरु जगत्विषे जगत्का लक्षण भी उही है॥ हे रामजी! आदि जो किंचन हुआ है, चित्त शक्ति फुरी है, सो ब्रह्मरूप हुआ है, तिसविषे पदार्थका मनोराज्य हुआ है, यह आकाश है, यह पवन आदी हैं, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह सत्य है, यह झूट है, इत्यादिकरि जबलग

मनोराज्य है, तबलग सर्व मर्यादा ऐसेही है, बहुरि ब्रह्मविषे ऐसे हुआ जो जगत्की मर्यादाके निमित्त वेद कहता है, जो यह पदार्थ शुभ है, यह अशुभ है॥ हे रामजी! आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, मायारूप जगत्विषे मर्यादा है, जो न होवै, तौ अध ऊर्ध्व नीच ऊंच कवन कहै, यह मर्यादा भी वेदविषे नेति निश्चय हुआ है, जो यह शुभ कर्म हैं, इनके कियेतें स्वर्गसुख भोगते हैं, अरु यह अशुभ कर्म हैं, इनके कियेतें नरकदुःख भोगते हैं॥ ॥ हे रामजी! जैसे वेदविषे निश्चय किया है, तैसे यह पुरुष अपणी वासनाके अनुसार भोगता है॥ ॥ हे रामजी! यह चित्तशक्ति नेति होकरि ब्रह्मादिकविषे फुरी है, परंतु ऊनकों सदा स्वरूपविषे निश्चय है, तातें उह बंधायमान नहीं होते, अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्रने यह वेदमाला धारी है, जो जैसा कोउ कर्म करै, तैसा फल देते हैं, यह वेद सर्वकी नेति है॥ ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों संसारकी सत्यता दृढ भई है, सो जैसा कर्म शुभ अथवा अशुभ करते हैं तैसे शरीरकों धारते हैं, इसविषे संशय नहीं, जो शास्त्रमर्यादातें उल्लंघित वरतते हैं, अपणी इच्छाकरि सो शरीर त्यागि करि कोउ काल मूर्च्छित हो जाते हैं, मुहूर्तविषे जागिकरि बडे नरकोंकों चले जाते हैं, आत्मज्ञानविना अरु जिनकों शून्यभावना भई है, जो आगे नरक स्वर्ग कोउ नहीं, लोकपरलोकके भयकों त्यागिकरि शास्त्र वाह्य वरतते हैं, तौ मरीकरि पत्थर वृक्षादिक जड योनिकों पावते हैं, चिरकालतें उनकी वासना परिणमती है, फेरि दुःखभागी होते हैं, अरु जिनकों आत्मभावना हुई है, संसारकी भावना निवृत्त भई है तौ शास्त्र विहित करै, अथवा अविहित करै, तिनकों बंधन कोउ नहीं॥ हे रामजी! चित्तरूपी भूमि है, इसविषे निश्चयरूपी जैसा बीज बोता है, तैसाही कालकरि उगवता है, यह निःसंशय है, तातें तुम आत्मभावनारूपी बीज बोहु, जो सर्व आत्मा है, ऐसी भावना करहु, तब सिद्धही आत्मा भासैगा, अरु जिनकों संसारका निश्चय हुआ है, तिनकों संसार है॥ हे रामजी! जो पुरुष धर्मात्मा है, तिनकों उसी वासनाके अनुसार भासता

है, सो धर्मात्मा भी दो प्रकारके हैं, एक सकामी, एक निष्कामी, जो धर्म करते हैं, अरु पापरूपी कामनासहित हैं, तौ स्वर्गभोग भोगीकरि बहुरि गिरते हैं, अरु जो निष्काम हैं, ईश्वरार्पण कर्म करते हैं, तिनका अंतःकरण शुद्ध होता है, बहुरि ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यह भी संसारविषे मर्यादा है, जैसा किसीकों निश्चय होता है, तैसाही संसारकों देखता है, पिंड करिके भी शरीर होता है, काहेतें जो यह भी आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, सो जैसे आदि नेतिविषे निश्चय हुआ है, तैसे होता है, जो पवन है, सो पवनही है, जो अग्नि है, सो अग्निही है, इसी प्रकार कल्पपर्यंत जैसे मनोराज्य हुआ है, तैसेही स्थित है, जैसे जल नीचेहीकों जाता है, ऊंचे नहीं जाता, तैसे जो आदि किंचनविषे निश्चय हुआ है, कल्पपर्यंत सोई है॥ हे रामजी ! जगत् व्यवहारविषे तौ ऐसे है, अरु परमार्थतें दूसरा कछु हुआ नहीं, इस जीवने आकाशविषे मिथ्या देह रची है, परमार्थतें केवल निराकार अद्वैत आत्मा है, शरीर इसकेसाथ है नहीं, तातें जगत् कैसे होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पिंडनिर्णयो नाम शताधिकविंशतितमः सर्गः ॥ ॥ १२० ॥ ॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे प्रश्न उपर एक इतिहास है, बृहस्पति अरु बलराजाका सो श्रवण कर, जब छ कल्प व्यतीत हुए थे, दूसरे परार्धके तिस दिनके जुगविषे राजा बल होत भया, सो कैसा था, पराक्रमी मूर्त्ति था; तिस राजा बलनें संपूर्ण दैत्यों अरु राक्षसोंकों जीतिकरि अपणे वश किया, अपणी आज्ञा तिन पर चलाई, अरु राजा हुआ, अरु इंद्रकों भी जीतिकरि अपणे वश किया, पूर्ण ऐश्वर्य तिसका एक नगर की नांई ले लिया था, देवता किंनरपर तिसकी आज्ञा चली, अरु भूलोक भी लिया, जब सबकों ले रहा, तब धर्म आचारकों ग्रहण किया, जैसे धर्मात्माका आचार है सो ग्रहण किया, एक समय सर्व सभा बैठी थी, अरु यह कथा चली, जो जन्म कैसे होता है, अरु मृत्यु कैसे होता है, तब राजा बली बृहस्पति देवगुरुसों प्रश्न करत भया॥ हे ब्राह्मण ! इह पुरुष जब मृतक होता है, तब शरीर तौ भस्म हो जाता है, बहुरि

कर्मोंके फल कैसे भोगता है, अरु शरीविना आता जाता कैसे है, सो कहौ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! इस जीवकों देह है नहीं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु है नहीं तैसे इससाथ शरीर भासता है, अरु है नहीं, यह जीव न जन्मता है, न मरता है, न भस्म होता है, न जलिके दुःखी होता है, तत्त्वतें तत्त्व यह सदा अच्युतरूप है, स्वरूपके प्रमादतें आपकों दुःखी जानता है, जो मैं इनकों भोगता हौं, अरु जन्म्या हौं, एता काल हुआ है, यह मेरी माता है, यह पिता है, मैं इनतें उपजा हौं, बहुरि आपको मृतक हुआ जानता है ॥ हे राजन्! भ्रमकरि ऐसे देखता है, जैसे निद्रा भ्रमकरि स्वप्नविषे देखता है, तैसे अज्ञान करिके यह जीव आपकों मानता है, जब मृतक होता है, तब जानता है, जो मेरा शरीर पिंडकरी हुआ है, अब मैं दुःखसुखकों भोगौंगा, जैसे स्वप्नविषे आकाश होता है, तहां वासनाकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, तैसे मरिकरि अपणेसाथ शरीर देखता है, अरु दुःखसुखका भागी होता है, अरु परमार्थतें इसकेसाथ शरीरही नहीं, तौ जन्म मृत्यु कैसे होवै, स्वरूपतें प्रमादकरि देहधारीकी नांई स्थित हुआ है, तिस देहसाथ मिलीकरि जैसी जैसी भावना करता है, तैसाही फल भोगता है, वासनाके अनुसार जैसी इसकों भावना होती है, तैसा आगे शरीर देखता है, अरु पंचभौतिक संसारकों देखता है, इस प्रकार भ्रमता है, अरु जन्मता मरता आपकों देखता है, जैसे समुद्रतें तरंग उठता है, अरु मिटि जाता है, तैसे शरीर उपजता अरु नष्ट होता है, शरीरके संबंधकरि उपजता अरु बिनसता भासता है, यह आश्चर्य है, जो आत्मा ज्योंका त्यों स्वभावकरि स्थित है, तिसविषे वासनाके अनुसार विश्वकों देखता है ॥ हे राजन्! विश्व इसके अंतर स्थित है, भावनाके अनुसार आगे देखता है, इस जीवविषे विश्व है, अरु विश्वविषे जीव नहीं, जैसे तिलविषे तेल है, अरु तेलविषे तिल नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, भूषणविषे स्वर्ण कल्पित नहीं, तैसे जीवविषे विश्व कल्पित है, इसके आश्रय फुरती है, सो विश्व सत् भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, सत् इस कारण नहीं, जो च

लरूप है, स्थित नहीं, अरुअसत् इसतें नहीं, जो विद्यमान भासती है, तातें इसकी भावना त्याग, यह दृश्य मिथ्या है, इसका अनुभव मिथ्या है, अरु इसके जानणेवाला अहंकार जीव भी मिथ्या है, जैसे मरुस्थलविषे जल मिथ्या है, तैसे आत्माविषे अहंकार जीव मिथ्या है॥हे रामजी! जबलग शास्त्रके अर्थविषे चपलता है, अरु स्थितितें रहित है, तबलग संसारकी निवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यके फुरणे अरु अहंकारतें जड हो जावै, तब इसकों आत्मपदकी प्राप्ति होवै, जबलग दृश्यकी उर फुरता है, चेतन सावधान है, तबलग संसारविषे भ्रमता है ॥ हे राजन्! आत्मा न कहूं जाता है, न आता है, न जन्मता है, न मरता है, जब चैत्य अरु चित्तका संबंध मिटि जावै तब आनंदरूपही है, चैत्य कहियें दृश्य अरु चित्त कहियें अहंकार, संवित जब दोनोंका संबंध आपसमें मिटि जावैगा, तब शेष आत्माही रहैगा, सो ब्रह्म है, आत्मा है, अरु शिवपद है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं, सोइ शेष रहैगा, सो अनुभव निर्वाच्य पद है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जिस युक्तिकरि इसकी इच्छा अनिच्छा निवृत्त होवै सो युक्ति श्रेष्ठ है, जबलग इसकों फुरणा उठता है, जो यह भाव है, यह अभाव है, तबलग इसकों जीव कहते हैं, जब भावअभावका फुरणा मिटि जावै, तब जीवसंज्ञा भी चलती रहै, तब शिवपद आत्माकों प्राप्त होवै, तहां वाणीकी गम नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलसंवादवर्णनं नाम शताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ १२१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार बृहस्पतिनें बल राजाकों कहा, सो तेरे प्रश्नके उत्तरनिमित्त मैं कहा है ॥ हे रामजी! जबलग इसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है, तबलग जैसे कर्म करैगा, तैसा शरीर धारैगा ॥ हे रामजी! जिस वस्तुकों चित्त देखता है, तिसकी उर अवश्य जाता है, तिसके देखणेका संस्कार इसके अंतर होता है, जिस पदार्थकों इसनें सत् जाण्या है, तिस पदार्थका संस्कार स्थित हो जाता है, अरु समयकरि उह संस्कार प्रगट होता है, जैसे मोरके अंडविषे शक्ति होती है, जब समय आया, तब नानाप्रकारके

रंग तिसविषे प्रगट भासते हैं, तैसे चित्तका संस्कार भी समय पायकरि जागता है ॥ हे रामजी! सो चित्त अज्ञानतें उपजा है, बहुरि बृहस्पतिनें कहा ॥ हे राजन्! बीज पृथ्वीपर उगता है, आकाशविषे नहीं उगता, जैसा बीज पृथ्वीविषे बोता है, तैसाही फल होता है, सो इहां अहंरूप जो है, अपणा होणा सो पृथ्वी है, जैसी जैसी भावनाकरि कर्म करता है, तैसा तैसा चित्तरूपी पृथ्वीपर उत्पन्न होता है, बहुरि फल होता है, जो उन कर्मोंके अनुसार धारता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, अरु ज्ञानवान् जो है, सो आकाशरूप है, सो आकाशविषे बीज कैसे उपजै, बीज भावनाकरि अज्ञानीरूपी पृथ्वीविषे उगता है ॥ बल उवाच ॥ ॥ हे देवगुरु! जीव जीवता होवै अथवा मृतक होवै, इसकों जो अनुभव होता है, सो अपणी भावनाहितें होता है, तातें जब यह मृतक हुआ, अरु इसकी पिंडादिकविषे भावना न हुई, तौ फेर इसका शरीर कैसे होता है, सुखदुःख भोगणेवाला जो हुआ तौ अकृत्रिम देह हुआ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! पिंडदान आदिक क्रिया न होवै, अरु इसके अंतर भावना है, अरु तिसी समय किसी न किया तो भी उह जो अंतर भावना है, सोइ कर्मरूप है, उसीकरि भासि आता है, अरु जो उसके अंतर भावना नहीं, अरु किसी बांधवनें इसके निमित्त पिंडदान किया, तौ भी उसकों भासि आता है, काहेतें जो उह भी इसकी वासनाविषे स्पंद है ॥ हे राजन्! जो अज्ञानी जीव है, जिसकों अनात्मविषे आत्मबुद्धि है, तिनके कर्म कहां गये हैं, जो उह कर्म करते हैं सोइ उनके चित्तरूपी भूमिविषे पडे उगते हैं, उनके शरीरकी क्या संख्या है, अनेक वासनारूपी शरीर धारते हैं, ज्ञानविना स्वप्नवत् ॥ ॥ बल उवाच ॥ हे देवगुरु! यह निश्चयकरि मैं जान्या है, जो जिसकों निष्किंचनकी भावना होती है, सो निष्किंचन पदकों प्राप्त होता है, अरु संसारकी उरतें शिलाकी नांई हो जाता है, जैसी इसकी भावना होती है, तैसा स्वरूप हो जाता है, जब संसारतें पत्थरवत् होवै तब मुक्त होवै ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ हे राजन्! निष्किंचनकों जब जा

नता है, तब संसारकी उरतें जड होता है, राग दोष संसारका नहीं फुरता, इसीका नाम जड है, अरु केवल सार पदविषे स्थित होता है, जब गुण इसकों चलाय नहीं सकै, तब जाणियें, जो निष्किंचन पदकों प्राप्त हुआ है, सोई निःसंदेह मुक्ति है ॥ ॥ हे राजन्! जबलग संसारकी सत्यता चित्तविषे स्थित है तबलग इसकों वासना है, जबलग वासना है, तबलग संसार है, अरु संसारके अभावविना इसकों शांति नहीं प्राप्त होती, सो स्वरूपके प्रमादकरि चित्त हुआ है, चित्ततें वासना हुई है, अरु वासनातें संसार हुआ है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि कोउ फुरणा न फुरै, निष्किंचन भाव हो जावै, तब शांतभागी होवें ॥ हे राजन्! जिस युक्तिसाथ, जिस क्रमसाथ यह निष्किंचनरूप होवै, सोइ करै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार सुरपुरविषे असुरनायककों सुरगुरुनें कहा था, सो मैं तेरे आगे पिंडदानादिकका क्रम कहा है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बृहस्पतिबलसंवादो नाम शताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः ॥ १२२ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! भावै जीवता होवै, भावै मृतक होवै, जो कछु इसके चित्तसाथ स्पर्श हुआ होवैगा, तिसका अनुभव अवश्य करैगा, जैसे मोरके अंडेविषे रस होता है, उह समयकरि विस्तारकों पावता है, तैसे इसके अंतर जो वासनाका बीज है, जो उह प्रगट नहीं भासता, तौ भी समयकरि विस्तारवान् होता है, जबलग चित्त है, तबलग संसार है, जब चित्त नष्ट होवैं, तब सब भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! सो चित्त भी असत् है, तौ विश्व भी असत्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे विश्व भ्रम है॥ हे रामजी! हमकों न चित्त भासता है, न विश्व भासता है, मैं भी आकाश हौं, तूं भी आकाशरूप है, यह चित्त स्वरूपके प्रमाद करिके उपजता है, जैसे जहा काजल होता है, तहां श्यामता होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां वासना होती है, जब ज्ञानरूपी अग्निकरि वासना दग्ध होवै, तब चित्त सत्पदकों प्राप्त होता है, अरु जीवितसंज्ञा निवृत्त होती है ॥ हे रामजी! चित्तके उपशमका उ

पाय मुझतें श्रवण करु, तिसकरि चित्त निर्वाण हो जावैगा, जो सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनकरि चित्त नष्ट हो जावैगा, तिनविषे तीन भूमिका तेरे तांई कही हैं, क्रम करिके, अरु चार कहणी रहती हैं॥ हे रामजी! प्रथम तिन भूमिकाविषे जिसकों एक भी प्राप्त भई है, तिसकों महापुरुष जाण, सो संसारतें कैसा हो जाता है, सो श्रवण करु, मान मोह तिसके निवृत्त हो जाते हैं, अरु संग दोष तिसकों नहीं लगता, अरु उसविषे विचार स्थित होता है, कामना सर्व नष्ट हो जाती है, अरु राग दोष तिसकों नहीं रहता, सुखदुःखविषे सम रहता है, ऐसा अमूढ पुरुष अव्यय पदकों प्राप्त होता है, जेते गुण तीसरी भूमिकाविषे प्राप्त हुए पाइते हैं, अरु चित्त नष्ट हो जाता है, तब संसारकों नहीं पाइता, जैसे दीपकसाथ देखियें तौ अंधकारकों नहीं पाइता॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तभावप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः॥ १२३॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब तीसरी भूमिका दृढ पूर्ण होती है, अरु दृढ अभ्यासकरि चउथी उदय होती है, तब अज्ञान नष्ट हो जाता है, अरु सम्यक्ज्ञान चित्तविषे उदय होता है, तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् शोभा पावता है, अरु आदि अंततें रहित निर्विभाग चेतनतत्त्वविषे योगीका चित्त स्थित होता है, अरु सर्वकों सम देखता है, जिस योगीकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त होती है, तिसके नानाप्रकार भेदभाव निवृत्त हो जाते हैं, अरु अभेद सर्व आत्मभाव उदय होता है, जगत् तिसकों स्वप्नकी नांई भासता है, अरु इंद्रियांका व्यवहार स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे अर्ध सुषुप्ति जिसकों होती है, तिसकालविषे खाणा पिणा रसतें रहित हो जाता है, तैसे चतुर्थ भूमिकावालेका व्यवहार रसतें रहित होता है, जैसे सूर्य अपणे प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे तिसकों आत्माका प्रकाश उदय होता है, अरु सर्व कल्पना तिसकी नाश हो जाती है, न किसी पदार्थविषे राग रहता है, न किसीविषे दोष रहता है, संसारसमुद्रविषे डुबावणेवाले राग अरु दोष हैं, इष्ट पदार्थविषे राग होता है, अनिष्टविषे दोष होता है, सो रागदोष दोनोंका तिसकों अभाव हो जाता है, तातें संसारसमुद्र

विषे गोते नहीं खाता, तिसके चित्तकों कोउ मोहित नहीं करि सकता ॥ हे रामजी! जबलग तृतीय भूमिका होती है, तबलग उसकों जाग्रत अवस्था होती है, जब चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई, तब जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, सर्व जगत्कों क्षणभंगुर नाशवंत देखता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य भावनाका अभाव हो जाता है॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका लक्षण मुझकों ज्यौंका त्यौं कहौ, तुरीया अरु तुरीयातीत भी कहौ, बडे जो हैं सो शिष्यकों कहते खेदवान् नहीं होते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो तत्त्वका विस्मरण है, अरु पदार्थकी भावना है, नाशवंत पदार्थकों सत्की नांई जाणना सो जाग्रत है, जो पदार्थविषे भावअभावकी सत्यता होती है, अरु जगत्कों मिथ्या भावनामात्र जाणना सो स्वप्न कहते हैं, जाग्रत अरु स्वप्न जिसविषे लय हो जावैं, सो सुषुप्ति है, जो ज्ञानभाव करिके भेदकी शांति हो जावै, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका अभाव होवै, ऐसी जो निर्मल स्थिति है सो तुरीया है ॥ हे रामजी! अज्ञानी जीव संसारकों वर्षाकालके मेघकी नांई देखते हैं, जो तिनकों दृढ होकरि भासता है, अरु जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघकी नांई संसारकों देखता है, अरु जिसकों पंचम भूमिका प्राप्त भई है, सो शरत्कालके मेघ नष्ट हुएकी नांई देखता है, जैसे निर्मल आकाश होता है, तैसे उसकों निर्मल भासता है, सो तीनोंका वृत्तांत सुण, अज्ञानी जगत्कों जाग्रतकी नांई देखता है, अरु दृढसत्यता जगत्की तिसकों भासती है, तिसकरि रागदोष उपजता है, अरु चतुर्थ भूमिकावाला ऐसे देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ वर्षातें रहित होता है, अरु जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तैसे तिसकों सत्यता जगत्की नहीं भासती, काहेतें जो स्मृति तिसकों स्वप्नकी होती है, स्वप्नवत् देखता है, तातें उसकों रागदोष नहीं उपजता है, अरु पंचम भूमिका प्राप्तिवाला जगत्कों सुषुप्तिकी नांई देखता है, जैसे शरत्कालका मेघ नष्ट हुआ बहुरि नहीं दिखता, तैसे उसकों संसारका भान नहीं होता, अरु चेष्टा उसकी स्वाभाविक पडी होती है, जैसे क

मल स्वाभाविकही खुलता अरु मुंदि जाता है, तैसे तिसकों यत्न कछु नहीं, चेष्टांविषे जैसा प्रतियोगी तिसकों स्वाभाविक आय प्राप्त हुआ सो करता है, जैसे कमलके खुलणेका प्रतियोगी सूर्य हुआ तब खुलि गया, अब जब मुंदणेका प्रतियोगी रात्रि भई तब मुंदि जाता है, उसकों खेद कछु नहीं, तैसे तिस पुरुषकी अहंममतातें रहित स्वाभाविक चेष्टा होती है ॥ हे रामजी ! अहंताममतारूपी जाग्रततें उह पुरुष सुषुप्त हो जाता है, अरु संपूर्ण भावरूप जो शब्द अरु अर्थ हैं, तिनका तिसकों अभाव हो जाता है, अशेष शेषका मनन नष्ट हो जाता, पशु पक्षी मनुष्य देवता भला बुरा इत्यादिक भिन्न भिन्न पदार्थकी भावना तिसकों नहीं रहती, द्वैतकलना नष्ट हो जाती है, एक ब्रह्मसत्ताही भासती है, तिसकों संसार नहीं भासता ॥ हे रामजी ! अहंतारूपी तिलतें संसाररूपी तेल उपजता है, अरु अहंतारूपी फूलतें संसाररूपी गंध उपजती है, संसारका कारण अहंता है, सो अहंता जिस पुरुषकी नष्ट हो जाती है, उह पुरुष इंद्रियांके इष्टकों पायकरि हर्षवान् नहीं होता, अरु अनिष्टके प्राप्त हुए दोष नहीं करता, ऐसे आपकों नहीं जानता, जो मैं खडा हौं, अरु इहां बैठा हौं, अरु चलता हौं, आपकों सर्वदा आकाशरूप जानता है, न अंतर देखता है न बाहिर देखता है, न आकाशकों देखता है, न पृथ्वीकों देखता है, सर्व ब्रह्मही देखता है, तिसकों इतर कछु नहीं भासता, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका साक्षी रहता है, अहंकारका भी साक्षी, इंद्रियांका भी साक्षी, अरु विश्वका भी है, इनके साथ, स्पर्श कदाचित् नहीं करता, जैसे ब्राह्मण चंडालसाथ स्पर्श नहीं करता, अरु जैसे बीजतें अंकुरी होती है बहुरि अंकुरीतें टास होते हैं, इस प्रकार पदार्थ परिणामी हैं, अरु आकाश तिनविषे ज्योंका त्यों रहता है, काहेतें जो उनके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे उह पुरुष द्रष्टा दर्शन दृश्यतें अतीत रहता है, जैसे मरुस्थलविषे जल असत् है, तैसे उस पुरुषकों त्रिपुटी असत्य है, त्रिपुटी अहंता तिस पुरुषकी नष्ट भई है, तातें भेदबुद्धि भी नहीं रहती, तिसीतें शांत है, अरु निर्मल है, संसारतें सुषुप्त है, अरु चेतन घनता करिके

पूर्ण है, सर्वदा शांतरूप है, जिन नेत्रकरि संसार जानता है, सो तिनतें अंध हुआ है, अर्थ यह जिस मन करि फुरणा होता है, तिस मनकों नाश किया है, अरु भय क्रोध अहंकार मोह तिस पुरुषविषे दिखते हैं, तौ भी उसके हृदयविषे कछु स्पर्श नहीं करते, जैसे पक्षी आकाशविषे आलणा भी करता है, परंतु आकाशकों स्पर्श नहीं करि सकता, तैसे उस पुरुषकों विकार कोउ स्पर्श नहीं करता॥ हे रामजी! तिस पुरुषके संपूर्ण संशय नष्ट हो गये हैं, सर्वदा स्वरूपविषे स्थित है, अरु शांतरूप है, आत्मातें इतर किसी सुखकी वांछा नहीं करता, अरु सर्व संकल्प तिसके नष्ट हुए हैं, अरु आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, जाग्रतकी नांई दृष्ट आता है, अरु सर्वदा जाग्रततें सुषुप्त है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पंचमभूमिकावर्णनं नाम शताधिकचतुर्विंशतितमः सर्गः॥ ॥१२४॥ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत जाग्रत है, अरु चतुर्थ भूमिकाविषे जाग्रत अवस्था स्वप्नवत् देखता है अरु पंचम भूमिकावाला संसारतें सुषुप्त होता है, अरु छठी भूमिकावाला तुरीयापदविषे स्थित होता है, अरु सर्वदा अक्रिय है, किसी क्रियाविषे बंधमान नहीं होता, सर्वकाल आनंदरूप है, अरु भिन्न होकरि आनंदकों भोगता नहीं, आपही आनंद है, केवल अपणे आप स्वतः स्थित है, अरु सर्वदा निर्वाण है॥ हे रामजी! सर्व क्रियाविषे यथाशास्त्र विचरता दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य है, उसकों किसी साथ स्पर्श नहीं, जैसे आकाशविषे सर्व पदार्थ भासते हैं, अरु आकाशका स्पर्श किसीसाथ नहीं, तैसेही सर्व क्रिया तिसविषे विद्यमान दृष्ट भी आती हैं, तौ भी अंतरतें किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, काहेतें, जो क्रियाविषे बंधमान करणेहारा अहंकार था, सो तिसका नष्ट हो गया है, केवल शांतरूप है, अहंका फुरणा चिन्मात्रविषेतें निवर्त भया है, चिन्मात्रतें उत्थान अहंभावका, सोई अज्ञान है, अरु दुःखदायी है, जब अहंभाव निवर्त भया, तब कोउ कर्म स्पर्श नहीं करता, यद्यपि विश्व तिसकों दृष्ट भी आता है, तौ भी वा

स्तवकरि नहीं देखता, तिसकों सर्व ब्रह्मही भासता है, खाता है, अरु नहीं खाता है, देता भी है, अरु कदाचित् नहीं दिया, लेता है, तौ भी कदाचित् किसीतें कछु नहीं लिया है, चलता है, परंतु कदाचित् नहीं चल्या ॥ हे रामजी! जेते कछु देश काल वस्तु पदार्थ हैं, तिसकों सर्वविषे आत्मभाव होता है, यद्यपि प्रत्यक्ष चेष्टा उसविषे दिखती है, तौ भी तिसके हृदयविषे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे खाता पीता लेता देता आपकों भासता है, अरु जागेतें सर्वका अभाव हो जाता है, तैसे जो पुरुष परमार्थ सत्ताविषे जाग्या है, तिसकों गुणकी क्रिया अपणेविषे कोउ नहीं भासती, अरु जो करता है, तिसविषे अभिलाष नहीं, तिसकी चेष्टा स्वाभाविक होती है, अपणेनिमित्त कर्तव्य कछु नहीं, ऐसे भगवान्नें भी कहा है, अरु सर्व आत्माही देखता है, आकाश पृथ्वी सूर्य ब्राह्मण हस्ती श्वान चंडाल आदिक सर्वविषे आत्मभाव देखता है, अरु आकारकों मृगतृष्णाके जलवत् देखता है, जो अत्यंत अभाव है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य भी उसकों आकाशवत् भासते हैं, अरु निर्मल आकाशवत् शांतरूप है, अहंभावतें रहित केवल चिन्मात्रविषे स्थित है, ग्रहण त्यागतें अतीत अरु सर्व कलनातें रहित निर्वाण पद है, केवल स्वच्छ निर्मल आकाशरूप स्थित है, अहं मम आदिक चिद्ग्रंथी तिसकी भेदी है, चिद्जड कहियें अनात्मविषे अहं अभिमान, सो तिसका नष्ट भया है, केवल शांतरूप हो रहता है, जैसे क्षीरसमुद्रतें मंदराचल पर्वत निकस्या, अरु शांतरूप हुआ, तैसे रागदोषरूपी क्षोभ करणेवाले इसके अंतःकरणरूपी पर्वत निकसी गया, तब शांतरूप अक्षोभ हुआ, परम शोभाकरि शोभता है, जैसे विश्वकर्मानें सूर्यका मंडल रचा है, अरु प्रकाश करिके शोभा पावता है, तैसे ज्ञानरूपी प्रकाशकरि प्रकाशता है, जैसे चक्री फिरता फिरता रहि जाता है, अरु शांतिकों प्राप्त होता है, तैसे अज्ञानकरि फिरता फिरता ठहर्या हुआ, तिसकरि सदा शांतिकों प्राप्त भया है, अरु अपणे आपकरि प्रकाशता है, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे कलनारूपी पवनतें रहित पुरुष अपणे आपकरि प्रकाशता है, अरु सर्व

दा निर्मल है, एकरस है, जैसे घटके अंतर भी शून्य है, अरु बाहिर भी शून्य है, तैसे देहके अंतर बाहिर आत्मा है, जैसे जलविषे घट राखियें तिसके अंतर बाहिर जल होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आपकरि अंतर बाहिर पूर्ण हो रहा है, अरु एकरस है, द्वैत कलनाकों नहीं प्राप्त होता, अरु तिस पदकों पायकरि आनंदमान है, जैसे कोउ मारणेके निमित्त पकड्या हुआ तिसकी रक्षा होवै, तौ बडे आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह पुरुष आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ आधिव्याधितें छूटा आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे उह ज्ञानवान् आनंदकों प्राप्त हुआ है, जैसे कोउ पैंढेकरि थका हुआ शय्यापर आय विश्राम करै, अरु आनंदकों प्राप्त होता है, तैसे ज्ञानवान्कों आनंद है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि आनंदवान् होता है, तैसे उह पुरुष अपणे आनंदकरि घुरम है, जैसे काष्ठके जलेतें स्वच्छ अग्नि धुंएतें रहित प्रकाशती है, तैसे ज्ञानवान् अज्ञानरूपी धुंएतें रहित शोभता है ॥ हे रामजी! जब संसारकी उर देखता है, तब अग्निकरि जलता हुआ आपतें जुदा देखता है, ज्ञानरूपी पर्वत ऊपर स्थित होकरि जलता देखता है ॥ हे रामजी! यह जो कहा है संसारकों जलता देखता है, सो ऐसे भी नहीं फुरता, जो मैं ज्ञानी हौं, यह संसार है, स्वरूपकी अपेक्षाकरि यह कहा है, जो संसार उसकों दुःखदायी भासता है, आनंदतें रहित उह परमानंदकों प्राप्त भया है; बहुरि कैसा है, जो सत् असततें रहित आपणा आप है, तिसविषे स्थित है, जैसे पर्वत अंतर बाहिर अपणे आपविषे स्थित है, अरु एकरस है, तैसे उह पुरुष एकरस है, अरु संसारविषे जाग्रत होकरि चेष्टा करता है, अरु अंतर संसारकी भावनातें रहित है, अरु तिस पदकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, श्रवण कर, केई ब्रह्म कहते हैं, केई चेतन कहते हैं, आत्मा कहते हैं, साक्षी कहते हैं, अरु कालवाले उसीकों काल कहते हैं, ईश्वरवादी ईश्वर कहते हैं, सांख्यवाले प्रकृति कहते हैं, इत्यादिक जो संज्ञा है, सर्व उसीके नाम हैं, तिसतें इतर नहीं, तिस पदकों संत जन जाणते हैं ॥

हे रामजी! ऐसे पदकों पायके अपणे आपकरि शोभता है, जैसे मणिके अंतर बाहिर प्रकाश होता है, तैसे उह पुरुष अंतर बाहिर शोभता है, अपणे स्वरूपकरि सदा घुरम रहता है, जो पुरुष छट्ठी भूमिकाविषे स्थित है, तिसके यह लक्षण होते हैं, संसारतें सुषुप्त हो जाता है, अरु स्वरूपविषे चेतन होता है, जीवत्व भाव तिसका चलता रहता है; जीवत्व कहियें परिच्छिन्नता, जैसे घटकी उपाधिकरि घटाकाश परिच्छिन्न भासता है, जब घट भग्न हुआ, तब घटाकाश महाकाश एक हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घटके भग्न हुए आत्माही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे षष्ठभूमिकोपदेशो नाम शताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ १२५ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसतें अनंतर जब सप्तम भूमिका पुरुषकों प्राप्त होती है, तब आपकों आत्माही जानता है, अरु भूतका ज्ञान जाता रहता है, केवल आत्मत्वमात्र होता है, दृश्यका ज्ञान नहीं रहता, अरु यह भी ज्ञान नहीं रहता जो विश्व मेरे आश्रय फुरती है, देहसहित होवै अथवा विदेह होवै, उसकों आत्मातें उत्थान कदाचित् नहीं होता, जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मस्वरूपविषे स्थित है, अरु चेष्टा भी स्वाभाविक होती है, जैसे बालक पींघूडेविषे होता है, तिसके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे उसकी चेष्टा खान पान आदिक स्वाभाविक होती है, जैसे काष्ठकी पुतली तागे करिके चेष्टा करती है, तैसे प्रारब्धवेगके तागेकरि उसकी चेष्टा पडी होती है, अपणी इच्छा उसकों कछु नहीं रहती ॥ हे रामजी! जैसी अवस्थाकों सप्तम भूमिकावाला प्राप्त हुआ है, सो आपही जानता है, इतर कोउ जाणी नहीं सकता, जिसका चित्त साथ है, अरु जिसका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, सो भी नहीं जाणी सकता, जिसकों उह पद प्राप्त हुआ है सोइ जाणै ॥ हे रामजी! जीवन्मुक्तका चित्त सत्पदकों प्राप्त हुआ है, अरु तुरीयापदविषे स्थित है, इसका चित्त निर्वाण हो गया है, तुरीयातीत पदकों प्राप्त भया है, अरु विदेहमुक्त है, तिसकों अहंभावका उत्थान कदाचित्

नहीं होता, सत्‌रूप है, अरु असत्‌की नांईं स्थित है ॥ हे रामजी! उह पुरुष तिस पदकों प्राप्त हुआ है, जिसकों वाणीकी गम नहीं, परंतु कछु कहता हौं, सो पद शुद्ध है, अरु निर्मल है, अद्वैत है, अरु चेतन ब्रह्म है, कालका भी काल भक्षण करणेहारा केवल चिन्मात्र है, अरु ज्यौंका त्यौं अच्युत पद है, तिस पदकों पायकरि ऐसे होता है, जैसे वस्त्र ऊपर मूर्त्ति लिखी है, तैसे उत्थानतें रहित है, अहं ब्रह्मका उत्थान भी नहीं रहता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तमभूमिकालक्षणविचारो नाम शताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ १२६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह सप्त भूमिका तेरे तांईं कही है, जो ज्ञानकी प्राप्ति इनहीकरि होती है, अन्य साधनकरि ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती ॥ हे रामजी! पुरुष ज्ञानवान् हुआ तब जाणिये, जब तिसकी वृत्ति प्रथम भूमिकाविषे स्थित हुई है, तातें तुम भूमिकाकी उर चित्तरूप चरण राखौ, तब तुमकों स्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी! तीसरी भूमिकापर्यंत सर्व कामना निवर्त होती है, एक आत्मपदकी कामना रहती है, जब तिस अवस्थाविषे शरीर छूटि जावै, तब अवर जन्म पायकरि ज्ञानकों प्राप्त होता है, अरु जब चतुर्थ भूमिकाविषे प्राप्त हुए शरीर छूटै, तब बहुरि जन्म नहीं पावता, काहेतें जो आत्मपदकी प्राप्ति हुई बहुरि कछु पावणेकी इच्छा नहीं रहती, जन्मका कारण इच्छा है, जब इच्छा कछु न रही, तब जन्म भी न रहा, जिसकों चतुर्थ भूमिका प्राप्त भई है, तिसकों स्वरूपकी प्राप्ति भई है, बहुरि इच्छा कैसे होवै, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे उसका चित्त ज्ञान अग्नि करिके दग्ध हुआ है, जो सत् पदकों प्राप्त हुआ है, इसीतें जन्म नहीं लेता, अरु मरता भी नहीं, संसारकों स्वप्नवत् देखता है, अरु पंचम भूमिकावाला सुषुप्तकी नांईं होता है, अरु छट्ठी भूमिका साक्षीरूप तुरीया पद है, सप्तम तुरीयातीत निर्वाच्य पद है ॥ हे रामजी! मेरे एते कहणेका प्रयोजन यही है, जो वासनाका त्याग करु, अरु अचित्त पदकों प्राप्त होहु, सो वासना क्या है, इसका अभिमान होणाही वासना है,

जब इसका अभिमान निवर्त भया, तबही शांति हुई, इस परिच्छिन्न अहंकार रहणा नहीं, आत्माके अज्ञानतें हुआ है, अरु आत्मज्ञानतें लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! संसाररूपी एक नदी है, तिसविषे आधि व्याधि उपाधि रोग तरंग हैं, अरु रागदोषरूपी छोटे मत्स्य हैं, अरु तृष्णारूपी बडे मत्स्य हैं, तिसविषे तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जैसे जल नीचेकों चला जाता है, तैसे मृत्युके मुखमें संसार चला जाता है, अरु अज्ञानरूपी जल है ॥ हे रामजी! तृष्णाकरि पुरुष बाधे हैं, तातें तुम तृष्णारूपी संगलकों काटौ, हस्तिकी नांई वैराग्य अभ्यासरूपी दंतकरि तृष्णारूपी जंजीर काटहू ॥ हे रामजी! यह तृष्णारूपी सर्पिणी है, विषयरूपी फुत्कारेकरि विचाररूपी वल्लीकों जलावती है, तिसकरि जीवरूपी कृषाण दुःख पावता है, तातें वैराग्यरूपी अग्निकरि सर्पिणीकों जलावहु ॥ हे रामजी! तृष्णा दुःखदायी है, जबलग तृष्णा है, तबलग संतके वचन इसके हृदयविषे स्थित नहीं होते, जैसे दर्पण उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे तृष्णावान्के हृदयविषे संतके वचन नहीं ठहरते, सो तृष्णाके एते नाम हैं, तृष्णा, अभिलाषा, इच्छा, फुरणा, संसरणा इत्यादिक सर्व इसीके नाम हैं, सो इच्छारूपी मेघ है, तिसनें ज्ञानरूपी सूर्य आच्छाद्या है, तिसकरि भासता नहीं, जब विचाररूपी पवन चलै, तब इच्छारूपी मेघ नष्ट हो जावै, अरु आत्मरूपी सूर्यका साक्षात्कार होवै ॥ हे रामजी! यह जीव आकाशका पक्षी है, तिसका कर्मविषे इच्छारूपी तागा है, तिसकरि उडी नहीं सकता, अरु परमात्मपदकों नहीं होता, अरु इच्छाहीकरि दीन है, जब इच्छा नष्ट होवै, तब आत्मस्वरूप है, तातें इच्छाका नाशकरि आत्मपरायण होहु, आत्मपरायण कहिये विषयसंसारतें वैराग्य अरु आत्म अभ्यास करौ ॥ हे रामजी! यह जो मैं तेरे तांई भूमिकाक्रम कहा है, जब इसविषे आवै, तब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, सो इनकों तब प्राप्त होता है, जो एक हस्तिणीकों जीतता है, एक वनविषे रहती है, दो उसके पुत्र महामत्तरूप हैं, उह अनेक जीवकों मारिकरि अनर्थकों प्राप्त करती है, तिसके जीते

इच्छाचिकि.

तें सर्व जगत् जीत्या जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसी हस्तिनी मत्तरूप सो कवन है, अरु कहा रहती है, कवन उसके दंत अरु पुत्र हैं, कैसे उह मारती है, अरु कैसे उसकों रचा है, अरु कवन बन है, यह सब मुझकों कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इच्छारूपी हस्तिनी है, शरीररूपी बन है, मनरूपी गुंफा विषे रहती है, इंद्रियांरूपी बालक है, संकल्पविकल्परूपी दंत हैं, तिनसाथ छेदती है ॥ हे रामजी! एक नदी है, तिसका प्रवाह सदा चला जाता है, तिसविषे दो मत्स्य रहते हैं, जो नाश नहीं होते, यह संसरणाही नदी है, अरु राग दोष तिसविषे मत्स्य रहते हैं, सो नाश नहीं होते ॥ हे रामजी! मत्स्य तब नाश होवैं, जब संसरणरूपी जल नष्ट होवै, तिसके सुकृतदुष्कृतरूपी किनारे हैं, चिंतारूपी ग्राह है, कर्मरूपी लहरी है, तिन विषे आया जीवरूपी तृण भटकता है, अरु तृष्णारूपी विषकी वल्लीकों नाश करौ ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी अंकुरका बढावणा घटावणा अपणे आधीन है, जो अंकुरकों जल देइए तौ बढता जाता है, अरु जो न देइए तौ जलि जाता है, सो फुरणेरूपी जल देणेकरि तृष्णारूपी अंकुर बढता जाता है, अरु न देणेकरि जलि जाता है, स्वरूपके अभ्यासकरि ॥ हे रामजी! तृष्णारूपी बडा मत्स्य है, धैर्य आदिक मांसकों भक्षण करनेवाला है, तिसकों वैराग्यरूपी कुंडा अरु अभ्यासरूपी दंतीकरि नाश करौ ॥ हे रामजी! इच्छाका नाम बंधन है; निरिच्छाका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! एक सुगम उपाय कहता हौं, जिसकरि तृष्णा नष्ट हो जावै, सो निज अर्थकी भावना करु, जब निज अर्थकी भावना करी, तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अरु तेरी जय होवैगी, सर्वतें उत्तम पदकों प्राप्त होवैगा, अरु वासना तेरी कोउ न रहैगी, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, संकल्प सर्व नष्ट हो जावैंगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसरणाभावप्रतिपादनं नाम शताधिकसप्तविंशतितमः सर्गः ॥ १२७ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ निज अर्थकी भावना करु, वासना नष्ट हो जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी सो वासना तौ चिरकाल

की चित्तविषे स्थित है, एकही वार कैसे नष्ट होवैगी? अरु तुम कहते हौ वासनाके नष्ट हुए जीवन्मुक्त होता है, जिसकी वासना नष्ट हुई तिसका शरीर कैसे रहैगा? अरु वासना बिन चेष्टा क्योंकरि होवैगी? तातें जीवन्मुक्त पद कैसे बणै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मेरे वचन प्रीतिसाथ सुण, कैसे वचन हैं, श्रवणोंके भूषण हैं, जिनके सुनणेतें दारिद्य न रहैगी, निज अर्थके धारणेतें संशय नष्ट हो जावैंगे, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, सो निज अक्षरके तीन अर्थ हैं, एक तौ अन्यके अर्थ हैं, जो पंचभौतिक शरीरतें तेरा स्वरूप अन्य विलक्षण है, अरु दूसरा अर्थ यह जो विरुद्ध है, शरीर जड है, तमरूप है, अरु तेरा स्वरूप आदित्यवर्ण है, तमतें परे है॥ हे रामजी! जब तैंनें ऐसे धारा जो मैं आत्मा हौं, अरु यह देहादिक अनात्मा है, तब देहसाथ मिलिकरि अभिलाषा कैसे रहैगी, अर्थ यह जो न करैगा, जबलग जाण्या नहीं, तबलग अभिलाषा है, अरु तीसरा अर्थ निजका यह जो अभाव है, जो न मैं हौं, न कोउ जगत् है, ऐसे जाण्या तब इच्छा किसकी रहैगी, अर्थ यह जो न रहैगी, अथवा जो तूं आपकों आत्मा जाणैगा, देहतें विलक्षण तौ भी अविद्यक तमरूप शरीरकी अभिलाषा न रहेगी, देह तमरूप है, तूं आदित्यवर्ण है, आदित्यवर्ण कहिये जो तूं प्रकाशरूप है, तेरा अरु इसका संयोग कहां होवै, जैसे सूर्यके मंडलविषे रात्रि नहीं देखिती तैसे जब तूं आपकों प्रकाशरूप जाणैगा, तब तमरूप संसार न देखैगा, शरीरकी चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु तेरेविषे चेष्टा कछु न होवैगी, जैसे अर्ध निद्रावालेकी चेष्टा होती है, अरु जानिती भी नहीं, तैसे चेष्टा होवैगी, अरु वालककी नांई तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे बालककी उन्मत्त चेष्टा होती है, तैसे तेरी चेष्टा भी स्वाभाविक होवैगी॥ हे रामजी! जो तूं इच्छा करै, जो यह सुख होवै, अरु यह दुःख न होवै, तौ कदाचित् न होवैगा, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध है सो अवश्य होती है, परंतु ज्ञानवानके हृदयतें संसारकी सत्यता जाती रहती है, अरु चेष्टा स्वाभाविक होती है, इच्छा नहीं रहती ॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषकों मंज

ल पेंडा करणा होता है, पेंडा बडा होवै, अरु पहुंचणेका समय थोडा होवै तौ उह पुरुष मार्गके स्थान देखता भी जाता है, परंतु बंधमान किसीविषे नहीं होता, तैसे चित्तकों आत्मपदविषे ल्यावहु, जो किसी प्रकार पहुंचणा है, ऐसा शरीर पायकरि आत्मपद न पाइए तौ कब पावणा है, जो आत्मपदतें विमुख है, सो वृक्षादिक जन्मोंकों पावैगा, तातें ॥ हे रामजी! चित्त आत्मपदविषे राख, अरु स्वाभाविक इच्छाविना चेष्टा होवै, इच्छाही दुःखदायक है, जब इच्छा नष्ट हुई, तब इसीकों ज्ञानवान तुरीया पद कहते हैं, जहां जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका अभाव होवै सो तुरीया पद है ॥ हे रामजी! यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जहां न पाइयें सो तुरीयापद है, जब संवेदन फुरणा अहंकारका अभाव हो जावै, तब तुरीयापद प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! अहंकारका होणा दुःखदायक है, जब इसका नाश हुआ तबही आनंद है, आत्मपदतें इतर जो मायाकी रचना है, तिससाथ मिलीकरि आपकों जानता है, मैं हौं, यही अनर्थ है, तातें अहंकारका त्याग करौ, जिसकों देखीकरि फुरता है, तिसकों निज अर्थकी भावनाकरि नाश करु, जो आत्मपदतें इतर भासता है, सो मिथ्या जाणौ, यही निज अक्षरका अर्थ है, जेता कछु संसार भासता है, तिसकों स्वप्नमात्र जाणौ, सत् जाणीकरि इसविषे इच्छा करणी यही अनर्थ है, अरु मिथ्या जाणीकरि इच्छा न करणी यही कल्याण है ॥ हे रामजी! मैं उंची बाहूकरि पुकारता हौं, मेरे वचन सुणता कोउ नहीं, जो इच्छाही संसारका कारण है, अरु इच्छातें रहित होणा परम कल्याण है, जब इच्छातें रहित हुआ तब शांतपदकों प्राप्त होता है, निरिच्छित हुए आत्मा भासता है, जो आनंदरूप है, सम है, अद्वैत है, तिसविषे जगत्का अभाव है ॥ हे रामजी! मोहका बडा माहात्म्य है, हृदयविषे जो आत्मरूपी चिंतामणि स्थित है, तिसका मूर्ख विस्मरण करिके अहंकाररूपी काचकों ग्रहण करते हैं ॥ हे रामजी! तुम निरभिमान होकरि चेष्टा करौ, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे अभिमान कछु नहीं, अरु चेष्टा तिसकी होती है; तैसे प्रारब्धवेगकरि तुमारी चे

ष्टा होवैगी, यह अभिमान तुम न करौ, जो ऐसे होवै, अरु ऐसे न होवै, जब ऐसा होवैगा, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, जहां वाणीकी गम नहीं, ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जबलग इंद्रियांके अर्थकी तृष्णा है, तबलग जन्ममृत्युके बंधनमें है, तातें पुरुषप्रयत्न यही है, जो तृष्णाका नाश करौ, कर्मके फलकी तृष्णा तेरे तांई न होवै, अरु कर्मके करणेविषे भी तेरे तांई इच्छा न होवै, इन दोनोंकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु ऐसा भी निश्चय न होवै, जो मैं त्याग किया है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें कर्मका त्याग किया है, अरु अहंकारसाथ है, तौ पुण्य अरु पाप तिसनें सब कछु किया है, अरु जिसविषे अहंभाव नहीं, सो भावै तैसे कर्म करै, तौ भी कछु नहीं किया, सो बंधनकों नहीं प्राप्त होता, जो कर्मविषे आपकों अकर्त्ता जानता है, अरु अकरणेविषे अभिमानसहित है, तिसकों करता देखते हैं, सो बंधवान हैं ॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि अहंममका त्याग करौ, ऐसे संवेदनके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, स्मृति तिसकी होती है, जिसका अनुभव होता है, जिसका अनुभव न होवै, तिसका त्याग करणा सुगम है, अनुभव कहिए प्रत्यक्ष देखणा विश्व तेरे स्वरूपविषे है नहीं, तौ अनुभव क्या होवै, यह पदार्थ जो तेरे तांई भासते हैं, तिनके कारणकों जाण, इनका कारण अनुभव है, जो अनुभवही इनका मिथ्या है, तौ स्मृति सत कैसे होवै? जेवरीविषे सर्पका अनुभव हुआ बहुरि स्मरण किया, जो उहां सर्प देखा था, जो सर्पका अनुभवही मिथ्या है, बहुरि उसका स्मरण सत कैसे होवै, तातें जो वस्तु मिथ्या है, तिसके त्यागणेविषे क्या यत्न है, जब प्रपंचकों मिथ्या जान्या तब तुमको कोउ क्रिया बंधन न होवैगी, चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, अरु रागदोष चलता रहैगा, जैसे शरत्कालकी वल्ली सूकी जाती है, अरु आकार उसका दृष्ट आता है; तैसे तुमारा चित्त देखणेमें आवैगा, अरु चित्तका धर्म जो राग दोष है, सो चलता रहैगा, उह चित्त सत पदकों प्राप्त होवैगा, जब सर्व विस्मरण होवैगा, तिसकों शिवपद कहते

हैं, सो परमपद है, अरु ब्रह्म है; शब्द अर्थतें रहित केवल चिन्मात्र अद्वैत पद है, अहंममका त्याग करिके तिसविषे स्थित होहु, अरु संसार इसीका नाम है, जो अहं हौं, अरु यह मेरा है, इसकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जबलग अहं मम यह संवेदन है, तबलग दुःख नहीं मिटते, जब यह संवेदन मिटी, तब आनंद है, आगे जो इच्छा है, सो करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छाचिकित्सोपदेशो नाम शताधिकाष्टविंशतितमः सर्गः ॥ १२८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा अद्वैत है, जिसविषे एक दो कहणा नहीं, अपणे आप स्वभावविषे स्थित है, अंतःकरण चतुष्टय अरु बाह्य पदार्थ सर्व चेतनमात्र हैं, इतर कछु नहीं, रूप इंद्रियां अरु मनका फुरणा, देश काल सर्व आत्मारूपही है, जैसे बालक माटीकी सैना बनाता है, अरु हस्ती घोडे राजा प्रजा नाम कल्पता है, सो सर्व माटीही है, इतर कछु नहीं, तैसे अहं मम आदिक भी सर्व आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, जैसे माटीविषे हस्ती घोडा आदिक नाम कल्पता है, तैसे आत्माविषे जगत् जीव कल्पता है, आत्मातें इतर कछु नहीं, इस अहंकारका त्याग करु, आत्मपदतें इतर कछु फुरै नहीं ॥ हे रामजी ! रूप अवलोक नमस्कार यह सब शिवरूपी मृत्तिकाके नाम हैं, मान मेय प्रमाण आदिक यह सब उही रूप हुए तौ किसकरि किसकों संचित कहिये, यह अहं मम आदिक भी चिदाकाशतें इतर कछु वस्तु नहीं, इनकों ऐसे जाणिकरि अफुर शिलावत् निःसंग होय रहहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुमनें कहा जो अहं मम फुरणेका त्याग करु, यह मिथ्या है, अहं मम असत् है, ज्ञानी ऐसी भावना करते हैं, इनकी सत्ता कछु नहीं, अरु असंग होहु, सो असंग निष्कर्मकरि होता है, अथवा सकर्मकरि होता है यह कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तूंही कहु, जो कर्म क्या है, निष्कर्म क्या, अरु इनका कारण कवन है, अरु इनका नाश कैसे होवै, अरु नाश होणेकरि सिद्धि क्या होवैगी ? जो तूं जानता है, तौ कहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जैसे तुमनें श्रवण किया

है, अरु समुझा है, सो मैं कहता हौं; जो वस्तु नाश करणी होवै, तिसकों निश्चयकरि मूलतें नाश करियें; तबही तिसका नाश होता है, शाखा पत्र काटेतें उसका नाश नहीं होता, तातें इनका क्रम सुणौ, यह संसाररूपी वनविषे देहरूपी वृक्ष है, तिसका बीज कर्म है, अरु पाणि पाद आदिक उसके पत्र हैं, अरु रुधिर श्वास वासना इसविषे रस हैं, अरु सुख दुःख इसके फूल हैं, अरु जाग्रत कर्म वासनारूपी वसंतऋतु है, तिसकरि प्रफुल्लित होते हैं, अरु सुषुप्ति पाप कर्मरूपी इसकों शरत्काल है, तिसकरि सूकि जाता है, ऐसा शरीररूपी वृक्ष है, बहुरि कैसा है, तरुणपवनरूपी कली है, क्षणका क्षण सुंदर है, जरारूपी फूल इसकों हसते हैं, अरु रागदोषरूपी वानर क्षण क्षणविषे क्षोभते हैं, जागृतरूपी इसकों वसंतऋतु है, अरु सुषुप्तिरूपी हिम करती है, अरु वासनारूपी रसकरि बढता है, अरु पुत्र कलत्र आदिक यह तृण घास है, अरु इंद्रियांके गढरूपी तिसका मुख है, इनकरि शरीरकी चेष्टा होती है, ज्ञान इंद्रियां इसके पंच स्तंभ हैं, इनकरि वृक्ष धारा है, अरु इच्छा इसविषे बेले हैं; जो अपणे अपणे विषयकों चाहती है, अरु बडा स्तंभ इसका मन है, जो सर्वकों धारता है, अरु पंच प्राण इसके रस हैं, प्रत्यक्ष उन मास शब्द इनकरि सर्वकों ग्रहण करता है, आगे इनका बीज जीव है, जीव कहियें चैत्योन्मुखत्व चेतन, अरु जीवका बीज संवित् है, जो मात्रपदतें उत्थान हुआ है, तिस संवित्का बीज ब्रह्म है, तिसके बीज आगे कोउ नहीं ॥ हे भगवन्! सबका मूल संवित्का फुरणा है, जब इसका अभाव हुआ, तब शेष आत्माही रहा है ॥ हे भगवन्! यह तौ मैं जानता हौं, आगे कछु कृपा करि तुम कहौ ॥ हे भगवन्! जबलग चित्तसाथ संबंध है, तबलग संसारविषे जन्म मृत्यु पावता है, जब चित्ततें रहित हुआ, तब परब्रह्म है, सो शिवपद है, अनिच्छित है, शांत है, अनंतरूप है, चिन्मात्रविषे जो अहंका उत्थान है, सोइ कर्मरूपी वृक्षका कारण है, जबलग अनात्मासाथ मिलिकरि कहता है, मैं हौं ऐसे जानता है, सो संसारका कारण है, यह तुमारे वचनकरि समुझा है, सो प्रार्थना करी है, आगे कछु कृपा

करि तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार कर्मका बीज सूक्ष्म संवित् है, जबलग संवित् है, तबलग कर्मोंका बीज नाश नहीं होता, अरु यह सब संज्ञा इसकी हैं, कर्मोंका बीज कहियें, इच्छा कहियें, तृष्णा कहियें, अज्ञान कहियें, चित्त कहियें, इत्यादिक बहुत संज्ञा हैं, अवर क्या किसीविषे हेयोपादेय बुद्धि करें ॥ हे रामजी ! जबलग अज्ञान है, तबलग इच्छा नाश नहीं होती, अरु कर्म भी नाश नहीं होते, नाश दोनोंका भेद नहीं होता, परंतु भेद है, अज्ञानीकों भासता है, जो इच्छा है, यह कर्म है, अरु ज्ञानवानकों सर्व ब्रह्मही भासता है, तातें सुखी रहता है, अरु अज्ञानीकों कर्मविषे कर्म भासता है, तातें बंधमान होता है, अरु इसीका नाम त्याग है, जो कर्मतें कर्मबुद्धि जावै, अरु इसका नाम त्याग नहीं, जो क्रियाका त्याग करणा है ॥ हे रामजी ! बडी उपाधि अहंकार है, जिसका अहंकार नष्ट हुआ है, उह पुरुष कर्म करता है, तौ भी उसनें कबहु कछु नहीं किया, अरु जो अहंकारसहित है, उह पुरुष जो तूष्णीं हो बैठा है, तौ भी सब कर्म करता है, इस अहंके त्यागका नाम सर्व त्याग है, अवर क्रियाके त्यागका नाम सर्व त्याग नहीं, पुरुष प्रयत्न यही है, जो सर्व कर्मोंका बीज अहंकारका त्यागणा, अरु परम शांतिकों प्राप्त होणा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मबीजदाहोपदेशो नाम शताधिकनवविंशतितमः सर्गः ॥ १२९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस संवेदनका होणाही अनर्थ है, जो आपकों कछु जानता है, जब इह निवृत्त होवै, तबही इसकों आनंद है ॥ हे रामजी ! ज्ञानीकी चेष्टा अहंकारतें रहित स्वाभाविक होती है, जैसे अर्ध निद्रित पुरुष होता है, तैसे ज्ञानी अपणे स्वरूपविषे घूर्म है, जैसे हस्ती मदकरि उन्मत्त होता है, तैसे ज्ञानवान् स्वयंब्रह्म लक्ष्मीकरि घूर्म है, अरु ज्ञान ऐसा व्यसन है, जैसा कामीकों काम व्यसन होता है, तैसे यह सुखरूपी स्त्रीकों पायकरि घूर्म रहता है, काहेतें जो निरहंकार है, सर्व दुःखका बीज अहंकार है, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आनंद भया ॥ हे रामजी ! संसाररूपी विषकी वल्ली है, तिसका बीज अ

हंकार है, जब अहंकारका अभाव होवै, तब संसारका अभाव होता है॥ हे रामजी! अहंकार दुःखका मूल है, इस संवेदनका विस्मरण करणा बडा कल्याण है, जो कछु अनात्मसाथ मिलिकरि आपकों मानणा यही अनर्थ है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं होता, अरु जो सत्य है, तिसका अभाव नहीं होता, तुम कैसे कहते हौ, जो अहं संवेदनका नाश करौ, ए तौ सत् भासती है, संवेदन अवेदन कैसे होवै?॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! तूं सत्य कहता है, जो वस्तु असत्य है, तिसका होणा नहीं, अरु जो सत् है, तिसका नाश नहीं होता है॥ हे रामजी! यह जो अहंकार दृश्य तुझकों भासता है, सो इसका होणा कदाचित् नहीं, मिथ्या कल्पित है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार शब्द अर्थ फुरता है, यह शब्द अरु अर्थ मिथ्या है, तिसका लक्षण यह जो मैं हौं सो कल्पित है, आत्मा केवल शुद्ध स्वरूप है, तिसविषे अहं त्वंका शब्द अर्थ कोउ नहीं, यह अबोधकरि भासते हैं, बोधकरि लीन हो जाते हैं, अरु वेदनाका जो बोध है, सो अनर्थका कारण है, अबोधतम है, जब यह निर्वाण होवै, तब कर्मका बीज मूलतें काट्या॥ हे रामजी! जो कर्मोंकों त्यागिकरि एकांत जाय बैठता है, जो मैं कर्म नहीं करता हौं, ऐसे मानता है सो कहताही है, जो अहंकारसाथ है तौ फलकों भोगताही है, काहेतें जो अहंकारसहित मैं बहुरि करैगा, आत्मज्ञानविना अनात्मसाथ मिलीकरि आपकों मानता है, अरु जो पुरुष कर्म इंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु आत्माकों लेप नहीं जानता है सो अकर्त्ताही है, तिसकों करणेविषे कछु अर्थ सिद्ध नहीं होते, अकरणेकरि भी नहीं होता, ऐसा पुरुष परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, जिसकों वाणीकी गम नहीं॥ हे रामजी! उसविषे फुरणा कोउ नहीं, चमत्कार है, चमत्कार कहिए हुआ कछु नहीं अरु भासता है, जैसे बिल्लकी मज्जा होती है, उह बिल्लतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् है, जैसे सोनेतें भूषण

भिन्न नहीं, तैसे निजशब्दका अर्थ है, सो यह भिन्न भिन्न शब्द अर्थ तबलग भासता है, जबलग अहंवेदनाकार है॥ हे रामजी! आत्मपद सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे पत्थर अपणी जडताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणी चेतनघनताविषे स्थित है, तिसकों मुनीश्वर चेतनसार कहते हैं, तिस अपणे स्वरूपके प्रमादकरि दुःख पावता है॥ हे रामजी! जो पुरुष गृहविषे स्थित है, अरु अहंकारतें रहित है, तिसकों वनवासी जाण, सदा एकांत है, अरु जो वनवासी है, अरु अहंकारसहित है सो जनोंविषे स्थित है, प्रथम एक गरतविषे था, तिसकों त्यागिकरि दूसरी गरतमें पडा है, जो भेषधारी है, अरु वनवास लिया है, तिसकों ईश्वर चाहै तौ निकसै, नहीं तौ बडे कूपविषे पडा है॥ हे रामजी! जो पुरुष अर्ध त्याग करता है, एक अंगका त्याग किया, अरु दूसरेका अंगीकार किया, ऐसा पुरुष आपकों निष्कामी मानता है, तिसकों उह त्यागरूपी पिशाचिनी भोगती है॥ हे रामजी! निष्कर्म यह तबही होता है, जब इसकी अहंवेदना नष्ट होती है, अन्यथा नहीं होता, तातें कर्मकों मूलतें उखाडहु, जैसे शूरदंड बल बुंटेकों मूलतें काटता है, तैसे काटहु, अहं वेदनाही मूल है, तिसका मूल काटणा है॥ हे रामजी! पुरुष प्रयत्न इसीका नाम है, जो अपणे आपका नाश करणा, अरु आपही रहणा, देहसाथ मिल्या हुआ आपकों जानता है, तिसका नाश करणा, अरु शिवपदकों प्राप्त होणा, जो सर्वदा सतस्वरूप है, अरु अद्वैत है, तिसविषे स्थित होहु, यह विश्व भी तिसका चमत्कार है, जैसे बिल्लविषे गरी होती है, तिसके बहुत नाम राखते हैं, सो बिल्लतें इतर कछु नहीं, तैसे संसार आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्तंभविषे काष्ठतें इतर कछु नहीं, तैसे यह संसार है, नानात्व जो भासता है, सो भी चेतनघन आत्माही है, अरु निज अक्षरका अर्थ जो तेरे ताईं कहा है, सो भी उही है, विधिनिषेध किसका करियें, सर्व परमात्मा तत्त्व है, दूसरा किंचित मात्र भी नहीं॥ हे रामजी! ऐसे आत्माकों जाणीकरि सुखेन विचरौ, स्वाभाविक चेष्टा होवैगी, जैसे अर्ध नि

द्रितकी होती है, अरु जैसे बालक पिंघुडेविषे होता है, अंग उसके स्वाभाविक हलते हैं, तैसे तुमारी चेष्टा होवैगी, अपणा अभिमान तुम न करौ ॥ हे रामजी! जेते कछु भाव अभाव पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्माके साक्षात्कार हुएतें परमात्मतत्त्वही भासैंगे, जब अहंकार उत्थान निवर्त होवैगा ॥ हे रामजी! एक अवर युक्ति सुण, जिसकरि आत्मज्ञान होवै, यह जो अहं अहं क्षणक्षणविषे फुरती है, सो जब फुरै तबही तिस क्षणविषे जाण, जो मैं नहीं, जब ऐसे दृढ हुआ, तब अहंकाररूपी पिशाच नाश हो जावैगा, अरु आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होवैगा, जब अहंकार नाश होवै, तब आत्मा भासै, तातें अहंकारके नाशका यत्न करु, जो न मैं हौं, न जगत् है ॥ हे रामजी! ज्ञान इसीका नाम है, जो अहं मम न रहै, तिसकों मुनीश्वर परम ब्रह्म कहते हैं, अरु सम्यक् पद कहते हैं, अरु जहां अहं मम है, तहां अविद्यारूपी तम खडा है ॥ हे रामजी! अज्ञानीके हृदयविषे सर्व पदार्थका भाव स्थित है, देश काल घर नगर मनुष्य पशु पक्षी आदिक त्रिगुण संसार तिसकों भासता है, जब इनका अभाव हो जावै, तब शांतपदकी प्राप्ति होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारनाशविचारो नाम शताधिकत्रिंशततितमः सर्गः ॥ ॥ १३० ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिसके मनतें मैं मेरेका अभिमान गया है, तिसकों शांति प्राप्त भई है, अरु जिसके हृदयविषे मैं देह मेरेसंबंधी गृह आदिक अभिमान है, तिसकों शांति कदाचित् नहीं, अरु शांतिविना सुख नहीं ॥ हे रामजी! प्रथम आप बनता है, तब जगत् है, जो आप होता न बनै तौ जगत् कहां होवै, इसका होणाही अनर्थका कारण है, जिस पुरुषनें अहंकारका त्याग किया है, सो सर्व त्यागी भया, अरु जिसनें अहंकारका त्याग नहीं किया, तिसनें कछु नहीं त्याग्या, अरु जिसनें क्रियाका त्याग किया है, अरु आपकों सर्वत्यागी मानता है, सो मिथ्या है, जैसे वृक्षके टास काटिए तौ फिरि उगता है, नाश नहीं होता, तैसे क्रियाके त्याग किये त्याग नहीं होता, त्यागणे योग्य अहंकार जो नष्ट नहीं होता,

तौ क्रिया बहुरि उपजती है, तातें अहंकारका त्याग करै, तब सर्व त्यागी होवै, इसका नाम महात्याग है, तिसकों स्वप्नविषे भी संसार न भासैगा, जाग्रतकी क्या कहणी है, तिसकों संसारका भान कदाचित् नहीं होता ॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंभाव है, तिसकरि स्थावर जंगम जगत् भासता है, जब इसका नाश हुआ, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, तातें इसके अभावकी भावना करु, जब तेरे तांई अहंभाव फुरै, तब तूं जाण, जो मैं नहीं, जब इस प्रकार अहंका अभाव हुआ, तब पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मपद है ॥ हे रामजी! सब अनर्थका कारण अहंभाव है, तिसीका त्याग करु ॥ हे रामजी! शस्त्रका प्रहार जीव सहि रहता है, अवर व्याधिरोगकों सही रहता है, इस अहंके त्यागणेविषे क्या कदर्थना है॥ हे रामजी! संसारका बीज अहंका सद्भाव है, तिसका नाश करना संसारका मूलसंयुक्त नाश है, तातें तिसके नाशका उपाय करौ, जिसका अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसकों सब ठौर आकाशरूप है, उसके हृदयविषे संसारकी सत्ता कछु नहीं फुरती, यद्यपि गृहस्थविषे होवै, तौ भी प्रपंच यह शून्य वनकी अटवी तिसकों भासती है, अरु जो अहंकारसहित है, वनविषे जाय बैठे, तौ भी जनके समूहविषे बैठा है, काहेतें जो तिसका अज्ञान नाश नहीं भया, अरु जिसनें मनसहित षट् इंद्रियांकों वश नहीं किया, तिसकों मेरी कथा श्रवणका अधिकार नहीं, उह पशु है, अरु जिस पुरुषनें मनकों जीत्या है, अथवा जीतणेकी इच्छा करता है, दिन दिन प्रति सो पुरुष है, अरु जो इंद्रियांकरि विश्रामी है, काम क्रोध लोभ मोहकरि संपन्न है, सो पशु है, महाअंधतमकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष ज्ञानवान् है, अरु इच्छा कर्मकी तिसविषे दृष्टि आवती है, तौ भी इच्छा तिसकी अनिच्छाही है, अरु कर्म अकर्मही है, जैसे भून्या दाणा बहुरि नहीं उगता अरु आकार तिसका भासता है, तैसे ज्ञानवान्की चेष्टा दृष्ट आती है, सो देखणे मात्र है, उसके हृदयविषे कछु नहीं ॥ हे रामजी! पुरुष कर्मेंद्रियांसाथ चेष्टा करता है, अरु जगत्की सत्यता हृदयविषे नहीं, तब बंध

न कोउ नहीं होता, अरु जो जगत्कों सत्य मानीकरि थोडा कर्म करता है, तौ भी पसरी जाता है, जैसे थोडा अग्नि जागीकरि बहुत हो जाता है, तैसे थोडा कर्म भी उसकों जन्ममरण दुःख देता है, अरु ज्ञानीकों नहीं होता, उसकी प्रारब्ध शेष है, सो भी हृदयविषे नहीं मानता, जानता है, जो शरीरकी है, आत्माकी नहीं, सो भी वेग उतरता जाता है, जैसे कुंभारका चक्र होता है, अरु चरण चलावणेतें रही जाता है, तौ शनैः शनैः वेग उतरता जाता है, तैसे प्रारब्धवेग उसका उतरता जाता है, बहुरि जन्म नहीं होता, काहेतें जो तिसकों अहंकाररूपी चरण नहीं लगता, तातें अहंकारका नाश करु, जब अहंकार नाश हुआ तब सर्वके आदि पदकों प्राप्त होवैगा, सो परम निर्वाणपद है, तिसविषे निर्वाण भी निर्वाण हो जाता है ॥ हे रामजी! जब वर्षाकाल होता है, तब बदल होते हैं, जब शरत्काल आता है, तब बदल चलते रहते हैं ॥ हे रामजी! जबलग अज्ञानरूपी वर्षाकाल है, तबलग अहंकाररूपी वर्षा है, जब विचाररूपी शरत्काल आवैगा, तब अहंकाररूपी मेघ चलते रहैंगे, अरु आत्मरूपी आकाश निर्मल भासैगा ॥ हे रामजी! जैसे मलिन आदर्श होता है, तब मुखका प्रतिबिंब उज्वल नहीं भासता, जब मैल निवर्त होवै तब मुखका प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासै, तैसे अहंकाररूपी मैलकरि जीव आच्छाद्या है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब अहंकाररूपी मैल निवृत्त होवै, तब आत्मा ज्यौंका त्यौं भासै, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग उठते हैं, अरु सम्यक्दर्शीकों सब जलमय दृष्टि आते हैं, अरु भूषणविषे स्वर्णही भासता है, तैसे नानाप्रकारके प्रपंच तिस समदर्शीकों चेतनघन आत्माही दृष्ट आता है, आत्मातें इतर कछु नहीं देखता, अवर उरतें पथ्थरकी शिलावत् हो जाता है, काहेतें जो अहंकार उसका नष्ट हो गया है, अरु जो अहंकार साथ है, क्रियाका त्याग करता है, अरु त्यागकरि आपकों सुखी मानता है, सो मूर्ख है, जैसे कोउ लकडी लेकरि आकाशकों नाश किया चाहै तौ नहीं होता, तैसे क्रियाके त्यागकरि दुःख नष्ट नहीं होता, जब संपूर्ण संसार क्रियाका बीज अहंकार नाश होवै, तब अक्रिय आत्मस्वरूपकों प्राप्त हो

ता है, जैसे ताबा अपणे ताबाभावकों त्यागता है, तब स्वर्ण होता है, तैसे जब जीव अपणा जीवत्वभाव त्यागै, तब आत्मा होता है, अरु जैसे तेलकी बुंद जलविषे पाइती है, अरु पसरी जाती है, नानाप्रकारके रंग जलविषे भासता है जैसे ब्रह्मरूपी जलविषे अहंतारूपी तेलकी बुंद नानाप्रकारकी कलना दिखाइ देती है, आत्मा ब्रह्म निराकार निरंजन इत्यादिक नाम भी अहंकार करिके शुद्धविषे कल्पे हैं, सो अफुर केवल सत्तामात्र है, सत् अरु असत्की नांई स्थित हैं ॥ हे रामजी! संसाररूपी मिरचका बूटा है, अरु संसाररूपी फूल हैं, अहंतारूपी तिसविषे सुगंधि है ॥ हे रामजी! जब अहंता उदय हुई, तब संसार उदय होता है, अरु अहंताके नाश हुए संसारनाश हो जाता है, क्षणविषे उदय होता हे, अरु क्षणविषे नाश होता है, सो अहंताका होणाही उदय होणेका क्षण है, अरु अहंताका लीन होणा सो नाशका क्षण है ॥ हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकों जलका संयोग होता है, तिसकरि घट बणता है, तब मृत्तिका घट संज्ञाकों पावती है, तैसे पुरुषकों जब अहंकारका संग होता है, तब संसारी होता है, अरु जीवसंज्ञाकों पावता है, देश काल पृथ्वी पर्वत आदिक दृश्यकों प्रत्यक्ष देखता है, जब अहंता नाश होवै, तब सुखी होता है, जेता कछु नामरूप है, अरु तिसका अर्थ है, सो अहंताकरि भासता है, जब अहंताकों त्यागै, तब शांतरूप आत्माही शेष रहैगा, जैसे पवनतें रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे अहंकाररूपी पवनतें रहित अपणे स्वभावविषे स्थित होता है, अरु आनंदपदकों प्राप्त होता है, अरु अनादि पद अपणेकों प्राप्त होता है, अरु सर्वका अपणा आप होता है, देश काल वस्तु अपणेविषे देखता है ॥ हे रामजी! जबलग अहंताका नाश नहीं होता, तबलग मेरे वचन हृदयविषे स्थित न होवैंगे ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें अपणा स्वभाव नहीं जान्या, तिसकों ब्रह्म पावणा कठिन है, जैसे रेतविषे तेल निकसणा कठिन है, तैसे उसकों ब्रह्मका पावणा कठिन है, अरु अपणा स्वभाव जानणा अति सुगम है, जब अहंताका त्याग करै जो न मैं हों, न जग

त् है, तब कल्याण हुआ, तब अहंताका नाश होता है, तब भ्रम कोउ नहीं रहता, जैसे जेवरीके जाणे सर्पभ्रम निवर्त हो जाता है, जबलग अहंता फुरती है, तबलग उपदेश इसकों नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयविषे मेरे वचन नहीं ठहरते, अरु जिसका हृदय शुद्ध है, तिसकों मेरे वचन लगते हैं, जैसे तेलकी बुंद जलविषे विस्तारकों पावती है; तैसे उसकों थोडा वचन भी बहुत हो लगता है ॥ हे रामजी ! इसीपर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो तूं श्रवण कर, मेरा अरु कागभुषंडका संवाद है, एक समय सुमेरु पर्वतके शिखरपर मैं गया था, तहां भुषंड बैठा था, तिससों मैं प्रश्न किया, जो हे अंग, ऐसा भी कोउ पुरुष है, जिसकी आयुर्बला बडी होवै, अरु ज्ञानतें शून्य रहा है, जो उनकों देखा होवै तौ कहु॥ ॥भुषंड उवाच॥ हे भगवन्! एक विद्याधर देवता होत भया है, तिसकी बडी आयुर्बला थी, अरु विद्या बहुत अध्ययन करी थी, सत्कर्मोंविषे विचरता था, अरु भोग भी तिसनें बडे भोगे थे, अरु सत्कर्मोंकों करै, परंतु केवल सकाम चतुर्युग पर्यंत सकाम कर्म करता रहा, जप तप नियम आदिक कर्म करत भया, जब चतुर्थ युगका अंत हुआ, तब उसकों विचार आनि उपजा, जेते भोग सुखरूप जाणीकरि भोगता था, तिन भोगतें उसकों वैराग्य उपजत भया, तब भोगकों त्यागिकरि लोकालोक पर्वतपर गया, तहां जायकरि विचारत भया, जो यह संसार असाररूप है, किसी प्रकार इसतें छूटों, वारंवार जन्म है, वारंवार मृत्यु है, पदार्थ सत्य कोउ नहीं, किसका आश्रय करों, ऐसे विचार करिके उह विकृत आत्मा पुरुष सुमेरु पर्वत ऊपर मेरेपास आय प्राप्त भया, अरु शिर नीचा करि मेरे तांई दंडवत करे, अरु मैं भी बहुत आदर किया, तब हाथ जोडिकरि तिसनें कहा ॥ ॥ विद्याधर उवाच ॥ हे भगवन् ! एते कालपर्यंत विषयकों भोगता रहा हौं, परंतु शांति मेरे तांई प्राप्त नहीं भई, तिसतें मैं दुःखी रहा हौं, तुम कृपाकरि शांतिका उपाय कहौ ॥ हे भगवन्! चित्ररथका जो बाग बना हुआ है, तिसविषे सदाशिवजी रहता है, अरु कल्पवृक्ष भी बहुत हैं; तिसविषे मैं चिरकाल रहा हौं, बहुरि विद्याध

रके स्वर्गविषे रहा हौं, अरु इंद्रके नंदनवनविषे रहा हौं, अरु स्वर्गकी कंदराविषे रहा हौं, अरु सुंदर अप्सरासाथ स्पर्श किया, अरु विमानपर आरूढ बहुत रहा हौं ॥ हे भगवन्! इत्यादिक बहुत स्थान मैं देखे हैं, अरु तप भी बहुत किया है, दान यज्ञ व्रत भी बहुत किया है, अरु सहस्र वर्ष सुंदररूप देखता रहा हौं, जिनकी सुंदरता कहणेविषे नहीं आती, तौ भी नेत्रकों तृप्ति नहीं भई, अरु बहुत सुगंधिकरि नासिकाकों तृप्ति न भई, अरु रसनाकरि भोजन बहुत प्रकारके खाए हैं, तौ भी शांति न भई, तृष्णा बढती गई, अरु श्रोत्रकरि शब्द राग बहुत प्रकार सुणे हैं, अरु त्वचाकरि स्पर्श बहुत किये हैं तौ भी शांति न प्राप्त भई ॥ हे भगवन्! मैं जिस उर सुख जाणीकरि प्रवेश करौं, तिसी उर दुःख प्राप्त होवै, जैसे मृग क्षुधा निवारणे अर्थ घास खाणे आता है, अरु राग सुणी मूर्च्छित हो जाता है, अरु वेधक उसकों पकडी लेता है, तब मृग दुःख पावता है, तैसे मैं सुख जाणीकरि विषयकों ग्रहण करता था, अरु बडे दुःखकों प्राप्त भया ॥ हे भगवन्! मैं चिरकालतक दिव्य भोग भोगे हैं, पांचों इंद्रिय छठे मनसहित कछु कहणेविषे नहीं आते, ऐसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध भोगे, परंतु मेरे तांई शांति न प्राप्त भई, अरु न इंद्रिय तृप्त भई, जैसे घृतकरि अग्नि तृप्त नहीं होती, तैसे दिन दिन प्रति तृष्णा वृद्ध होती जाती है, अरु अंतर पडी जलाती है, जो पुरुष इन भोगके निमित्त यत्न करता है, जो मैं इनकरि सुखी होउंगा, सो मूर्ख है, तिसकों धिःकार है, उह समुद्रविषे तरंगका आश्रय करता है, अरु यह सुखरूप तबलग भासते हैं, जबलग इंद्रियां अरु विषयका संयोग है, जब इंद्रियांतें विषयका वियोग हुआ, तब महादुःखकों प्राप्त होता है, काहेतें जो तृष्णा अंतर रहती है, अरु भोग जाते रहते हैं, जो जो विषय भोगते हैं, सोई दुःखदायक हो जाते हैं ॥ हे भगवन्! इसीकरि मैं बहुत दुःख पाया है, यद्यपि इंद्रियां कोमल हैं, तौ भी सुमेरुकी नांई कठिण हैं, कोमल भासती हैं, परंतु ऐसे हैं, जैसे सर्पिणी कोमल होती है, खड्गकी धारा कोमल है, स्पर्श किया मर जाता है, बहुरि कै

सी है, जैसे बेडी जलविषे पवनकरि भ्रमती है, तैसे अज्ञानरूपी नदीविषे पवनरूपी इंद्रियानें मेरे तांई दुःख दिया है ॥ हे भगवन्! ऐसे भी मैं देखे हैं, जो सारा दिन मागते रहे हैं, अरु भोजन खाणेके निमित्त एकठा नहीं हुआ, अरु एक ऐसे देखे हैं, जो ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत सब भोगकों एक दिनविषे भोग्या है, जिसकों दिनविषे भोजनमात्र भी प्राप्त नहीं होता, जो सब विषय इंद्रियांके इष्टरूप भोगता है, तिन दोनोकों भस्म होते देखी, भस्म दोनोंकी तुल्य हो जाती है, विशेषता कछु नहीं, इंद्रियांके बंधनविषे वारंवार जन्मते अरु मरते हैं, अज्ञानी शांतिकों कदाचित् नहीं प्राप्त होते, अरु जो तुम कहौ तूं तौ सुखी दृष्ट आता है, तेरे तांई क्या दुःख है, तौ हे भगवन्! इह दुःख देखणेमें नहीं आता, जैसे चक्रवर्ती राजा होवै, अरु शिरपर चंवर झुलता है, अरु अंतर अध्यात्मतापकरि तपता है, जो मनविषे ज्वलन है, तिसकरि जलता है, अरु बाहिरतें सुखी दृष्ट आता है, तैसे देखणेमात्र मैं सुखी दृष्ट आता हौं, अरु अंतर इंद्रियां मेरे तांई जलाती हैं ॥ ॥ हे भगवन्! ब्रह्माके लोकविषे मैं बडे सुखकों देखे हैं, परंतु तहां भी दुःखी रहा हौं, काहेतें जो क्षय अरु अतिशय तहां भी रहती है, जिसकरि उह भी जलते हैं, अरु इन इंद्रियांका शस्त्रतें भी कठिन घाव है, सो घाव क्या है, जो संसारकी विषमता नानाप्रकारकी दिखावतियां हैं, सर्वदा राग दोष इनविषे रहता है, तिसकरि मैं बहुत जलता रहा हौं, तातें सोइ उपाय मेरे तांई कहौ, जिसकरि मैं शांतिकों प्राप्त होउं, अरु उह कवन सुख है, जिसकरि बहुरि दुःखी न होवै, अरु जिसका नाश नहीं, आदि अंततें रहित है, सो कहौ, जो तिसके पावणेविषे कष्ट है, तौ भी मैं यत्न करता हौं, जो किसी प्रकार प्राप्त होवै ॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियानें मेरे तांई बडा कष्ट दिया है, यह इंद्रियां कैसी हैं, जो गुणरूपी वृक्षकों अग्नि हैं, शुभ गुणोंकों जलावती हैं, विचार धैर्य संतोष अरु शांति आदिक गुणरूपी वृक्षके नाश करणेहारी हैं ॥ हे भगवन्! इननें मेरे तांई दुःख दिया है, जैसे मृगका बच्चा सिंहके वश

पडै, तिसकों मर्दन करता है, तैसे इंद्रियां मेरे तांई मर्दन किया है॥ हे भगवन्! जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, तिसका पूजन सर्व देवता करते हैं, अरु दर्शनकी इच्छा करते हैं, अरु जिसने मनकों वश नहीं किया, तिनकों दीनकरि जानते हैं, अरु जिस पुरुषनें इंद्रियांकों वश किया है, सो सुमेरु पर्वतकी नाई अपणी गंभीरताविषे स्थित हैं, अरु जिसने इंद्रियां वश नहीं कियां, सो तृणकी नांई तुच्छ हैं, अरु जिसकों इंद्रियांके अर्थविषे सदा तृष्णा रहती है, सो पशु है, तिसकों मेरा धिःकार है॥ हे मुनीश्वर! जो बडा महंत भी है, अरु इंद्रिय उसके वश नहीं तौ उह महानीच है॥ हे मुनीश्वर! इंद्रियांनें मेरे तांई बडा दुःख दिया है, जैसे महाशून्य उजाडविषे पैंदोईकों तस्कर लूटि लेते हैं, तैसे इंद्रियांनें मेरे तांई लूटि लिया है, अरु इंद्रियांरूपी सर्पिणी है, अरु तृष्णारूपी विष है, तिसकरि इनविषे सारी विश्व मोहित दिखती है, कोउ विरला इनहुतें बचे होवैंगे, यह इंद्रियां दुष्ट हैं, अपणे अपणे विषयकों लेतियां हैं, अवरकों देती नहीं, तुच्छ अरु जड हैं, अनहोतियांनें दुःख दिया है, जैसे बीजलिका चमत्कार होता है, बहुरि छपन हो जाती है, तैसे इंद्रियांके सुख क्षणमात्र दिखाई देते हैं, बहुरि छपन हो जाते हैं, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग सुख भासता है, जब इनका वियोग हुआ, तब दुःख उत्पन्न होता है, काहेतें जो तृष्णा रहती है, एक सैना है, तिसविषे इंद्रियांके भोग उन्मत्त हस्ती हैं, तिसविषे तृष्णारूपी जंजीर हैं, अरु इंद्रियांरूपी रथ हैं, अरु नानाप्रकारके विषय तिसमें घोडे हैं, अरु संकल्पविकल्परूपी खड्ग हैं, तिसके धारणेहारा अहंकार है, अरु यह जो क्रिया होती है, अहंकारसहित, सो शस्त्रोंके समूह हैं॥ हे मुनीश्वर! जिस पुरुषनें इस सैनाकों नहीं जीती, सो मोहरूपी अंधके कूपविषे गिर्या है, अरु कष्ट पावता है, अरु जिसनें जीती है, सो परम सुखकों प्राप्त होता है॥ हे मुनीश्वर! यह इंद्रियां कैसीयां हैं, जो भोगकी इच्छारूपी खाईविषे अहंकाररूपी राजाकों डारि देतियां हैं, अरु निकसना कठिन हो पडता है, जिस पुरुषनें इनकों जीता है, ति

सकी त्रिलोकीविषे जय होती है, अरु जिसनें नहीं जीता, सो महा दीनताकों प्राप्त होता है, अरु जन्मजन्मांतरकों पावता है, इन इंद्रियांविषे रजोगुण अरु तमोगुण रहता है, तबलग दाहकों देतियां हैं, जबलग रज तम वृत्ति है, यह भी मनकी वृत्ति है, जब इनका अभाव होवै, तब शांति प्राप्त होवै, यह शोधि देखा है, जो इंद्रियां तपकरि भी वश नहीं होतियां हैं, न यज्ञकरि, न व्रतकरि, न तीर्थकरि वश होतियां हैं, न किसी औषधकरि, न किसी अवर उपाय करिके वश होतियां हैं, एक संतके संगकरि निरवासी होवै, तब वश होतियां हैं, तातें मैं तुमारी शरण हौं, मेरे तांई आपदाके समुद्रतें कृपा करिके निकासहु, जो मैं बूडता हौं, अरु यह संसारसमुद्रविषे दीन हौं, तातें तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, तुम पार करौ, अरु तुमारी महिमा संतनें भी सुणी है, तुम कृपा करौ ॥ हे भगवन्! जो कोउ आयुर्बलपर्यंत विषयके दिव्य भोग भोगता रहै, अरु इनतें शांति चाहै तौ न प्राप्त होवैगी, बडे सुख सो दुःख समान हैं, अरु आकाशविषे उडणेवाले भी हैं, तौ भी इंद्रियांकों वश नहीं करि सकते, तातें दीन दुःखी रहते हैं, अरु ऐसा भी कोउ पुरुष होवै, जो फूलकी नांई महामत्त हस्तीके दंतकों चूर्ण करै, तौ भी मानीता है, परंतु इंद्रियांकों अंतर्मुख करणा महाकठिन है ॥ हे मुनीश्वर! एता काल मैं जलता रहा हौं, महा अध्यात्म तापविषे मैं दुःखी हौं, तुम कृपाकरि निकासहु, मैं तुमारी शरण हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरवैराग्यवर्णनं नाम शताधिकएकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३१ ॥ ॥ ॥

भुषंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी ! जब इस प्रकार विद्याधरनें मेरे आगे प्रार्थना करी, तब मैं कहा ॥ हे अंग, तूं धन्य है, अब तूं जाग्या है, जैसे कोउ पुरुष अंधे कुएविषे पडा होवै, अरु तिसकी इच्छा हुई जो निकसौं तौ जाणिएं जो निकसैगा, तातें तूं धन्य है ॥ हे विद्याधर ! मैं उपदेश करता हौं, सो तूं अंगीकार करियो, अरु सत् जाण जो मेरे वचनोंविषे संशय नहीं करणा, जो यह उपदेश ऐसे क्यों किया जो सबके

सार वचन हैं, सो तेरे तांई कहता हौं, अरु मैं जानता हौं जो तूं शीघ्रही अंगीकार करैगा, जैसे उज्ज्वल आरसी प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, यत्नविना, तैसे मेरे वचन तेरे अंतर प्रवेश करैंगे, जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों संत उपदेश करौ अथवा न करौ, उनकों सहज वचनही उपदेश हो लगते हैं, जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंबकों यत्नविना ग्रहण करता है, तैसे मेरे वचनोंकों तूं धारि लेवैगा, तब तेरे दुःख नाश हो जावैंगे, अरु परमानंदकों प्राप्त होवैगा, जो अविनाशी सुख है, अरु आदिअंततें रहित है, अरु इंद्रियांके सुख आगमापायी हैं, सो दुःखके तुल्य हैं, इनतें रहित परम सुख है ॥ हे विद्याधरविषे श्रेष्ठ! जो कछु तेरे तांई सुखरूप दृष्ट आवै, तिसका त्याग करु, तब परम सुख तेरेतांई प्राप्त होवैगा, अरु सर्व दुःखका मूल अहंभाव है, जब अहंकार नाश हुआ, तब शांति होवैगी, संसारका बीज अहंकार है, अरु संसार मृगतृष्णाके जलवत् है, अणहोता भासता है, तबलग संसार नष्ट नहीं होता, जबलग अहंतारूपी संसारका बीज है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट होजावै, तब संसार भी निवृत्त हो जावै, अरु संसाररूपी वृक्ष है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसके पत्र हैं, तारागण तिसके कली फूल हैं, अरु सप्त समुद्र तिसका रस है, अरु जन्ममरण तिससाथ वल्ली हैं, अरु सुखदुःख तिसके फल हैं, अरु आकाश दिशा पातालकों धारिके स्थित हुआ है, अरु अहंकाररूपी पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है, अहंकार तिसका बीज है, अरु मिथ्या भ्रममात्र उत्पन्न हुआ है, असत् अरु सत्की नांई स्थित हुआ है, तातें अहंकार बीजका नाश करौ, निरहंकाररूपी अग्निकरि इसकों जलावहु, तब अत्यंत अभाव हो जावैगा, यह भ्रम करिके भयकों देता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम भयकों देता है, तातें निरहंकाररूपी अग्निकरि इसका नाश करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संसाररूपीवृक्षवर्णनं नाम शताधिकद्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३२ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह ज्ञान जैसे उत्पन्न होता है, सो श्रवण करु, ब्रह्मविद्या शास्त्र तिसकों श्रवण करणा, अरु आत्मविचार करणा, तिसकरि

ज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानरूपी अग्निकरि संसाररूपी वृक्षकों जलावहु, अरु आगे भी है नहीं अणहोता उदय हुआ है, मनके संकल्पकरि हुएकी नांई स्थित है, जैसे पत्थरविषे शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलीयां निकसैंगियां, सो हुइयां कछु नहीं, तैसे मनरूपी शिल्पी यह विश्वरूपी पुतलियां कल्पता है, जब मनका नाश करौगे, तब संसारभ्रम मिटि जावैगा, आत्मविचार करिके परमपदकों प्राप्त होहुगे, अपणा आप परमात्मरूप प्रत्यक्ष भासैगा, तातें अहंताकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे विद्याधर! यह जो संसाररूपी वृक्ष है सो अहंतारूपी बीजतें उपजा है, तिसकों जब ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाइएं, तब फिरि यह जगत् नहीं उपजता, जब इसकों विचारकरि देखियें, तब अहंत्वंकों नहीं पाइता ॥ हे विद्याधर! यह अहं त्वं मिथ्या हैं, इनके अभावकी भावना करु, यही उत्तम ज्ञान है॥ हे साधो! जब गुरुके वचन सुणिकरि तिनके अनुसार इसनें पुरुषार्थ किया, तब यह परम ऊंचे पदकों प्राप्त होता है, इसकी जय होती है ॥ हे विद्यारूपी कंदराके धारणेहारे पर्वत, अरु विद्यारूपी पृथ्वीके धारणेहारे, यह संसाररूपी एक आडंबर है, तिसके सुमेरु जैसे केई थंभे हैं, अरु रत्नोंकी पंक्तिसाथ जडे हुए हैं, अरु बन दिशा पहाड वृक्ष कंदरा वैताल देवता पाताल आकाश इत्यादिक जो ब्रह्मांड है, सो तिसके उपर स्थित है, अरु रात्रिदिन भूत प्राणी अरु इनके जो घर हैं सो चउपडके खाने हैं, कोउ जैसा कर्म करता है, तिसके अनुसार दुःख सुख भोगता है, सो खेलै है, ऐसेही संपूर्ण प्रपंच क्रियासंयुक्त दिखाइ देता है, सो भ्रमकरि सिद्ध है, तातें मिथ्या है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि संकल्पकरि भासती है, तैसे यह सृष्टि भी भ्रमकरि भासती है, अज्ञानकरि रची हुई है, आत्माके अज्ञानकरि भासती है, सो आत्माके ज्ञानकरि लीन हो जाती है, तब भी परमात्मतत्त्वही है, अरु जब सृष्टि होवैगी, तब भी परमात्मतत्त्वही होवैगा, आगे भी उही था, अरु जो कछु प्रपंच तेरे तांई दृष्टि आता है सो शून्य आकाशही है, त्रिगुणमय प्रपंच गुणोंका रचा हुआ है, अपणे स्वरू

पके प्रमादकरि स्थित भया है, अरु आत्मज्ञानकरि शून्य हो जावैगा, जब प्रपंचही शून्य हुआ, तब आत्मा अरु अनात्माका कहणा भी न रहैगा, पाछे जो शेष रहैगा सो केवल शुद्ध परमतत्त्व है, सो तेरा अपणा आप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु दृश्यका त्याग करु, जो है नहीं, न मैं हौं, न जगत् है, जब तूं ऐसा होवैगा, तब तेरी जय होवैगी, आत्मपद सबतें उत्तम है, जब तूं आत्मपदविषे स्थित हुआ, तब तूं सबतें उत्तम हुआ, अरु तेरी जय होवैगी, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोग० नि० प्र० संसाराडंबर उ० शताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः॥१३३॥ ॥भुषंड उवाच॥ हे विद्याधर! यह प्रपंच भी आत्माका चमत्कार है, अरु आत्मा शुद्ध चेतन है, जिसविषे जड अरु चेतन स्थित हैं, अरु सबका अधिष्ठान है, सो सत्तामात्र तेरा अपणा आप है, अहं त्वं शब्द अर्थतें रहित है, अरु आत्मतत्वमात्र है, अरु सत्य स्वरूपकी असत्की नांई स्थित है ॥ हे विद्याधर! तूं इस जड अरु चेतनतें अबोधमान होहु, जब तूं अबोध हुआ तब तूं शांति चिद्घन होवैगा, अरु यह जो जड चेतन है, सो दोनों जड परमार्थ चेतन आगे इन दोनोंका अंतर रहता है, यद्यपि अदृश्य है तौ भी इनके अंतरही रहता है, जैसे समुद्रके अंतर वडवाग्नि रहती है, अरु इन जड चेतनका जो कारणरूप है सो उही है, उत्पत्ति भी उसीतें होती है, अरु नाश भी उही करता है, जैसे पवनकरि अग्नि उपजती है, अरु पवनहीकरि लीन होती है ॥ हे विद्याधर! जब ऐसे जाण्या जो मैं चेतनरूप भी नहीं अरु जड भी नहीं, जब ऐसी भावना हुई, तब पाछे जो रहैगा सो तेरा स्वरूप है, जब तेरे अंतर इन जड चेतन दोनोंका स्पर्श हुआ नहीं, तब सर्वके अंतर जो चेतन है उह ब्रह्म तेरे तांई भासैगा, अरु विश्व भी आत्माविषे कछु हुई नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांका चमत्कार जलाभास होता है, तैसे शुद्ध चेतनका चमत्कार विश्वहो भासता है ॥ हे अंग! जैसे भीत उपर पूतलियां लिखी होतियां हैं, सो भीततें इतर कछु वस्तु नहीं, चितेरेनें पूतलियां लिखियां हैं, तैसे शून्य आकाशविषे चित्तरूपी चितेरेनें विश्वरूपी पूतलियां कल्पी हैं, सो आ

त्मरूपी भीततें इतर कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पित हैं, सो स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अज्ञानी विश्व देखते हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूपकी संज्ञा है, जगत्का ब्रह्म, आत्मा, आकाश, देश, काल, सब उसी तत्त्वकी संज्ञा है, उही शुद्ध चेतन आकाश है, जिसका चमत्कार ऐसे स्थित है, तिसी तत्त्वविषे स्थित होहु, यह जगत् ऐसे है, जैसे दूर दृष्टिकरि आकाशविषे बदल हाथीकी सुंड भासते हैं, तैसे यह जगत् है, यह जो अहं त्वंरूप जगत् है सो अबोधकरिके भासता है, अरु बोधकरिके लीन हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणाकरि जल भासता है, जैसे गंधर्वनगर है, तैसे यह जगत् है, तातें इसका त्याग करहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चित्तचमत्कारो नाम शताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३४ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! यह जगत् स्थावर जंगम सब आत्मातें उत्पन्न हुआ है, आत्माहीविषे स्थित है, अरु आत्माही विश्वविषे स्थित है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेविषे स्थित है, इतर कछु नहीं, अरु आत्मा किसीका कारण नहीं, काहेतें जो अद्वैत है, जिसविषे दूसरा फुरणा नहीं ॥ हे अंग! जब तूं तिस पद पावणेकी इच्छा करता है, तब तूं ऐसे निश्चय करु जो न मैं हौं, न इह जगत् है, जब तूं ऐसा हुआ तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी; जो देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, अरु सर्व उही परमात्मतत्त्व स्थित है, अरु जगत्का कर्ता संकल्पही है, काहेतें जो संकल्पकरि उत्पन्न होता है, बहुरि संकल्पहीकरि नाश होता है, जैसे पवनकरि अग्नि उत्पन्न होती है, अरु पवनहीकरि दीपक निर्वाण होता है, तैसे जब संकल्प बहिर्मुख फुरता है, तब संसार उदय हो भासता है, जब संकल्प अंतर्मुख होता है, तब आत्मपद प्राप्त होता है, अरु प्रपंच लय हो जाता है, तातें संसारकी नानाप्रकार संज्ञा फुरणेकरि होती है, स्वरूपविषे कछु नहीं, न सत्य है, न असत्य है, न स्वतः है, न अन्य है, यह सब कल्पनामात्र है, सत् असत् अरु स्वतः अन्यका अभाव हुआ तहां अहं त्वं कहां पाइयें, है नहीं,

सो भ्रममात्र है, बालकके यक्षवत॥ हे साधो! जहां अहं त्वं नष्ट हो गए, तहा जो सत्ता है, सो परम पद है, अरु जहां जगत् है तहां विचारकरि लीन हो जाता है, अरु वास्तव पूछै तौ ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, नाममात्र दो हैं, जैसे घट अरु कुंभ हैं, परंतु भ्रमकरि नानात्व भासता है, जैसे समुद्रविषे आवर्त तरंग उठते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं, अरु पवनके संयोगतें आकार भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् इतर कछु नहीं, परंतु संकल्पके फुरणेकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है॥ हे अंग! यह संकल्पके साथ मिलिकरि चित्तशक्ति जैसी भावना करता है, तैसा रूप अपणा देखता है, स्वरूपतें इतर कछु नहीं, परंतु भावनाकरि अवरका अवर देखता है, जैसे शुद्ध मणिके निकट कोउ रंग राखिये तैसा रूप भासता है, अरु मणिविषे कछु रंग हुआ नहीं, तैसे चित्तशक्तिविषे कछु हुआ नहीं, अरु हुएकी नाईं स्थित है, तातें अपणे स्वरूपकी भावना करु, अरु जड चेतनकों छांडीकरि शुद्ध चेतनविषे स्थित होहु, जब ऐसे जाणीकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा; तब तेरे तांईं उत्थानविषे भी विश्व अपणा स्वरूप भासैगा॥ ॥ हे विद्याधर! यह जगत् भी आत्मातें भासता है, जैसे स्थिर समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो कारणरूप जलविना तौ नहीं, तैसे ब्रह्म कारणरूपविना जगत् नहीं, परंतु कैसे है, ब्रह्मसत्ता जो अकर्त्तारूप है, अद्वैत है, अच्युत है, इसीतें कहा है जो अकर्ता है, अरु जगत् अकारणरूप है, जो जगत् अकारणरूप है तौ न उपजता है, न नाश होता है, मरुस्थलके जलवत् है, इसीतें कहा है जो जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल अज अच्युत शांतरूप आत्मतत्त्वही अखंडित स्थित है, शिलाकोशवत् अचेत चिन्मात्र है, जिसकों चिन्मात्रकी अंतरभावना नहीं, तिस मूर्खसाथ हमारा क्या है॥ हे साधो! परमार्थतें कछु बन्या नहीं, अरु जहां जहां यह मन है, तहां तहां अनेक जगत् हैं, तृण सुमेरु आदिक जो है, तिन सर्वविषे जगत् है, जो विचारकरि देखिये तौ उहीरूप है, अवर कछु नहीं, जैसे स्वर्णके जाणेतें भू

षण भी स्वर्ण भासते हैं, तैसे केवल सत्ता समानपद एक अद्वैत है, इतर कछु नहीं, भिन्न भिन्न संज्ञा भी उही है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्गोपसर्गोपदेशो नाम शताधिकपंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३५ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जब यह आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब इसकी अवस्था ऐसी होती है, जो नग्न शरीर होवै, अरु तिसपर बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होवे, तिसकरि दुःखी नहीं होता, अरु सुंदर अप्परा कंठसाथ मिलैं तौ तिनकरि हर्षवान नहीं होता, दोनोंहीविषे तुल्य रहता है ॥ हे विद्याधर! तबलग यह पुरुष आत्मपदका अभ्यास करै, जबलग संसारतें सुषुप्तिकी नांई नहीं होता, अभ्यासहीकरि आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, जब आत्मपदकी प्राप्ति भई, तब पंचभौतिक शरीरके ज्वर स्पर्श न करैंगे, यद्यपि शरीरविषे प्राप्ति भी होवै, तौ भी तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते, केवल शांतपदविषे स्थित रहता है, विद्यमान भी लगते हैं, तौ भी स्पर्श नहीं कर शकते, जैसे जलविषे कमलकों स्पर्श नहीं होता ॥ हे देवपुत्र! जबलग देहादिकविषे अध्यास है, तबलग इसकों सुख दुःख स्पर्श करते हैं, आत्माके प्रमादकरि जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब सर्व प्रपंच भी आत्मरूप भासैगा ॥ हे विद्याधर! जैसे कोउ पुरुष विषपान करता है, तब उसकों ज्वलनता अरु खांसी होती है, यह अवस्था विषकी है सो विषतें इतर कछु नहीं, परंतु नाम संज्ञा हुई है न विष जन्मती है, न मरती है, अरु, धूष खांसी उसविषे दृष्ट आई है, तैसे आत्मा न जन्मता है, न मरता है, अरु गुणोंकेसाथ मिलिकरि अवस्थाकों प्राप्त हुआ दृष्ट आता है, आत्मा जन्ममरणतें रहित है, अरु गुणों संकल्पसाथ मिलणेकरि जन्मता मरता भासता है, अंतःकरण अरु देह इंद्रियांदिक भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे साधो! इह जगत् भ्रमकरि भासता है, जो ज्ञानवान पुरुष है सो इस जगत्कों गोपदकी नांई लंघि जाता है, अपणे पुरुषार्थकरि अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों अल्प भी समुद्रसमान हो जाता है, तातें आत्मपद पावणेका यत्न करौ, जिसके जाणेतें संसारसमु

द्र तुच्छ हो जावै, सो आत्मतत्त्व कैसा है जो सर्वविषे अनुस्यूत व्याप्या है, अरु सर्वतें अतीत है, बहुरि कैसा है, जिसके जाणेतें अंतर शीतल हो जाता है, सब ताप नष्ट हो जाते हैं ॥ हे साधो! फिरि तिसका त्याग करणा अविद्या है, अरु बडी मूर्खता है ॥ हे साधो! यह पदार्थजात सब ब्रह्मस्वरूपही है, जो ब्रह्मस्वरूप हुए तौ; मन अहंकार आदिक कलंक कैसा, सब उही है, किसीकरि किसीकों कछु दुःखसुख नहीं ॥ हे विद्याधर! जब आत्मपदकों जाण्या, तब अंतःकरण भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे, जो संकल्पकरि भिन्न भिन्न जाणते हैं, सो संकल्पके होते भी ब्रह्मस्वरूप भासैंगे तातें निःसंकल्प होकरि स्थित होहु, जो न मैं हौं, न इह जगत् है, न इदं है, इन शब्दों अरु अर्थोंतें रहित होकरि स्थित होहु, जो संशय सब मिटि जावै ॥ हे विद्याधर! जब तूं ऐसे निरहंकार होवैगा, अरु निःसंकल्प होवैगा, तब उत्थान कालविषे भी सर्व आत्मा भासैगा, बुद्धि बोध लज्जा लक्ष्मी स्मृति यश कीर्ति इत्यादिक जो शुभ अशुभ अवस्था है, सो सर्व आत्मबुद्धि रहैगी, इनके प्राप्त हुए भी केवल परमार्थसत्तातें इतर न भासैगा, जैसे अंधकारविषे सर्पके पैरका खोज नहीं भासता, काहेतें जो है नहीं, तैसे तेरे तांई सर्व अवस्था न भासैगी, सर्व आत्माही भासैगा, जेते कछु भावरूप पदार्थ स्थित हैं, सो अभाव हो जावैंगे ॥ हे अंग! जिस पुरुषनें विचारकरि आत्मपद पावणेका यत्न किया है, सो पावैगा, अरु जिसनें कहा जो मैं, मुक्त हो रहौंगा, मेरे तांई दया करैंगे, तिस पुरुषनें कदाचित् नहीं मुक्त होणा, आत्मस्वरूपविषे स्थित होणेंकों पुरुषप्रयत्नविना कदाचित् मुक्त न होवैगा, आत्मस्वरूपविषे न कोउ दुःख है, न किसी गुणसाथ मिल्या हुआ सुख है, केवल शांतरूप है, किसीकरि किसीकों कछु सुख दुःख नहीं, न सुख है, न दुःख है, न कोउ कर्ता है, न भोक्ता है, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोग० निर्वाणप्रकरणे यथाभूतार्थभावरूपयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३६ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जैसे कोउ कलना करै, जो आकाशविषे अवर आकाश स्थित है, तौ

मिथ्या प्रतीति है, तैसे आत्माविषे जो अहंकार फुरणा है, सो मिथ्या है, जैसे आकाशविषे अवर आकाश कछु वस्तु नहीं, परमार्थ तत्त्व ऐसा सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु स्थूल ऐसा है, जिसविषे सुमेरु आदिक भी सूक्ष्म अणुरूप हैं, द्वैततें रहित चेतन केवल शांतरूप है, गुण अरु तत्त्व क्षोभतें रहित है ॥ हे देवपुत्र! अपणां अनुभवरूप चंद्रमा है, अरु अमृतके स्रवणेहारा है ॥ हे अंग! जेते कछु दृश्य पदार्थ भासते हैं, सो हुए कछु नहीं हैं, अंग आत्मरूप अमृतकी भावना करु, जो तूं जन्ममृत्युके बंधनतें मुक्त होवै, जैसे आकाशविषे दूसरे आकाशकी कल्पना मिथ्या है, तैसे निराकार चिदात्माविषे अहं मिथ्या है, जैसे आकाश अपणे आपविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अहं त्वं आदिकतें रहित है, जब अहंका उत्थान तिसविषे होता है, तब जगत् विस्तार होता है, जैसे जलविषे द्रवताकरि तरंग पसरते हैं, तैसे अहंकरि जगत् पसरता है, अरु जैसे वायु फुरणेतें रहित हुई आकाशरूप हो जाती है, तैसे संवित् उत्थान अहंतें रहित हुई, तब आत्मरूप हो जाती है, जगत्भ्रम मिटि जाता है, फुरणेकरि जगत् फुरि आया है, वास्तव कछु नहीं, ज्ञानवानकों आत्माही भासता है, देश काल बुद्धि लज्जा लक्ष्मी स्मृति कीर्ति सब आकाशरूप हैं, ब्रह्मरूपी चंद्रमाके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे बदलोंके संयोगकरि आकाश धूम्रभावकों प्राप्त होता है, तैसे प्रमाद करिके संवित् दृश्यभावकों प्राप्त होती है, परंतु अवर कछु नहीं होती, जैसे तरंग करिके जल अवर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठ छेदेतें अवर कछु नहीं होता, तैसे द्रष्टातें दृश्य भिन्न नहीं होती, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्रविना अवर कछु नहीं निकसता, पत्र शून्यरूप है, तैसे क्रूररूप जगत् भासता है, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, शून्यरूप है, सीस भुजा नेत्र चरण आदिक नानाप्रकार भिन्न भिन्न भासते हैं, परंतु सब शून्यरूप केलेके पत्रोंकी नांई भासते हैं, सब असाररूप हैं ॥ हे विद्याधर! चित्तविषे रागरूपी मलिनता है, जब वैराग्यरूपी झाडुकरि

झाडियें, तब इसका चित्त निर्मल होवै, जैसे कंध उपर चित्र लिखे होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, देवता मनुष्य नाग दैत्य आदिक सब जगत् संकल्परूपी चितेरेनें मूर्त्यां लिखियां हैं, स्वरूपके विचारकरि निवर्त हो जातियां हैं, जब स्नेहरूप संकल्प फुरता है, तब भावअभावरूप जगत् विस्तारकों पावता है, जैसे जलविषे तेलकी बुंद विस्तारकों पावती है, जैसे वांसतें अग्नि निकसीकरि वांसकों दग्ध करती है, तैसे स्नेह इसतें उपजीकरि इसीकों खाते हैं, आत्माविषे जो देश काल पदार्थ भासते हैं, यही अविद्या है ॥ पुरुषार्थकरि इसका अभाव करौ, दो भाग साधुसंग अरु कथाश्रवणविषे व्यतीत करौ, तृतीय भाग शास्त्रका विचार करौ, चतुर्थ भाग आत्मज्ञानका आपही अभ्यास करौ, इस उपायकरि अविद्या नष्ट हो जावैगी, अरु अशब्द अरूप पदकी प्राप्ति होवैगी ॥ विद्याधर उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! चार भाग जो उपायकरि अशब्द पद प्राप्त होता है, सो सब काल क्या है, नाम अर्थके अभाव हुए शेष क्या रहता है? भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! संसारसमुद्रके तरणेकों ज्ञानवानका संग करणा, जो विकृत निर्वैर पुरुष है, तिनकी भली प्रकार टहल करणी, तिसकरि अर्धभाग अविद्याका नष्ट होवैगा, उनकी संगति करिके अरु तीसरा भाग मनन करिके चतुर्थ भाग अभ्यास करिके नष्ट होवैगा, अरु जो यह उपाय न करि सकै तौ यह युक्तिकर जिसविषे चित्त अभिलाष करिके आसक्त होवै, तिसीका त्याग करु, एक भाग अविद्या, इस प्रकार नष्ट होवैगी, तीन भाग शनैःशनैःकरि नष्ट होवैगी; साधुसंग अरु सच्छास्त्रविचार अरु अपणा यत्न होवै, तब एकही वार अविद्या नष्ट हो जावैगी, यह समकाल कहियें, अरु एक एकके सेवेतें एक एक भाग निवर्त होता है, पाछे जो शेष रहता है, तिसविषे नाम अर्थ सब असत्‌रूप है, अजर अनंत एकरूप है, संकल्पके उपजेतें पदार्थ भासते हैं, संकल्पके लीन हुए लीन हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर! यह जगत् संकल्पकरि रचा है, जैसे आकाशविषे सूर्य निराधार स्थित होता है, तैसे देशकालकी अपेक्षातें रहित यह मननमात्र स्थि

त है, तीनों जगत् मनके फुरणे करिके फुरि आते हैं, मनके लय हुए लय हो जाते हैं, जैसे स्वप्नके पदार्थ जागेतें अभाव हो जाते हैं ॥ हे विद्याधर! ब्रह्मरूपी वनविषे एक कल्पवृक्ष है, तिसकी अनेक शाखा हैं, तिसकी एक शाखासाथ जगत्‌रूपी पुरलका फल है, तिसविषे देवता दैत्य मनुष्य पशु आदिक मच्छर है, वासनारूपी रसकरि पूर्ण मज्जा पहाड है, पंचभूत मुखद्वारा तिसका खुला निकसनेका मार्ग है, इत्यादिक सुंदर रचना बणी है, तिसविषे त्रिलोकीका ईश्वर इंद्र एक होत भया, गुरुके उपदेशकरि तिसका आवरण नष्ट हो गया, बहुरि इंद्र अरु दैत्यका युद्ध होणे लगा, इंद्र अपणी सैनाकों ले चला, तब इंद्रकी हीणता भई, इंद्र भागा, दशों दिशाविषे भ्रमता रहा, जहां जावै तहां दैत्य चले आवैं, जैसे पापी परलोकविषे शोभा नहीं पावता, तैसे इंद्र शांतिकों न पाया, तब अंतवाहकरूप करिके सूर्यकी त्रसरेणुविषे प्रवेशकरि गया, जैसे कमलविषे भंवरा प्रवेश करै, तैसे प्रवेश किया, वहां युद्धका वृत्तांत इसकों विस्मरण हो गया, तब एक मंदिरविषे बैठा आपकों देखत भया, जैसे निद्राकरि स्वप्नसृष्टि भासी आवै, तहां रत्न मणीसाथ संवित् नगर देखा तिसविषे प्रवेश करत भया, तहां पृथ्वी पहाड नदीयां चंद्र सूर्य त्रिलोकी इसकों भासणे लगी, तिस जगत्का इंद्र आपकों देखत भया, जो दिव्य भोग ऐश्वर्यकरि संपन्न मैं इंद्र स्थित हों, सो इंद्र केतेक काल उपरांत शरीरकों त्यागिके निर्वाण हुआ, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण होता है, तब कुंदनाम पुत्र उसका इंद्र हुआ, राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका एक पुत्र भया, तब कुंद इंद्र शरीरकों त्यागिकरि परमपदकों प्राप्त हुआ, तिसका पुत्र राज्य करणे लगा, बहुरि तिसका पुत्र हुआ इसी प्रकार सहस्रपुत्रही होकरि राज्य करते रहे, उनके कुलविषे यह हमारा इंद्र राज्य करता है, तातें यह जगत् संकल्पमात्र है, तिस त्रसरेणुविषे यह सृष्टि है, तातें इस जगत्कों संकल्पमात्र जाणीकरि इसकी आस्था त्यागु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रोपाख्याने त्रसरेणुजगत्वर्णनं नाम शताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३७ ॥ ॥

॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! बहुरि उनके कुलविषे एक इंद्र हुआ, बडा श्रीमान् त्रिलोकीका राज्य करत भया, बहुरि उह निर्वाण हुआ, तिसके पुत्र रहा तिसकों बृहस्पतिके वचनकरि ज्ञानरूप प्रतिमा उदय भई, तब यह विदितवेद होकरि स्थित भया, अरु यथाप्राप्तविषे इंद्र होकरि राज्य करै, दैत्योंकों जीते, तब एक कालविषे किसी कार्यके निमित्त भिहकी तंतुविषे प्रवेश किया, तहां तिसकों नानाप्रकारका जगत् भासणे लगा, तहां इसकों अपणी इंद्रकी प्रतिमा भई, तब इच्छा उपजी जो मैं ब्रह्मतत्त्वकों प्राप्त होउं, दृश्य पदार्थकी नांई प्रत्यक्ष देखों, एकांत बैठीकरि समाधिविषे स्थित हुआ, तिसकों अंतर बाहिर ब्रह्म साक्षात्कार हुआ, तिस प्रतिभाके उदय होणेकरि एक निश्चय भया, जो सर्व ब्रह्महीहै, अरु सर्व उर पूजणे योग्य है, सर्व पूजते भी इसीकों हैं, अरु सर्व है, अरु सर्व शब्दतें रहित है, रूप अवलोकनतें रहित है, अरु मननतें भी रहित है, केवल शुद्ध आत्मपद है, अरु सर्व उरतें प्राणपद उसीके हैं, सर्व शीस अरु मुख उसीके हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके श्रवण हैं, अरु सर्व उरतें तिसीके नेत्र हैं, अरु सर्वकों आत्मत्वकरिके स्थित हो रहा है, सर्व इंद्रियां अरु सर्व विषयकों प्रकाशता है, अरु सर्व इंद्रियांतें रहित है, अरु असक्त हुआ भी सर्वकों धारि रहा है, निर्गुण है, अरु इंद्रियांसाथ मिलिकरि गुणोंका भोक्ता है, अरु सर्व भूतके अंतर बाहिर व्यापी रहा है, अरु सूक्ष्म है, तातें दुर्विज्ञेय है, इंद्रियांका विषय नहीं अरु अज्ञानीकों ज्ञानकरिके दूर है, अरु ज्ञानीकों ज्ञानकरिके निकट है, आत्मत्वकरिके अरु अनंत है, सर्व व्यापी है, अरु केवल शांतरूप है, जिसविषे दूसरा कोउ नहीं, घट पट कंध गाए आवा बरा नरा सबविषे उही तत्त्व भासता है, पर्वत पृथ्वी चंद्र सूर्य देश काल वस्तु सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं ॥ हे विद्याधर! इस प्रकार इंद्रकों ज्ञान हुआ, अरु जीवन्मुक्त भया, जो कछु चेष्टा होवै सो सब करै, परंतु अंतःकरणविषे बंधमान न होवै, जब केता काल बीत्या, तब इंद्र निर्वाणपदकों प्राप्त हुआ, आकाश भी जिसविषे स्थूल है, तिस पदकों प्राप्त भया, बहु

रि इंद्रका एक पुत्र सो बडा शूरवीर था, तिसनें सर्व दैत्योंकों जीत्या, बहुरि देवताका अरु त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, तिसकों भी ज्ञान उत्पन्न भया, सत् शास्त्र अरु गुरुके वचनकरि केता कालबीत्या, तब उह भी निर्वाण हुआ, उसका जो पुत्र रहा, उह राज्य करणे लगा इसी प्रकार केई इंद्र हुए अरु तिसविषे राज्य करत भये, अरु नानाप्रकारके व्यवहारकों देखते भये, तब तिसके कुलविषे इसका कोउ पुत्र था, तिसकों यह हमारी सृष्टि भासि आई, उह भी ब्रह्मध्यानी होत भया, तब उह आयकरि इस त्रिलोकीका राज्य करणे लगा, अबलग विश्वका इंद्र उही है ॥ हे विद्याधर! इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति है, सो संकल्पमात्र है, सब मैं तेरे तांई कही है, उसकों पहिले त्रसरेणुविषे सृष्टि भासी, बहुरि तिस सृष्टिके एक भिहकी तंतुविषे उसकों भासी, बहुरि तिसविषे केई वृत्तांत जो संकल्पमात्र थे, उनकों तुरत देखे, अणुविषे अनेक अवस्था देखियां ॥ हे विद्याधर! वास्तव कछु घुई नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व है, आत्माविषे विश्वका अत्यंत अभाव है, यह विश्व अहंभावतें उपजा है, जब अहंभाव फुरता है, तब आगे सृष्टि बनती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कोउ नहीं, इस विश्वका बीज अहं है, तातें तूं ऐसी भावना करु जो न मैं हौं, न जगत् है, जब ऐसी भावना करी, तब आत्माही शेष रहैगा, जो प्रत्यक्ष ज्ञानरूप अपणा आप है, ज्योंका त्यों भासैगा ॥ हे विद्याधर! इस मेरे उपदेशकों अंगीकार करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे संकल्पासंकल्पैकताप्रतिपादनं नाम शताधिक अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३८ ॥ ॥ ॥ भुषंड उवाच ॥ हे विद्याधर! जब अहंका उत्थान होता है, तब आगे सृष्टि बनी भासती है, जब अहंका अभाव हुआ, तब विश्व कछु नहीं भासती, केवल शुद्ध आत्माही भासता है ॥ हे विद्याधर! इंद्रनें कहा जो मैं हौं, उसकों सूर्यकी किरणोंके अणुविषे ऐसे अहं हुआ तब उसविषे देखा अरु कष्ट पाया, जब उसकों अहं न होता, तब दुःखकों न पावता, दुःखरूपी वृक्षका अहंरूपी बीज है, अरु आत्मविचारतें अहंका नाश हो

ता है, जब अहंका नाश होता है तब आत्मपदका साक्षात्कार होता है, अरु आत्मपदके साक्षात्कार हुए परिच्छिन्न अहंका नाश होता है ॥ हे विद्याधर! आत्मरूपी एक पर्वत है, तिस ऊपर आकाशरूपी बन है, तिसविषे संसाररूपी वृक्ष लगे हैं, वासनारूपी तिनविषे रस है, अज्ञानरूपी भूमितें उत्पन्न हुआ है, अरु नदियां समुद्र इसकी नाडी हैं, अरु चंद्रमा तारे इसके फूल हैं, वासनारूपी जलसाथ बढता है, अरु अहंकाररूपी वृक्षका बीज, सुख दुःखरूपी इसके फल हैं, रसविषे अनात्मपद है, अरु टास इसके आकाश है, अरु जडां इसकी पाताल हैं, तुम इस वृक्षकों ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, अहंरूपी जो वृक्षका बीज है, तिसीका नाश करौ ॥ हे विद्याधर! एक खाई है, तिसके जन्ममरणरूपी दोनों किनारे हैं, अनात्मरूपी तिसविषे जल है, अरु वासनारूपी तिसविषे तरंग हैं, अरु विश्वरूपी तिसविषे बुदबुदे होते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, अरु शरीररूपी तिसविषे झग है, अहंकाररूपी वायु है, जब वायु हुई तब तरंग बुदबुदे सब होते हैं, जब वायु मिटि गई, तब केवल स्वच्छ निर्मलही भासता है ॥ हे विद्याधर! जो वायु हुई तौ जलतें इतर कछु न हुआ, अरु जो न हुई तौ भी जलतें इतर कछु नहीं, जलही है, तैसे अज्ञानके होते भी अरु निवर्त हुए भी आत्मपद ज्योंका त्यों है, परंतु सम्यक् दर्शन करिके आत्मपद भासता है, अरु अज्ञान करिके जगत् भासता है, सो अहंका होणाही अज्ञान है, जब अहं हुआ तब मम भी होता है, सो अहं मम भी नाम संसारका है, जब अहं मम मिटि गया, तब जगत्का अभाव होता है, अहंके होते दृश्य भासती है, अरु दृश्यविषे अहं होती है, तातें संवेदनकों त्यागिकरि निर्वाणपदकों प्राप्त होहु ॥ भुषंड उवाच ॥ हे वसिष्ठजी! इस प्रकार जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब समाधिविषे स्थित हुआ, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे उसका चित्त क्षोभतें रहित शांतिकों प्राप्त भया ॥ हे ब्राह्मण! उसका हृदय शुद्ध था, मेरे वचनों शीघ्रही उसके हृदयविषे प्रवेश किया, ज

ब समाधि स्थित भया, तब मैं उसकों जगाय रहा वारंवार, परंतु न जाग्या, जैसे कोउ जलता जलता शीतल समुद्रविषे जाय बैठै, अरु उसकों कहिये तूं निकस तौ नहीं निकसता, तैसे संसारतापकरि जलता जो था, अरु आत्मसमुद्रकों उह प्राप्त हुआ, तब अज्ञानरूपी संसारके प्रवाहकों नहीं देखता ॥ हे वसिष्ठजी! जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडे वचन भी बहुत हो लगते हैं, जैसे तेलकी एक बुंद जलविषे पाई बडे विस्तारकों पावती है, तैसे जिसका अंतःकरण शुद्ध होता है, तिसकों थोडा वचन भी बहुत होकरि लगता है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन होता है, तिसकों वचन नहीं लगता, जैसे आरसी ऊपर मोती नहीं ठहरता, तैसे गुरु शास्त्रके वचन उसकों नहीं लगते, जब विषयतें वैराग्य उपजै, तब जाणियें जो हृदय शुद्ध हुआ है ॥ हे वसिष्ठजी! जब मैं विद्याधरकों उपदेश किया, तब उह शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त भया, काहेतें जो उसका चित्त निर्मल था ॥ हे मुनीश्वर! जो तुमनें मुझतें पूछा था, सो कहा, जो ज्ञानतें रहित चिरकाल जीता देखा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ऐसे मैं काक भुषंडकों पूछा था, सो मुझसों कहा, अरु कहीकरि तूष्णीं हो गया, जैसे मेघ वर्षाकरि तूष्णीं होवै, तैसे उह तूष्णीं भया, अरु मैं नमस्कार करिके उठी आकाशमार्गतें अपणे घर आया ॥ हे रामजी! अब एकादश चउकडी युग बीते हैं, मेरे अरु काग भुषंडके संवादकों ॥ हे रामजी! कालका नियम नहीं, जो थोडे कालकरि ज्ञान उपजता है, अथवा बहुत कालकरि उपजता है, यह हृदय शुद्धकी बात है, जिसका हृदय शुद्ध होता है, तिसकों गुरु शास्त्रोंका वचन शीघ्रही लगता है, जैसे जल नीचेकों स्वाभाविक जाता है, तैसे शुद्ध हृदयविषे उपदेश शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी! एता उपदेश क्रम करिके तुझकों किया है, तिसका तात्पर्य यह जो फुरणेका त्याग करु, जो न मैं हौं, न कोउ जगत् है, तब पाछे निर्विकल्प केवल आत्मपद रहैगा, जो सर्वका अपणा आप है, तिसका साक्षात्कार तुझकों होवैगा, जैसे दर्पण मलिनविषे मुख नहीं

दिखता, तैसे आत्मरूपी दर्पण अहंरूपी मलकरि आच्छाद्या है, जब इसका त्याग करौ, तब आत्मपद की प्राप्ति होवैगी, अरु जगत् भी अपणा आप भासैगा, जो आत्मातें इतर कछु नहीं, काहेतें जो इतर कछु नहीं, केवल आत्मत्वमात्र है, अरु अवर जो कछु भासता है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जाण, अरु वंध्याके पुत्रवत् जाण, यह जगत् आत्माके प्रमादकरि भासता है, जैसे आकाशमें नीलता भासती है, अरु है नहीं, तैसे जगत् प्रत्यक्ष भासता है, अरु है नहीं, जैसे जेवरीविषे सर्प मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब जगत्का अत्यंत अभाव होवैगा, केवल आत्मत्वमात्र अपणा आप भासैगा ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुंड विद्याधरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम शताधिकनवत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ १३९ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तूं अहं वेदनातें रहित होहु, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंही है, वासना करिके शुभ अशुभरूप कर्मका सुख दुःख फल है, अरु वासनाहीकरी प्रफुल्लित होता है, तातें अहंभावकों निवृत्त करौ, जब अहं फुरता है, तब आगे जगत् भासता है, जब अहंतातें रहित होवैगा तब जगत्भ्रम मिटि जावैगा, सो अहंता आत्मबोधकरि नष्ट होती है, आत्मबोधरूपी खंभाणीकरि उडाया अहंतारूपी पाषाण जाणियेगा नहीं जो कहां गया, अरु स्वर्ण पाषाण तुझकों तुल्य हो जावैगा, अरु शरीररूपी पत्र उपर अहंतारूपी अणु स्थित है, जब बोधरूपी वायु चलैगी, तब न जानियेगा जो कहां गया, अरु शरीररूपी पत्रउपर अहंतारूपी बरफका कणका स्थित है, बोधरूपी सूर्यके उदय हुए न जानियेगा जो कहां गया, बोध विना अहंता नष्ट नहीं होती, भावै चिकडविषे गमन होवै, भावै पहाडविषे जाय रहे, भावै घरहिविषे रहै, भावै आकाशविषे उडै, भावै जलविषे रहै, भावै स्थलविषे रहै, भावै स्थूल होवै, भावै सूक्ष्म होवै, भावै निराकार होवै, भावै रूपांतरकों प्राप्त होवै, भावै भस्म होवै, भावै मृतक हो जावै, भावै दूर होवै, अथवा

निकट होवै, जहां रहैगा, तहांही अहंता इसकेसाथ है॥ हे रामजी! संसाररूपी वट है, तिसका बीज अहंता है, तिसतें सब शाखा पसरती हैं, सब अनर्थका कारण अहंता है, जबलग अहंता है, तबलग दुःख नहीं मिटता, जब अहंभाव नष्ट होवै, तब परम सिद्धताकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामजी! जो कछु मैं उपदेश किया है, तिसकों भली प्रकार विचारिकरि तिसका अभ्यास करु, तब संसाररूपी वृक्षका बीज जलि जावैगा, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अहंकारासत्ययोगोपदेशो नाम शताधिकचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ १४०॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! संसार संकल्पमात्र सिद्ध है, भ्रम करिके उदय हुआ है, आत्मस्वरूपविषे सृष्टि वस्तियां हैं, केई लीन होतियां हैं, केई उत्पन्न होतियां हैं, केई उडतियां हैं, कहूं एकठियां जाय होतियां हैं, कहूं भिन्न भिन्न उडतियां हैं, सो मुझकों प्रत्यक्ष भासतियां हैं, उह उडतियां जातियां हैं, तुम भी देखौ अरु आकाशरूप हैं, अरु आकाशहीसों मिलतियां हैं, जैसे केलेका वृक्ष देखणेमात्र सुंदर होता है, अरु तिसविषे सार कछु नहीं होता, तैसे विश्व देखणेमात्र सुंदर है, अरु आकाशरूप है, बहुरि कैसी हैं, जैसे जलविषे पहाडका प्रतिबिंब पडता है, अरु हलता भासता है, तैसे यह जगत् है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, प्रत्यक्ष सृष्टि उडतियां मुझकों भासतियां हैं, तूं भी देख यह तौ, मैं कछु नहीं समुझा क्या कहते हो?॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अनेक सृष्टि उडतियां हैं, सो श्रवण करु, पंचभौतिक शरीरविषे प्राण स्थित है, अरु प्राणविषे चित्त स्थित है, तिस चित्तविषे अपणी अपणी सृष्टि है, जब यह पुरुष शरीरका त्याग करता है, तब लिंगशरीर जो वासना अरु प्राणवायु है, सो उडते हैं, तिस लिंगशरीरविषे विश्व है, उह सूक्ष्म दृष्टिकरि मुझकों भासती है॥ हे रामजी! आकाशकी जो वायु है, जिसका रूप रंग कछु नहीं, उही वायु प्राणोंसाथ मिलि मेरे तांई प्रत्यक्ष देखाइ देती है, इसीका नाम जीव है, स्वरूपतें न कोउ आता है; न जाता है; परंतु लिंगशरीरके संयोगकरि

आपकों आता जाता देखता है, अरु जन्मता मरता देखता है, अपणी वासनाके अनुसार आत्माविषे विश्व देखता है, अवर बन्या कछु नहीं, यह वासनामात्र सृष्टि है, जैसी वासना होती है, तैसी विश्व भासती है ॥ हे रामजी ! यह पुरुष आत्मस्वरूप है, परंतु लिंगशरीरके मिलणेकरि इसका नाम जीव हुआ है, अरु आपकों परिच्छिन्न जानता है वास्तवतें ब्रह्मस्वरूप है, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित सो ब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि आपकों कछु मानते हैं, इसीका नाम लिंगशरीर है, जैसे घटाकाश भी महाकाश है, परंतु घटके खपरकरि परिच्छिन्न हुआ है, तैसे यह पुरुष भी आत्मस्वरूप है, अहंकारके संयोगकरिके जीव परिच्छिन्न हुआ है, जैसे घटकों एक देशतें उठाय देशांतरविषे ले जाय रखा, तौ क्या ले गया, आकश तौ न कहूं गया है, न आया है, खपरकरि आता जाता भासता है, तैसे आत्मा अखंडरूप है, परंतु प्राण चित्तकरि चलता भासता है, जब अहंकाररूप चित्त नष्ट होवै, तब अखंडरूप होवै, जबलग अहंकाररूपी खपर नहीं फूटता तबलग जगत् भ्रम दिखता है, अरु वासना करिके भटकता फिरता है, वासनाकरि सृष्टि अपणे अपणे चित्तविषे स्थित है, जब शरीरका त्याग करता है, तब आकाशविषे उडता है, प्राणवायु उडीकरि जो आकाशविषे शून्य रूप वायु है, तिसविषे जाय मिलती है, तहां इसकों अपणी वासनाके अनुसार सृष्टि भासी आती है, अपणी सृष्टिकों लेकरि इस प्रकार उडते हैं, जैसे वायु गंधकों ले जाती है, तैसे यह वासनारूप सृष्टिकों ले जाते हैं, सो उडते मेरे तांई सूक्ष्म दृष्टि करिके भासते हैं ॥ ॥ हे रामजी ! स्थूल दृष्टि करिके लिंगशरीर नहीं भासता, सूक्ष्म दृष्टिकरि देखता है, जिस पुरुषकों सूक्ष्म दृष्टि लिंग शरीर देखणेकी है, अरु ज्ञानतें रहित है, सोउ मेरे मतविषे मूर्ख पशु है ॥ हे रामजी ! जब यह पुरुष वासनाका त्याग करता है, वासना कहियें अहंकार, जो मैं हौं, इस होणेका त्याग करता है, तब आगे विश्व नहीं दिखाइ देती, केवल निर्विकल्प ब्रह्म भासता है, उसके प्राण नहीं उडते तहांही लीन हो जाते हैं, काहेतें जो उसका चित्त अचित्त हो जाता

है, इसकरि नहीं उडते, जबलग अहंकारका संयोग है, तबलग विश्व इसके चित्तविषे स्थित है, जैसे बीज विषे वृक्ष स्थित होता है, जैसे तिलोंविषे तेल स्थित होता है, तैसे इसके हृदयाविषे विश्व स्थित है, जैसे मृत्तिकाविषे वासन बडे छोटे होवैं, जैसे लोहेविषे सुई खड्ग होवै, जैसे बीजाविषे वृक्षभाव चेतन अथवा जड होवै॥ हे रामजी! तैसे यह संकल्पकलनाविषे भेद है, स्वरूपतें कछु नहीं, तैसे यह जगत् है॥ हे रामजी! विश्व संकल्पमात्र है, काहेतें जो दूसरी अवस्थाविषे नाश हो जाती है, यह जाग्रत जो तुझकों भासती है, सब मिथ्या है, जब स्वप्न आया, तब जाग्रत नहीं रहती, अरु जाग्रत आई तब स्वप्न नाश हो जाता है, जब मृत्यु आती है, तब सृष्टिका अत्यंत अभाव हो जाता है, अरु देश काल पदार्थ सहित वासनाके अनुसार अवर सृष्टि भासती है॥ हे रामजी! यह विश्व कैसी है, जैसे स्वप्ननगर होवै तैसे है, जैसे संकल्पपुर होवै तैसे यह सब संकल्प उडते फिरते हैं, सृष्टि केई परस्पर मिलतियां हैं, केई नहीं मिलतियां, परंतु सब संकल्परूपी भ्रम करिके अवरका अवर भासता है, जैसे कोउ पुरुष बडा होता है, अरु छोटा भासता है, अरु छोटेकों बडा भासता है, जैसे हस्तीके निकट अवर पशु तुच्छ भासते हैं, अरु चीटीके निकट अवर बडे भासते हैं, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों बडे पदार्थ देशकाल संयुक्त विश्व तुच्छ भासती है, असत् जानता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों संकल्पसृष्टि बडी होकरि भासती है, जैसे पहाड बडा भी होता है, परंतु जिसकी दृष्टितें दूर है, तिसकों महालघु तुच्छ जैसा भासता है, अरु चीटीके निकट तुच्छ मृत्तिकाकी टेल राखी पहाडके समान है, तैसे ज्ञानीकी दृष्टीतें यह जगत् रहित है, इसकरि बडा जगत भी उसकों तुच्छरूप भासता है, अरु अज्ञानीकों तुच्छरूप भी बडा भासता है॥ हे रामजी! यह विश्व भ्रम करिके सिद्ध हुई है, जैसे भ्रम करिके सीपीविषे रूपा भासता है, अरु जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माके प्रमादकरि विश्व भासती है, अरु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे निद्रा दोष करिके पुरुष अपणे अं

ग भूलि जाते हैं, अरु जागे हुए सब अंग अपणे भासते हैं, तैसे अविद्यारूपी निद्रा करिके पुरुष सोया हुआ, जब जागता है, तब सब विश्व अपणा आप दिखाई देती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या हुआ स्वप्नकी विश्व कों अपणा आपही देखता है, तैसे यह विश्व अपणा आपही भासैगा ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष निद्रा में सोया होता है, तब शुभ अशुभ विश्वविषे रागदोष कछु नहीं होता, अरु जागता है, तब इष्टविषे राग होता है, अनिष्टविषे दोष होता है, सो जबलग इसकों विश्वविषे हेयोपादेय बुद्धि है, जो सर्वज्ञ है तौ भी मूर्ख है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष जड हो जावै, तब कल्याण होवै सो जड होणा यही है, जो दृश्यतें रहित आत्माविषे स्थित होवै, सो आत्मा चिन्मात्र है, आत्मातें इतर जो कछु करता है, सत् अथवा असत् जानता है, तबलग स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, जब संवित फुरणेतें रहित होवै, तब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तातें फुरणेका त्याग करु, अरु यह स्थावर जंगम जगत् जो तुझकों भासता है सो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जब तूं ऐसे निश्चय करैगा, तब सर्व विवर्त्तका अभाव हो जावैगा, आत्मपदही शेष रहैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जीव जो तुम कहा सो जीवका स्वरूप क्या है, अरु जीव आकारकों ग्रहण कैसे करता है, अरु इसका अधिष्ठान परमात्मा कैसे है, अरु इसके रहणेका स्थान कवन है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध जो परमात्मतत्त्व निर्विकल्प चिन्मात्रपद है, तिसाविषे चैत्योन्मुखत्व हुआ जो मैं हौं, ऐसे जो चित्कला ज्ञानरूप फुरी, अरु तिसकों चित्तका संबंध हुआ, जो चित्तका संयोग भया, तिसका नाम जीव है, सो जीव न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न शून्य है, न अशून्य है, न थोडा है, न बहुत है, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु शुद्ध है, न अणुरूप है, न स्थूल है, अनंत चेतन आकाशरूप है, तिसकों जीवकरि कहते हैं, स्थूलका स्थूल उही है, सूक्ष्मका सूक्ष्म उही है, अनुभव चेतन सर्वगतरूप सो जीव है, तिसाविषे वास्तव शब्द कोउ नहीं, जो कोउ शब्द है, सो प्रतियोगीसाथ मिलिकरि हुआ है, अरु जीव अद्वैत है, जो अद्वैत

है, तिसका प्रतियोगी कैसे होवै, यह जीवका स्वरूप है, चैत्यके संयोगकरि जीव हुआ है, अरु जीवका अधिष्ठान परमात्मतत्त्व है, चेतन आकाश है, निर्विकल्प है, चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन है, तिसविषे जो संवित फुरी है, तिसका नाम जीव है, सो सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, स्थूलतें स्थूल है, सर्वका बीज है, इसीका नाम वैराट कहते हैं, अरु शरीर तिसका मनोमय है, आदि जो परमात्मतत्त्वतें फुर्या है, अरु अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, अवर अवस्था कहियें परिच्छिन्नताकों नहीं प्राप्त हुआ, आपकों सर्व आत्मा जानता है, इसका नाम विराट है, प्रथम शरीर उसका मनोमात्र अरु शुद्ध प्रकाशरूप है, रागदोषरूपी मलतें रहित है, अरु अनंत आत्मा है, सर्व मन अरु कर्मों अरु देहोंका बीज है, अरु सबविषे व्यापी रहा है, सब जीव का अधिष्ठाता है, तिसीके संकल्पकरि यह जीव रचे हैं, पंच ज्ञान इंद्रियां अरु अहंकार मन अरु संकल्प इन आठौंके आकार धारे हैं, अरु आपही ग्रहण किए हैं, परमार्थरूपकों त्यागि फुरणेतें जो आकार उत्पन्न हुए हैं, तिनकों ग्रहण किया इसका नाम पुर्यष्टका है, बहुरि इन इंद्रियांके छिद्र रचता भया, स्थूलरूप रचीकरि तिनविषे आत्मप्रतीति करत भया, जैसे पुरुष शयन करता है, अरु जाग्रत शरीरका त्याग करी स्वप्नशरीरका अंगीकार करता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्र निर्विकार अद्वैत स्वरूपकों त्यागिकरि वासनामय शरीरका अंगीकार किया है, अरु वास्तव स्वरूपका कछु त्याग नहीं किया, स्वरूपतें उह गिर्या नहीं, शुद्ध निर्विकल्प भावकों त्यागिकरि विराट भाव होत भया है, इसी प्रकार आगे तिस पुरुषनें चारौं वेद ज्ञानकरिके रचे, अरु नीतिकों निश्चय किया, नीति कहियें जो यह पदार्थ ऐसे होवै, अरु एता काल रहै, यह रचना रची जो जो संकल्प करत भया, सो सो देशकाल पदार्थ दिशा ब्रह्मांड सब आगे होत भये, तिस पुरुषके एते नाम हैं, ईश्वर वैराट आत्मा परमेश्वर इत्यादिक जीवके नाम हैं, सो इस जीवका स्वरूप वासनारूप कछु झूट नहीं, वासनाके शरीर ग्रहण करणेकरि वासनारूप कहा है, अरु वास्तवरूप शुद्ध है, निर्विका

र अद्वैत है, कदाचित् स्वरूपतें अन्य अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, सदा ज्ञानरूप है, अद्वैत परम शुद्ध है, तिसकों अपणे चेतन स्वभावकरि चैत्यका संयोग हुआ है, तिसकरि कहा है; जो उसका वपु वासनारूप है, तिस आदि जीवतें ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि देवता दैत्य आकाश मध्य पाताल त्रिलोकी उत्पन्न हुई है, जैसे दीपकतें दीपक होता है, अरु जलतें जल होता है, तैसे सब विराट स्वरूप है, सो विराट कैसा है, महाआकाश जिसका उदर है, अरु समुद्र तिसका रुधिर है, अरु नदियां जिसकी नाडी हैं, अरु दिशा जिसके वपु हैं, अरु जिसके उदरविषे केई ब्रह्मांड सुमेरु पर्वतसहित समाए रहते हैं, अरु पवन जिसके मुंड हैं, अरु उनचास पवन जिसके प्राणवायु हैं, मांस जिसका पृथ्वी है, हस्त जिसके सुमेरु आदिक पर्वत हैं, तारे जिसकी रोमावली हैं, ऐसा विराट है, सहस्र जिसके शीस हैं, अरु सहस्र मस्तक हैं, सहस्रही नेत्र हैं, अरु अनंत है, अनादि है, अरु चंद्रमा जिसकी कफ है, जिसतें अमृत स्रवता है, भूत उपजते हैं, अरु सूर्य पित्त है, अरु सर्वका उत्पन्न करता है, सर्व मन अरु सर्व कर्म अरु सर्व शरीरका बीज आदिविराट है ॥ हे रामजी! इस चित्तके संबंध करिके तुच्छ हुआ है, वास्तवतें परमात्मस्वरूप है, जैसे महाकाश घटके संयोगकरि घटाकाश होता है, तैसे विराट जो परमात्मा है, तिसनें फुरणेकरि सृष्टि रची है, अरु तिसविषे अहं प्रत्यय करी है, इसतें तुच्छ हुआ है, सो इसकों मिथ्या भ्रम हुआ है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा देखता है, तैसे आपकों दृश्य देखता है, सो लघुता भी इसकों आत्माकी अपेक्षा करिके है, दृश्यविषे विराट है, अरु आत्माविषे इसका अनुभव है ॥ हे रामजी! इसी प्रकार इसनें उपजीकरि सृष्टि रची है, जैसे एक विराट पुरुषनें आदि निश्चय किया है, तैसेही अबलग है, सो यह आपही उपजा है, अरु आपही लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! जिस प्रकार विराटकी आत्मातें उत्पत्ति हुई है, तैसेही सब जीवकी है, यह सब विराटरूप है, परंतु जो स्वरूपतें उपजीकरि दृश्यसाथ तद्रूप हुए, अरु वास्तव स्वरूप

जिनकों भूलि गया, सो जीव तुच्छरूप भये, अरु स्वरूपसों फुरिकरि स्वरूपतें न गिरै, अरु आगे अपणाही संकल्परूप विश्व देखी प्रमाद न हुआ, तिसका नाम विराट आत्मा है॥ हे रामजी! जीव चेतनरूप है, अरु निराकाररूप है, इसकों जो शरीरका संयोग हुआ है, सो कलनाकरि हुआ है, जब आपकों दृश्य संयुक्त देखता है, तब महाआपदाकों प्राप्त होता है, जब द्वैततें रहित निर्विकल्प होकरि देखै, तब शुद्ध चेतनघन आत्मपदकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी! यह विराट कैसा है, सबका उत्पन्नकर्ता है, सो ऐसे केई विराट आत्मपदतें उदय हुए हैं, अरु केई मिटि गये हैं, अरु केई आने होवैंगे, जैसे समुद्रतें केई तरंग बुदबुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, तैसे आत्मरूपी समुद्रतें केई उठतें हैं, केई लीन होते हैं, केई उपजैंगे, ऐसा परमात्मा सबका अधिष्ठान है, सबके अंतर बाहिर पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा तेरा अपणा आप अनुभवरूप है॥ हे रामजी! इस संवेदनकों त्यागिकरि देख, उही परमात्मस्वरूप है, यह जो कछु तुझकों भासता है, तिसकों विचारि करि त्याग, जब तूं इसका त्याग करैगा, तब चिन्मात्र जो परम शुद्ध तेरा स्वरूप है सो प्रकाश तुझकों भासैगा, तिसके आगे चेतनताही आवरणरूप है, जैसे सूर्यके आगे बदलोंका आवरण होता है, जबलग बदल होते हैं, तबलग सूर्यका प्रकाश ज्योंका त्यों नहीं भासता, जब बदल दूर होवें, तब प्रकाश स्वच्छ भासता है, तैसे जब फुरणा निवृत्त होवैगा, तब शुद्ध आत्माही प्रकाशैगा॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मावर्णनं नाम शताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ १४१ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह परमात्मा पुरुष फुरणे करिके जीवसंज्ञाकों प्राप्त हुआ है, फुरणेविषे भी उही है, अरु अपणे स्वरूपकों नहीं जानता, इसीतें दुःख पावता है, जैसे पवन चलता है तौ भी उहीरूप है, जब ठहरता है, तौ भी उहीरूप है, दोनोंविषे तुल्य है, तैसे आत्मा सर्वदा एकरस है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भया, अरु यह जीव प्रमाद करिके दृश्यकों कल्पता है, दृश्यकों आप जानता है, इसीतें दुःख पा

वता है, अरु जो इसकों अपणा स्वरूप स्मरण रहै तौ दृश्यविषे भी अपणा रूप भासै, अरु जो निःसंकल्प होवै तौ भी विश्व अपणा रूप भासै, विश्व भी इसीका रूप है, परंतु अविचारतें भिन्न भिन्न भासती है, जैसे स्वप्नकी विश्व स्वप्नवालेका रूप है, परंतु निद्रादोषकरि नहीं जानिता, जब जागता है, तब जानता है, जो मैंही था, तैसे यह प्रपंच सब तेरा स्वरूप है, तूं अपणे स्वरूपविषे निरहंकार स्थित होकरि देख तौ बन्या कछु नहीं अरु जो आत्मातें इतर परिच्छिन्न कछु तूं बणैगा, तौ प्रपंच विश्व भासैगा, जो आत्मस्वरूपविषे स्थित होवै तौ अपणा आप भासैगा, प्रपंचका अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी! शून्याशून्य जड चेतन किंचन निष्किंचन सत् असत् सब आत्माही पूर्ण है, निषेध किसका करियें, सब उहीरूप है ॥ हे रामजी! ऐसा अनुभवरूप है, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु ऐसे आत्माकों मूर्ख नहीं जानते, जैसे जन्मका अंध मार्गकों नहीं जानता, तैसे अज्ञानी महाअंध जागती जोति आत्माकों नहीं जानते, जैसे उलूकादिक सूर्य उदय हुएकों नहीं जानते, तैसे वासनाकरि आवरे हुए आपकों जाणी नहीं सकते, जैसे जालविषे पक्षी आवर्या होता है, तैसे जीव आवरे हुए हैं, इसीका नाम बंधन है, जब वासनाका वियोग हुआ, तब इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी! विषमता करिके इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब सम हुआ तब ब्रह्म है, सो ब्रह्म अहंकारकों त्यागिकरि होता है, जैसे खपरके संयोगकरि घटाकाश कहाता है, जब खपर टूटा तब महाकाश हो जाता है, तैसे जब अहंकार नष्ट हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! अज्ञान करिके एक देशी जीव हुआ है, जब परिच्छिन्नताकों वियोग हुआ, तब आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी! अपणा वास्तव स्वरूप जो निर्गुण है, तिसविषे गुणका संयोग उपाधि करिके भासता है, सो अनर्थरूप है, जब निर्गुण अरु सगुणकी गांठ टूटी तब केवल अद्वैत तत्त्व अपणा आप भासेगा, सो कैसा स्वरूप है, जो अनामय है, दुःखते रहित है, अरु सत् असततें पर है, ज्ञानरूप आदि अंततें रहित है, जिसके पायेतें बहुरि पावणा कछु नहीं र

हता, अरु जिसके जाणेतें अवर जानणा कछु नहीं रहता, ऐसा जो उत्तम पद है, तिसकों आत्मत्व करिके प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! यह जो ज्ञान तेरे तांई कहा है, तिसकों आश्रय करिके तुम ज्ञानवान् होणा, ज्ञानबंध नहीं होणा, ज्ञानबंधतें अज्ञानी भला है, काहेतें जो अज्ञानी भी साधुसंग अरु सच्छास्त्र श्रवणकरि ज्ञानवान् होता है, अरु ज्ञानबंध मुक्त नहीं होता, जैसे रोगी होवै, अरु कहै, मुझकों रोग कोउ नहीं, मैं अरोग हौं, तब वैद्यका औषध नहीं खाता, काहेतें जो आपकों अरोगी जानता है, तैसे जो ज्ञानबंध है, तिसतें संतका संग भी नहीं होता, अरु सच्छास्त्रोंका श्रवण भी नहीं होता, तातें अंधतमकों प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका लक्षण क्या है, अरु ज्ञानबंधका फल क्या है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिस पुरुषनें आत्माके विशेषण शास्त्रोंतें श्रवण किये हैं, जो आत्मा नित्य है, शुद्ध है, अरु ज्ञानस्वरूप है, अरु तीनों शरीरतें भिन्न है, ऐसे सुणीकरि आपकों मानता है, अरु विषय भोगणेकी सदा तृष्णा रहती है, जो किसी प्रकार इंद्रियांके विषय मेरे तांई प्राप्त होवैं, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानबंध है, उह बोध शिल्पी है, बहुरि कैसा है, जो कर्म फलके विचारतें रहित है, भला बुरा विचारकरि नहीं करता, तिसविषे विचारता है, अरु मुखतें शुभ अशुभ निरूपण करता है, सो शास्त्र शिल्पी है, अरु फलके अर्थ कर्म करता है, एक एक ऐसे हैं जो शास्त्र उक्त आपकों उत्तमकरि मानते हैं, अरु शास्त्रोंके अर्थ बहुत प्रकार भी कहते हैं, पढते भी हैं, पढावते भी हैं, अरु विषयसों बंधमान हैं, सदा विषयकी चिंतवना करते हैं, ऐसा पुरुष है सो ज्ञानबंध कहाता है, तिसनिमित्त अर्थ शिल्पी कहता है, चितेरा करणेकों समर्थ है, अरु धारणेकों समर्थ नहीं ॥ ॥ हे रामजी ! एक प्रवृत्ति मार्ग है, एक निवृत्ति मार्ग है, प्रवृत्ति संसारमार्ग है, निवृत्ति आत्मज्ञान मार्ग है, अरु जिस पुरुषनें निवृत्ति मार्ग धारा है, अरु प्रवृत्ति मार्गविषे वर्तता है, प्रवृत्ति कहियें जो बहिर्मुख विषयकी उर व

र्तता है, अरु इंद्रियांके विषयकी वांच्छा करता है, विषयते उपरांत नहीं होता, तिनकरि तुष्टमान होता है, अरु स्वरूपका अभ्यास नहीं करता ऐसा पुरुष ज्ञानबंध कहाता है॥ हेरामजी! श्रुति उक्त शुभ कर्म करता है, हृदय विषे उनके फलकों धारिकरि उह पुरुष ज्ञानके निकट वर्ती है, तौ भी ज्ञानबंध है, अरु जिसकों आत्माविषे प्रीति भी है, विषयकों चिंतवता है, अरु आपकों उत्तम मानता है, सो ज्ञानबंध कहाता है, अरुजो आत्मतत्त्वका निरूपण यथार्थ करता है, अरु स्थिति नहीं, उह ज्ञान आभास है, ज्ञानका फल तिसकों प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं, अरु जिस पुरुषनें सिद्धता पाई है, अरु ऐश्वर्य पाया है, तिसकरि आपकों बडा जानता है, अरु आत्मज्ञानतें रहित है, सो ज्ञानबंध कहता है॥ हे रामजी! निदिध्यास करिके जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तिसकरि शांतिका प्रकाश होता है, जबलग शांति नहीं प्राप्त होती, तबलग आपकों बडा न मानै॥ हे रामजी! बडा जो होता है, सो ज्ञानकरि होता है, जबलग ज्ञान नहीं उपजा, तबलग आत्मा परायण होवै, अभ्यास यत्न करै, छांडि न देवैं, अरु चेष्टा भी शुभ करै, शुभ व्यवहारकरि उपजीविका उत्पन्न करणी, प्राणोंकी रक्षाके निमित्त, अरु प्राणोंकों ब्रह्मजिज्ञासाके अर्थ धारै, अरु ब्रह्म जिज्ञासा इसनिमित्त है, जो संसार समुद्र दुःखरूपतें मुक्त होवै, बहुरि संसारी न होवै, यह इसी निमित्त आत्मपरायण होवै, जब आत्मपरायण होवैगा, तब दुःख सब मिटि जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदकों प्राप्त हुए दुःख सब नष्ट हो जाता है, तिस पदकों प्राप्त होणेका उपाय इह है, जो सच्छास्त्रोंतें आत्माके विशेषण सुणे है, तिनकों समुझीकरि वारंवार अभ्यास करणा, अरु अनात्म दृश्यते उपरांत होणा, तिनकों मिथ्या जाणी वैराग्य करणा, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ज्ञानबंधयोगो नाम शताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ १४२॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जिज्ञासी होकरि ज्ञाननिष्ठ होणा जो कछु गुरुशास्त्रोंतें आत्मविशेषण श्रवण किये हैं, तिनविषे अहंप्रत्यय

करणी, स्थित होणा इसीका नाम ज्ञाननिष्ठा है, तिस ज्ञाननिष्ठाकरि परम उच्च पदकों प्राप्त होता है, जो सबका अधिष्ठानपद है, तिस पदकों पावता है, जब तिस पदविषे स्थित हुआ, तब कर्मोंके फलका ज्ञान नहीं रहता, काहेतें जो शुभ कर्मोंविषे फलका राग नहीं रहता, अरु अशुभ कर्मोंके फलविषे दोष नहीं रहता, ऐसा जो पुरुष है, सो ज्ञानी कहाता है, शीतलचित्त रहता है, अकृत्रिमशांतिकों प्राप्त होता है, किसी विषयके संबंधकरिके नहीं फसता, अरु वासनाकी गांठ टूटि जाती है, ऐसा जो पुरुष है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं॥ हे रामजी! बोध सोई है, जिसके पाएतें बहुरि जन्म न पावै, जन्ममरणतें रहित होवै, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब संसारतें विमुख हुआ जो संसारकी सत्यता न भासै, तब जाणियें जो बहुरि जन्म न पावैगा, काहेतें जो संसारकी वासना नष्ट हो गई॥ हे रामजी! जिसकरि ज्ञानीकी वासना नष्ट होती है सो श्रवण कर, यह जो संसार है, तिसका कारण नहीं देखीता, जो पदार्थ कारणतें उत्पन्न नहीं भया, सो सत्य नहीं होता, तातें संसार मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तिसका कारण कोउ नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, तैसे यह विश्व कारणविना दृष्ट आती है, तातें मिथ्या है, जो मिथ्या है, तौ इसकी वासना कैसे होवै॥ हे रामजी! जो प्रवाहपतित कार्य आनि प्राप्त होवै, तिसविषे ज्ञानी विचरता है, संकल्पतें रहित होकरि अपणा अभिमान कछु नहीं करता, जो इस प्रकार होवै, इस प्रकार न होवै, अरु हृदयकरि आकाशकी नांई संसारतें न्यारा रहता है, अरु फुरणेतें शून्य है, ऐसा जो पुरुष है, सो पंडित कहता है ॥ हे रामजी! यह जीव परमात्मरूप है, जब अचेतन होवै, तब आत्मपदकों प्राप्त होवै, अचेतन कहिए संसारके फुरणेतें रहित होवै, जब जडहुआ तब आत्मा है, जैसे अंबका वृक्ष फलतें रहित है, तौ भी नाम तिसका अंब है, परंतु निष्फल है तैसे यह जीव आत्मस्वरूप है, परंतु चित्तके संबंधकरि इसका नाम जीव है, जब चित्तका त्याग करै तब आत्मा होवै, जैसे अंबकों फल लगा तब शोभता है, अरु सफल कहाता है, तैसे जब यह जीव आत्मपदकों प्राप्त होता है, तब महाशोभाकरि वि

राजता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष कर्मके फलकी स्तुति नहीं करता, फल कहियें इंद्रियाके विषय इष्ट की वांछा नहीं करता, जैसे जिस पुरुषनें अमृतपान किया होवै, सो मद्यपान करणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसकों आत्मसुख प्राप्त भया है, सो विषयके सुखकी वांछा नहीं करता, अरु जो किसी पदार्थकों पायकरि सुख मानते हैं, सो मूढ हैं, जैसे कोउ पुरुष कहै वंध्याके पुत्रके कांधेपर आरूढ होकरि नदीकों पार उतरता है, ऐसा पुरुष महामूढ है, काहेतें जो वंध्याका पुत्र है नहीं, तौ तिसके कांधेपर कैसे आरूढ होवैगा, तैसे जो पुरुष कहै, संसारके किसी पदार्थकों लेकरि मुक्त होउंगा, सो महामूढ है ॥ हे रामजी ! ऐसा पुरुष ज्ञानतें शून्य है, तिसकी इंद्रिय स्थित नहीं होती, अरु जो शास्त्रोंके अर्थ प्रगट भी करता है, परमात्मज्ञानतें रहित है, तिसकों इंद्रियबलकरि गिराय देती हैं, विषयविषे जैसे इल्ह पक्षी आकाशविषे उडता भी मांसकों देखीकरि पृथ्वी उपर गिर पडता है, तैसे अज्ञानी विषयकों देखीकरि ऊर्ध्वतें गिर पडता है, तातें इन इंद्रियांकों मनसंयुक्त वश करौ, अरु युक्तिकरि तत्परायण होहु, अंतर्मुख होहु, यह जो संवेदन फुरती है, तिसका त्याग करौ, जब फुरणा निवृत्त हुआ, तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जब परमात्माका साक्षात्कार हुआ, तब रूप अवलोकन मनस्कार जो त्रिपुटी है, तिसके सब अर्थकी भावना जाती रहैगी, केवल आत्मतत्त्वही प्रत्यक्ष भासैगा, अरु संसारका अत्यंत अभाव हो जावैगा ॥ हे रामजी ! संसारकी आद्य परमात्मतत्त्व है, अरु अंत भी वही है, जैसे स्वर्ण गालीए तौ भी स्वर्ण है, जो न गालिए तौ भी स्वर्ण है, तैसे जब सृष्टिका अभाव होता है, तौ भी शेष आत्माही रहता है, अरु जब उपजी न थी, तब भी आत्माही था, अरु मध्य भी उही है, परंतु सम्यक्‌दर्शीकों भासता है, अरु असम्यक्‌दर्शीकों आत्मसत्ता नहीं भासती ॥ हे रामजी ! विश्व आत्माका परिणाम नहीं, चमत्कार है, जैसे स्वर्ण लगता है, तब रेणी संज्ञा उसकी होती है, अथवा शलाका कहता हैं, यद्यपि भूषण तिसविषे हुए नहीं तौ भी चमत्कार उसका ऐसाही होता है, जो

भूषण उसतें उपजीकरि लय हो जाता है, तैसे विश्व आत्माका चमत्कार है, बन्या कछु नहीं; ज्योंका त्यों आत्मसत्ता है, तिसका चमत्कार विश्व होकरि स्थित हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणा जलाभास हो भासती है ॥ हे रामजी ! जब तुम ऐसे जाण्या जो केवल आत्मसत्ता है, तब वासना क्षय हो जावैगी, अरु चेष्टा स्वाभाविक होवैगी, जैसे वृक्षके पत्र हलते हैं पवन करिके, तैसे शरीरकी चेष्टा होवैगी, प्रारब्ध वेगकरिके ॥ हे रामजी ! देखणे मात्र तुमारेविषे क्रिया होवैगी, अरु अंतरतें मनकरि शून्य भासैगी, जैसे यंत्रीकी पूतली संवेदन विना तागेकरि चेष्टा करती है, तैसे शरीरकी चेष्टा प्रारब्धकरि स्वाभाविक होवैगी, अरु तुझकों अभिमान न होवैगा, जैसे कोउ पुरुष दूधके निमित्त गुजर पास वासन ले गया, तिसकों दूध चोवणेविषे कछुक विलंब है, तब उसनें कहा जो वासन इहां रहै, जो मैं गृहतें कोउ कार्य शीघ्रहीकरि आऊं, जब वह गृहका कार्य करणे लगा, तब उसका मन दूधकी उर रहा, जो शीघ्रही जाउं, मत आगे चोवता होवै, गृहका कार्य किया, परंतु मन उसका दूधकी उर रहा, तैसे तुमारी क्रिया प्रारब्ध वेगकरि होवैगी, परंतु मन आत्मतत्त्वविषे रहैगा, जब अहंकारतें रहित होवैगा, जबलग अहंकार फुरता है, तबलग प्रसन्न जीव है, प्रसन्न कहिए तुच्छ है, तिसकों शरीरमात्रका ज्ञान होता है, अंतःकरणविषे जो प्रतिबिंब है, जीव तिसकों नख शिखपर्यंत शरीरका ज्ञान होता है, अरु इसीविषे आत्मअभिमान होता है, अवर ज्ञान नहीं होता, तातें जीव है, अरु विराट जो आगे तुझकों कहा है, सो ईश्वर है, सर्व शरीर अरु अंतःकरणका ज्ञाता है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी है, सर्वकों अपणा आप जाणता है, तातें ईश्वर है ॥ हे रामजी ! यद्यपि विश्वरूप है, तौ भी अहंकार करिके तुच्छसा भया है, जैसे मेघतें भिन्न हुआ एक बादर कहाता है, अरु घटकरि घटाकाश कहाता है, सो बादर भी मेघ है, अरु घटाकाश भी महाकाश है, तैसे अहं फुरणेकरि प्रसन्न हुआ है, सो फुरणा दृश्यविषे हुआ है, अरु दृश्य फुरणेविषे हुई है, जैसे फलविषे गंध है, अरु तिलोंवि

षे तेल है, तैसे फुरणेविषे दृश्य है ॥ हे रामजी! आत्माविषे बुद्धि आदिक फुरणा है, जो मैं हौं, जब ऐसे फुरता है, तब आगे दृश्य होती है, जब अहंकार होता है, तब आगे देह इंद्रियांदिक विश्वकों रचता है, तातें फुरणेविषे दृश्य हुई, अरु फुरणा दृश्यविषे हुआ, जो देह इंद्रियां मन आदिक दृश्य हैं, तिनविषे अहं प्रत्यय करिके फुरणा हुआ, इसी कारणतें इसकी जीवसंज्ञा हुई है, जब फुरणा नष्ट हो जावै, तब आत्माका साक्षात्कार होवै, अरु यह जन्म मरण आणा जाणा आदिक विकारसंयुक्त प्रपंच भासता है, तौ भी मिथ्या है, काहेतें जो विचार कियेतें कछु नहीं रहता, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं, तैसे विचार कियेतें प्रपंचकों नहीं पाइता, जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण आणा जाणा देखीता है, परंतु मिथ्या है, तैसे जाग्रत क्रिया भी सर्व मिथ्या है॥ हे रामजी! जो परावरदर्शी है, सो एती अवस्थाविषे निर्विकल्प है, जन्मता भी है, परंतु नहीं जन्मता, सर्व क्रिया करता भी है, परंतु नहीं करता, स्वप्नवत् है, स्वरूपतें कदाचित कछु नहीं हुआ ॥ हे रामजी! ज्ञानी जागृतविषे भी ऐसेही देखता है, जब यह आत्मपदविषे जगता है, तब सर्व विकारका अभाव हो जाता है, कोउ विकार नहीं भासता ॥ हे रामजी! जो पुरुष इंद्रियांके विषयकी चिंतवना करता रहता है, सो बंध है, काहेतें जो अभिलाषही दुःखदायक है, यद्यपि राजा है, अरु अंतर अभिलाष है तौ दरिद्री जाण, अरु जो पुरुष छाजन भोजन शयन कष्टसाथ देखता है, जो भोजन भिक्षाकरि होता है, अथवा किसी अवर यत्नकरि होता है, अरु छाजन भी निर्गुणसा पहिरता है, अरु शयन करणेकों स्थान भी जैसा कैसा होता है, अरु ज्ञानकरि संपन्न है, तौ उसकों चक्रवर्ती जाण ॥ दोहा॥ सात गांठ गोपीनकी, साध न माने शंक; राम अमल माता फिरै, गिनै इंद्रकों रंक ॥ १ ॥ हे रामजी! तिसकों चक्रवर्तीतें भी अधिक जाण, यद्यपि आरंभ क्रिया करता भी दृष्ट आता है, अरु संकल्पतें रहित है, तौ कछु करता नहीं, करणा अकरणा क्रियाका दोनों उसकों तुल्य है, काहेतें जो निरभिमान है, शुभ कर्म करणेतें स्वर्ग नहीं भो

गता, अशुभ कर्मकरि नरक नहीं भोगता, तिसकों दोनों एकसमान हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा समान है, परंतु अज्ञानी अहंकारसहित करता है, इसकरि दुःख पावता है, तातें तुम अहंकारका त्याग करौ, अरु अपणा स्वरूप जो है, चैत्यतें रहित चेतन तिसविषे स्थित होहु, जो संशय सर्व मिटि जावें अरु जेते कछु जीव तुमकों भासते हैं, सो सर्व संवित्‌रूप हैं, संवित् कहियें ज्ञानरूप हैं, परंतु बहिर्मुख जो फुरते हैं, तिसकरि भ्रमकों प्राप्त हुए हैं, जब अंतर्मुख होवें तब केवल शांतरूप हैं, जहां गुणों अरु तत्त्वोंका क्षोभ नहीं, तिसकों शांतपद कहते हैं ॥ हे रामजी! जैसे विराटका मन चंद्रमा है, तैसे सर्व जीवका है, अर्थ यह जो सब विराटरूप है, परंतु प्रमादकरि वास्तव स्वरूप नहीं भासता ॥ हे रामजी! यह जीव संपूर्ण देहविषे व्यापक है, अरु भासता हृदयकोशविषे है, जैसे गुलाबकी संपूर्ण बुटीविषे सुगंधि व्यापक है, परंतु भासती फूलहीविषे है, तैसे चेतनसत्ता सर्व शरीरविषे व्यापक है, परंतु भासती हृदयविषे है, जो त्रिकोण निर्मल चक्र है, तहांही अहंब्रह्मका उत्थान होता है, तहांतें वृत्ति पसरीकरि पंच इंद्रियांके छिद्रतें निकसीकरि विषयकों ग्रहण करती है, तिन इंद्रियांके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे राग दोष मानता है ॥ तातें हे रामजी! एता कष्ट प्रमाद करिके है, जब बोध होवै तब संसारभ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी! वासनारूप जो संसार है, तिसका बीज अहंभाव है, प्रत्यक्ष संसारविषे फुरता है, जब इसकी अचिंतवना होवै, अरु स्वरूपविषे अहंप्रत्यय होवै, तब संसारभ्रम मिटि जावै, अरु अहंभावके शांत हुए ज्ञानवान् यंत्रीकी पुतलीवत् चेष्टा करता है ॥ हे रामजी! जो पदार्थ सत् है, तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो असत् है, सो सत् नहीं होता, यद्यपि होणेकी भावना करियें तौ भी उसका होणा नहीं, जैसे अग्निकों जाणिकरि स्पर्श करियें तौ भी जलावती है, अरु अजाणी स्पर्श करियें तौ भी जलावती है, काहेतें जो सत् है, अरु जैसे मृगजलकी भावनाकरि मरुस्थलविषे धावता है, परंतु जल नहीं पावता. काहेतें जो असत्य है, तैसे ॥ हे रामजी! अ

हंकार जो फुरता है, सो असत्य है, भ्रमकरि सिद्ध है, विचारकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह अहंकाररूपी कलंक उठा है, जब निरहंकार होकरि देखैं, तब मुक्तरूप है, अरु जब अहंकारसंयुक्त है, तब बंध है, तातें निरहंकार होकरि परम निर्वाणकों प्राप्त होहु, इह मेरा सिद्धांत है, परम भूमिका यही है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे तुम ब्राह्मी लक्ष्मीकरि सोभहुगे ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्‌का चित्त सत्पद कों प्राप्त होता है, तातें अहंकार नहीं रहता, तिसके चित्तकी चेष्टा फलदायक नहीं होती, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे उसकों जन्म फल नहीं होता अरु अज्ञानीका चित्त जन्ममरणका कारण होता है, जैसे कच्चा बीज उगता है, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा जन्मफल देती है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबतें निरास हो रहु, जो हृदयविषे अभिलाषा किसकी न फुरै, अरु न किसीका सद्भाव फुरै, पाषाणकी नांई तुमारा हृदय होवै ॥ हे रामजी! जिसका हृदय कोमल है, स्नेहसंयुक्त सो अज्ञानी है, अरु जिसका हृदय पाषाण समान है, स्नेहतें रहित, सो ज्ञानी है, तातें निर्मन निरहंकार होकरि स्थित होहु, इह भोग मिथ्या है, इनकी इच्छाविषे सुख नहीं ॥ हे रामजी! जब संसारतें उपरांत होवैगा, अरु अंतर्मुख आत्मपरायण होवैगा, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु आत्मा भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है, अरु वृक्ष प्रफुल्लित होते हैं, तब पुरातन पत्र त्यागि देते हैं, अरु नूतन हो आते हैं, तैसे जब तुम अंतर्मुख होहुगे, तब अहंकार निवृत्त हो जावैगा, अरु विभुताकों प्राप्त होहुगे, तुच्छ जो अहं प्रत्यय सो जाती रहैगी, परम निर्वाण पद पावौगे, तातें एक अहंकार संवेदनका त्याग करौ, अवर यत्न कोउ न करौ, तुमकों यही हमारा उपदेश है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो वासनारूप संसार है, तिसकों तुम तरि जाहु, जैसे मंकीऋषि तऱ्या है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मंकीऋषि किस प्रकार तऱ्या है, सो कृ

पाकरि कहौं? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मंकीऋषिका वृत्तांत श्रवण कर, तिसनें महातीक्ष्ण तप कियेथे, एकसमय तुमारा जो पितामह है, राजा अज, तिसनें मेरा आवाहन किया, मैं अपणे गृहविषे था आकाशमें, तब मैं राजा अजके निमित्त आकाशतें उतऱ्या मार्गविषे एक अटवी देखी, तिसविषे मानौं एकांत अनेक बनके समूह हैं, सो महाभयानक मैं शून्य देखे, तहां न कोउ मनुष्य दृष्ट आवै, न कोउ पशु दृष्ट आवै, शून्य मानौं एकांत ब्रह्मस्थान है, केतेक योजनपर्यंत मरुस्थलही दृष्ट आवै, अरु मध्यान्हका समय था, अति तीक्ष्ण धूप पडै, रेत उरुपर्यंत तपी हुई तिसविषे मैं प्रवेश किया, केई वृक्ष तहां दग्ध हुए दृष्ट आये ॥ हे रामजी! तिस शून्य स्थलविषे एक पैंडोइ अति दुःखित आता मुझकों दृष्ट आया, तिसनें यह वाक्य मुखतें निकास्या, जो हाय हाय, महाकष्ट पाया है! जैसे किसीकों दुष्ट जन दुःख देते हैं, अरु दया नहीं करते तैसे मुझकों धूप अरु पैडेनें जलाया है, मैं अति दुःखकों प्राप्त भया हौं ॥ हे रामजी! ऐसे वचन कहता हुआ मेरे पासतें चल्या जावै, केता मारग आगे गया तब एक धीवरका गांउ तिसकों दृष्ट पडा, तहां गृह पांच अथवा सात थे, तिसकों देखिकरि शीघ्र चला, जो इहां मुझकों शांति प्राप्त होवैगी, मैं जलपान करौं, अरु छाया तले बैठौंगा ॥ हे रामजी! तिसकों देखिकरि मुझकों दया उपजी, तब मैं कहा जो हे मार्गके मित्र, तूं कहां धावता है, जिनकों सुखदायी जाणिकरि तूं धावता है, सो तौ दुःखदायक हैं, जैसे मृग मरुस्थलकों नदी जाणीकरि जलपानके निमित्त धावता है, जो शांति पाउं सो अति दुःख पावता है, तैसे जिस स्थानकों तूं सुखरूप जानता है, सो दुःखरूप है ॥ हे अंग! यह जो इस गांवके वासी हैं, तिसका संग कदाचित् नहीं करणा, इनका संग दुःखरूप है, जो पुरुष विचारपूर्वक चेष्टा करता है, तिसकों दुःख नहीं होता अरु जो विचारविना चेष्टा करता है, सो दुःख पावता है, यह जो नगरवासी हैं, सो आप जलते हैं, तौ तुझकों सुख कैसे होवैंगे, जैसे कोउ पुरुष अग्निकुंडविषे जलता होवै, तिसकों कहियें, तूं मेरी तप्त शांत करु, तौ कहणेवाला

मूढ होता है, वह आप जलता है, अवरकी तप्त कैसे शांत करैगा, तैसे वह आप इंद्रियाके विषयकी तृष्णारूपी अग्निविषे जलते हैं, सो तुझकों शांत कैसे करैंगे ?॥ ॥ हे मार्गके मित्र! एते कष्ट होहि तौ अंगीकार करियें, परंतु अज्ञानीका संग न करियें, सो कवन दुःख होहि, जो पृथ्वीके छिद्रविषे सर्प हो रहना, अरु मरुस्थलका टुंटा मृग हो रहणा, अरु पाषाणकी शिलाविषे कीट हो रहणा, एते कष्ट अंगीकार करियें परंतु अज्ञानीका संग न करियें, जिनकों इंद्रियांके सुखकी तृष्णा रहती है, सो इंद्रियांके सुख कैसे हैं, जो आपातरमणीय हैं, अर्थ यह जो जबलग इंद्रियांके विषयसाथ संयोग है, तबलग सुख है, जब वियोग हुआ, तब दुःख होता है, विषयी जनोंकी प्रीति भी विषवत् है, अरु विचारवति बुद्धिरूपी कमलिनीके नाश करणेहारी बरफ है, बहुरि इनकी संगति कैसी है, जिनके वचनरूपी पवनकरि राख उडती पास बैठणेहारेकों भी अंध करी डारती है, तातें इन गांउवासी अज्ञानीका संग नहीं करणा, बहुरि कैसे हैं, विचारवती बुद्धिरूपी सूर्यके आवरण करणेहारे बादल हैं, जैसे वल्ली उपर अग्नि डारियें तौ जलावती है, तैसे वैराग्यकों ग्रहण करणेहारी बुद्धि है, तिसके नाश करणेहारी इनकी संगति है, तातें इनका संग नहीं करणा ॥ हे साधो ! तिसका संग कर, जिसके संगकरि तेरा ताप मिटै, इनके संगकरि शांति न पावैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब मैं कहा तब वह मेरे निकट आयकरि बोलत भया ॥ ॥ मंकीऋषिरुवाच ॥ हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु तुमारा नाम क्या है, तुमारे वचन सुणिकरि मैं शांतिकों प्राप्त भया हौं, तुम शून्य जैसे दृष्ट आते हौ, अरु सर्व करिके पूर्ण हौ, अरु तुमारा दिव्य प्रकाश मुझकों भासता है, तुम आदि पुरुष विराट हौ, कै कवन हौ, तुम सुंदर दृष्ट आते हौ ॥ हे भगवन् ! जो सुंदर होता है, तिसकों देखीकरि राग उपजता है, अरु चित्त क्षोभकों भी प्राप्त होता है, अरु तुम ऐसे सुंदर हौ, जो तुमारे दर्शनकरि मुझकों शांति आती जाती है, तुम दिव्य तेजकों धारे हुए दृष्ट आते हौ, जेते कछु तेजवान् हैं, देखणे नहीं देते, तिनकों तिरस्कार

करते हौ, अर्थ यह जो अवर सुंदरता तुमारे समान किसीकी नहीं, अरु तुमारा तेज हृदयकों शांति उपजाता है, शीतल प्रकाश है ॥ हे भगवन्! तुम उन्मत्तवत् घूर्मसे दृष्ट आते हौ, सो कैसी शांतिकों लेकरि एकांतविषे स्थित हौ, अरु अपणे स्वरूप प्रकाशकी दया करते दृष्ट आते हौ, अरु पृथ्वीपर स्थित भी दृष्ट आते हौ, परंतु त्रिलोकीके उपर विराजमान भासते हौ, अरु एकाएकी दृष्टि आते हौ, परंतु सर्वात्मा हौ, अरु किंचित् अकिंचित् तुमही हौ, सर्व भाव पदार्थतें शून्य दृष्ट आते हौ, अरु सर्व पदार्थ तुमारी सत्ताकरि प्रकाशते हैं, सर्व पदार्थके अधिष्ठान हौ; तुमारे नेत्रोंके खोलणेकरि उत्पत्ति होती है, अरु मुंदणेकरि लय हो जाती है, तातें ईश्वर हौ, अरु सकलंक दृष्ट आते हौ, परंतु निष्कलंक हौ, अर्थ यह जो फुरणा तुमारेविषे दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य हौ, अरु किसी अमृतकों पायकरि तुम आए हौ अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न दृष्ट आते हौ, तातें हे भगवन्! तुम कवन हौ, अरु जो मुझतें पूछौ तूं कवन है, तौ मैं मांडवऋषिके कुलविषे हौं, अरु मेरा नाम मंकी है, मैं ब्राह्मण हौं, तीर्थयात्राके निमित्त निकसा था, अरु सर्व दिशा भ्रम्या हौं, अतिभयानक स्थानोंविषे जो तीर्थ हैं, तहां भी गमन किया है, परंतु शांति मुझकों प्राप्त न भई, ऐसी शांति कहूं न पाई जो इंद्रियांकी जलनतें रहित होइयें, अब मैं गृहकों चल्या हौं ॥ हे भगवन्! अब गृहतें भी चित्त विरक्त भया है, जो यह संसारही मिथ्या है, तौ गृह किसका है, संसारविषे सुख कहूं नहीं, अरु यह प्राण ऐसे हैं, जैसा दामिनीका चमत्कार होता है, तैसे यह संसार नष्ट होता दृष्ट आता है, शरीर उपजते भी हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, दृष्टि मात्र हैं, जैसे रात्रि आती है, बहुरि नहीं जाणते जो कहां गई ॥ हे भगवन्! इस संसारकों असार जाणीकरि मैं उदासीन भया हौं, जो अनेक जन्म पाये हैं, सो नष्ट हो गये हैं, इसी प्रकार भ्रमता फिर्‍या हौं, अब तुमारी शरणागत हौं, अरु जानता हौं जो तुमसों मेरा कल्याण होवैगा, अरु तुम कल्याणरूप दृष्ट आते हौ, तातें कृपाकरि क

हौ जो कवन हौ ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे मंकीऋषि ! मैं वसिष्ठ ब्राह्मण हौं, अरु मेरा गृह आकाशविषे है, मुझकों राजा अजनें स्मरण किया है, तिसनिमित्त मैं इस मार्ग गमन करता हौं, अब तुम संशय मत करौ, जो ज्ञानमार्गकों पाया है ॥ हे रामजी ! जब मैं ऐसे कहा, तब उह मेरे चरणोंपर गिरि पडा, अरु नेत्रोंतें जल चलणे लगा, जो महा आनंदकों प्राप्त भया, तब मैं कहा जो हे ऋषि ! तूं संशय मत करु, मैं तुझकों अकृत्रित शांतिकों प्राप्त करिके गमन करौंगा, जो कछु पूछा चाहता है, सो पूछ, मैं तुझकों उपदेश करौं अरु मैं जानता हौं, तूं कल्याणकृत है, जो कछु मैं कहौंगा, सो तूं धारैगा, अब तूं कछु प्रश्न कर जो तेरे कषाय परिपक्क भये हैं, तूं मेरे वचनोंका अधिकारी है, तुझकों मैं उपदेश करौंगा, अब तूं संसारके तटकों आय प्राप्त भया है, अब तुझकों निकासणेका विलंब है, जो वैराग्यकरि पूर्ण है, सो संसारका तट वैराग्य है, तातें संशय मत करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकिऋषिपरमवैराग्यनिरूपणं नाम शताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४४ ॥ ॥ ॥ मंक्युवाच ॥ हे भगवन् ! अब मैं जानता हौं जो मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, मुझकों अज्ञानकरि मोह था, तिसके नाश करणेकों तुम समर्थ दृष्ट आते हौ, मेरे हृदयका तम नाश करणेकों तुम सूर्य उदय भए हौ ॥ हे भगवन् ! यह संसार असार है, अरु लोककी बुद्धि विषयकी उरही धावती है, जहां दुःखही होता है, जैसे जल नीचे स्थानकों चला जाता है, तैसे हमारी बुद्धि नीच स्थानोंविषे धावती है, उही चाहती है ॥ हे भगवन् ! जेते कछु भोग हैं, तिनकों मैं भोग्या है, परंतु शांति न पाई, उलटी तृष्णा बढती गई, जैसे तृष्णा लगै अरु खारा जलपान करियें तौ तृष्णा नहीं मिटती, बढती जाती है, तैसे विषयके भोगणेकरि शांति नहीं प्राप्त होती, तृष्णा बढती जाती है ॥ हे मुनीराय ! देह जर्जरीभाव हो जाती है, अरु दंत गिरि पडते हैं, अति क्षोभ होता है, तौ भी तृष्णा नहीं मिटती, तातें अब मैं दुःखकों चाहता हौं, सुख कोउ नहीं चाहता, काहेतें जो संसारके जेते सुख हैं, तिनका परिणाम दुःख है, जो

प्रथम दुःख है, तिसका परिणाम सुख है, इसीतें दुःख चाहता हौं, संसारके सुख नहीं चाहता ॥ हे भगवन्! अपणी वासनाही दुःखदायक है, जैसे घुरायण गुफा बनायकरि तिसविषे आपही फसी मरती है, तैसे अपणी वासनाकरि आपही बंधमान होता है ॥ हे मुनी! उह काल कब हुआ है, जो अज्ञानरूपी हस्तिनें मुझकों वश किया है, अरु तिसका नाश करणेहारा ज्ञानरूपी सिद्ध कब प्रगट होवैगा, अरु कर्मरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता विवेकरूपी वसंत कब प्रगटैगा, अरु वासनारूपी अंधेरी रात्रिका नाशकर्त्ता ज्ञानरूपी सूर्य कब उदय होवैगा ॥ हे भगवन्! वैताल तबलग भासता है, जबलग निशा है, जब सूर्य उदय होवैगा, तब निशा जाती रहैगी, बहुरि वैताल न भासैगा, सो अहंकाररूपी वैताल तबलग है, जबलग अज्ञानरूपी रात्रि दूर नहीं भई ॥ हे भगवन्! जब संत जनके उपदेशतें आत्मज्ञानरूपी सूर्य प्रगटै, तब अहंकाररूपी वैताल तहां नहीं विचरता, संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा चांदनी रात्रिवत् है, तिनकरि जब स्वरूपका साक्षात्कार होवै, तब दिन हुआ, जबलग संतजनका संग अरु सच्छास्त्रोंका देखणा न होवै, तबलग अंधेरी रात्रि है ॥ हे भगवन्! जिसकों सच्छास्त्रका श्रवण भी होवै, बहुरि विषयकी उर भी गिरै, तौ बडा अभागी जाणियें सो मैं हौं, परंतु अब मैं तुमारी शरणकों प्राप्त भया हौं, मेरे हृदयरूपी आकाशविषे जो अज्ञानरूपी कुहिड है सो तुमारे वचनरूपी शरत्काल करिके नष्ट हो जावैगी, हृदयाकाश निर्मल होवैगा ॥ हे भगवन्! मैं त्रिदंड साधे हैं, मनकरि भी शरीरकरि भी वाणीकरि भी यह तीन तप किये हैं, दीर्घकालपर्यंत, परंतु आत्मप्रकाश नहीं हुआ, अब मैं तुमारी शरणागत हुआ तरौंगा, तातें कृपा करिके उपदेश करौ, जो मेरे हृदयका तम दूर होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे नि० मंकीवैराग्ययोगो नाम शताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४५ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! संवेदन भावना वासना कलना यह चारौं, अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै, तब कल्याण होवै, शुद्ध चिन्मात्र पद प्रत्यक्ष चेतन अपणे आपविषे जो अहंकार उत्था

न है, सो संवेदन है, अरु भावना यह जो कछु बण्या बहुरि चेत्या अरु अपणा आप चित्त स्मरण भया, तब भ्रम मिटि जाता है, अरु जो कछु बन्या है, तिसकी भावना हुई जो मैं यह हौं, तब भावनाकरि संसार दृढ हुआ, बहुरि तैसेही वासना दृढ होती है, अपणे शरीरके अनुसार नानाप्रकारकी कलना होती है, बहुरि संसारके संकल्पविकल्प उठते हैं ॥ हे ब्राह्मण! यह चतुर अनर्थके कारण हैं, जब इनका अभाव हो जावै तब कल्याण होवै, अरु जेते कछु शब्द अर्थ हैं, तिनका अधिष्ठान प्रत्यक् चेतन है, सर्व शब्द उसीके आश्रित हैं, अरु सर्व उही है, जब तूं ऐसे जाणैगा, तब वासना क्षय हो जावैगी, जब अहं संवेदन इसकों फुरती है, तब आगे संसार भासता है, जैसे वसंतऋतु आती है, तब वल्ली प्रफुल्लित होतियां हैं, तैसे जब संवेदन फुरती है, तब आगे संसार सिद्ध होता है, जब संसार हुआ तब नानाप्रकारकी वासना फुरती है, अरु संसार नहीं मिटता ॥ हे अंग! संसार इसका नाम है जो संसरता है, जब संसरना मिटि जावै, तब आत्मपदही शेष रहै, सो तेरा अपणा आप है; तातें इस फुरणेकों त्यागिकरि अपणे आपविषे स्थित होहु, सर्व तेराही रूप है, जबलग वासना फुरती है, तबलग संसार दृढ हो जाता है, जैसे वृक्षकों जल दीजियें तब बढता जाता है, तैसे वासनारूपी जल देणेकरि संसाररूपी वृक्ष वृद्ध हो जाता है, तातें वासनाका नाश करौ, कारण यह जो संवेदन न फुरै, जब वृक्ष जलतें रहित भया, तब आपही जलि जाता है ॥ हे पुत्र! आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं, केवल परमार्थसत्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प कछु वस्तु नहीं, जेवरीके अज्ञानतें सर्प भासता है, तैसे आत्माके अज्ञानतें संसार भासता है, जब तूं आत्मपदकों जाणैगा, तब परमार्थसत्ताही भासैगी, जैसे बालक अपणे परछायेविषे भूत कल्पिकरि भय पावता है, जब विचारकरि देखा तब भूत कोउ नहीं, भय दूर हो जाता है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि संसारके राग दोष जलावते हैं, अरु ज्ञानवान्कों वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, केवल अद्वैत आत्मसत्ताही भासती है, जैसे स्वप्नतें जाग्या स्वप्नका प्रपंच वासनासंयुक्त अभाव हो जाता है,

तैसे जब आत्माका साक्षात्कार हुआ, तब वासनासंयुक्त संसारका अभाव हो जाता है, काहेतें जो है नहीं, जैसे घटादिकविषे मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सर्व प्रपंच चिन्मात्र स्वरूप है, इतर कछु नहीं, जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सर्व आत्माही है ॥ हे मित्र! जो कछु आत्मातें इतर भासता है, तिसकों भ्रममात्र जाण, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो भ्रममात्र है, तैसे विश्व असम्यक्दृष्टि करिके भासती है, सम्यक् दृष्टि करिके सर्व प्रपंच आत्मस्वरूप है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो भी बोधस्वरूप है, बोधही त्रिपुटीरूप होकरि स्थित होता है, जैसे स्वप्नविषे एकही अनुभव त्रिपुटीरूप हो भासता है, तैसे यह जाग्रतकी त्रिपुटी भी आत्मस्वरूप है ॥ हे अंग! जेते कछु स्थावर जंगम पदार्थ हैं, सो सर्व आत्मस्वरूप हैं, जो परमात्मस्वरूप न होवै, तौ भासै नहीं, द्रष्टारूप जो अनुभव करता है सो एक अद्वैतरूप है, तिस स्वरूपके प्रमादकरि भिन्न भिन्न त्रिपुटी भासती है, तौ भी इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी अपणे अनुभवकरि भासती है, जो अनुभव न होवै तौ काहेतें भासै, तैसे यह त्रिपुटी अनुभव आत्माकरि भासती है, तातें सर्व परमात्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, जो नहीं तौ है नहीं, काहेतें जो सर्वकी एकता परमार्थ स्वरूपविषे होती है ॥ हे ऋषीश्वर! सजातीय वस्तु मिलि जाती है, जैसे जलविषे जलकी बुंद डारिएं तौ मिलि जाती है, काहेतें जो एकरूप है, तैसे बोध करिके सर्व पदार्थकी एकता भासती है, काहेतें जो द्वैतसत्ता है नहीं, जैसे स्पंद निस्पंद दोनों पवनही है, जैसे जल अरु तरंग अभेदरूप हैं, तैसे विश्व परमार्थस्वरूप है, तातें ऐसे निश्चय करौ जो सर्व ब्रह्मस्वरूप है, अथवा आपकों उठाय देवहु, जो मैं नहीं, जब तूंही न हुआ, तब विश्व कहांतें होवै ॥ हे मंकीऋषि! प्रथम जो अहं होता है तौ पाछे ममत्व होता है, जो अहंही न रहैगा तौ ममत्व कहां रहैगा, इस अहंका होणाही बंधन है, इसके अभावका नाम मुक्ति है ॥ हे मित्र! इस युक्तिविषे क्या यत्न है, यह तौ अपणे आधीन है जो मैं नहीं जब अहंकारकों निवृत्त किया,

तब शेष वही रहैगा, जो सर्वका परमार्थरूप है, तिसीकों ब्रह्म कहते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जब अहंकार फुरता है, तब नानाप्रकारकी वासना होती है, तिस वासनाके अनुसार अनेक जन्मकों पावते हैं, जो वर्णन किये नहीं जाता है, जैसे पवनकरि तृण भटकते फिरते हैं, तैसे वासना करिके जीव भटकते फिरते हैं, जब पर्वततें कंकर गिरता है, तब चोटां खाता नीचेकों चला जाता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जन्मजन्मांतर पावते चले जाते हैं, घटीयंत्रकी नांई कबहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाते हैं, अपणी वासनाके अनुसार, जैसे खेनु हाथ करि ताडन किया कबहु ऊर्ध्व, कबहु अधकों जाता है ॥ हे अंग ! इस संसारका बीज वासना है, जब वासना निवृत्त होवै, तब सर्वकी एकता हो जाती है, जबलग संसारकी वासना दृढ है, तबलग एकता नहीं होती, जैसे दूध अरु जल मिलता है, उनका संयोग हो जाता है, तैसे भी आत्मा अरु विश्वका संयोग नहीं, आत्मा केवल अद्वैत है, अरु सर्वका अपणा आप है, जैसे मृत्तिकाही घटादिकरूप हो भासती है, तैसे आत्मसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है, तातें आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं ॥ हे साधो ! आत्मा अरु दृश्यका संयोग कछु नहीं, काष्ठ अरु लाखवत् अथवा घट अरु आकाशवत् संयोग कछु नहीं, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है, सर्व दृश्य बोधमात्र है ॥ हे साधो ! जो जड है सो चेतन नहीं होता, अरु चेतन जड नहीं होता, तातें न कोउ जड है, न चेतन है, चेतन आत्माही भावनाकरि जड दृश्य हो भासता है, तिसके बोधकरि एक अद्वैतरूप हो जाता है, तौ जाणीता है, जो सर्व वही है, इतर कछु नहीं है, मित्र अज्ञानकरि नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जैसे मेघकी वर्षाकरि नानाप्रकारके बीज प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे अहंरूपी बीजतें संसाररूपी वृक्ष वासना मुखकरि प्रफुल्लित होता है, जब अहंकाररूपी बीज नष्ट हो जावै, तब संसाररूपी वृक्ष नष्ट हो जावैगा ॥ हे अंग ! जैसे वानर चपलता करता है, तैसे आत्मतत्त्वतें विमुख अहंकाररूपी वानर वासनाकरि चपलता करता है, जैसे खेनु हस्तके प्रहारकरि अध ऊर्ध्वकों उछलता है, तै

से जीव वासनाके प्रहारकरि जन्मांतरविषे भटकता फिरता है, कबहु स्वर्ग, कबहु पाताल, कबहु भूलोकविषे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, तातें वासनाका त्याग करौ, अरु आत्मपदविषे स्थित होहु ॥ हे तात! इह संसार रात्रिका पेंडा है देखते नष्ट हो जाता है, इसकों देखी इसविषे प्रीति करणी अरु सत् जानणां यही अनर्थ है, तातें संसारकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, चित्तकी वृत्ति जो संसरती है, इसीका नाम संसार है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिप्रबोधो नाम शताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ १४६ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे तात! यह संसारका मार्ग गहन है, इसविषे जीव भटकते हैं, यह चेतन वृत्ति जो संसरती है, यही संसार है, जब यह संसरना मिटै, तब स्वच्छ अपणा आपही स्वरूप भासै, चेतनावृत्ति जो, बहिर्मुख फुरती है इसीका नाम बंधन है, अवर बंधन कोउ नहीं ॥ हे साधो! यह जगत् वासनाकरि बांधा है, जैसे वसंतऋतुकरि रस पसरता है, तैसे वासनाकरि जगत् पसरता है, बडा आश्चर्य है, जो मिथ्या वासनाकरि जीव भटकते फिरते हैं, दुःखकों भोगते हैं, अरु वारंवार जन्म मृत्यु पावता है, बडा आश्चर्य है, जो वासना विषमरूप है, इसतें जीव वश हुए अविद्यमान जगत्कों भ्रमकरि सत् जानते हैं ॥ हे साधो! जो इस वासनारूप संसारकों तरी गए हैं, सो धन्य हैं, वह प्रत्यक्ष चंद्रमाकी नांई हैं, जैसे चंद्रमा अमृतरूप शीतल प्रकाशवान् प्रसन्न करता है, तैसे ज्ञानी पुरुष हैं, तातें तूं धन्य है, जिसकों आत्मपदकी इच्छा हुई है ॥ हे अंग! यह संसार तृष्णाकरि जलता है, जिनकी चेष्टा तृष्णासंयुक्त है, तिनकों तूं बिल्ला जाण, जैसे बिल्ला तृष्णाकरि चूहेकों ग्रहण करता है, तैसे यह जीव भी अपणी तृष्णासंयुक्त चेष्टा करते हैं, अरु इस मनुष्यशरीरविषे यही विशेषता है, जो किसी प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होवै, अरु जो नरदेह पायकरि भी आत्मपद पावणेकी इच्छा न करै तौ पशुसमान है, जैसे पशु तैसे मनुष्य ॥ हे मित्र! मूढ जीव ऐसी चेष्टा करते हैं, जो प्राणोंके अंतपर्यंत

भी तृष्णा करते रहते हैं ॥ हे अंग! ब्रह्मलोकतें आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु इंद्रियांके विषय हैं, तिनके भोगणे करि शांति नहीं प्राप्त होती, काहेतें जो आपातरमणीय हैं, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों शांति ऐसी है, जैसे चंद्रमाविषे है, अरु सूर्यकी नांई प्रकाशते हैं, अरु विषयकी तृष्णा कदाचित् नहीं करते, जैसे कोउ पुरुष अमृत पानकरि तृप्त हुआ होवै, तब वह खल खाणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिस पुरुषकों आनंद प्राप्त हुआ है सो विषय भोगणेकी इच्छा नहीं करता, तातें इसी वासनाका त्याग करु, अरु वासनाका बीज अहंकार है, तिसकों निवृत्त करु, जो मैं नहीं, काहेतें जो तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे साधो! शुद्ध चिन्मात्र निरहंकार पदविषे जो कछु तूं आपकों प्रसन्न जाणता है, जो मैं ब्राह्मण हौं, अथवा किसी प्रकृतिसाथ मिलिकरि आपकों मानता है जो मैं यह हौं, यही अनर्थ है ॥ हे ऋषि! तेरे नेत्रोंके, खोलणेकरि संसार उत्पन्न होता है, अरु नेत्रोंके मुंदणेकरि नष्ट हो जाता है, सो नेत्र क्या है, अहंकारका फुरणा इसीकरि आगे विश्व सिद्ध होती है, तातें तेरा होणाही अनर्थ है ॥ हे अंग! जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र उदय होता है, तैसे आत्माविषे अहंकार उदय हुआ है, इसीके अभावतें भय शांत होती है, जब अहंकार हुआ, तब आगे स्त्री कुटुंब धन होते हैं, सो इसकों बंधन है, इनका चमत्कार ऐसे है, जैसे दामिनीका चमत्कार क्षणविषे उदय होकरि नष्ट हो जाता है, तातें इनविषे बंधमान नहीं होणा ॥ हे अंग! जब तूं कछु बन्या, तब सब आपदा तुझे आय प्राप्त होवैगी, अरु जब तूं अपणा अभाव जाणै, तब पाछे आत्मपदही शेष रहैगा, सो परम शांतरूप है, जिसकी अपेक्षाकरि चंद्रमा भी अग्निवत् जाणता है, सो परम शून्य है, अरुसर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है सो आकाशरूप है ॥ हे मित्र! इन मेरे वचनोंकों धार, जो मोह तेरा नष्ट हो जावै, यह विश्व कछु हुई नहीं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो है नहीं, तैसे विश्व नहीं, आत्माके प्रमादकरि भासती है॥ हे ऋषि! तूं तिसीकों जाण, जिसके अज्ञानकरि विश्व भासती है, अरु

जिसके ज्ञानकरि लय हो जाती है ॥ हे मंकी! शून्यमात्र जैसे आकाश है, स्पंदमात्र जैसे पवन है, जलमात्र जैसे तरंग है, तैसे संवित्मात्र जगत् है, तिस संवित् आकाशतें जो इतर भासता है, सो भ्रममात्र जाण, जैसे असम्यक्दृष्टि करिके जल पहाडरूप भासै, तैसे असम्यक् दृष्टिकरि जगत् भासता है, अरु सम्यक् अवलोकनकरि परमार्थसत्ताही भासती है, जिसके अज्ञानकरि जो विश्व भासती है, तिसकों भी ज्ञानवान् ब्रह्म शब्दकरि कहते हैं, तिस ब्रह्मपदका अहंकारही व्यवधान है, सो ज्ञानवान्का नष्ट भया है, तातें सर्वका अधिष्ठान वही परमार्थ स्वरूप एक देखते हैं, तिसीविषे तूं एकत्र होउ, जैसे आकाश अनेक घटके संयोगकरि भिन्न भिन्न भासता है, जो घटकों फोडियें तौ सर्व एकही हो जाता है, तैसे अहंकाररूपी घट फोडियें तौ सर्व पदार्थ एकत्र हो जाते हैं ॥ हे अंग! सर्वकी परमार्थसत्ता एक ब्रह्मपद है, सो कैसा है, अजन्मा है, अच्युत है, आनंद है, शांतरूप है, निर्विकल्प अद्वैत है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु, जो शिलावत् आत्मसत्तातें इतर कछु न फुरै, तातें निर्बोधबोध हो जावहु ॥ हे मंकीऋषि! यह जो पदार्थ भासते हैं, दुःखके देणेहारे, ऐसे जो शब्द अर्थ हैं, सो आकाश फूल हैं, तातें शोक मत करु, जो सर्व परमार्थसत्ताही है, जैसे पुरुष निराकार है, तिसकी भावनाकरि अंगका संयोग होता है, तैसे विश्व भी इसकी भावनाकरि होती है, जैसी जैसी संसारकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप आगे दृष्ट आता है, जो विश्व उपादानकरि हुई नहीं, तौ आरंभ परिणामकरि बन्या कछु नहीं, जैसे यह विना उपादान है तैसे श्रवण कर ॥ हे मित्र! शुद्ध परमात्माका जो पावणा है सो साधन है, अरु विश्व उपादान है सो शब्द है, अरु आत्मा अद्वैत है सो इनका हेतु है, अरु अचिंत्य है, इसीतें विश्व निरुपादान है, स्वप्नवत्, जैसे स्वप्नसृष्टि निरुपादान होती है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी है, अरु उपादानमृत्तिकाकरि जैसे घट कार्य बनता है, आत्मा विश्वका उपादान ऐसे भी नहीं, काहेतें जो मृत्तिका परिणामकरि घटाकार होती है, अरु आत्मा अच्युत है, जैसे भीतविना

चित्र होवै सो हैही नहीं, तातें यही विश्व आकाशविषे चित्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी विश्व आधार भीतविना चित्र होता है, तैसे यह विश्व भी आकाशविषे चित्र हुई है, इसीतें आत्मा अकर्त्ता है, अरु विश्व जो दृष्ट आती है सो निरुपादान है, तिसका शोक क्या करियें, अरु हर्ष क्या करियें यह प्रपंच सर्व आत्मरूप है, प्रमाद करिके नहीं जाणीता ॥ हे साधो! संवेदन करिके जो अहंकार फुरता है तब विश्व भासती है, जैसे स्वप्नविषे जो कछु बनता है सो अपणे स्वरूपतें भिन्न देखता है, अरु तिसविषे रागदोष भासते हैं, अरु जागे हुए अवर कछु नहीं, सब अपणाही अनुभव था, तैसे जब संवेदन उठ गई, तब सब विश्व अपणा आप हो जाती है, यह अहंकार होणाही विश्व है, जब अहंकार नाश होवै, तब सर्व शब्द अर्थ जो मैं दुःखी हौं, मैं सुखी हौं, यह नरक है, यह स्वर्ग है, इत्यादिक सब परमार्थसत्ताहीविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, तातें सर्व आत्मस्वरूप है, सो कैसा है, दृश्यतें रहित द्रष्टा है, ज्ञेयतें रहित ज्ञाता है, अरु निर्बोध बोध है, इच्छातें रहित इच्छा है, अद्वैत है, अरु नानात्व भी वही है, निराकार है, आकार भी वही है, अकिंचन है, किंचन भी वही है, अक्रिय है, अरु सर्व क्रिया वही करता है, ऐसे आत्मज्ञानकों पायकरि आत्मवेत्ता विचरते हैं, अरु जगत्का भान तिनकों किंचित् भी नहीं, जैसे स्वर्णके भूषण जलके तरंग होते हैं, तैसे सर्व विश्व तिसकों आत्मस्वरूप भासती है, ऐसे जाणीकरि सर्व चेष्टा करते हैं, जैसे यंत्रीकी पुतलीविषे संवेदन नहीं फुरती, तैसे उनकों जगत् सत्यता नहीं फुरती, काहेतें जो निरहंकार भये हैं ॥ हे मंकीऋषि! जैसे स्वर्णविषे भूषण बनि आए हैं, तैसे आत्माविषे विश्व फुरि आई है, सो अहंकार फुऱ्या है, तातें इसके अभावकी भावना करु, निरहंकार होकरि चेष्टा करु, जैसे पिंघुडेविषे बालकके अंग स्वाभाविक हलते हैं, तैसे ज्ञानीकी निर्वेदन चेष्टा होती है ॥ हे ऋषी! जब तूं इस मेरे उपदेशकों धारैगा, तब सुखेनही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, यह विश्व भी आत्मस्वरूपही भासैगी, जो कछु विश्व भासता है,

सो सब आत्मरूपही है ॥हे रामजी! जब मैं इस प्रकार कहा, तब मंकीऋषि परम निर्वाणपदकों प्राप्त भया, परम समाधिविषे स्थित हो गया, सौ वर्षपर्यंत समाधि स्थित रहा सो कैसी समाधि जो शिलावत् फुरै कछु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे मंकीऋषि स्वरूपकों प्राप्त भया है, तैसे तुम भी स्थित होहु ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मंकीऋषिनिर्वाणप्राप्तिर्नाम शताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, सर्व उही चिन्मात्र स्वरूप है ॥ हे रामजी! मेरा आशीर्वाद है, जो तुम चिन्मात्र स्वरूपकों प्राप्त होहु, जो तुमारा अपणा आप है, तिसकों अपणा आप जाण, तुमारे दुःख नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी! तुम निर्वाण शांत आत्मा होहु, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहौ, अरु सत हुआ असत्की नांई स्थित होहु, रागदोषका रंग तुमकों स्पर्श न करै, स्फटिक मणिकी नांई॥ हे रामजी! यह सर्व जगत् एकही स्थित है, अरु वास्तवतें एकविषे कछु स्थित नहीं, आदि अंततें रहित एक चिदाकाश अपणे आपविषे स्थित है, सो शरीरादिकके नाश विषे भी अखंडरूप है, तिसका यह जगत् चमत्कार है, उपजी उपजीकरि लय हो जाता है, जलतरंगवत् ॥ हे रामजी! ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी भ्रांतिमात्र सिद्ध हुई है,अरु वास्तवतें द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्व उहीरूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, सब आत्मस्वरूप है, अरु सदा एकरस है, कदाचित् क्षोभकों नहीं प्राप्त होता, यद्यपि यह दशा होवै जो आमावास्याका चंद्रमा दृष्ट आवै, अरु प्रलयकालबिना प्रलयकाल वायु चलै, तौ भी आत्माकों क्षोभ नहीं होता, आत्मपद सदा ज्योंका त्यों है॥ हे रामजी! ऐसे आत्माके प्रमादकरि जीव दुःख पावते हैं, जब आत्माका प्रमाद होता है, तब इसकों प्रत्यक्ष देह इंद्रिय अपणेविषे भासती हैं, तौ भी है नहीं, जैसे वालुसों तेल नहीं निकसता, अरु आकाशविषे वन नहीं होता, चंद्रमाके मंडलविषे तप्तता नहीं होती, तैसे आत्माविषे देह इंद्रिय कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी! यह जीव सर्व आत्मरूप हैं, तातें इन

कों देह इंद्रियाका संबंध कछु नहीं, परंतु इनकी क्रियाविषे जो अभिमान करता है, इसीतें बंधमान होता है॥ हे रामजी! जैसे बेडीपर पुरुष बैठता है, तिसकों भ्रांतिकरि नदीतटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे मनके भ्रमकरि आत्माविषे चित्त देह इंद्रियां भासते हैं, अरु वास्तवतें चित्त देह इंद्रियां कछु भिन्न वस्तु नहीं, यह भी आत्मस्वरूप है, तौ निषेध किसका करियें॥ हे रामजी! यह मन इंद्रियादिककों अपणी सत्ता कछु नहीं, भ्रांति करिके भासती है, जैसे पर्वत ऊपर उज्वल मेघ होता है, तिसविषे वस्त्रबुद्धि निष्फल होती है, तैसे देहादिकविषे अहंबुद्धि निष्फल है तातें॥ हे रामजी! एक अखंड आत्मतत्त्व है, अवर द्वैत कछु नहीं, जब तैंनें ऐसे धारा, तब तूं निरंजन स्वरूप है॥ हे रामजी! यह सर्व शरीर चित्तके फुरणेविषे स्थित हैं, जैसे चित्तके फुरणेविषे शरीर है, तैसे जीवविषे चित्त है, तैसे परमात्माविषे जीव है॥ हे रामजी! इस प्रकार फुरणेमात्र दृश्य हुई तौ द्वैत तौ कछु न हुआ क्यों? इस प्रकार विचारपूर्वक दृश्य भ्रमकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु॥ हे रामजी! ऐसे धारीकरि सुखेन विचरहु, जो कछु चेष्टा नेतिकरि आय प्राप्त होवै तिसकों करौ, परंतु अपणा अभिमान न होवै, जब अपणा अहंभाव दूर भया, तब स्पंद होवै, अथवा निस्पंद होवै, समाधिस्थित होवै अथवा राज्य करै, स्थिति क्षोभ तुमकों दोनों तुल्य हो जावैंगे, जब अपणी अभिलाषा दूर भई तब जैसी चेष्टा आय प्राप्त होवै तैसीही होवै, उह फुरणा भी अफुर है, जैसे जलके ज्ञानतें तरंग बुदबुदे जलही भासता है, तैसे तुमकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होवैंगे, एक अद्वैत सत्ताही भान होवैगी, जैसे सम्यक्‌दर्शीकों तरंग अरु सोमजल एक भासता है, तैसे तुमकों भी एकही भासैगा, जीवन्मुक्त होहु, अथवा विदेहमुक्त होहु, समाधि होवै अथवा राज्य होवै, तुमकों दोनों तुल्य हैं॥ हे रघुकुल आकाशके चंद्रमा रामजी! इसकों अपणी अभिलाषाही बंधन करती है, जब अभिलाषा मिटी, तब कर्म करौ अथवा न करौ, बंधन कछु नहीं, काहेतें जो करणेविषे भी आत्माकों अक्रिय देख

ता है, अरु अकरणेविषे भी तैसे देखता है, द्वैतभावना तिसकी निवर्त हो जाती है, तातें तिसकों चित्त देह इंद्रियादिक सर्व पदार्थ आत्मरूपही भासते हैं ॥ हे रामजी! मैं जानता हौं जो तुमारे हृदयका मोह निवृत्त भया है, अब तुम जागे हौ, अरु जो कछु तुमकों संशय रहा होवै तौ बहुरि प्रश्न करौ, जो मैं उत्तर देउं ॥ इति श्रीयो० निर्वा०सुखेनयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४८ ॥ ॥

॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! एक संशय मुझकों है, तिसकों तुम निवृत्त करौ, एक कहते हैं, जो बीजतें अंकुर होता है, अरु एक कहते हैं, अंकुरतें बीज होता है; अरु एक कहते हैं, जो कछु कर्ता है, सो दैवही करता है, अरु एक कहते हैं, कर्म करते हैं, तब जन्म पावते हैं, कर्महीकरि सब कछु होता है, अवर किसीके आधीन नहीं, अरु एक कहते हैं जब देह होती है, तब कर्म करते हैं, एक कहते हैं, कर्मोंतें देह होती है, एक कहते हैं, देहतें कर्म होते हैं, इह अर्थ है, एक पुरुषप्रयत्न मानते हैं, जो जैसे है, तैसे तुम कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक एक मैं तुझकों क्या कहौं, कर्मतें आदि दैवपर्यंत, अरु घटतें आदि आकाशपर्यंत जेती कछु क्रिया कर्म द्रव्य है, सो यह विकल्पजाल सब भ्रांतिमात्र है, केवल आत्मस्वरूप अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी! जब संवेदन फुरती है, तब सब कछु भासता है, अरु निःसंवेदन हुए कछु नहीं, कर्म पुरुषप्रयत्न सब दैवसमेत आत्माके पर्याय हैं, जैसे शीत श्वेत आदिक बरफके पर्याय हैं, तैसे यह सर्व आत्माके पर्याय हैं, दैव पुरुष है, अरु पुरुष दैव है, कर्म देह है, अरु देह कर्म है, बीज अंकुर है, अरु अंकुर बीज है, दैव कर्म है, अरु कर्म दैव है, सो पुरुषप्रयत्न है, जो इनविषे भेद मानते हैं, सो पंडितविषे पशु हैं, काहेतें जो इनका बीज अहंकार है, जब अहंकार हुआ तब सब कछु सिद्ध हुआ, जैसे बीजतें वृक्ष होता है, फूल फल टास सर्व बीजतें होते हैं, अरु जो बीजही न होवै, तौ वृक्ष कैसे उपजै ॥ हे रामजी! इनका बीज संवेदन है, अहंकार संकल्प संवेदन तीनों पर्याय हैं, जब फुरणा हुआ तब कर्म देह दैव सर्व सिद्ध होते हैं, जब फुरणा मिटि

गया तब कछु नहीं भासता, इसीकों ज्ञान अग्निकरि जलावहु, जो फूल फल टास जलिजावैं; यह जो संवेदन फुरती है, जो मैं ही हौं, यही संसारका बीज है, ज्ञानरूपी अग्निकरि जलावहु, जब अहंकार नष्ट भया तब द्वैत कछु न भासैगा ॥ हे रामजी ! यह जो प्रपंच भासता है, तिनका बीज संवेदन है, अरु संवेदनका बीज शुद्ध संवित्तत्त्व है, तिसका बीज अवर कोउ नहीं, दैव कर्म पुरुषयप्रयत्न क्या है, सो श्रवण करु, आदि जो स्पंद संवेदन फुरणा हुआ है, तिसका नाम दैव है, काहेतें जो कर्मतें आदिही फुरता है, बहुरि जो आगे क्रिया करती है, सो कर्म हैं, इसीका नाम पुरुषप्रयत्न है, अरु उह जो कर्मतें आदि दैवरूप फुर्या है, सो क्या रूप है, इसीका जो प्रकृति कर्म हुआ है, तिसीका नाम देवकरि कहते हैं, इन सर्वका बीज संवेदन है ॥ हे रामजी ! जो स्वतः पुरुष चिन्मात्र पद एकही था, जब तिसतें विकारसंयुक्त उत्थान हुवा, तब आगे प्रपंच भासणे लगा, बहुरि जब उत्थानका अभाव होवै, तब प्रपंचका भी अभाव हो जावै॥ हे रामजी ! जब यह कछु बणता है, तब सर्व आपदा इसकों प्राप्त होती है, जैसे सुइ वस्त्रविषे प्रवेश करती है, तिसके पाछे तागा भी चला जाता है, अरु जो सुइ प्रवेश न करै तौ तागा कहांतें जावै, तैसे जब अहंकार प्रवेश करता है, तब सब आपदा आती है, जब अहंकार निवृत्त भया, तब सब विश्व आनंदरूप अपणा आप भासती है, तातें अहंकारका अभाव करौ, काहेतें जो विश्व भ्रांति करि सिद्ध है, आगे कछु हुई नहीं सर्व आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! वासनामात्र विश्व है, जब वासना नष्ट होवै तब परम कल्याण है, जिस प्रकार इसकी वासना क्षय होवै सोइ युक्ति श्रेष्ठ है, जब युक्तिकरि वासना क्षय होवैगी, तब चेष्टा भी होवैगी, परंतु बहुरि जन्मकों न देवैगी ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानीका संकल्प दग्ध बीजवत् है, बहुरि जन्मकों नहीं देता, अरु अज्ञानीका संकल्प कच्चे बीजवत् है, बहुरि जन्म देता है, अरु वास्तव देखियें तौ न कोउ जन्मही पावता है, न कोउ मृत होता है, केवल अपणे आप भावविषे स्थित है, भ्रांति करिके भिन्न भिन्न भासते हैं, स्वरूपतें स

र्व अपणाही आप है, द्वैत कछु हुआ नहीं, अरु जो भासता है, सो मिथ्या है, जैसे केलेके स्तंभविषे सार कछु नहीं होता, तैसे प्रपंच सर्व मिथ्या है, इसविषे सार कछु नहीं, तातें इसकी वासना त्यागिकरि अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! जिस प्रकार तुमारी वासना निर्मूल होवै, सोइ यत्नकरि निर्मूल करौ, तब शेष परम शिवपदही रहैगा ॥ हे रामजी! पुरुषप्रयत्नकरि जब निरहंकार होवहुगे, तब वासना आप ही क्षय हो जावैगी, वासना क्षयका उपाय अपणे पुरुषप्रयत्नबिना कोउ नहीं, तातें हे रामजी! पुरुषार्थ करिके इसी एक देवपरायण होहु, कर्म दैव आदिक वही पुरुष होकरि भासता है, अरु कछु हुआ नहीं, जैसे एकही पुरुष देवनका स्वांग धारे ॥ हे रामजी! इस प्रकार विचारपूर्वक सब ईषणाकों त्यागिकरि स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निरासयोगोपदेशो नाम शताधिकनवचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ १४९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञानवानकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, हृदयविषे शीतलता होती है, चेतन रसकरि बुद्धि पूर्ण होती है, दूसरा भान उठि जाता है, तातें नित्य अंतर्मुखी होहु, अरु वीतराग निर्वासी होहु, चिन्मात्र निर्मल शांतरूप सर्व ब्रह्मकी भावना करु, ब्रह्मपदकों पायकरि नेतिके अनुसार चेष्टा कर, जो हर्षका स्थान होवै, तिसविषे हर्ष करु, जो शोकका स्थान होवै, तहां शोक करु, जैसे अज्ञानी करते हैं, तैसे कर, अरु हृदयविषे आकाशकी नांई रहु ॥ हे रामजी! जब इष्टकी प्राप्ति होवै, तिससाथ स्पर्श करहु, परंतु हृदयविषे तृष्णा न होवै, जब युद्ध आए प्राप्त होवै तब शूरमा होकरि युद्ध करहु, अरु जहां दीन होवै तहां दया करहु, जो राज्य आय प्राप्त होवै तिसकों भोगहु, जो कोउ कष्ट आय प्राप्त होवै, तिसकों भी भोगहु ॥ हे रामजी! सब चेष्टा अज्ञानीकी नांई करहु, अपणे हृदयकों कोउ जानी न सकै, अरु हृदयविषे, सदा समता रहै, इतर कछु फुरै नहीं, रागदोषतें रहित सदा निर्मल होहु, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब तुझकों खेद कछु

न होवैगा, यद्यपि बडा दुःख इंद्रका वज्र पडै तौ भी तुझकों स्पर्श न करैगा ॥ ॥ हे रामजी! तेरा रूप कैसा है, जो शस्त्रकरि छेद्या नहीं जाता, अरु अग्निकरि जलता नहीं, जलकरि गलता नहीं, पवनकरि सूकता नहीं, केवल निराकार अजर अमर है, सर्वका अपणा आप है ॥ हे रामजी! कष्ट तब होता है, जब विलक्षण वस्तु होती है, अग्नि तब जलाती है, जब भिन्न काष्ठ आदिक वस्तु होती है, अग्निकों अग्नि तौ जलाती नहीं, जलकों जल तौ गालता नहीं, तातें तूं अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संवित्‌रूप आलयवत् स्थिर स्थान है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे पक्षी सर्व उरतें संकल्पकों त्यागिकरि आलयविषे स्थित होता है, तब सुख पावता है, तैसे जब तूं सर्व कलनाकों त्यागिकरि अंतर्मुख संवित्‌विषे स्थित होवैगा, तब रागदोषरूपी धुंध कोउ न रहैगा ॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र बडा प्रवाह है, तिसतें निकसणा तब होवै, जब आश्रय होवै, सो आश्रय तुझकों कहता हौं, अनुभवरूप आत्माकों आश्रयकरि संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होहु, तातें विलंब न करहु, अपणे आपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! संसाररूपी वृक्षका अंत लिया चाहै, तौ नहीं पाइता, अरु मैं तुझकों ऐसा उपाय कहता हौं, जो सर्वका अंत कहियें सुगंधिकों ग्रहण किये, संसाररूपी एक वृक्ष है, तिसविषे चेतनमात्र सुगंधिता है, सो तेरा अपणा आप है, तिसकों ग्रहण करु, जो सर्वका अधिष्ठान है, जब तिसकों ग्रहण किया, तब सर्वकों ग्रहण किया है॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच तुमकों भासता है, सो सब आत्मरूप है, तिसकी भावना करु, अरु जागृतविषे सुषुप्त होहु, सुषुप्तिविषे जागृत होहु, संसारकी सत्ता जो जागृत है, तिसकी उरतें सुषुप्त होहु, सुषुप्त कहियें फुरणेतें रहित होकरि तुरीया पदविषे स्थित होहु, जहां गुणका क्षोभ कोउ नहीं, अरु निर्मल शांतिरूप है, जहां एक अरु दोकी कलना कोउ नहीं, तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ऐसे जो शांतरूप तुरीया पदविषे स्थित होणा तुमनें कहा, सो तुमारेविषे यह नहीं फुरता,

जो मैं वसिष्ठ हों, तिसका रूप क्या है, जो अहं प्रतीति तुमकों न होती है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीनें प्रश्न किया, तब वसिष्ठजी तूष्णी हो गये, अरु सर्व सभा संशयके समुद्रविषे मग्न भई तब रामजी बोले ॥ हे भगवन्! तूष्णी होणा तुमारा अयोग्य है, तुम साक्षात् विश्वगुरु हौ, ब्रह्मवेत्ता हौ, ऐसी कवन बात है, जो तुमकों न आवै, अथवा मुझकों समर्थ नहीं देखते सो कहौ, जब ऐसे रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी एक घडी उपरांत बोले ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असमर्थता करिके मैं तूष्णी नहीं भया परंतु जैसा तेरे प्रश्नका उत्तर है, सोई दिखाया, जो तेरे प्रश्नका तूष्णीही उत्तर है, जो प्रश्न करणेवाला अज्ञान होवै तौ उसकों अज्ञान लेकरि उत्तर कहियें, अरु जो तज्ज्ञ होवै, तिसकों ज्ञानकरि उत्तर दीजियें, आगे तूं अज्ञानी था तब सविकल्प उत्तर मैं देताथा अब तूं ज्ञानवान् है, तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णीही है ॥ हे रामजी! जो कछु कहणां है, सो प्रतियोगीसाथ मिल्या हुआ है, प्रतियोगी बिना शब्द मैं कैसे कहौं, आगे तूं सविकल्प शब्दका अधिकारी था, अरु अब तुझकों निर्विकल्पका उपदेश किया है ॥ हे रामजी! शब्द चार प्रकारके हैं, एक सूक्ष्म अर्थका, दूसरा परमार्थका; एक अल्प है, एक दीर्घ है, सो तीन कलंक इनविषे रहते हैं, एक संशय एक प्रतियोग, एक भेद, यह तीनों कलंक शब्दविषे रहते हैं, जैसे सूर्यकी किरणाविषे त्रसरेणु रहते हैं, तैसे शब्दविषे कलंक रहते हैं, अरु जो पद मन अरु वाणीतें अतीत है, तौ कलंकित शब्द कैसे तिसकों ग्रहण करै ॥ हे रामजी! काष्ठमौन तिसकों कहते हैं, जहां न इंद्रियां फुरही, न मन फुरै, कोउ फुरणा न फुरै, सो कहियें काष्ठमौन, ऐसे पदकों मैं वाणीकरि कैसे कहौं, जेता कछु बोलणा होता है, सो सविकल्प होता है, उस तेरे प्रश्नका उत्तर तूष्णी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, बोलणा सविकल्प अरु प्रतियोगीसहित होता है, जो कछु ब्रह्मविषे दूषण है, तिसका निषेध करिके कहौ, मैं प्रतियोगीकों न विचारोंगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाशस्वरूप

हौं, चैत्यतें रहित चिन्मात्र हौं, अरु शांतरूप हौं, सम हौं, सर्व कलनातें रहित केवल आत्मत्वमात्र हौं, अरु तूं भी चिदाकाश है, सर्व जगत् भी चिदाकाश है, अरु अहं त्वं कोउ नहीं कहणा, काहेतें जो दूसरी सत्ता कोउ नहीं, सब चिदाकाश है, अहं संवेदनतें रहित शुद्ध है, जो सापेक्षिक अहं अहं फुरती है, अरु मोक्षकी भी इच्छा होवै तौ सिद्ध नहीं होती, काहेतें जो कछु आपकों मानीकरि फुरती है, तौ एक अहंकारके केई अहंकार हो जाते हैं, यह अहं इसके गलेमें फांसी पडती है, जब अहंतातें रहित होवै, तब आत्मपदकों प्राप्त होवै॥ हे रामजी! जब यह सबकी नाई हो जावै, कछु अपणी अहंता अभिमान न फुरै, तब संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त होवै, अरु जब द्वैतसों मिल्या हुआ जीवता है, तबलग जन्ममरणके बंधनमें है, कदाचित् मुक्त नहीं होता, जैसे जन्मका अंध चित्रकी पुतलीकों देखि नहीं सकता, तैसे अहंतासंयुक्त मुक्तिकों नहीं प्राप्त होता; जब अहंताका अभाव होवै, तब कल्याण होवै, स्वरूपके आगे अहंताही आवरण है॥ हे रामजी! जब यह चेतन हुआ फुऱ्या तब इसकों बंधन पडा, अरु जब जड अफुर हो जावै तब कल्याण हुआ, जब चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब इसका नाम पशु होता है, पशुका शरीर पाया, जब चैत्यतें रहित शुद्ध चेतन प्रत्यक् आत्माविषे स्थित होता है, तब मनुष्य जन्म सफल होता है, यह मनुष्य जन्म पाय जो कछु पावणा था, सो पाया॥ हे रामजी! जब मनुष्य जन्मकों पायकरि न जाणैगा, तब अवर जन्मविषे जानणा कहां है, यह संसार चित्तके फुरणेकरि उत्पन्न हुआ है, जब चित्त संसरणेतें रहित होवै, तब केवल केवलीभाव स्वरूप भासै, ज्ञानवान्की दृष्टिविषे अब भी कछु नहीं हुआ, केवल आत्मस्वरूपही भासता है, फुरणा अफुरणा दोनों तिसकों तुल्य दिखाई देते हैं, अंतःकरणचतुष्टय आत्मस्वरूप है, अरु अज्ञानीकों भिन्न भिन्न भासते हैं, इसीतें चित्त आदिक जड हैं, अरु मिथ्या हैं, अरु आत्मस्वरूप करिके सब आत्मस्वरूप हैं, आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित है, ज्ञानीकों सर्व आत्माही भास

ता है, भावै कैसी चेष्टा करै, उह लोक धन पुत्र सर्व ईषणातें रहित है, न लोककी इच्छा करता है, जो लोक मुझकों कछु भला कहै, अरु न पुत्रधन पावणेकी इच्छा करता है, केवल आत्मअनुभवरूपविषे स्थित है, अरु सबकों अपणा आप जानता है॥ हे रामजी! जिस पदकों उह प्राप्त होता है, तिस पदकों मेरी वाणी कही नहीं सकती, अनिर्वाच्य पद है, अरु जो पुरुष अहं ब्रह्म अस्मि कहता है, जो मैं ब्रह्म हौं, अरु यह जगत् है, तब जाणियें जो तिसकों ज्ञान नहीं उपजा, तिसकों शास्त्र श्रवणका अधिकार है, जैसे कोउ कहै, मेरे हाथविषे दीपक है, अरु अंधकार भी मुझकों दृष्ट आता है, तब जाणिये जो इसके हाथविषे दीपक नहीं, तैसे जबलग जगत् भासता है, तबलग ज्ञान उपजा नहीं, इस जीवने निर्वाण हो जाणा है, जब प्रत्यक् चेतनविषे स्थित हुआ, तब जड हो जावैगा; संसारकी भास कछु न रहैगी, इसी भी दृष्ट न रहैगी, जो मैं सम्यक्दर्शी हौं, केवल निर्वाण हो जावैगा॥ हे रामजी! अब भी निर्वाणपद है, इतर हुआ कछु नहीं, किसकरिके किसकों कवन उपदेश करै, केवल एकरस शून्य है, शून्य अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, अरु जो कछु भेद है, तिसकों ज्ञानवान् जानते हैं, अरु वाणीकी गम नहीं, तिसविषे जो अनंत संवेदन फुरती है, तिसकरि संसार फुरता है, अरु संवेदनहीकरि लीन होता है, जैसे पवनकरि अग्नि प्रज्वलित होती है, अरु पवनहीकरि लीन होता है, तैसे संवेदन बहिर्मुख फुरती है, तब संसार भासता है, अरु जब अंतर्मुख होती है, तब जगत् लीन हो जाता है, तातें संसार फुरणे मात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् प्रमादकरिके भासता है, जगत् कछु बन्या नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, तिसविषे स्थित होहु, जब स्थित होवैगा, तब अशेष विशेष भाव मिटि जावैगा॥ हे रामजी! ग्राह्य अरु ग्राहक संबंध भी जाता रहैगा, केवल जो परमात्मतत्त्व शुद्ध है, अजर अमर है, खाते पीते चलते सोवते वृत्ति तहांही रखणी॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भावनाप्र

तिपादनोपदेशो नाम शताधिकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५० ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार आत्मपदकों प्राप्त होता है, सो सुण, जब निरहंकार होता है पुरुष, तब आत्मपदकों प्राप्त होता है, जो सर्वात्मा है, तिसकों आवरण करणेहारी अविद्या है, जैसे सूर्यमंडलके आगे बदल आय आच्छादि लेता है, तैसे अविद्या आत्माविषे आवरण करती है, तिस अविद्याकरि उन्मत्तकी नांई मूर्ख चेष्टा करते हैं, अरु जो अहंतातें रहित ज्ञानवान् पुरुष है, तिसकों दुःख कोउ नहीं स्पर्श कर्त्ता, संदेह भी निर्दुःख होता है, जैसे भींत उपर मूर्त्यां युद्धकी सैना लिखी होती है, सो देखणेमात्र शोभा दृष्ट आता है, परंतु उह शांतरूप हैं, तैसे ज्ञानवान्की चेष्टाविषे भी क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु सदा अक्षोभ निर्वाणरूप है, वासनासहित दृष्ट आता है, अरु सदा निर्वासी है, जैसे जलविषे लहरीचक्र क्षोभ दृष्ट आता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्कों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता, जिसके अंतरतें दृश्यभाव शांत हो गया है, बाहिर क्षोभवान् दृष्ट आता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जैसे धुंएके बदल आकाशविषे हस्ती घोडा पहाडरूप दृष्ट आते हैं, परंतु है कछु नहीं, तैसे जगत् दृष्ट आता है, परंतु है कछु नहीं, अहंकारकरि जगत् भासता है, अहंकारतें रहित निर्विकार शांतरूप होता जाता है, ऐसा जो निरहंकार आत्मपद है, तिसकों पायकरि ज्ञानवान् शोभता है, ऐसा शरत्कालका आकाश नहीं शोभता, अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा नहीं शोभता, अरु पूर्णमासीका चंद्रमा भी ऐसा नहीं शोभता ऐसा ज्ञानवान् पुरुष शोभता है ॥ हे रामजी! अहंताही इस पुरुषकों मल है, जब अहंता नाश होवै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होवै, अरु संसारके पदार्थकी जो भावना थी सो निवृत्त हो जाती है, काहेतें जो भ्रम करिके उपजी थी जो वस्तु भ्रम करिके उपजी होती है, सो भ्रमके अभाव हुए तिसका भी अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे धुंएका बदल नानाप्रकारके आकार हो भासता है, अरु है नहीं, तैसे यह विश्व अन होती भासती है, विचार कियेतें रहती नहीं ॥

हे रामजी ! जबलग इसकों संसारकी वासना है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त हो जावै, तब आत्म पदकी प्राप्ति होवै अरु संपूर्ण कलना मिटि जावै, इंद्रियांके इष्ट अनिष्टविषे तुल्य हो जावै, यद्यपि व्यवहार कर्ता है तौ भी शांतरूप है, जैसे शब्दकों रागदोष नहीं फुरता, तैसे ज्ञानी निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, जिस निर्वाणविषे सत् असत् शब्द कोउ नहीं, केवल ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म कहणां भी उहां नहीं रहता, केवल आत्मत्व मात्र है, अरु अद्वैत है॥ हे रामजी! विश्व भी उहीरूप है, चेतन आकाश है, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा चेतन होकरि भासता है, जब जगत्की भावना होती है, तब नानाप्रकारके आकार दृष्ट आते हैं, अरु जब ब्रह्मकी भावना होती है, तब ब्रह्म भासता है, जैसे विषविषे अमृतकी भावना होती है, अरु विधिसंयुक्त खाते हैं, तब विष भी अमृत हो जाती है, अरु जो विधिविना खाइएं तौ मृतक होता है, तैसे जब इस संसारकों विधिसंयुक्त देखियें, अर्थ इह जो विचारकरि देखियें तौ ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जो विचारविना देखिये तौ जगत्रूप भासता है, सो विचार तब होता है, जब अहंकार निवर्त्त होता है, अरु अहंकार आकाशविषे उपजा है, अरु आकाश शून्यताविषे उपजा है, अरु शून्यता आत्माके प्रमादकरि उपजी है, बहुरि अहंकारतें जगत् हुआ है, अरु अहंकार मिथ्या है॥ हे रामजी! शरीर आदिक चित्तपर्यंत विचारी देखियें तो दृष्ट कहूं नहीं आते, इनविषे जो अहंप्रत्यय है सो भ्रांतिमात्र है, जब तूं विचारि देखैगा, तब मरीचिकाके जलवत् भासैगा॥ हे रामजी! इस प्रपंचके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वतका त्यागणा यत्न कछु नहीं, तैसे मिथ्या संसारके त्यागणेविषे यत्न कछु नहीं, बहुरि इसका निर्णय क्या करियें, जो हैही नहीं, जैसे वंध्याके पुत्रकी वाणी विचारियें जो सत्य कहता है, अथवा असत्य कहता है, सो मिथ्या कल्पना है, वंध्याका पुत्र है नहीं तौ तिसका विचार क्या करियें, तैसे प्रपंच है नहीं, इसका निर्णय क्या करियें, तातें तुम ऐसे करौ जैसे मैं कहता हौं, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै॥ हे रा

मजी! ऐसी भावना करु जो न मैं हौं न जगत् है, जब अहंकार न रहा तब कलना कहा होवै, इसका होणाही अनर्थ है, जब ऐसे विचार उत्पन्न होता है, तब भोगकी वासना क्षय हो जाती है, अरु संतकी संगति होती है, अन्यथा भोगकी वासना नष्ट नहीं होती॥ हे रामजी! जबलग इसकों अहंता उठती है, अर्थ यह जो दृश्य प्रकृतिसाथ मिलाप है, तबलग द्वैतभ्रम नहीं मिटता, जब अहंका उत्थान मिटि जावै, तब शुद्ध चिन्मात्र आत्मसत्ताही रहै ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हंससंन्यासयोगो नाम शताधिकएकपंचाशत्तमः सर्गः॥ १५१ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब अहंताका उत्थान होता है, तब स्वरूपका आवरण होता है, अरु जब अहंता मिटि जावै, तब स्वरूपकी प्राप्ति होती है, इस संसारका बीज अहंताही है सो अहंकारही मिथ्या है, तिसका कार्य सत्य कैसे होवै, जो प्रपंच मिथ्या हुआ, तौ पदार्थ कहांतें सत् होवै॥ हे रामजी! ऐसा जो ब्रह्म है, तिसकी युक्ति क्या है, जो संकल्पपुरुष भी असत्य है, अरु तिसका संशय भी मिथ्या है, अरु जिसप्रति प्रश्न करता है सो भी मिथ्या है, जैसे स्वप्नविषे द्वैतकलना होती है, सो असत् है, तैसे यह जगत् द्वैत भी असत्य है ॥ हे रामजी! इह सब जगत् इसके अंतर स्थित है, अरु प्रमादकरि बाहिर भासता है, इह अपनाही स्वप्न दृष्ट आता है, जो अंतरकी बाह्य सृष्टि भासती है, तातें इह जगत् सब चिद्रूप है, इतर कछु नहीं, सो चेतनसत्ता आकाशतें भी अति सूक्ष्म है, अरु स्वच्छ है ॥ हे रामजी! इह जगत् चित्त करि चेत्या है, तातें कहूं हुआ नहीं, न किसीका नाश होता है, न उत्पन्न होता है, न किसीका कहूं जन्म है, न मृत्यु है, सर्व ब्रह्मही है॥हे रामजी! जगत्के नाश हुए कछु नाश नहीं होता, काहेतें जो हुआ कछु नहीं, जैसे स्वप्नके पहाड नष्ट हुए, जैसे संकल्प पुर नष्ट हुए, क्या नष्ट हुआ जो कछु उपजे नहीं तौ, तैसे इह जगत् है, कछु हुआ नहीं, इह विचारकरि देख्या है, जो वस्तु अविचारतें उपजी होवै सो विचारकरि कैसे रहै, जैसे जो पदार्थ तमतें उपजा होवै, सो प्रकाश हुए कैसे रहै, तैसे यह जगत् है, अविचारकरि भासता है,

विचार करेतें नाश हो जाता है ॥ हे रामजी! यह जगत् संकल्पहीमात्र है, जैसे संकल्प नगर होता है, तैसे यह संसार है, इसविषे कोउ पदार्थ सत्य नहीं, तातें रूप अरु इंद्रियां अरु मनके अभावकी चिंतवना करणी, इह संसार ऐसा है, जैसे समुद्रविषे चक्र है नहीं, जलही है, तिसविषे प्रीति भावना करणी अज्ञान है ॥ हे रामजी! एक ऐसे हैं, जो बाह्यतें शांतरूप दृष्ट आते हैं, अरु अंतर उनके क्षोभ होता है, अरु एक ऐसे हैं, जो अंतरतें शीतल है, बाह्य नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं, जिनके दोनों मिटि जाते हैं, सो मोक्षके भागी होते हैं, तिनके अंतर बाहिर एकता होती है, जैसे समुद्रविषे घट भरि राखियें, तिसके अंतर बाहिर जल होता है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें ज्यौंका त्यौं जाण्या है, आत्माकों तिसकों न भय होता है, न शोक होता है, न मोह होता है, केवल स्वच्छरूप शांत आत्माविषे स्थित है, भय तब होता है, जब दूसरा भासता है, सो सर्व द्वैतका तिसके अभाव हो जाता है, अरु शांतरूप होता है ॥ हे रामजी! सम्यक्‌दर्शीकों जगत् दुःख नहीं देता अरु असम्यक्‌दर्शीकों दुःख देता है, जैसे जेवरी होती है, जो जानता है, तिसकों जेवरी भासती है, अरु जो नहीं जानता तिसकों सर्प भासता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, तैसे जिसकों आत्माका साक्षात्कार है, तिसकों जगत्कल्पना कोउ नहीं भासती, चिदानंद ब्रह्म अधिष्ठानरूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका अज्ञान है, तिसकों जगत् द्वैतरूप होकरि भासता है, अरु राग दोषविषे जलता है ॥ हे रामजी! अवर जगत् कोउ नहीं, इसके अनुभवविषे जगत् कल्पना होती है, अज्ञान करिके द्वैतरूप हो भासता है, जब अपणे स्वभावसत्ताविषे जागता है, तब सब अपणा आप भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा आपही द्वैतरूप हो भासता है, अरु राग दोष उपजता है, जब जागता है, तब सब आत्मरूप हो भासता है, तैसे यह जगत् है, न इस जगत्का कोउ निमित्त कारण है, न कोउ उपादान कारण है, जो पदार्थ कारणविना भासै सो असत् जाणिएं, वास्तव उपज्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध

हुआ है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है, तैसे यह जगत् अकारण है, भ्रम करिके भासता है॥ हे रामजी! शास्त्रकी युक्तिसाथ विचार करिके देख जो द्वैतभ्रम मिटि जावै, रंचकमात्र भी कछु बन्या नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता कछु बनी नहीं, अरु मरुस्थलकी नदी भासती है तैसे यह जगत् भी जाण, आत्मा शुद्ध है, अद्वैत है, तिसविषे अहंकृतका फुरणाही दुःख है, अरु दुःखका कारण है, अरु जो स्वरूपका प्रमाद न होवै तौ अहंकृत भी दुःखका कारण नहीं, अरु जो स्वरूप भूला है, तौ अहंकृतादिक दृश्य विषकी वल्ली बढती जाती है, अरु नानाप्रकारके आकारकों धारती है, अरु वासना दृढ होती है, जबलग वासना होती है, तबलग बंध है, जब वासना निवृत्त होवै, तबही कल्याण होता है॥ हे रामजी! जिस दृश्यकी भावना करता है, सो दृश्य भी कछु भिन्न नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग चक्र होते हैं, सो इतर कछु नहीं, तैसे अहंकार आदिक जो दृश्य है सो है नहीं, जो है नहीं तिसकी इच्छा करणी यही मूर्खता है, अरु ज्ञानवान्की वासना क्षय हो जाती है, जैसे महा अणु होता है, तब आकाशकों ग्रहण करता है, जो आकाशवत् बहुत सूक्ष्म होता है, तैसे ज्ञानवान्की वासना सूक्ष्म होती है, उह वासना उसके बंधनका कारण नहीं होती, काहेतें जो संसारकी सत्यता हृदयविषे नहीं रहती, अरु सत्यता इसकरि नहीं रहती, जो आत्माका साक्षात्कार हुआ है, अरु जब आत्माका प्रमाद है, तब अहंता उदय होती है अरु दृश्य भासती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि दृश्यका ग्रहण करता है, जब नेत्र मुंदि लिये, तब दृश्यरूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता उदय होती है, तब दृश्य भी होती है, जब अहंता नष्ट भई, तब संसारका अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! अज्ञान किसका नाम है, सो सुण, अहंताका उदय होणा, इसीका नाम अज्ञान है, अहंता करिके बंध है, अहंतातें रहित मोक्ष है, आगे जो इच्छा होवै सो करहु॥ हे रामजी! देह इंद्रियादिक मृगतृष्णाके जलवत् हैं, इनविषे अहंता करणी मूर्खता है, अरु ज्ञानवान् अहंताकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होता है,

संसारके इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक नहीं करता, जैसे आकाशविषे बदल हुए तौ भी ज्यौंका त्यौं है, तैसे ज्ञानी ज्यौंका त्यौं है, इनविषे अहंकार नहीं, तातें सुखरूप है॥ हे रामजी! रूप दृश्य अरु इंद्रियां अरु मन उसके जाते रहते हैं, जैसे वंध्याके पुत्रकी नृत्य नहीं होती, तैसे ज्ञानीके रूप अवलोकन मनस्कार नष्ट हो गये हैं, काहेतें जो सर्व ब्रह्म तिसकों भासता है, द्वैत भावना नष्ट हो गई है, अरु संसारका बीज अहंता ज्ञानीविषे दृढ है॥ हे रामजी! अहंता करिके इसकी बुद्धि बुरी हो गई है, अर्थ यह जो स्थूल हो गई है, तातें दुःख पावता है, इस दुःखके नाशका उपाय कहता हौं तूं सुण, जो संतजनके वचनोंविषे भावना करणी, अरु विचार करिके हृदयविषे धारणी, इसकरि अहंतारूपी दुःख नष्ट हो जाता है, अरु संतके वचनोंका निषेध करणा इसकों मुक्तिफलके नाश करणेहारा है, अरु अहंतारूपी वैतालके उपजावणे हारा है, तातें संतकी शरणकों प्राप्त होहु, अहंताकों दूर करहु, इसविषे खेद कछु नहीं, यह अपणे आधीन है, अपणा अभाव चिंतवना इसविषे क्या खेद है॥ हे रामजी! संतकी संगती द्वारा इसकों बहुत सुगम होता है, जो ज्ञानवान् होवै, इनकी पृथक् पृथक् सेवा करणी, अरु बुद्धिकों बढावणी, तिनके वाक्य श्रवण करिके वचनोंकों एकठा करणा, अरु विचार करिके बुद्धिकों तीक्ष्ण करणी, बुद्धि जब तीक्ष्ण होवैगी, तब अहंतारूपी विषकी वल्लीका नाश करैगी, यह विचार करियें जो मैं कवन हौं, यह जगत् क्या है, जब ऐसा विचार करैगा, संत अरु शास्त्रोंके वचनोंकरि निर्णय कियेतें सत् है, सो सत् होता है, अरु असत् है, सो असत् हो जाता है, सत् जाणीकरि आत्माकी भावना करणी, अरु असत् जगत् मृगतृष्णाके जलवत् जाणीकरि भावना त्यागणी, जिनकों सुख जाणीकरि भावना पावणेकी करता था, सो दुःखदाई भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जाणीकरि मृग दोडता है, तौ दुःख पावता है, अधिष्ठानके अज्ञान करिके तैसे अधिष्ठान सबका आत्मतत्त्व है, सो शुद्धरूप परम शांत परमानंद स्वरूप है, जिसकों पायकरि बहुरि दुःखी न होवै॥ हे रामजी! इसकों

बंधनका कारण भोगकी वासना है, सो भोगकरि शांति नहीं होती, जब संतकी संगती होती है, तब इसका कल्याण होता है, अनात्मविषे अहंभाव छूटि जाता है, अवर प्रकार शांति नहीं होती ॥ हे रामजी! बालककी नाई हमारे वचन नहीं, हमारा कहणा यथार्थ है, काहेतें जो स्वरूपका भान हमकों स्पष्ट है, जब इसकी अहंता मिटि जावै, तब सुखी होवै, तातें अहंताका नाश करहु, अहंता नाश हुई तब जाणियें जो चैत्यकी भावना मिटि जाती है॥ हे रामजी! जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अहंतारूपी अंधकार नष्ट हो जाता है, अरु ज्ञान तब होता है, जब संतका विचार प्राप्त होवै, विषयतें वैराग्य होवै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, इसीकरि स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणयुक्त्युपदेशो नाम शताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिन पुरुषनें अपणा अज्ञान नाश नहीं किया, ज्ञानकरिके तिननें कछु करणे योग्य नहीं किया, अज्ञान करिके इसकों अहंभावना होती है, तब आगे जगत् भासता है, अरु लोक परलोककी भावना करता है, इसी वासनाकरि जन्म मरणकों पावता है ॥ हे रामजी! जबलग संसारका शब्द अर्थ इसके हृदयमें दृढ है तबलग शब्द अर्थके अभावकी चिंतवना करै, जहां इसकों जगत् भासता है, तहां ब्रह्मकी भावना करै, जब ब्रह्म भावना करैगा, तब संसारके शब्द अर्थतें रहित होवैगा, अरु आत्मपद भासैगा ॥ हे रामजी! इस संसारविषे दो पदार्थ हैं, एक इह लोक, दूसरा परलोक, अज्ञानी इस लोकका उद्यम करते हैं, परलोकका नहीं करते, तातें दुःख पावते हैं, अरु तृष्णा मिटती नहीं, अरु जो विचारवान् पुरुष हैं, सो परलोकका उद्यम करते हैं, सो इहांही शोभा पावते हैं, अरु परलोकविषे भी सुख दुःख पावते हैं, अरु दोनों कोकके कष्ट तिनके मिटि जाते हैं, अरु जो इसी लोकका उद्यम करते हैं, तिनकों दोनोंही दुःखदायक होते हैं, इहां तृष्णा नहीं मिटती, अरु आगे जायकरि नरक भोगते हैं, अरु जिन पुरुषनें आत्म परलोकका

यत्न किया है, तिनकों उही सिद्ध होता है, अरु सुखी होते हैं, अरु जिननें नहीं, यत्न किया सो दुःखी होते हैं, तातें अहंकारसों रहित होणा यही आत्मपद्की प्राप्ति है, जबलग इसकों परिच्छिन्न अहंकार उपजता है, तबलग दुःखी होता है, अरु नाम इसका जीव है, जो कछु फुरता है, तिसकरि विश्वकी उत्पत्ति होती है, जैसे नेत्रके खोलणेकरि रूप भासता है, अरु नेत्रके मुंदणेकरि रूपका अभाव हो जाता है, तैसे जब अहंता फुरती है, तब दृश्य भासती है, अरु जब अहंताका अभाव होवै, तब दृश्यका अभाव हो जाता है, सो अहंता अज्ञानकरि सिद्ध होती है, ज्ञानके उपजेतें निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष अपणा प्रयत्न करै, अरु साथही सत् संग करै, इसकरि संसारसमुद्र उतरी जावैगा, इतर नहीं तरता ॥ हे रामजी! युक्ति करिके जैसे विष भी अमृत हो जाती है, तैसे पुरुषार्थकरि सिद्धता प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! इस जीवकों दो व्याधि रोग हैं, इस लोकका, परलोकका, तिसकरि जीव दुःख पावते हैं, जिन पुरुषनें संतसाथ मिलापकरि इसका औषध किया है, सो मुक्तरूप है, अरु जिननें औषध नहीं किया, सो पुरुष पंडित है, तौ भी दुःख पावता है, सो औषध क्या है, शम दम करणा, अरु सतसंग करणा, इन साधनकरि यत्नकरि जिननें आत्मपद पाया है, सो कल्याण मूर्ति है ॥ हे रामजी! चिकित्साका औषध भी यही है, जिननें किया, तिननें किया अरु जिननें न किया, भोगविषे लंपट रहै, उह मूर्ख तहां पडैंगे, जहां फेर किसी औषधकों न पावैंगे, तातें ॥ हे रामजी! इन भोगका त्याग करहु, अरु आत्मविचारविषे सावधान होवहु, यही औषध है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें मन नहीं जीत्या, सो मूढ है, भोगरूपी चीकडविषे मग्न है, उह आपदाका पात्र है, जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करतियां हैं, तैसे आपदा तिसकों प्राप्त होती है, अरु जिसकी तृष्णा भोगतें निवृत्त भई है, अरु वैराग्य उपजा है, सो मुक्ति योगकों प्राप्त होता है, जैसे जीणेकी आदि बालक अवस्था है, तैसे निर्वाण पदकी आदि वैराग्य है ॥ हे रामजी! यह संसार

मिथ्या है, भ्रमकरि भासता है, जैसे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, अरु संकल्प नगर भ्रममात्र होता है, अरु मृगतृष्णाका जल भ्रमकरि भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है, संसारका बीज अहंता है, जब अहंता उदय हुई तब रूप अवलोक भासते हैं, तातैं यही चिंतवना कर जो मैं नहीं, जब येहि भावना करैगा, तब शेष जो रहैगा, सो तेरा शांतरूप है, जिसविषे आकाश भी शून्य है; केवल आत्मत्वमात्र है, अहंके उत्थानतें रहित है, अरु जड अजड है, अरु जडताका अभाव है, तातें अजड है, केवल ज्ञानमात्र है, अरु विश्व तिसविषे ऐसे है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, अरु जैसे पवनविषे स्पंद होता है, अरु आकाशविषे जैसे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जो कछु आत्मातें इतर होता, तौ प्रलयविषे नाश हो जाता सो प्रलयकालविषे भी रहता है, जैसे सूर्यकी किरणविषे जलाभास सदा रहता है, तैसे आत्माविषे विश्वका चमत्कार रहता है, जैसे स्वप्न सृष्टि अनुभव होती है, तैसे यह जाग्रत सृष्टि भी अनुभवरूप है, सो आत्मा अंतर बाहिरतें रहित है, अरु शुद्ध है, अद्वैत है, अजर है, अमर है, चैत्यतें रहित चेतन है, अरु सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान उही है, फुरणे करिके दूसरा भासता है, अरु फुरणा अफुरणा उही है, जैसे चलणा ठहरणा दोनों पवनके रूप हैं, जब चलता है, तब भासता है, जब ठहरता है, तब नहीं भासता, तैसे जब चित्तशक्ति फुरती है, तब विश्वरूप होकरि भासती है, जब अफुर होती है, तब केवलमात्र पद रहता है, सो निराभास है, अविनाशी अरु निर्विकल्प है, अरु सबका अपणां आप है, अरु सत् असत् जड चेतन आदिक शब्द अर्थ सब उसी अधिष्ठान सत्ताविषे फुरते हैं, इतर कछु नहीं, तातें उसी अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, जो परमार्थ सत्ता आत्मतत्त्व अपणे स्वभावविषे स्थित है, अहं त्वंतें रहित केवल आकाशरूप सबका अधिष्ठान है, तिसीविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शांतिस्थितियोगोपदेशो नाम शताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! जिनकों दुःख सुख चलावते हैं, इंद्रियके इष्टविषे सुखी होते हैं, अरु अनिष्टविषे दुःखी होते हैं, राग दोषके आधीन वर्त्तते हैं, तिनकों ऐसे जाण जो नष्ट हुए हैं, जिनका पुरुषप्रयत्न नष्ट हुआ है, सो वारंवार जन्मकों पावैंगे, अरु जिनकों सुख दुःख नहीं चलावते, तिनकों अविनाशी जाण, वह जन्ममरणके फांसेतें मुक्त हुए हैं, तिनकों शास्त्रका उपदेश नहीं है ॥ हे रामजी! राग दोष तब फुरता है, जब मनविषे इच्छा होती है, अरु इच्छा तब होती है, जब संसारकी सत्यता दृढ होती है, जिसकों असत्य जाणता है तिसकों बुद्धि नहीं ग्रहण करती, अरु इच्छा भी नहीं होती, अरु जिसकों सत्य जाणता है, तिसविषे बुद्धि दौडती है ॥ हे रामजी! अज्ञानीकों संसार सत्य भासता है, तिसकरि दुःख पावता है, जब शांतपदका यत्न करै, तब दुःखतें मुक्त होवै, शांतपद कैसा है, जिसविषे अहं त्वं अरु जगत् ब्रह्म इह शब्द कोउ नहीं, केवल चिन्मात्र आकाशरूप है, तिसविषे अहं त्वं जगत् ब्रह्म शब्द कैसे होवै, यह शब्द सब विचारके निमित्त कहे हैं, वास्तवतें शब्द कोउ नहीं, अद्वैत चैत्यतें रहित चिन्मात्र है, जब सर्व शब्दका बोध किया, तब शेष शांतपद रहता है, अभावतें नहीं, इसीतें आत्मत्वमात्र कहा है, अरु जगत् फुरणेकरि उसीविषे भासता है, तिस जगत्विषे जहां ज्ञप्ति जाती है, तिसका ज्ञान इसकों होता है ॥ हे रामजी! एक अधिष्ठान ज्ञान है, अरु एक ज्ञप्तिज्ञान है, अधिष्ठानज्ञान सर्वज्ञ है, सो ईश्वरकों है, अरु ज्ञप्तिज्ञान जीवकों है, एक लिंगशरीरका जिसकों अभिमान है, सो जीव है, अरु सर्व लिंगशरीरका अभिमानी ईश्वर है, जहां इस जीवकी ज्ञप्ति पहुंचती है, तिसकों जानता है, जैसे एक शय्यापर दो पुरुष सोय होवैं, एककों स्वप्न आया तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु दुसरा सोया है तिसकों मेघका शब्द सुणीता नहीं, काहेतें जो ज्ञप्ति उसकेविषे नहीं आई, परंतु मेघ तौ उसके स्वप्नमें है, जैसे सिद्ध विचरते हैं, अरु इसकों दृष्ट नहीं आते, काहेतें जो इसकी ज्ञप्ति नहीं जाती, अरु सब सृष्टि वसती है, तिसका ज्ञान ईश्वरकों है, सो सृष्टि भी संकल्पमात्र है,

कछु बनी नहीं, भ्रम करिके भासती है, जैसे बदलविषे हस्ति घोडा मनुष्य आदिक विकार भासते हैं, सो भ्रांति मात्र है, तैसे आत्माके अज्ञानकरि यह सृष्टि भासती है, नानाप्रकारकी॥ हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो आत्माविषे अहंका उत्थान होता है, जो मैं हौं, ऐसे जानता है, अरु वर्णाश्रम अपणेकों मानता है, अरु विचारकरि देखियें तौ अहं कछु वस्तु नहीं सिद्ध होती, अरु अहं अहं फुरती है, यह आश्चर्य है, जो भूत कहांतें उठ्या है, शुद्ध आत्मब्रह्मविषे यह कैसे हुआ है, अनहोते अंहकारनें तुमकों मोहित किया है, इसके त्यागणेविषे तौ यत्न कछु नहीं, इसका त्याग करहु॥ हे रामजी! मिथ्यायह संकल्प उठा है, जब अहंकारका उत्थान होता है, तब जगत् होता है, जब अहंता मिटि जावै, तब जगत्का भी अभाव हो जाता है, काहेतें जो बन्या कछु नहीं भ्रममात्र है, जैसे संकल्प नगर भ्रममात्र है, अरु स्वप्नसृष्टि भ्रममात्र है, तैसे यह विश्व भी भ्रममात्र है, कछु बनी नहीं, अरु आत्मत्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे पवनके दो रूप हैं, चलता है, तौ भी पवन है, ठहरता है, तौ भी पवन है, तैसे विश्व भी आत्मस्वरूप है, जैसे पवन चलता है, तब भासता है, अरु ठहरि जाता है, तब नहीं भासता, तैसे चित्त चैत्यशक्तिका चमत्कार है, जब फुरता है, तब विश्व भासती है, तौ भी चिद्घन है, जब ठहरि जाता है, तब विश्व नहीं भासती, परंतु आत्मा सदा एकरस है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो इतर कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माविषे विश्व इतर कछु हुई नहीं, आत्मस्वरूप है, ज्ञप्ति भी ब्रह्म है, अरु ज्ञप्तिविषे फुरी विश्व भी ब्रह्म है, विधिनिषेध अरु हर्ष शोक किसका करियें, सर्व उही है॥ हे रामजी! संकल्पकों स्थित करिके देख, जो सब तेराही स्वरूप है, जैसे पुरुष शयन करता है, उसकों स्वप्न सृष्टि भासती है, जब जागता है, तब देखता है, सब मेराही स्वरूप है, तैसे जाग्रत विश्व भी तेरा स्वरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तेसै विश्व आत्मस्वरूप है, जैसे चितेरा काष्ठविषे कल्पता है, जो एती पुतलियां नि

कसैगियां, अरु जैसे मृत्तिकाविषे कुंभार घटादिक कल्पता है, जो एते पात्र बनैंगे, काष्ठ मृत्तिकाविषे तौ कछु नहीं, ज्यौंका त्यौं काष्ठ है, अरु ज्यौंकी त्यौं मृत्तिका है, परंतु उनके मनविषे आकारकी कल्पना है, तैसे आत्माविषे संसाररूपी पुतलियां मन कल्पता है, जब मनका संकल्प निवृत्त हो जावै, तब ज्यौंका त्यौं आत्मपद भासै, जैसे तरंग जलरूप हैं, जिसकों जलका ज्ञान है, सो तरंग भी जलरूप जानता है, अरु जिसकों जलका ज्ञान नहीं, सो भिन्न भिन्न तरंगके आकार देखता है, तैसे जब निःसंकल्प होकरि स्वरूपकों देखै, तब फुरणेविषे भी आत्मसत्ता भासैगी, अहं त्वं आदिक सब जगत् ब्रह्मस्वरूपही है, तौ भ्रम कैसे होवै , अरु किसकों होवै, सब विश्व आत्मस्वरूप है, सो आत्मा निरालंब है, आलंबरूप जो चैत्य है अहंकार, तिसतें रहित है, केवल आकाशरूप है, जब तूं तिसविषे स्थित होवैगा, तब नानाप्रकारकी भावना मिटि जावैगी, नानाप्रकारकी भावना जगत्विषे फुरती है, अरु जगत्का बीज अहंता है, जब अहंता नाश होवै, तब जगत्का भी अभाव हो जावैगा॥ हे रामजी! अहंताका फुरणाही बंधन है, अरु निरहंकार होणा मोक्ष है, एक चित्तबोध है, अरु एक ब्रह्मबोध है, चित्तबोध जगत् है, अरु ब्रह्मबोध मोक्ष है, चित्तबोध अहंताका नाम है, जबलग चित्तबोध फुरता है, तबलग संसार है, अरु जब चित्तका अभाव होवै तब मुक्त होवै, इस चित्तके अभावका नाम ब्रह्मबोध है॥ हे रामजी! जैसे पवन फुरता है, तैसे ब्रह्मविषे चित्तबोध है, अरु जैसे पवन ठहरि जाता है, तैसे चित्तका ठहरणा ब्रह्मबोध है, जैसे फुर अफुर दोनों पवनही हैं, तैसे चित्तबोध है, ब्रह्मबोध ब्रह्मही इतर कछु नहीं, हमकों तौ ब्रह्मही भासता है, चेतन मात्र शांतरूप है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान होता है, तिसकों निवृत्त भी उही रूप भासता है, अरु जिसकों अधिष्ठानका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न जगत् भासता है, जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल भासते हैं, अरु जिसकों बीजका ज्ञान नहीं, तिसकों भिन्न भिन्न भासते हैं॥ हे रामजी! हमकों अधिष्ठान आत्मतत्त्वका ज्ञान है, ता

तें सब विश्व आत्मस्वरूप भासती है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारकी विश्व भासती है, जन्म अरु मृत्यु भासते हैं॥ हे रामजी! सब शब्द आत्मतत्त्वविषे फुरते हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मा है, निराकार निर्विकार है, अरु शुद्ध है, सबका अपणा आप है, तातें सब विश्व आकाशरूप है, इतर कछु हुई नहीं, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे विश्व आत्मस्वरूप है, अरु चित्त जो फुरता है, तिसके अनुभव करणेहारी चेतनसत्ता है, सो ब्रह्म है, अरु तेरा स्वरूप भी उही है, तातें अहं त्वं आदिक जगत् सब ब्रह्मरूप है, संशयकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु पाछे तुमकों कहा है, द्वैत अद्वैत सब उपदेशमात्र है, एक चित्तकी वृत्तिकों स्थित करिके देख, सब ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, निषेध किसका करियें॥ हे रामजी! चित्तकी दो वृत्ति ज्ञानवान् कहते हैं, एक मोक्षरूप है, एक बंधरूप है, जो वृत्ति स्वरूपकी उर फुरती है, सो मोक्षरूप है, जो दृश्यकी उर फुरती है, सो बंधरूप है, जो तुमकों शुद्ध भासती है, सोइ करहु, अरु जो द्रष्टा है, सो दृश्य नहीं होता, अरु जो दृश्य है, सो द्रष्टा नहीं होता, आत्मा तौ अद्वैत है, तातें द्रष्टाविषे दृश्य पदार्थ कोउ नहीं, तुम क्यौं दृश्यकी उर फुरते हौ, अनहोती दृश्यकों ग्रहण क्यौं करते हौ, अरु द्रष्टा भी तेरा नाम दृश्यकरि होता है जब दृश्यका अभाव जाण्या, तब अवाच्य पद है, तिसकों वाणीकरि कछु कह्या नहीं जाता॥ हे रामजी! जैसे अंगी अरु अंगवालेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं, बरफ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, कोउ जगत् कहै, अथवा ब्रह्म कहै, एकही पर्याय है, जगतही ब्रह्म है, ब्रह्मही जगत् है, तातें आत्मपदविषे स्थित होहु, भ्रमकरिके आपकों कछु अवर मानते हैं, तिसकों त्यागिकरि ब्रह्महीकी भावना करहु, अरु आपकों मनुष्य कदाचित् नहीं जानणा, जो आपकों मनुष्य जाणैगा तौ यह निश्चय अधोगतिकों प्राप्त करणेहारा है, तातें अधोगतिकों मत प्राप्त होहु, अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु॥ ॥ इति श्रीयोगवा

सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५४ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देशतें देशांतरकों वृत्ति जब जाती है, तिसके मध्य जो संविततत्त्व है, तिसकों जो अनुभव करता है, सो तेरा स्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जैसी चेष्टा आवै तैसी करहु, देख, सुण, स्पर्श कर, गंध ले, बोल, चाल, हसहु, सब क्रिया करहु, परंतु इनके जानणेवाली जो अनुभवसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, यह जाग्रतविषे सुषुप्ति है, चेष्टा शुभ करहु, अरु अंतरतें पत्थरकी शिलावत् होहु, फुरणेतें रहित ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप निराभास है, भास जो दृश्य है, तिसतें रहित है, अरु निर्मल शांतरूप है, तिसविषे स्थित होहु, जैसे सुमेरु पर्वत स्थित है, तैसे होहु, यह दृश्य अज्ञानकरिके भासती है, तमरूप है, अरु आत्मा सदा प्रकाशरूप है, तिस प्रकाशविषे अज्ञानीकों तम भासती है, जैसे सूर्य सदा प्रकाशरूप है, अरु उलूककों नहीं भासता है, अज्ञानकरिके तमही भासती है, तैसे अज्ञानीकों अविद्यारूप जगत भासता है, सो अविचारतें सिद्ध है, अविद्या करिके इसकी विपर्यय दृष्टि हुई है, इसका वास्तव स्वरूप निर्विकार है, जो जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यते इन षट् विकारतें रहित है, तातें निर्विकार है, तिसकों विकारी जानता है, आत्मा निर्विकार निराकार है, तिसकों साकार जानता है, आत्मा आनंदरूप है, तिसकों दुःखी जानता है, आत्मा शांतरूप है, तिसकों अशांत जानता है, आत्मा महत् है, तिसकों लघु जानता है, आत्मा पुरातन है, तिसकों उपजा मानता है, आत्मा सर्वव्यापक है, तिसकों परिच्छिन्न मानता है, आत्मा नित्य है, तिसकों अनित्य देखता है, आत्मा चैत्यतें रहित शुद्ध चिन्मात्र है, यह चैत्य संयुक्त देखता है, आत्मा चेतन है, यह जड देखता है, आत्मा अहंतें रहित सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, यह अनात्म अहंकारविषे अहंप्रतीति करता है, आत्माविषे अनात्मभावना करता है, अरु अनात्माविषे आत्मभावना करता है, आत्मा निर

वयव है, तिसकों अवयवी देखता है, आत्मा अक्रिय है, तिसकों सक्रिय देखता है, आत्मा निरंश है, तिसकों अंशांशीभावकरि देखता है, आत्मा निरामय है, तिसकों रोगी देखता है, आत्मा निष्कलंक है, तिसकों कलंकसहित देखता है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, तिसकों परोक्ष जानता है, अरु जो परोक्ष है, तिसकों प्रत्यक्ष जानता है ॥ हे रामजी! इत्यादिक जो विकार हैं, सो आत्माविषे अज्ञानकरिके देखता है, आत्मा शुद्ध है, अरु सूक्ष्मतें सूक्ष्म है, अरु स्थूलतें स्थूल है, अरु बडेतें बडा है, लघुतें लघु भी है, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान है ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी एक डब्बा है, तिसविषे जगत्‌रूपी रत्न हैं, पर्वत अरु वनसहित भी जगत् दृष्ट आता है, परंतु आत्माके निकट रुईके लोम जैसा लघु है, आत्मरूपी वन है, तिसविषे संसाररूपी मंजरी उपजी है, सो कैसी मंजरी है, पांचों तत्त्व पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इसके पत्र हैं, तिनकरिके शोभती है, सो अहंताके उदय हुए उदय होती है, अरु अहंताके नाश हुए नाश होती है, अरु आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगत्‌रूपी तरंग हैं, सो उठते भी हैं, अरु लीन भी हो जाते हैं, अरु आत्माकाशविषे संसार भ्रममात्र है, आकाश वृक्षकी नांई है, आत्माके प्रमादकरि भासता है ॥ हे रामजी! मायारूपी चंद्रमा है, तिसकी किरणां जगत् है, अरु नेति शक्ति नृत्य करणेहारी है, सो तीनों अविचारसिद्ध हैं, विचार कियेतें शांत हो जाते हैं, जैसे दीपक हाथविषे लेकरि अंधकार देखियें तौ दृष्ट नहीं आता, तैसे विचारकरि देखियें तौ जगत्‌का अभाव हो जाता है, केवल शुद्ध आत्माही प्रत्यक्ष भासता है ॥ हे रामजी! जगत् कछु वन्या नहीं, जैसे किसीनें बरफ़ कही, किसीनें शीतलता कही, तिसविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, अरु भेद जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे तंतु अरु पटाविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत् है ॥ हे रामजी! आत्मरूपी रंगविषे जगत्‌रूपी चित्र पुतलियां हैं अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, आत्मरूप

ही है, आत्मातें इतर कछु बन्या नहीं, जिसकरि सर्व पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु जिसकरि सर्व क्रिया सिद्ध होती हैं, जो अनुभवरूप सदा अप्रौढ है, तिसकों प्रौढ जानणा यही मूर्खता है ॥ हे रामजी ! यह विश्व तेरा ही स्वरूप है, तूं जागिकरि देख, तूंही खडा है, अरु स्वच्छ आकाश सूक्ष्म प्रत्यक् ज्योति अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा॰ परमार्थयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! रूप अवलोकन मनस्कार यह तीनों संसार हैं, सो ज्ञानवान्कों भ्रम मात्र भासते हैं, वास्तव कछु नहीं, मिथ्या है, जैसे जलविषे लहरी तरंग उठते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे रूप अवलोकन मनस्कार फुरते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! यह शुद्ध परमात्माका चमत्कार है, अरु आत्मा दृश्यतें रहित है, शुद्ध है, चिन्मात्र है, निर्मल है, अद्वैत है, तिसविषे जगत् कछु बन्या नहीं, हमकों तौ सदा उही भासता है, जगत् कछु नहीं भासता, जैसे कोउ आकाशविषे नगर कल्पता, अरु सब रचना तिसविषे देखता है सो उसके हृदयविषे दृढ हो जाती है, अरु जो संकल्पकी सृष्टिकों मिथ्या जानता है, तिसकों शून्याकाशही भासता है, तैसे यह विश्व मूर्खके हृदयविषे दृढ भई है, अरु ज्ञानवान्कों आत्मस्वरूपही भासता है, जैसे माटीके खिलोनें सैना होती है, हस्ति घोडा आदिक दृष्ट आते हैं, तिसविषे उह राग दोष नहीं करता, जिसकों माटीका ज्ञान है, अरु बालक माटीके ज्ञानतें रहित है, तिसविषे रागदोष करते हैं; तैसे ज्ञानवान् इस जगत्विषे रागदोष नहीं करते, अरु अज्ञानी रागदोष करते हैं, जैसे खिलोनेंविषे सारभूत मृत्तिका होती है, तैसे इस जगत्विषे सारभूत चेतन आत्मा है, जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्माका निवृत्त है, मिथ्याही भ्रमकरि सिद्ध हुए हैं, जो वस्तु मिथ्या भ्रममात्र होवै, तिसविषे सुखके निमित्त इच्छा करणी यही मूर्खता है ॥ हे रामजी ! हमकों तौ इच्छा कछु नहीं, काहेतें जो हमकों जगत् मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, तातें इच्छा किसकी करें, जिसविषे सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे

इच्छा भी होती है, जो सत्यही न भासै तौ इच्छा कैसे करि होवै ॥ हे रामजी! इच्छाही बंधन है, अरु इच्छातें रहित होणा इसीका नाम मुक्ति है, तातें ज्ञानवान्कों इच्छा कछु नहीं रहती, अनिच्छितही चेष्टा होती है, जैसे सूका बांस होता है, तिसके अंतर बाहिर शून्य होती है, संवेदन उसकों कछु नहीं फुरती, तैसे ज्ञानवान्के अंतःकरणविषे अरु बाह्यकारणविषे भी शांति होती है, अंतःकरणविषे संकल्प कोउ नहीं उठता, अरु बाह्यविषे भी उपाधि कोउ नहीं, निःसंकल्प निरुपाधि चेष्टा उसकी होती है॥ हे रामजी! जिस पुरुषके अंतरतें संसारका रस सूकि गया है, सो संसारसमुद्रतें पार हुआ है, ऐसे जाण, अरु जिसका रस नहीं सूकि गया, तिसकों रागदोष फुरते हैं, इष्ट अनिष्टकरिके, तब संसार बंधनविषे जाण ॥ हे रामजी! मैं तुझकों ऐसी समाधि कहता हौं जो सुखेनही प्राप्त होवै, अरु जिसकरि मुक्ति होवै सो श्रवण करु, सर्व इच्छातें रहित होणा यही परम समाधि है, जिस पुरुषकों इच्छा फुरती है, तिसकों उपदेश भी नहीं लगता, जैसे आरसी उपर मोती नहीं ठहरता, तैसे उसके हृदयपर उपदेश नहीं ठहरता, अरु इसकों इच्छाही दीन करती है, अरु इच्छातें रहित हुआ तब शांतरूप होता है, बहुरि इसकों शांतिके निमित्त कर्त्तव्य कछु नहीं रहता ॥ हे रामजी! हम तौ निरिच्छित हैं, हमकों अंतर बाहिर शांति है, हमकों कर्तव्य करणे योग्य कछु नहीं, जो कछु प्रारब्ध तिसकरि चेष्टा होती है रागदोषतें रहित, बोलते हैं, परंतु बांसरीकी नांई जैसे बांसरी बोलती है, अहंकारतें रहित, तैसे ज्ञानवान् अहंकारतें रहित है, अरु स्वादकों ग्रहण करते हैं, परंतु कडछीकी नांई, जैसे कडछीकों सर्व व्यंजनविषे पाइता है, अरु तिसीद्वारा सब निकास पाइते हैं, परंतु उसकों रागदोष कछु नहीं फुरता, जो यह होवै, यह न होवै, तैसे ज्ञानवान् स्वादकों लेता है, अनिच्छितही, अरु गंध भी लेता है, पवनकी नांई, जैसे पवन भली बुरी गंधकों लेता है, परंतु रागदोषतें रहित है, तैसे ज्ञानवान् रागदोषकी संवेदनतें रहित गंधकों लेता है, इसी प्रकार सर्व इंद्रियांकी चेष्टा करता है, परंतु

इच्छातें रहित होता है, इसीतें परम सुखरूप है, अरु जिसकी चेष्टा इच्छासहित है, सो परम दुःखी है ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों भोग रस नहीं देते सो सुखी है, अरु जिसकों रस देते हैं, रागकरि तृष्णा बढती जाती है, तिसकों ऐसे जाण जैसे किसीके मस्तक उपर अग्नि लगै, तिस उपर तृण डारे बुझावणे निमित्त, तब उह बूझती नहीं, बढती जाती है, तैसे विषयकी इच्छा भोगणेकरि तृप्त नहीं होणेकी, सो इच्छाही बंधन है, इच्छाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है॥ हे रामजी! संसाररूपी विषका वृक्ष है, तिसका बीज इच्छा है, जिसकी इच्छा बढती जाती है, तिसका संसार बढता जाता है, तिसकरि वारंवार जन्म अरु मृतक होता है॥ हे रामजी! ऐसा सुख ब्रह्माके लोकविषे भी नहीं, जैसा सुख इच्छाकी निवृत्तिविषे है, अरु एसा दुःख नरकविषे भी नहीं, जैसा दुःख इच्छाके उपजावणेविषे है, इच्छाके नासका नाम मोक्ष है, अरु इच्छाके उपजणेका नाम बंधन है, जिस पुरुषकों इच्छा उत्पन्न होती है, सो दुःखकों पावता है, संसाररूपी गरत खातविषे पडता है, अरु इच्छारूपी विषकी वल्ली है, तिसकों समतारूपी अग्निकरि जलाहु; सम्यक् दर्शनकरि जलाए विना बडे दुःखकों प्राप्त करैगी, अरु बढि जावैगी ॥ हे रामजी! जिस पुरुषनें इच्छा दूर करणेका उपाय नहीं किया, तिसनें अंधे कूपविषे प्रवेश किया है, शास्त्रका श्रवण भी इसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, अरु तप दान यज्ञ भी इसी निमित्त है, जो किसी प्रकार इच्छा निवृत्त होवै, जो एकही वार निवृत्त करि न सकियें, तौ क्षणे क्षणे निवृत्त करियें ॥ हे रामजी! यह विषकी वल्ली बढी हुई दुःख देती है, जो पुरुष शास्त्रोंकों पढता भी है, अरु इच्छाकों बढावता भी है, सो दीपक हाथ लेकरि कूपविषे गिरता है, अरु इच्छारूपी कंटीआरीका बुंटा है, जिसकों सर्वदा कंटक लगे रहते हैं, तिसविषे सुख कदाचित् नहीं, जो पुरुष कांटेकी शय्यापर शयन करै, अरु सुखी हुआ चाहै तौ नहीं होता, तैसे असारकरि कोउ सुख पाया चाहै तौ कदाचित् नहीं होवैगा, जिसकरि इच्छा निवृत्त होवै सोइ उपाय किया चाहिये, इच्छा

के निवृत्त होणेविषे सुख है, अरु इच्छाके उत्पन्न होणेविषे बडा दुःख है॥ हे रामजी! जो अनिच्छित पदविषे स्थित हुआ है, तिसकों जब यह क्षण भी इच्छा उपजती है, तब रुदन करता है, जैसे चोरतें लुंटा रुदन करता है, तैसे उह रुदन अरु पश्चात्ताप करता है, अरु तिसके नाश करणेका उपाय करता है॥ हे रामजी! इच्छारूपी क्षेत्र है, अरु राग दोषरूपी तिसविषे विषकी वल्ली हैं, जो पुरुष तिसके दूर करणेका उपाय नहीं करता, सो मनुष्यविषे पशु है, यह इच्छारूपी विषका वृक्ष बढ्या हुआ नाशका कारण है, तातें तुम इसका नाश करहु॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इच्छानिषेधयोगोपदेशो नाम शताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः॥१५६॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥हे रामजी! इच्छारूपी विषके नाश करणेका उपाय तुमकों आगे भी कहा है, अब बहुरि स्पष्टकरि कहता हौं, तूं श्रवण करु, इच्छाके त्याग करणे योग्य संसार है, सो मिथ्या है, आत्मसत्ता भिन्न करियें तौ मिथ्या है, जो मिथ्या हुआ तौ तिसविषे इच्छा करणी क्या है, अरु जो आत्माकी उरदेखियें तौ सर्व आत्माही है, जब सर्व आत्माही हुआ तौ इच्छा करणी क्या है, इच्छा दूसरेविषे होती है, सो दूसरा कछु है नहीं, इच्छा किसकी करियें॥ हे रामजी! द्रष्टा दृश्य भी मिथ्या है, दृष्टि कहियें इंद्रियां दृश्य कहियें विषय, सो ग्राहक इंद्रियां हैं, अरु ग्राह्य विषय हैं, अविचार सिद्ध हैं, भ्रम करिके भासते हैं, आत्माविषे कोउ नहीं, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके रूप भासते हैं, यह ग्राह्य ग्राहक भ्रम करिके भासते हैं, अरु सुख दुःख भी इनहीकरि होता है, आत्माविषे कोउ नहीं, भ्रमकरि भासता है॥ हे रामजी! द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनों ब्रह्मविषे कल्पित हैं, वास्तवतें ब्रह्मही है, चिरकाल हम खोजि रहे हैं, परंतु द्वैत हमकों कछु दृष्ट नहीं आता, एक ब्रह्मसत्ताही ज्यौंकी त्यौं भासती है, अरु निराभास है, फुरणेतें रहित ज्ञानरूप है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, अरु सर्व जगत् भी हुई है, सो मैं हौं॥ हे रामजी! जैसे जलविषे तरंग होता है, अरु आकाशविषे शून्यता है, अरु जैसे पवनविषे चलना है, अग्निविषे उष्णता है, सो सबही अनन्यरूप है, तैसे आत्माविषे ज

गत् अनन्यरूप है, आत्माही विश्व आकार होकरि भासता है, अवर कछु हुआ नहीं ॥ हे रामजी! जो हुई है, तौ इच्छा किसकी करता है, यह जो मैं तुझकों मोक्ष उपाय कहता हौं, तूं आपकों क्यों बंधन करता है, बडा बंधन इच्छाही है, जिस पुरुषकों इच्छा बढती जाती है, सो जगत्रूपी बनका मृग है, तिस मृग अरु पशुका संग कदाचित् नहीं करणा, मूर्खका संग बुद्धिकों विपर्यय करि डारता है, तातें विपर्यय बुद्धि कों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु विश्व भी सब तेरा अनुभवरूप है, अरु इसका सुख दुःख विद्यमान भी देखीता है, परंतु आत्माविषे भ्रममात्र भासता है, कछु है नहीं, विश्व भी आनंदरूप शिवही है, तूं विचारि देख; दूसरा तौ कछु है नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे नानाप्रकारकी सैना हस्ति घोडा आदिक होती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सब विश्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, तिसविषे कारण कार्य भाव देखणा भी मूर्खता है, जो दूसरी वस्तुही नहीं तौ कारण कार्य किसका होवै, बहुरि इच्छा किसकी करता है, जिस संसारकी इच्छा करता है, सो है नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, अरु सीपी विषे रूपा भासता है, सो दूसरी कछु वस्तु नहीं, अधिष्ठान किरणां अरु सीपी हैं, तैसे अधिष्ठानरूप परमार्थसत्ताही है, न सुख है, न दुःख है, केवल यह जगत् शिवरूप है, तिस शिव चिन्मात्रतें अन्य कछु नहीं, मृत्तिकाकी सैनावत्, तौ इच्छा कैसे उदय होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो सर्व ब्रह्मही है, तौ इच्छा अनिच्छा भी भिन्न नहीं, इच्छा उदय होवै, भावै न होवै, बहुरि तुम कैसे कहते हौ जो इच्छाका त्याग करहु?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी ज्ञप्ति जागी है, अर्थ यह जो ज्ञानरूप आत्माविषे जाग्या है, तिसकों सर्व ब्रह्मही है, इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, इच्छा भी ब्रह्म है, अनिच्छा भी ब्रह्म है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं ज्ञानसंवित होती है, त्यौं त्यौं वासना क्षय होती है, जैसे सूर्यके उदय भए रात्रि नष्ट हो जाती है, तैसे ज्ञानके उपजेतें वासना नहीं रहती॥ हे रामजी! ज्ञानवान्कों ग्रहण त्यागकी कर्तव्य नहीं, इच्छा अनिच्छा

तिसकों तुल्य हैं, यद्यपि ऐसेही है, परंतु स्वाभाविकही वासना तिसकों नहीं रहती, जैसे सूर्यके उदय हुए अधकार नहीं रहता, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए द्वैत वासना नहीं रहती, ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला जागती है, त्यौं त्यौं द्वैत नाश हो जाता है, द्वैतके निवृत्त होणेकरि वासना भी निवृत्त हो जाती है ॥ हे रामजी! ज्यौं ज्यौं स्वरूपानंद इसकों प्राप्त होता है, त्यौं त्यौं संसार विरस होता जाता है, जब संसार विरस हो गया, तब वासना किसकी करै ॥ हे रामजी! अमृतविषे इसकों विषकी भावना भई थी, तब अमृत विष भासता था, जब विषकी भावनाका त्याग किया, तब अमृत तौ आगेही था, सोई हो जाता है, तैसे जो कछु तुझकों भासता है, सो सब ब्रह्मरूपी अमृतही है, जब तिस ब्रह्मरूपी अमृतविषे अज्ञान करिके जगत्रूपी विषकी भावना हुई, तब दुःखकों पावता है, अरु जब संसारकी भावना त्यागी, तब आनंदरूपही है, तिसकों करणा अकरणा दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ज्ञानवान्विषे इच्छा दृष्ट आती है, तौ भी उसके निश्चयविषे नहीं, उसकी इच्छा भी अनिच्छा है; काहेतें जो संसारकी भावना उसके हृदयविषे नहीं, तौ इच्छा किसकी रहै, हे रामजी! यह संसार है नहीं, हमकों तौ आकाशरूप भासता है, जैसे अवरके मनोराज्यका संकल्प तिसविषे आणे जाणेका खेद कछु नहीं होता, तैसे यह जगत् हमकों अवरकी चिंतवनावत् है, जैसे किसी पुरुषनें मनोराज्य करिके मार्गविषे कोउ स्थान रच्या होवै, अरु तिसविषे किंवाड लगाए होवैं, अरु नाना प्रकारका प्रपंच रच्या होवै, अरु जो कोउ अवर पुरुष आता है, तिसकों अटकावता कोउ नहीं, किंवाडविषे अरु न कोउ किंवाड है, न कोउ पदार्थ है, उसका शून्यमार्गका निश्चय होता है, तैसे हमकों सब प्रपंच शून्यही भासता है, अज्ञानीके हृदयविषे हमारी चेष्टा है, अरु हमकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! जिसकों जगतही न भासै, तिसकों इच्छा किसकी होवै, जिसके हृदयविषे संसारकी सत्यता है तिसकों इच्छा भी फुरती है, अरु राग दोष भी उठता है, जिसकों राग दोष उठता है, तब जाणियें जो

संसारसत्ता हृदयविषे स्थित है, अरु जिसकों नानापदार्थसहित संसार सत्य भासता है, सो मूर्ख है, अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है, जैसे निद्रादोष करिके स्वप्नविषे पुरुष अपणा मृत्यु देखता है, तैसे जिसकों यह जगत् सत् भासता है, सो निद्राविषे सोया है ॥ हे रामजी ! बहुत प्रकारके स्थान में देखे हैं, तैसे तिनविषे रोग औषध भी नानाप्रकारके देखे हैं, परंतु इच्छारूपी छुरीके घावका औषध अवर नहीं दृष्ट आया, न जापकरि, न तपकरि, न पाठकरि, न यज्ञ दान तीर्थकरि निवृत्त होता है, जेते कछु संसारके पदार्थ हैं, तिन करिके इच्छारूपी रोग नाश नहीं होता, जब आत्मरूपी औषधकी उर आवै, तबही नाश होता है, अन्यथा किसी प्रकार यह रोग नहीं जाता ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों ज्ञान प्राप्त हुआ है, तिसकी इच्छा स्वाभाविकही निवृत्त हो जाती है, अरु आत्मज्ञानविना अनेक यत्नकरि न जावैगी, जैसे स्वप्नकी वासना जागेविना नहीं जाती, अवर अनेक उपाय करियें तौ भी दूर नहीं होती ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों वासना क्षीण होती है, त्यौं त्यौं सुखकी प्राप्ति होती है, अरु ज्यौं ज्यौं वासनाकी अधिकता है, त्यौं त्यौं दुःख अधिक है, अरु यह आश्चर्य है जो मिथ्या संसार सत्य हो भासता है, जैसे बालककों वृक्षविषे वैताल हो भासता है, तिसकरि भय पावता है, सो हैही नहीं, तैसे मूर्खता करिके आत्माविषे संसार कल्पता है, तिसकरि दुःखी होता है ॥ हे रामजी ! स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर बन्या कछु नहीं, भ्रम करिके भिन्न भिन्न होय भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जलविषे द्रवता है, सत्यताविषे सत्यताही है, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो न सत् है, न असत् है, अनिर्वाच्य है ॥ हे रामजी ! दूसरा कछु बन्या नहीं तौ क्या कहियें, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, सो सर्वका अपणा आप वास्तवरूप है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहंरूप भ्रम मिटि जाता है जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए अनात्म अभिमानरूपी अंधकारका

अभाव हो जाता है, अरु परम निर्वाण भासता है, तिसविषे तहां एक कहणा है, न दो कहणा है, केवल शांतरूप परम शिव है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जिननें ऐसे निश्चय किया है, तिनकों इच्छा अनिच्छा दोनों तुल्य हैं, तौ भी मेरे निश्चयविषे यह है, जो इच्छाके त्यागविषे सुख है, जिसकी इच्छा दिन दिन घटती जावै, अरु आत्माकी उर आवै, तिसकों ज्ञानवान् मोक्षभागी कहते हैं, काहेतें जो संसारभ्रम करिके सिद्ध है, इसहीकी कल्पना जगत्‌रूप होकरि भासती है, विचार कियेतें निकसता कछु नहीं, संसारके उदय होणेकरि आत्माको कछु आनंद नहीं, अरु नाश होणेकरि कछु खेद नहीं होता, काहेतें जो भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते विनसते हैं, तौ जलकों हर्षशोक कछु नहीं होता, काहेतें जो जलतें इतर नहीं, तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है तौ इच्छा क्या अरु अनिच्छा क्या ॥ हे रामजी ! आदि जो परमात्मातें चित्तशक्ति फुरी है, तिसविषे जब अहं ऐसे हुआ, तब स्वरूपका प्रमाद हुआ, तब यह चित्तशक्ति मनरूप हुई, बहुरि आगे देह इंद्रियां हुई, अज्ञान करिके मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, इसी प्रकार अपणे साथ मिथ्या शरीरकों देखता है, जैसे जल दृढ जडता करिके बरफरूप हो जाता है, तैसे चित्तसंवित प्रमादकी दृढता करिके मन इंद्रियां देहरूप होती हैं, जैसे कोउ स्वप्नविषे अपणे मरणेकों देखता है, तैसे अपणेसाथ शरीरकों देखता है, जब चित्तशक्ति नष्ट होती है, तब शरीर कहां अरु मन कहां, यह कोउ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके शरीरादिक भासते हैं, तैसे यह जाग्रत भी जाण, जो मिथ्या भ्रम करिके उदय हुए हैं, जब अपणे स्वरूपकी उर आवै, तब सब ही भ्रम मिटि जावै ॥ हे रामजी ! जैसे भ्रम करिके आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे विश्व भी अनहोती भ्रमकरि भासती है, आत्माविषे कछु आरंभ परिणाम करिके नहीं बन्या, उही स्वरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद न

हीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जगत् आत्मअनुभवतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! चेतन आकाश परम शांतरूप है, तिसविषे देह इंद्रियां भ्रमकरिके भासती हैं, अरु क्रिया कालपदार्थ सब भ्रममात्र हैं, जब आत्मस्वरूपविषे जागीकरी देखैगा, तब द्वैतभ्रम निवृत्त हो जावैगा, कैवल्य अद्वैत आत्माही भासैगा, दृश्यका अभाव हो जावैगा, यह पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, इनकी प्रतिमा मिथ्या उदय हुई है,जैसे स्वप्नविषे अनहोते पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु हैं नहीं, तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! पृथ्वी भी आकाशरूप है, अरु कंध कोट भी आकाशरूप हैं, अरु पर्वत भी आकाशरूप हैं, सब प्रपंच आकाशरूप है, जो सर्व आकाशरूप हैं, तौ ग्रहण त्याग किसका होवै, अरु आकाशरूप दिवारउपर संकल्पनें मूर्त्त्यां रचियां हैं, अरु रंग तहां आत्मचैतन्यता है, तातें विश्व संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसी तैसी सृष्टि भासती है, जो कछु बन्या होता है, तौ अवरका अवर भासता, तातें बन्या कछु नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा आगे रूप हो भासता है ॥ हे रामजी ! सिद्ध पास एक चूर्ण होता है, तिसकरि जो चाहते हैं, सो करते हैं, पर्वतकों आकाश करते हैं, अरु आकाशकों पर्वत करते हैं, तैसे मैं तुझकों चूर्ण कहता हौं, जब चित्तरूपी सिद्ध संकल्परूपी चूर्ण करि फुरता है, तब आत्मरूपी आकाशविषे पर्वत हो भासते हैं, अरु जब चित्तरूपी सिद्धका संकल्प उलटता है, तब पर्वत भी आकाशरूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे संकल्प फुरता है, तब अनुभवविषे पर्वत आदिक पदार्थ भासि आते हैं, अरु जब संकल्पतें जागता है, तब स्वप्नके पर्वत आकाशरूप हो जाते हैं, आकाशही पर्वतरूप हुआ, अरु पर्वत आकाशरूप होता है ॥ हे रामजी ! तैसे यह सृष्टि संकल्पमात्र है, कछु बन्या नहीं, जैसा संकल्प होता है, तैसा भासता है,अरु जब विश्वके अत्यंत अभावका संकल्प किया तब तैसेही भासता है, जैसे विश्वका अभ्यास किया है, अरु विश्व भासी है, तैसे आत्माका अभ्यास

करियें तौ क्यौं न भासै, उह तौ अपणा आप है, जब आत्माका अभ्यास करियें तब आत्माही भासता है, विश्वका अभाव हो जाता है, अनेक सृष्टि अपणे अपणे संकल्पकरि आकाशविषे भासतिया हैं, जैसा किसीका संकल्प होता है, तैसी सृष्टि उसकों भासती है, जैसे चिंतामणी अरु कल्पवृक्षविषे दृढ संकल्प करता है, तब यथा इच्छित पदार्थ निकसि आते हैं, सो कछु बने नहीं, अरु चिंतामणी भी परिणामकों प्राप्त भई, ज्यौंकी त्यौं पडी है, संकल्पकी दृढताकरि भासि आते हैं, तैसे यह प्रपंच भी आकाशरूप हैं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् है ॥ हे रामजी ! सिद्धके जो वचन फुरते हैं, सोही संकल्पकी तीव्रता होती है, जो चित्त शुद्ध होता है, तौ दूसरी सृष्टिकों भी जानता है, जो पुरुष वचन सिद्ध होणेके निमित्त वासना सूक्ष्म करता है, अर्थ यह जो वासनाकों रोकता है, सो तिसकरि वचन सिद्धताकों पावता है, जैसा संकल्प करता है, तैसा सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! जेता यह दृश्यकी उरतें उपरांत होकारि अंतर्मुख होता है, तेती वचन सिद्धता होती जाती है, भावै वर देवै, भावै शाप देवै, उह सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! एक प्रमाणज्ञान है, जो यह पदार्थ इस प्रकार है, तिसका जो नामरूप है, सो सब आकाशरूप भ्रममात्र है, आत्माविषे अवर कछु नहीं, अरु आत्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी तरंग उठते हैं, सो आत्मरूपी हैं, जिनकों ऐसा ज्ञान हुआ है, तिनकों इच्छा अरु अनिच्छाका ज्ञान नहीं रहता, तिनकों सब आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मरूपी फूल है, तिसविषे जगत्‌रूपी गंध है, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, जैसे पत्थर उपर लकीर काढियें सो पत्थरतें भिन्न नहीं, तैसे ब्रह्मतें जगत् भिन्न नहीं ॥ हे रामजी ! देश काल पृथ्वी आदिक तत्त्व, अरु मैं मेरा सब आत्मरूप है, अरु अविनाशी है, काहेतें जो अजन्मा है, जिनकों ऐसे निश्चय हुआ तिनकों रागदोष नहीं रहता, सब आत्मरूपही भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपदेशो नाम शताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५७ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! शुद्ध आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरी है, तिस संवेदनकरि आगे जगत् भास्या है, जैसे किसीके नेत्रविषे एक अंजन डारीकरि आकाशविषे पर्वत उडते दिखावते हैं, तैसे अनहोता जगत् फुरणेकरि भासता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्म स्वर्गविषे अरु चित्त स्वर्गविषे भेद कछु नहीं, परमार्थतें एकही है, दृष्टि सृष्टि अरु वस्तु पर्याय हैं, अरु नानातत्त्व भी इसकी भावना करि भासते हैं, आत्माविषे दूसरा कछु नहीं बन्या, चित्त अरु चैत्य आत्मातें इतर नहीं, चित्तही चैत्य होकरि भासता है, ज्ञान करिके इनकी एकता होती है, इसीतें दृश्य भी द्रष्टारूप है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवितही दृश्यरूप होकरि स्थित होती है, अरु जागेतें एक हो जाती है, सो एकता भी तब होती है, जब उही रूप है, तातें तूं अब भी उही जाण, दृश्य दर्शन द्रष्टा त्रिपुटी सब उहीरूप है ॥ हे रामजी ! जो सजाति है, तिसकी एकता होती है, विजातीकी एकता नहीं होती, जैसे जलविषे जलकी एकता होती है, तैसे बोधकरि सबकी एकता होती है, तातें दृश्य भी उहीरूप है, जो एकता हो जाती है, जो दृश्य कछु आत्मातें भिन्न होती तौ एकता न होती ॥ हे रामजी ! आकाश आदिक तत्त्व भी आत्मरूप हैं, जिसतें यह सर्व है, अरु जो उह सर्व है, तिस सर्वात्माकों नमस्कार है, बहुरि कैसा है आत्मा, सर्व व्यापी है, अरु सर्वगत है, सर्वकों धारी रहा है, अरु सर्व उही है, ऐसे सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है, जो कछु भासता है, सर्व उही है, जैसे जलविषे गलावणेकी शक्ति है, अरु काष्ठविषे नहीं, तैसे ब्रह्मविषे भावना स्वभाव है, अवरविषे नहीं, जो ब्रह्मभावनातें सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी ! जड पदार्थ जो भासते सो भी ब्रह्म हैं, काहेतें जो भासता है, सो ब्रह्मही है, जो जड होवै, तौ भासै नहीं, जड भी चेतनता शुद्ध संवितविषे है, उसविषे शब्द चेतन है, इतर कछु नहीं भासता है, जैसे शुद्ध संवितविषे स्वप्न फुरता है, तिसविषे जड भी अरु चेतन भी भासते हैं, परंतु जो जड भासते हैं, उस संवितविषे उह भी चेतन है, जब चेतन है, तब फुरते हैं, जिनकों शुद्ध

संवितविषे अहं प्रयत्न नहीं सो जाणी नहीं शकता, अज्ञानी है, परंतु सब ब्रह्म है, जैसे समुद्रविषे जल होता है, सो उंचे आवै, तौ भी जल है, अरु नीचेकों जावै, तौ भी जल है, जैसे जो कछु देखीता है, अरु भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है,इतर कछु नहीं, अरु इंद्रियका ग्राम जो भासता है, सो भी आत्मा है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो फुरे हैं, सो प्रथम आकाश फुऱ्या है,बहुरि वायु फुरी है,बहुरि अग्नि फुरी है,तिसतें अनंतर जल फुऱ्या है, बहुरि पृथ्वी फुरी है, सो अनिच्छित फुरे हैं, चमत्कारकी नांई, तातें सब आत्मरूप है, जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है,तैसे आत्मरूपी बीजविषे जगत् होता है, अरु नानाप्रकार भासते हैं॥ हे रामजी! एक बीजही नानाप्रकारके रूप धारता है, परंतु बीजतें इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ता नानाप्रकार हो भासती है, परंतु बीजकी नांई भी आत्मा परिणम्या नहीं, विश्व आत्माका चमत्कार है, तातें उही रूप है, जैसे स्वर्णविषे अनेक भूषण होते हैं, स्वर्णतें इतर कछु नहीं, तैसे विश्व आत्मरूप है, द्वैत कछु नहीं, जो आत्मातें इतर होवै, तौ भासै नहीं, तातें भासति जो है, सो चेतनरूप है, इसतें दृश्य अरु द्रष्टातें एकही रूप है, द्रष्टा दृश्यकी नांई हो भासता है॥ हे रामजी! जैसे कोउ पुरुष तुमारे निकट सोया होवै, अरु उसकों स्वप्न आवै, तिसविषे मेघ गर्जते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, सो उसकों भासती है, अरु तुमकों नहीं भासती, तैसे यह दृश्य तुमारी भावनाविषे स्थित है, अरु हमकों आकाशरूप है॥ हे रामजी! चेतन आकाश शांतरूप है, तिसविषे सृष्टि कछु बनी नहीं, जो कछु उपजा नहीं तौ नष्ट भी नहीं होता, केवल शांतरूप है, भ्रम करिके जगत् भासता है, जैसे कोउ बालक मनोराज्य करिके आकाशविषे पुतलियां रचै सो आकाशविषे कछु बण्या नहीं परंतु उसके संकल्पविषे है, तैसे यह विश्व मनरूपी बालकने रची है, तिसकी रची हुईविषे भी ज्ञानवान्कों शून्यता भासती है॥ हे रामजी! संकल्पमात्रही सृष्टि हुई क्यौं, जब इसका संकल्प नष्ट होता है, तब शांतपद शेष रहता है, सो कैसा पद है, निरहंकार सत्तामात्र पद है, अरु असत्की नांई स्थित है, बहुरि

तिस चिन्मात्र अद्वैतविषे अहंता करिके जगत् भासि आता है, जब अहंता फुरती है, तब जगत् भासता है, अरु जब स्वरूपका साक्षात्कार होता है, तब अहंतारूप भ्रम मिटि जाता है, जब अहंतारूप भ्रम मिट्या, तब जगतका भी अभाव होता है, अरु इच्छाका भी अभाव हो जाता है, तातें ज्ञानीकों इच्छा वासना कोउ नहीं रहती, जब प्रसन्नरूप अहंता नष्ट हुई, तब तिस पदकों प्राप्त होता है, जिस पदविषे अणिमा आदिक सिद्धि भी सूके तृणकी नांई भासतीयां हैं, ऐसा आनंदरूप है, जिसविषे ब्रह्मादिकका सुख भी तृणसमान भासता है॥ हे रामजी! जिसकों ऐसा ब्रह्मानंदपद प्राप्त हुआ है, तिसकों बहुरि इच्छा किसीकी नहीं रहती, अरु तिसकों मारणेहारे विषयादिक पदार्थ मृतक नहीं करते, अरु जीवावणेहारे पदार्थ अमृत आदिक जीवावते नहीं, केवल निर्वाण पदविषे तिसकी स्थिति है॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों संपूर्ण संसारतें वैराग्य हुआ है, तिसकों संसारके पदार्थ सुखदायक नहीं भासते, मिथ्या भासते हैं, सो संसारसमुद्रके पारकों प्राप्त भया है, जिसकी संसारकी वासना अरु अहंता नष्ट भई है, तिसकी मूर्त्ति देखणेमात्र भासती है, सो निर्वासी ज्ञानवान् शांतरूप है॥ हे रामजी! इच्छाही बंधन है, जब इच्छाका अभाव हुआ, तब आनंद हुआ, अरु इच्छा भी तब फुरती है, जब संसारकों सत्य जाणता है, अरु संसारकी सत्यता अहंताकरि भासती है, जब अहंतारूपी बीज नष्ट हो जावै, तब निर्वाणपदकी प्राप्ति होवै॥ हे रामजी! संसार कछु बन्या नहीं, भ्रमकरि सिद्ध हुआ है, सर्वही ब्रह्म है, तिस परमात्माविषे जो परिच्छिन्न अहंता फुरी, सोई उपाधि है॥ हे रामजी! बुद्धितें आदि लेकरि जेती यह दृश्य है, जिसकों अपणेविषे स्वाद नहीं देती, आकाशकी नांई रहता है, तिसकों संत मुक्तरूप कहते हैं॥ हे रामजी! इह अहं अविचारतें सत् भासती है, विचार कियेतें असत्य हो जाती है, अनहोती अहंतानें दुःख दिया है, तातें तुम निरहंकार होकरि चेष्टा करहु, जैसे यंत्रीकी पुतली अभिमानतें रहित चेष्टा करती है, तैसे तुम निरहंकार होकरि चेष्टा करहु, अरु अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, त

ब व्यवहार अरु अव्यवहार तुझकों तुल्य हो जावैगा, जैसे पवनकों स्पंद निस्पंद दोनों तुल्य होते हैं, तैसे तुमकों हो जावैगा, अरु अहंकारतें रहित तेरी चेष्टा होवैगी, अहंताही दुःख है, जब अहंताका नाश हुआ, तब शांत पदकों प्राप्त होवैगा, अरु निर्मल अनामय पदकों प्राप्त होवैगा, जो सर्व पदार्थका अधिष्ठान है, अरु सबका अपणा आप है, तिसविषे न कोउ सुख है, न दुःख है, न कोउ इंद्रियांका विषय है, परम शांतरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमनिर्वाणयोगोपदेशो नाम शताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ १५८॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानवान् पुरुष है सो निरावरण है, दोनों आवरणतें रहित है, एक असत्त्वापादक आवरण है, एक अभानापादक आवरण है, जो आत्मब्रह्मकी सत्यता हृदयविषे न भासै सो असत्त्वापादक है, तिसकों कहता है जो है नहीं, अरु जो सत्यता आत्माकी हृदयविषे भासै, परंतु दृढ प्रत्यक्ष न भासै, सो अभानापादक आवरण है, असत्त्वापादक आवरण अज्ञानीकों भासता है, अरु अभानापादक आवरण जिज्ञासीकों होता है, ज्ञानवान्कों यह दोनों आवरण नहीं रहते, तातें उह निरावरण शांतरूप होता है, आकाशवत् निर्मल अरु निरालंब है, सो किसी गुणतत्त्वके आश्रय नहीं होता, अरु एक द्वैत भ्रम तिसका नष्ट हो जाता है, तिसनें आत्मरूपी तीर्थका स्नान किया है, सो आत्मरूपी तीर्थ कैसा है, जो अपवित्रकों भी पवित्र करता है, जिन पुरुषनें शरीरविषे आत्माका दर्शन किया है, तिनका शरीर भी पवित्र भया है, ऐसे पुरुषकों शरीरकी सत्यता नहीं रहती, अरु संसार भी नहीं रहता, आत्माके साक्षात्कार हुए सब इच्छा नष्ट हो जाती है, अरु सर्व ब्रह्मही तिसकों भासता है, द्वैत कछु नहीं भासता, सर्व आत्मस्वरूप है, तिसविषे संकल्पकरि नानाप्रकार सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी ! तुम संकल्पकी उर मत जावहु, काहेतें जो चित्तकी वृत्ति क्षणक्षणविषे परिणमती है, अनंत योजनपर्यंत चली जाती है, जो तिसके अनुभव करनेवाली सत्ता मध्यविषे है, जिसके आश्रय उह जाती है सो चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, जब तिसविषे

स्थित होकरि देखैगा, तब फुरणेविषे भी ब्रह्मसत्ता भासैगी ॥ हे रामजी ! यह संवित् सदा प्रकाशरूप है, चित्तके क्षोभतें रहित है, द्वैतरूप विकारतें रहित शुद्ध है, अरु जेते कछु प्रकाश हैं, तिनके विरोधी भी हैं, दीपकका विरोधी पवन है, निर्वाणकरि लेता है, अरु सूर्यके विरोधी राहु केतु हैं, जो आच्छादि लेते हैं, अरु महाप्रलयविषे सर्व प्रकाश तमरूप हो जाता है, अरु आत्मप्रकाश तत्त्व सिद्ध है, तमकों भी प्रकाशता है, अरु सदा ज्ञानरूप एकरस है, तिसकों त्यागिकरी अवर कछु नहीं तुम लगणा ॥ हे रामजी ! यह दृश्य सब मिथ्या है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपीविषे रूपा कल्पित है, तैसे आत्माविषे विश्व कल्पित है, जब तूं जागिकरि देखैगा, तब सबका अभाव हो जावैगा, जैसे वंध्याके पुत्रके रूपका अभाव है, तैसे सब विश्व मिथ्या भासैगी, काहेतें जो हैं नहीं, भ्रममात्र स्वप्नकी नांई अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें आत्मा ही है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह विश्व भी आत्मस्वरूप ज्ञानमात्र है, अहं मम देह इंद्रियादिक सब ज्ञानमात्र हैं, दृश्यही दूसरी कछु वस्तु नहीं, जब ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब निःशोक होवैगा, अरु मोहतें भी रहित होवैगा, परमार्थसत्ता ज्योंकी त्यों भासैगी, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे दृश्य उठती है, सो उहीरूप है, अरु जो इतर भासै सो मिथ्या है, अरु सब सृष्टि इसके अंतर स्थित है, अज्ञान करिके बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब इसके अंतर होती है, अरु अपणा स्वरूप होता है, निद्रा दोष करिके बाह्य भासती है, जब जागता है, तब अपणाही स्वरूप भासता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भी विचार कियेतें अपणे अनुभवविषे भासती है, तातें स्थित होकरि देख, जो सर्वदा जागती ज्योति है, तिसकों त्यागिकरि अवर यत्न करणा व्यर्थ है ॥ हे रामजी! अपणे अनुभवविषे स्थित होणा क्या कष्ट है, अरु जो कठिण जानते हैं, सो मूढ हैं, तिनकों मेरी धिक्कार है, काहेतें जो गउके पगकों समुद्रवत् जानते हैं, तिनोंतें अवर मूर्ख, कवन है, अनुभवविषे स्थित होणा, गउपग

की नांईही तरणा सुगम है, अरु जो अवर पदार्थ हैं, जिनके पावणेकी इच्छा करैगा, तिनविषे व्यवधान है, अरु आत्माविषे व्यवधान कछु नहीं, काहेतें जो अपणा आप है ॥ हे रामजी! जिन पुरुषनें आत्माविषे स्थिति पाई है, तिनकों मोक्षकी इच्छा भी नहीं, तौ स्वर्गादिककी इच्छा कैसे होवै, मोक्ष अरु स्वर्ग आत्माविषे जेवरीके सर्पवत् मिथ्या भासते हैं, तिनकों केवल अद्वैत आत्मा निश्चय होता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं, इनके अनुभव करणेवाली शुद्ध सत्ता है, इह दोनों मिथ्या हैं, निर्वाण अरु जीणा तिनकों दोनों तुल्य हैं, ऐसे जाणीकरि इच्छा किसीकी नहीं करते, प्रपंच उनकों शशेके सिंग अरु वंध्याके पुत्रवत् भासते हैं ॥ हे रामजी! हमकों तौ सदा आकाशरूप भासता है, अरु जो तूं कहै, उपदेश क्यौं करते हौ तौ हमकों भास कछु नहीं, तेरी इच्छाही तुझकों वसिष्ठरूप होकरि उपदेश करती है, हमकों विश्व सदा शून्यरूप भासता है, अरु हमकों चेष्टा करता भी अज्ञानी जानते हैं, हमारे निश्चयविषे चेष्टा भी नहीं, अरु हमारी चेष्टा अर्थाकार भी कछु नहीं, अरु अज्ञानीकी चेष्टा अर्थाकार होती है, हमकों चेष्टा सत् नहीं भासती, तातें अर्थाकार नहीं होती, जैसे ढोलका शब्द होता है, परंतु अर्थ उसका नहीं होता, जो क्या कहता है, अरु वाणीकरि शब्द बोलीता है, तिसका अर्थ होता है, तैसे हमारी चेष्टा अर्थाकार नहीं, अर्थ यह जो जन्मकों नहीं देती, अरु अज्ञानकी चेष्टा जन्मकों देती है, अरु हमकों संसार ऐसे भासता है, जैसे अवयवी सर्व अवयवकों अपणा स्वरूपही देखता है, हस्त पाद सीस आदिक सब अपणेही अंग देखता है, तैसे हमकों जगत् अपणा स्वरूपही भासता है ॥ हे रामजी! जगत्विषे एक ऐसे जीव दृष्ट आते हैं, जो तिनकों हम स्वप्नके जीव भासते हैं, अरु हमकों उह शून्य आकाशवत् दृष्ट आते हैं, अरु उनके हृदयविषे हम नानाप्रकारकी चेष्टा करते अवरकी नाईं भासते हैं, अरु हमकों तौ जगत् ऐसे भासता है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, मैं भी ब्रह्म हौं,

तूं भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है, रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप है, तातें तूं भी ब्रह्मकी भावना करु जो अपणे स्वभावविषे स्थित होणा परम कल्याण है, अरु पर स्वभावविषे स्थित होणा दुःख है ॥ हे रामजी! अपणा स्वभाव साधणा इसीका नाम मोक्ष है, अरु न साधणा इसीका नाम बंधन है ॥ हे रामजी! अवर पदार्थ इस ऊपर उपकार कोउ करी नहीं सकता, न धन, न कोउ मित्र, न कोउ क्रिया, एक अपणा पुरुषार्थ उपकार करता है, सो पुरुषार्थ यही है जो अपणा चेतन स्वभाव है, तिसीविषे स्थित होणा, परंतु स्वभावका त्याग करणा, अरु जब अपणे स्वभावविषे स्थित होवैगा, तब सब अपणा स्वरूपही भासैगा, अरु जो तूं स्वरूपतें इतर करि देखै तौ न मैं हौं, न तूं है, न जगत् है, सब भ्रममात्र है, मृगतृष्णाके जलवत् भासता है, अथवा ऐसे जाण जो मैं भी ब्रह्म हौं, तूं भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है, अथवा ऐसे जाण न तूं है, न मैं हौं, न जगत् है, पाछे जो शेष रहैगा, सो तेरा स्वरूप है ॥ हे रामजी! जिन पुरुषकों ऐसे निश्चय हुआ है, जो मैं तूं जगत् सब ब्रह्म है, अथवा मैं तूं जगत् सब मिथ्या है, तिनकों बहुरि इच्छा कोउ नहीं रहती, अरु जिनकों इच्छा उठती है तौ जाणियें जो ब्रह्म आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब भोगकी वासना निवृत्त होवै, अरु संसार विरस हो जावै, तब जाणियें जो यह संसारके पारकों प्राप्त भया, अथवा होवैगा ॥ हे रामजी! यह निश्चय करिके जाण जो जिसकों भोगकी वासना क्षीण होती है, तिसकों स्वभावरूपी सूर्य उदय होता है, अरु भोगकी तृष्णारूपी रात्रि नष्ट होती है, यद्यपि तिसविषे प्रत्यक्ष भोगकी तृष्णा दृष्ट आती है, तौ भी उसकी भास जाती रहती है, अरु ब्रह्मसत्ता भासती है, अरु संसारकी उरतें सुषुप्ति हो जाती है, मृतककी नांई होता है, अरु अपणे स्वरूपविषे सदा जागृत है, अपणे स्वभावरूपी अमृतविषे मग्न होता है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० वसिष्ठगीतोपदेशो नाम शताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ १५९॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार यह पर स्वभाव हैं, तिनकों ब्रह्मरूप जाण,

परस्वभाव क्या अरु ब्रह्मरूप क्या है ॥ हे रामजी ! तेरा स्वरूप शुद्ध आकाश है, तिसविषे जो रूप अवलोकन मनस्कार फुरै है, सो सो प्रकृतिकी मायाकरि फुरै है, सो माया स्वभाव करिके परस्वभाव है, परंतु अधिष्ठान इनका आत्मसत्ता है, तातें आत्मस्वरूप है, आत्माके जानणेतें इनका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब इसकों ज्ञान उपजता है, तब संसार स्वप्नवत् हो जाता है, संसारकी सत्ता कछु नहीं भासती, अरु जब दृढता हुई तब सुषुप्त हो जाता है, इनका भाव भी नहीं रहता, तुरीयाविषे स्थित होता है, अरु जब तुरीयातीत होता है, तब अभावका भी अभाव हो जाता है, परम कल्याणरूप सत्तासमान पदकों प्राप्त होता है, सो आदि अंततें रहित परमपद है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप मैं हौं, अरु परम शांतरूप हौं, अरु निर्दोष हौं, अरु जगत् भी सब ब्रह्मरूप है, हमकों सदा यही निश्चय रहता है, अरु ऐसा उत्थान नहीं होता, जो मैं वसिष्ठ हौं, सदा आत्मस्वरूपका निश्चय रहता है, परिच्छिन्न अहंकार हमारा नष्ट हो गया है, तातें निरहंकार पदविषे हम स्थित हैं, जब तूं ऐसे होकरि स्थित होवैगा, तब परम निर्मल स्वरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे तूं शोभैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे पुरुषकों बंधन है सो श्रवण कर, जिस बंधनकरि आत्मपदकों नहीं प्राप्त होता, प्रथम धन मणिका बंधन है, भोगकी तृष्णा अरु बांधवका बंधन है जिसकों, इन तीनोंकी वासना रहती है, तिसकों मेरी धिक्कार है, बडे अनर्थके देणेहारी यह वासना है, यह भोग है, सो महारोग है, अरु बांधव दृढ बंधनरूप हैं, अरु अर्थकी प्राप्ति अनर्थका कारण है, तातें इस वासनाकों त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, यह संसार भ्रममात्र है, इसकी वासना करणी व्यर्थ है, इसकों सत् नहीं जानणा, अरु यह जो तुझकों संग मिलाप भासता है सो कैसा है, जैसे बैठे हुए स्मरण आवै, जो मैं अमके साथ मिल्या था, तब उह प्रतिभा प्रत्यक्ष हृदयविषे भासती है, अरु जैसे संकल्पकरि नगर रचि लिया तिसविषे मूर्त्त्याँ मनुष्यादिक भासणे लगैं, तैसे यह जगत् भी जाण ॥ हे रामजी ! तूं मैं

अरु यह जगत् भ्रममात्र संकल्प नगरके समान है, जैसे भविष्यत नगरकी रचना है; तैसे यह जगत् है, अरु कर्त्ता क्रिया कर्म जो भासते हैं, सो भी भ्रममात्र हैं, केवल आत्मासत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, आत्मरूपी आकाशविषे यह जगत्रूपी पुतलियां हैं, अरु संकल्पमात्र प्रत्यक्ष हुआ है, वास्तवतें केवल शांतरूप आत्मतत्त्व है ॥ हे रामजी! जो पुरुष स्वभावनिष्ठ हैं, तिनकों आत्मतत्त्वही भासता है, अरु जिनकों आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तिनकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु आत्माविषे यह जगत् कछु आरंभ परिणाम करिके बन्या नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे अज्ञान करिके जलाभास भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञान करिके जगत्की प्रतीति होती है, जब आत्माका सम्यक् ज्ञान होवै, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जानता है, जैसे सूर्यकी किरणां जानणेतें जलभ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नसृष्टि अपणा आपही भासती है, तैसे अविद्याके नाश हुए सब अपणा आपही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वसिष्ठगीतासंसारोपदेशो नाम शताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ १६० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब ब्रह्मरूप हैं, जिसकों ज्ञान प्राप्त होता है, तिसकों सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, यही ज्ञानका लक्षण है, अरु ज्यौं ज्यौं ज्ञानकला उदय होती है, त्यौं त्यौं भोगवासना क्षीण होती जाती है, जब पूर्ण बोधकी प्राप्ति होती है, तब इच्छा किसीकी नहीं रहती, जैसे ज्यौं ज्यौं सूर्य प्रकाशता है, त्यौं त्यौं अंधकार नष्ट होता जाता है, जब पूर्ण प्रकाश हुआ, तब रात्रिका अभाव हो जाता है, तैसे जिसकों ज्ञान उत्पन्न हुआ है, तिसकों भोगकी वासना नहीं रहती, अरु संसार तिसकों जले वस्त्रकी नांई भासता है, अरु अज्ञानीकों सत्य भासता है, जैसे स्वप्नविषे सुषुप्ति नहीं होती, अरु सुषुप्तिविषे स्वप्न नहीं होता, स्वप्नका पुरुष सुषुप्तिकों नहीं जानता, अरु सुषुप्तिवाला स्वप्नवालेकों नहीं जानता, तैसे जिनकों तुरीयापदकी प्राप्ति होती है, तिनकों संसारका अभाव हो जाता है, अरु अपणे स्वभाव

विषे स्थित होता है, अरु संसारकों सत् जानते हैं, सो स्वप्ननगर हैं, सुषुप्तिकों नहीं जानते ॥ हे रामजी! तेरा स्वरूप जो तुरीयापद है, तिसकों अज्ञानी जाणी नहीं सकते, अरु जो जानैं तौ परिच्छिन्न अहंकार तिसका नष्ट हो जावै, जब अहंकार नष्ट हुआ, तब सर्व आत्मा हुआ ॥ हे रामजी! इसकों अहंतानें तुच्छ किया है, तातें अहंतारूप दृश्यका तुम त्याग करहु, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु संसाररूपी एक पुतली है, सो भ्रमकरि उठी है, तिसका सीस ऊर्ध्व ब्रह्मलोक है, पाद अरु गिटे इसके पाताल लोक है, अरु दशों दिशा इसके वक्षस्थल हैं, अरु चंद्रमा सूर्य इसके नेत्र हैं, तारागण इसके रोम हैं, आकाश इसके वस्त्र हैं, अरु सुखदुःखरूपी स्वभाव है, अरु पवन इसका प्राणवायु है, बगीचे इसके भूषण हैं, द्वीप अरु समुद्र इसके कंकन हैं, लोकालोक पर्वत इसके मेखला हैं ॥ हे रामजी! ऐसी जो पुतली है, सो नृत्य करती है, सो क्या है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नाश होते हैं, परंतु जलही है, तैसे जलकी नांई सर्व ब्रह्मरूप है, अरु भ्रम करिके विकार दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी! कर्त्ता क्रिया कर्म भी सब आत्मस्वरूप है, जब तूं आत्माकी भावना करैगा, तब तेरा हृदय आकाशवत् शून्य हो जावैगा, जैसे पत्थरकी शिला जड होती है, तैसे तेरा हृदय जगततें जड शून्य हो जावैगा ॥ हे रामजी! आत्मपद शांतरूप है, अरु आकाशवत् निर्मल है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे जगत् है, न उदय होता है, न अस्त होता है, केवल शांतरूप है, अरु उदय अस्त भी तब होती है, जब कछु दूसरी वस्तु होती है, सो जगत् कछु भिन्न नहीं, आत्मस्वरूपही है, द्वैत अरु एक कल्पनातें रहित आत्मा अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदुपशमयोगोपदेशो नाम शताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ १६१ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे मृत्तिकाकी पूतली मृत्तिकारूप होती है, जैसे कागदकी पूतली कागदरूप होती है, तैसे विश्व आत्मरूप है, जैसे मृत्तिका दीपक देखणेमा

त्र होता है, प्रकाशका कार्य नहीं करता, तैसे यह जगत् देखणेमात्र है, विचार कियेतें आत्माविना इतर सत्ता कछु नहीं, तातें जगत्की सत्यता आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जगत्की आस्था आत्माके आश्रित होती है, जैसे जलविषे तरंग, अरु आकाशविषे शून्यता, अरु पवनविषे फुरना है, तैसे आत्माविषे जगत् अभिन्नरूप है, जैसे वायु चलती है, तब भी पवन है, उसकों वायुका निश्चय है, तैसे चेतनविषे निश्चय है, जो जगत् उही स्वरूप है, तातें चेतन है, ज्ञानवान् सो जाणता है, जो जगत् मेराही स्वरूप है ॥ हे रामजी! यह आश्चर्य देख, जो जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अरु भ्रम करिके भिन्न भासता है, जैसे कथाविषे कथाके पुरुष विद्यमान भासते हैं, जो शुद्ध करते हैं, इत्यादिक अवर क्रिया करते हैं, तैसे यह जगत् भी मनोमात्र जाण ॥ हे रामजी! जो विद्यमान् है सो अविद्यमान हो जाता है, अरु जो अविद्यमान है, सो विद्यमान हो जाता है, जैसे स्वप्नविषे जगत् अनुभवस्वरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे जागृत जगत् विचारकरि देखैगा, तब ब्रह्मस्वरूपही भासैगा, जैसे जो पुरुष सोया होता है, अरु स्वप्न जगत् तिसही का रूप है, परंतु जबलग निद्रादोष है, तबलग भिन्न भासता है, अरु जब जाग्या, तब सब अपणा ही आप भासता है, तैसे जब यह पुरुष अपणे स्वरूपविषे स्थित होकरि देखता है, तब सब अपणा आपही भासता है ॥ हे रामजी! रूप अवलोन मनस्कार भी ब्रह्मस्वरूप है, अरु आत्मा इंद्रियांकाविषय नहीं, निराकार है, अरु मनके चिंतवणेतें रहित है, संकल्पकरि आपहीरूप अवलोकन मनस्कार करि स्थित हुआ है, इतर नहीं, सर्व उही है, अरु तिसीकों केई शिव कहते हैं, केई ब्रह्म कहते हैं, केई आत्मा कहते हैं, केई शून्य कहते हैं, इत्यादिक नाम तिसीके शास्त्रकारनें कहे हैं, सो संकल्पविषे कहे हैं, अरु आत्मा केवल चिन्मात्र है, वाणीका विषय नहीं, शांतरूप है, अरु चैत्य जो है दृश्य तिसतें रहित है, सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान है, अरु जगत् उसका चमत्कार है ॥ हे रामजी! आत्माविषे एक अरु द्वैतक

ल्पना कोउ नहीं, काहेतें जो आत्मत्वमात्र है, अरु जगत् भी आत्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यता विषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्माविषे अरु जगतविषे भेद कछु नहीं॥ हे रामजी! ऐसे भी किसी देश अथवा किसी कालविषे होवै, जो स्वर्ण अरु भूषणविषे कछु भेद होवै, स्वर्ण भिन्न होवै, अरु भूषण भिन्न होवै, परंतु आत्मा अरु जगतविषे कछु भेद नहीं, ऐसेही आत्मा प्रकाशता है, अरु अपणे स्वभावविषे स्थित है, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सैना नानाप्रकारकी संज्ञाकों धारती है, परंतु मृत्तिकातें इतर कछु दूसरी वस्तु नहीं, तैसे फुरणे करिके नानाप्रकारकी संज्ञा दृष्ट भी आती हैं, परंतु आत्मातें भिन्न कछु नहीं, उही रूप है॥ हे रामजी! जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभव करिके भासते हैं, पदार्थकी सत्ता अनुभवतें इतर कछु नहीं, जब तूं अनुभवविषे स्थित होकरि देखैगा, तब अनुभवरूप अपणा आपही भासैगा, अपणा स्वभाव ज्ञानमात्र है, तिसके जानणेका नाम ज्ञान है॥ हे रामजी! ज्ञानविना जो तप यज्ञ दान आदिक क्रिया हैं सो सब व्यर्थ हैं, सब क्रियाकी सिद्धता ज्ञानकरि होती है, जैसे उलूककी क्रिया रात्रिविषे होती है, सो दिन हुएतें मिथ्या हो जाती है, तैसे तप दान आदिक क्रिया ज्ञानके उदयविना व्यर्थ होती है, हे रामजी! जो कछु क्रिया ज्ञानके निमित्त करियें सो पुरुषप्रयत्न श्रेष्ठ है, अरु इसतें अन्यथा है, सो व्यर्थ है, अरु धनके उपजावणेविषे भी अनर्थ होता है, अरु राखणेविषे भी नष्ट है, परंतु जो ज्ञानके साधननिमित्त इसकों राखियें अरु दीजियें, तब यह अमृत हो जाता है॥ हे रामजी! यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे मलिन नेत्रवालेकों रूपविपर्यय भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि होती है, तिसविषे अज्ञ तज्ञ भी भासते हैं, परंतु असतरूप हैं, तैसे यह जगत् जो विद्यमान भासता है, सो अविद्यमान है, अरु आत्मा सदा विद्यमान है॥ हे रामजी! जो विद्यमान देव विष्णु है, तिसकों त्यागिकरि अवर देवका पूजन करते हैं, तिनकी पूजा सफल नहीं होती, अरु विष्णु तिसपर कोपायमान भी होता है, सो विष्णु देव विद्यमान

कैसे है, श्रवण कर ॥ हे रामजी! आत्मा अनुभवरूप सो विद्यमान देखे है, तिसकों त्यागिकरि जो अवरका पूजन करते हैं, सो जन्ममरणके बंधनतें मुक्त नहीं होते, मूढताविषे रहते हैं, अरु आत्मदेवकी पूजा श्रवण कर, जो कछु अनिच्छित आवै सो तिसकों अर्पण करियें, अरु ऐसी पूजाविषे भी स्थित नहीं होणा, जो इसके जानणेवाला है, तिसविषे अहंप्रत्यय करणी यह बडी पूजा है ॥ हे रामजी! इस आत्मदेवतें इतर जो सूर्य चंद्रमा आदिक भेद पूजा है, सो तुच्छ है, जब तूं आत्मपूजाविषे स्थित होवै, तब अवर पूजा तुझकों सूके तृणकी नांई भासैंगी, अरु दान भी आत्मदेवकों करणा है, सो किस करिके करणे योग्य है, बोध करिके करणे योग्य है, अरु कैसे उत्पन्न होता है, प्रथम वैराग्य अरु धैर्य बोधका कारण है, अरु संतोष होवै, यथालाभविषे संतुष्ट होणा अरु ब्रह्मविद्याका विचार करणा, अरु संतका संग करणा, इन साधनकरि जब बोधरूपी सूर्योदय होवैगा तब द्वैतरूपी अंधकार नष्ट हो जावैगा, ज्ञानरूपही भासैगा, बहुरि जो ज्ञान उपजा है, सो भी शांत हो जावैगा, तातें उसी देवकी पूजा करु, जिस करिके आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु आत्मदेवकी पूजाके निमित्त फूलभी चाहियें, सो आत्मविचार करणा, अरु सम जो है, चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख करणी, अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहणा, संतकी संगती करणी, इन फूल करिके नैवेदन करणा, यह पूजा भी तब होती है, जब अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु तिसकरि ज्ञान उत्पन्न होता है, जब ज्ञान उपज्या, तब आत्मदेवका साक्षात्कार होता है, सो ज्ञानका लक्षण श्रवण करु, गुरु अरु शास्त्रतें जो वस्तु सुणी है, तिसविषे स्थिति होती है, अरु संसारकी वासना क्षीण हो जाती है, तब ज्ञानी कहाता है, जब इस ज्ञानकी पूर्णता होती है, तब जगत् उसकों ब्रह्मस्वरूपही भासता है, उसकों शस्त्र काटि नहीं सकते, अरु सिंह सर्पका भेद नहीं होता, अग्नि अरु विषका भय भी नहीं होता ॥ हे रामजी! यह विश्व सब आत्मरूप है, जैसी भावना करीती है, तैसाही आगे हो भासता है, जब शस्त्रविषे शस्त्रके अर्थकी भावना होती है, तब शस्त्र हो

भासते हैं, सर्प अग्निविषे सब अपणे अपणे अर्थाकार भासते हैं, अरु जो सर्व आत्मभावना करीती है, तब सर्व आत्माही भासता है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तौ दिखाइ कैसे देवै अरु जो पुरुष कृतकृत्य नहीं भया, अरु आपकों कृतार्थ मानता है, अरु दुःखनिवृत्तिका उपाय नहीं करता, तौ दुःखके आयेतें दुःख ही देवैगा, अरु दुःख इसकों चलाये ले जावैगा, अरु सुख जब आवैगा तब सुख भी इसकों चलाये ले जावैगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष सर्व ब्रह्म कहता है, वाणी करिके अरु निश्चयतें रहित है, अरु शास्त्र भी बहुत देखता है, तब उह महामूर्ख है, जैसे जन्मका अंध होता है, अरु सूर्यकों नहीं जानता है, तैसे उह आत्मअनुभवतें रहित है, जब आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब ऐसे आनंदकों प्राप्त होवैगा, जिसके पाएतें अवर पदार्थ रसतें रहित भासैंगे, ब्रह्मातें आदिक काष्ठपर्यंत सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, तातें आत्मपरायण होहु, सदा आत्मपदकी भावना करहु ॥ हे रामजी! जैसी भावना होती है, तैसा जगत् भासता है; जैसे शुद्ध मणिके निकट जैसी वस्तु राखियें तैसा प्रतिबिंब होता है, तैसेही जैसी भावना करता है, तैसा रूप जगत् भासता है, तातें जगत् ब्रह्मरूप जाण, अवर दूसरा भासै सो भ्रममात्र जाण, जैसे पत्थरकी शिला उपर पुतलियां लिखते हैं, सो शिलारूपही हैं, तैसे यह जगत् सब आत्मस्वरूप है, जब आत्मपदकी तुझकों प्राप्ति होवैगी, तब सब पदार्थ विरस होवैंगे ॥ हे रामजी! यह जगत् मिथ्या है, जो पुरुष इस जगत्कों पदार्थ करि जाणता है, अरु कहता है, हम मुक्त होवैंगे, सो ऐसे है, जैसे अंधकूपविषे जन्मका अंध गिरै, अरु कहै, अंधकारकेसाथ मैं सचक्षु होउंगा सो मूर्ख है, तैसे आत्मज्ञानविना मुक्त नहीं होता ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुनर्निर्वाणोपदेशो नाम शताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ १६२॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अहंतातें आदि लेकरि जो जगत् भासता है सो मिथ्या भ्रम करिके उदय हुआ है, इसकों त्यागिकरि अपणे अनुभव स्वरूपविषे स्थित होहु, इस मिथ्या जगतविषे आस्था करणेकी मू

खता है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसकों जगत्भ्रमका अभाव है, अब ज्ञानी अरुअज्ञानी दोनोंका लक्षण श्रवण कर ॥ हे रामजी! जैसे किसी पुरुषकों ताप चढता है, तिसका हृदय जलता है, अरु तृषा बहुत होती है, अरु जिसका ताप नष्ट हो गया, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु जलकी तृषा भी नहीं होती, तैसे जिस पुरुषकों अज्ञानरूपी ताप चढ्या हुआ है, तिसका हृदय जलता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा बहुत होती है, अरु जिसके हृदयतें अज्ञानरूपी ताप मिटि गया है, तिसका हृदय शीतल होता है, अरु भोगरूपी जलकी तृष्णा मिट जाती है, अब ताप निवृत्त करणेका उपाय श्रवण कर, शास्त्रके अर्थवादकरि बुद्धि विभ्रम हो जाती है, अरु मैं तुझकों सुगम उपाय कहता हों, जो निरहंकार होणा, यही सुगम उपाय है, न मैं हों, न यह जगत् है, जब तूं ऐसे निश्चयकों धारैगा, तब सब जगत् तुझकों ब्रह्मस्वरूप भासैगा, अरु किसी पदार्थकी वांछा न रहैगी, जब सब पदार्थकों मिथ्या जाणीकरि अपणा भी अभाव करैगा, तब पाछे प्रत्यक् चेतन परमानंदस्वरूप सबका अधिष्ठान शेष रहैगा ॥ हे रामजी! यह अहंतारूपी यक्ष जो उठ्या है सो मिथ्या है, अरु इस मिथ्या पुरुषनें नानाप्रकार जगत् कल्प्या है सो अहंकार भी मिथ्या है, अरु जगत् भी मिथ्या है, जब तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है, अरु सुंदर पदार्थ भासते हैं, तिनकी इच्छा करता है, जबलग जाग्या नहीं तबलग जाणता है जो सदैव यह पदार्थ हैं, नाश कदाचित् नहीं होणा, अरु कहता है, जो अमका रूप देखियें, अमका भोजन करियें, इत्यादिक इच्छा करता है, जब जागी उठ्या तब जाणता है जो मेराही संकल्प था, बहुरि उह पदार्थ, सुंदर स्मरण भी होते हैं, अथवा भासते हैं तौ भी उनकों मिथ्या जाणता है, तैसे जब आत्मस्थितिविषे जागता है तब सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ हे रामजी! इस जगत्का बीज अहंता है, जैसे दुःखका बीज पाप होता है, तैसे जगत्का बीज अहंता है, तातें तुम निरहंकार पदविषे स्थित होहु, यह सब

तेराही स्वरूप है, भ्रम करिके जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जगत्का अत्यंत अभाव है, जैसे जेवरीविषे सर्पका अत्यंत अभाव है, अरु भ्रमदृष्टि करिके सर्प भासता है, जब विचाररूपी दीपकसाथ देखता है तब सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भ्रम करिके भासता है, जब विचार करिके जगत्का अभाव निश्चय करैगा, तब आत्मपद ज्योंका त्यों भासैगा, जैसे वसंतऋतु आती है तब सब फूल फलटास दृष्टि आते हैं, सो एकही रस एती संज्ञाकों धारता है, तैसे तूं जब आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब तुझकों सब आत्मरूपही भासैगा, अरु सर्व नाम भी आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी! आदि भी आत्माही है, अरु अंत भी आत्माही होवैगा, मध्य जो जगत्के पदार्थ भासते हैं, तिनकी उर मत जावहु, जो इनके जानणेवाला है, जिसकरि सब पदार्थ प्रकाशते हैं, तिसविषे स्थित होहु, अरु यह मनुष्य सब मृगकी नांई हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल जाणीकरि दउडते हैं, तैसे जगत्रूपी मरुस्थलकी भूमिका शून्य है, अरु तीनों लोक मृगतृष्णाका जल है, तिसविषे मनुष्यरूपी मृग दउडते हैं, अरु दउडते दउडते हारी पडते हैं, शांतिकों प्राप्त कदाचित् नहीं होते, काहेतें जो जगत्के पदार्थ सब असत्य हैं॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार सब मृगतृष्णाका जल है, इनकों जो सत्य जाणता है सो मूर्ख है, अरु यह जगत् गंधर्वनगरकी नांई है, तूं जागिकरि देख, इसकों सत्य जाणीकरि काहेकों तृष्णा करता है, इसकों सत्य जाणीकरि तृष्णा करणी यही बंधन है ॥ हे रामजी! तूं आत्मा है, इसकी इच्छाकरि बंधमान क्यों होता है, जैसे सिंह पिंजरेविषे आया दीन होता है, अरु बलकरि जब पिंजरेकों तोडि डारता है, तब बडे वनविषे जाय निवास करता है, अरु निर्भय होता है, तैसे तूं भी वासनारूपी पिंजरेकों तोडिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो आत्मा सर्वका अधिष्ठान है, अरु सबतें उत्कृष्ट है, तिस पदकों तूं प्राप्त होवैगा, जब इस संसारकी वासना नष्ट होवैगी तब आनंद होवैगा, अरु तूं निर्वाण पदकों प्राप्त होवैगा, अरु अफुर होवैगा, परम उपशम ज्ञेय पदकों प्राप्त होवैगा, अरु द्वैतभास मिटिजा

वैगा, केवल परमार्थसत्ता भासैगी, इसीका नाम निर्वाण है, अरु यह चारों भूमिका शांतिके स्थान हैं, जैसे कोउ पैंडेंकरि तपता आवै, अरु तिसकों शीतल स्थान प्राप्त होवै तब शांतिकों पावता है, तैसे यह चारों शांतिके स्थान हैं, निर्वाणता, अरु निरहंकारता, अरु वासनाका त्याग, अरु परम उमशम इन करिके ज्ञेयविषे स्थित होणा यह शांतिका स्थान है, जब तूं स्थित होवैगा, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीका अभाव हो जावैगा, केवल द्रष्टाही रहैगा ॥ हे रामजी! द्रष्टा भी उपदेश जतावणेकेनिमित्त कहा है, जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा किसका होवै, केवल अपणे आपविषे स्थित है, द्वैत जो है चैत्य, तिसतें रहित अद्वैत चेतन है, शुद्ध है, तिसविषे स्थित होकरि जगत्का त्याग करु, यह जगतबुद्धि जन्मके देणेहारी है, जो जगत् के पदार्थ सुखदायी भासते हैं, सो दुःखके देणेहारे हैं, इनका विष जाणीकरि त्याग कर, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे यह जगत् अणहोता भासता है, आत्माविषे दृश्य अवर कछु नहीं, एकही पदार्थविषे दो दृष्टि हैं, ज्ञानी उसकों आत्मा जाणते हैं, अरु अज्ञानी जगत् जाणते हैं ॥ दोहा ॥ सब भूतन की रात्रि सो, संतनका दिन होय; जो लोकन दिन मानिया, संत रहै तब सोय ॥ १ ॥ ज्ञानी परमार्थ तत्त्वविषे जागे हैं, अरु संसारकी उरतें सोए रहे हैं, अरु अज्ञानी परमार्थतत्त्वतें सोए हुए हैं, अरु संसारकी उर सावधान हैं ॥ हे रामजी! यह जगत् मनतें फुऱ्या है, अरु ज्ञानीका मन सत्पदकों प्राप्त भया है, इस करिके जगत्की भावना नहीं फुरती, जैसे बालककों संसारके पदार्थका ज्ञान नहीं होता, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे जगत् कछु वस्तु नहीं ॥ हे रामजी! जब ज्ञान उपजता है, तब जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं भासता, जैसे जलकी बुंद जलविषे डारियें तौ भिन्न नहीं भासती, तैसे ज्ञानीकों जगत् भिन्न नहीं भासता, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है, तैसे मनविषे जगत् स्थित होता है, जैसे वृक्ष बीजरूप है, तैसे जगत् मनरूप है, जब जगत् नष्ट होवै, तब मन भी नष्ट हो जावैगा, अरु मन नष्ट होवै, तब दृश्य भी नष्ट होवैगी, एकके अभाव

हुए दोनोंका अभाव हो जाता है, अरु मन नष्ट होवै, तौ फुरना भी नष्ट होवै, अरु फुरना नष्ट होवै तौ मन भी नष्ट होता है॥ हे रामजी! यह जगत्के अंतर बाहिर जो भासता है, सोइ मन है, तातें मनकों स्थिर करि देखैगा, तब जगत्की सतता नहीं भासैगी, अज्ञानीके हृदयविषे जगत् दृढ स्थित है, तातें दुःख पावता है, जैसे बालककों अपणे परच्छायेविषे भूत भासता है, अरु दुःख पावता है, अरु अवर कोउ निकट खडा है, तिसकों नहीं भासता, उह दुःख नहीं पावता॥ हे रामजी! यह जगत् कछु सत् वस्तु होती तौ ज्ञानवान्कों भी भासता, सो ज्ञानीकों नहीं भासता, तातें जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष बैठे हैं, अरु एककों निद्रा आई है, तिसकों स्वप्न जगत् भासता है, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा होती है, अरु दूसरा जो जागता बैठा है, तिसकों उसका जगत् नहीं भासता, तैसे जो पुरुष परमार्थसत्ताविषे जागृत है, तिसकों जगत् शून्य भासता है॥ हे रामजी! इह जगत् मिथ्या है, तिसकी तृष्णा तूं काहेकों करता है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत् परस्वभाव है, ऐसे जाणीकरि भावै जैसी चेष्टा करु, तुझकों बंधन न करैगी, अरु पूर्व पदकी प्राप्ति होवैगी, जैसे सूके तृण अग्निके जले हुएकों पवन उडाय ले जाता है, तब नहीं जाणीता, जो कहां गया, तैसे ज्ञानरूपी अग्निकरि जलाया, अरु निरहंकारतारूपी पवनकरि उडाया, संसाररूपी तृण न जानैगा, जो कहां गया, जैसे लाख योजनपर्यंत चल्या जावै तौ भी आकाशही दृष्ट आता है, सब सृष्टिकों धारि रहा है, तैसे सब दृश्यकों जगत्कों आत्मा धारता है, संसारका शब्द अर्थ आत्माविषे कोउ नहीं, इसकों छोडीकरि देख जो सर्व शब्द अर्थका अधिष्ठान आत्माही है॥ हे रामजी! रूप अवलोकन मनस्कार मिथ्या उदय हुए हैं, तातें इनका त्याग करु, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या भ्रममात्र है, इसके संबंध करिके दुःखी होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प अरु सीपिविषे रूपा मिथ्या है, तैसे आत्माविषे जगत् है, तूं आत्मा ब्रह्म है, अरु दुःखतें रहित है, अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, अरु

आत्मदृष्टि करिके देख जो सर्व आत्मा है, अथवा जगत्कों मिथ्या जाण तौ भी शेष आत्मपद रहैगा, जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिके अभाव हुए शांतपद शेष रहता है, तैसे जगत्के अभाव कियेतें आत्मपद शेष भासैगा, यह जगत् अत्यंत अभाव है, अरु जो दृष्टि आता है, सो भ्रममात्र है, एक कालविषे होता है, अरु दूसरे कालविषे नष्ट हो जाता है, स्वप्नविषे जाग्रतका अभाव हो जाता है, अरु जाग्रतविषे स्वप्नका अभाव हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे दोनोंका अभाव हो जाता है, तातें भ्रममात्र है, अरु विश्व आत्माका चमत्कार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, अहंता करिके उदय होता है, अहंताके अभावतें अभाव हो जाता है, जिनकों अहंताका अभाव हुआ है, उही संत हैं, अरु उत्तम पुरुष हैं, तिन महानुभाव पुरुषोंका अभिमान नष्ट हो गया है, अरु भोगकी आशा नष्ट हो जाती है, उह निर्भ्रांतिरूप नित्यही समाधिरूप होते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ १६३ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह मनरूपी मृग भटकता है, अरु वनविषे जलता है, उह कवन वृक्ष है, समाधानरूप जिसके नीचे आया शांतपदकों प्राप्त होवै, उसके फूल फल लता कैसे होते हैं, अरु वृक्ष कहां होता है, सो कृपाकरि कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार समाधानरूप वृक्ष उत्पन्न होता है, सो श्रवण कर, क्रमकरिके इसके पत्र पुष्प लतातें आदि सब समाधानरूप इस वृक्षका है ॥ हे रामजी! यह वृक्ष सब जीवकों साधणे योग्य है, कल्याणके निमित्त सो अब तूं इसका क्रम सुण, बल करिके उत्पन्न होता है, अरु संत जनोंके वनविषे यह ध्यानरूपी वृक्ष उपजता है, अरु चित्तरूपी पृथ्वीविषे लगता है, अरु वैराग्यरूपी इसका बीज है, सो वैराग्य दो प्रकार होता है, जो कोउ दुःख कष्ट प्राप्त होवै तिसकरि भी वैराग्य उपजि आता है, अथवा शुद्ध हृदय निष्काम होता है, तौ भी वैराग्य उपजता है, तिस वैराग्यरूपी बीजकों चित्तरूपी भूमिकाविषे पाइता है, अरु जब

वासनारूपी हल फेरता है, संतकी संगति अरु सच्छास्त्ररूपी जलकरि सिंचता है, मनरूपी क्यारीविषे सो जल निर्मल है; शीतल है, अरु हृदयगम्य है, तिस कोमलता अरु दयारूपी जलकरि बीजकों सिंचता है, तब बढणेकी आशा होती है, अरु सब क्रियारूपी जाड करिके अशुभरूपी कुंडेकों दूर करता है, अरु बहुत जलतें भी रक्षा करता है, सो आत्मविचाररूपी सूर्यकी किरणकरि सूकाता है, अरु तिसके चउफेर धैर्यरूपी वाडी करियें, अरु तप दान तीर्थ स्नानरूपी थडे ऊपर रख बैठणा, जो बीज जलि न जावै, अरु आशारूपी पक्षीतें रक्षा करणी, जो वैराग्यरूपी बीजकों काढि न ले जावै, अरु अभिलाषारूपी बुढे बैलतें रक्षा करणी जो क्षेत्रविषे प्रवेश करिके इसकों मर्दन न करै, तिसके निमित्त संतोष अरु संतोषकी स्त्री मुदिता दोनो बैठाय रखणे, अरु इस बीजका नाश करता जो मेघतें उपजता है गडा, तिसतें भी रक्षा करणी, सो गडा क्या है, संपदा धनकी प्राप्ति होणी, अरु सुंदर स्त्रियांकी प्राप्ति होणी, सो वैराग्यरूपी बीजका नाशकर्त्ता गडा है, एक इसकी रक्षाका सामान्य उपाय है, अरु एक विशेष उपाय है, जो तप करणा अरु इंद्रियांकों सुकुचावणा, अरु दुःखी पर दया करणी, अरु संतोषमात्र पाठ जाप करणा इत्यादिक शुभ क्रिया करणी, यह शुभ क्रियारूपी पुतली यंत्री इसके विद्यमान राखियें तौ दूर हो जाता है, अरु दूसरा परम उपाय यह है जो संतकी संगति करणी, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करणा, अरु प्रणव जो ॐकार है, तिसका ध्यान जप करणा, अरु तिसके अर्थकों विचारणा, यही जो है त्रिशूलरूप तिसका त्रिशूल करणा, सो गडेके नाशका परम उपाय है, जब एते शत्रुतें रक्षा करै तब बीजकी उत्पत्ति होवै, तिसकों संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचाररूपी वर्षाकालके जलकरि सिंचिये, तब अंकुर निकसती है, अरु बडा प्रकाश होता है, जैसे द्वितीयाका चंद्रमा होता है, अरु सब कोउ तिसकों प्रणाम करते हैं, तैसे संतोष दया अरु यशरूपी अंकुर निकसता है, तिसके दो पत्र निकसते हैं, एक वैराग्य, दूसरा विचार, सो दिन दिन प्रति बढता है, अरु

शास्त्रतें जो श्रवण किया है जो आत्मा सत्य है, अरु जगत् मिथ्या है, तिसका वारंवार अभ्यास करणा, इस जलके सिंचणेकरि अंकुर दिन दिन प्रति बढता जावैगा, अरु तिसके स्तंभ बडे होवैंगे ॥ हे रामजी ! जब टास बडे होते हैं, तब वानर उसपर चडीकरि तोडी डारते हैं, सो रागदोषरूपी वानर हैं, तातें इस वृक्षकों दृढ वैराग्य अरु संतोष अभ्यासरूपी रसकरि पुष्ट करणा, जैसे सुमेरु पर्वत होता है, तैसे संतोषकरि पुष्टि करणी, जब ऐसे हुआ तब सुंदर पत्र अरु टास लगैंगे, अरु फूल मंजरी इसके साथ लगैंगे, अरु बडे मार्गपर्यंत इसकी छाया होवैगी, शांति शीतलता शुद्धता अरु कोमलता दया यश कीर्ति इत्यादिक गुण आनि प्रगट होवैंगे, तिसके नीचे मनरूपी मृग विश्राम पावता है, अरु शीतल होता है, अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ताप मिटि जाते हैं, अरु परम शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! यह मैं तुझकों ध्यानरूपी वृक्ष कहा है, जहां यह वृक्ष उत्पन्न होता है, तिस स्थानकी शोभा कही नहीं जाती, जो इस वृक्षकी शरणकों प्राप्त होता है, तिसके ताप मिटि जातेहैं, अरु शांतिवान् होता है, अरु यह वृक्ष जो बढता है, सो ब्रह्मरूपी आकाशके आश्रय बढता है, अरु इसविषे वैराग्यरूपी रस है, अरु संतोषरूपी इसकी छील हैं, तिसकरि पुष्ट होता है; जो पुरुष इसका आश्रय लेवैगा, सो शांतिकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! जबलग गमनरूपी मृग इस ध्यानरूपी वृक्षका आश्रय नहीं लेता, तबलग भटकता फिरता है, अरु शांतिकों नहीं प्राप्त होता है, जैसे मृग वनविषे भटकता है, तैसे भटकता है, तिसकों द्वैत अज्ञान प्रमादरूपी वेधक मारणे लगता है, तिसकरि दुःख पावता है, तिसके भयकरि गावके निकट आता है, तब उह आपोआप इसकों पकडीकरि खेद देते हैं, तिसकरि बडे कष्टकों पावता है, सो गांववासी इंद्रियां हैं, जब इनकी उर आता है, तब अपणे अपणे विषयकी उर बंधायमान करतियां हैं, इनके भयकरि बहुरि वनकों जाता है, तहां वनकी तप्तकरि दुःखी होता है, सो विषयकी अप्राप्तिरूपी तप्त है, तिसकों त्यागिकरि रससरूप स्थानकों दउडता है, शां

तिके निमित्त जब उहां जाता है, तब कामरूपी श्वान इसके मारनेकों दउडता है, तिसके भयकरि बहुरि वनकी उर धावता है, तब क्रोधरूपी अग्नि जलावती है, अरु वासनारूपी मच्छर दुःख देते हैं, अरु लोभ मोहरूपी अंधेरी चलती है, तिसकरि अंध हो जाता है, हरे हरे तृणकों देखीकरि ग्रहण करता है, तब टोयेविषे गिर पडता है, उह टोया तृणकरि आच्छाद्या है, सो तृण कवन हैं, पुत्र धन तिसकों सुंदर देखिकरि ग्रहण करती है, तब ममताविषे गिर पडता है, इस प्रकार दुःख पावता है॥ हे रामजी! जब यह मन झूट बोलता है, तब मृत्तिकाविषे लोटता है, ऐसी चेष्टा करता है, अरु जब मनरूपी बघाड आता है, तब इसका भक्षण करि जाता है, जब ध्यानरूपी वृक्षतें विमुख होता है, तब एते कष्टकों पावता है, जब मनरूपी विघाडतें छूटता है, तब आशारूपी जंजीरविषे बंधायमान होता है, जबलग इस वृक्षके निकट नहीं आता, तबलग बडे कष्ट स्थानोंकों जाता है, तमाल वृक्षादिकके तले भी जाता है, अरु कंटकके वृक्षों तले भी जाता है, परंतु शांतिवान् किसी स्थानविषे नहीं होता, बडे कष्टकों पावता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हरिणोपाख्याने वृत्तांतयोगोपदेशो नाम शताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः॥ १६४॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार मूढबुद्धि मनरूपी हरिण भटकता है, तातें मेरा यही आशीर्वाद है जो तुमकों उस वृक्षका संग होवै, जब उस वृक्षके निकट आता है, तब शांति प्राप्त होती है, अरु जब इसके नीचे आय बैठता है, तब तीनों ताप अंतःकरणतें मिटि जाते हैं, अवर जेते कछु वृक्ष हैं तिनके निकट गया मनरूपी मृग शांतिकों नहीं पावता, सो अवर वृक्ष कवन हैं, विषयरूपी वृक्षके निकट गया शांतिवान् नहीं होता, जब ध्यानरूपी वृक्षके निकट आता है, तब शांतिकों पाइता है, अरु बुद्धि प्रकाशि आती है, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यकों देखीकरि खिली आता है, बहुरि उसके अनुभवरूपी फल हैं, अरु शास्त्रके विचाररूपी पत्र फूल हैं, तिनकों देखीकरि बडे आनंदकों प्राप्त होता है, अरु वृक्ष उपर चढी जाता है, चडीकरि पृ

थ्वी भूमिका त्याग करता है, जैसे सर्प अपणी कंचुकीका त्याग करता है, अरु नूतन सुंदर शरीरकरि शोभता है, अरु जब उस वृक्षपर चढता है, तब गिरता नहीं, पत्र उसके बहुत बली हैं, तिनके आश्रय ठहरता है, सो कवन पत्र हैं, ध्यानरूपी वृक्षके सच्छास्त्ररूपी पत्र हैं, जब ध्यानरूपी वृक्षतें उतरता है, तब शास्त्रके अर्थविषे ठहरता है, अरु जेते विषय पदार्थ देखीते हैं, सो क्षारवत् दृष्ट आते हैं, अरु अपणी पिछली चेष्टाकों स्मरण करिके पछताता है, जैसे किसीनें मद्यपान किया होवै अरु तिसविषे नीच चेष्टा करै, जब मद उतरता है तब पसताया करता है, तैसे मनरूपी मृग अपणी पिछली चेष्टाकों धिक्कार करता है, अरु कहता है जो बडा आश्चर्य है, मैं एता काल इस वृक्षतें विमुख हुआ भटकता फिरता हौं, अब मुझकों शांति प्राप्त हुई है, जैसे दिनकी तप्त अभाव हुए चंद्रमुखी कमलिनीकों शांति प्राप्त होती है, तैसे मनरूपी मृगकों शांति प्राप्त होती है॥ हे रामजी! पुत्र धन स्त्रियादिक जो दिखते हैं, तिनकों संकल्पपुरकी नांई अरु स्वप्नवत् देखता है, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नपुरकों स्मरण करता है, परंतु तिसविषे अभिमान नहीं होता, तैसे इनविषे भी अभिमान नहीं होता, जब अनुभवरूपी फलका भक्षण करता है, तब बडे आनंदकों पावता है, जिसविषे वाणी नहीं प्रवृत्ति शकती, परम शांत अरु निर्मल पदकों प्राप्त होता है, अरु निरतिशय पदकों प्राप्त होता है, जो मनका विषय होवै, सो सातिशय पद है, अरु जो मनका विषय नहीं सो निरतिशय पद है, अरु जो इंद्रियांका विषय है तिसका नाश भी होता है, अरु जो इंद्रियां अरु मनका विषय नहीं तिसका नाश नहीं होता, सो अविनाशी पदकों पावता है, अरु जैसे किसीकों बाण लागता है, अरु तिसकी विरोधी बूटी उसके सन्मुख राखियें तौ निकसी आता है, तैसे अनुभवरूपी बूटीके सन्मुख हुए मोहबंधनरूपी सर खुलि पडते हैं, अरु परम पदकों पावता है॥ हे रामजी! ज्ञानवान् जगत्तें मृतक हो जाता है, उसकों संसारका लेप कछु नहीं लगता, जैसे लकडीविना अग्नि शांत हो जाती है,

तैसे वासनातें रहित ज्ञानवान्‌की चेष्टा शांत हो जाती है, अर्थ यह जो संसारकी सत्यतातें रहित चेष्टा होती है, बहुरि संसाररूपी अग्नि उदय नहीं होती, अरु द्वैत एक कल्पना भी मिटि जाती है, अरु उन्मत्तकी नांई अपणे स्वरूपविषे घूर्म रहता है, जैसे मरुस्थलकी धूपकी इच्छा पैंडोइ नहीं करता तैसे ज्ञानी विषयकी तृष्णा नहीं करता, जिसनें आत्मअनुभवरूपी अमृतपान किया है, तिसकों विषरूपी कांजीकी इच्छा नहीं रहती, उह पुरुष सदा निर्वासी है, जब यह पुरुष निर्वासी होता है, तब चंचल जो मनकी वृत्ति है सो सब लीन हो जाती है, केवल आत्मत्वमात्र पद रहता है, अरु मैं मेरा यह भावना नष्ट हो जाती है, जबलग चित्तका संबंध होता है, तबलग मैं मेरा भासता है, जब चित्तका संबंध मिट्या तब एकाकार होजाता है, जैसे एक सूका काष्ठ अरु एक गिल्ला काष्ठ होता है, सो सूका शुद्ध कहाता है, अरु गिल्ला उपाधिक कहाता है, जब जल सूकि गया, तब शुद्ध होता है, तैसे जब मनकी उपाधि नष्ट भई, तब शुद्ध आत्माही रहता है, अरु एकरस भासता है ॥ हे रामजी! संसार द्वितीय भ्रम करिके भासता है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे पुतली अनउपजी भासती है, सो न सत् है, न असत् है, जब पत्थरतें भिन्न करि देखियें, तब सत् नहीं, जो शिलाकरि देखियें तब उही रूप है, तैसे जगत् आत्मातें भिन्न सत्य नहीं, आत्मसत्तातें आत्मरूप है, जैसे छोटे बालकके हृदयविषे जगत्‌का शब्द अर्थ नहीं होता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा भी प्रारब्धवेग करिके होती है, परंतु उसके हृदयविषे जगत्‌के शब्द अर्थका अभाव है ॥ हे रामजी! जो कछु प्रारब्ध होती है, सो अवश्य उसकों भी आनि प्राप्त होती है, मिटती नहीं, शुभ अथवा अशुभ, जैसे मेघतें बुंदां गिरती हुई नष्ट नहीं होतियां, मेघ मंत्रशक्ति करिके नष्ट होता है, तैसे प्रारब्धकर्म नष्ट नहीं होता, अवर नष्ट होते हैं, परंतु उह तिनविषे बंधायमान नहीं होता, अज्ञानीके हृदयविषे संसार सत्य भासता है, अरु भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, पदार्थका ज्ञान है, अरु ज्ञानीके हृदयविषे आत्माका ज्ञान है, संसारकी सत्यता

तिसकों नहीं भासती ॥ हे रामजी ! यह जो समाधानरूपी वृक्ष मैं तुझकों कहा है, सो विधिसंयुक्त तिसकी सेवना करियें तौ अनुभवरूपी फल प्राप्त होता है, अरु बोधतें रहित होकरि करता है, तौ अनेक यत्नकरि भी फलकी प्राप्ति नहीं होती, काहेतें जो ऐसी भावना उसकों नहीं प्राप्त होती, जो आत्मशुद्ध है, अरु सत् चिद् आनंद है, अरु जिनकों यह भावना प्राप्त होती है, तिनकों भोगकी इच्छा नहीं रहती, जैसे किसीनें अमृतपान किया होता है, तब अवर अमल अरु कटुक फलकी वांछा नहीं करता, तैसे ज्ञानी इच्छा नहीं करता, जैसे रुईके पोवेकों अग्नि लगी, अरु उपरतें तीक्ष्ण पवन चला तौ नहीं जाणता जो कहां जाय पडा, तैसे जगत्रूपी रुईका पोवा ज्ञान अग्नीकरि दग्ध किया हुआ, अरु वैराग्यरूपी पवनकरि उडाया, नहीं जाणीता जो कहां जाय पडा, आकाशही आकाश भासता है, जगत् सत् नहीं भासता, तौ फिर तृष्णा किसकी करै, तृष्णातें रहित स्थित होता है ॥ हे रामजी! दुःखका मूल तृष्णा है, तृष्णाकरि भटकता है, जैसे पर्वतके पक्ष थे, तबलग उडते थे, पक्षविना उडणेतें रहित भये, गंभीर स्थिर हो रहे, तैसे जब मनतें वासना नष्ट हुई, तब मन स्थिर हो जाता है ॥ हे रामजी! पैंडोई वांछित देशकों तब जाय प्राप्त होता है, जब इतर देशका त्याग करता है, तैसे आत्मा शुद्ध स्वरूप परमानंद अपणा आप तब प्राप्त होता है, जब धन लोक पुत्र ईषणाका त्याग करै, जब आत्माकी प्राप्ति भई तब निर्विकल्प समाधिकरि निर्विकल्प चेतनका साक्षात्कार होता है, जब समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उत्थानकालविषे भी समाधिस्थित होता है, अरु परम निर्वाणपदकों प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी वल्ली दूर हो जाती है, जैसे रसडीकों वल होती है, तिसकों खैंचिकरि बहुरि छोडता है, तब उह सूधी हो जाती है, तैसे जिसकों समाधिविषे साक्षात्कार हुआ, तब उसकों उत्थानकालविषे भी उही भासता है, अरु जिसकों उसका प्रमाद है तिसकों जगत् भासता है ॥ हे रामजी! वस्तु एक है, परंतु तिसविषे दो दृष्टि हैं, जैसे जेवरी एक है, स

म्यक्दर्शीकों जेवरी भासती है, अरु असम्यक्दर्शीकों सर्प हो भासता है, तैसे ज्ञानवान्कों आत्मा भासता है, अरु अज्ञानीकों जगत् भासता है, जिस पुरुषनें ज्ञानकरि जगत्कों असत् नहीं जाण्या तिसकों ऐसे जाण जो चित्रकी अग्नि है, तिस करिके कोउ कार्य सिद्ध नहीं होता, न शीतही दूर होती है, अरु जिसकों स्वरूपकी इच्छा है, अरु तृष्णाके नाश करणेका प्रयत्न करता है, अरु जगत्कों मिथ्या विचारता है, सो विचार कियेतें आत्मपदकों प्राप्त होवैगा, अरु तृष्णा भी तिसकी निवृत्त हो जावैगी ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्की तृष्णा स्वाभाविक मिट जाती है, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार मिटि जाता है, तैसे वस्तुकी सत्ताकरि तिसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है, अरु परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी! जिसकों दृश्यविषे निरसता है, सो उत्तम पुरुष है, सो मनुष्यशरीरकों पायकरि ब्रह्म होता है, तिसकों मेरा नमस्कार है, उह मेरा गुरु है ॥ हे रामजी! जब इसकी बुद्धि विषयतें विरस हुई, तब कल्याण हुआ, वैराग्य करिके बोध होता है, अरु बोध करिके वैराग्य होता है, परस्पर दोनों संबंधी हैं, जब एक आता है, तब दूसरा भी आता है, जब यह आते हैं, तब तीनों ईषणा निवृत्त हो जातियां हैं, जब तीनों ईषणा गई तब अमृतकी प्राप्ति होती है, सो कैसे प्राप्ति होती है, श्रवण कर, संतका संग करणा, अरु सच्छास्त्रका श्रवण करणा, तिसकरि अपणे स्वरूपका अभ्यास करणा इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होती है, यह तीनों श्रेष्ठ परस्परही एक हैं, जैसे अष्ट चरणवाला कीट होता है, जो प्रथम चरणकों राखिकरि अवर चरणकों राखता है, तब सुखेन चल्या जाता है, तैसे संतके संग अरु सच्छास्त्रके श्रवणकरि आत्मपदका अभ्यास करता है, तब शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होता है, अरु जगत्का अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! जगत्के भाव अरु अभावकों ज्ञानी जाणता है, जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिकों तुरीयावाला जाणता है, तैसे जगत्के भावअभावकों ज्ञानी जाणता है, जैसे अग्निविषे सूका तृण डार्या दृष्ट नहीं आता, तैसे ज्ञानवान्कों जगत् दृष्ट नहीं

आता॥ हे रामजी! ज्ञानवानकों सर्वदा समाधि है, उत्थान कदाचित् नहीं होता, जबलग उस पदकों प्राप्त नहीं भया, तबलग साधनाविषे जुडता रहै, जब उस पदकों प्राप्त भया, तब फिरि यत्न कोउ नहीं रहता ॥ हे रामजी! इस चित्तके दो प्रवाह हैं, एक जगत्की उर जाता है, अरु एक स्वरूपकी उर जाता है, जो जगत्की उर जाता है सो उपाधिक है, अरु जो स्वरूपकी उर जाता है सो उपाधिकों दूर करणेहारा है, जैसे एक लकडी गिली होती है, अरु एक सूकी होती है, जो गिली है तिसविषे उपाधि जल है, तिस करि विस्तारकों पावती है, जब जल नष्ट हो जाता है, तब शुद्ध होती है, बहुरि प्रफुल्लित नहीं होती, तैसे संसारकी सत्यताकरि चित्त वृद्ध होता है, जब संसारकी वासना नष्ट होती है, तब शुद्ध पदकों पावता है ॥ हे रामजी! वाद जो करते हैं सो दो प्रकारके हैं, जो एक वाद किसीकों दुःख देवै सो मूर्ख करते हैं, अरु जो परस्पर निरूपणतत्त्वका मित्रभाव करिके करणा सो ज्ञानवान् करते हैं, जैसा वाद करता है तिसका दृढ अभ्यास करता है, तैसाहीरूप हो जाता है, जो कष्ट झगडा करता है तिसका उहीरूप हो जाता है, अरु जब स्वरूपका वाद मित्रता करिके करता है तब उहीरूप होता है, उस पदकों पायकरि परम शांतिकों प्राप्त होता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मनमृगोपाख्यानयोगोपदेशो नाम शताधिकपंचषष्टितमः सर्गः ॥ १६५ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पूर्वार्धम् ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्ध प्रारभ्यते ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषनें समाधानरूपी वृक्षके फलकों जानीकरि पान किया है, अरु तिसकों पचाया है, उसकों परम स्थिति प्राप्त होती है, जैसे पंख टूटेतें पर्वत स्थित हो रहे हैं, तैसे यह स्थित हो जाता है, तृष्णारूपी पंखके टूटेतें ॥ हे रामजी ! जब उसकों फल प्राप्त होता है, तब चित्त भी आत्मरूप हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब जाण्या नहीं जाता, जो कहां गया, तैसे आत्मपदके प्राप्त हुए चित्त भिन्न होकरि दिखाइ नहीं देता ॥ हे रामजी ! जबलग उह अकृत्रिम आनंद प्राप्त नहीं भया, अरु तिस पद विषे विश्रांति नहीं पाई, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, कैसा पद है, जो निर्गुण है, अरु शुद्ध है, स्वच्छ है, परम शांत है, जब तिस पदविषे स्थिति होती है, तब परम समाधि हो जाती है, ऐसा त्रिलोकीविषे कोउ नहीं जो तिसकों उतारै, जैसे चित्रकी मूर्त्ति होती है, तैसे उसकी अवस्था होती है, चेष्टा भी सब होती है, परंतु इच्छातें रहित है, जैसे पंखतें रहित पर्वत स्थित होता है, तैसे मन अमन हो जाता है, अरु शात पदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसके मनविषे संसारका अभाव हुआ है, सो शांत पदकों प्राप्त होता है, अरु जो वासनासंयुक्त है, तब मन है, जिस क्रम करिके अरु जिस युक्ति करिके इसकी वासना क्षय होवै, सो इसकों कर्तव्य है ॥ हे रामजी ! जब वासना क्षय होती है, तब बोधरूपी शेष रहता है, जिस क्रमकरि उह प्राप्त होवै, सोइ किया चाहिये, तिस पदके प्राप्त हुएविना शांति कदाचित् न होवैगी, जब चित्त तिस पदकी उर आवै, तब शात होवै, अरु दुःखतें रहित होवै, अरु अविनाशी होवै, काहेतें जो सर्व आत्म निर्विभाग है, अरु अंत है, परम शांतरूप है, सबकों कर्मका फल देणेहारा है ॥ हे रामजी ! जब ऐसे पदकों प्राप्त होता है, तब तिसकों उत्थानकालविषे आत्माही भासता है, उसकों द्वैत नहीं भासता, तब समाधितें उत्थान कैसे होवै, ऐसा कोउ समर्थ नहीं जो तिसकों समाधितें उतारै, जब ऐसा पद प्राप्त हो

ता है, तब संसार विरस हो जाता है ॥ हे रामजी! जबलग यह पुरुष मूर्त्तिवत् पुतली नहीं हुआ, तबलग विषयका त्याग करै, अरु जब ऐसी दशा हुई, तब कर्तव्य कछु नहीं रहता, जो त्याग करै अथवा न करै, अरु यह मेरे निश्चय है, जब ज्ञान इसकों उपजैगा तब विषयतें विरक्त हो जावैगा, ब्रह्मातें आदि काष्ठपर्यंत जेते कछु पदार्थ हैं, सो तिसकों विरस हो जाते हैं, ऐसा जो पुरुष है, तिसकों सदा समाधि है ॥ हे रामजी! जिसकों समाधिका सुख आया है, सो स्वाभाविक समाधिकी उर आता है, जैसे वर्षाकालकी नदी स्वाभाविक समुद्रकों जाती है, तैसे उह पुरुष समाधिकी उर लगा रहता है, जो पुरुष विषयतें अचाह हुआ है, अरु आत्मारामी भया है, तिसकी वज्रासारकी नांई स्थिति होती है, जैसे पंखतें रहित पर्वत स्थित हुए हैं, तैसे जिस पुरुषनें संसारकों विरस जाणीकरि त्याग किया है, अरु आत्माविषे क्रीडा आत्मा करि तृप्त हुआ है, तिसका ध्यान चलायमान नहीं होता ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकी चेष्टा भी होती है, अरु संकल्पविकल्पतें रहित है, सो सदा मुक्तिरूप है, तिसकों कोउ क्रिया बंधायमान नहीं करती, क्रिया अरु साधनाका अभाव हो जाता है, जिस पुरुषकों विषय जगत् विरस हो गया है, तिसकों विषयहूंकी तृष्णा कैसे होवै, जब तृष्णा न रही, तब दुःख कैसे होवै, दुःख तबलग होता है, जबलग विषयकी तृष्णा होती है, विषयकी तृष्णा तब होती है, जब अपणे स्वभावकों त्यागता है ॥ हे रामजी! जब अपणे स्वभावविषे स्थित होवै, तब पर स्वभाव जो है, इंद्रियके विषय सो रससंयुक्त कैसे भासै, दुःख अरु तृष्णा कैसे होवै ॥ हे रामजी! जब अपणे स्वभावकों जानता है, तब परम निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, जो आदि अरु अंततें रहित पद है, तिसकों पावता है, सो तिसका उपाय श्रवण कर, वेदका अध्ययन करणा अरु प्रणवका जप करणा, जब इनतें थकै तब समाधि जो है चित्तकी वृत्तिका रोकणा, सो रोकै, जब बहुरि थकै, तब उही जाय पाठ करै, जब ऐसे दृढ अभ्यास होवै, तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जो

संसारके पार गवनका मार्ग है, जब तिसकों पाया, तब परम शांतिकों प्राप्त होवैगा अरु स्वच्छ निर्मल अपणे स्वभावविषे स्थित होवैगा ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वभावसत्तायोगोपदेशो नाम शताधिकषट्षष्टितमः सर्गः ॥ १६६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी! यह संसार बडा गंभीर है, जो तरणा कठिन है, जिसकों तरणेकी इच्छा होवै तिसकों यह कर्तव्य है, जो वेदका अध्ययन, अरु प्रणवका जाप, अरु चित्तकों स्थिर करणा, जब ऐसे उपाय करै, तब ईश्वर इसपर प्रसन्न होवैगा, तब इसके हृदयविषे विवेकका कणका उत्पन्न होवैगा, तिस करिके संसार असत्य भासैगा, अरु संतजनोंका संग प्राप्त होवैगा, सो संतजन कैसे हैं, शुभ आचार है जिनका, अरु परम शीतल हैं, अरु गंभीर उंचे अनुभवरूपी फलसंयुक्त वृक्ष हैं, अरु यश कीर्ति शुभ आचाररूपी फूल अरु पत्रोंसहित हैं, ऐसे संतजनकी संगति जब प्राप्त होती है, तब जगत्के रागदोषरूपी तम मिटि जाता है, जैसे पैंडोईके सीस उपर भार होवै, अरु तप्तताकरि दुःखी होवै, अरु शीतल छाया वृक्षकी तिसकों प्राप्त होवै, तव शीतल होता है, अरु फलके भक्षणेकरि तृप्त होता है, तब थकेका कष्ट दूर हो जाता है, तैसे संतके संग करि सुखकों प्राप्त होता है, जैसे चंद्रमाकी अमृत किरणांकरि शीतल होता है, तैसे संतजनके वचनोंकरि शांति होती है ॥ हे रामजी! संतजनके दर्शन कियेतें पाप दग्ध हो जाता है, अरु जो पुरुष तप यज्ञ व्रत सकाम करते हैं, तिनकी संगति न करियें, उह कैसे हैं, जैसे यज्ञका स्तंभ होता है, सो पवित्र भी होता है, परंतु उसकी छाया कछु नहीं, तातें उसके नीचे सुख कोउ नहीं पावता ॥ हे रामजी! जेते कछु सकाम कर्म हैं, सो जन्ममरणकों देणेहारे हैं, यद्यपि यज्ञ व्रत तप जिज्ञासी भी करते हैं, तौ भी उनहूतें विशेष हैं, काहेतें जो निष्काम हैं, अरु विषयविषे तिनकों विरसभावना है, अरु तिनका शुभ आचार है ॥ हे रामजी! ऐसे जिज्ञासीकी संगति विशेष है, जिसकी चेष्टाकों सब कोउ स्तुति करते हैं, अरु सबकों सुखदायक भासता है,

अरु नवनीत कोमल सुंदर अरु स्निग्ध होता है, ऐसा जिज्ञासी होता है, तिसकों संतकी संगति प्राप्त होती है॥ हे रामजी! फूलके बगीचे अरुसुंदर फूलकी शय्या आदिक विषयतें ऐसा निर्भय सुख प्राप्त नहीं होता, जैसा निर्भय सुख संतकी संगतिकरि प्राप्त होता है, अरु तिनका सदा आत्मविषे निश्चय रहता है॥ हे रामजी! ऐसे ज्ञानवान्‌की संगति करिके इसकों आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, परंतु जब हृदय शुद्ध होता है, जबलग हृदय मलिन है, तबलग नहीं प्राप्ति होती, जैसे उज्वल आरसी प्रतिबिंबकों ग्रहण करती है, अरु लोहेकी शिला प्रतिबिंबकों ग्रहण नहीं करती, तैसे जब इसका हृदय उज्वल होता है, तब संतके वचन इसके हृदय विषे ठहरते हैं, जैसे वर्षाकालका बादल थोडेतें बहुत हो जाता है, जब इसका हृदय शुद्ध होता है, तब बुद्धि बढती जाती है, जैसे वनविषे केलेका वृक्ष बढता जाता है, तैसी बुद्धि बढती जाती है, जब आत्मविषयिणी बुद्धि होती है, तब उहीरूप हो जाती है, बुद्धिकी भिन्न संज्ञाका अभाव हो जाता है, जैसे लोहेकों पारसका स्पर्श होता है, तब सुवर्ण हो जाता है, बहुरि लोहेकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे आत्मपदकी प्राप्ति हुए बुद्धिकी संज्ञा नहीं रहती, अरु विषयभोगकी तृष्णा भी नहीं रहती॥ हे रामजी! इसकों दीन जो किया है, सो विषयकी तृष्णाअभिलाषानें किया है, जब तृष्णाका त्याग किया, तब परमनिर्मलताकों प्राप्त होता है, जैसे हस्ती शिरपर मृत्तिका डारता है, तबलग मलिन है, अरु जब नदीविषे प्रवेश किया, तब निर्मल हो जाता है, तैसे जब तृष्णारूपी राखका त्याग किया, अरु आत्माविषे स्थित भई, तब निर्मल होता है॥ हे रामजी! जब भोगकी इच्छा त्यागी, तब बडी शोभाकों धारता है, जैसे सुवर्ण अग्निविषे पाया, तब मैल जलि जाती है, अरु उज्वल रूपकों धारता है॥ हे रामजी! भोगरूपी बडा विष है, तिसकों दिनदिन विषे त्याग करणा विशेष है, जब तृष्णाका त्याग करता है, तब मुख भी बडी शोभाकरि शोभता है, जैसे राहु दैत्यतें रहित हुआ चंद्रमाका मुख शोभा पावता है, तैसे तृष्णाके वियोग हुए पुरुषका मुख शोभता

है ॥ हे रामजी! जब इसकों भोगते वैराग्य होता है, तब दो पदार्थकी प्राप्ति होती है, जैसे नूतन अंकुरके दो पत्र होते हैं, तैसे एक संतकी संगति अरु एक सच्छास्त्रका विचार प्राप्त होता है, अरु तिनविषे दृढ भावना होती है, तब अभ्यास करिके उहीरूप होता है, अरु परमानंदरूप होता है, जिसकों वाणीकी गम नहीं तब भोगकी इच्छातें मुक्त होता है, अरु परम शांति सुखकों पावता है, जैसे पिंजरेसों निकसीकरि पक्षी सुखी होता है, तैसे सुखी होता है ॥ हे रामजी! इसकों भोगकी इच्छानें दीन किया है, जब इच्छा निवृत्त होती है, तब गोपद्की नांई संसारसमुद्रकों लंघि जाता है, अरु तीनों जगत् सूके तृणकी नांई भासते हैं ॥ हे रामजी! जब भोगकी इच्छा त्यागी, तब यह ईश्वर हुआ, जिस पुरुषकों आत्मसुख प्राप्त हुआ है, सो भोगकी इच्छा कदाचित् नहीं करता, जब आनि प्राप्त होते हैं, तब भी उसकों विरस भासते हैं, अरु मिथ्या भासते हैं, तातें भोगकों नहीं चाहता, जैसे जालतें निकस्या हुआ पक्षी बहुरि जालकों नहीं चाहता, तैसे उह पुरुष भोगकों नहीं चाहता, जब विषयकी तृष्णा निवृत्त होती है, तब परम शोभाकों धारता है, संतका वचन उसकों शीघ्रही प्रवेश करता है ॥ हे रामजी! मोक्षरूपी स्त्री है, अरु तिसके कानके भूषण संतकी संगति है, जब साधुकी संगति होती है, तब अशुभ क्रियाका त्याग हो जाता है, अरु विराने धनकी इच्छा नहीं रहती, अरु जो कछु अपणा होता है, तिसके भी त्यागणेकी इच्छा करता है, अरु भले भोग जो पावणेनिमित्त आते हैं, तिनकों विभाग देकरि खाता है, जो कछु होता है, तिसविषे भी देकरि खाता है, बडे उत्तम भोगतें लेकरि सागपर्यंत देकरि खाता है, यथाशक्ति प्रमाण जब यह ऐसे हुआ, तब फेर ऐसे हो जाता है, जब कोउ शरीर मागे, तब शरीर भी देता है, काहेतें जो देणेका अभ्यास हो जाता है, अरु लोकतें साग मागणेकी इच्छा भी नहीं रखता, तिसकरि संतोषसाथ यथाप्राप्त चेष्टा करता है, तप करता है, दान करता है, यज्ञ व्रत ध्यानकरि पवित्र रहता है, अरु तृष्णाका त्याग किया है ॥ हे रामजी! ऐसा दुःख क्रूर नरकविषे

भी नहीं, जैसा दुःख तृष्णा करिके होता है, अरु जो धनवान् हैं, तिनकों धनकी चिंता बहुत रहती है, उपजावणेकी चिंता है, अरु राखणेकी चिंता है, उठते बैठते खाते पीते चलते सोते सदा धनकी चिंता रहती है, इसही चिंताविषे मचि मचि मरि जाते हैं, बहुरि जन्मते हैं ॥ हे रामजी! निर्धनकों भी चिंता रहती है परंतु थोडी होती है, जबलग चिंता रहती है, तबलग दुःखी रहता है, जब चिंता नष्ट हुई, तब परम सुखी होता है ॥ हे रामजी! यद्यपि धनी होवै, अरु संतोष नहीं, तब परम दरिद्री है, अरु जब धनतें हीण है, परंतु संतोष है, तब परम ईश्वर है, जिसकों संतोष है, तिसकों विषय बंध नहीं करि सकते ॥ हे रामजी! जबलग धनकी इच्छा नहीं करी, तबलग इसकों भोगरूपी विष नहीं लगता, जब धनकी इच्छा उपजी, तब परम विष इसकों स्पर्शकरि जाती है, इसकों विपरीत भावनाविषे दुःख होता है, जो दुःखदायक पदार्थ हैं, तिनकों सुखदायक जानता है ॥ हे रामजी! जो कछु अर्थ है, सोई अनर्थ है, जिसकों इसनें संपदा जानी है, सो आपदा है, जिनकों इसनें भोग जान्या है, सो सब रोगरूप हैं, इनकों संपदा जाणीकरि विचरता है, इसकरि बडा दुःखी होता है ॥ हे रामजी! रसायण सब दुःखका नाश करता है, परंतु यह देवताके पास होती है, अरु जब इसकों अमृत चाहियें, तब संतोष परम रसायण है, जब विषयविषे दोषदृष्टि हुई, अरु संतोषकों धारा, तब मूर्खता इसतें दूर हो जाती है, अरु गोपदकी नांई संसारसमुद्रकों शीघ्रही तरि जाता है, जैसे गोपदकों सुगमही लंघ्या जाता है, तैसे संसारसमुद्रकों सुगम तारि जाता है ॥ हे रामजी! जिसकों संतोष प्राप्त होता है, तिसकों परम शांति होती है, अरु वसंत ऋतु भी सुखका स्थान है, नंदन वन भी सुखका स्थान है, उर्वशी आदिक अप्सरा होवैं, चंद्रमा विद्यमान बैठा होवै, कामधेनु विद्यमान होवै, जो यह सब इंद्रियांके सुख हैं, सो सब विद्यमान होवैं, तो भी शांति न होवैगी, परंतु एक संतोषकरि शांति होवैगी, तिसकों यह विषय चलाय नहीं सकते ॥ हे रामजी! जैसे अरघ भरि

भरि पायेतें तलाव भर्या नहीं जाता, अरु जब मेघजलकी वर्षा होवै, तब शीघ्रही भर्या जाता है, तैसे विषयके भोगकरि शांति नहीं होती, अरु संतोषकरि पूर्ण आनंदकी प्राप्ति होवैगी, अरु संतोषकरि इसकों ओज प्राप्त होवैगा, कैसा प्राप्त होवैगा, जो गंभीर अरु निर्मल अरु शीतल अरु हृदयगम्य अरु सबका हितकारि ऐसा ओज संतोषी पुरुषकों प्राप्त होता है, और जो ओज हैं, सो सात्विकी राजसी तामसी होते हैं, अरु यह जो है, सो शुद्ध सात्विकी है, जिस पुरुषकों संतोष हुआ है, सो ऐसे शोभता है, जैसे वसंत ऋतुका वृक्ष फलफूलपत्रोंकरि शोभा पावता है, अरु जिसकों तृष्णा है, सो कैसा है, जैसे चरणके नीचे आया कीट मर्दन होता है ॥ हे रामजी! जिसकों तृष्णा है, तिसकों संतोष शांति कदाचित् नहीं, जैसे जलविषे तृणोंका पूला पाया, अरु ऊपर तीक्ष्ण पवन चल्या, तब बडे क्षोभकों प्राप्त होता है, तैसे तृष्णावान् पुरुषकों क्षोभ होता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष अर्थके निमित्त सदा इच्छा करता है, सो अग्निविषे प्रवेश करता है, अर्थ यह जो सर्वदा काल तपता रहता है, जैसे गर्दभ विष्ठाके स्थानविषे प्रवेश करता है, तैसे तृष्णावान् विषयरूपी स्थानविषे प्रवेश करता है सो गर्दभ है, जैसे गर्दभसाथ स्पर्श करणा योग्य नहीं तैसे तृष्णावान् गर्दभसाथ स्पर्श करणा योग्य नहीं ॥ हे रामजी! यह संसार मिथ्या है, इस संसारके पदार्थकों चाहते हैं, सो भी मूर्ख हैं, अरु इस जगत्का अधिष्ठान है सो इसकों तब प्राप्त होता है, जब निर्वासनिक होता है, जब निर्वासनिक हुआ, तब संतोषकों प्राप्त होता है, तब ऐसा होता है, जैसा तारेविषे चंद्रमा शोभा पावता है, तातें इच्छा नाश करणेका उपाय करौ ॥ हे रामजी! जब इच्छा नष्ट होगई अरु संतोषरूपी गंभीरता प्राप्त भई, अरु द्वैतकलना मिटि गई, तब इसीकों परमपद पंडित कहते हैं, सो यह पद कैसे प्राप्त होता है श्रवण करु ॥ हे रामजी! जब इसकों संसारतें वैराग्य होवै, अरु संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके अर्थ हैं, इनविषे दृढभावना होवै, जब आत्माविषे दृढभावना भई, तब ज

गत् विरस हो जाता है, अर्थ यह जो जगत् असत्य भासता है, अरु हृदयविषे शाति होती है, अरु स्वाभाविक आपकों ब्रह्म जानणे लगता है, परिच्छिन्नता मिटि जाती है, जबलग आपकों परिच्छिन्न जानता था, तबलग सब दुःखका अनुभव करता था, जब संतकी संगति अरु सच्छास्त्रकरि जगत् विरस हुआ, तब परम पदकों प्राप्त होता है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपदेशो नाम शताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः ॥ १६७ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो क्रम है सो जब संसारतें वैराग्य होता है, तब संतकी संगति होती है, बहुरि शास्त्रका श्रवण होता है, तब संपूर्ण जगत् विरस हो जाता है, जब जगत् विरस हुआ अरु आत्माविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब अपणी स्वभावसत्ता प्रकाशी आती है, जब उसी स्वभावसत्ताविषे स्थित हुआ, तब परमानंदकी प्राप्ति होती है, जिसविषे वाणीकी गम नहीं ॥ हे रामजी! जब यह अवस्था प्राप्त हुई, तब मन अमन हो जाता है, अरु अर्थकी तृष्णा नहीं रहती, अरु जो अपणेपास होता है, तिसकों राखणेकी इच्छा नहीं करता, सहज त्याग हो जाता है, अरु पुत्र धन स्त्रीयादिक सब विरस हो जाते हैं, यद्यपि इनके बीच भी रहता है तौ भी इनविषे अहं मम अभिमान नहीं करता, जैसे पैंडोई किसी मार्गविषे आनि उतरता है, अरु मार्गवालेसाथ कछु संबंध नहीं राखता, तैसे किसी विषयसाथ नहीं रखता, अरु जो अनिच्छित इंद्रियके सुख आनि प्राप्त होते हैं, तिनविषे रागदोष नहीं करता, जैसे किसी पत्थरकी शिलापर जल चल्या जाता है, तिसकों रागदोष कछु नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्कों रागदोष किसीविषे नहीं होता ॥ हे रामजी! उसके शरीरकी यह स्वाभाविक अवस्था हो जाती है, जो एकांतकों चाहता है, अरु वन कंदराविषे रहणेकी इच्छा करता है, अरु अज्ञानके जो स्थान हैं, स्त्री अरु भोगके स्थान अरु रागदोषके स्थान इष्ट अनिष्ट सो दैवसंयोगतें मुमुक्षुकों आनि प्राप्त भी होते हैं, तौ भी शीघ्रही तिसकों त्यागि देता है ॥ हे रामजी! जब बीज क्षेत्रविषे बोवणा होता है, तब तिस

के आगे जो बूंटा कंटा होता है सो खहिसाथ काटि दूर करता है, तब खेत अच्छा सुंदर फलता है, तैसे जिस पुरुषकों मनरूपी क्षेत्रविषे अनुभवरूपी फल देखणा होवै सो इच्छारूपी कंटकों बूटेकों अनिच्छारूपी खहिसाथ काटै, अरु संतोषरूपी बीजकों बोवै, तब क्षेत्र भी सुंदर फलैगा ॥ हे रामजी! जब अनुभवरूपी फल इसकों प्राप्त भया, तब यह पुरुष सूक्ष्मतें सूक्ष्म हो जाता है, अरु स्थूलतें भी स्थूल हो जाता है, अरु सर्व आत्मा होकरि स्थित होता है ॥ हे रामजी! जब चित्त अदृश्य होता है, तब द्वैतभावना मिटि जाती है, जब द्वैतभावना मिटि, तब चित्त अदृश्यकों प्राप्त होता है, तिस चित्तकों जो उपशमका सुख होता है, सो वाणीकरि कहा नहीं जाता, तिसका नाम निर्वाण पद तब प्राप्त होता है, जब ईश्वरकी भक्ति करता है, अरु जब दिन रात्रि चिरकालपर्यंत भक्ति करता रहता है, तब ईश्वर प्रसन्न होता है, अरु इसकों निर्वाण पदकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ, उह कवन ईश्वर है, अरु उसकी भक्ति क्या है, जिसकरि प्रसन्न होता है, अरु निर्वाण पदकों प्राप्त करता है सो तत्त्व कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ईश्वर दूर नहीं, अरु उसविषे भेद भी कछु नहीं, अरु दुर्लभ भी नहीं, काहेतें जो अनुभव ज्योति है, अरु परम बोधस्वरूप है, बहुरि कैसा है, सर्व जिसके वश हैं, अरु जो सर्व है, अरु जिसतें सर्व है; तिस सर्वात्माकों मेरा नमस्कार है ॥ हे रामजी! जो कोउ पूजता है, जप मंत्र तप दान होम जो कछु कोउ करता है सो सर्वही उसकों पूजते हैं, देवता दैत्य मनुष्य जो कछु स्थावर जंगम जगत् है सो सब उसीकों पूजते हैं, अरु सर्वकों फल देणेहारा उही है, उत्पत्ति अरु प्रलयविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब उसीकरि सिद्ध होते हैं, ऐसा ईश्वर है, जब तिस ईश्वरकी प्रसन्नता होती है, तब अपणा एक दूत भेजता है, सो कैसा दूत है, जो शुभ क्रिया सब उसीविषे पाइती हैं, अरु अतिपवित्र है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ईश्वर जो अद्वैत आत्मा है, अरु शुद्ध ब्रह्म है, तिसका दूत कवन है, अरु कैसे आता है, सो मुझे कहो? ॥

विवेकदूत.

॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ईश्वर जो परम देव है, तिसका दूत विवेक है, अरु हृदयरूपी गुफाविषे आनि उदय होता है, जब उदय होता है, तब परम शोभाकों प्राप्त करता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुए आकाश शोभा पावता है, तैसे उह पुरुष शोभा पावता है॥ हे रामजी! जब विवेकरूपी दूत आता है, तब इसकों संसारतें पवित्र करता है, पवित्र करिके देवके निकट ले जाता है, प्रथम वासनारूपी मैलसाथ भर्या था, अरु चिंतारूपी शत्रुनें बांध्या था, जब विवेकरूपी दूत आता है, तब चित्तरूपी शत्रुकों मारता है, अरु वासनारूपी मैलकों नाश करिके देवके निकट ले जाता है, जब इसकों तिस देवका दर्शन होता है, तब परमानंदकों प्राप्त होता है, बडा सुख पावता॥ हे रामजी! संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे मृत्युरूपी घुमरघेर हैं, अरु तृष्णारूपी लहरी तरंग हैं, अज्ञानरूपी जल है, अरु इंद्रियांरूपी तंदुए हैं, तिस समुद्रविषे यह जीव पडे हैं, जब विवेकरूपी नौका अकस्मात् इसकों प्राप्त होती है, तब यह संसारसमुद्रतें पार होता है॥ हे रामजी! यह जीव प्रमाद करिके जडताकों प्राप्त हुए हैं, जैसे जल शीतलता करिके गडेकी संज्ञाकों पावता है, तैसे प्रमाद करिके यह जीवत संज्ञाकों पावता है, अरु वासनाके साथ आवर्या गया है, जब अंतर्मुख होता है, तब उस देवके सन्मुख होता है, तब उह देव प्रसन्न होता है, सो कैसा देव है, सहस्र सीस हैं जिसके, अरु सहस्र जिसके पाद हैं, अरु सहस्र भुजा हैं, अरु सहस्र नेत्र हैं, अरु सहस्र कर्ण हैं, अरु सर्व चेष्टाका उही कर्त्ता है, देखता सुणता बोलता चलता उही है, अरु अपणे स्वभावसत्ताकरि प्रकाशता है, जैसे सब घटविषे चलणाशक्ति पवनकी है, तैसे प्रकाशशक्ति देवकी है, जब तिसके सन्मुख अंतर्मुख होता है, तब विवेकरूपी दूत भेजता है तब इसकों संतकी संगति होती है, अरु सच्छास्त्रका श्रवण होता है, तिनके अर्थविषे दृढ भावना होती है, तब विवेकरूपी दूत इसकों अदृश्यताविषे प्राप्त करता है, अरु शून्य हो जाता है, बहुरि शून्यकों भी त्यागिकरि बोधमात्रविषे स्थित होता है, तब पूर्ण आनंद इसकों प्राप्त होता है॥ हे रामजी! यह पुरुष आनंदस्वरूप है, अरु

यह विश्व भी अपणा आप है, परंतु अज्ञान करिके भिन्न पडी भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, अरु मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु आकाशविषे तरवरे भासते हैं भ्रांति करिके, तैसे भ्रांति करिके जगत् भासता है, अरु भूतके अंतर बाहिर अध ऊर्ध्व सब ब्रह्मदेवही व्यापी रहा है, स्थावर जंगम जेता कछु जगत् भासता है, सो सब उसी आत्मतत्त्वके आश्रय फुरता है, तातें उही स्वरूप है, अरु सर्वकों उही धारी रहा है, जैसे सर्व भूषणोंकों सुवर्ण धारी रहा है, तैसे सर्व शब्द अर्थकों उही धारी रहा है, उही ईश्वर ब्रह्म है, गंभीर साक्षी आत्मा ॐकार प्रणव सब उसीके नाम हैं, जब ऐसे ईश्वरकी कृपा होती है, तब अंतर्मुख होता है, अरु शुद्ध निर्मल होता है ॥ हे रामजी! जब इसका हृदय शुद्ध होता है, तब आत्मपदकी उर इसकी भावना होती है, जो सर्व आत्मा है, जब यह भावना होती है; सो यही भक्ति है, तब उह ईश्वर कृपा करिके विवेकरूपी दूत भेजता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विवेकदूतवर्णनं नाम शताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ १६८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

॥ हे रामजी! जब इसकों विवेककी दृढता हुई, तब परम पदकों प्राप्त होता है, जो चैत्यतें रहित चेतनघन है, अरु चैत्यका संबंध टूटि जाता है, जब चैत्यका संबंध टूटा, तब विश्वका क्षय हो जाता है, जब विश्वक्षय भया, तब वासना भी नहीं रहती ॥ हे रामजी! यह जगत् भी इस फुरणेविषे है, जब शुद्ध चेतनविषे चैत्योन्मुखत्व भया, तब इसका मनोमात्र शरीर होता है, जिसकों अंतवाहक कहते हैं, अरु जब वासनाकी दृढता भई, तब अधिभूत भासणे लगता है, जैसे स्वप्नविषे अपणां शरीर भासता है, तैसे अपणेविषे शरीर देखणे लगता है ॥ हे रामजी! इसकों उत्थानही अनर्थका कारण है, जब यह चैत्य होता है, तब इसकों अनर्थकी प्राप्ति होती है, मैं मेरा इत्यादिक जगत् भासी आता है, जब यह होवै नहीं, तब जगत् भी न होवै, इसके होणेकरि जगत् भासता है, तातें मेरा यही आशीर्वाद है, जो तूं

चेतनतातें शून्य होवै, अहंतारूपी चेतनतातें रहित अपणे बोधविषे स्थित रहै ॥ हे रामजी! इस मनतें जगत् हुआ है, सो मन अरु जगत् दोनों मिथ्या हैं, रूप अवलोकन मनस्कार तीनोंका नाम जगत् है, सो मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या शून्य है, जब इनका अभाव हुआ, तब शून्य भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र चेतन होता है ॥ हे रामजी! दृश्य दर्शन द्रष्टा यह तीनों भावनामात्र हैं, जब यह होते हैं, तब जगत् भासता है, अरु जब अहंताका अभाव हुआ, तब आत्मपद शेष रहता है, जैसे स्वर्णविषे भूषण होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, वासना करिके दृश्य भासती है, सो वासना मनतें फुरी है, अरु मन अज्ञान करिके हुआ है, जब मन अमनपदकों प्राप्त होता है, तब दृश्य सब एकही रूप हो जाती है, जबलग वासना उठती है, तबलग मनविषे शांति नहीं होती, जैसे कोउ पुरुष भंवरी लेता है, तब बल चढते जाते हैं, अरु जब ठहरता है, तब उह बल उतरी जाते हैं, तैसे जबलग चित्त वासना करिके भ्रमता है, तबलग जन्मरूपी बल चढते जाते हैं, अरु जब चित्त ठहरता है, तब जन्मका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! जबलग चित्तका दृश्यसाथ संबंध है, तबलग कर्मतें नहीं छूटता, जब चित्तका दृश्यतें संबंध टूटै, तब शुद्ध अद्वैतपदकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जब शुद्ध चिन्मात्रविषे उत्थान होता है, तब तिसका नाम चैत्योन्मुखत्व होता है, उही अहंता दृश्यकी उर फुरती जाती है, तब प्रमाद हो जाता है, अरु जडता होती है, जैसे जल गडा हो जाता है, तैसे चित्तशक्ति प्रमाद करिके जड हो जाती है, जब दृढ वासनाकों ग्रहण करती है, तब अंतवाहकतें अधिभूतक शरीर अपणा दृष्टि आता है, बहुरि पृथ्वी आदिक भूत भासणे लगते हैं, ज्यौं ज्यौं चित्तशक्ति बहिर्मुख फिरती जाती है, त्यौं त्यौं संसार होता जाता है, जब फुरणेतें रहित होकरि अपणे स्वरूपकी उर आती है, तब अपणा आपही भासता है, अरु द्वैत मिटि जाता है, तब परमानंद अद्वैतपद भासता है, जब पूर्ण बोध हुआ, तब द्वैत अरु एक संज्ञा भी जाती रहती है, केवल आ

त्ममात्र शुद्ध चैतन्य रहता है, तब ईश्वरसाथ एकता होती है, जगत्की भास चलती रहती है, जब तिस पदकी प्राप्ति होती है, तब दृश्यका अभाव हो जाता है, काहेतें जो जगत् भावनामात्र है, जैसे भविष्य कालका वृक्ष आकाशविषे होवै, तैसे यह जगत् इसका अत्यंत अभाव है, कछु बन्या नहीं, भ्रांति करिके भासता है॥ हे रामजी! मेरे वचनोंका अनुभव तब होवैगा, जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा, तब यह वचन हृदयविषे आनि फुरैंगे, जैसे कथावालेके हृदयविषे कथाके अर्थ आनि फुरते हैं, तैसे यह वचन आनि फुरैंगे॥ हे रामजी! जबलग यह मन फुरता है, तबलग जगत्का अभाव नहीं होता, जब मन उपशम होवै, तब जगत्का अभाव होता है, जैसे स्वप्नकों स्वप्न जानता है, तब बहुरि स्वप्नके पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जबलग सत्य जानता है, तबलग इच्छा करता है॥ हे रामजी! यह जीव वासनाके आवरे हुए हैं, जब वासना क्षय होवै, तब इसीका नाम ज्ञान है, अज्ञानरूपी भूत इनकों लगा है, तिसकरि उन्मत्त होणेकरि जगत् भासता है, अरु जगत्के भासणेकरि नानाप्रकारकी वासना दृढ हो गई है, तिसकरि दुःख पावता है, जब यह चित्त उलटीकरि अंतर्मुख होवै, अरु दृढ भावना आत्माविषे करै, जब ज्ञानरूपी मंत्र इसकों प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूपी भूत चलता रहता है॥ हे रामजी! अनुभवरूपी कल्पवृक्ष है, जैसी भावना इसविषे होती है, तैसा भान होता है॥ हे रामजी! प्रथम इसका शरीर अंतवाहक था, अरु अपणा स्वरूप भूला न था, आपकों आत्माही जानता था, अरु जगत् अपणा संकल्पमात्र भासता था, तिसका नाम अंतवाहक है, जब उस संकल्पविषे दृढ भावना हुई, तब अधिभूत भासने लगा, जब तिसविषे दृढ भावना हुई, तब देह इंद्रियां सब अपणेविषे भासणे लगे, जब अपणेविषे भासै, तब इनके सुखदुःखकों जानणे लगा, जब जगत्के सुखदुःख इसकों भासै तब सर्व आपदा इसकों आय प्राप्त हुई, वास्तवतें न कोउ सुख दुःख है, न जगत् है, केवल भावनामात्र है, जैसी चित्तकी भावना होती है, तैसेही आगे भासता है॥ हे रामजी! जब यह भावना उलटीकरि अंतर्मु

ख आत्माकी उर परिणाम होवै, तब एकही बोधका भान होवै, जब एक बोधका भान इसकों हुआ, तब द्वैत सब मिटि जाता है ॥ हे रामजी ! आत्माविषे अंतवाहक भी नहीं, इह जो शंभु ब्रह्मा है, सो भी बोधस्वरूप हैं, जब बोधतें इतर अंतवाहक कछु होता, तब भासता, सो बोधतें इतर कछु पाइता नहीं, अंतवाहक भी तिसीकरि है, अंतवाहक कहियें जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्योन्मुख हुआ है, अरु चित्तशक्ति फुरी है, तब तिसकों पंचतन्मात्राका संबंध हुआ, यही जड चेतन ग्रंथि है, चेतन है, चित्तशक्ति अरु जड है, पंचतन्मात्रा, इनका एकठा होणा इसका नाम अंतवाहक शरीर है, जब यह भी आत्माविषे कछु हुआ होता, तब यह वचन न होते, तातें चिन्मात्र है, बन्या कछु नहीं, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है ॥ हे रामजी ! दूसरा कछु बन्या नहीं, भ्रम करिके द्वैत भासता है, जैसे कोई पुरुष शयन करता है, अरु स्वप्न भ्रम करिके तिसकों द्वैत भासता है, तैसे यह जाग्रत भी भ्रांति करिके भासता है, कछु है नहीं ॥ हे रामजी! जड है नहीं, तब इच्छा किसकी करता है, एता सुख इंद्रियांके इष्ट भोगतें नहीं होता, जेता कछु सुख इनके त्यागणेतें होता है ॥ हे रामजी ! एक यज्ञ है, जिसके कियेतें पुरुष परमपदकों प्राप्त होता है, सो यज्ञ तब होता है, जब एक स्तंभ गाडीता है, तिसके नीचे बल करता है, जब यज्ञकरि रहता है, तब सर्व त्याग करता है, तब इसकों फलकी प्राप्ति होती है, इस क्रम कियेविना यज्ञ सफल नहीं होता, सो स्तंभ क्या है, अरु बल क्या है, अरु यज्ञ क्या है, अरु त्याग क्या है, अरु फल क्या है, सो श्रवण करु ॥ हे रामजी ! ध्यानरूपी स्तंभ करै जो आत्मपदका सदा अभ्यास होवै, अरु तृष्णारूपी तिसके आगे बल करै, अरु ज्ञानरूपी यज्ञ करै, जो, आत्माके विशेषण वेदशास्त्रविषे कहे हैं, नित्य वेद शुद्ध है, बोधरूप है, अद्वैत है, निर्विकल्प है, देह इंद्रियां प्राण आदिकतें रहित है, ऐसे जानणेका नाम ज्ञान है, सो यही यज्ञ है, ध्यानरूपी स्तंभ करिके, अरु तृष्णारूपी बल करिके, अरु मनरूपी दृश्यकों जानीकरि यह यज्ञ पूर्ण होता है, जब ऐसा यज्ञ हुआ, तब

तिसके पाछे दक्षणा भी करियें, तब यज्ञफल होवै, जो सर्व देणा यह दक्षणा है, सो क्या सर्वस्व है, अहंकार त्याग करणा सर्वस्व त्याग है, जब सर्वस्व त्याग किया, तब यज्ञ सफल होता है, इसका नाम विश्वजित यज्ञ है, जब इस प्रकार यज्ञ हुआ, तब इसका फल भी होता है, सो फल क्या है, यद्यपि अंगारकी वर्षा होवै, अरु प्रलयकालका पवन चलै, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व नाश होवैं, तब ऐसे क्षोभविषे भी चलायमान नहीं होता, यह फल इसकों प्राप्त होता है, जो कदाचित् स्वरूपतें नहीं गिरता, यह शत्रु नाश वज्र ध्यान है॥ हे रामजी! अहंताका त्याग करणा यह सर्वतें श्रेष्ठ त्याग है, जो कार्य अहंताके त्याग कियेतें होता है, सो अवर उपायकरि नहीं होता, तप दान यज्ञ दमन उपदेश इन उपाधिहुंतें भी अहंताका त्याग करणा बडा साधन है, सर्व साधन इसके अंतर्भूत होते हैं॥ हे रामजी! जब तूं अहंताका त्याग करैगा, तब अंतर बाहिर तुझकों ब्रह्मसत्ताही भासैंगी, द्वैतभ्रम संपूर्ण मिटि जावैगा॥ हे रामजी! मनके सर्व अर्थरूपी तृणोंकों ज्ञानरूपी अग्नि लगाइयें अरु वैराग्यरूपी वायुकरि जगाइयें, तब इन तृणोंकों भस्म करि डारै तब तूं परम शांतिकों प्राप्त होवैगा, मनके जलावणेकरि परम संपदा प्राप्त होती है, इसतें इतर सब आपदा है, मन उपशमविषे कल्याण है, यह जो अंतर बाहिर पदार्थ भासते हैं नानाप्रकारके, सो मनके मोहतें उत्पन्न हुए हैं, जब मन उपशमकों प्राप्त होवै, तब नानाप्रकार जो भूतकी संज्ञा है, मनुष्य पशु पक्षी देवता पृथ्वी आदिक सो सब आकाशरूप हो जाते हैं॥ हे रामजी! यह सर्व ब्रह्म है, ज्ञानीकों एकसत्ता भासती है, दूसरा कछु अवर बन्या नहीं, भ्रमकरिके जगत् भासता है, अरु तिसविषे नानाप्रकारकी वासना हुई है, अपणी अपणी वासनाके अनुसार जगतकों देखते हैं, तातें तुम जागहु अरु वासनाके पिंजरेकों काटिकरि आत्मपदकों प्राप्त होहु॥ हे रामजी! अज्ञान करिके जो आत्मपदतें सोये पडे हैं, अरु वासनाके पिंजरेविषे पडे हैं, तिन अज्ञानीकी नांई तुम नहीं होणा, अज्ञान करिके जीवका नाश होता है, जो कछु जगत् देखता

है, सो भ्रममात्र है, अरु इनका बोलणा भी ऐसे जाण, जैसे बांसुरीविषे पवनका शब्द होता है, तैसे यह प्राणवायुकरि बोलते दृष्ट आवते जाण, तातें जगत् भ्रममात्र है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वसत्तोपदेशो नाम शताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ १६९ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो जीव हैं, देशदेशविषे मनुष्य देवता नाग किन्नर पशु मछी, अरु पर्वत कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सो सप्त प्रकारकी सृष्टि है, अरु सप्त प्रकारके जीव हैं, तिनकों भिन्न भिन्न श्रवण कर, एक स्वप्न जाग्रत हैं, दूसरे संकल्प जाग्रत हैं, तीसरे केवल जाग्रत हैं, अरु चवथे चिर जाग्रत हैं, पंचम दृढ जाग्रत हैं, षष्ठम जाग्रत स्वप्न हैं, सप्तम क्षीण जाग्रत हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम जो यह जीव सप्त प्रकारके सृष्टि कही है, सो बोधके निमित्त मुझकों खोलीकरि कहौ, यह ऐसे है, जैसे नदियांके जलका समुद्रविषे भेद होवै, अरु इनोंका पूछणा भी ऐसे है, जैसे एक जलतें फैन बुदबुदे तरंग वायुकरि होते हैं, सो विस्तार करिकेकहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! एक तौ यह, जो किसी जीवकों किसी कल्प अपणी जाग्रतविषे सुषुप्ति हुई, तिसविषे जो स्वप्न हुआ तिस स्वप्नविषे उसकों हमारी जाग्रतका जगत् भासि आया, शब्द अर्थसंयुक्त तिसकों सत्य जाणीकरि ग्रहण करणे लगा, उसके लेखे हम स्वप्न नर हैं, परंतु उसके निश्चयविषे नहीं, उह अपणी जाग्रत मानता है, हमारा अरु उसका कल्प एक हो गया है, इसी तें उह भी जाग्रत जानता है, अरु पूर्व कल्पविषे भी उसका शरीर चेतन फुरता है, परंतु सोया पडा है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जब उह पुरुष अपणे कल्पविषे जाग्या, तब यह उसकों क्या भासै, अरु जब उह न जागै, अरु उहां कल्पका प्रलय हो जावै, तब उसके शरीरकी क्या अवस्था होवै, अरु जब इहां ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तब उस शरीरकी क्या अवस्था होवै, सो क्रम करिके कहौ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब उह पुरुष अपणे कल्पविषे जागै, तब यह जाग्रत उसकों स्वप्न भासै, जब उहां न जागै

अरु उस कल्पकी प्रलय होवै, तब उह जीव उहा चेष्टा करै, अरु जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै, तब उस शरीर अरु इस शरीरकी वासना एकठी होकरि निर्वाणकों प्राप्त होवै, अरु जब ज्ञान न प्राप्त होवै, तब उही जीवकों इस शरीरकों त्यागिकरि अवर जगत्भ्रम भासि आवै, आपकों पूर्वहीवत् जाणै, भावै न जाणै, परंतु जगत्भ्रम नहीं मिटता, विना ज्ञान ॥ हे रामजी! यह अरु उह दोनों तुल्य हैं, ब्रह्मसत्ता सर्व ठौर समान प्रकाशती है ॥ हे रामजी! जैसे गुलरविषे मच्छर होता है, तैसे यह जीव भी भ्रम करिके फुरते हैं, सो यह जाग्रत कही है, जो स्वप्नविषे जाग्रत है, स्वप्न जाग्रत इसका नाम है, अरु यह पुरुष बैठा है, अरु चित्तकी वृत्ति ठहरी गई है ॥ १ ॥ अरु निद्रा नहीं आई तिसविषे मनोराज्य हुआ, तिस मनोराज्यविषे जगत् हुआ, तिसविषे दृढ वासना हो गई, अरु पूर्वकी वासना विस्मरण भई अरु यह सत्य भासी, अरु मनोराज्यका शरीर रचा उही आधिभौतिकता दृढ हो गई, तिसका नाम संकल्प जाग्रत है ॥ २ ॥ आदि परमात्मतत्त्वतें फुऱ्या, अरु निश्चयात्मपदविषे रहा, अरु जगत् जो भास्या तिसकों संकल्पमात्र जाण्या, तिसका नाम केवल जाग्रत है ॥ ३ ॥ आदि परमात्मतत्त्वतें फुरणा हुआ, तिसविषे सृष्टि हुई, तिसकों सत्य जाणीकरि ग्रहण किया, अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ, अरु आगे जन्मांतरकों प्राप्त हुआ, तिसका नाम चिर जागृत है ॥ ४ ॥ जब इसविषे दृढ घनीभूत वासना हुई, अरु पापकर्म करने लगा, तिसके वशतें स्थावर योनिका पाया, तब तिसका नाम घनी जाग्रत है, तिसीका नाम सुषुप्ति जाग्रत है ॥ ५ ॥ अरु जब इसविषे संतकी संगति अरु सच्छास्त्रोंके विचारकरि बोधकों प्राप्त हुआ, तब यह जाग्रत उसकों स्वप्न हो जाती है, तिसका नाम स्वप्न जाग्रत है ॥ ६ ॥ अरु जब बोधविषे दृढ स्थिति भई, तब इसकों तुरीयापद कहते हैं, इसका नाम क्षीण जाग्रत है ॥ ७ ॥ जब इस पदकों प्राप्त हुआ, तब परमानंदकी प्राप्ति होती है ॥ हे रामजी! इह सप्त प्रकारके जीव अरु सृष्टि सबही मैं तुझकों कही है, तिसकों विचारिकरिके देख जो तेरा भ्रम निवृत्त

हो जावै, अरु यह भी क्या कहणा है, जो यह जीव है, यह सृष्टि है, सर्व ब्रह्मसत्ता है, दूसरा कछु हुआ नहीं, मनके फुरणेकरि दृश्य भासती है, मनकों स्थिर करि देख जो सब शून्य हो जावैगी, अरु शून्य भी न रहैगा, शून्यका कहणा भी न रहैगा, इस गिणतीका भी स्मरण करु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सप्तप्रकारजीवसृष्टिवर्णनं नाम शताधिकसप्ततितमः सर्गः ॥ १७० ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम जो केवल जाग्रतकी उत्पत्ति अकारण अकर्मक बोधमात्रविषे कही सो असंभव है, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं संभवता, तैसे आत्माविषे सृष्टि नहीं संभवती, काहेतें जो आत्मा निराकार है, अरु निष्क्रिय है, न समवायकारण है, न निमित्तकारण है, जैसे मृत्तिका घट आदिकका कारण होती है, तैसे आत्मा सृष्टिका समवायकारण भी नहीं, काहेतें जो अद्वैत है, अरु जैसे कुलाल घटादिकका निमित्तकारण होता है, तैसे आत्मा सृष्टिका निमित्तकारण भी नहीं, काहेतें जो अक्रिय है, तिस अकारणक अकर्मकविषे सृष्टि कैसे संभवै ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तूं धन्य है, अब तूं जाग्या है, आत्माविषे सृष्टिका अत्यंत अभाव है, काहेतें जो निर्विकार है, निष्क्रिय है, न अंतर है, न बाहिर है, न ऊर्ध्व है, न अध है, केवल बोधमात्र है, तिसविषे न कोउ आरंभ है, न परिणाम है, केवल बोधमात्र अपणे आपविषे स्थित है, जैसे सूर्यकी किरणविषे जल कल्पित है, तैसे आत्माविषे जगत् मिथ्या है ॥ हे महाबुद्धिवान्! आत्मा अकारणरूप जगत् है, तिसतें कार्यरूप जगत् कैसे होवै, तिसतें केवल जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, तिसके अभावतें सबका अभाव है, न कछु उपजा है, न भास होता है, उपदेश अरु तिसका अर्थ आरोपित है, अरु कछु हैही नहीं, अरु आरोपित शब्द भी जिज्ञासीके जतावणेनिमित्त कहा है, है कछु नहीं, आत्मा सदा अद्वैतरूप है ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! जब आत्माविषे सृष्टिही नहीं, तौ पिंडाकार कैसे भासते हैं, उनकों किसनें रचा है, अरु मन बुद्धि इंद्रियांका भान क्या होता है,

चेतनकों किसनैं मोहित किया है, भूतकों स्नेह रागके बंधनकरि अरु आत्माविषे आवरण कैसे होता है, सो समुझाएकरि कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! न कोउ पिंड है, न किन किसीनैं इसकों किया है, न कोउ भूत है, न किसीनैं इनकों मोहित किया है, अरु न किसीकों आवरण किया है, भ्रांति करिके आवरण भासता है, जब आत्माकों आवरण होता, तब किसी प्रकार नष्ट होता, परंतु आवरणही नहीं तव नष्ट कैसे होवै ॥ हे रामजी! जिसकों आवरण होता है, तिसका स्वरूप एक अवस्थाकों त्यागिकरि दूसरी अवस्थाकों ग्रहण करता है, सो आत्मा तौ सदा ज्ञानस्वरूप है, अन्य अवस्थाकों कदाचित् नहीं प्राप्त भया, सदा ज्यौंका त्यौं है, तिसविषे मन बुद्धि आदिक कछु बने नहीं, तब मोह कहां अरु आवरण कहां, सदा एकरस आत्मतत्त्व हैं, ज्ञानीकों ऐसे भासता है, अरु अज्ञानीकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, आत्मा ज्ञानकालविषे भी एकरस है, अज्ञानकालविषे भी एकरस है, तिसविषे दो दृष्टि होतियां हैं, ज्ञानदृष्टिकरि सर्व आत्मा है, अज्ञानदृष्टिकरि नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जैसे एक समुद्रविषे तरंग बुदबुदे उठते हैं, अरु लीन होते हैं, सो उनका उत्पत्ति अरु लीन होणा भी जलविषे है, जलतें इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु विचार अरु इच्छा भासते हैं, सो सब आत्माविषे होते हैं, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, विकार अविकार सब परमात्मतत्त्व है, अरु समुद्रविषे लहरी बुदबुदे परिणामकरि होते हैं, आत्मा सदा ज्यौंका त्यौं है, नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो भी उही रूप है, जैसे स्वर्णविषे नानाप्रकारके भूषण होते हैं, सो सब स्वर्णही है, दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, भ्रांति करिके नानाप्रकारकी संज्ञा होती है, जैसे कोउ पुरुष जाग्रत बैठा होवै, अरु नींद आएतें स्वप्नसृष्टि भासि आवै, सो जाग्रतके अज्ञानकरि स्वप्नसृष्टि भासी है, जब निद्रा निवृत्त भई तब जाग्रत भासती है, सो जाग्रत भी परमात्मतत्त्वके अज्ञानकरि भासती है, जब तिस पदविषे जागैगा, तब जाग्रतभ्रम निवृत्त

हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह संसार अपणे फुरणे करिके हुआ है, जब फुरणा दृढ भया, तब दुःख पावणे लगा, जैसे बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पिकरि आपही दुःख पावता है, तैसे यह जीव अपणे फुरणेकरि आपही दुःख पावता है, जब आत्मबोध होता है, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! यह संसार जो रससंयुक्त भासता है, सो भावनामात्र है, जब यही भावना उलटीकरि आत्माकी उर आवै तब जगत्भ्रम मिटी जावैगा, अरु देह इंद्रियादिक जो आत्माके अज्ञान करिके फुरे हैं, अरु तिनविषे अहंकार हुआ है, सो आत्मभावनाकरि निवृत्त हो जावैगा, जैसे वर्षाकालविषे घट्ट मेघ होते हैं, जब शरत्काल आया तब मेघ नष्ट हो जाते हैं, तैसे जब बोधरूपी शरत्काल आता है, तब अनात्मविषे आत्मअभिमानरूपी मेघ नष्ट हो जाता है, अरु परम स्वच्छता प्रगट होती है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् पिंडरूप होकरि भासता है सो जब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, तब पिंडबुद्धि जाती रहैगी, जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघकी घनता जाती रहती है, अरु आकाशरूप हो जाता है ॥ हे रामजी! यह भ्रांतिकी कठिनता तबलग भासती है, जबलग स्वरूपतें सुषुप्तिवत् है, जब जागैगा तब जगत् सब आकाशरूप हो जावैगा, जैसे स्वप्नतें जागे हुए स्वप्नजगत् आकाशरूप हो जाता है ॥ हे रामजी! जेते कछु विकार अरु क्षोभ अरु नानात्व भासते हैं, सो प्रमादकरि भासते हैं, जब आत्मबोध होता है, तब सब क्षोभविकार मिटि जाते हैं, सर्व प्रपंच एकताकों प्राप्त होता है, द्वैतभाव मिटि जाता है, जैसे प्रज्वलित अग्निविषे घृत अथवा इंधन अरु मिष्टान्न जो कछु पाइयें सो एकरूप हो जाता है, तैसे जब बोधकी प्राप्ति होती है, तब सब जगत् एकरूप हो जाता है, जैसे नानाप्रकारके भूषण अग्निविषे डारियें तब एक स्वर्णही हो जाता है, अरु भूषणकी संज्ञा नहीं रहती, तैसे मनकों जब आत्मबोधविषे स्थित किया, तब जगत् संज्ञा नहीं रहती, केवल परमात्मतत्त्व हो जाता है ॥ हे रामजी! इंद्रियां जगत् तबलग भासता है जब

लग स्वरूपतें सोया पडा है, जब जागैगा, तब संसारकी सत्यता मिटि जावैगी, अरु इच्छा भी कोउ न रहैगी, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आवता है, अरु तिस स्वप्नतें जागता है, तब स्वप्नके स्वर्णकी इच्छा नहीं करता, जो मुक्तकों प्राप्त होवै, काहेतें जो उसकी सत्यता नहीं भासती तौ इच्छा कैसे करै, तैसे जबलग स्वरूपतें सोया पडा है, तबलग संसारके पदार्थकों मिथ्या नहीं जानता, तब इच्छा करता है, अरु जब जागैगा, तब सब पदार्थ विरस हो जावैंगे, जब ज्ञान करिके जगत्कों मिथ्या स्वप्नवत् जाणैगा, तब इच्छा भी न करैगा ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तकी चेष्टा सब दृष्टि आवती है, परंतु उसके हृदयविषे जगत्की सत्यता नहीं, काहेतें जो आत्मानुभव उसकों हुआ है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, जिसनें सूर्यकी किरणां जानी तिसकों जल नहीं भासता, किरणां भासती हैं, अरु जिसनें किरणां नहीं जाणी, तिसकों जल भासता है, अरु भासता दोनोंकों तुल्य है, परंतु ज्ञानवान्के निश्चयविषे जगत् जलवत् नहीं, अरु अज्ञानीकों जगत् जलवत् दृढ भासता है ॥ हे रामजी ! मनरूपी दीपक प्रज्वलित है, तिसविषे ज्ञानरूपी जल पाइयें तब निवारण हो जावै, जब मन निर्वाण हुआ तब तिस पदकों प्राप्त होवैगा, जहां जगत्का अभाव है, अरु अहंकारका भी अभाव है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अकेवल उदय अस्त दोनों नहीं ॥ हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे पदकों प्राप्त हुआ है, सो कृतकृत्य होता है, अरु रागदोषतें रहित परम शांत पदकों प्राप्त होता है, अहंकार निर्वाण हो जाता है, केवल निर्वाच्यपदकों प्राप्त होता है, जहां उत्थान कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत् पदार्थ कोउ नहीं, परंतु मनके संकल्पकरि भासते हैं, जैसे स्तंभविषे चितेरा कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो उसके निश्चयविषे हैं, स्तंभविषे पुतलियांका अभाव है, तैसे मनके निश्चयविषे जगत् है, आत्माविषे बन्या कछु नहीं, जिस पुरुषका मन सूक्ष्म हो गया है, तिसकों जगत् स्वप्नवत् भासता है, जब स्वप्नवत् जान्या तब इच्छा किसकी

करै, अरु त्याग किसका करै ॥ हे रामजी ! जगत् तबलग भासता है, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, तब आत्मानुभव होवैगा, जब जगत् रससंयुक्त कदाचित् नहीं भासैगा, जैसे धूप अरु छाया एकठी नहीं होती, तैसे ज्ञान अरु जगत् एकठे नहीं होते, आत्मज्ञान हुए जगत्का अभाव हो जाता है, जैसे पूर्व काल वर्त्तमानकालविषे नहीं होता है, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रम करिके भासता है, विचार कियेतें इसका अभाव हो जाता है, अरु द्रष्टा दर्शन दृश्य जो त्रिपुटी भासती है, सो मिथ्या है, जैसे निद्रा दोष करिके स्वप्नविषे तीनों भासते हैं, अरु जागेतें अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञान करिके यह भासते हैं, अरु ज्ञान करिके त्रिपुटीका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जैसे मनोराज्य करिके मनविषे जगत् स्थित होता है, तैसे यह पर्वत नदियां देश काल जगत् भी जाण, तातें इस भ्रमका त्याग करि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, यह जगत् भ्रम करिके उदय हुआ है, विचार कियेतें नष्ट हो जावैगा, अरु परम शांति तुझकों प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! जिसका मन उपशमभावकों प्राप्त हुआ है सो पुरुष मौनी है, उह निरोधपदकों प्राप्त हुआ है, उह संसारसमुद्रकों तर्या है, अरु कर्मोंके अंतकों प्राप्त हुआ है, तिसकों संपूर्ण जगत् पहाड नदियां संयुक्त लीन हो जाता है, अज्ञानके नष्ट हुए विद्यमान जगत् भी उह शांत अंतःकरण है, परम शांतिरूपी अमृतकरि तृप्त है, उह ज्ञानवान् निरावरण होकरि स्थित होता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वशांत्युपदेशो नाम शताधिकैकसप्ततितमः सर्गः ॥१७१॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिस क्रमकरि बोध आत्मा जगत्रूप हो भासता है, सो क्रम भेदके निवृत्ति अर्थ बहुरि मुझकों कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् दृष्ट आता है, सो चित्तविषे निश्चय होता है, ज्ञानवान्कों भी चित्तकरि भासता है, अरु अज्ञानीकों भी चित्तकरि भासता है, परंतु एता भेद है जो अज्ञानी जगत्कों देखता है, तब सत् मानता है, अरु ज्ञानवान् शास्त्रयुक्तिकरि

देखता है, पूर्व अपर अर्थके विचारकरि भ्रांतिमात्र जाणता है, अरु अविद्या करिके भासता है, सो अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, सो कछु है नहीं, तैसे अविद्या कछु वस्तु नहीं, जेता कछु स्थावर जंगम जगत् भासता है, सो कल्पके अंतविषे नष्ट हो जाता है, जैसे समुद्रतें एक बुंद निकासियें तब नष्ट हो जाती है, काहेतें जो विभागरूप है, तैसे माया अविद्या सत् असत् आदिक सर्व संबंधका अभाव हो जाता है, काहेतें जो सब शब्द जगत्विषे हैं, जब जगत् लीन भया, तब शब्द कहां रहै, अरु वास्तवतें न कछु उपजा है, न लीन होता है, एकही चिदाकाश है, अरु जब तूं कहै, देह उपजी तौ है सो देह अरु तत्त्व स्वप्नवत् तूं जाण, अरु जो तूं कहै, जगत् प्रलयविषे लीन होता है, तौ कछु है क्यौं, तब नाश उही होता है, जो असत्य होता है, अरु जो तूं कहै, असत्य है तौ बहुरि क्यौं उपजता है, तब उपजी वस्तु भी सत् नहीं होती, अरु जो तूं कहै महाप्रलयविषे चिदाकाशही रहता है, सोइ जगत्रूप हो भासता है, तौ जगत् कछु इतर वस्तु नहीं भया, बोधमात्रही इस प्रकार हो भासता है, जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं, तैसे जिसतें जगत् भासता है, सो उहीरूप है, अवर कछु उपजा नहीं, जो उपजा नहीं तौ विकार अरु भेद कैसे होवै, तातें बोधमात्रही अपणे आपविषे स्थित है, कारणकार्यतें रहित परम शांतरूप आत्मसत्ता स्थित है, उही जगत्रूप होकरि भासता है, देश काल पदार्थ सब महाप्रलयरूप हैं, जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्मदेवपर्यंत सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वीका नाम भी नहीं रहता, अर्थ भी नहीं रहता, केवल बोधमात्र बोधतें भी रहित शेष रहता है, परम शातरूप है, तिसविषे वाणी अरु मनकी गम नहीं, केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसकों तत्ववेत्ते अनुभव कहते हैं, अवर कोउ जाणी नहीं सकता ॥ हे रामजी! जो पुरुष अविद्यारूपी निद्रातें जाग्या है, सो निराभास होता है, अर्थ यह जो चित्ततें चैत्यका संबंध टूटि जाता है, अरु परम प्रकाशरूप आत्मपद ति

ब्रह्मस्वरूप.

सकों प्राप्त होता है, अरु स्वभावविषे स्थित होता है, परभाव जो प्रकृति है, तिसका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् परभाव करिके भिन्न भिन्न भासता था, सो सब एकरूप हो जाता है, जैसे स्वप्रविषे पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, अरु जागेतें सब एकरूप हो जाते हैं, अपणा आपही भासता है, तैसे जब इसकों आत्माका अनुभव हुआ, तब जगत् अपणा आपही भासता है ॥ हे रामजी! एकरूप तब हो भासता है, जब अवर कछु नहीं बन्या, जैसे स्वर्णके भूषण अग्निविषे डारियें तब अनेक भूषणका एक पिंड हो जाता है, अरु एकही आकार भासता है, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ, तब सर्व एकरूप हो जाता है ॥ हे रामजी! भूषणोंके होते भी स्वर्णही था, इसीतें एकरूप हो गया, तैसे जब बोधका अनुभव हुआ, तब सर्व एकरूप हो भासता है, तातें जगतके होते भी जगत् आत्मरूप है, जगत् है नहीं, अरु हुएकी नांई भासता है, अरु भिन्न भिन्न दृष्टि आता है, जैसे सोम जलविषे तरंग हैं नहीं, अरु भासते हैं, तौ भी जलरूप हैं, असम्यक्दृष्टि करिके भिन्न भिन्न भासते हैं ॥ हे रामजी! ज्ञानीकों जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्ति तुल्य हैं, जैसे भूषणके होते भी स्वर्ण है, अरु भूषणके अभाव हुए भी स्वर्ण है, तैसे ज्ञानवान्कों देहके होते भी ब्रह्म है, अरु देहके अभाव हुए भी ब्रह्म है, अरु जो अज्ञानी है, तिसकों नानाप्रकारका जगत् फुरता है, सो अज्ञानी कवन है, जिसकों मनका संबंध है ॥ हे रामजी! यह जगत् भिन्न भिन्न फुरता है, जैसे काष्ठके स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है, सो अवरकों नहीं भासती, उसीके मनविषे होतीयां हैं, तैसे भिन्न भिन्न पदार्थरूपी पुतलियां अज्ञानीके मनविषे फुरतिया हैं, अरु ज्ञानवान्कों नहीं भासतिया हैं, अरु जव काष्ठका आकार होता है, तब चितेरा पुतलियां कल्पता है, अरु यह आश्चर्य देख जो मनरूपी ऐसा चितेरा है, आकाशविषे पदार्थरूपी पुतलियां कल्पता है, खोदेविना भासते हैं ॥ हे रामजी! अवर दूसरा कछु नहीं बन्या, जैसे किसी पुरुषनें कागदउपर पुतली लिखी होय, सो कागदरूप है, अवर कछु न

हीं बनी, तैसे उह जगत् भी उहीस्वरूप है॥ हे रामजी! जब तुझकों आत्मपदका अनुभव होवैगा, तब जेते कछु जगत्के शब्द अर्थ हैं, सो सब उसीविषे भासैंगे, जैसे जिननें स्वर्णकों जाण्या, तिनकों भूषणके शब्द अर्थ स्वर्णही भासते हैं, तैसे जब आत्मपदकों जाणैगा, तब तुझकों जगत्के शब्द अर्थ आत्माहीविषे दृष्टि आवैंगे॥ हे रामजी! यह जीव महासूक्ष्मरूप है, इन जीवविषे अपणी सृष्टि है, सो जबलग फुरना है, तबलग सृष्टि है, जब सृष्टि फुरना अपणी उर आवता है, तब सब सृष्टि एक आत्मरूप हो जाती है, आकाश काल दिशा पदार्थ सब आत्मा है, आत्मातें इतर कछु नहीं, अपणे आपविषे स्थित है, अद्वैत चिन्मात्र पद है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनं नाम शताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः ॥ १७२ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ, दृग अरु दृश्यका संबंध कैसे हुआ है, अरु कालविषे कालत्व कैसे फुर्या है, अरु आकाशविषे शून्यता कैसे हुई है, वायुविषे वायुता कैसे हुई है, जडविषे जडता अरु भूतविषे भूतता अरु संकल्पविषे स्पंद अरु सृष्टिविषे सृष्टिता कैसे हुए हैं, मूर्तिविषे मूर्तिता, भिन्नविषे भिन्नता, दृश्यविषे दृश्यता किसतें हुए हैं, सो मुझकों कहो, काहेतें जो अर्धप्रबुद्धकों बोधके निमित्त कहणा योग्य है॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वरतें आदिक जो सर्व पदार्थ हैं सो प्रलयकालविषे जिसमें लीन होते हैं, तिसका नाम प्रलय है, तिसका शब्द यह है, जो प्रलय शब्द है, अरु सब निर्वाण हो जाते हैं, यह अर्थ है॥ हे रामजी! ऐसा जो अनंत आकाश है, सो सम है, अरु शुद्ध है, आदि अंततें रहित है, अरु मध्यतें भी रहित है, चेतनघन अद्वैत है, जहा एक अरु दो शब्द भी नहीं, जिसविषे आकाश भी पहाडवत् स्थूल है, ऐसा सूक्ष्म है, अरु है नहीं, दोनों शब्दतें रहित अपणे आपविषे स्थित हैं, जैसे पाषाणका शिलाकोश होता है, तैसे चित्तके फुरणेतें रहित है, ऐसे परमात्मतत्त्व अकारणतें सृष्टिका उपजणा कैसे कहियें, जैसे आकाश अपणे आपविषे स्थि

त है, तैसे ब्रह्म अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! एक निमिषके फुरणेकरि जो अनेक योजनपर्यंत वृत्ति जाती है, तिसके मध्य जो अनुभव करनेवाली सत्ता है, तिसविषे तूं स्थित होकरि देख जो जगत् कहां है, अरु जगतकी उत्पत्ति कहां है ॥ हे रामजी! उत्पत्ति जो होती है, सो समवायकारणकरि अरु निमित्तकारणकरि होती है, सो आत्मा निराकार अद्वैत सन्मात्र है, न समवायकारण है, न निमित्तकारण है, तातें आत्मा अच्युत है, सो स्वरूपतें कदाचित् नहीं गिर्या, तौ समवायकारण कैसे होवै, अरु निमित्तकारण भी नहीं, जो निराकार है, तातें आत्माविषे जगत् कोउ नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, अरु अविद्या करिके भासता है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तु होवै नहीं, अरु प्रत्यक्ष भासै, सो अविद्याकरि जाणियें ॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु तिसविषे तरंग आवर्त उठते हैं, सो जलरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, जब तूं अपणे आपविषे स्थित होवैगा, तब जगतका शब्द अर्थ इतर न भासैगा, काहेतें जो दूसरी वस्तु कछु है नहीं ॥ हे रामजी! ब्रह्म अमूर्त है, तिसविषे यह मूर्त्यां कैसे उत्पन्न होवैं, तातें यह भ्रांतिमात्र है, जो वस्तु कारणतें उपजी होवै सो सत् होती है, अरु जो कारणविना दृष्टि आवै, सो भ्रममात्र जाणियें, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तिसका कोउ कारण नहीं, तातें मिथ्याभ्रम करिके भासता है, तैसे यह जगत् मिथ्यामात्र है, विचार कियेतें नहीं रहता ॥ हे रामजी! आकाश काल आदिक जो पदार्थ हैं, सो सब शून्य हैं, आत्माविषे न उदय हुए हैं, न अस्त होते हैं, ज्योंका त्यों आत्माही स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वा॰निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकत्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ १७३ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे ब्रह्मरूपी आकाश अपणे आपविषे स्थित है, सो कैसे किसीका कारण होवै, कारण कार्य तब होता है, जब द्वैत होता है, अरु आरंभ परिणाम होता है, सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, अरु निर्गुण है, तिसविषे आरंभ कैसे होवै ॥ हे

रामजी! जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब काष्ठमौन है, काष्ठमौन कहियें जहां मनका फुरणा शून्य है ॥ हे रामजी! जो कछु द्वैत भासता है, सो भ्रममात्र है, अरु जो कछु हुआ होता तौ ज्ञानीकों भी प्रत्यक्ष होता, सो ज्ञानकालविषे नहीं भासता, तातें भ्रममात्र है ॥ हे रामजी! पृथ्वी जलतें आदि लेकरि जो पदार्थ है, सो इनका फुरणा स्वप्नकी नांई है, जैसे स्वप्नविषे चेष्टा होती है, सो पास बैठेकों नहीं भासती, तातें है नहीं, तैसे सृष्टि अकारण संकल्पमात्र है ॥ हे रामजी! जैसे शशेके सिंगका कारण कोउ नहीं, तैसे जगत्का कारण कोउ नहीं, जो कछु होवै तौ कारण भी होवै, जो होवै नहीं तौ किसका कारण कवन कहियें ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वटका बीज होता है, तिसविषे वृक्षका भाव होता है, कालपायकरि बीजतें वृक्ष हो आता है, तैसे इस जगत्का कारण परमाणु क्यों न होवै?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सूक्ष्मविषे जो स्थूल होता है, सो संकल्पमात्र होता है, मैं भी कहता हौं, सूक्ष्मविषे स्थूल होता है, परंतु संकल्पमात्र होता है, कछु सत् नहीं होता, जो कहियें सत्य होता है, तौ नहीं संभवता, जैसे राईके कणके विषे सुमेरु पर्वतका होणा नहीं संभवता, तैसे सूक्ष्म परमाणुतें जगत्का उत्पन्न होणा असंभव है ॥ हे रामजी! सूक्ष्म परमाणुका कार्य भी जगत् तब कहियें, जब सूक्ष्म अणु भी आत्माविषे पाय जावै, आत्मा तौ अद्वैत है, तिसविषे एक अरु दो कहणेका अभाव है, आत्माविषे जानणा भी नहीं, केवल आत्मतत्त्वमात्र है, आधारआधेयतें रहित है, बीज भी तब परिणमता है, जब उसकों जल देता है, अरु रक्षा करणेका स्थान होता है, अरु आधारआधेयतें रहित है, केवल अपणे भावविषे स्थित है, अद्वैत सत्तामात्र है, जैसे वंध्याके पुत्रका कारण कोउ नहीं, तैसे जगत्का कारण कोउ नहीं, जो वंध्याका पुत्रही नहीं, तौ तिसका कारण कवन होवै, तैसे जगत् है नहीं, तौ ब्रह्म इसका कारण कैसे होवै, अरु जिसकों तूं दृश्य कहता है, सो द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि स्थित भया है, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टाही दृश्यरूप होता है, तैसे यह जाग्रत दृ

श्यरूप होकरि आत्माही स्थित है ॥ हे रामजी! जैसे सूर्यकी किरणा जलाभास होकरि स्थित होतिया हैं, तैसे ब्रह्महीं जगत् आकार होकरि दृष्टि आता है, दृश्य भी कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे समुद्रही तरंग आवर्तरूप होकरि भासता है, तैसे अनंतशक्ति होकरि परमात्मसत्ता स्थित है ॥ हे रामजी! मैं अरु तूं यह जगत्के पदार्थ सब फुरणेमात्र हैं, जैसे संकल्प नगर होता, जो मनकरि रचा है, तैसे यह जगत् आत्माविषे कछु बन्या नहीं, केवल अपणे आपविषे ब्रह्म स्थित है, हमकों तौ सदा उही भासता है ॥ हे रामजी! आत्माविषे यह जगत् न उदय हुआ है, न अस्त होता है, सदा ज्योंका त्यों निर्मल शातपद है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे द्वैतैकताप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ १७४ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जगत्का भाव अभाव जड चेतन स्थावर जंगम सूक्ष्म स्थूल शुभ अशुभ कछु हुआ नहीं, तौ मैं तुझकों क्या कहौं, जो यह कार्य है, अरु इसकों यह कारण है, यह हुआ नहीं, बहुरि कारण कार्य कैसे होवै, जो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तु होवै, सो कारण कार्य कैसे होवै, केवल अपणे आपविषे स्थित है, जो है, अरु नहींकी नांई स्थित हुआ है, तिसविषे संवेदन है, जो जानणा तिसके फुरणे करिके जगत् भासता है, सो फुरणा चेतनमात्रका विवर्त है, तिस विवर्त करिके जगत्भ्रम हुआ है, जब यही फुरणा उलटीकरि अपणी उर आवता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, अरु जब फुरता है, तब ध्यान ध्याता ध्येयरूप होकरि स्थित होता है, इसहीका नाम जगत् है, इसीविषे बंध भी होता है, अरु मुक्त भी होता है, आत्माविषे न बंध है, न मोक्ष है ॥ हे रामजी! जब तरंग घनभूत होकरि वहत हैं, तब एकनदी होकरि चलती है, तैसे जब वासना दृढ होती है, तब जगत्रूप होकरि स्थित होता है, अरु भासता है, जब ऐसी वासना दृढ हुई तब रागदोष संकल्पकरि बंधायमान होता है, अरु जब वासना क्षय होती है; तब जगत्का अभाव हो जाता है, स्वच्छ आत्मा भासता है, जैसे शरत्कालका आकाश स्वच्छ होता है, तिसतें भी निर्म

ल भासता है ॥ हे रामजी! यह जीव जो मरि जाता है, सो मरता नहीं, मुआ तब कहियें जो अत्यंत अभावकों प्राप्त होवै, अरु जीणेकों न प्राप्त होवै, बहुरि जगत् न भासै, तातें यह मरना नहीं, काहेतें जो बहुरि जगत् भासता है, यह मरना सुषुप्तिकी नांई भया, जैसे सुषुप्तितें जागे हुए जगत् भासता है, अरु उही चेष्टा करने लगता है, जैसे स्वप्न अरु जाग्रत होता है, तैसे मृत्यु अरु जन्म भी हैं, तातें मरना अरु जन्म हुआ, जब मरनेका शोक उपजै तब तिसविषे जीवनेका सुख आरोपियें, अरु जब जीवणेका हर्ष उपजै, तब तिसविषे मरणेका शोक आरोपित है, तब दोनों अवस्था शरीरकी सम रची हैं, जब यह अवस्था शरीरकी जाणी, तब तेरा अंतर शीतल हो जावैगा, जब संवेदन फुरणेका अत्यंत अभाव हुआ, तब परम शांत हुए ध्यान ध्याता ध्येय तीनोंका अभाव हो जावैगा, अरु अज्ञान भी न रहैगा, जब ऐसा अभाव हुआ, तब पाछे स्वच्छ निर्मल पद रहैगा ॥ हे रामजी! अब भी निर्मल पद है, परंतु भ्रम करिके पदार्थसत्ता भासती है, जैसे निद्रादोष करिके केवल अनुभवविषे पदार्थसत्ता होकरि भासती है, अरु जागेतें कहता है, केवल भ्रममात्रही थे, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र जाण, परमार्थस्वरूपके प्रमाद करिके यह जगत् भासता है, अरु स्वरूपविषे जागेतें इसका अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे अणहोते राज्य देखता है, तैसे तूं यह जगत् जाण, इसका फुरणाही इसकों बंधनका कारण है, जैसे घुराण आपही स्थान बनावती है, अरु आपही फसी मरती है, अरु जैसे मद्यपान करनेवाला मद्यपान करिके मुखतें अवरका अवर बोलता है, अरु तिसकरिके बंधायमान होता है, तैसे अपणे संकल्पही करिके बंधता है, जब संकल्प मिटै तब परमानंदकों प्राप्त होवै, अरु परम स्वच्छ शांत उदय होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमशांतिनिर्वाणवर्णनं नाम शताधिकपंचसप्ततितमः सर्गः ॥ १७५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जहां आकाश होता है, तहां शून्यता भी होती है, अरु जहां आकाश होता है, तहां आकाश भी होता है, अरु जहां

आकाश है, तहां पदार्थ भी होते हैं, तैसे जहां चेतनसत्ता है, तहां सृष्टि भी भासती है, परंतु कैसे भासती है, जो बनी कछु नहीं, अरु सदा रहती है, जैसे सूर्यकी किरणाविषे जल कदाचित् नहीं उत्पन्न भया, अरु जलाभास सदा रहता है, काहेतें जो उसीका विवर्त है, तैसे सृष्टि आत्माका विवर्त है, जहां चेतनसत्ता है, तहां सृष्टि भी है, इसी पर एक इतिहास तुझकों कहता हौं, सो कैसा इतिहास है, जिसके सुनणेतें अरु समुझेतें जरामृत्युतें रहित होवै, परम सुंदर इतिहास है, अरु चित्तकों मोहणेहारा आश्चर्यरूप है, अरु प्रकृतरूप है, अरु मेरा देख्या हुआ है ॥ हे रामजी! एक कालमें मेरा चित्त जगततें उपरत हुआ, जो किसी एकांत स्थानविषे जायकरि समाधान करौं, जगत् कैसा है जो मोहरूप व्यवहार करिके दृढ हुआ है, अरु जेता कछु जानणे योग्य है, तिसकों मैं जानणेहारा हौं, परंतु व्यवहार करिके भी शांतरूप होउं, ऐसे मैं विचारत भया, जो निर्विकल्प समाधि करौं, अरु परम शांतिकों प्राप्त होउं, जो आदि अंत मध्यतें रहित परमानंदस्वरूप है, अरु अविनाशी पद है, तिसविषे विश्राम करौं ॥ हे रामजी! तब मैं भी ज्ञानवृत्तिवान् परमात्मस्वरूपही था, परंतु चित्तकी वृत्ति जब जगत्भावतें उपरत भई, तिस कारणतें व्यवहारविषे भी एकांत समाधिकी इच्छा करी, जहां क्षोभ कोउ न होवै, तहां स्थित होवैं, ऐसे विचार करिके मैं आकाशविषे उडा, एक देवताका पर्वत था, तहां जाय बैठा, उहां बहुत प्रकार इंद्रियांके विषय देखे, अंगना गायन करतियां हैं, अरु चमर शिरपर होते हैं, अरु मंद मंद पवन चलता है, उह विषय भी मुझकों आपातरमणीय भासे, किसी कालविषे किसीकों सुखदायक नहीं, समाधिवालेके यह शत्रु हैं; तिनकों विरस जाणिकरि बहुरि मैं उडा, एक अवरपर्वतकी कंदराथी, अरु बहुत सुंदर थी, तहां आय प्राप्त भया, सुंदर वन है, अरु सुंदर पवन चलता है, ऐसे स्थानकों मैं देख्या, अरु मुझकों शत्रुवत् भास्या, काहेतें जो पक्षीके शब्द होते हैं, अरु पवनका स्पर्श होता है, इत्यादिक अवर भी विषय हैं, तिनकों देखिकरि मैं आगे चल्या, नागके देश देखे, अरु सुंदर नागकन्या

देखियां, अरु बहुत सुंदर इंद्रियांके विषय भी देखे, सो विषय भी मुझकों सर्पवत् भासै, जैसे सर्पके स्पर्श किये तें विषकरि अनर्थकों प्राप्त होता है, तैसे मुझकों विषय भासै, बहुरि आगे चल्या॥ हे रामजी! जेते कछु इंद्रियांके विषय हैं, सो सब अनर्थका कारण है, तिनविषे प्रीति मूढ अज्ञानी करते हैं, बहुरि समुद्रके किनारे गया, तिसके पास जो पुष्पके स्थान हैं, तिनविषे विचऱ्या, कंदरा अरु बनकों देखत भया, पर्वत पाताल दशों दिशा देखता फिर्या; परंतु एकांतस्थान मुझकों कोउ दृष्ट न आया, तब मैं बहुरि आकाशकों उडा, आकाशविषे पवन अरु मेघके स्थान लंघता गया, अरु देवगण विद्याधर अरु सिद्धके स्थान लंघता गया, आगे देखौं तौ केई ब्रह्मांड भूतके उडते हैं, अपूर्व भूत देखे, अरु नानाप्रकारके स्थान देखे, अरु गरुडके स्थानकों लंघता गया, कहूं सूर्यका प्रकाश होता है, तिसकों भी लंघता गया, कहूं ऐसे देख्या जो सूर्यका प्रकाशही नहीं, बहुरि चंद्रमाके मंडलकों लंघ्या, आगे एक अग्निका स्थान था, तिसकों मैं लंघिकरि महा आकाशविषे गया, जहां इंद्रियांकों रोकणा भी न रहै, काहेतें जो इंद्रियांके विषय कोउ दृष्ट न आवैं, एक आकाशही आकाश दृष्ट आवै, अरु वायु अग्नि जल पृथ्वी चारोंका अभाव है॥ हे रामजी! तिस स्थानविषे मैं गया, जहां भूत स्वप्नवत् भी दृष्ट न आवैं, अरुसिद्धकी गम भी नहीं, तहां जायकरि मैं एक कुटी रची संकल्पकी, अरु तिसकेसाथ कल्पवृक्ष फूल पत्रोंकरि पूर्ण रचे, तिस सुंदर कुटीकों एक और छिद्र रखा, मेरा जो सूक्ष्म संकल्प था सो प्रत्यक्ष आनि हुआ, तिस कुटीकों रचीकरि तिसविषे प्रवेश किया अरु संकल्प किया जो सौ वर्षपर्यंत मैं समाधिविषे रहोंगा, उसतें उपरांत समाधितें उतरौंगा, ऐसे विचारकरि मैं पद्मासन बांध्या, अरु समाधिविषे स्थित भया, अरु परम शांतिविषे स्थित भया, अरु जहां कोउ क्षोभ नहीं, तिस निर्विकल्प समाधिविषे सौ वर्ष जब व्यतीत भये, तब उह जो भावी थी समाधिके उतरणेकी, सो संकल्प आनि फुऱ्या, जैसे पृथ्वीविषे बीज बोया हुआ काल पायकरि अंकुर लेता है, तैसे संकल्प आनि फुऱ्या, प्रथम प्राण आनि फुरे, जैसे

सूका वृक्ष वसंतऋतुविषे फुरि आता है, तैसे प्राण फुरि आए, तब ज्ञान इंद्रिय प्रगटि आई, जैसे वसंत ऋतुविषे फूल खिली आवते हैं, तैसे ज्ञान इंद्रिय खिली आइयां, बहुरि स्पंद जो है अहंकाररूपी पिशाच, सो आनि फुर्या, जो मैं वसिष्ठ हौं, ऐसा जो अहंकाररूपी पिशाच अरु इच्छारूपी तिसकी स्त्री सो आनि फुरे ॥ हे रामजी! सो वर्षा मुझकों ऐसे व्यतीत हुआ, जैसे निमेषका खोलणा होता है, काल भी बहुत प्रकारकरि व्यतीत होता है, किसीकों थोडा हो जाता है, अरु किसीकों बहुत हो जाता है, सुखी होता है, तब बहुत काल भी थोडा हो भासता है, अरु दुःखीकों थोडा काल भी बहुत हो जाता है ॥ हे रामजी! इस समाधिका जो मैं वर्णन किया, सो यह शक्ति सब जीवविषे है, परंतु सिद्ध नहीं होती, काहेतें जो नानाप्रकारकी वासनासाथ अंतःकरण मलिन है, जब अंतःकरण इनका शुद्ध होवै, तब जैसा संकल्प करै तैसा सिद्ध होवै, अरु मलिन अंतःकरणवालेका संकल्प सिद्ध नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीवसिष्ठसमाधिवर्णनं नाम शताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः ॥ १७६ ॥ ॥ ॥ ॥

राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम निर्वाणस्वरूप हौ, तुमकों अहंकाररूपी पिशाच कैसे फुर्या, यह संशय मेरा दूर करौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञानी होवै अथवा अज्ञानी होवै, जबलग शरीरका संबंध है, तबलग अहंकार दूर नहीं होता, काहेतें जो जहां आधार होता है, तहां आधेय भी होता है, अरु जहां आधेय होता है, तहां आधार भी होता है, तैसे जहां देह होती है, तहां अहंकार भी होता है, अरु जहां अहंकार होता है, तहां देह भी होती है ॥ हे रामजी! अहंकारविना शरीर नहीं रहता सो अहंकार अज्ञानरूपी बालकनें कल्प्या है, अरु ज्ञानीविषे जो विशेषता है सो श्रवण करु, तिसके जानणेतें अहंकार नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी! यह अहंकार अविद्याकरि कल्प्या है, सो अविद्या किसका नाम है, जो वस्तुतें मिथ्या होवै, अरु भासै सो अविद्या है, अरु जो अविद्याही मिथ्या है तौ तिसका कार्य अहंकार कै

से सत्य होवै, यह मिथ्याभ्रम करिके उदय हुआ है, जैसे भ्रम करिके वैताल वृक्षविषे भासता है, तैसे भ्रम करिके अहंकाररूपी वैताल उदय हुआ है, अरु इसका कारण अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें इसका अभाव हो जाता है, जहां जहां विचार होता है, तहां तहां अविद्या नहीं रहती, जैसे जहां दीपक होता है, तहां अंधकार नहीं रहता, दीपकके जागेतें अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे विचारके उदय हुए अविद्याका अभाव हो जाता है, जो वस्तु विचार कियेतें न रहै सो मिथ्या जाणियें, जो आपही मिथ्या है, तिसका कार्य कैसे सत्य होवै, तातें अहंकारकों मिथ्या जाण ॥ हे रामजी! जैसे आकाशके वृक्षका कारण कोउ नहीं, तैसे अहंकारका कारण कोउ नहीं, मनसहित जो षट् इंद्रिय हैं, शुद्ध आत्मा तिनका विषय नहीं, काहेतें जो सो साकार हैं, अरु दृश्य हैं, साकारका कारण निराकार आत्मा कैसे होवै, जो कछु आकार है सो सब मिथ्या है, जो बीज होता है, तिसतें अंकुर उत्पन्न होता है, तब जाणीता है, जो बीजतें अंकुर उत्पन्न हुआ है, परंतु बीजही न होवै तौ तिसका कार्य अंकुर कैसे उत्पन्न होवै, तैसे जगत्का कारण संवेदनही न होवै तौ जगत् कैसे होवै, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा होवै तौ तिसका कारण भी मानियें, जो दूसरा चंद्रमाही न होवै तिसका कारण कैसे मानियें ॥ हे रामजी! ब्रह्म आकाश अद्वैत है, अरु शुद्ध है, फुरनेतें रहित है, अरु अच्युत है, अविनाशी है, सो कारण कार्य कैसे होवै ॥ हे रामजी! पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, भ्रम करिके भासते हैं, केवल शुद्ध आत्मा अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो तूं कहै अविद्यमान् हैं, तौ भासते क्यों हैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अणहोती सृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भी अणहोता भासता है, जैसे भ्रम करिके आकाशविषे वृक्ष भासते हैं अणहोते, इसविषे आश्चर्य कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर रचि लीजें, तब उसविषे चेष्टा भी होती है, परंतु इसका स्वरूप संकल्पमात्र है, वास्तव अर्थाकार कछु नहीं होता, परंतु अपणे कालविषे सत् भासता

है, जब संकल्पका लय होता है, तब उसका भी अभाव हो जाता है, तब आकाशके वृक्षकी नांई हुआ क्यों, जो आकाशके वृक्ष भावनाकरि भासते हैं, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है, स्वरूपतें कछु नहीं, जो विचार करि देखियें तौ इसका अभाव हो जाता है॥ हे रामजी! शुद्ध आत्मतत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, सोइ जगत्का आकार हो भासता है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे जेते पदार्थ भासते हैं, सो सब अनुभवरूप हैं, तैसे जगत् भी ब्रह्मस्वरूप है॥ हे रामजी! हमकों सदा उही भासता है, तौ अहंकार कहा होवै, न मैं अहंकार, न मेरा अहंकार है, केवल आकाशविषे अहंकार कहां होवै॥ हे रामजी! न मैं हौं, न मेरेविषे कछु फुरना है, अथवा सर्व आत्मसत्ता मैंही हौं, तौ भी अहंकार न हुआ॥ हे रामजी! हमारा अहंकार ऐसा है, जैसे अग्निकी मूर्त्ति लिखी होती है, तिसतें अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, दृष्टिमात्र हुई है, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखणेमात्र है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका नहीं होता, अपणे स्वभावविषे स्थित है, सर्व ज्ञानवान्का एकही निश्चय है, जो ब्रह्म ही भासता है, अरु अहंकारका अभाव है, न आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, भ्रम करिके अहंकार शब्द जाणीता है॥ हे रामजी! जब ऐसे जाणैगा, तब अहंकार नष्ट हो जावैगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ देखणेमात्र होता है, वर्षातें रहित, तैसे ज्ञानीका अहंकार देखणेमात्र होता है, अवरकी बुद्धिविषे भासता है, परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे असंभव है, उसका अहंप्रत्यय आत्माविषे रहता है, परिच्छिन्न अहंकारका अभाव हो जाता है, जब अहंकार नाश हुआ, तब अविद्याका भी नाश हुआ, अरु यही अज्ञानका नाश है, ये तीनों पर्याय हैं॥ हे रामजी! अपणे स्वभावविषे स्थित होकरि प्रकृत आचारकों करनें, अरु अंतरतें शिलाकोशवत् हो रहु, अरु बाह्य इंद्रियांकी क्रिया सब रहै, अरु अपणे निश्चयकों गुप्त राखियें, अरु सर्व इंद्रियांकों इस प्रकार धारहु, जैसे आकाश सबकों धारी रहा है, अंतरतें शिलाके जठरवत् रहौ, देखणेमात्र तुमारेविषे भी अहंकार दृष्ट आवैगा, जैसे अग्निकी मूर्त्ति लिखी दृष्ट आती है, तैसे तुमारेविषे अहंकार

दृष्ट आवैगा, परंतु अर्थ कारण होवैगा, केवल ब्रह्मसत्ताही भासैगी, अवर कछु न भासैगा॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विदितवेदाहंकारवर्णनं नाम शताधिकसप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ १७७ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बडा आश्चर्य जो तुमनें अहंकारके त्यागेतें परम सात्विकी प्राप्तिका उपदेश किया है, सो यह परम दशा है, जो राग दोष मलतें रहित निर्मल है, परम उत्तम है, अरु अविनाशी है, आदि अंततें रहित है, यह दशा तुमनें परम विभुताके अर्थ कही है ॥ हे भगवन्! सर्वदा काल अरु सर्व प्रकार वस्तु उही ब्रह्मसत्ता है, समरूपसत्ताके अनुभवतें परम निर्मल है, तौ शिलाख्यान किस निमित्त कहा है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्वविषे सर्वदा काल अरु सर्वतें रहित है, तिसके बोध अर्थ मैं तुझकों दृष्टांत शिलाख्यान कहा है ॥ हे रामजी! ऐसा स्थान कोउ नहीं, जहा सृष्टि नहीं, सर्व स्थानविषे सृष्टि भासतियां हैं, अरु आदितें कछु बन्या नहीं, अरु सर्वदाकाल वसती है, शिलाके कोशविषे अनेक सृष्टि वसतियां हैं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे शिलाकोशविषे सृष्टि वसतियां हैं ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्वविषे सृष्टि वसतियां हैं, कुंद आदिकविषे यह तुमनें कहा तौ आकाशरूप क्यों न होवै ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यही मैं भी तेरे तांई कहता हौं, जो कछु सृष्टि है, सो सब आकाशरूप है, स्वरूपतें सृष्टि तौ उपजी नहीं, सर्वदा आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, आकाशकी वार्त्ता क्या कहणी है, जो शिलाकोशविषे सृष्टि वसतियां हैं, जो आकाशरूप है सो वसतियां हैं, अर्थ यह जो हुइयां कछु नहीं ॥ हे रामजी ! पृथ्वीविषे ऐसा अणु कोउ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, अणु अणुविषे सृष्टि है, अरु सर्व उरतें वसतियां हैं, अरु परमार्थतें कछु बन्या नहीं, केवल आत्मरूप है, सर्व सृष्टि शब्दमात्र हैं, जैसे यह सृष्टि भासती है, तैसे उह भी है, जब यह शब्दमात्र है, तब उह भी शब्दमात्र है, अरु जो यह सत् भासती है, तौ उह भी सत् भासतियां है ॥ हे रामजी ! ऐसा कोउ जलका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, वह सर्वविषे सृष्टि

है, अरु यह आश्चर्य देख जो इसविना कछु नहीं अरु ऐसा कोउ अग्निका अरु वायुका कणका नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सर्वविषे सृष्टि है, अरु आकाशरूप है, कछु बन्या नहीं, ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे सदा ज्योंकी त्यों स्थित है ॥ हे रामजी! आकाशविषे ऐसा अणु कोउ नहीं, जिसविषे सृष्टि न होवै, सबविषे सृष्टि है, परंतु कछु उपजियां नहीं, ऐसा ब्रह्म अणु कोउ नहीं, जहां सृष्टि न होवै, सबविषे हैं, परंतु स्वरूपतें कछु हुई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे सदा स्थित है ॥ हे रामजी! ऐसा अणु कोउ नहीं जिसीविषे ब्रह्मसत्ता नहीं, अरु ऐसा कोउ चिदअणु नहीं, जिसविषे सृष्टि नहीं, सो सृष्टि कैसे है, जैसे किसीनें अग्नि कही, किसीनें उष्णता कही, तिसविषे भेद कोउ नहीं, तैसे कोउ ब्रह्म कहै, कोउ जगत् कहै, शब्द दो हैं, परंतु वस्तु एकही है, जगत्‌ही ब्रह्म है, अरु ब्रह्मही जगत् है, भेद कछु नहीं, जैसे वहते जलका शब्द होता है, तिसविषे अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता, तैसे जगत् मुझकों कछु पदार्थ नहीं भासता है, काहेतें जो दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, मैं तूं अरु यह जगत् सुमेरुतें आदि लेकरि जो पर्वत हैं, देवता किन्नर अरु दैत्य नाग इत्यादिक जो जगत है, सो सब निर्वाणस्वरूप है, आत्मतत्त्वविषे कछु बन्या नहीं, यह बोलते चालते जो भासते हैं, सो स्वप्नकी नांई जाण, जैसे कोउ पुरुष सोया है, अरु स्वप्नविषे नानाप्रकारके युद्ध होते हैं, वाजित्र बाजते हैं, अरु अवर चेष्टा होती है, अरु जो उसके निकट जाग्रत पुरुष बैठा है, तिसकों कछु नहीं भासता, काहेतें जो वन्या कछु नहीं, अरु उसकों सब कछु भासता है, तैसे ज्ञानीके हृदयविषे जगत् शून्य है, अरु अज्ञानीकों जगत् नानाप्रकारका भासता है, भ्रम करिके, तातें हे रामजी! स्वप्नवत् इस जगत्‌कों जाणीकरि प्रकृत आचार करु, अरु अंतरतें शिलाकी नांई होहु, जो फुरै कछु नहीं, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे रंचक भी भेद नहीं, ब्रह्मही जगत् है, जगत् ब्रह्म है, जगत्‌का स्पष्ट अर्थ ब्रह्मतें भिन्न नहीं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ १७८ ॥ ॥ ॥ ॥

॥राम उवाच॥हे भगवन्! आकाशकोशविषे जो कुटी बनायकरि समाधि लगाई, अरु सौ वर्षतें उपरांत उतरी, तिसके अनंतर जो वृत्तांत हुआ सो कहौ॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब समाधितें मैं उतर्या, तब आकाशविषे मैं एक शब्द सुण्या, सो कैसा शब्द हुआ जो कोमल हृदय अरु सुंदर तुत्तरीकी तारवत् अंगनाका शब्द हुआ, तब मैं विचार किया जो यह शब्द कहांतें आया है, मैं तौ बहुत ऊर्ध्वकों आया हौं, जहां सिद्धकी भी गम नहीं, सिद्धतें भी तीन लाख योजन उंचा आया हौं, यह शब्द कहांतें आया, ऐसे विचारि मैं देखणे लगा, दशौं दिशा आकाशही सर्व उर देखे हैं, परंतु सृष्टिका कर्त्ता कोउ दृष्ट न आवै, एक आकाशही भासै, अवर कछु न भासै, तब मैं विचार किया, जो सृष्टि आकाशविषे होती है, तातें मैं आकाशही हो जाउं, अरु यह शब्दकों पावौं, जो किसका शब्द है, आकाशकों भी त्यागिकरि चिदाकाश हो जाउं, जहां भूताकाश भी कुटीवत् भासता है, तब इसका भी अंत भासैगा, अरु जाणि लेवैगा, जो इह शब्द होता है, ऐसे विचारीकरि मैं निश्चय किया जो यह शरीरही इहां रहै, नेत्र मूंदे रहैं; तब पद्मासन बांधिकरि बाह्यकी इंद्रियांकों भी रोकियां, अरु जो इंद्रियांकी वृत्ति शब्द आदिककों ग्रहण करती थी, तिसकों रोकि लिया, अंतरबाहिरकी वृत्ति सब त्यागी, सर्व अहंवृत्तिकों त्यागिकरि मैं आकाशरूप हो गया, जैसे इस ब्रह्मांडविषे आकाशकों अंत नहीं पाइता; तैसे मैं इसकों त्यागिकरि चित्ताकाशरूप हो गया, मैं चित्ताकाशविषे आया, सो चित्ताकाश कैसा है, जो संकल्पही जिसका रूप है, तिसकों भी मैं त्यागिकरि बुद्धि आकाशविषे आया, बहुरि तिसकों भी त्यागि करिके चिदाकाशविषे आया, तिस शब्दके देखणेके संकल्पकरि चिदाकाशरूप हो गया, जैसे जलकी बुंद समुद्रमें मिली समुद्ररूप हो जाती है, तैसे मैं चिदाकाश हो गया, सो चिदाकाश निराकार निराधार है, अरु सबकों धारि रहा है, परमानंदस्वरूप है, शांत है, अरु अनंत है, जिसविषे सर्व ब्रह्मांड प्रतिबिंबित होते हैं, आत्मा आदर्श है, तिसविषे मैं स्थित हुआ,

तब मुझकों अनंत सृष्टि अपणे आपविषे भासणे लगियां, जैसे सूर्यकी किरणाविषे त्रसरेणु होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे सृष्टि हैं, परंतु जीवकी अपणी अपणी सृष्टि है, उसकी सृष्टिकों उह न जाणै, उसकी सृष्टिकों उह न जाणै, जैसे मनुष्य सोए होवैं, अरु अपणी अपणी स्वप्नसृष्टिकों देखैं, तिसविषे आकाश अरु काल अपणा आप देखै, उसकी सृष्टिकों उह नहीं जाणता, उसकी सृष्टिकों उह नहीं जाणता, परंतु ज्ञानी सर्व सृष्टि देखता है, तैसे मुझकों सर्व सृष्टि चिदाकाशविषे भासैं, अरु जीवकों अपणी अपणी सृष्टि भासै, अवरकी सृष्टि अवरकों दृष्टि न आवै ॥ हे रामजी! एक सृष्टि ऐसे भासै, जो आवरण कोउ नहीं, आवरण कहियें जैसे पृथ्वीके चउफेर समुद्र होते हैं, सो उहां आवरण कोउ न था, अरु कहूं कहूं एकही भूतका आवरण है, अरु कहूं ऐसी सृष्टि आवै, जिनकों पांचही तत्त्वका आवरण है, प्रथम पृथ्वीका आवरण, दूसरा जलका, तीसरा अग्निका, चतुर्थ वायुका, पंचम आकाशका आवरण है, कहूं ऐसी सृष्टि देख आवैं, जिनकों चार तत्त्वका आवरण है, कहूं ऐसी देखी जिनकों षट् आवरण, कहूं दस आवरण दृष्टि आवैं, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै जिसकों षोडश आवरण हैं, अरु कहूं ऐसी दृष्ट आवैं, जिनकों चउतीस आवरण हैं, कहूं छत्तीस आवरण तत्त्वके संयुक्त सृष्टि देखियां॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया चिदाकाशविषे, परंतु कैसी हैं, जो आकाशरूप हैं, सो आत्मातें इतर वस्तु कछु नहीं, मनके फुरणेतें मुझकों सृष्टि दृष्टि आवही, काहेतें जों संकल्पमात्रही हैं, अवर कछु बन्या नहीं, जैसे कंधउपर मूर्त्यां लिखी होवैं, तैसे आत्मरूपी कंधउपर मूर्त्यां दृष्टि आवैं, अपणे अपणे व्यवहारविषे मग्न रहे हैं॥ हे रामजी! ऐसी अनंत सृष्टि देखी, एककी सृष्टिकों दूसरा न जाणै, सब अपणी सृष्टिकों जाणै, जैसे अनेक पुरुष शयन करैं, एकही कालविषे अरु स्वप्नसृष्टि अपणी अपणी देखैं, तौ सृष्टिकों उह नहीं जाणता ॥ हे रामजी! कछु ऐसी सृष्टि देखी, जहां सूर्यका प्रकाश नहीं, अरु न चंद्रमाका प्रकाश है, न अग्निका प्रकाश है, अरु चेष्टा उनकी सब बडी होती है, कहूं ऐसी देखी, जहां सूर्य चंद्रमा हैं, अरु कहूं ऐसी

देखी जो उनकों कालका ज्ञान भी नहीं जो कवन काल है, न उहां कोउ दिन है, न रात्रिही है, सदा एकसमान रहते हैं, कहूं महाशून्यरूप तमही दृष्ट आवै, कहूं ऐसे दृष्ट आवै जो देवताही रहते हैं, कहूं मनुष्यही रहते हैं, कहूं तिर्यक्ही रहते हैं, कहूं दैत्यही दृष्ट आवैं, कहूं जलही दृष्ट आवै, अवरतत्त्व कोउ न दृष्ट आवै, अरु कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जहां शास्त्रका विचारही नहीं, कहूं शास्त्र पुराण विपर्ययरूप हैं, कहूं समान हैं, कहूं प्रलय होती दृष्ट आवै, कहूं उत्पत्ति होती दृष्ट आवै॥ हे रामजी! इत्यादिक अनंत सृष्टि मैं देखियां, परंतु जब स्वरूपकी उर देखौं, तब केवल ब्रह्मरूपही भासै, अवर कछु बन्या दृष्ट न आवै, अरु जब संकल्प करिके देखियें तब अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जहां बालककों वृद्ध यौवन अवस्थाकी मर्यादाही नहीं, जैसे जन्मै तैसेही रहैं, कहूं ऐसी सृष्टि है जो चंद्रमा सूर्यका प्रकाश नहीं, अरु अग्निके प्रकाशसाथ उनकी चेष्टा होती है, कहूं ऐसे देखे, जो ऊर्ध्वकों चले जावै, कहूं नीचे चले जावै, कहूं ऐसे देखे जो शास्त्रकी मर्यादासाथ चेष्टा करै, कहूं कृमिही वसते हैं, अवर कोउ नहीं॥ हे रामजी! चेतनरूपी वनविषे मैं अनंत सृष्टिरूपी वृक्ष देखे, परंतु दूसरा कछु बन्या दृष्ट न आया, सब चेतनका आभासही दृष्ट आया, जैसे सूर्यकी किरणां विषे जलाभास होता है, अरु बन्या कछु नहीं, तैसे सृष्टि बनि कछु नहीं, अरु दृष्ट आवैं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे अणहोती सृष्टि भासै, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, अरु गंधर्वनगरकी सृष्टि भासती है, तैसे संपूर्ण सृष्टि भासी है॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसविषे चित्तरूपी गंधर्वनें सृष्टि रचियां हैं, स्वरूपतें इतर कछु उपजा नहीं, सब अकारण है, जो निमित्तकारण समवायकारणविना सृष्टि भासै सो भ्रममात्र जाणियें, जैसे स्वप्नसृष्टि कारणविना होती है, अरु अर्थाकार हो भासती है तौ भी अजातजात है, अर्थ यह जो उपजेविना उपजी भासती है, तैसे संपूर्ण सृष्टि आभासमात्र है॥ हे रामजी! आभासविषे भी अधिष्ठानसत्ता होती है, जिसके आश्रय आभास फुर

ता है, सो शांत चिदानंद ब्रह्म सबका अधिष्ठान है, अरु सर्व आत्मता करिके स्थित है, ब्रह्मसत्तातें इतर कछु नहीं, चैत्यता करिके नानात्व भासता है, परंतु नानात्व हुआ कछु नहीं, आत्माही सर्वदा अपणे आप विषे स्थित है, जैसे क्षीरसमुद्रविषे वायु करिके नानाप्रकारके तरंग उपजते भासते हैं, तौ भी क्षीरतें इतर कछु नहीं, ऐसा क्षीरसमुद्रका तरंग कोउ नहीं, जिसविषे घृत न होवै, सबविषे घृत व्यापी रहा है, तैसे जो कछु पदार्थ हैं, तिन सबविषे ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत है, अरु जैसे क्षीरके मथन कियेतें घृत निकसता है, तैसे विचार कियेतें जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, इतर कछु नहीं, काहेतें जो कारणद्वारा कछु नहीं उपजा, परमार्थतें केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, फुरणेरूपी भ्रम करिके कछु हुआ दृष्टि आवता है, जब फुरणेरूपी भ्रम निवृत्त हुआ, तब ब्रह्मही भासता है, तातें अविद्यारूप फुरणेकों त्यागि करि अपणे निर्विकल्प स्वरूपविषे स्थित होहु, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगतजालसमूहवर्णनं नाम शताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ १७९ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार मैं सृष्टि देखी, तब बहुरि विचार आनि हुआ जो उह शब्द करनेहारा कवन था, तिसकों देखौं, तब मैं देखणे लगा, देखते देखते तीतरीकी नांई शब्द सुण्या, परंतु उसकों न देख्या, तब फेरि देख्या, देखते देखते शब्दका अर्थ भासणे लगा, बहुरि देख्या, तब अंगना दृष्टि आई, सो कैसी है, स्वर्णवत् जिसका शरीर है, बहुत सुंदर वस्त्र पहिरे हुए हैं, अरु सर्व अंग भूषणोंकरि पूर्ण है, लक्ष्मीकी नांई तिसकों उपमा दीजियें, अरु भवानीकी उपमा दीजियें, ऐसी सुंदर है, जब मैं उसकों देखी, तब उह मेरे निकट आय प्राप्त भई, अरु कहणे लगी ॥ हे मुनीश्वर ! अवर संसार मैं देखा है, परंतु समानधर्मा मुझकों दृष्ट आया है, अरु तुम उत्तमधर्मा भासते हौ, संसारसमुद्रके पारहुए दृष्ट आते हौ, अरु संसारसमुद्रपारके तुम वृक्ष हौ, जो कोउ तुमारी उर आता है, तिसके

आश्रयभूत हौ, अरु निकासि भी लेते हौ, अवर जो जीव हैं सो संसारसमुद्रविषे वहे जाते हैं, अरु तुम पारकों प्राप्त हुए हौ, तातें तुमकों नमस्कार है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार अंगनानें कहा, तब मैं आश्चर्यकों प्राप्त हुआ, जो इसनें मेरे तांई कदाचित् देखा भी नहीं, अरु सुण्या भी नहीं, बहुरि इसनें क्योंकरि जाण्या, तब मैं ऐसे विचार किया, जो यह मायाका कोउ चरित्र है, अरु जो ब्रह्मांड मुझकों दृष्ट आये हैं, सो इस करके दृष्ट आये हैं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार किया तब उसकों त्यागिकरि मैं बहुरि आकाशकों उड्या, तब अवर सृष्टि भासणे लगियां, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, अरु संकल्पकी सृष्टि होती है, अरु गंधर्वनगरकी सृष्टि होती है, तैसे यह सृष्टि है, वास्तव कछु बन्या नहीं, जैसे स्वप्नादिक सृष्टि अणहोती भासती है, तैसे यह जगत् है, केवल बोधमात्र आत्मा अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! जब मैं बोधविषे स्थित होकरि देखौं, तब मुझकों आत्माही भासै, अरु जब संकल्प करके देखौं तब नानाप्रकारका जगत् भासै, कहूं नष्ट होते भासै, कहूं नष्ट होकरि उत्पत्ति होती भासै, जैसे पीपलके पात पडते हैं, अरु बहुरि तैसेही उपजते हैं, तैसे उपजते भासही, कहूं अर्ध स्वभाव तैसा होवै, कहूं ऐसे दृष्ट आवै जो नाश होकरि अवरके अवर उत्पन्न होवै, कहूं उत्पन्न होतेही दृष्ट आवै, कहूं भिन्न भिन्न सृष्टि अरु भिन्न भिन्न शास्त्र दृष्टि आवैं, कहूं सूर्य चंद्रमा अरु तारोंका चक्र ऐसेही फिरता दृष्ट आवै, अरु कहूं अवर प्रकार दृष्ट आवै, कहूं नरककी सृष्टि दृष्ट आवै, कहूं स्वर्गके स्थान दृष्ट आवैं, इसी प्रकार अनंतही सृष्टि देखियां, अरु अनंतही रुद्र देखे, अनंतही ब्रह्म देखे, अनंतही विष्णु देखे, कहूं प्रलयके मेघ गरजते हैं, कहूं सुमेरु आदिक पर्वत उडते दृष्ट आवैं, कहूं ब्रह्मांड जलते दृष्ट आवैं, अरु द्वादश सूर्य तपते दृष्ट आवैं, कहूं ऐसे स्थान दृष्ट आवैं, जो जन्मतेंही पुष्ट हो जावैं, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्ट आवै, जो एक सृष्टिविषे मुआ दूसरी सृष्टिविषे आवै, अरु दूसरी सृष्टिविषे मुआ उसी सृष्टिविषे आवै, कहूं प्रलय होती दृष्ट आवै, कहूं ज्योंकी त्यों रहती सृष्टि दृष्ट आवै, उनकी निकट उनकों कष्ट कछु

न होवै, जैसे दो पुरुष एकही शय्यापरि सोए होवैं, अरु दोनोंकों स्वप्न आवै, एककी सृष्टिविषे प्रलय होती है, अरु दूसरेकी ज्योंकी त्यौं रहै, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखियां परंतु तिनविषे सार ब्रह्मसत्ता मैं देखी, अवर सब स्वप्नवत् स्थान दृष्ट आये, जैसे केलिके वृक्षविषे सार कछु नहीं निकसता, तैसे स्थानविषे सार कछु न देखा ॥ हे रामजी! क्रिया काल सब विश्व ब्रह्मस्वरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे सब जलरूप हैं, तैसे जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे क्षीरसमुद्रविषे तरंग आवर्त क्षीरतें भिन्न कछु नहीं होते, तैसे तूं अरु मैं जगत् सब ब्रह्महीहै, जब बोधकी उर मैं देखौं, तब सर्व ब्रह्महीं दृष्ट आवै, जब संकल्पकी उर देखौं, तब नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आवै, इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखत भया, कहूं कैसी सृष्टि देखी जो अधही है, कहूं गुणकी सृष्टि देखी, अरु कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो धर्मअधर्मकों जानतेही नहीं ॥ हे रामजी! एकसौं पंचास सृष्टि त्रेतायुगकी देखियां, अरु जो भिन्न भिन्न सृष्टि है, अरु भिन्न भिन्न जगत् तिनविषे ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठ भिन्न भिन्न देखे, जिनकों मेरे समान ज्ञान है, अरु मेरेही समान मूर्त्ति है, बहुरि मुझतें उत्तम भी हैं, अरु तूं सुण, जो तिन एकसे पंचास सृष्टिविषे तितनें वसिष्ठ देखे, तिन सबके आगे उपदेश लेणेके निमित्त रामजी वैठे हैं, अरु त्रेतायुगविषे अनेकयुग, अरु अनेक द्वापर, अनेक त्रेता, अनेक सत्ययुग देखे, सो सब चेतन आकाशके आश्रय देखे ॥ हे रामजी! हुए विना सब दृष्ट आवै, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे आकाशविषे अणहोती नीलता भासती है, जैसे जेवरीविषे अणहोता सर्प भासता है, तैसे ब्रह्म करिके अणहोता जगत् भासता है ॥ हे रामजी! मनके फुरणेकरि जगत् भासता है, अरु फुरणेके मिटेतें सब ब्रह्महीं भासता है ॥ हे रामजी! अनंत सृष्टि मैं देखियां, जैसे सूर्यकी किरणांविषे अनंत त्रसरेणु दृष्ट आवैं, तैसे सृष्टि अनंत देखियां, एक चेतनतें अनेक चेतन दृष्ट आवैं, जैसे वृक्षतें फल प्रगट होते हैं, तैसे संकल्परूपी वृक्षतें सृष्टिरूपी फल दृष्ट आवै, जैसे एक गुल्लरके फूलविषे अनंत मच्छर

होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि संकल्पके फुरणेकरि मुझकों दृष्ट आइयां, कहूं महा प्रलयके क्षोभ होते हैं, अरु समुद्र उच्छलते हैं, तिनके तरंग देवलोककों गिरावते हैं, कहूं श्यामरूप चंद्रमा उष्ण दृष्ट आवै, कहूं सूर्य शीतल दृष्ट आवै, कहूं ऐसी सृष्टि दृष्टि आवै जो दिनकों अंध हो जावै, अरु रात्रिकों चेष्टा करै, उलूकादिककी नांई, अरु कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो उनकों रात्रि अरु दिनका ज्ञान कछु नहीं, अरु कालका ज्ञान भी नहीं, धर्मअधर्मका ज्ञान भी नहीं, जैसी अपणी इच्छा होवै तैसे करते हैं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी, जो पुण्य करनेहारे नरककों प्राप्त होते हैं, अरु पापकर्त्ता स्वर्गकों जावै, कहूं ऐसी सृष्टि देखी, जो वालूतें तेल निकसता है, अरु विषपान कियेतें अमर होते हैं, अरु अमृतके पान कियेतें मरि जावैं॥ हे रामजी! जैसे किसका निश्चय होता है, तैसाही आगे भासता है, यह जगत् संकल्पमात्र है, जैसे भावना होती है तैसा आगे होकरि भासता है, कहूं पत्थरविषे कमल उपजते दृष्ट आये हैं, अरु कछु वृक्षहीसाथ रत्न हीरे दृष्ट आये हैं, अरु बडे प्रकाश संयुक्त आकाशविषे वृक्षके वन दृष्ट आये हैं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो मेघके बादलही तिनके वस्त्र हैं, वस्त्रोंकी नांई बादलोंकों पकरि लेवैं, कहूं सीसके भार लेते दृष्ट आवैं, अरुसब चेष्टा भी करैं, अंधे काणे दोरे इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि देखियां हैं॥ हे रामजी! जब मैं स्वरूपकी उर देखौं, तब सब सृष्टि शून्यरूप दृष्टि आवै, अरु जब संकल्पकी उर देखौं तब नाना प्रकारका जगत् भासै, कहूं ऐसेही दृष्ट आवै, जो चंद्रमा सूर्यकों जानतेही नहीं, कहूं एक पृथ्वीकी सृष्टि देखी पृथ्वीविषे, अरुअग्निकी सृष्टि देखी अग्निविषे, जलकी सृष्टि जलविषे देखी, कहूं पांच भूतकी सृष्टि देखी, जैसे यह विद्यमान है, कहूं काष्ठकी पुतलीवत् सृष्टि चेष्टा करती देखी, जैसे यह विद्यमान् है, भोजन करती है, कहूं कहूं प्राणहू विना चेष्टा करते हैं, यंत्रीकी पुतलियांवत्॥ हे रामजी! जब ऐसे सृष्टिकों देखता देखता महा आकाशविषे अनंतयोजनपर्यंत चल्या गया, परंतु एक आकाशही दृष्ट आवै, अवर तत्त्व को

उ दृष्ट न आवै, बहुरि ऐसी सृष्टि देखी जो खाणा पीणा सब चेष्टा करै, परंतु दृष्ट न आवहीं, वैतालकी नाई, जैसे वैताल सब चेष्टा करते हैं, अरु दृष्ट न आवैं, तैसे उह दृष्ट न आवैं, अरु कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो मैं अरु तूं कल्पना भी नहीं, केवल निश्चित पद रहै, अरु कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो उनका मनही नहीं, कहूं निरहंकार सृष्टि देखी, कहूं ऐसी सृष्टि देखी, जो सबविषे आत्मभावना करते करते हैं, कहूं सब अपणा आपही जाणै, भेदभावना किसीके नहीं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो सब मोक्षकी लक्ष्मीकरि शोभते हैं, कहूं ऐसी सृष्टि देखी जो उपजीकरि नाश हो जावैं शीघ्रही, जैसे नख अरु केश उपजते हैं, कहूं ऐसे देखे जो चिरकालपर्यंत रहैं॥ हे रामजी! इस प्रकार अनंत सृष्टि देखियां, सो कैसी सृष्टि हैं जो अणहोती फुरतियां हैं, अरु संकल्पमात्र हैं, जब संकल्प लय हो जावै तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावै, चित्तके स्पंदविषे सब जगत्जाल देखे, वस्तुतें क्या दृष्टि आवै सो सुण, मैं ऊर्ध्व गया, अध गया, दशों दिशा गया, परंतु मेरे तौ चेतनरूपी समुद्रके बुदबुदे भासे हैं, अवर कछु न भासै॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगत्जालवर्णनं नाम शताधिकाशीतितमः सर्गः॥ १८०॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! ब्रह्म चिदाकाश अपणे आपविषे स्थित है, जैसे जल अपणे जलभावविषे स्थित है, अरु तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसकों मुनीश्वर चित्ताकाश कहते हैं, तिस मनविषे संकल्प विकल्प फुरणेकरि अनंत कोटि ब्रह्मांड बनी गये हैं, तिसका नाम भूताकाश है, जो मनतें उपजा है, इस कारणतें इसका नाम भूताकाश है, सो संकल्पमात्र है, आत्मातें इतर कछु नहीं॥ ॥श्रीराम उवाच॥ हे भगवन्! यह जो कल्प है, ब्रह्माका दिन अरु रात्रि जो दिनविषे भूत उत्पन्न होते हैं, अरु रात्रिविषे प्रलय हो जाते हैं, अरु जब महाप्रलय होता है, तब भूत कोउ नहीं रहता, सब ब्रह्मसत्ताविषे लीन हो जाते हैं, सब जीवन्मुक्त हो जाते हैं, सूक्ष्म ब्रह्मही शेष रहता है, तिस सूक्ष्म ब्रह्मतें बहुरि कैसे उत्पत्ति होती है, सो कृपा करिके कहौ? ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब सब भूत नष्ट हो जाते हैं, अरु ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, तिसकों भी मानता है, तुझनें भी कहा जो पाछे ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, जब तुझनें मान्या जो सबका कारण ब्रह्म शेष रहता है, सो ब्रह्मसत्ता शुद्ध स्वरूप है, आकाशतें भी सूक्ष्म है, जो आकाशका एक अणु होवै, अरु तिसका सहस्र भाग करियें, जैसे उह अणुका भाग सूक्ष्म होता है, तिसतें भी ब्रह्मसत्ता अति सूक्ष्म है ॥ हे रामजी ! ऐसे सूक्ष्म ब्रह्मतें जगत्की उत्पत्ति कैसे कहों, अरु जो उत्पत्तिही नहीं भई, तौ तिसकी प्रलय कैसे होवै, अरु यह जगत् जो दृष्ट आता है, सो ब्रह्मका हृदय है, अपणी जो स्वभावसत्ता है, तिसका नाम हृदय है, सो यह जगत् ब्रह्मका वपु है, जैसे स्वप्नविषे अपणी संवितही देश काल पर्वत आदिकरूप होती है, तैसे यह जगत् संवितरूप है, अरु अपणे स्वरूपके अज्ञान करिके हुएकी नांई दुःखदायक भासता है, जैसे अपणे पडछायेविषे अज्ञान करिके भूत कल्पता है, अरु भयकों प्राप्त होता है, जब विचारकरि देखता है, तब भय निवृत्त हो जाता है, तैसे यह जगत् कछु उपजा नहीं ॥ हे रामजी ! चेतनसंवितही जगत् आकार होकरि भासती है, अवर वस्तु कछु नहीं, जो सब उही हुआ तौ आदि सर्गका होणा, अरु प्रलय सब उसीके अंग हैं, इतर कछु नहीं, अस्ति नास्ति उदय अस्ततें आदि जो शब्द हैं, सो सब आकाशरूप हैं, अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु सर्व शब्द ब्रह्महीविषे होते हैं, अरु ब्रह्म सर्व शब्दतें रहित भी है, जो सर्व शब्दतें रहित हुआ तौ जगत्की उत्पत्ति प्रलय क्योंकरि कही जावै, आत्मा अच्छेद्य अरु अदाह्य अरु अक्लेद्य है, अदृश्य है, इंद्रियांका विषय नहीं, अशब्द पद केवल आत्मा है, अरु परमदेव है, अरु जगत् भी अविनाशी है, काहेतें जो उपजाही नहीं ॥ हे रामजी ! जगत् भी आत्मातें इतर नहीं, आत्मरूप है, जो आत्मरूप है तौ विकार कहा होवै, सर्व शब्द अरु अर्थका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, तातें जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जैसे अंगवाला सर्व अंग अपणे जानता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मके अंग हैं, अरु सबकों जानता

है, वास्तवतें सुस्वच्छ आकाशवत् है, अदेश काल वस्तु सुख दुःख जन्म मरण साकार निराकार केवल अकेवल नाशी अविनाशी इत्यादिक सर्व शब्द अरु अर्थ सब ब्रह्महीके नाम हैं, जैसे अवयव अवयवी पुरुषके हैं, जो पसारै तौ भी अपणे स्वरूप हैं, जो संकोचै तौ भी अपणे अवयव हैं, तैसे उत्पत्ति प्रलय सब ब्रह्महीके अवयव हैं, इतर कछु नहीं, परंतु इतरकी नांई जगत् हुआ भासता है, जैसे सूर्य किरणांविषे जल कछु हुआ नहीं, परंतु हुएकी नांई दृष्ट आता है, किरणांही जल होकारि भासती हैं, तैसे आत्मा जगत् आकार होकरि भासता है, सो आत्मस्वरूपही है॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे सो संवित फुरणा हुआ है, सो दृढमूल है, अरु चित्त शरीररूपी तिसके स्तंभ हैं, अरु लोकपाल तिसके दाश हैं, अरु शाखा तिसकी जगत् अरु फल तिसका प्रकाश है, जिसकरि जगत् प्रकाशता है, अरु अंधकार तिस वृक्षविषे श्यामता है, अरु वृक्षविषे जो पोल होती है, सो आकाश है, अरु फूलके गुच्छे हैं, सो प्रलय है, अरु गुच्छेके हिलावणेहारे जो भंवरे होते हैं, सो विष्णुरुद्रादिक हैं, अरु जडता तिसकी त्वचा है, इस प्रकार सम सत्य आत्म ब्रह्म है, ब्रह्मत्वभावतें भी नहीं, कछु नहीं, सर्वदा अपणे स्वभावविषे स्थित है॥ हे रामजी! जगत्का भाव अभाव उत्पत्ति प्रलयादिक सर्व स्वभाव अनुभवरूप ब्रह्म स्थित है, अरु विकार तिसविषे कोउ नहीं, केवल शुद्ध निरंजन आत्मआकाश निर्मल है, जैसे चंद्रमाके मंडलविषे विषकी वल्ली नहीं होती, तैसे आत्माविषे विकार कोउ नहीं, निर्मल आकाशरूप है, अरु आदि अंत मध्यकी कलनातें रहित है, तौ लोकपालभ्रम कैसे होवै, अरु जेते कछु विकार भासते हैं, सो आत्माके अज्ञानकरि भासते हैं, जब तूं एकाग्रचित्त विचार करिके देखैगा, तब जगत्भ्रम शांत हो जावैगा, यह जगत्भ्रम फुरणेकरि भास्या है, जब फुरणा उलटीकरि आत्माकी उर आवैगा, तब यह जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जैसे पवनकरि दीपक जागता है, अरु पवनहीकरि लीन हो जाता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है, अरु चित्तका फुर

णा जब अंतर्मुख होता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी! जब ज्ञान करके देखैगा, तब अज्ञानरूप फुरणेका त्रिकाल अभाव हो जावैगा, बंध मुक्ति आत्माविषे कोउ न भासैगी, इसविषे संशय कछु नहीं, यह जगत्जाल जो भासता है, सो आत्माविषे कछु उपजा नहीं, अज्ञान करिके भासता है, जब विचार करिके देखैगा, तब अष्ट सिद्धिका ऐश्वर्य तृणवत् भासैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे बोधजगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकैकाशीतितमः सर्गः ॥ १८१ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो जगत्जाल तुमनें देखी चिद्रूप होकरि, सो एकस्थानविषे बैठीकरि देखी, अथवा सृष्टिविषे जायकरि देखी सो कहौ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं अनंत आत्मा हौं, सर्वशक्तिसंपन्न सर्वव्यापी चिदाकाश हौं, मेरेविषे आवणा जाणा कैसे होवै, न एक स्थानविषे बैठिकरि देखी है, अरु न सृष्टिविषे जायकरि देखी है ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाश हौं, चिदाकाशविषे देखी है ॥ हे रामजी! जैसे तूं अपणे अंगकों शिखातें लेकरि नखपर्यंत देखता है, तैसे मैं ज्ञाननेत्रकरि अपणे आपहीविषे जगत्कों देखत भया हौं, सो कैसे जगत्कों देख्या है, जो निराकार निरवयव आकाशरूप निर्मल देखे हैं, अरु सावयव जो दृष्ट आये हैं, सो फुरणेकरि दृष्ट आये हैं, वास्तव कछु नहीं, केवल आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे दृष्टिका अनुभव होवै, परंतु संवित्रूप है, अवर कछु नहीं, जैसे वृक्षके पत्र टास फूल फल सब अपणे अंग होते हैं, तैसे ज्ञाननेत्रकरि जगत्कों मैं देखता भया हौं ॥ हे रामजी! जैसे समुद्र सब तरंग फैन बुदबुदे अरु जल तरंगकों अपणे आपहीविषे देखता है, तैसे मैं अपणे आपविषे जगत्कों देखत भया हौं, अरु अब भी मैं इस देहविषे स्थित हुआ पर्वतविषे सृष्टियां ज्ञान करिके देखता हौं, जैसे कुटीके अंतर बाहिर आकाश एकरूप है, तैसे मुझकों आगे भी अरु अब भी जगत् आकाशरूप अपणे आपविषे भासते हैं, जैसे जल अपणे रसकों जानता है, जैसे बरफ अपणी शीतलताकों जानता है, जैसे पवन अपणे स्पंदताकों जानता है,

तैसे मैं ज्ञानकरि सृष्टि अपणेविषे देखत भया हौं, जिस ज्ञानवान् पुरुषकों शुद्ध बुद्धविषे एकता भई है, सो ऐसे देखता है, जो सर्वात्मा आकाशवत् अपणा आप है, जिसकों आत्मस्थिति भई है, सो वेदनकों भी अवेदन देखता है, जो कदाचित् उपजा नहीं, जैसे देवता अपणे अपणे स्थानविषे बैठे हुए दिव्य नेत्र करि कोटि योजनपर्यंत अपणे विद्यमान देखते हैं, तैसे जगतोंकों मैं सर्वात्म होकरि देखत भया हौं, जैसे पृथ्वीविषे निधि होती है, अरु औषधि रससहित पदार्थ होते हैं, सो पृथ्वी अपणेविषेही देखती है, तैसे मैं जगत्कों अपणेविषेही देखत भया हौं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह जो कमलनयनी कांता थी, आर्या छंदके पाठ करनेहारी सो बहुरि क्या करत भई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आकाशवपुकों धारिके मेरे निकट आनि स्थित भई, जैसे भवानी आकाशविषे आनि स्थित होवै, तैसे आनि स्थित भई, जैसे मैं आकाश वपु था, तैसे उसकों मैं आकाश वपु देखत भया, आकाशविषे प्रथम इस कारणतें न देखत भया, जो मेरा आधिभौतिक शरीर था, जब चित्तपद होकरि मैं स्थित भया, तब कांताकों देखी, मैं आकाशरूप हौं, अरु उह सुंदरी भी आकाशरूप है, अरु जगज्जाल जो देखी सो भी आकाशरूप है ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम भी आकाशरूप थे, अरु उह भी आकाशरूप थी, अरु वचनविलास तब होता है, जब शरीर होता है, अरु तिसविषे बोलणेका स्थान कंठ तालु नासिका दंत ओठ आदिक होते हैं, अरु प्राण अंतर प्रेरणेहारे होते हैं, तब अक्षरका उच्चार होता है, तुम तौ दोनों निराकार थे, तुमारा देखणा बोलणा किस प्रकार भया, अरु बोलणा अवलोकनरूप मनस्कारकरि होता है, रूप कहियें दृश्य, अवलोकन कहियें इंद्रियां, मनस्कार कहियें मनका फुरणा, इन तीनोंविना तुमारा बोलणा कैसे हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे रूप अवलोकन मनस्कार अरु शब्द पाठ परस्पर वचन होते हैं, सो आकाशरूप होते हैं, तैसे हमारा देखणा बोलणा आपसविषे परस्पर संवाद हुआ है, जैसे स्वप्नविषे

देखते हैं, रूप अवलोकन मनस्कार आकाशरूप होते हैं, अरु प्रत्यक्ष भासते हैं, तैसे हमारा देखणा अरु बोलणा हुआ, यह प्रश्न तुमारा नहीं बनता, जो देखणा बोलणा कैसे हुआ, अरु जैसे आकाशविषे मैं सृष्टि देखियां हैं, तैसे यह सृष्टि भी है, जैसे उनके शरीर थे तैसे उनके अरु हमारा शरीर, जैसे यह जगत् है, तैसे उह जगत् है ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु नहीं भासती है, अरु जो असत् वस्तु है सो भासती है, जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी पर्वत समुद्र अरु जगत् व्यवहार है नहीं सो प्रत्यक्ष भासता है, अरु सत् वस्तु अनुभवरूप नहीं भासती, तैसे हम तुम जगत् सब आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते भासते हैं, अरु शब्द होते हैं, अरु आवणा जावणा हो भासता है, सब आकाशरूप है, अरु हुआ कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी है ॥ हे रामजी ! स्वप्नसृष्टि मिथ्या है, बनी कछु नहीं, अरु कछु है सो अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, अरु तूं कहै, स्वप्न क्या है, अरु कैसे होते हैं सो सुण, आदि परमात्मतत्त्वविषे स्वप्नवचन हुआ है, सो विराट आत्मा है, बहुरि तिसतें यह जीव हुए हैं, सो आकाशरूप हैं, काहेतें जो विराट् आकाशस्वरूप है, यह सब आकाशरूप हैं, अरु स्वप्न दृष्टांत भी मैं तेरे बोधकेनिमित्त कहा है, काहेतें जो स्वप्न भी कछु हुआ नहीं, केवल आत्ममात्र है, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! उह कांता मैं देखी, तब उसतें पूछत भया, काहेतें जो संकल्प मेरा अरु उसका एक हुआ, जैसे स्वप्नविषे स्वप्न जनका होता है, तैसे हमारा हुआ ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नसृष्टि आकाशरूप होती है, तैसे हम तुम सब जगत् आकाशरूप हैं, कछु हुआ नहीं, स्वप्नजगत् अरु जाग्रत्जगत् एकरूप है, परंतु जाग्रत् दीर्घ कालका स्वप्न है, तातें इसविषे दृढ व्यवहार उत्पन्न प्रलय होते भासते हैं ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे भोग होते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, निर्मल आकाशरूप आत्मातें इतर कछु बन्या नहीं, तैसे यह दृश्य अरु द्रष्टा स्वप्नकी नांई अणहोते भासते हैं, जो हम तुम आदिक दृश्यकों मनरूपी द्रष्टा सत्य मानता है, सो

दोनों अज्ञान करिके भ्रममात्र उदय हुए हैं, अरु जो शुद्ध द्रष्टा है, सो दृश्यतें रहित है, अरु जैसे द्रष्टा आकाशरूप है, तैसे दृश्य भी आकाशरूप है, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह जाग्रत् भी अनुभवरूप है ॥ हे रामजी! चिदाकाश जो अनंत आत्मा है, सो इस जगत्का कारण कैसे होवै, जैसे स्वप्नसृष्टिका कारण कोउ नहीं, तैसे इस जाग्रत जगत्का कारण भी कोउ नहीं, काहेतें जो हुआ कछु नहीं, अरु जो कछु है, सो अनुभवरूप है, तातें यह जगत् अकारण है ॥ हे रामजी! यह जीव साकाररूप है, अरु इनके स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारकी होती है, सो भी आकाशरूप है, कछु आकार नहीं, अरु जो निराकार अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसविषे आदि आभासरूप जगत् फुर्या है, सो आकाशरूप क्यों न होवै, साकार क्या अरु निराकार क्या सो सुण, एक चित्त है, एक चैत्य है, चित्त नाम है शुद्ध चिन्मात्रका; अरु चैत्य नाम है दृश्य फुरनेका; अरु जिस चित्तकों दृश्यका संबंध है, तिसका नाम जीव है, जिस चित्तकों अज्ञानकरिके द्वैतका संबंध है, अरु अनात्मविषे आत्मअभिमान है, ऐसा जो जीव है, सो साकाररूप है, तिसके स्वप्नकी सृष्टि आकाशरूप है; सो अचैत्य चिन्मात्र निराकारसत्ता है, तिसका स्वप्न आभासरूप जगत् आकाशरूप क्यों न होवै ॥ हे रामजी! यह जगत् निरुपादानरूप है, अर्थ यह जो बन्या कछु नहीं, चिदाकाश निराकाररूप है, जैसे स्वप्नविषे जगत् अकृत्रिम होता है, तैसे यह जगत् है, न इसकों कोउ निमित्तकारण है, न समवायिकारण है, आत्मा अच्युत है, अरु अद्वैत है, सो दृश्यका कारण कैसे कहियें ॥ हे रामजी! न कोउ कर्त्ता है, न भोक्ता है, न कोउ जगत् है, है अरु नहीं यह भी कहणा नहीं बनता, ऐसा जो ज्ञानवान् है, सो पाषाणवत् मौन स्थित होता है, अरु जब प्रकृत आचार आनि पडता है, तब तिसकों भी करता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदेकताप्रतिपादनं नाम शताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः ॥१८२॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह जो तुमारे निकट आकाशरूप कांता आयी थी, सो अनेक कचटता

दिक अक्षर कैसे बोली शरीरविना अरु जो तुम स्वप्नकी नाई कहौ, तब स्वप्नविषे केवल आकाश होता है, तहां यरलव आदिक कैसे बोलता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! स्वप्नविषे जो शरीर होता है, सो आकाशरूप है, तिसविषे कचटतादिक अक्षर कदाचित् उद्देश नहीं हुए, जैसे मृतक कदाचित् नहीं बोलता, तैसे आकाशरूप आत्माविषे शब्द कदाचित् नहीं हुआ, अरु जो तूं कहै, स्वप्नविषे जो यरलवादिक अक्षर प्रवृत्त होते हैं, तिसका उत्तर यह है, जो कछु शब्द उहां सत् हुए होते तौ निकट बैठेकों भी सुनते ॥ हे रामजी! निकट बैठे जगत्कों नहीं सुणी तौ ऐसे मैं कहता हौं जो आकाशरूप हैं,हुआ कछु नहीं हुआ भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, केवल चिन्मात्र आकाशका किंचन है, सो आकाशविषे आकाशही स्थित है, तैसे यह जगत् भी हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी! जैसे चंद्रमाविषे श्यामता है, अरु आकाशविषे वृक्ष होता है, अरु जैसे पत्थरविषे पुतलियां नृत्य करती भासैं सो मिथ्या हैं, तैसे यह जगत्का होणा मिथ्या है ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे जो जगत् भासता है, सो चिदाकाशका किंचन है, सो किंचन भी आकाशरूप है, इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नका जगत् आकाशरूप है, तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है, जैसे यह जगत् है, तैसे उह जगत् थे, अरु यह जो आकाश है, सो आत्माकाशविषे अनाकाश है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रमकरिके प्रवृत्त भासती है, तैसे जगत् भी भ्रम करिके प्रत्यक्ष भासता ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो यह जगत् स्वप्न है, तौ जाग्रत क्यौं भासता है, अरु जो असत् है, तौ सत्की नांई क्यौं भासता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक मृदुसंवेग है, एक मध्यसंवेग है, एक तीव्रसंवेग है, संवेग कहियें संकल्पका परिणाम, सो त्रिविध है, जैसे कोउ पुरुष अपणे स्थानविषे बैठा हुआ मनोराज्य करके किसी व्यवहारकों रचता है, सो तिसकों जाणता है, जो संकल्पमात्र है, अरु जैसे नट स्वांग धारता है, तब उह जाणता है, जो मेरा स्वांग है, अरु न मेरा यह स्वाग सत्य है, अपणे स्वरूपकों सत् जाणता है, इसका नाम मृदुसंवेग है, काहेतें जो अपणा स्वरूप नहीं

भूला, अरु मध्यसंवेग यह है, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आवता है, तिसविषे स्वप्नसृष्टि भासती है, अरु एक शरीर अपणा भासता है, तब अपणे शरीरकों सत् जानता है, अरु जगत्कों भी सत् जानता है, काहेतें जो स्वरूपका प्रमाद है, स्वप्नकालविषे सृष्टिकों सत् जानता है, अरु आगे हुए तिसकों असत्य जानता है, तिसका नाम मध्यसंवेग है, काहेतें जो सोया हुआ शीघ्रही जागी उठता है, अरु जो सोया अरु जागै नहीं तिसका नाम तीव्रसंवेग है॥ हे रामजी! आदि संकल्प स्वप्न विषयरूप भासते हैं, तिसविषे नानाप्रकारकी सृष्टि होकरि स्थित है, जिनकों आदि स्वरूपका प्रमाद नहीं हुआ तिनकों यह जगत् मृदुसंवेग है, काहेतें सो अपणी लीलामात्र असत्य जाणते हैं, अरु जिनकों आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है, अरु बहुरि शीघ्रही जागि उठते हैं, स्वरूपविषे; तब तिनकों यह जगत् असत्य भासता है, उनकी इस जगत्विषे सत्यप्रतीति नहीं होती, अरु जिनकों प्रमाद हुआ है, बहुरि जागे नहीं, तिनकों यह जगत् सत् हो भासता है, काहेतें जो चित्तकी वृत्तिका प्रमाण तीव्र हो गया है, इस कारणतें अज्ञानीकों यह जगत् स्वप्नरूप जाग्रत हो भासता है, जैसे स्वप्नकालविषे स्वप्नकी सृष्टि सत्य हो भासती है॥ हे रामजी! चित्तके फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्त बहिर्मुख होता है, तब जगत् हो भासता है, अरु स्वरूपका अज्ञान होता है, जब अज्ञान हुआ, तब जगत्भ्रम दृढ होता जाता है, तातें इस जगत्का कारण अज्ञान है॥ हे रामजी! आत्माके अज्ञानकरिके जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान होवैगा, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, सो आत्मा अपणा आप है, तातें आत्मपदविषे स्थित होउ, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा॥ हे रामजी! अज्ञानकरिके इस जगत्की सत्य प्रतीति होती है, तिसविषे जैसी जैसी भावना होती है, तैसेही जगत् हो भासता है॥ हे रामजी! जिस प्रकार जगत्भ्रम सत्य हो भासता है सो सुण, जो अज्ञानी जीव है, जब मृतक होता है, तब मुक्त नहीं होता, अज्ञानके वशतें जड पत्थरवत् होता है, काहेतें जो चेतनरूप है॥ हे रामजी! जब मृत्यु होता है, तब आकाश

रूप चित्तविषेही जगत् फुरि आता है, अरु अपणी वासनाके अनुसार नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, अरु नानाप्रकारके व्यवहाररचना क्रियासहित होकरि भासती हैं, अरु कल्पपर्यंत सब क्रिया जीवकी अंतवाहक होती हैं, जैसी हमारी है ॥ हे रामजी! तूं देख, उह जगत् क्या रूप है, किसी कारणतें तौ नहीं उपजा, जैसे उह जगत् कलनामात्र सत् हो भासता है, तैसे यह जगत् भी जाण ॥ हे रामजी! यह जो तेरे तांई स्वप्न आवता है, तिसविषे जो पुरुष पदार्थ है सो भी सत् है, काहेतें जो ब्रह्मसत्ता सर्वात्मक है ॥ हे रामजी! प्रबोध हुए भी स्वप्नके पदार्थ विद्यमान भासते हैं, इसीतें कहा है जो स्वप्नसंकल्प ब्रह्म अरु जाग्रत तुल्य है, जैसे आगे उदाहरण कहे हैं, शुक्रका अरु इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका, लवण अरु गाधीका, इनकों मनोराज्यभ्रम प्रत्यक्ष हुआ है, आगे कहैंगे, दीर्घतपाकों स्वप्न प्रत्यक्ष हुआ है, इसीतें कहा है जो सब तुल्य हैं, अरु जीव जीवप्रति अपणी अपणी सृष्टि है, काहेतें जो संकल्प अपणा अपणा है, तातें सृष्टि भिन्न भिन्न है, अरु सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, अरु सर्व सृष्टिका प्रतिबिंब आत्मरूपी आदर्शविषे होता है, अरु सर्व सृष्टि आत्माका अनुभव है, जैसे बीजतें वृक्ष उत्पन्न होता है, अरु तिस वृक्षतें अवर वृक्ष होते हैं, तौहूं विचारकरि देख जो बीज तौ एक था, अरु सब वृक्ष आदि बीजतें उपजे हैं, तैसे एक आत्मातें अनेक सृष्टि प्रकाशतियां हैं, परंतु स्वरूपतें इतर कछु नहीं, जैसे एक पुरुष सोया है, अरु तिसकों स्वप्नकी सृष्टि भासी आती है, बहुरि स्वप्नविषे जो बहुत जीव भासते हैं, तिसकों भी अपणे अपणे स्वप्नकी सृष्टि भासती है ॥ हे रामजी! जिसतें आदि स्वप्नसृष्टि भासती है, सो पुरुष एकही है, तिस एकहीविषे अनंत सृष्टि चित्तके फुरणेकरि होतियां हैं, तैसे आत्मसत्ताके आश्रय अनंत सृष्टि फुरतियां हैं, परंतु स्वरूपतें कछु हुआ नहीं, सब आकाशरूप है, अरु जीवकों अपणी अपणी सृष्टि अज्ञान करिके भासती है ॥ हे रामजी! जीवकों अवरकी सृष्टिका ज्ञान नहीं होता, अपणीही सृष्टिकों जानते हैं, काहेतें जो संकल्प भिन्न भिन्न हैं, एककों ह

म स्वप्नके नर हैं, अरु एक हमकों स्वप्नके नर हैं, उह अवर सृष्टिविषे सोए हैं, अरु हमारी सृष्टि उनकों स्वप्नविषे भासती है, तिनकों हम स्वप्नके नर हैं, अरु जो हमारी सृष्टिविषे सोए हैं, तिनकों स्वप्नविषे अवर सृष्टि भासी आई है, सो हमारे स्वप्नके नर हैं॥ हे रामजी! इस प्रकार आत्मतत्त्वके आश्रय अनंत सृष्टि भासतियां हैं, अरु सृष्टिकों सत् जाणीकरि जीव विचरते हैं, सो मोक्षमार्गतें शून्य हैं, जैसे यह पुरुष शयन करता है, तिसकों स्वप्नविषे परिणाम हुआ, तिसविषे जो जीव हुए तिनकों बहुरि स्वप्न हुआ, तब अपणी अपणी सृष्टि उनकों भासती है, अरु बहुरि तिनकों अपणी अपणी सृष्टि भासी आई तौ अनंत सृष्टि अनुभवतें आश्रय होतियां हैं, तैसे एक आत्माके आश्रय असंख्य सृष्टि फुरतियां हैं, सो सृष्टि कैसीयां हैं, केई समान हैं, केई अर्धसमान हैं, केई विलक्षण भासतियां हैं, अपणी अपणी सृष्टिकों जीव जाणते हैं, जैसे एक मंदिरविषे दश पुरुष सोए हैं, अरु तिनकों अपणा अपणा स्वप्न आया, तब उसकी सृष्टिकों उह नहीं जाणता, उसकी सृष्टिकों उह न जाणता, तैसे यह सृष्टि भी अवरकों ज्ञान है, काहेतें जो संकल्प अपणा अपणा है, जैसे पत्थरकों पत्थर नहीं जाणता, अरु जो अंतवाहक शरीर योगीश्वर हैं, तिनकी सृष्टिका ज्ञान होता है॥ हे रामजी! वास्तवतें सृष्टि भी निराकार आकाशरूप है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे सृष्टि है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे सृष्टि भासती है॥ हे रामजी! वास्तवतें कछु हुआ नहीं, सर्वदा काल सर्व प्रकार आत्माही अपणे आपविषे स्थित है, जिनकों आत्माका प्रमाद हुआ, तिनकों जगत् भासता है, वास्तवतें जगत् किसी कारणकरि नहीं उपजा, आभासरूप है, सम्यक् ज्ञानके हुएतें ब्रह्म अद्वैत भासता है, अरु असम्यक् ज्ञानतें द्वैतरूप जगत् हो भासता है, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानतें जेवरीही भासती है, अरु असम्यक् ज्ञानकरि सर्प भासता है, तैसे आत्माके असम्यक् ज्ञानकरि जगत्भान होता है॥ हे रामजी! मैं उस देवीसों प्रश्न किया जो॥ हे देवी!

तूं कहांतें आई है, अरु तेरा स्थान कवन है, अरु तूं कवन है, अरु इहां किस निमित्त आई है, तब देवी बोली ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! ब्रह्मरूपी जो महाआकाश है, तिसका जो अणु है, बहुरि तिस अणुका भी जो अणु है, तिसका जो छिद्र है, तिस छिद्रविषे भी जो छिद्र है, तिसविषे जो तुम रहते हौ, तुमारा यह जगत् भी उसीविषे है, तुमारी सृष्टिका जो ब्रह्मा है, तिसकी संवेदनरूपी कन्या है, तिसनें यह जगत् रचा है, तिस तुमारे जगत्विषे पृथ्वी है, तिसके उपर समुद्र हैं, तिनकरि पृथ्वी आच्छादी हुई है, तिसकेपर दूणा अवर द्वीप है, तिस द्वीपके पर दूणा समुद्र है, इस प्रकार पृथ्वीकों लंघि जाता है, तब आगे स्वर्णकी पृथ्वी आती है, सो दश सहस्र योजनपर्यंत महासुंदर प्रकाशरूप है, तिसनें सूर्यचंद्रमाके प्रकाशकों भी लज्जित किया है, तिसके पर अवर लोकालोक पर्वत है, सो सब ठौर प्रसिद्ध है, तिसविषे बहुत नगर वसते हैं, अरु कहूं ऐसे स्थान हैं, जहां सदा प्रकाशही रहता है, जैसे ज्ञानीके हृदयविषे सदा प्रकाश रहता है, अरु कहूं ऐसे स्थान हैं, जहां सर्वदा अंधकारही रहता है, जैसे अज्ञानीके हृदयविषे अंधकार रहता है, कहूं ऐसेई स्थान हैं, जहां प्रत्यक्ष पदार्थ पाइते हैं, जैसे पंडितके हृदयविषे अर्थ प्रत्यक्ष होते हैं, कहूं ऐसे स्थान हैं, जहा पदार्थ नहीं पाइते, जैसे मूर्खके हृदयविषे श्रुतिका अर्थ नहीं होता, कहूं ऐसे स्थान हैं, जिनके देखणेकरि हृदय प्रसन्न होता है, जैसे संतके दर्शनकरि हृदय प्रसन्न होता है, कहूं ऐसे स्थान हैं, जिनविषे सदा दुःखही रहता है, जैसे अज्ञानीकी संगतिविषे सदा दुःख रहता है, कहूं ऐसे स्थान हैं, जहां सूर्य उदय नहीं होता, कहूं सूर्य चंद्रमा दोनों उदय होते हैं, कहूं पशुही रहते हैं, कहूं मनुष्यही रहते हैं, कहूं दैत्यही रहते हैं, कहूं देवताही रहते हैं, कहूं जट कृषाणही रहते हैं, कहूं धर्मका व्यवहार होता है, कहूं विद्याधरही रहते हैं, कहूं उन्मत्त हस्ती रहते हैं, कहूं बडे नंदन बाग हैं, कहूं ऐसे प्रस्थान हैं, जहां शास्त्रका विचार नहीं, कहूं शास्त्रके विचारवान् रहते हैं, कहूं राज्यही करते हैं, कहूं बडी वसतियां हैं, कहूं उजा

ड वन हैं, कहूं पवन चलता है, कहूं बडे खात छिद्र हैं, कहूं ऊर्ध्व शिखर हैं, तहां विद्याधर देवता रहते हैं, कहूं यक्ष राक्षस मत्त रहते हैं, कहूं विद्याधरी देवीयां महामत्त रहतियां हैं, इस प्रकार अनंत देशस्थानकी वस्तियां हैं, तिस लोकालोकके शिखर उपर शत योजनका तलाव है, तिसविषे कमल फूल लगे हैं, अरु सब कल्पवृक्ष हैं, सब पत्थर चिंतामणी हैं, तिसविषे उत्तर दिशा एक शिला पडी है, स्वर्णकी, तिसके शिखर उपर ब्रह्मा विष्णु रुद्र आनि बैठते हैं, अरु विलास करते हैं, तिसके उपर शिला है, तिसविषे मैं रहती हौं, अरु मेरा भर्त्ता भी रहता है, संपूर्ण परिवार भी उहां रहता ॥ हे मुनीश्वर! तिसविषे एक ब्राह्मण रहता है, सो वृद्ध अवस्था अबलग जीवता है, सो ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरुसदा वेदका अध्ययन करता है, तिसनें मुझकों अपणे विवाहके निमित्त अपणे मनतें उपजाइ है, अरु अब मैं भी बडी हुई हौं, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी होती है, अरु मेरे मनका विवाह नहीं करता, जबका उपजा है, तबका ब्रह्मचारीही रहता है; अरु वेदका अध्ययनकरि विरक्तचित्त हुआ है॥ हे मुनीश्वर! उस ब्राह्मणनें मुझकों विवाहके निमित्त उपजाई है, अरु वस्त्र औ भूषणसंयुक्त मैं उत्पन्न भई हौं, अरु चंद्रमाकी नांई सुंदर हौं, सब अंग मेरे सुंदर हैं, सब जीवकों मोहणेहारी हौं, मुझकों देखिकरि कामदेव भी मूर्छित हो जाता है, अरु फूलकी नांई मेरा हसणा है, अरु सब गुण मेरेविषे हैं, अरु महालक्ष्मीकी मैं सखी हौं, मेरा त्याग करि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरु सदा वेदका अध्ययन करता है, अरु बडा दीर्घसूत्री है, जब मैं उत्पन्न भई थी, तब कहता था, जो मैं तुझकों विवाहौंगा, जब मैं यौवन अवस्थाकों प्राप्त भई हौं, तब त्यागिकरि एकांत जाय बैठा है ॥ हे मुनीश्वर! स्त्रीकों सदा भर्त्ता चाहिता है, अब मैं यौवन अवस्थाकरि परी जलती हौं, अरु जो बडे तलाव कमलसहित दृष्टि आते हैं, सो भर्त्ताके वियोगकरि अग्निके अंगारे भासते हैं, अरु बडे बाग नंदनवन आदिक मुझकों मरुस्थलकी नांई भासते हैं, इनकों देखीकरि रुदन करती हौं, नेत्रतें जल चल्या जाता है, जैसे वर्षाकालका मेघ वर्षता है, तैसे मेरे नेत्रतें जल चलता है, जब मैं, मुख आ

दिक अपणे अंगकों देखती हौं, तब नेत्रके जलकरि निकट कमलिनी डूबि जाती है, अरु जब कल्पतरु तमाल वृक्षके फूल पत्र शय्यापरी बिछायकरि शयन करती हौं, तब अंगके स्पर्शकरि फूल जलावते हैं, जिस कमलसाथ मेरा स्पर्श होता है, सो जलि जाता है ॥ हे भगवन्! भर्त्ताके वियोगकरि मैं तपी हुई हौं, जब बरफके पर्वत उपरि जाय बैठती हौं, तब उही अग्निवत् हो जाता है, अरु मैं नानाप्रकारके फूलकों गलेविषे डारती हौं, तब भी तप्तता निवृत्त नहीं होती, सुंदर हौं, अरु भर्त्ताकों सुख देणेहारी हौं, अरु मेरे भर्त्ताकी देह त्रिलोकी है, तिसके चरणोंविषे सदा मेरी प्रीति रहती है, अरु गृहके सब आचार करती हौं, सब गुणों करके संपन्न हौं अरु सर्वकों धारी रही हौं अरु सर्वकी प्रतिपालक हौं, अरु ज्ञेयकी सदा मुझकों इच्छा रहती है ॥ हे मुनीश्वर! मैं पतिव्रता हौं, जो पुरुष पतिव्रता स्त्रीसाथ स्पर्श करता है, सो बहुत सुख पावता है, तीनों तापतें रहित होता है, अरु सब गुण जिसविषे पाइते हैं, सदा भर्त्ताविषे प्रीति करती है, अरु भर्त्ताकी प्रीति उसीविषे रहै, ऐसी मैं हौं, तिसकों त्यागिकरि ब्राह्मण एकांत जाय बैठा है, अरु सर्व कालवेदका अध्ययन अरु विचार करता रहता है, अरु सर्व कामनाका जिसनें त्याग किया है, कोउ इच्छा तिसकों नहीं रही, अरु मैं उसके वियोगकरि जलती हौं ॥ हे भगवन्! उह स्त्री भी भली है, जिसका भर्त्ता विवाहकरि मरि गया है, अरु जिसका भर्त्ता नहीं प्राप्त भया सो भी भली है, जो सदा कुंवारी है, अरु जो भर्त्ताके संयोगतें प्रथमही मरि जाती है, सो भी श्रेष्ठ है, अरु जिसकों भर्त्ता प्राप्त भया है, परंतु तिसकों स्पर्श नहीं करता, तब उसकों बडा दुःख होता है ॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष परमात्माकी भावनाके संस्कारतें रहित उत्पन्न हुआ है, सो निष्फल है, जैसे पात्रविना अन्न निष्फल होता है, अर्थ यह जो संतजन तीर्थ आदिकतें रहित पापस्थानोंविषे डोया हुआ धन निष्फल होता है, जैसे समदृष्टिविना बोध निष्फल होता है, जैसे वेश्याकी लज्जा निष्फल है, तैसे मैं पतिविना निष्फल हौं ॥ हे भगवन्! जब शय्या बिछायकरि शयन करती हौं, तब फूल

भी जली जाते हैं, जैसे समुद्रकों वडवाग्नि जलावती है, तैसे कमलोंकों मेरे अंग जलावते हैं॥ हे मुनीश्वर! जो सुखके स्थान हैं, सो मुझकों दुःखदायक भासते हैं, अरु जो मध्य स्थान हैं, सो न सुख देते हैं, न दुःख देते हैं, अरु जो सुखके स्थान हैं, सो भर्त्ताके वियोग करिके दुःखकी नाई हैं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीविशोकवर्णनं नाम शताधिकत्र्यशीतितमः सर्गः॥ १८३॥ ॥ ॥ ॥

॥ विद्याधर्युवाच॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैं तप करती फिरती हौं, अब मुझकों भी भर्त्ताके वियोग करि वैराग्य उपजा है, भर्त्ताका वैराग्यरूपी गडा मेरी तृष्णारूपी कमलिनी उपर पडा है, तिसकरि जलि गई हौं, तातें जगत् मुझकों विरस भासता है॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् असार है, इसविषे स्थिर वस्तु कोउ नहीं, इस कारणतें मुझकों भी वैराग्य उपजा हैं, अरु मेरा भर्त्ता जो स्वभूत है, सो संसारतें विरक्त हो करि एकांत जाय बैठा है, वेदकों विचारता रहता है, परंतु आत्मपदकों नहीं प्राप्त भया, मनके स्थिर कर स्थिर करनेका उपाय करता है, परंतु अबलग मन स्थिर नहीं भया, सर्व ईषणांतें रहित होकारि शास्त्रकों विचारता रहता है, अरु आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ, अरु मुझकों भी वैराग्य उपजा है, अब दोनों वैराग्यकरि संपन्न हुए हैं, अरु परम पद पावणेकी मुझकों इच्छा भई है, अरु शरीर हमकों विरस हो गया है, जैसे शरत्कालकी वल्ली विरस होती है, इस कारणतें मैं योगकी धारणा करने लगी हौं, यह शक्ति मुझकों उत्पन्न भई है, आकाशमार्गकों आउं जाउं, योगधारणाकरि आकाशउपर उडणेकी शक्ति हुई है, बहुरि सिद्धमार्गकी धारणाकरि सिद्धोंके मार्ग भी आउं जाउं, परंतु अर्थ कछु सिद्ध न हुआ, पावणे योग्य जो आत्मपद है, सो प्राप्त न हुआ, जिसके पायेतें दुःख कोउ न रहै, अब मुझकों निर्वाणकी इच्छा भई है, अरु सिद्धोंके गण भी मैं देखे हैं, देवता अरु विद्याधर देखे हैं, ज्ञानीके स्थान भी देखे हैं, इत्यादिक बहुत स्थान देखे हैं, परंतु जहां जाउं तहां तुमारी स्तुति करही, वसिष्ठमुनि ऐसे हैं, जो वचनद्वारा बलकरि अ

ज्ञानकों निवृत्त करते हैं, जैसे बडा मेघ वर्षता है, परंतु जब वायु चलता है, तब मेघकों दूर करता है, तैसे तुमारे वचन अज्ञानकों दूर करते हैं, जब ऐसे मैं तुमारी स्तुति सुणी, तब मैं इस सृष्टिविषे आवणेका अभ्यास किया, तब धारणाके अभ्यासतें तुमारी सृष्टिविषे आई हौं, तातें हे मुनीश्वर! मेरे अरु मेरे भर्त्ता कों शांति अर्थ आत्मज्ञानका उपदेश करौ, मेरा भर्त्ता जो मनके स्थिर करणेकों यत्न करता है, तिसकों तुम ऐसा उपदेश करौ, जो शीघ्रही स्थिर होवै, अरु आत्मपदकों प्राप्त होवै, अरु मुझकों भी आत्मज्ञानका उपदेश करौ ॥ हे भगवन्! तुम मायातें पार मुझकों दृष्टि आते हौ, इस कारणतें मैं तुमारी शरण आई हौं, अरु मैं स्त्रीबुद्धि करिके तुमारे निकट नहीं आई, शिष्यभावकों लेकरि आई हौं, अरु मैं जाणती हौं जो मेरा अर्थ सिद्ध हो रहा है, काहेतें जो कोई महापुरुषकी शरण आय प्राप्त होता है सो भी निष्फल नहीं जाता, सब अर्थ संपूर्ण होता है, जैसा किसका अर्थ होता है सो महापुरुष सिद्धकरि देते हैं, जैसे कल्पवृक्षके निकट कोउ जाता है, तिसका अर्थ पूर्ण होता है, तैसे मेरा अर्थ सफल हो जावैगा, तातें कृपा करिके मुझकों उपदेश करौ ॥ हे मुनीश्वर! तुम दयाके मानौ समुद्र हौ, सबके अर्थ संपूर्ण करनेकों समर्थ हौ, अरु सुहृद हौ, अर्थ यह जो उपकारकी अपेक्षाविना उपकार करते हौ, तातें मैं अनाथ तुमारी शरणकों आनि प्राप्त भई हौं, मुझकों आत्मपदकी प्राप्ति करौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्याधरीवेगवर्णनं नाम शताधिकचतुरशीतितमः सर्गः ॥ ॥ १८४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार विद्याधरीनें मुझकों कहा तब तिस कालमें आकाशविषे संकल्पका आसन मैंनें रचा, तिसपर बैठा, अरु एक आधारभूतका आसन संकल्पकरि तिसकों बैठाई, काहेतें जो हमारा शुद्ध संकल्प है, जो कछु चितवना करियें सो होय जाता है, तब मैं कहा ॥ हे देवी! तूं कैसे कहती है जो गिटीविषे हमारी सृष्टि है, गिटीविषे तुमारी सृष्टि कैसे वसती है सो कहौ ॥ ॥ विद्याधर्यु

वाच ॥ हे भगवन्! तुमारी सृष्टिविषे जो लोकालोक पर्वत है, सो प्रसिद्ध है, तिसके उत्तर दिशा शिखरपर शिला है, तिस स्वर्णकी गिटीविषे हमारी सृष्टि है, जैसे तुमारी सृष्टि है, तैसे उस गिटीविषे सृष्टि वसती है, तिस सृष्टिका ब्रह्मा मेरा भर्त्ता है, मैं तिसकी स्त्री हौं, अरु त्रिलोकी इस प्रकार वसती है, ऊर्ध्वलोक देवता रहते हैं, पातालविषे दैत्य अरु नाग रहते हैं, मध्यमंडलविषे मनुष्य अरु पशु पक्षी रहते हैं, समुद्र भी हैं, पर्वत भी हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश हैं, समुद्रनें गंभीरता अंगीकार करी है, जीवहुनें प्राण अंगीकार कियें हैं, पवननें आकाशविषे चलणा अंगीकार किया है, आकाशनें पोल अंगीकार किया है, पृथ्वीनें धैर्य अंगीकार किया है, विद्याधरनें ज्ञान अंगीकार किया है, अग्निनें उष्णता, सूर्यनें प्रकाश अंगीकार किया है, दैत्यहुनें क्रूरता, विष्णुनें अवतार अंगीकार किये हैं, जगत्की रक्षाके निमित्त नदीनें चलणा, पर्वतनें स्थिरता अंगीकार करी है, इस प्रकार सब नीति परमात्माके आश्रय रची हुई है, कल्पपर्यंत ज्यौंकी त्यौं मर्यादा रहती है, इस प्रकार जीव जन्मते मरते हैं, देवता विमानपर आरूढ फिरते हैं, दिनका स्वामी सूर्य है, रात्रिका स्वामी चंद्रमा है, नक्षत्र तारेका चक्र पवन करिके फिरता है, अरु दो ध्रुव हैं, काल इस चक्र कों फेरता है, फेरता फेरता नाशरूप जो काल है, सो कल्पके अंतविषे काल चक्रके मुखमें जाय रहता है ॥ हे मुनीश्वर! परमात्मा अनंत है, अंत कोउ नहीं जाणी सकता, जब संवेदन फुरती है, तब जाणीता है जो यह जगत् ईश्वरकी सत्ता करिके है, जब फुरणेतें रहित होता है, तब जाण्या नहीं जाता जो जगत् कहां गया ॥ हे मुनीश्वर! तुम चलौ, हमारी सृष्टिका विलास देखौ, तुम तौ जगत्के विलासतें पारकों प्राप्त हुए हैं, यद्यपि तुमकों इच्छा नहीं तौ भी कृपा करिके शिलाविषे हमारी सृष्टिकों देखौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि आकाशमार्गमें ले चली, जैसे गंधकों वायु ले जाता है, तैसे मुझकों ले गई, तब दोनों आकाशमार्गमें उडे, भूताकाशविषे हम चिरकाल उडते गए, हमकों लोकालोक पर्वत

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दृष्ट आया, तिसके निकट जायकरि तिसके शिखर देखे, जो महाऊर्ध्वकों गए हैं, अरु मेघ पडे विचरते हैं, अरु शिखर ऐसे सुंदर हैं, मानौ क्षीरसमुद्रतें चंद्रमा निकस्या है, ऐसे सुंदर शिखरकों हम देखते भए, तहां जायकरि शिला देखी, कैसी शिला है, जो स्वर्णकी जो महासुंदर शिला है, तिसके निकट हम गये, तब मैंनें कहा, हे देवी! यह तौ शिला पडी है, तुमारी सृष्टि कहां है, इसविषे पृथ्वी कहां है, द्वीपकी मर्यादा कहां है, समुद्र कहां हैं, जिनका आवरण होता है चहुंफेर, अरु तिनकेपर दशसहस्र योजनपर्यंत स्वर्णकी पृथ्वी होती है, सो कहां हैं, पर्वत कहां है, सप्तलोक कहां हैं, आकाश कहां है, दशो दिशा कहां हैं, तारामंडल कहां है, सूर्य चंद्रमा कहां हैं, जो रात्रि दिनके प्रकाशक हैं, अरु भूतका संचार कहां होता है, देवगण कहां, विद्याधर सिद्ध गंधर्व कहां हैं, योगीश्वर कहा हैं, वरुण कुबेर कहां हैं, जगत्की उत्पत्ति प्रलयका संचार कहां है, पातालकी भूमिका कहां है, अरु मंडलेश्वर कहां हैं, न्याय करनेहारे अरु मरुस्थलकी भूमिका कहां हैं, अरु नंदनवनादिक कहां हैं, देवता दैत्यके विरोधसंचार कहां हैं, यह तौ शिला दृष्ट आवती है॥ हे रामजी! आश्चर्यकों प्राप्त होकरि जब मैंनें ऐसे कहा, तब विद्याधरि बोली॥ हे भगवन्! तुमकों तौ प्रत्यक्ष इस शिलाविषे अपणी सृष्टि भासती है, जैसे शुद्ध आदर्शविषे अपणा मुख भासता है, तैसे मुझकों अपणी सृष्टि भासती है, जैसी मर्यादा देशदेशांतरकी मुझकों भासती है, इसका संस्कार पूर्वका मेरे हृदयविषे है, इसीतें मुझकों प्रत्यक्ष भासती है, अरु तुमारे हृदयविषे इसका संस्कार नहीं, इसीतें तुमकों नहीं भासती, तुमारी सृष्टिकी अपेक्षा करिके यह शिला पडी है, तुमकों शिलाका निश्चय है, इस कारणतें तुमकों इसविषे जगत् नहीं भासता॥ हे भगवन्! जिसका अभ्यास होता है सो पदार्थ अवश्य प्राप्त होता है, अरु सोई भासता है॥ हे मुनीश्वर! गुरु शिष्यकों उपदेश करता है, जो कछु इसकी वांछा होती है सो उपदेशमात्रतें इष्टकी प्राप्ति नहीं होती, जब तिसका अभ्यास करै, तब इष्टकी प्राप्ति होती है॥ हे मुनीश्वर! ऐसा शास्त्र कोउ नहीं, जो अभ्यास कियेतें न पाइयें, ऐसा

न्याय अरु ऐसी सिद्धता कोउ नहीं, जो अभ्यास कियेतें न पाइयें, ऐसी कला कोउ नहीं जो अभ्यास कियेतें न पाइयें, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो अभ्यासकी प्रबलताकरि सिद्ध न होवै, अवश्य सिद्ध होते हैं, जो थकीकरि फिरै नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो कछु सिद्ध होता दृष्ट आता है सो सब अभ्यासके वशतें होता है, प्रथम जो मैं तेरेसाथ आई हौं तब मुझकों भी सृष्टि न भासी थी, शिलाविषे; काहेतें जो सृष्टि अंतवाहक शरीरविषे स्थित है, सो तुमारेसाथ द्वैतरूपी कथाके करणेतें अंतवाहक शरीर मुझकों विस्मरण हो गया था, जो विश्वकी चर्चा अरु तुमारी सृष्टिकी चर्चा करिके मुझकों स्पष्ट नहीं भासती, जैसे मलीन आदर्शविषे मुख नहीं भासता, तैसे तुमारी सृष्टिके संकल्पकरि मुझकों भी सृष्टि भासती नहीं, परंतु चिरकाल जो अभ्यास किया है, तातें बहुरि भासती है, काहेतें जो कछु दृष्टि अभ्यास होता है, तिसकी जय होती है ॥ हे मुनीश्वर ! चिन्मात्रपदविषे फुरणेकरि आदि जीवके शरीर अंतवाहक हुए हैं, अर्थ यह जो आकाशरूप शरीर थे, जब उसविषे दृढ अभ्यास हुआ प्रमादकरिके, तब अधिभूत होकरि भासणे लगे, जब भावना उलटीकरि बहुरि योगकी धारणा करिके, अभ्यास करता है, तब अधिभूतता क्षीण हो जाती है, अरु अंतवाहक प्रगट होता है, तिसकरि आकाशविषे उडता फिरता है, पक्षीकी नांई, तातें तुम देखौ, जो अभ्यासके बलकरि सब कछु सिद्ध होता है ॥ हे मुनीश्वर ! अज्ञान करके जगत् अहंकाररूपी पिशाच लगा है, सो दृढ स्थित हुआ है, बहुरि जब शास्त्रके वचनोंविषे दृढ अभ्यास होता है, तब क्षीण हो जाता है ॥ हे मुनीश्वर ! तुम देखौ जिस किसीकों सृष्टिकी प्राप्ति होती है सो अभ्यासके बल करके होती है, जो अज्ञानी होता है, अरु ब्रह्म अभ्यास करता है तौ ज्ञानी होता है, अरु पर्वत बडा है परंतु जब अभ्यासकरि चूर्ण किया चाहै तौ चूर्ण होता है, अरु संपूर्ण वृक्षकों भोजन करणा कठिन है, परंतु अभ्यास करिके शनैः शनैः घूणा खाय जाता है, आप तौ छोटा है, परंतु जो वस्तु पावणी कठिन होवै, सो अभ्यासकरि सुगम हो जाती

है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरुके निकट जायकरि जिस पदार्थकी वांछा करता है, सो सिद्ध होता है, तैसे आत्मरूपी चिंतामणि कल्पतरु है, तिसविषे जिस पदार्थका अभ्यास करता है सो सिद्ध होता है, अभ्यासरूपी भूमिका फल देती है, जो बालक अवस्थातें अभ्यास होता है, सो वृद्धअवस्थापर्यंत होता है॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष बांधव नहीं होता, अरु निकट आय रहता है, तब निकटके अभ्यासतें बांधव हो जाता है, परंतु विदेश रहता है तौ अबांधव हो जाता है, अभ्यासकी क्षीणतातें॥ हे मुनीश्वर! विष होती है अरु तिसविषे अमृतकी भावना करता है, तौ अभ्यासकरि अमृत हो जाता है, जो मिष्टान्नविषे कटुकभावना होती है तौ कटु भासता है, अरु कटुविषे मिष्टान्नकी भावना करियें तौ मिष्टान्न भासता है, जैसे किसीकों निंब प्रीतम है, किसीकों मिष्टान्न प्रीतम है॥ हे मुनीश्वर! जो कछु सिद्ध होता है, सो अभ्यासके बलकरि सिद्ध होता है, पुण्य किया होता है सो पापके अभ्यासरि नाश हो जाता है, अरु पाप पुण्यके अभ्यासकरि नाश होता है, अरु माता भी अमाता हो जाती है, किसी अर्थके अनर्थ हो जाते हैं, अरु मित्र भी अमित्र हो जाता है, भाग्य अभाग्यरूप हो जाता है, इत्यादिक पदार्थ सब चल हो जाते हैं, परंतु अभ्यासका नाश कदाचित् नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जो पदार्थ निकट पडा होता है, अरु इंद्रियां साधक भी विद्यमान हैं, तौ भी अभ्यासविना प्राप्ति नहीं होती, जहां अभ्यासरूपी सूर्य उदय होता है, तहां दृष्टिरूप पदार्थकी प्राप्ति होती है, अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है, ब्रह्मचर्चाके अभ्यासकरि नाश हो जाता है॥ हे मुनीश्वर! संसाररूपी समुद्र है, आदि अंततें रहित है, आत्म अभ्यासरूपी नौकाकरि तिसकों तरि जाता है, जब अभ्यासकों न त्यागैगा, तब अवश्य तरैगा॥ हे मुनीश्वर! जो पदार्थ उदय होवै, तिसके अभावकी भावना करियें तौ अस्त हो जाता है, अरु जो अस्त होवै, तिसके उदय होणेकी भावना करियें तब उदय होता है, जैसे सिद्धके शापकरि उदय पदार्थकी नष्टता होती है, अरु वरतें अप्राप्त पदार्थकी प्रा

प्ति होती है ॥ हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्रतें इष्ट पदार्थकों श्रवण करता है, अरु तिसका अभ्यास नहीं करता, सो मनुष्यविषे नीच जानणा, इष्ट पदार्थकी प्राप्ति तिसकों कदाचित् नहीं होती, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं होता, तैसे उसकों इष्ट पदार्थ सिद्ध नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! जो आत्मरूपी इष्टकों त्यागिकरि अवर किसी पदार्थकी वांछा करता है, सो अनिष्टतें अनिष्टकों पावता है, नरकतें नरकातरकों भोगता है ॥ हे मुनीश्वर! जिसकों अभ्यासका भी अभ्यास प्राप्त भया है, तिसकों शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अभ्यासके बलकरि इष्टकों पावता है, जैसे प्रकाशकरि पदार्थ देखीयें जो उह पडा है, तिसका नाम अभ्यास है, अरु देखीकरि जो तिसके निमित्त यत्न करणा, तिसका नाम अभ्यासका अभ्यास है, जब यत्न अरु अभ्यास करता है, तब पदार्थकों पावता है, वारंवार चितवणेका नाम अभ्यास है; जब ऐसा अभ्यास होवै, तब इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती ॥ हे मुनीश्वर! चौदश प्रकारके भूतजात हैं, जैसा जैसा किसकों अभ्यास है, तिसके बलकरि तैसा तैसा सिद्ध होता है, अभ्यासरूपी सूर्य है, तिसके प्रकाशकरि अपणे इष्टरूपी पदार्थकों पावता है, अभ्यासके बलकरि भय निवृत्त होता है, पृथ्वी पर्वत वन कंदराविषे निर्भय होकरि विचरता है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे विद्याधर्यभ्यासवर्णनं नाम शताधिकपंचाशीतितमः सर्गः ॥१८५॥

॥ विद्याधर्युवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! जो कोउ पदार्थ सिद्ध होता है, सो निरंतर अभ्यासकरि सिद्ध होता है, तुमारा शिलाविषे दृढ निश्चय होता है, तातें तुमकों शिला भासती है, अरु मुझकों इसविषे सृष्टि भासती है; जब तुमारा संकल्प भी मेरे संकल्पसाथ मिलै, तब तुमकों भी जगत् भासै, यह जगत् जो स्थित है सो मेरे अंतवाहकविषे है, अरु आदि वपु सबका अंतवाहक है, सो अंतवाहकविषे सबकी एकता है, जैसे समुद्रविषे सब तरंगकी एकता होती है ॥ हे मुनीश्वर! जब तुम धारणाका अभ्यास करिके शुद्ध बुद्धिविषे प्राप्त होहुगे, तब तुमकों शिलाविषे सृष्टि भासैगी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मु

झकों शुद्ध युक्ति कही, तब मैं पद्मासन बांधीकरि विषयतें त्याग किया, अरु विषय जो कथाका क्षोभ था, तिसकों भी त्याग किया, अपणे अधिभूत भी त्याग किया, अरु निरंतर शुद्ध बोधका अभ्यास किया, तिस अभ्यासके बलकरि मुझकों बोधका अनुभव उदय हुआ, जैसे मेघके अभावतें शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनातें रहित मुझकों शुद्ध बोधका अनुभव उदय हुआ, सो कैसा बोध है जो उदय अरु अस्ततें रहित परम शांतरूप है, तिसविषे शिला मुझकों आकाशरूप दृष्टि आई, अरु शिला तत्त्व करके भी दृष्ट आई, केवल बोधमात्र दृष्ट आई है, पृथ्वी आदिक तत्त्व मुझकों कोउ दृष्ट न आवैं, केवल अद्वैत आकाश आत्मतत्त्वमात्र अपणा आपही दृष्ट आवै, जब बोधमात्रतें स्पंद फुर्या, अंतवाहकरूप होकरि तब अंतवाहक करिके शिलाविषे सृष्टि भासणे लगी, जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है, अरु बोधतें भिन्न भिन्न नहीं होती, तैसे सृष्टि मुझकों दृष्ट आई, अरु शिला क्यारूप भासी, जैसे स्वप्नके गृहविषे शिला दृष्ट आवै सो अनुभवही शिला अरु गृहरूप होकरि भासता है, इतर कछु नहीं होता, तैसे उह शिला दृष्ट आई ॥ हे रामजी ! जैसे आकाशरूप उह शिला देखी, तैसे सब जगत् चिदाकाशरूप है, कछु द्वैत बन्या नहीं, सर्वदा काल आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो कछु द्वैत भासता है, सो आत्माके अज्ञान करिके भासता है, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नविषे अपणा शिर काट्या देखता है, अरु रुदन करता है, बहुरि जागि उठ्या, तब आपकों ज्योंका त्यों आनंद देखता है, तैसे जबलग अज्ञान निद्राविषे सोता पडा है, तबलग जगत्भ्रम मिटता नहीं, जब स्वरूपविषे जागिकरि देखैगा, तब सब भ्रम मिटि जावैगा, केवल अपणाही आप भासैगा ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य देख, जो वस्तु सत्रूप है, सो असत्की नांई भासती है, आत्मा सदा सत्रूप है, सो ज्ञान करिके भासता नहीं, अरु जो असत्रूप है सो सत्की नांई हो भासती है, शरीरादिक दृश्य असत्रूप है सो सत्वत् होकरि भासती हैं ॥ हे रामचंद्र ! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, अरु शरीरादिक परोक्ष हैं, अज्ञान करिके शरीरादिक प्र

त्यक्ष भासता है, अरु आत्मपद परोक्ष भासता है ॥ हे रामजी! आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो कछु इस लोक अथवा परलोककी क्रिया सिद्ध होती है, सो आत्मसत्ता करिके सिद्ध होती है, अरु जो कछु प्रत्यक्ष प्रमाणकरि जगत् भासता है, सो आत्मसत्ता करिके भासता है, आदि प्रत्यक्ष आत्माही है, अवर सब कछु आत्माके पाछे जाणीता है, जो पुरुष कहते हैं, आत्मयोगकरि प्रत्यक्ष होता है, अरु मनकरि प्रत्यक्ष होता है सो मूर्ख है, आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, अरु प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण भी आत्माकरि सिद्ध होते हैं, यही माया है, जो सदा अपरोक्ष वस्तु आत्मा है, तिसकों परोक्ष जानणा, अरु जो शरीरादिक असत् हैं, तिनकों सत् मानणा ॥ हे रामजी! जेते कछु जीव तिनका वास्तवरूप ब्रह्मही है, तिसविषे आदि फुरणा अंतवाहकरूप हुआ है, तिसके अनंतर अधिभूतक भासणे लगा है, भ्रम करिके अधिभूतककों अपणा आप जाणते हैं, अरु जो सदा निर्विकार निराकार निर्गुण स्वरूप है, अपणा आप अनुभवरूप है, तिसकों कोउ नहीं जाणते, आदि शरीर सर्व जीवका अंतवाहक है, सो शुद्ध आत्माका किंचन है, केवलआकाशरूप है, कछु बन्या नहीं, संकल्प करिके अधिभूतता दृढ हुई है, सो मिथ्या भ्रांतिकरि भासती है, जैसे स्वप्नविषे अधिभूतक शरीर भासता है, तैसे जाग्रतविषे अधिभूत शरीर भासता है, अरु अंतवाहक अविनाशी है, इस लोक परलोकविषे इसका नाश नहीं होता, वास्तव बोधस्वरूपतें इतर कछु नहीं, भ्रम करिके अधिभूत दृष्ट आता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, जैसी सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे भ्रमतें अपणेविषे अधिभूत शरीर भासता है ॥ हे रामजी! यह आश्चर्य है, जो सत् वस्तु है सो असत् हो भासती है, अरु जो असत् वस्तु है, सो सत् होकरि भासती है, सो अविचारतें जीवकों भासती है, यह मोहका माहात्म्य है, जो सबके आदि प्रत्यक्ष आत्मा है, तिसकों अप्रत्यक्ष जाणते हैं, अप्रत्यक्ष जगत्कों प्रत्यक्ष जाणते हैं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो भ्रम करिके भासता है, स्वप्नकी नांई मिथ्या है, जिनविषे प

दार्थकों सुखरूप मानता है सो सबका कारण है, काहेतें जो परिणाम इनका दुःख होता है, जो प्रथम क्षीणसुख भासता है, बहुरि तिनके वियोगतें दुःख होता है, इसी कारणतें इनका नाम आपातरमणीय कहता है, इनकों पाइकरि शांतिवान् कोउ नहीं होता, जैसे मृगतृष्णाके क्षीणसुख भासते हैं, बहुरि तिनके वियोगतें दुःख होता है, जलकों पाइकरि कोउ तृप्त नहीं होता, तैसे विषयके सुखकरि तृप्त कोउ नहीं होता, तिनविषे लगते हैं, सो मूर्ख हैं, जो अनुत्तम सुख है, अनुभव करिके प्रकाशता है, तिसकों त्यागिकरि विषयके सुखविषे लगते हैं सो मूर्ख हैं, शुद्ध आकाशरूप अंतवाहकविषे जगत् देखते हैं ॥ हे रामजी! हुआकी नांई भासता है, तौ भी हुआ कछु नहीं, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तौ भी हुआ नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषण भासते हैं, तौ भी हुआ नहीं, तैसे यह जगत् प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी! प्रत्यक्षप्रमाण भी है नहीं, असत्य है, तौ अनुमानादिक प्रमाण कहांतें सत्य होवें, जैसे जिस नदीविषे हस्ती वहे जाते हैं, तौ रुईके वहणेविषे क्या आश्चर्य है, तैसे सब प्रत्यक्षप्रमाण जगत्कों असत् जाण्या तौ अनुमानप्रमाणकरि क्या सत् होणा है ॥ हे रामजी! केवल बोधमात्रविषे जगत् कछु बन्या नहीं, हमकों तौ सदा ऐसेही भासता है, अरु अज्ञानीकों जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्नविषे पर्वत दृष्ट आते हैं, अरु जाग्रत पुरुषकों नहीं भासते, तैसे अज्ञानीकों यह जगत् भासता है, हमकों आकाश समुद्र पर्वत सब केवल बोधमात्र भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ श्रोतेके हृदयविषे होते हैं, अरु जिसनें नहीं सुणी, तिसके हृदयविषे नहीं होते, तैसे मेरे सिद्धांतकों ज्ञानवान् जाणते हैं, अवर अज्ञानी जाणी नहीं शकते ॥ हे रामजी! जेता कछु अधिभूत जगत् भासता है सो अप्रत्यक्ष है, अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, जो इस लोक अथवा परलोकका अर्थ है सो अनुभवकरि सिद्ध होता है, काहेतें जो सबके आदि अनुभव प्रत्यक्ष है, तिसकों त्यागिकरि जो जो देहादिक दृश्यकों अपणा आप जाणता है, अरु इनहीकों प्रत्यक्ष जाणते

हैं, सो मूर्ख पशु पत्थरवत् हैं, सूके तृणकी नांईं तुच्छ हैं, जैसे भ्रमतेकों पर्वत् आदिक पदार्थ भ्रमते भासते हैं, तैसे अज्ञानीकों अधिभूत भासता है ॥ हे रामजी! यह जगत् सब परोक्ष है, काहेतें जो इंद्रियाकरि प्रत्यक्ष होता है, जो नेत्र होते हैं, तौ रूप भासते हैं, जो नेत्र न होवें तौ न भासै, इस प्रकार सब इंद्रियांके विषय हैं, जो होवें तौ भासैं, नहीं तौ न भासैं, अरु आत्मा सदा प्रत्यक्ष है, उसके देखणेविषे किसकी अपेक्षा नहीं चाहीती ॥ हे रामजी! जो इंद्रियांकरि सिद्ध होवै सो असत्य हुआ क्यौं, जगत्ही असत् हुआ, तिसके पदार्थ सत् कैसे होवें, तातें इस जगत्की सत्यता त्यागिकरि शुद्ध बोधविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रत्यक्षप्रमाणजगत्निराकरणं नाम शताधिकषडशीतितमः सर्गः ॥ १८६ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं उस शिलाकों देखत भया, जब बोध दृष्टिकरि देखौं, तब मुझकों ब्रह्मरूप भासै, अरु जब संकल्पदृष्टिकरि देखौं तब जगत् दृष्ट आवै, पृथ्वी द्वीप समुद्र पर्वत लोक अरु लोकपाल सूर्य चंद्रमा तारागण पाताल जगत् सब दृष्ट आवैं, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे जगत् भासै, आत्मरूपी आदर्शविषे, तब देवीनें शिलाविषे प्रवेश किया, मैंनें भी संकल्परूपी शरीरकरि प्रवेश किया, दोनों जगत्के व्यवहारकों लंघते गये, जहां परमेष्ठी ब्रह्माका स्थान था, तहां हम जाय बैठे, तब देवीनें कहा, हे भगवन्! तुम ऐसे कहणा, जो मुझकों यह ले आई है, इसके तांईं तुम विवाहनिमित्त उपजाई, बहुरि क्यों इसका त्याग किया, यह तुम पूछणा ॥ हे मुनीश्वर! उसनें मेरे तांईं विवाहके अर्थ उत्पन्न करी थी, जब मैं बडी हुई तब उसनें मेरा त्याग किया है, तिसकों वैराग्य उपजा है, तिसकों देखिकरि अब मेरे तांईं भी वैराग्य उपजा है, इसीतें हम परमपदकी इच्छा रखते हैं, जहां न द्रष्टा है, न दृश्य है, न शून्य है, केवल शांतरूप है, जो सर्गके आदि अरु महाकल्पके अंतविषे रहता है, तिसविषे स्थित होणेकी इच्छा है, जिसविषे स्थित हुए पहाडवत् समाधि हो जावै, ऐसे परम पदका उपदेश करौ ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि भर्त्ताकों जगावणेनिमित्त निकट

जाइकरि कहत भई ॥ हे नाथ! तुम जागौ, तुमारे गृहविषे अवर सृष्टिके ब्रह्माका पुत्र वसिष्ठमुनि आया है, तुम उठीकरि इसका अर्घपाद्य पूजन करौ, काहेतें जो हमारे गृहविषे अतिथि आए हैं, अरु महापुरुष पूजाकरि प्रसन्न होते हैं ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार देवीनें कहा, तब ब्रह्माजी समाधितें उतऱ्या, प्राण आनि देहनाडीविषे स्थित हुए, जैसे वसंत ऋतुकरि सब वृक्षोंविषे रस हो आवता है, तैसे दश इंद्रियां चतुष्ट भई, अंतःकरणविषे शनैःशनैः करि प्राण आनि स्थित हुए, सब इंद्रियां खिली आईयां, तब मुझकों अरु देवीकों अपणे सन्मुख देखत भया, अरु ज्ञान करिके ओंकारका उच्चारकरि ब्रह्माजी सिंहासनपर बैठा, ब्रह्माजीके जागणेकरि बडा शब्द होवणे लगा, विद्याधर गंधर्व ऋषि मुनि आयकरि प्रणाम करत भए, स्तुति करणे लगे, वेदकी ध्वनिकरि पाठ करणे लगे, तब मुनीकों कहत भये ॥ ॥ अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच ॥ हे ऋषि! तुमारे कुशलता है क्यौं, बडे मार्गकरि तुम आए हौ, अरु सार असारकों जानणेहारे हौ, जैसे हाथविषे बिल्लका फल होता है, तैसे तुमकों ज्ञान है, अरु ज्ञानरूपी समुद्र हौ, ऐसे कहीकरि अपणे निकट आसन किया, अरु नेत्रसाथ आज्ञा करी, जो इस आश्रमपर विश्राम करौ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार मुझकों कहा, तब मैं प्रणाम करिके निकट जाय बैठा, एक मुहूर्त्तपर्यंत देवता सिद्ध ऋषिके प्रणाम होते रहे, तिसके अनंतर विद्याधर अरु देवता सब गये, तब मैं कहत भया, हे भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर परमेष्ठि! उंचे आसनपर विराजमान हौ, अरु साक्षात् ब्रह्मज्ञानके समुद्र हौ, अरु यह जो तुमारी शक्ति देवी है, जिसकों तुम भार्याके निमित्त उत्पन्न कीनी है, बहुरि विरस जाणीकरि त्याग किया है, तुमारे वैराग्य करणेकरि इसकों भी वैराग्य उपजा है, इसनिमित्त मुझकों ले आई है, जो परमात्मतत्त्वकी वाणीकरि हमकों उपदेश करहु, सो इसका अभिप्राय क्या है ॥ ॥ अन्यसृष्टिब्रह्मोवाच ॥ हे मुनीश्वर! मैं शांत हौं, अजर अमररूप हौं, अरु मेरेविषे उदय अस्त कदाचित् नहीं, मैं परम आकाशरूप

हौं, अरु अपणे आपविषे स्थित हौं, न मेरी कोउ स्त्री है, न मैंनें किसकी उत्पत्ति कीनी है, तथापि जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं कहता हौं, काहेतें जो महापुरुषके विद्यमान कहणा ज्योंका त्यों योग्य है ॥ हे मुनीश्वर! आदि शुद्ध चिदात्मा चिन्मात्रपद है, तिसका वचन अहं होकरि फुर्या है, जो मैं हौं, तिसका नाम आदि ब्रह्मा है, सो मैं हौं, कैसा ब्रह्मा है, जैसा भविष्यत् सृष्टिका होवै, अर्थ यह जो संकल्परूप द्रष्टा अरु संकल्परूप मैं हौं, अरु वास्तवतें क्या है, आकाशरूप हौं, सदा निरावरण हौं, अरु अपणे आपहीविषे मेरी अहंप्रतीति है, तिसविषे आदि जो संकल्पका फुरणा हुआ है, तिसकरि जगत्भ्रम रचा है, तिस जगत्भ्रम विषे मर्यादा हुई है, अरु संकल्पका जो अधिष्ठाता यह ब्रह्मशक्ति है, सो भी शुद्ध है॥ हे मुनीश्वर! तिस मर्यादा कों सहस्र चउकडी युगकी बीती हैं, अब कलियुग है, कल्पकी भी अरु महाकल्पकी भी मर्यादा पूरी भई है, तिसकरि मुझकों परम चिदाकाशविषे स्थित होणेकी इच्छा भई है, तातें इसकों विरस जाणीकरि त्याग किया है, जब इसका त्याग करौं, तब निर्वाणपदकों प्राप्त होवौं, काहेतें जो यह मेरी इच्छा वासनारूप है, जो वासनाका त्याग होवै तौ निर्वाणपद प्राप्त होवै, अरु यह जो चित्तकला शुद्ध है, इसनें धारणा अभ्यास किया था, तिसकरि अंतवाहकशक्ति इसकों प्राप्त भई है; अंतवाहकशक्तिकरि अकाशविषे फुर्या है, अरु संसारतें विरक्त भई है, आकाशमार्गविषे इसकों तुमारी सृष्टि भासी आइ, अरु परमपद पावणेकी जो इच्छा हुई थी तिस वासनाकरि इसकों तुमारी संगति प्राप्त भई, परमपद पावणेकी इच्छा इसकों हुई है, तातें तुमारी शरणकों प्राप्त भई है, अरु तुमकों ले आई है, जो श्रेष्ठ हैं, तौ बडेकी शरण जाते हैं, अपणे कल्याणके निमित्त तुमकों ले आई है ॥ हे मुनीश्वर! यह मेरी वासनाशक्ति है, मूर्तिरूप आगे मैं इसकों उत्पन्न करी थी, तब इस जगतजालकों रची थी, अब मुझकों निर्विकल्प निर्वाणपदकी इच्छा भई है, तिस करिके मैं इसका त्याग किया है, अब इसकों भी वैराग्य उपजा है, इस कारणतें तुम बोधस्वरूपकी शरणकों प्राप्त भ

ई है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगतविलास संकल्पविषे हुआ है, वास्तवतें कछु हुआ नहीं, परमात्मतत्त्व ज्यों का त्यों अपणे आपविषे स्थित है, अरु मैं, तूं, मेरा, तेरा इत्यादिक शब्द समुद्रके तरंगकी नांई हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजीकरि शब्द करते हैं; बहुरि लीन हो जाते हैं, तैसे हमारा तुमारा बोलणा मिलाप होता है ॥ हे मुनीश्वर! वास्तवतें न कोउ उपजा, न किसीनें लीन होणा है, जैसे तरंग जलरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, भिन्न कछु नहीं, इंद्रियां मन बुद्धि आदिक सब उहरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर! मैं चिदाकाश हौं, अरु चिदाकाशविषे स्थित हौं, अरु यह ब्राह्मी शक्ति है; जिसनें जगत् किया है, सो यह भी अजर अमर है, न कदाचित् उपजी है, न नाश होवैगा, शुद्ध आत्मा किंचनद्वारा जगत् हो भासता है, जैसे सूर्यकी किरणां जल हो भासतियां हैं, अरु जल कछु हुआ नहीं, तैसे आत्माही है, विश्व कछु हुई नहीं ॥ हे मुनीश्वर! जगतजाल होकरि आत्मा भासता है, जगत्के उदय अस्त होणेकरि आत्माविषे कछु क्षोभ नहीं होता, ज्यौंका त्यौं एकरस स्थित है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु लीन होते हैं, परंतु समुद्र ज्यौंका त्यौं रहता है, न तरंग उपजे हैं, न लीन होते हैं, तैसे जगत् कछु उपजा नहीं, संकल्पकरि उपजेकी नांई भासता है, जैसे दृढता करिके जल गडा हो जाता है, तैसे चिन्मात्रविषे चैत्यता करिके पिंडाकार भासता है, परंतु उपजे कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर! यह जो शिला है, जिसविषे हमारी सृष्टि है, सो शिला केवल चिद्घनरूप है, तुमारी सृष्टिविषे यह शिला है, अरु हम चेतनघन हैं, आकाश चेतन आत्मा शिला होकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे पत्तनसृष्टि सब जागृत भासती है, सो बोधरूप है, बोधकी जगत्करि भासता है, तैसे यह जगत् अरु शिलारूप होकरि बोधही भासता है ॥ हे मुनीश्वर! जैसे स्वप्नविषे ग्रहका चक्र फिरता दृष्टि आता है, सूर्य चंद्रमा पर्वत नदी वरुण कुबेर आदिक जगत् भ्रमकरके दृष्ट आवता है सो वन्या कछु नहीं, चेतनका किंचनही ऐसे भासता है, तैसे यह जगत् शुद्ध आकाशका किंचन है, जैसे सूर्य

की किरणांविषे किंचित् जलाभास होता है, तैसे जहां आत्मसत्ता है, तहां जगत भासता है, अरु जो पदार्थ है, सो आत्मसत्ताकरि भासते हैं, ब्रह्मसत्ता सर्वविषे अनुस्यूत है, तातें सब उरविषे सृष्टि वसतियां हैं, जैसे एक शिलाविषे हमारी सृष्टिविषे जो कछु पदार्थ भासते हैं, तिनविषे सृष्टि वसतियां हैं, सो परिच्छिन्न दृष्टिकरि नहीं भासतियां हैं, जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखियें तब सृष्टि भासतियां हैं, घटोंविषे सृष्टि है, गरतोंविषे सृष्टि है, पृथ्वीविषे सृष्टि है, जल अग्नि पवन आकाशविषे सृष्टि है, सब ठौरविषे सृष्टि है, अरु बन्या कछु नहीं, जैसे जहां समुद्र है, तहां तरंग भी होते हैं, परंतु समुद्रतें भिन्न कछु तरंग हुए भी नहीं, उहीरूप हैं, तैसे यह जगत् कछु उपजता नहीं, न मिटणा है, ज्योंका त्यों आत्मसमुद्र अपणे आपविषे स्थित है, अरु जगत् जो फुरता है, सो संकल्पशक्तिकरि फुरता है, संकल्पशक्ति अहंरूपी किंचनमात्र उदय हुई है, अरु जैसे कमलतें सुगंधि लेकरि तरियां निकसतियां हैं, तैसे मूलतें देवी जगत्रूपी सुगंधिकों लेकरि उदय भई है, परंतु वास्तव जगत् कछु बन्या नहीं, संकल्पशक्तिकरि बनेकी नांई भासता है ॥ हे मुनीश्वर! वास्तवतें न कोउ संकल्प है, न प्रलय है, ज्योंका त्यों ब्रह्म अपणे स्वभावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, जैसे समुद्रविषे समुद्र स्थित है, तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् न सत् है, न असत् है, आत्माविषे न उदय हुआ, न अस्त होवैगा, जैसे आकाशविषे नीलता न सत् है, न असत् है तैसे ब्रह्मविषे जगत् न सत् है, न असत् है, अरु मैं तिस ब्रह्मका किंचन ब्रह्मा हौं, यह जगत् मेरे संकल्पविषे उत्पन्न हुआ है, अब मैं संकल्पका निर्वाण करता हौं, जब संकल्प निर्वाण हुआ, तब जगत्का आभास हो जावैगा, जैसे कमलके नाश हुए सुगंधिका अभाव होता है, तैसे मेरेविषे इच्छा फुरी थी तिसविषे वासना है, वासनाविषे जगत् है, अब मैं इसकों निर्वाण करता हौं, जब इच्छा निर्वाण हुई, तब जगत्का भी स्वाभाविक अभाव हो जावैगा, अरु तुमारा जो शरीर भासता है, सो इस संकल्पविषे

भासता है, तातें तुम अपणी सृष्टिविषे गमन करौ, मत तुमारा शरीर भी इहां निर्वाण हो जावै ॥ हे रामजी ! इस प्रकार मुझकों कहीकरि बहुरि देवीकों कहत भया ॥ हे देवी ! अब तूं निर्वाण होहु आत्मपदविषे अरु बोध आदिककों भी लीन कर अपणेविषे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलांतरवासिष्ठब्रह्मसंवादवर्णनं नाम शताधिकसप्ताशीतितमः सर्गः ॥ १८७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्मा कहीकरि पद्मासन किया, अवर भी सब जन संयुक्त तब अकार उकार मकारकों छोडिकरि अर्धमात्रविषे स्थित भया, तब ब्रह्माजीकी मूर्ति ऐसी दृष्ट आवै, जैसी कागद् उपर मूर्ति लिखी होती है, अरु निर्वेदना हुआ जेता कछु जगत्जालका ज्ञान था, तिसका विस्मरण किया, अरु देवी भी उसी प्रकार प्रद्मासन किया, ब्रह्माजीके निश्चयविषे लीन हो जाणे लगी, जब ब्रह्माजी निर्वेदना ब्रह्माविषे लीन होणे लगा, तब जेते कछु उपद्रव थे, सो अति उदय हुए मनुष्य पाप करने लगे, स्त्रीयां दुराचरणियां होत भईयां, सब जीवनें धर्मका त्याग किया, कामी पुरुष बहुत भए, परस्त्रीयांसाथ संग करैं, पुरुष स्त्रीयां शंका किसकी न करैं, काम क्रोध लोभ मोह राग दोष बढि गए, शास्त्रकी मर्यादाकों त्यागत भए, अनीश्वरवादी होत भए, वर्षा होणेतें रहि गई, कुहीड परने लगी, अरु काल पडा, दुष्ट जन धनपात्र होणे लगे, धर्मात्मा आपदा भोगने लगे, चोर चोरने लगे, राजा मद्यपान करणे लगे, जीवहुकों बडे दुःख प्राप्त होणे लगे, तीनों तापहुकरि जलते रहही, राजा न्यायकों त्यागत भए, इत्यादिक जो पाप आचार थे, सो उदय भए, धर्म छपन हो गया, अज्ञानी राज्य करैं, पंडित ज्ञानी टहल करैं, दुर्जनोंकी महान् पूजा होवै, सत्य पंडितका निरादर होवै, तब समूह जीवके एकठे भए, पृथ्वी उपर पृथ्वी अपणी सत्ताकों त्यागत भई, काहेतें जो पृथ्वी ब्रह्मके संकल्पविषे पडी थी, जब उसने अपणा संकल्प खैंचा, तब निर्जीव हो गई, चैतन्यता निकसी गई, जो स्थान भूतके विचरणेका होवै सो खाईकी नांई हो जावै, भूत नाश हो जावैं, पृ

थ्वी भी नाश होणे लगी, पर्वत कंपणे लगे, भूचाल हाहाकार शब्द होणे लगे, जैसे शरत्कालविषे वल्ली सूकि जाती है, जर्जरीभाव होती है, तैसे पृथ्वी जर्जरीभावकों प्राप्त भई, काहेतें जो चेतनता शरीर सर्व जगत् ब्रह्मा है, ज्यों ज्यों संकल्परूपी चेतनता क्षीण होती जावै, त्यों त्यों पृथ्वी जर्जरीभूत होवै, जैसे किसी पुरुषका अर्धांग मरि जाता है, तब उह अंग शब जैसा हो जाता है, फुरणा तिसविषे नहीं रहता, तैसे ब्रह्मके संकल्परूप चेतनता पृथ्वीसों निकसती जावै, इस कारणतें पृथ्वी निघरी निघरी जावै, धूड उडै, नगर नष्ट होवै, इस प्रकार उपद्रव उदय हुए, काहेतें जो पृथ्वीके नाशका समय निकट आया, अरु समुद्र जो अपणी मर्यादाविषे स्थित थे, सो भी अपणी मर्यादाकों त्यागत भए, जैसे कामी पुरुष मद्यपान कियेतें अपणी मर्यादाकों त्यागता है, तैसे समुद्र उछले किनारे गिराय दिये, पर्वत कंदरासों निकसी जावै, पृथ्वीकों नाश करते भये, राजा अरु नगरवासी भागते जावैं, पाछे तीक्ष्ण वेगकरि जल चला जावै, बडे पर्वत गिरणे लगे, अरु चक्रकी नांई फिरणे लगे, समुद्रके तरंगसाथ पर्वत गिरैं, अरु उडैं, अरु तरंग उछलीकरि पातालकों गए, पातालका नाश होणे लगा, अरु बडे रत्नके पर्वत गिरैं, तब रत्नका ऐसा चमत्कार होवै जैसा तारामंडलका होता है, इसी प्रकार बडा क्षोभ होणे लगा, अरु तरंग उछलीकरि सूर्य चंद्रमाके मंडलकों जावैं, अरु प्रकाश भूसल हो गया, वडवाग्नि उदय भई, तब वरुण कुबेर यम इनके जो वाहन थे सो भयकों प्राप्त भए, जलके वेगकरि पर्वत नृत्य करणे लगे, मानो पर्वतोंकों पंख लगे हैं, स्वर्गविषे जो कल्पतरु थे, सो समुद्रविषे आनि पडे, चिंतामणि अरु सिद्ध गंधर्व सब गिरने लगे, समुद्र एकठे हो गए, जैसे गंगा यमुना सरस्वती एकत्र होतियां हैं, तैसे समुद्र मिलीकारि शब्द करने लगे, अरु ऐसे मच्छ निकसे, जिनके पुच्छ लगणेकरि पर्वत उडते जावैं, अरु कंदराविषे जो हस्ती थे सो पुकार करैं, सूर्य चंद्रमा तारागण क्षोभकों प्राप्त भए, समुद्रविषे गिरने लगे ॥ हे रामजी! इस प्रकार प्रलयके क्षोभकरि जेते कछु लोकपाल

थे सो सब समुद्रके मुखमें आनि पडे, उह मच्छ उनकों भक्षण करते भए, अरु तरंग आपसमें युद्ध करैं, जैसे मतवारे हस्ती शब्द करते हैं, तैसे युद्ध करही ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अन्यजगत्प्रलयवर्णनं नाम शताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ॥ १८८ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उह विराटरूप जो ब्रह्मा था, जिसका देह संपूर्ण जगत् था, सो अपणे प्राणकों खैंचत भया, तब छत्र चक्रके फेरणेहारा जो वायु है, सो अपणी मर्यादा त्यागिकरि क्षोभ करणे लगा, तब उह चक्र नाश होणे लगे काहेतें, जो ब्रह्माके संकल्पविषे थे, किसीकी समर्थता नहीं, जो उनकों रखै, अरु तेजमें जो देवता थे, सो पवनके आधार थे, उह पवनके निकसणेकरि निराधार भए, तब समुद्रविषे गिरने लगे, जैसे वृक्षसों फल गिरते हैं, तैसे गिरते भए, जैसे संकल्पके नाश हुए, संकल्पका वृक्ष गिरता है, जैसे पक्व फल समयकरि गिरता है, तैसे सब गिरते भए, सुमेरुकी कंदरा गिरत भई, पवनका बडा क्षोभ हुआ, अरु शब्द हुआ, अपनी शांतिके निमित्त पवनकों क्षोभ हुआ, जैसे पवनविषे तृण फिरता है, तैसे आकाशविषे पवन फिरणे लगा, देवताके रहणेवाला जो सुमेरु पर्वत था सो गिरत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! संकल्परूप जो ब्रह्मा था सो विराट आत्मा है, सब जगत् उसका देह है, भूमंडल उसका कवन अंग है, पाताल कवन अंग है, स्वर्गलोक कवन अंग है? अरु संकल्परूप कैसे अंग होते हैं? संकल्प तौ आकाशरूप होते हैं, अरु जगत् प्रत्यक्ष पिंडाकार दृष्ट आवै, जो जिसतें उपजता है, सो तिसही जैसा होता है, तौ यह जगत् ब्रह्माके अंग कैसे हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस जगततें पूर्व केवल चिन्मात्र था, तिसविषे जगत् न सत् था, न असत् था, केवल आत्मत्वमात्र अपणे आपविषे स्थित था, जैसे आकाश अपणे आपविषे स्थित है, एक अरु दो शब्दतें रहित है, तिस केवल चिन्मात्रका किंचन अहं होकरि स्थित भया है, तिस अहंकारका चैत्य जो दृश्य है, तिससाथ संबंध हुआ, तिस दृश्यके अनुभव ग्रहणकरि निश्चय हुआ तिसका ना

म बुद्धि है, बहुरि सो व्यतीत हुआ तिसका नाम मन है, तिस मनके फुरणेकरि जगत् दृष्ट हुआ है ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चैत्य है, सोइ ब्रह्मारूपकरि कहता है, तिसविषे फुरणेविषे आगे जगत् हो खडा भया है, तिस संकल्परूप जगत्का उह विराट् है, परंतु क्या है, आकाशरूप है, अवर बन्या तौ कछु नहीं, अरु यह जो आकारसहित जगत् भासता है, सो ब्रह्मकरि भासता है, सब संकल्प आकाशरूप है, जैसे स्वप्नविषे जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप होता है, परंतु निद्रादोष करिके पिंडाकार भासता है, अरु आत्मसत्ता सदा केवल आकाश ज्यौंका त्यौं अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! अहं जो फुऱ्या है, सो मिथ्या है, अज्ञान करिके दृढ स्थित हुआ है, असम्यक्दर्शीकों दृग भासता है, सो केवल संकल्पमात्र है, अवर कछु नहीं बन्या, तातें जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिदाकाश है, एक अरु द्वैत कलनातें रहित है, सर्व शब्दतें रहित आत्मा मात्र है, मैं अरु तूं शब्द कोउ नहीं, यह जगत् तिसका किंचन है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है तैसे आत्माका आभास जगत् है, संकल्पकी दृढता करिके दृश्य भासता है, अरु है नहीं, जैसे संकल्परूप गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे रामजी! जिस प्रकार मैं जगत्वर्णन किया है, जो पुरुष मेरे कहणेकों ज्यौंका त्यौं धारै, तब उसकी वासना नष्ट हो जावै, अरु पूर्ववत् आत्मा ज्यौंका त्यौं भासैगा, जैसे जगत्के आदि आत्मत्वमात्र था, तैसेही भासैगा, काहेतें अवर कछु हुआ नहीं, केवल आत्मत्वमात्र ज्यौंका त्यौं स्थित है, जो आत्माही है, तौ समवायकारण अरु निमित्तकारण कैसे होवै, जगत्का उदय होणा अरु नाश होणा असत् है, अद्वैत अनंत कहणा भी कोउ नहीं, जब सर्व शब्दका अभाव हुआ, तब परम चिदाकाश अनुभवसत्ताही शेष रहैगी, इसीका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी! हमकों तौ अब भी संवित्सत्ताही भासती है, कैसा हौं, मैं शुद्ध हौं, सर्व कल्पनातें रहित हौं, चिदाकाश हौं, अरु मेरेविषे जो वसिष्ठ अहं फुऱ्या है, सो फुऱ्या नहीं, फुरेकी

नांई भासता है, एक भी आत्माका किंचन है, हुआ कछु नहीं, तातें तुम भी इसी प्रकार जाणीकरि निर्वासनिक होहु, अरु अपणे प्रकृत आचारकों करहु, अथवा न करहु, जो इच्छा है, सो करहु, परंतु करणे अकरणेका संकल्प न करहु, परम मौनविषे स्थित होहु, ज्ञानवान्कों यह अनुभव होता है, तातें तुम भी ऐसे धारहु ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम शताधिकैकोननवतितमः सर्गः॥१८९॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बंध मोक्ष जगतबुद्धि न सत् है, न असत् है, उदय भी नहीं हुआ, अस्त भी नहीं होता, केवल ज्योंका त्यों आत्मा स्थित है, ऐसे तुमनें मुझकों उपदेश किया है सो मैं जान्या है, आत्माविषे जगत् न उपजता है, न मिटता है, तुमारे अमृतरूपी वचनोंसों उपदेश किया है सो मैं जान्या है, सुणता मैं तृप्त नहीं होता, अमृतकी नांई पान करता हौं, अरु जगत् सत् असत्तें रहित सन्मात्र है, तिसकों मैं जान्या है, बहुरि कहौ, जो संसारभ्रम उपजता है कैसे, अरु अनुभव कैसे होता है?॥ ॥वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तुझकों दृष्ट आवता है, स्थावर जंगम जगत् सर्व प्रकार देशकाल संयुक्त, तिसके नाशका नाम महाप्रलय है, तिसविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र भी लीन हो जाते हैं, तिसके पाछे जो शेष रहता है सो स्वच्छ है, अज है, अनादि है, केवल आत्मत्वमात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, कैसे कहिये, केवल अपणे आपविषे स्थित है, परम सूक्ष्म है, तिसविषे आकाश भी सूक्ष्म है, जैसे सुमेरु पर्वतके निकट राईका दाणा सूक्ष्म है, तैसे आकाशतें आत्मा सूक्ष्म है, कैसी सूक्ष्मता है जो संवेदनतें रहित चिन्मात्र है, तिसविषे अहंकिंचन होकरि फुर्या है, अरु आत्मा सदा निर्विकल्प है, सात समुद्र हैं, देशकालके भ्रमतें रहित है, केवल चेतनघन अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे अपणे भावकों लेकरि स्थित होता है, तैसे आत्मा अपणे भावकों लेकरि चेतन किंचन होता है, तिसका नाम ब्रह्मा है, सो भी चिद्रूप है॥ हे रामजी! चिद् अणु जो अपणे भावकों लेकरि उदय

हुआ है, सो चैत्यनाम दृश्यकों देखत भया है, तब उसका अनुभव मिथ्या हुआ क्या ! ॥ जैसे स्वप्नविषे अपणा मरण देखता है सो अनुभव मिथ्या है, तैसी चिद् अणु दृष्टिकरि दृश्यकों देखता है, सो मिथ्यादृष्टि है, जब चिद् अणु अपणे स्वरूपकों देखत भया, सो केवल निराकाररूप है, परंतु अहं जो ऐसे बीज दृढ होता है, तिसकरि अपणे आपसों निकासि दृश्यकों संकल्पकरि देखता है, जैसे बीजतें अंकुर निकसता है, तैसे संकल्पके फुरणेकरि देश काल द्रव्य द्रष्टा दर्शन दृश्य होता है, वास्तवतें हुआ कछु नहीं, आत्मा सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, परंतु संकल्पकरि हुएकी नांई भासता है, सो देश है जहां चिद् अणु भासै अरु जिस समय भासै सो काल है, अरु जो भान हुआ सो क्रिया हुआ, भानका ग्रहण हुआ सो द्रव्य है, देखणेकों जो वृत्ति दउडती है, सो नेत्र होकरि स्थित हुए हैं, अरु देखणे लगेतें जिसकों देखते हैं, सो भी शून्य है, देखणेहारे शून्य हैं, सब असत्य है, कछु बन्या नहीं, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्मा अपणे आपविषे स्थित है, संकल्पद्वारा सब कछु बनता जाता है, चिद् अणु जो भास्या है, सो दृश्यरूप होकरि स्थित भया है, जब चिद् अणुविषे रूपकी वृत्ति फुरती है, तब चक्षु इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब श्रवणकी वृत्ति फुरती है, तब श्रोत्र होकरि स्थित होते हैं, जब स्पर्शकी वृत्ति फुरती है, तब त्वचा इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब सुगंधि लेणेकी वृत्ति फुरती है, तब नासिका इंद्रिय होकरि स्थित होती है, जब रस लेणेकी इच्छा होती है, तब जिव्हा इंद्रिय होती है, अरु स्वाद लेती है ॥ हे रामजी ! प्रथम यह चिद् अणु नामतें रहित फुऱ्या है, अरु संपूर्ण जगत् भी तद्रूपही था, अब भी उही केवल आकाशरूप है, अरु संकल्पकरि अपणेविषे पिंड घनकों देख्या है, बहुरि शरीरकों देख्या, बहुरि इंद्रियांकों देखी, अनादि सतस्वरूप चिद् अणु इंद्रियांके संयोगतें पदार्थोंकों ग्रहण करता है, स्पंदरूप जो वृत्ति फुरी है, तिसका नाम मन हुआ, जब निश्चयात्मक बुद्धि होकरि स्थित भई, तब चिद् अणुविषे यह निश्चय हुआ,

जो मैं द्रष्टा हौं, यह अहंकार हुआ, जब अहंकारसाथ चिद् अणुका संयोग हुआ तब देशकालका परिच्छेद अपणेविषे देखत भया, आगे दृश्यकों देखत भया, पूर्व उत्तर काल देखत भया, आपकों ऐसे देखते है, इस देशविषे बैठा हौं, इह मैं कर्म किया है, यह विषम अहंकार हुआ, देशकाल क्रिया द्रव्यके अर्थकों भिन्न भिन्नकरि ग्रहण करता है, आकाश होकरि आकाशकों ग्रहण करता है ॥ हे रामजी! आदि फुरणेकरि चिद्अणुविषे अंतवाहक शरीर हुआ है, बहुरि संकल्पके दृढ अभ्यासकरि अधिभूतक भासणे लगा है, सो क्या रूप है, जैसे आकाशविषे अवर आकाश होवै, तैसे यह आकाश है, अणहोते भ्रम करिके उदय हुए हैं, अरु सतकी नांई भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे भ्रम करके नदी भासती है, तैसे अविचार करिके संकल्पकी दृढता है, पंचभूत आकार भासते है, तिनविषे अहंप्रत्यय हुआ है, तिसकरि देखता है, यह मेरा शिर है, यह मेरे चरण हैं, यह मेरा अमका देश है, इत्यादिक शब्द अर्थकों ग्रहण करता है, नानाप्रकारका जगत् शब्द अरु अर्थ सहित ग्रहण करता है, भाव अभावकों ग्रहण करता है, इस प्रकार कहता है, जो यह देश है, यह काल है, यह क्रिया है, यह पदार्थ है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार जगत्के पदार्थका ज्ञान होता है, तब चित्त विषयकी उर उडता है, अरु रागदोषकों ग्रहण करता है, जो कछु देहादिक भूत फुरणे करि भासते हैं, सो केवल संकल्पमात्र हैं, संकल्पकी दृढता करिके दृढ हुए हैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है, इसी प्रकार विष्णु रुद्र हुए हैं, इसी प्रकार कीट उत्पन्न भये हैं, परंतु प्रमाद अप्रमादका भेद है, जो अप्रमादी है, सो सदा आनंदरूप है, ईश्वर है, स्वतंत्र है, तिसकों यह जगत् अरु उह जगत् अपणा आप रूप है, अरु जो प्रमादी है, सो तुच्छ है, सदा दुःखी है, अरु वास्तवतें परमात्मतत्त्वतें इतर कछु हुआ नहीं, अपणे आप स्वभावविषे स्थित है; जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अरु सर्वका बीज है, अरु त्रिलोकरूप बुंदका मेघ है, कारणका कारण उही है, कालविषे निती उही

आत्मा है, क्रियाविषे क्रिया उही है, आदिविराट पुरुषका शरीर भी नहीं, अरु हम तुम भी नहीं, केवल चिदाकाशरूप अब भी इनका शरीर आकाशरूप है, आत्मसत्ता इतर अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त भए, केवल आकाशरूप जैसे स्वप्नविषे युद्ध होते हैं, अरु मेघ गर्जते दृष्टि आते हैं, इत्यादिक शब्द अर्थ भासते हैं, सो केवल आकाशरूप हैं, बन्या कछु नहीं, परंतु निद्रादोषकरि भासते हैं, जब जागता है, तब जाणता है, जो हुआ कछु न था आकाशरूप है, तैसे जो पुरुष अनादि अविद्यातें जाग्या है, तिसकों जगत् आकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी! बहुत योजनपर्यंत विराट पुरुषका देह है, तौ भी ब्रह्म आकाशके सूक्ष्म अणुविषे स्थित है, यह त्रिलोकी एक चिदणुविषे स्थित है, विराट पुरुष इसका ऐसा है, जिसका आदि अंत मध्य नहीं भासता ऐसा स्थूल देह इसका है, तौ भी एक चावलके समान नहीं ॥ हे रामचंद्र! यह जगत् अरु जगत्के भाग विस्तीर्ण दृष्ट आते हैं, तौ भी एक कणके समान नहीं, जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रतके एक अणुके समान नहीं, तैसे विचाररूपी तराजू करके तोलियें तौ परमार्थसत्ताविषे कछु सत्यता इनकी नहीं पाइती, दृष्ट भी आते हैं, परंतु आत्मसत्तातें इतर कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, इसीका नाम स्वयंभू मनु कहते हैं, इसीकों विराट कहते हैं, इसीकों जगत् कहते हैं, जगत् अरु विराटविषे भेद कछु नहीं, वास्तवतें आकाशरूप है, सनातन भी इसीकों कहते हैं, रुद्र इंद्र उपेंद्र पवन मेघ पर्वत जल जेते कछु भूत हैं, सो तिसका वपु है ॥ हे रामजी! आदिवपु जो इनका चिन्मात्ररूप है, तिसविषे चैत्यता करिके अपणा अणु जैसा वपु देखता है; जैसे तेजका कणका होता है, तिस तेज अणुतें चैत्यता करिके क्रमकरि अपणा वडा शरीर जगत्रूप देखत भया, जैसे स्वप्नविषे कोउ पुरुष आपकों पर्वत देखै, तैसे आपकों विराटरूप देखत भया है, जैसे पवनके दो रूप हैं, चलता है तौ भी पवन है, नहीं चलता तौ भी पवन है, तैसे जब चित्त फुरता है, तब भी ब्रह्मसत्ता ज्यौंका त्यौं है, अरु जब चित्त नहीं फुरता, तब भी ज्यौंका

त्यों है, परंतु जब स्पंद फुरता है, तब विराटरूप होकरि स्थित होता है, जब चित्त अफुर होता है, तब अद्वैतसत्ता भासती है, अरु सदा अद्वैतही विराट स्वरूप कैसा है॥ हे रामजी! इस दृष्टिकरि उसके शिर पाद नहीं भासते हैं, अरु जेते कछु ब्रह्मांडकी पृथ्वी है सो तिसका मास है, अरु सब समुद्र तिसका रुधिर है, नदी तिसकी नाडी हैं, अरु दशों दिशा तिसके वक्षस्थल हैं, अरु तारागण रोमावली है, सुमेरु आदिक तिसकी अंगुलियां हैं, अरु सूर्यादिक तेज तिसके पित्त अरु चंद्रमा कफ हैं, अरु पवन तिसका प्राणवायु है, संपूर्ण जगत्जाल उसका शरीर है, ब्रह्मा तिसका हृदय है, सो आकाशरूप है, संकल्प करिके नानारूप हो भासता है, स्वरूपतें कछु बन्या नहीं, आकाश आदिक जगत् सब चिदाकाशरूप हैं, अरु अपणे आपहीविषे स्थित हैं॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराडात्मावर्णनं नाम शताधिकनवतितमः सर्गः ॥१९०॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! आदि जो विराट है, सो ब्रह्म है, तिसका तौ आदि अंत कछु नहीं, अरु यह जगत् उसका छोटा वपु है, तिस चेतन वपुका किंचन ब्रह्मारूप हुआ है, तिसके विस्तारका क्रम सुण अंगका, तिस ब्रह्मानें संकल्पकरि एक अंड रचा है, कैसा ब्रह्मा है, जिसका संकल्पही वपु है, तिस अंडकों फोडता भया, तब अंडेका जो ऊर्ध्व भाग था, सो ऊर्ध्वकों गया, अरु जो अधोभाग था सो अधकों गया, सो पाताल ब्रह्माका चरण हुआ, अरु ऊर्ध्व शिर हुआ, अरु मध्य जो अवकाश है, सो ब्रह्माका उदर हुआ, दशों दिशा वक्षस्थल हुए, अरु हाथ सुमेरादिक पर्वत हुए, अरु मांस पृथ्वी हुई, अरु समुद्र आंद्रा हुए, सब नदीयां तिसकी नाडी भइयां, तिसविषे जल है सो रुधिर हुआ, प्राण अपान वायु पवन हुआ, हिमालय पर्वत तिसका कफ है, सर्व तेज उसके पित्त हैं, चंद्रमा सूर्य तिसके नेत्र हैं, अरु तारागण स्थूल लार है, अरु लार प्राणके बलकरि निकसती है, जैसे ताराचक्रकों पवन फेरता है, अरु ऊर्ध्व लोक तिसकी शिखा है, मनुष्य पशु पक्षी उसके रोम हैं, अरु सब भूतकी चेष्टा उसका व्यवहार है, पर्वत उसके अस्थि हैं,

ब्रह्मलोक उसका मुख है, सब जगत् विराटका वपु है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुमनें संकल्परूप ब्रह्मा कहा, अरु जगत् तिसका वपु कहा, सो मैं मानता हौं, परंतु यह जगत् तौ तिसीका शरीर हुआ, बहुरि ब्रह्मलोकविषे ब्रह्मा कैसे बैठता है, अपणे शरीरही विषे भिन्न होकरि कैसे स्थित होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसविषे क्या आश्चर्य है, जो तूं ध्यान लगाइकरि बैठे, अरु अपणी मूर्त्ति अपणे अंतर रचिकरि स्थित होवै तौ भी होता है, अरु जैसे पुरुषकों स्वप्न आता है, तिसविषे जगत् भासता है, सो सब अपणा स्वरूप है, परंतु अपणी मूर्त्ति धारीकरि अवरकों देखत भया, तैसे ब्रह्माका एक शरीर ब्रह्मलोकविषे भी होता है, ब्रह्मा अरु जीवविषे एता भेद है जो जीव भी अपणी स्वप्नसृष्टिका विराट है, परंतु उसकों भासती नहीं; प्रमाद करिके अरु ब्रह्मा सदा अप्रमादी है, तिसकों सब जगत् अपणा शरीर भासता है ॥ हे रामजी! देवता सिद्ध ऋषीश्वर विद्याधर सो विराट पुरुषकी ग्रीवाविषे स्थित हैं, अरु भूत प्रेत पिशाच सब वैराट पुरुषके मलतें उपजे, कीटकी नांई उदरविषे स्थित हैं, स्थावर जंगम जगत् सब संकल्पकरि रचा हुआ विराटविषे स्थित है, सब तिसीके अंग हैं, जो जगत् है तौ विराट भी है, अरु जगत् नहीं तौ विराट भी नहीं, जगत् कहियें, ब्रह्म कहियें, विराट कहियें तीनों पर्याय हैं, तातें संपूर्ण जगत् विराटका वपु है, निराकार क्या अरु आकार क्या, अंतर बाहिर सब विराटका वपु है, जैसे अंतर बाहिर आकाशविषे भेद नहीं, तैसे विराट आत्मविषे भेद नहीं, जैसे पवनके चलणे ठहरणेविषे भेद नहीं, तैसे विराट अरु आत्माविषे भेद नहीं, जैसे चलणा ठहरणा दोनों रूप पवनके हैं, तैसे साकार निराकार सब विराटका शरीर है ॥ हे रामजी! इस प्रकार जगत् हुआ है, सो कछु उपजा नहीं, संकल्प करिके उपजेकी नांई भासता है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल हुआ कछु नहीं, अरु हुएकी नांई भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ताविषे जगत् उपजेकी नांई भासता है, अरु उपजा कछु नहीं, केवल अपणे आपविषे स्थित है, शिला जठरकी नां

ई स्थित है, अर्थ यह जो संकल्पविकल्पतें रहित चेतनरूप चैत्यतें रहित चिन्मात्र तेरा स्वरूप है, तातें कलनाकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विराटशरीर वर्णनं नाम शताधिकैकनवतितमः सर्गः ॥ १९१॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम प्रलयका प्रसंग बहुरि श्रवण करु, मैं ब्रह्मपुरीविषे ब्रह्माके पास बैठा था जब नेत्र खोलीकरि, देखा तब मध्यानका समय है, जो दूसरा सूर्य पश्चिम दिशाविषे आनि उदय हुआ है, तिसका बडा प्रकाश देखा, मानों संपूर्ण तेज एकठा हुआ है, अरु बडा अग्निकी नांई प्रकाश हुआ, अरु बिजुरीकी नांई स्थित हुआ, तिसकों देखीकरि मैं आश्चर्यमान हुआ, ऐसे देखता था, तौ एक अवर सूर्य उदय हुआ, बहुरि उत्तर दिशाकी उर अवर सूर्य उदय हुआ, इसी प्रकार दश सूर्य आकाशविषे प्रगट हुए, अरु एक प्रथम था, एकादश सूर्य उदय होकरि तपावणे लगे, द्वादशम वडवाग्नि समुद्रतें उदय भई, तिसतें एक सूर्य निकस्या, द्वादश एकठे होकरि विश्वकों तपावणे लगे ॥ हे रामजी! प्रलयके तीन नेत्र आनि उदय हुए, एक नेत्र सूर्य, दूसरा नेत्र वडवाग्नि, तीसरा अग्नि बिजुरी भई, तीनों नेत्र विश्वकों जलावणे लगे, दिशा सब रक्त भई, अट अट शब्द होणे लगे, नगर वन कंदरा संपूर्ण जलणे लगे, पृथ्वी क्षुब्ध जलणे लगी, देवताके स्थान जलि जलि डिगणे लगे, पर्वत जलिकरि श्याम हो गये, ज्वालाके कणके निकसीकरि पातालकों गए, पाताल लगा जलणे, समुद्र जलिकरि सूकी गये, चिकड हो रहा, हिमालय पर्वत बरफका जल होकरि जलणे लगा, जैसे दुर्जनोंके संगकरि साधुका हृदय तप्त होता है, जब इसी प्रकार बडी अग्नि प्रज्वलित भई, तब मुझकों भी तप्त आनि लगी, तब मैं उहांसों दउडिकरि अध जाय स्थित भया, तहां मैं देखत भया, जो अस्ताचल पर्वत जलता हुआ उदयाचल पर्वतके पास आय पडा, मंदराचल पर्वत जलिकरि गिरने लगा, सुमेरु गिरने लगा, अग्निकी ज्वाला ऊर्ध्वकों जावै, भड भड शब्द करै ॥ हे रामजी! इस प्रकार सं

पूर्ण विश्व जलणे लगा, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जहां कछु रस था, सो सब विरसताकों प्राप्त भया ॥ हे रामजी! जिसकों अज्ञानी रस कहते हैं, सो सब विरस हैं, परंतु अपणे अपणे कालविषे रससंयुक्त दृष्ट आते हैं, तिस कालविषे मुझकों ऐसे भासै, जैसे जली हुई वल्ली होती है, तैसे सब विरस दृष्ट आवैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार सब विश्व जलती देखी, परंतु ज्ञानकरि जिसका अज्ञान नष्ट हुआ है, सो सुखी दृष्ट आवै, अवर सब अग्निविषे जलते दृष्ट आए, अरु बडे भयानक शब्द होवैं, अरु सदाशिवका जो कैलास पर्वत है, तिसके निकट अग्नि आती थी, तब सदाशिवनें अपणे नेत्रसों अग्नि प्रगटकरि, तिसकरि बडा क्षोभ हुआ, ब्रह्मांड जलणे लगा, तब महापवन आनि चल्या, बडे बडे जो पर्वत थे सो उडणे लगे, जैसे तृण उडते हैं, अरु जो स्थान जले थे तिनकी अंधेरी होकरि पुरियांके स्थान भी उडते जावैं, बडा क्षोभ आनि उदय भया, अरु इंद्रादिक देवता अपणे स्थानकों त्यागिकरि ब्रह्मलोक चले जावैं, अरु बडे मेघ जलकरि जो पूर्ण थे सो सूकिकरि जलणे लगे, जलकों त्यागते भए, अरु जलनें लगे, अरु कल्परूपी जो पुतली थी सो नृत्य करने लगी, जले स्थानोंतें जो धूम्र निकसता है सो तिसके कैसा है, अरु प्रलय शब्द उसका बोलणा है, बडा पवन चला, पर्वत जलीकरि उडणें लगे, सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नांई उडते जावैं, जीवकों बडा कष्ट प्राप्त हुआ, ऐसा दुःख कहणेविषे नहीं आता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगद्ब्रह्मप्रलयवर्णनं नाम शताधिकद्विनवतितमः सर्गः ॥ १९२ ॥ ॥ ॥ ॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अग्निकरि स्थान सब जलि गये, तिसके उपरांत पुष्कल मेघ प्रलयके गर्जणे लगे, अरु वर्षणे लगे, प्रथम मुसलकी नांई, फेरि स्तंभकी नांई धारा वर्षैं, बहुरि नदीकी वर्षा करणे लगे, बहुरि महानद वर्षणे लगे, जिनकी गंगा यमुना नदी लहरी हैं, सब स्थान शीतल होगये, जैसे अज्ञानी तीन तापकरि जल्या हुआ संतके संगकरि शीतल होता है, तैसे शीतल भये ॥ हे रामजी! ऐसा जल च

ड्या जिसकरि सुमेरु आदिक पर्वत नृत्य करैं, जैसे समुद्रविषे झग होती है, तैसे हो गए, बहुरि कैसे लगे जैसे जलचर होते हैं, तैसे पर्वत वहते जावैं ॥ हे रामजी! ऐसे जल चढै जो कहणेविषे नहीं आता, बडे बडे स्थान वहते जावैं, देवता सिद्ध गंधर्व वहते जावैं, जिनकों अज्ञानी परमार्थ जाणिकरि सेवना करते हैं सो भी बहुत दृष्ट आए, जैसे कोउ पुरुष कंटके अंधे कूपविषे गिरते दुःख पावैं, तैसे दृष्ट आवैं, अरु मुझकों सब ब्रह्म दृष्ट आवैं, जब संकल्पकी उर देखौं तब महाप्रलय दृष्ट आवै, मेघ गर्जते जटा होकरि दृष्ट आवै, अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जल चढि गया, मैं देखीकरि आश्चर्यकों प्राप्त भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजलमयवर्णनं नाम शताधिकत्रिनवतितमः सर्गः ॥ १९३ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्माका जगत् मैं देखौं तौ भी जलमय हो गया, जलतें इतर कछु न भासै, सब शून्यही भासै, दिशा कोउ न भासै, न ऊर्ध्व न अधो न मध्य भासै, न कोउ तत्त्व भासै, न कोउ पर्वत भासै, संपूर्ण जलही भासै, न कोउ देवता न पशु पक्षी भासै, तब मैं ब्रह्मपुरीकों देखत भया, जो क्या दशा है, जैसे प्रातःकालका सूर्य अपणी प्रतिभाकों पसारता है, तैसे ब्रह्मपुरीकों दृष्टि पसारिके देखत भया!, तब ब्रह्माजी मुझकों परम समाधिविषे दृष्ट आया, अरु अवर जो जीवन्मुक्त ब्रह्माका परिवार था, सब पद्मासनकरि परम समाधि लगाइ बैठे, जैसे पत्थर ऊपर मूर्ति होवै, तैसेही सब परम समाधिविषे अचल बैठे, देखे, जो संवेदन फुरणेतें रहित स्थित हैं, सो किंचन कवन है, चारौं वेद मूर्त्तिधारी स्थित है, शुक्र अरु बृहस्पति अरु वरुण कुबेर इंद्र यम चंद्रमा अग्नि देवता इत्यादि ऋषीश्वर मुनीश्वर जीवन्मुक्त जो थे तिन सबकों मैं ध्यानविषे स्थित देखत भया, द्वादश सूर्य जो विश्वकों तपावते थे सो पद्मासन बांधीकरि समाधिविषे स्थित हुये हैं, एक मुहूर्त्तपर्यंत मैं इसी प्रकार देखत भया, जब एक मुहूर्त्त बीत्या तब सूर्यविना सब अंतर्धान होगये, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपणे विद्यमान होती है, अरु जागेतें अभावना हो जाती है, तैसे सब अंतर्धान हो गये, मेरे देखते देखते ब्रह्मपुरी

शून्य वनकी नांई होगई, जैसे पत्तन राजमार्ग प्रलय हो जाते हैं, तैसे प्रलय होगई ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे मेघ गर्जते दृष्ट आते हैं, अरु जागेतें अभाव हो जाते हैं, यह दृष्टांत तौ बालक भी जाने हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभवकों छिपावते हैं, सो मूर्ख हैं, मैं अनुभवकरि भी जानता हौं, अरु स्मृति भी होती है, अरु सुण्या भी है, जबलग निद्रा है, तबलग स्वप्नकी सृष्टि भासती है, जागेतें स्वप्नकी सृष्टिका अभाव होता है, तैसे जबलग ब्राह्मीकी वासना थी, तबलग सृष्टि थी, जब वासना क्षय हुई, तब सृष्टि कहां रहै, जब वासना नष्ट भई, तब अंतवाहक अधिभूत शरीर नहीं रहते ॥ हे रामजी! जब शुद्ध मात्र पदतें चित्तशक्ति फुरती है, तब पिंडाकार हो भासती है, जबलग उह शरीर है, तबलग संसार उपजता भी है, नष्ट भी होता है, तैसे ब्रह्माकी सुषुप्तिविषे जगत् लीन हो जाता है, अरु जाग्रतविषे उत्पन्न होता है, काहेतें जो ब्रह्माका शरीर सुषुप्तिविषे लीन होणा इसीका नाम प्रलय है, अरु जो कहियें इस शरीरके नाशका नाम महाप्रलय होवै तौ ऐसे नहीं, काहेतें जो मृतक हुए शरीरका नाश होता है, अरु बहुरि लोक भासता है, तातें इसका नाम महाप्रलय नहीं, अरु जो कहियें उह परलोक भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रांतिमात्र है, अरु जो कहियें परलोक भ्रांतिमात्र है, इसीका नाम महाप्रलय है, तौ ऐसे नहीं, काहेतें जो श्रुति स्मृति पुराण सब काहेतें हैं, जो महाप्रलयविषे रहता कछु नहीं, आत्मसत्ताही रहती है, अरु जो कहियें परलोक भ्रांतिमात्र है इसका नाम होणा क्या है, तौ श्रुतिशास्त्रका कहणा व्यर्थ होता है, अरु जो इनका कहणा व्यर्थ होवै तौ इनके कहणेकरि ब्रह्माकार वृत्ति किसकी उत्पन्न न होवै? अरु जो तूं कहै जैसे अंगवाला अंगकों सकुचाय लेता है, तैसे स्थूल भूत सकुचिकरि अपणे सूक्ष्म कारणविषे जाय लीन होते हैं, इसीका नाम महाप्रलय है तौ ऐसे भी नहीं, काहेतें जो सूक्ष्म भूतके रहते महाप्रलय नहीं होता, अरु जो तूं कहै संवेदन जो अज्ञान है, जिसविषे अहं फुरता है, तिस अज्ञानका नाम महाप्रलय है, तौ यह भी नहीं, काहेतें जो मूर्च्छाविषे इसका अज्ञान

होता है, परंतु बहुरि सृष्टि भासती है, अरु मृतक होती है, सो बडी मूर्च्छा है, तिसविषे भी बहुरि पंचभौतिक शरीर भासते हैं, अरु आगे जगत् भासता है, तातें इसका नाम भी महाप्रलय नहीं, अरु जो तूं कहै, जबलग यह पंचभौतिक शरीर है, तबलग जगत् है, इसका अभाव होवै तब महाप्रलय है, तौ यह भी नहीं, काहेतें जो शरीरकों त्यागता है, अरु उसकी क्रिया नहीं होती, तौ पिशाच जाय होता है, इसका शरीर निरूप होता है, अरु मनुष्य तब सब हो जाते हैं, अरु क्षत्रिय ब्राह्मणकी संज्ञा नहीं रहती, तातें तूं देख जो इस देहका नाम भी महाप्रलय नहीं, अरु प्रमाद करिके विपर्ययका नामभी महाप्रलय नहीं, महाप्रलय तिसकों कहते हैं, जो सर्वका अभाव हो जावै, अरु सर्वका अभाव तब होता है, जब वासना क्षय हो जाती है, तातें वासनाक्षयका नाम ज्ञानी निर्वाण कहते हैं, जैसे जबलग निद्रा है, तबलग स्वप्नका जगत् भासता है, जब जाग्या तब स्वप्नजगत्का अभाव हो जाता है, तैसे जबलग वासना है, तबलग जगत् है, जब वासनाका क्षय हुआ, तब जगत्का अभाव होता है ॥ हे रामजी! वासना भी फुरी नहीं, आभासमात्र है, अरु तूं जो कहै भासता क्यों तौ जो कछु भासता है सो उही अपणे आप भावविषे स्थित है ॥ हे रामजी! भावतें उत्थान होनेका नाम बंधन है, अरु उत्थान मिटणेका नाम मोक्ष है ॥ हे रामजी! नेत्रके खोलणे अरु मुंदणेविषे भी कछु यत्न है, अरु मुक्त होणेविषे यत्न कछु नहीं, जो वृत्ति बहिर्मुख हुई, तौ बंधन हुआ, अरु वृत्ति अंतर्मुख भई तौ मुक्त भया, इसविषे क्या यत्न है, तातें निर्वासनिक सुषुप्तिकी नांई स्थित होहु, जब अहं संवेदन फुरता है, तब मिथ्या जगत् सत्य हो भासता है, आगे जो इच्छा है सो करहु, जब अहं उत्थानतें रहित होवैगा, तब परम निर्वाणपदकों प्राप्त होवैगा, जहां एक अरु दो कल्पना कोउ नहीं, परम शांत निर्विकल्प पदकों प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वासनाक्षयप्रतिपादनं नाम शताधिकचतुर्नवतितमः सर्गः ॥ १९४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रा

मजी! उह ब्रह्माजी अंतर्धान हो गया, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण हो जावै, जब ब्रह्माजी ब्रह्मपदविषे निर्वाण हुआ, तब द्वादश सूर्य बहुरि ब्रह्मपुरीकों जलावणे लगे, जब संपूर्ण ब्रह्मपुरी जलि गई, तब उह सूर्य भी ब्रह्माकी नांई पद्मासन करिके स्थिर भये, जैसे तेलविना दीपक निर्वाण होता है, तैसे द्वादश सूर्य भी निर्वाण हो गये॥ हे रामजी! जब द्वादश सूर्य निर्वाण हुये, तब समुद्र उछले ब्रह्मपुरीकों आच्छादि लिया, जैसे रात्रिविषे अंधकार नगरकों आच्छादि लेता है, तैसे ब्रह्मपुरीकों आच्छादि लिया, बडे तरंग उछले, पुष्कर मेघ भी तरंगकरि छेदे गए, जलरूप हो गए॥ हे रामजी! तब एक पुरुष आकाशतें निकस्या, सो मुझकों दृष्ट आया, महा भयानक श्यामरूप उग्र आकाशकों भी तिसनें आच्छादि लिया, कृष्णमूर्त्ति मानौं रात्र कल्पपर्यंत एकठी होकरि तिसका रूप आनि स्थित हुआ है, अरु मुखतें ज्वाला निकसती है, अरु शरीर का बडा प्रकाश मानौं कोटि सूर्य स्थित हैं, बिजलिका प्रकाश एकठा हुआ है, अरु तिसके पंचमुख हैं, दश भुजा हैं, अरु तीन नेत्र हैं, मानौं तीनों सूर्य चमत्कार करते हैं, अरु हाथविषे त्रिशूल है, अरु आकाश की नांई मूर्त्ति धारी है, जैसे क्षीरसमुद्रके मथणेकों भुजा बडी करि विष्णुनें शरीर धारा था, अरु क्षीरसमुद्र कों क्षोभाया था, तैसे नासिकाके पवनकरि समुद्रकों क्षोभावत भया, जैसा आकाश बडा वपु है, तैसाही स्वरूप धरा, मानौं प्रलयकालके समुद्र मूर्ति धारिके स्थित हुए हैं; मानौं सर्व अहंकारकी समष्टिता स्थित भई है, मानौं महाप्रलयकी वडवाग्नि मूर्त्ति धारिके आनि स्थित भई है, मानौं प्रलयकालके मेघ मूर्त्ति धारिके स्थित भये हैं॥ हे रामजी! मैं जानत भया, जो यह महारुद्र है, तिसके हाथविषे त्रिशूल है, अरु तीन नेत्र हैं, पंच मुख हैं, तातें रुद्र है, ऐसे जाणीकरि मैं प्रणाम किया॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! उसका भयानक रूप क्या था? अरु रुद्र किसकों कहियें? अरु बडा आकार क्या था? दश भुजा अरु पंच मुख क्या थे? तीन नेत्र क्या थे? हाथविषे त्रिशूल क्या था? अरु किसका भेजा आया था? क्या करता

भया ? अरु कहां गया ? अरु एकला था अथवा अवर भी कोउ साथ था अरु शाममूर्त्ति क्यों था ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! विषमविष परिच्छिन्न जो अहंकार है, सो त्यागणे योग्य है, अरु समष्टि अहंकार सेवणे योग्य है, सर्व आत्मप्रतीतिका नाम समष्टि अहंकार है, तिसका नाम रुद्र है, अरु कृष्णमूर्त्ति इसनिमित्त है, जो आकाशरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता है, तैसे उसविषे कृष्णता है, अरु सर्व जो जीव अपणे अहंकारकों त्यागिकरि निर्वाण हुए, तिनकी समष्टिता होकरि रुद्ररूप भासै, इसीतें उग्र था, अरु पंचमुख ज्ञानइंद्रियांके समष्टिता अरु दश भुजा कर्म इंद्रियां, पंचमुखकी समष्टिता अरु राजस तामस सात्विक तीन गुण तीनों नेत्र हैं, अथवा भूत भविष्य वर्तमान अथवा ऋग यजु साम तीनों वेद नेत्र हैं, अथवा मन बुद्धि चित्त तीनों नेत्र थे, ओंकारकी तीन मात्रा उनके नेत्र हैं, आकाशरूपी वपु था, अरु त्रिलोकीरूपी हाथविषे त्रिशूल थे, अरु चिदसंविततें फुर्या था, तिसीका भेज्या आया था, बहुरि तिसीविषे लीन होवैगा, केवल आकाशरूप था, अरु जो कछु करता भया सो सुण ॥ हे रामजी ! ऐसा जो रुद्र था, मानौ आकाशकों पंख लगे हैं, सोइ उडा है, तिसनें नेत्र प्राणोंकों खैंची लिये तब सर्व जल मुखविषे प्रवेश करणे लगे, जैसे नदी समुद्रविषे प्रवेश करतियां हैं, तैसे सब जल रुद्रविषे लीन भए, जैसे वडवाग्नि समुद्रकों पान करि लेती है, तैसे रुद्रनें एक मुहूर्तविषे सब जलकों पान करि लिया, कहूं जलका अंश भी दृष्ट न आवै, जैसे अंधकारकों सूर्य लीनकरि लेता है, तैसे पान करि लिया, जैसे अज्ञानीका अज्ञान संतके संगकरि नष्ट हो जाता है, तैसे जलकों पान करि लिया, केवल शुद्ध आकाश हो गया, न कहूं पृथ्वी दृष्ट आवै, न अग्नि न वायु कोउ न तत्त्व कहूं दृष्ट न आवै, एक आकाशही दृष्ट आवै, जैसे उज्वल मोती होता है, तैसे उज्वल आकाश दृष्ट आवै, अवर चारों तत्त्व कहूं न भासैं, एक अधोभाग दृष्ट आवै, मध्य भाग आकाश सो रुद्रही दृष्ट आवै, अरु एक ऊर्ध्व भाग दृष्ट आवै, चउथा चिदाकाश दृष्ट आवै, जो सर्वात्मा है,

जगतमिथ्या.

अवर कछु दृष्ट न आवै ॥ हे रामजी ! रुद्र भी आकाशरूप था, आकार कोउ न था, भ्रांति करिके आकार भासता था, जैसे आकाशविषे नीलता तरवरे भासते हैं, भ्रम करिके, जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिके आकार भासते हैं, तैसे रुद्रका आकार दृष्ट आया, केवल आत्मा आकाशतें इतर कछु न था, जैसे चिदाकाशविषे भूताकाश भ्रम करिके भासता है, तैसे रुद्रका शरीर भास्या, उह रुद्र सर्वात्मा था, अरु आकाश होकरि भास्या सो किंचन था ॥ हे रामजी! आकाशविषे रुद्र निराधार भास्या था, जैसे मेघ निराधार होते हैं, तैसे निराधार दृष्ट आया था ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! इस ब्रह्मांडके उपर क्या है, बहुरि तिसके उपर क्या है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो ब्रह्मांडका आकाश है, तिस पर दशगुणा जल अवशेष है, जलकेउपर दशगुण अग्नि है, तिसके उपर दशगुण वायु है, तिसके उपर दशगुण आकाश है ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! यह तत्त्व जो तुमनें वर्णन किये सो किस उपर हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह तत्त्व पृथ्वीके उपर स्थित हैं, जैसे माताकी गोदविषे बालक आनि स्थित होता है, तैसे तत्त्व पृथ्वी उपर हैं, अरु पृथ्वी भागके आश्रय हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पृथ्वी आदिक तत्त्व सहित ब्रह्मांड किसके आश्रय है, निराधार किसके आश्रय स्थित हुआ है, तिनका चलणा ठहरणा कैसे हुआ, नाश कैसे हुआ इह कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तूं कहु आकाशविषे मेघ किसके आश्रय होते हैं, सूर्य चंद्रमा किसके आश्रय होते हैं, जैसे यह हैं, संकल्पके आश्रय, तैसे ब्रह्मांड भी संकल्पके आश्रय है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है, तौ तूं देख जो किसके आश्रय है, संकल्पहीके आश्रय है, क्यों ? अरु संकल्प आत्माके आश्रय है, तैसे यह जगत् अरु तत्त्व भी आत्मसत्ताके आश्रय स्थित हैं, अरु इनका ठहरणा गिरना भी आत्माके आश्रय हैं, जैसे आदिचित्त स्पंद होकरि नीति हुई है, तैसेही है, इस प्रकार गिरना है, इस प्रकार ठहरणा है, इस प्रकार इसका नाश होणा है, इस प्रकार रहणा

है, तैसेही परम स्वरूपतें इतर कछु नहीं, केवल भ्रममात्र है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चित्त संवितही जगदाकार हो भासती है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे तलवारविषे श्यामता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदोषकरि आकाशविषे मोती भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अरु मिथ्या जगत्की संख्या करियें तौ नहीं होती, जैसे सूर्यकी किरणांका आभास अरु रेतके कणकेविषे संख्या नहीं होती, तैसे जगत्की संख्या नहीं होती, अरु वास्तवतें कछु बन्या नहीं, अजातजात है, जैसे स्वप्नविषे अणहोती सृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भासता है, तातें दृश्यकों मिथ्या जाणीकरि जगत्की वासना त्यागहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगन्मिथ्यात्वप्रतिपादनं नाम शताधिकपंचनवतितमः सर्गः ॥ १९५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! रुद्र तौ बडा भयानकरूप मैं देख्या था, अरु नेत्र बडे तेजकरि पूर्ण चंद्रमा सूर्य अग्नि यह तीनों नेत्र हैं, अरु बडा भयानकरूप मानौ महाप्रलयके समुद्र मूर्त्ति धारिके स्थित हुए हैं, अरु रुंडकी माला कंठविषे धारि हुई ऐसा रुद्र स्थित था, अरु तिसका परछावा जो निकसै बडा अरु श्यामरूपी तिसकों देखिकरि मैं आश्चर्यमान हुआ, जो इहां सूर्य भी नहीं, अग्नि भी नहीं, अवर किसीका प्रकाश भी नहीं, यह परछावा किस प्रकार है, अरु क्या है, ऐसे देखता था, जो परछावा नृत्य करणे लगा, तब तिस परछावेतें एक स्त्री निकसि आई, शरीर दुर्बल जैसा नाडी निकसि हुई दृष्ट आवै, अरु बडा उंचा आकार कृष्णवर्ण मानौ अंधेरी रात्र मूर्त्ति धारिके स्थित भई है, सुमेरुपर्वतकी नांई आकार अरु तीन नेत्र वडी भुजा जिसकी उंची ग्रीवा मानौं प्रलयकालके मेघ मूर्त्ति धारिके आयही स्थित भये हैं, अरु गलेविषे रुद्राक्षकी माला, अरु रुंडकी माला पडी हुई इत्यादिक विकराल स्वभाव तिसकों देखत भया, अरु वडी भुजा जिसकी अरु हाथहुविषे त्रिशूल खड़ बाण ध्वज ऊखल मुसल आदिक आयुध हैं, ऐसा भ

यानक आकार देखीकरि मैं विचार किया, जो काली भवानी है, तिसकों जाणीकरि नमस्कार किया, अरु बडा श्याम आकार है जिसका, जैसे अग्निके जले हुए पर्वतके शिखर श्याम होते हैं, तैसे श्याम आकार हैं, अरु मस्तकविषे तीसरा नेत्र वडवाग्निकी नांई तेजवान् निकस्या है, कबहु दो भुजा दृष्टि आवैं, कबहु सहस्र भुजा दृष्ट आवैं, कबहु अनंत भुजा दृष्ट आवैं, कबहु एक एक भुज दृष्ट आवै, कबहु दो भुजा आवैं, कबहु कोउ भुजा दृष्ट न आवै, कबहु शिर पाद कोउ दृष्ट न आवैं, एक बुत जैसा भासै, इस प्रकार करिके नृत्य करै, ज्यों ज्यों नृत्य करै, त्यों त्यों शरीर स्थूल दृष्ट आवै, मानौ आकाशकों भी आच्छादी लिया है, अरु दशों दिशा आकारसाथ पूर्ण करी हैं, नख शिखकी मर्यादा कछु दृष्ट न आवै, ऐसा आकार बढाया, जब भुजाकों हिलावैं, तब जाणियें जो आकाशकों मापती है, पातालपर्यंत चरण अरु आकाश जिसका सीस है, अरु उदर तिसका पृथ्वी है, सुमेरु आदिक पर्वत तिसका नाभिस्थान है, दशों दिशा तिसकी भुजा हैं, मानौ प्रलयकालकी मूर्ति धारीकरि स्थित भई है, अरु बडे पर्वतकी कंदरावत् जिसकी नासिका है, लोकालोक पर्वत तिसकी दाढा हैं, अरु कंठविषे नदीयांकी माला है, जो चलतियां हैं, अरु वरुण कुबेरादिक देवताके शिरकी माला हैं कंठविषे, पवन नासिकाके मार्गतें निकसता है, तिसकरि सुमेरु आदिक पर्वत तृणोंकी नांई उडे अरु ब्रह्मांडकी माला गलेविषे हैं, हाथविषे बहुंटे ब्रह्मांडरूपी भूषण हैं, कटीविषे ब्रह्मांडके घूघरु तडागी हैं, जब नृत्य करै तब सब ब्रह्मांड नृत्य करही, जैसे पवनकरि पत्र नृत्य करते हैं, तैसे सुमेरु आदिक नृत्य करहीं, एक एक रोमविषे ब्रह्मांड है, जैसे तारागण वायुके आधीन हैं, अरु कानविषे धर्म अधर्मरूपी मुद्रा हैं, बडे कान हैं, अरु बडा मुख है, मानौ संपूर्ण ब्रह्मांडकों भक्षण करती है, अरु धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों स्थान हैं, अरु स्थानविषे चारों वेद हैं, अरु शास्त्रके अर्थरूपी दूध निकसता है, अरु अवर भी सब जगत्की मर्यादा मुझकों तिसीविषे दृष्ट आवै, हसै अरु नृत्य करणेकरि केई ब्रह्मांड नृत्य करहीं, अस्ताचल आदिक प

वेत तृणोंकी नांईं नृत्य करहीं, सब कछु विपर्यय होता दृष्ट आवैं, तिसके शरीरविषे आकाश अधकों दृष्ट आवै, अरु पृथ्वी ऊर्ध्वकों दृष्ट आवै, तारामंडल सिद्ध देवता विद्याधर गंधर्व किन्नर दैत्य स्थावर जंगम सब उसविषे दृष्ट आवैं, मानौ संपूर्ण ब्रह्मांडोंका आदर्श है, अरु भुजाके उछलणेकरि चंद्रमाकी नांईं नखका प्रकाश होवै, मंदराचल उदयाचल पर्वत कानविषे भूषण दृष्ट आवैं, हिमालय पर्वत बरफके कणकेवत् दृष्ट आवै ॥ हे रामजी! इस प्रकार देवीके शरीर मुझकों अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, कहूं एकठियां, कहूं भिन्न भिन्न दृष्ट आवैं, कहूं एकही जैसी चेष्टा करैं, कहूं भिन्न भिन्न चेष्टा करैं, मानौ ब्रह्मांडरूपी रत्नका डब्बा है ॥ हे रामजी! जब संकल्पसहित देखौं, तब मुझकों सृष्टि दृष्ट आवै, जब आत्माकी उर देखौं, तब केवल आत्मरूपही भासै, अवर कछु दृष्ट न आवै अरु संकल्प दृष्ट करिके संपूर्ण जगत् नृत्य करते दृष्ट आवैं, ऐसे समर्थता किसकी दृष्ट न आवै जो नृत्य न करै, सब पर्वत तृणकी नांईं नृत्य करते दृष्ट आवैं, जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय सब तिसहीविषे दृष्ट आवैं, जो कछु क्रिया है, सो तिसहीकरि होती दृष्ट आवैं, सिद्ध देवता गंधर्व अप्सरा विमानपर आरूढ फिरैं, नक्षत्र के चक्र फिरते दृष्ट आवैं, मानौ ब्रह्मांड बहुरि उदय हुए हैं, जब आत्मदृष्टिकरि देखौं, तब ब्रह्मस्वरूप भासै, अरु संकल्प दृष्टिकरि जगत् भासै, उह चित्तकला जो संकल्परूप है, तिसविषे सबही दृष्ट आवैं ॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्रअग्नि सूर्य चंद्रमा आदि सब उसीविषे दृष्ट आवैं, जैसे मच्छर वायुकरि उडते हैं, तैसे अनंत सृष्टि उसके शरीरविषे उडती दृष्ट आवैं, महाआश्चर्यकों मैं प्राप्त भया जो उह भैरव था, अरु यह भैरवी उसकी शक्ति है, दौनों मुझकों दृष्ट आए, बडे वपुधारी हैं, यह नित्यशक्ति सर्वात्मा है, परमात्मकी क्रियाशक्ति सर्व विश्वकों अपणे आपविषे जाणै, तीर्थ जैसे समुद्र सब तरंगकों अपणेविषे अपणा आप जाणता है, तैसे सर्व ब्रह्मांडकों अपणेविषे अपणा आप जाणती थी, अरु सदाशिवतें भी बडे अहंकारकों धारा है, मानौ सर्व ब्रह्मांडकी माला कंठविषे डारी है, अरु यमादिक सब तिसकी मर्यादा

है ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं रुद्र अरु काली भवानीकों देखत भया, रुद्रके शिरपर जो जटा है, सो मोरकी पंखकी नांई है, अरु कालीकों मैं देखत भया नानाप्रकारके भृंग दमदमतें आदि लेकरि शब्द करती है, बहुरि शब्द करती भई सो श्रवण कर, दिग्वंदिग्वं तुदिग्वं पचमना उह संमंमप्रलय मिय तुय ॥ त्रि पंत्री त्रीलं त्रीष लुषलुमं षनुषंसुमं ॥ षषमष भ्रिगुही गुंहीगुंही उगु मियुगं दलुमददारी मीदीतंदती ॥ हे रामजी! इस प्रकारके शब्द करती हुई मसाणोंविषे नृत्य करै ॥ हे रामजी! ऐसी देवी तुमारे सहाय होवै, जो सर्वशक्ति परमात्मा है, सब ब्रह्मांड तिसके आश्रय क्षणविषे अंगुष्ठप्रमाण हो जावै, क्षणविषे बडे दीर्घआकारकों धारै, सब जगतविषे जो क्रिया होती है, सो उसके आश्रय होती है, कहूं उत्पत्ति होती है, कहूं युद्ध पडे होते हैं, नानाप्रकारकी क्रिया तिसकी देवीके आश्रय पडी होती है, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देवीविषे क्रिया होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे देवीरुद्रोपाख्यानवर्णनं नाम शताधिकषण्णवतितमः सर्गः ॥ १९६ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह जो तुमनें रुद्र अरु कालिका का वर्णन किया है, सो कवन थे? महाप्रलयाविषे तौ रहता कछु नहीं, यह काली कवन थी? तिसके शरीरविषे तुमने सृष्टि कैसे देखियां, महाप्रलय होकरि तिसके शरीरविषे सृष्टिनें कैसे प्रवेश किया, अरु उसके हाथविषे बहुरियादिक शस्त्र क्या थे? कहांतें आईथी? अरु कहां गई, अरु तिसका आकार क्या था? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! न कोउ रुद्र है, न काली है, न कोउ पुरुष, न कोउ स्त्री है, न कोउ नपुंसक है, न पुरुष मिलीकरि कछु हुआ है, न ब्रह्मांड है, न पिंड है, केवल चिदाकाश है, संकल्पतें उपजे आकार भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे आकार भासते हैं, तैसे उह आकार भी भासै, वास्तवतें केवल चिदाकाश ज्योंका त्यों है ॥ हे रामजी! आत्मपद कैसा अनंत चेतन है, सत्यप्रकाशरूप है, अविनाशी है, अपणे आप स्वभावविषे स्थित है, अरु रुद्र देवका आकार ज्यों भास्या था सो चेतन आत्माही ऐसे होकरि भास्या था, कोउ

अवर आकार न था, जैसे स्वर्णही भूषण होकरि भासता है, तैसे परम देव चिदाकाश ऐसे होकरि भास्या था, काहेतें जो चेतनस्वरूप है, जैसे मधुरता गनेका स्वरूप है, तैसे आत्माका चेतन स्वरूप है ॥ हे रामजी ! चेतनसत्ता अपणे स्वरूपकों नहीं त्यागती, अरु आकार होकरि भासती है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे गनेके रसविषे मधुरता न होवै, तौ उसकों रस नहीं कहता, तैसे आत्मसत्ताविषे चेतनता न होवै तौ चेतन कोउ न कहै, जो आत्मा चेतनताकों त्यागै तौ परिणामी होवै, तब चेतन न कहियें, परंतु सदा अपणे आप स्वभावविषे स्थित है, किस अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त भया, इसीतें कहा है, जो कछु भासता है, सो आत्माका किंचन है ॥ हे रामजी ! जैसे गनेके रसविषे मधुरता होती है; तैसे आत्माविषे चेतनता है, चेतनमात्रविषे एक चैत्यताका लक्षण रहता है, चेतनतारूप इसकरि यह जगत् अभावरूप लखाता है, अरु जो शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तका उत्थान नहीं होता, तौ जगत्भाव नहीं लखाता, अरु आत्मसत्ता दोनों अवस्थाविषे सदा ज्योंकी त्यों है, जैसे वायु जब स्पंद होता है, तब स्पर्शरूप उसका लक्षण भासता है, अरु जब निस्पंद होता है, तब उसविषे शब्द कोउ नहीं प्रवेशकरि शकता, अरु वायु दोनों अवस्थाविषे तुल्य है, तैसे शुद्ध चेतनविषे किसी शब्दका प्रवेश नहीं, चेतनता भावविषे है, अरु आत्मसत्ता सदा तुल्य है, तातें वास्तव यह जगतही नहीं ॥ हे रामजी ! आदि, मध्य, अंत, जगत, आकाश, कल्प, महाकल्प, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, जन्म, मरण, सत्य, असत्य, प्रकाश, अंधकार, पंडित, मूर्ख, ज्ञानी, अज्ञानी, नाम, रूप, कर्म, रूप, अवलोकन, मनस्कार, विद्या, अविद्या, दुःख, सुख, बंध, मोक्ष, जड, चेतन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आवणा, जावणा, जगत, अजगत, है नहीं, बढणा घटणा मैं तूं वेद शास्त्र पुराण, मंत्र, अकार, उकार, मकार, जय, नाम आदिक स्थावर जंगम जगत् क्रिया सब ब्रह्मस्वरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुदबुदे आवर्त सब जलरूप हैं; तैसे सब ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मतें इतर

पु.प्रकृतिवि.

जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नविषै पर्वत भासते हैं, सो अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणां जलरूप होकरि भासतियां हैं, तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप होकरी भासती है ॥ हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र वरुण कुबेर यम चंद्रमा सूर्य अग्नि जल पृथ्वी वायु आकाश आदिक जेते कछु शब्द हैं सो सब ब्रह्मसत्ताही ऐसे होकरि स्थित भई है, परंतु सदा अपणे आपविषे ज्यौंकी त्यौं है, कदाचित् परिणामकों नहीं प्राप्त भई, सो सत्ता सर्वकी आत्मा है, जैसे समुद्र अपणे तरंगभावकों त्यागै, तब अपणे सौम्यभावविषे स्थित होवै, तैसे ब्रह्मसत्ता फुरणेकों त्यागै, तब अपणे स्वभावविषे स्थित होवै, सो अनामय है, अर्थ यह जो दुःखतें रहित है, परम शांतिरूप है, अनंत है, निर्विकार है, जब इस प्रकार बोध होवै, तब तिस ब्रह्मसत्ताकों प्राप्त होवै, अरु बोध अबोध विधिनिषेध भी उही है, जैसे जल अरु समुद्रकी संज्ञा कही है, अरु तरंग शब्द कहणेकरि विलक्षण भासता है, जब जल तरंगबुद्धिकों त्यागै, तब केवल समुद्ररूप है, तैसे यह जीव जब अपणे जीवत्वभावकों त्यागै, तब आत्मरूपी समुद्रकों प्राप्त होवै, जीवत्वका अर्थ यह जो जब दृश्यका संबंध त्याग करैगा, तब आत्मा होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम शताधिकसप्तनवतितमः सर्गः ॥ १९७ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तुझकों जो चिदाकाश कहा है, सो परम चिदाकाश है, अरु सदा अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश मैं तेरे तांई कहा है, सोई यह रुद्ररूप है, सोइ नृत्य करता था, तहां आकार कोउ न था, केवल चिद्घन सत्ता थी, सोई ऐसे होकरि किंचन होती थी ॥ हे रामजी! जब आत्मदृष्टिकरि देखता था, तब मेरे तांई चिदाकाशरूपही भास्या था ॥ हे रामजी! मेरे जैसा होवै सोइ तैसा रूप देखै, अवर नहीं देखि सकै ॥ हे रामजी! जिसका नाम कल्पांत कहाता है, सोइ रुद्र अरु भैरव है, उह कल्पांतकी मूर्त्ति नृत्य करिके अंतर्धान हो गई, अरु वास्तवतें क्या

रूप था, मायामात्र था, चेतनसत्ताके आश्रय पडे नाचते हैं॥ हे रामजी! जैसे सोनेविषे भूषण हैं, परंतु सोनेविना नहीं होते, तैसे चेतनता किंचनकरि जगत् भासता है, बहुरि उही प्रमादकरि अधिभूत हो जाता है, अरु वास्तवतें शुद्ध चिदाकाशरूप है, चेतनता करिके उही जगत्‌रूप हो भासता है॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! प्रथम तुम आत्मतत्त्व अद्वैत कहा, यह जगत् प्रमाद करिके नाम रूप कल्पित है, अरु जो है, तौ कल्पके अंतविषे नाश हो जाता है, अद्वैतसत्ता रहती है, बहुरि कहा, चैत्यता करिके जगत्‌रूप भासता है, सो अद्वैतविषे चैत्यता कैसे हुई है, अरु चेतणेवाला कवण हुआ, प्रलयके अनंतर काली क्योंकरि भासी॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! न कोउ चेतन है, न कोउ चैत्यता है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, चेतनघन है, परम निर्मल है, अरु शांतरूप है, अरु शिवतत्त्व भी उसीकों कहते हैं, उही शिवतत्त्व रुद्र आकारकों धारे हुए दृष्ट आया है, दूसरा कछु नहीं, केवल परम चिदाकाश है, सोइ चिदाकाश आकार हो भासता है, अरु आकार कछु हुआ नहीं, न भैरव है, न भैरवी है, न काली है, न यह जगत् है, सब मायामात्र है, जैसे स्वप्नविषे आत्मसत्ता चैत्यता करिके जगत्‌रूप हो भासती है, स्वरूपतें न कछु चैत्यता है, न जगत् है, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, तैसे यह जगत् भी जाण, कछु अवर हुआ नहीं, अद्वैतसत्ताही है, तिसविषे चैत्य अरु चेतणेहारे मैं तुझकों क्या कहौं, सब वृत्ति करिके भासते हैं, आत्माविषे कछु इनका उपजणा नहीं भया, केवल स्वच्छ चिदाकाश है, हमकों तौ सदा उही स्वरूप भासता है, अज्ञानीकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु आत्मा सदा एकरस है, किंचन करिके तिसविषे आकार भासते हैं, भैरव अरु काली सब निराकार हैं, अरु भ्रांति करिके आकार भासते हैं, जैसे मनोराज्यविषे युद्ध भासते हैं, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं, सो अणहोते संकल्प विलासते हैं, तैसे चिदात्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे यह आकार भासते हैं॥ हे रामजी! यह जो जगप्रलय महाप्रल

यादिक शब्द हैं, तिनका नाश करने अर्थ तुझकों कहता हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, सो चेतनताका अभाव कबहु नहीं, अपणे आपविषे स्थित है, अरु किंचन है, जैसे सूर्यकी किरणां किंचनरूप होतियां हैं, इनविषे जल भासता है, तैसे चैतन्यका किंचन जगत् भासता है, सोइ महाप्रलयविषे रुद्र अरु भैरवी हो भासती है, न कछु रुद्र है, न कालि है, सर्व आत्माही है ॥ हे रामजी! जो कछु कहणा सुनणा होता है, वाच्य वाचककरि कहता है, आत्माविषे कहणा अरु सुनणा कछु नहीं, उहीं चिदाकाश संकल्प करिके रुद्र नृत्य करता है, जैसे स्वर्ण भूषण होकरि भासता है, तैसे चिदाकाश संकल्प करिके आकार होकरि भासता है, दूसरा कछु बन्या नहीं, मैं तूं अरु जगत् चैत्य अचैत्य सब उहीरूप है, उसविषे कोउ शब्द फुर्या नहीं, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके शब्द भासते हैं, सो कछु वास्तव नहीं, पत्थरकी नांई मौन है, तैसे जाग्रत जगत्विषे भी जेते कछु शब्द होते हैं, सो सब स्वप्न हैं, कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मसत्ता अपणे आप भावविषे स्थित है, जहां न एक है, न द्वैत है, न सत्य है, न असत्य है, न चित् है, न चैत्य है, न मौन है, न अमौन है, न कोउ चेतनेवाला है, चैत्यके अभाववत् है, सो क्या है, केवल अचैत्य चिन्मात्र आत्मसत्ता है, निर्विकल्प रूप है ॥ हे रामजी! सबतें बडा शास्त्रका सिद्धांत यही है, तिस दृष्टि मौनविषे तुम स्थित होहु ॥ हे रामजी! सर्व सिद्धांतकी समता यही है, जो निर्विकल्प होणा, जिस निर्विकल्प समाधिविषे स्थित होणा यह सबका सिद्धांत है, जैसे पत्थरकी शिला परम मौन होती है, तैसे चैत्यतें रहित होणा अरु जो कछु प्रत्यक्ष आचार आनि प्राप्त होवैं तिसविषे प्रवर्तणा, सदा आत्मनिश्चय रहणा, इसका नाम परम मौन है, सब क्रिया होती रहै, अरु अपणेविषे कछु न देखणा, जैसे नट स्वांग ले आवता है, तिसके अनुसार विचरता है, परंतु निश्चय उसका आदिही वपुविषे होता है, अरु चलायमान नहीं होता, तैसे जो कछु अनिश्चित आ

नि प्राप्त होवै, तिसकों यथाशास्त्र करणा परंतु अपणे निर्गुण निष्क्रिय स्वरूपतें चलायमान न होणा, अद्वैत स्वरूपविषे स्थित रहणा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! रुद्र क्या था, अरु काली शक्ति क्या थी, अरु उसके अंग जो वधते घटते थे, नृत्य करणा क्या था, वस्त्र क्या थे सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शिवतत्त्वही आकार होकरि भासता है, अवर आकार कोउ नहीं, सो कैसा शिवतत्त्व है, चिन्मात्र है, अमल है, विद्याअविद्याके कार्यतें रहित शांत अवाच्यपद है, यह संज्ञा भी संकल्पविषे तुझकों कही है, आत्मवेत्ता आत्मपदकों अवाच्यपद कहते हैं ॥ तथापि कछु मैं कहता हौं॥ हे रामजी! केवल आत्मत्वमात्र चिदाकाश है सोइ शिव भैरव है तिसके चमत्कारका नाम चित्तशक्ति है, तिसीका नाम काली है ॥ तिसकेविषे अरु आत्माविषे अरु शिवरूपविषे अरु कालीविषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं ॥ तैसे चित्तकला अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे पवन निस्पंद होता है, तब तिसका लक्षण नहीं होता, अवाचकरूप होता है, अरु जब स्पंद होता है, तिसका लक्षण भी होता है, तिसाविषे शब्द प्रवेश करता है, तैसे चित्तशक्तिकरि तिसका लक्षण होता है, आगे तिसके अनेक नाम हैं, तिसीका नाम स्पंद है, इच्छा है, तिसीकों चैत्योन्मुखत्व करि वासना कहते हैं, इसीके स्वादकी इच्छातें जब चित्त संवितविषे वासना फुरी, तब तिसका नाम वासना करनेवाला वासक कहता है, बहुरि आगे दृश्य होती है; जब त्रिपुटी हुई वासना वासक वास, तब वासककों जीव कहते हैं, जीवत्वभाव लेकरि स्थित होती है, जब इह इच्छा इसकों होती है, जो मैं जीव हौं, मेरा नाश कदाचित् न होवै, इस इच्छाकरि जीव कहता है, ऐसी संज्ञा चिच्छक्तिकी होती है, सो स्पंदविषे होती है, अरु शिवतत्त्व सो अफुर है, अचैत्यशक्तिविषे फुरणेकी नांई स्थित है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल है नहीं, हुएकी नांई भासता है, तैसे यह जगत् है नहीं अरु हुएकी नांई भासता है, तिसविषे यह संज्ञा

पु.प्रकृतिवि.

देते हैं, काली जो परमात्माकी क्रियाशक्ति है, सो प्रथम तौ कारणरूप प्रकृति है, सब तिसतें हैं, इसीतें प्रकृतिरूप है, विकृति नहीं, अर्थ यह किसका कार्य नहीं, अरु महदादिक पंचभूत महत्तत्त्व अरु बुद्धि अहंकार सप्त प्रकृति विकृतिहैं, अर्थ यह जो कार्य भी हैं, कारण भी हैं, कार्य आदिक देवीके हैं, अरु कारण षोडश हैं, पंच ज्ञानइंद्रियां, पंच कर्मइंद्रियां, पंच प्राण, एक मन इनके कारण सप्तदश हैं, अरु षोडश हैं सो विकृत हैं, अर्थ यह जो कार्यरूप हैं, कारण किसीका नहीं, अरु पुरुष है जो परमात्मा, सो अद्वैत अचित्त चिन्मात्र है, न किसीका कारण है, न कार्य है,अपणे आपविषे स्थित है, तातें जेती कछु द्वैतकलना है कारण कार्यरूप, सो सब चित्तशक्तिविषे स्थित है, जब यह निस्पंद होती है, तब शिवपद तत्त्वविषे निर्वाण हो जाती है, कारणकार्यरूपी भ्रम सब मिटि जाता है, केवल आकाशवत् शेष रहता है, सो शुद्ध है, अद्वैत है, अचैत्य चिन्मात्र सदा अपणे आप भावविषे स्थित है, तिसकी क्रियाशक्ति स्पंदरूप एती संज्ञा हैं, प्रथम तौ सबका कारणरूप प्रकृति हैं, अरु सोख है, अर्थ यह जैसे वडवाग्नि समुद्रकों सुकावती है, तैसे जगत्कों सुकाती है, अरु सिद्धि है अर्थ यह जो सिद्ध आश्रयभूतकरि सेवते हैं, अरु जयंती है, अर्थ यह जो जय है, जिसकी अरु चंडीका है, अर्थ यह जिसके क्रोधकरि जगत्प्रलय होती है, अरु भय पावता है, अरु वीर्य है, अर्थ यह जिसका अनंत वीर्य है, अरु दुर्गा है, अर्थ यह जो इसका रूप जानणा कठिण है, अरु गायत्री है, अर्थ यह जिसके पाठकरि संसारसमुद्रतें रक्षा होती है, अरु सावित्री है, अर्थ यह जगतकी पालना करती है, अरु कुमारी है, अर्थ यह जो कोमलस्वभाव है, अरु गौरी है, अर्थ यह जिसके गौर अंग हैं, अरु शिवा है, अर्थ यह जो शिवके डावे अंगविषे निवास है जिसका, अरु विजया है, अर्थ यह जो सब जगत्कों जीति रही है, अरु स्वशक्ति है, अर्थ यह जो अद्वैत आत्माविषे जिसनें विलास रचा है, अरु इंद्रसारा है, अर्थ यह जो उकार है इंद्र आत्मा तिसका सार अर्धमात्रा है, तीनों मात्रा उकार अकार मकारका

अधिष्ठान है ॥ हे रामजी ! राजसी तामसी सात्विकी तीन प्रकारकी क्रिया होती है, सो इसीतें होती है, यह सब संज्ञा क्रियाशक्तिकी कही है, अब शस्त्र अरु बढणा घटणा तिसका सुण॥ हे रामजी ! नृत्य जो करती थी सो क्रिया है, सो क्रिया सात्विकी राजसी तामसी तीन प्रकारकी है, मुसल जो था सो ग्राम पुर नगर है, अंग तिसके सृष्टि है, जब शिवतें व्यतिरेक होती थी, तब अंग बहुत हो जाते थे, सृष्टिरूप, अरु जब शिवकी उर आवती थी, तब सृष्टिरूप अंग थोरे हो जाते थे, अरु जब शिवकों आय मिलती थी तब शिवही होतीथी, सृष्टिरूपी अंग कोउ न रहता था, यह तौ आत्माकी काली शक्तिकी क्रियाका वर्णन तुझकों सुणाया है, अब शिवका वर्णन सुण, वाणीतें अतीत है, तथापि कछु कहता हौं, परम शुद्ध है, निर्मल अच्युत है, तिसविषे कछु हुआ नहीं, क्रियाशक्तिके फुरणेकरि जगत् हो भासता है, जब अपणे अधिष्ठानकी उर देखता है, तब अपणा स्वरूप दृष्टि आता है, क्रियाशक्ति अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, काहेतें जो आकाशका अंग शून्यता है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्निकारूप उष्णता है, तैसे आत्माका स्वभाव चित्तशक्ति है, अरु इसका नाम काली है, जो कृष्णरूप है, जैसे आकाश ऊर्ध्वकों श्याम भासता है, यह तैसे आकाशवपु है, जैसे आकाश निराकार है, तैसे काली निराकार श्यामा भासती है, आकाशकी नांई इसका वपु है, तातें इसका नाम कृष्णवपु है, अरु काली जगत्के नाशके अर्थ है, सो जब स्वरूपकी उर आती है, तब जगत्का नाश करती है ॥ हे रामजी! स्पंदशक्ति जबलग शिवतें व्यतिरेक है, तबलग जगत्कों रचती है, जहां यह है तहां जगत् है, जगत्तें विलक्षण नहीं रहती, जैसे जहां सूर्यकी किरणां हैं, तहां जलाभास होता है, किरणांविना जलाभास नहीं रहता, तैसे स्पंदशक्ति जगत्विना नहीं रहती, जैसे आकाशके अंग आकाश हैं, तैसे इसके अंग जगत् हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप हैं, तैसे जगत् इसका रूप है, अरु इह शक्ति चिदाका

श है व्यतिरेक नहीं, जब यह फुरती है, तब जगदाकार हो भासती है, जब शिवकी उर आवती है, तब शिवरूप हो जाती है, जगत्का भास कोउ नहीं रहता, तातें ॥ हे रामजी! तुमारी चिच्छक्ति तुमारी उर आवै तब जगत्भ्रम मिटि जावै, इस चिच्छक्तिनें जगत्भ्रम रचा है, शिवपूजा है, सो निर्मल शांतरूप है, अजर अमर है, अचैत्य चिन्मात्र है, तिसविषे कछु क्षोभ नहीं, आत्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हेभगवन्! तुम जो कालीके अंगकी सृष्टि देखियां सो आत्माविषे सत्य हैं, अथवा असत्य हैं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! यह काली देवी आत्माकी क्रियाशक्ति है, अर्थ यह है जो फुरणा शक्ति है, तिस करिके आत्माविषे सत्य है, अरु वास्तवतें आत्माविषे कछु नहीं, मिथ्या है, जैसे तूं मनोराज्य करिके अपणेविषे दूसरा चिंतवही उह कछु वस्तु नहीं, परंतु तिस कालविषे सत्य भासता है, तैसे जेती कछु सृष्टि है सो आत्माविषे सत्य कोउ नहीं, परंतु चिच्छक्तिकरि वसती दृष्ट आती है, जैसे कछु विधि निषेध पदार्थ हैं, आकाश पर्वत समुद्र वन जगत् तीर्थ कर्म बंध मोक्ष गुरु शास्त्र युद्ध शस्त्र आदिक जो भासते हैं, सो सब चिदाकाश ब्रह्मरूप हैं, वास्तव इनका होणा ब्रह्मतें भिन्न नहीं, सर्व प्रकार सर्वदा काल आत्मा अपणे आपविषे स्थित है, शुद्ध अद्वैत निराकार है, निर्विकार ज्यौंका त्यौं है, जगत् तिसविषे कोउ नहीं उपजा, सब जगत् आत्माविषे क्रियाशक्ति रची है, सो मायाकालविषे सत्य है, वास्तवतें कछु नहीं, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्नविषे सृष्टि भासती है तिसके शरीरकों कोउ हिलावे तौ उह नहीं जागता, जो कछु सृष्टि होती तौ, हिलावणेकरि कोउ स्थान गिरि पडता है, इसीतें नाश किसीका नहीं होता, वास्तव कछु नहीं ॥ हे रामजी! उह सृष्टि उसके चित्त स्पंदविषे स्थित है, प्रत्यक्ष अर्थाकार होती है, परंतु जबलग निद्रा है, तबलग सृष्टि है, जब निद्रा निवृत्त भई, तब स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, तैसे यह सृष्टि कछु वास्तव नहीं, अज्ञान करिके चित्तशक्तिविषे भासती है ॥ हेरामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो चित्तके फुरणे

विषे भासते हैं, जिसका संकल्प शुद्ध होता है, तिसके मनोराज्यकी सृष्टि देश कालकरि प्रत्यक्ष आनि होती है, तौ संकल्परूप होती है, बन्या कछु नहीं, जब संकल्प फुरता है, तब संकल्पके अनुसार सृष्टि भासती है, तातें संकल्परूप हुई, क्यों अदृष्ट पदार्थ होता है, जो उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब इसका अर्थ हृदयविषे अनुभव होता है, जैसे परलोक अदृष्ट है, जब उसकी सत्यता हृदयविषे होती है, तब उसका राग दोष हृदयविषे फुरता है, काहेतें जो संकल्पविषे उसका भाव खडा है, तैसे जबलग चित्त स्पंद फुरता है, तबलग जगत् सब खडा है, जब चित्त निस्पंद होता है, तब जगत्की सत्यता नहीं भासती ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब क्रियाशक्तिनें आत्माविषे रचा है, जबलग यह काली क्रियाशक्ति शिवतें व्यतिरेक होती है, तबलग नानाप्रकारके जगत् रचती है, अरु क्षोभकों प्राप्त होती है, अरु जब शिवकी उर आती है, तब शांतरूप हो जाती है, बहुरि प्रकृतिसंज्ञा उसकी नहीं रहती, अद्वैत तत्त्वविषे अद्वैतरूप हो जाती है, जैसे जबलग पवन चलता है, तब शीत उष्ण सुगंध दुर्गंध बडा छोटा संज्ञा होती है, अरु जब ठहरता है, तब कहा नहीं जाता, जो ऐसा है, अथवा ऐसा है, तैसे जबलग चित्तशक्ति स्पंदरूप होती है, तबलग जगत्कों रचती है, अरु प्रकृत कारणरूप कहाती है, तिसविषे दो प्रकार शब्द होते हैं, विद्या अरु अविद्यारूप सो पडे निकसते हैं॥ हे रामजी ! जो कछु कहणा होता है, सो स्पंदरूप जो चित्रलेखा है तिसविषे है, अरु जब शिवतत्त्वविषे अंकुर होती है; तब अद्वैतरूप हो जाती है, तहां किसी शब्दकी गम नहीं ॥ हे रामजी ! शिव क्या है, अरु शक्ति क्या है, सो सुण, जेते कछु जीव हैं, सो शिवरूप हैं, अरु इनके जो चित्तका फुरणा है, सो काली कहियें, चित्तशक्ति कहियें, जबलग इच्छाकरि चित्तशक्ति बाहिर फुरती है, तबलग भ्रमका अंत नहीं आता, नानाप्रकारके विकारका अनुभव होता है, शात नहीं होता, अरु जब चित्तशक्ति उलटिकरि अधिष्ठानकों देखती है, तब जगतभ्रम निवृत्त हो जाता

है, परम शांतिकों प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! आत्मा अरु चित् संवित्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायुकों स्पंदनिस्पंदविषे भेद कछु नहीं, परंतु स्पंद होता है, तब जाणीता है, अरु निस्पंद होता है, तब नहीं जाणीता, तैसे चित्त संवित् जब फुरता है, तब जाणीता है, अरु नहीं फुरता तब नहीं जाणीता, अरु जानणा न जानणा दोनों नहीं रहता ॥ हे रामजी! जबलग इच्छाशक्ति शिवकी उर नहीं देखती, तबलग नानाप्रकारकी नृत्य करती है, अर्थ यह जो जगत्कों रचती है, अरु जब शिवकी उर देखती है, तब इसकों नृत्य विरस हो जाता है, अरु सब अंग इसके सूक्ष्म हो जाते हैं ॥ हे रामजी! इस कालीका जो आकार था, सो अप्रमाण प्रमाणविषे आवता न था, अरु शिवकी उर देखणेतें सूक्ष्म हो गया, प्रथम पर्वतसमान भया, बहुरि निकट आई, तब ग्रामके समान भया, बहुरि वृक्षके समान भया, बहुरि निकट आई, तब सूक्ष्म आकार भया, जब शिवकेसाथ मिली तब शिवरूप हो गई, इसका जो विलास है, सो शून्य हो जाता है, अरु परम शांत शिवपदकों प्राप्त होती है ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! यह जो परमेश्वरी काली शक्ति है, सो तिसकों मिलिकरि शांति कैसे भई सो कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! देवी परमात्माकी इच्छाशक्ति है, अरु जगन्माता इसका नाम है, जबलग शिवतत्त्वतें व्यतिरेक होती है, तबलग जगत्कों रचती है, जब अपणे अधिष्ठानकी उर आती है, जो नित्यतृप्त है, अरु अनामय है, निर्विकार है, परम शांतरूप द्वैतभावतें रहित है, तब परम शांतिकों प्राप्त होती है, प्रकृतिसंज्ञा इसकी जाती रहती है, जैसे नदी जबलग समुद्रकों नहीं प्राप्त भई, तबलग दउडती है, अरु शब्द करती है, जब समुद्रकों मिली तब शब्द करणा अरु दउडना नष्ट हो जाता है, अरु नदी संज्ञा भी नहीं रहती, समुद्रकों मिलीकरि परम गंभीर समुद्ररूप हो जाती है, तैसे जबलग चित्तशक्ति शिवतें व्यतिरेक होती है, तबलग जगतभ्रमकों रचती है, जब शिवतत्त्वकों मिली तब शिवरूप हो जाती है, अरु द्वैतभ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी! जब

यह चित्तशक्ति शिवपदविषे लीन हो जाती है, तब प्रथम जो देह इंद्रियांसाथ तद्‌रूप भई थी, इंद्रियाके इष्ट अनिष्टविषे आपकों सुखी दुःखी मानती थी, अरु राग दोषकरि जानती थी, जो नित्यतृप्त अनामय पदके मिलेतें सुखदुःखतें रहित होती है, काहेतें जो अनात्म देह इंद्रियांकी तद्रूपता अभाव हो जाती है, अरु आत्मतत्त्वसाथ तद्रूप होती है, जैसे पत्थरकी शिलासाथ मिलीकरि खड्गकी धारा तीक्ष्ण होती है, तैसे चित्त संवित् जब आत्मपदविषे मिलती है, तब एक अद्वैतरूप हो जाती है, आत्मपदके स्पर्श कियेतें अनात्मभावका त्याग करती है, जैसे तांबा पारसके परसतें स्वर्ण हो जाता है, बहुरि तांबा नहीं होता, तैसे इह वृत्ति अनात्मभावकों नहीं प्राप्त होती, अरु इह चित्तकला तबलग विषयकी उर धावती है, जबलग अपणे वास्तव स्वरूपकों नहीं प्राप्त भई, जब अपणे वास्तव स्वरूपकों प्राप्त होती है, तब विषयकी उर नहीं धावती, जैसे जिस पुरुषकों अमृत प्राप्त भया है, अरु उसके स्वादका अनुभव भया है, तब उह नीम पान करणेकी इच्छा नहीं करता, तैसे जिसकों आत्मानंद प्राप्त भया सो विषयके सुखकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी! यह संसारभ्रम चित्तसंवित्‌विषे दृढ सत्य होकरि स्थित भया है, अरु संसारके सुखका त्याग नहीं करि सकता, जब आत्मसुख प्राप्त होवैगा, तब त्यागि देवैगी, जैसे जिस पुरुषकों जबलग पारस नहीं प्राप्त भया, तबलग अवर धनकों त्यागि नहीं सकता, जब पारस प्राप्त भया, तब तुच्छ धनका त्याग करता है, बहुरि यत्न नहीं करता, तैसे जब इसकों आत्मानंद प्राप्त होता है, तब विषयके सुखका त्याग करता है, अरु पावणेका यत्न नहीं करता ॥ हे रामजी! भंवरा तबलग अवर स्थानविषे भ्रमता है, जबलग कमलकी पंक्तिकों नहीं प्राप्त भया, जब पंक्तिकों प्राप्त भया, तब अवर स्थानकों त्यागि देता है, तैसे चित्तशक्ति जब आत्मपदविषे लीन भई, तब किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करती, निर्विकल्प पदकों प्राप्त होती है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे पुरुषप्रकृतिविचारो नाम श

अनंतजग०

ताधिकाष्टनवतितमः सर्गः ॥ १९८ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! अब पूर्वका प्रसंग बहुरि सुण, जब काली नृत्य करके निर्वाण हो गई, तब शिव एकलाही रहा, एक रुद्रही मुझकों दृष्ट आवै अरु दो खंड आकाशके दृष्ट आवहीं, एक अधोभाग, एक ऊर्ध्वभाग, अवर कछु दृष्ट न आवै, तब रुद्रनें नेत्रकों पसारिके दोनों खंड देखे, जैसे सूर्य जगत्कों देखता है, तैसे देखीकरि प्राणकों अंतर खैंचत भया, तब ऊर्ध्व अध दोनों खंड एकठे हो गए, तब ब्रह्मांडकों अंतर्मुख पाए लिया, एक शिवही रहि गया, अवर कछु दृष्ट न आवै ॥ हे रामजी! जब एक क्षण व्यतीत भयी तब रुद्र बडे आकारकों धरे हुए सो ब्रह्मांडकों भी लंघि गया, सो एक वृक्षकेसमान होगया, बहुरि अंगुष्ठमात्र शरीर होगया, बहुरि एक क्षणविषे सूक्ष्म अणु जैसा होगया, बहुरि रेतिके कणकेतें भी सूक्ष्म होगया, बहुरि नेत्रकरि दृष्ट न आवे, दिव्य दृष्टिकरि मैं देखता रहा, बहुरि उह भी नष्ट हो गया, केवल चिदाकाशही शेष रहा, अवर दूसरी वस्तु कछु भासै नहीं, जैसे वर्षाकालके मेघ शरत्कालविषे नष्ट हो जाते हैं, तैसे रुद्र भी नष्ट हो गया॥ हे रामजी! तिस कालविषे मुझकों तीनों एकठे शरण रहे, एक देवी ब्रह्माकी शक्ति, दूसरी काली शक्ति, तीसरी शिला, तब मैं विचार किया जो यह स्वप्ननगरवत् आश्चर्य था, अवर कछु नहीं तब क्या देखौं जो स्वर्णकी शिलाही पडी है, यह श्रेष्ठ शिलाके कोशविषे स्थित थी, तब मैं विचार किया जो यह सृष्टि शिलाके एक कोशविषे अवर सृष्टि भी होवैगी, काहेतें जो सर्व वस्तु सर्व प्रकार सर्व ठौर पूर्ण हैं, तातें इसविषे अवर सृष्टि भी होवैगी ॥ हे रामजी! उसविषे मैं सृष्टिकों देखणे लगा, तब नानाप्रकारकी सृष्टि देखी, जब बोधदृष्टिकरि देखौं तब सर्व ब्रह्म भासै, अरु संकल्पदृष्टिकरि देखौं तब आत्मरूपी आदर्शविषे अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, जब चर्मदृष्टिकरि देखौं तब शिलाही पडी है, इस प्रकार मैं शिलाकोशविषे चल्या, घास तृणविषे सृष्टि भासै, पत्थरविषे फलफूलविषे अनंत सृष्टि दृष्टि आवैं, अरु निःसंकल्प आत्मदृष्टिकरि देखौं तब अद्वैत आ

त्माही भासै ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखता भया, कहूं ऐसी सृष्टि भासै जो ब्रह्मा उपजा है, अरु रचना रचनेकों समर्थ हुआ है, कहूं ब्रह्मानें चंद्रमा सूर्य उपजाये हैं, अरु काली मर्यादा करी है, अवर कोउ नहीं उत्पन्न भया, कहूं संपूर्ण पृथ्वी आदिक तत्त्व उपजाये हैं, अरु प्राण नहीं हुए, कहूं समुद्र नहीं उपजे, कहूं आचारसहित सृष्टि दृष्टि आवै, कहूं चंद्रमा सूर्य नहीं उपजे, अरु कहूं उपजे हैं, कहूं चंद्रमा शिवतें निकसे नहीं, कहूं क्षीरसमुद्र मथ्या नहीं, अमृत नहीं निकस्या, लक्ष्मी हस्ती घोडा धन्वंतरि वैद्य नहीं निकसे, कहूं विष नहीं निकसी, अमृत नहीं निकसा, देवता पडे मरते हैं, कहूं क्षीरसमुद्र मथ्या है, तिसतें अमृत निकसा है, धन्वंतरि वैद्य निकसा है, लक्ष्मी भी निकसी है, कहूं प्रकाश नहीं होता, कहूं सदा प्रकाशही रहता है, कहूं पृथ्वी उपर पर्वतही दृष्ट आवैं, अवर कछु नहीं, कहूं इंद्रके वज्रकरि पर्वत काटीते हैं, अरु उडते हैं, कहूं प्राणीकों जरा मृत्यु नहीं होता, कल्पपर्यंत ज्यौंके त्यौं रहते हैं, कहूं प्रलय होती है, कहूं मेघ गर्जते हैं, कहूं संपूर्ण जलही दृष्ट आवै; अवर कछु नहीं, कहूं आकाश दृष्ट आवै, अवर प्राणी कोउ नहीं, कहूं देवताके युद्ध पडे होते हैं, कहूं देवकों दैत्य जीतते हैं, कहूं दैत्यकों देवता जीतते हैं, कहूं देव अरु दैत्यकी परस्पर प्रीति है, कहूं बल अरु इंद्रका रुद्र वृत्रासुरका युद्ध पडा होता है, कहूं मधु कैटभ दैत्य ब्रह्माकी कन्यातें उत्पन्न होता है, कहूं सदा प्रसन्नता रहती है, अरु तीनों कालकों जानते हैं, कहूं सदा शोकवान् नहीं रहता है, कहूं सतयुगका समय है, दान पुण्य तपश्चर्या करते हैं, कहूं कलियुगका समय है, प्राणी पापविषे विचरता है, कहूं अर्ध युग बीत्या है, कहूं रामजी अरु रावणका युद्ध होता है, रावणकों रामने मर्दन किया है, कहूं रामजीकों रावणनें मर्दन किया है, कहूं सुमेरु पर्वत तले हैं, पृथ्वी उपर है, कहूं शेष नाग उपर पृथ्वी है, भू चालकरि भ्रमती है, कहूं प्रलयकालका जल चढा है, अरु एक बालक वटके वृक्ष उपर बैठा अपणे अंगुष्ठकों चूसता है, सो विष्णु भगवान् है, कहूं ब्रह्माके कल्पकी रात्र है,

महाशून्य अंधकार है, कहूं कौरवपाडवकी सहायता कृष्ण करता है, कहूं महाभारतका युद्ध होता है, दोनों उरतें अक्षौहिणी सैना निकसै है, अरु कृष्ण पांडवकी सहायता करता है, कहूं एक सृष्टि नाश होती है, उसी सृष्टिविषे उसी जैसी अवर उत्पन्न होती है, उसी जैसा कर्म उसी जैसा कुल जाति गोत्र होते हैं, कहूं उसतें अर्ध भाग मिलता है, कहूं चतुर्थ भाग उस जैसा मिलता है, कहूं विलक्षण भाग होता है॥हे रामजी! इस प्रकार मैं अनंत सृष्टि देखियां, आत्मआदर्शविषे प्रतिबिंबित होतियां हैं, अरु जब मैं आत्मदृष्टिकरि देखौं तब सब चिदाकाशही भासै, जब संकल्पदृष्टिकरि देखौं तब जगत् भासै, कहूं ऐसी सृष्टि देखी, जहां दशरथका पुत्र राम है, अरु रावणके मारणेकों समर्थ हुआ है, तुमारा रूप बडा तपसी रहता है, अरु सदा प्रसन्न है मन जिसका, ऐसी अनंत सृष्टि देखियां ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मैं आगे भी हुआ हौं अरु ऐसाही हुआ हौं अथवा किसी अवर प्रकार हुआ हौं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केई उसी जैसे होते हैं, केई अर्ध लक्षण होते हैं, केई चतुर्थ भाग लक्षण होते हैं, जैसे अन्नका बीज उसी जैसा होता है, कोउ उसतें विशेष भी होता है, तैसे यह पदार्थ सब पडे परिणाम होते हैं॥ हे रामजी! तूं भी आगे होवैगा, अरु मैं भी आगे होउंगा, परंतु आत्माका विवर्त है, जैसे समुद्रतें तरंग भी होते हैं, विलक्षण भी दृष्टि आते हैं, परंतु उही रूप हैं, तैसे हमारे सदृश भी बहुरि होवैंगे, हमारे स्वरूपकी मूर्त्तिवत्, परंतु आत्मत्व भिन्न कछु नहीं, संकल्प करिके इतरकी नांई भासते है, विलक्षणरूप, जैसे समुद्रविषे वायुकरि तरंग भासते हैं, तैसे आत्मा संकल्प करिके जगत्रूप हो भासता है, यद्यपि नानाप्रकार हो भासता है, तौ भी दूसरा कछु हुआ नहीं, यह जगत् चेतनका विलास है, चित्तके फुरणेविषे अनंत सृष्टि भासती हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि बडे आरंभकरि भासती है, परंतु स्वरूपतें कछु इतर नहीं, तैसे यह जगत् आरंभपरिणामकरि बन्या कछु नहीं, आत्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अनंतजग

द्वर्णनं नाम शताधिकनववतितमः सर्गः ॥ १९९ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं देखत भया, बहुरि दृश्यभ्रमकों त्यागिकरि अपणे वास्तवस्वरूपविषे स्थित भया, मैं अनंत हों, नित्य शुद्ध बोध चिदाकाश सर्वदा अपणे आपविषे स्थित हों ॥ हे रामजी! चिन्मात्र आत्मा किसी स्थानविषे संवेदन आभास फुरी है, जैसे अनाजके कोठेतें एक मुष्टिभरि निकासियें अरु क्षेत्रविषे डारियें उसीतें किसी ठौरविषे अंकुर निकसै तैसे चेतनविषे संवेदन फुरी है, तिस संवेदनसों जगत् उपजा है, जैसे जलके दिये अंकुर निकसि आता है तैसे मेरेविषे सृष्टिका अनुभव होणे लगा, अरु मैं जानत भया जो सृष्टि मेरेविषे फुरी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम जो आकाशरूप अपणे आपविषे स्थित थे तिसविषे सृष्टि तुमकों कैसे फुरियां? दृढ बोधके निमित्त मुझकों कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वास्तव तौ कछु उपजा नहीं परंतु जैसे हुए है तैसे सुण, मैं जो अनुभव आकाश अनंत था, तिसके किसी स्थानविषे संवेदन चित्त अहं फुर्या अर्थ यह जो मैं हों, तिस अहंभावके होणेकरि आपकों मैं सूक्ष्म तेज अणु जैसा जानत भया, तिस अणुविषे जो अहं फुरी तिसकों तुम सारखे अहंकार कहते हैं, तिस अहंकारकी दृढतातें निश्चयात्मक बुद्धि फुरी, तिस बुद्धितें संकल्पविकल्परूप मन फुर्या, तिस मननें आगे प्रपंच रचा, तिस मनविषे देखणेका स्पंद फुर्या, तब चक्षु इंद्रिय भई, अरु जिसकों देखणे लगा, रूप दृश्य भई, बहुरि सुनणेकी इच्छा फुरी, तब श्रवण इंद्रिय हुई, तब शब्दही सुनत भई, बहुरि रस लेणेकी इच्छा भई, तब जिव्हा इंद्रिय भई, रसकों ग्रहण करणे लगी, जब सुगंधि लेणेकी इच्छा करि, तब नासिका इंद्रिय भई, अरु सुगंधिकों ग्रहण करने लगी, बहुरि स्पर्श करणेकी इच्छा हुई, तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, अरु स्पर्शकों ग्रहण करने लगी, इस प्रकार ज्ञान इंद्रिय मुझकों आनि फुरी, तिनविषे शब्द स्पर्श रूप रस गंध उदय हुए, तब मैं अपणेसाथ स्थूल वपुकों देखत भया, जैसे पुरुष सूक्ष्मतें उठिकरि स्वप्न देखता है, तिसविषे अपणां शरीर

देखता है, तैसे मैं देखता भया ॥ हे रामजी ! जिसकों मैं देखता भया सो दृश्य हुआ, अरु जिसकरि मैं देखता भया, सो इंद्रियां भइया अरु जब दृश्य फुरणा हुआ सो काल हुआ, अरु जहां हुआ सो देश हुआ, अरु ज्यौंकरि हुआ सो क्रिया हुई, इस प्रकार सब देश काल पदार्थ हुए हैं सो मैं तेरे तांई कहे हैं ॥ हे रामजी ! वास्तव न कोउ देह है, न इंद्रिय है, न सृष्टि है, चित्तकलाविषे हुएकी नांई दृष्ट आवते हैं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासती है, जब उह सृष्टि मुझकों फुरी, तब पूर्व स्वरूप विस्मरण भया, जैसे सुषुप्तिविषे मुझकों अपणा स्वरूप विस्मरणकी नांई होता है, तैसे मुझकों विस्मरण हुएकी नांई भास्या, जैसे स्वप्नविषे जाग्रत स्वरूपका विस्मरण होता है, जाग्रतविषे स्वप्नस्वरूपका विस्मरण होता है, तैसे पूर्वके स्वरूपका मुझकों विस्मरण भया, जब शरीर इंद्रियां मुझकों अपणेसाथ भासी, तिसविषे मैं अहंप्रत्यय करिके शब्द ओंकार उच्चार किया, जैसे बालक माताके गर्भतें उत्पन्न होकरि शब्द करता है, तैसे मैं ओं शब्दका उच्चार किया, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नविषे उठता है, अरु शब्द करता है, तैसे मैं ओंकारका उच्चार किया, कैसा ओं है, आदि मध्य अंततें रहित परब्रह्म है; अरु सर्व ब्रह्मांडरूपी तरंगका आधार समुद्र है ॥ हे रामजी ! जब मैं अधिभूत दृष्टिकरि देखौं, तब मुझकों शिलाही भासै, अरु जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखौं, तब अनंत ब्रह्मांड दृष्ट आवैं, अरु नानाप्रकारकी क्रिया मर्यादासहित भासैं, अरु जब आत्मदृष्टिकरि देखौं, तब अद्वैत अपणा आपही भासै ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्यकी किरणांविषे मरुस्थलकी नदी भासती है, तैसे मुझकों सृष्टि भासै, जैसे मरुस्थलकी नदी मिथ्या है, तैसे ग्रहण करणेहारी वृत्ति मिथ्या है, जैसे संवेदनविषे मनन फुरता है, सो भी मिथ्या है, काहेतें जो नदी मिथ्या है तौ मनन तिसका सत्य कैसे होवै, जैसे उह मिथ्या है, तैसे यह भी रूप अवलोकन मनुष्यका मिथ्या है, भ्रांति करिके सत्य भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टि भ्रांतिमात्र है, जैसे संकल्पपुरी मिथ्या है, जैसे मनोराज्यका नगर अरु कथाका वृत्तांत अणहोता भ्रांति क

रिके प्रत्यक्ष भासता है, तैसे यह जगत् भ्रांति करिके सत्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, संकल्प विलास विषे बने दृष्टि आते हैं ॥ हे रामजी! जिसप्रकार मुझकों सृष्टि भासी है, सो सुण, जब मेरेविषे पृथ्वीकी धारणा भई, तब पृथ्वी मुझकों शरीर होकरि भासणे लगी, काहेतें जो मैं विराट् आत्मा था, तिस पृथ्वी उपरि वन पर्वत नदी समुद्र वृक्ष फूल फल मनुष्य पशु पक्षी देवता ऋषीश्वर दैत्य नाग आदिक जो स्थित हैं, सो पृथ्वी मेरा शरीर भया, अरु पर्वत मेरे मुख भए, अरु सुमेरु आदि पर्वत मेरी भुजा भइयां, अरु सप्त समुद्र मेरा आंद्रा भया, अरु सर्व नदी मेरे कंठविषे माला भासै, अरु वन मेरी रोमावली भई, अरु मरुस्थलकी नदी मेरे उपर विस्तार भासै, अरु देवता मनुष्य पशु पक्षी दैत्य यह सब मेरेविषे कीट भासैं, शरीरविषे जुआं लिखां आदिक हैं, अरु किसी ठौर मेरे उपर हिलावते हैं, अरु बीज बोते हैं, खेती उगती है, प्राणी खाते हैं, कहूंक खोदते हैं, कहूं पूजा करते हैं, कहूं समुद्र स्थित हैं, कहूं नदी चलती है, कहूं राजा राज्य करते हैं, मेरे उपर झगडी मरते हैं, उह कहता है पृथ्वी मेरी है, उह कहता है मेरी है, इस प्रकार ममता करिके युद्ध करते हैं, हस्ती चेष्टा करते हैं, केई रुदन करते हैं, केई हांसी करते हैं, कहूं वृत्ति पसारते हैं, कहूं सुगंधि है, कहूं दुर्गंधि है, नदीयां चलती क्षोभ करती हैं; देवता अरु दैत्य मेरे उपर युद्ध करते हैं, शीतलता करिके जल मेरे उपर बरफ हो जाता है, इत्यादिक इष्ट अनिष्ट स्थान मैं अपणे उपर देखत भया, राजसी तामसी सात्विकी जेती कछु जीवकी क्रिया होती हैं, सो सबका आधार मैं होत भया, अरु पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाकी संज्ञा होत भई, संवेदन फुरणे करिके इस प्रकार मैं आपकों जानत भया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्याने पृथिवीधातुवर्णनं नाम द्विशततमः सर्गः ॥ २०० ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमकों जो धारणा करिके पृथ्वीका अनुभव हुआ, तिसविषे जगत् उत्पन्न हुआ, सो संकल्परूप था, अथवा मनतें उपजा था, अथवा अधिभूत

रूप था, पृथ्वीतें उत्पन्न कैसे हुआ सो कहौ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो संकल्परूप है, अरु अधिभूतकी नांई भासता है, सो केवल चिदाकाश अपणे आपविषे स्थित है, सो चिदाकाश मैं हौं, न कदाचित् उपजा हौं, न नाश होउंगा, सर्वदा अद्वैत अचैत्य चिन्मात्ररूप हौं, तिसके संकल्पका नाम मन है, आभासका नाम संकल्प है, तिसीका नाम ब्रह्मा है, तिसीका नाम इच्छा है, तिस विषे जगत् स्थित है, सो जगत् आकाशरूप है, बन्या कछु नहीं॥ हे रामजी! जिसकों सत्य कहता है, अरु असत्य कहता है, सो शुभ अशुभरूप जगत् मनविषे स्थित है, अरु जेते आकार भासते हैं, सो निराकाररूप हैं, आकाशरूप भ्रांति करिके पिंडाकार भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे शुभ अशुभ पदार्थ भासते हैं सो निराकार हैं, भ्रांति करिके पिंडाकार भासते हैं, तैसे यह जगत् भी निराकार है, भ्रम करिके पिंडाकार भासता है, विचार कियेतें शून्य हो जाता है, जैसे मनोराज्य करिके आकार रचित हैं, तैसे हमारे आकार जाण, स्वरूपतें कछु उपजे नहीं, जैसे मृत्तिकाविषे बालक नानाप्रकारकी सैना रचते हैं, सो मृत्तिका भी उनकों भिन्न भिन्न भाव निश्चय होते हैं, तैसे अद्वैत आत्माविषे मनरूपी बालकनें जगत् कल्प्या है, वास्तव कछु नहीं, आत्मतत्त्व सदा अपणे आपविषे स्थित है, मृगतृष्णाका जलही नहीं तौ डूबा तिसविषे कोनकूं कहियें, तैसे मन आप अभासरूप है, तिसका रचा जगत् कैसे सत् होवै॥ हे रामजी! सब चिदाकाशरूप है, दूसरा कछु बन्या नहीं, आत्मारूप आकाशविषे मनरूपी नीलता है, सो अविचार सिद्ध है, विचार कियेतें नीलता कछु वस्तु नहीं, जैसे दीपकके विद्यमान अंधकार नहीं रहता, तैसे विचार कियेतें मन अरु मनकी रचना जगत् नहीं रहती, मनका निर्वाण करणा परम शांति है, अवर उपाय कोउ नहीं॥ हे रामजी! जेते कछु क्षोभ हैं, तिनका कर्त्ता मन है, अरु जेती कछु शब्द अर्थ कल्पना उठती हैं सो मनकरि उठती हैं, मनके निर्वाण हुए कोउ नहीं रहती॥ राम उवाच॥ हे मुनीश्वर! तुम जो अनंत ब्रह्मांड

की पृथ्वी होकरि स्थित भए, सो कछु अवररूप भी भए अथवा न भए सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्मरूपी जो जाग्रत है, तिसविषे मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भया, मैं चेतन था, अरु जडकी नांई स्थित भया, वास्तवतें न कछु मैं जगत् था, केवल चिदाकाश है, तिसविषे न कछु नाना है, न अनाना है, जगत् न अस्ति, न नास्ति है, अहं त्वं इदंका अभाव है, केवल परम आकाश है, आकाशतें भी निर्मल चिदाकाश है, अरु जो है, सो सर्व शब्दब्रह्म है, जगत्के होते भी अरूप है, काहेतें जो कछु आरंभपरिणामकरि नहीं बन्या, केवल आत्माका चमत्कार है ॥ हे रामजी! जहां जहां पदार्थसत्ता है, तहां तहां जगत् वस्तु है, सर्वदा काल सर्व प्रकार सर्व पदार्थका स्पंद ब्रह्म है, जहां ब्रह्मसत्ता है, तहां जगत् है, इस प्रकार अनंत ब्रह्मांडकों देखत भया, जब मैं अनंत ब्रह्मांडकी पृथ्वी होकरि स्थित भया, जब जलकी धारणा करी, तब जलरूप होकर पसऱ्या, वृक्ष घास फूल फल गुछे टास तमालपत्रविषे मैं रस होकरि स्थित भया, स्तंभविषे मैंही बल हुआ, समुद्र हुआ, नदीयांके प्रवाह होकरि वहणे लगा, तिनविषे गडगड शब्द करणे लगा, तरंग बुद्बुदे फैनकों पसारिकरि विलास करत भया, उसके कणके होणेकरि मैंही स्थित भया, आकाशविषे मेघ होकरि स्थित भया, वर्षा करणे लगा, प्राणीकों तृप्त करणे लगा, तिनविषे रुधिरतें आदि रस होकरि मैंही स्थित भया, तिनकी नाडीविषे मथन करिके आपही प्रवेश किया, जैसी जैसी नाडी होती है, तैसा तैसा रस होकरि स्थित भया, रस बीज कफ पित्त मूत्र आदिक सब नाडीविषे मैंही स्थित भया, सर्व प्राणीकी जिव्हा अग्रविषे रस होकरि स्थित भया, स्वादकों ग्रहण करने लगा, अपणे आपकों आपकरि अरु हिमालयविषे वरफ होकरि स्थित भया ॥ हे रामजी! मैं चेतनही जडकी नांई स्थित भया, बीज होकरि मैंही उत्पत्ति करत भया, प्रलयके मेघ होकरि मैंही नाश करत भया, इस प्रकार जल होकरि स्थावर जंगम जगत सर्वविषे मैं स्थित भया, अरु सदा अपणे आपविषे स्थित होकरि अपणे स्वरूपकों त्यागता न भया, जैसे स्व

प्रविषे जगत् अनुभवरूप है, अणहोता भासता है, तैसे मैं जलरूप होकरि जगत्कों धारता भया ॥ हे रामजी! इसतें आदि लेकरि जो नानाप्रकारके स्थान हैं तिनविषे मैं स्थित भया, अरु फूलकी शय्या उपरि चिरकालपर्यंत विश्राम करत भया, अरु गंध होकरि फूलविषे स्थित भया, मेघ होकरि आकाशविषे विचरता भया, गडा होकरि वर्षा करता भया, पर्वत परिप्रवाह वेगकरि उतरता भया, कणके कणके हो गया, समुद्र नदीयांविषे विचरता भया, यह प्रतिभास चिद् अणुविषे मुझकों भई ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्याने जलरूपवर्णनं नाम द्विशताधिकप्रथमः सर्गः ॥ २०१ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जलके अनंतर मैं तेजकी भावना करी, अर्थ यह जो तेजकों धारा तब मेरे एते अंग उदय भये, चंद्रमा सूर्य अग्नि इन अंगकरि जगत्की क्रिया सिद्ध होणेलगी, जैसे राजाके अंग अनुचर हरकारे होते हैं, जहां तमरूपी चोरकों दीपकरूपी हरकारे मारते हैं, आकाशरूपी जो मैं हौं, तिसके कंठविषे तारेरूपी माला पडी है, सूर्य होकरि मैं जलकों सोसणे लगा, अरु दशों दिशाकों मैं प्रकाशता भया, आकाश जो ऊर्ध्वताकरि श्याम भासता है, सो मेरे निकट प्रकाशमान हो रहता है, सब जगत्विषे मैं पसरी रहा हौं, जहां मैं होउं तहांतें तमका अभाव हो जावै, चंद्रमासूर्यरूपी डबा है, तिसविषे दिनरात्ररूपी रत्न हैं, दिनरात्र काल वर्षरूपी अनेक रत्न हैं, सो सर्वदा निकसते रहते हैं ॥ राजसी सात्विकी तामसी क्रियारूपी कमलिनीका मैं सूर्य हुआ, अरु सर्व देवता पितरकों तृप्त करत भया ॥ यज्ञकी अग्नि होकरि अग्नि रत्न मोती मणि आदिक जो प्रकाश पदार्थ हैं, तिनविषे प्रकाश मैं हौं, अरु प्राणके अंतर मैं स्थित हुआ, प्राण अपानके क्षोभकरि अन्नकों पचावता है, जैसे आत्माके प्रकाशकरि रूप अवलोकन मनस्कार प्रकाशते हैं, तैसे सब पदार्थ मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, काहेतें जो तेजरूप मैं हौं, मानौ चेतनसत्तका मैं दूसरा भाई हौं, जैसे सर्व पदार्थ आत्माकरि सिद्ध होते हैं, तैसे मुझकरि सिद्ध होते हैं ॥ हे रामजी! रा

जाविषे तेज मैं हौं, सिद्धविषे वीर्य होकरि स्थित मैं हौं, बलरूप होकरि जगत्कों पुष्टि मैं करता हौं, वडवाग्नि दाहकशक्ति होकरि जगत्कों मैं नष्ट करता हौं, तेजवानविषे मैं तेज हौं, बलवानविषे मैं बल हौं, तले भी मैं हूं, अरु मध्य भी मैं हूं, अरु चंद्रमा सूर्यतें रहित जो स्थान हैं, तिनविषे मैं हूं अग्निरूपी दीपक करिके अरु चंद्रमा सूर्यरूपी नेत्र करिके स्पष्ट मैंही देखता हौं, मध्य मंडलविषे ॥ हे रामजी ! इस प्रकार तेजरूप होकरि अंतर बाहिर स्थावर जंगम पदार्थविषे स्थित मैं भया, अरु जब बोधदृष्टिकरि देखौं, तब सर्व आत्माही भान होवै, अरु जब अंतवाहक दृष्टिकरि देखौं तब आपकों विराट्रूप जाणौं, जो सर्व जगत्विषे मैंही पसरी रहा हौं, सर्व पदार्थ मेरे अंग हुए हैं, तेजवान्विषे तेज मैं हुआ, क्रोधवानविषे क्रोध भी मैं हुआ, अरु यतिविषे यति मैं हुआ, अरु अजित हुआ, सर्व उर मेरीही जय है, काहेतें जो जय तिसकी होती है, जिसविषे बल अरु तेज होता है, सो बल मैं हौं, ओज भी मैं हौं, तातें मेरी जय है ॥ हे रामजी ! स्वर्ण अरु रत्नमणिविषे प्रकाश हुआ, अवर जो रूप हैं, सो मैं हुआ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इस प्रकार जो तुम जगत्की क्रियाकों अनुभव करणे लगे, जलरूप होकरि अग्निकों बुझावणे लगे, अग्नि होकरि जलकों जलावणे लगे, इत्यादिक क्रिया जो तुमारे उपर होती रही, इष्ट अनिष्ट, सो तिसका सुखदुःखकरि अनुभव किया, अथवा न किया, सो मेरे बोधके निमित्त कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे चेतन पुरुष स्वप्नविषे पर्वत वृक्ष देह इंद्रियां नानाप्रकारके जड पदार्थ देखते हैं, सो उसविषे तौ नहीं, केवल अनुभवरूप हैं, परंतु निद्रादोषकरि उह द्वैतकी नांई स्वप्नसृष्टिका जाणता है, तिसका रागदोष अपणेविषे मानता है, अरु अवर कछु है नहीं, द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि स्थित होता है, परंतु निद्रादोपकरि नहीं जाणी सकता, जब जागता है तब सब स्वप्नसृष्टिकों अपणा आपही जाणता है, तैसे यह जगत् अपणे स्वरूपविषे नहीं, जब बोध स्वरूपविषे जागैगा, तब पदार्थभावना जाती रहैगी,

सब जगत् बोधस्वरूप भासैगा ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित अखंड सत्ता उदय भई है, तिसकों ज्ञानी कहते हैं, जब यह पुरुष परमात्मा अवलोकन करता है, तब सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जिस पुरुषकों स्वप्नसृष्टिविषे पूर्वका स्वरूप विस्मरणा नहीं भया, तिसकों अंतवाहक कहते हैं, तिसकों पत्थरके प्रवेश करणेविषे भी खेद नहीं होता, अरु जल अग्निविषे प्रवेश करणेकरि भी खेद नहीं होता ॥ हे रामजी ! मैं जो आकाशविषे उडता फिऱ्या हौं, अरु आकाशकों भी लंघिकरि ब्रह्मांडके खपर उपर जाय फिऱ्या हौं सो अंतवाहक करिके फिर्या हौं, जिसकों अंतवाहक शरीर प्राप्त होता है, तिसकों आवरण कोउ रोकि नहीं सकता, काहेतें जो सब अंग उसके होते हैं, तातें मुझकों शुद्ध आत्माविषे स्वप्न हुआ है, अरु पूर्वका स्वरूप विस्मरण नहीं भया, तिसकरि मुझकों सब जगत् अपणा स्वरूपही भासता है, अपणे संकल्पकरि कल्पे अपणे अंगही भासते हैं, जैसे किंपुरुषनें मनोराज्य करिके अग्निका समुद्र रचा, अरु उसविषे स्नान करे तौ होता है क्यौं, उसकों खेद भी नहीं होता, सब अपणे संकल्पविषे उसकों भासते हैं, अंतवाहक शरीर करिके विराट् सबकों अपणा आप देखता है, तैसे सब जगत् मुझकों अपणा आप भासै तौ खेद कैसे होवै, जैसे स्वप्नवाला स्वप्नविषे पर्वत नदीयां अग्नि होती है, सो उहीरूप है, अरु एक आप भी आकार धारिके बनि जाता है, पूर्वका स्वरूप उसकों भूलि जाता है, परिच्छिन्नता करिके रागदोषसाथ जलता है, अरु मैं तत्त्वरूप बन्या जो आपकों जडरूप देखत भया, मैं आपकों चेतनरूप देखता था, अरु जडकी नांई भी मैं आपकों जानत भया, इस प्रकार मुझकों अपणा स्वरूप विस्मरण न भया, तब मैं वैराटरूप सबकों अपणे अंग देखत भया, तातें खेद कैसे होवै, खेद तब होता है, जब अपणा स्वरूप भूलता है, अरु परिच्छिन्न बनि जाता है, सो मैं तौ बोधवान रहा, जो मैं स्पंद करिके सब रूप धारे हैं ॥ हे रामजी ! जिसकों यह निश्चय है, तिसकों दुःख कहां होवै, सुखदुःखरूप जो पदार्थ हैं

सो मैं अपनेविषे ऐसे देखत भया, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जिसकों यह सृष्टि होवै, तिसकों दुःख कहां है ?॥ हे रामजी! जिसकों अंतवाहकशक्ति प्राप्त होती है उह समर्थ होता है, पातालविषे जावै आकाशविषे उडै, जहां प्रवेश किया चाहै सो सब होता है, काहेतें जो सृष्टि संकल्पमात्र है॥ हे रामजी! अवर कछु सृष्टि बनी नहीं, आत्माका किंचनही सृष्टिरूप होकरि भासता है॥ हे रामजी! यह सृष्टि सब ब्रह्मरूप है, हमकों तौ सदा ऐसेही भासती है, जब तूं जागैगा तब तुझकों भी ऐसेही भासैगी, सो तूं भी अब जाग्या है, इस प्रकार मैं अग्नि होकरि स्थित भया, जिसकी शिखातें कालप निकसती है, सो प्रकाश मैंही भया, चिद् अपणे स्वरूप अनुभवविषे मुझकों जगत् भासै, तिनविषे मैं स्थित हुआ, अंधकार भी अरु उलूकादिक भी मेरे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु भावरूप पदार्थ भी मैं अपणेविषे जानत भया, काहेतें जो भावरूप पदार्थ तब भासते हैं, जब उनका रूप होता है, सो रूपवान् पदार्थ मैंही था, इस कारणकरि सब मेरेहीकरि सिद्ध होते हैं, इस प्रकार मुझकों प्रतिभा हुई॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र॰अंतवाहकचि॰व॰ नाम द्विशताधिकद्वितीयः सर्गः॥ २०२॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! बहुरि मैं पवनकी धारणाका अभ्यास किया, तब पवनरूप होकरि विचरणे लगा, कमल फूल अरु वृक्षकों हिलावणे लगा, तारानक्षत्रका आधारभूत भया, तब मेरेकरि फिरणे लगे, चंद्रमा सूर्यके चलावणेहारा मैंही भया, समुद्र नदियांके प्रवाह मेरेहीकरि चलते हैं, मनका बडा वेग भी मैंही हौं, प्राणी उसके शरीरविषे मेरा निवास है, मैंही प्राण अपान उदान समान व्यान पंचरूप होकरि स्थित भया हौं, अरु सब नाडीविषे मेरा निवास है, अरु सब नाडीकों रस अपणा अपणा भाग मैंही पहुचावता हौं, हलणा चलणा बोलणा लेणा देणा सब मुझहीकरि सिद्ध होता है, सर्व पदार्थविषे स्पर्शशक्ति मैंही हौं, सर्व शब्द मेरेहीकरि सिद्ध होते हैं, क्रियारूपी बुंदका मैं मेघ हौं, आकाशरूपी जो ग्रह है, तिसविषे मेरा निवास है, दशों दिशा सब मेरेविषे फुरी हैं, देवताकों गंधकरि सुख मैंही

देता हौं, दीपककों प्रज्वलित मैंही करता हौं, पक्षीविषे मेरा सदा निवास है, जैसे अग्निविषे उष्णता रहती है, सब के सूकावनेहारा मैंही हौं, हरियावल करणेहारा भी मैंही हौं॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं पवन होकरि स्थित भया, तातें रूप अवलोकन मनस्कार सर्व पदार्थ मैंही भया, चंद्रमा सूर्य तारे अग्नि इंद्र ब्रह्मा विष्णु रुद्र वरुण कुबेर यम आदिक जगत् होकरि मैंही स्थित भया, पंचभूतकरि भूतके अंतर भी मैंही हौं, अरु बाहिर भी मैं हौं, प्राण अपानके क्षोभ करिके दुःख होता है सो मैंही साकार निराकाररूप हौं, रक्त पीत श्यामरंग पदार्थ सब मैंही हौं, पंचभूत चिद्गुणतें फुरे हैं, सो उसीका रूप है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि सब अपणाही रूप होती है, इतर कछु नहीं, हाड मांस पृथ्वीकरि भूतविषे स्थित भया हौं, वायुरूप प्राण होकरि स्थित भया हौं, अग्निरूप क्षुधा होकरि स्थित भया हौं, आकाशरूप अवकाश होकरि स्थित भया हौं, इस प्रकार मैं सर्वविषे स्थित भया हौं, सो मैं भी चेतन वपु हौं, उह तत्त्व भी चेतन वपु हैं, जैसे स्वप्नविषे जगत् आकाशरूप है, तैसे उह भी आकाशरूप है॥ हे रामजी! सर्वका सर्वकाल सर्व प्रकार सर्वात्मा स्थित है, दूसरा कछु नहीं, आत्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, इसतें इतर जानणा भ्रांतिमात्र है, यह दृष्टि ज्ञानवान्की है, जो असम्यक्दर्शी हैं, तिनकों भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, इस प्रकार मैं संपूर्ण जगत् अपणेविषेही देखत भया॥ हे रामजी! मैं कवन हौं, मैं जो ब्रह्मरूप था तिसविषे जगत् उत्पन्न होते दृष्ट आये, अरु जो मैं ब्रह्मतें इतर कहौं, एक तृण न उत्पन्न होवै, मैं जो ब्रह्मरूप था, तिसतें सृष्टि उत्पन्न होतियां हैं॥ हे रामजी! जब मैं बोधदृष्टिकरि देखा, तब आत्मातें इतर कछु न देखा, जब अंतवाहकदृष्टिकरि देखौं, तब मेरे तांई स्पंद करिके अणु अणुविषे सृष्टि भासती है, जैसे जहां चंदनका अणु होता है, तहां सुगंधि होती है, तैसे जहां जहां तत्त्वके अणु हैं, तहां तहां सृष्टि है॥ हे रामजी! एक अणुविषे अनंत सृष्टि मुझकों भासै हैं, जैसे एक पुरुष शयन करता है, अरु तिसकों स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बहुरि स्वप्नतें स्वप्नांतरकी सृष्टिकों देख

ता है, तौ एकही जीवविषे बहुत भासै क्यौं, तैसे अणुविषे अनेक सृष्टि हैं ॥ हे रामजी ! जो सृष्टि है सो आभासरूप है, अरु आभास अधिष्ठानके आश्रय होता है, सो सबका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, देश कालके परिच्छेद तें रहित है, अरु अखंड अद्वैतसत्ता है, इसीतें कहा है, जो अणुअणुविषे सृष्टि है, काहेतें जो कोउ अणु भिन्न वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ताही है, जो सर्व ब्रह्म है तौ सृष्टि भी ब्रह्मरूप है, तातें सर्व ब्रह्मही जाण, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद नहीं ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकतृतीयः सर्गः ॥ २०३ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार जब मेरेविषे सृष्टि फुरियां, तब मैं तिनके भ्रमकों त्यागि अरु संकल्पकों खैंचिकरि अंतर्मुख हुआ, अरु अपणी जो कुटी थी तिसकी उर आया, जब कुटी देखी, तब तिसविषे एक पुरुष बैठा मुझकों दृष्टि आया, तब मैं विचार किया जो यह किंचन है, अरु मेरा शरीर था सो कहां है, तब मैं विचारकरि देख्या जो यह कोउ महासिद्ध है, अरु मेरा शरीर इसनें मृतक जाणीकरि गिराय दिया है, सो सिद्ध कैसे बैठा है, जो पद्मासन बांधिकरि दोनों गिटे पटहूंके उपर किये हैं, अरु शिर ग्रीवा सूधे किये हैं, दोनों हाथ पटतें ऊर्ध्व किये हैं, मानौ कमलफूल हैं, मानौ अंतरका प्रकाश बाह्य आनि उदय हुआ है, अरु नेत्र मुंदे हैं, मानौ सब वृत्ति मुंदी छोडियां हैं ॥ हे रामजी ! इस प्रकार समाधि लगायकरि पद्मासनकरि आत्मपदविषे स्थित बैठा है, बहुरि कैसा है, निरावरण बादलतें रहित सूर्यकी नांई प्रकाशता है, जैसे धूमतें रहित अग्नि प्रकाशता है, तैसे उह सिद्ध प्रकाशवान् स्थित है, इस प्रकार मैं उसकों आत्मपदविषे स्थित देखत भया, जैसे दीपक निर्वाण स्थित होता है, तैसे स्थित देखिकरि मैं विचार किया जो यह इहांही बैठा रहै, मैं अपणे स्थान सप्तर्षिविषे जाउं, इसी प्रकार कुटीके संकल्पकों त्यागिकरि मैं उडा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार उडते हुए मार्गविषे मुझकों विचार उपजा जो अब सिद्धकी क्या दशा है, बहु

रि उलटिकरि देखौं तौ कुटीसह सिद्ध उहां नहीं, काहेतें जो कुटी उसकी आधारभूत थी सो मेरें संकल्पविषे स्थित थी, जब मेरा संकल्प निर्वाण हो गया तब कुटी गिर पडी, तब तिसविषे सिद्ध कैसे रहै, उह भी गिर पडा ॥ हे रामजी! उसकों गिरता देखिकरि मैं भी उसके पाछे हुआ जो इसका कौतुक देखौं, तब आगे उह चल्या जावै, मैं पाछे चल्या जावौं अधकों, परंतु मैं स्वाधीन चल्या जावौं, अरु उह पराधीन चल्या जावै, जैसे मेघतें बुंद गिरती है, सो ठहरती नहीं, जैसे आकाशतें वटा गिरै तैसे उह चल्या जावै, सप्त द्वीपके पार दशसहस्र योजन स्वर्णकी धरती है, तिसउपर आनि पडा, जैसे आकाशतें रुईका बोबा गिरै तैसे सुखेन आनि पडा, अरु उसी प्रकार पद्मासन बांधे हुए शीस ग्रीवा उसी प्रकार सम ठहरे रहै, काहेतें जो उसके शीस ग्रीवा ऊर्ध्वको रहे ॥ हे रामजी! शरीर हलता चालता प्राणकरि है, जब प्राण ठहरी जाते हैं, तब शरीर हलता चलता नहीं, इस कारणतें शरीर उसका समही रहा, जैसे कुटीविषे बैठा था, तिसी प्रकार आसनकरि पृथ्वी उपरि आनि पडा, तब मेरे मनविषे आया जो इसके साथ कछु चरचा भी किनी चाहिये, परंतु इह तौ समाधिविषे स्थित है, किस प्रकार इसिकों जगावौं ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके मैं मेघ होकरि वर्षा करने लगा, उसके शिर उपरि, अरु बडा शब्द करने लगा, जिस शब्दकरि पहाड फूटणे लगे, तिस शब्द अरु वर्षाकरि भी उह न जाग्या, तब मैं गडा होकरि तिसके उपरि वर्षा करने लगा, जैसे पत्थरकी वर्षा होती है, जब ऐसी वर्षाकरि, तब उह नेत्र खोलिकरि देखणे लगा, जैसे पर्वतपर मोर मेघकों देखणे लगै, तब मैं वपुकों त्यागिकरी उसके आगे आय स्थित भया, तब उसनें समाधि खोली, अरु प्राण इंद्रियां अपणे स्थानविषे आये ॥ हे रामजी! तब मुझकों अपणे अग्र देखत भया, तब मैं अद्वैतभावकों त्यागिकरि बोलत भया ॥ हे साधो! तूं कवन है, अरु कहां स्थित है, अरु क्या करता था, अरु किसनिमित्त कुटीविषे स्थित था ॥ सिद्ध उवाच ॥ हे मुनीश्वर! मैं अपणे प्रकृतभावविषे स्थित हौं, अरु सब कछु कहौंगा, परंतु काहली मत करु, मैं

स्मरण करिके कहता हौं॥ हे रामजी! मुझकों इस प्रकार कहीकरि स्मरण करने लगा, बहुरि स्मरण करिके कहत भया॥ हे ब्राह्मण! वसिष्ठजी मुझपर क्षमा करणी, संतका शांत स्वभाव है, मेरे पासतें तुमारी बडी अवज्ञा हुई है, परंतु तुम क्षमा करहु, मेरा तुमकों नमस्कार है॥ हे रामजी! इस प्रकार नमस्कार करिके निर्मल आनंदके उपजावणेहारे वचन कहत भया॥ हे मुनीश्वर! यह संसाररूपी नदी है, अरु इसका बडा प्रवाह है सो कदाचित् सूकता नहीं, अरु चित्तरूप समुद्रतें प्रवाह निकसता है, जन्ममरण दोनों इसके किनारे हैं, रागदोषरूपी इसविषे तरंग हैं, अरु भोगकी तृष्णा इसविषे चक्र फिरता है, तिसविषे मैं बडा दुःख पाया है॥ हे मुनीश्वर! अपणे सुखके निमित्त देवके स्थानोंविषे भी गया हौं, अरु दिव्य भोग भोगे हैं, जो स्पर्श आदिक भोग हैं, सो सब मैं भोगे हैं, परंतु शांति नहीं, मुझकों प्राप्त भई, जिस सुखकों मैं चाहता था, सो न पाया सो सुण, जैसे पपीहा मेघकी बुंदकों चाहता है, अरु मरुस्थलकी भूमिकाविषे उसकों शांति नहीं होती, तैसे मुझकों विषयके सुखविषे शांति प्राप्त भई नहीं॥ हे मुनीश्वर! इस जगत्कों असार जाणिकरि मेरा चित्त विरक्त हुआ है, जो एता काल मैं भोग भोगे, परंतु मुझकों शांति न प्राप्त भई, असत् जाणिकरि मैं फिर्या, अरु विचार किया जो सार होवै, तिसविषे स्थित भया होउं, तब मैं जाण्या जो सार अपणा अनुभवरूप ज्ञान संवित् है, ऐसे जाणिकरि मैं तिसविषे स्थित भया हौं॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु विषय हैं, सो विषरूप हैं, विषके पान कियेतें भी मृतक होता है, जैसे स्त्री धन आदिक सुख हैं, सो मोह अरु दुःखके देणेहारे हैं, ऐसा कवन पुरुष है, जो इनविषे आया सावधान रहता है, यह स्वरूपतें नष्ट करनेहारे हैं॥ हे मुनीश्वर! देहरूपी एक नदी है, तिसविषे बुद्धिरूपी एक मच्छी रहती है, सो जब शिर बाह्य निकासती है, अर्थ यह जो इच्छा करती है, तब भोगरूपी बगला इसकों खाय जाता है, अर्थ यह जो आत्ममार्गतें शून्य करता है, अरु यह जो भोगरूपी चोर है, जब इनका संग यह करता है, तब इसकों लूटि लेते

हैं, अर्थ यह जो आत्मज्ञानतें शून्य करते हैं, जब आत्मज्ञानतें शून्य हुआ तब जन्मका अंत नहीं आता, अनेक शरीरकों धारता है, जैसे चक्र उपर चढी हुई मृत्तिका अनेक बासनके आकार धारती है, तैसे आत्मज्ञानतें रहित अनेक शरीरकों धारता है, सो अब मैं जाग्या हौं, मुझकों अब लूटि नहीं सकते ॥ हे मुनीश्वर! भोगरूपी बडे नाग हैं, अवर जो नाग हैं, तिनके दंशतें शरीर मृतक होते हैं, अरु विषयरूपी सर्पके फुत्कारेकरि मृतक होता है, अर्थ यह जो इच्छा करनेकरि आत्मपदतें शून्य होता है, जब इसकों विषयकी इच्छासाथ संबंध होता है, तब इसका क्षणक्षणविषे निरादर होता है, जैसे कदलीबनतें रहित हुआ हस्ती महावतके वश आया निरादरकों पावता है ॥ हे मुनीश्वर! जिस शरीरके निमित्त यह विषयकी इच्छा करता है, सो शरीर भी नाशरूप है, तिसविषे अहंप्रतीति करणी परम आपदाका कारण है, अरु शरीरविषे अहंप्रतीति न करणी परम सुखका कारण है, जैसे सर्पके मुखमें पडा हुआ दर्दुर मच्छरकों खाणेकी इच्छा करता है, सो महामूर्ख है, किसी क्षणविषे काल इसकों ग्रासि लेवैगा, तातें इनकी इच्छा करणी व्यर्थ है, अरु दुःखका कारण है ॥ हे मुनीश्वर! बालक अवस्था व्यतीत होती है, तब युवा अवस्था आती है, युवातें उपरांत वृद्ध अवस्था आती है, तब जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे सूकी जाती है, तैसे वृद्ध अवस्थाविषे शरीर जर्जरीभावकों प्राप्त होता है, अरु दुःख पावता है, बालक अवस्थामें क्रीडाविषे मग्न होता है, यौवन अवस्थाविषे कामादिककरि मग्न होता है, वृद्ध अवस्थाविषे चिंताकरि मग्न होता है, इस प्रकार यह तीनों अवस्था व्यतीत होती हैं, बहुरि मृत्यु हो जाता है, जीवकी अवधि इस प्रकार पडी व्यतीत होती है, परमपदतें अप्राप्त रहते हैं ॥ हे मुनीश्वर! यह आयुर्बला बीजलीके चमत्कारकी नांई है, तिस क्षणभंगुर अवस्थाविषे जो भोगकी वांछा करते हैं, सो महादुःखकों प्राप्त होते हैं, इनविषे सुख देखकरि कहै जो मैं स्वस्थ रहौंगा, सो कदाचित् न होवैगा, जैसे जलके तरंगकी गोदवि

षे बैठिकरि स्थित हुआ चाहै, सो नहीं रहैगा, अवश्य मरैगा, तैसे विषयभोगोंकरि शांति सुख नहीं होता, जैसे कोउ महाधूपकरि तप्या हुआ, सर्पके फणिकी छायातले बैठिकरि सुखकी वांछा करै सो न होवैगा, जब आत्मज्ञानरूपी वृक्षकी छायाके नीचे बैठै, तब शांत सुखी होवैगा, जिन पुरुषनें विषयकी सेवना करी है, सो परम दुःखकों प्राप्त होते हैं, जिननें आत्मपदकी सेवना करी है, सो परमानंदकों प्राप्त होते हैं, जैसे नदीका प्रवाह अधोकों चल्या जाता है, तैसे मूर्खका मन विषयकी उर धावता है, यह संसार मायामात्र है, इसविषे शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलकरि तृषा निवर्त नहीं होती, तैसे विषयभोगकरि शांति कदाचित् नहीं होती, जो आत्मपदतें विमुख हैं, सो विषयकी उर धावते हैं, अरु जो आत्मपदविषे स्थित हैं सो विषयकी उर नहीं दउडते, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि नष्ट होते हैं, जैसे नदीका वेग समुद्रकी उर गमन करता है, अरु पत्थरकी शिला गमन नहीं करती, तैसे भोगरूपी समुद्रकी उर अज्ञानरूपी नदी गमन करती है, ज्ञानीरूपी पत्थरकी शिला नहीं गमन करती ॥ हे मुनीश्वर! कमलविषे सुगंधि तबलग होती है, जबलग सर्पके मुखका वायु नहीं लगा, तैसे बुद्धिविषे तबलग विचार हैं, जबलग चित्तरूपी सर्पके भोगइच्छारूपी वायु नहीं लगा, जब लगता है तब विचाररूपी सुगंधिकों ले जाती है, अरु विषरूपी तृष्णाकों छोडि जाती है, अरु बाण निसानकी उर तब धावता है, जब धनुष्य अरु चिलेकों त्यागता है, त्यागेतें बहुरि नहीं मिलता, तैसे आत्मारूपी चिलेतें जब चित्तरूपी बाण छूटता है, तब भोगरूपी निसानकी उर धावता है, जब जाता है, तब फेरि आणा कठिन होता है, अर्थ यह जो अंतर्मुख होणा कठिन होता है ॥ हे मुनीश्वर! यह आश्चर्य है, जो पदार्थ सुखदायक नहीं, तिनकी उर यह बडा यत्न करता है, तौ भी सिद्ध नहीं होते, अरु जो अयत्नसिद्ध आत्मपद है, तिसकों त्यागता है, जिनकों यह सुख जाणता है, सो सब दुःखके स्थान हैं, जिस अपणे होणेकों यह भला जाणता है, सो अनर्थका कारण है, जिस देहकों यह सुखरूप जा

णता है, सो सर्व रोगका मूल है, जिनकों यह भोग जाणता है, सो इसकों दुःख देणेहारे परम रोग हैं, जिनकों यह सत् जाणता है, सो सब मिथ्या हैं, जिनकों यह स्थिर जाणता है, सो स्थिर नहीं, चलरूप हैं, जिनकों यह रस जाणता है, सो सब विरस हैं, जिनकों बांधव जाणता है, सो सब अबांधव हैं, दृढबंधनरूप हैं, अरु जिसकों यह सुख देणेहारी स्त्री जाणता है, सो सर्पिणी है, परम विषके देणेहारी है, तिसका मृत्यु होता है, बहुरि नहीं जीवता, अर्थ यह जो आत्मपदविषे स्थित नहीं होता ॥ हे मुनीश्वर! मैं परम आपदाका कारण देहकों जाणता हौं, इसके निवृत्त हुए परमपदकों प्राप्त होता है, जिस पुत्र धन आदिककों यह संपदा जाणता है, सो परम दुःखरूप आपदा है, इनविषे सुख कदाचित् नहीं, इह श्रवणकरि वार्ता मैं नहीं कहता, देखिकरि विचार किया है, विचार करिके अनुभव किया है, अनुभव करिके कहा है, जो इह संसार मायामात्र है, अरु बडे बडे स्थानोंविषे भी मैं गया हौं, परंतु सार पदार्थ मुझकों कोउ दृष्टि नहीं आया, स्वर्गविषे नंदनबनतें आदि काष्ठरूपही दृष्टि आये हैं, अरु पृथ्वीविषे आयकरि देख्या तौ पंचभूतही दृष्टि आये हैं, अरु शरीरविषे रक्त मांस हाड मूत्र आदिक दृष्ट आये हैं, तातें देखिकरि मैं तिनकों धिक्कार करता हौं, जो ऐसे शरीरविषे अहंप्रत्यय करते हैं, इसकी आयुर्बला ऐसी है, जैसे दोनों हाथविषे जल लीजियें सो चल्या जाता है, ठहरता नहीं, अरु जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे उपजीकरि नष्ट होते हैं, जैसे विजलीका चमत्कार होकरि नष्ट हो जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है, अरु जो ऐसे शरीरकों पायकरि सुखकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं, बालक अवस्था तरंगकी नांई नष्ट हो जाती है, यौवन अवस्था विजलीके चमत्कारवत् छपन होती जाती है, वृद्ध अवस्थाविषे केश श्वेत हो जाते हैं, दंत घासिकरि गिर पडते हैं, जैसे नीचे स्थानविषे जल आनि स्थित होता है, तैसे सब रोग वृद्ध अवस्थाविषे आनि स्थित होते हैं, अरु तृष्णा दिन दिन बढती जाती है ॥ हे मुनीश्वर! सब पदार्थ जर्जरीभूत हो जाते हैं,

अरु तृष्णा ज्वान होती है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी बढती जाती है, अरु जो सुखभोग प्राप्त होकरि बिछुरी जाते हैं, तिनका दुःख होता है ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार इनकों असत् जाणिकरि मैं स्वरूपविषे स्थित भया हौं, जब पांचों इंद्रियांके इष्टविषे बडी उत्तम मूर्त्ति धारिके आनि स्थित होवै तौ भी हमकों खैंचि नहीं सकते, जैसे मूर्त्तिकी लिखी कमलिनी भंवरकों खैंची नहीं सकती, तैसे हम सारखेकों विषय चलाय नहीं सकते ॥ हे मुनीश्वर! तुमारा शरीर मैं अवज्ञाकरि डारि दिया है, विचार करिके नहीं डार्या जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक त्रिकालज्ञ हैं, तौ भी इस चर्म दृष्टिकरि नहीं जाणी सकते, जब विचारकरि देखते हैं, तब जाणते हैं, इस कारणतें विचारविना मैं तुमारा शरीर डारि दिया है, अब तुम क्षमा करौ, विचार करिके भूत भविष्य वर्त्तमानकों जाणीता है, अरु इन नेत्रकरि सोई जाणीता है, जो अग्रभाग होता है, विशेष नहीं जाणीता, इस कारणकरि मुझतें तुमारा शरीर गिर्या है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे आकाशकुटीसिद्धसमाधियोगवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुर्थः सर्गः ॥ २०४ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे साधो! मुझतें भी तेरा गिरना विचारविना हुआ है, जो विचारविना मैं उठि गया था, यह कुटी मेरे अंतवाहक संकल्पविषे थी, सो अपणे स्थानकों चल्या, इस कारणतें कुटी गिर पडी, तूं भी गिर पडा, जो व्यतीत गई सो भली, तिसकी क्या चिंतवना करियें, ज्ञानवान् वीतिकी चिंतवना नहीं करते, जो होणी हुई सो भली ॥ हे साधो! अब चलियें, जहां तुमारे जाणा है तहां जावहु, जहां हमारे जाणा है तहां हम भी जाते हैं॥ हे रामजी! इस प्रकार चर्चा करिके हम दोनौं आकाशमार्गकों उडे, जैसे पक्षी उडता है, तब परस्पर नमस्कार करिके हम भिन्न भिन्न हो गये, उह अपणे स्थानकों गया, अरु मैं अपणे स्थानकों चला, मैं वहुतेरे स्थान देखता आउं, परंतु मुझकों कोउ न जाणै ॥ हे रामजी! यह संपूर्ण वृत्तांत मैं तेरे तांई कहा है, तूं इसकों विचार ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम जो सिद्धके साथ समागम किया था, सो आकाशमार्गविषे

कैसे शरीरसाथ फिरे, पंचभौतिक शरीर तौ पृथ्वी पर डार्या था, उह तौ पृथ्वीविषे अणुरूप हो गया, विचरे किस करिके ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अंतवाहक शरीरसाथ मैं विचरता फिर्या हौं, तिसकरि मैं सिद्ध देवताके स्थानोंविषे इंद्र वरुण कुबेरके स्थानोंविषे फिर्या हौं, परंतु मेरे तांई कहूं न देखै, मैं सबकों देखौं, संकल्पपुरुषसाथ मेरा व्यवहार हुआ, अवर किससाथ कहौं, जो अवर किसीकों भास्या नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! अंतवाहक शरीर इंद्रियांका विषय तौ नहीं, सिद्ध साथ चर्चा कैसे करी, अरु तुमकों उसनें कैसे देखे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस प्रकार जो तूं कहता है तौ सुण, सिद्धकों मैं इसनिमित्त दृष्टि आया हौं जो मेरा सत्यसंकल्प है, मेरे यह फुरणा हुआ जो सिद्ध मुझकों देखै, अरु चर्चा करै, इसकरि उसनें मुझकों देख्या, उसकों संकल्प भी मेरेविषे आया तब जाण्या; अरु जो दोनों सिद्ध होवैं, अरु उनका संकल्प भिन्न भिन्न होवै, तौ एक दूसरेके संकल्पकों नहीं जाणते, परंतु किसीका विशेष संकल्प होवै, तब उह दूसरेके संकल्पकों जाणता है, तातें उसका संकल्प मेरे देखणेकों न था; अरु मेरा जो दृढ संकल्प था, तिसकरि उसके संकल्पकों खैंचि अपणे उर ले आया, जो बली होता है, तिसकी जय होती है, इसकरि उसनें मुझकों देखा ॥ हे रामजी! जो अंतवाहकविषे स्थित होता है, तिसकों तीनों कालका ज्ञान होता है, परंतु व्यवहारविषे लगै, तब भूलि जाता है, जो वर्त्तमान पदार्थ होता है, तिसका ज्ञान होता है, इसी कारणतें उसनें मेरा शरीर डारि दिया था जो समाधिके व्यवहारविषे लगा था, अरु मेरे संकल्पकरि उह कुटी भी तब गिरी थी, जो मैं अपणे स्थानके व्यवहारकों चला था, ऐसी चिंतना करिके जो मैं चिंतवनाविषे न होता, अरु अंतवाहक शरीरविषे होता, अरु उस कुटीके भविष्यत् विचारि देखता, अरु उस संकल्पकों रहणेदेता तौ सिद्ध न गिरता, जो अवर व्यवहारविषे लगा, इस करिके अंतवाहक विस्मरण हो गया, तब कुटी गिर पडी, अरु सिद्ध भी गिर पडा ॥ हे रामजी! इस प्रकार सिद्ध गिर्या

अरु चर्चा हुई, तब मैं उहांतें चल्या, अंतवाहक शरीरकरि आकाशमार्गविषे फिरणे लगा, सिद्धके समूह देखे, देवता विद्याधर गंधर्व किन्नर ऋषि मुनि वरुण कुबेर इंद्र यमतें आदि लेकरि सबके स्थान देखे, मैं सर्वकों देखता फिर्या, परंतु मुझकों कोउ न देखै, मैं बडे बडे शब्द करौं, जो किसी प्रकार शब्द कोउ सुणै, अरु मुझकों देखै, परंतु मेरा शब्द कोउ न सुणै, अरु न कोउ देखै, जैसे स्वप्नविषे कोउ शब्द करै, तब उसका शब्द जागृतवाले कोउ नहीं सुणते, जैसे असंकल्पवाला दूसरेकी सृष्टि व्यवहार शब्द कोउ नहीं जाणता तैसे मुझकों कोउ न जाणता भया ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं आकाशपिशाच होकरि विचर्या, बहुरि देवताके स्थानोंका पिशाच होकरि विचर्या, मैं सबकों देखौं, अरु मुझकों कोउ न देखत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! पिशाचका शरीर कवन होता है, अरु पिशाचकी जाती क्या होती है, अरु पिशाचकी क्रिया क्या होती है, अरु तिनके रहणेका स्थान क्या होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पिशाचकी कथासाथ प्रयोजन कछु न था, तथापि तैंनें प्रसंग पायकरि पूछा है, तातें मैं कहता हौं, पिशाचका आकार नहीं होता, अरु जो जो रूप धारते हैं, सो सुण, एक तौ आकाशकी नांई शून्य होते हैं, एक पिछावेकी नांई भयकों देते हैं, एक मेघ होकरि स्थित होते हैं, एक कागरूप धारिकरि स्थित होते हैं, ऐसे रूप धारिके विचरते हैं, उह सबकों देखते जाणते हैं, अरु उनकों कोउ नहीं जाणता, चलता बैठा, परंतु शीत उष्ण करिके उह भी दुःख पावते हैं, अरु इच्छा, दोष, लोभ, मान, मोह, क्रोध, आदिक विकार उनविषे भी रहते हैं, शीतल जल भले भोजनकी इच्छा उह भी करते हैं, अरु नगरविषे भी रहते हैं, वृक्षविषे भी रहते हैं, दुर्गंध स्थानोंविषे भी रहते हैं, कहूं गीदड होकरि दिखाइ देते हैं, कहूं श्वान होकरि दिखाइ देते हैं, मनविषे भी जायकरि प्रवेश करते हैं, बहुरि मंत्र पाठ दान आदिककरि वश भी होते हैं, सो भी अपणी अपणी वासनाके अनुसार होता है, इनविषे भी केई उत्तम होते हैं, केई मध्यम होते हैं, केई नीच होते हैं, जो

उत्तम हैं, सो देवताके स्थानविषे रहते हैं, अरु जो मध्यम हैं सो मनुष्यके स्थानविषे रहते हैं, जो नीच हैं, सो नरकके स्थानविषे रहते हैं, अरु इनकी उत्पत्ति अचैत्य चिन्मात्र जो दृश्यतें रहित है, शुद्ध चेतन तिसतें हुई है ॥ हे रामजी ! सबका अपणा आप उही चेतनसत्ता है, कल्पवृक्षकी नांई उसविषे जैसी जैसी वासना होती है, तैसा तैसा पदार्थ हो भासता है ॥ हे रामजी ! न कहूं पिशाच है, न जगत् है, ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों अपणे आपविषे स्थित है, शुद्ध आत्मत्वमात्रविषे जो किंचन हुआ है, जो अहं होकरि फुर्या है, तिसकों जीव कहते हैं ॥ तिस अहंकी दृढता करिके मन फुर्या है, सो मन ब्रह्मारूप होकरि स्थित भया है, तिस ब्रह्मानें मनोराज्य करिके आगे जगत् उत्पन्न किया है, ब्रह्माही जगत्रूप होकरि स्थित भया है, सो ब्रह्माविषे ब्रह्मही स्थित है ॥ हे रामजी ! ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है, केवल आकाशरूप है, तिसके दृढ संकल्पकरि अधिभूत जगत् दृढ भया है, तिसी मनतें अवर मन हुआ है ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्माका शरीर अंतवाहक है, तैसे सबका शरीर अंतवाहक है, परंतु संकल्पकी दृढता करिके अधिभूत भासता है, सब मनरूप है, परंतु दीर्घकालका स्वप्न सो जागृत होकरि स्थित भया है, तिस करिके दृढ भासता है, जिनोंकों संकल्प ब्रह्म शरीरविषे अहंकार है, तिन अज्ञानीकों जगत् अधिभूत भासता है, अरु जो प्रबोधरूप हैं, तिनकों सब जगत् संकल्परूप है, अरु वास्तवतें कहें, तौ उपजा कछु नहीं, न तूं है, न मैं हौं, न ब्रह्मा है, न जगत् है, सर्वही ब्रह्मरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्म शब्द अरु जगत् दोनों अज हैं, न ब्रह्मही उपजा है, न जगत् उपजा है, दोनों ब्रह्मरूप हैं, जो ब्रह्मतें इतर भासता है, सो भ्रांतिमात्र है ॥ हे रामजी ! पंचभूत अरु छट्ठा मन इनका नाम जगत् है, जबलग यह भूत उसविषे दृष्टि आते हैं, तबलग भ्रांति है, जब इनतें रहित केवल चेतन भासै, तब इसीका नाम प

रमपद है ॥ हे रामजी ! जब आत्मपदविषे जागैगा, तब पंचभूत भी आत्मातें इतर भासैंगे, सबका अधिष्ठान चेतनसत्ता है, जबलग आत्माका प्रमाद है, तबलग संसारभ्रम न मिटैगा, अरु सब जगत् निराकार संकल्पमात्र है, परंतु संकल्पकी दृढता करिके आकाशविषे स्थूल भूत दृष्टि आते हैं, ज्ञानकालविषे भी अज्ञानकालविषे जगत् उपजा नहीं, परंतु अज्ञानीके हृदयविषे दृढ भासता है, जैसे किसीने मनोराज्य करिके नगर रचा होवै, सो उसीके हृदयविषे है, अवर कहूं नहीं भासता, तैसे जबलग अज्ञाननिद्राविषे सोया है, तबलग जगत् भासता है, जब जागैगा तब आकाशरूप देखैगा ॥ हे रामजी ! अपणा संकल्प आपकों नहीं बाधता, जबलग स्वरूपका प्रमाद नहीं भया, तबलग ब्रह्माका संकल्प ब्रह्माकों नहीं बंधन करता, स्वरूपकी अहंप्रत्यय करिके तौ संकल्परूप है, अवर दूसरी वस्तु सत्य कछु नहीं, आत्माही है, वास्तवतें न जगत्की आदि है, न मध्य है, न अंत है, न जगत्का होणा है, न अणहोणा है, आत्मसत्ता ही अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी ! जो सर्वात्मा है, तौ रागदोष किसका होवै, सब अपणा आपही है, अपणा आप जो आत्मतत्त्व है, तिसका किंचन संवेदन फुरणे करिके जगत्रूप होके स्थित भया है, जैसे किसी पुरुषनें मनोराज्य करिके एक स्थान रचा, जब उसविषे दृढभावना हुई, तब अधिभूत भासणे लगजाता है, तैसे यह जगत् भी ब्रह्माका संकल्प है, चंद्रमा सूर्य अग्नि रुद्र वरुण कुबेर आदिक सब संकल्परूप हैं, संकल्पकी दृढता करिके अधिभूत पडे भासते हैं ॥ हे रामजी! आत्मरूपी एक ताल है, तिसविषे चेतनरूपी जल है, तिसविषे फुरणेरूपी चिकड है, तिसविषे चउदश प्रकारके भूतजात दर्दुर रहते हैं सो संकल्पमात्र हैं ॥ हे रामजी ! आकाशविषे एक आकाश क्षेत्र है, तिसविषे शिला उत्पन्न होती है, स्वर्गलोक देवता बडी शिला है, एक तिनविषे उज्वल शिला है, सो ज्ञानवान् है, मध्यम शिला मनुष्यलोक है, तिर्यक् आदिक योनी नीच शिला है, सो सबही निर्बीजहैं,अर्थ यह जो कारणतें रहित हैं, आत्मा अद्वैत सदा

अपणे आपविषे स्थित है, कछु उत्पन्न नहीं भया, परंतु भ्रांति करिके भिन्न भिन्न पडा भासता है, जैसे फेन बुद्बुदे तरंग सब जलरूप हैं, तैसे यह जगत् सब आत्मरूप है, अरु जैसे स्वप्नसृष्टि अकारणरूप होती है, जैसे संकल्पसृष्टि कारणविना होती है, तैसे यह जगत् कारणविना संकल्पतें उत्पन्न हुआ है, जैसे ब्रह्मादिक जगत् उदय हुआ है, तैसे पिशाच भी उदय हुए हैं ॥ हे रामजी! जैसा किंचन आत्माविषे होता है, तैसा होकरि भासता है, वास्तवतें पृथिव्यादिक तत्त्व कहूं नहीं, न कहूं ब्रह्मा उपजा है, न कोउ जगत् उपजा है, सब भ्रममात्र हैं, जेते कछु वपु भासते हैं सो सब निर्वपु हैं, चेतनता करिके फुरे हैं, सब जीवका आदि अंतवाहक शरीर है, जैसे ब्रह्माका अंतवाहक शरीर था, तैसे सर्व जीवका अंतवाहक शरीर होता है, परंतु संकल्पकी दृढता करिके अधिभूत हो भासता है, अरु सब जीवका अपणा अपणा भिन्न संकल्प है, तिसके अनुसार अपणी सृष्टि होती है, अरु जो तूं कहे भिन्न भिन्न है तौ जीव एकठे क्यों दृष्ट आते हैं, ऐसा चहिए जो अपणी अपणी सृष्टिविषे होवै, तिसका उत्तर यह है, जैसे एक नगरवासी अवर नगरविषे जावै अरु एक नगरवासी अवरविषे आवै, दोनों जाय एकठे बैठें, तैसे सब जीव एकठे भासते हैं, तिनके एकठे हुए उसकी सृष्टि उह नहीं देखता, अरु उसकी सृष्टि उह नहीं देखता, जैसे स्वप्नविषे भिन्न भिन्न भूतजात होते हैं, अनुभवविषे एकठे दृष्ट आते हैं, अरु एक अनुभवविषे भिन्न भिन्न होते हैं, एक दूसरेकी सृष्टिकों नहीं जाणते, जीव अंतवाहक भूलि गया है, अधिभूत दृढ हो रहा है, जैसा अनुभवविषे अभ्यास होता है तैसाही भासता है, जहां पिशाच होता है, तहां अंधकार भी होता है, जो मध्यान्हका सूर्य उदय होवै अरु पिशाच आगे आवै तौ अंधकार हो जाता है, ऐसा तमरूप होता है, जैसे उलूकादिककों प्रकाशविषे अंधकार होता है, तैसे अनेकसूर्यका प्रकाश होवै तौ भी पिशाचका अंधकारही रहता है ॥ हे रामजी! जैसा उनविषे निश्चय होता है, तैसाही भान होता है, काहेतें जो उनका ओज तमरूप है, जैसा किसीका नि

श्चय होता है, तैसा भासता है, हमकों तौ सदा आत्माका निश्चय है, तातें सदा आत्मतत्त्वका भान होता है, जैसे पिशाच पंचभौतिक शरीरतें रहित चेष्टा करते हैं, तैसे मैं पंचभौतिक शरीरतें रहित आकाशविषे चेष्टा करता रहा हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अंतरोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचमः सर्गः ॥ २०५ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हौं, सो पंचभौतिक शरीरतें रहित अंतवाहक शरीरसाथ विचरता रहा हौं, परंतु मुझकों देखै कोउ नहीं, चंद्रमा सूर्य इंद्र जो सहस्र नेत्रवाले हैं, अरु सिद्ध गंधर्व ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्रह्मा विष्णु रुद्र भी इस चर्मदृष्टिसाथ देखि कोउ न सकै, अरु मैं सबकों देखता फिरौं, इंद्रके निकट जायकरि मैं उसके अंग हिलावत भया, परंतु मुझकों जाणै नहीं, जैसे संकल्पनर किसकों हिलावै, अरु उह देखै, अरु अधिभौतिक शरीर न हलै, तैसे उनके शरीर मेरे हिलावणेकरि हिले नहीं, तब मैं अतिमोहकों प्राप्त भया जो बडा आश्चर्य है, एता काल मैं रहा अरु मुझकों देखि कहूं नहीं सकता, तब इह इच्छा मैं करी जो मुझकों देखै, तब मैं जो सत्यसंकल्परूप था तिसकरि देखणे लगे, जैसे कहूं इंद्रजालकों देखै तैसे मुझकों देखणे लगे, जिननें पृथ्वीतें उपज्या देख्या तौ पृथ्वीतें उपज्या वसिष्ठ जाणै, मनुष्यलोकविषे केई जलतें उपज्या जाणै जो वारंवार वसिष्ठ है, जिन ऋषीश्वरनें तीर्थ जो जलरूप हैं, तिनतें उपज्या देख्या तातें वारिवसिष्ठ जाण्या, जो यह वारिवसिष्ठ है, केई वायुतें उपजा जाणै सिद्धादिक, केई जाणै जो सप्तर्षिके मध्य वसिष्ठ हैं, जो तेज वसिष्ठ हैं, इस प्रकार जगतविषे मुझकों देखणे लगे, तब सबसाथ व्यवहार करणे लगा, जब बहुत काल व्यतीत भया तब भावनाकी दृढता करिके पंचभौतिक शरीर मुझकों देखते भये, प्रथम वृत्तांत सबकों विस्मरण हो गया, अधिभौतिकता दृढ होत भई, जैसे अज्ञान करिके स्वप्ननरकों अधिभौतिक देखता है, तैसे मेरेसाथ आकारकों देखते भये, अरु मुझकों सदा अपणे स्वरूपविषे अहंप्रत्य

यतें इतर द्वैत कछु न था भासता, काहेतें जो मैं ब्रह्मरूप हौं, अरुवसिष्ठनाम मेरा ऐसा है, जैसे जेवरीविषे सर्प होता है, सो मैं चिदाकाशरूप हौं, अरु अवरकों वसिष्ठप्रतीति उपजी है॥ हे रामजी! जैसे तुम सारखेकों मेरा आकार दृष्ट आता है, अरु मुझकों अधिभौतिक अंतवाहक दोनों शरीर चिदाकाशका किंचन भासता है, मैं सदा निराकार अद्वैतरूप हौं, चेष्टा तुमारी हमारी समान है, परंतु मुझकों सदा आत्मपदका निश्चय है, इस कारणतें मैं जीवन्मुक्त होकरि विचरता हौं, अज्ञानीकों क्रियाविषे द्वैत भासता है, अरु हमकों क्रियाविषे भी अद्वैत भासता है, ब्रह्मा भी ब्रह्मरूप भासता है, अरु तिसका संकल्प जो जगत् है सो भी ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं सो जलरूप हैं, भिन्न कछु नहीं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् ब्रह्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, सर्व ब्रह्मही है, तातें मैं चिदाकाशरूप हौं, द्वैत कछु नहीं फुरता, जब अहं फुरती है, तब जगत् द्वैतरूप होकरि भासता है, जैसे अहंके फुरणेतें स्वप्नसृष्टि होती है, तैसे जागृतसृष्टि होती है सो संकल्पमात्र है, ब्रह्मा अरु ब्रह्माका जगत् संकल्पकी दृढता करिके अधिभौतिककी नांई हो भासता है, वास्तवतें न ब्रह्मा उपजा है, न जगत् उपजा है, चिदानंद ब्रह्म अपणे आपविषे स्थित है, सदा एकरस है ॥ हे रामजी! सृष्टिकी आदि अरु प्रलयपर्यंत जो कछु क्षोभ है, तिसविषे आत्मा सदा एकरस है, उसविषे क्षोभ कदाचित् नहीं, काहेतें जो वास्तव कछु उपजा नहीं, अरु जो कछु भासता है, सो अज्ञान करिके सिद्ध है, ज्ञानकरि जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे इसकों कहूं निधि भासी, तिसके प्राप्ति निमित्त यत्न करता है, अरु जब जाग्या तिसकों स्वप्न जाण्या, बहुरि तिसके पावणेका यत्न नहीं करता, तैसे जब आत्मबोध इसकों हुआ, तब फेरि इस जगत्विषे जगत्बुद्धि नहीं रहती, अज्ञानही जगत्भ्रमका कारण है, तिस अज्ञानके निवृत्तिका उपाय यही है, जो इस महारामायणका विचार करणा, तिसकरि संसारभ्रम निवृत्त होवैगा, यह संसार अविद्याकरि वासनामात्र है, इसकों सत्य जाणिकरि जो इसकी उर

धावते हैं, सो परमार्थतें शून्य हैं, अरु मूढ हैं, कीट हैं, अरु वानरकी नांई चंचल हैं, जिनकों भोगविषे सदा इच्छा रहती है, सो नीच पशु हैं, तिनकों संसार निवृत्त होणा कठिन है, तृष्णा अंतर सदा रहती है, वैराग्यकों नहीं प्राप्त होते ॥ हे रामजी ! भोग तौ ज्ञानवान् भी भोगते हैं, परंतु भोगबुद्धिकरि नहीं भोगते, प्रवाहपतित जो कछु प्रारब्धवेग करिके आनि प्राप्त होता है, तिसकों भोगते हैं, अरु जाणते हैं जो गुणविषे गुण वर्तते हैं, अरु इंद्रियांसहित भोगकों भ्रांतिमात्र जाणते हैं, अरु जो अज्ञानी हैं, सो आसक्त होकरि भोगते, अरु तृष्णा करते हैं, भोगकी तृष्णाकरि अंतर जलता है, इसीका नाम बंधन है, अरु भोग दुःखरूप हैं, जो इनकों सेवते हैं, सो अंतरतें सदा तृष्णाकरि जलते हैं, तिनका द्वैतरूप जगत्भ्रम कदाचित् नहीं मिटता, अरु जो ज्ञानवान् हैं, सो सदा आत्माकरि तृप्त रहते हैं, तातें शांतरूप हैं, जैसे हिमालय पर्वतविषे पदार्थ शीतल हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि अंतर शीतल हो जाता है, अरु आत्मानंदकी प्राप्ति होती है, दुःख कोउ नहीं रहता, अरु जिनका चित्त सदा स्त्री पुत्र धनविषे आसक्त है, अरु इच्छा करते हैं, सो महामूर्ख हैं, अरु नीच हैं, तिनकों धिक्कार है, जिसकों आत्मपदकी इच्छा होवै, तिसकों सदा संतहूंका संग करना चाहिये, सो शास्त्रोंका श्रवण विचार करै, इस अभ्यासकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी ॥ हे रामचंद्र ! यह शास्त्र विचार कियेतें परमपदकों प्राप्त करनेहारा है, जो पुरुष इस शास्त्रकों त्यागिकरि अवरकी उर लगते हैं, सो मूर्ख हैं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन् ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सर्व श्रोता परस्पर नमस्कार करि गये, बहुरि सूर्यकी किरणां उदयकरि आनि स्थित भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे अंतरोपाख्यानवर्णनसमाप्तिर्नाम द्विशताधिकषष्ठः सर्गः ॥ २०६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुझकों अंतरोपाख्यान श्रवण कराया है, तिसके विचारतें जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, ऐसे जब तूं विचारकरि देखैगा, तब अनंत ब्रह्मांड आत्माविषे

वसते दृष्ट आवैंगे ॥ हे रामजी ! आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं हुआ, तातें मिटणा भी नहीं चित्तके फुरणेकरि भासता है, जब चित्तका फुरणा अधिष्ठानविषे लीन हो जावैगा, तब अद्वैत तत्त्व आत्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! अद्वैत तत्त्वविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सदा अद्वैत भासता है, जगत् भी सब चिदाकाशरूप है, मैं भी चिदाकाश हौं, तूं भी चिदाकाश है, आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही जगत् होकरि भासती है, जैसे अपणा अनुभव स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि हो भासती है, सो अनुभवरूपही है, तैसे यह जगत् भी चिदाकाशरूप है, जो नानाप्रकारके विकार भी दृष्ट आवते हैं, तौ भी आत्मसत्ता अनुस्यूत अखंडरूप है, आत्मसत्ता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वर्ण अरु भूषणविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्मही चेतनता करिके जगत्रूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपणेही अनुभवतें वृथा हो भासते हैं, सो इतर कछु हुए नहीं, अनुभवतें जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् अरु अनुभव तीनोंविषे भेद कछु नहीं, असम्यक् दृष्टिकरि भेद भासता है, सम्यक् दृष्टिकरि भेद कोउ नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे प्रथम आभास फुर्या है, सो ब्रह्मारूप होकरि स्थित भया है, सो ब्रह्मा चिदाकाशरूप है, सोई ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, उसी ब्रह्मसत्तानें अपणे भावकों नहीं त्याग्या, अरु ब्रह्मारूप होकरि स्थित भई है, बहुरि तिसनें जगत् रचा है, सो जगत् भी आकाशरूप है, वास्तवतें न जगत् उपजा है, न ब्रह्मा उपजा है, न स्वप्न हुआ है, परमार्थसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, सो शुद्ध अनंत अविनाशी है, अचेत चिन्मात्र है, अरु जगत् भी उही स्वरूप है ॥ हे रामजी ! मैं चिदाकाशरूप हौं, न मेरेसाथ कोउ आकार है, न मैं कदाचित् उपजा हौं, न मैं कदाचित् मृतक होता हौं, नित्य शुद्ध अजर अमर सदा अपणे स्वभावविषे स्थित हौं, अनेक विकारविषे भी एकरस हौं, जैसे स्वप्नविषे बडे क्षोभ होते हैं, तौ भी जाग्रत वपुकों

स्पर्श नहीं करते, काहेतें जो उसविषे कछु हुए नहीं, आभासमात्र हैं, तैसे जगत्की उत्पत्ति प्रलयादिक क्षोभविषे आत्मसत्ताकों स्पर्श नहीं, अर्थ यह जो क्षोभतें रहित सदा अनुभवरूप है, जिस पुरुषनें ऐसे अनुभवकों नहीं पिछाना, जो सब कछु जिसकरि सिद्ध होता है, अरु तिसकों छुपाया है, सो महामूर्ख है, उह आत्महत्यारा है, उह महाआपदाके समुद्रविषे डूबैगा, अरु जिसकों अपणे स्वरूपविषे अहंप्रत्यय हुई है, तिसकों मानसी दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता, जैसे पर्वतकों चूहा नहीं चूर्णकरि सकता तैसे उसकों दुःख नहीं स्पर्श करता, अरु जिसकों आत्माविषे अहंप्रत्यय नहीं, तिसकों शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे वायु विरोलेविषे तृण उडा हुआ स्थिर नहीं होता, तैसे देहाभिमानीकों शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती, अपणे शुद्धस्वरूपकों त्यागिकरि देहसाथ आपकों मिल्या हुआ जाणता है, सो क्या करता है, जैसे कोउ चिंतामणिकों त्यागिकरि राखकों अंगिकार करै, तैसे शुद्ध चिन्मात्र अपणे स्वरूपकों त्यागिकरि देहविषे आत्मअभिमान करता है ॥ हे रामजी! जब यह पुरुष अनात्मविषे आत्मअभिमान करता है, तब आपकों विकारवान् जाणता है, अरु जन्मता मरता आपकों मानता है, अरु जब देहाभिमानकों त्यागिकरि आत्माकों आत्मा मानता है, तब न जन्मता है, न मरता है, न शस्त्रकरि काटीता है, न अग्निकरि दग्ध होता है, न जलकरि डूबता है, न पवनकरि सूकता है, निराकार अविनाशी चिदाकाशरूप है ॥ हे रामजी! जब चेतनकों भी मृत्यु होवै, तब पिताके मरे पुत्र भी मरि जावै, एकके मरे सब जगत् मरि जावै, काहेतें जो आत्मसत्ता चेतन एक है, अनुस्यूत है, सो एकके मरे सब नहीं मरते, तातें चेतन आत्माकों मृत्यु कदाचित् नहीं, शरीरके काटेतें आत्मा कटाता नहीं, शरीरके दग्ध हुए आत्मा दग्ध होता नहीं, संपूर्ण विश्व भस्म हो जावै तौ भी आत्मा भस्म नहीं होता, आत्मा नित्य शुद्ध अनंत अच्युतरूप है, कदाचित् स्वरूपतें अन्यथाभावकों नहीं प्राप्त भया ॥ हे रामजी! मैं ब्रह्म हौं, अहंरूप हौं, अर्थ यह जो

सबविषे अहंरूप निराकार अंड मैं हौं, न मुझकों जन्म है, न मृत्यु है, सुखकी इच्छा नहीं, न कछु हर्ष है, न शोक है, न जीवणेकी इच्छा है, न मरणेकी इच्छा है, जैसे जेवरीविषे सर्प कल्पीते हैं, जैसे स्वर्णविषे भूषण कल्पीते हैं,तैसे आत्माविषे वासिष्ठ नाम रूप हैं, देश काल वस्तुके परिच्छेदतें रहित अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध बोधरूप हौं, सर्वका स्वरूप आत्मतत्त्व है, परंतु वास्तवस्वरूपके प्रमाद करिके अवर अवस्तुकों प्राप्त हुयेकी नांई भासता है, अरु जो पुरुष स्वरूपविषे स्थित नहीं हुए, संसारमार्गकी उर दृढ भये हैं, तिनका जीणा वृथा है, कहणा चैतन्य है नहीं तौ पाषाणकी शिलावत् है; जैसे लुहारकी खलकातें पवन निकसता है, तैसे उनका जीवणा वृथा है, घटीयंत्रकी नांई वासनाविषे भटकते हैं, आत्मानंदकों नहीं प्राप्त होते, सदा तपते रहते हैं, अरु जिनकों आत्मपदविषे स्थिति भई है, तिनकों दुःख कदाचित् नहीं स्पर्श करता, जब प्रलयकालका पवन चलै, अरु पुष्कर मेघकी वर्षा होवै, वडवाग्नि लगै, अरु द्वादश सूर्य तपैं, तौ ऐसे क्षोभविषे भी चलायमान नहीं होता, काहेतें जो सर्व ब्रह्मस्वरूप जानता है, जैसे तृणकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे उह बडे दुःखकरि भी चलायमान नहीं होता, दुःख तब होता है, जब आत्मातें इतर कछु भासता है, सो उसकों आत्मातें इतर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी! यह सब जगत् आत्मअनुभवरूप है, काहेतें जो परमात्माका स्वरूप है, स्वप्नविषे अनुभवतें इतर कछु वस्तु नहीं होती, इसी कारणतें सब जगत् अनुभवरूप है, अरु जो इतर भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, यह जगत् जो नानाप्रकारका भासता है, सो आत्माविषे अव्यक्तरूप है, भ्रम करिके प्रगट भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रमकरि सिद्ध है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि सिद्ध है, वास्तव ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही जगत्रूप होकरि भासती है, तिसविषे जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसाही अधिष्ठानरूप भासता है, अरु जिनके कारण करिके सृष्टिका अधिष्ठान दृढ हो रहा है, तिनकों तैसाही भासता है, जिनकों

परमाणुतें सृष्टि उत्पत्ति निश्चय भई है, तिनकों तैसेही सत्य भासती है, माध्यमिक सत्यअसत्यके मध्य वस्तुकों मानते हैं, एक म्लेच्छ हैं चार्वाकी, सो चारौं तत्त्वतें सृष्टिकी उत्पत्ति मानतेहैं, बौध कहते हैंजो कछु वस्तु है सो बोध है, इसके अभाव हुए शून्यही रहता है, एक अनेक ब्राह्मण हस्ती गौ श्वान घोडा सूर्यादिकविषे भिन्न भिन्न प्रतीति होरही है, जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं सो सर्वविषे एक ब्रह्मसत्ता अनुस्यूत देखते हैं॥ हे रामजी! वस्तु तौ एक है, तिसविषे जैसा निश्चय जिसकों भया है, तैसाही भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पतरूविषे जैसी भावना करते हैं, तैसी सिद्ध होती है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना करीती है, तैसा रूप हो भासता है ॥ हे रामजी! बुद्धिवान्करि निर्णय किया है, जो सारभूत आत्मसत्ता है, जब तिसविषे दृढ अभ्यास करैगा, तब आत्मसत्ताही भासैगी, तिस निश्चयकरि चलायमान न होवैगा ॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! बुद्धिवान् कवन हैं जगत्‌विषे, पातालविषे कवन हैं, भूतलविषे कवन हैं, स्वर्गविषे कवन हैं, जिनके पूर्व अपरके विचारकरि परावरका साक्षात्कार हुआ है, अरु आत्मस्वरूपका कैसा निश्चय करते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है सो इंद्रियांके विषयकी तृष्णाकरि जलते हैं, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्ष करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे शोक करते हैं, ऐसा कोई है जो जगत्‌विषे सूर्यकी नांई प्रकाशता है, नहीं तौ सब तृणवत् भोगरूपी वायुविषे भटकते हैं, जो सबतें श्रेष्ठ कहाता है, सो भी विषयरूपी अग्निविषे जलता है, जैसे कृम अरु शुभ स्थानविषे रहते हैं, अरु तिनकरि आपकों प्रसन्न मानते हैं, तैसे देवता भी सदा भोगरूपी अपवित्र स्थानविषे आपकों प्रसन्न मानते हैं, सो मेरे मतविषे दुर्गंधके कृमि हैं, अरु गंधर्व तौ मूढ हैं, तिनकों तौ कछु शुद्धि नहीं, अर्थ यह जो आत्मपदकी गंध भी नहीं, उह तौ मेरे मतविषे मृग हैं, जैसे मृगकों रागकरि आनंद भासता है, तैसे गंधर्व रागकरि उन्मत्त रहते हैं, आत्मपदतें विमुख हैं, अरु विद्याधर भी मूर्ख हैं, काहेतें जो वेदके अर्थरूपी चतुराईकों अग्निविषे जलाते हैं, अरु वेद

का सारभूत अमृत है, तिसकों नहीं जानते, आत्मपदतें विमुख हैं, अरु सिद्ध हैं, सो मेरे मतविषे पक्षी हैं, जो पक्षीकी नांई उडते फिरते हैं, अभिमानरूपी पवनके चलणेकरि अनात्मरूपी गरतविषे आनि पडते हैं, वास्तवस्वरूपविषे स्थित होते नहीं, अरु यक्ष धनके अभिमानकरि चतुराई मूर्खकी प्रीति करिके जलते हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पावते, योगिणी भी मद करिके सदा उन्मत्त रहती हैं, आत्मपदविषे स्थिति नहीं पावतियां, अरु दैत्योंकों भी सदा देवताके मारणेकी इच्छा रहती है, सदा शोकमें रहते हैं, आत्मपदतें विमुख हैं, तुम तौ आगे भी जाणते हौ, आगे भी मारे हैं, अरु अब भी मारोगे, अरु मनुष्य भी आत्मपदतें गिरे हुए हैं इनकों भी सदा इच्छा रहती है, जो ग्रह बणाइयें अरु खाणे अरु धन संचने के निमित्त जगत् करते हैं, इंद्रियांके अर्थविषे डुबे हुए हैं, अरु पातालविषे भाग रहते हैं, जिनका जलविषे निवास है, सुंदर नागिनीविषे आसक्त रहते हैं, सो भी आत्मानंदतें गिरे हुए हैं, इत्यादिक जो भूत प्राणी हैं, सो विषयसुखविषे लगे हुए हैं, आत्मपदतें विमुख हैं, अरु सब जातविषे विरले जीवन्मुक्त भी हैं, अरु ज्ञानवान् भी हैं, सो श्रवण करु, देवताविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र सदा आत्मानंदविषे मग्न हैं, चंद्रमा सूर्य अग्नि वायु इंद्र धर्म राजा वरुण कुबेर बृहस्पति शुक्र नारद कचतें आदि लेकरि जीवन्मुक्त पुरुष हैं, सप्तऋषि अरु दक्ष प्रजापतितें आदि लेकरि जीवन्मुक्त हैं, सनक सनंदन सनत्कुमार सनातन चारों जीवन्मुक्त हैं, अवर भी मुक्त बहुत हैं, सिद्धविषे कपिलमुनि आदिक जीवन्मुक्त हैं, यक्षविषे विद्याधरविषे योगिणीविषे जीवन्मुक्त हैं, अरु दैत्यविषे हिरण्यकशिपु प्रल्हाद बल बिभीषण इंद्रजित स्वरमेय चित्रासुर नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं, मनुष्यविषे राजर्षि ब्रह्मर्षि, नागविषे शेष नाग वासुकि आदिक जीवन्मुक्त हैं, ब्रह्मलोक विष्णुलोक शिवलोकविषे कोई कोई विरले जीवन्मुक्त हैं॥ हे रामजी! जात जातविषे संक्षेपतें तुझकों जीवन्मुक्त हुए हैं, सो कहे हैं अरु जहां जहां देखीता है, तहां तहां अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोउ विरला दृष्ट आता है, जैसे जहां तहां

अवर वृक्ष बहुत हैं, परंतु कल्पवृक्ष कोउ विरला होता है, तैसे संसारविषे अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोउ विरला है॥ हे रामजी! सूरमा अवर कोउ नहीं, जिनकों आत्मपदविषे स्थिति भई है, सोई सूरमे हैं, अरु संसारसमुद्र तरणा तिनहीकों सुगम है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तसंज्ञावर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तमः सर्गः॥ २०७॥ ॥

॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो विवेकी पुरुष विरक्त चित्त हैं, जिनकों स्वरूपविषे स्थिति भई है, तिनके एते विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, राग दोष काम क्रोध मोह अभिमान दंभ आदिक विकार स्वाभाविक नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार स्वाभाविक निवर्त हो जाता है, जैसे बाणकों देखिकरि कउआ भाजि जाता है, तैसे विवेकरूपी बाणकों देखिकरि विकाररूपी कउए भाजि जाते हैं, अरु एते गुण उनके हृदयविषे स्वाभाविक आनि स्थित होते हैं, उह पुरुष किसीपर क्रोध नहीं करता, अरु जो करते दृष्ट आते हैं, सो किसी निमित्तमात्र जानणा, उनके हृदयविषे कछु नहीं, सदा शीतलता अरु दया उनके हृदयविषे रहती है, जो कोउ उनके निकट आता है, सो भी शीतल हो जाता है, काहेतें जो निरावरणस्थित हैं, जैसे चंद्रमाके निकट आयेतें शीतल होता है, तैसे ज्ञानवान्के निकट आयेतें हृदय शीतल होता है, कोउ पुरुष उनतें उद्वेगवान् नहीं होता, अरु जो कोउ निकट आवता है, तिसकों विश्रामके निमित्त स्थान देते हैं, अरु उसकों अर्थ भी पूर्ण करते हैं, जैसे कमलके निकट भंवरा जाता है, तिसकों विश्रामका स्थान देते हैं, अरु सुगंधिकरि तिसका अर्थ पूर्ण करते हैं, तैसे संतजन अर्थ पूर्ण करते हैं, अरु यथाशास्त्र चेष्टा करते हैं, अरु हेयोपादेयकी विधिकों भी जाणते हैं, जो कछु स्वाभाविक आनि प्राप्त होवै, तिसकों शास्त्रकी विधिसहित अंगीकार भी करते हैं, अरु हृदयविषे सबकी भावनातें रहित हैं, अरु दान स्नान आदिक शुभ क्रिया तिनविषे स्वाभाविक होती हैं, अरु उदारता वैराग्य धैर्य शम दम आदिक गुण उनविषे स्वाभाविक होते हैं, इस लोकविषे भी सुख

देणेहारे हैं, परलोकविषे भी सुख देणेहारे हैं ॥ हे रामजी ! जिन पुरुषविषे ऐसे गुण पाईयें सो संत हैं, संसारसमुद्रके पार करणेहारे संतजन बहुत हैं, जैसे जहाजकों आश्रय करके समुद्रतें पार होता है, तैसे संसारसमुद्रके पार करनेहारे संतजन हैं, जिनकों संतजनका आश्रय हुआ है, सो तरे हैं, बहुरि कैसे हैं, संतजन जो संसारसमुद्रके पारके पर्वत हैं, जैसे समुद्रविषे बहुत जल होता है, अरु बडे तरंग उछलते हैं, तिसविषे बडे मच्छ रहते हैं, जब प्रवाह उच्छलता है, तब पर्वत उस प्रवाहकों रोकता है, उछलणे नहीं देता, तैसे चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे इच्छारूपी तरंग हैं, रागदोषरूपी मच्छ रहते हैं, जब इच्छारूपी तरंगका प्रवाह उछलता है, तब संतरूपी पर्वत तिसकों रोकते हैं, सो संत अपणे चित्तकों भी रोकते हैं, अरु उनके निकट कोउ जाता है, तब उसकी भी रक्षा करते हैं, अरु शरीर नष्ट होणे लगै, अथवा नगर नष्ट होणे लगै, अथवा निकट अग्नि लगै तौ भी ज्ञानवान्का हृदय स्वरूपतें चलायमान नहीं होता, उह सदा अपणे स्वरूपविषे स्थिर रहता है, जैसे भूकंप करिके सुमेरु चलायमान नहीं होता, तैसे उही नहीं चलायमान होता, यह जो मैं तुझकों शुभ गुण कहे हैं, स्नान दान सो जीवकों सुख देणेहारे हैं, अरु दुःखकों निवृत्त करते हैं, इनकरि सुखकी प्राप्ति होती है, अरु दुःख नष्ट हो जाता है, सो श्रवण कर, जब स्नानदानकी उर यह पुरुष आता है, तब संतकी संगतिविषे भी इसका चित्त लगता है, जब संतकी संगतिविषे चित्त आया, तब क्रम करिके इसकों परम पदकी प्राप्ति होती है, तातें इस पुरुषकों यही कर्तव्य है, जो शास्त्रकरि कहा है, तिसके अनुसार शुभगुणविषे चेष्टा होवै, अरु संतके निश्चयका अभ्यास होवै ॥ हे रामजी ! जिसकों संतकी संगति प्राप्त होती है, सो भी संत हो रहता है, संतका संग वृथा नहीं जाता, जैसे अग्निसाथ मिल्या पदार्थ अग्निरूप हो जाता है, तैसे संतके संगकरि असंत भी संत हो जाता है, अरु जो मूर्खकी संगति करता है, तब साधु भी मूर्ख हो जाता है, जैसे उज्वल वस्त्र मलके संगकरि मलीन हो जाता है, तैसे मूढके संगकरि साधु भी मूढ हो

जाता है, काहेतें जो पापके वशतें उपद्रव भी आनि होते हैं, तैसे पापके वशतें साधुकों भी दुर्जनोंकी संगतिकरि दुर्जनता आनि उदय होती है, तातें ॥ हे रामजी! दुर्जनोंकी संगति सर्वथा त्यागणी है, अरु संतकी संगति कर्तव्य है, जो परमहंस संतजन पाइयें तौ जो साधु होवै जिसविषे एक गुण भी शुभ होवै, तिसका भी अंगीकार करियें परंतु साधुके दोष न विचारियें उसका शुभ गुण अंगीकार करियें, जैसे भंवरा केतकीके कंटककों उर नहीं देखता है, उसकी सुगंधिका ग्रहण करता है, तातें हे रामजी! संसारमार्गकों त्यागिकरि संतकी संगति करौ, तब संसारभ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ ॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिव्यवहारो नाम द्विशताधिकाष्टमः सर्गः ॥ २०८ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! हमारे दोष तौ सच्छास्त्र अरु सत्संग अरु तिनकी युक्तिकरि दूर होते हैं, अरु समान दुःख तीर्थ स्नान दान जप पूजाकरि निवृत्त होते हैं, अरु अवर जीव जो कीट पतंग पशु पक्षी आदिक हैं, तिनके दुःख कैसे निवृत्त होवैंगे, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जो वास्तवसत्ता है, तिसका नाम ब्रह्म है, अखंड है, अद्वैत है, तिसविषे कछु द्वैतका विभाग नहीं, परंतु तिसविषे चित्त किंचन अभास फुऱ्या है, सो फुरणा नानात्व हुएकी नांई स्थित भया है, वास्तव कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे स्वप्नसृष्टि भासती है, परंतु वास्तव कछु हुई नहीं, निद्रादोष करिके भासती है, तैसे जाग्रतसृष्टि भी कछु वास्तव हुई नहीं, अज्ञान करिके जीवकों भासती है, वास्तवतें सब ब्रह्मरूप है, अपणे स्वरूपके प्रमाद करिके जीवत्वभावकों अंगीकार किया है, तिस जीवत्वके अंगीकार करणेकरि जैसा निश्चय करता है, अनात्मदेहादिकविषे आत्मअभिमान करिके तैसीही गतिकों पावता है, बहुरि देश काल क्रिया द्रव्यका संकल्प जैसा दृढ होता है, अनुभवसत्ताविषे तैसा हो भासता है, तिसविषे चार अवस्था कल्पित होतियां हैं, जैसी जैसी भावना होती है, तिसके अनुसार अवस्थाका अनुभव होता है, सो अवस्था कवन कवन हैं, सो श्रवण कर, एक घन सुषु

प्ति है, दूसरी क्षीण सुषुप्ति है, तीसरी स्वप्नअवस्था है, चौथी जाग्रत है, अब इनके भेद सुण ॥ हे रामजी ! पर्वत पाषाण जो हैं, सो घन सुषुप्तिविषे हैं, जैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे कछु फुरता नहीं, जडीभूत हो जाता है, तैसे तिनकों फुरणा कछु नहीं फुरता, घन सुषुप्तिविषे स्थित हैं, अरु वृक्ष क्षीण सुषुप्तिविषे स्थित हैं, जैसे क्षीण सुषुप्तिविषे कछु फुरणा फुरता है, तैसे वृक्षविषे भी फुरणा होता है, तातें क्षीण सुषुप्तिविषे अरु तिर्यक् जो पक्षी कीट पतंग जीव हैं, सो स्वप्न अवस्थाविषे स्थित हैं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासता है, परंतु दृढ समष्टि नहीं भासता है, तैसे इनकों थोडा सूक्ष्म ज्ञान है, तातें स्वप्न अवस्थाविषे स्थित हैं, अरु मनुष्य देवता हैं, सो जाग्रतरूप जगत्का अनुभव करते हैं ॥ हे रामजी ! यह चारों अवस्था आत्माविषे स्थित हैं, अरु आत्मसत्ताहिविषे स्थित हैं, सबका अहंप्रत्ययरूप आत्मा है, बडेका क्या अरु छोटेका क्या, तिसविषे जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसाही हो भासता है ॥ हे रामजी! हमकों एक दिन व्यतीत होता है, अरु कीटकों युगका अनुभव होता है, अरु उनके युगविषे हमकों एक क्षणका अनुभव होता है, अरु हमकों सूक्ष्म अणु होता है, तिनकों उह पर्वतके समान भासता है ॥ हे रामजी ! स्वरूप सबका एक आत्मसत्ता है, परंतु भावनाकरि भिन्न भासता है, अरु एक कीट है, सो बहुत सूक्ष्म है, जब उह चलता है, तब उह जाणता है, जो मेरा गरुड जैसा वेग है, उसकों उही सत् हो रहा है, अरु वालखिल्यका अंगुष्ठप्रमाण शरीर है, तिनकों उही बडा भासता है, विराट्कों उही अपणा बडा शरीर भासता है, जैसी जिसकों भावना होती है, तैसाही तिसकों भासता है, मनुष्य देवता पशु पक्षी सबकों अपणा भिन्न भिन्न संकल्प है, जैसा संकल्प किसीकों दृढ हो रहा है, तिसकों तैसाही स्वरूप भासता है, जैसा मनुष्य रागदोष भय क्रोध लोभ मोह अहंकार क्षुधा तृषा हर्ष शोक विकारकरि आसक्त होता है, तैसे कीट पतंग पक्षी आदिकों भी होते हैं, परंतु एता भेद है, जो जैसे हमकों यह जगत् स्पष्टरूप भासता है, तैसे उनकों नहीं भासता, संसारी

सब हैं, परंतु वासनाके अनुसार घट वध भासते हैं, अरु दुःखका अनुभव स्थावर जंगमकों भी होता है, जो किसी स्थानकों अग्नि लगती है, उसविषे वृक्ष पाषाण जलते हैं, तब उनकों भी दुःख होता है, परंतु सूक्ष्म स्थूलका भेद है, जैसे अवर जीवकों शस्त्रप्रहार कियेतें शरीर नष्ट होणेका दुःख होता है, तैसे वृक्षादिककों भी होता है, परंतु घनसुषुप्ति क्षीण सुषुप्ति स्वप्नजाग्रतका भेद है, पर्वतपाषणकों सूक्ष्म जैसा दुःख होता है, वृक्षकों पाषाणतें विशेष होता है, परंतु स्पष्ट मान अपमानका दुःख नहीं होता, स्वप्नकी नांई होता है, अरु मनुष्य देवताकों स्पष्ट रागदोष जाग्रतकी नांई होता है, काहेतें जो जाग्रत अवस्थाविषे स्थित हैं, अरु वृक्ष पाषाण आदिककों स्पष्ट दुःखका विकल्प नहीं उठता, जडता स्वभावविषे स्थित हैं, अरु दुःख कहियें तौ सबकों होता है, अरु तूं अवर आश्चर्य देख जो कीट महादुःखी रहते हैं, जब मृतक होवैं, तब सुखी होवैं, अरु अज्ञान करिके जो इस शरीरविषे आस्था हुई है, तिसकों भी मरणा बुरा भासता है, तौ अवर जीवकों भला कैसे लगै? हे रामजी! अपणे स्वरूपके प्रमाद करिके भय क्रोध लोभ मोह जरा मृत्यु क्षुधा तृषा राग दोष हर्ष शोक इच्छादिक विकारकी अग्निकरि जीव जलते हैं, आत्मानंदकों नहीं प्राप्त होते, घटीयंत्र की नांई वासनाके अनुसार भटकते हैं, जब वासना दृढ पापकी होती है, तब पाषाण वृक्ष योनिकों पावते हैं, जब क्षीण वासना तामसी होती है, तब तिर्यक् पक्षी सर्प कीट योनिकों पावते हैं॥ हे रामजी! राजसी वासना करि मनुष्य होते हैं, सात्विकी वासनाकरि देवता होते हैं, अरु जब मनुष्य शरीर धारिकरि निर्वासनिक होते हैं, तब मुक्तिकों पावते हैं, जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब जीवका दुःख नष्ट हो जाता है, अवर दुःखके नाश करणेका उपाय कोउ नहीं, यह जगत्के दुःख तबलग भासते हैं, जबलग इसकों आत्मज्ञान नहीं उपजा, जब आत्मज्ञान उपजा, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, अरु जो मुझतें पूछे तौ वास्तव न कोउ देवता है, न मनुष्य है, न पशु पक्षी है, न पाषाण है, न वृक्ष है, न कीट है, सब चिदाकाशरूप है, दूसरा कछु बन्या

नहीं, भ्रांति करिके नानास्वरूप हो भासता है, सदा सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! न कछु जगत्का होणा है, न अणहोणा है, न आत्मता है, न परमात्मता है, न मौन है, न अमौन है, न शून्य है, न अशून्य है, केवल अचैत्य चिन्मात्र अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे जन्म अरु जन्मांतर भ्रम करिके भासते हैं, जैसे स्वप्नतें स्वप्नांतर भ्रम करिके भासता है, अरु जैसे स्वप्नविषे एक अपणा आप होता है, निद्रादोषकरि द्वैत भासता है, तैसे एक अब भी आत्मा अद्वैत रूप है, अविचार करिके नानात्व भासता है, अरु दुःख भी अज्ञान करिके भासता है, विचार कियेतें दुःख कछु नहीं पाइता, जो यह पुरुष मृतक होकरि उत्पन्न होता है, तौ शांति हुई दुःख कोउ नहीं, अरु जो मृतक होकरि शांत हो जाता है, उपजता नहीं, तौ भी दुःख कोउ नहीं मुक्त हुआ, अरु जो मरता नहीं तौ भी ज्यौंका त्यौं हुआ, दुःख कोउ नहीं हुआ, अरु जो सर्व चिदाकाश है, तौ भी दुःख कोउ न हुआ॥ हे रामजी! अज्ञानीके निश्चयविषे दुःख है, विचार कियेतें दुःख कोउ नहीं, अरु यह जगत् आत्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित है, परंतु यह जगत्रूपी कैसा प्रतिबिंब है, जो अकारणरूप है, इसका कारणरूप बिंब कोउ नहीं, कारणतें रहित है, जैसे नदीविषे नीलताका प्रतिबिंब पडता है, सो अकारणरूप है, तैसे यह जगत् अकारणरूप है, अज्ञानीकों तिसविषे सत्यता है, प्रमाददोष करिके ज्ञानीकों द्वैत नहीं भासता, अज्ञानीकों द्वैत भासता है ॥ हे रामजी! हमकों तौ सदा चिदाकाशही भासता है, हम जागे हुए हैं, तातें द्वैत कछु नहीं भासता, जैसे सूर्यकों अंधकार नहीं भासता, तैसे हमकों द्वैत नहीं भासता, जो ज्ञानी है, तिसकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता, सर्व ब्रह्मही भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनं नाम द्विशताधिकनवमः सर्गः ॥ २०९ ॥ ॥ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! जो कछु तुमनें कहा है, सो मैं जाणता भया हौं, परंतु नास्तिकवादीका कल्याण भी किसी प्रकार

होता है, जो नास्तिकवादी कहते हैं, जबलग जीव है, तबलग सुखी जीवै, जब मरी जावैगा तब भस्मीभूत होवैगा, न कहूं आवणा है, न कछु जाणा है, तिनकों कल्याण किसी प्रकार होवैगा ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता आकाशकी नांई अखंडित सर्वत्र पूर्ण है, जबलग तिसका भान नहीं होता, तबलग मनकी तप्तता नष्ट नहीं होती, जब आत्मसत्ताका भान होता है, तब शांति प्राप्त होती है, आपकों अमर जाणता है, अरु जिस पुरुषनें अखंड निश्चयकों अंगीकार किया है, तिसकों दुःख स्पर्श नहीं करता, उह ब्रह्मदर्शी होता है, अरु जिसकों ब्रह्मसत्ताका निश्चय नहीं भया, तिसके मनकों ताप नहीं छोडते, स्वरूपके प्रमादकरि आपकों मरता जाणता है, अरु महाप्रलयरूप आत्माविषे सर्व शब्दका अभाव है, जैसे महाप्रलयविषे सर्व शब्दका अभाव होता है, तैसे आत्माविषे सर्व शब्दका अभाव है, जिसकों आत्माविषे निश्चय हुआ है, तिसकों सर्व शब्दका अभाव हो जाता है, सो महाज्ञानवान् है, उसकों आत्मसत्ताही भासती है, जो वास्तव है, तिसकों हमारा उपदेश नहीं, उह ज्ञानी है ॥ ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे द्वैत जगत् कछु बन्या नहीं, परमार्थसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे जो सृष्टि भासती सो स्वप्नवत् अकारण है, तातें ज्ञानवान् पुरुष सर्व शब्द अर्थकों नहीं जानता है, ऐसा पुरुष हमारे उपदेशके योग्य नहीं, काहेतें जो सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत आत्मपद है, जो तिसकों जाण्या है, तिसकों बहुरि कर्तव्य कछु नहीं, अरु जिसकों ऐसी दशा नहीं प्राप्त भई सो उपदेशका अधिकारी है, अरु यह जगत् आत्माका किंचन है, अज्ञानीकों सत् भासती है, अरु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु नहीं, जैसे संकल्पकरि एक वृक्ष रचा, तिसके पत्र टास फूल फल उसकों भासते हैं, अवरके मनविषे शून्य होते हैं, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् होता है, ज्ञानीके निश्चयविषे विलास है, आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वव्यापी है, तिसविषे जैसा निश्चय फुरणा होता है, अहंप्रत्यय भावनाकी दृढ

तातें तैसे हो भासता है, जिस पदार्थका निरंतर दृढ अभ्यास होता है, शरीरके त्यागे हुए भी यही अभ्यासरूप धारि लेता है, अरु आत्मसत्ता ज्ञानमात्र है, केवल अद्वैत संवित् सबका अपणा आप है, जैसे इसकों स्वरूपका ज्ञान हुआ है, सो शास्त्रके दंडतें रहित होता है, अरु वेद शास्त्र जो पदार्थकों भला बुरा साच, अरु झूठ वर्णन करते हैं, जिस पुरुषकों तिसविषे निश्चय होता है, तिसकों वासनाके अनुसार वेद फल देते हैं, अरु जिसके निश्चयविषे आत्मतें भिन्न सर्व शब्दका अभाव हुआ है, तिसकों आत्म अनात्म विभाग कलना भी नहीं रहती, देह रहै अथवा न रहै ॥ हे रामजी ! जिसकी संवित जगत्के शब्द अर्थविषे बंधी हुई है, तिसकों पदार्थविषे रागदोष उपजता है, जैसे सुषुप्तिविषे आत्मसत्ता है, अरु अभावकी नांई स्थित है, तैसे नास्तिकवादी भी अपणे जड स्वरूपकों देखते हैं, काहेतें जो तिनकों जड शून्यका अभ्यास है, तिसकरि उनकी संपत्ति दृश्य सुखसाथ वेधी हुई है, इसकरि तिनका जगत्भ्रम नहीं मिटता, उस मलीन वासनासाथ जो संवित मिली है, इसकरि उनकों जड पत्थररूप प्राप्ति होते हैं, तिस जडताकों भोगिकरि वासनाके अनुसार बहुरि परिणमैंगे, अरु सुखदुःखकों भोगैंगे, उस भावनाकरि कछुक जगत्भान शून्य हो जाता है, केतेक कालपीछे चेतन होकरि बहुरि उनही कर्मकों भोगते हैं, जैसे सूर्यके आगे बादल आवै, बहुरि निवृत्त होवै, तैसे जगत् होता है, अरु फुरणारूप जो जीव है, जैसा तिसविषे निश्चय होता है, तैसाही भासता है, जिसकों एक आत्माविषे निश्चय होता है, सो जन्म मृत्यु आदिक विकारतें रहित होता है, अरु जिसकों नानास्वरूप जगत्विषे निश्चय होता है, सो जन्ममरणतें नहीं छुटता ॥ हे रामजी ! जिस बुद्धिविषे पदार्थका रंग चढता है सो रागदोषरूप नरकतें मुक्त नहीं होता, अरु जिसकों एक आत्माका अभ्यास होता है तिसके अभ्यासके बलतें सब जगत् आत्मत्वकरि भासता है, अरु रागदोषतें मुक्त होता है, जैसे स्वप्नविषे किसकों अपणा जागृत स्वरूप स्मरण आता है, तब सर्व स्वप्नका जगत्

तिसकों अपणा आप भासता है, तैसे जिसकों आत्मज्ञान होता है, तिसकों सर्व जगत् अपणा आप भासता है, सर्वदा काल आत्मसत्ता अनुभवरूप जाग्रत ज्योति है, जिसकों ऐसे आत्मसत्ताविषे नास्तिभावना होती है, सो ऐसी अवस्थाकों प्राप्त होता है, गरतविषे कीट होता है, पाषण वृक्ष पर्वत आदिक स्थावर योनिकों प्राप्त होता है, चिरकालपर्यंत तिनविषे रहता है, जबलग उसकी बुद्धिकों द्वैतका संयोग होता है, तबलग जगत् भ्रमकों देखता है, अरु भ्रम नहीं मिटता, जब उसकी संवितकों द्वैतका संयोग मिटि जावै, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है ॥ हे रामजी! सम्यक्ज्ञानकरि जगत्भ्रमका अभाव हो जावैगा, अभावका निश्चय फुरै, तब बहुरि जगत् नहीं भासता, अरु जब संसारके पदार्थकरि संवित वेधी हुई है, तब जैसा निश्चय होवैगा तैसाही प्राप्त होता है, तिस निश्चयके अनुसार गतिकों पावैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! नास्तिकवादीका वृत्तांत तुमनें कहा सो मैं जाण्या, अरु जिस पुरुषके हृदयविषे जगत्की सत्यता स्थित है, अरु आत्मबोधके मार्गतें शून्य है, शुद्ध स्वरूपकों नहीं जाणता, तिसकों अज्ञान है, तिसके मोक्षकी युक्ति अरु तिसकी अवस्था क्या होती है, मेरे दृढ बोधनिमित्त कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इसका उत्तर तौ मैं प्रथमही तुझकों कहा है, अब फेरि तुझनें जो पूछा है, तातें बहुरि कहता हौं, प्रथम तौ पुरुषका अर्थ सुण, जो पुरुष किसकों कहते हैं ॥ हे रामजी! यह जगत् नेत्रविषे स्थित नहीं, न श्रवणविषे है, न नासिका आदि इंद्रियविषे स्थित है, चेतन संवितविषे स्थित है, जगत् सो चेतन संवितही पुरुषरूप है, जिस पुरुषकों तिसविषे निश्चय है, सो ज्ञानवान् है, तिसकों द्वैतकलना नहीं फुरती, जो प्रत्यक्ष दृष्टि भी आवती है, परंतु उसके निश्चयविषे नहीं होती है, जैसे आकाशविषे धूड भी दृष्ट आवती है, परंतु स्पर्श नहीं करती, तैसे ज्ञानवान्कों द्वैतकलना स्पर्श नहीं करती, अरु जिस चेतन संवितसाथ फुरणेका संबंध है, तिसकों जगत्का आकार भासता है, अरु जिस पुरुषकी संवितविषे देश काल क्रिया द्रव्यका संबंध है, सो क

लंक दृढ हो रहा है, अरु अपणे वास्तव अद्वैत स्वरूपके अभ्यासकरि मार्जन नहीं करता, सो वास्तव चेतन आकाशरूप भी है, तौ भी कलंककरि वासनाके अनुसार जगत् तिसकों आपतें भिन्न भासता है, द्वैतभ्रम नहीं मिटता ॥ हे रामजी! जो पुरुष ऐसा भी है, जो देहके इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहता है, अरु आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं नहीं भासती तौ अज्ञानी है, आत्मसत्ता जानणेविना संसार तिसका निवृत्त नहीं होता, जब आत्मसत्ताका साक्षात्कार होवैगा तब सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी! यह पुरुष न जीव है, न फुरणा है, न शरीरके नाश होणे नाश होता है, यह पुरुष केवल चिन्मात्रस्वरूप है, अरु वासनाकरि भ्रमकों देखता है; अरु जो शून्यवादी हैं सो वृक्ष पर्वत जडादिक योनिकों पावते हैं, जो सदा अनुभव तिसकों त्यागीकरि अवर कछु इष्ट जानते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनकों आत्मसुख नहीं प्राप्त होता, आत्माके प्रमादकरि अहं त्वं अंतर बाहिर आदिक शब्द भासते हैं, अरु जब आत्मज्ञान हुआ, तब सर्व शब्द आत्मरूप हो जाता है, अरु जिन पुरुषनें आत्मअनात्मका निर्णय करि नहीं देख्या, सो पुरुषविषे नीच है, अरु जिस पुरुषनें निर्णय करिके आत्माविषे अहंप्रतीति करी है, अनात्माका त्याग किया है, सो महापुरुष है, तिसकों मेरा नमस्कार है, अरु जिसनें अनात्माविषे अहंप्रतीति करी है, आत्माकों त्यागिकरी सो बालक है, जैसे आकाशविषे वादलके चक्र हस्ती घोडे आकार भासते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो द्वैत कछु नहीं, जैसे स्वप्नके नगर अपणे अपणे अनुभवविषे स्थित होते हैं, अरु वाहिर द्वैतकी नांई भासते हैं, सो आभासमात्र है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आभासमात्र है, वास्तव कछु नहीं, जिसकों आत्मसत्ताका अनुभव हुआ है, तिसकों जगत्के शब्द अर्थ राग दोष किसीकी कल्पना नहीं रहती, पुण्य पाप फल तिसकों स्पर्श कछु नहीं करता ॥ हे रामजी! ज्ञानसंवितका नाश कदाचित् नहीं होता, तातें विश्व भी अनुभवरूप है, इस जगत्का निमित्तकारण अरु समवायिका

रण कोउ नहीं, काहेतें जो अद्वैत है, अरु जो तूं कहै प्रत्यक्ष घटादिक समवाय अरु निमित्तकारण उपजते दिखाते हैं, तौ जैसे स्वप्नविषे कारण कार्य अणहोते भासते हैं, तैसे यह भी जाण, प्रथम स्वप्नविषे बने हुए दृष्ट आते हैं, पाछे कारणकरि होते दृष्टि आते हैं, तैसे यह भी जाण, केवल भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नसृष्टिका जागे हुएतें अभाव होता है, तैसे ज्ञानकरि इसका अभाव हो जाता है, यह दीर्घकालका स्वप्न है, तातें जाग्रत कहाता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपणा आप होती है, निद्रादोष करिके भिन्न भासती है, तैसे यह जगत् अपणा आप है, परंतु अज्ञान करिके भिन्न भासता है, ज्ञान जागृततें सब अपणा आप भासता है, तिसविषे रागदोषका अभाव हो जाता है, जैसे चंद्रमा अरु चंद्रमाकी चांदनीविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, आत्माही जगत्रूप हो भासता है ॥ हे रामजी! तूं अपणे अनुभवविषे स्थित होकरि देख, जो सर्व ब्रह्मरूप है, जगत् कछु नहीं भासता, सर्वात्मरूप है, अरु साध्य है, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे आत्मसत्ता फुरणेरूपी बदलतें परम शुद्ध शांतरूप है, तिसविषे स्थित हुएतें मान अरु मोहका अभाव हो जाता है, तृष्णा किसी पदार्थविषे नहीं रहती, प्रारब्धवेगकरि जो कछु आनि प्राप्त होता है, तिसकों भोगता है, आत्मदृष्टिकरि दुःखतें रहित हुआ प्रत्यक्ष आचारकों करता है, तिसकों शास्त्रका दंड नहीं रहता, परम शांतरूप विराजता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे नास्तिकवादिनिराकरणं नाम द्विशताधिकदशमः सर्गः ॥ २१० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं चिदाकाशरूप हौं, अरु दृश्य दर्शन द्रष्टा, त्रिपुटी जो भासती है, सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्ताही त्रिपुटीरूप हो भासती है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, अरु नास्तिकवादी कहते हैं, जो परलोक कोउ नहीं, अर्थ यह जो आत्मसत्ता कोउ नहीं सो मूर्ख हैं ॥ हे रामजी! जो अनुभव आत्मसत्ता न होवै तौ नास्तिक किसकरि सिद्ध होवै, जिसकरि नास्तिकवाद भी सिद्ध होता है, सो आत्म

सत्ता है, जो इष्टअनिष्ट पदार्थविषे राग दोष करते हैं, अरु आत्माका नाश कहते हैं, सो महामूर्ख हैं, जैसे जाग्रतके प्रमाद करिके स्वप्नमें इष्टअनिष्टविषे राग दोष करीता है, इष्टकों ग्रहण करीता है, अनिष्टकों त्यागीता है, अरु जागेतें सर्व अपणाही स्वरूप भासता है, ग्रहण त्याग राग दोष किसी पदार्थविषे नहीं रहता, तैसे आत्माके अज्ञान करिके किसी पदार्थविषे राग करीता है, किसीविषे दोष करीता है, जब आत्मज्ञान होता है, तब सब अपणाही स्वरूप भासता है, राग दोष किसीविषे नहीं रहता, अरु चित्तके फुरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, चित्तके शांत हुए जगत् लय हो जाता है, तातें जगत् मनविषे स्थित है, सो मन आत्माके अज्ञानकरि हुआ है, जब आत्मज्ञान हुआ, तब मनुष्य देवता हस्ती नाग आदिक स्थावर जंगम जगत् सब आत्मरूप भासता है, राग दोष किसीविषे नहीं रहता, अरु नास्तिकवादी जो नास्ति कहते हैं, सो नास्तिका साक्षी सिद्ध होता है, जिसकरि नास्ति भी सिद्ध होता है, सो अस्ति आत्मपद है, तिस अस्ति अनुभवके एते नाम शास्त्रकार कहते हैं, सत्, आत्मा, विष्णु, शिव, चिदाकाश, ब्रह्म, अहं ब्रह्म अस्मि, कहते हैं, एक कहते हैं, शून्यही रहता है, एक कहते हैं, अस्तिपद रहता है ॥ हे रामजी! यह सर्व संज्ञा आत्मसत्ताकी हैं, सो आत्मसत्ता अपणाही आप स्वरूप है, सो मैं आत्मा हौं, यह अंग जो मेरेसाथ दृष्ट आतें हैं, इनकों दृष्ट पदार्थसाथ लेपन करियें अथवा चूर्ण करियें तौ मुझकों हर्ष शोक कछु नहीं, इनके वढणेकरि मैं बढता नहीं, इनके नष्ट हुए मैं नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी! तीन शब्द होते हैं, जो मैं जन्म्या हौं, अरु जीवता हौं, अरु मरौंगा, जो प्रथम न होवै, अरु उपजै, तिसकों जन्म कहते हैं, मध्यविषे जीवता कहते हैं, बहुरि नाश होवै, तिसकों मृतक कहते हैं, सो आत्माविषे तीनों विकार नहीं, आत्मा उपजा भी नहीं, काहेतें जो आदिही सिद्ध है, अरु मृतक भी नहीं होता, काहेतें जो अविनाशी है, चेतन आकाश सबका अधिष्ठान है, कालका भी अधिष्ठान है, बहुरि तिसका नाश कैसे होवै, अर्थ य

ह जो उदय अस्ततें रहित है, जिसविषे देश काल वस्तु जगत्का किंचन होता है, तिसकरि आत्मा नाश कैसे होवै? तातें आत्मा अविनाशी है ॥ हे रामजी! जिस वस्तुकों देशकालका परिच्छेद होता है, तिसका नाश भी होता है, सो देश काल वस्तु तीनों आत्माविषे कल्पित हैं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल कल्पित होता है, तैसे आत्माविषे तीनों कल्पित हैं, कल्पित वस्तुसाथ सत्यका अभाव कैसे होवै, तातें आत्मा अविनाशी है, अरु अद्वैत है, तिसविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे शून्य स्थानविषे वैताल कल्पित होता है, तैसे आत्माविषे जगत् कल्पित है, तिस अभावरूप जगत्विषे प्रमाद करिके एककों अभाव जाणता है, एककों सद्भाव जाणता है, जब इस निश्चयकों त्यागिकरि अंतर मोक्ष होवै, तब इसकों शांति प्राप्त होवैगी, अरु विचार करिके देखियें तौ इस संसारविषे दुःख कहूं नहीं, जो मरिके बहुरि जन्म लेता है, तौ भी दुःख कहूं न हुआ, काहेतें जो शरीर वृद्धिभावकों प्राप्त होकरि क्षीण भया, तब तिसकों त्यागिकरि नूतनकों ग्रहण किया तौ उत्साह हुआ, जो मृतक होकरि बहुरि नहीं उपजता तौ भी आनंद हुआ, काहेतें जबलग जीवता था तबलग इसकों ताप था, किसीका भाव जाणता था, किसीकों ग्रहण करता था, किसीका त्याग करता था, तिनकरि तपता था, जब तिनतें छूटा, तब बडा आनंद हुआ अरु जो सर्व चिदाकाशरूप है, तौ भी अपणा आप आनंदरूप है, दुःख कछु न हुआ ॥ हे रामजी! एक प्रमादकरि दुःख होता है, अवर किसी प्रकार दुःख नहीं होता, यह जगत् सब आत्मरूप है, जो आत्मारूप हुआ तौ दुःख कैसे होवै, अरु जो तूं कहे मैं अपणे कर्मतें डरता हौं परलोकविषे मुझकों भयका कारण होवैगा ऐसे जाण, जो बुरे कर्मका दुःख इहां भी होता है, अरु परलोकविषे भी होवैगा, तातें बुरे कर्म मत करु, मैं तुझकों ऐसा उपाय कहता हौं, जिसकरि सर्व दुःख तेरे नष्ट हो जावैं, सो उपाय इह जो कहौं मैं नहीं अथवा ऐसे जाण जो सर्व मैंही हौं, सर्व वासना त्यागिकरि आपकों अविनाशी जाण अरु आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, इह जगत् भी सब तेरा स्वरूप है, जब ऐसे आत्माकों जाणैगा, तब शरीर

के त्याग कियेतें भी दुःख कोउ न रहैगा, अरु शरीरके होते भी दुःख कहूं नहीं, जब पूर्व शरीरकों त्यागिकरि नूतन जन्म लिया, तब भी आनंद हुआ, परम शांति प्राप्त भई, अरु जो चिदाकाशरूप है तौ भी परम आनंद हुआ ॥ हे रामजी ! सर्व प्रकार आनंद है, परंतु भ्रांति करिके दुःख भासता है, जब स्वरूपका साक्षात्कार होवैगा, तब सर्व जगत् ब्रह्मानंदस्वरूप भासैगा ॥ हे रामजी ! जिसकों आत्मसत्ताका प्रकाश है, सो पुरुष सदा आनंदविषे मग्न रहता है, अरु प्रकृत आचारकों भी करता है, परंतु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे स्वरूपतें चलायमान कदाचित् नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता तैसा ज्ञानी इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, परम गंभीरताविषे रहता है, तातें जो कछु आत्मातें इतर उत्थान होता है, तिसकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु, जो चिन्मात्रसत्ता शरत्कालके आकाशवत् निर्मल है, जब ऐसे स्वच्छ केवल चिन्मात्रका अनुभव होवैगा, तब जगत् द्वैतरूप होकरि न भासैगा, व्यवहारविषे भी द्वैत न फुरैगा ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमोपदेशवर्णनं नाम द्विशताधिकैकादशः सर्गः ॥ २११ ॥

॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जिन पुरुषकों आत्मा परमात्माका साक्षात्कार हुआ है, सो कैसे हो जाते हैं, अरु कैसा उनका आचार होता है सो मेरे तांई कहो ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे उनकी चेष्टा अरु जैसे उनका निश्चय है, सो सुण, सबके साथ उनका मित्रभाव होता है, पाषाणसाथ भी मित्रभाव होता है, अरु बांधवकों ऐसे जाणते हैं, जैसे वनके वृक्ष पत्र होते हैं, स्त्रीपुत्रादिकसाथ ऐसे होते हैं, जैसे वनके मृगपुत्र साथ होते हैं, जैसे उनविषे स्नेह नहीं होता, तैसे पुत्रादिकविषे भी स्नेह नहीं करते, अरु जैसे माताकी पुत्रविषे दया होती है, तैसे उह सब उपर दया करते हैं, अरु निश्चयतें उदासीन रहते हैं, जैसे आकाश किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे उह स्पर्श किसीसाथ नहीं करते, अरु जेती कछु आपदा हैं, सो उनकों परमसुख हैं, अरु जेते कछु जगत्विषे रस हैं, सो तिनकों विरस हो जाते हैं, न किसीविषे राग करते हैं, न किसी

विषे दोष करते हैं, तृष्णा करते दृष्ट भी आते हैं, परंतु अंतरतें जड पत्थरकी नांई होते हैं, व्यवहार करते भी हैं, परंतु निश्चयतें परमशून्य मौन होते हैं, अर्थ यह जो सदा समाधिविषे स्थित होते हैं, अरु सब क्रिया करते दृष्ट आते हैं सो, किस प्रकार करते हैं, जो सबकों स्तुति करनेयोग्य हैं, यत्नतें रहित सब क्रियाका आरंभ करते भी हैं, परंतु निश्चयतें सदा आपकों अकर्त्ता जाणते हैं, अरु जो कछु प्रारब्धवेग करि आनि प्राप्त होता है, तिसकों भोगते हैं, अरु देश काल क्रिया सबकों अंगीकार करते हैं, अरु जो परस्त्रीयादिक अनिष्ट आय प्राप्त होवैं, तिसका त्याग भी करते हैं, परंतु निश्चयतें सदा अकर्त्ता ज्योंके त्यों रहते हैं, अरु सुखदुःखकी प्राप्तिविषे समबुद्धि रहते हैं, अरु प्रकृत आचारविषे यथाशास्त्र विचरतें हैं, परंतु स्वरूपतें कदाचित् चलायमान नहीं होते, जैसे फूलके मारणेकरि सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे दुःखसुखकी प्राप्तिविषे चलायमान नहीं होते, सदा स्वभावविषे स्थित रहते हैं, सुखदुःखकों भोगते उहभी दृष्टि आवते हैं, अरु उनके निश्चयविषे कछु नहीं होता, जैसे स्फटिकमणिविषे कोउ रंग राखियें तब तिसविषे रंग भासता है, परंतु उसका रूप कछु अवर नहीं हो जाता, स्फटिक ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे सुखदुःखके भोग ज्ञानवान्विषे दृष्ट आते हैं, परंतु स्वरूपतें चलायमान कदाचित् नहीं होता, चेष्टा अज्ञानीकी नांई करते हैं, परंतु निश्चयतें परम समाधि है, जैसे अज्ञानीकों भविष्यतका रागदोष सुखदुःख कछु नहीं होता, तैसे ज्ञानीकों वर्तमानका रागदोष नहीं होता, अरु स्वाभाविक चेष्टा उसकी ऐसे होती है, सर्वसाथ मित्रभाव है, न उसतें कोउ खेदवान् होता है, न उह किसीतें खेदवान् होता है, अरु जब उसकों सुख आनि प्राप्त होता है, तब रागवान् दृष्ट आता है, अरु दुःखकी प्राप्तिविषे दोषवान् दृष्ट आता है, परंतु निश्चयतें उसकों हर्ष शोक कछु नहीं, जैसे नट स्वांग लाता है, जैसा स्वांग होता है, तैसी चेष्टा करता है, राजाका स्वांग होवै, अथवा दारिद्रका होवै, परंतु निश्चय अपणे

रूपविषे होता है तैसे ज्ञानवान्‌विषे सुखदुःख दृष्ट आते हैं, परंतु निश्चय उनका आत्मस्वरूपविषे होता है, अरु पुत्र धन बांधव आदिककों बुदबुदेकी नांई जानता है, जैसे जलविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं, परंतु जलकों रागदोष कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्‌कों रागदोष कछु नहीं होता, अरु सब उपर दयास्वभाव होता है, अरु पतित प्रवाहविषे जो सुखदुःख आनि प्राप्त होता है, तिसकों भोगता है, जैसे वायु चलता है, तब दुर्गंधसुगंधकों साथ ले जाता है, परंतु वायुकों रागदोष कछु नहीं, तैसे ज्ञानवान्‌कों रागदोष कछु नहीं, बाहिर अज्ञानीकी नांई व्यवहार करता है, परंतु निश्चयविषे जगत्‌कों भ्रांतिमात्र जाणता है, अथवा सर्व ब्रह्म जाणता है, सदा स्वभावविषे स्थित होता है, अनिच्छित प्रारब्धकों भोगता है, परंतु जाग्रतविषे सुषुप्तिकी नांई स्थित है, पूर्व अरु भविष्यतकी चिंतवना नहीं करता, वर्तमानविषे विचारता है, सो अंतरतें शीतल रहता है, बाह्य इष्ट अनिष्ट दृष्ट आते हैं, अंतरतें अद्वैतरूप है, ज्ञानवान् कर्म करता है, परंतु कर्मविषे अकर्मकों जानता है, अरु जीवताही मृतककी नांई है ॥ हे रामजी! जैसे मृतक होता है, तिसकों बहुरि जगत्‌की कलना नहीं फुरती, तैसे जिसकों आत्मपदकी अहंप्रत्यय हुई है, तिसकों द्वैत नहीं भासता, प्रत्यक्ष व्यवहार उसविषे दृष्टि भी आता है, परंतु निश्चयविषे अर्थ शांत हो गया है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह ज्ञानीके लक्षण जो तुम कहे सो तिनकों उही जाणै, अवर कोउ नहीं जाणता, काहेतें जो बाहिरकी चेष्टा अज्ञानीके तुल्य है, अरु अंतरतें शांतरूप है, जो ब्रह्मचर्यकरि भी अंतर धैर्य होता है, तपस्याकरि भी रागदोष कछु नहीं फुरता, अरु एक मिथ्या तपसी है, तिसी प्रकार हो बैठते हैं, उनका निश्चय सत् है, अथवा असत्य है, उनकों कैसे जाणियें सो कृपा करिके कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! यह निश्चय सत् होवै, अथवा असत्य होवै, यह लक्षण संतके हैं, अरु आत्माका जो साक्षात्कार है, यह निश्चय अपणे आपकरि जाणीता है, अवर किसीकरि नहीं जाणीता,

इसी कारणतें तिसका लक्षण ज्ञानीही जाणता है, अवर कोउ नहीं जाणता, जैसे सर्पके खुदकों सर्पही जाणता है, अवर कोउ नहीं जाणता, तैसे ज्ञानीका लक्षण स्वसंवेद्य है ॥ हे रामजी! यह जो गुण कहे हैं, सो ज्ञानवान्‌विषे स्वाभाविक भी रहते हैं, अवरकों यत्नसाध्य हैं, अरु सर्व जगत् तिसकों भ्रांतिमात्र है, अथवा अनुभव दृष्टि करिके अपणा आपही भासता है, इस कारणतें परम शांत हैं, रागदोष उसके निश्चयविषे नहीं फुरता, अरु अपणे निश्चयकों बाह्य प्रगट नहीं करता, अरु जो अधिकारी होता है, तिसकों जणावता भी है, अरु जो अनधिकारी अज्ञानी है, तिसकों जाणी भी नहीं सकता, जैसे बावनचंदनकी बडी सुगंधि है, परंतु दूरतें नहीं भासती, तैसे अज्ञानी उसके निश्चयतें दूर है, इस कारणतें उह जाणी नहीं सकता, जो उसकों चर्मदृष्टिकरि देखै सो उसकों देखि नहीं सकता, अरु उह अधिकारिविना जणावता भी नहीं, जैसे अमोलक चिंतामणि होवै, अरु नीचकों दीजें तौ भी उसके महात्म्यकों उह नहीं जाणता, तातें उसका निरादर करता है, तैसे आत्मरूपी चिंतामणि है, अरु अनधिकारी जो अज्ञानी है, सो तिसका माहात्म्य नहीं जाणता, उसतें इसका निरादर होता है, इसी कारणतें ज्ञानवान् प्रगट नहीं करता ॥ हे रामजी! अपणे ऐश्वर्यकों जो प्रगट करता है, जो हमकों अर्थकी प्राप्ति होवैगी, अरु हमारी मान्यता होवैगी, अरु हमारे चेले बनैंगे, हमारी पूजा होवैगी, सो अज्ञानी है, औ ज्ञानवान् पदार्थकों गंधर्वनगर अरु इंद्रजालकी नांई जाणते हैं, बहुरि वांछा किसकी करैं, इस कारणतें अनधिकारीकों अपणा इष्ट नहीं प्रगट करते, जो कोउ निकट बैठता है, तौ भी अपणे निश्चयरूपी अंगकों शकुचाय लेते हैं, जैसे कच्छु अपणे अंगकों शकुचाय लेता है, तैसे उह निश्चयरूपी अंगकों शकुचाय लेता है, अरु जो अधिकारी देखता है, तिस प्रति प्रगट करता है ॥ हे रामजी! पात्रविषे पदार्थ पाया शोभता है, अपात्रविषे पाया अनिष्ट हो जाता है, जैसे गउकों घास देईता है, तब उह भी क्षीर होता है, अरु सर्पकों क्षीर दिया विष हो जाता है, तैसे

अधिकारीकों दिया शुभ होता है, अनधिकारीकों अनिष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! अणिमातें आदि ले करि जो सिद्धि हैं, सो जपकरि द्रव्यकरि अरु कालकरि अथवा देशकरि प्राप्त होतियां हैं, सो अभ्यासके बलकरि अज्ञानीकों भी प्राप्त होतियां हैं, अरु ज्ञानीकों भी होतियां हैं, परंतु ज्ञानका फल नहीं, यह जप आदिकका फल है, अरु जिसकी सिद्धताके निमित्त जो पुरुष दृढ होकरि लगता है, सोई सिद्ध होता है, जो इन सिद्धिका दृढ अभ्यास करता है, तब उन करिके आकाशमार्गविषे उडणे आणे जाणे लगता है, सो यह पदार्थ तबलग रस देते हैं, जबलग आत्ममार्गतें शून्य हैं ॥ हे रामजी ! परम सिद्धता इनकरि प्राप्त नहीं होती, सो परम सिद्धता आत्मपद है, जिसकों आत्मपदकी प्राप्ति भई है, सो इनकी अभिलाषा नहीं करता, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोउ नहीं, आकाशविषे देवताके स्थानोंविषे भी नहीं, जिसविषे ज्ञानीका चित्त मोहित होवै, सब पदार्थ ज्ञानवान्कों मृगतृष्णाके जलवत् भासते हैं, अरु मेरे सिद्धांतविषे तौ यही है, जो सदा विषयतें उपरांत होणा, अरु आत्माकों परम इष्ट जानणा, इसीका नाम ज्ञान है, अरु जो प्रारब्ध करिके आनि प्राप्त होवै, तिसकों करता है, परंतु करणेकरि तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु अकरणेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, न किसी अर्थका आश्रय करता है, न तिसके निमित्त किसी भूतका आश्रय करता है, सर्वदा अपणे आप स्वभावविषे स्थित होता है, ऐसे निश्चयकों पायकरि आश्चर्यमान होता है, कहता है, जो बडा आश्चर्य है, सदा अपणा आप स्वरूप है, तिसकों मैं विस्मरण करिके एता काल भ्रमता रहा हौं, अब मुझकों शांति प्राप्त भई है, अरु जगतकों देखिके उह हसता है, काहेतें जो यह जगत् अनायासरूप है, अपणीही संवितविषे स्थित है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब स्थित होता है, तैसे अपणी संवितविषे जगत् स्थित है, तिसकों वह द्वैत जाणते हैं, अरु रागदोषकरि जलते हैं, ऐसे अज्ञानीकों देखिकरि हसता है, अरु व्यवहार करता भी हसता है, जैसे किसीनें स्वप्नविषे हाथमें स्व

र्ण दिया अरु देकरि बहुरि लिया, अरु इसनें उसकों स्वप्न जाण्या, तब चेष्टा करता है, परंतु हसता है, कहता है, जो यह मेराही स्वरूप है, तैसे ज्ञानी व्यवहार करता भी अपणे निश्चयविषे हसता है, अरु जैसे किसी ग्रामकों अग्नि लगती है, तिस गांवतें निकसीकरि एक पुरुष पर्वतपर जाय बैठे, तब जलतेकों देखिकरि हसता है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भी संसाररूपी नगर जलतेसों निकसीकरि आत्मरूपी पर्वतपर जाय बैठा है, सो अज्ञानीकों दग्ध होता देखिकरि हसता है, जो आप अशोक होकरि उनकों शोक देखता है ॥ हे रामजी ! जब ज्ञानवान् बोधदृष्टिकरि देखता है, तब अद्वैतसत्ता भासती है, अरु जब अंतवाहकविषे स्थित होकरि देखता है, तब जैसे होते है, तैसे उनकों देखता है, आपकों शांतरूप देखता है, अर्थ यह जो आत्मतत्त्व परमानंदस्वरूप है, तिसतें इतर जेते कछु पदार्थ हैं, सो सब दोषरूप हैं, सिद्धतातें आदि लेकरि जेती कछु क्रिया हैं, सो संसारका कारण हैं, जैसे समुद्रविषे केई तरंग बडे होते हैं, केई छोटे होते हैं, परंतु समुद्रहीविषे हैं, जिस तरंगका आश्रय करैगा, सो सिद्धताकों प्राप्त होवैगा, हलणे डोलणे कहणेतें मुक्त होवैगा, तैसे सिद्धता आदिक जो क्रिया हैं, सो कहूं बडा ऐश्वर्य है, कहूं छोटा ऐश्वर्य है, परंतु संसारहीविषे है, जो पुरुष इस क्रियाके त्यागकरि अंतर्मुख होवैगा, सो संसाररूपी समुद्रकों त्यागिकरि आत्मरूपी पारकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकों जिस पदार्थका अभ्यास होता है सोई तिसकों प्राप्त होता है, जैसे पाषाणकों नित्य प्रति घसावते रहियें तब उह भी चूर्ण हो जाता है, तैसे जिस पदार्थका सर्वदा अभ्यास करीता है सो प्राप्त होता है, जिसकों आत्मपद अभ्यासकरि प्राप्त होता है, सो परमश्रेष्ठ हो जाता है, अरु सब जगत्के ऊर्ध्व विराजता है, अरु परमदयाकी खाण होता है, जैसे मेघ समुद्रतें जल लेकरि वर्षा करते हैं, सो जलका स्थानक समुद्र होता है, तैसे जेते कछु दया करते दृष्ट आते हैं, सो ज्ञानवान्के प्रसादकरि करते हैं, सर्व दयाका स्थान ज्ञानवान् है, अरु ज्ञानवान् सबका सुहृद है, जो कछु प्रवाहपतित कार्य

आनि प्राप्त होता है, तिसकों करता है, अरु जो शरीरकों दुःख आनि प्राप्त होता है, तिसकों ऐसे देखता है, जैसे अन्य शरीरकों होता है, अपणेविषे सुख दुःख दोनोंका अभाव देखता है, अरु जिसकों अभ्यास नहीं प्राप्त भया, सो शरीरके रागदोषकरि जलता है, अरु ज्ञानीकों शांतिवान् देखिकरि अवरकों भी प्रसन्नता उपजी आती है, जैसे पुण्य करिके जो स्वर्ग गया है, तिसकों उहां इष्ट पदार्थ दृष्ट आते हैं, कल्पवृक्ष सुंदर मंजरियां संयुक्त अरु सुंदर अप्सरा आदिक दृष्ट आते हैं, तिन पदार्थकों देखिकरि प्रसन्नता उपजी है, तैसे ज्ञानवान्की संगतिविषे जो पुरुष जाता है, तिसकों प्रसन्नता उपजि आती है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतलता उपजाता है, तैसे ज्ञानवान्की संगति शीतलता उपजाती है, ज्ञानवान् आत्मपदकों पायकरि आनंदवान् होता है सो आनंद दूर नहीं होता, काहेतें जो आपही तिस आनंदकरि अष्ट सिद्धि स्वयं तृणसमान भासता है॥ हे रामजी! ऐसे पुरुषका आचार अरु जिस स्थानोंविषे रहते हैं सो सुण, केई तौ एकांत जाय बैठते हैं, केई शुभस्थानविषे रहते हैं, केई गृहस्थहीविषे रहते हैं, केई अवधूत हुए सबकों दुर्वचन कहते हैं, केई तपस्या करते हैं, केई परमध्यान लगाय बैठते हैं, केई नागे फिरते हैं, केई राज्य बैठे करते हैं, केई पंडित होकरि उपदेश करते हैं, केई परम मौन धारि रहै हैं, केई पहाडकी कंदराविषे जाय बैठते हैं, केई ब्राह्मण हैं, केई संन्यासी हैं, केई अज्ञानीकी नांई विचरते हैं, केई नीच पामर होते हैं, केई आकाशविषे उडते हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकी क्रिया करते दृष्ट आते हैं, परंतु सदा अपणे स्वरूपविषे स्थित हैं॥ हे रामजी! जिसकों पुरुष कहते हैं, सो देह इंद्रियां पुरुष नहीं, अरु अंतःकरणचतुष्टय भी पुरुष नहीं, पुरुष केवल चिदाकाशरूप है, सो न कछु करता है, न किसीकरि उसका नाश होता है, जैसे नट स्वांग ले आता है, अरु सब चेष्टा करता है, परंतु नटभावतें आपकों असंग देखता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहार भी करता है, परंतु आपकों अकर्त्ता असंग देखता है, अच्छेद्य हौं, अदाह्य हौं, अक्लेद्य हौं, अशोष्य हौं, नित्य हौं, सर्वगत हौं, स्थिर हौं, अचल हौं, सनातन

हों॥हे रामजी! इस प्रकार आत्माविषे जिसकों अहंप्रतीति भई है, तिसका नाश कैसे होवै, अरु बंधमान कैसे होवै? उह पुरुष भावै जैसे आरंभ करै, अरु भावै जैसे स्थानविषे रहै, तिसकों बंधन कछु नहीं होता, पातालविषे चला जावै, अथवा आकाशविषे उडता फिरै, अथवा देशांतरविषे भ्रमता फिरै, तिसकों न कछु अधिकता है, न कछु ऊनता है, पहाडविषे चूर्ण हो जावै तौ भी चूर्ण नहीं होता, यह तौ चेतन पुरुष है, शरीरके नाश हुए इसका नाश कैसे होवै, ऐसे अपणे स्वरूपविषे सदा स्थित है, आकाशवत् परम निर्मल है, अजर अमर शिवपद है, तातें हे रामजी! ऐसे जाणीकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चेतनाकाशपरमज्ञानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्वादशः सर्गः ॥ २१२ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक भावमात्र है, एक भासमात्र है, एक भासितमात्र है, भावमात्र कहियें केवल चेतनमात्र, तिसविषे जो चैत्योन्मुखत्व अहंकार उत्थान हुआ, तिसका नाम भास है, बहुरि तिसविषे जो जगत् हुआ, तिसका नाम भासित है, सो भासित कल्पितका नाम है, सो कल्पितके नाश हुए अधिष्ठानका तौ नाश नहीं होता क्यौं, जो अधिष्ठान कछु अवरभाव होवै तौ नाश भी होवै, सो तौ कछु अवर बन्या नहीं, तिसके फुरणेविषे तीन संज्ञा हुई हैं, सो फुरणा भी तिसका किंचन है, आत्मा फुरणे अफुरणेविषे ज्यौंका त्यौं है, जैसे स्पंदनिस्पंदविषे वायु एकही है, तैसे बोधअबोधविषे आत्मा एकही है, बोध अबोध फुरणा अफुरणा एकही अर्थ है॥ हे रामजी! सो आत्मा किसकरि अरु कैसे नाश होवै, चेतन भी मरता होवै, तब इसका किंचन जगत् कैसे रहै, किंचन कहियें आभास सो आभास अधिष्ठानविना नहीं होता, तातें आत्माका नाश नहीं होता, अरु तूं जो चेतनकों भी मरता मानै जो मरिके बहुरि नहीं उपजता, तौ भी आनंद हुआ, मेरा भी यही उपदेश है, जो चेतनता मिटै, जब चेतनता उपजती है, तब जगत् भासता है, तिसके मिटेतें आत्माही शेष रहैगा, ब्रह्मचेतनका तौ नाश नहीं होता,

अरु जो तूं कहै उह चेतन नाश हो जाता है, यह अवर चेतन है, जिसतें जगत् होता है तौ हे रामजी! अनुभव तौ एक है, उसका नाश कैसे मानियें, जैसे बरफ शीतल है, भावै किसी ठौरतें पान करियें उह सबकों शीतलही है, अरु अग्नि उष्णही है, जिस ठौरतें स्पर्श करियें तहां उष्णही है, तैसे आत्माका स्वरूप चेतन है, सो एक अखंडरूप है, जहां कोउ पदार्थ भासता है, सो तिसी चेतनताकरि प्रकाशता है, अरु चेतनसत्ता स्वच्छ निर्मल है, अद्वैत है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसका नाश कैसे होवै, अरु जो तूं शरीरके नाश हुए आत्माकों नाश होता मानै तौ ऐसे नहीं, काहेतें जो शरीर इहां अखंड पडा है, अरु उह परलोकविषे चेष्टा करता है, अरु पिशाच आदिकका शरीर भी नहीं दृष्ट आता, जो शरीरविना अभाव होता होवै तौ उनका भी अभाव हो जावै, तातें शरीरके अभाव हुए आत्माका अभाव नहीं होता, काहेतें जो शरीरके मृतक हुए कछु चेष्टा शरीरसाथ होती नहीं, काहेतें जो पुर्यष्टका जीवकला बीच नहीं, शरीर तौ अखंड पडा है, उसतें कछु नहीं होता, जीव परलोकविषे सुख दुःख भोगता है तौ शरीरके नाश हुए नाश न हुआ क्यों, अरु जो तूं कहे सब स्वभाव उसविषे रहता है, तौ सर्वकाल उसकों क्यों नहीं देखता, उसी समय आपकों मृतक देखता है, अरु बांधव भाई जन सब उसी समय मृतक जाणते हैं, अरु जो तूं कहै, जीवित धर्मकरि वेष्टित है, इसीतें सब अवस्थाका अनुभव नहीं करता, मृत्यु समय जब जीवत्वभाव नष्ट हो जाता है, तब मृतक होता है, जो ऐसे होवै तौ परलोकका अनुभव न करै सो ऐसा नहीं, जब शरीरपात होता है, तब सब अवस्थाकों भी जाणता है, बहुरि परलोकविषे शब्द होता है, तिसका अनुभव करता है, अपणे कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है, अरु देशस्थानकों प्राप्त होता है, यह वार्त्ता शास्त्रकरि भी प्रसिद्ध है, जो वेद शास्त्र पढे करते हैं, अरु अनुभव करिके भी प्रसिद्ध हैं, जो मृतककों किसनें जाण्या, अरु अभावकों किसनें जाण्या, जिसनें जाण्या सो आत्मा है, एक अखंड है, तातें हे रामजी!

शरीरके नाशविषे आत्माका नाश नहीं, सो नित्य शुद्ध है, जैसा जैसा निश्चय उसविषे होता है, तैसाही हो भासता है, जैसा मिलता है, तैसा प्रकाशता है, ऐसा जो सत्य आत्मा है, सो किसीविषे बंधमान नहीं होता, जैसे जेवरीविषे सर्पआकार भासता है, सो जेवरी सर्प तौ नहीं हो जाती, सर्प कल्पितका अभाव हो जाणा है, अरु जेवरी ज्योंकी त्यों रहती है, तैसे आत्मसत्ता आकार हो भासती है, परंतु आकार तौ नहीं होती, आकारका अभाव हो जाता है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है, इसी कारणतें बंधमान नहीं होती, ऐसी आत्मसत्ताविषे जो विकार भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, अरु भ्रांतिहीकरि दुःख पावते हैं॥ हे रामजी! यह जगत् आभासमात्र है, तिस आभासमात्रविषे जो रागदोष आदिक फुरते हैं सो तिनके निवृत्तिका उपाय मैं तुझकों कहता हौं, अरु जो कछु उपदेश मैं किया है, तिसके विचारणेकरि भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, अभ्यासविना आत्मपदकी प्राप्ति चाहै तौ कदाचित् न होवैगी, जब वारंवार अभ्यास करैगा, तब द्वैतभ्रम मिटि जावैगा, अरु आत्मपद प्राप्त होवैगा, जिसका नित्य अभ्यास करीता है अरु यत्न भी तिसका करीता है, सो प्राप्त होता है, उह कवन पदार्थ है, जो अभ्यासकरि प्राप्त न होवै, जो थकीकरि फिरै नहीं, अरु दृढ अभ्यास करै, तौ प्राप्त होता है, राज्यकी लक्ष्मी तब प्राप्त होती है, जब रणविषे दृढ होकरि युद्ध करता है, जब जय होती है, अरु मुखतें कहै मेरी जय होवै, तब तौ नहीं होती, तैसे आत्मपद भी तब प्राप्त होवैगा, जो दृढ अभ्यास करैगा, अभ्यासविना कहणेमात्रकरि प्राप्त नहीं होता॥ हे रामजी! इस मनके दो प्रवाह हैं, एक जगत्का कारण है, एक स्वरूपकी प्राप्तिका कारण है, जो असत्य शास्त्र है, जिनविषे आत्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा, तिनकों त्यागि यह जो महारामायण है, मोक्ष उपाय, सो चार वेद, षट् शास्त्र सर्व इतिहास पुराणका सिद्धांत मैंनें कहा है, जो इसके समान अवर कोउ न कहैगा, न किसीनें कहा है, ऐसा जो शास्त्र है, इसके विचारविषे मनकों लगावै, तब शीघ्रही आत्मपदकों प्राप्त होवैगा॥ हे रामजी! आत्म

ज्ञान वरशापकी नांई नहीं, जो कहणेमात्रतें सिद्ध प्राप्त होवै, इसकी प्राप्ति तब होवैगी, जब वारंवार विचार करिके दृढ अभ्यास करैगा, जब भावना होवैगी, तब मुक्तिपद प्राप्त होवैगा, ऐसा कल्याण पिता अरु माता नहीं करते, अरु मित्र भी ऐसा कल्याण न करैंगे, तीर्थ आदिक सुकृत भी न करैंगे, जैसा कल्याण वारंवार विचारणेतें मेरा उपदेश करैगा, तातें अवर सब उपायकों त्यागिकरि इसीका विचार करु, तब भ्रांति सब मिटि जावैगी, अरु शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी॥ हे रामजी! अज्ञानरूपी विषूचिका रोग है, तिसकरि जीव पडे जलते हैं, जो मेरे शास्त्रकों विचारैगा, तिसका रोग नष्ट हो जावैगा, अरु ईश्वरकी महा माया है, जो मिथ्याभ्रमकरि दुःखी होते हैं, जो अपणा दुःख नाश करणा होवै तौ मेरा शास्त्र विचारै, जेते कछु सुंदर पदार्थ दृष्ट आते हैं सो मिथ्या हैं, तिनके निमित्त यत्न करणा परम आपदा है, यह कैसे पदार्थ हैं, आपातरमणीय हैं, जो देखणेमात्र सुंदर हैं, अरु अंतरतें शून्य हैं, इनकी प्राप्तिविषे मूर्ख आनंद मानते हैं॥ हे रामजी! यह पदार्थ तबलग सुंदर भासते हैं, जबलग इसकों मृत्यु नहीं आया, जब मृत्यु आवेगा तब सब क्रिया रही जावैंगी, इनके निमित्त जो बडे यत्न करते हैं सो मूर्ख हैं, जिस कालविषे मृत्यु आता है, तिसी काल इसकों कष्ट आनि प्राप्त होता है, चंदनका लेप इसकों करियें तौ भी शीतल नहीं होता, अरु जिस द्रव्यके निमित्त बडे यत्न करता है, अरु प्राणकों त्यागता है, युद्ध करता है धनके निमित्त, सो धन स्थिर नहीं रहता, धनका अरु प्राणीका वियोग हो जाता है, जब वियोग होता है, तब कष्ट पावता है, अरु मैं ऐसे उपाय कहता हौं, जिसविषे यत्न भी थोडा होवै, अरु सुगम प्राप्त होवै, सो जब शास्त्रके अर्थविषे दृढ अभ्यास होता है, तब अजर अमरपद प्राप्त होता है, तातें तूं बोधवान् होहु, बोध करिके अभ्यासका यत्न करु, अजरपदके निमित्त, अरु जो यत्न न करैगा, तौ अज्ञानरूपी शत्रु लातां मारैगा, अरु जो शत्रुकों मारणा होवै, तौ निर्मान निर्मोह होकरि आत्मपदका अभ्यास करु॥ हे रामजी! जो पुरुष अबलग अज्ञानरूपी शत्रुके मारणेका यत्न नहीं करता,

अरु आत्मपद पावणेका यत्न नहीं करता, सो परम कष्टकों पावैगा, संसाररूपी दुःखतें कदाचित् मुक्त न होवैगा, अरु निकसणेका उपाय यही है, जो महारामायण ब्रह्मविद्याका उपदेश, तिसकों विचारि करिके अपणे हृदयविषे धारणा, इस उपाय करिके भ्रांति मिटि जावैगी, कैसा महारामायण उपदेश है, जो सर्व सिद्धांतका सार है, अरु अवर शास्त्रकरि प्राप्त होवै, अथवा न भी होवै, परंतु इसके विचारकरि अवश्य आत्माकों प्राप्त होवैगा, जैसे तिलकी खलतें तेल निकसणा कठिन है, अरु तिलतें तेल काढियें तौ निकसता है, तैसे मेरा उपदेश तिलकी नांई है, अरु इतर है सो खलकी नांई है ॥ हे रामजी! जेते कछु शास्त्र हैं, तिनविषे जो मुख्य सिद्धांत है, तिसविषे सार जो सिद्धांत है, सो मैं तुझकों कहा है, जो आत्मा सदा विद्यमान है, तिसकों भ्रांति करिके अविद्यमान जाणता है, तिसीके विद्यमान करणेकों सर्व शास्त्र प्रवर्ते हैं, जो तिनके विचार करिके भी आत्मपदकों विद्यमान नहीं जाणता, सो मेरे उपदेश विचारणेसों आत्मपदकों विद्यमान जाणैगा, यह निश्चय है ॥ हे रामजी! अवर शास्त्रके दृढ विचार अरु यत्न करिके जो सिद्धता होणी है, सो इस शास्त्रके विचार करिके सुखेनही प्राप्त होवैगी, शास्त्रकर्त्ताका अवर लक्षण नहीं विचारणा, शास्त्रकी युक्ति विचारि देखणी है, जो कछु सर्व शास्त्रका सार सिद्धांत है, सो मैं तुझकों सुगम मार्गकरि कहा है, इसके विचारकरि इसकी युक्ति देखैं, अरु जो कछु अज्ञानी मुझकों कहते हैं, अरु हंसते हैं, सो मैं सबही जाणता हौं, परंतु मेरा जो कोउ दयाका स्वभाव है, तिसकरि मैं चाहता हौं, जो किसी प्रकार नरकरूप संसारतें निकसैं, इस कारणतें उपदेश करता हौं ॥ हे रामजी! मैं तुझकों जो उपदेश करता हौं, सो मैं किसी अपणे अर्थके निमित्त नहीं करता, जो मेरा कछु अर्थ सिद्ध होवैगा, जो कोउ तुझकों उपदेश करता है सो सुण, तेरा जो कोउ बडा पुण्य है, सोई शुद्ध संवित होकरि मलिन संवितकों उपदेश करता है, सो संवित न देवता है, न मनुष्य है, न यक्ष है, न राक्षस है, पिशाच आदिक भी नहीं, केवल जो ज्ञानमात्र है, सो भी तूंही है, अरु मैं भी उही हौं, अरु जगत् भी उही है,

जो सर्व उही है, तौ वासना किसकी करणी है ॥ हे रामजी! इसकों दुःखका कारण वासनाही है, जो पुरुष इस संसारबंधन दुःखकी चिकित्सा अब न करैगा, सो आत्महत्यारा है, अरु बडे दुःखविषे जाय पडैगा, जहांतें निकसणे कहुं समर्थ न होवैगा, तब क्या करैगा, तातें अबही उपाय करै, जबलग सर्व भावकी वासना निवृत्त नहीं होती, तबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता, इसीका नाम बंधन है, जब वासना क्षय होवैगी, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो अविचारतें सिद्ध हैं, विचार कियेतें कछु नहीं रहते, जो विचार कियेतें न रहै, तिनकी अभिलाषा करणी व्यर्थ है, जो वस्तु होती होवै, तिसके पावणेका यत्न भी करियें तौ बनता है, अरु जो वस्तु होवै नहीं, तिसके निमित्त यत्न करणा मूर्खता है, यह जगत्के पदार्थ असत्यरूप हैं, जैसे ससेके सिंग असत् हैं, जैसे मरुस्थलकी नदी असत् होती है, तैसे यह जगत् असत् है, जो सम्यक्दर्शी ज्ञानवान् पुरुष है, सो जानता है, यह जगत् ससेके सिंगवत् असत् भ्रांतिमात्र है, इसके निमित्त यत्न करणा मूर्खता है, जो पदार्थ कारणविना दृष्ट आवै, तिसकों भ्रांतिमात्र जाणियें, आत्मा जगत्का कारण नहीं, तातें जगत् मिथ्या है, आत्मपद सब इंद्रियां अरु मनतें अतीत है, अरु जगत् पंचभौतिक है, सो मन इंद्रियांका विषय है, अरु आत्मपद है, सो मन इंद्रियांका विषय नहीं, तौ जगत्का कारण कैसे कहीयें, जो अशब्द पद है, सो नानाप्रकार शब्दका कारण कैसे होवै, जो निराकार आत्मपद है, सो पृथ्वी आदिक भूत नानाप्रकारके आकारका कारण कैसे होवै ॥ हे रामजी! जैसा कारण होता है, तिसतें तैसा कार्य उपजता है, सो आत्मा निराकार अरु जगत् साकार तौ निराकार साकारका कारण कैसे होवै, जैसे वटका बीज साकार होता है, तिसका कार्य वट भी साकार होता है, अरु साकारतें कार्य निराकार तौ नहीं होता, तैसे निराकारतें साकार कार्य भी नहीं होता, तातें इस जगत्का कारण आत्मा नहीं, न समवायि कारण है, न निमित्तकारण है, निमित्तकारण तब होता है, जब कछु द्वितीय वस्तु होती है, जैसे मृत्तिकातें कुला

ल घट बनावता है, सो आत्मा अद्वैत है, निमित्तकारण कैसे होवै, अरु समवायिकारण भी तब होता है, जब साकार वस्तु होती है, जैसे मृत्तिका परिणमिके घट होता है, सो आत्मा निराकर अपरिणामी है, जगत्का कारण कैसे होवै, दोनों कारणतें जो रहित भासै सो जाणियें जो भ्रांतिमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो कारणविना भासते हैं, तातें भ्रांतिमात्र हैं, तैसे यह जगत् भी कारणविना भ्रांतिमात्र भासता है, आत्माविषे जगत् कदाचित् नहीं हुआ, जैसे प्रकाशविषे तम नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं, अरु जो तूं कहै, भासता क्यों है, तौ उसीका किंचन भासता है, सो उहीरूप है, जैसे चलती है, तौ भी वायु है, अरु ठहरती है, तौ भी वायु है, चलणे अरु ठहरणेविषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, उही आत्मसत्ता फुरणेकरि जगत्रूप हो भासती है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, अवर कछु द्वैत वस्तु है नहीं, जो कहते हैं, जगत् कर्मोंकरि होता है, सो असत्य है, कर्म भी बुद्धिकरि होते हैं, सो आत्माविषे बुद्धिही नहीं, तौ कर्म कैसे होवैं, जो कर्मही नहीं, तौ जगत् कैसे होवै, जैसे ससेके सिंगके धनुष्यसाथ बाण चलावणा असत्य है, तैसे कर्मकरि जगत्का होणा असत्य है, अरु एक कहते हैं, सूक्ष्म परमाणुतें जगत् हो जाता है, सो भी असत् है, काहेतें जो सूक्ष्म परमाणु परिणमीकरि जगत्रूप हुए होते तौ बुद्धिरूप जगत् न भासता, यह तौ बुद्धिरूप क्रिया होती दृष्ट आती है, जो परमाणुतें जगत् होता तौ इनहीकरि बढता जाता, काहेतें जो परमाणु जड हैं, उही बढते जाते हैं, सो ऐसे तौ नहीं, बुद्धिपूर्वक चेष्टा होती दृष्ट आती है, इसीतें कहा है, जो असत् कहते हैं, काहेतें जो सूक्ष्म भी किसीतें उत्पन्न हुआ चाहिये, अरु कोउ रहणेका स्थान भी चाहिये, सो आत्माविषे देश काल वस्तु तीनों कल्पित हैं, जो आत्मविषे यह न हुए तौ परमाणु कैसे होवै, जगत् कैसे होवै, आत्मा अद्वैत है, तातें जगत् न उपजा है, न नष्ट होता है, जो उपजा होता तौ नष्ट भी होता, जो उपजा नहीं तौ

नष्ट कैसे होवै, आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं अपणे आपविषे स्थित है तातें ॥ हे रामजी! मैं भी आकाशरूप हौं, तूं भी आकाशरूप है, सब जगत् भी आकाशरूप है, किसीकेसाथ आकार नहीं, सब निराकाररूप है, अरु जो तूं कहै, बोलते चालते क्यौं हैं, तौ जैसे स्वप्नविषे सब आकाशरूप होते हैं, अरु नानाप्रकारकी चेष्टा करते हैं, दृष्ट आवते हैं, अरु बोलते चालते हैं, तैसे यह भी बोलते चालते हैं, परंतु आकाशरूप हैं, अरु जो तेरा स्वरूप है, सो श्रवण कर, देशकों त्यागिकरि जो देशांतरकों संवित् जात है, अरु तिसके मध्य जो ज्ञान संवित् है, सो तेरा स्वरूप है, सो अनामय सर्व दुःखतें रहित है, जैसे जाग्रत देशकों त्यागिकरि स्वप्नमें जाती है, जाग्रत त्यागि दिया,अरु स्वप्न आया नहीं, मध्य जो अचेत चिन्मात्रसत्ता है, तैसे ब्रह्मसरूप है, तिसविषे पंडित ज्ञानवान्का निश्चय है, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक तिसीविषे स्थित रहते हैं, तिनकों कदाचित् उत्थान नहीं होता, जैसे बरफतें अग्नि कदाचित् नहीं उपजती, तैसे तिनकों स्वरूपतें उत्थान कदाचित् नहीं होते, सो आत्मसत्ता कैसी है, न उपजती है, न विनसती है, न अवरकी अवर होती है, सर्वदा अपणेस्वभावविषे स्थित है॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तूं देखता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, भ्रम करिके भासता है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आरंभ होते दृष्ट आवते हैं, अरु जागेतें अत्यंत अभाव भासते हैं, तैसे यह जगत् भी है, आदि जो अद्वैततत्त्वविषे स्वप्न हुआ है, तिसविषे ब्रह्मा उपजा है, तिसनें आगे जगत् रचा है, सो ब्रह्मा भी आकाशरूप है, स्वरूपतें इतर कछु हुआ नहीं, सब असत्यरूप है, जैसे स्वप्नविषे नदी पर्वत दृष्ट आते हैं, परंतु कछु उपजे नहीं, अनुभवसत्ता ज्यौंकी त्यौं स्थित है, तैसे ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत जगत् सब असत्यरूप है, जिसकों तूं ब्रह्मा कहता है, सो वास्तव कछु उपजा नहीं, तौ जगत्की उत्पत्ति मैं तुझकों कैसे कहौं, जैसे मरुस्थलकी नदीही उपजी नहीं, तिसविषे मच्छीयां कैसे कहीयें, तैसे आदि ब्रह्म नहीं, तिसविषे जगत् उपजा कैसे कहियें, केवल आत्मचेतनसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु यह जगत् भी

उही रूप है, परंतु अज्ञान करिके विपर्ययरूप भासता है, जैसे स्वप्नविषे पुरुष अनुभवरूप होता है, अरु अपणे प्रमाद करिके नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, पर्वत जल पृथ्वी जन्ममरणादिक विकार देखीता है, परंतु हुआ नहीं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञान करिके विषयरूप भासते हैं, तैसे इह जगत् भी जाण, आत्मसत्तातें इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अज्ञान करिके आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है ॥ तातें हे रामजी! जिसके अज्ञानतें इह जगत् भासता है, अरु जिसके ज्ञानकरि निवृत्त हो जाता है, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, तिसके पावणेका यत्न कर, सो कैसा पद है, नित्य शुद्ध परमानंदस्वरूप है, अरु सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, सो तेरा अनुभवरूप है, जो सदा अनुभव करिके प्रकाशता है, तिसविषे स्थित होणा क्या कायरता करणी ॥ हे रामजी! जेता कछु प्रपंच है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रांतिमात्र है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रममात्र है, तिसकों त्यागिकरि अपणे स्वभावविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥ २१३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रकार इह जगत् आभास फुर्या है, अरु भासता है, सो सुण, आदि जो शुद्ध है, अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे जब चेतनता फुरती है, तब सो वेदन होती है, तिसविषे शब्द तन्मात्र होती हैं, शब्द तन्मात्रातें आकाश उत्पन्न होता है, बहुरि स्पर्शकी इच्छा होती तब वायु उपजती है, जब आकाशविषे उत्थान हुआ, तब तिस वायु अरु आकाशके संघर्षण भावतें अग्नि उपजती है, जब अग्निविषे उष्णस्वभाव होता है, तब जल उत्पन्न होता है, अर्थ यह जो जब तेजकी अधिकता होती है, तब जल उत्पन्न हो आता है, स्वेदवत् जब जल बहुत एकठा होता है, तब तिसतें पृथ्वी उत्पन्न होती है, इस प्रकार आकाश वायुतें जल पृथ्वी उत्पन्न होते हैं, तब तत्त्वतें शरीर उपजते हैं, स्थावर जंगम भूत नानाप्रकार जगत् दृष्ट आता है, सो पंचभौतिक हैं, अरु वास्तवतें न पंच

भूत हैं, न कोउ उपजता है, न नष्ट होता है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारका जगत् आरंभ परिणामसहित भासता है, परंतु वास्तव कछु उपजा नहीं, आत्मसत्ताही चित्तके फुरणेकरि जगत्रूप हो भासती है, तैसे यह जाग्रत जगत् भी जाण ॥ हे रामजी ! यह जगत् सब अपणा अनुभवरूप है, भ्रम करिके आकारसहित भासता है, जब भली प्रकार करके विचारि देखीयें तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल चेतन आत्मत्वमात्र शेष रहता है, जैसे निद्रा दोष करिके स्वप्नविषे नानाप्रकारके क्षोभ भासते हैं, जब जागता है तब एक अपणा आपही भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागेतें अद्वैतही अद्वैत भान होता है ॥ हे रामजी ! जो बोधसमय द्वैत कछु न भासै तौ अबोध समय भी जाणियें जो द्वैत कछु नहीं हुआ, अरु जो बोधसमय सत्य भासै तौ जाणियें जो सर्वदा काल इही सत्ता है ॥ हे रामजी ! यह निश्चय धार जो अवर जगत् कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, जैसे किरणांविषे जल भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, विचार कियेतें कछु नहीं पाइता ॥ हे रामजी ! अपणी कल्पनाही इसकों जगत्रूप हो भासती है, अवर कछु नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि अपणी कल्पनारूप है, परंतु निद्रा दोषकरि भिन्न हो भासती है, तिसविषे रागदोष उपजता है, अरु जागेतें सब क्षोभ मिटि जाते हैं, तैसे अज्ञान करिके जगत् सत्य भासता है, तिसविषे राग दोष भासते हैं, ज्ञान करिके सब शांत हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! यह जगत् भ्रममात्र है, ज्ञानवान्के निश्चयविषे सब चिदाकाश है, अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् है, जो बडे क्षोभ आनि प्राप्त होवैं तौ भी ज्ञानवान्कों चलाय नहीं सकते, उसके निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, सदा एकरस रहता है, जो प्रलयकालके मेघ आनि गर्जैं, अरु समुद्र उच्छलै, अरु पहाडके उपर पहाड पडै, ऐसे भयानक शब्द होवै, तौ भी ज्ञानवान्के निश्चयविषे कछु द्वैत नहीं फुरता, जैसे कहूं पुरुष सोया पडा है, तिसके स्वप्नविषे बडे क्षोभ होते हैं, अरु जाग्रतकों निकट बैठे

नहीं भासते, तैसे ज्ञानवान्के निश्चयविषे द्वैत कछु नहीं भासता, काहेतें जो है नहीं, अरु अज्ञानीकों होते भासते हैं, जैसे वंध्या स्त्री स्वप्नविषे अपणे पुत्रकों देखती है सो अणहोता भ्रमकरि उसकों भासता है, तैसे अज्ञानीकों अणहोता जगत् सत्य होकरि भासता है ॥ हे रामजी! भ्रम करिके अणहोता भासता है, अरु होतेका अभाव भासता है, जैसे वंध्या अणहोते पुत्रकों देखती है, अरु पुत्रवाली स्वप्नविषे पुत्रका अभाव देखती है, तैसे अज्ञान करिके अणहोता जगत् सत्य भासता है, अरु सदा अनुभवरूप आत्माका अभाव भासता है, सो भ्रम करिके अवरका अवर भासता है, जैसे दिनकों सोया हुआ स्वप्नविषे कहूं रात्रिकों देखता है, अरु रात्रिकों सोया हुआ स्वप्नविषे दिनकों देखता है, अरु शून्य स्थानविषे नाना प्रकारका व्यवहार देखता है, अरु अंधकारविषे प्रकाशकों देखता है, सो भ्रमकरिके देखता है, अरु पृथ्वीपर सोया है, अरु स्वप्नविषे आकाशमें दउडता फिरता है, अरु गरतविषे गिरता आपकों देखता है, सो भ्रम करिके भासता है, तैसे यह जाग्रत जगत् भी विपर्ययरूप भ्रम करिके देखता है, जाग्रत अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे मुए हुए भी बोलते चालते दृष्ट आते हैं ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे तुमकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु जागिकरि कहते हो, सब भ्रममात्र था, तैसे हमकों यह जाग्रत जगत् भ्रममात्र भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रत अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं, जैसे दो मनुष्य एकही जैसे होते हैं, जैसे दो सूर्य होवें, तिनविषे भेद कछु नहीं होता, तैसे जाग्रत अरु स्वप्नविषे भेद कछु नहीं जानणा ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! स्वप्नकी प्रतिभा अल्पमात्र भासती है, शीघ्रही जागीकरि कहता है, एक भ्रममात्र थी, अरु जाग्रत दृढ होकरि भासती है, तुम दोनोंकों समान कैसे कहते हो? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस प्रतिभाका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो जाग्रत कहाती है, अरु जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, चित्तविषे स्मृति हो

ती है सो स्वप्न है, सो जाग्रत अरु स्वप्न दो प्रकारका है, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो जाग्रत है, तिसविषे जब सोय गया, तब स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे जगत् भासी आया, सो जहां जगत् भासी आया उही तिसकों जाग्रत हो गई, अरु जहांतें सोया था, उह स्वप्न हो गया,अरु इहां जो स्वप्न भास्या, तिसकों जाग्रत जाणी चेष्टा करणे लगा भाई जन लोकसाथ, जब उहांतें मृतक हो गया, बहुरि उसविषे आया, आयकरि पिछलीकों स्वप्न जानणे लगा, तौ चित्तके भ्रम करिके स्वप्नकों जाग्रत देखत भया था, अरु जाग्रतकों स्वप्न देखत भया था ॥ हे रामजी ! सो क्या भया, जैसे किसीकों स्वप्न आया, तिसविषे अपणी चेष्टा व्यवहार करणे लगा, बहुरि तिसविषे स्वप्न हुआ, तिस स्वप्नांतरतें जब जाग्या, बहुरि उस स्वप्नविषे आया, आयकरि उसकों स्वप्न जानणे लगा, अरु उस स्वप्नकों जाग्रत जानणे लगा ॥ हे रामजी ! जैसे उह स्वप्नांतरतें जागीकरि तिसकों स्वप्न कहता है, अरु स्वप्नकों जाग्रत कहता है, तैसे इहां जाग्रत स्वप्नरूप है, अरु आगे जो होता है सो स्वप्नांतर है, एक अवर प्रकार है, जो इस जाग्रतविषे मृतक हुआ शरीर छूटि गया, तब परलोककों देखता है, सो परलोक जाग्रत हो गया, अरु इस जाग्रतकों स्वप्न जानणे लगा, जैसे स्वप्नतें जाग्या स्वप्नकों भ्रम कहता है, तैसे इस जाग्रतकों परलोकविषे भ्रम जाणता है, बहुरि परलोकविषे स्वप्न आया, तब परलोककी जाग्रत स्वप्नवत् हो गई, अरु जो स्वप्नविषे सृष्टि भासी, तिसकों जाग्रत जाणत भया, बहुरि उहांतें मृतक होकरि इहां आया, तब इह जाग्रत हो गई, परलोक स्वप्न हो गया, तातें हे रामजी ! स्वप्न अरु जाग्रत दोनों मिथ्या हैं, अरु मूर्ख स्वप्नतें जब जागता है, तब जाणता है इसका नाम जागणा है, इसकों जाग्रत मानता है, उसकों स्वप्न जानता है, अरु है उह स्वप्नांतर अरु इह स्वप्न है, इसविषे जो तीव्र संवेग हो रहा है, इसतें उसकों जाग्रत जाणता है, अरु उसकों स्वप्न जाणता है, अरु हैं दोनों तुल्य, भेद कछु नहीं, आत्माविषे एक दोनों असत्यरूप हैं, इनकी प्रतिभा भ्रममात्र भासती

है, अरु आत्मा न कदाचित् उपजता है, न मरता है, अरु उपजता भी है, मरता भी है, उपजता इस कारणतें नहीं जो पूर्व सिद्ध है, अरु मरता इसी कारणतें नहीं, जो भविष्यत् कालविषे भी सिद्ध है, परलोकविषे सुखदुःखकों भोगता है, अरु भ्रमकालविषे जन्मता भी है मरता भी है, सो प्रत्यक्ष भासता है, अरु वास्तवतें ज्यौंका त्यौं है ॥ हे रामजी ! यह जगत् तिसका आभास है, चेतनका चमत्कार चैत्य होकरि भासता है, जैसे घट मृत्तिकारूप है, मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे चेतन भी चेतनरूप है, चेतनतें इतर जगत् कछु नहीं, स्थावर जंगम जगत् सब चिन्मात्र है ॥ हे रामजी ! जैसे तुमकों स्वप्न आता है, तिसविषे पत्थर पहाड भासते हैं, सो तुमाराही अनुभवरूप है, इतर तौ कछु नहीं, तैसे इह दृश्य सब चिन्मात्ररूप है, जैसे घट मृत्तिकातें भिन्न नहीं, तैसे जगत् चिदाकाशतें भिन्न नहीं, जैसे काष्ठके पात्र काष्ठतें भिन्न नहीं, सब काष्ठरूप हैं, तैसे जगत् चेतनरूप है, चेतनतें इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी मूर्त्ति पाषाणरूप है, तैसे जगत् भी चेतनरूप है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे चेतन जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे अग्नि उष्णरूप है, तैसे चैत्य चेतनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप है, तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे वायु निस्पंदरूप है, तैसे चेतन चैत्यरूप है, जैसे पृथ्वी घनरूप होती है, जैसे आकाश शून्यरूप होता है, जहां शून्यता है तहां आकाश है, तैसे जहां चैत्य है, तहां चेतन है, जैसे स्वप्नविषे शुद्ध संवित् पहाड नदियांरूप हो भासती है, तैसे चिन्मात्रसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है ॥ हे रामजी ! जो कछु पदार्थ तुझकों भासते हैं, तिनकों त्यागिकरि आत्माकी उर देख, यह विश्व सब आत्मरूप है, शुद्ध चिदाकाशरूप निर्दुःख आकाशविषे निर्मल है, ऐसे जाणीकरि तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जब तुझकों स्वभावसत्ताका अनुभव साक्षात्कार होवैगा, तब जेती कछु द्वैतकलना भासती हैं सो सब शांत हो जावैंगी, केवल आत्मतत्त्व मात्र शेष रहैगा ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रतस्वप्नैकताप्रतिपादनं नाम च

तुर्दशाधिकद्विशततमः सर्गः ॥२१४॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चिदाकाश कैसा है, जिसकों तुम परम ब्रह्म कहते हो, तिसका क्या रूप है, तुमारे अमृतरूपी वचनोंकों पान करता मैं तृप्त नहीं होता, तातें कृपाकरिके कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे एक माताके गर्भतें दो पुत्र जोडे उत्पन्न होते हैं, उनका एक जैसा आकार होता है, सो जगत् व्यवहार निमित्त उनका नाम भिन्न भिन्न होता है, अवर भेद कछु नहीं, अरु जैसे दो पात्रविषे जल राखियें तौ जलएकही है, अरु पात्रके नाम भिन्न भिन्न होते हैं, तैसे स्वप्न अरु जाग्रत नाम दो हैं, परंतु एकही जैसे हैं, सो आत्माविषे दोनों कल्पित हैं, जिसविषे दोनों कल्पित हैं, सो चिदाकाश है, अरु वृत्ति जो फुरती है, देश देशांतरकों जाती है, तिसके मध्यविषे जो संवित ज्ञानरूप है, जिसके आश्रय वृत्ति फुरती, सो चिदाकाश संवित है, अरु वृक्ष जो रसकों खैंचिकरि ऊर्ध्वकों जाते ह, सो तिसके आश्रय जाते हैं, ऐसी जो सत्ता है, सो चिदाकाशरूप है ॥ हे रामजी! जेते कछु वृक्ष हैं, फूल फल टास सो सब रसके आश्रय फुरते हैं, तैसे यह जगत् सब चिदाकाशके आश्रय फुरता है, तिसके आश्रयवृत्ति फुरती है, ऐसी जो सत्ता है, सो चिदाकाश है, अरु जिसकी इच्छा सब निवृत्त हो गई है, अरु राग दोषरूपी मल निवृत्त भया है, शरत्कालके आकाशवत् जो शुद्ध संवित् है, तिसकों चिदाकाश जाण ॥ हे रामजी! जगत्का जब अंत होता है, अरु जडता आई नहीं, तिसके मध्य जो अद्वैतसत्ता है, सो चिदाकाश है, अरु वल्ली फूल फल गुच्छे वृक्ष जिसके आश्रय बढते हैं, सो चिदाकाश है, अरु रूप अवलोकन मनस्कार इन तीनोंका जहां अभाव है, ऐसी जो शुद्ध संवित है, सो चिदाकाश है, अरु पृथ्वी पर्वत नदियां सर्वका आश्रय है, सो चिदाकाश है, अरु द्रष्टा दृश्य दर्शन इह तीनों जिसतें उपजे हैं, बहुरि जिसविषे लीन होते हैं, ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है, सो चिदाकाश है, अरु जिसतें सर्व उपजते हैं, अरु जो इह सर्व है, ऐसा जो सर्वात्मा है, सो चिदाकाश है, अर्धरात्रकों जो उठता है, इंद्रियांकी चपलताका विषयतें अभाव होता है, अफुर सत्ता ति

स कालमें होती है, सो चिदाकाश है ॥ हे रामजी! जिस संवित्‌विषे स्वप्नसृष्टि फुरती है, बहुरि जाग्रत भासती है, दोनोंके करनेहारेमें शोभता है, सो चिदाकाश है, अरु जैसा फुरणा होता है, तैसाही जगत्‌विषे भासता है, उही द्रष्टा दर्शन दृश्य होकरि भासता है, दूसरा कछु नहीं, अरु आत्मरूपी सूत्र है, अरु असत् सत् जगत्‌रूपी मणिके जिसविषे परोये हुए हैं, जिसके आश्रय इनका फुरणा होता है, सो चिदाकाश है ॥ हे रामजी! जिसके आश्रय निमेषविषे जगत् उपजता है, अरु उन्मेषविषे लीन हो जाता है ऐसी जो अधिष्ठानसत्ता है, तिसकों चिदाकाश जाण, यह सब जगत् मिथ्या है, भ्रांति करिके भासता है, जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, इसतें जो रहित है, जिसविषे संकल्प विकल्प क्षोभ नहीं, अरु सदा अपणे आपविषे स्थित है, दुःखतें रहित निर्विकल्प सत्ता है, सो चिदाकाश है॥ हे रामजी! नेतिनेतिकरि जो पाछे अनाद्य पद शेष रहता है, तिसकों तूं चिदाकाश जाण, अरु आत्मसत्ता शुद्ध चेतन सबका अपणा आप है, सबका अनुभवरूप होकरि प्रकाशता है, जैसा तिसविषे फुरणा होता है, जो यह ऐसे है, तैसा हो भासता है, सो चिदाकाशरूप है, तातें शुद्ध आत्मसत्ताही फुरणेकरि जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे जाग्रतके अंतविषे अद्वैतसत्ता होती है, बहुरि तिसतें स्वप्नसृष्टि भासि आती है, तौ स्वप्नसृष्टि वास्तव कछु उपजी नहीं, उही अनुभव स्वप्नसृष्टि हो भासता है, तैसे यह जगत् जो कार्यरूप दृष्ट आता है, सो अविद्या करिके भासता है, वास्तव कछु उपज्या नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण भासती है, तैसे यह सृष्टि अकारण है, ब्रह्मातें आदि चीटीपर्यंत जेता कछु स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है; कछु उत्पन्न नहीं भया, जो दूसरा कछु न हुआ तौ कारण कार्य भी कछु न हुआ ॥ हे रामजी! न कोउ द्रष्टा है, न दृश्य है, न भोक्ता है, न भोग है, सब कल्पनामात्र हैं, आत्मअज्ञानकरि कल्पना उठती है, आत्मज्ञानकरि लीन हो जाती है, जैसे समुद्रके जानणेतें, अवर तरंग कल्पना मिटि जाती है, अनुभव आत्माविषे कारणकार्य कछु नहीं, अरु

जो तूं कहै, कारणकार्य भासते क्यौं हैं, तौ जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके पदार्थ दृष्ट आते हैं, परंतु वास्तव कछु नहीं बने, तैसे यह जगत् कारणकार्य कछु बन्या नहीं, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभव ही नगररूप हो भासता है, तैसे यह जगत् भासता है ॥ हे रामजी! आत्मसत्ताही फुरणेकरि जगत्की नांई भासती है, जिस जगत्कों इह इंद्ररूपकरि कहता है, सो भी अहंरूप है, जिसकों यह समुद्र कहता है, सो भी अहंकाररूप है, जिसकों इह रुद्र कहता है, सो भी इसका अनुभवरूप है, इत्यादिक जेता कछु जगत् भासता है, सो भावना मात्र है, जैसी इसकी भावना दृढ होती है, तैसा रूप होकरि भासता है, जैसे चिंतामणि अरु कल्पांतरविषे जैसी भावना होती तैसेही सिद्ध होता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है, तैसी हो भासती है, तातें चिदाकाशका निश्चय दृढ होता है, तब अज्ञान करिके जो विरुद्ध भावना भई थी सो निवृत्त हो जाती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे नि० जगत्निर्वाणवर्णनं नाम पंचदशाधिक द्विशततमः सर्गः ॥ २१५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब मन थोडा भी फुरता है, तब यह जगत् उत्पन्न हो आता है, अरु जब फुरणेतें रहित होता है, तब जगत् भावना मिटि जाती है, इस प्रकार जो जानता है, सो ज्ञानवान् पुरुष है, इंद्रियांकरि देखता सुणता ग्रहण करता भी निर्वासनिक हो जाता है, अरु जगत्की उरतें घन सुषुप्ति होता है ॥ हे रामजी! जिसका मन निर्वासनिक शांत भया है, सो बोलता चालता खाता पीता भी पाषाणवत् मौन हो जाता है, तातें यह जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, जैसे मृगतृष्णाकी नदी अणहोती भासती है, जैसे भ्रम करिके आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मनके भ्रम करिके आत्माविषे जगत् भासता है, आदिकारणतें कछु उत्पन्न नहीं भया, जिसका आदिकारण नहीं पाइयें सो कार्य भी असत् जाणियें तातें सब जगत् कारणविनाही भासता है, उपजा कछु नहीं ॥ हे रामजी! जो पदार्थ कारणविना भासता है, अरु जिसविषे भासता है, सो

अधिष्ठानसत्ता है, अधिष्ठानविषे भास्या तिसकों भी उह रूप जाणियें, अरु जो अधिष्ठानतें व्यतिरेक भासै सो भ्रममात्र जाणियें, जैसे स्वप्नविषे इंद्रियादिक पदार्थ भासि आते हैं, तिसविषे दृश्य दर्शन सब मिथ्या है, हुआ कछु नहीं, तैसे यह जाग्रत जगत् भी मिथ्या है, न कछु उपजा है, न स्थित भया है, न आगे होणा है, न नाश होणा है, जो उपजाही नहीं तौ नाश कैसे होवै, न कोउ द्रष्टा है, न दर्शन है, न दृश्य है, केवल चिन्मात्रसत्ता अपणे आपविषे स्थित है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह द्रष्टा दर्शन दृश्य क्या है, अरु कैसे भासता है, यह आगे भी कहा है, अरु बहुरि भी कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह दृश्य सब अदृश्यरूप है, कारणरहित दृश्य हो भासती है, द्रष्टा दर्शन दृश्य जेता कछु जगत् विस्तारसहित भासता है, सो आदि स्वरूपतें सब परात्मस्वरूप है, जैसे स्वप्नविषे आकाशका बन भासै, अरु अवर पदार्थ भासैं सो सब चिदाकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् भी चिन्मात्ररूप है, कारणकार्यभाव कहूं नहीं, जैसे वायु स्पंदरूप होती है, तब भासती है, निस्पंद हुए नहीं भासती, तैसे आत्माविषे चित्त फुरता है, तब आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, सो क्या वस्तु है, उही आत्मसत्तारूप भावविषे भाव है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, तातें कछु भासता है, सो चेतनका आभास प्रकाश है, परमार्थसत्ता केवल अपणे आपविषे स्थित है, अरु तिसतें इतर कहियें तौ न द्रष्टा है, न दृश्य है, आत्मसत्ताही ज्यौंकी त्यौं है॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! ब्रह्मके वेत्ता जो इस प्रकार हैं, तौ कारणकार्यका भेद कैसे प्रवर्तता दिखता है॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसा तैसा रूप हो भासता है, चेतन आकाशही जगत्‌रूप हो भासता है, अवर कहूं कारण है, न कार्य है, जैसे स्वप्नसृष्टि कारणकार्यसहित भासती है, सो किसी कारणतें तौ नहीं उपजी! अकारणरूप है, तैसे इह सृष्टि किसी कारणतें नहीं उपजी, अकारणरूप है, न कहूं करता है, न भोगता है, भ्रम

करिके कर्त्ता भोक्ता भासता है, स्वप्नकी नाईं विकल्प उठते हैं, वास्तवतें ब्रह्मसत्ताही है ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे नगर अरु जगत् भासता है, सो चिदाकाश अनुभवसत्ताही ऐसे हो भासती है, अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् संपूर्ण चिदाकाश है, जब ऐसे जाणैगा, तब जगत् भी भ्रमतत्व भासैगा ॥ हे रामजी! यह जगत् चित्तके फुरणे करिके उपजा है, जैसे मूर्ख बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है, तैसे चित्तके भ्रमकरि जगत्कों कल्पीता है, सो इसका कारण ब्रह्मही है, अवर कारण कहूं नहीं, काहेतें जो महाप्रलयविषे चिदाकाशही रहता है, सो कारण किसका होवै, उही सत्ता इंद्ररूप है, उही रुद्ररूप है, नदीयां पर्वत आदिक जेता कछु जगत् भासता है, सो उहीरूप है, तिसतें इतर तौ द्वैतरूप कछु नहीं, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसा रूप भासता है, जैसे चिंतामणि कल्पवृक्षविषे जैसी भावना कहूं करता है, तैसा रूप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जैसी भावना होती है, तैसाही पदार्थरूप हो भासता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कारणकार्याभाववर्णनं नाम द्विशताधिकषोडशः सर्गः ॥ २१६ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अचैत्य चिन्मात्र जो आकाशरूप आत्मसत्ता है, सो इस जगत्रूप हो भासती है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जब अहं फुरणा होता है, तब जगत् हो भासता है सो अहंरूप जीव है, जगतविषे जीवता दृष्ट आती है, परंतु मृतककी नांई स्थित है, अरु तूं मैं आदिक सब जगत् जीवता बोलता चलता व्यवहार करता भी दृष्ट आंता है, परंतु काष्ठ मौनवत् स्थित है, आत्मरूपी रत्नका जगत्रूपी चमत्कार है, जो प्रकाश आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे धुंएका पर्वत मेघ भासता है सो भ्रांतिमात्र है, तैसे यह जगत् लक्षण भी भासता है, परंतु वास्तवतें कछु नहीं, अवस्तुभूत है, उपजा कछु नहीं ॥ हे रामजी! चित्तरूपी बालकनें जगत्जालरूपी सैना रची है, सो असत् है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आदिक भूत

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भ्रांतिमात्र हैं, तिनविषे सत् प्रतीति करणी मूर्खता है, बालककी कल्पनाविषे सत् प्रतीति बालकही करते हैं, इस जगत्कों आश्रय करिके जो सुखकी इच्छा करते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कहूं आकाशके धोणेका यत्न करै, तैसे उनका यत्न व्यर्थ है, यह सब जगत् भ्रांतिरूप है, इसविषे जो आस्था करते हैं, अरु इसके पदार्थ पावणेका यत्न करते हैं सो क्या करते हैं, जैसे कहूं पुत्र पावणेका यत्न करै सो व्यर्थ है, तैसे जगतविषे जो सुखके पावणेका यत्न करते हैं, सो व्यर्थ यत्न है ॥ हे रामजी! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जो भ्रांतिमात्र हैं, तौ इनकी उत्पत्ति किसकरि कैसे कहिये, जो मूर्ख बालक हैं, तिनकों पृथ्वी आदिक जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं, ज्ञानवान्कों सत्य नहीं भासते, अज्ञानीकों सत्य भासते हैं, तिनसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, जैसे सोएकों स्वप्नविषे आत्मअनुभवसत्ताही पृथ्वी पहाड नदियां जगत् हो भासती है, सो सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं, तैसे यह जगत् आकारसहित भासता है, परंतु आकार कछु बन्या नहीं, उही निराकारसत्ता जगत्रूप हो भासती है, सो निराकारही है, अवर जगत् कछु नहीं, ज्यौंकी त्यौं आत्मसत्ता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अभावप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तदशः सर्गः ॥ २१७ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ जगत् अविद्यमान है, अरु अज्ञानकरिके स्वप्नकी नांई सत् भासता है, विद्यमान भी है, स्वप्ननगर शून्यरूप है, तैसे यह जगत् अज्ञानरूप है, सो अज्ञान क्या है, अरु केते कालकी अविद्या हुई है, अरु किसकों है, अरु इसका प्रमाण क्या है, सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु तुझकों जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्या है, सो अविद्या अनंत है, देश अरु कालकरि इसका अंत कदाचित् नहीं होता, तातें अनंत है, जिसकों अपणे वास्तवस्वरूपका अज्ञान है, तिसकों सत्य दिखाई देता है, इस उपर एक इतिहास है सो सुण ॥ हे रामजी! आत्मरूप चिदाकाश है, तिस चिदाकाश

के अणुविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं, तिसविषे एक ब्रह्मांड इसी जैसा है, तिस ब्रह्मांडके जगत्विषे तुरमत नाम देश है, तिसका राजा विपश्चित था, सो एकसमय अपणी सभाविषे बैठा था, अरु चारों दिशा उनकी सैना हैं, अरु बडा तेजवान् अरु अग्निदेवताकों पूजता था, अवर किसी देवताकों पूजता न था, अग्निहीकों देवता जाणीकरि पूजता था, अरु बडी लक्ष्मीकरि शोभता था, अरु बहुत गुणकरि संपन्न था, अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न था, एक कालमें सभाविषे बैठा था, जो पूर्व दिशाकी उरतें हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! तुमारा जो मंडलेश्वर पूर्व दिशाका था, सो जराकरि मृतक भया है, सो कहां गया, मानौ यमकों जीतणे गया है, तातें पूर्व दिशाकी रक्षा करौ, उहां अवर मंडलेश्वर आता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार उह कहता था, जो अवर हरकारा हलेसों आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! तुम जो पश्चिमदिशाका मंडलेश्वर किया था, सो तपकरि मृतक भया है, अरु तहां एक अवर मंडलेश्वर आता है, तातें उहांकी रक्षा करौ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दूसरा हरकारा कहता था, सो अवर हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! दक्षिण दिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिमकी रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गहीविषे मृतक भया, तातें दोनोंकी रक्षाके निमित्त सैना भेजहु, जो शत्रु दृढ आनि हुआ है, विलंबका समय नहीं, शीघ्रही सैना पठावहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजा सुणीकरि बाहिर निकस्या, अरु कहने लगा, सब सैना मेरेपास आवै, अरु दिशाकी रक्षाके निमित्त जावै, बडे शस्त्र ले जावहु, हस्ती घोडा रथ आदिक सैना ले जावहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजा कहता था, जो एक अवर पुरुष आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! उत्तर दिशाकी उर जो तुमारा मंडलेश्वर था, तिसके उपरि अवर शत्रु आनि पडा है, बडा युद्ध होता है, तातें उसकी रक्षाके निमित्त सैना भेजहु, विलंबका समय नहीं, शीघ्रही भेजहु, अरु दुष्ट आगे केई चले आते हैं, मैं बहुरि जाता हौं, जो मेरा स्वामी युद्ध करता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि उ

ह गया, तब द्वारपाल आयकरि कहत भया ॥ हे भगवन्! उत्तर दिशाका मंडलेश्वर आया है, आज्ञा होवै तौ ले आउं, तब राजानें कहा, ले आवहु, उहां ले आया, राजाके सन्मुख आयकरि प्रणाम किया, राजा देखत भया, जो अंग टूटि गये हैं, अरु मुखतें रुधिर चला जाता है, ऐसी अवस्थामें भी धैर्यसंयुक्त मंडलेश्वर कहत भया ॥ हे भगवन्! इह मेरे अंगका हाल भया है, मैं तुमारे देश राखणेकों चला था, अरु मेरे उपर शत्रु आनि पडा, मेरी सैना थोडी थी, इस कारणतें दउडिकरि तुमारेपास आया हौं, जो प्रजाकी रक्षा करहु ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार उसनें कहा, तब राजानें सब मंत्री बुलाये, मंत्री राजापास आये, अरु कहत भये ॥ हे भगवन्! अब तीन उपाय छोडहु, अरु एक उपाय करहु, एक नम्रता छोडहु, दूसरा धन देणा छोडहु, अरु बुद्धिभेद भी छोडहु, ये तीनों अब नहीं चाहीते, काहेतें जो नम्रता मानणेवाले नहीं, यह नीच पापी हैं, अरु धन देणा इस कारणतें नहीं चाहिता, जो यह आधीन हैं, अरु बुद्धिकरि भेद भी नहीं जाणते, जो सब मिलि एकठे भये हैं, तातें यह तीनों उपाय छोडहु, अरु एक उपाय करहु, जो युद्धही होवै, विलंबका समय नहीं, उनकी सैना अब निकट आई है, अब उच्छाह सहित कर्म करणा है, जो प्राणकी रक्षा नहीं चाहणी ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब मंत्रीनें कहा, तब राजा वचन किया, सब सैना मेरे संभवकरि उनके सन्मुख जावहु, निसान नगारे हस्ती घोडा रथी पियादा सैनासाथ जावै, इस प्रकार जब राजानें कहा, तब सब सैना विद्यमान आनि स्थित भई, नउबत नगारे बाजणे लगे, नानाप्रकारके शस्त्रसहित चारौं प्रकारकी सैना एकठी भई, तब राजानें कहा ॥ हे साधो! तुम आगे जावहु, सैना आगे होवै, तिसके पाछे सैनापति जावै, तिसकेसाथ युद्ध करहु, स्नान करिके मैं भी चला आता हौं ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि मंत्रीकों चलाय, अरु पाछे गंगाजलसाथ राजानें स्नान किया, एक स्थानविषे अग्निका कुंड था, तिसके निकट जायकरि हवन किया, जब अग्नि बहुत प्रज्वलित भई त

ब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! एता काल मुझकों व्यतीत भया है, जो यथाशास्त्र विचरता रहा हौं, अरु अपणी प्रजाकों सुखी राखी है, अरु अभय किया, अरु शत्रुकों नाश करणेहारा हौं, शत्रुकों मारी सिंहासनके तले दिआ है, आप सिंहासनपर बैठा हौं, पातालवासी दैत्य सब मैं जीति राखे हैं, अरु दशों दिशा अपणे आधीन करी हैं, सात समुद्रपर्यंत मेरे भयकरि कंपते हैं, अरु सब ठौर मेरी कीर्त्ति हो रही है, अरु रत्नोंके स्थान मेरे भरे हुए हैं, वस्त्र सैना घोडे हाथी भी बहुत हैं, अरु बडे भोग भी मैं भोगे हैं, अरु दान भी बडे बडे किये हैं, सिद्ध देवताविषे भी मेरा यश हुआ है, सब उर मेरा यश हुआ है, अरु शरीर भी बडा हुआ है, अरु क्षोभ भी बडा आनि प्राप्त भया है, अब मेरा जीवणेतें मरणा भला है ॥ हे भगवन्! मैं तुमकों सीस निवेदन करता हौं, कृपा करिके लेवहु, अरु जब मुझपर प्रसन्न होवहुगे, तब एककी चार मूर्ति देणी, जो चारौं उरकों जावैं, अरु जहां मुझकों कछु कष्ट होवै, तहां दर्शन देणा ॥ हे रामजी! इस प्रकार कहीकरि खड्ग निकास्या, अपणां सीस काटिकरि अग्निविषे डारि दिया, अरु धड आपही अग्निविषे जाय पडा, सीस धड दोनों भस्म हो गये, अग्नि भक्षणकरि लिये, बहुरि उसी जैसी चार मूर्त्यां निकसी आई, उसी जैसे आकार वस्त्र भूषण मुकुट कवच पहिरे हुए नानाप्रकारके शस्त्र धारे हुए उदय भये ॥ हे रामजी! इस प्रकार बडे तेजसंयुक्त चारों राजा विपश्चित प्रगट भये, रथ हस्ती घोडा प्यादा चारों प्रकारकी सेना भी प्रगट भई, अरु चारों उरतें उहां शत्रु आनि युद्ध करणे लगे, बडा युद्ध होता है, नगर जलाते हैं, अरु हाहाकार शब्द होता है, शूरवीर युद्धविषे प्राणकों त्यागते हैं, अरु उछलीकरि लडते हैं, बडे रुधिरके प्रवाह चलते हैं, खड्ग बरछीकी वर्षा होती है, अग्निका अट्ट अट्ट शब्द होता है, मानों समयविना प्रलय आणे लगी है, बडा युद्ध होता है, जो शूरमे हैं, सो युद्धविषे मरणेकों जीवणा मानते हैं, अरु जीवणेकों मरण जानते हैं, ऐसे निश्चयकों धारिके युद्ध करते हैं, अरु कायर हैं सो भागि भागि जाते हैं, जैसे गरुडके भयकरि स

भ्रांतिमात्र हैं, तिनविषे सत् प्रतीति करणी मूर्खता है, बालककी कल्पनाविषे सत् प्रतीति बालकही करते हैं, इस जगत्कों आश्रय करिके जो सुखकी इच्छा करते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे कहूं आकाशके धोणेका यत्न करै, तैसे उनका यत्न व्यर्थ है, यह सब जगत् भ्रांतिरूप है, इसविषे जो आस्था करते हैं, अरु इसके पदार्थ पावणेका यत्न करते हैं सो क्या करते हैं, जैसे कहूं पुत्र पावणेका यत्न करै सो व्यर्थ है, तैसे जगतविषे जो सुखके पावणेका यत्न करते हैं, सो व्यर्थ यत्न है ॥ हे रामजी ! यह पृथ्वी आदिक जो संपूर्ण भूत पदार्थ भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जो भ्रांतिमात्र हैं, तौ इनकी उत्पत्ति किसकरि कैसे कहिये, जो मूर्ख बालक हैं, तिनकों पृथ्वी आदिक जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं, ज्ञानवान्कों सत्य नहीं भासते, अज्ञानीकों सत्य भासते हैं, तिनसाथ हमारा क्या प्रयोजन है, जैसे सोएकों स्वप्नविषे आत्मअनुभवसत्ताही पृथ्वी पहाड नदियां जगत् हो भासती है, सो सब आकार भासते भी निराकाररूप हैं, तैसे यह जगत् आकारसहित भासता है, परंतु आकार कछु बन्या नहीं, उही निराकारसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, सो निराकारही है, अवर जगत् कछु नहीं, ज्यौंकी त्यौं आत्मसत्ता है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अभावप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तदशः सर्गः ॥ २१७ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ जगत् अविद्यमान है, अरु अज्ञानकरिके स्वप्नकी नांई सत् भासता है, विद्यमान भी है, स्वप्ननगर शून्यरूप है, तैसे यह जगत् अज्ञानरूप है, सो अज्ञान क्या है, अरु केते कालकी अविद्या हुई है, अरु किसकों है, अरु इसका प्रमाण क्या है, सो कहौ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझकों जगत् दृष्ट आता है, सो सब अविद्या है, सो अविद्या अनंत है, देश अरु कालकरि इसका अंत कदाचित् नहीं होता, तातें अनंत है, जिसकों अपणे वास्तवस्वरूपका अज्ञान है, तिसकों सत्य दिखाई देता है, इस उपर एक इतिहास है सो सुण ॥ हे रामजी ! आत्मरूप चिदाकाश है, तिस चिदाकाश

के अणुविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं, तिसविषे एक ब्रह्मांड इसी जैसा है, तिस ब्रह्मांडके जगत्विषे तुरमत नाम देश है, तिसका राजा विपश्चित था, सो एकसमय अपणी सभाविषे बैठा था, अरु चारों दिशा उनकी सैना हैं, अरु बडा तेजवान् अरु अग्निदेवताकों पूजता था, अवर किसी देवताकों पूजता न था, अग्निहीकों देवता जाणीकरि पूजता था, अरु बडी लक्ष्मीकरि शोभता था, अरु बहुत गुणकरि संपन्न था, अरु बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न था, एक कालमें सभाविषे बैठा था, जो पूर्व दिशाकी उरतें हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! तुमारा जो मंडलेश्वर पूर्व दिशाका था, सो जराकरि मृतक भया है, सो कहां गया, मानौ यमकों जीतणे गया है, तातें पूर्व दिशाकी रक्षा करौ, उहां अवर मंडलेश्वर आता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार उह कहता था, जो अवर हरकारा हलेसों आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! तुम जो पश्चिमदिशाका मंडलेश्वर किया था, सो तपकरि मृतक भया है, अरु तहां एक अवर मंडलेश्वर आता है, तातें उहांकी रक्षा करौ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार दूसरा हरकारा कहता था, सो अवर हरकारा आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! दक्षिण दिशाका मंडलेश्वर पूर्व पश्चिमकी रक्षाके निमित्त गया था सो मार्गहीविषे मृतक भया, तातें दोनोंकी रक्षाके निमित्त सैना भेजहु, जो शत्रु दृढ आनि हुआ है, विलंबका समय नहीं, शीघ्रही सैना पठावहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजा सुणीकरि बाहिर निकस्या, अरु कहने लगा, सब सैना मेरेपास आवै, अरु दिशाकी रक्षाके निमित्त जावै, बडे शस्त्र ले जावहु, हस्ती घोडा रथ आदिक सैना ले जावहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार राजा कहता था, जो एक अवर पुरुष आया, अरु कहत भया ॥ हे भगवन्! उत्तर दिशाकी उर जो तुमारा मंडलेश्वर था, तिसके उपरि अवर शत्रु आनि पडा है, बडा युद्ध होता है, तातें उसकी रक्षाके निमित्त सैना भेजहु, विलंबका समय नहीं, शीघ्रही भेजहु, अरु दुष्ट आगे केई चले आते हैं, मैं बहुरि जाता हौं, जो मेरा स्वामी युद्ध करता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि उ

र्प भागि जाते हैं, अरु शूरमें सन्मुख होकरि लढते हैं, इस प्रकार बडा युद्ध होणे लगा, रुधिरकी नदियां चली, तिनविषे हस्ती घोडा रथ शूरमे वहते जावैं, अरु बडे बडे वृक्ष नगर गिरते वहते जावैं, अरु मांसभक्षणके निमित्त योगिणी आनि स्थित भई हैं, जो जो युद्धविषे मृतक होवैं, तिनकों अप्सरा विद्याधरि विमानउपर चडायकरि स्वर्गकों ले जावैं ॥ हे रामजी! इस प्रकार जब युद्ध हुआ, तब राजा विपश्चितकी सेना सब शून्य हो गई, क्या जो थोडी हो गई, अरु राजानें सुण्या जो सैना बहुत मारी गई है, तब राजानें अस्वार होकरि आय देख्या जो सैना थोडी हो गई है, एक एक राजा एक एक उरकों गया, चारों राजा चारों उरकों गए, अरु विचार किया जो यह महागंभीर सैनारूपी समुद्र है, तिसविषे शस्त्ररूपी जल है, धारारूपी तरंग हैं, अरु मच्छरूपी शूरमे हैं, ऐसा जो समुद्र है, तिसकों अगस्त्य होकरि मैं पान करौं, ऐसे विचारकरि उद्यम किया, काहेतें जो विशेष सैना देखी, एक तौ आगेहीकों चले आवैं, अरु एक शूरमे तेजकरि सैनाकों जलावैं, अरु तीसरी बहुत हैं, ऐसी तीन प्रकारकी सैनाके तीन उपाय किये, प्रथम तौ वायव्यास्त्र हाथ लिया, परमात्म ईश्वरकों नमस्कार किया, अरु मंत्र पढिके पवनका अस्त्र चलाया, तिसकरि अंधेरी आई, तब जेती सैना आगे चली आती थी, सो सब पाछे उलटी उडणे लगी, बहुरि मेघरूपी अस्त्र चलाया, तब वर्षा होणे लगी, तिसकरि जो तेज उनकी सैनाकों जलाता था सो शीतल हो गया, तिसके अनंतर शिव अस्त्र चलाया, सो कैसा चलाया, प्रथम शस्त्रकी नदी चली, बहुरि त्रिशूलकी नदी चली, बहुरि चक्रकी नदी चली, बहुरि वज्रकी नदी चली, बरछीकी नदी चली, बिजलीकी नदी चली, अग्निकी नदी चली, इत्यादिक जो शस्त्र अरु अस्त्र हैं, तिनकी वर्षा हुई, जब इस प्रकार नदियां चली, तब जो कछु सैना सन्मुख आती थी सो मृतक हो गई, जैसे कमलिनी काटी जाती है, तैसे शूरवीर काटे जावैं, पहाडकी कंदरा गिरि, उडते बहुत जावैं, समुद्रविषे जाय पडैं, सुमेरु कंदराविषे जाय छुपैं, समुद्रविषे जा

यकरि सैना डूबै, जैसे अज्ञानी विषयमें डुबते हैं, इस प्रकार दोनों उरतें सैना शून्य भई, चारों दिशाकी सैना नाशकों प्राप्त भई, चीन महाचीन देशके अरु पहाड कंदराके रहणेवाले सब वहते जावैं ॥ हे रामजी! केई शस्त्रकरि अरु आंधीकरि उडे सो सब क्षेत्रविषे जाय पडे, केई वनविषे, केई नीचे देशविषे, जो पुण्यवान् था सो उत्तम क्षेत्रविषे जाय पडै, मृतक हुए उह स्वर्गकूं गये, अरु पापी नीच देशविषे जाय पडे, तिसकरि दुर्गतिकों प्राप्त हुए, केई पिशाच हुए, कितनेकों विद्याधरि ले गइयां, केई ऋषीश्वरके स्थानोंविषे जीते जाय पडे, तिनकी उननें रक्षा करी, इसी प्रकार बाणकरि छेदे हुए नाशकों प्राप्त भए, रुधिरकी नदियांविषे वहते समुद्रकी उर चले जावैं ॥ हे रामजी! जब सब सैना शून्य हो गई, तब आकाश शुद्ध हुआ, जैसे ज्ञानीका मन निर्मल होता है, तैसे आकाश अधिक क्षोभतें रहित भया, जब सब सैना शून्य भई तब चारों राजा आगेकों चले जावैं ॥ हे रामजी! चारों विपश्चित चारों दिशाके समुद्र उपर जाय प्राप्त भये, तब क्या देखे जो बडे गंभीर समुद्र हैं, कहूं रत्न चमकते हैं, कहूं हीरा मोती चमकते हैं, इत्यादिक रत्नमणीकी जात सब देखत भये, अरु बडे गंभीर समुद्रविषे मच्छ बडे देखते भये, अरु तरंग उछलते हैं, अरु रेतीविषे नानाप्रकारके वृक्ष लगे हुए हैं, लौंग एलाचीके वृक्ष चंदनके वृक्ष हैं, इत्यादिक वृक्ष समुद्र उपर जायकरि देखते भये ॥ इ०यो०नि०विपश्चितसमुद्रप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टादशः सर्गः ॥ २१८॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजा विपश्चित समुद्रपार जाय प्राप्त भये, तब उनके साथ जो मंत्री पहुचे थे, सो राजाकों सब स्थान दिखावते भये, कैसे स्थान हैं, बडे गंभीर स्थान अरु बडे गंभीर समुद्र, जो पृथ्वीके चउफेर वेष्टित हैं, अरु बडे तमाल वृक्ष अरु बावलियां पर्वतकी कंदरा हैं, तलाव है, नानाप्रकारके स्थानोंकों देखते भये, ऐसा स्थान राजाकों मंत्री दिखाइकरि कहत भये ॥ हे राजन्! तीन पदार्थ बडे अनर्थके कारण हैं, अरु परमसारका कारण हैं, एक तौ लक्ष्मी, अरु दूसरा देह आरोग्य अ

रु तीसरी यौवनावस्था, जो पापी जीव हैं, सो लक्ष्मीकों पापविषे लगावते हैं, अरु देह अरोगकरि विषयकों सेवते हैं, अरु यौवन अवस्थाविषे भी सुकृत नहीं करते, पाप करते हैं, अरु जो पुण्यवान् हैं, सो मोक्षविषे लगाते हैं, लक्ष्मीकरि यज्ञादिक शुभ कर्म करते हैं, यह अरोगकरि परमार्थ साधते हैं, यौवनअवस्थाविषे भी शुभ कर्म करते हैं, पाप नहीं करते ॥ हे राजन्! समुद्र अरु पर्वतके किसी ठौरविषे रत्न होते हैं, किसी ठौरविषे दर्दुर होते हैं, तैसे संसाररूपी समुद्रविषे कहूं रत्नोंकी नांई ज्ञानवान् होते हैं, अरु अज्ञानीरूपी दर्दुर होते हैं ॥ हे राजन्! यह समुद्र कैसा है, मानौ जीवन्मुक्त है, काहेतें जो जलकरि भी मर्यादा नहीं छांडता, अरु रागदोषतें रहित है, किसी स्थानविषे दैत्य रहते हैं, कहूं पंखसंयुक्त पर्वत हैं, कहूं वडवाग्नि है, कहूं रत्न हैं, परंतु समुद्रकों न किसी स्थानविषे राग है, न दोष है, जैसे ज्ञानवान्कों किसीविषे रागदोष नहीं, परंतु सबमें ज्ञानवान् कोउ विरला होता है, जैसे जिस वांसतें मोती निकसता है, सो वांस विरला होता है, अरु जिस सीपमें मोती निकसता है, सो सीप भी विरली होती है, तैसे तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् कोउ विरला होता है ॥ हे रामजी! संपूर्ण रचना इहांकी देख, पर्वत कैसे हैं, जिनके किसी स्थानविषे पक्षी रहते हैं, किसी स्थानविषे विद्याधर हैं, देवीयां विलास करतियां हैं, कहूं योगी रहते हैं, ऋषीश्वर मुनीश्वर रहते हैं, कहूं ब्रह्मचारी वैरागी रहते हैं, इत्यादिक पुरुष रहते हैं, यह दीप है, अरु शांत समुद्र हैं, जिनके बडे तरंग उछलते हैं, अरु पर्वतका कौतुक देख, आकाश देख, चंद्रमा सूर्य तारे देख, ऋषि मुनि देख, सर्वकों ठौर आकाश दे रहा है, महापुरुषकी नांई, अरु आप सदा असंग रहता है, शुभ अशुभ दोनोंविषे तुल्य है, स्वर्गादिक शुभ स्थान हैं, अरु चांडाल पापी नरक स्थान हैं, अरु अपवित्र हैं, परंतु आकाश दोनोंविषे तुल्य है, असंगता करिके निर्विकार है, जैसे ज्ञानीका मन सर्व स्थानतें निर्लेप होता है, तैसे आकाश सर्व पदार्थतें असंग अरु न्यारा है, अरु महात्मा पुरुषकी नांई सर्वव्यापी है ॥ हे आकाश! तूं कैसा है, सर्व प्रकाश तेरेविषे अंधकार दृष्ट आता

है, यह आश्चर्य है ॥ हे आकाश ! तूं सबका आधारभूत है, तुझकों शून्य कहते हैं, सो मूर्ख हैं, दिन तुझविषे श्वेत भासते हैं, अरु रात्रकों अंधकार भासता है, अरु संध्याकालमें तेरेविषे लाली भासती है, अरु तूं तीनोंतें न्यारा है, यह तीनों राजसी तामसी सात्विकी गुण हैं, तूं इनके होते भी असंग है ॥ हे आकाश ! तूं निर्मल है, प्रकाश अरु तम तेरेविषे दृष्टि आते हैं, परंतु तूं सदा ज्योंका त्यों है, यह अनित्यरूप है, चंद्रमा तेरेविषे शीतलता करता है, अरु सूर्य दाहक होता है, अरु तीर्थ आदिक पवित्र स्थान हैं, पापी आदिक अपवित्र स्थान हैं, परंतु सबविषे एक समान ज्योंका त्यों रहता है, वृक्षके बढणे उंचे होणेकों तूंही देता है, अपणी महिमाकों तूं आपही जाणै, अवर कोउ तेरी महिमाकों पाय नहीं सकता, तूं निष्किंचन अद्वैत है, अरु सर्वकों धारि रहा है, अरु सर्वका अर्थ तेरेकरि सिद्ध होता है, तृण जल नीचेकों जाता है, अरु तूं सबतें उंचा है, अरु विभु है, अनेक पदार्थ तेरेविषे उत्पन्न होते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तूं सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे अग्नितें चिणगारे उपजते हैं, अरु अग्निहीविषे लीन हो जाते हैं, तैसे तेरेविषे अनंत जगत् उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, तूं सदा ज्योंका त्यों रहता है, जो तुझकों शून्य कहते हैं, सो मूढ हैं ॥ हे राजन्! ऐसा आकाश कवन है सो सुण, ऐसा आकाश आत्मा है, जो चेतन आकाश है, तिसविषे अनंत जगत् उत्पन्न होते हैं, अरु लीन हो जाते हैं, तिसकों जो शून्य कहते हैं, सो महामूर्ख हैं, जो सर्वका अधिष्ठान है, अरु सर्वकों धारि रहा है, अरु सदा निःसंग है, अरु ऐसे चिदाकाशकों नमस्कार है ॥ हे राजन्! यह आश्चर्य है जो सदा एकरस है, तिसविषे नानातरंग भासते हैं यही माया है ॥ हे राजन् ! एक विद्याधर अरु विद्याधरी थे, तिनके मंदिरविषे एक ऋषि आय निकस्या, तिसका विद्याधरनें आदरभाव न किया, तब ऋषीश्वरनें शाप दिया, जो तूं द्वादश वर्षपर्यंत वृक्ष होवैगा, तब उह विद्याधर वृक्ष हो गया, अब जो हम आये हैं, हमारे देखतेही उह शापतें मुक्त हुआ, वृक्षभावकों त्यागिकरि बहुरि विद्याधर ह

आ है, इह ईश्वरकी माया है, कबहु कछु हो जाता है, कबहु कछु हो जाता है ॥ हे मेघ! तूं धन्य है, तेरी चेष्टा भी सुंदर है, अरु तीर्थविषे सदा तेरा स्नान होता है, अरु तूं सबतें उंच विराजता है, सब आचार तेरा भला दृष्ट आता है, परंतु एक तेरेविषे नीचता है, जो गडेकी वर्षा करता है, तिसकरि खेतियां नष्ट हो जातियां हैं, बहुरि उगतियां नहीं, तैसे अज्ञानीकी चेष्टा देखणे मात्र सुंदर है, अरु अंतरतें मूर्ख है, तिनकी संगति बुरी है, अरु ज्ञानवान्‌की चेष्टा देखणे मात्र भली नहीं, तौ भी उनकी संगति कल्याण करती है ॥ हे राजन्! सबतें नीच श्वान है, काहेतें जो कोई तिसके निकट आता है, तिसकों काटता है, अरु घरघरविषे भटकता फिरता है, अरु मलीन स्थानोंविषे जाता है, तैसे अज्ञानी जीव श्रेष्ठ पुरुषकी निंदा करता है, अरु मनविषे तृष्णा रहती है, अरु विषयरूपी मलीन स्थानोंविषे गिरते हैं, सो मूर्ख मनुष्य मानौं श्वान हैं, अरु श्वान नीचतें नीच है, जो ब्रह्मानें संपूर्ण जगत्‌कों रचा है, शुभ भी अरु अशुभ भी तिसविषे श्वान नीच है, सो श्वान क्या समुझा है? एक पुरुष श्वानसों प्रश्न करत भया ॥ हे श्वान! तुझतें कोइ नीच है, अथवा नहीं, तब श्वाननें कहा, मुझतें नीच मूर्ख मनुष्य है, उनतें मैं श्रेष्ठ हौं, प्रथम तौ मैं सूरमा हौं, अरु जिसका भोजन खाता हौं, तिसकी रक्षा करता हौं, अरु उसके द्वारे बैठा रहता हौं, अरु मूर्खतें इह तीनों कार्य नहीं होते, तातें मैं उसतें श्रेष्ठ हौं, काहेतें जो मूर्खकों देहाभिमान है, तातें श्वानसों नीच है ॥ हे राजन्! परम अनर्थका कारण देहाभिमान है, देहके अभिमान करिके परम आपदाकों प्राप्त होता है, सो मूर्ख नहीं मानौं कउआ है, कउआ क्या करता है, सबतें उंचे टासपरि जाय बैठता है, अरु कां कां करता है, मानौं मुखकी ध्वजा विराजती है ॥ हे राजन्! कमलकी खाण तालके निकट एक कउआ जाय निकस्या, क्या देखे जब भंवर कमलकी सुगंधि बैठे लेते हैं, तिनकों देखीकरि हसणे लगा, अरु कां कां शब्द करत भया, तिसकों देखि भंवरे हसे, जो यह कमलकी सुगंधिकों क्या जाणै, तैसे जिज्ञासी भंवरेवत्

हैं, परमार्थरूपी सुगंधिकों लेते हैं, अरु जो अज्ञानीरूपी कउए हैं, सो परमार्थरूपी सुगंधिकों नहीं जानते, इस कारणतें मूर्खकों देखिकरि जिज्ञासी हसते हैं, जो आत्मरूपी सुगंधिकों नहीं जानते, अरे कउआ तूं क्यौं हंसकी रीस करता है, हंस तौ हीरा मोती चुगणेहारे हैं, अरु तूं नीच स्थानोंकों सेवणेहारा है, मंत्रीनें कहा ॥ हे भंवरे ! कोएल तुम कमलकों देखीकरि क्या प्रसन्न होते हौ, प्रसन्न तब होवहु, जब वसंत ऋतु होवै, यह तौ वर्षाकालका समय है, यह फूल गडेकरि नष्ट हो जावैगा ॥ हे राजन् ! कोएलरूपी जिज्ञासी हैं, तिनकों यह उपदेश है॥ हे जिज्ञासी ! जो सुंदर पदार्थ तुमकों दृष्टि आते हैं, इनकों देखिकरि तुम क्यौं प्रसन्न होते हौ, तब प्रसन्न होवै जो यह सत्य होवै, यह तौ मिथ्या है, अविद्या करिके रचे हैं, तुम क्यौं प्रसन्न होते हौ, अपणे कुलविषे जाय बैठहु, अज्ञानीका मार्ग छोडि देवहु, जैसे कउआ हंसाविषे जाय बैठता है, तौ भी उसका चित्त अपणे गंदगीके भोजनविषे होता है, जो हंसका आहार मोती है, तिन मोतीकी उर देखता भी नहीं, तैसे अज्ञानी जीव कदाचित् संतकी संगतिविषे जाय भी बैठता है, तौ भी उसका चित्तविषयकी उर भ्रमता फिरता है, स्थिर नहीं होता, अरु जैसे कोएलका बच्चा कउआकों माता पिता जाणीकरि उनविषे जाय बैठता है, तब उनकी संगतिकरि इह भी गंदगीके भोजन करनेहारा हो जाता है, तिसकों वर्जन करते हैं, रे बेटा, तूं कउआकी संगति मत बैठहु, अपणे कुलविषे बैठ, काहेतें जो तेरा भी नीच आहार हो जावैगा, तैसे जिज्ञासी जो अज्ञानीका संग करता है, तब उनके अनुसार तिसकों विषयकी तृष्णा उत्पन्न होती है, तिसके वर्जन करते हैं, रे जिज्ञासी, तूं मूर्ख अज्ञानीविषे मत बैठ, अपणे कुल हैं संतजन, तिनविषे बैठ, जैसे कोएलके बच्चेकों कउए सुख देणेहारे नहीं होते, तैसे मूर्ख तुझकों सुख देणेहारे नहीं होवैंगे, मंत्री बहुरि कहता है, अरी ईल तूं क्यौं हंसकी रीस करती है, तूं भी बहुत उंचे उडती है, परंतु हंसका गुण तेरेविषे कोउ नहीं, जब तूं मांसकों पृथ्वीपर देखती है, तब उहां गिर पडती है, अरु

हंस नहीं गिरते, तैसे जो मूर्ख हैं, सो संतकी नांई उंचे कर्म भी करते हैं, परंतु विषयकों देखीकरि गिरते हैं, अरु संत नहीं गिरते, तौ मूर्ख संतकी कैसे रीस करै, बहुरि मंत्री कहता है ॥ हे बगला! तूं हंसकी रीस क्या करता है, अपणे पाषंडकों छुपायकरि तूं आपकों हंसकी नांई उज्वल दिखाता है, जब मच्छ निकसता है, तब तूं ग्रासि लेता है, यह तेरेविषे अवगुण है, अरु हंस मानस सरोवरके मोती चुगणेहारे हैं, तूंटोएमेंतें तृष्णा करिके मच्छी खाणेहारा है, तूं क्यों आपकों हंस मानता है? तैसे अज्ञानी जीव विषयकी तृष्णा करते हैं, अरु अज्ञानवान् विवेककरि तृप्त हैं, तिनकी रीस अज्ञानी क्यों करता है ॥ हे राजन्! जो हंस हैं, सो सदा अपणी महिमाविषे रहते हैं, अरुअपणा जो मोतीका आहार है, तिसकों भोजन करते हैं, अवर किसी पदार्थकों स्पर्श नहीं करते, जैसे चंद्रमुखी कमल चंद्रमाकों देखिकरि शोभा पावते हैं, चंद्रमाविना शोभा नहीं पावते, तैसे बुद्धि भी तब शोभा पावती है, जब ज्ञान उदय होता है, आत्मज्ञानविना बुद्धि शोभा नहीं पावती, अरु बडे बडे सुगंधिवाले वृक्ष हैं, तिनका माहात्म्य भंवरेही जानते हैं, इतर जीव नहीं जानते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! समुद्रके कांठेपर राजा विपश्चितकों मंत्री ऐसे कहीकरि बहुरि कहत भये ॥ हे राजन्! अब पृथ्वी नगरके मंडलेश्वर स्थापन करौ ॥ हे रामजी! जब ऐसे मंत्रीनें कहा, तब सर्व दिशाके मंडलेश्वर स्थापन किये, चारों राजा जो बैठे थे, अपणी अपणी दिशाके समुद्र उपर, सो आपसमें कहत भये अपणे मंत्रीसों ॥ हे साधो! अब हम दिग्विजय करी है, समुद्रपर्यंत अब हमारी जय हुई है, अब चैत्य जो है दृश्य सो दृश्य विभूतिकों देख, समुद्रके पार द्वीप है, बहुरि समुद्र है, बहुरि द्वीप है, बहुरि समुद्र है, सप्त द्वीप सात समुद्र हैं, तिनके पार क्या है, इस प्रकार सर्व दृश्य देखणेकी इच्छा करिके अग्निदेवताका आवाहन किया, तब इनकी दृढ भावना करिके अग्नि देवता सन्मुख आनि स्थित भया, अरु कहत भया ॥ हे राजन्! जो कछु तुमकों वांछा है, सो मांगौ, तब राजानें कहा ॥ हे भगवन्! जो ईश्वरकी माया पंच

भौतिक दृश्यविषे भूत है, तिनके देखणेकी हमारी इच्छा पूर्ण करणेहारे तुम हौ ॥ हे देव! हम इस शरीर साथ दृश्य देखणे जावैं, जब यह शरीर चलणेतें रहित होवै, तब मंत्रसत्ता करिके जावैं, जहां मंत्रकी गम भी न होवै, तहां सिद्धता करिके जावैं, जहां सिद्धताकी गम भी न होवै, तहां मनके वेगकरि जावैं, मृत भी होय न जावैं, यह वर हमकों देवहु ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार राजानें कहा, तब अग्निनें कहा ऐसे ही होवै, इस प्रकार कहिकरि अग्नि अंतर्धान हो गया, जैसे समुद्रसों तरंग उठिकरि बहुरि लय हो जावै, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, जब राजा विपश्चित वरकों पायकरि चलणेकों समर्थ भये, तब जेते कछु मंत्री मित्र थे सो रुदन करने लगे ॥ हे राजन्! तुमनें यह क्या निश्चय किया है, ईश्वरकी मायाका अंत किसीनें नहीं पाया, तुम चलौ अपणे स्थानकों, यह क्या निश्चय तुमनें धारा है॥ हे रामजी! इस प्रकार मंत्री कहते रहे, परंतु राजा उनकों आज्ञा देकरि एक एक दिशाके समुद्रविषे प्रवेश किया, चारौं दिशाविषे चारौं राजा प्रवेश करत भये, जो बडे बडे शक्तिवान् गुण मंत्री थे सो साथही चले, तब राजा मंत्रशक्ति करिके समुद्रकों लंघि गया, जैसे कहूं पृथ्वी उपर चलै, तैसे चल्या गया, अवर द्वीपविषे जाय निकस्या, बहुरि बडा समुद्र आया तिसविषे जाय प्रवेश किया, अरु बडे तरंग उछले जिनका सौ योजनपर्यंत विस्तार है, कब अधकों ऊर्ध्वकों जावै ॥ हे रामजी! ऐसे तरंग उछले मानों पर्वत उछलते हैं, जब ऊर्ध्वकों उछलैं तब स्वर्गपर्यंत उछलते भासैं, अरु जब अधकों जावैं तब पातालपर्यंत चलते भासैं, जैसे तृण फिरता है, तैसे राजा फिरही, इस प्रकार कष्टतें रहित समुद्रकों लंघि गये, अरु दिशाकों लंघि गये परंतु मध्य जो वृत्तांत हुआ है, सो सुण, क्षीर समुद्रविषे एक मच्छ रहता था, कैसा मच्छ था, जो सर्व देवता तिसकों प्रणाम करते थे, विष्णु भगवान्के मच्छ अवतारके परिवारविषे था, जब राजानें क्षीरसमुद्रविषे प्रवेश किया, तब राजाकों मुखमें डारि लिया, तब राजा मंत्रके बलकरि तिसके मुखतें निकसी गया, आगे बहुरि एक

मच्छ था, तिसनें भी मुखमें लिया, तिसतें भी निकसी गया, बहुरि आगे पिशाचनीका देश था, उहा राजा कों पिशाचनें मोहित किया, काम करिके अरु दक्षप्रजापतिकी कछु अवज्ञा करी, तिसनें शाप दिया, तिस करि राजा वृक्ष हो गया, केता काल वृक्ष रहा, बहुरि छूटा, एक देशविषे दर्दुर जाय हुआ, सौ वर्षपर्यंत खाईविषे पडा रहा, बहुरि तिसतें छूटा मनुष्य आय भया, तहां किसी सिद्धके शापकरि शिला हो गया, सौ वर्षपर्यंत शिलाही रहा, तिसतें उपरांत अग्निदेवतानें शिलातें छुडाया बहुरि मनुष्य हुआ, तब उह सिद्ध आश्चर्यमान हुआ, जो मेरे शापकों दूरकरिके मनुष्य हुआ है, यह तौ मुझसों भी बडा सिद्ध है, ऐसे जाणीकरि तिसकेसाथ मैत्रीकरि, इस प्रकार दूसरे समुद्रकों लंघता गया, क्षीरसमुद्र, खारी समुद्र, इक्षुके रसके समुद्रकों, द्वीपकों लंघता गया, बहुरि एक अप्सरा करिके मोहित हुआ, बहुतकालकरि उहांतें छूटा, बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, बहुत कालपर्यंत पक्षी होकरि छूटा, बहुरि एक गोपी पिशाचिनी थी, तिसनें बैल करिके राख्या, तब दूसरे विपश्चितनें बैल विपश्चितकों उपदेशकरि जगाया ॥ हे रामजी! चारौं दिशाविषे चारौं विपश्चित भ्रमते फिरे, दक्षिण दिशाका तौ पिशाचिनी करिके मोहित हुआ, कामुक भया, इसतें लेकरि उह जन्मोकों पावत भया, अरु पूर्वका वहता हुआ मच्छके मुखमें चला गया, उसनें निकासी डारा, इसतें लेकरि तौ उह अवस्था देखत भया, अरु उत्तरदिशाका जो होत भया, इसी लेकरि अवस्था देखत भया, अरु पश्चिम दिशाका है, हेमचूपक्षीकी पिष्टपर जो प्राप्त हुआ तिसनें कुसाद्वीपविषे जाय डार्या, इसतें लेकरि उह भी अनेक अवस्थाकों प्राप्त हुआ ॥ हे रामजी! एक एक विपश्चित अनेक योनि अरु अवस्थाका भिन्न भिन्न अनुभव करत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ विपश्चित एकही था, उनकी संवेत भी एकही थी, आकार भी एकही था, तौ भिन्न भिन्न रुचि कैसे भई, जो उह पक्षी हुआ, उह वृक्ष हुआ, इसतें लेकरि वासनाके अनुसार शरीरकों पावते फिरे ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसविषे क्या आश्चर्य

है, उनकी संवित् एक थी, परंतु भ्रम करिके भिन्नता हो जाती है, जैसे किसी पुरुषकों स्वप्न आता है, तिसविषे पशु पक्षी हो जाते हैं, अरु भिन्न भिन्न रुचि भी हो जाती है, तैसे उनकी भिन्न भिन्न रुचि हो गई अरु अवर देख जो शरीर एकही होता है, तिसविषे नेत्र श्रवण नासिका जिव्हा त्वचाकी रुचि भिन्न भिन्न हो जाती है, अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करती है, सो एकहीं शरीरविषे अनेकता भासती है, तैसे उनकी एकही संवित् थी, परंतु संकल्प भिन्न भिन्न हो गया, मनके फुरणेकरि एकविषे अनेक भासी, जैसे एकही योगीश्वर होता है, सो इच्छा करिके अवर अवर शरीरकों धारि लेता है, एकविषे अनेक हो जाता है, अरु एक सहस्रबाहु अर्जुन था, सो एक भुजासाथ युद्ध करता था, दूसरी भुजासाथ दान करता था, अरु एकसाथ लेता था, इसी प्रकार सब भुजासाथ चेष्टा करता था, उह भी भिन्न भिन्न हुए, एकही शरीरविषे भिन्न भिन्न चेष्टा होती है, अरु विष्णु भगवान् कहूं दैत्यसाथ युद्ध करता है, कहूं कर्म करता है, कहूं लीला करता है, कहूं शयन करी रहता है, सो संवित् तौ एकही है, परंतु चेष्टा भिन्न भिन्न होती है, तैसे उनकी संवितविषे अनेक रुचि हुई, इसविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी! इस प्रकार जन्मतें जन्मांतरकों अविद्यक संसारविषे देखत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह तौ बोधवान् विपश्चित थे, बोधवान् तौ जन्म नहीं पावता, उनका जन्म किस प्रकार हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उह विपश्चित बोधवान् न थे, परंतु बोधके निकट थे, धारण अभ्यासवाले थे, जो ज्ञानवान् होते तौ दृश्यभ्रम देखणेकी इच्छा काहेकों करते, तातें उह ज्ञानवान् न थे, धारणा अभ्यासी थे, अरु समुद्रकों लंघि गये, अरु मच्छके उदरतें बलकरि निकसे, सो यह योगशक्ति प्रसिद्ध है, ज्ञानका लक्षण स्वसंवेद है, परसंवेद नहीं, राजा विपश्चित ज्ञानवान् न थे, इस कारणतें देशदेशांतरविषे भ्रमते रहे, ज्ञानविना अविद्यक संसारविषे जन्ममरणमें भटकते रहे ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानवान् योगीश्वरकों भूत भविष्य वर्तमान तीनोंकालका ज्ञान कैसे

होता है, जैसे तीनों काल उसकों विद्यमान हैं, अरु एक देशविषे स्थित हुआ सर्वत्र कर्मोंकों कैसे करता है, सो सब मेरे तांई कहो ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानीकी वार्ता यह मैं तुझकों कही है, अरु जेता कछु जगत् है, सो सब चिदाकाशस्वरूप है, जिनकों ऐसी सत्ताका ज्ञान हुआ है, सो महापुरुष हैं, जैसे स्वप्नतें कोई पुरुष जाग्या है तौ स्वप्नकी दृष्टि सब उसकों अपणाही स्वरूप भासती है, उसविषे बंधमान नहीं होता ॥ हे रामजी! जेती कछु नानात्व भासती है सो नाना नहीं, अरु अनाना भी नहीं, केवल आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपणे आपविषे स्थित है, जैसे आकाश अपणी शून्यताविषे स्थित है, तैसे आत्मा अपणे आप विषे स्थित है, अरु यह तीनों काल भी ज्ञानवान्कों भ्रमरूप हो जाते हैं, सब जगत् भी ब्रह्मरूप हो जाता है, द्वैतभाव उसका मिटि जाता है, ऐसे ज्ञानवान्कों ज्ञानीही जानता है, अवर कोउ जानी नहीं शकता, जैसे अमृतकों जो पान करता है, सोइ स्वाद जानता है, अवर कोउ जानी नहीं शकता ॥ हे रामजी! ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तौ तुल्य भासती है, परंतु ज्ञानीके निश्चयविषे कछु अवर है, अज्ञानीके निश्चय विषे अवर है, जिसका अंतर शीतल भया है, सो ज्ञानवान् है, अरु जिसका अंतर जलता है, सो अज्ञानी है, उह बांधा हुआ है, अरु ज्ञानवान् है तिसका शरीर चूर्ण होवै, अथवा राज्य आनि प्राप्त होवै, तौ भी उसकों राग दोष नहीं उपजता, सदा ज्योंका त्यों एकरस रहता है, उह जीवन्मुक्त है, परंतु यह लक्षण उसका अवर कोउ नहीं जाणी शकता, उह आपही जाणता, है, शरीरकों दुःख भी आय प्राप्त होता है, सुख भी आय प्राप्त होता है, मरता भी है, अरु रुदन भी करता है, हसता भी है, लेता भी है, देता भी है, इसतें लेकरि सब चेष्टा करता दृष्ट आता है, अपणे निश्चयविषे न दुःखी होता है, न सुखी होता है, न देता है, न लेता है, सदा ज्योंका त्यों रहता है ॥ हे रामजी! व्यवहार तौ उसका भी अज्ञानीकी नांई दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें उसका यह निश्चय होता है, अद्भुत पदविषे स्थित रहता है, गिरता कदाचित् न

हीं, परम उदितरूप होता रागसहित दृष्ट भी आता है, परंतु अंतरतें राग किसीविषे नहीं, क्रोध करता भी दृष्ट आता है, परंतु उसकों क्रोध कदाचित् नहीं, जैसे आकाश शुभ पदार्थकों धारता है, धूम अरु बादलकरि आच्छाद्या भी दृष्ट आता है, परंतु किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानविषे सब क्रिया दृष्ट आती हैं, परंतु अपणे निश्चयविषे किसीसाथ स्पर्श नहीं करता, जैसे नटवा स्वांग ले आता है, चेष्टा करता देखीता है, अरु अंतरतें अपणे नटत्वभावविषे निश्चय होता है, तैसे ज्ञानवान्कों भी सर्व क्रियाविषे अपणा आत्मभाव निश्चय होता है, जैसे जिसकों स्वप्न आता है, अरु स्वप्नविषे अपणा पूर्वरूप स्मरण आता है, तब स्वप्नके पदार्थविषे वर्तता है, तौ भी उनके सुखविषे आपकों सुखी नहीं मानता, अरु दुःखविषे आपकों दुःखी नहीं मानता, सब सृष्टि उसकों अपणा स्वरूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्कों अपणे स्वरूपके निश्चय करिके सुख दुःखका क्षोभ नहीं होता, अरु जो ऐसे पुरुष हैं, तिनकों क्या दुःखसाथ होता है, जैसे उनकी इच्छा होती है, तैसीही सिद्ध होकरि भासती है ॥ हे रामजी! यह जेती सृष्टि हैं सो सब चित्सत्ताविषे हैं, जो योगीश्वर पुरुष तिसविषे स्थित होकरि जहां प्राप्त हुआ चाहते हैं, तहां अंतवाहकसाथ जाय प्राप्त होते हैं, अरु तीनों काल उनकों विद्यमान होते हैं, उह साधन कछु नहीं परंतु ज्ञानी अवश्यकरि किसीनिमित्त यत्न नहीं करता, जैसा आनि प्राप्त होता है, तिसविषे प्रसन्न रहता है ॥ हे रामजी! एक कालमें ब्रह्माजी सामवेदकों ऊर्ध्वमुख करिके गायन करते थे, अरु सदाशिवका मान न किया, अपमान किया, तब सदाशिवनें अपणे नखसाथ ब्रह्माके पंच शीस काटि डारे परंतु ब्रह्माजीके मनविषे कछु क्रोध न फुर्या, अरु विचारत भया, जो मैं भी चिदाकाश था, अब भी चिदाकाश हौं, मेरा तौ कछु गया नहीं, शिरसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, न कछु हानि है, न कछु लाभ है ॥ हे रामजी! इस प्रकार सर्व विश्व रचणेहारे ब्रह्माजीका शिर काट्या, जो बहुरि भी शिर लगाइ लेता तौ समर्थ था, परंतु उसकों लगावणेका क

छु प्रयोजन न था, न लगावणेविषे कछु हानि न थी, उसका भी निश्चय सदा आत्मपदविषे है, इस कारणतें क्षोभ कछु न हुआ ॥ हे रामजी! काम जैसा अवर कोउ विकार नहीं, जो सदाशिव पार्वतीकों डावे अंगपर धारते हैं, अरु कामदेवके पांच बाण चलणेकरि सर्व विश्व मोहित होती है, तिस कामकों सदाशिवनें भस्म करि छोडा है, तौ स्त्रीके त्यागणेकों समर्थ नहीं क्या, परंतु तिनकों राग दोष कछु नहीं, इस कारणतें त्याग नहीं करते, त्यागणेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, राखणेकरि कछु अनर्थ नहीं होता, जो कछु प्रवाहपतित कार्य हुआ है, तिसकों करता है, खेद कछु नहीं मानता, तातें जीवन्मुक्त है, अरु विष्णुजी सदा विक्षेपमें रहता है, आप भी कर्म करता है, अरु लोकसों भी करावता है, शरीरकों धारता है, अरु त्यागी होता है, वृद्धि करता है, इत्यादिक क्षोभविषे रहता है, सो त्यागणेकों समर्थ भी है, परंतु त्यागणेविषे उनका कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, अरु करणेविषे कछु हानि नहीं होती, उसकों केई गुणकरि गुणवान् जाणते हैं, अरु मुझकों तौ शुद्ध चिदाकाशरूप भासता है, मूर्ख कहते हैं श्याम है, सुंदर है, विष्णु तौ शुद्ध चिदाकाशरूप है, सदा शुद्ध स्वरूपविषे उनकों अहंप्रत्यय है, अरु आकाशमार्गविषे जो सूर्य स्थित है, सो कबहूं ऊर्ध्वकों जाता है, कबहूं नीचेकों जाता है, तिसकों स्थिति होणेकी समर्थता नहीं क्या, परंतु चलणा अरु ठहरणा तिसकों दोनों सम हैं, खेदतें रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे रहता है, तातें जीवन्मुक्त है, अरु जीवन्मुक्त चंद्रमा भी है, सो घटता घटता सूक्ष्म होता दृष्ट आता है, कबहूं बढता जाता है, शुक्ल अरु कृष्ण दोनों पक्ष तिसविषे रहते हैं, रात्रकों प्रकाशता है, उह अपणी क्रियाकों त्यागि नहीं शकता क्या, परंतु क्षोभतें रहित होकरि प्रवाहपतित कार्यविषे विचरता है, तातें जीवन्मुक्त है, अरु अग्नि सदा दौडता रहता है, यज्ञ होमके भोजन करणेकों सर्व उर जाता है, उसकों ग्रहविषे बैठणेकी समर्थता नहीं क्या, परंतु जो कछु अपणा आचार है, तिसकों त्यागता नहीं, ठहरणेविषे कछु कार्य सिद्ध नहीं होता,

अरु चलणेविषे कछु हानि नहीं होती, दोनोंविषे तुल्य जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! बृहस्पति अरु शुक्रकों बडा क्षोभ रहता है, बृहस्पति देवताकी जयके निमित्त यत्न करता है, अरु शुक्र दैत्यके जयके निमित्त यत्न करता रहता है क्या, इनकों त्यागणेकी समर्थता नहीं, परंतु दोनों इनकों तुल्य हैं, इस कारणतें खेदसों रहित होकरि अपणे कार्यविषे विचरते हैं, सो जीवन्मुक्त पुरुष हैं ॥ हे रामजी ! राज्यविषे बडे क्षोभ होते हैं, सो राजा जनक आनंदसहित राज्य करता है, अरु जीवन्मुक्त है, प्रल्हाद बल वृत्रासुर अरु मुर इनतें आदि लेकरि जो दैत्य जीवन्मुक्त हुये हैं, समताभावकों लिये, खेदतें रहित नानाप्रकारकी चेष्टा करत भये हैं, परंतु अंतरतें शीतल जीवन्मुक्त रहे हैं, राजा नल अरु दिलीप अरु मांधातातें लेकरि जो हुये हैं, समताभावकों ले राज्य किया है, सो जीवन्मुक्त हैं, ऐसे अनेक राजा हुये हैं, राज्यविषे रागवान् भी दृष्ट आये हैं, परंतु अंतर रागदोषतें रहित शीतलचित्त रहे हैं ॥ हे रामजी ! ज्ञानी अरु अज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, परंतु एता भेद है, जो ज्ञानीका चित्त शांत है, अरु अज्ञानीका चित्त क्षोभविषे है, इष्टकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष करता है, ग्रहण त्यागकी इच्छा करी जलता है, संसार उसकों सत्य भासता है, अरु जिसका चित्त शांत हो गया है, तिसके अंतर न राग है, न द्वेष है, स्वाभाविक शरीरकी जो प्रारब्ध है, सो होती है, तिसविषे कछु अपणा अभिमान नहीं होता, तिसके निश्चयविषे सब आकाशरूप है, जगत् कछु बन्या नहीं, भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रममात्र है, अरु दूर नहीं होती, तैसे यह जगत् भ्रमकरिके भासता है, परंतु है नहीं, जैसे आकाशविषे नानाप्रकारके तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठरूप होती है, तैसे जगत् भ्रमरूप है, जो कछु भ्रमतें इतर भासता है, सो सब भविष्यत् नगरविषे असत् है, अरु जो कछु तुझतें दृष्ट आता है, सो कछु नहीं, सर्व कलनातें रहित शुद्ध संवित जडतातें मुक्तस्वभाव एक अद्वैत आत्मसत्ता स्थित है, केवल आकाशरूप

है, तिसविषे जगत् भी उहीरूप है, पाषाणकी शिलावत् घन मौन है, तूं भी तिसी रूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ २१९ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! उह राजा विपश्चित बहुरि क्या करत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जो उनकी दशा हुई है, सो तूं श्रवण करु, पश्चिम दिशाका विपश्चित वनविषे विचरता फिरता था, सो एक मत्त हस्तीके वश पडा, तिसनें पहाडकी कंदराविषे मारी डारा अरु दूसरे विपश्चितकों राकडी ले गया, तिसनें वडवाग्निविषे डारि दिया, उहां अग्निनें भक्षण करि लिया, अरु तिसरे विपश्चितकों एक विद्याधर स्वर्गविषे ले गया, उसनें इंद्रकों मान न किया, तिसकों शाप दिया, इह भस्म हो गया, इसी प्रकार चउथा भी मुआ, उसके मच्छनें अष्ट टुकडे करि डारे, जैसे प्रलयकालविषे लोक भस्म हो जावै, तैसे चारौंही विपश्चित मरि गये, तब उनकी संवित आकाशरूप हुई परंतु इनकेविषे जो जगत् देखणेका संस्कार था, तिसकरि उनकी आकाशरूप संवित बहुरि आनि फुरी, तिसकरि जागृत भासणे लगा, पृथ्वी द्वीप समुद्र स्थावरजंगमरूप जगत्कों देखत भये, अरु अंतवाहक शरीर साथ चेष्टा करणे लगे, तिनसों एक पश्चिम दिशाका विष्णु भगवान्के स्थानविषे मुआ निर्वाण हो गया, तिसकी संवितविषे सर्व अर्थ शून्य हो गये, उह तहां मुक्त हुआ, अरु एक मच्छके उदरविषे सहस्र वर्षपर्यंत रहा, तिसतें उपरांत निकस्या बहुरि एक देशका राजा हुआ, अरु तहां राज्य करणे लगा, एक चंद्रमाके निकट आया, तहां उह मरिके चंद्रमाके लोककों प्राप्त हुआ, स्वर्गविषे अरु एक वहता समुद्रके पाटकों प्राप्त हुवा, आगे चउराशी हजार योजन पृथ्वी भूत तिसकों लंघता गया, इसी प्रकार चारौं बहुरि जीवते भये, समुद्र वन पर्वतकों लंघते गये, सबके आगे दश सहस्र योजन स्वर्णकी पृथ्वी आई, तहां देवताके विचरणेके स्थान हैं, तिनकों भी लंघते गये, आगे लोकालोक पर्वत आया, जिसनें सर्व पृथ्वीकों आवरण

किया है, जैसे वृक्षके बनका आवरण होता है, तैसे तिसनें पंचाशत्कोटि योजन पृथ्वीकों आवरण किया है, पचाश हजार योजन उंचा है, लोकालोक पर्वत, तहां ताराका नक्षत्रचक्र फिरता है, तिसकों भी लंघि गये, तिसके आगे एक शून्य नक्षत्र था, सो कैसा था, जो महाशून्य जैसा, जहा पृथ्वी जल आदिक तत्त्व कोउ नहीं, एक शून्य आकाश है, न कोउ स्थावर पदार्थ है, न कोउ जंगम पदार्थ है, न कोउ उपजै, न कब मिटै, तिसकों देखत भये, इसीप्रकार संपूर्ण भूगोलकों देखत भये ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! भूगोल क्या है, अरु किसके आश्रय है, अरु तिसकेपर क्या है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जैसे गेंद होता है, तैसे भूगोल है, अरु संकल्पके आश्रय है, सर्व उर तिसके आकाश है, सूर्य चंद्रमा नक्षत्र सहित चक्र फिरता है ॥ हे रामजी! यह बुद्धि करिके बन्या नहीं, संकल्पकरिके बन्या है, जो वस्तु बुद्धि करिके बनी होती है, सो क्रमकरि स्थित होती है, अरु यह तौ विपर्ययरूपकरि स्थित है, पृथ्वीके चउफेर दशगुण जल है, तिसतें पर दशगुण अग्नि है, तिसतें पर दशगुण वायु है, तिसतें पर ब्रह्मांडखपर है, सो खपर एक अधकों एक ऊर्ध्वकों गया है, तिसके मध्यविषे जो पोल है सो आकाश है, उह वज्रसारखी नांई है, अनंतकोटी योजनका विस्तार है, तिस ब्रह्मांडका तिसविषे भूगोल है, तिसके उत्तरदिशा सुमेरु पर्वत है, पश्चिमदिशा लोकाकोक पर्वत है, उपर नक्षत्रोंका चक्र फिरता है, जहां उह आता है, तहां प्रकाश होता है, जहां नहीं होता, तहां तमरूप भासता है, सो संकल्परचना है, जैसे बालक संकल्पकरि पत्थरका वटा रचै, तैसे चेतनरूपी बालकनें इह संकल्परूपी भूगोल रचा है ॥ हे रामजी! जैसे जैसे उस समय तिसविषे निश्चय हुआ है, तैसेही स्थित भया है, जहां पृथ्वी स्थित रही है, तहां स्थित है, जहां खात रची है, तहां खातही है, अरु है क्या, जैसे स्वप्नविषे अविद्यमान प्रतिभा होती है, तैसे भूगोल है ॥ हे रामजी! जिनकों ऐसे भासता है, जो सुमेरुविषे देवता हैं, उत्तर दिशा अरु अवर दिशा मनुष्यतें आदि लेकरि जीव रहते हैं,

ऐसे जिनकों ज्ञान है, सो पंडित हैं, तौ भी मूर्ख हैं, यह तौ भ्रममात्र है, बन्या कछु नहीं, जो हमतें आदि लेकरि तत्त्ववेत्ता हैं, जिनकों ज्ञाननेत्रकरि आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं भासती है, जो मनसहित षट् इंद्रियां करि अज्ञानी देखते हैं, तिनकों जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्कों परम ब्रह्म सूक्ष्म ज्यौंका त्यौं भासता है, जगत्कों असत् जाणता है, जैसे आकाशविषे अणहोती नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे अणहोता जगत् भासता है, जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे जगत् भासता है, सो केवल आभासमात्र है॥ हे रामजी! जगत् उपजा भी दृष्ट आता है, अरु नष्ट होता भी दृष्ट आता है, परंतु बन्या कछु नहीं, जैसे संकल्पका रचा फुरणा अपणे मनविषे भासता है, तैसे यह जगत् मनविषे फुरता है, यह संपूर्ण भूगोल संकल्पविषे स्थित है, जैसे बालक संकल्प करिके पत्थरका वटा रचे तैसे भूगोल यह ब्रह्मांड सो कोटि योजनपर्यंत है, तिसका एक भाग अधकों गया है, एक ऊर्ध्वकों गया है, तिसविषे चेतनरूपी बालकनें यह भूगोल रचा है, सो संकल्पके आश्रय खडा है, जैसे आदिनीति हुई है, तैसे भासता है, इस पृथ्वीके उत्तर दिशाविषे सुमेरु पर्वत है, अरु पश्चिम दिशाकी उर लोकालोक पर्वत है, अरु उपर तारा नक्षत्रचक्र फिरता है, लोकालोकके जिस उरतें आवता है, तिस उर प्रकाश होता है, अरु भूगोल ऐसे है, जैसे गेंद होता है, तिसके एक उर पाताल है, अरु एक उरतें स्वर्ग है, एक उर मध्य मंडल है, अरु आकाश सर्व उर है, पातालवासी जाणते हैं, हम ऊर्ध्व हैं, आकाशवासी जाणते हैं, जो हम ऊर्ध्व हैं, मध्यमवासी जाणते हैं, जो हम ऊर्ध्व, इस प्रकार भूगोल है, तिसके पर एक खात है, शून्य जैसा महातमरूप, जहां न पृथ्वी है, न कोउ पहाड है, न स्थावर है, न जंगम है, न कछु उपजा है, कबी महात्मा जैसा है, अरु तिसके पर स्वर्णकी कंथ है, दश सहस्र योजन तिसका विस्तार है, तिसके पर दशगुण जल है, पृथ्वीके चउफेर वेष्टन है, तिसतें पर दशगुण अग्नि है, तिसतें पर दशगुण वायु है, ति

सतें पर साकाश है, तिसतें पर ब्रह्माकाश महाकाश है, तिसविषे अनंत ब्रह्मांड स्थित हैं, सो क्या हैं, अरु कैसे स्थित हैं, तत्त्व हैं, जैसे कपूरके आश्रय तृण ठहरते हैं, तैसे पृथ्वी भागके आश्रय तत्त्व हैं, वस्तुतें क्या है, शुद्ध चेतन ब्रह्मका चमत्कार है, सो ब्रह्म आकाशवत् निर्मल है,तिसविषे कोउ क्षोभ नहीं, परम शांत है, अरु अनंत है, अरु सर्वका अपणा आप है ॥ हे रामजी! अब बहुरि विपश्चितकी वार्त्ता सुण, जब उह लोकालोक पर्वतपर जाय स्थित भये, तब एक शून्य जैसा खात दृष्ट आया, पर्वतसों उतरीकरि खातविषे जाय पडा, खात भी पर्वतके शिखर उपर था, अरु तहां पक्षी भी शिखरकी नाईं बडे थे, उन पक्षीनें चंचसों इसका शरीर चूर्ण किया, तब यह अपणे स्थूल शरीरकों त्यागिकरि सूक्ष्म अंतवाहक शरीर अपणा जानत भया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आधिभौतिकता कैसे होती है, अरु अंतवाहक क्या है, बहुरि क्या करत भया सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे संकल्प करिके दूरतें दूर चला जावै, अरु जिस शरीरसाथ जावै सो अंतवाहक है, अरु जो पंचभौतिक शरीर यह प्रत्यक्ष भासता है, सो आधिभौतिक है, जहां मार्गकरि जाणेकों चित्तका संकल्प उठता है, तब स्थूल शरीर गयेविना उह पहुंची नहीं सकता, जब मार्गकरि चलै तब पहुंचता है, सो आधिभौतिक है, अरु यह प्रमादकरि होता है, जैसे जेवरीके भूलणेकरि सर्प भासता है, जैसे आत्माके अज्ञानकरि आधिभौतिक शरीर भासता है, जैसे मनोराज्यका पुर बणावें, तिसविषे आप भी एक शरीर बनीकरि चेष्टा करता फिरै, सो जबलग पूर्वका शरीर विस्मरण नहीं भया, तबलग संकल्पशरीरसाथ चेष्टा करता है, सो अंतवाहक है, तिसकों संकल्पमात्र जानणा सो विशेषबुद्धि कहाती है, अरु आत्मबोध नहीं भया, जब तिस संकल्पशरीरविषे दृढ भावना होती है, तिसका नाम आधिभौतिक होता है, सो घट बढ कहाता है, तातें जबलग शरीरका स्मरण है, तबलग आधिभौतिकता नहीं होती, अरु जब विस्मरण होता है, तब आधिभौतिकता हो जाती है, अरु विपश्चित जो

आधिभौतिक थे, सो आत्मबोधतें रहित थे, अरु जहां चाहै तहां चले जाते थे, अरु स्वरूपतें न कछु अंतवाहक है, न कछु आधिभौतिक है, प्रमाद करिके आकार भासतें हैं, वास्तव सब चिदाकाशरूप है, दूसरी वस्तु कछु बणी नहीं, सब उही है; तिसके प्रमाद करिके विपश्चित अविद्यक जगत्कों देखणे चले थे, सो अविद्या कछु वस्तु नहीं, ब्रह्महीही है, तौ ब्रह्मका अंत कहां आवै, उहांतें चल्या परंतु जाणै जो मेरा अंतवाहक शरीर है, सब पृथ्वीकों लंघि गया, तिसके पर जलकों भी लंघि गया, तिसतें परे जो सूर्यवत् दाहक अग्निका आवरण है प्रकाशवान्, तिसकों भी लंघि गया, मेघ अरु वायुके आवरणकों भी लंघ्या, आकाशकों भी लंघि गया, तिसके परे ब्रह्माकाश था, तहां इसकों संकल्पके अनुसार बहुरि जगत् लगा भासणे, तिसकों भी लंघि गया, बहुरि तिसके आगे ब्रह्माकाश है, फेरि पंचभौतिक भासी आया, तिसके आवरणकों भी लंघि गया, बहुरि तिस ब्रह्मांड कवाटके परे तत्त्वकों लंघिकरि ब्रह्माकाश आया, बहुरि तिसविषे अवर पंचभौतिक ब्रह्मांड था, तिसकों भी लंघि गया, अरु अंत न पाया, स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यके अंत लेणेकों भटकता फिर्या, सो अविद्यारूप संसारका अंत कैसे आवै, जबलग अंत लेणेकों भटकता फिरता है, तबलग अविद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तबही अविद्यारूप संसारका अंत आवैगा ॥ हे रामजी ! जगत् कछु बन्या नहीं, उही ब्रह्माकाश ज्यौं त्यौं स्थित है, तिसका न जानणाही संसार है, जबलग उसका प्रमाद है, तबलग जगत्का अंत न आवैगा, जब स्वरूपका ज्ञान होवैगा, तब अंत आवैगा, सो जानणा क्या है, चित्तकों निर्वाण करणाही जानणा है, जब चित्त निर्वाण होवैगा, तब जगत्का अंत आवैगा, जबलग चित्त भटकता फिरता है, तबलग संसारका अंत नहीं आता, तातें चित्तका नामही संसार है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब जगत्का अंत होवैगा, इस उपायविना शांति नहीं प्राप्त होती ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकविंशतितमः सर्गः ॥ २२० ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह जो दो विपश्चित थे, तिनकी क्या दशा भई उह भी कहौ, उह तौ दोनों की एकही कही ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक तौ निर्वाण हुआ था, अरु दूसरा ब्रह्मांडकों लंघता गया, लंघता लंघता एक ब्रह्मांडविषे गया, तब उहां उसकों संतका संग प्राप्त भया, तिनकी संगति करि तिसकों ज्ञान प्राप्त हुआ, ज्ञानकों पायकरि उह भी निर्वाण हो गया, अरु एक अबलग दूर फिरता है, अरु एक इहां पहाडकी कंदराविषे मृग होकरि विचरता है ॥ हे रामजी! यह जगत् आत्माका आभास है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, जबलग किरणां हैं, तबलग जलाभास निवर्त्त नहीं होता, तैसे जबलग आत्मसत्ता है, तबलग जगत्का चमत्कार निवर्त्त नहीं होता, आत्माके जानणेतें जगतसत्ता नहीं रहती, जैसे किरणाके जानणेतें जलाभास नहीं रहता, जो भासता है, तौ भी किरणांहीकी सत्ता भासती है, तैसे आत्माके जानणेतें आत्माकी सत्ताही भासती है, भिन्न जगत्की सत्ता नहीं भासती ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! विपश्चित एकही था, एकही संवित्विषे भिन्न भिन्न वासना कैसे हुई है? अरु मुक्त एक हो गया, एक मृग होकरि फिरता रहा, एक आगे निर्वाण हो गया इह भिन्नता कैसे हुई है, संवित् एकही थी, तिसविषे घट बढ फल कैसे प्राप्त हुए सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वासना जो होती है, सो देश काल पदार्थ करिके होती है, तिसविषे जिसकी दृढ भावना होती है, तिसकी जय होती है, जैसे एक पुरुषनें मनोराज्य करिके चार मूर्त्ति अपणी कल्पी, तिनविषे वासना भिन्न भिन्न स्थापन करि, उह संवित तौ एक है, परंतु पूर्वका शरीर भूलिकरि उह दृढ हो गये, तौ जैसी जैसी भावना तिन शरीरविषे दृढ होती है सोई प्राप्त होती है, तैसे संवित्विषे नानाप्रकारकी वासना फुरती है, जैसे एकही संवित् स्वप्नविषे नानाकार धारती है, अरु भिन्न भिन्न वासना होती है, तैसेही आकाशरूप संवित्विषे भिन्न भिन्न वासना होती है ॥ हे रामजी! संवित् एक थी, परंतु देश काल क्रिया करिके वासना भिन्न भिन्न हो गई, पूर्वकी संवितस्मृति भू

लि गई, तिसकरि घट बढ फलकों पावते भये, सो संवित् क्या रूप है ॥ हे रामजी ! देशतें देशांतरकों संवेदन जाती है, तिसके मध्य जो संवितसत्ता है सो ब्रह्मसत्ता है, जैसे एक जाग्रतके आकारकों छोड्या, अरु स्वप्न पाया नहीं, तिसके मध्य जो ब्रह्मसत्ता है, उह किंचनरूप जगत् होकरि भासती है, परंतु किंचन भी कछु भिन्न वस्तु नहीं, एक है, न दो है, एक कहणा भी नहीं होता, दो कहां होवै, अरु जगत् कहां होवै, इही अविद्या है, जो है नहीं, अरु भासती है, जिस जिस आकारविषे जैसी जैसी वासना फुरती है, बहुरि जो दृढ हो जाती है, तिसीकी जय होती है, तिस कारणतें, एक विपश्चित जनार्दन विष्णुके स्थानविषे निर्वाण हो गया, दूसरा दूरतें दूर ब्रह्मांडकों लंघता गया, तिसकों संतका संग प्राप्त भया, तिसकरि ज्ञान उदय हुआ, वासना मिटि गई, अरु अज्ञान तिसका नष्ट हो गया, जैसे सूर्यके उदय हुये अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अज्ञान नष्ट हो गया, उह पदकों प्राप्त भया, तिसरा अज्ञान करिके दूरतें दूर भटकता है, अरु चौथा पहाडकी कंदराविषे मृग होकरि विचरता है ॥ हे रामजी ! जगत् कछु वस्तु नहीं, अज्ञानके वशतें भटकते हैं, तातें अज्ञानही जगत् है, जबलग अज्ञान है, तबलग जगत् है, जब ज्ञान उदय होता है, तब अज्ञानकों नाश करता है, तब जगत्का भी अभाव हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो मृग हुआ है सो कहां कहां फिर्या है, अरु कहां स्थित है, अरु कवन स्थानविषे फिरे हैं सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दो ब्रह्मांडकों लंघते दूरतें दूर चले गये थे, एक अबलग चला जाता है, पृथ्वी समुद्र वायु आकाश उसकी संवितविषे फुरते हैं, यह तौ दूरतें दूर चला गया है, सो हमारी आधिभौतिक दृष्टिका विषय नहीं, अरु एक ब्रह्मांडकों लंघता गया था, अब इस जगतविषे पहाडकी कंदराका मृग हुआ है, सो हमारी इस दृष्टिका विषय है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह दूर गये थे, अरु एक इस जगतविषे अब मृग हुआ है, तुम कैसे जाण्या जो आगे ब्रह्मांडविषे था, अब इस जगतविषे है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! मैं ब्रह्म हौं, जेते कछु ब्रह्मांड

हैं, सो मेरे अंग हैं, मुझकों सबका ज्ञान है, जैसे अवयवी पुरुष अपणे अंगकों जाणता है, जो यह अंग फुरता है, अरु यह नहीं फुरता, तैसे मैं सबकों जानता हौं, जहां जहां यह फुरता लंघता गया है, सो बुद्धि नेत्र करि मैं जानता हौं, परंतु तुमकों जानणेकी गम नहीं, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग फुरते हैं, अरु समुद्र सबकों जानता है, तैसे समुद्ररूप हौं, अरु ब्रह्मांडरूपी मेरेविषे तरंग हैं, तातें मैं सबकों जानता हौं ॥ हे रामजी! उह जो मृग है, सो दूर ब्रह्मांडविषे फिरता है, उह विपश्चित यह मृग नहीं, परंतु उस जैसा है, सो सुण ॥ हे रामजी! एक ब्रह्मांड इस हमारे ब्रह्मांड जैसा है, एकही जैसा आकार है, एकही जैसी चेष्टा है, एकही जैसा जगत् है, स्थावर जंगम सब एकही जैसे हैं, उहां जो देश काल क्रियाका विचरणा होता है, सो इसके समान होता है, जैसे नामरूप आकार इहां होते हैं, जैसे बिंबका प्रतिबिंब तुल्यही होता है, जैसे एकही आकारका प्रतिबिंब जलविषे होता है, अरु द्वितीय प्रतिबिंब दर्पणविषे होता है सो दोनों तुल्य हैं, तैसे दोनों ब्रह्मांड एक समान हैं, ब्रह्मरूपी आदर्शविषे प्रतिबिंबित होता है, तैसे इस कारणतें यह मृग विपश्चित है, इसी निश्चयकों धारे हुये हैं, इह अरु उह दोनों तुल्य हैं, सो पहाडकी कंदराविषे है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह विपश्चित अब कहां है, अरु उसका क्या आचार है, अब मैं जानता हौं, जो उसका कार्य हुआ है, अरु चलिकरि मुझकों दिखावहु, अरु उसकों दर्शन देकरि अज्ञान फांसतें मुक्त करहु ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे अंग! जब रामजीनें इस प्रकार कहा तब मुनिशार्दूल वसिष्ठ बोलत भया ॥ हे रामजी! तुमारा जो लीलाका स्थान जहां है, तुम क्रीडा करते हौ, तिस ठौरविषे उह मृग बांध्या हुआ है, तुमकों तिरग देशके राजानें आनि दिया है, सो बहुत सुंदर है, इस करिके तुम रख्या है, तिसकों मंगावहु, तब रामजीके सखा बालकविषे जो निकटवर्ती थे, तिनकों कहा जो तिस मृगकों सभाविषे ले आवहु ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार रामजीनें कहा, तब सभाविषे मृगकों ले आये, जेते कछु श्रो

ता सभाविषे बैठे थे सो बडे आश्चर्यकों प्राप्त भये, बडी ग्रीवा सुंदर अरु कमलकी नाई नेत्र घासकों खाता कबहु सभाविषे खेलै, कबहु ठहरि जावै, तब रामजीनें कहा, हे भगवन्! इसकों उपदेश करिके जगावहु, जो हमारेसाथ प्रश्न उत्तर करै, कृपा करहु जो मनुष्य होवै, अब तौ प्रश्न उत्तर नहीं करता ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! इस प्रकार उपदेश इसकों लगैगा नहीं, काहेतें जो जिसका कोउ इष्ट होता है, तिसकरि सिद्धता तिसकों होती है, तातें मैं इसके इष्टका ध्यान करिके विद्यमान करता हौं, तिसकरि इसका कार्य सिद्ध होवैगा ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे अंग! इस प्रकार कहीकरि वसिष्ठजीनें कमंडलु हाथविषे लेकरि तीन आचमन किये, अरु पद्मासन बांधीकरि नेत्र मुंदि लिये, ध्यानविषे स्थित होकरि अग्निका आवाहन किया, अरु कहा हे वह्नि! इह तेरा भक्त है, इसकी सहायता करु, इस उपर दया कर, तुम संतका दयाल स्वभाव है, जब ऐसे वसिष्ठजीनें कहा, तब सभाविषे बडे प्रकाशकों धारे, अग्निकी ज्वाला प्रगट भई, काष्ठ अंगारतें रहित बडे प्रकाशकों लिये पडी जलै, जब ऐसी अग्नि जागी, तब मृग देखीकरि बहुत प्रसन्न भया, अरु चित्तविषे बडी भक्ति उत्पन्न भई, तब वसिष्ठजीनें नेत्र खोलिकरि अनुग्रहसहित मृगकी उर देख्या, तिसकरि संपूर्ण पाप उसके दग्ध हो गये, अरु वसिष्ठजीनें अग्निकों कहा कै ॥ हे भगवन् वह्नि! इह तेरा भक्त है, अपणी पूर्वकी भक्ति स्मरण करिके इसपर दया करहु, इसके मृग शरीरकों दूर करीके इसकों विपश्चित शरीर देवहु, जो इह अविद्या भ्रमतें मुक्त होवै ॥ हे राजन्! इस प्रकार वसिष्ठजीनें अग्निकों कही रामजीकों कहत भये ॥ हे रामजी! अब यह मृग अग्निविषे प्रवेश करैगा, तब इसका मनुष्यशरीर हो जावैगा, ऐसे वसिष्ठजी कहता था, जो अग्निकों मृग देखीकरि एक चरण पाछेकों धारा, अरु उच्छलिकरि अग्निविषे आय प्रवेश किया, जैसे बाण निसानविषे आय प्रवेश करते हैं, तैसे प्रवेश किया ॥ हे राजन्! तब उस मृगकों खेद कछु न भया, उसकों अग्नि आनंदवान् दृष्ट आया, तब उस

का मृगशरीर अंतर्धान हो गया, अरु महाप्रकाश मनुष्य शरीरकों धारे अग्नितें निकस्या, जैसे पटके उलेसों स्वांगी स्वांग धारी निकसि आता है, तैसे निकसी आया, भले वस्त्रकों पहिरे हुये सीसपर मुकुट, कंठविषे रुद्राक्षकी माला, अरु यज्ञोपवीत हुआ, अग्निवत् प्रकाश तेजवान् सभाविषे जो बैठे थे, तिनतें भी अधिक तेज मानौ अग्निकों भी लज्जित किया है, जैसे सूर्यके उदय हुये चंद्रमाका प्रकाश लज्जित होता है, तैसे सर्वतें जल जल हो गया, तब जैसे समुद्रसों तरंग निकसीकारि लीन हो जाता है, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तिसकों देखिकरि रामजी आश्चर्यकों प्राप्त हुआ, सर्व सभा विस्मयकों प्राप्त भई, तब बडे प्रकाशकों धारणेहारा विपश्चित निकसीकरि ध्यानविषे जुडि गया, विपश्चिततें आदि लेकरि इस शरीरपर्यंत सर्व स्मरण करिके नेत्र खोलि दिये, वसिष्ठजीके निकट आयकरि अष्टांग प्रणाम किया, अरु कहत भया ॥ हे ब्राह्मण ज्ञानके सूर्य ! हे प्राणके दाता, तुमकों मेरा नमस्कार है ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार उसनें कहा, तब वसिष्ठजीनें उसके शिरपर हाथ रखा, अरु कहा, हे राजन्, तूं उठ खडा हो, अब तेरी अविद्या मैं दूर करौंगा, तूं अपणे स्वरूपकों प्राप्त होवैगा, तब राजा विपश्चितनें उठिकरि राजा दशरथकों प्रणाम किया, अरु कहा, हे राजन्! तेरी जय होवै, तब राजा दशरथ आसनतें उठिकरि कहत भया ॥ हे राजन्! तुम बहुत दूर फिरते रहे हौ, अब इहां मेरे पास बैठो, तब राजा विपश्चित बैठि गया, विश्वामित्र आदिक जो ऋषि बैठे थे, तिनकों यथायोग्य प्रणाम करिके बैठि गया, तब राजा दशरथनें विपश्चितकों भास करिके बुलाया, बडे प्रकाशकों धारे हुये जो विपश्चित था, इस कारणतें दशरथनें कहा, हे भास! तुम तौ संसारभ्रमके लिये चिरकाल फिरते रहे हौ, थके होहुगे, विश्राम करौ, अरु जो जो देश काल क्रिया करी है, देख्या है सो कहौ, यह आश्चर्य है जो अपणे मंदिरविषे सोया होवै, अरु निद्रा दोष करिके गरतविषे गिरता फिरै, अरु देशदेशांतरकों भटकता फिरै इही अविद्या है ॥ हे भास! जैसे वनके विचरणेवाला हस्ती संकलकरि बंधायमान होवै, जैसे य

ह बांध्या हुआ दुःख पावता है, तैसे तूं विपश्चित भी था, अरु अविद्या करिके तूं भटकता है, जगत्के देखणे निमित्त ॥ हे राजन्! जगत् कछु वस्तु नहीं, अरु भासता है, इही माया है, जैसे भ्रम करिके आकाशविषे नानाप्रकारके रंग भासते हैं, तैसे अविद्या करिके यह जगत् भासता है, अरु सत्यप्रतीति होती है सो है क्या, आकाशरूपही आकाशविषे स्थित, तिस आकाशविषे जो कछु तुझनें देख्या है, आत्मरूपी चिंतामणिका चमत्कारसाथ सो कहौ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितशरीरप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकैकविंशतितमः सर्गः ॥ २२१ ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ ॥ हे भास! बडा आश्चर्य है, जो तूं विपश्चित बुद्धिवान् था, अरु चेष्टातें तूं अविपश्चित हुआ, बुद्धि करी है, सो अविद्याके देखणेकों तूं समर्थ हुआ था, इह जगत् प्रतिभा तौ मिथ्या उठी है, असत्यके ग्रहणकी इच्छा तुझनें क्यों करी ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार राजा दशरथनें कहा, तब प्रसंगकों पायकरि विश्वामित्र बोलत भया ॥ हे राजा दशरथ! यह चेष्टा सोई करता है, जिसकों परम बोध नहीं होता, अरु केवल मूर्ख अज्ञानी भी नहीं होता, काहेतें जो जिसकों परम बोध आत्माका अनुभव होता है, सो जगत्कों अविद्यक जानता है, अविद्यक जगत्के अंत लेणेकों एता यत्न नहीं करता, उह तौ असत्य जानता है, अरु जो देह अभिमानी मूर्ख अज्ञ है, तौ भी यह यत्न नहीं करता, काहेतें जो उसकों देखणेकी समर्थता भी नहीं होती, तातें तूं मध्यभावी है, सो आत्मबोधतें रहित है, अरु आधिभौतिक शरीर त्याग किया है, सो यत्न करता है, अरु जिनकों उत्तम बोध नहीं हुआ, तौ बहुत इस प्रकार भटकते फिरते हैं ॥ हे राजा! इसी प्रकार वटधाना भी फिरते हैं, सत्तर लक्ष वर्ष उनके व्यतीत भये हैं, जो इसी ब्रह्मांडविषे फिरते हैं, उननें भी यही निश्चय धारा है, जो पृथ्वी कहांलग चली जाती है, इस निश्चयतें निवृत्त नहीं होते, अरु इसी ब्रह्मांडविषे भ्रमते हैं, परंतु उनकों अपणी वासनाके अनुसार विपरीत अवरही अवर स्थान पडे भासते हैं ॥ हे राजन्!

जैसे किसी बालककों संकल्पका रचा वृक्ष आकाशमें होवै, तैसे यह भूगोल ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी इन पांचों तत्त्वका ब्रह्मांड रचा है, संकल्प करिके जैसे एक खेन होवै, तिसके चौफेर कीडि फिरै, सो जिस उरतें उह जाती है, सोई उर ऊर्ध्व भासता है, सो अवरही अवर निश्चय होता है, तैसे इह संकल्पका रचा भूगोल है, तिसके किसी कोणविषे वटधाना इस प्रकार जीव होत भये हैं, एक राजा था, तिसके तीन पुत्र थे, तिनकों संकल्प आनि उदय हुआ, जो हम जगत्के अंतकों देखें, इसी संकल्पकरि फिरते हैं, पृथ्वी लंघते हैं, बहुरि पृथ्वी जल आता है, जल लंघते हैं, बहुरि आकाश आता है, बहुरि पृथ्वी जल वायु आते हैं, बहुरि उसी भूगोलके चउफेर फिरते हैं, सो यह भूगोल कैसा है, जैसे आकाशविषे खेन होवै, तैसे यह पृथ्वी आकाशविषे है, इसका अध ऊर्ध्व कोउ नहीं, उरु चरण सो अर्ध शिरका पासा ऊर्ध्व तिसीके चौफेर उमते रहे, परंतु अपणे निश्चयकरि अवरका अवर जानते हैं, अरु जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग जगत्का अभाव नहीं होता, जब आत्माका साक्षात्कार होता है, तब जगत् ब्रह्मरूप हो जाता है, जगत् कछु बन्या नहीं, कछुक फुरणे करिके भासता है, सो जैसे स्वप्नविषे अज्ञान करिके अनंत जगत्कों देखता है, इह हुआ है, सो फुरणा परम ब्रह्मविषे हुआ है, जो फुरणेविषे हुआ है, सो भी परम ब्रह्म है, अवर कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे पत्थरकी शिला घनरूप होती है, तैसे आत्मतत्त्व चेतनघन है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, कल्पना परब्रह्मरूप है, अरु ब्रह्मही कल्पनारूप है, इस जड अरु चेतनविषे कछु भेद नहीं ॥ हे राजन्! जिसकों जगत् शब्दकरि कहीता है, सो ब्रह्मसत्ताही है, न कछु उत्पन्न हुआ है, न प्रलय होता है, सर्व ब्रह्महीं है, जैसे पहाडविषे पत्थरतें इतर कछु नहीं, तैसे जगत् ब्रह्मसत्तातें इतर कछु नहीं, जैसे पाषाणकी पुतली पाषाणरूपही है, तैसे जगत् ब्रह्मरूपही है, एक सूक्ष्म अनुभव अणुतें अ

नेक अणु होते हैं, जैसे एक पहाडतें अनेक शिला होती हैं ॥ हे राजन्! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों जगत् ब्रह्मरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, सो जगत् कछु वस्तु नहीं, परंतु जबलग संकल्प है, तबलग जगत् फुरता है, जैसे रत्नका चमत्कार होता है, तैसे जगत् आत्माका चमत्कार है, अरु चेतन आत्माके आश्रय अनंत सृष्टि फुरतियां हैं, सो सृष्टि सब आत्मरूप हैं, आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, जो जाग्रत पुरुष ज्ञानवान् हैं, तिनकों ब्रह्मरूपही भासता है, जो अज्ञानी हैं, तिनकों नानाप्रकारका जगत् भासता है ॥ हे राजन्! केई एक इसकों शून्य कहते हैं, जो शून्यही है, अवर कछु नहीं, अरु केई इसकों जगत् कहते हैं, अरु केई ब्रह्म कहते हैं, जो किसीकों निश्चय होता है, तिसकों सोईरूप भासता है, अरु आत्मरूपी चिंतामणि है, जैसा संकल्प फुरताहै, तैसा तैसा हो भासता है, सर्वका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जैसा जैसा तिसविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा होकरि उही भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य यह त्रिपुटी जो भासती है, सो भी ब्रह्म होकरि भासती है, अवर द्वितीय कछु वस्तु नहीं, अरु अवर जो भासता है, सोई अज्ञान है ॥ हे राजन्! जबलग इसकी वासना नष्ट नहीं होती, तबलग इसकों दुःख भी नहीं मिटते, जब वासना मिटि जावै, तब सर्व जगत् ब्रह्मरूप अपणा आपही भासै, रागदोष किसीविषे न रहै, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, जो पूर्व स्वरूप स्मरण आता है, तौ सर्वरूप आप हो जाता है, रागदोष उसका मिटि जाता है, तैसे ज्ञानवान्कों यह जगत् ब्रह्मरूप अपणा आप भासता है, अरु समानरूप विचारतें रहित होता है, जो पूर्व अपूर्व अपरकों विचारणा कै इह शुभ है, इह अशुभ है, अशुभका त्याग करणा, इह गुणविचार है, जबलग पूर्व अपर विचार मनविषे रहता है, तबलग जगतविषे भटकता है, अरु बांध्या रहता है, काहेतें जो शुभ अशुभ दोनों जगत्विषे हैं, जब इनका विस्मरण हो जावै, संपूर्ण जगत्कों भ्रममात्र जाणिकरि आत्मपदविषे सावधान होवै, तब मु

क्त होवैगा, अरु इस जीवकों अपणी वासनाही बंधनका कारण है, जबलग जगत्विषे दुःखकी वासना होती है, तबलग रागदोष उपजता है, तिसकरि बांध्या रहता है, जिनकों जगत्के सुख दुःखविषे रागदोषकी भावना नहीं उपजती, अरु वासना भी नष्ट भई है, तिनकों इह जगत् ब्रह्मरूप अपणा आपही भासता है, जगत्विषे दुःखदायक कछु नहीं भासता, उनकों सब ब्रह्म भासता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे वटधानोपाख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्वाविंशतितमः सर्गः॥ ॥ २२२ ॥ ॥ दशरथ उवाच॥ ॥ हे भास! तुम चिरकालपर्यंत जगत्विषे फिरते रहे हौ, जिस प्रकार तुमनें चेष्टा करी है, अरु जो देश काल पदार्थ देखे हैं, सो सबही कहौ॥ ॥ भास उवाच॥ हे राजन्! मैं जगको देखता फिऱ्या हौं, फिरता फिरता थकी गया हौं, परंतु देखणेकी जो इच्छा थी, इस कारणतें मुझकों दुःख नहीं भास्या, जो कछु मैं चेष्टा करी है, अरु जो देखा है, सो कहता हौं॥ हे राजन्! मैं बहुत जन्म धारे हैं, अरु बहुत वार मृतक भया हौं, बहुत वार शाप पाया है, उंच नीच जन्म धारे हैं, अरु मरी मरी गया हौं, अरु बहुत ब्रह्मांड देखे हैं, परंतु अग्नि देवताके वर करिके, अरु एक वारविषे मैं वृक्ष हुआ हौं, सहस्र वर्षपर्यंत फूल फल टाससंयुक्त रहा हौं, जब कोउ काटै तब मैं दुःखी होउं, अंतरतें मन मेरा पीडा पावै, बहुरि उहांतें शरीर छुटा तब सुमेरु पर्वतपर स्वर्णका कमल हुआ, उहांका जलपान किया, बहुरि एक देशविषे पक्षी हुआ, सौ वर्ष पक्षी रहा, बहुरि गीदड हुआ, उहां हस्तीनें चूर्ण किया तब मृतक भया, बहुरि सुमेरु पर्वतपर मैं सुंदर मृग हुआ, देवता अरु विद्याधर मेरेसाथ प्रीति करें, तब केता काल रहीकरि मृतक भया, बहुरी देवताके वनविषे मंजरी हुआ, देवीयां विद्याधरीयां मुझकों स्पर्श करैं, अरु सुगंधि लेवैं, तब मैं देवताकी स्त्री भया, बहुरि मैं सिद्ध हुआ, मेरा वचन फुरणे लगा, बहुरि अवर शरीर धार्या, एक ब्रह्मांड लंघि गया, बहुरि अवर बहुरि अवर इसी प्रकार केते ब्रह्मांड मैं लंघि गया, एक ब्रह्मांडविषे जो आश्चर्य देख्या

है, सो सुणहु, एक स्त्री देखी, तिसके शरीरविषे केई ब्रह्माड देखे, देखीकरि मैं आश्चर्यकों प्राप्त भया, अरु देश काल क्रियाकरि पूर्ण त्रिलोकियांकों देखता मैं विस्मय हुआ, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब दृष्ट आता है, तैसे मुझकों जगत् भासै, तब उसकों मैं कहा हे देवी! तूं कवन है, अरु यह शरीरविषे तेरे क्या है ॥ ॥ देव्युवाच ॥ हे साधो! मैं शुद्ध चिच्छक्ति हौं, अरु इह सब मेरे अंग हैं, मेरेविषे स्थित हैं, अरु मेरी क्या बात पूछणी है, जेता कछु जगत् तूं देखता है, सो सब चिद्रूप है, चेतनतें इतर कछु अवर नहीं, अरु सबविषे ब्रह्मांड त्रिलोकी आय स्थित है, जो अपणा आपही है, जो पूर्व अपणे स्वभावविषे स्थित है, तिनकों अपणेहीविषे भासते हैं, अरु अपणाही स्वरूप भासता है, अरु जो स्वभावविषे स्थित नहीं, तिनकों जगत् बाहिर भासते हैं, अरु आपतें भिन्न भासते हैं॥ हे राजन्! इह जगत् कछु बन्या नहीं, जैसे स्वप्नविषे नगर भासता है, जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जलविषे तरंग भासते हैं, सो जलरूप हैं, तरंग कछु इतर वस्तु नहीं होते, तैसे सब जगत् चिद्रूपविषे भासता है, सो चेतनतें इतर कछु नहीं, परंतु जब स्वभावविषे स्थित होकरि देखैगा, तब ऐसे भासैगा, अरु जो अज्ञान दृष्टिकरि देखैगा तौ नानाप्रकारका जगत् दृष्टि आवैगा॥ हे राजन् दशरथ! इस प्रकार उस देवीनें मुझकों कहा, तब मैं उहांतें चल्या, आगे अवर सृष्टिविषे गया, तहां देखौं जो सबही पुरुष रहते हैं, स्त्री कोउ नहीं, पुरुषसों पुरुष उत्पन्न होते हैं, तिसतें भी आगे अवर सृष्टिविषे गया, तहां न सूर्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न अग्नि है, न दिन है, न रात्र है, जैसे चंद्रमा सूर्य तारेका प्रकाश होता है, तैसे सब अपणे प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, तिनकों देखिकरि मैं आगे अवर सृष्टिविषे गया, तहां क्या देखे जो आकाशहीतें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु आकाशहीविषे लीन होते हैं, एकठेही सब उपजते हैं, अरु एकठेही सब लीन हो जाते हैं, न उहां मनुष्य हैं, न देवता हैं, न वेद हैं, न शास्त्र

हैं, न जगत् है, इनतें विलक्षणही प्रकार है ॥ हे राजन्! इस प्रकार मैं केई सृष्टि देखियां हैं, सो मुझकों स्मरण आतियां हैं, आगे अवर सृष्टिविषे मैं गया, तहां क्या देख्या जो सब जीव एकही समान हैं, न किसीकों रोग है, न दुःख है, सब एक जैसे गंगाके तीरपर बैठे हैं ॥ हे राजन्! एक अवर आश्चर्य देख्या है सो सुण, एक सृष्टिविषे मैं गया, तहां क्षीरसमुद्र मंदराचलकरि मथीता है, एक उरतें विष्णु भगवान् अरु देवता हैं, रत्नसाथ जड्या हुआ मंदराचल पर्वत है, शेषनाग करिके रसडीकी नांई लपेट्या हुआ है, मथणेके निमित्त दूसरी उरतें दैत्य लगे हैं, बडा सुंदर शब्द होता है, तहां उह कौतुक देखिकरि मैं आगे आया, एक अवर सृष्टि देखी, तहां मनुष्य उडते फिरते हैं, आकाशविषे अरु देवता पृथ्वीउपर मनुष्य विचरते हैं, वेद शास्त्र जाणते हैं ॥ हे राजा! एक अवर आश्चर्य देख्या, जो एक सृष्टिविषे मैं जाय निकस्या तहां मंदराचल पर्वत उपर कल्पतरु मंदराचल वृक्षका वन है, तिसविषे मंदरका नाम एक अप्सरा रहती थी, तहां मंदराचल पर्वतपर जायकरि मैं सोई रहा, अरु रात्रिका समय है, जो उह अप्सरा मेरे कंठसाथ आय लगी, तब मैं जागीकरि देख्या, अरु कहा, हे सुंदरि! तैंनें मुझकों किसनिमित्त जगाया, मैं तौ सुख साथ सोया था, तब अप्सरानें कहा ॥ हे राजन्! मैं इसनिमित्त तुझकों जगाया है, जो चंद्रमा आनि उदय हुआ है, अरु चंद्रकांतमणि चंद्रमाकों देखिकरि स्रवैगी, अरु नदीकी नांई प्रवाह चलैगा, तिसविषे तूं वहि जावै, इस कारणतें मैं तुझकों जगाया है ॥ हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार उसनें कहा, तब तात्काल ही नदीका प्रवाह चलणे लगा, तब उह प्रवाहकों देखिकरि मेरेकों आकाशविषे ले उडी, पर्वतके उपर गंगा का प्रवाह चलता था, तिसके काठेपर मुझकों स्थित किया, सप्तवर्षपर्यंत मैं उहां रहा, बहुरि एक ब्रह्मांड विषे गया, तहां तारा नक्षत्रचक्र सूर्य कछु न था, तिसकों देखिकरि मैं आगे गया, इस प्रकार अनंत ब्रह्मांड मैं देखता फिर्या हौं ॥ हे राजन्! ऐसे देश कोउ न होवैगा, अरु ऐसी पृथ्वी कोउ न होवैगी, ऐसी

नदी पहाड कोउ न होवैगा, जिसकों मैं न देख्या होवैगा, अरु ऐसी चेष्टा कोउ न होवैगी, जो मैं न करि होवैगी, केई शरीरके सुख भोगे हैं, केई दुःख भोगे हैं, वन कंदरा अरु गुप्तस्थान मैं सब फिरि देखे हैं, परंतु अग्नि देवताके वरकों पायकरि ॥ हे राजन्! फिरता फिरता मैं थकि गया, तौ भी आगे चला जाउं, अनेक ब्रह्मांड अविद्यक मैं देखे हैं, अरु अंत अब आया है, जो यह जगत् भ्रममात्र है, अरु मैं शास्त्र सुणे हैं, जो यह जगत् है नहीं, यद्यपि है नहीं, तौ भी दुःखकों देता है, जैसे बालककों अपणे परछायेविषे वैताल भासता है, तैसे यह जगत् अविचार करिके भासता है, अरु विचार कियेतें निवर्त हो जाता है, अरु एक आश्चर्य सुण, एक ब्रह्मांडविषे मैं गया, तहां महाआकाश था, तिस महाआकाशकों गिर्या, पृथ्वीउपर आनि पडा, तब तहांतें सोई गया, महागाढ सुषुप्तिरूप हो गया, अरु सब जगत्का विस्मरण हो गया, जब गाढ सुषुप्ति क्षीण भई, तब एक स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे यह जगत् तुमारा मुझकों भासी आया, तिसविषे पहाड कंदरा देश गुप्त प्रगट स्थान मुझकों भासि आये, जहां सिद्धकी गम है, तहां भी मैं गया हौं, अरु जहां सिद्धकी गम नहीं है, तहां भी मैं गया हौं, इस प्रकार यत्न देखे हैं, परंतु आश्चर्य है, जो स्वप्नकी सृष्टि प्रत्यक्ष जाग्रतविषे दृष्ट आवै है, अरु स्वप्नके शरीर जाग्रतविषे पडे भासते हैं, तातें सब जगत् भ्रममात्र है, असतही सत् होकरि दिखाइ देता है, इस प्रकार देखिकरि मैं आश्चर्यकों प्राप्त भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चितकथावर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २२३॥ ॥

॥ विपश्चित उवाच॥ हे राजन्! एक सृष्टि जो मैं देखी है सो कैसी आकाशमें है, जो इस महाआकाशमें है, जो इस महाआकाशतें भिन्न नहीं, अरु तहां तुमारी भी गम नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि कोउ जाग्रतविषे देखी चाहै, सो दृष्ट नहीं आती, तैसे उह सृष्टि है॥ हे राजन्! पृथ्वीका एक स्थान था, सो मेरे देखते देखते पच्छावेकी नांई फुरणे लगा, बहुरि उह आकाशविषे पहाडकी नांई भासणे लगा, अरु शरीर मनु

ष्यका अरु दशों दिशा रोकि लियां, अरु आकाशतें भी बडा भासणे लगा, सो आकाशविषे भी समावै नहीं, बहुरि सूर्य चंद्रमाकों मेरे देखते देखते आच्छादि लिया, बहुरि भूकंप जैसा आया, मानों प्रलयकाल आया है, तब मैं अपणे इष्ट अग्नि देवताकी उर देखत भया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! तुम मेरी जन्म जन्म रक्षा करते आये हौ, अब भी मेरी रक्षा करौ, मैं नष्ट होता हौं, तब अग्निनें कहा, तूं भय मत करु, तब मैं अग्निविषे जीव प्रवेश किया, बहुरि अग्निनें कहा, मेरे वाहनपरि आरूढ होकरि मेरे स्थानविषे चल, तब मुझकों अपणे वाहन तोतेपर चढायकरि मेरे तांई आकाशमार्ग ले उडा, जब हम उडे, तब पाछेतें उह शिवत्रितक पृथ्वीपर गिर्या, तिसके गिरनेकरि सुमेरु जैसे पर्वत पातालकों चले गये, महाशरीर बडा गिर्या, जैसे सैकडे सुमेरु गिरैं तैसे गिर्या, अरु मंदराचल मलयाचल अस्ताचलतें लेकरि जो पर्वत थे, सो अधकों चले गये, अरु पृथ्वी जर्जरीभावकरि फटि गई, टोए पडि गये, अरु तिसके शरीरके नीचे जो वृक्ष मनुष्य दैत्य स्थावर जंगम जिन आये सो सब नष्ट हो गये, बडा उपद्रव आनि उदय हुआ, तिसके शरीरसाथ सर्व दिशा पूर्ण हो गईयां, अरु अंग उसके ब्रह्मांडतें भी पार निकसी गये ॥ हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार मैं भयानक दशा देखी, तब अपणे इष्ट अग्निकों कहा ॥ हे देव! यह उपद्रव क्योंकरि हुआ है, अरु यह सव कवन हैं, सो ऐसा शरीर पडा आगे तौ कोउ देख्या सुण्या नहीं, तब अग्निनें कहा, तूं अब तूर्णीं होहु, यह सब वृत्तांत मैं तुझकों कहौंगा, इसकों तूं शांत होणे देही, एता काल तूं विलंब करु, इस प्रकार अग्नि कहता था, जो देवता विद्याधर गंधर्व सिद्ध जेते कछु स्वर्गके वासी थे, सो सब आनिकरि मिली स्थित हुए, अरु विचार करत भये जो यह उपद्रव प्रलयकालविना हुआ है, इसके नाश करणेकों देवीजीकी आराधना करियें ॥ हे राजन्! ऐसे विचार करिके देवीजीकी स्तुति करणे लगे ॥ हे देवी! शव वाहिनी काक देसी चंडिका! हम तेरी शरण आये हैं, इस उपद्रवतें हमारी रक्षा करहु, ऐसे कहिक

रि स्तुति करणे लगे ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे महाशबवृत्तातवर्णनं नाम द्विशताधिक चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २२४ ॥ ॥ ॥ ॥ विपश्चित उवाच ॥ हे राजा दशरथ! उह देवता स्तुति करिके शबकी उर देखते भये, जो सप्तद्वीप इसके उदरविषे समाये गये हैं, अरु भुजा करिके सुमेरु आदिक पर्वत आच्छादि गये हैं, अवर अंग उसके गये हैं, ब्रह्मांडकों भी लंघि गये हैं, अरु साथही पातालकों गये हैं, तिनकी मर्यादा कहूं पाई न जावै, एक अंगही करिके कहूं पृथ्वी छपि गई, ऐसे देखीकरि विद्याधर देवता गंधर्व सिद्ध इनतें लेकरि नभचर स्तुति करणे लगे ॥ हे अंबे चंडिका! अपणे गणकों साथ लेकरि इस उपद्रवतें हमारी रक्षा करहु, हम तेरी शरण आये हैं ॥ हे राजन्! जब इस प्रकार स्तुति करिके देवता आराधन करणे लगे, तब चंडिका अपणे गणकों लेकरि आकाशमार्गसों आवती भई, यक्ष वैताल भैरव आदिक गण साथ ले आये, जैसे मेघ सर्व दिशांकों आच्छादि लेता है, तैसे सर्व उरतें गण आये, अरु आकाशकों आच्छादि लिया, अरु चंडिका बडे तेजरूपकों धारे हुए चली आवै, मानौ अग्निकी नदी चली आती है, रक्त नेत्र हैं, शिर उपरि पक्के केस हैं, अरु श्वेत दंत हैं, अरु बडे शस्त्र धारे हुए हैं, अरु केई कोटि योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, सब दिशा आकाश शरीरकरि आच्छादि लिया है, अरु कंठविषे रुंडकी माला है, अरु सब मुडदे वाहनपर आरूढ हुई है, अरु परमात्म पदविषे तिसकी स्थिति है, अरु हृदयप्रकाशसंयुक्त शरीर है, सूर्य चंद्रमा अग्नि आदिक प्रकाशकों भी लज्जित किया है, अरु हाथविषे खड्ग मूसल ध्वजा ऊखल आदिक नानाप्रकारके शस्त्र धारे हैं, अरु आकाशविषे तारागणकी नांई गये हैं, इस प्रकार गण सहित चली आती है, मानौ समुद्रतें निकसी वडवाग्नि चली आती है, जब इसी निकट आये तब देवता बहुरि प्रार्थना करणे लगे ॥ हे अंबे! इस शबकों नाश करहु, अपणे गणकों आज्ञा करहु, जो इसकों भोजन करें, हम इसकों देखीकरि बडे शोककों प्राप्त हुए हैं, हम तेरी शरण

हैं, इस उपद्रवतें हमारी रक्षा करु॥ हे राजा दशरथ! जब इस प्रकार देवतानें कहा, तब चंडिका प्राणवायुकों खैंचती भई, तिसकरि देवीके खैंचणेतें जेता कछु सबविषे रक्त था, सो सब पान करि लिया, जैसे समुद्रकों अगस्तिनें पान किया है, तैसे पान करि लिया, तिसकरि देवीका उदर अरु अंग सब भरे पूर्ण हो गये, अरु नेत्र लाल हो आये, तब देवी नृत्य करणे लगी अरु अवर सब शबकों भोजन करणे लगे, केई मुखकों लगे, केई भुजाकों, केई उदरकों, केई वक्षस्थलकों, टंगकों, केई चरणकों इस प्रकार सब अंगकों गण भोजन करणे लग गये, केई गण आद्रा लेकरि आकाशविषे गये, सूर्यके मंडलकों गये, केई गण अंगके अंत पावणेकों उडे, सो मार्गहीमें मरी गये, परंतु अंत कहूं न पाया, अरु देवी जो उस शबकी उर देखै, तिस देखणेकरि नेत्रतें अग्नि निकसै, तिस अग्निकरि मांस परिपक्क होवै, अरु गण भोजन करै, अरु पकणेके समय जो शरीरतें कहूं रक्तकी बूंद निकसै, तिसकरि मंदराचल अरु हिमाचल पर्वत लाल हो गये, मानौ पर्वतनें लाल वस्त्र पहिरे हैं, अरु रक्तकी नदियां वहे हैं, बडे जो सुंदर स्थान थे, अरु दिशा सब भयानक होत भई, अरु पृथ्वी उपर जीव सब नष्ट हो गये, पहाडकी कंदराविषे जाय देव रहे, सो बचि गये, अवर सब नष्ट हो गये॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, उस नीचे आय प्राणी सब नष्ट हो गये, अरु अंग उसके ऐसे कहते हौ जो ब्रह्मांडकों भी लंघि गये, बहुरि कहते हौ देवता बचि रहे, सो क्या कारण है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो उसके शरीर अरु अंगके नीचे आये सो नष्ट हो गये, अरु मुख अरु ग्रीवाविषे कछु भेद है, तिसविषे जो पोल है, अरु गोदी अरु टंगके नीचे जो कछु पोल है, अरु सुमेरु मंदराचल उदयाचल अस्ताचल पर्वतविषे कछु पुलाड है, तिनकी कंदराविषे बैठे देवता बचि गये, अंगके छिद्रविषे रहे हैं, इसकरि बचि रहे हैं, अरु कहणे लगे, बडा कष्ट है, हमारे बैठणेके स्थान केई नष्ट हो गये हैं, वृक्ष कहां गये, बरफका पर्वत हमारा कहां गया, इनकी सुंदरता कहां गई, वन अरु बगीचे कहां गये, चंदनके वृक्ष कहां गये

अरु जनके समूह कहा गये, जो हमकों यज्ञकरि पूजते थे, यह ऊंचे वृक्ष कहां गये, जो ब्रह्मलोकपर्यंत जिनके फूल अरु टास जाते थे, अरु यह क्षीरसमुद्र कहा गया, जिसके मथणेकरि बडा शब्द उदय होता था, अरु तिसके पुत्र जो रत्न कल्पतरु अरु चंद्रमा थे, सो कहां गये, अरु जंबुद्वीप कहा गया, जिस जंबुके फलकी नदी चलाई थी, अरु स्वर्णवत् जलके चक्र उठते थे, सो नहीं, कहां गइया, अरु गनेके रसका समुद्र कहां गया, हा कष्ट! हा कष्ट वरत्या है, खंडके पर्वत अरु मिसरीके पर्वत अप्सराके विचरणेके स्थान कहां गये, पृथ्वी कहां गई, यह नंदनवनके स्थान कहां गये, जहां हम अप्सरासाथ विलास करते थे, तिन विषयका अभाव नहीं हुआ, मानों हमकों शूल चुभते हैं, जैसे फलकों कंटक चुभते हैं, तैसे विषयके आभासरूपी हमकों कंटक चुभते हैं ॥ हे रामजी! शोकवान् हुए, अरु कहते भये, हा कष्ट हा कष्ट है, इस प्रकार विषय स्मरण करिके देवता शोक करते हैं, अरु गण उहां सबकों भोजन करते हैं, जेते कछु अंग तिसके थे, सो गणनें भोजन करि लिये, तिसकरि अघाए रहे, अरु कछु शेष रही गया, मेदाका अरु सुगंध वहुत तब तिसका जो पिंड रहा, सो धराकी पृथ्वी हुई, तिसकरि तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी हो गया, अरु मोटे जो हाडे हुए होते हैं, तिसके, सुमेरु आदिक पर्वत हुए, तब ब्रह्माजीनें देख्या जो सब विश्व शून्य जैसी हो गई है, तातें बहुरि मैं रचौं, तब पूर्वकी नांई सृष्टिकों रची, जगत् सब कर्मव्यवहार चलणे लगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वयंमाहात्म्यवृत्तांतवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचविंशतितमः सर्गः ॥ २२५ ॥

॥ ॥ विपश्चित उवाच ॥ हे राजा! जब यह कर्म हो रहा है, तब मैं, अपणे इष्ट देवतासों प्रश्न किया, तोते वाहनपर आरूढ हुए मैं कहा ॥ हे महादेव! सर्व जगत्के ईश्वर, अरु जगत्के भोक्ता, यह सब कवण था, अरु कहां स्थित था अरु किस प्रकार गिर्या है ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन्! अनंत त्रिलोकी जिसका आभास है, तिसविषे इसका वृत्तांत वर्णन होवैगा, एक त्रिलोकीविषे इस सबका

वृत्तात नहीं होता, तातें सुण ॥ हे राजन्! एक परम आकाश है, सो चिन्मात्र पुरुष है, सर्वज्ञ है, अनामय है, अरु अनंत है, सो आत्मतत्त्व केवल अपणे आपविषे स्थित है, तिसका जो आभास है, सो संवेदन फुरणा है, सोई किंचन होता है, सो तिसके किसी स्थानविषे फुरता है, तब ऐसे भावना होती है, जो मैं तेज अणु हौं, तिस भावनाके वशतें अणु जैसी हो जाती है, जैसे कोउ पुरुष सोया है, अरु स्वप्नमें आपकों मार्गविषे चलता देखता है, जैसे तुम स्वप्नविषे आपकों पौढे देखहु तैसे चिद् संवेदन आपकों अणु जानत भई है, जैसे फुरणा ब्रह्माकों हुआ है, तैसे धूडके कणकेका हुआ है, अधिष्ठानविषे फुरणा तुल्य हुआ है, तब उस अणुकों शरीरकी भावना होती है, जो अपणे साथ शरीर देखती है, शरीरके होणे करि नेत्र आदिक इंद्रियां घन होतीयां हैं, तब शरीर अरु इंद्रियांसाथ आपकों मिल्या हुआ जाणता है, अपणा आप जाणीकरि तिनकों ग्रहण करता है, इंद्रियांकरि विषयकों ग्रहण करता है, तब उही चिद्रूप जीव प्रमाद करिके आधाराधेयभावकों मानता है, अरु अधिष्ठान सत्ताविषे कछु हुआ नहीं, अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे प्रमाद करिके आपकों किसी ग्रहविषे बैठे देखता है, तैसे इहां प्रमाद करिके आधाराधेयभावकों देखता है, प्राण अरु मन अहंकारकों धारता है, अरु जानता है, मेरे माता पिता हैं, अरु मैं अनादिका जीव हौं, अरु अपणा शरीर जाणीकरि आगे पंचभौतिक जगतशरीरकों देखता है, अपणे फुरणेके अनुसार है, अंग इसी प्रकार जो आदिक शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वविषे फुरणा हुआ, तब चित्तकला फुरी, यह आपकों तेज अणु जानत भई, तब तिसविषे अहंवृत्तिकरि अहंकार हुआ, अरु निश्चयात्मक बुद्धि हुई, चैत्यतारूप चित्त हुआ, संकल्पविकल्परूप मन हुआ, यह उत्पत्ति होकरि बहुरि तन्मात्र उत्पत्ति भई, फेरि तिनके इच्छाद्वारा शरीर इंद्रियां उत्पन्न भइयां, बहुरि तिन इंद्रियांके वशतें देखणेकी इच्छा हुई, तिस संवितकालविषे तब आगे दृश्य भासि

आई, तब संवितशक्ति आपकों प्रमाददोष करिके दैत्य जानत भई, जो मैं दैत्य हौं, अरु साथही तिसके अपणे माता पिता फुरी आये, जो यह मेरी माता है, यह पिता है, यह कुल है, सो चिरकालकी चली आती है, इस प्रकार एक दैत्य अहंकार सहित विचरणे लगा, तब एक कुटीविषे एक ऋषि बैठा था, तिस कुटीकी उर दैत्य गया, सो किस प्रकार गया, जो उसकी कुटीकों चूर्ण करत भया, जब ऋषिके निकट गया तब ऋषिनें कहा, हे दुष्ट, तुझनें क्या चेष्टा ग्रहण करी है, अब तूं मरि जावैगा, अरु मच्छर होवैगा ॥ हे विपश्चित! तिस ऋषीके शापरूपी अग्निकरि उसका शरीर भस्म हो गया, तब उसकी निराकार चेतनसंवित भूताकाशरूप हो गई, तब आकाशविषे तिसका वायुसाथ संयोग हुआ, तब उस ऋषि मौनीके शापकी वासना आनि उदय भई, जैसे पृथ्वीविषे समय पायकरि बीजतें अंकुर उत्पन्न होता है, तैसे पंच तन्मात्रा उदय भई, अरु मच्छरका शरीर अपणा भासि आया, अज्ञान करिके मच्छर हुआ, जिस मच्छरकी दो अथवा तीन दिन आरबला होती है तिसका शरीर पाया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जीव जो जन्म पावते हैं सो जो जन्मतें जन्मांतरके चले आते हैं, अथवा ब्रह्मतें उपजे होते हैं, यह कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! केई जन्मतें जन्मांतर चले आते हैं, अरु केई ब्रह्मातें उपजते होते हैं, जिनकों पूर्ववासनाका संसरना होता है सो वासनाके अनुसार शरीरकों धारते हैं, सो जन्मतें जन्मांतरकों चले आते हैं, अरु जिनकों संस्कारविना भूत भासि आते हैं सो ब्रह्मातें उत्पन्न होते हैं ॥ हे रामजी! आदि सब जीवसंस्काररूपी जो कारण है, तिसविना उत्पन्न हुए हैं, अरु पाछेतें जन्मांतर इनकों होता है, जिसकों संस्कारविना भूत भासै सो जाणियें ब्रह्मातें उपजा है, अरु जिसकों संस्कारकरि सृष्टि भासै सो जाणियें इसके जन्मांतर हैं, जो ये दो प्रकार भूतकी उत्पत्ति मैं तुझकों कही है, अब बहुरि उस मच्छरका क्रम सुण ॥ हे रामजी! जब उह मच्छरके जन्मकों प्राप्त हुआ, तब कमलिनीयां अरु हारे घास तृण पत्रविषे

मच्छरकों साथ लिये रहे, तब उहां एक मृग आनि प्राप्त हुआ, तिसका चरण मच्छरपर आय गया, जैसे किसि उपर सुमेरु पर्वत आय पडै, तब उह मच्छर चूर्ण हुआ, अरु मृतक भया, अरु मृतक होणेके समय मृगकी उदर देख्या, उसके देखणे करिके उसका शरीर मृगरूप हो गया, तब उह मरिके तात्कालही मृग हुआ, वनविषे विचरणे लगा, तब एक कालमें तिसकों वेधकनें देख्या, अरु बाण चलाया, तिस बाणकरि मृग वेध्या गया, वेध्या हुआ मृग वेधककी उर देखत भया, तिस देखणेकरि उह मरिके वेधक हुआ, तब धनुष्य अरु बाण लेकरि मृग अरु पक्षीकों मारणे लगा, बहुरि एक समय वनविषे गया, तब एक मुनीश्वर वनविषे देख्या, तिसके निकट जाय बैठा, मुनीश्वरनें कहा, हे भाई, तूं यह क्या पाप चेष्टाका आरंभ करता है, इस चेष्टाकरि नरककों प्राप्त होवैगा, तातें तूं किसी जीवकों दुःख न देहु, अरु जिन भोगके निमित्त तूं यह चेष्टा करता है सो भोग बिजुलीके चमत्कारवत् हैं, जैसे मेघविषे बिजुलीका चमत्कार होता है, बहुरि मिटि जाता है, तैसे भोग होयकरि मिटि जाता है; अरु जैसे कमलके पत्र उपर जलकी बुंद ठहरती है सो उसकी आरबला कछु नहीं, क्षण पलविषे गिर पडती है; वायु करिके, तैसे इस शरीरकी आरबला कछु नहीं, जैसे अंजलीविषे जल पाया ठहरता नहीं, तैसे यौवनअवस्था चली जाती है, क्षणभंगुररूप वृक्ष है, अरु यौवन असार है, तिसविषे भोगणा क्या है, इनकरि शांति कदाचित् नहीं होती, जो तुझकों शांतिकी इच्छा होवै तौ निर्वाणका प्रश्न कर, तब तूं दुःखतें मुक्त होवै, अपणे हिंसा कर्मकों त्यागी देहु, इसके करणेकरि नरककों चला जावैगा, कदाचित् भी शांति तुझकों न प्राप्त होवैगी, तूं अपणे हाथकरि अपणे चरणपर कुहाडा क्यों मारता है, अरु अपणे नाशके निमित्त तूं विषका बीज क्यों बोता है, इस कर्मकरि तूं संसार दुःखविषे भटकत फिरैगा, शांतिवान कदाचित् न होवैगा, तातें सो उपाय कर जिसकरि संसारसमुद्रतें पार होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे मच्छरव्याधवर्णनं नाम द्विशताधिकषड्विंशतितमः सर्गः ॥ २२६ ॥

॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन्! जब इसी प्रकार ऋषीश्वरनें उस वेधककों कहा, तब वेधकनें धनुष्य अरु वाणकों डारि दिया, अरु बोला, हे भगवन्! जिस प्रकार संसारसमुद्रतें पार होउं, सो उपाय कृपा करिके मुझकों कहो, परंतु कैसे होवै जो न दुःसाध्य होवै, न मृदु होवै, मृदु कहिये जो अल्प भी न होवै, दृढ होवै ॥ ॥ ऋषीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! मनकों एकाग्र करणा इसका नाम शम है, अरु इंद्रियांकों रोकणा इसका नाम दम है सोई मौन है, यह दोनों जो हैं, तप अरु मौन मनकों एकाग्र करणा इसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, अरु अंतःकरणशुद्धविषे आत्मज्ञान उपजता है, तिस आत्मज्ञानकरि संसारभ्रम निवृत्त हो जाता है, अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है ॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजन्! इस प्रकार जब ऋषीश्वरनें कहा, तब उह वेधक उठि खडा हुआ, प्रणाम करिके तप करणे जाय लगा, कैसा तप जो इंद्रियसंयमविषे राखी, अरु जो अनिच्छित यथाशास्त्र आनि प्राप्त होवै, तिसका भोजन करणा, अरु सब क्रियाका अंतरतें मौनव्रत धरना, जब केता काल उसकों तप करते व्यतीत भया, तब अंतःकरण शुद्ध हुआ, ऋषीश्वरके निकट आयकरि प्रणाम करि बैठी गया अरु कहत भया ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे भगवन्! वाहिर जो दृश्य है सो अंतर किस प्रकार प्रवेश करती है, अरु स्वप्नविषे सृष्टि जो भासती है, सो अंतरकी वाह्यरूप हो भासती है, सो कैसे भासती है, यह कृपा करिके कहो ॥ ॥ ऋषीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! यह बडा गूढ प्रश्न तुझनें किया है, इही प्रश्न प्रथम मैं भी गणपतिकों किया था, संदेहसंयुक्त होकरि, तब जो कछु उनके कहणेकरि मैं ग्रहण किया है सो सुण ॥ हे वेधक! एक समय इसी संदेहके दूर करणेका उपाय मैं करत भया, पद्मासन बांधिकरि बाह्य इंद्रियांकों रोक्या, रोकीकरि मनविषे जोडी, अरु मन बुद्धि आदिककों पुर्यष्टकाविषे स्थित किया, स्थित करिके पुर्यष्टकाकों शरीरतें विरक्त किया, अरु आकाशविषे तिसकों ठहरावत भया निराधार, जब विलक्षण हुआ चाहै, तब विलक्षण हो जावै, अरु जब शरीरविषे व्या

प्या चाहै तब व्यापि जावै ॥ हे वेधक! इस प्रकार जब मैं योगधारणा करिके पूर्ण भया, तब एक कालमें एक पुरुष हमारी कुटीके पास सोया था, तिसके श्वास अंतर बाहिर आते जाते थे, तिसकों देखीकरी मैं यह इच्छा करी, जो इसके अंतर जायकरि कौतुक देखौं, जो अंतर क्या अवस्था होती है, ऐसे विचार करिके मैं पद्मासन बांध्या, अरु योगकी धारणा करिके उसके श्वासमार्गसों मैं अंतर प्रवेश जाय किया, जैसे उष्ट्र उंघता होवै, अरु उसके श्वासमार्गतें जैसे सर्प जाय प्रवेश करै, तैसे मैं जाय प्रवेश किया, तिसके अंतर अपणे अपणे रसकों ग्रहण करणेहारी नाडियां मुझकों दृष्ट आईयां, केई वीर्यकों ग्रहण करणेहारीयां हैं, केई रक्तकों, केई कफकों ग्रहण करतियां हैं, केई मलमूत्रवालियां हैं, सो सब मैं देखत भया, अवर अनेक विकार जो उसके अंतर थे, सो सब देखता भया, देखीकरि मैं अप्रसन्न भया, महासंकल्परूप स्थान है, रक्तमज्जाकरि संयुक्त अंधकार महानरकके तुल्य है, गर्भवास जीवकों बहुरि आगे गया, तहां एक कमल देख्या, तिस हृदयकमलविषे तिनकी संवेदन फुरती देखी, तिस संवेदन फुरणेविषे जो कछु मैं देख्या है सो सुण, अरु कैसी उह संवेदन है, संवितशक्ति जो महातेजवान है, हृदयाकाश तहां उह स्थित है, कैसी स्थिति है, त्रिलोकीका आदर्श है, त्रिलोकीविषे जो पदार्थ हैं, तिनका दीपक है, अरु सर्व पदार्थकी सत्तारूप है, ऐसी जो संवितरूपी जीवसत्ता है, सो तहां स्थित है, तिस सत्तासाथ मैं तद्रूपताकों प्राप्त हुआ, तहां तिसके अंतर जो मैं देख्या है सो सुण, सूर्य चंद्रमा अरु पृथ्वी जल तेज वायु आकाश पर्वत समुद्र देवता गंधर्व इनतें आदि लेकरि जो नानाप्रकारका जगत् है, स्थावर जंगम सब विश्वकों मैं देखता भया, ब्रह्मा विष्णु रुद्र सहित संपूर्ण सृष्टिकों देखीकरि मैं आश्चर्यवान हुआ, उसके अंतर सृष्टि क्यों करि भासी सो सुण ॥ हे वेधक! जाग्रतविषे उस सृष्टिकों अनुभव किया था, इंद्रिय करिके अरु अंतर चिद्तत्त्वविषे उसका संस्कार हुआ था, उही अंतर भास भासणे लगा, अरु अंतर जो भूतसत्ता थी, सो उ

सके स्वप्नविषे इह सृष्टिरूप बाह्ये बणी, अरु मुझकों प्रत्यक्ष भासणे लगी, जैसे जागृत प्रत्यक्ष अर्थाकार भासती है, तैसे मुझकों यह सृष्टि भासणे लगी ॥ हे वेधक! इस जागृत सृष्टि अरु उस सृष्टिविषे भेद कछु न देख्या, दोनौं तुल्य हैं, अरु चिरपर्यंत प्रतीतिका नाम जाग्रत है, अरु अल्पकालकी प्रतीतिका नाम स्वप्न है, अरु स्वरूपतें दोनौं तुल्य हैं, जो उसके स्वप्न अनुभवविषे था, सो मुझकों जाग्रत भासी, अरु जो मुझकों जाग्रत भासी सो उसकों स्वप्न भास्या, निद्रा दोष करिके उसकों स्वप्न हुआ, उसकों भी तिस कालविषे जाग्रतरूप भासणे लगी, काहेतें जो स्वप्न स्वप्नरूप है, सो जाग्रतविषे स्वप्न है, स्वप्नविषे तौ जाग्रत हैं, तैसे जाग्रत भी अपणे कालविषे जाग्रत है नहीं, तौ स्वप्नरूप है, सो जाग्रतविषे भी जो सतप्रतीति है सोई प्रमाद है, इन दोनौंविषे भेद कछु नहीं, काहेतें जो जाग्रत अरु स्वप्नका अधिष्ठान चेतनसत्ता परब्रह्म है, तिसके प्रमादकरि इसकों प्राणकेसाथ संबंध हुआ, जब प्राणसाथ चित्तसंवेदन मिली, तब तिस फुरणेरूपके एते नाम भये, तिसका नाम जीव हुआ, मन हुआ, चित्त बुद्धि अहंकार आदिक सब तिसके नाम हैं, उही संवेदन जो बाह्यरूप हो फुरती है, तब जाग्रतरूप जगत् हो भासता है, पंच ज्ञान इंद्रियां, पंच कर्म इंद्रियां, चतुष्टय अंतःकरण यह चौदश इंद्रियां अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करातियां हैं, इसका नाम जाग्रत है, जब चित्तस्पंद निद्रा दोष करिके अंतर्मुख फुरता है, तब नानाप्रकारकी स्वप्नसृष्टि देखता है, निद्रादोष करिके तिस कालमें उही जाग्रतरूप हो भासता है, अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, जब संवेदन तिसकी उर फुरती है, बाह्य विषयके फुरणेतें रहित अफुरण होती है, तब न जाग्रत भासती है, न स्वप्न भासता है, केवल आत्मसत्ता निर्विकल्प शेष रहती है ॥ हे वेधक! मैं विचारी देख्या, जो जगत् अवर कछु वस्तु नहीं, फुरणेका नाम जगत् है, जब चित्त संवेदन फुरणारूप होती है, तब जगत् भासता है, अरु जब चित्त संवेदन फुरणेतें रहित होती है, तब जगत्कल्पना मिटि जाती है, तातें मैंनें निश्चय किया है,

जो वास्तव केवल चिन्मात्र है, जगत् कछु वस्तु नहीं, मिथ्या कल्पनामात्र है ॥ हे वेधक! जगत्भावना त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, अब उही वृत्तांत बहुरि सुण, जब उसके अंतर स्वप्न जाग्रत अवस्था देखे तब मैं इह इच्छा करी जो सुषुप्ति अवस्था भी देखौं, अरु विचार किया, जो सुषुप्ति नाम है, प्रलयका जहा द्रष्टा दर्शन दृश्य तीनोंका अभाव हो जाता है, परंतु जहां मैं देखणेवाला हुआ, तहां महाप्रलय कैसे होवैगी, अरु जो मैं जानणेवाला न होऊं, तब सुषुप्तिकों कवन जाणेगा ॥ हे वेधक! तब मैं विचारि देख्या, जो अवर सुषुप्ति कोउ नहीं, जहां चित्तकी वृत्ति फुरती नहीं, तिसीका नाम सुषुप्ति है, ऐसे विचार करिके चित्तकों फुरणेतें रहित किया, तब सुषुप्ति तिसकी देखी, तहां क्या देख्या सो सुण, न कोउ उहां अहं त्वं शब्द है, न शुभ है, न अशुभ है, न जाग्रत स्वप्न है, न सुषुप्तिकी कल्पना है, सर्व कल्पनातें रहित चित्तसत्ता मैं देखत भया, अरु जो तूं कहै, सुषुप्ति निर्विकल्प तुझनें कैसी देखी, तिसका उत्तर यह है ॥ हे वेधक! अनुभव ज्ञानरूप आत्मसत्ता सर्वदा कालविषे ज्योंकी त्यों है, तिसविषे जैसा आभास फुरता है, तैसा ज्ञान होता है, यह जो तुम भी दिन दिन प्रति देखते हौ, सुषुप्तितें उठिकरि जानते हौ, जो मैं सुखसों सोया था, सो अनुभव करिके देख, तैसे मैं भी उह देखता भया, इहां चित्त संकल्प कोउ नहीं फुरता, निर्विकल्प है, परंतु कैसा निर्विकल्प है, जो सम्यक् बोधतें रहित है, तिस अभाव वृत्तिका नाम सुषुप्ति है, अरु बहुरि मुझकों तुरीया देखणेकी इच्छा भई, सो तुरीया देखणी महा कठिन है, तुरीया नाम है, साक्षिभूत वृत्तिका सो सम्यक् ज्ञानतें उत्पन्न होती है, सो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाकी साक्षीभूत अवस्था है अरु सुषुप्तिकी नांई है, जैसे सुषुप्तिविषे अहं त्वं आदिक कल्पना कोउ नहीं, तैसे तुरीयाविषे भी नहीं, ब्रह्मका सम्यक् बोध होता है, अरु सुषुप्ति जडीभूत तमरूप अविद्या होती है, तुरीयाविषे जडता नहीं होती, सो सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे एताही भेद होता है, सच्चिदानंद साक्षिवृत्ति होती है, सम्यक् बोधका नाम तुरीयापद है, अवर

तुरीया इसतें भिन्न कोउ नहीं, ऐसे निश्चयकरि मैं तिसकों देखता भया ॥ हे वेधक! चारों अवस्था मैं भिन्न भिन्न देखता भया अरु माया जो है फुरणा, तिससहित मैं देखता भया अरु आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे न कोउ जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, न तुरीया है, इनका भेद तहां कहूं नहीं, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है, अरु यह चारों, चित्तसंवेदनविषे होतीयां हैं ॥ हे वेधक! ऐसे अनुभव करिके बाहिर आया, बाहिर भी मुझकों भासणे लगा, तब मैं कहा यही जगत् मुझकों उसके अंतर भास्या था, बाहिर कैसे आया, तब मैं बहुरि उसके अंतर प्रवेश किया, प्रथम जो उसके अंतर प्रवेश किया था, अरु तिसके अंतर सृष्टि देखी थी, तब उसकी संवेदन अरु मेरी संवेदन मिली गई थी, जब मैं अपणी संवेदन उसतें भिन्न करी, तब ब्रह्मांड भासणे लगा, एक उसकी संवेदन फुरणेकों अरु एक मेरी संवेदनविषे भासणे लगा, काहेतें जो प्रथम उसकी सृष्टिकों देखीकरि मैं अर्थरूप जाणी ग्रहण किया, तिसका संस्कार हो गया, आत्मसत्ताके आश्रय जैसे संवेदन फुरती गई, तैसे होकरि भासणे लगा, उसका स्वप्न मुझकों जाग्रत होकरि भासणे लगा, जैसे एक दर्पणविषे दो प्रतिबिंब भासैं, तैसे एक अनुभवविषे दो सृष्टि भासणे लगियां, तब मैं विचार किया, जो सृष्टि संकल्परूप हैं, संकल्प जीवका अपणा अपणा है, अरु अपणे संकल्पकी भिन्न भिन्न सृष्टि है, अरु अनुभवके आश्रय जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसी सृष्टि भासती है, सृष्टिका कारण अवर कोउ नहीं ॥ हे वेधक! अष्ट निमेषपर्यंत मुझकों दो सृष्टि भासती रही, बहुरि मैं उसके चित्तकी वृत्ति अरु अपणे चित्तकी वृत्ति एकठी करि मिलाई, तब दोनों तद्रूप हो गये, जैसे जल अरु दूध मिलिकरि एकरूप हो जाता है, तैसे दोनों चित्त मिलिकरि एक हो गये, तब दूसरी सृष्टिका अभाव हो गया, जैसे भ्रम दृष्टिकरि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, भ्रमके गयेतें दूसरे चंद्रमाका भाव अभाव हो जाता है, तैसे द्वितीय वृत्तिके अभाव हुए दूसरी सृष्टिका अभाव हो गया, एक इसीकी सृष्टि भा

सणे लगती है, नानाप्रकारके व्यवहार होते दृष्ट आवैं, चंद्रमा सूर्य पृथ्वी द्वीप समुद्र स्पष्ट भासणे लगें, केते कालतें उपरांत तिसके चित्तकी वृत्ति सुषुप्तिकी उर आय स्वप्नसृष्टिका विस्तार लीन होणे लगा, जैसे संध्याके समय सूर्यकी किरणां सूर्यविषे लय होती जाती हैं, जब सृष्टि चित्तविषे लय होणे लगी, तब स्वप्नसृष्टि मिटि गई, सुषुप्ति अवस्था हुई, सर्व इंद्रियां स्थिर हो गइयां ॥ हे वेधक! सुषुप्ति जो होती है, जब अन्न भोजन करता है, तब उह समवाही नाडीउपर आनि स्थित होता है, जाग्रतवाली ठहरी जाती है, तिसकरि प्राण भी ठहरी जाते हैं, तब मन भी ठहर जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति होती है, जब मन बहुरि फुरता है, तब जाग्रत होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जब मन प्राणोंहीकरि चलता है, तब मनका अपणा रूप तौ कहूं न हुआ क्यौं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमार्थतें कहियें तौ देह भी नहीं तौ मन क्या कहियें, जैसे स्वप्नविषे पहाड भासते हैं, तैसे यह शरीर भासता है, काहेतें जो सबका आदि कारण कोउ नहीं, तातें जगत् मिथ्याभ्रम है, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जो तत्त्ववेत्ता हैं, तिनकों तौ ऐसे भासता है, अरु अज्ञानीके निश्चयकों हम नहीं जाणते, जैसे सूर्य उलूकके अनुभवकों नहीं जाणता, अरु उलूक सूर्यके निश्चयकों नहीं जाणता, तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय भिन्न होता है, अरु शुद्ध चिन्मात्र आकाशविषे जगत्भ्रम कोउ नहीं, अरु फुरणे भाव करिके अपणे चेतन वपुकों ज्ञानविनाही मनभावकों प्राप्त होता है, तब मन आत्मसत्ताके आश्रय होकरि प्राणवायुकों अपणा आश्रयभूत कल्पता है, जो मेरा प्राण है ॥ हे रामजी! बहुरि जैसी जैसी मन कल्पना करता है, तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासते हैं, परम ब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न है, तिसविषे जैसी जैसी भावना करी मन फुरता है, तैसा रूप हो भासता है, वास्तवतें अवर कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, मनका फुरणा जैसे जैसे दृढ हुआ है, तैसे तैसे देह इंद्रियां जगत् भासणे लगा है, जैसे स्वप्नविषे कल्पनामात्र जगत् भासता है, तैसे य

ह जाण ॥ हे रामजी! जेते कछु विकल्प उठते हैं, सो सब मनके रचे हुये हैं, जब मन उदय होता है, तब यह फुरणा होता है, जो यह पदार्थ सत्य हैं, यह असत्य हैं, जब चित्तशक्तिका मनसाथ संबंध होता है, तब प्रथम प्राण उदय होते हैं, प्राणकों ग्रहण करिके मन कहता है, मैं जीव हौं, प्राणही मेरी गति है, प्राण विना मैं कहां था, अरु बहुरि कहता है, जब प्राणका वियोग होवैगा, तब मैं मरि जाऊंगा, बहुरि न रहूंगा, बहुरि ऐसे कहता है, मुआ हुआ भी मैं जीवौंगा ॥ हे रामजी! जबलग चाहियें तबलग यह तीन विकल्प उठते हैं, अरु संशयवालेकों न इस लोकविषे सुख है, न परलोकविषे सुख है, जबलग आत्मबोधका साक्षात्कार नहीं हुआ, तबलग चित्त निर्वाण नहीं होता, अरु तीन विकल्प भी नहीं मिटते ॥ हे रामजी! मनके मरणेका उपाय आत्मज्ञानतें इतर कोउ नहीं, अरु मनके शांति हुयेविना कल्याण नहीं होता, दोनौं उपायकरि मन शांत होता है, मनकी वृत्ति स्थित करणी, अरु प्राणस्पंद रोकणा, जब मन स्थित होता है, तब प्राण रोके जाता है, अरु प्राणके स्पंद रोकेतें मन स्थित होता है, अरु जब प्राण क्षोभते हैं, तब चित्त भी क्षोभता है, तब अध्यात्मिक आधिभौतिक तापकरि अग्नि जलता है, अरु मनके स्थित करणेतें परम सुख प्राप्त होता है, सो मनकी स्थिति दो प्रकारकी है, एक ज्ञानकी स्थिति है, अरु एक अज्ञानकी स्थिति है, जब प्राणी अन्न बहुत भोजन करते हैं, तब नाडीउपर अन्न जाय स्थित होता है, अरु प्राण ठहर जाते हैं, जब प्राण ठहरैं, तब मन भी जडीभूत हो जाता है, तिसका नाम सुषुप्ति है, सो नाडी कवन हैं, जिन उपर अन्न जाय स्थित होता है, सो नाडी उही हैं, जिनके मार्ग जाग्रतविषे प्राण निकसते हैं, वासनासहित उही नाडी जब रोकी जाती हैं, तब मन सुषुप्त हो जाता है, यह अज्ञानीके मनकी स्थिति है, काहेतें जो जडता है, संसार सों लिये शीघ्रही बहुरि उठ आते हैं, जैसे पृथ्वीविषे बीज समय पायकरि अंकुर ले आता है, तैसे उह संस्कार करिके बहुरि सुषुप्तितें उठता है, अरु जो ज्ञानवान् सम्यक्दर्शी हैं, तिनका चित्त चेतनताके लिये स्थित

होता है, सो चेतनता दो प्रकारकी है, एक योगीकों चेतनता है, जिस समाधिकरि मनकों स्थित किया है, सो समाधिनिष्ठ चित्त है, उह जडता नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे जडता होती है, तैसे जडता नहीं, अरु ज्ञानवान् जीवन्मुक्तकी सम्यक्ज्ञानकरि चित्तकी वृत्ति स्थित है, उनका चित्त वासनातें रहित स्थित है, जिसका चित्त इही प्रकार स्थित है, तिसी पुरुषकों शांति है, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, तिसकों शांति कदाचित् नहीं प्राप्त होती; अरु दुःख भी नहीं मिटते, सो निर्वासनिक चित्त करणेकों सम्यक्ज्ञानका कारण यह मेरा शास्त्र है, इसके समान अवर कोउ नहीं ॥ हे रामजी! यह जो मोक्ष उपायशास्त्र मैंनें कहा है, तिसके विचारकरि शीघ्रही स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, तातें सर्वदा इसका विचार कर्तव्य है, जब इसकों भली प्रकार विचारैगा, तब चित्त निर्वासनिक हो जावैगा, अब उही प्रसंग जो वेधककों कहता है ॥ हे वेधक! जब मैं उस पुरुषके चित्तविषे प्राणके मार्ग प्रवेश किया, तब क्या देखौं जो इसके प्राण रोके गये हैं, अन्न करिके जागृत नाडी जो फुरती थी सो रोकी गई है, काहेतें जो अन्न पच्या नहीं, इस कारणतें उह सुषुप्तिविषे है, तिसकी सुषुप्तिविषे मुझकों भी अपणा आप विस्मरण हो गया, जब कछुक अन्न पच्या तब तिसके प्राण फुरणे लगे, जब प्राण फुरे तब चित्तकी वृत्ति भी कछुक जडताकों त्यागती भई, संपूर्ण जडताका त्याग नहीं किया, परंतु कछु अल्प त्याग है, तब फुरणे करिके चंद्रमा सूर्य आदिक जो कछु विश्व है सो फुरि आई तब मैं नानाप्रकारके जगत्कों देखता भया, मेरे तांई अपणा पूर्व संस्कार भूलि गया, तहां मैं भी अपणे कुटुंबविषे रहणे लगा, साथही मेरे तांई अपणी कुटी भासी, अरु स्त्री पुत्र भाई जन बांधव सब भासि आये, बहुरि मेरेविषे देखते देखते प्रलयकालके पुष्कर मेघ गर्जणे लगे, अरु मूसलधारा वर्षणे लगी, अरु सातों समुद्र उछले, अवर जो प्रलयकालके उपद्रव होते हैं, सो आनि उदय हुये, प्रथम अग्नि लगी, जब अग्नि लगी चूकी, अरु सब स्थान जली रहे तब जलका उपद्रव उदय हुआ, तब मैं क्या देखौं जो नगर ग्राम पुर

मनुष्य पशु पक्षी सब वहते जाते हैं, अरु हाहाकार शब्द करते हैं, बडा क्षोभ आनि हुआ, तब एक आश्चर्य मैं देख्या, मेरी कुटी भी वहती जाती है, स्त्री पुत्र भाई जन इत्यादिक सब उहां देखता भया, सो सब जलके प्रवाहविषे वहते जाते हैं, अरु जिस स्थानविषे थे, सो स्थान भी वहते जाते हैं, अरु मैं लुडता जाता हौं, वहते वहते ऐसे मुझकों कष्ट प्राप्त हुआ जो कहणेविषे नहीं आता, एक तरंगसाथ ऊर्ध्वकों चला जाऊं, अवर तरंगसाथ अधकों चला जाऊं, जब पूर्व शरीर मुझकों स्मरण आय पडा, तब जेता कछु जगत् है, सो मुझकों सब भासणे लगा, मिथ्या राग दोष सब मिटि गया, अरु शरीरकी चेष्टा सब उस प्रकार होवै, जो तरंगके साथ कबहू ऊर्ध्व कबहू नीचे आइ पडा, परंतु अंतर मेरा शांत हो गया, तिस कालमें नगर देशमंडल वहते जावैं, अरु त्रिनेत्र सदाशिव वहते जावैं, विद्याधर गंधर्व यक्ष किन्नर सिद्ध इनतें आदिलेकारि अवर भी सब वहते जावैं, अष्टदल पंखडी कमलकीपर बैठा ब्रह्माजी वहता जावै, इंद्र कुबेर अपणी पुरीयांसहित वहते जावैं, अरु विष्णुजी अपणी वैकुंठ पुरिसाहित वहता जावै, बडे पहाड द्वीप लोकपाल सब वहते जावैं, पातालवासी सब प्रलयके जलविषे वहते जावैं, यम भी अपने वाहनसाथ चला जावै, ऐसी समर्थता किसीकी नहीं, जो किसीकों कोउ निकासै, जो आपही वहते जावैं, बहुरि डूबी जावैं, इसी प्रकार गोते खावैं, तैसे बडे ऐश्वर्यसहित देव वहते जावैं, जो संसारसुखनिमित्त यत्न करते हैं, सो महामूर्ख हैं, अरु तिनके निमित्त यत्न करते हैं, सो सुख भी अरु सुखके देणेहारे भी सब वहते जावैं, तैसे सप्त ऋषीश्वर वहते जावैं ॥ हे वेधक! इस प्रकार महाप्रलय होती तिसके स्वप्नविषे मैं देखता भया ॥ इति श्रीयो० नि० हृदयांतरस्वप्नमहाप्रलयवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तविंशातितमः सर्गः ॥ २२७ ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर! यह जो महाप्रलय तुमही कही, जिसविषे ब्रह्मादिक भी वहते जावैं, सो ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक तौ स्वतंत्र हैं, ईश्वर हैं, यह परतंत्र हुये वहते जाते तुम कैसे देखे, अंतर्धान क्यों न हुये ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! यह जो प्रलय

हुई है, सो एक क्रम करिके नहीं हुई, जब क्रमतें होवै, तब यह ईश्वर समाधि करिके शरीरकों अंतर्धान करि लेते हैं, परंतु अंतर्धान होणेका जल चढि जाता है, उनका कछु नियम नहीं, काहेतें जो यह जगत् भ्रमरूप है, इसविषे क्या आस्था करणी है, अरु स्वप्नविषे क्या नहीं बणता, सबी बनी जाता है, स्वप्नभ्रांति करिके विपर्यय भी होते हैं, इसके लिये उनकों वहते देख्या है ॥ ॥ व्याध उवाच॥ हे मुनीश्वर! जब उह स्वप्नभ्रम था, तौ तिसका क्या वर्णन करणा॥ मुनीश्वर उवाच॥ हे वेधक! तेरे तांई इसकों समानता अर्थ कहता हौं, तातें सुण, स्थावर जंगम जगत् वहता देख्या, साथही मैं वहता जाउं, अरु जलकी लहरी उछलें, इन तरंगविषे मैं उछलता हौं, परंतु मुझकों कष्ट कछु न होवै, तब मैं वहता वहता एक किनारे जाय लगा, तिसके पास एक पर्वत था, तिसकी कंदराविषे मैं जाय स्थित भया, तहां देखत भया, जो जीव वहते हैं, अरु जल भी सूकता जाता है, तब जलके सूकणेकरि चीकड हो गया, किसी ठहरविषे जल रहा, तिसविषे केई डूबते दृष्ट आवैं, ब्रह्माके हंस दृष्ट आवैं, कहूं यमके वाहन, कहूं विष्णुके वाहन गरुड दृष्ट आवैं, चीकडविषे पहाडकी नांई डूबे दृष्ट आवैं, कहूं इंद्रके हस्ती, कहूं विद्याधर दृष्ट आवैं, इनतें आदि लेकरि वाहन चीकडविषे डूबते दृष्ट आवैं, देवता सिद्ध गंधर्व लोकपाल दृष्ट आये, देखिकरि मैं आश्चर्यवान् हुआ ॥ हे वेधक! इस प्रकार देखता हुआ मैं पहाडकी कंदराविषे सोय गया, तब मुझकों अपणी संवितविषे स्वप्न आया, तिस स्वप्नविषे मुझकों चंद्रमा सूर्य आदिक नानाप्रकार भूत जलावते दृष्ट आवैं, नगर पत्तन चलते हैं, जगत् बडे खेदकों प्राप्त हुआ है, तब उहां रात्र हुई, तहां मैं सोया हुआ अवर स्वप्नकों देखत भया, दूसरे दिन तिसविषे मैं बहुरि जगत्कों देखत भया, सूर्य चंद्रमा देश पट्टण नदीयां समुद्र मनुष्य देवता पशु पक्षी नानाप्रकारकी क्रियासंयुक्त दृष्ट आणे लगे, अरु षोडश वर्षका शरीर मैं आपकों देखत भया, अपणे पिता अरु माता मुझकों दृष्ट आवैं, उनकों मैं माता पिता जानौं, अरु मुझकों उह अपणा पुत्र

जानैं, स्त्री कुटुंब बांधव समस्त मुझकों दृष्ट आवणे लगे, अरु उह जो मैं कैसा बोधतें रहित अरु तृष्णासहित अहंममका अभिमान आनि फुर्या, तब एक ग्रामविषे मेरा गृह था, तिसविषे हम सब कुटी बणाई, तिसके चौफेर बुंटे लगाये, तहां मैं एक आसन बणाया, तहां कमंडलु अरु माला पडी रहैं, मैं ब्राह्मण था, मुझकों धन उपजावणेकी इच्छा भई, जो कछु ब्राह्मणका आचार चेष्टा है, सो मैं करौं, बाहिर जायकरि इंटां काष्ठ ले आऊं, आनिकरि कुटी बनाऊं, उह चेष्टा हमारी होणे लगी, शिष्य सेवक हमारी पूजा करैं, यथायोग्य मैं उनकों आशीर्वाद करौं, इस प्रकार गृहस्थाश्रमविषे मैं चेष्टा करौं, अरु मुझकों यह विचार उपजै, जो इह कर्तव्य है, इसके करणेकरि भला होता है, नदियां अरु तालविषे स्नान करौं, गउकी टहल करौं, आये अतिथिकी पूजा करौं ॥ हे वेधक ! इस प्रकार चेष्टा करता मैं सौ वर्षपर्यंत रहा, तब एक कालमें मेरे गृहविषे मुनीश्वर आया, प्रथम उसकों मैं स्नान कराया, बहुरि भोजन करि तृप्त किया, अरु रात्रके समय उसकों शय्याउपर शयन कराया, इस प्रकार उसकी टहल करी, रात्रकों वार्त्ता चर्चा करणे लगे, तिसविषे मुझकों उसनें बडे पर्वत कंदरा अरु सुंदर देश स्थान चित्तके मोहणेहारे सुणाये, अरु नानाप्रकारके स्वाद सुणाये, अरु कहणे लगा, जो हे ब्राह्मण! जेते कछु सुंदर स्थान अरु संवाद तुझकों सुणाये हैं, तिनविषे सार चिन्मात्ररूप है, तातें सब चिन्मात्रस्वरूप है, सब जगत् तिसका चमत्कार है, आभास किंचन है, तिसतें इतर वस्तु कछु नहीं, तातें हे ब्राह्मण! उसी सत्ताकों ग्रहण करु, सो सत्ता सब का अनुभवरूप है, अरु परमानंदस्वरूप है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे वेधक! जब इस प्रकार उस मुनीश्वरनें मुझकों कहा, तब आगे जो मेरा मन योगकरि निर्मल था, तिस कारणतें उसके वचन मेरे चित्तविषे चुभि गये, अपणे स्वभावसत्ताविषे मैं जागि उठा, तब क्या देखौं जो सब मेराही संकल्प है, मुझसों भिन्न कोउ नहीं, मैं तौ मुनीश्वर हौं, यह स्वप्न पाया था, मैं जागिकरि देखौं, तब उसी पुरुषका स्वप्न था, तब

मेरे चित्तविषे आई जो किसी प्रकार इसके चित्ततें बाहिर निकसौं, अरु अपणे शरीरविषे जाय प्रवेश करौं, तब बहुरि विचार्या, जो यह जगत् तौ उस पुरुषका वपु है, उही पुरुष विराट है, जिसके स्वप्नविषे यह जगत् है, परंतु तिस पुरुषकों अपणे विराटस्वरूपका प्रमाद है, तिस करिके जैसा वपु हमारा बन्या है, तिसके स्वप्नविषे उह भी तैसा एक विराटतें इतर बनि पडा है, बहुरि उस विराटकों कैसे जाणियें, जो उसके चित्तसों निकसी जावै ॥ हे वेधक! इस प्रकार विचार करिके मैं पद्मासन बांध्या, अरु योगकी धारणा करी, उस विराट स्वरूपके शरीरकों देखता भया, देखिकरि जहां चित्तकी वृत्ति फुरती थी, तिसकेसाथ मिल्या, अरु प्राणके मार्गतें निकसीकरि अपणी कुटीकों देखता भया, बहुरि तिसविषे मैं अपणे शरीरकों पद्मासन देखत भया, तिसविषे प्रवेश करिके नेत्र खोले, तब अपणे सन्मुख शिष्य बैठे देखे, अरु उह पुरुष सोया था, तिसकों देखिकरि एक मुहूर्त व्यतीत भया, तब मैं आश्चर्यवान हुआ, जो भ्रमविषे क्या चेष्टा दिखती है, इहां एक मुहूर्त व्यतीत भया है, अरु उहां मैं सौ वर्षका अनुभव किया है, बडा आश्चर्य है जो भ्रम करिके क्या नहीं होता, बहुरि मेरे मनविषे उपजी जो उसके चित्तविषे प्रवेश करिके कछु अवर कौतुक भी देखौं, तब बहुरि प्राणके मार्गसों उसके चित्तविषे प्रवेश किया, तब क्या देखौं जो आगला कल्प व्यतीत हो गया है, अरु बांधव पुत्र स्त्री मातापिता आदिक नष्ट हो गये हैं, अरु दूसरा कल्प हुआ है, तिसकी भी प्रलय होती है, बारह सूर्य आनि उदय हुये, विश्वकों जलावणे लगे हैं, अरु वडवाग्नि जलावणे लगी, मंदराचल अरु अस्ताचल पर्वत जलिकरि टूक टूक हो गये, पृथ्वी जर्जरीभावकों प्राप्त हुई, स्थावर जंगम जीव हाहाकार शब्द करते हैं, विजुली चमत्कार करती है, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ है ॥ हे वेधक! मैं अग्निविषे जाय पडा, मेरा शरीर भी जलै, परंतु मुझकों कष्ट कछु न होवै, जैसे किसी पुरुषकों अपणे स्वप्नविषे कष्ट आनि प्राप्त होवै, अरु जागि उठ्या तौ कछु कष्ट नहीं होता, तैसे अग्निका कष्ट मुझकों कछु न होवै, मैं आप

कों उहीरूप जाग्रतवाला जाणों, अरु जगत्प्रलयकों भ्रममात्र जाणों, इस कारणतें मुझकों कष्ट कछु न होवै, अरु चेष्टा तौ मैं भी उसी प्रकार देखता भया, अरु करता भया, परंतु अंतरतें ज्योंका त्यों शीतलचित्त रहों, अरु अवर लोक जो थे सो अग्निके क्षोभकरि कष्ट पावें ॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे हृदयांतरप्रलयाग्निदाहवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २२८ ॥ ॥ ॥ ॥

मुनीश्वर उवाच ॥ ॥ हे वेधक! प्रलयके क्षोभविषे मैं भी भटकों, बहुरि जलविषे वहता जाऊं, परंतु पूर्व शरीर मुझकों विस्मरण न भया, इस कारणतें शरीरका दुःख मुझकों स्पर्श न करै, अरु मैं विचारत भया जो यह जगत् तौ मिथ्या है, इसविषे विचरणे करिके मेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, यह तौ स्वप्नमात्र है, इसविषे किसनिमित्त खेद पाऊं, तातें इसके जगत्तें बाह्य निकसों ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुम जो उसके स्वप्नविषे जगत्कों देखत भये सो जगत् क्या वस्तु था, अरु स्वप्न क्या था, उसकी संवित्विषे जगत् था, अरु तिस जगत्का उसकों ज्ञान था, उह प्रमादी था, तुम तौ जाग्रत हो करिके उसका स्वप्न देखा, उसके हृदयविषे पहाड कहांतें आया, अरु नदियां वृक्ष नानाप्रकारके भूतजात अरु पृथ्वी आकाश वायु जल अग्नि आदिक विश्वकी रचना कहांतें आई, उह क्या थे, यह संसार मेरा दूर करहु, अरु जो तुम कहो अपणे स्वप्नविषे तूं भी अपणी सृष्टि देखता है ॥ हे भगवन्! हमकों जो स्वप्न आता है, तिसकों हम अपणे स्वरूपके प्रमादकरि देखते हैं, अरु तुम जाग्रत होकरि देख्या है सो कैसे देख्या? ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! प्रथम जो मैं देख्या था सो आपकों विस्मरण करिके तिसके हृदयविषे जगत् देख्या था, बहुरि दूसरिवार जो देख्या था सो आपकों जाणीकरि जगत् देख्या था, सो क्या वस्तु है श्रवण कर ॥ हे वेधक! जो वस्तु कारणतें होती है सो सत्य होती है, अरु कारणविना भासती है सो मिथ्या होती है, अरु मुझकों सृष्टि जो उसके स्वप्नविषे भासी सो कारणविना थी, काहेतें जो कारण दो प्रकारका

होता है, एक निमित्तकारण है, जैसे घटका कारण कुलाल होता है, अरु दूसरा समवायिकारण है, जैसे घट मृत्तिकाका होता है, दोनौं कारणकरि उत्पन्न होवै सो सकारण पदार्थ कहाता है, सो आत्मा दोनौं प्रकार जगत्का कारण नहीं, आत्मा अद्वैत है, तातें निमित्तकारण नहीं, अरु समवायिकारण इसतें नहीं, जो अपणे स्वरूपतें अन्यथाभाव नहीं हुआ, जैसे मृत्तिका परिणमीकरि घट होता है, तैसे आत्माका परिणाम जगत् नहीं, आत्मा अच्युत है, अरु उह जगत् कारणविना भासि आया, तातें भ्रममात्रही था ॥ हे वेधक! वस्तु सोइ होती है, अरु जगत्की भ्रांति आत्माविषे भासी तौ जगत् आत्मरूप हुआ क्यों, जब सृष्टि फुरी नहीं, तब अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे संवेदन फुरणे करिके जगत् हुएकी नांई उदय हुआ सो क्या हुआ, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, सो किरणांही जलरूप भासतियां हैं, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, सो आत्माही जगत्रूप हो भासता है, तहां न कोउ शरीर था, न कोउ हृदय था, न पृथ्वी जल वायु अग्नि आकाश था, न उत्पत्ति प्रलय न अवर कोउ था, केवल चिन्मात्ररूपही था ॥ हे वेधक! ज्ञानदृष्टि करिके हमकों सच्चिदानंदही भासता है, सो शुद्ध है, सर्व दुःखतें रहित है, परमानंद है, जगत् भी उहीरूप है, तुमसारखेकों जो जगत् भासता है, शब्दअर्थरूप सो आत्माविषे कछु हुआ नहीं, केवल चिन्मात्रसत्ता है, सर्वदा हमकों आत्मरूपही भासता है, जो तूं चाहे तौ तुझकों भी चिन्मात्रही भासै तौ सर्व कल्पना मनतें त्यागिकरि तिसके पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मसत्ता है, सबका अनुभवरूप उही है, सो प्रत्यक्ष है, अरु शुद्ध है, सर्वदा स्वभावसत्ताविषे स्थित है, अरु अमर है, तुम भी तिस स्वभावविषे स्थित होहु ॥ हे वेधक! आत्मसत्ता परम सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी स्थूल है, जैसे सूक्ष्म अणुतें पर्वत स्थूल होता है, तैसे आत्मासों आकाश भी स्थूल है, सो आत्माविषे क्या सूक्ष्मता है, यही सूक्ष्मता है, जो आत्मत्वमात्र है, जिसविषे उत्थान कोउ नहीं, केवल निर्मल स्वभावसत्ता है,

अरु निराभास है, तिसीविषे यह जगत् भासता है, तातें उहीरूप है, जैसे काल होता है, तिसविषे क्षण पल घडी पहर दिन मास वर्ष युग संज्ञा होती हैं, सो कालही है, तैसे एकही आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है, जैसे एक बीजविषे पत्र टास फूल फल नाम होते हैं, तैसे एक आत्माविषे अनेक नामरूप जगत् होता है, सो आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, सब आत्मस्वरूप है, जो आत्मातें इतर भासै सो भ्रम मात्र जाण, जैसे संकल्पपुर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे वेधक! आत्माविषे जगत् कछु बन्या नहीं सो आत्मा तेरा अपणा आप अनुभवरूप है, अरु परम शुद्ध है, तिसविषे न जन्म है, न मरण है, परम चिदाकाश अपणा आप है, जो तेरा है, आप अनुभवरूप शुद्ध सत्ता है, तिसकों नमस्कार है ॥ हे वेधक! तूं तिसविषे स्थित होहु, तब तेरे दुःख नष्ट हो जावैंगे, अरु यह जगत् अज्ञानीकों सत् भासता है, ज्ञानवान्कों सदा आकाशरूप भासता है, जैसे एक पुरुष सोया है, अरु एक जागता है, सो सोया है, तिसकों स्वप्नविषे महल माडी जगत् भासता है, अरु जाग्रतकों आकाशरूप हैं, तैसे अज्ञानीकों जगत् भासता है, अरु ज्ञानवान्कों आत्मरूप है ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर! एक कहते हैं, यह जीव कर्मकरि होता है, अरु एक कहते हैं, कर्मविना उत्पन्न होता है, दोनौंविषे सत्य क्या है ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! आदि जो परमात्मातें ब्रह्मादिक फुरे हैं, सो कर्मकरि नहीं हुए, उह कर्मविनाही उत्पन्न हुए हैं, न कहूं जन्म है, न कर्म है, उह ब्रह्मही स्वरूप है, उनका शरीर भी ज्ञानरूप है, उह अवर अवस्थाकों नहीं प्राप्त हुई, सर्वदा उनकों अधिष्ठान आत्माविषे अहंप्रतीति है ॥ हे वेधक! सृष्टिके आदि जो ब्रह्मादिक फुरे हैं, सो ब्रह्मतें इतर नहीं, अरु अवर जो अनंत जीव फुरे हैं, जिनका आदिही आत्मपदतें प्रगट होणा भया है, सो भी ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, आदि सब ब्रह्मा चेतन स्वयंभू है, परंतु ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिककों अविद्यानें स्पर्श नहीं किया, उह विद्यारूप है, अरु जीव अविद्याके वशतें प्रमाद

करिके परतंत्र हुए हैं, बहुरि कर्मकरि कर्मके वश हुए हैं, संसारविषे शरीर धारते हैं, जब उनकों आत्मज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्मके बंधनतें मुक्त होकरि आत्मपदकों पावते हैं ॥ हे वेधक! आदि जो सृष्टि हुई है, सो कर्मविना उपजी है, अरु पाछे अज्ञानके वशतें कर्मके अनुसार जन्ममरणकों देखते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कर्मविना उत्पन्न होती है, पाछे कर्मकरि उत्पन्न होती भासती है, तैसे यह जगत् है, आदि जीव कर्मविना उपजे हैं, पाछे कर्मके अनुसार जन्म पावते हैं, अरु ब्रह्मादिकके शरीर शुद्ध ज्ञानरूप हैं, ईश्वरविषे जीवभाव दृष्ट आता है, तौ भी तिस कालविषे भी ब्रह्मही स्वरूप है, उनकों कर्म कोउ नहीं, केवल आत्मा ही उनकों भासता है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे द्रष्टाही दृश्यरूप होता है, अरु नानाप्रकारके कर्म दृष्ट आते हैं, परंतु अवर कछु हुआ नहीं, तैसे जेता कछु जगत् भासता है सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, अवर कछु नहीं, सुख दुःख भी उही भासता है, परंतु अज्ञानीकों जगत्प्रतीति होती है, तबलग कर्मरूपी फांसीकरि बांध्या हुआ दुःख पावता है, जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब कर्मके बंधनतें मुक्त होवैगा, वास्तवतें न कोउ कर्म है, न किसीकों बंधन है, यह मिथ्याभ्रम है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, दूसरा कछु होवै तौ मैं कहौं, जो यह कर्म है, इसकों बंधन किया है, यह जगत् आत्माविषे ऐसे है जैसे जलविषे तरंग होता है, सो भिन्न कछु नहीं, जलतें तरंग उत्पन्न होता है सो किस कर्मकरि होता है अरु क्या उसका रूप है, जैसे उह जलहीरूप है, तैसे इह जगत् आत्मस्वरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जो कछु कल्पना करियें सो अविद्या मात्र है ॥ हे वेधक! जबलग यह संवित् बहिर्मुख फुरती है, तबलग जगत् भासता है, अरु कर्म होते दृष्टि आते हैं, अरु जब संवित् अंतर्मुख होवैगी, तब न कोउ जगत् रहैगा, न कोउ कर्म दृष्ट आवैगा, सब आत्मसत्ता भासैगी, जैसे हमकों सदा आत्मसत्ता भासती है, तैसे तुझकों भी भासैगी ॥ हे वेधक! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों जगत् आत्मत्वकरि दिखाई देता है अ

रु जो अज्ञानी हैं तिनकों प्रमाद करिके द्वैतरूप भासता है, तिसविषे पदार्थकों सुखरूप जाणिकरि पावणेका यत्न करता है, सुखकरि सुखी होता है, दुःखकरि द्वेष करता है, जो परमानंद आत्मपद है, तिसके पावणेका यत्न नहीं करता है, अरु ज्ञानवान् सदा परमानंदविषे स्थित हैं, अरु सब जगत् तिनकों ब्रह्मस्वरूप भासता है ॥ हे वेधक! जेता कछु जगत् तुझकों दृष्ट आता है सो सबही ब्रह्म चिन्मात्रस्वरूप है, न कोउ स्वप्न है, न कोउ जाग्रत है, न कोउ कर्म है, न कोउ अविद्या है, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे अवर कछु नहीं, जैसे जलविषे आवर्त स्थित होता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् हुएकी नांई भासता है, परंतु ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, तूं विचारकरि देख, तब तेरे दुःख मिटि जावैंगे, जबलग विचार करके स्वरूपकों न पावैगा, तबलग दुःख न मिटैगा, जब स्वरूपकों पावैगा, तब सब कर्म नष्ट हो जावैंगे, जेता जेता विचार होता है, तेता तेता सुख है, जहां विचार उत्पन्न होता है, तहांतें अविद्या नष्ट हो जाती है, जैसे जहां प्रकाश होता है, तहां अंधकार नहीं रहता, तैसे जहां सत्असत्का विचार उत्पन्न होता है, तहां अविद्याका अभाव हो जाता है, बहुरि संसारचक्रविषे न गिरैगा, अरु परमपदकों प्राप्त होवैगा, जिस ज्ञानवान्कों यह पद प्राप्त भया है, सो दुःखी नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कर्मनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ॥ २२९ ॥ ॥ ॥

॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो परमानंदकों प्राप्त होता है, जिस आनंदके पायेतें जो इंद्रियका आनंद है सो सूके तृणवत् तुच्छ भासता है, अरु जैसा सुख पृथ्वी आकाश पातालविषे भी कहूं नहीं, तैसा सुख ज्ञानवान्कों प्राप्त होता है, जिसकों ऐसा आनंद प्राप्त भया है, सो किसकी इच्छा करै, अरु आत्मानंद तब प्राप्त होता है, जब आत्मअभ्यास होवै, आत्मा शुद्ध है, अरु सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु जो कछु आगे दृष्ट आता है, सो अविद्याका विलास है, जब तूं अपणे स्वरूप

विषे स्थित होवैगा, तब सब ब्रह्म तुझकों भासैगा ॥ हे वेधक ! पृथ्वी आदिक जो तत्त्व हैं सो हैं नहीं, जो कछु होते तौ इनका कारण भी कोउ होता, जो यह भी नहीं तौ कारण किसकों कहियें, अरु जो इनका कारण कहूं नहीं, तौ कार्य किसका कहियें, तातें यह भ्रममात्र है, विचार कियेतें जगत्का अभाव हो जाता है, आत्मसत्ताही ज्यौंकी त्यौं भासती है, जैसे किसीकों जेवरीविषे सर्प भासता है, जब उह भली प्रकार देखै, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, ज्यौंकी त्यौं जेवरीही भासती है, तैसे विचार कियेतें आत्मसत्ताही भासती है, जैसे कहूं आकाशविषे संकल्पका वृक्ष रचैं तौ आकाशविषे होवै, तैसा भासता है, जैसे किसी पुरुषनें संकल्पकरि देवताकी प्रतिमा रची, अरु तिसके आगे अपणी प्रार्थना करणे लगा, तिस भावनाकरि उसका कार्य सिद्ध हुआ, सो कैसे सिद्ध हुआ, अनुभवहीतें सिद्ध हुआ, जिसके आश्रय उह प्रतिमा हुई, तिसकरि कार्य सिद्ध भया ॥ हे वेधक ! जेता कछु जगत् तूं देखता है, सो सब संकल्पमात्र है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, सो स्वप्नमात्र है, तैसे यह सर्व विश्व ब्रह्माके संकल्पविषे स्थित है, आदि जो परमात्मातें फुरणा हुआ है, सो कर्मविना सृष्टि उपजी है, उह किंचन आभासरूप है, बहुरि आगे जो ब्रह्मानें रचा है, सो संकल्परूप है, बहुरि आगे अज्ञान करिके कर्म करणे लगे, तब कर्मकरि उत्पत्ति होती दृष्ट आई है, जैसे स्वप्नविषे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्रही दृढ हो भासती है, जबलग स्वप्नअवस्थाविषे है, तबलग जैसा उहां कर्म करैगा तैसाही भासैगा, अरु जो जागि उठै तौ न कहूं कर्म है, न जगत् है, तैसे यह, सब संकल्पमात्र है, ज्ञानवान्करि अभाव हो जाता है ॥ हे वेधक ! यह जो मुझकों मनुष्य भासते हैं, सो मनुष्य नहीं, तिनके कर्म तुझकों कैसे कहौं, जैसे स्वप्नके निवृत्त हुए स्वप्नसृष्टिका अभाव होता है, तैसे अविद्याके निवृत्त हुए अविद्यक सृष्टिका अभाव हो जाता है, अरु आत्मसत्ता अद्वैत है, तिसविषे जगत् कछु बन्या नहीं, उहीरूप है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु

नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, अरु जब चित्तसंवित् फुरती है, तब जगत् होकरि भासती है, अरु जब नहीं फुरती, तब अद्वैत होकरि स्थित होती है, अरु आत्मसत्ता फुरणे अफुरणेविषे ज्योंकी त्यों है, जन्म मरण बढणा घटणा जो नाम होते हैं, सो मिथ्या हैं, काहेतें जो दूसरी वस्तु कछु नहीं, जैसे किसी जल कहा किसी अंभ कहा दोनों एकहीके नाम होते हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् एकहीके नाम हैं, परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासते हैं, जैसे स्वप्नमें कार्य भासते हैं, परंतु हैं नहीं, तैसे जाग्रतविषे कारण कार्य भासते हैं, परंतु हैं नहीं, वास्तवतें आत्मतत्त्व है, तिस आत्माविषे जो चित्त फुरता है, अहं मम तिस उत्थानतें आगे जो कछु फुरणा होता गया, सोई जगत् भया है, तिस जगतविषे जैसा जैसा निश्चय हुआ है, तैसा तैसा भासणे लगा है, तिसका नाम नेति है, तिसविषे देश काल पदार्थकी संज्ञा होणे लगी है, अरु कारण कार्य दृष्ट आते हैं, सो क्या है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अवर कछु हुआ नहीं, परंतु हुयेकी नांई भासती है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु कारण कार्य भी दृष्ट आता है, परंतु जागे हुये कछु दृष्ट नहीं आता, काहेतें जो है नहीं, तैसे यह जगत् कारण कार्यरूप दृष्ट आता है, परंतु है नहीं, आत्माकरि दृष्ट आता है, तातें आत्माही है, जैसे संकल्पनगर दृष्ट आता है, तैसे आत्माविषे घन चेतनता करिके जगत् भासता है सो उहीरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसा उसविषे निश्चय होता है तैसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है, जेता कछु जगत् दृष्ट आता है सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पही जहां तहां उडते फिरते हैं, अरु अनुभवसत्ता ज्योंकी त्यों है, संकल्पही मरिके परलोक देखता है ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे भगवन्! परलोकविषे जो यह मरिके जाता है, तिस शरीरका कारण कवन होता है, अरु तहां हंती अरु हंता कवन होता है, अरु यह शरीर तौ इहांही रहता है, उहां भोक्ता शरीर कवन होता है, जिसकरि सुख दुःख भोगता है, अरु जो कहौ तिस शरीरका कारण धर्म अधर्म होता है, तौ धर्म अधर्म तौ अमूर्त्ति हैं, तिनतें स

मूर्त्ति साकाररूप क्योंकरि उत्पन्न हुआ ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! शुद्ध अधिष्ठान जो आत्मसत्ता है, तिसके फुरणेकी एती संज्ञा होती हैं, कर्म आत्मा जीव फुरणा धर्म अधर्म, इनतें आदि लेकरि नाना प्रकारके नाम होते हैं, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहंका उत्थान होता है, तब देहकी भावना होती है, अरु देहही भासणे लगती है, आगे जगत् भासता है, स्वरूपके प्रमादकरि संकल्परूप जगत् दृढ हो जाता है, बहुरि तिसविषे जैसा जैसा फुरणा होता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे वेधक! यह जगत् संकल्पमात्र है, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि सत् भासता है, अरु प्रमादकरि शरीरविषे अभिमान हो गया है, तिस करिके कर्तव्य भोक्तव्य अपणेविषे मानता है, वासना दृढ हो जाती है, तिस वासनाके अनुसार परलोककों देखता है ॥ हे वेधक! उहां न कोउ परलोक है, न यह लोक है, जैसे एक स्वप्नकों छांडिकरि अवर स्वप्नकों प्राप्त होवै, तैसे अविदित वासना करिके इस लोककों त्यागिकरि परलोककों देखता है, जैसे स्वप्नविषे निराकारही साकार शरीर उत्पन्न होता है, तैसे परलोकविषे है, वास्तवतें क्या है, संकल्पही पिंडाकार होकरि भासता है, जैसी जैसी वासना होती है, तैसाही तिसके अनुसार होकरि भासता है, अरु शरीर पदार्थ सबही आकाशरूप है ॥ हे वेधक! असतही सत् होकरि जन्म मरण भासता है, जैसा जैसा फुरणा होता है, तैसा तैसा भासता है, जगत् आभासमात्र है, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों आत्मभावही सत् है, तिसविषै जैसा निश्चय होता है, तैसा होकरि भासता है, ज्ञान ज्ञेय ज्ञातारूप जगत् भासता है, सो अनुभवतें भिन्न कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, सो अनुभवही अनेकरूप हो भासता है, अरु प्रलयविषे एक हो जाते हैं, तैसे ज्ञानरूपी प्रलयविषे सब एकरूप हो जाते हैं, जब संवित् फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु संवित् अफुर होती है, तब प्रलय हो जाती है, तब एकरूप हो जाता है, एक चिन्मात्रसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, पृथ्वी आदिक पदार्थ तिसका चमत्कार है, भिन्न

वस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ता निर्विकार है, तिसविषे निराकार अरु साकार भी कल्पित हैं, इनतें रहित निराकार है, जो पुरुष दृश्यसाथ मिले चेतन हैं, सो जड धर्म हैं, तिनकों नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, ज्ञानवान्कों सत्‌रूप चिन्मात्रही भासता है ॥ हे वेधक! यह जगत् सब चिन्मात्र है, जब चित्त संवित् फुरती है, तब स्वप्नरूप जगत् भासता है, अरु जब चित्त संवित फुरणेतें रहित होती है, तब सुषुप्ति होती है, तैसे चित्तसंवितके फुरणे करि सृष्टि होती है, अरु चित्तके स्थिर होणेकरि प्रलय हो जाती है, जैसे स्वप्न अरु सुषुप्ति आत्माविषे कल्पित हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि अरु प्रलय कल्पित आभासमात्र हैं, अवर कछु जगत् बण्या नहीं, फुरणे करिके जगत् भासता है, तातें जगत् भी आत्मरूप है, पंच तत्त्व भी आत्माका नाम है, अरु सदा अद्वैतरूप जगत् आभासमात्र है, जैसे आत्माविषे साकार कल्पित हैं, तैसेही निराकार कल्पित हैं, जैसे स्वप्नविषे किसीकों साकार जानता है, किसीकों निराकार जानता है, दोनों फुरनेमात्र हैं, जो फुरनेतें रहित है, सो आत्मसत्ता है, अरु साकार भी निराकार भी उही है, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, निराकारही साकार हो भासता है ॥ हे वेधक! जेता कछु जगत् तुझकों दृष्ट आता है, सो सब चिन्मात्रस्वरूप है, इतर कछु नहीं, परंतु अज्ञान करिके नानाप्रकार कार्य कारण भासता है, अरु जन्म मरण आदि विकार भासता है, वास्तवतें न कोउ जन्म है, न मरण है, न कोउ कार्य है, न कारण है, अरु जो यह पुरुष मरता होवै तौ परलोक भी न देखै, अरु अपणे मरणेकों भी न जाणै, जो परलोक देखता है, अपणे मरणेकों देखता है, सो मरता नहीं, जब यह पुरुष मृतक होवै, तब पूर्व संस्कारकों न पावै, अरु पूर्व स्मृति इसकों न होवै, सो तौ पूर्व संस्कार करिके क्रियाविषे प्रवर्त्तता है, अरु प्रतियोगी करिके स्मृति भी हो आती है, पदार्थकी, बहुरि कर्मकों भोगता है, पूर्वलोक तौ यह पुरुष मृतक नहीं होता, भ्रमकरि मरण भासता है, अरु कारण कार्यरूप पदार्थ भासते हैं, जब मरिके परलोक देखता है, अरु सुखदुःखकों भोगता है, तौ शरीर किसी कारणकरि

नहीं बन्या, जैसे उह शरीर अकारण है, तैसे अवर जो आकार दृष्ट आते हैं, सो भी अकारण हैं, इसीतें आभासमात्र है, जैसे स्वप्नके शरीरसाथ नानाप्रकारकी क्रिया होती है, अरु देशदेशांतरकों देखता है, सो सब मिथ्या है, तैसे यह जगत् मिथ्या है, अरु मरण भी मिथ्या है, अरु जो तूं कहै इसके साकारका अभाव देखता है, सो मृतक है, तौ ॥ हे वेधक! जो यह पुरुष परदेश जाता है, तौ भी इसका आकार दृष्ट नहीं आता, जैसे दृष्टिके अभावविषे असत् होता है, तैसे देहके त्यागविषे भी इसका असत्भाव होता है, इस पुरुषका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु जो तूं कहै परदेश गया, बहुरि भी आय मिलता है, शरीरके त्यागतें बहुरि नहीं मिलता, परदेश गया बहुरि मिलिकरि वार्त्ता चर्चा आनि करता है, अरु मुआ तौ कदाचित् चर्चा नहीं करता, तौ मुआ भी चर्चा करता है, सो श्रवण करु, जिसके पितर प्रीतिकरि बांधे हुए मरते हैं, अरु यथाशास्त्र उनकी क्रिया नहीं होती, तब उह स्वप्नविषे आय मिलते हैं, अरु यथार्थ कहते हैं, जो हमारी क्रिया तुमनें नहीं करी, हम अमके स्थानविषे पडे हैं, अरु अमका द्रव्य अमके स्थानविषे पडा है, तुम काढि लेहु, तौ जैसे परदेश गण मिलते हैं, अरु वार्त्ता चर्चा करते हैं, तैसे मुए भी करते हैं क्यों ॥ हे वेधक! वास्तवतें न कोउ जगत् है, न मरता है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे वेधक! अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है, एक संकल्पसिद्ध वस्तु है, अरु दृष्टिसिद्ध वस्तु है, जब इनकी दृढ भावना होती है, तब यह दोनौं सिद्ध होती हैं, जो इंद्रियकेविषे द्रव्य पदार्थ है, सो दृष्टिसिद्ध वस्तु कहाती है, जो इसीकी भावना होती है, तौ यह प्राप्त होती है, अरु जो अपणे मनविषे आपही मान छोडियें, जो मैं ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य शूद्र वर्ण हौं, अथवा गृहस्थ वानप्रस्थ ब्रह्मचारी संन्यासी आश्रम हौं, इत्यादिक मानणा संकल्पसिद्ध है, जबलग इनविषे अभ्यास होता है, तबलग आत्मसत्ताकी प्राप्ति

नहीं होती, अरु जो आत्मसत्ताका अभ्यास होवै, तब इन दोनोंका अभाव हो जाता है, आत्माही प्रत्यक्ष अनुभव करिके भासता है ॥ हे वेधक! जिस वस्तुका अभ्यास होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, जो भावना करै अरु थकीकरि फिरै नहीं तौ अवश्य प्राप्त होता है, अभ्यासविना कछु सिद्ध नहीं होता, जैसे कोउ पुरुष कहै, मैं अमके देश जाता हौं, तौ जबलग उसकी उर चलै नहीं, तबलग अनेक उपायकरि भी नहीं प्राप्त होता, जब उसकी उर चलैगा तब पहुंचि रहैगा, तैसे जब आत्माका अभ्यास बहुत एकाग्र होकरि करैगा, तब उसकों प्राप्त होवैगा, अन्यथा आत्मपदकों न प्राप्त होवैगा ॥ हे वेधक! जिस पुरुषकों जगत्के पदार्थकी इच्छा है, तिसकों आत्मपद प्राप्त नहीं होता, अरु जिसकों आत्मपदकी इच्छा है, तिसकों उही प्राप्त होवैगा, जगत्के पदार्थ न भासैंगे, जैसी भावना होवैगी, जो मेरी देवताकी मूर्त्ति होवै, तिसकरि मैं स्वर्गविषे विचरौं, अरु एक स्वरूपकरि भूलोकविषे मृग होणेकी भावना होवै, तब दृढ अभ्यासकरि उही हो जाता है, काहेतें जो जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा निश्चय होता है, तैसाही भासि आता है ॥ हे वेधक! दो स्वरूपकी क्या वार्त्ता है, जो सहस्र मूर्त्तिकी भावना करै तौ उही तद्रूप हो जावैगा, जैसी यह पुरुष भावना करता है, तैसाही रूप हो जाता है, अरु यह अविद्यक भ्रममात्र जगत् है, इसकी भावना त्यागिकरि आत्मपदका अभ्यास करहु, तब तेरे दुःख मिटि जावैं ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वा० महासवोपाख्याने निर्णयोपदेशो नाम द्विशताधिकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३० ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! जैसे अगाध समुद्रविषे अनेक तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक सृष्टि फुरतियां हैं, जीव जीव प्रति अपणी अपणी सृष्टि है, परंतु परस्पर अज्ञात हैं, एककी सृष्टिकों दूसरा नहीं जानता, अरु दूसरेकी सृष्टिकों उह नहीं जानता, जैसे एकही स्थानविषे दो पुरुष सोये होवैं, उनकों अपणे अपणे फुरणेकी सृष्टि भासि आती है, उसकी सृष्टिकों उह नहीं जानता, उसकी सृष्टिकों उह नहीं जानता, परस्पर अज्ञात हैं, तैसेही सब सृष्टि आत्मावि

षे फुरतियां हैं, परंतु एककी सृष्टिकों दूसरा नहीं जानता, अरु जो धारणाभ्यासी योगी होता है, तिसकों अंतवाहक शरीर प्रत्यक्ष हुआ है, सो दूसरेकी सृष्टिकों भी जानता है, जैसे एक तलावका दर्दुर होता है, अरु एक कूपका दर्दुर होता है, अरु एक समुद्रका दर्दुर होता है, सो स्थान तौ भिन्न भिन्न होते हैं, परंतु जल एकही है, भावै कैसा दर्दुर होवै, तिसकों जल जानता है, जो मेरेविषे है, तैसे जगत् भिन्न भिन्न अंतःकरणविषे है, परंतु आत्मसत्ताके आश्रय है, आदि जो संवेदन तिसविषे फुरी है, सो अंतवाहक है, जब अंतवाहकविषे योगी स्थित होता है, तब अवरके अंतवाहककों भी जानता है, इस प्रकार अनंत सृष्टि आत्माके आश्रय अंतवाहकविषे फुरतियां हैं, सो आत्माका किंचन है, फुरतियां भी हैं, अरु मिटि जातियां हैं, संवेदनके फुरणेतें सृष्टि उत्पन्न होती है, अरु संवेदनके ठहरणेतें मिटि जाती है, आकाशरूप होती है, अरु वायुके ठहरणेतें जल एकरूप हो जाता है, जलतें इतर कछु नहीं भासता, तैसे फुरणेकरि आत्माविषे अनंत सृष्टि भासतियां हैं, अरु संवेदनके ठहरणेतें सब आत्मरूप हो जातियां हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं भासतियां हैं, तिसतें इतर प्रमादकरि भासतियां हैं, बहुरि कारणकार्यभ्रम भासता है, प्रथम जो सृष्टि फुरि है, सो कारणकार्यके क्रमतें रहित फुरी है, पाछे कारणकार्यक्रम भास्या, बहुरि तिसका संस्कार हृदयविषे हुआ, तब संस्कारके वशतें भासणे लगी, प्रथम संस्कारतें रहित अकस्माततें भासी है, तिसविषे जिनकों स्वरूपका प्रमाद नहीं भया, तिनकों सदा परब्रह्मका निश्चय रहता है, अरु जगत् अपणा संकल्पमात्र भासता है, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद भया है, तिनकों संस्कारपूर्वक जगत् भासता है, अवर संस्कार भी कछु वस्तु नहीं॥ हे वेधक! जो जगतही मिथ्या है, तौ तिसका संस्कार कैसे सत् होवै, परंतु ज्ञानवान्कों इस प्रकार भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों स्पष्ट भासता है ॥ हे वेधक! जैसे तुम संकल्पके रचे पदार्थकों असत् जानते हौ, जैसे स्मृतिसृष्टिकों असत् जानते हौ, जैसे स्वप्नसृष्टिकों असत् जानते हौ, तैसे हम इस जाग्रतसृष्टिकों

भी असत् जानते है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत् भासता है, तैसे हमकों यह जगत् असत् है, बहुरि कारण कार्य कर्म संस्कार हमकों कैसे भासै, अरु अज्ञानीकों तीनों भासते हैं ॥ हे वेधक! जब चित्तसंवित् बहिर्मुख होती है, तब जगत् भासता है, अरु जब अंतर्मुख होती है, तब अपणे स्वरूपकों देखती है, जब आत्मतत्त्वका किंचन संवेदन फुरती है, तब स्वप्न जगत् हो भासता है, अरु जो ठहरी जाती है, तब सुषुप्ति प्रलय हो जाती है, फुरणेका नाम सृष्टिकी उत्पत्ति है, अरु ठहरणेका नाम प्रलय है, जिसके आश्रय फुरणा फुरता है सो शुद्ध सत्ता अव्यक्त निराकार है, सोई आकाररूप भासता है, अरु जो अकारण निराकार है, तिसविषे अकारण आकार भासता है, तातें जाणता है जो उहीरूप है, अवर कछु नहीं, आकार भी निराकार है, सृष्टिही दृश्यरूप हो भासती है, जगत् आभासमात्र है, जैसे समुद्रका आभास तरंग होते हैं, तैसे आत्माका आभास जगत् है, सो आत्मानंद चिदाकाश है, अरु सर्व जगत्का अपणा आप है ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुम जगत्कों अकारण कहते हौ, सो कारणविना उत्पत्ति कैसे संभवती है, जो प्रत्यक्ष भासता, अरु जो कारण करिके उत्पत्ति कहौ, तौ स्वप्नवत् क्यों कहते हौ, स्वप्नसृष्टि तौ कारणविना होती है, तातें यह सृष्टि कारणसहित है, अथवा कारणतें रहित अकारण है सो कहौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! यह जगत् आदि अकारण है, आत्माका आभासमात्र है, प्रथम कारणतें रहित है, सो आत्माविषे अत्यंत अभाव है, अवर पदार्थ कछु बणै नहीं, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, सो चिदाकाश चिन्मात्र है, तिसका किंचन चेतनता है, जैसे सूर्यकी किरणांका आभास जलभासता है, परंतु जड है, तैसे आत्माका किंचन भी चेतन है, सो किंचन संवेदन अहंभावकों लेकरि फुरती गई है, जैसे जैसे फुरती है, तैसा तैसा जगत् हो भासता है, जो जो तिसविषे निश्चय किया है, जो यह कर्तव्य है, इसके करणेकरि पुण्य है, इसके करणेकरि पाप है, यह करणा है, इह नहीं करणा, देश काल क्रिया क्रम है, यह इसी प्रकार है, यह ऋ

कार्यकारणा.

षि है, यह देवता है, यह मनुष्य है, यह द्वैत है, यह धर्म है, यह कर्म है, इसकरि इनकों बंधन है, इसकरि इनकों मोक्ष है ॥ हे वेधक! जो आदि नेति रची है, तैसेही अबलग स्थिति है, अन्यथा नहीं होती, तिसविषे कारण कार्य क्रम है, प्रथम जो सृष्टि फुरी है, सो बुद्धिपूर्वक नहीं बणी, आकाशमात्र फुरी है, जैसे फुरी है, तैसेही स्थित है, बहुरि पदार्थ जो एकभावकों त्यागिकरि अवर भावकों अंगीकार करते हैं, सो कारण करिके करते हैं, कारणविना नहीं होते; काहेतें जो प्रथम सृष्टि अकारण हुई है, पाछेतें सृष्टि भावविषे कारण कार्य हुए हैं, परंतु हे वेधक! जिन पुरुषकों आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिनकों यह जगत् कारणविना ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु जिनकों आत्मसत्ताका प्रमाद है, तिनकों जगत्कारण असत् भासता है, परंतु आत्मा ब्रह्म निराकार अकारण है, तिसविषे संवेदनके फुरणेकरि अब्रह्मता भासती है, अरु निराकारविषे आकार भासता है, अरु अकारणविषे कारणता भासती है, अरु जब संवेदन जो मनका फुरणा है सो स्थिर होता है, तब सर्व जगत् कारणकार्यसहित भासता है, प्रथम अकारण फुर्या है, पाछेतें देवता मनुष्य पशु पक्षी पृथ्वी जल तेज वायु आकाश पदार्थकी मर्यादा भई है, बंध अरु मोक्षकी नेति हुई है, सो ज्यौंकी त्यौं है, जो जल शीतलही है, अग्नि उष्णही है, इत्यादिक जैसे नेति है, तैसे स्थित है, अरु जब आत्मसत्ताविषे जागता है, तब जगत् कारणकार्यसहित नहीं भासता, जैसे स्वप्नसृष्टि प्रथम अकारण भासि आती है, जब दृढ हो जाती है, तब कारणसों कार्य होता है, दृढ हो आता है, जो मृत्तिकाविना घट नहीं बनता, अरु जागि उठैं, तब सर्व जगत् आत्मरूप हो जाता है ॥ हे वेधक! यह जगत् संवेदनविषे स्थित है, जबलग अहंभावका फुरणा है, तबलग जगत् है, जब अहंभाव मिटता है, तब सर्व जगत् शून्य आकाशवत् होता है, जबलग अहं फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, जैसी भावना होती है, तैसा भासता है, अरु सर्व पदार्थ सर्वदा काल अपणी अपणी शक्तिविषे

जैसे आदि नेति हुई है, तैसेही स्थित है, जो जीव जैसी क्रियाका अभ्यास करैगा, तिसके फलकों पावैगा, जो बंधनके निमित्त करैगा, सो बंधनकों पावैगा, अरु मोक्षके निमित्त करैगा तौ मोक्षकों पावैगा, ऐसेही आदि नेति हुई है ॥ हे वेधक! इस प्रकार किंचन होकरि मिटि जाता है, अरु आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, अरु जगतकी उत्पत्ति प्रलय ऐसे हैं, जैसे हाथी अपणी सुंडकों पसारै अरु खैंचै, तैसे चित्त संवेदनके पसरणेकरि जगत् उत्पन्न होता है, अरु निस्पंदविषे प्रलय हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कार्यकारणाकारणनिर्णयो नाम द्विशताधिकैकत्रिंशातितमः सर्गः ॥ २३१ ॥

॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! यह संपूर्ण जगत् चिद् अणुके ओजविषे है, अरु तिस संबंधके अभ्यास करिके आत्मा चिद् अणुकी संज्ञाकों पावता भया है, ओज अंतःकरण हृदय तीनों अभेद हैं, तिसविषे स्थित चेतनसत्ता है, बाहिरतें मृतकरूपवत् होती है, अरु तिसविषे जीवितरूप है, अरु तहां बडे प्रकाशकरि प्रकाशती है, तिस सत्ता आगे चित्तसाथ संयोग हुआ है, चित्त अरु प्राणकलाका संयोग हुआ है ॥ हे वेधक! जब प्राण क्षोभते हैं, तब चित्त खेदकों प्राप्त होता है, अरु जब चित्त खेदकों प्राप्त होता है, तब प्राण भी खेदकों पावते हैं, जब प्राण स्थित होते हैं, तब जीव शांतिकों प्राप्त होता है, अरु जो प्राण स्थित नहीं होते तब जीव जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था भिन्न आती है सो सुण ॥ हे वेधक! जब यह पुरुष अन्न भोजन करता है, सो अन्न जाग्रतवाली नाडीउपर जाय स्थित होता है, तब उह नाडी रोकी जाती है, तिसकरि सुषुप्ति आती है, जिन नाडीविषे चित्तकी वृत्ति गई हुई जाग्रत जगत्कों देखती है सो जाग्रत नाडी कहातियां हैं, तिन उपर अन्न जाय स्थित होता है, अरु चित्तसत्ता जो चित्तविषे प्रतिबिंबित है, सो चित्त नाडी तिसके तले आय जाती है, तब प्राणवायु भी तिस नाडीविषे ठहरि जाता है, अरु चित्तस्पंद भी ठहरि जाता है, तब सुषुप्ति होती है, अरु जो पित्त बहुत होती है, तब सूर्य अग्नि आदिक उष्ण पदार्थ

स्वप्नविषे देखता है, अरु जब वह अन्न पचता है, अरु उन नाडीविषे प्राण जाते हैं, तब स्वप्न अवस्था आती है, जब जलके शोषणेकों वायु वहता होता है, तब जीव स्वप्नविषे उडता है, अरु जो कफ बहुत होता है, तब जलकों देखता है, नदीयां अरु ताल देखता है तिनविषे जाता है, डुबता है, जब उष्ण नाडीविषे अन्न जल जाय पहूंचता है, तब जागृत अवस्था होती है, इस प्रकार जीव तीनों अवस्थाविषे भटकता है, जगत् न कछु अंतर है, न बाहिर है, केवल अद्वैतसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसके प्रमाद करिके चित्तकी वृत्ति जब बहिर्मुख फुरती है, तब जगत्कों जागृत करि देखता है, अरु जब बाहिरकी इंद्रियांकों त्यागि करिके अंतर आती हैं, तब अंत स्वप्नजगत्कों देखती है, अरु जब अपणे स्वभावविषे स्थित होती है, तब अवर कल्पना मिटि जाती है, सर्व ब्रह्मही भासता है, तातें सर्व कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्र० जागृत्स्वप्नसुषुप्तिविचारो नाम द्विशताधिकद्वात्रिंशतितमः सर्गः ॥ २३२ ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच॥ हे वेधक! यह तीनों अवस्था होती हैं, अरु जाती हैं, इनके अनुभव करनेवाली जो सती हैं, सो आत्मसत्ता है, अरु सदा एकरस है, जिस पुरुषकों अपणे स्वरूपका अनुभव भया है, तिसकों अपना किंचन भासता है अरु जिसकों प्रमाद है, तिसकों जगत् भासता है, अरु यह जगत् चित्तका कल्प्या हुआ है, इंद्रियांका जिसकों प्रमाद है, तिसकों जगत् भासता है, अरु यह जगत् चित्तका कल्प्या हुआ है, जब इंद्रियां विषयके सन्मुख होती हैं, तब जगत्कों देखती हैं, तिस संकल्प जगत्कों देखिकरि रागदोषवान् होती हैं, बहुरि इंद्रियके अर्थकों पाइकरि जीव हर्ष अरु शोकवान् होता है॥ हे वेधक! जिस चिद् अणुका इंद्रियसाथ संबंध है, तिसकों संसारका अभाव नहीं होता, नेत्र त्वचा जिव्हा नासिका श्रोत्र करिके आपकों देखता स्पर्श करता रस लेता सूंघता, सुणता, मानता है, तब संसारी होकरि दुःख पावता है, जब इनके अर्थकों त्यागिके अपणे स्वभावकी उर आता है, तब सर्व जगत्कों आत्मरूप जाणिकरि सुखी होता है॥ हे वेधक! चित्तके

फुरणेका नाम जगत् है, अरु चित्तके स्थित होणेका नाम ब्रह्म है, जगत् अवर कछु वस्तु नहीं, इसीका आभास है, चित्तके आश्रय सब नाडियां हैं, तिनविषे स्थित होकरि जीव तीनों अवस्थाकों देखता है, वास्तवतें यह जीव चिदाकाश आत्मा है, अज्ञानकरि जीवसंज्ञाकों प्राप्त भया है ॥ हे वेधक! ओज धातु जो है हृदय, तिसविषे चिद् अणु स्थित होकरि दीपक ज्योतिवत् प्रकाशता है, तिस ओजके आश्रय सब नाडियां हैं, सो अपने रसकों ग्रहण करती हैं, जब यह प्राणी भोजन करता है, अरु अन्न जाग्रत नाडीविषे पूर्ण होता है, तब जाग्रतका अभाव हो जाता है, चित्तकी वृत्ति अरु प्राण आणेजाणेतें रहित हो जाते हैं, उह नाडी मूंदी जाती है, बहुरि जब कफनाडीविषे प्राण फुरते हैं, तब स्वप्न भासता है ॥ हे वेधक! जब इंद्रियकों ग्रहण करिके चित्तकी वृत्ति बाह्य निकसती है, तब जाग्रत जगत् हो भासता है, अरु जब तन्मात्राकों लेकरि चित्तकी वृत्ति ओजधातुविषे फुरती है, तब स्वप्न भासता है, अरु जब ओज धातुउपर अन्न आदिक द्रव्यका बोध आनि पडता है, तब सुषुप्ति होती है, अरु जब निद्राका अरु जाग्रतका बल होता है, तब दोनों भासते हैं, अरु जब दोनोंविषे एकका बल अधिक होता है, तब उही भासता है, जाग्रत अथवा सुषुप्ति, अरु जब निद्रातें रहित मंद संकल्प होता है, तब तिसकों मनोराज्य कहता है, अरु जब बाह्य विषयकों त्यागिकरि चित्तकी वृत्ति अंतर्मुख होती है, तब स्वप्न होता है, तहां फिरि जिस सिद्धांतविषे जाता है, तिस अनुसार अंतर जगत् भासता है, कफके बलकरि चंद्रमा अरु क्षीरसमुद्र नदीयां ताल जलसाथ पूर्ण, अरु वृक्ष फूल फल बगीचे सुंदर वन हिमाला कल्पवृक्ष तमाल सुंदर स्त्रीयां अरु वल्लियां, बावलीयां इत्यादि सुंदर अरु शीतल स्थान देखता है, जब पित्तका बल अग्नि होता है, तब सूर्य अग्नि अरु सूके वृक्ष फल टास देखता है, अरु संध्याकालके मेघकी लाली देखता है, वन स्थानकों अग्नि लगी देखता है, पृथ्वी अरु रेत तपी हुई देखता है, मरुस्थलकी नदी दृष्ट आती है, जल उष्ण लगता है, हिमालेका शिख

र उष्ण लगता है, इनतें आदि लेकरि उष्ण पदार्थ दृष्ट आता है, अरु जब वायुका बल अधिक होता है, तब स्वप्नविषे आधि वायुकों देखता है, पाषाणकी वर्षा होती दृष्ट आती है, अरु अंधे कूपविषे गिरता है, हस्ती घोडे उडते दृष्ट आते हैं, आपकों उडता फिरता देखता है, अप्सराके पाछे दउडता है, पहाडकी वर्षा होती है, वायु तीक्ष्ण वेगकरि चलती है, अन्नतें आदि लेकरि पदार्थ चलते दृष्ट आते हैं, विपरीत होकरि दृष्ट भासते हैं, इस प्रकार वात पित्त कफ करिके स्वप्नविषे जगत् देखता है, जिसका बल विशेष होता है, तिस धर्मविषे दृष्ट आता है, वासनाके अनुसार घट बढ राजसी तामसी सात्विकी पदार्थकों देखता है, जब तीनों एकठे होकरि कुपते हैं, तब प्रलयकाल दृष्ट आते हैं ॥ हे वेधक! जबलग वात पित्त कफके अंश साथ मिल्या हुआ पुर्यष्टक कफके स्थानविषे प्रवेश करता है, तबलग समान जलके क्षोभ भासते हैं, इस प्रकार वात पित्त कफ जिसके स्थानविषे जाता है, अवरके स्वभावकों लेता हुआ तबलग समान क्षोभ भासता है, अरु जब केवल वातका क्षोभ होता है, तब महाप्रलयकालके पवन चलते हैं, अरु पहाडपर पहाड गिरते भूकंप आते हैं, इसतें आदि लेकरि क्षोभ होते हैं, अरु जब कफका क्षोभ होता है, तब समुद्र उछलते हैं, अरु पित्तकरि अग्नि लगती है, महाप्रलयकी नांई तत्त्व क्षोभवान होते हैं, जब प्राण जागृत नाडीविषे जाते हैं, अरु उह अन्नकरि पूर्ण होती हैं, तब जीव उसके नीचे आई जाते हैं, जैसे कंधके नीचे दर्दुर आवें, जैसे पाषाणकी शिलाविषे कीट आय जावै, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठविषे होवै, जैसे इनविषे अवकाश नहीं रहता, तैसे तिस नाडीविषे फुरणेका अवकाश नहीं रहता, रोकी जाती है, तब इसकों सुषुप्ति होती है, जब कछु अन्न पचता है, तब चित्तसंवित अपणे अंतर स्वप्न देखती है, जिसकों सततका विकार विशेष होता है, तिसीका कार्य देखता है, जब अन्न अरु जल पचता है, तब फिरि जाग्रत जगतकों देखता है, अरु जब जाग्रत अरु स्वप्न दोनोंका बल सम होता है, तब दोनोंकों देखता है, अरु अनुभव

करता है ॥ हे वेधक! एक प्रकार तीनों अवस्था होतियां, अरु मिटि जातियां हैं, सो तीनों गुणकरी होतियां हैं, इनका द्रष्टा इनकों अनुभव करणेवाला है, सो गुणतें अतीत है, अरु सर्वका आत्मा है, यह जगत् अरु स्वप्नजगत् संकल्पमात्र है, बन्या कछु नहीं, ब्रह्मसत्ताही किंचन करिके जगत्‌रूप हो भासती है, परंतु अज्ञानी तिसकों जगत् जानते हैं, जगत्कों सत् जाणिकरि इष्टअनिष्टविषे राग दोष करते हैं, इष्ट रागसंयुक्त ग्रहण करते हैं, अनिष्टकी प्राप्तिविषे द्वेष करते हैं, जब बाह्यकी इंद्रियां सुषुप्ति हो जाती हैं, तब अंतर स्वप्नविषे भटकता है, तिसविषे सूर्य चंद्रमा वन फूल फल वृक्ष आदिक जगत् कों देखता है, अरु जब स्वरूपका अनुभव होता है, तब सर्व भटकणा मिटि जाता है, अरु शांतिपदकों प्राप्त होता है ॥ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ २३३ ॥ ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुम जगत् अरु प्रलय देखी थी, तिसके अनंतर क्या करत भया, अरु क्या अवस्था देखी ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ ॥ हे वेधक! तिसके चित्तस्पंदविषे मैं देखता भया, जो बडे बडे पहाड प्रलयकी वायुसाथ सूके तृणकी नांई उडते हैं, अरु पाषाणकी वर्षा होती है, इस प्रकार मैं प्रलयके क्षोभकों देखत भया, मेरे देखते देखते जाग्रतवाली नाडीविषे अन्न आनि स्थित हुआ, तहां जो अन्नके दाणे गिरैं, सो पर्वतवत् भासैं, तब चित्तस्पंद जो संवित् थी, सो रोकी गई, तिसविषे मैं था, सो तामस नरकविषे जाय पडा, मानों उहां मैं भी जड हो गया, मुझकों ज्ञान कछु न रहा, जब कछु अन्न पच्या अरु कछु अवकाश हुआ, तब प्राणका स्पंद फुर्या, जैसे वायु निस्पंद हुई स्पंद होकरि चलैं, तैसे उहां संवित फुरी, तब सुषुप्ति सो दृश्य होकरि भासणे लगी, कैसी है, ज्यों आत्मा द्रष्टाही दृश्यरूप होकरि भासणे लगा, परंतु अवर कछु बन्या नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे कछु भेद नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं,

जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु दृश्यविषे कछु भेद नहीं ॥ हे वेधक! इस प्रकार मैं जगत्कों देखता भया, सुषुप्ति जाग्रत दृश्यसों दृश्य उपजी मुझकों दृष्ट आई, जैसे कुंआरी कन्यातें संतान उपजै, तैसे उपजत भई ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर! तुम जो कही सुषुप्ति आत्मातें दृश्य उपजी सो सुषुप्ति क्या है, जिसविषे तुम दबे गये थे, उही सुषुप्ति है, जिसतें जगत् उपजता है, सो मुझकों कहो ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! जहां सर्व संबंधका अभाव है, केवल आत्मसत्तातें इतर कछु कहणा नहीं, तिसका नाम सुषुप्ति है, तिसविषे जो फुरणा हुआ तिस फुरणेके तीन पर्याय हैं, सो सब सन्मात्रके हैं, जो वस्तु स्वरूप है, अरु देश काल वस्तुके प्रच्छेदतें रहित है, अरु तीनोंके प्रच्छेदतें रहित है, सो सन्मात्र है, तिस सन्मात्रविषे अवर कछु बन्या नहीं, तिसके सब पर्याय हैं, सो उही रूप हैं, उही सत् वस्तु अपणे आपविषे बिराजता है, कदाचित् अन्यथा भावकों नहीं प्राप्त होता, किंचनविषे भी उहीरूप है, अरु अकिंचनविषे भी उहीरूप है, आत्माहीका नाम सुषुप्ति है, तिसीतें सब जगत् होता है, तिस सत्ताका नाम सुषुप्ति है, उही स्वप्न दृश्य होकरि भासता है, उसतें इतर कछु नहीं, जैसे वायु निस्पंद स्पंदविषे उहीरूप है, तैसे आत्मा दोनों अवस्थाविषे एकही है ॥ हे वेधक! हम सारखेकी बुद्धिविषे अवर कछु बन्या नहीं, सदा ज्यौंका त्यौं स्थित है, शरीरके आदि भी अंत भी उहीरूप है, तिसविषे जो किंचनद्वाराकरि भास्या है सो भी उहीरूप है, जैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे मुझकों अद्वैतका अनुभव होता है, अवर कहूं फुरणा नहीं होता, तिससों जो स्वप्न अरु जाग्रत भासि आती है, सो भी उहीरूप है, जिसतें फुरती है, अरु जिसविषे भासती है, तिसतें इतर कछु नहीं, तातें यह जगत् आत्माका किंचन है सो आत्मारूप है, जब तूं जागिकरि देखैगा, तब तुझकों आत्मरूप भासैगा, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरका अनुभव होता है, अरु आकाशरूप है, तैसे यह जगत् आकाशरूप है, शक्ति भी उही है, सर्वशक्ति आ

त्मा है, निष्किंचन भी उही है, अरु किंचन भी उही है, अरु शून्य भी उही है, जो वाणीतें कह्या नहीं जाता तिस अवस्थाविषे ज्ञानी स्थित है ॥ हे वेधक! ज्ञानवान्‌कों अनुभव प्रत्यक्ष करिके अनुभवरूपही भासता है, जैसे स्वप्नविषे जीव अरु ईश्वर भिन्न भिन्न भासता है, उपाधि करिके अनुभवभेद भासता है, वास्तवतें भेद कछु नहीं, तैसे जाग्रतविषे अज्ञान उपाधि करिके भेद भासता है, स्वरूपतें आत्मा एकरूप है, जब अज्ञान निवृत्त होता है, तब सर्व आत्मारूप भासता है ॥ हे वेधक! सर्व जगत् अपणा स्वरूप है, परंतु अज्ञान करिके भेद होता है, जब आपकों जाणै तब द्वैत भेद भी मिटि जावै, जैसे कहूं पुरुष अपनी भुजा पर सिंहकी मूर्त्ति लिखै, अरु उसके भयकरि दउडता फिरै, अरु कष्ट पावै सो प्रमाद करिके भयमान होता है, उह तौ अपणाही अंग है, ऐसे जाणै तब भय मिटि जाता है, तैसे स्वरूपके ज्ञान करिके जगत्‌भय मिटि जाता है, जैसे स्वप्नविषे अज्ञान करिके नानात्व भासती है, अरु बन्या कछु नहीं, तैसे जाग्रतविषे नानात्व भासता है, परंतु बन्या कछु नहीं, जब यह पुरुष अंतर्मुख होता है, तब इसकों बोधकी दृढता हो आती है, जैसे प्रातःकालकों ज्यौं ज्यौं सूर्यकी किरणां प्रगट होतियां हैं, त्यौं त्यौं सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे ज्यौं ज्यौं अंतर्मुख होता है, त्यौं त्यौं बोध खिलता है, विषयतें वैराग्य करणा अरु आत्माका अभ्यास करणा इसकरि बुद्धि अंतर्मुख होती है, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब आत्मा सर्व एकरस भासता है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३४ ॥ ॥

॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! तब मैं उसकी सुषुप्तिसों जागिकरि जगत्‌कों देखत भया, जैसे कोउ पुरुष समुद्रसों निकसी आवै, अरु जैसे संकल्पसृष्टि फुरि आवै, जैसे आकाशतें बदल फुरि आते हैं, जैसे वृक्षतें फल निकसि आते हैं, तैसे उसकी सुषुप्तिसों सृष्टि निकसी आई, मानौ आकाशतें उडी आई, मानौ कल्पवृक्षतें चिंतामणि निकसी आई है, जैसे शरीरके रोम खडे हो आते हैं, जैसे गंधर्व नगर फुरि आता है, जैसे

पृथ्वीतें अंकुर निकसि आता है, तैसे सृष्टि फुरि आई है, जैसे कंध उपर पुतलियां लिखिया होवैं, जैसे स्तंभ विषे अणउकरि पुतलियां होवैं, तैसे मैं सृष्टिकों देखत भया, जैसे स्तंभविषे पुतलियां निकसी नहीं, परंतु शिल्पी कल्पता है, जो एती पुतलियां निकसैंगियां, तैसे अणहोती सृष्टि आत्मरूपी स्तंभतें निकसि आती है, अरु आत्मरूपी माटीतें पदार्थरूपी बासन निकसते हैं, परंतु यह आश्चर्य है जो आकाशविषे चित्र होते हैं, अरु निराकार चैतन्य आकाशविषे पुतलियां मनुष्य कल्पता है॥ हे वेधक! जैसे आकाशविषे मकडीके समूह निकसी आते हैं, तैसे शून्य आकाशतें सृष्टि निकसीकरि पुरुषके हृदयविषे मुझकों स्पष्ट भासणे लगी, अरु देश काल क्रिया द्रव्य करिके अकस्मात्तें सत् असत् पदार्थ भासणे लगते हैं, अरु असत् पदार्थ सत् हो भासते हैं, जैसे मणि मंत्र औषधि द्रव्यके बलकरि असत् पदार्थ सत् हो भासणे लगते हैं, अरु सत् पदार्थ असत् भासते हैं, तैसे अभ्यासके बलकरि मुझकों पुरुषके हृदयविषे सृष्टि भासणे लगी॥ हे वेधक! जैसा निश्चय संवित्विषे दृढ होता है तैसा रूप होकरि भासता है, वास्तवतें न कोउ पदार्थ है, न अंतर है, न बाहिर है, न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, यह सब सृष्टि इसके अंतरही स्थित है, अरु प्रमाददोष करिके बाहिरसें फल उत्पत्ति होते देखता है, जैसे स्वप्नविषे सब पदार्थ अपणे अंतर बाहिर होते भासते हैं, तैसे यह पदार्थ अपणे अंतरसों बाह्य फुरते भासते हैं॥ हे वेधक! यह जगत् जो आकारसंयुक्त दृष्ट आता है, सो सब निराकार है, अवर कछु बन्या नहीं, ब्रह्मसत्ताही अज्ञानकरि जगत्रूप हो भासती है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों जगत् सत् असत् कछु नहीं भासता, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित भासती है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों भिन्न भिन्न नामरूप भासता है, अरु जब चित्तकी वृत्ति बाहिर फुरती है, तिसकों जाग्रत कहता है, अरु जब अंतर्मुख फुरती है, तब तिसकों स्वप्न कहता है, अरु जब वृत्ति स्थित होती है, तब तिसकों सुषुप्ति कहता है, तौ एकही चित्तवृत्तिके तीन पर्याय हुए, अवर कछु वा

स्तव तौ नहीं, इसी जगत्के आदि शुद्ध केवल आत्मसत्ता थी, तिसविषे चित्तसंवित फुरी, तब जगत्रूप भासणे लगी, अवर किस कारणतें जगत् उपजा नहीं, जिसका कारण कोउ नहीं, तिसकों असत् जाणियें, वास्तवतें कछु बण्या नहीं, सर्व जगत् शांतरूप ब्रह्मही है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सुषुप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३५ ॥ ॥

॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! प्रलयके अनंतर तुमकों क्या अनुभव हुआ था ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! तब मुझकों तिसके अंतर सृष्टि फुरि आई, अपने पुत्र कलत्र स्त्री संपूर्ण कुटुंब भासि आया, तिनकों देखिकरी मुझकों ममत्व फुरि आई, अरु पूर्वकी स्मृति भूली गई, षोडश वर्षकी आयुर्बला मुझकों अपणी भासी, गृहस्थाश्रमविषे स्थित भया, रागदोषसहित मुझकों जीवके धर्म फुरी आये, काहेतें जो दृढ मुझकों हुआ न था ॥ हे वेधक ! जब दृढ बोध होता है, तब राग दोष आदिक जीवधर्म चलाय नहीं सकते, संसारकों सत्य जाणिकरि वासना कोउ नहीं होती, इसी कारणतें चलायमान नहीं होता, अरु जिसकों बोधकी दृढता नहीं, तिसकों जगत्की वासना खेंचि ले जाती है ॥ हे वेधक ! अब मुझकों दृढ बोध हुआ है, इसकों तरना महाकठिन है, यह पिशाचिनी महाबली है, काहेतें जो चिरकाल दृश्यका अभ्यास हुआ, इस कारणतें चलाय ले जाती है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग जीवकों प्राप्त होता है, अरु अभ्यास दृढ होता है, तब दृश्यका सद्भाव निवृत्त हो जाता है, जबलग यह उपाय मोक्षका नहीं प्राप्त भया, तबलग यह भ्रम दृढ हो रहा है, जब संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि इसकों यह विचार उपजै जो मैं कवन हौं, अरु यह जगत् क्या है, इसकों विचारिकरि आत्मपद्का दृढ अभ्यास होवै, तब दृश्यभ्रम मिटि जाता है, काहेतें जो असम्यक् ज्ञान करिके जगत् सत् भास्या है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ तब जगत्का सद्भाव कैसे रहे, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रम करिके भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजी, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है, तैसे आ

त्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है, जब अपणे स्वरूपविषे जागता है, तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, जबलग स्वरूपविषे जाग्या नहीं, तबलग जगत्भ्रम मिटता नहीं ॥ ॥ वेधक उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम सत् कहते हौ, जो जगत्भ्रम मिटणा कठिण है, मैं तुमारे मुखतें वारंवार सुणता हौं, अरु विचारता हौं, अरु पदपदार्थका ज्ञान मुझकों दृढ हो गया है, परंतु संसारभ्रम नष्ट नहीं होता, इह मैं जानता हौं, अरु सुनता हौं, जो संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारविना शांति नहीं प्राप्त होती, यह संशय मुझकों होता है, जो तुम जाग्रत जगत्कों स्वप्नवत् कैसे कहते हौ, केई पदार्थ सत् भासते हैं, केई असत् भासते हैं ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक ! यह जेता कछु जगत् पृथ्वी आदिक पदार्थ सत् भासते हैं, अरु शशेके सिंग आदिक असत् भासते हैं, सो सब मिथ्यारूप हैं, जैसे स्वप्नविषे सत् असत् पदार्थ भासते हैं; सो सर्व असत्रूप हैं, तैसे यह जगत् असत्रूप है, तिसविषे अल्पप्रतीतिका अरु चिरकालकी प्रतीतिका भेद है, जाग्रत चिरकालकी प्रतीति है, तिसकरि पदार्थ सत् भासते हैं, अरु स्वप्न अल्पकालकी प्रतीति है, तिसकरि स्वप्नपदार्थ असत् भासते हैं, परंतु दोनों भ्रमरूप हैं, अरु असत् हैं, इस कारणतें मैं तुल्य कहता हौं, असत्ही पदार्थ भ्रम करिके सत्की नांई भासते हैं, अरु यह सर्व जगत् स्वप्नमात्र है, तिसविषे सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं ? जैसे स्वप्नविषे केई पदार्थ सत् भासते हैं, केई असत् भासते हैं, सो सबही असत्य हैं, तैसे जाग्रतविषे केई पदार्थ सत् भासते हैं, केई असत् भासते हैं, परंतु दोनों भ्रममात्र हैं, तातें असत्य हैं ॥ हे वेधक ! प्रतीतिका भेद है, पदार्थविषे भेद कछु नहीं, जिसविषे प्रतीति दृढ हो रही है, तिसकों सत् कहता है, अरु जिसविषे प्रतीति दृढ नहीं, तिसकों असत् कहता है, एक ऐसे पदार्थ है, जो स्वप्नविषे उनकी भावना दृढ हो गई है, सो जाग्रतविषे भी प्रत्यक्ष आनि भासता है, अरु मनोराज्यकी दृढता जाग्रतरूप हो जाती है, सो भावनाकी दृढता है, अवर भेद कछु नहीं, जिसविषे भावना दृढ हो गई है,

सो सत् भासणे लगा है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों जगत् संकल्पमात्रही भासता है, संकल्पतें इतर कछु जगत्का रूप नहीं, तिसविषे मैं सत् क्या कहौं, अरु असत् क्या कहौं, सब जगत् भ्रममात्र है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों सत् असत् कछु नहीं, तिनकों सब ज्ञानरूप भासता है, अरु जिसकों स्वप्नविषे जाग्रत की स्मृति आई है, तिसकों बहुरि स्वप्न नहीं भासता है, तैसे जिसकों जाग्रतरूप स्वप्नविषे बोधस्मृति भई है, सो बहुरि मोक्षकों नहीं प्राप्त होता, तातें न कोउ जाग्रत है, न कोउ स्वप्न है, न कोउ नेति है, काहेतें जो नेति भी कछु अवर वस्तु नहीं निकसती, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, तिनकी मर्यादा नेति भी भासती है, तौ उही नेति किसीकरि है, सब ज्ञानरूप होती है, तैसे जाग्रतविषे भी सब ज्ञानरूप हैं, संवितके फुरणेकरि नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, तिसविषे नेति भी भासती है, तातें न कोउ जगत् है, न नेति है, इसका कारण कोउ नहीं, कारणविनाही जगत् अकस्मात् फुरी आता है, अरु मिटि भी जाता है, संवेदनके फुरणेकरि जगत् फुरि आता है, संवेदनके मिटेतें मिटि जाता है, तातें जगत् संवेदनरूप है, जैसे वायु स्पंदरूप होती है, तैसे संवेदनही जगत्रूप हो भासता है, वायु स्पंदरूप होती है, तब फुरणरूप हो भासती है, अरु निस्पंद कोउ नहीं जानता, परंतु वायुकों दोनों तुल्य हैं, तैसे चित्त संवेदनके फुरणेविषे जगत् भासता है, अरुठहरणेविषे जगत् किंचन मिटि जाता है, फुरणा अरु ठहरणा दोउ उसके किंचन हैं, आप दोनोंविषे तुल्य है॥ हे वेधक! नेति भी अज्ञानीके समुझावणे निमित्त कही है, स्वप्न भी असत् हैं, सब कोउ जानता है, अरु स्वप्नका वृत्तांत जाग्रतविषे सिद्ध होता दृष्ट आता है, कोउ कहता है, जो रात्रविषे मुझकों स्वप्न आया है, अमका कार्य इसी प्रकार होवैगा, सो जाग्रतविषे होता दृष्ट आता है, अरु पुत्रकों पिता कहि जाता है, मेरी गति करहु, अरु अमुके स्थानविषे द्रव्य पडा है, तुम काढि लेवहु, सो उसी प्रकार होता दृष्ट आया है, जो नेति होती तौ कार्य कोउ सिद्ध न होता, सो तौ होता है, तातें ने

ति भी कछु वस्तु नहीं, आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं, जाग्रत नाम तिसका जिसकों आत्मशब्द कहता है, अरु जिसकों तुम जाग्रत कहते हौ सो कछु वस्तु नहीं, जाग्रत नाम जो मनसहित षट् इंद्रियांकी संवेदन होती है सो स्वप्नविषे मनसहित षट् इंद्रियांकी संवेदन होती है, तिनकेविषे ग्रहण होता है, तातें जाग्रत वस्तु कछु नहीं, जो जाग्रतविषे अर्थ सिद्ध होता है, अरु स्वप्नविषे भी होवै तौ जाग्रतविषे कछु वस्तु न हुई, अरु जो तूं कहै स्वप्न कछु वस्तु है तौ स्वप्न भी नहीं, स्वप्न तहां होता है, जहां निद्रा भ्रम होता है, केवल शुद्ध चिन्मात्रसत्ता है, जगत् तिसका किंचन है, जैसे रत्नकी लाटका चमत्कार होता है, सो लाट रत्नतें इतर कछु वस्तु नहीं, रत्नही व्याप्या है, तैसे जाग्रत स्वप्न जगत् आत्माका चमत्कार है, सो बोधसत्ता केवल अपणे आपविषे स्थित है, सो अनंत है, तिसविषे जगत् कछु बण्या नहीं, जो आत्मातें इतर जगत् भासता है, सो नाशरूप है, आत्मा सदा अविनाशी है ॥ हे वेधक! जब इह पुरुष शरीरकों छांडता है, तब परलोकविषे सुख दुःख कैसे भोगता है? जैसे जलविषे एक तरंग उठिकरि मिटि जाता है, अवर ठौर अवरप्रकार लेकरी उठता है, सो जलही जल है, आगे भी जल था, पाछे भी जल है, तरंग भी जल है, जलहीका विलास इस प्रकार फुरता है, तैसे यह शरीर भी अनुभवरूप है, अनुभवतें इतर कछु नहीं, जैसे एक स्वप्नकों छांडिकरि दूसरा स्वप्न देखता है, तौ क्या है, अपणाही आप है, तैसे यह जगत् आत्मरूप है ॥ हे वेधक! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया यही चारौं वपु हैं, जाग्रत् जो सृष्टिकी समष्टिता है, तिसका नाम विराट है, अरु स्वप्न जो लिंगशरीरकी समष्टिता है, तिसका नाम हिरण्यगर्भ है, अरु सुषुप्ति शरीरकी समष्टिता अव्याकृत माया है, अरु तुरीया सर्व शरीरकी समष्टिता है, सो चेतनरूप आत्मा है, तुरीया कहियें जानणा साक्षीभूत, तिसकी समष्टितारूप चेतनवपु है, चारौं शरीर उसके हैं, अरु सदा निराकार है, अचेत चिन्मात्र है ॥ हे वेधक! यह चारौं परमात्माके श

रीर हैं, सो परमात्मा निराकार है, अरु आकार जो दृष्ट आते हैं, सो भी उहीरूप हैं, सो आकार कल्पनामात्र हैं, अरु आत्मा सर्व कल्पनातें रहित है, तातें सब जगत् चिदाकाशरूप है, जैसे पत्थरकी शिलाविषे कमल फूल नहीं लगते, तिनका होणा असंभव है, तैसे आत्माविषे जगत्का होणा असंभव है ॥ हे वेधक! आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तूं जागिकरि देख, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो संकल्पमात्र हैं, जिसविषे कल्पित हैं, सो नामरूपतें रहित हैं, तिसकों देखैंगा, तब सब जगत् आत्मरूप भासैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्ननिर्णयो नाम द्विशताधिकषट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३६ ॥

॥ व्याध उवाच ॥ हे मुनीश्वर! उस पुरुषके हृदयविषे जो तुम सृष्टि देखी थी, तिसविषे तुम किस प्रकार विचरतेथे, अरु क्या देख्या सो कहौ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! जो कछु वृत्तांत है, सो तूं सुण, जब मैं उसके हृदयविषे नानाप्रकारका जगत् देख्या, तब मैं अपणे कुटुंबविषे रहणे लगा, पूर्वकी स्मृतिका विस्मरण किया, अरु चेष्टा करत भया, षोडश वर्षपर्यंत सत् जाणिकरि मैं चेष्टा करी तब मेरे गृहविषे एक उग्रतपा नाम ऋषीश्वर मान्य करणे योग्य आया, तिसका मैं बहुत आदर किया, चरण धोइकरि सिंहासनपर बैठाया, अरु नानाप्रकारके भोजनकरि तिसकों तृप्त किया, तिस ऋषिनें भोजन करिके विश्राम किया तब मैं कहा, हे परमबोधवान्, अदृष्टक्रोधकों मैं जानता हौं, अरु तुम परमबोधवान् हौ, तुम आपकों आपही जानते हौ, अरु जब तुम आये तब थके हुये थे, परंतु तुमारेविषे क्रोध दृष्ट न आया, अरु नानाप्रकारके तुम भोजन किये, तब तुम हर्षवान् भये, इस कारणतें मैं जान्या जो तुम परम बोधवान् हौ, तुमारेविषे राग दोष कछु नहीं, तातें मैं प्रश्न एक करता हौं, संशयसंयुक्त होकरि, तिस संशयकों कृपाकरि दूरि करौ ॥ हे भगवन्! यह जगतनगरविषे दुर्भिक्ष आनि पडता है, अरु मृत्यु प्राप्त होती है, एकठे मरि जाते हैं, अरु कष्ट पावते हैं, सो क्या कारण है, यह तौ मैं जानता हौं, जो जैसे कर्म शुभ अथवा अशुभ

जीव करता है, फलकों पावता है, जैसे धान्यकों बोता है, तब समय पायकरि फल भी अवश्य आता है, तैसे कर्मका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो जिसनें किया है, सोई भोगता है, अरु एकठा कष्ट क्योंकरि आनि प्राप्त होता है ॥ ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे साधो! प्रथम सुण, जो जगत् क्या वस्तु है, यह जगत् कारणविना उत्पन्न भया है, जो कारणविना दृष्ट आवै सो भ्रममात्र जाणियें, तातें तूं विचारकरि देख जो यह जगत् क्या है, अरु तूं कवन है, अरु इसविषे क्या है, अरु इसका अंत परिमाण कहांलग है॥ हे व्याध! यह जगत् स्वप्नमात्र है, अरु यह शरीर भी स्वप्नमात्र है, तूं मेरा स्वप्ननगर है, अरु मैं तेरा स्वप्ननगर हौं, सब जगत् स्वप्ननगर है, कारण कार्य कोउ नहीं, सब आभासमात्र है, आभासविषे कछु अवर वस्तु नहीं होती, तातें सब जगत् आत्मस्वरूप है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रममात्र होता है, तौ सर्प कछु नहीं, जेवरी होती है, तैसे सब जगत् चिन्मात्ररूप है, तिसविषे कछु बन्या नहीं, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे अहं होकरि इस प्रकार चेतनता संवेदन फुरती है, तब जगत् आकारका स्मरण होता है, जैसे जैसे संकल्प फुरता है, तैसा तैसा जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि नानाप्रकार हो भासती है, परंतु अनुभवतें इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है, सो अनुभवतें इतर कछु नहीं तैसे यह जगत् भासता है, जिस संवितविषे अपणा स्वरूप स्मरण होता है, तिसकों जगत् कारण कार्यरूप भासता है, सोई जीव है, जिस संवितकों कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तिसकों तिन कर्मका फल नहीं लगता, कर्तव्य दृष्ट भी आता है, परंतु उसके हृदयविषे कर्तव्यका अभिमान नहीं स्पर्श करता, अरु जिसके हृदयविषे कर्तव्यका अभिमान होता है, तिसकों फल भी होता है॥ हे साधो! यह जो सृष्टि है, तिसका एक विराट पुरुष है, तिसका शरीर है, अरु यह विराट भी अवर विराटके संकल्पविषे है, यह विराट उस विराटका रोमांच है, जब विराट पुरुषके अंगविषे क्षोभ होता है, अरु जीवकी पापवासना एकठी आ

नि उदय होती है, जब वासना अरु अंगका क्षोभ एकठा होता है, तब तिस स्थानविषे उपद्रव कष्ट होता है, जैसे वनविषे बहुत वृक्ष होते हैं, तिनपर वज्र आनि पडै, तिसकरि सब चूर्ण हो जावैं, तैसे एकठे पापकरि तैसे एकठेही मरि जाते हैं, अरु एकठे कष्ट पावैं, दुर्भिक्षकरि जैसे किसी पुरुषके अंगपर मखी लडैं, तिसकरि उह अंग कंपता है, उस अंग कंपणेकरि रोम कंपणे लगि जाते हैं, अरु जो सर्पादिक जीव कहूं दंसता है, तौ सारा शरीर कष्ट पावता है, अरु सब रोम कष्ट पावते हैं, तैसे यह जगत् विराट पुरुषका शरीर है, जब किसी नगरविषे पाप उदय होता है, तब एक रोमरूपी नगर जीव कष्ट पावते हैं, अरु जो सारे अंगरूपी देशविषे पाप आनि उदय होता है, तब सर्पके काटणेवत् सारा शरीर विराटका क्षोभमान होता है, तिसके शरीर उपर रोमरूपी जीव सब कष्ट पावते हैं, केवल आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसके प्रमादकरि यह आपदा दृष्ट आती है, जो यह जगत् कारणतें उपजा होता तौ सत् होता, सो तौ कारणतें उपजा नहीं, सत् कैसे होवै, इस जगत्विषे सत्प्रतीति करणी यही अज्ञान है ॥ हे साधो ! इस आकाशका कारण कोउ नहीं, पृथ्वीका कारण कोउ नहीं, अविद्याका कारण भी कहूं नहीं, स्वयंभू भी अकारण है, स्वयंभू तिसका नाम है, जो अपणे आपकरि प्रगट है, तिसका कारण कवन होवै, जल अग्नि वायुका कारण भी कहूं नहीं, जो तूं कहै, सबका कारण आत्मा है, तौ आत्मा निमित्तकारण कहैगा, अथवा समवायिकारणकहैगा, सो प्रथम पक्ष निमित्तकारण कहियें तौ नहीं बणता, काहेतें जो आत्मा अद्वैत है, जो दूसरी वस्तु नहीं तौ निमित्तकारण किसका होवै, अरु समवायिकारण कहियें तौ भी नहीं बणता, काहेतें जो समवायिकारण आप परिणमीकरि कार्य होता है, सो आत्मा अच्युत है, अपणे स्वरूपकों त्यागता नहीं, सो समवायिकारण कैसे होवै, तातें आत्माविषे कारणकार्यभाव नहीं, बहुरी जगत् किसका कार्य होवै, हे अंग! जो कारणतें दृष्ट आवै, तिसकों जाणियें जो भ्रममात्र भासता है, अरु जो तूं कहै कारणविना पिंडाकार नहीं होते,

कहूं कारण भी होवैगा, तौ हे अंग ! जो यह पुरुष देहकों त्यागता है, अरु परलोक जाय देखता है, कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगता है, उस शरीरका कारण कवन कहैगा, उह तौ कारणतें नहीं उपजा, भ्रममात्र है, तैसे यह भी भ्रममात्र जाण, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके आकार भासि आते हैं, सो किस कारणतें नहीं उपजे, जैसे आकाशविषे तरवरे अरु रंग भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है, जैसे बालककों अणहोता वैताल भासता है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे यह जगत् अणहोता स्वरूपके प्रमाद करि भासता है, वास्तवतें परमात्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है, सोई संवेदन करिके जगत्‌रूप हो भासती है, तातें जगत् उहीरूप है, जैसे वायु चलणे ठहरणेविषे एकहीरूप है, परंतु चलणेकरि भासती है, ठहरणेकरि नहीं भासती, तैसे चित्तसंवित फुरणे करिके जगत् आकार हो भासती है, तिसविषे नानाप्रकारके शब्द अर्थ दृष्ट आते हैं, अरु जब फुरणेतें रहित होती है, तब अपणे स्वभावकों देखती है, जब संकल्पकी दृढता हो गई, तब कारणकार्य भासणे लगे, जिसकों कारणकार्य भासता है, तिसकों जगत् सत् भासता है, अरु जिसकों कारणकार्यतें रहित भासता है, तिसकों जगत् आत्मरूप है, जिसकों कारणकार्यबुद्धि है, तिसकों उही सत् है, पुण्य करैगा, तब स्वर्गसुख भोगैगा, पाप करैगा, तब नरकदुःख भोगैगा, तातें उसकों पुण्य करणा भला है, जब जीवके पाप एकठे आनि होते हैं, तब दुर्भिक्ष पडती है, अरु मृत्यु आती है, जैसे पत्थरकी वर्षा होवै, तैसे कष्ट पावते हैं, अरु जो मेरा निश्चय पुछैं तौ न पाप है, न पुण्य है, न दुःख है, न सुख है, न जगत् है, जब स्वरूपके प्रमाद करिके अहंता उदय होती है, तब नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब प्रमाद निवृत्त होता है, तव सब आत्मारूप भासता है, तातें तूं सर्व कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तव सर्व संशय मिटि जावैंगे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वप्नविचारो नाम द्विशताधिकसप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३७ ॥ ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! इस प्रकार उग्रत

पा ऋषीश्वर उपदेश करत भया, तिसकरि मैं अपणे स्वभावविषे स्थित हुआ, अरु अकृत्रिम पदकों प्राप्त हुआ, उग्रतपाके साथ मानौ विष्णु भगवान् उपदेश करणे आनि बैठा है, तिसके उपदेशकरि मैं जाग्या, जैसे कोउ रजकरि वेष्टित स्नान करिके उज्वल होवै, तैसे मैं हुआ, अपनि पूर्व स्मृति अरु अवस्थाकों स्मरण करत भया, समाधिवाले शरीरकों भी जाण्या, अरु आत्मवपुकों भी जाण्या, सो उग्रतपा यह तेरे पास बैठे हैं॥ ॥अग्निरुवाच॥ हे राजन्! जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब वेधक विस्मयकों प्राप्त भया, अरु कहा, हे मुनीश्वर! बडा आश्चर्य है; जो तुम कहते हौ स्वप्नविषे मुझकों उग्रतपानें उपदेश किया था, बहुरि जाग्रतविषे कहते हौ जो इह बैठा है, सो इह वार्त्ता तुमारी कैसे मानियें, जैसे बालक अपणे पर छायेविषे वैताल कल्पै, अरु कहै, प्रत्यक्ष बैठा है, जैसे उह स्पष्ट नहीं भासता, तैसे तुमारा वचन स्पष्ट नहीं भासता, इह अपूर्व वार्त्ता सुणिकरि मुझकों संशय उपजा है, सो तुम दूर करौ॥ ॥मुनीश्वर उवाच॥ हे वेधक! यह बात आश्चर्यके उपजावणेहारी है, परंतु जैसे वृत्तांत हुआ है, सो संक्षेपतें तुझकों कहता हौं, सो सुण, जब उग्रतपानें मुझकों उपदेश किया, तब मैं कहा॥ हे भगवन्! तुम इहां विश्राम करौ, जिस प्रकार मैं रहता हौं, तैसे तुम रहौ, तब रहणे लगा, अरु मैं उसका उपदेश पायकरि विचारत भया, जो यह जगत् मिथ्या है, मेरा शरीर भी मिथ्या है, इसके सुखनिमित्त मैं क्या यत्न करता हौं, इंद्रियां तौ ऐसी हैं, जैसे सर्प होते हैं, इनके सेवणेवाला संसाररूपविषे बंधनतें कदाचित् मुक्त नहीं होता, मेरे जीवणेकों धिक्कार है, सो महामूर्ख हैं, मृगकी नांई मरुस्थलके जलपान करणेनिमित्त दउडते हैं, अरु थकि पडते हैं, सो तृप्त कदाचित् न होवैंगे, सो मैं अविद्या करिके सुखके निमित्त यत्न करता था, इनकरि तृप्ति कदाचित् नहीं होती॥ हे वेधक! ममताका रूप जो बांधव है, सो चरणविषे जंजीर है, अंधकूपविषे गिरनेका कारण है, तिनसाथ बांध्या हुआ इंद्रियांके विषयरूपी कूपविषे मैं गिर्या था, विचार किया जो बंधनका कारण कुटुंब है, तिसकों मैं

त्यागि जाउं, बहुरि विचार किया जो इनके त्यागविषे भी सुख नहीं प्राप्त होता, जब अविद्याकों नष्ट करौं ॥ हे वेधक! ऐसे विचार करि मैं गुरुकेपास गया, अरु मनविषे विचार्या, जो जगत् भ्रममात्र है, गुरु भी स्वप्नमात्र हैं, इनसों क्या प्राप्त होणा है, बहुरि विचार किया जो इह ज्ञानवान् पुरुष हैं, इनकों अहंब्रह्मका निश्चय है, तातें इह ब्रह्मस्वरूप हैं, कल्याणमूर्त्ति हैं, इनसों जाय प्रश्न करौं, अरु पूछौं, तब मैं जायकरि प्रणाम किया, अरु कहा ॥ हे भगवन्! उस अपणे शरीरकों देखि आउं, अरु इसके शरीरकों भी देखौं, जो कहां है, इस जगत्का विराट् पुरुष है ॥ हे वेधक! जब इस प्रकार मैं कहा, तब ऋषिनें हसिकरि मुझकों कहा ॥ हे ब्राह्मण! उह तेरा शरीर कहां है, उह शरीर दूर गये हैं, अब कहां देखैगा, आपे तूं जाणैगा, तब मैं हाथ जोडिकरि ऋषिकों कहा॥ हे ऋषि! अब मैं जाता हौं, मेरे आवणेपर्यंत तुम इहां बैठि रहणा ॥हे वेधक! ऐसे कहिकरि मैं आधिभौतिक देहके अभिमानकों त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ उड्या, तब आकाशमार्गविषे मैं उडता उडता थका, परंतु शरीर कहूं न पाये, तब बहुरि ऋषिपास आया, अरु कहा ॥ हे पूर्व अपरके वेत्ता, भूतभविष्यके जानणेहारे, उह दोनों शरीर कहां गये, न इस सृष्टिके विराट्का शरीर भासता है, जिसके स्कंध मार्ग राह हम आये थे अरु न अपणा शरीर भासता है ॥ हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य! सो कहहु ॥ ॥ उग्रतपा उवाच ॥ हे कमलनयन! अरु तपरूपी कमलकी खाणके सूर्य, हे ज्ञानरूपी कमलके धारणेहारा विष्णुकी नाभि, हे आनंदरूपी कमलकी खाण, तूं भी सब कछु जाणता है, अरु जाग्या हुआ है आत्मपदविषे, अरु योगीश्वर है, ध्यान करिके देख, जो सब वृत्तांत तुझकों दृष्ट आवै ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् असत्यरूप है, इसीविषे स्थिर वस्तु कोउ नहीं, तूं विचारकरि देख जो शरीरकी अवस्था तुझकों दृष्ट आवै, अरु जो मुझकों पूछता है, तौ मैं कहता हौं ॥ हे मुनीश्वर! जिस वनविषे तुम रहते थे, तुमारे शरीर उहां थे, एक कालमें तिस वनविषे अग्नि लगी, तहां जो नानाप्रकारकी वृक्ष वल्ली थी, सो सब ज

लि गई, अरु जल भी अग्निकरि क्षोभणे लगे अरु वनचारी पशु पक्षी सब जलि गये, महाकष्टकों प्राप्त भये, तहां तुमारे शरीर जलि गये, कुटी भी जलिगई॥ ॥मुनीश्वर उवाच॥ ॥हे भगवन्! उस अग्नि साथ जो संपूर्ण वन जलि गया, तिस अग्निका कारण कवन था, जो अग्नि लगाई॥ ॥उग्रतपा उवाच॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् जो है, जिसविषे हम अरु तुम बैठे हैं, इसीका विराट् सोई है, जिसके शरीरविषे तुम प्रवेश किया था, अरु जिसविषे उसका शरीर है, अरु तेरा समाधिवाला शरीर है, तिसका विराट् और है, उह सृष्टि उस विराट्का शरीर है॥ हे मुनीश्वर! उस विराट्के शरीरविषे जो क्षोभ हुआ, इस कारणतें अग्नि उत्पन्न भई, शरीर अरु वृक्ष सब जलि गये, इस सृष्टिके विराट्का नाम ब्रह्मा है, तिस ब्रह्माका विराट् अवर है, तिसका विराट् आत्मा है, सो सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे अवर कछु बन्या नहीं, जिस पुरुषकों उसका प्रमाद है, तिसकों उपद्रव होते भासते हैं, अरु कारणकार्यरूप पदार्थ भासते हैं, तिसकरि कर्मके अनुसार दुःखसुखकों भोगता है, जिसकों स्वरूपका साक्षात्कार है, तिसकों जगत् आत्म करिके भासता है, सर्व उरतें ब्रह्म भासता है॥ हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार वनके पशु पक्षी सब जले, तब तुमारी कुटीकों आग लगी, कुटी अरु तुमारे शरीर अग्निकरि जलि गये, जिसके शरीरविषे तुम प्रवेश किया था, सो भी जलि गया, अरु तुमारे शिष्य भी जलि गये, उसका ओज भी जलि गया, तुम दोनोंकी संवित् आकाशरूप हो गई, उह अग्नि भी वनकों जलायकरि अंतर्धान हो गई, जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रका आचमन करिके अंतर्धान हो गया था, तैसे अग्नि वनकों जलायकरि अंतर्धान हो गई, तुमारे शरीरकी राख भी नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रतविषे दिखाइ नहीं देती, तैसे तुमारे शरीर अदृष्ट हो गये॥ हे मुनीश्वर! जेता कछु जगत् दिखता है, सो सब स्वप्नमात्र है, मैं तेरे स्वप्नविषे हौं, अरु जगतका अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, सो सबका अपणा आप है, जगत् तिसका आभास है,

जैसे संकल्पसृष्टि होती है, जैसे स्वप्ननगर होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तैसे यह जगत् है ॥ हे मुनीश्वर! यह जगत् तेरे स्वप्नविषे स्थित है, अरु तुझकों चिरकालकी प्रतीति करिके जाग्रतरूप कारण कार्य नानाप्रकारका सत् होकरि भासता है ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे भगवन्! जो इह स्वप्ननगर सत् हो गया है, तौ सबही स्वप्ननगर सत् होवेंगे? ॥ उग्रतपा उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! प्रथम तूं सत्कों जाण, जो सत् क्या वस्तु है, जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सबही स्वप्ननगर हैं, इनविषे कोउ पदार्थ सत् नहीं, इस जगतकों तूं समाधिवाले शरीरकी अपेक्षाकरि असत् कहता है, अरु जिसकों तूं जाग्रतवपु कहता है, सो किसकी अपेक्षाकरि कहैगा, यह तौ अदृष्टरूप है क्यों, तातें इसकों स्वप्न जाण, अरु जिस सत्ताविषे इह समाधिवाला शरीर भी स्वप्न है, तिसकी सत्ताकों तूं जाण, तब तुझकों सत्पदकी प्राप्ति होवै, जैसे यह जगत् आत्मसत्ताविषे आभास फुर्या है, तैसे उह भी है, तूं जागिकरि देख, इस अरु उसविषे भेद कछु नहीं, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आत्मरूपरत्नका चमत्कार है, जैसे सूर्यकी किरणांकरि अणहोता जल भासता है, तैसे सब जगत् आत्माविषे अणहोता भासता है, आत्माके प्रमादकरि सत् भासता है, तूं अपणे स्वभावविषे स्थित होकरि देख ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ ॥ हे वेधक! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर रात्रके समय कहता हुआ, शय्यापरि शयन करि रहा, जब केते कालतें जाग्या तव मैं कहा ॥ हे भगवन्! अवर वृत्तांत मैं पाछे पूछौंगा, परंतु इह संशय प्रथम दूर करौ, जो व्याधका गुरु मुझकों तुम किस निमित्त कहा, मैं तौ व्याधकों जानता भी नहीं, जो व्याध कवन है ॥ ॥ उग्रतपा उवाच ॥ ॥ हे दीर्घतपस्वी! तूं ध्यान करिके देख, तूं तौ सब कछु जानता है, जिस प्रकार वृत्तांत है, तिसकों जाणैगा, अरु जो मुझसों पूछता है, तौ मैं भी कहता हौं, अरु यह वृत्तांत तौ बडा है, मैं तुझकों संक्षेपतें कहता हौं ॥ हे मुनीश्वर! तुमारे देशमें राजाकी वंधी अरु लोक धर्मकों छोडी देवैंगे, तब दुर्भिक्ष आनि पडैगी, मे

घ होणेतें रहि जावैंगे, लोक दुःख पावैंगे, अरु मरि मरि जावैंगे; तेरा कुटुंब भी मरि जावैगा, कुटी भी नष्ट हो जावैगी, वृक्ष फल फूलतें रहित होवैंगे, एक तूं अरु मैं दोनों वनविषे रहि जावैंगे, काहेतें जो हमकों सुख अरु दुःखकी वासना नहीं, हम विदितवेद हैं, विदितवेदकों दुःख कैसे होवै ॥ हे मुनीश्वर ! कोउ काल तौ इस प्रकार चेष्टा होवैगी, बहुरि कुटीके चौफेरि फूल फल तमालवृक्ष कल्पतरु कमल ताल इनतें आदि ले करि नानाप्रकारकी सामग्री होवैगी, बडी सुगंधि हो रहैगी, मोर अरु कोकिला आनि विराजैंगे, भंवरे कमल आनि गुंजार करैंगे, ऐसा विलास प्रगट होवैगा, मानौ इंद्रका नंदनवन आनि लगा है, ऐसी दशा बहुरि होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रात्रिसंवादो नाम द्विशताधिकाष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २३८ ॥ ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ ॥ हे वेधक ! इस प्रकार उग्रतपा ऋषीश्वर मुझकों कहत भया ॥ जो हे मुनीश्वर ! इस प्रकार उह वन होवैगा, तब तूं अरु मैं एक समय तप करते बैठे होवैंगे, तहां एक व्याध मृगके पाछे दउडता तेरी कुटीके निकट आवैगा, तिसकों तूं सुंदर पवित्र कथा उपदेश करैगा, तिसविषे स्वप्नका प्रसंग चलैगा, तिस प्रसंगकों पायकरि स्वप्न अरु जाग्रतका वृत्तांत उह पूछैगा, तिसकों तूं स्वप्नका प्रसंग कहैगा, तिस स्वप्नप्रसंगविषे उसकों परमार्थ उपदेश करैगा, काहेतें जो संतका स्वभाव यह है, अरु मेरे समागमका वृत्तांत उपदेश करैगा, तेरे वचनोंकों पायकरि उह पुरुष विरक्तचित्त होकरि तप करैगा, तिसकरि अंतःकरण उसका निर्मल होवैगा अरु सत्पदकों प्राप्त होवैगा ॥ हे मुनीश्वर ! इस प्रकार वृत्तांत होणा है, सो मैं तुझकों संक्षेपतें कहा है, तूं भी ध्यानकरि देखु, तौ इस प्रकार होणा है, इस कारणतें मैं तुझकों व्याधका गुरु कहा है ॥ हे व्याध ! इस प्रकार जब उग्रतपानें मुझकों कहा तब मैं सुणिकरि विस्मय भया, जो इसनें क्या कहा, बडा आश्चर्य है, ईश्वरकी नेति जाणी नहीं जाती, जो क्या होणा है ॥ हे वेधक ! इस प्रकार मेरी अरु उसकी चर्चा हुई तब रात्र व्यतीत हो गई, तब मैं स्नान करि

के भली प्रकार उसकी टहल करी, प्रीति बढावणेके निमित्त, तब उहां उर रहणे लगा, बहुरि मैं विचारत भया, जो यह जगत् क्या है, अरु इसका कारण कवन है, मैं क्या हौं, तब विचार किया, जो यह जगत् अकारण है, किसका बणाया नहीं, स्वप्नमात्र है, आत्मरूपी चंद्रमाकी जगत्‌रूपी चांदणी है, तिसका चमत्कार है, उही आत्मसत्ताही घट पट आदिक आकार हो भासती है, तातें न कोउ कर्म है, न क्रिया है, न कर्त्ता है, न मैं हौं, न जगत् है, अरु जो तूं कहै है क्यों नहीं, सर्व अर्थ सिद्ध होते हैं, ग्रहण त्याग सिद्ध होते हैं, तौ सुण, ग्रहण त्याग जो होता है, सो पिंडकरि होता है, अरु पिंड तत्त्वका होता है, सो तौ इह पिंड न किसी तत्त्वकरि बन्या है, न अवर किसी मातापिताकरि, यह तौ स्वप्नविषे फुरि आया, इसका कारण कवन कहियें, अरु जो कहियें भ्रममात्र है, तौ भ्रमका कारण कवन है, भ्रांतिका द्रष्टा कवन है, जिस शरीरकरि दृष्ट आता था, इसका द्रष्टारूप मैं सो तौ भस्म हो गया, तातें जगत् अवर कछु वस्तु नहीं, केवल आदि अंततें रहित आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, सो यह मेरा स्वरूप है, उहां यह जगत्‌रूप होकरि भासता है, अवर जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश आदिक पदार्थ सब आत्मरूप हैं, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, परंतु कछु अवर नहीं, तैसे नानाप्रकार हो भासता है, आत्मा कछु अवर नहीं, अरु ब्रह्मसत्ताही निराभास है, आभास भी कछु हुआ नहीं, केवल चेतनसत्ता ऐसे रूप होकरि भासती है ॥ हे वेधक! इस प्रकार मैं विचार करिके विगतज्वर हुआ मुनीश्वरके वचनोंकरि पर्वतकी नांई अचल अपणे स्वभावविषे स्थित हुआ, जो कछु इष्ट अनिष्ट पदार्थ प्राप्त होवै, तिसविषे सम रहौं, अभिलाषतें रहित सब अपणी चेष्टाकों करौं, परंतु अपणे स्वभावविषे स्थित रहौं ॥ हे वेधक! सुख भोगणेके निमित्त न मुझकों जीवणेकी इच्छा है, न मरणेकी इच्छा है, न जीवणेविषे हर्ष है, न मरणेविषे शोक है, सदा आत्मपदविषे स्थित हौं, कछु संशय मुझकों

नहीं, संपूर्ण संशय फुरणेविषे है, सो फुरणा मेरेविषे नहीं, तातें संसार भी नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे नि० रात्रिप्रबोधो नाम द्विशताधिकैकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २३९ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे व्याध! इस प्रकार मैं निर्णय किया, तब तीनों ताप मेरे नष्ट भये, अरु वीतराग निःशंक हुआ, किसी पदार्थकी तृष्णा मुझकों न रही, अरु निरहंकार हुआ, आत्माविषे जो आत्माभिमान था सो निवृत्त हो गया, परम निर्वाण हुआ, निराधार अरु निराधेय हुआ, अपणे स्वभाव आत्मत्वविषे मैं स्थित सर्वात्मा हुआ॥हे वेधक! जो कछु शरीरका प्रारब्ध आनि प्राप्त होवै, तिसविषे यथाशास्त्र विचरौं, परंतु निश्चय कर्तृत्वका अभिमान न होवै, अरु जगत् मुझकों आत्मरूप भासै, अरुतृष्णा करणेवाली मिथ्याबुद्धि आभासमात्र है, सो आभास कछु वस्तु नहीं, चिदाकाश आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे वेधक! मुनीश्वरका कह्या वृत्तांत होता गया है, तूं मेरे पास आनि प्राप्त भया है, जो कछु उपदेश किया है, सो मैं तुझकों कहा है, जो परम पावन सबका सार है, सो मैं उपदेश किया है, जिस प्रकार जगत्के पदार्थ तूं अरु मैं जाग्रत वृत्तांत है, सो मैं तुझकों कहा है ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इस प्रकार हुआ तब तूं अरु मैं अरु ब्रह्मादिक भी सब स्वप्नके हुये क्यों, सो असतही सत्की नांई भासते हैं ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे व्याध! तूं अरु मैं अरु ब्रह्मातें आदि तृणपर्यंत सब जगत् स्वप्नके पदार्थ हैं, न यह जगत् सत् है, न असत् है, न मध्य है, अनिर्वचनीय है, काहेतें जो अनुभवरूप है ॥ हे व्याध! जो अनुभव करिके देखीयें तौ उहीरूप है, जो अनुभवतें भिन्न कहियें तौ हैही नहीं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अनुभवविषे फुरती है, जो अधिष्ठानकी उर देखियें तौ उहीरूप है, उसतें इतर कहणेविषे नहीं आता ॥ हे वेधक! जैसे कहूं नगर देख्या है, अरु अब दूर है, जो स्मृति करिके देखियें तौ भासता है परंतु कछु बन्या नहीं, स्मृतिमात्र है, तैसे जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब संकल्पमात्र हैं, कछु बने नहीं, तूं अपणे स्वभावविषे स्थित होकरि देख, तूं तौ बोधवान् है, मिथ्याभ्रमविषे क्यों पड्या है ॥ हे व्याध! मैं तुझकों

उपदेश किया है, तिसकरि तुझकों विश्राम हुआ है कै नहीं हुआ, जो पदपदार्थविषे विश्राम हुआ है, जो ऐसी सत्ता है, परमपदविषे क्षण भी विश्राम नहीं पाया, काहेतें जो दृढ भावना नहीं हुई ॥ हे वेधक! परम पद पावणेका मार्ग यह है, जो संतकी संगत अरु सच्छास्त्रकों विचारणा, तिनके अभ्यासविषे दृढ अभ्यास करणा, इस मार्गविना शांति प्राप्त नहीं होती, जब दृढ अभ्यास होवै तब शांति प्राप्त होवै, अरु चित्त निर्वाण हो जावै, द्वैत अद्वैत कल्पना मिटि जावै, इसीका नाम निर्वाण कहते हैं, अरु जबलग चित्त निर्वाण नहीं भया, तबलग राग दोष नहीं मिटता, अरु जब अभ्यासके बलकरि चित्त निर्वाण हो जाता है, तब अविद्या नष्ट हो जाती है, अरु आत्मपद प्राप्त होता है, शांत शिवपदकों पावता है, जो मान अरु मोहतें रहित हैं, अरु संगका दोष जिसनें जीत्या है, किसीके संगकरि बंधमान नहीं होता, अरु अध्यात्मविचार नित करता है, सर्व कामना जिसकी निवृत्त हुई हैं, अरु इष्टके रागदोषद्वंद्वतें मुक्त है, सुख दुःखविषे सम रहता है, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो अविनाशी आत्मपदकों पावता है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे यथार्थोपदेशो नाम द्विशताधिक चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४० ॥ ॥ ॥

॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजा विपश्चित! जब इस प्रकार मुनीश्वरनें कहा, तब वेधक बडे आश्चर्यकों प्राप्त हुआ, मुनीश्वरके वचन सुणिकरि मूर्तिवत् हो गया, जैसे कागदउपर मूर्त्ति लिखी होती है, तैसे आश्चर्यकरि स्थित भया, अरु संशयके समुद्रविषे डूबि गया, जैसे चक्रउपर चढा बासन भ्रमता है, तैसे उह संशयविषे भ्रमणे लगा, मुनीश्वरका उपदेश सुण्या, परंतु अभ्यासविना आत्मपदविषे विश्रांती न पाई ॥ हे राजन्! परम वचनोंका तिसनें अंगीकार न किया, जैसे राखविषे आहुति पाई निरर्थक होती है, तैसे मूर्खकों उपदेश करणा निरर्थक होता है, मूर्खता करिके उह संशयविषे रहा, अरु विचारत भया, जो इस संसार अविद्यक है, तौ मैं इसका अंत लेउं, जो मुझकों आत्मपद भासै, तातें तप करौं ॥ हे राजा विपश्चित! इस प्रका

र विचारकरि उठ्या, उठिकरि उनके पास फिरणे लगा, अरु पवित्र चेष्टा करणे लगा, व्याधका धर्म तिसनें त्याग किया, जिस प्रकार उह चेष्टा करै तैसे उह भी अधिक चेष्टा करै, बडा उग्र तप करणे लगा, जब सहस्र वर्ष तप करते व्यतीत भया, परंतु मनविषे कामना यही रखी, जो मेरा शरीर बडा होवै, दिन दिनविषे बहुत भोजन बढै, मैं अविद्यक संसारका अंत लेऊं जो कहांलग चला जाता है, जब अविद्याका अंत आवैगा, तब आगे आत्माका दर्शन होवैगा, तब सहस्र वर्ष उपरांत समाधितें उतर्या, अरु गुरुके निकट आयकरि प्रणाम किया अरु कहा ॥ हे भगवन्! मैं एता काल तप किया है, परंतु शांति मुझकों प्राप्त नहीं भई ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! तुझकों उपदेश किया है, तिसका तुझनें भली प्रकार अभ्यास न किया, इस कारणतें तुझकों शांति नहीं प्राप्त भई ॥ हे वेधक! मैं तेरे हृदयविषे ज्ञानरूपी अग्निकी चिणगारी डारी थी, परंतु तुझनें अभ्यासरूपी पवन करिके प्रज्वलित न करी तातें यह भी आच्छादी गई, जैसे बडे काष्ठके नीचे रंचक चिणगारी आच्छादी जाती है ॥ हे वेधक! तूं न मूर्ख है, न पंडित है, जो तूं पंडित होता तौ आत्मपदविषे स्थिति पावता, अरु यह भी जब नष्ट नहीं होवैगा, तब अभ्यासकी दृढता होवैगी, तब उह ज्ञान अरु शाति आनि उदय होवैगी, अब जो तेरे हृदयविषे है, भविष्यत् भी होणी है सो मैं तुझकों कहता हौं ॥ हे व्याध! यही तुझनें भली प्रकार विचार्या है, जो संसार अविद्यक है, इसका मैं अंत लेऊं, जो कहांलग चल्या जाता है, इस कारणतें मैं शरीर बढावौं, अरु इसका अंत किसी प्रकार देखौं, अब तेरे चित्तविषे यही निश्चय है, अरु आगे तेरे यह करणा है, जो सौ युगपर्यंत उग्र तप करैगा, तब तुझ उपर परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न होवैगा, तब देवता सहित तेरे गृहविषे आवैगा, तुझकों कहैगा, कछु वर माग, तब तूं कहैगा ॥ हे देव! कैसा अविद्यक जगत् है, अविद्या किसी अणुविषे है, जैसे दर्पणविषे किसी ठौर मलिनता होती है, तिसके नाश हुए दर्पण शुद्ध होता है, तैसे आत्माके किसी कोणविषे अविद्यारूपी मलिनता है, तिसके नाश हुए उल्लंघि गये, चिदात्मा

का साक्षात्कार मुझकों होवैगा, जब अविद्यारूपी जगत्का अंत देखौंगा तब आत्मा मुझकों भासैगा, मेरा शरीर घडीघडीविषे योजनपर्यंत बढता जावै, जैसे गरुडका वेग होता है तैसे बढता जावै, अरु मृत्यु भी मेरे वश होवै, शरीर भी अरोग होवै, अरु ब्रह्मांड खपरकों भी लंघि जावौं, अरु जहां मेरी इच्छा होवै, तहां चला जाऊं, मुझकों रोकै कहूं नहीं, जब संसारका अंत देखौंगा, तब आत्माकों प्राप्त होऊंगा ॥ हे देव ! एते वर देहु, जो मेरा मनोरथ पूर्ण होवै, अवर कछु नहीं कहणा ॥ हे वेधक ! जब इस प्रकार तूं वर मागेगा, तब ब्रह्माजी कहैगा, सो ऐसेही होवै, तब तेरा तप करिके दुर्बल हुआ शरीर बहुरि चंद्रमा अरु सूर्यकी नांई प्रकाशवान् होवैगा, अरु घडीघडीविषे योजनपर्यंत बढता जावैगा, जैसे गरुडका तीक्ष्ण वेगकरि चलणा है, तैसे तेरा शरीर वेगकरि बढता जावैगा, जैसे प्रातःकालका सूर्य उदय होता है, अरु प्रकाश बढता जाता है, तैसे तेरा शरीर बढता जावैगा, अरु चंद्रमा सूर्य अग्निकी नांई प्रकाशवान् होवैगा, ब्रह्माजी वर देकरि अंतर्धान हो जावैगा, अपणी ब्रह्मपुरीविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु तेरा शरीर प्रलयकालके समुद्रकी नांई बढता जावैगा, अरु जैसे वायुकरि सूके तृण उडते हैं, तैसे तुझकों ब्रह्मांड उडते भासैंगे, तब तेरा शरीर बढता ब्रह्मांड खपरकों भी लंघि जावैगा, तिसके परे आकाश भासैगा, बहुरि ब्रह्मांड भासैगा, आगे बहुरि ब्रह्मांड, इसी प्रकार तूं केई ब्रह्मांड लंघता जावैगा, परंतु तुझकों खेद कछु न होवैगा, महाआकाशकों भी तूं आच्छादि लेवैगा, जहां किसी तत्त्वका आवरण आवैगा, तिसकों तुं वरप्राप्त देहकरि लंघता जावैगा, सूक्ष्मता करिके ॥ हे वेधक ! इसी प्रकार केई सृष्टि लंघि जावैगा, कैसी सृष्टि हैं, जो इंद्रजालवत् हैं, जो दीर्घदर्शी हैं, सो इनकों असत् जानते हैं, अरु जो प्राकृत जन हैं, तिनकों जगत् सत् भासता है, अरु ज्ञानवान्कों मिथ्या भासता है, तिस मिथ्या जगत्कों तूं लंघता जावैगा, तहां जाय स्थित होवैगा, जहां अनंत सृष्टि फुरती भासैंगी, जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं, तैसे तुमकों सृष्टि फुरती भा

सैगी, परंतु जिसविषे सृष्टि फुरती है, तिस अधिष्ठानका तुझकों ज्ञान न होवैगा, तहां तूं देखैगा जो मैं बडा उत्कृष्ट हुआ हों, अरु ऐसा अभिमान तुझकों उदय होवैगा, तब तपका फल वैराग्य भी आनि उदय होवैगा, अरु साथही यह संस्कार तेरे हृदयविषे आनि फुरैगा, तिसकरि शरीरका तूं निरादर करैगा, अरु कहैगा, हा कष्ट हा कष्ट ॥ ॥ हे देव! यह क्या शरीर तुझनें मुझकों दिया है, जगत्के अंत लेणेकों मैं शरीर बढाया था, सो तौ अंत कहूं न आया, काहेतें जो अविद्या नष्ट न भई, अविद्या तब नष्ट होती है, जब ज्ञान होता है, आत्मज्ञान तब होता है, जब सच्छास्त्रका विचार अरु संतका संग होता है, जो संग अरु सच्छास्त्र मुझकों प्राप्त होवै, तब ज्ञान उपजैगा, यह तौ मुझकों ऐसा शरीर प्राप्त भया है, जो बडा भार उठाइ फिरता हों, अनेक सुमेरु पर्वत होवें, तौ भी इसके पास तृणवत् है, ऐसा उत्कृष्ट मेरा शरीर है, इस शरीरसाथ मैं किसकी संगत करौं, अरु किस प्रकार शास्त्रका श्रवण करौं, इह शरीर मुझकों दुःखदायी है, तातें इस शरीरका त्याग करौं ॥ हे वेधक! ऐसे विचारकरि तूं प्राणायाम करैगा, तिसकी धारणा करिके शरीरकों त्यागि देवैगा, जैसे पक्षी फलकों खायकरि गिटेकों त्यागि देता है, जैसे इंद्रके वज्रकरि खंडित हुयेतें पर्वत गिरते हैं, तैसे एक सृष्टिभ्रमविषे तेरा शरीर गिरैगा, तिसके नीचे केई पर्वत नदीयां जीव चूर्ण होवैंगे, तहां बडा खेद होवैगा, तब देवता चंडिकाका आराधन करैंगे, सो चंडिका भगवती तेरे शरीरका भोजन करि जावैगी, तब सृष्टिविषे बहुरि कल्याण होवैगा, इस वनविषे जो तमाल वृक्ष हैं, तिसके नीचे तूं तप करैगा, इह तेरी मैं भविष्य कही है, अब जैसी तेरी इच्छा होई तैसे करु ॥ ॥ व्याध उवाच ॥ हे भगवन्! बडा कष्ट है, जो मैं एते खेदकों प्राप्त होऊंगा, तातें सोई उपाय करहु, जिसकरि इह भावना निवृत्त हो जावै ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! जो कछु वस्तु होणी है, सो अन्यथा कदाचित् कछु भी नहीं होती, जो कछु शरीरकी प्रारब्ध सो अवश्य होती है, जैसे चिलतें छुटा बाण तबलग चला जाता है,

जबलग उसविषे वेग होता है, वेग जब पूर्ण होता है, तब पृथ्वीपर गिर पडता है, अन्यथा नहीं होता, तैसे ही जैसा प्रारब्धका वेग उछलता है, तैसेही होवैगा, जो भावी फिरनेकी शक्ति होवै जीव उपासि, तौ बांया चरण दाहने करही, दाहना बांहि करही, तौ ऐसे नहीं होता, तौ हुआ है सो होणा है, सो इह है, जो तिस शास्त्रवाले जो भविष्यत् दशा आगे कहते हैं, अरु तैसेही होता है, तब उसी प्रकार होता है, क्यों जो होणी होती है, जो न होवै, तौ क्यों कहै, तातें भावी मिटती नहीं ॥ हे वेधक! मैं तुझकों दो मार्ग कहे हैं, जबलग इसकों कर्मकी कल्पना स्पर्श करती है, तबलग कर्मके बंधनतें छुटता नहीं, अरु जो कर्मकी कल्पना आत्माकों स्पर्श न करै, तौ कर्म कोउ नहीं बंधन करता, काहेतें जो उसकों आत्मा अद्वैतका अनुभव होता है, द्वैतरूप कर्म दिखाई नहीं देते, सुखदुःख सर्व आत्मरूप हो जाते हैं, अरु कर्म तबलग बंधन करते हैं, जबलग आत्मबोध नहीं हुआ, जब आत्मबोध होता है, तब सर्व कर्म दग्ध हो जाते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भविष्यत्कथावर्णनं नाम द्विशताधिकैकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४१ ॥

॥ व्याध उवाच ॥ हे भगवन्! इह जो तुम मुझकों कहा, सो सुणिकरिके आश्चर्यकों प्राप्त हुआ हौं, भला शरीर गिरनेतें उपरांत मेरी अवस्था क्या होवैगी, जब विस्ताररूप वासनाशरीर आकाशरूप होवैगा ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! तेरा शरीर गिरैगा, तब तेरी संवित् प्राणवासनासहित आकाशरूप हो जावैगी, महासूक्ष्म अणुवत् हो जावैगी, तिस संवित्विषे तुझकों बहुरि नानाप्रकारका जगत् भासैगा, पृथ्वी देश काल पदार्थ सब भासि आवैंगे, जैसे सूक्ष्म संवित्विषे स्वप्नका जगत् भासि आता है, तैसे तुझकों जगत् भासि आवैगा, तहां तेरी संवित्विषे इह आनि फुरैगा, जो मैं राजा हौं, अष्ट वर्षका हौं, अरु मेरे पितामहका नाम इंद्र है, अरु माताका नाम प्रद्युम्नकी पुत्री बधलेखा है, अरु मेरा पिता मुझकों राज्य देकरि वनकों गया है, अरु तप करणे लगा है, अरु चारों उर समुद्र

पर्यंत हमारा राज्य है ॥ हे वेधक! तहां तेरा नाम सिद्ध होवैगा, तहां तूं केई शतवर्षपर्यंत राज्य करैगा, अरु नानाप्रकारके विषयकों भोगैगा ॥ हे वेधक! एक विदूरथ नामा राजा पृथ्वीविषे होवैगा, तेरेसाथ शत्रुभाव करैगा, तेरी पृथ्वीसीमा लेणेका यत्न करैगा, तब तूं मनविषे विचार करैगा जो बडा सिद्ध हों, बहुत शत वर्ष मैं निर्विघ्न भोग भोगे हैं, परंतु एक विदूरथ नामक शत्रु है, तिसका नाश करों ॥ हे वेधक! तिसके मारणेनिमित्त तूं सैनाकों ले चढैगा, सो चार प्रकारकी सैना नाशकों प्राप्त होवैगी, हस्ती घोडे रथ प्यादा चार प्रकारकी सैना है, दोनों उरकी सैना नष्ट होवैगी, अरु तुम रथतें उतरिकरि परस्पर युद्ध करौगे, तुझकों भी बहुत शस्त्र लगैंगे, शरीर काट्या जावैगा, तौ भी तूं उसके सन्मुख जाय युद्ध करैगा, उसकों मारैगा, टंगा काटि देवैगा, कुहाडेसाथ तिसकों मारिके बहुरि अपणे गृहविषे तूं आवैगा, सब दिक्पाल तुझसों भय पावैंगे, तूं बडा तेजवान् होवैगा, जो बडा आश्चर्य है, विदूरथकों जीतिकरि तुझनें यमपुरि पठाया है, बडा आश्चर्य है, बडा आश्चर्य है, तब सिद्ध राजा तूं कहैगा ॥ हे मंत्री! इसविषे क्या आश्चर्य है, मेरे भय करि तौ दिक्पाल भी कंपते हैं, अरु प्रलयकालके समुद्र मेघवत् मेरी सैना है, किसी उरतें आदि अंत नहीं आती, विदूरथके जीतणेविषे मुझकों क्या आश्चर्य है, तब मंत्री कहैगा ॥ हे राजा! एती सैना तेरेसाथ है तौ क्या हुआ, उस विदूरथकी स्त्रीकों तुम नहीं जानते, सो कैसी देवी है, जिसके क्रोध फुरणेकरि संपूर्ण विश्व नाश हो जाती है, तिसकों तिसकी स्त्री लीलानें तप करणेतें वश किया है, जो उह माता सरस्वती ज्ञानशक्ति है, अरु सर्व भूतके हृदयविषे स्थित है, जैसा तिसविषे कोई अभ्यास करता है, सोई सरस्वती सिद्ध करती है ॥ हे राजन्! उह राजा अरु तिसकी स्त्री लीला सरस्वतीसों मोक्ष मागते थे, जो किसी प्रकार हम संसारबंधतें मुक्त होवैं, इस कारणतें उह मोक्षभाव हुये, अरु तेरी जय हुई ॥ ॥राजोवाच ॥ हे अंग! जो सरस्वती मेरे हृदयविषे स्थित है, तौ मुझकों मुक्त क्यौं नहीं करती, मैं भी सदा सरस्वतीकी उपासना

करता हौं ॥ ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन्! सरस्वती जो चित्तसंवित् है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तिसकी सिद्धता होती है ॥ जो हे राजन्! तूं अपणी जयही सदा मागता था, इस कारणतें तेरी जय हुई, अरु उह मुक्ति मागता था, उसकों मुक्ति हुई, उसका संस्कार पिछला उज्ज्वल था, तिसकरि मुक्त भया, अरु तेरा संस्कार पिछले जन्मका तामसी था, तिस कारणतें तुझकों इच्छा न भई, अरु शांति भी प्राप्त न भई, अरु आदि परमात्मसत्तासों जो सब पदार्थ प्रगट हुये हैं सो सुण, केवल जो आत्मसत्ता निष्किंचन पद है, सो सदा अपणे स्वभावविषे स्थित है, तिसविषे चेतनता संवेदन फुरती है, अहं अस्मि जो मैं हौं, इस भावनाका नाम चित्त है, तिस चेतनता देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक दृश्य जगत् कल्प्या है, तिस कल्पनाकरि विश्व चित्तविषे स्थित है, अरु चित्त आत्मासों फुर्या है, प्रमाद करिके देहादिक कोउ कल्प्या है ॥ राजोवाच ॥ हे साधो! आत्मा तौ निष्किंचन केवल पद निर्विकार है, तिसविषे तामसी देह कहांतें उपजी ॥ ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन्! जैसे स्वप्नविषे प्रमाद करिके तामसी वपु दृष्ट आता है, परंतु है नहीं, तैसे यह आकार भी दृष्ट आते हैं, परंतु हैं नहीं, अज्ञान करिके भासते हैं, तातें तुझकों प्रमाद हुआ है, तब वासनाके अनुसार जन्म पावता फिर्या है, इस प्रकार तेरे बहुत जन्म बीते हैं, परंतु पिछला शरीर जो तुझनें भोग्या है, सो महातामसी था, अर्थ यह जो तामस तामसी था, इस कारणतें तुझकों मोक्षकी इच्छा न भई ॥ हे राजन्! तेरे बहुत जन्म बीते हैं, तिनकों मैं जानता हौं, तूं नहीं जानता ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे निर्मल आत्मा! तामस तामसी किसीकों कहियें ॥ मंत्र्युवाच ॥ हे राजन्! एक सात्विक सात्विकी है, एक केवल सात्विकी है, एक राजस राजसी है, एक केवल राजसी है, एक तामस तामसी है, एक केवल तामसी है, सो भिन्न भिन्न सुण ॥ हे राजन्! जो निर्विकल्प अचेतन चिन्मात्रसत्तासों संवित् फुरी है, तिसकी अहंप्रतीति अधिष्ठानविषे रही है, अवर निश्चयकों नहीं प्राप्त भई, अनात्मभावकों स्पर्श नहीं किया, ऐसे जो ब्रह्मादिक हैं, सो सात्विकी सात्विकी हैं, अरु

जिनकों विभूति सात्विकी पदार्थ भासणे लगे हैं, अरु स्वरूपका प्रमाद है, बुद्धिसाथ स्पर्श किया भी अरु न किया भी सो केवल सात्विक है, अरु जिसकी संवित्‌कों बुद्धिसाथ संबंध हुआ, अरु नानाप्रकारके राजसी पदार्थविषे सत्य प्रतीति हुई है, अरु राजस कर्मविषे दृढ अभ्यास है, तिसके अनुसार शरीरकों धारते चले गये, स्वरूपकी उर नहीं आये, चिरपर्यंत ऐसे रहे, सो राजस राजसी फुरणा है, अरु जिनकों बोधविषे अहंप्रतीति भई, स्वरूपका प्रमाद है, अरु जगत् सत्य भासता है, राजसी पदार्थविषे अधिक प्रतीति है, राजसी कर्मका अभ्यास है, तिसके अनुसार जन्म पावते हैं, बहुरि शीघ्रही स्वरूपकी उर आवैं, तिनका नाम केवल राजसी है, सो राजस राजसीतें श्रेष्ठ है, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद है, अरु जगत्‌विषे सत्‌प्रतीति हुई है, तिस जगत्‌विषे जो तामस कर्म हैं, तिन कर्मविषे दृढ अभ्यास हुआ है, तिसकरि महामूढ जन्मकों पावते चिरपर्यंत चले जाते हैं, दैवसंयोगतें कबी मोक्षकी संगति आनि प्राप्त होती है, तौ भी त्यागि जाते हैं, सो तामस तामसी हैं, अरु जिनकों स्वरूपका प्रमाद् हुआ है, अरु तामसी कर्मकी रुचि है, अरु तिन कर्मके अनुसार जन्म पावते जाते हैं, पावते पावते जो हटि पडा, तामसी कर्मकों त्यागिकरि मोक्षपरायण हो गया, सो केवल तामसी है, तामस तामसीतें श्रेष्ठ है ॥ हे राजन्! तूं तामस तामसी था, इस कारणतें सरस्वतीसों तूं अपणी जयही मागता रहा, मोक्षका अभ्यास तुझनें न किया ॥ ॥ राजोवाच ॥ हे निर्मलचित्त मंत्री! मैं तामस तामसी था इस कारणतें मोक्ष इच्छा न करी, परंतु अव मुझकों सोई उपाय कछु कहु, जिसकरि अहंभाव मेरा निवृत्त होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ मंत्र्युवाच ॥ ॥ हे राजन्! निश्चयकरि जाण जो कोउ कैसे पदार्थकी इच्छा करता है, तिसकों उह पदार्थ प्राप्त होता है, अरु जिसकी भावनाकरि अभ्यास करता है, उह पदार्थ निःसंदेह प्राप्त होता है, अरु जिसका दृढ अभ्यास करता है, उहीरूप हो जाता है; ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोउ नहीं, जो अभ्यासके

वशतें न पाइयें, जो प्रथम दिनविषे कोउ विकर्म काउतें हुआ है, अरु अगले दिन शुभकर्म करै, तब उह विकर्म लोप हो जाता है, शुभ कर्मही मुख्य हो जाता है, तौ तूं आत्मपदका अभ्यास करैगा, तब तुझकों आत्मपद प्राप्त होवैगा, तेरा जो तामस तामसी भाव है, सो निवृत्त हो जावैगा ॥ हे राजन्! जो पुरुष किसी पदार्थ पावणेकी इच्छा करता है, अरु हटिकरि फिरै नहीं, तौ अवश्य तिसकों पावता है, देह इंद्रियांका अभ्यास इसकों दृढ हो रहा है, तिसकरि बहुरि बहुरि देह इंद्रियांकों पावता है, जब तिनतें उलटिकरि आत्मका अभ्यास करै, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, देह इंद्रियांका वियोग हो जावैगा, तातें सदा आत्मपदका अभ्यास करहु, तिसकरि आत्मपद प्राप्त होवैगा ॥ ॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! इस प्रकार तूं सिद्ध राजा होवैगा अरु मंत्री तुझकों उपदेश करैगा, तब तूं राज्यका त्याग करैगा, अरु वनविषे जावैगा, उपदेश करणेवाला मंत्री अरु अवर मंत्री सैनासंयुक्त तुझकों कहैंगे, जो तूं राज्य कर सब कहि रहैंगे, परंतु चित्त विरक्त तेरा होवैगा, राज्यकों अंगीकार न करैगा, तिस वनविषे संतका स्थान होवैगा, तहां जायकरि तूं स्थित होवैगा, परम विरागसंपन्न होवैगा तब उनकी कथाप्रसंग तुझकों स्पर्श करैगा, अरु संततें कछु मागियें नहीं तौ भी अमृतरूपी वचनोंकी वर्षा करते हैं, जैसे पुष्पतें सुगंधि मागियें नहीं तौ भी प्राप्ति होती है, तैसे संतजनतें मागेविना भी अमृत प्राप्त होता है, जब संतके अमृतवचन सुणता है, तब इसकों विचार उत्पन्न होता है, जो मैं कवन हौं, अरु यह जगत् क्या है, अरु जगत् किसतें उपजा है, तब तूं उनके हृदयकों पाइकरि इस प्रकार जानैगा जो मैं अचेतन चिन्मात्रस्वरूप हौं, अरु जगत् मेरा आभास है, अरु चित्तका फुरणाही जगत्का कारण है, सो चित्तही मेरेविषे नहीं, तौ जगत् कैसे होवै, जगत् भी मेरेविषे है नहीं, मैं अपणेही आपविषे स्थित हौं ॥ हे वेधक! इस प्रकार सर्व अर्थतें मनकों शून्य करिके अपणे स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब परमानंद निर्वाणपदकों प्राप्त होवैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवा

सिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सिद्धनिर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकद्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४२ ॥ ॥ ॥

॥ मुनीश्वर उवाच ॥ हे वेधक! इस प्रकार तेरी भावी है, सो सब मैं तुझकों कही है, आगे जो भला जाणता है, सो तूं करु ॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ हे राजा विपश्चित! इस प्रकार मुनीश्वरनें वेधककों कहा, तब वेधक आश्चर्यकों प्राप्त हुआ, अरु उहांतें उठि खडा हुआ, मुनीश्वरसहित स्नानकों गये अरु दोनों तप करैं, अरु शास्त्रकों विचारैं, जब केता काल व्यतीत भया, तब मुनीश्वर निर्वाण हो गया, तहां वेधक ही तप करणेकों समर्थ भया, जो किसी प्रकार मेरी अविद्या नष्ट होवै ॥ हे राजा विपश्चित! सौ युगपर्यंत वेधकनें तप किया तब ब्रह्माजी देवताकों साथ लेकरि आया, अरु कहा कछु वर माग, तब उस वेधक नें कहा, जो मेरा शरीर बडा होवै मैं अविद्याकों देखौं ॥ हे राजन्! वेधक जानत भया जो इस वर मागे तें मेरा भला नहीं, परंतु दृढ भावनाके बलतें जाणिकरि यही वर माग्या, जो मेरा शरीर बडा होवै, घडीघडीविषे योजनपर्यंत बढै, तब ब्रह्माजीनें कहा ऐसेही होवैगा, इस प्रकार कहीकरि ब्रह्माजी अंतर्धान होगये, तब उसका शरीर बढणे लगा, एक घडीमें एक योजन बढै, कल्पपर्यंत उसका शरीर बढता गया, केई ब्रह्मांडपर्यंत चल्या गया, जिस उरकों देखौं, तिस उर अनंत सृष्टि दृष्ट आवैं, अविद्यारूप जब थका तब फिर्या, जो अविद्याका अंत तौ नहीं आता, इस शरीरकों मैं कहां लग उठाइ फिरौं, इसका अब त्याग करौं, तब आत्मपदकों प्राप्त होऊंगा ॥ हे राजा विपश्चित! तब प्राणकों ऊर्ध्व खैंचिकरि शरीरकों त्यागि दिया, उही शरीर इहां आनि पडा है, जिस ब्रह्मांडतें यह गिर्या है, सो हमारे स्वप्नकी सृष्टि है, अर्थ यह जो अन्य सृष्टिका था, स्वप्नवत् इस सृष्टिविषे इसकी प्रतिमा आनि पडी है, अरु इहां जागृत सृष्टिविषे आनि पडा है, तिसतें पृथ्वी पहाड सब नाशकरि डारे हैं, अरु जहांतें गिर्या है, तहां आकाशविषे तरवरेकी नांई उनकों भासता था, अरु इहां इस प्रकार गिर्या है, जैसे इंद्रका वज्र होता है ॥ हे विपश्चित

विषे श्रेष्ठ! उही वेधक महा सब था, जब उसका शरीर गिर्या, तब भगवतीनें उसका रक्तपान कर्या, तिसकरि उसका नाम रक्ता भगवती हुआ, अरु अवर जो शरीरकी सामग्री रही सो मेधा पृथ्वी भई, जब चिरकाल व्यतीत भया, तब मृत्तिका पृथ्वी हो गई, तिस पृथ्वीका नाम मेदिनी पडा, अरु ब्रह्माजीनें जो नूतन सृष्टि रची है, तिस पृथ्वीपर अब कल्याण हुआ है, अब जहां तेरी इच्छा होवै, तहां तूं जावै, मैं भी अब जाता हौं, इंद्रकों सुवा यज्ञ करणा है, तिसनें मेरा आवाहन किया है, तहां मैं जाता हौं॥ भास उवाच॥ हे राजा दशरथ! इसप्रकार मुझकों कहीकरि अग्निदेवता अंतर्धान हो गया, जैसे महाश्याम मेघतें सौदामिनी चमत्कार करिके अंतर्धान हो जाती है, तैसे अग्नि अंतर्धान हो गया, तब मैं उहांतें चल्या, एक सृष्टिविषे गया, तहां अवर प्रकारके शास्त्र अरु अवर प्रकारके प्राणी थे, बहुरि आगे अवर सृष्टिविषे गया, तहां ऐसे प्राणी देखे जिनकी टंगा काष्ठकी अरु आचार मनुष्यका था, आगे अवर सृष्टिविषे गया, उनके शरीर पाषाणके अरु दउडते हैं, व्यवहार करते हैं, तिसतेंपर अवर सृष्टिविषे गया, तहां शास्त्ररूपी उनकी मूर्त्ति थी, तिसतें आगे गया, तहां क्या देखौं, प्राणी बैठेही रहैं, बालतें वारता करते हैं, परंतु खानपान कछु न करहीं॥ हे राजा दशरथ! इस प्रकार मैं चिरकालपर्यंत फिरता रहा परंतु अविद्याका अंत कहूं न आया, तब मैं विचार किया, जो आत्मज्ञानी होऊं तब अंत आवैगा, अवर किसी प्रकार अंत न आवैगा, इस प्रकार विचार करिके मैं एक वनविषे गया, अरु ज्ञानकी सिद्धताकों तप करणे लगा, जब केताक काल तप किया, तब चित्तविषे यह उपजी जो किस प्रकार संतके निकट जाऊं, तिसकी संगतिकरि मुझकों शांतपद प्राप्त होवैगा॥ हे राजन्! ऐसे विचार करि मैं उहांतें चल्या, कल्पवृक्षके वनविषे आया, तहां एक पुरुष मुझकों मिल्या तिसनें कहा॥ हे साधो! कहां चल्या है, मेरे निकट तौ आउ, तब मैं उसकों कहा, तूं कवन है, तब उसनें कहा, मैं तेरा तप हौं, जो तैंनें किया है, अब जो कछु वर तूं माग सो मैं तुझ

कों देऊं, तब मैं कहा जो हे साधो ! मेरी इच्छा यही है, जो मैं आत्मपदकों प्राप्त होऊं, तब उसनें कहा ॥ हे साधो ! अब तुझे एक जन्म अवर मृगका पावणा है, उह शरीर तेरा अग्निविषे जलैगा, तब तूं मनुष्यका शरीर पावैगा, अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस सभाविषे जब तूं मनुष्यशरीर धारैगा, अरु ज्ञानवान्की सभाविषे जावैगा, तिस सभाविषे तेरे तांई सब जन्मकी अरु क्रियाकी स्मृति हो आवैगी, अरु तुझकों स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, तूं अब मृगशरीर धारु ॥ हे राजा दशरथ ! इस प्रकार जब इसनें कहा तब मैं चिंतवना करि जो मृग होऊं, तब स्वप्नरूप प्रतिभा मेरे तांई फुरी, मैं मृग हो गया, तुमारी सृष्टिविषे एक पहाडकी कंदराविषे विचरत भया, अरु तिसका राजा शिकार खेलणे चल्या, उसनें मुझकों देख्या तब मेरे पाछे घोडा उडाया, तिसके आगे मैं दउडता जाऊं, अरु घोडेका वेग तीक्ष्ण था, मुझकों उसनें पकडी लिया, अपणे गृहमें ले आया, तीन दिन राख्या परंतु बहुत सुंदर चेष्टा देखी, तिस कारणतें प्रसन्नतातें इहां ले आया ॥ हे राजा दशरथ ! अब मैं मृगके शरीरकों त्यागिकरि मनुष्यका शरीर पाया हों, जो कछु तैंनें पूछा था, सो सब तुझकों कहा है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे अंग ! जब इस प्रकार विपश्चित कही रहा, तब रामजीनें विपश्चितसों प्रश्न किया ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे विपश्चित ! उह मृग तौ अवर सृष्टिका था, इहां क्योंकरि आया ॥ ॥ भास उवाच ॥ हे रामजी ! जहां उह सब मिल्या था, उह भी अवर सृष्टिका था, एक कालमें आकाशमार्गविषे दुर्वासा ऋषीश्वर ध्यान लगाई बैठा था, तिस मार्गकरि इंद्र पृथ्वीकों आया, यज्ञके निमित्त मार्गविषे जो दुर्वासा बैठा था, तिसकों शब जाणीकरि इंद्रनें चरण लगाया, तब उह समाधितें उतरीकरि इंद्रकी उर देखत भया, अरु शाप दिया ॥ जो हे शक्र ! तुझनें शब जाणिकरि मुझकों चरण लगाया है गर्व करिके, तातें तेरे यज्ञकों एक मृतक शब नाश करेगा, जिस स्थान उह पडेगा, सो पृथ्वी भी नाश होवैगी, जब ऐसे उस ऋषिनें शाप दिया, अरु इंद्र यज्ञ करणे लगा, तब अवर सृ

ष्टितें उह शब आनि पडा, पृथ्वी चूर्ण हो गई, उह तौ उस प्रकार गिर्या, अरु मैं तपरूपी मुनीश्वरके वर करिके मृग होकरि तुमारी सभाविषे आया हौं ॥ हे रामजी! जो असत् होता तौ प्रगट न होता, अरु जो सत् होता तौ स्वप्नरूप न होता, जो स्वप्नकी सृष्टिका था ॥ हे रामजी! तुम हमारी स्वप्नसृष्टिविषे हौ, अरु हम तुमारी सृष्टिके स्वप्नविषे हैं, जैसे इह स्वप्नपदार्थका होणा हुआ है, तैसे शबका होणा भी हुआ है, अरु मृगका भी हुआ है, जैसे इह सृष्टि है, तैसे उह सृष्टि भी है, जो यह सृष्टि सत् है, तौ उह भी सत् है, परंतु वास्तवतें न यह सत् है, न उह सत् है, यह भी भ्रममात्र है, उह भी भ्रममात्र है, सत् वस्तु उही है, जो मनसहित षट् इंद्रियांतें अगम है, सो आत्मसत्ता है, जिसतें यह सर्व है, अरु जिसविषे सर्व हैं, ऐसी जो परमात्मसत्ता है, सो परमसत्ता है, तिसविषे सब कछु बनता है ॥ हे रामजी! जगत् संकल्पमात्र है, संकल्पका मिलणा क्या आश्चर्य है, छाया अरु धूप एक नहीं होती, सत् अरु झूठ भी एकठा नहीं होता, ज्ञान अज्ञान एकठा नहीं होता, परंतु आत्माविषे एकठे होते देखते हैं ॥ हे रामजी! जब इह पुरुष शयन करै है, तब अनुभवरूप होता है, बहुरि स्वप्नविषे स्वप्ननगर भासि आता है, अरु छाया धूप भी भासि आता है, ज्ञान अज्ञान सत् झूठ भासि आते हैं, जैसे विरुद्ध पदार्थ आकाशविषे इह भासी आते हैं, तैसे संकल्पसों संकल्प मिलि जाता है, इसविषे क्या आश्चर्य है, अरु सब जगत् आकाशवत् शून्य है, निराकार निर्विकार है, निराकारविषे आकार, निर्विकारविषे विकार भासते हैं, यही आश्चर्य है, अरु जेते कछु आकार दृष्ट आते हैं, सो उही निराकाररूप हैं, ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार होकरि भासती है, जगत्कों असत् कहणा भी नहीं बनता, जो असत् होता तौ प्रलय होकरि पृथ्वी आप तेज वायुकरि आकाश बहुरि प्रगट न होता, प्रलय होकरि जो बहुरि उत्पन्न होते हैं, तातें असत् नहीं, चेतनरूप आत्माहीका स्वभाव है, आत्मसत्ताही इस प्रकार होकरि भासती है ॥ हे रामजी! जब प्रलय होती है, तब सब भूत पदार्थ नष्ट

हो जाते हैं, नष्ट होकरि जो बहुरि उत्पत्ति होती है, इसीतें कहा है, जो यह सृष्टि आत्माका आभासमात्र है, अरु ब्रह्मसत्ताविषे अनंत जगत् फुरते हैं, अरु अपणी सृष्टिहीकों जीव जानते हैं, यह जीव सब ब्रह्मरूपी समुद्रके कणके हैं, सो अवरकी सृष्टिकों अवर नहीं जानता, जैसे सिद्धकी सृष्टि अपणे अपणे अनुभवविषे फुरती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भिन्न भिन्न होती है, तैसे यह अपणी अपणी सृष्टि है, अरु मिली भी जाती है, आत्माविषे सब कछु बनता है, जो अनादि अरु आदि एकठी नहीं होती, विधि अरु निषेध एकठी नहीं होती, विकार अरु निर्विकार एकठे नहीं होते, सो आकाशविषे अरु आत्मसत्ता स्वप्नविषे एकठे दृष्ट आते हैं, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है ॥ हे रामजी! चार सत्ता इस जगतविषे फुरी हैं, सारधी गोपती अरु समान ब्रह्मसत्ता अरु अविद्या, तिनविषे सारधी अरु गोपतीसत्ता जिज्ञासीकी भावनाविषे भासती हैं, अरु समानसत्ता ज्ञानीकों भासती है, अरु अविद्या अज्ञानीकों भासती है, सो चारों भी ब्रह्मतें भिन्न नहीं, ब्रह्महीके नाम हैं, ब्रह्मसत्ता स्वभाव चेतनता करिके ऐसेही भासती है, जैसे वायु फुरणे करिके चलती भासती है, अरु ठहरणे करिके अचल भासती है, तैसे चेतनता फुरणे करिके नानाप्रकारके कौतुक उठते हैं, फुरणेतें रहित निर्विकल्प हो जाता है, ऐसा पदार्थ कोउ नहीं जो तिसविषे सत नहीं, अरु ऐसा भी पदार्थ कोउ नहीं, जो असत् नहीं, सब समान हैं, जैसे आकाशके फूल हैं, तैसे घटपटादिक हैं, अरु जैसे इनके उत्थानका अनुभव होता है, तैसे उनका अनुभव होता है, सब पदार्थ सत्ताहीकरि सत् भासते हैं, अरु जेते कछु शब्द अर्थ फुरे हैं, सो सब मिटि जाते हैं, तातें असत् हैं, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो मरिके जन्म्या नहीं तौ आनंद हैं मुक्त भया, अरु जो मरिके जन्म लेता है, तौ भी अविनाशी भया, तातें शोक करणा व्यर्थ है॥ हे रामजी! जगत्के आदिविषे भी ब्रह्मसत्ता थी, अरु अंतविषे भी उही होवैगी, जो

आदि अरु अंतविषे उही है, मध्यविषे भी उही जाणियें, तातें सब जगत् आत्मरूप है, जेते कछु शब्द हैं, सो सब अर्थसंयुक्त हैं, सर्व शब्द अरु अर्थाकार अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, तातें सब जगत् ब्रह्मरूप है, जिसकों यथार्थ अनुभव होता है, तिसकों ऐसे भासता है, अरु जिसकों यथार्थका अनुभव नहीं भया, तिसकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु आत्माविषे जगत् कछु बण्या नहीं, सब आकाशरूप है, ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अरु ब्रह्मतें इतर जो कछु भासता है, सो भ्रममात्र नाशरूप है, जो दृश्य पदार्थ सब नाशरूप हैं, जिसनें सत् जाणे हैं, तिसकेसाथ कछु प्रयोजन नहीं, जो दूसरा कछु बण्या नहीं तौ मैं क्या कहौं, जिसविषे यह सब पदार्थ आभास फुरते हैं, तिस अधिष्ठानकों देखैं तौ सब उहीरूप भासैंगे, अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित है, तिसकों यह वचन शोभावान् होते हैं, मैं अनंत सृष्टि देखी है, अरु भिन्न भिन्न उनके आचार देखे हैं, दशों दिशाकों मैं फिर्या हौं, अरु भोग बहुत भोगे हैं, बडी बडी विभूति पाई है, अरु देखी है, अनेक प्रकारकी चेष्टा करी है, परंतु मुझकों स्वप्न प्राप्त भया, काहेतें जो सब भोग पदार्थ अरु कर्म अविद्या करिके रचे हुये हैं, तिस अविद्याके अंत लेणेकों बहुत काल फिरता रहा हौं, अनेक युगपर्यंत फिर्या हौं, अरु अंत कहूं नहीं आया, अरु वसिष्ठजीकी कृपाकरि अब मुझकों स्वरूपका साक्षात्कार हुआ, अविद्या नष्ट भई है, परमानंदकों प्राप्त हुआ हौं ॥

॥ इतिश्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विपश्चिद्देशांतरभ्रमवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४३ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो ! जब इस प्रकार विपश्चितनें कहा, तब सायंकाल हुआ, सूर्य अंतर्धान हो गया, मानौ विपश्चितके वृत्तांत देखणेकों अन्य सृष्टिविषे गया है, अरु नउबत नगारे बाजणे लगे, मानौ राजा दशरथकी जयजय करते हैं, तिस समय राजा दशरथनें धनकरि अरु जवाहिरकरि भूषण वस्त्रकरि यथायोग्य राजा विपश्चितका पूजन किया, अरु दशरथतें आदि लेकरि सब राजा वसिष्ठजीकों प्रणाम करत भये, अरु परस्पर प्रणाम करिके सर्व

सभा अपने स्थानोंकों गये;स्नान किया,यथाक्रम करिके भोजन किया, नियम करिके विचारसहित रात्रिकों व्यतीत किया,जब सूर्यकी किरणां उदय भई, अपणे अपणे स्थानपर परस्पर नमस्कार करिके आय बैठे, तब वसिष्ठजी पूर्वके प्रसंगकों लेकरि बोल्या ॥ हे रामजी ! इह अविद्या अविद्यमान है, है नहीं अरु भासती है, यह आश्चर्य है, जो वस्तु सदा विद्यमान है, सो नहीं भासती, अरु जो अविद्या हैही नहीं सो सदा भासती है, इसीका नाम अविद्या है ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता अनुभवरूप है, तिसका अनुभव होणा निश्चय हो रहा है, अरु अविद्यक जगत् जो कबी कछु हुआ नहीं, सो स्पष्ट होकरि भासता है, यह अविद्या है ॥ हे रामजी ! सिद्ध राजाके मंत्रींका उपदेश भी तुझनें श्रवण किया, अरु विपश्चितका वृत्तांत भी श्रवण किया, विपश्चितके मुखतें भी श्रवण किया, अब इस विपश्चितकी अविद्या नष्ट होती है, हमारे आशीर्वादतें अरु यथार्थ वचन करिके अब इह जीवन्मुक्त होकरि विचरैगा, इसकी अविद्या अब नष्ट होती है, मेरे उपदेशकरि जीवन्मुक्त होकरि जहां इसकी इच्छा होवै तहा विचरै, परंतु जब आत्माकी उर आया, तब अविद्या नष्ट भई, आत्मतत्त्वकों यथार्थ न जानणा इसीका नाम अविद्या है, सो आत्मज्ञान करिके नष्ट हो जाती है, जैसे अंधकार तबलग रहता है, जबलग सूर्य उदय नहीं भया, जब सूर्य उदय होता है, तब अंधकार नष्ट होता है, तैसे अविद्या तबलग अनंत है, जबलग आत्माकी उर नहीं आया, जब आत्माका साक्षात्कार उदय हुआ, तब अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, अविद्या अविद्यमान है, असम्यक्दर्शिकों सत् भासती है, जैसे मृगतृष्णाका जल अविद्यमान है, विचार कियेतें अभाव हो जाता है, तैसे अविद्याका भली प्रकार विचार कियेतें अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी विषकी वल्ली है, सो देखणेमात्र फूलसहित सुंदर भासती है, परंतु स्पर्श कियेतें काटे चुभते हैं, अरु फल भक्षण कियेतें कष्टकों प्राप्त करती है; सो फूल फल क्या हैं, जेते कछु शब्द स्पर्श रूप रस गंध इंद्रियके विषय हैं, जो

देखणे मात्र सुंदर भासते हैं, सो यही फूल फल हैं, जब इनकों स्पर्श करता है, तब तृष्णारूपी कंटक चुभते हैं, अरु इंद्रियके भोगणेसों राग दोष कष्ट प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! अविद्या अंतरतें शून्य है, अरु बाहिरतें बडे अर्थसंयुक्त भासती है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष्य नानाप्रकारके रंग धारे दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें शून्य है, अणहोता भासता है, तैसे अविद्या अणहोती भासती है, जैसे उह धनुष्य जलरूप मेघके आश्रय रहता है, तैसे यह अविद्या जड मूर्खके आश्रय रहती है, अरु अविद्यारूप धूड है सो जिसकों स्पर्श करती है, तिसकों आवरणकरि लेती है, जबलग अर्थ नहीं जाण्या, तबलग भासती है, विचार कियेतें कछु नहीं निकसता, जैसे सीपीविषे रूपा भासता है, विचार कियेतें अभाव होता है, तैसे विचार कियेतें अविद्या नष्ट हो जाती है, अरु चंचल है, अरु भासती है ॥ हे रामजी ! अविद्यारूपी नदी है, अरु तृष्णारूपी तिसविषे जल है, इंद्रियांके अर्थरूपी घूमरघेर हैं, रागरूपी तिसविषे तंदुये हैं, जो पुरुष इस नदीके प्रवाहविषे पडा है, तिसकों बडे कष्ट प्राप्त होते हैं, तृष्णारूपी प्रवाहविषे वहते जाते हैं, तिनकी अविद्यारूपी नदीका अंत नहीं आता, अरु जो किनारेके सन्मुख होकरि पारकों प्राप्त हुये हैं, तिनकों कोउ कष्ट नहीं होता, वैराग्य अरु अभ्यासरूपी बेडीपर चढे हैं, जो अविद्यारूप है, तिनविषे जो भावना करते हैं, सो मूर्ख हैं, इह अविद्याका विलास है, एक ऐसी सृष्टि है, जिसविषे सैंकडो चंद्रमा उदय होते हैं, अरु सहस्र सूर्य उदय होते हैं, अरु केई ऐसी सृष्टि हैं, तिनविषे जीव सदा समताभावकों लिये विचरते हैं, अरु सदा आनंदी रहते हैं, अरु केई ऐसी सृष्टि हैं, जो अंधकार कबहूं नहीं होता, अरु केई ऐसी सृष्टि हैं, जहां प्रकाश अरु तम जीवके आधीन हैं, जेता कछु प्रकाश चाहै, तेताही करै, केई ऐसी सृष्टि है, जहां जीव न मरते हैं, न बुड्ढे होते हैं, सदा एकरस रहते हैं, प्रलयकालविषे सब एकठेही मरते हैं, कहूं ऐसी सृष्टि है, जहां स्त्री कोउ नहीं, कहूं पहाडकी नांई जीवके शरीर हैं ॥ हे रामजी ! इनतें लेकरि जो अनंत ब्रह्मांड हैं, सो फुरते हैं, सो अविद्याका वि

लास है, जैसे समुद्रविषे तरंग वायुकरि फुरते हैं, वायुविना नहीं फुरते तैसे परमात्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग उठते हैं, अरु मिटि भी जाते हैं, अविद्यारूपी वायुके संयोगतें ॥ हे रामजी ! बडे बडे मणिमय अरु मोतीमय स्वर्णमय धातुमय ऐसे जो स्थान हैं, अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके तृप्तिकर्त्ता पदार्थ हैं, घृतरूप स्थान पदार्थ हैं, अरु गनेके रसके समुद्र हैं, मांखन दही दूधके समुद्र हैं, अमृतके तलाव हैं, अरु बडे बडे कल्पवृक्ष तमाल वृक्षतें आदि लेकरि जो सुंदर स्थान हैं, अरु सुंदर अप्सरा हैं, अरु बडे दिव्य वस्त्र हैं, इनतें आदि लेकरि जो पदार्थ हैं, सो सब संकल्परूप हैं, अविद्याके रचे हुये हैं, इनकी जो तृष्णा करते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनके जीवणेकों धिक्कार है ॥ हे रामजी ! इह अविद्याका विलास है, विचार कियेतें कछु नहीं निकसता, जैसे मरुस्थलविषे अणहोती नदी भासती है, विचार कियेतें अभाव हो जाता है, तैसे आत्मविचार कियेतें अविद्याका विलास जगत् अभाव हो जाता है, जिसकों आत्माका प्रमाद है, तिसकों देवता मनुष्य पशु पक्षी आदिक इष्ट अनिष्ट अनेक प्रकारके पदार्थ भासते हैं, कारण कार्यभाव करिके जगत स्पष्ट भासता है, अरु जिसकों आत्माका अनुभव भया है, तिसकों सर्व आत्मा भासता है ॥ हे रामजी ! एक सदृष्ट सृष्टि है, अरु एक अदृष्ट सृष्टि है, यह जो प्रत्यक्ष भासती है, सो सदृष्ट सृष्टि है, अरु दृष्ट नहीं आती सो अदृष्ट सृष्टि है, सो दोनों तुल्य हैं, अरु आकाशविषे जो सृष्टिकों सिद्ध रचि लेते हैं, सो क्या है, संकल्पमात्र है, क्यों उनकी सृष्टि परस्पर अदृष्ट है, अरु अनेक प्रकारकी रचना है, उनकी स्वर्णकी पृथ्वी है, रत्न अरु मणिसाथ जडि हुई है, अरु अनेक प्रकारके विषय हैं, इंद्रियके अरु अमृतकुंड भरे हुये अरु अपने आधीन तम प्रकाश हैं, अरु अनेक प्रकारकी रचना बणी हुई है, तौ क्या है, संकल्पमात्र है क्यों, तिस प्रकार यह जगत् संकल्पमात्र है, जैसा जैसा संकल्प होता है, तैसी तैसी सृष्टि हो भासती है आत्माविषे ॥ हे रामजी ! सृष्टिरूपी अनेक रत्न आत्मरूपी डब्बेविषे हैं, जिस

पुरुषकों आत्मदृष्टि प्राप्त भई है, तिसकों सर्व सृष्टि आत्मरूप है, अरु जिसकों आत्मदृष्टि नहीं, तिसकों सर्व सृष्टि जगत् भिन्न भिन्न भासता है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा पदार्थ हो भासता है, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र है, जो तुझकों ऐसा तीव्र संवेग होवै, जो आकाशविषे नगर स्थित होवै, तब उही भासणे लग जावै ॥ हे रामजी ! जिस उर यह पुरुष दृढ निश्चय करता है, सोई सिद्ध होता है, जो आत्माकी उर एकत्र होता है, तब उही सिद्ध होता है, जो दोनों उर होता तब भटकना होता है, जो जगत्की सत्यताकों छांडिकरि आत्मपरायण हो रहै, तब तीव्र भावना करिके मोक्ष प्राप्त होती है, जो संसारकी उर भावना होती है, तब संसारकी प्राप्ति होती है, जैसे अभ्यास करता है, सोई सिद्ध होता है, अरु आदि जो सृष्टि हुई है, सो अकारण है, तिसविषे दूसरी वस्तु तौ कछु नहीं, उहीरूप है, बहुरि जैसी जैसी भावना होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, जिसकी भावना धर्मका उर होती है, अरु सकाम होता है, तिसकों स्वर्गादिक सुख भासते हैं, अरु जिसकी भावना अधर्मविषे होती है, तिसकों नरकादिक दुःख पदार्थ भासते हैं, शुभ कर्मकरि शांतिकी इच्छा नहीं भासती, सो शुभ भी दो प्रकारके हैं, एककों स्वर्गसुख भासते हैं, एककों सिद्धिकी भावना करिके सिद्धलोक भासते हैं, अरु जिसकों अशुभ भावना होती है, तिसकों नानाप्रकारके नरक भासते हैं ॥ हे रामजी ! जब इह संवित अनात्माविषे आत्मअभिमान करती है, तिनके कर्मविषे आपकों कर्त्ता जाणती है, सो पाप करिके अनेक दुःखकों प्राप्त होती है, सो दुःख कहणेविषे नहीं आते, जैसे पहाडोंविषे भी पीसणेतें बडा कष्ट होता है, अंगारकी वर्षाकरि जैसे कष्ट होवै, अंधे कूपविषे गिरनेकरि कष्ट होता है, परंतु स्त्रीके भोगणेकरि अंगारसाथ स्पर्श करता है, अग्निसाथ तप्त लोहेसों कंठसाथ लगता है, अरु जिस स्त्रीनें परपुरुषकों भोग्या है, सो अंधे कूपरूप उखलिविषे खड्डरूपी मूशल करिके कटती है, अरु जो देह अभिमानी देवता पितर अतिथिके दियेविना भोजन करता है,

तिसकों भी यमदूत बडा कष्ट देता है, खड्ग अरु बरछीकरि मांसकों काटता है, अरु प्रहार करता है, परलोकविषे क्षुधा अरु तृष्णा करिके कष्टवान् होता है, अरु जिन नेत्रकरि परस्त्री देखी है, तिन नेत्रकों छुरीका प्रहार होता है, एक वृक्ष है, तिसके पत्र लगते हैं, सो खड्गके प्रहारकी नांई लगते हैं, शूलउपर चढावते हैं, इनतें आदि लेकरि तिनकों कष्ट होता है, अरु जो शुभ कर्म करते हैं, सो स्वर्गकों भोगते हैं, तातें जैसा जैसा कर्म करते हैं, तिनके अनुसार जगत्कों देखते हैं, जिस जिस भावकों चितवते शरीर त्यागते हैं, सो तिसकों प्राप्त होता है, केवल वासनामात्र संसार है, जैसा निश्चय होता है, तैसाही भासता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्वर्गनरकप्रारब्धवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४४ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह जो तुमनें मुनीश्वर अरु वेधकका वृत्तांत कहा है, सो बडा आश्चर्यरूप है, इह वृत्तांत स्वाभाविक हुआ है, अथवा किसी कारण कार्यकरि हुआ है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! समुद्रतें तरंग उठते हैं, तैसे ब्रह्मविषे इह प्रतिभा स्वाभाविक उठती है, जैसे पवनविषे फुरणा स्वाभाविक होता है, तैसे आत्माका चमत्कार जगत् रचना स्वाभाविक होती है, सो उहीरूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, चिन्मात्रविषे जो चेतना फुरी है सो जैसी फुरी तैसे स्थित है, जबलग इसतें इतर अवर फुरना नहीं होता, तबलग उही रहता है, जिस प्रतिमा करिके कार्यकारण भासता है, जैसे शुद्ध चिदाकाशविषे स्वप्नकी सृष्टि भासती है, तिसविषे साररूप उही है, उही चित्त चमत्कार करिके फुरता है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो समुद्ररूप हैं, तिसतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे जेता कछु शब्द अर्थ जगत् भासता है, सो उही चिन्मात्र है, इतर कछु वस्तु नहीं, जिनकों ऐसे यथार्थ अनुभव हुआ है, तिनकों जगत् स्वप्नपुर अरु संकल्पनगरवत् भासता है, पृथ्वी आदिक पदार्थ पिंडाकार नहीं भासते, उनकों सब ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ हे रामजी! जो वस्तु व्यभिचारी नाशवंत है, सो अविद्यारूप है, अरु जो अव्यभिचारी अ

विनाशी वस्तु है, सो ब्रह्मसत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता ज्ञानसंवित्‌रूप है, अपणे भावकों कदाचित् नहीं त्यागती, अनुभव करिके सर्वदा काल प्रकाशती है, तिसविषे अविद्या कैसे होवै, जैसे समुद्रविषे धूडका अभाव है, तैसे आत्माविषे अविद्याका अभाव है, जेते कछु आकार दृष्ट आते हैं, सो सब चिदाकाशरूप हैं, जैसे तूं मनविषे संकल्प धारिकरि इंद्र हो बैठे, अरु चेष्टा भी इंद्र जैसी करणे लगै, अथवा ध्यानकरि इंद्र रचे, जैसे उह ध्यानकरि प्रतिभा सिद्ध हो आवै, तौ जबलग संकल्प रहै, तबलग उही भासै, जब इंद्रका संकल्प क्षीण हो जावै, तब इंद्रभावकी चेष्टा भी निवृत्त हो जाती है, सो संकल्पकरि उही चिन्मात्र इंद्ररूप हो भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिन्मात्ररूप है, संवेदन करिके पिंडाकार हो भासता है, जब संवेदन फुरणा निवृत्त होता है, तब सब जगत् आत्मरूप भासता है, अरु ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, सब जगत् तिसका चमत्कार है, अरु निराकार है, जैसे समुद्रविषे तरंग समुद्ररूप होते हैं, तैसे निराकार परमात्माविषे जगत् भी आकाशरूप है, इतर कछु नहीं, सर्व ब्रह्मस्वरूप है, इसका नाम परम बोध है, जब इस बोधकी दृढता होती है, तब मोक्ष होता है, जिसकों सम्यक् बोध होता है, तिसकों जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, अरु अपणा आप भासता है, अरु जिसकों सम्यक् बोध नहीं भया, तिसकों नानाप्रकारका द्वैतरूप जगत् भासता है॥ हे रामजी! जिसकी बुद्धि शास्त्रकरि तीक्ष्ण भई है, अरु वैराग्य अभ्यासकरि संपन्न निर्मल भई है, तिसकों आत्मपद प्राप्त होता है, अरु जिसकी बुद्धि शास्त्रके अर्थकरि निर्मल नहीं भई, तिसकों अज्ञानसहित जगत् भासता है, जैसे किसी पुरुषके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसकों आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, अरु तरवरे भ्रम करिके भासते हैं, तैसे अज्ञान करिके जगत् भासता है, जेता कछु जाग्रत जगत् है, सो स्वप्नमात्र है, जब स्वप्नविषे होता है, तब स्वप्न भी जाग्रत भासती है, अरु जाग्रत स्वप्नवत् हो जाती है, अरु

जागृतविषे स्वप्न स्वप्न हो जाता है, जागृत सत् भासती है, सो अल्प कालका नाम स्वप्न है, दीर्घ कालका नाम जागृत है, आत्माविषे दोनौंका तुल्यभाव होता है, जैसे क्षणविषे दो भाई जोडे जन्मते हैं, सो नाममात्र दो हैं, वस्तुतें एकरूप हैं, तैसे जागृत स्वप्नतुल्यही है, अरु जब यह पुरुष शरीरकों त्यागता है, तब परलोक इसकों जागृत हो जाता है, अरु यह जगत् स्वप्नवत् हो जाता है, जैसे स्वप्नतें जागि उठ्या, तब स्वप्नके पदार्थोंकों भ्रममात्र जाणता है, अरु जागृतकों सत् जाणता है, तैसे जब परलोक जाता है, तब इस जगत्कों स्वप्नवत् भ्रममात्र जाणता है, अरु कहता है, स्वप्न जैसा मैं देख्या था, उह परलोक सत् हो भासता है, बहुरि उहांतें गिरता है, इस लोकविषे आय पडता है, तब इस लोककों सत् जाणता है, अरु जागृत मानता है, अरु उह परलोककों स्वप्नभ्रम मानता है॥ हे रामजी! जबलग इसकों शरीरसाथ संबंध है, तबलग अनेक वार जागृत देखता है, अरु अनंतही स्वप्न देखता है ॥ हे रामजी! जैसे मृत्युपर्यंत इसकों अनेक स्वप्न आते हैं, तैसे मोक्षपर्यंत इसकों अनेक जागृतरूप जगत् भासते हैं, भ्रमांतरविषे इनकी सत्यता अरु जागृतविषे स्वप्नके पदार्थ कोउ स्मरण करता है, जैसे सिद्ध प्रबुद्ध होकरि अपणे जन्मकों स्मरण करता है, अरुकहता है, सब भ्रममात्र थे, तैसे यह जब जागैगा, तब कहैगा, सब भ्रममात्र प्रतिभा मुझकों भासी थी, न कोउ बंध है, न कोउ मुक्त है, काहेतें जो दृश्य अविद्यक बंध मोक्ष कैसा है, जब चित्तकी वृत्ति निर्विकल्प होती है, तब मोक्ष भासता है, अरु जबलग वासना विकल्प सत् है, तबलग बंध भासता है ॥ हे रामजी! आत्माविषे बंध मोक्ष दोनौं नहीं, बंध होवै, तब मोक्ष भी होवै, बंध नहीं, तौ मोक्ष कैसे होवै, बंध अरु मोक्ष दोनौं चित्तसंवेदाविषे भासता है, तातें चित्तकों निर्वाण करु, तब सब कल्पना मिटि जावैगी, जेते कछु पदार्थके प्रतिपादन करणेहारे शब्द हैं, तिनकों त्यागिकरि निर्मल ज्ञानमात्र जो आत्मसत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, जो कछु खानपान बोलणा चालणा सब क्रियाकों करु, परंतु अंतरतें परमपद पावणेका यत्न करु॥ हे रामजी! नेतिनेतिकरि सर्व श

ब्दका अभाव करु, बहुरि अभावका भी अभाव करु, तिसके पाछे जो शेष रहैगा, सो आत्मसत्ता परम निर्वाण रूप है, तिसविषे स्थित होहु, अरु जो कछु अपणा आचार कर्म है, सो यथाशास्त्र करु, अरु हृदयतें सर्व कल्पनाका त्याग करु, इस प्रकार आत्मसत्ताविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणोपदेशो नाम द्विशताधिकपंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब चिदाकाश आत्मरूप हैं, ज्ञानवान्कों सदा उही भासते हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, रूप दृश्य अवलोक इंद्रियां मनस्कार फुरणा इसीका नाम संसार है, सो इह भी आत्मरूप है, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, जैसे अपणी संवित् स्वप्नविषे रूप अवलोकन मनस्कार हो भासती है, आत्मातें इतर कछु नहीं, परंतु अज्ञानकरि भिन्न भिन्न भासती है, अरु जो जाग्या है, तिसकों अपणा आप भासता है, जैसे अपणी चेतनताही स्वप्नपुर होकरि भासती है, तैसे जगत्के पूर्व जो चेतनसत्ता थी, उही जगत्रूप होकरि भासती है, अरु जगत् आत्मातें कछु भिन्न वस्तु नहीं, उही स्वरूप है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तिस करिके तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्माका स्वभाव चेतन है, सोई आत्मसत्ता चेतनता करिके जगत् आकार हो भासती है, इस प्रकार जाणीकरि जो परम शांति निर्वाण पद है, तिसविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! जगत् कछु है नहीं, अरु प्रत्यक्ष भासता है, असत्ही सत् होकरि भासता है, यही आश्चर्य है, जो निष्किंचन है, अरु किंचनकी नांई होकरि भासता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत अरु निर्विकार है, परंतु अज्ञानदृष्टि करिके नानाप्रकारके विकार भासते हैं, जब सर्व विकारकों निषेध करि असत्रूप जाणियें तब सर्वके अभाव हुये आत्मसत्ता शेष रहती है, जैसे शून्य स्थानविषे अणहोता वैताल भासी आता है, तैसे अज्ञानीकों अणहोता जगत् आत्माविषे भासी आता है, अरु जो पुरुष स्वभावविषे स्थित हुये हैं, तिनकों जगत् भी अद्वैतरूप आत्मा

भासता है, जब सच्छास्त्र अरु संतकी संगति होती है, तिनके तात्पर्य अर्थविषे जब दृढ अभ्यास होता है, तब स्वभावसत्ताविषे स्थित होती है, अरु जिन पदार्थके पावणेनिमित्त इह यत्न करता है, सो मायिक पदार्थ बिजुलीके चमत्कारवत् उदय भी होते हैं, अरु नष्ट भी होते हैं, इह पदार्थ विचारविना सुंदर भासते हैं, इनकी इच्छा मूर्ख करते हैं, काहेतें जो उनकों जगत् सत् भासता है, अरु ज्ञानवान्कों जगत् पदार्थकी तृष्णा नहीं होती, काहेतें जो जगत्कों मृगतृष्णाकी नांई असत् जाणता है, अरु ब्रह्मभावनाविषे दृढ है, अरु अज्ञानीकों जगत्की भावना है, तातें ज्ञानीके निश्चयकों अज्ञानी नहीं जाणता, ज्ञानीके निश्चयकों ज्ञानीही जाणता है, जैसे सोये हुये पुरुषकों निद्रादोष करिके स्वप्न आता है, तिसविषे जगत् भासता है, अरु जागृत पुरुष जो तिसके निकट बैठा है, उसकों उह स्वप्नजगत् नहीं भासता है, उह असत् है, तौ तिसके निश्चयकों स्वप्नवाला नहीं जाणता, अरु स्वप्नवालेके निश्चयकों उह जागृतवाला नहीं जाणता, तैसे ज्ञानीके निश्चयकों अज्ञानी नहीं जाणता, जैसे मृत्तिकाकी सैनाकों बालक सैनाकरि मानता है, जो जानणेवाले बडे पुरुष हैं, तिनकों सब मृत्तिकारूप भासता है, जब उह बालक भली प्रकार जाणता है, तब उसकों भी सैना अरु वैतालका अभाव हो जाता है, मृत्तिकारूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्कों सब जगत् ब्रह्मरूपही भासता है ॥ हे रामजी ! जब इस पुरुषकों आत्माका अनुभव होता है, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं रहती, जैसे स्वप्नविषे किसीकों मणि प्राप्त होती है, तब प्रीति करिके तिसकों रखता है, जब जागता है, तब उसकों भ्रम जाणिकरि तिसकी इच्छा नहीं करता, तैसे जब आत्मपदविषे जागैगा, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा न करैगा, जैसे मरुस्थलकी नदीकों असत् जाणता है, तब उसविषे जलपानके निमित्त यत्न नहीं करता, तैसे सब जगत्कों असत् जाणता है, तब जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जिस शरीरके निमित्त यत्न करता है, सो शरीर भी क्षणभंगुर है, जैसे पत्र उपर जलकी बुंद आनि स्थित हो

ती है, सो क्षणभंगुर असार है, पवन लगेतें क्षणविषे गिर जाती है, तैसे इह शरीर नाशवंत है, जैसे मृग धूपकरि तप्या हुआ मरुस्थलकी नदीकों सत् जाणिकरि जलपान करणेनिमित्त दउडता है, सो मूर्खता करिके कष्ट पावता है, परंतु तृप्त नहीं होता, तैसे मूर्ख मनुष्य विषयपदार्थकों सत् जाणिकरि तिनके निमित्त यत्न करते हैं, अरु कष्ट पावते हैं, अरु तृप्त कदाचित् नहीं होते ॥ हे रामजी! इह पुरुष अपणा आपही मित्र है, अरु अपणा आपही शत्रु है, जब सत् मार्गविषे विचरता है, अरु अपणा उद्धार करता है, तब पुरुषप्रयत्न करिके अपणा आपही मित्र होता है, अरु जो सत् मार्गविषे नहीं विचरता, अरु पुरुषप्रयत्न करिके अपणा उद्धार नहीं करता, जन्म मरण संसारविषे आपकों डारता है, सो अपणा आपही शत्रु है, अरु जो अपणे आपकों यत्न करिके उद्धार करता है, सो अपणे उपर दया करता है ॥ हे रामजी! इंद्रियके विषयरूपी चिकड है, जो इसविषे गिर्या हुआ है, अरु अपणे उपर निकासणेकी दया नहीं करता, सो महा अज्ञान तमकों प्राप्त होता है, जो पुरुष इंद्रियांकों जीतिके आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, तिसकों शांति नहीं प्राप्त होती, जब बालक अवस्था होती है, तब शून्यबुद्धि होती है, अरु वृद्ध अवस्थाविषे अंग क्षीण हो जाते हैं, अरु यौवन अवस्थाविषे इंद्रियांके जीतणेकों समर्थ नहीं होता, तौ कब होणा है, अवर जो तिर्यक् आदिक योनि हैं, सो मृतकवत् हैं, यत्नका समा यौवन अवस्था है, काहेतें जो बालक अवस्था तौ जडगुंगरूप है, वृद्ध अवस्था भी महानिर्बल जैसी है, तिसविषे अपणे अंगही उठावणे कठिन हो जाते हैं, तौ विचारिके क्या समर्थ होवैगा, उह तौ बालकवत् है, तातें कछु यत्न यौवन अवस्थाविषेही होता है, जो इस अवस्थाविषे भी लंपट रहा, सो महा अनिष्ट नरककों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! विषयविषे प्रसन्न नहीं होणा, इह शरीर नाशरूप है, तौ विषय किसकों भोगणे हैं, श्रुति करिके भी जाणीता है, अरु अनुभव करिके भी जाणीता है, जो इह शरीर नाशरूप है क्यों, तिस शरीरविषे

सत्‌भावना करिके जो विषयके सेवणेका यत्न करता है, तिसतें पर मूर्ख कहूं नहीं, उही मूर्ख है, तातें जब इंद्रियांकों जीतैंगा, तब जन्मजन्मांतरकों प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी! तुम जागहु, आपकों अविनाशीरूप जाणहु, अच्युत परमानंदरूप जाणहु, इह जगत् मिथ्यारूप भ्रम उदय हुआ है, इसकों त्याग देहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे अविद्यानाशोपदेशो नाम द्विशताधिकषट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४६ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! तुम सत् कहते हौ जो इंद्रियके जीतेविना शांति नहीं प्राप्त होती, तातें इंद्रियांके जीतणेका उपाय कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जिस पुरुषकों बडे भोग आनि प्राप्त हुये हैं, अरु इस इंद्रियांकों जीती नहीं, तब उह शोभा नहीं पावता, जो त्रिलोकीका राज्य आनि प्राप्त होवै, अरु इंद्रियांकों जीती नहीं, तिसकी उपमा भी कछु नहीं, जो बडा शूर वीर है, अरु इंद्रियांकों जीती नहीं सो उसकी शोभा भी कछु नहीं, अरु बडी आयुर्बेला है जिसकी, चिरपर्यंत जीता है, अरु इंद्रियां नहीं जीतियां तौ उसका जीणा भी व्यर्थ है, जिस प्रकार इंद्रियां जीती जाती हैं, अरु आत्मपद प्राप्त होता है सो प्रकार सुण ॥ हे रामजी! इस पुरुषका स्वरूप अचिंत्य चिन्मात्र है, तिसविषे जो संवित फुरी है तिस ज्ञान संवितकों अंतःकरण दृश्य जगतसाथ संबंध हुआ है, तिसका नाम जीव है, जहांतें चित्त फुरता है, तहांही चित्तकों स्थित करु, तब इंद्रिय अभाव हो जावैगा, इंद्रियांका नायक मन है, जब मनरूपी मतवारे हस्तीकों वैराग्य अरु अभ्यासरूपी कुंटेसाथ वश करै, तब तेरी जय होवैगी, सब इंद्रियां रोकी जावैगियां, जैसे राजाके वश कियेतें सब सैना भी उसके वश हो जाती है, तैसे मनकों स्थित कियेतें सब इंद्रियां वश हो जावैंगियां ॥ हे रामजी! जब इंद्रियांकों वश करैगा, तब शुद्ध आत्मसत्ता तुझकों भासि आवैगी, जैसे वर्षाकालके अभावतें शरत्कालविषे शुद्ध निर्मल आकाश भासता है, कुहीड अरु वादलका अभाव हो जाता है, तैसे जब मनरूपी वर्षाकालका अभाव हो जावैगा, अरु वासनारूपी कुहीड

का अभाव हो जावैगा, तब पाछे शुद्ध निर्मल आत्मसत्ता भासैगी॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ जगत्‌विषे दृष्ट भासते हैं, सो सब असत्‌रूप हैं, जैसे मरुस्थलकी नदी असत्‌रूप होती है, तैसे जगत्‌के पदार्थ असत्‌रूप हैं, इनविषे तृष्णा करणा अज्ञान है, जो पदार्थ प्रत्यक्ष आनि प्राप्त होवैं, तिनकों त्यागिकरि वृत्ति आत्माकी उर आवै, तब जाणियें जो मुझकों इंद्रका पद प्राप्त हुआ है, अरु विषयविषे आसक्त होणाही बडी कृपणता है, अरु इनतें उपरत होणा यही बडी उदारता है, तातें मनकों वश कर, तब तेरी जय होवै, जैसे तप्त पृथ्वी ज्येष्ठ आषाढविषे होती है, अरु चरणविषे चरणदासी चढाई, तब इसकों तप्त नहीं होती, अरु सब पृथ्वी शीतल हो जाती है, तैसे अपणे मन वश कियेतें जगत् आत्मरूप हो जाता है॥ हे रामजी! जिस प्रकार जनेंद्रनें मनकों वश किया है, तैसे तूं भी मनकों वश करु, जिस जिस उर मन जावै, तिस तिस उरतें रोकहु, जब दृश्य जगत्‌की उरतें मनकों रोकैगा, तब वृत्ति संवित ज्ञानकी उर आवैगी, जब संवित ज्ञानकी उर आई, तब तुझकों परम उदारता प्राप्त होवैगी, अरु शुद्ध आत्मसत्ताका अनुभव होवैगा, तप करिके संवितका अनुभव होणा कठिन है, अरु तीर्थ दान करिके भी कठिन है, परंतु मनके स्थिर करणेकरि अनुभवकी प्राप्ति सुगम होती है, सो मन स्थिर करणेका उपाय यही है, जो संतकी संगति करणी, अरु रात्र दिन सच्छास्त्रकों विचारणा, सर्वदा काल इस उपायकरि मन शीघ्रही स्थिर होता है, जब मन स्थिर हुआ तब आत्मपदका अनुभव होता है, जिसकों आत्मपद प्राप्त हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे डूबता नहीं, अरु चित्तरूपी समुद्र है, तिसविषे तृष्णारूपी जल है, अरु कामनारूपी लहरी है, जिस पुरुषनें सम संतोषकरि इंद्रियां जीती हैं, सो चित्तरूप समुद्रविषे गोते न खावैगा, इंद्रियांकों जीतीकरि जिसनें आत्मपद पाया है, तिसकों नानात्व जगत् बहुरि नहीं भासता, जैसे मरुस्थलकी निराकार नदीविषे लहरी भासती हैं, जब भली प्रकार निकट जायकरि विचार करि देखियें, तब लहरिसंयु

क्त वहती दृष्ट नहीं आती, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, जब भली प्रकार विचारि देखियें, तब नानात्व दृष्ट नहीं आता, आत्मसत्ताही किंचन करिके जगत्रूप हो भासती है, जैसे जल अपणे द्रवता स्वभाव करिके तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता चेतनता करिके जगत्रूप हो भासती है॥ हे रामजी! जब आत्मबोध होता है, तब बहुरि दृश्यभ्रम नहीं भासता, जैसे साकाररूप नदीका भाव निवृत्त हुये बहुरि वहती है, अरु जो निराकार नदीका सद्भाव निवृत्त होता है, तब फेरि नदीका सद्भाव होता क्यों? निराकार मृगतृष्णाकी नदी जब ज्योंकी त्यों जाणी, तब फेरि सत्य न होती है॥ हे रामजी! वास्तवतें न कर्म है, न इंद्रिय है, न कर्ता है, कछु उपज्या नहीं, नानाप्रकार दृष्ट आते हैं, परंतु कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी क्रिया कर्म दृष्ट आते हैं, परंतु आकाशरूप हैं, कछु हुआ नहीं, तैसे इह भी जाण, आकाशरूप आत्माविषे आकाशरूप जगत् स्थित है, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद नहीं, जैसे अवयव अवयवीका रूप है, तैसे जगत् आत्माका रूप हैं, जब आत्माविषे स्थित होवैगा, तब अहं त्वं आदिक शब्दका अभाव हो जावैगा, अरु द्वैत अद्वैत शब्द भी न रहैगा, द्वैत अद्वैत शब्द भी बालक अज्ञानीके समुझावणेनिमित्त कहे हैं, जो वृद्ध ज्ञानवान् हैं, इन शब्दपर हांसी करते हैं, जो अद्वैतमात्रविषे इन शब्दका प्रवेश कहा है, जिनकों इह दशा प्राप्त भई है, तिनकों न बंध है, न मोक्ष है॥ हे रामजी! सुषुप्ति अरु तुरीयाविषे कछु थोडा भेद है, जो सुषुप्तिविषे अज्ञान जडता रहती है, अरु तुरीयाविषे अज्ञान जडता नहीं, चेतन अनुभवसत्तारूप है, अरु स्वप्नजाग्रतविषे भी भेद नहीं, परंतु एता भेद कहाता है, जो अल्पकालकी अवस्थाकों स्वप्न कहते हैं, अरु चिरकालकी अवस्थाकों जाग्रत कहते हैं॥ हे रामजी! जाग्रत स्वप्न अरु सुषुप्ति इह तीनों स्वप्न अरु सुषुप्तिरूप हैं, जाग्रत अरु स्वप्न इह उभय स्वप्नरूप हैं, अरु सुषुप्ति अज्ञानरूप है, अरु जाग्रत जो है, सो तुरीयारूप है, और जाग्रत कोउ नहीं, जिस जागणेतें ब

हुरि भ्रम प्राप्त होवै, तिसकों जाग्रत कैसे कहियें, उसकों भ्रममात्र जाणियें, अरु जिस जागणेतें फेर भ्रमकों न प्राप्त होवै, तिसका नाम जाग्रत है, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया चारों अवस्थाविषे चेतनमात्र घनीभूत हो रहा है, सो चारोंकों नहीं देखता, ज्ञानवान् जब प्राणका स्पंद रोकीकरि आत्माकी उर चित्तकों लगाते हैं, अरु परस्पर ज्ञानमात्रका निर्णय चर्चा करते हैं, अरु ज्ञानमात्रकी कथा कीर्तन करते हैं, अरु तिसकरि प्रसन्न होते हैं, ऐसे जो नित जाग्रत पुरुष हैं, अरु निरंतर प्रीतिपूर्वक आत्माकों भजते हैं, तिनकों आत्मविषयिणी बुद्धि आनि उदय होती है, तिसकरि शांतिकों प्राप्त होते हैं, जिनकों सदा अध्यात्म अभ्यास है, अरु अभ्यासविषे उत्तम हुये हैं, तिनकों आत्मपद प्राप्त होता है, उही हांसी करते हैं, काहेतें जो उनकों शांतपद प्राप्त भया है, अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागदोषकरि जलते हैं, अरु जिनकों आत्माका दृढ अभ्यास हुआ है, तिनकों अवेदनसत्ता शांति प्राप्त होती है, अरु आत्मस्थिति प्राप्त होती है, जिसके आगे इंद्रका राज्य भी सूके तृणवत् भासता है, ऐसा परमानंद आत्मसुख है, अरु सर्व जगत् तिनकों आत्मरूप भासता है, अरु जो अज्ञानी हैं, तिनकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, जैसे सोये हुये पुरुषकों स्वप्नकी सृष्टि सत् होकरि भासती है, अरु जाग्रतके स्मरणवालेकों स्वप्नकी सृष्टि भी अपणा आपरूप भासती है, अरु सत्‌रूप भासती है, अरु ज्ञानवान्कों सर्व आत्मरूप भासता है, आत्मातें भिन्न कछु नहीं भासता, जब आत्म अभ्यासका बल होवै, अरु अनात्माके अभावका अभ्यास दृढ होवै, तब जगत्का अभाव हो जावै, अद्वैतसत्ताका भान होवै ॥ हे रामजी! मैं तुझकों बहुत उपदेश किया है, जब इसका अभ्यास होवै, तब इसका फल जो ब्रह्मबोध है, सो प्राप्त होवै, अभ्यासविना नहीं प्राप्त होता, अरु जो एक तृण लोप करना होता है, तौ भी कछु यत्न होता है, यह तौ त्रिलोकी लोप करणा है ॥ हे रामजी! जैसे बडा भार जिस उपरि पडता है, तब उह बडेही बलकरि उठावता है, विना बडे बल नहीं उठता, तैसे इस जीवउपर दृश्य

रूपी बडा भार पडा है, जब बडा आत्मरूपी अभ्यासका बल होवै, तब इसकों निवृत्त करै, नहीं तौ निवृत्त नहीं होता, अरु यह जो मैं तेरे तांई उपदेश किया है, तिसकों वारंवार विचारु, मैं तौ तेरे तांई बहुत प्रकार अरु बहुत वार कहा है ॥ हे रामजी ! अज्ञानीकों ऐसे बहुत कहनेकरि भी कछु नहीं होता, तुझकों जो मैं उपदेश किया है, सो सर्व शास्त्रका सिद्धांत है, अरु वेद्का सिद्धांत है, जिस प्रकार वेदकों पाठ करता है, तिस प्रकार इसकों पाठ करियें, अरु विचारियें अरु इनके रहस्यकों हृदयविषे धारियें, तब आत्मपदकी प्राप्ति होवै, अरु अवर शास्त्र भी इसके अवलोकनकरि सुगम हो जावैंगे, तातें नित्य प्रति इस शास्त्रकों श्रद्धासहित सुणै अरु कहै, आदितें लेकरि अंतपर्यंत सुणै अरु कहै, तब अज्ञानी जीवकों भी ज्ञानकी प्राप्ति अवश्य होवै, जिसनें एक वार सुण्या है, अरु कहणे लगा है, जो एक वार सुणी छोड्या है, वहुरि वहुरि क्या सुनणा है, तब उसकी भ्रांति निवृत्त न होवैगी, अरु जो वारंवार सुणै विचारै अरु कहै, तव उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, सब शास्त्रतें मैं उत्तम युक्तीकी संहिता कही है, जो शीघ्रही मनविषे आती है, ऐसी जो संहिता कही है, अरु जो पुरुष मेरे शास्त्रकों सुनणेवाले हैं, अरु कहणेवाले हैं, तिनकों वोध उदय होता है, अवर शास्त्रका जो अर्थ है, सो भी सुंदरता करिके खुलि आता है, जैसे लोणका अधिकारी व्यंजन पदार्थ है, तिसविषे लोण पाया स्वादी होता है, अरु प्रीतिसहित ग्रहण करीता है, तैसे जो इस शास्त्रके सुनणे कहणेवाले हैं, सो अर्थ अवर शास्त्रका भी सुंदर करैंगे ॥ हे रामजी ! ऐसे न करियें जो किसी अवर पक्ष अपणेकों मानीकरि इसका श्रवण भी न करियें, जैसे किसीके पिताका खारा कुवा था, अरु तिसके निकट मिष्ट जलका कुवा था, उह अपणे पिताका कूप मानिकरि खाराही जल पीता था, निकट मिष्ट जलके कुवेका त्याग करता था, तैसे अपणा पक्ष मानिकरि मेरे शास्त्रका त्याग नहीं करणा, जो ऐसे जाणिकरि मेरे शास्त्रकों न सुणैगा, तिसकों ज्ञान प्राप्त न होवैगा, जो पुरुष इस शास्त्रविषे दूषण

आरोपण करैगा, जो इह सिद्धांत यथार्थ नहीं कहा, तिसकों ज्ञान कदाचित् न प्राप्त होवैगा, उह आत्महंता है, तिसके वाक्य श्रवण नहीं करणे, अरु जो प्रीतिपूर्वक पूजा भाव करिके श्रवण करै, विचारै, पाठ करै, तिसकों निर्मल ज्ञान होवैगा, अरु क्रिया भी निर्मल होवैगी, तातें नित्यप्रति विचारणे योग्य है ॥ हे रामजी! तुझकों उपदेश किया है, सो किसी अर्थके निमित्त नहीं किया, दया करिके किया है, अरु तुम जो किसीकों कहौगे, तौ भी अर्थविना दया करिके कहणा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्रियजयवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४७ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आत्माविषे जगत् कछु हुआ नहीं, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अहं फुरणा होता है, तब उही संवेदन फुरणा जगत्रूप हो भासता है, जब अधिष्ठानकी उर देखता है, तब उही संवेदन अधिष्ठानरूप हो जाता है, अपणे रूपकों त्यागि देता है, अचेत चिन्मात्र होता है ॥ हे रामजी! फुरणेविषे भी उही है, अरु अफुरणेविषे भी उही है, परंतु फुरणेकरि जगत् भासता है, सो जगत् भी कछु अवर वस्तु नहीं, उहीरूप है, अरु जब संवित संवेदन फुरणेतें रहित होती है, तब अपणा चिन्मात्ररूप हो जाती है, इस कारणतें ज्ञानवान्कों जगत् आत्मरूप भासता है, ब्रह्मतें इतर नहीं भासता, जैसे किसी पुरुषका मन अवर ठौर गया होता है, तिसके आगे शब्द होता है, तौ भी नहीं भासता, अरु कहता है, मैं देख्या सुण्या कछु नहीं, जिस उर चित्त होता है, तिसका अनुभव होता है, तैसे जिनका मन आत्माकी उर लगता है, तिनकों सब आत्माही भासता है, आत्मातें इतर जगत् कछु नहीं भासता, अरु जिनकों आत्मसत्ताका प्रमाद है, अरु जगत्की उर चित्त है, तौ उनकों जगत्ही भासता है ॥ हे रामजी! ज्ञानवान्के निश्चयविषे ब्रह्मही भासता है, अरु अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भासता है, तौ ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय एक कैसे होवै, स्वप्नविषे पुरुष है, तिसकों स्वप्नका जगत् भासता है, जाग्रतकों उह जगत् नहीं भासता, उनकों एकही

निश्चय कैसे होवै? नहीं होता, इह अर्थ है, जगत्के आदि भी ब्रह्मसत्ता थी, अरु अंत भी उही रहैगी, मध्यविषे जो भासती है, सो भी उही जाण, आत्मसत्ताही चेतनताकरि जगत्रूप हो भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि भी ब्रह्मसत्ता होती है, अरु अंत भी ब्रह्मसत्ता होती है, अरु मध्य जो भासता है, सो भी उही है, आत्मातें इतर कछु नहीं, तैसे इह जगत् आदि अंत मध्यविषे भी आत्मातें इतर कछु नहीं, अरु ज्ञानवान्कों सदा इही निश्चय है, जो जगत् कछु उपजा नहीं, न उपजैगा, आत्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, जो सर्व ब्रह्मही है, अहं त्वं इह सब अज्ञानकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे अहं त्वं आदि करिके अनुभव होता है, तौ अहं त्वं आदिक भी कछु नहीं, सब अनुभवरूप है, तैसे इह जगत् सर्व अनुभवरूप है ॥ हे रामजी! जैसे एकही रस फूल फल टास वृक्ष होकरि भासता है, परंतु रसतें इतर कछु नहीं, तैसे नानात्वरूप जगत् भासता है, परंतु आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर अपणे अपणे अनुभवतें इतर कछु नहीं निकसता, परंतु स्वरूपके विस्मरण करिके आकाररूप भासते हैं, तैसे इह जगत् आकार भासता है, सो ज्ञानरूपतें इतर कछु नहीं, सब जगत् आत्मरूप है, परंतु अज्ञान करिके भिन्न भिन्न भासता है, अरु इह जगत् सब अपणा आपरूप है, इतर कछु नहीं, जो आत्मरूप है, तौ ग्राह्यग्रहणभास कैसे होवै, यह मिथ्याभ्रम है, पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पर्वत घट पट आदिक सब जगत् भ्रमरूप है, ज्ञानवान्कों सदा यही निश्चय रहता है, जो अचेत चिन्मात्र अपणे आपविषे स्थित है, ब्रह्मादिक भी कछु फुरीकरि उदय नहीं भये, ज्यौंके त्यौं हैं, उत्थान कछु न हुआ, अरु अज्ञानीके निश्चय नानाप्रकारका जगत् है, उत्पत्ति स्थिति प्रलय ब्रह्मादिक संपूर्ण हैं ॥ हे रामजी! यह कछु उपजा नहीं, कारणत्वके अभावतें सदा एकरस आत्मसत्ताही है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ २४८ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जाग्रत अरु स्वप्नका निर्णय अब सुण, जब इस जगत्विषे सोय जाता है, तब स्वप्नकी सृष्टि देखता है, उसविषे जाग्रत होती है, जाग्रत होकरि भासती है, अरु जब तहां सोय जाता है, तब बहुरि इह सृष्टि देखता है, यही जाग्रत हो भासती है, इहां सोयकरि स्वप्नविषे जाग्रत होती है, उहां सोयकरि इहां जाग्रत होती है, तौ स्वप्न जाग्रत हुआ, जाग्रतका जाग्रत नहीं होता, जाग्रत जो वस्तु है सो आत्मसत्ता है, तिसविषे जागणा सोई जाग्रतकी जाग्रत है, अवर सब स्वप्नजाग्रत है, जब इहां शयन करता है, तब स्वप्नका जाग्रत सत् होकरि भासता है, इह असत् हो जाता है, अरु स्वप्नविषे उहांतें शयन करता है, अर्थ इह जो स्वप्नतें निवृत्त होता है, अरु जाग्रतविषे जागता है, तब उहां असत् हो जाता है, उह स्वप्नजाग्रतविषे स्मृतिकों प्राप्त होता है, अरु जब जाग्रतविषे सोया अरु स्वप्नविषे जाग्या, तब जाग्रत स्वप्नभावकों प्राप्त भई, अरु जब स्वप्नतें उठिकरि जाग्रतविषे आया, तब स्वप्नरूप जाग्रत स्मृतिभावकों प्राप्त भई, अरु जाग्रत जाग्रतरूप हुई, तौ हे रामजी! स्वप्न तौ कोउ न हुआ, इसकों सर्व ठौर जाग्रत हुई क्यों, अरु जाग्रत तौ कोउ न हुई, काहेतें जो जब जाग्रततें स्वप्नविषे गया, तब स्वप्न जाग्रतरूप हो गया, अरु जाग्रत स्वप्न हो गई, अरु जब स्वप्नतें जाग्रतविषे आया, तब जाग्रत जाग्रतरूप हो गई, अरु जब स्वप्नजाग्रत स्वप्नरूप हो गई, तौ क्या हुआ, जाग्रत कोउ नहीं, सव स्वप्न असत्‌रूप है, अपणे कालविषे इह जाग्रत है अरु है स्वप्नरूप, अरु जब इहांतें मृतक होता है, तब इह जगत् स्वप्नरूप होता है, स्वप्नरूप परलोक जाग्रत होता है, जाग्रतस्मृति प्रत्यक्ष हो जाती है, तौ उसविषे उह नहीं रहता, अरु उसविषे उह नहीं रहता, अरु जाग्रत स्वप्न दोनोंविषे परलोक नहीं रहता, अरु इस जाग्रतविषे देखियें तौ स्वप्न अरु परलोक दोनों नहीं भासते, अरु स्वप्नविषे इस जाग्रत अरु परलोक दोनोंका अभाव हो जाता है, तौ क्या सिद्ध हुआ, इह सिद्ध हुआ जो सब स्वप्नमात्र है॥ हे रामजी! चिरकाल

की प्रतीतिकों जाग्रत कहते हैं, अरु अल्पकालकी प्रतीतिकों स्वप्न कहते हैं, जो आदि स्वप्न हुआ, अरु तिस विषे दृढ अभ्यास हो गया, तिसकरि जाग्रत हो भासती है, तातें जो कछु आकार तुझकों सत् भासते हैं, सो सब निराकार आकाशरूप हैं, कछु बण्या नहीं, जैसे स्वप्नविषे त्रिलोकी जगत्भ्रम उदय होता है, परंतु सब आकाशरूप होता है, तैसे इह जगत्के पदार्थ अविद्याकरि साकार भासते हैं, सो सब निराकार आकाशरूप हैं, जब अधिष्ठान आत्मतत्त्वविषे जागैगा, तब सबही आकाशरूप भासैगा, अरु अद्वैत आत्मतत्त्वविषे जो ग्राह्यग्राहकभाव भासते हैं, सो मिथ्या कल्पना है, वास्तवतें कछु नहीं, सब जगत् मृगतृष्णाके जलवत मिथ्या है, तिसविषे ग्रहण क्या करियें, अरु त्याग क्या करियें, इन दोनोंकी कल्पनाकों दूर करु, इह होवै, इह न होवै, इह कल्पनाकों त्यागिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु, तब सर्व शांति प्राप्त होवैगी ॥ ॥ इति श्रीयो० नि० जाग्रत्स्वप्नप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २४९ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इन अर्थका जो आश्रयभूत है, सो मैं तुझकों कहता हों, इस जगत्के आदि अचेत चिन्मात्र था, तिस विषे किसी शब्दकी प्रवृत्ति न थी, अशब्दपद था, तिसविषे जानणा फुर्या, तिसका आभास जगत् हुआ, तिस आभासविषे जिसके अधिष्ठानकी अहंप्रतीति रही है, तिसकों जगत् आकाशरूप भासता है, उह संसारविषे डुबता नहीं, उसकों अज्ञानका अभाव है, जो डुबता नहीं, तो निकसता भी नहीं, अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका भी अभाव है, उह स्वतः ज्ञानस्वरूप है, अरु जिनकों प्रमाद हुआ है, तिनकों दोनों अवस्था होती हैं, जो ज्ञानवान् है तिसकों जगत् आत्मरूप भासता है, अरु जो ज्ञानतें रहित है, तिसकों भिन्न भिन्न नाम रूप जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! आत्मा निराख्यात है, चारों आख्याततें रहित निराभास सत्ता है, चारों आख्यात तिसविषे आभास हैं, तिनके नाम सुण, एक तो आख्यात है, एक विपर्ययाख्यात है, एक असत्याख्यात है, चउथा आत्माख्यात है, आख्यात कहियें ज्ञान, जिसकों इह ज्ञान है जो मैं आपकों नहीं जाणता, इसका नाम आख्यात है,

अरु देह इंद्रियरूप आपआपकों जानणा इसका नाम विपर्ययाख्यात है, जगत् असत् जानणा इसका नाम असत्याख्यात है, अरु आत्माकों आत्मा जानणा इसका नाम आत्माख्यात है, इह चारों ख्यात चिन्मात्र आत्मतत्त्वका आभास है, आत्मसत्ता निर्विकल्प अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं है॥ हे रामजी! जगत् भी उही स्वरूप है, अवर कछु बण्या नहीं, घनशिलाकी नांई अचिंत्य स्वरूप है, इस उपर एक आख्यान है, श्रवणका भूषण है, तुझकों कहता हौं, सो कैसा उपाख्यान है, जो द्वैत दृष्टिकों नाश करता है, अरु ज्ञानरूपी कमलका प्रकाश होणेहारा सूर्य, अरु परम पावन है, सो तूं श्रवण कर॥ हे रामजी! एक शिला बडी है, जो कोटि योजनपर्यंत तिसका विस्तार है, अनंत है, जो किसी उरतें तिसका अंत नहीं आता, अरु शुद्ध है, निर्मल है, अरु निरासाध है, अर्थ इह जो अणुअणुकरि पुष्ट नहीं भई, अपणी सत्ताकरि पूर्ण है, अरु बहुत सुंदर है, जैसे शालिग्रामकी प्रतिमा होती है, तैसे सुंदर है, शालिग्राम उपर शंख चक्र गदा पद्मकी रेषा होती हैं, तैसे उस उपर रेषा हैं, अरु उहीरूप है, अरु वज्रतें भी क्रूर है, शिलाकी नांई निर्विकाश है, अरु निराकार है, अचेतन है, अरु परमार्थ है, इह जो कछु चेतनता भासती है, सो उस उपर रेषा है, अनंत कल्प बीति गये हैं, परंतु तिसका नाश नहीं होता, अविनाशी है, पृथ्वी आप तेज वायु आकाश यह सब उस उपर रेषा हैं, अरु आप पृथ्वी आदिक भूततें रहित है, अरु शिलावत् है, अरु इन रेषाकों जीवितकी नांई चेतती है॥ ॥राम उवाच॥ ॥हे भगवन्! जो उह अचेतन है, अरु शिलाकी नांई निर्विकाश है, तब उसविषे चेतनता कहांतें आई, जिसकरि जीवितधर्मा हुई, उह तौ अचेतन थी?॥ ॥वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! उह तौ न चेतन है, न जड है, शिलारूप है, पत्थरतें भी उज्ज्वल है, अरु इह चेतनता जो तुम कहते हौ, सो चेतनता स्वभाव करिके दृष्ट आती है, जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होता है, तैसे चेतनता भी इसका स्वभाव है, जैसे जलतें तरंग स्वाभाविक भासते हैं,

तैसे इसतें चेतनता स्वाभाविक भासती है, परंतु भिन्न कछु नहीं, सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु किसीकरि जाणी नहीं जाती, अबलग किसीनें जाणी नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! किसनें उसकों देखी भी है, अथवा नहीं देखी, अरु किसकरि उह भंग भी हुई है कै नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं उस शिलाकों देखी है, जो तुम भी उस शिलाकों देखणेका अभ्यास करौगे तब तुम भी देखौगे, परम शुद्ध है, तिसकों मैल कदाचित् नहीं लगती, चिन्हतें रहित है, पोलतें रहित है, आदि मध्य अंततें रहित है, तिसके भेदणेकों न कोउ समर्थ है, अरु न उह भेदणे योग्य है, अरु तिसतें कोउ अन्य होवै तौ तिसकों भेदै, यह जेते पदार्थ हैं सो सब उसीकी रेषा हैं, सो अनेक उसकी रेषा हैं, पृथ्वी पर्वत वृक्ष आप तेज वायु आकाश देवता दानव सूर्य चंद्रमा इह उसकी रेषा हैं, उसके अंतर स्थित है, उह शिला महासूक्ष्म है, निराकार है, आकाशरूप है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आदि मध्य अंततें रहित है, तब तुम कैसे देखी है, सो कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उह अवर किसकरि जाणी नहीं जाती, अपणे आप अनुभवकरि जाणी जाती है, मैं जो देखी है सो उसी अपणे स्वभावविषे स्थित होकरि देखी है, जैसे स्तंभकों अणस्तंभविषे स्थित होकरि देखैं तैसे मैं तिसविषे स्थित होकरि देखी है, हम भी तिस शिलाकी रेषा हैं, तातें मैं तिसविषे स्थित होकरि देखी है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह कवन शिला है, उस उपर रेषा कवन है सो कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! परमात्मरूपी शिला है, अवर कवन होवै, अरु मैं तेरे तांई शिलारूप कहा है, इन वचन करिके शिलारूप क्यों कहा है, जो घन चेतनरूप है, उसतें इतर कछु नहीं, अरु अचित्तरूप है, तिस उपर पंचतत्त्व रेषा सो रेषा भी उहीरूप है, एक रेषा बडी है, तिसविषे अवर रेषा रहतियां हैं, सो बडी रेषा आकाश है, अवर तत्त्व आकाशविषे रहते हैं, सब पदार्थ आकाशविषे हैं, सो सब उहीरूप हैं, तूंभी उहीरूप है, मैं भी उहीरूप हौं, अवर कछु हुआ नहीं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि चित्त अहंकार सब ब्रह्मरूप हैं, जेते कछु प

दार्थ अरु कर्म भासते हैं, सो सब ब्रह्मरूपी शिलाकी रेषा हैं, अवर कछु हुआ नहीं, सर्व कालविषे ब्रह्मसत्ता ही स्थित है, नानाप्रकारके व्यवहार भी दृष्ट आते हैं, परंतु उहीरूप हैं, अवर कछु है नहीं, तैसे इह भी जाण, घट पट पहाड कंदरा स्थावर जंगम जेता कछु जगत भासता है, सो सब आत्मरूप है, आत्माही फुरणे करिके ऐसे भासता है, जैसे जलही तरंग लहरी होकरि भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्‌रूप होकरि भासती है, अरु जेते वह पदार्थ हैं, पवित्र अपवित्र सत् असत् विद्या अविद्या सब आत्मसत्ताहीके नाम हैं, इतर वस्तु कछु है नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे रामजी! इह सर्वही घन ब्रह्मरूप है, अरु चिन्मात्र घनही यह सर्व व्यापी रही है, सो परमार्थसत्ता घन शांतरूप है, अरु इह भी सर्व परमार्थ घनरूप है, तातें संकल्परूपी कलनाकों त्यागिकरि तिसविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे शिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५० ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पुरुष स्वभावसत्ताविषे स्थित भये हैं, तिनकों जो यह चारों आख्यात कहे हैं, इनतें लेकरि जेते शब्दार्थ हैं, सो शशेके सिंगवत् असत् भासते हैं, जगत्का निश्चय तिनविषे नहीं रहता, सर्व ब्रह्मांड तिनकों आकाशवत् भासता है, अख्यातकी कल्पना भी कछु नहीं फुरती, अरु जेता कछु जगत् दृष्ट आता है सो निराकार परम चिदाकाशरूप है, परम निर्वाणसत्तासों युक्त भासता है, अरु तिसविषे निर्वाण हो जाता है, तातें उही स्वरूप है ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार जाणीकरि तूं तिस पदविषे स्थित होवैगा, तब बडे शब्दकों करता भी तूं निश्चयतें पाषाण शिलावत् मौन रहैगा, देखैगा, खावैगा, पीवैगा, सूंघैगा, परंतु अपणे निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे पाषाणकी शिलाविषे फुरणा कछु नहीं फुरता, तैसे तूं रहैगा, जो चरणोंकरि दउडता जावैगा, तौ भी निश्चयकरि चलायमान न होवैगा, जैसे आकाश अचल है, जैसे सुमेरु पर्वत स्थिर है, तैसे तूं भी स्थित रहैगा, क्रिया तौ सब करैगा, परंतु अं

तरतें क्रियाका अभिमान तुझकों कछु न होवैगा, स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा, जैसे मूढ बालक अपणे परछायेविषे वैताल कल्पता है, सो अविचारसिद्ध है, विचार कियेतें कछु नहीं निकसता, तैसे मूर्ख अज्ञानी आत्माविषे मिथ्या आकार कल्पते हैं, विचार कियेतें सब आकाशरूप है, बण्या कछु नहीं, जैसे मरुस्थलविषे नदी तबलग भासती है, जबलग विचारकरि नहीं देखता, विचार कियेतें नदी नहीं रहती, तैसे यह जगत् विचार कियेतें नहीं रहता, चैतन्यरूपी रत्नका चमत्कार है, चेतन आत्माका किंचन फुरणे करिके जगत्‌रूप हो भासता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस जगत्‌का कारण स्मृति मैं मानता हौं, सो स्मृति अनुभवतें होती है, अरु स्मृतितें अनुभव होता है, स्मृति अरु अनुभव परस्पर कारण हैं, जब अनुभव होता है, तब उसकी स्मृति भी होती है, उह स्मृतिसंस्कार बहुरि स्वप्नविषे जगत्‌रूप हो क्यों भासती है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जगत् जो उपजा है, सो किस संस्कारकरि नहीं उपजा, जो किसी स्मृतिका संस्कार होवै सो नहीं, तब क्या है? काकतालीवत् अकस्मात् फुरि आया है ॥ हे रामजी! इह जगत् आभासमात्र है, आभासका अभाव कदाचित् नहीं होता, काहेतें जो उसका चमत्कार है, जो इतर कछु बण्या होवै, तौ तिसका नाश भी होवै, सो इतर तौ कछु हुआ भी नहीं, नाश कैसे होवै, इह जगत् सत् भी नहीं अरु असत् भी नहीं, अपणे स्वभावविषे आत्मसत्ता स्थित है, जगत् तिसका आभास है ॥ हे रामजी! तूं जो स्मृतिकारण कहता है, सो कारणकार्यभाव आभास तहां भासते हैं, जहां द्वैत है, स्वरूपविषे कछु कारण कार्यभाव नहीं, जैसे स्वप्नमें मरुस्थलविषे जल भास्या, तिसविषे जल मानीकरि गया तौ तूं देखु, आगे जायकरि उसकों उस जलकी स्मृति हुई, अथवा स्वप्नके व्यवहारकर्त्ताकों स्वप्नांतर हुआ, तिस स्वप्नांतरविषे बहुरि जाय व्यवहार करता भया, तौ हे रामजी! तूं देख, जो उसकी स्मृति भी असत् हुई, अरु जो उसनें अनुभव किया सो भी असत् है, तैसे इह संसार भी है, कछु भेद नहीं ॥ हे रामजी! तातें

न जाग्रत है, स्वप्न है, न कोउ सुषुप्ति है, न तुरीया है, तौ क्या है, अद्वैतसत्ता सर्व उत्थानतें रहित चिन्मात्र स्थित है, तातें जगत् भी उहीरूप है, जो क्रिया भी दृष्ट आती है, तौ भी कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ आय मिलती है, तब उसकी क्रिया तौ कछु साची नहीं, तैसे यह क्रिया भी साची नहीं, अरु जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया इन शब्दका अर्थ स्वभाव निश्चय ज्ञानवान् पुरुषकों है, शशेके सिंग अरु आकाशके फूलवत् असत् भासते हैं, जैसे वंध्याका पुत्र अरु जैसे श्याम चंद्रमा शब्द कहणेमात्र हैं, इनका अर्थ असत् है, तैसे ज्ञानीके निश्चयविषे पांचों अवस्थाका होणा असंभव है, अथवा सर्वदाकालविषे जाग्रत है, जाग्रत तिसका नाम है, जहां कछु अनुभव होवै, सो अनुभवसत्ता सदा जाग्रतरूप है, जैसा पदार्थ आगे आता है, तिसीका अनुभव करता है, तातें सर्वदा सर्वकाल जाग्रत है, अथवा सर्वदाकाल स्वप्न है, स्वप्न उसका नाम है, जहां पदार्थ विपर्यय भासै हैं, सो जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो विपर्ययही भासते हैं, विपर्ययतें रहित आत्मा है, तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं, सो विपर्यय हैं, तातें सर्व कालविषे स्वप्नही है, अथवा सर्वदाकाल सुषुप्तिही है, सुषुप्ति तिसका नाम है, जहां अज्ञानवृत्ति होवै, सो अज्ञान कहाता है, मैं आपकों भी नहीं जाणता, न जानणेकरि सर्वदाकाल सुषुप्ति है, अथवा सर्वदाकाल तुरीया है, तुरीया उसका नाम है, जो साक्षीभूत सत्ता होवै, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाका जिसविषे अनुभव होता है, सो सर्वदाकाल सबका अनुभव करता है, सो प्रत्यक् चेतन है, तातें सर्वदाकालविषे तुरीया पद है, अथवा सर्वदाकाल तुरीयातीत पद है, तुरीयातीत तिसकों कहते हैं, जो अद्वैतसत्ता है, जिसके पास द्वैत कछु नहीं, सो सर्वदाकाल अद्वैतसत्ता है, तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है, जैसे मरुस्थलविषे जलका अभाव है, तातें सर्वदाकालविषे तुरीयातीत पद है, अरु जो मुझतें पूछै तौ ॥ हे रामजी ! मुझकों तरंग बुदबुदे झग आवर्त्त कछु नहीं भासते, सर्वदाकाल चिद् समुद्रही भासता है, तिसतें इतर कछु नहीं, उदय अस्ततें रहित

आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व जो भासते हैं, सो भी कछु उपजे नहीं, आत्मसत्ताका किंचन इस प्रकार भासता है, जैसे नख अरु केश उपजते भी हैं, अरु अभाव भी हो जाते हैं, तैसे आत्मविषे जगत् उपजता भी है, अरु लीन भी हो जाता है, जैसे नख अरु केशके उपजणे काटणेविषे शरीर ज्यौंका त्यौं रहता है, तैसे जगत्के उपजणे अरु लीन होणेविषे आत्मा ज्यौंका त्यौं रहता है ॥ हे रामजी! यह जगत् उपजा नहीं, तिसविषे सत् क्या कहियें, अरु असत् क्या कहियें, कल्पना क्या कहियें अरु स्मृति क्या कहियें, अंतर क्या कहियें, अरु बाहिर क्या कहियें, अद्वैत सत्ताविषे कल्पना कछु नहीं बनती यह अर्थ है, अरु जो तूं कहै, बाह्यतें अंतर स्मृति होती है, परंतु अंतरतें बाहिर दृष्ट आती है, तौ अंतर अनुभवकी अपेक्षा करिके हुई है सो भी उत्पन्न नहीं भई, अंतर अरु बाहिर क्या कहौं, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भासि आती है, सो अपणाही अनुभव होता है, उही सृष्टिरूप हो भासता है, उहां तौ अंतर बाहिर कछु है नहीं, तैसे यह जगत् भी अंतर बाहिर कछु है नहीं, सब भ्रमरूप है, जिसकों इच्छा कहते हैं, स्मृति कहते हैं, विद्या अविद्या इष्ट अनिष्ट जेते कछु शब्द हैं, सो सब आत्माके नाम हैं, आत्मातें इतर अवर पदार्थ वस्तु कछु नहीं ॥ हे रामजी! जागिकरि देख सब तेराही स्वरूप है, मिथ्याभ्रमकों अंगीकार करिके क्यौं इतर कछु देखता है, जेते कछु शब्द हैं, सो अर्थविना कहूं नहीं, अरु शब्द अर्थका विचार संकल्पकरि होता है, अरु संकल्प तब फुरता है, जब चित्तविषे अहं अभिमान होता है, सो चित्त आत्मसारविषे लीन करु, जब चित्तकों निर्वाण करैगा, तब सब जगत् शात हो जावैगा, जैसे दर्पणविषे जगतरूपी प्रतिबिंब होता है, सो जगत् कछु वस्तु नहीं, जब चित्त निर्वाण हो जावैगा, तब द्वैतकल्पना सब मिटि जावैगी, यह जो मोक्षशास्त्र मैं तुझकों कहा है, इसके अर्थकों विचार, अरु संकल्पकों त्यागिकरि अपणे परमानंद स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे

निर्वाणप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यभाववर्णनं नाम द्विशताधिकैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५१ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह जगत् किसी कारणकरि उत्पन्न नहीं भया, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, तैसे संवितसत्तासों आदि सृष्टि फुरी है, जैसे जल स्वाभाविक द्रवता करिके तरंगरूप अपणी सत्ताकरि बढता जाता है, तैसे आत्मसत्ताकरि जगत्विस्तार होता है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, जब आत्मसत्ता चिन्मात्रका अभ्यास बहिर्मुख फुरता है, तब अंतःकरण चतुष्टांग होते हैं, तिसविषे जो निश्चय होता है, तिसका नाम नेति हुआ है, प्रथम अकस्माततें स्वाभाविकही कारणविना फुरि आया है, उह आभासमात्र है, जब उह दृढ हो गया, तब नेति स्थित भई, अरु वास्तवतें द्वैत कछु बण्या नहीं, जो सम्यक्दर्शी पुरुष है, तिसकों सब आत्मा दृष्ट आता है, जैसे पत्र फूल फल टास सब वृक्ष उपर हैं, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! वृक्षतें ज्यों फूल फल टास होते हैं, सो किस कारणकरि बुद्धिपूर्वक तौ नहीं होते, तैसे यह जगत भी जाण जो सम्यक्दर्शी है, तिसकों भिन्न भिन्न रूप भी पत्र टास आदिक विस्तार एक वृक्षरूप भासता है, तैसे यथार्थ ज्ञानीकों सर्व आत्माही भासता है, अरु मिथ्यादृष्टिकों भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सम्यक्दर्शीकों एक वृक्षही भासता है ॥ हे रामजी ! वृक्षके देखणेवाला भी अवर होता है, अरु दृष्टांतविषे दूसरा कोउ नहीं, चैतन्य आत्माका आभासही चैत्य है, उही चैतन्यरूप हो भासता है, तिस चैतन्य आभासकों असम्यक् दृष्टि करिके भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं, सम्यक्दर्शी सबकों आत्मरूप देखता है, जैसे पत्र आपकों भिन्न जाणै, फूल फल सब आपकों भिन्न भिन्न जाणै, वृक्ष सब अपणा आप जाणता है, ज्ञानी अज्ञानी सब आत्मरूप हैं, जैसे कंध उपर पुतलियां लिखी होतियां हैं, सो कंधतें इतर कछु नहीं, कंधरूप हैं, तैसे सर्वगत आत्मरूपी कंधके चित्र हैं, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे फूलविषे सुगंधता है, जैसे जलविषे द्रवता है,

जैसे वायुविषे स्पंद है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे फूल अरु सुगंधविषे भेद कछु नहीं, जहां जल है, तहां द्रवता भी है, जहां अग्नि है, तहां उष्णता है, जहां वायु है, तहां स्पंद भी है, तैसे जहां चिद्सत्ता है, तहां जगत् भी है, जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! जगत् आत्माका अभ्यास है, तातें उहीरूप है, यह जगत् भी अचैत्य चिन्मात्र है, अरु जो तूं कहै, अचैत्य चिन्मात्र है, तौ पृथ्वी पहाड आदिक आकार क्यों भासते हैं, तौ हे रामजी! नित्य प्रति जो तुझकों स्वप्न आता है, तिस अनुभव आकाशविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासि आते हैं, तब उहीं चिन्मात्रही आकार होकरि भासता है क्यों, अवर कछु नहीं, तैसे यह भी जाण, जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब अनुभवरूप है, जैसे चिन्मात्र आत्माविषे सृष्टि आभासमात्र है, तैसे कारण कार्यभाव भी आभासमात्र है, परंतु उहीरूप है, आत्मसत्ताही इस प्रकार होकरि भासती है, अरु इह पदार्थ जो कार्य कारण करिके उपजे दृष्ट आते हैं सो अभ्यासकी दृढता करिके भासते हैं, आदि सृष्टि कछु कारण करिके नहीं उपजी, पाछे कारणकरि कार्य उत्पत्ति दृष्ट आती है, यद्यपि कार्य कारण दृष्ट आते हैं, तौ भी कछु उपजा नहीं, सदा अद्वैतरूप है, जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके कार्य कारण भासि आते हैं, परंतु कछु हुये तौ नहीं, सदा अद्वैतरूप हैं, तैसे जाग्रतविषे भी जाण, पदार्थकी स्मृति भी स्वप्नविषे होती है, अनुभव भी स्वप्नविषे होता है, जो स्वप्नही नहीं फुर्या तौ भी मृत्यु कहां है, अरु अनुभव कहां है, न जगत्का अनुभव है, न जगत् है, अनुभवसत्ताही जगत्‌रूप हो भासती है, सो जाग्रतरूप है, जब तिसका अनुभव होवैगा, तब न स्मृति रहैगी, न जगत् रहैगा, तातें हे रामजी! जो अनुभवरूप है, तिसका अनुभव करु, यह जगत् भ्रमरूप है, जो उपजा नहीं सो स्वतःसिद्ध है, अरु जो उपजा है, अरु जिसविषे भासता है, तिसकों उसीका रूप जाण, इतर तौ कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदा

र्थ भासते हैं, सो उपजे नहीं, परंतु उपजे दृष्ट आते हैं सो अनुभवविषे उपजे हैं, अनुभव स्वतःसिद्ध है, तिसविषे जो पदार्थ भासते हैं, सो अनुभवरूप हैं, अनुभवही इस प्रकार हो भासता है, तैसे यह सब अनुभवरूप हैं, इतर कछु नहीं, जेता कछु जगत् है सो आत्मरूप है, तातें हे रामजी ! जेता कछु जगत है, सो अकारण है, आत्माका आभास है, कारण करिके कछु बण्या नहीं, अनंत ब्रह्मांड ब्रह्मसत्ताविषे आभास फुरते हैं, अरु अज्ञानीकों कार्य कारणसहित भासते हैं, तिसविषे नेति हुई है; जब जागीकरि देखैगा, तब सर्व अद्वैतरूप भासैगा, न कोउ नेति है, न जगत् है, जबलग अज्ञान निद्राविषे सोया हुआ है, तबलग जो पदार्थ उस सृष्टिविषे हैं, सोई भासैंगे, जैसा कर्म है सो भासैगा, अरु यह जगत्‌रूपी स्वप्न है, तिसविषे स्वर्गादिक इष्ट पदार्थ हैं, अरु नरकादिक अनिष्ट पदार्थ हैं, तिनके प्राप्ति होणेका साधन धर्म अधर्म हैं, धर्म स्वर्गसुखका साधन है, अधर्म नरकदुःखका साधन है, जबलग अविद्यारूपी निद्राविषे सोया हुआ है, तबलग इसकों यथार्थ जाणता है, जब जागैगा, तब सब आत्मरूप होवैगा, इष्ट अनिष्ट कोउ न रहैगा, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब अनुभवरूप है, सो अनुभव सदा जागृत ज्योति है, तिसकों जाण, अरु जिन पुरुषनें इस अनुभवकों नहीं जाण्या, सो उन्मत्त पशु हैं, काहेतें जो आत्मबोधतें शून्य हैं, सदा समीप आत्माकों नहीं जाणते, इसतें उन्मत्त हैं, उन्मत्त अपणा आप भूलि जाता है, जैसे किसीकों पिशाच लगता है, तब उसकों अपना स्वरूप विस्मरण हो जाता है, पिशाचही देहविषे बोलता है, तैसे जिसकों अज्ञानरूपी भूत लगा है, सो उन्मत्त भया है, अपने आत्मस्वरूपकों नहीं जाणता, अरु विपर्यय बुद्धि करिके देहादिककों आत्मा जाणता है, विपर्यय शब्द करता है, अरु जिनकों स्वरूपविषे अहंप्रतीति है, तिनकों सर्व जगत् आत्मरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जो आदि सृष्टि किसी कारणकरि बणी होती तौ इसके पाछे प्रलय आदिकविषे कछु शेष रहता सो तौ अत्यंत अभाव होता है,

तातें सब जगत् अकारण है, जैसे चिंतामणितें अकारण पदार्थ दृष्ट आता है, तैसे इह अकारण है, न कहूं संस्कार है, न स्मृति है, सब आत्माके पर्याय हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, तातें सर्व जगत् आत्मरूप जाण॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! जो संस्कारतें अनुभव नहीं होता, अरु अनुभवतें स्मृति नहीं होती, तौ प्रसिद्ध इस प्रकार दृष्ट क्यों आते हैं? ॥वसिष्ठ उवाच॥ ॥हे रामजी! यह संशय भी तेरा दूर करता हौं, जैसे हस्तीके बालक मारणेविषे सिंहकों यत्न कछु नहीं होता, तैसे इस संशयके नाश करणेकों मुझे यत्न कछु नहीं, जैसे सूर्यके उदय हुये तिमिरका अभाव होता है, तैसे मेरे वचनों करि तेरा संशय दूर हो जावैगा॥हे रामजी! जेता कछु जगत् तूं देखता है, सो सब चिन्मात्र स्वरूप है, तिसतें इतर कछु नहीं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, परंतु पुतलियां कछु बनियां नहीं, उसके चित्तविषे पुतलियांका आकार है, तैसे आत्मरूपी स्तंभ है, तिसविषे चित्तरूपी शिल्पी पुतलियां कल्पता है॥ हे रामजी! स्तंभसों पुतलियां निकासियां हैं, तौ भी निकसतियां हैं, परंतु आत्मा तौ अद्वैत है, निराकार है, तिसविषे अवर कछु नहीं निकसता, तिसविषे वाणीकी भी गम नहीं, चेतनमात्र है, तिसविषे अहं ऐसा जो फुरणा फुर्या है, तब आपकों चेतन जानत भया, बहुरि आगे शब्दके अर्थ कल्पे हैं, सो शुद्ध अधिष्ठान चेतन आपकों जानत भया, सोई स्वर्ग है, ईश्वर जीव ब्रह्मा इंद्र वरुण कुबेर पृथ्वी जल तेज वायु आकाश देश काल इत्यादिक शब्द अरु अर्थ फुरणेहीविषे हुये हैं, जैसे एकही समुद्रविषे द्रवता करिके आवर्त तरंग फेन बुदबुदे नाम होते हैं, सो सब ब्रह्मके नाम हैं, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, उही फुरणेकरि जगत् आकार हो भासता है, फुरणेतें रहित जगत् आकार मिटि जाता है, परंतु फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्म ज्यौंका त्यौं है, जैसे स्पंदनिस्पंदविषे वायु ज्यौंका त्यौं है, तैसे ब्रह्म ज्यौंका त्यौं है, अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपणाही अनुभव पहाड वृक्ष आ

दिक नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ता यह जाग्रत जगत्रूप हो भासती है, तिसविषे कहूं अंतवाहक हो भासता है, कहूं आधिभौतिक भासता है, कहूं ईश्वर, कहूं जीव हो भासता है, इसतें आदि लें करि शब्द अर्थसंयुक्त जीव फुरता गया है, सो ब्रह्मसत्ता इस प्रकार स्थित भई है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप होतियां हैं, तैसे आत्माकाशविषे जगत् आत्मस्वरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे तिसविषे जगत् आभास है, तैसे स्मृति अनुभव भी आभास है, स्मृति जो संस्कार है, तिसतें जगत्की उत्पत्ति तब कहियें जब स्मृति आभास न होवै, सो तौ स्मृति संस्कार भी आभास है, यह जगत्का कारण कैसे होवै, स्मृति भी तब होती है जो प्रथम जगत् होता है, सो जगत् नहीं तौ स्मृति कैसे होवै, तातें जगत् आभासमात्र है, इसका कारण कोउ नहीं ॥ हे रामजी! स्मृति संस्कार जगत्का कारण तब होवै, जो कछु जगत् आगे हुआ कहौं सो कछु न था, अरु अनुभव तिसका होता है, जो पदार्थ भासता है, सो तौ इस जगत्के आदि कछु जगत्का अंश न था, बहुरि अनुभव कैसे कहौं, जो अनुभवही न हुआ तौ स्मृति किसकों होवै, जो स्मृतिही न हुई तौ बहुरि तिसतें जगत् कैसे कहौं, तातें हे रामजी! आदि जो जगत् फुर्या है, सो अकारण अकस्माततें फुर्या है, जैसे रत्नकी लाट होती है तैसे जगत् है, पाछेतें कारणकार्यरूप भासती है, आदि अकारणरूप है, तातें हे रामजी! जिसका कारण कोउ न होवै, सो जाणियें जो उपजी नहीं, जिसविषे भासती है उहीरूप है, अधिष्ठानतें इतर कछु नहीं, तातें सब जगत् ब्रह्मस्वरूप है, स्मृति भी भ्रमविषे आभास फुरी है, अनुभव भी आभास है, सो ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, अरु आभास भी कछु फुर्या नहीं, आभासकी नांई जगत् भासता है, आत्मसत्ता अद्वैत है, जिसविषे आभास भी नहीं बनता, न स्मृति है, न अनुभव है, न जाग्रत है, न स्वप्न है, यह कल्पना कछु नहीं, तौ क्या है, ब्रह्मही है, अरु फुरणा जो कछु कहते हैं, सो कछु वस्तु नहीं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, तैसे स्पंद चेतना आत्माविषे जग

त् कल्पती है, अरु शिल्पी जो कल्पता है, सो आप भिन्न होकरि कल्पता है, अरु यह चित्तसत्ता ऐसी है, जो अपणेही स्वरूपविषे कल्पती है, जगत्‌रूपी पुतलियां देखिती हैं, सो आत्मआकाशरूपी स्तंभ है, तिसविषे जगत् भी आकाशरूपी पुतलियां हैं, जैसे आकाश अपणे आकाशभावविषे स्थित है, तैसे ब्रह्म अपणे ब्रह्मत्वभावविषे स्थित है, जगत् भिन्न भी दृष्ट आता है, परंतु अचैत्य चिन्मात्रस्वरूप है, भेदभावकों नहीं प्राप्त भया, विकारवान् भी दृष्ट आता है, परंतु विकार कछु हुआ नहीं, जैसे स्वप्नविषे आपही सब स्पष्ट भासता है, तैसे इह जगत् अपणे आपविषे भासता है, परंतु है कछु नहीं ॥ हे रामजी ! यही आश्चर्य है, जो मैं ऐसा उपदेश किया है, अपणे अनुभवकों प्रगट करि कहा है, अरु जीव आप भी जाणते हैं, स्वप्नविषे नित्य देखते हैं, अरु सुणते भी हैं, परंतु निश्चयकरि जाणी नहीं सकते, अरु स्वप्नपदार्थकों मूर्खताकरि त्यागि नहीं सकते इह आश्चर्य है ॥ ॥ इति श्रीयो० निर्वाणप्रकरणे सालभजनकोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५२ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष इंद्रियके इष्ट विषयकों पायकरि सुख नहीं मानता, अरु अनिष्ट विषयकों पायकरि दुःख नहीं मानता, इनके भ्रमतें मुक्त है, जिसकों बडे भोग आनि प्राप्त हुये हैं, अरु अपणे स्वरूपतें चलायमान नहीं होता, तिसकों जीवन्मुक्त जाण ॥ हे रामजी ! जेते कछु शब्द अर्थ हैं, सो जिसकों द्वैतरूप नहीं भासते, सो तूं जीवन्मुक्त जाण, जिस अविद्यारूपी जागृतविषे अज्ञानी जागते हैं, तिसतें ज्ञानवान् सोये रहे हैं, अरु परमार्थरूपी जागृततें अज्ञानी सोये रहे हैं, नहीं जाणते इह अर्थ है, तिसविषे जीवन्मुक्त स्थित हैं, इस कारणतें ज्ञानवान् इष्ट अनिष्ट विषयकों पायकरि सुखी अरु दुःखी नहीं होते, तिनका चित्त सदा आत्मपदविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो पुरुष सुखकों पायकरि सुखी नहीं होता, अरु दुःखसाथ दुःखी नहीं होता, सो जड हुआ, चेतन तौ न हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सुखदुःख तबलग होता है, जबलग चित्तकों जगत्‌का संबंध होता है, जब चित्त जगत्‌के संबंधतें

रहित चिन्मात्र होता है, तब औपाधिक जो हैं, सुख अरु दुःख सो नहीं रहते, जो अपणे स्वभावविषे स्थित पुरुष है, सो परम विश्रामकों प्राप्त होता है, अरु उह सर्वकों करता है, परंतु स्वरूपतें उसकों कर्त्तव्यका उत्थान कछु नहीं होता, निश्चय सदा अद्वैतविषे रहता है, नेत्रसाथ देखता है, परंतु द्वैतकी भावना उसकों कछु नहीं फुरती, जैसे अत्यंत उन्मत्त होता है, तिसकों सब पदार्थ दृष्ट भी आवते हैं, परंतु उसकों पदार्थका ज्ञान कछु नहीं होता, तैसे जिसकी बुद्धि अद्वैतविषे घनीभूत भई है, तिसकों द्वैतरूप पदार्थ नहीं भासते, जिनकों द्वैत नहीं भासता, तिनकों सुखदुःख कैसे भासै, तिन पुरुषनें तहां विश्राम किया है, जहां न शय्या है, न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, सर्व द्वैततें रहित अद्वैतरूपी शय्याविषे विश्रामकरि रहे हैं, संसारमार्गतें उलंघि गये हैं, अरु आत्माके प्रमादकरि इसकों कष्ट होता है, अपणी विभूति विद्याकों त्यागिकरि प्रसन्न होता है, बहुरि संसारके क्रूर मार्गविषे कष्ट पावता है, उह मनुष्य नहीं मानों मृग है, संसाररूपी जंगलविषे कष्ट पावता है, जब तृषाकरि कायर होता है, तब जलकी उर दउडता है, जहां जाता है, तहां मरुस्थलकी नदी भासती है, जल प्राप्त नहीं होता, बहुरि आगे दउडता है, तब अधिक तृषा बढ जाती है, इस प्रकार दउडता दउडता जड हो जाता है, दुःखी होकरि मरि जाता है, परंतु जल प्राप्त नहीं होता, सो जल अरु दउडना अरु जडता अरु मरणा चारौं भिन्न भिन्न सुण ॥ हे रामजी! मनरूपी तौ मृग है, अरु संसाररूपी जंगलहीविषे आनि पडा है, अरु इंद्रियांके विषयरूपी जलाभास हैं, तिनकों सत् जाणिकरि शांतिके निमित्त तृष्णारूपी मार्गकरि दउडता है, सो विषय आभासमात्र हैं, तिनविषे शांतिरूपी जल है नहीं, दउडता दउडता वृद्ध अवस्थाविषे जाय पडता है, तब जड हो जाता है, ऐसे कष्टकों प्राप्त होता है, अरु शांतिरूपी जल नहीं पावता, तृप्त नहीं होता ॥ हे रामजी! इह मनुष्यही मानों पैंडोई है, तिसके शीसपर बडा भार है, अरु क्रूर मार्गविषे चल्या जाता है, अरु मार्गविषे इसकों चोरनें लूटि लिया है,

तिसकरि जलता है, इस पुरुषरूपी पैंडोईके शीसपर जन्मका बडा भार है, संशयरूपी मार्गविषे खडा है, कर्म इंद्रिय ज्ञान इंद्रिय तिनके जो विषय हैं,इष्ट अनिष्ट तिनके रागदोषरूपी तस्करनें इससों विचाररूपी धन हरि लिया है, तिसकरि रागदोषतृष्णारूपी अग्निसाथ जलता है, बडा आश्चर्य है, जो ऐसे क्रूर मार्गकों त्यागिकरि उह परमपदविषे विश्राम पाया है, अन्य आनंदकों त्यागिकरि परमपद आनंदकों प्राप्त भये हैं, तिन मुक्त पुरुषकों संसारका दुःख सुख व्यापी नहीं सकता, परम अद्वैत शुद्ध सत्ताकों प्राप्त भये हैं, सर्वकों देखते हैं, ग्रहण अरु त्यागरूपी जो अग्नि है, तिसकों त्यागिकरि उन परमपदविषे विश्राम पाया है, सदा सोय रहते हैं, प्रगट सुखसाथ जो सोते हैं, सो उही सोते हैं, उनके अंतर सदा शांति रहती है, परंतु जडतातें रहित हैं, आकाशतें भी अधिक सूक्ष्मसत्ताकों प्राप्त हुये हैं, जैसे समुद्रविषे धूड नहीं पाइती, जैसे सूर्यविषे तम नहीं पाइता, तैसे उनविषे लोभ जो है, इंद्रियके इष्ट विषयकी तृष्णा सो नहीं पाइती, तिनतें रहित होकरि तिनोंनें विश्राम पाया है, इह आश्चर्य है; अणुतें अणु होकरि अरु महततें महत होकरि केवल विश्रामवान् हुये हैं ॥ हे रामजी ! जो आत्मसत्ताकी उरतें सोये पडे हैं, तिनकों दुःख होता है, अरु ज्ञानवान् द्वैत जगत्की उर जड हुये हैं, अरु अपणे स्वरूपविषे चेतनकों दुःख कछु नहीं, उह जाग्रतकी उरतें सोये हैं, तिनकों अविद्यक जो जगत् है, दृश्यसंबंध सो दूर हो गया है, उह इस उरतें सोये हैं, उनकों बहुरि दुःख कैसे होवै, उह पुरुष सदा अद्वैतरूप है, जो अनंत जगत्कों करता है, अरु आपकों सदा अकर्त्ता जाणता है, ऐसे आश्चर्यपदविषे तिनोंनें विश्राम पाया है, जगत्के समूहसत्ता समानविषे स्थित करिके विश्राम पाया है, इह आश्चर्य है, अरु उह संपूर्ण क्रियाकों करते हैं, परंतु सदा अक्रियपदविषे स्थित हैं, संपूर्ण पदार्थविषे स्वप्नवत् जाणीकरि सुषुप्त भये हैं, आकाशतें भी अधिक सूक्ष्म हुये हैं, आत्मसत्ताविषे विश्राम पाये हैं, सो आत्मसत्ता आकाशकों भी व्यापी रही है, तिसकों आत्मवत् जाणि करिके स्थित भये हैं,

परम स्वच्छ जो पद है, तिसविषे सर्व शब्द अर्थ आकाशरूप हो जाते हैं, आकाश भी आकाश हो जाता है, तिस पदविषे विश्राम किया है सो आश्चर्य है, अरु नेत्र उसके खुले हुये हैं, अरु सुषुप्तिविषे स्थित हैं, क्या सुषुप्ति है जो दृग् अरु दृश्यभाव उनका दूर हो गया है, अरु जगत्के प्रकाशतें रहित है, अरु परम प्रकाशरूप है ॥ हे रामजी! बाह्य जो भोग पदार्थ हैं, तिनतें रहित है, अंतर आत्माविषे स्थित है, प्रगट जो सोता है, अरु सुषुप्तिविषे जागता है, अरु जाग्रततें उसकों सुषुप्ति है, उह सुषुप्ति साथ सोया है, कर्म करता है, परंतु कर्त्ताकरणभावतें रहित है, क्रोध भी करता है, क्रोधके फुरणेतें रहित है, सर्व उरतें प्रकाशवान् होकरि विराजते हैं, निर्भय होकरि विश्राम करते हैं, कामना करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु तृष्णातें रहित हैं, निःसंकल्प पदविषे स्थित भये हैं, यह आश्चर्य है, जिस क्रियाकी उर देखते हैं, तिसी उर तिनकों शांति भासती है, काहेतें जो एक मित्र तिनके साथ रहता है, तिसकरि दुःख कोउ तिनके निकट नहीं आता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तलक्षणवर्णनं नाम द्विशताधिकत्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥२५३॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! उह मित्र कवन है, ज्ञानीका कोउ कर्म मित्र है, अथवा आत्माविषे विश्रामका नाम मित्र है, यह संक्षेपकरि मुझकों कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! एक अकृत्रिम कर्म है, अपणा सुकर्म उनका नाम है, अपणाही जो प्रयत्न है सो उनका मित्र है, सो मैं कहता हौं सो सुण, आध्यात्मिक अधिदैविक अधिभूतक इह तीन ताप सदा अज्ञानीकों जलाते हैं, सो ज्ञानीकों नहीं भासते, जो बडा कष्ट आनि प्राप्त होवै सो लंघणा कठिन है, बहु कोप होवै सो भी उसकों स्पर्श करता नहीं, जैसे मलकों जल नहीं स्पर्श करता, तैसे ज्ञानीकों कष्ट नहीं स्पर्श करता, काहेतें जो मित्र उसकेसाथ रहता है, जैसे बालकका मित्र बाल होता है, सो बडे भय भी उनका हेतु होता है, तैसे चिरकाल जो ज्ञानवान्नें अभ्यास किया है, सो अभ्यास इसका मित्र हो रहता है, दुष्ट क्रियाकी उर उह विचरणे न

हीं देता, अरु शुभकी उर वर्त्तावता है, जैसे पिता पुत्रकों अशुभकी उरतें वर्जिकरि शुभकी उर लगावता है, तैसे उसकों विचाररूपी मित्र तृष्णातें वर्जना करता है, अरु आत्माकी उर स्थिर करता है, अरु रागदोषरूपी जो अग्नि है, तिसतें निकासीकरि समतारूपी जो शीतलता है, तिसकों प्राप्त करता है, ऐसा उसका विचाररूपी मित्र है, अरु जेते दुःख क्लेश हैं, तिन सबतें उह तराये ले जाता है, जैसे मलाह नदीतें तराये ले जाता है ॥ हे रामजी! विचाररूपी मित्र बहुत सुंदर है, अरु शांतरूप है, सर्व मैलकों जलावणेहारी अग्नि है, जैसे स्वर्णकी मैलकों अग्नि जलायकरि निर्मल करती है, तैसे विचाररूपी अग्नि रागदोषरूपी मलकों जलावती है, अरु जब विचाररूपी मित्र आता है, तब स्वाभाविक इसकी चेष्टा निर्मल हो जाती है, वेदउक्त विचारता है, अरुसब कोउ उसकों देखीकरि प्रसन्न होता है, दया अरु कोमलता अमान अक्रोध आदिक गुण स्वाभाविक आनि प्राप्त होते हैं, जैसे तिलविषे तेल रहता है, जैसे फूलविषे सुगंधि रहती है, अग्निविषे उष्णता रहती है, तैसे विचारकरि ज्ञानीविषे शुभ आचार रहते हैं, अरु विचाररूपी मित्र सूरमा है, जो कोउ शत्रु होता है, प्रथम तिसकों मारता है, अज्ञानरूपी शत्रुकों नाश करता है, जैसे सूर्य तमकों नाश करता है, अरु दीपक प्रकाशवत् साथ होता है, विषयभोगरूपी अंधकूप जो गंदगी है, तिसविषे गिरने नहीं देता, सर्व उरतें रक्षा करता है, अरु जिस उरतें उह पुरुष जाता है, तिस उरतें सबकों प्रसन्नता उपजती है ॥ हे रामजी! वचन तिसका ऐसा होता है, जो कोमल अरु मधुर अरु स्निग्ध क्षोभतें रहित उदार आत्मा, अरु लोकपर उपकार अरु प्रसन्नताकों लिये बोलणा, अरु सुहृदता शांतरूप अरु परमार्थके कारण ॥ हे रामजी! वचन तौ तिसके ऐसे होते हैं, प्रसन्नताकों लिये हुये अरु आप भी सदा प्रसन्न रहता है, जैसे पतिव्रता स्त्री भर्त्तारकों सदा प्रसन्न राखती है, तैसे विचाररूपी मित्र इसकों सदा प्रसन्न राखता है, सदा शुभ आचारविषे राखता है, दान तप यज्ञादिक जो शुभ क्रिया हैं सो आपही करता है, अरु लोकोंतें भी करा

वता है, अरु जिसके अंतरविषे विवेकरूपी मंत्री आता है, तहां अपणे परिवारकों भी साथ ले आता है॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! उसका परिवार कवन है, अरु उसका स्वरूप क्या है, अरु उनका आचार क्या है, संक्षेप तें सबही कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! स्नान दान तपस्या ध्यान यह चारौं उसके बेटे हैं, स्नान तौ इह है जो सदा पवित्र रहता है, यथायोग्य अरु यथाशक्ति दान करता है, अरु बाहिर वृत्तिकों स्थिर अंतर करणा, इसका नाम तप है, अरु आत्माकी वृत्तिविषे चित्तकों लगावणा, इसका नाम ध्यान है, इह चारौं उसके बेटे हैं, हैआत्मदर्शी परंतु वृत्तिकों सदा स्वाभाविक अंतर्मुख व्यवहार होता है, अरु मुदिता इसकी स्त्री है, सदा प्रसन्न रहणा इसका नाम मुदिता है, सो नमस्कारके योग्य है, जैसे चंद्रमा द्वितीयाकी रेषाकों देखिकरि सब कोउ प्रसन्न रहता है, अरु नमस्कार करता है, तैसे तिसकों देखिकरि सब कोउ प्रसन्न होता है, अरु नमस्कार करता है, अरु मुदितारूपी स्त्रीसाथ एक सहेली रहती है, करुणा अरु दया तिसका नाम है, अरु समतारूपी द्वारपालनी सन्मुख खडी रहती है, जब विवेक राजा अंतःपुरविषे आता है, तब सन्मुख होकरि सब स्थान दिखाती है, अरु सदा संगी रहती है, अरु जिस उर राजा देखता है, तिस उर समताही दृष्ट आती है, सो आनंदके उपजावणेहारी है, सो दो पुत्र साथ लेकरि पुरीविषे विचरती है, जिस उरतें राजा भेजता है, तिस उरतें धैर्य अरु धर्मकों लिये फिरती है, जब राजा असवार होकरि चलता है, तब उह भी समरूपी वाहनपर आरूढ होकरि राजा के साथ जाती है, जब राजा शत्रुसाथ लढाई करता है, सो शत्रु कवन हैं, पांचौं विषय शत्रु हैं, तब धैर्य संतोष मंत्रि मंत्र देता है, तब विचाररूपी बाणसाथ तिनकों नष्ट करता है॥ हे रामजी! विचार तिसके सदा संग रहता है, अरु सब कार्यकों करता है, यह स्वाभाविक चेष्टा उसतें होती है, अरु आप सदा अमान रहता है, कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तिसकों कोउ नहीं फुरता, जैसे कागद उपर मूर्त्ति लिखि अभिमानतें रहित होती है, तैसे उह अभिमानतें रहित है, अरु जो परमार्थनिरूपणतें रहित निरर्थक वचन हैं,

तिनके बोलणेतें गुंग है, पत्थरकी शिलावत् अरु निरर्थक संबंध सुनणेतें दोरा है, जैसे पाषाण नहीं सुणता, अरु जो क्रिया शास्त्र लोककरी निषेध है, तिसकी उरतें सब है, जैसे सबसों कछु क्रिया नहीं होती, तैसे उसकों क्रियाका उत्थान नहीं होता, जहां ज्ञानवान् अरु जिज्ञासीकी सभा होती है, तहां परमार्थके निरूपणकों शेषनाग अरु बृहस्पतिकी नांई होता है, संविधान इत्यादिक जो शुभ क्रिया है, सो उससों स्वाभाविक होती हैं, जैसे सूर्य चंद्रमा अरु अग्निविषे प्रकाश स्वाभाविक होता है, तैसे उनविषे स्वाभाविक शुभ क्रिया होती हैं॥

॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जीवन्मुक्तिबाह्यलक्षणव्यवहारवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५४ ॥

॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जगत् वास्तवतें ज्ञानस्वरूप है, आत्मसत्ताका चमत्कार है, अवर कछु बन्या नहीं, ब्रह्मसत्ताही फुरणे करिके इस प्रकार हो भासती है, अवर कारण इसका कोउ नहीं, जब महाप्रलय थी, तब शब्द अर्थ द्वैत कछु न था, तिस अद्वैतसत्तातें जगत् फुरि आया है, सो तिसीतें भासि आया है, जैसे बीजतें वृक्ष उत्पन्न होता है, सो बीज भी जगत्का कोउ न था, तौ किस कारणतें उत्पन्न हुआ, अवर तौ कारण कोउ न था, तातें अब भी जगत्कों महाप्रलयरूप जाण॥ हे रामजी! न कोउ पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, न जगत् है, न आभास है, न फुरणा है, जैसे आकाशके फूलका शब्द निरर्थक है, तैसे इनका होणा भी निरर्थक है, केवल ब्रह्मसत्ता स्वच्छ अपणे आपविषे स्थित है, रूप इंद्रियां मन भी ब्रह्मस्वरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभव है, नानाप्रकारका जगत् आकार अरु इंद्रिय मन होकरि भासता है, अवर तौ कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी यहीरूप है ॥ हे रामजी! सर्व जगत् आत्मरूप है, जैसे कारणविना आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासि आता है सो कछु हुआ नहीं, आकाशहीविषे भासि आता है, तैसे यह जगत् आत्माका आभास है, जिसविषे आभास फुर्या सो अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, जेते कछु पदार्थ तुझकों भासते हैं, सो ब्रह्मस्वरूप जाण, जैसे मनोरा

ज्यकी सृष्टि होती है, सो अपणे अनुभवविषे होती है, उसका स्वरूप अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे सृष्टिके आदि जो अनुभव होता है, सो अनुभवरूप है, अवर कछु उपज्या नहीं, उही अनुभवसत्ता इस प्रकार भासती है ॥ हे रामजी ! देशतें देशांतरकों संवित प्राप्त होती है, तिसके मध्यविषे जो अनुभव है, सो तेरा स्वरूप है, अवर सब आभासमात्र है, जाग्रत देशकों त्यागिकरि स्वप्नशरीरसाथ मिली नहीं, जो जाग्रत स्वप्नदेशका मध्य है, सो मध्यविषे ब्रह्मसत्ता तेरा स्वरूप है, स्वप्रकाशरूप अपणे आपविषे स्थित है, जाग्रत जो जगत् भासता है, सो भी उसीका स्वभाव है, जैसे रत्नका स्वभाव चमत्कार होता है, अग्निका स्वभाव उष्णता है, जलका स्वभाव द्रवणा है, पवनका स्वभाव फुरणा है, तैसे ब्रह्मका स्वभाव जगत् है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! यह आश्चर्य है जो अज्ञानी सत्कों असत् जाणते हैं, अरु असत्कों सत् जाणते हैं, जो अनुभवसत्ता है, तिसकों छिपावते हैं, अरु शशेके सिंगवत् जगत् है, तिसकों प्रत्यक्ष जाणते हैं, सो मूर्ख हैं, तिनकों क्या कहियें, सबका प्रकाशक आत्मसत्ता है, जिसकों तूं सूर्य देखता है, सो उही परम सूर्य देव होकरि भासता है, चंद्रमा अरु अग्नि उसीके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, सबका प्रकाश तेजसत्ता उही है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे सूक्ष्म अणु होता है, तैसे आत्मसत्ताविषे सूर्यादिक भासते हैं, जिसकों साकार कहते हैं, अरु निराकार कहते हैं, सो सब शशेके सिंगवत् हैं, ज्ञानवान्कों ऐसे भासता है, जो जगत् कछु उपजा नहीं तौ मैं क्या कहौं, जहां सर्व शब्दका अभाव हो जाता है, तिसके पाछे चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है, तहां शून्यका भी अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिनकों तूं जीता है, सो जीता भी कोउ नहीं, जो जीता नहीं तौ मुआ कैसे होवै, जो कहीयें जीता है, तौ जैसे जीता है, तैसे मृतक है, मृतक अरु जीतेविषे कछु भेद नहीं, तातें सर्व शब्दतें रहित अरु सबका अधिष्ठान उही सत्ता है, तिसविषे नानात्व भासता भी है, परंतु हुआ कछु नहीं, पर्वत जो

स्थूल दृष्ट आते हैं, सो अणुमात्र भी नहीं, जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं, परंतु कछु हुये नहीं, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसतें जगत् भासता है ॥ हे रामजी! जो परमार्थसत्तातें जगत् भासि आया सो अवर तौ कोउ न हुआ क्यौं, तातें उही सत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, केई कहते हैं, इस आत्माविषे हैं, केई कहते हैं, इस आत्माविषे नहीं, सो आत्माविषे कछु दोनौं शब्दका अभाव है, अरु अभावका भी अभाव है, इह भी तेरे जानणेके निमित्त कहता हौं, स्वस्थ है, परम शांतरूप है, उस अरु तेरेविषे कछु भेद नहीं, परिपूर्ण अच्युत अनंत अद्वैत है, सोई जगत्‌रूप होकरि भासता है, जैसे कोउ पुरुष शयन करता है, तब सुषुप्तिविषे अद्वैतरूप हो जाता है, बहुरि सुषुप्तितें स्वप्न फुरि आता है, बहुरि सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है, तौ उपज्या क्या अरु लीन क्या भया, स्वप्नके आदि भी अद्वैतसत्ता थी अरु अंत भी उही रही, अरु मध्य जो कछु भास्या, सो भी उहीरूप हुआ, आत्मातें इतर तौ कछु न हुआ क्यौं, तातें जेता कछु जगत् भासता है, सो ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! हमकों तौ सदा अनुभवरूप जगत् भासता है, हम ऐसे नहीं जाणते जो अज्ञानीकों क्या भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टितें जाग्या है, तिसकों अद्वैत अपणा आप भासता है, तैसेही तुरीयाविषे भासता है, तुरीया अरु जाग्रतविषे भेद कछु नहीं, जाग्रतही नाम तुरीयाका है, जाग्रत तुरीयारूप है, यह भी क्या कहणा है, सबही अवस्था तुरीयारूप हैं, तुरीया नाम है जाग्रतसत्ताका, जो अनुभव साक्षी ज्योति है, सो जाग्रतविषे भी साक्षी अनुभवरूप है, स्वप्नविषे साक्षीरूप है, सुषुप्तिविषे भी साक्षीरूप है, तातें सब तुरीयारूप है, परंतु जिसकों स्वरूपका अनुभव हुआ है, तिस ज्ञानवान्‌कों ऐसेही भासता है, अरु ज्ञानीकों भिन्न भिन्न अवस्था भासती है ॥ हे रामजी! एक पदार्थका वृत्तिनें त्याग किया है, अरु दूसरे पदार्थविषे लगी नहीं, उह जो मध्यविषे अनुभवज्योति है, तिसकों तूं आत्मसत्ता जाण, अरु तिसविषे जो बहुरि कछु भास्या,

सो भी उहीरूप जाण, जैसे जाग्रतकों त्यागिकरि स्वप्नके आदि साक्षी अनुभवमात्र होता है, तिस सत्ताविषे स्वप्नशरीर अरु पदार्थ भासते हैं, सो भी आत्मरूप हैं, तैसे जो कछु जाग्रत शरीर अरु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मरूप हैं, जब तुम ऐसे जाणोगे तब तुमकों दुःख कोउ स्पर्श न करैगा, जैसे स्वप्नकी सृष्टिविषे अपणे स्वरूपकी स्मृति आई, तब दुःख भी अदुःख होता है, बोलणा चालणा खाणा पीणा देणा इनतें आदि लेकरि शब्द अरु अर्थ होते हैं, अरु युद्ध कर्म द्वैतरूप होते हैं, सो सब अद्वैत अपणा आप हो जाते हैं, व्यवहार भी सब करता है, परंतु अपणे निश्चयविषे कछु नहीं फुरता, तैसे जो पुरुष अपणे स्वरूपविषे जागे हैं, तिनकों सब जगत् आत्मरूपही भासता है, जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक है, जैसे बरफविषे शीतलता स्वाभाविक है, तैसे ज्ञानवान्कों आत्मदृष्टि स्वाभाविक है, अवर लोककों यह दृष्टि यत्नकरि प्राप्त होती है, अरु ज्ञानवान्कों स्वाभाविकहोती है, जिसकों तुम इच्छा कहते हो, सो ज्ञानवान्कों सब भ्रमरूप है, अनिच्छा भी ब्रह्मरूप भासती है, अरु ज्ञानवान्कों आत्मानंद प्राप्त हुआ है, अपणा जो शुभावसर है, सदा तिसविषे स्थित है, अवर कल्पना उसकों कोउ नहीं उठती, उह विद्यमान निरावरण दृष्टिकों लेकरि स्थित होता है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्र० द्वैतैकताऽभाववर्णनं नाम द्विशताधिकपंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५५ ॥

॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे पृथ्वी आदिक पदार्थ भासते हैं, सो अविद्यमान हैं, कछु है नहीं, तैसे पिता माता जो आदि ब्रह्माजी हैं, तिसकों भी आकाशरूप जाण, उह भी कछु हुआ नहीं, आत्मसत्तातें इतर कछु उसका होणा नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु बुदबुदे उठते हैं, सो स्वाभाविक हैं, तरंग शब्द कहणा भी उनकों नहीं बनता, उह तौ जलरूप हैं; तैसे जिसकों तुम ब्रह्माजी कहते हो सो अवर कोउ नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, ब्रह्माजी इस जगत्का विराट् है, जैसे पत्र फूल फल टास वृक्षके अंग हैं,

तैसे सब भूत विराट्के अंग हैं, जो विराट ब्रह्माही आकाशरूप है, तौ तिसके अंग जगत्की वार्त्ता क्या कहियें॥ ॥ हे रामजी! विराट्के न प्राण हैं, न आकार हैं, न इंद्रियां हैं, न मन है, न बुद्धि है, न इच्छा है, केवल अद्वैत चिन्मात्रसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जो विराट् नहीं तौ जगत् कैसे होवै, जो तूं कहे, आकाशरूपके अंग कैसे भासते हैं? तौ ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे बडे पहाड पर्वत प्रत्यक्ष दृष्ट आते हैं, परंतु कछु बने नहीं, आकाशरूप हैं, तैसे आदि विराट् भी कछु बन्या नहीं, आकाशरूप है, तिसके अंग में साकाररूप कैसे कहौं, सब आकार संकल्पपुरकी नांई कल्पित है, एक आत्मसत्ताही सर्वदाकाल ज्यों की त्यों स्थित है, तिसविषे स्मृति क्या कहियें, अरु अनुभव क्या कहियें, अनुभव स्मृति भी तिसका आभास है, जैसे समुद्रविषे तरंग आभास होते हैं, तैसे आत्माविषे अनुभव अरु स्मृति भी आभास है, अरु स्मृति भी तिसकी होती है, जिसका प्रथम अनुभव होता है, सो अनुभव भी जगत्विषे होता है, जहां जगत् भी उपजा न होवै तौ अनुभव अरु स्मृति तिसकी कैसे होवै, तातें न अनुभव है, न स्मृति है, इस कल्पनाकों त्यागि देहु, जहां पृथ्वी होती हैं, तहां धूड भी होती है, जहां पृथ्वीतें रहित आकाश ही होवै तहां धूड कैसे उडै, तैसे जहां पदार्थ होते हैं, तहां स्मृति अनुभव भी होता है, जहां पदार्थही नहीं तौ यह कैसे होवै, तातें दोनौंका अभाव है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्मृतिवान्विषे इष्ट, स्मृतिका अनुभव तौ प्रत्यक्ष होता है, प्रथम पदार्थका अनुभव होता है, पाछे उसकी स्मृति होती है, तिस स्मृति संस्कारतें बहुरि अनुभव होता है, ऐसेही भ्रमादिकका क्यौं न होवै, यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, तुम कैसे इसका अभाव कहते हौ, अरु अभावविषे विशेषता क्या है? ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! स्मृतितें अनुभव तहां होता है, जहां कार्यकारणभाव होता है, अरु ब्रह्मातें आदि लेकरि काष्ठपर्यंत जेता कछु जगत् तुझकों भासता है सो सब आकाशरूप है, कछु बन्या नहीं, अविद्यमानही भ्रमकरि विद्यमान भास

ता है, जैसे सूर्यकी किरणाविषे जल भासता है, सो अविद्यमान है, भ्रमकरि जल भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरि भासता है, अरु स्मृति तिसकी होती है, जिस पदार्थका प्रथम अनुभव होता है, जो कहियें भ्रमादिक स्मृति संस्कारतें उपजा है, तौ ऐसे नहीं बनता, काहेतें जो प्रथम तौ ज्ञानवान्का स्मृतितें होणा नहीं होता तौ तिनका स्मृति कारण कैसे कहियें, अरु द्वितीय यह है, जो इस जगत्के आदि कोउ जगत् न था, जिसकी स्मृति मानियें, इस जगत्के आदि केवल अद्वितीय आत्मसत्ता थी, तिसविषे स्मृति क्या अरु अनुभव क्या, तातें ब्रह्मादिकका होणा अरु जगत्का होणा किसी कारणकार्यभावकरि नहीं, अकारण है ॥ हे रामजी! प्रथम तौ तुम यह देखु, जो ज्ञानीकों जगत् नहीं भासता तौ स्मृति किसकी कहियें, उसकों तौ केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है, जैसे सूर्यकों रात्रिकी स्मृति नहीं होती तैसे ज्ञानीकों जगत्की स्मृति नहीं होती, हमारे निश्चयविषे तौ यह है, जो जगत् न हुआ है, न आगे होवैगा, केवल अपणे आपविषे ब्रह्मसत्ता स्थित है, सो अद्वैत है, अवर सब तिसका आभास है, जो आभासकों सत् जाणता है, तौ स्मृतिकों भी सत् जाण, अरु जो आभासकों असत् जाणता है, तौ स्मृतिकों भी असत् जाण, जैसे स्वप्नविषे सृष्टिका आभास होता है, तिसविषे अनुभव भी होता है, अरु स्मृति भी होती है, जागेतें सृष्टि अनुभव स्मृतिका अभाव हो जाता है, तैसे परमात्मसत्ता अद्वैतके जागृतविषे अनुभव अरु स्मृतिका अभाव है, तिसविषे जगत् कछु बन्या नहीं, जैसे कोउ पुरुष मरुस्थलविषे भ्रमकरि नदी देखता है, अरु सत् जाणीकरि उसकी स्मृति करता है, जो नहीं देखी थी सो उसके निश्चयहीविषे नहीं है, अवर कछु नदी तौ नहीं, जो नदीही असत् है, तौ स्मृति कैसे सत् होवै, तैसे अज्ञानीके निश्चयविषे जगत् भास्या है, सो जगतही असत् है, तिसकी स्मृति अनुभव कैसे होवै, ज्ञानवान्के निश्चयविषे ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी! स्मृति जो होती है, सो पदार्थकी होती है, सो पदार्थ कोउ नहीं, सर्व ब्रह्मही अपणे आप

विषे स्थित है, जैसे जैसा तिसविषे फुरणा होता है तैसाही होकरि भासता है, परंतु अवर कछु वस्तु नहीं, जैसे वायु चलता भी है, अरु ठहरता भी है, सो चलणे अरु ठहरणेविषे वायुकों भेद कछु नहीं; तैसे ज्ञानवान्कों जगतके फुरणे अफुरणेविषे ब्रह्मसत्ता अभेद् भासती है, कारणकार्य नहीं भासता, जैसे पत्र टास फूल फल सब वृक्षके अवयव हैं, तैसे जगत् आत्माके अवयव हैं, आत्माविषे प्रगट होते हैं, बहुरि लीन भी हो जाते हैं, इतर कछु नहीं, जब चित्त स्वभाव फुरता है, तब जगत् होकरि भासता है, कछु आरंभ अरु परिणाम करिके नहीं होता, आभासमात्र है, जैसे घट पट आदिक आत्माका आभास है, तैसे स्मृति भी आभास है, स्मृति भी जगत्विषे उदय भई है, जो जगत्ही असत् है, तौ स्मृति कैसे सत् होवै, अरु जो यथार्थदर्शी हैं, तिनकों सब ब्रह्मरूप भासता है, हमकों न कछु मोक्ष उपाय भासता है, न इसका कोउ अधिकारी भासता है, हमारे निश्चयविषे अद्वैत ब्रह्मसत्ताही भासती है, जैसे नट स्वांगकों धारता है, सो सब स्वांगकों आभासमात्र जाणता है, किसी स्वांगकों सत् नहीं जाणता, सबविषे स्वांगी अनागत जाणता है, तिसतें इतर कछु नहीं, तैसे हमकों ब्रह्मतें इतर कछु नहीं भासता, अरु अज्ञानीके निश्चयकों हम नहीं जाणते, जिस प्रकार उसकों जगत्शब्द है, सो उसके निश्चयकों कोउ नहीं जाणता है, हमारे निश्चयविषे सब चिन्मात्र है, अज्ञानीकों जगत् द्वैतरूप भासता है, अरु विपर्ययभावना होती है, ज्ञानवान्कों चिन्मात्रतें इतर कछु नहीं भासता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपणे अनुभवविषे स्थित होती है, सर्वका अधिष्ठान अनुभव सत्ता है, परंतु निद्रादोष करिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे अज्ञानीकों जगत् भिन्न भिन्न भासता है, अरु जो जागे हुये ज्ञानवान् हैं, तिनकों भिन्न कछु नहीं भासता, न उनकों अविद्या भासती है, न मूर्खता, न मोह भासता है, सब अपणा आप हमकों ब्रह्मस्वरूप भासता है, जहां कछु दूसरी वस्तु बनी नहीं, तहां स्मृति अरु अनुभव किसका कहियें, यह कलना सबही मिथ्या है ॥ हे रामजी! सर्व अर्थका जो अर्थभूत है, सो ब्र

ह्म है, सब पदार्थ तिसविषे कल्पित हैं, स्मृति अरु अनुभव मनविषे होता है, सो मन आत्माविषे ऐसे है, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जलाभास होता है, तिसाविषे स्मृति क्या कहियें, अरु अनुभव क्या कहियें, सब कल्पित है, यह अर्थ है, अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व आत्माविषे कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, ज्ञानवान्कों सदा ऐसेही भासता है, आभास भी आत्माविषे आभास है, कारणकार्यभाव कदाचित् नहीं भासता, जैसे सूर्यकों अंधकार कदाचित् नहीं भासता, तैसे ज्ञानवान्कों कारणकार्यभाव दिखाई नहीं देता, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैतसत्ता होती है, तिसविषे अकारण स्वप्नकी सृष्टि फुरी आती है, तैसे अद्वैतसत्ताविषे अकारण आदि सृष्टि फुरी आई है, न पृथ्वी है, न कोउ अवर पदार्थ है, सब चिदाकाशरूप है, अवर कछु बन्या नहीं, आभासमात्र जगत्विषे स्मृतिकी कल्पना कैसे होवै ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे स्मृत्यभावजगत्परमाकाशवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५६ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जिसविषे सर्व अनुभव होता है, तिसके देहविषे अहंप्रत्यय किस प्रकार होती है, उह तौ सर्वात्मा है, तिस सर्वात्माकों एक देहविषे अहंप्रत्यय होणा यह क्योंकरि होता है, अरु काष्ठ पाषाण पर्वत अरु चेतनका अनुभव किस प्रकार हो गया है, उह तौ अद्भुत स्वरूप है, तिसविषे जड चेतन यह दोनों भेद कैसे हुये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जैसे शरीरविषे हाथ आदिक अपणे अंग हैं, तिन सर्व अंगोंविषे एक शरीर फुरणा व्याप्या हुआ है, अरु जो तिन अंगोंविषे एक अंग कों पकडीकरि कहै, जो नाम ले कवन है, तब उह अपणी नाम संख्या कहता है, तौ तूं देख जो उस एक अंगविषे अपणा आप कहा क्यौं, परंतु सर्व अंगोंविषे उसकी आत्मता तौ नाश नहीं हो जाती है, तैसे आत्मा अनुभवरूप है, तौ भी एक अंगविषे उसकी आत्मता फुरती है, तिसकरि उसकी सर्वात्मता खंडन तौ नहीं हो जाती; जैसे पत्र फूल फल टास आदिक सर्व अंगविषे वृक्ष एकही व्याप्या हुआ है, परंतु जो एक टास

अथवा पत्रकों पकडिकरि कहता है तौ कहता है, यह वृक्ष है, है तौ इसके एक अंगविषे वृक्षभावना कहणा, इसविषे वृक्षका सर्वात्मभाव नष्ट नहीं होता, तैसेही सर्वात्मा एक देहविषे अहंभाव सिद्ध होता है, जड अरु चेतन भी दोनौं भाव एकहीके धारे हैं, एकहीके दोनौं स्वरूप हैं, जैसे एकही शरीरविषे दोनौं सिद्ध होते हैं; हाथ पाव आदिक जड हैं, अरु नेत्र इसका द्रष्टा चेतन है, सो एकही शरीर दोनौं धारे हैं, अरु दोनौं एकही शरीरका स्वरूप है, तैसे एक आत्मानें दोनौं धारे हैं, अरु एकहीके स्वरूप हैं, जैसे वृक्ष अपणे अंगकों धारता है, अरु वृक्षस्वभावकों भी धारता है, तैसे सर्वात्मा सर्वकों धारता है, जैसे स्वप्नसृष्टि सर्वकों अनुभव धारती है, अरु सर्व क्रियाकों भी धारती है, तैसे आत्मसत्ता सर्व जगत् अरु जगत्की सर्व क्रियाकों धारती है, काहेतें जो सर्वात्मा है, है सो क्यों न धारै, जैसे एकही समुद्रविषे अनेक तरंग उठते हैं, परंतु सबही समुद्रके आश्रय हैं, अरु उहीरूप हैं, तैसे जेते कछु जीव हैं, सो परमात्माविषे फुरते हैं, अरु परमात्माके आश्रय हैं, अरु उहीरूप हैं, जैसे तरंग आपकों जाणै जो मैं जलही हौं, तब तरंगसंज्ञा उसकी जाती रहती है, जलरूपही देखता है, तैसे जीव जब परमात्मासाथ आपकों अभेद जाणै जो मैं आत्माही हौं, तब जीवत्वभाव उसका अभाव हो जाता है, परमात्माही देखता है॥ हे रामजी! जैसे जलविषे द्रवता करिके तरंग भासता है, परंतु तरंग जलतें इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदन करिके आदि ब्रह्मा फुर्या है, तिसनें यह जगत् मनोराज्यकरि कल्प्या है, सो आकाशरूप निराकार है, अवर कछु बन्या नहीं, अरु जो विराट्ही आकाशरूप हुआ तौ उसका शरीर कैसे साकार होवै, उह भी निराकार है, जैसे अपणा अनुभव स्वप्नविषे पर्वत नदियां जड चेतन होकरि भासता है, तैसे जेता कछु जगत् भासता है, सो सर्व आत्मरूप है॥ हे रामजी! जैसे एक निद्राके दो स्वरूप हैं, स्वप्न अरु सुषुप्ति, तैसे एकही आत्मानें जड अरु चेतन दो स्वरूप धारे हैं, अरु जगत् आत्माविषे कछु बन्या नहीं,

यह आभासरूप है, आत्मसत्ताही अपणे वचनद्वारा जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे आकाशविषे घन शून्यताकरि नीलता भासती है, सो अविचारसिद्ध है, नीलता कछु बनी नहीं, तैसे आत्माविषे घन चेतना करिके जगत् भासता है, परंतु जगत् आकार कछु बन्या नहीं, सर्वदा काल आत्मा अद्वैत निराकार है, अनंत सृष्टि आत्माविषे आभास उपजीकरि लीन हो जाती हैं, आत्मा ज्यौंका त्यौं है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजी लीन हो जाते हैं, परंतु जलरूप है, तैसे परब्रह्मविषे सृष्टि परब्रह्मरूप है ॥ हे रामजी! यह जगत् विराट्का शरीर है, शीस उसका महाआकाश है, दशौं दिशा तिसकी भुजा हैं, अरु पृथ्वी उसके चरण हैं, पातालरूप तलियां हैं, अंतरिक्ष मध्यलोक उसका उदर है, सर्व जीव तिसकी रोमावली है, इनतें लेकरि सर्व पदार्थ विराट्के अंग हैं, सो विराट् आकाशरूप है, जैसे विराट् ब्रह्माजी आकाशरूप हैं, तैसे तिसका जगत् भी आकाशरूप है, तातें सर्व जगत् विराट्‌रूप है, सो ब्रह्मही है, अवर कछु बन्या नहीं, चंद्रमा सूर्य उसके नेत्र हैं, मैं अरु तूं यह इनतें आदि लेकरि जेते कछु शब्द हैं तिन शब्दका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म मैं हौं, कैसा हौं, जिसविषे दूसरा बन्या कछु नहीं, सदा मैं अपणेही आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी! जेते कछु शास्त्रके मत हैं, शून्यवादी पांचरात्रिक शैवी शाक्ततें आदि लेकरि सो सबका अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, सबका साररूप उही सर्वात्मरूप है, जैसा किसीकों निश्चय होता है, तैसा उनकों फल सर्वरूप होकरि देता है, अवर कछु बन्या नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकसप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५७ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस जगत्के आदि शुद्ध ब्रह्मसत्ता थी, तिसविषे जो जगत् आभास फुर्या है, तिसकों भी तूं उही स्वरूप जाण, जैसे स्वप्नके आदि अनुभव आकाश होता है, तिसविषे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, सो अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे यह जगत् अनुभवरूप है, इतर कछु नहीं, जै

से समुद्र द्रवता करिके तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्मचेतनता जगत्‌रूप हो भासती है, सो जगत् भी उहीरूप है॥ हे रामजी! वास्तवतें न कोउ दुःख है, दुःख अरु सुख अज्ञानकरि भासते हैं, जैसे एक निद्राविषे दो वृत्ति भासती हैं, एक स्वप्नवृत्ति, अरु एक सुषुप्तिवृत्ति, तैसे अज्ञानीकी दो वृत्ति होती हैं, सुखकी अरु दुःखकी, अरु ज्ञानवान्‌कों सर्व ब्रह्मस्वरूप है, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नतें जागि उठता है, तौ उसकों स्वप्नकी सृष्टि असतरूप भासती है, तैसे ज्ञानवान्‌कों यह सृष्टि असत् भासती है, जैसे मरुस्थलकी नदीके जलका अत्यंत अभाव जिसनें जाण्या है, सो जलपानकी इच्छा नहीं करता, तैसे सम्यक्‌दर्शी जगत्‌कों असत् जाणता है, तातें जगत्‌के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, अरु जो असम्यक्‌दर्शी है, तिसकों जगत् सत् भासता है, सो किसी पदार्थकों ग्रहण करता है, किसीका त्याग करता है॥ हे रामजी! ईश्वर जो परमात्मा है, तिसविषे जगत् इस प्रकार है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, अरु जो तूं कहे अविद्याही जगत्‌का कारण होवै, तौ अविद्या जगत्‌का कारण कहाती है, जो जगत्‌तें प्रथम सिद्ध होती है, सो अविद्या तौ अविद्यमान है, जैसे परमात्माविषे जगत् आभासमात्र है, तैसे अविद्या भी आभासमात्र है, जो आपही आभासमात्र होवै, सो जगत्‌का कारण कैसे कहीयें, जगत्‌का आभास अरु अविद्याका आभास एकठाही फुर्या है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासि आती है, तिसविषे घटपटादिक पदार्थ भासते हैं, सो किसी कुलालनें मृत्तिका लेकरि तौ नहीं बनाये, जैसे घट भास्या है, तैसे कुलाल अरु मृत्तिका भी भासी आये, सबका भासणा एकठाही होता है, तैसे जगत् अरु अविद्या एकठेही फुरे हैं, अविद्या पूर्व तौ सिद्ध नहीं होती, तौ अविद्याकों जगत्‌का कारण कैसे मानियें॥ हे रामजी! परमात्मातें जगत् अरु अविद्या एकठाही आभास फुर्या है, सो आभास कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, न कहूं अविद्या है, न जगत् है, सदा ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता स्थित

है ॥ हे रामजी! निर्विकल्पविषे जगत्का अत्यंत अभाव होता है, सो निर्विकल्प कैसे होवै, जो निर्विकल्प होता है, तब जडता आती है, अरु जब विकल्प उठता है, तब संसार उदय होता है, अरु जब ध्यान लगाता है, तब ध्याता ध्यान ध्येय त्रिपुटी हो जाती है, इस प्रकार तौ निर्विकल्पता सिद्ध नहीं होती, काहेतें जो निर्विकल्पविषे भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, निर्विकल्प तिसका नाम है, जहां चित्तकी वृत्ति न फुरै, तौ तब भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, काहेतें जो तहां भी अभाववृत्ति रहती है, सुषुप्तिवत् उह जडात्मक सुषुप्तिरूप है, अरु सविकल्प सुषुप्ति है, तिसकेविषे भी स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, तातें सम्यक् बोधका नाम निर्विकल्प है, सम्यक् बोध निर्हिकल्पता करिकै जगत्का अत्यंत अभाव जिसकों भया है, सो जीवन्मुक्त है, उही निर्विकल्प कहाता है, अरु उही परम जडता है, जहां जगत्का परम असंभव है॥ हे रामजी! उह जो निर्विकल्प अरु सविकल्प हैं, तिसकरि स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, इह दोनौं मनकी वृत्ति हैं, जैसे एक निद्राकों दो वृत्ति हैं, स्वप्नसुषुप्तिरूप, तैसे इह निर्विकल्प अरु सविकल्प मनकी वृत्ति हैं, निर्विकल्प सुषुप्तिरूप पत्थरवत् अरु सविकल्प स्वप्नवत् चंचलरूप, अरु निर्विकल्पविषे भी अभाववृत्ति रहती है, तिसकरि भी मुक्ति नहीं होती, मुक्ति तब होती है, जब अत्यंत अभाव दृश्यका होवै तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी! आत्मअनुभव आकाशतें इतर कछु उत्थान नहीं होता, तिसका नाम अत्यंत सुषुप्ति निर्विकल्पता है॥ हे रामजी! ऐसे होकरि तूं चेष्टा भी करैगा तौ भी कर्तृत्व अरु भोक्तृत्वका अभिमान तुझकों न होवैगा, आत्माकों अद्वैत जानणा, जगत्कों अत्यंत अभाव जानणा, इसका नाम बोध है, इस बोधकी दृढता होणी औ तिसके ध्यानकी दृढता होवै, तब उसका नाम परमपद है, उसीका नाम निर्वाण है, तिसीका नाम मोक्ष है, सो कैसा पद है, किंचन भी उही है, अकिंचन भी उही है, सर्वदाकाल अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे न नानात्व कहणा है, न अनाना शब्द है, न सविकल्प कहता है, न निर्विकल्प है, न सत् है, न असत् है,

न एक है, न दो हैं, सर्व शब्दका अंत है, जिसविषे किसी शब्द करिके वाणी नहीं प्रवर्त्तती, तिस सत्ताकों प्राप्त होणेका उपाय मैं कहता हौं॥ हे रामजी! यह मोक्ष उपाय ग्रंथ मैं तुझकों कहा है, इसकों विचारणा, जो पुरुष अर्धप्रबुद्ध है, जो पदपदार्थ जानणेवाला है, अरु तिसकों मोक्षकी इच्छा है, सो इस ग्रंथकों विचारता है, अरु शुभ आचार करिके बुद्धिकों निर्मलकरता है, अरु अशुभ क्रियाका त्याग करै, तिसकों शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी॥ हे रामजी! जो पद मोक्ष उपाय शास्त्रके विचारकरि प्राप्त होता है, सो तीर्थ स्नान तप दानकरि नहीं प्राप्त होता, अरु तपदानादिक करिके स्वर्गकों प्राप्त होता है, मोक्षकों नहीं प्राप्त होता, मोक्षपद अध्यात्मशास्त्रके अर्थ अभ्यासकरि प्राप्त होता है, यह जगत् आभासमात्र है, उही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासती है, जैसे जलही तरंगरूप होकरि भासता है, जैसे वायु स्पंदरूप होकरि भासता है, तैसे ब्रह्म जगत्‌रूप होकरि भासता है, जैसे स्पंद अरु निस्पंदविषे वायु ज्योंकी त्यों है, परंतु स्पंद होती है तब भासती है, अरु निस्पंद होती है तब नहीं भासती, तैसे ब्रह्मविषे संवेदन फुरती है, तब जगत् हो भासती है, अरु जब निर्वेदन होती है, अंतर्मुख अधिष्ठानकी उर आती है, तब जगत् समेट्या जाता है, परंतु संवेदनके फुरणेविषे भी उही है, अरु अफुरणेविषे भी उही है॥ तातें हे रामजी! सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मतें इतर कछु बण्या नहीं, अरु जो इतर भासता है, सो भ्रममात्रही जानणा, जब आत्मपदका आभास होवै, तब भ्रांति शांत हो जाती है, जैसे प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मपदके अभ्यासकरि भ्रांति निवृत्त होती है, यद्यपि नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, परंतु कछु हुई नहीं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि दृष्ट आती है, परंतु कछु बनी नहीं, उह अनुभवरूप आत्मसत्ता सृष्टि आकार होकरि भासती है, तैसे यह जगत् सब अनुभवरूप है, जैसे रत्न अरु रत्नके चमत्कारविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं॥ हे रामजी! तूं स्वभाव निश्चय होकरि देख, जो भ्रम मिटि जावै, सृष्टि स्थिति

प्रलय सब तिसकी संज्ञा हैं, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतापरमनिर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ २५८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

॥ हे रामजी! जेते कछु आकार तुझकों भासते हैं, सो संवेदनरूप हैं, अवर कछु बन्या नहीं, सृष्टिके आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अरु अंत भी उही है, मध्यविषे जो आकार भासते हैं सो भी उहीरूप जाण, जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि शुद्ध संवित होती है, तिसविषे आकार भासि आता है सो भी अनुभवरूप है, अवर कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ताही पिंडाकार हो भासती है, अरु जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो आकाशरूप आभासमात्र हैं, अवर कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ताही सदा शुद्ध है, परंतु अज्ञानकरि अशुद्धकी नांई भासती है, विकारतें रहित है, परंतु विकारसहित भासती है, अनाना है, परंतु नानाकी नांई भासती है, आकारतें रहित है, परंतु आकारसहित भासती है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपणा अनुभवस्वरूप होती है, परंतु स्वरूपके प्रमादकरि नानाप्रकार भिन्न भिन्न हो भासती है, जागेतें एक आत्मरूप हो जाती है, तैसे यह सृष्टि भी अज्ञानकरि नानाप्रकार भासती है, ज्ञानकरि एकरूप भासती है, विद्यमान भासती है तौ भी असतही जाण, आत्मसत्ता सदा शुद्धरूप है, अरु शांत है, अनंत है, तिसविषे देश काल पदार्थ आभासमात्र हैं, जो तूं कहै आभासमात्र, तौ अर्थाकार क्यों होते हैं, तिसका उत्तर यह है, जैसे स्वप्नविषे अंगना कंठसाथ मिलती है, तिसविषे प्रत्यक्ष राग होता है, विषयरस होता है, सो आभासमात्र है, तैसे यह जाग्रत विषे अर्थाकार क्षुधाकों अन्न तृषाकों जल अवर भी सब ऐसेही होते हैं, अरु जेते कछु पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, जो इनका कारण विचारियें तौ कारण कोउ नहीं पाइता, जिसका कारण कोउ न पाइयें, सो जाणियें जो आभासमात्र है॥ हे रामजी! इह जगत् बुद्धिपूर्वक नहीं बन्या, आदि जो आभास फुर्या है सो बुद्धिपूर्वक है, तिसविषे जगत् संकल्प दृढ भया, तब कारण करिके कार्य भासणे लगा, परंतु जिनकों स्व

रूपका प्रमाद भया, तिनकों कारणकरि कार्य भासणे लगे, जो आत्मस्वभावविषे स्थित भये हैं, तिनकों सर्व जगत् आत्मस्वरूप है ॥ हे रामजी ! कारण करिके कार्य तब होवै, जो पदार्थ भी कछु वस्तु होवै, जैसे पिताकी संज्ञा तब होती है, जो पुत्र होता है, अरु जो पुत्रही न होवै तब पिता कैसे कहियें, तैसे कारण तब कहियें जब कार्य होवै, जो कार्य जगत्ही कछु नहीं तौ कारण कैसे कहियें ॥ हे रामजी ! कारण अरु कार्य अज्ञानीके निश्चयविषे होते हैं, जैसे चरखे उपर बालक चढता है, उह आपही भ्रमता है, तिसकों सब पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, तैसे अज्ञानीकों मोहदृष्टिकरि कारणकार्यभाव दृष्ट आता है, अरु ज्ञानीकों कारण कार्यभाव नहीं भासता, अरु स्मृति भी जगत्का कारण तब कहियें जो स्मृति जगततें पूर्व होवै, सो स्मृतिभाव अनुभव भी इस जगत्विषेही फुरी है, इस भी आभासमात्र है, परंतु जिसकों भासी है, तिसकों तैसीही है ॥ हे रामजी ! स्मृति अरु संस्कार अरु अनुभव यह तीनों आभासमात्र हैं, जैसे सूर्यकी किरणांविषे जल भासता है, तैसे आत्माविषे तीनों भासते हैं, तातें इस कलनाकों त्यागिकरि जगत् आभासमात्र जाण, जैसे स्वप्नविषे घट भासते हैं, जो उनका कारण मृत्तिका कहियें तौ बणती नहीं, काहेतें जो घट अरु मृत्तिका आभास एकठाही फुर्या है, सो तौ आभासमात्र हुये, तिनविषे कारण किसकों कहियें, अरु कार्य किसकों कहियें, तैसे स्मृतिसंस्कार अरु अनुभव जगत् सब एकठे फुरे हैं, इनविषे कारण किसकों कहियें अरु कार्य किसकों कहियें, तातें सब जगत् आभासमात्र है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् तुझकों भासता है सो आत्मसत्ताका आभास है, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, जैसे नेत्रका खोलणा अरु मूंदणा होता है, तैसे परमात्माविषे जगत्की उत्पत्ति अरु प्रलय होती हैं, जब चित्त संवेदन फुरती है, तब जगत्रूप हो भासती है, जब फुरणेतें रहित होती है, तब जगत् आभास मिटि जाता है, उत्पत्ति अरु जगत्की प्रलयविषे आत्मसत्ता ज्यौंकी त्यौं है; जैसे खुलणा अरु मूंदणा, उभय नेत्रका स्वभाव है, तैसे फुरणा अरु अफुरणा

उभय संवेदनके स्वभाव हैं, जैसे चलणा अरु ठहरि जाणा उभय वायुके स्वभाव हैं, जब चलती है तब भासती है, अरु नहीं भासती तब नहीं चलती, अरु चलणेविषे वायुकी तीन संज्ञा होती हैं, एक मंद मंद चलती है, अथवा बहुत चलती है, शीतल अरु उष्ण स्पर्श होता है, तीसरा सुगंध दुर्गंध होती है, यह तीनों संज्ञा फुरणेविषे होती हैं, जब फुरणे चलणेतें रहित होती है, तब तीनों संज्ञा मिटि जाती हैं, जैसे एकही अनुभवविषे स्वप्न अरु सुषुप्तिकी कल्पना होती है, स्वप्नविषे जगत् हो भासता है, अरु सुषुप्तिविषे नहीं भासता, परंतु दोनोंविषे अनुभव एकही है, तैसे संवितके फुरणेकरि जगत् भासता है, अरु ठहरणेविषे अच्युतरूप हो जाती है, आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों एकरूप है, तातें जो कछु जगत् भासता है, सो आत्मातें इतर कछु नहीं, उहीरूप है, जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु प्रलय तीनों आत्माका आभास है, तिसविषे आस्था नहीं करणी ॥ हे रामजी! इह परम सिद्धांत तुझकों मैं उपदेश किया है, परंतु जिन युक्तिकरि मैं कहा है, तिन युक्तिकरि न किसीनें कहा है, न कोउ कहैगा, यह अज्ञानीकों बडी संसाररूपी भ्रांति उदय भई है, परंतु जो मेरे शास्त्रकों वारंवार विचारैगा, तब उसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, दिनके दो विभाग करैं, अर्ध दिनपर्यंत मेरा शास्त्र विचारै, अरु अर्ध दिन अपणे आचारविषे व्यतीत करै, अरु जो अर्ध दिन शास्त्रका विचार न करि शकै तौ एक प्रहर विचारै, जैसे सूर्यके उदय भये अंधकार निवृत्त होता है, तैसे इसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, अरु जो मेरे वचनोंकों वृथा जाणिकरि निंदा करैगा, तिसकों आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी, काहेतें जो उसनें शास्त्रके पैएकों नहीं जाण्या, तातें इस जीवकों यह कर्त्तव्य है, जो प्रथम अवर शास्त्रकों देखी विचारि लेवै, पाछेतें इसकों विचारै, जो इसकों इस शास्त्रकी महिमा भासै ॥ हे रामजी! यह मोक्षोपाय जो शास्त्र है, सो आत्मबोध परम कारण है, अरु यह जीव पदपदार्थकों जानणेवाला होवै, अरु इस शास्त्रकों वारंवार विचारै, तब इसकी भ्रांति निवृत्त हो जावैगी, जो संपूर्ण ग्रंथके आश्रयकों न जाणी सकै, तौ थोडा थोडा वांचै अरु विचारै, इसके

तांई सब भासि आवैगी॥हे रामजी! कछु यह पुरुष पदार्थकों जानणेवाला होवै, सो फेरि इसके विचारणे अरु पढणेकरि बुद्धिवान् अरु प्रीतिवान् करि लेता है,इसके विचारणेवालेकी बुद्धि अवर शास्त्रकी उर नहीं जाती, तातें इसकों विचारणे योग्य है; अरु जो पुरुष आत्मविचारतें रहित है, तिसका जीणा वृथा है, अरु जिनकों यह विचार है, तिनकों सब पदार्थ आत्मरूप हो जाते हैं, जो एक श्वास भी आत्मविचारतें रहित होता है, सो वृथा जाता है, एक श्वासके समान संपूर्ण पृथ्वीका धन नहीं, जो संपूर्ण पृथ्वीके रत्न न जावैं, अरु एक श्वास गया बहुरि मांगियें तौ नहीं पाइता, ऐसे श्वासकों जो वृथा गमावते हैं, तिनकों तूं पशु जाण॥ हे रामजी! आरबला विजुलीके चमत्कारवत् है, जैसे विजुलीका चमत्कार होकरि मिटि जाता है, तैसे शरीर आरबला होकरि नष्ट हो जाता है, ऐसे शरीरकों धारिकरि जो सुखकी तृष्णा करते हैं, सो महामूर्ख हैं॥हे रामजी! यह संपूर्ण जगत् आभासमात्र है, सत् भासता है, तौ भी इसकों असत् जाण, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे मृतक होता है, तिसके बांधव रुदन करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव होता है, परंतु हुआ कछु नहीं, सब भ्रांतिमात्र है, तैसे यह जगत् भ्रममात्र जाण॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे परमार्थगीतावर्णनं नाम द्विशताधिकैकोनषष्टितमः सर्गः॥२५९॥ ॥ ॥राम उवाच॥ ॥हे भगवन्! जगत् तौ अनेक अरु असंख्यरूप हुये हैं, अरु आगे होवैंगे, तिन जगत्की कथाकरि मेरे तांई तुमनें क्यों न उपदेश करि जगाया॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह जो जगत्के जालसमूह हैं, तिनविषे जो पदार्थ हैं, सो सब शब्द अर्थतें रहित हैं, जो शब्दअर्थतें रहित हुये तौ कछु न हुये क्यों, तातें उही व्यर्थ कहणेका प्रयोजन क्या॥ हे रामजी! जब तूं विदितवेद होवैगा, निर्मल त्रिकालदर्शी तब इन जगत्कों तूं जाणैगा, अरु मैं आगे भी तुझकों बहुत वार कहा है, वारंवार उही वर्णन करणा इसविषे पुनरुक्ति कहियें, बहुरि कहणा दूषण होता है, परंतु समुझावणेके निमित्त कहा है, जैसे एक सृष्टिकों जाण्या, तैसे संपूर्ण सृष्टिकों जाण्या, जैसे एक मुष्टि

अन्नके समूहसों भरिके देखी तौ जाणी लिया, सब ऐसेही हैं, जैसे एक सृष्टिकों यथार्थ जाण्या तैसे अवर सृष्टिकों भी जाणि लिया ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो किसी कारणकरि नहीं उत्पन्न भया, कारणविना पदार्थ जिसविषे भास्या सो जाणियें उही रूप है, अरु सृष्टिके आदि भी उही सत्ता थी, अरु अंत भी उही होवैगी, मध्यविषे जो कछु भास्या सो भी उहीरूप जाणियें, जैसे स्वप्नके आदि भी अपणा अनुभव निर्मल होता है, स्वप्नके निवृत्त किये भी उही रहता है, स्वप्नके मध्य जो पदार्थ भास्या, ऐसा भी उही जाणियें, अवर वस्तु कछु नहीं, अनुभवसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, जब तूं विदितवेद होवैगा, तब सर्व जगत् तुझकों अपणा आप भासैगा ॥ हे रामजी! एक एक अणुविषे अनेक सृष्टि हैं, सो आकाशरूप हैं, कछु हुई नहीं, तिस उपर एक आख्यान कहता हौं, सो सुण ॥ हे रामजी! पद्मजब्रह्माजीसों मैं एक काल प्रश्न किया था, ब्रह्माजी एकांत बैठा था, मैं कहा ॥ हे भगवन्! यह सृष्टि केतीक है, अरु किसविषे है, तब पितामहनें कहा ॥ हे मुनीश्वर! जेते कछु जगत् हैं तिनके शब्द अर्थ हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जो अज्ञानी हैं, तिनकों नानाप्रकारका जगत् भासता है, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों जगत् सब आत्मरूप भासता है, जिस प्रकार जगत् हुआ है, सो सुण ॥ हे रामजी! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके सूक्ष्म अणुविषे फुरणा हुआ जो अहं अस्मि, तब उह अणु आपकों जीव जाणत भया, जैसे अपणे स्वप्नविषे आपकों जीव जाणै, अरु होवै सर्वात्मा तैसे चिद् अणु सर्वात्मा अहंकारकों अंगीकार करिके आपकों जीव जानणे लगा, तिसविषे जो निश्चय हो गया, तिसकरि बुद्धि भई, जैसे वायुविषे फुरणा होवै, तैसे तिसविषे संकल्पविकल्परूपी फुरणा हुआ, तिसका नाम मन भया, तब मनके साथ मिलिकरि उह चिद् अणु देहकों चैत्यता भया, तब अपणेविषे देह अरु इंद्रियां भासणे लगियां, अपणे साथ शरीर देखीकरि जो यह शरीर मेरा है, जैसे स्वप्नविषे अपणेसाथ शरीरकों देखै, अरु बडा स्थूल दृष्ट आवै, तै

से स्थूल शरीर अपणेसाथ देखता भया, जैसे स्वप्नमें सूक्ष्म अनुभवसों बडे पर्वत दृष्ट आते हैं, तैसे सूक्ष्म अणुसों स्थूल विराट शरीर भासणे लगा, बहुरि देश कालकी कल्पना करी अरु नानाप्रकारके स्थावर जंगम प्राणी विराट भासणे लगे, जैसे स्वप्नविषे देश काल पदार्थ भासि आवैं सो कछु हैं नहीं, तैसे देश काल पदार्थ भासि आये परंतु हैं कछु नहीं, जब चित्तसंवित बहिर्मुख फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब अंतर्मुख होती है, तब अवाच्यरूप हो जाती है, जैसे वायु चलणे ठहरणेविषे एकरूप होता है, तैसे फुरणे अफुरणेविषे संवित एकही अभेद है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है, सो आकाशविषे आकाशरूप स्थित है, अपणे आपविषे स्थित है, अणुअणुप्राति सर्वदाकाल सृष्टि है, परंतु रूप क्या है, आभासमात्र है, जो चैत्यसंबंधी होकरि जीव सृष्टिका अंत लेवै, तौ सृष्टि अनंत हैं, इनका अंत कहूं नहीं आता, यह सृष्टि अविद्यारूप है, सो अविद्याही चैत्य है, जब अविद्यासंबंधी होकरि जगत्का अंत देखैगा, तब अंत कहूं न आवैगा, संसरणेका नाम संसार है, जब स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब सब जगत् ब्रह्मरूप हो जावैगा, जगत्की कल्पना कछु न भासैगी ॥ हे रामजी ! इस जगत्के आदि भी अद्वैतसत्ता थी, अरु अंत भी अद्वैतसत्ता रहैगी, मध्य जो कछु भासता है, तिसकों भी उही रूप जाण, अवर कछु बण्या नहीं, इह जगत् अकारण है, अधिष्ठानसत्ताके अज्ञानकरि भासता है, इसीका नाम जगत् है, अरु इसीका नाम अविद्या है, अधिष्ठानकों जानणा इसीका नाम विद्या है ॥ हे रामजी ! न कोउ अविद्या है, न जगत् है, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, कोउ जगत् कहौ, कोउ ब्रह्म कहौ, एकही वस्तुके नाम हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मांडोपाख्यानं नाम द्विशताधिकषष्टितमः सर्गः ॥ २६० ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इह मैं जाण्या है, जो जगत् अकारण है, जैसे संकल्पनगर स्वप्नपुर होता है, तैसे इह जगत् है, जो अकारणही है, तौ अब इहां पदार्थ काहेकों उपजते दृष्ट आते हैं, है सकारणरूप, कारणविना तौ नहीं उत्पन्न होते भासते

हैं, सोइह क्या है ॥   ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सर्वात्म है, तिसविषे जैसा निश्चय होता है, तैसा होकरि भासता है, सो क्या भासता है, अपणा अनुभवही ऐसे होकरि भासता है, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभवही नानाप्रकारके पदार्थ होकरि भासता है, परंतु उपजा कछु नहीं, सर्व पदार्थ आकाशरूप हैं, तैसे इह जगत् कछु उपजा नहीं, कारणतें रहित आकाशरूप है ॥ हे रामजी! आदि सृष्टि अकारण हुई है, पाछेतें सृष्टिविषे आभासरूप मननें जैसा जैसा निश्चय किया है, तैसेही है, काहेतें जो सर्वशक्तिरूप है, अरु आदि सृष्टि जो उपजती है, सो अकारणरूप है, पाछेतें सृष्टिकालविषे कारणकार्यरूप हुये हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि आदि कारणविना होती है, पाछेतें कारण कार्य भासते हैं, अरु वास्तवतें न कोउ आकाश है, न शून्य है, न अशून्य है, न सत् है, न असत् है, न असत्के सत्के मध्य है, न नित है, न अनित है, न परम है, न अपरम है, न शुद्ध है, न अशुद्ध है, द्वैत कछु नहीं, सब भ्रम है॥ हे रामजी! ज्ञानवान्कों सर्व शब्द अरु अर्थ ब्रह्मरूप भासते हैं, हमकों तौ कारणकार्यभावकी कल्पना कछु नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकारका अभाव है, तैसे ज्ञानवान्कों कारणकार्यका अभाव है, जो सर्वात्माही है, तौ कारणकार्य किसकों कहियें ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानीकी बात पूछता हौं, उनकों कारणकार्यभाव किस निमित्त भासता है, जो कारण कार्य नहीं तौ मृत्तिका अरु कुलाल आदि करिके घटादिक क्यौंकरि उत्पन्न होते दृष्ट आते हैं, तातें तुम कहौ जो ज्ञानवान्कों अकारण कैसे भासते हैं, अरु अज्ञानीकों सकारण क्यौंकरि भासते हैं; इह मेरे तांई ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय कहौ ॥   ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! न कोउ कारण है, न कार्य है, न कोउ अज्ञानी है, मैं तुझकों क्या कहौं, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके निश्चयविषे जगत्की कल्पना कोउ नहीं फुरती, उनके निश्चयविषे जगत् है नहीं, तौ ज्ञानी अरु अज्ञानी क्या ॥ हे रामजी! आकाशका वृक्ष नहीं तौ तिसका वर्णन क्या करियें, अरु जैसे हिमालय पर्वतविषे अग्निका कणका नहीं पाइता, ते

से ज्ञानीके निश्चयविषे जगत् नहीं पाइता, ज्ञानी अज्ञानी अरु कारण कार्य इह शब्द जगत्विषे होते हैं, जो जगत्ही फुर्या नहीं तौ कारण कार्य ज्ञानी अज्ञानी तुझकों क्या कहौं, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि सुषुप्तिविषे लीन हो जाती है, तहां शब्द अरु अर्थ कोउ नहीं फुरता, तैसे ज्ञानवान्के निश्चयविषे जगत्ही नहीं फुरता ॥ हे रामजी ! हमकों तौ सर्व ब्रह्मही भासता है, मुझकों कछु कहणा नहीं आता, परंतु कछु कहता हौं, तुझनें पूछा है, इस निमित्त अज्ञानीके निश्चयकों अंगीकार करिके कहता हौं ॥ हे रामजी ! यह जगत् अकारण है, अरु आभासमात्र है, किसी आरंभ अरु परिणामकरि नहीं भया, जब पदार्थका कारण विचारियें तब सब अधिष्ठान ब्रह्म निकसता है, सो अद्वैत अच्युत है, अरु सर्व इच्छातें रहित है, तिसकों कारण कैसे कहियें, तातें जाणीता है, जो जगत् आभासमात्र है, अवर वस्तु कछु नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अकारण होती है, तिसविषे अनेक पदार्थ भासते हैं, तिनका कारण विचारियें तौ सबका अधिष्ठान अनुभव निकसता है, तिसविषे आरंभ अरु परिणाम कछु हुआ नहीं, सृष्टि अनुभवरूप हो भासती है, जो पुरुष स्वप्नविषे है, तिसकों स्वरूपके प्रमादकरि कारण कार्य जगत् भासता है, पुण्य पाप सब यथार्थ भासते हैं, तैसे जाग्रत जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! सृष्टि आदि अकारण हुई है, पाछे सृष्टिकालविषे कारण कार्यरूप हो भासते हैं, अरु जिसकों अपणा वास्तव स्वरूप स्मरण है, तिसकों अकारण भासता है, अरु जिस अज्ञानीकों अपणे वास्तव स्वरूपका प्रमाद है, तिसकों कारण कार्यरूप सृष्टि स्वप्नवत् भासती है ॥ हे रामजी ! वस्तु एकही अनुभव आत्मसत्ता है, परंतु जैसा जैसा अनुभवविषे संकल्प दृढ होता है, तिसहीकी सिद्धि होती है, जिसका तीव्र संवेग होता है सोई होय भासता है, इसविषे संदेह कछु नहीं, कल्पवृक्षके पदार्थ निकसी आते हैं, सो क्या है, संकल्पकी तीव्रता करिके प्रत्यक्ष आनि होते हैं, उह किसीका कार्य कहियें, अरु जगत् किसी कारणकरि उत्पन्न होता तौ म

हाप्रलयविषे भी कछु शेष रहता, जैसे अग्निके पाछे सुहा रही आती है, सो तौ कछु नहीं रहता, जैसे स्वप्नकी सृष्टि जागे हुये कछु नहीं रहती, तैसे महाप्रलयविषे जगत्का शेष कछु नहीं रहता, तातें जाणीता है जो आभासमात्र है, जैसे ध्यानविषे ध्याता पुरुष जो किसी आकारकों रचता है, तिसका कारण कोउ नहीं होता, उह तौ आकाशरूप है, अनुभवसत्ताही फुरणे करिके इस प्रकार हो भासती है, आकार तौ कोउ नहीं, जैसे गंधर्वनगर कारणतें रहित भासता है, तैसे यह जगत् कारणविना भासि आया है, न कोउ पृथ्वी है, न कोउ जल है, न तेज वायु आकाश है, सब आकाशरूप है, परंतु संकल्पकी दृढता करिके पिंडाकार भासता है ॥ हे रामजी! जब इह पुरुष मरि जाता है, तब शरीर इहांही भस्म हो जाता है, बहुरि परलोकविषे जो शरीर अपणेकों देखता है, अरु तिस शरीरसाथ स्वर्गनरकविषे सुख दुःख भोगता है, तिसका कारण कवन है, उसका कारण कोउ नहीं पाइता, अपणी चेतनताविषे संकल्प की वासना जो दृढ हुई है, तिसके अनुसार शरीर भासता है, स्वर्गनरकविषे दुःख सुख भासते हैं, अवर तौ कछु वस्तु नहीं, सब पदार्थ संकल्पके रचे हुये हैं, सो सब आत्मरूप हैं, जैसे आकाश व्योम शून्य एकही वस्तुके नाम हैं, कोउ जगत् कहौ, कोउ ब्रह्म कहौ, इनविषे भेद कछु नहीं, फुरणेका नाम जगत् कहाता है, अफुरणेका नाम ब्रह्म है, जैसे वायुकों चलणे ठहरणेविषे भेद कछु नहीं, तैसे ब्रह्मकों फुरणे अफुरणे संवेदनविषे भेद कछु नहीं, जो सम्यक्दर्शी हैं, तिनकों सब जगत् ब्रह्मस्वरूप भासता है, तिस कारणतें दोष किसीविषे नहीं रहता, जो बडा कष्ट आनि प्राप्त होता है; तौ भी खेदवान् नहीं होता, जैसे कोउ पुरुष स्वप्नविषे युद्ध करता है, अरु उसकों अपणा जाग्रत स्वरूप चित्तमें आया, तब स्वप्नकों स्वप्न जाणत भया, तब युद्ध करता है, तौ भी दुःख मिटि जाता है, तैसे जो पुरुष परम पदविषे जाग्या है, तिसकी सब क्रिया होती है, परंतु आपकों अक्रिय जाणता है ॥ हे रामजी! सब चेष्टा उसकी

होती है, परंतु उसके निश्चयविषे क्रियाका अभिमान नहीं होता, जैसे नटुवा सब स्वांग धारता है, परंतु आपकों स्वांगतें रहित नटुवा जाणता है, अरु स्वांगक्रियाकों असत् जाणता है, काहेतें जो उसकों अपणा स्वरूप स्मरण है, तैसे ज्ञानवान् सब क्रियाकों असत् जाणता है ॥ हे रामजी! जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो अजातजात हैं, उपजे कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे पदार्थ भासते हैं, परंतु उपजे कछु नहीं, अपणा अनुभव इस प्रकार भासता है, तैसे यह जगत्के पदार्थ भी अनुभवरूप जाण ॥ हे रामजी! बहुत शास्त्र अरु वेद मैं तुझकों किसनिमित्त सुनावौं अरु किसनिमित्त पढैं अरु वेदांत जो शास्त्र हैं, तिन सबका सिद्धांत यही है, जो वासनातें रहित होणा, इसका नाम मोक्ष है, अरु वासनासहित है, तिसका नाम बंध है, अरु वासना किसकी करियें, इह तौ सब सृष्टि अकारणरूप भ्रममात्र है, इसविषे क्या आस्था बढाइयें, यह तौ स्वप्नके पर्वत हैं ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतावर्णनं नाम द्विशताधिकैकषष्टितमः सर्गः ॥ २६१ ॥ ॥ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥

॥ हे भगवन्! सब जगतविषे दो प्रकारके पदार्थ हैं, एक अप्रत्यक्ष पदार्थ एक प्रत्यक्ष पदार्थ अरु एक मध्यभावी है, जैसे वायु अप्रत्यक्ष कहियें, रूपतें रहित है, परंतु स्पर्श संयोगतें भासती है, सो मध्य भी प्रत्यक्ष है, अप्रत्यक्ष कहियें जो किसीसाथ मिलै नहीं, सो इह संवित् अप्रत्यक्ष है ॥ हे मुनीश्वर! चंद्रमाके मंडलविषे इह संवेदन जाती है, अरु बहुरि गिरती है, वृत्ति चित्त करिके चंद्रमाकों देखती है, अरु बहुरि आती है, तौ जाणी है, जो निराकार है, जो साकार होती है, तौ चंद्रमारूप हो जाती, बहुरि संवेदन आती है, जैसे जलविषे जल डार्या, बहुरि नहीं निकसता, इस कारणतें जाणीता है, जो इह अप्रत्यक्ष कहियें निराकार है ॥ हे मुनीश्वर! इस शरीरविषे जो प्राण आते हैं, जाते हैं, अज्ञानीका आशय लेकरि मैं कहता हौं, सो कैसे आते अरु जाते हैं, अरु जो तुम कहौ, संवित् जो ज्ञानशक्ति है, सो इह शरीर अरु प्राणकों लिये फिरती है; जैसे पैंडोई भारकों लिये फिरता है, तैसे सं

वित् शरीर अरु प्राणकों लिये फिरती है, तौ ऐसे कहणा नहीं बनता, काहेतें जो संवित् अप्रत्यक्ष निराकार है, सप्रत्यक्ष साकारसाथ तौ मिलती नहीं, उह चेष्टा क्यौंकरि करै अरु जो कहौं, संवित् निराकारही चेष्टा कराती है, तौ पुरुषकी संवित् चाहती है, जो पर्वत नृत्य करै, उह तौ इसका चलाया नहीं चलता, अरु साथही कहते हैं, जो इह पदार्थ उठि आवैं, परंतु उह नहीं उठि आते, काहेतें जो पदार्थ साकाररूप हैं, अरु वृत्ति निराकार है, इसका उत्तर कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इस शरीरविषे एक नाडी है, जब उह अवकाशरूपी होती है, तब उसमेंसे प्राणवायु निकसता है, अरु जब संकोचरूप होती है, तब प्राणवायु अंतर आती है, जैसे लुहारकी खल होती है, तैसे इसके अंतर पुरुष बल है, तिसकरि चेष्टा होती है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! लुहारकी खल भी तब हलती है, जब उसकेसाथ बलका स्पर्श होता है, अरु स्पर्श तब होता है, जो प्रत्यक्ष वस्तु होती है, चैतन्यता सो निराकार है, तिसकों स्पर्श क्यौंकरि कहियें, जो तुम कहौ, उसकी इच्छाहीकरि स्पर्श होता है, तौ ॥ हे मुनीश्वर! मैं चाहता हौं, जो मेरे सन्मुख वृक्ष है, सो गिर पडै, उह तौ गिरता नहीं, काहेतें जो इच्छा निराकार है, जो साकार स्पर्श शब्द होवै, तब गिर पडै, उसकी शक्तिकरि अरु जो इच्छाहीकरि चेष्टा होती है, तौ कर्म इंद्रियां किस निमित्त धारियां हैं, इच्छाहीकरि जगत्की चेष्टा होवै, अरु इह भी संशय है, जो एकके बहुत क्यौंकरि हो जाते हैं, अरु बहुतका एक क्यौंकरि हो जाता है, एक चेतन है, जब प्राण निकसी जाते हैं, तब जड जैसा हो जाता है, पाषाण अरु वृक्षकी नांई हो जाता है, आत्मा तौ सर्वव्यापी है, जड कैसे हो जाता है, अरु एक पाषाण वृक्षरूप जड है, एक चेतन है, यह भेद एक आत्माविषे कैसे हुआ है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! तेरे संशयरूपी जो वृक्ष हैं, तिन सबकों मैं वचनरूपी कुहाडेकरि काटता हौं, जिनकों तूं सप्रत्यक्ष साकार कहता है, सो आकार कोउ नहीं, सब निराकार है, उह शुद्ध आत्मा अद्वैतसत्ता इस प्रकार हो भासती

है, इह आकार कछु बणे नहीं, जैसे स्वप्ननगरविषे आकार भासते हैं, सो आकाशरूप निराकार हैं, तैसे यह आकार भी तुझकों दृष्ट आते हैं सो सब निराकार हैं, अरु स्वप्नविषे जो पर्वत भासते हैं, सो किसके आश्रय होते हैं, अरु देहादिक भासते हैं, सो किसके आश्रय होते हैं, तातें उह कछु बणे नहीं, अनुभवसत्ताही आकाररूप हो भासती है, तैसे इह भी जाण, आकार कोउ नहीं ॥ हे रामजी! जब इन पदार्थका कारण विचारियें तौ कारण कोउ नहीं निकसता, इसीतें जाणीता है जो आभासमात्र है, बणे कछु नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, अरु आत्मसत्ता अद्वैत है, परम शुद्ध है, तिसविषे जगत् कछु बन्या नहीं, मैं आकार क्या कहौं, अरु निराकार क्या कहौं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश भी द्वैत कछु नहीं, शुद्ध आत्मसत्ताही इस प्रकार हो भासती है, जैसे संकल्पकरि रचे पदार्थ होते हैं, सो अनुभवतें इतर कछु नहीं होते, तैसे इह सब पदार्थ अनुभवरूप हैं, अनुभवतें इतर कछु नहीं, इस उपर एक आख्यान कहता हौं सो श्रवणकों शोभता है ॥ हे रामजी! आगे भी मैं तुझकों कहा है, अबही कहता हौं, प्रसंगकों पायकरि जो एक कालमें एक सृष्टिविषे इंद्र ब्राह्मण था, मानौ ब्रह्माजी है, तिसके गृहविषे दश पुत्र होत भये, मानौ दशों दिशा हैं, केते कालतें उह मृतक भया, तिसकी स्त्री पतिव्रता थी, तिसके प्राण भी ब्राह्मणके पाछे छूटि गये, जैसे दिनके पाछे संध्या जाती है, तैसे ब्राह्मणी गई, तब तिन पुत्रोंनें यथाशास्त्र क्रमकरि तिनकी क्रिया करी, बहुरि एक पहाडकी कंदराविषे जाय स्थित भये, अरु विचारत भये, जो किसी प्रकार हम उंचे पदकों पावैं ॥ हे रामजी! आगे मैं तुझकों सुणाया है, जो मंडलेश्वर अरु चक्रवर्त्ती राजा अरु इंद्रादिकके पदकों विचारत भये, बहुरि बडे भाईनें निर्णय करिके यही कहा, जो सबतें उंचा ब्रह्माजीका पद है, जिसकी इह सब सृष्टि रची हुई है, हम दशही ब्रह्मा होवैं, ऐसे विचार करिके दशही पद्मासन करि बैठे, निश्चय इह धार्या जो हम चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, सब सृष्टि हमारी रची है, ऐसे हो गये, मानौ पुतलियां लिखी हुई हैं, खानपानतें रहित मास युग वर्ष व्यतीत हो गये, उह

ज्योंके त्यों रहे, चलायमान न भये, जैसे जल नीची ठौरकों जाता है, उंचे नहीं फिरता, तैसे उह अपणे निश्चयकों न त्यागत भये, दृढ रहे, जब केताक काल व्यतीत भया, तब उनके शरीर गिर पडे, उनकों पक्षी खाय गये, इह जो ब्रह्माकी वासना संयुक्त संवित् थी तिस वासना करिके दशही ब्रह्मा हो गये, अरु दशही तिसकी सृष्टि देश काल पदार्थ नेतिसहित हो गइया, जैसे हमारी सृष्टि है, तैसे उह सृष्टि भइयां॥ हे रामजी! उह सृष्टि क्यारूप हुइयां, आत्माही वस्तु हुइयां, अवर तौ कछु नहीं, कछु अवर होवै तब कहौं, तातें सृष्टिका अवर रूप कछु नहीं, अपणा अनुभवही सृष्टिरूप भासता है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब आत्मारूप हैं॥ हे रामजी! जैसे हम ब्रह्माके संकल्पविषे रचे हैं, तैसे उननें भी रचि लिये, उह भी इस प्रकार स्थित हो गये, तातें सर्व जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जो कछु कारण करिके जगत् बन्या होता तौ जाणीता जो कछु हुआ है, इसका कारण कोउ नहीं पाइता, संकल्पमात्र आभासमात्र है, तातें कहीता है, जो ब्रह्मही है, अवर वस्तु कछु नहीं, जो कछु पदार्थ भासते हैं, पाषाण वृक्ष जड चेतन सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, उसतें इतर कछु नहीं॥ हे रामजी! महाभूत जो हैं अरु वृक्ष पृथ्वी आकाश पहाड यह सब चिदाकाशरूप हैं, चिदाकाशतें इतर कछु नहीं, जैसे इंद्रके पुत्र एकतें अनेक हो गये, तैसे इह सृष्टि भी एकतें अनेक हैं, अरु प्रलयविषे अनेकतें एक हो जातियां हैं, जैसे एक तूं स्वप्नविषे अनेक हो जाता है, अरु सुषुप्तिविषे अनेकतें एक हो जाता है, तैसे यह जगत् है, कैसा है, अकारणरूप है, अरु जो कारण भी मानियें तौ आत्मरूपी कुलाल है, संकल्प चक्र है, अरु अनुभवचेतनरूपी घट तिसतें उपजते हैं, आभास भी उही है, कछु दूसरी वस्तु नहीं, इह सब जगत् उहीरूप है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रकों अपणे अनुभवहीतें सृष्टि फुरि आइयां, सो अनुभवरूपी भासणे लगा, अवर सृष्टितें कछु न भइयां, तैसे इह सृष्टि भी जाण॥ हे रामजी! घट भी चैतन्य है, वृक्ष भी चैतन्य है, पृथ्वी भी चैतन्य है, जल अग्नि वायु सब चैतन्यरूप हैं, चैतन्यतें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभवही घट पहाड नदियां पदा

र्थ हो भासता है, अनुभवतें इतर कछु नहीं, तैसे इह जगत् अनुभवतें इतर नहीं, ज्ञानीकों सदा इही निश्चय रहता है, अब एक अनेकका उत्तर सुण ॥ हे रामजी ! जैसे मनोराज्यविषे एकतें अनेक हो जाता है, अरु अनेकतें एक हो जाता है, चैतन्यतें जड हो जाता है, सो जड कोउ पदार्थ नहीं भासता, पदार्थ चैतन्यरूप है, जहां अंतःकरण प्रगट पाइता है, सो चेतन भासता है, जहा अंतःकरण नहीं पाइता, सो जड भासता है, चैतन्यका आभास अंतःकरणविषे पाइता है, जब पुर्यष्टका निकसी जाती है, तब जड भासता है, इह अज्ञानीकी दृष्टि कही है, अरु मुझकों पूछै तौ जिसकों जड कहते हैं, अरु जिसकों चेतन कहते हैं, पहाड वृक्ष पृथ्वी कहते हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नविषे केई जड भासते हैं, केई चेतन भासते हैं, नानाप्रकारके पदार्थ भिन्न भिन्न भासते हैं, सो आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे इह जगत् सब आत्मरूप है, इच्छा अनिच्छा सब ब्रह्मरूप है, सब नामरूप आत्माके हैं, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, शून्य अशून्य सत् असत् सब आत्माके नाम हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जिसकों मूर्ख जड कहते हैं, सो जड नहीं, सब चैतन्यरूप हैं, अरु सृष्टिकालविषे जडही है, उह संवेदनाविषे जडीरूप होकरि रचित हुये हैं, उह चैतन्यही रचे हैं, जिनकों अपणे वास्तवस्वरूपका प्रमाद है, तिनकों जड चेतन भिन्न भिन्न भासते हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनकों एक ब्रह्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! इह मैं तुझकों उपदेश किया है, सो वारंवार विचारणे योग्य है, जो कोउ इसकों नित्य विचारत रहैगा तिसके दोष घटते जावैंगे, अरु हृदय शुद्ध होवैगा, अरु जो ब्रह्मविद्याकों त्यागिकरि जगत्की उर चित्त लगावैगा, तिसके दोष बढते जावैंगे ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों इस जीवकों ब्रह्मविचार उदय होता जावैगा, त्यों त्यों दुःख नाश होते जावैंगे, ज्यों ज्यों दिन होता है, त्यों त्यों तम नष्ट हो जाता है, विचारके त्यागे दुःख बढते जाते हैं, जो महापापी हैं, तिनके पाप मेरे शास्त्रका संग न करणे देवैंगे, तिनकों इह जगत् वज्रसारकी नांई दृष्ट रहता है, संसारभ्रम निवृत्त कदा

चित् नहीं होता, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप है, मैं तूं अरु भाव अभाव आदिक जेते कछु शब्द हैं, सो सब ब्रह्मसत्ताके नाम हैं, सो कैसी सत्ता है, परम शुद्ध है, अरु निरामय है, अरु अद्वैत है, सदा अपणेही आपविषे स्थित है, अरु तिसविषे जेते पदार्थ भासते हैं, सो ऐसे हैं, जैसे शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, सो शिल्पीके चित्तविषे होतियां हैं, तैसे जगत्के पदार्थकी प्रतिभा सब मनविषे है, सो क्या रूप है, उसीका किंचनरूप है, सो किंचन कछु भिन्न वस्तु नहीं, जो सदा अपणे आपविषे स्थित है, परम मौनरूप है, तिसविषे विकल्प कोउ नहीं प्रवेश करि सकता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे इंद्राख्यानवर्णनं नाम द्विशताधिकद्विषष्टितमः सर्गः ॥ ॥ २६२ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व लोक चिन्मात्र हैं, इसीतें शांतरूप हैं, अरु अद्वैतरूप हैं, अज्ञानीकों भिन्न भिन्न जगत् भासता है, ज्ञानीकों सब निराकार आकाशरूप हैं, आकार कछु बणे नहीं, आत्मसत्ता निराकार है, उही परम शुद्ध सत्ता इस प्रकार भासती है, सो शांतरूप है, अनंत है, चिन्मात्र है, इंद्रियां भी ज्ञानरूप हैं, हाड मांस रुधिर हाथ पैर शिर आदिक संपूर्ण शरीर ज्ञानमात्र है, ज्ञानतें इतर कछु नहीं, चिन्मात्रही इस प्रकार भासता है, जैसे स्वप्नविषे शरीरादिक अरु पहाड नदियां वृक्ष भासते हैं, सो अपणाही अनुभवरूप है, अवर कछु बन्या नहीं, तैसे इह जगत् सब अनुभवरूप है, कारणतें रहित कार्य भासता है, तूं अपणे अनुभवविषे जागिकरि देख, जो सब अनुभवरूप है, आकाशविषे आकाश भी आकाशरूप है, सत्विषे सत् है, भावविषे भाव है, अभावविषे अभाव है, सर्व आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, अरु जो तूं कहै वस्तु कारणहीतें उत्पत्ति होती है, सो सत् होती है, परंतु जगत्का कारण कहूं नहीं पाइता, तातें इह मिथ्या है, कारण भी इसका तब कहियें जब इह कछु वस्तु होवै, अरु कार्य भी तब कहियें जब इसका कारण सत् होवै ॥ हे रामजी! ब्रह्मसत्ता तौ न किसीका समवायिकारण है, न किसीका निमित्तकारण है, अच्युत है,

इसीतें समवायिकारण नहीं, अरु अद्वैत है, तातें निमित्तकारण भी नहीं, सर्व इच्छातें रहित है, तिनकों, कारण किसका कहियें, जो कारण नहीं, तौ कार्य किसका होवै, तातें जेता कछु जगत् भासता है, सो आभासमात्र है, उसी ब्रह्मसत्ताका नाम जगत है, जैसे निद्रा एक है, तिसके दो स्वरूप हैं, एक स्वप्न, एक सुषुप्तिरूप है, फुरणेरूपका नाम स्वप्न है, अफुरणेरूपका नाम सुषुप्ति है, तैसे दो स्वरूप चेतनके हैं, फुरणेरूप चेतनका नाम जगत् है, अफुरणेरूपका नाम ब्रह्म है, जैसे एकही वायुके चलणा ठहरणा दो पर्याय हैं, जब चलती है, तब लखणेविषे आती है, अरु ठहरती है तब अलक्ष हो जाती है, शब्दका विषय नहीं होती, तैसे ब्रह्मसत्ता अफुरणेविषे शब्दकी प्रवृत्ति नहीं होती, जब फुरती है, तब द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटीरूप हो भासती है, एकतें अनेकरूप हो भासती है, अनेकतें एकरूप है, जैसे एकही जल नदी नाला तलाव आदिक भिन्न भिन्न संज्ञाकों पावता है, अरु जब समुद्रविषे मिलता है, तब एकरूप हो भासता है, जैसे एकही कालके बहुत नाम होते हैं, दिन मास वर्ष युग कल्प घटी मुहूर्त आदिक नामकों पावता है, परंतु काल तौ एकही है, जैसे एक मृत्तिकाकी सैना हस्ती घोडे आदिक बहुत नाम होते हैं, परंतु मृत्तिका तौ एकही है जैसे फूल फल टास पत्र भिन्न भिन्न नाम होते हैं, परंतु वृक्ष तौ एकहीरूप है, जैसे तरंग बुदबुदे आवृत फेन आदिक नाम होते हैं, परंतु जल एकही है, तैसे परमात्माविषे जगत् अनेकरूप नामकों प्राप्त होता है, परंतु सदा एकही रसरूप है, जैसे स्वप्नविषे एकही अद्वैत अनुभवसत्ता होती है, अरु भिन्न भिन्न नामरूप हो भासती है, जब जागता है, तब अद्वैतरूप होता है, तैसे यह जगत् भी भिन्न भिन्न नाम रूप भासता है, परंतु आत्मसत्ता एकही है ॥ हे रामजी! जब तूं तिसविषे जागैगा, तब तुझकों सब अपणे आप अनुभवही भासैगा, सो अनुभव कैसा है, केवल आत्मत्वमात्र है, अनन्य अनुभवरूप है, सो आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगतरूपी जलके कणके हैं, जैसे आकाशविषे नक्षत्र फुरते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् फुरते

हैं, आकाशतें भी तारे भिन्न हैं, परंतु आत्मातें जगत् भिन्न नहीं, जलतें बुंद अभिन्न हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकत्रिषष्टितमः सर्गः ॥ २६३ ॥ ॥ ॥

॥ श्रीराम उवाच ॥ हे भगवन्! अंधकारविषे जो पदार्थ होता है सो ज्योंका त्यों नहीं भासता, अरु सूर्यका प्रकाश होता है, तब ज्योंका त्यों भासता है, इह निमित्त कहता हौं जो संशयरूपी तम करिके जगत् ज्योंका त्यों नहीं भासता, तुमारे वचनरूपी सूर्यके प्रकाश करिके जो पदार्थ वस्तु है, तिसकों सम्यक् ज्ञानकरि जाणौंगा ॥ हे भगवन्! पूर्व एक इतिहास हुआ है, तिसविषे मुझकों संशय है, सो दूर करहु ॥ हे प्रभो! एक कालमें अध्ययन शालाविषे विपश्चित पंडितसों अध्ययन करता था, अरु बहुत ब्राह्मण बैठे थे, तब एक ब्राह्मण विदितवेद अरु बहुत सुंदर अरु वेदांत सांख्यशास्त्रके अर्थकरि संपन्न जो सवही उसके कंठविषे था, अरु बडा तपसी ब्रह्मलक्ष्मी करिके तेजवान् मानों दुर्वासा ब्राह्मण है, ऐसा ब्राह्मण सभाविषे आया, परस्पर नमस्कार करिके आसनपर स्थित भया, हम सब उसकों प्रणाम किया, अवर जो परस्पर शास्त्रोंकी चर्चा होती थी पंडितकी, वेदांत सांख्य पातंजलादिककी सो सब तूष्णीं हो गये, अरु मैं तिससों बोल्या कै ॥ हे ब्राह्मण! तुम बडे मार्ग करिके आये हो, तुमारा पैंडा करणा किस परमार्थनिमित्त होता है, तुम मार्ग संगकरि कहांतें आये हौ सो कहौ ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ हे भगवन्! जिस प्रकार वृत्तांत है सो मैं कहता हौं ॥ हे रामजी! विदेह नगरका मैं ब्राह्मण हौं, तहां मैं जन्म लिया था, अरु कुंद एक बुंटा होता है, तिसका फूल श्वेत है, तिस जैसे मेरे दंत हैं, इस कारणतें मेरा नाम पितामातानें कुंददंत रखा है, विदेह राजा जनकका जो नगर है, तहांसों आया हौं, सो कैसा नगर है, आकाशविषे जो स्वर्ग मानौं तिसका प्रतिबिंब है, अरु सबही शांतिवान् अरु निर्मल तहांके रहणेवाले हैं, तहां मैं विद्या पढणे लगा, तिसकरि मेरा मन उद्वेगवान् हुआ, जो इह संसार महाक्रूर बंधन है, किस प्रकार इस बंधनतें

छूटौं ॥ हे रामजी! ऐसा वैराग्य मुझकों उत्पन्न हुआ, जो किस प्रकार शांतिवान् होऊं, तब उहांतें मैं निकस्या, जो जो शुभ स्थान थे, तहां विचरणे लगा, संतऋषीके स्थान अरु ठाकुरद्वारे तीर्थ इनतें आदि लेकरि जो पवित्र स्थान हैं, तिनका दर्शन किया, तहांतें आते एक पर्वत था, तिस उपर मैं गया, तहां जायकरि तप करणे लगा, चिरपर्यंत मैं तप किया, बहुरि उहांतें चल्या, एकांतके निमित्त आगे एक आश्चर्य देख्या, सो कहता हौं ॥ हे रामजी! मैं उहांतें चल्या आता था, जो बडा वन है, अरु बहुत श्याम है, मानों आकाशकी मूर्त्ति है, शून्य अरु तमरूप है, तिस वनविषे एक वृक्ष मुझकों दृष्ट आया, कोमल जिसके पत्र हैं, अरु सुंदर टास हैं, तिसकेसाथ एक पुरुष लटकता है, पांवविषे मुंजका रसा है, वृक्षसाथ बांध्या हुआ है, शीस नीचे अरु चरण उपरकों, दोनों हाथ छातीपर जुडे हुये, अरु लटकता है, तब मैं विचार किया जो यह मत मृतक होवै, इसकों देखौं, जब मैं निकट गया, तब उसके श्वास आते जाते देखे, अरु शरीर युवा अवस्था कांतिवारी हुई, अरु अंतरतें सबका ज्ञाता शीत उष्ण अरु अंधेरी मेघकों सही रहा है, जाणता सबकों है, परंतु सही रहा है ॥ हे रामजी ! तब मैं जाणत भया जो यह तपसी है, इसकी शूरवीरता बडी है, तब मैं उसके निकट बैठि गया, अरु उसके चरण जो बांधे हुये थे, तिनकों कछु ढीला किया, बहुरि उसकों मैं कहा ॥ हे साधो ! ऐसी क्रूर तपस्या तूं किसनिमित्त करता है, अपणा वृत्तांत मुझकों कहु ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार मैं कहा तब उह नेत्रकों खोलिके कहत भया ॥ हे साधो ! इह तप मैं किसी अपणी कामनाके अर्थ करता हौं, सो ऐसी कामना है, जो तुम सुणोगे, तब हांसी करौगे ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार उसनें कहा, तब मैं कहा ॥ हे साधो ! हांसी कहूं न करैगा, तूं अपणा वृत्तांत कहु; अरु जो तेरा कछु कार्य होवैगा, अरुमुझसों होवैगा सो मैं करौंगा, जब मैंइस प्रकार वारंवार कहा, तब उसनें कहा, मनकों उद्वेगतेंरहित करिकेसुण, मैंकहता हौं ॥ हे साधो! मैं ब्राह्मण हौं, अरु मथुराविषे मेरा जन्म है, तहां जब बाल अ

वस्था मेरी व्यतीत भई, अरु यौवन अवस्थाका आदि हुआ, तब वेद अरु शास्त्रकों मैं भली प्रकार जाण्या, तब एक वासना आनि उदय भई, जो सबतें बडा सुख राजा पावता भोगता है, तातें मैं राजा होऊं, अरु सुख भोगौं, जो क्या सुख है, अवर सुख मैं भोगे हैं, बहुरि विचार किया जो राज्यका सुख तब भोगौं, जब राजा होऊं, सो राजा क्यों करि होऊं, राज्य तब होता है, जब तप करता है, तातें मैं तप करौं ॥ हे साधो ! ऐसे विचार करि मैं तप करणे लगा हौं, द्वादश वर्ष व्यतीत भये हैं, अरु आगे भी करौंगा, जबलग सप्तद्वीपका राज्य मुझकों नहीं प्राप्त होता, तबलग तप करौंगा, यही निश्चय मैं धारा है, मेरा शरीरही नष्ट हो गया, अथवा सप्त द्वीपका राज्य मुझकों प्राप्त भया, यह मेरा निश्चय है, सो मैं तुझकों कहा है, अब जहां जाणेकी तुझकों इच्छा होय तहां जावहु ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि उस तपसीनें बहुरि नेत्र मुंदिकरि चित्त स्थिर करणेकों समाधानकरि इंद्रियकरि विषयका त्याग करि मन निश्चल किया, तब मैं उसकों कहा ॥ हे मुनीश्वर ! मैं भी तेरेपास बैठा हौं, जबलग तेरे तांई वरकी प्राप्ति नहीं होती, तबलग मैं तेरी टहल करौंगा, मेरे तांई तेरे उपर दया आई है॥ हे रामजी ! इस प्रकार मैं उसकों कहीकरि षट्मासपर्यंत मैं उसकेपास बैठि रहा, उसकी रक्षा करत रहा, जब धूप आवै, तब छाया करौं, आधी मेघविषे अपणे शरीरकों कष्ट देके रक्षा करौं, उद्वेगतें रहित षट्मास जब बीते, तब सूर्यके मंडलतें एक पुरुष निकस्या, बडा प्रकाशवान् जैसे विष्णु भगवान्का तेज है, तैसे तेजवान् भासिकरि हमारे निकट आया, तिसकों देखीकरि मैं मन वाणी शरीर तीनोंकरि पूजा करी, तब उस पुरुषनें कहा ॥ हे तपसी ! अब इस तपकों त्याग, अरु जो कछु इच्छा है सो माग, तेरी इच्छा तौ यही है, जो मैं सप्तद्वीपका राजा होऊं, सो तूं सप्तद्वीप पृथ्वीका राजा होवैगा, अरु सप्तसहस्र वर्षपर्यंत राज्य करैगा, परंतु अवर शरीरसाथ होवैगा ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि उह पुरुष सूर्यके मंडलविषे अंतर्धान हो गया, जैसे समुद्रतें तरंग निकसीकरि लय हो जावै, तैसे लीन भया, तब उसकों मैं कहा ॥ हे

ब्राह्मण! अब क्यौं तूं संकट लेता है, जिस निमित्त तूं तप करता था, सो वर तौ तुझकों प्राप्त भया, अब क्यौं संकट करता है ॥ हे रामजी ! जब इस प्रकार मैं कहा, जो सूर्यके मंडलतें एक पुरुष बडा तेजवान् निकसीकरि तुझकों वर दे गया है, तब नेत्र खोले, अरु मैं उसके चरणोंसों रसडी खोली, तब उसका तेज बडा हो गया, उसके शरीरकी कांति प्रकाशवान् भई, तब निकट एक जलतें रहित तलाव था, उसके पुण्य करि उह भी जलसों पूर्ण हो गया, तिसविषे हम दोनोंनें स्नान किया, बहुरि मंत्रपाठ किया, अरु संध्या करी, बहुरि हम दोनौं वृक्षके नीचे आये, जो वृक्ष फलतें रहित था, सो फलकरि पूर्ण हो गया, उसकी पुण्य वासना करिके उन फलका भक्षण किया, तीन दिनपर्यंत उहां रहा, बहुरि चला अरु कहत भया ॥ हे साधो! हम देशकों चले हैं, जबलग शरीर है, तबलग शरीरके स्वभाव भी हैं, आगे एक वन आया, बहुत सुंदर फूल फल बूंटे सले हुये हैं, भंवरे विचरते हैं, जलके प्रवाह चलते हैं, कोएल अरु तोते अरु बगले इनतें आदि लेकरि पक्षी पशु वृक्ष हम देखत भये, आगे ताल वृक्ष बहुत देखे, बहुरि आगे कंदराके स्थान आये, ऐसे स्थान हम लंघते गये ॥ हे रामजी ! राजसी तामसी सात्विकी तीनौं गुणके रचे स्थानकों लंघते मथुरा नगरके मार्ग आये, जो सूधा मार्ग था, तिसकों छांडिकरि उह टेढे मार्ग चला, तब मैं कहा ॥ हे साधो ! सूधे मार्गकों छांडिकरि तूं टेढा क्यौं चलता है, तब उसनें कहा ॥ हे साधो ! तूं चला आउ, इस मार्ग गौरी भगवतीका स्थान है, तिनका दर्शन करते जावैं, अरु मेरे सप्त भाई अवर गौरीके स्थान इस कामनाकों लेकरि तप करते थे, तिनकी भी सुधि ले आवैं ॥ हे रामजी ! जब हम उस मार्गके सन्मुख तब चले, एक आगे महाशून्य वन था, मानौं शून्य आकाश है, महातमरूप है, तहां कोउ वृक्ष दृष्ट न आवै, अवर पशु पक्षी मनुष्य कोउ दृष्ट न आवै, तिस वनविषे उसनें मुझकों कहा ॥ हे ब्राह्मण! इस स्थानविषे मैं आगे षट्मास रहा हौं, अरु मेरे सप्त भाई अवर थे, उनोंनें भी इह कामना धारीकरि दे

वीका तप आरंभ्या था, चलहु देखियें, महापवित्र स्थान है, जिसके दर्शन कियेतें संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, तब मैं कहा चलियें, पवित्र स्थानकों देख्या चाहियें ॥ हे रामजी ! ऐसे विचार करि चले जावें, जाते मरुस्थलकी तपी हुई पृथ्वीपर जाय निकसें, उह ब्राह्मण देखीकरि गिर पडा, अरु कहत भया ॥ हा कष्ट ! हा कष्ट ! हम कहां आनि पडे, मुझकों भी भ्रम उदय हुआ जो यह क्या भया, बहुरि उठ्या, उठि करि आगे गये, तब एक वृक्ष हमकों दृष्ट पडा, तिसके नीचे एक तपसी बैठा है, ध्यानविषे स्थित देखीकरि हम तिसके निकट गये, जायकरि कहा ॥ हे मुनीश्वर ! जाग जाग, जब हम बहुतवार कहा, तब उसनें नेत्र खोलिकरि हमकों देखे, अरु कहा, कवन हौ, तुम कवन हौ, ऐसे कहीकरि कहा, बहुत आश्चर्य है, इहां गौरी का स्थान था, उह कहां गया, वृक्ष बावलियां कमल थे, उह कहां गये, बडे सुंदर स्थान थे सो कहां गये, अरु बडे ऋषीश्वर मुनीश्वरके स्थान थे सो कहां गये ? हे साधो ! यह क्या आश्चर्य हुआ, सो तुम कहौ, तब हमनें कहा ॥ मुनीश्वर ! हम नहीं जानते, हम तौ अब आये हैं, इसकों तुमही जाणहु, तब कहत भया, बडा आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! ऐसे कहीकरि बहुरि ध्यानविषे स्थित हो गया, अरु व्यतीत वृत्तांतका ध्यान करि देखत भया, एक मुहूर्त्तपर्यंत देखीकरि बहुरि नेत्र खोलीकरि कहा, बडा आश्चर्य होय बीत्या है, तब हमनें कहा ॥ हे भगवन् ! जो कछु वृत्तांत हुआ सो कृपा करिके हमकों कहौ, तब तपसीनें कहा ॥ हे साधो ! इहां एक समय वागेश्वरी भवानी इस वनविषे आती भई, तिसनें एक रहणेका स्थान बनाया, तिसविषे शिवकी अर्ध शरीर गौरी रहत भई, अरु उस स्थानके निकट बहुत सुंदर वृक्ष लगाये, कल्पवृक्ष, तमालवृक्ष, कदंबवृक्ष इत्यादिक बहुत लगाये, अरु कमल फूल आदि लेकरि सर्व ऋतुके फूल लगाये, बावलियां, बगीचे रमणीय रचे, अरु कोएल भंवरे तोते मोर बगले इनतें आदि लेकरि जो पक्षी हैं, सो विश्राम करें, अरु शब्द करहीं, अरु निकट ऋषीश्वर मुनीश्वर तपसीकी कुटियां मानौ इंद्रका नंदनवन है, अरु

निकट गांवकी वस्ती बहुत आनि हुई ॥ हे साधो! इहां आठ ब्राह्मण तपके निमित्त आये थे, षट्मास इहा रही गये हैं, बहुत सुंदर स्थान है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्रह्मगीतागौरीबागवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुःषष्टितमः सर्गः ॥ २६४ ॥ ॥ ॥ ॥ कदंब उवाच ॥ हे साधो! मुझसों पूछौ तौ अपणा वृत्तांत मैं कहता हौं, मैं मालव देशका राजा था, अरु चिरपर्यंत खेदतें रहित मैं विषयभोग भोगे हैं, बहुरि मुझकों यह विचार आनि उपजा जो इह संसार स्वप्नमात्र है, इसकों सत् जाणी स्थित होणा मूर्खता है, एती आरबला मेरी बीति गई, मैं सुकृत कछु न किया, इह विषयभोग आपात रमणीय नाशवंत हैं, इनकों मैं चिरपर्यंत भोगता रहा हौं अरु मुझकों शांति न प्राप्त भई, तृष्णा बढती गई, तातें उही उपाय करौं, जिसकरि मुझकों शांति प्राप्त होवै, बहुरि दुःखी कदाचित् न होऊं॥ हे साधो! इह विचार मुझकों आनि उदय भया, तब मैं वैराग्य करिके राज्यकी लक्ष्मी त्याग करी, ऋषि अरु मुनिके स्थान देखता इस कदंब वृक्षके भी नीचे आनि स्थित भया, अरु ब्राह्मण आठ भाई आये थे, सो एक तौ इह इसी पर्वत उपर तप करणे जाय लगा था, अरु एक स्वामी कार्तिकके पर्वत उपर तप करणे लगा था, एक बनारसविषे तपकरणे लगा, एक हिमालय उपर तप करणे लगा, चार भाई तौ इस प्रकार चारों स्थानकों गये, अरु अवर चार भाई इहां तप करणे लगे, अरु कामना आठोंकी है जो हम सप्त द्वीप पृथ्वीके राजा होवैं ॥ हे साधो! इसकों तौ सूर्यनें वर दिया है, अरु अवर जो सात थे, तिननें वागेश्वरी भवानीकों इष्ट करिके तप किया, जब उह प्रसन्न भई, अरु कहा, वर मागहु तब उनहुंनें कहा, हम सप्त द्वीप पृथ्वीके राजा होवैं, सातनें एकै वर मागा, तिनकों वर देकरि परमेश्वरी अंतर्धान हो गई, अरु यह भी वर माग्या जो इहांके वासी हैं, तिनका स्थान भी हमारे पास होवै॥ हे साधो! इस वरकों पाइकरि उहांतें चले, अपणे गृह गये, अरु उह सदाशिवकी अर्धशरीर बारह वर्षपर्यंत रही, बहुरि उनकी मर्यादा थापणेनिमित्त उहांतें अंतर्धान हो गई, इहांके वासी

भी सब जाते रहे, वागेश्वरीके जाणेकरि इह स्थान शून्य हो गया, एक इह कदंब वृक्षका बच्चा रही गया है, एक मैं ध्यानविषे स्थित रहा हौं, इह वृक्ष भी रहा है, जो वागेश्वरीनें अपणे हाथकरि लगाया है, इस कारणतें इह नष्ट नहीं भया, अरु जर्जरीभाव भी नहीं भया ॥ हे साधो! इसके पास जो वस्तिवाले मनुष्य थे, सो भी जाते रहे ॥ भगवती अंतर्धान हो गई, मैं ध्यान इष्ट हो रहा, अवर जीव इहां आयकरि अदृष्ट हो गये, इस कारण सब शुभ आचार रहे अरु उन आठौं भाईविषे एक इह बैठा है, इसकों भी घर जाणा है, सात आगे गये हैं, उहां सब एकठे जाय होवैंगे, जैसे अष्टवसु ब्रह्मपुरीविषे एकत्र होवैं, तैसे एकत्रहोवैंगे ॥ हे साधो! जब गृहतें तप करणेनिमित्त निकसे थे, तब इनकी स्त्रियांनें विचार किया जो हमारे भर्ता तौ तप करणे गये हैं, हम भी जाय तप करैं, तिन आठनें तप आरंभ किया, सो सौ वृत्त चांद्रायण तिननें रखे, महाकृश जैसे शरीर हो गये, जैसे वसंत ऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढविषे कृश हो जाती है, तैसे उह हो गईयां, एक भर्त्ताका वियोग, दूसरा तपकरि कृश हो गईयां, तब पार्वती वागेश्वरी प्रसन्न भई, अरु कहा, कछु वर मागहु, जैसे मेघकों देखिकरि मोर प्रसन्नहोकरि बोलता है, तैसे उह प्रसन्न होके बोलियां ॥ हे देवताका ईश्वरी! हम यह वर मागतियां हैं, जो हमारे भर्त्ता अमर होवैं, जैसे तेरा अरु शिवका संयोग है, तैसे हमारा होवै, तब भवानीनें कहा ॥ हे सुभद्रे! इस शरीरकरि तौ अमर किसीनें नहीं रहणा, आदि जो सृष्टि हुई है, तिसविषे नेति हुई है, जो शरीरकरि किसीनें नहीं रहणा, जेता कछु जगत् देखीता है, सो सब नाशरूप है, कोउ पदार्थ स्थिर नहीं रहता, अवर कछु वर मागौ, तब उह ब्राह्मणीनें कहा ॥ हे देवी! भला जो जो हमारे भर्त्ता मरैं तौ इनके जीव हमारे गृहविषे रहैं, इनकी संवित बाहिर न जावै, तब वागेश्वरीनें कहा, ऐसेही होवैगा, उनके जीव तुमारेही घर विषे रहैंगे, अरु उनकों जो लोकांतर भासैगा, तिससाथही तुम भी उनकी स्त्री होकरि स्थित होवैंगियां, ऐसे कहीकरि अंतर्धान हो गई॥ ॥ कुंददंत उवाच॥ हे रामजी! इस प्रकार सुणीकरि

मैं आश्चर्यवान् हुआ, बहुरि मैंनें कहा॥ हे मुनीश्वर! तुझनें आश्चर्यकथा सुणाई है, जो आठों भाईनें एकही वर पाया, सप्तद्वीप पृथ्वीका अरु पृथ्वी एकहीविषे तिन सबको राज्य क्योंकरि प्राप्त होवैगा॥हे रामजी! जब इस प्रकार उसकों मैं कहा, तब कदंबतपा कहत भया॥ हे साधो! यह क्या आश्चर्य है, अवर आश्चर्य सुण॥ हे ब्राह्मण! जब यह आठौं भाई घरतें निकसे थे, तपके निमित्त, तब इनके जो पिता माता थे, तिननें विचार किया जो हमारे पुत्र तप करने गये हैं, हम भी उनके निमित्त जाय तप करैं, उनकी स्त्रीयांसाथ लेकरि तीर्थ अरु ठाकुरद्वारे दिखावते फिरे, दिखाइके उन एकांतबैठिकरि तप किया, तब कृच्छ्र चांद्रायण करिके देवीकों प्रसन्न कीनी, अरु वर लेकरि अपणे घरकों आणे लगे, तब एक स्थानविषे दुर्वासा ऋषीश्वर बैठा था, जैसा दुर्बल जैसे अंग तिसके, अरु विभूति लगाई हुई, अरु बडी जटा खुली हुई, तिसकों देखिकरि पासतेंही लंघिकरि चले गये, तिसकों नमस्कार न किया, तब उसनें कहा॥ हे ब्राह्मण! तूं क्यों दुष्ट स्वभाव करिके हमारे पास चला गया, हमकों नमस्कार भी न किया, अब तेरे वर निवृत्त होवैंगे, जो तुमकों प्राप्त हुआ है, सो न होवैगा, विपरीत हो जावैगा, तब उननें कहा॥ हे मुनीश्वर! यह वचन कैसे कहते हौ, हमारे उपर क्षमा करु, यह ऐसेही कहते रहे, जो उह अंतर्धान हो गया, तब ऐसे सुणीकरि यह अपणे गृहविषे आनि स्थित भये, शोकवान् होकरि॥ तौ हे ब्राह्मण! तूं देखु, जो जबलग आत्मबोधतें शून्य है, तबलग अनेक दुःख उपजैंगे, केई प्रकारके आश्चर्य भासैंगे, संदेह दूर न होवैगा, अरु जब आत्मबोध हुआ, तब कोउ संशय आश्चर्य न भासैगा॥ हे ब्राह्मण! इह सब चिदाकाशविषे मायामात्रही रचना बनती है॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणकथावर्णनं नाम द्विशताधिकपंचषष्टितमः सर्गः॥ २६५॥ ॥ ॥

॥ कुंददंत उवाच॥ हे भगवन्! मैं इह सुणीकरि आश्चर्यवान् हुआ हौं, अरु एक संशय उत्पन्न हुआ है, सो निवृत्त करौ, तुमनें कहा, एकठे एक द्वीपविषे आठौं सप्त द्वीपके राजे होवैंगे, द्वीप तौ सप्त एकही अरु

राज्य करनेवाले आठ, यह कैसे राज्य करैंगे, अरु इननें वर भी पाया, अरु शाप भी पाया, इह एकठे क्योंकरि होवैंगे, जैसे धूप अरु छाया एकठी होणी आश्चर्य है, जैसे दिन अरु रात्र एकठे होणे कठिण हैं, तैसे वर अरु शाप एक होणे कठिण हैं ॥ ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! जो कछु इनकी भविष्यत् होणी है, सो मैं कहता हौं, जब केताक काल व्यतीत होवैगा, गृहस्थविषे तब इनके शरीर छूटते जावैंगे, क्रम करिके आठके शरीर छूटैंगे, इनकों कुटुंबी जलावैंगे, इनकी पुर्यष्टका अनुभवसाथ मिली हुई एक मुहूर्त्तपर्यंत जडीभूत सुषुप्त होवैगी, तिसके अनंतर चेतनता फुरि आवैगी, शंख चक्र गदा पद्म चतुर्भुज विष्णुका रूप धारिके वर आवैंगे अरु त्रिनेत्र हाथविषे त्रिशूल भृकुटी चडाय क्रोधवान् सदाशिवका रूप धारिकरि शाप आवैंगे, दोनौं एकठे आनि होवैंगे, तब वर कहैंगे ॥ हे शाप! तुम क्यौं आये हौ ? अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके समय दूसरी नहीं आती, तैसे तुम न आवहु, तब शाप कहैंगे ॥ हे वरो ! तुम क्यौं आये हौ, अब तौ हमारा समय है, जैसे एक ऋतुके होते दूसरीका आवणा नहीं बनता, तैसे तुमारा आना नहीं बनता, तब वर कहैंगे ॥ हे शाप! तुमारा कर्त्ता ऋषि मनुष्य है, अरु हमारा कर्त्ता देवता है, मनुष्य करि देवता पूजणे योग्य हैं, काहेतें जो बडे हैं, तातें तुम जावहु, जब इस प्रकार वर कहैंगे, तब शाप क्रोधवान् होवैंगे, अरु मारणेके निमित्त त्रिशूल हाथविषे उठावैंगे, तब वर कहैंगे ॥ हे शापो ! तुम अरु हम लडैंगे, तब पाछे किसी बडे न्यायकर्त्ता पास जावैंगे, तब हमारा युद्ध निवृत्त करैगा, सो प्रथम क्यौं न जावैं, किसी बडे पास जो कछु हमारे तांई कहै, सो अंगीकार करणा, तातें अबही चलौ, तब शाप कहैंगे ॥ हे वरो! कोउ युक्तिसहित वचन कहता है, तिसकों सब कोउ मानता है, तुम भला कहा है चलियें, ऐसे चर्चा करिके दोनौं ब्रह्मपुरीविषे जावैंगे, जायकरि ब्रह्माजीकों प्रणाम करैंगे ॥ हे देव ! यह हमारा न्याय करौ, जो प्रथम वृत्तांत कहीकरि वर उनकों स्पर्श करै है, अथवा शाप स्पर्श करै है, तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे साधो ! जो जिनका

अभ्यास उनके अंतर दृढ होवै सो प्रवेश करौ, तब वरके स्थान शाप जायकरि ढूंढेंगे, अरु शापके स्थान वर जाय ढूंढैंगे, ढूंढिकरि शाप आय कहैंगे ॥ हे स्वामी ! हमारी हानि हुई है; अरु वरकी जय हुई है, काहेतें जो उनके अंतर वरही स्थित हैं, जिसका अभ्यास अंतर स्थित है, तिसीकी जय होती है, सो तौ इनके अंतर वज्रसारकी नांई वर स्थित हैं ॥ हे स्वामी ! हमारा आधिभौतिक शरीर कोउ नहीं, हम संकल्परूप हैं, तिस संकल्पकी दृढता होती है, सोई आनि उदय होता है, वरका कर्त्ता भी ज्ञानमात्र होता है, वरकों लेता भी उही ज्ञानरूप है, वरकों ग्रहण करता जानता जो इह हमारा स्वामी है, तिस संकल्पकरि वरका कर्त्ता देवता है, जो मैं वर दिया है, अरु ग्रहण करनेवाला जाणता है, जो मैं वर लिया है ॥ हे ईश्वर ! उसका जो वररूप संकल्प है, उसके निश्चयविषे दृढ हो जाता है, जिस संकल्पकी संवित्साथ एकता होती है, बहुरि उही प्रगट होता है, इसी प्रकार शाप भी है, तौ क्या है, न कोउ वर है, न शाप है, दोनौं संकल्परूप हैं, जैसा संकल्प अनुभव आकाशविषे दृढ होता है, सोई भासता है, वर देणेवाला भी अनुभवसत्ता है, अरु लेणेवाला भी आत्मसत्ता है, उही सत्ता वररूप होकरि स्थित होती है, उही सत्ता शापरूप होकरि स्थित होती है, जिस संकल्पकी दृढता होती है, तिसीका अनुभव होता है ॥ हे स्वामी ! इह तुमसौं सुण्या हुआ हम कहते हैं, जो बाह्य कर्म कोउ इसकों फलदायक नहीं होता, जो कछु उसके अंतर सार होता है, सोई फल होता है, इनके अंतर तौ वरका संकल्प दृढ है, हमारा है नहीं, तातें हमारा तुमकों नमस्कार है, अब हम जाते हैं ॥ हे कुंददंत ! इस प्रकार करिके शाप आधिभौतिक शरीर त्यागिकरि अंतवाहक शरीरसाथ अंतर्धान हो जावैंगे, जैसे आकाशविषे भ्रम करिके तरवरे भासैं, अरु सम्यक् ज्ञानकरि अंतर्धान हो जावैं, तैसे शाप अंतर्धान हो जावैंगे, तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे वरो ! तुम शीघ्रही उन पास जावहु, तब उह वर बहुरि पूछैगा, अरु दूसरा वर जो उनकी स्त्रियांनें लिया था, जो उनकी पुर्यष्टका अंतःपुरविषे रहैं, तातें ॥

हे भगवन्! हमकों क्या आज्ञा है, हम तौ उनकों उसी मंदिरविषे रखणा है, अरु उनकों सप्तद्वीप पृथ्वी का राज्य भी भोगणा है, अरु दिग्विजय करणा है, इह कैसे होवैगा, तब ब्रह्माजी कहैगा ॥ हे साधो! इह क्या है, जो सप्त द्वीपकी पृथ्वीका राज्य करणा है, उनका तुमारेसाथ विरोध कछु नहीं, तुम उसी मंदिर विषे उनकी पुर्यष्टका रखणी है, अरु उहांही राज्य भुगावणा अपणा जो कछु तुमारा स्वभाव है सो करणा ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे भगवन्! इसकरि तौ हमकों बडा संशय उत्पन्न हुआ है, उसी मंदिरविषे आठौं भाई सप्तद्वीप पृथ्वीका राज्य कैसे करैंगे, एती पृथ्वी उस मंदिरविषे क्योंकरि समावैगी, इह आश्चर्य है, जैसे कमलफूलकी डोडीविषे कोउ कहै, हस्ती शयन करै, अरु हस्तीकी पंक्ति उसीविषे है, सो आश्चर्य है, तैसे इह आश्चर्य है ॥ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ हे साधो! ब्रह्मरूपी आकाश है, तिसके अणुका जो सूक्ष्म अणु है, तिसविषे जो स्वप्न फुर्या है सो हमारा जगत् है, तिस स्वप्नविषे इह सृष्टि समाय रही है तौ मंदिर विषे समावणा क्या आश्चर्य है ॥ हे साधो! इह जगत् सब स्वप्नमात्र है, अहं त्वं आदिक जगत् सब स्वप्न निद्राविषे फुरता है, आत्मसत्ता सदा अद्वैत है, परमशांत अरु अनंत है, तिसविषे जगत् आभासमात्र है, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभव सूक्ष्मतें सूक्ष्म होता है, तिसविषे त्रिलोकी भासि आती है, जो सूक्ष्मसंवित्‌विषे त्रिलोकी भासि आती है, तौ मंदिरविषे भासणा क्या आश्चर्य है ॥ हे साधो! जब इह पुरुष मरि जाता है, तब इसकी सूक्ष्म पुर्यष्टका जड हो जाती है, तिसविषे बहुरि त्रिलोकी फुरि आती है, सो तुम देखहु, सूक्ष्महीविषे भासि आई क्यों, जो परमसूक्ष्मविषे सृष्टि बनी जाती है, तौ मंदिरविषे होणेका क्या आश्चर्य है॥ हे साधो! जेता कछु जगत् भासता है सो सब आत्मविषे स्थित है, तिसका किंचन इस प्रकार हो भासता है, तातें तुम जावहु, उनकों राज्य भोगावहु ॥ हे कुंददंत! जब इस प्रकार ब्रह्माजी कहैगा, तब वर नमस्कार करिके आधिभौतिकशरीरकों त्यागि देवैंगे, अंतवाहक शरीर साथ उनके हृदयविषे आनि स्थित होवैंगे, जैसे एक शत्रुकों दूर करि दूसरा आनि

स्थित होवै, तैसे शापकों दूर करिके उनके हृदयविषे वर आनि स्थित भये, तिनकों त्रिलोकी भासणे लगी, अरु पुर्यष्टकाकों अंतःपुरविषे वरनें रोकि छोडियां, जैसे जल बनकों रोकता है, तैसे उनकी पुर्यष्टकाकों रोकि छोडियां॥ हे कुंददंत! इस प्रकार उनकों अपणे अंतःपुरविषे सृष्टि भासी अरु जाणत भये, हम सप्तद्वीपके राजा हुये हैं, इस प्रकार आठही उस अंतःपुरविषे सप्तद्वीप पृथ्वीके राजा हुये, परंतु उसकों उह न जाणें, परस्पर अज्ञात सृष्टिके एक राजा सप्तद्वीपका भया, अरु रहणेका स्थान जंबुद्वीपविषे जो उज्जयनी है, तिसविषे उसकी राजधानी हुई, अरु एक कुशद्वीपविषे रहणे लगा, एक राजा क्रौंचद्वीपविषे रहणे लगा, अरु एक शाकद्वीपविषे रहै, जो तिसकों हरकारे आनि कहैंगे, पातालके नाग बडे दुष्ट हैं, तिनकों किसी प्रकार जीतौ, तब उह समुद्रके माग पातालविषे नागकों जीतणे जावैगा, अरु चौथा एक द्वीपविषे अपणी स्त्रीसाथ शांत हो जावैगा, अरु एक राजा शाल्मलद्वीपविषे स्थित होवैगा, तहां स्वर्णकी पृथ्वी है, बडी प्रकाशसंयुक्त है, तिस द्वीपविषे एक पर्वत होवैगा, तिसके उपर एक ताल होवैगा, तिस तालविषे विद्याधरीसाथ लीला करता फिरैगा, अरु पंचम एक क्रौंचद्वीपविषे राजा होवैगा, दिग्विजय करिके आवैगा, तिसकी जो प्रजा होवैगी सो बडीधर्मात्मा मानसी पीडातें रहित होवैगी, अरु एक गोमेदक नाम द्वीपविषे होवैगा, तिसका युद्ध पुष्करद्वीपवालेसाथ होवैगा, अरु एक पुष्करद्वीपका राजा होवैगा, सो गोमेदकवालेराजासाथ युद्ध करैगा॥ हे कुंददंत! इस प्रकार उह सृष्टि अपणे अंतःपुरविषे देखैंगे, अरु राज्य भोगैंगे, परस्पर उनकी सृष्टि अदृश्य होवैगी, अरु राजधानी भी सबकी मैं तेरे तांई कही, एककी जंबुद्वीप उज्जयनीविषे, एककी शाकद्वीपविषे, एककी कुशद्वीपविषे, एककी क्रौंचद्वीपविषे, एककी पुष्करद्वीपविषे, एककी गोमेदकद्वीपविषे, एक लोकालोक पर्वत स्वर्ण पृथ्वीविषे॥ हे साधो! इस प्रकार उनकी भविष्यत् होणी है सो मैं सब तुझकों कही है, अरु जैसा इसके अंतर निश्चय होता है तैसाही इसकों फल होता है, बाह्य इह कैसीही क्रिया करै,

अरु अंतर इसके सत्ता नहीं होती, तब उह फलदायक नहीं होती, जैसे नट स्वांग बनाय करि चेष्टा करता है, परंतु उसके अंतर उसका सद्भाव नहीं होता, इसकरि उह फलदायक नहीं होती, अरु पुत्रविषे अरु अंतर उनकी उर चित्त लगा रहता है तौ अंतर्भावनाकरि उह परे पुष्ट होते हैं ॥ हे साधो! जैसा इसके अंतर निश्चय होता है सोई वरदायक होता है, तातें निश्चय परमार्थका कारण योग्य है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे ब्राह्मणभविष्यत्राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्षष्टितमः सर्गः ॥ ॥ २६६ ॥ ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे मुनीश्वर! मुझकों संशय बडा प्राप्त हुआ है, जो उसी अंतःपुरविषे अपणे अपणे सब द्वीपका राज्य करैंगे सो कैसे होवैगा? ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो! जेता कछु जगत् तुझकों दृष्ट आता है सो कछु बणा नहीं, शुद्ध चिन्मात्रसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, उनकों जो अंतःपुरविषे अपणी अपणी सृष्टि भासैगी सो क्यारूप है, उनका जो अपणा अनुभव है, सोई सृष्टिरूप हो भासैगा, आपही सृष्टिरूप अरु आपही राजा होवैंगे, इह जो कछु जगत् तुझकों भासता है, सो भी परम ब्रह्म है, इतर कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग स्वाभाविक फुरते हैं, सो जलहीरूप हैं, अरु लीन होते हैं, सो जलहीरूप हैं, जलतें इतर कछु नहीं, न कछु उपजा है, न मिटता है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् उपजता अरु लीन होता है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, तातें उह ब्राह्मण भी अजरूप है, अपणे आपकों फुरणे करिके जगत्रूप देखैंगे ॥ हे साधो! जब सुषुप्ति होती है, तब अद्वैत अपणाही अनुभव होता है, बहुरि तिसविषे स्वप्नकी सृष्टि फुरी आती है, सो क्यारूप है, उही सुषुप्तिरूप है, तैसे परम सुषुप्तिरूप जो आत्मा है, जहां सुषुप्ति भी लीन हो जाती है, तिसविषे इह जगत् फुरता है, सो उहीरूप है, आधार आधेयतें रहित ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे साधो! जैसे एकही मंदिरविषे बहुत पुरुष शयन करैं, उनकों अपणे अपणे स्वप्नकी सृष्टि भासती है, तौ कछु आश्चर्य नहीं, तैसे उनकों अपणी अपणी सृष्टि भासैगी, इसविषे क्या आश्चर्य है, जो कछु जगत् भासता है,

सो ब्रह्मविषे है, अरु ब्रह्मरूपही अपणे आपविषे स्थित है ॥ ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे भगवन्! आत्मसत्ता तौ एक है, अरु केवल है, जिसविषे एक कहणा भी नहीं, परम शांतरूप शिवपद है, अरु अद्वैतरूप है, तौ नानाप्रकार क्यौं भासती है, इह तौ स्वभावसिद्ध है, सो नानात्व होकरि वास्तव क्यौं भासती है? ॥ ॥ कदंबतपा उवाच॥हे साधो! सर्व शांतरूपहै, अरु चैतन्य आकाश है,नानाप्रकार जो भासती है, सो अवर कोउ नहीं, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है सो बणी कछु नहीं, अपणा अनुभवही सृष्टिरूप हो भासता है, तैसे इह जगत् अनुभवरूप है॥ हे साधो! सृष्टिके आदि अद्वैत आत्मसत्ता थी, तिसविषे जो जगत् भासी आया सो भी तूं वहीरूप जाणहु, जैसे समुद्रही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता सृष्टिरूप हो भासती है, जैसे पुरुष स्तंभतें रहित स्थानविषे सोया है, तिसकों बहुत स्तंभसंयुक्त मंदिर भासी आया, तौ उहां बण्या तौ कछु नहीं, अनुभव आकाशही स्तंभरूप हो भासता है, तैसे जो कछु जगत् तुमकों भासता है सो अपणे अनुभवरूप जाणहु, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, जैसे बरफविषे शीतलता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, कोउ जगत् कहौ, कोउ ब्रह्म कहौ, ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, जैसे वृक्ष अरु तरु एकही वस्तु है, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एकही वस्तुके दो नाम हैं, इस जगत् अरु इंद्रियां मनतें अतीत आत्माकों जाणहु, अरु जो इन तीनका विषय है सो भी आत्माकों जाणहु, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, अरु नानारूप जो दृष्ट आता है सो नानात्व नहीं भया, दूसरा नहीं भासता है, जैसे स्वप्नविषे बडे आरंभ दृष्ट आते हैं, सैना अरु नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, परंतु कछु हुई नहीं, तैसे यही जगत् नानाप्रकार भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, सर्व चिदाकाशरूप है, जैसे एक निद्राकी दो वृत्ति हैं, एक स्वप्न एक सुषुप्तिरूप, स्वप्नविषे नानात्व भासती है, अरु सुषुप्तिविषे एकसत्ता होती है, तैसे चित्तसंवितके फुरणेविषे नानात्व भासता है; अरु अफुरणेविषे एक

है ॥ हे साधो! सर्वदा कालविषे एकरूप है, परंतु प्रमाद करिके भेद भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि अपणाही अनुभवरूप है, परंतु प्रमाद करिके भिन्न भिन्न भासती है, तैसे यह जगत् है, हमकों तो सर्वदा काल उही भासता है, जैसे पत्र फूल फल टास एकही वृक्षके नाम हैं, जो वृक्षका ज्ञाता है, तिसकों सब वृक्षरूप भासता है, तैसे सर्व नामरूपकरि हमकों आत्माही भासता है, आत्मातें इतर कछु नहीं भासता, आदि फुरणेविषे जैसे निश्चय हुआ है, सो अवर निश्चयपर्यंत तैसेही रहता है, इह सब विश्व संकल्परूप है, संकल्पका अधिष्ठान ब्रह्म है, ब्रह्मही संकल्परूप होकरि भासता है, तातें जेता कछु संकल्परूप जगत् भासता है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्म अरु जगतविषे भेद कछु नहीं, एकही वस्तुके दो नाम हैं, जैसे वृक्ष अरु तरु दोनों एक वस्तुके नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् दोनों एक चेतनके नाम हैं ॥ हे साधो! जो शब्द वाणीतें अगोचर है, तिसकों ब्रह्म जाण, अरु जो शब्द वाणीविषे आता है, तिसकों भी तूं ब्रह्म जाण, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जो ज्ञानवान् है, तिसकों सब ब्रह्मही भासता है, अज्ञानीकों नानात्व भासता है, जब अध्यात्म अभ्यास करैगा तब सब जगत्रूपही भासैगा, इसका नाम घोष है ॥ हे साधो! नानाप्रकार होकरि जगत् देखाई देता तो भी नानात्व कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिके नानाप्रकारके तरंग बुदबुदे चक्र दृष्टि आते हैं, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु पदार्थ दृष्ट आते हैं, सो सब आत्मरूप हैं, जेते कछु जीव बोलते दृष्ट आते हैं, सो भी महामौनरूप हैं, अवर कछु बन्या नहीं, चित्तके फुरणे करिके नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, परंतु आत्मातें इतर कछु नहीं, उही चिदाकाश ज्योंका त्यों स्थित है, अवर कछु बन्या नहीं, जो कछु आत्मातें इतर विद्यमान भासता है, तिसकों अविद्यमान जाण, ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब स्वप्नविलास है, जैसे नेत्रदूषण करिके आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे भ्रमदृष्टि करिके आत्माविषे जगत् भासता है, बन्या कछु नहीं, जैसे सुषुप्तिविषे पुरुष सो

या है, तिसकों फुरणा नहीं फुरता, बहुरि तिसी सुषुप्तिसों स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, सो बणी कछु नहीं, उही सुषुप्तिरूप है, अरु स्वप्नविषे स्थित पुरुष है, तिसकों सत् भासता है, अरु जो अनुभवविषे जाग्या है, तिसकों सुषुप्तिरूप है, तैसे इह जगत् जाण, आत्मातें इतर कछु नहीं, जब जागीकरि देखैगा, तब सब चिन्मात्रही भासैगा, शांतरूप है, अनंत है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे जो जगत् भासता है, सो सत् भी नहीं, अरु असत् भी नहीं, सत् इस कारणतें नहीं जो आभासमात्र है, अरु नाशवंत है, अरु असत् इस कारणतें नहीं जो प्रगट भासता है, वास्तवतें आत्मसत्तासों भिन्न नहीं, भाव अभाव सुख दुःख उदय अस्त उही आत्मसत्ता इह प्रकार हो भासती है, जैसे एकही निद्राके दो पर्याय हैं, स्वप्न भी अरु सुषुप्ति भी निद्राके नाम हैं, तैसे जगत् अरु आत्मा दोनों एकही सत्ताके पर्याय हैं, जैसे एकही वायु स्पंद अरु निस्पंद दो रूप होती है, तैसे आत्मसत्ताके दोनों रूप हैं, जब संवेदन जो है, जानणा सो नहीं फुरता, तब अग्निवाची रूप होती है, अरु जब अहं इस भावकों लेकरि फुरती है, तब संकल्परूपी सृष्टि बणी जाती है, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी तत्त्व भासी आते हैं, नक्षत्रचक्र देवता मनुष्य पशु पक्षी जलका नीचे चलणा, अग्निका ऊर्ध्व चलणा, तारागण प्रकाशवान पृथ्वी स्थिरीभूत इनतें आदि लेकरि जो स्थावरजंगम रूप सृष्टि है, सो अपणे स्वभावसहित भासती आती है, शुभ अशुभ कर्म होते हैं, तिसविषे सुख दुःख फलकी नेति होती है, सो क्या है, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, जैसे तूं मनोराज्य करिके स्वप्ननगर कल्पी लेवै, तिसविषे अनेक प्रकारकी चेष्टा होवै सो जबलग संकल्प होवै, तबलग उही सृष्टि स्थित होती है, जब संकल्प मिटि गया, तब सृष्टिलय हो जाती है, तौ वस्तु कछु न भई, तेरा अनुभवही सृष्टिरूप होकरि स्थित भया, तैसे इह जगत् अनुभवरूप है, अवर कछु नहीं ॥ ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे रामजी! संकल्प जो फुरता है, सो पूर्व स्मृतिकों लेकरि फुरता है, ब्रह्मविषे जो मनोराज्य संक

ल्पकी सृष्टि उत्पन्न होती है, सो किसी संस्कारकों लेकरि फुरती है, इह संशय मेरा निवृत्त करौ ॥ ॥

॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! इह संपूर्ण सृष्टि किसी संस्कारतें नहीं उत्पन्न भई, भ्रम करिके भासती है, जैसे स्वप्नविषे आपकों मृतक हुआ जाणता है, सो इसकों पूर्वले संस्कारकी स्मृति तौ नहीं होती, अपूर्वही भासी आती है, तैसे इह पदार्थ जो तुझकों भासते हैं, सो अपूर्व हैं, किसी स्मृतिकरि नहीं भये, स्मृति अनुभव तौ जगत्हीविषे उत्पन्न भये हैं, जब जगत्का फुरणा न था फुर्या, तब स्मृति अनुभव भी न थे, जब जगत् फुर्या तब इह भी फुर्या है, तातें संपूर्ण जगत् अपूर्व है, भ्रम करिके भासता है, जैसे स्वप्नविषे मुआ किसी कुलविषे अपणा जन्म देखै, अरु उसका कुल चिरकालका चला आता है, ऐसे भासै, अरु जब जागी उठ्या, तब पूर्व किसकों कहै, स्मृति किसकी करै, न कहूं जन्म रहता है, न कुल रहता है, तैसे ज्ञानवान्कों इह जगत् आकाशरूप भासता है, तौ मैं तुझकों पूर्वकी स्मृति क्या कहौं ॥ हे ब्राह्मण ! अवर कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ताही ज्योंकी त्यों स्थित है, जिसतें इह सर्व जगत् हुआ है, अरु जिसविषे इह सर्व है, जो सर्व है, सो सर्वात्मा है, जो उही है तौ दूसरा किसकों कहौं, तातें ऐसे जाणीकरि तुम विचारौ तब दुःख तुमारे नष्ट होवैंगे ॥ हे साधो ! छ जो कारक हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, कर्त्ता, करण, कर्म, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, इह छ ब्रह्मरूप हैं, कर्त्ता कहियें कर्मके करणेहारा, अरु कर्म कहियें जो कर्म करणा होवै, करण कहिये क्रियाका साधक, अरु संप्रदान कहियें जिसनिमित्त होवै, अपादान कहियें जिसतें ले करियें, अरु अधिकरण कहियें, जिसविषे करियें ॥ हे साधो ! इह छ कारक ब्रह्मरूप हैं, इसविषे विश्वका कर्त्ता भी ब्रह्म है, विश्वकर्मा भी ब्रह्म है, विश्वका साधक भी ब्रह्म है, जिसविषे निमित्त इह विश्व है, सो भी ब्रह्म है, जिसविषे इह विश्व होता है, सो भी ब्रह्म है ॥ हे साधो ! ऐसा जो सर्वात्मा है, तिसकों नमस्कार है ॥ हे साधो ! तिस सर्वात्माकों ऐसे जानणा, यही उसकी परम पूजा है, ऐसेही तुम पूजन कर

हु ॥ हे साधो ! अब तुम जावहु, अपणा जो कछु वांछित है, तिसविषे विचरहु, अरु तुमकों अपणे बांधव चितवते होवैंगे, तिनके पास जावहु, जैसे कमल पास भंवरे जाते हैं, अरु हम भी समाधिविषे स्थित होते हैं, जो कछु गुह्य बात है, सो भी मैं कहता हौं, जिसतें कोउ सुख पावता है, सोउ करता है, मुझकों जगत् दुःखदायक दृष्ट आया है, इस कारणतें समाधिविषे जुडता हौं ॥ हे साधो ! यद्यपि मेरे तांई सब अवस्था तुल्य हैं, भेद कछु नहीं, तौ भी चित्तकी वृत्ति जो संसारके कष्टतें दुःखित होकरि आत्मपदविषे स्थित हुई है, तिस स्थितिका जो कोउ सुख है, तिसके संस्कारकरि बहुरि तिसी उर धावता है, तातें तुम जावहु, मैं स्थित समाधिविषे होता हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुंददंतोपदेशो नाम द्विशताधिकसप्तषष्टितमः सर्गः ॥ २६७ ॥ ॥ ॥ ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार कहीकरि उह बहुरि समाधिविषे जुडि गया, इंद्रियां अरु मनकी क्रियातें रहित हुआ, मानौ कागद उपर मुर्त्ति लिख छोडी है, ऐसे हो गया, तब हम बहुरि जगाय रहे, बडे शब्द करि रहे, परंतु उह न जाग्या, तब हम उहांतें चले, ब्राह्मणके घर आये, उनके घरविषे बडा उत्साह हुआ, बहुरि समय पाय क्रम करिके सातौ भाई मरी गये, अरु अष्टम मेरा मित्र जीता रहा, बहुरि उह भी मृतक हो गया, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ, मेरा प्रीतम भी मरी गया अब मैं क्या करौं ॥ हे रामजी ! मैं विचार किया जो बहुरि कदंबतपापास जाऊं, जो मेरा दुःख नष्ट होवैगा, तब मैं गया, जायकरि तीन मासपर्यंत उसके पास रहा, उसकों मैं जगाय रहा, परंतु उह न जाग्या, तीन मास होय चुके, तब उह जाग्या, मैं उसकों प्रणाम करिके कहा ॥ हे मुनीश्वर ! उह तौ अपणे अपणे राज्यकों भोगणे लगे हैं, अरु मैं एकला कष्टवान् हुआ हौं, तातें मेरा दुःख तुम नष्ट करौ, मैं तुमारी शरण आया हौं ॥ ॥ कदंबतपा उवाच ॥ हे साधो ! मैं तुझकों उपदेश करौं, परंतु तुझकों स्वरूपका साक्षात्कार न होवैगा, काहेतें जो अभ्यास तुझसों न होवैगा, अरु अभ्यासविना

साक्षात्कार स्वरूपका नहीं होता, मेरा कहणा भी व्यर्थ होवैगा, तातें मैं दुःख नष्ट होणेका उपाय तुझकों कहता हौं, तिसकरि तूं मेरे समान होवैगा, दुःखतें रहित अनंत आत्मा होवैगा ॥ हे साधो! अयुध्या नगरी है, तिसका राजा दशरथ है, तिसके गृहविषे रामजी पुत्र है, तिस रामजीकों वसिष्ठजी मोक्ष उपाय उपदेश करैगा, बडी सभाविषे कहैगा, तहां तूं जा, तुझकों भी स्वरूपकी प्राप्ति होवैगी, संशय मत कर ॥ हे रामजी! जब इस प्रकार उस तपसीनें मुझकों कहा, तब उहांतें चल्या, मैं तुमारे पास आया हौं, जो कछु तूं पूछता था सो सब वृत्तांत कहा है, जो कछु देख्या सुण्या है, सोई कहा है ॥ राम उवाच ॥ हे वसिष्ठ! उह वृत्तांत मैं उसका सुण्या था, सो प्रभोके आगे कहा है, अरु कुंददंत भी तुमारे पास इह बैठा है, अब इसतें पूछियें जो स्वरूपकी प्राप्ति हुई है अथवा नहीं हुई, तुम इसकी अवस्था पूछहु ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी मुनिविषे शार्दूल है, सो तिसकी उर कृपादृष्टि करिके बोलत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे ब्राह्मण! यह मोक्ष उपाय जो मैं संपूर्ण कहा है, तिसकों सुणीकरि तूं क्या जाणत भया है ॥ कुंददंत उवाच ॥ हे सर्व संशयके छेदणेहारे! जो कछु मुझकों संशयरूपी तम आवरण था, सो सब नष्ट होगया है, तुमारे वचनरूपी प्रकाशकरि अज्ञानरूपी अंधकारका नाश भया है, अरु जो कछु जानणेयोग्य पद है, सो मैंनें जाण्या है, जो कछु पावणेयोग्य था, सो मैं पाया है, अब मैं अपणे स्वभावविषे स्थित भया हौं, अब मुझकों कल्पना कोउ नहीं रही, मैं अनंत आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अच्युत हौं, परमानंद स्वरूप हौं, सर्व जगत् मेराही स्वरूप है ॥ हे भगवन्! अंतःपुरिविषे जो एती सृष्टि समावणेका संशय था, सो तुमारे वचनकरि दूर भया है, अरु एक एक राईविषे मुझकों ब्रह्मांड भासते हैं, अरु आत्मत्वभाव करिके दिखाइ देते हैं, जैसे अनेक दर्पणविषे अपणा मुखही भासता है, तैसे मुझकों सर्व उरतें अपणा आपविषे भासता है ॥ हे भगवन्! तुमारे वचन मैं आदितें लेकरि अंतपर्यंत संपूर्ण श्रवण किये हैं, कैसे वचन तुमनें कहे हैं, परम पावन हैं, अ

रु सारतें परम सार हैं, आत्मबोधका कारण हैं, तिनके विचारे मेरी भ्रांति निवृत्त हो गई है, अरु अपणे आपविषे स्थित भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे कुंददंतविश्रामप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकाष्टषष्टितमः सर्गः ॥ २६८ ॥ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार कुंददंतनें कहा, तब वसिष्ठजी सुणीकरि परम उचित वचन परम पद पावणेका कारण बहुरि कहत भये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अब कुंददंत आत्मानुभवविषे विश्राम पाया है, इसकों अब हस्तामलकवत् अपणा आप अनुभवरूप जगत् भासता है, आत्माही निद्रास्वरूप होकरि भासता है, अरु आत्माही द्रष्टारूप है, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं, अपणा अनुभव जगत्रूप हो भासता है, सो अनुभव आकाश कैसा है, सम शांतरूप है, अनंत है, अखंड है, सदा ज्योंका त्यों है ॥ हे साधो! नानारूप भासता है, परंतु अनाना है, सदा ज्योंका त्यों अचैत्य चिन्मात्र परम शून्य है, जिसविषे शून्य भी शून्य हो जाती है, चैत्य दृश्यरूप जो फुरणा है, तिसतें रहित है, इसी कारणतें परम शून्य है, बोलता दृष्ट आता है तौ भी परम मौन है॥ हे रामजी! तिसविषे जगत् कछु बन्या नहीं, जैसे स्वप्नविषे पहाड दृष्ट आते हैं, सो न सत् हैं, न असत् हैं, तैसे इह जगत् सतअसततें विलक्षण है, काहेतें जो कछु बन्या नहीं, जो कछु भासता है, सो आत्मा है, जैसे रत्नका प्रकाश चमत्कार होता है, तैसे आत्माका प्रकाश जगत् है, जैसे समुद्र द्रवता करिके तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्म संवेदन करिके जगत्रूप हो भासता है, अरु आदि स्पंद फुरि आये हैं, सो जगत्रूप होकरि स्थित भया है, सो जैसे हुआ, तैसे हुआ, सो कार्यकारणभावतें रहित है, जिसकों प्रमाद है, तिसकों यह कारणभाव भासता है, उसकों तैसाही है, जब सत् जाणीकरि पाप करता है, सो बडे पाप आनि उदय होते हैं, तब स्थावररूप होता है, बहुरि स्थावरकों त्यागिके जंगम मनुष्य होता है॥ हे रामजी! इस प्रकार इह ज्ञानसंवित् चैत्यसंबंधी होकरि नानाप्रकारके रूप धारती है, अरु प्रमाद करिके भिन्न

भिन्न भासती है, परंतु स्वरूपतें कछु अवर नहीं होती, सदा अखंडरूप है, जबलग प्रमाद होता है, तबलग जगत्का आदि अरु अंत नहीं भासता, जब प्रमादतें जागता है, तब सर्व कल्पना मिटि जाती हैं ॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् भासता है, सो कछु बन्या नहीं, उही ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जब जाग्रत अवस्थाका अभाव होता है, अरु सुषुप्ति आती है, तिसविषे न शुभकी कल्पना रहती है, न अशुभकी कल्पना रहती है, उदयअस्तकी कल्पनातें रहित अद्वैतसत्ता रहती है, जब बहुरि तिसविषे चेतनता फुरती है, तब बहुरि स्वप्नकी सृष्टि भासती है, कहुं स्थावर जंगम सृष्टि भासती है, जिनविषे संवेदन फुरती भासती है, सो जंगम कहाता है, अरु जिनविषे संवेदन फुरणा नहीं भासता, सो स्थावर कहाता है, परंतु अवर कछु नहीं, उही अद्वैत अनुभवसत्ता स्थावर जंगमरूप हो भासती है, तैसे आत्मा अनुभव इह जगत् हो भासता ॥ हे रामजी! सृष्टिके आदि परम सुषुप्ति सत्ता थी, तिसविषे संवेदन फुरणे करिके जगत् भासि आया, सो उही संवेदनरूप जगत् है, जिस आत्मसत्ताविषे फुरी है, उही रूप है, इतर कछु नहीं, जैसे शरीरके अंग हस्त पाद नख केशादिक सब शरीररूप हैं, तैसे परमात्माके अंग हस्त पादादिक जंगम सृष्टि अरु नखकेशादिक स्थावर सृष्टि सब आत्मारूप है, अवर दूसरी वस्तु कछु नहीं बणी, जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभवरूप होती है, जैसे संकल्पपुर रची सृष्टि संकल्परूप होती है, तैसे इह सृष्टि अनुभवरूप है, अरु इह किसी कारणकरि नहीं उपजा; तातें ब्रह्महीरूप है, ब्रह्मके सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि फुरी है, सो क्या रूप है, ब्रह्मही सृष्टि है, अरु सृष्टिही ब्रह्म है, ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, परंतु अज्ञाननिद्रा करिके भिन्न भिन्न भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे भगवन्! निद्राका केताक प्रमाण है, अरु केते कालपर्यंत रहती है, अरु सूक्ष्म अणुविषे सृष्टि कैसे फुरी है, अरु कैसे स्थित है, अरु अणु किसकरि उसकी संज्ञा है, अरु अनंत क्योंकरि है, अरु जो देवता असुरादिक रूपकों चित्त प्राप्त हुआ है? ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी ! अज्ञाननिद्रा अपणे कालविषे तौ अनादि है, नहीं जाणी जाती, जो कब की भई जाती है, अरु अंत भी नहीं जाण्या जाता, जो कबलग रहैगी, अज्ञानकालविषे तौ इसका आदि अंत परिमाण कछु नहीं भासता, अरु बोधमें इसका अत्यंताभाव देखीता है, अरु चित्तसत्ताकी जो अनंतता पूछे सो हे रामजी ! अद्वैत चिन्मात्र आत्मसमुद्र है, तिसविषे सूक्ष्मभाव अहं अस्मि जो संवित् फुरती है, तिसका नाम चित्त है, तिस चित्तविषे आगे जगत् होता है, शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदन चित्त फुरता है, तिसविषे जगत् है, उही चित्त देखता असुर अरु जंगमरूप हो भासती है, नाग पिशाच कीटादिक स्थावर जंगमरूप होय भासती है, अरु वस्तुतें चेतनसत्ताही है, तिसतें इतर कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, फुरणेकरि नानाप्रकार है ॥ हे रामजी ! परम शुद्ध चिद् अणुसाथ मिलीकरि चित्त अनेक ब्रह्मांडकों धारता है, तिस सूक्ष्म अणुविषे अनंत ब्रह्मांड फुरते हैं, परंतु तिसतें भिन्न नहीं, जैसे एक पुरुष शयन करता है, तिसकों स्वप्नविषे अनेक जीव भासी आते हैं, तिन जीवविषे अपणे अपणे स्वप्नकी सृष्टि फुरती है, सो अनेक सृष्टि हो जाती है, तैसे सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि फुरती है, परंतु कछु आत्मसत्तातें इतर नहीं बन्या, जैसे सूर्यकी किरणांविषे अनंत त्रसरेणु होती हैं, सो सूक्ष्म होती हैं, तैसे परमात्मा सूर्यके चिद् अणु सूक्ष्म है, इन त्रसरेणुतें भी सूक्ष्म चिद् अणुविषे अनंत सृष्टि अपणी अपणी फुरतिया हैं ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त फुरता रहता है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं आता, असंख्य जगत्भ्रम इस आगे देखे हैं, अरु असंख्यही आगे देखैगा, जब चित्त फुरणेतें रहित होता है, तब जगत्कलना मिटि जाती है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, बडे व्यवहार होते हैं, जब जागी उठता है, तब स्वप्नसृष्टि व्यवहारकी कल्पना मिटि जाती है, अद्वैत अपणा आपही भासता है, तैसे चित्तके ठहरणेतें सब भ्रम मिटि जाता है ॥ हे रामजी ! सूक्ष्म चिद् अणु भी इसकी संज्ञा तब हुई है, जब इसकों चित्तका संबंध हुआ है, जब

चित्तकों अपणे स्वभावविषे स्थित करैगा, तब द्वैतकल्पना सूक्ष्म स्थूल भाव मिटि जावैगा, अरु सूक्ष्म जो इसकी संज्ञा है, सो अविद्यकभाव करिके है, जो इंद्रियका विषय नहीं, इसकरि अणुता है, अरु सूक्ष्म अणुविषे व्याप्या हुआ है, इसकरि सूक्ष्म अणु कहता है, अरु अनंतता इस करिके जो सबकों धारि रहा है, अरु इह जगत् क्या है ॥ हे रामजी! इह जगत् अभावमात्र है, जैसे मरुस्थलविषे जलाभास होता है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, यह जगत् हैही नहीं, तौ इसका कारण कवन कहियें, आदि सृष्टि अकारण फुरी है, बहुरि इसविषे कारणकार्य भासणे लगे, सो आभासकी दृढता हो गई है, जैसे स्वप्नविषे आदि सृष्टि अकारण बीजवृक्ष कुलाल माटी घट एकठे फुरि आते हैं, जब उस स्वप्नकी दृढता हो जाती है, तब कारण कार्य भासते हैं, परंतु जो सोया पडा है, तिसकों दृढ भासते हैं, तैसे अज्ञानीकों जगत् कार्यकारण दृढ भासता है, ज्ञानवान्कों सब अपणा आपही भासता है, जैसे स्वप्नतें जागे स्वप्नसृष्टि अपणा आपही भासती है, जो मैंही था, अवर कछु न था, तैसे ज्ञानवान्कों सब जगत् आकाशरूप भासता है, पृथ्वी आप तेज वायु आकाश देवता मनुष्य पशु पक्षी पर्वत वृक्ष नदी स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है, संवेदनके फुरणेकरि दृष्ट भासते हैं, वास्तवतें इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी! इह जगत् चित्तविषे स्थित है, जैसे किसी पुरुषनें स्तंभविषे पुतलीयां कल्पियां सो पुतलीके दो रूप होते हैं, जो शिल्पीकों चित्तविषे फुरतियां हैं, सो आकाशरूप हैं, अरु जो स्तंभविषे कल्पियां हैं, सो स्तंभरूप हैं, स्तंभविषे स्थित रूप हैं, अरु शिल्पीके चित्तविषे नृत्य करतियां हैं ॥ हे रामजी! अवर तौ कछु नहीं, स्तंभरूप हैं, सो शिल्पिके चित्तविषे कल्पनामात्र हैं, तैसे चित्तरूपी शिल्पीकी जगत्रूपी पुतलीयां कल्पनामात्र हैं, आत्मरूपी स्तंभ ज्यौं का त्यौं है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे पटउपर मूर्त्ति लिखी होवै, सो मूर्त्तिका रूप पटही है; पटतें इतर कछु नहीं, उह पटही मूर्त्तिरूप भासता है, तैसे इह जगत् आत्मातें इतर कछु नहीं, आत्माही जगत्रूप हो

भासता है, आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, जैसे ब्रह्म आकाशरूप है, तैसेही जगत् आकाशरूप है, जगत्रूप आधार है, ब्रह्म तिसविषे वसणेहारा है, अरु ब्रह्मारूप आधार है, जगत् तिसविषे वसणेहारा है ॥ हे रामजी! जैसे समूह है, जगत्विषे विद्या अरु अविद्यारूप सो सब संकल्पकरि रचित है, अरु वास्तवतें सब आत्मस्वरूप है, समता सत्यता निर्विकारता इनतें आदि लेकरि अरु इनतें विपरीत अविद्यारूप सो सब एकही रूप है, एकहीविषे फुरते हैं, अरु एकही रूप हैं, जैसे स्वप्न जगत् अनुभवरूप अनुभवविषे स्थित होता है, सो सर्व आत्मरूप होता है, तैसे इह जगत् सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्मतें इतर न कछु वरकी कल्पना है, न शापकी कल्पना है, ब्रह्मसत्ता निर्विकार अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे न कारण है, न कार्य है, जैसे ताल नदी मेघ एकही जल होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वर अरु शापके कर्त्ता तौ परिच्छिन्न पाइते हैं, कारणविना तौ कार्य नहीं पाइता, तुम कैसे कहते हौ, जो कारण कार्य कोउ नहीं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ताका किंचन जगत् होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्मसत्ताविषे जगत् फुरता है, जैसे तरंग जलरूप होते हैं, तैसे जगत् आत्मरूप है, आत्मातें इतर कछु नहीं, जैसे आदि परमात्मातें सृष्टिका फुरणा हुआ है, तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, सब जगत् संकल्परूप है, अनेक प्रकारकी वासना संवेदनविषे फुरती हैं, जिनकों स्वरूपका विस्मरण भया है, तिनकों इह जगत् सत्रूप भासता है, जो उनकों विचार उत्पन्न होवै, तौ उही काल है, जिस कालविषे विचार उत्पन्न होता है, तिसी कालविषे अज्ञान निद्राका अभाव होता है ॥ हे रामजी! जब विचार अभ्यास करिके मन तद्रूप होता है, तब इसकों यथाभूत दर्शन होता है, अरु संपूर्ण ब्रह्मांड अपणा आपही भासता है, काहेतें जो अपणे आपविषे स्थित है, जो सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, तिसविषे इसकों अहंप्रतीति होती है, इस कारणतें अपणे आपविषे

सृष्टि भासतियां हैं, जैसे स्पंद फुरते हैं; तैसेही उसका सिद्ध होता है, निरावरण दृष्ट होता है, निरावरण दृष्ट करिके सर्व संकल्प सिद्ध होता है, काहेतें जो इह जगत् सब आत्माविषे संकल्पका रचा हुआ है, तिसविषे इसकों अहंप्रत्यय हुई है ॥ हे रामजी! जो संकल्प उसकों उठता है, जो यह कार्य ऐसे होवै, सो तैसेही होता है ॥ हे रामजी! शुद्ध संवेदनविषे संकल्प होता है, सोई हो भासता है, सो संकल्पही रूप है, संकल्पतें इतर नहीं, इस कारणतें वर अरु शापका अवर कारण कोउ नहीं, वर अरु शाप भी संकल्परूप हैं, अरु तिसकरि जो पदार्थ उत्पन्न हुआ है, सो किसी कारण समवायकरि तौ नहीं उत्पन्न हुआ, संकल्पहीकरि हुआ क्यौं, तातें सब अकारणरूप है, अरु ब्रह्मरूपी समुद्रके तरंग उठते हैं, अवर कारण अरु कार्य मैं तुझकों क्या कहौं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, अवर द्वैत अरु एककी कल्पना कछु नहीं ॥ हे रामजी! हमकों सदा ब्रह्मसत्ताही भासती है, कार्य कारण कोउ नहीं भासता, जैसे स्वप्नविषे किसीके घरमें पुत्र भया, बडे उत्साहकों प्राप्त हुआ, जब जागृतका संस्कार चित्त आया, तब उसका पिताही उपजा नहीं तौ पुत्र कैसे कहियें, सब अपणा आपही हो जाता है, न कोउ कारण भासता है, न कार्य भासता है, अरु जो स्वप्नविषे सोया है, तिसकों जैसे भासता है, तैसेही भासता है, जैसे वर अरु शापका आश्रय संकल्प है, संकल्पही वर शाप हो भासता है, कारण भी होता है, अरु जिसकों शुद्ध संवेदनसाथ एकता भई है, सो निवारण है, तिसविषे जैसे फुरणा आभास फुरता है, तैसाही सिद्ध होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! एक ऐसे है, जिनकों आवरण है, अरु उनका संकल्प जैसे फुरता है, वर देवै अथवा शाप देवै, तैसेही हो जाता है, अरु स्वरूपका साक्षात्कार उनकों नहीं भया, अरु शुभ कर्म उनविषे प्रत्यक्ष पाइते हैं, तौ शुभ कर्मही कारण भये, वर शापके तुम कैसे कहते हौ, जो निरावरण पुरुषका संकल्प सिद्ध होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र जो सत्ता है सोई चित्तधातु कहाती है, तिस चित्तधातुविषे

जो आभास फुरणा है, सो संवेदन कहाती है, सो संवेदन जब फुरती है तब जाणीता है जो मैं ब्रह्म हौं, तौ संवेदनही आपकों जगत्का पितामह जाणत भई क्यों? तिसीनें आगे मनोराज्य कल्प्या, तब पंचभूतक जानणा हुआ, जो शून्यरूप आकाश हुआ, स्पंदरूप वायु है, उष्णरूप अग्नि है, द्रवतारूप जल है, कठोररूप पृथ्वी है, बहुरि देश अरु कालकी कल्पना भई, स्थावर जंगम पदार्थकी कल्पनाकरि वेद शास्त्र धर्म अधर्मका फुरणा हुआ, तिसविषे इह निश्चय हुआ जो इह तपसी है, इसनें तप किया है, इसके कहेतें वर होवै, अरु जो कछु कहै सो होवै, स्वरूपके साक्षात्कारतें रहित है तौ भी इसका कहा होवै, इह तपका फल है, आदि संकल्प ऐसे हुआ है तौ वरशापका कर्त्ता तपसी नहीं, इसका अधिष्ठान उही संवेदन है, जिसतें आदि संकल्प फुर्या है॥ हे रामजी! वर अरु शाप संकल्परूप हैं, संकल्प संवेदनतें फुर्या है, संवेदन आत्माका आभास है तौ मैं कारण अरु कार्य क्या कहौं, अरु जगत् क्या कहौं, आत्माका आभास संवेदन ब्रह्मा है, तिसनें आगे संकल्पपूर सृष्टि रची है, हम तुम आदिक सब उसके संकल्पविषे हैं, सो ब्रह्माजी कैसा है, निराकार अरु निराधार है, निरालंब स्थित है, कछु आकारकों नहीं प्राप्त भया, तातें उसकी विश्व भी उहीरूप जाण॥ हे रामजी! जैसे उसका स्पंद हुआ है, तैसेही स्थित है, अन्यथा नहीं होता, उही विपर्यय करै तौ होवै, अवरसों नहीं होता, अग्निविषे उष्णता, वायुविषे स्पंदता इत्यादिक जो पदार्थ हैं, सो अपणे अपणे स्वभावविषे स्थित हैं, अरु हमकों सब ब्रह्मरूप हैं, जैसे शरीरविषे हाड मांसतें इतर नहीं होता, तैसे हमकों ब्रह्मतें इतर नहीं भासता, जैसे घटविषे मृत्तिकातें इतर कछु नहीं होता, जैसे काष्ठकी पुतली काष्ठतें इतर नहीं होती, तैसे जगत् ब्रह्मतें इतर नहीं होता॥ हे रामजी! जेता कछु जगत् तुझकों भासता है सो ब्रह्मही है, ब्रह्मही फुरनेकरि नानाप्रकार जगत् हो भासता है, जैसे समुद्र द्रवता करिके तरंग बुदबुदे फैन हो भासते हैं, तैसे ब्रह्म संवेदनकरि जगत्रूप हो भासता है, परब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जैसे

पर्वततें जल गिरता है, सो कणके कणके जल भासता है, जल गिरिकरि ठहरि जाता है, तब समुद्ररूप होता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं होता, तैसे जब चित्त फुरता है, तब नानाप्रकारका जगत् हो भासता है, जब चित्त ठहरि जाता है, तब सर्व जगत् एक अद्वैतरूप हो भासता है, परब्रह्मतें इतर कछु नहीं होता, ब्रह्मही स्थावर जंगमरूप हो भासता है, जहां पुर्यष्टकाका संबंध नहीं भासता सो अजंगम कहाता है, जहा पुर्यष्टकाका संबंध होता है तहा जंगमरूप भासता है, परंतु आत्माविषे उभय तुल्य हैं, जैसे एकही हाथकी अंगुली है, जिसकों उष्णता अथवा शीतलताका संयोग होता है, सो फुरणे लगती है, जिसकों शीतल उष्णका संयोग नहीं होता सो नहीं फुरती, तैसे जिस आकारकों पुर्यष्टकाका संयोग है, सो फुरता है, चेतनता भासती है, अरु जिसकों पुर्यष्टकाका संयोग नहीं, तिसविषे जडता भासती है, सो जड भी आगे दो प्रकारका है, एककों पुर्यष्टकाका संयोग है, अरु जड है, एककों पुर्यष्टकाका संयोग नहीं, अरु जड है, वृक्ष पर्वतकों पुर्यष्टकाका संयोग है, परंतु घन सुषुप्ति जडताविषे स्थित भई है, तिस कारणतें जड भासते हैं, अरु मृत्तिका पुर्यष्टकातें रहित है, इस कारणतें जड परंतु वास्तवतें स्थावर जंगम इष्ट अनिष्ट वर शाप देश काल पदार्थ सबही ब्रह्मरूप हैं, ब्रह्मसत्ता ही ऐसे स्थित भई है, जैसे अपणे अनुभवविषे संकल्पनगर नानाप्रकारका भासता है, परंतु संकल्परूप है, संकल्पतें इतर कछु नहीं, जैसे मृत्तिकाकी सैना अनेक प्रकारकी होती है, परंतु मृत्तिकारूप है, मृत्तिकातें इतर कछु नहीं, तैसे सर्वके अर्थकों धारणेहारी चेतनधातु नानाप्रकारके आकारकों प्राप्त होती है, परंतु चेतनतातें इतर कछु नहीं होती॥ हे रामजी! धातु उसकों कहते हैं, जो अर्थकों धारै, सो जेते पदार्थ तेरे तांई भासते हैं, सब अर्थरूप हैं, अरु वस्तुरूप जो धातु है सो आत्मसत्ता है, तिसनें दो अर्थ धारे हैं, एक स्वप्न अर्थ एक बोध अर्थ, स्वप्नअर्थविषे तो नानात्व भासती है, बोधअर्थविषे एक अद्वैतसत्ता भासती है, जैसे एकही धातु मिलनें अरु विछुरनें दो अर्थकों धारती है, सो कैसे अर्थ हैं, सो परस्पर प्रतियोगी शब्द हैं, परंतु एकहीनें धारे

हैं, तैसे स्वप्नका अर्थ अरु बोध अर्थ इन दोनौंकों आत्मसत्तानें धारे हैं, जैसे तरंग बुदबुदे जलरूप हैं, तैसे जगत् ब्रह्मरूप है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनकों सब ब्रह्मरूप भासता है, अज्ञानीकों नानात्व भासता है, तातें तूं स्वभावनिश्चय होकरि देखु, सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ २६९ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो सर्व ब्रह्मही है तौ नेति क्या है, अरु नानाप्रकारके पदार्थ क्यों भासते हैं, तिसविषे तुम कहते हौ जो जगत् संकल्पकरि रचित है तौ ॥ हे भगवन्! यह जो पदार्थ असंख्यरूप हैं, तिनकी संज्ञा करी नहीं जाती, अरु इन पदार्थका स्वभाव एकएकका अचलरूप होकरि कैसे स्थित है, इह कृपा करिके कहौ, अरु सर्व देवताविषे सूर्यका प्रकाश अधिक क्यों है, अरु एकही सूर्यविषे दिन छोटे बडे क्यों होते हैं, अरु रात्र छोटी बडी क्यों होती है, इह विचित्रता क्या है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रसत्ताविषे अकस्माततें आभास फुऱ्या है, तिस आभासका नाम नेति है, अरु सृष्टि भी आभासमात्र है, किसी कारण करिके नहीं उपजी, जिसके आश्रय आभास फुरता है सो उही वस्तु अधिष्ठानही होता है, तातें जगत् सब ब्रह्मरूप है, चिन्मात्रसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, न उदय होती है, न अस्त होती है, परिणामतें रहित सदा अद्वैतरूप स्थित है, तिसविषे न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, तीनौं अवस्था आभास मात्र हैं, चेतनसत्ताविषे इनगरि द्वैत नहीं बन्या, इह तीनौं इसीका स्वभाव प्रकाशरूप है, इसतें इतर कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु निस्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद कछु नहीं, जैसे कपुर अरु सुगंधिविषे भेद नहीं, तैसे जाग्रत आदिक जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं ॥ हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चित्त भाव हुआ है, तिसविषे चेतन आभास फुर्या है, तिसविषे जैसा संकल्प फुर्या है, तैसे स्थित भया है, इह इस प्रकार

होवै, अरु एता कालरहै, उस संकल्प निश्चयका नाम नेतिहै, जैसे आदिसंकल्प दृढ भया है, तैसेही अबलग पदार्थ स्थित हैं, पृथ्वी जल तेज वायु आकाश अपणे अपणे भावविषे स्थित हैं, अपणे स्वभावकों त्यागते नहीं, जबलग उनकी नेति हैं, तबलग तैसेही स्थित हैं जगत्सत्ताविषे ॥ हे रामजी ! इसका नाम नेति है, जो जैसे आदि संकल्प धारा तैसे स्थित हैं, अरुवस्तुतें क्या है, आभासरूप है, अकस्मात्तें आभास फुर्या है, सो आभास किसी सूक्ष्म अणुविषे फुर्या है, जैसे समुद्रके किसी स्थानविषे तरंग बुदबुदे फुरते हैं, संपूर्ण समुद्रविषे नहीं फुरते तैसे जहां संवेदनविषे जैसा फुरणा होता है, तैसे स्थित होता है सो नेति है, जैसे तरंग बुदबुदे समुद्रतें भिन्न नहीं तैसे नेति आत्मातें भिन्न नहीं, जैसे द्रवता करिके समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, तैसे आत्माविषे संवेदन करिके नेति अरु जगत् फुरते हैं सो उहीरूप हैं, आत्मातें भिन्न कछु नहीं, जैसे किसीनें कहा, चंद्रमाका प्रकाश है, सो चंद्रमा अरु प्रकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं, इह विश्व आत्माका स्वभाव है, जैसे एकही कालकी बहुत संज्ञा होती हैं, दिन पक्ष वार मास वर्ष युग कल्प इत्यादिक बहुत नाम हैं, परंतु काल एकही है, तैसे भिन्न भिन्न जगत्के नाम हैं, सो सब ब्रह्महीहै ॥ हे रामजी ! सब संवेदन चित्तके सन्मुख होती है, तब प्रथम शब्द तन्मात्रा फुरती है, तिसतें आकाश उपजता है, सो आकाशका शून्यता स्वभाव है, जब फिरि स्पर्शतन्मात्राकों चेत्या, तिसतें वायु फुर्या है, वायुका स्पंद स्वभाव है, बहुरि रूप तन्मात्राकों चेत्या तब तिसतें अग्नि प्रगट हुई, अग्निका उष्ण स्वभाव है, बहुरि रसतन्मात्राकों चेत्या तब तिसतें जल प्रगट भया, जलका द्रवस्वभाव है, बहुरि गंधतन्मात्राकों चेत्या तब तिसतें पृथ्वीका स्थिर स्वभाव है, इस प्रकार पंच भूत फुरि आये ॥ हे रामजी ! आदि जो शब्द तन्मात्रा फुरी है, सो जेते कछु शब्दसमूह वाणी हैं, सो वृक्ष हुआ, तिसका बीज है, सब तिसीतें उत्पन्न हुये हैं, पदार्थ वाक्य वेद शास्त्र पुराण सब तिसीतें फुरे हैं, इसी प्रकार पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इनका जो कार्य स्वभाव है, सो

सबका बीज आदि इनकी तन्मात्रा है, तिस तन्मात्राका बीज उह संवितसत्ता है ॥ हे रामजी ! अब इन तत्त्व की खाण सुन, पृथ्वीतें अणु भी होती है, अरु एक दला भी होती है, सो पृथ्वी तौ एक है, अणु भी उही है, तैसे सर्व तत्त्वकों समुझि देखणा, पृथ्वीकी खाण भूपीठ है, सो संपूर्ण भूतजातकों धारती है, अरु जलकी खाण समुद्र है, जो सर्व पदार्थविषे रसरूप होकरि स्थित है, अग्निका जो तेज प्रकाश है, तिसकी समष्टिता सूर्य है, अरु सर्व स्पंदकी समष्टिता पवन है, अरु संपूर्ण शून्य पदार्थकी खाण आकाश है, इस प्रकार इह पांचौं तत्त्व संकल्पतें उपजे हैं, जैसे बीजतें अंकुर उपजता है, तैसे इह भूत संकल्पतें उपजे हैं, संकल्प संवेदनतें फुर्या है, अरु संवेदन आत्माका आभास है, सो आत्मा अद्वैत है, अच्युत है, निर्विकल्प है, सर्वदा अपणे आपविषे स्थित है, तिसके आश्रय संवेदन आभास फुरि है, बहुरि संवेदनतें संकल्प फुर्या है, संकल्पकरि जगत् बणी गया है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरता अरु लीन होता है, तैसे संकल्पविषे जगत् उपजता है, बहुरि संकल्पहीविषे लीन होता है, जैसे तरंग जलरूप हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश सब चेतनरूप हैं, जेते कछु पदार्थ देखणे सुनणेविषे आते हैं, अरु नहीं आते सो सब चेतनरूप हैं, आत्मातें इतर कछु नहीं, उही आत्मा इस प्रकार होता है, स्वप्नविषे अपणा अनुभवही पदार्थ हो भासता है, परंतु कछु बण्या नहीं, नानाप्रकार भासता है, तौ भी अनाना है, तैसे जगत् नानाप्रकार भासता है, तौ भी कछु बन्या नहीं, जैसे एक निद्राके दो रूप हैं, एक स्वप्न, एक सुषुप्तिरूप है, जब फुरणा होता है, तब स्वप्नसृष्टि भासती है, जब फुरणा निवृत्त हो जाता है, तब सुषुप्ति होती है, जैसे एक वायुके दो रूप हैं, स्पंद होती है, तब भासती है, निस्पंद होती है, तब नहीं भासती, तैसे जब संवेदन फुरती है, तब जगत् भासता है, जब नहीं फुरती, तब जगत् नहीं भासता, इसीका नाम महाप्रलय है, सो दोनौं आत्माका आभास हैं ॥ हे रामजी ! संकल्परूप जो है ब्रह्माजी बालक, तिसनें आत्माविषे आकाश रचा है, पृथ्वी रची है, आकाशविषे नक्षत्रचक्र रचे हैं, अवर संपूर्ण क्रम रचा है, जैसे बालक अपणे

विषे संकल्प रचै, तैसे ब्रह्मानें रचा है, एक भूगोल रचा है, तिस उपर नक्षत्रचक्र रचे हैं, तिस चक्रके दो भाग हैं, सो अन्योन्य सन्मुख स्थित हैं, तिसतें सूर्य होता है, सात घडी दिन अरु रात्रका प्रमाण है, जब सूर्य नक्षत्रचक्रके ऊर्ध्व उर उदय होता है, तब दिन बडे होते हैं, जब अध उर उदय होता है, तब दिन छोटे हो जाते हैं, ज्यौं ज्यौं सूर्य क्रम करिके ऊर्ध्वतें अधकी उर उदय होता है, त्यौं त्यौं दिन छोटे होते जाते हैं, रात्र बढति जाती है, बहुरि षट् मासतें उपरांत पौष त्रयोदशीतेंकरि सूर्य क्रम करिके ज्यौं ज्यौं ऊर्ध्वकों उदय होता है, त्यौं त्यौं दिन बढता जाता है, आषाढकी द्वादशीतें लेकरि पौष त्रयोदशीपर्यंत रात्र बढती जाती है, बहुरि रात्र घटती है, दिन बढता जाता है, जब सूर्य मध्य चक्रके उदय होता है, तब दिन रात्र समान हो जाता है, सो क्या है, संवेदनरूप जो ब्रह्मा है, तिसीका संकल्प विलास है, जैसे शिल्पी शिलाविषे पुतलियां कल्पता है, अरु चेष्टा कराता है, सो बन्या कछु नहीं, शिलाही अपणे घन स्वभावविषे स्थित होती है, तैसे चित्तरूपी शिल्पी आत्मारूपी शिलाविषे जगत्‌रूपी पुतलियां कल्पता है, परंतु कछु बन्या नहीं, ब्रह्मसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, जब संवेदन चेतती है, जब रूप देखणेकी इच्छा होती है, तब चक्षु इंद्रिय बणी जाती है, उह रूपकों ग्रहण करती है, जब स्पर्शकी इच्छा होती है, तब त्वचा इंद्रिय बणी जाती है, उह स्पर्शकों ग्रहण करती है, जब गंधकी इच्छा होती है, तब घ्राणइंद्रिय बणिकरि गंधकों ग्रहण करती है, जब शब्द सुनणेकी इच्छा होती है, तब श्रवण इंद्रिय बणि जाती है, उह शब्दविषयकों ग्रहण करती है, जब रसकी इच्छा होती है, तब रसना इंद्रिय प्रगट होकरि स्वादकों ग्रहण करती है, जब अपणे उर वायुकों देखणेकी उर चेतती है तब अपणे साथ वायुकों देखती है, तिस वायुविषे प्राण फुरती देखती है ॥ हे रामजी! देखणा, सुनणा, रस लेणा, स्पर्श करणा, बोलणा, गंध लेणा, जहां जहां इंद्रियां विषयकों ग्रहण करत भई, सो देश है, अरु जिस विषयकों ग्रहण करणे लगियां सो पदार्थ है, अरु जिस समय ग्रहण करणे लगियां सो काल है,

इस प्रकार देश काल पदार्थ हुये हैं, बहुरि यह शुभ है, यह अशुभ है, इस क्रम करिके कर्म भासणे लगे ॥ हे रामजी! इस प्रकार संवेदन फुरीकरि जगत्कों रचा है, शरीरकों रचीकरि इष्ट अनिष्टकों ग्रहण करती है, तूं कहै, इंद्रियां तौ भिन्न भिन्न हैं, अरु अपणे अपणे विषयकों ग्रहण करतिया हैं, सर्व इंद्रियके इष्ट अनिष्ट इस जीवकों कैसे होते हैं, तब इसका दृष्टांत सुण ॥ हे रामजी! जैसे तंतु एक होता है, अरु मणके बहुत होते हैं सो सर्वका आश्रयसूत्र होता है, तैसे अहंकाररूपी सूत्र है, अरु सर्व इंद्रियरूपी मणके हैं, इह कारणतें अहंकार जीव आश्रयभूत इंद्रियके सुखसाथ सुखी होता है, अरु इंद्रियके दुःखसाथ दुःखी होता है, अरु इंद्रियां आपहीतें कार्य कारण करणेकों समर्थ नहीं होती, अहंकार जीवकी सत्ता करिके चेष्टा करती है, जैसे शंखकों आपतें बाजणें की समर्थता नहीं, जब पुरुष बजावता है, आप शब्द करता है, तब शंख बाजता है, तैसे इंद्रियकी चेष्टा अहंकार अरु जीव करिके होती है ॥ हे रामजी! वास्तवतें न कोउ इंद्रिय हैं, न इनके विषय हैं, न मनका फुरणा है, सब आभासमात्र है, जब संवेदन फुरती है, तब एती संज्ञाकों धारती है, जब संवेदन निर्वाण होती है, तब सर्व कल्पना मिटि जाती है ॥ ॥इति श्रीयो॰ निर्वाणप्रकरणे जीवसंसारवर्णनं नाम द्विशताधिकसप्ततितमः सर्गः ॥२७०॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह संपूर्ण कल्पनाका क्रम मैं तुझकों कहा है, जेता कछु जगत् देखीता है, सो संवेदनरूप है, शुद्ध चिन्मात्रसत्ताका जो आदि आभास चेतनताका लक्षण चित्त अहं अस्मि तिसका नाम संवेदन है, तिसके एते पर्याय हुये हैं, कोउ ब्रह्मा कहते हैं, कोउ विष्णु कहता है, केई प्रजापति कहते हैं, केई शिव कहता है, इनतें आदि लेकरि पर्याय हुये हैं, तिस संवेदन आगे संकल्प फुरी विश्व रची है, सो कैसी विश्व है, जो अकारण है, किसी कारणकरि नहीं बणी, काकतालीवत् अकस्मात् आभास फुर्या है, आकारसहित दृष्ट आता है, परंतु अंतवाहक है, व्यवहारसहित दृष्ट आती है, परंतु अव्यवहार है ॥ हे रामजी! संवेदन जो अंतवाहकरूप है, तिसनें आगे विश्व रची है, सो भी अंतवाहकरूप है, परंतु अज्ञानी

कों संकल्पकी दृढता करिके आधिभौतिकरूप हो भासता है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर संकल्पतें इतर कछु नहीं, संकल्पकी दृढता करिके साकाररूप पहाड नदियां घट पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, परंतु बणे तौ कछु नहीं, शून्यरूप है, तैसे इह जगत् निराकार शून्यरूप है॥ हे रामजी! आदि जो अंतवाहकरूप संवेदन फुरी है सो बहिर्मुख फुरणे करिके देश काल पदार्थरूप हो स्थित भई है, जब बहिर्मुख फुरणा मिटि जाता है, तब जगत् आभास भी मिटि जाता है, जैसे स्वप्न आभास जगत् तबलग भासता है, जबलग निद्राविषे सोया होता है, जब जागता है, तब स्वप्नजगत् मिटि जाता है, एक अद्वैतरूप अपणा आपही भासता है, तैसे यह जगत् अज्ञानके निवृत्त हुये लीन हो जाता है, सब जगत् निराकार है, संकल्पकी दृढता करिके आकार भासते हैं॥ हे रामजी! संवेदनविषे जो संकल्प फुरता है, उही अंतःकरण चतुष्टय हो भासता है, पदार्थके चितवणेकरि इसका नाम चित्त होता है, संकल्पविकल्पके संसरणेकरि इसका नाम मन होता है, अरु ज्यौं त्यौं निश्चय करणेकरि इसका नाम बुद्धि होता है, वासनाके समूह मिलणेकरि पुर्यष्टका कहाती है, सो सब संकल्पमात्र हैं, तिनतें जगत् उपजा, सो भी संकल्परूप है, जैसे इंद्रजाल बाजी अरु स्वप्ननगर संकल्पकी दृढता करिके पिंडाकार भासते हैं, परंतु सब आकाशरूप हैं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है, आत्मातें इतर कछु है नहीं, अरु जो तूं कहै भासता क्यौं है तौ जिसविषे भासता है सो उहीरूप जाण, अरु देश काल नदी पहाड पृथ्वी देवता मनुष्य दैत्य ब्रह्मातें आदि कीटपर्यंत जो स्थावरजंगमरूप जगत् भासता है सो सब ब्रह्मरूप है; वेद शास्त्र जगत् कर्म स्वर्ग तीर्थ इत्यादिक जो पदार्थ हैं, सो सब ब्रह्मरूप हैं, उही निराकार अद्वैत ब्रह्मसत्ता संवेदन करिके जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे स्वप्नविषे अपणाही अनुभव सृष्टिरूप भासता है, तैसे अपणाही अनुभव यह जगत् हो भासता है, तातें सब ब्रह्मरूप है, जैसे समुद्र द्रवता करिके तरंग हो भासता है, अरु जलही जल है, तै

से शुद्ध चिन्मात्रविषे संवेदन करिके जगत् आभास फुरता है, सो ब्रह्मही ब्रह्म है, इतर कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जो कछु तुझकों भासता है, सो सब अच्युत अनंतरूप अपणे आपविषे स्थित है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकसप्ततितमः सर्गः ॥ २७१ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब द्रष्टा दृश्यरूपकों चेतता है, तब विश्व होती है, सो विश्व सब अंतवाहकरूप है, अंतवाहक कहियें निराकार संकल्परूप है, जब दृश्यविषे अहंभावकरिके चेतता रहता है, तब अंतवाहकतें आधिभौतिक शरीर हो जाता है, आदि जो ब्रह्मा संवेदन फुर्या है, सो अंतवाहक शरीर हुआ है, जब वारंवार अपने शरीरकों देखता भया, तब उह भी चतुर्मुख आधिभौतिक हो गया, ओंकारका उच्चार करिके वेद अरु वेदके क्रमकों रचता भया, अरु संकल्प करिके विश्व रचता भया, जैसे कोउ बालक मनोराज्य करिके बगीचा रचै, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल फल टास पत्र रचै, तैसे ब्रह्माजी रचत भया, सो अंतवाहक जीव उपजाये, जब जीवकों शरीरविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब अंतवाहकतें आधिभौतिक हो गये ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ब्रह्मसत्ता तौ निराकार थी, तिसकों शरीरका संयोग कैसे भया है, तिसतें आधिभौतिकता कैसी हो गई ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! न कोउ शरीर है, न किसकों शरीरका संयोग भया है, केवल अद्वैत आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसविषे चेतन संवेदन फुरी है, उह संवेदन दृश्यकों चेतती रहती है, सोई जगत्‌रूप होकरि स्थित भई है, जब संकल्पकी दृढता हो गई, तब अपणेसाथ शरीर भासणे लगा, अरु अवर आकार भासणे लगे, सो आकार कैसे हैं, आकाशहीरूप हैं, कछु बणे नहीं, जैसे स्वप्नसृष्टि उपजी कहियें, सो उपजी कछु नहीं, अरु तिसका कारण भी कोउ नहीं, केवल आकाशरूप है, कोउ पदार्थ उपजा नहीं, परंतु स्वरूपके विस्मरण करिके आकार भासते हैं, तैसे इह शरीर अरु जगत् जो भासता है, सो केवल आभासमात्र है, असंभाव

नाकी दृढता करिके प्रत्यक्ष भासता है, जब स्वरूपका विचार करि देखैगा, तब शांत हो जावैगा ॥ हे रामजी ! अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे स्वप्नका पदार्थ अविद्यमान होता है, अरु विद्यमान भासता है, जब जागता है, तब अविद्यमान हो जाता है, तैसे इह जगत् विचारसिद्ध है, विचार कियेतें शांत हो जाता है, जब विचार करि देखैगा, तब सर्वात्माही भासैगा ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता अव्यभिचारी है, अर्थ इह जो सत्तामात्र है, इसका अभाव कदाचित् नहीं होता, अरु अच्युत है, सदा ज्यौंकी त्यौं है, अपणे भावकौं त्यागती कदाचित् नहीं, इसतें इतर भासै सो भ्रममात्र जाण ॥ हे रामजी ! विचार करिके जब दृश्य भ्रम शांत होता है, तब मोक्ष प्राप्त होता है, आत्मसत्ता ज्ञानरूप है, अरु निराकार है, सदा अपणे आप विषे स्थित है, जब सम्यक्ज्ञानका बोध होता है, तब जगत्भ्रम नष्ट होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! सम्यक्ज्ञान किसकौं कहते हैं, अरु बोध किसकौं कहते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! केवल जो बोधमात्र है, सो बोध कहीता है, तिसकौं ज्यौंका त्यौं जानणा, इसका नाम सम्यक्ज्ञान है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! केवलबोध किसकौं कहते हैं, अरु केवलज्ञान किसकौं कहते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! चैत्य जो है दृश्य, तिसतें रहित जो चिन्मात्र है, तिसकौं तूं केवलबोध जाण, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, इसी प्रकार अचेत चिन्मात्र सत्ताकौं ज्यौंका त्यौं जानणा सोई केवलज्ञान है॥ ॥राम उवाच॥ हे भगवन्! केवलबोध अचेत चिन्मात्र है तौ चैत्य जो है दृश्य जगत्भ्रम सो तिसविषे क्यौं भासता है॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! चिन्मात्र जो द्रष्टारूप है, तिसविषे संवेदन जो है जानणा, सोई चैतता कहियें, जब चैतता फुरती है, तब उही चैतता चैत्यरूप दृश्य हो भासती है, जैसे स्पंदतें रहित वायु निर्लक्षरूप होती है, अरु जब फुरती है, स्पंदरूप होती है, तब स्पर्श करिके भासती है, तैसे संवेदन करिके दृश्य भासती है, सो उही संवेदन दृश्य हो भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो द्रष्टा दृश्यरूप

भासता है, तौ दृश्य बाह्य क्यों भासता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसी कारण भ्रम कहा है, जो है अपने अंतर, अरु बाह्य भासती है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि अपणेही अंतर होती है, वास्तवतें न अंतर है, न बाहिर है, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, तैसे अब भी ज्योंकी त्यों स्थित है, अंतर अरु बाह्य भ्रम करिके भासती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अरु दृश्यभ्रमकरि भासती है, तौ शशेके सिंग भी भ्रममात्र हैं, उह क्यों नहीं भासते, अहं अरु त्वं क्यों भासते हैं, भूतकी चेष्टा प्रत्यक्ष भासती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अहं त्वं आदिक जगत् भी कल्पनामात्र है, जैसे शशेके सिंग कल्पनामात्र हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, तैसे इह जगत् भी भ्रममात्र है, जैसे मृगतृष्णाका जल अरु संकल्पनगर भ्रममात्र है, तैसे इह जगत् भ्रममात्र है, किसी कारणकरि नहीं उपजा, जैसे स्वप्नविषे शशेके सिंग नहीं भासते, अवर जगत् भासता है, तैसे यह भ्रम है ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! भूत भविष्य वर्तमान तीन कालविषे जगत् स्मृति अनुभवकरि जाणीता है, अरु कारण कार्यभाव पाईता है, तुम भ्रममात्र कैसे कहते हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं कहता हौं जो कारण करिके कार्य होता है, सो तौ सत् होता है, तातें तूं कहु, जगत्का कारण क्या है, जैसे बीजतें वट होता है, तैसे इसका कारण कवन है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जगत् सूक्ष्म अणुतें उपजता है, अरु लीन भी सूक्ष्म तत्त्वके अणुविषे होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सूक्ष्म अणु किसविषे रहते हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! महाप्रलयविषे शुद्ध चिन्मात्रसत्ता शेष रहती है, तिसविषे अणु रहते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! महाप्रलय किसकों कहते हैं, जहां सर्व शब्द अर्थका अभाव है, तिसका नाम महाप्रलय है, तहां शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, तौ सूक्ष्म अणु कैसे होवै अरुकारण कार्यभाव कैसे होवै ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो शुद्ध चिन्मात्रसत्ता रहती है,

तिसविषे जगत् कैसे निकसि आता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! विश्व कछु उपजी होवै तौ मैं तुझकों कहौं, जो इस प्रकार जगत्की उत्पत्ति होती है, जो जगत् कछु उपजा नहीं तौ इसकी उत्पत्ति कैसे कहौं, जब चिन्मात्रविषे चैतता फुरती है, तब जगत् अहं त्वं आदिक भासता है, सो फुरणाहीरूप है, अवर कछु उपजा नहीं, उहीरूप है ॥ हे रामजी ! ज्ञानका जो दृश्यभ्रमसाथ मिलाप है, सो बंधनका कारण है, तिसका अभाव होणा मोक्ष है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानके भये जगत्का अभाव कैसे होता है, इह तौ दृढ हो रहा है, इसकी शांति कैसे होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सम्यक्ज्ञानकरि जो बोध होता है, तिस बोध करिके दृश्यका संबंध निवृत्त होता है सो बोध कैसा है, निराकार निज शीतलरूप है, तिसकरि मोक्षविषे प्रवर्तता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! बोध तौ केवलरूप है, सम्यक्ज्ञान किसकों कहते हैं, जिसकरि यह जीव बंधनतें मुक्त होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस ज्ञानकरि ज्ञेय दृश्यका संयोग नहीं, तिसकों केवलज्ञानी अविनाशीरूप कहते हैं, जब ज्ञेयका अभाव होता है, तब सम्यक्ज्ञान कहाता है, जगत् ज्ञेय अविचारसिद्ध है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञानसों ज्ञेय भिन्न है, अथवा अभिन्न है, अरु ज्ञान उत्पत्ति कारण कैसे होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बोधमात्रका नाम ज्ञान है, तिसतें ज्ञान ज्ञेय भिन्न नहीं, जैसे वायुतें वायुका फुरणा भिन्न नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे त्रिकालज्ञ ! भूत भविष्य वर्तमानके जानणेहारे ! जो शशेके सिंगकी नांई ज्ञेय असत् है, तौ भिन्न होकरि क्यौं भासते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! बाह्य जगत् ज्ञेय भ्रांति करिके भासता है, तिसका सद्भाव नहीं, न अंतर जगत् है, न बाहिर जगत् है, अर्थतें रहित भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक प्रत्यक्ष भासते हैं, अर्थसहित अनुभव होता है, तुम कैसे अभाव कहते हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह सर्व जगत् विराट् पुरुषका वपु है, सो आदि विराट् भी उपजा कछु नहीं, तौ अवरकी उत्पत्ति

कैसे कहियें ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! तीनों कालविषे जगत्का सद्भाव पाइता है, तुम कहते हौ उपजा नहीं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे स्वप्नविषे सब जगत् अर्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, अरु कछु उपजा नहीं, जैसे मृगतृष्णाका जल, आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा, संकल्पनगर भ्रमकरि भासते हैं, तैसे अहं त्वं आदिक जगत् भ्रमकरि भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! अहं त्वं आदिक जगत् दृढ भासता है तौ कैसे जाणियें, जो उपजा नहीं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पदार्थ कारणतें उपजा है, सो निश्चयकरि सत्य जाणीता है, जब महाप्रलय होती है, तब कारण कार्य कछु नहीं रहता, सब शातरूप होता है, बहुरि तिस महाप्रलयसों जगत् फुरि आता है, इसतें जाणीता है, जो सब आभासमात्र है॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जब महाप्रलय होता है, तब अज अविनाशी सत्ता शेष रहती है, तातें जाणीता है जो उही जगत्का कारण है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसा कारण होता है, तैसाही तिसका कार्य होता है, तिसतें विपर्यय नहीं होता, जो आत्मसत्ता अद्वैत आकाशरूप है, तौ जगत् भी उहीरूप है, घटतें पट की नांई अवर तौ कछु नहीं उपजता ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब महाप्रलय होता है, तब जगत् सूक्ष्मरूप होकरि स्थित होता है, तिसतें बहुरि प्रवृत्ति होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निःपाप रामजी ! महाप्रलयविषे जो तुझनें सृष्टिका अनुभव किया सो क्या रूप होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! ज्ञप्तिरूप सत्ताही तहां स्थित होती है, तुमसारखेनें अनुभव किया है सो आकाशरूप है, सत् अरु असत् शब्दकरि नहीं कही जाती ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो ! जो ऐसे हुआ तौ भी जगत् तौ ज्ञप्तिरूप हुआ क्यौं, तातें जन्ममरणतें रहित शुद्ध ज्ञानरूप है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ जो जगत् कछु उत्पन्न नहीं भया, भ्रममात्र है, सो भ्रम कहांतें आया है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इह जगत् चित्तके फुरणेकरि भासता है, जैसे जैसे चित्त फुरणा करता है, तैसे तैसे भासता है, इसका अव

र कारण कोउ नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो चित्तके फुरणेकरि भासता है तौ परस्पर विरुद्ध कैसे भासते हैं, अग्निकों जल नष्ट करता है, जलकों अग्नि नष्ट करती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! द्रष्टा जो पुरुष है, सो दृश्यभावकों नहीं प्राप्त होता, अरु ऐसी कछु वस्तु नहीं, भानरूप आत्माही चेतन घन सर्वरूप हो भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चिन्मात्रतत्त्व आदि अंततें रहित है, जब जगत्कों चेतता है, तब होता है, तौ भी कछु तौ हुआ क्यों, जगत् चैत्यका असंभव कैसे कहिये ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसका कारण कोउ नहीं, तातें चैत्यका असंभव है, चेतन सदा मुक्त अरु अवाच्य पद है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो इस प्रकार है तौ जगत्का अरु तत्त्वका फुरणा कैसे होता है, अहं त्वं आदिक द्वैत कहांतें आया है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! कारणके अभावतें यह जगत् कछु आदितें उपजा नहीं, सर्व शांतरूप है, अरु नाना भासता है, सो भ्रममात्र है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! प्रकाशरूप सर्वदा जो निर्मल तत्त्व है, सो निरुल्लेख अचलरूप है, तिसविषे भ्रांति कैसे है, अरु किसकों है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! कारणके अभावतें निश्चयकरि जाण जो भ्रांति कछु वस्तु नहीं, अहं त्वं आदिक सर्व एक अनामयसत्ता स्थित है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! भ्रमकी नांई प्राप्त हुआ हौं, इसतें अधिक पूछि नहीं जानता, अरु अत्यंत प्रबुद्ध भी नहीं, अब क्या पूछौं ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह प्रश्न कर जो कारणविना जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है, जब विचार करिके कारणका अभाव जाणैगा, तब परम स्वभाव अशब्द पदविषे विश्रांतिकों पावैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मैं इह जानता हौं जो कारणके अभावतें जगत् कछु उपजा नहीं, परंतु चैत्यका फुरणा भ्रम कैसे हुआ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! कारणके अभावतें सर्वत्र शांतिरूप है, भ्रम भी कछु अवर वस्तु नहीं, जबलग आत्मपदविषे अभ्यास नहीं, तबलग भ्रम भासता है, अरु शांति नहीं प्राप्त होती,

अभ्यास करिके केवल तत्त्वविषे विश्रांति पावैगा, तब भ्रम मिटि जावैगा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अभ्यास कैसे होता है अरु अनाभ्यास कैसे होता है, एक अद्वैतविषे अभ्यास अनाभ्यास कैसे भ्रांति होती है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अनंत तत्त्वविषे शांति भी कछु वस्तु नहीं, जो आभास शांति भासता है, सो महाचिद्घन अविनाशरूप है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! उपदेश अरु उपदेश के अधिकारी इह जो भिन्न भिन्न शब्द हैं, सो सर्व आत्माविषे कैसे भासते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! उपदेश अरु उपदेशके योग्य इह शब्द भी ब्रह्महीविषे स्थित है, शुद्ध बोधविषे बंध मोक्ष दोनोंका अभाव है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो आदि उत्पत्ति कछु हुआ नहीं तौ देश काल क्रिया द्रव्य इनके भेद कैसे भासते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! देश, काल, क्रिया, द्रव्य, यह जो भेद हैं सो संवेदन दृश्यविषे हैं, सो अज्ञानमात्र भासते हैं, अज्ञानमात्रतें इतर कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! बोधकों दृश्यकी प्राप्ति कैसे हुई, जहां द्वैत एकता कारणका अभाव है, तहां दृश्य भ्रम कैसे है? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बोधकों दृश्यप्राप्ति अरु द्वैत एकका भ्रम मूर्खका विषय है, हमसारखेका विषय नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो अंत तत्त्व केवल बोधरूप है, तौ अहं त्वं हमारेविषे कैसे होता है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! शुद्धबोधसत्ताविषे जो बोधका जानणा है, सो अहं त्वं करि कहाता है, जैसे पवनविषे फुरणा है, तैसे तिसविषे चेतता फुरती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जैसे निर्मल अचल समुद्रविषे तरंग बुदबुदे होते हैं, सो जलतें इतर कछु नहीं तैसे बोधविषे बोधसत्तातें इतर कछु नहीं, अपणे आपविषे स्थित हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच हे रामजी! जो ऐसे है, तौ किसका किसकों दुःख होवै, एक अनंततत्त्व अपणे आपविषे स्थित है, अरु पूर्ण है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो एक है, तौ अहं त्वं आदिक कलना कहांतें आई है, भोक्ताकी नांई भोक्ता है, जो निर्मल है, तौ इह के

से दृढता हुई है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! ज्ञेय जो है दृश्यसत्ता, तिसका जानणा तिसकों बंधन नहीं, काहेतें जो ज्ञानही सर्व अर्थरूप होकरि स्थित भया, तौ बंध अरु मोक्ष किसकों होवै? ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञप्ति जो बाह्य अर्थकों देखती है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु स्वप्नविषे पदार्थ सो असत्रूप सत् हो भासते हैं, तैसे इह बाह्य अर्थ असत्ही सत् हो भासते हैं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! कारणतें रहित जो बाह्य अर्थ सत् भी भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, इतर कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्नकालविषे स्वप्नके पदार्थका दुःख होता है, सत् होवै, अथवा असत् होवै, तैसे इह जगत्विषे दुःख होता है, सत् असत्का, परंतु इसके निवृत्तिका उपाय कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो इस प्रकार है, जगत् स्वप्नकी नांई तौ जो कछु पिंडाकार भासता है, सो सब भ्रममात्र करिके भासता है, सर्व अर्थ शांतरूप है, नानात्व कछु नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्न अरु जाग्रतविषे पिंडाकार पर अपर रूप है, कैसे उत्पन्न होता है, अरु कैसे शांत होता है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पूर्व अपरका विचार करियें, जो जगत् आदिविषे क्या रूप था, अरु अंतविषे क्या रूप होता है, जब ऐसे विचार होवैगा, तब शांति हो जावैगी, जैसे स्वप्नविषे स्थूल पदार्थ पिंडरूप भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, तैसे जाग्रत पदार्थ भी आकाशरूप हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! भिन्न भावकी भावना प्राप्त होती है, तब जगत्कों कैसे देखता है, अरु संस्कार कुहीड भ्रम शांत कैसे होता है?

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो निर्वासी पुरुष है, तिसकों जगत्का भाव सदैव उठि जाता है, जैसे संकल्पनगर, जैसे कागदकी मूर्त्ति असत् भासते हैं, जैसे उसकों जगत् असत् भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! वासनातें रहित पिंडभाव शांत हुये जगत्कों स्वप्नवत् जानता है, तिसतें उपरांत क्या अवस्था होती है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जगत्कों जब संकल्परूप जानता है, तब वासना नि

र्वाण होती है, पंचतत्त्वका क्रम उपजणा बिनसणा लीन हो जाता है, परमतत्त्व भासता है, सब आकाशरूप हो जाता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अनेक जन्मकी जो वासना दृढ हो रही है, अरु अनेक शाखाकरि पसरी है, संसारका कारण घोर वासना है, सो कैसे शांत होती है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसकों यथाभूतार्थ ज्ञान होता है, तब भ्रांतिरूप जगत् स्थित हुआ, आत्माविषे शांत होता है, जब पिंडाकार अर्थ पदार्थ सो जाता है, तब कर्मरूप दृश्यचक्र शांत हो जाता है, जैसे स्वप्न पदार्थ जाग्रतविषे नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मतत्त्वके बोधकरि सब वासना नष्ट हो जाती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जब पिंड ग्रहण निवृत्त हुआ, अरु कर्मरूप दृश्यचक्र निवृत्त हुआ, तब बहुरि क्या प्राप्त होता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! पिंडग्रहणभ्रम शांत होता है, तब सकुचण अरु क्षोभतें रहित होता है, जगत् आस्था दृश्यकी शांति हो जाती है, अरु चित्त परमात्मतत्त्वकों प्राप्त होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! यह बालकके संकल्पवत् कैसे स्थित है, जो संकल्परूप है, तौ इसके जो जडविषे पदार्थ हैं, तिनके नष्ट हुये इसकों दुःख क्यों प्राप्त होता है? इस जगत्की आस्था शांत कैसे होती है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो पदार्थ संकल्पकरि उत्पन्न हुआ है, तिसके नष्टविषे दुःख नहीं होता, जो पूर्व अपर विचार करिके चित्ततें रचा जाणियें तौ भ्रम शांत हो जाता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! चित्त कैसा है, तिसकरि रचा कैसे विचारियें?॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्तसत्ता जो चैत्योन्मुखत्व फुरती है, तिसकों संकल्परूप चित्त कहते हैं, तिसतें रहित विचारणेसों वासना शांत हो जाती है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण! चैत्यतें रहित चित्त कैसे होता है, अरु चित्तकरि उदय हुआ चैत्य जगत निर्वाण कैसे होता है?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! चित्त कछु उत्पन्न नहीं भया, अणहोता द्वैत भासता है, कछु है नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जगत् प्रत्यक्ष भासता है, जो उपजा

नहीं तौ इसका अनुभव कैसे होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानीकों जैसे जगत् भासता है, सो सत् नहीं, अरु जो ज्ञानवान्कों भासता है, सो अवाच्यसत्ता अद्वैतरूप है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! ज्ञानीकों तीनौं जगत् कैसे भासते हैं जो सत् नहीं, अज्ञानवान्कों कैसे भासते हैं, जो कहणेविषे नहीं आता ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! अज्ञानीकों द्वैत सघन दृढ भासता है, अरु ज्ञानवान्कों सघन द्वैत नहीं भासता, काहेतें जो आदि तौ उपजा नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व अवाच्यपद भासता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो आदितें उपजा न होवै, तौ अनुभव भी न होवै; इह तौ अनुभव प्रत्यक्ष होता है, असत् कैसे कहियें? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! असत्‌ही सत्‌की नांई हो भासती है, इह कारणतें रहित भासता है, जैसे स्वप्नविषे पदार्थका अनुभव होता है, परंतु वास्तवतें कछु नहीं, तैसे यह असत्‌ही अनुभव होता है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्नविषे असंकल्पविषे जो दृश्यशंकाअनुभव होता है, सो जाग्रतके संस्कारतें होता है, अवर कछु नहीं ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! स्वप्न अरु संकल्प तिसके संस्कारतें होते हैं, सो जाग्रतके संस्कार कैसे होते हैं, उहीरूप हैं, अथवा जाग्रततें अन्य हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! स्वप्नके पदार्थ अरु मनोराज्य सो जाग्रतके संस्कारतें जाग्रतकी नांई भासता है, सो भ्रमविषे भासते हैं? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ हे रामजी! जो स्वप्नविषे जाग्रत्के संस्कार करिके जगत् जाग्रतकी नांई भासता है, जो स्वप्नविषे किसीका घर लूटि गया, अथवा जलके प्रवाहविषे वही गया, तौ जाग्रतविषे तौ कछु हुआ नहीं, प्रातःकालकों देखता है, उठिकरि तब ज्यौंका त्यौं भासता है, तौ संस्कार भी कछु न हुआ, सब कल्पनामात्र जानणा ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! अब मैं जाण्या है, जो यह सर्व ब्रह्मही है, न कोउ देह है, न जगत् है, न उदय है, न अस्त है, सर्वदाकाल सर्व प्रकार उही ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, तिसतें इतर जो कछु भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, अरु भ्रम भी कछु

वस्तु नहीं, सर्व चिदाकाश ब्रह्मरूप है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मही का प्रकाश है, उही अपणे आपविषे प्रकाशता है॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्गके आदि देहचित्तादिक कैसे फुरि आये हैं, अरु कैसे आत्मा प्रकाशरूप जगत् है, प्रकाश भी तिसका होता है, जो साकाररूप होता है, ब्रह्म तौ निराकार है, दीपक आदिकवत् आकारतें रहित है, तिसका प्रकाश कैसे कहियें? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्व ब्रह्मरूप है, प्रकाश अरु प्रकाशकका भेदभी कछु नहीं, दूसरी वस्तु भी कछु नहीं, उही अपणे आपविषे स्थित है, तातें स्वप्रकाश कहा है, सूर्य आदिकका प्रकाश त्रिपुटिकरि भासता है, सो भी तिसके आश्रय होकरि प्रकाशता है, तिसके प्रकाशका आधारभूत कहाता है, तिसके आश्रय होकरि सूर्य जगत्कों प्रकाशता है, अरु आत्मसत्ता अद्वैतसत्ता है, अरु विज्ञानघन है, तिसविषे चित्त संवेदन फुरी है, उही जगत्‌रूप होकरि स्थित भई है, आत्मसत्ता अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, उही इस प्रकार एकही नांई स्थित भया है॥ हे रामजी! निराकार साकाररूप हो भासता है स्वप्नवत् ॥ हे रामजी! इस जगत्के आदि अद्वैत चिन्मात्रसत्ता थी, तिसीसों जो नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आया, तौ उहीरूप हुआ क्यों? अवर कारण तौ कोउ नहीं, जैसे स्वप्नके आदि अद्वैतसत्ता निराकार है, तिसकों सूर्यादिक पदार्थ भासि आते हैं, सो भी उहीरूप हुये क्यों? प्रगट भासते भी हैं, तैसे इह जगत् भी अकारण अरु निराकार जाण॥ ॥ हे रामजी! न कोउ जागृत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, सब आभासमात्र है, यही आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, हमकों तौ उही सदा विज्ञानघन आत्मसत्ता भासती है, जैसे दर्पणविषे अपणा मुख भासता है, तैसे हमकों अपणा आप भासता है, अरु अज्ञानीकों भ्रांतिरूप जगत् भासता है, जैसे वृक्षके कुंडविषे पुरुष भासता है, दूरतें भ्रांति करिके, तैसे अज्ञानीकों जगत् भासता है ॥ हे रामजी! न कोउ द्रष्टा है, न दृश्य है, द्रष्टा तब कहियें जो दृश्य

होवै, अरु दृश्य तब कहियें जो द्रष्टा होवै, जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा किसका अरु जो द्रष्टाही नहीं तौ दृश्य किसका, तातें निर्विकार ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जो आकार भी भासते हैं, तौ भी निराकार है, आत्मसत्ताही संवेदनकरिके आकाररूप हो भासती है, जैसे स्तंभविषे चितेरा पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं, तौ उसकों प्रत्यक्ष भासती हैं खोदेविनाही, तैसे खोदेविना ब्रह्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी चितेरा इह पुतलियां देखता है, सो हुआ कछु नहीं ॥ हे रामजी! इन मेरे वचनोंकों तूं स्वप्न अरु संकल्प दृष्टांत करिके देखु, जो अनुभवरूपही आकार हो भासता है, अनुभवतें इतर कछु नहीं, इस मेरे वचनरूपी उपदेशकों हृदयविषे धारहु, अरु अज्ञानीके वचनकों छर्दिकी नांई त्यागहु॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विद्यावादबोधोपदेशो नाम द्विशताधिकद्विसप्ततितमः सर्गः॥ २७२ ॥ ॥

राम उवाच॥ हे भगवन्! बडा आश्चर्य है, जो हम अज्ञान करिके जगत्कों देखते भये, जगत् तौ कछु वस्तु नहीं, सर्व ब्रह्मही है, अरु अपणे आपविषे स्थित है, जगत् भ्रमकरि भासता है, अब मैं जाण्या है, जो इह जगत् भ्रममात्र था, वस्तुतें न यह पीछे था, न होणा है, न आगे होवैगा, सर्व शांत निरालंब विज्ञानघनसत्ता है, अरु भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, सो कैसा है, निर्विकार है, शांतरूप है, जैसे सर्गके आदि अरु परलोकके आदि स्वप्नके आदि सकल पुरके आदि इन स्थानविषे अद्वैत चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसकी आभास संवेदन स्पंद फुरती है, तब अनेक पदार्थसहित जगत् भासि आता है, सो अनुभवरूप होता है, इतर कछु वस्तु नहीं, तैसे इह जगत् अनुभवरूप है॥ हे प्रभो! अब मैं तुमारी कृपातें ऐसे निश्चय किया है, जो जगत् अविचारसिद्ध हैं, विचार कियेतें निवृत्त हो जाता है, जैसे शशेके सिंग अरु आकाशके फूल असत् होते हैं, तैसे जगत् असत् है, बडा आश्चर्य है, जो असतरूप अविद्यानें मोहित किया था, अब मैं जाण्या है, जो अविद्या कछु वस्तु नहीं, अपणी कल्पनाही

आपकों बंधन करती है, जैसे अपणे परछायेविषे बालक भूत कल्पता है, अरु आपही भय पावता है, तैसे अपणी कल्पनाही अविद्यारूप भासती है, जबलग विचार प्राप्त नहीं भया तबलग भासती है, विचार कियेतें अविद्याका अत्यंत अभाव हो जाता है, जैसे जेवरिविषे सर्प भासता है, जेवरिके जानणेसें सर्पका अत्यंत अभाव हो जाता है, जैसे स्थाणुविषे भ्रम करिके पुरुष भासता है, तैसे आत्माविषे अविद्यारूप जगत भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशके फूल अरु शशेके सिंग कछु वस्तु नहीं, तैसे अविद्या भी कछु वस्तु नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र भासै तौ भी भ्रममात्र जाणीता है, जैसे स्वप्नविषे अपने मरणेका अनुभव होवै, तौ भी भ्रममात्र है, तैसे अविद्यारूप जगत् भासता है, तौ भी असत् है; प्रमाणरूप नहीं, प्रमाण कहियें जो यथार्थज्ञानका साधक होवै, सो इह जो प्रत्यक्षप्रमाण है सो यथार्थ करता नहीं, काहेतें जो वस्तुरूप आत्मा है, सो ज्यौंका त्यौं नहीं भासता, विपर्यय जगत्रूप भासता है, सीपविषे रूपेवत्, तातें इह प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है, तौ भी असत्रूप है, प्रमाण क्यौंकरि जानणा ॥ हे भगवन्! यह जगत् अवर कछु वस्तु नहीं, केवल कल्पनामात्र है, जैसे जैसे आत्माविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे तैसे जगत् भासता है, अरु जो कोउ पुरुष स्वर्गविषे बैठा होवै, तिसके हृदयविषे कोउ चिंता उपजी, तब उसकों स्वर्ग भी नरकरूप हो जाता है, काहेतें जो भावना नरककी हो जाती है ॥ हे भगवन्! यह जगत् केवल वासनामात्र है, आत्माविषे जगत् कछु आरंभ परिणाम करिके बन्या नहीं, इह जगत् चित्तविषे है, जैसे पथ्थरकी शिलाविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, सो जैसी कल्पते तैसे है, भासता है शिलातें इतर कछु नहीं, तैसे आत्माविषे चित्तनें जगत् पदार्थ रचे हैं, जैसे जैसे भावना करता है, तैसे तैसे इह भासता है, अरु आत्माविषे जगत् न कछु हुआ है, न आगे होणा है, केवल अपणे आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, स्वच्छ है, अद्वैत अरु परम मौनरूप है, द्वैत एक कल्पनातें रहित है, परम मुनीश्वर करिके सेवणे योग्य है, ऐसा जो पद है, सो मैं पाया हौं, अपणे आपविषे स्थित हौं,

सर्व दुःखतें रहित हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिक त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ २७३ ॥ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! जो आदि अंत मध्यतें रहित पद है, अरु मुनिकरि जानणा भी कठिन है, सो पद मैं पाया हौं, एक अरु द्वैतकी कल्पना जो शास्त्र वेदकरि कही है, सो मेरी मिटि गई है, अब मैं परम शांतिकों प्राप्त भया, अरु निःशंक हुआ हौं, कोउ दुःख मुझकों नहीं रहा, सब जगत् मुझकों आत्मरूपही भासता है ॥ हे भगवन् ! अब मैं जाण्या है, जो न कोउ अविद्या है, न विद्या है, न सुख है, न दुःख है, सर्वदा अपणे आत्मपदविषे स्थित हौं, पावणे योग्य पद सो मैं पाया हौं, जो आगेही प्राप्त था, जो कहते हैं हम तिस पदकों नहीं जाणते तिनकों भी प्राप्तरूप है, परंतु अज्ञान करिके नहीं जाणते, सो पद अवर किसकरि नहीं जाणीता, अपणे आपकरि जाणीता है, अरु ऐसे भी नहीं, जो किसीकरि जणाय, अरु जानणे योग्य अवर होवै, आपही बोधरूप है, सदा अपणा आपही है, अवर न कोउ भ्रांति है, न जगत् है, सर्व आत्माही है ॥ हे मुनीश्वर ! अज्ञान अरु ज्ञान भी ऐसे हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि भासै, तिसविषे अंधकार भासै, सो अंधकार तब नाश होवै, जब सूर्य उदय होवै, अरु जब स्वप्नतें जागि उठै, तब न अंधकार रहता है, न प्रकाशही रहता है, तैसे आत्मपदविषे जागेतें ज्ञान अज्ञान दोका अभाव हो जाता है, द्वितीय कल्पना मिटि जाती है, जब संवेदन फुरती है, तब जगत् भासता है, परंतु जगत् आत्मसत्तातें भिन्न कछु वस्तु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत् विषे भेद कछु नहीं, जैसे शिलाका अंतर जडीभूत होता है, तैसे आत्माका रूप जगत् है, जैसे जलरूप तरंगविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत् अभेदरूप हैं ॥ हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषकों ऐसे आत्माविषे अहंप्रतीति भई है, सो कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, तौ भी अंतरतें निश्चयकरि कछु नहीं करता, अशांतरूप दृष्ट आता है तौ भी सदा शांतरूप है ॥ हे मुनीश्वर ! अज्ञानरूपी मध्यान्हका सूर्य है, अरु जगत्की सत्यतारू

पी दिन है, जगत्के भावअभाव पदार्थरूपी तिसका प्रकाश है, अरु तृष्णारूपी मरुस्थल है, तिसविषे अज्ञानी जीवरूपी मार्गपंथी हैं, तिनकों दिन अरु मार्ग निवृत्त नहीं होता, अरु जो ज्ञानवान् स्वभावविषे स्थित हैं, तिनकों न संसारकी सत्यतारूपी दिन भासता है, न तृष्णारूपी मरुस्थल भासता है, उह संसारकी उरतें सोई रहे हैं, ऐसी अद्वैतसत्ता तिनकों प्राप्त भई है, जहां सत् असत् दोनों नहीं, तिस कारणतें जगत्कलना नहीं भासती ॥ हे मुनीश्वर ! अब मैं जाग्या हौं, सब जगत् मुझकों अपणा आपही दृष्ट आता है, मैं निर्वाणरूप निराकार हौं, निरिच्छितरूप हौं परंतु मैं स्वभावसत्तारूप हौं, अब कोउ दुःख मुझकों नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! तिस पदकों मैं पाया हौं, जिसके पावणेकरि तृष्णा कदाचित् नहीं उपजे, जैसे पाषाणकी शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, तैसे मुझविषे तृष्णा नहीं फुरती, सर्व आत्मरूपही मुझकों भासता है, अरु यह जो जीव है, तिसविषे जीवत्व कछु नहीं, जीवत्व भ्रांतिसिद्ध है, सब आत्मस्वरूप है, मुझकों तौ निरालंबसत्ता अपणा आपही भासती है॥इति श्रीयो॰ नि॰रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिक चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥२७४॥

॥राम उवाच॥ हे मुनीश्वर! आत्माविषे अनंत सृष्टि फुरतियां हैं, जैसे मेघकी बूंदका अंत गणतीतें कछु नहीं होता,तैसे परमात्माविषे सृष्टिका अंत गणतीतें नहीं होता, जैसे एक रत्नकी असंख्यात किरणां होतियां हैं, तैसे परमात्माविषे असंख्य सृष्टि हैं, केई परस्पर मिलतियां हैं, केई नहीं मिलतियां, परंतु स्वरूपतें एकरूप हैं, जैसे एक समुद्रमें लहरियां उठतियां हैं, केई नूतन भिन्न भिन्न अवरही प्रकारकी उठतियां हैं, एक तौ परस्पर ज्ञात होती हैं, एक नहीं होती हैं, अरु जैसे एकही ज्वालाके बहुत दीपक होते हैं, केई अन्योन्य होते हैं, कोउ परस्पर मिलते हैं, स्वरूपतें एकरूप हैं, तैसे आत्माविषे अनंत जगत् फुरते हैं, परस्परतें एकरूप हैं, जो नानाप्रकारका जगत् दृष्ट आया, तिसविषे तौ उहरूप हुआ क्यों, अवर कारण तौ कोउ नहीं, जैसे शून्यके आदि निराकारसत्ता होती है, तिसीसों सूर्यादिक पदार्थ भासी आते हैं, सो भी उही

रूप हुये क्या, प्रगट भासते भी हैं, परंतु निराकार होते हैं, जैसे यह जगत् भी अकारण निराकार है ॥ हे मुनीश्वर! अब मैं ज्योंका त्यों जाण्या है, जैसे स्वप्नविषे मुये हुये बोलते दृष्ट आते हैं, अरु जीवते हुये मृतक दृष्ट आते हैं, स्वप्नकालविषे पदार्थ विपर्यय भासते हैं, परंतु जब जागि उठैं, तब ज्योंके त्यों भासते हैं, तैसे मैं जागी उठ्या हौं, मुझकों विपर्यय नहीं भासता, यथाभूतार्थ मुझकों अब सर्वात्माही भासता है ॥ हे मुनीश्वर! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो परम समाधीविषे स्थित हैं, तिनकों उत्थान कदाचित् नहीं होता, अर्थ यह जो स्वरूपतें इतर नहीं भासता, व्यवहार करते दृष्ट आते हैं, परंतु व्यवहारतें रहित हैं, काहेतें जो अभिलाषा कछु नहीं रहती, विना अभिलाषा चेष्टा करते हैं, अंतरतें कछु कर्तृत्वका अभिमान नहीं फुरता, इसीका नाम परम समाधि है, जब बोधकी प्राप्ति होती है, तब तृष्णा कोउ नहीं रहती, सब पदार्थ विरस हो जाते हैं, काहेतें जो आत्मपद परमानंदरूप है, जो तृष्णातें रहित है, तिसीका नाम मोक्ष है, अरु तिसीका नाम निर्वाण है, जिसविषे उत्थान कोउ नहीं ॥ हे मुनीश्वर! आत्मानंद ऐसा पद है, जिस पदके आनंदकों ब्रह्मा विष्णु रुद्रादिक ज्ञानवान्की वृत्ति सदा दौडती है, संसारके पदार्थकी उर नहीं धावती, अरु जिस पुरुषकों शीतल स्थान प्राप्त भया है, सो बहुरि ज्येष्ठ आषाढकी धूपकों नहीं चाहता, जो मरुस्थलकों दौडै, तैसे ज्ञानवान्की वृत्ति आनंदकी उर नहीं धावती ॥ हे मुनीश्वर! मैं निश्चय किया है, जो तृष्णा जैसा ताप कोउ नहीं, अतृष्णा जैसी शांति कोउ नहीं, जो पुरुष परम ऐश्वर्यकों प्राप्त है; अरु अंतर तृष्णा जलावती है, सो कृपण दरिद्रि है, अरु आपदाका स्थान है, अरु जो निर्धन दृष्ट आता है, परंतु अंतर तृष्णा कोउ नहीं, सो परम ऐश्वर्य करि संपन्न है, अरु परम संपदाकी मूर्त्ति है, अरु जो बडा पंडित है परंतु तृष्णासहित है, सो परम मूर्ख जाणियें, तिसकों बोधकी प्राप्ति कदाचित् नहीं होती, जैसे मूर्त्तिकी अग्नि शीतकों निर्वाण नहीं करती, तैसे उसकी मूर्खताकों पंडित निर्वाण न करैगा ॥ हे मुनीश्वर! स

हस्रके सहस्रविषे कहूं पुरुष तृष्णाविरहित होता है, जैसे सिंह पिंजरविषे पडा पिंजरेकों तोडी निकसे, तैसे कहूं विरला तृष्णाकी जालकों तोडी निकसता है, जो पंडित स्वरूपकों विचारिके वितृष्णा नहीं होता, अरु अतीत होकरि वितृष्णा नहीं होता, तौ पंडित अरु अतीत दोनों मूर्ख हैं, जेता जेता तृष्णाकों घटावैगा, त्यौं त्यौं जाग्रत बोध उदय होवैगा, ज्यौं ज्यौं रात्रकी क्षीणता होती है, त्यौं त्यौं दिनका प्रकाश होता है, अरु ज्यौं ज्यौं रात्रकी वृद्धि होती है, त्यौं त्यौं दिनकी क्षीणता होती है, तैसे ज्यौं ज्यौं तृष्णा बढती जावैगी, त्यौं त्यौं बोधकी प्राप्ति कठिन होवैगी, अरु ज्यौं ज्यौं तृष्णा घटती जावैगी, त्यौं त्यौं बोधकी प्राप्ति सुगम होवैगी ॥ हे मुनीश्वर! अब मैं तिस पदकों प्राप्त हुआ हौं, अच्युत निराकार पद है, अरु द्वैत एक कलनातें रहित है, तिस पदकों मैं आत्माकरि जाण्या है, अब मैं निःशंक हुआ हौं, अरु जिस पदकों पायेतें इच्छा कोउ नहीं रही, सो परमानंद आत्मपद है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिकपंचसप्ततितमः सर्गः ॥ २७५ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बडा कल्याण हुआ है, जो तूं जाग्या है ॥ हे रामजी! इह परम पावन वचन तुझनें कहे हैं, जिनके सुणेतें पापका नाश होता है, बहुरि कैसे वचन तुझनें कहे हैं, जो अज्ञानरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य है, अरु मन तनके तापकों नाशकर्त्ता चंद्रमाकी किरणा हैं ॥ हे रामजी! जो पुरुष अपणे स्वभावविषे स्थित हैं, तिनकों व्यवहार अरु समाधिविषे एकही दशा है, अनेक प्रकारके चेष्टा करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु उनके निश्चयविषे कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं फुरता, सदा परम ध्यानविषे स्थित हैं, जैसे पत्थरकी शिला होती है, तिसविषे स्पंद कछु नहीं फुरता, तैसे उनकों कछु कर्तृत्वबुद्धि नहीं फुरती, काहेतें जो दृश्यविषे उनका अहंकार देहाभिमान निवृत्त भया है, स्वस्वरूप चिन्मात्रविषे स्थिति पाई है, सो कैसा आत्मपद है, परम शांतरूप है, द्वैतकलनातें रहित एक है, ऐसा जो पद है, सो ज्ञानवान् आत्मता करिके जा

णता है, तिसकों निर्वाण कहते हैं, तिसकों मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी! ऐसा जो पद है, तिसविषे हम सदा स्थित हैं, अरु ब्रह्मा विष्णुतें आदि लेकरि जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो तिसी पदविषे स्थित हैं, नानाप्रकारके चेष्टा करते भी दृष्ट आते हैं, परंतु सदा शांतरूप हैं, तिनकों क्रिया अरु समाधिविषे एकही आत्मनिश्चय रहता है, जैसे वायु स्पंदविषे एकही है, तरंग अरु ठहरायेविषे जल यही है, तैसे ज्ञानी दोनोंविषे सम है, जैसे आकाशरूप अरु शून्यताविषे भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे भेद नहीं ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! तुमारी कृपातें मुझकों कलना कोउ नहीं फुरती, ब्रह्मा विष्णु रुद्रतें आदि लेकरि जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप मुझकों भासता है, सर्वदा काल सर्व प्रकार मैं अपणे आपविषे स्थित हौं, अच्युत अरु अद्वैतरूप हौं, मेरेविषे जगत्‌की कलना कोउ नहीं, चित्त संवेदनद्वारा मैंही जगत्‌रूप हो भासता हौं, अरु स्वरूपतें कदाचित् चलायमान नहीं भया, अचेत चिन्मात्र स्वरूप हौं, अपणे आपतें इतर मुझकों कछु नहीं भासता ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मैं जाणता हौं, जो तूं जाग्या है, परंतु अपणे दृढ बोधके निमित्त मुझसों बहुरि प्रश्न करु, जो इह जगत् है नहीं, तौ भासता क्यों है ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! मैं तुमसों तब पूछौं, जो जगत् आकार मुझकों भासता होवै, सो मुझकों जगत् कछु भासता नहीं, जैसे संकल्पके अभाव हुये संकल्पकी चेष्टा नहीं भासती, जैसे बाजीगरकी मायाका अभाव हुये बाजी नहीं भासती जैसे स्वप्नके अभाव हुये स्वप्नसृष्टि नहीं भासती, जैसे भविष्यत्कथाके पुरुष नहीं भासते तैसे मुझकों जगत् नहीं भासता, बहुरि संशय किसका उठावौं, आदि जो चित्तसंवेदन फुरी है, सो विराट्पुरुष होकरि स्थित भया है, तिसनें आगे देश कालपदार्थ रचे हैं, अरु स्थावर जंगम जगत्का रचा है, तिसके समष्टि वपुका नाम विराट् है, जैसे स्वप्नका पर्वत होवै, तैसे इह विराट् पुरुष है, बहुरि कैसा विराट् है, जो आप आकाशरूप है, जो आपही आकाशरूप है, तिसका रचा जगत् मैं क्यों पूछौं, जैसे स्वप्नकी मृत्तिकाही आकाशरूप है, अर्थ

इह जो उपजी अनउपजी है, तिसके पात्रका मैं क्यों पूछौं, तातें न कोउ विराट् है, न तिसका जगत् है, मिथ्याही विराट् है, मिथ्याही तिसकी चेष्टा है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, न कोउ जगत् है, न कोउ तिसका विराट् है,जैसे स्वप्नका पर्वत आभासमात्र होता है, तैसे इह जगत् आकार भासता है, जैसे बीजतें वृक्ष होता है, तैसे ब्रह्मतें जगत् प्रगट हुआ है, इस भी कैसे कहियें, बीज साकार होता है, तिसविषे वृक्षका सद्भाव रहता है, उही परिणमी करिके वृक्ष होता है, आत्मा ऐसे कैसे होवै, आत्मा तौ निराकार है, तिसविषे जगत्का होणा नहीं, काहेतें जो निर्विकार है, अरु अद्वैत है, निर्वेद है, तिसकों जगत्का कारण कैसे कहियें, न कोउ जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है, इह अवस्था भी आकाशमात्र है, परिणामभावकों नहीं प्राप्त भया, सदा अपणे आपविषे स्थित है ॥ हे मुनीश्वर ! मैं तूं भी आकाशरूप हैं, आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी सब आकाशरूप हैं, अब सर्व आत्माही मुझकों भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! एक सविकल्प ज्ञान है, एक निर्विकल्प ज्ञान है, सो आकाशवत् अचैत्य चिन्मात्र है, चैत्य जो दृश्य है, तिसके संबंधतें रहित है, सो आकाशवत् निर्मल जाण, सो निर्विकल्प ज्ञान है, जिनकों इह ज्ञान प्राप्त भया है, सो महापुरुष है, तिसकों मेरा नमस्कार है, अरु जिसकों दृश्यका संयोग है, सो सविकल्प ज्ञान जीवकों होता है, सो संसारी है तिसकों भिन्न भिन्न जगत् विषमतासहित भासता है, परंतु उही भिन्न कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे नानाप्रकारके तरंग भासते हैं, तौ भी जलस्वरूप हैं, तैसे भिन्न भिन्न जीव अरु तिनका ज्ञान है, तौ भी मुझकों अपणा आपही भासता है, जैसे अवयवीकों सब अंग अपणे ही भासते हैं, तैसे सर्व जगत् अपणा आपही केवल अद्वैतरूप भासता है, जगत्की कलना कोउ नहीं फुरती, जैसै स्वप्नतें जागेकों स्वप्नसृष्टि नहीं फुरती, कल्पनातें रहित अपणा आपही अद्वैत भासता है, तैसे मुझकों जगत् कल्पनातें रहित अपणा आपही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! आगमतें लेकरि जो

शास्त्र हैं, तिनतें उल्लंघि वचन मैं कहे हैं, परंतु जो मेरे हृदयविषे हैं, सोई कहे हैं, जो कछु अंतर होता है, सोइ बाह्य प्रगट वाणीकरि कहता है, जैसे जो बीज बोता है, सोई अंकुर निकसता है, बीजविना अंकुर नहीं निकसता, तैसे जो कछु मेरे हृदयविषे है, सोइ वाणीकरि कहता है, अरु इह विद्या सर्व प्रमाणकरि सिद्ध है ॥ हे मुनीश्वर ! जिसकों इह दशा प्राप्त है, सोइ जाणता है, अवर कोउ नहीं जाणी सकता, अरु जिसनें मद्यपान किया है, सोइ उन्मत्तताकों जाणता है, अवर कोउ नहीं जाणी सकता, तैसे जो ज्ञानवान् है, सोइ आत्मरसकों जाणता है; अवर कोउ जाणता, सो कैसा आत्मरस है, जिसके पीयेतें बहुरि कोई नहीं कल्पना रहती ॥ हे मुनीश्वर ! मैं आत्मा अजन्मा अविनाशी अरु परम शांतरूप हौं, उभय एककी कल्पनातें रहित अचेत चिन्मात्र हौं, अरु जगत्‌रूप हुयेकी नांई भी मैं भासता हौं, अरु निराभास हौं, मेरेंविषे आभास भी कोउ वस्तु नहीं, काहेतें जो निराकार हौं, इस प्रकार मैं, अपणे आपकों यथार्थ चिन्मात्र जाण्या है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे रामविश्रांतिवर्णनं नाम द्विशताधिकषट्सप्ततितमः सर्गः ॥ २७६ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज ! इस प्रकार रामजी कहिकरि एक मुहूर्त्तपर्यंत तूष्णीं हो गया, अर्थ यह जो परमात्मापदविषे विश्रांतिकों पावत भया, इंद्रिय अरु मनकी वृत्ति जो है, सो आत्मपदविषे उपशम भई, तिसतें उपरांत जाणीकरि भी कमलनयन रामजी लीलाके निमित्त प्रश्न करत भया ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी मेघके नाशकर्त्ता शरत्काल, मुझकों एक संशय कोमल जैसा भया तिसकों दूर करहु ॥ हे मुनीश्वर ! आत्मपद अव्यक्त है, अरु अचिंत्य है, अर्थ इह इंद्रिय अरु मनका विषय नहीं, इंद्रियांकरि ग्रहण नहीं होता, अरु मनकी चिंतवनाविषे भी नहीं आता, जो बडे महापुरुष हैं, तिनके कहणेविषे भी नहीं आता, ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्मतत्त्व है, सो शास्त्रकरि कैसे जाण्या जाता है, शास्त्र तौ अविच्छेद प्रतियोगीकरि कहते हैं, सो सविकल्प

है, सविकल्प करिके निर्विकल्पपद कैसे जाण्या जाता है, गुरु अरु शास्त्र करिके जाणियें, अरु विकल्परूप जो है शास्त्र, तिनविषे भी सार अर्थ पाइता है, परंतु विकल्प परिच्छेद प्रतियोगी जो तिससाथ हैं, तिनकरिके सर्वात्मा क्योंकरि जाणियें ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! गुरु अरु शास्त्रकरि नहीं जाणीता, अरु गुरु शास्त्रविना भी नहीं जाणीता॥ हे रामजी! नानाप्रकार जो विकल्परूप शास्त्र हैं, तिनकरिके निर्विकल्परूप कैसे जाणीता है, परंतु तिस प्रकार इनकरि जाणीता है, सो भी सुण ॥ हे रामजी! एक व्यवधान देशके किटक थे, सो गृहस्थविषे रहते थे, तिनकों आपदा आनि प्राप्त हुई, उह चिंताकरि दुर्बल होते जावैं, अरु भोजन भी न जुड जावै, जैसे वसंतऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि सूकि जाती है, जैसे कमल जलतें निकस्या सूकि जाता है, तैसे संपदारूपी जलतें निकसीकरि कीटक आपदारूपी धूपकरि सूकि गये, तब उननें विचार किया जो किसी प्रकार हमारी उदर पूर्णता चलै, तातें हम वनविषे जायकरि लकडी चुणि लेवैं, जो हमारा कष्ट दूर होवै ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करिके उह वनविषे गये, वनविषे जायकरि लकडीयां ले आये, इसी प्रकार लकडीयां ले आवैं, जब एक वनतें अवर वनविषे देखें, तब उहांतें ले आवैं, बजारविषे वेचिकरि उदरपूर्णा करैं, जब केताक काल व्यतीत भया, तब कोउ चंदनकी लकडीकों पिछाणै सो उनतें विशेष मौल पावैं, एककों ढूंढते ढूंढते रत्न प्राप्त भये तिनकों विशेष ऐश्वर्य प्राप्त भया, सो लकडी उठावणेके यत्नतें रहित भये बहुरि अवरस्थान ढूंढणे लगे, जो रत्नतें भी विशेष कछु पाइयें, सो वनकी पृथ्वीकों खोदते खोदते कोइ चिंतामणिकों प्राप्त भये, उह बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त भये, जैसे ब्रह्मा इंद्रादिक हैं, तैसे होत भये ॥ हे रामजी! जिननें उद्यम करिके वनकी सेवना करी तिनकों बडा सुख प्राप्त भया, जो लकडियां उठावते रहे, तिनकी उदरपूर्णाही भई, अरु दुःख निवृत्त न भया, अरु जिनकों चंदनकी लकडियां प्राप्त भई, तिनके उदर पूर्णातें अवर भी संताप मिटे, अरु जिनकों चिंतामणि प्राप्त

भई, तिनके सर्व संताप मिटि गये, उह परम ऐश्वर्यवान् भये, परंतु सबकों वनसों प्राप्त भया, अरु जो वनके निकट उद्यमकरि न गये, घरही बैठे रहे, सो दुःखित होकरि प्राणोंकों त्यागते भये, परंतु सुख न पाये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिंतामणिप्राप्तिर्नाम द्विशताधिकसप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ २७७ ॥ ॥

॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह जो तुम कीटकका वृत्तांत कहा सो इसका तात्पर्य मैं कछु न जाण्या, उह कीट कवन थे, अरु बन क्या था, अरु आपदा क्या थी, सो कृपाकरि प्रगट कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेते कछु जीव देखता है, सो सब कीट हैं, तिनकों अज्ञानरूपी आपदा लगी हैं आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक जो तीनों ताप हैं, आध्यात्मिक कामक्रोधादिक मानसी दुःख हैं, आधिभौतिक देहके वात पित्त कफ आदिक दुःख हैं, अरु आधिदैविक जो ग्रहतें दुःख अनिच्छत आनि प्राप्त होता है, तीन तापकी चिंताकरि जलते हैं ॥ हे रामजी! तिनविषे प्रयत्न करिके शास्त्ररूपी वन विषे गये हैं, सो सुखी भये हैं, जो अर्थी सुखके निमित्त शास्त्ररूपी वनकों सेवते भये, तिनकों सत् कर्मरूपी लकडियां प्राप्त भई, तिनकरि जो नरकरूपी उदरपूर्णाका दुःख था सो निवृत्त भया, अरु स्वर्गरूपी सुख पावते भये, बहुरि शास्त्ररूपी वनकों सेवते सेवते उपासनारूपी चंदन वृक्ष जिनकों प्राप्त भया, तिसकरि अवर दुःख भी निवृत्त भये, अरु विशेष सुखकों पावते भये, सो जब अपणे इष्ट देवकों सेवता है, तब स्वर्गादिक विशेष सुखकों पावता है, अपणे स्थानकों प्राप्त होता है, बहुरि शास्त्ररूपी वनकों ढूंढता है, तब विचाररूपी रत्नविशेष सुखकों पावता है, जब सत् असत्का विचार इसकों प्राप्त होता है, तब सर्व दुःख इसके नष्ट हो जाते हैं, अरु इह जो सुख प्राप्त होता है, सो शास्त्र करिके होता है क्यों? जैसे अवर पदार्थ चंदन लकडीयां वनविषे प्रगट थे चिंतामणि गुप्त थी, तैसे अवर शास्त्रविषे धर्म अर्थ काम प्रगट हैं, अरु ज्ञानरूपी चिंतामणि गुप्त है, जब शास्त्ररूपी वन पृथ्वीकों वैराग्य अरु अभ्यासरूपी यत्नकरि

खोजैं, तब आत्मरूपी चिंतामणिकों पावता है ॥ हे रामजी ! वनविषे उन चिंतामणि तब पाई क्यों, जो उहा चिंतामणिका वन था, परंतु जब अभ्यास किया तब पाई, परंतु उसी वनविषे पाई, तैसे गुरु शास्त्र भी माटिके खोदणेवत् है, जब भला अभ्यास करता है, तब आपही चिंतामणिवत् आत्मप्रकाश आता है, जैसे माटिके खोदणेकरि चिंतामणिका प्रकाश उपजता नहीं, काहेतें जो चिंतामणि आगेही प्रकाशरूप है, खोदणेकरि आवरण दूर किया, तब आपही भासि आई, तैसे गुरु शास्त्रके वचन तिनके अभ्यासकरि अंतःकरण शुद्ध होता है, तब आत्मसत्ता स्वतःप्रकाशि आती है, सो गुरु अरु शास्त्र हृदयकी मलीनता दूर करते हैं, जब मलीनता दूर होती है, तब आत्मसत्ता स्वाभाविक प्रकाशती है, तातें गुरु शास्त्रकरि मलीनता दूर होती है, परंतु इनकी कल्पना भी द्वैतविषे होती है, सो कल्पना द्वैत संसारकों नाश करणेवाली है, परमार्थकी अपेक्षा करिके शास्त्र गुरु भी द्वैत कल्पना है, अरु अज्ञानीकी अपेक्षाकरि गुरु शास्त्र कृतार्थ करते हैं, इनके अभ्यासकरि आत्मपद पाइता है, प्रथम अज्ञानी शास्त्रकों भोगके निमित्त सेवते हैं, अरु शास्त्रविषे भोगका अर्थ जाणते हैं, जैसे लकडीयांके निमित्त बनकों सेवते थे, अरु शास्त्रविषे सव कछु है, जैसे किसीकों रुचिकरि अभ्यास होता है, तैसे पदार्थ तिसकों प्राप्त होता है, शास्त्र एकही है, परंतु पदार्थविषे भेद है, जैसे गन्नेकी रस एक है, तिसतें गुड सक्कर खंड मिसरी होती है, तिनविषे भेद है, तैसे शास्त्र एक है, तिनविषे पदार्थ भिन्न भिन्न हैं, जिस जिस अर्थ पावणेके निमित्त इह यत्न करैगा, तिसीकों पावैगा, शास्त्रविषे भोग भी है, अरु मोक्ष भी है, अज्ञानी भोगके निमित्त इह यत्न करते हैं, परंतु उह भी धन्य है, काहेतें जो शास्त्रकों सेवणे तौ लगे हैं क्यों ? सेवते सेवते कबहूं किसी कालविषे आत्मपदरूपी चिंतामणि भी प्राप्त होवैगी परंतु आत्मपद पावणेनिमित्त शास्त्र श्रवण करणा योग्य है, सुणि सुणिकरि अभ्यासद्वारा आत्मपद प्राप्त होवैगा, तब सर्व उरतें समभाव होवैगा, जैसे सूर्यके उदय हुये सर्व उरतें प्रकाश प

सरि जाता है, तैसे सर्व उर समता प्रकाशैगी, तब सुषुप्तिकी नांई स्थिति होवैगी, अर्थ इह जो द्वैत अरु एक कलना भी शांत हो जावैगी, अनुभव अद्वैतविषे जाग्रत होवैगी, परंतु किसकरि होवैगी, संतके संग अरु शास्त्रके विचार अभ्यासद्वारा होवैगी, सो संतजन कवन हैं, जो परोपकारी संसारसमुद्रतें पार करणेवाले होवैं, सो संतजन हैं, तिनके संगकरि आत्मपद प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! गुरु शास्त्र नेति नेतिकरि जतावते हैं, अर्थ इह जो अनात्मधर्मकों निषेधकरि आत्मतत्त्व शेष रखते हैं, जब अनात्मधर्मकों त्याग करैगा, तब आत्मतत्त्व शेष रहैगा, तिसकों जाणि लेवैगा, तिसके जाणेतें अवर कछु जानणा नहीं रहता, तिसके जानणेविषे यत्न भी कछु नहीं, आवरण दूर करणे निमित्त यत्न है, जैसे सूर्य आगे बदल आता है, तिसकरि सूर्य नहीं भासता, सो बदलोंके दूर करणेकों यत्न चहिता है, सूर्यके प्रकाशनिमित्त यत्न नहीं चहीता, जब बदल दूर हुये, तब स्वाभाविकही सूर्य प्रकाशता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके यत्नकरि अहंकाररूपी आवरण दूर होते हैं, तब आत्मा स्वप्रकाश भासि आता है, सात्विक गुण जो हैं, गुरु अरु शास्त्र, तिनकरि रज तम गुणोंका अभाव होता है,तब परम अनुभव ज्योतिकरि आत्मा अकस्मात् प्रकाशि आता है, जब प्रकाश भया, तब उसविषे उन्मत्त हो जाता है, द्वैतरूपी संसारकी कल्पना नहीं रहती, जैसे सुंदर स्त्रीकों देखिकरि कामी पुरुष उन्मत्त हो जाता है, अरु संसारकी उरतें सुरति भूलि जाती है, तैसे ज्ञानी आत्मपदकों पाइकरि उन्मत्त होता है, अरु संसारकी उरतें सुरति भूलि जाते हैं, परम ऐश्वर्यवान् होता है, सो तिसका साधन शास्त्रका विचार है, बनके सेवणेतें चिंतामणि पावणेका दृष्टांत कहा है सो जानि लेणा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे गुरुशास्त्रोपमावर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ २७८ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु सिद्धांत संपूर्ण है, सो मैं तुझकों विस्तार करिके कहा है, तिसके श्रवणकरि अरु वारंवार विचारणेकरि मूढ भी निरावरण होवैंगे, तौ उत्त

म पुरुषकों निरावरण होणेविषे क्या आश्चर्य है ॥ हे रामजी ! इह मैं भी जाणता हौं, जो तूं विदितवेद भया है, प्रथम उत्पत्तिप्रकरण तेरे ताईं कहा है, जो जगत्की उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, बहुरि स्थितिप्रकरण कहा है, जो जगत्की स्थिति इस प्रकार हुई है, उत्पत्ति कहियें जो चित्त संवेदनके फुरणेकरि जगत् उपजा है, अरु संवेदन फुरणेकी दृढताकरि जगत् स्थित भया है, तिसतें उपरांत उपशमप्रकरण कहा है, जो मन इस प्रकार अफुर होता है, जब चित्त उपशम भया, तब परम कल्याण हुआ, मनके फुरणेका नाम संसार है, जब मन उपशम हो जाता है, तब संसारकल्पना मिटि जाती है, इह संपूर्ण विस्तार करिके कहा है, परंतु अब जाणता हौं, जो तूं बोधवान् भया है ॥ हे रामजी ! मैं तुझकों आत्मज्ञानका उपाय कहा है, अरु जिनकों ज्ञान प्राप्त भया, तिनके लक्षण भी कहे हैं, सो अब भी संक्षेपतें कहता हौं ॥ हे रामजी ! प्रथम बालक अवस्थाविषे इसकों इह बणता है, जो संतजनका संग करणा; अरु सच्छास्त्रका विचारणा, इस शुभ आचारकरि अभ्यासद्वारा इसकों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तब समता आनि प्राप्त होती है, अरु सर्वसाथ सुहृद हो जाता है, सो माता सुहृदता कैसी है, परमानंदरूप जो है मुदिता, तिसकी जननी है, सो सदा इसके संग रहती है, जैसे सुंदर पुरुषकों देखिकरि तिसकी स्त्री प्रसन्न होती है, उसके प्राणका त्यागणा अंगीकार करती है, परंतु उस पुरुषकों नहीं त्यागती, तैसे जो ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्मलक्ष्मीकरि सुंदरकांति हैं, तिसकों समता मुदिता सुहृदतारूपी स्त्री नहीं त्यागतियां, सदा इसके हृदयरूपी कंठ लगी रहतियां हैं, उह पुरुष सदा प्रसन्न रहता है ॥ हे रामजी ! जिसकों देवताका राज्य प्राप्त होता है उह भी ऐसा प्रसन्न नहीं रहता, अरु जिसकों सुंदर स्त्रीयां प्राप्त होवें, उह भी ऐसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा ज्ञानवान् प्रसन्न होता है ॥ हे रामजी ! समता कैसी है, जो द्विधारूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य है, अरु तीन तापरूपी उष्णताके नाश करणेकों पूर्णमासीका चंद्रमा है, बहुरि कैसी है, सुहृदता अरु समता जो

सौभाग्यरूपी जलका नीचा स्थान है, जैसे जल नीचे स्थान स्वाभाविक चला जाता है, तैसे सुहृदताविषे सौभाग्यता स्वाभाविक होती है, जैसे चंद्रमाकी किरणांके अमृतकरि चकोर तृप्तिवान् होता है, तैसे आत्मरूपी चंद्रमाकी समता सुहृदतारूपी किरणांकों पायकरि ब्रह्मादिक चकोर तृप्त होकरि आनंदवान् होते हैं, अरु जीते हैं ॥ हे रामजी! उह ज्ञानवान् ऐसी कांतिकरि पूर्ण है, जो कदाचित् भी क्षीण नहीं होती, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाविषे भी उपाधि दृष्ट आती है, परंतु ज्ञानवान्के मुखविषे तैसे भी उपाधि नहीं, जैसे उत्तम चिंतामणिकी कांति होती है, तैसे ज्ञानवान्की कांति है, राग दोष करिके क्षीण कदाचित् नहीं होती, सदा प्रसन्न रहता है ॥ हे रामजी! समता वही मानौं सौभाग्यकमलकी खाणी है, ऐसे आनंदकों लिये जगत्विषे विचरता है, जो प्रकृत आचारकों करता है, जो कछु कार्य करता है, अरु भोजन करता है, जो कछु ग्रहण करता है, जो कछु देता है, सो सब लोक उसके कर्तृत्वकी स्तुति करते हैं॥ हे रामजी! ऐसा जो पुरुष है, सो ब्रह्मादिकोंकरि भी पूजणेयोग्य है, सर्वही उसीका मान करते हैं, अरु सर्व उसके दर्शनकी इच्छा करते हैं, दर्शन करिके प्रसन्न होता है, जैसे सूर्यके उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिली आते हैं, सर्व हुलासकों प्राप्त होते हैं, तैसे उसका दर्शन देखिकरि सर्व हुलासकों प्राप्त होते हैं, अरु जो कछु उह करते हैं, सो शुभ आचारही करते हैं, अरु जो कछु अवर भी करि बैठते हैं, तौ भी उसकी निंदा लोक नहीं करते, काहेतें जो जाणते हैं, इह समदर्शी है, समता करिके उह सर्वका सुहृद होता है, शत्रु भी उनके मित्र हो जाते हैं, जिनकों समताभाव उदय हुआ है, तिनकों अग्नि जलाय नहीं सकता, अरु जल डुबाई नहीं सकता, वायु तिसकों सुकाय नहीं सकता, अरु जैसी इच्छा करै तैसी सिद्धि होती है ॥ हे रामजी! जिसकों समता प्राप्त हुई है, सो पुरुष अतोल हो जाता है, संसारकी उपमा उसकों कोउ दे नहीं सकता, अरु जिसकों समता नहीं प्राप्त भई, सो सर्व संग सुहृदताका अभ्यास करै, तब जो उसका शत्रु होवै, सो भी मित्र हो जाता है, काहेतें जो

अभ्यासकी दृढता करिके इसकों शत्रु भी मित्र भासणे लगते हैं, जो सर्वविषे समताका अभ्यास करता है, सोइ दृढ होता है, तब समताभावतें कदाचित् चलायमान नहीं होता ॥ हे रामजी ! एक राजा था, तिसनें अपणे शरीरका मांस काटि क्षुधार्थीकों दिया, परंतु समतातें चलायमान न भया, ज्यौंका त्यौं रहा, अरु एक पुरुषकों पुत्री अति प्यारी थी, तिसनें किसीकों दीनी, सो तिसनें अवर शत्रुकों दीनी, परंतु वह ज्यौंका त्यौं रहा, एक अवर राजा था, उसकों स्त्री अति प्यारी थी, उसका कछु व्यभिचार श्रवण किया, तिसकों मार डारी, परंतु समतारूप धर्मकों न त्यागत भया ॥ हे रामजी ! जब राजाके गृहविषे मंगल होता है, तब अपणे नगरकों भूषणों अरु वस्त्रोंकरि सुंदर करता है, अरु प्रसन्न होता है, सो अवस्था राजा जनककी देखी थी, अरु एक समय सर्व स्थान अति सुंदर अग्निकरि जलते देखे, तौ अपणे समताभावतें चलायमान न भया, अरु एक अवर राजा था, उसनें राज्य भी अवरकों देदिया, आप राज्यविना विचरता भया, परंतु समताभावतें चलायमान न भया ॥ हे रामजी ! एक दैत्य था, उसकों देवताका राज्य प्राप्त भया, बहुरि राज्य नष्ट हो गया, परंतु दोनौं भावोंविषे समही रहा, एक बालक था, उसनें चंद्रमाकों मोदक लड्डु जाणिकरि फुंक मारि, परंतु उह ज्यौंका त्यौं रहा ॥ हे रामजी ! इत्यादिक मैं अनेक देखे हैं, जिनकों आत्मज्ञान सम्यक् प्राप्त भया है, सो सुखदुःखकरि चलायमान नहीं भये ॥ हे रामजी ! प्रारब्ध ज्ञानीकों भोगणीकों भोगणी तुल्य है, परंतु रागदोषकरि अज्ञानी तपायमान होता है, अरु दृढ समुझके वशतें ज्ञानी तपायमान नहीं होता है, सर्व अवस्थाविषे उसकों समताभाव होता है, सो आत्मपदके साक्षात्करि समताभाव होता है, सो आत्मपद तप करिके भी नहीं प्राप्त होता, नहीं तीर्थोंकरि, न दानकरि, न यज्ञकरि प्राप्त होता है, जब अपणा विचार उत्पत्ति होता है, तब सर्व भ्रांति निवृत्त हो जाती है, अरु सर्व जगत् आत्मरूपही भासता है, इसी दृष्टिकों लिये प्राकृत आचारविषे विचरते हैं, परंतु निश्चयतें सदा नि

गुण हैं ॥ ॥ राम उवाच ॥ ॥ हे मुनीश्वर! ऐसी अद्वैत दृष्टि निष्ठा जिनकों प्राप्त भई है, तिनकों कर्मोंके करणेसाथ क्या प्रयोजन है, उह त्याग क्यों नहीं करते ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो पुरुष अद्वैतनिष्ठ हैं, तिनकों त्यागग्रहणकी भ्रांति चलती जाती है, तिस भ्रमतें रहित होकरि प्रारब्धके अनुसार चेष्टा करते हैं ॥ हे रामजी ! जो कछु स्वाभाविक क्रिया उनकों बणी पडी है, तिसका त्याग नहीं करते, तिसविषे उनकों ज्ञान प्राप्त भया है, सो आचार करते हैं, अवरकों ग्रहण नहीं करते, अरु उसका त्याग नहीं करते ॥ हे रामजी ! जिनकों गृहस्थहीविषे ज्ञान प्राप्त भया है, सो गृहस्थहीविषे विचरते हैं, त्याग नहीं करते, जैसे हम स्थित हैं, अरु जिनकों राज्यविषे ज्ञान प्राप्त भया है, सो राज्यहीविषे रहे हैं, जैसे तुम हौ, जो ब्राह्मणकों ज्ञान प्राप्त भया है, सो ब्राह्मणहीके कर्मोंविषे रहे हैं, इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य शूद्र जिस स्थानविषे किसीकों ज्ञान प्राप्त भया है, सोई कर्म करता है ॥ हे रामजी ! केई ज्ञानवान् गृहस्थहीविषे रहे हैं, केई राज्यही करते हैं, केई संन्यासी हो रहे हैं, केई वनविषे विचरते फिरते हैं, केई पर्वतकंदराविषे ध्यानस्थित हो रहे हैं, केई नगरविषे रहते हैं, केई ज्ञानवान् मथुराविषे, केई केदारनाथविषे, प्रयागविषे, केई जगन्नाथविषे रहते हैं, केई देवताका पूजन करते हैं, कर्म करते हैं, केई तीर्थ अग्निहोत्र करते हैं, हमारी नांई केई जप करते हैं, केई अस्ताचल पर्वतमें, केई उदयाचल पर्वतमें, केई मंदराचल हिमालय पर्वतविषे इत्यादिक स्थानमें विचरते हैं, केई शास्त्रविहित कर्म करते हैं, केई अवधूत हो रहे हैं, केई भिक्षा मांगी मांगी भोजन करते हैं, केई कठिण वचन बोलते हैं, केई अज्ञानी हुये विचरते हैं, केई विद्याध्ययन करते हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा ज्ञानवान्भी करते हैं, काहेतें जो उनकों स्वाभाविक आनि प्राप्त भई है, यत्नकरि कछु नहीं करते ॥ हे रामजी ! शुभ कर्म करै अथवा अशुभ कर्म करै, कोउ क्रिया उनकों बंधन नहीं करती, अरु जो अज्ञानी हैं, सो जैसे कर्म करैंगे, तैसेही फलकों भोगैंगे, पुण्य कर्म करैगा, तब

स्वर्गसुख भोगैगा, पापकरि नरकदुःख भोगैगा, अरु जो शुभ कर्म कामनातें रहित करैगा, तब अंतःकरण शुद्ध होवैगा, संतके संग अरु सच्छास्त्रकरि शुद्धताकों प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी! जो अर्धप्रबुद्ध है, अरु पाप करणे लगी जावै, अरु आत्मअभ्यास त्यागि देवै सो दोनों मार्गतें भ्रष्ट है, न स्वर्गकों प्राप्त होता है, अनात्मपदकों प्राप्त होता है, अरु तप दान तीर्थादिक सेवणेकरि भी आत्मपद प्राप्त नहीं होता, जब विचार उपजता है, अरु आत्मपदका अभ्यास करता है, तब आत्मपद पावता है, जब आत्मपद प्राप्त भया, तब निःशंक हो जाता है, चेष्टा व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरतें उसका चित्त शांत हो जाता है, जैसे ताबेका तष्ट होवै, जब उसकों पारसका स्पर्श करियें तब उह स्वर्ण हो जाता है, सो आकार उसका तष्टही रहता है, परंतु तांबाभावका अभाव हो जाता है, तैसे जब चित्तकों आत्मपदका स्पर्श होता है, तब चित्त शांत हो जाता है, परंतु चेष्टा उसी प्रकार होती है, अरु जगत्की सत्यता नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी! अब तुम जागे हौ अरु निःशंक भये हौ, रागदोषरूपी तुमारा नष्ट हो गया है, अरु तुम निर्विकार आत्मपदकों प्राप्त भये हौ, जन्म मृत्यु बढणा घटणा युवा वृद्ध होणा इन सर्व विकारोंतें रहित आत्मपदकों तुम पाये हौ, सर्वका अधिष्ठान जो परम शुद्ध चेतन है, सो तुमकों प्राप्त भया है ॥ हे रामजी! जो कछु मैं कहणा था, सो कहा है, अरु सारका सार आत्मपद कहा है, अरु जो कछु जानणे योग्य था, सो तुमनें जाण्या है, इसतें उपरांत न कछु कहणा रहा है, न कछु जानणा रहा है, एतेपर्यंत कहणा अरु जानणा है, अब तुम निःशंक होकरि विचरौ, तुमकों संशय कोउ नहीं रहा, क्षय अरु अतिशयरहित पद तुम पाये हौ, अर्थ इह जो अविनाशी अरु सर्वतें उत्तम पदकों पाये हौ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! जब इस प्रकार वसिष्ठजी मुनिओंविषे शार्दूल कहीकरि तूष्णीं हो रहा, तब जेती कछु सभा बैठी थी, सो सर्वही परम निर्विकल्पपदविषे स्थित हो गई, जैसे वायुतें रहित कमल फूलपर भंवरे अचल होते हैं, तैसे

चित्तरूपी भंवरे आत्मपद कमलके रसकों लेते हुये स्थित हो रहे, ब्रह्मकों जाणीकरि ब्रह्मरूप हुये ब्रह्मविषे स्थित भये, जेते कछु निकट मृग थे, सो तृण भक्षणकों त्यागिकरि अचल हो गये, अवर पशु पक्षी थे, सो सुणिकरि निस्पंद हो रहे, अरु स्त्रियां बालककों संयुक्त चपल थी, सो सुणिकरि जडवत् हो गइयां, पूर्व जो मुक्तिवान् मोक्ष उपायके श्रवणकों सिद्धोंके गण आते थे, तिननें भी बडे फूलकी वर्षा करी, तमाल कदंब पारिजात कल्प इत्यादिक दिव्य वृक्षोंके जो फूल हैं, तिनकी देवता अरु सिद्धोंनें वर्षा करी, नगारे, भेरी, शंख बजावणे लगे, अरु वसिष्ठजीकी स्तुति करणे लगे, बडे शब्द भये, तिन करिके दशों दिशा पूर्ण भईयां, उपरतें देवता सिद्धोंके नगारेके शब्द हुये, तिनकरि पर्वतोंविषे शब्दभाव उठे, अरु दिव्य फूलोंकी सुगंधि पसरी, मानौ पवन भी रंगित भया है, तब सिद्ध कहत भये॥ हे वसिष्ठजी! हमनें भी अनेक मोक्ष उपाय श्रवण किये हैं, अरु उच्चार किये कहे हैं, परंतु जैसा तुमनें कहा है, तैसा न आगे श्रवण किया है, न गाया है, न कह्या है, तुमारे मुखारविंदतें जो श्रवण किया है, तिसकरि हम परम सिद्धांतकों जाणत भये हैं, इसके श्रवणकरि पशु पक्षी मृग भी कृतार्थ भये हैं, अवर मनुष्योंकी वार्त्ता क्या कहियें, उह तौ कृतार्थही भये हैं, निष्पाप ज्ञानकों पायकरि मुक्त होवेंगे॥ वाल्मीक उवाच॥ हे साधो! ऐसे कहीकरि बहुरि फूलोंकी वर्षा करी, अरु चंदनका लेप वसिष्ठजीकों करे, जब इस प्रकार पूजा करि चूके, अरु कही रहे, तब अवर जो निकट बैठे थे, सो परम विस्मयकों प्राप्त भये, जो ऐसा परम उपदेश वसिष्ठजीनें किया है, तब राजा दशरथ उठि ठाढा भया, हस्त जोडिकरि वसिष्ठजीकों नमस्कार किया, अरु कहत भया॥ हे भगवन्! षट् ऐश्वर्यसों संपन्न तुमारी कृपाकरि हम पूर्ण भये हैं, कैसे हम पूर्ण भये हैं॥ हे भगवन्! तुम संपूर्ण शास्त्र श्रवण कराया है, तिसकों सुणीकरि हम पूजन करणे योग्य हैं, सो हे देव! तुमारा पूजन किससाथ करें, ऐसा पदार्थ पृथ्वीविषे कोउ नहीं, अरु आकाशलोक देवताविषे भी कोउ नहीं, जो तुमारी पूजाकों योग्य हो

वै, सर्व पदार्थ कल्पित हैं, अरु जो सत पदार्थसाथ पूजा करैं, तौ सत् तुमहीतें पाया है, तातें ऐसा पदार्थ कोउ नहीं, जो तुमारी पूजा योग्य होवै, तथापि अपअपणी शक्त्यनुसार पूजन करते हैं, परंतु तुमारे क्रोधवान् नहीं होणा, अरु हांसी भी नहीं करणी ॥ हे मुनीश्वर ! मैं राजा दशरथ अरु संपूर्ण मेरे अंतःपुरकी स्त्रियां अरु चतुष्टय पुत्र राज्य संपूर्ण पूजासहित, अरु जो कछु लोकविषे यश किया, अरु जो कछु परलोकके निमित्त पुण्य किये हैं, सो सर्व तुमारे चरणोंके आगे निवेदन हैं॥ हे साधो ! इस प्रकार कहीकरि राजा दशरथ वसिष्ठजीके चरणोंपरि गिर्या, तब वसिष्ठजी बोले ॥ हे राजन् ! तूं धन्य है, जिनकी ऐसी श्रद्धा है, परंतु हम तौ ब्राह्मण है, हमारे राज्य क्या करणा है, अरु राज्यका व्यवहार क्या जाणै, अरु कबहु ब्राह्मणनें राज्य किया है, राजा क्षत्रिय होते हैं, तातें तुझहीसों राज्य होवैगा, अरु इह जो तेरा शरीर है, सो मैं अपणाही जाणता हौं, अरु इह चतुष्टय पुत्र तेरे मैं आगेतें अपणे जाणता हौं, हम तौ तेरे परिणामकरि केही तुष्ट हौं, यह राज्यका प्रसाद हमनें तुझकोंही दिया है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा, तब राजा दशरथ बहुरि कहत भया कै हे स्वामी ! तुमारे लायक कोउ पदार्थ नहीं, तुम ब्रह्मांडोंके ईश्वर हौ, ऐसे वचन तुमप्रति कहणेविषे भी हमकों लज्जा आती है, परंतु योगके निमित्त तुमारे आगे विनती करी है, जो मोक्ष उपाय शास्त्र श्रवण किया है, अपणी शक्तिके अनुसार पूजन करैं, तब वसिष्ठजीनें कहा, बैठो, तब राजा बैठि गया, बहुरि रामजी निरभिमान होकरि कहत भये ॥ हे संशयरूपी तिमिरके नाशकर्त्ता सूर्य ! तुमारा पूजन हम किससाथ करैं, जो पदार्थ गृहविषे अपणा होवै, सो हे गुरुजी ! मेरे पास अवर तौ कछु नहीं, एक नमस्कारही है, ऐसे कहि चरणोंपर गिर्या, नेत्रोंतें जल चल्या जावै, वारंवार उठै, बहुरि गिर पडै, चरणोंपर आत्मानंदप्राप्तिके उत्साह करिके, जब वसिष्ठजीनें कहा बैठ जावहु, तब रामजी बैठि गये, बहुरि लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न अर्घ्यपाद्यकरि पूजणे लगे, राजर्षी ब्रह्मर्षि सर्व पूजणे लगे,

फूलोंकी वर्षा बडी चढि गई, वसिष्ठजीका शरीर भी ढांक्या गया, जब वसिष्ठजीनें भुजासाथ फूल दूर किये, तब मुख दृष्ट आणे लगा, जैसे बादलोंके दूर भये चंद्रमा दृष्ट आता है, तैसे मुख भास्या, तब वसिष्ठजीनें कहा ॥ हे ऋषीश्वरो! व्यास वामदेव विश्वामित्र नारद भृगु अत्रि इत्यादिकतें लेकरि जो बैठे थे, तिनप्रति कहा॥ हे साधो! जो कछु मैं वचन कहे हैं, सिद्धांतके, इनतें घट अथवा बढ होवै सो तुम अब कहौ, जैसा जैसा स्वर्ण होता है, तैसी तैसी अग्निबीच दिखाई देता है, तैसे तुम कहो, तब सबनें कहा ॥ हे मुनीश्वर! इह तुम परम सार वचन कहे हैं, जो जो तुमारे वचनोंकों घट बढ जाणीकरि तिनकी निंदा करैगा, सो महापतित होवैगा, इह वचन परम पद पावणेका कारण है ॥ हे मुनीश्वर! हमारे अंतर भी जो कछु जन्मजन्मांतरकी मल थी, सो नष्ट भई है, हम तौ पूर्ण ज्ञानवान् थे, परंतु पूर्व जन्म जो धारे हैं, तिनकी स्मृति हमारे चित्तविषे थी, जो अमका जन्म हम इस इस प्रकार पाया था, अरु अमका जन्म इस प्रकार पाया था, सो सब स्मृति अब नष्ट भई है, जैसे स्वर्ण अग्निविषे डार्या शुद्ध होता है, तैसे तुमारे वचनोंकरि स्मृतिरूप मल हमारा नष्ट भया है, अब हम जाण भये हैं, जो न कोउ जन्म था, न हम कोउ जन्म पाया है, हम अपणेही आपविषे स्थित है ॥ हे मुनीश्वर! तुम कैसे हौ जो संपूर्ण विश्वके गुरु हौ, अरु ज्ञान अवतार हौ, ऐसे तुमकों हमारा नमस्कार है, राजा दशरथ भी धन्य है, जिसके संयोगकरि हम मोक्ष उपाय श्रवण किया है, अरु इह रामजी विष्णु भगवान् है ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ इसी प्रकार ऋषीश्वर मुनीश्वर वसिष्ठजीकों परम गुरु जाणीकरि स्तुति करणे लगे, अरु रामजीकों विष्णु भगवान् जाणीकरि स्तुति करणे लगे, अरु राजा दशरथकी स्तुति करत भये, जिसके गृहविषे विष्णु भगवान्नें अवतार लिया है, स्तुति करिके वसिष्ठजीकों अर्घ्यपाद्यकरि पूजणे लगे, बहुरि आकाशके सिद्ध बोले ॥ हे वसिष्ठजी! तुमकों हमारा नमस्कार है, तुम गुरुके भी गुरु हौ ॥ हे प्रभो! जो कछु तुमनें उपदेश किया है, अरु

जो कछु तिसविषे युक्तियां कहिया हैं, ऐसे वचन वागेश्वरी जो है सरस्वती, सो भी कहै, अथवा न कहै, तुमकों वारंवार नमस्कार है, अरु राजा दशरथ चतुर द्वीपका राजा तिसकों भी नमस्कार है, जिसके प्रसंग करि हम ज्ञान अरु युक्तियां श्रवण कियां हैं, अरु इह रामजी विष्णु भगवान् नारायण हैं, चारों आत्मा हैं, इनकों हमारा प्रणाम है, इह जो चारों भाई हैं, सो ईश्वर देवता हैं, विष्णु भगवान् जाके उपर कृपा करता है, राजकुमार जीवन्मुक्त अवस्थाकों धारि करि बैठे हैं, अरु वसिष्ठजी परम गुरु हैं, अरु विश्वामित्र तपकी मूर्त्ति है॥ ॥वाल्मीक उवाच॥ इस प्रकार जब सिद्ध कही रहे तब फूलकी वर्षा करणे लगे, जैसे हिमालय पर्वतपर बरफकी वर्षा होती है, अरु बरफकरि पूर्ण हो जाता है, तैसे वसिष्ठजी पुष्पकरि पूर्ण भये, आकाशचारी जो ब्रह्मलोकविषे वासी थे, तिननें भी पुष्पकी वर्षा करी, अवर जो सभाविषे बैठे थे, तिननें भी पूजन किया, अरु अवर जो ब्रह्मर्षि बैठे थे सभाविषे, तिनका भी यथायोग्य पूजन किया, इस प्रकार जब सिद्ध पूजन करि चूके, तब केई ध्याननिष्ठ हो रहे, सबके चित्त शरत्कालके आकाशवत् निर्मल हो गये, अपणे स्वभावविषे स्थित भये, जैसे स्वप्नकी सृष्टिका कौतुक देखिकरि कोउ जागि उठै, अरु हसै, तैसे उह हसणे लगे, तब वसिष्ठजी रामजीकों कहत भये॥ हे रघुवंसी कुलरूपी आकाशके चंद्रमा! तूं अब किस दशाविषे स्थित हौ, अरु क्या जाणते हौ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! सर्व धर्म ज्ञानके समुद्र! तुमारी कृपातें मैं अब अपणे आपविषे स्थित हौं, अरु कोउ कल्पना नहीं रही, परम शांतिवान् भया हौं, मुझकों शेष विशेष कोउ नहीं भासता, केवल अपणा आपही पूर्ण भासता है, अब मुझकों संशय कोउ नहीं रहा, अरु इच्छा भी कछु नहीं रही, मैं परम निर्विकल्प पद पाया हौं, कोउ कल्पना मुझकों नहीं फुरती, जैसे नीलपीतादिक उपाधितें रहित स्फटिक प्रकाशती है, तैसे मैं निरुपाधि स्थित हौं, संकल्प विकल्प उपाधिका अभाव हो गया है, परम शुद्धताकों प्राप्त भया हौं, चित्त मेरा शांत हो गया है, चेष्टा मेरी पूर्ववत् हो

वैगी, अरु निश्चयविषे कछु न फुरैगा, जैसे शिलाविषे प्राण नहीं फुरते, मुझकों द्वैत कल्पना कछु नहीं फुरती ॥ हे मुनीश्वर! अब मुझकों सब आकाशरूप भासता है, मैं शांतरूप होकरि परम निर्वाण हौं, भिन्न भाव जगत् मुझकों कछु नहीं भासता, सर्व अपणा आपही भासता है, अब जो कछु तुम कहौ सोई करौं, अब मुझकों शोक कोउ नहीं रहा, जैसा राज्य करणा भोजन छादन बेठणा चलणा पान करणा जैसे तुम कहहु, तैसेही करौं, तुमारे प्रसादकरि मुझकों सर्व समान है॥ ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे विश्रामप्रकटीकरणं नाम द्विशताधिकैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ २७९ ॥ ॥ ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥

॥ हे भारद्वाज! जब ऐसे रामजीनें कहा, तब वसिष्ठजी कहत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! बडा कल्याण हुआ, जो अपणे आपविषे स्थित भया, अब तुझनें यथार्थ जाण्या है, अब जो कछु सुनणेकी इच्छा है सो कहौ ॥ राम उवाच ॥ हे संशयरूपी अंधकारके नाशकर्त्ता सूर्य! अरु संशयरूपी वृक्षोंके नाशकर्त्ता कुठार! अब तुमारे प्रसाद करिके मैं परम विश्रांतिकों प्राप्त भया हौं, अरु जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिकी कलनातें रहित हौं, जाग्रत जगत् भी मुझकों सुषुप्तिवत् भासता है, श्रवण करणेकी इच्छा भी नहीं रही, अब परम ध्यान मुझकों प्राप्त भया है, अर्थ इह जो आत्मातें इतर कछु वस्तु नहीं भासती, मैं आत्मा हौं, अज अविनाशि हौं, शांतरूप हौं, अनंत हौं, सदा अपणे आपविषे स्थित हौं, ऐसे मुझकों मेरा नमस्कार है, प्रलयकालका पवन चलै, अरु समुद्र उछलै इत्यादिक अवर क्षोभ होवै, तौ भी मेरा चित्त स्वरूपतें चलायमान न होवैगा, अरु जो त्रिलोकीका राज्य मुझकों प्राप्त होवै, तौ मेरे चित्तविषे हर्ष न उपजैगा, मैं सत्तासमानविषे स्थित हौं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब इस प्रकार रामजीनें कहा, तब मध्यान्हका सूर्य शिर उपर उदय भया, राजा जो बैठे थे, रत्न मणीके भूषणकरि भूषित तिन मणीकी कांति किरणांकरि अति विशेष हुई, सूर्यसाथही एक हो गई, मानौं ऐसे वचन सुणिकरि नृत्य कराति है, तब

वसिष्ठजीनें कहा ॥ हे रामजी ! अब हम गमन करते हैं, मध्यान्हकी उपासनाका समय है, जो कछु पूछणा होवै सो बहुरि काल पूछणा, तब राजा दशरथ उठी खडा हुआ, पुत्रसहित वसिष्ठजीका बहुत पूजन किया, अवर जो ऋषीश्वर मुनीश्वर ब्राह्मण थे, तिनका यथायोग्य पूजन किया, मोती हिराकी माला अरु मुहरां रुपये घोडे गौ वस्त्र भूषण इनतें आदिलेकरि जो ऐश्वर्यकी सामग्री है, तिसकरि यथायोग्य पूजन किया, जो विरक्त संन्यासी थे, तिनकों प्रणाम करि प्रसन्न किये, अवर जो राजर्षि थे, तिनका भी पूजन किया, तब वसिष्ठजी उठी खडे हुये, परस्पर नमस्कार किया, मध्यान्हके नौबत नगारे वाजणे लगे, सब श्रोता उठिकरि अपणे आपसाथ विचारणे लगे, चले जावैं, अरु शीश हिलावैं, हाथकी अंगुली हिलावैं, नेत्रकी भावा हिलावैं, परस्पर चर्चा करते जावैं, सब अपणे स्थानोकों गये, वसिष्ठजी संध्या उपासना करणे लगे, अरु जेते श्रोता थे, सो विचारपूर्वक रात्रकों व्यतीत करत भये, सूर्यकी किरणांसाथ बहुरि आये, गगनचारी सप्त लोकके रहनेवाले ऋषि देवता आये, सर्व श्रोता भूमिवासी राजर्षि ब्रह्मर्षि अवर जो श्रोता थे, सो सब आयकरि अपणे स्थानपर बैठि गये, परस्पर नमस्कार किया, तब रामजी हाथ जोडिकरि उठि खडा हुआ, अरु कहा ॥ हे भगवन् ! अब जो कछु मुझकों श्रवण करणा, अरु जानणा रहता है सो तुमही कृपा करिके कहौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो कछु सुनणे योग्य था, सो तुझनें सुण्या है, अब तूं कृतकृत्य भया है, जो कछु रघुवंशीका कुल है, सो सबही तुझनें तारा है, अरु जो आगे हुये हैं, अरु जो अब हैं, अरु जो आगे होवैंगे, सो सब तुझनें कृतकृत्य किये हैं, अब तूं परमपदकों प्राप्त भया है, अवर जो कछु तुझकों पूछणेकी इच्छा है सो पूछ ले, अरु हे रामजी! जो सत्तासमानविषे स्थित भया है तौ विश्वामित्रकेसाथ जायकरि इसका कार्य करु, अरु कछु पूछणेकी इच्छा है, सो पूछि ले, ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! आगे जो मैं आपकों देखता था, सो इस देहसंयुक्त परिच्छिन्नरूप देखता था

अरु अब आपकों देखता हौं, जो आपतें इतर मुझकों कछु नहीं भासता, सब अपणा आपही भासता है ॥ हे मुनीश्वर ! अब इस शरीरसाथ भी मुझकों प्रयोजन कछु नहीं रहा, जैसे फूलसों सुगंधि लेकरि पवन चला जाता है अपणे स्थानकों, अरु फूलसाथ तिसका प्रयोजन नहीं रहता, तैसे इस देहविषे जो कछु सार था, सो मैं पायकरि अपणे आपविषे स्थित हौं, शरीरसाथ भी मुझकों प्रयोजन नहीं रहा, अब राज्य भोगणेकरि कछु सुखदुःख नहीं, इंद्रियके इष्ट अनिष्टविषे मुझकों हर्ष शोक कोउ नहीं, मैं अब सर्वतें उत्तम पदकों प्राप्त भया हौं, सर्व कलनातें रहित हौं, अविनाशी अव्यक्तरूप सर्वतें निरंतर सदा अपणे आपविषे स्थित हौं, निराकार निर्विकार हौं, जो कछु पावणे योग्य था, सो पाया है, जो कछु सुनणे योग्य था सो सुण्या है, जो कछु तुमारे कहणा था, सो कहा है, अब तुमारी वाणी सफल भई है, जैसे कोउ रोगीकों औषध देता है, तिस औषधसाथ उसका रोग जाता है, अरु उसका कल्याण होता है, तैसे तुमारी वाणीकरि मेरा संशयरूप रोग गया है, अरु अपणे आपकरि तृप्त भया हौं, अब मैं निःशंक होकरि अपणे आपविषे स्थित हौं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे निर्वाणवर्णनं नाम द्विशताधिकाशीतितमः सर्गः ॥ २८० ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे महाबाहो रामजी ! तूं मेरे परम वचन सुण, दृढ अभ्यासके निमित्त कहता हौं, जैसे आदर्शकों ज्यों ज्यों मार्जन करता है, त्यों त्यों उज्वल होता है, तैसे वारंवार श्रवणकरि अभ्यास दृढ होता है, अरु जेता कछु जगत् भासता है, सो सब चिदानंदस्वरूप है, भासती भी सोई वस्तु है, जो आगे भानरूप होती है सो भानरूप चेतन है, तातें जो पदार्थ भासते हैं, सो सब चेतनरूप हैं, अरु जो भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, सो द्वैतकी कल्पनातें भासते हैं, वास्तवतें भानरूप चेतन है, जैसे जो उच्चार करीता है, सो सब शब्द हैं, शब्दरूप एक है, अरु अर्थकरि भिन्न भिन्न भासते हैं, जब अर्थकी कल्पना त्यागि दीजैं, तब यही शब्द है, अरु जो अर्थ करियें, इह जल है, इह पृथ्वी है,

इह अग्नि है, इनतें आदि लेकरि अनेक शब्द अरु अर्थ होते हैं, अर्थतें रहित शब्द एकही है, तैसे इह सब चेतन है, चित्तकी कल्पनाकरि भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, अवर वस्तु कछु नहीं, अवर भासता है, सो तिसीका आभास है ॥ हे रामजी ! आभास भी अधिष्ठानसत्ता भासती है, परंतु ज्ञानविषे भेद होता है, सो ज्ञानविषे भी भेद नहीं, वृत्तिविषे भेद है, जिसविषे अर्थ भासते हैं, अरु ज्ञानरूप अनुभवसत्ता है, तिसविषे जैसे अर्थकी वृत्ति आभास होती है, तिसकों जाणीता है, जैसे जेवरी एक पडी होती है, तिसविषे सर्पका अर्थ वृत्ति न ग्रहण करै तौ सर्प तौ कछु नहीं, उह जेवरीही है, तैसे अर्थ भेद ग्रहण करियें नहीं तौ ज्ञानही है, जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो सब ज्ञानरूपही हैं, अवर कछु बन्या नहीं ॥ हे रामजी! स्वप्नके दृष्टांत मैं तुझकों जतावणेके निमित्त कहे हैं, वास्तवतें स्वप्न भी कोउ नहीं, अद्वैसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसे समुद्र सदा जलरूप है, द्रवता करिके तरंग बुदबुदे भासते हैं, सो नानारूप नहीं, अरु नाना हो भासता है, तैसे सर्व जगत् अनानारूप है, अरु नाना हो भासता है, तूं अपणे स्वप्नकी स्मृतिकों विचारि देख, जो तेरा अनुभवही नानाप्रकार हो भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, तैसे इह जाग्रत जगत् भी तेरा अपणा आप है, अवर दूसरा कछु नहीं, सदा निराकार निर्विकार आकाशरूप आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! जो अद्वैतसत्ता निराकार निर्विकार सदा अपणे आपविषे स्थित है, तौ पृथ्वी कहांतें उपजी है? जल कैसे उपजा है? अग्नि, वायु, आकाश, पुण्य, पाप इत्यादिक कल्पना चिदाकाशविषे कैसे उपजे हैं? मेरे दृढ बोधके निमित्त कहहु ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इह तूं कहु जो स्वप्नविषे पृथ्वी उपजी जो होती है, सो कहांतें उपजी है, अरु जल वायु अग्नि आकाश पाप पुण्य कहांतें उपजे हैं, देश काल पदार्थ कहांतें उपजे हैं? ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! स्वप्नविषे जो पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश देश काल पदार्थ भासते हैं, सो सब आत्मरूप होते हैं, आत्मसत्ताही ज्योंकी

त्यौं होती है,सो तत्त्ववेत्ताकों ज्यौंकी त्यौं भासती है, अरु जो असम्यक्दर्शी हैं, तिनकों भिन्न भिन्न पदार्थ भासते हैं, भासणा तुमकों तुल्य होता है, परंतु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थकों ग्रहण करती है, तिसकों ज्यौंकी त्यौं आत्मसत्ता भासती है, अरु जिसकी वृत्ति यथाभूत अर्थकों ग्रहण नहीं करती, तिसकों उही वस्तु अवररूप हो भासती है ॥ हे मुनीश्वर! अवर जगत् कछु बन्या नहीं, उही आत्मसत्ता स्थित है, जब कठोररूपकी संवेदन फुरती है, तब पृथ्वी पहाडरूप हो भासती है, अरु द्रवताका स्पंद फुरता है, तब जलरूप हो भासता है, अरु उष्णरूपकी संवेदन फुरती है, तब अग्नि भासती है, इसी प्रकार वायु आकाशादिक पदार्थ जैसे फुरणा होता है, तैसे हो भासता है, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, परंतु जलतें इतर कछु नहीं, जलहीरूप है, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, उही रूप है, अवर जगत् कछु वस्तु नहीं, इह गुण क्रिया सब आकाशविषे हैं, वास्तव कछु नहीं, काहेतें जो कारणतें रहित हैं, सब असत्‌रूप हैं, अहं त्वंतें आदिलेकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब आकाशरूप है, कछु बन्या नहीं, अपणे आपविषे आत्मसत्ता स्थित है, न कोउ आधार है, अद्वैतसत्ता सदा अपणे आपविषे स्थित है, अरु नानारूप हो भासती है, जब चित्त संवेदन फुरती है, तब पृथ्वी जल वायु आकाश पदार्थ देश काल हो भासता है, कहूं सर्व आत्माका ज्ञान फुरता है, कहां परिच्छिन्नता भासती है, परंतु वास्तवतें कछु बन्या नहीं, उही वस्तु है, जैसा तिसविषे फुरणा फुरता है, तैसा हो भासता है, अनुभवसत्ता परम आकाशरूप है, जिसविषे आकाश भी आकाशरूप है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे चिदाकाशजगदेकताप्रतिपादनं नाम द्विशताधिकैकाशीतितमः सर्गः ॥ ॥ २८१ ॥ ॥ ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इह प्रश्न है, जो जाग्रत अरु स्वप्नविषे कछु भेद नहीं, अरु परम आकाशरूप है, तौ तिस सत्ताकों जाग्रत अरु स्वप्नशरीरसाथ कैसे संयोग है, उह तौ निरवयव निराकार है ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेते कछु आकार तुझ

कों भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं, आकाशविषे आकाश स्थित है, स्वर्गके आदि आकारका अभाव था सो अबही जाण, जो उपजा कोउ नहीं, परम आकाशसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जब तिस अद्वैतसत्ता चिन्मात्रविषे चित्त किंचन होता है, तब उही सत्ता आकारकी नांई भासती है, परंतु कछु हुआ नहीं, आकाशरूपही है, जैसे स्वप्नविषे शरीरोंका अनुभव करता है सो कछु आकार तौ नहीं होते, आकाशरूप होते हैं, तैसे इह जगत् भी निराकार है, परंतु फुरणेकरि आकार हो भासती है, जिन तत्त्वतें शरीर होता है, सो तत्त्वही उपजे नहीं, तौ शरीरकी उत्पत्ति कैसे कहों॥ हे रामजी! अवर जगत् कछु उपजा नहीं, ब्रह्मही किंचनकरि जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद नहीं, संवेदन करिके अर्थसंकेत है, जब संवेदन न फुरै, तब अर्थसंकेत न होवै, भिन्न भिन्न वस्तुतें एक ही सत्ताके नाम हैं, भिन्न नाम तब भासते हैं, जब वेदना फुरती है, नहीं तौ शब्द जलरवके तुल हैं, वस्तुतें भेद नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, परंतु स्पंदरूप हो भासती है, निस्पंद नहीं भासती, परंतु दोनौं रूप वायुके हैं, तैसे स्पंदकरि ब्रह्मविषे किंचन जगत् भासता है, जब संवेदन नहीं फुरती, तब जगत् नहीं भासता, परंतु दोनौं रूप ब्रह्मही है, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न अरु दूसरी सुषुप्ति, परंतु दोनौं एक निद्राके पर्याय हैं, तैसे जगत्‌का होणा अरु न भासणा एक ब्रह्मकी दोनौं संज्ञा हैं, कोउ ब्रह्म कहौ, कोउ जगत् कहौ, ब्रह्म अरु जगत्‌विषे भेद कछु नहीं, ब्रह्मही जगत्‌रूप हो भासता है, जैसे निर्मल अनुभवसों स्वप्नविषे शिला भासि आती है, सो शिला तौ कछु स्वप्नविषे उपजी नहीं, अपणा अनुभवही शिलारूप हो भासता है, तैसे जेते कछु आकार अब भासते हैं, सो सब आकाशरूप हैं, आत्मसत्ताही आकाशरूप जगत् हो भासती है, अवर जगत् कछु उपजा नहीं होता, न सत् है, न असत् है, न आता है, न जाता है, केवल आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है॥ ॥राम उवाच॥

हे मुनीश्वर! आगे तुम मुझकों अनेक सृष्टि कही है, केई जलविषे, केई अग्निविषे, केई पृथ्वीविषे, केई वायुविषे, आकाशविषे, पत्थरविषे, पक्षीवत् उडातियां फिरतियां हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकी सृष्टि तुमनें कही है, अब इह प्रश्न है जो हमारी सृष्टि किसतें उत्पन्न भई है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रश्न उही करता है जो अपूर्व होता है, जो आगे देख्या अरु सुण्या न होवै, अरु जगतकरि जाण्या भी न होवै, इस जगत्की उत्पत्ति वेद पुराण कहते हैं, अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध है, जो ब्रह्म करिके हुई है, अरु वस्तुतें चिदाकाशरूप है, कछु उपजी नहीं, इह दोनौं प्रकार मैं तेरे तांई कहे हैं, तिनकों तूं जाणिकरि भी प्रश्न करता है सो तेरा प्रश्नही नहीं बणता ॥ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर! इह सृष्टि कितनीक हैं, अरु कहांलग चली जाती है, अरु केते कालपर्यंत रहैगी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जेती कछु सृष्टि तूं जाणता है सो सृष्टि कोउ नहीं, ब्रह्मही ब्रह्मविषे स्थित है, अरु सृष्टि बहुत हैं, परंतु वस्तुतें कछु हुई नहीं, आदि अंत मध्यतें रहित है, सो ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अरु इह जेती कछु सृष्टि है सो आभासमात्र है, ब्रह्म जो आदि अंत मध्यतें रहित है, तिसका आभास भी तैसाही है, जेता वृक्ष होता है तेतीही छाया होती है, तैसे ब्रह्मका आभास सृष्टि है, अरु वास्तवतें पूछै तौ आभास भी कोउ नहीं, ब्रह्मही अपणे आपविषे स्थित है, उही जगत्‌रूप आपकों देखता है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, जैसे स्वप्नपुरविषे पर्वत नदी आयुध नानाप्रकारके व्यवहारके रूप धारिकरि आत्मसत्ता स्थित होती है, सो कछु बन्या नहीं, जैसे संकल्पनगर भासता है, तैसे इह जगत् भी जाण, अवर कछु बन्या नहीं, आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, जो जगत् किसी कारणकरि उपजा होता तौ सत् होता, इसका कारण कोउ नहीं पाइता, तातें असत् है, न कोउ निमित्तकारण पाइता है, न समवायिकारण पाइता है ॥ हे रामजी! जो कारणतें उपजा न होवै, अरु भासै, तिसकों आकाशमात्र जाण स्वप्नपुरवत्, अरु जिसविषे आभास भासता है, सो अधिष्ठान

सत्ता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो सर्प कछु नहीं, जेवरीही सत् होती है, तैसे जगत् अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता है, सोई सत् है, शुद्ध निर्दुःख है, अच्युत है, विज्ञान है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, उही सत्ता जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे ब्रह्महही जगत्‌रूप हो भासता है॥ हे रामजी! इह जगत् ब्रह्मका हृदय है, अर्थ इह जो अपणा स्वभाव है, ब्रह्मतें इतर कछु नहीं, ज्ञानीकों सर्वदा ऐसेही भासता है, जैसे स्वप्नतें जागै, सब अपणा आपही भासता है, तैसे इह जगत् अपणा आप है॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे जगदाभासवर्णनं नाम द्विशताधिकद्व्यशीतितमः सर्गः ॥ २८२॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इस जगत्‌का कारण कोउ नहीं, जो जगत्‌ही नहीं तौ कारण कैसे होवै, अरु कारण नहीं तौ जगत् कैसे होवै, तातें सर्व ब्रह्महही है, इस उपर एक उपाख्यान है सो सुण॥ हे रामजी! कुशद्वीपविषे पूर्व अरु पश्चिम दिशाके मध्यविषे जो ऐलवती नगरी है, सो कैसी नगरी है, स्वर्णकी अरु महाउज्ज्वलरूप है, तिसविषे बडे स्तंभ ऊर्ध्वकों गये हैं, मानौ पृथ्वी अरु आकाशकों इननेंही पूर्ण किया है, ऐसे उहां स्वर्णके स्तंभ थे, तिस नगरीका एक प्रगपति राजा है, एक कालमें आकाशतें शीघ्र वेगकरि उसके गृहविषे मैं आया, उसनें भली प्रकार अर्घ्य पाद्यसाथ प्रीतिकरि मेरा पूजन किया, अरु सिंहासन उपर बैठाया, बैठायकरि उसनें मुझसों महाप्रश्न किया, जिन प्रश्नतें उपरांत कोउ प्रश्न नहीं॥ ॥ राजोवाच॥ ॥ हे भगवन्! संशयरूपी तमके नाशकर्त्ता तुम सूर्य हौ, मुझकों संशय है, सो दूर करहु॥ हे मुनीश्वर! जब महाप्रलय होती है, तब कार्य कारण सर्व शब्दकी कल्पना अभाव हो जाती है, तिसके पाछे महाआकाशसत्ता शेष रहती है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं, अवाच्यपद है, तिसतें बहुरि सृष्टि कैसे उत्पत्ति होती है, उहां उपादानकारण अरु निमित्तकारण तौ कोउ न था, सृष्टि कैसे हुई, श्रुति अरु पुराणकरि सुणीता है,

जो महाप्रलयसों बहुरि सृष्टि उत्पन्न भई है, अरु दूसरा प्रश्न यह है, जंबुद्वीपविषे कोउ मृतक भया, अथवा कहूं अवर ठौर गया हुआ मृतक भया, तौ उसका उह शरीर तौ उहां भस्म हो गया, अरु परलोकविषे पुण्यपापका फल दुःख भोगता है, जिस शरीरकरि भोगता है, तिस शरीरका कारण कोउ नहीं, जो तुम कहौ पुण्य अरु पाप शरीरका कारण है, तौ पुण्यपाप आपही निराकार हैं, तिनतें साररूप शरीर कैसे उपजै, अरु जो तुम कहौ, परलोक कोउ नहीं, पुण्यपाप भी कोउ नहीं, तौ श्रुति अरु पुराणके वचनोंसाथ विरोध होता है, सबही वर्णन करते हैं, जो मरिकरि परलोक जाता है, जैसे कर्म किये हैं, तैसे भोगता है, अरु जिस शरीरसाथ भोगता है, तिसका कारण कोउ नहीं, न कोउ पिता है, न माता है, सो शरीर कैसे उत्पन्न भया, अरु तीसरा प्रश्न यह है, जो इह परलोक विषे जाता है, इसके निमित्त दान पुण्य करते हैं, उनका फल इसकों कैसे प्राप्त होता है, अरु चतुर्थ प्रश्न यह जो महाप्रलयतें ब्रह्मा उत्पन्न भया है, उसका नाम स्वयंभू कैसे हुआ है, जो महाप्रलयतें न उपजा होवै, अरु अपणा आपहीतें उपजा होवै, इस कारणतें स्वयंभू कहाता है, अरु महाप्रलयविषे शेष अद्वैत रहा था, तिसतें उत्पन्न भया है, तौ भी स्वयंभू कैसे कहियें, जो कहौ, स्वयंभू अपणे आपतें उपजता है, तौ अपणा आप आत्मा है, सो सबका अपणा आप है, अव क्यौं नहीं, तिसतें स्वयंभू ब्रह्मा उत्पन्न होता, अरु पंचम प्रश्न यह है, जो एक पुरुष था, तिसका एक मित्र था, एक शत्रु था, तिन दोनौंनें प्रागविषे जाइकरि करवत लिया, जो इसका मित्र था, तिसनें वांछा करी जो मेरा मित्र चिरकाल जीवता रहै, चिरंजीव होवै, दूसरेनें यह संकल्प धारा जो मेरा शत्रु इसी कालविषे मरि जावै॥ हे मुनीश्वर! एकही कालविषे दो अवस्था कैसे होवैंगियां, अरु षष्ठ प्रश्न यह है, जो सहस्रही मनुष्य ध्यान लगाइ बैठे हैं, हम इसी आकाशके चंद्रमा होवैं, सो एकही आकाशविषे सहस्र चंद्रमा कैसे होवैंगे, अरु सप्तम प्रश्न यह है, जो सहस्र पुरुष ध्यान लगाय बैठे हैं, एक सुंदर स्त्री बै

ठी थी, तिसके निमित्त जो हमारे ताई प्राप्त होवै, सब तिसकी वांछा करते हैं, हम भर्त्ता होवैं, अरु एक का निश्चय यही है, अरु उह स्त्री पतिव्रता है, तिसके सहस्र भर्त्ता एक कालविषे कैसे होवैंगे, अरु अष्टम प्रश्न यह है, जो एक पुरुष था, तिसकौं किसीनैं वर दिया जो तूं जायकरि मृतक होय सप्तद्वीपका राज्य करु, अवर किसीनैं शाप दिया जो तेरा जीव अपणेही गृहविषे रहैगा, मृतक होय बाहिर न जावैगा, इह दोनौं एकहीं कालविषे कैसे होवैंगे, अरु नवम प्रश्न यह है, जो एक काष्ठका स्तंभ था, तिसकौं एकनैं कहा, स्वर्णका हो जावैगा, उह स्वर्णका हो गया, सो स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया, तिसका कारण कोउ न था, कारणविना कार्य कैसे उत्पन्न भया? जैसा अन्नका बीज बोता है, तैसाही अन्नकार्य उत्पन्न होता है अवर नहीं उगता, तौ काष्ठतें स्वर्ण कैसे उत्पन्न भया, अरु जो कहौ, संकल्पकरि उपजा तौ हम भी संकल्प करते हैं, हमका कार्य ऐसे होवै, उह क्यौं नहीं होता, तातें जाणीता है, जो संकल्पतें भी उत्पन्न नहीं होता॥ हे मुनीश्वर! जिस प्रकार इह वृत्तांत है सो कहौ, अरु एक कहते हैं, जो आगे असत्‌ही था, तौ असत्‌तें जगत्‌की उत्पत्ति कैसे भई, इह मुझकौं संशय है, तिसकौं दूर करहु, जो कोउ संतके निकट आनि प्राप्त होता है, सो निष्फल नहीं जाता, तातें कृपा करि कहौ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजप्रश्नवर्णनं नाम द्विशताधिकत्र्यशीतितमः सर्गः॥ २८३॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इस प्रकार उसनें मुझकौं संशयका समूह कहा, तब मैं उसकौं कहत भया॥ कै हे राजन्! जेते कछु तुझकौं संशय हैं, सो मैं सब दूर करूंगा, जैसे संपूर्ण अंधकारकौं सूर्य नाश करता है, तैसे मैं संशय नाश करौंगा॥ हे राजन्! जेता कछु जगत् तुझकौं भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, सदा अपणे आपविषे स्थित है, जब तिसविषे चित्त ऐसे फुरता है, तब उही चित्त संवेदन जगत्‌रूप हो भासता है, तातें जो कछु आकार भासते हैं, सो सब चिन्मात्ररूप हैं, न कोउ कार्य न कारण है, अरु जो तूं प्रत्यक्षप्रमाणकरि सं

शय करै जो सब चिन्मात्ररूप है, तब जो इह शरीर मृतक हो जाता है, तब चेतता क्यौं नहीं, चाहियें जो तिस कालमें भी इसविषे जानणा होवै तौ ॥ हे राजन्! जब जाग्रतका अंत होता है, अरु स्वप्न आया नहीं, तब शुद्ध चिन्मात्र रहता है, जब तिसविषे स्वप्नसृष्टि भासि आति है, तिस सृष्टिविषे केई चेतन भासते हैं, केई मृतक, केई जड भासते हैं, स्थावर जंगम नानाप्रकारकी सृष्टि भासती है, परंतु अवर तौ कछु नहीं, उही चिन्मात्रस्वरूप है, उही अनुभवरूप हो भासती है, कहूं चेतन बोलते चलते भासते हैं, परंतु उही है, जो चेतनता न होती तौ भासते कैसे, जातें भासते हैं, तातें सब चेतन है, तैसे इस जगत्विषे कहूं बोलते चलते भासते हैं, कहूं शब भासते हैं, परंतु उही चिन्मात्रसत्ता है, जैसा जैसा संकल्प तिसविषे फुरता है, तैसा तैसा हो भासता है ॥ हे राजन्! जैसे प्रथम प्रलयतें सृष्टि उत्पन्न भई थी, तैसे उत्पत्ति होती हे, इह सृष्टि किसीका कार्य नहीं, अरु किसीका कारण भी नहीं, विनाकारण उपजा भासता है ॥ हे राजन्! जो महाप्रलयविषे शेष रहता था सो चिन्मात्र है, तिस चिन्मात्रसत्तासों जो प्रथम शुद्ध संवेदन फुरी है, सो ब्रह्मा विराट्रूप होकरि स्थित भई, तिसनें जगत्कल्पना करी है, तिसविषे नेति रची है, जो इह पदार्थ इस प्रकार है, तैसे चित् संवेदनविषे दृढ होकरि भास्या है, तिसका नाम जगत् है, उही आत्मसत्ता किंचनरूप हो करि जगत्रूप हो भासती है ॥ हे राजन्! जैसे तेरे संकल्पकी आदि अरु स्वप्नसृष्टिकी आदि शुद्ध आत्मसत्ता थी, उही फुरणे करिके पदार्थरूप हो भासती है, तैसे इह जाण, वर न कोउ कार्य है, न कोउ कारण है, जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण होती है, तैसे इह जगत् अकारण है, जो आदि अंतके विचारतें रहित है, अरु वर्तमान प्रत्यक्षप्रमाणकों मानते हैं, तिनकों कार्य कारण प्रत्यक्ष भासते हैं, तिनके वचन भी निरर्थक हैं, जैसे अंधकूपके दर्दुर शब्द करते हैं, तैसे उह भी निरर्थक प्रत्यक्षप्रमाणकरि कार्यकारणके वाद करते हैं, तिनकों हमारे वचन सुनणेका अधिकार नहीं, अरु हमकों भी तिनके वचन सुनणे योग्य नहीं ॥ हे राजन्! जिस शास्त्रके श्रवणकरि अरु

जिस गुरुके मिलणेकरि संपूर्ण संशय निवृत्त न होवै, तिस शास्त्र अरु गुरुका कहणा भी अंधकूपके दर्दुरवत् व्यर्थ है, जो परमार्थसत्तातें विमुख हुये हैं, तिनकों इह भ्रम अपणेविषे भासता है, शरीरके मृतक हुये आपकों मरता जाणते हैं, जो मैं मुआ हौं, बहुरि वासना अनुसार शरीर उपजता जीता है, तब मानता है, जो अब मैं उपजा हौं, बहुरि अपने पुण्य पाप कर्मका अनुभव करता है, जैसे स्वप्नविषे अपणेसाथ शरीर देखता है, तैसे परलोकविषे अपणेसाथ शरीर भासि आता है, तैसे इह शरीर भी भासि आया है, न कोउ इसका कारण है, न पंचभौतिक है, न इसका शरीर है, न किसी कारणतें भूत उपजे हैं, अपणी कल्पना आकाररूप होकरि भासती है, अवर आकार कोउ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जैसा संकल्प तिसविषे दृढ होता है, तैसा पदार्थ भासि आता है ॥ हे राजन्! जो तूं इस जगत्कों सत् मानता है तौ सब कछु सिद्ध होता है, शरीर भी है, परलोक भी है, नरक स्वर्ग भी हैं, जैसा इह लोक है तैसा परलोक है, जो इह लोक निश्चयविषे सत् है, तौ उह लोक भी सत्ही भासैगा, जैसा कर्म करैगा, तैसा फल भोगैगा ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोत्तरवर्णनं नाम द्विशताधिकचतुरशीतितमः सर्गः ॥ २८४ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजन्! जेता कछु जगत् तुझकों भासता है सो सब संकल्पमात्र है, जैसे कोउ बालक अपणे मनविषे वृक्षकों रचै, तिसविषे फूल फल टास कल्पै सो संकल्पमात्र हैं, तैसे इह जगत् संवेदनरूप ब्रह्मनें कल्प्या है, तिसके मनविषे फुरता है, सो संकल्परूप है, जैसे उसनें संकल्प किया है तैसेही स्थित है, जैसे तिसविषे क्रम रचा है, जो इस प्रकार इह पदार्थ होवैगा, सो तैसेही स्थित भया है, देश काल पदार्थ तैसेही स्थित हैं, इसका नाम नेति है ॥ हे राजन्! तुझनें प्रश्न किया जो पुरुष अरूप है, अरु दूर है, तिसके अर्थ किसीनें दिया, तिसकों कैसे पहुंचता है, अरु स्वरूप अरूपका कैसे संयोग है, जो कोउ शुद्ध संवेदन पुरुष हैं, तिनकों सब पदार्थ निकट भासते हैं, अरु

जो कोउ पुरुष मनोराज्य कल्पता है, तिसविषे बडा देश रचै सो दूरतें दूर मार्ग हैं, तौ जो उस देशके वासी हैं, तिनकों देशकी अपेक्षाकरि दूसरा देश दूरतें दूर है, परंतु जिसका मनोराज्य है, तिसकों तौ सब निकट है, अपणा आपहीरूप है, तिस प्रकार जो शुद्ध संवेदनरूप है, तिसके अर्थ जो कोउ देता है, ईश्वर अर्थ अथवा देवताके अर्थ तिसकों निकटतें निकट सब अपणेविषे भासता है, आदि नेति इसी प्रकार हुई है, जो शुद्ध संवेदनकों सब अपणे निकटतें निकटही भासै, काहेतें जो सब संकल्प है, जैसी रचना संकल्पविषे रचाती है, तैसे होती है, संकल्पविषे क्या नहीं होता, अरु स्तंभका प्रश्न जो तुझनें किया है, काष्ठका स्वर्ण कैसे होता है सो सुण ॥ हे राजन्! आदि जो संवेदनरूप ब्रह्मा है, तिसनें अपणे मनोराज्यविषे नेति करी है, जो तपादिक करिके इसका वर अरु शाप सिद्ध होता है, उसके कहेतें, जो काष्ठका स्तंभ स्वर्ण हो गया, तौ तूं विचारकरि देख जो इस कारणतें काष्ठका स्वर्ण भया है, सो संकल्पमात्र है, जो संकल्पतें इतर भी कछु होता तौ काष्ठका स्वर्ण न होता, अरु इह सर्व विश्व संकल्परूप है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा हो भासता है, जैसे तूं अपणे मनोराज्यविषे संकल्प करै है जो इस ऐसे रहै, अरु जो इसतें अवर प्रकार करै तौ अवर हो जावै सो होता है क्यौं, तैसे वर अरु शाप भी अवर प्रकार हो जाते हैं, न अवर कोउ जगत् है, न कार्य है, न कारण है, उही आत्मसता ज्यौंकी त्यौं है, जैसे संकल्प जिसविषे फुरता है तैसे हो भासता है, अरु तूं पूछता है असततें बहुरि जगत् कैसे उत्पन्न होता है, जो आपही न होवै, तिसतें जगत् कैसे प्रगटै ॥ हे राजन्! असत् इसीका नाम है, जो जगत् असत् था, तिस श्रुतिनें असत् कहा, जो आदि असत् था सो असतता जगत्की कही है, आत्मा तौ असत् नहीं होता, सबका शेषभूत आत्मा है, जब तिसविषे संवेदन फुरती है, तब ब्रह्म अलक्षरूप हो जाता है, परंतु तिस संवेदनके फुरणे अरु मिटणेविषे ब्रह्म ज्यौंका त्यौं है, तिसका अभाव नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग उपजता है, बहुरि

लीन हो जाता है, परंतु तिसके उपजणे मिटणेविषे जल ज्यौंका त्यौं है, तरंग तिसका आभास फुरते हैं, जैसे तूं मनोराज्यकरि एक नगर कल्पै, बहुरि संकल्प छांडि देवै, तब संकल्परूप नगरका अभाव हो जाता है, परंतु सदा अविनाशी रहता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि उपजती भी है, अरु लीन भी हो जाती है, परंतु अधिष्ठान ज्यौंका त्यौं है ॥ हे राजन्! जैसे रत्नका प्रकाश किरण उठती है, अरु लीन भी हो जाती है, परंतु रत्न ज्यौंका त्यौं होता है, तैसे आत्मा विश्वके भाव अभावविषे ज्यौंका त्यौं होता है, तिसका आभास जगत् उपजता मिटता भासता है, उपजता है, तब उत्पत्ति भासती है, मिटता है तब प्रलय हो जाती है, परंतु उभय आभास हैं, जैसे वायु फुरती है, तब भासती है, ठहरि जाती है तब नहीं भासती, परंतु वायु एक है, तैसे आत्मा एकही है, फुरणेका नाम उत्पत्ति है, अफुरणेका नाम जगत्की प्रलय है, सो सर्व किंचनरूप है ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे प्रश्नोत्तरद्वितीयो नाम द्विशताधिकपंचाशीतितमः सर्गः ॥ २८५ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राजन्! तुझनें प्रागके दो पुरुषका प्रश्न किया है, तिसका उत्तर सुण, जो उसका शत्रु बन्या गया है, सो उसका पाप था, अरु जो उसका मित्र बन्या गया था, सो उसका पुण्य था, प्राग तीर्थ धर्मक्षेत्र था ॥ हे राजन्! पापरूप वासनाके अनुसार तिसकों मृत्यु भासती है, अरु पुण्यरूपी जो मित्र है सो पापरूपी शत्रुकों रोकता है, पुण्यरूपी तीर्थके बल करिके हृदयसों अल्परूपी पाप वेगि करि भासता है, अरु जब उसकों मृत्यु आती है, तब आपकों मरता जाणता है जो मैं मुआ हौं, भाई जन कुटुंबी रुदन करते हैं, जब अपणी उर देखता है, तब जाणता है जो मैं तौ मुआ नहीं, जब मृतक सर्गकी उर देखता है, तब आपकों मुआ जाणता है, भाई जन रुदन करते हैं; इस प्रकार उसकों मरणा भासता है, भाई जन जलावणे चले हैं, अग्निविषे जलता देखता है, जो अग्निविषे इननें मुझकों पाया है, मैं जलता हौं, जब बहुरि पुण्यकी उर देखता है, तब जाणता है जो मैं मुआ नहीं, जीता हौं, जब बहुरि पापकी उर

देखता है, तब जाणता है जो मैं मुआ हौं, मुझकों यमदूत ले चले हैं, यह परलोक है, इहां सुख दुःख भोगता है, जब बहुरि पुण्यकी उर देखै तब जाणै, जो मैं मुआ नहीं जीता हौं, इह मेरा भाई जन बैठे हैं, इहां मेरा व्यवहार चेष्टा इस प्रकार उभय अवस्थाकों एक पुरुष देखता है, जैसे संकल्पपुरविषे उभय अवस्था देखै, जैसे स्वप्ननगरविषे उभय अवस्था देखै, एकही पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टा देखता है, कहूं जीता देखता है, कहूं मृतक देखता है, कहूं व्यवहार, कहूं निर्व्यापार देखता है, इत्यादिक नानाप्रकारकी चेष्टा एकही पुरुषविषे होती है, तैसे एकही पुरुषकों पुण्यपापकी वासनाकरि जीणा मरणा भासता है ॥ हे राजन्! इह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है, जैसा संकल्प दृढ होता है, तैसा रूप हो भासता है, परलोक जाणा भी अपणे वासनाके अनुसार भासता है, अरु जो कछु उसके निमित्त बांधव पुत्र देते हैं, सो पुत्र बांधव भी उसकी पुण्य पाप वासनाकरि स्थित भये हैं, जो कछु इसके निमित्त करते हैं, तिनकरि इह सुख दुःख नरक स्वर्ग भोगते हैं, अवर कोउ बांधव पुत्र नहीं, उसकी वासनाही नानाप्रकारके आकारकों धारिकरि स्थित भई है ॥ हे राजन्! सहस्रही चंद्रमाका तुझनें प्रश्न किया है, तिसका उत्तर सुण, सहस्र इसी आकाशविषे होते हैं, अपणी अपणी वासनाकरि कलासंयुक्त चंद्रमा हो विराजते हैं, परंतु एककों दूसरा नहीं जाणता, परस्पर अज्ञात हैं, जो अंतवाहक दृष्टिकरि देखै, तिसकों भासते हैं ॥ हे राजन्! जो कोउ ऐसी भावना करै, जो मैं उसके मंडलकों प्राप्त होऊं तौ तत्कालही जाय प्राप्त होता है, जैसे एकही मंदिरविषे बहुत मनुष्य सोये हैं, तिनकों अपणे अपणे स्वप्नकी सृष्टि भासती है, सो अन्योन्य विलक्षण हैं, एककी सृष्टिकों दूसरा नहीं जाणता, तैसे एक आकाशविषे सहस्र चंद्रमा बनते हैं, जैसे इंद्र ब्राह्मणके दश पुत्र दश ब्रह्मा हो बैठे, तैसे जिसकी तीव्र भावना कोउ करता है, सोई हो जाता है, जो कोउ भावना करै, हम इसी मंदिरविषे सप्तद्वीपका राज्य करैं, तब हो जाता है, काहेतें जो अनुभवरूप कल्पवृक्ष है, जैसी तीव्र भा

वना तिसविषे होती है, तैसी हो भासती है, वरके वशतें उस पुरुषकों सप्तद्वीपका राज्य प्राप्त भया, अरु शापके वशतें उसका जीव उसी मंदिरविषे रहा, तिस मंदिरहीविषे द्वीपका राज्य करत भया, जैसे स्वप्नविषे राज्य करै है, तैसे अपणे मंदिरविषे अपणी संवेदनही सृष्टिरूप हो भासती है, इस प्रकार जो एक स्त्रीकी भावना करिकेसहस्र पुरुष ध्यान लगाय बैठे हैं, जो हम तिसके भर्त्ता होवैं, सो भी हो जाते हैं॥हे राजन्! उनकी जो तीव्र भावना है, उही स्त्रीका रूप धारिकरि उनकों प्राप्त होवैगी, उह जाणैगे जो उही स्त्री हमकों प्राप्त भई है,इह जगत् केवल संकल्पमात्र है, संकल्पतें इतर वस्तु कछु नहीं, सब चिदाकाशरूप है, अपणे अनुभवकरि प्रकाशता है, जैसे तिसविषे संकल्प फुरता है, तैसे हो भासता है, पृथ्वी, जल, तेज आदिक तत्त्व कोउ नहीं, आत्मसत्ताही इस प्रकार स्थित है, सो परम शांत है, निराकार निर्विकार अद्वैत एकरूप है ॥ ॥ राजोवाच॥ हे मुनीश्वर! जगत्के आदि जो आत्मसत्ता थी सो किस आकाररूप देहविषे स्थित थी, देह विना तौ स्थित नहीं होती, जैसे आधारविना दीपक नहीं रहता, आधार होता है, तब तिसविषे जागता है, तैसे आत्मसत्ता किसविषे स्थित थी ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे राजन्! जेते कछु आकार तुझकों भासते हैं, जिनकों देखिकरि तुझनें प्रश्न उठाया है, सो है नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जिन भूतोंकरि देह बन्या भासता है, सो भूत भी मृगतृष्णाके जलवत् है, जैसे जेवरिविषे सर्प भ्रममात्र है, जैसे सीपिविषे रूपा, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र है, अत्यंत अभाव है, तैसे इह भूताकार ब्रह्मविषे भ्रमकरि भासते हैं, अत्यंताभाव है, कछु बने नहीं, ब्रह्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, अरु तुझनें पूछा था, जो ज्यौं स्वयंभू अपणे आपतें उपजते हैं, तौ अब क्यौं नहीं होता॥ सो हे राजन्! केई इसके सदृश पडे उत्पन्न होते हैं, अनेक जो सृष्टि हैं, वास्तवतें कछु उपजियां नहीं, कबहूं कछु नानाप्रकार भासता है, परंतु नानाप्रकार नहीं भया, जैसे स्वप्नविषे सदा तूं देखता है, जो अद्वैत अपणा आपही ना

नारूप हो भासता है, पर्वत उपर दौडता फिरता है, सो किसी शरीरकरी दौडता है, अरु क्या रूप होता है, जैसे उह पर्वत भी आकाशरूप है, शरीर भी आकाशरूप होता है, भ्रमकरि पिंडाकार भासता है, तैसे इह जगत् भी आकाशरूप है, भ्रमकरि पिंडाकार भासता है॥ हे राजन्! तूं अपणे स्वभावविषे स्थित हो करि देखु , इह जगत् सब तेरा अनुभव आकाश है, स्वप्नका दृष्टांत भी मैं तेरे जतावणे निमित्त कहा है, स्वप्न भी कछु हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपणे आपविषे स्थित है, जब तिसविषे आभास संवेदन फुरती है, तब उही जगत्रूप हो भासती है, जब आभास संकल्प मिटि जाता है, तब प्रलयकाल भासता है, वास्तव न कोउ उत्पत्ति होती है, न प्रलय भई है, ज्यौंकी त्यौं आत्मसत्ता स्थित है, जैसे एक निद्राके दो रूप होते हैं, एक स्वप्न, दूसरा सुषुप्ति, जो जाग्रतविषे दोनौं आकाशमात्र होतियां हैं, तैसे आभासकी दो संज्ञा होतियां हैं, एक जगत् अरु दूसरी महाप्रलय, आत्मरूपी जाग्रतविषे दोनौंका अभाव हो जाता है॥जो हे राजन्! तूं स्वरूपविषे जागिकरि देखु, जेती कछु कलना है, तिसकों त्यागिकरि देखु, सब आत्मरूप हैं, अवर कछु नहीं॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं राजाकों कहीकरि उठि खडा हुआ, उसनें भली प्रकार प्रीतिसंयुक्त पूजन किया, जब पूजन करी चूका, तब मैं जिस कार्य लिये आया था, सो कार्य करि स्वर्गकों चला गया॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे राजप्रश्नोत्तरसमाप्तिवर्णनं नाम द्विशताधिकषडशीतितमः सर्गः॥ २८६॥ ॥ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह जगत् सब चिदाकाशरूप है, अवर द्वितीय कछु बन्या नहीं॥ ॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! तुम कहते हौ, सब चिदाकाश है, बन्या कछु नहीं, इह तौ सिद्ध साध्य विद्याधर लोकपाल देवता इत्यादिक लोक भासते हैं, लोक अरु लोकपाल बन्या क्यौं नहीं कछु॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! इह जो सिद्ध साध्य विद्याधर देवता इनतें लेकरि जो लोक अरु लोकपाल हैं, सो वस्तुतें कछु उपजे नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे

स्थित है, अरु इह जो प्रत्यक्ष भासते हैं, शुद्ध संकल्पकरि रचे हुये हैं, परंतु वस्तुतें कछु बने नहीं, भ्रमकरि इनकी सत्यता भासती है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी, जैसे जेवरीविषे सर्प, जैसे सीपिविषे रूपा, जैसे संकल्पनगर, तैसे आत्माविषे इह जगत् है ॥ हे रामजी! जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारकी रचना भासती है, परंतु कछु हुआ नहीं, तैसे इह जगत् है, जो पुरुष इसकों देखिकरि सत् मानता है, उह सम्यक्दर्शी नहीं, जो आत्माकों देखता है, सोई देखता है, सोई सम्यक्दर्शी है ॥ हे रामजी! इह लोक अरु लोकपाल जगतसत्ताविषे ज्योंके त्यों हैं, जैसे स्थित हैं, तैसेही हैं, अरु परमार्थतें कछु उपजे नहीं, अनुभवसत्ताही संवेदनकरि दृश्यरूप हो भासती है, द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है, परंतु स्वरूपतें इतर कछु न हुआ, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं॥ हे रामजी! एक अब अवर तूं वृत्तांत सुण, स्वप्नविषे जैसे अब हम हैं, तैसे एक आगे भी चित्तप्रतिमा हुई थी, पूर्व एक कल्पविषे तुम अरु हम हुये थे, तूं मेरा शिष्य था, अरु मैं तेरा गुरु था, एक वनविषे तैंनें मुझकों प्रश्न किया ॥ ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन्! एक मुझकों संशय है, सो नाश करो, जो महाप्रलयविषे नाश क्या होता है, अरु अविनाशी क्या रहता है ॥ ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! जेता कछु शेष विशेषरूप जगत् है, सो सब नाश हो जाता है, जैसे स्वप्नका नगर सुषुप्तिविषे लीन हो जाता है, तैसे सब जगत् लीन हो जाता है, निर्विशेष ब्रह्मसत्ता शेष रहती है, अवर क्रिया काल कर्म सब नाश हो जाते हैं, आकाश भी नाश हो जाता है, पृथ्वी आप तेज वायु पहाड नदियां इनतेंकरि जो जगत् है, क्रिया काल द्रव्य संयुक्त सो सब नाश हो जाता है, ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र इह जो कार्यके कारण हैं, तिनका नाम भी नहीं रहता, संवेदनशक्ति जो है, चेतनका लक्षणरूप सो भी नहीं रहती, अचेत चिन्मात्र एक चिदाकाशही शेष रहता है ॥ ॥ शिष्य उवाच ॥ हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत् होती है, तिसका नाश नहीं होता, अरु जो अ

सत् होती है सो आभासरूप है, इह जगत् तौ विद्यमान भासता है, सो महाप्रलयविषे कहा जावैगा ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! जो सत् है, तिसका नाश कदाचित् नहीं होता, जो असत् है, तिसका भाव नहीं, सो जेता कछु जगत् तुझकों भासता है, सो सब भ्रममात्र है, इसविषे कोउ वस्तु सत् नहीं भासता है, परंतु स्थित नहीं रहता, जैसे मृगतृष्णाका जल स्थित नहीं, जैसे दूसरा चंद्रमा भासता है सो भ्रममात्र है, जैसे आकाशविषे तरवरे भ्रममात्र हैं, तैसे इह जगत् जो भासता है, सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भी भासता है, परंतु भ्रममात्र है, तैसे इह जगत् भ्रमरूप जाण ॥ हे तात! आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदाकाल अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे जागृतका अभाव होता है, अरु जागृतविषे स्वप्नका अभाव होता है, सो सृष्टि कहां जाती है, जैसे जागृतविषे स्वप्नसृष्टिका अभाव हो जाता है, तैसे महाप्रलयविषे इसका अभाव हो जाता है ॥ ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन्! इह जो भासता है, सो क्या है, अरु जो नहीं भासता सो क्या है, अरु इसका रूप क्या है, अरु चिदाकाशतें कैसे हुआ है ॥ ॥ गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य! जब शुद्ध चिदाकाशविषे किंचन संवेदन फुरती है, तब जगत्‌रूप हो भासती है, तातें इसका रूप भी चिदाकाशही है, चिदाकाशतें इतर कछु नहीं, सृष्टि अरु प्रलय दोनौं उसीको रूप हैं, जब संवेदन फुरती है, अरु जब संवेदन अफुर होती है, तब प्रलयरूप हो भासती है, सो दोनौं उसके रूप हैं, जैसे एकही वपुविषे दो स्वरूप हैं, दंत करिके शुक्ल लगता है, अरु केशकरि कृष्ण लगता है, तैसे आत्माविषे सर्ग अरु प्रलय दो रूप होते हैं, सो दोनौं आत्मरूप हैं, जैसे एकही निद्राकी दो अवस्था होती हैं, एक स्वप्न अरु दूसरी सुषुप्ति, अरु जागृतविषे उभय नहीं, तैसे निद्रारूप संवेदनविषे सर्ग अरु प्रलय भासते हैं, अरु जागृतरूप आत्माविषे दोनौंका अभाव है ॥ हे तात! जो कछु तुझकों भासता है, सो सब चिदाकाशरूप है, अवर कछु नहीं, ब्रह्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जैसे स्वप्नविषे अपणा अनुभवही जगत्‌रूप हो भासता है, तैसे आ

त्माविषे जगत् भासता है ॥ ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन्! जो इसी प्रकार है, जो द्रष्टाही दृश्यरूप हो भासता है, तौ अवर जगत् तौ कछु न हुआ क्यों, सर्व उही है ॥ ॥ गुरुरुवाच ॥ हे तात! इसी प्रकार है, अवर जगत् वस्तु कछु नहीं, चिदाकाश जगत्रूप हो भासता है, आत्मसत्ताही इस प्रकार भासती है, अवर कछु नहीं, काहेतें जो सब उसीका किंचन है, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार सृष्टि होकरि फुरती है, अरु किसीविषे किसी काल किसी प्रकार कछु हुआ नहीं, आत्मसत्ताही अपणे आपविषे स्थित है, जो कछु जगत् भासता है, सो उहीरूप जाण, जिसकों तूं सर्ग कहता है, जिसकों तूं प्रलय कहता है, सो सब आत्मसत्ताके नाम हैं, उही सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार स्थित है, एकही जो परम देव है, सोई घटपटरूप हुआ है, पर्वतरूप पटरूप जल तृण अग्नि पृथ्वी आकाश स्थावर जंगम असत् नासत् शून्य अशून्य क्रिया काल मूर्त्ति अमूर्त्ति बंध मोक्ष इनतें आदि लेकरि जेते कछु शब्द अर्थ करिके पदार्थ सिद्ध होते हैं, सो सर्व आत्मरूप हैं, सर्वविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार आत्माही है, अरु जिसविषे सर्वदाकाल सर्व प्रकार नहीं, सो भी आत्माही है, सदा ज्यौंका त्यौंही है, जैसे स्वप्नविषे सब कछु भासता है, सो सब कछु आत्मसत्ताही है, अरु दूसरा कछु बन्या नहीं ॥ हे तात! तृणही कर्त्ता है, तृणही भोक्ता है, तृणही सर्वेश्वर है, घट कर्त्ता है, घट भोक्ता है, घटही सर्वका ईश्वर है, पट कर्त्ता है, पट भोक्ता है, पटही परम ईश्वर है, नर कर्त्ता है, नर भोक्ता है, नरही सर्वका ईश्वर है, इसी प्रकार एक एक वस्तुके नाम करिके जो वस्तु है, सो कर्त्ता भोक्ता सर्व ब्रह्मरूप है, ब्रह्मातें लेकरि तृणपर्यंत जो कछु जगत् भासता है, सो सर्व आत्मरूप है, क्षय अरु उदय अंतर बाहिर कर्त्ता भोक्ता सब ईश्वर है, सो विज्ञानमात्र है, कर्त्ता भोक्ता उही है, अरु न कर्त्ता है, न भोक्ता है, विधिमुख करिके भी उही है, अरु निषेध भी उही है, शुद्ध दृष्टि करिके सब चिदात्माही भासता है, अरु सर्व दुःखतें रहित है, अरु जिनकों आत्मदृष्टि नहीं प्राप्त भई, तिनकों भिन्न भिन्न जगत् भासता है, सो

कैसा जगत् है, सो अनुभवतें इतर कछु नहीं, ऐसे जाणिकरि अपणे स्वरूपविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी! इस प्रकार मैं पूर्व तुझकों कहा था, परंतु तिसकरि तूं बोधकों न प्राप्त भया, सो अभ्यासकी ऊनता करिके उही संस्कार अब तुझकों आनि प्राप्त भया है, तिस कारणतें अब तूं जाग्या है ॥ हे रामजी! अब तूं अपणे स्वरूपविषे स्थित भया है, तातें कृतकृत्य हुआ है, अपणी राज्यलक्ष्मीकों भोगु, अरु प्रजाकी पालना करु, अरु अंतरतें आकाशवत् निर्लेप रहहु ॥ इति श्रीयो० नि० पूर्वरामकथावर्णनं नाम द्विशताधिकसप्ताशीतितमः सर्गः २८७

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! जब वसिष्ठजी इस प्रकार रामजीकों कही रहे तब आकाशविषे जो सिद्ध देवता स्थित थे, सो बडे फूलकी वर्षा करणे लगे, मानौं मेघ बरफकी वर्षा करते हैं, मानौं आकाश कंपायमान हुआ है, तिसतें तारे गिरते हैं, जब पुष्पकी वर्षा करी चूके तब राजा दशरथ उठि खडा हुआ, अर्घ्य पाद्य करिके पूजन किया, अरु हाथ जोडिकरि कहणे लगा ॥ ॥ राजा दशरथ उवाच ॥ बडा कल्याण हुआ, बडा हर्ष हुआ ॥ हे मुनीश्वर! तेरे प्रसादकरि हम आत्मपदकों प्राप्त हुये हैं, अब कृतकृत्य हुये हैं, अब चित्तका वियोग हुआ है, तिसकरि दृश्य फुरणेका भी अभाव भया है, हम अचेत चिन्मात्र हैं, परमपदकों प्राप्त भये हैं, सब संताप मिटि गये हैं, जो संसाररूपी अंधमार्ग था, तिसतें थके हुये अब विश्रांतिकों प्राप्त भये हैं, अब मैं पाहाडकी नांई अचल हुआ हों, सब आपदाकों तरि गया हों, जो कछु जानणा था सो जाणी रहा हों ॥ हे मुनीश्वर! तुम बहुत युक्ति दृष्टांत करिके जगाया है, शून्यके दृष्टांत, अरु सीपिविषे रूपा, मृगतृष्णाका जल, जेवरीविषे सर्प, आकाशविषे दूसरा चंद्रमा, अरु बेडी करिके नदी किनारे चलते भासते हैं, जलविषे तरंग, स्वर्णविषे भूषण, वायुका फुरणा, गंधर्वनगर, संकल्पपुर, इनतें आदि लेकरि दृष्टांत कहे हैं, तिन करिके हम जाण्या है, जो आत्मसत्तातें इतर कछु नहीं, तुमारी कृपातें ऐसे जाण्या है ॥ वाल्मीक उवाच ॥ जब इस प्रकार दशरथनें कहा, तब रामजी उठ्या, इस प्रकार हाथ जोडीकरि कहणे लगा ॥ राम

उवाच॥हे मुनीश्वर! तुमारी कृपाकरि मेरा मोह नष्ट भया है, अब मैं परमपदकों प्राप्त हुआ हों, किसीविषे मुझकों न राग है, न दोष है, परम शांतिकों प्राप्त भया हों, न अब मेरे तांई किसी करणेकरि अर्थ है, न अकरणेविषे कछु अनर्थ है, मैं परम शांतपदकों प्राप्त हुआ हों॥ हे मुनीश्वर! तेरे वचनका मैं स्मरण करिके आश्चर्यकों प्राप्त होता हों, अरु हर्षित होता हों, संदेह नष्ट हो गये हैं, अब मुझकों अवर नहीं भासता, सर्व ब्रह्महीं भासता है॥ ॥लक्ष्मण उवाच॥ हे भगवन्! मैं संतके वचन एकठे करता रहा था, अरु संपूर्ण जो मेरे पुण्य थे, सो सब एकठे भये थे, सबका फल सब फल्या है, उदय हुआ है, सर्व संशयरहित परमपदकों प्राप्त भया हों, तुमारी कृपाके जो कोउ वचन हैं, सो चंद्रमाकी किरणावत् शीतल हैं, तिसतें भी अधिक हैं, तिस करिके मैं परम शाति पाई है, दुःख संताप सर्व नष्ट भया है॥ ॥शत्रुघ्न उवाच॥ हे मुनीश्वर! जरा अरु मृत्युका जो कोउ भय था, सो तुमनें दूर किया है, अपणे अमृतरूपी वचनोंका सुधापान कराया है, अब हमारे संशय सब नष्ट भये हैं, हम आत्मपदकों प्राप्त भये हैं, हमारे जो कोउ चिरकालके पुण्य थे, तिनका फलआज पाया है॥विश्वामित्र उवाच॥हे मुनीश्वर! सर्व तीर्थके स्नान कियेतें ऐसा पवित्र नहीं होता, अवर कर्म करि भी ऐसा पवित्र नहीं होता, जैसे तुमारे वचनों करिके पवित्र हुये हैं, आज हमारे श्रवण पवित्र हुये हैं॥ नारद उवाच॥हे मुनीश्वर! ऐसा मोक्ष उपाय मैं देवताकेविषे श्रवण नहीं किया, न सिद्धके स्थानविषे सुण्या है, न ब्रह्माके मुखतें सुण्या है॥ हे मुनीश्वर! तुमनें पूर्ण उपदेश किया है, इसके श्रवण कियेतें बहुरि संशय नहीं रहता॥ ॥दशरथ उवाच॥ हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान जैसी संपदा कोउ नहीं, तातें तुम परम संपदा हमकों दीई है, जिसके पायेतें बहुरि किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रही, अब तौ हम अपणे स्वभावविषे स्थित भये हैं, संपूर्ण कर्म हमकों छांडि गये हैं, अरु इह जो तुमारे वचन सुणे हैं, सो हमारे बहुत जन्मके जो कोउ पुण्य थे, सो एकठे आनि हुये थे, तिनका इह फल अब आनि लगा है॥ ॥राम उवाच॥

हे मुनीश्वर! बडा हर्ष हुआ जो सर्व संपदाका अधिष्ठान है, सो प्राप्त हुआ है, अरु सर्व आपदाका अंत भया है, अरु ज्ञानतें रहित अज्ञानी हैं, सो बडे अभागी हैं, जो आत्मपदकों त्यागिकरि अनात्मपदार्थकी उर धावते हैं, सो भी यत्नकरि प्राप्त होते हैं, तिनतें विमुख होवैं, तब आत्मपद प्राप्त होवै, सो आत्मपद कों पायकरि मैं शांतिवान् हुआ हौं, हर्षशोकतें रहित हुआ हौं अचल पद पाया है, अरु अचित्त अविनाशी है, सदा अपणे आपविषे स्थित हौं, तुमारी कृपाकरि आपकों ऐसा जाणत भया हौं ॥ ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ हे मुनीश्वर! सहस्र सूर्य एकत्र उदय होवैं, तौ भी हृदयके तमको दूर नहीं करते सो तम तुमनें दूर किया, है, अरु सहस्र चंद्रमा एकठे उदय होवै तौ अंतरकी तप्तकों निवृत्त नहीं करि सकते, सो तुमनें संपूर्ण तप्त निवृत्त करी है, हम निःसंताप पदकों प्राप्त भये हैं ॥ ॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे साधो! जब इस प्रकार सब कही रहै, तब वसिष्ठजी कहत भये॥हे रामजी! इस मोक्ष उपाय कथाकों सुणिकरि जेते कछु ब्राह्मण हैं, तिनकों यथायोग्य पूजन करहु, अरु दान करहु, जो इतर जीव हैं, सो भी यथायोग्य यथाशक्ति पूजन करते हैं, तुम तौ राजा हौ, जब इस प्रकार वसिष्ठजीनें कहा तब राजा दशरथनें उठिकरि दश सहस्र ब्राह्मण मथुरावासी विद्यावान्कों भोजन कराया, दक्षणा वस्त्र भूषण घोडे गिरांव आदिक दिये, यथायोग्य पूजन किया, बडा उत्साह हुआ, अंगना नृत्य करणे लगी, नगारे सरणाई बाजिंत्र बाजै हैं, चक्रवर्त्ती राजा होकरि उत्साह करत भया, अबलग त्रिलोकका राजा है, इस प्रकार सप्त दिनपर्यंत ब्राह्मण अतिथि निर्धन सर्वकों द्रव्यकरि पूजन किया, अन्न अरु वस्त्र आदिककरि सबकों प्रसन्न किया ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्साहवर्णनं नाम द्विशताधिकाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ २८८ ॥ ॥ ॥

॥ वाल्मीक उवाच ॥ हे भारद्वाज! इस प्रकार वसिष्ठ मुनिके वचन सुणिकरि रघुवंशी कृतकृत्य हुये, जैसे रामजी सुणिकरि संशयतें रहित जीवन्मुक्त हुये विचरे हैं, तैसे तुम भी विचरो, यह मोक्ष उपाय ऐसा

कों विज्ञान कहते हैं, सांख्यमतवाले जिसकों पुरुष कहते हैं, जोगवाले जिसकों ईश्वर कहते हैं, शैवी जिसकों शिव कहते हैं, वैष्णव जिसकों विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसकों परम शक्ति कहते हैं, कालवादी जिसकों काल कहते हैं, आत्मवादी जिसकों आत्मा कहते हैं, अरु माध्यमिक जिसकों माध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहते हैं, काहेतें जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप उही है, ऐसे सर्वात्माकों वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंदसमुद्रके बलकरि सर्वकों आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपणे आनंदकों प्राप्त हुआ उही रूप होत भया, जो अन्य है, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमर है, सबकी आदि है, सकलंक है, अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशतें निर्मल पद है, तिसकों वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परम पदकों प्राप्त हुआ, जिस पदके प्राप्त हुए, जन्ममरणकों बहुरि नहीं पावता, जिस पदविषे स्थित हुआ परम शांत उपशम आनंदकों प्राप्त भया, जैसे समुद्रविषे बुंद पडी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया, अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकरि गिर पडा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूके पत्र गिर पडते हैं, तैसे शरीर गिर पडा, शरीररूपी वृक्ष था, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहता था, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ, जैसे खंभाणीकरि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपणे स्वरूपविषे स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह मैं वीतवकी कथा तुझकों सुनाई है, सो अनंत विचारकरि युक्त है, इस प्रकार विचारकरि वीतव विश्रामवान् हुआ है, तुम भी उसकों विचारकरि सिद्धता सारकों प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाकों त्यागि सावधान होउ ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं तुझकों पूर्व कहा है, जो जिस पदविषे प्राप्त हुआ बहुरि पावणे योग्य कछु नहीं रह

ता, अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौंगा, तिसकों विचार, जो मुक्ति ज्ञानहीकरि होती है, अरु ज्ञानहीकरि सब दुःखनाश होता है, ज्ञानहीकरि अज्ञान निवृत्त होता है, अरु ज्ञानहीकरि परम सिद्धताकों प्राप्त होता है, पावणे योग्य यही वस्तु है, दुःखोंके नाश करणेकों और कोई समर्थ नहीं, यह निश्चय है, जो ज्ञानकरि सब फांस काटे जाते हैं, ज्ञानहीकरि वीतवनें मनकों चूर्ण किया ॥ हे रामजी! वीतवकी संवित जगत्के अतीत होत भई, जेता कछु दुःख है, सो मनकरि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत् अनुभवरूप हो जाता है, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तूं भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनतें इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है, अरु जगतही मनरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मनकी दिशाकों त्यागिकरिके केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागदोष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! वीतवकी नाई विदितवेद होकरि रागदोषतें रहित स्थित होउ, जैसे तिस सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचर्या है, तैसे तूं भी विचर और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राजादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तूं भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु ॥ हे रामजी! सुखदुःख कर्म आत्माकों स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तूं किस निमित्त शोक करता है, बहुत विदितवेद पृथ्वीविषे विचरते हैं, परंतु शोककों कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम नहीं अब शोक करते हैं ॥ हे रामजी! तूं अब स्वस्थ है, उदार है, सम सर्वज्ञ है, आत्मा है, तुझकों बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपणे स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोककों नहीं प्राप्त होता है, जैसे सिंह वानर गीदड आदिकके वश नहीं होता, तैसे जीवन्मुक्त विकारोंतें रहित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! इस प्रसंगविषे मुझकों संदेह हुआ है, तिसकों निवृत्त

करौं, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नाश करौ ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यौं नहीं दृष्ट आती, जो आकाशविषे उडता फिरै, अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे प्रवेशकरि जावै, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! आकाशगमनादि जो सिद्धि है, सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति है, जेते कछु जगत् विचित्र हैं, देखाइदेणा बहुरि गुप्त हो जाणा, इत्यादिक वस्तुद्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके ज्ञानके नहीं ॥ हे रामजी! कोउ द्रव्य क्रिया कालकों यथाक्रम साधता है, तिसकों शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होती है, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीकों आत्मज्ञानकी सिद्धता होती है, उह आत्मकरि आपविषे तृप्त होता है, सिद्धि जो अविद्यारूप है, तिसकी उर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है, सो तिसने अविद्यारूप जाणा है, ऐसे जाणीकरि पदार्थोंविषे नहीं डुबता, जो अज्ञानी है, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंकों साधता है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंवास्ते यत्न नहीं करता, अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकों पावता है, अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है, अज्ञानी इनकी उर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, उह सर्वतें अतीत है, सर्व इच्छाका जिसनें त्याग किया है, अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, उह इनकी इच्छा नहीं करता, इनकी इच्छा भोगों अथवा बडाइके निमित्त होती है, अथवा मान अरु जीवणेके निमित्त सिद्धिके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीकों न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेतें जो सब अनात्मा धर्म हैं, उह नित्य तृप्त परम शांतरूप है, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है, अरु आकाशकी नांई सदा अपणे आपविषे स्थित है, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आता है, शरीरके सुखदुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असंग होता है, जीवन मरणकी वृत्ति उसकों नहीं फुरती, स

र्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करतियां हैं, अरु समुद्र अपणी मर्यादाविषे स्थित है, तैसे ज्ञानवान्कों क्षोभ नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी! जो कछु ज्ञानवान्कों प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्पन करते हैं, तिसकों करणेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरणेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, अरु तिसकों किसीका आश्रय नहीं, सदा अपणे स्वरूपविषे स्थित है, अरु यह जो सिद्धि हैं, सो मंत्र काल कर्मकरि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है; तिसके साधणेकरि उडणेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंकरि शक्ति होती है, एक गुटका मुखमें रखणेकरि उडणेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथमही नीति हो रहती है, तिसतें अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है, तिसके अन्यथा करणेकों सदाशिव भी समर्थ नहीं, काहेतें जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदि शीतलता है, अरु अग्निविषे उष्णता है, इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेकों समर्थ कोउ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करणेकों समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी! जिस द्रव्यविषे मारणेकी सत्ता है, सो मारता है, मद्यविषे मत्त करणेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीति हुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करणेकी शक्ति है, तिसके पायेतें क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपणी अपणी शक्ति है, जो इनकों साधता है, तिसकों यह प्राप्त होती है, जो आत्मज्ञानी इसका साधन करै, वह कर्तेविषे भी अकर्त्ता है, अरु आत्मज्ञानके पावणेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं करी सकतियां, परंतु जो इनकी वांच्छा करै, तौ यत्न करिके पावता है, यत्नविना नहीं पावता, आत्मज्ञानीकों इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायणही होता है, आत्मलाभकरि सर्व इच्छा तिसकी शांत हो जाती है ॥ हे रामजी! जेते लाभ हैं, तिनतें परम आत्मलाभ है, आत्माकों पाइकरि बहुरि इच्छा किसकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किए और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभकरि औ

आ था, तातें तुमकों भी नमस्कार है, तुम भी जाउ ॥ हे मोह! तुमकों भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बांध्या था, अरु नाना प्रकारके स्थानकों प्राप्त होता था, अरु भय तूं दिखावता था, तिसकरि मैं भयकों प्राप्त होता था, तातें तुझकों नमस्कार है, अब तूं जाउ ॥ हे गिरिकंदरा! तुझकों भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि! हे विवेक! तुमकों भी नमस्कार है, तुम मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनतें मुक्त किया है, तुम भी जाओ ॥ हे दंड! अरु तुंबा! तुमकों भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे संबंधी रहे हो ॥ हे देह! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तूं मेरे साथ बहुत काल रही है, अरु तुझनें उपकार किया है, जो विवेक उपजावणेका स्थान तूंही है, तेरे संयोग करि मैं परम पद पाया है, तूं भी अब जा, तुझकों नमस्कार है ॥ हे संसारके व्यवहारो! तुमकों भी नमस्कार है, तुमारेविषे मैं बहुत क्रिया करी है, स्थान देश क्रिया कर्म किया है, ऐसा पदार्थ जगतविषे कोइ नहीं जो दिया लिया न होवैगा, अरु ऐसा कर्म कोइ नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा, अरु ऐसा देश कोउ नहीं, जो देखा न होवैगा, अब सबकों नमस्कार है ॥ हे इंद्रियों! प्राण मन आदिक तुमकों नमस्कार है, तुमारा हमारा चिरकाल संयोग था, अब वियोग हुआ, काहेतें जो जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, तातें तुमारा हमारा भी वियोग होता है, नेत्रोंकी जो ज्योती सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, घ्राणोंकी गंध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनविषे जाय लीन होवैगी, श्रवण आकाशविषे लीन होवैगा, मन चंद्रमाविषे लीन होवैगा, जिव्हा रसविषे लीन होवैगी, इसी प्रकार सब अपणे अपणे अंशविषे जाय लीन होवैंगे; जैसे लकडीयांके जलेतें अग्नि शांत हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलतें रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है, तैसे मनादिक शांत हो जावैंगे ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंतें रहित प्रणवके ध्यानविषे

लगा, सर्व दृश्यतें शांत होगया, मोहरूपी मलकों त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमें लगा ॥ ॥ इति श्री योगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने इंद्रियनिर्वाणं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ ॥ ॥

॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसकों प्राप्त भया है, अंतर बाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं, अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपणे प्रकाशविषे स्थित होती है, जैसे पूर्ण कालकरि चंद्रमा अपणे आपविषे स्थित भया है, अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भया है, जैसे मंथणेतें रहित मंदराचल स्थित भया है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता फिरता ठहरी जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहार क्रिया जीवोंकी ठहरी जाती है, अरु जैसे मेघतें रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, जैसे प्रकाश तमतें रहित आकाश होता है, तैसे फुरणतें रहित मन शांतिकों प्राप्त भया, प्रणवके ध्यान करिके बहुरि तिस वृत्तिके अंतकों प्राप्त भया, मंत्रकों भी त्यागत भया, जैसे महापुरुष क्रोधकों त्यागता है, तैसे वृत्तिकों त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसकों भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है, न तम है, तिसविषे अभाव वृत्ति रहती है, तिसकों भी निमेषविषे त्यागत भया, तब जैसे नूतन बालक जन्मकों पदार्थ ज्ञानतें रहित अवस्था होती है, तैसे अवस्था प्राप्त भई, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपद है, तिसका आश्रय किया, महाअचल जो सुमेरुकी नांई स्थिर अवस्था है, तिसकों प्राप्त हुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंद है, जिसविषे स्वरूपतें इतर और आनंद नहीं, ऐसे आनंदकों प्राप्त हुआ, जो असत् सतरूप है, सर्व क्रियातें अतीत है, इस कारणतें असत् है, अनुभवरूप है, इस कारणतें सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदकों प्राप्त हुआ, जो परम शुद्ध पावन पद है, अरु सर्व भावके अंतर प्राप्त है, अरु सर्व भाव शब्दतें रहित है, जिसकों शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं, विज्ञानवादी जिस

तैसे रथ है, तिसविषे बैठणेवाला पुरुष आर होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिसविषे बैठणेवाले कहैं जो मैं रथ हौं तौ नहीं बणता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञान करिके मिल्या है, इंद्रियां और हैं, मनादिक और हैं, तिसविषे पुरुष है, सो जीव है, जीव कहै मैं शरीर हौं, बडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खता करिके आपकों मानते हैं, जो विचार करिके देखैं तौ रागद्वेषके क्षोभतें मुक्त होवै, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपकों दूरतें त्यागी हैं, अरु स्वरूपकी स्मृति स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसकों सत् जाण्या है, अरु अनात्मा असत् है, तिसकों असत् जाण्या है, जो सत् है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है ॥ हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनी विचार करिके जीवन्मुक्त हुआ, अपणे स्वरूपविषे बहुत वर्षोंकों व्यतीत किया, अपणा जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्मध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागणेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदकों प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि, तिस पदकों पाइकरि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिस कालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है, सो सुण, वीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त होकरि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छातें रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागदोषतें रहित पदकों प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासनधारी करि हाथ जोडीकरि अवही कहत भया ॥ हे राग! तूं निरागताकों प्राप्त होउ, अरु तूं निर्दोषताकों प्राप्त होउ, तुमारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकतें रहित करीहै, तुम अब जाओ, मेरा तुमकों नमस्कार है, अरु हे भोग, तुमारी लालसा करि मुझकों परमपदका विस्मरण होगया था, जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जाणीकरि तुमारी लालसा करता था, अब जाओ, तु

मकों मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदकों प्राप्त होता हों ॥ हे दुःख! तुझकों भी नमस्कार है, तेरे उपदेश करि मैं आत्मपदकों प्राप्त हुआ हों, काहेतें जो मैं सदा भोग सुखकों चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझकों भी साथ ले आवता था, सुखतें तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पावता रहा, अरु जब सुख आवै तब तुझकों भी साथ ले आवै, तुझकों देखीकरि मुझकों आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकरि मैं परम शीतल पदवीकों प्राप्त हुआ हों ॥ हे दुःख! तूं तौ दुःख था, परंतु मुझकों सुख प्राप्त कीया, तातें तेरा कल्याण होवै, तूं अब जाउ, हे मित्र! संसारविषे जीवणा असार है, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझनें मेरे साथ बडा उपकार किया है, जो अपणा नाश किया है, अरु मुझकों सुख प्राप्त किया है, जो तूं मुझकों प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता तुझनें अपणा नाश करणा मान्या, परंतु मुझकों सुख प्राप्त किया॥ हे मित्र! तूं बांधवोंकी न्यांई चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तूं कदाचित् मुझतें दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझनें अपणा नाश आपही किया है, तूं मुझकों जब प्राप्त हुआ था, तब मुझकों विवेक उत्पत्ति भया, तिस विवेकनें तेरा नाश किया है, तातें तुझकों मेरा नमस्कार है, अरु हे माता तृष्णा! तुझकों नमस्कार है, तूं सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझनें मेरा त्याग नहीं किया, अब तूं जा ॥ हे कामदेव! तुझनें आपही विपर्यय होकरि अपना नाश किया है, जब तूं बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख हुआ, तब तूं मिट गया, तुझकों नमस्कार है, अरु हे सुकृतो! तुमकों नमस्कार है, तुमनें भी बडा उपकार किया था, जो नरकोंसों निकासीकरि सर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होणा है, तातें तुम भी जाउ; हे दुष्कृतो! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तुमारा क्षेत्र है, अरु जुवा अवस्था बीज है, तिसतें नरक दुःख फल होता है, सो तुमारे साथ भी संयोग हु

है, जो अज्ञानी श्रवण करै सो भी परमपदकों प्राप्त होवै, तुमारी क्या बात है, तुम तौ आगे भी बुद्धिमान हौ, अरु जिस प्रकार मुझकों ब्रह्माजीनें कहा था, सो मैंनें तुमकों सुणाया है, जैसे रामजी आदिक कुमार अरु दशरथ आदिक राजे जीवन्मुक्त होकरि विचरे हैं, तैसे तुम भी विचरौ, उनविषे मोह भी दृष्ट आया है, परंतु स्वरूपतें चलायमान नहीं भये, तैसेही विचरौ, अरु ज्ञान जैसा सुख अवर कोउ नहीं, अरु अज्ञान जैसा दुःख कोउ नहीं इसतें अधिक कैसे कहियें, इह जो मोक्ष उपाय मैं तुझकों कहा है, सो परम पावन है, अरु संसारसमुद्रतें पार करणेहारा है, दुःखरूपी अंधकारकों नाशकर्त्ता सूर्यरूप है, सुखरूपी कमलकी खाणका ताल है, जो पुरुष इसका वारंवार विचार करै, सो तौ महामूर्ख होवै तौ भी शांतपदकों प्राप्त होवै, जो कोउ इस मोक्ष उपायकों पढैगा, कथा करैगा, अरु सुणैगा, अरु लिखैगा, अरु लिखिकरि पुस्तक देवैगा, जो हृदयविषे कामना होवैगी, तौ ब्रह्मलोककों प्राप्त होवैगा, सो राजसूययज्ञके फलकों पावैगा, अरु बहुरि विचारकरि ज्ञानकों पावैगा, अरु मुक्त होवैगा ॥ हे अंग ! इह जो मोक्ष उपाय है सो बडा शास्त्र है, इसविषे बडी कथा है, नानाप्रकारकी युक्तियां हैं, तिन कथा अरु युक्ति करिके वसिष्ठजीनें रामजीकों जगाया है, सो मैं तुझकों सुणाया है, अपणे उपदेशकरि तिसकों जीवन्मुक्त किया, अरु कहत भया जो तुम राज्यलक्ष्मी भोगहु, सोई मैं तुझकों कहता हौं, जो जीवन्मुक्त होकरि अपणे तप कर्मविषे सावधान होवहु, अरु निश्चय आत्मसत्ताविषे रखणा, इस उपदेश करिके रघुवंशी कृतकृत्य भये हैं, सो मैं तुझकों ज्यौंका त्यौं कहा है, इस निश्चयकों धारिकरि कृतकृत्य होहु, जितनें इतिहास कथा हैं, तिनके भिन्न भिन्न नाम सुणहु, वैराग्यप्रकरणविषे संपूर्ण रामजीका प्रश्न है ॥ १ ॥ अरु मुमुक्षुप्रकरणविषे शुकनिर्वाणही कहा है ॥ अरु उत्पत्तिप्रकरणविषे इह अष्ट आख्यान कहे हैं ॥ एक आकाशजका १, दूसरा लीलाका २, तीसरा सूचीका ३, चतुर्थ इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका ४, पंचम कृत्रिम इंद्र अरु अहल्याका ५, षष्ठ चित्तोपाख्यान ६, सप्तम वाल्मीककी क

था ७, अष्टम सांबरका आख्यान ८ ॥ स्थितिप्रकरणविषे चार आख्यान कहे हैं ॥ एक भृगुके सुतका १, दूसरा दाम व्याल कटका २, तीसरा भीम भास दटका ३, चतुर्थ दासुरका ॥ ४ ॥ उपशमप्रकरणविषे एकादश आख्यान कहे हैं ॥ एक जनककी सिद्धगीता १, दूसरा जो है पुण्यपावनका २, तीसरा बलकों विज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तांत ३, चतुर्थ प्रल्हादविश्रांति ४, पंचम गाधीका वृत्तांत ५, षष्ठ उद्दालकनिर्वाण ६, सप्तम सुरघनिश्चय ७, अष्टम परघनिश्चय ८, नवम भासका ९, दशम विलाससंवादका १०, एकादश वीतवका ॥ ११ ॥ निर्वाणप्रकरणविषे सप्तविंशति आख्यान कहे हैं ॥ भुषंडवासिष्ठका १, महेशवासिष्ठका २, शिलाकोश ३, उपदेश अर्जुनका ४, स्वप्नवत् रुद्रका ५, वैतालका ६, अरु भगीरथका ७, अरु गंगाअवतारका ८, शिखरध्वजका ९, बृहस्पति कचप्रबोध १०, मिथ्यापुरुषका ११, भृंगीगणका १२, इक्ष्वाकुनिर्वाणका १३, मृगव्याधि दृष्टांतका १४, बलबृहस्पतिका १५, मंकी निर्वाणका १६, विद्याधरका १७, हरणोंपाख्यान १८, आख्यानोपाख्यान १९, विपश्चितका २०, शिवका २१, शिलाका २२, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रका २३, कुंददंतका २४, महाप्रश्नोत्तरवाक्य २५, शिष्यगुरुका २६, महोत्सवग्रंथ प्रशंसाफल २७, चतुष्टयप्रकरणविषे पंचाश आख्यान वर्णन भये ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे वसिष्ठ रामचंद्रसंवादे निर्वाणप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम द्विशताधिकैकोननवतितमः सर्गः ॥ ॥ २८९ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ समाप्तमिदं श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे उत्तरार्द्धम् ॥

॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणं समाप्तम् ॥

इदं योगवासिष्ठमहारामायणं सटीकं पित्रे उपाह्वकृष्णशा
स्त्रिसहायेन ऐनापुरेइत्युपाह्वबाळाचार्यात्मजवासुदे
वाचार्यैः कानिचिल्लिखितपुस्तकानिमिलित्वा
संशोध्य गोपाळनारायणाख्यजनतायाः
मुद्रायंत्रे पिंगेउपनामककृष्णात्मज
रामचंद्रेण मुद्रायंत्राधिपतयेमु
द्रितम् । आषाढशुद्ध ११
शके १८१८

गोपाळनारायण कंपनी
बुकसेलर काल्बिकादेवी
रोड मुंबई

॥ इति श्रीसटीक योगवासिष्ठ समाप्तः ॥

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN